Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080206

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj,Foundation Chennai and eGangotri

080206

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

रक्षक : पण्डित सुन्दरलाल
म्पादक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : बैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

080206

080206

न पंक्तिया के
स्वर्गीय बरकत
भी महत्व नहीं देते
के अपने प्रारम्भिक
में अरबी पढ़ाया करते
म व ऊंची शिक्षा प्राप्त करने
स्तान गए। वहां उन्होंने पहिली बार
ष्ण गोखले का व्याख्यान सुना और
परिचय और प्रभाव में आए। कई वर्षों
को अपना राजनैतिक गुरू मानते रहे और
र आदेशों का पालन करते रहे, किन्तु

र्षिक मूल्य ६)]

जनवरी १९४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

[जनवरी १९४६]

१—एक महान क्रांतकारी की याद में—डा० पी० एस० मंगलमूर्ति एम० ए०, पी-एच० डी० ... ... १

२—जीवन में कला का मूल्य—निकोलस रोरिक ५

३—पुरुषार्थ का आध्यात्मिक महत्व—आचार्य क्षितिमोहन सेन ०

४—प्राचीन सुमात्रा में भारतीय संस्कृति—श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय एम० ए० ... १३

५—अभयधर्म: बौद्ध दर्शन—भिक्षु धर्म रक्षित ... १७

६—प्राचीन मिस्र और उसके राजवंश—श्री भगवती प्रसाद पांथरी एम० ए० ... २६

७—हनुमान का चरित्र—एस० वंशीनाथ अय्यर २९

८—जैन धर्म का मूल तत्व—के० सावजी जैन ३२

९—करबला में हज़रत इमाम हुसैन की शहादत—प्रो० एस० एल० जिन्दल एम० एस-सी०, टी० डी० ... ... ३५

[illegible] खूनी था ! (कहानी)—श्री० बटुकेश्वर दत्त ... ... [illegible]

[illegible] को खण्ड खण्ड मत करो—श्री विनोबा ४२

[illegible]—श्री प्रभाकर दिवाण ४४

[illegible] ... ४६

[illegible]—श्री० श्याम ... ४९

१५—विचार तरङ्ग—श्री मुकुन्दीलाल ... ५४

१६—ब्लड प्रेशर या खून का दबाव—लिओनार्ड विलियम ५५

१७—स्वराज्य की परिभाषा—पं० जवाहरलाल नेहरू ५८

१८—सारनाथ की कला—रा० ब० ज्ञानशंकर पंड्या एम० ए० ... ... ५९

१९—समाज में जब स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ होंगी—विद्यानन्द सन्यासी ६२

२०—आत्मग्लानि (कहानी)—श्री० विष्णु ... ६५

२१—प्रवचन—महात्मा भगवानदीन ... ६९

२२—भारत का महान तीर्थ सेवाग्राम श्री रामनारायण उपाध्याय ... ७०

२३—प्रवचन—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ... ७४

२४—नव-वर्ष (कविता)—वृजेन्द्र ... ७५

२५—धर्म-कथा (कविता)—श्रीमती एल्ज़ा व्हीलर विलकाक्स ७५

२६—वस्तु क्रम (कविता)—श्रीमती सरोजिनी नायडू ७५

२७—विप्लव (कविता)—श्री प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक ७६

२८—'गीत' (कविता)—श्री देवेन्द्र एम० ए० ... ७६

२९—जय-हिन्द (कविता)—'करील' ... ७७

३०—विक्रम (कविता)—श्री रामकुमार चतुर्वेदी ... ७७

३१—पुस्तक-परिचय ७९

३२—सम्पादकीय ८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व वाणी

वर्ष ६, भाग ११] जनवरी : १९४६ [अङ्क १, पूरे अङ्क ६१

एक महान क्रान्तिकारी की याद में!

डाक्टर पी० एस० मङ्गलमूर्ति एम० ए०, पी-एच० डी०

इसी जनवरी के पहले सप्ताह में हम महान भारतीय क्रान्तिकारी मौलाना मोहम्मद बरकतउल्लाह की उन्नीसवीं निधन तिथि मनाएंगे। अपने प्यारे मुल्क हिन्दुस्तान से हमेशा के लिए निर्वासित इस महान क्रान्तिकारी देशभक्त को नई पीढ़ी के हिन्दुस्तानियों में से बहुत कम लोग जानते होंगे, अधिकांश ने तो उनका नाम भी न सुना होगा, और केवल थोड़े से पुराने देशभक्तों के दिलों में उनकी टिमटिमाती याद बाक़ी होगी। किन्तु हम विदेशों में बसे हुए हिन्दुस्तानियों की नज़रों में वे एक महान् नेता, महान क्रान्तिकारी, महान् पथ-प्रदर्शक और निर्वासित देशभक्तों के सरताज थे। सैकड़ों ही प्रवासी भारतीय नौजवानों ने उनके चरणों के निकट बैठकर त्याग, आदर्श और देशभक्ति का पहला पाठ पढ़ा था। आज इन उन्नीस वर्षों के बाद हमारे दिलों में उनकी महज़ धुँधली सी याद बाक़ी रह गई है।

मौलाना मोहम्मद बरकतउल्लाह विदेशों में निर्वासित क्रान्तिकारी देशभक्तों में सबसे अधिक प्रिय और पूज्य थे। उनके सर की धवल केश-राशि, सफ़ेद दाढ़ी और झुर्रियां पड़े हुए मुख-मण्डल के बावजूद उनमें जवानों का सा साहस और बच्चों की सी फुर्ती थी। ६५ वर्ष की अवस्था में अपनी मातृभूमि भारत से हज़ारों मील दूर अमरीका के सान फ्रान्सिस्को शहर में १५ जनवरी सन् १९२८ को उनकी मृत्यु हुई। ब्रिटिश हुकूमत से अपने देश को मुक्त करने का विश्वास लेकर वे पूरे ३० वर्ष तक दुनिया के कोने कोने में मारे मारे फिरते रहे। वर्ष एक-बाद-दीगरे आते गए और निकलते गए। उनकी उम्र का पैमाना ख़ाली होता गया और जवानी घटती गई। वे हमेशा दुःख, कष्ट और मुसीबतें झेलते रहे। उनकी आँखों के सामने मुल्क की आज़ादी की उच्च-स्वरों में चरचा करनेवाले अनेक आदमी दग़ा देकर दुश्मन से जा मिले। झुर्रियों और सफ़ेद बाल ने आकर उन्हें बुढ़ापे का सन्देशा दिया। उनकी आखों की ज्योति धुँधली पड़ने लगी और पैरों की ताक़त बुढ़ापे ने कम करदी पर अपने देश की आज़ादी और मुल्क को स्वतन्त्र करने के लिए क्रान्तिकारी संघर्ष पर उनका विश्वास अपनी मृत्यु की अन्तिम घड़ी तक अचल, अमिट और अडिग बना रहा। वे निर्वासित देशभक्तों के लिए सदा भीष्म पितामह बने रहे और उनके हृदयों में प्रोत्साहन भरते रहे।

उनके बाल्य जीवन के सम्बन्ध में इन पंक्तियों के लेखक को अधिक परिचय नहीं है क्योंक स्वर्गीय बरकत उल्लाह अपने व्यक्तिगत जीवन को कभी महत्व नहीं देते थे। केवल इतना हमें मालूम है कि अपने प्रारम्भिक दिनों में वे भोपाल के किसी स्कूल में अरबी पढ़ाया करते थे। ३० वर्ष की अवस्था में वे ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से इङ्गलिस्तान गए। वहां उन्होंने पहिली बार स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले का व्याख्यान सुना और उनके निकट परिचय और प्रभाव में आए। कई वर्षों तक वे गोखले को अपना राजनैतिक गुरू मानते रहे और उनके दिए हुए आदेशों का पालन करते रहे, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव, व्यावहारिक राजनीति और भारत के नरम देश भक्तों के प्रति ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की उपेक्षा-नीति ने उन्हें गोखले से योजनों दूर कर दिया। क्रांति के क्षितिज पर भारतीय स्वतन्त्रता का जो गौरवमय भविष्य वे देखने लगे थे, उस तक स्वर्गीय गोखले की प्रखर-दृष्टि न जा सकी थी। स्वर्गीय बरकतउल्लाह ने अब अपने लिए क्रान्ति के दुर्गम किन्तु सीधे मार्ग को चुना। उन्होंने ब्रिटेन द्वारा भारत को दिए जाने वाले सुधारों के प्रति अविश्वास प्रकट किया, औपनिवेशिक स्वायत्त शासन की चर्चा बन्द की और भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता को और भारतीय क्रांति को अपना आदर्श बनाया।

अपने काम के इस नए क्षेत्र में वे अनेक भारतीय हमराहियों के संसर्ग में आए। भारतीय क्रान्ति की अयोजना उन्हें यूरोप, अमरीका और एशिया के समस्त देशों में ले गई। लगभग १९०५ में उन्होंने जापान से "नया इसलाम" नामक एक उर्दू साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसकी सैकड़ों प्रतियां वे चुपचाप भारत में भेजा करते थे। वे चाहते थे कि किसी तरह भारतीय मुसलमानों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो। अपने तमाम जोश को "नया इसलाम" के कालमों में उंडेल कर वे भारतीय मुसलमानों से अपील करते थे कि इसलाम और अंगरेज़ी हुकूमत दोनों का साथ परस्पर विरोधी और लज्जाजनक है। वे अपने हम महज़बों को यह समझाते थे कि भारत में ब्रिटिश शासन का इतिहास इसलाम की पराजय, बर्बादी, ज़िल्लत और गुलामी का इतिहास है। वे उन्हें यह भी समझाते थे कि भारतीय मुसलमानों ने न सिर्फ़ अपने को ही बर्तानिया का गुलाम बनाया है बल्कि मिस्र, फ़िलिस्तीन, सीरिया, ज़ज़ीरतुल अरब, इराक़, ईरान, जावा और सुमात्रा के इस्लामी मुल्कों को भी गुलामी की बेड़ियाँ पहना दी हैं। इसलिये हिन्दुस्तान के मुसल्मानों की आज़ादी तमाम दुनिया में इसलाम की आज़ादी सबित होगी। वे लिखते थे कि भारतीय मुसलमानों को इसलाम के सबसे बड़े दुशमन बर्तानिया को नष्ट करने के लिए कमर बांध कर खड़ा हो जाना चाहिए और इसका रास्ता सिर्फ़ एक है और वह यह कि भारतीय मुसलमान अपने हमवतन हिन्दुओं के साथ मिल कर भारतीय क्रांति का संगठन करें। जो लोग तनिक भी स्वर्गीय बरकतउल्लाह के संसर्ग में आए वे यह कह सकते हैं कि स्वर्गीय बरकतउल्लाह शत प्रति शत अपने इन विचारों पर अमल करते थे। सैकड़ों क्रांतिकारी हिन्दू उनके आदेशों पर सदा जीवन उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे।

अमरीका में हिन्दुस्तान ग़दर पार्टी के वे जनक थे। हालाकि उसके अधिकांश सदस्य सिख थे, फिर भी स्वर्गीय बरकतउल्लाह अन्त तक हिन्दुस्तान ग़दर पार्टी के एक प्रतिभाशाली, सम्मानित, और विश्वसनीय नेता बने रहे। पहले यूरोपीय युद्ध के ज़माने में वे इण्डियन रेवोलूशनरी कमिटी (भारतीय क्रांतिकारी समिति) के प्रतिनिधि की हैसियत से मध्य यूरोप के देशों और तुर्की और अफ़गानिस्तान के देशों में गए। सन् १९२४ में जब वे सोवियत रूस होते हुए पश्चिमी यूरोप में लौट रहे थे तो वहां उन्होंने न्याय, समता और आज़ादी की बुनियादों पर क़ायम की हुई सोवियत रूस की अभूतपूर्व बोलशेविक सरकार का निकट से अध्ययन किया और देखा कि किस तरह—सोवियत् के करोड़ों नर नारी उस महान् स्वप्न को सच्चा बनाने में जीजान से लगे हुए हैं। वे सन् १९२५-२६ में स्वीज़रलैण्ड में रहे और फिर बर्लिन आकर उन्होंने "अल इसलाह" अर्थात् "प्रगति" नामक एक उर्दू पत्र का प्रकाशन शुरू किया। किन्तु धनाभाव के कारण उन्हें अपना यह अत्यन्त उपयोगी काम बन्द कर देना पड़ा। फरवरी सन् १९२७ में वे ब्रुसेल्स में होनेवाली "कांग्रेस अगेंस्ट इम्पीरियलीज्म" (साम्राज्यवाद विरोधी कांग्रेस) में हिन्दोस्तान ग़दर पार्टी के बाज़ाब्ता प्रतिनिधि की हैसियत से शरीक हुए। इस कांग्रेस में स्वर्गीय मौलाना ने दुनिया की दबी हुई, सताई हुई और गुलाम क़ौमों की आज़ादी के लिऐ बड़ी मार्मिक अपील की। इस काम के लिए उन्होंने अपने और अपनी पार्टी की तरफ़ से काम करने का पूरा वचन दिया। इसके बाद नवम्बर में हिन्दुस्तान ग़दर पार्टी ने उन्हें अपने वार्षिक अधिवेशन में शामिल होने का निमन्त्रण दिया। वे सान फ्रान्सिस्को गए। अधिवेशन में शरीक़ हुए और अपने समस्त सहयोगियों से मौत की अन्तिम घड़ी तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करते रहने की अपील की। उनके जीवन का यही अन्तिम सार्वजनिक काम था। इसके बाद वे बीमार पड़े और अपने सैकड़ों भक्तों और अनुयायियों को छोड़कर ५ जनवरी सन् १९२८ को ६५ वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अवस्था में, जीवन भर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई लड़ते हुए इस दुनिया से बिदा हो गए। मरते समय अपने कुछ साथियों के सामने उनके अन्तिम शब्द थे—"तमाम ज़िन्दगी मैं पूरी ईमानदारी के साथ अपने वतन की आज़ादी के लिए कोशिश करता रहा। यह मेरी ज़बर्दस्त खुशक़िस्मती थी कि मेरी यह नाचीज़ ज़िन्दगी मेरे प्यारे वतन के काम आई। आज इस ज़िन्दगी से बिदा लेते हुए जहाँ मुझे यह अफ़सोस है, कि मैं अपनी कोशिशों में नाकामयाब रहा वहाँ मुझे इस बात की भी तसल्ली है कि मेरे बाद मेरे मुल्क को आज़ाद करने के लिए लाखों आदमी आज आगे बढ़ आए हैं—जो सच्चे हैं, बहादुर हैं और जाँबाज़ हैं। मैं इत्मीनान के साथ अपने मुल्क की क़िस्मत उनके हाथों में सौंपकर जा रहा हूं।"

विविध मुल्कों के क्रान्तिकारियों की जो विशेषताएँ होती हैं वे मौलाना बरकत उल्लाह में भी मौजूद थीं। ज़िन्दगी भर अपने मुल्क की आज़ादी के लिये उन्होंने जो अथक परिश्रम किया उससे उनके दिमाग़ी विश्वास की गहराई का पता चलता है। एक तरफ़ तो उनमें विश्वास की गहराई थी और दूसरी तरफ़ वे अत्यन्त नम्र और दयालु स्वभाव के थे। उनके हृदय में बच्चों की सी निष्कपट सरलता थी। जो भी उनके निकट सम्पर्क में आता था उनसे प्रभावित होता था और उन्हें दिल से प्यार करने लगता था। उनके अनेक साथी उनकी बहुत सी बातों से सहमत नहीं थे। स्वर्गीय बरकतउल्लाह मज़हबी तबियत के आदमी थे। उनके जीवन की बुनियादें अध्यात्मिक थीं। वे अपनी सारी कोशिशों में अल्लाह का हाथ और उसकी मरज़ी देखते थे। अपने कामों में 'मा फलेषु कदाचन' उनका आदर्श था। उनका इसलाम उन्हें सच्चाई, नेकी, स्वाभिमान और आज़ादी की तालीम देता था। इसके विपरीत उनके बहुत से साथी धर्म को, चाहे वह हिन्दू धर्म हो या इसलाम, या कोई भी धर्म हो, प्रतिगामी और क्रान्ति-विरोधी समझते थे। उनके कुछ साथी उन्हें बहुत जल्दी प्रभावित होने वाला कहते थे। कुछ उन्हें बहुत बूढ़ा समझते थे। कुछ की राय में वे प्रतिक्षण बदलती हुई समाजी परिस्थितियों में अपने को अनुकूल बनाने में अशक्त थे। किन्तु जो लोग उनके बारे में ऐसी राय रखते थे वे भी, बावजूद इन मतभेदों के, उन्हें महान नेता, पथ प्रदर्शक और सच्चा साथी समझते थे। बावजूद तमाम मतभेदों के उनके साथियों को उनसे बेहद प्रेम था। एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि भारतीय क्रान्तिकारियों में स्वर्गीय बरकतउल्लाह से अधिक कोई दूसरा इस तरह जीवन पर्यन्त अपने सहयोगियों का विश्वास पात्र और प्रेमभाजन नहीं रहा। सच तो यह है कि उनका अध्यात्मिक दृष्टिकोण जहां उन्हें अपने भाइयों के निकट मोम बना देता था वहीं अत्याचारियों के ज़ुल्मों के सामने उन्हें फ़ौलाद की तरह सख़्त कर देता था। इसलिये जहाँ वह एक ओर जनता के दुःख देखकर पिघल जाते थे वहीं दूसरी ओर बड़े से बड़ा व्यक्तिगत कष्ट उन्हें अपने आदर्शों के प्रति बज्र की तरह कठोर रखता था। यह उनकी अध्यात्मिक साधना ही का परिणाम था कि वे ज़िन्दगी भर कष्ट झेलते रहे, पर न तो अपने आदर्श से डिगे और न अपने पथ से विचलित हुये।

मौलाना बरकतउल्लाह अपनी निर्वासित अवस्था में ही मरे। ६५ वर्ष की त्याग और कष्ट की ज़िन्दगी ने उन्हें समय से पहले बूढ़ा और अशक्त बना दिया था। उनकी उम्र के यूरोपियन इतने बूढ़े और जर्जर नहीं होते। वे दारुण कष्ट सहते थे पर कभी किसी से उसकी चर्चा न करते थे। अर्थाभाव से कभी कभी उन्हें फ़ाक़ा करना पड़ता और उनके साथी दो-दो दिन तक यह बात न जान पाते थे। वे चाहते तो ब्रिटिश सरकार की छत्रच्छाया में सुख पूर्ण जीवन बिता सकते थे, पर उन्होंने मुल्क की आज़ादी के लिये जीवन पर्यन्त दुखों का ही स्वागत किया। लेकिन इस तपस्या ने कभी उनके मनमें कोई अभिमान नहीं पैदा किया। वे सदा अपने को एक छोटा सा कर्तव्यरत, क्रान्तिकारी समझते रहे। मरते समय भी उन्हें यही सन्तोष था कि वे अपना कर्तव्य करते हुये मरे। ज़िन्दगी भर सरकारी जासूस उनका पीछा करते रहे, दर्जनों बार उन्हें मृत्यु का सामना करना पड़ा, पर उन्होंने अपने सहयोगियों से कभी कोई माँग नहीं की, सिवाय इसके कि वे लोग अपने वतन को ब्रिटेन के पञ्जे से आज़ाद करने में अपनी पूरी ताक़त लगायें।

अविवाहित रहकर सारा जीवन उन्होंने ब्रह्मचर्य से बिताया। मरते समय भी वे एक छोटे से कमरे में रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे। जहां किसी तरह का कोई फ़र्नीचर न था, उनकी सेवा सुश्रुषा का भी कोई विशेष प्रबन्ध न था और न ठीक से इलाज करने के लिये ही उनके पास पैसे थे। मृत्यु से केवल चन्द घण्टे पूर्व उनके दो-चार साथी उनके पास पहुंच सके थे। पर अन्तिम समय तक उनका धीरज ज्यों का त्यों क़ायम रहा। उन्हें केवल एक ही दुःख था कि वे एशिया की भूमि में मरने के बजाय अमरीका में मर रहे हैं; किन्तु साथ ही साथ उन्हें यह भी सन्तोष था कि मौत के समय उनके सर पर यूनियन जैक नहीं फहरा रहा है। यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है कि वे उस महत्वपूर्ण ग्रंथ को पूरा न कर सके जिसमें भारतीय आज़ादी के लिये उनके अपने संस्मरण दर्ज होते। केवल उसके दो-तीन अध्याय ही वे लिख पाये थे कि मौत उनकी इस योजना के बीच में आकर खड़ी होगई और भारतीय साहित्य एक गौरवपूर्ण और क़ीमती ग्रन्थ से अपने भण्डार को सजाने से वञ्चित रह गया।

जब मौलाना बरकतउल्लाह की मौत का समाचार हिन्दुस्तान एसोसियेशन आफ़ सेण्ट्रल यूरोप (मध्य यूरोप की हिन्दुस्तान समिति) के दफ़्तर बर्लिन पहुंचा तो वहां फ़ौरन एक शोक सभा की गई। एसोसियेशन के अनेक सदस्य स्व० मौलाना से परिचित थे। शोक सभा में बोलनेवालों में न सिर्फ़ हिन्दुस्तानी ही थे बल्कि तुर्क, ईरानी, जर्मन, रूसी, अफ़ग़ान आदि भी थे। छै देशों के प्रतिनिधियों ने उस सभा में भाग लिया। सभी ने स्वर्गीय मौलाना को त्यागव्रती और बलिपन्थी शहीद कहकर उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। आज़ादी के नाम पर मर मिटनेवाले इस वीर की सभी ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। ईरानी प्रतिनिधि ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—

"बरकतउल्लाह की मौत हो गई किन्तु उनकी आज़ादी की भावना अमर है और वह सदा अमर रहेगी। सभी क्रान्तियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होता है। कोई क्रान्ति एक देश या एक भौगोलिक क्षेत्र में सीमित नहीं रहती बल्कि वह तमाम देशों को प्रभावित करती है। इसलिये किसी भी देश के क्रान्तिकारी शहीद को सारी दुनिया के आज़ादी-पसन्द लोग अपना शहीद मानते हैं और इसीलिये उससे प्रेम करते हैं, उसकी इज़्ज़त करते हैं और श्रद्धा के साथ उसकी याद करते हैं। ये शहीद आज़ादी के उस राज मार्ग का निर्माण करते हैं जिस पर देर सवेर दुनिया की सभी क़ौमों को चलना है। अगर ये शहीद न होते तो दुनिया एक अँधेरी जगह बन जाती।"

सोवियत रूस के प्रतिनिधि ने तमाम ग़ुलाम एशियाई देशों की आज़ादी की लड़ाई के लिये सोवियत् देश की हमदर्दी प्रकट की। उसने ऐलान किया कि—

"भारत की आज़ादी की लड़ाई के साथ सोवियत् को पूरी हमदर्दी है। आज़ादी की लड़ाई में काम आनेवाले सभी शहीदों की सोवियत् इज़्ज़त करता है और सोवियत् देश के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं मोहम्मद बरकत उल्लाह की स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।"

एक भारतीय वक्ता ने सभा की कार्यवाही समाप्त होने से पूर्व यह ऐलान किया कि मौलाना बरकतउल्लाह की क़ुरबानी व्यर्थ नहीं गई। यह सही है कि उनकी ज़िन्दगी में उनका स्वप्न पूरा नहीं हो सका फिर भी उनकी ज़िन्दगी एक स्वर्णिम प्रकाश फैलानेवाले दीपक की तरह जलती रहेगी जिसके प्रकाश में भारत के लाखों नवयुवक आज़ादी के राजमार्ग पर आगे बढ़ेंगे। जबकि करोड़ों व्यावहारिक और दूरन्देश आदमियों की याद, कि जो बड़ी बड़ी रक़में कमाकर कोठियाँ खड़ी करते रहे और अपने पेट भरते रहे, धूल में मिल जायगी स्वर्गीय बरकतउल्लाह सदा अमर रहेंगे। बग़ैर इस तरह के त्यागमय प्रकाश के दुनिया अभी तक बर्बर युग के अन्धकार में ही पड़ी रहती।

एसोसियेशन के सभापति के अन्तिम शब्द थे—

"यह सच है कि एक महान क्रान्तिकारी की मृत्यु होगई। किन्तु यह भी सच है कि क्रान्ति जीवित है और सदा जीवित रहेगी।"

क्या मैं अपने देशवासियों से यह आशा करूँ कि वे स्वर्गीय मौलाना बरकतउल्लाह की आगामी निधन तिथि पर उस महान तपस्वी और देशभक्त को श्रद्धा पूर्वक याद करेंगे और उसकी क़ुरबानी के महत्व को समझेंगे?

डिपार्टमेंट आफ़ ओरियन्टल कल्चर,
शिकागो यूनिवर्सिटी,
८-११-४५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में कला का मूल्य

कला-गुरु निकोलस रोरिक

संसार में अनेक महान कलाकारों के ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने बहुत निचले स्तर से अपनी ज़िन्दगी शुरू की। भूख, प्यास और मुसीबतें उनकी सृजनात्मक महानता को ज़रा भी कम नहीं कर सकीं। एक बार जड़ पकड़ लेने के बाद कलाकार की कला फिर नहीं मुरझाने पाती। दुनिया के दुख-दर्द कला के रूप को और ज़्यादा सँवार देते हैं। खेती की कड़ी मेहनत करनेवाले और मज़दूरी का बोझा ढोनेवाले ही तो आख़िर सुन्दर और पुरजोश ग्रामगीतों की रचना करते हैं। कला, ज्ञान और उद्यम ये तीनों उसी सृजनशक्ति की सन्तति हैं जो जन-जन को रास्ता दिखाती है और ऊँचा उठाती है।

बहुत पुराने ज़माने से कला के मक़सद को तरह तरह से ज़ाहिर किया गया है। लेकिन कला की चाहे जितनी परिभाषाएं क्यों न की गई हों उनका निचोड़ हमेशा बिल्कुल एक ही रहा है। कला का पहला गुण उसका आकर्षण है। लोगों की आँखें उस पर अटकें और सन्तोष पायें। कला की निगाहों से देखने में वह कृति भली लगे। इस बात पर भी बहुत ज़ोर दिया जाता है कि कलाकृति परम्परागत कला के सिद्धान्तों के अनुकूल हो। जो कलाकार इस परम्परा के नियमों का उल्लंघन करते हैं उनकी कटु आलोचना की जाती है और उनकी कृति ऊँचे दरजे की नहीं समझी जाती।

जिस कला में कृत्रिमता होगी उसे देखकर आदमी थक जायगा और ऊबने लगेगा। किन्तु ऐसी भी कलाकृतियाँ होती हैं जो देखने में बिलकुल स्वाभाविक लगेंगी पर शब्दों में उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। कलाकर की कल्पना बिल्कुल स्पष्ट और रचनात्मक होती है। वह एक ऐसे गीत की तरह होती है जिसके प्रत्येक अक्षर की सुरम्य ध्वनि हमारे कानों में गूँजती है। वह बिल्कुल प्रकृति की तरह होती है जो विभिन्नता में एकता की रचना करती है। जब हम स्फटिक के एक टुकड़े को उठाकर देखते हैं तो उसमें अनेकों रूपों का दर्शन करके हमें हैरत होती है किन्तु वे सब मिलकर एक समन्वयात्मक रूप प्रकट करते हैं। कलात्मक सृजन का यही मूल सिद्धान्त है। यह दूसरी बात है कि शब्दों द्वारा उसका वर्णन न किया जा सके।

जब एक तसवीर स्वाभाविक रूप से बन जाती है तो उसमें न कुछ जोड़ा जा सकता है न घटाया जा सकता है। आप उसके हिस्सों को हटा नहीं सकते। इसलिये नहीं कि उससे सिमेट्री बिगड़ जायगी बल्कि इसलिये कि तस्वीर का प्राणदायक सन्तुलन बिगड़ जायगा। ऐसी तस्वीर को लोग सदा सामने रखना चाहेंगे क्योंकि वह तृप्ति और आनन्द का स्रोत है। जो भी वस्तु अपने चारों ओर ख़ुशी की ज्योति जगमगाये वह वास्तव में एक ख़ज़ाना है। ऐसी वस्तु के बारे में फिर यह नहीं दरियाफ़्त किया जायगा कि वह कला की किस प्रणाली की है। वह कृति सत्यम् सुन्दरम् की एक आकर्षक मार्गदर्शक होगी और देखनेवाले को जीवन की महानता दिखाएगी। वह आपके दिल में उस व्यक्ति की तरफ़ कृतज्ञता पैदा करेगी जिसने मुस्कराहट के साथ आपको ज़िन्दगी का सामना करना सिखाया है और इस दृष्टि से आप सुन्दरता के उस प्रतीक को महत्व देंगे। आपका जीवन सुन्दरतर बनेगा—सदाचार के नीरस उपदेश से नहीं बल्कि हृदय से निकली हुई सृजनात्मक कला की किरण ज्योति से। आपके अन्दर वह सृष्टा जाग जायगा जो चेतना की गहराई में वास करता है।

अपने सर्वोत्तम प्रदर्शन में विज्ञान कला का रूप ले लेता है। इस तरह का वैज्ञानिक समन्वय मानव मस्तिष्क में सदा के लिये अपनी छाप बना लेता है। तब विज्ञान घटनाओं की परम्परागत तालिका नहीं रह जाता बल्कि वह विजय गर्व के साथ नये क्षेत्र में प्रवेश करता है और अपने साथ साथ मानवता को भी ले जाता है।

सृजनकला, चाहे जिस क्षेत्र में हो, आकर्षक होगी और विश्वास पैदा करेगी। विज्ञान अब विचार के विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। यह बात धीरे धीरे प्रकाश में आ रही है कि विचार ऐसे बँधे हुये क़ानूनों के मातहत चलते हैं जिन्हें शब्दों में नहीं प्रकट किया जा सकता लेकिन जिनकी सचाई प्रयोगों द्वारा साफ़ साबित होती है। सच जो यह है जो भी विचार करेगा, सोचेगा वह सृजन करेगा।

कला से हमेशा यह अपेक्षा की जाती है कि वह सृजनात्मक हो। चाहे वह पेचीदा चित्र हो, प्राकृतिक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, या पोर्ट्रेट चित्र हो, जो भी कृति सच्चे कलाकार के हाथों से निकलेगी वह सृजनात्मक होगी। आजकल विचारों में जो पेचीदगी पैदा हो गई है उससे सृजनात्मक भावना के ही टुकड़े टुकड़े होगये हैं। कभी कभी लोग यह फ़र्ज़ कर लेते हैं कि सृजन कला को इस तरह के रूप और आकारों में व्यक्त करना चाहिये जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध न हो। कुछ लोग अब भी एक फ्रान्सीसी चित्र प्रदर्शनी के उस मज़ाक को याद करते होंगे जिसमें एक चित्र के बारे में यह कहा गया था कि वह गधे की पूंछ से चित्रित किया गया है। सृजन कला को व्यक्त करने के प्रयत्नों में लोग उसे बजाय मुक्त करने के (और सृजन कला सदा मुक्त ही होगी) सीमित करने और परम्परा के बन्धनों में बाँधने के तरीके खोजने लगते हैं। इसमें लोग सृजन कला का बुनियादी उसूल भूल जाते हैं कि वह ऐसी शर्त को बर्दाश्त नहीं कर सकती जो उसे सीमित करे और परम्परा से बाँधे।

हम प्रसिद्ध कलाकार गागिन का उदाहरण लें। क्या उसके चित्रों को कोई भी परम्परागत कह सकता है? उसने तमाम बन्धनों और क़ायदे क़ानूनों से ऊपर उठकर चित्र बनाये हैं। वह सदा सृजनात्मक कलाकार रहा है। तर्क के बन्धनों में आप उसे नहीं कस सकते। वह एक विहंगम पक्षी की तरह है जो गाता है क्योंकि गाने के अतिरिक्त वह दूसरी बात कर ही नहीं सकता, क्योंकि गाना उसके स्वभाव का मौलिक अङ्ग है। उसी तरह गागिन के हर चित्र को हम उसके सृजनात्मक स्वभाव का अङ्ग समझ सकते हैं।

किसी भी चित्र की अन्तर्दिष्ट उसके चित्रण के टेक्नीक में निहित नहीं होती। हर युग और हर देश के कलाकारों ने केवल अपनी सहज-बुद्धि से ही कला-कृति की कल्पना नहीं की बल्कि उन्होंने साधारण रङ्गों में अपनी सृजनात्मक कला का मिश्रण किया। मूर्तिकार संगमरमर के एक टुकड़े को लेकर उससे सुन्दर मूर्ति गढ़ता है। बढ़ई लकड़ी के टुकड़े को लेकर उसे एक कलापूर्ण सजीव प्रतिमा में बदल देता है। चित्रकार अपनी हर कृति के लिये सहजबुद्धि से रङ्गों का चयन करता है। चित्रकार से यदि आप यह पूछें कि उसने चित्र विशेष के लिये साधारण रङ्ग, तेल, कैनवास, काग़ज़ या वाटरकलर क्यों इस्तेमाल किया तो वह आपको कभी न बता सकेगा। और यह ठीक भी है। वक्ता को आपने व्याख्यान देते सुना होगा। वह बीच बीच में कभी ज़ोर से बोलता है और कभी धीमे, और वह यह क्यों करता है। एक संगीतज्ञ स्वरों में क्यों ऐसा सामञ्जस्य पैदा करता है कि जिसे हूबहू वह दूसरी बार नहीं दोहरा सकता।

आजकल सहज भावना के ऊपर काफ़ी बहस की जाती है। उसके दार्शनिक पहलू पर जिल्दें भर दी गई हैं। समस्या के समाधान के लिये गणित के अङ्क ही नहीं बल्कि सहज भावना के सामञ्जस्य की दृष्टि से विचार किया जाता है। एक कलाकार ने कहा है—"ऐसा करो ताकि लोग तुम पर विश्वास करें।" एक दूसरे कलाकार ने एक प्रत्यक्षवादी को जवाब देते हुये कहा कि "प्रत्यक्षवादी के नाते क्या वह अपने चित्रों में रास्ते का समस्त कूड़ा कर्कट भी चित्रित करेगा? किन्तु फिर भी हमें प्रत्यक्षवाद को बुरा भला न कहना चाहिये। क्यों कि वह भी अपने चित्रण में उस प्रत्यक्षता के दर्शन कराता है कि जिसे हम कलात्मक दृष्टि से देख सकें।

हाल में कला के समन्वय के ऊपर बहुत कुछ कहा गया है। सभी कलाओं में अच्छी सम्भावनाओं के मिश्रण को समन्वय कहते हैं। पिछली सदी के मशहूर रूसी चित्रकार ब्रूलोव ने एक बार मज़ाक़ में यह कहा था कि कलाकार बनना बहुत साधारण है। उसके लिये सिर्फ़ इस बात की ज़रूरत है कि "अच्छा रङ्ग लेकर मुनासिब जगह रङ्ग दी जाय।" मूलतः इस कला-गुरू की बात ठीक है। रङ्ग भरते समय हर कलाकार को ठीक जगह ही रङ्ग भरना चाहिये और उसके कान में उसकी चेतना उसे आदेश देती है कि ठीक जगह कौन सी है। कलाकार उसी तरह से रेखाङ्कन करके रङ्ग भरता है। पर यदि कोई उससे बाद में यह पूछे कि उसने उस तरह रेखायें खींचकर रङ्ग क्यों भरा दूसरी तरह रेखायें खींच कर रङ्ग क्यों नहीं भरा तो कोई भी कलाकार आपको यह न बता सकेगा कि उसने किस नियम के मातहत ऐसा किया।

यदि आप विविध युगों के विविध कलाकारों की कृतियों का मुकाबला करें तो आप पायेंगे कि ऐसी कृतियों को जो ज़ाहिरा देखने में विरोधी हैं आप एक ही समूह में रख सकते हैं। बहुत प्राचीन चित्र, ईरानी मिनियेचर चित्र, अफ़रीका के कलाकारों के चित्र, चीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जापान के कलाकारों के चित्र और गागिन और वान गोग के चित्र एक ही संग्रह में आसानी से रखे जा सकते हैं और एक ही पेनल में दीवाल पर टांगे जा सकते हैं और उनमें कोई असामञ्जस्यता दिखाई न देगी। रङ्गों का चयन और चित्रण का टेकनीक विभिन्न होते हुये भी उनमें एक सामञ्जस्यता दिखाई देगी। वे सब सृजनकी सच्ची कृतियाँ होंगी। हर तरह की कला, हर तरह के चित्र, मूर्तियाँ, मोज़ेक, सिरेमिक या इस तरह की सब चीज़ें जिन्हें किसी कलागुरु ने गढ़ा है उनमें एकता होगी, सामञ्जस्य होगा, शत्रुता और अलगाव नहीं।

हममें से अकसर लोगों ने कलाकारों के परस्पर विरोधी प्रतिपादनों को सुना है। एक दल कहता है कि वह केवल कला की पुरानी परिपाटी को ही समझ सकता है। दूसरा दल कहता है कि कला प्रगति में ही है और इसीलिए वह आधुनिक कला कृति को देखकर ही सन्तोष पाता है। कभी कभी यह भी होता है कि ये आधुनिक कला कृतियाँ रूखी और दुर्बोध होती हैं मगर फिर भी कुछ लोग इन्हींको देखकर सुख पाते हैं! कुछ लोग केवल तैल चित्रों को ही पसन्द करते हैं और कुछ वाटरकलर चित्रों को। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें केवल रंगे हुए चित्र ही अच्छे लगते हैं किन्तु कुछ को सिर्फ रेखाङ्कित चित्र ही अच्छे लगते हैं। उन्हीं का सृजन वे कला समझते हैं। कुछ लोग कद्दे-आदम चित्रों को और मूर्तियों को ही सुन्दर समझते हैं। लेकिन कुछ लोग मिनिएचर चित्रों को ही पसन्द करते हैं। कुछ लोग बड़ी बड़ी और भारी भरकम वस्तुओं को ही कलात्मक समझते हैं। जब कि कुछ लोग छोटी छोटी चीजो में ही कला की सुन्दरता देखते हैं। क्या यह सीमित दृष्टिकोण कला प्रेमियों के सङ्कुचित हृदय का परिचय नहीं देता? और क्या ये अर्द्धशिक्षित कलाकार इस तरह अपनी सम्भावनाओं को भ्रष्ट नहीं करते?

अक्सर देखा जाता है कि लोगों का कला संग्रह और उनकी रुचि किसी आकस्मिक भावना का परिणाम होती है।

किसी आदमी ने कभी यह सुन लिया कि चित्र तेल से रंगे जाते हैं और इस विचार ने उसके अवचेतन मस्तिष्क में एक जगह बना ली। कभी रिश्तेदारों के बीच में किसी बच्चे के कान में वाटरकलर पेंटिंग की भनक पड़ी या उसको कुछ वाटरकलर चित्र भेंट में दिए गए और इस आकस्मिक घटना ने इस तरह के चित्रों में हमेशा के लिए उसकी रुचि को जाग्रत कर दिया। जीवन के हर प्रकार के प्रदर्शन में, और ख़ासकर कलात्मक भावनाओं के प्रदर्शन में प्रारम्भिक प्रभाव बहुत असर डालते हैं। यह आकस्मिक घटनाएं हमारे अवचेतन मस्तिष्क में गहरी जड़ें जमाकर बैठ जाती हैं। एक व्यक्ति एक ही तरह की चीज़ों से प्रभावित होने लगता है और दूसरी तरह की चीज़ों के प्रति उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती। किन्तु बसन्त आता है, नई नई कलियाँ फूटती हैं, और शीतकाल की ठंडक में, जो अब तक सोई हुई थीं, वे फूल बनकर खिलती हैं क्योंकि सृजनकला का नया युग जो आ रहा है।

कितना सुन्दर शब्द है यह—"सृजनकला।" दुनिया की विभिन्न भाषाओं में आज उसके असर को लोग महसूस कर रहे हैं, वह अपने तरीक़े से आगे होने वाली घटनाओं की सूचना दे रही है, ऐसी घटनाएँ जो मानवता को महान विजय की ओर ले जाएँगी। यह "सृजनकला" इतनी महान और इतनी सत्य, शिव और सुन्दर है कि तमाम परम्परागत बाधाएं उसके सामने नष्ट हो जाती हैं। लोग इस शब्द को सुनकर प्रसन्न होते हैं और इसे प्रगति का चिन्ह समझते हैं! सृजन कला की मांग संकुचित दिमाग़ों को नियमों, रूढ़ियों, और परम्परा की भावनाओं से ऊपर उठाती है और उनके शब्द कोष के असम्भव शब्द को सम्भव बनाती है। सृजन कला के लिए हर चीज़ सम्भव है। वह मानवता को अपने साथ साथ आगे बढ़ाती है। सृजन कला तरुणों का झण्डा है। वह प्रगति की निशानी है। वह नई सम्भावनाओं का बीमा है। वह अन्ध-विश्वास के ऊपर शान्तिमय विजय है। वह मानव कल्याण का नया आन्दोलन है। वह सृष्टि के मौलिक नियमों का नया प्रदर्शन है। एक शब्द में कहें तो वह साकार सुन्दरता है। भारतीय ऋषियों ने यह कहा है कि सृष्टि का कल्याण सत्य, शिव और सुन्दर बनने से ही होगा। इस बात पर कुछ लोग मुस्कराते हैं। कुछ इसे सुनकर हमदर्दी दिखाते हैं। कुछ ने इसे अवज्ञा की नज़र से देखा। लेकिन किसी ने इसका खण्डन नहीं किया। कुछ ऐसी उक्तियाँ हैं जिन पर आश्चर्य्य तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट किया जा सकता है पर जिनका खण्डन नहीं किया जा सकता। मानवता स्वतन्त्रता का स्वप्न देखती है। दुनिया के करोड़ों व्यक्तियों के चेहरों पर स्वतन्त्रता का दिव्य सन्देश दमकता है। स्वतन्त्रता के नाम पर स्मारक-भवन और मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। साथ ही साथ दुनिया में अगर किसी चीज़ का सबमें ज्यादा निरादर है तो वह स्वतन्त्रता का ही। राष्ट्र, समाज और व्यक्ति—तीनों स्वतन्त्रता पर ही प्रतिबन्ध लगाने की कोशिश करते रहते हैं। कला का ही ऐसा एक क्षेत्र है कि जहाँ स्वतन्त्रता अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा के साथ प्रदर्शन पाती है किन्तु इस स्वतन्त्रता को कसौटी क्या है? इस कसौटी की परख यह है कि कला वस्तु को आकर्षक होने के साथ ही साथ सुन्दर भी होना चाहिए। मानव हृदय के रहस्यमय अन्तर्तम में प्रकृति ने विश्वासजनक न्याय की क्षमता स्थापित की है। और वहीं से यह पता चल सकता है कि वास्तविक सिद्धान्त क्या है, वास्तविक सृजन कला क्या है और वास्तविक सौन्दर्य क्या है।

किसी सुन्दर कलाकृति के सम्बन्ध में वेलास क्वीज़ ने कहा है—"यह चित्र नहीं है, साक्षात् सत्य है।"

फ्रांस के महान कलाकार अनातोले ने लिखा है—

"नवीनता का रूप देकर चालाकी से जिस चीज़ का प्रचार कर दिया जाता है, वह जल्दी ही ख़त्म भी हो जाती है। जिस तरह दूसरे क्षेत्रों में फ़ैशन जल्दी जल्दी बदलते हैं उसी तरह कला के क्षेत्र में भी जो चीज़ फ़ैशन के नाम पर जारी की जाएगी वह भी जल्दी ही बदल जायगी। नए नए नारे बुलन्द कर दिए जाते हैं लेकिन नए वस्त्रों की तरह वे एक ही मौसम के बाद पुराने पड़ जाते हैं। रोम की कला के ह्रास काल में साम्राज्ञियों की मूर्तियों के बालों को एक ख़ास तर्ज़ से सँवारा जाता था। किन्तु थोड़े ही समय के बाद यह केश विन्यास भद्दा दिखाई देने लगता था और उनकी जगह संगमर्मर की दूसरी तरह की लटें बनाई जाती थीं और तबसे जैसे जैसे फ़ैशन बदलता गया, इन लटों को भी नई नई तरह से सँवारा जाने लगा। वास्तव में आज हम लोग जिस गतिशील युग में रहते हैं उसमें साहित्य के कुछ ग्रन्थ-विशेष तो कुछ महीनों में ही पुराने पड़ जाते हैं। मैं ऐसे नवयुवक लेखकों को जानता हूं कि जिनकी लेखन शैली दो तीन पीढ़ी पुरानी दिखाई देती है। यह इसलिए कि आजकल मशीनों और उद्योग-धन्धों का युग है जिसमें सारी चीज़ें अजीबो ग़रीब फुर्ती के साथ तब्दील होती रहती हैं। इस टेलीफ़ोन और बिजली के युग में साहित्य भी अँधाधुन्ध रफ़्तार से बदलता है। इस परिस्थिति में केवल एक ही शैली थोड़ी बहुत निश्चिन्तता के साथ चल सकती है और वह है सीधी सादी शैली।

"लेकिन मुश्किल यह है कि सीधी सादी शैली की परिभाषा कैसे की जाय?

"प्रकृति को जितना भी हम जानते हैं और जितना भी हम उससे परिचित हैं, उसमें हमें कोई सीधा-सादा क्रम नहीं दिखाई देता। और कला प्रकृति से अधिक सादगी तो नहीं दिखा सकती लेकिन फिर भी जिस वक़्त हम यह कहते हैं कि अमुक शैली सीधी-सादी है और अमुक शैली पेचीदा है तो हम मन ही मन दोनों का तात्पर्य्य खूब समझते हैं।

"मैं कम से कम इतनी बात तो कह सकता हूँ कि यदि कोई सीधी-सादी शैली नहीं है तो कम से कम ऐसी शैली तो है ही जो सीधी सादी दिखाई देती है और इसी शैली के ज्यादह दिन तक जीवित रहने की सम्भावना है। इस पर यह सवाल किया जायगा कि इस शैली में यह सादगी कहाँ से पैदा होती है? इसका जवाब होगा कि समन्वय की खूबसूरती ही यह सादगी पैदा करती है। सातों रंग एक दूसरे में मिलकर ऐसी ज्योति पैदा करते हैं जिससे कला-मन्दिर का कोना कोना मुखरित हो उठता है किन्तु जिसके प्रकाश की किरण केवल धवल रङ्ग की ही दिखाई देती है। उसमें बेहद पेचीदगी रहती है किन्तु उसका मिश्र णचातुर्य्य उसमें सादगी पैदा कर देता है।"

चित्रकला पर अपने एक ग्रन्थ में अनातोले लिखते हैं—"यदि आप सच्ची कला को देखना चाहते हैं और किसी चित्र को देखकर गम्भीर प्रभाव अनुभव करना चाहते हैं तो आप घिरलाञ्जा का प्रसिद्ध चित्र "कुमारी का जन्म" देखें। यह चित्र फ्लोरेन्स में एक पेनल में बना हुआ है। चित्रकार हमें जापे का कमरा दिखाता है। जच्चा अन्ना चारपाई पर सहारे से बैठी हुई है। वह देखने में न तो तरुणी है और न सुन्दर। किन्तु उसे देखकर यह पता चलता है कि वह एक योग्य गृहिणी है। उसके सरहाने मिठाई का एक बर्तन और अनार रक्खे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं। पलङ्ग और दीवार के बीच में एक दासी खड़ी हुई उसे एक गिलास पकड़ा रही है। बच्चे को अभी अभी नहलाया गया है और पीतल की चिलमची फ़र्श के बीच में रक्खी है। पेनल फैलता है और बालिका मेरी स्तन से दूध पीती दिखाई देती है। उसकी धायमा, जोकि स्वयम् माता है, शहर की अत्यन्त सुन्दरी स्त्री है और वह अपना दूसरा स्तन अपने बच्चे को दे रही है, इस विचार से कि जीवन के एक ही सोते से रसपान कर के दूध के नाते दोनों बच्चे एक दूसरे को अपना भाई बहिन समझ सकें। धाय के निकट सुन्दर कपड़े पहने हुए एक युवा लड़की खड़ी हुई है जो शायद चेहरे के आकार प्रकार से उसकी बहन मालूम पड़ती है। उसने शिशु की तरफ़ अपने दोनों हाथ इस तरह फैला रक्खे हैं कि उसकी आकर्षक भावभङ्गी के अन्दर मातृत्व की जागती हुई भावना साफ़ देखी जा सकती है। पेनल और आगे चलता है। दो सभ्य महिलाएं फ़्लोरेन्स के फैशन में सजी सजाई बधाई देने के लिए आती हुई दिखाई जाती हैं। उसके पीछे एक टोकरी में तरबूज़ और अंगूर लिए हुए एक दासी दिखाई देती है। यह दासी साधारण सौन्दर्यवाली है। उसका लम्बा झगा कमर में एक ओढ़नी से बँधा हुआ है कि जिसका एक सिरा हवा में उड़ रहा है। यह दासी इस पवित्र गार्हस्थिक दृश्य में एक पुरातन ऐतिहासिक स्वप्न की तरह दिखाई देती है। इस गरम कमरे में इन स्त्रियों के विनम्र चेहरों में मुझे फ़्लोरेन्स का तमाम जीवन चित्रित दिखाई देता है। इस कला कृति में कलाकार ने जो रूप और सजीवता भर दी है और जो वास्तविकता चित्रित की है वह बसन्त के स्वर्णिम प्रभात की तरह रहस्यमय और पुष्कल है कि जिसे देखकर समकालीन लोग कह पड़ते थे—"धन्य है यह युग और धन्य है यह कलाकार!"

"कलाकार का यह काम है कि वह जीवन से प्रेम करे और हमें यह दिखाए कि जीवन कितना सौन्दर्यपूर्ण है। बिना उसकी मदद के हमें इसमें सन्देह हो सकता है!

लेओनार्डो ने लिखा है—

"जो आदमी चित्रकला की भर्त्सना करता है वह सृष्टि की दार्शनिक और सुसस्कृत कल्पना की भर्त्सना करता है। क्योंकि चित्रकला प्रकृति माता की बेटी या यों कहिए कि धेवती है। जो कुछ भी सृष्टि में है वह प्रकृति ने पैदा किया और फिर उसने चित्रकला को पैदा किया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि चित्रकला प्रकृति की धेवती है। और इसीलिए उसका सीधा ईश्वर से रिश्ता है।

कलाकारों को सम्बोधन करते हुए लेओनार्डो लिखता है—

"चित्रकार को सब गुणों से भरा पूरा होना चाहिए। ऐ चित्रकार! तेरी क्षमता उसी तरह असीमित है जिस तरह प्रकृति के रूप और गुण। जिस रचना को परमात्मा ने शुरू किया था उसीको तू आगे बढ़ा; इन्सान की कृतियों को नहीं बल्कि ईश्वर के अनन्त सृजन को किसी की नक़ल मत कर। तेरा प्रत्येक चित्र प्रकृति के नित नए रूप का दर्शन कराए।"

जीवन के हर क्षेत्र में इतिहास ने लेओनार्डो के आश्चर्यजनक कामों की तालिका दर्ज की है। उसने गणित शास्त्र पर महत्व-पूर्ण पुस्तकें लिखीं हैं। हवाई जहाज़ से उड़ने के सिद्धान्त का पहला वैज्ञानिक प्रतिपादन उसी ने किया है। उसने डाक्टरी क्षेत्र में बहुत से अन्वेषण किए हैं और वह स्वयम् मानव शरीर शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था। उसने अनेक संगीत के यन्त्र ईजाद किए और रंगों के रसायन पर पुस्तकें लिखीं। वह प्रकृति का पुजारी था। उसने बड़ी बड़ी इमारतों, महलों, मदरसों और पुस्तकालयों से शहरों को भर दिया। उसने फ़ौजों के लिए बैरक बनवाए और एड्रियाटिक समुद्र में बहुत से बन्दरगाहों की बुनियादें डालीं और अनेकों बड़ी बड़ी नहरें खुदवाईं। उसने विशाल क़िले बनवाए, लड़ाई का सामान बनवाया और फ़ौजी मोर्चे बन्दी की योजनाएँ बनाईं।... वह सर्वगुणसम्पन्न एक महान पुरुष था किन्तु बावजूद अपने इन महान् निर्माणों, महान योजनाओं और महान ईजादों के दुनिया केवल इसलिए उसे याद करती है और उसका आदर करती है कि—वह एक महान चित्रकार था। क्या यह कला की वास्तविक विजय नहीं है!

उरुस्वती, हिमालय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ का अध्यात्मिक महत्व

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन

जिन लोगों ने मध्यकालीन भारत के सन्तों के जीवन और उनकी शिक्षा का थोड़ा बहुत भी परिचय प्राप्त किया है, वे यह जानते हैं कि जिस अध्यात्मिक संस्कृति का उन्होंने प्रतिपादन किया था, वह कितनी अनेकाङ्गी थी। इन सन्तों की यह रीति नहीं थी कि वे सम्पूर्ण मानव के किसी एक अंग की उपेक्षा कर उसके दूसरे अंग को बढ़ाएँ। मिसाल के तौर पर सन्त दादू के प्रधान शिष्य रज्जब जी कहते हैं—

"अहिंसा के प्रचार के लिए क्या तुम लोगों के पौरुषोचित गुणों को नष्ट कर दोगे? किन्तु क्या यह पौरुष के ही विरुद्ध हिंसा नहीं है?—तब हिंसा और क्या है?"

इस बात से हमें यह नतीजा निकालना चाहिए कि हमारा उस समय की अध्यात्मिक संस्कृति को अन्धकालीन संस्कृति कहना ग़लत है।

इन सन्तों की जो भी रचनाएं मिलती हैं उनसे पता चलता है कि ये लोग मनुष्य के गुणों का वर्गीकरण करके उनकी अध्यात्मिक भावना को इस तरह नियमित करते थे जिसमें हर भावना अपने पूर्णत्व को प्राप्त हो सके। उनका यह प्रयत्न उसी तरह का था, जिस प्रकार तरह तरह के शारीरिक व्यायामों द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग को सुदृढ़ और बलिष्ट बनाये जाने की कोशिश की जाती है। दादू स्वयं अपने समय के वीर सन्तों में से थे। उन्होंने अपनी कविताओं में जगह जगह अध्यात्मिक साहस पर ख़ास तौर पर ज़ोर दिया है।

दादू का जन्म सन् १५४४ ई० में हुआ था। परम ज्ञान प्राप्त कर जिस समय वे राजपूताना की अम्बर रियासत में आकर बसे उस समय उनकी उम्र ३० वर्ष की थी। उनकी अध्यात्मिक प्रतिभा का यश शीघ्र ही दिल्ली पहुंचा। सम्राट् अकबर ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। पहले तो दादू ने यह कहकर मिलने से अनिच्छा ज़ाहिर की कि—"फ़कीर से बादशाह का क्या काम है?" लेकिन इसके जवाब में अकबर ने यह लिखा कि वह दादू से बादशाह की हैसियत से नहीं बल्कि "अध्यात्मिक समागम के लिए प्यासे" आदमी की हैसियत से मिलना चाहता है। दादू इस पर मिलने के लिए तैयार हो गए और सन् १५८६ ई० में दोनों सन्त आत्माओं का यह समागम अकबर के नए पूजा स्थान फ़तेहपुर सीकरी में हुआ।

सीकरी के लिए रवाना होते समय दादू से उनके कुछ शिष्यों ने बादशाह से ज़रा सावधान रहने के लिए कहा। उन्होंने बताया चूंकि बादशाह के अपने ख़ुद धार्मिक विचार हैं और वह दादू की बातें सुनकर नाराज़ होकर प्राणदण्ड भी दे सकता है। इस पर सद्गुरु ने जवाब दिया—

"यह तो बड़े भारी सौभाग्य की बात है कि उस परमपिता परमात्मा की राह में तन, मन और जीवन की भेंट चढ़ाई जा सके। इस तरह की मौत से डर किस बात का है!"

यहाँ मैं दादू के कविता संग्रह "शूर-तांना" में से कुछ कविताएं जो उन्होंने पौरुषोचित साहस पर कही हैं, दे रहा हूं। दादू कहते हैं—

काइर काम न आवई, यहु सूरे का षेत। २४,१५

अर्थात्—रण के ऐसे मैदान में जहां सत्य की प्राप्ति का निरन्तर संग्राम चलता हो वहां, शूरवीरों के, उस रण के मैदान में, कायरों का क्या काम?

सूरा चढ़ि संग्राम कौं पाछा पग क्यौं देइ।
साहिब लाजै भाजतां धृग जीवन दादू तेइ॥४४,२२

अर्थात्—शूरवीर सदा संग्राम में रत रहता है, वह पीछे पैर नहीं हटा सकता। हे दादू! उस आदमी के जीवन पर धिक्कार है जो संग्राम से भागकर अपने मालिक ईश्वर के नाम को लजाता है।

मरिबे ऊपरि एक पग करता करै सो होइ। २४,२२

अर्थात्—शूरवीर हमेशा अपना एक पैर चिता पर रखता है और अपने प्रभु की मर्ज़ी का स्वागत करता है।

इस मारण माहैं मरणां। तिल पीछै पाव न धरणां॥
अब आगे होइ सु होई। पीछैं सोच न करणां कोई॥
—पद १८६

अर्थात्—इस रास्ते से तिल भर भी पीछे पैर न हटाना। इसीमें आगे बढ़ते हुए मृत्यु का स्वागत करना। केवल आगे होनेवाली बात पर ध्यान देना और जो कुछ बीत चुकी है उस पर कोई पछतावा न करना।

दादू ने इस बात को साफ़ कर दिया है कि जिस संग्राम का वह ज़िक्र करते हैं वह संग्राम बाहरी शत्रुओं के विरुद्ध नहीं है बल्कि मन के भीतर दृढ़ता के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे हुए शत्रुओं के विरुद्ध है। दादू कहते हैं,—

मन मनसा मारे नहीं काया मारण जाहि।
दादू बांबी मारिए सर्प मरै क्यों माँहि ॥२४,८

अर्थात्—तुम अपने मन की कुभावनाओं को तो मारते नहीं बल्कि काया को क्लेश देते हो। हे दादू! बांबी के मुंह पर लाठी मारने से बिल के भीतर बैठा हुआ सांप थोड़े ही मरेगा।

बाहरि सूरा देखिये दादू भीतर पोच ॥२४,८

अर्थात्—हे दादू! बाहर से तो लोग शूरवीर दिखाई देते हैं लेकिन अगर उनके भीतर नज़र दौड़ाइए तो निरे पोच और कायर दिखाई देंगे।

जीवू का संसा पड़या को काकौं तारै।
दादू सोई सूरिवाँ जे आप उबारै ॥२४,२५

अर्थात्—लोग इस बात की प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कोई दूसरा आकर उनको पार लगाए, पर हे दादू! सच्चा शूरवीर वही है जो स्वयं अपने आपको उबारे।

आगा चलि पीछा फिरै ताका मुंह मदीठ।
दादू देखै दोइ दल भागै देकरि पीठ ॥२४,२६

अर्थात्—जो लोग आगे चल करके पीछे फिरकर देखते हैं उनसे कोई सरोकार न रक्खो। हे दादू! ऐसे लोग दोनों तरफ देखते हैं और फिर संग्राम में पीठ दिखाकर भाग जाते हैं।

जब जूझै तब जाणिए काछि खड़े क्या होइ।
चोट मुहै मुंह पाइगा दादू सूरा सोई ॥२४,६४

अर्थात्—शूरवीर की पहिचान किनारे खड़े होने से नहीं होती वह तो रण में जूझने से ही होती है मुँह पर चोट खाने वाला ही सच्चा शूरवीर है।

सूरा होइ सुमेर उलंघै सब गुण बन्ध्या छूटै।
दादू निर्भै ह्वै रहै काइर तिणा न टूटै ॥ २४,२१

अर्थात्—शूरवीरता सब बन्धनों को तोड़कर सुमेरु पर्वत को भी लांघ सकती है, इसलिए हे दादू! जीवन में निर्भय होकर रहो क्योंकि कायर आदमी तो एक तिनका तक नहीं तोड़ सकता।

दादू हम काइर करबा करि रहें सूर निराला होइ।
निकसि खड़ा मैदान मैं तासम और न कोइ ॥२०,५

अर्थात्—दादू के बराबर दूसरा कायर कौन है जो रण-क्षेत्र में किनारे पर खड़ा हुआ सकुचा रहा है। जो आदमी मैदान में कूद पड़ता है, ऐसा शूरवीर निराला ही होता है और उसकी समता कोई दूसरा नहीं कर सकता।

पीछैं कौं पग ना धरै आगैं कौं पग देइ।
दादू यहु मत सूर का अगम ठौर कौं लेइ ॥२४,२८

अर्थात्—जो शूरवीर है वह पीछे को पैर नहीं रखता आगे को ही पैर बढ़ाता है। हे दादू! जो शूरवीर है, वह आगे बढ़कर ऐसी जगह पर क़ब्ज़ा करता है है कि जहां पहुँचना सहज नहीं होता।

दादू बलि तुम्हारे बापजी गिणत न राणा राव।
मीर मालिक प्रधान पति तुम बिन सब ही बाव ॥

अर्थात्—हे परमपिता! दादू तुम्हारा बल पाकर न किसी राणा से डरता है और न राव से। हे प्रभु! तुम्हीं मीर हो, तुम्हीं मालिक हो, तुम्हीं प्रधान हो और तुम्हीं स्वामी हो। तुम्हारे अतिरिक्त सब कुछ असत्य है।

यहां पर यह बात जाननी दिलचस्प होगी कि दादू के बाद उनकी अध्यात्मिक भावनाओं के इस समन्वय के प्रति उनके शिष्यों का क्या रुख़ रहा क्योंकि शिष्यों में यह कमी होती है कि गुरू की शिक्षा को पहले खण्ड खण्ड कर डालते हैं और फिर कुछ लोग एक अंग पर ज़ोर देते हैं और कुछ दूसरे अङ्ग पर। यही परिणाम दादू की शिक्षाओं का भी हुआ।

दादू के शिष्यों के एक दल ने शूरवीरता के आध्यात्मिक मूल को भूलकर जिसमानी शूरवीरता को अपना सिद्धान्त बनाया और नागा बन गए। यह लोग बाद में सिर्फ़ भाड़े के सिपाही रह गए और राजपूताना के राजाओं के लिए कभी एक तरफ़ से लड़ते थे और कभी दूसरी तरफ़ से। बाद में ये लोग अंग्रेज़ी फ़ौजों में भी बहुत बड़ी तादाद में भरती हो गए और अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान पर क़ब्ज़ा करने में इन्होंने मदद पहुंचाई। वे निःसन्देह बहादुर आदमी थे। लेकिन अपने गुरू की अध्यात्मिक शिक्षा पर ध्यान न देने के कारण उनका पतन हो गया।

इसके विपरीत दादू के अध्यात्मिक उत्तराधिकारियों ने नारन के असली मठ में अपनी गद्दी क़ायम की और चुपचाप धार्मिक क्रियाओं का पालन करते हुए अपना जीवन बिताने लगे। वे अपने गुरू की शूरवीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा को बिल्कुल भूल गए।

दादू की मृत्यु के लगभग १०० बरस बाद, सन् १७०६ ई० के आख़ीर में सिक्ख गुरू गोविन्द सिंह ने नारन (नारायनो) मठ की यात्रा की। उस समय उस मठ के महन्त जैत जी थे। गुरु गोविन्द सिंह ने जैत जी से दादू के कुछ उपदेश सुनाने को कहा। उस पर जैत जी ने दादू की जो पंक्तियाँ सुनाईं उनमें एक यह भी थी—"दुनयावी ज़िन्दगी के प्रलोभन में न फँसो। कामना का त्याग करो और दुनिया की दौलतों की इच्छा न करो।"

इस पर गुरु गोविन्दसिंह ने डाँटते हुए कहा—

"इस तरह का उपदेश धर्म स्थापित करने के लिए ठीक है किन्तु यह विनय और अवज्ञा धर्म की रक्षा नहीं कर सकती। बल्कि इसकी जगह यह कहिए, दुनिया पर हुकूमत करने का दावा करो। पापियों के राज्य को नष्ट करो और धर्म के दुश्मनों को पनाह न दो।

"किन्तु," जैत जी ने आपत्ति की, "हमारे सद् गुरू संस्थापक ने उपदेश दिया है कि यदि कोई तुम पर डण्डा चलाए तो तुम नम्रता के साथ सर झुकाकर उसे स्वीकार करो।

इस पर गुरु गोविन्द ने कहा,—"हम इस समय मुसीबत में फँसे हुए हैं, पापियों का बोलबाला है और सन्तों पर अत्याचार हो रहे हैं। इसके सुधार की हमें कोशिशें करनी चाहिएँ। इस समय जो लोग हथियार उठाएंगे, वही लोग भक्त कहलाने के सच्चे अधिकारी होंगे। इसीलिए मैंने 'ख़ालसा' क़ायम किया है और अपने सिक्खों को तलवार की दीक्षा दी है और उन्हें मनुष्यों में 'सिंह' बनाया है।

गुरु गोविन्द ने, ज़ाहिर है, दादू की वास्तविक शिक्षा को समझा था। हालांकि सिक्ख समुदाय के क़ायदों के मुताबिक़ समाधि को दण्डवत करना मना था फिर भी गुरु गोविन्द ने बिदा लेते समय दादू की समाधि के सामने साष्टांग दण्डवत की। दादू के अनुयायियों के पतन का मूल कारण यही था कि उन्होंने दादू की शिक्षाओं में से वीरता से प्रेम को और प्रेम से वीरता को अलग करके उसे स्वीकार किया।

दादू ने जब भी प्रेम की चर्चा की है तो प्रेम को उन्होंने पौरुषोचित वीरता से विभूषित किया। इस सम्बन्ध में उनकी स्थिति को साफ़ करने के लिए मैं यहाँ पर उनके कुछ वाक्य और दे रहा हूं। दादू लिखते हैं—

दादू जाते जिवथैं तौ डरूं जे जिव मेरा होइ।
जिन यहु जीव उपाइया सार करैगा सोइ ॥२१,७७

अर्थात—यदि यह ज़िन्दगी मेरा होती तो मैं इसे खोने से डरता। इस जीवन का वह जो सृष्टा है, वही ठीक ठीक जानता है कि इसका वह क्या उपयोग करेगा।

मरणे थीं तूं मति डरै मरणां अंत निदान।
रे मन मरण सिरज्या कहिले केवल प्राण ॥ २४,४७

अर्थात्—मृत्यु से तू न डर। क्योंकि मृत्यु ही इस जीवन का अन्त है। मरण का इसीलिए सृजन किया गया है कि जीवन प्रकाश में आ सके।

सिर कै साटै लीजिए साहिब जी का नांव ॥२४,४४

अर्थात्—उस साहब परमात्मा का नाम लेने के योग्य बनना है तो सिर देकर ही बना जा सकता है।

जे तू प्यासा प्रेम का तौ जीवन की क्या आस ॥

अर्थात्—यदि तू सचमुच प्रेम का प्यासा है तो फिर जीवन की आशा को छोड़ दे।

दादू मरणा पूव है मरि मांहै मिलि जाइ ।२४,५२

अर्थात्—हे दादू मृत्यु के उपरान्त ही प्रेमी का प्रियतम से सम्मिलन सम्भव है।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन सुमात्रा में भारतीय संस्कृति

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

पुरानी ऐतिहासिक खोजों से अब यह साफ़ साफ़ मान लिया गया है कि दक्षिण-पूर्वीय द्वीपों में भी भारतवर्ष के निवासी, जाकर बस गये थे। जो लोग इन द्वीपों में जाकर बसे वे अपने साथ भारत की सभ्यता तथा संस्कृति भी ले गये थे। ईसा से कई शताब्दी पहले से ही भारतवर्ष का इन द्वीपों से व्यापारिक सम्बन्ध था। जावा तथा सुमात्रा में तो मध्यकालीन समय तक भारतीय सभ्यता का पूरी तरह प्रचार रहा। आजकल तो जावा तथा सुमात्रा में मुसलमान संख्या में अधिक हैं, परन्तु एक समय था, जब कि इन द्वीपों में भारतीय सभ्यता का सर्वाधिकार था। सुमात्रा में भारतीय जनता का साम्राज्य क़ायम होगया था, जो सैकड़ों वर्षों तक स्थायी रहा।

भौगोलिक स्थिति

सुमात्रा द्वीप का क्षेत्रफल बोर्नियो से कम तथा जावा से अधिक है। सुमात्रा के पच्छिम में हिन्दमहासागर तथा पूर्व में जावा और चीन सागर हैं। सुमात्रा का क्षेत्रफल क़रीब १,६७,४८० वर्गमील है। भूमध्यरेखा सुमात्रा के बीच में होकर जाती है, बुकित बैरीसन (Bukit Barison) नामक पर्वत श्रेणी सारे द्वीप में फैली हुई है। सुमात्रा में ज्वालामुखी अधिक हैं। द्वीप की जम्बी नामक नदी सबसे बड़ी है। जम्बी नगर के समीप इसकी चौड़ाई १३०० फ़ीट हो जाती है। इन्द्रपुरा पर्वत श्रेणी भी मुख्य है। सुमात्रा में खनिजों की बहुतायत है। सोना, चांदी तथा तांबा अधिक मात्रा में निकलता है। जंगल भी घने हैं, जिनमें चन्दन, सागौन तथा देवदार की लकड़ी अच्छी मिलती है। खेती के लिये भी भूमि उत्तम है। चावल, गन्ना तथा तम्बाकू की उपज अच्छी होती है। इतना होते हुये भी सुमात्रा की जन संख्या क़रीब ७०,००,००० है।

सुमात्रा के निवासी

एक विद्वान ने इन द्वीपों के आदि निवासियों के विषय में लिखा है कि वे काले रङ्ग के हैं, शरीर पर बाल अधिक हैं, नाक उनकी चौड़ी होती है, ठोड़ी की बनावट कुछ अजब है और होठ भी बड़े तथा लटकते रहते हैं। ये लोग ठिगने क़द के होते हैं। एक लंगोटी के अतिरिक्त वे नग्न ही रहते हैं। खेती करना जानते ही नहीं, इसलिये शिकार करके, मछली मारकर तथा जंगली फल खाकर अपना काम चलाते हैं। वे पेड़ों पर और झोपड़ों में रहते हैं और धनुष बाण ही उनके मुख्य शस्त्र हैं[1]। स्मिट (Schmidt) नामक विद्वान का कहना है कि हिन्द चीन तथा हिन्द एशिया के आदि निवासी भी उसी जाति के हैं, जो कि पूर्वकाल में मध्य भारत तथा आसाम के जंगलों में मिलती थी। उस विद्वान के मतानुसार हिन्द एशिया के आदि निवासियों का भी आदि निवास स्थान भारतवर्ष ही था, और यहीं से वे पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में जाकर बस गये थे। डा० मजूमदार का कहना है कि जब भारतवर्ष में आर्य और द्रविड़ जातियों का प्रभाव बढ़ा तब आदि निवासियों को अपने रहने के लिये दूसरी जगह की खोज करनी पड़ी। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान सिलवन लेवी (Sylvain Levi) ने भी दक्षिण-पूर्वीय द्वीपों में पुरानी भारतीय सभ्यता के चिन्ह पाये हैं। भारतीय विद्वान दासगुप्त ने हाल में सुमात्रा के कुछ खेलों का पता लगाया है, जिनकी समानता के खेल मध्य प्रदेश, पंजाब, बंगाल तथा उड़ीसा में खेले जाते थे। कुछ काल पूर्व सुमात्रा में शिव लिंग के आकार की कुछ शिलायें मिलीं हैं जो कि बहुत पुरानी मालूम होती हैं, परन्तु मोहन जोदड़ो की खुदाई ने यह बात स्थापित करदी है कि ईसा से हज़ारों वर्ष पूर्व भी भारत में शैव-धर्म की पूजा होती थी, और यह माना जाता है कि प्राचीन काल में भी भारत से ही यह प्रथा सुमात्रा में पहुंची होगी।

सुमात्रा में हिन्दू राज्य

सुमात्रा में गये हुये भारतीयों ने वहाँ एक राज्य भी क़ायम कर लिया था। उस राज्य का नाम चीन तथा दक्षिण भारत के चोल वंशीय राजाओं की पुस्तकों में 'श्री विजय' राज्य या 'शैलेन्द्र वंशीय' राज्य लिखा मिलता है। जे० ए० फ़ेरां (J. A. Ferrand) नामक

१—J. R. Wilkinson : A History of the Peninsular Malayas.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान ने एक चीनी भाषा के बौद्ध सूत्र के आधार पर सबसे पहले यह बात कही थी कि ईसा की चौथी शताब्दी में सुमात्रा में श्रीविजय राज्य था। चीनी यात्री ईत्सिंग (I-tsing) ने अपनी पुस्तक 'तकाकुसु' (Takakusa) में लिखा है कि मलाया देश भी श्रीविजय राज्य के अधीन था। सातवीं शताब्दी में सुमात्रा के राज्य ने अधिक उन्नति की और आठवीं शताब्दी में तो १५ अधीन राज्य सुमात्रा के राज्य में थे। नवीं शताब्दी के बङ्गाल के राजा पालदेव का एक ताम्रपत्र नालन्दा में मिला है ; ताम्रपत्र में सुमात्रा (सुवर्ण दीप के महाराजा बलपुत्र देव ने बङ्गाल के पाल वंशीय राजा देवपाल से पाँच नगर मांगे थे, क्यों कि बलपुत्र देव ने नालान्दा में एक बौद्ध मठ बनवाया था, और उस मठ के खर्च के लिये ये नगर बिहार में राजगृह के निकट मांगे गये थे। दशवीं शताब्दी के चोल राज्य के एक बौद्ध शिलालेख से मालूम हुआ है कि चोल वंशीय राजराजा (९८५—१०१२ ई०) के शासन काल में श्री विजय के राजा ने नागापत्तन (Nagapattna) नामक स्थान में बौद्ध मन्दिर बनवाने के लिये आज्ञा मांगी थी। चोल वंश के राजेन्द्र चोल प्रथम (१०१२-१०४२ ई०) का एक शिलालेख मिला है, जिससे मालूम पड़ता है कि चोल राजा ने श्रीविजय राज्य को युद्ध में परास्त किया था परन्तु यह विजय स्थायी न रही क्योंकि १०६८ ई० में राजेन्द्र प्रथम ने श्री विजय राज्य के एक आधीन राजा को परास्त किया और फिर कर लेकर उसी को वापस कर दिया। अरब सौदागर सुलैमान (८५१ ई०) तथा अबू ज़ैद हसन (९१६ ई०) ने अपनी पुस्तकों में इन द्वीपों का वर्णन किया है और उसी वर्णन में सुमात्रा के श्रीविजय राज्य का भी वर्णन आता है।

इतिहासकार यह मानते हैं कि ईसा की सातवीं, आठवीं, नवीं तथा दसवीं शताब्दियों में सुमात्रा का श्रीविजय राज्य अधिक शक्तिशाली था। सातवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में सुमात्रा के राजा का राजदूत चीनी सम्राट के दरबार में था। चीनी सम्राट की ओर से अन्य देशों के राजदूतों की तरह सुमात्रा के राजदूत को भी वर्ष के पांच महीनों के लिये व्यय दिया जाता था। ७०२ ई० तथा ७१६ ई० में भी सुमात्रा का राजदूत चीनी सम्राट के यहाँ गया था। सुमात्रा के राजा श्रीइन्द्रवर्मन (चीनी पुस्तकों में उसका नाम Che-es-to-lo pa-mo लिखा है) ने ७२४ ई० में चीनी सम्राट के लिये अपने राजदूत के हाथ भेंट भेजी। भेंट में कुछ बौने, एक संगीत मंडली तथा एक पाँच रंग का तोता था। चीनी सम्राट ने सुमात्रा के राजदूत को उपाधि से भी विभूषित किया।[२] चम्पा, वर्तमान अन्नम (Annam) को सुमात्रा के राजाओं ने जीत लिया था। सुलेमान सौदागर ने इसका वर्णन पूरी तरह दिया है। चम्पा के राजा को परास्त करने के बाद चम्पा का राज्य सुमात्रा के 'महाराजा' ने वहीं के एक राजपुत्र को दे दिया। उसी जीत का वर्णन करते हुये अरब सौदागर सुलेमान लिखता है कि सुमात्रा के महाराज के इस काम ने "ज़ाबज (सुमात्रा) के राजा को चीन और भारत के शासकों की दृष्टि में उच्च बना दिया।"[३] पुराने शिलालेखों तथा चीन की पुस्तकों से यह बात स्पष्ट रूप से मान ली जाती है कि ईसा की आठवीं शताब्दी में सुमात्रा का शैलेन्द्र राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। परन्तु नवीं शताब्दी के मध्य में ही कम्बोडिया (कम्बुज) के राजा जयवर्मन द्वितीय (२२२-८६९) ने शैलेन्द्रवंश से अपने राज्य को स्वतन्त्र कर लिया। जावा में भी शैलेन्द्रवंश का राज्य समाप्त हो गया था।

चोल राजाओं का सुमात्रा पर आक्रमण

ऊपर बताया गया है कि चोलराजा ने सुमात्रा के शैलेन्द्र वंशीय राजाओं के राज्य पर आक्रमण किया था और उन्हें परास्त किया था। दशवीं शताब्दी के अन्त तथा ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में राजराजा महान (९८५-१०१४) तथा उसके पुत्र राजेन्द्र (१०१४-१०४४) के शासन काल में चोल राज्य का विस्तार फैला और उत्तर में बंग देश तक आ गया था। चोल राज्य के पास एक सुसज्जित नौसेना भी थी, और दक्षिण-पूर्व द्वीप समूहों से उस राज्य का आदि काल से व्यापारिक सम्बन्ध चला आरहा था। राजेन्द्र चोल ने जिन कारणों से सुमात्रा के राजा पर आक्रमण किया, उनका वर्णन कहीं

२—D. R. C. Majumdar' Svarnadvipa' पृष्ठ १२४.

३—Elliot. 'History of India as told by its own Historians, vol. I. पृष्ठ ८.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मिलता। शैलेन्द्र वंशीय राज्य पर चोल राजा की चढ़ाई का पूरा ब्यौरा तो, बंगलोर जिले के मलूर के मन्दिर के शिलालेख, तथा तंजौर के शिलालेखों में मिलता है। तंजौर के शिलालेख से मालूम पड़ता है कि राजेन्द्र ने शैलेन्द्रवंशीय राजा के 'विद्याधर-तोरन' तथा श्री विजय नामक नगर के रत्नद्वार को अपने अधिकार में ले लिया था।

सुमात्रा के शैलेन्द्र वंशीय राज्य के बारे में देशी व विदेशी विद्वानों में मतभेद है। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि कलिंग देश से गये हुये लोगों ने ही सुमात्रा में शैलेन्द्र राज्य की स्थापना की क्योंकि कुछ पुस्तकों तथा शिलालेखों में शैलेन्द्र राज्य को कलिंग लिखा गया है। हालाकि यह प्रश्न अब भी विवादग्रस्त है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार नीलकंठ शास्त्री का कहना है कि पाण्ड्य देश ही जावा तथा सुमात्रा के शासकों का आदि देश था।[४] शैलेन्द्र वंश के पतन के बाद मलायू वंश का राज्य आया। इस वंश में आदित्यवर्मन प्रसिद्ध शासक हुआ था। परन्तु शैलेन्द्रवंश के पतन के बाद सुमात्रा का साम्राज्य ८ छोटे छोटे राज्यों में बँट गया था। इन राज्यों का वर्णन मार्को पोलो ने किया है। उसका कहना है कि इस द्वीप के लोग मंगोल सम्राट कुबलई ख़ाँ को अपना सम्राट मानते थे। उसी समय धीरे धीरे सुमात्रा में इस्लाम धर्म का प्रचार भी शुरू हुआ और तेरहवीं शताब्दी के मध्य में सुमात्रा से हिन्दू राज्य का अन्त हो गया।

सुमात्रा में बौद्ध धर्म

नालान्दा में जो देवपाल के समय का ताम्रपत्र मिला है उससे तथा चोल वंश के इतिहास से यह स्पष्टरूप से प्रमाणित होगया है कि सुमात्रा के शैलेन्द्र शासक महायान बौद्ध सम्प्रदाय के अनुयायी थे। जावा के शिलालेखों से यह बात सिद्ध होती है कि काशमीर के एक युवराज ने वहाँ जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया परन्तु सुमात्रा में बौद्ध धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में बहुत कम सामग्री मिलती है, फिर भी विद्वानों का मत है कि सुमात्रा में बौद्ध धर्म का प्रचार जावा के बाद ही हुआ। तेरहवीं शताब्दी में तिब्बत में कल्याण मित्र ने 'फियाग-सोर्प' (Phyag-sorpa) नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें लिखा है कि दिपांकर (अतिषा) (९८० १०५३) नामक बौद्ध साधु स्वर्णद्वीप गया था और उसने वहाँ के तांत्रिक धर्म को नष्टकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। शरतचन्द्र दास ने अपनी 'तिब्बत में भारतीय पंडित' नामक पुस्तक में लिखा है कि दिपांकर स्वर्णद्वीप में बारह वर्ष रहा और वहाँ के महा बौद्ध पंडत धर्मकीर्ति से बौद्धधर्म की पुस्तकों का अध्ययन किया। सुवर्ण द्वीप से लौटते समय वह ताम्रद्वीप (लंका) होता हुआ आया था।

जिस समय शैलेन्द्र वंश का राज्य जावा में था, उस समय का मध्य जावा में कलसन (Kalasan) नामक स्थान पर एक शिलालेख मिला है, जिससे मालूम होता है कि शैलेन्द्र वंश के एक शासक ने अपने गुरु की आज्ञा पर तारा (महायान देवता) की स्मृति में एक विशाल देवालय बनवाया था। शिलालेख के बहुत से अक्षर साफ़ नहीं हैं।

तारा के इस मन्दिर के विषय में भी बहुत मतभेद है। डच विद्वान डाक्टर स्टटरहीम (Dr Stutterheim) का कथन है कि शैलेन्द्र शासक का जब बंगाल के राजा धर्मपाल की पुत्री तारा से विवाह कर दिया गया, तभी से जावा तथा सुमात्रा में महायान बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। इस विद्वान का मत है कि धर्मपाल, शैलेन्द्र शासक का गुरू तथा ससुर भी था। परन्तु अन्य विद्वानों का मत है कि ६८४ ई० में भी सुमात्रा में 'वज्रयान' का नाम विख्यात था। फिर भी सब विद्वान मानते हैं कि जावा तथा सुमात्रा में महायान तथा तांत्रायन सम्प्रदाय का प्रचार बंगाल से ही हुआ। बोरोबोदुर (Borobodur) का संसार विख्यात बौद्ध स्तूप शैलेन्द्र वंशीय शासकों ने ही बनवाया था। यह पूरी चट्टान को काटकर बनाया गया है। इस स्तूप की कला 'ललित-विस्तर' के आधार पर बनाई गई है। इसमें महायान सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण विषयों को सुचारु रूप से अंकित किया गया है।[५]

सुमात्रा में तांत्रिक धर्म

शैलेन्द्र वंश के बाद मलायू वंश का राज्य सुमात्रा

४—R. C. Majumadar' Suvarnadvipa, पृष्ठ २२७

५—The Cultural Heritage of India vol. III. पृष्ठ ११३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आया। आदित्यवर्मन (महाराजाधिराज आदित्यवर्मन प्रतापपराक्रम राजेन्द्र मौलिमनीवर्मदेव) बड़ा प्रतापी राजा हुआ था। उसने १३४७-१३७५ ई० तक राज्य किया। आदित्यवर्मन के शिलालेखों से मालूम पड़ता है कि वह तांत्रिक-बौद्ध धर्म का अनुयायी था। आदित्यवर्मन के चार प्रसिद्ध शिलालेख मिले हैं। मंजुश्री की मूर्ति के पीछे जो शिलालेख है, उससे पता चलता है, कि आदित्यवर्मन का तांत्रिक बौद्धधर्म कट्टरपंथी न था। भैरव पंथ के एक साधु ने ही मंजुश्री की मूर्ति की पूजा का प्रचार किया था। दूसरे शिलालेख जिसमें मतांगि नीसा तथा तारा की मूर्तियाँ हैं, वे शैव तथा बौद्ध वातावरण से भरी हुई प्रतीत होती हैं। तीसरे शिलालेख में राजपुत्र के नामाभिषेक का वर्णन है। कुबूर राज के शिलालेख में आदित्यवर्मन के अन्तिम संस्कार का वर्णन है। बौद्ध धर्म के अनुसार इस शिलालेख में उसका नाम "लोकेश्वर" लिखा हुआ है। सुमात्रा के इस तांत्रिक धर्म में बौद्ध धर्म तथा शैव धर्म दोनों का मेल है। सुमात्रा के तांत्रिक धर्म में जो क्रियायें हैं वे अवश्य ही बंगाल से गई होंगी।[६]

सुमात्रा में संस्कृत भाषा

पासिर पञ्जग (Pasir Panjag) के शिलालेख की पहली तीन पंक्तियाँ नागरी अक्षरों में लिखी मिलती हैं। (१) महायानिक तथा (२) गौतम श्रीपदाः तो अत्यन्त स्पष्ट हैं। गुनुंग तुआ (Gunung tua) के शिलालेख में संस्कृत भाषा की ही प्रधानता है, क्योंकि कुछ जगह मलाया भाषा का भी प्रयोग किया गया है। यह शिलालेख टूटा फूटा है फिर भी उसमें संस्कृत भाषा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

'स्वस्ति, शकवर्षातीत ९४६ चैत्रमास, तिथि त्रितीय सुक्ल, शुक्रवार, तत्काल जुरू पांडै, सुर्य्य वर्वत् भटार लोकनाथ' शब्दों में कुछ अशुद्ध भी हैं। और इटैलिक शब्द तो मलाया भाषा के हैं।

कुबूर राज के शिलालेख में भी संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग अधिक संख्या में किया गया है परन्तु कुछ तो अत्यन्त ही अशुद्ध हैं। फिर भी 'तीक्ष अवतारं श्री लोकेश्वर' तथा 'देव' शब्द शुद्ध संस्कृत में लिखे हुये हैं। सुमात्रा की पुरानी भाषा का भी प्रभाव संस्कृत पर पड़ा। इसी कारण संस्कृत भाषा में अशुद्धता आ गई थी। सुमात्रा के कुछ शिलालेखों में संस्कृत के शब्दों में दक्षिण भारत का भी प्रभाव दिखलाई देता है। कुछ विद्वानों का मत है कि इसका कारण चोल राजाओं का सुमात्रा से पूर्व काल से ही सम्बन्ध था। फिर भी यह कहना पड़ता है कि सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) के शिलालेखों में संस्कृत की ही प्रधानता थी।

सुमात्रा का समाज और सभ्यता

शैलेन्द्र वंश के राजाओं के नाम तो बिलकुल भारतवर्ष की ही तरह थे। शासन प्रबन्ध में भी राज्य के कर्मचारी भारत की तरह सचिव, सेनापति तथा राजगुरू होते थे। सुमात्रा में शक् संवत ही प्रचलित था। महीनों के नाम, दिन के नाम तथा लग्न, योग का भी सुमात्रा में पूरा प्रचार था। भारतीय ज्योतिष शास्त्र का भी प्रचार था। बौद्धधर्म का प्रचार तो था ही। और शैलेन्द्र राजा बौद्ध गया को ही अपना तीर्थ मानते थे। तांत्रिक धर्म का भी अच्छा प्रचार था और वह भी बंगाल से सुमात्रा में गया था। बौद्धधर्म के प्रचार के पहले सुमात्रा में शैवधर्म का भी प्रचार था। आर्यों की तरह स्त्रियां भी अपने पतियों के साथ ही धार्मिक कृत्यों में साथ रहती थीं। जावा से रामायण, महाभारत का भी प्रभाव सुमात्रा के समाज तथा साहित्य पर पड़ा। अरब के सौदागरों के लेखों से साफ पता चलता है कि सुमात्रा का समाज भारतवर्ष के समाज की ही तरह था। सुमात्रा के सर्वश्रेष्ठ पर्वत का नाम इन्द्रपुर है। सुमात्रा के पास मदुरा नाम का एक दूसरा द्वीप है। सुमात्रा दक्षिण पूर्वीय द्वीपों में बौद्ध धर्म का केन्द्र था और धर्मकीर्ति महायान सम्प्रदाय का महा पंडित माना जाता था। चोल राजाओं तथा बंगाल के राजाओं का सुमात्रा से घनिष्ट सम्बन्ध था। पुर्तगालियों के आने के समय से कुछ पहले तक सुमात्रा के कुछ भागों में छोटे छोटे हिन्दू राज्य थे।

६—Dr. R.C. Majumdr Suvarnadvipa, पृष्ठ ३६८.

Dr. B. R. Chhatterji India and Java, पृष्ठ ७९—८०

Dr. B. R. Chatterji-'Indian Cultural Influence in Cambodia, पृष्ठ ३५८—२६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिधर्म : बौद्ध दर्शन

भारतीय भिक्षु धर्मरक्षित, धर्मशाला (लङ्का)

सतत निसेवित पवित्र तीस पारमिता धर्म को पूरा कर उसने बुद्धगया के बोधि वृक्ष के नीचे विभूता सौन्दर्य-मयी सर्वदा स्मरणीय वैशाख की पूर्णिमा को त्रैविद्य हो परम सम्बोधि प्राप्त की। फिर वहाँ व्यतीत किए सात सप्ताहों के मध्य चौथे सप्ताह में बोधि-वृक्ष के निकट "रत-नघर" में सिंहासनारूढ़ क्रमशः धर्म-चिन्तन और तत्-संक्रमण के पश्चात् सहसा उसके ऊर्ध्व-शिखर से छै वर्ण सम्पन्न ज्योति निकली जिससे सारा लोक आभासित हो गया। सर्वदा अन्धकाराच्छादित घन-तिमिर सम्पन्न "लोकान्तरिक-निरय[1]" भी उस अद्भुत प्रभा से प्रभासित हो उठे। उस धर्मराज तथागत का वह अन्तिम धर्म-गाम्भीर्य चिन्तन और संक्रमण था, जिसने कि उन्हें "सर्वज्ञ सम्यक् सम्बुद्ध" बनाया।

सम्बोधि-प्राप्ति के बाद सातवें वर्ष की आषाढ़ पूर्णिमा को बारह योजन में विस्तृत परिषद के बीच अन्य मतावलम्बियों के दर्पाहत चित्त के दमन हेतु अति दर्शनीय 'यमक महाप्रातिहार्य्य[2]' को श्रावस्ती के राजोद्यान में गण्डम्ब नामक वृक्ष के नीचे कर, तीन ही डग में तावतिंस (त्रायस्त्रिंश) देवलोक में जा 'पारिच्छत्तक' (पारिच्छत्रक) तले पाण्डुकम्बल शिलासन पर बैठ[3], वहीं वर्षावास का अधिष्ठान[4] कर विहरते हुए दश सहस्र चक्रवालों (= ब्रह्मांडों) से आए देवों के बीच अपनी माता को सम्बोधित करते, दिव्यराज प्रमुख विशुद्ध बुद्धिमन्त विबुधगणों को निरन्तर तीन मास, उतरती हुई आकाश-गंगा के समान, उलटे मुख पानी के घड़े के सदृश, अनन्त अपरिमित विशिष्ट "अभिधर्म" का उपदेश दिया।

तावतिंस देवलोक में विहरते समय नित्य मध्याह्न 'उत्तर कुरु'* में भिक्षाटन कर हिमालय के 'अनोत्तत' (= अनोतत = मानसरोवर) सर के तट जा, दिवा-भोजन कर वे अल्प समय विमुक्ति सुख के साथ व्यतीत करते। तत्क्षण महा अग्रश्रावक धर्म-सेनापति सारिपुत्र भी कालावलोकन कर वहाँ आते।

"सारिपुत्र, आज हमने इतना धर्मोपदेश किया।" इस प्रकार संक्षेप में उन्हें बतलाते (वे आकर अपने साथ विहरनेवाले कृताधिकार पाँच सौ अर्हन्तों को उपदेश देते। ऐसे देवलोक में तथागत की देशना तथा उन भिक्षुओं का धर्मोद्ग्रहण एक ही साथ समाप्त हुआ। वही परम गम्भीर अति विस्तृत परमार्थ धर्म समूह "अभिधर्म" के नाम से पुकारा जाता है।

धर्मातिरेक विचित्र और विशिष्ट धर्म का ही नाम अभिधर्म है। यहाँ "अभि" उपसर्ग पद अतिरेकार्थ एवं विशिष्टार्थ का द्योतक है। जैसे "अतिच्छत्र" अतिब्रह्म," "अतिदेव" आदि शब्दों से अधिकार्थ और उत्तमार्थ प्रकाशित होता है, ऐसे ही सुत्तन्तादि की अपेक्षा यह अधिक विशिष्ट-परमार्थ धर्म के प्रकाशन हेतु "अभिधर्म" कहा जाता है। यथा—

"यं एत्थ बुद्धिमन्तो, सलक्खणा पूजिता परिच्छिन्ना।
वुत्ताधिका च धम्मा, 'अभिधम्मो' तेन अक्खातो॥"

इससे वृद्धि, सलक्षण, पूजित, परिच्छिन्न, अधिकार्थ आदि अर्थों में अभिधर्म का व्यवहृत होना प्रगट है।

अभिधर्म-पिटक

सर्वज्ञ तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात् प्रथम वर्ष में ही पहली संगीति हुई। उस समय महाकाश्यप, आनन्द आदि भगवान के प्रधान पाँच सौ अर्हत् शिष्यों

१—तीन तीन चक्रवालों के बीच सर्वदा अन्धकार-मय नर्क, जिनकी गणना नहीं।

२—प्रत्येक लोम कूप से एक साथ अग्नि तथा जल निकालने वाला महा प्रातिहार्य्य, जिसे केवल बुद्ध ही कर सकते हैं।

३—एकं समयं भगवा देवेसु विहरति तावतिंसेसु पारिच्छत्रकमूले पण्डकम्बल सिलायं, तत्र खो भगवा देवानं तावतिंसानं अभिधम्मं कथं कथेसि।

४—सभी भिक्षु चौमासे के तीन महीने एक जगह वास करते हैं, चारिका नहीं करते। एक जगह वास का अधिष्ठान श्रावण प्रतिपदा को करते हैं।

* चारों द्वीपों में से एक, जो उत्तर दिशा में पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संगायनस्वरूप सारा धर्म और विनय* तीन भागों में बाँटा गया। ये प्रत्येक 'पिटक' नाम से प्रख्यात हुए। भगवान् ने जिस गम्भीर धर्म का उपदेश देवलोक में किया था, वह उपर्युक्तानुसार "अभिधर्म-पिटक" कहलाया। अन्य सुत्तन्त-पिटक और विनय-पिटक कहलाये।

अभिधर्म-पिटक को भली-भाँति सुगमता से धारण करने के विचार से संगीति कारक स्थविरों ने उसे सात प्रकरणों में विभक्त किया। वे हैं—(१) धम्मसङ्गणी (२) विभङ्ग (३) पुग्गलपञ्ञत्ति (४) धातु-कथा (५) यमक और (६) पट्ठान। तृतीय संगीति (बुद्धाब्द २१८) के समय "मोग्गलिपुत्ततिस्स" नामक अर्हत् स्थविर ने बुद्ध धर्म के सिद्धान्तों का विस्तार और परवाद निग्रह हेतु "कथावत्थु" प्रकरण का भी अभिधर्म-पिटक में समावेश कर, इसे सात प्रकरणों से सुशोभित किया।

[१]

अभिधर्म पिटक में धम्मसङ्गणी का प्रथम स्थान है। यह ग्रन्थ अत्यन्त परिशुद्ध परमार्थ धर्म-गाम्भीर्य्य-युक्त है। इसमें अभिधर्म सम्बन्धी गम्भीर शून्यता प्रति-संयुक्त धर्मों का संग्रह है। सभी धर्मों के समावेश हेतु ही इसे "धम्मसङ्गणी" कहते हैं। इसे "धम्मसंग्रह" नाम से भी पुकारते हैं।†

यह ग्रन्थ प्रधानतः चार भागों में बँटा है—(१) चित्त विभक्ति, (२) रूप विभक्ति (३) निक्खेप राशि (४) अत्थुद्धार। चित्त विभक्ति में चित्त-चैतसिकों का विशद विश्लेषण किया गया है। कुल चित्त भूमि के हिसाब से चार प्रकार के होते हैं और उनका वर्णन इस क्रम से है—(१) कामावचर के ५४ चित्त; यथा—आठ कामावर कुशल चित्त, बारह अकुशल चित्त, सोलह कुशल विपाक चित्त, सात अकुशल विपाक चित्त और ग्यारह क्रिया चित्त (२) रूपावचर के १५ चित्त; यथा—पाँच कुशल चित्त, पाँच विपाक चित्त, तथा पाँच क्रिया चित्त। (३) अरूपावचर के १२ चित्त; यथा—चार कुशल चित्त, चार विपाक चित्त एवं चार क्रिया चित्त। (४) लोकोत्तर के ८ चित्त; चार कुशल चित्त और चार विपाक चित्त। यहाँ विपाक चित्त को फल चित्त के नाम से जानते हैं। लोकोत्तर में क्रिया चित्त नहीं होते।

चैतसिक कुल ५२ हैं—तेरह अन्यसमान, चौदह अकुशल, और पच्चीस शोभन। इस प्रकार इस काण्ड में नवासी (८९) चित्तों का उनके बावन (५२) चैतसिक धर्मों के साथ सविस्तार वर्णन है।

पाठ्य क्रमानुसार इसमें अतिरेक छै भाणवार हैं, जो विस्तारानुरूप अनन्त होते हैं। एक विध, द्वे विध आदि मात्रिकाओं में विस्तृत भाग का नाम 'रूप विभक्ति' है, जो रूप-काण्ड कहा जाता है। यह पाठ्य क्रमानुसार अतिरेक दो भाणवार है। मूल, खन्ध, द्वार, भूमि, अर्थ, धर्म, नाम, लिङ्ग के अनुसार एक एक को लेकर देशित भाग 'निक्खेप राशि' कहा जाता है। यह प्रमाण में तीन भाणवार है। त्रिपिटक बुद्ध वचन के अर्थ का उद्धरण रूप 'सरणदुक' पर्यन्त प्रकाशित, यथार्थावबोध की सहूलियत से विभाजित भाग का नाम 'अट्ठकथा-काण्ड' है, जो है केवल दो भाणवार। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अतिरेक तेरह भाणवारों में विभक्त हो जाता है; विस्तृत अनन्त भाणवार।

अभिधर्म तत्व के जिज्ञासु को प्रथम अट्ठकथा में आए इन सत्तरह प्रश्नोत्तरों की जानकारी आवश्यक है* (१) अभिधर्म किससे प्रभावित हुआ? बुद्ध ने जिस श्रद्धा से भगवान् दीपङ्कर के पास बुद्धत्व प्राप्ति के लिए अपने

---

*बुद्ध द्वारा उपदेशित सम्पूर्ण धर्म बुद्ध निर्वाण के पूर्व 'धर्म' और 'विनय' नामों से व्यवहृत था। यथा—"देसितो मया भिक्खवे, धम्मा च विनयो चाति"। अङ्ग के अनुसार बुद्ध वचन के नव अङ्ग थे। कुछ लोग कतिपय सूत्रों को ही बाँचकर यह कहने तथा लिखने का दुस्साहस करते हैं कि "अभिधर्म पिटक" बाद का है। 'पिटक' शब्द बाद का अवश्य है, किन्तु भगवान का तावतिंस भवन में जाना और अभिधर्म का उपदेश करना सर्वथा सिद्ध है और वह भी तथागत वचनों द्वारा।

†ग्रन्थ का मूल-पालि अपनी अट्ठकथा के साथ बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित हो गया है, पर खेद है कि अभी तक इसका हिन्दी अनुवाद नहीं प्रकाशित हुआ, प्रकाशकों को ध्यान देना चाहिए।

*देखो अत्थसालिनी निदान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त का अभिनीहार किया, प्रार्थना की। (२) कहाँ परिपाचित हुआ ? साढ़े पाँच सौ जातक चरितों में। (३) कहाँ पर इसका लाभ हुआ ? बोधि वृक्ष के नीचे। (४) कब लाभ हुआ ? वैशाख पूर्णिमा के दिन। (५) किसने लाभ किया ? सर्वज्ञ तथागत अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध हमारे शास्ता ने। (६) कहां चिन्तन किया गया ? बोधि मण्ड तले ! (७) कब चिन्तन किया 'रतन घर' वाले सप्ताह में। (८) किसके द्वारा चिन्तन किया गया ? धर्मराज दशबल हमारे भगवान बुद्ध द्वारा (९) कहां पर इसका उपदेश हुआ ? 'तावतिंस' देवलोक में। (१०) किसके लिये इसका उपदेश हुआ ? देवताओं के लिए। (११) किसलिए यह उपदेशित हुआ ? कामादि चारों शैलाबों (= ओघ) को तैरकर पार करने के लिए। (१२) किन्होने ग्रहण किया ? देवताओं ने। (१३) कौन सीखते हैं ? शैक्ष्य* और कल्याण पृथग्जन। (१४) कौन सीखकर शिक्षित हो गए हैं ? अर्हत क्षीणाश्रव। (१५) कौन धारण करते हैं ? जिनके योग्य हैं, वे धारण करते हैं। (१६) किसका वचन है ? भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हमारे दशबल का। (१७) किसके द्वारा लाया गया ? सारिपुत्र, भद्दजी, शोभित, पियजाली, पियपाल, पियदस्सी, कोसिय पुत्र, शृङ्गव, सन्देह, मोग्गलिपुत्ततिस्स, सुदत्त, धम्मिय। दासक, सोणक, खेत आदि तृतीय संगीति (बुद्धाब्द २३५) पर्यन्त आचार्य परम्परा द्वारा लाया गया। तत्पश्चात् उन्हींके शिष्यानुशिष्य परम्परागत भारत से लंका पहुंचा:—

ततो महिन्दो इट्ठियो,
उत्तियो सम्बलो तथा।
पण्डितो भद्दसालो च,
एते नागा महापञ्ञा;
जम्बुदीपा इधागता॥

इस प्रकार लाया गया त्रिपिटक ग्रन्थ यावद्य आचार्य परम्परा द्वारा लाया जा रहा है।

प्रकरण के आरम्भ में ही "कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अव्याकता धम्मा; सुखाय वेदनाय सम्पयुत्ताधम्मा, दुक्खाय वेदनाय सम्पयुत्ता धम्मा, अदुक्खमसुखाय वेदनाय सम्पयुत्ता धम्मा: विपाका धम्मा, विपाक धम्मधम्मा, नेव विपाक न विपाक धम्म-धम्मा:" आदि तिक मात्रिका रूप परमार्थ देशना उपन्यस्त की गई है। तदन्तर "हेतु धम्मा, न हेतु धम्मा," आदि दुक मात्रिका का आरम्भ होता है। दुक मात्रिका के चौदह भाग हैं—(१) हेतु गोच्छकं (२) चुल्लन्तर दुकं (३) आसव गोच्छकं (४) सञ्ञोजन गोच्छकं (६) ओघ गोच्छकं (७) योग गोच्छकं (८) नीवरण गोच्छकं (९) परामास गोच्छकं (१०) महन्तरदुक (११) उपादान गोच्छकं (१२) किलेस गोच्छकं (१३) पिट्ठिदुकं और (१४) सुत्तन्त दुकं। इन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—

*बौद्ध धर्म में मनुष्य के दो विभाग हैं, आय और पृथग्जन। आर्यों में जिन्हें अभी करना और सीखना है उन्हें शैक्ष्य और जो कृत करणीय मुक्त हैं, उन्हें अशैक्ष्य अथवा अर्हत् कहते हैं।

---

२५ वें सफ़े से आगे

शास्ता ने पूछा—"कितने कुशल धर्म हैं ?" सारिपुत्र को उत्तर न दे, मौन रहते हुए देख—"हमने नहीं पहले बतलाया कि यह कामावचर के कुशल धर्म हैं, यह रूपावचर, अरूपावचर और लोकोत्तर के ? वे सभी चतुर्भूमिक कुशल—कुशल धर्म हैं।" इस प्रकार अलग-अलग, समूह-समूह करके उद्धरण के रूप में कुशलादि धर्मों को दिखलाया।

यह धम्मसङ्गणी प्रकरण बड़ा ही गम्भीर और नय प्रतिमण्डित है, इसकी गम्भीरता का अनुभव करते हुए स्वयं अट्ठकथाचार्य बुद्धघोष ने भी प्रारम्भ में ही लिखा है—

"इति मे भासमानस्स अभिधम्म कथं इमं,
अविक्खित्ता निसामेथ दुल्लभा हि अयं कथा।
इतो पट्ठाय गम्भीरं अभिधम्म कथं इमं,
वुच्चमानं निसामेथ एकग्गा साधु साधवो॥

अस्तु

चिर तिट्ठतु लोकस्मिं सम्मासम्बुद्धसासनं।
चरित्वा नं विजानित्वा सब्बा होतु पजा सुखी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

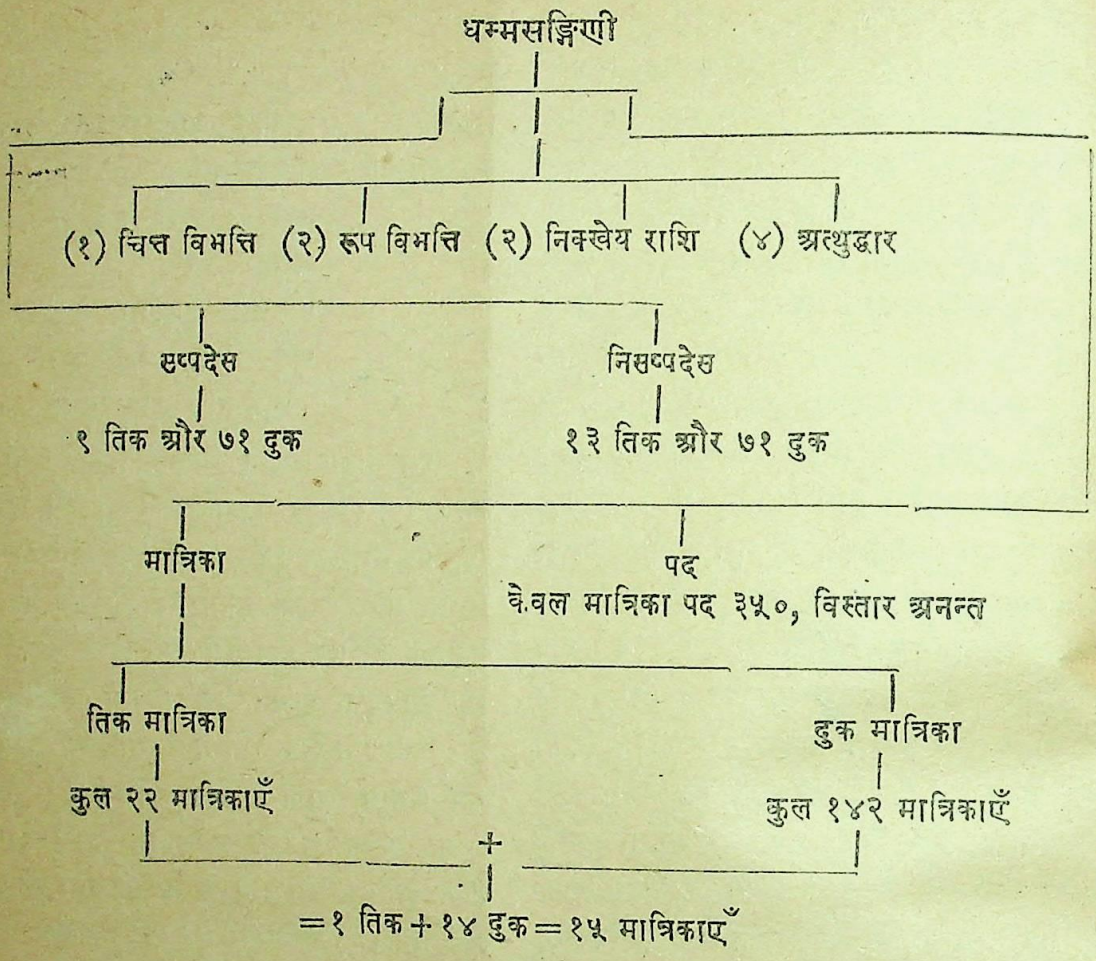

जो चित्त भूमि के विचार से कुल नवासी (८९) होते हैं, वही कुशल, अकुशल और अव्याकृत के विभाजन से क्रमशः २१, १२ और ५६ होते हैं । यहां पहले इन पारिभाषिक शब्दों को जान लेने से आगे समझने में सरलता होगी ।

'कुशल' शब्द त्रिपिटक में चार अर्थों में इस्तेमाल हुआ है, आरोग्य, निर्दोष, निगुण और सुख-विपाक । 'धर्म शब्द धर्म-ग्रन्थ (=परियत्ति), हेतु, गुण, निःसत्व, निर्जीव आदि के अर्थों में । इनके विपरीत अकुशल धर्म को समझना चाहिए । अव्याकृत (=अ-कथ्य)-धर्म को नहीं कहा जा सकता कि यह कुशल है या अकुशल । चारों भूमियों के विपाक और तीन भूमियों के क्रिया चित्त, रूप और असंस्कृत धातु (=निर्वाण) न तो कुशल हैं और न अकुशल ही । इन्हें कुशलाकुशल के अकथ्य-भाव के ही कारण अव्याकृत कहते हैं ।

प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति के अनुसार चार प्रकार की भूमि होती है । (१) प्रेत, असुर, तिर्यक् (=पशु) और नर्क को अपाय कहते हैं । (२) मनुष्य लोक के साथ चातुर्महाराजिक, तावतिंस, याम, तुषित, निर्माण-रति, परिनिर्मत वशवर्ती—इन छै देव भवनों को कामावचर ।* (३) दश ब्रह्मकायिक, असंज्ञी तथा शुद्धावास के सोलह प्रकार के ब्रह्म-भवनों को रूपावचर । (४) आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, और नेव संज्ञा-नासंज्ञायतन—इन चारों को अरूपावचर कहते हैं ।

चित्त-प्रवर्तन के अनुसार भी चार प्रकार की भूमि होती है—कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर और लोकोत्तर । नीचे अवीचि नर्क से लेकर ऊपर परिनिर्मित वशवर्ती देवलोक तक कामावचर भूमि होती है । शेष

* अपाय के साथ ग्यारह प्रकार की कामावचर भूमि होती है । सभी काम—लोक वासी सत्व इन्हीं में विचरते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

~~76230~~ 080206

उक्तानुसार जानना चाहिए। यहाँ केवल लोकोत्तर शब्द ही विशेष है। यह भूमि आर्य-भूमि कही जाती है। इसके चार अङ्ग हैं—स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्।

[२]

ग्रन्थारम्भ में पहली मात्रिका के तीनों पदों में प्रथम पद है—"कुसला धम्मा"। यह कुशल धर्म चारों भूमियों* में होता है। धम्मसङ्गिणी में इसका क्रमशः वर्णन किया गया है। जो उद्देश, निर्देश के क्रम से बँटा है। उद्देश भी, प्रश्न, समय-निर्देश, धर्मोद्देश, अर्पणा—इन चार भागों में विभाजित है, वैसे ही निर्देश भी। इस प्रकार आठ परिच्छेदों से प्रतिमण्डित आदि के यह दोनों भाग "धर्मव्यवस्थान" कहे जाते हैं।

कामावचर भूमि के कुल आठ कुशल चित्त होते हैं। कुशल कर्मों के आयूहन (=राशिकरण) में जब प्रसन्न मन से उसके भलेपन का विचार करते ज्ञान के साथ जुटते हैं, तब वह चित्त सौमनस्य सहगत ज्ञान सम्प्रयुक्त होता है और होता है असंस्कारिक। जैसे 'राजा आया'—कहने का यह अर्थ नहीं कि वह अकेले आया, राजा अपनी परिषद के साथ ही आता है; ऐसे ही रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म (= मन के विषय) —इन छै आलम्बनों में से किसी एक को लेकर जब यह प्रथम महाचित्त उत्पन्न होता है, तब अपने पैंसठ (६५) धर्म्मों के साथ उत्पन्न होता है।

यह पैंसठ धर्म अगृहीत गणना के अनुसार अड़तिस (३८) होते हैं और वे इस प्रकार हैं—स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितेन्द्रिय, मनसिकार, वितर्क, विचार, अधिमोक्ष, वीर्य, प्रीति, छन्द—यह तेरह अन्य समान धर्म, श्रद्धा, स्मृति, ही, अपत्रप (ओत्तप्प = पाप से भय), अलोभ, अद्वेष, मध्यस्थता, काय (= वेदना, संज्ञा, संस्कार)—प्रश्रब्धि, चित्त प्रश्रब्धि, काय†—लघुता, चित्त-लघुता, काय मृदुता, चित्त मृदुता, काय कर्मण्यता, चित्त कर्मण्यता, काय प्रागुण्यता, चित्त प्रागुण्यता, काय-ऋजुकृता,—यह उन्नीस (१९) शोभन साधारण, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त और सम्यक जीविका—यह तीन विरक्ति तथा करुणा और मुदिता—यह दो अप्रमाण्य।

तदन्तर बतलाया गया है कि असंस्कारिक प्रथम महा चित्त के साथ उत्पन्न सभी धर्म संग्रहित होने पर केवल वेदना, संज्ञा संस्कार और विज्ञान—चार स्कन्ध होते हैं। मनायतन तथा धर्मायतन दो आयतन होते हैं, इसी प्रकार दो धातु, तीन आहार, आठ इन्द्रिय, पञ्चाङ्गिक ध्यान, पञ्चाङ्गिक मार्ग, सप्त बल, तीन हेतु, एक स्पर्श, एक वेदना, एक संज्ञा, एक चेतना, एक चित, एक वेदना-स्कन्ध, एक संज्ञा-स्कन्ध, एक संस्कार-स्कन्ध, एक विज्ञान स्कन्ध, एक मनायतन, एक मनेन्द्रिय, एक मनोविज्ञान धातु, एक धर्मायतन, एक धर्म धातु आदि 'येवायनक के साथ अगृहीत गणना से अड़तिस (३८) धर्म होते हैं। शून्यता का विभाजन करते हुए दिखलाया गया है कि तत्कालीन पैंसठ (६५) धर्म स्वाभावार्थ में धर्म होते हैं, कोई सत्त्व नहीं होता, स्त्रीत्व, पुरुषत्व नहीं होते, पुरुष अथवा पुग्दल नहीं होता। ऐसे ही राश्यार्थ में वेदना स्कन्धादि अड़तीस धर्म ही होते हैं।

जब कुशल कर्मों को करने के लिए इच्छा होते हुए भी अनुत्साह होता है, तत्काल 'ऐसा करना ही चाहिए' ऐसे भाव से उसे करने में जुटता है, जैसे कोई चैत्य वन्दना के लिए जाना चाहता है और चैत्य है दूर तीन चार मील पर। उसे ऐसा होता है—'चैत्य दूर है, वहाँ जाकर आते समय हमें विकाल होगा, थकावट होगी, कौन जाय?' फिर वह सोचता है—'मेरे जैसे व्यक्ति के लिए चैत्य वन्दना के लिये जाना परमावश्यक है, यह मेरी कुल परम्परा है।' और फिर जाता है उसके ऐसे चित्त को जो बाद के अपने प्रयोग से उत्पन्न होता है और होता है प्रसन्नता के साथ; उसे सौमनस्य सहगत ज्ञान सम्प्रयुक्त ससंस्कारिक द्वितीय चित्त कहते हैं। महाचित्त के सदृश ही इसकी अन्य धर्मता जाननी चाहिए।

जब छोटे बच्चे श्रमण-ब्राह्मणों को देखकर हँसते

---

* यहाँ और आगे भी सर्वत्र चित्त-प्रवर्तन के अनुसार भूमि जाननी चाहिए।

† काय शब्द का अर्थ शरीर नहीं, प्रत्युत अरूपी तीनों स्कन्ध-वेदना, संज्ञा, संस्कार ही काय नाम से पुकारे जाते हैं और विज्ञान चित के नाम से। इसी रूप में इनका यहाँ प्रयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए 'स्वामी जी आए, स्वामी जी आए' आदि कहकर उनकी वन्दना करते हैं अथवा 'यह चैत्य है' आदि पर्यायों से चैत्य की वन्दना करते हैं, धर्म देशना सुनते हैं; उस समय उनका उत्पन्न चित्त सौमनस्य सहगत ज्ञान विप्रयुक्त असंस्कृत तृतीय चित्त होता है। इस तृतीय चित्त की उत्पत्ति के साथ प्रज्ञा सम्बन्धी सात धर्म नहीं होते।

जब माता-पिता छोटे बच्चों का शिर अथवा हाथ पकड़कर चैत्य वन्दना करवाते हैं और वे अनिच्छुक प्रसन्न मन से वन्दना करते हैं, ऐसे समय में उनका उत्पन्न चित्त सौमनस्य सहगत ज्ञान विप्रयुक्त ससंस्कारिक होता है। तृतीय चित्त के समान ही इस चतुर्थ चित्त में अन्य धर्मों की उत्पत्ति और अस्ति-भाव जानना चाहिए।

वेदना तीन तरह की होती हैं—सुखा, दुक्खा और उपेक्षा। जब उपेक्षा वेदना के साथ अर्थ-प्रेक्षक व्यक्ति को बिना किसी योग, उपाय के कुशल चित्त उत्पन्न होता है, तब वह उपेक्षा सहगत ज्ञान सम्प्रयुक्त असंस्कारिक होता है।

उक्तानुसार उपमाओं के द्वारा अन्य शेष कुशल चित्तों को भी जानना चाहिए। जो हैं—छठवाँ, उपेक्षा सहगत ज्ञान सम्प्रयुक्त ससंस्कारिक चित्त; सातवाँ, उपेक्षा सहगत ज्ञान विप्रयुक्त असंस्कारिक चित्त। यहाँ पाँचवें और छठें चितोत्पत्ति के समय प्रीतिरहित सभी वही धर्म होते हैं। जो अगृहीत गणना से पैंतिस (३५) होते हैं। सातवें और आठवें चितोत्पत्ति काल में भी ज्ञान तथा प्रीति रहित वही धर्म संगृहीत होते हैं।

इन आठ कुशल चितों को महाचित्त कहते हैं, जो दश पुण्य क्रिया वस्तुओं द्वारा भली भाँति जाने जा सकते हैं। दश पुण्य क्रिया वस्तु संक्षेप में तीन ही होते हैं। इनकी व्याख्या अट्ठकथा में बड़े सुन्दर ढङ्ग से की गई है और बतलाया गया है कि यह तीनों कैसे द्वार-त्रय से उत्पन्न होते हैं—

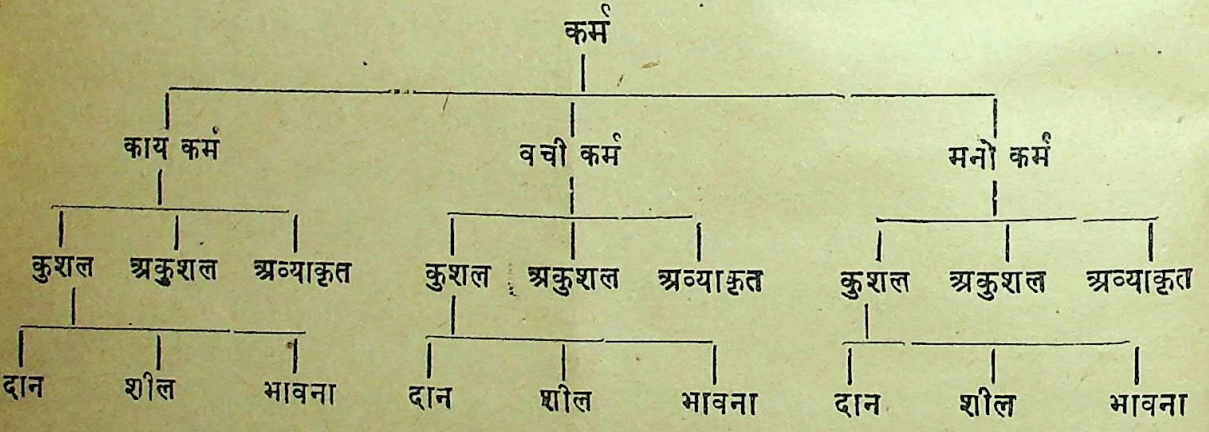

रूपावचर भूमि के सुत्तन्त पर्य्याय से चार और अभिधर्म-पर्य्याय से पाँच कुशल चित्त होते हैं। जो केवल होते हैं ध्यानियों को। धम्मसङ्गिणी के तृतीय भाणवार के आरम्भ में इनका विस्तृत वर्णन है। आठ कृत्स्न (=कसिनं), चार प्रतिपदा, चार आलम्बन, तीन अभिभायतन, चार ब्रह्मविहार, और दश अशुभ ध्यानों के साथ मिला-मिलाकर दोनों पर्य्यायों से इनकी सोलह प्रकारिका देशना की गई है।

सुत्तन्त पर्य्याय देशना के प्रारम्भ में कहा गया है कि जिस समय व्यक्ति रूप लोक में उत्पन्न होने के मार्ग की भावना करता है, उस समय उसके कुशल चित्त इन चार चित्तों में से अन्यतम होते हैं—(१) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता—इन पाँच अङ्गों से युक्त और कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यान-मृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा—इन पाँच अङ्गों से विप्रहीण प्रथम ध्यान। (२) वितर्क-विचार के शान्त होने पर आध्यात्म शान्ति और चित्त की एकाग्रतावाला, वितर्क-विचार रहित, प्रीति, सुख सम्पयुक्त द्वितीय ध्यान। (३) प्रीति से विरक्त हो, उपेक्षक बन, होश और अनुभव से युक्त, वेदना, संज्ञा, और संस्कार काम से सुख अनुभव करते हुए विहरने वाला तृतीय ध्यान। इस तृतीय ध्यानः प्राप्त व्यक्ति को आर्य जन शुद्ध उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख विहारी कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। (४) सुख और दुःख के परित्याग से सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हो जाने से, सुख-दुःख रहित चतुर्थ ध्यान। इसमें उपेक्षा से स्मृति की शुद्धि हो जाती है।

इन कुशल चित्तों की उत्पत्ति के साथ कामावचर कुशल चित्तों में संगृहीत धर्मों का क्रम यहाँ भी जानना चाहिये। अन्तर केवल भूमि का है। वे परित्त और ये महद्गत होते। प्रथम ध्यान कुशल चित्त में विरक्ति त्रय और दो अप्रमाण्य नहीं होते। द्वितीय ध्यान में कुशल चित्त में वितर्क, विचार और सम्यक् सङ्कल्प होता है। ध्यान त्रिवङ्गिक और मार्ग चतुरङ्गिक होता है। तृतीय ध्यान में कुशल चित्त में प्रीति नहीं होती। ध्यान भी दो अङ्गवाला होता है। चतुर्थ ध्यान कुशल चित्त में ध्यान पञ्चक इन्द्रियस्थ उपेक्षा, उपेक्षेन्द्रिय होती हैं। शेष तृतीय के समान।

अभिधर्म पर्य्याय से इनका विभाजन पाँच ध्यानों में होता है। यहाँ सुत्तन्त पर्य्याय वाले प्रथम ध्यान को ही दो भागों में बाँट—(१) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता सहगत प्रथम ध्यान कुशल चित्त और (२) विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता सहगत द्वितीय ध्यान कुशल चित्त—इस प्रकार सुत्तन्त पर्य्याय वाले द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ को क्रमशः तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम करके देशना हुई है। कहते हैं—तथागत ने ऐसा दो कारणों से किया—व्यक्ति का अध्याशय देखते हुए और देशना-विलास का अवलोकन करते हुए। शेष सुत्तन्त भाजनीय जैसा ही।

अरूप भूमि के चार कुशल चित्त हैं। जो अरूप लोक में उत्पत्ति के लिए मार्ग की भावना करता है, उसकी चार अवस्थाएँ होती हैं—(१) रूप-संज्ञा को सर्वथा छोड़ने से, प्रतिहिंसा की संज्ञा के सर्वथा अस्त हो जाने से और नानापन की संज्ञा को मन में न लाने से—'आकाश अनन्त है'—इस प्रकार के आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है। (२) आकाशानन्त्यायतन को सर्वथा अतिक्रमण कर—'विज्ञान अनन्त है'—इस प्रकार के विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है। (३) विज्ञानानन्त्यायतन को सर्वथा अतिक्रमण कर—'कुछ नहीं है'—इस प्रकार के आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहरता है। (४) आकिञ्चन्यायतन को सर्वथा अतिक्रमण कर—'नैवसंज्ञायतन' को प्राप्त हो विहरता है।

इन अरूप समापत्तियों को सुत्तन्त पर्य्याय से चतुर्थ तथा अभिधर्म पर्य्याय से पञ्चम ध्यान को पादक करके ही प्राप्त होते हैं। यहाँ रूपावचर ध्यानों की भाँति अङ्ग का संक्रमण नहीं होता, आलम्बन संक्रमण मात्र विज्ञेय है। यह देशना भी सोलह प्रकारिका उक्त अङ्गानुसार की गई है। अरूप लोक में चौंतिस (३४) प्रकार के कर्मस्थानाभाव-हेतु कृत्स्नादि का संयोग नहीं होता।

लोकोत्तर भूमि के चार कुशल चित्त होते हैं, जो हैं—स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्। अभिधर्म पर्य्याय के पांच ध्यानों के साथ मिलाकर इनकी गणना करने पर यही चार बीस हो जाते हैं। ये चित्त पृथक् जनों में कभी नहीं उत्पन्न होते। इनकी देशना नव शुद्धिक, शून्यता, शून्यता-मूलक, अप्रणिहीत, अप्रणिहीत मूलक, बीस महामय और चार अधिपति के सम्प्रयोग और प्राप्ति आकार दिखलाते हुए बड़े ही सरल तथा मनोहर ढङ्ग से की गई है। इसमें बतलाया गया है कि स्रोतापत्ति मार्ग से चार दृष्टि सम्प्रयुक्त और विचिकित्सा सहगत—ये पाँच अकुशल चित्त अपने सभी परिवार क्लेशों के साथ समुच्छिन्न हो जाते हैं। सकृतदागामी मार्ग से चार दृष्टि विप्रयुक्त और दो दौर्मनस्य सहगत चित्त कामराग व्यापाद के आदूलारिक (=स्थूल) हिसाब से—ये छै चित्त। अनागामी मार्ग से वही चित्त सर्वथा समूल प्रहीण हो जाते हैं। अर्हत् मार्ग से चार दृष्टि विप्रयुक्त और औद्धत्य सहगत चित्त—ये पाँच चित्त।

[३]

ऊपर बताया जा चुका है कि कुल बारह अकुशल चित्त होते हैं और होते हैं सभी कामावचर। जिनमें असंस्कारिक ससंस्कारिक भेद से दो सौमनस्य सहगत दृष्टिगत और दो दृष्टिगत-विप्रयुक्त होते हैं। ऐसे ही दो उपेक्षा सहगत दृष्टिगत सम्प्रयुक्त और दो उपेक्षा सहगत दृष्टिगत। यह आठ चित्त लोभ मूलक हैं। दौर्मनस्य सहगत प्रतिघ सम्प्रयुक्त असंस्कारिक तथा ससंस्कारिक दो चित्त होते हैं। यह दोनों चित्त द्वेष मूलिक हैं, विचिकित्सा सहगत और औद्धत्य सहगत—यह दो चित मोह मूलिक हैं।

यहां असंस्कारिक और ससंस्कारिक भाव इस प्रकार जानना चाहिए—चिन्तित क्षण ही अकुशल कर्मों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में जुट जाना; 'व्यभिचार बुरा है, व्यभिचारी नहीं बनना चाहिए।'—ऐसा बिना सोचे हर्षोत्फुल्ल उसमें लग जाना असंस्कारिक होता है। दश वस्तुक मिथ्या-दृष्टि* के साथ बुद्धादि में अविश्वास ही दृष्टिगत सम्प्रयुक्त होता है। अकुशल कर्मों के करने की इच्छा होते हुए भी, ऐसा है—'इसे न करूँ', किन्तु निषेधक चित्त पर विजय कर, उसे करने में नियुक्त चित्त ही ससंस्कारिक होता है अथवा इसे इस प्रकार जानना चाहिए—कोई सम्यक दृष्टि तरुण किसी मिथ्या दृष्टि वाले कुल की तरुणी से विवाह करना चाहता है और वे—'तुम लोग अन्य दृष्टिवाले हो' कहकर अपनी लड़की नहीं देते। तब दूसरे भाई-बन्धु—'तुम लोग जो जो करते हो, वही करो, यह भी वही करेगा'—समझा बुझाकर विवाह कराते हैं। वह तरुण उनके साथ वहाँ जाता है। प्रारम्भ से ही वह वैमतिक होता है। कुछ समय बीतने पर उनके कार्य कलाप उसे पसन्द आते हैं, अच्छे लगते हैं, और धीरे-धीरे उनकी दृष्टि का हामी बन जाता है। ऐसे समयों में दृष्टिगत सम्प्रयुक्त ससंस्कारिक चित्त होता है।

एक व्यभिचारी को कामोपभोग का अच्छा साधन न मिलने पर अरुचि होती है, उपेक्षा होती है, किन्तु वह उसका सेवन करता ही है। जैसे व्यभिचारी गूँगी, लँगड़ी, फूहड़ स्त्री के साथ नहीं रमना चाहता, फिर भी विवश हो रमता ही है। ऐसे समयों में उपेक्षा सहगत भाव होता है। बुद्ध, धर्म, संघ आदि आठ विषयों में शङ्का करने के समय विचिकित्सा सहगत चित्त होता है। शेष सब उक्तानुसार कुशल चित्तों के विरुद्ध इन अकुशल चित्तों को जानना चाहिए।

यहां प्रथम असंस्कारिक चित्त में अगृहीत गणना से तेरह (१३) अन्य समान, चार सर्वाकुशल साधारण, लोभ और दृष्टि के साथ—यह उन्नीस (१९) धर्म संगृहीत होते हैं। ऐसे ही द्वितीय असंस्कारिक में लोभ और मान के साथ। तृतीय में प्रीतिरहित लोभ ही के साथ अठारह (१८)। चतुर्थ में लोभ और मान साथ। पाँचवें प्रतिघ सम्प्रयुक्त असंस्कारिक में द्वेष ईर्षा, मात्सर्य, कौकृत्य—इन चारों के साथ प्रीतिरहि वही कुल बीस (२०) धर्म संगृहीत होते हैं। ससंस्कारिक चित्त में वैसे ही स्त्यान-मृद्ध के साथ इक्कीस (२१) औद्धत्य सहगत चित्त में छन्द, प्रीति वर्जित ग्यारह (११) अन्य समान चैतसिक और चार अकुशल-साधारण—यह पन्द्रह संगृहीत होते हैं। विचिकित्सा सहगत चित्त में भी वैसे ही पन्द्रह चैतसिक। इन बारहों अकुशल चितों का प्रहाणानुक्रम लोकोत्तर कुशल चित्त वर्णन के साथ बतलाया जा चुका है।

[४]

चतुर्भूमिक विपाक, त्रैभूमिक क्रिया, रूप और निर्वाण अव्याकृत धर्म हैं। धम्मसङ्गिणी में इनका विस्तार बड़ा ही मनोहर है। इन्हें पढ़ने पर भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि प्राणी किन-किन विपाक चितों से किन-किन भूमियों में उत्पन्न होता है। इस भाग में भी देशना सोरह प्रकारिका नयों से प्रतिमण्डित, प्रति पदादि अङ्गों से संयुक्त है। (१) कृत्य संग्रह से—प्रतिसन्धि भवङ्ग, आवर्जन, दर्शन, श्रवण, घ्रायण, शायन, स्पर्शन, सम्प्रतिच्छन, सन्तीरण, व्यवस्थपन, जवन, तदालम्बन और च्युति; (२) द्वार संग्रह से—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन; (३) आलम्बन संग्रह से—रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य और धर्म; (४) वस्तु संग्रह से—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और हृदय वस्तु; (५) हेतु संग्रह से—लोभ, द्वेष, मोह, अलोभ, अद्वेष, अमोह; और (६) वेदना संग्रह के—सुख, दुःख, अदुःख-असुख, सौमनस्य दौर्मनस्य, उपेक्षादि का वर्णन है।

क्रिया चित्त केवल क्षीणाश्रव अर्हन्तों में ही उत्पन्न होते हैं, जिस समय क्षीणाश्रव भिक्षु किसी को दुर्गति या सुगति में देखकर स्मित होता है, तब वह उसका हसितोत्पाद क्रिया चित्त होता है। जब विहार में जाकर बुद्ध को फूल चढ़ाता है, तब कामावचर क्रिया चित्त मात्र होता है। इनका वर्णन अट्ठकथा के प्रकीर्णक भाग में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। विपाक और क्रिया चित्त कितने होते हैं? प्रारम्भ में बतलाया जा चुका है।

---

* दश वस्तुक मिथ्या दृष्टि यह हैं—नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकट दुक्कटानं कम्मान फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा समग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमञ्च लोकं परञ्च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छित्वा पवेदन्ति।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५]

इस तरह कुल नवासी (८९) चित्तों का चतुर्भूमिक वर्णन अपने विनिश्चय के साथ समाप्त हो जाता है। चित्त विभक्ति कथा सब प्रकार से खत्म हो जाती है और रूप काण्ड के प्रथम भाणवार का आरम्भ होता है।

"तत्थ कतमं तं सब्बं रूपं? चत्तारो महाभूता चतुन्नञ्च महाभूतानं उपादाय रूपं—इदं वुच्चति सब्बं रूपं।" अर्थात्—सब रूप कौन से हैं? चारों महाभूत और चारों महभूतों के आश्रय से उत्पन्न रूप—इसे कहते हैं सब रूप।

इस प्रकार इस काण्ड में एक विध, दुविध, त्रिविध, चतुर्विधादि निर्देश के क्रम से ग्यारह (११) प्रकार से रूप का विभाजन किया गया हैं। चक्षु, श्रोत्रादि आयतनों के अनुसार आध्यात्मिक, वाह्य, सूक्ष्म तथा स्थूल रूपों का वर्णन है। प्रत्येक आयतन चार-चार वारों में व्यवस्थपित हैं।

रूप विभाग का वर्णन "पञ्च स्कन्ध और बौद्ध-दर्शन"* नामक लेख में किया जा चुका है, अस्तु यहाँ संक्षेप आकांक्ष्य है। कहा है—

"भूतप्पसाद विसया भावो हृदय मिच्चपि,
जीवितहार रूपेहि अट्ठारस विधं तथा।
परिच्छेदो च विञ्ञत्ति विकारो लक्खणन्ति च,
अनिप्फन्ना दसा चेति अट्ठवीस विधं भवे॥"

अर्थात्—भूत, प्रसाद, विषय, भाव, हृदय, जीवित, आहार—इन सात प्रकार के रूपों से अठारह तरह के निस्पन्द रूप होते हैं और वैसे ही परिच्छेद, विज्ञप्ति, विकार, लक्षण—इन चारों से दश अनिस्पन्द रूप। इस प्रकार कुल अट्ठाइस (२८) तरह के रूप होते हैं।

धम्मसङ्गिणी में हृदय वस्तु का वर्णन नहीं है। यहाँ केवल सत्ताइस रूपों की ही व्याख्या की गई है, जिनमें प्रसाद, विषय के बारह प्रकार के रूप औदारिक (=स्थूल), सामीप्य, सप्रतिघ हैं और शेष पन्द्रह सूक्ष्म। इनका विभाजन पचीस (२५) तथा छानवे (९६) कोट्ठासों में भी होता है।† कर्म, चित्त, ऋतु, आहार—इन चार कारणों से रूपों का समुत्थान जानना चाहिए। हृदय, इन्द्रिय रूप कर्मज, दोनों विज्ञप्ति चित्तज, शब्द चित्तोतुज, लघुता आदि तीनों विकार रूप ऋतु-चित्त आहार से होते हैं। आठ अविनिर्भोग रूप और आकाश धातु चारों से सम्भूत हैं। चक्षु दशकादि के अनुसार नव कर्म से उठे, छै चित्त से उठे, चार ऋतु से उठे, दो आहार से उठे—यह कुल इक्कीस (२१) रूप-कलाप होते हैं। रूपों का प्रवर्तन इस प्रकार होता है—

"अट्ठवीसति कामेसु होन्ति तेवीस रूपिसु।
सत्तीसेव सञ्ञीनं अरूपे नत्थि किञ्चिपि॥"

अट्ठाइस रूप कामावचर भूमि में होते हैं, रूपावचर में तेइस, असंज्ञी सत्वों में सत्तरह और अरूप भूमि में कुछ भी नहीं होता।

[६]

रूप काण्ड के पश्चात् निक्खेप-काण्ड आरम्भ होता है, इस काण्ड में सभी कुशलाकुशल धर्मों का निक्षेप रूप से उपदेश दिया गया है। न अति सक्षेप और न अति विस्तार रूप से तेरह तिकों और इकहत्तर (७१) दुकों का विभाजन किया गया है, जो ग्रन्थारंभ में केवल पन्द्रह (१५) मात्रिकाओं में विभक्त हैं। विस्तार से सभी एक सौ चौंसठ (१६४) मात्रिकाएँ होती हैं।

इसके बाद अत्थुद्धार काण्ड शुरू होता है, जिसे अट्ठकथा काण्ड भी कहते हैं। इस काण्ड में सम्पूर्ण त्रिपिटक के बुद्धवचन का अर्थ-उद्धरण किया गया है। तीनों पिटकों में आया हुआ धर्मान्ता अट्ठकथा काण्ड से ही अलग कर जो निश्चय किया गया है, वह बहुत ही सुन्दर है। कहते हैं—इतना भाग सारिपुत्र महास्थविर से प्रादुर्भूत है, किन्तु यह बात पुरातन अट्ठकथा में बिल्कुल नहीं है। वहाँ कहा गया है कि अभिधर्म श्रावक विषय नहीं है और न श्रावक गोचर ही। यह बुद्ध विषय और बुद्ध-गोचर है। धर्म सेनापति ने अपने साथ विहरनेवाले भिक्षुओं के पूछने पर शास्ता के पास जाकर पूछा और शास्ता ने उन्हें अट्ठकथा काण्ड का उपदेश किया।

(शेष पृष्ठ १९ पर)

*विश्ववाणी नवम्बर १९४५।

†"एत्तावता सम्मासम्बुद्धो ब्यायं चत्तारो च महाभूता चतुन्नञ्च महाभूतानं उपादाय रूपन्ति अतीतानागा पच्चुपन्नादिसु एकादससु ओकासेसु विभत्ती पञ्चवीसति रूप कोट्ठासाति च छन्नवुति कोट्ठासाति च एवं पभेदो रूपरासि।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मिस्र और उसके राजवंश

श्री भगवतीप्रसाद पान्थरी एम० ए०

प्राचीन भारत के बाद पुरातन मानव सभ्यता ने जहां विकास पाया वह मिस्र की नील नदी की घाटी का प्रदेश था। सिन्धु और गङ्गा ने जिस प्रकार भारतीय सभ्यता के विकास में योग दिया है, उसी भांति मिस्र की सभ्यता के विकास में नील नदी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। एक प्रकार से नील-नदी ही मिस्र के लोगों के जीवन और विकास का कारण रही है। नील नदी की बाढ़ और जल से सनी हुई मिट्टी से उसके दोनों तट बहुत ही उर्वर रहे, नहीं तो मिस्र एक रेगिस्तान ही होता। नील नदी के सहारे ही मिस्र के लोग नावों द्वारा विभिन्न स्थानों को आ जा सकते थे, और व्यापार कर सकते थे। मिस्र का प्रदेश दुनिया के सब से संकरे प्रदेशों में है। यूरोप के बेलजियम प्रदेश से यह अधिक बड़ा नहीं है। मिश्र नील नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ भूमि का एक उर्वर और तंग भाग है, जो २ से ३० मील तक चौड़ा और ७५० मील लम्बा है, और दोनों तरफ से पहाड़ों से घिरा हुआ है। यहीं पर प्राचीन मिस्र या कमित (प्राचीन मिस्र के लेखों में उसे कमित यानी (काली मिट्टी के प्रदेस) के निवासी रहा करते थे। वर्तमान काहिरा के पास आकर जहां पहाड़ ख़तम हो जाते हैं और नील नदी कई शाखाओं में बंट जाती है, वहीं से निचला मिस्र का मुहाना शुरू होता है। नील नदी में प्रति वर्ष जून से दिसम्बर तक खूब बाढ़ आती है, जिससे नदी के दोनों तटों पर जल से मिली मिट्टी एकत्रित हो जाती है। इस बाढ़ की मिट्टी के कारण नील के दोनों तट बहुत उपजाऊ रहते हैं। घाटी का यह उर्वर भाग लगभग १२,००० हज़ार वर्ग मील है। प्रतिवर्ष की बाढ़ों से कूल की उर्वरता बनी रहती है।

प्राचीन काल में नदी के इन उर्वर तटों पर गेहूं और जौ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता था। इसके अलावा कई प्रकार की तरकारियां सेम और मटर आदि भी खूब पैदा होती थीं। नील के तटों पर खज़ूर भी बहुतायत में उगता था। नील नदी की यह उर्वरता ही थी जिसके फलस्वरूप वहां पर मिस्र देश की सभ्यता अपना निर्माण और विकास कर सकी। यही कारण था कि यूनानी इतिहासकार हेरोडेटस ने मिस्र को सम्पूर्णतया नील नदी का प्रसाद बतलाया है।

प्राचीन मिस्रवासी

जिस समय से हमें मिस्र के इतिहास का पता चलता है, हम नील नदी की निचली घाटी को उन लोगों से बसा हुआ पाते हैं, जिन्हें यूनानियों के अनुसार 'इजिप्शियन' अथवा मिस्री कहा जाता है। ये मिस्री कौन थे, और उनका उद्भव कहां से हुआ इसके बारे में बहुत मतभेद है।

राबर्ट हर्टमैन (Rabert Hertmann) के अनुसार मिस्री अफ्रीका के निग्रो लोगों की ही सन्तान थे। अतः इसका अनुकरण करते हुये कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि निग्रो से उत्पन्न ऊपरी मिस्र में रहनेवाले मिस्री मिस्र के आदिम निवासी थे। किन्तु कुछ यह मानते हैं कि ऐतिहासिक युग के सभ्य और संस्कृत मिस्री जिन्हें 'विशुद्ध मिस्री, (Pure Egyptian) कहा जाता है, विदेशी थे[1] और संभवतया एशिया के किसी प्रान्त से आकर वहां बसे थे। प्राचीन मिस्र की भाषा में सेमेटिक भाषा (अरबी, सामी और हिब्रू) के रूप भी पाये जाते हैं, और इसलिए भी यह सोचा जाता है कि प्राग-ऐतिहासिक युग में सेमेटिक भाषा को बोलनेवाली किसी जाति ने मिस्र पर आक्रमण किया था। अतः आमतौर पर ऐतिहासिकों का कहना है कि प्राचीन मिस्री मिश्रित जाति के थे।[2]

बहुत से प्रमाण ऐसे मिले हैं जिनसे साबित होता है कि ऐतिहासिक मिस्र जिन्होंने मिस्री की सभ्यता और संस्कृति को विकसित किया, सप्त सिन्धव के भारतीय आर्यों में से थे। मिश्रवासियों के भारतीय उद्भव को सबसे प्रथम हीरेन (Heeren) ने स्वीकार किया था।

१—The Historians' History of the World, Edited by H. S. Williams, vol. 1, p. 85.

२—The Story of the Ancient Nations, Weshermann. p. 8.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने बताया है कि प्राचीन मिस्र वासियों की खोपड़ी की बनावट और भारतीयों की खोपड़ी की बनावट एक सी है। हाल ही के मिस्र के इतिहास के विशेषज्ञ फ्लिंडर्स पेट्री (Flinders Petrie) का मत है कि मिस्रवासियों का वही उद्गम है जो फ़ोनिशियनों का है। और वे नील के प्रान्त में लालसागर को पारकर पन्ट के मुल्क से आये थे। फोनिशियनों को वैदिक आर्यों के 'पणि' वर्ग में से माना गया है। ये पणि लोग मूलतः सप्त सिन्धव में रहते थे, और जहाजों द्वारा विदेशी मुल्कों में व्यापार किया करते थे।[3]

प्रथम ये पणि उत्तरी भारत से चलकर मालावार के तट पर आये और वहाँ पर उन्होंने पांड्यों को सुसंस्कृत बनाया। पांड्य और पणि तब मिस्र में पहुंचे, और वहां की संस्कृति और सभ्यता को जन्म दिया। मिस्र को सभ्य बनानेवाले पांड्य प्रदेश से आये थे। यही पांड्य प्रदेश मिस्र की भाषा में अपभ्रंश रूप से 'पण्ट' का प्रदेश कहा जाता है। मिस्र के प्राचीन नाम कमित का, और नील के प्राचीन नाम 'हपि' का, जो वहां की मूल भाषा में मिले हैं, उद्गम भी संस्कृत से माना जाता है। कमित का अर्थ 'काली भूमि' होता है, और संभवतया यह शब्द संस्कृत की 'कु' (काला जैसा कुरुप) और 'मृत' मिट्टी धातु से निकला है। इसी प्रकार संस्कृत हपि शब्द 'अपे' (पानी) का अपभ्रंश[4] है। ये कमित वासी स्वयं अपने को ओफ़िर (बम्बई के पास सोपारक) का बत लाते थे।[5]

भारत और मिश्र के धार्मिक एवं सामाजिक व्यवहारों में भी इतनी अधिक समानता है, जो दोनों के समान उद्भव को और भी पुष्ट करती है। मिस्री देवता 'हीरस' (Herus) 'सूर्य' हैं, 'ओसिरिस (Osireis) 'असूया' हैं। आइसिस (Isis) उषा हैं। 'बेस' (Bes) 'विष्णु' हैं। 'रा' (Ra) 'हर' हैं। दोनों ही जातियां गाय और नन्दि (बैल) को पूजती थीं। दोनों बुज़ुर्ग और स्त्रियों का सम्मान करते थे। दोनों के उत्तराधिकार के नियम एक से थे। दोनों आत्मा के अमरत्व में विश्वास करते थे। दोनों यज्ञ करते थे।[6] आदि, आदि! अतः संभवतया मिस्र की सभ्यता और संस्कृति का विकास वैदिक आर्य 'पणि' और मालावार तट के पांड्य लोगों के कमित प्रवेश और वहाँ के मूलनिवासियों के साथ समागम से हुआ था।

प्रागैतिहासिककालीन मिस्र

मिस्री ऐतिहासिक और पुरातत्व वेत्ताओं के अनुसार ई० से ७००० वर्ष पूर्व के लगभग मिस्री पाषाण युग में रहते थे। ये पाषाण युगीय मिस्री यूरोप के पाषाण कालीन बुशमैन (Bushman Type) जाति में से समझे जाते हैं।

पाषाण कालीन मिस्रियों के बाद मिस्र में एक नई जाति ने प्रवेश किया। यह नई जाति अलजीरियन जाति (Algerians) की ही संभवतया एक शाखा थी।[7] यह जाति मिस्र में पहुंचने के पूर्व से ही खेती करना जानती थी। हाथ से मिट्टी के बर्तन बनाना भी इन्हें मालूम था। ये थोड़ा बहुत ताँबे की धातु से भी परिचित थे, और बकरी के खाल का कपड़ा पहिना करते थे। मिस्र जैसे उर्वर प्रान्त में पहुँचकर और यहाँ की आदिम जाति के साथ मिलकर अलजीरियन जाति के लोगों ने अपने सब कार्यों में जल्दी ही उन्नति कर दिखाई, और अल्पकाल में एक सुन्दर सभ्यता का सृजन कर डाला। ये लोग पत्थर के सुन्दर औजार और बर्तन आदि बनाने में बहुत कुशल थे। पत्थर और हाथी दाँत पर चित्र काढ़ना भी इन्हें खूब आता था।

इस सभ्यता के विकसित होने के कुछ सदियों बाद सम्भवतया लिबिया के तरफ से कुछ नये लोग मिस्र में आये। ये उत्तर पाषाणकालीन लोग अपने साथ नई प्रकार की कुम्भकला लाये। ये तिजारत भी करते थे, सोना, चांदी आदि से वे परिचित थे। ताँबे का उन्होंने

३—The Glory that was Gurjara Desh by K. M. Munshi P. 59.

४—Proceedings of the Indian Hist. Congress Lahore-1940, PP. 97-98.

५—Early History of India, Prof. Gulshan Rai P. 172-173.

६—Proceedings of the Indian Hist. Congress, Lahore 1940, p. 93.

७—The Historian's History of the World P. 88.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ़ी प्रचार किया। उनके पत्थर के औज़ार बनावट में अधिक सुन्दर और तेज़ तथा भारी होते थे। किन्तु कलात्मक दृष्टि से ये लोग अपने पूर्व वालों से बहुत घट कर थे। इनके हाथी दांत और पत्थर पर खोदे गये चित्र पूर्व पाषाण कालीन मिस्रियों से बहुत घटिया दर्जे के मिले हैं।

इस प्रकार जब पाषाण कालीन सभ्यता ह्रास पर थी, तब यकायक एक नई जाति के लोग नील की बाढ़ की तरह मिस्र में पहुँचे। ये नये लोग बहुत ही कलात्मक और सभ्य थे। ये लोग प्युनिक जाति (Punic Race) के थे, और 'पन्ट प्रदेश' से लाल सागर को पारकर मिस्र पहुँचे थे।[८] हम पहले ही बता आये हैं कि प्युनिक जाति वैदिक आर्य पणियों से मिलायी गयी है, और पन्ट प्रदेश, पांडय प्रदेश से मिलाया गया है। अतः ये नये लोग भारत से आये थे, और भारतीय आर्य थे। मिस्र के ऐतिहासिक युग का आरम्भ इन्हीं लोगों के आगमन से होता है। इन आर्यों से ही मिस्र के शासक वंशों का इतिहास भी शुरू होता है। इन लोगों ने मिस्र की सब पुरानी जातियों को अपने अधिकार में किया, और उपरले मिस्र तथा निचले मिस्र को दो शाखाओं में विभक्त होकर शासन करने लगे। आगे चलकर मिस्र के प्रथम ऐतिहासिक शासक 'मेकनी' ने इन दोनों राज्यों को जीतकर सम्पूर्ण मिस्र में एकछत्र राज्य स्थापित कर दिया। इस पराक्रमी मेकनी के समय से मिस्री राजवंशों का इतिहास कमोबेश रूप से हमें मिलने लगता है, जब कि उसके पूर्व के राजवंशों का कोई इतिहास नहीं मिलता। केवल इतना मालूम हो सका है, कि मेकनी से पहले निचले मिस्र में (Lower Egypt) संभवतया सात राजा तथा ऊपरी मिस्र में तीन-राजा-हुए थे। किन्तु ये राजा कब और कहां राज्य करते रहे कुछ पता नहीं चलता।

मेकनी का युग लगभग चार हज़ार ई० पू० का माना जाता है। इस युग से क्योंकि हमें वहां के राजवंशों का हाल मालूम होने लगता है, इसलिए इस युग को मिस्र के ऐतिहासिक काल का आरम्भ युग कहते हैं।

८—Ibid- P. 89.

मिस्र के ऐतिहासिक युग

मिस्र के एक प्राचीन पुरोहित मनेथो (Manetho) ने अपने मुल्क का एक इतिहास लिखा था, जिसमें उसने वहां के राजाओं फेरोए शासकों का राजवंश के हिसाब से विभाजन किया है वह विभाजन इस प्रकार है—

(१) ४०००—२७०० ई० पू०—यह युग 'पुरातन राज्य' (Old Kingdom) का युग कहलाता है। १ से ११ वें वंश तक राजधानी प्रमुखतया 'मेम्फिस' (Mamphes) रही।

(२) २४७७—२२५० ई० पू०—यह युग 'माध्यमिक राज्य' या 'पुरातन' 'थीबन राज्य' कहलाया—११ से १२ वें वंश तक।

(३) २२५०—१६३५—यह युग झगड़ों, विदेशी आक्रमणों और गृह युद्धों का युग रहा। विदेशी हिकसोस [Hyksos] का प्रभुत्व स्थापित हुआ। १३ से १७ वें वंश तक। १७ वें वंश के समय हिकसोस की शक्ति जाती रही।

[४] १६३५ से ९५५ तक—'नूतन थीबन राज्य काल'—मिस्र की शक्ति का विकास। १८ से २१ वें वंश तक।

[५] ९५५ से ६५५ तक—यह मिस्र की शक्ति का ह्रास युग था। २१ से २६ वें वंश तक।

[६] ६५५ से ५२७ ई० पू०—थोड़े समय के लिए मिस्र का फिर से अभ्युत्थान हुआ। किन्तु ५२५ ई० पू० में इरानियों ने उस पर अधिकार कर लिया। ईरानियों के बाद यूनान के विश्व विख्यात विजेता सिकन्दर ने २३२ ई० पू० में मिस्र विजय किया। इस विजय के साथ मिस्र की स्वतन्त्रता पूरी तरह नष्ट हो जाती है। ऐतिहासिक काल में शासन करनेवाले मिस्र के—चौथे, बारहवें और अट्ठारहवें वंश बहुत प्रसिद्ध हैं।

९—The Historians History of the world. vol. I P. 68—74.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान का चरित्र

वाल्मीकि रामायण में पवनसुत

श्री एस० वंशीनाथ अय्यर

बहुत से कवियों और नाटक लिखनेवालों ने अपनी कल्पनाशक्ति की मदद से अपनी कविताओं और नाटकों में पुरुषों और स्त्रियों के अमर चित्र खींचकर रख दिये हैं। इन चित्रों में इन कलाकारों ने आदमी के दिल की गहरी से गहरी और पेचीदा भावनाओं को मिला कर दिखाया है। किसी में सदाचार के ऊँचे से ऊँचे गुण दिखाए गए हैं तो किसी में बुरे से बुरे अवगुण। इन चरित्रों के बयान करने में और मानव हृदय के नाज़ुक से नाज़ुक जज़्बों से काम लेने में अलग अलग लेखकों का अलग अलग ढंग रहा है। हर लेखक ने अपने ख़ास ख़ास वीरों या वीराङ्गनाओं को प्रकृति के अच्छे से अच्छे गुण या बुरे से बुरे अवगुणों से सजाने में अपने ख़ास ढंग और तरीक़े से काम लिया है।

इस तरह की कला और इस तरह की कल्पनाशक्ति में वाल्मीकि का दर्जा बहुत ऊँचा है। अभी तक कोई कवि इस कला में बाल्मीकि से बाज़ी नहीं ले जा सका। हनुमान के चरित्र बयान करने में वाल्मीकि दूसरे कलाकारों से कहीं आगे बढ़ गए हैं। हनुमान का चरित्र या चित्र सदाचार की निगाह से और रूहानियत (अध्यात्म) के लिहाज़ से बिलकुल निर्दोष है। हनुमान के चरित्र में इस तरह के गुण साथ साथ दिखाई देते हैं जो ज़ाहिरा एक दूसरे के ख़िलाफ मालूम होते हैं। राजा दलीप के गुणों का बखान करते हुए कालिदास ने लिखा है कि दिलीप बुद्धिमान होते हुए भी बहुत कम बोलता था। उसमें एक देव के बराबर बल था फिर भी वह दया और क्षमा की मूर्ति था। वह बहुत ही बड़ा दानी था और अपनी कीर्ति के बखान से नफ़रत करता था। बाल्मीकि ने इन सब गुणों को और इनके अलावा और बहुत बड़े बड़े गुणों को हनुमान के चरित्र में दर्शाया है।

ज़बरदस्त जिस्मानी ताक़त, इतना ऊंचा और निर्दोष चरित्र कि जो किसी तरह के भी प्रलोभनों से डिग न सका, अपने स्वामी के साथ सच्ची भक्ति और निष्ठा, सबके साथ दीनता और हमदर्दी, यह सब गुण उस बानर देवता में मौजूद थे। यूनान के महाकाव्यों में एगामेंनन (Agamemnon), एजेक्स (Ajax) और यूलीसेज़ (Ulysses) के नाम ख़ास नाम हैं। लेकिन हनुमान के चरित्र के सामने यह सब चरित्र फीके मालूम होते हैं। सर वाल्टर स्काट के उपन्यास में कैलेब बालडर्सटन (Caleb Balderston) अपने स्वामी का बड़ा भक्त था। जेम्स बासवेल डा० जानसन का सच्चा भक्त और दोस्त था। लेकिन राम की तरफ हनुमान की भक्ति के सामने इन दोनों की स्वामि भक्ति फीकी पड़ जाती है। हनुमान के चरित्र में जो बातें सिर्फ़ कविता या कल्पना से सम्बन्ध रखती हैं उन्हें छोड़कर बाक़ी बातों में हनुमान का जीवन ऐसा आदर्श जीवन है कि जिसे हर आदमी आदर्श की तरह अपने सामने रख सकता है और उससे फ़ायदा उठा सकता है। हनुमान की ज़िन्दगी से पता चलता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य से ऐसे गज़ब के नतीजे निकल सकते हैं जो किसी भी और तरह नहीं पैदा हो सकते।

रामायण में बहुत से आदर्श चरित्र दर्शाए गए हैं जैसे भरत, शबरी, विभीषण, जटायु, गुह वगैरह; पर इन सबमें हनुमान का चरित्र सब से बढ़कर चमकता हुआ है। हनुमान की ज़िन्दगी बिलकुल निर्दोष ज़िन्दगी है। जिन आदर्शों तक पहुंचने की आदमी को कोशिश करनी चाहिये उन सब आदर्शों का एक सुन्दर मेल हनुमान की ज़िन्दगी में देखने को मिलता है। इनमें सबसे चमकता हुआ गुण हनुमान का वह अटल संकल्प है जिसके ज़रिये वह अपनी वासनाओं को कड़ाई के साथ क़ाबू में रखते हैं। आजकल की वासनाओं के पीछे भागने वाली दुनिया के लिए हनुमान एक बहुत बड़ा संदेश हैं। रामायण की एक ख़ास विशेषता यह है कि कवि ने सदाचार को और ज़िन्दगी को बुनियादी सचाइयों को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। वाल्मीकि ने रामायण का नाम 'सीतायाः चरितं महत' यानी सीता का महान चरित्र रक्खा है। इसकी जगह अगर 'हनुमान का महान चरित्र' नाम रक्खा गया होता तो और अच्छा था क्योंकि एक एक संकट के समय हनुमान ने ही बड़ी बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयों को पार किया और सीता को लंका से छुड़ाने और रावण को मारने में राम को मदद दी।

किसी भी देव या पहलवान के बल का बड़प्पन इसी बात पर है कि वह धर्म की मदद करने के लिए अपने बल को बचाकर रक्खे और उस बल के साथ दीनता, प्रेम और हमदर्दी को सदा मिलाए रक्खे। अंजनि कुमार के ऊपर लंका की शान शौक़त का बहुत गहरा असर पड़ा था। रावण का अंतःपुर बड़ी विदुषी और सुन्दर स्त्रियों से भरा हुआ था। अंजनि कुमार ने बड़े जोशीले शब्दों में उस अंतःपुर की तारीफ़ की है। इस तरह के प्रलोभनों के होते हुए कोई दूसरा आदमी अपने चरित्र से डिग जाता या कम से कम डिगने लगता लेकिन यह वानर इन प्रलोभनों के सामने डटा खड़ा रहा। अपनी अन्तरात्मा को सामने रखते हुए हनुमान को इस बात की तसल्ली थी कि उनका मन इस इम्तहान के वक़्त चंचल नहीं होगा। उन्होंने कहा है—

नहि मे मनसः किञ्चित् वैकृत्यमुपपद्यते !
मनो हि हेतुः सर्वेषां इन्द्रियाणां प्रवर्तवे।
स्त्रीयो स्त्रीषु दृश्यन्ते सर्वथा परिमार्गणं॥

रावण की शान को देख कर हनुमान की हैरानी हद को पहुँच गई। थोड़ी देर के लिए वह रावण के सीता को हर ले जाने के जुर्म को भी भूल गए। उनके दिल में रावण के लिए इस बात पर हमदर्दी पैदा हुई कि रावण को बहुत जल्दी प्राणदण्ड भोगना पड़ेगा। हनुमान को रावण की तपस्या का भी पता चल गया। हनुमान रावण को महात्मा कहते हैं। हनुमान को इस बात का दुख है कि रावण के धर्म के ऊपर इस एक जुर्म से कलंक लग गया। हनुमान ने इस बात का आशा की कि किसी दिन रावण राम को सीता वापिस देकर अपनी जान बचाले और अपनी तपस्या के फल रूप सुख भोगता रहे। पर हनुमान की यह आशा पूरी न हो सकी।

सुग्रीव के दरबार मे हनुमान सबसे बलवान सेनापति थे, फिर भी उन्होने दीनता के साथ रावण और सीता से यह कहा कि सुग्रीव के दरबार में मेरे बराबर और मुझसे बढ़कर बलवाले बानर मौजूद हैं पर मुझसे कमज़ोर कोई नहीं।

मद्विशिष्टाः च तुल्याः च सन्तिनत्रवनौकसः।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चित् नास्ति सुग्रीव सन्निधौ॥

अशोक उपवन में इस डर से कि सीता एक अजनबी आदमी के सामने आने से डर न जावें हनुमान जिस अहतियात के साथ सीता के सामने गए, सीता का उन्होंने जो आदर मान किया जो राम के एक विश्वस्त और भक्त चाकर को करना चाहिये था, सीता के डर और दुख को दूर करने के लिए उन्होंने जो तसल्ली देने वाले शब्द कहे, समय को देखते हुए जिस होशियारी और चतुराई के साथ उन्होने सीता के दिल में अपना विश्वास जमा लिया, रावण के दरबार में जिस नीत के साथ उन्होंने जो उपदेश दिया, इन सब बातों से उनके गुणों का पता चलता है और मालूम होता है कि एक राजदूत की हैसियत से वह कितने अपूर्व और बेमिसाल थे। एक ऐसे तजरबेकार दूत की हैसियत से, जिसे पूरे अधिकार मिले हुए थे, हनुमान ने रावण से सुग्रीव का प्रणाम कहकर रावण के लिए सुग्रीव की शुभकामना ज़ाहिर की। हनुमान ने रावण से राम द्वारा बालि को मार डालने का ज़िक्र किया। उसे हलके से इशारा करके याद दिलाया कि रावण को खुद बालि के हाथों झेंपना पड़ा था और उसे यह भी आगाह कर दिया कि वह श्रीराम के रोष से बच नहीं सकता। हनुमान नियमों और आज्ञाओं के बड़े कड़े पालन करनेवाले थे, फिर भी ज़रूरत के वक्त वह अपनी फ़ौज़ के दिल को हँसी दिल्लगी करके ख़ुश करना जानते थे। किष्किन्धा वापिस जाते वक्त फ़ौज़ लम्बे सफ़र से थक गई थी। फ़ौज के बानर सिपाही मधुवन में घुसकर शहद पीने को बेचैन हो गए, पर वे हनुमान से डरते थे। हनुमान समझ गए। उन्होंने तुरंत बन्दरों को मधुवन में जाकर मधु पीने की इजाज़त दे दी।

लिखा है कि लड़ाई के क़ायदे कानूनों का हनुमान कड़ाई के साथ पालन करते थे। मैदान में रावण ने अपनी मुट्ठी से हनुमान की छाती पर एक मुक्का मारा। हनुमान बेहोश हो गए। जब उन्हें फिर होश आया तो उन्होंने रावण के एक मुक्का मारा जिससे रावण चक्कर खाकर गिर पड़ा। रावण ने खुद हनुमान की बहादुरी की खूब तारीफ़ की है। इसके बाद रावण दूसरे बन्दर सेनापति नल की तरफ मुड़ा। दोनों में ज़ोर की और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खूँख़ार कुश्ती हुई। दोनो बराबर के दिखाई देने लगे। नल की मदद करने को हनुमान के हाथ खुजलाने लगे। पर हनुमान ने अपने को रोके रक्खा क्योंकि उनका नल को मदद देना लड़ाई के क़ायदों के खिलाफ़ था। क़ायदा यह है कि जब दो बराबर के योद्धा लड़ रहे हों तो तीसरे किसी को उनमें से किसी की मदद नहीं करना चाहिये, बल्कि अलग खड़े होकर देखते रहना चाहिये।

हनुमान बहुत बड़े विद्वान थे। वह भाषा और बातचीत के क़ायदों को ख़ूब जानते थे। राम और लक्ष्मण से उनकी सबसे पहिली मुलाक़ात पम्पा झील के किनारे हुई। राम से वहाँ उनकी देर तक बात चीत हुई। हनुमान के चले जाने के बाद राम ने उस बानर की वाक पटुता की तारीफ़ की। राम का कहना है कि हनुमान की बात चीत से साबित है कि वह बहुत बड़े विद्वान और व्याकरण के पंडित थे। इतनी देर तक बोलने पर भी उनकी बातचीत में कोई ग़लती या दोष नहीं पाया गया। बात करते वक्त उन्होंने ज़रा भी न इधर उधर हाथ हिलाए और न ज़रा भी उनके चेहरे की आकृति बिगड़ी।

वह बराबर मध्यम स्वर में मीठी आवाज़ से बोलते रहे। उनकी भाषा ऊँची और साहित्यिक भाषा थी। उन्हें एक पल के लिए भी अटकना नहीं पड़ा। विचार और शब्द दोनों उनके दिल से निकलते थे और आसानी से प्रकट होते थे। उनकी बातचीत बिलकुल साफ़ थी और मतलब की थी। उनके बोलने का ढङ्ग निर्दोष था। उनकी दलीलें अकाट्य थीं। न वो घुमा फिरा कर बातचीत करते थे, न उन्होंने कोई फ़िज़ूल शब्द कहा और न उनकी किसी बात के दो मतलब निकलते थे। उनके शब्द नपे तुले थे। बोलने में एक लालित्य था। सुननेवाला उनकी किसी बात का विरोध न कर सकता था। जब हनुमान ने हिम्मत के साथ विभीषण के राम की सेना में ले लिये जाने पर ज़ोर दिया और सुग्रीव, लक्ष्मण वग़ैरह ने इस बात पर ख़ूब ज़ोर दिया कि रावण के भाई को हरगिज़ अपने साथ नहीं लेना चाहिये, उस वक्त हनुमान की बातचीत में यह सब गुण खूब चमक उठे।

हनुमान की वाकपटुता को इस तरह बयान करते हुए वाल्मीकि ने भाषण देने के क़ायदों को एक एक कर बयान किया है। वाल्मीकि के शब्द ध्यान देने के क़ाबिल हैं। उन्होंने लिखा है—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नं अनेन बहुधा श्रुतम्।
बहुव्याहरतानेन न किञ्चित् अपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित॥

अविस्तरम सन्दिग्धं अविलम्बितं अद्रुतम।
उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे॥

संस्कारगुणसंपन्नां अद्रुतां अविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणी वाचं हृदय हारिणीम॥

अनेन श्लक्ष्णया वाचा त्रिस्थान व्यञ्जनस्थया।
कस्यानाराध्यते चित्तं उद्यतासे रणेरणि॥

आजकल के प्लेटफ़ार्म स्पीकरों को बड़ा फ़ायदा हो अगर वे इन क़ायदों को पढ़कर और समझकर उन पर अमल करें। कुछ बोलनेवाले तो व्याकरण के क़ायदों को इतना कम पालते हैं कि अगर अख़बारों के संवाददाता सावधानी से उनके व्याख्यानों को दुरुस्त न करके ज्यूँ का त्यूँ छाप दें तो इन वक्ताओं की अज्ञानता सब पर खुल जावे। कुछ दूसरे वक्ता ऐसे हैं कि जिनके भाषणों में बेमतलब की बातें और ऐसी बातें भरी रहती हैं जिनके कई कई मायने निकल आते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनकी आवाज़ थोड़ी दूर तक भी नहीं सुनाई देती और कुछ ऐसे होते हैं जो गला फाड़ फाड़कर चिल्लाते हैं और समझते हैं कि वह जितना ज़्यादा चीखेंगे उतना ही सुननेवालों पर ज़्यादा प्रभाव पड़ेगा। कुछ ऐसे हैं जो इतने हाथ पैर चलाते हैं और मुँह बिगाड़ते हैं कि कहा नहीं जा सकता। कुछ ऐसे राजनीतिज्ञों का ज़िकर कर देना भी बेजा न होगा जो मनमें कुछ बात रखते हैं और कहते कुछ हैं, या जो कुछ कहना चाहते हैं पर कह नहीं पाते। हनुमान ने कभी बोलते वक्त कोई बात अपने मन में छिपाकर नहीं रक्खी और कभी 'मनमें कुछ और ज़बान पर कुछ' नहीं रक्खा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन धर्म का मूल तत्त्व

श्री के० सावजी जैन [औरङ्गाबाद]

भगवान् महावीर ने उपदेश दिया है कि यह जगत, मुख्यतः जीव और अजीव इन दो पदार्थों का समुदाय है। यह स्वयम्, अनादि एवं अनन्त है। इन पदार्थों का न तो अंत ही हो सकता है और न नये पदार्थ ही उत्पन्न हो सकते हैं। अलबत्ता पर्यायें या अवस्थाएं बदलती रहती हैं। मिट्टी से घड़ा और घड़े से कोई और वस्तु बनायी जा सकेगी अर्थात् अवस्था बदल जायगी किन्तु हर हालत में मिट्टी मिट्टी ही रहेगी। अजीव को परिभाषा में जड़ या कर्म के नाम से भी याद किया जाता है। संसार में जीवों का परिभ्रमण कर्म के संसर्ग से ही होता है। जीवों की विविध अवस्था ऊंच-नीच, दुःखी होना, सुसम्पन्न या दरिद्र होना, सुन्दर या असुन्दर होने में कर्म ही का हाथ है। कर्म अशुद्ध है तो जीव शुद्ध। संसारी जीवों का संसार कर्म ही के कारण है या यों कहा जाय कि प्राणि अपने कर्मों का ज़िम्मेदार है। जैसा करेगा वैसा उसे भरना होगा। "बोये पेड़ बबूल के तो आम कहां से होय ?" अपनी भलाई और बुराई का कारण व्यक्ति ख़ुद ही है। उसका स्वर्ग वही बना सकता है, या अपनी वैभाविक प्रकृति के कारण अपने को जहन्नुम में भी पहुँचा सकता है। मन-वचन-काय की हरकतों द्वारा उसके आत्म प्रदेश चंचल वा संकप हो उठते हैं और कर्म रजों को आकर्षित कर लेते हैं। कर्म रजों का आकर्षण उसके संसार की सृष्टि करता है। अतएव इन कर्म पिंडों से छूटना मोक्ष है। "नर कछु करनी करै तो नर का नारायण होय" इस चीज़ को जैन धर्म में विशेष रूप से स्पष्ट किया है। चुनांचे समाधिशतक में साफ़ तौर पर कहा है:—

"नयत्यात्मानमात्वैव जन्म निर्वाण मेवच
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योभऽस्ति परमार्थः"

अर्थात् आत्मा ही अपने परिभ्रमण का कारण है तथा मुक्ति का भी। अतएव आत्मा ही गुरु है। अर्थात् उसकी उन्नति और अवनति उसीके हाथों में है। पथ-प्रदर्शक निमित्त मात्र है। इसी तत्व के अनुसार जैन धर्म ईश्वर के हाथों में कुछ भी सत्ता नहीं देता है। न तो वह दुःख ही दे सकता है और न सुख ही। संसार की सृष्टि का न तो वह कारण है और न उसे भेंट स्तुति आदि के ज़रिये रिश्वत देकर ख़ुश ही किया जा सकता है। मनुष्य ख़ुद अपने हित या अनहित को समझकर योग्य मार्ग का अनुक्रमण कर सकता है। अतएव उसके लिये आवश्यक है कि वह सदाचार तथा सत् विवेक बुद्धि द्वारा अपनी सारी क्रियाओं का नियंत्रण करे तथा महाप्रभावी कर्म बंधनों को सच्चरित्र द्वारा काटे अन्यथा अपने अच्छे या बुरे आचरण द्वारा अच्छे या बुरे कर्म बंधते रहने के कारण वह आत्म कल्याण से कोसों दूर हो जायगा। मुसीबत का पहाड़ उस पर टूट पड़ेगा। लालसा व अतृप्त तृष्णा के कारण व्यथित रहेगा और इस तरह अनन्त काल पर्यंत दुःखों के सागर में गोते लगाता रहेगा। यह है इन जड़ कर्मों का प्रभाव।

इसमें शक नहीं कि संसारी आत्माएं अनादि काल से जड़ वा कर्म के साथ संलग्न चली आ रही हैं। फिर भी आत्मा आत्मा है और कर्म कर्म। दोनों अपने अपने स्वभाव में स्थित हैं। आत्मा अमूर्तिक, ज्ञाता, अखंड और चेतन स्वभाववाला है और कर्म मूर्तिक तथा पौद्गलिक व ज्ञानशून्य है। इसीलिये इस संसारी आत्मा को परमात्मा की अवस्था तक पहुंचाना ही हमारा पुरुषार्थ है। और यही इसकी स्वाभाविक अवस्था है। इसी स्वाभाविक अवस्था का लाभ "वस्तु स्वभावो धर्मः" के अनुसार चलने से ही होगा। इसी मान्यता की दृष्टि से समस्त जीव परस्पर समान हैं। गुण स्वभाव की अपेक्षा अनन्त सुख, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य परम शुद्ध बुद्ध हैं। ऐसे शुद्ध एवं सिद्ध जीवों के अलावा संसारी जीव भी जो शक्ति या शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा उपरोक्त गुणों के धारी हैं किन्तु अनादि काल से कर्मरज के चिपके होने से अविकसित हैं। इनकी यह स्थिति उनके वैभाविक अवस्था की तीव्रता पर निर्भर है। इन संसारी जीवों में इनके परिणामों की अशुद्धता आदि में बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। बहुत से जीव अत्यन्त अधिक मात्रा में रागी, मोही, क्रोधी, दुःखी आदि होते हैं तो बहुत से कम मात्रा में होते हैं। और चन्द उत्तरोत्तर वैभाविक अवस्था को हटाकर अपनी स्वाभाविक अवस्था के प्रति पहुंचने में प्रयत्नशील होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि मुक्त होने का अर्थ जीव का अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होना है। इसी शुद्ध, परम शांत, अनन्त सुख, ज्ञान वीर्यमयी पवित्रात्मा को परमात्मा या ईश्वर माना जा सकता है। और बाक़ी संसारी जीव। "वन्दे तद्गुण लब्धये" अर्थात् इन गुणों की प्राप्ति के लिये स्तुति, उपासना, आराधना, श्रद्धा, पूजन, वन्दनादि में रत रहते हैं। जैनियों की मूर्ति पूजा, सामायिक, ध्यान, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ उसी समय सार भूत कहलाती हैं जब केवल इसी उद्देश को लेकर पूजक, पूजा के अमली मैदान में उतरा हो। इन शुद्धात्माओं की भक्ति आराधक को अपनी स्वाभाविक अवस्था की याद दिलाती है। वह अपने स्वरूप चिन्तन में मग्न होने का यत्न करता रहता है उसकी परिणति शुभ से शुद्धता की तरफ़ होने लगती है अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूप के पान से उसे असीम आनन्द प्राप्त होने लगता है। अब दूसरी ओर वह आकर्षित नहीं होता। कहा भी है :—

"पीत्वा पयः शशिकर द्युति दुग्ध सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुङ्ग इच्छेत"
—"मानतुङ्ग"

अर्थात् क्षीर समुद्र के उज्ज्वल जल को पीनेवाला फिर कभी भी खारे जल को पीने की इच्छा नहीं करेगा।

जिसने अनेक बार परमात्मा के स्वरूप को देख लिया है उसकी नैमित्तिक व नित्य क्रियाओं में जान सी पड़ जाती है। अब वह पूजन, सामयिक, आलोचना, व्रत, नियम पालनादि में बेजान मशीन की तरह लगा नहीं रहता, बल्कि उसे सांसारिक क्रिया करते हुए भी इन शुभ तथा शुद्ध भावों को प्रदान करनेवाली नित्य नैमित्तिक क्रियाओं में एक ख़ास मज़ा आने लगता है। आत्म गुणों के विकसित होते रहने के कारण इन चीज़ों में अवर्णनीय आनन्द की प्राप्ति होने लगती है। वह चतुर पुरुष प्रेम समुद्र में डूब जाता है।

बिरले पुरुष ही भावशुद्धि की तरफ़ अग्रसर होते हैं और जितनी देर यह अवस्था टिकती है, वह जीवन मुक्त समझे जा सकते हैं।

वीर भगवान ने जीवों के कल्याण को लक्ष्य में रखकर अनेकांतवाद का बड़ा ही मौलिक उपदेश दिया है। अनेकांतवाद जैन धर्म की आत्मा है। जनता की धार्मिक असहिष्णुता की जड़ें सिर्फ़ अनेकांतवाद ही काट सकता है। इस सिद्धांत के द्वारा दृष्टि में दोष बाक़ी नहीं रहता। सत्य का पता आसानी से चल जाता है और वस्तु स्वभाव के समझने में उसे धोखा नहीं होता। अनेकांतवाद के ज़रिये वस्तु स्वभाव की काफ़ी छानबीन होती है और परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का साहचर्य तथा समन्वय होने से वास्तविकता का पता चल जाता है। अनेकांत के द्वारा आसानी से समझ में आ सकता है कि द्रव्य दृष्टि द्वारा वस्तु नित्य है परन्तु पर्याय दृष्ट द्वारा अनित्य भी। इसी तरह प्रतिपल पर्यायें परिणमनशील होती रहती हैं और मूल वस्तु का स्वभाव जैसे का तैसा ही बना रहता है। वस्तु परीक्षण के इस उदार शास्त्र को यदि अपनाया जाय तो जगत में से अनुदारता और संकीर्णता, धार्मिक असहिष्णुता आदि का मुँह काला हो जाय। परस्परों के दृष्टिकोण को समझने के कारण प्रेम की अभिवृद्धि तथा एक दूसरे के प्रति आदर भाव पैदा हो जाय। जैन शास्त्रों में इसका विशद वर्णन जानकर इसकी तात्विक उपयोगिता भलीभांति सिद्ध हो सकती है।

सम्यग्दर्शन वास्तव में आत्मा का स्वभाव है। निजी संपत्ति है। इस ख़ज़ाने की कुंजी इसीके पास है। इसे ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं। परमात्मा हमारे ही अन्दर विराजते हैं। इसी आत्मानुभूति को, आत्म प्रतीति को सच्चा 'सम्यग्दर्शन' कहा गया है। वही हमारा स्वभाव है' इसीमें सच्चे सुख का, असीम आनन्द का अनुभव होगा।

"मूढ़ा देवलि देउणवि णवि सिलि लिप्पइ चित्ति।
दो देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहिं समचित्त।"

हे मूर्ख! देव देवालय में नहीं, पाषाण शिला, लेप, चित्र आदि में देव नहीं किंबहुना जिन भगवान देहरूपी देवालय में ही विराजते हैं। इस चीज़ को समचित्त होकर अनुभव करने की आवश्यकता है।

इसी आत्मदर्शन या परमात्मा स्वरूप के अवलोकन या अनुभूति से उसे वचन अगोचर सुख की प्राप्ति हो जाती है। उसके हृदय वीणा के तार आनन्द से निनादित हो उठते हैं। प्रेम का पवित्र सोता बहने लगता है।

इस प्रेम के अगाध तथा अथाह सागर में बिरले पुरुष डुबकी लगाना जानते हैं। आत्मभूति का आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही जाने जिसने उसे पाया है। "लुफ़ मय तू ने पी ही नहीं ज़ाहिद" वाली बात है। यह आनन्द गूँगे के गुड़ की तरह है।

"ज्यों गूंगो मीठो फल को रस अन्तरगत ही भावै।
मन बानी को अगम, अगोचर, सो जानै जो पावै॥

इसी सीढ़ी पर चढ़कर उसे अनुभव होने लगता है कि परमात्मा में और उसमें एकदम साम्य है। इसी तादात्म्य सम्बन्ध को वह परम उपादेय देखने लगता है।

इसी आत्म प्रतीति या आत्मबोध के साथ साथ सच्चा ज्ञान या साम्यग्ज्ञान होता है। इसीको भेद विज्ञान भी कहा जाता है। इसके होते ही अपना पराया ख़ुद ही मिट जाता है। संशय की यहाँ कोई गुंजायश नहीं रहती। जड़ और चेतन का उत्तर व दक्षिण ध्रुव का सा या आकाश पाताल का अन्तर उसे दिखाई देता है। भेद विज्ञान ही अन्तरंग शुद्धि का कारण है।

कविवर बनारसीदासजी ने निम्न सवैया में ज्ञान का स्वरूप और उसकी उपयोगिता को अच्छी तरह झलकाया है—

ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर,
ज्योति जगी मति होत न मैली,
बाहिज दृष्टि मिटी जिनके हिय,
आतम ध्यान कला विधि फैली,
जो जड़ चेतन भिन्न लखे,
सो विवेक लिये परखे गुण थैली,
ते जग में परमारथ जानि,
गहे रुचि मानो अध्यातम सैली।

अर्थात् शुद्धात्मानुभव ही सच्चा सुख है। उसीसे अपनी अद्वितीय, असामान्य, असीम शक्ति की पहचान हो जाती है। उसके कारण वह वैभाविक भाव या मोह, क्रोध, कषाय, दुःख, रोग, क्लेशादि के वशीभूत नहीं होता। ऐंद्रिक सुखों को वह दुखों का कारण समझता है। इससे उसकी तृप्ति नहीं। वह तो अखण्ड अविनाशी तथा स्वाधीन सुख को ही अपना पैदायशी बल्कि अनादि हक़ समझता है। उसकी आंखों में दिव्य तेज झलकने लगता है। उसकी प्रत्येक क्रिया अब उसे उत्तरोत्तर प्रतिक्षण स्वात्मानुभव और चित्त शुद्धि की ओर अग्रसर करती रहती है। इसीका नाम सच्चा चरित्र अथवा सम्यक चरित्र है।

"जहां शुद्ध ज्ञान की कला उद्योग हीसे तहां,
शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्र को अंश है।"
ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म,
वैराग्य विलास धर्म वाको सरवंश है
राग द्वेष मोह की दशा सों भिन्न रहे याते,
सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है
निरुपाधि आतम समाधि में बिराजे ताते,
कहिये प्रगट पूरण परमहंस है।

ज्ञान की वृद्धि, आत्म दर्शन, तथा स्वानुभव के कारण उसकी सारी क्रियाएं सहज शुद्ध तथा आत्माभिरुचि को लिये हुए होती हैं। वहां राग, द्वेष, संशय, संकल्प विकल्पादि को जगह नहीं। पूर्णता की ओर बढ़ा चला जाता है। अपने विमल तथा उत्कृष्ट ध्यान द्वारा वह आत्मा परम पवित्र परम शुद्ध होकर अत्यंत उत्कृष्ट अवस्था अर्थात् मुक्तावस्था को पहुंचता है। वहां ध्याता, ध्यान और ध्येय में तथा सम्यगदर्शन ज्ञान और चरित्र रूपी रत्नत्रय में अपने आपको अभिन्न पाता है। अब वह हमेशा के लिये कर्म झंझटों से छूटने के कारण अपने स्वाभाविक तथा स्वाधीन वीतराग पद में तन्मय हो जाता है।

"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गई लाल॥"

भगवान वीर ने अपने मंगलमय उपदेश द्वारा बतला दिया है कि धर्म ढूँढ़ने से नहीं मिलता। वह आत्मगत है। भीतर की आवाज़ है। उसी स्वाभाविक अंतर्ध्वनि को सुनना, उसीके अनुकूल बर्तना, उसीके हो जाना उसीमें अपने आपको मिटा देना, इसी बेख़ुदी को रत्नत्रय रूप धर्म कहा गया है। यही भगवान महावीर का दिव्य संदेश है। इसी संदेश को विश्व के कोने कोने में पहुंचाने की आवश्यकता है। खेद है कि आज वीरानुयायी संकीर्णता को अपनाये हुए हैं। धर्म को वे अपनी मीरास समझते हैं और वह भी विकृत करके। आज अर्थहीन खोखली और आडम्बरपूर्ण रीतियों को अपनाकर वह अपना आत्मकल्याण कर लेना चाहते हैं। जिस धर्म ने सारे विश्व को शांति का पाठ पढ़ाया उसके अनुयायी कषायों के वशीभूत होकर आज शांति पर कुठाराघात करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करबला में हज़रत इमाम हुसैन की शहादत

प्रोफैसर एस० एल० ज़िन्दल एम० एस-सी०, टी० डी० (लन्दन)

हज़रत मुहम्मद ने सिर्फ़ २३ साल उपदेश दिया और १० साल के अन्दर एक वहशी क़ौम को एक जमात में बांध दिया। उनके सामने सब लोग दबे हुए से थे मगर उनकी वफ़ात के बाद उन लोगों की दुनियाबी ख़्वाहिशें—शराब पीना, जुआ खेलना, हुकूमत की बू, ज़ुल्म करना वग़ैरा, ग़ायब नहीं हुई थीं। इमाम हुसैन हज़रत मुहम्मद की लड़की फ़ातिमा और दामाद अली के लड़के थे। इस तरह इमाम हुसैन हज़रत मुहम्मद के नवासे लगते थे। हज़रत अली हज़रत मुहम्मद के सच्चे इक़रारों में से थे। जब मुआविया सल्तनत का मालिक हुआ उसने वायदा किया था कि वह अपने बाद अली के बड़े लड़के हसन को ख़लीफ़ा बनाएगा। मगर उसने अपने मरने के अनक़रीब अपने लड़के यज़ीद को ख़लीफ़ा बनाया। गोकि हसन मर चुके थे मगर उनके छोटे भाई श्री हुसैन उसके उम्मेदवार थे और इस हरकत से उन्हें बड़ी नाउम्मीदी हुई।

यज़ीद को सबसे बड़ा डर सिर्फ़ हुसैन का था। हुसैन बड़े आलिम, अच्छे चालचलन वाले, सुलह पसन्द, हलीम, फ़ैय्याज़, बहादुर, रूहानी व ख़ुदापरस्त थे। वे इतने बहादुर थे कि उनका सानी तमाम अरब में कोई नहीं था। मगर वे राजनीति (politics) की चालों व धोखेबाज़ी को नहीं जानते थे और इनको बुरा समझते थे। यज़ीद इनके बिल्कुल बरक्स था। उसने अपने वालिद मुआविया से कूटनीति (फ़रेब व चाल) में तालीम पाई थी और उसके ख़ानदानवाले इस कूटनीति में माहिर थे। मज़हब को वे सिर्फ़ अपने मतलब को पूरा करने का ज़रिया समझते थे। ऐशोआशायश और मौज उड़ाने का उनको चसका पड़ गया था। इन चालबाज़ लोगों के सामने सीधे सादे और सच्चे ख़ुदापरस्त हुसैन की न चल सकी।

यज़ीद हुसेन के क़त्ल करने का जाल तैयार करने लगा और इसी मक़सद से सबसे पहिले उसने मदीने के गवर्नर को लिखा कि हुसैन से मेरे नाम पर वफ़ादारी की क़सम लो। हुसैन ने साफ़ साफ़ इन्कार कर दिया। वे उसी रात मदीना छोड़कर २५० मील का सफ़र करके मक्के पहुँचे। वह हज की जगह है। वहां पर कोई किसी को मार नहीं सकता। सुना जाता है कि वहां घास तक नहीं काटी जाती।

कूफ़ेवालों के १२०० ख़तूत हुसैन के पास आए कि हम आपकी बैत (वफ़ादारी) कुबूल करने को तैयार हैं और उन्हें कूफ़ा आने के लिये बहुत ही इसरार किया। मगर हुसैन ने, जो कि सल्तनत के वास्ते ख़ून बहाना नहीं चाहते थे, कुछ भी जवाब नहीं दिया। आख़िर में कूफ़ा वालों ने एक बहुत ही ज़ोरदार ख़त लिखा—अगर आप न आए तो क़यामत के दिन अल्लाहताला के हुज़ूर में हम आप पर दावा करेंगे कि हुसैन ने हमारे ऊपर ज़ुल्म किया था क्योंकि वह हमारे ऊपर ज़ुल्म होते देखकर भी ख़ामोश बैठे रहे और सब लोग फ़र्याद करेंगे कि ऐ खुदा, हुसैन से हमारा बदला दिला दे। उस वक़्त आप क्या जवाब देंगे ?

ख़ुदापरस्त व रहीम हुसैन ने जब यह ख़त पढ़ा तो उनका दिल पानी पानी हो गया। आखों से आँसू बहने लगे और फ़ौरन ही दिलासा देनेवाला ख़त लिखा कि जल्द ही आऊंगा और यह ख़त अपने चचेरे भाई मुसलिम के हाथ रवाना कर दिया।

जासूसों के ज़रिये इस अम्र की ख़बर यज़ीद को मिली। उसने रहमदिल सूबेदार को हटाकर उसकी जगह सख़्तदिल व ज़ालिम ओबैद बिन ज़ियाद को वहां का गवर्नर बनाया। ओबैद ने ऐलान कर दिया कि जो हुसैन को ख़लीफ़ा मानेगा उसको सूली दी जावेगी और जो यज़ीद को मानेगा उसपर यज़ीद की मेहरबानियां होंगी और लोगों के साथ सख़्ती शुरू कर दी। नतीजा यह हुआ कि लोगों पर इसका असर हुआ। सबके हौसले पस्त हो गये और मुसलिम को एक एक करके सबने जवाब दे दिया। वे अकेले ३०० सिपाहियों से बहादुरी से लड़े और पकड़े गये। गवर्नर उनकी बेख़ौफ़ बातें सुनकर और भी गर्म होगया और उसने मुसलिम को फ़ौरन क़त्ल कर दिया। मुसलिम अपने क़त्ल होने से पहिले हुसैन को बुलाने का पैग़ाम भेज चुके थे और जिस दिन वे क़त्ल हुए थे उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन हुसैन मक्के से १४४ आदमियों के साथ (बच्चे, बूढ़े औरतें समेत) कूफ़े को रवाना हुए। ८०० मील का सफ़र था। गर्मी शिद्दत की थी। रात को चलते और दिन को ठहर जाते थे। एक मंज़िल के बाद मुसलिम के क़त्ल होने की ख़बर मिली। मगर अब वापिस जाना मुनासिब नहीं समझा। आगे बढ़े तो देखा एक लशकर, जिसका सर्दार हुर्र है, चला आ रहा है। हुर्र और उनके आदमी प्यासे थे। उन सबको हुसैन ने पानी पिलाया। हुर्र से पूछा, क्यों आए? तो उसने कहा, आपको पकड़ने। तब उन्होंने कूफ़ावालों के ख़तूत दिखलाए और कहा कि मैं वापिस चला जाऊंगा। हुर्र ने कहा मैं आपको छोड़ नहीं सकता। १८ दिन के सख़्त सफ़र के बाद वे कर्बला के मैदान में दरिया फ़िरात के किनारे मोहर्रम की दूसरी तारीख़ को ठहरने के लिए मजबूर किये गये। हुर्र एक रहम दिल आदमी था। उसे ह० मोहम्मद के नवासे से लड़ने में हिचक होती थी। वह बड़ी परेशानी में पड़ गया था। मगर यज़ीद की बैयत लेने की वजह से मज़बूर था। हुसैन चाहते तो हुर्र की फौज़ से लड़कर उसको शिकस्त दे देते मगर उन्होने लड़ाई में पहिले बढ़ना नहीं चाहा। ३री मोहर्रम को हुसैन को फ़िरात के किनारे से ख़ेमे उठाने का हुक्म हुआ और ६ठीं मोहर्रम तक फौजें जमा होती रहीं, जिनकी तादाद २२,००० थी।

हज़रत हुसैन अपने वालिद की तरह फक़ीरों की सी सीधी सादी ज़िन्दगी बसर करते थे। कोई चलता हुआ आदमी होता तो उस वक़्त पहाड़ों में जा छिपता और चारों ओर से फ़ौज इकट्ठा करता। मुल्क में जितनी इज़्ज़त उनकी थी और लोग जितना एतक़ाद उनमें रखते थे उनके लिए २०—२५ हज़ार फौज जमा करना मुश्किल नहीं था; लेकिन वे पहिले से ही शहीद होने को तैयार थे और उन्होंने फौजें जमा करने की कोशिश भी नहीं की बल्कि जो लोग उनके साथ थे उन्हें भी वे अपने पास से चले जाने की सलाह देते रहे। यही नहीं उन्होंने कभी नहीं कहा कि मैं ख़लीफ़ा बनना चाहता हूं बल्कि हमेशा यही कहा करते थे कि मैं किसीसे लड़ाई करना नहीं चाहता। उनकी रूह इतने ऊँचे दर्जे की थी कि वे दुनियावी सल्तनत के लिये लड़ाई के मैदान में उतरकर उसे दाग़ लगाना नहीं चाहते थे उनकी ज़िन्दगी का मक़सद अपने को पाक बनाना और मज़हबी ज़िन्दगी बसर करने का था। वे कूफ़ा इसलिये नहीं गये कि वे ख़लीफ़ा बनें बल्कि इसलिए कि वे अपने पैरोकारों की मुसीबतों को देख नहीं सकते थे। वे कूफ़ा जाते हुए सबसे यही कहते थे कि मैं शहीद होने जा रहा हूँ और इस क़िस्म का उन्होंने एक ख़्वाब भी देखा था। उनकी ज़िद सिर्फ यही थी कि मैं यज़ीद की बैत कबूल न करूंगा और इसकी वजह यही थी कि यज़ीद शराबख़ोर अय्याश और इसलाम के क़ानूनों पर नहीं चलता था। अगर यजीद ने उनको मरवा डालने की कोशिश न की होती तो वे ज़िन्दगी भर मदीने में पड़े रहते।

सातवीं मोहर्रम को हुक्म मिला कि हुसैन के लिए पानी बन्द कर दो। ऐसा ज़ुल्म तारीख़ में शायद ही कहीं पाया जावे, ख़ासतौर से अरब जैसी रेगिस्तान ज़मीन में जहां कि प्यास के मारे आदमी पागल सा हो जाता है। मोहर्रम की ८ ता० को उनका पानी ख़त्म हो गया। बच्चे प्यासे मरने लगे। ९ की शाम को हुक्म आया कि जंग शुरू कर दो। तीर आने लगे। तब इन्होंने अपने भाई के पास भेजा कि सिर्फ़ एक रात की मोहलत दे दो ताकि ख़ुदा की इबादत कर सकूं। आपस में झगड़े होने की वजह से इजाज़त मिल गई। आपने सबको जमा करके कहा कि अफ़सोस मेरी वजह से आप लोगों को इतनी तकलीफ़ हो रही है। आपमें से जो जाना चाहते हैं वे चले जावें। बहुत इसरार करने पर कुछ लोग गये और अब सिर्फ़ ७२ आदमी मय बच्चों व बूढ़ों के रह गये, जिनमें एक बच्चा ६ माह का था और एक बूढ़ा ९९ वर्ष का। इसी तरह से आधी रात ख़त्म हो गई। बाक़ी आधी रात ख़ुदा से दुआएँ करते कटी। हुसैन ने एक रात की मोहलत इस वास्ते नहीं ली थी कि जङ्ग की रही सही तैयारी पूरी कर लें। सुबह तक सब लोग सिज़दे करते और अपनी नज़ात के वास्ते ख़ुदा से दुआएँ मांगते रहे।

सुबह हुई। मोहर्रम की १० वीं तारीख़ थी वह दिन जिसकी तारीख़ में दूसरी मिसाल नहीं है। किसकी आंखों ने ऐसा अजीब नज़ारा देखा होगा कि ७२ प्यासे आदमी २२ हज़ार सिपाहियों के सामने खड़े हुसैन के पीछे सुबह की नमाज़ इसलिए पढ़ रहे थे कि शायद इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने का यह आख़री मौक़ा है। ये लोग कैसी हिम्मतवाले थे जो जानते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि थोड़ी देर में उनका ख़ात्मा हो जायगा मगर फिर भी पहाड़ की तरह अटल खड़े थे मानो दुनिया में कोई ऐसी ताक़त नहीं है जो उन्हें जो डरा सके। किसीके मुँह पर फ़िक्र के निशान नहीं थे। इन ७२ आदमियों में से एक भी ऐसा नहीं था जो पूरी तरह से लड़ाई के क़ाबिल हो। सबके सब भूख प्यास से तड़प रहे थे और उधर अरब के चुने हुए जवान थे जिन पर अरबों को नाज़ हो सकता था।

जङ्ग शुरू हुई, हुसैन के आदमी एक एक कर शहीद होने लगे। हुर्र भी हुसैन की तरफ़ आ गया और जब अपने आदमियों को इधर आने के वास्ते कह रहा था तो उस पर भी तीरों की बौछार कर दी गई। वह और उसका लड़का वहीं पर शहीद हो गए।

हुसैन के जितने साथी शहीद हुए अकसर उन सभी की लाशों को पैरों तले रौंदा गया। उनके सिर काटकर भालों पर उछाले गये और फिर पैरों से ठुकराए गये। पर कोई भी बेइज़्ज़ती और बड़ी से बड़ी बेरहमी उनके उस नाम को नहीं मिटा सकी और आज वह इसलाम की तारीख़ की शान को बढ़ा रहा है।

अब हुसैन अकेले रह गये। सिर्फ़ एक सात साल का भतीजा और हसन का एक दूध पीता पोता बाक़ी था। हुसैन घोड़े पर सवार होकर औरतों के ख़ेमे के पास आये और बोले "बच्चे को लाओ क्योंकि अब उसे प्यार करनेवाला कोई न रहेगा।" औरतों ने बच्चे को उनकी गोद में रख दिया। वे उसे अभी प्यार कर ही रहे थे कि अचानक एक तीर उनके सीने में लगा और बच्चा गोद ही में चल बसा। उन्होंने फ़ौरन ही तलवार से गढ़ा खोदा और उसकी लाश को यहीं दफ़न कर दिया। फिर अपने भतीजे को दुश्मनों के सामने खड़ा करके बोले "ऐ बेरहमो। तुम्हारी निगाह में मैं क़सूरवार हूँ मगर इस बच्चे ने तो कोई क़सूर नहीं किया। इसे क्यों प्यासा मारते हो?" यह सुनकर किसी ज़ालिम ने एक तीर चलाया जो बच्चे के गले को छेदता हुआ हुसैन के बाज़ू में गड़ गया। तीर के निकलते ही बच्चे की रूह फ़ना हो गई।

हुसैन अब मैदान जङ्ग की ओर चले क्योंकि अब कोई मर्द बाक़ी नहीं बचा था। उनकी विदाई का काम उनकी बहिन ज़ैनब ने किया। उनके मैदान जङ्ग में आते ही दुश्मनों में खलबली मच गई जैसे गीदड़ों में कोई शेर आ गया हो। तलवार चलाने लगे और इतनी बहादुरी से लड़े कि लोगों की हिम्मत टूट गई। जिधर उनका घोड़ा बिजली की तरह कड़ककर जाता था उधर लोग काई की तरह फट जाते थे। इस तरह सिपाहियों की भीड़ को चीरते फाड़ते वे दरिया फ़िरात के किनारे पहुंच गये और जैसे ही पानी पीने को थे कि किसी ने दग़ा करके कहा तुम यहां पानी पी रहे हो और उधर फ़ौज औरतों के खेमों में घुसी जा रही है। इतना सुनते ही लपककर वहां पहुंचे तो मालूम हुआ कि किसी ने दग़ा की थी। फिर मैदान में आकर दुश्मनों को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया। तब शिम्र ने तीन फ़ौजों को मिलाकर उनपर हमला करने का हुक्म दिया। इतना ही नहीं बल्कि बग़ल से और पीछे से भी उन पर तीर बरसने लगे। अब ज़ख़्मों से चूर होकर वह ज़मीन पर गिर पड़े और शिम्र उनके सीने पर सवार हो गया। वह नक़ाब डाले हुये था। हुसैन ने पानी मांगा मगर पानी देने से इन्कार कर दिया गया। फिर नक़ाब हटाने को कहा और जब नक़ाब हटा तो उन्होंने उसके चेहरे पर सफ़ेद कोढ़ के निशान देखे और अपने नाना की बात याद करके कहा कि मेरा क़ातिल यही है। यह सुनकर क़ातिल ने बड़ी बेरहमी से उनको गला पीछे से काटकर मारा और बाद में दुश्मनों ने उसकी लाश की जो बेइज़्ज़ती की वह तारीख में एक बड़ा शर्मसार हादसा है। उस दिन ६१ हिजरी के मुहर्रम के महीने की १० वीं तारीख थी। हज़रत हुसैन के मक़बरे को मिटाने की कोशिश की गयी मगर इन्सान के दिलों से उनकी यादगार को कोई भी ताक़त नहीं मिटा सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह खूनी था !

श्री बटुकेश्वर दत्त (भूतपूर्व र जबन्दी, लाहौर षड्यन्त्र केस)

रंग दे चुनरिया मोरी लाल रंग में !

आधी रात के सन्नाटे में गीत की यह पहली कड़ी एक मधुर हिलोर की तरह दौड़ गई। कौन गा रहा है ? अँधेरी काली रात में जब कि दुनिया की सुषुप्त आत्माओं के निश्वास से और भी अधिक विकराल जान पड़ रही है—ऐसे समय किस विरही हृदय की टीस यों गीत बनकर फूट पड़ी ? आप अनुमान करते होंगे यह गीत किसी जगमगाती हुई महफिल के बीच में कोई सुन्दर नर्त्तकी अपनी पायलों की झंकार के साथ किसी सुरासक्त व्यक्ति की घोर लाल आंखो को तृप्त करने के लिये गा रही होगी। नहीं ! नहीं !! आपकी यह कल्पना सही नहीं उतरी। महफ़िल की कल्पित मादकता से हटकर ज़रा इस संसार की दुःख और दर्द भरी वास्तविकता के निकट आयें तो गीत की इस कड़ी का रहस्य आप पर खुल जायगा।

* * *

कोलाहल विहीन वह स्थान, सघन काले बादलों की भांति घने वृक्षों की अँधेरी छाँह में, सन्ध्या होते ही जैसे गहरी नींद में अचेत पड़ा हुआ है। चेतनाविहीन वसुन्धरा के हृदय पर झिल्लियों और मेढकों की रट ऐसी लग रही थी मानो मरणोन्मुखी धरणी के अन्तःस्तल से आर्त स्वर निकल रहा है। उस गहरे अँधेरे को कभी-कभी जुगनू अपनी आलोक किरण द्वारा जगमगा देते हैं—मालूम पड़ता है जैसे वे किसी खोई हुई निधि को ढूँढ़ने में व्यस्त हैं। ज़मीन पर पड़े हुये पेड़ के सूखे पत्ते रह रह कर एक दो भागते हुये सियारों के पैर से खड़ खड़ा उठते हैं। निस्तब्धता क्षण भर के लिये भंग होकर फिर शान्त हो जाती है। एक पागल कुत्ता अपनी गर्दन आकाश की ओर उठाकर अचानक भौंक उठता है। रह रहकर कभी कभी आकाश से कोई तारा टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। उसका क्षणिक प्रकाश अन्धकार की काली घटा में फिर विलीन हो जाता है। ऐसी ही सुनसान और डरावनी रात में गीत की यह कड़ी सुनाई दे रही है। मैं आपको गानेवाले के पास ले चलूँ ! क्यों, आपके पैर रुक क्यों गये ? आप शंकित देख पड़ रहे हैं ! क्या पूछा आपने ? यह मैं कहां आया ? पत्थरों की मोटी और ऊँची चहारदीवारी घिरी हुई इस सुषुप्त नगरी में सोए हुए प्राणों के निश्वास क्या आपके पैरों को भारी बना रहे हैं ?—हाँ आपने ठीक ही पहिचाना लिया—यह सेण्ट्रल जेल है ! पृथ्वी पर ऐसी और कौन जगह हो सकती है जहां मनुष्य ज़िन्दा दफ़ना दिया जाता है। इन अभागे बन्दियों के जीवन में कोई भी परिवर्तन नहीं आता। ऋतु बदलती है। ग्रीष्म के प्रखर ताप से उत्तप्त भूखण्ड फिर एकबार वर्षा की अविरल धारा से शीतल हो उठता है। वर्षा के बाद शरद की पूर्णिमा अपनी स्निग्ध किरण वसुन्धरा के वक्षःस्थल पर बिखेर देती है। वैशाख के बाद जेठ का महीना आता है, दिन के बाद रात आती है। परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है, परन्तु इस कारागार में तो कैदी जीवन मृत सहिष्णुता की एक दीर्घ और थका देनेवाली कहानी मात्र है। ऐसे स्थान को आप अगर संसार से अलग करके पहिचान लें तो इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं है।

हां यहीं से गीत की कड़ी उठ रही है—

रंग दे चुनरिया मोरी लाल रंग में !

और गीत के साथ झन्झन् की आवाज़ ! वह नर्तकी के पायल की झंकार नहीं है, वह कैदी के पैरों पर पड़ी हुई लोहे की बेड़ियों की झनझन है। उसी के ताल पर गा रहा है वह बन्दी—

रंग दे ! रंग दे ! चुनरिया मोरी लाल रंग में !

उस बदकिस्मत की आंखों में नींद कहाँ ? जेल के सभी बन्दी जब अपने दुर्भाग्य को भूलकर नींद में खुर्राटे भर रहे थे, अथवा अपने प्रिय जनों से स्वप्न में मिल रहे थे उसी समय अपनी अँधेरी कोठरी के दरवाज़े पर खड़ा हुआ दोनों मुट्ठियों से लोहे के सीखचों को पकड़े हुए शेर गा रहा है—

रंग दे ! रंग दे ! चुनरिया मोरी लाल रंग में !

विरही हृदय की यह चीख़ न जाने सख़्त पत्थरों की मोटी दीवारों को भेद पाती है या नहीं ! परन्तु पत्थरों का हृदय अवश्य ही पसीज उठता होगा। चाँद इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय निकल आया है। उसीकी हलकी ज्योत्स्ना में आप यदि पत्थर की उभरी हुई सतह पर नज़र गड़ायें तो उस पर अभिशप्त आत्माओं के सदियों से जमे हुए अश्रुकण अवश्य ही आपको चमकते हुए नज़र आयेंगे। शोकातुर हृदय का आवेग जिस प्रकार आँसू बनकर पलकों तक आकर रुक जाता है, धार बनकर बह नहीं जाता— उसी प्रकार अगणित अभिशप्त हृदयों की व्यथा जमे हुए अश्रु-कणों के रूप में पत्थरों की उन दीवारों पर चमक रही है।

× × ×

खट्-खट्-खट-खट ! नपी तुली चाल। सीमित जगह पर संतरी के चलने की बूटों की आवाज़। शेरा जिस कोठरी में बन्द था उसी के निकट पहुंचकर वह बोला— सोजा शेरा ! सो रह ! रात बहुत बीत चुकी ! अब सो रह ! घबरा नहीं ! तेरी पुकार उसने सुन ली है। चुनरी रंगने की तैयारी हो रही है !

प्रहरी की इस व्यंजना को सुनकर शेरा के गीत की कड़ी रुक गई। अपने आपमें वह खो सा गया। नाम उसका शेरा है और मनुष्यों के रक्त से वह अपने दोनों हाथ रंग चुका है। पर कानूनी कलाबाज़ियों से वह फांसी के फन्दे से बचकर आजीवन कारावास की कठोर सज़ा पूरी करने के लिये इस जेल में लाया गया था। परन्तु जिस तरह एक बार खून लगजाने से शेर आदमख़ोर हो जाता है शेरा भी उसी तरह फाँसी से बचकर बन्दी जीवन में भी खून के नशे से छुटकारा न पा सका। वह बन्दी जीवन में भी रह रहकर मनुष्य के गर्म गाढ़े लाल रक्त के लिये, जिससे उसने एक बार अपने दोनों हाथ रंग लिये थे, लालायित हो उठता था। शीतल वसुन्धरा पर मनुष्य का लाल रक्त उसने अपने दोनों हाथों से उंड़ेलकर विकट अट्टहास किया। हत्या की बीभत्सता को देखकर भी कभी उसकी मुखाकृति पर शङ्का की रेखा नहीं पड़ी। छुरी की तेज़ नोक से सजीव मनुष्य की चंचलता को क्षण भर में शिथिल बनाकर उसकी ठण्ढी पड़ती हुई लाश को अपने पैरों तले पड़ा देखकर शेरा की छोटी छोटी चिन्धी आँखों में एक शरारत भरी मुस्कान खेल जाती थी। खून करते समय उसे ज़रा भी घबराहट न होती थी। डाक्टर जिस प्रकार धीरज और इतमीनान के साथ मरीज़ पर अपनी छुरी का प्रयोग करता है और रोगी डाक्टर की नेकनीयती पर भरोसा रखकर अपनी आँखे बन्दकर लेता है शेरा भी उसी प्रकार शस्त्र प्रयोग के पूर्व अपने शिकार का विश्वास जीतकर फिर उस अभागे का अन्त कर देता था। आजन्म कारावास की मियाद पूरी करते हुये इस तरह जेल जीवन की दो घटनाओं ने अन्त में शेरा को क़त्ल के जुर्म में फिर एक बार इसी फाँसी की कोठरी में लाकर डाल दिया।

× × ×

सेण्ट्रल जेल की सफ़ाई ज़ोरों से चल रही थी। कोठरी और टट्टियां फिनील डालकर धो दी गई थीं। अस्पताल और पाकशाला में, जहां मक्खियों को ग़ैर कानूनी मजलिसें चौबीसों घण्टे लगा करती थीं, अब अचानक आक्रमण से खदेड़ दी गई थीं। कारागार की सड़कों पर की गर्द, जो सदा जेल के कठोर नियन्त्रण को अवज्ञा की दृष्टि से देखा करती थी, अब लगातार पानी के छिड़काव से उसकी विद्रोही आत्मा एकदम दबा दी गई थी। क्यारियों में कलियां उषा के आलोक का स्पर्श पाकर अंगड़ाई तोड़कर जाग उठी थीं। सुबह की शीतल बयार में इठलाते हुए फूल अपने सर हिला हिलाकर किसी के आने की खबर कर रहे थे।

× × ×

जिसके स्वागत की तय्यारी थी आखिर वे आ गये ! आ गये !! चहार दिवारी से घिरी हुई नगरी के लौह द्वार पर खड़े हुए सन्तरी ने अपनी तुरही (बिगुल) में फूँक भरकर उनके आगमन की वार्ता को जेल के कोने कोने तक पहुंचा दिया। जेल के बीचों बीच खड़ी हुई ऊँची मीनार के घण्टे पर प्रहरी ने चोट लगाई— टन्-न्-न्-न्—घण्टे की आवाज़ ने उनके जेल प्रवेश का ऐलान कर दिया।

वे अन्दर दाख़िल हुए। सूर्य के आतप से बचाने के लिये नहीं बल्कि इज़्ज़त और शान बढ़ाने के लिए एक क़ैदी उनके सर पर छत्र चंवर ताने हुए पीछे पीछे चल रहा था। छत्रधारी क़ैदी के बग़ल में एक दूसरा क़ैदी एक बड़ा झालरदार ताड़ का पंखा उन पर आहिस्ता आहिस्ता झलते हुए आगे बढ़ रहा था। दूसरी ओर बड़े से छोटे तक सब अफ़सरान अपने अपने ओहदे के अनुसार तरतीब से चल रहे थे। अफ़सरों की टोली के पीछे वर्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिने बेटन से लैस सन्तरियों की कतार क़दम मिलाकर अनुसरण कर रही थी।

आप सोच रहे होंगे शायद यह कोई शाही जुलूस होगा, जिसके आगमन का इशारा सुबह सुबह खिलती हुई कलियों ने किया था। यह जुलूस—जेल के सर्वेसर्वा इन्सपेक्टर जनरल आफ़ प्रिज़िन्स-का था।

जेल का निरीक्षण करते हुए जनाब अफ़सर आला की टोली आगे बढ़ी। जिधर से वे निकलते थे उधर ही सन्तरी अपने बूटों की एड़ी चटाख़ की आवाज़ के साथ मिलाकर उन्हें सलामी देते थे। विभिन्न वार्डों के फाटकों पर खड़े क़ैदी नम्बरदार अफ़सर आला को सामने से गुज़रते हुए देखकर ज़रूरत से ज़्यादा अपनी कमर को झुकाकर फर्शी सलाम बजाते थे। अन्त में अफसर आला की टोली एक बैरक का मुआयना करने के लिये अन्दर दाख़िल हुई। अन्दर पूर्ण निःस्तब्धता छाई हुई थी। बैरक के सभी क़ैदी काम के लिये फैक्ट्रियों में गये हुये थे। क़ैदियों के कम्बल और बिस्तर तरतीब से एक क़तार में लगे हुए थे। हुज़ूरे आला कम्बलों की क़तार के बीच से आगे बढ़े। पर यह क्या? सर से पैर तक कम्बल ढाँपे यह कौन सो रहा है! देखो तो इसकी हिमाक़त! जेलखाने के कठिन क़ानूनों को तोड़ने की इस धृष्टता को देखकर अफसरे आला की आंखों में ख़ून दौड़ गया। ग़ुस्से से तिलमिलाकर उन्होंने अपनी छड़ी की नोक उस कम्बल से ढके हुए निद्रामग्न क़ैदी के शरीर पर गड़ा दी। परन्तु वह टस से मस भी न हुआ। फौरन एक सन्तरी ने आगे बढ़ कर उसके शरीर पर का कम्बल उतार कर फेंक दिया। कम्बल के हटाते ही जो भयानक दृश्य दिखाई दिया उसे देखकर सबके सब दंग रह गये। कम्बल से ढका हुआ एक क़ैदी का शव पड़ा था। किसी ने तेज़ छुरी से उसका गला काट दिया था। लाल रक्त की धारा जम गई थी पर अभी काली नहीं पड़ी थी। प्राण निकलते समय उस अभागे की आँखें अधखुली रह गई थीं। हत्या की बीभत्सता केवल यहीं तक सीमित नहीं थी। हत्यारे ने अपनी घृणित और पाशविक मनोवृत्ति को चरितार्थ करने के लिये मृतक के पुरुषांग को काट कर उसी के मुंह में ठूंस दिया था। देखकर सबके सब सिहर गये। एक साथ ही सब के मुँह से निकला—किसने हत्या की?

* * *

ख़ून! ख़ून!! सन्तरियों ने लगातार सीटी फूंक "पगली" का इशारा किया। जेल के चक्कर की मीनार पर प्रहरी ने लगातार घण्टा पीटना शुरू किया- टन्-टन्-टन्-टन्-टन्-टन्—जेल की 'पगली' घण्टी उठी। पगली घण्टी का इशारा पाकर जेल के कोने पर खड़े क़ैदी नम्बरदारों ने तेज़ी के साथ गश्त लगा शुरू की। बैरकें बन्द कर दी गईं। फ़ैक्ट्रियों में, जहां कैदी काम कर रहे थे, ताले पड़ गये। कोठरियों में जहाँ क़ैदी चक्की चला रहे थे, हुड़के कस दिये गये जेल के बग़ीचे में काम करनेवाले क़ैदियों को इकट्ठा करके सन्तरी ने उनके पैरों पर पड़े लोहे के कड़ों में एक ज़ंजीर डालकर उसमें ताला कस दिया। कारागार के लौह द्वार पर खड़े सिपाही ने फ़ौरन अपनी कमर से लटकती हुई किरिच को कोष उन्मुक्त कर बन्दूक़ पर चढ़ा लिया। फिक्स्ड बेयोनेट से लैस सिपाहियों की एक टोली ने सरपट जेल के अन्दर प्रवेश किया। सबके दिमाग़ में एक ही प्रश्न दौड़ रहा था—हत्या किसने की और हत्यारा गया कहाँ?

सीटी की फूंक, घण्टे की टन् टन् आवाज़ और अस्त व्यस्त अधिकारियों की दौड़ ने जेल के शान्त वातावरण में गर्मी ला दी। सभी व्यस्त हैं पर सबके लब पर एक अजीब ख़ामोशी थी। क़ैदियों ने दबी ज़ुबान से एक दूसरे के कान में ख़ून की ख़बर डाल दी। क्षण भर में हत्या की खबर जेल के कोने कोने में बिजली की तरह फैल गई। ख़ून! ख़ून!! सभी क़ैदियों की उत्सुक दृष्टि में एक ही प्रश्न घूम रहा था—ख़ून किसका किसने किया? पर जवाब कौन देता! हत्यारा लापत था!

* * *

परन्तु हत्यारे का पता तो लगाना ही होगा। अफसर आला जेल का निरीक्षण बन्द करके दफ़्तर आगये मृतक कैदी की आत्मा जेल के शिकंजे से अवश्य ह मुक्ति पा गयी थी पर जिस बैरक में उसकी लाश पड़ी थ उसके दरवाज़े पर ताला डालकर सन्तरी का पहर बैठा दिया गया। यद्यपि ताले और सन्तरी की चौकन्नी नज़र को अंगूठा दिखाकर ही उस अभागे के प्राण ह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये गये थे—फिर भी क़ानून के चक्के को घुमाने के लिये तो हत्या के सुबूत को ताले में सुरक्षित रखना ही पड़ता है। जीवन का अन्त हो जाने के बाद क़ानून ने अपनी कार्रवाई आरम्भ कर दी।

टेलीफोन खटक उठा। क्षण भर में क़ानून की वाहन पुलिस की मोटर कारागार के फाटक पर आ पहुँची। चुस्ती के साथ वे लोग अन्दर दाख़िल हुये और जेल के अफ़सरों को लेकर घटना स्थल पर आ धमके। लाश का मुआयना किया गया पर हत्यारे को पकड़ने के लिये घातक की छुरी उनके हाथ न लगी। लाश की फोटो उतार ली गई। भूमि पर पड़े हुए लोहू का भी अक्स उतार लिया गया।

लोहू की उस धार पर पैर के अंगूठे का एक चिन्ह देखने में आया। उसकी भी तसवीर उतार ली गई। हत्या काण्ड का सारा विवरण तैयार करके कलम बन्द किया गया और उन काग़ज़ों को सम्हालकर पुलिस ले गई।

× × ×

इसके बाद वहां से मृतक की लाश हटा दी गई। जेल के कैदियों के दिल में एक अजीब शङ्का आकर घर कर गई। सभी उदास बैठे अनजाने अपने हाथ की उँगलियों से पैर के अंगूठे को मसल रहे थे। न जाने किस अभागे का अँगूठा अन्त में उसे फाँसी के तख़्ते पर ले जायेगा।

एक दिन पुलिस के लोग फिर जेल में आकर कैदियों के पैरों की छाप काग़ज़ पर उतार ले गए। जांच आरम्भ हुई। काग़ज़ पर उतारी हुई कैदियों के पैर की छाप फोटो में उतारी हुई अंगूठे की छाप से मिलाई गई और अन्त में एक दिन शेरा ने अपने को कत्ल के अपराध में फिर इन्ही फांसी की कोठरियों में बन्द पाया। उसके पैरों पर बेड़ी जड़ दी गई। यहां बन्द होने के बाद से शेरा उन्हीं बेड़ियों की झंकार पर गाता है—

रंग दे ! रंग दे ! चुनरिया मोरी लाल रंग में !

शेरा का शरीर देखकर उसकी खूनी वृत्तियों का अन्दाज़ा लगाना कठिन था। उसका कद साधारण और रंग सांवला था। पिचके गालों पर उसकी शरारत भरी छोटी छोटी आंखें चम् चम् करती थीं। उसकी तीखी नज़रों में एक बीभत्स क्षुधा झलक उठती थी। शरीर से वह बलिष्ठ न था। सिकुड़े हुए उसके वक्ष स्थल और बगल की पसलियां अनायास ही गिनी जा सकती थीं। हाथ और पैरों की मांस पेशियां सूखी मालूम पड़ती थीं—फिर भी कत्ल का मुजरिम बनकर फैसले की प्रतीक्षा में इन्हीं फांसी कोठरी में बन्द रहते हुए भी सदैव वह अपने अन्दर एक मस्ती की हरियाली बनाये रखता था। "फांसी कोठरी" की लम्बी दो कतारों के बीच से शेरा झूमता हुआ नित्य मुकदमे में पेश होने के लिये जाता था। उसके जाते समय उन कोठरियों में बन्द मौत की प्रतीक्षा करनेवाले अन्य कैदी बेड़ी की झनझन आवाज़ सुनकर शेरा की एक झलक लेने के लिये दौड़ पड़ते थे। निस्तब्ध रात्रि में शेरा की मधुर सुरीली आवाज़ में विरह का गीत और दिन के उजाले में उसके पैशाचिक कृत्य—इन दो के बीच शायद वे अभागे कुछ भी सामञ्जस्य स्थापित न कर पाते थे। मन की इस असामञ्जस्यता को दूर करने के लिये ही वे शेरा को देखने के लिये उत्सुक हो उठते थे। इन बन्दिओं के हाथों ने भी लोहू बहाया था पर शायद वे शेरा की उस खूनी और बीभत्स मनोवृत्ति को न पा सके थे।

शेरा उन फांसी का इन्तज़ार करनेवाले बन्दियों के बीच से गुज़रते समय अपने दोनों शृङ्खलित हाथ उठाकर उनसे दुआ सलाम करता। किसी किसी अभागे के सन्मुख क्षण भर के लिये रुक जाता और उसे ढाढ़स बँधाता। वह कहता—"देख जवान दिल न हारना।" शेरा के इन शब्दों को सुनकर, मृत्यु की विभीषिका से म्लान उन अभागों की आंखें फिर चमक उठती थीं। क्षण भर के लिए फाँसी के बन्दी अपनी शिथिल शक्ति को फिर एक बार बटोर कर जवाब देता—"ज़रूर, ज़रूर शेरा !" शेरा मुस्कराता हुआ मुक़दमे के लिये आगे को बढ़ जाता।

सन्ध्या समय पैर की बेड़ियां झन झन करता हुआ शेरा कचहरी से लौट आता था। उसके ओठों की मुस्कान और घूरती हुई आँखों को देखकर कोठरियों में बन्द फाँसी के बन्दी समझ लेते थे—शेरा का शेर दिल अभी भी मज़बूत है। जेल की रात ज्यों ज्यों अधिक गहरी होती जाती थी, ख़ूनी शेरा के अन्दर से विरही मन का करुण संगीत उतना ही मचल उठता था। दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय के पैशाचिक और वीभत्स शेरा को रात्रि के विरह सङ्गीत में ढूढ़ पाना कठिन हो जाता था।

× × ×

इसके पश्चात एक सन्ध्या को शेरा कचहरी से लौटा। झन् झन् झन्-झन्! शेरा के लौटने के इन्तज़ार में वार्ड के अन्य फांसी के अपने अपने दरवाज़े पर आकर खड़े हो गये। परन्तु उस सन्ध्या को शेरा के चेहरे पर मस्ती की झलक न थी। अन्य साथियों के दुआ सलाम का जवाब उसने चुपचाप हाथ उठाकर दे दिया। किसीसे उसने आंख न मिलाई। अपने लड़-खड़ाते पैरों को किसी प्रकार घसीटता हुआ वह अपनी कोठरी की तरफ बढ़ गया।

शेरा के विषाद भरे मुखड़े को देखकर सभी बन्दी उस दिन सन्न रह गये। क्या हुआ उसे? किसने उसकी मस्ती उतार ली? उसकी तेज़ चमचमाती आंखों को किसने धुँधला बना दिया?

ड्यूटी पर हाज़िर वार्डर ने पान और खैनी से रंगे हुये अपने काले दांत निकालकर एक अवज्ञा की हंसी हंसते हुये उत्तर दिया—शेरा को फांसी की सज़ा सुना दी गई है। उसकी "चुनरी" अब रँगी जायेगी!

सन्तरी की बात सुनकर मृत्यु की प्रतीक्षा करनेवाले अभागे बन्दियों ने कोठरी का द्वार छोड़कर अपने शिथिल शरीर को दीवार के सहारे टिका दिया। गहरी सांस खींचते हुये उन अभागों के मुख से—"एक और" की आवाज़ निकली। दुनिया से कूच करनेवालों की संख्या में एक और आदमी की वृद्धि हो गई।

× × ×

शेरा का मुक़दमा सीधा और साफ था। इसी मुक़-दमे के सिलसिले में एक और हत्या का रहस्य सबूत पक्ष की तरफ से दी गई एक कैदी की गवाही से प्रकट हुआ। वह काम भी शेरा का ही था। आजीवन कारा-वास की मियाद पूरी करते समय शेरा से उस अभागे मृतक कैदी को आत्मीयता पैदा हो गई थी। मालूम नहीं किस तरह शेरा की अलौकिक शक्ति पर उसका विश्वास जम गया था। कहते हैं शेरा ने उसे अपना शिष्य बना लिया था और उसे ऐसे हुनर सिखाने का भरोसा दिया था जिससे कि वह अपने को काराजीवन से मुक्त कर सकता था। एक दिन भरी दोपहरी में जब कि सारे जेल में सन्नाटा छाया हुआ था—शेरा उसे हुनर सिखाने के लिये एक अलग कोठरी में ले गया। वहाँ उसे पंजे पर बैठा दिया और उसके दोनों हाथ उसीके पैरों के साथ बाँध दिये। फिर कुछ मन ही मन बड़बड़ाते हुए शेरा ने उसकी आँखों पर पट्टी चढ़ा दी। इतना करने के बाद भी शेरा पर उस अभागे का विश्वास अटल रहा। परन्तु उसे इस तरह सम्पूर्ण निःसहाय अवस्था में पाकर शेरा की आँखों में शरारत की मुस्कान दौड़ गई। वह अपने को क़ाबू में न रख सका और उसने झट एक तेज़ लोहे की छुरी निकालकर अनायास उसके गले को रेत दिया। गर्म लोहू की धार बह निकली। उसके बंधे हुए हाथ पैर मृत्यु की यन्त्रणा से फड़फड़ाकर शिथिल पड़ गए। उसके कारा जीवन से कूच करने के पहिले ही शेरा वहां से खिसक आया।

मुक़दमे के अन्त में शेरा ने काराजीवन में अपनी की हुई हत्यायें अदालत के सम्मुख स्वीकार कर लीं। शेरा के वकील ने उसे पागल सिद्ध करने की चेष्टा की। हत्या के अपराध में फांसी से बचकर आजीवन कारावास की सज़ा पाकर भी जिसने केवल अपनी वीभत्स और हिंसक मनोवृत्ति की तुष्टि के लिये ही अकारण मानव रक्त बहाया हो वह न्याय की दृष्टि में दोषी सिद्ध होने पर भी विकृत मस्तिष्कवाला ही है—यही दलील शेरा के वकील ने अदालत के सामने पेश की थी।

जज ने वकील की बात रखने के लिये शेरा के दिमाग़ की डाक्टरी परीक्षा कराने के लिए उसे पागल-खाने भेजने का आदेश दिया। परन्तु परीक्षा करने के पश्चात डाक्टर ने शेरा का दिमाग़ सम्पूर्ण स्वस्थ होने की रिपोर्ट दे दी। अतः अदालत ने उसे फांसी की सज़ा सुना दी।

शेरा की अपील, और दया की प्रार्थना सभी निष्फल हुईं! उसे अपने अन्तिम समय के लिये तैयार होना पड़ा।

× × ×

जेल की फांसी की कोठरी से अब शेरा का गीत सुनाई नहीं पड़ता। अन्य बन्दियों की बातों का उत्तर भी देना उसने एकदम बन्द कर दिया था। खुराक उसकी एकदम घट गई थी। उसकी चमचमाती आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब म्लान पड़ गई थीं। अपनी निस्तेज दोनों आँखें शून्य में एकटक गड़ाये वह बैठा रहता था। उसकी यह दशा अधिक दिन न रह सकी।

एक दिन जब प्रभात की प्रथम सुनहरी किरण वसुन्धरा का स्पर्श कर रही थी फांसी के तख़्ते पर शेरा के ख़ूनी जीवन का अवसान हो गया।

कहते हैं कि अन्तिम समय शेरा इस क़दर शिथिल पड़ गया था कि वह अपने पैर से चलकर फांसी के मंच पर न चढ़ पाया था। दो बलिष्ठ सन्तरी उसके दोनों बाज़ू पकड़कर उसे सहारा देकर फांसी के तख़्ते पर ले गये थे।

जिस शेरा ने मनुष्य के गर्म लोहू को मुस्कराते हुए पानी की तरह बहाया था और जो सदैव मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए फाँसी के अन्य बन्दियों को—"दिल न हारना जवान" कहकर ढाढ़स बँधाता था—वही शेरा अपनी मौत को सम्मुख पाकर इस प्रकार क्यों बिलकुल शिथिल पड़ गया था—इसका विश्लेषण तो कोई मनोवैज्ञानिक ही कर सकेगा।

कारागार की इन घटनाओं के साक्षी दूसरे बन्दी तो केवल इतना ही समझते हैं कि उनके हृदय की विरह व्यथा जो सदैव रात्रि में शेरा के करुण गीत में बह निकलती थी—एक दिन उषा के आलोक स्पर्श से सदा के लिए विलीन हो गई। केवल अतीत स्मृति का मोह चिरन्तन बनकर उनके हृदय के कोने में घर कर गया।

आत्मा को खण्ड खण्ड मत करो

सब जगह मौजूद आत्म तत्त्व देख पाना ही मोक्ष है परन्तु हम इस आत्म तत्त्व के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं। जैसे एक क़ीमती साड़ी हो और एक नादान बालक उसके टुकड़े करे, ऐसा ही हम करते ह। सुन्दर बिने हुये वस्त्र की हम धज्जियाँ करते हैं और फिर रोने बैठते हैं कि शरीर में धारण करने योग्य कुछ हमारे पास बचा ही नहीं। संसार में जो दुख है, अन्याय है, स्पर्धा है, मारपीट है, हिंसा है, युद्ध है,—इन सबका कारण क्या है? इनका एक ही कारण है और वह यह कि हम अनेक कृत्रिम भेद बना लेते हैं। सर्वत्र भरे पूरे आत्मतत्व की ओर हम देखते तक नहीं। नदी बह रही है यदि हम उसमें जगह जगह डबरे बनालें तो मच्छर पैदा होंगे, हम जूड़ी बुखार के शिकार होंगे और मरेंगे। संसार में आज हम मर ही तो रहे हैं क्योंकि हमने डबरे बना लिये हैं—ये गोरे, ये काले, ये हिन्दू, ये मुसलमान, ये ब्राह्मण, ये ब्राह्मणेतर, ये स्पृश्य, ये अस्पृश्य, ये मराठे, ये गुजराती—सभी अपने अपने डबरों में बैठकर मेंढकों की तरह टरटराते हैं। मरण का अभिषेक करते हैं।...हम वाह्य रूप को ही महत्व देते हैं, सीपी समेटकर मोती फेंक देते हैं। किन्तु गीता कहती है देह को महत्व देकर अखण्ड आत्मा के खण्ड खण्ड मत करो।

—आचार्य विनोबा भावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खादी का नया संस्करण

श्री प्रभाकर दिवाण (सेवाग्राम)

अगस्त १९४४ में जब से गांधी जी सेवाग्राम आये तब से उन्होंने सेवाग्राम की संस्थाओं में एक उथल-पुथल शुरू कर दी। जेल में उन्होंने रचनात्मक कार्यों के बारे में बहुत कुछ विचार किया और उसके अनुसार अपने कार्य को चलाने के लिए जेल के बाहर आने पर कोशिश शुरू की। पिछले साल सितम्बर महीने में उनकी सदारत में चर्खासंघ की जो बैठक हुई, उसमें उन्होंने अपने विचार पहले पहल जनता के सामने रखे। उस सभा में उन्होंने कहा था कि—

"अगर चर्खासंघ की हस्ती सरकार की मेहरबानी पर क़ायम हो तो फिर उसकी हमें कोई ज़रूरत नहीं। अगस्त आंदोलन के बाद सरकार ने चर्खासंघ के अनेक केन्द्रों को नष्ट किया और ऐसी हालत पैदा करदी, जिसमें चर्खासंघ का सारा कारोबार ही बन्द हो जाय। सरकार अगर चाहती तो वह चर्खासंघ को पूरी तरह ख़त्म कर सकती थी। इसका मतलब यह है कि खादी का काम अभी तक आम जनता का काम नहीं हुआ है, वह सिर्फ़ चंद लोगों का, या चर्खासंघ जैसी संस्थाओं का ही काम रहा है। हमें खादी को घर घर पहुंचाना होगा। खादी जब घर घर की चीज़ हो जायगी तब उसे कोई सत्ता नष्ट नहीं कर सकेगी।"

गांधी जी ने ये ही विचार तालीमी संघ, ग्रामोद्योग संघ, गो-सेवा सङ्घ आदि रचनात्मक काम करनेवाली संस्थाओं के सामने भी रखे। गांधी जी को यह अनुभव हो चुका है कि कोई भी काम, जो आम लोगों का नहीं होता, जो आम लोगों में न पहुँचकर थोड़े से लोगों में ही सीमित रहता है, उसे राज्य-सत्ता या अन्य विरोधी शक्तियाँ आसानी से कुचल सकती हैं। इसलिए रचनात्मक कार्य को अगर सरकार से या अन्य विरोधी शक्तिओं से निर्भय बनाना हो, तो उसे हर व्यक्ति के पास पहुंचाना होगा। गांधी जी की यह राय थी कि अब तक जो कार्य हुआ है, आम लोगों तक जितना पहुंचना चाहिए उतना नहीं पहुंच पाया और यही वजह है कि अगस्त आंदोलन के समय सरकार उस पर अपना दमन चक्र चला सकी।

गांधी जी अपने रचनात्मक कार्यों के द्वारा एक नई समाजी व्यवस्था की रचना करना चाहते हैं। उ वे सत्य और अहिंसा पर आधारित समाज-रचना अहिंसक समाज रचना कहते हैं। अहिंसक समाज-रचन में ऊँच-नीच का भेद-भाव न होगा, छोटे-बड़े के शोषण क उसमें गुञ्जाइश न होगी, स्पर्धा और शोषण की जगह सहयोग और सहकारिता पर समाज की रचना होगी। कुछ लोगों को सिर्फ़ बौद्धिक काम और कुछ लोगों को सिर्फ़ शारीरिक मेहनत, कुछ लोगों के पास अनगिनत धन और कुछ लोगों को खाने के लिए भी नहीं; इस तर की विषम समाज-रचना आज चालू है। प्रत्येक मनुष दूसरे को चूसकर खुद धनी और सुखी बनना चाह है। सभी व्यवहार स्पर्धा से किये जाते हैं, इसलिए व्यक्ति व्यक्ति में, जाति जाति में, तथा राष्ट्र राष्ट्र में भयानक यु और द्वेष चालू रहते हैं। अहिंसक समाज-रचना में इ सबको कोई जगह न होगी। इस स्थिति तक पहुँचने के लिये गांधी जी रचनात्मक कार्य को रखते हैं।

केन्द्रीय उद्योगों की जगह या बड़े पैमाने पर चलने वाले कल कारखानों की जगह हाथ के धन्धों को गांधी जी ने राष्ट्र के सामने रखा है। केन्द्रित यांत्रिक उद्योगों में सत्ता और सम्पत्ति थोड़े से लोगों के हाथों में रहती है। पूंजीवादी राष्ट्रों में वह शक्ति पूंजीपतियों के हाथों में और साम्यवादी राष्ट्रों में वह सरकार या उसके अधिकारियों के हाथों में रहती है। इन दोनों तरीक़ों में शोषण होना ज़रूरी है। दोनों में व्यक्ति स्वावलम्बी न रहकर पूंजीपतियों अथवा सरकार के आधीन हो जाते हैं। उनसे सरकार या पूंजीपति अपने फ़ायदे के लिए काम कराते हैं और वह पूरी तरह उनके ऊपर अवलम्बित हो जाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति जब तक स्वावलम्बी, स्वाश्रयी तथा स्वतंत्र नहीं हो जाता, तब तक उसका शोषण किसी न किसी रूप में होता ही रहेगा। आज इङ्गलैंड का राष्ट्र स्वाधीन है, किन्तु राष्ट्र स्वाधीन होने से उसमें व्यक्ति का शोषण नहीं होगा, इसकी तो गारण्टी नहीं। वहाँ पूंजीपति वर्ग तथा सत्ताधारी वर्ग जनता का शोषण करता है। राष्ट्र स्वाधीन होने पर भी वहाँ का जन समाज या वहाँ के व्यक्ति स्वाधीन नहीं हैं। इसका कारण यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि हरेक व्यक्ति को अपनी रोज़मर्रा की जरूरतों के लिए सरकार पर या पूंजीपतियों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। साथ ही वहां सारे उद्योगों का केन्द्रीकरण हो जाने से व्यक्ति के लिए किसी तरह की आर्थिक या राजकीय स्वाधीनता या स्वावलम्बन प्राप्त करना असम्भव है। आज अनेक दूसरे देश इङ्गलैण्ड के क़ब्ज़े में होने से इङ्गलैण्ड में खुद शोषण का दृश्य साफ़ तौर पर दिखाई नहीं देता।

गांधी जी हरेक व्यक्ति को स्वाधीन बनाना चाहते हैं। व्यक्ति जब सभी दृष्टियों से स्वाधीन हो जायगा, तब उन स्वाधीन व्यक्तियों का एक सहयोगी समाज या राष्ट्र बन सकता है। लेकिन आज इससे उलटा होता है। राष्ट्र स्वाधीन होता है, लेकिन राष्ट्र के व्यक्ति उस राष्ट्र की सत्ता तथा सम्पत्ति के आधीन होते हैं। और यही कारण है कि वहां पर अन्य शक्तियां व्यक्ति का शोषण कर सकती हैं। लेकिन जब व्यक्ति स्वाधीन हो और व्यक्ति के सहयोग से राष्ट्र बना हो उस समय राष्ट्र पर व्यक्ति अवलम्बित न रहकर व्यक्ति पर राष्ट्र अवलम्बित रहेगा, और ऐसे राष्ट्र में शोषण के लिए स्थान न होगा।

इसलिए अहिंसक समाज-रचना का पहिला काम यह है कि केन्द्रित शक्तियों को विकेन्द्रित कर हरेक व्यक्ति को उन शक्तियों का मालिक बना दे। पूंजीपतियों के हाथ राष्ट्र की जो सारी सम्पत्ति एकत्रित है, वह व्यक्तियों में बँट जाय, बड़े बड़े कारख़ानों में जो काम होता है, वह घर घर में फैल जाय, एक राज्य सत्ता के हाथ में जो अधिकार हैं, वह व्यक्तियों के हाथों में चले जाँय। रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा गाँधीजी यही करना चाहते हैं। खादी और ग्रामोद्योगों के द्वारा सारा धन और सारे उद्योग विकेन्द्रित हो जाँयगे। खादी के काम को इसी उद्देश्य से गांधीजी ने अब नई तरह से सामने रखा है। खादी का काम चलाने के लिए गांधीजी ने चर्खासंघ की स्थापना की और उसके द्वारा सारे हिन्दुस्तान में खादी का काम चलाया। अब तक चरखासंघ के द्वारा देहातों में खादी उत्पादन का काम होता है। और इस तरह देहातों में जो खादी तैयार होती है। वह शहरों में लाकर चरखासङ्घ के भण्डारों के द्वारा बेची जाती है। इसमें केन्द्रित मिलों की जगह सारा काम एक जगह न चलकर हज़ारों देहातों में घर घर चलता है; इसमें बड़े बड़े यन्त्रों की या पूंजी की आवश्यकता नहीं है, सारा काम कातनेवाला, बुननेवाला अपने घर पर स्वाधीनता से करता है और इसलिए यह सारा खादी का काम यान्त्रिक उद्योगों की तुलना में विकेन्द्रित ही है। लेकिन गांधीजी इस विकेन्द्रित खादी के काम को और भी विकेन्द्रित बनाना चाहते हैं। उनका कहना है कि खादी का काम विकेन्द्रित भले ही हो लेकिन है तो वह चर्खासंघ जैसे एक केन्द्रीय सङ्गठन के आधीन ही। उसके काम करनेवाले एक तरह से उस सङ्गठन पर अवलंबित रहते हैं। खादी के द्वारा व्यक्ति को स्वावलंबी और स्वाधीन बनाने की गांधीजी जो कल्पना करते हैं, वह चर्खा संघ के द्वारा चलाए जानेवाले मौजूदा खादी काम से पूरी नहीं होती। खादी का काम करनेवाला इसमें स्वाधीन और स्वावलंबी न होकर एक केन्द्रित सङ्गठन के मातहत रहता है। वह सङ्गठन यदि बन्द हो जाय, तो उसमें काम करनेवाले सब लोग भी बेकार हो जाँयगे। मतलब यह कि आज खादी के काम करनेवाले कारीगर एक तरह से मिल मजदूरों की तरह ही आर्थिक दृष्टि से पराधीन हैं, फ़र्क़ इतना ही है कि मिल मजदूरों को अपना घर बार छोड़कर शहरों की गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है और उन्हें यान्त्रिक कारखानों की स्नेह शून्य, मनुष्यता विहीन तथा आत्मिक विकास के लिए सर्वथा प्रतिकूल वातावरण में काम करना पड़ता है। इसकी जगह खादी के काम करनेवाले कारीगर अपने घर के स्नेहमय, स्वास्थ्यप्रद, तथा शान्त वातावरण में बहुत कुछ आज़ादी के साथ काम करते हैं। पर यह होते हुये भी खादी का काम करनेवाला कारीगर चर्खा संघ के आधीन रहने के कारण पूरी तरह स्वावलंबी और स्वाधीन व्यक्ति नहीं कहलायेगा।

खादी को तैयार करनेवाले कारीगरों की तरह खादी पहनेवाले शहरी व्यक्तियों को भी चर्खा संघ के सङ्गठन पर अवलंबित रहना पड़ता है। अगर सङ्घ खादी तैयार करवाकर शहरों के भण्डारों में बिक्री का प्रबन्ध न करे तो खादी पहनने की इच्छा रखनेवाले लोग खादी पहन न सकें। मतलब यह कि खादी तैयार करनेवाले और खादी ख़रीद कर पहननेवाले दोनों ही स्वावलंबी न होकर चर्खा सङ्घ के केन्द्रीय सङ्गठन पर अवलंबित रहते हैं। यह खादी के मूल भूत सिद्धान्त के खिलाफ़ है। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरखासङ्घ का काम गांधीजी के नेतृत्व में समझदार व्यक्तियों द्वारा चलाया जा रहा है, इसलिए खादी के ज़रिए लोगों का शोषण आज भले न होता हो, लेकिन अगर यह सङ्गठन साधारण लोगों के हाथों में चला जाय, या उसमें बुराइयाँ पैदा हो जाँय तो वह यांत्रिक उद्योगों के समान ही शोषण का ज़रिया बन सकता है, और खादी के द्वारा स्वाधीनता, स्वावलम्बन और अहिंसा फैलाने के बजाय पराधीनता गुलामी और हिंसा को फैलाया जा सकता है।

इसलिए पिछले साल जेल से छूटने के बाद गांधी जी ने खादी के काम की दिशा ही बदल दी। उन्होंने साफ़ कहा कि चर्खा संघ के मौजूदा संगठन को नष्ट कर देने से ही खादी का सच्चा काम हो सकता है। खादी तैयारकर उसे बेचना यह चर्खासंघ का काम नहीं, यह काम सङ्घ को बन्द कर देना चाहिए। अहिंसा के प्रतीक के तौर पर चर्खे का लोगों में प्रचार करना सङ्घ का काम है। अहिंसक समाज की रचना करना सङ्घ का ध्येय है। इस दृष्टि से पहली बात उसे जो करनी है वह यह कि सङ्घ अपना खादी की उत्पत्ति और बिक्री का काम बन्दकर लोगों को वस्त्र स्वावलम्बी बनाने की कोशिश करे। खादी का काम करनेवाले कारीगर अपने खुद के कपड़ों के लिए सूत कातें तथा कपड़ा बुनें, दूसरों के लिए नहीं। वे पूरी तरह स्वावलम्बी हो जांय। जो लोग खरीदकर खादी पहनते हैं वे भी खुद सूत कातें और स्वयं ही खादी बुनवाने का प्रबन्ध करें। लोगों को वस्त्र स्वावलम्बी बनाने के साथ साथ जीवन की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए स्वाश्रयी बनाने का काम संघ करे और गाँवों का सारा कार्य अहिंसक समाज रचना के आधार पर संगठित करे। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति स्वाश्रयी हो जाय और ये स्वाश्रयी व्यक्ति परस्पर सहयोग से ग्रामों की रचना करें। गांधी जी का दावा है कि ऐसे अपने आप में पूर्ण ग्रामों का शोषण कोई भी राज्य सत्ता या कोई भी पूंजीपति नहीं कर सकेगा। अपने आप में पूर्ण ग्राम अपनी स्वेच्छा से जो समाज बनायेंगे वही समाज अहिंसक समाज होगा। हर एक व्यक्ति स्वाधीन, स्वावलम्बी तथा स्वतन्त्र होगा और उसे अपने सर्वाङ्गीण विकास के लिए सब साधन प्राप्त होंगे और वह उन्हें आज़ादी के साथ काम में ला सकेगा। ऐसे समाज में ऊँच-नीच, धनी-ग़रीब मालिक और नौकर और सत्ताधारी सत्ताहीन इस तरह के भेद भावों की कोई जगह न होगी। खादी और रचनात्मक कार्यों के द्वारा गांधी जी ऐसा अहिंसक समाज बनाना चाहते हैं। यही उनका रामराज्य है और इसीको वे स्वराज्य कहते हैं।

नई व्यवस्था

अगर सात लाख डालर हिन्दुस्तान के इम्पीरियल बैंक में जमा हों तो एक बम उन्हें नष्ट कर सकता है। लेकिन अगर यह सात लाख डालर हिस्सेदारों में बँटे हुए हैं तो कोई भी उन्हें उनकी पूंजी से वंचित नहीं कर सकता। तब इन सात लाख गांवों की इकाइयों में इकट्ठा होने की चाह होगी और यह अपनी मन-मरज़ी का मिलाप होगा, आज़ाद मरज़ी के मिलाप से ही सच्ची आज़ादी पैदा होगी, और इस तरह जो नई व्यवस्था जन्म लेगी वह रूस की व्यवस्था से भी बढ़िया होगी। कुछ लोग कहते हैं, 'रूस में बेरहमी है, मगर वह बेरहमी दीन-दलितों के लिए उपयोग की जाती है, इसलिए भली है।' लेकिन मेरे लिए इसमें कोई भलाई नहीं। किसी न किसी दिन इस बेरहमी में से वह अराजकता पैदा होगी जो किसी ने नहीं देखी।

—महात्मा गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में मृत्यु-कर का प्रश्न

श्री श्यामसुन्दर भंवर, बी० काम, साहित्यरत्न

जिस प्रकार नए नए विचार विद्या और कला के क्षेत्र में आ रहे हैं उसी प्रकार राजनीति और अर्थ शास्त्र में भी नए नए प्रगतिशील विचारों का प्रादुर्भाव हो रहा है। अर्थशास्त्र का एक अङ्ग है राजस्व या राज्य का आय-व्यय शास्त्र। इस समय पूंजीवाद के अभिशाप के रूप में असंख्य ग़रीब और मुट्ठी भर धनिक हमारे सामने हैं। प्रत्येक विचारक इस समस्या को हल करना चाहता है और चाहता है कि भौतिक सुख साधनों का समाज में समान एवं न्यायोचित वितरण हो। ग़रीबी एवं धन सम्पत्ति की जो भीषण असमानता है—बहुत खाकर अजीर्ण से मरनेवालों और भूखे पेट मरनेवालों की जो समस्या समाज के सामने है—उसे दूर करने की ओर सभी विचारकों की बुद्धि लगी है। इसी सोच विचार का परिणाम प्रस्तावित मृत्युकर है।

यहां हम मृत्युकर का औचित्य बताते हुए यह बताना चाहते हैं कि किस प्रकार जनता की सच्ची राष्ट्रीय सरकार द्वारा मत्युकर का उपयोग पूंजीवाद के दूषणों को कम करने में किया जा सकता है।

पाठकों को शायद 'मत्युकर' शब्द अच्छा न लगे। मृत्यु पर कैसा कर? और सही माने में मृत्युकर मृत्यु पर कर न होकर उत्तराधिकार में प्राप्त धन-सम्पत्ति पर कर है। जिस प्रकार आय-कर मनुष्य की वार्षिक आय पर कर है उसी प्रकार मत्युकर मनुष्य के मरने पर उसकी धन-सम्पत्ति पर कर है। यह मृत्युकर दो प्रकार का होता है। पहिला जायदाद कर' जिसके अनुसार जायदाद के मालिक की मत्यु पर उसकी सारी जायदाद पर कर लगाया जाता है। दूसरा है 'हिताधिकार (या उत्तराधिकार) कर जिसके अनुसार सम्पत्ति के मालिक की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति जिन व्यक्तियों के अधिकार में जाती है उन व्यक्तियों पर कर लगाया जाता है।

संसार के सभी प्रमुख देशों में आजकल मृत्युकर लगाया जाता है। जर्मनी, इटली, ब्रिटेन, अमेरिका, जापान की तो बात छोड़िए, चीन और लङ्का तक में यह कर पाया जाता है। भारत ही एक ऐसा प्रमुख देश है जिसने अभी तक आय-प्राप्ति के इस साधन का उपयोग नहीं किया है।

आजकल यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि राष्ट्र की कर प्रणाली ऐसी हो जिसके द्वारा आर्थिक असमानताएं दूर की जावें, ग़रीबों के हितों की रक्षा की जावे एवं सरकार के द्वारा ग़रीबों को सुख-सुविधाएं प्रदान की जावें। कर के साधन को समाज के लाभ एवं उन्नति के लिए उपयोग में लाने की आवश्यकता समझ ली गई है और मान ली गई है।

कर दो प्रकार के होते हैं—प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष कर। प्रत्यक्ष करों का कर-भार प्रधानतया धनिक वर्ग पर होता है और परोक्ष करों का भार प्रधानतया ग़रीब वर्ग पर। अतएव प्रगतिशील कर-प्रणाली में प्रत्यक्ष करों की ही बहुतायत होनी चाहिए। प्रत्यक्ष करों में आय-कर, मृत्युकर, भूमि-कर, कार्पोरेशन-कर प्रमुख हैं। प्रत्येक उन्नत राष्ट्र की कर-प्रणाली में इन करों की प्रधानता होती है जिससे कि धनिक वर्ग से कर द्वारा काफ़ी रुपया इकट्ठा किया जावे और उसका सदुपयोग ग़रीबों की शिक्षा, स्वास्थ्य-सफ़ाई, सामाजिक बीमे तथा अन्य भौतिक एवं मानसिक विकास के कार्यों में किया जावे। राष्ट्र को करों द्वारा जितनी सम्पूर्ण आय होती है उसका ४०% से अधिक परोक्ष करों द्वारा प्राप्त नहीं करना चाहिए, क्योंकि परोक्ष करों में लगान, खाद्य पदार्थों (प्रधानतया ऐसे पदार्थ जो कि जीवन धारण के लिए आवश्यक हैं और जिन पर ग़रीब लोगों की आय का काफ़ी भाग ख़र्च होता है) पर कर, आयात-निर्यात कर, उत्पत्ति तथा आबकारी-कर आदि हैं जिनका कर-भार ग़रीबों पर बहुत ज़्यादा पड़ता है।

किन्तु भारतवर्ष में ग़रीबों को अधिक चूसा जाता है। सरकार द्वारा किए जानेवाले शोषण का भी अन्त नहीं है। पिछले कुछ सालों के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों के आँकड़े देखिए :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्	१९२१-२२	'३२-'३३	'३३-'३४	'३४-'३५	'३५-'३६	'३८-'३
प्रत्यक्ष कर (Direct Taxes) (सम्पूर्ण कर आय के प्रतिशत में)—	४४	३४	३३	३५	३५	२२
परोक्ष कर (Indirect Taxes) (सम्पूर्ण कर-आय के प्रतिशत में)—	५६	६६	६७	६५	६५	७८
योग	१००	१००	१००	१००	१००	१००

इन आँकड़ों से पता लगता है पिछले महायुद्ध के बाद प्रत्यक्ष करों का प्रतिशत कुछ ठीक था किन्तु धीरे धीरे वह कम होता गया और परोक्ष करों का प्रतिशत इस तेज़ी से बढ़ा कि सन १९३८-३९ में वह ७८% हो गया। (ग़रीबों को ही चूस चूसकर राज्य यन्त्र चलाया जाता है और फिर भी हम अपने नौकरों--सरकारी कर्मचारियों--से कितना डरते हैं !—कैसी विडम्बना) ! इस युद्ध में भारत के घसीट लिए जाने के बाद सन् १९४३-४४ में प्रत्यक्ष करों का प्रतिशत बढ़ा और ५८% हो गया और परोक्ष करों का ४२% रह गया। यह कुछ ठीक हालत है क्योंकि इस प्रकार की कर-प्रणाली यदि शान्तिकाल में क़ायम रखी जावे और प्रत्यक्ष करों द्वारा प्राप्त आय का सदुपयोग हमारी अपनी सरकार द्वारा "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" किया जावे तो समाज का लाभ हो सकता है। यह ५८% का अङ्क प्रत्यक्ष करों में आजकल इसलिए है क्योंकि आय पर काफ़ी अधिक कर लगता है तथा अतिरिक्तमुनाफ़ा-कर भी काफ़ी है। किन्तु अब युद्ध समाप्त हो चुका है और शीघ्र ही यह अतिरिक्त-मुनाफ़ा—कर भी ख़तम हो जावेगा, इसलिए हम चाहते हैं कि प्रत्यक्ष करों का प्रतिशत अङ्क वैसा ही बना रहे और हमारी कर-प्रणाली वर्द्धमान एवं प्रगतिशील रहे न कि ह्रासमान और ग़रीबों को कष्टदायक (जैसी कि वह साधारणतया पाई जाती है—अङ्गरेज़ी सरकार की कृपा से) तो हमें ऐसे प्रत्यक्ष करों को ढूँढ़ना चाहिए जो कि अतिरिक्त लाभकर का स्थान ले लें। मृत्युकर ऐसा स्थान लेने के लिए उचित, ठीक तथा उत्पादक कर है।

सिद्धान्त की दृष्टि से मृत्युकर या जायदाद कर बिलकुल दुरुस्त, न्याय्य एवं उचित है। कर-शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार हर व्यक्ति से उसके कर देने की 'क्षमता' के अनुसार कर लेना चाहिए। अर्थशास्त्र में क्रमागत-उपयोगिता-ह्रास नियम प्रसिद्ध है। सीधी सी बात है कि एक व्यक्ति के लिये जिसके पास १०,०००)रु० हैं १) रुपए का बहुत कम मूल्य होता है उसकी अपेक्षा जिसके पास १००) रु० हों। इसलिए व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार व्यक्ति से कर लेना सङ्गत है—और मृत्युकर का उद्देश्य भी यही है। चूँकि अधिक धन हो जाने से धन की सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है, इसलिए जैसे-जैसे धन की मात्रा बढ़ती जाय उस मात्रा से भी अधिक वेग से कर की दर भी बढ़ती जानी चाहिए। इस प्रकार जिस कर की दर बढ़ती जाती है उसे क्रमागत वर्द्धमान कर (Progressive Tax) कहते हैं। मृत्यु-पूँजी कर भी इसी प्रकार वर्द्धमान कर रहना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि "क्षमता" (Ability) की दृष्टि से मृत्युकर संगत है क्योंकि मृत्युकर साधारणतया धनिकों एवं ज़मीदारों पर ही लगता है और उनकी कर देने की क्षमता बहुत बढ़ी-चढ़ी होती है।

इसी प्रकार करके सुविधा, सुनिश्चतता एवं 'किफ़ायत' (Economy) के सिद्धान्तों के अनुसार भी मृत्युकर संगत है।

राज्य पूँजी और धन-सम्पत्ति की रक्षा करता है इसलिए उसे अधिकार है कि वह उसका एक हिस्सा ले सके। 'उत्तराधिकार' या विरासत क़ानून द्वारा निर्मित वस्तु है और क़ानून का निर्माण राज्य करता है, इसलिए भी राज्य को अधिकार है कि वह ऐसी शर्तें तय कर सके जिनके पूरा होने पर ही विरासत, उसके हक़दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मिल सके और इस प्रकार सम्पत्ति का एक भाग राज्य को भी मिले। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने राज्य को हर नागरिक का सुप्त साझी बताया है क्योंकि राज्य के बिना नागरिक का कोई कार्य नहीं चल सकता और नागरिक (एक साझी) की मृत्यु पर सुप्त साझी को नागरिक की सम्पत्ति का एक भाग पाने का अधिकारी सिद्ध किया है। इन कसौटियों पर भी मृत्यु कर की सङ्गतता स्पष्ट है।

असमानताओं को दूर करने तथा धन-सम्पत्ति को अधिक लोगों में बांटने—इस प्रकार पूंजीवाद के एक दोष को कम करने के दृष्टिकोण से भी मृत्युकर उचित है क्योंकि वह धनिकों के धन का हिस्सा लेकर जनता के हित में उसका उपयोग करता है। प्रधानतया हम भी उसी दृष्टि कोण को महत्व देते हैं।

आजकल आयोजन, पुनर्निर्माण आदि की चर्चाएँ ज़ोरों पर हैं। प्रत्येक नियोजन-आयोजन में काफ़ी पूँजी एवं द्रव्य की आवश्यकता होती है। न केवल राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों, जन हितकारी कार्यों (Public Utility Services) तथा समाज-हितैषी विभागों के लिए ही, वरन् राज्य सत्ता-द्वारा संचालित आधारभूत उद्योग धन्धों के लिए भी हमें अत्यधिक पूंजी एवं धन की आवश्यकता होगी। मृत्युकर के द्वारा हमें काफ़ी पूँजी मिल सकती है। अन्य देशों में जब इसके द्वारा काफ़ी आमदनी प्राप्त की जाती है तो फिर हम ही क्यों पीछे रहें ?

इतना हम अवश्य चाहते हैं कि इस प्रकार मृत्युकर द्वारा प्राप्त आय का उपयोग विशिष्ट जन हितकारी कार्यों के लिए ही होना चाहिए। यह आय साधारण आय का भाग न होकर विशिष्ट आय मानी जाय तथा इसके द्वारा इस रक़म का उपयोग शिक्षा या सामाजिक बीमे जैसे समाज के लिए उपादेय कार्यों के लिए ही किया जाय—अन्य कार्यों के लिए नहीं। इस प्रकार के 'निर्धारित-करण' (earmarking) से सरकार अन्य कार्यों में उसे ख़र्च नहीं कर सकेगी तथा देश में निर्धारित कार्यों के लिए एक मनोवैज्ञानिक उत्साह पैदा हो जायगा और इस कर का इतना विरोध भी तब न होगा।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि केवल आय कर के द्वारा असमानता दूर नहीं हो सकती, क्योंकि वह अधिक कम भी नहीं हो सकती। क्योंकि आय कर तो केवल आय पर कर है, सम्पत्ति पर नहीं। और जब विशाल सम्पत्ति, बिना रोक टोक के, विरासत में जाती रहे तो फिर असमानता दूर कैसे हो ? इसलिए असमानता के एक बड़े कारण—सम्पत्ति के उत्तराधिकार को—कम करना होगा। मृत्युकर इसलिए भी सङ्गत है क्योंकि वह व्यक्तिगत सम्पत्तियों को धीरे धीरे कम करता है, जिससे असमानता भी कम होती है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति कम होती है, राष्ट्रीय या सामाजिक सम्पत्ति कम नहीं होती क्योंकि व्यक्ति से सम्पत्ति लेकर राष्ट्र उसको अच्छे कार्यों में ख़र्च करता है—समाज को वापिस दे देता है। कई बार तो व्यक्तिगत सम्पत्ति लेकर उसे ठीक ढंग से ख़र्च करने से समाज की उत्पादक शक्ति बढ़ती है, जनता का सुख बढ़ता है और इसी प्रकार समाज की सम्पत्ति भी काफ़ी बढ़ती है।

फिर उत्तराधिकार का प्रश्न केवल आर्थिक प्रश्न ही नहीं है—यह सामाजिक प्रश्न भी है। बड़ी बड़ी जायदाद को विरासत में देते रहने के बड़े दोष हैं। असमानताएं तो पैदा होती हैं, सम्पत्ति प्राप्त होने के पहिले तथा बाद में उत्तराधिकारी लोग आलसी, सुस्त, उड़ाऊ तथा फ़िज़ूल ख़र्च हो जाते हैं। समाज में ऐसे लोगों की ज़रूरत नहीं जो परान्नभोजी या पराश्रया हों। हम यहां पैतृक धन (दाय) के औचित्य अनौचित्य के बारे में प्रसिद्ध समाजशास्त्रवेत्ता हेराल्ड लास्की के कुछ शब्द पाठकों के सामने पेश करते हैं :

"व्यक्ति को तब तक जीने का अधिकार नहीं है जब तक कि वह अपने जीने के लिए स्वअर्जित धन ख़र्च न करे। उसे इस बहाने को लेकर जीने का अधिकार नहीं है कि किसी दूसरे ने कमा रखा है जो उसके जीवन के लिए काफ़ी है। वही वास्तव में तथा नैतिकता की दृष्टि से उसका है जिसे वह स्वयं अपने परिश्रम से कमाता है। मैं (किसी चीज़ का) स्वामी हूं क्योंकि मैंने सेवा की है, मैं स्वामी नहीं रह सकता यदि किसी दूसरे ने सेवा की है...अर्थ यह निकलता है कि वसीयत का कोई अनन्य अधिकार नहीं होता।" (Grammar of Politics)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्व-सम्बन्धी, आर्थिक तथा समाजवादी—सभी—दृष्टियों से मृत्युकर सिद्धान्ततः ठीक है और हिन्दुस्तान में उसका प्रारम्भ शीघ्र ही होना चाहिए।

यहां तक हुई सिद्धान्त की चर्चा। किन्तु जब हम उसके व्यावहारिक भाग की ओर दृष्टि डालते हैं तो कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं: क्या मृत्युकर का अधिकार वर्तमान सरकार को दे दिया जाय? यदि दिया जाय तो किन शर्तों पर? यदि मृत्युकर लगाया जाय तो जायदाद कर लगाया जाय या हिताधिकार-कर, या दोनों? मृत्युकर केवल कृषि रहित सम्पत्ति non-agricultural property पर हो या कृषि सम्पत्ति पर भी? कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को रहे या प्रान्तीय सरकार को? सम्पूर्ण आय केन्द्र रखे या प्रान्त? यदि प्रान्तों में आय बांटना पड़े तो किस आधार पर? आदि।

हिन्दुस्तान की आजकल की सरकार विदेशी है और विदेशी हितों की ही रक्षा करती है। यों तो यहां कहने को प्रान्तीय स्वराज्य है किन्तु यह केवल नाम मात्र को है। इसे स्वराज्य कहना 'स्वराज्य' शब्द का अपमान करना है। केन्द्र में तो हमारी गुजामी की हद ही नहीं है। बजट का ८०% प्रतिशति भाग तो ऐसा है जिस पर भारतीयों को वोट देने तक का अधिकार नहीं है (मतरहित मद्दे)। और इस ८०%में लाट, बड़े लाट, गवर्नर आदि का वेतन तथा भत्ता, पेन्शन आदि अनाप-शनाप फ़िजूल के ख़र्चे हैं। क्या ऐसी सरकार को मृत्युकर लगाने का अधिकार दिया जा सकता है? "सकने" का प्रश्न छोड़ें तो क्या ऐसा अधिकार दिया जाना चाहिए? उत्तर, साफ़ साफ़ नकारात्मक होगा। हां, एक सूरत में यह अधिकार दिया जा सकता है जब कि मृत्युकर द्वारा प्राप्त आय निर्धारित विशिष्ट जनसेवा के कार्यों तथा ग़रीबों के हित के कार्यों में ही लगाई जावे। परन्तु यह पूरी तरह से तभी सम्भव है जबकि इसके लिए क़ानून बने और सच्चे रूप में सरकार के व्यय पर जनता का अधिकार तथा नियन्त्रण हो। अर्थात जनता की सच्ची राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही इस कर का निर्धारण उचित है क्योंकि हम केवल यही नहीं चाहते कि धनिकों से सरकार द्वारा धन ले लिया जाय बल्कि हम यह भी चाहते हैं कि इस प्रकार लिया हुआ धन ग़रीबों में बांटा जावे। द्रव्य के रूप में नहीं, बल्कि शिक्षा, सार्वजनिक पार्क, सामाजिक बीमे, ग़रीबों के लिए सस्ते, शुद्ध दूध या खाद्य पदार्थों आदि के रूप में)। धनिकों से धन लेकर ग़रीबों को उसे देने में ही मृत्युकर तथा अन्य ऐसे उपयोगी करों की सार्थकता है। भारत में तो ऐसे जनहितकारी करों की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा (या अशिक्षा) का कड़ुवा उदाहरण किस भारतीय को अपना सिर नीचा झुकाने को बाध्य नहीं करता? और क्या केवल इसी कसौटी पर ही वर्तमान सरकार की निष्फलता ग़ैरजिम्मेदारी और बकवासीपन सिद्ध नहीं हो जाता (अमेरिका में भी जहां शिक्षित तथा स्वस्थ लोगों की संख्या काफ़ी अधिक है (७०%से अधिक लोग जहां शिक्षित हैं) सरकार की ओर से सारे व्यय का लगभग ४१%"शिक्षा और स्वास्थ्य" पर ख़र्च होता है जबकि अशिक्षित तथा रोगी भारत में सारे ख़र्चों का मुश्किल से १५%ही इन मदों पर ख़र्च किया जाता है।* अतएव केवल "निर्धारितकरण" एवं सरकारी व्यय पर जनता के नियन्त्रण एवं अधिकार की शर्तों पर ही मृत्युकर का अधिकार दिया जाना चाहिए।

अब प्रश्न है कि यदि मृत्युकर लगाया जाय तो जायदाद कर लगाया जावे या हिताधिकार कर। (इन दोनों शब्दों को हम पहिले समझा चुके हैं)।

यों तो ये दोनों प्रकार के कर एक दूसरे के पूरक हैं, इसलिए अच्छी कर प्रणाली में ये दोनों ही पाए जाते हैं। किन्तु जब प्रारम्भ में कोई नया कर लगाया जाता है तब एक साथ दो कर, एक ही प्रकार के न लगाना ही उचित है। कारण, स्थिरहित वाले लोग इस प्रकार के प्रगतिशील कार्यों का बहुत विरोध करते हैं। इसलिए इन दोनों प्रकार के करों में से एक ही कर लगाना ज्यादा ठीक मालूम होता है। फिर, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जायदाद तथा हिताधिकार कर दोनों प्रत्यक्ष कर हैं और हमें सभी प्रत्यक्ष करों का उपयोग अपनी कर प्रणाली में एक साथ नहीं कर लेना चाहिए क्योंकि कुछ ऐसे प्रत्यक्ष कर बाक़ी भी रखने चाहिएँ जिनका उपयोग भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर किया

*See Fedreal Finance in Peace and War (F. Shirras), p. 204. (1944),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सके। एक अर्थशास्त्री को, विशेषकर उसे जिस पर राजस्व का भार हो, कभी भी भविष्य के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए।

यदि हम यह निश्चित करलें कि एक ही प्रकार का कर हो तो प्रश्न यह उठता है कि जायदाद कर हो या हिताधिकार।

हिताधिकार कर (Succession Duty) ज़्यादा न्यायोचित है और चूंकि उत्तराधिकारी (या हिताधिकारी) को आकस्मिक पूंजी प्राप्त होती है इसलिए उस पर कर लगाना सङ्गत ही प्रतीत होता है। किन्तु इस कर में दोष भी हैं। हिताधिकार कर में हमें यह निश्चित करना होगा कि किस व्यक्ति को कितनी सम्पत्ति प्राप्त हुई और यह निश्चित कर लेना सरल नहीं होगा विशेषकर उस हालत में जब कि एक ही व्यक्ति को कई व्यक्तियों से सम्पत्ति प्राप्त हो। हमारे देश में उत्तराधिकार-क़ानून भी तो विचित्र और अजीब है केवल हिन्दुओं के लिए भी उत्तराधिकार-क़ानून एक नहीं है। —दो हैं—मिताक्षर एवं दाय भाग। मिताक्षर के अनुसार तो एक सम्मिलित कुटुम्ब में उत्तराधिकार होता ही नहीं। बच्चा पैदा होते ही सम्पत्ति के एक भाग का अधिकारी हो जाता है। इस विचारधारा के अनुसार तो हिताधिकार कर लग ही नहीं सकता। मुसलमानों के तथा अन्य जातियों के उत्तराधिकार क़ानून अलग अलग हैं और उनमें बहुत अन्तर भी है। साथ ही, हिताधिकार कर में कई प्रकार के विवेचन तथा अन्तर (Discriminations) करने होंगे। साधारणतया ऐसे करों में सम्पत्ति के अधिकारी की मृत्यु पर सम्पत्ति जिन जिन व्यक्तियों के अधिकार में जाती है उन पर सगोत्रता तथा सम्बन्ध दूरी के अनुसार कर की दर भी बढ़ती जाती है। अर्थात् लड़के की अपेक्षा भतीजे पर और भतीजे की अपेक्षा एक अजनबी पर कर की दर ज्यादा लगाई जाती है। इसी तरह एक और क़िस्म का विवेचन भी इस कर में होता है, वह है हिताधिकारी की पूर्व सम्पत्ति। जिस व्यक्ति के पास पहिले से ही कुछ धन होता है उसे सम्पत्ति का और अधिकार मिल जाने पर अधिक दर से कर चुकाना पड़ता है। इस प्रकार के विवेचन तथा अन्तर का यह परिणाम होगा कि इसका प्रबन्ध बड़ा कठिन कार्य होगा तथा इसमें ख़र्चा भी बहुत लगेगा—कई बड़े-बड़े लेख-प्रमाण, रजिस्टर आदि रखने होंगे। फिर, इस प्रकार के कर से (छल पूर्वक) बचने के प्रयत्न ज्यादा होंगे क्योंकि सम्बन्ध की निकटता या पूर्व सम्पत्ति की न्यूनता बताने की कोशिश की जावेगी। यदि इन बञ्चनों (evasions) को पूर्णतया रोकने का सरकार ने प्रयत्न किया तो उसमें सरकार का व्यय काफ़ी होगा और इसमें फ़ायदा कम रह जावेगा।

दूसरी ओर, जायदाद कर अवैयक्तिक या अकर्तृक (impersonal) है। यह इतना सिद्धान्त-परिपूरित भी नहीं। इतना तो हमें मान्य है। किन्तु यह कर सरल है अच्छी तरह इसका प्रबन्ध किया जा सकता है तथा इस विवेचन-अन्तर का कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि इसमें सम्पूर्ण सम्पत्ति पर कर लगाया जाता है, हिताधिकारियों पर नहीं। यह कर अधिक उत्पादक भी है। साथ ही इस कर से बचने के लिए इतने मौक़े नहीं और इस प्रकार यह दोष भी इस कर में नहीं। 'किफ़ायत' की दृष्टि से भी यह कर हिताधिकार कर की अपेक्षा अधिक अच्छा है।

फिर जब हम देखते हैं कि जायदाद कर तथा हिताधिकार कर दोनों का अन्तिम प्रभाव हिताधिकारी पर समान ही पड़ता है और जब जायदाद कर (Estate Duty) में हिताधिकार कर की अड़चनें तथा दोष भी नहीं हैं तो हम जायदाद कर के पक्ष में ही अपने को पाते हैं। जायदाद कर में सम्पत्ति मिलने के पूर्व ही आपसे कर लेलिया जावेगा और शेष सम्पत्ति का आप उपभोग कर सकेंगे। इसके विपरीत हिताधिकार कर में आपको कई काग़ज़—पत्र भरने-भराने पड़ेंगे और जो सम्पत्ति प्रारम्भ में आपको मिलेगी उसमें से कुछ भाग सरकार को देना पड़ेगा। हम नहीं जानते कि आप ५) रु० प्राप्त करना तथा उसका पूरा उपभोग करने का अधिकार पसन्द करते हैं या रु० ५—१—० प्राप्त करना पसन्द करते हैं और बाद में कई पत्र, लेख पत्र, रजिस्टर आदि भरना पसन्द करते हैं, महज इसीलिए कि आपको ०—१—० बाद में देना पड़े। किन्तु हमारी धारणा है कि हिताधिकारी पर उसके सम्पत्ति प्राप्त होने के पूर्व ही कर लगा लेने से उसे कम कष्ट होता है बजाय उस हालत के जब कि उसे उस सम्पत्ति में से कुछ देने को बाध्य होना पड़े जिसे वह पूरी तरह से अपना समझ बैठा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर जब अपने उत्तराधिकार क़ानूनों पर हम दृष्टि डालते हैं तो जायदाद कर की सम्भाव्यता अधिक नज़र आती है। मिताक्षर के अनुसार हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्बों में 'उत्तराधिकार' होता ही नहीं। इसलिए वर्तमन क़ानूनों को मद्देनज़र रखके भी हम यही कह सकते हैं कि जायदाद कर ही, अभी तो ठीक है। हाँ, इतना अवश्य है कि हमारी राय है कि क़ानूनों में परिवर्तन किया जावे यदि ऐसा परिवर्तन जनता के हित में हो। आख़िर, कानून जनता के लिए बनाए जाते हैं, नकि जनता कानून के लिए।

तो सरलता, प्रबन्ध में आसानी, उत्पादकता, बचने के कम मौके, कर इकट्ठा करने में कम ख़र्च ('किफ़ायत'), दोनों करों के अन्तिम परिणाम में समानता तथा वर्तमान वसीयत के क़ानूनों में भी ऐसे कर की सम्भाव्यता के कारण हम तो जायदाद कर के ही पक्ष में हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम हिताधिकार करके विरोधी हैं। नहीं, हम तो दोनों कर चाहते हैं। किन्तु प्रारम्भ में जब नया कर लगाया जाता है तब, विरोध को कम करने के लिए ही सही, एक ही कर ठीक मालूम होता है। कुछ वर्षों बाद, जैसे २० वर्षों बाद, यदि हम उचित समझें तो, हिताधिकार-कर भी लगावें : तब तक जनता में भी ऐसे ऐसे प्रगतिशील वर्द्धमान प्रत्यक्ष करों के पक्ष में हम उत्साह पैदा कर सकेंगे।

इस देश में इस कर को लगाते समय काफ़ी विरोध होगा। पुराने ख़्याल के, स्थिर हितवाले, पूंजीपति तथा ज़मींदार इसका विरोध करेंगे किन्तु यदि हमने इस कर के आन्तरिक महत्व—असमानताओं की कमी और ग़रीबों को ऊँचा उठाने—को समझ लिया और दृढ़ रहे तो अवश्य ही हम सफल होंगे। यह कर सम्मिलित कुटुम्ब की सबसे बड़ी (अधिक आयुवाली) पीढ़ी के प्रत्येक दायाद (साझेदार) की मृत्यु पर ही लगाया जाय। अर्थात् एक सम्मिलित कुटुम्ब में जिसमें ३ भाई हों तथा उनके ५ लड़के हों केवल किसी भी भाई की मृत्यु पर ही कर लगेगा—किसी भी भाई के जीवित रहते हुए यदि किसी लड़के की मृत्यु हो जाय तो लड़के की मृत्यु पर कर नहीं लगेगा—और प्रत्येक बार सम्पत्ति के तिहाई भाग पर कर लगेगा। सभी भाइयों की मृत्यु के बाद फिर लड़कों की मृत्यु पर प्रत्येक के हिस्से (पंचमांश) पर कर लगेगा। जहाँ सम्मिलित कुटुम्ब न हों वहां सम्पत्ति के अधिकारी की मृत्यु पर कर लगाया जाय।

कर लगाने के आधार के सम्बन्ध में हमारा यह सुझाव है। कर की दर १% से ४०% तक रखी जाय और १०,००० रुपए की प्राथमिक छूट रहे।

जायदाद कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को रहे क्योंकि इससे समानता, सुप्रबन्धता, दुबारा कर वसूली के दोष से मुक्ति तथा किफ़ायत होगी। किन्तु यह अधिकार इस शर्त पर दिया जाय कि आय प्रान्तों में बाँट दी जावेगी। क्योंकि प्रान्तों के ज़िम्मे राष्ट्र निर्माणकारी तथा शिक्षा आदि विभाग हैं और इन पर ख़र्च करने के लिए काफ़ी धन की ज़रूरत होती है। केन्द्र को ही इस कर के लिए क़ानून बनाने का भी अधिकार रहे और हमारा तो यह भी सुझाव है कि जायदाद कर कृषि-सम्पत्ति तथा अन्य सभी प्रकार की सम्पत्तियों पर लगाया जाय। कृषि-सम्पत्ति या भूमि आदि को छोड़ देने का औचित्य समझ में नहीं आता, क्योंकि यह कर कृषि पर नहीं होगा, ज़मींदार पर ही होगा। कर लगाने तथा इकट्ठा करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को ही रहे। ऐसे कर सदैव केन्द्रीय ही होते हैं क्योंकि इससे प्रबन्ध भी ठीक होता है और प्रान्त-प्रान्त में वैषम्य या अन्तर भी नहीं हो पाता। प्रान्तों को यह कर लगाने के अधिकार की आवश्यकता नहीं—उन्हें तो केन्द्र द्वारा संचित आय पाने का अधिकार रहना चाहिए। (इस समय भारतीय राजस्व में जो विचित्रता पाई जाती है वह यह है कि प्रान्तों को कृषि सम्पत्ति पर कर लगाने का अधिकार है और केन्द्र को अन्य सम्पत्ति पर कर लगाने का अधिकार है—यह ठीक नहीं है।) केन्द्र को दोनों प्रकार की सम्पत्ति पर कर लगाने का अधिकार होना चाहिए और सारी आय का उपयोग जनहित के कार्यों में—ग़रीबों को ऊँचा उठाने में—प्रान्तों द्वारा किया जाना चाहिए।

प्रश्न उठता है किस आधार पर प्रान्तों में इस आय को बाँटा जावे? इसके लिए प्रान्तों की जनसंख्या, पूंजी या सम्पत्ति का उद्गमस्थान, कर देनेवाले का वासस्थान सम्पत्ति का वासस्थान तथा आय इकट्ठी होने का वास स्थान आदि आधार भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा रखे जाते हैं। इन सबों में कोई न कोई दोष है। और हम तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें से किसी भी आधार पर आय के विभाजन को वर्तमान परिस्थिति में, ठीक नहीं समझते। हाँ, यदि पूंजी तथा धन-सम्पत्ति का वितरण देश में समान रूप से हुआ होता और प्रत्येक प्रान्त इस धन-सम्पत्ति के समान भाग का स्वामी होता तो आय-विभाजन का सबसे सरल आधार 'कर देनेवाले का वास स्थान (residence)' माना जाता। किन्तु वास्तविक हालत भिन्न है। कई प्रान्त बाहर के व्यक्तियों द्वारा बढ़ाए गए हैं और कई प्रान्त अब भी इससे बहुत पिछड़े हुए हैं और उन्हें अपने आपको विकसित करने के लिए पूंजी की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इन पिछड़े हुए प्रान्तों को अपने जायज़ हिस्से से अधिक मिलना चाहिए। केन्द्र एक पिता की तरह अपने सभी बच्चों—सभी प्रान्तों—को बढ़ावे यही अभीष्ट है। यदि हम संकुचित प्रान्तीय दृष्टिकोण से न सोचकर देश व्यापी उदार दृष्टिकोण से सोचें तो हम भी यह महसूस कर लेंगे कि पिछड़े हुए तथा ग़रीब प्रान्तों को इस आय का अधिक भाग देना ही प्रान्तों के तथा देश के हित में भी उचित होगा। जायदाद कर का प्रधान सिद्धान्त तथा उसका सामाजिक औचित्य इसीमें है कि धनिकों पर ग़रीबों की ज़रूरतों के लिए कर लगाया जाय और हम यदि इसी तर्क को आगे बढ़ावें तो 'धनी' प्रान्तों पर ग़रीब प्रान्तों की ज़रूरतों के लिए "कर" लगाना भी ठीक ही है। इसलिए हमारा सुझाव है कि प्रान्तों की ज़रूरतों के आधार पर आय विभाजन हो और यह सदैव ध्यान में रखा जावे कि ग़रीब प्रान्तों को अधिक आय दी जावे ताकि वे अपने अन्य भाग्यशाली बन्धुओं के समकक्ष हो सकें। इस कार्य के लिए एक समिति नियुक्त की जावे जो सम्पूर्ण प्रान्तों की आवश्यकताओं, उनके पिछड़ेपन, उनके उद्योगधन्धों, उनकी कमियों, विकास के क्षेत्रों तथा अन्य सम्बन्धित बातों पर पूरा ध्यान देकर एक निर्णय दे जिसके आधार पर प्रान्तों में आय-विभाजन हो। यह लगभग १० वर्ष तक चले, इसके बाद पुनः परिस्थिति पर विचार किया जाय।

भारतवर्ष में अभी तक कोई मृत्युकर नहीं है। सन् १८२६ में नियुक्त "टेक्सेशन इन्क्वायरी-कमेटी" ने अपनी रिपोर्ट में मृत्युकर की सिफारिश की थी। बाद में केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में इस विषय पर कभी कभी कुछ साधारण बातें हुईं। गत वर्ष बम्बई योजना के दूसरे भाग में मृत्युकर को वर्द्धमान कर के रूप में लगाने का प्रस्ताव किया गया। सर जेरेमी रेज़मैन ने सन् १९४४-४५ में बजट पेश करते समय अपने भाषण में इस कर के बारे में कुछ कहा। सन् १९४५-४६ में फिर वे इस कर के बारे में अधिक बोले और तत्सम्बंधित जायदाद-कर बिल सभा में पेश करने की उन्होंने इच्छा प्रकट की। बाद में भारत सरकार ने सर राउ (Rau) को एक जायदाद कर बिल बनाने के लिए भी नियुक्त किया है। फिर भी व्यवस्थापक सभा के पिछले अधिवेशन में इस कर सम्बन्धी कोई बिल पेश न हो पाया किन्तु शीघ्र ही ऐसा बिल पेश होगा। हम सब लोगों को इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टि से मृत्युकर न्यायोचित एवं संगत है, किन्तु हमारे देश में उसका अनियन्त्रित अधिकार विदेशी सरकार को नहीं दिया जाना चाहिए—नहीं दिया जा सकता। जब इस कर द्वारा प्राप्त आय का निर्धारित जनहितकारी कार्यों में ही उपयोग किया जा सके तथा जब सरकार व्यवस्थापक सभा के प्रति ज़िम्मेदार हो तभी इस कर का अधिकार दिया जाना न्यायोचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-तरङ्ग

श्री मुकन्दीलाल बी० ए० (आक्सन), बार-एट-ला

जन्म दिवस मनाने की प्रथा नई नहीं है। ख़ासकर हिन्दुओं के पुरोहितों ने तो ऐसा सिलसिला बैठाया है कि जिसमें गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक ही नहीं बल्कि उसके बाद भी, वर्ष गांठ और श्राद्धों के ज़रिये यजमान की सम्पत्ति का काफ़ी भाग उनको मिल जाय। जन्म दिन के उपलक्ष में पूजापाठ दान-पुण्य होते हैं। यजमान को सोने चांदी या कमसे कम, अन्न वस्त्र से तौलकर उसका काफ़ी भाग तुलादान के ज़रिये पंडितजी को मिलता है।

अब नई रोशनी के ज़माने में भी वर्ष गांठ और जन्मदिन मनाने की धूम है। जन्म दिवस के उपलक्ष में अब मित्रों को बधाई देने और उपहार भेजने का नियम बन गया है। मित्रता इससे गाढ़ी बनी रहती है। मित्रों व गुण ग्राहकों को अवश्य इससे फायदा पहुंचता है। नेता लोगों के जन्म दिवसों में उनको हज़ारों लाखों रुपये की थैलियां भेंट की जाती हैं, जिन्हें वे अपनी इच्छानुसार, लोक-हित के किसी काम में लगाते हैं। मसलन अभी १४ नवम्बर को पंडित जवाहरलाल नेहरू के जन्म दिवस पर बम्बई शहर की जनता ने उनको तीन लाख की थैली प्रदान की, जो वे अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू के स्मारक के रूप में कमला नेहरू अस्पताल में लगायेंगे। महात्मा गांधी हमेशा नई रीति से काम करते हैं। उन्होंने घोषणा की थी कि मेरे ७६ वें जन्म दिवस के उपलक्ष में कोई व्यक्ति ७६ पैसे से अधिक दान न दे। बल्कि लोग सूत ही अधिक दें, इस तरह उनके जन्म दिन की यादगार में ७६ हजार रुपए (?) और लगभग ७६ करोड़ गज़ सूत एकत्रित होगया था जो किसी लोकोपकारक काम में लगाया जायगा।

देश के अंग्रेज़ शासकों के गुण ग्राहक भी उनको मनाने और ख़ुश करने के लिये उनके जन्म दिवसों पर उनको सोने चांदी में तौलने लगे हैं। आगरे के रईसों ने सर मारिस हैलट साहब को सोने से तौला था। वह द्रव्य गवर्नर साहब ने लड़ाई के काम में लगाया। यह पहला अवसर है कि किसी अंग्रेज़ को हिन्दू प्रथा के अनुसार द्रव्य से तौला गया हो। कुछ लोगों का कहना है कि इस देश की भूमि पर पैर रखते ही आदमी लालची, ख़ुदग़रज़ और रिश्वतख़ोर हो जाता है। यही कारण है कि अंग्रेज़ व्यापारी और अङ्गरेज़ शासक जो पहले पहल भारतवर्ष में आये उन्होंने एनकेन प्रकारेण ख़ूब दौलत जमा की और विलायतों में नवाबों की तरह रहने लगे। इसी कारण कम्पनी के ज़माने के बनिये और शासक अंग्रेज़ों को नवाब कहते थे। अब आजकल के अंग्रेज़ी शासन में रिश्वतख़ोरी का बाज़ार ख़ूब गर्म है। इसमें कुसूर हमारा बहुत ज़्यादा है। अगर हम लोग नाजायज़ फ़ायदा उनको ख़ुश करके न उठाना चाहें तो रिश्वत न दें। वे जबरन तो रिश्वत ले नहीं सकते। हां लड़ाई के चन्दे की बात जुदा थी। उसकी वसूली में तो अनेक अफ़सरों ने ज़्यादती करना अपना फ़र्ज़ ही समझ लिया था। छोटे छोटे हाकिम बड़े अँग्रेज़ हाकिमों को ख़ुश करने के लिये ख़ूब नोचा खसोटी, मारपीट, करते थे। यह विचार तरंग मेरे मन में उठी थी इस खयाल को लेकर कि जन्म दिन की याद दिलाने से हम लोगों को यह याद आता है कि जीवन के इतने दिन समाप्त हो गये और अब हम मौत से ३६५ दिन और भी नज़दीक आ गये हैं। जन्म दिवस की याद से बालक अपने बालकाल को पीछे छोड़कर बड़ा होता है। वह बचपन की ख़ूबियों को पीछे छोड़ता जाता है। युवक प्रतिदिन सयाना होकर अधेड़ों के दल में पदार्पण करता है। अधेड़ बूढ़ों के दल में शामिल होते हैं। जन्म दिन याद दिलाते हैं कि मौत क़दम-ब क़दम नज़दीक आ रही है।

अस्तु मेरा विचार है कि जन्म दिवस मनाने की प्रथा छोड़ना ही ठीक है। कम से कम मैं तो अपना जन्म दिवस कभी नहीं मनाता। न किसी को बताता हूं। मेरा सर्कारी लेखे जोखे का जन्म वर्ष और उम्र का जन्मवर्ष एक है। पर मेरी उम्र मेरे मित्र सदैव असली उम्र से १०-१५ वर्ष कम समझते हैं। मेरी राय में सिवाय आग़ा खां के और किसी को जन्म दिवस की याद न दिलाई जाय तो अच्छा है। उनको मैंने इसलिये बरी किया कि उनको वर्ष गांठ के दिन ऐशो आराम के लिये बड़ा धन मिलता है। इस साल उनको हीरक जयन्ती पर उनको हीरों से तौला जायगा और इसीलिये शायद वे दिनों दिन अपने को जवान समझते हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लड प्रेशर या ख़ून का दबाव

श्री लिओनार्ड विलियम्स

महात्मा गान्धी दुनिया के उन बड़े से बड़े लोगों में से हैं जो बहुत समझ बूझकर अपनी ताक़त को ख़र्च करते हैं। इस पर भी हम अख़बारों में पढ़ा करते हैं कि जब कभी उन्हें देश को आगे ले जानेवाले कामों के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ जाती है तब उनका ख़ून का दबाव बढ़ जाता है। ज़ाहिर है कि लाखों आदमियों के दिल में यह जानने की इच्छा पैदा होगी कि 'ब्लड प्रेशर' या ख़ून का दबाव क्या होता है? यह क्यों बढ़ जाता है? और इसे किस तरह क़ाबू में किया जा सकता है? ये सब बातें श्री लिओनार्ड विलियम्स के इस लेख में अच्छी तरह समझाई गई हैं।

ब्लड प्रेशर या ख़ून के दबाव की शिकायत आजकल एक फैशन सी हो गई है। यह फैशन ख़ास तौर से उन लोगों में है जो अपनी तनदुरुस्ती के बारे में बहुत सोचा विचारा करते हैं और लोगों से कहते रहते हैं। किसी बीमारी के फैशन में शुमार होने से पहिले यह ज़रूरी है कि वह किसी हद तक भेद की चीज़ हो। पढ़े लिखे लोगों में ऐसे आदमी कम मिलेंगे जो इस बात को ख़ुशी से मान लें कि वे किसी मामूली बीमारी के शिकार हैं। आप सुनते सुनते थक जायँगे कि किसी मोटर दुर्घटना में उन्होंने किस तरह तकलीफें सहीं और डाक्टर ने उनसे क्या क्या कहा मगर वह अपने दाँत के दर्द जैसे मामूली दुःख की बात भी न करेंगे और न अपने पेट दर्द के बारे में कुछ कहेंगे चाहे वे उससे कितने ही बेचैन क्यों न हों। किसी एक्सीडेन्ट या दुर्घटना के बारे में हमेशा कुछ न कुछ भेद या नयापन रहता ही है लेकिन दाँत या पेट के दर्द की वजह और उसकी हालत का सबको पता है। गठिया की बीमारी अब फैशन में नहीं शामिल की जाती क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे वे पुरखे जो ख़ूब खाते पीते थे और ख़ूब बच्चे पैदा करते थे, गठिया के बीमार होते थे। वही आदमी जिन्हें पहले अपनी गठिया का घमंड होता था अब आपसे बड़े गर्व से कहेंगे कि 'मुझे ब्लड प्रेशर है'। वह उतनी ही सचाई और ज़ोर के साथ यह भी कह सकते हैं कि 'मेरी नाड़ियों में ख़ून चलता है' क्योंकि इनमें से बिना एक के दूसरी हो ही नहीं सकती और उनकी ज़िन्दगी के लिए यह ज़रूरी है कि उन्हें ये दोनों चीज़ें हों। ब्लड प्रेशर तो हर एक को होता है। ब्लड प्रेशर या ख़ून के दबाव के मायने हैं ख़ून का उन नाड़ियों की दीवारों पर दबाव डालना जिनमें से होकर ख़ून सारे शरीर में चक्कर लगाता है। यह शरीर का एक ऐसा काम है जिसमें कोई भेद की या अनोखी बात नहीं है। भेद की बात अगर हो भी तो तब हो सकती है जब हम उस दबाव के घटने बढ़ने और उसके कारणों की जाँच करने लगें।

ब्लड प्रेशर का नापना

ब्लड प्रेशर के ठीक ठीक नापने के तरीक़े अभी हाल ही में ईजाद हुए हैं। इसके पहले डाक्टर लोग कलाई के ऊपर की नाड़ी में ख़ून के चाल की जाँच करके उसके दबाव का पता लगाया करते थे और मामूली तौर पर जब वह मरीज़ों की नब्ज़ देखते थे तो यह बात भी उनके ध्यान में रहती थी। पर आदमी की अंगुलियाँ चाहे कितनी ही नाजुक और तजरबेकार क्यों न हों यह तो मालूम कर सकती हैं कि ख़ून किस तरह दौड़ रहा है मगर इस चीज़ को ठीक ठीक नहीं माप सकतीं कि बदन की सतह के एक ख़ास हिस्से पर ख़ून का कितना दबाव है इसलिए ऐसे यन्त्र ईजाद किए गए जिनसे ख़ून का बिल्कुल सही दबाव निकाला जा सके। अब सब मानते हैं कि ख़ून की किसी भी नाड़ी की माप अलग अलग आदमियों और अलग अलग परिस्थितियों में बदलती रहती है। किसी की नाड़ी मोटी होती है और किसी की पतली। इसीलिए ये यन्त्र हमेशा इस्तेमाल किए जाते हैं। सर क्लिफर्ड आलबट (Sir Clifford Allbutt) का यह कहना ठीक है कि जिस तरह बिना थर्मामीटर के आदमी के बदन की गरमी पर बहस करना बेमायने है उसी तरह बिना यन्त्र के ब्लड प्रेशर के बारे में बातचीत करना बेकार है।

पहला तजरबा

ब्लड प्रेशर को ठीक ठीक नापने के सबसे पहिले तजरबे किसी साइन्सवाले या डाक्टर ने किसी साइन्स के कमरे में नहीं किये थे, बल्कि एक एंग्लिकन पादरी ने यह तजरबा सबसे पहले गाँव के एक खेत में किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आगे की बात सुनकर हमारे उन भाइयों को सदमा होगा जो ज़िन्दा जानवरों पर किसी तरह की चीरफाड़ के ख़िलाफ़ हैं लेकिन बात सच है। रेवरेण्ड स्टेफ़ेन हेल्स डी० डी०, विकार आफ़ सेन्ट मेरी, टेडिङ्गटन (Rev. Stphen Heles, D. D., Vicar of St. Marys' Teddington) ने एक घोड़ी पर नीचे लिखा तजरबा किया—

घोड़ी को उसकी कमर ज़मीन से मिलाकर उल्टा फाटक से बाँध दिया गया और फिर एक लम्बे शीशे की नली को उसकी बाईं पैर की ख़ून की नाड़ी में घुसेड़ दिया गया। फ़ौरन नली में ख़ून ८ फ़ीट ३ इञ्च की ऊँचाई तक चढ़ गया और जब तक ख़ून जम नहीं गया तब तक बराबर साँस के चलने और दिल की धड़कन के साथ साथ नली में ऊपर चढ़ता और उतरता रहा। ज़ाहिर है कि जितनी ऊँचाई तक ख़ून नली में ऊपर चढ़ा था वही उस जानवर के ख़ून का दबाव था।

ब्लड प्रेशर बढ़ने के कुछ सबब

तब से अब तक बहुत तरक़्क़ी हो चुकी है और अब हमारे पास ऐसे यन्त्र हैं जिनकी मदद से हम किसी भी आदमी का ब्लड्प्रेशर बिलकुल ठीक ठीक बता सकते हैं चाहे वह आदमी किसी भी हालत में क्यों न हो। शायद सबसे दिलचस्पी की बात जो लोगों के ब्लड प्रेशर नापने के दौरान में मालूम हुई है वह यह है कि किसी भी तरह का ज़रा सा भी जोश ब्लड प्रेशर को बढ़ा देता है। यह बात ध्यान देने के क़ाबिल है। क्योंकि अगर किसी भी जल्दी से घबड़ानेवाले आदमी का ख़ून का दबाव मालूम किया जा रहा हो तो आप देखेंगे कि उस आदमी का ब्लड प्रेशर महज़ उसके इस ख़्याल से बढ़ जायगा कि 'मेरा ब्लड प्रेशर नापा जा रहा है' और यन्त्र में उसका ब्लड प्रेशर जो बढ़ जायगा वह उसके असली ब्लड प्रेशर से कहीं ज्यादा होगा। सर क्लिफोर्ड आलबट एक मरीज़ का क़िस्सा बतलाते हैं जिसका ब्लड प्रेशर मामूली से बहुत ही ज्यादा निकला क्योंकि वह आदमी ब्लड प्रेशर नापनेवाले यन्त्र को बिजली की बैटरी समझ बैठा था और उसे यह डर हो गया था कि 'मुझे एक ज़ोर का धक्का लगनेवाला है'। उसे समझा दिया गया कि डर ग़लत है और जब उसकी समझ में पक्की तौर से आ गया कि वह बिजली की बैटरी नहीं है तब उसका ब्लड प्रेश लिया गया और मामूली निकला। आमतौर पर ब्लड प्रेश के थोड़े से बढ़ जाने पर आदमी को बहुत ही अच्छ मालूम होने लगता है। खाना खाने के बाद मामूली तौ पर ब्लड प्रेशर बढ़ता है और इसलिए भरे पेट आदमी दिमाग़ में जो मस्ती और ख़ुशी होती है उसकी एक वजह प्रेशर का बढ़ना भी है। आँख, नाक, कान किसी भी इन्द्रिय के जोश में आने से भी प्रेशर बढ़ता है। ज़ोर की बदबू या खुशबू से ख़ून का दबाव बढ़ जायगा। इसी तरह ग़ैरमामूली नज़ारे, चाहे अच्छे हों या बुरे, प्रेशर को बढ़ा देंगे। कहा जाता है कि सड़क पर किसी भी दुर्घटना को देखने के लिए आदमी जो इकट्ठा हो जाते हैं वह लोगों की एक कमज़ोरी या बीमारी है। एक दर्जे तक यह बात ठीक हो सकती है लेकिन ज़्यादा तर लोगों के बारे में होता यह है कि कोई ग़ैर मामूली बात देखने से, ख़ासकर जब वह डरावनी भी हो, लोगों का ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है। उसे रोमांच कहते हैं और रोमांच आमतौर पर लोगों को अच्छा लगता है, जिसके लिए लोग हमेशा उत्सुक रहते हैं। इसीलिए ज़्यादातर लोग किसी भी दुर्घटना को देखने के लिए बड़े शौक़ से जमा हो जाते हैं। अच्छे नाटक के देखने से जिसमें अच्छी तरह पार्ट अदा किए गए हों, जो ख़ुशी हमको महसूस होती है उसकी आमतौर से यही वजह होती है। जब कोई दुनिया के सुखों को तुच्छ समझनेवाला आदमी कहता है कि आधे से ज्यादा मज़ा सुख में नहीं है बल्कि सुख के इन्तज़ार करने में है तो वह साइन्स की निगाह से सच्ची बात कहता है। इस बात को अब सब जानते हैं कि किसी भी आनेवाली ख़ुशी का सिर्फ़ ख़्याल करने से आदमी के ख़ून का दबाव बढ़ जाता है। उसके रोंगटे खड़े होने लगते हैं। असली सुख के साथ बुराई भी हो सकती है लेकिन सिर्फ़ इन्तज़ार के साथ कोई बुराई नहीं होती। सिर्फ़ थोड़ी सी ख़ुशी होती है।

रोंगटे खड़े होना

रोंगटे खड़े होना बिलकुल एक जिस्मानी चीज़ है। रोंगटे खड़े होने की वजह ब्लड प्रेशर बढ़ना इतना नहीं है जितना कि वे बातें हैं जिनकी वजह से ब्लड प्रेशर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ जाता है। बात यह है कि ख़ून की नलियें पतली हो जाती हैं। कोई भी चीज़ अगर किसी ज़ोर के साथ किसी नली में होकर बह रही हो तो नली जितनी पतली हो जावेगी बहाव का ज़ोर उतना ही बढ़ जावेगा। नसों में यह ताक़त होती है कि वे ख़ून की नलियों की मोटाई को जितना चाहे कम या ज़्यादा कर दें और जब कभी ब्लड प्रेशर को बढ़ाने की ज़रूरत होती है तो वे नलियें आमतौर पर सिकुड़ जाती हैं। असल में नलियों के सिकुड़ जाने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसीलिए जब नल से ठंढे पानी की धार बदन पर पड़ती है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं क्योंकि सारे बदन की ख़ून की नलियाँ एकदम सिकुड़ जाती हैं। यही वजह है कि किसी भी जोश के वक़्त बदन सफ़ेद पड़ जाता है। सिर्फ़ डर ही की वजह से बदन पीला नहीं पड़ जाता बल्कि कोई भी चीज़ जो ब्लड प्रेशर को एकदम तेज़ी से बढ़ा दे, बदन को पीला कर देगी। आवाज़ें सुनने से ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है, यह अब सब जानते हैं। यकायक आवाज़ों का होना, तेज़ आवाज़ें ये सब ब्लड प्रेशर बढ़ा देती हैं। जैसा हम ऊपर बता चुके हैं ये चीज़ें डर पैदा करती हैं और कुछ न कुछ करने की रमक दिल में पैदा कर देती हैं। इससे आदमी या तो लड़ने के लिए तय्यार हो जाता है या भागने लगता है।

फ़ौजी गानों के असर से 'कुछ न कुछ करने की' इच्छा होती ही है। सिपाही जो थक जाते हैं और जिनके पैर सूज जाते हैं वह फौजी बैण्ड के बजते ही फिर से ताज़े हो जाते हैं। अच्छी कविता का भी किसी हद तक यही असर होता है। कविता के बारे में मैथ्यू आर्नाल्ड (Mathew Arnold) का कहना है कि अच्छी कविता में जब साफ़ और जीती जागती बातें होती हैं तो पढ़ने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

लकवा

जो लोग यह कहते हैं कि 'हमें ब्लड प्रेशर है उनका असली मतलब यह होता है कि उनका ब्लड प्रेशर मामूली से ज़्यादा है। यह सचमुच अच्छी चीज़ नहीं है। कोई पतली चीज़ नलियों में होकर बह रही हो और उन नलियों पर बेजा दबाव डाल रही हो तो नली के टूट जाने या फट जाने का डर रहता है और अगर नली की दीवाल में कहीं पर कोई कमज़ोर जगह हो तो वहीं पर फटने का डर रहता है। आदमी की नाड़ियों में ऐसी एक कमज़ोर जगह है और दुर्भाग्य से वह जगह दिमाग़ में है। ऊँचे ब्लड प्रेशरवाले आदमी के किसी भी जगह से ख़ून गिरना शुरू हो सकता है लेकिन सब से ज्यादा डर दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने का होता है। दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने के पहले एक दो दफ़े शायद आदमी की नाक से ख़ून गिरे। इसलिए ज़रा से भी जोश से किसी अधेड़ आदमी की नाक से यदि ख़ून गिरना शुरू हो जाय तो उस आदमी को डाक्टर से सलाह लेनी चाहिये। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि दिमाग़ से ख़ून फूट निकलना ख़तरनाक हो सकता है। आमतौर से इसे लकवे का दौरा कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे स्ट्रोक यानी एकाएक चोट भी कहते हैं क्योंकि ये बातें एकाएक होती हैं, बिलकुल जैसे किसी छिपे हुए आदमी ने पीछे से ज़ोर का घूँसा मारकर गिरा दिया हो। अगर मरीज़ बच जावे तो इसका असर बाद में हमेशा यह होता है कि एक तरफ़ के बदन के हिस्से में लकवा मार जाता है और यह भी मुमकिन है कि आदमी का बोलना बिलकुल बन्द हो जाय। यह सब चीज़ें आदमी को बेहद कमज़ोर बना देती हैं और मरीज़ को ज़्यादा दिन तक नहीं चलने देतीं। रोगी की नाड़ियां ऐसी कमज़ोर हो जाती हैं कि वह दिमाग़ से ख़ून फूट निकलने को बरदाश्त नहीं कर पातीं और आदमी की ज़िन्दगी को बहुत जल्द ख़तम कर देती हैं। इस तरह आदमी बहुत सी तकलीफ़ों से बच जाता है। याद रखना चाहिये कि ब्लड प्रेशर का ऊँचा जाना शैतान का एक बहाना है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि जब ब्लड प्रेशर कुछ ऊँचा जाता है तो तन्दुरुस्ती अच्छी लगती है और 'कुछ न कुछ करने या सोचने' को जी चाहता है। इसलिए ऊँचे ब्लड प्रेशरवाला आदमी ज़रूरत से ज़्यादा ख़ुश मालूम होता है और यह मुमकिन है कि कोई भी ऐसी ऊपरी हालत न पैदा हो या न दिखाई दे जिससे उसे अपने ख़तरे का पता आसानी से लग जावे। यह एक और ज़बरदस्त वजह है कि हर साल हमें अपने जिस्म की अच्छी तरह जाँच कराकर उसे दुरुस्त रखना चाहिये। इस चीज़ के लिए मैं बराबर ज़ोर देता आ रहा हूँ। जहां तक नाड़ियों का ताल्लुक़ है कभी कभी अपने जिस्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह जांच करा लेना बहुत ज़रूरी और फ़ायदे-मन्द है बमुकाबले अपने दाँतों की जांच कराने के। ऐसे बहुत से लोग हैं जो अपने दाँत के डाक्टर के पास साल में कम से कम एक बार ज़रूर जाते हैं लेकिन बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो डाक्टर से अपने जिस्म की अच्छी तरह जाँच कराके उसे दुरुस्त रखने की कोशिश करते हों। पचास बरस के खूब तनदुरुस्त आदमी के लिए जिसे इस बात का घमण्ड है कि वह ज़िन्दगी में कभी भी इतना अच्छा नहीं रहा इसका बहुत बड़ा डर है कि कहीं वह इस रोग के नज़दीक न हो।

औसत ब्लड प्रेशर

जिस यंत्र से ब्लड प्रेशर मालूम किया जाता है उसे स्फ़ाइगनो मैनोमीटर (Sphygnomanometer) कहते हैं। जो लोग इस यंत्र से अच्छी तरह वाकिफ़ है वे इसे मैनोमीटर (Manometer) भी कहते हैं। लाखों आदमियों का ब्लड प्रेशर इस यंत्र से पढ़ा गया है। इससे यह बात मालूम हो गई है कि आदमी का औसत ब्लड प्रेशर क्या होना चाहिये। यहाँ पर औसत दबाव का मतलब ठीक यानी तनदुरुस्त आदमी का ब्लडप्रेशर नहीं है। ऊपर जो तजरबे बताए गए हैं उनसे पता चलता है कि किसी तनदुरुस्त बीस बरस के जवान आदमी का ब्लड प्रेशर आमतौर पर १२० मिलीमीटर होता है। इस तरह की हालत में यह आंकड़ा औसत ब्लड प्रेशर और मुनासिब ब्लड प्रेशर दोनों बताता है। तजरबे से मालूम हुआ है कि जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे ब्लड प्रेशर आमतौर पर इस तरह बढ़ता है कि अगर किसी आदमी की उमर में १०० जोड़ दें तो उसका ब्लड प्रेशर मालूम हो जायगा। अगर हम मैनो-मीटर में देखें तो यही ब्लड प्रेशर उसमें भी निकलेगा। इसके मुताबिक ४० बरस की उमर में ब्लड प्रेशर १४० होगा और ६० बरस की उमर में १६० होगा। हाल के डाक्टर इस बात से सहमत नहीं हैं कि उमर के साथ साथ जो ब्लड प्रेशर बराबर बढ़ता जाता है वह मुनासिब ब्लड प्रेशर होता है। उनका ख़याल है कि जैसे जैसे नाड़ियां पुरानी होती जाती हैं वैसे वैसे वह कमज़ोर भी होती जाती हैं इसलिए यह मुमकिन नहीं है कि उनकी दीवारों पर बराबर दबाव बढ़ता ही चला जावे और वह उसे बरदाश्त करती रहें। इससे यह नतीजा निकलता है कि इस बराबर बढ़ते रहनेवाले ब्लड प्रेशर की कोई हद होनी चाहिये। फिलहाल इस हद को १५० के क़रीब रक्खा गया है। अगर १५० से ज्यादा किसी का ब्लड प्रेशर हो तो उसे बहुत ज्यादा तनदुरुस्त नहीं समझना चाहिये। उसका ब्लड प्रेशर कम करने की कोशिश करना चाहिये और हर हालत में उसे बढ़ने नहीं देना चाहिये।

—अनुवादक : पुरुषोत्तम त्रिपाठी

स्वराज्य की परिभाषा

जवाहरलाल नेहरू

कैसा स्वराज्य हो? अङ्गरेज़ी सल्तनत की जगह कौन आवे? हम चाहते हैं कि प्रजातन्त्र राज्य हो—हुकूमत की बागडोर आम जनता के हाथ में हो, थोड़े से चुने लोगों के हाथ में नहीं। हम वह स्वराज्य चाहते हैं, जनता की ताक़त जिसमें हो। अतः हमारा कर्त्तव्य साफ़ आ जाता है कि हम जनता की ताक़त बढ़ावें। कांग्रेस ने हमको बहुत सारी बातें सिखाई हैं। एक तो उसने सिखलाया कि हम सब लोगों को लेकर चलें। स्वराज्य में हिन्दू लोगों का राज्य नहीं होगा, मुसलमानों का राज्य नहीं होगा, ईसाइयों का राज्य नहीं होगा—बल्कि सभी का होगा, जो भारत में रहते हैं और इसे अपना देश समझते हैं। अतः किसी जाति-विशेष का अधिकार ज्यादा नहीं। सबों का बराबर हिस्सा इस राज्य में होगा। तभी यह जनता का राज्य होगा। अतः सबों को मिलकर काम करना है। कांग्रेस चाहती है कि सभी उसमें आवें।

बाक़ी पृष्ठ ६१ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारनाथ की कला

रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्डया एम० ए०, एम० ओ० एल०

बौद्ध धर्म के इतिहास में और भारतीय नक्क़ाशी और साँचे की कला में सारनाथ की एक बड़ी खास जगह है। सारनाथ में ही भगवान बुद्ध ने सबसे पहले बौद्ध धर्म का उपदेश दिया था। वह उन चार प्रमुख पुण्य तीर्थों में से है कि जिनके सम्बन्ध में अपने महापरिनिर्वाण के समय भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा था कि उनके बाद भिक्षुओं को उनका परिभ्रमण करना चाहिए।

तीसरी सदी ई० पू० के मध्य में मौर्य सम्राट् अशोक ने अपने गुरु उपगुप्त के साथ सारनाथ की यात्रा की थी। अशोक का व्यक्तित्व इतिहास में एक अनोखा व्यक्तित्व है। राजनीति के पतित वातावरण को अशोक ने अध्यात्मिक प्रकाश से ज्योतित किया। जिस तरह से अशोक ने मानव धर्म की स्थापना के लिए अथक प्रयत्न किया उसकी तुलना में केवल मिस्री सम्राट पेरोए आख़नआतन का नाम लिया जा सकता है। अशोक ने अपने धार्मिक मिशन की पूर्ति में जिस कला को प्रेरणा देकर जन्म दिया और जिसकी उन्नति की, संसार के कला के इतिहास में उसकी अपनी एक ख़ास और अनोखी जगह है। उस युग की समस्त भावना पत्थर के चन्द टुकड़ों में कलाकारों ने नक़्श करके रख दी है। कला के इन अवशेषों को आज हम उँगलियों पर गिन सकते हैं। किन्तु फिर भी ये थोड़े से स्तम्भ विचारों से इतने भरे हुए हैं कि अपनी शान में वे अपूर्व दिखाई देते हैं। वे अपने प्रणेता के महान् विचारों को अपनी परिपूर्णता में प्रगट करते हैं।

सारनाथ के स्तम्भ का कारनिस अपने प्रकार की अत्यन्त सुन्दर कला वस्तु है। कारनिस के ऊपर एक दूसरे की ओर पीठ किए हुये चार सिंह बैठे हैं जिनके पास चार चक्र खुदे हुये हैं। ये चक्र भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'धर्म चक्र प्रवर्तन' के निशान हैं। बीच की जगह में चार पशुओं की आकृतियां खुदी हुई हैं; ये हैं—सिंह, हाथी, नन्दी और घोड़ा। एक बड़े कमल के प्रतीक फूल पर वास्तुकला का यह स्मारक खड़ा हुआ है।

पुरातत्त्ववेत्ताओं में इस बात को लेकर काफ़ी चर्चा चलती रही कि अशोक के स्तम्भों और ईरान में पर्सिपोलि के स्तम्भों में काफ़ी साम्य है। किन्तु जिन लोगों को दोनों तरह के स्तम्भों को निकट से देखने का और अध्ययन करने का अवसर मिला है वे कह सकते हैं कि दोनों तरह के स्तम्भों में जितना साम्य है उतनी ही विभिन्नता भी है। फिर कला की दृष्टि से अशोक के स्तम्भों के मुक़ाबले में पार्सिपोलि के स्तम्भ भद्दे और अनगढ़ हैं। दोनों में एक ही बात में साम्य है और वह यह कि कारनिस के ऊपर दोनों में ही जानवरों की मूर्तियां हैं और उनके नीचे वाद्ययन्त्र की आकृति नक्श है। किन्तु भारतीय स्तम्भों में पशुओं की सुन्दर कलाकृतियाँ और उनके नीचे अङ्कित वाद्ययन्त्र की आकृति जो घण्टे की अपेक्षा कमल अधिक मालूम होती है, स्तम्भों की अत्यन्त चिकनी गढ़न जो ज़्यादह नक्क़ाशी से भरी नहीं गई और उनके आकार-प्रकार और अनुपात में इतना समन्वयात्मक हिसाब और सुरुचि में एक ऐसी अपूर्वता है कि जो पर्सिपोलि के स्तम्भों में देखने को नहीं मिलती। भारतीय स्तम्भों के पीछे एक ज़बर्दस्त मिश्रण चातुर्य्य है। उनकी मौलिकता स्तम्भों की आकृतियों के अनुपात में है। इन स्तम्भों की कल्पना के पीछे भारतीय मस्तिष्क है पर इन स्तम्भों की कला में हमें थोड़े बहुत विदेशी कला के चिह्न भी दिखाई देते हैं।

मौर्यकला जितने शीघ्र फैली और बढ़ी उतने शीघ्र ही वह अन्तर्धान भी हो गई। किन्तु उसने जनता की कलात्मक प्रतिभा को काफ़ी प्रोत्साहन दिया। मौर्यकला से प्रभावित होकर सुङ्ग-काल में मध्य भारत में निर्माणकारों और मूर्तिकारों की एक नई परिपाटी ही खड़ी हो गई। इस सुङ्गकालीन कला का कुछ असर हमें सारनाथ में भी दिखाई देता है। रेलिङ्ग के खम्भे और कुछ छोटे मोटे अवशेष ही अब इस सुङ्गकालीन कला के अवशेष रह गये हैं। इन थोड़े से अवशेषों और महान मौर्य कला में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। किन्तु फिर भी इनमें एक सादगी से भरी सुन्दरता और जन साधारण की सुरुचि दिखाई देती है कि जिस सुरुचि ने उस समय के राजाओं और शासकों की अवज्ञा के होते हुये भी अपने समय की कला को जीवित रखा और उन्नत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद कुशान शासकों ने हुकूमत हासिल करते ही इस कला को हाथ में लेकर उसे बढ़ावा दिया। उन्हींके प्रोत्साहन से मथुरा कला का एक विशिष्ट केन्द्र बन गया। मथुरा में कलाकारों ने भारतीय पौराणिक मूर्तियों को गढ़ने में अपनी कला की प्रतिभा का सुन्दरतम प्रदर्शन किया। इन मूर्तियों को गढ़ने में उन्होंने परम्परा से प्राप्त कला के भारतीय 'लक्षणों' को स्वीकार किया। यहां के कलाकारों की कला के नमूने इतने उत्कृष्ट होते थे कि शीघ्र ही भारत के दूसरे कला-केन्द्रों में भी उनकी नक़ल की जाने लगी। बौद्ध धर्म के तमाम केन्द्रों में मथुरा की मूर्तिकला के सिद्धान्त अमल में लाये जाने लगे।

सारनाथ में भी मथुरा की कला के एक नमूने पर, कि जो कनिष्क के राज्यारोहण के तीसरे वर्ष में बनाया गया था, बोधिसत्त्व की एक खड़ी हुई मूर्ति को वृहत आकार दिया गया है। सारनाथ में पाई गई बुद्ध की मूर्तियों में वह सबसे प्राचीन मूर्ति है। इस मूर्ति के विशाल अङ्ग प्रत्यङ्ग, गम्भीर मुद्रा और वस्त्राङ्कन की बाहुल्यता से पता चलता है कि कुशान शिल्पी किस तरह मुक्त कला को रूप और आकार दे रहे थे। इस खड़ी हुई मूर्ति में बांया हाथ कमर पर है और दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ रक्षा का आश्वासन और शक्ति और अधिकार का प्रदर्शन करता हुआ बुद्ध को "साक्य-सिंह" की उपमा से विभूषित कर रहा है। इस मूर्ति के बनने के साथ साथ सारनाथ में एक नई कला प्रणाली का प्रादुर्भाव होता है। बाद के पाए गए अवशेषों में भी इसी प्रणाली के चिह्न मिलते हैं। लेकिन शुरू में भी यहां की कला में इस बात का आभास मिलता है कि बुद्ध की मूर्तियों में परम्परागत गम्भीर मुद्रा, स्थूल देह और ढीले ढाले वस्त्र शिल्पी को जँचे नहीं। उन्होंने उन परम्परागत रूढ़ियों को कम से कम करने की कोशिश की किन्तु उनमें इतना साहस नहीं था कि वे उन्हें एकदम त्याग देते। देह के विविध अङ्गों को सुगठित और लचीला बनाया गया। कमर पर रखे हुये हाथ को जांघ के पास लाया गया। उत्तरीय को तह करके बदन पर डाला गया।

वर्षों की मेहनत के बाद कलाकार शिल्पियों ने एक नई आकृति का सृजन किया जो पहले से अधिक सुन्दर और अधिक स्वाभाविक थी। इस परिवर्तन उत्तरोत्तर क्रम को आप वहाँ के उन बचे हुये अवशे में देख सकते हैं जो समय और धर्मान्धता ने सुरक्षि छोड़े हैं। सारनाथ में केवल तीन मूर्तियाँ ऐसी हैं जिन तिथियां पड़ी हुई हैं और तीनों ४७० ईसवी के बाद हैं। अधिकांश मूर्तियों पर तारीखें नहीं हैं। गुप्तकाल कला-सृजन को हम इन्हीं मूर्तियों के टेकनीक से अध्य कर सकते हैं।

गुप्तकाल में सारनाथ कला का अत्यन्त महत्वपू केन्द्र बन गया। सारनाथ के निकट चुनार की खानों काफ़ी सैण्डस्टोन पाया जाता है जो भावुक मुद्राओं औ भावों को व्यक्त करने के लिये बहुत ही उपयुक्त है अपने से पहले की कला परम्पराएँ सारनाथ की कल को प्रभावित कर रही थीं। पहले उस पर मथुरा प्रणाली का असर था, फिर मध्य भारतीय प्रणाली क और बाद में गान्धार प्रणाली ने मथुरा में फल फूलक उस पर असर डाला। पांचवीं सदी ईसवी में इन तीन प्रणालियों का स्थानीय रुचि के साँचे में सम्मिश्रण औ समन्वय हुआ और परिणाम रूप दो तरह की सुन्द मूर्तियों का निर्माण किया गया। एक तरह की मूर्तियों छेनी का ज़्यादा काम होता था, अङ्गों के गढ़ने में स्वा भाविकता होती थी, मांस पेशियां ज़रा उभरी हुई होत थीं, भँवों और मुख-मुद्रा से कठोरता झलकती थी, गाल भरे हुये नहीं होते थे और चेहरे पर भावुकता बहुत क होती थी। दूसरे तरह की मूर्तियों में हृष्टपुष्ट मोटा शरीर भरे हुये गाल और चेहरे पर भावुकता होती थी।

इस काल के कलाकारों ने बुद्ध के मानव रूप की कल्पना की और महायान सम्प्रदाय की भक्ति भावना उनमें इतनी गहरी बैठ गई थी कि उन्होंने बुद्ध को 'रस स्वरूप' के रूप में चित्रित किया। बुद्ध की तरह तरह की मूर्तियां अङ्कित की गईं जिनमें आशीर्वाद, उपदेश अभयदान आदि तरह तरह की भावनाएं अङ्कित की ग हैं। सभी भावनाएं सजीव हैं और मुखाकृति भावुकत और प्रेम से भरी हुई अत्यन्त सुन्दर मालूम होती है मूर्ति को देखकर ऐसा मालूम होता है मानो पारलौकिक विभूति को साकार मानव रूप में खड़ा कर दिय गया है।

किन्तु इस भावुकतापूर्ण कला का जीवन बहु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा यानी कुल आधी शताब्दी का ही रहा। छठीं सदी का प्रारम्भ भारतीय कला के लिये ह्रासपूर्ण साबित हुआ। कला का केन्द्र सारनाथ से हटकर गङ्गा के निचले काठे में चला गया जहां कुछ परिवर्तित रूप में वही भावना जीवित रखी गई और एक नई प्रणाली कुछ नए रूप में विकसित होने लगी। सारनाथ की कला के मुक़ाबले में गुप्तकालीन कला मानव भावनाओं से रहित मालूम होती है। सारनाथ की कला पूर्वीय भारत की कला प्रणाली में फंसकर नवीं सदी के अन्त तक लुप्त सी हो गई। पुरातत्व की खोजों में पूर्वीय भारत की कला के नमूने हमें नीले पत्थरों और रेतीले पत्थरों पर बने हुये मिले हैं। मगध के सख़्त पत्थरों में कला के जिस सौन्दर्य और सुरुचिपूर्ण रूप का उद्गम हुआ उसे सारनाथ के नरम पत्थरों द्वारा उत्कृष्टता पर पहुंचाया गया। सारनाथ की कला के विकास काल में कला के अन्य भारतीय केन्द्रों से भी कला के नमूने सारनाथ पहुंचे। सारनाथ में ११ वीं और १२ वीं सदी की मूर्तियों के नमूने मिलते हैं उनमें हमें बङ्गाल, मध्य भारत, दक्षिण भारत और तिब्बत की कला का प्रभाव दिखाई देता है। बङ्गाली प्रणाली की बोधिसत्व की मूर्तियां, जो 'ललितासन' से कमल के सिंहासन पर ध्यान मग्न बैठी हैं और जिनके पीछे पांच 'ध्यानी बुद्ध' की मूर्तियां हैं और जिसकी पार्श्व भूमि में काफ़ी सजावट है, नीले पत्थरों पर गढ़ी गई हैं। मध्य भारत की प्रणाली भी, जिसमें मूर्तियों की आकृति कठोर और पार्श्वभूमि में काफ़ी नक्काशी है, पहचानी जा सकती है। दक्षिण भारत की पीतल की मूर्तियों की नक़ल पत्थर पर उतारी गई और तिब्बत की 'बज्रसत्व' मूर्तियां भी देवताओं की श्रेणी में शामिल की गईं। इनमें से एक अधूरी बज्रसत्व की मूर्ति अपनी उग्र मुद्रा और भयंकर आकृति में साफ़ चमकती हुई नज़र आती है।

यद्यपि सारनाथ मूर्तिकला के लिये ख़ासतौर पर प्रसिद्ध था फिर भी वहां निर्माणकला और नक्काशी के काम को भी काफ़ी प्रोत्सहन मिला। इसका उत्कृष्ट नमूना हमें धामेक स्तूप में मिलता है। नक्काशी, फूलपत्ती, बेलबूटे, लताएं, किसलय, कमल के फूल और रेखा-गणित की आकृतियां गुप्तकाल की सुन्दरतम कलकृतियां हैं और इनके सर्वोत्कृष्ट नमूने हमें अजन्ता की गुफाओं की दीवालों पर चित्रित मिलते हैं।

पृष्ठ ५८ के आगे से

साम्प्रदायिक संस्थाएँ—मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा—एक एक धर्मवालों के लिए है। इन संस्थाओं को नौकरियों की बड़ी फ़िक्र है। स्वराज्य तो इनके सामने पीछे आए—छोटी-छोटी बातें पहले। मुस्लिम लीग कहती है, आज़ादी तो अच्छी चीज़ है; पर बिना पाकिस्तान के वह हमें मंजूर नहीं। उससे तो अङ्गरेज़ी राज्य रहे, वह अच्छा। जो स्वराज्य पहले नहीं चाहते, अङ्गरेज़ी राज्य चाहते हैं हम उन्हें पसन्द नहीं करते। मुस्लिम लीग और उसके हिमायती स्वराज्य के सवाल को अव्वल नहीं रखते, पाकिस्तान को—जिसे वे पूरा-पूरा नहीं समझते, उसे आगे रखते हैं। अतः हमारी उनसे मुखालफ़त है।

अङ्गरेज़ी हुकूमत से जनता दबी हुई है, उठ नहीं सकती। बङ्गाल में ३५ लाख आदमी भूख से मर गए। किस ढङ्ग का यह प्रबन्ध है? जब ये भूख से मर रहे थे, तो बड़े बड़े हाकिम-हुक्काम तथा खाने-पीने की सामग्री का व्यापार करनेवाले बड़े-बड़े सेठ साहूकार—हिन्दुस्तानी या अङ्गरेज़ दोनों लाखों-करोड़ों कमा रहे थे। जनता के स्वराज्य में इस सारे ढङ्ग को बदलना होगा। [पटने के व्याख्यान का अंश]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में जब स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ होंगी !

स्वामी विद्यानन्द सन्यासी

पिछले पचास साल से यूरोप और अमरीका के कुछ निठल्ले विद्वान इस बात की बहस में तल्लीन रहे हैं कि पुरुष और स्त्री दोनों में कौन श्रेष्ठ है। कुछ लोग पुरुषों और स्त्रियों के मुक़ाबले में पुरुषों को श्रेष्ठ कहते हैं और कुछ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को श्रेष्ठ कहते हैं! दोनों दल अपने अपने पक्ष के समर्थन में तरह तरह की दलीलें देते रहे हैं। इस सम्बन्ध में आचार-विचार, उदाहरण, आचरण और विशेष प्रमाणों को भी पेश किया जाता रहा है। स्त्रियों के प्रशंसकों ने थोड़ी बहुत झिझक के बाद यह बात अब निर्विवाद रूप से मान ली है कि यदि साहस में नहीं तो कम से कम शक्ति में तो पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ है। शक्ति से अर्थ यहां शारीरिक बल से है। जवाब में स्त्रियों की ओर से यह कहा जाता है कि कम से कम एक बात तो ऐसी है जिसमें पुरुष स्त्री की बराबरी नहीं कर सकता और वह स्त्री की सहज बुद्धि अथवा प्रेरणा शक्ति है। किन्तु स्त्रियों का प्रशंसक होते हुए भी उनकी इस प्रेरणा शक्ति पर मेरा कोई विश्वास नहीं है। यदि आप इस सहज बुद्धि या प्रेरणा शक्ति का विश्लेषण करें तो वैज्ञानिक रूप से हम इसकी परिभाषा इस तरह कर सकते हैं—"सहज बुद्धि उसे कहते हैं जिसमें बिना तर्क के केवल आशङ्का से प्रेरित होकर दिमाग़ एक फ़ैसला कर लेता है।" यदि हम इस परिभाषा को स्वीकार कर लें तो सहज बुद्धि एक ऐसी रहस्यमय शक्ति की तरह हुई कि जो साधारण बुद्धि की पहुँच के परे है और जिसे तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। यह बात नहीं है कि पुरुषों में इस तरह की सहज प्रेरणा नहीं होती। उनके मन में भी बहुधा यह सहज प्रेरणा उठती है, किन्तु वे उसे तिरस्कार के साथ दबा देते हैं और घटनाओं के क्रम को देखते हुए सहज प्रेरणा के प्रति उनका यह तिरस्कार उचित ही है। आपको बहुत से पति ऐसे मिलेंगे कि जिनके दिमाग़ में अपनी पत्नी के सुझाने से पहले किसी बात के बारे में सहज प्रेरणा हुई, किन्तु तर्क की कसौटी पर परखने से वह विचार उचित न जँचने के कारण उसे स्वीकार नहीं किया गया। इसके विपरीत पत्नियाँ अपने किसी विचार को तर्क की तराज़ू पर नहीं बल्कि सहज बुद्धि की तराज़ू पर तोलने की आदी होती हैं। और यदि विपरीत परिस्थितियां पति के तर्कपूर्ण नतीजों को पूरा नहीं होने देतीं तो पत्नी अभिमान के साथ उसे उलाहना देती है कि "देखा। मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था किन्तु तुम माने नहीं।" एक मिसाल लीजिए। शेखर और उसकी पत्नी शशि अपने बंगले के लान पर टहल रहे हैं कि इतने में तार घर का चपरासी आता हुआ दिखाई देता है।

शशि कहती है—"शायद यह माँ की बीमारी का तार ला रहा है।"

शेखर जवाब देता है—"क्या बेकार बात कह रही हो।"

यदि लिफाफा खोलने पर तार में शेखर के किसी मुक़दमे के मुलतवी होने की बात रहती है तो शशि अपनी सहज बुद्धि के ग़लत साबित होने पर अफ़सोस का एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालती। लेकिन यदि उस तार में यह चर्चा हो कि उसकी मां की मोटर का मडगार्ड एक ठेला गाड़ी से टकरा गया किन्तु मां को किसी तरह की कोई चोट नहीं लगी और केवल मोटर को ज़रा सी क्षति पहुंची है, तो शशि गर्व के साथ कहेगी—

"मैं जानती थी कि इस तार में मां के बारे में ही कोई बात होगी।"

और यदि तार में यह ख़बर हो कि सीढ़ियों पर पैर फिसल जाने के कारण शशि की मां के घुटने की हड्डी उखड़ गई है तो शशि विजय के स्वर में किन्तु आँखें गीली करके चिल्लाने लगेगी—

"हाय मेरी प्यारी मां! मैं यह जानती थी और कोई मेरे दिल में कह रहा था कि मां पर कुछ आफ़त आई है।"

किन्तु यदि तार में यह ख़बर हो कि शशि की मां को डबल न्यूमोनिया हो गया है तो शशि की प्रेरणा शक्ति की धाक कम से कम एक शताब्दी तक तो दोनों परिवारों में ज़रूर जम जायेगी।

असल में जिन दिमाग़ों को तर्क के सहारे सोचने विचारने की आदत नहीं होती वही इस प्रेरणा बुद्धि से काम लेते हैं। लेकिन तर्क को ताक़ पर रखकर केवल प्रेरणा बुद्धि से काम लेना एक ग़लत और मूर्खता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ है। उसमें ख़तरा यह है कि एक भी सफल प्रेरणा सैकड़ों असफल प्रेरणाओं को भी जायज़ क़रार देती है।

फिर भी मैं यह मानता हूं कि स्त्रियाँ कम से कम दो बातों में पुरुषों से कहीं ज्यादा बढ़कर और श्रेष्ठ होती हैं। वे दोनों बातें हैं—(१) आत्मशक्ति और (२) तन्मयता। स्त्रियों के मुक़ाबले में पुरुषों की तन्मयता तो पासंग भी नहीं होती। आमतौर पर स्त्रियां एक वक्त में एक ही बात सोचती हैं लेकिन उसमें अपने को इतना तन्मय कर देती हैं, इतना घुला मिला देती हैं कि पुरुष उनके अनुपात में कहीं भी नहीं ठहर सकता। स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी काम में पुरुष को वह लगावट और उत्साह नहीं होता। पुरुष किसी भी बात में अपने को पूरी तरह भूल नहीं सकता फिर चाहे वह बात प्यार हो, ईर्षा हो या प्रतिहिंसा हो। तन्मयता में पुरुष स्त्रियों से सदा पीछे ही रहता है।

लगभग सभी पुरुष यह कहते हैं कि जब कोई विचार किसी स्त्री के दिमाग़ में धँसकर बैठ जाता है तो आप उसे निकाल नहीं सकते किन्तु यह तो एक महान गुण हुआ। चाहे वह व्यक्ति हो, परम्परा हो, रूढ़ि हो या परिपाटी हो, स्त्रियां जिस चीज़ को पकड़ लेंगी उसे हर तरह से सुरक्षित रक्खेंगी। उनका यह गुण अपूर्व है। किसी विचार या विश्वास के पीछे जिस तरह स्त्री अपनी तन्दुरुस्ती अपनी ज़िन्दगी और अपना घर, सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार हो जाती है, फिर चाहे वह विचार या विश्वास कितना ही असम्भव और कितना ही मुश्किल क्यों न हो, उस तरह दस हज़ार पुरुषों में से भी कोई पुरुष नहीं कर सकता। यह एक माना हुआ प्रयोग है और सभी इसे स्वीकार करेंगे।

बहुत से पुरुष अपने दिमाग़ में यह ग़लत फ़हमी बनाए हुए हैं कि स्त्रियों को पुरुषों से अधिक कष्ट सहने और परेशानियां उठाने की आदत होती है और इस बात में वे विशेषज्ञ होती हैं। किन्तु ऐसा सोचना भूल है। स्त्रियां भी उसी तरह मानव हैं जिस तरह पुरुष और स्त्रियों को भी उसी तरह सुख और दुःख अनुभव होते हैं जिस तरह पुरुषों को। कष्ट उठाने की उनमें क्षमता होती ज़रूर है किन्तु वह स्वाभाविक क्षमता नहीं है, सहते सहते ही वह क्षमता पैदा होती है।

उन्नीसवीं सदी का स्थान मानव सभ्यता की प्रगति के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ख़ासकर सामाजिक क्षेत्र में इस सदी में अनेक बनी हुई धारणाएं बदली हैं, अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं और स्त्रियों के रहन-सहन, आचार-विचार, तर्ज़-तरीक़े और मिलने-जुलने पर उन्नीसवीं सदी में बड़ा ज़बर्दस्त असर पड़ा है। किन्तु फिर भी उन्नीसवीं सदी की समाप्ति पर स्त्रियों के हृदय में यह भावना उठी कि क्रान्ति ने जितना लाभ और दूसरे वर्गों या समुदायों को पहुंचाया है उतना स्त्रियों को नहीं पहुंचाया। दूसरे शब्दों में जिस अनुपात में स्त्रियों में ज्ञान की वृद्धि हुई उस अनुपात में इन्हें आज़ादी नहीं मिली। युगों से वे पुरुष की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दासता में बँधी हुई थीं और अब तक वह दासता उन्हें स्वाभाविक सी लगती थी। किन्तु यकायक स्वतन्त्रता और समता के नये प्रकाश में उन्हें वह अस्वाभाविक लगने लगी।

स्त्रियों ने आँखें खोलकर चारों तरफ़ देखा और कहना शुरू किया—

"हमने जेलख़ानों की बातें सुनी थीं लेकिन हे ईश्वर! हम तो स्वयं जेलख़ाने के अन्दर बन्द हैं। हमें इस जेल से बाहर निकलना है, अवश्य बाहर निकलना है। आख़िरकार हम भी मानव प्राणी हैं और मानव प्राणियों के कुछ बुनियादी अधिकार होते हैं।"

किन्तु किसी तरह की भी शिक्षा न तो स्त्रियों को शारीरिक दृष्टि से पुरुष बना सकती है और न उनमें पुरुषोचित गुण ही पैदा कर सकती है। स्त्रियां बुनियादी तौर पर स्त्रियां हैं और पुरुष बुनियादी तौर पर पुरुष हैं। यहां तक कि छोटे से छोटा यौन गुण भी स्त्रियों से पुरुष में और पुरुष से स्त्रियों में नहीं परिवर्तित किया जा सकता। स्त्री एक बुद्धिजीवी प्राणी है (हालाकि मैंने अक्सर इस बात का खण्डन सुना है) और पुरुष एक भावुक प्राणी है। फिर भी एक औसत दरजे की स्त्री में तर्क भावुकता की जगह नहीं ले सकता। शिक्षा और अवसर पाकर स्त्रियों में बौद्धिक गुण अधिक उन्नति करेंगे किन्तु देखा यह जाता है कि स्त्री जितनी अधिक शिक्षित होती है उतनी ही अधिक वह भावुक भी होती है। शिक्षा से स्त्रियों में तर्क और भावुकता के अनुपात में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर पड़ ही नहीं सकता। और पड़े भी क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्क का मुद्दा यह है कि स्त्री चाहे जितनी उन्नत विचारों की हो जाय लेकिन रहेगी स्त्री ही। सारे तर्क इसी केन्द्र पर केन्द्रित होते हैं। किन्तु निश्चित परिणाम तक पहुंचने के लिये मार्ग में अनेक बाधायें पड़ती हैं। पर एक बात तय है कि स्त्रियां चाहे अपनी कितनी ही उन्नति क्यों न करें वे रहेंगी पुरुषों की पूरक ही। मुझे कोई बहिन ग़लत न समझे इसलिये मैं इस वाक्य को इस तरह पूरा कर दूँ कि—पुरुष भी चाहे जितना हाथ पैर पटकें वे भी रहेंगे स्त्री के पूरक ही।

पुरुष इसलिये एक बेहतर स्थिति में हैं कि उनमें स्त्री बनने की ज़रा भी ख़्वाहिश नहीं है; जब कि नई नई सम्भावनाओं ने स्त्रियों में एक नशा पैदा कर दिया है और वे यह सोचने लग गई हैं कि प्रकृति ने उन्हें कोई घटिया दरजा नहीं दिया। आजकल की परिस्थितियों में स्त्रियों की इस धारणा को पुरुष समझ सकते हैं और क्षमा कर सकते हैं किन्तु प्रकृति तो किसी तरह के बहाने नहीं स्वीकार कर सकती। उसके नियमों को जो भी तोड़ता है उसे वह कठोर सज़ा देती है। स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त कोई तीसरा सेक्स तो बनने से रहा। स्त्री और पुरुष की पुरानी सरहदें ज्यों की त्यों क़ायम रहेंगी। पहले स्त्रियां उस सरहद से, उस मिलन सीमा से, बहुत दूर रखी जाती थीं, अब वह ठेठ सरहद तक आ सकती हैं और सीमा के उस पार वह देख भी सकती हैं किन्तु उसमें प्रवेश नहीं कर सकतीं। पुरुष स्त्रियों से यह नहीं चाहते कि वे सब कुछ हो जायँ, उसी तरह स्त्रियां भी सब कुछ होने की उम्मीद नहीं कर सकतीं। स्त्रियों में यदि सीता, सावित्री, संघमित्रा, अहल्याबाई, सैफ़ो, सन्त तेरेसा, राबेआ, फ़्लोरेंस, नाइटिङ्गेल आदि महान आत्माएं हुईं तो वह इसीलिये कि उनमें स्त्रियोचित गुणों की बाहुल्यता और प्रधानता थी। ठीक इसी तरह पुरुषोचित गुणों ने भी पुरुषों को महानता का दरजा दिया है।

मानव-कल्पना एक ऐसे समय की बात सोच सकती है जब स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर न होगा किन्तु वह समय कल ही नहीं आ जायेगा वह समय तब आयेगा जब समाज का सङ्गठन इतना अधिक उन्नत हो जायगा कि चाहे जैसा मौसम हो सबकी शारीरिक आवश्यकताएं एक बहुत साधारण ही बात रह जायंगी। वह समय ऐसा होगा जब किसी भी व्यक्ति को खाने, कपड़े और रहने जैसी चीजों के प्राप्त करने में १० मिनिट से अधिक नहीं ख़र्च करने पड़ेंगे और जब किसी भी व्यक्ति को जीवन धारण करने के लिये अपने हाथों से काम नहीं करना पड़ेगा। वह समय ऐसा होगा जब विज्ञान शारीरिक श्रम के महत्व को बिल्कुल ख़त्म कर देगा और जब पुरुष अपनी जिस्मानी ताक़त के बल पर स्त्री के ऊपर हावी न हो सकेगा।

हो सकता है विज्ञान और हमारी बुद्धि मिलकर ऐसी स्थिति सम्भव बना दें और स्त्री पुरुष मानसिक, शारीरिक और आर्थिक—हर दृष्टि से एक दूसरे के पूरक नहीं बल्कि एक दूसरे से स्वाधीन और एक दूसरे के बराबर हो जांय किन्तु जब तक यह बात नहीं होती तब तक दोनों को और विशेषकर स्त्री को बहुत सम्हालकर क़दम रखने की ज़रूरत है—स्त्रियों को विशेष रूप से इसलिये चूंकि प्रकृति ने मातृत्व के नियमों के अनुसार परिणाम रूप ज़िम्मेवारी अन्तिम रूप से उन्हींके सर पर रखी है। सम्भव है उस नये युग में मानव सम्बन्ध के ताने बाने में पुरुष की दुधर्ष हिंसक प्रवृत्ति को एक ख़तरा समझकर त्याग दिया जाय किन्तु पुरुष के गुण जिस तरह भी समाज में छाये हैं वे अपने परिणाम में समाज में रोमांस, उत्साह, संघर्ष और आल्हाद का सृजन करते हैं कि जिनके विलीन होते ही सम्भव है निराशा, निरुद्देश्यता और अकर्मण्यता समाज में छा जाय और हो सकता है समाज ऐसी परिस्थिति में अपनी रक्षा की भावना से स्त्रियों के हाथों में समाज की बागडोर दे दे क्योंकि स्त्रियां जाने बूझे, समझे परखे रास्तों पर ही क़दम रखती हैं। जो कुछ अज्ञात है उस पथ का प्रलोभन उन्हें नहीं होता।

आनेवाले भविष्य के ऐसे सम्भावित समाज में स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझी जावेंगी। किन्तु उस दिन तर्क का शुभ्राकाश बादलों से ढक जायगा और भावुकता के कुहासे में ही समाज को अपनी रक्षा दिखाई देगी। वह युग आयगा या नहीं यह दूसरी बात है पर उसकी अनुपस्थिति में स्त्रियां उसकी कल्पना कर कम से कम अपने को ढाढ़स तो दे सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मग्लानि

श्री विष्णु

शंकर ने देखा जगदीश उसीकी ओर आ रहा है। उसका हृदय काँपने लगा। उसने चाहा रास्ता काटकर निकल जावे परन्तु घबराहट में वह उल्टे रास्ते पर चल पड़ा। जगदीश और भी पास आगया। अब.....!

'शंकर' ? जगदीश ने पुकारा।

शंकर चुपचाप चलता रहा।

'शंकर ! ठहरो मैं आ रहा हूं।'

शंकर क्या करे ? कि धक्का लगा—मूर्ख। घबराता है ? करेगा क्या ? जगदीश क्या शेर है जो खा जावेगा ? पगला, न जाने क्यों डरता है !

और वह दृढ़ हो उठा। मुस्कराकर कहा—हलो जगदीश ! कैसे हो ?

जगदीश भी मुस्कराया—'प्रसन्न हो शंकर ! खूब प्रसन्न।'

'तुम्हारी कृपा है।'

जगदीश बोलते बोलते चुप हो गया। फिर क्षण भर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। शंकर सोचने लगा—न जाने क्या कहेगा ! जगदीश सोचने लगा—कैसे कहूं ? और जो बात है वह वे दोनों जानते हैं कि जगदीश एक दम बोल उठा—'शंकर। तुमसे एक बात कहना चाहता था।'

शंकर एकदम कांप उठा। गले से घरघराता हुआ शब्द निकला—'मुझसे ?'

'हाँ।'

'क्या ?'

क्षणिक सन्नाटे के बाद जगदीश ने कहा—'पीपल-वाली गली में जो बुढ़िया रहती है, जिसके तीन लड़के हैं, उसे जानते हो ?'

'हाँ, क्यों ?'—शंकर ने स्पष्ट कहा।

जगदीश उसी तरह कहता रहा—'और जानते हो उसके दोनों लड़के अगस्त आन्दोलन में जेल जा चुके हैं। उनके पीछे बड़ी बहू का स्वर्गवास हो चुका है। छोटी आजकल की है; न जाने कब प्राण निकल जावें। दोनों के नन्हे नन्हे बालक हैं। उन सबको देखने वाला केवल तीसरा भाई ही शेष रहा था परन्तु कहते हैं विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। पुलिस ने कल उसे भी गिरफ़्तार कर लिया।'

शंकर लड़खड़ाया—'गिरफ़्तार कर लिया।'

'हाँ ! उसे गिरफ़्तार कर लिया। उसका अपराध यही था कि वह राजबन्दियों का भाई था।'

शंकर 'हूँ' करके रह गया।

जगदीश ने कनखियों से उसे देखा, कहा—और सुनते हैं वह तुम्हारा मित्र था। कभी तुम लोग साथ साथ पढ़ते थे।

'हाँ'—न जाने शंकर को पसीना क्यों आने लगा। उसने चारों तरफ देखा। वे बातें करते करते सुनसान सड़क पर आ निकले थे। दूर दूर तक सन्नाटा छाया हुआ था। सन्ध्या का धुँधला प्रकाश पृथ्वी और आकाश के बीच बिखर पड़ा था और दूर नगर की सड़क पर कोई राहगीर जल्दी जल्दी घर की ओर लौट रहा था। और जगदीश बिना कुछ देखे उसी तरह बोल रहा था—'और शंकर ! मैंने यह भी सुना है कि उसको गिरफ्तार करवाने में तुम्हारा हाथ है।'

शंकर यकायक लड़खड़ा उठा—'मेरा !!'

'जी, तुम्हारा ! कहते हैं तुमने उसके विरुद्ध रिपोर्ट की है। उसकी ही क्यों रमेश, प्रभात और किशुन की गिरफ़्तारी भी तुम्हारे ही संकेत पर हुई है। तुमने...।'

'जगदीश !'—शंकर क्रुद्ध हो उठा—'तुम जानते हो तुम क्या कह रहे हो ?'

जगदीश ने एक बार शङ्कर को देखा और कहा—'जानता हूँ, शङ्कर।'

'फिर.....।'

'फिर यही कि यदि यह सच है तो इससे बढ़कर घृणित काम और कोई नहीं हो सकता।'

'जगदीश'—शङ्कर का स्वर काँपा—'जगदीश ! तुमने ग़लत सुना है।'

'ग़लत···?'

'हाँ, ग़लत। मेरा पुलिस से कोई सम्बन्ध नहीं है। हो भी नहीं सकता। मैं तो स्वयं...।'

जगदीश मुस्कराया—'जानता हूँ तुम स्वयं जेल में रह आये हो और यह भी जानता हूँ कि कि तुम इसी शर्त पर जेल से छूटे हो कि अपने मित्रों को जेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिजवाते रहोगे...।'

'जगदीश ! जगदीश !!

'मेरी ओर देखो शङ्कर। क्या मैंने झूठ सुना है ? क्या तुमने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की है।'

'नहीं, जगदीश। नहीं। यह सब ग़लत है, यह सब भ्रम है।'

जगदीश का स्वर सहसा तीव्र हो आया। उसने विद्रूप से कहा—'ग़लत है...?'

शङ्कर पहिले तो कांपा परन्तु दूसरे ही क्षण वह दृढ़ हो उठा। बोला—'जगदीश ! मैं क्या करता हूँ, क्या नहीं करता ? इसकी टोह रखनेवाले तुम कौन होते हो ? क्या ठीक है और क्या ग़लत यह मेरे सोचने की बात है तुम्हारे सोचने की नहीं।'

जगदीश तनिक भी नहीं झिझका। उलटा उसकी मुस्कराहट और गहरी हो गई। वह बोला—'तो आख़िर जो कुछ मैंने सुना वह ठीक है। यह अच्छा तो हुआ। मेरा मन शङ्काओं से भरा हुआ था परन्तु अब विश्वास लेकर लौट रहा हूं। मैं तुम्हें मार्ग दिखाने का दावा नहीं करता परन्तु जिस कुमार्ग पर तुम जारहे हो उससे बचने का अधिकार तो मेरा है ही।'

और इतना कहकर जगदीश लौट पड़ा। शङ्कर भयातुर, कम्पित, चकित सहसा स्वयं अपने को धोखा देता हुआ चिल्ला उठा—'जगदीश सुनो तो...।'

लेकिन जगदीश ने नहीं सुना। तब उसे अकेले ही उस अँधेरे रास्ते पर लौटना पड़ा। उसका मन लज्जा, ग्लानि और क्रोध से भरा पड़ा था। क्षण भर में जी में उठता—मैं आत्महत्या करूँगा। दूसरे क्षण सोचता—दुनिया में कौन क्या नहीं करता ? देश का धन बाहिर भेजनेवाले पूँजीपति, विदेशी शक्तियों के प्रचारक राजनीतिज्ञ और सारी ब्रिटिश मशीनरी को चलानेवाले सरकारी नौकर ये सब भी तो देश के दुश्मन हैं। ये सब भी तो अपने स्वार्थ के लिये ग़ुलामी की ज़ंजीरें मज़बूत करते रहते हैं फिर मुझे ही क्यों दोष दिया जाता है ? क्यों...? कि उसका घर आगया। उसे लगा जैसे कोई उसके आगे आगे अन्दर गया हो। वह ठिठक गया। उसने सुना किसीने उसकी पत्नी को पुकारा—'शोभा बहू ! कहाँ है तू ?'

स्वर नारी का था। वृद्धा नारी का जो थक रही थी परन्तु जिसमें क्रोध भरा पड़ा था—'ख़बरदार ! जो मुझे छुआ तो !'

'मांजी ! क्या बात है ?'—स्वर शोभा का था।

मैं तुझसे चरण दबवाने नहीं आई हूँ वरन् यह पूछने आई हूँ कि तुम लोगों को सरकार कितना धन देती है ! कितना तुम खाते हो ? ऐसा कितना बड़ा पेट है तुम्हारा...? क्यों तुम ग़रीबों के पीछे पड़े हो ...!

'मैं कहती हूँ ग़रीब की आह में बड़ी ताक़त है। वह लोहे को पानी कर देती है। तू अपने बच्चों को दूध पिलाती है परन्तु उन जैसे मेरे बच्चे भी हैं जो माँ बाप की याद में तड़पकर रह जाते हैं। सच कहती हूं उनकी आह तुझ पर और तेरे बच्चों पर ज़रूर पड़ेगी। वे सुख की नींद नहीं सो सकेंगे। उनके बदन में कीड़े पड़ेंगे। उनके प्राण तड़प तड़पकर निकलेंगे...।'

'मां-आं-जी-ई-ई.....।'

'तुझे दर्द होता है परन्तु क्या तू जानती है कि जिस तरह तेरे दिल में कसक है, पीड़ा है, उसी तरह मेरे दिल में भी दर्द उठता है, मुझ भी बेटों की याद आती है। मुझे भी मेरी बहू स्वर्ग से पुकारा करती है। मेरे छोटे छोटे बच्चे भी मुझसे पूछा करते हैं—'अम्मां ! मां कहाँ गई ?' 'अम्मां ! चाचा कब आवेंगे ?'' शोभा विह्वल हो उठी। उसने रोते रोते कहा—'मांजी ! मैं क्या करूँ ?' 'क्या करूँ ? कुछ नहीं बहू ! केवल अपने पति से इतना पूछ लेना कि क्या सचमुच वह तुझे प्यार करता है ! क्या सचमुच वह तेरे बच्चों को चाहता है ? क्या सचमुच.....।'

कि आगे शंकर से सुना नहीं गया। उसका सिर चकरा उठा जैसे मक्खियां छत्ते से उड़ चली हों। वह घबराकर फिर बाहिर लौटा और बिना किसी उद्देश्य के पागलों की भाँति दूर तक चला गया और लौट भी आया। उसे अचरज हुआ कि वह फिर अपने दरवाजे पर खड़ा था। इस बार वह ठिठका नहीं, सीधा अन्दर चला गया। शोभा तब बरामदे में खाट पर बैठी थी। बच्चे सो रहे थे और बिजली का तेज़ प्रकाश आँगन में बिखरा पड़ा था। शोभा ने शङ्कर को देखा और शङ्कर ने शोभा को। दोनों की आँखें लाल थीं। दोनों का चेहरा उतर रहा था। दोनों के हृदय बरसात के बादलों की तरह भरे पड़े थे। शोभा सोच रही थी—आज इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ूंगी पर.....पर ये तो कुछ दुखी जान पड़ते हैं।

शंकर सोच रहा था—आज मैं शोभा से कह दूँगा कि वह किसी के मुँह न लगा करे। दुनिया अपनी आँख के शहतीर को नहीं देखती, दूसरों की आंख का तिनका उसे खटकता है। देशभक्त है तो जेल जाने पर रोते क्यों हैं? कष्टों से कांपते क्यों हैं.....?

परन्तु—उसने सोचा—आज नहीं! आज शोभा दुखी है और फिर ऐसी बातों की चर्चा करनी ही नहीं चाहिये!

कि शोभा बोली—'खाना ले आऊँ?'

'खाना.....।'

'हां! यहीं खाओगे या रसोई में?'

'नहीं,! मैं खाना नहीं खाऊँगा। मुझे भूख नहीं है।'

'भूख नहीं है?

'नहीं।'

'क्यो नहीं है? क्या खाया था? क्या पुलिसवालों के पास गये थे? उनकी जेब से क्या ख़र्च होता है...?'

'शोभा'—शङ्कर का स्वर तेज हुआ।

शोभा स्वयम् तीव्र हो रही थी। कांपी नहीं,बोली—जानती हूँ गुस्सा आ रहा है। आयेगा क्यों नहीं? उन लोगों की संगति ही ऐसी है? मनुष्य को पशु बना देती है। देश कितना अभागा है, जो पशुता का नाश करने के लिये नियत किये गये थे वे स्वयं पशु बन गये।

शङ्कर ने अचरज से शोभा को देखा—'तुम्हें यह ज्ञान किसने दिया? तुम्हें हो क्या रहा है?'

'क्या हो रहा है—शोभा लापरवाही से बोली—बतादूं आपको! मुझे अपनी और अपने बच्चों की चिन्ता हो रही है। आपने हमारे साथ धोखा किया है। आपने हमें स्वर्ग का लालच देकर नरक में ढकेल दिया है।'

शङ्कर को कँपकँपी आने लगी—'शोभा! बन्द करो अपनी ज़बान! वरना.....।'

'वरना!'—शोभा ने दोहराया।

'शायद मैं कुछ कर बैठूँ। मुझे क्रोध आ रहा है। मैं पागल हो रहा हूं।'

'आप पागल हो रहे हैं। आज जाना है आपने? मैं तो समझती हूँ आप बहुत दिनों से पागल हैं। भला मस्तिष्क ठीक रहते कोई ऐसा काम कैसे कर सकता है।'

शङ्कर का मस्तिष्क और भी चकरा उठा। जी में आया सामने बैठी हुई शोभा का गला घोट दे लेकिन... मस्तिष्क में एक झटका लगा। बुढ़िया की बातें याद आने लगी.....शोभा स्वय दुखी है दुखी मनुष्य सब कुछ कर सकता है।.....

फिर मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? आत्महत्या करलूँ? उसका शरीर झनझना उठा। वह बैठा नहीं रह सका। उठ खड़ा हुआ, बोला—'शोभा! मैं नहीं जानता था तुम मुझसे इतनी घृणा करती हो। काशकि तुम मेरे अन्दर झाँक पातीं। परन्तु अब क्या हो सकता है? मैं जिस राह पर चल रहा हूँ उससे अब लौटा नहीं जा सकता परन्तु तुम दूसरी राह चुनने को स्वतन्त्र हो। मैं रोकूंगा नहीं।'

और इतना कहकर शङ्कर यन्त्र की भांति द्वार की ओर मुड़ चला। शोभा जैसे नींद से जागी। क्रोध और झुंझलाहट सब काफूर हो गई। वह काँप उठी। वह इस अवस्था के लिए तैयार नहीं थी। एकदम उठ खड़ी हुई—'सुनिये! अजी सुनिये तो!'

'आपको मेरी सौगन्ध...।'

शङ्कर नहीं रुका।

शोभा दौड़ी। बाहिर की दहलीज में आकर शंकर का हाथ पकड़ लिया। जो क्षण भर पहिले क्रोध और अभिमान से भरी पड़ी थी वही आंखों में आंसू भरकर बोली—'नही, नहीं। आप नहीं जा सकते।'

'हट जाओ शोभा'—शङ्कर क्रुद्ध था।

'नहीं, नहीं! मैं नहीं हटूंगी मैं आपके साथ चलूँगी। नरक में, स्वर्ग में, दुख में, सुख में आपका साथ नहीं छोड़ूँगी...।'

शङ्कर विद्रूप से मुस्कराया—शोभा! आख़िर तुम नारी हो। अपना पार्ट खेलना नारी को खूब आता है।

शोभा उसी तरह बोली –कुछ कह लो पर मैं आपको जाने नहीं दूंगी।

'शोभा! तुम मुझसे घृणा करती हो?'

'घृणा'—शोभा ने आंसू पोंछ डाले—'आप ग़लत समझे! मैं आपसे घृणा नहीं कर सकती। कभी नहीं परन्तु...।

'परन्तु.....।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परन्तु आपके काम मुझे अच्छे नहीं लगते।'

शंकर सहसा अपने ही विरुद्ध विद्रोह कर बोल उठा—'काम तो मुझे भी अच्छे नहीं लगते' और कहकर वे स्वयं अपने शब्दों पर विश्वास नहीं आया परन्तु शोभा को जैसे स्वर्ग मिला—'मैं जानती हूं। आपको भी अच्छे नहीं लगते। किसी भी इन्सान को अच्छे नहीं लग सकते पर कभी कभी इन्सान अपने ही विरुद्ध कार्य करने को विवश हो उठता है,.....।'

'शोभा! शोभा! तुम ठीक कहती हो मैं बेबस हो गया था परन्तु अब वह विवशता मुझे बांधे नहीं रख सकेगी। मैं अब उस पाश को तोड़ दूँगा।'

'बेशक'—शोभा का हृदय हर्ष से गदगद हो उठा। वह बोली—'आओ प्रियतम! हम यह स्थान छोड़कर कहीं दूर, बहुत दूर चलें। जहां न गुलामी हो, न पुलिस हो, न रिपोर्ट करने की ज़रूरत हो। न किसी पर अत्याचार हो। न किसी की शिकायत हो! नया घर बसाते हमें देर नहीं लगेगी। मैं चरखा कातूंगी, कपड़े सीऊँगी। आप बच्चों को पढ़ाना या खेती करना। कितना अच्छा रहेगा?'

कितना सुखमय होगा। कोई उलाहना देने न आवेगा।'

शंकर ने अचरज से इस विह्वल पर दृढ़ होती नारी को देखा। जैसे विश्वास नस नस में उमड़ पड़ा। गरदन ऊँची करके उसी अन्धकार में उसने कहा—'तो चलो। नये जीवनकी तैयारी करो। तुम्हें अब इस पति के कारण लज्जित, अपमानित होने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।'

और वे घर में लौट आये। उनके बच्चे सो रहे थे। वे दोनों भी फिर कोई बात किये बिना, आत्म विश्वास और भविष्य की कल्पना से भरे भरे सो गये। उसी रात दोनों ने भिन्न भिन्न स्वप्न देखे। शोभा ने देखा—वे सब इस नगर से सदा सदा के लिये विदा होकर आकाश मार्ग द्वारा किसी दूर देश में उड़े जा रहे हैं। शंकर ने देखा—वह बन्दी होकर स्वर्गलोक के न्यायालय में ले जाया गया है। उसका न्याय करनेवाला पुरुष अतिशय वृद्ध है। उसकी आखें तेज से पूर्ण हैं, उसके बाल श्वेत रेशम के समान हैं। उसकी पोशाक रत्नों की आभा से चमकती है। उसके समान दो और पुरुष वहां हैं। वे अपेक्षा कृत युवक हैं उनकी बलिष्ठ मांसल भुजाएं जड़ित केयूरों से सुशोभित हैं। उनमें से एक पुरुष रहा है—'यह मनुष्य है। पेट के लिये पाप करना इसे पेशा है। यह अपनी ही जाति पर अत्याचार करता है अपनी स्त्री अपने बच्चों के पालने के लिये यह अ समान मनुष्यों की स्त्रियों और बच्चों को भूख से त तड़पकर मरने को विवश करता है। यह मानता है आज़ादी मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है परन्तु अ आज़ादी के लिये दूसरों को गुलाम बनाना इसे प्रिय है न्याय का ढोंग इसे खूब आता है। सब कुछ करके अ हाथ झाड़ देता है क्योंकि यह मानता है कि जो है पूर्वले जन्मों के पापों का परिणाम है।'

यह सुनकर वृद्ध पुरुष बहुत हंसे। बोले—'इसे पुनर्ज बहुत प्यारा है तब यह सुन्दर रहेगा कि इस मनुष्य अगले जन्म में नाबदान का कीड़ा बना दिया जावे..

इस समय शङ्कर ने कुछ कहना चाहा परन्तु जैसे उसने मुँह खोलना चाहा उसकी आंखे खुल गईं। उ इस विचित्र सपने पर बड़ी हँसी आई। उस समय पू में पौ फटने लगी थी। वह उठा और सदा की भां नित्यकर्म में लग गया। फिर शोभा जागी, बच्चे जा जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं हो। परन्तु मन ही म दोनों उमड़-घुमड़ रहे थे। पूछ रहे थे—'अब क्या?'

फिर तैयार होकर शङ्कर बाहिर जाने लगा बोला—'आने में देर हो तो चिन्ता मत करना।'

शोभा बोली—'अच्छा! लेकिन आप...।'

'हां आज कुछ निर्णय करके ही लौटूंगा।'

और वह चला गया। शोभा सदा की भांति काम लग गई। रसोई में खटर पटर मची। गिरस्ती की गा सदा की पुरानी लीक पर दौड़ने लगी। धीरे धीरे स की धूप तीव्र हुई, दोपहर आ गया। खाना पीना हुआ शोभा बार बार द्वार की ओर देखती रही पर शङ्कर न आया। दोपहर बीत गया, सन्ध्या आने लगी। शो की चिन्ता बढ़ी। उसने घर के सामान पर एक द डाल ली थी। क्या ले जाना होगा? क्या छोड़ना हो सच तो यह है काफी सामान उसने बांध भी लिया थ न जाने किस वक्त चल दे।

कि दरवाज़े पर खटखट हुई। वह दौड़ी—वे आगये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वह चौंक पड़ी—द्वार पर एक युवक था। वह उसे जानती है। बुढ़िया का तीसरा लड़का था जो सुना था दो दिन बीते गिरफ़्तार हुआ था और कहते हैं उसके पति की रिपोर्ट पर ही गिरफ़्तार हुआ था। शोभा सिर से पैर तक सिहर उठी। उसके मुँह से निकला—'तुम !'

वह मुस्कराया—'हां मैं हूँ। क्या अन्दर आ जाऊँ।'

शोभा यंत्रवत एक ओर हट गई। वह अन्दर चला आया। वह मन में मुस्करा रहा था। उसने कहा—'मुझे देखकर तुम्हें अचरज होता होगा पर घबराओ नहीं। मैं छूट गया हूँ और भइया ने मुझसे कहा है...।'

वह फुसफुसाई—'भइया ने !'

'हां, शङ्कर भइया ने ?'

'वे तुम्हें कहां मिले और अब कहां हैं ?'

'वही, वही बता रहा हूं, भाभी। उन्होंने कहा है कि सवेरे जब घर से चला था तो तुमसे कहीं दूर भाग चलने की बात कही थी पर फिर सोचा भागना तो कायरता होगी। मुझे यहीं रहना चाहिये।'

शोभा का भग्न यंत्र की भांति दूर होने लगा। उसने कहा—'ठीक ही सोचा उन्होंने।'

'हां भाभी। ठीक ही सोचा उन्होंने और सोचते क्यों न ? तुम रास्ता सुझानेवाली जो थीं।'

शोभा लज्जा से, हर्ष से भर उठी। वह कहता रहा—यही सोचकर वे यहां से सीधे सिटी मजिस्ट्रेट के पास गये और अपने गिरफ़्तार होने से लेकर आज तक की सब कहानी उन्हें सुना दी।

शोभा कांपी—'मजिस्ट्रेट के पास गये। तो अब कहां हैं ?'

'जहां होना चाहिये।'

'तुम कहना चाहते हो वे जेल में हैं।'

'हां भाभी ! वे जेल में हैं। वहीं उनकी मुक्ति का द्वार है। वहीं वे मुझे मिले थे। वे प्रसन्न हैं बहुत प्रसन्न। डरो नहीं, वे जल्दी लौटेंगे।'

शोभा को न जाने क्या हुआ ? क्षण भर पहिले कांपता हुआ शरीर निश्चल हो गया। प्राणों में स्फूर्ति भर उठी, मुख पर एक तेज उभर आया। बोली—'अरे डरना क्या ? अब तो चाहे उन्हें फांसी भी क्यों न हो जावे।'

'भाभी'—युवक सहसा पुकार उठा।

लेकिन भाभी तो आत्मविभोर हो उठी थी।

प्रवचन

अक़्ल तुमको मिली है और इसलिए कि तुम उससे काम लो। उसका काम यही है कि तुम अन्तरात्मा को सुनो और पुराने लबादों को उतारकर फेंक दो। आज की लड़ाई आज के हथियारों से लड़ो, आज के हथियार भी गढ़ो। आज के सुने, देखे, सूँघे, चखे और छुए से फ़ायदा उठाओ। आज के तजुरबे को भी आज के हथियारों की गढ़न में मिलाओ। तुम्हारे हथियार आज के न रहकर अब के बन जाएं। ऊपर की सलाह मानकर तुम्हें पछताना न पड़ेगा, और यों न कहना पड़ेगा कि ऐसा कर लेते तो हम यह कर डालते ! हथियारों को कहीं हाबिटज़र, टैङ्क, बम न समझ बैठना। लड़ाई ने तुम्हारे कान ही नहीं मन को भी गन्दा कर रखा है। इस कारण ऐसा समझ बैठना बड़ी बात नहीं। लड़ाई इन हथियारों से नहीं जीती जाती। नहीं तो अब तक सारी दुनिया पर हिटलर का राज्य होता या लायड जार्ज अङ्गरेज़ों को १९१८ में ही सारी दुनिया सौंप देते। लंका जीती थी रामचन्द्र के दिल की उस सफ़ाई ने जिससे उन्होंने विभीषण को गले लगाया था। आफ़त की राक्षसी सेना तीरों तोपों से न जीती जाएगी। उसके लिए ज़रूरत होगी उनके राजा अहंकार को कुचलने की जो तुम्हारे हृदय कुटी में घुसकर विजय-सीता को हर ले जाने की सोच रहा है। —महात्मा भगवानदीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का महान तीर्थ सेवाग्राम

श्री रामनारायण उपाध्याय

भारतवर्ष के चार कोनों पर क्रमशः चार तीर्थ स्थित हैं। प्रतिदिन अनेकों व्यक्ति देश के इस कोने से उस कोने तक फैले हुये इन तीर्थों के ज़रिये देव-दर्शन के साथ ही साथ देश-दर्शन भी करते रहते हैं। वह देव-दर्शन क्या जिसमें देश-दर्शन न हो और वह देश-दर्शन क्या जिसमें जन दर्शन न हो? और यदि आप एक साथ ही "देवता", "राष्ट्र देवता" और "जन-देवता" के दर्शन करना चाहें तो एक बार सेवाग्राम अवश्य हो आइये जहाँ चालीस करोड़ जनता के प्राण महात्मा-गांधी रहते हैं। सेवाग्राम सारे भारत के मध्य में स्थित जन देवता का एक मिलन-केन्द्र है। वह भारत राष्ट्र का रीढ़ स्थान है। उसे आज के हिन्दुस्तान का तीर्थ, राजधानी, आश्रम या प्रयोगशाला चाहे जो कुछ भी कहा जा सकता है। इस एक केन्द्र बिन्दु पर आप अपने पैमाने की नोक को दृढ़ता से जमा लीजियेगा और फिर उसके दूसरे सिरे को फैलाते जाइए। क्रमशः गांव शहर प्रांत राष्ट्र और अखिल विश्व उसकी परिधि में आते जायेंगे। गीता में भगवान कृष्ण ने जो "विराट दर्शन" कराया है गांधीजी का "विश्व दर्शन" भी उसी दिशा में एक प्रयोग है। गांधी को लेकर आप समस्त संसार से विश्व बन्धुत्व का नाता क़ायम कर सकते हैं और समस्त संसार में गांधी का तथा गांधी में समस्त संसार का दर्शन कर सकते हैं। सेवाग्राम में आप एक साथ ही ऋषि-कालीन भारतीय संस्कृति के, आधुनिक युग की सर्वोत्कृष्ट "सभ्यता" के, संसार के महान से महान क्रांतिकारी और निर्माणकारी के, "सर्वोदय" और "विश्वबन्धुत्व" के उपासक के, युगावतार-महापुरुष के और महामानव के दर्शन कर सकते हैं।

वर्धा स्टेशन से उत्तर की ओर एक सीधी-सड़क चली गई है। यह अपने आपमें एक ख़ास उद्देश रखती है। जिस तरह "प्रेम" की गली इतनी संकरी होती है कि उसमें दो नहीं समाते या कि सत्य की राह इतनी बारीक होती है कि उसपर दो मत लेकर नहीं चला जा सकता, उसी तरह यह भी इतनी निश्चित है कि इस पर दुविधापूर्वक नहीं चला जा सकता। कारण यह सदाचार और राजनीति के समन्वयकर्ता विश्ववन्द्य महात्मा गांधी से जा मिलने के लिये ही बनायी गयी है।

ज्यों ज्यों आप इस रास्ते पर आगे बढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों शहर और शहरों से सम्बन्धित तमाम वस्तुएं आपसे बिछुड़ती जायेंगी। यात्री के मन में सेवाग्राम के पथ पर चलते चलते कितनी ही कल्पनायें बनती मिटती रहती हैं। लेकिन मनुष्य द्वारा कल्पित जितने भी स्केच हैं सेवाग्राम उन सबसे भिन्न है। वह न तो गांव है न शहर न तो किसी प्राचीन ऐतिहासिक कला का नमूना है, न आधुनिक विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण। वरन वह तो है प्राचीन संस्कृति और आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ विचारधारा के समन्वय का प्रतीक "आश्रम", एक ऐसा आश्रम जो बाह्यतः छोटा प्रतीत होने पर भी अपने आपमें एक सम्पूर्णता लिये हुये है। विश्वमानव के कल्याण और युग-निर्माण की जितनी भी योजनायें हैं—सेवाग्राम को यदि उन सबका केन्द्र स्थल कहें तो अत्युक्ति नहीं।

वर्धा से सेवाग्राम जाते हुये रास्ते में चौथे माइल स्टोन से आगे दाहिने हाथ पर जो इमारत पड़ती है वह है "खादी–विद्यालय" जहाँ खादी की सम्पूर्ण शिक्षा का आयोजन है। खादी के विज्ञान, मनोविज्ञान और अन्य ज्ञान के साथ खादी के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारकर उसका सम्पूर्णतः पालन करनेवाले योग्य "खादी सेवक" तैयार करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। उससे कुछ आगे बढ़ने पर बायें हाथ पर "हिन्दुस्तानी तालीमी संघ" का दफ़्तर है जहां देश के कोने कोने से विद्यार्थी आते हैं और सूत की कताई और ग्रामोद्योग के ज़रिये सम्पूर्ण शिक्षण की ट्रेनिंग लेकर पुनः देश में बिखर जाते हैं। इसका उद्देश है किसी चुनी हुई दस्तकारी तथा बच्चों के प्राकृतिक और सामाजिक प्रतिवेश के माध्यम के द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण और सुसङ्गत विकास। श्री आर्यनायकम् और बहिन आशा देवी इसके सञ्चालक हैं। आजकल यहां पर देश के प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र शांतिनिकेतन के विद्यार्थी श्री देवी प्रसाद जी चित्रकला के शिक्षक हैं। तालीमी संघ का ग़ौर से अध्ययन करनेवाला कोई भी दर्शक आपके सत्य स्वभाव से आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकता। मैं क़रीब दो रोज सेवाग्राम रहा जिसमें से अधिकांश समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके ही साथ बीता। आपने यह कहते हुए कि आप तो लेखक और कहानी लेखक दोनों हैं लेकिन मैं तो सिर्फ "रूप की कहानी" का लेखक हूँ, अपनी चित्रकला के अनेकों नमूने दिखाये। प्रकृति के अंचल और बापू के वरद हस्त के नीचे स्थित एक नन्हीं सी कुटिया में शांति निकेतन और सेवाग्राम के समन्वय के प्रतीक इस तरुण कलाकार की तूलिका न जाने कितने चित्र आँकती रहती है।

यहीं पर आप खादी के शुद्ध वस्त्रों में एक शुभ्र वर्णीय अङ्गरेज़ महिला को दिलचस्पी से अपने कार्य में संलग्न पायेंगे। आज से क़रीब ६ वर्ष पूर्व संसार के विभिन्न देशों में भ्रमण करते हुये आप एक विश्व पर्यटक यात्री के रूप में भारत आईं थीं। जब मैंने उनसे भारत आगमन का प्रारम्भिक उद्देश्य पूछा तो आपने बताया था कि, "विश्व मेरा घर है; जहां मैं अपने कमरों को देख रही हूं।" और फिर कुछ ही दिन हिन्दुस्तान में रहने के बाद तो आपने अपनी यह स्पष्ट राय ज़ाहिर की थी कि "मैं दुनिया के विभिन्न देशों में घूमी हूँ लेकिन हिन्दुस्तान आकर मुझे लगा कि मैं अपने घर आ गई हूं।" इङ्गलैण्ड से ही मुझे यहां के जीवन के प्रति आकर्षण रहा है और ख़ासकर "महात्मा गांधी" के नाम से। स्व० दीनबन्धु एंड्रूज जब भी गांधीजी के पास रहने के बाद इङ्गलैण्ड आते थे मैं हरबार श्रद्धा से उनके दर्शन करने जाया करती थी। उनसे मुझे जीवन में गहरी प्रेरणा मिली है। आप कुछ समय तक शांतिनिकेतन में गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथजी ठाकुर की प्रमुख परिचारिका के रूप में रही हैं। बाद में आपने इङ्गलैण्ड की प्रमुख शांतिवादी संस्था "फ्रेंड्स सोसाइटी" के साथ बङ्गाल के सबसे अधिक अकाल पीड़ित इलाके "कंटाई" में काफ़ी सेवाकार्य किया! वहां से लौटने के बाद से आप सेवाग्राम में हैं और गांधीजी द्वारा आयोजित रचनात्मक कार्य कर रही है। स्वभाव से आप अत्यन्त ही भावुक, सादगी पसन्द, संगीत और चित्रकला प्रेमी, सेवा परायण महिला हैं। यों आपका पूरा नाम तो है श्री "बारबरा हार्टलैण्ड" लेकिन आजकल आप सेवाग्राम और अपने मित्रों में गांधीजी द्वारा दिये गये "बसन्ती बहन" नाम से परिचित हैं।

आइये, अब आगे की ओर बढ़ें। देखिये अब ऐसे स्थान पर आ पहुंचे हैं जहां से "बापू की कुटिया" नज़दीक ही पड़ती है।

कृपया दो मिनिट के लिये शान्त हो जाइये। यह गांधीजी के महान व्यक्तित्व के साथ, अपने आपको समरस कर देने और उनकी गति विधि में सम्पूर्ण सहयोग देते हुये अन्त में उसीके लिये अपने आपको समर्पित प्रत्येक कर देनेवाली, राष्ट्रमाता स्व० कस्तूरबा की कुटिया है। यह भारतीय नारी के त्याग और बलिदान की मूक कहानी है।

और यह है राष्ट्र के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन दे देने और अन्त में उसीके लिये अपने प्राणों को भी समर्पित कर देनेवाले गांधीवाद के महान विद्वान, नम्र सेवक तथा महान पत्रकार श्री देसाई की कुटिया। स्वयं उन्हींके शब्दों में कहें तो वे "बापू के मन्त्री, सेवक और पुत्र का एक सम्मिलित पुलिन्दा थे।" और भी संक्षिप्त में कहूँ तो 'महादेव भाई के लिये गांधीजी ही साक्षात ईश्वर थे और वे अपने मन, वचन और कर्म से उनके प्रति सम्पूर्ण समर्पित व्यक्ति थे।' या महादेव भाई अपने दैनिक जीवन से ही नहीं वरन विचारों से भी गांधीजी से इस क़दर तदाकार हो गये थे कि बापूजी की अस्वस्थता के दिनों, हरिजन सेवक में लिखे गए अग्रलेखों को पढ़कर उसका दैनिक पाठक भी दुविधा में पड़ जाता था कि, वे बापूजी द्वारा लिखे गये हैं या महादेव भाई के द्वारा। और पूरे लेख को पढ़ जाने के बाद भी उसकी अपनी शङ्काओं का समाधान तब तक नहीं होगा जब तक कि वह अन्त में दिये गये नाम "महादेव ह० देसाई" को न पढ़ ले।

एक दिन उन्होंने कहा था कि बापू से भिन्न चार गज़ की दूरी भी मेरे लिये असत्य है और अपने कहे अनुसार ही आज तो वे अपने सूक्ष्म शरीर को छोड़कर ज्यादह और महान आत्मा के ज़रिये हम सबके और गांधी जी के अधिक नज़दीक आ पहुँचे हैं। मन प्राण में समा गये हैं।

ज़रा और आगे बढ़कर देखिये। दिनभर अपने चरखे के तारों में निमग्न श्री प्रोफेसर जयकृष्ण जी सामने बैठे हैं। आज तो सहसा कोई यह विश्वास नहीं कर सकेगा कि गांधी जी की कुटिया के सामने रसोई घर के बरामदे में, दिनभर चर्खा चलाने में तल्लीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वह व्यक्ति है जो एक ओर तो बम्बई यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट, गुजरात विद्यापीठ के अध्यापक और यूरोप के यात्री रहे हैं और दूसरी ओर जिन्होंने आत्मदर्शन की प्यास में अपने शरीर को इतना कष्ट दिया है कि, वर्षों तक अपनी कमर से लंगोटी लगाये, खुले मैदानों आसमान की चादर ओढ़े पैदल यात्रा करते हुये अपने ओठों को ताँबे के तार से सीकर भिक्षा में मिलनेवाले आटे को पानी में घोल और कभी कभी सिर्फ़ नीम की पत्तियां ही खाकर वर्षों निकाल दिये हैं। आपका अधिकांश जीवन अपरिग्रही–अकिंचन और परित्यक्तावस्था में बीता है। अंत में तीन वर्ष के लम्बे मौन के बाद एक दिन गांधी जी की अनुमति से आप पैदल ही सेवाग्राम आये और तब से यहीं पर हैं। प्रारम्भ में आप इतने विरक्त से थे कि कुछ भी श्रम करने की ओर आपकी रुचि नहीं थी। आते ही गांधी जी ने आपको यह कहते हुये कि "जो बिना श्रम किये खाता है वह चोरी का अन्न खाता है अतएव सबको शारीरिक श्रम रूपी यज्ञ में भाग लेना ही चाहिये", 'श्रम-यज्ञ' का महत्व समझाया। लेकिन जब हर बार आपने कुछ भी कर सकने में अपनी लाचारगी ज़ाहिर की तो एक दिन मधुर विनोद में गांधी जी ने कहा "ऐसा कैसे चलेगा। जानते हो मुझे तुम्हारे हाथ का कता कच्छ पहनना है।" तब जाकर कहीं वे राजी हुये। और प्रतिदिन स्नान के बाद एकाग्रता, आत्मध्यान व पवित्रता से सूत कातकर अंत में एक दिन ग्यारह हज़ार गज़ सूत अत्यंत श्रद्धा से बापू को भेंट किया। इतिहास में यह "विरक्त" पर "कर्मयोगी" की पहली विजय थी। और तब से चला वह चर्खा जो आज तक भी बन्द नहीं हो पाया है वरन अनेकों "सूत्र यज्ञ" की प्रेरणा दिये रहता है।

इससे आगे बढ़ने पर गांधीजी के सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल अपने आफ़िस के कार्य में दिलचस्पी से संलग्न मिलेंगे। गांधी जी जैसे अहिंसात्मक राजनीतिज्ञ महापुरुष के सेक्रेटरी का कार्य उतना ही ज़िम्मेदारी पूर्ण होता है जितना कि किसी युद्ध में संलग्न सेनानायक के सेक्रेटरी का कार्य। साधन और साध्य के रास्ते की नीति पर ही अपना आन्दोलन चलाये रखने के कारण उनके नाम आनेवाले पत्रों और समाचारों को बारीकी से देखकर, महत्वपूर्ण बातों को उनके समक्ष रखना, आवश्यक विषयों पर हुये, पत्र व्यवहार, प्रश्नोत्तर एवम् वक्तव्यों प्रकाशित कराना तथा विश्व की गति विधि के भारतीय राष्ट्र को नेतृत्व दिये रहने के लिये, गांधीजी सन्देश को देश और विदेशों में प्रसारित करना ऐसे ज़िम्मेदारी और महत्वपूर्ण कार्य होते हैं जिन्हें द्वारा समझा नहीं जा सकता। उसके लिये जिस विद कार्य-दक्षता, लगन और सेवापरायणता तथा सूक्ष्म व्यापक मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है–उस सम्मिलित नाम है—'गांधी जी का सेक्रेटरी पद!'

और वह देखिये बापू की कुटिया के बगल में हाथ की ओर दमे के रोग से त्रस्त, अपने पतले दु शरीर पर विशाल मस्तिष्क लिये तख्त पर जो विचार आसीन हैं वह और कोई नहीं गांधीवाद के प्रखर गम्भीर पंडित सत्य के शोधक, अहिंसा के आचार्य प्रेम की मूर्ति श्री किशोरलाल जी मश्रूवाला हैं। गांधी को और खासकर गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत आदर्श को सबसे अधिक सबसे अच्छा और सब से समझकर आपने हृदयंगम किया है। और उसे कसे पर कसकर अपने जीवन और व्यवहार द्वारा व्य समाज, धर्म और राजनीति जैसे विभिन्न क्षेत्रों में आ उसके प्रयोग दिये हैं। आप अत्यंत सादगी पसन्द, स्वभाव के निराभिमानी और लोकप्रिय व्यक्ति हैं। से ग्राम आकर कोई भी यात्री आपके "सरल और महा व्यक्तित्व से आकर्षित और प्रभावित हुये बिना नहीं सकता।

एक बार एक व्यक्ति ने आपसे लिखकर पूछा "जगत में मनुष्य की जो औसत आमदनी है उ अधिक खर्च करना मैं एक तरह का गुनाह सम हूँ।" इसके उत्तर में आपने "त्याग का ग़लत आद शीर्षक से "हरिजन सेवक" में एक बहुत ही सुन्दर लिखा। आप उसमें लिखते हैं, धनवान बनने का आ जिस तरह ग़लत है उसी प्रकार अविवेक से दा को छाती से लगाये रखने का आदर्श भी ग़लत है हमारा ध्येय है उस दारुण द्रारिद्रय को दूर जो आज दुनिया को, पीस रहा है। दारिद्रय की करने या उसे टिकाये रखने का नहीं किन्तु उसे का। दारिद्रय के टिके रहने या बढ़ने में, जिस अंश हमारा योगमय जीवन कारण रूप हो उतने अंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका त्याग करना आवश्यक ही समझा जाना चाहिये। पर इसके साथ ही जितने अंश में, उत्पत्ति की न्यूनता, अज्ञान, आलस्य, निरुद्यम, व्यसन, अतियोग, उड़ाऊपन, खर्चीली रूढ़ियां, अप्रामाणिकता, अनीति, परतंत्रता सावधानता या बुद्धि की कमी, आदि दारिद्र्य के कारण हैं उतने अंश में उन्हें भी दूर करना है, यह हमें भूलना नहीं चाहिये। दोनों रुग्ण दशाओं को छोड़कर हमें स्वतंत्र निरोगी जीवन का नियम खोजना चाहिये। श्री विनोबा-जी ने एक बार समझाया था कि, "डूबते हुये मनुष्य पर तरस खाकर, हम उसके साथ डूब जायें यह धर्म नहीं। धर्म तो हमारा उसे तारना है। इस प्रयत्न में हम भले ही डूब जांय; इसमें दोष नहीं। पर हमारा उद्देश डूबने का नहीं हो सकता वह तो स्वयं तरकर तारने का ही हो सकता है"। "अन्न की निन्दा न करना अन्न को खराब न होने देना, अन्न को बढ़ाना, अन्नार्थी को वापस न लौटाना, य व्रत हम ले लें"।

श्री मश्रुवाला जी के सम्बन्ध में एक बार स्वयं गांधीजी ने लिखा था कि "किशोरलाल मश्रूवाला हमारे बिरले कार्य-कर्ताओं में से एक हैं। काम करते हुये वह कभी थकते नहीं। वह अत्यन्त जागरूक रहते हैं। उनकी जाग्रत दृष्टि से ब्योरे की कोई भी बात नहीं घट पाती। वह एक तत्ववेत्ता हैं और गुजराती के लोकप्रिय लेखक। गुजराती के यह जैसे विद्वान हैं वैसे ही मराठी के भी हैं। वह जातीय, साम्प्रदायिक या प्रान्तीय अहङ्कार या दुराग्रह से बिलकुल मुक्त हैं। वह एक स्वतन्त्र चिन्तक हैं। वह एक पैदाइशी समाज सुधारक हैं। समस्त धर्मों के विद्यार्थी हैं। वह ज़िम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापन बाज़ी से भागते हैं! इतने पर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो ज़िम्मेदारी ले लेने पर उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ पूरा कर सके।"

सेवाग्राम में और भी कुछ सत्यसाधक विभूतियां हैं। लेकिन हमें आये काफी समय हो चुका है आइये। अब महात्मा गांधी के दर्शन करें।

गांधी जी के दर्शनों से लिये सबसे अच्छा अवसर सुबह पाँच बजे और शाम को आठ बजे की प्रार्थना का समय है। कोई भी व्यक्ति उसमें सम्मलित होकर उनके दर्शन ही नहीं वरन "आत्म दर्शन" भी कर सकता है। इस समय आप एक साथ ही "राजनीतिज्ञ और संत" गांधी का सम्मिलित दर्शन कर सकते हैं।

प्रार्थना के समय विशाल धरित्री के खुले प्रांगण में, वर्तुलाकार रेती पर जनसाधारण एवम् आश्रम-निवासियों के बीच एक छोटे से लकड़ी के पटिये के सहारे बैठे गांधीजी ऐसे मालूम होते हैं मानो ग्रंथों में वर्णित-वैदिक युग के कोई "ऋषि" अपनी शिष्य मंडली के साथ आसीन हों। प्रार्थना की घंटी बजते ही जब अपने अपने कार्यों के दक्ष भिन्न भिन्न प्रांत, जाति और देश के लोग प्रार्थना-स्थल की ओर दौड़े आते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई "महामानव" सबको अपने में मिला लेने का आह्वान कर रहा हो। मानों श्री० रवीन्द्रनाथ के शब्दों में कह रहा हो कि "हे हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, पारसी, ईसाई और अंगरेज़—तुम सब आओ, मनुष्यों का महासागर भारत तुम सबका स्वागत करता है।" और फिर रात्रि की निस्तब्धता में, साथ लाई हुई लालटेनों का प्रकाश भी जब मद्धिम कर दिया जाता है तब सचमुच ही रूप और रंग से परे उस मनुष्यों के समुदाय में, अपने अधखुले बदन पर श्वेत खादी के वस्त्रों के बीच, सत्य व शांति के आशीर्वाददाता की तरह, पालथी मारे शांत, अडिग, ध्यानस्थ और स्थिति प्रज्ञ बापू बैठे रहते हैं।

यह प्रार्थना ही बापू के आश्रम जीवन का प्राण है। और इस प्रार्थना का स्वरूप क्या है—वेद और उपनिषद के श्लोक, गीता के स्थितप्रज्ञ के लक्षणवाले अध्याय का कंठस्थ पाठ। रामायण की चौपाइयों का सस्वर गायन, कुरान की आयतें और संत तुलसीदास जी से लगाकर रैदास व कबीरदास जैसे किसी भी भाषा के संत के, एक दो पद्यों का सितार पर संगीत, हरे राम की ध्वनि और अन्त में सर्वोदय की कामना। यह प्रार्थना क्या है मानों, "सर्व-धर्म-समन्वय" के ज़रिये, विश्व बन्धुत्व और विश्वकल्याण का नम्र प्रयत्न। यह प्रार्थना ही बापू का जीवन है। गांधीजी की धमनियों में जो रक्त बह रहा है वह इस प्रार्थना से अनुरंजित है। गांधीजी जिस वातावरण में जी रहे हैं वह इस प्रार्थना से अनुप्राणित है। गांधीजी की मुष्टिक का लौह स्वरूप, गान्धी जी के मास्तष्क की मौलिकता, गान्धीजी की विचार और कार्य रूपी प्रत्येक सृष्टि प्रार्थना से उठती है। और प्रार्थना में समाती है। वह उनके विचार और कर्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामंजस्य शक्ति है। जिस विचार और कर्म की सृष्टि के गान्धी जी सृष्टा हैं—प्रार्थना उसका प्रकाश है। उनके पांचो तत्व प्रार्थना मय हैं।

इस प्रार्थना के सम्बन्ध में एक बार स्वयं उन्होंने कहा था कि, "मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊँगा। मेरा सारा जीवन प्रार्थनामय ही है और इसका सुख इस मार्ग में आने से ही अनुभव हो सकता है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तीनों ने प्रार्थना की सार्थकता स्वीकार की है। मैं ईश्वर का दर्शन नहीं करा सकता। ईश्वर अनुभवगम्य है इसलिये अनुभव से जाना जा सकता है। प्रार्थना द्वारा उसका अनुभव होता है। जो अनुभव लेना चाहता है जिसे शान्ति की आवश्यकता है वह प्रार्थना करे।"

इस तरह सेवाग्राम आज भारत का तीर्थ, राजधानी, प्रयोगशाला और आश्रम सब कुछ है। नित्य प्रति यहां देश विदेश से अनेकों व्यक्ति आते रहते हैं। कोई विदेशी यात्री यहां इसलिये आता है कि वह अपने देश में जाकर कह सके कि उसने हिन्दुस्तान में, हिन्दुस्तान के ही नहीं वरन संसार के प्रसिद्ध व्यक्ति "महात्मा गांधी" को देखा है। कभी देश के किसी अज्ञात कोने से कोई जिज्ञासु भक्त सिर्फ़ इसलिये यहां आता है कि वह अपने जीवन काल में अवतीर्ण होने वाले युगावतार गांधी का दर्शन और प्रणाम कर सके। कभी कोई दाता अपनी पूंजी का सदुपयोग करने के लिये बापू की शरण लेता है। और कभी कोई नेता राजनीति पर चर्चा करने, कोई विद्वान धर्म का अर्थ समझने, कोई कार्यकर्ता सम्मति लेने, कोई पत्रकार आशीर्वाद लेने, कोई संवाद-दाता सन्देश चाहने, और कोई कोई राष्ट्र सेवी, ज्ञान और कर्म की दीक्षा लेने को आते रहते हैं।

आप प्राचीन भारत की प्राचीन आश्रम शक्ति को सेवाग्राम में साक्षात देख आइये। आश्रम शक्ति जिससे क्रांति की चिनगारियां निकलती हैं और शान्ति का प्रकाश भी। जो आश्रम शक्ति कभी मन्दिर एवम् पौराणिक अरण्य में जाग्रत हुई थी वही आज सेवाग्राम में जाग्रत होकर भारतीय क्रान्ति को शान्ति तथा विश्व - निर्माणकारी योजनाओं को प्रसारित किये हैं।

आज तो हम अपने इस अखिल मानवता प्रेमी, सत्य, अहिंसा, शांति और स्वतन्त्रता के सन्देशदाता, शांति वादी क्रांतिकारी, और क्रांतिवादी युग निर्माता, धर्म और राजनीति के समन्वय, इसी ज्ञान के ऋषि और कर्म के अवतार विजयी "सेनानी-सन्त" के चरणों में अत्यन्त श्रद्धा से अपना प्रणाम निवेदन करते हैं।

प्रवचन

हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक दौर में हमने बहुत से ऐसे मौक़े खो दिए जब न केवल यहां पूरी एकता क़ायम हो जाती बल्कि देश के समस्त अधिवासी एक दूसरे को पूरी तरह समझ जाते। मुसलमानों में अनेक ऐसे महान शासक हुए हैं जिन्होंने यह चेष्टा की किन्तु कामयाबी हासिल नहीं हुई। वे न तो कमज़ोर थे और न छोटे आदमी थे। वे वास्तव में महान थे। सिकंदरे में अकबर की मज़ार की ज़ियारत करते हुए मेरे मन में कई बार यह भावना उठी है—'सर्व धर्म सम्मेलन करने के लिए यह जगह कितनी उपयुक्त है ?' सर्व धर्म सम्मेलन में जितने भी प्रतिनिधि आएं सब यहां आ सकते हैं। यहां के वातावरण में एक ख़ास गम्भीरता है। किन्तु मेरे दिमाग़ में यह विचार आया और निकल गया। दिल में एक दर्द उठा कि इस काम मे क्या सफलता मिल सकती है ? शायद किसी दिन यह महान सपना भी पूरा हो। मुसलमान अपने धर्म में दृढ़ रहें किंतु कुछ ऐसी बात हो कि यहां के रहनेवाले इस्लाम को उसी आदर से देखें जिस तरह कोई ज्ञानी मनुष्य समस्त धर्मों को देखता है। अब भी एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब कि हम मौजूदा झगड़ों को भूल जाएंगे। यदि लोगों में यह विश्वास है तो यह बात होकर रहेगी। —चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव-वर्ष

'वृजेन्द्र'

नयति के मङ्गल स्वरों में आज यह नव वर्ष आया,
ये जीवन के निराले स्वप्न का संसार आया।

कन अजानी मिलन घड़ियों का—
खद उल्लास छूटा जा रहा है—
ध्यवर्ती निलय की विहगावली का,
ति नवल आरोह-सा—
स्तीर्ण नभ में।
ाज का जीवन भरा परिवर्तनों के घोर रव से।

त का नव-रवि
पहली रश्मियों के चटुल नव संदेश
कर मानवों के क्लान्त उर में
स बनकर छा रहा है।
स कैसा?

आज मानव ही स्वयं भूला हुआ है—
व्यग्रता के इन क्षणों में,
बुद्धि के इन कटु पलों में,
लीन सारा काल जड़वत् नीतिओं में,
व्यग्र मानव आज पार्थिव भूतियों में,
ज्ञान के इस स्वर्ण-युग का आज यह अवसान कैसा!
ह्रास कैसा!

आज उसका करुण कोना
क्यों न फिर से जाग जाये!
ज्ञान का वरदान पा वह—
इस नवल मङ्गल घड़ी में—
थिरकती-सी पत्तिओं की
झूमती-सी डालियों पर बैठ,
खग-सा गान गाये।

धर्म-कथा

श्रीमती एल्ला व्हीलर विलकाक्स

धर्म, उपधर्मों, पथ पन्थों का खूब प्रसार हुआ।
नये मोहक ढङ्ग से मज़हब का खूब प्रचार हुआ।
द्वारे, गिरजे, मसजिद, मन्दिर के ऊँचे कलश नवीन।
म्बर अवतार, सुधारक नित नूतन नव धर्म प्रवीन।
कुरां, इञ्जील, तूर का जगती में अम्बार लगा।
पिटक, ज़ेन्द-अवस्ता, टीकाओं का है भण्डार लगा।
तिस्मा, पूजा, नमाज़ औ विधि विधान की छाया में।
ठगा सा जन समाज अव्यक्त हृदय की माया में।
-कर्म की चहल-पहल में केवल एक कमी खलती।
व के प्रति संवेदन की चाह नहीं जग को मिलती।

—अनु० विश्वम्भरनाथ

वस्तु-क्रम

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सुखभरा सुनहला जीवन इच्छा वशवर्ती बातें;
दिन जाता था हँस गाकर तारे मुसकाती रातें!
आशा से पूरित साधन मोहक सपने अलसाए,
मन में रह रह उठता था इतना सुख मानव पाए!
यह तुच्छ अभागा प्राणी अति सीमित जिसका सम्बल;
देवोपम स्वर्ग रचाए विधि के मन में आया छल!
उपजाया प्रेम जगत में पीड़ा का साधन देकर;
तड़पन प्राणों में छाई आंसू आंखों में लेकर!
तब से सारा क्रम बदला है कसक-कहानी रोती;
आंखों का सावन भादों बरसाता फेनिल मोती!

—अनु० विश्वम्भरनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विप्लव

श्री प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक

निरख व्योम के अन्तराल में
कौन आ रहा रक्त अश्व पर ?
कटिपर है करवाल पिपासित
मृत्यु विहँसती तीक्ष्ण भाल पर !

आंखों में शोणित प्रवाह है
सासों में झंझा का नर्त्तन !
मुख से निकल रही चिनगारी
उर में शत फणियों का दंशन !

शोणित से लथपथ, नस-नस में
धावमान शत गरल ज्वाल है;
ऊर्ध्व बाहु, उन्नत मस्तक पर
लटक रहा मन्दार-माल है !

निरख, निरख, उस रक्त-मेघ से
दुर्निवार वह अश्व आ रहा;
उगल रहा कुछ गरल धूम सा
मुख में विष का फेन छा रहा !

गर्वोन्नत मस्तक चञ्चल है
बिजली कौंध रही है उस पर;
पदाघात से धूल बन रहे
कितने ग्रह, उपग्रह, भूधर वर !

जिधर अश्व के टाप पड़ रहे
निकल रही है आग उधर से;
बंधन टूट रहे धरती के
रक्त अश्व आ रहा जिधरसे !

युग-युग के टूटते जा रहे, जीर्ण रूढ़ियों के सब बन्धन;
आज क्रब्र पर सिसक रहा है, वृद्ध विश्व का गलित पुरातन !

'गीत'

श्री देवेन्द्र एम० ए०

आज अपनी, और जग की, भूल से कुछ जानता हूँ।

अनवरत सूरज चले निशि
का, भरा शृङ्गार पाने !
बहुत सम्भव, तृषित मृग
मरु से न अपनी हार माने !

किन्तु मैं मृग-जल नहीं—मरु की तृषा को जानता हूँ।

ये शलभ उड़ कर चलें
जलती शमा से प्यार करने !
औ' भिखारी दान-शीलों
से चलें व्यवहार करने !

मैं न केवल हसरतें—लाचारियां भी जानता हूँ।

कल्पना में कवि सुखों के
स्वप्न के संसार देखे;
तृप्त जन-जन के परस्पर
प्रीतिमय व्यवहार देखे !
वन्दना में पण्डितों की
टोलियां आकाश देखें;
जो बुझाये दीप अपने
दिव्य वह सुप्रकाश देखें !
भ्रान्त कवि ! इस विषम जग में
प्यास बुझना है असम्भव !
इस विषम जग में किसीकी
भूख मिटना है असम्भव !

सच न झूठे स्वप्न को मैं सत्य ही सच मानता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय-हिन्द

'करील'

यह स्वतंत्रता का शङ्ख बजा, जागी प्राणों में आज़ादी।
बरसी दुनियां के पापों पर बस हहर हहर कर बरबादी॥
लोहू की लोहित काया ने जल थल में माया बरसा दी।
घायल हो मौत अचेत पड़ी अनुपम जीवन गति दिखला दी॥
यौवन की जो महिमा फूटी आओ उसके सब गुण गायें।
'जय हिन्द' कहा सेनापति ने चल दीं दिल्ली को सेनायें॥

जब भारत के जननायक ने पहनी सेनापति की वर्दी।
उबला तब खून जवानों का छूटी मर्दों की नामर्दी॥
वीरों की रण हुँकारों ने, जंगल में मंगल गति भर दी।
सदियों का बल विक्रम जागा, नस नस की दूर हुई सरदी॥
ऊँचे कंधों पर बन्दूकें चौड़े सीनों पर मालायें।
'जय हिन्द' कहा सेनापति ने चल दीं दिल्ली को सेनायें॥

अपनी किरणों की माया से प्राची में मुसकाये कलिन्द।
उस दिन कमलों के कोष खिले मचले रस के प्यासे मिलिन्द
हथियारों से सज्जित हो जब निकले युवकों के विपुल वृन्द।
जल थल अम्बर में ध्वनि गूंजी, आज़ाद हिन्द आज़ाद हिन्द
धरती के कण कण ने चाहा अपनी गुरुता से भर जायें।
'जय हिन्द' कहा सेनापति ने चल दीं दिल्ली को सेनायें॥

अधिपति का अभिवादन करने जब कर्नल शाहनवाज़ चले
सहगल, धीलन से सिंह पुरुष तब अपना दलबल साज चले
वीरों ने अपनी धरती में चाहा अपना ही राज चले।
घर घर में सुख का साज चले भारत में पूर्ण स्वराज चले॥
रण चण्डी बनकर जब उतरीं रण में लक्ष्मी सी ललनायें।
'जय हिन्द' कहा सेनापति ने चल दीं दिल्ली को सेनायें॥

सिंगापुर से जब वीर बढ़े उनको रण का आह्वान मिला।
रंगून मिला, मंडाले की प्राचीरों से वरदान मिला॥
फिर स्वदेश की हद्द मिली बल मिला विपुल बलिदान मिला।
वह स्वतंत्रता का समरांगण वह मर मिटने का मान मिला॥
वीरों ने चाहा आगे बढ़ राष्ट्रीय पताका फहरायें।
'जय हिन्द' कहा सेनापति ने चलदीं दिल्ली को सेनायें॥

भारत के पहले सेनापति मेरे सुभाष! तुम बलिदानी।
माता का तुमसे दूध सुफल तुम अपनेपन के अभिमानी॥
तुममें जीवन, तुममें यौवन, तुममें ममता भी मनमानी।
तुम घर घर में जीवो जागो मेरे प्रलयंकर सेनानी॥
तुम हमें निरन्तर याद रखो हम सदा तुम्हारे गुण गायें।
'जय हिन्द' कहो तुम सेनापति चल दें दिल्ली को सेनायें॥

विक्रम

श्री रामकुमार चतुर्वेदी

आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व
धवल धाम उज्जयिनी नगरी के
दीपों से सज्जित थे, रंगों से रंजित थे,
धाम-धाम तोरण थे सजे-धजे
उड़ते थे आम्रपत्र द्वार-द्वार!
जन-पथ पर भीड़ खड़ी थी अपार!
चित्रित झरोखों में शोभित थीं कुलवधुएँ, बालाएँ,
लिए हुए खील, फूल, मालाएँ;
चलता था मन्द-मन्द सान्ध्य पवन,
हँसता था क्यारी में सुमन-सुमन!
ज्योतित था कुंज-कुंज, मुखरित था पुंज-पुंज!
दीप जगे जगर मगर,
कंचन के पात उठे सिहर-सिहर!

धूमिल उस सन्ध्या की वेला में
बिखरा उल्लास ओज नगर-डगर!
और उसी मंगलमय वेला में
गूंज उठा तूर्यनाद;
और एक निमिष बाद—
दीख पड़ा सेनापति,
अश्व-यूथ आता था मंथर गति;
होते थे रह-रह कर शंखनाद!
भेरी स्वर!!
चित्रित झरोखों से बरस पड़े
खील, फूल सेना पर!
हाथों में नग्न दीप्त खड्ग लिए
आते थे उन्नत शिर घुड़सवार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभरे थे वक्षस्थल पर्वत-से
आँखों में रोष भरा था अपार !
अगणित रण-सज्जा थी,
गर्जन करते थे रथ;
झूम-झूम चलते थे भीषण गज,
कांप-कांप उठता था धूसर पथ !
सहसा तब गूँजी रणभेरी,
जनता ने दृष्टि उधर फेरी !
गज पर आरूढ़ दिखा 'विक्रम'
भारत का विक्रम ! शक्तिदूत 'विक्रम' !!
झिलमिल करता था स्वर्णिम किरीट,
उन्नत शिर, नम्र रोषपूर्ण दीठि !
पत्थर-से, पुष्ट थे विशाल बाहु,
उभरा था वज्रजयी वक्षस्थल !
बरस पड़े खील, फूल,
अम्बर के अन्तर में उत्थित जयघोष गया हूल-हूल !
यह थी रणवेला,
भारत की सीमा पर था लगा
बर्बर मति हूणों का मेला !
आते थे नित्य कुछ नए संदेश
'विक्रम' की सीमा में हूण कभी
कर नहीं सके प्रवेश !
'विक्रम' के सेनानी हँस-हँस बलिवेदी पर झूल गए,
अमरों की क्यारी में फूल गए;
और एक रोज विजय प्राप्त हुई !
'विक्रम' की कीर्ति विश्व व्याप्त हुई !
विजयी सेनानी तब लौटे घर,
मुखरित उल्लास बिछा पग-पग पर !
नगर-डगर दीप जले, कुमकुम की धूल उड़ी,
जीवन के फूल खिले, संस्कृति के पात हिले,
हृदयों से विलग हृदय हिलेमिले !
लेकिन, परिवर्तन कब रुकता है ?
होनी का मस्तक कब झुकता है ?
आंधी दिन रात चली, तोड़ वृक्ष पात चली !
दीप बुझे, भूमि हिली,
ठौर-ठौर आग जली !
सिंहासन चूर हुए,
दिल से दिल दूर हुए !

बदला जग, बदला युग,
बदले पग, बदले मग !
आंख खोल देखा तब घोर अन्धकार था,
ठौर-ठौर मरघट की अग्नि का प्रसार था !
मधुऋतु की डालों पर पतझर था,
महलों की ठौर शेष खंडहर था !
बीत गए बातों की बात में
सपने-से हाय ! दो हज़ार वर्ष !
उन्नति का राजमुकुट धारिणी
भारत माता थी भिखारिणी !
हाथों में निष्ठुर हथकड़ियां थीं,
आँखों में आँसू की लड़ियाँ थीं !
एक रोज़ चाँद और तारों ने
माता से व्यंगपूर्ण प्रश्न किया—
"बोल री भिखारिणी !
तेरा वह 'विक्रम' है आज कहाँ ?"
धधक उठा माता का रोम-रोम,
सुलग उठा हृदय-व्योम !
बोली उठी दांतों को पीसकर—
"मौन रहो ! मौन रहो !!
मेरा वह लाल अभी मिटा नहीं !
मेरा सर्वस्व अभी लुटा नहीं !
ढूंढ़ो उज्जयिनी की धूलों में,
ढूंढ़ो उन क्षिप्रा के कूलों में,
उसकी तलवार कहीं खोई है !
मुंह ढककर सोई है !!
फिर भी निःशस्त्र आज लड़ता है,
पशुता से भिड़ता है !
कर में तिरंगा है,
केवल संकल्पों की गंगा है !
दूर हटो ! मौन रहो !!
मेरा वह लाल अभी मिटा नहीं,
मेरा सर्वस्व अभी लुटा नहीं !
मेरा वह लाल अभी जीवित है
कारा में, भीषण हथकड़ियों में,
दुखिया की आंसू की लड़ियों में;
मेरा वह लाल अभी जीवित है
विप्लव से जलती झोपड़ियों में !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76230

पुस्तक-परिचय

इस स्तम्भ में प्रकाशित होनेवाली, आलोचनाओं में व्यक्त किये हुये विचार समालोचकों के अपने निजी विचार हैं। उनसे 'विश्ववाणी' की नीति का कोई सम्बन्ध नहीं। हम इस स्तम्भ में प्रत्यालोचनाओं का भी स्वागत करेंगे। समालोचना के लिए दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति स्वीकार की जा सकेगी। —सम्पादक

आदमख़ोर—(कहानी संग्रह)—लेखिका, चंद्र-किरण सोनरिक्सा; प्रकाशक, जयदेव प्रकाशन, सौनरिक्सा सदन, अलीगढ़; मूल्य, सजिल्द २॥), अजिल्द २॥); पृष्ठ संग्रह १८४

इस कहानी संग्रह में लेखिका की एक दर्जन कहानियां संग्रहीत हैं। जिनके शीर्षक गृहस्थी का सुख, छलिया, अक़ीला, चाय में नीबू, रुपया, जीजी, मर्द, कमीनों की ज़िन्दगी, बेज़ुबां, दो रोटियाँ, आदमख़ोर तथा परम्परा हैं। पहली कहानी गृहस्थी को सुखी बनाने के लिए एक नारी के मूक बलिदान की मार्मिक कथा है। दूसरी कहानी 'छलिया' में एक तपसी के अध्यात्मिक पतन का चित्र दिखाकर यह चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि माया हरिभक्तों को भी बड़ी सरलता से नचा सकती है। 'अक़ीला' में पति प्रवास में एक नारी के दूसरे व्यक्ति से प्यार करने की तथा वास्तविक पति के घटनाएँ जान लेने पर, पति के मनोविज्ञान तथा साथ ही साथ पत्नी के मनोविज्ञान का वर्णन है जो कि समाज के सामने एक मनोविज्ञान की पहेली को बड़े ही खुले तथा चुनौती भरे रूप में रखता है। चाय में नीबू कृशकायता के पीछे दौड़नेवाली आधुनिक नारियों की आंखें खोल देनेवाली कथा है। 'रुपया' में एक नारी की वास्तविक जाति तथा रुपये की लड़ाई है और दिखाया है कि रुपये के पानी के साथ वर्ण-संकरता का कितना बड़ा कौर हमारा समाज लील सकता है।

'जीजी' में एक आधुनिक नारी के गृहणी जीवन की असफलता का चित्र है। 'मर्द' में आधुनिक हिन्दू समाज के पतन के चित्र के साथ ही साथ एक मनुष्य की दृढ़ता तथा इन्सानियत का भी चित्र है कि एक मनुष्य अपनी तनिक सी दृढ़ता से एक नारी का सारा जीवन बचा सकता है। 'कमीनों की ज़िन्दगी में' दिखाया गया है कि मध्यवर्ग से निम्नवर्ग में स्त्रियों को कितनी अधिक और आवश्यक स्वतन्त्रता प्राप्त है और मध्यवर्ग अपने पिछले आदर्शों के नाम पर किस तरह अपने ही आधे अङ्ग को अत्यधिक निर्बल बना चुका है। 'बेज़ुबां' में एक निम्नवर्ग की नारी की मनोदशा का चित्रण है जो हर तरह से त्याग और बलिदान कर मध्यवर्ग की सेवा करती है और उसी सेवा में अपने पुत्र तक के प्राण खो देती है। 'दो रोटियां' फिर हमें हिन्दू परिवार की झांकियां देकर दिखा रही है कि हमारे यहां बहू का कितना नीचा स्थान है। 'आदमख़ोर' में दिखाया गया है कि निम्नवर्ग किस प्रकार अपनी परिस्थितियों के कारण इतना पतित होता जा रहा है कि उसे आदमख़ोर तक की संज्ञा देनी पड़ती है। अन्तिम कहानी 'परंपरा' में दिखाया गया है कि निम्नवर्ग अशिक्षित क्यों और कैसे रह जाता है। संक्षेप में यही इन सारी कहानियों के कथानकों तथा मुख्य सवेदनाओं की रूप-रेखा है।

जो पाठक इस संग्रह की कहानियां तनिक भी सहानुभूति से पढ़ेंगे उनके हृदय में ये कहानियाँ वास्तव में घर कर लेंगी। ये कहानियाँ नहीं वरन समाज के जीते-जागते और बोलते हुए चित्र हैं। इनमें केवल एक ही कहानी कमज़ोर है, वह है 'छलिया' अन्यथा सारी कहानियां बड़े ही मज़बूत पैराये पर स्थित हैं। कोई भी कथानक कहीं से भी ढीला नहीं। सारे कथानक नए से हैं। चरित्र चित्रण की सजीवता तथा मुख्य सम्वेदना का तीखापन हमारे हृदय पर अपनी चोट करता है। अक़ीला वास्तव में एक समस्या है। एक ओर वह पत्नी है और एक ओर एक उपपति के पुत्र की माता। उसका पति भी एक आदमी है जो संसार के राग-द्वेष के ही बीच में पला है। वह अक़ीला को क्षमा कर सकता है परन्तु उसकी जारज संतान को क्या करे? वह इतना शिक्षित नहीं और शायद निन्नावे दशमलव नौ-सौ-नौ व्यक्ति इतने शिक्षित नहीं होते कि वे अपनी पत्नी के इतने बड़े अपराध को क्षमा कर सकें। किन्तु अक़ीला का मातृत्व भी तो कोई वस्तु है। इसी कारण वह घुल घुलकर मर जाती है। इस संग्रह में जहां कहीं पर भी 'बहू' का चित्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, अत्यधिक सच्चा तथा मार्मिक है। सच तो यह है कि इस संग्रह की प्रत्येक कहानी हमारे सामने एक प्रश्न उठा देती है जिसका उत्तर हमारे पास नहीं। इस संग्रह की ग्यारह कहानियां (छलिया के अतिरिक्त) हमारे हृदय पर तीर के समान लगती हैं। हम अपने मन में सोचने लगते हैं कि अपने इस सड़े-गले समाज को लेकर हम क्या करें ? यही इन कहानियों की सफलता है। हिंदी में इतने सुन्दर कहानी संग्रह बहुत कम हैं।

इस संग्रह की कहानियों का हम स्वागत करते हैं। वैसे हम कह सकते हैं कि कहानी लेखिका ने समाज के दोष दूर करने के सुझाव नहीं दिए हैं परन्तु सच तो यह है कि लेखिका ने जो कुछ भी दिया है वही बहुत काफ़ी है। यदि वह इतनी ही कलात्मकता तथा सजीवता के साथ सुधार सम्बन्धी रचनात्मक सुझाव भी दे सकती तो उसकी कहानियाँ समाज के नवनिर्माण में सहायक हो सकतीं।

—कमल कुलश्रेष्ठ

हिन्दी में अर्थ शास्त्र और राजनीति साहित्य—दयाशङ्कर दुबे, भगवानदास केला; प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग; मूल्य—दो रुपया; पृष्ठ संख्या २०८

प्रो० दया शङ्कर दुबे और श्री भगवान दास केला ने इस अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ का दूसरा संस्करण नये वर्ष के उपलक्ष में हिन्दी संसार को भेंट किया है। इसमें अर्थ शास्त्र और राजनीति पर हिन्दी साहित्य में जितनी भी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं उन सबकी सूची दर्ज की गई है। लेखक अपनी भूमिका में लिखते हैं—"कुछ सज्जन यह आक्षेप किया करते हैं कि हिन्दी में अर्थ शास्त्र और राजनीति का साहित्य बहुत ही कम है। हम भी इस साहित्य की बहुत वृद्धि चाहते हैं, लेकिन यह मानना होगा कि यह साहित्य इतना कम नहीं है जितना अकसर समझा जाता है। हमारी यह रचना इस तरह के भ्रम को दूर करने में सहायक होगी।...पुस्तकालयों को अच्छी पुस्तकों के चुनाव में इस रचना से बहुत सहायता मिल सकती है। लेखकों को भी इससे यह निश्चय करने में सहायता मिलेगी कि उन्हें इन विषयों के किस अङ्ग पर लिखना है।"

हिन्दी साहित्य के अन्य अङ्गों पर भी इसी तरह पुस्तक सूचियों का संग्रह यदि प्रकाशित हो जाय उससे पाठकों, लेखकों और प्रकाशकों, सबका ला होगा।

पुकार (कहानी संग्रह)—लेखक श्रीमती कम त्रिवेणी शङ्कर; प्रकाशक : लक्ष्मी प्रकाशन मन्दिर, गोर पुर; मूल्य ढाई रुपया ; पृष्ठ संख्या : २२३

श्रीमती कमला त्रिवेणी शङ्कर की १८ कहानियों यह संग्रह प्रो० राजनाथ पाण्डेय के भूमिका-कथन साथ प्रकाशित हुआ है। श्रीमती कमला ख्याति प्र कहानी लेखिका हैं। विविध मासिक और समाचार प में उनकी लगभग १५०-२०० कहानियाँ प्रकाशित चुकी हैं। प्रस्तुत संग्रह की कहानियों में लगभग सम कहानियाँ बड़ी सादगी के साथ प्रारम्भ होती हैं, व्या हारिक घटना चित्रण के साथ आगे बढ़ती हैं और त्या और आदर्श के क्लाइमेक्स में समाप्त होती हैं। पति पत्नी के भाव समागम की भित्तियों पर इन कहानियों ढाँचा खड़ा किया गया है। गृहस्थी के संसार में कितनी तिरस्कृत, अपमानित, लांछित होकर त्यागम जीवन बिताती है और किस तरह वह कर्तव्य मार्ग जीवन का बोझ ढोती है, किस तरह पति सुपथ पर लाने का प्रयत्न करती है—कलह ई ईर्षा से नहीं, त्याग से—यही इन कहानियों विषय है।

यद्यपि श्रीमती कमला का चरित्र चित्रण निर्दो शैली स्वस्थ, विषय सीधा सादा और कथानक दिलच होता है फिर भी उनकी कहानियों को पढ़कर हमें ऐ लगता है कि वे जिस नारी की कल्पना सृष्टि में रहती वह उन्नीसवीं सदी की है—पुरुष की विहगंम भावना को तृप्त करनेवाली भोग्य वस्तु। हमें ऐसी नारी से घृ है। हम उस नारी को निकृष्ट समझते हैं जो सौत साथ लेकर पति के साथ तृप्त और सुखी जीवन बि सकती है। नारी, इस बीसवीं सदी की नारी घर की चहार दीवारी से निकलकर विश्व का सृजन करना है, पुरुषों के साथ कन्धे से क मिलाकर, बराबरी के अधिकार लेकर, ऐसे त्याग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे अहङ्कारी पुरुष अपनी श्रेष्ठता का ख़िराज न समझे और तब हमें अफ़सोस होता है कि बहिन कमला ने इसी तरह के कुत्सित पुरुषों के चरणों में अपनी कहानियों की अधिकांश नायिकाओं को बलिदान किया है।

—विश्वम्भरनाथ

श्री बद्रीनाथ दर्शन—लेखक: प्रभुदत्त ब्रह्मचारी; प्रकाशक: महन्त शान्तानन्द नाथ, श्री श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर, हरिद्वार; मूल्य पांच रुपया, पृष्ठ संख्या ४०८

हिन्दी में यात्रा और भ्रमण वृत्तान्त की पुस्तकें अभी बहुत थोड़ी हैं। हमारे राष्ट्रीय जीवन में यात्रा का जो वैज्ञानिक स्थान होना चाहिये वह अभी नहीं हुआ। केवल तीर्थयात्रा के माध्यम से ही हम भारत के सम्पूर्ण और अखण्ड राष्ट्र के दर्शन करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इसी तरह की एक यात्रा का वर्णन है।

श्री बद्रीनाथ हिन्दुओं के चार धामों में से एक है और हर साल हज़ारों यात्री श्री बद्रीनाथ और केदारनाथ की यात्रा करते हैं। इसी बहाने वे पर्वतराज हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों, गङ्गा यमुना के उद्गमों, और मार्ग में फैले हुये अनेक पवित्र तीर्थों के दर्शन करते हैं। हज़ारों ही हिन्दुओं को इस यात्रा में जाने की आकांक्षा रहती है। उनके लाभ के लिये ही यह विस्तृत ग्रन्थ लिखा गया है। पौराणिक आख्यायिकाओं के आधार पर पहले श्री बद्रीनाथ के संस्थापन का इतिहास दिया गया है, फिर उस भूखण्ड का भौगोलिक वर्णन है, फिर यात्रा की सुविधाओं असुविधाओं का ज़िक्र है, फिर मन्दिर के प्रबन्ध आदि का वर्णन है। साथ में लगे नक्शे और चार्टों से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। पुस्तक में चित्रों का अभाव बहुत खटकता है। चित्रों से पुस्तक का महत्व और अधिक हो जाता है।

यात्रियों के लिये पुस्तक सचमुच उपयोगी है किन्तु मूल्य बहुत अधिक है।

—विद्यानन्द सन्यासी

प्रलय-सृजन—(कविता)—लेखक, शिवमंगल सिंह 'सुमन'; प्रकाशक, प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद; मूल्य २॥); पृष्ठ संख्या ८६ सजिल्द।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का यह सम्भवतः दूसरा काव्य संग्रह हमारे सामने है इसकी कविताएं चार वर्गों में विभक्त हो सकती हैं:

१. 'स्व' में सीमित
२. समाज सम्बन्धी (जिनका सम्बन्ध किसी देश विशेष से नहीं है)
३. यूरोप सम्बन्धी
४. भारत सम्बन्धी

'स्व' से सम्बन्धित कविताओं में मार्मिकता का सर्वथा अभाव है। कहीं पर भी सच्ची तीव्र अनुभूति की गन्ध नहीं मिलती। जहां पर मिलती भी है वहाँ पर अनुभूति अत्यन्त उथली है। प्रायः घिसी पिटी अनुभूतियों को लेकर एक विशेष प्रकार की कविता हिन्दी में चल पड़ी थी और उसीके दर्शन 'सुमन' की इन कविताओं में भी होते हैं।

किसी देश विशेष से असम्बन्धित समाज सम्बन्धी कविताएँ भी घिसे पिटे विचारों को लेकर लिखी गई हैं। वे ही बातें कि धनी चांदी पर नारीत्व ख़रीदते हैं और ग़रीब पिस पिसकर मरा करते हैं, इन कविताओं में हैं। कहीं पर भी कवि ने या तो वे दृश्य स्वतः अनुभूत ही नहीं किए और यदि किए भी हैं तो उसमें या तो अनुभूति शक्ति का अभाव मिलता है या काव्य शक्ति का।

यूरोप सम्बन्धी कविताओं में एकाध सुन्दर कविताएँ हैं। 'मास्को अब भी दूर है' का एक छन्द देखिए—

घनन घनन घन बादल गरजे घहर घहर कर तोपें।
ज्वालामुखी सजीव टैंक बन जब धरती पर कोपें॥
हिली धरा, हिल गया आस्मां, हिला विश्व का कोना।
अंतरिक्ष से प्रतिध्वनि आई—ऐसा हुआ न होना॥
रातों रात बढ़े उलूकगण रही सृष्टि सब सोती।
वरना दो सौ मील ज़मीं आसानी से सर होती॥
आज वही बाईस जून फिर घूमघाम कर आई।
जिस दिन ज़ुल्मी जर्मन दल की शुरू हुई पहुनाई॥
जगो वीर, जागी वसुन्धरा जागी युग की ज्वाला।
यहाँ लुटेरे फासिस्तों को पड़ा मौत से पाला॥
जन जन जागे, कण कण जागा, जागा लाल सितारा।
चली लालसेना घहराती लाल रक्त की धारा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन लड़ेगा; कौन बढ़ेगा
कौन साहसी शूर है ?
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मास्को अब भी दूर है।

इस कविता में ख़ून का एक उबाल है। अन्त में कवि अपना सन्देश देता है—

आओ दुनिया के मज़लूमों आओ हाथ बटाओ।
आज नहीं तो कभी नहीं फिर दो दो हाथ दिखाओ॥

साथ ही साथ कवि ने रूस के गुण भी इस कविता में ख़ूब सशक्त स्वर से गाए हैं:

यहां नहीं सोने चांदी पर दास ख़रीदे जाते।
यहां न मेहनतकश की रोटी छीन और खा जाते।
यहाँ न भूखे नंगे जर्जर वसन दिखाई पड़ते।
यहां दूध के बिना न बच्चे पत्तों से झर पड़ते।

रूस के लिए कवि कहता है—

यह दलितों की पुण्य भूमि है

वास्तव में कवि की यह रचना पर्याप्त सुन्दर है। इसमें जोश, जीवन एवं प्रवाह है। अन्य लाल सेना आदि विषयक कविताएँ साधारण हैं। कवि ने लाल सेना कभी नहीं देखी है।

भारत सम्बन्धी कविताएँ साधारण हैं। अनुभूति एवं संवेदना की कमी ही इसके मूल में है।

भाषा की दृष्टि से कवि की मास्को सम्बन्धी कविता के अतिरिक्त प्रायः अन्य सभी कविताओं में प्रवाह की बड़ी कमी है। उसके मूल में कवि का संस्कृत जैसी आज के लिए मृत भाषा का फेर है। कहीं कहीं पर तो कठिन शब्दों की जगह पर सरल शब्द स्पष्ट ही लालित्य बढ़ा देते। छन्द कहीं कहीं तो उर्दू के वज़न पर हैं और कहीं हिन्दी की मात्राओं के आधार पर।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यह संग्रह आधुनिक हिन्दी कविता के पंचानवे प्रतिशत निरर्थक संग्रहों से बहुत अच्छा है। कोई कविता बेसिर-पैर की नहीं है। हां, सच्ची अनुभूति की कमी है, जीवन में साधु कमी है। रटे रटाए कम्यूनिस्त नारों को छोड़ यदि कवि कभी ऊपर उठ सका तो शायद अच्छा लिख सकेगा।

जीवन का मूल्य—(कहानी-संग्रह)—लेखक, किशोर पशिने विशारद; प्रकाशक, शिक्षार्थी स प्रकाशन, वर्धा; मूल्य ॥); पृष्ठ संख्या ४८; हाथ का काग़ज़।

रामकिशोर पशिने की छै कहानियों का यह छोटे संग्रह है। कहानियाँ सभी स्वस्थ दृष्टिकोण को लिखी गई हैं। प्रेम की वासनापूर्ण कहानियों को पढ़ते जो अब ऊब सा उठा है उसे संग्रह को प विशेष प्रसन्नता होगी। एक विद्यार्थी द्वारा लि तथा विद्यार्थियों के लिए लिखित इस संग्रह का हम गत करते हैं।

अंकुर—(कविता-संग्रह)—लेखक, दाऊ दत्त ध्याय; प्रकाशक, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, हीराबाग ब नं० ४; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या ७२, सजिल्द।

लेखक का सम्भवतः यह सर्व प्रथम काव्य स है। कविताएं विविध विषयक हैं। मार्मिकता के द कोण से कविताएँ साधारण हैं।

—कमल कुल

प्राप्ति स्वीकार

जीवन के गान—(कविता-संग्रह)—लेखक, मंगल सिंह 'सुमन'; प्रकाशक, प्रदीप प्रेस मुरादा मूल्य २॥); पृष्ठ संख्या ९३ सजिल्द। द्वितीय संस्क पहले संस्करण की आलोचना 'विश्ववाणी' में प्रका हो चुकी है।

अशांत विश्व को शांति का सन्देश (धर्म प्रवचन)—लेखक, तुलसीराम; प्रकाशक, जैन ताम्बरी तेरापन्थी सभा, २०१ हरीसन रोड कलक मूल्य ।); पृष्ठ संख्या १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

काँग्रेस की हीरक जयन्ती

पिछले २८ दिसम्बर को इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने आज़ादी के रास्ते में साठ बरस का सफ़र तय कर लिया। अभी आगे उसे अपनी आख़िरी मंज़िल पर पहुंचने के लिए कितने वर्षों का सफ़र और बाक़ी है यह भविष्य ही बता सकेगा लेकिन पिछले ६५ बरस में आज़ादी की लड़ाई में कांग्रेस ने गान्धीजी के नेतृत्व में जो अहिंसा का नया ढङ्ग अख़्तियार किया है वह अपनी शान बान में निराला है, उसने आत्म त्याग का जो रास्ता चुना है उसकी सामूहिक मिसाल इतिहास के वर्के हमें नहीं देते बल्कि यों कहें कि भारत की अहिंसात्मक लड़ाई के अन्दर आनेवाली दुनिया की ऐसी तस्वीर छिपी हुई है कि जिसकी कल्पना तो सभी करते हैं पर जिसे अमली रूप देने का श्रेय गान्धी जी को ही है।

सन् १८५७ से सन ५७ के स्वाधीनता युद्ध की चेतावनी देते हुए सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा था—"हम जिस तरह एक के बाद एक देशी राज्यों की आज़ादी का ख़ात्मा करते जा रहे हैं हिन्दुस्तान की जनता में हमारी तरफ़ एक ग़ुस्से का जज़्बा अन्दर ही अन्दर शोला बनकर इकट्ठा हो रहा है। कब यह शोला भड़क उठेगा ईश्वर ही जाने। कम से कम मुझे यह महसूस हो रहा है कि हम एक ऐसे ज्वालामुखी के मुँह पर बैठे हुए हैं जिसे जाने कब घटनाओं का पलीता फोड़ सकता है।" इस स्थिति से बचने का सर चार्ल्स ने एक ही तरीक़ा बताया था और वह यह कि—"हमें अंग्रेज़ी पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों की एक ऐसी जमात बनानी चाहिये जो हमारे क़ायम किये हुए स्वायत्त शासन की योजना के लिए आन्दोलन कर सके और हमारे ही संरक्षण में रहकर जो औपनिवेशक स्वराज्य की मांग पेश कर सके। कम से कम इस जमात के ज़रिये हमें देश के दिल और दिमाग़ का पता तो लगता रहेगा।"

सन १८५७ के भयङ्कर विस्फोट ने इङ्गलैण्ड के शासकों के सामने सर चार्ल्स के बयान की सच्चाई को साबित कर दिया। उसके बाद नामधारी सिक्खों के विद्रोह ने इस चीज़ की और पुष्टि कर दी। अन्त में बहुत सोच विचार के बाद एक अंग्रेज़ रिटायर्ड सिविलियन विलियम आक्टेवो ह्यूम के सुपुर्द एक इस तरह की संस्था बनाने का काम किया गया। २८ दिसम्बर सन १८८५ में बम्बई में इस संस्था का पहला इजलास हुआ और वहीं तय पाया गया कि इस संस्था का नाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस रक्खा जाय। सन १८८५ से लेकर सन १९०५ तक कांग्रेस के अधिवेशनों में सर चार्ल्स की कल्पना के अनुसार ही अमल होता रहा। किन्तु सन १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस ने स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी की सदारत में पहली बार अंग्रेज़ी शासन से पूरी तरह स्वाधीन हिन्दुस्तान में स्वराज्य की कल्पना की। किन्तु सन १९०७ में नरम दल के नेताओं ने इस बढ़ती हुई आज़ादी की भावना को टक्कर देकर रोक दिया। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, स्वर्गीय विपिनचन्द्र पाल और स्वर्गीय लाला लाजपतराय गिरफ़्तार करके जेलों में बन्द कर दिये गए। श्री अरविंद घोष के साथ साथ सैकड़ों भारतीय नौजवानों को दमन का शिकार बनाया गया और एक बार ऐसा लगा कि देश में स्वराज्य की भावना को हमेशा के लिये दबा दिया गया। सन १९१३ की मद्रास कांग्रेस की जो कार्यवाही अख़बारों में प्रकाशित हुई उससे पता चलता है कि तब तक कांग्रेस के हर अधिवेशन में राजभक्ति के प्रस्ताव पास हुआ करते थे। कांग्रेस के उक्त अधिवेशन में मद्रास के गवर्नर भी तशरीफ़ लाए थे और उनके स्वागत में तमाम डेलीगेट उठकर खड़े हो गए थे। सन १९२० तक कांग्रेस के अन्दर नरम दल और गरम दल का संघर्ष चलता रहा और तब यकायक घटनाओं के प्रवाह में कांग्रेस के नेतृत्व की बागडोर महात्मा गान्धी के हाथ में आ गई।

१९२० के बाद का २५ वर्ष का कांग्रेस का इतिहास भारतीय जनता की आज़ादी की कोशिशों का इतिहास है। करोड़ों जनता गान्धी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक उपायों से अपनी ग़ुलामी के बन्धनों को तोड़ने में जी जान से लग गई। दूर दूर तक गावों में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक आज़ादी का पैग़ाम पहुँचाया गया। जनता को शक्तिशाली बनाकर कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्य वाद से लोहा लिया। अपने त्याग और कष्ट सहन से कांग्रेस ने जनता के हृदय में अपने लिये ठोस जगह बना ली। जैसे जैसे कांग्रेस का प्रभुत्व व्यापक होता गया वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे कांग्रेस की पञ्चायती राज की कल्पना भी व्यापक होती गई और इधर आग़ा ख़ां के महल से मुक्त होने के बाद गान्धीजी ने इस बात का एलान किया कि कांग्रेस की कल्पना का पंचायती राज्य किसानों और मज़दूरों का राज्य होगा और जब भी देश को वास्तविक ताक़त मिलेगी वह किसानों और मज़दूरों के ही हाथों में जायेगी।

कांग्रेस केवल राजनैतिक स्वाधीनता के लिए ही प्रयत्नशील नहीं रही। गान्धी जी के सुझाए हुए रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा उसने देश के सामने आर्थिक स्वाधीनता की योजना भी पेश की। चरखा और ग्रामोद्योग न केवल विदेशी पूंजीवाद से ही भारतीय जनसाधारण की रक्षा करने का दावा पेश करते हैं बल्कि विदेशी पूंजीवाद से भी जनता को मुक्त करने की योजना रखते हैं।

कांग्रेस किसी वर्ग विशेष की स्वाधीनता पर ज़ोर नहीं देती। यह हिन्दुस्तान के हर नागरिक स्त्री और पुरुष को एक समान मौक़ा और एक समान अधिकार देने का एलान कर चुकी है। वह तमाम मज़हबों और सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता और भाई चारे का बर्ताव करने पर अमल करती है। वह हर समूह और हर भौगोलिक क्षेत्र की आज़ादी के लिए प्रयत्नशील है। वह हर एक को धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आज़ादी देने का वादा करती है। वह छुआछूत को जड़ से नष्ट करने के पक्ष में है। वह अपने विधान में हर नागरिक के बुनियादी अधिकारों को मानती है। उसके जनतन्त्र के विधान में हर बालिग़ को मत देने का अधिकार होगा। अपने चुनाव के घोषणापत्र में कलकत्ते से कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी ने भावी आर्थिक विधान की घोषणा करते हुए कहा है कि पञ्चायती राज में ज़मीन पर ज़मीदारों का अधिकार न होगा। ज़मीदारियां मुआविज़ा देकर ख़रीद ली जावेंगी। पञ्चायती राज्य की आर्थिक योजना में, इस घोषणा के अनुसार, पूंजी गिने चुने व्यक्तियों के हाथों में इकट्ठा न होगी और इसीलिए तमाम खनिज पदार्थों, उत्पादन और वितरण के साधनों, ज़मीन के बटवारे, बुनियादी उद्योग धन्धों, रेलवे आदि पर सारे भारतीय समाज का अधिकार होगा और तमाम छोटे मोटे उद्योग धन्धे सहकारिता की बुनियाद पर सङ्गठित किये जावेंगे। नहरों, जहाज़ों, बैङ्कों, सिक्कों, नोटों और बीमों पर भी सामाजिक हित की दृष्टि से नियंत्रण होगा। एक शब्द में यदि कहें तो कांग्रेस का पंचायती राज्य एक समाजवादी राष्ट्र होगा। काँग्रेस वर्किंग कमेटी के इसी अधिवेशन में फिर से ज़ोरदार शब्दों में अहिंसात्मक उपायों से स्वराज्य प्राप्ति के ऊपर ज़ोर दिया गया है यानी कांग्रेस जो समाजवादी पंचायती राज कायम करने की कोशिश कर रही है वह अहिंसात्मक बुनियादों पर क़ायम किया जावेगा।

हाल ही में आल इण्डिया वीमेन्स कान्फरेन्स के अधिवेशन में भारतमन्त्री लार्ड पेथिक लारेन्स की पत्नी लेडी पेथिक लारेन्स ने जो सन्देश भेजा था उसमें लिखा था कि "गान्धी जी अपने ज़माने से कोसों आगे हैं लेकिन यह निश्चित है कि एटम बम से त्रस्त दुनिया को सबर गान्धी जी के बताए हुए उस अहिंसात्मक मार्ग पर ही चलना है कि जिसका अनुसरण हिन्दुस्तान कर रहा है।" दुनिया के तमाम विचारक आज गान्धी जी के बताए हुए मार्ग के कायल हैं और वे समझते हैं कि मानवता का कल्याण इसी रास्ते से होना है। ग़लत नहीं कांग्रेस ने अपने को अहिंसात्मक युद्ध का वाहन बनाया है। काँग्रेस आज न केवल अपनी स्वतन्त्रता के ही लड़ाई लड़ रही है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नए मूल्य क़ायम कर रही है। इसलिए जितनी देर वह अपने पथ से विचलित होगी वह न केवल अपने को क्षति पहुँचायेगी बल्कि नियति ने विश्व के भावी नेतृत्व की जो महान ज़िम्मेवारी उसके कन्धों पर रक्खी है उसको बड़ी ठेस पहुँचेगी।

कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव की छाया में आज हर कांग्रेस जन को इसी दृष्टि से अपने रास्ते को चुनकर उस पर दृढ़ता से चलना है।

जनतन्त्र या भीड़तन्त्र

पिछले महीने सोदपुर में रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं से बातें करते हुए गान्धी जी ने उन्हें बड़ी अनमोल चेतावनी दी हैं। इधर पिछले कई महीनों में कांग्रेस के बड़े बड़े और जिम्मेवार नेताओं ने एक दो या तीन वर्ष में हिन्दुस्तान को मुकम्मिल आज़ादी दिलाने का वादा किया है। किन्तु अपने इस वादे के साथ साथ उन्होंने अब तक जनता के सामने कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं रखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जो उनके इस वादे को पूरा कराने में मददगार हो। यदि इस गम्भीर ऐलान के पीछे केवल असेम्बलियों के चुनाव का कार्यक्रम हो तो जनता बिना किसी वादे पर भी कांग्रेस के उम्मीदवारों को वोट देने के लिए राज़ी थी। मुकम्मिल आज़ादी आयेगी और ज़रूर आयेगी। उसमें देर सवेर हो सकती है पर क्या उस दिन को सच्चा बनाने के लिए कोटि कोटि जनता की तय्यारी की ज़रूरत नहीं है? हमारे अब तक के सत्याग्रह के प्रयत्न अपने उद्देश्य में इसीलिए पूरी तरह सफल नहीं हो सके कि कांग्रेस के लाखों स्वनामधन्य कार्यकर्त्ता केवल व्याख्यानों, जुलूसों और राजनैतिक कार्यक्रम में ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहे। उन्होंने जनता के साथ ठोस सम्पर्क कायम रखने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं किया और जनता के साथ सम्पर्क क़ायम करने का सिवाय गान्धी जी के बताए हुए रचनात्मक कार्यक्रम के क्या कोई और भी दूसरा ज़रिया है? रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा जनता के साथ सम्पर्क क़ायम करना, उसके विश्वास को जीतना और उनमें आन्दोलन की जड़ को गहराई के साथ लेकर जमाना ही हमें अपने उद्देश्य के नज़दीक ले जा सकता है पर इसके लिए हमारे कार्यकर्त्ताओं को शहरों का मोह छोड़ना होगा। एक एक गांव में जाकर बसना होगा। गाँववालों के साथ एकाकार होना होगा। उनके दुख सुख में अपने आप को पूरी तरह विसर्जन कर देना होगा तभी हम जनता के विश्वास को जीत सकते हैं। तभी कोटि कोटि जनता सत्याग्रह के संग्रामों में दृढ़ता के साथ आगे बढ़कर हिस्सा ले सकती है और विदेशी राज्य के ख़िलाफ़ ऐसा ज़बरदस्त और संगठित मोर्चा दे सकती है कि उसे देश छोड़ने पर ही विवश होना पड़े। हम इस दिशा में अपने प्रयत्न को जितना ही ढीला छोड़ते है उतना ही अपनी सफलता की घड़ी को भी दूर फेंकते हैं।

दूसरी बात जिसकी ओर हमें ख़ासतौर से ध्यान देना है और जिसकी चर्चा गान्धी जी ने सोदपुर में रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं से की थी वह यह है कि अहिंसात्मक जनतन्त्र में शासन संगठन का क्या विधान होगा। अहिंसात्मक शासन में आर्थिक शोषण को कोई जगह नहीं होगी। इसके लिए गान्धी जी की यह योजना है कि हर गांव एक आर्थिक इकाई समझा जाय और इस तरह की अशोषित इकाइयाँ स्वेच्छा के साथ थोड़े से ग्रामों की एक बड़ी इकाई बनायें और इस तरह की बड़ी इकाइयां स्वेच्छा के साथ प्रान्तीय इकाइयाँ क़ायम करें और तब इस तरह की स्वेच्छा से शामिल होने वाली प्रान्तीय इकाइयों से भारतीय सङ्घ शासन कायम हो। अर्थात भारतीय सङ्घ शासन को बल और अधिकार गांव की बुनियादी इकाइयों से मिले और तभी वह अहिंसात्मक बुनियादों पर कायम किया हुआ सङ्घ शासन कहा जा सकता है। उस सूरत में सभी इकाइयों का सहयोग स्वेच्छापूर्ण सहयोग होगा। इसके विपरीत कांग्रेस की नेताशाही जिस सङ्घ शासन की स्थापना का प्रयत्न कर रही है वह वोट प्राप्त करके विधान निर्मात्री परिषद के द्वारा एक विधान बनाकर, उसे सारे देश पर लाद देना होगा। ऊपर से लादे हुए विधान में स्वेच्छा सहमति न होगी और जहां स्वेच्छा सहमति नहीं वहां अहिंसा कैसे हो सकती है। गान्धी जी की चेतावनी है कि गणतन्त्र के नाम पर इस तरह वोटों के द्वारा जिन थोड़े से आदमियों के हाथों में ताक़त आ जायगी वे अपने हाथों में अधिकार सुरक्षित रखने के प्रयत्न स्वरूप फासिस्ट बन सकते हैं। गणतन्त्र के अन्दर फासिस्ट होने का ख़तरा छिपा रहता है। भीड़ को एक बार जोश दिलाकर वोटों द्वारा उससे अधिकार ले लिए जाते हैं और बाद में वे उसे ही कुचलने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं। गान्धी जी इस तरह के गणतन्त्र को भीड़तन्त्र कहना अधिक पसन्द करते हैं। कांग्रेस की मिनिस्ट्रियों ने अपने पिछले शासन काल में ग्राम पंचायतों का कानून पास किया किन्तु देखा यह गया कि इन पंचायतों में ऐसे ही आदमियों का आधिपत्य होगया जिनका कि पेशा ही गांव में मतभेद क़ायम रखकर पुलिसवालों को खुफ़िया मदद पहुंचाना है। पञ्चायतें बनाकर भी ग्रामवालों का उससे फायदा न हो सका। अहिन्सात्मक समाज में नीचे से ही अधिकार दिये जायें। ऊपर से थोपे हुए अधिकारों को हानिकारक और त्याज्य समझा जायगा।

आज औसत कांग्रेस कार्यकर्ता शक्ति सत्ता के सिद्धान्त पर विश्वास रखता है चाहे वे कांग्रेस कमेटियां हों चाहे म्यूनिसिपैल्टियाँ हों और चाहे छोटे छोटे लोकल बोर्ड हों वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता कायम करने के लिए गुटबन्दियों का सङ्गठन करता है और उन्हें सन्देहजनक उपायों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मज़बूत बनाता है। अपने इसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह मुनासिब नामुनासिब उपायों से भी कांग्रेस कमेटियों के ऊपर कब्ज़ा कायम रखना या करना चाहता है। वह जनता के हाथ में शक्ति नहीं देना चाहता बल्कि फ़ासिस्ट तरीक़ों से अपने हाथ में या अपनी पार्टी के हाथ में सत्ता को सुरक्षित रखना चाहता है। यह कैफ़ियत दो चार की नहीं बल्कि अधिकांश कांग्रेसजनों की है। हमारा कर्तव्य है कि हम अहिंसा के सिद्धान्त को सामने रखकर अपनी गति विधि का विश्लेषण करें और तब अपने सम्बन्ध में फ़ैसला करें कि क्या हमारे क़दम सचमुच अहिंसात्मक जनतन्त्र के सीधे रास्ते पर जा रहे हैं ?

ऐसे करोड़ों जनों के प्रतिनिधि

श्रीमती मीरा बेन ने हिमालय के किसी पहाड़ी गाँव से यूनाइटेड प्रेस को नीचे लिखा पत्र छपने को भेजा था जो १४ दिसम्बर के समाचार पत्रों में छपा है—

"नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर से बहुत ऊपर मैं हिमालय की उपत्यका में जब घूम रही थी तो एक ग़रीब किसान ने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ से आ रही हूं। जब मैंने उसे बताया कि मैं गान्धी जी की एक सेविका हूं तो उसने चिन्ता और व्यग्रता भरे शब्दों में मुझसे पूछा 'क्यों माँ, क्या कांग्रेस जीत जायगी ?' जब मैंने उससे कहा कि 'हां, ज़रूर', तो उसने अपने दोनों हाथ जोड़ कर ईश्वर को धन्यवाद दिया और खुशी से उसकी आखों मे आंसू छलक आए। थोड़ी देर तक उसके मुँह से शब्द नहीं निकले और फिर भरी हुई आवाज़ में उसने कहा 'हे ईश्वर ! तू महात्मा जी को ज़रूर जिता दे !'

"मैं मन में सोचने लगी इस निरक्षर सीधे सादे ग़रीबी से भरे हुए आदमी की तरह तो हिन्दुस्तान में करोड़ों मूक जनता रहती है। इनके लिए गान्धी जी और कांग्रेस में कोई अन्तर नहीं। यह बाहरी दुनिया की कोई बात नहीं जानते और न राजनीति की कोई बात जानते हैं लेकिन पता नहीं किस रहस्यमय प्रेरणा से यह एक बात जानते हैं कि कोई महात्मा गान्धी हैं कि जो हमारे दुख दर्द को समझते हैं, जो हमारे लिए रहते हैं और हमारी ज़रूरतों को महसूस करते हैं। इसके साथ साथ यह लोग यह भी जानते हैं कि कांग्रेस नाम की भी कोई चीज़ है कि जो सरकार से लड़ रही है और कांग्रेस वाले सदा गान्धी जी की जय के नारे लगाते रहते

"मेरे दिल में एक टीस उठी पर मैंने उससे की बात कही और उसे भरोसा दिलाया। बातें कितना आसान है पर उस पर अमल करना मुश्किल है। कांग्रेस ने हिन्दुस्तान की करोड़ों मूक के दिलों और विश्वास को केवल एक आदमी की और पवित्रता से जीत लिया है। इन लोगों में ग़रीब ग़रीब और नगण्य से नगण्य आदमी शामिल हैं ऐसा लगता है कि कांग्रेस जन अपनी इस महती वारी को कम से कम महसूस करते हैं। आज की राजनीत की तूफ़ानी लहरों पर वे छाए हैं जिस अध्यात्मिक शक्ति ने उन्हें गौरवपूर्ण शिख पहुंचाया है और उन्हें दुनिया की नज़रों में बनाया है वह उनके साथ नहीं रहेगी यदि उन्होंने जीवन देनेवाले सत्य और अहिंसा को तिलांजलि गान्धी जी के जिस पवित्र नाम को वे लेते हैं मुताबिक यदि वे अपनी ज़िन्दगी बसर कर भगवान शिव की तरह कि जिनके मन्दिर के ऊपर ग़रीब किसान खड़ा हुआ था उन्हें विषपान दुनिया को नष्ट होने से बचाना पड़ेगा।"

मीरा बेन के इन मार्मिक शब्दों की ओर हम कांग्रेसजन का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जी जिस 'दरिद्रनारायण' की सेवा का व्रत लेकर हैं और जिनके प्रतिनिधित्व का दावा कांग्रेस उनके सच्चे प्रतिनिध हम तभी बन सकते हैं जब भावना हमारे राजनैतिक जीवन का अंग हो और यह देखकर हमारे मन में बड़ा विषाद सा छा जा कि औसत कांग्रेसजनों के मन में अपने त्याग और सहन के लिए एक अनुचित अभिमान भर गया जिससे जनता का दिमाग़ तो हम जीत सकते हैं पर नहीं !

देशी राज्यों का प्रश्न

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अखिल भारतीय राज्य प्रजा परिषद का वार्षिक अधिवेशन उदय पण्डित जवाहरलाल नेहरू की सदारत में हुआ। पहली मर्तबा यह अधिवेशन किसी देशी राज्य की के अन्दर हुआ है। पण्डित जवाहरलाल जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारगर्भित भाषण में देशी राज्यों की समस्या का बड़ा स्पष्ट विश्लेषण किया है। उन्होंने बताया कि 'देशी राज्य का मसला एक दूसरे रूप में ब्रिटिश सरकार का मसला है।' पिछले वर्षों में नरेन्द्र मण्डल (चैम्बर आफ़ प्रिन्सेज़) ने किसी किसी मामले में क्राउन रेप्रेज़ेण्टेटिव (देशी नरेशों से व्यवहार करनेवाला सम्राट का प्रतिनिधि जो वायसराय ही होता है) से निडरता बरती मगर आमतौर पर देशी नरेश पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के हाथों में कठ-पुतली की तरह नाचते हैं। इस डिपार्टमेंट से उनकी रक्षा करने की सामर्थ्य किसीमें नहीं है। जो नरेश उदार और अग्रगामी विचारों के होते हैं उन्हे यह डिपार्ट-मेण्ट ज़रा भी पसन्द नहीं करता। वे अपनी मरज़ी के मुताबिक़ दीवान या मन्त्रियों को नहीं रख सकते और उनके यहाँ ऐसे मन्त्री मुक़र्रर कर दिये जाते हैं जिन्हें वे ज़रा भी पसन्द नहीं करते। सर जाफ़री दे माण्टमोरेन्सी ने भारत के देशी नरेशों के सम्बन्ध में कहा था—"जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है अङ्गरेज़ी सत्ता के हटते ही देशी राज्यों को ख़त्म करके उन्हें (आज़ाद) भारत में शामिल कर लिया जायगा।" हमें इन नरेशों की अधिक चिन्ता नहीं। हमारे लिये यह बात कोई महत्व नहीं रखती कि ये नरेश रहें या न रहें; इन्हें पेन्शन मिले या इन्हें मिटा दिया जाय। हमें केवल इन राज्यों की प्रजा का ख़याल है। और हम पण्डित जवाहरलाल के इस सुझाव से सहमत हैं कि देशी राज्य शासन में कमसे कम दो बुनियादी सुधार किये जायँ। एक यह कि छोटे छोटे देशी राज्य ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में मिला दिये जायँ, वे बड़ी रियासतों में न मिलाये जायँ जैसा कि पश्चिमी भारत में किया गया है। दूसरा सुधार यह किया जाय कि बड़ी बड़ी १५ या २० रियासतों की स्वाधीन इकाइयों का एक फ़ेडरेशन बना दिया जाय और वहाँ के नरेशों को अपनी अपनी रियासत का (Constitutional head) समझा जाय। इसके लिये पण्डित नेहरू ने औंध और हैदराबाद की दो मिसालें दीं। औंध में जब कि "राजा जनता का सेवक और आत्मदर्शक है", हैदराबाद में निज़ाम "स्वयं अपने व्यक्तित्व में जनता का प्रतिनिधि है और प्रजा के साथ उसका सम्बन्ध चुने हुये प्रतिनिधियों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक और देर तक क़ायम रहनेवाला है।" औंध और हैदराबाद के बीच में सदियों का फ़ासला है।

ब्रिटिश सरकार जनता की स्वाधीनता के रास्ते में जिस तरह हिन्दू मुसलिम समस्या को रोड़े की तरह इस्तेमाल कर रही है उसी तरह देशी नरेशों को भी वह अपनी 'फूट फैलाओ और राज करो' वाली नीति का शिकार बनाये हुये है। इलाज दोनों का एक ही है। जब तक ब्रिटिश सरकार क़ायम है तब तक न तो देशी राज्यों की प्रजा को ही अधिकार मिलेंगे और न ब्रिटिश भारत में हिन्दू मुसलिम समस्या हल होगी। भारत का जो भी विधान बनेगा वह बालिग़ मताधिकार की बुनियाद पर चुनी हुई विधान निर्मात्री परिषद द्वारा ही बनेगा और उसमें देशी राज्यों की प्रजा को अलग नहीं किया जायगा।

क्रिप्स की योजना में देशी राज्यों की जनता को कोई अधिकार नहीं दिये गये थे। इस स्थिति को देशी राज्यों की जनता कभी स्वीकार नहीं कर सकती। देशी राज्यों की जनता जाग गई है। वह अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये मुसीबतें भी झेल रही है और तमाम कष्टों को सहते हुये प्रगति के निश्चित पथ की ओर बढ़ रही है। देशी नरेशों ने यदि जनता की विजय यात्रा के रास्ते में रुकावटें डालीं तो वे भी अङ्गरेज़ी राज्य के समान ही मिट जावेंगे। अब एक ऐसी स्थिति आ गई है कि देशी नरेशों को अपनी नीति के सम्बन्ध में किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचना होगा। उनके दमन और अत्याचार अब जनता को दबाकर नहीं रख सकते।

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हैदराबाद (सिंध) में श्रीमती हंसा मेहता के सभापतित्व में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन में प्रमुख भारतीय महिलाओं के अतिरिक्त ब्रिटेन, मिस्र, आस्ट्रेलिया आदि की भी महिला प्रतिनिधि शामिल हुई थीं।

हिन्दुस्तान में पिछली शताब्दियों में महिला जागृति आन्दोलन के सबसे पहला प्रवर्त्तक राजा राममोहन को समझना चाहिये। किन्तु आधुनिक महिला सम्मेलन की बुनियादें डालने का श्रेय श्रीमती एनी बेसेण्ट को है। इङ्गलैण्ड के सफ़्रेजिस्ट आन्दोलन में वे प्रमुख हिस्सा ले चुकी थीं। स्त्रियों के अधिकारों की वे ज़बर्दस्त हामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। भारत में उन्होंने सबसे पहले सन १९२३ में वीमेन्स इण्डियन एसोशियेशन नामक संस्था क़ायम की जिसने उन्नति करके सन् १९२६ में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का रूप ले लिया और हिन्दुस्तान के प्रमुख केन्द्रों में उसकी प्रान्तीय शाखायें भी स्थापित हो गईं। हैदराबाद में सम्मेलन का यह १८ वाँ अधिवेशन हुआ और इसे हम अब तक के अधिवेशनों में सबसे अधिक सफल अधिवेशन कह सकते हैं।

सम्मेलन ने जो २५ प्रस्ताव पास किये उनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी समस्याओं पर महिलाओं के दृष्टि-कोण से विचार प्रकट किये गये हैं। सम्मेलन ने अपनी स्थायी समिति को यह अधिकार दिया है कि वह 'स्त्रियों के अधिकार' का एक चार्टर तय्यार करे जो राष्ट्रीय सरकार के बनने पर उसकी स्वीकृति के लिये पेश किया जायगा। इस अधिकार पत्र में स्त्रियों को पुरुषों के मुक़ाबले में नागरिक और राजनैतिक बराबरी, जायदाद के उत्तराधिकार और नौकरियों में बराबरी के अधिकार की बात होगी। शादी-ब्याह, के अधिकारों में उन्हें घटिया दरजा नहीं रहेगा। नौकरी के दौरान में उन्हें बच्चा जनने के लिये जापे की छुट्टी मिलेगी और अस्पताल का मुफ़्त प्रबन्ध रहेगा। उन्हें अनिवार्य प्रायमरी तालीम दी जायगी और ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा दी जायगी। उन्हें शारीरिक श्रम के लिये बराबर की मज़दूरी दी जायगी। 'बराबरी' की व्याख्या करते हुये सभानेत्री हंसा मेहता ने कहा कि बराबरी से तात्पर्य समान अवसर देने से है। "व्यक्ति की हैसियत से स्त्री को नागरिक के कर्तव्य पूरा करने के समान अधिकार होंगे फिर चाहे यह अधिकार राजनैतिक हो, सामाजिक हो या नागरिक हो। समाज की इकाई व्यक्ति होगा परिवार नहीं इसलिए स्त्री को अपनी निजी हैसियत से अधिकार होंगे, इसलिए नहीं कि वह किसी अधिकार प्राप्त पुरुष की पत्नी है। हम आज कल के उस मताधिकार को जिसमें 'शौहरी' बिना पर स्त्रियों को वोट का अधिकार मिलता है हरगिज नहीं स्वीकार कर सकते।"

जहां तक इन्डियन नेशनल कांग्रेस का सम्बन्ध है उसने सन् १९३१ के कराची अधिवेशन में जो बुनियादी अधिकारों का प्रस्ताव पास किया था उसमें यह बात साफ़ कर दी थी कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही अधिकार प्राप्त हों। इसलिए जब भी राष्ट्रीय सरकार क़ायम हो स्त्रियों को कानूनन बराबरी के अधिकार मिल जायें। इङ्गलैण्ड में बेवरिज की सामाजिक सुरक्षा योजना और मित्र राष्ट्रों के सैन फ्रान्सिस्को के फ़रमान में भी बराबरी के अधिकार के सिद्धान्त को माना गया है।

हमें इस बात से खुशी हुई कि श्रीमती हंसा मेहता ने केवल स्त्रियों के अधिकारों की ही मांग नहीं की बल्कि उनके कर्तव्यों का भी ज़िक्र करते हुए कहा—"यह काफ़ी नहीं है कि हम अपने अधिकारों की ही मांग करें। हमें अपने कर्तव्यों को भी जानना चाहिये। स्त्री एक व्यक्ति है और साथ ही साथ समाज की सदस्य भी है। वह परान्नभोजी बनकर जीवन नहीं बिता सकती। उसे समाज के कल्याण के लिए अपनी पूरी शक्ति लगानी है।" अनेक लेखकों ने भारत के अल्पमत वर्गों का ज़िक्र करते हुए यह लिखा है कि भारत का सबसे बड़ा अल्पमत (Minority) भारत की स्त्रियां हैं जिनमें केवल दो फ़ीसदी साक्षर हैं और तीन करोड़ जात-पांत के बन्धनों में जकड़ी हुई परदे के पीछे अन्तःपुर में रहती हैं और जिन तक किसी भी सुधारक की पहुंच नहीं। इन स्त्रियों को शिक्षित बनाने और भारत की लगभग बीस करोड़ स्त्रियों को समान अधिकारों के योग्य बनाने के लिए क्या स्त्री नेता हैं? अभी तक अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की कार्य-कर्त्ताओं में श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती मुथु लक्ष्मी रेड्डी, बेगम हामिद अली, श्रीमती मार्गरेट कज़िन्स, स्वर्गीया एनी बेसेन्ट, रानी राजवाड़े, राजकुमारी अमृत कौर, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित और श्रीमती कमला देवी जैसी प्रसिद्ध महिलाओं के नाम दिखाई देते हैं। सम्मेलन की अन्य कार्यकर्त्रियों में समाज में ख़ुशहाल मध्यश्रेणी वर्ग की महिलाएँ ही दिखाई देती हैं। उच्च वेगमों, रानियों और सरकारी अधिकारियों, प्रोफ़ेसरों की पत्नियाँ ही शामिल हैं जो कि सम्मेलन में किसी इस मिशन के उद्देश्य से नहीं बल्कि फैशन के तौर पर शामिल होती हैं। किन्तु भारत का स्त्री समाज तो शहरों में नहीं बल्कि गांवों में रहता है और अभी तक गांवों की धूल भरी सड़कों और फूस की कुटियों में महिला आन्दोलन की परछाईं तक नहीं पड़ी है। इन अशिक्षित ग्रामीण स्त्रियों तक अपना सन्देश पहुंचाने के लिये क्या महिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन की अत्यन्त सुशिक्षित और धनी कार्यकर्त्रियां प्रयत्नशील हो सकेंगी ? किन्तु इसके लिए उन्हें लिपिस्टिक, रूज़, पाउडर और पफ़ को अलविदा कहकर जेलों का स्वागत करना होगा। जिस तरह इँगलैंड में सफ्रेजिस्ट महिलाओं ने किया था। सुन्दर और विनम्र श्रीमती कज़िन्स ने एक मर्तबा साहस के साथ एक मीटिंग में एक ऐसे पुरुष वक्ता को ढेला फेंककर मारा था कि जो पुरुषों की एक सभा में स्त्रियों की मांगों का विरोध कर रहा था।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के कार्य को कोई महत्व नहीं दे रहे हैं। उन्हींके उद्योग से औरतों को यह सीमित मताधिकार मिला है। उत्तराधिकार और विवाह बिल भी आज सेन्ट्रल एसेम्बली के सामने उन्हींके उद्योग स्वरूप पेश है। सन १९२८ मे उन्हींके प्रयत्न से महिला मज़दूरों का कोयले की खानों में काम करना बन्द हुआ था। बङ्गाल के अकाल के दिनों में महिला सम्मेलन ने काफी काम किया किन्तु हमारी नम्र राय में यह सब स्त्रियों की व्यापक समस्याओं को देखते हुए केवल सतही काम है। महिला सम्मेलन जब तक गावों में नहीं पहुंचता तब तक स्त्रियों की उन्नति का कोई वास्तविक काम नहीं हो सकता। महात्मा गान्धी ने पिछले २५ वर्षों में अपने सत्याग्रह संग्रामों के द्वारा भारतीय अबला में जो शक्ति, साहस और बल फूँका है उसे देखकर सारी दुनिया हैरान है। आज कस्तूर बा स्मारक ट्रस्ट के सवा करोड़ रुपए से वे ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा दीक्षा का वृहत प्रयास कर रहे हैं। और उसका सारा काम वे महिलाओं द्वारा ही कराना चाहते हैं किन्तु यह देश के दुर्भाग्य और लज्जा की बात है कि इस पुण्य-कार्य में उन्हें उचित संख्या में महिला कार्यकर्त्रियां नहीं मिल रही हैं। हैदराबाद के अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में भी इस व्यापक कार्य में हिस्सा बटाने की कोई तजवीज़ नहीं पास हुई और तब हमें हैरत होती है इन बेगमों, रानियों और नेताओं पर कि यह किस बिर्ते पर अपने समानाधिकार के प्रस्तावों को देश के द्वारा मंजूर कराना चाहती हैं। क्या वे यह चाहती हैं कि स्त्रियों की उन्नति की समस्त योजनाओं के अमल की ज़िम्मेवारी पुरुषों के कन्धों पर हो और वे महज़ सजी सजाई गुड़िया बनकर लम्बी लम्बी तक़रीरें करती फिरें। पर यह रास्ता कल्याण का रास्ता नहीं है। कम से कम गान्धी जी ऐसा नहीं समझते। भारत की पिछली जन जागृति में गान्धी जी के कारण स्त्रियों की जाग्रति का एक बहुत बड़ा भाग रहा है। गान्धी जी जिस तपस्या के बीच से उनको ले जाना चाहते हैं वही उनकी तरक्की का एक मात्र रास्ता है। बदक़िस्मती से हमारी आधुनिक महिलाओं को गान्धी जी के बताए हुए कठोर मार्ग पर चलने में कोई अनुरक्ति नहीं दिखाई देती। जब तक यह समस्या हल नहीं होती तब तक थोथे प्रस्तावों से महिला जागृति की गाड़ी ज़्यादा दूर चलने में कामयाब नहीं हो सकती।

हम अब अहिंसात्मक उपायों से लड़ेंगे

आज़ाद हिन्द फौज़ के वीर सेनानी शाहनवाज़, सहगल और धिल्लन की आजन्म कारावास की सज़ा को कमान्डर-इन-चीफ़ ने अपनी ताक़त से रिहाई में बदल दिया। हम ब्रिटिश साम्राज्यशाही की इस दूरन्देशी की नीत पर उसे बधाई देते हैं और इन बहादुर सेनानियों का अपने बीच में हृदय से स्वागत करते हैं। साम्राज्यशाही के क़ानून की दृष्टि से भले ही कोर्ट मार्शल और कमान्डर-इन-चीफ़ ने इन्हें दोषी और सज़ावार समझा हो लेकिन ४० करोड़ हिन्दुस्तानियों की नज़रों में उस विशेष परिस्थिति के अन्दर ये न केवल निर्दोष थे बल्कि इनके कारनामे प्रशंसा के क़ाबिल थे। इसीलिए आज हर हिन्दुस्तानी के दिल में इन सेनानियों के लिए इज़्ज़त और मोहब्बत है।

अनेक भाइयों को इस बात पर रोष था कि तमाम हिन्दुस्तानियों की मांग को ठुकराकर इन पर मुक़दमा चलाया जा रहा है लेकिन हमें इसका कोई ग़म नहीं। लाल क़िले के इस मुकदमे ने न सिर्फ़ हिन्दुस्तान में ही बल्कि सारी दुनिया में आज़ाद हिन्द फौज़ के और आज़ाद हिन्द अनस्थायी सरकार के ज्वलन्त कारनामों को रोशन कर दिया। पिछले चार वर्ष से ब्रिटिश साम्राज्यशाही और हमारे भारतीय कम्युनिस्ट मित्र नेता जो सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिन्द सरकार के सम्बन्ध में जिस भयकर झूठ का प्रचार कर रहे थे उसकी धज्जियां उड़ गईं। नेता जी और उनकी आज़ाद हिन्द फौज़ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्बानियाँ प्रखर सूरज की तरह मिथ्या प्रचार के बादलों को फाड़कर सारी दुनिया पर चमकने लगीं। इसलिए हमें इस मुक़दमे के चलाने के लिए सरकार के प्रति रोष नहीं बल्कि अनुग्रह प्रकट करना चाहिये। कप्तान शाहनवाज़ ने इस मुकदमे के दौरान में अपनी स्थिति को साफ़ करते हुए कहा था—

"जब मैंने सोचा कि अङ्गरेज़ी साम्राज्यशाही मेरे मुल्क के करोड़ों भूखे हिन्दुस्तानियों का शोषण कर रही है और इसी शोषण को आसान बनाने के लिए उन्हें अज्ञान और अशिक्षा के अँधेरे में रख रही है तो उसके लिए मेरे दिल में नफ़रत हो गई। मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई है कि भारत में विदेशी शासन अन्याय पर क़ायम है और इस अन्याय को दूर करने के लिए हमने अपना घर-बार, ख़ानदान और ज़िन्दगी सबको मुल्क पर कुर्बान करने की ठान ली। हम लोगों को जो मुसीबतें और तकलीफ़ें सहनी पड़ी हैं उन्हें कोई वेतन भोगी सेना क्या सहेगी। हमने तो महज़ मुल्क की आज़ादी के लिए ही कफ़न सर से बाँधा है।"

आज किसी भी ईमानदार आदमी को नेता जी, उनकी आज़ाद हिन्द फौज और उस फौज के बहादुर सेनानियों की देशभक्ति के बारे में जरा भी संशय नहीं है। श्री भूलाभाई देसाई ने जिस योग्यता के साथ इस मुकदमे में सफ़ाई की तरफ़ से पैरवी की और इन्टरनेशनल ला के सिद्धान्तों को अपने पक्ष में जिस तरह पेश किया उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। किन्तु फिर भी इस मुकदमे के फ़ैसले से क़ानून का बुनियादी मसला नहीं हल हो पाया। क़ानून कहता है कि सम्राट की सरकार के ख़िलाफ़ युद्ध करना एक बहुत बड़ा गुनाह है। लेकिन हम पूछना चाहते हैं कि सम्राट की इस सरकार के यहां क़ायम होने में किसकी स्वीकृति है? किसने इसे यह अधिकार दिया? किनकी भलाई बुराई के लिए यह शासन कर रही है? श्री भूलाभाई देसाई ने विविध देशों की ऐतिहासिक मिसालें देकर इस सिद्धान्त को सामने रक्खा कि किसी भी देश की जनता को अपने देश के हित में उस देश पर काबिज़ विदेशी हुकूमत के ख़िलाफ़ हथियार उठाने का हक़ है। लेकिन सरकारी वकील ने इस दलील का कोई जवाब न देकर महज ग्रेट ब्रिटेन और हिन्दुस्तान में क़ायम क़ानून की बिना पर ही अभियुक्तों के अपराध को देखा। आजाद हिन्द फौज को यदि सफलता जाती तो इतिहास इस कहानी को किसी और ही से दर्ज करता लेकिन इन प्रश्न को हमें महज मार्शल के फैसले की रोशनी में ही नहीं देखना दुनिया की ऐतिहासिक घटनाएं इन्हें निर्दोष सम हैं। हिन्दुस्तान की जनता इन्हें निर्दोष समझती है अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून इन्हें निर्दोष समझता है और तरह के नैतिक नियमों की तराजू पर यह लोग नि ठहरते हैं। तब हमें परवाह नहीं कि अङ्गरेज़ी का इन्हें क्या समझता है।

इस रिहाई के बाद दिल्ली की एक विराट की सभा में कप्तान शाहनवाज़ ने अपनी स्थिति को करते हुए कहा कि—

"हम अपने देश की जनता को धन्यवाद देने लिए इस सभा में आए हैं। हम आपको बधाई भी चाहते हैं। हम इसलिए आपको बधाई नहीं देते आपने हमारी जानें बचाईं बल्कि इसलिए कि भारत जनता की इच्छा के आगे ज़बरदस्त ब्रिटिश सरकार सर झुकाया। हम इसलिए आपको बधाई देते हैं जब से हमारा कोर्टमार्शल शुरू हुआ तब से आ हमारे प्रति प्रेम और कृतज्ञता दिखाई और हमारी पै की। आज की सभा में आप हमारी इज़्ज़त नहीं कर हैं बल्कि हमारे प्यारे नेता नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इज़्ज़त कर रहे हैं। हम एक बात अपने आगे के क्र क्रम के बारे में कहेंगे। हमने हिन्दुस्तान से बाहर ह यार लेकर अपने मुल्क को आजाद करने के लिए ल लड़ी। अब मुल्क के अन्दर हमें उसी लड़ाई को अ सात्मक तरीक़े से लड़ना है।.....हम सब एक उद्देश्य को लेकर आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे थे। ह बीच में किसी तरह के कोई साम्प्रदायिक तफ़रके थे। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सब साथ रहते साथ साथ खाना खाते थे, साथ साथ मिलकर लड़ और मुल्क की आज़ादी के लिए साथ साथ मि खून बहाते थे।"

कप्तान शाहनवाज़ ने इस बात का भी ऐलान कि वे आगे हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए अपनी शक्ति लगायेंगे। यदि इन बहादुरों की मिसाल इनकी कोशिशों से हमारे मुल्क की यह बदक़िस्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या थोड़ा बहुत भी सुलझ सके तो हमारे लिए वह सच्ची बधाई का दिन होगा। ईश्वर इनके इरादे को पूरा करे! जय हिन्द!

आर्थिक गुलामी की योजना

पाठकों को याद होगा कि कई महीने पहिले हिन्दुस्तान से कुछ प्रमुख व्यापरियों और कारख़ानेदारों का एक डेपुटेशन इङ्गलैण्ड और अमरीका गया था। भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार ने इस डेपुटेशन को हर तरह की सुविधाएँ दी थीं! इस डेपुटेशन के सदस्यों में बम्बई योजना के जनक श्री टाटा और श्री बिड़ला भी थे। डेपुटेशन के रवाना होने से पहिले अनेक गम्भीर कारणों की बिना पर गान्धी जी ने इन लोगों को चेतावनी दी थी कि यदि इन्होंने विदेशी पूँजीवादियों के साथ मिलकर देश के व्यापार और देश के साधनों को विदेशियों के यहाँ धरोहर रख दिया तो देश इस विश्वासघात को कभी बरदाश्त न करेगा। उस वक्त श्री टाटा और श्री बिड़ला दोनों ने ऐसी योजना से अपने को निर्दोष बताया था किन्तु गान्धी जी बग़ैर पक्की ख़बर पाए किसीके विरुद्ध कोई बात मुँह से नहीं निकालते। आख़िर हुआ वही जिसकी गान्धी जी ने चेतावनी दी थी। रह रहकर इन हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों के विश्वासघात का भडाफोड़ हो रहा है। ऐसा मालूम होता है इन्होंने ब्रिटिश पूँजीवादियों के साथ मिलकर देश के ग़रीबों को चूसने के लिए कोई गुप्त समझौता कर लिया है। थोड़े दिन पहले समाचार पत्रों में यह ख़बर छपी थी कि लार्ड नुआफील्ड की प्रसिद्ध अँग्रेज़ी मोटर कम्पनी बिड़ला के साथ मिलकर भारत में एक बहुत बड़ा मोटर कारख़ाना खोल रही है। अभी हाल में रायटर ने एक समाचार भेजा है कि इङ्गलैण्ड की इम्पीरियल कैमिकल वर्क्स कम्पनी भी टाटा के साथ मिलकर हिन्दुस्तान में अपने कारख़ाने खोल रही है। डेपुटेशन के और दूसरे सदस्यों ने अपने निजी फ़ायदे के लिए मुल्क के साथ विश्वासघात की क्या योजनाएँ बनाई हैं धीरे धीरे उनका भी पर्दा फाश हो जायगा। टाटा-बिड़ला योजना पर दस्तख़त करनेवाले एक सदस्य सर आर्देशिर दलाल तो वाइसराय की एक्ज़ीक्यूटिव काउन्सिल की मेम्बरी पाकर अपनी उस समस्त योजना को भूल गए हैं। लोग यदि यह सन्देह करें कि श्री दलाल टाटा, बिड़ला आदि के व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही सचमुच अपने नाम के अनुरूप दलाली कर रहे हैं तो उनका सोचना बेजा न होगा। भारत के बड़े बड़े पूँजीपतियों ने इस युद्ध के दौरान में जिस तरह चोर बाज़ारी की और जिस तरह अनाप शनाप मुनाफ़ा कमाया वह सब भारत के इतिहास का एक कलुषित अध्याय है। लोग नुक्ता-चीनी करते हैं कि गान्धी जी तब बिड़ला के यहाँ जाकर क्यों ठहरते हैं? गान्धी जी विश्व वन्द्य हैं। उन्होंने पतितों के उद्धार का बीड़ा उठाया है। दो हज़ार वर्ष पूर्व हज़रत ईसा भी कोढ़ियों के पास जाकर उनकी सुश्रुषा करते थे। आज इस बीसवीं सदी में दुनियां में शारीरिक कोढ़ियों की अपेक्षा सामाजिक कोढ़ियों की तादाद अधिक बढ़ गई है। युग उद्धारक बापू भला कैसे इन्हें इस कोढ़ में सड़कर मरने दे सकते हैं। उनके तराज़ू घृणा के नहीं प्रेम के हैं। और इस कोढ़ को दूर करने के लिए उनका इलाज ग्रामोद्योग और चर्खा है। किन्तु महात्मा जी की इस महान नीति के बावजूद देश की जनता अपने शोषण के इस नए षड़यन्त्र के लिए हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों को कभी क्षमा नहीं करेगी।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस बात को अच्छी तरह देख लिया है कि वह भारत पर अपनी राजनैतिक गुलामी को ज़्यादा दिनों तक क़ायम नहीं रख सकता। देर सवेर उसे शासक की हैसियत से इस मुल्क को ख़ाली करना ही पड़ेगा। इसी लिए उसने यह गम्भीर योजना बनानी शुरू कर दी है कि राजनैतिक दृष्टि से वह भारत को यदि गुलाम नहीं रख सकता तो आर्थिक दृष्टि से तो भारत का शोषण करता ही रहे। इसीलिए वह अपनी बड़ी बड़ी आर्थिक योजनाएं यहाँ पर अमल में लाने के लिए बना रहा है। अरबों-खरबों रुपया लगाकर यहाँ बड़े बड़े अँग्रेज़ी कारख़ाने खोले जायंगे। पूँजी विलायती होगी। मज़दूरी भारतीय होगी और नफा अँगरेज़ों की जेबों में जायगा। हाँ, उस पतित नफ़े में से दस-पाँच करोड़ रुपए श्री टाटा और श्री बिड़ला जैसे वतन फ़रोश हिन्दुस्तानियों की भी जेबों में चले जायंगे और भारत ब्रिटेन के आर्थिक पाश में पड़ा हुआ उसी तरह सिसकियाँ भरता रहेगा जिस तरह महान चीन अमरीका के आर्थिक प्रभुत्व के भार से दबा पड़ा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारीफ़ के क़ाबिल

पिछले मोहर्रम के अवसर पर जबलपुर में हिन्दू और मुसलमानों ने जिस बिरादराना मेल और मोहब्बत का परिचय दिया वह सचमुच तारीफ़ के क़ाबिल है। बावजूद मुसलिम लीग के घातक प्रचार के वहाँ हिन्दू और मुसलमानों का समाजी सम्बन्ध प्रेमपूर्ण रहा। सहयोगी 'सङ्गम' के अनुसार त्रिपुरी स्मारक के समीप श्री लक्ष्मीचन्द्र जी समैया और उनके उत्साही साथियों की ओर से बहुत बड़े पैमाने पर चाय का इन्तज़ाम किया गया था जहां कि सारी रात मुसलमान बिरादरान ख़ुशी ख़ुशी चाय पीते रहे। इसी तरह मोहर्रम के दिन फ़व्वारे के पास, तुलाराम के चौराहे पर, नेवार्ड गंज में, सराफ़ा बाज़ार में और गोविन्द गंज में अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों की ओर से सबीलें खोली गईं। जहाँ हिन्दू नौजवान—

"सबील नज़रे हुसेन कोई प्यासे न जाइयो"

की रट लगाते हुए मुसलिम बिरादरान को शरबत पिलाते रहे। साथ ही साथ वे यह भी कहते जाते थे कि शाह नवाज़, सहगल और धिल्लन सब एक ही बिरादरी के हैं। मुसलमान बन्धु अपने नेजे सँभाले सबील पर टूट पड़ते थे। अमीर से अमीर मुसलमान उस अपार भीड़ में घुसकर ख़ुशी ख़ुशी एक गिलास शरबत पीते थे और 'हिन्दू मुसलिम एक हैं' के नारे में अपना शुक्रिया अदा करके, जलूस में शामिल होकर आगे बढ़ जाते थे। इस वर्ष के मोहर्रम में एक विशेषता यह भी थी कि किसी किसी सवारी और ताज़ियों के बीच में हरे झण्डे के साथ तिरंगे झण्डे भी दिखाई दे जाते थे जिन पर जय-हिन्द लिखा रहता था।

वास्तव में हिन्दू मुसलिम समस्या इसी तरह के समाजी बिरादराना अमल की बिना पर हल हो सकती है। राजनैतिक मांगें इस तरह की एकता को क़ायम नहीं कर सकतीं।

सरहदी गान्धी के उद्गार

मुसलिम लीग के कई नेताओं ने सरहदी गान्धी बादशाह ख़ान से लीग में शामिल होने की अपील की थी। उनके जवाब में बादशाह ख़ान ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया है—

"चाहे सारी दुनिया मेरे ख़िलाफ़ हो जाय मगर अपने एतक़ाद और अपनी रूह के ख़िलाफ़ नहीं जाऊँगा मुझे इसकी फ़िक्र नहीं कि अपने रास्ते पर चलनेवाला मैं अकेला ही आदमी रह जाऊँ। चाहे कोई बुरा मा या भला लेकिन मेरी यह तयशुदा राय है कि मुसलि लीग अँग्रेज़ साम्राज्यशाही की बनाई हुई एक जमात कि जिसका मक़सद है वतन को आज़ाद करने की कोशि की कोशिशों में रोड़े अटकाना। जब तक मुसलिम ली अपने इस रतत पसन्द (प्रतिक्रियावादी) और मु फ़रोश रवय्ये को नहीं बदलती और जब तक हिन्दुस्ता के सच्चे फ़ायदे को अपना मक़सद नहीं बनाती और तक वह ब्रिटिश सरकार को हिन्दुस्तान ख़ाली करने लिए चैलेन्ज नहीं देती तब तक कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मुल्क की आज़ादी का ख़ाहाँ है मुसलिम लीग शरीक होने की ज़रा भी ख़ाहिश नहीं करेगा। क मुसलिम लीग वाले यह चाहते हैं कि मैं मुसलिम लीग शामिल होकर अँगरेज़ों का पिट्ठू बन जाऊँ ? क्या 'इसलाम ख़तरे में है' का नारा लगाकर अँगरेज़ों से मु के टुकड़े टुकड़े करवाऊँ ताकि अँगरेज़ी सल्तनत का न हो ? और क्या मैं मुल्क की आज़ादी से ज़्यादह किसी अ बात को तरजीह दूँ ? और क्या मैं मुसलिम लीगियों तरह अपने भाइयों के फ़ायदे के लिये कोई तामीरी का न करके कोरे नारे लगाता रहूं ? नहीं, हज़ार बार नहीं मैं मरजाना पसन्द करूँगा, मगर अपनी शान में बट्टा नहीं लगाऊँगा। मैं ख़िदमतगार हूँ। ख़ाली बैठने मौत को बेहतर समझता हूं। एक ग़लत बात के लि 'क़ायदे आज़म' बनने की मेरा ज़रा भी ख़्वाहिश नहीं है मुल्क की आज़ादी के लिए मैं अपनी आख़िरी साँस त लड़ूंगा। मुझे उन बदकिस्मत, गूँगे और बेपढ़े लि मुसलिम अव्वाम (जनता) पर तरस आता है जो अ ख़ुदगरज़ नेताओं की वजह से इक़्तसादी (आर्थिक सियासी और समाजी गड्ढे में गिर रहे हैं। हमारी बदकिस्मती है कि अँगरेज़ी पैसे और अँगरे प्रचार से भोले भाले मुसलमानों को धोखे में रख जा रहा है। मुसलिम लीग जैसी जमात जिस एक ही हथियार है—प्रचार और जिसका ही प्रचार है—हिन्दुओं से नफ़रत, और जिसका ही तामीरी काम है—अङ्गरेज़ी हुकूमत को क़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना, उम्मीद है बहुत जल्द वह अपने को ख़त्म कर लेगी।"

वीमेन्स आक्ज़िलरी कोर

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की समानेत्री श्रीमती हंसा मेहता ने भारतीय सेनाओं के साथ जो स्त्रियों का आक्ज़िलरी दल क़ायम किया गया था उसकी सदस्यों के सम्बन्ध में बड़े हैरतनाक इलज़ाम लगाए हैं। उन्होंने बताया है कि इस तरह की ख़बरें उन्हें मिली हैं कि दल की अनेक महिलाओं ने नाजायज़ बच्चों को जन्म दिया और हर पांच महिलाओं में से एक को गन्दी बीमारी हो गई है। यदि इस इलज़ाम में ज़रा भी सच्चाई है तो हम यह जानना चाहेंगे कि क्या भारतीय महिलाओं की यह दुर्दशा कराने के लिए ही सैनिक अधिकारियों ने यह दल खोला था? हम यह भी जानना चाहेंगे कि जिन महिलाओं को बीमारियां हो गई हैं उनकी आगे की ज़िन्दगी के लिए क्या योजना बनाई गई है। क्या सरकार यह भी बताने की कृपा करेगी कि इन महिलाओं में कितनी अधगोरी हैं और कितनी हिन्दुस्तानी?

सोवियत और ईरान

पिछले कई महीनों से ईरान के तेल के कुओं को लेकर सोवियत और ईरान में ख़ासी बदमज़गी चल रही है। सोवियत ने उत्तरी ईरान में तेल के कुएं खोदने के लिए कुछ शर्तों पर ठेके में ज़मीन की मांग की थी किन्तु अङ्गरेज़ी और अमरीकी प्रभाव में आकर ईरान ने सोवियत को किसी भी शर्त पर जमीन का ठेका देने से इनकार कर दिया था। हालांकि अङ्गरेजों ने एंग्लो परशियन आइल कम्पनी के ठेके जिन शर्तों पर ले रक्खे हैं उनसे बहुत अच्छी शर्तें सोवियत ने ईरान को दी थीं। सोवियत की इस हेठी पर इंग्लैण्ड और अमरीका में बड़ी खुशियां मनाई गईं। पर अन्दर ही अन्दर फोड़ा पकता रहा और वह फूटा उत्तरी ईरान के अज़रबैजान प्रान्त में। अज़रबैजान ने ईरान की केन्द्रीय सरकार से अपने को मुक्त करके अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी है। केन्द्रीय सरकार ने इस विद्रोह का दमन करने के लिए जब अपनी फौजें भेजनी चाहीं तो सोवियत की फौजों ने उन्हें रास्ते में ही रोक दिया। यह ध्यान में रहे कि अज़रबैजान का आधा हिस्सा सोवियत रूस में है, बाक़ी आधा हिस्सा ईरान में है। इस आधे ईरानी अज़रबैजान ने अपने आपको आज़ाद कर लिया। इसी प्रान्त में सोवियत तेल के ठेके के लिए ज़मीन चाहता था। किन्तु बात यहीं पर नहीं ख़तम होती। अज़रबैजान के प्रश्न को लेकर एक के बाद एक मन्त्री ईरानी सरकार से स्तीफ़ा दे रहे हैं और इस बात की सम्भावना दिखाई दे रही है कि ईरान में अनक़रीब सोवियत से हमदर्दी रखनेवाला एक मन्त्रिमंडल बन जाये और कोई ताज्जुब नहीं कि इस मन्त्रिमंडल में कोई ऐसा समझौता हो जाय कि जिसके फलस्वरूप ईरान की खाड़ी में भी कोई बन्दरगाह सोवियत को प्राप्त हो जाय। इससे बढ़कर भयंकर ख़तरा अङ्गरेज साम्राज्यशाही को और क्या हो सकता है किन्तु क्या अङ्गरेजों में इतना नैतिक साहस है कि वे सोवियत से कह सकें कि बस ख़बरदार! सोवियत जवाब में उनसे कह सकता है कि तुम यूनान में क्या कर रहे हो? हिन्द चीन में क्या कर रहे हो? और सायम में क्या कर रहे हो? इसी तरह अमरीका से वह पूछ सकता है कि चीन और जापान में तुम क्या कर रहे हो? और अपने राजनैतिक प्रभुत्व के बल पर वह ग़रीब ईरान से आज हर तरह की सुविधाएं हासिल कर सकता है। ब्रिटेन और अमरीका को सोवियत के हाथों पोलैण्ड में कूटनीतिक हार मिली, बलकान में कूटनीतिक हार मिली और अब उसी तरह की हार उन्हें ईरान में मिलने जा रही है। आज ब्रिटेन में इतनी हिम्मत नहीं कि वह सोवियत से लड़ाई के मैदान में इस हार का बदला ले सके। लेकिन यह तो समस्या का एक पहलू है! ईरान के दृष्टि-कोण से सोचने की न तो इस वक्त किसी को फ़ुरसत है और न ज़रूरत। वह अभागा सोवियत की इच्छा पूरी करके अपनी जो कुछ भी मर्यादा बचाए रख सकता है रखने की कोशिश करेगा।

तुर्की और सोवियत

सोवियत के विरुद्ध पच्छिम में ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने बलकान के देशों की जो किलेबन्दी कर रक्खी थी उसे सोवियत ने इस युद्ध के दौरान में छिन्न भिन्न कर दिया। अँग्रेज़ साम्राज्यशाही ने उसके बाद दक्षिण में ईरान से लेकर तुर्की तक सोवियत के विरुद्ध इसलामी दीवार खड़ी करने की कोशिश की जिसमें सोवियत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूटनीतिक धक्के से ईरान का हिस्सा तो धराशाई हो गया और अब तुर्की के साथ ईरान का संघर्ष चल रहा है। राष्ट्रपति कमाल अतातुर्क सोवियत के साथ तुर्की की मित्रता के महत्व को समझते थे किन्तु उनकी मृत्यु के बाद जब से इस्मत इनैनु तुर्की के राष्ट्रपति हुए हैं सोवियत के साथ तुर्की का संघर्ष बराबर बढ़ता जा रहा है। इस समय दो बातों को लेकर सोवियत और तुर्की के बीच मतभेद चल रहा है। एक यह कि सोवियत और तुर्की की सीमाओं को फिर से तय किया जाय और दूसरा यह कि दर्रे दानियाल में दोनों देशों की क्या हैसियत होगी—इसको तय किया जाय। पहिली बात को लेकर सोवियत की तरफ़ से यह मांग की जा रही है कि तुर्क सीमा पर स्थित कार्स और अर्दहान के सूबों को तुर्की से लेकर सोवियत में मिला लिया जाय इसलिये चूँकि सोवियत अरमनी (आरमीनिया) और इन दोनों सूबों की आबादी अरमनी आबादी है। इस माँग पर तुर्की में बड़ा रोष फैला हुआ है। दर्रे दानियाल के प्रश्न से सोवियत की रक्षा का सीधा सम्बन्ध है और सोवियत उसके फैसले पर काफ़ी ज़ोर देगा। तुर्की की तरफ़ से यह कहा जा रहा है कि दर्रे दानियाल की देख रेख एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन के सुपुर्द कर दी जाय। इङ्गलैण्ड और अमेरिका तुर्की की इस बात का समर्थन कर रहे हैं पर रूस इसके लिए तय्यार नहीं है। अँग्रेज़ साम्राज्यशाही इस बात को ज़रा भी बरदाश्त नहीं कर सकती कि पूर्वीय भूमध्यसागर में दर्रे दानियाल के रास्ते सोवियत का कोई असर पैदा हो। एक ओर तो दर्रे दानियाल की बात उठाई जाती है और दूसरी ओर लन्दन के 'आबज़रवर' पत्र के शब्दों में—"तुर्की से बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र को सोवियत अरमनी में मिला देने की मांग की जाती है। शतरंज की बाज़ी पर रूस मध्य यूरोप के देशों जैसे हंगेरी, चैकोस्लोवाकिया और शायद पोलैण्ड पर से अपनी मुट्ठी ढीली कर रहा है और रूमानियां, बलगारिया और जूगोस्लाविया पर अपने शिकंजे को कस रहा है तथा ट्रिपोलिटानियाँ और साइरेनेशिया पर संरक्षण करने का दावा पेश कर रहा है—इन सब बातों से साफ़ है कि वह काले सागर को रूसी झील बनाना चाहता है और उसके तटों को पूर्वीय भूमध्य सागर पर अपना असर बढ़ाने के काम में लाना चाहता है।" इसी पत्र में आगे चल कर लिखा है—"यदि इस तरह की सोवियत नीति अमल में आ गई तो वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्राणवाहिनी नसों के लिए ज़बरदस्त ख़तरा साबित होगी। मध्य पूर्व में रूस की अग्रनीत और सुदूर पूर्व उसकी उदार नीति, दोनों के फ़रक को नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता।"

इस बयान से यह स्पष्ट है कि तुर्की तो महज़ निमित्त मात्र है। असल लड़ाई तो ब्रिटेन और सोवियत के बीच में है। तुर्की को महज़ एक मोहरे के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है। 'आबज़रवर' के वक्तव्य में रूस की सुदूर पूर्व की नीति और मध्य पूर्व की नीति की तुलना का एक ख़ास अर्थ है। सुदूर पूर्व में अमरीका का प्रभाव है और मध्य पूर्व में ब्रिटेन का। रूस अमरीका के साथ उदार नीति बरतकर अपनी कूटनीतिक उग्रनीत का शिकार केवल ब्रिटेन को बनाना चाहता है। पंचतंत्र का उपदेश है—दुश्मनों पर इकट्ठा नहीं बल्कि एक के बाद दीगरे हमला करना चाहिये।

मास्को सम्मेलन

पिछले दिसम्बर के महीने में मास्को में सोवियत्, ब्रिटेन और अमरीका के वैदेशिक मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ। की कार्यवाही के बाद ज़ाहिरा एक समझौता करके स्थगित हो गया। लड़ाई के ख़ात्मे के बाद से यह तीनों बड़े राष्ट्र दुनिया के विविध हिस्सों में अपना अपना असर फैलाने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं। इसी कोशिश के नतीजे में आपस में इतनी बदगुमानियाँ पैदा हो गई थीं कि जिसके फल स्वरूप लन्दन की वैदेशिक मन्त्रियों की कानफ़रेन्स बिना किसी नतीजे पर पहुँचे भंग हो गई थी। यह परिस्थिति इतनी बेकाबू होगई कि तीनों देशों के मन्त्रियों को फिर से मिलकर किसी नतीजे पर पहुंचने के लिए मज़बूर होना पड़ा। यह सही है कि इस बार का सम्मेलन शान्ति सम्मेलन के कुछ मोटे मोटे उसूल तय करने में कामयाब हो गया किन्तु हमें उस समझौते में 'दुनिया के लिए कोई उम्मीद का सन्देश किसमस के मौक़े पर' नहीं दिखाई दिया। उसमें दुनियाँ में शान्ति क़ायम करने के कोई फ़ैसले नहीं किए गए। किन्तु हमें मास्को सम्मेलन को लन्दन सम्मेलन की असफलता की पृष्ठभूमि में देखना होगा। उस ज़माने में इङ्गलैण्ड और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका के बीच आर्थिक सुलहनामे की बातें चल रही थीं और ब्रिटेन के वैदेशिक मन्त्री मिस्टर बेविन को अमरीका के साहूकारों को यह दिखाना था कि ब्रिटेन सोवियत-अँग्रेज़ मित्रता के बजाय अंग्रेज़-अमरीकन मित्रता को ज़्यादा महत्व देता है। इस दिखावे का नतीजा, ज़ाहिर है, अमरीका के साहूकारों पर इतना अच्छा पड़ा कि ब्रिटेन और अमरीका के बीच एक आर्थिक सुलहनामा हो गया। अँग्रेज़ों ने लन्दन कानफ़रेन्स के ज़माने में यूरोपीय देशों में जनतन्त्र की ज़बरदस्त दुहाई दी लेकिन मास्को सम्मेलन में मिस्टर बेविन वह सारी दुहाई की बात भूल गए। पाठकों को इससे आश्चर्य भी हो सकता है कि आख़िर यह करिश्मा हुआ कैसे? अभी थोड़े दिन पहले तक ब्रिटेन और अमरीका के प्रमुख मन्त्री ऐलान कर रहे थे कि रूमानिया, बलगारिया और हंगेरी की सरकारों के साथ वे कोई वास्ता न रक्खेंगे। मास्को समझौते में इस सम्बन्ध में उनका आत्मसमर्पण दिखाई देता है। यूरोप के देशों के जो चुनाव हुए हैं उससे भी ब्रिटेन और अमरीका के टोरियों को बेहद सदमा पहुंचा होगा। यूरोप के हर मुक्तराष्ट्र में चुनाव होने पर वामपक्षी दल ही बहुमत में आए हैं। अक्तूबर में इसी प्रश्न को लेकर तीनों बड़े देशों में जंगोजेहद चल रहा था किन्तु ढाई महीने के बाद वह प्रश्न अपने आप हल हो गया। सच कहा जाय तो कूटनीतिक मोर्चे पर मास्को सम्मेलन ब्रिटेन और अमरीका के ऊपर सोवियत की विजय का सूचक है। जापान, मंचूरिया कोरिया, ईरान, बलकान, पोलैण्ड आदि सभी देशों के प्रश्नों पर और एटमशक्ति के नियन्त्रण पर मास्को सम्मेलन में सोवियत की ही बाज़ी ऊँची रही। किन्तु अभी बहुत से प्रश्न हल करने को बाक़ी रह गए हैं। मास्को के मोर्चे पर तो सोवियत ही विजयी रहा। लेकिन देखना यह है कि यह विजय कितने दिनों तक चलती है।

नये वर्ष का उपहार

रायटर के संवाददाता ने हिन्द चीन और हिन्द एशिया से पहली जनवरी सन् १९४६ को जो समाचार भेजे हैं उनमें बताया है कि किस तरह हिन्द चीन में फ्रांसीसी सैनिकों ने और हिन्द एशिया में अंग्रेज़ और गुरखा सैनिकों ने गांवों को जलाया और निरीह और मासूम लोगों को इस तरह सता सताकर मौत के घाट उतारा कि तमाम चीनी आबादी यह कहने लगी कि इतने ज़ुल्म तो जापानियों ने भी सात बरस में नहीं किए थे।

ऐसा मालूम होता है कि हिन्द चीन में जो ज़ुल्म हो रहे हैं वे अपनी भयंकरता में हिन्द-एशिया से भी बढ़ जायेंगे। ज़ुल्म सहनेवालों के लिए यह एक नगण्य सी बात है कि डच, अँगरेज़ और फरांसीसियों में कौन सबसे बड़ा ज़ालिम है या कौन कम से कम बर्बर है। हवाई जहाज से बम बरसते हैं, मकानों में आग लगाई जाती है, गांव के गांव जलाकर भस्म कर दिये जाते हैं, औरतों की इज़्ज़त हरी जाती है और मर्दों को तलवार के घाट उतारा जाता है। चाहे किसी देश का साम्राज्यवाद हो कमोबेश सबकी यही एक कहानी है। अमरीका के एक युद्ध के संवाददाता इवान किङ्गस्ले लिखते हैं—हिन्द चीन में जो कुछ हो रहा है वह इस बीसवीं सदी का बदतरीन ज़ुल्म है। दोनो तरफ़ के हताहतों की संख्या तेज़ी के साथ बढ़ रही है। अस्सी बरस के हिन्द चीन के फ़रांसीसी शासन का सबसे ख़ूनी अध्याय इस समय लिखा जा रहा है।" सेन्सर के बन्धनों को तोड़कर जो कुछ भी समाचार बाहरी दुनिया को दक्षिण पूर्वी दुनिया के मिल रहे हैं वे रोंगटे खड़े कर देनेवाले हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद न केवल ख़ुद ही एशियाई देशों पर काबिज़ है बल्कि हिन्दुस्तानियों के ख़ून की कीमत पर वह हिन्द-चीन और हिन्द एशिया में फरांसीसी और डच हुकूमत को कायम करने में मदद दे रहा है। यदि अँगरेज़ी मदद वक्त पर न पहुँचती तो इन मुल्कों से विदेशी ताक़त का जाने कबका खात्मा हो गया होता।

इस वक्त कैफ़ियत यह है कि अनेक समझदार अँगरेज़ अफ़सर इस बात की शिकायत कर रहे हैं कि जितनी मदद वे डचों को दे सकते थे उन्होंने दी और अब अगर वे डाक्टर सुकर्ण के साथ समझौता नहीं करते तो फिर हमारी कोई ज़िम्मेवारी नहीं रह जाती। कुछ दूसरे अँगरेज़ सैनिक तो इस बात पर हैरत कर रहे हैं कि हिन्द-एशिया और हिन्द-चीन पर जो ज़ुल्म हो रहे हैं उनमें और नाज़ियों के ज़ुल्म में कौन सा अन्तर है। क्या युद्ध इसीलिए लड़ा गया था कि फ्रांस और हालैण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो स्वाधीन हों और उनके आश्रित देश फिर से पराधीन और गुलाम बना लिए जायें।

—विश्वम्भरनाथ

'कौशिक' जी

गत दिसम्बर के महीने में साहित्य के प्रेमियों को हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री विशंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनना पड़ा। श्री 'कौशिक' का जन्म १८९१ ई० में हुआ था। आपकी सबसे पहली कहानी सन् १९११ ई० की 'सरस्वती' में 'रक्षाबन्धन' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। प्रारम्भ में आपने 'राग़िब' नाम से उर्दू शायरी भी की थी। यह एक सत्य है कि हिन्दी के प्रायः सभी अच्छे गद्य लेखक उर्दू से भली भांति परिचित थे। 'श्री कौशिक' जी के आज तक तीन उपन्यास, पांच कहानी-संग्रह तथा दो अनुवाद ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त 'दुबे जी की चिट्ठी' तथा कुछ और छोटी मोटी रचनाएँ भी प्राप्त हैं। कौशिक जी की इन सेवाओं के लिए हिन्दी के पाठक उनके कृतज्ञ रहेंगे। हम दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

यूनिवर्सिटियों में भाषा माध्यम का प्रश्न

पिछले कुछ सालों से हिन्दुस्तानी यूनिवर्सिटियों के अधिकारी भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने के सिद्धान्त को स्वीकार कर रहे हैं। इधर युद्ध की समाप्ति पर राष्ट्रीय जागरण के साथ यह प्रश्न भी कुछ और अधिक ध्यान आकर्षित करने लगा है। उस्मानिया यूनिवर्सिटी ने तो उर्दू का माध्यम कई वर्षों से स्वीकार कर रखा है। काशी विश्वविद्यालय ने माध्यम तो नहीं बदला परन्तु इसी वर्ष यह स्वीकार किया है कि यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट-परीक्षाओं में विद्यार्थी यदि चाहें तो हिन्दी में प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय ने हाल ही में यह स्वीकार किया है कि वह माध्यम को तो नहीं बदल सकता परन्तु ग्रेजुएट-परीक्षाओं में हिन्दी-उर्दू को आंशिक रूप से पाठ्यक्रम में आवश्यक बनाया जा सकता है। यह परिवर्तन किस प्रकार किया जाएगा इस पर कोई निश्चित बात नहीं बताई गई और प्रश्न फेकल्टी आफ आर्ट्स के पास विचारार्थ भेज दिया गया है। इधर डी० फिल० तथा डी० लिट० में भी थीसिस हिन्दी तथा उर्दू में स्वीकार की गई है परीक्षार्थियों को अँगरेजी में लगभग एक तिहाई सारांश देना पड़ता है। सम्भवतः अँगरेज़ी की महानत स्वीकार करने का यह एक संकेत है। अन्य यूनिवर्सि अपने कानों में तेल डाले बैठी हैं। शायद उनकी शक्ति ही गुलामी करते करते नष्ट हो चुकी है। उ निया विश्वविद्यालय बधाई का पात्र है परन्तु पता प्रयाग तथा काशी यूनिवर्सिटियों के अधिकारी इन प्रगति के क़दमों से कितने सन्तुष्ट हैं। हमें तो क़दमों में कुछ भी प्रगति नहीं दिखलाई पड़ती। तक मातृभाषा-माध्यम के सिद्धांत के स्वीकार करने प्रश्न है वह यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर के शब्द वैसा ही है जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य का भारत स्वराज्य देने के सिद्धान्त को स्वीकार करना है। कारियों को इसमें दो हिचकिचाहटें हैं। एक तो यह हिन्दी उर्दू में पुस्तकों का का अभाव है। दूसरा यह यदि हिन्दी-उर्दू माध्यम हो गईं तो उनके विद्यार्थी सी० एस० तथा आई० सी० एस० की परीक्षाओं सफल न हो सकेंगे। पहली का उत्तर तो यह कि पुस्तकों का अभाव तो तब तक रहेगा ही जब उनकी वास्तविक आवश्यकता न पैदा होगी। दू यह कि उस्मानिया यूनीवर्सिटी उर्दू के माध्यम से दे ही रही है। दूसरी हिचकिचाहट का उत्तर यह है हम मेकाले की शिक्षा योजना का सिद्धान्ततः विरोध हैं। हम नहीं चाहते कि हमारी शिक्षा संस्थाएँ ब्रि सरकार के गुलाम पैदा करने की मशीनें हों। अधि रियों को इस विषय में खुलकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सो चाहिए। और देश की बढ़ती हुई राष्ट्रीय मांग को स्वीकार करना चाहिए। प्रयाग विश्वविद्यालय सिद्धान्त को स्वीकार करने में लगभग चार-पाँच बिता चुका है। पता नही उसे कार्यान्वित करने में अभी कितने वर्ष बिताएगा। आशा है काशी विश्व द्यालय एक राष्ट्रीय विचारों वाले वाइसचांसलर अध्यक्षता में सम्भवतः कुछ अधिक प्रगति दिखा अन्य विश्वविद्यालय क्या क्या करेंगे अभी तक पता

—कमल कु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

क : पण्डित सुन्दरलाल
दक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : वैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

पुस्तकालय

मूल्य ६)]

फरवरी १९४६

[एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

विषय-सूची

[फरवरी १९४६]

१—कबीर साहब की स्मृति में (कविता)—विश्वम्भरनाथ ९७
२—प्राचीन सुमेरी सभ्यता और संस्कृति—पं० सुन्दरलाल ९९
३—मिस्र का पुरातन मेम्फिस राज्य—श्री० भगवतीप्रसाद पांथरी एम० ए० ... १११
४—सायम में भारतीय सभ्यता और संस्कृति—श्री० प्रकाशचंद्र उपाध्याय एम० ए० ... ११३
५—सुख किसमें ? (एकांकी नाटक)—श्री गोविन्ददास एम० एल० ए० ... १२१
६—स्थविर तिष्य की कथा—अनुवादक, श्री रामधारी प्रसाद 'रमन' ... १३३
७—स्मरणीय पत्र—रतनलाल बंसल ... १३६
८—भूपेन दा कहां हैं ?—डा० जगदीश चंद्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी० ... १४२
९—प्रवचन—महात्मा गांधी ... १
१०—गांधी जी के साथ एक प्रातःकाल—आचार्य श्री० गुरुदयाल मल्लिक ... १
११—बुंदेलखण्डी ग्रामोक्तियां—श्री० हरिगोविन्द गुप्त १
१२—साहित्यिक सूचनाएं १
१३—आज़ाद हिंद सेना (कविता) श्री० श्रीधर 'पंकज' कुलश्रेष्ठ १
१४—आज़ाद हिंद सेना के सिपाहियों के प्रति (कविता) श्री० देवेन्द्र एम० ए० ... १
१५—विजया (कविता) श्री० 'करील' ... १
१६—नेता जी के प्रति (कविता) श्री० छोटेलाल भारद्वाज १
१७—पुस्तक-परिचय १
१८—सम्पादकीय विचार १

विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्व[वाणी] नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्व[वाणी] भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के [ठप्पे] में छापा मारकर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात [की] शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण [डाक] भेजा हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सक[ने] में विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक [सब] ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन [जब] हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्ब[न्धी] जांच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के [लिए] या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत

नित्यानन्द चैठ[ा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

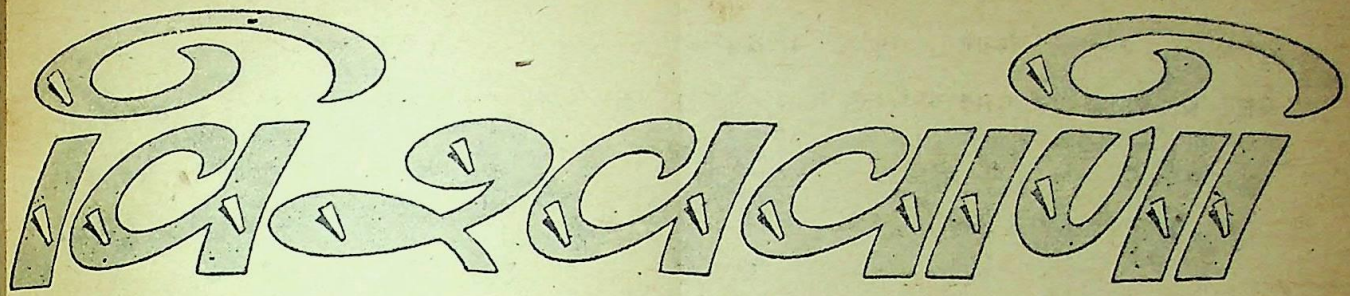

वर्ष ६, भाग ११] फ़रवरी : १९४६ [अङ्क २, पूरे अङ्क ६२

कबीर साहब की स्मृति में

[कबीर जयन्ती के अवसर पर]

विश्वम्भरनाथ

तेरे शब्द शब्द में कितने
युग युग का इतिहास छुपा है;
ओ अनन्त के राही तुझमें
आदि सत्य का भाष छुपा है!

प्रातः की स्वर्णिम वेला में
तूने शुभ उद्देश्य बताया;
मानवता के महायज्ञ की
आहुति का सन्देश सुनाया।

जीवन क्या है—मैं की हस्ती
का रहस्य-विन्यास बताया;
तिमिरपूर्ण इस विश्व पटल में
तूने एक प्रकाश दिखाया।

प्रभुता ने मद में भर कर
वसुधा को खण्ड-खण्ड कर डाला;
अमिय-गरल का सम्मिश्रण कर
जग को मत्त पिलाई हाला!

"मैं, मेरी सत्ता महान
मेरी सब दुनिया देखी भाली;
मेरे जीवन तरु की देखो
विहँस रही है डाली डाली!

"मेरे उस अवतार नबी ने
मुझको यह आदेश दिया है;
मेरे ही स्वत्त्वाधिकार में
सत्य रहा, निर्देश किया है!

"मैं ही हूँ केवल संरक्षक
देवज्ञान, इलहाम नबी का;
कौन फ़ैसला करे बताओ
आज संस्कृत औ' अरबी का?"

अपने अन्तर के बुतखाने
की बुनियादें ढाईं हमने;
स्वर्ण-कलश औ ऊँची-ऊँची
मीनारें बनवाईं हमने!

ईश्वर-प्रेरित अमर ग्रन्थ में
दिव्य ज्ञान सायत्न सम्हाले;
दिल के पन्ने पन्ने के
सब शब्द हुये हैं काले काले!

एक ध्येय औ' एक दिशा है
तब यह कैसा परिवर्तन है?
हत्या हिंसा, क्रूर भाव का
कैसा यह ताण्डव नर्तन है?

मज़हब क्या है एक अनोखा
सौदा है दाढ़ी-चोटी का;
यही क्षेत्र है स्रोत न जाने
कितनों की मक्खन रोटी का!

भूले हम वसुधा कुटुम्ब है
आपस में सब भाई भाई;
उस अदृश्य की महाशक्ति को
हमें चुकाना पाई पाई!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता को परिमित करने के
लिये लकीरें हमने खींचीं ;
इस अनैक्य की लता परस्पर
खून बहाकर हमने सींचीं !

हिन्दू और मुसलमानों का
हुआ राम रहमान जुदा है;
अपने अपने कार्मकाण्ड
अपना अपना फ़रमान जुदा है !

यह भीषण कटु सत्य देख
तेरा मन पीड़ा से भर आया ;
इबलिस को शर्मानेवाला
दृश्य देखकर तू सकुचाया !

सत्य सनातन ऐक्य भाव का
आदि प्रवर्त्तक बन तू आया ;
प्रेम धर्म का अपने जीवन भर
तूने सन्देश सुनाया !

ना प्रभु देवल, ना प्रभु मसजिद
ना काबे कैलास बसेरा ;
साँसों की साँसों में खोजो
अन्तरतम में बसे चितेरा !

अति दुर्लभ नव प्रेम मार्ग की
किस क़ीमत तू सैर कराता;
शीश उतार हथेली पर रख
तब मंज़िल पर जाने पाता !

अपने अहं भाव को खोकर
मानव महासत्य को पाते ;
प्रेम गली अति सकुच साँकरी
या के भीतर दो न समाते !

रङ्ग महल में दीप जलाकर
तू अपना घूँघट पट खोले;
तेरा साहब है तुझ माहीं
तब बाहर नैना क्यों डोले ?

कैसा हिन्दू, तुरुक कौन है
उसी एक मिट्टी के भांडे;
बेगर बेगर नाम धराए
जैसे मुलना वैसे पांडे !

धर्म सदा आता दुनिया में
मानवता के फ़र्क़ मिटाने;
इस बिछुड़े मानव समाज के
टूटे फूटे हृदय मिलाने !

तू द्रष्टा भविष्य का था
तेरा था कितना लक्ष्य महान;
यह उलझी दुनिया कबीर
तेरा कर सकी न कुछ सम्मान !

तू अगाध, व्यापक कबीर
तू ही भविष्य की आशा है;
तुझमें ही अन्तर्हित इस
मक़तल की शुभ प्रत्याशा है !

पूजा और नमाज़ें सब
हम असिधारा पर खेंच रहे;
अपने धर्म भाव को हम
प्रभुता के हाथों बेंच रहे !

ऐ कबीर ! मधुमय समीर
फिर एक बार बह जाने दो;
तुमने जो कुछ पाठ पढ़ाया
हृदयङ्गम हो जाने दो !

वही सत्य है, वही तथ्य है
वही मुक्ति, निर्वाण कथा;
इन ऊँची दीवारों से
होती दुनिया को तीव्र व्यथा !

मानव हृदय क्षेत्र को विस्तृत
करने के शुभ यत्न कहां ?
सीमा को निस्सीम बनाने
के वे सुखद प्रयत्न कहां ?

भिन्न भाव में छिपी एकता
ज़र्रा ज़र्रा बतलाता;
इसी एक के पूर्ण बिन्दु का
एकीकरण मुझे भाता !

मगहर की टूटी समाधि
कह कब वह शुभ दिन आयेगा;
उस योगी की असफल इच्छा
जग पूरी कर पायेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन सुमेरी सभ्यता और संस्कृति

पण्डित सुन्दरलाल

उत्तर में अरामी पर्वत, दक्खिन में ईरान की खाड़ी, पूरब में इलाम की पहाड़ियां और पच्छिम में अरब का रेगिस्तान—इस चौतरफ़ा नाके बन्दी के बीच में, दजला, और फ़िरात के दोआब में, ईसा से तीन-चार हज़ार साल पहले सभ्यता की एक कड़ी शुरू हुई। यह इलाक़ा बहुत ही उपजाऊ है। इसीलिए सुमेर, बाबुल, असुरिया और काल्डिया के नाम से चार बड़ी बड़ी सभ्यताएं इसमें दो हज़ार बरस से ऊपर तक इल्म और फ़न, कला और दस्तकारी खुशहाली और संस्कृति का घर बनी रहीं। इसी हिस्से को आजकल इराक़ या मेसोपोटामिया कहते हैं। सुमेरी सभ्यता इराक़ की सब में पहली सभ्यता थी।

सिन्ध में मोहन-जे-दड़ो, इराक़ में 'उर' और नील नदी के किनारे 'अबिदा' के पुराने खण्डहरों को खोदकर पुराने इतिहास के खोजियों ने ५००० साल पुरानी जो नई चीजें हमारे सामने रखी हैं उनसे पता चलता है कि इस ज़माने के भारत, सुमेर और मिस्र तीनों की सभ्यताएँ एक दूसरे से बिल्कुल मिलती हुई थीं और इन तीनों देशों में आना जाना और लेना देना बराबर जारी था। इनमें सुमेर बाक़ी दोनों के बीच में पड़ता था और इसीलिए वहां की सभ्यता मिस्र और भारत के बीच की कड़ी थी।

सुमेर और मिस्र

उर इराक़ का सब से पुराना शहर था। उर की सबसे पुरानी क़बरें जिनमें वहां के राजाओं के पंजर और सजावट का क़ीमती सामान मिला है ३५०० ई० पू० से पहले की मानी जाती हैं। यह ज़माना मिस्र के पहले राजकुल के पहले सम्राट मेनी से पहले का था।

मेनी से पहले की सभ्यता और मेनी के बाद की सभ्यता में साफ़ फ़रक़ नज़र आता है। मेनी के समय के मिस्र की संस्कृति बदली। मेनी के समय की सभ्यता में साफ़ बाहर का असर दिखाई देता है।

साफ़ पता चलता है कि कोई बाहरी क़ौम उस समय अपनी सभ्यता मिस्र में लाई। यूं भी इन बाहर से जाने वालों का उस ज़माने के मिस्री इतिहास से काफ़ी पता चलता है। इनकी सभ्यता नई सभ्यता में मिल गई। सवाल सिर्फ़ यह रह जाता है कि ये बाहर से जानेवाले कौन थे। अबिदा (मिस्र) की खुदाई में उसी ज़माने की बहुत सी ऐसी चीज़ें मिली हैं जो ठीक उसी ज़माने की सुमेरी चीज़ों से मिलती हुई हैं। मसलन एक ख़ास शक्ल की सील मोहरें, ख़ास तरह की पत्थर की गदाएं, ख़ास तरह के बाजे, बरतन, कई कई मंज़िल के मकान, एक तरह के जानवरों की तसवीरें और बिल्कुल एक सी मज़हबी कहानियां। ये चीज़ें यकायक मिस्र में मेनी के समय में दिखाई देती हैं। मेनी के समय से पहले ये चीज़ें मिस्र में नहीं मिलतीं जब कि मेसोपोटामिया में ठीक ये ही मेनी के सैकड़ो बरस पहले से मिलती हैं। ज़ाहिर है मिस्र में ये नए लोग एशिया ही से गए थे और ये और सुमेरी दोनों शुरू में कभी न कभी एक ही क़ौम थे और एक ही जगह रहते थे।

सुमेर में जो उर का पहला राजकुल माना जाता है वह असल में एक ज़्यादह पुरानी सभ्यता की आख़री कड़ी था। उर के पहले राजकुल के समय की दस्तकारियां वहाँ की सभ्यता के ढलते काल की दस्तकारियां हैं। उन्हें देखने से मालूम होता है कि हज़ारों साल की सभ्यता के बाद आदमी इस तरह की चीज़ें बना सकता था।

उर वालों को धातें गलाकर उनकी चीज़ें बनाने का जो ज्ञान था और जिस तरह की चीज़ें वे बनाते थे वह सदियों के सीखने और कोशिशों के बाद ही आ सकता था। कुम्हार के चाक का इस्तेमाल मिस्र में मेनी के ज़माने के आस-पास शुरू हुआ। सुमेर में कम से कम सदियों पहले से लोग उसका इस्तेमाल जानते थे। मेनी के समय में सुमेर की सभ्यता मिस्री सभ्यता से ऊंची थी। मिस्री सभ्यता में उस समय नयापन था, सुमेरी सभ्यता पुरानी हो चुकी थी। बहुत से विद्वानों की राय में मिस्र के मेनी से पहले के राजघरानों से भी सुमेर की सभ्यता ज़्यादह पुरानी थी।

सुमेर और सिन्धु

कुछ इतिहास-लेखकों की राय में मोहन-जे-दड़ो की सभ्यता का तरक्की का ज़माना ईसा से कम से कम ३२५० बरस पहले का है। लैङ्गडन की राय है कि मोहन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जे-दड़ो की लिखावट, वहां की सील मोहर सुमेरी लिखावट और सील मोहर से मिलती हैं। दोनों फारसी की तरह दाहिने से बाईं तरफ़ लिखते थे। दोनो चित्रलिपि इस्तेमाल करते थे। इराक़ में उर के पास अल-उबेद के गांव में जो खुदाई हुई है उसमें हिन्दुस्तान की अबरक़ी मिट्टी के बने बर्तन मिले हैं। मोहन-जे-दड़ो में एक मूर्ति मिली है जो सुमेरियों के पवित्र वृषभ (बैल) से मिलती है। मोहन-जे-दड़ो की एक सींगवाली मूर्ति सुमेर के शक्ति के देवता 'अबनी' से मिलती है। हड़प्पा (पञ्जाब) में बाद के समय का एक सिंगारदान मिला है, जिसमें बालों के जूड़े के कांटे, कान का मैल निकालने की सलाई, और बाल उखाड़ने की चिमटी रखी है। इस सिंगारदान की बनावट ठीक वैसी ही है जैसी उस सिंगारदान की है जो उर के पहले राजकुल के समय का उर में मिला है, मोहन-जो-दड़ो में अक़ीक़ की एक सुन्दर माला मिली है जो उन मालाओं से मिलती है जो इराक़ में सम्राट सरगन के पहले की किश की क़बरों में मिली हैं। मोहन-जे-दड़ो का एक ख़ास शक्ल का घड़ा इराक़ में निप्पर के एक घड़े से मिलता है। मार्शल लिखता है—"इस क़िस्म की मिलती जुलती चीज़ों की फ़ेहरिस्त बहुत बढ़ाई जा सकती है और यह चीज़ें इस बात को साबित करने के लिये काफ़ी हैं कि उस ज़माने में, यानी सरगन से पहले या सरगन के समय में, हिन्दुस्तान और सुमेर में आना जाना, लेना देना और सभ्यता की दूसरी बातों में गहरा सम्बन्ध था।" सर जान मारशल यह भी लिखता है कि इन पुराने देशों में मिट्टी के बरतनों के जो नमूने मिले हैं उनसे साबित होता है कि "सिन्ध, बलूचिस्तान और ईरान की संस्कृतियों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध था।"

सुमेरी जाति

सुमेरी क़ौम ने सबसे पहले दक्खिन मेसोपोटामिया पर क़ब्ज़ा किया। वहाँ से वह उत्तर की तरफ़ बढ़ी। लोगों का अनुमान है कि वे पूरब में इलाम की ईरानी पहाड़ियों के तरफ़ से आए। उनके पहले मेसोपोटामिया में 'मर्तु' नाम की एक क़ौम रहती थी। कुछ इतिहासकारों की राय है कि सुमेरी क़ौम काठियावाड़ से ईरान की खाड़ी के रास्ते इलाम और फिर मेसोपोटामिया पहुंची। सुमेरी लेखों में सुमेरी क़ौम का पुराना नाम है। सन् १९३६ में काठियावाड़ में एक पुराना ताम्र मिला है जिसमें काठियावाड़ के पुराने रहनेवालों नाम 'शु' लिखा है। काठियावाड़ का पुराना नाम 'सुराष्ट्र' था। सुमेरी लेखों में भी इस बात का ज़िक्र कि वे सुवर्तु देश से आकर सुमेर में बसे थे। लोगों राय है कि सुराष्ट्र ही 'सुवर्तु' है। कुछ दूसरों की है कि आर्मीनिया का पुराना नाम सुवर्तु था।

सुमेरियों के बाल काले और शरीर की बिल्कुल आर्य क़ौम के दूसरे लोगों की सी थी। विद्वान और समझदार थे। उनकी किताबों में देवताओं का बासा पर्वत पर बताया गया है। अन्दाज़ा होता है कि वे शुरू में कभी न कभी पहाड़ी देश में रहते थे।

सुमेरी इतिहास का मशहूर विद्वान सर आर्थर लिखता है—"पुरानी और आजकल की मेसोपोटामिया क़ौम ईरानी और सामी क़ौमों के मेल से बनी लेकिन सामी से ज़्यादह वे ईरानी हैं।"

कीथ अपनी पुस्तक 'अल-उबेद' में लिखता है— "अब भी पुराने सुमेरियों के से चेहरे पूरब की अफ़ग़ानिस्तान, बलुचिस्तान और मेसोपोटामिया १५०० मील दूर सिन्धु नदी के आस पास खोजने पाए जा सकते हैं। मोहन-जे-दड़ो और सुमेर की सभ्यता इतनी मिलती हुई हैं कि देखकर अचरज होता है।..."

कीथ की राय में इन दोनों सभ्यताओं की शुरू जगह कहीं न कहीं फ़िरात और सिन्धु नदियों के बीच थी, जहां से ये दोनों फटकर अलग अलग हुईं।

ऋग्वेद में वरुण को समुद्र का और पच्छिम दिशा का देवता कहा गया है। आर्य क़ौम के समुद्र पार करनेवाले व्यापारियों का वरुण ख़ास देवता था। किसानों का नेता था। वरुण और इन्द्र में अपने बड़प्पन के लिये झगड़ा हुआ। मत्स्य पुराण और पुराण में लिखा है कि वरुण ने 'सुषा' नाम की नगर बसाई। कुछ विद्वानों का ख़याल है कि यह सुषा इलाम का शहर 'सुसा' है जिसे आजकल 'शाशान' कहते हैं। पुराने इलामवालों का देवता 'वन्नीन्' और वरुण एक मालूम होते हैं। हिन्दू पुराणों में लिखा कि वरुण की राजधानी 'पाताल' नगर में थी। सिन्धु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मुँह पर सुराष्ट्र में, ५००० ई० पू० से लेकर यूनानियों के समय (३०० ई० पू०) तक 'पाताल' एक बहुत बड़ा बन्दरगाह था।

एशिया कोचक (आजकल के तुर्की) में पांच हज़ार साल पुरानी एक आदमी की तसवीर एक चट्टान पर खुदी हुई मिली है। जिसके बारे में सर जार्ज बडबुड ने लिखा है—"उसके कपड़े पहनने का तरीक़ा गुजरात के सवर्ण हिन्दुओं के तरीक़े से मिलता हुआ है। उसकी बलदार पगड़ी, दुपट्टा और नोकदार हिन्दुस्तानी तर्ज़ के जूतों से यही मालूम होता है कि वह किसी हिन्दू की तसवीर है।"

'शतपथ ब्राह्मण' और सुमेर वालों की किताबों दोनों में प्रलय का क़िस्सा आता है और दोनों कहानियां नामों को छोड़कर बिलकुल एकसी हैं। मालूम होता है कि दोनों एक ही घटना को बयान करती हैं। सुसा तथा अक्कान, इरीदु और उर नगरों की खुदाई में सब जगह सुमेर सभ्यता के निशानों के नीचे इलामी सभ्यता के निशान मिले हैं। और इन दोनों सभ्यताओं के निशानों के बीच में पानी की एक बहुत बड़ी बाढ़ की मिट्टी पायी गयी है। कुछ विद्वानों का ख़याल है कि इस बाढ़ के बाद इलाम के रहनेवाले पूरब में सिन्धु नदी और पच्छिम में मेसोपोटामिया की तरफ़ गए, और 'शतपथ ब्राह्मण' और सुमेरी किताबों दोनों में इसी बाढ़ का ज़िक्र है।

मिस्र और सुमेर

ऐतिहासिक काल शुरू होने से भी पहले हिन्दुस्तान का पच्छिम से सम्बन्ध जोड़नेवाले तीन तिजारती रास्ते थे। इनमें सबसे सीधा और सबसे पुराना रास्ता सिन्धु नदी से होकर ईरान की खाड़ी और वहां से फ़िरात नदी के मुँहाने से आगे बढ़कर फ़िलिस्तीन के रास्ते एशिया कोचक और वहां से यूरोप की ओर जाता था। दूसरा उत्तर के पहाड़ी दर्रों से होकर बलख़ और बलख़ से कैस्पियन झील और वहां से और उत्तर की ओर यूरोप के अन्दर घुस जाता था। तीसरा रास्ता ईरान की खाड़ी, अरब सागर और लाल सागर होते हुए सुएज़ और सुएज़ से सिडान होता हुआ, फ़ीनीशिया और यूनान की ओर निकल जाता था। अरब सागर से एक और रास्ता सीलीसिएड होते हुए, जिसे पुराने मिस्री 'पन्त' का देश कहते थे, अफ़रीका के दूसरे देशों की ओर जाता था।*

इसमें सबसे पुराना रास्ता सिन्धु और फ़िरात का रास्ता था। पुराने लेखों से साबित है कि बाबुल, खत्ती, मितन्नी वग़ैरह देशों के साथ आज से कम से कम चार हज़ार साल पहले हिन्दुस्तान की तिजारत होती थी। कपास उन दिनों सिर्फ़ हिन्दुस्तान में होती थी। बाबुली कपास को 'सिन्धम' कहा करते थे। संस्कृत में कपास को 'करपास' और यहूदी में 'करपस' कहते हैं। उर के पुराने मन्दिरों में हिन्दुस्तानी सागौन की धन्नियां पाई गई हैं। पन्त के देश में हिन्दुस्तान से मसाले, चन्दन, हाथीदांत वग़ैरह सामान जाता था और वहां से मिस्री उसे यूरोप के देशों में पहुँचाते थे। हाथी दांत को संस्कृत में 'इभ दन्त', मिस्री में 'इबु', इतालियन में 'इबुर', और अंगरेज़ी में 'आइवरी' कहते हैं। बन्दर को संस्कृत में 'कपि', यहूदी में 'कोफ' और मिस्री में 'काफ़ु' कहते हैं। इसी तरह के और सैकड़ों शब्द हैं। इसमें शक नहीं हिन्दुस्तान, इराक़, मिस्र और फ़िलस्तीन में उन दिनों ख़ूब आना-जाना, लेना देना, तिजारत और हर तरह का सम्बन्ध था।

ज़मीन और पैदावार

मेसोपोटामिया की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। स्ट्रेबो लिखता है कि जौ की पैदावार वहां तीन सौ गुना होती थी। उम्दा और अच्छे क़िस्म का खजूर बेहद होता था। खजूर खाने के काम आता था और उससे शराब, सिरका, शहद और मिठाइयां भी बनाई जाती थीं। प्लिनी लिखता है कि गेहूँ वहां १५० गुना होता था। लापतु लिखता है कि वहां की ज़मीन उतनी ही उपजाऊ थी जितनी नील के किनारे मिस्र की। तरह तरह की साग सब्जियां और सेब, अंजीर, खुबानी, पिस्ता, अंगूर, बादाम, और दूसरे मेवे बहुतायत से होते थे। तरह तरह के सुन्दर और ख़ुशबूदार फूल होते थे। नदियां मछलियों से भरी पड़ी थीं। गाय, बैल, गधे, बकरी, भेड़, सुअर, ऊँट वग़ैरह जानवर पाले जाते थे। शेर का शिकार लोग बड़े चाव से करते थे। चीता, लकड़बघा वग़ैरह

* H. G. Rawlinson—"Intercourse between India and the Western World.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगली जानवरों से जंगल भरा हुआ था। १३३० ई० पू० तक वहां के जंगलों में हाथी भी पाये जाते थे।

ऐतिहासिक सुमेरी सभ्यता

सुमेर का सम्बन्ध आस पास के बहुत से देशों से था। सुमेरियों का अपना सबसे बड़ा रोज़गार खेती थी। न वहां धातें पाई जाती थीं और न पत्थर। उर की खुदाई से पता चलता है कि सुमेर मे तरह तरह का कच्चा माल दूसरे देशों से आता था और चतुर सुमेरी दस्तकार उसकी तरह तरह की चीज़ें बनाकर और देशों को भेजते थे। विटुमन आर्मीनिया से आता था, तांबा ओमन से, चांदी उत्तर साइलेशिया और दक्खिन इलाम के पहाड़ों से, सोना इलाम, कप्पाडोशिया, खाबूर और शाम से, पत्थर शाम और अरब से, चूना, सेलखड़ी वगैरह वहीं ईरान की खाड़ी के पास से आता था। वैदुर्य, लाज़वर्द पूरब के देशों से आता था। भारत का पच्छिमी घाट का नाम संस्कृत ग्रंथों में "वैदुर्य स्थान" था। उर में हस्तलेख मिले हैं जिनसे पता चलता है कि सुमेरी जहाज़ भारतवर्ष आते थे और यहाँ से सोना और कई तरह के जवाहरात अपने देश ले जाते थे। उर की खुदाई से पूरी तरह साबित है कि उस पुराने ज़माने में सुमेर का हिन्दुस्तान और मिस्र दोनों से बहुत बड़े पैमाने पर तिजारती सम्बन्ध था। दोनों देशों में सुशासन और अमन आराम था। तिजारत के रास्ते पूरी तरह सुरक्षित थे। असुरिया में २७०० ई० पू० के सुमेरी मकान मिले हैं। शाम के उत्तरी हिस्से में ३००० ई० पू० की बनी हुई सुमेरी सील मोहरें पाई गई हैं। कास्पियन समुद्र के दक्खिन पूरब में अस्त्राबाद में सुमेरी कारीगरी की बहुत सी चीज़ें पाई गई हैं।

ज़ाहिर है कि उर के पहले राजकुल से पहले सुमेरी संस्कृति और सुमेरी सभ्यता ने अपनी जड़ें काफ़ी मज़बूत जमा ली थीं। सुमेर में जो कई तरह की धातें आती थीं उनसे सुन्दर पदार्थ बनकर दूसरे देशों के बाज़ारों में जाकर बिकते थे। सिन्ध से कपास जाती थी जिससे सुमेरी कारीगर सुन्दर कपड़े बुनते थे जो चारों ओर बिकते थे। सारे मेसोपोटामिया पर सुमेर का राज था। सुमेर का राजा मेसान्निपद–"सुमेर (दक्खिन मेसोपोटामिया) और अक्कद (उत्तर मेसोपोटामिया) दोनों का राजा था। कारीगरी और तिजारत ने थोड़े ही दिनों में सुमेर को मालामाल कर दिया और वह दुनिया के सबसे उन्नत देशों में गिना जाने लगा।

उर के पहले राजकुल से पहले का कोई सिलसिलेवार इतिहास नहीं मिलता। सिवाय इसके कि दजला और फ़िरात के किनारे किनारे बहुत से शहर आबाद हो चुके थे। हर शहर का एक ख़ास मन्दिर होता था। मन्दिर में देश के और देवताओं के साथ उस शहर के ख़ास देवता की भी मूर्ति होती थी। मन्दिर का सबसे बड़ा पुजारी ही शहर का हाकिम या राजा होता था। उसे "पटेसी" कहते थे। आहिस्ता आहिस्ता ये बहुत से अलग अलग नगर-राज मिलकर सारे देश में एक राज क़ायम हुआ। इस एक राज की सबसे पहली राजधानी 'किश' नगर में थी। फिर किश से हटकर एरेक नामक नगर में चली गयी और एरेक के बाद उर का पहला ऐतिहासिक राज कुल शुरू हुआ। उर से पहले किश और एरेक में २५ राजा हो चुके थे। उर के राजधानी बनने का समय ३१०० ई० पू० के क़रीब माना जाता है। इस कुल के ५ राजाओं ने १७७ बरस राज किया। इस कुल का संस्थापक यानी बानी मेस-अन-नि-पदद, (मेसान्निपद) समझा जाता है।

उर का सबसे पुराना क़बरिस्तान

उर में एक क़बरिस्तान मिला है जिसकी शुरू की क़बरें ईसा से कम से कम ३५०० बरस पहले की हैं। इस क़बरिस्तान से सुमेर की सभ्यता, रीति रिवाज, और दस्तकारियों का काफ़ी परिचय मिलता है। मामूली लोगों को दफ़न करने के लिये ज़मीन में पाँच फुट लम्बा चौड़ा गड्ढा खोद लिया जाता था और उसीमें चटाई से लपेटकर लाश को दफ़न कर दिया जाता था। अण्डे की शक्ल के मिट्टी के बरतन मिले हैं जिनमें मुरदे को पैर सिकोड़ कर बन्द कर देते थे और फिर दफ़न कर देते थे। मुरदे के हाथ में एक बर्तन होता था जिसे वह मुंह से लगाए रहता था और पानी के लिये पत्थर या मिट्टी का एक घड़ा भी उसके पास रख दिया जाता था। उसकी अपनी कुछ निजी चीज़ें, जिन्हें वह ज़िन्दगी में इस्तेमाल करता था, उसकी क़ब्र में रख दी जाती थीं। बाज़ बाज़ मुरदे धड़ से ऊपर जले हुए मिले हैं। इस तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धजली लाशें और ज़्यादह पुरानी होती हैं। बड़े लोगों लाशों को भी ज़मीन में गड्ढा खोदकर दफ़नाया ाता था लेकिन उनके ऊपर ईंट या पत्थर की इमारत ती थी। इन मक़बरों में चारों ओर मेहराबें होती । छत और दीवारों में मिट्टी का गारा इस्तेमाल होता लेकिन दीवार के भीतर की तरफ़ उम्दा चूने का स्तर होता था। बाज़ बाज़ मक़बरों में फ़र्श पर भी ने का पलस्तर पाया गया है। लिओनर्ड वूली लिखता कि "कितने अचरज की बात है कि इतने पुराने माने में भी सुमेरी लोग सतूनों, मेहराबों, डाट और बद जैसी उन सब इमारती कारीगिरियों से पूरी तरह क़िफ थे, जिनका बनाना उसके हज़ारों साल बाद तक यूरोपवालों को न आता था।

इन क़बरों में सोने और चाँदी का बेहद सामान या गया है। न सिर्फ़ पहनने के ज़ेवर बल्कि बरतन, थियार और औज़ार क़ीमती धातों के बने हुए ले हैं। रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें तांबे की ी हुई हैं। पत्थर की बहुत सी गंगालें मिली हैं। खड़ी को लोग ज्यादा पसन्द करते थे लेकिन सोप-न, लाइम स्टोन और दूसरे पत्थर भी काम में आते तरह तरह के क़ीमती पत्थर ख़ासकर लाजवर्द रनेलिया, और आब्सीडियन तश्तरियों, प्यालों र गहनों के काम आते थे। इन सबसे पता चलता है सभ्यता ने उस ज़माने में ख़ासी तरक़्क़ी कर ली थी।

मेस-कलम-दुग नाम के एक राजा की क़ब्र में राजा सिर पर सोने का एक शिरस्त्राण या बक्तर है जो विग शक्ल का है और जिसमें बारीक धारियां बनाकर के बाल दिखाए गए हैं। लाश के साथ दो मामूली ले और एक सीपी की शक्ल का सोने का दीपक है। तीनों पर राजा का नाम खुदा हुआ है। एक सोने ेंट, वाला ख़ंजर एक सोना जड़ी चाँदी की पेटी र दो इलेक्ट्रम यानी सोने और चाँदी के मेल से बनी के फ़रसे लाश के पास पड़े हुए थे। राजा के शरीर जो गहने थे उनमें एक लाजवर्द और सोने के तिकोने ों का बना हुआ बाज़ूबन्द, कान के बाले, सोने-चाँदी कड़े, बैल की शक्ल का सोने का तावीज़, बैठे हुए ड़े की शक्ल का लाजवर्द का तावीज़, दो चांदी लैम्प, और लाजवर्द से मढ़ा हुआ सोने का एक पिन मिला है। कफ़न के बाहर चाँदी और तांबे के लगभग ५० कटोरे और प्याले, तरह तरह के हथियार सोने के मूठ की तलवारें, कांसे के भाले, फ़रसे, कुल्हाड़े और तीरों का एक दस्ता आदि क़ब्र में रखे मिले हैं।

एक दूसरे मज़ार में क़ब्र में नीचे उतरती हुई सीढ़ियों पर कतार की कतार कांसे के बक्तर पहने और भाले लिये पहरेदारों के हड्डियों के ढांचे मिले है। जिस कमरे में कफ़न है वहाँ दीवार के सहारे सरों पर ख़ूबसूरत सुनहरे साज़ पहने हुए ९ स्त्रियों के पंजर मिले हैं। मक़बरे के दरवाज़े पर दो भारी भारी चार चार पहियों की गाड़ियां पाई गई हैं जिनमें एक एक में तीन तीन बैल जुते हैं। गाड़ीवान की हड्डियों के पंजर गाड़ी में पड़े हैं और बैलवानों की हड्डियां बैलों के पंजरों के सामने पड़ी थीं।

एक दूसरे मक़बरे में जो रानी शुब-अद्स (शुबत्स) का है, दो क़तारों में महल की दासियों के पंजर मिले हैं। इन क़तारों के आख़ीर में एक तारों का एक बाजा बजाने वाले का ढांचा उसके टूटे हुए बाजे के ऊपर पड़ा मिला है। जिस कमरे में रानी का कफ़न है वहां भी कफ़न को सहारा दिये दो हड्डियों के ढांचे मिले हैं।

इन दो क़बरों से मालूम होता है कि पुराने जापान जैसे और कई देशों की तरह सुमेर में क़बरों के अन्दर ज़िन्दा दास-दासियों को दफ़न करने का रिवाज भी था। लेकिन ये क़बरें बहुत ज़्यादा पुरानी हैं। इसके बाद की किसी क़ब्र में इस तरह हड्डियां नहीं मिलतीं। जिससे मालूम होता है कि उर के पहले राजकुल के समय में ही यह रिवाज बन्द हो चुका था।

उर का पहला राजकुल

अल उबेद में एक मन्दिर मिला है जो उर के पहले राजकुल के काम करनेवाले राजा मेसन्निरह के बेटे अन्निरह का बनवाया हुआ है। मन्दिर पर बनवाने वाले का नाम वग़ैरह खुदा हुआ है। यह मन्दिर उस ज़माने का कारीगरी और चित्रकला का एक बढ़िया नमूना है।

सोना, चांदी, इलेक्ट्रम, लोहे या तांबे की ढलाई में ज़रा भी दोष नहीं मिलता। हर चीज़ का अपना अपना डिज़ाइन मार्के का है यहां तक कि भाले, ख़ंजर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रसे भी कारीगरी और सुन्दरता के नमूने दिखाई देते हैं।

रानी शुब-अद की क़ब्र में गाय का एक चांदी का सिर और दो शेरनियों के चांदी के सिर मिले हैं, जिनकी खूबसूरती को देखकर आजकल के अच्छे से अच्छे कारीगरों का भी मन मुग्ध हो जाता है। बारीक से बारीक काम इस चतुराई से किया गया है कि ढूंढने से भी कहीं कोई दोष दिखाई नहीं देता।

इस सब काम में रंगों के मेल, बारीकी, सूफ़ियानीपन और हर चीज़ के तर्ज़ में नयापन सब कमाल के हैं। सुमेरी ऊँचे दरजे के कारीगर थे। वे हर चीज़ का पहले से नक़शा बनाने के काम में खूब होशियार थे। इसी लिए उनकी बनाई हुई चीज़ें दोष-रहित होती थीं। आज से लगभग साढ़े पांच या छै हज़ार साल पहले सुमेरी कला अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। उसके बाद के ज़माने में हमें उस दरजे की सुन्दर चीज़ें नहीं मिलतीं जैसी उर के शुरू ज़माने के क़बरिस्तान में। वूली लिखता है—"३५०० ई० पू० में सुमेरी कला जिस दरजे की तरक्की कर चुकी थी उसे कोई दूसरी पुरानी सभ्यता नहीं पहुंची।"

जिस बाढ़ का ऊपर ज़िक्र किया गया है उसमें और उर के पहले राजकुल में कम से कम १५०० बरस का फ़ासला रहा होगा। इस तरह सुमेरियों की सभ्यता का शुरू कम से कम ५००० ई० पू० से मानना पड़ता है।

सुमेरी सभ्यता अपने ही देश तक महदूद न रही। वह आस पास चारों ओर छा गई। सम्राट सरगन के समय कप्पाडोशिया में सुमेरियों ने 'गनेश' नाम का शहर आबाद किया। धीरे धीरे सुमेर का राजनैतिक असर भी फैलने लगा। सुमेर की ताक़त एक मज़बूत राजनैतिक ताक़त थी। उसने अपने यहां की जनता की अलग अलग जमातों, श्रेणियों, और वर्गों को एक भाषा, एक सभ्यता, एक संस्कृति और एक राज के बन्धनों में बांध रखा। आस पास के देशों पर भी उसकी एकता की गहरी छाप पड़ी।

उर की खुदाई में ५५०० साल पुराना एक क़ौमी झंडा मिला है। यह झंडा सीप और लाजवर्द का बना हुआ है। इस पर ऊपर नीचे तीन पंक्तियां चित्रकारी की हैं। नीचे की पंक्ति में रथ हैं जिनमें चार चार गधे जुते हुए हैं। घोड़ा उस समय तक सुमेर में न था। हर रथ में एक रथवान और एक एक योद्धा है। बीच में पैदल सिपाही हैं। ऊपर की पंक्ति में राजा लड़ाई के क़ैदियों का मुआयना कर रहा है। दूसरे उल्लेखों से मालूम हुआ है कि उस ज़माने में तनख़ाहदार फ़ौज न थी। सुमेर का हर शहरी सिपाही था। लड़ाई के मौक़े पर हर शहरी को हथियार लेकर आना पड़ता था। राजा इस फ़ौज का नेता होता और हर लड़ाई में खुद सबसे आगे रहकर लड़ता था।

उर के पहले राजकुल ने १७७ बरस राज किया। उसके बाद अवन के पटेसियों ने आस पास के इलाक़े पर कब्ज़ा कर लिया। वे बहुत दिनों तक इस राज को सम्हाल न सके। एक दूसरे के बाद ६ और राजकुलों ने थोड़े थोड़े समय के लिये अपने अपने झण्डे फहराए। इनमें से कोई भी देर तक न रहा। इसके बाद भयंकर ख़ानाजंगियों और आपसी लड़ाइयों का समय आया। २६०० ई० पू० में लगाश के बलवान पटेसी उर निना ने सारे सुमेर पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस कुल के १० राजाओं ने सुमेर पर राज किया। इनमें दसवां और आख़री राजा सन् २६३० ई० पू० के क़रीब मरा।

अगादे का राजकुल

लगाश के राजकुल के बाद अगादे के एक मामूली ग़रीब आदमी ने महज़ अपनी क़ाबलियत और बहादुरी से सुमेर की गद्दी पर कब्ज़ा कर लिया। इसका नाम 'सरगन' था। सरगन पहले 'अगादे' शहर का 'पटेसी' बना। फिर फ़ौज जमा करके उसने सुमेर के उत्तरी और दक्खिनी प्रान्तों पर यानी सारे सुमेर पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद सुमेर की सरहद से निकलकर आस-पास के देशों को जीतना शुरू किया। यहां तक कि २६ ई० पू० में उसका साम्राज्य पूरब में इलाम की पूरबी सरहद तक और उत्तर और पच्छिम में रोम सागर के किनारे तक फैला हुआ था। सारा शाम उसके साम्राज्य में शामिल था और कुछ लेखकों का कहना है कि रोम सागर में साइप्रस टापू भी उसके साम्राज्य में शामिल था। अरब का कुछ हिस्सा भी उसके अधीन था। इतिहास में पहली बार सुमेरी एक इतने बड़े साम्राज्य के मालिक दिखाई देने लगे। सरगन अपने समय में "सम्राट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरगन महान" कहलाता था। उसने बड़े बड़े महल और मन्दिर बनवाए। उसके बनाए हुए एक चबूतरे की पक्की ईंटें मिली हैं, जिनमें से एक एक ईंट बीस इञ्च लम्बी, बीस इञ्च चौड़ी और क़रीब तीन इञ्च मोटी है। निप्पर में बेल देवता का और अगादे में अनुनिल देवी का मन्दिर दोनों सम्राट सरगन ने बनवाए थे। मरने के बाद सरगन की लोग देवता की तरह पूजा करने लगे। उसी समय का सरगन का एक उल्लेख मिला है जिसमें लिखा है—

"मैं अगादे का बलवान सम्राट सरगन हूं। मेरी मां बहुत ही ग़रीब थी। मैं नहीं जानता कि मेरा बाप कौन था। मेरा चचा पहाड़ पर भेड़ें चराया करता था। फिरात नदी के किनारे अज़ुरपिरानी गांव में मैंने जन्म लिया। मेरी मां ने, जो हद दर्जे की ग़रीब थी, चुपचाप से मुझे पैदा किया और एक टोकरी में रखकर मुझे नदी में बहा दिया। भाग्य मेरे अनुकूल था। किसी गांव के एक दयावान आदमी ने मुझे नदी से निकाल कर बचा लिया।"

यह उस सम्राट सरगन का जन्म-चित्र उसीके लफ़्ज़ों में है जिसका राज आज से साढ़े चार हज़ार साल पहले सारे फ्रान्स के बराबर बड़े देश पर फैला हुआ था। ५५ साल तक राज करने के बाद लगभग २५८० ई० पू० में सरगन की मृत्यु हुई। सरगन के बाद उसका बेटा नारमसेन गद्दी पर बैठा। नारमसेन भी क़ाबिल और बहादुर था। उसने अपने बाप के साम्राज्य को क़ायम रखा। निप्पर में उसने शहर की एक चहार दीवारी बनवाई जो १८ फ़ुट ऊँची और ४५ फ़ुट चौड़ी थी।

राजधानी उर से हटकर अगादे आ गई थी। लेकिन सरगन और नारमसेन के समय में भी सुमेर का धार्मिक और तिजारती केन्द्र उर ही बना रहा। उर में निन-गल के मन्दिर में एक शिलालेख मिला है, उससे पता चलता है कि उस समय भी उर में सबसे बड़ा मन्दिर चांद देवता का था। और यह रिवाज था कि राजा की सबसे बड़ी लड़की उर के रक्षक 'नन्नार' यानी चांद देवता की प्रधान पुजारिन बना दी जाती थी। यह रिवाज बाबुल के सम्राट नबनिदु (६०० ई० पू०) के समय तक यानी ढाई हज़ार बरस तक रहा। उसी मन्दिर से एक दूसरी सेलखड़ी की शिला मिली है जिसमें सरगन की लड़की एन-खेदु-अन्न की तस्वीर का ख़ाका है और जो अपने बाप सम्राट सरगन के फ़रमान से अन्नार के उसी मन्दिर की प्रधान पुरोहित थी। बाद में सम्राट नारमसेन की पोती इसी मन्दिर की प्रधान पुरोहित बनी।

नारमसेन ने भी अपने पिता की तरह ५५ साल राज किया। नारमसेन के मरने के बाद सुमेरी जनता उसे भी देवता के रूप में पूजने लगी। नारमसेन के बाद इस कुल का आखरी सम्राट शारगलेश्वर हुआ। उसने २४ बरस राज किया। उसके बाद सन् २४७० ई० पू० में अगादे के इस महान राजकुल का ख़ात्मा होगया। इराक से बाहर सुमेरियों का साम्राज्य इसके बाद बराबर घटता बढ़ता रहा।

गुटिअम का राजकुल

अगादे के बाद 'शिरपुरला' सुमेर की राजधानी बना। वहां के राजा 'गुटिअम राजकुल' के नाम से मशहूर हैं। इस कुल ने 'सुमेर और अक्कद' के देश पर १५५ बरस राज्य किया। इस राजकुल का सबसे प्रतापी सम्राट गुडीअ था। इसने देश में शान्ति और अमन और आमान क़ायम किया। देवताओं की पूजा के नए विधि विधान बने। लिखने पढ़ने की विद्याओं ने तरक़्क़ी पाई। संस्कृति की दृष्टि से गुडीअ का ज़माना सरगन के ज़माने से भी बढ़कर समझा जाता है। सरगन का जितना ज़्यादह ध्यान मुल्क फ़तह करने पर था गुडीअ का उतना ही ध्यान सब मुल्कों के साथ प्रेम और शान्ति से रहने और दस्तकारियों, तिजारत और विद्या को तरक़्क़ी देने पर था। सुमेरी इतिहास में सम्राट गुडीअ का एक बड़ा ऊँचा स्थान है।

देश में अमन होने से दूसरे देशों के साथ तिजारत ने फिर वैसी ही तरक़्क़ी की जैसी सरगन के समय में की थी। व्यापारियों को हर तरह की सुविधाएँ दी गईं। दस्तकारियों को जो तरक़्क़ी गुडीअ के समय मिली वह शायद फिर कभी नहीं मिली। सम्राट गुडीअ की १८ मूर्तियां खुदाई में मिली हैं। ये सब लगाश के मन्दिर को समर्पण की गई थीं।

लेकिन चाहे अक्कद के किसी राजकुल के हाथों में हुकूमत रही हो परन्तु गुटिअम की सुमेरी सभ्यता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ौती रुकी नहीं। राजकुलों के बदलते रहने ने देश की संस्कृति पर कोई बुरा असर नहीं डाला।

२२८० ई० पू० में गुटिअम राजकुल को हटाकर 'एरेक' नगर के एक राजा ने सात बरस सारे सुमेर पर राज किया।

उर का तीसरा राजकुल

अन्त में फिर उर नगर को राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उर का यह तीसरा राजकुल कहलाता है। इस कुल में उर-नाम्मु एक मशहूर राजा हुआ। शिलालेखों में उसे "सुमेर और अक्कद का राजा" कहा गया है। उर में उसने चाँद देवता का एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया। एरेक नगर में उसने निना देवी का एक मन्दिर बनवाया। लारसा में सूरज देवता का एक मन्दिर बनवाया। निप्पर में उसने एक बहुत बड़ा और ऊँचा 'सिग्गुरात' बनवाया।

सिग्गुरात

'सिग्गुरात' सुमेरियों का एक खास तरह का मन्दिर होता था। 'सिग्गुरात' के लफ़्ज़ी माइने "स्वर्ग का पर्वत" है। आकार प्रकार में यह तमिल 'गोपुरम' या द्रविड़ 'विमान' से बहुत कुछ मिलता था। इसकी चार या सात मंज़िलें होती थीं। नीचे की मंज़िल सबसे ज़्यादह लम्बी और चौड़ी होती थी और हर ऊपर की मंज़िल अपने नीचे की मंज़िल से छोटी। इस तरह मिस्र की 'पिरेमि' की शक्ल की यह एक आसमान से बात करती हुई ऊंची चीज़ होती थी। हर मंज़िल में मकान और कमरे होते थे और सबसे ऊपर चोटी पर असली देवता का स्थान होता था। उरनाम्मु का बनाया हुआ सिग्गुरात सबसे नीचे क़रीब १९६ फ़ुट लम्बा और १३० फ़ुट चौड़ा था। यह अब तक ज्यों का त्यों क़ायम है।

सुमेरी धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि वे शुरू में किसी पहाड़ी देश के रहनेवाले थे। उनके देवता ऊंचे पहाड़ों पर वास करते थे। सुमेर में पहाड़ों का नाम नहीं। शायद इसीलिये वे एक बनावटी पहाड़ बनाकर उस पर अपने देवताओं को बैठाते थे। हर सिग्गुरात के साथ एक भण्डार घर होता था जिसे 'गामख' कहते थे। अन्दर एक बड़ा कमरा होता था जिसे न्याय भवन कहते थे। सिग्गुरात ही के अन्दर पुरोहितों और पुजारियों के रहने की जगह होती थी। जो लोग ऊपर न चढ़ सकते उनके लिये नीचे एक मन्दिर होता था। इस मन्दिर में सोने चांदी की मूर्तियां होती थीं। मन्दिर के बाहर खुले आकाश के नीचे कई वेदियां होती थीं जिन पर जानवरों की बलि दी जाती थी। वेदी कोई सोने की होती थी और कोई पत्थर की।

सिग्गुरात के सात चबूतरे सात ग्रहों के मुताबिक़ होते थे। हर ग्रह का अलग रंग था।

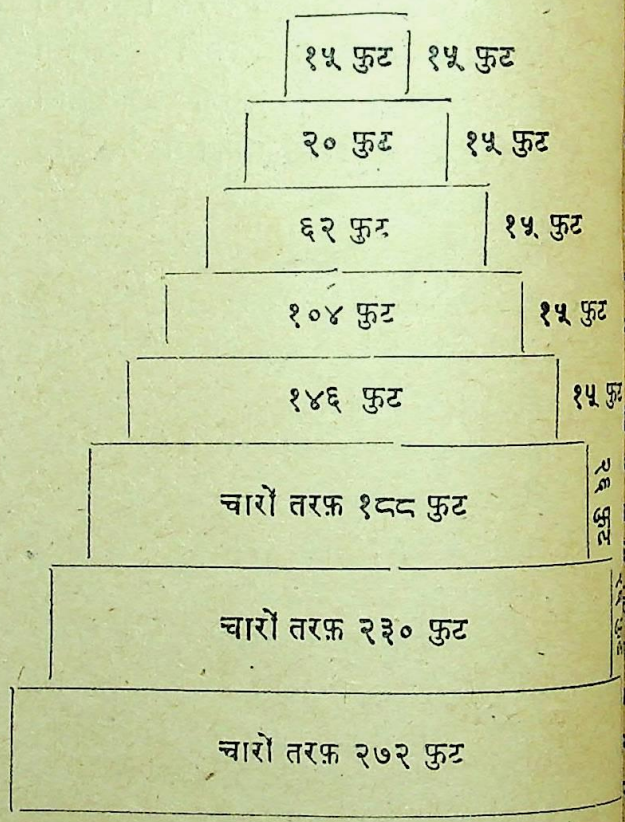

सबसे नीचे का चबूतरा शनि का था इसलिये उसके पलस्तर के ऊपर काला रङ्ग पोत दिया जाता था। दूसरा चबूतरा वृहस्पति का था इसलिये नारङ्गी रङ्ग की पकी ईंटों का बना होता था। तीसरा मङ्गल का था चमकदार लाल मिट्टी की अधपकी ईंटों से बनाया जाता था। चौथा सूरज का था। इस चबूतरे के चारों तरफ़ ख़ालिस सोने की पतली चादर मढ़ दी जाती थी। पांचवा शुक्र का था जिसे पीले रङ्ग की ईंटों से बनाया जाता था। छठा बुध का था जो गहरे नीले रङ्ग से पोता जाता था। सातवां चबूतरा चन्द्रमा का था जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ़ सफेद चांदी की चादर जड़ी होती थी। इस तरह पूरा सिग्गुरात तरह तरह के रङ्गों के ऊपर चांदी की चमकती हुई चादर से ख़त्म होकर आकाश को चूमता था। सातों चबूतरों के ऊपर का मन्दिर बाहर भीतर सोने, चांदी और जवाहरात से भरा होता था। इस मन्दिर के बाहर भी उसी तरह बलि के लिए वेदियां होती थीं जिस तरह नीचे के मन्दिर के बाहर।

सुमेरी स्वभाव से फ़ुरतीले और कामकाजी होते थे। उनके मन्दिर केवल मन्दिर ही न थे। वे एक तरह के विहार थे, जहां पूजा-पाठ के अलावा बच्चों को तालीम दी जाती थी और तरह तरह की कारीगरी, उद्योग-धन्धों और ढलाई वग़ैरह के कारखाने होते थे। सिग्गुरात इतने ऊंचे होते थे कि उनके ऊपर से आकाश के ग्रहों और नक्षत्रों को खूब देखा भाला जा सकता था इसलिए ज्योतिष विद्या सीखनेवालों के लिए सिग्गुरात आब्ज़रवेटरी यानी ग्रहशाला का काम देते थे। सुमेरी मन्दिर विद्या के केन्द्र थे।

सिग्गुरात ही के पास एक दूसरा मन्दिर होता था जिसे गिग-परकु कहते थे। यह देवता की पत्नी का मन्दिर समझा जाता था। इसके चारों तरफ ऊंची चहारदीवारी होती थी जिससे यह मन्दिर क़िले सा लगता था। मन्दिर के एक हिस्से में मन्दिर का ख़जाना होता था, और दूसरे हिस्से में देवी के सोने का कमरा। शयन के पीछे भण्डार घर होता था जहां अभी तक बड़े बड़े तेल के मटके रखे हुए मिले हैं। भण्डार घर से लगा हुआ भोजन घर होता था। ज़ाहिर है इन मन्दिरों में बड़े बड़े भोज होते थे। इस मन्दिर का रक़बा ४०० × २०० गज़ होता था। 'सिग्गुरात' और 'गिग पर कु' का रक़बा मिलाकर कभी कभी ४ × १½ मील होता था।

उरनाम्मु ने १८ साल राज किया। बाहर के कई देश उसे ख़िराज देते थे। दूसरे देशों से तिजारत बढ़ रही थी। उरनाम्मु अपने इन्साफ़ के लिए मशहूर था। सुमेरी या ग़ैरसुमेरी वह सबके साथ हर तरह एक सा निष्पक्ष व्यवहार करता था। उसने कई नए मन्दिर और महल बनवाए। आबपाशी और जहाज़रानी दोनों के लिए उसने नहरें खुदवाईं। एक चौड़ी नहर उसने समुद्र से उर तक खुदवाई ताकि बड़े से बड़े माल से लदे जहाज़ सीधे उर में आकर अपना माल उतार सकें।

उरनाम्मु के बाद उसका बेटा डुङ्गी पिता की गद्दी पर बैठा। डुङ्गी ने कई लड़ाइयां जीतीं और अपने राज की सरहदें बढ़ाईं। उसने सुसा (ईरान) में वहां के शुशिनाग देवता का एक आलीशान मन्दिर बनवाया। वह दूसरे देशों के देवताओं का भी आदर करता था। सुमेर में भी उसने कई मन्दिर बनवाए। डुङ्गी के समय देश में बड़ी ख़ुशहाली थी। तिजारत ख़ूब बढ़ी हुई थी। लोगों के रहन सहन का तरीक़ा पहले से ख़रचीला और शानदार होता जा रहा था। डुङ्गी ने देश के उस समय तक के तमाम क़ायदे-क़ानूनों और रिवाजों को एक जगह लिखवाकर एक ज़ाब्ते की शक्ल में तय्यार कराया और मुक़दमों के फैसले के लिए कचहरियों और जजों का ठीक ठीक इन्तज़ाम किया।

शहर की ज़िन्दगी

डुङ्गी के समय शहरों के रहनेवालों का रहन सहन ख़ासे ऊँचे दरजे का था। दो दो मंज़िल के पक्के मकान होते थे जिनकी बनावट मोहन-जे-दड़ो के नीचे दरजे के मकानों से मिलती है। घर का सदर दरवाज़ा आंगन में खुलता था। आंगन पक्की ईंटों से पटा होता था। आंगन में पानी का एक घड़ा रखा रहता था। जो भी आदमी बाहर से मकान में आता था उसे पहले यहां पैर धोने पड़ते थे। पानी फेकने की जगह से एक नाली पकी हुई मिट्टी के गोल पाइप की बनी हुई सहन के पटाव के नीचे से मकान के बाहर की बड़ी नाली में जाकर गिरती थी। मकान पक्की ईंटों के बने होते थे। दीवालों पर गारा फिरा होता था और बाहर भीतर सफेद चूने की पुताई होती थी। गरमी के दिनों में गरमी बेहद पड़ती थी इसलिये मकान के नीचे के तल्ले में खिड़कियां न होती थीं। हर मकान में नीचे का एक बड़ा कमरा जो गली में खुलता था मेहमानों के लिये होता था। रसोई, पक्का पाख़ाना ग़ुसलख़ाना और नौकरों के रहने की जगह नीचे के तल्ले में होती थी। अकसर मकानों में एक मन्दिर और बलि के लिए वेदी भी होती थी। कमरों में लोग ज़मीन पर चटाई बिछाकर बैठते थे। भोजन करते समय सामने छोटी छोटी चौकियां होती थीं जिन पर रखकर खाना खाया जाता था। ज्यादह ख़ुशहाल घरों में दरियां और क़ालीन और तांबे या चांदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मढ़े हुए सोफे और आराम-कुर्सियां होती थीं जिन पर कामदार गद्दे पड़े रहते थे।

नीचे के तल्ले में घर के छोटे से मन्दिर या वेदी के ठीक नीचे परिवार का क़बरिस्तान होता था। फ़र्श के नीचे एक बन्द डाटदार तहख़ाना होता था। परिवार में जब किसी की मौत होती थी तब यह तहख़ाना खोला जाता था। मुरदे को कपड़े पहनाकर चटाई में लपेटकर उसमें रख दिया जाता था। पानी का एक प्याला उसके ओठों से लगाकर रख दिया जाता था और इसके बाद वह छोटा सा क़बरिस्तान फिर ईंटों से चुन दिया जाता था। बच्चों की लाश को मिट्टी के घड़े में बन्द करके रखा जाता था। रहने के मकान के नीचे ही मुरदे गाड़ना वहां का आम रिवाज था। कभी कभी उस मकान का दरवाज़ा ईंटों से बन्दकर के घरवाले कहीं और रहने लगते थे। लेकिन ज्यादातर लोग उसी मकान में रहते थे। हाल की खुदाई से किसी मकान में दस, किसी में बीस और किसी में तीस लाशें तक मिली हैं।

डुङ्गी के बाद उसका लड़का बर-सेन गद्दी पर बैठा। बर-सेन की भी बाद में देवता की तरह पूजा होने लगी। उर के इस तीसरे राजकुल ने २२७८ ई०पू०से २१७०ई० पू० तक राज किया।

सुमेर को आबाद हुए दो हज़ार साल से ऊपर हो चुके थे। उर का नगर कम से कम डेढ़ हज़ार साल से बीच बीच में सुमेर की राजधानी रह चुका था। दूसरे बड़े बड़े शहरों में सुमेर के और उसके राजकुल के रक़ीब उसके प्रतिस्पर्धी पैदा हो चुके थे। यह प्रतिस्पर्धा और आपसी द्वेष बढ़ता गया। कोई बलवान राजा सबको क़ाबू में कर लेता था। कमज़ोर राजा के दिनों में फिर जगह जगह बग़ावतें होने लगती थीं। होते होते उर के तीसरे राजकुल के आख़ीर के दिनों में आइसिन, लारसा एरेक, सिप्पर, बाबुल और किश कई शहरों के 'पटेसी' या सरदार अपने अपने छोटे छोटे ख़ुद मुख़्तार राज बनाकर बैठ गए। सुमेर की मिली हुई ताकत कमज़ोर हो गई।

सरहदी कौमों का हमला

इसी अरसे में दजला के इस पार से आइसिन और इलाम के कुछ सरहदी सरदारों ने एक बड़ी फौज लेकर सुमेर पर हमला कर दिया। उर का पुराना शहर बर्बाद कर दिया गया, वहाँ के राजा को कैद करके वे इलाम गए। ये लोग इराक और ईरान के बीच की सरहद पर रहनेवाले थे। वे जो कुछ लेकर जा सके ले गए, बचा उसे नष्ट कर गए।

निप्पर में एक शिला लेख मिला है जिसमें इस घटना को इस तरह बयान किया गया है—

"उन्होंने देश को बरबाद कर दिया और मुल्क का इन्तज़ाम नष्ट कर दिया।

"वे प्रलय की तरह आए और चारों ओर तबाही फैला गए!

"ऐ प्यारे सुमेर! तुम्हें उन्होंने क्या से क्या बना दिया? पवित्र राजकुल के वारिस को उन्होंने देश से निकाला दे दिया! शहर को ज़मीन से मिला दिया और मन्दिरों को गिरा दिया!"

इस शिलालेख से उर और सुमेर की उस समय की कमज़ोर हालत का पता चलता है। तमाम देश में एक तबाही सी छा गई। केन्द्रीय सत्ता ख़त्म हो गई। देश पक्के तौर पर छोटे छोटे ख़ुदमुख़्तार और आपस में लड़नेवाले राज्यों में बंट गया।

उर के पतन के बाद आइसिन नगर का बढ़ा। यहीं के राजा इश्ब-इरी ने इलामवालों के मिलकर उर पर चढ़ाई की थी। कुछ दिनों पूरब निनेवेह तक इश्बइरी का ज़ोर रहा। आइसिन के दक्षि पूरब में आइसिन से केवल ७० मील दूर लारसा नगर एक दूसरी स्वतन्त्र रियासत कायम हो गई। कुछ लारसा के राजे इलाम के राजा के बाजगुज़ार रहे।

आइसिन का राजकुल ५ पीढ़ी तक यानी २ ई० पू० से १९५० ई० पू० तक राज करता लारसा का स्वतन्त्र राज २१७० ई० पू० से १९१० ई० तक कायम रहा। पूरे सुमेर पर इनमें से कोई कभी न हो पाया। इराक ही में आइसिन के पास घीरे एक तीसरी ताकत सर उभार रही थी, जो थोड़े समय के अन्दर इतनी बढ़ी कि एक बार सुमेर और दोनों से कहीं ज्यादह उसने इतिहास में अपना रोशन कर लिया। सुमेर के बाद इराक की यह सभ्यता बाबिल या बाबुल की सभ्यता थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमु अबु नाम के एक छोटे से आदमी ने धीरे धीरे अपनी होशियारी और हिम्मत से बाबुल नगर में एक छोट सी सेना जमा कर ली। २०४० ई० पू० में वह बाबुल का 'पटेसी' बन गया। धीरे धीरे उसने अपनी ताकत को बढ़ाया। बाबुल की रियासत आइसिन की रियासत का मुकाबला करने लगी। सुमुअबु ने १४ साल राज किया। अन्त में सन् १९४० ई० पू० में इस कुल का छठवां राजा हाम्मुराबी गद्दी पर बैठा जो थोड़े ही दिनों के अन्दर दुनिया के बड़े से बड़े सम्राटों में गिना गया।

सुमेर का इतिहास और सभ्यता

सुमेर की सभ्यता के ख़त्म होने और बाबुल के उभरने से पहले कुछ दिनों के लिए सरहदी इलामवालों का उर पर कब्ज़ा हो रहा। उन्होंने उर को छोड़कर 'लारसा' नगर को अपनी राजधानी बनाया। लेकिन वहीं से बैठकर उन्होंने उर के शहर को फिर से आबाद किया, वहां की तिजारत को तरक्की दी और सबसे बड़ी बात यह की कि विद्वानों और लेखकों को मुकर्रिर करके और खोज करके सुमेरी सभ्यता का दो हज़ार बरस का पूरा इतिहास तय्यार कराया। उसी इतिहास के रहे सहे पन्नों से हमें आज सुमेरी सभ्यता की झलक मिल सकती है। इन लेखकों ने सारे सुमेरी साहित्य को फिर से ताज़ा किया। धार्मिक ग्रन्थों को शोध करके उन पर भाष्य लिखे। पौराणिक कथाओं का संग्रह किया। लारसा में इलामी राजाओं के इस महान काम ने सुमेरी धर्म को भी हम सबके लिये सुलभ बना दिया। बाद में राज बदले, धर्म बदले ज़बानें बदलीं, वेश भूषा बदली। लेकिन पूरे डेढ़ हजार साल तक सुमेरी धर्म, सुमेरी संस्कृति और सुमेरी रहन सहन बाबुल और असुरिया की सभ्यताओं का आधार शिला बना रहा। उसी पर उन्होंने अपनी सभ्यताओं के महल खड़े किये।

हाम्मुराबी के शुरू के ज़माने में इराक़ भर में सबसे ज़्यादह बलवान लारसा का इलामी राजा रिमसेन था। कहते हैं सुमेर की प्रजा उससे बहुत खुश थी। हाम्मुराबी ने तख़्त पर बैठने के छै साल बाद रिमसेन से एक एक नगर छीनना शुरू किया। पूरे २५ साल की छोटी मोटी लड़ाइयों के बाद हाम्मुराबी ने लारसा पर हमला किया और उसे जीत कर शहर पर बाबुल का झण्डा फहरा दिया। लारसा की विजय के बाद हाम्मुराबी 'सुमेर और अक्कद' यानी पूरे इराक का एक छत्र सम्राट बन गया। सुमेरी क़ौम की राजनैतिक ताक़त अब सदा के लिये ख़त्म हो गई।

कहा जाता है कि हाम्मुराबी सुमेरी नहीं था। वह किसी पहले की या किसी दूसरी क़ौम से था। लेकिन हाम्मुराबी ने थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ सुमेरी धर्म और सुमेरी क़ानूनों को अपनाया। केवल पुराने देवताओं के कोई कोई सामी नाम अब बदल गए। बोलचाल की भाषा भी समय के साथ कुछ बदली, लेकिन पुराने सुमेरी साहित्य का नई बोलचाल की ज़बान में तर्जुमा होगया। लिपि ज्यों की त्यों रही। सुमेरी दस्तकारियों का असर ज्यों का त्यों रहा। यहाँ तक कि १२०० साल यानी आठवीं सदी ई० पू० की असुरिया की इमारतों पर भी उर के तीसरे राजकुल का असर साफ़ दिखाई देता है। बाबुल और असुरिया की सभ्यताओं की बुनियाद में सुमेर की ही सभ्यता थी।

सुमेर की देन

सुमेरियों ने इराक़ में एक ऐसी सभ्यता को जन्म दिया था जो अपने जन्म देनेवालों के ख़त्म हो जाने के बाद भी पूरे १५०० बरस तक फलती फूलती रही। बाबुल और निनेवेह (असुरिया की राजधानी) दोनों ने बड़े बड़े साम्राज्य क़ायम किये। मिस्र जैसे दुनिया के बड़े बड़े देशों ने उनके चरणों पर सर झुका दिये। लेकिन अपने साम्राज्यों के ज़रिये भी इन्होंने दूर दूर के मुल्कों में सुमेरी सभ्यता ही को फैलाया। एशिया कोचक के खत्तियों ने सुमेरियों की (Cuneiform Script) कोनेदार लिखावट को अपनाया। बाबुली अपने समय में सुरिया (सीरिया) मिस्र और दूसरे देशों के आपसी सम्बन्ध की राजनैतिक ज़बान बन गई। सुरिया और कप्पा डोसिया ने सुमेरी सील-मोहरों की नक़ल की। कारकेमिश की दस्तकारियों पर सुमेरी असर था। फीनीशिया में सोने-चांदी और दूसरी धातों के कई तरह के मेल सुमेर से ही गए।

इमारतों में मेहराब बनाना यूरोप में सिकन्दर से पहले कोई न जानता था, यूरोप में सबसे पहले यूनानियों ने और बाद में रोमियों ने मेहराब बनाना सीखा। मेसोपोटामिया में मेहराब एक आम चीज़ थी। ६०० ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पू० के बाबुली सम्राट नेबुचेदनेश्वर की इमारतों में मेहराब का इस्तेमाल किया गया है। नेबुचेदनेश्वर से पहले १४०० ई० पू० के बाबुल के एक दूसरे सम्राट कुरिगाल्सु के बनाए हुए एक मन्दिर में भी मेहराब मिली है। २००० ई० पू० के उर के मकानों में मेहराब का इस्तेमाल मिलता है। निप्पर में ३००० ई० पू० की पक्की नालियाँ मिली हैं जो मेहराब देकर बनाई गई हैं। इससे भी पहले उर के शाही कबरिस्तान में ईसा से ३५०० साल पहले की जो इमारतें खोदकर निकाली गई हैं उनमें भी मेहराब इस्तेमाल हुई है। इस तरह आज कल की इमारतों की सबसे बड़ी देन मेहराब कम से कम ५५०० साल पहले सुमेर ने दुनिया के लिए विरसे में छोड़ी थी। गुम्बद और डाटों का इस्तेमाल भी सुमेर में कम से कम ५५०० साल पुराना है।

किन्तु सुमेर की इस ईंट-पत्थर की देन से बढ़कर दुनिया को उसके विचारों की देन है।

यूरोप की सभ्यता साफ़ सुमेरी विचारों की नींव पर ही क़ायम हुई है। बाइबिल को पढ़ने से मालूम होता है कि पहले यहूदियों ने और उसके बाद उनके ज़रिये सारे यूरोप ने इधर से उधर तक सुमेरी विचारों और विश्वासों को अपना लिया। दुनिया की पैदाइश और प्रलय के क़िस्से बाइबिल में ज्यों के त्यों सुमेरी कहानियों से ले लिए गए। सुमेरी सभ्यता का मशहूर विद्वान वूली लिखता है कि—"हज़रत ईसा की दस आज्ञाओं की बुनियाद में सुमेरी आज्ञाएँ ही हैं। दसों आज्ञाएँ ज्यों की त्यों ग्रन्थों से ली गई हैं। सुमेरियों से ही यहूदियों ने की व्यवस्था या नियम और क़ानून बनाना सीखा। यहूदियों से आजकल की सारी ईसाई दुनिया, तौर पर नहीं तो कम से कम उसूल के तौर पर को अपना आदर्श मानती है।"

आगे चलकर वूली लिखता है—"वह ज़माना चुका जब समझा जाता था कि यूनान ने दुनिया को सिखाया। इतिहास की खोजों ने हमें बताया कि तरह यूनान के जिज्ञासु हृदय ने लिदिया से, खत्तियों फ़ीनीशिया से, क्रेट से, बाबुल से और मिस्र से ज्ञान की प्यास को बुझाया। लेकिन उस ज्ञान की कहीं अधिक गहरी जाती हैं और इन सब सभ्यताओं पीछे हमें सुमेर का छिपा हुआ हाथ नज़र आता है।

एक और इतिहासकार बेरोस्सु जो तीसरी या सदी ई० पू० में हुआ है लिखता है—"हज़ारों साल ईरान की खाड़ी से एक अजीब जीवों का गिरोह निकला जिनके सिर आदमियों के से और धड़ मछलियों के थे। वे सुमेर के नगरों में आकर बस गए। उन्होंने करना, धात का इस्तेमाल, और लिखने की कला ईजाद की। एक शब्द में मनुष्य क़ौम की तरक्की की बातें इस गिरोह के नेता ओन्नि से ही दुनिया ने सीखीं और उस समय के बाद से फिर दुनिया में कोई ईजाद नहीं हुई।" [क्रमशः

११२ पृष्ठ से आगे

तृतीय वंश का सर्वप्रथम राजा नेचेरोफेस था। इसके समय में लिबिया वालों ने विद्रोह किया था, और कहते हैं पेरोए (Pharaoh) या राजा उन्हें दबाने में तब ही सफल हो सका जब कि देवताओं की मदद से चाँद ने ऐसा भीमकाय रूप धारण किया, जिससे शत्रु भयत्रस्त हो उठे।[१०]

नेचेरोफेस का उत्तराधिकारी संभवतया जोसरथ्रोस था। मेनेथो के अनुसार वह पत्थरों को काटकर भीमकाय ठोस इमारतों की निर्माण कला में बहुत दक्ष था। उसने पत्थरों को कटवाकर एक बहुत बड़ा महल बनवाया था।[११] अपने वंश का वह सबसे प्रमुख राजा माना जाता है। वैद्यक-शास्त्र में कहते हैं वह इतना निपुण था कि उसे 'चिकित्सा के देवता' की उपाधि दी गई थी। मिस्र का वह धन्वन्तरि था। मेनेथो के अनुसार उसने लेखक कला को पूर्ण विकास पर पहुंचा दिया था। उसने लोगों को चित्र-लिपि की कला भी सिखलाई थी।

यह भी अपने वंश के प्रमुख राजाओं में माना जाता है। कहते हैं जेसर ने सक्कारह (Saqqarah) में एक छोटा-पिरेमिड बनवाया था।[१२]

इस वंश में और भी राजा हुये किन्तु उनके केवल नाम भर मिल पाते हैं।

१०—Egypt under the Pharaohs, Brugseh, p. 30.

११—The Historians History of the World, p. 93.

१२—Ibid.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्र का पुरातन मेम्फिस राज्य

श्री भगवतीप्रसाद पांथरी एम० ए०

प्राचीन मिस्रवासियों के अनुसार उनका पहला ऐतिहासिक और माननीय राजपुरुष मेनि हुआ जिसे यूनानी इतिहासकारों ने मेनीज़ कहा है। मेनि या मेनीज़ का अर्थ 'स्थिर चित्त' होता है। (मेनि और भारतवर्ष के प्रथम पुरुष राजा मनु के नामों में समानता मालूम होती है।) मेनि का जन्म कहते हैं—उपरले मिस्र (Upper Egypt) के तिना, थिस या थिमिस, नगर में हुआ था, जो उसके पुरखों की राजनगरी थी। पहिले मिस्र का राज्य दो भागों उपरले और निचले मिस्र में, बंटा हुआ था। कहा जाता है मेनि ने पहले इन दोनों राज्यों को एक में मिलाकर संयुक्त शासन स्थापित किया। दोनों राज्यों का मुकुट-धारी बनने पर अब उसे राजधानी बदलने की आवश्यकता मालूम पड़ी। तिना (उपरले मिस्र) से दोनों हिस्सों पर शासन करना कठिन था। राजधानी अब ऐसे स्थान पर होनी चाहिये थी जो दोनों राज्यों के समीप पड़े। ऐसा स्थान वहां पर पड़ता था जहां उपरले मिस्र का तंग नील-घाटी का संकरा भाग, निचले मिस्र के चौरस मैदान से मिलता है। इस स्थान से मिस्र के दोनों भागों पर शासन करना निःसन्देह आसान पड़ता था। अतः मेनि ने इस स्थान पर राजनगरी बनवाई जो उसके नाम पर मेनि-नेफ़र अर्थात् 'सुन्दर निवास' (The Good Abode) कहलाई। यूनानी रोमन लोग इस नगर को 'मेम्फिस' के नाम से पुकारते थे, और हिब्रु 'मोफ़' तथा, आसुरी 'मिम्पि' कहा करते थे। इस नगर को बसाने के लिये, मिस्र की पुरातन गाथाओं के अनुसार मेनि को नील नदी के बहाव का रुख़ बदलकर उपयुक्त स्थान निकालना था। नील नदी पहिले मैदान में घुसने से पूर्व बहुत दूर तक पश्चिम की तरफ़ लिबिया की पहाड़ियों की तलहटी से होकर बहती थी। मेनि उसे पूरब की तरफ़ बहाना चाहता था जिससे ऐशियाई आक्रमणकारियों के विरुद्ध वह दुर्ग का सा काम दे सके। अतः कहते हैं उसने एक बांध द्वारा नदी का रुख बदलकर उसका बहाव घाटी के बीचों बीच पूरब की ओर मोड़ दिया। इस प्रकार उसने एक ओर तो नदी से एशियाई आक्रमणकारियों के विरुद्ध अपनी रक्षा का मोरचा बनाया और दूसरी ओर नदी के नये रुख़ से पश्चिमी पहाड़ियों की तलहटी के बीच काफ़ी जगह राजनगरी के लिये पा ली[1]।

गाथाओं के अनुसार मेनि ने राजनगरी के भीतर 'पतह' (विश्वकर्मा जिसने विश्व और मनुष्य का सृजन किया, और ब्रह्मा, जिसने मनुष्यों को ब्रह्म का स्वरूप, गुप्त-भाव प्रकट किया) का मन्दिर भी बनवाया था, जो मिस्र का सर्वप्रथम मन्दिर माना जाता है। यह पतह माम्फिस नगर का इष्ट-देवता था। उसके नाम पर यह नगर 'ह-ख-पतह' अर्थात् 'देव पुरुष पतह का घर' भी कहलाया। यह नगर पुरातन काल के बहुत ही भव्य नगरों में से माना जाता है। हेरोडोट्स के समय यह नगर अपनी समृद्धि और वैभव की चरम सीमा पर था।[2] उसने इस नगर को 'अत्यन्त विशाल और चिर-स्मरणीय' बतलाया है। १३ वीं सदी तक इस नगर के इतने काफ़ी अवशेष मौजूद थे जो उसके कला कौशल और समृद्धि का पूरा इतिहास प्रकट करने को काफ़ी थे—जैसा कि उस समय के एक अरब यात्री के बयान से ज़ाहिर होता है।[3] इस नगर के अवशेष आजकल 'तेल मोफ़' में मिलते हैं; किन्तु आज जो अवशेष मिले हैं वे इतने कम हैं कि हम उनसे उसकी प्राचीन भव्यता और विशालता का अन्दाज़ा नहीं लगा पाते।

मेनि के अन्य कार्य

कहते हैं मन्दिरों में देवताओं की पूजा के नियम आदि पहले मेनी ने ही मिस्र में प्रचलित किये थे। 'अपिस' (बैल जैसा शिव का नन्दी मिस्र के लोग हिन्दुओं की ही तरह बैल को देवता मानकर पूजा करते थे।) पूजा का प्रचलन भी उसीने किया था। उसीने सबसे पहले वर्णमाला का आविष्कार किया और क़ानून भी प्रचलित किये जो उसे 'थोथ' नाम के देवता से मिले थे। किन्तु उसने पूर्व कालीन सादगी की जगह अय्याशी और ठाठ

१—Egypt—Rawlinson, pp. 49-50.

२—Ibid, p. 5.

३—R. Stuart Pool "Cities of Egypt" pp. 24 25.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाट को भी अपनाया।[४]

डाओडोरस के अनुसार एक बार किसी झील में गिरने पर एक मगर-मच्छ ने मेनि को अपनी कमर पर बिठाकर किनारे पहुँचाया और उसको डूबने से उबारा था। अतः मेनि ने खुश होकर मगर-मच्छ के नाम पर क्रोकोडिपोलिस नाम का नगर स्थापित किया और मगर-मच्छों की पूजा का प्रचलन भी जारी करवाया था।[५]

मेनि का चरित्र

गाथाओं के अनुसार मेनि एक कलापूर्ण राजा था। मेनेथो के अनुसार वह एक वीर आदमी था जिसने लिबियनों से युद्ध किया था। कहते हैं कि उसके सुरुचि पूर्ण स्वभाव ने ही लोगों को भोजन को ठीक से परोस कर खाना सिखलाया था, तथा झुक करके खाने की विधि बताई थी। जो भी हो इतना ज़रूर मालूम होता है कि मेनि मिस्र का सबसे पहिला राजा है जिसको मिस्र वासी अपने आदि पुरुष के रूप में ही नहीं मानते थे बल्कि बहुत काल तक देवता मानकर उसकी पूजा भी करते रहे।

मेनेथो के अनुसार मेनि का अन्त 'दरियाई घोड़े' के निगलने से हुआ था किन्तु दरियाई-घोड़ा शाकाहारी होता है, इसलिये यह बात संभावित नहीं मालूम होती। असल में ऐसा विदित[६] होता है कि मेनि मिस्र की उस रौद्रता की देवी द्वारा, जिसका वाहन 'दरियाई घोड़ा' है, और अपने आप भी जो कभी उस घोड़े का रूप ले लिया करती है; निगला गया था, जिसका अर्थ यही होता है कि उसकी मृत्यु प्राकृतिक रूप से हुई थी।[७] मेनेथो के अनुसार उसने ६२ वर्ष तक राज्य किया था।

मेनि के पश्चात तेता या यूनानी इतिहासकार ऐट्टोथनीज के अनुसार अथोथिस मिस्र का पेरोए अथवा राजा हुआ। मेनेथो के अनुसार मेम्फिस में उसने एक राज-प्रासाद बनवाया था तथा शरीर शास्त्र (anato पर एक पुस्तक लिखी थी। कहते हैं उसका व्यवसाय वैद्यक था। उसके शासन काल में दो सिर सारस दिखाई पड़ा था, जिसका अर्थ यह समझा कि मिस्र की खूब समृद्धि होगी। उसके शासन काल और कोई बात अथवा घटना विदित नहीं है। लगभग ५९ वर्ष तक राज्य किया।

मेनी के वंश में चौथा राजा संभवतया 'अ हुआ। इसके समय में मिस्र में ताऊन (Plague) बीमारी फैली थी।

अता के बाद हेसेप-ति राजा हुआ। इसका सही सेपति और कुंडली का नाम 'तेन' माना जाता है।[८]

मेनी के वंश का यह अनुमानतः सातवां राजा है। मेनेथो के अनुसार इसके समय बहुत भारी महा फैली थी।

उसके बाद संभवतया पहिले वंश में एक और हुआ और तत्पश्चात मिस्र का प्रथम राज ख़तम हो गया।

प्रथम वंश के पश्चात मिस्र में दूसरे और तीसरे ने राज्य किया। किन्तु इन वंशों के राजाओं का हाल मालूम नहीं हो सका है, यद्यपि कुछ एक के अवश्य मिले हैं।

क-क-उ दूसरे वंश का संभवतया दूसरा राजा कहते हैं 'अपिस नन्दि' या बैल की पूजा इसी के से मिस्र में प्रचलित हुई थी।

संभवतया यह क-क-उ का उत्तराधिकारी था। के शासन-काल में स्त्रियों को 'स्त्री-उत्तराधिकार' अधिकार प्राप्त हुआ था, जो मिस्र के इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। तब से उत्तराधिकार' का मिस्र के लोग बहुत आदर और करने लगे थे।[९]

उसके बाद दो-एक राजा इस वंश में और किन्तु उनके बारे में सब कुछ अंधकार में है।

शेष ११० पृष्ठ पर

४—Egypt under the Pharaohs, Brugseh, p. 20.

५—The Historians History of the World to ed. by, Wiliams 91.

६—Ibid.

७—The Dawn of History; Rawlinson, p. 52.

८—The Historians History of World p. 91

9—Ibid, p. 92.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायम में भारतीय सभ्यता और संस्कृति

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति ने एशिया महाद्वीप के कुछ भागों को प्राचीन काल में एक उच्च संस्कृति प्रदान की और उन स्थानों के आदि निवासियों को मानव जीवन का सच्चा महत्व समझाया। भारतीय सभ्यता का प्रचार लंका, बरमा, मलाया, जावा (यवद्वीप), सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) बाली, बोर्नियो, अन्नम (चम्पा), कम्बोडिया (कम्बुज), सायम (Siam), तिब्बत, कोरिया, जापान, चीन, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, अफ्रीका, मिस्र, यूनान, ईरान, तथा कुछ विद्वानों का मत है कि मैक्सिको (पाताल देश) में भी हुआ था। पुरानी खोजों से जो कुछ भी शिलालेख, प्रतिमायें, मन्दिरों के खंडहर तथा पुस्तकें मिली हैं, उनसे यह बात साफ़ साफ़ मान ली गई है कि प्राचीन काल में विदेशों में भारतीय सभ्यता खूब फैल गई थी। प्राचीन काल में जहाँ जहां विदेशों में भारतीय उपनिवेश बने, वहाँ वहाँ, भारतीय सभ्यता और संस्कृति भी मानवजाति के जीवन का एक अंग बन गई। यह माना हुआ विचार है कि प्राचीन भारतीय उपनिवेशों की स्थापना का आधार मध्यकालीन तथा वर्तमान काल का सा यूरोपीय साम्राज्यवाद न था, परन्तु असभ्य या अर्धसभ्य जातियों में सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करना था। भारतीय संस्कृति ने विदेशों की सभ्यता को नष्ट नहीं किया वरन उसमें एक नये जीवन का सञ्चार किया। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रान्सीसी व डच लेखकों ने दक्षिण-पूर्वीय द्वीपों के विषय में जो पुस्तकें लिखी हैं, उनमें यह कहीं नहीं लिखा है कि वृहत्तर भारत के शासक भारतवर्ष के किसी भी सम्राट के आधीन थे; परन्तु इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि दक्षिण भारत के चोल वंशीय शासक तथा बंगदेश के पाल व सेन राजा उपनिवेशों के शासकों के साथ समानता का व्यवहार करते थे।

विदेशों में जो भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की विजय हुई, उसका मूल तत्व, सत्य और न्याय का प्रचार करना था; जिसकी साकार प्रतिमा अशोक प्रियदर्शी थे। ब्राह्मण पंडित तथा बौद्ध भिक्खु विदेशों में गये और वहाँ पर उन्होंने अपनी जन्म भूमि की सभ्यता और संस्कृति का प्रचार किया। आधुनिक खोज से जो कुछ भी प्राचीन काल के अवशेष मिले हैं, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि विदेशों में जहाँ भी भारतीय उपनिवेश बने, वहाँ भारतीय धर्म, साहित्य, कला-कौशल तथा सामाजिक व्यवस्था ने वहाँ के रहनेवालों पर भारतीयता की एक ऐसी स्थायी छाप लगा दी, जो सैकड़ों वर्षों तक क़ायम रही।

सायम (SIAM) के आदि निवासी

सायम का देश बरमा के पूर्व तथा फ्रान्सीसी हिन्द चीन के पच्छिम में स्थित है। सायम के उत्तर में भी हिन्द चीन का अंश है, तथा दक्षिण में सायम की खाड़ी। सायम के आदि निवासी 'ताइ' (Tai) थे जो विद्वानों के मतानुसार 'सायमी', 'लाओ' (Lao) तथा 'शाम' (Sham) जातियों के पूर्वज थे।[1] चीनी और ताई जातियों को विद्वान सहवर्गीय मानते हैं, उसका यह कारण है कि प्राचीन चीनी भाषा और ताइ भाषा में समानता पाई जाती है, तथा दोनों जातियों के मनुष्यों की रूपरेखा में भी समानता मिलती है। ताइ जाति का ईसा से कई शताब्दी पूर्व से चीन देश से सम्बन्ध था। कोलोफेंग (Kolo feng) नामक ताइ राजा अपने आपको चीनी सम्राट के आधीन मानते थे; परन्तु ७५० ई० में हुनान के एक सूबेदार ने ताइ राजा का अपमान किया, इस पर ताइ राजा ने तिब्बत के शासक से सन्धि कर ली। तिब्बत के राजा ने ताइ राजा को छोटे भाई की उपाधि भी प्रदान की थी। कुछ वर्षों तक सायम कम्बोडिया राज्य का भी एक प्रान्त रहा। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में बड़ी कठिनता से सायम में एक स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना हो सकी! सायम के इस नये राजवंश के राजाओं का धर्म हीनयान बौद्ध धर्म था, और जो वर्तमान काल तक राजा व प्रजा का धर्म चला आ रहा है। सायम में अब भी एक दन्त कथा प्रचलित है कि दो हज़ार वर्ष पूर्व एक चीनी राजकुमार अन्नम और कम्बोडिया होता हुआ सायम आया था। कथा इस प्रकार है कि उस राजकुमार ने कुछ लोगों के कहने में आकर अपने पिता की हत्या करने का विचार

१—W. A. R. Wood, 'A History of Siam', पृष्ठ ३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। षड़यंत्र का भेद खुलने पर राजा ने अपने पुत्र व उसके अन्य साथियों को देश से निकाल दिया। यह चीनी राजकुमार अपने साथियों के साथ सायम की खाड़ी में आया और समुद्र तट पर आकर उसने जूडिया (Judia) नामक नगर की स्थापना की। उस स्थान पर राजकुमार को सात साधु मिले जिनकी शक्ल आपस में एक दूसरे से मिलती जुलती थी।[२] अनेक विद्वान इस बात को मानते हैं कि सायम में सबसे पहले चीनी सभ्यता व संस्कृति का प्रचार हुआ, तथा ऊपर लिखी दन्त कथा को भी सच मान लिया जाता है क्योंकि ईसा से कई शताब्दी पूर्व से ही सायम के शासक अपने आपको उसी चीनी राजकुमार के वंशज मानते चले आ रहे थे, तथा उन्होंने चीनी सम्राट की आधीनता भी स्वीकार कर ली थी।

सायम में भारतीय उपनिवेश

सायम में प्राचीन काल में ही चीनी सभ्यता का प्रचार हो गया था, और सायम उस समय कम्बोडिया के राज्य का एक प्रान्त था। सायम में स्वतंत्र राज्य की स्थापना १३५० ई० के निकट ही हुई थी। सायम में तमिल भाषा का एक शिलालेख मिला है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ईसा से पूर्व ही भारतीय व्यापारी तथा मल्लाह सायम में जाने लगे थे, और व्यापार ही उनका मुख्य ध्येय था।[३] इस शिलालेख में 'नारनय' (विष्णु) का नाम आता है, तथा 'मनिग्रामम्' (Manigramam) नाम भी आया है। 'मनिग्रामम्' व्यापारी संघ का नाम माना जाता है, और यह भी माना जाता है कि यह व्यापारी संघ दक्षिण भारत का था। एक विद्वान का कथन है कि सायम में विष्णु मंदिर का निर्माण शायद तमिल वैष्णव योद्धाओं ने कराया होगा, जो कि उच्च कोटि के नाविक भी थे।[४] इस शिलालेख को विद्वान ईसा की नवीं शताब्दी का मानते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में सायम में भारतवासियों ने एक उपनिवेश स्थापित कर लिया था। एक दूसरे विद्वान कथन है कि सायम में भारतीय उपनिवेश सम्राट अशो के समय में स्थापित हो गया था, और उनका विचार है कि कलिंग देश के निवासी ही यहाँ आ बस गये थे। राईस डेविस नामक लेखक ने बौद्ध धर्म जो पुस्तक लिखी है, उसमें लिखा है, कि 'सोन' व 'उत्त नामक बौद्ध साधुओं को स्वर्णद्वीप में धर्म का प्र करने भेजा गया था। डा० रमेशचन्द्र मजुमदार त अन्य लेखक पगू से लेकर सम्पूर्ण मलाया द्वीप का स्वर्ण द्वीप मानते हैं। परन्तु कुछ विद्वान वर्त सुमात्रा का नाम स्वर्णद्वीप मानते हैं। यह तो हुआ विचार है कि पगू में सोना होता ही नहीं। सायम में उथोंग (Uthong) नामक नगर है, जि अर्थ होता है, 'स्वर्ण का उद्गम' और मध्यका समय में इसी नगर का नाम था, 'सुवन्प-उमि' (S wanp-uni) इस शब्द का भी अर्थ (सुवन्प=स उमि = भूमि) स्वर्णभूमि या स्वर्ण का उद्गम ही हो यह नगर राम तिबोदी नामक राजा की राजधानी था।

वाद विवाद का दूसरा प्रश्न यह है कि सायम पहले जो भारतवासी गये थे, वे ब्राह्मण धर्म के मा वाले थे या, बौद्ध थे ? यह बात तो मानली गई है बौद्ध धर्म के प्रचार से पहले सायम में भारतवासी और इसी आधार पर यह भी माना जाता है कि उ धर्म पुराना ब्राह्मण धर्म ही था। सम्राट कनिष्क के स में जब बौद्ध धर्म के दो भेद हो गये तब बरमा, सा तथा कम्बोडिया में हीनयान सम्प्रदाय का ही प्र रहा। सायम में उस काल की जो बौद्ध प्रतिमायें हैं, वह पूरी तरह गान्धार मूर्ति कला के आधार पर मालूम होती हैं। हुएनत्सांग जो सम्राट हर्ष के समय भारतवर्ष आया था, लिखता है कि कम्बोज में साधुओं की सभा होने के बाद हमने सायम में भी साधु भेजे।[६] जब भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का पतन

२—Journal of the Siam Society, Vol. VII (1910) Part I., पृष्ठ ६-७

३—Col. Gerini, 'South Indian Islands' Vol. III., पृष्ठ ९१.

४—J. R. A. S. 1913, पृष्ठ ३३७—३३९.

५—W. A. R. Wood, 'History Siam', पृष्ठ—४२

महा वंश Trans. Geiger and Bude 'सौन के उत्तर' को स्वर्ण द्वीप लिखा है।

६—W. A. R. Wood 'History Siam,' पृष्ठ ४३—४५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा, उस समय सायम में भी इसका प्रभाव पड़ा, और वहाँ बौद्ध धर्म की महानता कम हो गई, तथा उसी समय कम्बोडिया में फिर से ब्राह्मण धर्म की महानता हो गई। यह तो पहले कहा जा चुका है कि सायम उस समय कम्बोडिया राज्य का प्रान्त था। कम्बोडिया के शासकों ने जिनमें जयवर्मन द्वितीय तथा सूर्यवर्मन द्वितीय का नाम उल्लेखनीय है, ब्राह्मण धर्म की प्रभुता को फैलाया। उन्हींके शासन काल में अंगकोर धाम तथा अंगकोर-वाट नामक नगरों में विशाल शिव मंदिरों की स्थापना की गई। कम्बोडिया के इस ब्राह्मण धर्म का प्रभाव सायम पर भी पड़ा। यही कारण है कि आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक सायम में भी ब्राह्मण धर्म का प्रभाव था।[७]

सायम में भारतवासियों के पहुंचने के लिये जल व स्थल दोनों ही मार्ग थे। स्थल से वे असम व बरमा होकर हिन्द-चीन पहुँचते थे। जल का मार्ग भारत-वासियों के लिये आदि काल से खुला ही था। यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारतीय नाविक दक्षिण-पूर्वीय द्वीपों से आदि काल से व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। जो भारतीय व्यापारी व नाविक सायम गये, उन्होंने 'लिगोर' (Ligor) नामक स्थान में जाकर एक बस्ती बसाई। सायम की प्राचीन दन्तकथाओं में 'लिगोर' एक महत्वपूर्ण नगर था, और उसका प्राचीन नाम 'श्री धर्मराज नगर' बतलाया जाता है।[८] हिन्द-चीन में भारतवासियों के जो उपनिवेश बने वे छै थे। प्राचीन पुस्तकों में उन छै उपनिवेशों के संस्कृत भाषा के नाम मिलते हैं— (१) 'यवन देश', (२) 'चम्पादेश' (अन्नम), (३) 'कम्बुज देश' (कम्बोडिया), (४) 'सायम देश' (श्याम), (५) 'रमनय देश' (६) 'मलय देश'। यवन देश हिन्द-चीन का उत्तरीय भाग था, जिसकी राजधानी कुधाम नगरी थी। चम्पा देश वर्तमान अन्नम था, जिसकी राजधानी चम्पापुर थी। कम्बुज देश में वर्तमान कम्बोडिया तथा पूर्वीय सायम का कुछ भाग शामिल था। सायम देश वर्तमान सायम के उत्तरीय भाग का नाम था, और इस देश का मुख्यनगर 'हरिपुण्यपुर' (वर्तमान लम्फुम) था। पश्चिम में सायम देश की सीमा वर्तमान मनीपुर के पास तक कही जाती है। रमनय देश में वर्तमान पगू व बरमा का कुछ भाग शामिल था। मलय देश की भौगोलिक स्थिति वर्तमान स्थिति के ही समान थी।[९] हिन्द-चीन में भारतवासियों ने जो उपनिवेश बनाये उनके कुछ नाम तो अब तक मिलते हैं। वर्तमान नाम भी संस्कृत भाषा से बिगड़कर बने हैं। नगरों के उन नामों के आधार पर माना जाता है कि वहां संस्कृत भाषा का कितना अधिक प्रचार था। कुछ नगरों के नाम ये हैं[१०]—

वर्तमान नगर		प्राचीन संस्कृत नाम
रातपूरि (Ratpuri)	=	राजपुरी
अयुथिआ (Ayuthia)	=	अयोध्या
उत्तरदीथ (Uttaradith)	=	उत्तरतीर्थ

सायम में ब्राह्मण धर्म

विद्वानों का यह सुनिश्चित विचार है कि सायम में पहले ब्राह्मण धर्म ही गया। परन्तु यह बात भी सच है कि ब्राह्मण धर्म सायम में एक शक्तिशाली धर्म न बन सका। उसका मुख्य कारण यह है कि तेरहवीं शताब्दी के पूर्व तक सायम कम्बोडिया राज्य का एक भाग था। इतिहासकार एकमत होकर यह भी मानते हैं, कि सायम में ब्राह्मण धर्म व बौद्धधर्म का प्रचार कम्बोडिया से ही हुआ। बंगकोक नामक स्थान पर कुछ प्राचीन शिलाएँ मिली हैं, जिनपर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन शिलाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे उस काल में बनाई गई थीं, जबकि सायम में ब्राह्मण धर्म का ही प्रचार था। एक शिला पर कुछ स्त्रियाँ दोनों हाथों से फूल चढ़ाती दिखलाई गई हैं। गणेश की भी दो प्रतिमायें मिली हैं। १३१७ ई० के एक शिलालेख पर एक शिवलिंग की स्थापना का वर्णन है[११]। गणेश, विष्णु और लक्ष्मी, तथा शिव की प्रतिमायें कांसे की बनी मिली हैं। एक प्रतिमा में विष्णु के चार हाथ दिखलाये गये हैं, जिनमें

७—Ibid. पृष्ठ ४६—४७.
८—Le Siam Ancien—L. Fournerean, Vol. I. पृष्ठ ४९.
९—Ibid, पृष्ठ ५०-५२.
१०—Indian Coloney in Siam, पृष्ठ २६.
११—Ibid, पृष्ठ ९८.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर के दोनों हाथों में वे शंख और चक्र लिये हैं। शिव की एक प्रतिमा में भगवान शंकर 'तांडव नृत्य' कर रहे हैं।[१२] इन प्रतिमाओं का अध्ययन करने से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें कुछ तो भारतीय शिल्पकारों की बनाई हुई हैं, और दूसरी सायम के कारीगरों द्वारा बनाई मालूम होती हैं। शिव की मूर्ति में जिसमें वह तांडव नृत्य कर रहे हैं, उगलियों की बनावट दक्षिण भारत में प्राप्त 'नटराज शिव' की मूर्तियों की उँगलियों से मिलती हैं। 'विष्णु और लक्ष्मी' की प्रतिमा में वह बनावट और सफ़ाई नहीं मिलती है।[१३] लोपपुरी में एक प्राचीन मन्दिर मिला है, जिसके विषय में एक लेखक का कथन है कि यह मन्दिर हिन्दू-कला के आधार पर बनाया गया था। इस मन्दिर की निर्माण-कला कम्बोडिया के सुदूरपूर्व के मन्दिरों के समान है। इस मन्दिर में तीन छोटे छोटे शयनागार हैं जिनके प्रवेश द्वार छोटे हैं और जिनकी छतें साधारण शिलाओं से ढकी हुई हैं। उस लेखक के मतानुसार ये तीन शयनागार शायद ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लिये थे। ये तीनों शयनागार ढके हुये रास्तों से मिला दिये गये हैं।[१४] प्राचीन काल में यह मन्दिर चाहे जिस अभिप्राय से बनाया गया हो, परन्तु आजकल उसमें बुद्ध की प्रतिमायें भी मिलती हैं। यह सच बात है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य से सायम में राजा व प्रजा का धर्म बौद्ध धर्म ही था, फिर भी यह भी माना जाता है कि एक समय था जब कि सायम में ब्राह्मण धर्म का भी प्रचार था।[१५]

सायम में आजकल भी ब्राह्मणों का अच्छा आदर होता है, और राजदरबार में ब्राह्मण पण्डितों की गिनती बौद्ध भिक्षुओं के समान ही होती है। वर्तमान काल में सायम में ब्राह्मणों को फ्राम्स (Phrams) कहते हैं। सायम में ब्राह्मणों की संख्या आजकल बहुत ही कम है। 'बटवोट फ्रम' नामक मन्दिर के निकट उनकी बस्ती है, जिसमें सब स्त्री व पुरुष मिलाकर सौ के रहते हैं। इस स्थान पर तीन ईंटों के मन्दिर हैं, एक मन्दिर में आजकल भी 'त्रिमूर्ति' की एक प्रतिविद्यमान है। इस त्रिमूर्ति को सायम के निवासी 'फ्रम रक्षेश्वरविथि' (Phra-mah raxakhruvitthi) कहते हैं। राज दरबार में ब्राह्मणों का आजकल भी सम्मान किया जाता है। वर्तमान काल में भी वे नये राजा सिंहासनारूढ़ होने के समय आदर पाते हैं। सायम के ब्राह्मण अब तक 'होरा' या ज्योतिषी, 'आसार' आचार्य का काम करते हैं।[१६] वर्तमान सायम प्राचीन भारत की तरह कुछ त्योहार भी मनाये जाते हैं। सायम का राजा अब भी प्रतिवर्ष बङ्गकोक के राजमहल के उपवन में 'रेकना' उत्सव मनाता है। इस अवसर पर राजा कुछ दूर तक पुनः हल चलाता है। इस प्रथा का आधार हमें बौद्ध धर्म की पुस्तक 'जिन कथा' में मिलता है, जहाँ शाक्य राजा सुद्धोधन का वर्ष में एक बार हल चलाना लिखा हुआ है। सायम भारतवर्ष की तरह बच्चों के मुण्डन की प्रथा अब तक प्रचलित है। बंगकोक के एक मन्दिर में रामायण की कथा दीवार पर शिल्प की हुई मिली है। सायम के शिल्पी वर्तमान समय में भी यमराज तथा इन्द्र की प्रतिमायें बनाते हैं। सायम के निवासी बरमा के समान 'मेरु पर्वत' को ही भू मंडल का मध्य विन्दु मानते हैं।[१७]

सायम में बौद्ध धर्म

आजकल सायम में राजा व प्रजा का धर्म बौद्ध धर्म है। बौद्ध धर्म का प्रचार ईसा की पांचवीं शताब्दी में हुआ था। सायम में बौद्ध धर्म का प्रचार कम्बोडिया से हुआ था। चौदहवीं शताब्दी से पूर्व सायम में बौद्ध धर्म का आजकल का सा प्रचार न था, क्योंकि तब सायम कम्बोडिया राज्य का एक भाग था, और कम्बोडिया के राजा कई शताब्दी तक 'शैवधर्म' के कट्टर अनुयायी थे। सन् १३५६ ई० में सूर्यवंश राम नामक राजा ने सायम को कम्बोडिया की आधीनता से मुक्त किया। इस राजा ने सायम में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के

१२—Le Siam Ancient, Vol. I., plates XXIV, XXVIII, XXIX, XLIX, XXVII.

१३—Indian Coloney in Siam, pp 99—100.

१४—Journal of Siam Society, V. (1908) III. pp. 20—21.

१५—Indian Coloney in Siam, pp. 108

१६—Ibid, pp. 109.

१७—Ibid, pp. 110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका से महास्वामी संघराज नामक बौद्ध साधु को बुलाया था तथा उसीके शासन-काल में सन् १३५८ में लंका से पवित्र बौद्ध वृक्ष की एक डाल सायम में लगाई गई थी। राजा ने जिस स्थान पर उस पवित्र वृक्ष की डाल लगाई थी, वहां एक विहार का निर्माण किया था।[१८] जावा के बोरोबुदूर मन्दिर तथा भारतवर्ष के भारहुत के मन्दिर के सिंहद्वार पर जो बौद्ध धर्म की जातक कथाओं का वर्णन है वह सायम में भी प्रसिद्ध विहारों की दीवारों पर अङ्कित मिला है।[१९] सायम में बौद्ध विहार तथा स्तूप अधिक संख्या में मिलते हैं। कुछ वर्ष पहले सायम में बौद्ध विहारों की संख्या बीस हज़ार के क़रीब थी जिनमें लगभग एक लाख बौद्ध साधु रहते थे।[२०] सायम के विहारों का वर्णन करता हुआ एक लेखक लिखता है कि "समस्त देश में बड़े और छोटे विहारों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। सारे विहारों में अनेकों प्रकार की धातुओं की बौद्ध प्रतिमायें मिलती हैं जिनकी कारीगरी व बनावट अति सुन्दर है। विहारों के मध्य में जो मन्दिर बने हुये हैं, उनकी छतों में सोना, चांदी व तांबा मढ़ा हुआ है। बौद्ध मन्दिरों की प्रतिमायें अति विशाल हैं। कुछ प्रतिमाओं के नीचे धन-राशि एकत्रित की हुई मानी जाती है।"[२१] सायम के बौद्ध साधु भारतवर्ष के हीनयान सम्प्रदायवादियों की तरह साधारण केसरिया वस्त्र धारण करते हैं। उनके बाल भी मुड़े रहते हैं। बौद्ध विद्वानों का राजदरबार में बड़ा आदर होता है। बौद्ध साधु सांसारिक वस्तुओं का प्रलोभन नहीं करते, उनको विवाह करने की आज्ञा नहीं होती तथा किसी भी स्त्री से उनका वार्तालाप करना बुरा समझा जाता है। बौद्ध विहारों के व्यय के लिये कुछ सरकारी सहायता प्रत्येक मठ को मिलती है, तथा बौद्ध विहारों के भिक्षु प्रातःकाल भिक्षा मांगने गृहस्थों के यहां जाते हैं। बौद्ध साधुओं के लिये किसी भी प्रकार की मादक वस्तु का सेवन करना बुरा माना जाता है।[२२]

सायम का शासक पूर्णरूप से बौद्ध धर्म का सर्व प्रथम तथा सर्वोच्च अधिकारी होता है। वह अपने धर्म का 'धर्मरक्षक' माना जाता है। राजा मठों के आंतरिक प्रबन्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। राजा की ओर से बौद्ध विहारों का प्रबन्ध-कर्ता होता है, जिसको 'सङ्घकर्त्ता' कहते हैं। वह राजा की सलाह से समस्त धार्मिक झगड़ों का फैसला करता है।[२३]

सायम की वर्तमान शासन प्रणाली में भी भारतीय राज्य शासन का प्रभाव मिलता है। मनु तथा कौटिल्य के बनाये नियमों का प्रभाव साफ़ मालूम पड़ता है। सायम में उत्तराधिकार का नियम भारतवर्ष के ही समान है। मध्यकालीन समय तक सायम के राजा वृद्धावस्था में, राज्य का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र पर छोड़कर शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे। नये राजा के सिंहासनारूढ़ होने पर सबसे पहले ब्राह्मण ही उसका तिलक करता है। भारतवर्ष के समान सायम के राजाओं के नाम के साथ साथ भी अनेक उपाधियाँ रहती थीं।[२४] सायम के निवासी अपने राजा का सम्मान ईश्वर के समान ही करते हैं।[२५] हिन्दू राज्य शास्त्रों में भी राजा को ईश्वर का स्वरूप मानते हैं। सायम में भारतवर्ष के समान राजा के पाँच राज चिन्ह होते हैं[२६]:—

(१) सित्त चत्र (Setta chatra) = श्वेत छत्र
(२) पहतचानी (Phatchanee) = वजनि (राजसी पंखा)
(३) फ्र क हान (Phra K'han) = राजसी खंड
(४) राज मुकुट
(५) राज पादुकायें।

राजा का छोटा भाई या तो प्रधान मन्त्री होता है या सेनापति। राजा के मन्त्रिमंडल में अब तक संस्कृत

१८—Ibid, pp. 46-48.
१९—Ibid, pp. 49.
२०—Ibid, pp. 100.
२१—सोमनाथ के मन्दिर पर जब महमूद गजनवी ने आक्रमण किया था तब भी मूर्ति के नीचे धनराशि मिली थी।
२२—Journal of Siam Society, Part I., (1910), pp. 76-77.
२३—Saunders—Epochs in Buddhist History, पृष्ठ ११५.
२४—Asiatic Researches, 1836, पृष्ठ २४९
२५—Journal of Siam society, 1910, Part I, पृष्ठ १७ १८
२६—Indian Coloney in Siam, पृष्ठ ११४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के नामों की ही प्रधानता मिलती हैं। सायम में निम्नलिखित मन्त्री होते हैं[२७]—

(१) मोन्त्री (Montree) = मन्त्री (प्रधान मन्त्री)
(२) परोहित (Parohita) = पुरोहित (राज पुरोहित)
(३) छत्तोक हहो Chattokhaho) = छत्रगहो
(राज छत्र ले जानेवाला)
(४) खत्त खहो (K'hatta K'haho) = खण्ड गहो
(खण्ड रखनेवाला)
(५) चतन्था (Chattan tha) = चदन्ता (पीलवान)
(६) अतसव (Atsaua) = असा (घोड़ों का मालिक)
(७) अमत (Amat) = आमत्य (मन्त्री)
(८) श्री राम कोषाधिपति
(९) योमरत्त Yommaroat = यमराज (फौजदारी का न्यायाधीष)
(१०) श्री क्रैलत्त = श्री कैलाश (पुलिस कर्मचारी)

सायम के राजाओं की राजमुद्रा पर गजसिंह राज तथा राक्षस की प्रतिमायें अंकित रहती हैं। सायम का राजा भारतीय राजशास्त्रों के आधार पर अपनी प्रजा पर शालीनता, शान्ति व सत्य का भाव रखता है।[२८] सायम में एक शिलालेख मिला है जिसमें राजा ने देश के न्याय पर अपने विचार प्रगट किये हैं। "अगर राज्य की प्रजा, सामन्त और सरदार त्रुटियाँ करें या आपस में वैर भाव रक्खें, (तब) वह (राजा) पूर्ण जांच करके सत्य की खोज करता है, उसके बाद वह प्रजा की भलाई के लिये सुचारु रूप से न्याय करता है।"[२९] जिस प्रकार मनु महाराज ने अपराधों को अठारह भागों में विभाजित कर दिया है उसी प्रकार सायम के उन्नीस अपराधों की सूची में मनु के भी अपराध सम्मिलित हैं। जिस प्रकार मनु के दासों को सात श्रेणियों में विभाजित किया है, उसी प्रकार सायम में भी दास को सात श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। भारतवर्ष की ऋण की प्रथा का, कि व्याज कभी मूल के समान न होना चाहिये, वर्तमान समय में भी सायम में पालन किया जाता है।

२७—Asiatic Researches 1836, पृष्ठ १२०-१२१
२८—Indian Coloney in Siam, पृष्ठ ११८
२९—Jonrnal of Siam society, VI, I, (१९०९) पृष्ठ २६.

सायम का साहित्य

सायम के साहित्य में 'रामायण' व 'महाभारत' महाकाव्यों को उच्च स्थान मिला हुआ है। यह सच है कि सायम में दोनों ग्रन्थों की कथा में कुछ उलट फेर कर दिया गया है फिर भी यह कहा जा सकता है कि जो भारतीय आदि काल में सायम में जाकर बस गये थे, वे अपने ग्रन्थ को भी साथ लेते गये और नये उपनिवेश के वातावरण में भी उनकी महानता को भूले। सायम में रामायण की कथा का वर्णन 'राम के उन', (Ram ke un) नामक पुस्तक में मिलता है। इस पुस्तक में फ्राराम (राम) फ्रलक (लक्ष्मण) का दुशकन्त (रावण) जो कि श्री राम की भार्या नंग सेद (Nang Sed) (सीता) को चुराकर ले गया था, के साथ युद्ध का वर्णन है। रामायण की कथा के आधार पर एक अन्य पुस्तक और है जिसका नाम 'फ-नान सन नांग' (Pha-nan san nang) है। इस पुस्तक में बानर राजा बालि की सुग्रीव को शिक्षाओं का वर्णन है। सायम की दन्त कथाओं के अनुसार फली (बालि) तथा सूक क्रीथ (सुग्रीव) दोनों भाई श्री राम के नौकर थे। परन्तु जब दोनों भाई लड़ने लगे तब राम ने सुक्रीथ (सुग्रीव) को मार डाला।[३०]

महाभारत के आधार पर सायम की भाषा में एक नाटक है, जिसका नाम 'उन्नरत' (Unnarat) है। इस पुस्तक में श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के जीवन का वृत्तान्त है। नाटक की कथा इस प्रकार है:—इन्द्र, राजा अनिरुद्ध को प्रलोभन देकर मृग के रूप में 'याक' के महल में ले गया। वहाँ पर अनिरुद्ध याक राजा की कन्या से प्रेम करने लगता है। उसके बाद याक कन्या एक चित्र देकर अपनी दासी को अनिरुद्ध की खोज करने भेजती है। राजा गुप्त रूप से दासी का पीछा करता हुआ राजमहल में आ जाता है, परन्तु वहाँ पर याक कन्या का भाई उसको पहचान लेता है और नाग पाश में बांध देता है। यह समाचार सुनकर अनिरुद्ध के चाचा गरुड़ को देखकर नाग अनिरुद्ध को बन्धन मुक्त कर देते हैं। अन्त में युद्ध होता है जिसमें विजयी हो

३०—Indian Colney in Siam, पृष्ठ १२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिरुद्ध यक्ष कन्या से विवाह कर अपने देश लौट ता है।[३१]

सायम में बौद्ध धर्म की पुस्तकें अधिक संख्या में लती हैं। 'प्रथोग' नामक पुस्तक में विश्व रचना का रतीय विचारधारा के अनुसार वर्णन है। इसी स्तक में महाराज मनु का भी परिचय मिलता है, यहाँ नु का नाम 'थीम मनु, लिखा हुआ है। 'पोखवदी' मक पुस्तक में 'भवानी' का भी वर्णन मिलता है। ोमन खोदोम' नामक पुस्तक में भगवान गौतम बुद्ध जीवन-चरित्र है। 'फ्र-फ्रोटिसत' (बोधी सत) में तम बुद्ध के पूर्व जन्म का वर्णन है। सायम में ली भाषा का प्रचार संस्कृत भाषा से अधिक रहा। यम के एक राजा ने पाली भाषा के 'त्रिपिटकों का यमी भाषा में भाषान्तर करवाया था। 'जिन काल लिनी' तथा 'काम देवी वंश' पुस्तकें बौद्ध धर्म के तिहास के लिये महत्वपूर्ण हैं। सायम में पाली षा में लिखी हुई एक पुस्तक मूर्ति-निर्माण-कला पर मिली है।[३२]

भारतीय दन्त कथाओं के आधार पर सायम में भी ई पुस्तक मिली हैं, जिनमें कथा का सूत्रपात भारतवर्ष मालूम पड़ता है 'प्रंग टोंग' नामक पुस्तक में एक था का वर्णन है कि किस प्रकार एक कन्या जन्म के ही एक यक (यक्ष) को दान कर दी गई थी, क्योंकि कन्या की माता ने उस यक्ष से एक फल ले लिया। 'नोक खुम' नामक पुस्तक में मनुष्य-मात्र की पत्ति की कथा मिलती है कि किस प्रकार आदि पुरुष जन्म 'हंस' के अण्डे से हुआ था। सायम में 'नीति' षयक कई पुस्तकें मली हैं। धर्म शास्त्र तथा मनुस्मृति आधार पर सायम की न्याय पुस्तकें लिखी मिली हैं। क शास्त्र पर जो पुस्तक लिखी मिली है; उसमें और वान बुद्ध के वैद्य कुमार भाष के बताये नियमों में धिक समानता मिलती है। इसी पुस्तक के आधार पर ना गया है कि जल, वायु, गर्मी तथा मिट्टी के मिलने ही मानव शरीर का निर्माण हुआ है।[३३]

वर्तमान सायम की भाषा में भी अब तक संस्कृत तथा पाली भाषाओं की भरमार मिलती है। संस्कृत भाषा के शब्द 'अमरावती' को सायमी भाषा में 'अः मः राः वः दी' लिखा जाता है। 'आदित्यवार' (रविवार) को 'वन अथित' लिखते हैं। सायमी भाषा में वैसाख महीने का भी नाम मिलता है। निम्नलिखित सूची से यह स्पष्ट हो जायगा कि वर्तमान सायमी भाषा में भारतीय भाषाओं का कितना समावेश है[३४]—

संस्कृत व पाली		सायमी भाषा
अप्सरा	=	अवसोन
आकाश	=	अकाट, अकाटस
अहिंसा	=	अमित
प्रयोजन	=	अनप्रः योल
अंगार	=	अंगरवर
अंकुश	=	अंकुस
आराम	=	अरम
अवतार	=	अः वः तान
पाताल	=	बदन, वदल
पुष्प	=	बुत्स
जल	=	चल, चले
हरि	=	हःरि
हस्त	=	हट

सायम के राजाओं के नामों में भी भारत का प्रभाव मिलता है।[३५] जैसे—

श्री इन्द्रादित्य	=	श्री इन्तः रतः इत्य
रामाधिपति	=	राम तिबोदि
राम राजा	=	बोरोम राज
नारायण	=	नराय

सायम के नगरों के नाम भी भारतवर्ष के नगरों के नामों के समान ही मिलते हैं[३६]—

अयोध्या	=	अयुतिअ
इन्द्रपुरी	=	इन्तबुरी
कन्दनपुर	=	चदबुन
विष्णुलोक	=	पित सबुलोक
स्वर्गलोक	=	स्वंक लोक

३१—Ibid, पृष्ठ १२४-१२५.
३२—Ibid, पृष्ठ १२५-१३२.
३३—Ibid, पृष्ठ १३३-१३४.
३४—Ibid, पृष्ठ १३६-१४०
३५—W. A. R. Wood—History of Siam, पृष्ठ २८३.
३६—Ibid, पृष्ठ २८५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायम का समाज

सायम के समाज में वर्तमान काल में भी अनेकों ऐसी प्रथायें मिलती हैं, जोकि इस बात की जीती जागती प्रमाण हैं कि आदिकाल में सायम में भारतवासियों का एक उपनिवेश था और सायम की सभ्यता तथा संस्कृति पर भारतवर्ष का प्रभाव था। सायम में नवजात शिशु के पैदा होते ही उसके दाहिने बाजू में एक पवित्र तावीज़ बांध दिया जाता है। नवजात शिशु की जन्म-कुण्डली उसी समय बनाई जाती है। कुछ बड़े होने पर बालक का मुण्डन बड़े समारोह के साथ किया जाता है। इस प्रथा को सायम में 'सुता-कन्तन-मङ्गल' कहते हैं। मुन्डन की यह प्रथा पूर्णरूप से ब्राह्मण धर्म की है। परन्तु सायम में बौद्ध धर्म के अनुयायी भी इस प्रथा का पालन करते हैं। बालक का मुन्डन, उसके वंश का कोई वृद्ध पुरुष ही करता है। जब किसी राजपुत्र का मुन्डन होता है तब बंगकोक में एक महान उत्सव मनाया जाता है। उस उत्सव के अवसर पर ब्राह्मणों का मुख्य हाथ रहता है। राजपुत्र अपने पिता तथा अन्य वंशजों के साथ मन्दिर में जाता है; वहां ब्राह्मण उसके बालों को तीन भागों में विभाजित करते हैं। बालों को इस प्रकार तीन भागों में अलग करने का अभिप्राय 'त्रिमूर्ति' (ब्रह्मा, विष्णु व महादेव) से होता है। उस अवसर पर शंख बजाये जाते हैं। उसके बाद राजपुत्र अपने पिता के साथ एक बनावटी पर्वत पर जाता है, (भगवान शंकर ने भी गणेश का मुण्डन कैलाश पर्वत पर ही किया था)। मुन्डन के बाद राजपुत्र को ब्राह्मण एक स्वच्छ सफ़ेद राज मुकुट पहनाते हैं।[३७]

सायम में विवाह की आयु भी नियमित है। पन्द्रह वर्ष की लड़की तथा सत्रह साल का लड़का ही विवाह के योग्य माना जाता है। सायम में बाल-विवाह की प्रथा नहीं है। सायम में एक मनुष्य कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है। वहां एक आश्चर्यजनक बात यह है कि पति अपनी पत्नी को बेच भी सकता है परन्तु जो पत्नी अपने विवाह के अवसर पर दहेज लेकर आती है, वह बेची नहीं जा सकती। सायम में तलाक की भी प्रथा है। कुछ विद्वानों का मत है कि आदिकाल में भारतवर्ष में तलाक की प्रथा थी।[३८]

सायम में जब बालक पांच या छै वर्ष का हो जाता है तब उसे विद्या पढ़ने के लिये बौद्ध विहारों में भेज दिया जाता है। जब तक बालक पूरी तरह अपनी विद्या समाप्त न कर ले उसको घर आने की आज्ञा नहीं मिलती। यह प्रथा भारतवर्ष के गुरुकुलों में विद्या अध्ययन करने के ही समान है, जहां पर रहकर बालक पच्चीस वर्ष के बाद ही घर आ सकता था। सायम में स्त्री-शिक्षा का भी अभाव है परन्तु कन्याओं को ग्रहस्थी का पूरा ज्ञान सिखाने का भार उनकी माताओं के ऊपर होता है।[३९]

३७—Ibid पृष्ठ १२१-१२२

३८—Journal of the Siam Society VII, I, पृष्ठ ८५-८६.

३९—Indian Coloney in Siam, पृष्ठ १२

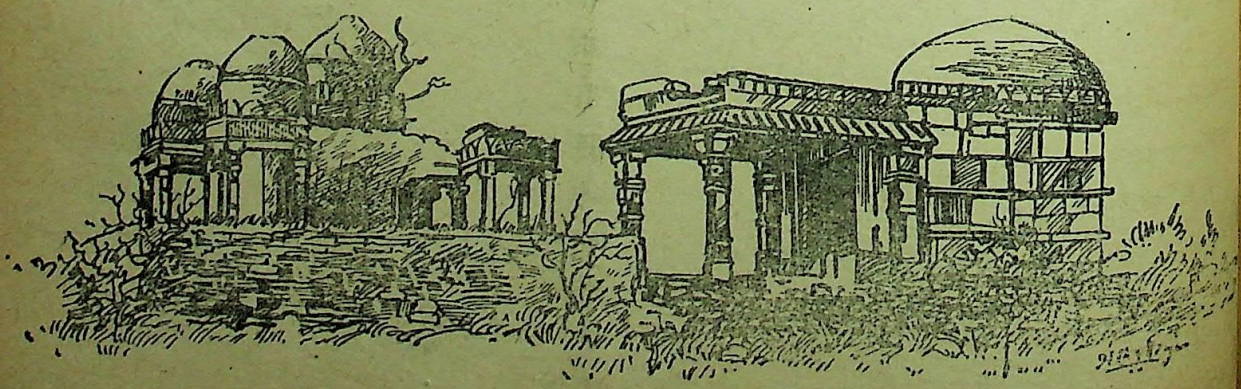

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख किसमें ?

श्री गोविन्ददास एम० एल० ए० (सेण्ट्रल)

(पांच अंकों में एक सामाजिक नाटक)

मुख्य पात्र

सृष्टिनाथ—नायक

प्रेमपूर्णा—नायका

मोहनमाला—उनकी पुत्री

वैराग वैभव—एक सन्यासी

माया सिद्ध—एक योगी

स्थान

उपक्रम—दिल्ली में सृष्टिनाथ का नृत्य आलय

पहला अङ्क

पहला दृश्य—दिल्ली में सृष्टिनाथ का दफ़्तर

दूसरा दृश्य—हरिद्वार में गंगा तट

दूसरा अंक

पहला दृश्य—ऋषिकेश में वैराग्य वैभव का आश्रम

दूसरा दृश्य—ऋषिकेश के उत्तर में गंगा तट

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य—ऋषिकेश के उत्तर गोमि पूर्णा की गङ्गा कुटी

दूसरा दृश्य—वही

चौथा अङ्क

पहला दृश्य—लक्ष्मण झूला के उत्तर में एक हिमालय का शिखर और फिर सागर के अनेक देशों के अनेक दृश्य

दूसरा दृश्य—ऋषिकेश के उत्तर से गङ्गा तट

पांचवां अङ्क

पहला—दृश्य गङ्गा कुटी

दूसरा दृश्य—वही

उप संहार—हिमालय में एक मार्ग

उपक्रम

स्थान—दिल्ली में सृष्टिनाथ का नृत्य आलय

समय—रात्रि ।

[एक अत्यन्त विशाल आलय तीन ओर की दीवालें और छत दिखती हैं। दीवालों और छत पर आकाश का गहरा नीला रङ्ग इस प्रकार किया गया है मानो यह स्थान पृथ्वी पर न होकर आकाश में है। नीले रङ्ग में छोटे बड़े अगणित तारे बनाये गये हैं। इनमें बिजली की रोशनी का इस प्रकार प्रबन्ध है कि ये यथार्थ में तारे ही दिखाई पड़ते हैं। किसी किसी का प्रकाश स्थिर है और किसी किसी का कंपयुक्त। अधिकांश तारों की कांति। सफेद है, लेकिन किसी किसी में हरी, लाल, नीली और बैगनी कांति भी दिखाई देती है। छत में एक तरफ पूर्ण चक्र बनाया गया है। इसका तेज चन्द्रमा के सदृश ही नीली झांई लिये हुए अत्यन्त श्वेत है। इसमें लांछन भी दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा के निकट दूर दूर तक तारे नहीं दिखते। आलय के दरवाजों पर हाल की ज़मीन छूते हुए परदे पड़े हैं। परदे के कपड़ों की ज़मीन नीली है, परन्तु इस ज़मीन पर भिन्न भिन्न रङ्ग की झांई लिये हुए श्वेत कपड़ा इस तरह लगाया गया है जिससे जान पड़ता है कि जमीन से आकाश की ओर बादल उठ रहे हैं। बादली परदों में कभी बिजली भी चमक जाती है। नेपथ्य की यह व्यवस्था बिजली से की गई है। आलय की जमीन पर एक विशेष प्रकार का चिकना कपड़ा डोरियों से तानकर बिछाया गया है, जिससे वह नृत्य क्रिया में इधर इधर सरक या सिकुड़ न सके। इस कपड़े का रङ्ग भी छत और दीवालों के सदृश नीला है। आलय की यह ज़मीन बिजली की ताक़त से धीरे धीरे घूम रही है; और इस पर नाना प्रकार के कलामय नृत्य करती हुई घूम रही हैं अनेक अत्यन्त सुन्दर युवतियाँ। इनमें से प्रत्येक की वेष-भूषा भिन्न भिन्न वर्णों की है। हरेक के वस्त्रों का रंग अलग है; दो युवतियों के एक ही रंग के कपड़े नहीं हैं। इन वस्त्रों में काफ़ी से ज़्यादा चमक-दमक है। आभूषण भी हरेक युवती के पृथक पृथक रत्नों के हैं। कोई हीरे, कोई मोती, कोई पन्ना, कोई माणिक, कोई नीलम, कोई मूँगे, कोई फ़ीरोज़े के आभूषण धारण किये हैं, किसी किसीके आभूषणों में मिश्रित रत्नों का प्रयोग हुआ है; लेकिन दो युवतियों के ज़ेवर भी एक से नहीं। सृष्टिनाथ अँग्रेज़ी ढङ्ग के नाच (बाल) की पोशाक पहने इसमें से कभी किसी, और कभी किसी रमणी के साथ अँग्रेजी नाच नाचने लगता है। सृष्टिनाथ करीब पच्चीस वर्ष की अवस्था का अत्यन्त सुन्दर युवक है। उसका वर्ण गौर और शरीर ऊँचा पूरा तथा भरा हुआ है। मुख और शरीर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे अवयव सुडौल हैं। सौंदर्य के साथ ही स्वास्थ्य भी उसके शरीर और अङ्गों से टपका पड़ता है, मानो सोने में सुगन्ध मिल गयी हो। सिर के बाल उल्टाकर सँवारे गये हैं; और बटरफ़्लाइ मूँछें हैं। सारा दृश्य इस बनावटी चन्द्रमा और तारों के तेज से निर्मल ज्योत्स्ना द्वारा प्रकाशित जान पड़ता है। नेपथ्य से मधुर वाद्य ध्वनि आ रही है। अदृश्य पंखों से आलय में यथेष्ट पवन प्रवाह है, जो नृत्य करती हुई युवतियों के वस्त्र उड़ा उड़ाकर उनको नृत्य के श्रम से थकित नहीं होने देता। इतना ही नहीं इस वस्त्र उड़ान के कारण दृश्य और भी सुन्दर बन रहा है। दृश्य के अवलोकन से और वाद्य-ध्वनि के श्रवण से भान होता है मानो स्वप्न जगत का कोई दृश्य सामने है।]

यवनिका

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—दिल्ली में सृष्टिनाथ का दफ़्तर, समय-मध्याह्न।

[दफ़्तर एकदम आधुनिक ढङ्ग का है और उसी प्रकार सजा हुआ भी है। उसकी तीन ओर की दीवालें लकड़ी के तख्तों की दीवालें दिखती हैं। लकड़ी शीशे के सदृश पालिशदार और स्वच्छ है और लकड़ी के ऊपर की तरफ जो शीशे लगे हैं फूलदार हैं। छत से बिजली का सफ़ेद पंखा झूल रहा है, और ज़मीन पर हैं ईरानी कालीन। कालीन पर कमरे के बीचो बीच एक बहुत बड़ी लिखने-पढ़ने की टेबिल है। इस टेबिल की लकड़ी और उसके उपर के समूचे भाग को ढाँके हुए काँच का बहुत बड़ा तख़्ता है। दोनों ही चमककर दृष्टि को चकाचौंध कर रहे हैं। टेबिल पर लिखने की दफ़्ती, दावातें, कलमदान, घण्टी आदि सब सामान देदीप्यमान चाँदी का बना हुआ है। उठी हुई छपाई (इरेज्ड़ प्रिन्टिंग) से युक्त चिट्ठी लिखने के खूब मोटे कागज़ और लिफ़ाफे सजे हैं। सफ़ेद रंग का टेलीफोन रखा है। सोने के एक अत्यन्त सुन्दर गुलदस्ते में रंग विरंगे पुष्प टेबिल के वैभव में सौन्दर्य को जोड़ रहे हैं। टेबिल के एक ओर घूमनेवाली गद्दीदार कुरसी है, दूसरी तरफ चार दूसरी कुर्सियाँ है। ये भी गद्दीदार हैं। कुर्सियों की लकड़ी और गद्दियाँ देखने से उनके बेशकीमती होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। घूमनेवाली कुरसी पर बहुमूल्य टसर का अँग्रेज़ी ढँग का सूट पहिने सृष्टिनाथ बैठा है। उसकी टाई में हीरे का पिन और उँगली में हीरे की अँगूठी है। उसके मुख पर चिन्ता के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। सामने की कुर्सियों में से एक पर उसका मैनेजर बैठा है। मैनेजर अधेड़ अवस्था का है और उसकी पोशाक भी अँग्रेज़ी ढँग की है।]

सृष्टिनाथ—यह सब क्या हो रहा है, मैनेजर? मेरी अक्ल ही काम नहीं कर रही है।

मैनेजर—यदि आपकी अक्ल काम नहीं करती लाला साहब; तो दुनियां में किसीकी नहीं चल सकती।

सृष्टिनाथ—परन्तु करें कैसे? जितनी बातें की थीं, वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार। उन सिद्धान्तों का लम्बा अध्ययन किया था, उन पर अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक मनन किया था। बुद्धि का पूरा पूरा उपयोग कर हरेक बात की गयी थी।

मैनेजर—इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता।

सृष्टिनाथ—मैनेजर साहब, मैं हृदय और उसकी भावनाओं को नृत्य-आलय और उसी तरह के दूसरे स्थानों में रखता हूँ, दफ़्तर और उससे सम्बन्ध रखने वाली जगहों में मस्तिष्क और विवेक को काम में लाता हूँ। पर इतने पर भी देख रहा हूं कि इस वक्त सभी बातें उल्टी जा रही हैं।

मैनेजर—कभी कभी ऐसा भी हो जाता है।

सृष्टिनाथ—किन्तु अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ। बुद्धि का ठीक उपयोग कर यदि वैज्ञानिक सिद्धान्त को में लाये जांय तो उलटा प्रवाह बह ही नहीं सकता। इसीलिए तो मेरी अक्ल काम नहीं कर रही है।

मैनेजर—पर आप बिगड़े हुए मामले को करते जा रहे हैं। लाला साहब, किसानों का बलवा आख़िर न हो सका, कारख़ाने की हड़ताल भी जायगी।

सृष्टिनाथ—किसानों का बलवा न हो सका, मैनेजर साहब, उसके आसार ही कैसे नज़र आये! ऐसी व्यवस्था की थी कि किसान कभी स्वप्न में भी बातें न सोच सकते थे। उनके नेताओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसरों पर कैसी सहायताएँ दी थीं। लेकिन सब बातें अनुकूल होते हुए भी कहां से यह प्रतिकूल हवा बही। और मेरे आश्चर्य की सीमा तब न रही जब वे ही लोग जिन्हें मैं अपना समझता था, मेरी प्रतिकूल हवा में सबसे पहिले बह गये।

मैनेजर—जो कुछ हुआ हो, पर बलवा रुक तो गया।

सृष्टिनाथ—लेकिन मेरी सृष्टि की नींव तो हिल गयी और फिर वह रुका भी मेरे कितने अधिकारों का संहार करने के बाद। (कुछ रुककर) यही बात हड़ताल के मामले में है।

मैनेजर—कैसे ?

सृष्टिनाथ—सर्वथा वैज्ञानिक ढँग से, बुद्धि का पूरा पूरा उपयोग कर, मैंने उन परिस्थितियों के बीजारोपण तक की संभावना न रखी थी, जिससे हड़ताल के सदृश रोग की मेरे कारखाने में उत्पत्ति हो सके। मजदूरों के नेता मजदूर होते हुए भी मेरे आदमी थे। मुझसे उन्होंने न जाने क्या क्या पाया था। किन्तु यहाँ भी वही बात हो रही है जो गांव में हुई।

मैनेजर—लेकिन हड़ताल भी रुक जायगी यह मेरा विश्वास है।

सृष्टिनाथ—हड़ताल रुकने का प्रश्न नहीं है, सवाल है नींव के हिलने का, वैज्ञानिक सिद्धान्तों के असफल होते हुए दिखने का, बुद्धि और विवेक के द्वारा जिस सृष्टि का निर्माण हुआ है उसमें प्रलय के अंकुर उत्पन्न होने का। (कुछ रुककर) मैनेजर साहब, गाँव के सदृश यहां मैं अपने अधिकारों पर आघात न होने दूँगा। (फिर कुछ रुककर) हड़ताल होती है तो हो, पर सृष्टिनाथ कारखाने का नाथ ही रहेगा, सेवक न होगा, कदापि.....

[एक बन्द दरवाजे को खोलकर बहुमूल्य और स्वच्छ वर्दी लगाये तथा चांदी की चपरास से सुसज्जित, जिस पर सोने के अक्षरों में "सृष्टिनाथ कम्पनी" लिखा हुआ है, एक चपरासी का प्रवेश। उसके आते ही दरवाजा आपसे आप बन्द हो जाता है। चपरासी एक चांदी की तश्तरी में एक तार का बन्द लिलाफा लिये हुए है। वह झुककर अभिवादन कर तार का लिफ़ाफा टेबिल पर रख फिर उसी प्रकार अभिवादन कर उसी दरवाजे को खोल बाहर जाता है। दरवाजा फिर बन्द हो जाता है। सृष्टिनाथ बेपरवाही से लिफाफा खोलकर तार पढ़ता है। तार पढ़ते पढ़ते उसका मुख एकदम उतर जाता है और हाँथ कुछ कांप जाते हैं।]

सृष्टिनाथ—(तार मैनेजर को देते हुए भर्राये हुये स्वर में) पढ़िए, पढ़िए, मैनेजर साहब, इस तार को पढ़िए।

[मैनेजर तार लेकर पढ़ता है। उसका भी वही हाल होता है।]

मैनेजर—रुई का यह भाव। बाजार इस प्रकार कैसे घटा ?

सृष्टिनाथ—(उसी तरह भर्राये हुये स्वर में) घटा। घटा क्या ? एकाएक कोलैप्स हो गया।

[सृष्टिनाथ का सिर झुका जाता है। मैनेजर उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

सृष्टिनाथ—(सिर उठाते हुये विचार-पूर्वक) लेकिन मुझे तार सच्चा नहीं मालूम होता। शायद किसी बदमाश ने दूकान के नाम से दे दिया है। एकाएक ऐसी बात हो नहीं सकती। (कुछ रुककर) कोई कारण नहीं, मैनेजर साहब, मैंने सारी बातों को वैज्ञानिक ढँग से विचार करने के बाद इतना माल खरीदा था।

मैनेजर—(विचारते हुए) किसी बदमाश का ही तार जान पड़ता है। यदि ऐसी बात होती, बाजार इस तरह घटता, तो फ़ोन आता।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुए) आप ठीक कह रहे हैं। अवश्य किसी बदमाश का काम है। (कुछ रुक कर) मैनेजर साहब मैंने न जाने कितने वर्षों के सारे आँकड़ों को देखा था। उनपर विचार किया था, विशेषज्ञों की रायें ली थीं। अमेरिका की इस साल की बोनी कम थी, मौसमी हाल भी फसल के लिए नुक्सानदेह थे। सारी बातें तेज़ी की तरफ़ होने पर भी बाज़ार एकदम से इस प्रकार बैठ जाय यह असम्भव बात है।

[चपरासी का उसी प्रकार दूसरा तार लेकर प्रवेश। वह तार उसी तरह टेबल पर रखकर जाता है। सृष्टिनाथ जल्दी से तार उठाकर उसे कांपते हुये हाथों से खोलता है। उसका मुँह और उतर जाता है। वह तार मैनेजर को देता है, पर कुछ कहता नहीं। मैनेजर तार पढ़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।] उसी समय फोन की घण्टी बजती है। मैनेजर रिसीवर उठाता है।]

मैनेजर—हलो...हलो...(रिसीवर सृष्टिनाथ को देते हुये) बम्बई का फ़ोन है।

सृष्टिनाथ—(काँपते हुये हाथों से रिसीवर ले उसे कान में लगाते हुये) हलो...हलो...हां, सृष्टिनाथ... सृष्टिनाथ बोल रहा हूं।...कौन...कौन...सृष्टिनाथ कम्पनी?...मैनेजर...हलो...हलो...देवकी नन्दन...हाँ, बोलिए...बोलिए, देवकी नन्दनन जी,...हां,...हां,... आपके दोनों तार मिल गये।'...(कांपते हुए स्वर में) बाज़ार और घट रहा है?...और सबब?...क्या?... अमेरिका के प्रेसीडेन्ट का कोई वक्तव्य हुआ है?... अच्छा...और गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया की भी कोई घोषणा?...अच्छा...इधर तो कोई समाचार नहीं मिले ...वायरलेस से रायटर की ख़बर है?...अच्छा...अच्छा अपना माल?...इस भाव में निकाल दें?...इस भाव में?...मैनेजर साहब, यह कैसे हो सकता है?...सट्टे में भाव नहीं देखा जाता?...ठीक है,...पर...पर...सारे हिसाब किताब...सब आंकड़े गलत नहीं हो सकते।... और घट रहा है। और घट रहा है?...अच्छा...अच्छा ...और घटेगा?...और? टाइम अप!...थ्री मिनिट्स मोर प्लीज...थ्री मिनिट्स मोर...कान्ट वेट!...ह्वाई? ...मैनी कालस पेन्डिंग?...वेल...वेल। (रिसीवर रख-कर इस तरह कुरसी पर टिकता है, मानो उसमें कोई जीवन ही नहीं रहा)

मैनेजर—(लम्बी सांस लेकर) तार तो सही है?

सृष्टिनाथ—हां!

मैनेजर—यह होने का कारण?

सृष्टिनाथ—अमेरिकन प्रेसीडेन्ट और गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया के कोई वक्तव्य हुए हैं।...(कुछ रुककर) पर...पर मैनेजर साहब, ये वक्तव्य...ये हो कैसे सकते थे? रोज़गार-धन्धों में यह सरकारी हस्तक्षेप!

मैनेजर—इसे अभी एक ओर रखिए, लालासाहब, अपने को क्या करना चाहिए, यह सोचिए।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) इस भाव से माल निकाला तो नहीं जा सकता।

मैनेजर—पर फोन में ख़बर है न कि भाव और घट रहा है तथा और भी घटने की सम्भावना है।

सृष्टिनाथ—(उसी प्रकार विचारते हुये) हां, तो है।

मैनेजर—(तार की ओर देखते हुए) और तार जो भाव है उस भाव के अनुसार भी अगली बलन तो हमें भुगतान में तो करीब तीन लाख रुपया होगा।

सृष्टिनाथ—पर यह भाव रह नहीं सकता।

मैनेजर—(विचार करते हुये) आगे चलकर रहे, पर बलन को तो सिर्फ तीन दिन बाकी हैं। इन दिनों में कोई बड़ी तेज़ी आने की सम्भावना दिखती।

सृष्टिनाथ—(विचार-पूर्वक) आपका यहाँ का बम्बई का बैंक बैलेंस क्या है?

मैनेजर—(सोचते हुये) कोई बारह लाख होगा।

सृष्टिनाथ—तो बीस लाख का प्रबन्ध करना है।

मैनेजर—तार के भाव से। (तार को देखते हुए) पर तार एक्सप्रेस होते हुए भी दो घण्टे पहले का उसके बाद का भाव फोन में आया है। कितना घटा?

सृष्टिनाथ—सात-सात रुपये और घट गये।

मैनेजर—(सोचते हुये) ओह! तब तो आठ लाख और बढ़ जायगा। (कुछ रुककर) और घट ही तो रहा है।

सृष्टिनाथ—(घबरा कर) फिर क्या किया जाय?

मैनेजर—(गम्भीरता से) हां, तीस चालीस रुपये के प्रबन्ध का प्रश्न है। और वह भी तब जब सौदा काट दिया जाय। तीन दिन तो बहुत होता तीन दिन में न जाने क्या होगा।

[सृष्टिनाथ कोई उत्तर न देकर मुख नीचा लेता है। मैनेजर उसकी ओर देखता है। कुछ निस्तब्धता रहती है।]

सृष्टिनाथ—(सिर उठाते हुये) तो इज़्ज़त सवाल आ गया।

मैनेजर—अवश्य।

सृष्टिनाथ—और वह भी उग्र से उग्र रूप (कुछ रुक कर) अच्छा हमने भी वक्त वक्त पर कितने लोगों को सहायतायें दी हैं। कुछ को फोन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैनेजर—इस वक्त सब कुछ कीजिए लाला साहब।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुए) दिल्ली में दो ही आदमी इतना बड़ा इन्तज़ाम कर सकते हैं—त्रिलोकी नाथ और मोतीलाल।

मैनेजर—(विचारते हुये) हाँ और क्या, इन्हींसे पूछिए। हरएक के सामने हाथ क्यों फैलाया जाय ?

[सृष्टिनाथ फोन की रिसीवर उठा आटोमेटिक फोन डायल पर नम्बर मिलाता और रिसीवर को कान से लगाता है]

सृष्टिनाथ—हलो ! हलो ! हां...हाँ...त्रिकोकी नाथ जी, हाँ,...हाँ,...मैं सृष्टिनाथ...कहिए, कहिए,... जी हाँ, बम्बई से मेरे पास भी फोन आया है।...जी...जी ...मेरी राय ?...इस वक्त रायें कुछ काम नहीं करती। ...मेरी राय तो बहुत तेज़ थी।...पर न जाने यह अमेरिकन प्रेसीडेन्ट और गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया कहाँ से कूद पड़े।...यह...यह तो बड़ी बेइन्साफ़ी की बात है ?... बेशक...बेशक...रोज़गार धन्धों में इस प्रकार हस्तक्षेप ! अब...अब मेरी राय ?...जी...मेरी राय तो अभी भी यही है कि यह क्षणिक घटी है।...बहुत जल्दी फिर तेज़ी आयगी।...हाँ...हाँ...हाँ...अच्छा...अच्छा... हाँ, आप ज्यादा कहाँ करते हैं ?...फँस तो मैं गया हूँ, पर,..पर कोई बात नहीं...तेज़ी तो आनी ही चाहिए। ...भाई जब बोनी ही कम हुई है...फसल भी अच्छी नहीं...तब मही रह कैसे सकती है ? ..हाँ,...हाँ,... मुझे थोड़ी सी अड़चन इस बलन के लिए है।...एक दम से कोलेप्स हो गया न ? कोई इस प्रकार रुपया बैंक में थोड़े ही रखता है ?...हां...हाँ...हाँ अड़चन है।... यदि आप इस समय कोई तीस लाख का प्रबन्ध...नहीं ? क्यों ?...तीस हज़ार का इन्तज़ाम भी मुश्किल है ?... यह...यह...कैसे ?...हलो।...हलो,...हलो...।

(रिसीवर रखते हुये मैनेजर से) प्रबन्ध तो दूर रहा प्रबन्ध की बात सुनते ही आगे की बात बन्द कर दी, रिसीवर ही रख दिया।

मैनेजर—(लंबी सांस लेकर) इन्हें हमने लाखों की सहायतायें की है।

सृष्टिनाथ—(फिर रिसीवर उठा दूसरा नम्बर मिला कान में लगाते हुये) मोतीलाल से ज़ायदाद पर रकम देने के लिए कहता हूँ। (कुछ रुककर) हलो, हलो, सृष्टिनाथ बोल रहा हूँ।...अच्छा...मोतीलाल जी, हाँ, देखिए, मुझे कोई पच्चीस-तीस लाख रुपये की कुछ दिन के लिए आवश्यकता है। दूनी ज़ायदाद रेहन कर दूँगा। ...अच्छा,...अच्छा,...आपने रेहन पर रुपया देना बन्द कर दिया है।...यह क्यों ?...यह...सुनिए... सुनिए तो...हलो, हलो। (रिसीवर रखते हुये लम्बी साँस लेकर मैनेजर से) सुन लिया न ? (कुछ रुककर) यह...यह तो वही किसानों और मजदूरों के नेताओं वाली बात हो रही है।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है]

मैनेजर—(विचारते हुये) बैंकों से पूछा जाय।

सृष्टिनाथ—(विचारकर) बैंकों से ? (कुछ रुककर) लाख दो लाख की बात होती तो दोनों बैंक ओवर ड्राफ्ट भी दे देते। तीस लाख का प्रबन्ध बैङ्कों से नहीं हो सकता।

मैनेजर—(विचारते हुये) हाँ, गाँवों और कारखानों पर तो बैंक रुपया देंगे नहीं।

सृष्टिनाथ—कभी नहीं। (कुछ रुककर) जवाहरात पर भी न देंगे, और फिर इतनी जवाहारात हैं भी नहीं। सोना नहीं के बराबर हैं। (कुछ रुककर एकदम निराशा से) फिर...फिर अब क्या किया जाय, मैनेजर साहब ?

मैनेजर—(भर्राये हुये स्वर में) क्या कहूं ?

[कुछ देर निस्तब्धता]

सृष्टिनाथ—(अत्यधिक भर्राये हुये स्वर में) अगर कुछ...कुछ न हुआ, मैनेजर साहब, तब...तब तो हरिद्वार में गङ्गा की धारा के सिवा कहीं...कहीं भी मेरा निस्तार नहीं...आह !...आ...

[सृष्टिनाथ की आँखों में आँसू छलछला आते हैं। वह अपना मुख अपने हांथों पर टेबिल पर रख लेता है। मैनेजर एकटक उसकी ओर देखता है]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थानः—हरिद्वार के निकट एक सुनसान गङ्गा-तट

समयः—प्रदोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सूर्य अस्त हो चुका है, लेकिन पश्चिम में उसका लोहित प्रकाश आज बादलों के छोटे-बड़े टुकड़े धारण किये हुए है। चलती हुई हवा में ये टुकड़े धीरे धीरे चल रहे हैं। और ये आज इतने लाल हो रहे हैं कि जान पड़ता है मानो आकाश में अग्नि के पहाड़ घूम रहे हों। पश्चिमी क्षितिज के नज़दीक के बादल ज़्यादा लाल हैं और उसके ऊपर के बादलों में नील वर्ण लिये हुए श्यामता आती जाती है, मानों ज्वालाएँ बुझ रही हैं और उनके बुझने के बाद उन पहाड़ों से धीरे धीरे धूम निकल रहा है और काले रंग को धारण कर रहा है। धरती पर दूर हिमालय के शिखर दृष्टिगोचर होते हैं और उन पर भी आकाश की लाल आभा है। निकट गङ्गा बह रही है। उसका प्रवाह तेज़ और जल स्वच्छ है। जल को आकाश की लालिमा के प्रतिविम्ब ने लाल बना दिया है। जान पड़ता है मानो पानी न बहकर आग पिघलकर बह रही है। किनारे की श्वेत बालू को भी यह आकाश रक्त रंग से रंजित कर रही है, और उसमें भी अग्नि का भान होता है। चलती हुई हवा और उसके साथ बसेरे के लिए जानेवाले पक्षियों का शब्द हो रहा है। कभी कभी झींगुँर भी झंकार उठते हैं। सृष्टिनाथ अकेला गङ्गा-तट पर खड़ा हुआ गङ्गा की ओर देख रहा है। उसका मुख अत्यन्त म्लान है, और मुख तथा खड़े होने के ढङ्ग-से जान पड़ता है मानो उसका शरीर जीवन-शक्ति से रहित है। वह चुप है। उसकी दृष्टि गङ्गा के प्रवाह में गड़ी हुई है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है और फिर सृष्टिनाथ एका-एक बोल उठता है] सृष्टिनाथ:—(शक्तिहीन स्वर में) हां, तेरी शरण के सिवा, मेरे लिए अब कोई रास्ता नहीं।...सम्पत्ति गयी...प्रतिष्ठा गयी...इतना ही नहीं, मैं मूर्ख! (कुछ ज़ोर से मानो शक्ति लौट रही है) अगर मुझमें बुद्धि नहीं है तो सृष्टि के किसी व्यक्ति में हो ही नहीं सकती। (फिर से शक्तिहीन स्वर में) मूर्ख कहते हैं...सब कुछ रहते हुए भी...इतना रहते हुए जितना इस देश के इने गिने श्रीमानों को छोड़ और किसके पास था, मैंने...मैंने ऐसा रोज़गार क्यों किया? (कुछ रुककर) इसलिए मैं...मैं मूर्ख!...पर...पर ...सब कुछ रहने का मतलब भी और कुछ प्राप्त करना होता है।...सच्ची बुद्धि विश्राम-तृप्ति नहीं जानती। (फिर से शक्तिमय स्वर में) कृति और अतृप्ति में ही सच्चा...सच्चा जीवन है।...विश्राम...और तृप्ति मृत्यु है, मृत्यु!...(फिर से शक्तिहीन स्वर में) मैं जीवन प्रवाह...सच्चे जीवन प्रवाह में बह रहा था। और...और बहना चाहता था।...मेरे अधिकार अतुल...अतुल सम्पत्ति थी।...उसी अधिकार को और बढ़ाना चाहता था।...(फिर शक्ति भरे स्वर में) इसमें...मूर्खता कहां सिद्ध होती है?...(फिर शक्ति हीन हो) सफल हो जाता...तो...तो संसार एक स्वर बोल उठता—'कितना बुद्धिमान है।'...माता, असफल ...असफल हुआ, इसलिए मूर्ख।...शायद दुनिया सफलता...सफलता से ज़्यादा बड़ी...कोई चीज़ सफलता से अधिक सफल कोई...कोई वस्तु नहीं। पर, मां! (एकाएक अत्यन्त ऊँचे स्वर में मानो शक्ति लौट आई है) पर मां, सृष्टिनाथ अपनी से सफल होकर जीना जानता है, तो असफल...असफल होकर मरना...मरना भी जानता है।...पर...पर आत्महत्या क्या उचित...उचित बात होगी?...(चारों देखकर कुछ रुककर) कैसा...कैसा अद्भुत दृश्य है [ऊपर देखकर] आकाश में आग लग गयी है। दिशाएँ जल रही हैं।...अंगारे हो रहे हैं।...और [फिर मन्द स्वर में] और धुआं भी निकल रहा है। जल जलकर बुझती हुई चीज़ें काली पड़ रही (कुछ रुककर गङ्गा की ओर देखकर) तुझमें...तुझमें भी...तुझमें भी आज समुद्र का बड़वानल दिखाई रहा है।...(कुछ रुककर) भयानक...भयानक हुए भी इस जलन...इस जलन में सौन्दर्य...सौन्दर्य मां, पर बुझ जाने के बाद?...बुझ जाने के बाद...पता...हां कुरूपता आ जाती है।...प्रज्वलित...लित सृष्टिनाथ...सुन्दर...सुन्दर था।...बुझा...हुआ सृष्टिनाथ कुरूप...कुरूप है।...तब क्या वह कुरूपता की ढोये?...(कुछ रुककर) फिर मां! फिर, माता, बुझाने पर भी एक असह्य सी आंच... एक असह्य सी आंच जीने की एक अतृप्त अभि (पृथ्वी के चारों ओर देखते हुए) सारे शरीर जिसमें लालिमा अब बहुत कम होकर सफ़ेदी आ है) इस...इस आंच से शान्ति तेरी...तेरी शरण तो मिल सकेगी न, माता? (कुछ आगे बढ़ते

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं की अस्थियां तेरे प्रवाह में पड़ने के बाद उन्हें सद्गति मिलती है।...मैं...मैं जीवित ही अपने आपको तेरे...तेरे अर्पण करने की बात सोच रहा हूँ।...और... और अपने को तेरे अर्पण करना भी क्या आत्महत्या है? [रुककर, अब अत्यन्त ऊँचे स्वर में मानो सारी शक्ति फिर आयी है] जो सद्गति मैं...मैं चाहता हूँ...वह...वह ऐसा पुनर्जन्म जिसमें जीवन भर असफलता की छाया...छाया तक न पड़े...संसार में जो कुछ वैभव...वैभव शाली है...जो कुछ सुन्दर...सुन्दर है...जिस...जिस पर भी अधिकार करने की इच्छा हो, मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि...दृष्टि उठाते ही मेरे चरणों में लोटने लगे।...(कुछ रुककर) बुद्धि, अधिकार और सफलता...हां बुद्धि अधिकार और सफलता...इन ...इन शब्दों से जीवन...व्याप्त...व्याप्त रहे,...माता! (कुछ रुककर) पर क्या यह सब इसी...इसी जीवन में नहीं हो सकता। इसके...इसके लिए आत्महत्या कर पुनर्जन्म को ज़रूरत है?...

[सृष्टिनाथ फिर चुप हो, किन्तु सिर उठाकर गङ्गा की धारा की तरफ़ देखता है। नेपथ्य में दूर पर गान की एक गम्भीर ध्वनि सुन पड़ती है। सृष्टिनाथ का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है। धीरे धीरे गान निकट आता है और सृष्टिनाथ जिस ओर से गान आ रहा है उस तरफ दृष्टि घुमाकर ध्यानपूर्वक देखने और गान को सुनने लगता है।]

गान

भूल मत तू जीवन की बात—
चिर जीवन की बात।

सुख दुख-सा तू आता जाता;
कभी न जोड़ा प्रभु से नाता
सुन, सांसों में कोई गाता—
तू विश्राम न कर चलता जा दिन हो या हो रात!
चिर जीवन की बात।

यह रजनी का तम मतवाला
तारों को कर सका न काला,
तू भी लेकर अन्तर्ज्वाला,
जीवन का आकाश सँजोए बन जा पुण्य प्रभात।
चिर जीवन की बात।

[गान गाते हुये वैराग्य वैभव का प्रवेश। वैराग्य वैभव गौर वर्ण का और बहुत ऊँचा अत्यंत भरे हुये शरीर का व्यक्ति है। सिर पर लम्बी श्वेत जटायें हैं जो बँधी हुई न होकर उसके पुष्ट कंधों और पीठ पर फैली हुई हैं। मोटी मोटी सफ़ेद भवें, बड़ी बड़ी श्वेत मूँछें नाभि तक फैली हुई सफ़ेद डाढ़ी है। शरीर पर घनी रोमावली है और वह भी सित रंग की हो गई है। कोपीन को छोड़कर और कोई वस्त्र वैराग्य वैभव के शरीर पर नहीं। उसके ललाट और बाहुओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगे हैं। बायें हाथ में विशाल कमण्डल और दाहना हाथ खाली है। पैरों में काष्ठ की पादुकाएं है। वैराग्य वैभव के सारे स्वरूप और गान में इतना प्रभाव है कि सृष्टिनाथ उसे अपने आप प्रणाम करता है। वैराग्य वैभव का दाहना हाथ आशीर्वाद देने के लिए उठ जाता है, पर मुहँ से वह कुछ न कहकर अपना गान गाते आगे बढ़ता है। सृष्टिनाथ बिना कुछ कहे मंत्र-मुग्ध की भांति उसके पीछे पीछे हो जाता है। अब आकाश और पृथ्वी की लालिमा गिर चुकी है और धीरे धीरे अंधकार की चादर सारी सृष्टि को ढांकने का प्रयत्न कर रही है।]

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान:—ऋषिकेश में वैराग्य वैभव का आश्रम।

समय:—मध्याह्न।

[दूर पर हिमालय की हरी शिखरावली दिखायी देती है। उसके नज़दीक गंगा बह रही है। गंगा के इस तट पर आश्रम है। आश्रम के तीन तरफ़ ऊँचे ऊँचे दरख़्त हैं, जिन पर लतायें चढ़ी हुई उनकी टहनियों से झूम रही हैं। वृक्षों की पत्रावली और लताओं की पुष्पावली पर यज्ञ के धूम के कारण कुछ कुछ धूसर रंग दृष्टिगोचर होता है, मानो वे वृक्ष अपनी पत्नियों लताओं के संग वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर तपस्या में रत हैं। पेड़ों के नीचे छोटी छोटी पर्ण कुटियां बनी हैं। ये भी वल्लियों से आच्छादित हैं। चलती हुई हवा से इन लताओं के रंग-विरंगे फूल झड़ झड़कर कुटियों के नज़दीक की ज़मीन पर गिर रहे हैं, मानो वे बेलें ऋषि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटियों के चरणों में पुष्पांजलियां चढ़ा रही हैं। कुटियों के बीच का स्थान एक चौक बन गया है। इसके एक सिरे पर घास से छाई हुई छोटी सी गोशाला है, जिसमें कुछ गायें बँधी हुई घास भी खा रही हैं। चौक के दूसरी तरफ तृण-निर्मित एक और परछी है, जिसकी धरती पर अन्न सूख रहा है। इन स्थानों पर छायी हुई घास को सूर्य की रश्मियां एक अद्भुत प्रकाश दे रही हैं, मानो वे कह रही हैं कि आश्रम की सम्पत्ति अटूट है। चौक के बीच में यज्ञ-वेदी है। वेदी के चारों ओर कुशासनी पर वैराग्य वैभव और उसके शिष्य बैठे हुए हाथों को हिलाकर वेद-ध्वनि करते हुए 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण कर आहुति डाल रहे हैं। वेदी से अग्नि की ज्वालाएँ और धुआं उठ रहा है जो चलती हुई पवन से काँपते हुए मानो उन ऋषियों के कर कम्पन में उनका साथ दे रहा है। एक शिष्य के सिवा सब शिष्य 'हावि-शान्न' की आहुतियां डालते हैं। एक शिष्य घी की आहुति डालता है। इसे वह डालता है अपने हाथ में लिये हुये काष्ठ के 'सुआ' से। उसके सामने काष्ठ के ही एक पात्र में घी रखा है और यही 'सुआ' में भर भर कर डाला जा रहा है। वैराग्य-वैभव और उसके शिष्यों के मुख यज्ञाग्नि के प्रकाश के प्रतिविम्ब से प्रतिविम्बित हैं और यज्ञ-कृत्य इन-ऋषियों के कारण शोभनीय मानों ये एक दूसरे को तेज और शोभा प्रदान कर रहे हैं। इन्हीं शिष्यों में सृष्टिनाथ भी है। उसके सिर, डाढ़ी और मूँछों के बाल भी बढ़ गये हैं, पर उतने नहीं, जितने दूसरे शिष्यों के। उसके शरीर पर भी कोपीन के सिवा और कोई कपड़ा नहीं। इस वेष में भी सृष्टिनाथ के मुख और शरीर का सौन्दर्य किसी तरह कम नहीं हुआ है। सारे पहाड़ी दृश्य, गङ्गा, आश्रम और आश्रम-निवासियों को सूर्य की किरणें सौंदर्य-मिश्रित एक अद्भुत तेज प्रदान कर रही हैं। थोड़ी देर तक 'स्वाहा' 'स्वाहा' की ध्वनि होती रहती है। और उसके बाद वैराग्य वैभव तथा उसके शिष्य खड़े हो वेदी में पूर्णाहुति डालते हैं। पूर्णा-हुति को ग्रहण करती है यज्ञाग्नि और ऊँची होकर। पूर्णाहुति के बाद सारे शिष्य गुरु-चरणों में प्रणाम कर जाते हैं। सृष्टिनाथ भी जाने लगता है, लेकिन वैराग्य वैभव हाथ का इशारा कर उसे रोकता है। वैराग्य वैभव अपने आसन पर बैठ जाता है और हाथ के संकेत से सृष्टिनाथ को भी बैठने का आदेश करता है सृष्टि भी बैठ जाता है।]

वैराग्य वैभव—वत्स, तुम्हारी दीक्षा को आज पूरा वर्ष होता है। कहो, चित्त की क्या दशा है?

[सृष्टिनाथ का मुख मलिन हो जाता है। वह झुका लेता है। वैराग्य वैभव उसकी तरफ़ देखता कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

वैराग्य-वैभव (मुस्कराते हुये)—चित्त अभी भी नहीं है? होता भी नहीं जा रहा है?

सृष्टिनाथ (सिर उठाते हुए)—क्या कहूं, गुरु दिनों दिन उल्टा उद्विग्न होता जाता है।

वैराग्य वैभव—(गम्भीरता से) ऐसा! इस संसार के भोगे हुए सुख, गया हुआ अनित्य वैभव, दृश्य सृष्टि के सत्य दिखनेवाले, किन्तु यथार्थ में नाना प्रकार की सम्पत्ति को उपार्जन करने के बड़े आयोजन, उन आयोजनों से प्राप्त उस सम्पत्ति का अधिकार फिर उसीके उपभोग के लिए बने हुए चुम्बी प्रासाद और उन प्रासादों में नाना प्रका कीड़ाएँ करनेवाली अगनित रमणियाँ, इस गये हुए हुए सारे असार, अनित्य और असत्य वैभव की अभी भी तुम्हें सच्ची शान्ति उस शान्ति का सुख, प्राप्त नहीं करने देती, उद्विग्न बनाये हु क्यों?

सृष्टिनाथ—(विचार-पूर्वक) गुरुदेव, मैं बार क्या सोचता हूँ, कहूँ?

वैराग्य वैभव—अवश्य। गुरु के सामने चित्त सच्ची स्थिति न रखोगे तो उन्नति कैसे होगी?

सृष्टिनाथ—अगर संसार असार है, दृश्य अनित्य है, दिखनेवाली कोई चीज़ सत्य नहीं, शरीर को रखने से फ़ायदा?

वैराग्य वैभव—सार, नित्य और सत्य इसी मार्ग जाना जाता है।

सृष्टिनाथ—असार से सार, अनित्य से असत्य से सत्य कैसे जाना जा सकता है?

वैराग्य वैभव—सतत प्रयत्न के बाद अनुभव जायगा।

सृष्टिनाथ—इतने दिनों से प्रयत्न कर रहा हूँ, पर...पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य वैभव--(मुस्कराकर) पर अनुभव न हुआ, क्यों ?

सृष्टिनाथ---हां, गुरुदेव ।

वैराग्य वैभव—यह सट्टे का सौदा नहीं है । वत्स, जिसका अनुभव प्रति सप्ताह या प्रति पक्ष हो जाता है ।

सृष्टिनाथ—क्षमा करें तो एक बात पूछूँ ?

वैराग्य वैभव—निःसंकोच होकर ।

सृष्टिनाथ—आपको वह अनुभव हुआ है ?

वैराग्य वैभव—(गम्भीरता से) नहीं ।

सृष्टिनाथ—नहीं ?

वैराग्य वैभव—नहीं । उसके लिए अनेक जन्मों की आवश्यकता होती है ।

सृष्टिनाथ—तब एक बात कहूँ ?

वैराग्य वैभव—बिना किसी हिचकिचाहट के ।

सृष्टिनाथ—यह तो अन्धा अन्धे को रास्ता बता रहा है ।

वैराग्य वैभव-हां, पर एक अन्धे में खोजने की प्रबल इच्छा है ।

सृष्टिनाथ—प्रबल इच्छा से खोज हो सकती है ?

वैराग्य वैभव—इच्छा से सब कुछ हो सकता है, वत्स । इच्छा क्या नहीं कर सकती ? उस परब्रह्म ने इच्छा से ही इस ब्रह्मांड को उत्पन्न किया है, और इस ब्रह्मांड को क्या, न जाने इससे कितने कितने गुने बड़े अगणित ब्रह्मांडों को । हमारी पृथ्वी पर ही कितने प्रकार की सृष्टि है, और सारे विश्व में तो इसके आकार और प्रकार न जाने कितने होंगे । यह सारी उत्पत्ति, इसका विकास और इसका नाश उसकी इच्छा से ही होता है । वही इच्छा शक्ति छोटे, बहुत ही क्षुद्र रूप में इस जीव को मिली है । वह यदि इस शक्ति का ठीक उपयोग करे तो वह इससे क्या प्राप्त नहीं कर सकता ?

सृष्टिनाथ—और ठीक उपयोग के निर्णय के लिए बुद्धि की ज़रूरत नहीं है ?

वैराग्य वैभव—केवल एक सीमा तक ।

सृष्टिनाथ—सिर्फ़ एक हद तक ?

वैराग्य वैभव—हां, बुद्धि की दौड़ एक सीमा तक ही है ।

सृष्टिनाथ—और उसके बाद ?

वैराग्य वैभव—उसके पश्चात श्रद्धा का क्षेत्र है ।

सृष्टिनाथ—श्रद्धा ? अन्धविश्वास ?

वैराग्य वैभव—वह अन्ध विश्वास ही सत्य है ।

सृष्टिनाथ—जो अन्धा है वह सत्य कैसा ?

वैराग्य वैभव—तर्क का वहां स्थान नहीं ।

सृष्टिनाथ—क्षमा करें तो एक बात फिर कहूं ?

वैराग्य वैभव—अवश्य ।

सृष्टिनाथ—जहा तर्क को स्थान नहीं वह मिथ्या है ।

वैराग्य वैभव—यह विचार मिथ्या है, वत्स । मैंने अभी कहा न बुद्धि सीमित है । तर्क बुद्धि का कार्य है । जब बुद्धि ही सीमित है तो उसका तर्क भी सीमित है । उसका क्षेत्र और उसका अधिकार भी सीमाबद्ध । अब तक क्या बुद्धि ने सब कुछ जान पाया है ?

सृष्टिनाथ—नहीं, पर वह जानने की कोशिश कर रही है ।

वैराग्य वैभव—परन्तु यह प्रयत्न न कभी सफल हुआ और न होगा ।

सृष्टिनाथ—जो अब तक नहीं हुआ, वह भविष्य में भी न होगा ?

वैराग्य वैभव—हां, क्योंकि बुद्धि कोई नई वस्तु नहीं । वह सृष्टि के आदि से चली आई है । उसके द्वारा जो जाना जा सकता है, उसके जानने के बाद और जानने के लिए सदा शेष रहा है, आज भी है, और सदा रहेगा ।

वैराग्य वैभव—श्रद्धा सीमाबद्ध नहीं, उसमें तर्क नहीं, उसका क्षेत्र और अधिकार संकुचित होकर व्यापक है ।

सृष्टिनाथ—एक बात पूँछू, गुरुदेव ?

वैराग्य वैभव—निसंकोच ।

सृष्टिनाथ—संकुचित और व्यापक से आपका क्या मतलब है ?

वैराग्य वैभव—जितना दृश्य है वह सब संकुचित है । बुद्धि और उसके तर्क का वही क्षेत्र है । बुद्धि से चाहे उसका अधिकार प्राप्त हो जाय, पर वह सदा अनित्य ही रहेगा ।

सृष्टिनाथ—और बिना तर्क की श्रद्धा से अदृश्य पर अधिकार होगा ?

वैराग्य वैभव— अवश्य ।

सृष्टिनाथ—अर्थात् शून्य पर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य वैभव—ये बातें समझाई नहीं जा सकती, प्रयत्न से अनुभव की जा सकती हैं।

सृष्टिनाथ—गुरुदेव, क्षमा करें, अगर मैं यह कहूं कि जो समझाया नहीं जा सकता, और जो समझ में नहीं आता, उसकी प्राप्ति कैसे होगी? पहले कौन सी चीज़ चाहिए. यह संकल्प तो शुद्ध हो। संकल्प के बाद उस तरफ चलना हो सकता है और तभी संकल्पित चीज़ मिल सकती है।

वैराग्य वैभव—अनित्य शरीर, मन या बुद्धि नित्य की प्राप्ति का शुद्ध संकल्प नहीं कर सकते।

सृष्टिनाथ—तब एक बात कहूं?

वैराग्य वैभव—हां, हां।

सृष्टिनाथ—फिर तो अनित्य के द्वारा नित्य की प्राप्ति हो भी नहीं सकती।

वैराग्य वैभव—होती है, वत्स, इसीके द्वारा हो सकती है। यहां तो श्रद्धा...श्रद्धा की आवश्यकता है।

सृष्टिनाथ—क्षमा करें तो एक बात फिर पूछूँ?

वैराग्य वैभव—बिना किसी हिचकिचाह के वत्स।

सृष्टिनाथ—आपको हुई है, गुरुदेव?

वैराग्य वैभव—(गम्भीरता से) नहीं, परन्तु प्रयत्न चला है, और उस प्रयत्न में मेरी श्रद्धा है।

सृष्टिनाथ—यह भ्रम तो नहीं है?

वैराग्य वैभव—मनुष्य जन्म का सच्चा उद्देश्य, सार नित्य, सत्य को जानना भ्रम! मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न, भ्रम!

सृष्टिनाथ—मोक्ष क्या है, गुरुदेव?

वैराग्य वैभव—नित्य में समावेश।

सृष्टिनाथ—शून्य में मिल जाना?

वैराग्य वैभव—नहीं।

सृष्टिनाथ—तब?

वैराग्य वैभव—उसे समझाया नहीं जा सकता, प्रयत्न कर, सतत प्रयत्न कर, अनेक जन्मों तक प्रयत्न कर केवल अनुभव किया जा सकता है। और...और न जाने कितनों ने उस मोक्ष को प्राप्त किया है।

[सृष्टिनाथ बिना कुछ कहे सिर झुका लेता है। उसके मुख की मलिनता दूर नहीं होती। वैराग्य वैभव बिना कुछ कहे एकटक उसकी तरफ़ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

वैराग्य वैभव—(सृष्टिनाथ की ओर देखते हुए इतनी बुद्धि...इतनी बुद्धि के साथ यदि ऐसी...यदि ऐ ही श्रद्धा...श्रद्धा होती...

लघुयवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—ऋषिकेश के उत्तर में गङ्गा-तट

समय—सन्ध्या

[आकाश निर्मल है और चांदी का सूर्य दिन के परिश्रम का फल पाने के कारण सोने का हो पश्चिम में मानो अब आराम के लिए जा रहा है। पर हिमालय के शिखर दिखते हैं, जिन पर डूबते सूर्य की सुनहरी किरणों की सुनहरी झांई है। नद वेग से गङ्गा बह रही है। उसका बहता हुआ सफ़ेद भी इस सुनहरी रङ्ग से सोने का हो रहा है। उसके बीच में पड़ते हुए आवर्तों पर यह रङ्ग गोल गोल का हार बना रहा है, और यहां वहां जो बुदबुदे उठते वे सोने की अँगूठियों के सदृश बहते हुये चले जाते गङ्गा तट की बालू सोने का चूरा सा दिखाती है इसके किनारों पर के ऊँचे ऊँचे दरख़्तों की हिलती पत्तियां भी इस चमक से चमकती हुई हिल हिल मानो इस सोने की रज से स्पर्द्धा कर रही हैं। सृष्टि रेत में धारा के किनारे अकेला खड़ा हुआ है। उस मुख अत्यन्त म्लान और उद्विग्न है। वह चुपचाप है। कभी धारा को देखता, कभी चारों तरफ़ ज़मीन दृष्टि फेंकता और कभी आकाश का अवलोकन लगता है। ज़्यादातर उसकी नज़र गङ्गा के प्रवाह ही रहती है। कुछ देर बाद वह बोलने लगता है।]

सृष्टिनाथ—नाहक...नाहक के लिए एक खोया, मां।...एक वर्ष पहिले तेरी शरण ले लेता अब तक तो दूसरा जन्म भी हो जाता। (चारों तथा आकाश की ओर देखकर) इच्छा के अ सृष्टि के सारे सोने पर अधिकार के लिए ही वह होता, माता (कुछ रुककर) संसार असार है,... अनित्य और असत्य है,...पर...पर यह आश्चर्य देख, मां, कि सार की, नित्य और सत्य की प्राप्ति अनित्य और असत्य द्वारा होती है।...यह कैसे माता तब उस प्राप्ति के लिए यह शरीर माध्यम कैं

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कुछ रुककर) जो नहीं दिखता, जो नहीं समझा, या समझाया जा सकता, वही सार, वही नित्य, वही सत्य है ?...और...और शून्य भी नहीं ?...उसे बुद्धि और तर्क से न जाना जाकर श्रद्धा और विश्वास से जाना जा सकता है...यह सब क्या...क्या है, माँ ? (फिर कुछ रुककर) दृश्य संकुचित और अदृश्य व्यापक है ?... जानकर उसमें मिल जाना ही मोक्ष है ।...यह सब...यह सब क्या अनर्गल है ? (फिर कुछ रुककर और चारों तरफ तथा आकाश की ओर देखकर) जो दिखता है, सामने है, तर्क और बुद्धि से समझा जा सकता है, वह असत्य, अनित्य, और असार ?...प्राप्ति के लायक नहीं ? ...(फिर कुछ रुककर) जो अदृश्य है...मालूम नहीं कहां...तर्क और बुद्धि से समझा नहीं जा सकता, वह सत्य, नित्य और सार ?...उसे प्राप्त करने की कोशिश मनुष्य जीवन का सच्चा उद्देश्य मां ?...गुरुदेव को भी वह मिला नहीं, प्रयत्न चला है ।...(कुछ रुककर) अनेक जन्मों की कोशिश ज़रूरी है ।...(फिर कुछ रुककर) ना, ना...मां, ना । मुझे यह सब रुचिकर नहीं ।...मुझे एक साल में ज़रा भी शान्ति नहीं मिली । (चारों तरफ देखकर) या तो मुझे जो दिखता है, उस सबका अधिकार चाहिए,...और या...या मृत्यु, माँ ? (कुछ रुककर) पर वह अधिकार...अधिकार तो मिलता नहीं दिखता । तब...तब क्या आत्महत्या...आत्महत्या ही करूँ ? (कुछ रुककर) परन्तु...परन्तु...

[सृष्टिनाथ सिर झुका चुपचाप गङ्गा की धारा की ओर देखता है । नेपथ्य में दूर पर अत्यन्त मधुर और अत्यधिक कोमल स्वर में गाये हुए एक गान की ध्वनि सुन पड़ती है । सृष्टिनाथ आश्चर्य से सिर उठा जिस तरफ से यह आवाज आ रही है उस ओर देखता है । धीरे धीरे गान-ध्वनि नज़दीक आने लगती है । सृष्टिनाथ ध्यानपूर्वक गान को सुनने लगता है ।]

गान—आओ मेरे सुन्दर वन में ।
मैं कालिका हूं खिल जाऊँगी,
अभी तुम्हारे मृदु गुञ्जन में ।
उषा लिये है कितनी ज्वाला,
भू पर है ओसों की माला,
इन दोनों की छाया है,
मेरे नव विकसित कोमल तन में । आओ० ।
रूप गन्ध का पीकर प्याला,
भूल रही है तितली बाला,
मैं तो लीन हो रही हूँ ।
अमलीन तुम्हारे अभिनन्दन है,
आओ, मेरे सुन्दर बन में ।

[गान गाते हुए फूलों के गुच्छों से खेलते खेलते प्रेमपूर्णा का प्रवेश । प्रेमपूर्णा की उम्र १७, १८ वर्ष की होगी लेकिन उसके मुख पर बालिका के सदृश भोलापन हर्ष तथा उल्लास और उसकी इस पुष्प-क्रीड़ा में वैसी ही चपलता है । वह ऊँची, भरे हुए शरीर की अत्यन्त सुन्दर युवती है । रंग बर्फ़ के सदृश श्वेत और निर्मल है । सुनहरी रंग की रेशमी साड़ी, वैसे ही सलूका और मोती के हलके हलके आभूषणों के कारण प्राकृतिक दृश्य के सौंदर्य में उसका सौन्दर्य मिल-सा गया है । उसकी आवाज़ और चाल में माधुर्य और कोमलता के साथ ही एक अजीब ढंग का अल्हड़पन भी है । सृष्टिनाथ एक विचित्र ढङ्ग से उसकी तरफ देखता है । वह अधिकाधिक नज़दीक आती जाती है । उसकी दृष्टि भी सृष्टिनाथ पर पड़ती है । वह गान बन्दकर उसकी ओर देखने लगती है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

सृष्टिनाथ—(प्रेमपूर्णा की ओर कुछ क़दम और बढ़ाकर) तुम...तुम कौन हो, देवी ?

प्रेमपूर्णा—(अपने हाथ से अपने हृदय को थपथपाते हुये) मैं...मैं ?...(मुस्कराकर अल्हड़पन से) मैं प्रेमपूर्णा ।

सृष्टिनाथ—प्रेमपूर्णा !...नाम तो सचमुच बड़ा सुन्दर है ।

प्रेमपूर्णा—(आगे बढ़कर सृष्टिनाथ को देखते हुए) सुन्दर है न ?...हां, जो सुनता है, वही यह कहता है, साधु । मेरी दादी ने मेरा नाम बहुत सोच समझकर रखा है न ?

सृष्टिनाथ—(विचारकर) तुम्हारी दादी ने ?... तुम्हारी दादी ने तुम्हारा यह नाम रखा है ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर फूलों के गुच्छों को घुमाते हुये) और किसने रखा है ?

सृष्टिनाथ—तुम्हारी दादी है ?

प्रेमपूर्णा—हां, हां क्यों नहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिनाथ—(विचार पूर्वक) अर्थात् ?

प्रेमपूर्णा—(उसी तरह फिर खिल खिलाकर) अर्थात् क्या मेरी दादी है।

सृष्टिनाथ—(विचार-पूर्वक) और तुम्हारे कौन है ?

प्रेमपूर्णा—और...और ?...(फूलों के गुच्छों को दिखाते हुए) और मेरे ये हैं ? (फूलों की कलियों को दिखाकर) ये कलियां मेरी हैं। (फूलों की पंखड़िओं को दिखाकर) ये पंखड़ियां मेरी हैं। उनके पराग को अपनी साड़ी पर झड़ाते हुये) यह पराग मेरा है। (कुछ रुक-कर एकदम उछलकर गङ्गा के निकट जा) यह धारा मेरी है। (उसके आवर्तों की ओर इशारा कर) वे आवर्त मेरे हैं। (बुदबुदों को संकेत कर) वे बुदबुदे मेरे हैं। (गङ्गा की रेणुका को हाथ में उठा पुनः उसे ज़मीन पर डालते हुये) यह बालुका मेरी है। (किनारे के दरख़्तों की ओर देखकर) वे वृक्ष मेरे हैं, उनकी टहनियां मेरी हैं, उनके पत्ते मेरे हैं।

(आकाश की ओर देख हाथ आगे कर उँगली से सूर्य की किरणों को दिखाते हुए) वे किरणें मेरी हैं। (एकाएक घूमकर नृत्य के सदृश एक चक्कर लगा सृष्टिनाथ की ओर देख) सारी सृष्टि मेरी है, साधु।

सृष्टिनाथ—(जो अब तक मंत्र-मुग्ध की भांति आश्चर्य से मुख खोले हुए प्रेमपूर्णा की ओर देख रहा था) तुम बड़ी अद्भुत हो, युवती !

प्रेमपूर्णा (खिल खिलाकर) ऐसा ! सब यही कहते हैं, साधु, मेरी दादी भी यही कहती है।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर, विचारपूर्वक) तुम्हारी दादी कहां रहती है ?

प्रेमपूर्णा—यहीं, यहीं साधु, बहुत निकट, गङ्गा कुटी में।

सृष्टिनाथ—गङ्गा कुटी ! गङ्गा कुटी क्या है ?

प्रेमपूर्णा—(खिल खिलाकर फूल के गुच्छों को हिलाते हुये) गङ्गा कुटी ! गङ्गा कुटी...गङ्गा कुटी है।

सृष्टिनाथ—(विचार-पूर्वक) तुम्हारी दादी क्या करती है ?

प्रेमपूर्णा—गङ्गा सेवन।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) ओह तो वे [illegible] में गङ्गा-कुटी में रहती हैं। (कुछ रुककर) तु[illegible] सिवा उनके और कौन है ?

प्रेमपूर्णा (खिल खिलाकर)—अभी जो बताया वह सब फिर बताऊँ ? जो मेरा है वह उनका है, उनका वह मेरा है।

सृष्टिनाथ—नहीं नहीं, उनके पुत्र, पुत्र-वधू, तु[illegible] माता, पिता !

प्रेमपूर्णा—वे ? वे सब बहुत समय हुआ, वे [illegible] थीं कि महायात्रा कर गये। मुझे उनका स्मरण [illegible] है, साधु। (कुछ रुककर) और...और, साधु, मेरी [illegible] अब मुझे किसीको सौंपकर स्वयं भी महायात्रा करने [illegible] विचार कर रही हैं। कहती हैं वह उस यात्रा को [illegible] जिससे शरीर तो यहां रह जाता है पर यात्री ([illegible] ओर देखकर) इस सारी सृष्टि में व्याप्त हो जाता [illegible]

सृष्टिनाथ—(कुछ देर ठहरकर विचार करते [illegible] तुम और तुम्हारी दादी बड़ी विचित्र दिखती [illegible] (कुछ रुककर) मुझे तुम्हारे दादी के दर्शन [illegible] सकते हैं।

प्रेमपूर्णा—हां, हां, वे तो स्वयं साधुओं के [illegible] करती हैं। और फिर (सृष्टिनाथ की ओर देखते [illegible] तुम...तुम तो बड़े सुन्दर साधु हो।...कदाचित... [illegible] इतने सुन्दर साधु के हमें कभी दर्शन नहीं हुए। ([illegible] रुककर सृष्टिनाथ का हाथ पकड़) चलो, मैं तुम्हें [illegible] कुटी ले चलती हूं।

[सृष्टिनाथ प्रेमपूर्णा के स्पर्श से कांप-सा [illegible] है, पर प्रेमपूर्णा अपने सहज भाव से उसका हाथ [illegible] पकड़े आगे बढ़ती है। सूर्य अस्त हो चुका है। [illegible] होता जाता है, परन्तु पश्चिम में अभी भी उसका [illegible] हरा प्रकाश विद्यमान है। कुछ पक्षी एकाएक चहक [illegible] झींगुर झंकार उठते हैं।]

यवनिका

(अ[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थविर तिष्य की कथा

(मूल पाली से—अनुवादक, श्री रामधारी प्रसाद 'रमन' कुशीनगर)

अक्कोच्छिमं ति—इस धर्म-देशना को शास्ता ने तवन में विहार करते, तिष्य स्थविर के प्रति कहा।

सुना—वह आयुष्मान् तिष्य स्थविर, भगवान् बुद्ध) के चचेरे भाई थे। (जो) वृद्धावस्था में प्रव्रजित , बुद्ध द्वारा उत्पन्न लाभ-सत्कार को भोगते, स्थूल रीर हो, बार-बार धुने (नरम एवं मुलायम) चीवरों को न, विहार के मध्य, सभा-गृह में बैठते थे। तथागत के शनार्थ आए, आगन्तुक भिक्षु उन्हें देख,—"एक स्थविर होंगे" जान, उनके पास जा, वत्तं (=निज-र्त्तव्य) को पूछते थे (जब) पैर दबाने, पखारने आदि कहते, (तब) वे चुप हो जाते। (इस प्रकार होते रहने , एक दिन) एक तरुण भिक्षु ने उनसे "आपको तने वर्षों वास हुए ?" पूछा।

"वर्ष नहीं है। मैं वृद्धावस्था में प्रव्रजित हुआ ।"

"आवुस ! असभ्य महल्लक (=वृद्ध) !! तू अपना र्ष-प्रमाण नहीं जानता। इतने महास्थविरों को देख, पना सामिच्य कर्म (=आगत-स्वागत) भी नहीं करता। और) वत्तं पूछने पर चुप हो जाता। तुम्हें लज्जा भी हीं आती।" कह, आश्चर्य किया। उसने क्षत्रिय होने के भिमान में चूर—"तुम किसके पास आए हो ?" पूछा।

"शास्ता के पास।"

"तुम मुझे क्या जानते हो ? मैं तुम लोगों का जड़ नाश करूँगा।" कह, रोते, दुखी-दुर्मन हो, शास्ता के स आया। तब उससे शास्ता ने—"तिष्य ! तुम किस कारण, दुखी-दुर्मन (तथा) अश्रु-मुख हो, रोते आए ी ?" पूछा। वे भिक्षु—"यह जाकर कुछ उलट-पलट करेगा" सोच, उसके ही साथ जा, शास्ता को वन्दना र, एक ओर बैठ गए। वह शास्ता के पूछने पर भन्ते। ये भिक्षु मुझे क्रोधते (=बुरा-भला कहते) ।" कहा।

"तुम कहाँ बैठे थे"

"भन्ते ! विहार के मध्य, सभा-गृह में।"

"तूने इन भिक्षुओं को आते देखा ?"

"भन्ते ! देखा।"

"क्या, तूने उठकर उनकी अगवानी की ?"

'भन्ते ! नहीं किया।"

"क्या, परिष्कार (=भिक्षुओं के सामान) को ग्रहण करने के लिए पूछा ?"

"भन्ते ! नहीं पूछा।"

"वत्तं या पानी आदि के लिए पूछा ?"

"भन्ते ! उनसे नहीं पूछा।"

"आसन से उठ, अभिवादन (तथा, पैर दबाने के कर्म को किया।"

"भन्ते ! नहीं किया।"

"वृद्ध तिष्य ! भिक्षुओं के ये सब व्यौहारिक कर्त्तव्य हैं। तू वत्तं (तथा) व्यौहारिक कर्म को न कर, विहार के मध्य बैठा रहा। तेरा ही दोष है। अतएव इन भिक्षुओं से क्षमा-याचना करो।"

"ये मुझे क्रोध हैं। भन्ते ! मैं क्षमा-याचना न करूँगा।"

"तिष्य ! ऐसा मत करो। तेरा ही दोष है। क्षमा-याचना करो।"

"भन्ते ! क्षमा-याचना न करूँगा।"

तब "भन्ते ! यह हठी है" उन भिक्षुओं ने कहा।

तब शास्ता ने "भिक्षुओ ! यह अभी ही हठी नहीं है। पहले भी हठी रहा है।" कहा।

"भन्ते ! हम लोगों को इसके इसी जन्म के हठी होने का हाल ज्ञात है। अतीत में यह कैसा था ?"

"ऐसा है तो, भिक्षुओ ! सुनो।" कह, अतीत (-कथा) को कहा।

पूर्वकाल में, बनारस में बनारस के राजा के राज्य करते समय, देविल नाम के तपस्वी ने आठ मास, हिमालय पर बास कर, नमक-खटाई सेवन करने से लिए, चार मास तक नगर में रहने के लिए, हिमालय से आ, नगर से द्वार पर लड़कों को देख, पूछा "इस नगर में आए, साधु-सन्यासी कहां वास करते हैं ?"

"भन्ते ! कुम्हार की धर्मशाला में।" तपस्वी ने कुम्हार की धर्मशाला को जा, द्वार पर रुक, "यदि आपको बोझ न हो, तो मैं आपकी धर्मशाला में एक रात रहूं।" कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुम्हार—"मुझे रात को धर्मशाले से कोई काम नहीं है। भन्ते! धर्मशाला भी बहुत बड़ी है। जैसे आपको सुख मिले, वैसे वास करें।" कह, धर्मशाले को सौंप दिया। तपस्वी के भीतर जा, बैठते ही, (एक) दूसरा भी नारद नाम के तपस्वी ने हिमालय से आ, कुम्हार से एक रात रहने के लिए याचना की। कुम्हार ने—"पहले आए, तपस्वी के साथ, एकत्र रहने की इच्छा हो या न हो" सोच, अपने को (उस ज़िम्मेवारी से) छोड़ाने के विचार से—"भन्ते! यदि आप पहले आए (तपस्वी) से याचना करें, (और तब) उनकी इच्छानुसार वास करें, (तो अच्छा हो)।" कहा। उसने उसके पास जा,—"आचार्य! यदि आपको बोझ न हो, तो मैं एक रात (यहां) रहूं।" याचना की।

"धर्मशाला बड़ी है, (तुम भी) प्रवेश कर, एक ओर रह जाओ।"

वह तपस्वी, प्रवेश कर, पहले देविल के गमनागमन को देख दूसरी ओर, एक योग्य स्थान में बैठा। दोनों ने (आपस में) स्मरणीय कथा-वार्ता को कहा। सोने के समय, नारद देविल के सोने के स्थान तथा द्वार को भली-भाँति देखकर सोया। वह (देविल, नारद के) सो जाने पर अपने सोने के स्थान में न सो, जा, द्वार के बीच, तिरछा सो रहा। नारद ने रात्रि को निकलते हुए, उसकी जटाओं को कुचल दिया।

"यह कौन है?"

"आचार्य! मैं हूं।"

"छली-जटाधारी! आरण्य से आ, मेरी जटाओं को कुचल डाला।"

"आचार्य! मैं आपके यहां, सोने को नहीं जानता था। क्षमा कीजिए।" कह, उसके क्रोधते ही बाहर चला गया। (इधर इस देविल ने) "दूसरी बार भी उसके प्रवेश करते हुए, मैं कुचलाऊँगा।" सोच, उलटकर पैर की जगह शिर (और शिर की जगह पैर) कर, सो रहा। नारद ने भी, प्रवेश करते—"पहले मैंने अपराध किया। इसलिए अब इनके पैर की ओर से प्रवेश करूँगा।" विचार, आते हुए, गर्दन को कुचल डाला।

"यह कौन है?"

"आचार्य! मैं हूं।"

"कपटी-जटाधारी! (तूने) पहले मेरी जटा कुचल कर, अब गर्दन को कुचला है। मैं तुझे अ दूंगा।"

"आचार्य, मेरा दोष नहीं है। मैं आपके इस सोने को न जानता था। 'पहले भी मुझसे अपराध इसलिए अब पैर से स्पर्श कर प्रवेश करूँगा' सो प्रवेश किया। क्षमा कीजिए।"

"कपटी-जटाधारी! मैं तुझे अभिशाप दूंगा।"

"आचार्य! मत ऐसा कीजिए।"

वह उसके वचन को न मान—

"सहस्र रश्मिधारी-शत-तेज, तम विनाशक।
प्रातः निकलते रवि, हो सिर सप्तधा तुम्हारा॥"

अभिशाप दे ही डाला। नारद ने "आचार्य दोष नहीं है। मेरे बोलते ही आपने अभिशाप दि (अच्छा,) जिसका दोष है, उसका सिर फटे। मैं हूं" कह,

"सहस्र रश्मिधारी-शत-तेज, तम-विनाशक।
प्रातः निकलते रवि, हो सिर सप्तधा तुम्हारा॥

अभिशाप दिया।

वे महानुभाव (=नारद) भूत के चालीस भविष्य के चालीस, इन अस्सी कल्पों के जानकार इसलिए—"यह शाप किसके ऊपर पतित होगा?" वि "आचार्य के ऊपर" जान, उन पर कृपा कर, ऋद्धि-बल से ऊषा काल को रोक रखा। नागरिक के प्रकट न होने से राज-द्वार को जा, "देव! राज्य करते ऊषा न होगी? ऊषा न होगी?" क लगे। राजा ने अपने कार्य-क्रम आदि को देखते कुछ भी अयोग्य (कर्म) न देख, "क्या कारण विचार, "प्रव्रजितों के विवाद से यह हुआ है।" में शङ्का कर, "इस नगर में प्रव्रजित (=साधु) पूछा।

"देव! कल शाम से, कुम्हार की धर्मशा आए हुए हैं।"

उसी समय राजा ने मशाल (=उल्का) को कर, वहां जा, नारद को वन्दना कर, एक ओर कर

"होने न पाया कौन सा, वह कर्म भारत देश
नारद! बताओ, क्यों हुआ, है जग तमोमय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद ने सम्पूर्ण समाचार को कह, इस कारण से मुझे इनसे अभिशापित होना पड़ा है। तब मैंने "मेरा दोष नहीं है। जिसका दोष है, इसके ऊपर आप पतित हो।" कह, अभिशाप दिया है। अभिशाप दे, किसके ऊपर पतित होगा ?" विचार, "सूर्य के उदय होते समय, आचार्य का सिर सात-टुकड़ों में फट जायगा।" देख, इनके प्रति अनुकम्पा कर, मैं अरुणोदय होने नहीं देता हूं।"

"भन्ते ! कैसे इनका अनिष्ट न होगा ?"

"यदि, ये मुझसे क्षमा-याचना कर लें।"

"ऐसा है तो, क्षमा मांगिए।" (देविल से) कहा।

"इसने मेरी जटाओं और ग्रीवा को कुचला है। यह कपटी जटाधारी है। मैं क्षमा न माँगूंगा।"

"भन्ते ! क्षमा मांगिए। ऐसा मत कीजिए।"

"क्षमा न मांगूँगा।"

"आपका सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा।"

"फट जाय। मैं क्षमा नहीं माँगूंगा।"

तब राजा ने—"तुम अपनी रुचि के मुताबिक क्षमा-याचना न करोगे।" कह, उसके हाथ, पैर, पेट, गर्दन को पकड़, नारद के पैरों पर झुका दिया। नारद ने भी "उठिए आचार्य ! मैं आपको क्षमा किया।" कह, "महाराज इन्होंने मन से क्षमा नहीं मांगी है। नगर से कुछ दूर, एक तालाब है। वहां इनके सिर पर मिट्टी का पिण्ड करके (=लेपन करके) गर्दन तक, पानी में डुबा दीजिए।" कहा। राजा ने वैसा किया। नारद ने देविल को सम्बोधित कर, "आचार्य ! मेरे ऋद्धि-बल से छोड़े, सूर्य के सन्पात के उठते ही आप पानी में डूब, दूसरे स्थान को उतिरा (=उत्तरित्वा), चले जायेगा।" कह, (समझा दिया) इसके बाद, सूर्य की रश्मियों के फूटते ही वह मिट्टी का पिण्ड सात टुकड़े हो गया। यह (देविल) पानी में डूब दूसरे स्थान को चला गया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना का मेल बैठा,—कहा—"भिक्षुओ ! तब राजा आनन्द था। देविल, तिष्य, (तथा) नारद तो मैं ही। यह इसी प्रकार हठी रहा है" (=कह) तिष्य स्थाविर को सम्बोधित कर,—"तिष्य ! भिक्षुओं को मुझसे अमुक ने क्रोध किया। अमुक ने मुझे मारा। अमुक ने जीता। अमुक ने मेरे भण्डार को लूट लिया (=ऐसा, सोचने से वैर कभी शान्त नहीं होता। और इस प्रकार मन में न बांधने से शान्त हो जाता है।" कह, इस गाथा को प्रभासित किया—

"है वैर होता शान्त ना, यों बाँधता मन में जो नित।
'गाली दिया' 'लूटा' 'हराया' और 'मारा' है (स्वचित)॥
है वैर होता शान्त झट, यों बांधता मन में जो ना।
'गाली दिया' 'लूटा' 'हराया' और 'मारा' (अनमना)॥"

× × ×

धर्म-देशना के समाप्त होने के समय, सौ सहस्र भिक्षु श्रोतापत्ति फल आदि को प्राप्त हुए। धर्म-देशना बहुत से लोगों की सार्थिका हुई। वह हठी भी हठ-रहित हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरणीय पत्र

रतनलाल बन्सल

[१]

अभी कठिनाई से संध्या के चार ही बजे थे, किन्तु सैल्जबर्ग (आस्ट्रिया) नगर की सड़कें कुहरे के अन्धकार से ढक गई थीं। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, और नगर के एक प्रमुख चौराहे का पुलिसमैन एक भारी ओवरकोट पहिने सर्दी से कांपता हुआ अपनी ड्यूटी के समय को अधीरता के साथ पूरा कर रहा था। भारी जूतों में उसके पैर सर्दी के कारण जम से गये थे। किन्तु फिर भी वह खड़ा था, कर्तव्य का भार और अनुशासन की शिक्षा उसे वहां से हटने न देती थी।

कलाई में बँधी रिस्टवाच को अब उसने शायद पचीसवीं बार देखने के लिये अपने हाथ को आखों के पास खींचा ही था, कि एक टैक्सी उसके पास आकर रुक गई। एक झटके साथ वह तत्काल ही सावधान की मुद्रा में खड़ा होगया।

कुहरे के अन्धकार के बीच टैक्सी के भीतर जल रही रोशनी एक धुंधले दीपक के समान झलमला रही थी। उसीके सहारे पुलिसमैन ने देखा, कि टैक्सी मेंकेवलमात्र एक युवती एक मोटे कम्बल से अपने समस्त शरीर को लपेटे सिकड़ी हुई सी बैठी है। युवती सुन्दर है, किन्तु विषाद की छाया उसकी मुख-श्री को मलिन कर रही है।

पुलिसमैन ने अपना हैट उठाकर अभिवादन करते हुये कहा, "नमस्कार श्रीमती जी! मेरे योग्य कोई सेवा।" उत्तर में महिला ने कुछ कांपती सी हुई आवाज़ में कहा "नमस्कार। मैं मि० ज्विग का मकान खोज रही हूँ, मुझे बताया गया है कि वह कहीं इसी सड़क पर है।"

"कृपया आप मि० ज्विग का पूरा नाम बताइये। सम्भव है कि मैं आपकी सहायता कर सकूँ।" पुलिसमैन ने अपने ओवरकोट की भीतरी जेब से एक नक्शा निकालते हुये कहा।

"ओह, आप ज्विग को नहीं जानते। मेरा मतलब मि० स्टीफन ज्विग से है। वही, जिन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं।"

"ठीक है, ठीक है, मैं समझ गया। देखो मि० ड्राइवर! ऐसे ही सड़क सड़क शहर से बाहर जाने पर दाहिनी ओर की पहाड़ी पर जो सबसे ऊँची कोठी दिखाई दे, आप समझ लें, कि यही मि० ज्विग की कोठी है। अच्छा, मेरे योग्य कोई अन्य सेवा?" पुलिसमैन ने नम्रता के साथ कहा।

"जी धन्यवाद।" महिला ने कृतज्ञता भरे स्वर में उत्तर दिया, और मोटर आगे बढ़ गई।

"स्टीफ़न ज्विग, स्टीफन ज्विग।" पुलिसमैन ने अपने आप ही बड़बड़ाते हुये कहा, "भाई यह ज्विग भी ख़ूब आदमी है। न जाने इसकी कलम में कौन सी बिजली भरी है। इतना बड़ा धनी होकर भी दरिद्रों और पीड़ितों की भावनाओं से उसका ऐसा गहरा परिचय है कि दातों तले उंगली दबानी पड़ती है।" सोचते सोचते पुलिसमैन का मन अपने घर की मेज़ पर रक्खी हुई स्टीफन ज्विग की उस पुस्तक में भटक गया, जो उसने अभी तीन दिन पहिले अपने मक्खन के बजट में कटौती करके खरीदी थी। समय बिताने के लिये उसने मि० ज्विग की एक कविता को गुनगुनाना ग्रारम्भ कर दिया।

[२]

मि० ज्विग अपनी लिखने की मेज पर बैठे हुये थे। मेज़ के एक कोने पर चाय की ट्रे रक्खी हुई थी। एक प्याले से उन्होंने दो एक घूँट ले भी लिये थे, किन्तु इसके पश्चात् शायद उन्हें चाय का स्मरण ही नहीं रहा था। उनकी भावनायें इस समय जाग्रत थीं, और लेखनी उनका कागज़ पर चित्रण करके उन्हें कविता का रूप दे रही थी। इसी समय एक नौकर ने उनकी मेज़ के पास आकर धीरे से कहा "आपसे एक महिला मिलना चाहती हैं। हुजूर! वे कहीं दूर से आ रही हैं, और अभी आपसे मिलना चाहती हैं।" यह कहकर उसने एक सादा विजटिंग काई मि० ज्विग के सम्मुख रख दिया। ज्विग ने दो-तीन बार उस विजिटिंग कार्ड पर लिखे नाम को पढ़ा। वह नाम उन्हें सर्वथा ही अपरिचित पड़ा। मि० ज्विग के लिये यह कोई नया अनुभव न था। बहुधा उनके प्रशंसकों के दल देश विदेश से उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता और श्रद्धा प्रकट करने आया करते थे। मि० ज्विग को भी इससे थोड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती थी, फिर भी इसमें उनका इतना समय नष्ट हो जाता था, कि वे इसे अधिक पसन्द नहीं करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनकी इस कृपा के उत्तर में धन्यवाद के कुछ मीठे शब्द कहकर उन्हें तत्काल ही बिदा कर देते थे।

कभी कभी किसी प्रकाशक का कोई अति उत्साहित ऐजेन्ट भी उनकी शिष्टता और नम्रता से लाभ उठाकर उनके कुछ अमूल्य क्षणों को नष्ट कर जाता था। ख़ुशामद दरामद से लेकर लोभ लालच तक के ओछे उपायों को भी प्रयोग में लाकर जब वह मि० ज्विग की किसी नई पुरानी रचना के प्रकाशन अधिकार पाने के यत्न में सर्वथा असफल हो जाता था, तो भविष्य में अपनी कम्पनी के प्रति ध्यान रखने की प्रार्थना करके ही उसे सन्तोष मानना पड़ता था। मि० ज्विग ऐसे व्यक्तियों के प्रति सदैव भयभीत से ही रहते थे, किन्तु इनसे भी भयानक एक और प्रकार के व्यक्ति थे, जिनसे बहुधा मि० ज्विग को सुलझना पड़ता था।

यह लोग बड़ी बड़ी शानदार मोटरों में आते थे, और बेशकीमत वस्त्रों से उनके शरीर सजे होते थे। इनमें अधिकांशतः सार्वजनिक संस्थाओं के उच्च पदाधिकारी होते थे, जिनकी बगल में अपनी संस्था के पिछले वर्षों के कार्य-विवरण से भरी रिपोर्टें दबी हुई होती थीं। वे या तो मि० ज्विग की सम्मति प्राप्त करने के यत्न में आते थे, या वे उन्हें अपनी संस्था के किसी पद पर देखना चाहते थे, या किसी विशेष उत्सव में सम्मिलित होने अथवा उसके सभापतित्व करने की स्वीकृति प्राप्त करने का उद्देश्य उन्हें यहाँ तक खींच लाता था। ये लोग समाज और संसार के हित की लम्बी चौड़ी बातें करते थे। और इनकी ज़बान बहुत साफ़ और तेज़ चलती थी। बड़े बड़े राज्य अधिकारियों और ख्यातिप्राप्त नेताओं के प्रमाण-पत्र इनके साथ होते थे, जिनका ढेर ये मि० ज्विग के सामने लगा देते थे। किन्तु उन्हें फिर भी यह देखकर भारी निराशा होती थी कि मि० ज्विग बिना किसी उत्तेजना के उनकी प्रार्थना अस्वीकार ही कर रहे हैं। मि० ज्विग की कोठी से बाहर आते समय उनके चेहरे पर खिन्नता के साथ साथ कुछ क्रोध का-सा भाव भी कभी कभी देखा जाता था।

पर एक और प्रकार के लोग थे, जिनका स्वागत इस घर की एक एक ईंट कुछ अपूर्व उत्साह से करती थी। उनके नेत्रों में विषाद और पीड़ा की छाया दिखाई देती थी, और वे कोठी के ज़ीनों में बहुत सहमते हुये से चढ़ते थे। किन्तु कोठी से निकलते समय उनका मुख उतना चिन्तित दिखाई नहीं देता था। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण था, कि वे जिस आशा को लेकर यहां आये थे, वह बहुत अंशों में पूर्ण ही हुई है। कोठी के मालिक से उन्हें प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार प्राप्त हुआ है, और उसने अपने स्फूर्तिदायक संदेश को इनके मन में भरने का यत्न किया है। इन लोगों में देश-विदेशों के राजनैतिक भगोड़े, शासन और समाज से सताये हुये अभागे व्यक्ति, निर्धन साहित्यक और कलाकार होते थे। मि० ज्विग इनसे मिलने में अपने को गौरवशाली अनुभव करते थे। इनकी ही अनुभूतियों के चित्रण में मि० ज्विग की लेखनी अपने को धन्य मानती थी।

कभी कोई ऐसा व्यक्ति द्वार से ही न लौट जाय, इस भय से मि० ज्विग प्रायः प्रत्येक व्यक्ति से मिलने का यत्न करते थे। फिर भी इस समय जब कि वे एक अत्यन्त ही सुन्दर कविता के सृजन में मग्न थे, उन्हें इस महिला का आना कुछ अरुचिकर-सा प्रतीत हुआ। दो एक क्षण सोचकर उन्होंने नौकर से कहा "उन्हें किसी और समय आने को कह दो न भाई, इस समय तो मैं एक बहुत ही आवश्यक कार्य में व्यस्त हूं।"

"मैंने तो स्वयं ही उनसे कहा था सरकार। लेकिन वे तो अभी मिलने का हठ कर रही हैं। वे इतनी घबड़ाई हुई हैं कि उनसे बात करना भी कठिन है।" नौकर ने विवशता दिखाते हुये कहा।

"तो उन्हें मिलने के कमरे में ले आओ भाई। मैं भी वहीं अभी आता हूं।" मि० ज्विग ने कहा, और अपने फाउन्टेनपैन को बन्द करके मेज़ पर रख दिया।

मिलने के कमरे में पहुँचकर मि० ज्विग ने देखा, कि आगन्तुक महिला सचमुच ही बहुत घबड़ाई सी प्रतीत होती हैं। उनके चेहरे पर छाई हुई थकावट और परेशानी को देखते ही उनके मन में करुणा उत्पन्न होने लगी।

परस्पर अभिवादन के पश्चात् ही आगन्तुक महिला ने आर्द्र कंठ से अपनी करुण कहानी कह सुनाई। वे इस समय इटली से आ रही थीं। उनके पति को इटली की फैसिस्ट सरकार ने एक गुरुतर राजनैतिक अपराध का आरोप लगाकर आजीवन कारावास की सज़ा दे दी है, और एक ऐसी जेल में भेज दिया है, जहाँ कि कुछ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास में उनका मर जाना बिल्कुल निश्चित है। अब वे केवल इतना ही चाहती हैं कि उनके पति को किसी द्वीप में निर्वासित कर दिया जाय, जहां कि वह सपरिवार रह सकें। इसके लिये वे इटली की सरकार की सेवा में एक आवेदन पत्र भेज रही हैं, जिस पर समस्त संसार के सुप्रसिद्ध साहित्यकों के हस्ताक्षर होंगे। उक्त आवेदन पत्र पर मि० ज्विग के हस्ताक्षर करने के लिये ही वे इस समय यहां आई हैं, यही उनकी कहानी का सारांश था।

अत्यन्त ही सहानुभूति और धैर्य्य से महिला की समस्त कहानी को सुनने के पश्चात् मि० ज्विग ने कहा, "ओह, मैं तो आपके सम्बन्ध में अपने एक पैरिस स्थित मित्र का पत्र भी पा चुका हूं। आपके पति एक डाक्टर हैं न, और वे शायद इटली के उन ६ महान साहसी व्यक्तियों में एक हैं, जो उस शोसलिस्ट लीडर का शव रोम की सड़कों पर लेकर निकले थे, जिसको फैसिस्टों ने गोली से मार दिया था।"

"जी हाँ, वास्तव में तो मेरे पति को केवल इसी कारण इस विपत्ति में फँसाया गया है। सिन्योर मुसोलिनी की हत्या करने का षड़यंत्र रचने का आरोप तो केवल मात्र एक बहाना ही है। इटली की सरकार जानती थी, कि उस शव-यात्रा में सम्मलित होने का आरोप लगाने से व्यर्थ ही उस शर्मनाक हत्याकांड की याद ताज़ा होगी, अतः उन पर यह झूठा इलज़ाम लगा दिया गया। मैं सच कहती हूं मि० ज्विग! कि इस प्रकार के किसी षड़यंत्र में मेरे पति का कोई हाथ नहीं था।" महिला ने कुछ ऐसे स्वर में कहा, जैसे कि वह अदालत में सफाई दे रही हो। मि० ज्विग यह सुनकर और भी व्यथित हो उठे। वे कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। उसके पश्चात् धीमे स्वर में बोले, "मैं आपकी बात पर विश्वास करता हूँ श्रीमती जी! लेकिन मेरे विश्वास करने से लाभ भी क्या होगा? आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर करने में मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन मैं जानता हूँ कि इससे आपको कोई लाभ नहीं होगा।" कहते कहते उनकी आखें छलछला आईं। कुछ ही क्षणों में अपने को पुनः सम्हाल कर उन्होने कहा—

"एक बात आप निश्चित मानिये श्रीमती जी! आज जिनके हाथ में राजनैतिक सत्ता है, वे ऊपर ऊपर से हम साहित्यिकों की कितनी ही प्रशसा करें, हमें सम्मान दें, और श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करें, किन्तु अपने वे हमारा रंचमात्र भी हस्तक्षेप सहन नहीं कर आज वे जिन साहित्यकों को संसार का गौरव उन्हें ही कल अपने मार्ग में थोड़ा सा भी बाधक कर गोली मार सकते हैं, और उसके पश्चात् मृत्यु पर आंसू भी बहा सकते हैं। सचमुच ही निकट हमारा इतना ही मूल्य है।

"इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है, कि राष्ट्र का अपना एक विशेष स्वाभिमान होता है, संकीर्णता उसे किसी दूसरे राष्ट्र से आग्रह, याचना, प्रार्थना तक के प्रति असहिष्णु बना देती है। अनुसार इटली की सरकार यह कभी बर्दाश्त सकेगी, कि हम ग़ैर इटेलियन लोग इटली की सरकार किसी अपराधी के लिये सिफारिश करें। इस पत्र से तो आपकी हानि होने की ही सम्भावना है।"

मि० ज्विग की बात समाप्त होते होते महिला आंखों से आंसू गिरने लगे। मि० ज्विग का अक्षर उन्हें सत्य प्रतीत हो रहा था, और इसी उनकी आशा का यान भी निराशा के समुद्र में डूब रहा था। उनके नेत्रों में एक मूर्च्छना सी दिखाई लगी। मि० ज्विग को आशंका हुई कि यह बेचारी महिला निराशा के आघात से कहीं अपनी चेतना खो बैठे। अतः वह तुरन्त ही उन्हें धैर्य्य बंधाते बोले, "किन्तु आपको बिल्कुल ही निराश होने की श्यकता नहीं है। आपने एक कार्यवश मैं कल ही जा रहा हूं। वहीं मेरे अनेक ऐसे मित्र हैं, जो इटली सरकार में उच्च अधिकारी हैं। आप विश्वास करें कि मैं अपने उन मित्रों के द्वारा आपके पति को सुविधायें दिलाने का अवश्य ही यत्न करूँगा।"

मि० ज्विग के इन शब्दों से सचमुच ही उस को धैर्य सा बँध गया। मि० ज्विग के इस क्षणिक से ही वह जान गई थी, कि इस व्यक्ति के मुख से हुये शब्द कितना मूल्य रखते हैं। उसे मि० ज्विग नुभूति और समवेदना के मूर्तिमान अवतार दिख रहे थे। अब उसने वहाँ अधिक ठहरना उचित न और मि० ज्विग को उनकी इस कृपा के लिये अश्रु हुये कंठ से धन्यवाद देकर विदा हो गई। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् मि० ज्विग पुनः अपनी अधूरी कविता को पूर्ण करने बैठे, किन्तु कागज़ पर लिखे अक्षरों में उन्हें बार बार एक महिला का संतप्त मुख और आंसू भरे नेत्र दिखाई देने लगे। उन्हें वह सुन्दर कविता अधूरी ही छोड़ देनी पड़ी।

[३]

— मि० ज्विग इटली पहुंचे, तो उनका सबसे प्रमुख कार्य उस महिला के पति की सुविधाओं के लिये प्रयत्न करना ही हो गया। इसके लिये वे अपने उन मित्रों और प्रशंसकों से मिले, जिनका इटली की सरकार में कुछ प्रभाव था। पर उन्हें यह देखकर भारी निराशा हुई कि उनमें से एक भी व्यक्ति सम्पूर्ण विवरण सुनने तक का साहस नहीं दिखा सका। बहुधा ऐसा हुआ, कि अत्यन्त ही उल्लास-हास से परिपूर्ण वार्तालाप के बीच जैसे ही मि० ज्विग अपने स्वाभाविक वाक्य सौन्दर्य के साथ इस सम्बन्ध में कुछ कहना आरम्भ करते, त्यों ही मित्र महोदय का मुख भय से पीला पड़ जाता और वे बड़े भयाकुल स्वर में कहने लगते "सुनिये तो मि० ज्विग! कृपया इस सम्बन्ध में वर्तालाप करके हमारी सुरक्षा को ख़तरे में मत डालिये। आप शायद नहीं जानते कि कि जिस व्यक्ति के लिये आप कह रहे हैं, फैसिस्ट पार्टी की निगाह में वह कितना बड़ा अपराधी है। हमारा तो ख्याल है कि यदि स्वयं सिन्योर मुसोलिनी भी इस सम्बन्ध में कुछ करना चाहें, तो पार्टी उनसे सहमत नहीं होगी। उसके सम्बन्ध में तो बात करना भी मुसीबत है।" बेचारे मि० ज्विग विवश होकर चुप हो जाते। और तभी उनके कानों में उस महिला से सुने हुये करुणा भरे शब्द गूँजने लगते। वे असफलता से आहत मन को लेकर इटली से वापिस लौट आये, पर एक क्षण के लिये भी उस महिला के दुख को वे विस्मरण न कर सके। अब दिन रात वे इसी चिन्ता में घुलने लगे।

अकस्मात् ही उन्हें एक बात सूझी। उन्हें याद आया कि सिन्योर मुसोलिनी उनकी रचनाओं के भारी प्रशंसक हैं। यह बात उन्होंने अनेक बार सिन्योर मुसोलिनी के ऐसे मित्रों से सुनी थी, जिन्हें मि० ज्विग का भी मित्र होने का गौरव प्राप्त था। मि० ज्विग चाहते, तो अभी तक दसियों बार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के इस तानाशाह से मिल सकते थे, और उससे मित्रता के सम्बन्ध भी स्थापित कर सकते थे। किन्तु इस प्रकार के विचार का आना भी उन्हें अपनी साहित्यिक साधना में बाधक प्रतीत होता था। उन्हें किसी भी राजनैतिक महान् व्यक्ति से मिलने में अरुचि थी, उनके किसी भोज आदि में सम्मिलित होना भी उन्हें सर्वथा निरर्थक प्रतीत होता था। फिर भी इस समय उन्होंने सोचा कि क्यों न मि० मुसोलिनी को वे एक पत्र लिखें! उन्होंने पत्र लिखा और उसमें अत्यन्त ही सादगी के साथ यह लिख दिया कि 'इस पत्र को लिखने में मेरा यह नाम मात्र को भी उद्देश्य नहीं हैं कि मैं उस व्यक्ति के अपराधी नरपराधी होने पर विचार करूं, या आपके द्वारा दिये गये दंड की आलोचना करूँ। मैं तो केवल इतना ही लिखना चाहता हूँ कि उस व्यक्ति की पत्नी को मैंने देखा है, वह निस्संदेह बहुत दुखी और पीड़ित है। अतः उसके दुख और त्रास के नाम पर मैं यह अपील करता हूँ कि आप उस व्यक्ति को किसी ऐसे जेल या द्वीप में भेज दें, जहां कि वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रह सके।"

पत्र लिखकर मि० ज्विग स्वयं ही पोस्ट आफ़िस में डाल आये। वे इस पत्र के परिणाम के प्रति कुछ अधिक आशाप्रद नहीं थे, फिर भी अब उनके मन की अकुलाहट बहुत कुछ शान्त हो गई थी, और वे अपने को इस सम्बन्ध में कुछ संतुष्ट सा अनुभव करने लगे थे।

[४]

इटली का तानाशाह सिन्योर मुसोलिनी अपने कार्यालय में बैठा हुआ अपनी नित्यप्रति की डाक सुन रहा था। उसकी मंच की दूसरी ओर उसका सैक्रेटरी एक के पश्चात् दूसरा पत्र उसे सुनाता जाता था, और उनके उत्तर संक्षेप में नोट करता चलता था। मेज़ के नीचे पैरों के पास शेर का एक छोटा सा पालतू बच्चा मुसोलिनी के भारी बूटों पर अपनी गर्दन रक्खे ऊंघ रहा था। मुसोलिनी कभी कभी अपने पैर से एक हल्की सी ठोकर उसके लगा देता था, जिससे उसकी नींद टूट जाती थी, और इससे क्रुद्ध होकर वह गुर्राने लगता था। शेर के बच्चे की गुर्राहट सुनते ही मुसोलिनी के सेक्रटरी का स्वर कांपने लगता था और उसके चेहरे पर घबड़ाहट दौड़ जाती थी। उसे अपने स्वामी का यह व्यसन कभी पसन्द नहीं आ सका। इसीसे वह मुसोलिनी के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने और बैठने से भी कतराता रहता था, किन्तु डाक सुनाने के समय तो उसके पास बैठना ही पड़ता था।

"यह एक खुफ़िया विभाग का ख़रीता है सरकार। खुफ़िया विभाग के अध्यक्ष ने यह रिपोर्ट की है, कि ख़ास रोम में ही कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो फैसिस्ट पार्टी के उत्साही सदस्य हैं। किन्तु उनके कुछ कार्य सन्देह उत्पन्न करते हैं। वे एक 'स्वाध्याय मंडल' का संगठन कर रहे हैं, जिसमें रूसी शासन-विधान से लेकर मार्क्सवाद तक पर वाद-विवाद होता है, और उनमें से कुछ के हाथों में साम्यवादी साहित्य भी देखा गया है।" सैक्रेटरी ने अपने कार्य को शीघ्र ही समाप्त करने के प्रयत्न में संक्षिप्त में उस ख़रीते का आशय बताते हुये कहा। उसे यह देख कर सन्तोष हो रहा था, कि अब केवल चार ही लिफ़ाफ़े शेष हैं, जिनको वह कुछ ही मिनटों में समाप्त कर लेगा, और उसके पश्चात् अपने कार्यालय में चला जावेगा, जहाँ कि उसके प्राणों में भय उत्पन्न करने के लिये उसकी मेज़ के नीचे कम से कम कोई शेर का बच्चा तो न होगा।

"लिख दो, कि इन सबको किसी भी प्रकार गोली से उड़ा दिया जाय। इटली में इनके लिये अब कोई स्थान नहीं है। किन्तु कोई मुक़दमा आदि चलाने का बखेड़ा करने की आवश्यकता नहीं है, जिसकी सूचना पाते ही हमारे दुश्मन बुरी तरह भूंकने लगते हैं।" मुसोलिनी ने अत्यन्त ही सहज स्वर में उत्तर दिया।

"लेकिन यह सब फैसिस्ट पार्टी के सदस्य हैं, और अभी उन पर केवल सन्देह ही प्रगट किया गया है। सम्भव है कि ये लोग……।"

सैक्रेटरी ने अपने कर्तव्य के अनुसार मुसोलिनी को वास्तविकता से परिचित कराने की दृष्टि से कुछ कहना चाहा, लेकिन मुसोलिनी बीच ही में बोल उठा।

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, मि० सैक्रेटरी! हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम एक एक व्यक्ति की छानबीन कर सकें। और इससे हानि भी क्या होगी। अधिक से अधिक यही तो, कि यदि सन्देह निराधार हुआ तो इटली के दस-पन्द्रह युवक व्यर्थ ही मारे जावेंगे। लेकिन हमारे पास लाखों युवक हैं। इसलिये इनके गोली मारने में कोई ख़ास बात नहीं है।" और कहकर मुसोलिनी ने फिर एक ठोकर उस शेर के बच्चे की पीठ पर लगा दी। तत्काल ही एक धीमी कि भयानक गुर्राहट उस कमरे में गूंजने लगी। इसके ही मुसोलिनी का सैक्रेटरी भी अपने समस्त तक गया, और उसने ख़रीते पर लगी एक सादा कागज़ चिट पर मुसोलिनी की उपरोक्त आज्ञा को अं कर दिया।

"यह मि० स्टीफन ज्विग का पत्र है हुजूर! उन्हों यह आपको व्यक्तिगत रूप से लिखा है।" सैक्रेटरी एक दूसरा सादा सा लिफ़ाफ़ा उठाते हुये कहा।

"क्या बताया, स्टीफन ज्विग का पत्र? अच्छा पढ़िये तो। आज का दिन तो बड़े सुहावने ढङ्ग प्रारम्भ हो रहा है।" मुसोलिनी ने उल्लास से कहा और पत्र का एक एक वाक्य ध्यान से सुनने लगा।

पत्र में जैसे ही मुसोलिनी की हत्या करने का षड़य रचने के अपराध में दण्डित एक सुप्रसिद्ध अपराधी कुछ सुविधा देने की बात आई, त्योंही सेक्रेटरी चुप गया। उसके नेत्र घृणा और द्वेष से भर गये, और निर्निमेष नेत्रों से मुसोलिनी की ओर देखने लगा। आशा थी कि अब सम्पूर्ण पत्र सुने बिना ही मुसोलि इसे रद्दी की टोकरी में फिकवा देगा। किन्तु मुसोलिनी उसे चुप देखकर आतुरता से कहा, "आप बीच में कैसे हो गये। पूरा पत्र पढ़िये न।" "सेक्रेटरी ने फि पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया, और उसको समाप्त करते बोला "मैं यह निवेदन करना चाहता था सरकार! जिस डाक्टर के लिये मि० ज्विग रियायतें चाहते उसने स्वयं आपके ऊपर आक्रमण करने की योज बनाई थी। इसके अतिरिक्त उसका पिछला इतिहास अत्यन्त ही भयानक रहा है। वह किसी भी समय भी कर सकता है।"

"मुझे मालूम है।" मुसोलिनी ने आनन्द भरे में कहा—"तुम अभी वियेना के इटैलियन कौंसिल लिख दो, कि वह मि० ज्विग को इस पत्र के लिये ओर से धन्यवाद दें, और उन्हें यह सूचना दें उपरोक्त कैदी को शीघ्र ही अधिक से अधिक सुवि दी जावेंगी। इसके साथ ही आप सम्बन्धित अधिकारि को भी लिख दीजिये कि उस कैदी को सपरिवार की सुविधा कर दें, और इसकी सूचना एक तार द्वारा मि० ज्विग को भी दे दें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसोलिनी ने देखा कि सेक्रेटरी के चेहरे पर असन्तोष का भाव गाढ़ा हो चला है, अतः वह उसे सन्तुष्ट करता हुआ बोला, "मैं यह नहीं कहता, कि तुम्हारी बात ग़लत है। मैं यह भी जानता हूं, कि इस व्यक्ति को ऐसी सुविधायें देने से इस प्रकार के भयङ्कर अपराधियों को थोड़ा प्रोत्साहन भी मिल सकता है। किन्तु ज्विग की एक प्रार्थना को स्वीकार करने का मुझे जो गौरव प्राप्त हो रहा है, उससे वञ्चित रह जाना भी एक भारी मूर्खता होगी। शायद तुम नहीं जानते कि ज्विग की इस प्रार्थना का मूल्य क्या है?" और उसने सेक्रेटरी को जाने का संकेत कर दिया। मुसोलिनी के हृदय में इस समय आनन्द का ज्वार आया हुआ था, और वह इस समय नितान्त एकान्त में कुछ देर रहना चाहता था।

(५)

मि० ज्विग की पत्नी आज दोपहर से ही अपने पति को अत्यन्त ही उल्लास-प्रसन्न अनुभव कर रही थीं। उनके एक एक हाव-भाव से उनके हृदय का उल्लास फूटा पड़ता था। वे आज बहुत देर तक अपने फूलों की सार सम्हाल करते रहे, और फिर अकस्मात ही अपनी पत्नी के पास आकर बोले "आओ, आज मैं तुम्हें अपनी कुछ नई कवितायें प्यानो पर गाकर सुनाऊँ। मुझे विश्वास है, कि तुम उन्हें अवश्य ही बहुत पसन्द करोगी।" यह सुनते ही मि० ज्विग की पत्नी का हृदय आनन्द से भर गया। मि० ज्विग की रचनाओं को उनके मृदु कंठ से सुनने के लिये वे सदैव ही लालायित रहती थीं, किन्तु मि० ज्विग इतने व्यस्त रहते थे कि ऐसे अवसर उन्हें बहुत ही कम प्राप्त होते थे।

"धन्यवाद, बहुत बहुत धन्यवाद। पर यह भी तो बताइये कि आज किस शुभ घटना के उपलक्ष्य में मुझे यह सम्मान दिया जा रहा है।" मि० ज्विग की पत्नी ने हर्षोन्मत्त स्वर में जिज्ञासा के साथ कहा। सुनते ही मि० ज्विग एक क्षण के लिये हतप्रभ से हो गये, उसके पश्चात् आश्चर्य भरे स्वर में बोले, "अरे रे! प्रसन्नता के आवेग में मैं तो तुम्हें यह बताना ही भूल गया। आज सिन्योर मुसोलिनी ने मुझे यह सूचना दी है कि वह डाक्टर, जिसको कुछ सुविधायें देने की मैंने उनसे सिफ़ारिश की थी, उन्होंने कृपा करके उसे बिल्कुल ही मुक्त कर दिया है। तुम्हें तो मालूम ही है प्रिये! कि उस पर मुसोलिनी की हत्या करने के लिये षड़यन्त्र रचने का भयङ्कर अपराध लगाया गया था। समस्त फैसिस्ट पार्टी उससे द्वेष करती थी, किन्तु मुसोलिनी ने अपने कलम के एक डोबे में उसे रिहा कर दिया। मैं सोच रहा हूँ कि इससे उस डाक्टर के बच्चों को तथा उसकी उस पत्नी को, जो बेचारी अपने पति के लिये कुछ सुविधाओं की मांग पर मेरे हस्ताक्षर कराने आई थी, कितनी प्रसन्नता हुई होगी। सच कहता हूँ प्रिये कि आज तक मैंने सहस्रों ही पत्र लिखे होंगे, किन्तु यह एक पत्र जिसे मैंने इस सम्बन्ध में सिन्योर मुसोलिनी को लिखा था, मुझे सदैव आनन्द देता रहेगा। मैं इस घटना को साहित्य की एक महान विजय मानता हूँ।"

यह सुनकर श्रीमती ज्विग का चेहरा भी प्रसन्नता और आनन्द की आभा के भर गया। इसके पश्चात ससार के यह महान दम्पति बहुत देर तक संगीत की स्वर लहरियों में हृदय का उल्लास प्रकट करते रहे।

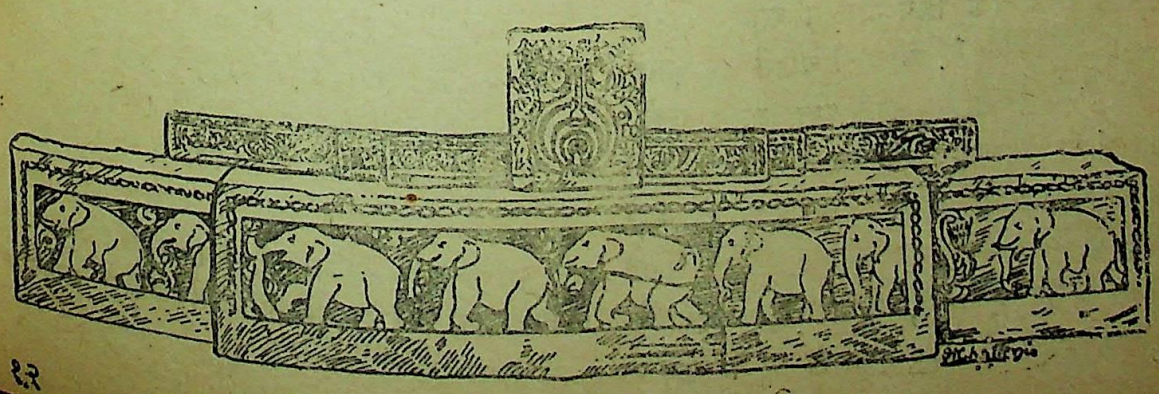

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपेन दा कहां हैं ?

डाक्टर जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०

उमर साठ के आस पास होगी, लम्बा क़द, लम्बा चेहरा, झुर्रियां पड़ी हुईं, चमकती हुई आंखें, उठी हुई नाक, चाल-ढाल से मालूम होता था कोई बङ्गाली सज्जन हैं। कुछ देर तो मैं चुपचाप उनकी तरफ़ देखता रहा, तत्पश्चात् मैंने पूछा—"क्या मैं आपका नाम जान सकता हूं ?"

कुछ मुस्कराकर बङ्गाली उच्चारण में बोले—"जी हां, मेरा नाम है भूपेन्द्र चक्रवर्ती।"

"आप बङ्गाल के रहनेवाले हैं ?"

"जी हां !"

"यहां वरली में कैसे आ गये ?"

"अगस्त-आन्दोलन शुरू होते ही मैं बङ्गाल छोड़कर चल दिया। घूमता-घामता खानदेश में आया। जलगांव में पुलिस ने पकड़ लिया। कलकत्ते की ख़ुफ़िया पुलिस से टेलीफ़ोन पर बातचीत कर पुलिस को पता चला कि मैं पुराना पापी हूँ, बस नज़रबन्द करके मुझे ठाणा जेल में भेज दिया। वहां जेल-अधिकारियों में और राजनैतिक क़ैदियों में कुछ झगड़ा हुआ। हम लोग अपनी बैरकों में से कुछ कूदकर बाहर निकल आये। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। तत्पश्चात हम लोगों को यहां भेज दिया।

क़रीब १२ बज चुके थे। भत्ते का समय हो रहा था। उधर से आवाज़ आई—चलो, भत्ता।

"महाशय, यदि कोई आपत्ति न हो तो आज मेरे साथ ही भोजन कीजिये ?"

"जी हां, ज़रूर, चलिये।"

भूपेन दा के प्रति मेरा आकर्षण दिन पर दिन बढ़ता ही गया। अधिकतर वे अपनी कोठरी में रहते, शाम के समय भी घूमने के लिये नीचे न आते। पूछने पर कहते,—"क्या ज़रूरत है, हम नहीं चाहते कि लोग हमको जानें।" जब भी मैं उनके पास जाता, उन्हें किसी विचार में मग्न पाता। वरली जेल में दिवाली ख़ूब धूम से मनाई गई। 'सेठ' लोगों ने क़ालीन, जाजम, मखमली गद्दों से अपने स्थान को सजाया, मिठाई और फलों के टोकरों के ढेर लग गये, परस्पर ख़ूब मिलाई-जुलाई हुई, खाने-पीने की और हँसने खेलने की आज छूट थी। मैंने भूपेन दा से कहा—"दादा, आज [illegible] से मिलने न चलोगे ?" बोले—"हम क्या करेंगे ? [illegible] लिये क्या दिवाली ?" उस दिन दादा और मैं ऊपर बैठे बैठे बातें करते रहे।

मैंने देखा कि भूपेन दा लोगों से बहुत कम मिलते जुलते थे, उनके हृदय में उनकी ओर से एक प्रकार कुछ विरक्ति-सी मालूम होती थी; यद्यपि, वे ग़रीब मज़दूर-क़ैदियों की हमेशा तरफ़दारी करते थे, और उनके पास अक्सर आते-जाते थे। एक बार किसी क़ैदी भूख-हड़ताल की, बस वे उससे पास बैठे रहते और कुछ हो सकता, करते थे। एक बार जब मैं स्वयं बीमार हो गया तो उन्होंने मेरी बहुत सेवा की, शायद घर से ज़्यादा।

जेल में पढ़ने-लिखने में मेरा मन न लगता था। प्रायः भूपेन दा के साथ उनके कमरे में बैठा रहता। कभी कल्पनादत्त की वीरता के क़िस्से सुनाते, कभी अरविन्द घोष की मरदानगी के बारे में बताते, कभी भगतसिंह चन्द्रशेखर आज़ाद, राजगुरु आदि क्रांतिकारियों की रोमांचकारी वीरता भरी कहानियां कहते, जिन्हें सुनकर मेरा मन श्रद्धा से झुक जाता, और मुझे अश्रुपात रोकना कठिन हो जाता। वे कहते—"आप बड़े भावुक हैं; भावुकता से देश को आज़ादी मिलनेवाली नहीं।" भूपेन दा की बातें सुनकर मेरे मस्तिष्क में नाना विचार चक्कर काटने लगते। मैं सोचता—'आज जो हमारे देश में आज़ादी की लहर एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई है, लोग हँसते हँसते, खेलते खेलते आज़ादी की बलिवेदी पर चढ़ने को तैयार हैं, क्या उसमें उन दिवंगत आत्माओं की क़ुर्बानी का कोई हाथ नहीं ? क्या वे नहीं देखते कि उनकी हँसती-खेलती मूर्तियां हमें पुकार पुकारकर कह रही हैं कि चलो, आगे बढ़ो आज़ादी अवश्य मिलेगी, उसे रोकनेवाली कोई ताक़त नहीं लेकिन हमने उन वीरों की स्मृति में क्या किया ? क्या हमने उनका एक एक मिट्टी का स्मारक तक बनाया ? क्या हमने उनके आश्रितों के विषय में कभी कुछ सोचा वे कैसे रहते होंगे ? क्या खाते-पीते होंगे ? शायद ब्रिटिश सरकार के स्वर में स्वर मिलाकर 'टेररिस्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विप्लववादी', 'आतंकवादी' आदि शब्दों से उन्हें सम्बोधन कर उनका अपमान ही अधिक किया। हमने कभी यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि हमारे देश की बड़ी से बड़ी राजनैतिक संस्थायें इन्हीं साहसी वीरों के रक्त-कण से सिंचित होकर पनपी और फूली-फली हैं!' भूपेन दा ने बताया कि एक बार वे देश के एक बड़े नेता से मिले। उन्होंने बहुत आग्रह-पूर्वक उनसे 'आतंकवाद' छोड़ देने को कहा। इस पर उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा—"महाशय, यदि यह सच है कि औरङ्गज़ेब एक हाथ में क़ुरान और दूसरे में तलवार रखता था, तो आपमें और उसमें मुझे विशेष अन्तर नहीं मालूम होता। इसी तरह आप भी हम लोगों को अपने 'धर्म' में दीक्षित करना चाहते हैं।"

भूपेन दा राजनीति के बड़े पंडित थे। उन्हें कितनी ही बातें मय सन् और तारीख़ के मुंहज़बानी याद थीं। किस सूबे में कितने ज़िले हैं, कितनी सेन्ट्रल जेलें हैं, किस जेल का कौन सुपरिन्टेन्डेन्ट रहा है, काँग्रेस के अधिवेशन कहां कहां हुए और उनका कौन कौन सभापति चुना गया आदि बातें उनकी ज़बान पर रहती थीं। हिन्दुस्तान की जेल तो शायद ही कोई उनसे बची हो। एक बार उन्होंने मेरे प्रान्त (यू० पी०) के ज़िलों की बाबत मुझसे पूछा। जब मैं न बता सका तो उन्होंने झट झट एक एक करके सब ज़िले गिना दिये। मैं आश्चर्य-चकित रह गया। घुमक्कड़ भी वे बहुत बड़े थे। मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि यू० पी० के मेरे गांव के आसपास के छोटे छोटे गांवों से भी वे वाक़िफ़ थे। पूछने पर बोले—"अपनी फरार हालत में मुझे कई बार उन गाँवों में होकर गुज़रने का मौक़ा मिला है।" स्मरण-शक्ति उनकी ग़ज़ब की थी। देश-विदेश की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को वे ठीक ठीक तारीख़ के साथ इतनी यथार्थता से बताते थे कि मैं हैरान रह जाता था। यदि उन्हें चलती-फिरती लाइब्रेरी कहा जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी—ऐसे प्रतिभा शाली व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे। इतना होने पर भी अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया था। वे हमेशा कहते—"मैं तो कुछ विशेष पढ़ा-लिखा हूँ नहीं। आप लोग तो मुझसे बहुत अधिक जानते हैं।" एक बार 'प्राचीन भारत' के किसी ज्ञान के सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे कोई बात पूछी। मैं सोचता ही रह गया और इतने में उन्होंने झट से बता भी दी। मैंने उनसे कई बार अनुरोध किया कि वे जेल में कुछ व्याख्यान देकर विविध विषयों पर प्रकाश डालें और अपने अनुभवों से सबको लाभ पहुंचावें, परन्तु उनके बोलने का ढङ्ग प्रभावशाली न होने के कारण, उनकी व्याख्यान-माला अधिक न चल सकी, या यों कहिये कि शायद लोगों ने उसमें विशेष रुचि प्रकट नहीं की; अतएव उसे बन्द कर देना पड़ा। जो कुछ भी हो, मैं तो उन्हें बहुत अंश में अपना राजनीति का गुरु मानता हूँ। सर्वप्रथम शायद उन्होंने ही मुझे कम्यूनिज़्म, सोशलिज़्म आदि के विषय में इतने विस्तार से बताया। जब कभी मैं उनसे कहता—"दादा, आपको तो मैं अपना गुरु मानता हूँ," तो बोलते—"पहले हम चेला तो हो जांय, बाद में गुरु होंगे।"

× × ×

ठीक याद नहीं, शायद दिसम्बर का महीना था। भूपेन दा की तबियत कुछ दिनों से ख़राब रहती थी। उन्हें खांसी बहुत आती थी, छाती में दर्द रहने लगा था। वे अक्सर मुझसे कहा करते—"यहां अधिक रहने की तबियत नहीं होती, चाहते हैं किसी पक्की जेल में तबादला करा लें; न यहां कोई सोसायटी है, न कोई प्रबंध।" एक दिन रात को उनकी छाती में ज़ोर का दर्द हुआ। जेल-डाक्टर को बुलवाया गया, और उससे शीघ्र ही कोई व्यवस्था करने को कहा। डाक्टर ने दवा वग़ैरह दी परन्तु जब कोई फ़ायदा न हुआ तो उन्होंने कहा कि छाती की 'एक्स रे' लेने की आवश्यकता है, उन्हें अस्पताल में भेजना होगा। मैंने डाक्टर से पूछा—"फ़िकर की कोई बात तो नहीं?" उसने कहा—"नहीं, आठ-दस दिन में ठीक हो जायेंगे।"

मैंने भूपेन दा के सब कपड़े वग़ैरह ठीक कर दिये। जो उनके पास नहीं थे, अपने देदिये। भूपेन दा आज अस्पताल जा रहे थे। मेरे मन में न जाने क्यों कुछ शंका सी होने लगी—सोचता था न जाने कब लौट कर आयेंगे? उन्होंने अपना हाथ मेरे हाथ पर रक्खा, और मुस्कराने की चेष्टा की, मगर उनके चेहरे से मालूम होता था कि वे कुछ मुझसे छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। मूक भाषा में अभिवादन कर हम एक दूसरे से अलग हुए।

भूपेन दा के अस्पताल जाने के बाद एक तरह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अकेला पड़ गया। मेरा कोई साथी संगी नहीं रहा जिसके साथ बैठकर मन बहला सकूँ। यद्यपि उनके स्वास्थ्य की ख़बर मुझे अस्पताल जानेवाले साथियों से प्रतिदिन मिलती रहती थी। लेकिन फिर भी मैं उनके बारे में चिन्तित रहता था। धीरे धीरे मैंने कुछ पढ़ने-लिखने का सिलसिला जमाया। एक दिन हम लोग दुपहर का भत्ता खा रहे थे, इतने में अस्पताल से आनेवाले क़ैदियों ने आकर ख़बर दी—"चक्रवर्ती पलाला" (चक्रवर्ती भाग गया) मैं यह ख़बर सुनकर भौंचक्का रह गया। तरह-तरह के विचार मेरे दिमाग़ में आने लगे—वह बीमारी की हालत में कैसे भागा होगा? भागकर कहाँ गया होगा? बम्बई उसके लिये नया स्थान है, कौन आश्रय देगा? फिर उसके पास पैसा भी तो नहीं? वग़ैरह वग़ैरह।

× × ×

इस घटना को आज लगभग तीन बरस हो चुके। मुझे मालूम हुआ कि भूपेन दा के भाग जाने पर पुलिस ने उनकी अन्धी मा को बहुत परेशान किया, उसे पकड़ कर थाने ले गये और उससे न जाने क्या क्या पूछा। बाद में पता चला कि बङ्गाल-दुर्भिक्ष में अन्न न मिलने के कारण उस साध्वी ने भूखे रहकर प्राण त्याग दिये! कभी कभी मैं सोचता हूँ, जिस भारत के सपूत ने अ जीवन का लगभग एक चौथाई हिस्सा भारत सरकार जेलों में काट दिया—जहाँ तनहाई कोठरी आदि में कर नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक यातना भोगनी पड़ीं, और चालीस चालीस पचास-पचास की लम्बी भूख हड़तालें करनी पड़ीं, जिसने अपनी और माँ को देश के लिये न्योछावर कर दिया, जो सर पर गलियों में अपने आपको छिपाकर बरसों दर-दर फिरा, उसका नाम तक भी आज भारत के कितने भक्तों को मालूम है?

भूपेन दा मार्क्सवाद में विश्वास रखते थे। उन्ह अपने जीवन को बहुत कुछ उन सिद्धान्तों के अनु ढाला था। परन्तु हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के उनके कुछ मतभेद थे। उनको यह असह्य था कि भी कम्युनिस्ट पार्टी सुभाष बाबू और उनके द्वारा सङ आज़ाद हिन्द फौज को ग़द्दार कहकर उन्हें देशद्र होने का फ़तवा दे। इसी कारण शायद वे अ इकलौते कम्युनिस्ट पुत्र से असन्तुष्ट थे।

मालूम नहीं दादा आज कहाँ हैं! क्या फिर उ उनसे मिलना होगा?

प्रवचन

लोग ज़िन्दा रहने के लिये खाना खाते हैं न कि शौक के लिए। वे कपड़ा पहनते हैं शरीर ढांकने के लिए कि शौक के लिए। इसलिए जिस प्रकार घर घर में चूल्हा है उसी प्रकार घर घर में चर्खा होना चाहिये और हर एक तन्दुरुस्त व्यक्ति को कातना चाहिये। तभी सब खादी पहन सकते हैं। और स्वराज्य ले सकते हैं। वास्तव में जो अपंग, अपाहिज हैं उनके लिए भी तन्दुरुस्त व्यक्तियों को कातना चाहिये लोग खेलने के लिए क्लब (खेल घर) बनाते हैं और वहां अपना शरीर और पैसा दोनों बिगाड़ते हैं क्या ऐसे स्वराज-घर या चर्खा-घर नहीं बन सकते जहा जाकर लोग पूनियाँ बना सकें, कात सकें और सूत के बदले खादी भी ले सकें? सीधी बात तो यह है कि जहां इच्छा नहीं वहां विरुद्ध पक्ष को कई दलीलें सूझती हैं। जहां इच्छा होती है वहां हमें उतनी ही अनुकूल दलीलें सूझती हैं। ऐसी प्रबल इच्छा होने पर लोग चर्खा छोड़ नहीं सकते जैसे वे खेल नहीं छोड़ते। क्या खेल के लिए जो इच्छा काम देती है वह स्वराज्य के लिए काम देगी? सूत देकर खादी लेने के विरुद्ध एक ज़बर्दस्त दलील यह दी जाती है कि अगर शहरवाले अपना ही सूत तो ग़रीबों की खादी मिट जायेगी। जो कुछ थोड़ा बहुत काम खादी के मार्फत होता है वह भी बन्द हो जाय और देहातियों को खादी पहने हुए देखना निरा स्वप्न ही रह जायगा। यदि हम ऐसा मान भी लें कि शह वासियों ने आलस्य से या ग़ुस्से में आकर खादी पहनना छोड़ दिया और इसलिये देहातियों ने मज़दूरी के अभ में सूत कातना और बुनना बन्द कर दिया तो उससे मुल्क की कौन सी बड़ी हानि हो सकती है? इस प्रक यदि उनका सूत का धन्धा छूट जाय तो ग़रीब लोग दूसरा धन्धा करेंगे और किसी न किसी तरह अपना पेट भरेंगे ऐसा लाखों भले ही कर लें, जैसा वे आज कर ही रहे हैं, पर करोड़ों तो ऐसा नहीं कर सकते। —महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी के साथ एक प्रातःकाल

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

२२ नवम्बर १९४५। 'मलाबार हिल'—जहां बंबई की सभ्रान्त जनता अपना नीड़ बाँधे है; देश के एक प्रसिद्ध धन-कुबेर के राजप्रासाद का एक प्रशस्त कमरा; सूर्य अभी प्राची से निकला नहीं है, लेकिन किसी भी क्षण तपाए हुए सोने की दीप्ति निखराते हुए निकल सकता है। धीमी और ओस से धुली हुई हलकी हवा उस तरफ़ अपना झीना आंचल पसारे हुए है; बाग़ में उसका ऐश्वर्य और भी स्पष्ट है। तकिए पर सिर को सहारा दिए बापू चारपाई पर लेटे हुए हैं और उनके पांव ऊपर को लगभग समकोण बनाते हुए बिस्तर पर रखे हैं। उनकी दाहिनी ओर अधेड़ अवस्था के एक धनी सज्जन—सिर से पैर तक सफ़ेद खादीपोश (वैसे सिर पर एक काली टोपी ज़रूर विद्यमान थी)—बैठे हैं और बाईं ओर दो महिलाएँ हैं जिनमें एक तो पचास के उस तरफ़ हैं, दूसरी इस तरफ़। वे दोनों हिन्दी-उर्दू के समन्वय और सहयोग के सम्बन्ध में किए हुए अपने काम-काज की चर्चा कर रही हैं। देश की राष्ट्रभाषा के उद्भव और विकास के क्षेत्र में उनके कार्यों या भविष्य के मन्सूबों की गांधीजी कभी-कभी जांच कर बैठते हैं, अर्थात् अचानक ऐसा सवाल कर बैठते हैं जिससे वे चकित हो जाती हैं और महसूस करती हैं कि उनसे बातचीत करते समय सचाई और सावधानी दोनों की बड़ी ज़रूरत हुआ करती है।

गांधीजी के मेज़बान की धर्मपत्नी का प्रवेश। यद्यपि उनके पति अशेष धन-दौलत के स्वामी हैं, तथापि वे हाथ का कता-बुना ही पहनती हैं। हाथों में बकरी के दूध का भरा गिलास और छीले हुए सतरे की फांकों से भरी एक तश्तरी संभाले हुए वे आईं। गांधी जी नाश्ते के लिये उठ बैठे। इसी समय भारतीय राजनीतिज्ञों के बीच सिंह के समान सरदार पटेल कमरे में आए। उनके साथ उनकी कन्या भी थीं जो उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी थीं। भाषा के प्रश्न में संलग्न गांधीजी को देखकर सरदार बोल उठे "आप इस उम्र में यह नई ज़िम्मेदारी क्यों मोल ले रहे हैं, जब कि आपसे कहीं कम उम्र के कार्य-कर्त्ता इससे कहीं पहले अपनी छोटी-मोटी ड्यूटियों से छुट्टी पाना चाहते हैं?" सरदार की बातचीत का पैनापन मशहूर है। तीक्ष्णता के साथ चमक भी होती है; सरदार की पैनी बात भी मुस्कराहट की झलक लिए हुए थी। "यह तो—पेट में दर्द न भी हो तो—बैठे ठाले ठोंक-पीट कर दर्द पैदा करना है। भला सोचिए तो, यह क्या उचित है?"

"ओ हो" गांधीजी ने ख़ुश होकर अपनी उस सुंदर हंसी के साथ जवाब दिया जो तूफ़ान और ग़ुस्से को देखते-देखते शांत कर दिया करती है, "मैं तो 'महात्मा' के नाम से मशहूर हूं न!—इसीलिये सब तरह के चमत्कार दिखाने का मुझे तो अधिकार है।"

सरदार की 'कन्या—सेक्रेटरी' बोली, "अच्छा, मान भी लिया, तो मेरा यह आग्रह है कि यदि आपको अपने इस ट्रस्ट के मुताल्लिक़ अख़बारों में कोई वक्तव्य देना भी हो तो वह बिल्कुल छोटा होना चाहिए; मसलन चार लाइन से काम चल जाए, अभी की तरह लम्बा वह न हो।"

गांधीजी तो पाई-पाई और शब्द-शब्द की कंजूसी में उस्ताद हैं। बोले—"क्या वह सचमुच बहुत लम्बा हो गया है? तब एक काम करो। तुम उसे छोटा करके चार लाइनों का बना दो, मैं आँख मूँदकर सही कर दूँगा।"

इसका कोई उत्तर नहीं आया। गांधीजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"जानकारों का कहना है कि आलोचना करनेवाले को यह याद रखना चाहिए कि अगर एक तरफ़ किसी बात की आलोचना करे, तो दूसरी तरफ़ उसकी जगह कोई रचनात्मक प्रस्ताव भी सामने लाए।"

हम सब चुप हो रहे। गांधीजी कहते चले—"एक चित्रकार था। उसके चित्र बड़े सुंदर होते थे लेकिन जनता उसके काम की अक्सर कड़ी आलोचना ही किया करती थी। सो एक दिन उसने एक सुन्दर चित्र स्टूडियो के बाहर टाँग दिया और आने जानेवालों को उसके कलात्मक दोष दिखलाने के लिये पुकारा। बस, फिर क्या था लोग तो इस जाल में फ़ौरन ही फंस गए। किसीने चित्र में ज़रा सा भी गुण नहीं देखा—यद्यपि कला के पारखियों ने उस चित्र की आगे चलकर बेहद प्रशंसा की।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी का स्वल्प जलपान तब तक समाप्त हो चुका था और अब वे बाहर बाग़ में टहलने जाने के लिये निकले। जैसे ही वे खड़े हुए और उनकी "कंत्री" चप्पलें सामने सरका दी गईं कि सरदार पटेल ने कमरे के कोने में खड़ी हुई एक पूरे आकार की गांधीजी की शबीह की तरफ़ इशारा किया जिसके सामने हलका पर्दा पड़ा हुआ था और जिसे किसी चित्रकार-बहिन ने बनाया था, "बापू, अगर आपको अपनी ही छवि देखने के लिये दर्पण की ज़रूरत थी तो वह बहुत आसानी से मिल सकता था, तब फिर भला यह क्यों?"

"लेकिन मैं अपना चेहरा दर्पण में देखना तो नहीं चाहता; इसीलिये तो चित्र पर परदा पड़ा हुआ है।" बापू ने तत्परता से जवाब दिया। और इस बात ने कमरे को उजली हंसी से आलोकित कर दिया। अपनी छोटी-छोटी हस्तियों के द्वारा हम लोग जिस तरह वातावरण को संकीर्ण किए हुए थे उसमें सहज ही एक प्रसन्न प्रशस्तता आ गई।

थोड़ी ही दूर पर गांधीजी ने अपने दोनो नातियों के साथ मुझे खड़े देखकर पूछा "ये बच्चे अपनी चित्रकला के अभ्यास में कैसी क्या प्रगति कर रहे हैं?"

मैंने संभ्रमपूर्वक जवाब दिया—"वे तो अभी अपनी साधना में ही लगे हैं।"

"साधना?"—सत्य के पुजारी बापू का तपस्वी मन स्नेह और गांभीर्य से भर आया—"तब तुम कदाचित् इस शब्द के गहरे अर्थ की तरफ़ ध्यान नहीं दे रहे। मैं तुम्हें कहूँ कि 'साधना' दुर्गम पहाड़ की चढ़ाई की तरह कठिन वस्तु है। मेरे इम्तहान को पास करना कुछ बहुत आसान नहीं है।"

गांधीजी प्रातःभ्रमण के समय दिन की और [illegible] की अपेक्षा कुछ अवकाश में रहते हैं। इसी भरोसे [illegible] और पंजाब की कुछ लड़कियां उनके दर्शन के लिये [illegible] आईं। लेकिन कहीं उनके स्वाभाविक कार्यक्रम [illegible] चिन्ता-धारा में बाधा न पड़े, इस डर से वे कुछ [illegible] पर ही खड़ी रह गईं।

"ओ हो, क्या हरिजन फ़ंड के लिये कुछ रुपये [illegible] आई हो?"—गाँधीजी ने उन्हें अभिवादन करते देख [illegible] शरारत से कहा।

यह तो बड़ी परेशानी हुई। कहाँ सीधी-सादी [illegible] और कहाँ यह रोज़े की झंझट। बेचारी लड़कियां [illegible] अपने अपने बैग टटोलने शुरू किए। मैंने चुपके-से [illegible] बापू से कहा—"हिन्दुस्तान की सरकार भी अपने [illegible] की वसूली में कुछ लोगों को मौकूफ़ कर दिया करती [illegible] लेकिन आप अपने कर की उगाही में ज़रा भी रिआ[illegible] नहीं करते।"

"क्यों करूँ—ख़ासकर उनके प्रति जो सिन्ध से [illegible] हैं?" बापू ने कहा।

मैंने अंग्रेज़ी में कहा—"क्यों नहीं—सिर्फ़ इसी[illegible] कि 'दे हैव सिएड' [उन्होंने सिन्धवासी होने का [illegible] किया है]?"

गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े; उनकी हँसी [illegible] आकाश की तरह उन्मुक्त थी। तब तक सूरज का [illegible] निकल आया था। गांधीजी ने तब धीरे से कहा—"[illegible] अब अपने-अपने काम पर!" और फिर वे अपने [illegible] में लौट आए तथा फ़ौरन कामकाज की डेस्क पर [illegible] पड़े। हम लोग भी अपने रोज़मर्रा की बँधी-सधी दि[illegible] चर्या—साधारण आदमी के इस परम पवित्र धर्म-[illegible] को सम्पन्न करने में लग गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुन्देलखण्डी ग्रामोक्तियां

श्री हरगोविन्द गुप्त

कहावत है "तेल देख तेल की धार देख"। किसी भी बात के बारे में मत स्थिर करने से पूर्व आवश्यक होता है कि उसके बाह्य अंगों को ही न देख उसके भीतर-बाहर के सभी अंग-प्रत्यंग का परीक्षण कर लिया जाय, अन्यथा किसी के देखा-देखी या कहा-सुनी में आकर कोई निश्चय कर बैठने का फल यह भी हो सकता है कि "देखा-देखी कीनों जोग, छीजी काया बाढ़ो रोग"। यह ठीक है कि "जांन-जांन खेती नईं होत" फिर भी मननशील मनुष्य के लिये जो उचित होता है उसे तो करना ही चाहिये। किसी भी राष्ट्र, समाज या संस्कृति का लेखा-जोखा करने के पूर्व यही उचित एवं आवश्यक होता है कि अन्वेषक महाशय ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की मनोमोहक परछांई, सीनरी, रेडियो और सिनेमा के तान-टप्पों, चमचमाती हुई सिमेन्टड सड़कों, उन पर सपाटे भरनेवाली मोटरों रेलों और ट्रामों के गर्जन-तर्जन से दूर जाया और साड़ियों के झकोरों से परे ग्रामों की ऊबड़-खाबड़ गड़वासों पर बसी हुई घास-फूस की टपरियों-झोंपड़ियों में फटे चीथरों में अपनी लोक-लज्जा बचाये लक-दक्कड़ियों के उजाले में होनेवाली चौपालों की गोष्ठियों पर, खेतों-खलिहानों की बैठकों पर होनेवाली जन-श्रुतियों से, बड़े बड़े कोर्टों को मात देनेवाली पंचायतों की लोक कथाओं से उनमें की सूक्तियों और मुहावरों से सार्वजनिक और व्यक्तिगत समारोहों पर, देवी देवताओं के खेती-बाड़ी के तथा सावन, सैरों, फाग, राई, रावला और बानियों के गीतों की 'टीपों' से समय कुसमय निकलने वाली दुख-सुख की आह-उमङ्गों के साथ निकलनेवाली लोकोक्तियों, लोक-कथाओं और जन-गीतों का अध्ययन करें और फिर तब किसीके बारे में जिम्मेदारी और दृढ़ता के साथ सगर्व कुछ कहने की कृपा करें। यहां यह विश्वास तो होना चाहिए कि यह जन श्रुतियां, लोक-कथायें, लोक गीत और लोकोक्तियां धुएँ के बादलों की नहीं हैं जो साधारण-सी हवा के झकोरे में इधर से उधर पलायन करा दी जायँ। ऊपर से देखने में भलें ही ये ग्राम-गीत, ग्राम-कथायें कहानियां और कहावतें आकर्षक न हों किन्तु इनकी निचली तह में डुबकी लगाने पर—"जिन खोजा तिन पाइयाँ....." की भाँति ही आप इनमें अनन्त अध्यवसाय, साधना के बल पर बिरचा गया युगों की संस्कृति का सजीव किन्तु ऐसा इतिहास पायेंगे जो छापे की बड़ी-बड़ी पोथियों के पन्नों पर ढूंढे नहीं पाया जा सकता। वह बड़ी सुन्दरता से छिपा मिलेगा तब आप कहेंगे—"भोंके न दर्राय, मसकईं काट खाय"। क्या आज के साहित्य संसार के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक श्री वृन्दावन लाल जी वर्मा सुल्तानपुरा के वृद्ध कुम्हार की या और यहां वहाँ की कहानियाँ सुने बिना अपने लोक प्रसिद्ध उपन्यास, 'गढ़ कुण्डार', 'विराट की पद्मिनी','लगन' या 'प्रत्यागत' आदि की सृष्टि इसी कौतूहल-जनक सफलता के साथ अनायास ही कर सकते थे? क्या उनका ग्राम साहित्य प्रेम उनके इस ऐतिहासिक उपन्यास लेखन कार्य में प्रमुख नहीं बना है? और क्या आज के कोई बड़े से बड़े विद्वान भारतीय ग्राम संस्कृति के बारे में आदरणीय श्री देवेन्द्र सत्यार्थी जी की समानता में आ सकते हैं?

हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि हम ऐसे समय में अवतरित हुए हैं जब दुनियाँ में तरह-तरह की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्रान्तियों की धूम है। सभी जगह इन्कलाब-ज़िन्दाबाद की धूम है। कहना न होगा कि साहित्य-जगत में भी इस इन्कलाब-जिन्दाबाद का नारा 'ताबड़-तोड़' गति से लगाया जा रहा है। माता सरस्वती के मन्दिर में भी नये-पुराने पुजारियों की धूम है। वहाँ भी 'एकें देरी एकें द्वार' वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती हुई नित्य नये 'वादों' और नित्य नये 'सम्प्रदायों' की धूम है। जन-पद आन्दोलन भी उनमें से एक है। जहाँ वे एक ओर एक सामूहिक सङ्गठन भाषा और संस्कृति के आधार पर जिसमें कि राजनीति अपने आप ही आ जाती है—जन-पदों के पुनर्गठन-पुनर्निर्माण का तुमुल-घोष कर रहे हैं। उसकी सफलता के लिए "चून बींद के पीखें पर रै" की लोकोक्तिको अपना रहे हैं वहीं कुछ विचारशील महानुभाव इसे अशुभ असामयिक और अनावश्यक बताकर पाकिस्तान की पंक्ति में ला बिठाते हैं। जो भी हो यहां हमें आज इसकी व्याख्या न कर "नां बात बिरानी कैये, नां ऐचां तांनी सैये" का ही अनुसरण करना है, क्योंकि यदि आज यहां इस प्रान्त निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चर्चा हो भी तो पाठक खीजकर यही कहेंगे यह क्या "गङ्गा की गैल में मदार की कथा" शुरू कर दी ! "सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ" की तरह यहाँ भी "कोऊ कै कऊँ की, मगन कैं मऊ की" वाली बात है। अस्तु, "एक हैसां सत्तनारान दो हैंसा लेहैं ते करकें" की भाँति "बात का बतग्गरा" न बना सिर्फ इतना कहकर कि एक दिन ऐसा आयगा और अवश्य आयगा जब आज के विद्वान विचारक भी इस प्रान्तीय आन्दोलन की गति-विधि पर सहृदयता-पूर्वक विचार-विमर्ष कर इसके पक्ष में आकर इसे युग-धर्म सांस्कृतिक यज्ञ कहकर भारत-माता के पुनीत चरणों में अपने अपने प्रान्तों की विनीत श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर उसके कोष को अक्षय और अनन्त बनाएँगे और तब संसार चकित नेत्रों से इस "जमात की करामात" को देखेगा और कहेगा—"जलै-कुलै-मिलतन झेल नइं लगत।" बस, आइये अब अपने उसी ठिकाने से चलें। हाँ तो इस जागृति को देख अपने राम ने भी "लग गव तौ तीर नइँ तुक्का" का आश्रय ले "बाव देखें तिबाव लगत" का अनुसरण किया और अपने सहयोगी भाई रामसेवक जी राउत "प्रवासी" की दलाली से पूज्य श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी जो अब हम कुण्डेश्वर के यात्रियों के 'आदरणीय दादाजी' बन गये हैं—का अनुग्रहपूर्ण स्नेह पा लिया। कह सकते हैं कि—"बिलइया के भाग्गन सींको टूट्त"। जो भी हो उन्होंने मुझे अपना स्नेह देकर अपनाया और दिया बुन्देलखण्डी शब्द और लोकोक्तियों के संग्रह का काम। मैंने भी "छिग्गरी पकर के पोंचा पकरत" की आशा पर उनके इस आदेश को शिरोधार्य किया जिसमें पीछे से बड़ा आनन्द मिल रहा है और अब 'ऊँगन्ती उर बिल्ली पाई" वाली बात हो रही है। इसी सिलसिले में आदरणीय राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, कवि श्रेष्ठ पूज्य, श्री पूज्य सियाराम शरण जी गुप्त के पूर्व प्राप्त अनुग्रह-पूर्ण वातावरण और सहाय्य तथा श्री वृन्दावन लाल जी वर्मा तत्कालीन सभापति बुन्देलखण्ड साहित्य मण्डल के प्रोत्साहन भी मिले और फिर इस प्रकार यह "सात-पाँच की लाकड़ी एक जने को बोझा" या "नाव मोरो गाँव तोरो" के अन्त अब तक "कण्डी-जोरे बिटा जुर जात" की भाँति १८०० ग्राम कहावतों का संग्रह कर्ता बन बैठा हूँ, जिनकी एक झाँई मात्र इन शब्दों के साथ आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

बुद्धि-अनुभव के प्रशंसावाद में कहा जाता "अक्कल बिन पूत कठैंगर सो, अक्कल बिन बिटिया सी"। यहां की घरेलू भाषा में 'कठैंगर' शब्द होता है बेड़ो, या अड़गड़ा जिसे किवाड़ बन्द कर 'जंजीर' लगाने के बाद भीतर की ओर से दर एक ओर की दीवार से निकालकर किवाड़ों हुए दूसरी तरफ की दीवार में बने हुए छेद देते हैं, जिसे शायद पढ़े-लिखों की भाषा में "अर्गल कहा जा सके। यह लकड़ी का दरवाजे की चौ कुछ बड़ा मोटा सा डण्डा होता है। और ढेंगु है भागने वाली गायों के गले में बांधकर आगे बीच डाल दिया जानेवाला लकड़ी का कुछ मोटा २-२॥ हाथ लम्बा टुकड़ा जो भागने पर जानवरों में घाव बना देता है—क्या बुद्धिवाद की प्रशंस हुए अनजान स्त्री पुरुष के लिए निर्जीव, जड़ ढेंगु कठैरी से भी बुरा और कुछ कहा जा सकता है। ऐसा हतभागा होगा जो इस परिस्थिति में भी बनकर रहना चाहेगा ?

ग्रामों में आर्थिक और सामाजिक संकटों के व वहां का निवासी किस गम्भीर सहन-शीलता और सहिष्णुता में अपने आशावाद को ले चलता है झांकी आप इस कहावत में देख सकते हैं— उलीचा कौ चौमासो, दो मों मोरा को ब्याव"। लोकोक्ति के प्रथम भाग के अनुसार हम आपको एक स्थान पर ले चल रहे हैं जहां घन-घोर वर्षा हो रही ऐसे ही समय में किसी एक ग्रामीण के घर में चा से पानी टपक रहा है, घर में कहीं "ठांड़ें ठौर नहीं स्त्रियां अपनी घर-गृहस्थी को बचाने के लिए इस लिए फिर रही हैं। उनकी दृष्टि में 'जितेक छा कौ नइयाँ जितेक टपका कौ है" और वह सब मालिक से इन सबके सुधारने के लिए बिगड़ रही किन्तु गृहपति के पास अपने खेती के कामों की डजमून-में दम मारने की फुरसत नहीं है। उसके लि 'श्री मिथिलाधिप के बरबाग में बारहु मास बसन्त' की भांति सदैव ही "अगनौआ की बदर मची" इसलिए कि वह जानता है "धीरे बंज, डकलाय खेती के कामों में वह जितनी तेजी से काम लेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही फ़ायदे में रहेगा। यह व्यापार-दुकानदारी थोड़े है जो धीरे धीरे सोच-विचार कर की जाय, यहां बुद्धिवाद की जगह कर्मवाद ही सफल होगा, क्योंकि यदि वह आज अपने काम में ढील देता है तो फिर "डार कौ चूकौ बानर अषाढ़ कौ चूकौ किसान" के अनुसार वह कभी पनप नहीं सकता। किसान के लिए आलस बुरा है—कहा है—आलस नींद किसानें आसेचोरै आंसे खाँसी। ऐसी दशा में वह यही सब सोच-विचार करने के बाद अपने चित्त को खेती में लगाता है और इस घर में भरे हुये पानी को बाहर उलीचता-फेंकता घरवालों से कहता है उँह—'चार उलीचा कौ चामासौ.....'। समय-समय पर अपने काम में आनेवाली अड़चनों परेशानियों को भी वह इसी आधार पर क्षणिक बताकर उपेक्षा की दृष्टि से देखता हुआ जीवन-यापन करता है, तभी तो राष्ट्र-कवि ने गाया है—"साधारण रोगों को रोग, नहीं मानते हैं वे लोग"।

और कहावत के दूसरे चरण "...दो मो मोरा कौ ब्याव" के अनुसार हम अपने को उस गृहस्थ के घर में पाते हैं जिसके यहां किसी बेटा-बेटी का ब्याह है—आनन्द की शहनाई बज रही है, किन्तु ब्याहता घर में इतनी शक्ति-सम्पन्नता नहीं जो वह अपने यहां आये हुए अतिथियों का सेवा-सत्कार कर सके। सामाजिक रूढ़ियों से भी वह कम चिन्तित नहीं है, दान-दहेज, लेन-देन-भोज पक्तियां सभी उसे परेशानी में डाल रही हैं, बर, बराती, और समधी के साथ-साथ पण्डित, पुरोहित, नाई ढीमर और बाजदार ही नहीं, नाते रिश्ते में आई हुई घर की बहू-बेटियां सभी आज उससे अपने अपने नेग के लिए झगड़ रहे हैं। कोई रुपयों पैसों के लिए तो कोई गहने कपड़ों के लिए और कोई अच्छी-अच्छी सुस्वादु व्यञ्जनों की दावत के लिए उस पर दबाव डाल रहे हैं। गांव के पंच लोग भी आज उसे शक्ति भर दबा लेना चाहते हैं। आज तो वह सभी के लिए 'गरीब की लुगाई सब की भौजाई" बन रहा है, किन्तु वह "अनी चूकें हजार वर्ष की उम्मर" कहकर सोच लेता है···'दो मों मोरा को ब्याव" उसने तय कर लिया है कि आज उसे छोटे-बड़े सभी की सुनी—अनसुनी कर नीचा सिर किये जाना है। किसीकी बातों के तैश में आकर उसे अपना भविष्य नहीं बिगाड़ना, अस्तु जहां उसके ऊपर कोई छींटाकशी या दबाव पड़नेवाली बात आती है वहीं वह अपना पेट-पीठ दिखाता हुआ टेढ़ा मुँह कर चला जाता है और जानते ही हैं कि—"सीरौ ताते खों खा जात;" और इस प्रकार उसे अपनी शान्ति और गम्भीरता पर विजय मिलती है।

जहां हमारे धर्म ग्रन्थों में कामना की जाती है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चित दुःख माप्नुवेत" वहीं हमारी ग्रामीण जन-श्रुतियां भी 'आप खाय हरक्कत, बांट खाय बरक्कत' कहकर न केवल सब के सुखों की कामना ही करती हैं, वरन अपना निश्चयात्मक निर्णय देती हैं। यदि अपने अकेले अकेले खाओगे तो हानि ही हानि है, सर्वनाश को प्राप्त होओगे, किन्तु यदि सब एक दूसरे के साथ हिल मिलकर सबके दुख-सुख का उपभोग करोगे तो सदा वृद्धि होगी।

आप सम्भवतः उकता रहे होंगे, अस्तु अब आपसे "अछै काहै सेर में पौनियइं नइंकती" की लोकोक्ति के साथ जिससे हमारे यहां के प्राचीन गृह-उद्योग कताई की बहुलता का परिचय मिलता है—एक कातनेवाली अपनी दूसरी कातनेवाली साथिन से कहती है, बहिन, अभी क्या है अभी तो सेर भर पौनियों में से एक ही पौनी नहीं कती है और इतना कहने के साथ वह फिर "कातौगी तौ पैनोंगी नइं नङ्गी-नङ्गी डोलौगीं" कहती हुई अपने "हतिया" को चलाने आ जाती है और उन कतनारियों की इसी गति पर कवि श्री रामप्रसाद जी शर्मा 'उपरीन' लिख सके हैं—चरखे जानें तोय का आजकल के बाल। तो बल झांसी में बनो कतनारी कौ ताल॥

इसमे पता चलता है कि एक समय था जब हमारे यहाँ घर-घर कताई का काम होता था, तभी न यह जन-श्रुतियां चलीं हैं, क्योंकि एक-दो या सौ-पचास का काम लाखों व्यक्तियों की व्यवहारिक जन-श्रुति कभी भी नहीं बन सकता। इन शब्दों के साथ मैं आपसे यह कहता हुआ कि हमारा ग्राम-साहित्य अक्षय-अनन्त और बहुमुखी है, जिसके उत्थान को प्रकाश में लाने की यह उपयुक्त वेला आ पहुँची है, जिसे हमें हाथ से नहीं जाने देना चाहिए क्योंकि फिर 'उठी हाट आठये रोजै लगत' की उक्ति प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक सूचनाएं

१—बन्धुवर श्री सिद्धराज ढढ्ढा जयपुर से लिखते हैं—

अभी तक राजस्थान में एक भी दैनिक पत्र नहीं है। यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि राजस्थान और उसकी समस्याओं के प्रति पूर्ण सद्भावना रखते हुये भी दूर से निकलनेवाले पत्रों के लिये यह कठिन है कि वे इस प्रदेश की समस्याओं को पूरे रूप में और समय पर प्रकाश में ला सकें।

इसी उद्देश्य से राजस्थान से एक दैनिक पत्र निकालने का आयोजन किया जा रहा है। जयपुर राज्य से 'लोकवाणी' के नाम से दैनिक पत्र निकालने की इजाज़त भी मिल गई है। दैनिक पत्र के लिये आवश्यक अखबारी कागज का 'कोटा' भी भारत सरकार से मिल गया है।

२—बांढिया एण्ड कम्पनी लि० अजमेर के गवर्निङ्ग डाइरेक्टर लिखते हैं—

सन् १९३५ से प्रकाशित होने वाली पेंग्युइन और प्येलिकन ग्रन्थमाला ने इङ्गलैंड में कला, साहित्य और विज्ञान के अच्छे से अच्छे ग्रन्थों को सस्ते से सस्ते दामों में सर्व साधारण के लिए सुलभ कर देने की हद कर दी है। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी में इस प्रकार का आज तक कोई प्रयत्न ही नहीं हुआ।

अपने इसी प्रकार के बहुत से विचारों से प्रेरित होकर हम प्रकाशन की एक योजना हिन्दी-भाषी जनता और हिन्दी के विद्वान लेखकों एवं साहित्यसेवियों के समक्ष रखने का साहस कर रहे हैं।

सबसे पहिले तो हम चयनिका नाम की एक मासिक पत्रिका निकाल रहे हैं। इसकी तैयारी हमने शुरू करदी है। इस पत्रिका में हिन्दी भाषी जनता को देशी-विदेशी सामयिक पत्रों में प्रकाशित उपयोगी और ज्ञान-वर्द्धक लेखों का सारांश पढ़ने को दिया जायेगा। अंग्रेज़ी में इस प्रकार के कितने ही चयनिका, मासिक, प्रकाशित हो रहे हैं; जैसे—लिटरेरी डाइजेस्ट, वर्ल्ड डाइजेस्ट, रीडर्स डाइजेस्ट, ओमनी बुक आदि।

उसके प्रत्येक अंक में विविध विषयों के लगभग छोटे लेख तथा देशी अथवा विदेशी भाषा की किसी प्रसिद्ध और समयोपयोगी पुस्तक का परिचय भी रहे क्राउन १६ पेजी किताबी अथवा उससे कुछ बड़े रियल साइज़ के १०० पेज का ठोस मैटर हम पाठकों देना चाहते हैं। फिर भी उसका वार्षिक मूल्य चार रुपया और प्रति अंक का मूल्य ।।) होगा।

हम नई किताबें नाम से एक दूसरे मासिक के प्रकाशन की तैयारी भी कर रहे हैं, जिसे हम आगे चल साप्ताहिक कर देना चाहते हैं। पुस्तक-व्यवसाय समस्याओं पर विशेषज्ञों और अनुभवी पुस्तक-विक्रेता के लेखों के साथ साथ प्रति मास के अंक में आग महीने में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की सूची उनका संक्षिप्त परिचय रहेगा।

क्राउन ४ पेजी ३२ पेज के इस मासिक का ३ रु० वार्षिक और एक प्रति का मूल्य ६ आना होग पुस्तकों की प्रकाशन सूचना प्रकाशन की तारीख के सप्ताह पहले तक प्राप्त होते रहने से सदा मुफ़ रहेगी, फिर चाहे वह प्रकाशक इसका ग्राहक हो अ न हो।

३—हिमालय—मासिक साहित्य—सम्पादक शिवपूजन सहाय, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री राम सिंह 'दिनकर'

'हिमालय' में प्रतिमास १०० पृष्ठ होंगे और कविता, कहानी, स्केच, एकांकी नाटक, आलोच और सामयिक विचार-धारा का अलबम होगा। इस वार्षिक मूल्य १०) और प्रति पुस्तक का एक रु होगा। पहली पुस्तक बसंत पञ्चमी को प्रकाशित जा रही है।

४—युगवाणी—मासिक साहित्य—संपादक जगदीश एम० ए०। प्रदीप कार्यालय रानी बिल्डि विट्ठलभाई पटेल रोड बम्बई से युगवाणी नामक मासिक साहित्य के रूप में पुस्तकमाला प्रकाशित वाली है। इसमें देश-विदेश की संस्कृति पर समन्वयम लेख कहानियां एवं कविताएं रहेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़ाद हिन्द सेना

श्री श्रीधर 'पंकज' कुल श्रेष्ठ

कसी बेड़ियों में जवानी सिसकती—
स्वयं दासता की कहानी सिसकती—
बढ़े देश ख़ुद मिट प्रलय को बुलाने
बसाने कहीं 'नागासाकी' की बस्ती !

वहाँ जीत बन राख-अम्बार डोले,
महाकाल ने ज्यों प्रलय-द्वार खोले।
उगल ज्यों धुएँ की भरी आग-लपटें
चुनौती प्रलय को दे संसार बोले !

महा शान्ति की कौन बातें सुनाए,
भला, कौन विध्वंस से पग हटाए।
फहरती ध्वजा लाल, ख़ूनी शिखर पर
विजय छोड़कर कौन युग-प्रीति लाए ?

हृदय में भरी रक्त-सरिता लहरती,
नयन में जलधि बन निराशा घहरती।
किनारा नहीं पूछती है जवानी
बढ़ाती क़दम नित कुचलती सिहरती !

रगों में लहू है, लहू में रवानी,
रवानी क़दम में, क़दम में ग़ुलामी
ग़ुलामी बँधी है कसी बेड़ियों से
कसी बेड़ियों में फँसी है जवानी !

इसी प्राण में है दबी क्रान्ति-ज्वाला,
इसी वक्ष पर सन् बयालिस सम्हाला।
इसी हिन्द ने अपने लालों के सिर को
पहिन ली ग़दर में महा-मुण्ड-माला !

इसी देह में दासता की निशानी
मलाया में फूटी लिए आग-पानी।
चली जीतने हिन्द की राजधानी
पगों में लिए नव-सृजन की कहानी !

चली हिन्द को युग का युग-मत बनाने,
चली, फन्द माता के क्षण में छुटाने।
गिरा एक क़तरा लहू का ज़मीं पर
वहीं एक आज़ाद भारत बसाने !

मगर राह में सुख-पुकारों ने रोका,
ग़ुलामी की ऊँची दिवारों ने रोका।
बढ़ी तोड़ जब ढोंग मन्दिर के भारी
तो मस्जिद की ऊँची मिनारों ने रोका !

चली फ़ौज बर्मा की हद तोड़ निकली,
नदी ज्यों हिमालय का दिल फोड़ निकली !
चली, ले शिराओं में लोहू की गर्मी
नयन-जल से सम्बन्ध को जोड़ निकली !

रुकी सैन्य पाकर खुला द्वार अपना,
हुआ सच सतत साध में नित्य तपना।
ग़ुलामों की दिल्ली, करे कौन स्वागत
पिन्हा दीं वे कड़ियां बता हार अपना !
करे क्या ! ग़ुलामों का शृङ्गार है यह,
करे क्या ! ग़ुलामों का अधिकार है यह।
बँधी मौन मां जब कसी शृङ्खला में
नहीं है क़िला, जेल-दीवार है यह !

उठी कँप धरित्री, कँपा मूक अम्बर,
कँपी लाल दिल्ली, कंपा विश्व थर-थर।
हिले देख बलिदान की यह कहानी
मनुज रक्त-रंजित दिवालों के पत्थर !

जलधि बांध पाया न अपनी रवानी
मनुज से रुकी कब प्रलय की कहानी !
भला, जीर्ण-जर्जर घिसी बेड़ियों में
कभी बंध सकी है उभरती जवानी !

हिली राज्यसत्ता, ज़माना उठा हिल,
क़िला लाल डोला, दिवालों में हलचल।
लगा जैसे वीरों को अभ्यर्थना को
अडिग, मूक पत्थर स्वयं जायंगे गल !

सभी सिंह हुंकार कर चल पड़े जब,
प्रकम्पित दिशाएँ, अचल हिल पड़े तब !
उठे गूँज 'जय हिन्द', के जब तराने
क़िले के सबल द्वार ख़ुद खुल पड़े तब।

हुआ स्वर कि सांसों की गति मोड़ दो तुम,
हुआ स्वर कि ख़ूनी क़िला तोड़ दो तुम
उठा घोष दिल्ली से लन्दन में गूंजा—
'हमारा है भारत; इसे छोड़ दो तुम !!'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज़ाद हिन्द सेना' के सिपाहियों के प्रति !

श्री देवेन्द्र एम० ए०

तुम आह मत करो कि प्राण ! आह मत करो ।
शुभ राह भूलते हैं क़ौम-कारवान जो
तुम उस दिशा के पुण्य-चिह्न हो, निशान हो ।
बलिदान की कथा न थी, थी बन्द लेखनी ;
तुम चल पड़े, तो फिर चली वो रक्त में सनी ।
सुगर्व से लिखा रहे इतिहास देश का ।
तारों से तुम सजा रहे आकाश देश का ।
फिर क्या हुआ जो उम्र जेल में व्यतीत हो,
औ' प्राण खोके आज गर्वमय अतीत हो,
फिर क्या हुआ जो दुश्मनों के दिल के ख़्वार हो ;
फिर क्या हुआ जो गोलियों के तुम शिकार हो ;
क़ौम पूजती है तुमको, तुम्हें देश पूजता
औ हर ज़बान कह रही कि मेरे देवता !
अभिमान देश के !
बरदान देश के !

तुम दुश्मनों के ज़ुल्म की परवाह मत करो ।
तुम आह मत करो कि प्राण ! आह मत करो ।
यदि राजद्रोह आज देश में गुनाह है,
अपराध आज प्रिय स्वतंत्रता की चाह है ।
तो कौन व्यक्ति जो न गर्व से यही कहे—
'मंज़ूर जुर्म, यदि न ज़िन्दगी भी यह रहे ।'
हर एक दिल 'स्वतंत्र हिन्द' का सदस्य है
हर एक भारती सुभाष का सुभक्त है
तो 'रक्त-दुर्ग' आज यह समस्त देश हो !
तो रक्त-भूमि आज यह धरा अशेष हो !
पर अपने ज़ुल्म और अपने घोर पाप को !
हिन्दोस्तानियों के इस कठोर शाप को !
सुपुण्य मत कहो कि तुम वरदान मत कहो
है दासता ग़ुलाम को कल्याण ! मत कहो ।
प्रत्यक्ष विश्व के—
औ' सत् भविष्य के ;
अन्याय-हित तो न्याय को गवाह मत करो ।
तुम आह मत करो कि प्राण ! आह मत करो ।
यदि क़ौम की ज़बान का तुम्हें यक़ीं नहीं,
तो ख़ुद तुम्हारी ही ज़मीन, आसमाँ नहीं ।

कहदें कि बदनसीब और लोक-निन्द्य में—
मजबूर औ' ग़ुलाम निःसहाय हिन्द में—
यह क्या न राजभक्ति आज देश-द्रोह है ?
औ' क्या न राजशक्ति पाप और मोह है ।
तो वे कि जो स्वतंत्रता के दीप ले चले
औ' वे जो क्रान्ति के अमर प्रतीक बन जले
हैं कैसे दण्ड्य वे ?
हैं लोक-वन्द्य वे !
तुम उनके ख़ून से अनीति राह मत करो
तुम आह मत करो कि प्राण ! आह मत करो
फिर वह अनन्तकाल जो अदृश्य देखता
ये वर्तमान, भूत औ भविष्य देखता—
औ वह असीम शून्य जो अगण्य आँख ले
उन वृद्ध सूर्य, चन्द्र की प्रमाण-साख ले—
वे कह रहे हैं तुमसे आज भाग्य साथ है,
यश जीत साथ है, महान शक्ति हाथ है
पर दुर्बलों के साथ ज़ुल्म-ज़ोर मत करो
इतिहास को डरो कि कुछ भविष्य को डरो
छूटे न दाग़ जो कभी वह बात मत करो
जब हो रहा विहान तो कुरात मत करो ।
निज स्वार्थ के लिये !
अब व्यर्थ के लिये
जो बह चुका प्रतीप वह प्रवाह मत करो ।
तुम आह मत करो कि प्राण ! आह मत करो
ये हिन्दू कह रहे हैं, मुसल्मान कह रहे—
रजपूत कह रहे हैं, सिख-पठान कह रहे—
यह क़ौम कह रही है, हर ज़बान कह रही—
औ भारतीय वीरता की शान कह रही—
'वे देश-भक्त हैं कि देश उनका भक्त है,
उनके लिये शरीर, प्राण से विरक्त है !'
अब प्राण-हव्य-होम के सुसाज सज रहे !
वैधव्य कामना लिये सुहाग सज रहे !
उनके न पहले आज जो जवानियाँ मिटीं,
तो जान लो कि क़ौम की कहानियाँ मिटीं ।
वे एक-दो नहीं कि क़ौम उनके साथ है
चालिस करोड़ की ज़मीन, व्योम साथ है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिदान याद करके कौम पाप धो रही
औ रक्त-कुण्ड-स्नान को सुव्यग्र हो रही
है हार याद उसको जो कि प्लासी पर मिली
औ' वीर लक्ष्मी को वीर झाँसी पर मिली
उसको गदर की याद है, जलियान बाग़ की—
भूली नहीं है वह अगस्त नौ को आज भी
तुम खूब कर चुके
हम खूब सह चुके
न भूले क़ौम, फिर वही गुनाह मत करो।
तुम आह मत करो कि प्राण! आह मत करो।

विजया

'श्री करीत'

[१]

उतरी धरती पर आज उषा
मंजुल मंगल पट परिधाना।
जागी चंचल बन विहग राशि
कलरव लेकर सुख से साना॥
बन भी डोले, उपवन डोले,
फैला फूलों का मुसकाना।
विकसी मतवाली हरियाली
जिसने निज गौरव पहचाना॥
जीवन सादा, यौवन सादा,
ममता का आकर्षण सादा।
भव ने अपने पुरुषोत्तम में
देखी पौरुष की मर्यादा॥

[२]

उन्नत हो आज हिमालय ने
सागर का लहराना देखा।
सागर ने सुख से लहराकर
विक्रम का यह बाना देखा॥
भारत ने निज सेनापति के
झण्डे का फहराना देखा।
वसुधा ने भी जय के पथ में
दुःखों में सुख पाना देखा॥
जीवन सादा, यौवन सादा,
ममता का आकर्षण सादा।
भव ने अपने पुरुषोत्तम में
देखी पौरुष की मर्यादा॥

[३]

जब दानवता थी मुँह बाये
उमड़ी पशुता जब मनमानी।
हुंकार उठा जब पागलपन
खुल खुल खेले जब अभिमानी॥
जब रक्त रंजिता धरा हुई,
जब मस्त हुये सारे प्राणी।
तब नव यौवन का रोष लिये,
उतरी विजया बन कल्याणी॥
जीवन सादा, यौवन सादा,
ममता का आकर्षण सादा।
भव ने अपने पुरुषोत्तम में,
देखी पौरुष की मर्यादा॥

[४]

घर घर हृदयों में विश्ववन्द्य,
पौरुष का आराधन जागा।
संगठित क्रान्ति का पक्ष उठा,
वीरों का सुख साधन जागा॥
परिपूर्ण विश्व कल्याण युक्त,
कर्तव्यपूर्ति का प्रण जागा।
जागा, जागा उत्थान लिये,
मंगलमय सर्वार्पण जागा॥
जीवन जागा, यौवन जागा,
ममता का आकर्षण जागा।
जागा भव के पुरुषोत्तम में
पौरुष का सम्वर्द्धन जागा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५]

शंख—ध्वनि करके सेनापति,
बोले चिर जीवे महाक्रान्ति ।
सज्जित नवयुवक पुकार उठे,
जीवे युग युग तक महाक्रान्ति ॥
ऊँची हो होकर ध्वनि गूँजी,
बस क्रान्ति क्रान्ति बस महाक्रान्ति ।
धरती के पावन अंचल से,
मिट गयी भ्रान्ति, मच गई क्रान्ति ॥
जीवन जागा, यौवन जागा,
ममता का आकर्षण जागा ।
जागा भव के पुरुषोत्तम में,
पौरुष का सम्वर्द्धन जागा ॥

[६]

अपना झंडा ऊँचा करके,
अन्तर में बल बलिदान लिये
अत्याचारों पर सिंह पुरुष,
टूटे साहस सम्मान लिये
इस सर्वमेध के वैभव से,
जागी कविता नवगान लिये
प्राणों की अभिलाषा जागी,
मर मिटने का अभिमान लिये
जीवन जागा, यौवन जागा,
ममता का आकर्षण जागा
जागा भव के पुरुषोत्तम में,
पौरुष का सम्वर्द्धन जागा

नेता जी के प्रति

श्री छोटेलाल भारद्वाज

मां की कोख उजाली करके ओ माई के लाल !
कहां छिपाया तुमने अपना चन्द्रभाल-सा भाल ?

अचल साधना में तपकर आजादी की मनुहार
तुम नवयुग के प्रबल भगीरथ भेज चुके इस पार,
जिसके महामंत्र को छूकर जन चालीस करोड़
एक संग हुंकार उठेंगे जड़ जंज़ीरें तोड़
सर्व प्रथम आजाद हिंद के सेनानी सम्राट !
फड़क रहे भुजदण्ड तुम्हारी हुंकारों की बाट ;
सिंज कर पिरो पिरो कर मां की जोड़ अधूरी माल
कहां छिपाया तुमने अपना चन्द्रभाल-सा भाल ?

\+ + +

सब कहते हैं, अस्त हुए हो तुम भारत के 'चंद्र'
किन्तु तुम्हारी ज्योति हृदय पर छाई आज अमन्द;
पराधीनता का पिशाच जिस दिन न सकेगा झांक,
भारत मां अपने रत्नों की क़ीमत लेगी आंक;
प्रलयंकर व्यक्तित्व तुम्हारा चमकेगा उस
पुत्रों के शीशों से शोभित होगी मां की
आज भड़कते विस्फोटन में फिर चिनगारी
कहां छिपाया तुमने अपना चन्द्र-भाल-सा

\+ + +

तुमने खोल दिखादी दुनियां को दासों की
भक्ति देश की माता की चिर स्वतंत्रता-अ
बिना कवच के शूर सिपाही, बिना ताज के
तुम चालीस कोटि जन-मन के जीवन के
आज़ादी के क्रान्ति दूत जय, जय राका के
जय 'सुभाष हो अमर तुम्हारा युग युग तक 'ज
उन्नत वदी, चरण में भर कर इन्क़लाब की
मां की कोख उजाली करके ओ माई के
कहां छिपाया तुमने अपना चन्द्रभाल-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

विचार और वितर्क——लेखक पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक—सुषमा साहित्य मन्दिर, जवाहर गंज, जबलपुर; मूल्य ३)

प्रस्तुत ग्रन्थ विभिन्न समयों पर लिखे गये १८ निबंधों का संग्रह है। उनके शीर्षक इस प्रकार हैं :—

१—वैष्णव कवियों की रूपोपासना, २—समीक्षकों की समीक्षा, ३—कवि के रियायती अधिकार (हिन्दी के आधुनिक छन्दों पर) ४, प्रेमचन्द का महत्व, ५—'प्रसाद' जी की 'कामायनी' ६——द्विवेदी जी की देन—शैली, ७—हिन्दी का भक्ति साहित्य, ८—नई समस्याएँ, ९—'दादू', १०——मधुर-रस की साधना, ११—संस्कृत साहित्य में कलहँस; १२—शव-साधना, १३—सत्य का यह महसूल, १४—गतिशील चिन्तन, १५——पंडितों की पंचायत, १६——जब कि दिमाग खाली है, १७——हमारी संस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध, १८—सहज भाषा का प्रश्न।

उपरोक्त निबन्धों में कुछ तो ग्रन्थों की समालोचनाएं हैं और कुछ बहुत पहले के लेख। इन सभी निबन्धों के अन्दर से लेखक के एक विशेष दृष्टिकोण के विकास का पता चलता है, और वह दृष्टिकोण है—प्राचीन और नवीन के प्रति समय सापेक्षता; विषय को उसके काल, उसकी परिस्थिति और उसे माननेवालों की परम्परा के अन्दर से जाँचना। इस जांच में——विषय से जीवन्त सम्बन्ध होने के कारण कहीं कहीं पर लेखक अपने विषय के सौन्दर्य से अभिभूत हो गया है। इससे जहां लेखक का विषय चमक उठा है, वहीं उस विषय के और पहलू ओझल भी हो गये हैं। पर यदि आलोचना शैली पर सतर्क दृष्टि रखी जाय तो पता चलता है कि अपने विषय के और पहलुओं को ओझल कर देना आलोचक का अभिप्रेत नहीं है और वह एक दम से गायब भी नहीं हैं; बल्कि लेखक का अभिप्रेत है अपने विषय के सौन्दर्य को स्पष्ट करना; इसीलिये वह अपने विषय के असुन्दर अङ्गों को 'बैक ग्राउण्ड' में हलके रंगों के साथ डाल देता है। उदाहरण के लिये 'प्रसाद' की 'कामायनी' को ले सकते हैं। 'प्रसाद' जी की 'बुकिशनेस' को आलोचक जानता और समझता है। 'कामायनी' के अन्दर भी उसका कुछ अंश है इसे भी लेखक समझता है; पर इस कमी के बावजूद भी 'कामायनी' आधुनिक युग की हिन्दी का एक श्रेष्ठ काव्य है; उसमें काफ़ी सौन्दर्य और आकर्षण है। इसलिये लेखक ने हल्के ढङ्ग से कहा है—"लोगों की ऐसी धारणा हो गई है कि प्रसाद जी के जीवन-तत्व और वर्ण्य-विषय में उनके प्रत्यक्ष अनुभव और यथार्थता (एक्युरेसी) की अपेक्षा ग्रन्थगत (बुकिशनेस) और रूढ़ि समर्थित ज्ञान की ही अधिकता है। यह धारणा भी ग़लत है, कम से कम 'कामायनी' का पाठक इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता।" (पृष्ठ ७४) और फिर पृष्ठ ७६ पर आलोचक कहता है——"कामायनी' का कवि जीवन को दूर से देखता है? वहीं आलोचक चतुरता के साथ कह देता है कि 'कामायनी' का कवि उस चतुर दर्जी की भांति नहीं है, जो चुस्त दुरुस्त कपड़ा तैयार करता है, बल्कि वह उस दर्जी की तरह है जो ऐसा झूल तयार करता है कि उसमें सभी आदमी ढँक जाँय। और पृष्ठ ७७ पर तो लेखक ने साफ़ कह दिया है 'कामायनी' की दुनिया फिलासफर की दुनिया है, जिसमें सभी समस्याओं की तह तक पहुँचने की कोशिश तो है, पर इसी कोशिश के कारण समस्याओं की अपील ज़ोरदार नहीं हो सकी।" और 'बुकिशनेस' को इससे ज़्यादा और कैसे कहा जा सकता है? जब कि द्विवेदी जी का तरीक़ा है अप्रिय सत्य को भी यथासम्भव प्रिय तरीके से कहना। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि द्विवेदी जी निर्मम सत्य नहीं कहते हैं। द्विवेदी जी "कवि के रिआयती अधिकार" में कहते हैं—"यह समझना बड़ी भूल है कि हमारी भाषा का संस्कृत के साथ एकात्मक सम्बन्ध है।" (पृ० ३९)…"हिन्दी के अपने स्वर हैं, अपने छन्द हैं, अपने लय हैं। अगर संस्कृत उच्चारण के साथ हिन्दी का गठबन्धन किया जायगा तो उसकी वही अवस्था होगी जो वैदिक उच्चारण के साथ लौकिक संस्कृत छन्दों के गठबन्धन से हुई। वह क्रमशः जीवित भाषा से दूर होती जायगी और अन्त में मृत हो जायगी।" (४०) यही नहीं इतिहास के एक निर्मम सत्य को भी द्विवेदी जी ने "कलेन परिचीयते" से समझा है। पृष्ठ १७९ पर उन्होंने कहा है—"आज जो हिन्दुओं की दुरवस्था है, वह है तो उसी बहु-विघोषित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समृद्धि-कालीन (गुप्तकालीन—ले०) सभ्यता का परिणाम। कैसे कहूँ कि वह अच्छी थी, जब कि उसका परिणाम स्पष्ट ही बुरा नज़र आ रहा है।" इतिहास के विद्यार्थी अच्छी तरह जानते हैं कि गुप्तों के काल में ही भारतीय साम्राज्यवाद अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। और छठवीं शती से ही भारतीय समाज का श्रेणी-संघर्ष साम्प्रदायिकता की ओट में चला जाता है। धीरे धीरे भारतीय जनता के दो स्तर-भेद होने लगते हैं। द्विवेदी जी के शब्दों में भी—"मुसलमान-आगमन के अव्यव हित पूर्वकाल में डोम-हाड़ी या हलखोर आदि जातियां काफ़ी सम्पन्न और शक्तिशाली थीं। मैं यह तो नहीं कहता कि ग्यारहवीं शताब्दी के पहले वे ऊँची जातियां मानी जाती थीं, पर इतना कह सकता हूं कि वे शक्तिशाली थीं और दूसरों के मानने-न-मानने की उपेक्षा कर सकती थीं।" (पृ० ९२) और इन जातियों का धर्म विश्वास या तो बौद्ध था या उसी का कोई रूप। इन धर्मों को और इनके माननेवालों को शिव के त्रिशूल से (उस समय के एक प्रकार के फैसिज़्म से) ख़त्म किया गया। ७ वीं ८ वीं शती तक इन जातियों को ग़रीबों और पतितों की श्रेणी में डाल रखा गया था। इसीलिये ८ वीं शती में जब सामाजिक क्रान्ति का सन्देश लेकर हिन्दुस्तान में इसलाम का प्रवेश हुआ और सामाजिक ज़ुल्म की शिकार सैकड़ों जातियों ने आशा भरी नज़रों से उसकी ओर देखना शुरू किया तो उस युग के सामन्तों और उच्च श्रेणी के स्थिर स्वार्थ की रक्षा के लिये ब्राह्मणों ने अपने शास्त्रों की सङ्गतियां लगानी शुरू कीं और उसी के लिये संस्कृत-साहित्य में टीका का युग आया। इसके सम्बन्ध में भी द्विवेदी जी ने कहा है—"देखते देखते टीका-युग का प्रभाव देश के इस छोर से उस छोर तक व्याप्त हो जाता है। महाराष्ट्र, काशी, मिथिला और नवद्वीप टीकाओं और निबन्धों के केन्द्र हो उठते हैं। शास्त्र का कोई वचन छोड़ा नहीं जाता है, किसी भी ऋषि की उपेक्षा नहीं की जा रही है, पर भयङ्कर सतर्कता के साथ प्रचलित लोकनियमों का ही समर्थन किया जाता है। इस नियम के विरोध में जो ऋषि वचन उपलब्ध होते हैं, उन्हें 'मनु' के साथ पूर्व पक्ष में कर दिया जाता है और उत्तर पक्ष सदा स्थानीय आचारों का समर्थन करता है।" (पृ० १७०) इस तरह हम यह देखते हैं कि द्विवेदी जी को सत्य के की दृष्टि प्राप्त है। उन्होंने सत्य को देख लिया है उसके लिये उनकी वाणी में अपील है, पर शायद लेखनी में वह अपील ज़ोरदार नहीं हो सकी है।

जहां तक भक्ति साहित्य और वैष्णव साहित्य सम्बन्ध है, उसकी आध्यात्मिक तथा साहित्यिक और उसके दो—सगुण और निर्गुण—धाराओं की जिक पृष्ठभूमि के साथ आलोच्य ग्रन्थ में दिखाई द्विवेदी जी की यह खूबी है कि जिस गति और के बल पर वह प्राचीन साहित्य में अधिकार रखते ही उनका प्रवेश अधुनिक साहित्य पर भी है। "प्रे का महत्व" इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक की खूबी रखा गया है। द्विवेदी जी ने प्रेमचन्द के सामयिक महान साहित्यकों के भेद को जिस खूबी के साथ किया है, वैसा ही उसमें सत्य भी है। उन्होंने "रवीन्द्रनाथ की कहानी पढ़कर पांच मिनट पन्द्रह मिनट सोचूँगा; शरतचन्द्र की कहानी सत्रह मिनट रोऊंगा, तीन मिनट सोचूंगा; चन्द की कहानी पढ़कर दस मिनट रोऊंगा, दस सोचूँगा।" (पृ० ५५)···"वे (प्रेमचन्द) का, वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके दुख व्यक्तिगत दुख नहीं समझते, उन पर चलाए गए वाणों से उतने नहीं तिलमिला जाते, न तो प्राप्त किये हुए सुखों का हम प्रगाढ़ आनन्द के अनुभव करते हैं और न दुखों से एकान्त अधीर जाते हैं। हम हमेशा सोचने लगते हैं कि क्या इस वर्ग का एक आदमी अपने किए का फल पा तो? या अपने सौभाग्य से बेड़ा पार कर तो? ऐसे तो बहुत हैं।" (पृ० ५६) "वर्ग व्यक्ति को देखना प्रेमचन्द की विशेष और संघर्ष में सहयोग के द्वारा ही शान्ति-प्राप्ति चरम साधना थी। उन्होंने संघर्ष को अस्वीका किया, पर यह सदा मानते रहे कि संघर्ष का संघर्ष से नहीं, सेवा और त्याग से, एक और सह हो सकता है।" (पृ० ६०) और प्रेमचन्द जी के तक इससे आगे जाना भी सम्भव नहीं था; उस वातावरण में इतनी ही बातें थीं; समाज में इत चिन्ता थी, भारतीय अर्थ-नीति का इतना ही वि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राजनीति का चरम लक्ष्य भी इतना ही था। किन्तु गोदान' में होरी का लड़का गोबर इसके आगे की भी च लेता है। और यह इस बात का सबूत है कि प्रेम- न्द जी गतिमय जीवित इतिहास के शक्तिमय सत्य थे। मचन्द को पढ़े बगैर आधुनिक समाज का इतिहास ाना ही नहीं जा सकता।

इस तरह 'विचार और वितर्क' से हम अपने भूत और वर्तमान को ख़ूबी के साथ संक्षेप में जान सकते हैं। किन्तु इतना ही होता तब भी हम उसे बड़ी बात न समझते। बड़ी बात है आलोचक की नई शैली। अब तक हिन्दी में आलोचना की ऐसी रचनात्मक शैली का विकास नहीं हुआ था, जिसमें काव्य की व्यञ्जना और ध्वनि हो, आलोच्य वस्तु के सर्वोत्तम के सौन्दर्य का प्रकाश हो और फिर भी हो सत्य के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा। हम यह सोचते हैं कि जैसे किसी विदेशी और ग़ैर हिन्दी भाषी विद्वान के हाथ में प्रेमचन्द को रखकर गर्व अनुभव किया जा सकता है, वैसा ही गर्व पं० हजारी प्रसाद जी की आलोचना को देकर भी क्या नहीं किया जा सकता?

—वैजनाथ सिंह 'विनोद'

साहित्य-वातायन—ले० श्री शिवनन्दन प्रसाद, एम० ए०; प्रकाशक, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा; प्रथम संस्करण; मूल्य १।); पृ० सं० १४५।

श्री शिवनन्दन प्रसाद की पुस्तक में 'अपभ्रंश और उसकी परम्परा', 'डिंगल साहित्य और पृथ्वीराज रासो', 'विद्यापति की काव्यधारा', 'जायसी का प्रेम काव्य', 'भक्ति साहित्य का पूर्व रंग', 'तुलसी का समन्वयवाद', 'जीवन, प्रकृति और साहित्य', 'हिन्दी साहित्य में रहस्य-वाद का विकास', 'प्रगतिशील साहित्य', 'गुप्त जी की प्रगतिशील भावना', 'महादेवी की काव्य-साधना', 'छायावाद और प्रगतिवाद', 'हिन्दी का वीर साहित्य', और 'प्रेमचन्द का गोदान' शीर्षक साहित्य-सम्बन्धी विषयों पर लिखे गए १४ लेख हैं। लेखक ने हिन्दी साहित्य के आदि काल से आधुनिक काल तक की सभी मुख धाराओं पर विचार किया है। अध्ययन करने के पश्चात लेखक ने निर्भीकता-पूर्वक अपने विचारों को लिपिबद्ध कर अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का परिचय दिया है। प्रगतिशील साहित्य, गुप्तजी, महादेवी, प्रेमचन्द आदि के विषय में हो सकता है और लोगों का लेखक से मतभेद हो, किन्तु उसके अध्ययन और मनन के सम्बन्ध में किसी का मतभेद नहीं हो सकता। लेख लिखने में प्रस्तुत सामग्री का भरपूर उपयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप लेखक ने 'प्रेमचन्द का गोदान' शीर्षक लेख में लिखा है: "होरी और धनियां का चरित्र स्थिर (Static) है। उनमें वाह्य और आन्तरिक अधिक परिवर्तन नहीं। समय के साथ वे नहीं बदलते।" अथवा लेखक ने 'गुप्त जी की प्रगतिशील भावना' शीर्षक लेख में लिखा है: "आधुनिक प्रगतिवाद समाज की निम्न श्रेणी के लोगों की सहानुभूति का दावा करता है। गांधीवाद में अछूतोद्धार-मूलक विचारों का बोल-बाला है।" आदि। यहां होरी के चरित्र और गांधी जी के प्रगतिवाद के सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं और हैं। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी लेखक से मतभेद हो सकता है, किन्तु तब भी लेखक के विचार स्वातन्त्र्य पर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि उसमें भद्दापन नहीं है।

प्रस्तुत लेखों में से अधिकांश 'साहित्य-सन्देश' में प्रकाशित हुए थे। किसी भी पत्र में लिखते समय, जब तक किसी लेखक की कृति को यथेष्ट स्थान न दिया जाय, विषय पर पूर्णरूप से विचार नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह के लेख अधिक सांगोपांग नहीं हैं और न विषय के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। इसलिए उच्चकोटि के आलोचनात्मक साहित्य में इसे स्थान नहीं मिल सकता। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया भी है कि लेख विद्यार्थी समाज के लाभ और हित की दृष्टि से लिखे गए थे। और आशा है विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी भी। लेखों की भाषा अच्छी है।

—(डा०) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

रंग महल—(उपन्यास)—लेखक, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक, हिन्दुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या ११६।

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की लेखनी से हिन्दी के पाठक साधरणतया परिचित हैं। यह उनका एक अर्द्ध-सामाजिक तथा अर्द्ध-राजनीतिक उपन्यास है। लता एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलदास गुप्त एक ऐसी पार्टी के सदस्य हैं जो देश में राजनीतिक षड़यन्त्र किया करती है और सरकारी अफ़सरों को प्रायः दण्ड दिया करती है। इस क्रांतिकारी दल का एक ख़ाका लेखक ने हमारे सामने खींचा है और दिखाया है कि किस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थों से विवश होकर लता इस पार्टी की सदस्यता को छोड़ती है। साथ ही साथ सारे संसार के सामने वह इस स्वार्थ को न रख कर अपना एक नारा रखती है कि उसका विश्वास अब पार्टी की नीति में नहीं रहा, यह पार्टी देश का कोई सच्चा कल्याण नहीं कर सकती। लेखक ने यह भी दिखलाया है कि लता एक नारी है। वह उस पार्टी के सर्वस्व कमलदास गुप्त से प्रेम करती है। पार्टी छोड़ने पर भी उसे बराबर उसकी याद आती है और वह जब उससे मिलने आता है, तो प्रसन्न होती है।

वास्तव में उपन्यास के रंगों में गहराई की कमी है। कथानक भी अपने आप में संकुचित-सा है। यदि हमें अपील कर रहा है तो कमलदास गुप्त का व्यक्तित्व, पार्टी के विरुद्ध रखी जानेवाली दलीलें और लता का नारीत्व जो एक सरकारी पदाधिकारी को छोड़कर इस नवयुवक से स्नेह-बन्धन जोड़ता है परन्तु उसे अपने अन्दर ही अन्दर छिपाए रहता है और अन्त में कमलदास गुप्त की मृत्यु हो जाने पर कमलदास गुप्त के पूर्वादेशानुसार वह एक आई० सी० एस० से विवाह कर लेती है। पता नहीं क्यों उसका यह विवाह पाठक को बड़ी ही विडम्बना सा लगता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो लेखक ने उपन्यास की समाप्ति के लिए यह एकाएक अन्त कर दिया हो क्योंकि फिलिप हेण्डरसन के शब्दों में संसार के आधे से अधिक उपन्यास या तो मृत्यु में समाप्त होते हैं या विवाह में।

वैसे उपन्यास पठनीय है।

सन्नाटा—(कहानी-संग्रह)—लेखक, देवी दयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक, माया प्रेस, इलाहाबाद ; मूल्य आठ आना ; पृष्ठ संख्या १६०।

'मस्त' जी के इस कहानी संग्रह में उनकी 'सन्नाटा' 'धूमिल चित्र', 'हेमलता', 'दीदी', 'दीप निर्वाण', 'उल्कापात', 'चौराहा', 'अकिंचन', 'प्रवंचना', 'खोटा रुपया', 'रेशमी कुर्ता', 'तमन्ना', 'समस्या', 'जिज्ञासा', 'देवता', 'पुनिया' 'दुर्भाग्य' और 'रहस्यमयी' शीर्षक कहानियां संग्रहीत हैं। प्रायः सभी कहानियां हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और उन्हें हिं पत्र-पत्रिकाओं के पाठक पढ़ भी चुके हैं। कहानि अधिकतर सामाजिक हैं। हिंदू समाज में उठनेवाली व और समष्टि दोनों प्रकार की समस्याएं बराबर इसमें उ गई हैं। 'तमन्ना' की धनिया निम्नवर्ग के नारीत्व की समस्या हमारे सामने बड़े ही व्यापक ढङ्ग से उठाती है। रहस्यमयी भाभी भी एक प्रश्न है। उल्कापात की अन्त भी अपने सम्मान के लिए सब कुछ सहती है। इ प्रकार अन्य कहानियों में भी यह व्यथा चित्रित है।

कहानियां साधारणतया अच्छी हैं। यदि मस्त की लेखनी बराबर मंजती गई तो एक दिन वे साहि को कुछ अमिट देन दे सकते हैं इसका विश्वास कहानी-संग्रह हमारे अंदर जमवा देता है।

भाग्यहीनों की बस्ती—(उपन्यास)—लेखक देवी दयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक, चौधरी एण्ड सन्स, बनारस; मूल्य २।); पृष्ठ संख्या १९२।

भाग्यहीनों की बस्ती में किसानों एवं ज़मींदारों संघर्ष की कहानी है जो कहीं कहीं पर फैलकर पुलिस भी अपनी परिधि में ले लेती है। भाग्यहीनों से लेख का तात्पर्य भारतीय किसानों से है। ज़मींदार कैसे धू एवं छली होते हैं परन्तु उनके पुत्र जो कि संसार की गति विधि को देखते परखते रहते हैं कितने सच्चे रहते हैं इसका भी एक तुलनात्मक चित्र इस उपन्यास में दि गया है। भारतीय ग्रामीण नारी भी इस उपन्यास अपनी सम्पूर्ण पवित्रता के साथ अंकित है।

उपन्यास पठनीय है।

रंगे सियार—(कहानी-संग्रह)—अनुवादक रूपनारायण पांडेय ; प्रकाशक; हिन्दुस्तानी बुकडिपो लखनऊ; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या १२३।

इस कहानी संग्रह में बंगला की छै कहानियों हिन्दी अनुवाद है। कहानियों का चुनाव साधारण है। अनुवादक ने मूल लेखकों के नाम भी दिए जो उन्हें बंगला में पढ़कर अनुवाद का मूल्य जा जा सके। वैसे कहानियां पढ़ने में प्रवाहमयी हैं।

—कमल कुलश्रे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

गान्धी जी की बंगाल यात्रा

पिछले तीन वर्षों के देश के इतिहास में बङ्गाल का अध्याय भयंकर, अमानुषिकता, वीभत्सता, लज्जा और ग्लानि का अध्याय रहा है। बङ्गाल को अपने पचास लाख-नर नारियों की मौत से जो हानि हुई है और जो क्षति पहुंची है उसका शारीरिक घाव बहुत कुछ भर चुका है। दुर्भिक्ष पीड़ित बङ्गाल को साम्राज्यशाही सैनिक व्यवस्था के कृपा रूप पेट भरने को चावल मिल गया है; किन्तु बङ्गाल की क्षति महज़ जिस्मानी क्षति ही तो नहीं थी। पिछले दुर्भिक्ष में बङ्गाल की सामाजिक व्यवस्था ही बिलकुल उलट पलट गई थी। लाखों परिवार छिन्न भिन्न हो गये थे। सती-साध्वी बहिनों को पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिये, भात के दो कौर के वास्ते अपनी अस्मत खुले आम बेचने पर विवश होना पड़ा था। माएँ अपने बेटों को बेच रहीं थीं और पति अपनी पत्नियों को। बङ्गाल का जिस्मानी घाव उतना गहरा नहीं था जितना कि रूहानी। बङ्गाल की उसी व्याकुल आत्मा को आत्मिक भोजन देने और रूहानी मलहम पट्टी करने का काम देश में सिवाय गान्धी जी के और दूसरा कौन कर सकता था। उनके प्रार्थना के महामन्त्र ने लाखों आकुल नर-नारियों को जो ग़िज़ा पहुँचाई है वह राजनैतिक मञ्चों से नहीं पूरी हो सकती थी। इसीलिये गान्धी जी के बङ्गाल प्रवास ने एक बार बङ्गाल की व्यथित आत्मा को छूकर पुलकित कर दिया। और तभी गान्धी जी विश्वास के साथ यह कहते हैं कि "जिस उद्देश्य को लेकर मैं बङ्गाल आया था उसमें मुझे बहुत कुछ सफलता मिली।" अख़बार नवीसों और रिपोर्टरों ने गान्धी जी की बङ्गाल यात्रा के इस पहलू को साधारणतया कोई महत्व नहीं दिया।

सोचने की बात

आज देश का सारा ध्यान और कांग्रेस की सारी शक्ति व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव की ओर लगी हुई है। महीने डेढ़ महीने के बाद इससे फ़ुरसत मिल जायगी। ज़ाहिरा आसारों को देखते हुये आठ सूबों में कांग्रेस की वज़ारतें बन जायंगी। खूब धूम-धाम रहेगी और लोग विजय के गीत गायेंगे। फिर विधान निर्मात्री परिषद बनेगी, वायसराय की कार्य-कारिणी कौंसिल का राष्ट्रीयकरण होगा, मिनिस्टरों की सवारियाँ निकलेंगी और पुलिस का बैण्ड बजेगा। पर सोचने की बात यह है कि क्या मुल्क फिर दोबारा उसी प्रयोग के बीच से निकलेगा? सोचनेवाले कहते हैं कि अबकी बार कांग्रेस के वज़ीर गवर्नर के साथ वैधानिक लड़ाई लड़ेंगे. और वज़ीर के अधिकारों का प्रयोग कर देश को आज़ादी के रास्ते में आगे बढ़ायेंगे। पर क्या इस तरह का प्रयोग मिस्र में वफ़द पार्टी ने नहीं किया? पर कितने क़दम वह पूर्ण स्वाधीनता के रास्ते में आगे बढ़ी? सरकार को लोग आगाह करते हैं कि यदि उसने देश को आज़ादी के मक़सद तक पहुँचने में रुकावटें डालीं तो सन् '४२ से सैकड़ों गुना ज्यादा आन्दोलन छिड़ जायगा। पर इस तरह का आन्दोलन चलाने के लिये देश में जो सङ्गठन होना चाहिये, जनता से जो सम्पर्क होना चाहिये, त्याग की जो भावना होनी चाहिये क्या उसकी कोई सूरत हमें देश में इस समय दिखाई दे रही है? कांग्रेसजन असेम्बलियों की मेम्बरी पर गिद्धों की तरह टूटे पड़ रहे हैं। लगता है कि मानो माले ग़नीम, लूट का माल बट रहा है कि जिसका हिस्सा प्रान्तीय पार्लिमेण्टरी बोर्ड के मेम्बरों की कृपा-कटाक्ष पर निर्भर है। व्यक्तिगत आकांक्षा और पदों का लोभ शायद स्वाभाविक चीज़ है और हद में रहे तो कोई बुरा भी नहीं पर उसके पीछे जो मनोवृत्ति है उसमें हमें सन् '४२ से सौगुना ज्यादा क्रान्ति के रूप के दर्शन तो नहीं होते।

गान्धी जी ने आशा प्रकट की है कि कांग्रेस की मिनिस्ट्रियां पूरी सरकारी मशीनरी को रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता के लिये इस्तेमाल करेंगी और तभी इन मिनिस्ट्रियों की कोई क़ीमत होगी। गान्धी जी बराबर प्रयत्न करते रहते हैं कि वे कांग्रेस की गतिधारा को रचनात्मक कार्यक्रम की ओर मोड़ दें परन्तु कांग्रेस जनों की हमेशा से यह कोशिश रही है कि रचनात्मक कार्यक्रम से दूर भागकर वे उथली राजनैतिक चहल-पहल और कौंसिलों में समय बरबाद करने में व्यस्त रहें। यह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे रचनात्मक कार्यक्रम के महत्व को नहीं समझते पर पित्ता मारकर काम करने की उनकी आदत ही नहीं रह गई।

प्रश्न यह है कि कांग्रेस ने अहिंसात्मक उपायों से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का निश्चय किया है और रचनात्मक कार्य-क्रम ही वह शाह राह है जिस पर चलकर अहिंसात्मक शासन विधान की इमारत खड़ी की जा सकती है। गान्धी जी कहते हैं कि—"यदि मज़बूत इरादे से सच्चे कार्यकर्त्ताओं के जत्थे इस काम में लग जायँ तो इसे उसी तरह सफलता मिल सकती है जिस तरह दूसरे कार्यक्रमों को। शायद और कार्यक्रमों से ज़्यादा यह सफल हो सकता है। बहरहाल मेरे पास कोई दूसरा ऐसा कार्यक्रम नहीं है जो अहिंसात्मक बुनियादों पर क़ायम हो और जो इसकी जगह ले सके। सत्याग्रह; चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक रचनात्मक कार्यक्रम को ही आगे बढ़ाने के लिये होता है और वह सशस्त्र क्रान्ति की पूरी तरह जगह ले सकता है।" चरखे की विस्फोटक शक्ति को बयान करते हुये गान्धी जी कहते हैं—"एक ग़रीब विधवा के हाथ में चरखा केवल उसे थोड़े से पैसे ले आवेगा लेकिन जवाहरलाल के हाथ में चरखा भारतीय स्वाधीनता का माध्यम बन जायगा।" सत्याग्रह और रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध को बयान करते हुये गान्धी जी लिखते हैं—"यदि रचनात्मक कार्यक्रम कांग्रेस जनों को नहीं अपील करता तो वे मुझे छोड़ दें क्योंकि बग़ैर रचनात्मक कार्यक्रम की सहायता के मेरा सत्याग्रह संग्राम को चलाना वैसा ही होगा जैसा कि लकवा लगे हुये हाथ से चम्मच उठाने का प्रयत्न करना।"

गान्धी जी ने रचनात्मक कार्यक्रम की १८ धाराओं की सूची दी है जिनमें—(१) साम्प्रदायिक एकता, (२) अछूतोद्धार, (३) शराब बन्दी, (४) खादी, (५) ग्रामोद्योग, (६) गाँव की सफाई, (७) बुनियादी तालीम, (८) प्रौढ़ शिक्षा, (९) स्त्रियों की उन्नति, (१०) सफ़ाई की शिक्षा, (११) प्रान्तीय भाषाएँ, (१२) राष्ट्र भाषा, (१३) आर्थिक समता, (१४) किसानों का संगठन, (१५) मज़दूरों का सङ्गठन (१६) आदिवासियों की उन्नति, (१७) कोढ़ियों की सुश्रुषा, और (१८) विद्यार्थियों का संगठन शामिल हैं। किन्तु गांधी जी कहते हैं कि यह सूची पूरी नहीं है और इसमें सुविधा के अनुसार लोग और धाराएँ जोड़ सकते हैं।

अब समय आ गया है कि कांग्रेस जन रचनात्मक कार्यक्रम के प्रश्न को पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का साधन समझकर उस पर ग़ौर करें और उसे कामयाब बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगायें। जब तक वे ऐसा नहीं करते तब तक सन् '४७ या '४८ में सफल क्रान्ति करने के उनके नारे निरर्थक और बे बुनियाद रहेंगे।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की रजत-जयन्ती

दक्षिण भारत में राष्ट्र भाषा के प्रचार के लिये गांधी जी ने आज से २५ वर्ष पूर्व जिस पौधे को रोपा था आज वह एक विशाल वट वृक्ष के समान फैल गया है। इन २५ वर्ष के अन्दर उसने लाखों दक्षिण भारतीयों को राष्ट्रभाषा का व्यावहारिक ज्ञान कराया और आज हर पचासों हज़ार विद्यार्थी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं में हरसाल बैठते हैं। यह उचित था कि हिन्दी प्रचार सभा की रजत-जयन्ती गान्धी जी के सभापतित्व में होती। राष्ट्रभाषा के जिस नवीन रूप का आज गान्धी जी प्रचार कर रहे हैं उसमें भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा सबसे आगे है। नई हिन्दुस्तानी के वहाँ जो इम्तहान हो रहे हैं उनमें इसी वर्ष १४ हज़ार विद्यार्थी उत्तीर्ण हुये हैं। गान्धी जी ने जनवरी के अन्तिम सप्ताह में रजत जयन्ती और हिन्दुस्तानी सम्मेलन आदि के व्याख्यानों में एक बात बहुत अच्छी तरह साफ़ कर दी है और वह यह है कि हिन्दुस्तानी का प्रान्तीय भाषाओं से कोई विरोध नहीं है। प्रान्तीय भाषाएँ ख़ूब फलें फूलें। हिन्दुस्तानी सिर्फ़ अङ्ग्रेज़ी की जगह लेना चाहती है। नई तालीम के स्नातकों के सामने भाषण देते हुये गान्धी जी ने कहा—"उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच सांस्कृतिक विन्ध्याचल पर्वत की रुकावट को तुम हिन्दुस्तानी सीखकर दूर कर सकते हो।"

यह ख़ुशी की बात है कि गान्धी जी की भाषा सम्बन्धी नीति को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्त्ता बहुत ठीक तरह से समझते हैं। इसे पूरा करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आज वे जीजान से अग्रसर हैं। हम इस महान संस्था के उत्साही कार्यकर्त्ताओं को आज इस शुभ अवसर पर हृदय से बधाई देते हैं।

एक सवाल

पेशावर में स्वाधीनता दिवस के दिन पचासों हज़ार जनता के सामने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां ने मुसलिम लीग के नेताओं के सामने एक सवाल रखा—"पाकिस्तान किसके पास है? न वह हमारे पास है न हिन्दुओं के पास है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों अङ्गरेज़ों की ठोकर के नीचे हैं। आओ हम मिलजायें, तुम अङ्गरेज़ का एक हाथ पकड़ो और हम (कांग्रेस) दूसरा। लेकिन तुम्हें अपने सीनों पर अङ्गरेज़ी बुलेट बर्दाश्त करने के लिये तय्यार रहना होगा। क्या तुम तय्यार हो?"

आज मुसलिम लीग के पास ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां के इस सवाल का क्या कोई जवाब है? जिन सरकार परस्त लोगों का कुनबा जोड़कर मुसलिम लीग ने आज जो भानमती का पिटारा तय्यार किया है उससे और भला बुलेट से क्या ताल्लुक़? तभी तो केन्द्रीय असेम्बली में मुसलिम लीगी सदस्य अङ्गरेज़ों और सरकारी मेम्बरों के साथ मिलकर देश के सम्मान को ऊँचा करने वाली सभी बातों का विरोध कर रहे हैं।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ने इसीलिये पठान जनता से अपील की—"यह तुम्हारे फ़ैसले का वक्त है। अगर तुम कांग्रेस को वोट नहीं देते तो अपने पैरों पर ख़ुद कुल्हाड़ी मारते हो। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हें आज़ादी मिले और अङ्गरेज़ तुम्हारे मुल्क से बाहर निकलें तो तुम्हें कांग्रेस को ही वोट देना चाहिये।"

क्या अपनी मां के टुकड़े करोगे?

आज़ाद हिन्द फ़ौज के प्रमुख अफ़सर कर्नल अहसान क़ादिर इस समय सरकारी पहरे के अन्दर लाहौर के अस्पताल में बीमार पड़े हुये हैं। सारा देश उनकी बीमारी से चिन्तित है। अभी इसी स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर उनकी पत्नी बेगम अहसान क़ादिर को किङ्ग एडवर्ड मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों ने झण्डा फहराने के लिये बुलाया। झण्डा फ़हराने के बाद जब वे कार में बैठ कर गोल बाग जाने लगीं तो कुछ लीगी छात्रों ने उनसे प्रश्न किया कि आप मुस्लिम महिला होकर लीग में शामिल क्यों नहीं हो रहीं। बेगम अहसान क़ादिर ने जवाब दिया कि साम्प्रदायिकता के दिन बीत गए हैं। मुझे आश्चर्य है कि आप पढ़े लिखे व्यक्ति पाकिस्तानियों के हाथों में कठपुतली बने हुए हैं। भारत तुम्हारी मातृभूमि है। खुदा और इस्लाम के नाम पर इसके टुकड़े न करो! क्या आप अपनी मां के साथ ऐसा करने की कल्पना भी कर सकते हैं? क्या यह मूर्खतापूर्ण विचार नहीं है?

हमें नहीं मालूम बेगम क़ादिर की इस बात का लीगी विद्यार्थियों ने क्या उत्तर दिया।

श्रीमती विजयालक्ष्मी का आगमन

लगभग १३ महीने अमरीका रहकर श्रीमती विजया लक्ष्मी पण्डित पिछली २९ तारीख़ को इलाहाबाद वापस आगईं। सानफ्रान्सिसको सम्मेलन में भारत के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बनाने और उसके प्रति सभी राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित कराने का श्रेय श्रीमती पण्डित को है। अमरीका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक मीटिङ्गों, मुलाक़ातों आदि के द्वारा अमरीकी जनता के दिलों और दिमाग़ों से भारतीय आज़ादी के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमियों को दूर करने के लिये श्रीमती पण्डित ने जो अथक परिश्रम किया उसके लिये देश उनका ऋणी है।

लड़ाई के दौरान में लार्ड हैलिफ़ैक्स, सर फ्रेडरिक पकल और सर गिरजाशंकर बाजपेयी के तिगड्डे ने सैकड़ों भाड़े के प्रचारकों की मदद से भारत सरकार का करोड़ों रुपया खर्च करके भारत के सम्बन्ध में तरह तरह की ग़लतफ़हमियां पैदा करने की कोशिश की। सर फ़ीरोज़ ख़ाँ नून, रमन और अनेक छुटभइयों ने भी इस गर्हित काम में सहायता पहुंचाई। एम्बेसेडेर फ़िलिप और सेनेटर चैण्डलर ने इन असत्यों को काटने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया परन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। असत्यों के इन तमाम काले बादलों को हटाने का श्रेय श्रीमती पण्डित को ही है। भारत और ब्रिटिश सरकार का सारा झूठा प्रचार श्रीमती पण्डित के तूफ़ानी कार्यक्रम से अमरीका की सतह से ग़ायब हो गया।

यह एक बड़े लज्जा की बात है कि अमरीकी समाचार पत्रों ने श्रीमती पण्डित के वक्तव्यों और व्याख्यानों को मुश्किल से कोई जगह दी, किन्तु अमरीकी जनता ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके ब्राडकास्टों और व्याख्यानों को काफ़ी सराहा और भारतीय आज़ादी की मांग का मुक्त कण्ठ से समर्थन किया। किन्तु बक़ौल श्रीमती पण्डित के वहां की जनता इच्छा रहते हुये भी अपने शासकों के ऊपर कोई असर डालने में असमर्थ है।

इसमें कोई सन्देह नहीं श्रीमती पण्डित ने अमरीकी जनता की ग़लतफ़हमी दूर करने में अथक श्रम किया किन्तु उनके आने के बाद ब्रिटिश दूतावास सचाई के ऊपर फिर काली चादर लपेटने की कोशिश करेगा। कांग्रेस को भी इस सम्बन्ध में कोई स्थायी प्रयत्न करना चाहिये।

ये सस्ती सी जानें !

जावा में एक ब्रिगेडियर मैलेबी की हत्या की क़ीमत लाखों जावी स्त्री, पुरुष और बच्चे अङ्गरेज़ी बमों का शिकार बनकर चुका रहे हैं और मालूम होता है कि इस हरजाने की कोई सीमा नहीं। अङ्गरेज़ जान जो ठहरी। उसके मुक़ाबले में बम्बई, में पूरे हफ़्ते भर तक धुंए का ग़ुबार छाया रहा और दर्जनों बहुमूल्य जानें ज़ाया हुईं। और क़ुसूर क्या था ? यही कि नेताजी की स्वर्ण जयन्ती में लोग जुलूस को भेंडीबाज़ार की ओर लेजाने वाले थे जहां की अधिकांश आबादी मुसलमान है। २३ जनवरी को मुल्क में हज़ारों जगह जुलूस निकले और एक झांसी के चुटपुटे को छोड़कर कहीं कोई उपद्रव नहीं हुआ। न किसी को चोट लगी न किसी की जान गई। बम्बई में भी अगर जुलूस भेंडीबाज़ार जाता तो क़यामत बरपा न हो जाती मगर ब्रिटिश साम्राज्यशाही जनता को जो हर वक़्त याद दिलाते रहना चाहती है कि हम हिन्दुस्तानियों की जान को मक्खी से ज़्यादा रुतबा नहीं देते। पर इस तरह के रक्तस्नान भारतीय आत्मा को कसौटी पर और अधिक कसकर खरा बनाते हैं। सच तो यह है कि आज़ादी की क़ीमत एक किश्त में नहीं चुकती। उसे कई किश्तों में अदा करना पड़ता है।

निर्दोष मज़दूर शहीद

इन्दौर के "मज़दूर-सन्देश" के अनुसार जनवरी के तीसरे सप्ताह में ग्वालियर में बिड़ला मिल के अफ़सरों ने राज की पुलिस से मिलकर मज़दूरों पर जो गोलियां चलवाईं उससे बहुत सी जानें गईं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इस घटना की जांच करने के लिये डाक्टर [illegible] को भेजा है। उनकी रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित [illegible] हुई। अन्तिम राय बनाने के लिये इस रिपोर्ट का [illegible] ज़रूरी है। किन्तु एक बात सामने है कि [illegible] मारे गये। और क्या यह बिड़ला जैसी अपने को [illegible] भक्त कहने वाली पूँजीपति फ़र्म के लिये अत्यन्त [illegible] की बात नहीं है कि उसके अपने अठारह [illegible] गोलियों से उड़ा दिये जांय या उसकी कलकत्ते [illegible] केशोराम मिल में ३४ मज़दूर गिरफ़्तार किये जा[illegible] गान्धी जी जिस किसान मज़दूर राज का सपना देख[illegible] उसमें पूँजीपति की हैसियत केवल एक ट्रस्टी की [illegible] स्वामी की नहीं। पर लगता है ये पूँजीपति मज़दूरों [illegible] ख़ून की अन्तिम बूँद तक गान्धीजी के इस सपने [illegible] झुठलाने का प्रयत्न करते रहेंगे।

भूख हड़ताल

युक्त प्रान्त की मुख्तलिफ़ जेलों में अनेक राजबन्दी इस समय भूख हड़ताल कर रहे हैं। जेल में जब अत्या[illegible] हद के पार होजाता है तो सत्याग्रही के लिये भूख हड़[illegible] ताल ही एक न्याय्य साधन बाक़ी बच जाता है।

समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों के आगे श्री जोगेश [illegible] चैटर्जी के अनशन पर वक्तव्य देते हुये युक्त प्रान्तीय [illegible] कार के एक प्रतिनिधि ने कहा कि भूख हड़ताल के [illegible] से सरकार झुकने वाली नहीं है। इस सरकारी प्रतिनि[illegible] ने यह कोई नई बात नहीं कही। गवर्नर हैलेट [illegible] इन्सपेक्टर जनरल शेख ने मिलकर युक्त प्रान्त के [illegible] को नात्सी कन्सनट्रेशन कैम्पों से किसी तरह पीछे [illegible] रहने दिया था। जोगेश बाबू राजनैतिक क़ैदियों [illegible] जिन मांगों को लेकर दो हफ़्ते से भूख हड़ताल कर [illegible] हैं किसी भी सभ्य सरकार को उन्हें एक दिन के अन्दर [illegible] मान लेना चाहिये था।

युद्ध समाप्त होगया किन्तु फिर भी आज पचा[illegible] डेटेन्यू जेलखाने में बन्द हैं। श्री मनमथनाथ गुप्त [illegible] उनके दूसरे साथी आज छै वर्षों से फ़तहगढ़ [illegible] जेल में दिन बिता रहे हैं। क्या सरकार के पास [illegible] कोई भी नैतिक वजह इन लोगों को जेल में रखने की [illegible] और यदि वह इन्हें ज़बर्दस्ती जेल में रखना ही चाहती [illegible] है तो इन्हें हर तरह की सुविधाएँ देना उसका फ़र्ज़ [illegible]

—विश्वम्भरनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

हिन्दुस्तान में एक क़ौमी ज़बान के प्रचार का काम करने वाली शायद सबसे बड़ी संस्था मदरास की दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा है। दूसरे तरह तरह के रचनात्मक काम करने वाली संस्थाओं में भी मुश्किल से दो चार ही होंगी जो अपने काम के फैलाव की निगाह से दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के मुकाबले की हों और उससे बड़ी तो कुल हिन्द चर्खा संघ को छोड़कर शायद कोई भी और नहीं है।

क़ौमी ज़बान के प्रचार का काम सबसे मुश्किल मदरास के चार सूबों में मालूम होता था। इसलिए गान्धी जी ने सन १९१८ में मदरास के अन्दर इस सभा की नींव रक्खी, और सबसे पहले अपने बेटे देवदास गान्धी को इस काम के लिए मदरास भेजा। आज बढ़ते बढ़ते आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक चारों सूबों और आसपास की रियासतों में मिलाकर सभा के १६०० से ऊपर प्रचारक हिन्दुस्तानी ज़बान का प्रचार कर रहे हैं। सभा छोटे बड़े हिन्दुस्तानी के सात इम्तहान लेती है जिनमें अबतक २,९७,६५९ विद्यार्थी बैठ चुके हैं। ४१२ स्कूल और कालेज हैं जिनमें सभा के ज़रिये हिन्दुस्तानी ज़बान सिखाई जाती है और दस लाख से ऊपर आदमी सभा की कोशिशों से क़ौमी ज़बान हिन्दुस्तानी सीख चुके हैं। इस कुल काम पर अब तक पन्द्रहलाख रुपया खर्च हो चुका है। सभा का सालाना ख़र्च इस वक्त करीब डेढ़ लाख है जो सबका सब दक्खिन भारत के रहने वालों की जेबों ही से आता है।

मदरास में सभा का एक छापाख़ाना है जिसमें दस ज़बानों में छपाई का इन्तज़ाम है। इस छापेख़ाने से सिर्फ़ हिन्दुस्तानी की डेढ़ सौ नई किताबें छप कर निकल चुकी हैं जिनमें अ, आ, अलिफ़, बे की किताबों से लेकर कोष (डिक्शनरी) तक शामिल हैं। दूसरी जगहों से भी किताबें मंगाकर सभा कोने कोने में हिन्दुस्तानी ज़बान फैलाने की कोशिश करती है। अब तक हिन्दुस्तानी की बीस लाख से ऊपर किताबें, १२ लाख रुपए कीमत की, उन चारों प्रान्तों के अन्दर खपाई जा चुकी हैं। इन किताबों में बच्चों की अलग अलग भाषाओं के ज़रिये हिन्दुस्तानी सिखाने की किताबें सबसे ज़्यादा हैं। इसमें शक नहीं कि उत्तर और दक्खिन के बीच की खाई को पाट कर एक पुल बांधने का काम द० भा० हि० प्र० सभा बड़ी खूबसूरती के साथ कर रही है। सभा की एक रिपोर्ट में लिखा है कि बरहमपुर से लेकर पच्छिम में गोआ तक और कन्या कुमारी से लेकर उत्तर में हैदराबाद तक क़रीब क़रीब सभी ख़ास ख़ास स्थानों में यहां तक कि देहातों तक में हिन्दुस्तानी का पौधा बोया जा चुका है और फल फूल रहा है। ठीक इस वक्त पचास हजार से ऊपर विद्यार्थी सभा के ज़रिये कौमी ज़बान हिन्दुस्तानी की तालीम पा रहे हैं।

कुल हिन्द अंजुमन तरक्कीए उर्दू के विद्वान सेक्रेटरी डा० अबदुलहक़ ने सभा के काम के बारे में अपनी राय ज़ाहिर करते हुए कहा है—

"अगर हिन्दुस्तान की और सभाएं भी इस सभा के असूल पर हिन्दुस्तानी ज़बान बढ़ाने और फैलाने की कोशिश करें तो कुछ मुद्दत के बाद हिन्दुस्तानी सारे मुल्क की ज़बान हो सकती है।"

जहां तक हिन्दुस्तानी ज़बान लिखने का सवाल है हम मानते हैं कि सभा की बहुत सी कीताबों, नोटिस वगैरह में अभी काफ़ी सुधार की गुन्जायश है। पर सभा और उसके काम करनेवालों के सारे झुकाव को देखते हुए और बहुत करके पिछले तीन बरस में गान्धीजी के प्रताप से जो रंग इस बारे में बदलता जा रहा है उससे हमें पूरा भरोसा है कि कुछ बरसों के अन्दर ही द० भा० हि० प्र० सभा की हिन्दुस्तानी टकसाली हिन्दुस्तानी होगी।

सन् १९४३ में सभा को काम करते हुए पूरे २५ बरस हो चुके। वह साल सभा की रजत जयन्ती यानी पच्चीसवीं साल गिरह मनाए जाने का साल था। गांधी जी और बहुत से काम करनेवाले जेल में थे। इसलिए जलसा मुलतवी रहा। जनवरी सन् १९४६ के आख़ीर में आठ दिन तक यह जलसा बड़ी शान और सजधज के साथ मदरास में गान्धी जी की सदारत में मनाया गया।

सभा के दफ़्तर से मिला हुआ एक बहुत बड़ा नया शहर हिन्दुस्तानी नगर के नाम से बनाया गया। जगह जगह कस्तूर बा गेट, बजाज गेट वगैरह नामों से सुन्दर फाटक बने हुए थे जिन पर बहुत बढ़िया चित्रकारी की हुई थी। क़रीब ढाई हज़ार आदमी इस नगर में ठहरे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। जलसों में आनेवालों की तादाद १५ और २० हज़ार तक पहुंचती थी, और शाम को गान्धी जी की प्रार्थना में शामिल होनेवालों की तादाद दो लाख और ढाई लाख तक जाती थी।

सालगिरह के जलसे के अलावा और भी कई जलसे अलग अलग हुए। इनमें ख़ास ये थे—रचनात्मक काम करनेवालों की कानफ़रेन्स जो पांच दिन तक होती रही और जिसमें देश के और दूर दूर से आए हुए काम करनेवालों ने भी हिस्सा लिया। हिन्दुस्तानी प्रचारक कान-फ़रेन्स जो तीन दिन तक होती रही और जिसमें सभा के क़रीब १६०० प्रचारकों ने मिलकर अपने आगे के काम के ढङ्ग पर ग़ौर किया। सभा का पदवी दान जलसा, नई हिन्दुस्तानी तालीमी कानफ़रेन्स, अदबी कानफ़रेन्स, औरतों की कानफ़रेन्स, विद्यार्थियों की कानफ़रेन्स वगैरह वगैरह। इन सभाओं और जलसों में कई लाख रुपए गान्धी जी को हरिजन काम, औरतों की तालीम और हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए भेंट किए गए। इन जलसों के साथ साथ एक बड़ी सुन्दर गांव के और दूसरे हाथ के धन्धों और कारीगरियों की नुमायश भी थी। गान्धी जी की जीवनी वगैरह पर फ़िल्म दिखाई गईं जिनसे दिल बहलाव के साथ साथ काफ़ी सबक भी मिलता था।

सभा के नए साल के स्नातकों ने पदवी दान जल-से में अपनी डिगरियां लेते वक्त यह प्रतिज्ञा की—

"हिन्दुस्तान की एकता के लिए एक राष्ट्रभाषा की सख़्त ज़रूरत है और इस काम के लिए हिन्दुस्तानी ही सब तरह से लायक है। इसे मैं पूरे तौर से मानता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि हिन्दुस्तानी के प्रचार में भरसक मदद पहुंचाना अपना फ़र्ज़ समझूंगा ....."

हिन्दुस्तानी नगर का, सब के रहने सहने, खाने पीने और इन सब जलसों का सारा इन्तजाम इतना अच्छा और सुन्दर था कि देख कर हैरत होती थी। हजारों और लाखों आदमियों, मर्द औरत और बच्चों का शान्ति और तरतीब के साथ जलसों में हिस्सा लेना, एक जगह से दूसरी जगह और एक अहाते से दूसरे अहाते जाने के लिए पास का इन्तज़ाम, सफ़ाई वगैरह सब तारीफ़ के क़ाबिल थे। खाने का सब इन्तज़ाम शहर के कुछ धनी लोगों ने अपने ऊपर लेलिया था। मालूम हुआ कि इसमें करीब ढाई तीन हज़ार रुपए रोज़ का ख़र्च जो लोग अपने पास से यह सब ख़र्च करते थे इन्तज़ाम करते थे, और वह खुद और उनके दूसरे लोग दोनों वक्त अपनें हाथों खाना परसते थे। का ढङ्ग उतना ही अच्छा था जितना खाना बढ़िया जहां एक एक हज़ार आदमी एक साथ बैठ कर करते थे वहां इस कदर सफ़ाई का बराबर बने सचमुच एक हैरत की चीज़ थी। इसके अलावा मद्रास सूबे में जहां छुआछूत हिन्दुस्तान भर में ख़त्म हुई समझी जाती थी, जहां लोग दृष्टि दोषम् के वाले थे यानी दूसरे की निगाह पड़ जाने से खाना हो जाता था वहां हर जात और हर धर्म के हज़ार मर्द औरतों का एक साथ बैठ कर भोजन करना कर रहा था कि इस बारे में देश की हालत कि बदलती जारही है। स्वयंसेवकों का इन्तज़ाम अच्छा और तारीफ़ के काबिल था।

सभा का कानूनी नाम अभी तक दक्षिण भारत प्रचार सभा है। हमने जानकर उपर दक्षिण भारत स्तानी प्रचार सभा लिखा है। सभा के डेढ़ हज़ार रकों ने, जो अपनी कानफ़रेन्स को हिन्दुस्तानी कानफ़रेन्स कहते थे, बहुत से ठहराव पास किए उ एक ठहराव यह था कि "सभा का नाम हिन्दी सभा से बदल कर हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कर जावे"। गान्धीजी इस ठहराव को सुनकर बहुत हुए; पर नाम बदलने के लिए कुछ कानूनी जरूरी है जिसके लिए मामला होशियार वकीलों के कर दिया गया है। पदवीदान जलसे की सदर रा अमृतकौर ने भी अपनी तक़रीर में सभा का नाम हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ही रक्खा। इसलिए हमने के लिए इसी नाम को ठीक समझा।

जलसों की इस कामयाबी के ऊपर हम सभा करनेवालों और सेवकों को दिल से बधाई देते यकीन है कि दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार में एक कौमी ज़बान, एक मिली जुली कलचर कौमीयत को जन्म देने में बहुत बड़ा काम करेगी उत्तर और दक्खिन, हिन्दू और मुसलमान, द्रविड़ सब के दिलों को मिलाने में एक सुन्दर काम देगी। —सुन्दरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76280

हमारा नया प्रकाशन

महावीर वर्धमान

और

जैन धर्म

लेखक

डाक्टर जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०

पचासों प्रामाणिक जैन और बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के आधार पर भगवान महावीर के जीवन की आधुनिकतम व्याख्या

मूल्य १।) रु०, डाकखर्च सहित १॥=)

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को जरूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इस्लाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी और उर्दू) और गुजराती संस्करण—प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीश चन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म की अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाँद

क : पण्डित सुन्दरलाल
दक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : वैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

र्षिक मूल्य ६)]

मार्च १९४६

[एक अङ्क का ।=

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

[मार्च १९४६]

१—प्राचीन सुमेरी सभ्यता और संस्कृति (२) पं० सुन्दरलाल १६५
२—सुख किसमें (नाटक)—श्री० गोविंददास एम० एल० ए० ... ... १७३
३—द्वादश आयतन और बौद्ध दर्शन—भारतीय भिक्षु धर्म रक्षित धर्म शास्त्री ... १८८
४—प्रवचन—आचार्य कृपलानी ... १९१
५—अन्नम में भारतीय सभ्यता और संस्कृति—श्री० प्रकाशचंद्र उपाध्याय एम० ए० ... १९२
६—गुप्त साम्राज्य और भारत के जनतंत्रात्मक गणराज्य—श्री० बुद्धप्रकाश एम० ए० २०३
७—मलिक मुहम्मद जायसी का प्रकृति वर्णन—डा० कमल कुलश्रेष्ठ एम०ए०, डी० फिल० २०९
८—मि० जिन्हा का पाकिस्तान—श्री० चंद्रगुप्त विद्यालंकार २२२
९—मानव और मशीन—श्री० मारिस फ्रिडमेन ... ...
१०—उषे (कविता)—कुमारी रज़िया नक़वी
११—स्वर्ण सङ्गीत (कविता)—श्री० करील ...
१२—बिहार दर्शन (कविता)—श्री० उपेन्द्र...
१३—विष-पान करा दो ! (कविता)—श्री० छोटेलाल भारद्वाज ... ...
१४—गीत (कविता)—श्री० नरेशकुमार ...
१५—बसन्त (कविता)—श्री० शील चतुर्वेदी
१६—गीत (कविता)—श्री० शीतलासहाय श्रीवास्तव ... ...
१७—सांप का डसना और उसका इलाज—श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी० ...
१८—पुस्तक-परिचय ... ...
१९—सम्पादकीय विचार ... ...

विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से 'विश्व' नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्व' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने में बीच में छापा मारकर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर विवश हैं। 'विश्ववाणी' हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखना भूल जाते हैं। 'विश्ववाणी' की जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६, भाग ११] मार्च : १९४६ [अङ्क ३, पूरे अङ्क ६३

प्राचीन सुमेरी सभ्यता और संस्कृति (२)

पण्डित सुन्दरलाल

सृष्टि की रचना

सुमेरी बहुत से देवी-देवताओं को पूजते थे जिनमें चांद और सूरज भी थे। चांद उनका ख़ास देवता था। चांद को वे सूरज से बड़ा मानते थे लेकिन इन सब देवी-देवताओं से ऊपर और इन सबका बनानेवाला वह एक परमेश्वर को मानते थे जिसे वे 'इल्ल' कहते थे। यहूदी ईश्वर को 'इल्लोई' कहते थे। बाइबिल में 'इल्लोहिम' आता है, अरबी में 'इल्लाम' या 'अल्लाह' और यूनानी में 'इलु' और संस्कृत में 'इला'।

ऋग्वेद में 'इला' की उपासना में एक पूरा सूक्त दिया हुआ है।

सुमेर या इराक में 'इल' का कोई मन्दिर न था। उसे निराकार ही माना जाता था। सुमेरी ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि 'इल्ल' की कोई व्याख्या नहीं हो सकती। ठीक जिस तरह उपनिषदों में ब्रह्म को अनिर्वचनीय कहा गया है।

सुमेरी ग्रन्थों में लिखा है कि सृष्टि के शुरू में केवल 'इल्ल' था और सब शून्य था। इस शून्य में से मीठे पानी का एक चश्मा 'अप्सु' (संस्कृत अपस्=जल) पुरुष रूप में प्रकट हुआ और चारों तरफ फैल गया। अप्सु के बाद प्रकृति ने 'तियामत' यानी खारे समुद्र के रूप में प्रकट होकर अप्सु के साथ मिलकर सृष्टि की रचना की। इस तरह मीठे और खारे पानी के मेल से पृथ्वी की और सारी सृष्टि की रचना हुई।

सुमेरी ग्रन्थों में इस तरह 'अप्सु' को सबका पिता और 'तियामत' को सबकी माता कहा गया है। इन्हीं से और सब देवी-देवता पैदा हुए।

'अप्सु' और 'तियामत' से पहले 'लहमु' और 'लहामु' पैदा हुए, फिर 'अनशार' और 'किशार' हुए। फिर तीन देवता हुए जिनसे सुमेरी देवताओं की पहली त्रिमूर्ति बनी। 'अनु', 'एनलिल' और 'इया'—इन तीनों ने सारी सृष्टि का राज आपस में बाँट लिया। अनु को स्वर्ग का राज मिला, एनलिल को इस लोक का और इया वरुण की तरह, सब सागरों और समुद्रों का राजा हुआ। यह त्रिमूर्ति आकाश में रहती है।

सुमेरियों की दूसरी त्रिमूर्ति में 'सिन' (चाँद), 'सन' (सूरज) और 'वुत' (वायु) शामिल थे। इन दोनों त्रिमूर्तियों के बाद पांच ग्रहों की पूजा होती थी। 'बार' (शनि) जो दुश्मन का नाश करनेवाला और योद्धाओं का देवता था 'बार' (मछली) के रूप में पूजा जाता था। 'बेल' बुध को कहते थे जो न्याय का देवता था। 'नरगल' (मंगल) आखेट, युद्ध और आंधी का देवता था। शुक्र की कई नामों से और देवी और देवता दोनों रूप में पूजा होती थी। सारे देश में इसका बड़ा सम्मान था। देवी रूप से यह 'इश्तर' या 'नाना' कहलाती थी। 'इश्तर' स्वर्ग के राजा 'अनु' की बेटी मानी जाती थी। इश्तर के हाथ में तलवार रहती थी और 'दुर्गा' की तरह उसकी सवारी शेर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इश्तर फोनीशिया में 'अस्तार्ते', बाबुल में 'नाना', मंडईन में 'अशतर' के नाम से पुजती थी। संस्कृत में इश्तर का अर्थ 'तारा' है। जिस तरह 'शक्ति', 'चंडी', 'अन्नपूर्णा' आदि एक ही देवी के अलग अलग रूप हैं उसी तरह इश्तर भी कई रूप में पुजती थी। बाबुल, असुर, निनेवे और अरबेला में इसके खास मन्दिर थे। आख़री ग्रह 'नेबो' (बृहस्पति) ज्ञान और विज्ञान का देवता था। इन पाँच ग्रहों के अलावा और भी बेशुमार छोटे बड़े देवता थे। क़रीब क़रीब हर देवता की एक पत्नी होती थी जो छाया की तरह अपने पति के साथ रहती थी और उसीके गुणों का अक्स होती थी।

सुमेरी मानते थे कि देवता भी इनसान की तरह वासनाएँ यानी ख़्वाहिशें रखते हैं। लेकिन उनका रुतबा आदमी से ऊँचा है। वे अमर हैं और आदमी के ऊपर दया रखते हैं।

देवताओं और आदमियों के अलावा सृष्टि में दानव भी रहते हैं। इनकी शक्ति देवताओं से कम लेकिन आदमी से ज़्यादह है। इनकी किसी तरह की पूजा न की जाती थी। समझा यह जाता था कि यही दानव आदमी को पाप के पथ की तरफ ले जाते हैं।

सुमेरी त्रिमूर्ति में सूर्य से चन्द्रमा का रुतबा कहीं अधिक था। सूर्य चन्द्रमा का बेटा समझा जाता था। अनु की पत्नी का नाम 'अनुता' था। वुल और मर्तु (मृत्यु) अनु के बेटे थे। सुमेरी अनुता और मिस्री अमेन्ते एक ही देवी के नाम मालूम होते हैं। 'एनु' या 'एनलिल' की पत्नी का एक नाम 'अन्नता' (अन्नदाया = अन्नपूर्णा) था। वह पृथ्वी को अन्न से भरती थी। 'इया' या 'हिया', जिसके गुण विष्णु से मिलते हैं, उस की पत्नी का नाम 'देव-किना' (देव कन्या) या 'देवकी' था। इया का एक बेटा था जिसका नाम 'मारदूक' था। 'सिन' यानी चन्द्रमा एनलिल का सबमें बड़ा बेटा था। उसकी पत्नी महादेवी कहलाती थी। 'सिन' महीनों का राजा था। सूर्य दिवस्पति था और उसकी पत्नी के तीन नाम 'ऐ', 'गुल' और 'अनुनीत' थे। 'ऐ' का अर्थ सुबह, गुल का दोपहर और अनुनीत का अर्थ है सूर्यास्त। दोपहर की देवी 'गुल' जीवन देनेवाली है। वही जनने के काम को देखती है। 'वुल' या 'इवा' (अरबी-हवा) वायु देवता का नाम था। बिजली और आंधी उसके इशारे पर नाचती थीं। वह नहरों और नदियों को से भरता था। 'सिर बनित' मारदूक की पत्नी थी असुरियावालों से समरिया के यहूदियों ने उसकी सीखी। यही सिर बनित बाइबिल की 'सक्कथ बेनथ' 'नरगल' (मंगल) की पत्नी का नाम 'लाज' था। (बृहस्पति) की पत्नी का नाम 'बर्मित' या 'उर्मित'

सैकड़ों किस्से सुमेरी धर्म ग्रन्थों में मौजूद हैं हिन्दू पौराणिक किस्सों से ज्यूँ के त्यूँ मिलते हैं। बिल में 'जीनीसिस' के अध्याय में सृष्टि की रचना जो बयान दिया हुआ है वह लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ एक सुमे किस्से से मिलता है और उसीसे लिया गया है।

प्रलय

सुमेरी पौराणिक कहानियों में एक मनोरंजक कहा प्रलय की है। यूनानी पुराणों और यहूदी बाइबि (हज़रत नूह के तूफ़ान का क़िस्सा) ने इसी सुमेरी कथा को ज्यों का त्यों ले लिया है। केवल नाम बद गए हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' के और सुमेरी प्रलय बयान में भी बहुत बड़ी समानता है। सुमेरी क़िस्सा तरह है—

ईश्वर ने ज़िसुथ्रु (Xisuthrus) को सपने आगाह किया कि 'दायसु' महीने के १५ वें दिन बड़ी भयङ्कर बाढ़ आएगी जिससे सब लोग नष्ट जायंगे। ईश्वर ने उसे आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन सूर्य नगर सिप्पर में जाकर सब विद्याओं की लिखी हुई किता वहां गाड़ आओ और वहां से लौटकर तुम एक ना बनाओ। उसमें अपने परिवारवालों और कुछ और लो को बैठाओ। नाव में हर तरह का खाने पीने का सा रख लो। ज़मीन के सब चौपायों और पक्षियों का एक जोड़ा भी नाव में रख लेा। जब सब तय्यारी हो तो सिप्पर की ओर रवाना हो जाओ। उसने पांच फ़र्लांग लम्बी और दो फ़र्लांग चौड़ी एक नाव बनाकर सबको बैठा लिया और चल दिया। ठीक दिन आई। जब बाढ़ घटी तो ज़िसुथ्रु ने पक्षियों के एक को उड़ाया। थोड़ी देर में वह जोड़ा लौट आया। दिनों बाद फिर उड़ाया। अब की बार जब वह लौटा तो उसके पंजों में कीचड़ लगा हुआ था। दिनों बाद फिर एक जोड़े को उड़ाया। अब की बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नहीं लौटे। ज़िसुथ्रु को यक़ीन होगया कि अब सूखी ज़मीन निकल आई है। बीवी बच्चों के साथ वह नाव से उतरा और उसने परमात्मा की पूजा की। पूजा करने के बाद वह लोप हो गया। नाव के लोगों ने घबराकर पुकारा तो ग़ैब से जवाब आया—"मुझे देवताओं के बीच में रहने की जगह मिल गयी है। तुम लोग बाबुल जाओ। सिप्पर से गड़े हुए पुराने ग्रन्थ निकालो और उनका प्रचार करो। परमात्मा की प्रार्थना करो। इस समय तुम लोग आरमीनिया में हो।" वे लोग लौटकर बाबुल गए। वहां उन्होंने कई शहर आबाद किये। सिप्पर से गड़े हुए ग्रन्थ निकाले, यज्ञ किया और परमात्मा को धन्यवाद दिया। उस बाढ़ से देवता भी इतने डर गए थे कि 'अनु' के पास स्वर्ग में भागकर अबु के क़िले की दीवार के ऊपर कुत्तों की तरह चिमटकर लेट गए। ज़िसुथ्रु के बेटे ने जब यज्ञ किया और यज्ञ की सुगन्ध उनकी नाकों में पहुँची तब उनका डर छूटा। और वे मक्खियों की तरह यज्ञ की वेदी के चारों ओर भिनभिनाने लगे। यज्ञ में जब देवताओं का भाग निकाला जाने लगा। तो देवी इश्तर ने एतराज किया कि एनलिल को यज्ञ का भाग न देना चाहिये, क्योंकि इसीने बाढ़ करके मेरी औलाद का नाश किया है। इया ने भी एनलिल को उलाहना देते हुए कहा—'तुम तो इतने बुद्धिमान हो! तुमने क्या प्रलय के नतीजे को नहीं सोचा था?' इया ने इस प्रलय से जगत के सर्वनाश को बचाया। एनलिल मर्त्यलोक का देवता था इसलिये उसने अपने यज्ञ के भाग को वसूल कर लिया।

कुरदिस्तान के गोर्डियन पहाड़ को लोग ज़िसुथ्रु की नाव का एक हिस्सा बताते हैं। अब तक लोग वहां से मिट्टी लाकर, तावीज़ में भरकर उसे बच्चों को पहनाते हैं।

यह किस्सा, हज़रत नूह के तूफ़ान का क़िस्सा जिसे यहूदी ईसाई और मुसलमान सब मानते हैं और हिन्दू किस्सा तीनों में ग़ज़ब की समानता है। इनमें सुमेरी सब से पुराना है।

कुछ धार्मिक विश्वास

सुमेरी आत्मा या रूह को "एदिम्मु" कहते थे। मरने के बाद यानी शरीर से अलग होने के बाद उसे 'उतेक्के' कहा जाता था। वे मानते थे कि मनुष्य देह आत्मा को केवल एक ही बार मिलती है। वे ईश्वर और देवताओं से बहुत दिन तक जीने की प्रार्थना करते थे। मौत के बाद मनुष्य को कुछ दिनों एक अँधेरे स्थान में रहना पड़ता है जहाँ खाने को केवल मिट्टी मिलती है। अगर मरनेवाले की बाज़ाब्ता अन्त्येष्टि क्रिया हुई है तो उस देश यानी परलोक में उसे शान्ति मिलती है, नहीं तो उसकी आत्मा अतृप्त मंडराती रहती है। जब तक श्राद्ध कर्म नहीं हो जाता आत्मा तड़पती रहती है। जिसकी लाश मैदान में खुली पड़ी है उसकी आत्मा को कोई शान्ति नहीं। इसीलिये इराक़ में उस युग की सबसे बड़ी गाली और सबसे बड़ी सज़ा थी—"इसकी लाश को कोई क़ब्र न मिले।"

स्वर्ग केवल देवताओं के रहने के लिये है। मनुष्य में से कोई कोई विरले ही वहाँ पहुँचे हैं और आइन्दा विरले ही पहुँचेंगे।

सुमेरियों का सिद्धान्त था कि पाप की सज़ा मनुष्य को इसी ज़न्म में मिल जाती है। ईश्वर और देवताओं की सेवा के लिये मनुष्य पैदा हुआ है। स्वर्ग के दूत 'सबितू' ने 'गिलगमेश' से कहा था "जब देवताओं ने मानव समाज की रचना की तो मौत मनुष्य को देकर अमरत्व अपने लिये सुरक्षित रखा।"

हर मनुष्य को किसी न किसी देवता की पूजा करनी ही चाहिये। "जिसका कोई देवता नहीं सरदर्द उसके माथे को इस तरह ढक लेता है जिस तरह कपड़े देह को।"

सुमेरी आठ पाप मानते थे—

(१) ईश्वर और देवताओं की पूजा में अश्रद्धा रखना।
(२) आपस में फूट फैलाना।
(३) झूठ बोलना।
(४) झगड़ा करना।
(५) व्यापार में बेईमानी करना।
(६) पड़ोसी का माल हड़प जाना।
(७) पड़ोसी के साथ बुरा सलूक करना।
(८) व्यभिचार करना।

पाप के प्रायश्चित्त में अपने को सुधारने की कोशिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के साथ साथ देवता की पूजा करना ज़रूरी था। देवता को ख़ुश करने के लिये शहद, शराब, दूध, जौ, गेहूं, माखन, रोटी और तरह तरह के फूलों का देवता को भोग लगता था और किसी जानवर की बलि दी जाती थी। पुजारी भक्त की ओर से कहता था—

"हे देव, इसके अपराध क्षमा करो। इसने अपने बदले एक भेड़ चढ़ाई है! अपने प्राणों के बदले इसने भेड़ के प्राण चढ़ाए हैं! अपने सर के बदले इसने भेड़ का सर दिया है! दया करके इसके अपराध क्षमा करो।"

धर्म ग्रन्थों का आदेश था—

"प्रतिदिन ईश्वर के चरणों में सर नवाओ!
बलिदान दो, प्रार्थना करो और हवन करो!
अपने देवता के सामने पवित्र हृदय लेकर जाओ!
इससे देवता प्रसन्न होते हैं।
स्मरण, प्रार्थना और दण्डवत करो!
तुम हर रोज़ सुबह यह करोगे तो प्रभु तुम्हें धन देंगे!
अपने लाभ पर अपने प्रभु को धन्यवाद देना!
इस बात पर ख़ूब ग़ौर करना—
ईश्वर का भय शुभाकांक्षा पैदा करता है!
बलिदान जीवन बढ़ाता है।
प्रार्थना पाप से बचाती है।"

सुमेरियों को विश्वास था कि मनुष्य किसी न किसी पाप के कारण ही बीमार पड़ता है। बीमार आदमी के शरीर के इलाज के साथ साथ उसे पाप से मुक्त करने के लिये सुअर की क़ुरबानी होती थी।

सम्राट गुडीअ के समय लगाश के मन्दिर में मछली, बैल, बछड़े, भेड़, मेमने, पक्षी और ख़ास ख़ास त्योहारों पर घोड़े की भी बलि दी जाती थी। सम्राट डुङ्गी ने सब सूबेदारों को चेतावनी दे दी थी कि देवताओं के मन्दिर में जो हर महीने बलि दी जाती है उसमें किसी तरह की भूल न होने पाए।

शिक्षा

पूजा-पाठ के साथ साथ सुमेर के मन्दिर विद्या के घर थे। हर मन्दिर में सैकड़ों लड़के लड़कियों को शिक्षा दी जाती थी। सबसे ज़्यादह ज़ोर लिखने और पढ़ने पर दिया जाता था। उनकी लिपि क्यूनिफ़ार्म थी यानी

उनके हरफ़ ख़ास तरह के कोनेदार होते थे। सुमेर [illegible] रत का केन्द्र था। देश के क़ानून के अनुसार, [illegible] ज़रूरी था कि हर बड़ा लेन-देन रहन-बैनामा और शादी ब्याह जैसी चीज़ें लिखा-पढ़ी करके की जायं, इसलिये लिखे-पढ़े लोगों की बहुत ज़रूरत पड़ती थी। लिखना पढ़ना सीखने के बाद विद्यार्थी को व्याकरण और [illegible] पढ़ाया जाता था। उनके व्याकरण के नियमों [illegible] तख़्तियां मिली हैं जिनमें क्रिया (क्रेज) और [illegible] (इस्म) के इस्तेमाल के अलग अलग क़ायदे हैं। इसके बाद गणित की शिक्षा होती थी। अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति की अनेक किताबें खुदाई में मिली हैं, [illegible] समय के नाप और तोल के बाटों का भी नक़्शा मिला है। सुमेरी शब्दों का कोष भी पाया गया है। [illegible] विद्यार्थी को इसे याद करना पड़ता था।

शिक्षा ख़त्म करने के बाद बहुत से शिक्षार्थी [illegible] कारी काम में लग जाते थे। बहुत से व्यापारियों के [illegible] काम करने लगते थे और कुछ मन्दिर ही में रह [illegible] आगे ऐतिहासिक और वैज्ञानिक खोज करते थे। [illegible] डाक्टरी सीखते थे और कुछ अलग अलग दस्तकारि [illegible] में होशियार होने की कोशिश करते थे। सुमेर की [illegible] में ज़मीन का एक नक़्शा मिला है जिसे २७०० ई० [illegible] में अगादे के एक राजा ने तय्यार करवाया था। [illegible] नक़्शे में ज़मीन गोल दिखाई गई है। उसके चारों [illegible] सात बड़े बड़े समुद्र दिखाए गए हैं। बीच में कई [illegible] बड़े द्वीप हैं।

नक़्शे में इस बात का भी ज़िक्र है कि सागर के [illegible] पार ठेठ उत्तर में एक ऐसा देश है जहां सूरज [illegible] निकलने-डूबने का कोई असर नहीं पड़ता। वहां [illegible] रात रहती है। उसके नीचे वह देश है जिसमें [illegible] महीने दिन और कई महीने रात रहती है। इस बयान से साफ़ ज़ाहिर है कि सुमेरियों को ध्रुव और उसके पास के देशों का पता था।

सुमेर में वैद्य और डाक्टरों का काम बड़ी ज़िम्मेदारी का काम समझा जाता था। दवाओं और चीर फाड़ दोनों से काम लिया जाता था। सर्जन अपनी क्लिप्स को ख़तरे में डालकर चीर फाड़ का काम करता था, क्यों कि देश का क़ानून था—"अगर डाक्टर आंख का आपरेशन करे और उसकी बेपरवाही से रोगी की आंख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती रहे तो डाक्टर की आंख निकाल ली जायगी। और अगर वह किसी ज़ख्म का आपरेशन करे और आपरेशन से रोगी की मौत हो जाय तो इस तरह के अनाड़ी डाक्टर की दाहिना हाथ काट लिया जायगा।"

देवदासी

दक्खिन भारत के हिन्दू मन्दिरों की तरह सुमेर में भी देवदासियों का रिवाज था। देवताओं का स्त्रियों के साथ विवाह किया जाता था। कानून ने इन स्त्रियों को समाज में आदर का रुतबा दे रखा था। जब कोई मनुष्य अपनी लड़की को देवदासियों में दाखिल करना चाहता था तो लड़की का पिता देवता को दहेज देता था। देवदासियों में कई दरजे थे।

सबसे ऊपर देवता की पटरानी थी जो 'एन्तु' कहलाती थी। वह देवता की धर्म पत्नी समझी जाती थी। आमतौर पर वह राजा या किसी सरदार की लड़की होती थी। देवदासियों में उसका सबसे ऊँचा स्थान था। उसको जीवन भर अपना चरित्र निर्दोष और बेदाग़ रखना पड़ता था। उर के मन्दिर की 'एन्तु' सदा सम्राट की लड़की होती थी। एन्तु के चरित्र पर इतना ध्यान रखा जाता था कि अगर वह किसी शराब की दूकान पर दिखाई दे जाय तो उसे ज़िन्दा जला दिया जाता था।

दूसरे दरजे की देवदासी 'साल-मे' कहलाती थीं। इनकी तादाद काफ़ी थी और ये मन्दिर की तरफ़ से व्यापार-वाणिज्य भी करती थीं। ये मन्दिर ही में रहती थीं। इनके औलाद भी होती थी लेकिन औलाद के पिता का नाम मालूम न होता था।

तीसरी श्रेणी की 'सिक्रु' या 'कदिशतु' कहलाती थीं। ये सीधी सादी मन्दिर की वेश्याएं होती थीं। इनके सम्बन्ध में कोई रहस्य न था। ये निकृष्ट दरजे की स्त्री समझी जाती थीं। उनके ख़िलाफ़ अनेक कहावतें समाज में प्रचलित थीं। इनकी वेश्या वृत्ति से जो कुछ आमदनी होती थी उसका एक एक पैसा मन्दिर के खज़ाने में जाता था।

सुमेर के मन्दिरों में बेशुमार देवदासियें रहती थीं। इनकी वजह से किसी किसी मन्दिर की शान और रौनक महल से कम न थी। धर्म ने इस रिवाज पर पवित्रता का मुलम्मा फेर रखा था। समझा जाता था कि किसी भी स्त्री के लिये इससे बढ़कर क्या कुर्बानी हो सकती है कि वह अपना कौमार्य देवता के चरणों में चढ़ा दे। देवदासियों को छोड़कर सुमेरी समाज में सतीत्व का उतना ही ज़्यादह ख़याल रखा जाता था जितना किसी भी समाज में कभी भी रखा गया है। व्यभिचार या बलात्कार के लिये कड़ा दण्ड दिया जाता था।

समाज

जहां तक विवाह का सम्बन्ध है सुमेर में एक आदमी के एक स्त्री का ही नियम था। लेकिन एक विवाहिता के अलावा रखेल स्त्रियों के रखने का भी रिवाज था। विवाहिता पत्नी की इज़्ज़त का बेहद ध्यान रखा जाता था। कोई दूसरी स्त्री उसके अधिकारों में बाधा न डाल सकती थी। शादी परिवार के बड़े बूढ़े ही तय करते थे। लड़केवाले लड़की के बाप को एक रक़म ज़मानत के तौर पर देते थे और इसके बाद सगाई पक्की हो जाती थी। अगर लड़का बाद में अपनी राय बदलता था तो यह रक़म ज़ब्त हो जाती थी। अगर लड़की अपनी राय बदलती थी तो उसका बाप लड़केवालों को ज़मानत से दुगनी रकम देता था। सगाई के बाद लड़की अपने आइन्दा के श्वसुर के यहां जाकर रह सकती थी। शादी की कोई खास धार्मिक रस्म न थी। हर शादी की अलग अलग शर्तें होती थीं और दोनों तरफ़ हर शादी की ज़ाब्ते से रजिस्ट्री होती थी। शादी की शर्तें एक तख़्ती पर लिखी जाती थीं। बदचलनी पर क्या सज़ा मिलेगी और किन सूरतों में तलाक हो सकेगा, यह भी उस तख़्ती में लिखा जाता था। इसके बाद उस पर गवाहों के दस्तख़त होते थे और तख़्ती सील करके मन्दिर में रख दी जाती थी ताकि वक्त ज़रूरत काम आए।

शादी के बाद दहेज़ की सब चीज़ें स्त्री अपने अधिकार में ले लेती थी। यह सारी सम्पत्ति उसकी निजी सम्पत्ति समझी जाती थी। अगर वह इस सम्पत्ति को मरने से पहले अपने बच्चों को न दे जाती थी या उनके नाम वसीयत न कर जाती थी तो स्त्री का बाप या भाई उसका मालिक हो जाता था।

पति के शादी के पहले के क़र्ज़ों के लिये पत्नी को यह जायदाद महाजन न ले सकता था। लेकिन शादी के बाद के क़र्ज़ों के लिये पत्नी भी ज़िम्मेवार होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी अलग व्यापार वग़ैरह कर सकती थी। पति के मरने पर पत्नी को पति की जायदाद से लड़कों के बराबर हिस्सा मिलता था। विधवा अपनी मरज़ी से दोबारा विवाह कर सकती थी। दोबारा शादी करने पर पहले पति की जायदाद पर उसका कोई अधिकार न रहता था। अगर एक स्त्री से औलाद न हो तो उसका पति सन्तान के लिये दूसरा विवाह कर सकता था। ऐसी सूरत में उसे पहली पत्नी के गुज़ारे के लिए इन्तज़ाम करना पड़ता था। दूसरी पत्नी के मुक़ाबले में पहली पत्नी का रुतबा बावजूद सन्तान न होने के भी ऊँचा समझा जाता था। दूसरी पत्नी को पहली पत्नी के पैर धोने पड़ते थे। पैग़म्बर इबराहीम ने, जो उर के रहनेवाले थे, इसी क़ायदे के अनुसार अपनी पत्नी सारा के होते हुए ग़ुलाम हाजरा से विवाह किया था।

सुमेरी क़ानून के अनुसार मां और बाप दोनों का औलाद पर पूरा अधिकार होता था। मां-बाप बच्चों को अपनी विरासत से महरूम रख सकते थे, शहर से दाग़ देकर निकाल सकते थे, ग़ुलामी में बेंच सकते थे या गिरवी रख सकते थे। मा बाप अगर कोई ख़ास वसीयत न कर गए हों तो उनकी जायदाद में सब लड़के लड़कियों का हिस्सा मुक़र्रर था। लड़का चाहे तो बाप की ज़िन्दगी में ही अपना हिस्सा मांग सकता था और हिस्सा पाने पर फिर वह बाप की बाक़ी सम्पत्ति का हक़दार न रह जाता था।

रखेल की औलाद जायज़ समझी जाती थी हाला कि उन्हें विवाहित स्त्री के बच्चों के बराबर रुतबा न मिलता था। दूसरे के बच्चों को गोद लेने का भी रिवाज था। देवदासियों यानी मन्दिरों की वेश्याओं के लड़के, जिनके बाप का पता न होता था, अकसर अच्छे से अच्छे घरों में गोद ले लिए जाते थे।

ग़ुलामी की प्रथा

सुमेरी समाज में ग़ुलामी का रिवाज था। आपसी लड़ाई तक में लड़ाई के क़ैदी ग़ुलाम बना लिए जाते थे और दूसरों के हाथ बेचे जा सकते थे। इसलिए सुमेरियों में ग़ुलामों की तादाद काफ़ी थी। लेकिन ग़ुलामों के साथ खासा अच्छा सलूक किया जाता था। इतिहास लेखक वूली लिखता है—

"अमरीकावाले अपने हब्शी ग़ुलामों को [illegible] समाज से ही बाहर समझते थे, और यूनानी सब [illegible] क़ौमों को पैदाइशी ग़ुलाम मानते थे। लेकिन सुमेरी की नज़र में ग़ुलामी एक मुसीबत थी, एक दुर्घ थी जिसमें कोई भी आदमी किसी समय फँस सक था।"

मां-बाप ज़रूरत पड़ने पर अपने बच्चों को ग़ुल में बेच सकते थे। कर्ज़ के एवज़ पति अपनी [illegible] लड़के या लड़की को तीन साल की ग़ुलामी में दि रख सकता था।

अगर कोई आज़ाद आदमी किसी दासी को [illegible] रखेल बनाकर रखता था तो उसकी मौत के बाद दासी और उसके बच्चे सब आज़ाद शहरी समझे थे। अगर कोई आज़ाद आदमी किसी दासी से वि करता था, और इस तरह के विवाह समाज में [illegible] से नहीं देखे जाते थे, तो इस विवाह से पैदा हुए आज़ाद शहरी समझे जाते थे।

एक ऐसे समाज में जहां रोज़ लड़ाइयां होती [illegible] थीं और जहाँ युद्ध के बादल छाते ही ग़ुलाम आज़ हो सकते थे और आज़ाद लोग ग़ुलाम बन सकते ग़ुलामों के साथ बुरा बर्ताव नहीं हो सकता था। इ रियों में ग़ुलामों के साथ इतना अच्छा बर्ताव होता कि दूसरे देशों ख़ासकर रोम जैसों की ग़ुलामी की के साथ उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती।

सुमेर में हर ग़ुलाम अपनी बिक्री के ख़िलाफ़ [illegible] राज़ करके अदालत में मामला ले जा सकता था। दमों में वह गवाही दे सकता था, ग़ुलाम रहते अपनी निजी जायदाद रख सकता था, अलग व्यव कर सकता था, क़र्ज़ ले सकता था और किसी मुआविज़ा देकर आज़ाद हो सकता था और एक आज़ शहरी का रुतबा पा सकता था।

क़ानून

जायदाद का बेचना, ख़रीदना, क़र्ज़े, आपस मुआहिदे, वसीअतनामे, गोद लेना, शादी, तलाक़ सबके लिए क़ानून बने हुए थे। इस तरह की हर ज़ान्ते से लिखी जाती थी और उस पर गवाहों के [illegible] ख़त होते थे। जब कभी कोई झगड़ा होता तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई तख़्ती अदालत में पेश की जाती थी। अदालत के सामने बयान और गवाहियां भी होती थीं। सुमेर में दो तरह की अदालतें थीं—मामूली और धार्मिक। हर मन्दिर न्यायालय था और हर पुरोहित जज। इनके अलावा राजा की तरफ से भी मामूली जज मुक़र्रर होते थे। नगर के नगरपति, पटेसी, 'इशाक्कु' या गवर्नर को भी मुक़दमों के फ़ैसला करने के अधिकार मिले हुए थे।

किसी अदालत में मुक़दमा चलाने के पहले मुद्दई को एक सरकारी 'मशकिम' (पंच) के सामने, जो पंच की हैसियत से आपस में समझौता कराने की कोशिश करता था, दरख़ास्त देनी पड़ती थी। 'मशकिम' का फ़र्ज़ था कि पूरी कोशिश से मुद्दई और मुद्दाइले में सुलह करवा दे। अगर उसे कामयाबी न होती थी तो मुद्दई को अधिकार था कि वह 'दिकुद' (जज) के सामने अपना मामला पेश करे। एक एक मुक़दमे में दो दो और चार चार तक जज बैठते थे। 'दिकुद' के साथ 'मशकिम' भी बैठता था। वह मुक़दमे के बारे में अपनी निष्पक्ष जानकारी जजों के सामने पेश करता था। मुद्दई, मुद्दालह और गवाहों को 'राजा' के नाम पर हलफ़ लेकर बयान देना पड़ता था। दस्तावेज़ों के अलावा नज़ीरें भी पेश की जा सकती थीं। जज के फ़ैसले के ख़िलाफ़ और ऊपर की अदालत में अपील की जा सकती थी ऊपर की अदालत आलिया चाहे तो मातहत अदालत के फ़ैसले को रद्द कर सकती थी। अदालतों के फ़ैसले की तामील के लिए सिपाही और कर्मचारी होते थे। अदालत के मुन्शी मुक़दमे का मुख्तसिर ख़ुलासा, उसके ख़ास ख़ास पहलू, मुद्दई-मुद्दाइले के नाम, गवाहों के नाम और जज का फ़ैसला, मिट्टी की तख़्ती पर लिख लेते थे। इस तख़्ती पर दोनों पक्ष की सील मोहर हो जाती थी और वह तख़्ती अदालत के स्टोर में सम्हालकर रख दी जाती थी ताकि वक़्त मुनासिब पर काम आए। कभी कभी उस तख़्ती को मिट्टी के एक लिफ़ाफ़े में भी बन्द कर दिया जाता था।

प्राचीन सुमेर में ग़रीब से ग़रीब आदमी इन्साफ़ की आशा कर सकता था। कोई कोर्ट फ़ीस नहीं थी। झूठी गवाही और दरोग़ हलफ़ी के लिये सख़्त से सख़्त सज़ाएं थीं। अपील करने का सबको मुफ़्त अधिकार होता था।

कुछ रस्म-रिवाज

खेती और तिजारत सुमेरियों के ख़ास रोज़गार थे। दजला और फ़िरात जैसी नदियां हर साल अपने बहाव में उपजाऊ मिट्टी लाकर सारे दोआब में बखेर देती थीं। इन नदियों के अलावा नहरों का एक जाल बिछा हुआ था। सुमेरी ग्रन्थों में २८०० ई० पू० में वहां के दोआब की जरखेज़ी का ज़िक्र है। ज़मीन से इतनी पैदावार होती थी कि एक साल की फ़सल पर वहां की आबादी का दो बरस तक गुज़ारा हो सकता था। ज़मीन कुछ सरकारी थी, कुछ मन्दिरों की, कुछ अलग अलग मालिकों की, और बहुत सी ज़मीन ऐसी थी जो गांव की पंचायती मिलकीयत समझी जाती थी। इस पंचायती ज़मीन पर पंचायती तरीक़े (collective ownership) से मिलकर खेती होती थी और पैदावार बराबर बराबर हिस्सों में सबको बांट दी जाती थी। बाज़ाब्ता सिपाहियों को जो ज़मीनें गुज़ारे के लिए मिलती थीं उन्हें 'इल्कु' कहते थे। अपने अपने पास की नहरों को किसान खुद साफ़ करते थे। खड़ी फ़सल को नुकसान पहुंचाने या फ़सल की चोरी करनेवालों को सख़्त सज़ाएं मिलती थीं।

हिन्दुस्तान की तरह हल में बैल जोते जाते थे। फ़सल काटकर खलिहान में इकट्ठा की जाती थी जहां बैलों ही से मड़ाई कराई जाती थी। भूसा अलग और दाना अलग करके रख लिया जाता था। अनाज को पत्थर की चक्की में पीसा जाता था और उसकी रोटियां बनती थीं। गेहूँ और जौ का दलिया भी बनाया जाता था। सुमेरी जौ खाना ज्यादह पसन्द करते थे। दूध के लिये गाय और बकरियां पाली जाती थीं। मक्खन, पनीर और मठे का भी रिवाज था। जौ, खजूर और अंगूर की शराब बनाई जाती थी। अमीर लोग मछली और मांस भी खाते थे। ग़रीबों का खाना आम तौर पर निरामिष होता था। ख़ास ख़ास त्योहारों पर या बलिदान के दिन ग़रीबों के यहां भी मांस पकता था।

सुमेर में चरख़े से सूत निकालकर बारीक से बारीक कपड़ा बुना जाता था। कपड़े के कई कारख़ाने मन्दिरों की तरफ से चलते थे। सैकड़ों कारख़ाने व्यापारी लोग अपनी अपनी पूंजी से चलाते थे। सुमेरी कपड़े की दूसरे देशों में बेहद मांग थी। मलमल के लिए अंगरेज़ी शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसलिन इराक ही के शहर 'मोसल' से बना है। मोसल सुमेर के उत्तर में दजला के किनारे एक पुराना शहर है जहां की मलमल किसी समय यूनान और रोम में बहुत पसन्द की जाती थी। लेकिन मोसल के बनने के भी हज़ारों बरस पहले सुमेर की मलमल दूर दूर तक के देशों में जाती थी। कपड़े और भोजन को छोड़कर और बहुत सा कच्चा माल दूसरे देशों से सुमेर में आता था।

दूसरे देशों से माल के लदे हुए जहाज़ दक्खिन के बन्दरगाहों में आकर ख़ाली होते थे। इसलिए दक्खिन के शहर ज़्यादह खुशहाल और बड़े बड़े थे। वहां से दजला और फ़िरात के रास्ते यह सब माल नावों में लाद कर उत्तर के शहरों में पहुँचाया जाता था। २०४८ ई० पू० के एक जहाज़ का बयान मिलता है जिसका माल उर में उतारा गया था। उसमें सोना, तांबा, कच्चा लोहा, हाथी दांत, इमारती लकड़ी, जवाहरात और मूर्तियां और बर्तन बनाने के लिये धातें वगैरह थीं। सुमेर के चतुर कारीगर इस सब माल की सुन्दर चीजें बनाते थे और फिर ये सब चीज़ें उत्तर और पच्छिम के देशों की मंडियों में बिकने के लिये भेज दी जाती थीं। दक्खिन के व्यापारियों की देश के दूसरे व्यापारिक केन्द्रों में शाखें और एजेन्सियां थीं। पत्र-व्यवहार से व्यापार चलता था। लेन देन में हुण्डी चलती थी। कानून ऐसे एजेन्टों को सख़्त सज़ा देता था जो हिसाब में गड़बड़ करते थे या मालिक के माल में ग़बन करते थे। उस ज़माने के सुमेर के बड़े बड़े सौदागर करोड़ों रुपए का व्यापार दूर दूर के मुल्कों ख़ासकर हिन्दुस्तान और मिस्र के साथ बिलकुल आज-कल के व्यापारियों की तरह करते थे। ज़्यादहतर [illegible] आजकल की तरह बदलौअल से चलती थी। बड़ी रकमों के बदले में सोने-चांदी के तोड़े इस्तेमाल होते सोने की क़ीमत उस समय चांदी से अठगुनी थी। पैमाने पर ख़रीद फ़रोख़्त की लिखा-पढ़ी ज़रूरी स्त्रियें उसी आज़ादी से व्यापार करती थीं जिस पुरुष। राज की तरफ़ से मकानों, गोदामों, [illegible] जहाज़ों, गाड़ियों और ज़मीनों के किराए मुक़र्र राज ही ने मज़दूरों, कारीगरों और दस्तकारों की मु मुक़र्रर कर दी थी। राज्य की तरफ से सूद की दर बंधी हुई थी। राज के मुक़र्रर किये हुए इन क़ायदों ख़िलाफ जाना जुर्म था।

सुमेरी सभ्यता ने ईसा से हज़ारों साल पहले ऐसे समाज की रचना की जिसमें समाज की संगठि क़ायम रखते हुए आदमी को पूरी आज़ादी थी। हर के लिये उन्नति के साधन मौजूद थे। राज के निर्जीव क़ानून न थे। वे सदाचार की बुनियाद पर थे और उसी बुनियाद पर समाज के हर आदमी को और ईमानदारी का अमल करने के लिये तैयार करते यही वजह थी कि सुमेरी समाज हज़ारों साल तक और ख़ुशहाल बना रहा और जब सुमेरी ताक़त होकर हाम्मुराबी के अधीन बाबुल में नई ताक़त हुई तो हाम्मुराबी ने समाज में ज़्यादह तब्दीली आवश्यकता न समझी। हज़ारों साल की उस पु संस्कृति और सभ्यता के क़ायम रखने और उ चलने ही में बाबुलवालों को अपना कल्याण दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख किसमें ?

श्री गोविन्ददास एम० एल० ए० (सेण्ट्रल)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—ऋषिकेश गङ्गा कुटी के बाहर का हाता

समय—रात्रि

[सावन की अँधेरी रात है, लेकिन पानी बरस चुकने पर आकाश निर्मल हो गया है। चन्द्रमा के आकाश में न होने के कारण तारे अपने पूरे प्रकाश से चमक रहे हैं, यानी वे कह रहे हैं कि हरण-कर्ता के न रहने पर हर चीज़ का स्वाभाविक आलोक दिख सकता है। एक तरफ़ आकाश गङ्गा की श्वेत द्युति है और दूसरी ओर एक लम्बा पुच्छल तारा निकला है। अँधेरी रात के कारण धरती पर अन्धकार ही है। फिर भी ज़मीन के इस अन्धकार पर तारों ने एक मन्द प्रकाश फेंक सा दिया है, जिससे यहां की चीजें बिलकुल विलुप्त न होकर धुँधली सी दिखायी पड़ती हैं। दूर पर हिमालय की बादलों की शिखरावली दिखती है। गङ्गा कुटी के हाते में कुछ अधिक प्रकाश है। यह है वृक्षों पर अगणित जुगनुओं के उड़ने तथा कुटी के भीतर के लम्पों की रोशनी के दरवाजों और खिड़कियों के बाहर आने के कारण। गङ्गा कुटी और उसकी वस्तुएँ इस मन्द प्रकाश में अच्छी तरह नहीं दिख पड़तीं इसलिए उनका ब्योरेवार वर्णन सम्भव नहीं तथापि मोटे रूप से गङ्गा कुटी और उसके आस पास की चीज़ों का अनुमान अवश्य किया जा सकता है। गङ्गा कुटी कोई पर्णकुटी नहीं, वरन एक छोटा-सा सुन्दर बङ्गला है। इसके बरामदे में अधिक प्रकाश है। इसलिए वहाँ की चीज़ें ज्यादा दिखाई देती हैं। उसकी दीवालें सुन्दर चित्रों से सुसज्जित हैं। खम्भों पर लतायें चढ़ी हैं, जिनके पुष्प चाहे भिन्न भिन्न रंगों के हों पर इस वक्त तो अलग अलग आकार के होते हुए भी, एक ही रंग के दिखायी पड़ते हैं। बरामदे की ज़मीन पर बेत का बना हुआ सुन्दर फ़र्नीचर है, जो लंप के सुनहरी प्रकाश में सोने-सा चमक रहा है। कुटी के बाहर एक छोटा सा नज़रबाग दिखता है। इसके किनारों पर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं और बीच की क्यारियों में पुष्पों से लदे हुए छोटे छोटे पौधे। कुछ लता-मण्डप भी बने हैं। सूर्य नहीं है, चन्द्रमा नहीं है। बिजली या गैस का ज्वाजल्यमान प्रकाश भी नहीं, रात अँधेरी है पर इतने पर भी तारे, कुटी के भीतर से आता हुआ मन्द प्रकाश, इन सब छोटी छोटी वस्तुओं ने मिलकर सारे दृश्य पर प्रकाश की झाँई ही नहीं फैलाई, पर दृश्य को एक अद्भुत प्रकार का सौन्दर्य भी दे दिया है। किसी बड़ी वस्तु के न रहने पर बहुत-सी छोटी छोटी चीजें मिलकर एक विचित्र तरह का वैभव उत्पन्न कर देती हैं, यह आज का दृश्य मानो साबित कर रहा है। बरामदे के बाहर बरामदे के नज़दीक ही खड़ी हुई प्रेमपूर्णा एकटक पुच्छल तारे की तरफ़ देख रही है। उस पर लम्प का प्रकाश कुछ ज़्यादा पड़ रहा है। वह एक सफेद रेशमी साड़ी पहने है, लेकिन साड़ी से उसका सिर ढका हुआ नहीं। सिर पर उसके लम्बे बाल सवाँरे हुए उसके मुख को घेरे कंधों तथा पीठ पर फैल उसकी पिण्डलियों को छू रहे हैं। काले बालों से घिरा हुआ उसका गौर मुख तथा सफेद साड़ी से कहीं ढंका, कहीं खुला, उसका शरीर इस मन्द प्रकाश में बड़ा ही सुन्दर दिख पड़ता है। चलती हुई वायु में जब कभी कभी उसकी साड़ी उड़ने लगती है तब उसकी शोभा और बढ़ जाती है। प्रेमपूर्णा आज के प्राकृतिक दृश्य की प्रतीक-सी जान पड़ती है, मानो वह आकाश की निशा देवी अथवा हिमालय की हिम कुमारी अथवा वन की वन कन्या अथवा गङ्गा कुटी की सजीव चेतना है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। सृष्टिनाथ का कुटी में प्रवेश। वह अभी भी साधु वेश में है। अब वह नङ्गे बदन नहीं लेकिन गेरुए रङ्ग का एक लम्बा रेशमी झोला पहने हुए है तथा उसके सिर के बाल और डाढ़ी मूँछें बहुत सुन्दर ढङ्ग से सँवारी हुई हैं। वह धीरे धीरे प्रेमपूर्णा के पास आकर खड़ा हो जाता है। प्रेमपूर्णा पुच्छल तारे के देखने में इतनी मग्न है कि उसे सृष्टिनाथ के आने की आहट ही नहीं मिलती और सृष्टिनाथ के आगमन का हाल उसे तब मालूम होता है, जब वह सृष्टिनाथ की आवाज़ सुनती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिनाथ—धूमकेतु को देख रही हो, प्रेम पूर्णा ?

प्रेमपूर्णा—(पुच्छल तारे की तरफ ही देखते हुए) हाँ, वह कितना सुन्दर है, साधु।

सृष्टिनाथ—(पुच्छल तारे की ओर ही देखते हुये) सुन्दर ! (कुछ रुककर) प्रेमपूर्णा, जानती हो इसका उदय होना बहुत बुरी बात मानी जाती है ?

प्रेमपूर्णा—(सृष्टिनाथ की ओर देखकर) इतनी सुन्दर वस्तु का उदय होना बुरी बात !

सृष्टिनाथ—हाँ, समझा जाता है, इसके उदय होने से या तो कोई बड़ा आदमी मरता है, या कोई बड़ा भारी युद्ध अथवा बलवा होता है, या कोई महामारी होती है, या अकाल पड़ता है।

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) अच्छा ! इतनी वस्तु से इतने उत्पात्।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) सृष्टि की कोई ऐसी चीज़ है जो तुम्हें सुन्दर न दिखती हो, प्रेमपूर्णा।

प्रेमपूर्णा—(विचार-पूर्वक) स्मरण तो ऐसी कोई वस्तु नहीं आती, साधु।

सृष्टिनाथ—(उसी तरह विचारते हुये) और ऐसी भी कोई चीज है, जिसमें तुम्हें अब तुम्हारी दादी न दिखती हो ?

प्रेमपूर्णा—(विचार-पूर्वक) ऐसी भी कदाचित कोई वस्तु नहीं है।

सृष्टिनाथ—(गम्भीरता से) जानती हो, यह भ्रम है ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) भ्रम...भ्रम कैसे हो सकता है, साधु ? दादी ने कहा था कि महायात्रा के पश्चात वे सारी सृष्टि की हर वस्तु में व्याप्त हो जायँगी।

सृष्टिनाथ—लेकिन तुमने देखा नहीं कि वे हम सब के देखते देखते चिता में भस्म की ढेरी हो गयीं ?

प्रेमपूर्णा—वह !...वह तो उनका शरीर था, साधु। वे...वे तो सब में व्याप्त हो गयीं, वे मुझसे सदा यही कहा करती थीं।

सृष्टिनाथ—वे कहती थीं और तुमने मान लिया ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) वे कभी कोई झूठ बात कह सकती थीं ?

सृष्टिनाथ—(कुछ खीझकर) यह अन्ध विश्वास है, प्रेमपूर्णा, अन्ध विश्वास !

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) अन्ध विश्वास (कुछ गम्भीरता से) दादी के कथन में विश्वास विश्वास ! ...ना, ना, साधु !...और...और फिर भी तो वे सर्वत्र व्याप्त दिखती हैं।

सृष्टिनाथ—(आश्चर्य से) तुम्हें वे सर्वत्र दिखती हैं ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) हाँ, (कुछ रुक सूर्य के प्रकाश और चन्द्रमा की द्युति में, तारों की मलाहट और जुगनू की चमक में, वृक्षों, लताओं, टहनियों, पत्तों, फूलों और फलों में, प्रत्येक जीव में (पुच्छल तारे को देखते हुए) और इस पुच्छल तारे भी वे दिखायी देती हैं।

सृष्टिनाथ—(अत्यन्त आश्चर्य से) प्रेमपूर्णा ! या तो ऐसी हो जैसा कोई प्राणी है ही नहीं...और ...या पगली हो।

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) मैं...मैं...साधु, मैं प्रेमपूर्णा हूं, केवल प्रेमपूर्णा।

सृष्टिनाथ—(विचार पूर्वक) तुम्हें तुम्हारी दादी शरीर, उनका मुख इन सब चीजों में दिखता है ?

प्रेमपूर्णा—नहीं, उनका शरीर और मुख दिखेगा ? मुझे तो दादी दिखती हैं।

सृष्टिनाथ—(फिर कुछ झुंझलाकर) दादी शरीर और उनका मुख नहीं दिखता, दादी दिखती इसका मतलब ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिला कर) मतलब क्या दादी दिखती हैं का अर्थ दादी दिखना होता है।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर विचारते हुये) दिखना होता है। पर दादी की कौन सी चीज़ ?

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) दादी की कौन चीज ?...दादी की चीज़ नहीं, साधु, दादी।

सृष्टिनाथ—(उसी प्रकार विचारते हुये) मैं समझ नहीं सका।

प्रेमपूर्णा—(कुछ गम्भीरता से) मैं कदाचित हूँ, समझा नहीं सकती पर समझ सकती हूँ।

[कुछ देर दोनों चुप रहते हैं]

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) अच्छा, वे सुन्दर ?

प्रेमपूर्णा—सुन्दर ? आह ! परम सुन्दर, सुन्दर साधु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिनाथ—(उसी प्रकार विचारते हुए) खैर; सुन्दर और कुरूप के सम्बन्ध में तो सवाल ही निरर्थक है। शायद मुझे छोड़कर कोई ऐसी चीज नहीं जो तुम्हें कुरूप दिखती हो।

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) तुम कुरूप साधु ! क्या कहते हो, तुम भी सुन्दर हो।

सृष्टिनाथ—परम सुन्दर नहीं ?

प्रेमपूर्णा—(फिर खिलखिलाकर) परम सुन्दर ! परम परम सुन्दर, साधु।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर) और जानती हो, मुझे ...मुझे...तुम्हें छोड़कर सब चीजें कैसी दिखती हैं ?

प्रेमपूर्णा—कैसी ?

सृष्टिनाथ—अत्यन्त कुरूप !

प्रेमपूर्णा—(कुछ गम्भीरता से) यह तुम्हारा दृष्टि दोष है साधु, अथवा बाल्यावस्था से ही तुम्हें मेरी दादी के सदृश्य कोई मिला नहीं, जो तुम्हें सारी सृष्टि में सौन्दर्य, केवल सौन्दर्य दिखा सकता।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर विचारते हुए) नहीं, यह बात नहीं है, प्रेमपूर्णा।

सृष्टिनाथ—(गम्भीरता से) तुम मुझ पर वैसा प्रेम नहीं करतीं जैसा मैं तुम पर करता हूँ।

प्रेमपूर्णा—(आश्चर्य से) मैं तुमसे प्रेम नहीं करती ?

सृष्टिनाथ—नहीं !

प्रेमपूर्णा—(खिलखिलाकर) क्या कहते हो, क्या कहते हो, साधु !

सृष्टिनाथ—(एक लम्बी साँस लेकर) ठीक कहता हूँ प्रेमपूर्णा। अगर यह ठीक न होता तो...तो क्या तुम्हारा भी मेरे प्रति वैसा ही व्यवहार न होता जैसा तुम्हारे प्रति मेरा है ?

प्रेमपूर्णा—(कुछ गम्भीरता से) मेरा तुम्हारे प्रति वैसा व्यवहार नहीं जैसे मेरे प्रति तुम्हारा है ?

सृष्टिनाथ—नहीं, देखती नहीं, मैं हमेशा तुम्हें ही देखा करता हूं, सदा तुम्हारी मधुर ध्वनि सुनने के लिए मेरे कान लालायित रहते हैं। तुम कभी उदय और अस्त होते हुये सूर्य को, कभी दिन प्रतिदिन बढ़ते और घटते हुए चन्द्रमा को, कभी तारों और कभी जुगनुओं को, वसन्त में अधिकतर पुष्पों और वर्षा में एकटक बादलों और बिजली को, और भी न जाने क्या क्या—जैसे आज पुच्छल तारे को, देख रही थी—देखा करती हो। (कुछ रुककर) सुना करती हो कभी कोयल, कभी पपीहे, कभी अन्य पक्षियों की आवाज़, कभी गङ्गा का बहता हुआ नाद और कभी कुछ और कभी कुछ। (कुछ रुककर) करने के काम हैं चित्र बनाना, कविता करना, पौधों में पानी सींचना, भिखमंगों को भिक्षा देना, कोई बीमार दिख जाय तो वहीं बैठ जाना या उसकी औषधि लाना। और...और निकृष्ट से निकृष्ट चीज़ में—और इन बीमारों तक में तुम्हें सौन्दर्य दिखता है। (कुछ रुककर) पर मेरी बात ही अलग है।

प्रेमपूर्णा—क्यों, तुम भी तो सदा इन वस्तुओं को मेरे साथ देखा करते हो, इन शब्दों को मेरे साथ सुना करते हो, ये ही सब काम मेरे साथ किया करते हो।

सृष्टिनाथ—इसलिए कि बिना इसके तुम्हारे साथ रहने को भी जो न मिलेगा।

प्रेमपूर्णा—(कुछ गम्भीरता से) तो तुम्हें इन सब वस्तुओं में सौन्दर्य नहीं दिखता ? इन सब कामों में आनन्द नहीं आता ?

सृष्टिनाथ—सौन्दर्य ···मुझे ?···मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि सुन्दर वस्तुओं का सौन्दर्य खिंचकर तुममें आ गया है और वे चीज़ें सौन्दर्य से रहित हो असुन्दर, बिलकुल कुरूप हो गई हैं। (कुछ रुककर) फिर जो वस्तुएँ सचमुच ही कुरूप हैं, वे मुझे कुरूप ही दिखती हैं। असुन्दर को कुरूप न देखकर सुन्दर देखना यह दृष्टिभ्रम मुझमें नहीं। (फिर कुछ रुककर) और आनन्द···आनन्द की बात ही छोड़ दो।

प्रेमपूर्णा—(गम्भीरता से) तो तुम्हें मेरे संग से दुःख है, साधु।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) दुःख ?···दुःख नहीं एक जलन एक अजीब तरह की जलन है प्रेमपूर्णा।

प्रेमपूर्णा—(आश्चर्य से) जलन !

सृष्टिनाथ—हाँ, जलन। (कुछ रुककर) जब तुम सृष्टि की सुन्दर और कुरूप सभी चीजों में मुझे सुन्दरता दिखाती हो तब उन सबको देखकर मेरी आँखों में एक विचित्र प्रकार की जलन पैदा होती है। जब तुम मुझे पक्षियों के गान, बादलों की गरज और गङ्गा के बहाव में मधुर ध्वनि सुनने के लिए कहती हो, तब मेरे कान जल उठते हैं। और जब मैं तुम्हें किसी दूसरे मनुष्य से बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते देखता हूं, या किसी के दुख दूर करने की कोशिश तब मेरा हृदय जलने लगता है। (कुछ रुककर) मैं सोचता हूँ मेरा दुःख दूर न कर, जो तुम्हारा है, तुम दूसरों के दुख दूर करने में इतनी संलग्न! इतनी व्यग्र!

प्रेमपूर्णा—(गम्भीरता से) तो मैं तुम्हारा दुःख दूर नहीं कर रही हूं? जिसे मेरी दादी मुझे सौंप गयी हैं उसका दुःख दूर नहीं कर रही हूँ?

सृष्टिनाथ—(लम्बी साँस लेकर) बात तो ऐसी ही है।

प्रेमपूर्णा—(आंखों में आंसू भरकर सृष्टिनाथ की ओर देखकर) मैं किस प्रकार तुम्हें सुखी करूँ, साधु?

सृष्टिनाथ—(एकटक प्रेमपूर्णा की ओर देखते हुए) बताऊँ! करोगी?

प्रेमपूर्णा—(उसीकी ओर देखते हुये) यदि इस शरीर का बलिदान दे देना पड़े तो भी।

सृष्टिनाथ—(एकाएक प्रेमपूर्णा को हाथों में उठाकर अत्यधिक लालसा से कुछ देर तक उसका मुख चूमने के बाद) तुम्हें कोई दुख तो नहीं पहुंचा?

प्रेमपूर्णा—(आंखें बन्द किये हुए) मुझे उसीमें सुख है, साधु, जिसमें तुम्हें सुख मिले।

सृष्टिनाथ—(मद से झूमते हुये) ओह! तुम कैसी···कैसी अद्भुत हो! कैसी···कैसी! विचित्र हो! इच्छा और कर्तव्य की मिश्रित पुतली! प्राचीनता और नवीनता की मिश्रित प्रतिमा! बालिका और युवती की मिश्रित तस्वीर! कला! नैसर्गिक नहीं, पर तुम ऐसी··· ऐसी कला का प्रतिबिम्ब जान पड़ती हो जो निसर्ग से सीधी अवतीर्ण हुई हो। तुम मुझे स्वप्न से भी ज़्यादा सुन्दर जान पड़ती हो। कितनी···कितनी सीधी सादी कितनी भोली भाली हो तुम, पर कहीं इस सीधेपन, इस भोलेपन में प्रेम के बाँकेपन, आड़े टेढ़ेपन का कहीं मिश्रण हो जाय···

[सृष्टिनाथ फिर प्रेमपूर्णा का मुख उसी प्रकार चूमता है। वह न इन्कार करती है न उसके हाथों से छूटने की कोई कोशिश करती है। सृष्टिनाथ उसे उसी तरह उठाए हुए धीरे धीरे कुटी के भीतर जाता है। बाहर वायु वेग से चलने लगती है। वृक्षों के पत्तों से खड़खड़ाहट की आवाज़ से सारा वायु मण्डल व्याप्त जाता है।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—गंगा कुटी के भीतर शयनागार

समय—रात्रि

[शयनागार की दीवालें बसन्ती रंग से रंगी है पीले रंग पर लाल छींटे हैं। दीवालों में कई दरवाजे और खिड़कियां हैं, पर सब बन्द हैं। इनके कांचों के बाहर बरसता हुआ ज़ोर का पानी और बार बार चमकती हुई बिजली दिख पड़ती है। पानी की बड़ी बड़ी बूंदें के थपेड़े कांचों पर लगते हैं, मानों वे दरवाजे को तोड़ भीतर आने की कोशिश में तल्लीन हैं, और जब बिजली कुछ सैकंडों के लिए ज़ोर से चमकती है, तब सहसा उसके प्रकाश की एक लहर सी शयनागार में आ जाती है मानों वहां जो कुछ हो रहा है उसे देखने के लिए एक बार सौदामिनी कमरे में प्रवेश करना चाहती है। दीवालों पर प्रेमपूर्णा के बनाये हुये अनेक रंगीन चित्र टँगे हैं। इनमें अधिकांश प्राकृतिक दृश्यों के हैं; कुछ साधुओं, भिक्षुकों, ग़रीब बालक-बालिकाओं आदि के। ये चित्र मानों प्रेमपूर्णा की अदृश्य भावनाओं को व्यक्त कर रहे हैं। कमरे की छत से एक लंप लटक रहा है जिसके प्रकाश से कमरा प्रकाशित है। जमीन पर सुन्दर नक्काशी की हुई चटाई बिछी है। चटाई पर कपड़े टाँगने की खूँटियों का एक तिपाया, एक छोटी टेबिल, दो कुर्सियां और दो पलङ्ग बिछे हैं। सारा फर्नीचर बेंत का बना हुआ है, जिसका सुनहरी रंग लैंप के मुलायम प्रकाश में और चमक उठा है। दोनों पलंग पर रंगीन शय्यायें हैं और दोनों पलंग मिलाकर बिछाये गये हैं मानों उन पर सोनेवालों के हृदयों की मिलावट की कोशिश की गई है। एक पलंग पर सृष्टिनाथ आधा लेटा सा है। उसके बाल तो अभी भी कन्धों तक लम्बे हैं, पर दाढ़ी मूँछे नहीं हैं। लम्बे गेरुए झोले की जगह कुरता और धोती आ गई है। उसके मुख पर अत्यधिक उद्विग्नता है। एक पलंग पर प्रेमपूर्णा लेटी हुई है। आज नीले रंग की रेशमी साड़ी और वैसा ही पहने है। श्वेत शैया पर नीली साड़ी से आच्छादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ण की प्रेमपूर्णा किसी सफेद बादल के बीच किसी नीले बादल के टुकड़े में चमकती हुई दामिनी सी दिखाई देती है। उसकी आँखें बन्द हैं और मुख पर आती हुई नींद की अलसाहट। प्रेमपूर्णा के मुख पर बालिका के सदृश वह भोला हर्ष तथा उल्लास और वह अल्हड़पन अब दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्षा के कारण बाहर जो शब्द हो रहा है, वह भीतर भी आ रहा है, मानो उसकी प्रतिध्वनि हो रही है। बीच बीच में जब बादल की गरज होती है, तब भास होता है मानों किसी बड़े भारी समूह ने वृष्टि का जय जयकार किया है।]

सृष्टिनाथ—(प्रेमपूर्णा की तरफ देखते हुये) नींद आ रही है, प्रिये ?

प्रेमपूर्णा—(आंखें खोलने का प्रयत्न करते हुये) नहीं तो। (आंखें नहीं खोलती)

सृष्टिनाथ—(झुंझलाकर) नहीं, कैसे ? आँखें तक तो खुलतीं नहीं

प्रेमपूर्णा—(आंखें खोलकर) नहीं कैसे खुलतीं; आंखें तो मैंने यों ही बन्दकर ली थीं।

सृष्टिनाथ—यों ही बन्द कर ली थीं ? क्यों, जिससे मेरा कुरुप स्वरूप न दिखे ?

प्रेमपूर्णा—(झटके से उठकर तकिये पर टिहुनी रख, मुख को हथेली पर रखते हुए) फिर तुमने वही बात कही ?

सृष्टिनाथ—(कुछ रुककर) पर नींद आयेगी कैसे नहीं ? दिन भर पौधों में पानी सींचा जाता है; भिख मंगों, लूले लँगड़ों; अन्धों से बातें होती हैं, रोगियों के औषधि के इन्तज़ाम में व्यग्र रहती हो। आख़िर शरीर है, दिन भर की मिहनत के बाद नींद नहीं आयगी।

प्रेमपूर्णा—परन्तु...परन्तु...अब इन सब कामों को कितना कम करती हूं। बाल्यावस्था का अभ्यास एक दिन में तो नहीं छूट सकता, साधु।

सृष्टिनाथ—फिर साधु ही मुख से निकला न !

प्रेमपूर्णा—(डरते हुये जल्दी से) भूल गई, भूल गया, क्षमा करो प्रियतम।

सृष्टिनाथ—(लम्बी सांस लेकर) नहीं जो बात सच्ची है वही तो मुँह से निकलेगी। अगर प्रिय नहीं हूं तो प्रियतम मुख से निकल ही कैसे सकता है ?

प्रेमपूर्णा—मैं प्रियतम नहीं कहती ?

सृष्टिनाथ—बहुत कोशिश करने के बाद एकाधबार कह देती हो, पर...पर...वह...

प्रेमपूर्णा—वह ?

सृष्टिनाथ—वह साधु के सदृश स्वाभाविक रीति से मुँह से नहीं निकलता।

प्रेमपूर्णा—(विचारपूर्वक) और साधु बुरा शब्द है ?

सृष्टिनाथ—(क्रोध से) कितने बार यह सवाल पूछ चुकी हो मुझे इस शब्द से ज़्यादा बुरा और कोई शब्द नहीं लगता।

प्रेमपूर्णा—(लम्बी साँस लेकर) अब इसे कभी न कहूँगी।

सृष्टिनाथ—यह भी न जाने कितनी दफा कह चुकी हो।

प्रेमपूर्णा—नहीं कहने का प्रयत्न नहीं करती ?

सृष्टिनाथ—(झुँझलाकर) हर बात में प्रयत्न ! हर बात में कोशिश ! (कुछ रुककर) जिस तरह मेरे मुँह से प्रिये, प्रियतमा, हृदयेश्वरी इत्यादि शब्द स्वाभाविकता से निकलते हैं, वैसे तुम्हारे मुख से क्यों नहीं निकलते ?

प्रेमपूर्णा—(लम्बी साँस लेकर) निकलने लगेंगे, प्रियतम, वह भी धीरे धीरे हो जायगा।

सृष्टिनाथ—इस तरह कह रही हो, जैसे यह सब कहनें और करने में तुम्हें बड़ा दुख पहुंच रहा है, बड़ा कष्ट हो रहा है।

प्रेमपूर्णा—दुख पहुंच रहा है, कष्ट हो रहा है, तुम्हें सुखी करने में मुझे दुःख पहुंचेगा ?

सृष्टिनाथ—(क्रोध से) मुझे सुखी करने में ! घूम फिर कर वही बात आई न, मुझे सुखी करने में ? तुम्हें इस सबसे सुख नहीं होता ?

प्रेमपूर्णा—जिन बातों से तुम सुखी होते हो वे सब करने में मुझे सुख होता है। (लम्बी साँस लेती है।)

सृष्टिनाथ—फिर यह लम्बी साँस क्यों ?

प्रेमपूर्णा—(डरते डरते) मैंने लम्बी साँस ली ?

सृष्टिनाथ—(क्रोध से) खुद की लम्बी साँस भी लम्बी साँस मालूम नहीं होती ?

प्रेमपूर्णा—यों ही निकल गयी होगी, अब वह भी न निकलेगी।

सृष्टिनाथ—(लम्बी साँस लेकर) नहीं, प्रेमपूर्णा, वह ज़रूर निकलेगी, तुम उन निर्जीव पौधों में पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालना छोड़ सकेगी, उन भिखमंगों और रोगियों के पीछे पीछे घूमना भी बन्द हो सकेगा, कोशिश करने से शायद साधु शब्द भी कहना छूट जाय, लेकिन यह लम्बी साँस न रुकेगी। (कुछ रुककर) प्रेमपूर्णा, सांस हर प्राणी का जीवन है, जो नहीं बोलते उनकी भावनाओं के सदृश उनको भी साँसें आती जाती हैं। लम्बी सांस जीवन की किसी गहरी तड़प को व्यक्त करती है। (फिर कुछ रुककर) मैं जानता हूं वर्तमान जीवन से तुम्हें सुख नहीं है, फिर यह लम्बी साँस क्योंकर रुकेगी?

प्रेमपूर्णा—मुझे सुख नहीं है? तुम्हें सुख पहुंचाने में मुझे सुख नहीं मिल रहा है?

सृष्टिनाथ—मुझे सुख पहुँचाने में चाहे तुम्हें सुख मिल जाता हो, पर...पर वह सुख...वह सुख एक दूसरी तरह का है।

प्रेमपूर्णा—(उबासी लेते हुए) कैसा?

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) तुम्हारे और मेरे हृदय की भावनाओं के फ़र्क को मैं समझाने की कोशिश करूँ, सुनोगी?

प्रेमपूर्णा—तुम्हारे कथन को न सुनूँगी? (सुभीते से फिर लेट जाती है)

सृष्टिनाथ—देखो, प्रेमपूर्णा, बाल्यावस्था से तुम्हारी दादी ने तुम्हें न जाने कैसी कैसी अस्वाभाविक और अजीब बातें सिखायी हैं (प्रेमपूर्णा आँखें बन्द कर लेती है) क्यों, नींद आती है?

प्रेमपूर्णा—(आंखें बन्द किये हुये ही) नहीं, नहीं, तुम कहो।

सृष्टिनाथ—अच्छी बात है। (विचारते हुए) मैं कह रहा था तुम्हारी दादी ने बचपन से ही तुम्हें कुछ बातें सिखायी हैं। मनुष्य को उस उम्र में जो कुछ सिखाया और समझाया जाता है उसके अनुसार उसका मन बनता है, मन की भावनाएँ बनती हैं। तुम्हें जो कुछ सिखाया, समझाया गया उसके अनुसार मन बना, तुम्हारी भावनाएँ बनीं। आसमान से प्रेम! जमीन से स्नेह! आकाश की ऊषा और सन्ध्या, सूर्य और चन्द्र, तारे और धूमकेतु तक तुम्हें अच्छे लगते हैं! जब बादल उठते हैं और उनमें बिजली चमकती है, तब न जाने उनमें तुम क्या देखा करती हो। और कहीं इन्द्र धनुष निकल आया तब तो फिर पूछना ही क्या है! इसी तरह पृथ्वी के पर्वत, नदियाँ, जंगल, दरख़्त, उनकी [illegible] पत्ते, फूल, फल, इसी तरह की न जाने किन किन से तुम्हें अनुराग है। बसन्त में फूलों को देखकर नाच उठती हो। फिर जीव सृष्टि तो सभी तुम्हें किये रहती है। हिरनों का चौकड़ियाँ भरना, उछल-कूद, पक्षियों के स्वर, जुगनू की चमक, की लाली, सभी में न जाने कहाँ का सौन्दर्य दिख और जहाँ कहीं तुमने किसी मनुष्य को दुखी देखा तुम्हारा कलेजा मुँह को आया, फिर तो तुम अपने को भूल जाती हो। (कुछ रुककर) प्रेमपूर्णा, अस्वाभाविक है, और अस्वाभाविकता की पराकाष्ठा बात में कि इन सब चीज़ों में तुम्हें तुम्हारी दादी है! उसका सौन्दर्य! उस बुढ़िया की सुन्दरता! अजीब बात है! (फिर कुछ रुककर) प्रेमपूर्णा, में अगर बुद्धि है, विवेक है, तो वह इस तरह उन्म नहीं रह सकता। मनुष्य मनुष्य से प्रेम कर सक मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जितना प्रेम है उतना दुनि शायद किसीके हृदय में किसीके लिए न होगा। पूर्णा, तुम्हारे एक एक रोम को मैं प्यार कर तुम्हारा हर अंग मुझे सुन्दरता की खान दिख तुम्हारा प्रत्येक शब्द माधुर्य का निचोड़ जान पड़ और चूँकि मैं तुम्हें इतना चाहता हूँ, इसलिए तुम्हारे समीप से समीप रहना चाहता हूँ। हमेशा अपने नज़दीक से नज़दीक रखना चाहता हूं। मेरा इतना प्रेम है, वह किसी के जरा भी सन्निध यह मुझे कैसे बर्दाश्त हो सकता है? जिन वृक्षों पानी डालती हो, जिन दुखियों को तुम सुख पहुँचा उन सबसे मुझे ईर्षा होती है, उन पर क्रोध आत क्यों? इसलिए कि तुम मेरी हो, तुम पर मेरा है। कोई दूसरा तुम्हारे नजदीक भी कैसे फटक है? और तुम मेरी क्यों हो, तुम पर मेरा अधिक है? तुम पर मेरे अत्यधिक प्रेम के कारण; इसी कारण जैसा प्रेम इस विश्व में किसी का किसी होगा। (फिर कुछ ठहरकर) तुम्हारे रूप के तुम्हारे शब्दों के श्रवण, तुम्हारे आलिंगन, तुम्हारे में मुझे जो सुख मिलता है, जो आनन्द आता है वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। चुम्बन के वक्त एक एक सांस जिस तरह मेरी साँसों के ज़रिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवेश करती है, मैं चाहता हूं उसी प्रकार आठों पहर चौंसठों घड़ी होता रहे। तुम्हारी साँस पर वायु का अधिकार भी मुझे खलता है। लेकिन···लेकिन, प्रेमपूर्णा मेरे इस सारे सुख में जब मैं यह देखता हूँ कि तुम्हारा वैसा अनुराग नहीं जैसा मेरा है···तुम्हारे आलिंगन में मुझे उस दृढ़ता का भान नहीं होता, तुम्हारे चुम्बन में वह उन्माद नहीं जान पड़ता, तब···तब मेरे हृदय··· हृदय नहीं, मेरी आत्मा···आत्मा पर ऐसा साँप लोटता है···(प्रेमपूर्णा की ओर ध्यान से देखते हुये) क्यों, सो गयीं क्या ?

[प्रेमपूर्णा कोई उत्तर नहीं देती और उसकी मुद्रा से जान पड़ता है कि वह गहरी नींद में निमग्न है। सृष्टिनाथ एकाएक बिस्तर से उठकर झुककर प्रेमपूर्णा को देखता है और कुछ देर तक उसी तरह देखता रहता है।]

सृष्टिनाथ—(अत्यधिक लम्बी साँस लेकर) ठीक है, ठीक है, मेरा सम्भाषण सुनने की भी परवाह नहीं ! मेरे हृदय, मेरी आत्मा से निकले हुए शब्दों पर नींद की साँसों की ये ठोकरें ! यह···यह परिस्थिति सुधर नहीं सकती। (कुछ रुककर विचार करते हुये) असम्भव ··· सर्वथा असम्भव है।

[सृष्टिनाथ धीरे धीरे दरवाजा खोल कमरे के बाहर निकलता है। उसी समय बिजली की जोर की चमक होती है और कुछ ही सेकिण्डों के बाद कानों के परदों को फाड़नेवाली उसकी विकट कड़कड़ाहट।]

यवनिका

चौथा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—हिमालय के एक शिखर पर मायासिद्ध का स्थान।

समय—रात्रि

[निर्मल आकाश है। पूर्व दिशा में चन्द्र अपनी पूरी कलाओं और तेज से चमक रहा है। दूर की ऊँची ऊँची हिमालय की शिखरावली पर जमा हुआ बर्फ चन्द्र की किरणों में हीरों के ढेरों के सदृश देदीप्यमान है, मानो गिरिराज ने सिर पर हीरों का किरीट लगा लिया है। इस शिखरावली के कुछ आगे इससे कुछ नीचे के शिखर हरी वृक्षावली से आच्छादित हैं, मानो गिरिराज अपने शरीर पर हरित वस्त्र पहने हुए हैं। इन शृङ्गों पर अनेक श्वेत रंग के झरने भी दिख पड़ते हैं, इनके आड़े-टेढ़े प्रपात और बहाव के कारण ये उस हरे वस्त्र के ऊपर उड़ते हुये श्वेत दुपट्टे से दीख रहे हैं। इस शिखरावली के आगे इससे नीची पहाड़ी चोटियाँ भिन्न भिन्न रंग के पुष्पों के पौधों से ढकी हुई हैं, मानो हिमगिरि के चरणों में उसके भक्तों ने पुष्पांजलियां चढ़ायी हैं। इन्हीं चोटियों में से एक चपटी सी चोटी पर मायासिद्ध की एक छोटी सी तृण निर्मित झोपड़ी है। इसी झोपड़ी के आगे के खुले स्थान में मृग चर्म पर मायासिद्ध और सृष्टिनाथ लेटे हुए हैं। सृष्टिनाथ के सिर के बालों ने अब फिर जटाओं का रूप धारण कर लिया है। उसकी दाढ़ी और मूँछें भी बहुत बढ़ गयी हैं। वह गले से पैरों तक लम्बा एक लाल रंग का झोला पहने हुए है। उसके ललाट पर सिन्दूर का एक बड़ा सा बिन्दु लगा है। सृष्टिनाथ के मुख पर अत्यन्त उद्विग्नता दिखायी देती है। मायासिद्ध बहुत ऊँचा, मोटा और अत्यन्त काले रङ्ग का व्यक्ति है। वह अधेड़ अवस्था का है और उसकी वेष-भूषा सृष्टिनाथ के सदृश ही है। उसके मुख पर उसकी अत्यन्त रक्त वर्ण आंखें सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती हैं।]

मायासिद्ध—सन्देह ! योग पर सन्देह, वत्स ! योग विज्ञान है। उसका सञ्चालन बुद्धि करती है। उससे सिद्धि निश्चित नियमों के अनुसार अनवरत कार्य और उस कार्य में अत्यधिक कष्ट सहिष्णुता से मिलती ही है। सिद्धि मिलने के बाद कौन सी ऐसी वस्तु है जो प्राप्त न हो सके ? असफलता की छाया भी तू जीवन पर नहीं पड़ने देना चाहता, समस्त सृष्टि पर तू अधिकार, केवल अपना अधिकार चाहता है, वह···वह स्थिति योग में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् ही आ सकती है।

सृष्टिनाथ—(उबासी लेते हुये) किन्तु, गुरुदेव, छै···पूरे छै वर्ष बीत गये। क्या मैंने आपके बताये हुए सारे नियमों का ठीक ठीक पालन नहीं किया ? मेरे कार्य करने अथवा कष्ट सहने में कोई कमी रही है ?

मायासिद्ध—नहीं, किन्तु छै वर्ष···छै वर्ष क्या कोई बहुत लम्बा समय है ? सिद्धि के बाद छै वर्ष तेरे लिए छै पलों के सदृश हो जायँगे। तू अमर हो जायगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वत्स ! समय की लम्बाई और स्थान की विशालता का प्रश्न ही तेरे लिए न रहेगा। तू चाहता है अटूट विलास, तू चाहता है व्यापक से व्यापक कीर्ति और बड़े से बड़ा सम्मान (नींद के कारण सृष्टिनाथ की आंखें बन्द हो जाती हैं) भारत, योरप, अमेरिका, मिश्र, ईरान, चीन, जापान—विश्व के हरेक देश के सारे विलासों को तू भोगना चाहता है। हर स्थान पर तू महान सम्मान का अभिलाषी है। तू चाहता है वह शक्ति जिससे जो कुछ भी सुन्दर है, जो कुछ भी वैभवशाली है, जिस पर भी अधिकार करने की तेरी इच्छा हो, वह दृष्टि उठाते ही तेरे चरणों पर लोटने लगे। अधिकार और सफलता से ही तेरा जीवन व्याप्त रहे। यह···यह सिद्धि छोटी चीज नहीं···यह···यह···(सृष्टिनाथ की ओर ध्यान से देखकर) सो···सो गया, वत्स !

[सृष्टिनाथ कोई उत्तर नहीं देता। एकाएक अँधेरा होता है और वह सारा दृश्य लुप्त होकर एक सफेद रंग की शून्यता दृष्टिगोचर होती है। चौथे अंक के इस पहले दृश्य के आगे की सारी चीजें इसी सफेद शून्य में दिखती हैं और विलुप्त होती जाती हैं। शब्द भी इसी शून्य में सुन पड़ते हैं।]

[सृष्टिनाथ अंग्रेजी ढंग की पोशाक में एक वैभवशाली बँगले के बरामदे में खड़ा हुआ है। उसकी मूंछें फिर बटरफ़्लाई हो गयी हैं। उसके सामने बँगले का एक बड़ा सा खाली चौक है। उसके मुख पर प्रसन्नता का साम्राज्य है। वह सामने के खाली चौक को देख रहा है। देखते देखते वह अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाता है। उसके हाथ उठते ही उस चौक में सोने के बड़े बड़े टीले बनने लगते हैं। कुछ देर के बाद हाथ नीचा कर हाथ को फिर उठा ऊपर से वह कुछ बुलाता है। ऊपर से हीरे, पन्ने, माणिक, मोती आदि देदीप्यमान रत्नों की वर्षा होने लगती है। सृष्टिनाथ बड़े जोर से हँसता है। दृश्य विलुप्त हो जाता है।

एक परम रमणीय उद्यान दिख पड़ता है। वर्षा ऋतु के कारण उद्यान में उद्भिज सृष्टि अपने पूर्ण विकास में है। एक झूला पड़ा हुआ है। झूले की डोरियां पत्र पुष्पों से सुसज्जित हैं। उस पर झूल रही है एक परम सुन्दर युवती। अनेक सुन्दरियां झूले के चारों तरफ़ हैं। कुछ इसे झुला रही हैं, कुछ वाद्य बजा रही हैं, कुछ गा रहीं हैं। सृष्टिनाथ के साथ झूलनेवाली भी बदलती हैं। आकाश मेघाच्छन्न है। कभी कभी बादल उठते हैं, बिजली चमक जाती है, कुछ फुहार जाती है। इन्द्रधनुष निकला हुआ है। बादलों का साथ देते हैं 'केका'। पर धरती पर के के कर्कश स्वर को मधुर बना देती है पपीहे की 'पी हू'। यह दृश्य भी विलुप्त होता है।

एक लम्बी रेलगाड़ी चलती हुई दिखती है। बीच में सफ़ेद रंग का सैलून भीतर से दिखायी दे सृष्टिनाथ सैलून में कुछ सुन्दरियों के साथ कैसे शराब पी रहा है। दृश्य परवर्तित हो एक सड़क पड़ती है जो आड़ी टेढ़ी होकर पहाड़ों पर ऊपर है। मोटरों की एक पंक्ति इस रास्ते पर है। एक मोटर के भीतर सृष्टिनाथ बैठा हुआ सिगरेट पी फिर मोटर आगे बढ़ती हुई दिखने लगती हैं। देखने से पता लगता है कि यह काश्मीर का दृश्य परिवर्तित होकर काश्मीर के अनेक सुन्दर दृश्य दिखते हैं। इन सभी में सृष्टिनाथ का कोई विहार दृष्टिगोचर होता है। यह दृश्य भी विलुप्त है।

समुद्र में दूर पर चलता हुआ एक जहाज दिख देता है। धीरे धीरे जहाज नज़दीक से दिखने लगता तब जान पड़ता है कि वह बड़ा जहाज है। इस का 'स्मोकिंग रूम' दिख पड़ता है। सृष्टिनाथ यात्रियों के साथ वहाँ बैठा हुआ है। यात्रियों में निवासी और हिन्दुस्तानी दोनों ही हैं, कुछ पुरुष हैं स्त्रियां और कुछ बच्चे। सभी यात्रियों का उसके प्रति इतना आदर पूर्ण है मानो वह उस से जाने वाला सबसे प्रधान व्यक्ति है। दृश्य परव इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्विज़रलैंड अनेक दृश्य दिखायी देते हैं। सृष्टिनाथ इन में दिख पड़ता है और उसके नाना प्रकार के कहीं उसके सम्मान में 'लंच', कहीं 'टी पार्टी', 'काकटेल पार्टी', कहीं 'डिनर' कहीं 'बाल' हो यह दृश्य भी लुप्त होता है।

आकाश में उड़ता हुआ एक एरोप्लेन दिख होता है। जब वह नजदीक से दिखने लगता जान पड़ता है योरप से अमेरिका जानेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76230

है। एरोप्लेन के भीतर का 'सिटिंग रूम' दिखता है। कुछ यात्रियों के साथ बैठा हुआ सृष्टिनाथ दिख पड़ता है। जहाज के यात्रियों के सदृश ही एरोप्लेन से उड़ने वाले यात्रियों का उसके प्रति बड़े आदर का व्यवहार है। दृश्य परिवर्तित हो न्यूयार्क नगर के सैकड़ों मंजिल वाले गगन चुम्बी प्रासाद, और वहाँ के वैभवशाली जीवन के अनेक दृश्य दिखते हैं। फिर कैलिफोर्निया के सुन्दर दृश्य और फिर हालीवुड की अद्भुत स्टूडिओ आदि। सभी जगह सृष्टिनाथ की कोई न कोई आकृति दिख पड़ती है। इस दृश्य का लोप होते ही वह उसे अमेरिका के प्रेसीडेन्ट द्वारा दी गयी एक महान गार्डन पार्टी में है।

फिर से एरोप्लेन दिखता है और दृश्य परिवर्तित हो मिश्र देश के दृश्य दिखायी देते हैं, वहाँ के पिरेमिड आदि। सृष्टिनाथ सब जगह है और उसीके साथ उसका कोई कोई न काम। सृष्टिनाथ को मिश्र देश की जनता द्वारा दिये गये मानपत्र की विशाल सभा में इस दृश्य की समाप्ति होती है।

फिर एरोप्लेन दिख पड़ता है और दृश्य बदलकर ईरान के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। वहां भी हर जगह सृष्टिनाथ है। एक अत्यन्त भावनोत्तेजक मुसल्मानी नाच से, जिसे सृष्टिनाथ देख रहा है, यह दृश्य लुप्त होता है।

फिर एरोप्लेन; और अब चीन देश दिखता है। वहां की 'महान दीवाल' तथा वहां के भी विविध दृश्य दिखायी देते हैं। सृष्टिनाथ सब जगह मौजूद है। इस दृश्य का अन्त होता है चीन के मशहूर दीप-उत्सव से।

फिर एरोप्लेन दिख पड़ता है और अब जापान के कई सुन्दर सुन्दर दृश्य। इनमें भी सृष्टिनाथ है। आखीर में जापान का प्रसिद्ध 'क्राइजेन्थेमम्' नामक अगनित रंग के पुष्पों का एक उपवन दिखता है जहां उन पुष्पों के रंगों के सदृश ही भिन्न भिन्न रंग की चटकीली पोशाकें पहने हुए वहां की सुन्दरियों के साथ सृष्टिनाथ विहार कर रहा है।]*

लघु यवनिका

*नोट—सृष्टिनाथ की नींद से लेकर यहां तक का दृश्य सिनेमा में ही दिखाया जा सकता है।

दूसरा दृश्य

स्थान—ऋषीकेश के उत्तर में गंगा तट

समय—उषा काल

[आकाश निर्मल है पूर्व दिशा लाल और सुनहरे रंग से रंजित हो गयी है, मानो उसने सूर्य के स्वागत के लिए लाल साड़ी और सोने के आभूषण धारण किये हैं। पूर्व में प्रकाश फैलते जाने पर भी शुक्र अभी तक उसकी अवहेलना कर अपने इने-गिने दो-चार साथियों के साथ चमक रहा है, लेकिन हर सेकण्ड उनकी कम होनेवाली द्युति से जान पड़ता है मानो वे अभी जो कुछ होने वाला है उसे जानते हैं और उस भय के कारण अपना तेज खो रहे हैं। विहगों का कलरव शुरू हो गया है मानो वैतालिकों ने अपनी विरदावली का गान आरम्भ कर दिया है। हिमालय की शिखरावली के दरख्तों के, जो गंगा के किनारे तक आ गये हैं, नये पत्तों और उनके बीच बीच में विविध रंग के फूलों से ऋतुराज का राज्य मालूम होता है। इसकी पुष्टि कभी कभी सुन पड़ने वाली कोयल की कुहुक कर देती है। चलती हुई वायु से कगारों के वृक्षों के कुसुम गङ्गा में गिर रहे हैं। इनमें से अनेक बहकर आवर्तों में जब गोलाकार घूमने लगते हैं तब उनकी माला सी बन जाती है, मानो गङ्गा तरुओं द्वारा समर्पित पुष्पांजलि को गूँथकर उन हारों से अपना शृङ्गार कर रही है। हिमालय के शिखरों, उनकी वृक्षावली, गङ्गा की धारा और उसके किनारे की बालू सभी पर ऊषा के प्रकाश का प्रतिबिम्ब है। सृष्टिनाथ अकेला धारा के किनारे खड़ा हुआ धारा के प्रवाह को देख रहा है। वह एक सफेद कुरता और धोती पहने है। उसकी जटाएँ कट गयी हैं और मूँछें-दाढ़ी मुंड गयी हैं। उसका मुख अत्यन्त मलिन है। कुछ देर बाद सृष्टिनाथ बोलने लगता है।]

सृष्टिनाथ—हां, माता,···अनेक बार···तेरी शरण··· तेरी शरण में आया और लौट गया। नये नये प्रलोभन, नये नये लालच इस फिसलाहट के कारण थे।···वैराग्य का वैभव देख लिया।···माया की सिद्धि देख ली।··· और···और (सिर उठाकर सामने की ओर देखकर) देखा यहां से बहुत निकट प्रेमपूर्णा का प्रेम। (फिर प्रवाह की ओर देखते हुए) लेकिन···लेकिन, कहीं भी तो सुख···सुख न मिला। (कुछ रुककर) पहले तेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरण में आया था—इस जन्म को खत्म कर ऐसा जन्म पाने के लिए, जिसमें बुद्धि अधिकार और सफलता तीन शब्दों से सारा जीवन व्याप्त रहे। बुद्धि जो कुछ देख सकती है उस सारे दृश्य-वैभव पर नया जन्म लेकर मैं अधिकार चाहता था और चाहता था कि उस अधिकार में जीवन भर असफलता की छाया भी न हो।···मुझे, माँ, यह सब यदि मिल जाय तो मैं कैसा हो सकता हूं, यह भी मैंने देख लिया। वह स्वप्न था; होगा, पर स्वप्न में जो देखा, वह यदि प्रत्यक्ष में मिल जाय तो·····तो भी क्या सुख मिल जायगा ? (कुछ रुककर) स्वप्न में भी सुख नहीं मिला···ज्यों ज्यों अधिक, भोगा त्यों त्यों विराग और घृणा की उत्पत्ति हुई, सुख की नहीं, माता ! (कुछ रुककर) प्रत्यक्ष...प्रत्यक्ष में वही होगा। (फिर कुछ रुककर) दुनियाँ में सबसे महान चीज धन है। उससे सारे संसार को खरीदा जा सकता है। मैंने देखा मुझे ऐसा धन मिला जिसकी तुलना कारूँ के खजाने से भी नहीं की जा सकती। कारूं का खजाना खत्म हो सकता था, शायद हो भी गया, पर मेरा धन नहीं।··· उसका वैभव, उसका विलास, उसका प्रभाव, उसका सम्मान सब मैंने देखे। सब पर पूर्ण अधिकार देखा। जो चाहा सो हुआ। असफलता की कहीं छाया भी नहीं, माता।···सिर्फ हिन्दुस्तान में नहीं, पर दुनिया के किसी भी पर्दे पर बुद्धि से जो कुछ जाना जा सकता है और जानकर जो प्राप्त किया जा सकता है और करके जो सुरक्षित रखा जा सकता है वह···वह सब मैंने देख लिया।···(फिर कुछ रुककर) मैं तृप्ति और विश्राम को मृत्यु और अतृप्ति और कृति को जीवन मानता था। मैं चाहता था वह शक्ति जिसकी रग-रग बुद्धि, अधिकार और सफलता से भरी हो। सब मुझे मिल जायँ तो क्या हो ? यह···यह सब मैंने देख लिया, लेकिन···लेकिन इसके देखने के बाद इस जीवन से ही घृणा क्यों हो गई, मां ? (कुछ रुककर) जब तक बुद्धि द्वारा जाने गये वैभव में कमी थी, उसे प्राप्त करने की इच्छा···उत्कट इच्छा थी, माता, इस इच्छा में अनुराग था।···किसी वक्त हां, किसी वक्त जब छोटे रूप में इस दृश्य सम्पत्ति की सभी चीजें प्राप्त थीं उस समय इस भय के हृदय में रहने के कारण कि कहीं वह सम्पत्ति हाथ से निकल न जाय, उसे किसी न किसी तरह सुरक्षित रखने की बलवान··· अत्यन्त बलवान भावना थी। पर अब···अब··· बुद्धि से जाना गया सारा वैभव देख लिया, तब··· यह विराग, यह घृणा कहां से आ गई, माँ ? (कुछ रुककर) दृश्य इतना ही है ?...बस, माँ ?···इसके आगे इसके आगे ?···इसके आगे क्या ?···इसके आगे अदृश्य।...पर वह...पर वह है क्या, माता—(फिर रुककर) कुछ नहीं, कुछ नहीं, शून्य ! वह प्राप्त के योग्य ?...जो नहीं दिखता, जो नहीं समझा समझाया जा सकता, वह सार, वह नित्य, वह सत्य शून्य भी नहीं, माँ ?...(कुछ रुककर) मेरा उस विश्वास ही नहीं, जरा जरा भी नहीं।...जहां तर्क सिर्फ श्रद्धा है...वहाँ मूर्खों को विश्वास हो सकता बुद्धिमानों को नहीं। तब...तब इस जीवन से प्रयोजन (फिर कुछ रुककर) बुद्धि से जो जाना जा सकता है सारा दृश्य मेरा हो जाय, मेरी सम्पत्ति अटूट हो जाय, पर मेरा अधिकार हो जाय और ऐसा अधिकार जो नहीं सकता, तो भी सुख...सुख क्यों नहीं ?···इस से ही विराग और घृणा क्यों ?...(कुछ रुककर) में ही मुझे सुख मिलेगा...तेरी शरण...बस तेरी में, मां।

[सृष्टिनाथ चुप हो धीरे धीरे आगे बढ़ता है। समय नेपथ्य से गान की मधुर ध्वनि आती है। जान पड़ता है कि कोई छोटी-सी बालिका गा रही सृष्टिनाथ का ध्यान उस तरफ आकर्षित होता है, इस बार न रुककर वह और जल्दी कदम बढ़ा की ओर बढ़ता है। गान की ध्वनि बहुत जल्दी आने लगती है, जान पड़ता है गानेवाली दौड़ती हुई आ रही है।]

गान

मैं जाऊंगी नदी किनारे।
डूबडूब कर उजले बनते इसमें सूरज चांद सितारे
लहरें मुझे बुलाती हैं।
मीठे गाने गाती हैं॥
मैं भी लहरों में बहकर गाऊंगी—तू मत मुझे
मैं जाऊंगी नदी किनारे।

[जैसे जैसे गाने की ध्वनि जल्दी जल्दी आती है वैसे वैसे सृष्टिनाथ के कदम जल्दी जल्दी की तरफ बढ़ने लगते हैं, मानो वह कहीं फँस न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सोचते हुए आगे बढ़ रहा है। आखिर सृष्टिनाथ दौड़ने लगता है। ज्यों ही सृष्टिनाथ गङ्गा में प्रवेश करता है त्यों ही गान गाती हुए पांच वर्ष की एक अत्यन्त सुन्दर बालिका तेजी से दौड़ती हुई किनारे पर आती है। वह बार बार पीछे की ओर देखती है मानो अपने पीछे आनेवाले किसी व्यक्ति की प्रतीक्षा करती हुई दौड़ रही हो। सृष्टिनाथ के उसकी तरफ न देखने का प्रयत्न करने पर भी उसकी दृष्टि हठात बालिका पर पड़ती है। वह एकटक उसकी ओर देखने लगता है। उसके पैर मानो आगे बढ़ने से इन्कार कर देते हैं। बालिका की दृष्टि भी सृष्टिनाथ पर पड़ती है। वह गान बन्द कर देती है। उसी समय प्रेमपूर्णा का प्रवेश। प्रेमपूर्णा यद्यपि दौड़ती हुई आ रही है तथापि उसके मुख पर अत्यधिक गम्भीरता है। वह बालिका की तरफ देखती है और फिर गंगा की ओर। गङ्गा की तरफ देखते ही उसकी दृष्टि सृष्टिनाथ पर पड़ती है। वह आश्चर्य से स्तंभित रह जाती है।]

प्रेमपूर्णा—(एकाएक गङ्गा की ओर आगे बढ़कर) तुम आ गये,...आ गये, साधु...(चौंककर) नहीं,... नहीं, प्रियतम !...मैं जानती थी तुम आओगे...अवश्य आओगे...कम से कम अपनी बालिका...अपनी बालिका (बालिका की ओर देखकर) इस मोहन माला को देखने अवश्यमेव आओगे।

[प्रेमपूर्णा और आगे बढ़ती है। सृष्टिनाथ मूर्ति-वत् जल में खड़ा का खड़ा रह जाता और एकटक मोहन माला की तरफ देखता है। मोहन माला आश्चर्य से सृष्टिनाथ की ओर। अब पूर्व दिशा में धीरे धीरे सूर्य निकल रहा है।]

यवनिका

पांचवां अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—गङ्गाकुटी के बाहर का हाता

समय—प्रातःकाल

[निर्मल आकाश में प्रकाश फैल चुका हैं। पूर्व में सूर्य निकल आता है, लेकिन हिमालय की शिखरावली कारण अभी उसके दर्शन नहीं होते। महतजनों के दीन न होने पर और उनके किसी अन्य स्थान पर रहने पर भी जैसे उनकी कीर्ति का आलोक चारों तरफ फैल जाता है, वही दशा इस वक्त भगवान भास्कर और उनके तेज की है। हिमालय के शिखरों के रंग फूलों के कारण आज अलग अलग दिखायी देते हैं और वही बात छोटे रूप में गङ्गाकुटी तथा उसके सामने के नजर बाग की है। गङ्गाकुटी छोटी होने और सादगी से बनायी जाने पर भी सुन्दरता से रहित नहीं। उसके तीन तरफ के बरामदों, बरामदे के खम्भों तथा बरामदे के कोनों की छोटी छोटी गुम्बजों और कुटी की छावनी, सभी पर भिन्न भिन्न प्रकार की लतायें चढ़ी हैं। वसन्त के कारण गङ्गाकुटी पर्णकुटी न दिखकर कुसुम कुटी दिख पड़ती है। नजर बाग में आम के दरख्तों पर भी पल्लवों की अपेक्षा मौर के ही अधिक दर्शन होते हैं। क्यारियों के छोटे छोटे पौधे इतने रंगों के पुष्पों से लदे हैं मानों वे क्यारियाँ ऐसे कुसुमों की डालियां है जिनसे रंगों ने रंगरेली की है। नजर बाग के बीच में एक अष्टदल कुण्ड बना है और उसमें अष्टदल कमल खिले हुए हैं। फल फूलों की इस बहुतायत तथा फटे हुये अनारों के अवलोकन से जान पड़ता है कि गङ्गा कुटी में फल-फूल तोड़े नहीं जाते और पड़ी हुई सामग्री को भेंट मान उसीका यहाँ उपयोग होता है। शीतलता और सुगन्ध लिये हुए मलयानिल मन्द गति से चल रहा है और उसकी चाल में जो मादकता है उसे बता रही है झूमती हुई उद्भिज सृष्टि। यह दृश्य आंखों द्वारा हृतपटल पर अंकित होकर अगर मस्तिष्क को मुग्ध कर रहा है तो विहंगों के विविध प्रकार के स्वर जिनमें कोयल की कुहुक मुख्य है, कानों द्वारा मस्तिष्क में पहुंच मस्तिष्क की उस मुग्धता को मुखरित भी कर रहा है। सृष्टिनाथ एक बेत की कुर्सी पर बैठा हुआ फूलों के कुछ गहने बना रहा है। उसके नज़दीक ही बेत की बनी हुई कुर्सी के ही रंग की दो टेबिलें रखी हैं, एक पर पुष्पों के बने हुए कुछ छोटे छोटे आभूषण रखे हैं और दूसरी पर विविध रंग के कुसुम जिनसे ये सुमना-भूषण बन रहे हैं। सृष्टिनाथ एक कोसे का सुनहरी कुर्ता और सफेद धोती पहने हैं। प्रेमपूर्णा वृक्षों को टीन के बने एक सुन्दर हजारे से सींच रही है। जब उसका हजारा खाली हो जाता है तब दौड़कर फिर से कुण्ड से भर लेती है। उसकी रंग बिरंगी साड़ी तथा चपलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भरे हुए सिंचन कार्य के कारण वह इस सारे जड़ प्राकृतिक दृश्य की चेतन प्रतीक जान पड़ती है। सृष्टिनाथ और प्रेमपूर्णा दोनों के मुख अत्यधिक आनन्द और उल्लास से भरे हुए हैं। और दोनों गा रहे हैं।]

गान

दोनों—अहा, कैसे सजीले ये फूल हैं।
सृष्टि०—देखो कैसी, लताएं झुकी हैं उभार से...?
प्रेम०—देखो, कैसे ये कुंज बुलाते हैं प्यार से...!
दोनों—भूले भौंरे रहे कैसे भूल हैं।
अहा, कैसे सजीले ये फूल हैं॥
सृष्टि०—तुमने, सींची, तो कैसी ये डाली हरी हैं?
प्रेम०—तुमने खींची तो लज्जा से भरी हैं?
दोनों—ऐसी जोवन की अपनी भी भूल हैं।
कैसे सजीले ये फूल हैं॥

सृष्टिनाथ—(गान पूर्ण होने पर) सींचो और सींचो, साथ ही गाओ, गाओ, इस मधुर गान को भी जारी रखो, बन्द न करो।

प्रेमपूर्णा—(सृष्टिनाथ के और नज़दीक आ मुस्करा कर) ऐसा! अब मेरा यह सिंचन कार्य तुम्हें बुरा नहीं लगता? इस उद्भिज सृष्टि से तुम्हें ईर्षा नहीं होती?

सृष्टिनाथ—उद्भिज सृष्टि से ही नहीं, जीव सृष्टि से भी नहीं होती, उनकी सेवा में तुम्हारा अनुराग भी मन को बुरा नहीं जान पड़ता।

प्रेमपूर्णा—(मुस्कराकर) अब मुझ पर अधिकार रखने की लालसा नहीं, क्यों?

सृष्टिनाथ—(विचार-पूर्वक) ... प्रेमपूर्णा मैंने सिर्फ़ अधिकार का सुख भोगा था, समर्पण का नहीं। मोहनमाला के वात्सल्य प्रेम में मैंने समर्पण को पहचाना है। (कुछ रुककर) जब तुम मुझे कहती थीं तुम्हें उसी में सुख है, जिसमें मुझे सुख मिलता है, तब वह बात मेरी समझ में ही नहीं आती थी। तुम भी मुझे नहीं समझाती थीं।

प्रेमपूर्णा—मैं न कुछ समझ सकती न समझा सकती, स्वयं अनुभव भर कर सकती हूँ।

सृष्टिनाथ—जानता हूँ और तभी तो तुम जैसी हो, वैसी हो। जितनी तुम सुन्दर हो उतनी ही तुम्हारी आत्मा महान है; कदाचित तुम्हारे छोटे से शरीर के लिए वह विशाल...कहीं अधिक विशाल है। तुम्हारी भावनाएँ न समझने की हैं और न समझाने की, वे तो अनुभव करने की हैं।...और जानती हो उनका अनुभव कब से होने लगा?

प्रेमपूर्णा—कब से?

सृष्टिनाथ—जब से मोहनमाला के गान की ध्वनि सुनी, जब से उसे देखा। (कुछ रुककर) उस दिन...उस दिन मैं चौथी बार गङ्गा की ओर था और उस दिन मैंने आत्महत्या भी करनी होती कि...

प्रेमपूर्णा—पर मेरा मन जो कहता था कि फिर मिलोगे, अवश्य मिलोगे।

सृष्टिनाथ—मोहनमाला न होती तो तुम्हारी इच्छा पूरी न होती।

प्रेमपूर्णा—(फिर से हजारा भरते हुये) ऐसा

सृष्टिनाथ—बिलकुल। (कुछ रुककर) और जब मोहनमाला की गान-ध्वनि मैंने सुनी तब भी पहले यह सोचकर कि कहीं मैं फंस न जाऊं रुका, न लौटा, आगे ही बढ़ा और तेजी से। वह स्वर नजदीक आने लगा मैं घबड़ाकर और आगे बढ़ने लगा, आखिर तो दौड़ने तक लगा था

प्रेमपूर्णा—और गङ्गा में प्रवेश किया ही कि माला पहुँच गयी।

सृष्टिनाथ—हां। हठात् मेरी नजर भी उठ गयी और फिर...फिर तो पैरों में तो जैसे किसी ने भर दिया हो।

प्रेमपूर्णा—मेरा सौभाग्य था।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर) प्रेमपूर्णा, उसके ...उसके बाद (फूलों के गहने की ओर इशारा) इन्हें बनाने में, इनसे उसे सजाने में,...

प्रेमपूर्णा—उसके और भी अगणित कामों में...

सृष्टिनाथ—हां...उसे बंसी सुनाने में, उसे गवाने में, उसे नचाने में...

प्रेमपूर्णा—(मुस्कराते हुये) हां, और भी क्या क्या करने में...उसे चन्दा दिखाने में, कथाएँ सुनाने में...

सृष्टिनाथ—हां, हां, न जाने क्या क्या मुझे जो आनन्द आता है, जो सुख मिलता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले के किसी जीवन में न मिला था। (कुछ रुककर) प्रेमपूर्णा, पहले···पहले मैं सब कुछ अपने लिए करता था मैं चाहता था सब कुछ···सब कुछ मेरे लिए हो···अब··· मैं सब कुछ मोहनमाला के लिए करता हूं, मैं चाहता हूं सब कुछ उसके लिए हो।

प्रेमपूर्णा...(खिलखिलाकर) और इसीलिए मुझे भी सब कुछ दूसरों के लिए करने देने में अब तुम्हें दुख नहीं होता, क्रोध नहीं आता।

सृष्टिनाथ—(विचारते हुये) हां, यह अनुभव··· अनुभव की चीज़ है, प्रेमपूर्णा, समझने की नहीं। अनुभव ने मुझे बता दिया कि जो सब कुछ अपने लिए करता है वह सुखी हो ही नहीं सकता, जो सब कुछ अपने कब्जे में रखना चाहता है, वह सब कुछ खो देता है। सौन्दर्योपासना अलग चीज है और उसका अपने लिए उपयोग अथवा अपने अधिकार में रखने की कोशिश सर्वथा दूसरी बात। (कुछ रुककर) यहां...यहाँ बुद्धि और तर्क का स्थान नहीं,···यहां···यहां तो एक दूसरी···एक दूसरी ही···

[कुटी से दौड़ते हुये एक रंगबिरंगे फ्राक को पहने मोहनमाला का प्रवेश। मोहनमाला को आते देख सृष्टिनाथ भी दौड़कर उसी ओर जाता है और उसे गोद में उठाकर न जाने कितने बार उसके गालों, आंखों और मस्तक को चूमता है।]

सृष्टिनाथ—(चूमते चूमते) मेरी मोहन ! मेरी माला ! मेरी मोहनमाला ! एक प्याला ! जिसमें ढाला ! रस मतवाला ! ना वह हाला ! ना वह काला ! बस मेरी मोहन ! मेरी माला ! मेरी मोहन माला !

मोहन माला—हिः हिः हिः हिः हिः !

सृष्टिनाथ—(मोहन माला को गोद में लिये हुये जिस कुरसी पर खुद बैठा था वहां आकर मोहनमाला को उस पर बिठा) देख, माला, आज तेरे लिये कितनी तरह की मालायें बनाई हैं ?

मोहनमाला—(फूलों के गहनों की तरफ़ देख एक एक माला को उठाते हुये) हां, हां, कितनी अच्छी है। (प्रेमपूर्णा की ओर इशारा कर) मां मेरे लिये यह सब नहीं बनाती थीं।

सृष्टिनाथ—(फूलो के गहने मोहनमाला को पहनाते हुए) उसकी बात छोड़ दे, उसे अपने पेड़ों, पौधों और अभ्यागतों से फ़ुरसत कहाँ ?

प्रेमपूर्णा—(मुस्कराते हुये) और इसे गाना किसने सिखाया ?

मोहनमाला—पर चन्दा मंगल, बुध, शनि,···

सृष्टिनाथ—और वृहस्पति, शुक्र भूल गयी ?

मोहनमाला—हां हां, वृहस्पति शुक्र भी। इन सब की···

मोहनमाला—हां, हां, बहुत सी, जिनकी गिनती नहीं, ऐसी कहानियां तो नहीं सुनायी।

सृष्टिनाथ—और नाचना ?

मोहनमाला—हां, नाचना भी कहां सिखाया ? (कुछ रुककर) फिर···फिर, मां, तुम मेरी, इतनी मिठ्ठियां कब लेती थीं, इस तरह गोद में उठाये उठाये कब घूमती थीं ?

प्रेमपूर्णा—(हजारा रखकर मोहनमाला को गोद में उठा उसे चूमते हुये) ऐसा।

मोहनमाला—ऊँ हूँ ! यह तो एक ही मिठ्ठी हुई। (सृष्टिनाथ की ओर संकेत कर) इनकी सी मिठ्ठियां कहां ?

प्रेमपूर्णा—(उसे फिर से कुर्सी पर बिठाते हुये रूठे से स्वर में) तुझे यही अच्छे लगते हैं, मैं नहीं ?

[मोहनमाला कुछ उदास होकर दोनों की तरफ देखने लगती है।]

सृष्टिनाथ—(आखरी गहना पहनाते हुये) नहीं, नहीं, कह, दोनों अच्छे लगते हैं।

मोहनमाला—(प्रसन्नता से) हां, हां, दोनों···दोनों अच्छे लगते हैं।

सृष्टिनाथ—(कुछ ठहरकर) अच्छा, बंसी बजाता हूँ, नाचेगी न ?

मोहनमाला—हां, हाँ।

[सृष्टिनाथ झपट कर कुटी में जाता है। प्रेमपूर्णा मोहनमाला को गोद में उठाकर उसके कई चूमे लेती है।]

मोहनमाला—तुम भी कहो मां—मेरी मोहन ! मेरी माला ! मेरी मोहनमाला ! एक प्याला ! जिसमें ढाला ! रस मतवाला ! ना वह हाला ! ना वह काला ! बस ! मेरी मोहन ! मेरी माला। मेरी मोहनमाला।

[बंसी बजाते हुये सृष्टिनाथ का प्रवेश। बंसी का स्वर सुन मोहनमाला प्रेमपूर्णा की गोद से उतरकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थिरकने लगती है और थिरकते थिरकते नाचने, फिर गाने। सृष्टिनाथ खड़ा खड़ा मुग्ध होकर बंसी बजाता है और प्रेमपूर्णा मुग्ध हो यह दृश्य देखतीं है।]

गान

मुरली मधुर बजी। कैसी—
बन बन में खोजी—मधुवन में—
छिपके जाय सजी। कैसी—
ताल ताल में बंसी—
हँसी हँसी—फिर हँसी—
सब रागों में घूम फिरी, फिर
श्याम राग में मंजी। कैसी—
मुरली मधुर बजी। कैसी—

[गाते गाते एकाएक मोहनमाला बैठ जाती है। सृष्टिनाथ बंसी बन्दकर, कुछ घबड़ाकर दौड़ते हुये, नजदीक जाता है।]

सृष्टिनाथ—[मोहनमाला को गोद में उठाते हुये] क्या! क्या हुआ, माला?

प्रेमपूर्णा—(नजदीक जा उसका हाथ पकड़कर देखते हुये) ज्वर सा जान पड़ता है।

सृष्टिनाथ—(घबड़ाकर) ज्वर! (वह भी हाथ पकड़कर देखता है।) हां शरीर तो गरम है! (उसका मुँह एकाएक उतर जाता है।)

प्रेमपूर्णा—क्यों, कैसा लगता है माला?

मोहनमाला—ठीक तो है, मां, यों ही बैठ गयी थी।

सृष्टिनाथ—(फिर हाथ पकड़कर देखते हुये भर्राये स्वर में) नहीं, नहीं बुखार ज़रूर है।

प्रेमपूर्णा—तो तुम घबड़ाये क्यों जाते हो, ठीक हो जायगा।

सृष्टिनाथ—(उसी तरह के स्वर में) ठीक है। ठीक है। (कुटी के ओर जाते हुये) चलो, चलो, बाहर तो हवा बढ़ रही है।

[सृष्टिनाथ मोहन माला को गोद में उठाये हुये कुटी की ओर बढ़ता है। प्रेमपूर्णा उसके पीछे पीछे जाती है। अब सूर्य पहाड़ी चोटियों के ऊपर चमक रहा है, लेकिन पूर्व में बादल उठने लगे हैं जो सूर्य को ढांकने की कोशिश कर रहे हैं। वायु का वेग एकाएक बढ़ता जाता है। जान पड़ता है आंधी आनेवाली है।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—गङ्गा कुटी का शयनागार
समय—रात्रि

[वही शयनागार है जो तीसरे अंक के पहले में था। भीतर का दृश्य वैसा ही है जैसा उस दृश्य था। दरवाजे, खिड़कियां बन्द हैं, लेकिन उनके बाहर कुछ दिखाई नहीं देता। बाहर घोर अन्धकार सृष्टिनाथ अपने पलंग पर सिर नीचा किए हुये बैठा उसके मुख पर अत्यधिक शोक और उसीके उन्माद के चिन्ह दिखाई देते हैं। प्रेमपूर्णा चिन्ता मुद्रा से सृष्टिनाथ के नजदीक बैठी हुई उसकी तरफ रही है! कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

सृष्टिनाथ—(एकाएक सिर उठाकर जोर से कर) हां...हां...हां, सृष्टि...सृष्टि...मैं...उसका हूं।...सूरज मेरे...मेरे ही कहने से प्रकाश...प्रकाश फैला रहा है।...चन्द्रमा ..चन्द्रमा मेरी आज्ञा...मेरी ही आज्ञा से घटता बढ़ता है।...सितारे मेरे हुक्म चमक...चमक रहे हैं।...यह पृथ्वी...हां, हां, यह भी मैं...मैं ही तो घुमा रहा हूं। (कुछ ठहरकर) पर फिर वसन्त में...वसन्त में यह पतझड़...पतझड़ कैसे हो गया? (कुछ ठहरकर एकाएक रोते हुये मेरी मोहन!...मेरी माला! ...मेरी मोहनमाला! एक प्याला!...जिसमें ढाला...रस मतवाला...रस वह...वह रस कैसे सूख गया?...हाय!...हाय! वह हाला!...ना वह काला!...फिर...फिर वह रस मतवाला! ना वह हाला! ना वह काला! मेरी मोहन...मेरी माला...मेरी मोहन माला! (वह उसकी गोद से वह एकाएक छूट कर भाग रही जोर से हँसकर कमरे के चारों तरफ उसे पकड़ने दौड़ते हुये) कहां भागोगी...अब कहां भाग सकती (एकाएक दाहनी ओर देख) यहाँ है! (फिर दम बायीं तरफ देख) वहां भी! (जल्दी से सामने ओर देखकर) सामने भी! (उसी प्रकार जल्दी से भी! (उसी तरह ऊपर देख) ऊपर भी! नीचे देख) नीचे भी। (जल्दी चारों ओर, सब तरफ देखते हुये) सब तरफ...सब तरफ... मोहन! सर्वत्र माला!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमपूर्णा—(आश्चर्य और प्रसन्नता से) तुम्हें मोहनमाला सब जगह, सर्वत्र दिखने लगी ?

सृष्टिनाथ—(प्रेमपूर्णा की ओर देखकर) हां, प्रेमपूर्णा ! हां प्रेमपूर्णा । हां...हां...हां प्रेम···

यवनिका

उपसंहार

स्थान—हिमालय में एक चढ़ाई एक मार्ग

समय—मध्याह्न

(निर्मल आकाश में मध्याह्न का सूर्य अपने पूर्ण प्रकाश से चमक रहा है । पृथ्वी को देखने से जान पड़ता है कि जोर का बर्फ़ गिरने के बाद आकाश निर्मल हुआ है । हिमालय के शिखर, उन पर उगे हुए ऊँचे ऊँचे देवदारु के वृक्ष तथा उनके बीच बीच के छोटे छोटे पौधे, सारी जमीन और उसकी समस्त सृष्टि ऊपर से नीचे तक इस बर्फ़ से ढकी हुई है । एक सफेद रंग को छोड़कर और कोई रंग आज नज़र नहीं आता और इस सफेद रंग पर सूर्य की सफेद किरणें चमकती हुई अलौकिक और अनुपमेय दृश्य दिखा रही हैं । नेपथ्य से गान की ध्वनि आती है । धीरे धीरे यह शब्द नज़दीक आने लगता है । और निकट आने पर जान पड़ता है कि प्रेमपूर्णा गाती हुई आ रही है । प्रेमपूर्णा और सृष्टिनाथ का प्रवेश । आगे आगे प्रेमपूर्णा है और उसके पीछे पीछे सृष्टिनाथ । दोनों ही वृद्ध हो गये हैं । दोनों के बाल एकदम सफेद हैं । सृष्टिनाथ की मूँछें और लम्बी दाढ़ी भी श्वेत । प्रेमपूर्णा एक सफेद साड़ी पहने है और उस पर सफेद ऊनी चादर ओढ़े है । सृष्टिनाथ ने एक लम्बा ऊनी झोला पहने हैं और उस पर सफेद ऊनी चादर है । उसकी कमर कुछ झुक गई है । वह हाथ में एक लम्बी लकड़ी लिये है जो आड़ी पकड़े हुए है । इस लकड़ी का दूसरा छोर प्रेमपूर्णा के हाथ में है । इस प्राकृतिक श्वेत दृश्य के दो चेतन श्वेत प्रतीक धीरे धीरे ऊपर चढ़ रहे हैं । वायु मण्डल प्रेमपूर्णा के मधुर प्रेम से व्याप्त है ।]

प्रेम पूर्णा—(अपने आंखों के आंसू पोछते हुये सृष्टिनाथ के कंधे पर हाथ रख) प्रियतम ! प्रियतम ! कितने...कितने दिन कितने दिन इस प्रकार बीत...

सृष्टिनाथ—(चौंककर) क्या...क्या हुआ ? अब... अब कैसी तबियत है ? बुखार कम हुआ ?...डाक्टर... डाक्टर...

प्रेम पूर्णा—(सृष्टिनाथ के पीठ पर हाथ फेरते हुये) प्रियतम ! प्रियतम !

सृष्टिनाथ—(कुछ देर के बाद एकाएक जोर से हंसकर) योग सिद्धि ।...हां, हां, कैसी महान शक्ति...! ...मैं...मैं सोने के पर्वत उत्पन्न कर सकता हूं ।...मेरी आज्ञा से रत्नों की वर्षा हो सकती है ।...बुद्धि से...हां, बुद्धि से दुनिया में जो जाना जा सकता है...उस सब... उस सब पर मेरा अधिकार...मेरा अखंड अधिकार है । ...उसका उपभोग...निरन्तर उपभोग करने करने के लिये मेरे पास शक्ति ...महान शक्ति है ।...और ...इस तरह के जीवन में असफलता...असफलता की छाया भी न पड़े, इसकी... इसकी मुझे सिद्धि...अपूर्व सिद्धि मिली है । (कुछ ठहर कर) हिन्दुस्तान ही नहीं दोनों... दोनों ही हिमस्फियर्स...सारे भूमण्डल में ऐसी कौन सी चीज है जिसे...जिसे मैं न पा सकूँ । (कुछ रुककर) एक...एक ही ऐसी वस्तु है...मेरी मोहन ! मेरी माला ! मेरी मोहन माला ! एक प्याला ! जिसमें ढाला ! रस मतवाला ! वह रस...वह रस सूख गया उससे...उससे मैं फिर उस प्याले को लबालब नहीं...नहीं भर...(फिर फूट फूटकर रोने लगता है)

प्रेमपूर्णा...(अपने दोनों हाथ उसके गले में डालकर) क्या करूँ...क्या करूँ ! कुछ समझ में नहीं आता ।

सृष्टिनाथ...(प्रेमपूर्णा के दोनों हाथ गले में से निकालकर उसे पीछे ढकेलते हुये ।) नहीं...नहीं... छोड़ दो...छोड़ दो मुझे ।...(खड़े होकर सामने की ओर देखते हुये प्रेमपूर्णा भी खड़े होकर उसी के नजदीक खड़ी हो जाती है ।) देखो...देखो.....मैं...वे मेरी मोहन को लिये जाते हैं । वे...वे...वे मेरी माला को...(रुककर उसी प्रकार देखते हुये) हां छूट आयी ! (दौड़कर मानो किसी चीज को गोद में ले रहा है)आ... आ...मेरी मोहन ! (मानो गोद में उसने उसे उठा लिया है । उसके सिर पर हाथ फेरते हुये) मेरी मोहन ! मेरी माला ! मेरी मोहन माला ! एक प्याला ! जिसमें ढाला !.....!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादश आयतन और बौद्ध दर्शन

भारतीय भिक्षु धर्मरक्षित "धर्मशास्त्री"

सर्वदा से सभी नैयायिकों के सम्मुख यह प्रश्न रहा है कि हमारे अध्यात्मिक चित्त-चैतसिक, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, मनसिकार, विज्ञान, कुशल-अकुशल आदि कहाँ से उत्पन्न होते हैं? इनका समोसरण कहाँ होता है? क्या इन्हें कोई ब्रह्म, देव या देवातिदेव उत्पन्न करता है? क्या ये सभी किसी चिरस्थायी, ध्रुव, शाश्वत अपरिवर्तनशील सूक्ष्म अथवा औदारिक आत्मा से रिणत हैं? क्या इनकी उत्पत्ति बिना हेतु-प्रत्यय के होती है?

इन प्रश्नों का उत्तर लगभग सभी ने विभिन्न प्रकार से दिया है। वे कहां तक अपने प्रज्ञाश्व को दौड़ा पाए हैं? धर्मराज धर्मस्वामी सर्वज्ञ शास्ता भगवान् हमारे सम्बुद्ध के अववादों से ज्ञातव्य हैं।

यदि नाना कुशलाकुशल चित्त चैतसिक धर्मों का मूलभूत कोई अलौकिक पुरुष हो तो वह बड़ा ही अन्यायी दुःखद, व्यभिचारी, कुटिल और सब तरह की बुराइयों की जड़ है क्योंकि तत्प्रवर्तित दुःखादि की अनुभूतियों का ही पलड़ा भारी है। नृशंसता, शोषणता आदि से जगति-तल व्याकुल है। यदि सारी अनुभूति उसकी है तो वह दरअसल बड़ा मूर्ख है क्योंकि ससार में दुःखादि पीड़ाओं के लिए सभी सत्त्व अनिच्छुक हैं। कूटस्थ आत्म-भाव में हमारी सारी क्रियायें हमारे वशीभूत अपेक्ष्य हैं किन्तु होता है ठीक इसके विपरीत। एक क्षण पहले की बात भी स्मृति-पटल पर नहीं दीखती, दो-चार दिन अथवा वर्ष की बात तो दरकिनार। आत्म-परिकल्पना भी आत्मा के लिए सिद्ध नहीं होती। हेतु-प्रत्याभाव सारे अकुशल मूलों का उत्पादक है। दुःखरहित परम सुख निर्वाण का विघातक है।

जब हम ध्यानपूर्वक देखते हैं और विचार करते हैं सम्यक् दृष्टि से, तो मनुष्य केवल पञ्च स्कन्धों का पुञ्ज सा दीख पड़ता है। इस शरीर में पृथ्वी, जल, अग्नि, वा—जो यह चारों महाभूत हैं और इन चारों महाभूतों को लेकर उत्पन्न चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्त्री-इन्द्रिय, पुरुषेन्द्रिय, हृदय वस्तु, जीवितेन्द्रिय, आकाश, धातु, काय विज्ञप्ति, वची विज्ञप्ति, रूप की लघुता, मृदुता, कर्मण्यता, उपचय, सन्तति, जरता, अनित्यता, कवलिंकार, आहार—ये सभी उत्पन्न रूप, रूप स्कन्ध कहे जाते हैं। सुख, दुःख, अदुःखम् की सारी अनुभूतियों का पुञ्ज वेदना स्कन्ध। आलम्बनों के नील, पीत, रक्तादि भेद का परिचय ज्ञान-पुञ्ज संज्ञा-स्कन्ध। कुशल, अकुशल, आनेञ्ज कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मों के संस्कार सारी लौकिक चेतना संस्कार-स्कन्ध। और जितना नन स्वभाव युक्त यथार्थ ज्ञान-पुञ्ज है, वह विज्ञान-स्क रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—इन पञ्चस्कन्धों अतिरिक्त इस काय में अन्य उपलब्ध नहीं।

चक्षु से इष्टानिष्ट आलम्बनों को देखते हैं तद्हेतु हमें सुख-दुःखादि की अनुभूति होती है। ऐसे श्रोत्र से शब्द सुनकर, घ्राण से गन्ध सूँघकर, जिह्व रसास्वादन कर, काय से स्पर्श कर और मन से तद्ह यक कार्य्यों को जानकर। जैसे दियासलाई पर घ धँसते ही आग निकल पड़ती है, ऐसे ही चक्षु और के संघर्ष से चक्षु वेदनादि कहा है—

"चक्खुं च पटिच्च रूपे उप्पज्जति चक्खु विञ्ञ तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्स पच्चया वेदना, यं वेदेति जानाति, यं संजानाति तं वितक्केति, यं वितक्केति पपञ्चेति, यं पपञ्चेति ततो निदानं पुरिसं पपञ्च सञ्ञा समुदाचरन्ति अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु चक्खुविञ्ञे रूपेसु।"

अर्थात् चक्षु के कारण रूप में चक्षुर्विज्ञान होता है, तीनों का समागम स्पर्श है। स्पर्श के वेदना होती है, जिसे (व्यक्ति) वेदन करता है, जानता है, जिसे जानता है उसके विषय में वितर्क है, जिसके विषय में वितर्क करता है, उसे करता है। उसके कारण भूत, भविष्य, वर्तमान् चक्षु द्वारा विज्ञेय रूपों में प्रपञ्च के ख्याल रहते हैं।

इसी प्रकार अन्य के विषय में भी जानना यदि हम चक्षु से रूप नहीं देखते, अथवा रूप नहीं होता तो चक्षुर्विज्ञान सम्भव नहीं। तदाभाव शादि की उत्पत्ति सर्वथा अनुपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छै कीड़ों वाले व्रण के समान अपने गोचर विषयों के साथ बारहों के योग से, समागम से, संघर्ष से स्पर्शादि धर्मों की उत्पत्ति दीख पड़ती है। जितने भी प्रकार के पाप-पुण्य हैं सबके यही उद्गम स्थान हैं। सभी धर्मों का यहीं समोसरण होता है। इन आयतनों में छै आध्यात्मिक और छै बाह्य हैं। 'आयतन' शब्द पालि वाङ्मय में निवास, आकार, समोसरण, उत्पत्ति-स्थान और कारण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ मिलता है, यहाँ इन सभी अर्थों में उपयुक्त है। चक्षु आदि में ही चित्त-चैतसिक निवास करते हैं, यही इनके आकार हैं, वस्तु, द्वार आदि आलम्बनों से सभी का यहाँ समोसरण (=जुटना) होता है। यही इनकी उत्पत्ति भूमि है और यही इनके कारण हैं क्योंकि एतदाभाव में इनका भाव सिद्ध नहीं। सभी बारह आयतन हैं—

(१) चक्षु-आयतन (२) श्रोत्र-आयतन (३) घ्राण-आयतन, (४) जिह्वा-आयतन (५) काय-आयतन (६) मन-आयतन (७) रूप-आयतन (८) शब्द-आयतन (९) गन्ध-आयतन (१०) रस-आयतन (११) स्पर्श-आयतन और (१२) धर्म-आयतन।

यहां चक्षु दो प्रकार के होते हैं—मंस चक्षु और प्रज्ञा चक्षु। बुद्ध चक्षु, समन्त चक्षु, ज्ञान चक्षु, दिव्य चक्षु, धर्म-चक्षु—यह प्रज्ञा चक्षु के पांच भेद हैं। मंस चक्षु भी दो तरह के होते हैं—(१) ससम्भार चक्षु तथा (२) प्रसाद चक्षु।

जो इस चक्षु-कूप में प्रतिष्ठित, चक्षु-कूप की निचली हड्डी और भौं की ऊपरी हड्डी से घिरी, दोनों चक्षु कूपों के बीच मस्तिष्क से लगा हुआ प्लक्षों से परिच्छन्न मांस की पिण्डी है, जिसमें कि संक्षेपतः चारों धातु, वर्ण, गन्ध, रस, ओज, सम्भव, संस्थान, जीवित, भाव, काय-प्रसाद और चक्षु-प्रसाद—कुल चौदह अवयव हैं। विस्तार से देखने पर चारों धातु और उनके निश्चित वर्ण, गन्ध, रस, ओज, संस्थान (=बनावट), सम्भव—ये दश कर्म, चित्त, ऋतु, आहार से उठनेवाले चालीस होते हैं। जीवित, भाव, काय-प्रसाद—यह चार केवल कर्म से उठनेवाले हैं। इस प्रकार चक्षु के कुल चवालीस अवयव अथवा सम्भार होते हैं। जिस सफ़ेद, पृथुल, काली चक्षु को लोक चक्षु समझता है, वह दरअसल नहीं जानता। केवल जानता है चक्षु के रूप में वस्तु को।

वह मांस की पिण्डी चक्षु-कूप में प्रतिष्ठित स्नायु-सूत्र से मस्तिष्क में बँधी हुई है, जिसमें सफेद भी है, लाल भी है, पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु भी है। जो कफ की अधिकता से सफेद, पित्त की अधिकता से काली, रुधिर की अधिकता से लाल, पृथ्वी की अधिकता से प्रस्तीर्ण होती है, जल की अधिकता से पघरती है। अग्नि की अधिकता से तपती है। वायु की अधिकता से नाचती है—इसे ससम्भार चक्षु कहते हैं।

जो यहां मिश्रित, यहां प्रतिबद्ध चारों महाभूतों को लेकर उत्पन्न प्रसाद है—यह प्रसाद-चक्षु है। जो कि ससम्भार चक्षु के सफेद अण्डकोष से घिरा, काले मण्डल के बीच सामने स्थिति शरीर की बनावट का एक अङ्ग हुआ दृष्टि-मण्डल में तेल में भिगोये सात रुई की फाहों के समान सात चक्षु पर्दों से घिरा, धारण, स्नान, मंडन, बीजन कृत्य करनेवाली लौड़ियों से राजकुमार के समान, सन्धारण, बन्धन, परिपाचन और समुदीरण कृत्यों को करनेवाली चारों धातुओं से सम्हाली जाती, ऋतु, चित्त, आहार, से आश्रय या आयु द्वारा पाली जाती हुई, वर्ण, गन्ध, रसादि से परिवृत, विस्तार में केवल जूँ (=चीलर) के शिर जैसी चक्षुर्विज्ञानादि का यथायोग्य काय सिद्ध कर रही है। महा अग्रश्रावक सारिपुत्र ने कहा भी है—

"येन चक्खुप्पसादेन रूपानि मनुपस्सति
परित्तं सुखुमं एतं ऊकासिर समूपमं॥"

जिस चक्षु-प्रसाद से (आदमी) रूपों को देखता है, यह जूँ के शिर जैसा, अत्यन्त छोटा और सूक्ष्म है।

अस्तु, जो चक्षु चारों महाभूतों को लेकर उत्पन्न प्रसाद है, जिसे कि चक्षुर्विज्ञान से देखा नहीं जा सकता, जिसका कृत्य संघर्ष से सिद्ध है, जिसमें सनिदर्शन रूप संघर्ष करता है, किया, करेगा, अथवा करे, वही चक्षु है, वही चक्षु-आयतन है। जहां न तो कोई सत्व है, न आत्मा ही।

जो नाश-विनाश होने के अर्थ में एक लोक भी है। नाना आलम्बनों के प्रवेश हेतु द्वार भी है। कदापि न परिपूर्ण होनेवाला समुद्र भी है। परिशुद्धार्थ में श्वेत भी है। स्पर्शादि की उत्पत्ति हेतु खेत भी है। उनके ठहराव के लिए वस्तु भी है। सम-विषम को दिखलाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए आत्मभाव को लाने के अर्थ में नेत्र भी है। उसी अर्थ मे नयन भी है। सत्काय से सम्पन्न होने के अर्थ में उरला तीर भी है। सर्वसाधारण और मालिक रहित के अर्थ में शून्य ग्राम भी है। यथा—

"लोकोपेसो द्वारापेसा समुद्दोपेसो पण्डरम्पेतं खेत्तम्पेतं वत्थुपेतं नेत्तम्पेतं नयनम्पेतं ओरिमं तीरम्पेतं सुञ्ञो गामोपेसोति।"

सुनने के अर्थ में क्षेत्र होता है, जो ससम्भार श्रोत बिल के भीतर ताम्र वर्ण के पतले रोओं से बना अंगूठी की बनावट जैसे भाग में स्थित उक्त प्रकार से चारों धातुओं से सम्हाला जाता, ऋतु, चित्त, आहार से आश्रय या आयु द्वारा पाला जाता हुआ, वर्ण आदि से घिरा श्रोत-विज्ञानादि का यथायोग्य कार्य सिद्ध कर रहा है। यही श्रोत्र-प्रसाद, श्रोतायतन है। शेष-योजना चक्षु-आयतन के समान जाननी चाहिए। सूँघने के अर्थ में घ्राण होता है। जो ससम्भार घ्राण बिल के भीतर बकरी के पैर की बनावट जैसे भाग में घ्राण विज्ञानादि का यथायोग्य कार्य सिद्ध कर रहा है। यही घ्राणायतन है। स्वादन के अर्थ में जिह्वा होती है, जो ससम्भार जिह्वा-मध्य के ऊपर कमल-दलाग्न की बनावट जैसे भाग में जिह्वा-विज्ञानादि का यथायोग्य कार्य सिद्ध कर रही है। वही जिह्वा-आयतन है। जितना भी इस शरीर में कर्मज रूप है, सर्वत्र कायायतन. रूई के फाहे में तेल के समान फैला काय-विज्ञानादि का कार्य सिद्ध कर रहा है। रजिया से नाप कर, तराजू से तौल कर जानने के समान आलम्बनों को जानने के अर्थ में मन होता है। सभी धर्मावलम्बनों का हेतु-भूत जो चित्त है, जो मन है, जो विज्ञान है, वही मनायतन है।

इन छै अध्यात्मिक आयतनों के गोचरभूत जो रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, और सहज विज्ञेय हैं। संक्षेप में—अध्यात्मिक जो अट्ठाइस रूप हैं तथा वाह्य नील, पीतादि लौह, रजत जितने भी रूप हैं, सब रूपायतन हैं। नाचगीत, गाने-बजाने, कथा-वार्ता, गर्जन-तड़पन आदि से उत्पन्न अध्यात्मिक या वाह्य जितने प्रकार के शब्द हैं, सब शब्दायतन हैं। गन्धायतन एवं रसायतन को भी ऐसे जानना चाहिए। स्पर्शायतन में विशेषता यह है कि यह जल विवर्जित तीन धातुओं के समागम से उत्पन्न होता है। पृथ्वी, अग्नि, वायु के संयोग से कर्कश, कोमल, नर्म, कटु, सुखस्पर्श, दुःखस्पर्श, भारी अथवा हलका प्रकार का काय से छूकर जाना, जानता है, जाने, वह सब स्पर्शायतन है। मन के जितने वे सब धर्मायतन हैं।

"जान कर संक्षेप औ' विस्तार से, कर भा
योग में हो लीन योगी तज अरे संधावना

द्वादश आयतनों को "जानकर संक्षेप से" विभावन है—थोड़े में मनायतन और धर्मायतन भाग मात्र को नाम तथा अवशेष सभी आयतनों जानकर, समझ कर, विचार कर, देखने पर तन और साढ़े दश रूपायतन केवल नामरूप ही "विस्तार से" देखने पर आध्यात्मिक आयतनों चक्षुआयतन उत्पत्ति के हिसाब के चक्षु-प्रसाद जो कि प्रत्यय, गति, निकाय, व्यक्ति के भेद से ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, कायतन भी। कुशलाकुशल, विपाक, क्रिया-विज्ञान के हिसाब से (८९) तथा एक सौ इक्कीस (१२१) प्रकार है। वस्तु, प्रतिपद् आदि के हिसाब से अनन्त माण। रूप, शब्द, गन्ध, रस, विसभाग (अ प्रत्यय आदि के हिसाब से अनन्त भेद वाले स्पर्शायतन पूर्वोक्त पृथ्वी, अग्नि, वायु—इन तीन के हिसाब से तीन प्रकार का। और प्रत्ययादि के अनेक। धर्मायतन—वेदना, संज्ञा, संस्कार स्कन्ध रूप, निर्वाण के स्वभाव नानापन के हिसाब से अने का होता है।

"कर भावना" का अर्थ विभावन इस प्रकार चाहिए—सभी आयतन संस्कृत हैं। न तो उत्पत्ति कहीं से आते हैं और न विनाश के पश्चात् क हैं। अपितु उत्पत्ति से पूर्व अलब्ध्य तथा विनाश परिभिन्न स्वभाववाले हैं। पूर्वान्तापरन्त के मध्य प्रत्यय हुए प्रवर्तित होते हैं। चक्षु, रूप ऐसा नहीं होता 'अहो, हम लोगों के समागम में उत्पन्न हो' और न तो वे विज्ञानोत्पत्ति के लि वस्तु और आलम्बन ही चाहते हैं, यह स्वाभाविक है कि चक्षु, रूपादि के समागम में चक्षुविज्ञानादि होते हैं। उक्तानुसार आध्यात्मिक आयतनों को ग्राम के समान जानना चाहिए। वे ध्रुव, शुभ, आत्मा आदि से रहित, नाशमान, अशुभ, दुः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनात्मा हैं। केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बाह्य आयतन भी। यथा—

"चक्खुं अनिच्चं दुक्खं अनत्ता विपरिणामधम्मं, रूपा-पे०-सोतं-सद्दा-घाणं-गन्धा-जिह्वा-रसा-कायो-फोट्ठब्बा-मनो अनिच्चो दुक्खो अनत्ता विपरिणामधम्मो, धम्मा अनिच्चा दुक्खा अनत्ता विपरिणामधम्माति।"

आध्यात्मिक आयतनों का अभिघातन करने के कारण बाह्य आयतन चोरों के समान हैं। भगवान् धर्मराज सम्यक् सम्बुद्ध हमारे शास्ता ने कहा है "चक्खु भिक्खवे, हञ्ञति मनापामनापेहि रूपेहि।" अर्थात् भिक्षुओ, चक्षु प्रिय-अप्रिय रूपों से हनी जाती है।

इन बारहों आयतनों के अनात्म भाव को दिखलाते हुए भगवान् ने अनित्य, दुःख अथवा अनित्य-दुःख से दिखलाया है। कारण? अनित्य और दुःख के प्रगट होने से। हाथ से किसी बर्तन के गिरकर फूटते ही मुँह से निकल पड़ता है—"अहो, अनित्यता!" इस प्रकार अनित्यता प्रगट है। अपने शरीर में फोड़े-फुंसियों के होने पर अथवा किसी प्रकार के घाव हो जाने पर—"अहो, दुःख!" आदि कहते हैं, इस प्रकार दुःख भी प्रगट है। अनात्म-लक्षण अप्रगट, अन्धकाराच्छादित और दुर्विज्ञेय है। यह बिना बुद्धोत्पत्ति के नहीं जान पड़ता। बड़े बड़े ऋद्धिमान, साधु-तपस्वी, परिव्राजकादि अनित्य—दुःख कह सकते हैं किन्तु अनात्म-लक्षण का प्रज्ञापन तो दूर रहा, सोच भी नहीं सकते, उन्हें स्वप्न में भी इसका भान नहीं होता। यदि वे जान जांय तो लोकोत्तर मार्ग-फलादि अवश्य लाभ कर सफल मनोरथ हों। इसलिए योगी को द्वादश आयतनों में अनित्य, अनित्य-लक्षण, दुःख, दुःख-लक्षण और अनात्मा, अनात्म-लक्षण की भावना करनी चाहिए।

"चक्खु सुञ्ञं अत्तेन वा अत्तनियेन वा निच्चेन वा धुवेन वा सस्सतेन वा अविपरिणामधम्मेन वाति।"

अर्थात्—चक्षु, आत्मा, आत्मपन, नित्य, ध्रुव, शाश्वत अथवा अपरिवर्तनशीलता से शून्य है।

इसी तरह शेष ग्यारह आयतनों में भी चतुर्कोटिक शून्यता की "कर भावना" योगी जरा-मरण रहित असंस्कृत, परम सुख निर्वाण को शीघ्र ही विहरता है। इसलिए कहा है—

"जानकर संक्षेप औ' विस्तार से कर भावना।
योग में हो लीन योगी तज अरे सन्धावना॥"

अस्तु—

"सब्बं आयतन अत्वा कत्वा विरियं साधुको।
पवाहेत्वा मलं सब्बं पत्वा निब्बाण सम्पदं।
अनुभोन्ती सुखं निच्चं सब्बा होतु पजा सुखी॥"

प्रवचन

सम्भव है कि हम अपनी आज़ादी शीघ्र ही प्राप्त कर लें मगर यह समय हमारे लिए बहुत ख़तरे का भी होगा। इस हालत में कदम उठाने के मानी यह होंगे कि अब तक हमने जो प्राप्त किया है उस सब पर पानी फिर गया। हमें सारे राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना है। यदि रचनात्मक कार्य ठीक प्रकार से न किया गया तो क्रान्ति हो जाने के बाद भारत में डिक्टेटरशिप क़ायम हो जायगी, अथवा कोई दूसरा हमें गुलाम बना लेगा।

यदि ऐसा हो गया तो प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए भारतीयों को फिर गृह युद्ध करना पड़ेगा। अतः आज़ादी की वर्त्तमान लड़ाई के साथ हमें रचनात्मक कार्य भी करना चाहिए। महात्मा गाँधी इसीलिए रचनात्मक प्रयोग पर अधिक ज़ोर देते हैं, आप लोगों को उस पर अमल करना चाहिए।

—आचार्य कृपलानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्नम में भारतीय सभ्यता और संस्कृति

श्री० प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

यह सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि एशिया के कई भागों में प्राचीन काल में भारतीय मल्लाहों ने अपने उपनिवेश बनाये, और वहाँ के आदि निवासियों को एक स्थायी सभ्यता तथा संस्कृति प्रदान की। वृहत्तर भारत में वर्तमान अन्नम को भी शामिल किया जाता है। अन्नम का प्राचीन नाम 'चम्पा' था। अन्नम भारत-वर्ष के सुदूर पूर्व का उपनिवेश था। आर्यों ने सम्पूर्ण भारत में फैलने के बाद, देश के बाहर भी अपने उपनि-वेश बनाये, भारतीय सीमा, आर्यों की सभ्यता और संस्कृति की सीमा न बन सकी। यह तो सब मानते हैं कि आदि काल में भी आर्यों को भूमंडल की भौगोलिक स्थिति का पूरा ज्ञान था। रामायण में यवद्वीप और स्वर्णद्वीप का उल्लेख आया है। और विद्वान मानते हैं कि इन द्वीपों का मतलब वर्तमान जावा व सुमात्रा से था। 'महावंश' महाकाव्य में भी लंका की विजय का वर्णन है, तथा 'मिलिन्दपन्ह' नामक पुस्तक में लिखा है कि एक नाविक महासागरों को पार करके वंग, टकोला, चीन, सोरिर, सूरत, सिकन्दरिया, कारोमंडल तथा सुदूर भारत में जा सकता है।[1] सिकन्दरिया के प्रसिद्ध ज्योति-षाचार्य ने जो भूमंडल का पहला नक्शा बनाया था, उसमें यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि प्राचीन काल में गोपालपुर (गञ्जाम के मुहाने के पास) से नाविक बंगाल की खाड़ी को पार करके सुदूर पूर्व में जाया करते थे। इस आधार पर यह माना जा सकता है कि कलिंग देश से सुदूर पूर्व के लिये आदि काल में जल मार्ग था और व्यापारी नाविक व्यापार करते थे[2] 'सुसौदी जातक' में भी वर्णन है कि भड़ोच से और पूर्वीय द्वीपों से प्राचीन काल में व्यापार होता था।[3] बङ्गाल के विजय नामक राजकुमार ने लंका में उपनिवेश बनाया था।[4] अशोक के एक वंशज ने मलाया द्वीप में दन्तपुर जाकर एक उपनिवेश बनाया था।[5] ब्रह्म देश में इस समय में भी यह कथा प्रसिद्ध है कि कृष्णा और गोदा नदियों के निकट रहनेवाले निवासियों ने इरावदी डेल्टा पर जाकर एक भारतीय उपनिवेश बनाया था।

भारतवर्ष का पूर्वीय देशों से जो स्थल मार्ग सम्बन्ध था, उसके विषय में सर आरथर फायरे का कथन है कि गंगा के मैदान तथा ब्रह्मदेश में आपसी सम्बन्ध आसाम और मनीपुर के मार्गों से भी होता था। पैलिअट तथा जेरेमी लेखक भी इस कथन को मानते हैं। पैलिअट का तो कथन है कि स्थल मार्ग से भारत सुदूर पूर्व का आदि काल से ही सम्बन्ध था।[6] सुदूर पूर्व के जितने भी द्वीप हैं, भारतवासियों ने किस प्रकार उपनिवेश बनाये, इसका प्रत्येक द्वीप के इतिहास कथाओं में वर्णन है। उन द्वीपों के निवासियों के विचार, भाषा तथा साहित्य में भारतीयता का जो प्रभाव तथा उन द्वीपों में जो मन्दिर मिले हैं, उनमें शिव, ब्रह्मा, गणेश, उमा की भी जो प्रतिमायें मिली हैं, इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि आदि काल में वासियों ने उन द्वीपों में जाकर अपने उपनिवेश

१—Champa—R. C. Majumdar, Chap. IV-V.

२—Gerimi Researches on Ptolemy's Geography, पृष्ठ ७४३

३—Jataka III, पृष्ठ १८७

४—कुछ विद्वान् इसको नहीं मानते। Asutosh Mukerji's Silver Jubilee Volume Vol. VIII. पृष्ठ ११३

J. A. S. B. 1922. पृष्ठ ४३५

५—Gerimi, पृष्ठ १०७-१०८

Cunningham's Geography Sd. S. Majumdar पृष्ठ ७३५ में प्राचीन दन्तपुर को वर्तमान दन्तन है माना गया है।

६—Phayre, History of Burma, पृष्ठ

७—Ibid, पृष्ठ १५

८—Bulletin de li Ecole Francaise Extreme Orient (1904), पृष्ठ १४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा वहाँ के आदि निवासियों को एक नई सभ्यता प्रदान की। सुदूरपूर्व के द्वीपों में तथा एशिया के अन्य भागों में जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति गई उसका ध्येय उन स्थानों की प्राचीन सभ्यता को नष्ट करना न था, वरन् भारतीय सभ्यता ने उन द्वीपों की सभ्यता में एक नई ज्योति और जीवन का संचार किया। एशिया के कुछ भाग चीन देश के निकट थे, फिर भी चीन के निवासियों ने आदि काल में उन भागों के आदि निवासियों पर अपने उत्तरदायित्व को न समझा। इसीसे विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि एशिया के अन्य भागों में जो भारतीय सभ्यता गई उससे उन भागों के निवासियों को लाभ ही पहुँचा, उनके साहित्य तथा संस्कृति को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने का अभिप्राय भारतवासियों का न था।

अन्नम की भौगोलिक स्थिति

प्राचीन अन्नम वर्तमान हिन्द-चीन का पूर्वीय भाग है। वर्तमान अन्नम के टोंकिन तथा फ्रान्सीसी कोचीन चीन को छोड़ कर सम्पूर्ण भाग उसमें सम्मिलित था। प्राचीन अन्नम की दक्षिणी सीमा वर्तमान फ्रांसीसी कोचीन चीन थी। अन्नम की पूर्वीय सीमा चम्पा या चीन का सागर था। अन्नम की पच्छिमी सीमा मेकांग नदी की घाटी तक थी। अन्नम के पच्छिम में जो पर्वत श्रेणी है वह देश के एक भाग से दूसरे भाग तक फैली हुई है। इस पर्वत श्रेणी के दक्षिणी भाग में क्वीनोन (Quinon) का दर्रा है, उसीसे होकर अन्नम का पच्छिमी देशों से आवागमन का मार्ग है। भौगोलिक स्थिति के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन चम्पा समुद्र और पर्वत श्रेणी के बीच की लम्बी और पतली ज़मीन की पट्टी थी। चम्पा का पूर्वीय किनारा धनुष की तरह समुद्र की ओर झुका हुआ है। समस्त देश को पर्वत से निकली हुई नदियों ने बांट रक्खा है। अन्नम में सिर्फ दो ही मौसम होते हैं, गर्मी और बरसात। मार्च से अगस्त तक गर्मी रहती है, तथा सितम्बर से फरवरी तक खूब वर्षा होती है। अन्नम की आबहवा अच्छी नहीं है। अन्नम की जनसंख्या भी अधिक नहीं है, और सारे देश में एक करोड़ से अधिक तीन लाख आदमियों की आबादी है। चावल, गन्ना, पीपल, कपास, तम्बाकू, नील, सरसों, और आलू की ही पैदावार होती है। केला, नारियल, आम, खजूर और सेव ही मुख्य फल होते हैं। जंगलों में चन्दन बहुत मिलता है। बांस भी बहुत पैदा होता है। पहाड़ों में रांगा, तांबा, चांदी और सोना भी मिलता है। हाथी, घोड़ा, भैंस, और गाय यहां के मुख्य पालतू जानवर होते हैं।

अन्नम के आदि निवासी

अन्नम में भारतवासियों के उपनिवेश बनाने के पहले वहां किस जाति के लोग बसते थे, उनकी सभ्यता क्या थी तथा उनकी जाति का उद्गम कहां से हुआ, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इस बात को मानते हैं कि अन्नम में 'चम' और 'म्लेच्छ' तथा 'किरात' जाति के लोग रहते थे। चम और म्लेच्छ में भेद एक ही बात से किया जा सकता है कि चम म्लेच्छों तथा किरातों से अधिक सभ्य थे? चीनी इतिहासकारों ने अन्नम के आदि निवासियों की सभ्यता तथा उनके रहन-सहन का वर्णन किया है। 'चम' जाति के लोगों के विषय में लिखते हुये एक चीनी लेखक का कथन है कि वे काले कलूटे, गहरी गढ़ेवाली आखों तथा घने बालों वाले लोग थे। उनके वस्त्रों में सिर्फ एक कपड़े का टुकड़ा होता था जो कि कमर से पैर तक लटकता रहता था। इसके अतिरिक्त वे लोग कोई अन्य वस्त्र धारण नहीं करते थे। साधारण मनुष्य नंगे पैर ही रहते थे, परन्तु धनी आदमी चमड़े के जूते भी उपयोग में लाते थे। स्त्री व पुरुष दोनों अपने बालों को बांधते थे और कानों में बालियाँ तथा अन्य प्रकार के गहने पहनते थे।[९] पांचवी शताब्दी के अन्त में एक चीनी यात्री ने एक और पुस्तक लिखी थी उसमें वह अन्नम देश के एक भाग के निवासियों का वर्णन करता हुआ लिखता है कि

९—Toung Poo, 1910, पृष्ठ १७४

डा० रमेशचन्द्र मजुमदार का कथन है कि चीनी विद्वानों का यह वर्णन उस समय का है जब कि (अन्नम में) भारतीय उपनिवेश बन गया था, इसीलिये यह कहना कठिन है कि (चम जाति) के रहन सहन पर जो कुछ चीनी विद्वानों ने लिखा है, उसमें भारतीय सभ्यता का कितना प्रभाव रहा। Champa, पृष्ठ १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लोग नंगे पैर फिरते हैं, कानों में बड़ी बालियाँ पहनते हैं, लड़के और लड़कियां नंगे ही घूमते हैं, और वे उसे शर्म की बात नहीं समझते। गर्मी के मौसम में वे शरीर को ढकते नहीं परन्तु धूप में घूमते रहते हैं। इसलिये उनका रंग काला पड़ जाता है। काला रङ्ग वहां के निवासी अच्छा समझते हैं।[१०] उसी चीनी विद्वान लेखक के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि अन्नम की 'चम' जाति में कुछ चीनी जाति का भी प्रभाव था, क्योंकि वह लेखक लिखता है कि ईसा की तीसरी शताब्दी पूर्व में जो चीनी देश से निकाल दिये गये थे वे जाकर चम जाति में जा मिले थे। और वे उस समय तक अपनी प्राचीन चीनी सभ्यता तथा रहन सहन को भूल गये थे।[११] स्किम्त नामक लेखक का कथन है कि हिन्द चीन तथा सायम में ईसा से कई शताब्दी पूर्व जो लोग गये थे, उनका आदि देश भारतवर्ष ही था। उसका कहना है कि मध्य भारत और छोटा नागपुर में जो मुण्डा जाति पाई जाती है, उसी नस्ल के लोग आसाम और मनीपुर के मार्ग से हिन्द चीन तथा समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीपों में जाकर बस गये थे। इस लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी इसी मत का समर्थन करते हैं।[१२]

अन्नम के हिन्दू शासक

चम्पा (अन्नम) के प्राचीन इतिहास का पूरा ज्ञान हमें नहीं है। अन्नम में अब भी कुछ दन्त कथायें प्रसिद्ध हैं, जिनसे वहां के रहने वाले अपने पहले राजा का परिचय बताते हैं। उनमें एक कथा रामायण के आधार पर है। कथा इस प्रकार है कि आदिकाल में अन्नम की सीमा के बाहर दिएन-ङहिएम (Dien-nghiem) नामक एक राज्य था। उस राज्य के राजा का नाम दशानन था। उस राज्य के उत्तर में 'हो-हो-तिंह (Ho to Tinh) नामक राज्य था जिसके राजा का नाम दशरथ था। राजा दशरथ के पुत्र चुङ्गतु (Chung-tu) की पत्नी अति सुन्दर थी। राजा दशानन उस रानी की सुन्दरता पर मोहित हो गया और दि[illegible] ङहिएम' राज्य के युद्ध में परास्त कर रानी को [illegible] आया। चुङ्ग-तु नामक राजकुमार ने बन्दरों की [illegible] सेना एकत्रित की जिसने पत्थरों से समुद्र पर एक [illegible] बनाया। अन्त में दशानन को परास्त कर अपनी [illegible] को वापस लाया। कथा के अन्त में लिखा है कि [illegible] जाति 'हो-तेा-तिंह' देश के निवासियों की ही [illegible] है।[१३] इस कथा का ऐतिहासिक महत्व कुछ भी [illegible] है। ईसा की दूसरी शताब्दी का एक शिला लेख [illegible] चन्ह' में मिला है, उसके आधार पर कहा जा सक[illegible] कि उस समय चम्पा में श्रीमार नामक राजा के [illegible] राज्य करते थे।[१४] चम्पा के राजा इन्द्र वर्मन द्वितीय [illegible] एक लेख ७६७ सम्वत शाके का मिला है, जिसमें लिखा है कि भगवान शंकर ने उरूज (uroja) को पृथ्वी [illegible] भेजा और कहा कि शम्भु भद्रेश्वर के चरण रज [illegible] जाकर राज्य कर।[१५] यो-नगर में जो शिलालेख मिले [illegible] उनमें विचित्र सागर नामक राजा का उल्लेख आया है [illegible] जिसने द्वापर के ५९११ वर्ष में राज्य किया था।[illegible] वर्तमान विद्वान उरूज तथा विचित्र सागर को ऐतिहा[illegible] सिक विभूतियां नहीं मानते। मासपेरो तथा अन्य लेख[illegible] श्रीमार को ही चम्पा का प्रथम हिन्दू शासक मान[illegible] हैं।[१७] इतिहासकार स्पष्ट रूप से तो वहीं, परन्तु अध्[illegible] सुगमता के हेतु यह मानते हैं कि ईसा की छठी शताब्[illegible] तक श्रीमार के अतिरिक्त फन वेन (३३६—३४१), [illegible] वर्मन, (३८०—४१३), गङ्गराज (४१३—४१५), [illegible] वर्मन (५०८—५२०) तथा विजय वर्मन (५२०—५[illegible] मुख्य हिन्दू राजा हुये हैं।[१८]

विजयवर्मन के बाद रुद्रवर्मन चम्पा का राजा हुआ [illegible] उसी के शासन काल में महादेव के प्रसिद्ध मन्दि[illegible] 'भद्रेश्वर स्वामी' को किसी ने जला दिया था। विजयवर्[illegible]

१०—B. E. F. Vol. IV, No. 9, पृष्ठ १५

११—Ibid, पृष्ठ १३

१२—Oxford Pamphlets on Indian Affairs, No. २२, पृष्ठ १०-११

१३—Champa, पृष्ठ १२-१३

१४—Champa (Inscriptions), पृष्ठ [illegible]

१५—Ibid पृष्ठ ७६

१६—Ibid ७०, १७७

१७—B. E. F. Vol. XVIII, No. पृष्ठ २४-२५

१८—Champa, पृष्ठ ३३ ३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन काल वतमान विद्वान ५२०-५७७ ई० मानते रुद्रवर्मन के पुत्र शम्भुवर्मन ने भद्रेश्वर स्वामी के दिर का पुनः निर्माण कराया, और मन्दिर की प्रतिमा नाम 'शम्भु-भद्रेश्वर' कर दिया।[१९] उसी के शासन-ाल में दो बार चीन को राजदूत भेजे गये थे! चीनी ाज्य की हीनता देख कर उसने वार्षिक कर भेजना न्द कर दिया था, परन्तु ६०५ ई० में चीनी सेनापति एऊ फंग ने चम्पा पर चढ़ाई कर दी और शम्भुवर्मन पराजित किया। युद्ध में शम्भुवर्मन की गजसेना नी धनुष-धारियों के सामने न ठहर सकी। शम्भुवर्मन -क्षेत्र से भाग गया। चीनी सेनापति ने १०,००० युद्ध दी पकड़े और चीनी प्रथा के अनुसार उनके कान काट ले गए। लिएऊ फंग चम्पा की राजधानी से अनेक मूल्य पदार्थ तथा कुछ संगीत के पंडितों को साथ लेकर न लौट गया। शम्भुवर्मन के बाद ६२९ ई० में कन्दर्प-राजा हुआ। वह शान्तिप्रिय शासक था। इसके द राज्य में उथल-पुथल रही और अन्त में ६५० में र्मन द्वितीय राजा हुआ, उसने चीन से मित्रता भाव रखा। अन्त में गङ्गराज के वंश का भी अन्त गया। रुद्रवर्मन द्वितीय के ७५७ ई० में मरने के बाद म्पा का राज दूसरे राज्य वंश के हाथ में आ गया!

चम्पा के नये वंश के शासक कउथर (Kauthar) जो कि दक्षिणी चम्पा का एक भाग है, आये थे। उसी ा के सत्यवर्मन राजा के शासन में जावा के शासक ने म्पा पर चढ़ाई की और 'मुखलिंग' महादेव के मन्दिर नष्ट कर, असंख्य धनराशि के साथ लौट गया। यवर्मन ने उसी स्थान में फिर मन्दिर का निर्माण कराया र शिव-मुख-लिंग मूर्ति की स्थापना की। ७८४ ई० इन्द्रवर्मन जो कि राजा का भाई था गद्दी पर आया। द्रवर्मन के समय में ७८७ में जावा वालों ने चम्पा पर र चढ़ाई की और भद्राधिपतीश्वर के मन्दिर को नष्ट दिया। ७९३ ई० में इन्द्रवर्मन ने चीनी सम्राट को ट भेजी और मित्रता का भाव रक्खा। इन्द्रवर्मन के उसकी बहन का पति 'राजाधिराज श्री चम्पा-पुरा श्वर' हरिवर्मन राजा हुआ। हरिवर्मन के पाँडुरंग र्तमान फनरंग) के सूबेदार ने कम्बुज (कम्बोडिया) पर चढ़ाई की। ८२० ई० में विक्रांत वर्मन तृतीय राजा हुआ। इस वंश को पांडुरंग ने चलाया था, इसी लिये इसको पांडुरंग वंश कहते हैं, और विक्रांतवर्मन की ८६० में मृत्यु के बाद इस वंश का शासन भी समाप्त हो गया।

विक्रान्त वर्मन के बाद 'भृगुवंश' के लोग चम्पा के शासक बने। भृगुवंश वाले अपने आपको महादेव का वंशज बतलाते थे, क्योंकि चम्पा की कथाओं के अनुसार भगवान शंकर ने ही भृगु को चम्पा पर राज्य करने भेजा था।[२०] श्री जय इन्द्रवर्मन महाराजाधिराज इस वंश का पहला प्रतापी राजा हुआ। इन्द्रवर्मन ने एक बौद्ध मठ बनवाया था। परन्तु वह शैव धर्म का ही अनुयायी था! इस वंश का अन्तिम राजा भी इन्द्रवर्मन तृतीय हुआ और उसके शासनकाल में कम्बुज (कम्बोडिया) के राजा ने चम्पा पर चढ़ाई की तथा अनेक मन्दिरों की प्रतिमायें और धन राशि लूट ली। इन्द्रवर्मन की मृत्यु ९७२ ई० में हुई।

जय परमेश्वरवर्मनदेव ईश्वरमूर्ति नामक राजा ने ९८० में नये वंश की स्थापना की। पाण्डुरंग नामक प्रान्त पर अन्नम के कई हमले पहले भी हुये और परमेश्वरवर्मनदेव ने उस प्रान्त में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसे सफलता मिली। युवराज सेनापति ने, जो कि चम्पा के शासक का ही एक सम्बन्धी था, कम्बुज पर चढ़ाई की और शम्भुपुर को जीत लिया। परमेश्वर वर्मनदेव ने चीन और अन्नम के शासकों से मित्रता रक्खी और उन देशों में अपने दूत भी भेजे। अन्नम के राजा ने रुद्र वर्मन चतुर्थ के समय में चम्पा पर चढ़ाई की और राजा को बन्दी कर लिया। चम्पा के राजा को अपने राज्य के उत्तरी तीन ज़िले देने के बाद स्वतन्त्रता मिली। रुद्रवर्मन चतुर्थ ने (१०६१-१०६९) ई० तक राज्य किया था।

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य के प्रारम्भ में हरिवर्मन राजा हुआ हरिवर्मन के पिता का नाम पालेश्वर धर्मराज था जो कि 'नारियल जाति' (Coconut clan) का सरदार था। और उसकी मा 'पा केफल' के वंश की थी, इस प्रकार हरिवर्मन चम्पा के दो विरोधी वंशों में

१९—Ibid. पृष्ठ ५६-३५७

२०—Ibid पृष्ठ ५६-५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से था। रुद्रवर्मन के समय से अन्नम का आक्रमण चला आ रहा था, उससे देश में अशान्ति रही और हरिवर्मन को अपनी प्रभुता बचाने के लिये विरोधी दलों से कई युद्ध करने पड़े। दुर्भाग्यवश उसी समय अन्नम के शासक ने १०७५ ई०में एक और चढ़ाई चम्पा पर कर दी। और उसी समय कम्बुज के राजा ने चम्पा के सीमान्त प्रान्तों पर लूट भी प्रारम्भ कर दी। हरिवर्मन ने इन सब आपत्तियों का सामना किया। माइसन (Myson) के शिलालेख से यह स्पष्ट है कि हरिवर्मन ने अपने बाहर के विरोधियों से बारह बार युद्ध किया और उन्हें परास्त किया। १०८१ ई० में हरिवर्मन ने राज्यपद त्याग दिया और उसका ज्येष्ठ पुत्र श्रीराजेन्द्र राजा हुआ। वह एक ही महीने बाद मर गया और भारतीय प्रथा के अनुसार उसकी चौदह रानियाँ उसकी लाश के साथ सती हो गईं। कुछ काल तक राज्य में उथल-पुथल रही और सन् १०८१ में श्री जय इन्द्रवर्मनदेवोपम राजाधिराज देवतामूर्ति शासक हुआ। अन्नम से कुछ दिन तक उसका युद्ध होता रहा और अन्त में १११४ में उसका भतीजा हरिवर्मन पंचम राजा हुआ। ११३९ ई० में जयइन्द्रवर्मन छठवां राजा हुआ। यह अपने आपको उरोज का वंशज मानता था। इन्द्रवर्मन धार्मिक राजा था, उसने कई स्थानों पर शिवलिंग की स्थापना कराई। कम्बुज के राजा सूर्यवर्मन ने ११४५ में चम्पा पर आक्रमण किया। इस युद्ध के बाद इन्द्रवर्मन का हाल नहीं मिलता, या तो वह युद्ध में मारा गया या क़ैद कर लिया गया था। चम्पा पूर्णरूप से कम्बुज के अधिकार में आ गया था। उसी समय रुद्रवर्मन परम ब्रह्मलोक राजा हुआ, परन्तु वह ११४७ में मर गया और उसका पुत्र श्रीहरिवर्मनदेव छठवां राजा हुआ। शंकर नामक सेनापति के अधिकार में कम्बुज की एक सेना ने चम्पा पर आक्रमण किया। हरिवर्मन ने चकलिंग नामक स्थान पर शंकर को परास्त किया। हरिवर्मन ने देश के 'किरातों' की सेना को भी हराया, परन्तु उसकी रानी का भाई जिसका नाम वंशराज था, विरोधीदल से मिल गया परन्तु हरिवर्मन ने उसको भी किरातों के साथ परास्त किया। सन् ११५१ में अमरावती तथा सन् ११५५ में पाण्डुरंग में विद्रोह हुआ, और हरिवर्मन ने बड़ी वीरता से उसको शान्त किया। अपनी माता व पिता की यादगार में महिषा पर्वत पर उसने दो शिव मन्दिर बनवाये। हरिवर्मन ११६३ ई० में मर गया और जय इन्द्रवर्मन [illegible] राजा हुआ। जय इन्द्रवर्मन ने ११७० ई० में कम्बुज पर चढ़ाई कर दी और कम्बुज की राजधानी को [illegible] वापस चम्पापुर आया। इन्द्रवर्मन ११८० ई० में [illegible] गया। कम्बुज के शासक जयवर्मन सप्तम ने ११९० ई० में सूर्यवर्मदेव (जो कि चम्पा का ही एक निवासी था) की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। श्री सूर्यवर्मन ने चम्पा के राजा इन्द्रवर्मन सप्तम को युद्ध में परास्त किया। कम्बुज के राजा ने चम्पा के राज्य को दो भागों में बांट दिया। चम्पा के दक्षिणी भाग को श्रीसूर्यवर्मन को दे दिया जिसने राजपुर स्थान को अपनी राजधानी बनाया। चम्पा के उत्तरी भाग को वहीं के एक सेनापति ने कम्बुज के नये सूबेदार को हराकर छीन लिया, और श्री इन्द्रवर्मनदेव के नाम से शासक बन गया। सन् ११[illegible] में कम्बुज की एक दूसरी सेना ने श्रीजय इन्द्रवर्मन को हराया और वह मारा गया। राजपुर का शासक सूर्यवर्मन देव अब समस्त चम्पा का राजा बन गया। सन् १२[illegible] में जयपरमेश्वर देव, चम्पा का राजा बना, जो कि प्राचीन राजवंश में से ही था। उसके समय में भी कम्बुज से शान्तिपूर्वक सन्धि बनी रही। परमेश्वर वर्मन देव के बाद जय इन्द्रवर्मन दशम (१२४०-१२५७) राजा हुआ वह भी बहुत प्रतापी था और राज्य को बाहरी आक्रमणों से बचाता रहा। इस वंश में अन्त में महेन्द्र वर्मन (१३०७ १३११) एक शक्तिशाली शासक हुआ। अन्नम के राजा ने महेन्द्र वर्मन पर आक्रमण किया और चम्पा को एक आधीन राज्य बना दिया।

अन्नम के राजा ने सन् १३१८ ई०में चम्पा में अ-नन नामक एक सूबेदार नियुक्त कर दिया। अ-नन को स्वतन्त्र होने का प्रलोभन हो गया और उसने चीनी सम्राट से मित्रता की। और १३२६ ई० में अन्नम की सेना को हरा दिया। चीनी दरबार में वह १३२७, १३२८ और १३३० ई० तक अपने राजदूत भेजता रहा। अन्त में उसने चीन से भी छुटकारा पाया और स्वतन्त्र रूप से चम्पा का राजा बन गया। अ-नन मारा गया उसके बाद उसका दामाद राजा बना, परन्तु उसके पुत्र ची-बौङ्ग (Chebong nga) ने अपने बहनोई को हराया और पुनः चम्पा का राजा बन गया। अन्नम के राजा ने १३६८ ई०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चम्पा पर आक्रमण किया परन्तु ची-बौंग-नगा ने उनको हराया। उसी समय चीन में मङ्गोल सम्राट को हराकर ...ग वंश का राजकुमार शासक बना। चम्पा के राजा ने उससे मित्रता कर ली। अन्नम के राजा ने १३७७ ई० में चम्पा पर आक्रमण किया परन्तु ची-बोंग-नगा ने उसको युद्ध में मार डाला। ची-बोंग-नगा ने १३८४ में अन्नम पर स्थल के मार्ग से एक आक्रमण किया बहुत सी धनराशि लूटकर चम्पापुर वापस आ गया। ची-बोंग-नगा १३९० ई० में अन्नम के युद्ध में मर गया और उसका सेनापति श्री जयसिंह वर्मन देव पंचम के नाम से राजा हुआ। वह ब्रसु (Brsu) वंश का संस्थापक था। अन्नम के राजा ने भद्रवर्मन देव के समय में चम्पा पर आक्रमण किया और इन्द्रपुर के प्रान्त को अपने राज्य में मिला लिया। भद्रवर्मन देव को चीनी सम्राट ने सहायता दी परन्तु वह देर से आई। भद्रवर्मनदेव १४४१ ई० में मर गया और उसका भतीजा महा विजय राजा हुआ। चम्पा और अन्नम का झगड़ा चलता रहा। अन्त में ...-कोडे-पोड-ली जो सन् १५०५-१५४३ ई० में चम्पा का राजा था, युद्ध में हारा और चम्पा की स्वतन्त्रता हमेशा के लिये समाप्त हो गई। चम्पा में भारतवासियों ने भी उपनिवेश बनाया, उनके वंशजों का राज सोलहवीं शताब्दी तक चला। यह सच है कि चम्पा में भारतवासियों ने १५०० वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद इतिहास के पृष्ठों से उठ गये, परन्तु उनकी सभ्यता अभी तक जीवित है।[२१]

अन्नम में ब्राह्मण धर्म

एशिया के दूसरे हिस्सों में जहां जहां भारतवासियों ने अपने उपनिवेश बनाये वहां वहां उन्होंने अपने आदि देश के धर्म को भी फैलाया। जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, कम्बोडिया, सायम तथा चम्पा में भारतीय धर्मों की महानता रही। चम्पा में आज तक शैव धर्म का ही बोलबाला रहा। चम्पा में जो १३२ शिला-लेख मिले हैं, उनमें ९२ में शिव का ही वर्णन मिलता है। तीन शिला-लेखों में विष्णु का नाम मिला है और पांच में ब्रह्मा का वर्णन मिलता है। भगवान बुद्ध का नाम सिर्फ सात शिला-लेखों में ही पाया गया है।[२२]

चम्पा के शिला-लेखों में तथा अन्य मंदिरों में भगवान् शिव के अनेकानेक नाम मिले हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—महेश्वर, महादेव, अमरेश, ईश्वर देवता, ईशानदेव, शम्भु, उग्र, रुद्र, पशुपति, वामेश्वर, योगीश्वर, तथा इन्द्रलोकेश्वर।[२३] चम्पा में शिव-लिंग में भी अनेक नाम मिले हैं, उनमें से मुख्य ये हैं—देवलिंगेश्वर, महालिंगदेव, महाशिवलिंगेश्वर, तथा धर्म लिंगेश्वर।[२४] चम्पा में भगवान शंकर को त्रिमूर्ति में प्रधान माना गया है। भद्रवर्मन तृतीय के समय के एक शिला-लेख में महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित शिव की प्रभुता को शिला पर उतारा गया है। उस शिला-लेख में भगवान शंकर की प्रभुता का वर्णन है। श्लोक में शंकर को अन्य देवताओं से उच्च माना गया है[२५]—

देवेन्द्रः किल पूर्वतोस्थित तदा याम्यां सरोजोद्भव
श्चन्द्रार्कौविद पृष्ठतश्च भगवान् नारायणो वामनः।
मध्यस्थो ज्वलिताभर हिमसहित श्चोंकार पूर्वैस्वधा
स्वाहाद्यन्तों निजमन्त्रकैस्तु तनतो यो ऽसौ तदाद्यैः सुरैः॥

चम्पा में जितने भी शिलालेख मिले हैं, उन सबमें भगवान् शङ्कर के अलग अलग स्थानों में पृथक पृथक नाम मिलते हैं। चम्पा के शिलालेखों में भगवान शङ्कर का कामदेव को भस्म करना, हिमालय की पुत्री से विवाह तथा गङ्गा को अपनी जटाओं में स्थान देने का पूरा वर्णन है। लिंग पुराण तथा वायु पुराण में भगवान शङ्कर के विषय में भद्रवर्मन तृतीय के समय के एक शिलालेख में एक कथा मिली है। कथा इस प्रकार है कि एक समय ब्रह्मा और विष्णु में वादविवाद हुआ कि भूमंडल में सर्वश्रेष्ठ कौन है। उसी समय उनके सम्मुख एक शिव-लिंग उपस्थित हुआ। दोनों ने उसके अन्त को खोजने का प्रयत्न किया। ब्रह्मा ने हंस का रूप धारण किया और आकाश की ओर उड़कर लिंग के शिखर का पता लगाना चाहा और भगवान् विष्णु ने एक जंगली सूअर (वाराह) का रूप धारण कर पृथ्वी के अन्त तक जाकर लिंग के मूल को खोज करते रहे। हज़ारों वर्ष चलने के बाद भी उन्हें लिंग का छोर न

२१—Ibid. ५६-१४९

२२—Ibid पृष्ठ १७०

२३—Ibid पृष्ठ १७१-१७२

२४—Ibid पृष्ठ १७२

२५—Ibid (Inscription) पृष्ठ १२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला। उसके बाद भगवान् शङ्कर पुनः उत्पन्न हुये और फिर उन दोनों ने शङ्कर की महानता को मान लिया। शिलालेख में श्लोक इस प्रकार हैं—[२६]

लिंगावसान मतिगाढ़तभन्त्वधस्ताद्
वारहरूप वहता हरिणापि नैत्रं।
वीर्येण साधपितुयुत्तम योगवेत्रा
शिकृन्न यस्य यदनिष्टवर प्रसादात ॥ ६ ॥
लिंगाव सानमन भिज्ञतयो परिष्टाद्
मानोज्जितेन सरसीरुहयो निनादः।
स्वध्यानवीर्यरु चिरेण तथापि वेत्तुं
शक्तं न यस्य यदनिष्टवर प्रसादात् ॥ ७ ॥
यो विज्ञाय मुरारिपद्यवरजावज्ञान दोषोद्धति
प्रालेयग्लपिता नवाम्बुज निभौ प्रोवाच वाणीमिमां।
"हे गोविन्दसरोजजौ किमपरं सादध्वा मुषाभयां मनाग,
यद्भू लाग्रबुभुत्सया मम नतिः कृत्या मुदा नान्यथा"। ८॥

चम्पा में शङ्कर को प्राणि-मात्र का जन्म-दाता माना गया है, तथा उन्हींसे भूः, भुवः तथा स्वः शब्दों का सूत्रपात हुआ था। भगवान् शङ्कर का निवास-स्थान कैलास और उनका क्रीड़ा-क्षेत्र मानसरोवर झील ही माना जाता है। 'योग, जय और ओंकार के द्वारा शिव समस्त भू मंडल को शान्ति प्रदान करते हैं।

अन्नम में शिव लिंग और शिव-मूर्ति दोनों की ही उपासना होती थी। भारतवर्ष के समान अन्नम में भी शिव-लिंग ही अधिक मिलते हैं। शिव-लिङ्ग अधिकतर 'स्नान द्रोनी' में ही मिले हैं। कहीं कहीं पर शिवलिंग योनि के साथ भी मिलते हैं। अन्नम में कई जगह लिंग मिले हैं, जिनमें लिंग के शिखर या मध्य में मुख भी बना हुआ है। एम० फ़िनाट नामक लेखक का कथन है कि लिंग पर जो मुख अंकित है वह उस राजा का था, जिसने कि उस लिंग की स्थापना की थी। परन्तु एम० ऐमानियर तथा डा० रमेशचन्द्र मजुमदार का कथन है कि शिवलिंग पर जो मुख बना मिला है, वह शिव जी का ही है क्योंकि पुराणों में एक कथा है कि एक बार भगवान् शंकर ने लिंग से प्रकट होकर दर्शन दिये थे। अन्नम में शिव की जो मूर्तियां मिली है, वे कई प्रकार की हैं। अधिकतर शिव की जो मूर्तियां मिली हैं, उनमें वे [illegible] रूप में खड़े मिले हैं। उनके बाल गूंथे मिले हैं, तथा [illegible] उनके शरीर का शृङ्गार किये हुये हैं। माइसन में [illegible] शिव मूर्ति मिली है, वह साधारण है और उसमें [illegible] कम है।[२७] ध्यानमग्न बैठे हुये शिव की मूर्तियां [illegible] मात्रा में मिलती हैं।[२८] यन मम (Yan Mum) [illegible] पर जो बैठे हुये शिव की मूर्ति मिली है, उसमें वे [illegible] हाथ में त्रिशूल तथा दूसरे में अंकुरा लिये हुये हैं। [illegible] मूर्ति में शङ्कर का तीसरा नेत्र भी मिला है, तथा [illegible] जनेऊ भी धारण किये हुये हैं।[२९] द्रन लाइ (Dran Lai) नामक स्थान पर जो शिव-मूर्ति मिली है, [illegible] वे नन्दी पर बैठे मिले हैं।[३०] टाइ-पनुम (Tympanum) नामक स्थान पर भी शिव मूर्ति मिली है, [illegible] शङ्कर देवमन्दिर के द्वारपाल बनाये गये हैं। उसमें [illegible] की मुद्रा अति क्रोधित मिलती है। उस मूर्ति में [illegible] भयानक प्रतीत होते हैं।[३१]

अन्नम में शङ्कर का जो सबसे पुराना लिंग मिला वह अन्नम के राजा भद्रवर्मन् के समय का है, जिन्होंने स्थापना ईसा की चौथी शताब्दी में हुई थी। अन्नम के निवासी प्राचीन शिव-लिंगों को राष्ट्रीय सम्पत्ति मानते हैं, और उनकी रखवाली भी अच्छी तरह करते हैं। भद्रवर्मन ने इस शिव-लिङ्ग को माइसन में भद्रेश्वर स्वामी के नाम से स्थापित कराया था। अन्नम के राजा अपने इस शिव लिंग की बहुत मानता करते थे।[३२]

अन्नम में भगवान शङ्कर की 'शक्ति' की भी उपासना होती थी। अन्नम में 'शक्ति' को 'उमा', 'गौरी', 'भगवती', 'देवी', 'मात्रलिंगेश्वरी' तथा 'भूमीश्वरी'

२६—Ibid (Inscription, No. 39) पृष्ठ ११२-११३

२७—Parm. I. C., Vol. I. Fig. 78 पृष्ठ ३६२—Fig. 79 पृष्ठ ३६३

२८—Ibid, vol II. Figs. 108-109 पृष्ठ ४०४-४०५

२९—Ibid, Fig. 77 पृष्ठ ३०६

३०—Ibid, Fig. 105 पृष्ठ ४०१

३१—Champa पृष्ठ १७९

३२—Ibid (Inscriptions) No. पृष्ठ ३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाता था।[३३] पो नगर (Po Nagar) के मंदिर में एक शिला-लेख पर 'शक्ति' की निम्नलिखित स्तुति मिली है[३४]

भूता भूतेशभूता भुवि भवविभवोद्भावभावात्मभावा
भावाभावास्वभावा भवभवकभवाभावभावैक भावा।
भावाभावाग्रशक्तिः शशिमकुटतनोरर्धकाया सुकाया
काये कायेशकाया भगवति ममतो नो जयेव स्वसिद्ध्या।

पो नगर में जो 'भगवती' की मूर्ति मिली है वह काले पत्थर की है। मूर्ति के दस हाथ बड़े बड़े लटकते हुये हैं। दो हाथ घुटनों पर खुले हुये बने हैं, अन्य आठों हाथों में कई प्रकार के हथियार हैं।[३५] अन्नम में भगवती 'अर्धनारी' रूप में भी है। इस मूर्ति में शङ्कर भगवती दोनों ही हैं, परन्तु 'तांत्रिक' विचार के आधार पर स्त्री रूप को अधिक महत्व दिया गया है।[३६] शैव धर्म के अन्य देवताओं का भी वर्णन अन्नम के शिलालेखों तथा मूर्तियों में मिलता है। स्वामी कार्तिक तथा गणेश की भी पूजा अन्नम में होती थी। माइसन की एक मूर्ति में गणेश जिनको अन्नम निवासी 'विनायक' भी कहते थे, खड़े मिले हैं और उनके चार हाथ दिखलाये गए हैं। कार्तिक अन्नम में अधिक प्रसिद्ध थे। उनका नाम 'कुमार' भी मिलता है।

अन्नम में वैष्णव धर्म

अन्नम में भगवान विष्णु की भी पूजा होती थी और कई शिला-लेखों में उनके कई नाम मिले हैं, जैसे, 'पुरुषोत्तम', 'नारायण', 'हरि', 'गोविन्द', 'माधव', तथा 'क्रम'। डुङ्ग मुङ्ग (Duong-Moug) के शिला-लेख में भगवान विष्णु को—

"इदं भगवतः पुरुषोत्तमस्य विष्णोरनादि निधन-शेष भुवनगुरोः पूजास्थानं श्री प्रकाशधर्म्यणा कारितम्" लिखा हुआ है। और यह भी खुदा हुआ है कि विष्णु का यह मन्दिर श्री प्रकाशधर्म की आज्ञा से निर्माण किया गया था।[३७] विष्णु के समुद्र-मंथन की कथा का वर्णन माइसन के स्तम्भ के शिलालेख में मिला है।[३८] भारतवर्ष के समान अन्नम में भी राम और कृष्ण की गोवर्धन लीला का वर्णन तथा केसी और प्रलम्भ नामक राक्षसों को मारने की कथा का भी वर्णन मिलता है। अन्नम में कामदेव को कृष्ण और रोहिणी का ही पुत्र माना गया था। अन्नम के राजा अपने आप को विष्णु का अवतार ही मानते थे। विष्णु के वाहन 'गरुड़' का भी परिचय अन्नम में मिलता है। अन्नम में एक विष्णु-मूर्ति मिली है, जिसमें वे गरुड़ पर सवार हैं।[३९] भगवान विष्णु को नागराज वासुकी की शैया पर विश्राम करते हुये दिखाया गया है।[४०]

विष्णु की शक्ति लक्ष्मी की जिसे अन्नम निवासी 'पद्मा' और 'श्री' के नाम से पुकारते थे, पूजा होती थी। सुखी गृहस्थ नारी को उपमा लक्ष्मी से भी दी जाती थी। अन्नम के निवासी लक्ष्मी को हिमालय की पुत्री मानते थे।[४१] अन्नम में लक्ष्मी की तीन अच्छी मूर्तियां मिली हैं।[४२] भगवान विष्णु के वाहन 'गरुड़' का भी वर्णन मिलता है। गरुड़ को पक्षियों का राजा माना गया है। उसकी जो मूर्तियां मिली हैं उनमें से कई में उसके सिर पर एक मुकुट भी मिला है।[४३]

ब्रह्मा जो कि विश्वकर्मा था, उसका भी वर्णन अन्नम के अनेक शिला-लेखों में मिला है। ब्रह्मा को 'चतुरानन' भी कहा जाता था। ब्रह्मा को 'स्वयं उत्पन्न' कहा गया है, और इस 'स्वयं उत्पत्ति' का वर्णन पांच शिलालेखों में मिलता है।[४४] 'ब्रह्मा' को चार मुखवाली मूर्तियां मिली

३३—Ibid (Inscriptions nos. 4, 26, 50, 97) पृष्ठ
३४—Ibid (Inscription No. 55) पृष्ठ १५२
३५—Parm. I. C, Vol. II पृष्ठ ४१२
३६—Ibid Fig. 79 पृष्ठ ४१३-१४
३७—Champa (Inscription No. 11) पृष्ठे १५
३८—Ibid Inscription No. 95) पृष्ठ २११
३९—Parm I. C. Vol II. Fig. 124 पृष्ठ ४२२
४०—Ibid Fig. 125. पृष्ठ ४२३
४१—Champa (Inscription No. 21) पृष्ठ ४०
४२—Parm I. C. Vol. II पृष्ठ ४२१-४२२
४३—Ibid पृष्ठ २६२
४४—Champa (Inscriptions Nos. 89, 91,92,96,106) पृष्ठ २०८-२१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, तथा उनके वाहन 'हंस' का भी वर्णन मिलता है। ब्रह्मा के सुमेरु पर्वत के निर्माण का वर्णन माइसन के शिलालेख में मिलता है,—[४५]

नर वाहनवर्य्य श्रीरकरोत्तां शिलामयीम्।
रम्यरौप्यबहिर्बद्धां ब्रह्मा मेरुशिखामिव ॥

अन्नम में भारतीय ब्राह्मण धर्म के समस्त महत्वपूर्ण देवताओं की मान्यता थी। नवीं शताब्दी के पोनगर के एक शिलालेख में देवताओं की महत्ता को माना गया है। निम्नलिखित श्लोक में इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, वासुकी, शंकर, सूर्य, चन्द्र, वरुण, अग्नि तथा अभ्यद (बुद्ध) सब आ जाते हैं।[४६]

क्वचिदपि वलभिज्जो ब्रह्मजो विष्णुजश्च
क्वचिदपि मुजगेन्द्रश्शङ्करश्च-क्वचिद्वा।
क्वचिद षिरविचन्द्रो पाम्पतिवाह्निरूपः
क्वचिदभयद विम्वस्सत्व मोक्षाद् बभूव ॥

अन्नम में यमराज का भी भयानक रूप माना जाता था और यमराज साम्राज्य में शान्ति रखता था। कई शिला-लेखों में उसे धर्म या 'धर्मराज' भी लिखा हुआ मिला है। माइसन के एक शिलालेख में चन्द्र और उसके विरोधी राहु का भी नाम मिलता है।[४७]

अन्नम में सूर्य, कुबेर, सरस्वती तथा वनान्तरेश्व नामक देवताओं का नाम शिला-लेखों में मिलता है। अप्सराओं तथा राक्षसों की भी प्रतिमायें अन्नम में मिलती हैं। नागी की भी कई प्रतिमायें भारतवर्ष के समान ही मिलती हैं, हैं, जिनमें ऊपर का भाग स्त्री का, तथा शेष भाग नागी का था।[४८] ध्यान, योग और समाधि की क्रियाओं का ज्ञान भी अन्नम निवासियों को था। अन्नम के राजा भी वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके भारतवर्ष में गङ्गा तट पर आते थे। भारतीय 'कर्म' का जो विचार शास्त्रों में है, उसको भी अन्नम निवासी जानते थे और अन्नम निवासियों को भारतीय युगों का भी ज्ञान था।

अन्नम में बौद्ध धर्म

अन्नम (चम्पा) में बौद्ध धर्म का भी प्रचार हुआ था। खोज से जो प्राचीन शिलालेख मिले हैं, उनमें आठ में स्पष्ट रूप से बुद्ध का नाम आता है। अन्य में बौद्ध के अनेक नाम मिले हैं, जिनमें लोकनाथ, लोकेश्वर, सुगत, धामेश्वर, शाक्यमुनि, वज्रपाणि सधर्म। अन्तिम नाम सधर्म का असली अभिप्राय धर्म से होता है, परन्तु अन्नम निवासी उस शब्द प्रयोग बुद्ध के लिये भी करते थे। अन्नम वासियों विश्वास है कि गौतम बुद्ध, उन अनेकों बुद्धों में जोकि उनसे पहले भूमंडल पर अवतार ले चुके हैं। दसवीं शताब्दी के एक शिलालेख में जोकि अन्न (An Thai) में मिला है भगवान् बुद्ध की महानता माना गया है। अन्नम में महात्मा बुद्ध के बताये कर्म और जीवन के आवागमन के विषय को महत्व दिया गया है। अन्नम निवासी मानते हैं कि ष्य मात्र के बुरे काम उसको 'मार' से नहीं बचा सिर्फ भगवान बुद्ध ही मनुष्य का 'मार' से उद्धार सकते हैं। यह विचार अन-थाई के एक शिलालेख प्रकट होता है।[५०] बौद्ध 'निर्वाण' को सबसे उच्च है। कहा है कि वह सबसे उत्तम मोक्ष है और उ कोई समानता नहीं है।[५१] अन्नम के निवासियों विश्वास था कि अच्छे कर्म करने के बाद मनुष्य को जाता है, जहाँ कि बुद्ध पुनः निवास करते हैं।[५२]

अन्नम में बौद्ध प्रतिमायें भी मिली हैं। हिन्दू राजाओं ने भी भगवान बुद्ध की प्रतिमा स्थापना की थी। नवीं शताब्दी के डोंग डुओंग (D Duong) के शिलालेख से मालूम हुआ है कि जय इन्द्रवर्मन ने (जिसका नाम लक्ष्मीन्द्र, आमत भी था) एक बुद्ध प्रतिमा की स्थापना की थी भविष्य में वह प्रतिमा 'लक्ष्मीन्द्र-लोकेश्वर' के

४५—Ibid (Inscription No. 21) पृष्ठ ४०
४६—Ibid (Inscription No. ३१) पृष्ठ ७९
४७—Ibid (Inscription No. 74) पृष्ठ १८४
४८—Champa पृष्ठ २०३
४९—Champa (Inscription No. पृष्ठ ७८
५०—Ibid (Inscription No. 37) पृष्ठ
५१—Ibid (Inscription No. 31) पृष्ठ
५२—Ibid (Inscription No. 31 (पृष्ठ ८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध हुई।[५३] अनथाई के एक दूसरे शिलालेख में लिखा हुआ है कि अन्नम के शासक भद्रवर्मन और इन्द्रवर्मन ने नागपुष्प नामक साधु के कहने पर बुद्ध प्रतिमायें मन्दिरों में स्थापित कीं और उन मन्दिरों के व्यय के लिये सरकारी आय का भी प्रबन्ध कर दिया था।[५४] अन्नम के एक राजकुमार ने अपनी दादी की याद में 'अवलोकितेश्वर' का एक मठ बनवाया था। ई-त्सिंग (I-Tsing) नामक चीनी लेखक के अनुसार अन्नम में 'आर्यसम्मति-निकाय' बौद्ध सम्प्रदाय के ही लोग अधिक थे। परन्तु अन्नम में जो शिलालेख मिले हैं, उनसे यह बात स्पष्ट रूप से मालूम होती है कि अन्नम में महायान बौद्ध सम्प्रदाय का अधिक प्रचार था।

अन्नम में अनेकों बौद्ध मूर्तियाँ मिली हैं और ढोंग-डुआंग नामक स्थान पर अधिक संख्या में बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। वज्र धातु की एक सुन्दर प्रतिमा भी उसी स्थान की खुदाई में मिली है। त्रूङ्ग तिन (Trung Tin) नामक स्थान पर बुद्ध की एक प्रतिमा मिली है जिसमें वे नाग पर आसन बांधे बैठे हुये हैं। एक अन्य स्थान पर भी बुद्ध की प्रतिमा मिली है जिसमें उनकी रक्षा नागराज अपने फन से करता पाया गया है।[५५] यह आश्चर्य की बात है कि अन्नम (चम्पा) में बौद्ध मठ ठीक अवस्था में नहीं मिले हैं, परन्तु चीनी भाषा की पुस्तकों के वर्णन में तो अन्नम के कई प्रसिद्ध बौद्ध मठों का पता लगता है। मालूम होता है कि भारतवर्ष के समान शैवधर्म और बौद्धधर्म के अनुयाइयों में अधिक काल तक पंथ-सङ्घर्ष चलता रहा और यही कारण है कि वर्तमान अन्नम की खुदाई में बौद्ध मठ कम ही मिलते हैं।

अन्नम की शिल्पकला

भारतवर्ष के समान अन्नम की भवन-निर्माण कला तथा शिल्पकला का एकमात्र साधन हिन्दू मन्दिर और बौद्ध मठ ही थे। यह सच है कि अन्नम की भवन-निर्माण कला कम्बोडिया (कम्बुज) तथा जावा (यवद्वीप) के समान उन्नत न थी, फिर भी जो कुछ प्राचीन खोज से मिला है, वह इस बात का प्रमाण है कि अन्नम की भवन निर्माण-कला तथा मूर्ति-निर्माण कला पर भारत की छाप थी। अन्नम में जो मन्दिर मिले हैं वे अधिकतर ईंटों के ही हैं। भारतवर्ष में बङ्गाल में जो भी प्राचीन मन्दिर मिले हैं, उनमें ईंटों का ही प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। अन्नम में खोज करने से मन्दिर अधिक संख्या में माईसन डोंग ओंग तथा पो नगर ही में मिले हैं। अन्नम में जो मन्दिर मिले हैं, उनके सिंह-द्वार अधिकतर पूर्व की ओर ही होते हैं। मंदिरों के शिखर पिरामिड की सी बनावट के हैं।

अन्नम के कई मन्दिरों के शिखर द्रविड़ देश के मामल्लपुर तथा कांचीवरम के मन्दिरों के समान हैं, जिनमें एक के ऊपर एक मन्दिर की छतें होती हैं और सबसे ऊपर की छत सबसे छोटी होती है।[५६] अन्नम के कुछ मन्दिरों की छतें धनुषाकार मिली हैं। परमेण्टियर तथा अन्य लेखकों का कथन है कि उस प्रकार की छतें उत्तरी भारत के मन्दिरों में मिलती हैं।[५७] भगवान् बुद्ध की जो प्रतिमायें मिली हैं, उनमें गांधार कला का अधिक प्रभाव मिलता है, तथा शङ्कर, ब्रह्मा तथा विष्णु की भी मूर्तियां मिलती हैं, उनका आधार बंगाल तथा दक्षिण भारत की मूर्ति-कला ही थी। यह भय है कि अन्नम के शिल्पकारों ने भारतीय कला का पूरा अनुकरण नहीं किया परन्तु यह माना जाता है कि अन्नम की शिल्पकला और मूर्तिकला पर भारतवर्ष की कला का अधिक प्रभाव था। अन्त में यह भी कहा जा सकता है कि दक्षिण भारतीय भवन निर्माण कला की अधिक प्रधानता अन्नम में मिलती है।

अन्नम का शासन-प्रबन्ध

अन्नम में हमेशा राजतंत्र की ही रही प्रथा और राजा साम्राज्य का सर्व प्रधान होता था। अन्नम राज्य के तीन मुख्य भाग थे—उत्तरी भाग 'अमरावती' कहलाता था और चम्पापुर और इन्द्रपुर उस भाग के मुख्य नगर थे, और प्राचीन इन्द्रपुर को ही वर्तमान समय में डोङ्ग-डुओङ्ग कहते हैं। राज्य के मध्य भाग का नाम विजय था, और श्री विजय उस भाग का मुख्य बन्दर-

५३—Champa पृष्ठ २०९
५४—Ibid पृष्ठ २१०
५५—Ibid पृष्ठ २११-२१२
५६—Fergusson 'History of Indian and Eastern Architecture' Vol. I, Chapt. III और VII
५७—Champa, पृष्ठ २७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाह था। देश के दक्षिणी भाग को पांडुरेग कहते थे और वीरपुर या राजपुर वहाँ का मुख्य नगर था। अन्नम का राजा जय इन्द्रवर्मन पांचवाँ शासन करने में 'महाराज मनु के बताये अठारह शासन-शास्त्रों के आधार को मानता था।[५८] इन्द्रवर्मन नारद और माण्डवीय के धर्म-शास्त्रों का पूरा ज्ञाता था।[५९] अन्नम के राजा की सेना में हाथी अधिक होते थे। एक राजा की सेना में तो १४,००० पालतू हाथी बतलाये गये हैं।[६०] राज्य की सेना 'महासेनापति' और सेनापतियों के ही अधिकार में होती थी।

अन्नम निवासी राजा को ईश्वर का अवतार मानते थे। मनुस्मृति के आधार पर राजा चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, यमराज और कुबेर को मिलाकर बनाया हुआ पुरुष माना जाता था। पो नगर के विक्रान्तवर्मन द्वितीय के एक शिलालेख में मिला है कि ब्राह्मण भी राजा के चरणों की पूजा करते थे।[६१] अन्नाम का राजा राज्य करने में साम, दाम, दण्ड और भेद का पालन करता था। राजा हमेशा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर से अलग रहता था।[६२] अन्नम के शासक ६४ कलाओं के ज्ञाता माने जाते थे। अन्नम के राजा के राजमहल में रानियों के अतिरिक्त नर्तकियां और बादियाँ भी होती थीं। मार्को पोलो, जो कि १२८५ ई० में अन्नम गया था, लिखता है कि "चम्पा में किसी स्त्री को विवाह करने का अधिकार नहीं है, जब तक कि राजा उसको देख न ले। अगर वह प्रसन्न हो जाय तो उसे अपनी रानी बना ले अन्यथा वह उसे धन देकर पति खोजने की आज्ञा देता है।" मार्को पोलो का कथन है कि "उस समय राजा के लड़के और लड़कियाँ मिलाकर ३२६ थीं, जिनमें से कम से कम १५० हथियार संभालने थीं।"[६३]

अन्नम का समाज

अन्नम के समाज में चार ही वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) थे। ब्राह्मण और क्षत्रियों में आपस विवाह होते थे। भारतवर्ष में भी यह प्रथा बहुत तक चली थी। अलबरूनी इसका प्रमाण है। समाज ब्राह्मणों का अच्छा आदर था। ब्रह्म-हत्या बहुत समझी जाती थी। विवाह के समय वंश और गोत्र विचार किया जाता था। स्त्री और पुरुष को विवाह में बांधना एक धार्मिक क्रिया थी और विवाह कर्म ब्राह्मणों का ही काम था। अन्नम में सती-प्रथा भी अन्नम में वर्ष चैत्र महीने से ही प्रारम्भ होता था अमावस्या को महीना समाप्त होता था। मृतक जलाने की प्रथा अन्नम में भी थी।

अन्नम में संस्कृत भाषा का प्रचार था। जि भी शिलालेख मिले हैं, उनमें संस्कृत भाषा की प्रधानता है। परन्तु उनमें कहीं कहीं प्राचीन अन्नम भाषा भी मिली हुई है। समाज के उच्च लोग संस्कृत भाषा पढ़ते थे। राजा भद्रवर्मन को चारों वेदों का था। इन्द्रवर्मन तृतीय को भारतीय दर्शनशास्त्र प्रर्याप्त ज्ञान था। राजा जय इन्द्रवर्मन देव अमर पाणिनि के व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, और महायान धर्म-शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। रामायण महाभारत का प्रचार भी अन्नम में था। श्रीराम, युधिष्ठिर तथा दुर्योधन का नाम शिलालेखों में मिला मानव धर्मशास्त्र का ज्ञान अन्नम निवासियों को पुराणों की कथाओं का भी वर्णन अन्नम के शिलालेखों में मिलता है।[६४]

५८—Champa (Inscription No. 64) पृष्ठ १७१

५९—Ibid (Inscription No. 81) पृष्ठ १९९

६०—Marco Polo Edited by Yuel Vol. II पृष्ठ ३५२

६१—Champa (Inscription No. 30) पृष्ठ ७२

६२—Ibid पृष्ठ १७१

६३—Marco Polo, Edited By Y Vol. II, पृष्ठ २४९-२५०

६४—Champa, पृष्ठ २३१-२३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त साम्राज्य और भारत के जनतन्त्रात्मक गणराज्य

[श्री राहुल सांकृत्यायन के "जय यौधेय" नामक उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि]

श्री बुद्धप्रकाश एम० ए०

"जय यौधेय" गुप्त काल के अभ्युदय की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सजीव एवं सर्वाङ्गीण चित्र है। अगाध पाण्डित्य और गम्भीर गवेषणा से इतिहास की रूप-रेखा तैयार करके लेखक ने उसे कला और कल्पना की तूलिका से चित्रमय बनाया है। परन्तु इस तूलिका के व्याघात से कहीं कहीं ऐतिहासिक रूपरेखा विदीर्ण हो गई है। यह लेख इस रूपरेखा को ठीक करने का प्रयत्न है।

सम्राट् समुद्रगुप्त ने भारतवर्ष में गुप्त साम्राज्य की नियाद बड़ी सावधानी से रक्खी थी। मौर्य्यों के शिथिल केन्द्रीकृत राज्य-विधान का दुष्परिणाम उनके सामने था। नागों की शिथिल राष्ट्र-व्यवस्था भी उनके समक्ष थी। अतः उन्होंने दोनों आदर्शों के समन्वय से केन्द्रीकरण तथा स्थानीय स्वायत्तता के सिद्धान्तों को लेकर गुप्त-साम्राज्य की राजनीति का विधान किया था।[1] दक्षिण में उन्होंने स्थानीय राजाओं को पराजित कर पुनरन्त उनके सिंहासन लौटा दिए थे।[2] उत्तर में भी उन्होंने बहुत कुछ ऐसा ही किया था। अतः उनकी प्रतिष्ठा एक बलवान विजेता के रूप में ही नहीं फैली थी बल्कि "शान्तयशा" राष्ट्र-निर्माता के रूप में भी वह प्रसिद्ध हो गये थे।[3] चम्पा और सिंहल के समुद्र-वेष्टित कमण्डल से लेकर पश्चिम और उत्तर में हिमालय की शुभ्र गिरिमाला तक आर्य संस्कृति की नवोद्बोधित तरङ्गें उनके चारों ओर हिलोरें ले रही थीं। इस सांस्कृतिक जागृति और नवराष्ट्रनिर्माण-चेतना के साथ साथ भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षितिज पर भयानक सङ्कट के मेघ मँडरा रहे थे। सन् २२४ ई० में सासान के वंशज अर्दशिर ने ईरान के अर्सकिद सम्राट् को परास्त करके शहन्शाह की उपाधि ग्रहण की थी। इसी वंश में अर्दवान् वाराहरान् द्वितीय (२७५—२९२ ई०) हुए जिन्होंने सीस्तान को सासानी राज्य में सम्मिलित किया। वराहरान् द्वितीय के देहान्त के बाद वराहरान् तृतीय और उसके सौतेले दादा नरसेः में राज्यसिंहासन के लिए गृह-युद्ध हुआ; जिसमें नरसेः ने सफलता प्राप्त की और (३०२ से ३०९ ई० तक) राज्य किया। काबुल के कुषाण राजा ने उसके उत्तराधिकारी होर्मज्द (३०२—३०९ ई०) की शरण ग्रहण की और संधि की। दृढ़ता के लिए उसने अपनी पुत्री का पाणि प्रदान किया। होर्मज्द के पश्चात् सासानी वंश के परम प्रतापी सम्राट् द्वितीय ने सन् ३०४ से ३७९ ई० तक निःशङ्क राज्य किया। इस समय तक रोमन सम्राट मार्कस् ओर्लियस् कार्कस् के आक्रमण की आशङ्का भी समाप्त हो गई थी और पारस्परिक विद्रोह तथा वैमनस्य भी शान्त हो चुका था। कुषाणों के आत्मसमर्पण के फल-स्वरूप सासानी राज्य अब भारत की सीमा में घुस आया था और भारतवर्ष पर आक्रमण करके कुषाणों की पर्यस्त श्री को फिर से स्थापित करने की घात में था। समुद्र-गुप्त के निर्बल उत्तराधिकारी रामगुप्त की शिथिल राज्य-व्यवस्था का सुअवसर देखकर शकों ने भारत पर आक्रमण किया। वे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शौर्य और चातुर्य से पराजित होकर भारत से भागने पर विवश हुये थे।[4] कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के वार्धक्य काल में जब सुरा और सुन्दरी के उन्माद में राज्य के अंग शिथिल हो गये थे उन्होंने पारसियों तथा हूणों के

१—गुप्त साम्राज्यवाद के कवि कालिदास ने इस आदर्श का सुन्दर शब्दों में प्रतिपादन किया है:—

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्॥

—रघुवंश; अष्टम सर्ग; श्लोक ९

२—देखिए प्रयाग का शिलालेख; २०वीं पंक्ति
सर्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुरागजनितप्रतापोन्मि-
श्राहाभगस्य।

३—वही० अनेकभ्रष्टराज्योत्सन्नराज्यवंशप्रतिष्ठापनो
भूतनिखिलभुवनविचरणशान्तयशसः

४—देखिए डा० अ० स० अल्तेकर: ऐन्यू गुप्त किंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ मिलकर भारत पर भीषण आक्रमण किया था[५] और नवयुवक स्कन्दगुप्त को उस युद्ध में बहुत परिश्रम और अध्यवसाय करना पड़ा था।[६] सारांश यह है कि इस शक्ति के प्रादुर्भाव से उत्तर पश्चिम के गण संकटापन्न हो गये थे और स्वरक्षा के लिए क्रमशः पूर्व की ओर बढ़ रहे थे। यौधेय सतलज से भरतपुर और उत्तरी राजपुताने की ओर अग्रसर हो रहे थे। मालव लोग सिंधु के निचले कांठे को छोड़कर जहाँ उन्होंने क्षुद्रकों के साहचर्य में सिकन्दर के दांत खट्टे किए थे मध्य प्रान्त में प्रस्थान कर गये थे। नगरी उनकी राजधानी थी जहाँ से "मालवानां जयः" से उत्कीर्ण उनके बहुत सिक्के मिले हैं। मालव प्रदेश से नीचे वर्तमान नरसिंहपुर जिले के आसपास आर्जुन रहते थे। उदय गिरि के समीप सनकानीकों की बस्ती थी। साँची का नाम काकनाद काक लोगों के निवास स्थान के कारण पड़ा था। और मध्यप्रान्त के दमोह ज़िले के इर्द-गिर्द खरपरिकों की बस्ती थी। संक्षेप में इन गणों की व्यवस्था बहुत कुछ ऐसी ही असयंत थी जैसी सन् ३२० ई० पू० में यूनानियों के आतङ्क के कारण हो गई थी। किसी भी राष्ट्रीय शक्ति से मिलकर वह अपनी रक्षा करने को तैयार थे। तिस पर समुद्रगुप्त को गणों के प्रति विशेष आकर्षण और स्नेह था। "लिच्छवी-दौहित्र" कहने में उसे एक अद्भुत् शक्ति और प्रेरणा की अनुभूति होती थी। नीति से ही उसने इन गणों को, बाहरी संङ्कट का बोध कराकर अपने साथ कर लिया होगा इसमें संदेह नहीं है। साथ ही समुद्रगुप्त की महान् विजय-यात्राओं से जो "काश्मीर-द्वार" और पश्चिम की सीमाओं तक पहुंच गई थी[७] चारों ओर आतङ्क फैल गया होगा। कहीं गणराज्यों से भी मुठभेड़ हुई हो। इसीलिए की प्रशस्ति में इन सब गणों को स्वेच्छा से समुद्र प्रति आत्म-समर्पण करते हुये दिखलाया गया राहुल जी ने पहले परिच्छेद में जो समुद्रगुप्त के साथ व्यवहार दिखाया है वह अतिरञ्जित होते भी सत्य के निकट ही है। परन्तु राहुल जी का विचार कि समुद्रगुप्त ने यौधेय गण में विवाह किया और दत्तादेवी यौधेयकुमारी थी निरी कल्पना है रिक्त और कुछ महत्व नहीं रखता। इसी प्रकार ध्रु को मालवंशजा कहना राहुल जी की कोरी कल्पना सम्भव है कि ये रानियाँ गणराज्यों से सम्बन्ध रखती परन्तु इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

"जय-यौधेय" की मुख्य स्थापनाएँ यह हैं यौधेय गण का समूल उच्छेद समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (रामगुप्त का व्यवधान तो नगण्य सा ही है) ने किया, क्योंकि इसके बाद इस गण का अस्तित्व नहीं मिलता। चन्द्रगुप्त ने पहिले मेल-मिलाप, आकर्षण, प्रलोभन, भर्त्सन द्वारा इस गण को अपने साथ करना चाहा। परन्तु निष्फल रहने पर उसने भूमि पर आक्रमण किया और "महाराज" "महासेनापति" जय के नेतृत्व में यौधेयों ने उसे पराजित किया। इस पराजय के बाद फिर एक बार महाकवि कालिदास को जय के प्रलोभन के लिए यौधेयों की राजधानी में भेजा गया और सब तरह असफल रहने पर युद्ध की घोषणा कर दी। इस बार भी यौधेय वीरता से लड़े किन्तु गुप्त साम्राज्य की विशाल वाहिनी के उन्हें हारना पड़ा। जय वीरगति को प्राप्त हुए असंख्य यौधेय नर-नारी हताहत हुए। तत्पश्चात्

५—देखिए "चन्द्रगर्भपरिपृच्छा" की यह उक्ति जिसे बुस्तों ने अपने बौद्ध धर्म के इतिहास में उद्धृत किया है :

"महेन्द्र के राज्य पर तीन विदेशी शक्तियों ने—यवन, पहलिक और शकुनों ने—मिलकर आक्रमण किया था जो पहिले ओयस में लड़े थे।"

६—भितरी का अभिलेख :

विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन
क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा—

कोर्पस् इन्सक्रिपशियोनस इन्डिकोरम्, भाग ३, नं० १३

७—देखिए:—आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प ; का० जायसवाल का संस्करण पृष्ठ ५२, श्लोक ७०५

सोऽनुपूर्वेण गत्वासौ पश्चिमां दिशि भूपतिः।
कश्मीरद्वारपर्यन्तं उत्तरां दिशिमा श्रुतः॥

८—कों० इ० इ० नं० १, पंक्ति २२ मालवयनयौधेयमद्रकाभीरप्रार्जुन सनकानीक काक खर दिभिः सर्व करदानाज्ञाकरणप्रणामागमनपरितोषित एडशासनस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय तक यौधेयों के भग्नावशेष समूहों ने गुप्तों के साथ गोरीला युद्ध जारी रक्खा किन्तु अन्त में गुप्त साम्राज्य के उमड़ते सागर में सदा के लिए यौधेयगण विलीन हो गये।

ऐतिहासिक गवेषणा के फलस्वरूप हम उक्त स्थापनाओं से सहमत नहीं हैं। गुप्त-यौधेय युद्धों का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता और न इस बात का कोई प्रमाण मिलता है कि गणों ने गुप्त साम्राज्य के विकास को रोकने का प्रयत्न किया था। इसके विपरीत प्राचीन शिलालेखों, मुद्राओं तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री के अनुशीलन से यह विदित होता है कि कई शताब्दियों से गणों में राजतन्त्र की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और गुप्तकाल के प्रारम्भ तक जनतंत्र या गणतंत्र की भावना बहुत क्षीण हो गई थी। धनशाली सामन्त बहुत उन्नति कर गये थे और उनमें जो प्रतिभाशाली और बलवान् थे वे राजा की पदवी भी धारण करने लगे थे। गुप्त-साम्राज्य के उदय होते ही यह सब गण-सामन्त कुछ सासानियों के सङ्कट के कारण, कुछ अपने वैयक्तिक हितों के निमित्त, कुछ ब्राह्मण पुनरुत्थान से प्रेरित होकर गुप्तों के आधीन हो गए थे। और गुप्त साम्राज्य की शांतिमय राजनीति के फलस्वरूप गुप्तराज मुकुट के जाज्वल्यमान रत्न बन गये थे। इस सम्मिश्रण और समर्पण की प्रक्रिया में हथियारों की उतनी ज़रूरत नहीं पड़ी थी जितनी राहुल जी ने सिद्ध की है। सौभाग्यवश मालव और आभीर गणों के प्राचीन इतिहास की हमारे पास प्रचुर सामग्री है और यौधेय-गण के अंतिम दिनों पर भी कुछ अभिलेखों से प्रकाश पड़ता है। अतः उक्त तथ्य के प्रतिपादन के लिए हमें इस सामग्री के आधार पर इन गणों की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करना चाहिए।

आभीरों का प्रथम वर्णन महाभारत और पातञ्जल महाभाष्य में मिलता है। इसके बाद यूनानी भूगोल शास्त्री टोलेमी ने एक "अबीरिया" देश का उल्लेख किया है जो शकराज्य के अन्तर्गत था। यह देश आभीर देश के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।[९] दूसरी शताब्दि ईसवी में आभीर योद्धा शक राजाओं के सेनापति बनने लगे थे। सन् १८१ ई० के क्षत्रप रुद्रसिंह के एक लेख से पता चलता है कि उनके प्रधान सेनापति रुद्रभूति आभीर थे। धीरे धीरे आभीरों की शक्ति बढ़ती गई, राज्य में उनका प्रभुत्व बढ़ने लगा और उन्होंने मौक़ा पाकर शकों को पराजित करके गुजरात पर अधिकार कर लिया। वात्स्यायन ने कामशास्त्र में धोबी द्वारा आभीरों के एक राजा की हत्या का ज़िक्र किया है।[१०] टीकाकार ने अपनी टीका में बताया है कि गुजरात में कोह नामक स्थान आभीरों की राजधानी थी और सेठ वसुमित्र की भार्या से व्यभिचार करने के लिए आभीर राजा उसके घर गया था। इस अवसर पर राजा की इच्छा से उसके भाई ने एक धोबी के द्वारा उसका वध किया।[११] तीसरी शताब्दि के अन्तिम पाद में आभीरों की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि मध्य एशिया की राजनीति में भी वह भाग लेने लगे थे। पेकूली के शिलालेख से पता चलता है कि सन् २९३ ई० में वराहरन् तृतीय और उसके सौतेले दादा नरसेः में जो गृह-युद्ध हुआ उसमें आभीरों के राजा ने भी भाग लिया था।[१२] सन् ३०० ई० में जैसा कि नासिक के गुफालेख से ज्ञात होता है इन प्रदेशों में आभीर नरपति ईश्वरसेन का राज्य था।[१३] समुद्रगुप्त ने अपनी गहरी चालों से आभीरों के अधिपति को फुसलाकर अपने आधीन कर लिया था। आभीरों की कुछ टुकड़ियाँ भी बिहार और पूर्वी युक्तप्रान्त में बस गई थीं। झांसी ज़िले में "अहिरवार" और मिर्ज़ापुर ज़िले में "आहेरौरा", जहाँ अब भी अहीरों की भारी बस्ती है, इन आभीर बस्तियों के नामावशेष हैं।

९—इन्डियन एन्टीक्वेरी १८८४ पृष्ठ ३५४

१०—"आभीरं हि कोहराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान" कामशास्त्र पृष्ठ २९४ (चौखम्बा संस्कृतति सिरीज)

११—वही "गूर्जराते कोहं नामं स्थानं, तस्य राजानं आभीरनामानं, परभवनगतयि ति श्रोष्टीवसुमित्रस्य भार्या, मधिगन्तुं तद्भवनगतं राज्याहेण तद्भ्रात्रा प्रयुक्तो रजको जघान।"

१२—इस लेख में उसे "अभीरान् शाह" कहा गया है : दे हेर्त्ज़फेल्द् कृत 'आल्तपेरीशे इन्शरिफ्तन्'

१३—ईश्वरसेन बड़ा प्रतापी राजा था। शायद इसी ने सासानी गृह-युद्ध में भाग लिया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालव गण के इतिहास के अध्ययन से भी राजतन्त्रता की उदयोन्मुखी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। सिकन्दर के समय में मालव सिंधु के निचले काँठे पर बसते थे। सन् ५७ ई० पू० में उन्होंने शकों को पराजित कर मालव संवत् की स्थापना की थी जो विक्रम संवत् के नाम से भारत का राष्ट्रीय संवत् बन गया है। इसके बाद उनका प्रभाव बहुत फैला और अब भी पञ्जाब के फिरोज़ पुर, लुधियाना, पटियाला, झींद ज़िलों के सिख "मालवा सिख" नाम से अभिहित किए जाते हैं। तीसरी शताब्दि ईसवी में मालव मध्य भारत और दक्षिण पूर्वी राजपूताने की ओर बढ़ने लगे थे। इस भगदड़ में जनतन्त्र को छोड़-कर मालवगण राजतन्त्र की ओर झुकने लगा था। ब्राह्मणों का प्रभाव भी उन्नति कर रहा था। हाल ही में नन्दसा नामक स्थान से कुछ यज्ञयूप मिले हैं जिन पर सम्वत् २८२ अर्थात् सन् २२६-२२७ ई० के कुछ लेख उत्कीर्ण हैं।[१४] इनमें मालवों के एक शासनधर का उल्लेख है जिसकी उपाधि "पौरप" थी और जिसके नाम में "सोम..." अक्षर आते थे। जिस शकराज को, इस लेख के अनुसार, पौरप ने परास्त किया था वह या तो रुद्रदामा प्रथम (२२०-२२२ ई०) या उसका अनुज सङ्घदामा होना चाहिए। पौरप के पिता जयसोम और पितामह प्रभागवर्धन का भी इन लेखों में उल्लेख मिलता है। किन्तु पौरप के लिए राजकीय उपाधियों का प्रयोग नहीं किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि यद्यपि पैतृक राजशासन-पद्धति गण में स्थापित हो गई थी परन्तु अभी तक जनतन्त्र की रूढ़ियों का इतना प्रभाव ज़रूर था कि राजा लोग खुले शब्दों में अपने को राजा कहने में हिचकते थे। परन्तु चौथी शताब्दि में मालवगण पूर्णरूप से राजतन्त्र स्वीकार कर चुका था।[१५] समुद्रगुप्त का समकालीन राजा नरवर्मा था जिसने सम्भवतः समुद्रगुप्त के प्रति आत्मसमर्पण किया था। नरवर्मा का बन्धुवर्मा कुमारगुप्त का यशस्वी सामन्त था। प्रकार यह गण भी गुप्त साम्राज्य का अंग बन था।[१६]

ऐसी ही दशा यौधेयों की भी थी। रुद्रदामा सन् १५० ई० के लगभग उन्हें पराजित किया था। तब से यह पूर्व की ओर राजपूताने में बढ़ रहे सम्भवतः 'जोधपुर' अब भी यौधेयों के इस प्रस्थान परिचायक है। पूर्व में भरतपुर राज्य की सीमाओं इनका इलाका फैला हुआ था। इसी समय अन्य गणों समान इनमें भी राजतन्त्र के अंकुर प्रादुर्भूत हुए गुप्तों के आगमन तक फल-फूलकर सम्पूर्ण हो गये मध्य प्रान्त के भरतपुर ज़िले में जो विजयगढ़ का लेख है उसमें यौधेय गण के एक महाराज-महासेना का उल्लेख है।[१८] इससे सिद्ध होता है कि यौधेयों सेनापति और शासनधर के पद एक ही व्यक्ति में हित हो गये थे। यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ी। विजय से ही एक और अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसे स० ४२८ में अर्थात् सन् ३७१ ईसवी में विष्णुवर्धन शिलास्तम्भ पर खुदवाया था।[१९] विष्णुवर्धन को "वीरक" और "सुप्रातीतित राज्यानामधेय" कहा है जिससे सिद्ध होता है कि वह कोई स्वतन्त्र शक्ति अधिपति नहीं था। विष्णुवर्धन के पिता का नाम वर्धन, दादा का नाम यशोरात और पर-दादा का

१४—इन लेखों का डाक्टर अ० स० अल्तेकर ने हाल ही में गम्भीर अध्ययन किया है। देखिए:—'भारतीय इतिहास सम्मेलन' के लाहौर अधिवेशन के वृत्त में डाक्टर साहब का लेख

१५—दे० विश्ववर्मा का गंगाधर—शिलालेख का निम्न वाक्यशां "क्षितिपाधिपानां वंशोद्भवो" को० इ० इ० १७

१६—दे० मन्दसोर—शिलालेख को० इ० इ०

१७—गिरनार शिलालेख की यह उक्ति: स्वस्ति विस्कृतवीर शब्द जातोत्सेकाविधेयाना यौधेयानां प्र त्सादकेन एपिग्राफिया इन्डिका जिल्द ८ पृ० ४७

१८ दे० प्लोट :—को० इ० इ० भाग ३ नम्बर

१९—वही० नम्बर ५९। प्लीट ने लेख की भू में सम्वत् के विषय में लिखा है :—"सम्वत् का नहीं दिया हुआ है। परन्तु लिपि के स्वरूप से होता है और प्राप्ति स्थान से पता चलता है कि उक्त सम्वत को मालव या विक्रम सम्वत चाहिए। इससे प्रतीत होता है कि विष्णुवर्धन का सामन्त था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याघ्ररात इस अभिलेख में दिया हुआ है। अतः स्पष्ट है कि विष्णुवर्धन के वंश में कई पीढ़ियों से राजा हो रहे थे। इस अभिलेख का प्राप्तिस्थल विजयगढ़, जैसा कि प्लीट, न० ५८ से ज्ञात होता है, यौधेय प्रदेश के अन्तर्गत था और शायद यौधेयों का केन्द्र स्थल भी रहा हो। इन दोनों लेखों की लिपि भी एक-सी है। अतः सिद्ध होता है कि दोनों लेख लगभग एक ही काल के हैं। इसलिए ऐसा मालूम होता है कि विष्णुवर्धन विजयगढ़ प्रदेश के यानी यौधेयों के राजा थे[२०] जिन्होंने, जैसाकि प्लीट महाशय ने लिखा है, समुद्रगुप्त के प्रति आत्मसमर्पण किया था और जिनके वंश में पैतृक राजसत्ता बद्धमूल हो गई थी। यौधेय नरपति विष्णुवर्धन ने भी मालवराज नरवर्मा और ईश्वरसेन के उत्तराधिकारी आभीर नरेश की तरह ब्राह्मणों के जाल में फँसकर और बाह्य सङ्कट से विवश हो, जनतन्त्र की दबी हुई प्रवृत्तियों के पुनर्जागरण की आशङ्का से अपनी राजकीय सत्ता को सुरक्षित करने के लिए गुप्त राजाओं का पल्ला पकड़ा था और सदा के लिए जन-हितों को राजाओं के स्वार्थी हाथों में सौंप दिया था। अतः चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को इन गणों का उच्छेद करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी क्योंकि गणों के अभिपति लोभवश उनके हाथों की कठपुतली बन गए थे और जनतन्त्र की परम्परा काल के प्रवाह में विलीन हो गई थी। राहुल जी की गुप्त यौधेय युद्ध की थ्योरी सर्वथा असत्य और अप्रमाणित है। किन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि शकों के उच्छेद का श्रेय गुप्तों को नहीं वरन इन स्वदेश-प्रिय त्याग-परायण वीरगणों को है। सबने ही यथाशक्ति विदेशियों के बहिष्कार में सहयोग दिया किन्तु मुख्य भाग यौधेयों ने नहीं बल्कि आभीरों ने लिया। गुजरात को उन्होंने शकों से स्वतन्त्र किया। उन्हीं की सहायता से सौराष्ट्र में भगदत्त, जिसका चरण भी पेकूली के शिलालेख में आया है, शकों को निकालकर राज्यासीन हुये। इस दृष्टि से उनका महत्व यौधेयों से बहुत अधिक है।

गुप्तों के इतने महत्व और प्रसिद्धि का आखिर कारण क्या था? राहुल जी के कथनानुसार क्षत्र भी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे और कला और शिल्प को उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया था। परन्तु वह क्रम से भारतीयों की राष्ट्रीयता को हड़प करने का प्रयत्न कर रहे थे और उनका आर्थिक शोषण भी चरम सीमा पर पहुँच गया था। ११वीं शताब्दि के महामनस्वी सूक्ष्मदर्शी मुसलमान पण्डित अल-बेरूनी ने लिखा है:—

"सिन्धु और समुद्र के अन्तराल में इन शकों ने अत्याचार किया।.....हिन्दुओं को उन्होंने शकों के अतिरिक्त अपने को और कुछ समझने या दिखलाने का निषेध किया।....."[२१]

सुगत का सन्देश इस अत्याचार का आवरण बन गया था जैसा कि भारतीय इतिहाह के महान् पण्डित स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है:—

"...बौद्ध धर्म एक अराष्ट्रीय सिद्धान्त हो गया था और कुषाणों के सम्पर्क से उसने अहिन्दू रूप धारण कर लिया था, जिनके हाथों में पड़कर उसकी आध्यात्मिक स्वाधीनता नष्ट हो गई थी तथा वह राजनीति का यन्त्र बन गया था।"[२२]

अतः भारतीय संस्कृति का पोषक बनकर और राष्ट्रीय हितों के सहारे ब्राह्मण-धर्म अग्रसर हुआ। उसने अपनी संकीर्णता दूर की और पहिले नागों तथा वाकाटकों और फिर गुप्तों की छत्रच्छाया में वह पुष्पित और पल्लवित हुआ। इस ब्राह्मण पुनरुत्थान की बाढ़ गण-राज्यों को भी बहा ले गई और भारत ने अपनी बाग-डोर चुपचाप राजाओं और पुरोहितों के हाथों में सौंप दी।[२३]

२०—लगभग एक ही काल के और एक ही प्रदेश में जो दो लेख मिले हैं, जिनमें से एक से ज्ञात होता है कि उक्त देश यौधेय गण का था और दूसरे से मालूम होता है कि वहाँ राजाओं का एक वंश राज करता था, यह अनुमान (प्रिज़म्पशन) स्वाभाविक है कि वे राजा यौधेय राजा ही थे।

२१—अलबेरूनी इन्डिया, भाग २, (साखो का अनुवाद)

२२—का० प्र० जायसवाल: हिस्ट्री आफ़ इन्डिया १५० ई०—३५० ई०

२३—इस विषय का विस्तृत विवेचन हमने अपने लेख "ब्रह्मनिकल रिनेसाँ अन्डर दी गुप्ताज़" में किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहुल जी ने एक बार फिर एलन के पिछड़े विचार को दोहराया है कि "चन्द्रगुप्त-कुमार देवी" किस्म के सिक्के समुद्रगुप्त ने बनवाए। लेख की लम्बाई के ख़याल से हम यहां इस बात का सविस्तार विवेचन करना उचित नहीं समझते। इसलिए हम पाठकों से डाक्टर अनन्त सदाशिव अल्तेकर के विद्वतापूर्ण लेख—"चन्द्रगुप्त कुमार देवी शैली के सिक्कों का आरोपण"[२४]— पढ़ने का अनुनय करते हैं जिन्होंने सन्देहरहित प्रमाणों से प्रतिपादित किया है उक्त सिक्के चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही बनवाए थे।

इन पंक्तियों के साथ इस लेख को समाप्त करते हम पाठकों से निष्पक्ष समालोचना की प्रार्थना करते

२४—देखिए - जर्नल आफ़ रायल एशिय सोसायटी आफ़ बङ्गाल (१९३७) जिल्द ३, नम्बर (न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेण्ट), पृष्ठ १०५—१११

*नोट—विद्वान समालोचक ने श्री राहुल सांकृत्यायन जी के उपन्यास "जय यौधेय" की समालोचना विद्वत्ता के साथ की है। पर फिर भी वह चित्र का एक पहलू है। गुप्त साम्राज्य के बाद ही गणों का अस्तित्व होता है। डा० जायसवाल ने भी लिखा है कि "हिन्दुओं ने समुद्रगुप्त का नाम कभी कृतज्ञता पूर्वक नहीं किया; और जिस समय अलबेरूनी भारत में आया था, उस समय उसने लोगों से यही सुना था कि गुप्त लोग ही दुष्ट थे। यह उस चित्र का दूसरा रूप है। यद्यपि वे लोग व्यक्तिगत प्रजा के लिये बहुत ही अच्छे शासक परन्तु फिर भी हुन्दुओं की राष्ट्र-संघ सम्बन्धी स्वतन्त्रता के लिये वे नाशक ही सिद्ध हुए थे।" (अन्धकार भारत पृ० ४६५) आलोचक का यह मत सही है कि उस समय बौद्ध धर्म अराष्ट्रीय धर्म हो रहा था। पर यह सही है कि उस समय ब्राह्मण धर्म सामन्तों और पुरोहितों के स्थिर-स्वार्थ का संरक्षक मात्र हो रहा था। वह भारतीय समाज के स्वार्थों का समान रक्षक नहीं रह गया था। यह सही है कि उस समय महत्पूर्ण साहित्य रचना हुई, जिसमें गुप्तों के लिये गौरवपूर्ण जगह है; पर यह भी सही है कि उस साहित्य में "एक के लिये काव्य और काम सूत्र लिखे गये, दूसरे के लिये पुराण और स्मृतियाँ। एक विलासिता की ओर खिंचता गया दूसरा शास्त्र वाक्यों की ओर। एक रस का आश्रय बनता गया, दूसरा मज़ाक और अवहेला का विषय (पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी—"विचार-वितर्क" पृ० १७६) और आज जो हिन्दुओं की दुरावस्था है, वह उसी बहु घोषित समृद्धिकालीन सभ्यता का परिणाम है। कैसे कहें कि वह अच्छी थी, जब कि उसका परिणाम स्पष्ट ही बुरा नज़र आ रहा है ? लेकिन फिर भी यह समालोचना इतनी तर्क पूर्ण है कि इसे यहां छापना हम समझते हैं। —सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलिक मुहम्मद जायसी का प्रकृति-वर्णन

डा० कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०, डी० फिल०

जायसी की लिखी हुई तीन कृतियां हमें प्राप्त हैं—

१—पद्मावती

२—अखरावट

३—आखिरी कलाम

पद्मावती में प्रकृति का उपयोग दो प्रकार से हुआ है।

(१) पात्र के रूप में

(२) प्रकृति-वर्णन के रूप में

पहले का उदाहरण हीरामन सुआ है।[1] यह एक पक्षीयुक्त मानवी पात्र है। इसमें सुख-दुख, हर्ष-उल्लास की वैसी ही भावनाएं चित्रित हैं जैसी कि मनुष्य में होती हैं। रत्नसेन को सूली मिलते देखकर उसे उसी विकलता की अनुभूति हुई थी[2] जो किसी भी मनुष्य को हो सकती थी जो कि एक सच्चे दूत के रूप में वहां पर होता।

दूसरे का उदाहरण शेष प्रकृति वर्णन है। शेष प्रकृति का उपयोग जायसी ने निम्न लक्ष्यों के लिए किया है—

१—उपमानों के रूप में

२—उपदेश देने के लिए

३—वातावरण उत्पन्न करने के लिए

४—घटना वर्णन के लिए

५—मनुष्य के सुख-दुख वर्णन के लिए

६—ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन करने के लिए

उपमानों के रूप में कवि ने प्रकृति का जो उपयोग किया है वह निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) नख-शिख के उपमान

(२) मानवी भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान

(३) अन्य वस्तुओं एवं कार्यों के उपमान

नख-शिख में प्रयुक्त उपमानों की चर्चा हम नख-शिख वर्णन के विश्लेषण में करेंगे।[3]

मानवी भावनाओं के उपमान वास्तव में वर्णन को अत्यन्त मार्मिक कर देते हैं। रत्नसेन सिंहलदीप से लौटकर आया है। पद्मावती को प्राप्त करने की उसे प्रसन्नता है। इस कारण वह नागमती के पास प्रसन्न मुख होकर जाता है। नागमती तो दुखी है। उसे उसकी हंसी नहीं सुहाती। इस कारण वह रत्नसेन से कहती है—

काह हँसौ तुम मो सों किहेउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी हम मुख बरसै मेह॥[4]

यहां पर बिजली चमकने एवं मेह बरसने की जो बात कवि ने कही है वह वास्तव में व्यंजना को अत्यन्त मार्मिकता प्रदान कर देती है।

रत्नसेन पद्मावती के लिए अपना सर्वस्व छोड़कर जा रहा है। कवि उसका वर्णन करता है—

नैन लाग तेहि मारग, पद्मावति जेहि दीप।
जैस सेवातिहि सेवै बन चातक, जल सीप॥[5]

यहां पर यदि इतना ही कहा जाता कि रत्नसेन के नयन पद्मावती के सिंहलद्वीप की ओर लगे हैं तो बात बड़ी ही साधारण होती परन्तु कवि ने नीचे चातक एवं सीप तथा स्वाति के जो उपमान रख दिए हैं उससे तो व्यंजना ही जैसे बदल गई है और ये साधारण पंक्तियां भी बड़ी ही मार्मिक हो उठी हैं।

रत्नसेन गजपति से अपने पद्मावती-प्रेम की तीव्रता को समझाने के लिए भी प्रकृति के उपमानों का ही सहारा ले रहा है—

सरग सीस धर धरती हिया सो पेम समुन्द।
नैन कौड़िया होइ रहे लेइ लेइ उठहिं सो बुन्द॥[6]

इसमें जिस रूपक का सहारा लेखक ने लिया है वह वास्तव में व्यंजना को सुन्दर एवं सजीव बना देता है। स्वर्ग को शीश कहना, धरती को हृदय कहना, प्रेम को समुद्र कहना, कौड़िया को नयन कहना इस रूपक का प्राण नहीं वरन् प्राण तो 'लेइ लेइ उठहिं सो बुंद' में समाए हुए हैं।

१—जो पक्षी नागमती का संदेश रत्नसेन तक ले गया था वह भी इसी श्रेणी में आएगा।

२—जा० मृ० पृष्ठ १२८

३—यह लेख लेखक की शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मलिक मुहम्मद जायसी' का एक अंश है। नख-शिख वर्णन सम्बन्धी उसमें एक परिच्छेद अलग है।

४—जा० ग्रं० पृष्ठ २१७

५—वही पृष्ठ ६६

६—वही पृष्ठ ६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नसेन के सिंहल के निकट पहुँचने पर पद्मावती का दूत हीरामन सुआ राजा रत्नसेन को समझाता है—

गगन सरोवर, ससि-कँवल, कुमुद तराइन्ह पास।
तू रबि सूआ, और होइ पौन मिला लेइ बास ॥[७]

इसमें हीरामन ने उपमानों के सहारे पद्मावती एवम् रत्नसेन के पारस्परिक आवश्यक प्रेम की व्यंजना की है। शशि, कमल, कुमुद, तारिकाएं, सरोवर, रवि, भ्रमर एवं पवन सभी उपमानों के रूप में ही इस दोहे में प्रयुक्त हैं परन्तु उपमान में धर्म, वाचक एवं अधिकतर उपमेय लुप्त हैं। इस कारण भाव में एक विचित्र आकर्षण आ जाता है।

पद्मावती मदन-संतप्त होने के कारण अत्यन्त व्याकुल है। उसकी व्यथा को कवि चित्रित करता है—

से धनि बिरह पतङ्ग भइ जरा चहै तेहि दीप।
कंत न आव भिरिंग होइ का चन्दन तन लीप ॥[८]

इसमें पद्मावती को पतङ्ग मानना और मदन को दीपक मानने तक तो बात साधारण थी परन्तु रत्नसेन को भृंग मानना वास्तव में व्यंजना में चमत्कार ला देता है। भृङ्ग की यह विशेषता होती है कि वह दूसरे कीड़े को अपने ही रङ्ग का बना लेता है। पद्मावती कहती है कि यदि पति रूपी भृङ्ग आकर मुझे अपने रङ्ग में रङ्ग न लेगा, चन्दन का लेप बेकार है। रक्षा केवल दो प्रकार से हो सकती है। एक तो उस दीपक में जल-कर; और दूसरे रत्नसेन भृंग-पतंग के रङ्ग में अपने को सर्वथा लीन कर। तीसरा और कोई उपाय नहीं है।

यौवन को गम्भीर सागर मानकर पद्मावती फिर अपनी व्यथा धाय से कहती है—

परिउ अथाह, धाय, हौं जोबन उदधि गम्भीर।
तेहि चितवौं चारिहु दिसि जेा गहि लावै तीर ॥[९]

यौवन को अथाह सागर कहकर पद्मावती अपनी स्थिति की जो व्यंजना करती है वास्तव में वह मार्मिक हो उठी है।

धाय उसे समझाती है। वह भी दृष्टांत के रूप में प्रकृति से उपमेय रखती है—

जब लगि पीउ मिलै नहिं साधु पेम के पीर।
जैसे सीप सेवाति कइं तपै समुद्र मझै नीर ॥[१०]

यहां भी पद्मावती को सीप, प्रेम को समुद्र प्रियतम को स्वाति कहकर व्यंजना में प्राण भर गए हैं।

पद्मावती फिर प्रकृति के उपमानों के सहारे कहती है—

जोबन चांद उआ जस बिरह भएउ सँग राहु।
घटतहि घटत छीन भइ कहै न पारौं काहु ॥[११]

यौवन रूपी चांद के उदित होते ही विरह ने उसे ग्रसित कर लिया और चांद पल-पल होता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इन उपमानों का सहारा न लेती तो जैसे वह या तो व्यंजित ही नहीं कर पाती और यदि कर तो वह कविता न रहकर गद्य बन जाता।

पद्मावती के महादेव की मढ़ी में दर्शन कर एवं उसके साथियों की कैसी दशा है—

कोई परा भौंर होइ बास लीन्ह जनु चांप।
कोइ पतङ्ग भा दीपक, कोइ अधजर तन कांप।

यहां पर राजकुमारों को भ्रमर कहकर एवं के दर्शन को सुगन्ध कहकर कवि ने 'चांप' शब्द प्रयोग किया है वही इस छंद की पहली पंक्ति सजीवता प्रदान कर रहा है। साथ ही साथ राजकुमारों को पतङ्ग एवं पद्मवती के दर्शन दीपक कहकर कवि ने जो 'कोई अधजर तन कहा है वह सारी अनुभूति को मार्मिक बना देता है

नागमती भी अपनी व्यथा को प्रकृति के उपमानों सहारे ही व्यक्त करती है। रत्नसेन मे बिछुड़ने कारण उसे अपार दुख एवं संताप है। वह कहती

सारस जोरी कौन हरि मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पिंजर हौं भई बिरह काल मोहि दीन्ह

इसमें नागमती अपने और रत्नसेन को जोड़ी का उपमान दे रही वह वास्तव में उस को हमारे पास तक पहुँचाने में समर्थ हो सका है

७—वही पृष्ठ ७७ ९—वही पृष्ठ ८३ १०—वही पृष्ठ ८४ १२—वही पृष्ठ
८—वही पृष्ठ ८२ ११—वही १३—वही पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सारस का अति काव्यात्मक उपमान फिर देती है—

रकत ढुरा आंसू गिरा हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई पीउ समेटहि पङ्ख ॥[१४]

यहां फिर सारस का उपमान व्यथा को सजीव कर रहा है। यदि सारस के उपमान को यहां से निकाल दिया जाए तो व्यंजना की आधी शक्ति ही निकल जाएगी।

नागमती प्रकृति के इन उपमानों के प्रति पूर्ण सजग है। इसी कारण वह उपमान का सहारा लेकर रत्नसेन से विनय करती है—

घिरिनि परेवा होइ पिउ आउ बेगि परि टूटि।
नारि पराए हाथ है तोहि बिनु राख न छूटि ॥[१५]

यहां उपमान को उपमेय में आत्मसात करा देने का जो भाव है वही इस दोहे की मार्मिकता है।

नागमती अपना सुप्रसिद्ध[१६] दोहा भी प्रकृति के सहारे ही कहती है—

कमल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुँ बेलि जो पलुहै जो पिउ सींचै आइ ॥[१७]

इस छन्द में जैसे नागमती की व्यथा साकार होकर व्याप्त हो उठी है। इन उपमानों के छिपे छिपे उपमेयों को कवि ने साफ़ साफ़ नहीं दिया और काव्य की माधुरी एवं आनन्द से परिप्लावित पाठक का हृदय उन्हें सोचता भी नहीं! परन्तु सत्य तो यही है कि कमल, मानसर, जल सभी उपमान हैं और उनके सुनिश्चित उपमेय भी हैं।

पद्मावती भी रत्नसेन से समुद्र में बिछुड़ जाने पर नागमती के समान सारस जोड़ी के उपमान का ही आश्रय लेकर कहती है—

को मोहिं आगि देइ रचि होरी।
जियत न बिछुरै सारस जोरी ॥[१८]

पद्मावती की व्यथा का चित्रण जायसी भी प्रकृति के सहारे ही करते हैं—

गगन धरति जल बुड़ि गए बूड़त होइ निसांस।
पिउ पिउ चातक ज्यौं ररै मरै सेवाति पियास।[१९]

यहां पर प्रकृति के उपमान ही व्यंजना को सजीव बना रहे हैं।

नागमती-रत्नसेन भेंट होने पर कवि कहता है—

कंठ लाइ कै नारि मनाई।
जरी जो बेलि सींच पलुहाई ॥[२०]

कवि यहां पर फिर प्रकृति के उपमानों का सहारा लेता है। 'कंठ लाइ कै नारि मनाई' तो अति साधारण गद्यात्मक उक्ति है। 'जरी जो बेलि सींच पलुहाई' में पंक्ति की सारी काव्यात्मकता भरी हुई है।

नागमती रत्नसेन को उलाहना देते हुए समझाती भी है—

भंवर पुरुष अस रहै न राखा।
तजै दाख महुआ रस चाखा ॥[२१]

यहां पर नागमती अपने को दाख, पद्मावती को महुआ और रत्नसेन को भ्रमर कह रही है। वह प्रकृति से यदि ये उपमान न ले, तो उसके मन के भाव ही लगभग सर्वथा अव्यक्त रह जाएंगे। वह फिर कहती है—

तजि नागेसर फूल सोहावा।
कवँल बिसैंधहिं सौं मन लावा ॥[२२]

यहां पर वह अपने को नागेसर फूल और पद्मावती को कमल का फूल मानती है। और कमल में बिसाँध गंध का आरोपकर अपने को ऊंचा और रत्नसेन रूपी भ्रमर की रुचि को गलत बतला रही है।

पद्मावती भी अपने सारी रात अकेले रहने की कहानी प्रकृति के उपमानों के ही सहारे धर्म, वाचक शब्द एवं उपमेय सभी लुप्त कर कह रही है—

१४—वही १७६
१५—वही पृष्ठ १७७
१६—जनश्रुति है—कि एक साधु नवयुवक अमेठी में जाकर नागमती की विरह गाथा गाकर भीख मांगता और पेट पालता था। एक दिन अमेठी के राजा ने वह उसके मुंह से सुनी। उसमें उन्हें यह दोहा बहुत पसंद आया। इसीसे यह पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त किए हुए है।
१७—जा० ग्रं० पृष्ठ १७८
१८—वही पृष्ठ २०२
१९—वही पृष्ठ २०८
२०—वही पृष्ठ २१७
२१—वही
२२—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभर सरोवर हंस चल घटतहि गए बिछोई।
कँवल न प्रीतम परिहरै सूखि पंक बरु होइ ॥[२३]

यहां पर पद्मावती ने अपने पक्ष में जो उपमान रखे हैं वे वास्तव में उसकी उक्ति में शक्ति एवं मार्मिकता ला देते हैं। सरोवर सूखने पर हंस तो चले जाते हैं और कमल सरोवर छोड़कर कहीं नहीं जाता; भले ही सूख जाए। यहाँ पर प्रकृति पद्मावती को कितना अधिक सहारा दे रही है।

राघव चेतन भी प्रकृति के ही सहारे अपनी व्यथा कहता है—

कित करमुहैं नैन भए जीउ हरा जेहि बाट।
सरवर नीर बिछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट ॥[२४]

यहां पर राघव चेतन अपने को सरोवर कहकर पद्मावती के रूप को जल कह रहा है और उसीके माध्यम से अपनी भावनाएं व्यक्त कर रहा है। जल के बिछुड़ जाने पर सरोवर का हृदय (मिट्टी) फट जाता है (दरक जाता है) उसी प्रकार पद्मावती के सौन्दर्य रूपी जल के बिछुड़ जाने पर राघव का हृदय फट गया।

रत्नसेन अलाउद्दीन का सन्देश पढ़कर जल उठता है और प्रकृति के उपमानों का सहारा लेकर कहता है—

का तोहि जीउ मरावौं सकत आन के दोस।
जो नहिं बुझै समुद्र जल सो बुझाइ किस ओस ॥[२५]

अलाउद्दीन को मारना समुद्र जल की प्यास है और उसके दूत को मारना ओस चाटना है। राजा रत्नसेन कहते हैं कि मैं तुम्हें मारकर क्या पाऊंगा ?

पद्मावती एवं नागमती सती होते समय भी अपने मन की भावनाएं प्रकृति के सहारे ही व्यक्त करती हैं :

आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम जूड़ ॥[२६]

यहां पर सूर्य एवं चन्द्रमा सुख, खुशी, हर्ष के प्रतीक हैं। नागमती और पद्मावती के सुख-दुखों में जो भी खुशी एवं हर्ष था वह समाप्त हो गया। जीवन में प्रकाश का ही कोई साधन नहीं बचा इसी कारण 'आज नाचि जिउ दीजिय'। ऐसे जीवन से तो आग में जलकर जीवन समाप्त कर देना अधिक अच्छा है।[२७]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि के उपमानों के सहारे जायसी ने मानवी सुख-दुः व्यंजना की है। ये उपमान अपने प्रयोग के आधार दो प्रकार के हैं—

(१) जहां पर वे स्पष्टतः ही उपमान प्रतीत हो
(२) जहां पर वे उपमान जैसे नहीं लगते

दोनों के उदाहरण ऊपर के विवेचन में दिए हैं। पहले के उदाहरण तो स्वतः स्पष्ट हैं और दूसरे चरम उदाहरण अन्तिम छंद है—

आज सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम जूड़

इसमें यों तो नहीं प्रतीत होता कि सूर्य, चन्द्र, एवं रात किसी उपमेय के उपमान हैं। परन्तु ध्यान पर पता चलता है कि सूर्य एवं चन्द्र हर्ष तथा के उपमान हैं और दिन एवं रात सुख एवं दुख के

इस प्रकार जायसी ने अपनी कविता में सर्वत्र सुख दुखों का वर्णन प्रकृति के उपमानों के सहारे है। यदि मानवी हृदय की सुख दुखमयी भाव अपने सुस्पष्ट एवं खुले रूप में कोई पात्र व्यक्त करे अधिकतर या तो वे अत्यन्त ऊंचा काव्य बन जाएँगे या अत्यन्त नीचा। जायसी की पद्मावती एवं नाग ने सती होते समय जो वचन कहे थे[२९] वे अत्यन्त काव्य के उदाहरण हैं। लक्ष्मी ने रत्नसेन को और आकृष्ट करते समय जो कुछ कहा था[३०] वह काव्य का उदाहरण है। जायसी ने इस शैली को अपनाया है। वह जहां भी मानवी भावनाओं का करता है, अधिकतर प्रकृति से सहारा ले लिया करता

अन्य वस्तुओं एवं कार्यों के प्रकृत उपमान में कम मिलते हैं। गोरा बादल युद्ध में जायसी कहते

ओनई घटा चहूं दिसि आई।
छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥[३१]

२३—वही पृष्ठ २१८ २५—वही पृष्ठ २५०
२४—वही पृष्ठ २३२ २६—वही पृष्ठ ३३६

२७—इस प्रतीकवादी उपमानों का प्रयोग के हिंदी साहित्य में तो कम मिलता है परंतु हिंदी काव्य में उनकी संख्या अत्यधिक बढ़ गई है।
२८—जा० ग्रं० पृष्ठ ३३६ ३०—वही पृष्ठ
२९—वही पृष्ठ ३३९—४० ३१—वही पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां पर बाणों उपमान मेघ की बूंदें हैं और बाण छूटने का मेघ की झड़ी लगना।[३२]

इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में जायसी ने प्रकृति को उपमान के रूप में रखा है। प्रकृति के सहारे जायसी ने उपदेश भी दिए हैं। इसमें प्रकृति दो प्रकार प्रयुक्त हुई है:

(१) जहाँ प्रकृति स्वयं उपदेश दे रही है

(२) जहां प्रकृति स्वयं तो उपदेश नहीं दे रही वरन् दृष्टांत के रूप में प्रकृति का उपयोग कर जायसी या उनके पात्र उपदेश दे रहे हैं

सिंहल के पक्षी नाम-स्मरण का उपदेश व्यंजित कर रहे हैं:

'पीव-पीव' कर लाग पपीहा।[३३]

× × ×

तुही-तुही' कर गडुरी जीहा।[३४]

× × ×

जावत पंखी जगत के भरि बैठे अंब राउँ।
आपनि आपनि भाषा लैंहिं दई कर नाउँ॥[३५]

दृष्टांत के रूप में प्रकृति द्वारा जायसी उपदेश देते हैं:

मुहमद बाजी पेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के सङ्ग ज्यों होइ फुलाइल तेल॥[३६]

उपदेश देने के साथ ही साथ ये कवि प्रकृति द्वारा वातारण का भी निर्माण करते हैं। हमारा तात्पर्य यहां पर उद्दीपन से नहीं है। सिंहल द्वीप खंड में कवि ने जो सिंहल द्वीप की प्रकृति का वर्णन किया वह सिंहल के वैभव का वातावरण उत्पन्न करता है। तरह तरह के पेड़, तरह तरह के पक्षी वहां पर हैं। सारे पेड़ और पक्षी सुन्दर एवं मधुर फल दे रहे हैं और मधुर कलरव कर रहे हैं। वृक्षों की सघनता तो देखिए—

घन अमराउ लाग चहु पासा।
उठा भूमि हुत लाग आकासा॥
तरवर सबै मलय गिरि लाई।
भइ जग छांह रैनि होइ आई॥
मलय समीर सोहावनि छांहा।
जेठ जाड़ लागै तेहि मांहा॥[३७]

और

ओही छांह रैनि हुइ आवै।
हरियर सबै अकास दिखावै॥[३८]

इस कारण

पथिक जो पहुँचे सहि कै घामू।
दुख बिसरै सुख होई बिसरामू॥
जेइ वह पाई छांह अनूपा।
फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा॥[३९]

प्रकृति की शालीनता का भी एक चित्र देखिए—

फरे आंब अति सघन सुहाए।
औ जस फरे अधिक सिर नाए॥[४०]

फलों का स्वाद भी तो पठनीय है—

खिरनी पाकि खांड अस मीठी।[४१]

और स्वरूप

जामुन पाकि भँवर अस डीठी।[४२]

कहीं कहीं पर कवि ने रस और गन्ध दोनों ही दिए हैं:

पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू।
मधु जस मीठ पुहुप जस बासू॥[४३]

कवि पेड़ों की तालिका देता जा रहा है। वह इमली को भी नहीं भूला—

लंवग सुपारी जायफल सब फ फरे अनूप।
आस पास घन इमिली और घन तार खजूर॥[४४]

पक्षियों की भी एक सजीव सूची कवि पेश करता है

भोर होत बोलहिं चुहचुही।
बोलहिं पाण्डुक एकै 'तुही'॥
सारौं सुआ जो 'रह चह' करहीं।
कुरहिं परेवा औ करबरहीं॥

३२—दूसरे उदाहरण के लिए देखिए वही पृष्ठ ६३—
चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरूआ सब भेसु।
कोस बीस चरिहु दिसि जानौं फूला टेसु॥
३३—वही पृष्ठ १३ ३५—वही पृष्ठ १४
३४—वही १३ ३६—वही पृष्ठ २६
३७—वही पृष्ठ १३ ४१—वही
३८—वही ४२—वही
३९—वही ४३—वही
४०—वही ४४—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पीव पीव' कर लाग पपीहा।
'तुही तुही' कर गडुरी जीहा॥
'कुहू कुहू' करि कोइलि राखा।
औ सिंगराज बोल बहु भाखा॥
'दही कही' करि महरि पुकारा।
हारिल बिनवै आपन हारा॥
कुहुकहि मोर सोहावन लागा।
होइ कुराहर बोलहिं कागा॥[४५]

कवि अपनी तालिका की पूर्णता इस प्रकार बतलाता है—

जावत पंछी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउँ॥[४६]

कवि ने बारी का वर्णन भी दिया है—

आस पास बहु अमृत बारी।
फरीं अपूर होइ रखवारी॥
नारंग नींबू सुरंग जंभीरा।
औ बदाम बहु भेद अँजीरा॥[४७]

यहां पर सभी मेवे एवं फल मिलते हैं—

गलगल तुरंग सदाफर फरे।
नारंग अति राते रस भरे।
किसमिस सेव फरै नौ पाता।
दारिउ दाख देखि मन राता॥
लागि सुहाई हरफास्यौरी।
उनै रही केरा कै घौरी॥
फरे तूत कमरख औ न्यौजी।
राय करौंदा बेर चिरौंजी॥
संगतरा व छुहारा दीठे।
और खजह जा खाटे मीठे॥[४८]

कवि ने फुलवारी का भी वर्णन दिया है—

पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा।
बिरिछ बेधि चन्दन भइ बासा॥[४९]

इसके पश्चात कवि ने फूलों की एक लम्बी सू दी है।[५०]

ये सूचियां अधिक काव्यात्मक नहीं हैं। पण्डित चन्द्र शुक्ल का तो विचार है कि सूची मात्र देने काम तो कोई बहेलिया भी कर सकता है।[५१] जायसी और उस बहेलिए की सूची देने का बड़ा है। जायसी की दृष्टि एक कवि की दृष्टि है। बहेलि पास न तो वह काव्यात्मकता ही हो सकती है और न मिठास। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा जायसी ने सूचियां यद्यपि विशेष वैज्ञानिकता के साथ दी हैं तो भी पर्याप्त सरसता के साथ दी हैं।

ताल-तलाबों का वर्णन तो और भी अधिक काव्यात्मक है—

ताल तलाब बरनि नहिं जाहीं।
सूझै वार पार किछु नाहीं॥[५२]

कवि उत्प्रेक्षा भी देता है—

फूले कुमुद सेत उजियारे।
मानहुँ उए गगन महँ तारे॥[५३]

यह अच्छी तो है परन्तु विशेष सजीव नहीं।

५०—बहुत फूल फूली घन बेली।
केवड़ा चम्पा कुंद चमेली॥
सुरंग गुलाल कदम औ कूजा।
सुगंध बकौरी गंध्रब पूजा॥
जाही जूही बगुचन लावा।
पुहुप सुदरसन लाग सुहावा॥
नागेसर सदबरग नेवारी।
औ सिंगाहार फुलवारी॥
सौन जाद फूली सेवती।
रूप मंजरी और मालती॥
मौलसिरी बेइल और कासा।
सबै फूल फूले बहु बासा॥
वही

इसी प्रकार फूलों की सूचियां नागमती विवाद-खंड में भी मिलती है! देखिए वही २२०-२२१

४५—वही
४६—वही पृष्ठ १४
४७—वही पृष्ठ १५
४८—वही पृष्ठ १६
४९—वही
५१—चिंतामणि भाग २ (१९४५)
५२—जा० ग्रं० पृष्ठ १५
५३—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके आगे ही वर्णन में सजीवता भर-सी देता है—

उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी।
चमकहिं मच्छ बीजु की बानी ॥[५४]

परन्तु तालाब का सारा वर्णन ऐसा ही सजीव नहीं है। कवि फिर सूची देने लगता है—

चकई चकवा केलि कराहीं।
निसि के बिछोह दिनहिं मिलि जाहीं ॥
कुररहिं सारस करहिं हुलासा।
जीवन मरन सो एकहि पासा ॥
बोलहिं सोन ठेक बकलेदी।
रही अबोल मीन जल भेदी ॥[५५]

ये सारे वर्णन एकमात्र सिंहलदीप के ऐश्वर्य का वातावरण उत्पन्न करने के लिए हैं। क्योंकि कवि कह चुका है—

जबहिं दीप नियरावा जाई।
जनु कबिलास नियर भा आई ॥[५६]

मुसलमानों के स्वर्ग का ऐश्वर्य कवि की स्वप्निल पलकों में समाया हुआ था और वही स्वप्न कवि सिंहल दीप में सत्य बनाने का प्रयत्न कर रहा है। और वह इस प्रयत्न में सफल है।

कवि ने यह ऐश्वर्य का वातावरण सिंहल दीप में ही उत्पन्न किया है, चित्तौर में नहीं।[५७] शायद राज पूताने के मरुस्थल को कवि भूल नहीं गया होगा।

घटना वर्णन में प्रकृति का उपयोग पद्मावती एवं आखिरी कलाम दोनों में हुआ है। पद्मावती में सात समुद्र वर्णन एवं आखिरी कलाम में प्रलय के समय का पानी बरसना, जायसी के जन्म-काल का भूकम्प आदि इसके अन्तर्गत आवेंगे। ये वर्णन न तो किसी परिस्थिति विशेष का वातावरण बनाते हैं और न उद्दीपन का कार्य करते हैं। ये अपने आप में स्वतन्त्र वर्णन हैं जिनका सम्बन्ध कथानक से है।

जायसी ने सात समुद्र के वर्णन में बराबर कल्पना से ही काम लिया है। पता नहीं कवि ने स्वयं कभी समुद्र देखा था या नहीं। खार समुद्र का वर्णन तो अत्यन्त साधारण है। उसमें कवि यही कहता है कि उसकी लहरें ऊँची हैं।[५८] क्षीर समुद्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

खीर समुद्र का बरनौं नीरू।
सेत सरूप पियत जस खीरू ।[५९]

कवि कल्पना के नेत्रों से देखकर कहता है—

उलथहिं मानिक, मोती, हीरा।
दरब देखि मन होइ न धीरा ॥[६०]

वास्तव में यह अत्यन्त मधुर चित्र है,

दधि समुद्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

दधि समुद्र देखत तस दाधा।
पेम क लुबुध दगध पै साधा ॥[६१]

इस समुद्र का कोई भी रूप-चित्र कवि ने नहीं दिया।

उदधि समुद्र का वर्णन कवि ने इस दधि समुद्र के पश्चात किया है। उदधि समुद्र के विषय में जायसी का विचार है कि यह कोई ऐसा समुद्र है जिसका पानी निरन्तर गर्मी के कारण खौलता रहता है। कवि कहता है—

आए उदधि समुद्र अपारा।
धरती समुद जरै तेहि झारा ॥[६२]

कवि इस समुद्र की आग के विषय में यह भी कहता है—

आगि जो उपनी ओहि समुन्दा।
लंका जरी ओहि एक बुन्दा ॥[६३]

५४—वही
५५—वही
५६—वही पृष्ठ १२
५७—नागमती के बारहमासे में कवि यह बात भूल गया है इसी कारण 'शायद' शब्द का प्रयोग किया गया है। हो सकता है कि कवि रत्नसेन को इतना महत्व न देना चाहता हो जितना कि वह पद्मवती के सिंहलदीप को दे रहा है।

५८—उठै लहर जनु ठाढ़ पहारा।
चढ़ै सरग और परै पतारा ॥
जा० ग्रं० पृष्ठ ७२

५९—वही
६०—वही
६१—वही
६२—वही पृष्ठ ७३
६३—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं कवि को यह ख़बर कहाँ से लगी। रामायण की कहानियों के जितने भी स्वरूप प्रचलित हैं[६४] उनमें से तो किसी में यह कथा नहीं मिलती।

कवि ने इसके अतिरिक्त और कोई भी वर्णन इस समुद्र का नहीं दिया।

इसके पश्चात सुरा समुद का वर्णन है—

सुरा समुद्र पुनि राजा आवा।
महुआ मद छाता देखरावा ॥[६५]

इस सागर की एक विशेषता भी कवि ने बतलाई है—

जो तेहि पियै सो भांवरि लेई।
सीस फिरै पथ पैगु न देई ॥[६६]

सौभाग्य की बात है कि रत्नसेन ने इसका एक बूँद भी जल नहीं पिया और वह इस सागर को पारकर किलकिला समुद्र में पहुँच गया। किलकिला सागर की विशेषता उसकी ऊँची ऊँची लहरें हैं—

पुनि किलकिला समुद्र महँ आए।
गा धीरज देखत डर खाए ॥[६७]

डर का कारण भी कवि बतलाता है—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा।
जनु अकास टूटै चहुं ओरा ॥[६८]

कवि चित्र को और स्पष्ट करता है—

उठै लहर परबत कै नाईं।
फिरि आवै जोजन सौ ताईं ॥[६९]

रंगों में कवि और गहराई देता है—

धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा।
सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा ॥[७०]

चित्र का एक दूसरा रंग भी कवि दिखलाता है—

नीर होइ तर ऊपर सोई।
माथे रंक समुद जस होई ॥[७१]

चित्र का एक तीसरा रंग देखिए—

फिरत समुद्र जोजन सौ ताका।
जैसे भँवै कोहांर क चाका ॥[७२]

समुद्र की भयंकरता के विषय में कवि एक पहलू बतलाता है—

गै औसान सबन्ह कर देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै रहा नैन अस काढ़ि ॥[७३]

वास्तव में कवि की समुद्र की कल्पना इसी वर्णन में साकार-सी हो सकी है इसी कारण उसने वर्णन पर्याप्त विस्तार में किया है।

सातवां सागर मानसर है। किलकिला की रता की पृष्ठभूमि पर यह सौन्दर्यपूर्ण सागर चित्रित किया है—

देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइनि उर छावा ॥[७४]

कवि इस सागर का विस्तृत वर्णन भी देता है—

कँवल बिगस तस बिहँसी देहीं।
भौंर दसन होइ कै रस लेहीं ॥
हँसहिं हंस और करहिं करीरा।
चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा ॥[७५]

× × ×

भौंर जो मनसा मानसर लीन्ह कँवल रस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका भूर काठ तस खाइ।

संक्षेप में सातों सागरों की यही रूप-रेखा है। सात सागरों में किलकिला एवं मानसर नामक पौराणिक नहीं हैं। सम्भव है मध्ययुग में ये दो नाम जन-साधारण में सात समुद्रों के नामों में प्रचलित हो

समुद्रों के इस वर्णन में कवि समुद्रों के नामों गया है। उसने कभी भी गम्भीरतापूर्वक यह नहीं कि समुद्र कैसा होता है और ये सात समुद्र कैसे देखने की तो सर्वथा बात ही दूसरी है। मानसर एक तालाब भी कवि ने सिंहल दीप में बतलाया जिसमें रानी पद्मावती का स्नान करना कवि वर्णित है।

६४—राम कथा के एक स्वरूप का चित्र तुलसी में है, एक वाल्मीकि में, एक बौद्ध जातकों में। इसी प्रकार राम कथा के कई स्वरूप प्रचलित हैं।

६५—जा० ग्रं० पृष्ठ ७३
६६—वही
६७—वही पृष्ठ ७४
६८—वही
६९—वही
७०—वही
७१—वही
७२—वही
७३—वही
७४—वही पृष्ठ ७६
७५—वही
७६—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रों के वर्णन में कोई भी चमत्कार नहीं है। न तो स्वभावोक्ति ही मिलती है और न अतिशयोक्ति। किलकिला के वर्णन में अवश्य चमत्कार है। परन्तु वह चमत्कार उन्हींको प्रिय लगेगा जो सादगी को पसन्द नहीं करते और तड़क भड़क पसन्द करते हैं।

आखिरी कलाम में पानी बरसना आदि कथानक की ही दो एक प्रारम्भिक घटनाएँ है। भयंकर प्रकृति का प्रलय के समय क्या स्वरूप होगा इसकी रूप-रेखा कवि ने दी है—

पुनि मैकाइल आयसु पाए।
उन बहु भांति मेघ बरसाए॥
पहिले लागे परै अँगारा।
धरती सरग होइ उजियारा॥
लागी सबै पिरथिवी जरै।
पाछे लागे पाथर परै॥[७७]

पत्थरों की रूप-रेखा भी वह यहीं पर देता है—

सौ सौ मन की एक एक सिला।
चलैं पिण्ड घुरि आवैं मिला॥
बजर गोट तस घूटैं भारी।
टूटैं रूख बिरुख सब झारी॥
परत धमाकि धरति सब हालै।
उधिरत उठै सरग लौं सालै॥[७८]

और यह—

अधाधार बरसै बहु भांती।
लाग रहै चालिस दिन राती॥[७९]

तब—

मकाईल पुनि कहब बुलाई।
बरसहु मेघ पिरथिवीं जाई।[८०]

मेघों का चित्र भी कवि खींचता है—

उनै मेघ भरि उठिहैं पानी।
गरजि गरजि बरसहिं अतवानी॥[८१]

और यह—

झरी लागि चालिस दिन राती।
घेरी न निबुसै एकहु भांती॥[८२]

परिणाम स्वरूप—

बूड़हिं परबत मेरु पहारा।
जल हुलिं उमड़ि चलै असरारा॥
जहं लगि मगर माछ जित होई।
लेइ बहार जाइहि भुइं धोई॥[८३]

फिर—

पुनि घटि नीर भंडारै आई।
जनौं न बरसा तैस सुखाई॥[८४]

परम शक्ति का कोप यहीं पर समाप्त नहीं हो जावेगा।

पुनि इसराफ़ीलहि फ़रमाए।
फूंकै सब संसार उड़ाए॥[८५]

परिणाम स्वरूप—

दै मुख सूर भरै जो सांसा।
डोलै धरती लपत अकासा॥
भुवन चौदहों गिरि मनु डोला।
जानौ घालि झुलाव हिंडोला॥[८६]

कवि इस वर्णन में एक क्रम बाँधता है—

पहिले एक फूंक जो आई।
ऊँच नीच एक सम होइ जाई॥
नदी नार सब जैहैं पाटी।
अस होइ मिले ज्यों ठाढ़ी माटी॥[८७]

फिर—

दूसर फूंकि जो मेरु उड़ैहैं।
परबत समुद एक होइ जैहैं॥[८८]

फिर—

तिसरे बजर महाउब अस भुंइ लेब भहाइ।[८९]

परिणाम स्वरूप—

पूरब पछिउं मुहम्मद एक रूप होइ जाइ॥[९०]

प्रकृति इतने प्रलय के पश्चात शान्त हो जावेगी।

जायसी का यह वर्णन भयंकर प्रकृति का है। पद्मावती का किलकिला समुद्र तो एकदम काल्पनिक वस्तु है परन्तु यह वर्णन कुरान के आधार पर है। फिर

७७—वही पृष्ठ ३९०
७८—वही
७९—वही
८०—वही
८१—वही
८२—वही पृष्ठ ३९१
८३—वही
८४—वही
८५—वही
८६—वही
८७—वही
८८—वही
८९—वही
९०—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह वर्णन वास्तविक नहीं वरन् काल्पनिक है, भले ही जायसी की कल्पना न हो। जायसी ने अपने जीवन में भयंकर प्रकृति के दर्शन एक बार किए थे। वे स्वयं उसका वर्णन भी करते हैं:—[९१]

भा औतार मोर नौ सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥
आवत उधतचार विधि ठाना।
भा भूकंप जगत अकुलाना॥

इस भूकंप के वेग के विषय में वे कहते हैं—

धरती दीन्ह चक्र विधि भांई।
फिरे अकास रहँट की नांई॥
गिरि पहार मेदिन तस हाला।
जस चाला चलनी भरि चाला॥[९२]

कविवर जायसी कहते हैं—

मिरित लोक ज्यों रचा हिंडोला।
सरग पतार पवन खट डोला॥[९३]

वे आगे वर्णन करते हैं—

गिरि पहार परबत ढहि गए।
सात समुद्र कीच मिलि भए॥
धरती फाट छात भहरानी।
पुनि भइ मया जो सिस्टि दिठानी॥[९४]

उद्धत प्रकृति भूकंप के पश्चात शांत नहीं हो गई। सूर्य-ग्रहण भी पड़ा था—

सो (सूरज) अस बपुरै गहनै लीन्हा।
औ धरि बांधि चंडालै दीन्हा॥
गा अलोप होइ, भा अंधियारा।
दीखे दिनहि सरग महं तारा॥[९५]

यह सूर्य-ग्रहण सबेरे के समय ही पड़ा था—

उवतै झांपि लीन्ह चुचचापै।[९६]

परिणाम स्वरूप—

लाग सरब जिउ थर थर कांपै।[९७]

और—

जिउ कहं परै ज्ञान सब भूठै।
तब होइ मोख गहन जौ छूटै॥[९८]

इन दो उद्धताचारों की तो बचपन की अनुभूति जायसी को थी। परन्तु प्रलय की आग बरसना, बरसना, पानी बरसना और तीव्र तुरही सुनने की अनुभूति जायसी को नहीं थी। वह सारा वर्णन उसने कल्पना के सहारे एवं कुरान पर अपने को आधारित करते हुए लिखा गया है।

उद्धत प्रकृति के इन वर्णनों में जायसी असफल हुए हैं यद्यपि यह सही है कि वर्णनों में किसी प्रकार की भद्दगता के दर्शन हमें नहीं होते। अनुभूति विहीनता के कारण ये वर्णन बहुत ही छोटे छोटे हैं। परन्तु इनमें कुछ मार्मिकता तो इन वर्णनों में भी है।

मनुष्य के सुख-दुख वर्णन करने के लिए जायसी ने प्रकृति का जो उपयोग किया है वह दो प्रकार का है।

(१) जहां पर प्रकृति को कवि ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत रखा है और वही काम उससे लिया है।

(२) जहां पर प्रकृति पर मानव सुख दुख का आरोप दिखलाकर एक ओर तो प्रकृति को संवेदनशील दिखलाया है और दूसरी ओर मनुष्य की भावनाओं का वर्णन किया है।

पहले प्रकार के वर्णन में नागमती का बारहमासा[९९] बसन्त खंड[१००] और षट्ऋतु वर्णन खण्ड[१०१] हैं।

यों तो नागमती को रत्नसेन के चले जाने का दुख है ही परन्तु ऋतुएं एवं मास उसे विशेष रूप से दुखी करते रहते हैं। आषाढ़ के धूम्र, श्याम एवं पीत के मेघ,[१०२] उनकी श्वेत ध्वजा की भांति तथा बग-पंक्ति[१०३] बिजली की चमक[१०४] पानी की बूंदें[१०५] सभी नागमती के विरह को तीव्र कर रही हैं।

९१—वही पृष्ठ ३८४
९२—वही
९३—वही
९४—वही पृष्ठ ३८५
९५—वही पृष्ठ ३८६
९६—वही
९७—वही
९८—वही
९९—वही पृष्ठ १९
१००—वही पृष्ठ ९१—९७
१०१—वही पृष्ठ १६७—१७१
१०२—धूम साम धौरे घन धाए। वही पृष्ठ
१०३—सेत धजा बग पंक्ति दिखाए। वही
१०४—खडग बीजु चमकै चहुँ ओरा। वही
१०५—बुंद बान बरसहिं घन घोरा। वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी,[१०६] खेतों की भरनी, [१०७] सखियोंके हिंडोले[१०८] हरी-हरी भूमि,[१०९] सखियों के कुसुम्भी रंग के वस्त्र[११०] ये भी नागमती के विरह को बढ़ानेवाली वस्तुएँ हैं। भादोंकी अंधेरी रातें,[१११] बिजलीकी चमक,[११२] मेघों की गरज,[११३] जल,थल में अपार पानी का भरना[११४] और धरती और गगन का एक रंग हो जाना[११५] सभी रत्नसेन की याद बढ़ाती हैं। क्वार में पानी का घटना,[११६] चातकों के मुख में स्वाति की बूँदें गिरना,[११७] सारस, हंस और खंजनोंकी क्रीड़ा[११८] नागमती को अधिक विरह संतप्त करती हैं। कार्तिक में शरद-चांदनी[११९] तथा सखियों के दिवाली के खेल[१२०] नागमती को जलाए सा देते हैं। अगहन में दिन घटना[१२१] और रात का बढ़ना[१२२] सखियों का सुरगों से रंजित चीर पहनना[१२३] नागमती की वेदना को बढ़ाते हैं। पूस में बदन को थर थर कँपा देनेवाला जाड़ा, [१२४] सूर्य का दक्षिणायण होना [१२५] नागमती के प्राणों को कँपाए देता है। माघ में पड़ने वाला पाला,[१] महावट[२] नागमती के तन और मन दोनों को तिनके के समान ही अपनी शीतलता से कँपा रहे हैं।[३]

फागुन में तो हवा के झकोरों के कारण चौगुना जाड़ा पड़ता है।[४] तन पीले पत्ते के समान विरह से झकझोरा जा रहा है।[५] वृक्षों का फूलना[६] होली की फाग[७] और चांचरी[८] सभी नागमती की शत्रु बन गई हैं। चैत तो बसन्त का ही महीना है।[९] सखियों की क्रीड़ाएं[१०] मजीठ और लाल लाल टेसू[११] आम की मंजरियां[१२] सभी नागमती के लिए दुखदायी हैं। बैसाख मधुमास की तो कहानी ही दूसरी है। सूर्य का उत्तरायण होना[१३] नागमती के दुखों को बराबर बढ़ाता ही जाता है। जेठ की लू,[१४] बवंडर[१५] और आकाश से अंगारे बरसना[१६] सभी नागमती के लिए असह्य वस्तुएं हैं।

षट्-ऋतु वर्णन पद्मावती के सुख एवं खुशी को चित्रित करता है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के

१०६—सावन बरस मेह अति पानी। वही
१०७—भरनि परी हौं विरह झुरानी॥ वही
१०८—सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। वही पृष्ट १७४
१०९—हरियर भूमि—वही
११०—कुसुम्भी चोला—वही
१११—भा भादौं दूभर अति भारी।
कैसे भरौं रैनि अंधियारी॥ वही
११२—चमक बिज्जु—वही
११३—घन गरजि तरासा—वही
११४—जल थल भरे अपूर सब—वही
११५—धरति गगन मिलि एक। वही
११६—लाग कुवार नीर जग घटा। वही
११७—स्वाति बूंद चातक मुख परे। वही
११८—सरवरि सँवरि हंसि चलि आए। वही पृष्ठ १७५
सारस कुरलहिं—वही; खँजन दिखाए—वही
११९—कातिक सरद चंद उजियारी। वही
१२०—सखि झूमक गावैं अंग मोरी। वही
१२१—अगहन दिवस घटा—वही
१२२—निसि बाढ़ी—वही
१२३—घर घर चीर रचे सब काहू वही
१२४—पूस जाड़ थर थर तन कांपा। वही पृष्ठ १७६
१२५—सूरुज जाइ लँक दिसि चांपा। वही

१—लागेउ माघ परै अब पाला। वही
२—नैन चुएं जस महवट नीरु—वही
३—तुम बिनु कांपै धनि हिया तन तिनउर भा डोल
—वही
४—फागुन पवन झकोरा बहा।
चौगुन सीउ जाइ नहीं सहा। वही पृष्ठ १७
५—तन जस पियर पात भा मोरा।
तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥ वही।
६—भई फूलंत फूलि फरि साखा। वही
७—फागु करहिं सब—वही
८—चांचरि जोरी—वही
९—चैत बसंता—वही
१०—होइ धमारी—वही
११—भौंजि मजीठ। वही, टेसु वन राता। वही
१२—बौरे आम फरै अब लागे। वही
१३—सूरुज जरत हिवंचल ताका। वही
१४—जेठ जरै जग चलै लुवारू। वही पृष्ठ १७८
१५—उठहिं बवन्डर—वही
१६—परहिं अँगार—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात का यह षट्-ऋतु वर्णन है। नवल बसन्त पद्मावती के लिए तो अत्यन्त सुखदायी वस्तु है।[१४२] भ्रमर की पुष्पों के साथ क्रीड़ा,[१४३] फाग खेलना[१४४] पद्मावती के सुखों को बढ़ानेवाली वस्तुएं हैं। जेठ असाढ़ के आम[१४५] भी उसे सुखदायी हैं। सावन में तो गगन सुहावना है,[१४६] भूमि सुहावनी है;[१४७] कोकिल बोलती है,[१४८] बग-पंक्ति आकाश में उड़ती है,[१४९] बिजली चमकती है[१५०] बरसते हुए पानी की बूंदें उसके प्रकाश में सोने की-सी बन जाती हैं,[१५१] भूमि हरी है,[१५२] पद्मावती स्वयं लाल रंग के वस्त्र पहिनकर रत्नसेन के साथ हिंडोले में झूलती है।[१५३] सभी बातें उसके हर्ष को बढ़ा रही हैं। शरद ऋतु की चांदनी,[१५४] खंजन[१५५] भी पद्मावती को सुखदायी हैं। हेमंत ऋतु की शीतलता तो प्रेयसि और प्रियतम के लिए सोहागे के समान है।[१५६] शिशिर की शीतलता भी पद्मावती को रत्नसेन के घर पर ही होने के कारण नहीं लग सकती।[१५७]

१४२—वसंत नवल ऋतु—वही पृष्ठ १६८
१४३—भौंर पुहुप सँग करहिं धमारी। वही
१४४—होइ फाग भलि चांचरि जोरी। वही
१४५—आम सदाफर डाल—वही पृष्ठ १६९
१४६—गगन सुहावन—वही
१४७—भूमि सुहाई—वही
१४८—कोकिल बैन—वही
१४९—पांति बग छूटी—वही
१५०—चमक बीजु—वही
१५१—बरसै जल सोना—वही
१५२—हरियर भूमि—वही
१५३—धनि पिउ सङ्ग हिंडोला—वही
१५४—आइ सरद ऋतु अधिक पियारी।
आसिन कातिक ऋतु उजियारी॥ वही
१५५—देह खँजन दिखावा—वही पृष्ठ १७०
१५६—ऋतु हेमँत सँग पियउ पियाला।
अगहन पूस सीत सुख काला॥
धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा।
दुहुन्ह अंग एकै मिलि लागा॥ वही
१५७—आइ सिसिर ऋतु तहां न सीऊ।
जहां माघ फागुन घर पीऊ॥ वही

इस प्रकार जायसी ने उद्दीपन के रूप में प्रकृति के दो स्वरूप हमारे सामने रखे हैं—

(१) दुखदायी
(२) सुखदायी

नागमती का बारहमासा पहले के अंतर्गत और पद्मावती का षट्-ऋतु वर्णन दूसरे के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। बसन्त वर्णन आदि भी उद्दीपन के अन्तर्गत ही रखे जाएंगे।

इन स्थलों के अन्तर्गत किए गए प्रकृति वर्णन में कवि ने अपना मुख्य अभिप्रेय नहीं बनाया। बारहमासा में बारहमासों का नाम और उनकी साधारण विशेषता बतलाकर अपने ऋतु वर्णन के कर्त्तव्य की इति समझ ली है और नागमती की भावनाओं पर दृष्टि देने लगा है। षट्-ऋतु वर्णन में तो कवि ऋतु वर्णन की ओर से और भी लापरवाह हो गया है। यहां तो वर्णन और भी कमज़ोर है। कवि ने यही दिखलाया कि उस ऋतु का क्या प्रभाव पद्मावती के जीवन पर पड़ता है। परन्तु ऋतु वर्णन कमज़ोर होने के कारण प्रभाव वर्णन भी कमज़ोर हो गया है। बारहमासा ऋतु वर्णन इस वर्णन से अच्छा है इस कारण नागमती का बारहमासा अच्छा हो गया है। इस्लाम धर्म माननेवाले, कुरान में विश्वास रखनेवाले सुख को चित्रित नहीं कर सकते जैसा कि दुख को। संसार की क्षण-भंगुरता एवं संसार की उदासीनता ही उन्हें अधिक दिखलाई पड़ती है। संसार के सौन्दर्य की ओर से तो उनकी आंखें मुँदी ही रहती हैं।

बारहमासे के वर्णन में कवि काल को तो नहीं परन्तु देश को अवश्य ही भूल गया है। कहां तो पूताने के मरुस्थल में बरसनेवाली दो चार बूंदें कहां कवि की उक्ति—

जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी।
मोर नांव खेवक बिनु थाकी॥[१५८]
× × ×
सावन बरस मेह अति पानी।
भरनि परी हौं बिरह झुरानी॥[१५९]
× × ×

१५८—जा० ग्रं० पृष्ठ १७४
१५९—वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनि सूखै भरे भादौं माहां ।[१६०]

× × ×

थल जलभरे अपूर सब धरति गगन मिलि एक ।[१६१]

कवि बिलकुल ही भूल गया कि राजपूताने में स्थित चित्तौर में उसकी नागमती है, गंगा जमुना के दोआब के निकट जायस में या आसाम के चेरापूँजी के पास नहीं। राजपूताना पानी न बरसने के कारण मरुस्थल हो रहा है और अपनी इस विशेषता के कारण संसार में मशहूर है। फिर भी परम्परा की झोंक में कवि को यह याद नहीं रहा और वह उपर्युक्त वर्णन करता गया।

दूसरी प्रकार की प्रकृति का वर्णन मानसरोदक खण्ड में मिलता है। कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य से अभिभूत मानसरोदक को दिखलाया है—

सरवर रूप विमोहा गहिए हिलोरे लेइ ।[१६२]

उसके मन में भावना भी उठती है—

पांव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरें लेइ ॥[१६३]

पद्मावती के केश बिखरने पर संसार में जो अन्धकार हो गया है उसका चित्र भी कवि ने प्रकृति पर इसका प्रभाव दिखलाकर ही खींचा है—

चकई बिछुरि पुकारै कहां मिलौं हो नाहँ ।
एक चांद निसि सरग महँ दिन दूसर जल माहँ ॥[१६४]

ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन के लिए भी कवि ने प्रकृति का सहारा लिया है—

कीन्हेसि अगर कस्तुरी बेना ।
कीन्हेसि भीमसेन औ चीना ॥
कीन्हेसि नाग जो मुख विष बसा ।
कीन्हेसि मन्त्र हरै जेहि डसा ॥[१६५]

कवि आगे कहता है—

कीन्हेसि मधु आवै लै माखी ।
कीन्हेसि भौंर पंखि औ पाँखी ॥[१६६]

कवि का यह प्रकृति वर्णन बहुत ही कमज़ोर है जिसे प्रकृति वर्णन यदि न कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा। वास्तव में यहां पर कवि ने प्राकृतिक वस्तुओं का एक वर्गीकरण तैयार किया है और उसमें नाम गिना दिए हैं। न तो कोई लालित्य है और न माधुर्य। सारा प्रकृति वर्णन एक-दो-तीन-चार गिनती गिनना प्रतीत होता है। ईश्वर का ऐश्वर्य दिखलाने के लिए भी प्रकृति का एक सुन्दर मनोरम चित्र उपस्थित किया जा सकता था, और उसमें काव्यात्मकता लाई जा सकती थी। परंतु कवि का ध्यान ही इस ओर नहीं गया। जायसी ग्रंथावली का पाठक जानता है कि यह कवि की शक्ति के बाहर नहीं था परन्तु जहां लापरवाही हो वहां पर शक्ति की सीमा होने और न होने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता। इसे हम कवि की भूल कहेंगे।

संक्षेप में कवि के प्रकृति वर्णन की यही रूप रेखा है। जायसी का सारा प्रकृति वर्णन प्रकृति की स्वाभाविक सुन्दरता का चित्र नहीं खींचता वरन् प्रकृति के कुछ स्थल चुनकर उनके मनमाने एवं मन की कृत्रिमता को भानेवाले स्थलों का चित्र खींचता है। 'हरियर सबै अकास दिखावै'[१६७] कवि की इस वृत्ति का स्पष्ट परिचय देता है। विरह संतप्त नागमती के लिए राजस्थान का सूखे सावनवाला उजाड़ रेगिस्तान भी उद्दीपन ही करता है। फिर भी देश को भूलकर परम्परा में फंसना इसी वृत्ति का परिचायक है।

ऊपर दिखाया गया है कि आलम्बन के रूप में भी प्रकृति वर्णन जायसी ने किया है। सात समुद्र वर्णन एवं प्रलय वर्णन आलम्बन के अन्तर्गत ही आएंगे। यह सच है कि ये प्रकृति वर्णन एकदम स्वतन्त्र नहीं हैं। परन्तु यह सोचना ही ग़लत है कि किसी प्रबन्ध काव्य में कोई वस्तु अपने आप में एकदम स्वतन्त्र होकर स्थान पा सकती है। इसी कारण जायसी की पद्मावती और आखिरी कलाम में प्रकृति वर्णन अपने आपमें स्वतन्त्र नहीं। हां, यह तो मानना ही पड़ेगा कि ये निर्दिष्ट स्थल किसी भी प्रकार उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते। रसशास्त्री इन्हें आलम्बन ही कहेंगे। मध्ययुग के हिन्दी-साहित्य के लिए जायसी की यह महत्वपूर्ण देन है।

१६०—वही
१६१—वही
१६२—वही पृष्ठ २८
१६३—वही
१६४—वही पृष्ठ २६
१६५—वही पृष्ठ २
१६६—वही
१६७—वही पृष्ठ १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मि० जिन्हा का पाकिस्तान और कम्यूनिस्ट

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

(१)

अब से एक वर्ष और सात महीने पहले मैंने 'विश्ववाणी' के पाठकों के सम्मुख हिन्दोस्तान के प्रान्तों के पुनर्विभाजन की एक स्कीम पेश की थी। तब से अब तक देश में इस प्रश्न के सम्बन्ध में अनेक महत्व-पूर्ण घटनाएं हो चुकी हैं। पाकिस्तान के सम्बन्ध में भी राजगोपालाचार्य का फारमूला, महात्मा गांधी और मि० जिन्हा की असफल बातचीत, पाकिस्तान के सम्बन्ध में मि० जिन्हा की व्याख्या, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का पाकिस्तान के सम्बन्ध में प्रस्ताव आदि उनमें विशेष महत्वपूर्ण हैं।

यह स्पष्ट है कि मुसलमानों में पाकिस्तान की मांग अधिकाधिक लोकप्रिय बनती चली गई है। मुस्लिम जनता का एक काफ़ी बड़ा बहुमत, पाकिस्तान की मांग का पूरा अभिप्राय समझे बिना भी, पाकिस्तान की मांग का हिमायती ज़रूर बन गया है। मि० जिन्हा ने पहले पाकिस्तान की मांग को जान बूझकर अस्पष्ट और लचकीला रक्खा था अब, परिस्थितियों के प्रभाव से उनका वह चक्रव्यूह टूट जाता है। जो कुछ वह मांगते हैं, वह अब स्पष्ट है। इस लेख में हमें पहले उनकी मांग की जांच-पड़ताल करनी है।

मि० जिन्हा के पाकिस्तान का रूप इस प्रकार है—वर्तमान चुनावों के समाप्त होते ही इस बात की घोषणा हो जानी चाहिए कि अंग्रेज़ी भारत के निम्नलिखित छः प्रान्तों के स्वाधीन संघ का नाम पाकिस्तान है। सीमा प्रान्त, पंजाब, बङ्गाल, सिन्ध, बलोचिस्तान आसाम। इन छहों प्रान्तों की वर्तमान सीमाएं स्तान में सम्मिलित कर ली जायंगी। ये सब प्रान्त स्तान में शामिल होना चाहते हैं या नहीं, इसके में किसी तरह की कोई पूछ-ताछ नहीं की जायगी। छः प्रान्तों से अतिरिक्त शेष अंग्रेज़ी भारत हिन्दोस्तान रहेगा। पाकिस्तान और हिन्दोस्तान पृथक पृथक कौन्स्टीच्यूएण्ट असेम्बलियां बुलाई जो उनका शासन-विधान तैयार करेंगी। पाकि और हिन्दोस्तान इन दोनों में परस्पर दोस्ती करने और आबादियां बदलने का भी प्रयत्न जायगा और ज़रूरत अनुभव हुई, तो दोनों सीमाओं के सम्बन्ध में भी कुछ परिवर्तन कि सकेगा। परन्तु इस परिवर्तन में ही लेन-देन की बरती जायगी, सिर्फ़ देने ही देने से काम न चले अपनी इस मांग को मि० जिन्हा न सिर्फ़ मुस्लिम अपितु सम्पूर्ण मुसलिम भारत (न सिर्फ़ पाकिस्तान हिन्दोस्तान के मुसलमानों की भी—जिन्हें पाकि के बनने या न बनने से वास्तव में कुछ भी सरोकार की सम्मिलित मांग बताते हैं। अब हमें देखना है कि मि० जिन्हा की यह मांग कहां तक युक्तियुक्त

पाकिस्तान में इन प्रान्तों में मुसलमानों और धर्मों के निवासियों की संख्या इस प्रकार है—

	क्षेत्रफल	कुल आबादी	मुसल्मान	अन्य
(१) बङ्गाल	७७,४४२ वर्गमील	६,०३,०७,५२५	३,३०,०५,४३४	२,७३,०१,०९१
(२) पंजाब	९९,०८९ ,,	२,८४,१८,८१६	१,६५,१७,२४२	१,१९,१०,५४७
(३) आसाम	५४,९५१ ,,	१,०२,०४,७३३	३४,४२,४७९	६७,६२,२५१
(४) सिन्ध	४८,१३६ ,,	४५,३५,००८	३२,०८,३२५	१३,२६,९८३
(५) सीमा प्रान्त	१४,२६३ ,,	३०,३८,०६७	२७,८८,७९७	२,४९,२७०
(६) बलोचिस्तान	५४,४५६ ,,	५,०१,६३१	४,३८,९३०	६२,९०१
योग	३,४८,३३७ वर्गमील	१०,७०,०४,७८३	५,९४,०१,२०७	४,७६,०,२७४
सम्पूर्ण भारत (रियासतों के अलावा)	८,६५,४४६ वर्ग मील	२९,५८,०८,७२२	७,९३,९८,५०५	२१,६४,१०,१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त संख्याओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित कारणों से मि० जिन्हा की उपर्युक्त मांग एकदम अयुक्ति-युक्त और अन्याय पूर्ण है—

(१) आसाम किसी भी दृष्टि से मुस्लिम बहुमत वाला प्रान्त नहीं। मुसलमानों की संख्या वहां केवल ३३.३७ प्रतिशत है। ६६.२७ प्रतिशत संख्या वहां अन्य धर्मावलम्बियों की है। न जाने गणित के किस सिद्धान्त से मि० जिन्हा उसे मुस्लिम बहुमतवाला प्रान्त गिनते हैं। आसाम में हिन्दू और मुसलमानों की संख्या इस प्रकार है—

	संख्या	पारस्परिक अनुपात
हिन्दू	४२,१३,२२३ = ५५.०३	प्रतिशत
मुसलमान	३४,४२,४७९ = ४४.९३	,,

हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक अनुपात में इतना भेद रहते हुए भी मि० जिन्हा किस तरह आसाम को मुस्लिम बहुमतवाला प्रान्त गिनते हैं!

(२) वर्तमान भारत (रियासतों को छोड़कर) में मुसलमानों की संख्या २५ प्रतिशत है। मि० जिन्हा का कहना है कि ये २५ प्रतिशत मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं और वे सदा के लिए हिन्दुओं की गुलामी नहीं कर सकते। इसी कारण उन्होंने पाकिस्तान का नारा शुरू किया। इस पाकिस्तान की कुल आबादी १०,७०,०४,७८३ है, जिसमें ५,९४,०१,२०७ मुसलमान हैं, और ४,७६,०३,३७६ अन्य। इस तरह पाकिस्तान में मुसलमानों और अन्यों का अनुपात ५५.५१ और ४४.४९ है। अब प्रश्न यह है कि यदि राष्ट्र भेद के कारण सम्पूर्ण भारत के २५ प्रतिशत मुसलमान हिन्दोस्तान में नहीं रह सकते तो पाकिस्तान के ४४½ प्रतिशत (जो अनुपात से सम्पूर्ण भारत में मुसलमानों के अनुपात की अपेक्षा ६५ प्रतिशत अधिक हुए) गैर मुस्लिम पाकिस्तान में किस तरह रह सकते हैं।

(३) पञ्जाब में दो की जगह तीन महत्वपूर्ण जातियां (Communities) हैं—मुसलमान, हिन्दू और सिक्ख। इनकी संख्या इस प्रकार है—

मुसलमान—१,६२,१७,२४२
हिन्दू—७५,५०,३७२
सिक्ख—३७,५७,४०१.

संख्या में सबसे कम होते हुए भी पञ्जाब में सिक्खों का महत्व बहुत अधिक है। यहां तक कि अंग्रेजों ने पञ्जाब मुसलमानों से नहीं बल्कि सिक्खों से लिया है। सिक्खों की एक बड़ी संख्या मध्य पञ्जाब में रहती है। ३७½ लाख सिक्खों में से अधिकांश, २३½ से ऊपर, मध्य पञ्जाब में रहते हैं और शेष उत्तर पश्चिम पञ्जाब में। यदि अल्पमतों के लिए पृथक देश बनाने का सिद्धान्त मान लिया जाय तो यह ज़रूरी हो जाता है कि मध्य पञ्जाब (जालन्धर कमिश्नरी और अमृतसर तथा गुरदास पुर के ज़िले) में सिक्खिस्तान क़ायम किया जाय। कम से कम सिक्खों के इस प्रदेश को यह अधिकार तो होना ही चाहिए कि यदि वे चाहें अपने को हिन्दोस्तान के साथ रक्खें। इस समय तक सिक्खों का बहुमत और अकाली दल इस प्रदेश को (उनके दावे की सीमा जेहलम से सतलज तक है) हिन्दोस्तान के साथ रखना चाहता है। इन दोनों सूरतों में पूर्वीय-पञ्जाब (अम्बाला कमिश्नरी) स्वयमेव पाकिस्तान से पृथक हो जाती है। अम्बाला की ४७ लाख आबादी में मुसलमानों की संख्या २६½ लाख है।

(४) पाकिस्तान की मांग का आधारभूत सिद्धांत हिन्दू और मुसलमानों को दो विभिन्न राष्ट्र मानता है। अपने पहले लेख में मैं विस्तार के साथ इस विषय पर प्रकाश डाल चुका हूँ कि किसी भी दृष्टिकोण से हिन्दू और मुसलमानों को पृथक पृथक राष्ट्र सिद्ध नहीं किया जा सकता। मेरी राय से "राष्ट्र" शब्द पर इससे बढ़कर बड़ा बलात्कार नहीं हो सकता। हिन्दोस्तान के हिन्दू और मुसलमानों में आजकल जो वैमनस्य विद्यमान है, उसके कारणों पर विचार करना यहां मुझे अभीष्ट नहीं है। यहां तो मुझे इतना ही कहना है कि जिस किसी भी तरह मुमकिन हो, हिन्दू और मुसलमान दोनों के हितों के लिए यह निहायत ज़रूरी है, वे दोनों अपने को एक राय होकर समझने लगें। यदि दोनों धर्मों के हिन्दोस्तानी अपने को विभिन्न राष्ट्रों का समझने लगे तो न तो हिन्दोस्तान में शान्ति रह सकेगी और न पाकिस्तान में। हिन्दोस्तान में २,००,००,००० के लगभग मुसलमान रहेंगे और पाकिस्तान में ५,७६,००,००० गैर मुस्लिम। हिन्दोस्तान में तो फिर भी मुसलमानों की संख्या सिर्फ ११ प्रतिशत के लगभग रहेगी। परन्तु पाकिस्तान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गैरमुस्लिम ४५ प्रतिशत के लगभग होंगे। पाकिस्तान की सरकार इन ४५ इण्टर-नैशनल्ज़ पर किस तरह राज्य कर सकेगी। पाकिस्तान और हिन्दोस्तान-दोनों के सभी सूबों में कम अधिक इण्टर-नैशनल्ज़ की मौजूदगी में कोई भी सूबा शान्तिपूर्वक नहीं रह सकेगा।

आख़िर अमेरिका में यूरोप भर के विभिन्न राष्ट्रों के लोग जाकर आबाद हुए थे। बहुत जल्द वे सब एक-राष्ट्र बन गए या नहीं। आज अमेरिका संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली देश है। यदि अमेरिका में आबाद होनेवाले अंग्रेज़, जर्मन, फ्रैञ्च, स्पेनियर्ड, पोर्चुगीज़ आदि अभी तक अपने को अंग्रेज़, जर्मन, फ्रैञ्च, स्पेनियर्ड और पोर्चुगीज़ ही समझते रहते तो अमेरिका की आज भी वही दशा होती, जो आज हम लोगों की है।

पाकिस्तान की जो सीमा मि० जिन्हा ने बताई है, वह स्पष्टतः बहुत अधिक अयुक्तियुक्त है। तथापि लेखक इस बात को स्वीकार करता है कि हिन्दोस्तान के प्रान्तों का वैज्ञानिक पुनर्विभाजन होने के बाद, यदि कोई प्रान्त प्लैबिसाइट लेने पर हिन्दोस्तान से पृथक हो जाने का निश्चय करेगा, तो उसे इस कार्य से रोकने का अधिकार किसीको नहीं है। इस सम्बन्ध में भी राजगोपालाचार्य का फारमूला पूर्णतः युक्तियुक्त है। एप्रिल १९४१ में लेखक ने भी पाकिस्तान की समस्या का लगभग यही हल निर्देश किया था। सिर्फ़ प्रान्तों के वैज्ञानिक पुनर्विभाजन की आवश्यकता, प्रान्तों को मुक्ति (Cessation) का अधिकार देने से पहले बताई गई थी। राजा जी के फारमूले के अनुसार भारतवर्ष के एक साथ संयुक्त ज़िले, अपने सम्पूर्ण बालिग़ निवासियों के प्लैबिसाइट के बाद, बहुमत होने पर हिन्दोस्तान से पृथक हो सकेंगे।

राजा जी के इस फारमूले के आधार पर, पाकिस्तान की अधिक के अधिक वही सीमा बनती है, जिसका ज़िक्र मैं अपने पिछले लेख में कर चुका हूं। अर्थात्—

क्षेत्रफल			मुसल्मान	अन्य	योग
३५,३६६	वर्ग मील	(१) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त (ट्राइबल प्रान्त के साथ	५१,०६,०००	३,१०,००	५४,१६,०००
६१,८२६	,,	(२) पश्चिमोत्तर पंजाब	१,१७,७४,०००	३९,७६,०००	१,५७,५०,०००
५७,४४७	,,	(३) पूर्व बंगाल (आसाम के कुछ ज़िलों के साथ)	२,६२,४८,०००	१,११,३२,०००	३,७४,८०,४००
१,०२,५६२	,,	(४) सिन्ध, बलोचिस्तान	३७,४७,०००	२२,६०,०००	५०,३७,०००
२,५७,१३१	,,		४,६८,७५,०००	१,७०,०८,०००	६,३८,८३,०००

यह कहना कठिन है कि मुस्लिम बहुमत के ये चारों प्रान्त, प्लैबिसाइट लिए जाने पर, अवश्य ही हिन्दोस्तान से अलग हो जाना चाहेंगे। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तो सम्भवतः अवश्य ही हिन्दोस्तान के साथ रहना चाहेगा। दलील के लिए यदि यह मान भी लिया जाय कि इन चारों सूबों में पाकिस्तान की स्थापना हो जायगी, तो देखना यह है कि यह पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर और सैनिक दृष्टि से सुरक्षित भी रह सकेगा या नहीं।

आर्थिक दृष्टि से उक्त पाकिस्तान कभी आत्म-निर्भर बन सकेगा, इसमें सन्देह है। यह ठीक है कि उपज और पैदावार की दृष्टि से इस पाकिस्तान का उत्तर भाग सम्भवतः हिन्दोस्तान से भी अधिक अन्न रहे, क्योंकि पश्चिमोत्तर पंजाब सी उपजाऊ नई ज़मीन के अतिरिक्त सिन्ध और बलोचिस्तान में लाखों-एक भूमि को खूब उपजाऊ बनाया जा सकता है। पर इस पाकिस्तान में व्यवसाय के लायक आवश्यक कांश खनिज पदार्थों का एकदम अभाव है। इन प्रान्त का आर्थिक जीवन आज भी हिन्दोस्तान के अन्य पर निर्भर करता है और यदि हिन्दोस्तान इन सूबों अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेगा, तो ये प्रान्त और अधिक पिछड़े हुए बन जायंगे।

सुरक्षा की दृष्टि से पाकिस्तान की कमज़ोरी स्पष्ट है। पहले तो पाकिस्तान स्वयं दो भागों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा और इन दो भागों में करीब ८०० मील का व्यवधान होगा। उस पर हिन्दोस्तान की सैनिक शक्ति पाकिस्तान से कहीं अधिक होगी। पिछले महायुद्ध ने पंजाब की सैनिक महत्ता की प्राचीन परम्परा लगभग समाप्त कर दी है। एटम बम के इस युग में आदमी के लम्बे चौड़े क़द और मज़बूत जिस्म की अपेक्षा, विचारशक्ति वाले दिमाग़ और कारीगर हाथों की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। इस युग में पाकिस्तान सैनिक दृष्टि से, हिन्दोस्तान की अपेक्षा बहुत हीन बन जायगा। लार्ड वेवल जैसे प्रामाणिक सैनिक का यह कथन है कि सैनिक सुरक्षा की दृष्टि से भारतवर्ष एक इकाई है। इस देश में हज़ारों बरसों से सभी हिन्दोस्तानी राजनीतिज्ञ इसी सिद्धान्त को मानते आए हैं। मि० जिन्हा और उनके साथी आज पहली बार इस सर्वमान्य सिद्धान्त को चुनौती दे रहे हैं।

मुझे तो विश्वास है कि यदि उक्त प्रान्तों में पाकिस्तान की स्थापना हो भी गई तो ५ वर्षों के भीतर ही पाकिस्तान के सभी प्रान्त हिन्दोस्तान से यह अनुरोध करेंगे कि हमें फिर से हिन्दोस्तान में मिला लीजिए।

(२)

संक्षेप में पाकिस्तान की समस्या का यही रूप है। कुछ दिनों से हिन्दोस्तान की एक अपेक्षाकृत नई और बहुत कम लोकप्रिय राजनीतिक पार्टी ने इस विषम समस्या को और भी अधिक गुथीला बना दिया है। यह पार्टी है हिन्दोस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी। कम्युनिस्ट पार्टी पाकिस्तान के पक्ष में है, परन्तु मि० जिन्हा के पाकिस्तान के पक्ष में नहीं। कांग्रेस और महात्मा गांधी से ये हिन्दोस्तानी कम्युनिस्ट इसलिए नाराज़ हैं कि वह मि० जिन्हा की शर्तों पर उनसे समझौता क्यों नहीं कर लेते। परन्तु स्वयं वे पाकिस्तान का जो रूप पेश करते हैं, मि० जिन्हा भी उसे देखकर एक बार तो घबरा जांय। और तो और मि० जिन्हा की आधारभूत मांग पाकिस्तान को एक यूनिट (Unit) मानने की बात भी वे स्वीकार नहीं करते।

हिन्दोस्तानी कम्युनिस्ट पाकिस्तान के पक्ष में जो अच्छी-बुरी दलीलें देते हैं, उनका सार इस प्रकार है—

(क) हिन्दोस्तान इतना बड़ा देश है कि उसे एक राजनीतिक इकाई कदापि नहीं माना जा सकता। जिन साम्राज्यवादी हिन्दोस्तानी या विदेशी आकांक्षाओं ने इस देश में जब कभी एक साम्राज्य स्थापित किया, वह सब तलवार के बल पर।

भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति का अधिकांश भाग, हिन्दोस्तानी कम्युनिस्टों की राय में, दुनिया के और देशों के पुराने रीति रिवाजों की तरह धनिक और बुर्ज़ुआ जमात की उपज है और उसके नाम पर आज के लाखों-करोड़ों हिन्दोस्तानी प्रोलिटेरियट के नए दृष्टिकोण को बदलने का प्रयत्न करना एक अवांछनीय हिमाकत है।

(ग) रूस में अनेक देश हैं और हिन्दोस्तान में भी अनेक देश होने चाहिएँ।

(घ) मुसलमानों की सबसे बड़ी जमात मुस्लिम लीग है। उसे हिन्दोस्तानी मुसलमानों की एकमात्र जमात भी कहा जा सकता है। जब मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग कर रही है, तो उसकी यह मांग अवश्य पूरी की जानी चाहिए।

(ङ) हिन्दोस्तान के हिन्दू और मुसलमान दोनों इतर राष्ट्र (different nationals) हैं, इसलिए कि मुस्लिम लीग मुसलमानों को महान मुस्लिम राष्ट्र (Great Muslim nations) कहकर बुलाती है। हमें इससे बहस नहीं कि उनकी यह मांग युक्तियुक्त है या नहीं। वे जब अपने को पृथक राष्ट्र का मानते हैं, तो बस इतना ही काफ़ी है।

(च) इतना ही नहीं, हिन्दोस्तान के सभी धर्मावलम्बी पृथक-पृथक राष्ट्रों से सम्बन्ध रखते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सभी पृथक् प्रतिनिधित्व मागते हैं, अतः विभिन्न राष्ट्रों के हैं। सिक्खों का यह पूर्ण अधिकार है कि यदि वे चाहें तो मध्य पंजाब में 'खालसिस्तान' की मांग करें। इसी तरह दक्षिण के कुछ ज़िलों में यदि ईसाइयों का बहुमत हो जाय, तो वे 'क्रिश्चयनिस्तान' की मांग भी कर सकते हैं।

(छ) असल स्थिति तो यह है कि भाषा और रीति-रिवाजों के अनुसार इस बड़े प्रायद्वीप में अनेक भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं। पंजाबी, गुजराती, बंगाली, केरल निवासी और मराठे में उतना ही भेद है, जितना अंग्रेज़, फ्रेंच, रशियन, इटैलियन और जर्मन में है। हम सब राष्ट्रों को पृथक हो जाने का पूरा अधिकार होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ज) हिन्दोस्तान की छोटी बड़ी सभी भाषाओं का अधिकार है कि वे अपना-अपना साहित्य उन्नत कर सकें। इन भाषाओं की संख्या चाहे जितनी हो, किसी भी भाषा को दबाने का हमें अधिकार नहीं। और इनके आधार पर हिन्दोस्तानी प्रान्तों का पुनर्निर्माण करना भी ज़रूरी है। इन सब नए-पुराने प्रान्तों को पृथक हो जाने का अधिकार होना चाहिये।

उपरोक्त सभी युक्तियां मैंने हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्टों के नेताओं की कलम से पढ़ीं या उनके मुंह से सुनी हैं। इन स्थापनाओं का अभिप्राय यह है कि हिन्दोस्तान के सब सूबे, विभिन्न भाषाओं और रीति-रिवाजों के आधार पर, विभिन्न राष्ट्र हैं और उनमें भी हिन्दू, मुसल्मान, सिक्ख आदि विभिन्न राष्ट्रों से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात गुजराती-मुसल्मान और गुजराती-हिन्दू विभिन्न राष्ट्रों के हैं। यदि यह दलील स्वीकार कर ली जाय तो हिन्दोस्तान में विभिन्न राष्ट्रों की संख्या एक सौ से भी ऊपर जा पहुंचती है। और सबसे अधिक चिन्तनीय दृश्य यह है कि हिन्दोस्तान के गाँव-गांव में ये सब विभिन्न राष्ट्रीय लोग एक साथ आबाद हैं। इसका मतलब यह है कि इन सब इतर राष्ट्रीय लोगों में निरन्तर वैमनस्य बना रहना स्वाभाविक ही है।

और इन्हीं दलीलों के आधार पर आज हिन्दोस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी मुस्लिम लीग की ज़बरदस्त हिमायती बनी हुई है। उसका कहना है कि मुस्लिम लीग पाकिस्तान लेकर सिर्फ़ इब्तदा ही करेगी। उनका असली उद्देश्य तो तब पूरा होगा, जब यह बड़ा प्रायद्वीप बीसों छोटे-छोटे स्वायत्त राष्ट्रों में बंट जायगा।

(३)

यह एक खुशकिस्मती की बात है कि हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्टों की संख्या न सिर्फ़ बहुत कम है, बल्कि, जब तक हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्ट किसी युक्तियुक्त, वास्तविकता पर आश्रित और समझदारी का मार्ग ग्रहण नहीं करेंगे, उनकी संख्या दिनों दिन घटती जाने की ही सम्भावना है। इसलिए उनकी बात जाने दीजिए।

जहाँ तक मि० जिन्हा और मुस्लिम लीग का सम्बन्ध है, वहां तक हमें इस समस्या का एक ही हल नज़र आता है। हिन्दोस्तान के प्रान्तों को भी पूरी तरह आत्म-निर्णय का अधिकार होगा, यह सिद्धान्त कांग्रेस स्वीकार कर चुकी है। श्री राज गोपालाचार्य के फ़ा को यद्यपि कांग्रेस ने आफ़िशियल ढंग पर स्वीकार किया, तथापि उसके आधार पर महात्मा गांधी हाल मि० जिन्हा से बातचीत कर चुके हैं। इसका यह है कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस, ज़रूरत पड़ने पर जी के फारमूले तक जाने को तैयार है। उससे नहीं।

संक्षेप में कांग्रेस और मुस्लिम लीग की स्थिति प्रकार है—

राजा जी का फारमूला यह है कि हिन्दुस्तान दूसरे से संयुक्त जो ज़िले, अपने निवासियों के पूर्ण मत के आधार पर हिन्दोस्तान से पृथक् हो जाना उन्हें यह अधिकार दे दिया जायगा।

मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्हा का कथन है सीमा प्रान्त, बलोचिस्तान, सिन्ध, पंजाब, बङ्गाल आसाम इन छः प्रान्तों की वर्तमान पूरी सीमाओं पाकिस्तान बनाए जाने की घोषणा हो जानी और पाकिस्तान की पृथक कान्स्टीटुएण्ट असे बननी चाहिए।

उधर अंगरेज़ सरकार की घोषणा है कि मार्च तक हिन्दोस्तान के सूबों की असेम्बलियों का चुनाव हो चाहिए जाना और ये नई प्रान्तीय असेम्बलियां कौन्स्टीच्यूएण्ट असेम्बली का निर्माण करेंगी, जो म्बली हिन्दोस्तान का भावी शासन-विधान बनाएगी।

मि० जिन्हा का कथन है कि यदि सारे देश के एक ही कौन्स्टीच्यूएण्ट असेम्बली बनाई गई तो मु लीग उसमें भाग नहीं लेगी।

इन परिस्थितियों में यही एकमात्र उपाय है कि यह सारा मामला युनाइटेड नेशन्स एसोसि के एक निष्पक्ष कमीशन के सन्मुख आर्बिट्रेशन रख दिया जाय। यह कमीशन उन सब बातों का करे जिनके सम्बन्ध में कांग्रेस और मुस्लिम लीग नहीं हो सकतीं। इस कमीशन का निर्णय कांग्रेस लीग दोनों को ज़रूरी तौर पर मानना होगा। समझौता न कर सकने की सूरत में यदि कांग्रेस मुस्लिम लीग निष्पक्ष आर्बिट्रेशन का सुझाव कर लें, तभी देश की राजनीतिक गाड़ी इस कीचड़ निकल सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव और मशीन

श्री मारिसंक्रिड सेन

सेवागांव के मेरे पिछले प्रवास काल में एक अद्भुत प्रतिनिधि-मण्डल गांधी जी से मिलने आया। प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों में एक थे लोकोमोटिव ऐञ्जिन, एक बड़ी बस लारी, एक बिजली से चालित वस्त्र बुनने की कल, कपड़ा सीने की मशीन, बेतार का यन्त्र, एक बिजली का चूल्हा और थीं कुछ छोटी-मोटी मशीनें। ये सब गांधीजी की छोटी सी कुटिया को चारों तरफ से घेरकर खड़े हो गये। यन्त्र शक्ति की आत्मा भी वहां उपस्थित थी। उसके सुन्दर सुगठित-लचीले, फ़ौलाद की तरह पुट्ठे, रबर की तरह लचकदार मांस पेशियां, यन्त्र से चढ़ाया गया चमकदार रंग, क्रोमियम प्लेट से बनी हुआ शरीर, एक सुन्दर सुनियन्त्रित उच्च स्वर बोलनेवाला मुख और उसके उन्नत माथे के नीचे दो चमकती हुईं टेलीविजन आंखें। वह अपने हाथ में संसार की मशीनों के दिये हुए अधिकार पत्रों की दो सूची लिये थी।

मैं अनुमान करता हूँ कि प्यारेलाल जी को इसमें सन्देह था कि गांधी जी अन्यायों के इस समूह के स्वागत के लिये, राजी होवेंगे या नहीं। किन्तु दया इस संसार में अक्षीम वस्तु के रूप में सफल हुई और प्रतिनिधि मण्डल को गांधी जी के समक्ष उपस्थित किया गया। सिर्फ़ ऐञ्जिन बाहर खड़ा रहा किन्तु उससे टेलीफोन का सम्बन्ध जुड़ा हुआ था।

यन्त्र शक्ति की आत्मा ने टिक टिक किया और बोलना शुरू कर दिया: "महात्मा जी! हमने सुना है कि आपकी धारणा पृथ्वी के धरातल से हमारी मशीनों को बिलकुल अदृश्य कर देना है। भयों और शंकाओं से प्रेरित होकर दया की भिक्षा के लिये नहीं—किन्तु न्याय के लिये, हमने यहां आने की शीघ्रता की है। यदि आप कोई साधारण व्यक्ति होते तो हम लोग आपको अपनी माता श्रीमती काल (Mrs. Time) के हाथों में छोड़ देते। किन्तु आपका प्रभाव हमारे पिता श्री मानव-मस्तिष्क (Mr. Human Mind) पर काफ़ी पड़ा है और वह शक्तिपूर्वक क्रमशः बढ़ रहा है। हम लोग भयभीत हैं कि आप हमारे पिता जी को नई सन्तोत्पत्ति और अपने बच्चों के बीच में खेलने से विमुख कर देंगे। हम लोग स्वतः अपने मामले की रक्षा के लिये आपके पास आये हैं और यदि आप हमें इस बात का इतमीनान दिला दें कि हम लोग सचमुच में मानव के शरीर या आत्मा अथवा दोनों की भलाई के लिये हानिप्रद काम कर रहे हैं—तो अपने समूल विनाश की आपकी राय से अपने विचारों को परिवर्त्तित कर लेंगे!"

"आपको मुझे विश्वास दिलाने के लिये काफ़ी कड़ा परिश्रम करना पड़ेगा" गांधी—जी ने मुस्कुराते हुए कहा।

'जब तक हम लोग सेवागांव नहीं आये, तब तक ऐसा ही सोचते थे। हमने यहां पर अपने बहुत से बन्धु-बान्धवों को पाया है—जो कि आश्रम के नियमित अधिवासी हैं। और हम लोग यह विश्वास करने को प्रायः राजी हो गये हैं कि हमारा भय कमज़ोर बुनियादों पर स्थित था। आपकी आदरणीय नासिका पर स्थित ऐनक ने हमें पहला संकेत दिया है कि हमारा मामला बिल्कुल निराशा-जनक नहीं है। हम आपके बाजू में प्रिय सूक्ष्म बुद्धि की प्रतीक, भाल घड़ी को निरख रहे हैं और समझते हैं कि उसके लिये आपके हृदय में स्नेह का विशेष स्थान है। सुकुमारी बहिन कलम (Fountain Pen) आपके साथ हैं और महाशय रक्त मापक यन्त्र नित्य आपका दर्शन करते हैं। आपके लिये मलाई मिस्टर सेन्ट्रीफ़्यूगल सेपरेटर से तैयार की गई है और आपके खेत राइट-आनरबुल परशियन चक्र से सींचे जाते हैं। हर आनर मोटरकार अनुभव करती हैं कि उनकी सेवाओं का हमेशा ही यहां स्वागत है और हर एक्सेलेन्सी रेलवे आपके निरन्तर सरंक्षण में, सिवाय प्रशंसा के कुछ नहीं पातीं। हम आपके निकट मुहर लगे लिफाफे और तार देखते हैं, जो कि अभ्रान्तिपूर्ण दशा में बताते हैं, कि आपकी हम लोगों के प्रतिरोध में जो विद्वेष की भावना सुनी गई है, यदि वह बिलकुल निर्मूल नहीं है—तो एकदम अतिशयोक्ति पूर्ण ज़रूर है। क्योंकि जो कोई भी डाक, तार का उपयोग करता है—वह प्रायः हमारे हरेक किस्म के प्रतिनिधि बाईसिकिल से टेलीविजन तक का उपयोग करता है।"

"आपने समझने में गलती की है," गांधी जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी शान्ति से कहा कि आत्मा के तापक्रम की घड़ी का, स्पात और लोहे की धातु का बना हुआ स्प्रिंग, एक झटके के साथ अपने आप में सिकुड़ने लगा।

"मैं स्वेच्छा से मशीनों का उपयोग नहीं कर रहा हूँ। मुझे इन संक्रामक कीटाणुओं की प्रबलता से आक्रान्त दुनिया में, विवशता से इसका प्रयोग करना पड़ा। तथापि संक्रामक कीटाणुओं के प्रवेश से सावधान रहते हुए भी, इस प्रबल प्रवाह में वे आक्रमण कर, निश्चय ही मुझ पर थोड़ा प्रभाव डाल सके हैं। यदि आप सेवा भाव से कोढ़ियों के साथ रहते हैं, तो आपको भी कोढ़ हो जाता है, जिसका कि यह मतलब नहीं होता कि आपने कोढ़ का स्वागत किया है। मुझे यन्त्रों की प्रचुरता से लदे हुए संसार में, इस यान्त्रिक, दुनिया से मुक्ति पाने की सहायता प्राप्त करने के लिये—उनका थोड़ी मात्रा में उपयोग अवश्य करना चाहिये। ये भी मैं होम्योपैथिक की मात्रा में प्रयोग कर रहा हूं, इसे तो आप स्वीकार करेंगे। मुझे कुमारी घड़ी और सुकुमारी बहिन कलम के लिये कोई खास स्नेह नहीं है। मेरा वास्तविक निकेतन या आवास-गृह वहां है—जहां समय नाम की कोई चीज़ ही नहीं है और न है जहां स्थान नाम की ही कोई वस्तु। जहां पर कि आदान-प्रदान की क्रिया का कतई कोई अर्थ ही नहीं है।" आत्मा कांप उठी—"महात्माजी! हम सब समय और स्थान के बीच में रहते हैं, क्रिया करते हैं और जीवित रहते हैं। वहां समयाभाव में ही तो समय को स्थान है, स्थानाभाव में ही तो स्थान की स्थिति है। और, इसीलिये अपने सृष्टि कर्त्ताओं के सृष्टिकर्ता के (ईश्वर) मस्तिष्क से हम लोगों के लिये भी स्थान है।"

"मैं स्वीकार करता हूं कि जहां तक हम लोग समय और स्थान से बंधे हुए हैं—हमें मानसिक और शारीरिक रूप में जीव का उपयोग करना चाहिये। किन्तु मैं अतिरिक्त बोझ डालकर जीव को अधिक उलझन में क्यों डालूं? अल्प से अल्प ले लेकर सन्तुष्ट क्यों न हो जाऊं? अपनी दृष्टि की सीमा, श्रवण कार्य की सीमा, अपने यातायात की गति की सीमा को क्यों बढ़ाऊं? मैं जाति का वणिक हूँ और सत्यता पूर्ण लेन देन मेरे लिये कानून है। इसलिये मैं पूछता हूं कि 'क्या कीमत है?' और मैं अनुभव करता हूँ कि वस्तु के रूप में जो कुछ उपलब्ध कर रहा हूं—उसे आत्मिक [illegible] खो भी रहा हूं। यह मेरे लिये बहुत बड़ा मूल्य [illegible] सौदे से इन्कार करता हूं।"

"महात्मा जी! आप गलती पर हैं या हम आपके विषय को समझ नहीं पा रहे हैं। साइकिल सवारी करके या बस का टिकिट खरीद कर, आत्मिक रीति से क्या खोते हैं?"

"स्वयं मेरा शरीर सीमा के भीतर आत्मा किसी प्रकार की शक्ति की वृद्धि-सीमा को बढ़ा है।"

"तब हम लोगों के साथ शरीर को भी फेंक देते।"

"मैं ऐसा सहर्ष कर सकूंगा, किन्तु उचित तरीके से। या तो स्वाभाविक मृत्यु से या आत्म प्राप्ति से। मुझे उसके नष्ट करने का नहीं है।"

"और हम लोगों के विनाश के लिये आपके कौन सा अधिकार है?"

"सृष्टिकर्ता का अधिकार। मैंने अपनी मूर्खता आप लोगों की सृष्टि की है और अपने ज्ञान से मैं को विनष्ट कर दूंगा।"

"हम लोग अपने विषय के निकट पहुँच रहे आत्मा ने राहत की ठण्डी श्वांस लेते हुए कहा अपने सुदृढ़ शब्दों को कैसे न्याय सङ्गत ठहराते हम लोग अपनी ज़िन्दगी के लिये मूर्खता के प्रति हैं। जब पहले पहल मनुष्य ने लकड़ी को काटा और सबसे पहले पत्थर के टुकड़े टुकड़े किये थे, पहली बार कुल्हाड़ी बनाई थी, तो क्या वह मूर्ख जब उसने प्रथम बार अग्नि जलाई थी और कम्बल सिया था, तब क्या वह अज्ञान था? जब पहले पहल सूत काता और कपड़ा बुना, तो ज्ञान-शून्य था? क्या उसने मकान बनाकर और पकाकर मूर्खता की थी? क्या वह कुम्हार के पीसने की चक्की को चलाने के लिये मूर्ख है? बेअक्ल था जिसने पानी बांध कर अनाज पीसा जलपोत के पाल को हवा से भरा था? जब उसकी की शक्ति अपर्याप्त थी—तो क्या उसने पशुओं भोग कर बेवकूफी की थी? प्रथम पशु, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा, तत्पश्चात् भाप और बिजली ! कहां ठहरना चाहिये ? अधिक से अधिक शक्ति क्यों नहीं ! ब्रह्माण्ड की क्षमता, (Atomic energy) और पारमाणिक शक्ति आ रही है, तब कहीं कोई दूसरी—कौन जानता है ? किस तरह गधे पर बैठा हुआ मनुष्य ज्यादा आत्मिक है—अपेक्षाकृत उस व्यक्ति के, जो परिमाणु शक्ति के द्वारा चालित (Atomic rocket) राकेट में बैठा है ?"

"मेरे मित्रो ! इस प्रकार कारण हेतु निकालना मिथ्या है ।"

"कृपया व्याख्या कीजिये । इस प्रकार के संक्षिप्त उत्तर से हम लोगों को पृथक न कीजिये । हम लोग अपने अस्तित्व के लिये सतत् युद्ध कर रहे हैं ।"

"यह सिद्ध नहीं करता कि आप सही मार्ग पर हैं । सबसे पहले आपके प्रथम व्यक्ति और पहली कुल्हाड़ी पर आपत्ति प्रगट करता हूँ । मैं नहीं समझता कि कल-विज्ञान की प्रगति ही, सिर्फ एक उन्नति की सीढ़ी है । वरन् वह सभ्यता के विकास और पतन के समान, पर्वत की चोटियों और घाटियों की श्रङ्खला की तरह है । किसे ज्ञान है कि वर्तमान सभ्यता के पहले, कितने सभ्यता के युग अतीत के अन्तस्तल में विलीन हो गये हैं ? इस बात की वचन-बद्धता कहां है कि यह सभ्यता कभी अन्तर्धान हो नहीं होगी ? ऐसे बहुत से सभ्यता के युग ओझल हो गये हैं । फिर यह क्यों नहीं ?"

"यह विश्व की प्रथम सभ्यता है । दूसरे सब स्थानीय थे । वे संसार के साथ ही नष्ट हो जावेंगे—नहीं तो कभी नहीं ।"

"मुझे ऐसा निश्चय नहीं है । उसमें स्वयं अपने विनाश के बीज मौजूद हैं । उसका नाश अवश्यम्भावी है और संसार उसके लिये विशेष सुखी होगा ।"

"मैं समझ रहा हूं कि आप किस प्रकार सिद्धान्त पर पहुंच रहे हैं । हम स्वीकार करते हैं कि हम लोगों का हमारे सृष्टि-कर्त्ताओं ने अनुचित प्रयोग किया है और उन्होंने स्वयं अपने विनाश के लिये हमें हथियार बनाया है । किन्तु यह उनका दोष है—हमारा नहीं । हमारी प्रकृति में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो अनुचित प्रयोग का आह्वान करती हो । मनुष्य ने कुल्हाड़ी का आविष्कार करने के बाद घृणा करना नहीं सीखी । वह पहले घृणा करता था, हत्या करता था, गला घोंटता था और नाखूनों से भी प्रहार करता था । कुल्हाड़ी ने मनुष्य को अधिक कार्य कुशल बनाया । बस यही है, भले के लिये या बुरे को ।"

"पालन करना कठिन है किन्तु मारना सरल । इसलिये चारों ओर बढ़ी हुई शक्ति का सम्पूर्ण नाश होना है ।"

"इतिहास इसके पक्ष में है । संसार की आबादी बढ़ गई है । अग्नि, वस्त्र और हथियारों को भूल जाओ—तब संसार एक वर्ष के भीतर बन्दर-मनुष्य काल की, पूर्व दशा को पहुंच जावेगा ।"

"मैं अग्नि, वस्त्र प्रयोग और मनुष्य के आश्रय स्थान मकान का विरोध नहीं करता । मैं यन्त्रों के विरुद्ध हूं । कुल्हाड़ी, चाकू और हल के समान औजार, मशीन नहीं है ।"

"औजारों और मशीन के बीच कोई निश्चित सीमा-बन्दी नहीं है । आप चरखा को देवता बना रहे हैं । उसको थोड़ा और बड़ा कीजिये, फिर थोड़े सुधार के बाद आप उस पर सवारी कर सकते हैं । चरखा और साइकिल का रक्त सम्बन्ध है । वैसे ही पानी की चरखी और हाइड्रो इलेक्ट्रिक जेनरेटर (Hydro electric generator) का । इसी प्रकार जलपोत, पाल और भाप के टरबाइन (Steam turbine) का ।"

"मैं चरखे के पक्ष में हूँ, क्योंकि उसका अनुचित प्रयोग नहीं किया जा सकता । उसका मूल स्वभाव समष्टि की भलाई करना है ।"

"महात्मा जी ! कृपया हम लोगों पर भरोसा कीजिये । हम लोग अस्त्र-शस्त्रों और युद्ध की मशीनों का पक्षपात नहीं कर रहे हैं । हम लोग उनसे लज्जित हैं । हमने उन्हें जातिच्युत कर दिया है ।"

"आप लोग घृणायुक्त प्रलोभन, भय और पागल मानवता के हाथ में—उनके आज्ञाकारी औजार हैं ।"

यदि आप हम लोगों का विनाश करते हैं, तो क्या मानवता संयमी हो जावेगी ?"

"यदि तुम लोगों का विनाश न हो, तो मनुष्यत्व को कभी संयमी बनने का अवसर ही प्राप्त न होगा । वह बहुत पहले ही अपने आप नष्ट हो जावेगा ।"

"आप इतनी सरलता से हमारा नाश नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते। हमारे सृष्टि-कर्ता इसके लिये अनुमति नहीं देंगे। आप अपनी शक्ति ही बरबाद कर रहे हैं। मनुष्यत्व हमारा परित्याग नहीं करेगा। किन्तु क्रियात्मक रूप से हमारा प्रयोग करने की शिक्षा की जा सकती है। आप शिशु से कलम नहीं छुड़ाते हैं, क्योंकि वह लिखने के बजाय उससे आड़ी टेढ़ी लकीरों से खराँचे बनाता है। आप सादगी से जिद्द करते हैं कि उसे ठीक रीति से लिखना चाहिये।"

"यह तुलना बेमेल है। आप ख़तरनाक हथियार को तो ज़रूर छुड़ा लेते हैं।"

"वस्त्र बुनने की कल खतरनाक हथियार नहीं है। और निश्चय पूर्वक घड़ी भी नहीं।"

"बिजली से चालित बुनने की कल बाम्बर से कहीं अधिक खतरनाक है।"

"एक सीधी सादी तकली का प्राण-घातक अस्त्र बनाया जा सकता है। यह स्वयं तकली का अपना दोष नहीं है।"

"आप देखना नहीं चाहते। बुनने की कल मानव जीवन और सुख—दोनों की विघातक है। आपको उसके लिये दुष्ट बनने की आवश्यकता नहीं है! वह अपने आप काम करती है। वह बिना विनाश किये नहीं रह सकती।"

"नहीं, गांधी जी बुनने की कल निर्दोष है। यह उपयोग करनेवाले पर निर्भर करता है।"

"यदि मैं मनुष्यता को अपनी इच्छानुसार काम में लाऊँगा, तो उसे सिद्ध बना दूँगा और तब हम फिर यहां पर विषयों पर बहस-मुबाहसा करने के लिये उपस्थित नहीं होंगे। मनुष्यता सिद्ध नहीं है और हम लोग उसे इस तरह मान लेते हैं, जैसे कि उसमें अच्छे या बुरे की पूर्ण सम्भावना है। और जिस तरह कि वह है, वह मशीन का दुरुपयोग करती है। मैं उसे एक दिन में नहीं बदल सकता। किन्तु समय के लम्बे दौरान में उसे बदल सकता हूँ। और पहला कदम जो उठाना है—वह भविष्य को खराबी के प्रलोभन से बचाना है। उत्पादक मशीन वास्तव में दुष्ट नहीं है, किन्तु निश्चय पूर्वक दुष्टता के लिये वह भयङ्कर प्रलोभन की वस्तु है। इसलिये इसको दूर होना चाहिये।"

"हम लोगों को प्रसन्नता है कि आपने यह स्वीकार कर लिया है कि हम लोग स्वभावतः दुष्ट नहीं है।

"आप इतने प्रसन्न न हों। इस संसार में [illegible] तथा कोई चीज़ अच्छी या बुरी नहीं है। यह [illegible] वता जिस प्रकार उपयोग करे इस पर निर्भर करता

"क्या इस बात की आशा नहीं है कि एक मनुष्यता हम लोगों का उचित प्रयोग करेगी?"

"मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित हैं। [illegible] शक्ति असीम है।"

"एक सुसङ्गठित सभा का मतलब सबको [illegible] अवकाश देना है।"

"थोड़े से इच्छुक या अनिच्छुक गुलामों को [illegible] कर—सिर्फ़ नसेनी का लौट-फेर कर। आजकल आपके थोड़े स्वामी हैं जो फ़ुरसत में सड़ रहे हैं। और [illegible] गुलामों का पतन अविश्रान्त नीच कार्य कर—मूर्खता से हुआ। आपके मशीन के सतयुग में आपके अगणित स्वामी ऐसे होंगे, जो फ़ुरसत में सड़ेंगे और थोड़े से गुलाम होंगे—जो मशीन की सेवा होंगे।"

"गुलाम क्यों? उन्हें विशेष योग्यता प्राप्त करने आविष्कारक तथा वैज्ञानिक कहिये।"

"स्वीकार करता हूं. किन्तु तब इससे बदतर [illegible] होगी। कलाकारों के एक समूह की औद्योगिक [illegible] शाही, एक बड़े जन समुदाय की अपने लाभ [illegible] शक्ति को तुष्ट रखने के लिये, उनके स्वास्थ्य रक्षा करती है तथा संसार को गृह-पालित [illegible] की तरह, मनुष्यों के जन्म-गृह के रूप में परिवर्तित रही हैं—जिसमें लगड़े, शिक्षित, खिलाड़ी, [illegible] और अपने लाभ उठानेवालों की प्रशंसा को नित्य करनेवाले मनुष्य होंगे।'

"गुलाम या अनुचित लाभ उठानेवाले। जाति के लिये कोई दूसरा हल नहीं।"

"हां, न गुलाम और न अनुचित लाभ वाले।"

"यह वह स्थान है—जहां कि हम आ [illegible] बिना मशीन के मनुष्य सदा नीच कर्म करते [illegible] बच सकता है? सतत् नीच कृत्य ही उससे [illegible] भावना पैदा करते हैं। अधिक शक्तिशाली अपने [illegible] को गुलाम बना देंगे और जो अधिक कुशल [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीन की रूप-रेखा बनावेंगे। सिर्फ़ प्रचुरता के युग में, सबको, ग़ुलाम बनाने या अनुचित लाभ उठाने के प्रलोभन से स्वतन्त्रता मिल जावेगी।"

"नहीं, क्योंकि प्रचुरता नाम का कोई युग ही नहीं होगा। मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित हैं, किन्तु इच्छायें नहीं। आज मनुष्य इग्लैंड की यात्रा करने की इच्छा करता है, कल चन्द्रलोक की यात्रा करने की इच्छा करेगा।"

"चन्द्रलोक की यात्रा करने में क्या बुराई है?"

"इङ्गलैण्ड की यात्रा से अधिक नहीं। यह अनावश्यक है।"

"ओ कैसे? क्या कभी मनुष्य की उत्सुकतापूर्ण ही न होगी?"

"उसका कोई अन्त नहीं है।"

"ऐसा क्यों होना चाहिये?"

गांधी जी ने उस आदमी की तरह निराश भाव से कहा जो अपने श्रोताओं के न समझने पर भी बोलता जाता है, मेरे मित्र, आख़िर में तुम सिर्फ़ मशीन हो, अपने जन्मदाताओं की क्षणिक भूल से उत्पन्न। आप लोगों का जन्म ग़लती से हुआ है। किन्तु आप उसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

"कम से कम हम उस भूल की प्रकृति को जानना चाहते हैं।"

"बिना मशीन के मानव जाति के पास बहुत कुछ था। प्रचुर भोजन और वस्त्र, घर बार तथा सोचने को समय।"

"इसे इतिहास स्वीकार नहीं करता।"

"आप इतिहास के बारे में क्या जानते हैं? अन्त के कुछ हज़ार वर्ष ही तो सिर्फ युग की समाप्ति के हैं। किन्तु युग के विषय में हम क्या जानते हैं? भोजन वस्त्र, घर-द्वार, साफ़ सुथरे मस्तिष्कों की अधिकता और स्नेहशील हृदय अपने चिन्ह नहीं छोड़ते। एक कच्ची मिट्टी की झोपड़ी, मिट्टी में ही भूमिसात हो जावेगी, तथापि वे लोग कितने सुखी और ज्ञानवान थे, जो उनमें निवास करते थे। पीतल के स्मारक चिन्ह और पाषाण-स्तम्भ, विवेक से खड़े किये गये हैं। सुखी मनुष्य कोई चिन्ह नहीं छोड़ जाते हैं। यदि मशीन का अर्थ सभ्यता से है—तब मनुष्यता के सब महान शिक्षक असभ्य थे। किन्तु वे सच्ची सभ्यता के प्रतीक थे और जड़ शक्ति के प्रभाव के बोझिल भार से मुक्त थे।"

"क्या सामर्थ्य-शक्ति बुरी चीज़ है?"

"उसकी अधिकता मनुष्य की स्वाभाविक आवश्यकताओं की तृप्ति को इतनी सरल कर देती है कि—और अधिक आवश्यकतायें कृत्रिम रूप में जन्म लेने लगती हैं। और एक बार यदि कृत्रिम अस्वाभाविक आवश्यकताओं ने जन्म लेना शुरू कर दिया—तो फिर उनका कभी अन्त न होगा। सचमुच मनुष्य विश्व पर अधिकार करता है, पर अपनी आत्मा को खोता है।

"इसलिये आप कल-विज्ञान की बहुलता के युग को न चाहकर—सभ्यता को चाहते हैं। किन्तु बिना पूरे आदान-प्रदान के ज़रियों के सब के लिये सभ्यता कैसे आ सकती है?

"आपके अखबार, उपन्यास, पत्रिकाएं, सिनेमा, ग्रामोफोन, बेतार के तार और टेलीवीजन, ये सब घृणित एवं अपवित्र हैं। ये हमारे पास बहुत वर्षों से हैं और हम लोग नरक-यन्त्रणा के उतने समीप हैं, जितना कि हो सकता है। सत्य और दया ही सबसे सच्ची सभ्यता की नींव हैं। वे कहां हैं? मिथ्या, लालच और घृणास्पद बातें रेडियो पर कही जाती हैं, प्रकाशित की जाती हैं, उनका विज्ञापन किया जाता है, अति सरलता से प्राप्त कराई जाती हैं, सबके लिये दी जाती हैं और वह भी बहुत सस्ते दामों में। हम जनता को पढ़ने की शिक्षा देते हैं और देते हैं—उन्हें कूड़ा-साहित्य पढ़ने को।"

"तो आपकी छापाखानों पर भी दया दृष्टि नहीं है?

"मेरे मित्र! मनुष्यता के महान उपदेश मुख से या हस्तलिपि के ग्रन्थों से ही दिये गये थे। जब एक व्यक्ति को कण्ठस्थ करना पड़ता था या हाथ से लिखकर नकल करना पड़ता था, तो वह इस बात की पूर्ण सावधानी रखता था कि उसका कष्ट-साध्य कार्य उतना ही मूल्यवान सिद्ध हो।"

"ठीक व्यक्ति अच्छी पुस्तकों का चुनाव कर लेगा यदि ये छपी हुई हैं।"

"पहले प्रायः सब अच्छी पुस्तकें थीं, किन्तु अब हज़ारों में एक भी नहीं।"

"कोई व्यक्ति आपको बुरी पुस्तकों को पढ़ने के लिये दबाव नहीं डालता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किन्तु वे वहाँ हैं और वे गुमराह करती हैं या सिर्फ समय का अपव्यय। पुस्तकें सम्माननीय मादक औषधि बन गई हैं।"

"तब आपकी सभ्यता का क्या आदर्श है ?"

"सब से पहले तो यह मशीनों से निर्मित सभ्यता नहीं है। यह बिलकुल पूर्णतया व्यक्तिगत है। यह वस्तु की अधिकता से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। मनुष्य की साधारण आवश्यकताएं वे हैं—जिनको तृप्त करने से शरीर और मन काम के योग्य होता और वश में रहता है। क्योंकि उनके पास करने के लिये एक काम है।"

"कौन सा काम ?"

"वास्तविकता, असीम सत्य और प्रेम को पाने का कठिन काम। मानवता के पास दूसरा काम नहीं है। और यदि वह दूसरा कोई काम करती है—तो उसका काम स्वयं अपने विनाश के लिये होता है।"

"हम इससे सहमत हैं कि हमारे सृष्टि-कर्त्ताओं के जीवन का लक्ष्य हमारी परिधि से परे है। किन्तु यदि और कुछ नहीं तो हम इतने पर भी अच्छे भोजन वस्त्र और मकानों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।"

"हम उन्हें बहुत साधारण औज़ारों से प्राप्त कर सकते हैं।"

"हमारी सहायता से आपको ज्यादा फुरसत मिल जावेगी।"

"सचाई की खोज, फालतू समय का व्यवसाय नहीं है। काम उसी का एक भाग या अंश है। जरूर ही मशीन पर का लगातार कठिन नीच कर्म नहीं, किन्तु धूप में खेत पर का सुखद काम, बगीचे मित्रों या कुटुम्बी जनों के बीच का हर्षप्रद काम।"

"किन्तु आपकी वस्तुओं की योजना में विज्ञान को भी तो स्थान है।"

"सिर्फ वहां तक जहां कि वह सर्वोच्च विज्ञान की ओर ले जाती है।"

"और कला ?"

"सिर्फ वहां तक—जहां कि वह अनुपम चरम सौन्दर्य्य की ओर ले जाती है।"

"और खोज की आत्मा ?"

"सिर्फ उस सीमा तक जहां कि वह सर्वोत्कृष्ट खोज की ओर ले जाती है।"

"महात्मा जी! आपकी योजना में हम लोगों के लिये स्थान नहीं है। अब यह स्पष्ट हो गया है। लोग, आपके समान जो एक दृष्टि-वादी नहीं हैं, उनके पास जाकर आश्रय लेंगे। आपके लिये, कर्ता के पास जाने का मार्ग, सृष्टि से जुदा है। एक मार्ग हो सकता है—सृष्टि के भीतर से—वस्तु की अधिकता से। उसी मार्ग में हमारे लिये भी स्थान है।"

"सब मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते अन्त में सभी मार्गों पर से तुम्हें भगा दिया जाएगा मैं उसे बिलकुल आरम्भ से ही कर रहा हूँ। क्योंकि और प्रेम के मार्ग में जो मनुष्य द्रुतगामी (Rocket) में हैं—वह सबसे लम्बा समय लेता अपने हृदय में प्रवेश पाने के लिये, एक कदम की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है।"

"अच्छा गांधी जी! प्रणाम !!। यदि कहना सही है—तो एक दिन हम लोग सुन्दर छोटी छुरियों, कुदाल, फावड़ों और हलों की आपके पास वापिस लौटेंगे।"

"नमस्कार! लौटियेगा नहीं। हमें तैय्यार (Re made) वस्तुओं की जरूरत नहीं है। आप माता पर मोर्चा खाकर विलुप्त हो जाइएगा।"

हतोत्साहित प्रतिनिधि मण्डल ने कुटिया से ली। मैं बिदाई देने के लिये उनके साथ था। की आत्मा ने मेरे ऊपर सन्देह दृष्टि डाली और शक्ति से चालित करघे ने नैराश्य पूर्ण दृष्टि से मेरी की कमीज़ की परीक्षा की। किन्तु मैंने जब परिचय एक इन्जीनियर के रूप में दिया तो वे सब रसिकता से आन्दोलित हो उठे।

"विनाशकों के मध्य में एक सृजन-कर्ता," आवाज़ में ऐन्जिन फुसफुसाया "किसलिये! क्या उनके मन के परिवर्तन की कोशिश कर रहे हैं!

मैंने कहा, "मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता मेरे यहां ठहरने का यह प्रयोजन नहीं है। ऐसा होता है जैसे मेरा ही परिवर्तन हो रहा है।"

"तो आप भी उनके फन्दे में हैं!"

"ठीक वैसे नहीं। मैं दर्शन ज्ञान की खोज हूँ। किन्तु भारत और मानवता की यथार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च १९४६]

ज में। गांधी जी भारत को जानते हैं और वे ही रतवर्ष हैं। उन्हें जानना भारत को ही जानना है। कुछ भारतीय हैं—उसका सार उन्हीं में हैं। और सीलिये वे बिलकुल ही साधारण मानव हैं।"

आत्मा ने कहा, "आपने हमारी बात-चीत सुनी है। ह सादगी पूर्ण है। वे पाषाण, लौह और रुई के मदों के युग को वापिस लौटना चाहते हैं।"

"ठीक उस प्रकार नहीं। वे अन्वेषण कार्य का घात करते हैं, किन्तु उस तरह नहीं—जो कि आवश्य-ताओं को उलझन की ओर ले जातीं या अग्रसर करती उत्पत्ति का केन्द्रीकरण करती है, और पहुँचाती है नुष्य जाति को परतन्त्रता की पराकाष्ठा तक। एक पत्थर एक लकड़ी के टुकड़े को, मुट्ठीभर कपास या ऊन बढ़ते हुए पास के वृक्ष के कुछ सूखे पत्तों या उसकी ल के टुकड़ों को उठाने के लिये और साधारण उपाय कला का अंश पैदाकर, जहां कि उत्पादक विचार और लुओं के सौन्दर्य को जानने का सहज ज्ञान इतना धिक है कि चरखा, करघा, या कपड़े के एक टुकड़े को क के ऊपर आत्मा के बोझिल भार से उसे जीवित रखा या है। इस तरह की आत्मिक बोझिलभार की अधि-ता एंजिन या बिजली से चालित करघे पर नहीं है।

"क्यों नहीं, आविष्कारकों की पीढ़ी हमें वर्तमान स्था तक खींच लाई है।"

"यह कलाकारों की पीढ़ियों के द्वारा चित्रित की हुई कीर के समान है। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं है।"

"नहीं, तो फिर कोई प्रगति कैसे हो सकती है?"

"सच्चा ज्ञान और आविष्कार कला ही वास्तविक ला के समान है। कला स्वेच्छापूर्ण सहज उपायों का योग कर शीघ्र लाभदायक और सुन्दर वस्तु उत्पन्न ने की प्रेरणा देती है। आम जनता के लिये मशीन त दुर्लभ वस्तु है। वह न उसका निर्माण कर सकता और न प्रशंसा।"

"तब क्या?"

"गांधी जी हरेक व्यक्ति को सृष्टिकर्त्ता बनाना चाहते सिर्फ थोड़े विशेषज्ञ नहीं।"

"सो वे कैसे करेंगे?"

"उचित प्रकार की सृष्टि के काम को प्रोत्साहन देकर। उत्पादन को अवसर देकर। उसकी बाधायें दूर कर।"

"कृपया उसकी व्याख्या कीजिये।"

"जब सामूहिक उत्पादन समाप्त हो जाता है और हरेक ग्राम को अपने वर्तमान खर्च के लिये उत्पादन करना पड़ता है, तो लाखों कारीगर औजारों और हथि-यारों के बनाने में व्यस्त हो जावेंगे। उन्हें स्थानीय वस्तुओं, धातुओं का प्रयोग करना पड़ेगा, स्थानीय वंश-गत कला को अपनाना पड़ेगा, और व्यक्तिगत निर्णय पर अमल करना पड़ेगा आकृति और बाहरी रूप संवारने के दोनों विषयों में। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान प्रणाली में, जहां कि थोड़े मस्तिष्क-विशेष जटिलता में जटिलता पैदा करते हैं और विशाल जन समुदाय अवि-चार पूर्वक उत्पादन कर उनका उपयोग करते हैं—उससे अधिक वहां आविष्कार और उत्पादन प्रणाली को अपर-मित व्यापक क्षेत्र मिलता है।"

"किन्तु क्या वहां हम लोगों के लिये भी स्थान है?" मशीन की आत्मा ने पूछा।

"कला के ही प्रश्न को लो। फिल्म अपने को कला का अङ्ग कहने का दावा करती है, किन्तु है तो मशीन के द्वारा ही बनी हुई कला, और वह भी बिक्री के लिये और इसीलिये वह कोई कला नहीं है। एक ग्रामीण अपने पास के शहर में फिल्म देखकर जो वस्तु सौन्दर्य और मनोभावना को लेकर बाहर आता है— उसके वह अधिक ग़रीबी ही अनुभव करता है। किन्तु जब ग्राम के सब किसान सहानुभूतिपूर्वक ग्रामीण कथा के आधार पर रचित नाटक को खेलने के लिये एकत्र होते हैं; सब ग्रामवासी कारीगरों को अपनी चतुरता और आविष्कार-कर्त्ता को दिखाने का पूरा अवसर दिया जाता है, कोई टिकट नहीं बेचे जाते, सब खर्च नक़द या किसी रूप में स्वेच्छा से चन्दे की शकल में दिया जाता है, तब हरेक व्यक्ति इस नाट्य प्रदर्शन से और धनी बन जाते हैं, कोई भी गरीब नहीं। इसी प्रकार जब लाखों गज सूत मिल में कत जाता है—तो यह भयङ्कर सामाजिक अपव्यय है। सिर्फ रुपयों की ही बरबादी नहीं है बल्कि कारीगरों के उत्पादन के गौरव कपास की छोटी फसलों बच्चों के बीच में मध्यान्हवेला में कातने के शान्तिपूर्ण घंटों की भी बरबादी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब हम लोगों के लिये कोई आशा नहीं ? आपकी योजना में बिलकुल कोई स्थान नहीं ?"

"मनुष्य आपकी सेवा करने की ज़िम्मेदारी नहीं उठा सकता। आप सदैव अपने नौकरों को लुगदी (Pulp) की तरह कुचल देते हैं। किन्तु जब बनाने के लिये आप सरल हो जाते हैं, सादे, समर्थ और सुन्दर घर तथा खेत के छोटे छोटे मित्र, गांधी जी, मुझे निश्चय है, कुछ न होकर भी आपके लिये स्नेह ही करेंगे। आपको जो आवश्यकता है—वह है—पुनर्जन्म की। बुननेवाली जेनी (Jenny) को फिर से मीठा गीत गानेवाला चरखा हो जाना चाहिये। पावर लूम को फिर से जुलाहे का स्वामिभक्त मित्र बन जाना चाहिये और इसी तरह आप सब लोगों को भी।"

आत्मा ने कहा, "आशा की झलक दिखाने [illegible] हम आपको धन्यवाद देते हैं। आप जो बनाना [illegible] हैं—वे ही हम हैं। आप सृष्टि-कर्त्ताओं को [illegible] चाहिये कि हम आपका विनाश न करें। हम [illegible] आपके बच्चे हैं।"

" आप हमारे लालच और पागलपन के [illegible] इसलिये आप लोगों को जाना होगा। किन्तु आप [illegible] प्रेम, आश्चर्यजनक सादगी, सुन्दर और [illegible] पूर्ण शिशु बनकर पुनः वापिस आवेगें और अपने [illegible] कर्त्ता के मस्तिष्क और हृदय के गौरव तथा धन [illegible] सदैव हमारे साथ रहेंगे।"

[अनुवादकः स० सि० धन्यकुमार [illegible]

ऊषे

कुमारी रज़िया नक़वी

उषे सुन्दरी शाश्वतगति से नील गगन में आतीं तुम।
कुंकुम की थाली लेकर नभ-आँगन में बिखरातीं तुम॥
मुसुकातीं तुम लास्य मनोहर बन कण कण में छाती तुम।
अमर सँदेशा क्षण भंगुर मानव को नित दे जातीं तुम॥
जग उठता संसार पद्म की कलियाँ खिल जातीं तुमसे।
गीतों की झंकार मधुर विहगावलि ले आतीं तुमसे॥
टूट-टूट नव भाव तुम्हींसे इस जगती में छा जाते।
कवियों के मानस पट पर धीरे से अङ्कित हो जाते॥
शुभागमन से स्वर्णप्रात के घूँघट में खो जातीं तुम।
नव प्रभास की स्वर्णिम माधुरिमा में चुप सो जातीं तुम॥
नित्य-अनित्य भाव के अनुपम चित्रांकित कर जातीं तुम।
अपनी शान्त समुज्वल शुचिता से जीवन भर जातीं तुम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ण-सङ्गीत

श्री करील

छवि की यह अनुपम निर्मलता कवि की यह सम्पत्ति सुहायी।
जिसके संवर्द्धन पर निर्भर जीवन की महिमा मनभायी॥
जिसके मधुरामृत के रस से भव भर में मंगल-गति छायी।
प्राणों की सूखी सरिता में वह रस की धारा लहरायी॥

वसुधा की मंजुल माया में फैली जिसकी सरस कहानी।
तुम्हें सुलभ वह आज भुवन के जीवन का आधार जवानी॥
उठो विजय की शंखध्वनि से जागे बल बलिदान तुम्हारा।
आज प्रगति के समरांगण में पुण्य पुरुष आह्वान तुम्हारा॥

आज गर्व से शीश उठाओ उमड़ पड़े अभिमान तुम्हारा।
वीर अवनि अम्बर में गूंजे यह प्रमत्त रण-गान तुम्हारा॥
आज तुम्हारी शुभाराधना उतरी शक्ति लिये मनमानी।
आज लुटाती तुम पर सब कुछ जीवन का आधार जवानी॥

सुख के सब उपहार जगाता भावों का संघर्षण आया।
अपनी नव-गति से लहराता पौरुष का आकर्षण आया॥
भव में स्नेह सुधा बरसाता गौरव का नव-दर्शन आया।
विजय-ध्वजा नभ में फहराता धरती पर परिवर्तन आया॥

ओ मानवता के अवलम्बन शक्ति साधना के अभिमानी।
उठो गले मिलती है तुमसे जीवन का आधार जवानी॥
आज तुम्हारा मंगलयश ले उतरा भव में सुखद सबेरा।
हृदय खोलकर आज उषा ने तुम पर निज माधुर्य बिखेरा।

आज तुम्हारे बल विक्रम ने जग में नव-जागृति को प्रेरा।
आज तुम्हारे नव यौवन में तपस्तेज का वरद बसेरा॥
आज तुम्हारे मुक्त-बोध ने परिवर्तन की महिमा जानी।
आज लुटाती अपना वैभव जीवन का आधार जवानी॥

विहगों ने कोमल कण्ठों से गीत तुम्हारे यश के गाये।
आज प्रकृति की दिव्य छटा में तरुण तुम्हारे स्वर मुसकाये॥
आज तुम्हीं से कवि ने अपनी कविता के शृङ्गार जगाये।
आज युवक वरदान तुम्हारे जल, थल, अम्बर में लहराये॥

मर मिटना ही धर्म तुम्हारा पुरुष पुरातन तुम नर मानी।
तुम्हें सुलभ है आज भुवन के जीवन का आधार जवानी॥
विश्व तुम्हारे गुरु गौरव पर अपना यह विस्तार बसाता।
मानवता का पीड़ित मन भी तुम पर तन मन प्राण चढ़ाता॥

आज तुम्हारा सर्व, विसर्जन यह सोया संसार जगाता।
देख रही है तुम्हें तुम्हारी वीर वन्दिता भारत माता॥
परम शक्ति के तुम आराधक तुम इस जीवन के बलिदानी।
आज तुम्हीं पर बलि बलि जाती जीवन का आधार जवानी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-दर्शन

श्री उपेन्द्र

तुम देख चुके हो महाक्रांति, विकराल काल के परिवर्तन,
वसुधा की छाती पर अव्याहत गति से क्रुद्ध प्रलय-नर्त्तन।
सन् सत्तावन का रौद्र रूप, जिसकी ज्वलन्त वह याद अमर,
उन वीर शहीदों की स्मृति में रो देते नयन, सजल अंतर।

देखा तुमने, जलियान बाग़, शोणित से लिखी कहानी वह,
मां-बहनों की मांगों की मिटती-सी सिंदूर निशानी वह।
देखा तुमने अपनी आंखों वह स्वर्ण-भूमि बंगाल-मही,
वह विषम क्षुधा का चिर तांडव, श्री मिटी जहां से रही-सही।

बांकी झांकी पर एक स्वयं करुणा थी जहां पुकार उठी,
मानव-जीवन की अमर ज्योति! थी जहां मृत्यु भी हार चुकी।
यह तो बिहार! चिररुग्ण, व्यथित अपनी गरिमा का गान लिए,
कंकाल मात्र अवशेष पड़ा उर में बिखरे अरमान लिए,

शिशु मां की छाती से लिपटे निष्प्राण दूध की याद लिए,
चल बसे, देखती मां बेबस पत्थर बन विपुल विषाद लिए।
घर-द्वार हीन नारियां कोटि हैं अर्द्धनग्न सोतीं पथ पर,
वह रंग जवानी का न रहा, प्रत्यक्ष बुढ़ापा ज्वर-जर्जर।

होता रहता निर्धनता का जिनके घर में रौरव तांडव,
है नग्न निराशा खेल रही हो रहा ध्वनित नित दारुण रव।
वह जनक, पार्श्व की वीर भूमि मुर्दों का है आवास बनी,
विजयी अशोक की जयी भूमि भिखमंगों का इतिहास बनी।

हैं आज अशिक्षित, चिर लांछित गौतम-अशोक की संततियां,
दुःख-व्याधि भूख से ग्रसित दीन मिथिला की बिखरी वे निधियां
जिसके 'गौतम' ने प्रथम-प्रथम जग को जीवन-संदेश दिए
अज्ञान-तिमिर में भटक रहा वह स्वयं क्षुद्रतम वेश लिए।

वह 'राम-राज्य' अब नहीं यहां शोषण का है साम्राज्य सबल,
सुख-शांति मिटी, वे देव तुल्य मानव फिरते हैं दीन विकल
जिनको अपने में कहीं नहीं है रंचमात्र विश्वास रहा,
ठोकर पर ठोकर खाते हैं कुछ भी न स्वत्व का लेश रहा।

वे वीर कि जो हंसते हंसते साम्राज्य-दान कर देते थे,
मानव क्या सुर तक को भी जो हँस प्राण-दान दे देते थे!
उनकी संततियां भटक रहीं सड़कों पर अब मारी-मारी,
असमय में ही हर लेती है नित प्राण गरीबी हत्यारी!

कवि! गान करो कुछ ऐसा तुम उनमें जागे पुरुत्व-सबल,
पहचान सके मानव-मानव को जीवन हो ज्योतित निर्मल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष-पान करा दो !

श्री छोटेलाल भारद्वाज

आज सिन्धु के मंथन में
मुझको विष-पान करा दो ।

अमृत का अमरत्व आज मैं
तनिक नहीं झांकूंगा ;
साक़ी ! मद की मादकता को
क्षणिक नहीं आंकूंगा ;
लो, रख दूं प्राणों की बाज़ी
तुम बलिदान करा दो ;
आज सिन्धु के मंथन में
मुझको विष-पान करा दो ।

उबल उठी है मेरी तृष्णा
नीलकंठ बनने को ;
छल-छल छलक उठा हालाहल
उमड़-उमड़ चलने को ;
मेरे उर में ज्वाल जलाकर
जग का त्राण करा दो,
आज सिन्धु के मंथन में
मुझको विष-पान करा दो ।

सुर-असुरों का वर्ग भेद क्या—
अमृत और सुरा का ;
मैं मानव हूं, जोड़ रहा हूँ
कण-कण मानवता का ;
मेरी तो सम्पत्ति हलाहल
मुझको दान करा दो ;
आज सिंधु के मंथन में
मुझको विष-पान करा दो ।

आज गरल का महापराक्रम
तुम्हें दिखा जाऊँगा ;
मरणशील हूं, पर अपना
अमरत्व सिखा जाऊँगा ;
विष हो सृजक, अमृत हो सर्जन
वह आह्वान करा दो ;
आज सिंधु के मंथन में
मुझको विष-पान करा दो ;

गीत

श्री नरेशकुमार

भिक्षु ! दीप झिपने मत देना !
समय नील अश्वों के रथ पर,
मुझे मिला था सन्ध्या-पथ पर;
जन्म-मरण का सन्धि-पत्र ले
फैली थीं सांसें इति-अथ पर;
नीड़ खोजकर स्वर सोये हैं;
—आंखों में आंसू बोये हैं;
वंशी को दुहराने मत दो
अब पूजन का कण्ठ किसी का;
रजनी का निर्माल्य जग रहा
यह प्रकाश का फूल किसी का
देख, जागरण की पंखुड़ियां पलकों से चुनने मत देना !
गाकर अभी अभी आंधी के
छन्द धरा को नींद आ गई;
मेघों के कोलाहल-तट पर
नीरवता की उमस छा गई;
अन्धकार ने पलक आंज दी;
कुंकुम के मिस बुझी सांझ दी;
विद्युत के तारों पर झरझा !
आज हंसी की मीड़ न दोगे ?
मैं परिचय सब दे दूंगी, पर
तम ! तुम दिन के देश चलोगे ?
मेरी धूलि सांस लेती है, इस पर तो चलने मत देना !
तुम नेपथ्य-कथा होने दो
हलचल 'हां' भरती जाएगी;
जब तक भी दो कूल कहेंगे
कालिन्दी बहती जाएगी;
लौटा दो गोपी को यमुना !
उसका यह नीलम का सपना;
आज अधूरा गीत गा रहा
कोई सूने वृन्दावन में ;
सांसों का विश्राम भूल
आई हूं घटनाओं के वन में;
जब प्रणाम में यह श्वासोत्पल झुकता हो झुकने मत देना !
भिक्षु ! दीप झिपने मत देना !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसन्त

श्री शील चतुर्वेदी

गाने को गाते हैं गायन नूतन बसन्त आवाहन में—
पर प्रकृति सदृश उल्लास कहाँ हो सकता बन्दी जन-मन में!

इन द्रुम-वल्लरियों की कतार—
हरिताभायुत अवयव सँवार,
पथ पर झुक झूम झूम जातीं—
करती ऋतु-पति-प्रेमाभिसार;

तरु पतिकायें बँधतीं सुख से प्रेमी-तरु के आलिंगन में—
पर बेबस मानव जकड़ा है हा! पराधीनता-बंधन में!
गाने को गाते हैं गायन नूतन-बसंत-आवाहन में—
पर प्रकृति सदृश उल्लास कहां हो सकता बंदी-जन-मन में!

ऋतुपति ने जब अँगड़ाई ली
सुरभित-समीर सरसाई ही
बौरों की वायु बही ज्यों ही—
तो महक उठी अमराई भी,

कोकिल के स्वर कूजे होंगे, कुछ दूर कहीं निर्जन वन में—
उसका सुख कैसे मानें हम निज परवशता में क्रन्दन में!
गाने को गाते हैं गायन नूतन बसन्त आवाहन में,
पर, प्रकृति सदृश उल्लास कहां हो सकता बंदी जन मन में!

बिछ गये पथों पर शुभ्र-सुमन
फूले न समाते हैं उपवन,
निज में मधु-चन्द्र छिपा हँसता—
स्वच्छन्द सजग सा नील गगन,

मधु-कोष लुटाते हैं गुलाब लवलीन हुये अलि-गुंजन में—
मानव का राग कहां उमड़े, इन हथकड़ियों की झनझन में?
गाने को गाते हैं गायन—नूतन बसंत आवाहन में—
पर प्रकृति सदृश उल्लास कहाँ हो सकता बन्दी जनमन में!

हो आज एकता का विकास
बालारुण रवि का सा प्रकाश
उर-कमल-दलों के पलक खोल
भर दे परिमल का सा सुहास

तब प्रकृति-पुरुष की समता कुछ पाई जा सकती जीवन में,
जब स्वतंत्रता का सुख सौरभ बिखरे भारत के कण-कण में—
गाने को गाते हैं गायन—नूतन बसंत आवाहन में,
पर प्रकृति सदृश उल्लास कहां हो सकता बन्दी जन-मन में!

गीत

श्री शीतला सहाय श्रीवास्तव

मैं हूं उज्ज्वल पावन प्रभात।

विस्तृत धोया सा गगन-अजिर,
जिसमें न डोलते श्यामल घन
मैं उसमें करता केलि मृदुल,
चंचल चरणों से दौड़ मगन
दे रहा साथ कर में कर दे,
क्रीड़ारत् सुरभित-गात, वात
मैं हूं उज्ज्वल पावन प्रभात।

नवगतिमय हूं, नवद्युतिमय हूँ,
आशंकित जिससे तिमिर-व्रात
रन्ध्रों में छिप-छिप किसी भाँति,
है रहा कलुषमय प्राण पात
मैं रश्मि-शरों से बेध रहा,
उसका जर्जर विक्षीण गात
मैं हूँ उज्ज्वल पावन प्रभात।

तमसावृत निशि-उर डोल उठा,
उठ गये शिथिल-गति अलित पलक
मेरी चिरसंगिनि ऊषा का,
होता अब नर्त्तन ठाँव-ठौर
उसके सहास चंचल अधरों से,
फूटे गायन ज्योति-स्नात
मैं हूँ उज्ज्वल पावन प्रभात।

तरु-पत्रों में, वीरुध-वन में,
है लहर चेतना की अपार
कलियों के मादक नेत्र खुले,
सुमनों में नई सुरभि छाई
कूकी कोकिल पुलकायमान,
गूँजा अलि लख अब गई रात
मैं हूं उज्ज्वल पावन प्रभात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप का डसना और उसका इलाज

ब्रेज़िल वालों ने किस तरह मौत की तादाद घटाई

श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी०

ब्रेज़िल देश के पिनहेरस (Pinheiros) ज़िले में साओपालो (Sao Paulo) से पांच मील दूर एक हरी-भरी पहाड़ी के ऊपर सफ़ेद रंग की एक इमारत है। वहाँ से बुटानटान (Butantan) रियासत की ७०० एकड़ ज़मीन नीचे दिखाई देती है। लोगों में यह इमारत सांप घर (Snake Farm) के नाम से मशहूर है। हजारों सांप इस इमारत में पले हुए हैं। यहां के दवाखाने से ६,००० शीशियां, जिनमें इन्जेक्शन की दवा भरी रहती हैं, हर साल बाहर भेजी जाती हैं। सांप, बिच्छू या कोई ज़हरीली मकड़ी जब किसी को काट लेती है तो इस दवा का इन्जेक्शन देकर उसे अच्छा किया जाता है। सन् १९०२ में यहां काम शुरू हुआ था। इससे पहले ब्रेज़ील में ४००० और ५,००० के बीच आदमी हर साल सांप के डसने से मर जाते थे। यह क़रीब सब हट्टे कट्टे खेतिहर होते थे।

इस बड़ी इमारत के अन्दर बहुत से कमरे हैं जहां पर दवाओं पर तजरबे किए जाते हैं। इन्जेक्शन की दवाएं रखने के लिए ख़ासतौर से बने हुए गोदाम हैं। अलग अलग महकमे हैं जिनमें जानवरों पर और बीमारी के कीड़ों पर तजरबे किए जाते हैं। एक अजायबघर है जहां हज़ारों किस्म के सांप और तरह तरह के ज़हरीले कीड़े रक्खे गए हैं। एक फोटो खींचने का महकमा है। कई कमरे लेक्चर देने और दवाओं का असर दिखाने और उनका इस्तेमाल सिखाने के लिए हैं। आसपास के मैदानों में ज़हरीले और बिना ज़हरवाले सापों के रखने के लिए अलग अलग घेरे बने हुए हैं घोड़ों के लिए अस्तबल हैं। हाल का लगा हुआ जड़ी बूटियों का एक बाग़ है। काम करने वालों के रहने के लिए अलग मकान बने हुए हैं।

काम के तजरबे

लगातार तजरबों के बाद कई किस्म के इन्जेक्शन ईजाद किए जा चुके हैं। अलग अलग सापों के लिए अलग अलग इन्जेक्शन हैं। एक इन्जेक्शन जिसे 'एन्टी-क्रोटालिको' (Anti-Crotalico) कहते हैं उन ज़हरीले सापों या उसी तरह के दूसरे सापों के काटने पर इस्तेमाल किया जाता है जिन्हें 'रैटल स्नेक' (टटीरिआ सांप) कहते हैं। एक दूसरा 'एन्टी-इलेपिनो' (Anti-elapino) इन्जेक्शन उन ज़हरीले सापों के काटने पर इस्तेमाल किया जाता है जो हिन्दुस्तान के काले कोबरा से मिलते जुलते हैं और जिन्हें वहां 'इलेप्स' कहते हैं। एक और 'एन्टी-बोथ्रोपिको' (Anti-bothropico) इन्जेक्शन एक ख़ास किस्म के ज़हरीले सांप के डसने पर इस्तेमाल किया जाता है जिन्हें 'लकेसस' (Lachesis) कहते हैं। यह इन्जेक्शन ख़ासतौर से 'जरारका' (Jararaca) सांप के डसने पर लगाया जाता है। डा० ब्रेसिल ने जो वहां के डाइरेक्टर हैं और जिन्होंने वहां पर यह काम शुरू करवाया है, एक इन्जेक्शन एन्टी-ओफ़िडिको (Anti-ophidico) नाम का निकाला है। जब कभी डसने वाले सांप की किस्म का पता नहीं चलता तब इसी इन्जेक्शन को इस्तेमाल करते हैं। इसके लगाने से किसी भी तरह के सांप काटे का इलाज़ हो सकता है।

आमतौर पर जब सांप किसी आदमी को डस लेता है तो आदमी सांप की किस्म को पहचान लेता है। सांप एक सुस्त जानवर है। इस सुस्ती की कमी को पूरा करने के लिए उसे कुदरत से ज़हर मिला है। कुण्डली मार कर, अपनी लम्बाई की एक तिहाई दूरी पर से ही सांप हमला कर सकता है। इस तरह हमला करने के बाद भागने की ताक़त उसमें नहीं रह जाती और कई दिन तक उसमें ज़हर नहीं रहता। इसलिये उसे आसानी से पकड़ा जा सकता है। आजकल ब्रेज़ील के गांवों में खेत पर काम करनेवाले किसी मज़दूर को जब सांप डस लेता है तो वह मज़दूर उस सांप को पकड़ कर, पास के किसी देहाती दवाख़ाने में लेआता है। वहां इन्जेक्शन देने की पिचकारी और दवा वगैरह सब उसे मिल जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप के डसने के बाद आमतौर पर सूजन, चक्कर आना, बेहद दर्द, आखों से न दिखाई देना, बेचैनी, नसों से ख़ून का फूट निकलना वग़ैरह नतीजे पैदा होजाते हैं। वहां के लोग अब इन चीज़ों से नहीं घबड़ाते और न पुराने इलाज के तरीकों की तरफ़ दौड़ते हैं। पुराने ढङ्ग से इलाज करनेवाले या तो 'जागर' (भेड़िये की तरह का एक जानवर) की खाल या तीतर के पंख घाव के ऊपर लगा देते थे या सांप की कलेजी वग़ैरह निकाल कर खिला देते थे या सांप के ज़हर को काटने के लिए कोई और ज़बरदस्त ज़हर की ख़ूराक पिला देते थे।

किसानों को बचाना

किसानों के बचाव के लिए अब इन्तज़ाम किया जाने लगा है। डा० ब्रेसिल और वे किसान अब मिल कर काम करने लगे जो दूर दूर तक उन तलहटी के जंगलों में खेती करते हैं, जहां सांप बहुत पाए जाते हैं। बुटानटान के बड़े दवाखाने और किसानों में बराबर ख़त किताबत होती रहती है। ये किसान सांप और दूसरे किस्म के ज़हरीले जानवर भेजते रहते हैं। फ़ौरन ही उन्हें ख़त के ज़रिये बतलाया जाता है कि उनकी भेजी हुई चीज़ें कितने और किस काम की हैं। इस तरह किसानों की जानकारी बढ़ती रहती है और साथ ही साथ सापों और दूसरे ज़हरीले जानवरों के काटने से बचने के लिए उनके पास दवाएं भी भेज दी जाती हैं। यह तरह तरह के ज़हरीले कीड़े खेती करते वक़्त निकलते ही रहते हैं। तरह तरह के इन्जेक्शन की हर मुहरबन्द शीशी जब कहीं भेजी जाती है तो उसके साथ साथ दवा को इस्तेमाल करने का सही तरीका और कुछ छपे हुए सवाल भी भेजे जाते हैं। जब किसी को कोई सांप वग़ैरह काट लेता है तो इन सवालों के जवाब लिख कर, ख़ाने पूरी करके, बुटानटान भेज दिये जाते हैं।

इस तरह बहुत दिलचस्प आंकड़े जमा हो गए हैं। इन आंकड़ों से इस इलाज की कामयाबी भी साबित होती है और यह भी मालूम हो जाता है कि किन हालतों में दवा काम नहीं करती। यह भी पता चलता है कि सांप के डसे हुए लोगों में कितने मर्द होते हैं और कितनी औरतें, बदन के किस हिस्से पर सांप ज़्यादा हमला करता है, किस उमर के आदमी पर हमला करता है और किस किस्म के सांप ज़्यादा हैं वग़ैरह।

इन आंकड़ों से पता चलता है कि क़रीब क़रीब मौके पर, सांप के डसने के बाद, जब आदमी को इन्जेक्शन लगाया गया तो जान बच गई। दो फ़ी सदी कम आदमी दवा देने पर भी मर गए। जो लोग बच नहीं हो पाए उसकी वजह या तो यह थी कि सांप के डसने के बहुत देर बाद उनका इलाज शुरू किया गया या किसी ग़लत तरीके से काम किया गया। यह भी साबित हो गया कि ज़्यादातर तादाद (७५ फ़ी सदी) ऐसे लोगों की है जिनके पैरों या टाँगों पर सांप ने हमला किया। इसलिए वहाँ के लोगों को सलाह दी गई कि खेतों पर काम करनेवाले हमेशा जूते और गेटिस इस्तेमाल करें तो अच्छा है। जिन लोगों पर सांप ने हमला किया उनमें मर्दों की तादाद बहुत ज़्यादा है। आंकड़ों से इन लोगों की उमर १५ और ४० के बीच में है। यह भी मालूम हुआ है कि 'जाराराका' किस्म के सांप ने ही सबसे ज़्यादा लोगों पर हमला किया है। यही सांप ब्रेज़िल में बहुत पाया जाता है और खुली जगहों में खेतों वग़ैरह में अक्सर मिलता है।

सांपों का बाग़

बुटानटान की उस ख़ास इमारत के बाहर मैदान है। उस मैदान में एक बाग़ है। इस बाग़ के चारों तरफ़ पानी की एक छोटी सी खाई है। खाई के बाद एक सीमेन्ट की नीची दीवार है जिसके ऊपर रेलिंग्स लगी हुई हैं। लेकिन बाग़ में फूलों की क्यारियों की जगह सीमेन्ट की बहुत सी गुम्बजदार छोटी छोटी इमारतें हैं। इन्हें देखने से यही ख़्याल होता है कि ये पुराने फैशन के शहद की मक्खियों के छत्ते हैं। इनके चारों तरफ़ सूराख़ हैं। कहीं कहीं इन सूराखों से ज़हरीले सापों का चौड़ा, तिकोना और डरावना सर निकलता हुआ दिखाइ देता है। बाक़ी और सांप इमारतों के ऊपर के हिस्से में लपटे रहते हैं। कुछ घास पर पड़े रहते हैं या खाई में धीरे धीरे तैरते रहते हैं। इस बाग़ में जो बाहर से बिलकुल मामूली चीज़ मालूम होती है, सौ तरह तरह के सांप हैं जो आदमियों और जानवरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए बहुत ख़तरनाक हैं। लेकिन वहाँ के काम करनेवाले उन सापों के बीच बिना किसी डर के आज़ादी से घूमते और उन्हें खिलाते रहते हैं।

दूसरी तरफ़ इसी तरह का एक दूसरा बाड़ा है। यहाँ पर भी चारों तरफ़ पानी की एक छोटी सी खाई है जो पक्की दीवार से घिरी हुई है। इस बाड़े में ऊँचे और साये दार दरख़्त लगे हुए हैं। यहाँ बिना ज़हर के सांप रक्खे गए हैं। इन साँपों पर तजरबे किए जाते हैं। यहाँ के कुछ सांप जो ज़मीन पर पड़े रहते हैं या जो दरख़्तों की शाख़ों से लटकते रहते हैं देखने में इतने ख़ौफ़नाक मालूम होते हैं कि उनके ख़तरनाक न होने का भरोसा नहीं होता। अक्सर देखने में आया है कि दो ऐसे सापों में से जो एक दूसरे से रंग और निशानों में बिलकुल मिलते हुए हैं, एक बहुत ही ज़हरीला है और दूसरा बिलकुल ज़हरीला नहीं।

ज़हरीले सापों को खाना देने की कोई ज़रूरत नहीं होती क्योंकि वे बिना खाए क़रीब एक बरस तक रह सकते हैं। उनके रखने की ग़रज़ सिर्फ़ यह होती है कि इन्जेक्शन की दवा बनाने के लिए उनमें से ज़हर निकाला जा सके।

ज़हर निकालना

सांप से ज़हर निकालने के लिए जानकार आदमी की ज़रूरत होती है। वह एक लकड़ी की मदद से, सांप के सिर के पीछे के हिस्से को इस तरकीब के साथ पकड़ता है कि सांप के जबड़े खुल जाते हैं। इसके बाद वह सांप की ज़हर की थैली को दबाता है। यह ज़हर की थैली सांप के दो ख़ास दाँतों के पीछे, नीचे की तरफ़ होती है। इन्हीं दो दाँतों से सांप काटता है। थैली पर दबाव पड़ते ही सांप के दोनों बड़े और मुड़े हुए दाँतों के सिरे पर एक एक बूँद निकल आती है। इन बूँदों को शीशे के छोटे बर्तन में बड़ी होशियारी के साथ ले लिया जाता है। ये बूँदें बड़ी क़ीमती होती हैं। इनमें इतना ज़हर होता है कि ये आधे दर्जन आदमियों की जान अच्छी तरह ले सकती हैं। इसके बाद सांप को बाड़े में वापस डाल दिया जाता है जहाँ पर वह कुछ दिनों के लिए बिलकुल सुस्त और निकम्मा हो जाता है। सांप की ज़हर की थैली को फिर से भरने में १५ से ३० दिन तक लग जाते हैं।

इन्जेक्शन के लिए दवा बनाने में घोड़े से काम लिया जाता है। डा० ब्रेसिल का कहना है कि घोड़े के ख़ून में एक अजीब गुण यह होता है कि उसके अन्दर एक ऐसी ख़ास चीज़ बनती रहती है जो ज़हर के असर को दूर करने में बड़ी मदद करती है। पहले घोड़े के अन्दर, इन्जेक्शन के ज़रिये, एक ऐसी दवा काफ़ी मिक़दार में पहुँचा देते हैं जिससे घोड़े को ज़हर के असर को दूर करने में मदद मिले। इसके बाद सांप के ज़हर का इन्जेक्शन घोड़े के लगाया जाता है। पहले बहुत थोड़ा थोड़ा फिर ज़रा ज़्यादा। घोड़े का बदन, फ़ौरन ही, इस ज़हर के असर को दूर करने के लिए, एक नई चीज़ तय्यार करता है जो ज़्यादातर उसके ख़ून से जमा हो जाती है। घोड़े की हालत को बड़े ग़ौर से देखा जाता है और उसकी जाँच होती रहती है। ठीक मौके पर उसका थोड़ा सा ख़ून निकाल लिया जाता है। यह ख़ून एक ख़ास तरह के बर्तन में रक्खा जाता है जहां पर २४ घण्टे के अन्दर एक तरह की ठोस चीज़ एक जगह पर जमा हो जाती है और दवा के लिए सीरम (Serum) अलग बच रहता है। इस सीरम को होशियारी से अलग कर लिया जाता है। सात दिन के बाद यह इस्तेमाल करने लायक़ हो जाता है।

इस दवा की शीशियां अस्पताल, डाक्टरों और दवाख़ानों में भेज दी जाती हैं। अगर कोई किसान एक जिन्दा सांप पकड़कर भेज दे तो उसे दवा की एक शीशी भेज दी जाती है। छै ज़िन्दा सांप भेजने पर छै शीशियां और एक पिचकारी मुफ़्त भेज दी जाती है। सांप पकड़ने के ख़ास औज़ार और उन्हें भेजने के ख़ास बक्स भी किसानों को दिये जाते हैं। ब्रेज़ील की ज़्यादातर रेलवे कम्पनियां इन बक्सों को बिला महसूल इधर उधर भेज कर इस काम में मदद करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

लिपि - विकास, ले० श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए०; प्रकाशक, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा; पृ० संख्या ७२; मूल्य ॥)

यह छोटी सी पुस्तक विद्यार्थी समाज तथा सामान्य पाठक के लिए लिखी गई है। सात अध्यायों में नीचे लिखे विषयों पर विचार किया गया है--

लिपि का आविष्कार, भारत की प्राचीन लिपियां, ब्राह्मी का विकास, अङ्कों का विकास, शब्दाङ्क सूची, अङ्कों का संक्षिप्त इतिहास, हिन्दी तथा अन्य लिपियाँ।

पुस्तक के आरम्भ में प्रो० हरिहरनाथ टंडन के दो शब्द दो पन्नों में हैं, जिनमें आशा की गई है कि "यह पुस्तक विद्यार्थियों को इस विषय का आवश्यक ज्ञान करा सकेगी।" हमारी भी यही आशा है। हिन्दी साहित्य में भाषा विज्ञान और लिपि के विकास आदि की सामग्री इतनी कम है कि जो कुछ भी कार्य इस दिशा में हो उसका स्वागत करना चाहिए। श्री मेहरोत्रा जी बहुधा इन विषयों पर मासिक पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित करते रहे हैं और उन्होंने अध्ययन में अच्छी गति प्राप्त कर ली है। प्रथम अध्याय 'लिपि का आविष्कार' पूरा का पूरा पाश्चात्य विद्वानों की खोज पर अवलम्बित है। उसको अपनी भाषा में साधारण जन की समझ के योग्य परिवर्तित करने के लिए अधिक परिश्रम की अपेक्षा थी। हिन्दी और देवनागरी इन दो शब्दों के अर्थों में भेद सब की समझ में आता है, प्रथम भाषा का और दूसरा लिपि का द्योतक है। 'हिन्दी' को 'लिपि' के अर्थ में प्रयोग में लाना अब भ्रम फैलाना होगा। लेखक ने कहीं 'सेमैटिक' शब्द और कहीं 'सामी' शब्द (पृ० २२) का प्रयोग किया है जो अनुचित है। भाषा कहीं कहीं अस्पष्ट हो गई है—

पृ० १४ तीसरी शताब्दी पूर्व तथा पश्चात् के मध्य (?)

पृ० १६ अक्काड़ (?)

" हिन्दी 'ए' का नवीन रूप (?)

" वैदिक नं० ३८ (?)

१७ हिन्दी में 'अ' की जगह मराठी 'अ' (मराठी 'अ' का रूप पुस्तक भर में कहीं नहीं दिया गया)।

२९ 'अ', 'ण', 'ल', के स्थान में मराठी अ प्राचीन 'अ', 'ण', 'ल' (?) अटपटी भाषा के कुछ उदाहरण हैं--

पृ० १४ हिन्दी का निष्क्रमण हुआ

पृ० २३ यदि ब्राह्मी सामी से निष्क्रमित होती

लेखक ने जगह जगह 'दकन' शब्द का प्रयोग है। दक्षिण, दक्षिणात्य अथवा दक्खिन भी 'दकन' अपेक्षा अधिक उपयुक्त होता। लेखक ने देवनागरी लिपि की तुलना रोमन और उर्दू से करके देवनागरी श्रेष्ठ बताया है और इस वाक्य से पुस्तक समाप्त है--

"यदि हिन्दी को राष्ट्र लिपि बनाना है, तो उसमें बहुत कुछ संशोधन करने की आवश्यकता है आशा है हिन्दी संसार इसकी ओर ध्यान देगा इस पुस्तक से लाभ उठाएगा।

—बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लि

खून के धब्बे (कहानी संग्रह)— श्री मोहनसिंह सेंगर; प्रकाशक—प्रदीप कार्या मुरादाबाद, पृ० सं० १३०; मूल्य १॥)

प्रस्तुत संग्रह में ११ कहानियां हैं। इन कहानियों "पीछे एक निश्चित ध्येय, स्थिर उद्देश्य एवं प्रेरणा है। उनके सन्देश को पाठकों तक पहुँचाने लिये लेखक को जहाँ से भी साधन-सामग्री मिली, ली और जिस रूप में भी वह उसे रख सका, रखा। ऐसा करने में कई जगह कहानी की परि और टेकनीक की रक्षा करने के मोह से भी उसे लेनी पड़ी है। धृष्टता होने पर भी शायद यह हो। इसके साथ ही सम्बन्धित देशों से हज़ारों कोस उनकी कोई वैयक्तिक जानकारी न होते हुए और सेंसर से घिरे एक गुलाम देश में बैठकर ऐसा करना कितना अधिक त्रुटिपूर्ण हो सकता है, लेखक अनभिज्ञ नहीं है।" लेकिन ऐसा होते हुए नाज़ी मनोवृत्ति और नाज़ी-नियन्त्रण का जो और सजीव चित्र लेखक ने उपस्थित किया है, वह तक के जानेवाले सभी साधनों से सही मालूम है। और अगर किसी के परिणाम को देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामों का नतीजा निकालना सही माना जाय, तो आज का यूरोप और जर्मनी फैसिज़्म और नात्सीवाद का परिणाम है।

"खून के धब्बे" की सभी कहानियों में युद्ध का दृश्य, विजित प्रदेशों की दयनीय हालत और हमलावर मुल्क की जनता की मूक किन्तु सक्रिय आह है। इन कहानियों से युद्ध के प्रति विरक्ति ही नहीं जगती, बल्कि शोषण, अपहरण और जनता को बेवकूफ बनाकर युद्ध में झोंक देनेवाले फैसिज़्म के प्रति तीव्र घृणा का भाव भी मन में पैदा होता है। किन्तु ज्यादा कहानियां यूरोप से सम्बन्ध रखनेवाली ही हैं। चीनी गुरिल्ला युद्ध की एक ही कहानी है। हम यह चाहेंगे कि जापान के खूनी पंजे में पड़कर तड़पनेवाली पूर्वी एशिया की जनता की हालत भी कोई कलाकार अपनी कहानियों में बयान करे। आज फैसिज्म यूरोप से खत्म हो गया, पर अब वह एशिया में पनपना चाह रहा है; इसलिये इस भयंकर युद्ध-दानव के करतबों का सही चित्र जल्दी से जल्दी हमारे साहित्य में आ जाना चाहिये। और इस दिशा में श्री मोहनसिंह जी सेंगर ने जो काम किया है, उसके लिये हम उन्हें बधाई देना अपना कर्तव्य समझते हैं।

—बैजनाथ सिंह 'विनोद'

रूह रोशन मुस्तक़बिल लेखक— सय्यद तुफैल अहमद मँगलोरी (अलीग)। क़ीमत २ रुपये; निज़ामी प्रेस बदायूँ (यू० पी०)

सय्यद तुफैल अहमद साहब अलीगढ़ कालेज के शुरू के मददगारों और सर सय्यद अहमद ख़ाँ के पुराने साथियों में से शायद अब अकेले ही बाक़ी रह गए हैं। सन् १९३० में उन्होंने उर्दू में एक बहुत अच्छी किताब 'मुसलमानों का रोशन मुस्तक़बिल' नाम से लिखी थी। उसके कई एडिशन हुए। हिन्दुस्तान के मुसलमानों की २०० साल की मज़हबी, तालीमी, राजकाजी और कलचरल तारीख़ इसमें एक नए ढङ्ग से और बड़ी अच्छी तरह बयान की गई है। जिस नई किताब की हम रिव्यू कर रहे हैं, यह उसी पहली किताब का नया और छोटा एडिशन है। कुछ बढ़ा हुआ एडीशन भी है क्योंकि इसमें पाकिस्तान तक का सवाल शामिल कर लिया गया है। जो हिन्दू या मुसलमान भाई अंगरेज़ी राज के अन्दर मुसलमानों और हिन्दुओं को एक दूसरे से किन किन चालों से अलग किया गया, मुल्क के लीडर किस तरह इन चालों में आते चले गए, अब हम कहाँ पहुंच गए और इस मुश्किल से निकलने का क्या रास्ता है; इन सब बातों को ठोस घटनाओं की रोशनी में पढ़ना और समझना चाहते हों, उनके लिए इस किताब से बढ़कर काम की किताब शायद ही कोई दूसरी हो। हम पूरे ज़ोर से शिफ़ारिस करते हैं कि हर वह हिन्दुस्तानी जो हिन्दू मुसलिम एकता से प्रेम रखता है और उर्दू पढ़ सकता है, इस किताब को ज़रूर मँगा कर पढ़े।

—सुन्दरलाल

हिमालय— (मासिक साहित्य)— सम्पादक श्री शिवपूजन सहाय और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी; पुस्तक भण्डार, हिमालय प्रेस, पटना; क़ीमत १०) सालाना।

"प्रचलित राजनीति की धूलि-धूसरित दुनिया से बहुत ऊपर विचारों और भावनाओं के विशुद्ध वायु-मंडल में ले जाकर पाठकों के मन-प्राण को आप्यायित" करने के ख्याल से "हिमालय" का प्रकाशन हुआ है। इसके अधिकारी लोग इसमें मुख्यता कलात्मक कृतियों और आलोचनाओं को ही छापना चाहते हैं। लेख इसमें वे ही छपेंगे, "जो विचारों की किसी 'नई' दिशा के सूचक हों और उनके योग्य अधिकारियों द्वारा लिखे गये हों।" लेकिन पहले ही अङ्क में पहली प्रतिज्ञा को नहीं निभाया गया है। श्री फूलन प्रसाद वर्मा का लेख मार्क्सवादी साहित्य-कला की विवेचना पर कम और स्टैलिन की राजनीति की आलोचना पर ज़्यादा जोर देता है, जिसका कोई महत्व समझ में नहीं आता। श्री बेनीपुरी जी का नोट "साहित्य में प्रगति" साहित्य में प्रगति के रूप को स्पष्ट न करके अपने राजनीतिक विरोधी पर हमला करता है। और यह इस बात को प्रकट करता है कि अपने समय के सामाजिक संघर्षों के परे "विचारों और भावनाओं का कोई विशुद्ध वायुमण्डल" नहीं है। हां, रचनाकार अपने पर जितना संयम रख सके उतना ही अच्छा।

"हिन्दी-हिन्दुस्तानी" नामक नोट में श्री बेनीपुरी जी ने ऐसी राय ज़ाहिर की है, जो निश्चित रूप से गान्धी जी की हिन्दुस्तानी की स्पिरिट की विरोधी है। उन्होंने लिखा है—"तामिल-तेलगु और आसामी बलूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं के बोलनेवाले जिस दिन हिन्दोस्तानी सीख लेंगे उस दिन उनके सामने अपने कलाकारों और कवियों को रखने में हमें कितनी आसानी होगी। उस दिन हिन्दोस्तानी वह दरवाज़ा साबित होगी, जिससे होकर हम क्रमशः अन्य भाषा-भाषियों के निकट अपनी चीज़ें पहुंचा सकेंगे। इसलिये महात्मा जी द्वारा हिन्दोस्तानी के प्रचार किये जाने से हमें घबराना नहीं चाहिये, बल्कि हमें यह समझना चाहिये कि उससे हिंदी प्रचार का मार्ग और भी प्रशस्त होगा।" यहां हिन्दी वालों के हिन्दोस्तानी विरोध से प्रभावित होते हुये, और महात्मा गान्धी जी की हिन्दोस्तानी के विरोध से बचने के ख्याल से श्री बेनीपुरी जी ने ऐसी बात कह दी है, जो गान्धी जी की नीयत में शक जाहिर करती हुई लीगियों के हाथ में हथियार का काम करती है।

प्रस्तुत अङ्क में देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद जी की आत्मकथा है और यह ऊपर से एक व्यक्ति की आत्म-कथा-सी दिखनेवाली चीज़, बिहार के ५० सालों की सामाजिक विकास की आत्मकथा होगी, ऐसा पहले ही अङ्क से मालूम पड़ता है। आचार्य नरेन्द्रदेव जी का "व्यक्ति और समष्टि" सही और वास्तविक आधार पर इतिहास और समाज शास्त्र के अन्दर से भारतीय दर्शन की गतिमयी व्याख्या है। लेखक का यह कथन सही है कि—"महायान धर्म के अनुसार सर्व (समष्टि) के अतिरिक्त किसी की वास्तविकता नहीं है। अतः इस दृष्टि में तो समष्टि सर्वोपरि है। उसे निष्प्रपंच, विकल्पातीत और अवाच्य कहा है।" बौद्ध दर्शन के अनात्मवाद, शून्यवाद और क्षणिकवाद की जान समष्टि का यही भाव है। जैन दर्शन के स्याद्वाद में भी यही बोलता है। कर्ममीमांसा और शंकर के वेदान्त में भी इसीकी कुछ ध्वनियाँ थीं। फ़रक अगर है तो यह कि भारतीय दर्शन के ये सिद्धान्त सामन्ती समाज की पृष्ठभूमि पर पैदा हुये हैं और मार्क्स के उसी जाति के सिद्धान्त सामन्ती समाज के भग्नावशेष, बूर्जुआ समाज के विकास और एक नई अर्थनीतिक पद्धति के प्रसार की पृष्ठभूमि पर हैं।

जहां तक कलाकृतियों का सम्बन्ध है, "हिमालय" सफल है। श्री बेनीपुरी जी का "बलदेव सिंह" बोलता हुआ रेखा-चित्र है। भाषा का ओज तो आस्वादन के ही काबिल है। चीनी गृह-युद्ध की कहानी "एक ही नाव पर" सामयिक और ऐसी चीज़ है कि इस सूझ हम सम्पादकों को बधाई दिये बगैर नहीं रह सकते। "दिनकर" जी की कविताएं—मध्यवित्त राष्ट्रीय ... से युक्त अपूर्व ओजमयी हैं। पर सम्पूर्ण अङ्क में ... बात समझ में नहीं आई कि व्यक्तिवाद के मिटते ... में विषय के ऊपर व्यक्ति को महत्व क्यों दिया गया है।

—बैजनाथसिंह 'विनो...

SOME NON-POLITICAL ACH... EVEMENTS OF THE CONGRES... लेखकः डा० एच० सी० मुकर्जी; भूमिका लेखकः ... बी० जी० खेर; प्रकाशकः हमारा हिन्दुस्तान पब्लिकेशन ... राजा बहादुर वाडी, बम्बई—१; मूल्य आठ आना।

राजनैतिक क्षेत्र से बाहर सामाजिक, आर्थिक, ... तालीमी आदि क्षेत्रों में कांग्रेस के आन्दोलनों का ... हितकर असर पड़ा है यह इस पुस्तक में दिखाया ... है। आजकल व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव के ... में यह पुस्तक बड़े काम की है।

OF USE TO WORKERS AN... VOTERS—लेखक एक 'चुनाव वाला'; प्रका... उपर्युक्त; मूल्य बारह आना।

आजकल असेम्बलियों के चुनाव को लेकर कांग्रेस ... सम्बन्ध में जो ग़लतफ़हमियां पैदा करने की कोशिश ... जाती है उन सबका जवाब इस छोटी सी पुस्तिका में ... जायगा। पुस्तक के १७ अध्यायों में कराची कांग्रेस ... मौलिक अधिकारों वाला प्रस्ताव, किसानों के सम्बन्ध ... कांग्रेस की नीति, कांग्रेस का पिछले चुनाव का घो... पत्र, क्रिप्स के प्रस्ताव से लेकर अब तक की परि... का पूरा विवरण इस पुस्तिका में मिलेगा। कांग्रेस का ... घोषणा-पत्र भी इसमें सम्मिलित है। सब मिलाकर ... बड़े काम की है।

—विश्वम...

साहित्ये प्रगति—(बंगला)-ले०, डा० ... नाथ दत्त; पूरबी पाबलिशार्स ३७।७ बेनियाटोला ... कलकत्ता; पृ० सं० २५५; मूल्य ३॥)

यह पहली भारतीय किताब है, जिसमें साहित्य में ... के सिद्धान्तों को स्थिर किया गया है। इसमें लेखक ... कुछ लिखा है सबका आधार समाज शास्त्र और ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लेखक के मत से "समाज शास्त्र का सिद्धान्त कहता है कि पहले मानव समाज की आर्थिक उन्नति होती है फिर उससे उसमें संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति के विकास के साथ ही साथ उसमें एक समुदाय पैदा होता है, जो राष्ट्र का संचालन करता है; समाज में शीर्षस्थान धारण करता है और सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं पर अपना अधिकार रखता है और उसका उपभोग भी करता है। इस तरह विभिन्न समाजों में विभिन्न तरह के स्तर-भेद होते हैं एवं उन विभिन्न स्तरों की अर्थनीतिक अवस्था और विभिन्नता के लिये राष्ट्र के अन्दर विभिन्न प्रकार के अधिकारों को भोग करनेवाले समूह पैदा होते हैं। और इसीलिये समाज में वैषम्य की सृष्टि होती है। इसीलिये कहा गया है कि समाज एक अखण्ड वस्तु नहीं है, इसके अन्दर तरह तरह के स्तर-भेद रहते हैं—और उनके बीच में चक्र-भेद भी रहता है। अतः समाज का कोई भी समुदाय अथवा स्तर, एक चक्र अथवा मण्डली, राष्ट्र के प्रतीक या प्रतिनिधि की जगह नहीं ले सकती।"...और चूंकि "समाज श्रेणी के रूप में विभक्त होकर एक श्रेणी द्वारा शासित होता है और उसी श्रेणी की संस्कृति का प्रदर्शन करता है। इसीलिये साहित्य एक देश या एक समाज का प्रतीक न होकर एक श्रेणी का प्रतिभू स्वरूप होता है। अतः साहित्य को श्रेणीगत साहित्य कहना चाहिये।" (पृ० ४९) समाज शास्त्रीय आधार पर लेखक ने कहा है—"...भारतवर्ष का सामन्तवादी युग सुदूर अतीत से शुरू होता है, किन्तु गुप्त युग से लेकर मुगल ज़माने के बाद तक हम इसको जाज्वल्यमान पाते हैं। और राजपूताना में यह आज भी वर्तमान है।" फिर लेखक ने सामन्ती लक्षणों को स्पष्ट किया है और इन लक्षणों को भारतीय समाज और पाश्चात्य समाज दोनों में दिखाया है और फिर बतलाया है कि इस युग की अभिजात श्रेणी के दृष्टिकोण से जो कुछ लिखा गया है; और जिस साहित्य में सामन्ती लक्षणों के चित्र मिलें, वह सभी सामान्त युगीन साहित्य के अन्तर्गत होगे। जिस तरह नव-रसों के अन्दर सारा साहित्य आ जाता है, उसी तरह लेखक के सामन्ती लक्षणों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पहले तक सारा प्रमुख भारतीय साहित्य समा जाता है, जिसे लेखक सामन्ती साहित्य कहता है। फिर समाज की कैसी कैसी परिस्थिति में कैसे कैसे साहित्य की सृष्टि होती है; सिद्ध-साहित्य, भक्ति-साहित्य, वैष्णव-साहित्य और सन्त साहित्य समाज की किस परिस्थिति की उपज हैं और इनसे समाज के किस रुझान का परिचय मिलता है, इसकी भी विवेचना लेखक ने की है। सामन्ती युग के बाद राष्ट्रीय और महाजनी (Capitalist) युग का भी विवेचन किया गया है। और उसमें बताया गया है कि पाश्चात्य सभ्यता की बाढ़ पहले बंगाल में आई और भारत में राजा राममोहन राय आधुनिक राष्ट्रीयता और बूर्जुआ सभ्यता के जन्मदाता हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि पिछले युगों में जन-गण-की चर्चा कहीं भी नहीं है। बौद्ध जातकों, कुछ जैन ग्रन्थों, सिद्धों और सन्तों की वाणियों में, ग्रामीण गीतों और लोकोक्तियों में निम्न श्रेणी की चर्चा है; पर इस काल का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करनेवाले साहित्य में उसका अभाव है।

डा० दत्त ने अपने ग्रन्थ में भारतीय रस-साहित्य का खण्डन नहीं किया है। उन्होंने रसों के उसी रूप में उसके उपकरणों का परिवर्तित होना माना है और समाज शास्त्र के मुताबिक वह सम्भव भी है। इसलिये प्रगतिवादी सिद्धान्त रस-सिद्धान्त का विरोधी नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग प्रगतिवादी सिद्धान्त में नैतिकता का विरोध पाते हैं। यह उनका भ्रम है। दर असल साहित्यकार की शिक्षा-दीक्षा और संस्कार का प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ता है और अभी भारतीय समाज में बुर्जुआजी का विकास हो रहा है; इसलिये आज के साहित्य में पुरानी नैतिकता के टूटने की-सी ध्वनि बुर्जुआजी के कारण सुनाई पड़ रही है। वह प्रगतिवाद का दोष नहीं है। साम्यवाद और मज़दूरों किसानों का नाम ले लेने और उनके ऊपर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन कर देने से ही साम्यवादी साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती। उसके लिये साम्यवादी संस्कारों की जरुरत है।

सब मिलाकर लेखक का कहना है कि जन साधारण के सुख दुख इच्छा-आकांक्षा को वहन करते हुए सम्पूर्ण समाज की कल्याण-साधना जिस साहित्य में है, वही प्रगतिशील साहित्य कहला सकता है। और उसी साहित्य को अपने समाज और इतिहास के अन्दर से देखने का दृष्टिकोण लेखक ने "साहित्ये प्रगति" में दिया है।

—बैजनाथ सिंह 'विनोद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

ग़ल्ले की कमी

सन् १९४३-४४ में बङ्गाल को ख़ौफ़नाक क़हत की जिस भयङ्कर मुसीबत से गुज़रना पड़ा था उसकी याद अब तक हमारे दिलों में ताज़ा बनी हुई है। ३५ लाख आदमी मक्खियों की मौत इसलिये नहीं मरे कि अना-वृष्टि या अतिवृष्टि से फ़सल ख़राब हो गई थी बल्कि इस-लिये कि सरकार ने करोड़ों रुपयों का चावल ख़रीदकर शिवपुर, जिगरकाछा, बोटेनिकल गार्डन, ढाका आदि के गोदामों में भर दिया था और जो उस वक्त तक नहीं निकाला गया जब तक सड़ नहीं गया। लोग दाने दाने को तड़पकर मरते रहे लेकिन बड़े लाट लिनलिथगो के कानों में जूं तक नहीं रेंगी। ईश्वर के दिये हुये क़हत में नहीं बल्कि वुडहेड कमीशन की रिपोर्ट के मुताबिक "सरकारी अफ़सरों के रचे हुये क़हत में" न सिर्फ़ बङ्गाल के पैंतीस लाख स्त्री-पुरुषों की जानें गईं बल्कि बङ्गाल की आबरू और अस्मत तक लूट ली गई।

वुडहेड कमीशन ने अपनी सिफ़ारिशों में एक सिफ़ा-रिश यह भी की थी कि भारत सरकार ५,००,००० टन ग़ल्ला हमेशा रिज़र्व स्टाक में रखे। उसने आबपाशी, खेती के नये तरीक़े, वैज्ञानिक खाद आदि के लिये भी सुझाव दिये थे पर भारत सरकार ने उसके सुझावों पर कोई अमल नहीं किया। यही नहीं मुल्क को बराबर इस धोखे में रखा जाता रहा कि मुल्क में अनाज बहुत काफ़ी है। सरकारी आंकड़ों के ज़रिये हमें यह बताया गया कि सन् १९४४ में बङ्गाल, बिहार और यू० पी० जैसे सूबों में १८ फ़ी सदी से लेकर ३३ फ़ी सदी तक ग़ल्ला ज़्यादा पैदा हुआ है। बरमा के साथ भारत सरकार की जो सुलह हुई थी उसमें भी यह तय पाया गया था कि बरमा हर साल १,७५,००० टन चावल भारत भेजेगा। सायम के साथ जो सुलहनामा किया गया था उसमें भी सायम के १५ लाख टन चावल के बढ़ती स्टाक से भारत को चावल की एक मिक़दार देने का वादा किया गया था। अभी जनवरी के तीसरे सप्ताह में कराची में सर ज्वाला प्रसाद ने ग़ल्ले की हालत पर जो बयान दिया था उसमें हमें इस क़हत की हालत का सुराग़ तक नहीं मिलता। मुल्क में एक आम खयाल था कि अनाज की बढ़ती है, जो ख़त्म हो चुकी है और अब अगर शहरों से राशनिंग नहीं तो कम से कम कण्ट्रोल का तो ख़ात्मा हो जायगा पर यकायक छै फ़रवरी को सेण्ट्रल असेम्बली के इजलास में सर ज्वाला प्रसाद ने इस बात का ऐलान किया कि सन् १९४६ में मुल्क में ३० लाख टन ग़ल्ले की कमी होगी और इससे क़हत की जो सूरत पैदा होगी उससे ६,५०,००,००० आदमी मुसीबत में पड़ सकते हैं। इस मुसीबत से बचने के लिये सरकार ने राशनिङ्ग ग़ल्ले में गेहूं की मिक़दार घटाकर २ छटाक कर दी और बाक़ी ग़ल्ला १२ छटाक के बजाय आठ छटाक कर दिया है। यह भी कहा जाता है कि हालत के ख़राब होने पर यह आठ छटाक की मिक़दार भी घटाई जा सकती है और गेहूं और चावल के अलावा ज्वार, बाजरा, जौ आदि को भी राशनिङ्ग के ग़ल्लों में शामिल किया जा सकता है। सर ज्वाला प्रसाद का ख़याल है कि ग़ल्ले की कमी अप्रैल से महसूस होगी। इस हालत से छुटकारा पाने के लिये भारत सरकार चाहती है कि

(१) नई फ़सल के अनाज किसानों से ज़बर्दस्ती सरकार ख़रीद ले। उनके पास सिर्फ़ इतना अनाज छोड़ा जाय जो उनके खाने के लिये काफ़ी हो।

(२) विदेशों से अनाज मँगाने की कोशिश की जाय।

(३) नई फ़सल कटने के बाद एक तीसरी फ़सल उगाई जाय जिसमें आलू आदि शामिल हों। (इसके लिये यू० पी० की सरकार ने आबपाशी का पानी मुफ़्त देने का वादा किया है)

जहां तक पहली बात का ताल्लुक है उसके बारे में हमने बंगाल के अकाल में पूरी तरह भुगत लिये। ख़रीदने की सरकारी एजेन्सियाँ इतनी निकम्मी हैं कि पिछले अकाल में हमने देखा कि जो गेहूं पञ्जाब में २४) रु० मन के हिसाब से चलता था वही बङ्गाल में २४) रु० से लेकर ४४) रु० मन तक बिकता था। और यह ब्लैक मार्केट और बाज़ार में नहीं बल्कि सरकारी दूकानों में होता था। फिर फ़ौज की मदद से ज़बर्दस्ती ग़ल्ला ख़रीदने में कौन सा बन्धन न रह जायगा और किसानों को अपना सारा ग़ल्ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर शहरों के फुटपाथों पर दाने दाने को तड़प तड़प कर मरना पड़ेगा।

जहां तक दूसरी बात का ताल्लुक़ है फूड-सेक्रेटरी मिस्टर बी० आर० सेन ने इस बात का ऐलान कर दिया है कि विदेशों से कुल जमा ४ लाख टन गेहूँ मिल सकता है। इससे ज़्यादह नहीं। दिक्क़त यह है गेहूँ का बढ़ती स्टाक अमरीका, कनैडा, आस्ट्रेलिया और रूस में मौजूद है। जो आंकड़े एक महीने पहले छपे थे उनके मुताबिक़ कनाडा में ६५,३६,००० टन, अमरीका में १,८४,५५००० टन, आस्ट्रेलिया में १,३४,००० टन, अर्जेण्टाइना में १९,०२,००० टन अतिरिक्त गेहूं मौजूद है। इसके अलावा सायम में १५,००,००० टन चावल का अतिरिक्त स्टाक है। सोवियत् रूस के आंकड़े नहीं प्रकाशित किये गये लेकिन मो० वेरीसेलोव के मुताबिक़ सोवियत की गेहूँ की पैदावार में ३१.६ फ़ी सदी की बढ़ती हुई है और सोवियत् को १९४६-४७ में ग़ल्ले की कमी नहीं पड़ेगी। हमें हैरानी है कि दुनिया के गेहूँ पैदा करनेवाले तमाम मुल्कों में जो लड़ाई में पूरी तरह फंसे हुये थे इस वक़्त गेहूँ का बढ़ती स्टाक मौजूद है लेकिन हिन्दुस्तान में जो ख़ासतौर पर एक खेतिहर मुल्क है, ३० लाख टन गेहूँ की कमी होगी। फिर एक दिक्क़त यह भी है कि हम उस वक़्त तक बाहरी मुल्कों से गेहूं नहीं ख़रीद सकते जब तक इङ्गलिस्तान के ऊपर हमारा जो ११०० करोड़ पौण्ड पावना निकलता है उसे वह डालर या दूसरे सिक्कों में न बदले।

जहां तक तीसरी बात का सवाल है खाना केवल पेट भरने के लिये नहीं होता। डाक्टरों का कहना है कि हर शख़्स को तन्दुरुस्त रहने के लिये खाने में ३००० कैलरीज़ की ज़रूरत पड़ती है। कैलरी उस गर्मी को कहते हैं जो खाने के बाद बदन में पैदा होती है। मक्खन, घी, सब्ज़ी, गोश्त वग़ैरह में थोड़ी मिक़दार में भी ज़्यादह कैलरी होती है। इसके लिये खाली अनाज की ज़्यादह मिक़दार चाहिये। आलू और सब्ज़ी को ज्यादह मिक़दार कैलरी के लिहाज़ से बदन को कमज़ोर कर देगी। फिर हिन्दुस्तान में ज़्यादहतर किसान और मज़दूर रहते हैं जिन्हें सख़्त जिस्मानी मेहनत करते हैं। डाक्टरों के मुताबिक़ कम से कम तीन पाव आटा और पाव भर दाल चाहिये। इस औसत से हिन्दुस्तान में हर साल एक करोड़ पांच लाख टन गेहूँ और दालों की कमी रहती है। हिन्दुस्तान में कुल ६ करोड़ १० लाख टन गेहूँ वग़ैरह दूसरे ग़ल्ले और साढ़े अस्सी लाख टन दालें पैदा होती हैं जिसमें ७० लाख टन बीज के लिये निकल जाता है। इस तरह कैलरीज़ के लिहाज़ से हर साल १,०५,००,००० टन ग़ल्ले की कमी होते हुये भी बराबर यहां से विदेशों को ग़ल्ला भेजा जाता है।

सरकार मौजूदा हालत से पूरी तरह वाक़िफ़ थी फिर भी अकेले कलकत्ते के बन्दरगाह से मई और अक्तूबर १९४५ में उसने २,४६,९८,४३७ रु० का ६१,७९७ टन चावल विदेशों को भेजा। इसमें दूसरे नाज शामिल नहीं हैं। दूसरे बन्दरगाहों से भी इसी तरह ग़ल्ला बाहर भेजा गया होगा। भारत सरकार की तरफ़ से मिस्टर सेन ने कहा है कि इसमें ४२,३०२ टन ग़ल्ला लंका भेजा गया। मगर कलकत्ते के कस्टम हाउस ने दिसम्बर में जो आंकड़े छपाये हैं उनमें लंका भेजे जानेवाले चावल की मिक़दार कुल ११ टन दिखाई गई है। मिस्टर सेन के बयान ने ग़लतफ़हमी घटाने के बजाय और ज़्यादा बढ़ा दी है।

सर अकबरी हैदरी ने १७ फ़रवरी को इलाहाबाद में आल इण्डिया न्यूज़ पेपर्स एडीटर्स कान्फ्रेंस में एडीटरों से इस बात की अपील की कि वे ग़ल्ले की कमी की बिना पर लोगों का जोश न भड़कायें। लोगों ने तरह तरह के सवाल सर अकबर से पूछे मगर उनका मुनासिब जवाब नहीं दिया गया। लोगों को यह नहीं बताया गया कि हिन्दुस्तान में फ़ौज के लिये कितना ग़ल्ला गोदामों में रिज़र्व पड़ा हुआ है और न यही इतमीनान दिलाया गया कि फ़ौजी गोदामों का ग़ल्ला क़हत को कम करने के काम आ सकेगा। सर अकबर इस बात का भी तसल्ली लायक़ जवाब नहीं दे सके कि चावल खानेवाले मद्रास को क्यों गेहूं खाने पर मजबूर किया जा रहा है और गेहूँ खानेवाले युक्त प्रान्त को क्यों राशन के कोटे में $\frac{3}{8}$ चावल दिया जा रहा है।

जहां तक U. N. R. R. A का ताल्लुक़ है लन्दन और वाशिङ्गटन से रायटर के तारों से मालूम होता है कि यूनाइटेड नेशन्स की वह जमात ग़ल्ले की कमी के बारे में अपनी सारी तवज्जह पहले यूरोप के मुल्कों की तरफ़ दे रही है। हिन्दुस्तान को वह सीधा अपने काम के दायरे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुमार नहीं करती। हिन्दुस्तान की ज़िम्मेवारी वह ब्रिटेन के ऊपर डाल देती है। और ब्रिटेन की कैफ़ियत यह है कि वह अमरीका और आस्ट्रेलिया से सिर्फ़ अपने लिये ग़ल्ले की माँग कर रहा है। ६ फ़रवरी को लन्दन से रायटर की ख़बर है कि "मेलबोर्न से इस साल ब्रिटेन को २ लाख टन गोश्त के बजाय ३ लाख टन गोश्त जायगा, फलों और मेवे की मिक़दार दुगनी कर दी गई है और गेहूँ की चौगुनी।" वियना से रायटर की ख़बर है कि U. N. R. R. A. गेहूं से लदा हुआ एक पूरा जहाज़ आस्ट्रिया भेज रहा है। ब्योनस एअर्स की ख़बर है कि अर्जेंटिना के लोग अपने राशन में कमी करके यूरोप के मुल्कों में ग़ल्ला भेजने की तदबीरें कर रहे हैं। ब्रिटिश पार्लिमेण्ट में मिस्टर एटली ने इस बात का ऐलान किया है कि ब्रिटेन में ८००० खेतिहर फ़ौजियों को फ़ौरन फ़ौज से छुट्टी देकर खेती के काम के लिये भेजा जा रहा है। क्या लार्ड वावेल एटली की इस मिसाल की नक़ल करके हिन्दुस्तान के लाखों फ़ौजियों को खेती के काम के लिये नहीं इस्तेमाल कर सकते? आख़िर ये फ़ौजी जनता की गाढ़ी कमाई से तनख़ाह लेकर आजकल करते क्या हैं?

ग़ल्ले की कमी पर गान्धी जी

गान्धी जी ने ग़ल्ले और कपड़े की कमी पर नीचे लिखा बयान दिया है—

"अनाज की जो हालत पैदा हो गई है उसकी वजह से वायसराय के खानगी मंत्री को मेरे पास आना पड़ा। ...सिर्फ़ अनाज की हालत के सबब ही वह मेरे पास आये। क्या मैं इस बारे में कोई ऐसी बात कह सकता हूँ जो इस सवाल को राजनीति के दायरे से अलग रख सके और सरकार के इरादों और नीति के बारे में जो आम बेऐतबारी पाई जाती है उसका इस पर कोई असर न पड़े। इस मामले में देर की गुंजाइश नहीं हो सकती इसलिये मैंने जो कुछ कहा उसका सार यहां पर दे रहा हूं।

"जहां तक कांग्रेस का ताल्लुक़ है वायसराय को चाहिये कि वह मौलाना आज़ाद को बुलायें और अगर वह न आ सकें तो उन्हें अपना नुमाइन्दा भेजने के लिये कहें। मैं ख़ुद यह महसूस करता हूँ मौजूदा ग़ैर-ज़िम्मेवार वायसराय की कौंसिल की जगह फ़ौरन ज़िम्मेवार कौंसिल बनाई जानी चाहिये और उसके सेण्ट्रल असेम्बली के चुने हुये मेम्बरों से लिये चाहियें। मेरा यह भी ख़याल है कि सेण्ट्रल असे के मेम्बरों को पार्टियों का ख़याल न करते हुये ज़िम्मेवारी को लेना चाहिये क्योंकि कपड़े और की कमी का ख़तरा मुल्क के करोड़ों लोगों को है। सरकार इस सुझाव को मञ्जूर करेगी या नहीं सेन्ट्रल असेम्बली की मुख़्तलिफ़ पार्टियां उसे मानेंगी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन किसी खण्डन के डर से एक बात तो मैं कह ही हूँ कि अगर व्यापारी लोग और सरकारी अफ़सर दार बन जांय, ख़ासकर आनेवाली मुसीबत का करने के लिये तो हमारा मुल्क इतना बड़ा है कि दुनिया से मदद न मिलने पर भी हम मुशकिलों में हो जांयगे क्योंकि बाहरी दुनिया तो ख़ुद ही तकलीफ़ कराह रही है।"

गान्धी जी के सुझाव

इस मुसीबत से बचने के लिये गान्धी जी के सामने बहुत से सुझाव पेश किये हैं वे उन्हींके में ये हैं—

"अनाज और कपड़े के व्यापारियों को संगठ करना चाहिये। उन्हें सट्टा भी नहीं करना चाहिये। पानी हो या मुहय्या किया जा सकता हो वहां लायक कुल ज़मीन में अनाज पैदा किया जाना चा फूलों के बगीचे में अनाज की फसलें उगाई जानी चा लड़ाई के ज़माने में ऐसा किया गया है। मौजूदा कुछ दृष्टियों मे लड़ाई से ज़माने से भी ज़्यादा है। इससे पहले कि हम अपनी बचत का नाज ख जांय हमको कंजूसों जैसी किफ़ायतसारी से काम चाहिये। सब क़िस्म के सामाजिक उत्सव और बन्द कर दिये जाने चाहियें। औरतें अपनी घर में किफ़ायत करके मौजूदा सङ्कट को कम करने हिस्सा ले सकतीं हैं। सरकार का रूप कैसा ही वह लोगों के काम में दख़ल न दे तो हम बिना मदद के अपने रोज़मर्रा के दस में से नौ कामों ज़ाम ख़ुद कर सकते हैं।

"घबड़ाना तो हमको हरगिज़ न चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने से पहले ही हमें मरने से इनकार कर देना चाहिये। हमें हिन्दुस्तान के नर-कंकालों की बात सोचनी चाहिये और सोचना चाहिये कि हम उनकी क्या मदद कर सकते हैं। फिर तो हमारे देश का भला ही होगा। हम इस ख़याल के शिकार न बनें कि चूँकि हम ख़ुद मौज से रह सकते हैं इसलिये हमारा पड़ोसी भी उसी तरह रह लेता होगा।"

कपड़े की कमी के बारे में गान्धी जी कहते हैं—

"मैं जानता हूँ कपड़े का अकाल तो एक मजाक़ ही है क्योंकि अगर मिल मालिक और सरकार ईमानदारी और समझदारी से काम लें तो कपड़े के बिना किसी को नंगा न रहना पड़े। हमारे पास काफ़ी आदमी बेकार हैं और कारीगरों की भी कमी नहीं है। फिर हम कैसे अपनी ज़रूरत का कपड़ा देहात में पैदा न कर सकेंगे?"

गान्धी जी ज़ोर देते हैं कि हम बहादुरी के साथ ग़ल्ले की कमी का मुक़ाबला करें। हम किसी तरह की ख़ुदग़रज़ी से कोई काम न लें। जब से ग़ल्ले की कमी का ऐलान हुआ है गाँवों में गेहूँ पौने दो सेर का और चना २½ सेर का हो गया है। गान्धी जी इस बारे में लिखते हैं—

"राजेन्द्र बाबू ने मुझे बताया है कि ज्यों ही सरकार ने अनाज की कमी की आशंका प्रकट की त्यों ही बाज़ार में क़ीमतें दुगुनी हो गईं। यह बुरी निशानी है। इस तरह का चटोरियापन आज मुमकिन न होना चाहिये। व्यापारी समाज में ऐसे लालच को दबाने की ताक़त होनी चाहिये। सरकार की ग़लतियों या नालायक़ियों के कारण पैदा हुये सङ्कट को बढ़ाना नहीं चाहिये। देश में व्यापारियों की संस्थायें और मण्डल मौजूद हैं। अगर वे देशभक्ति की भावना से काम करें तो घबराहट और चटोरियेपन को रोकने में बहुत मदद दे सकते हैं।"

मुल्क के बड़े भाग हैं कि आज कांग्रेस के नामी गिरामी नेता जेल से बाहर हैं। लड़ाई ख़त्म हो चुकी है। सरकार दिखावे के लिये ही सही पर जनता के नुमाइन्दों के हाथों में ताक़त सौंपना चाहती है। महीने भर के अन्दर जगह जगह सूबों में वज़ारतें भी बन जायँगी। ऐसी हालत में हिम्मत और संगठन के साथ अगर काम किया जाय तो आनेवाली मुसीबत को एक बहुत बड़े दरजे तक टाला जा सकता है या कम किया जा सकता है। हमें उम्मीद है गान्धी जी के सुझावों पर कांग्रेस, जनता, सरकार और दूसरे दल और गिरोह सभी ठण्डे दिल से ग़ौर करेंगे। बहरहाल एक बात तय है कि इस बार सन् १९४३ की तरह जनता मक्खियों की मौत नहीं मरेगी! कभी नहीं मरेगी!!

शाही जल सेना का बग़ावत

पिछली १८ फ़रवरी को बम्बई में रायल इण्डियन नेवी के सैनिकों ने तौहीन और ज़िल्लत से भरे हुये बर्ताव के ख़िलाफ़ जो हड़ताल की थी वह कराची, मद्रास और कलकत्ता में फैल गई और उसने काफ़ी सङ्गीन शक्ल अख़्तियार कर ली। अङ्गरेज़ी सेना और हिन्दुस्तानी जहाज़ी सेना में ज़ाब्ते से लड़ाई ठन गई। बम्बई में एक दिन सात घण्टे तक दोनों तरफ़ से ज़ोरदार गोला बारी होती रही। बहुत से आदमी मरे और घायल हुये। एडमिरल गाडफ्रे ने हड़तालियों को आगाह करते हुये बयान दिया कि "सरकार हर तरह की ताक़त इस्तेमाल करेगी फिर चाहे वह नेवी जिस पर उसे घमण्ड है बरबाद ही क्यों न हो जाय।"

शाही जलसेना के इन हिन्दुस्तानी सैनिकों ने, जिनमें बहुत से अफ़सर भी शामिल हैं बयान दिया है कि अङ्गरेज़ अफ़सर उनके साथ तौहीन और ज़िल्लत से भरा हुआ बर्ताव करते हैं, अङ्गरेज़ों के मुक़ाबले में उन्हें तनख़ाहें बहुत कम दी जाती हैं और उन्हें जो खाना दिया जाता है वह बेहद ख़राब होता है।

कोलाबा के पास समुद्र तट पर—एच० एम० आर० एस० तलवार में एक सिगनल स्कूल है। यह 'तलवार' दूसरे ट्रेनिङ्ग जहाज़ों की तरह कोई जहाज़ नहीं है बल्कि कई पास पास बनी हुई इमारतों का नाम है जिन्हें कैसल बैरक्स भी कहते हैं 'तलवार' के हड़तालियों का कहना है कि अङ्गरेज़ अफ़सर उनके साथ बहुत बदसलूकी करते थे। इन हड़तालियों ने यह माँग की कि उनके ऊपर बजाय अङ्गरेज़ों के हिन्दुस्तानी अफ़सर मुक़र्रर किये जाँय। उनकी यह माँग निहायत मुनासिब और बजा माँग थी। एडमिरल गाडफ्रे ने उनकी माँगें सुनीं और दोनों दलों में एक आरज़ी सुलहनामा हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन यह सुलहनामा २२ तारीख़ को टूट गया और दोनों दलों में फिर लड़ाई का ऐलान हो गया। बम्बई में हड़तालियों की तादाद क़रीब २००० थी। उन्होंने फ़ौरन शाही जल सेना के २० जहाज़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया। कैसेल बैरक में हथियार-घर पर धावा बोलकर मशीन गनों और गोला बारूद पर क़ब्ज़ा कर लिया। कराची में 'हिन्दुस्तान' जहाज़ के हड़तालियों ने अपने जहाज़ पर छै इञ्ची तोपें चढ़ा लीं। काफ़ी देर तक अङ्ग-रेज़ी सेना के साथ उनकी गोलाबारी हुई और आख़िर में अङ्गरेज़ी छुतरी सेना ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। ३२ हड़ताली मारे गये और पचासों ज़ख़्मी हुए। कलकत्ते में भी 'हुगली' जहाज़ के ५०० रेटिंग्ज़ ने हड़ताल करके जुलूस वग़ैरह निकाला।

कहा जाता है कि हिन्दुस्तानी जल सेना की इस बग़ावत के पीछे और कई बातें हैं जिनमें ख़ास बात यह है कि वे इस बात पर ऐतराज़ कर रहे थे कि हिन्द एशिया में हिन्दुस्तानी फ़ौजों और जहाज़ी फ़ौजों को क्यों भेजा जा रहा है। उन्होंने इस बात की भी माँग की थी कि आज़ाद हिन्द फ़ौजवालों पर से मुक़दमा हटा लिया जाय।

सरकारी हल्कों में इस बात को लेकर ख़ुशी मनाई जा रही है कि ज़ोरदार जहाज़ी हमला करके 'बग़ावत' को दबा दिया गया और बम्बई शहर के जिन लोगों ने उनके साथ हमदर्दी ज़ाहिर की थी उन्हें फ़ौजी मोरचे की सी सख़्ती के साथ दबा दिया गया। जिस अन्धेपन और बेदर्दी के साथ अङ्गरेज़ फ़ौजियों ने जनता पर गोलियाँ चलाई हैं उन पर "टाइम्स आफ़ इण्डिया" जैसा अङ्ग-गोरा अख़बार भी बेचैन हो उठा है। श्रीमती हँसा मेहता के बयान के मुताबिक़ मिल्क यूनियन में दूध लेने के लिये इकट्ठा हुये बच्चों को गोलियां चलाकर मार डाला गया। इक्का दुक्का इधर उधर खड़ी हुई औरतों को भी गोलियों का निशाना बनाकर हत्या की गई। अमन क़ायम करने की कोशिश करनेवाले कांग्रेस के स्वयंसेवकों को भी गोली से उड़ा दिया गया। २५ फ़रवरी तक की रिपोर्ट के मुताबिक़ २७० आदमियों का जानें गईं और क़रीब १३०० आदमी ज़ख़्मी हुये जिनमें ७०० से ऊपर को बुलेट की चोटें आई हैं।

एटली, गाडफ्रे, मेसन और आचिनलेक ने जो बयान दिये हैं उनमें वे एक बात साफ़ भूलते हुये दिखाई देते हैं। और वह यह कि ज़माना बदल गया है। लोगों के दिलों से अपने मुल्क की शान के ख़याल को दबाया नहीं रखा जा सकता। 'जयहिन्द' और 'क्विट इण्डिया' उसी ख़याल को ज़ाहिर करते हैं। कमाण्डर इन-चीफ़ यह चाहते हैं कि अनुशासन के नाम पर आर्मी, नेवी और एअर फ़ोर्स के हिन्दुस्तानियों के दिलों में राष्ट्रीयता को न पनपने दिया जाय। लेकिन ज़माने के रुख़ को दुनिया की सब बड़ी ताक़तें मिलकर भी नहीं मोड़ सकतीं! हिन्दुस्तान की जहाज़ी, हवाई और दूसरी फ़ौजें राष्ट्रीयता के भावों से भरी हुई हैं। आज़ाद हिन्द फ़ौज ने उन्हें रास्ता दिखाया है, हवाई फ़ौजों की हड़ताल ने उस भाव को मज़बूत किया है और जहाज़ी हड़ताल के इस शानदार रवय्ये ने उसे क़ौमी जज़्बों से भर दिया है। आचिनलेक उन पर मुक़दमा चलाकर उन्हें सज़ा दे सकते हैं, फाँसी पर लटका सकते हैं मगर उनकी क़ौमी भावना को ख़त्म नहीं कर सकते। लन्दन का अख़बार 'डेली वर्कर' ने ठीक ही लिखा है कि "बम्बई और कराची में जो कुछ हुआ है वह ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ सबसे ऊँची लहर है।" आचिनलेक डिसिप्लिन के नाम पर हड़तालियों के नेताओं पर मुक़दमा चलाकर सज़ायें देना चाहते हैं मगर हमारी राय में फ़ौजी अदालतों के फ़ैसले चाहे जो कुछ हों हिन्दुस्तान की जनता ने न सिर्फ़ इन्हें बेक़ुसूर माना है बल्कि इन्हें वह देश-परस्त समझती है और इन पर उसे नाज़ है। ऐसी हालत में कमाण्डर-इन-चीफ़ इन्हें सज़ायें देकर मामले को और बदतर ही करेंगे।

नफ़रत का बहाव

आज़ाद हिन्द फ़ौज के मुक़दमों के साथ साथ हिन्दुस्तानी जनता के दिलों में ब्रिटिश हुकूमत के लिये नफ़रत की एक बाढ़ सी आ गई है। अगस्त सन् १९४२ के बाद हिन्दुस्तानियों पर जो बेशुमार जुल्म किये गये जनता उसे सह सहकर दिल मसोसती रही। उसकी बर्दाश्त का पैमाना रह रहकर छलक उठता। बम्बई और कलकत्ते को दो दो बार जिस आग के धुँए में से निकलना पड़ा है उसके साथ सारे हिन्दुस्तान की उनसे हमदर्दी है। उनकी बहादुरी और जवाँमर्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें नाज़ है। मगर ठण्ढे दिल से ग़ौर करने पर हमें ऐसा महसूस होता है कि ये अनगिन क़ुर्बानियां अगर बचाई जा सकतीं तो बेहतर होता। जनता का जोश उफनती हुई दरिया का ऐसा पानी है जिसे नहरों के रास्ते निकाल कर सारे मुल्क को सरसब्ज़ किया जा सकता है लेकिन जिसे बांध तोड़कर अगर बहने दिया जाय तो वह सर सब्ज़ खेतों को भी वीरान कर सकता है। बम्बई और कलकत्ते की क़ुर्बानियों की हम तारीफ़ें कर सकते हैं मगर ऐसा लगता है कि वे क़ुर्बानियां अमली नुक़्ते नज़र से बिलकुल ज़ाए हुईं। ग़ुस्से में भरकर सरकारी चीज़ों में आग लगा दी जाती है। दलील यह दी जाती है कि हम लोगों को मारते नहीं उनकी चीज़ों में आग लगा देते हैं। इस तरह की दलील देनेवालों से गान्धी जी मुनासिब सवाल करते हैं कि—अङ्गरेज़ सरकार कौनसी जायदाद लेकर हमारे मुल्क में आई थी? और जो थोड़ी बहुत चीज़ें भी वह विलायत से लाई है उसके लिये दाम हमसे वसूल किये हैं। इसलिये जो चीज़ें भी हम बरबाद करते हैं वे हमारी ही जायदाद हैं। दुश्मन के पास तो ये चीज़ें धरोहर की तरह हैं। फिर जो चीज़ें हम बरबाद करते हैं उन्हें भी प्यूनिटिव टैक्स के ज़रिये वह हमसे नाक पकड़कर वसूल कर लेता है और जिसका बोझ ज़्यादातर बेकुसूर आदमियों को बर्दाश्त करना पड़ता है।

हमें उम्मीद है गान्धी जी की इस काम की सलाह पर सभी विचारने वाले लोग सोचेंगे और अमल करेंगे। जनता के जोश को क़ाबू में रखकर अहिंसा के रास्ते से ही उसका सही इस्तेमाल हो सकता है।

अफ़सोसनाक कहानी

हिन्दुस्तान की W.A.C. महिला सहायक दल की १०० स्त्रियों ने अपने दस्तख़त से ब्रिटिश पार्लिमेण्ट और सेण्ट्रल असेम्बली के मेम्बरों के नाम जो ख़त भेजा है वह बम्बई के 'क्रिनिक' अख़बार के १६ फ़रवरी के नम्बर में पूरा छपा है। इन बहिनों ने भूख हड़ताल करने का फ़ैसला किया था जो कुछ दिनों के लिये मुल्तवी कर दिया है। असेम्बली में इस सहायक दल के बारे में सवाल किये गये और इसके बारे में जो बदनामियां फैल रही हैं उनकी जांच के लिये कहा गया। मगर सरकार की यह हिम्मत न पड़ी कि जङ्ग के दौरान के इस सबसे शर्मनाक वर्क़ को उलट पलटकर वह लोगों को देखने का मौक़ा देती। लिहाज़ा उसने यह ऐलान कर दिया कि वह इस दल को तोड़ देगी।

अगस्त १९४५ तक इस दल में १०,००० औरतें थीं। इनकी ११०० अफ़सरों में ७७५ ब्रिटिश अफ़सर थीं, कुछ एंग्लो इण्डियन अफ़सर थीं और कुल १४५ नीचे दरजे की हिंदुस्तानी अफ़सर थीं। हिंदुस्तानी औरतों के साथ बेहद बदसलूकी की जाती थी। अङ्गरेज़ लड़कियों के मुक़ाबले में उन्हें तनख़्वाह, तरक्की और अस्पताल तक के इलाज में घटिया दरजा दिया जाता था। इन लड़कियों ने इस ख़त में शिकायत की है कि झूठे वादे करके इन्हें इस दल में भरती किया गया और उनके चरित्र, उनके सदाचार उनके सतीत्व, उनके घर और उनकी ज़िन्दगी सबको बरबाद कर दिया गया। अपने इस ख़त में वे लिखती हैं—"हमें कोई काम नहीं दिया जाता था सिवाय इसके कि हम नाचें, शराब पियें, अङ्गरेज़ अफ़सरों के गले में हाथ डालकर घूमें और उनकी काम वासना को पूरा करें। हमारे सदाचार और हमारी अध्यात्मिक हिफ़ाज़त का काम विदेशी अफ़सरों के सुपुर्द था जो हमारी समाजी ज़िन्दगी से क़तई नावाक़िफ़ थे... कभी कभी हमें पुरुषों की बैरकों के क़रीब रखा जाता था, कभी एक ही इमारत में बीच की मंज़िल में हम लोग होते थे और हमारी ऊपर और नीचे की मंज़िलों में ब्रिटिश आफ़ीसर होते थे। नतीजा यह हुआ कि अनगिनत मामले ऐसे हुये जिसमें बहुत सी लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया, बहुतों को ज़बरदस्ती मां बनना पड़े, बहुतों को गर्भ गिराना पड़ा, बहुत सी लड़कियां गन्दी बीमारियों की शिकार हो गईं और बहुत सी लड़कियां जो ज़िल्लत गवारा न कर सकीं खुदकुशी करके मर गईं।"

हमें उम्मीद है सेण्ट्रल असेम्बली के मेम्बर इस शर्मनाक कहानी के लिये जो भी लोग ज़िम्मेवार हैं उन्हें मुनासिब सज़ा दिलाने की पूरी कोशिश करेंगे।

सम्पादकों को पण्डित नेहरू की सलाह

इलाहाबाद में आल इण्डिया न्यूज़ पेपर्स एडीटर्स कान्फ्रेंस का पांचवां सालाना जलसा अमृत बाज़ार पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्पादक श्री तुषारकान्त घोष की सदारत में १६,१७ फ़रवरी को हुआ। हिन्दुस्तान के कोने कोने से छोटी बड़ी सभी ज़बानों और सभी खयालों के १२५ सम्पादक इकट्ठा हुए थे। पण्डित नेहरू ने इस कान्फ्रेंस की कारवाई शुरू की। सम्पादकों से उन्होंने बड़े काम की बातें कहीं। मुख़्तसिर में वे ये थीं—

(१) पूँजीपतियों के हाथों में अख़बारों की बागडोर चली जा रही है जो क़तई नामुनासिब है। इससे आज़ाद अख़बार-नवीसी को ठेस पहुँचेगी। लोगों को इस कोशिश का मुक़ाबला करना चाहिये।

(२) अख़बारों में जनता की असली ज़िन्दगी पर बहुत कम रोशनी डाली जाती है। अख़बारों में जनता की समाजी, कल्चरल, आर्थिक और सियासी ज़िन्दगी को ख़ास अहमियत देनी चाहिये।

(३) देशी ज़बानों के अख़बारों की सतह को ऊँचा उठाना चाहिये। ज्यादा तनख़ाहें देकर उनके सम्पादकीय स्टाफ में ज्यादा काबिल आदमी भरती किये जाने चाहियें। इस वक्त मुख़्तलिफ अख़बारों के सम्पादकीय स्टाफ में ९५ फीसदी निकम्मे आदमी भरे हुये हैं।

(४) पंडित नेहरू ने यह भी चाहा कि दुनिया के तमाम मुल्कों में खासकर पूरबी और पच्छिमी एशिया के मुल्कों में हिन्दुस्तान के अख़बारों को मिलकर अपने नुमाइन्दे भेजने चाहियें। इसके लिये लोगों को मुख़्तलिफ़ ज़बानों की तालीम देनी चाहिये।

(५) हिन्दुस्तानी ज़बानों में तार की ख़बरें भेजने का इन्तज़ाम होना चाहिये।

(६) अख़बारों में जो ज़लील इश्तहार छपते हैं वे बन्द होने चाहियें।

ये तमाम बातें बड़े काम की थीं पर हमें अफसोस है कि ज्यादहतर सम्पादकों ने इन पर मुनासिब तवज्जह नहीं दी। आज अख़बारों पर धीरे धीरे पूँजीपतियों का क़ब्ज़ा होता जा रहा है। यह निशानी बहुत बुरी है। आगे जाकर इससे यह ख़तरा हो सकता है कि मुल्क की सियासत पूँजीपतियों के दाम में गिरफ़्तार हो जाय।

तीन ब्रिटिश मिनिस्टर

लार्ड पेथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मिस्टर ए० वी० अलेक्ज़ेण्डर का एक मिशन ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान भेज रही है। यह मिशन यहाँ की मुख़्तलिफ़ पार्टियों से बातें करके हुकूमत के पंचायती ढाँचे को तैयार करेगा और ब्रिटिश सरकार को हिन्दुस्तान के लिये मुनासिब सलाह देगा। मुल्क में एक बेचैनी फैली हुई है और वह इस बात को बर्दाश्त न करेगा कि आज़ादी के सवाल को ब्रिटिश हुकूमत तरकीबें निकाल कर बराबर टालती जाय। लोगों को इस मिशन से किस्म की उम्मीद नहीं है मगर फिर भी वह इसे मौक़ा देना चाहते हैं। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने इस बात का ऐलान किया है कि ब्रिटिश हुकूमत हर्फ़ बहर्फ़ अपने सितम्बर सन् १९४५ के वादे को पूरा न करेगी तो कांग्रेस आख़िरी लड़ाई लड़ने के लिये कमरबस्ता होगी। मिस्टर जिन्नाह के अड़ंगे का सवाल बनाकर वह हिन्दुस्तान की आज़ादी के मसले को मुलतवी नहीं कर सकती। लार्ड पेथिक लारेंस ने इस बात का ऐलान किया है कि वे लोग ब्रिटिश बादशाह के नुमाइन्दों की हैसियत से यहाँ आ रहे हैं। उन्होंने यह ऐलान किया है कि हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के बीच नया सुलहनामा होने की ज़रूरत है।

हमें नहीं मालूम कि मामले आगे किस चलेंगे। ज्यादातर हिन्दुस्तानियों के दिलों में की नीयत पर यक़ीन नहीं है। आगे होनेवाली की तरतीब ही उनके दिलों से इस शुबहे को सकती है।

जहाँ तक हमारा सवाल है हम समझते हैं कि अभी तय्यारी, त्याग और क़ुरबानी के उन इम्तहान खरा नहीं उतरा है जो ग़ुलामी को नाक़ाबिले और नामुमकिन कर देते हैं।

मिस्रियों की आज़ादी

मिस्र की मुख़्तलिफ़ राजनैतिक पार्टियों में पाशा की वफ़्द पार्टी मिस्री आज़ादी की सबसे तलवगार थी। लड़ाई के दौरान में अंगरेज़ी हुकूमत कुचक्र से नहस पाशा को इस्तीफ़ा देकर अलग पड़ा और पिछले चुनाव में वफ़्द पार्टी ने किसी कोई हिस्सा नहीं लिया। लेकिन ज़माने के दौर ने फ़िज़ा पैदा की कि आज हर मिस्री वफ़्दी दिखाई है। आज सभी मिस्री एक आवाज़ से यह मांग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं कि अंगरेज़ी फ़ौजें मिस्र को ख़ाली करें और सूडान मिस्र को वापस मिले। अंगरेज़ राजदूत लार्ड किलर्न की हर तरह की कोशिशों के बावजूद आज शाह फ़ारूक़, उनके मन्त्री और जनता तीनों ब्रिटिश शहन्शाहियत के ख़िलाफ़ हैं।

अंगरेज़ी दांव-पेंचों के ख़िलाफ अपने को मज़बूत करने के लिये मिस्र आज अरब फेडरेशन का अगुआ बना हुआ है। अमीर इब्न सऊद के साथ शाह फ़ारूक़ का सुलहनामा हो गया है। फ़िलिस्तीन के मसले पर आज सारी अरब दुनिया एक हो गई है। मध्यपूर्व की राजनीति जो नया पहलू अख्तियार कर रही है उससे भी मिस्र की आज़ादी की मांग पुख्ता हुई है। सोवियत् रूस ने मध्य पूर्व की राजनीति में दख़ल देना शुरू किया है। ईरान धीरे धीरे सोवियत के साये में जा रहा है। यमन के मामले को मिस्र और सऊदी अरब ने मिलकर हल कर लिया है। यमन इब्न सऊद को दे दिया जायगा। इराक़ की नई वज़ारत अंगरेज़ी दख़ल को किसी तरह बर्दाश्त करने को तय्यार नहीं। सीरिया और लेबनान फ़रांसीसी फ़ौजों को बाहर निकालने पर कमरबस्ता हैं।

सन् १९३६ में मिस्र और ब्रिटेन में जो सुलहनामा हुआ था उसमें एक शर्त यह थी कि अगर दोनों दल चाहें तो १० बरस के बाद (जो अगस्त १९४६ में पूरे होते हैं) सुलहनामे की शर्तों को नये सिरे से दोहराया जा सकता है और अगर महज़ एक दल चाहे तो बीस बरस के बाद उसे दोहराया जा सकता है। आज कैफ़ियत यह है कि मिस्र उस सुलहनामे को फिर से दोहराना चाहता है। उसकी दलील यह है कि "ज़रूरत से मजबूर होकर" यह सुलहनामा किया गया था। पिछली जंग में मित्रराष्ट्रों को उसने जो मदद दी उसका ज़िक्र भी वह करता है। जवाब में २२ अगस्त १९४२ को मिस्टर बेविन ने कहा कि "जब मौक़ा आयगा तो ब्रिटेन इस मसले पर दोस्ताना तरीके से ग़ौर करेगा।"

दरअस्ल एक कमज़ोर और एक मज़बूत मुल्क के बीच सुलहनामे की कोई अहमियत नहीं होती। उसकी कोई ज़रूरत भी नहीं होती। लार्ड पैथिक लारेंस हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के बीच आज ज़ाब्ते से सुलहनामा करना चाहते हैं मगर जब तक हिन्दुस्तान ब्रिटेन के बराबर रुतबा हासिल नहीं कर लेता तब तक किसी तरह की सुलह उसके लिये फन्दा साबित हो सकती है।

मिस्र में ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ लहरें ज़ोर पकड़ रही हैं। ब्रिटिश एलची लार्ड किलर्न को वापस बुला लिया गया है। सिदकी पाशा मिस्र के नये वज़ीरे आज़म मुक़र्रर हुये हैं। मिस्री जनता और विद्यार्थी आन्दोलन को ज़ोरदार बना रहे हैं। ब्रिटेन के ख़िलाफ़ मिस्रियों का जज़्बा दिनों-दिन ज़ोर पकड़ रहा है। मध्य-पूर्व की हालत मिस्रियों के हक़ में जा रही है। ब्रिटिश डिप्लोमेसी ने ट्रान्सजोरडन के अमीर अब्दुल्ला और इराक़ के अमीर के बीच सुलह करा दी है मगर अमरीकन और रूसी दांव-पेंचों ने अरब मुल्कों को मजबूरन एक रस्सी में बांध दिया है। अरब फेडरेशन का जो ढांचा अंगरेजों ने अपने हक़ में खड़ा किया था आज वह भूत की तरह उन्हींके पीछे पड़ा हुआ है। उसकी कड़ियां कसती जा रही हैं मगर रूस के ख़िलाफ़ नहीं अंगरेजों के खिलाफ़। हमारी हमदर्दी साफ़ है—अंगरेज़ी फ़ौजें मिस्र को खाली करें और फ़रांसीसी फौजें सीरिया और लेबनान को।

मैलेबी के क़त्ल पर नई रोशनी

'विश्ववाणी' के पाठकों को याद होगा कि जावा पर जिस दिन से अँगरेजों ने अपने मनहूस कदम रखे उसी दिन से अमन कायम करने की आड़ में वे जावा को आज़ादी के आन्दोलन को कुचलने की कोशिशों में लगे हुये हैं। शुरू शुरू में वे खुलकर ऐसा करने में झिझक रहे थे। फिर अचानक दुनिया को बताया गया कि जावी नेताओं से सुलह की बातें करते हुये ब्रिगेडियर मैलेबी को जावी जनता ने कत्ल कर दिया। जावियों पर दग़ा का इलज़ाम लगाया गया और फिर इसके बाद उन पर हवाई जहाजों से गोला-बारी शुरू कर दी गई। हज़ारों जावी औरतों और बच्चों को कत्ल किया गया। गांव के गांव जला दिये गये। दुनिया पर यह असर डाला गया कि दगाबाज जावियों को मजबूरन सज़ा दी जा रही है। यह दूसरी बात है कि अंगरेज साम्राज्यशाही की यह खूनी तिजारत जावी आजादी को इस कीमत भी नहीं फरोख्त कर सकी। जो कैफियत पहले थी वही अब भी है।

इधर हाल में पार्लिमेण्ट के मजदूर मेम्बर मिस्टर टाम ड्रिबर्ग ने मैलेबी के कत्ल के भेद पर रोशनी डाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये महाशय जावा से अभी अभी लन्दन लौटे हैं। उन्होंने हाउस आफ कामन्स में २० फरवरी को अपनी तक़रीर में फ़रमाया कि जावा के अंगरेज़ अफ़सरों ने उन्हें बताया कि मैलेबी को क़त्ल नहीं किया गया बल्कि सोरबाया में जावियों के ऊपर एक हिन्दुस्तानी अफ़सर ने जो हथगोला फेंका था उससे ग़ालिबन मैलेबी की मौत हुई। मैलेबी की मौत में जावियों की कोई दग़ाबाज़ी नहीं थी।

है अंगरेज़ी शहन्शाहियत के पास इसका कोई जवाब? आज सचाई सामने है। और लाखों जावी बेगुनाहों को क़त्ल करने की ज़िम्मेवारी एटली और बेविन की मज़दूर सरकार पर है। पर जावी इस हैवतनाक मक्कारी का एक ही मुआविज़ा चाहते हैं और वह यह कि—जावा आज़ाद होकर रहे।

सोवियत् और मञ्चूरिया

अमरीका ने जापानी लड़ाई के ख़त्म होने के बाद चुङ्किङ्ग के ऐलची जैसे छोटे से ओहदे पर जब अमरीका के प्रधान सेनापति जनरल जार्ज मार्शल को मुक़र्रर करके भेजा तो जानकारों के सामने साफ़ हो गया था कि सोवियत् के ख़िलाफ़ चियांग काइ शेक की सरकार अमरीकियों के हाथों में खेल गई है। लड़ाई के ख़ात्मे के बाद सोवियत् ने अपना असर डालकर चीन में घरेलू सुलह क़ायम करने में पूरी पूरी मदद दी। चुंगकिंग के २५ फ़रवरी के रायटर के समाचार के मुताबिक़ कम्यूनिस्टों और चुंगकिंग की सरकार में एक समझौता भी हो गया है जिसके मुताबिक दोनों की फ़ौजें राष्ट्रीय सरकार के अधीन हो जांयगी। एक तरफ़ तो समझौते की ये बातें चल रही हैं और दूसरी तरफ़ सारे मुल्क में सोवियत् के ख़िलाफ़ संगठित आन्दोलन किया जा रहा है। विदेशी फ़ौजों का किसी मुल्क में रहना नामुनासिब बात है। इस लिहाज़ से सोवियत् फ़ौजों को मञ्चूरिया ख़ाली कर देना लाज़िम है मगर इसी तरह अमरीकी फ़ौजों को भी कोई हक़ नहीं कि वे चीन की छाती पर मँडराती रहें। हम इस मामले पर रायज़नी करने नहीं बैठे हैं। वह चीन का सरदर्द है और चीनी जनता को ही उसे उठाना है लेकिन हमारी यह दिली ख़ाहिश है कि चीन अमरीकी पूंजीपतियों के हाथों का खिलौना न बने। जहां तक रूसी फ़ौजों को हटाने का ताल्लुक़ है रूस ने साफ़ कह दिया है कि वह उस वक़्त तक मंचूरिया से अपनी फ़ौजें न हटायगा जब तक अमरीकी फ़ौजें चीन में रहेंगी।

मंचूरिया की हालत को समझने के लिये हमें तीन बरस पहले की उस घटना को याद करना होगा जब चांग सुएह लिआंग मार्शल चियांग काइ शेक को दिसम्बर १९३६ में सिआन से चकमा देकर उड़ा ले गया था। वह कम्यूनिस्टों और चियांग में इस तरह कोई समझौता कराना चाहता था। तब से वह जेल में है। उसके दोनों भाइयों, जनरल चांग सुएह शिह और जनरल चांग सुएह मिंग, का हाथ आज मञ्चूरिया के आन्दोलन के पीछे है। वे इस आन्दोलन के ज़रिये चांग सुएह लिआंग को छुड़ाना चाहते हैं। हमें नहीं मालूम अब तक चांग सुएह लिआंग को छोड़ा गया है या नहीं। मंचूरिया पर उसका काफ़ी असर है और मंचूरिया के मसले को हल करने में वह बहुत काम का साबित हो सकता है।

मंचूरिया का रक़बा सोवियत् रूस को छोड़कर यूरोप का ⅔ है। वह खानों और कच्चे माल के लिहाज़ से चीन का सबसे क़ीमती सूबा है। फ़ौजी मोरचेबन्दी के लिहाज से वह अपनी एक ख़ास जगह रखता है। वहां की ९५ फ़ी सदी आबादी चीनी है। जापानियों ने वहां जो जुल्म किये थे उसीकी वजह से जब सोवियत फ़ौजें मंचूरिया पहुंचीं तो उनका ख़ूब स्वागत हुआ और ख़ातिरतवाजो की गई। उस वक्त रूस ने न सिर्फ़ चुंगकिंग को मंचूरिया पर क़ब्जा करने में मदद दी बल्कि यह इतमीनान दिलाया कि वह जल्द ही मंचूरिया से अपनी फ़ौजें हटा लेगा। हमें हैरत है कि रूसी फ़ौजें अब तक मंचूरिया से क्यों नहीं हटीं। अब जब कि चुंगकिंग और चीनी कम्यूनिस्टों में फ़ौजी समझौता हो गया है तो सोवियत् को अपनी फ़ौजें हटा लेने में कोई एतराज़ न होना चाहिये।

पर ऐसा महसूस होता है कि मंचूरिया से सोवियत् की फ़ौजें न हटाने की वजह जापान, कोरिया, चीन, तुर्की, इराक़ वग़ैरह की वह अन्तर्राष्ट्रीय कैफ़ियत है जिसमें अंगरेज़ और अमरीकी हित ज़ाहिरा देखने में सोवियत् से टकराते हुये दिखाई दे रहे है। लन्दन और वाशिंगटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी जंग की ख़बरें आये हो रही हैं जिसमें इंगलैण्ड और अमरीका के ख़िलाफ़ रूस को एक फ़रीक कहा जा रहा है। यूँ बेविन साहब ने सोवियत के साथ पचास साला दोस्ती की दोहाई दी है मगर इन फिरंगियों के झूठ सच का एतबार ख़ुदा को भी नहीं हो सकता। ऐसी सूरत में मंचूरिया से सोवियत् फ़ौजें बिना हालात बदले शायद बहुत आसानी से नहीं हटेंगी।

हिन्दुस्तानियों की ज़िल्लत का नया खाका

दक्खिन अफ़रीका के हिन्दुस्तानियों ने फ्रीज़िंग बिल के सिलसिले में एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस करने की तजवीज़ की थी लेकिन फ़ील्ड मार्शल स्मट्स की सरकार ने उसे मानने से इनकार कर दिया। साउथ अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेस ने प्रीमियर के पास एक डेपुटेशन भेजकर मुलाक़ात की पर उसका कोई नतीजा नहीं निकला। लाचार उसने दो ठहराव पास किये। एक में फ्रीज़िङ्ग बिल की मुख़ालफत के लिये दक्खिन अफ़रीका के हिन्दुस्तानियों को कमर कसने के लिये कहा गया है और दूसरे में U. N. O. से अपील की गई है। वे लोग हिन्दुस्तान, अमरीका और ब्रिटेन में अपने डेपुटेशन भी भेज रहे हैं। जहां तक हिन्दुस्तान का सवाल है हमारी पूरी हमदर्दी अपने भाइयों के साथ है। सेण्ट्रल असेम्बली को डाक्टर खरे को मजबूर करना चाहिये कि वह फौरन हिन्दुस्तानी हाइ कमिश्नर को वापस बुला लें और दक्खिन अफ़रीका के साथ हर तरह की तिजारत बन्द कर दें। भारत सरकार इस बात को मानती है कि मौजूदा बिल पैगिंग कानून से भी बदतर है। इसके मुताबिक नैटाल में हिन्दुस्तानियों का जायदाद खरीदने का वह हक भी चला जाता है जो उन्हें पिछले ८० बरस से हासिल था। हमें ज़लील करने के लिये यह कहा जा रहा है कि इस बिल के मुताबिक जायदाद रखनेवाले कुछ हिन्दुस्तानियों को वोट देने का हक़ हो जायगा जो खुद तो न खड़े हो सकेंगे लेकिन गोरे उम्मीदवारों को अपना वोट दे सकेंगे।

फ़ील्ड मार्शल स्मट्स मीठी मीठी बातें करके हिन्दुस्तानियों को ख़ुश करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी और गोरे मिलकर रहें लेकिन हिन्दुस्तानी सिर्फ यह मान लें कि गोरों के साथ उनकी कोई बराबरी नहीं हो सकती। मार्शल स्मट्स इस बात को भूल जाते हैं कि सारी दुनिया के भूरे, पीले और काले आदमी गोरों के इस बड़प्पन को मानने से क़तई इनकार करते हैं। आज वह भले ही हिन्दुस्तानियों के ख़िलाफ़ अपनी राय का इज़हार करके साउथ अफ़रीका के प्रीमियर बने रह सकते हैं मगर एशिया का उमड़ता हुआ इनक़लाब एक दिन गोरों की इस शान को धूल में मिलाकर ही चैन लेगा।

अहिंसा से स्वराज

बम्बई के ख़ूनी नहान पर गान्धी जी ने जो नापसन्दगी ज़ाहिर की थी वह श्रीमती अरुणा आसफ़अली को रुची नहीं और उन्होंने ईमानदारी के साथ उसकी मुख़ालफत में अपनी राय ज़ाहिर की। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने बम्बई की कैफ़ियत को अपनी आंखों से देखकर एक बहुत बड़े आम जल्से में लोगों को इस बात के लिये आगाह किया है कि हिंसा के ज़रिये जनता अपने मक़सद तक नहीं पहुँच सकती। गान्धीजी ने श्रीमती अरुणा को जवाब देते हुये अपने २६ तारीख़ के बयान में हिंसा और तोड़फ़ोड़ और छुपकर काम करने के खिलाफ़ अपनी राय ज़ाहिर करते हुये कहा है—"मुझे लुक छिपकर काम करना पसन्द नहीं। मैं जानता हूं कि करोड़ों आदमी लुक छिपकर काम नहीं कर सकते। करोड़ों आदमियों को इसकी ज़रूरत भी नहीं। कुछ थोड़े से आदमी इस भुलावे में रह सकते हैं कि वे लुक छिपकर काम करके करोड़ों आदमियों के लिये आज़ादी हासिल कर सकते हैं। लेकिन जनता को क्या इस तरह चन्द आदमी आज़ादी दे सकते हैं? खुली चुनौती और खुले मुक़ाबले की बात पर ही सबको अमल करना चाहिये। ऐसी हालत पैदा करने की कोशिश करना ही सच्चा इनक़लाब है। दुनिया भर की चुसी हुई क़ौमों के लिये हिन्दुस्तान इसलिये एक नमूना बन गया है क्यों कि वह बिना हथियारों के खुला मुक़ाबला करके बग़ैर दूसरों को चोट पहुँचाये सबसे क़ुर्बानी करने के लिये कहता है। बिना खुली हुई अहिंसात्मक लड़ाई के हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमी नहीं उठ सकते थे। इस रास्ते से ज़रा भी भटकने का मतलब यह है कि जो तामीरी इनक़लाब हो रहा है उसमें रुकावट पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बयान में जहाज़ी फ़ौजियों की बग़ावत के मुताल्लिक़ अपनी राय ज़ाहिर करते हुये गान्धी जी कहते हैं—

"जिन लोगों ने इन्हें बग़ावत करने की सलाह दी वह मुनासिब सलाह नहीं थी। अगर उन्हें सचमुच शिकायतें थीं तो उन शिकायतों को उन्हें पहले अपनी पसन्द के सियासी नेताओं के सामने रखना था। अगर उन्होंने हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये बगावत की तो और भी गल्ती की। हिन्दुस्तान की इनकलाबी पार्टी की राय के बगैर उन्हें यह न करना चाहिये था। वे गुमराह और बेखबर थे अगर उन्होंने यह सोचा था कि वे अपने ज़ोर पर हिन्दुस्तान को विदेशी ग़ुलामी के पंजे से आज़ाद कर लेंगे...बे मौके की बहादुरी ख़ुदकुशी की तरह हो जाती है।

"अरुणा को यह कहने का हक है कि लोगों को हिंसा और अहिंसा की उसूली बहस में कोई दिलचस्पी नहीं। लेकिन लोगों को यह जानने में बेहद दिलचस्पी है कि उन्हें किस रास्ते से आज़ादी मिलेगी—हिंसा के रास्ते से या अहिंसा के रास्ते से। लोग अब तक अहिंसा के रास्ते पर पूरी तरह नहीं चले। अरुणा और उसके साथियों को हर बार अपने आप से यह पूछना चाहिये कि अहिंसा ने युगों से सोते हुये हिन्दुस्तान को जगाकर उसमें स्वराज्य के लिये एक ख़ाहिश, धुँधली ही सही, क्या नहीं पैदा की है?"

अपने हाल के मेदिनीपुर के दौरे में भी गान्धी जी ने सन् १९४२ के तोड़ फोड़ और हिंसा के तरीकों पर अपनी राय देते हुये वहाँ के कार्यकर्ताओं से कहा—

"आज आपको अकेले ब्रिटेन से ही नहीं तीन बड़े राष्ट्रों से निपटना पड़ेगा। आप उन्हीं के हथियारों से उनके साथ कामयाब लड़ाई नहीं लड़ सकते। आख़िर आप परमाणु बम से आगे तो नहीं जा सकते। जब तक हम हर किस्म के साम्राज्यवाद से लड़ने के लिये हिंसक विद्रोह के पुराने तरीक़े के बजाय कोई नया तरीक़ा ईजाद न करेंगे तब तक दुनिया की पीड़ित जातियों के लिये कोई उम्मीद नहीं हो सकती। किसी को रूस के उदाहरण से गुमराह नहीं होना चाहिये। हमारी परम्परा रूस से बिल्कुल जुदा है। हमारे इतिहास की भूमिका भी अलग तरह की है। रूस में सारी जनता के पास हथियार थे। हिन्दुस्तान की जनता को अगर ज़रूरी तालीम दी जाय तब भी हथियार नहीं उठायेगी। लेकिन यह सोचना बेकार कि हमारे हुक्मरां हमको ऐसी तालीम देने देंगे..."

लोगों ने वहां गान्धी जी से पूछा कि "क्या रूस के इनकलाब में ताक़त पर क़ब्ज़ा करने का सवाल नहीं है?" तो गान्धी जी ने जवाब दिया—"इसी का अर्थ है। अहिंसक क्रान्ति सत्ता हथियाने का तरीक़ा नहीं है। वह तरीकों को बदलने का कार्यक्रम है। [illegible] आख़ीर में सत्ता का शान्तिपूर्वक बदलाव होना है। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बम्बई वाली बैठक में अपनी तक़रीर में जो पाँच उपाय बताये थे, अगर [illegible] ने पूरी तरह उनपर अमल किया होता तो सरकार दमन करने की ताक़त कुण्ठित होजाती और उसे [illegible] मांग को मानना पड़ता

अहिंसक तरीका दबाव के तरीके के मुक़ाबले कितना ज़्यादा कारगर होता है इसकी मिसाल के तौर गान्धी जी ने बारडोली का ज़िक्र किया। मेदिनीपुर शुरू शुरू में लोग सत्ता के कुछ चिह्नों पर क़ब्ज़ा में कामयाब हुये मगर उसे वे बरकरार न रख सके बारडोली में सत्याग्रही अपनी लड़ाई के फ़ायदों को तरह क़ायम रख सके। "इसके अलावा", गान्धी ने कहा—"आप देख चुके कि आपकी सारी बहादुरी स्त्रियों की बेइज़्ज़ती न रोक सकी। यह तो नाक़ाबिल बर्दाश्त है। स्त्रियों की ओर बुरी निगाह डालने की किसी को हिम्मत न होनी चाहिये। इसके लिये ऊँची किस्म की बहादुरी यानी अहिंसक बहादुरी की ज़रूरत होती है मौत को भी चुनौती देसके और जिसके ख़िलाफ़ अत्याचारी की ताक़त कामयाब न हो सके। मैं ऐसी बहादुरी सिखाने की कोशिश कर रहा हूँ। इसमें वक़्त लगता है...लेकिन आप लोगों को, जिन्होंने इन कई दिनों में अहिंसा की शिक्षा पाई है, यह समझना चाहिये कि आप लोगों को वह सब करके दिखाना है, जो छिपा है।"

आज देश में हिंसा और अहिंसा की जो [illegible] पक रही है उसमें समझदार आदमियों को संयम के साथ गान्धी जी के विचारों की रोशनी में अपना ठीक रास्ता चुन लेना है और फिर बिना झिझके उस पर चलना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा नया प्रकाशन

महावीर वर्धमान

और

जैन धर्म

लेखक

डाक्टर जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०

पचासों प्रामाणिक जैन और बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के आधार पर भगवान महावीर के जीवन की आधुनिकतम व्याख्या

मूल्य १।) रु०, डाकखर्च सहित १॥=)

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है।
हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म की अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

...क : पण्डित सुन्दरलाल
...पादक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : बैजनाथ सिंह 'विनो...
कमल कुलश्रेष्ठ

वार्षिक मूल्य ६)]

अप्रैल १९४६

[एक अङ्क का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

[अप्रैल १९४६]

१—हमारा हिंदुस्तान है क्या ?—पं० जवाहर-लाल नेहरू २५७

२—बाबुली सभ्यता और संस्कृति—पं० सुन्दर-लाल २६५

३—विभंग-बौद्ध-दर्शन—भिक्षु धर्म रक्षित ... २७२

४—सिख धर्म का मध्य मार्ग—प्रो० तेजासिंह २८१

५—मलका नूरजहां—श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय एम० ए० ... ... २६८

६—हिंदुस्तान में मुग़ल हुकूमत का ढंग—प्रो० श्रीराम शर्म्मा एम०ए० ... २९२

७—अबदुर्रहीम ख़ानेखाना—श्री शंभुप्रसाद बहुगुना एम० ए० ... ...

८—शमशू मिस्त्री—श्री० विष्णु ...

९—पाकिस्तान की बुनियाद—श्री० गार्गीशंकर मिश्र

१०—हिन्दुस्तान की आज़ादी और मिस्टर जिन्नाह—एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड ...

११—सिनेमा और कब्रिस्तान—श्री० गुरुदयाल मल्लिक ... ...

१२—पुस्तक-परिचय ... ...

१३—अपनी बात ...

विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से 'विश्ववाणी' नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के बीच में छापा मारकर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने विवश हैं। 'विश्ववाणी' हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखना भूल जाते हैं। 'विश्ववाणी' सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत

नित्यानन्द

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वभारती

वर्ष ६, भाग ११] अप्रैल : १९४६ [अङ्क ४, पूरे अङ्क ६४

हमारा हिन्दुस्तान है क्या ?

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

यह लेख पण्डित जी की उस मशहूर अङ्गरेज़ी पुस्तक The Discovery of India का अंश है जो उन्होंने अहमदनगर के क़िले में लिखी थी और जो हाल ही में प्रकाशित हुई है। पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रेस में है और सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। —सम्पादक

जैसा मैं और जेलों में कर चुका था, अहमदनगर क़िले में भी मैंने बाग़बानी शुरू की। तेज़ धूप में भी मैं कई कई घण्टे रोज़ ज़मीन खोदने और फूलों की क्यारियाँ बनाने में ख़र्च करता था। ज़मीन बड़ी ख़राब और पथरीली थी। जगह जगह पुरानी इमारतों का मलबा, बचा हुआ सामान और खंडहर भरे हुए थे। अहमदनगर एक तारीख़ी जगह है जहाँ पिछले ज़माने में बहुत सी लड़ाइयां लड़ी जा चुकी हैं और दरबारी साज़िशें हो चुकी हैं। हिन्दुस्तान की तारीख़ की निगाह से अहमदनगर न इतनी ज़्यादा पुरानी जगह है और न दुनियाँ के बड़े बड़े मसलों के मुक़ाबले में इस जगह की कोई ख़ास अहमियत ही है।

इस बदक़िस्मत ज़मीन को खोदने पर तह से काफ़ी नीचे पुरानी दीवारों के टुकड़े और इमारतों के गुम्बदों के ऊपरी हिस्से मिले। हमारा ज़्यादा गहरा खोदना या पुरानी ऐतिहासिक चीज़ों के बारे में खोज-बीन करना जेल के अधिकारी पसन्द नहीं करते थे। हमारे पास इसके लिए सामान भी नहीं था। इसलिए हम ज़्यादा गहरा नहीं खोद सके। एक बार खोदते खोदते दीवार के एक टुकड़े पर, पत्थर में खुदा हुआ, एक ख़ूबसूरत कमल का फूल हमें मिला। मुमकिन है वह फूल दरवाज़े के ऊपर लगा हुआ रहा होगा।

मुझे देहरादून जेल की एक दूसरी खोज की याद आगई। पर वह खोज इतनी ख़ुश करने वाली नहीं थी। तीन साल पहले देहरादून जेल के अपने छोटे से आँगन को खोदते हुये मुझे पुराने दिनों की एक अजीब यादगार मिली थी। ज़मीन की सतह से बहुत नीचे दो पुराने ढेरों का बचा हुआ सामान हमें मिला। हमने कुछ दिलचस्पी और हैरानी के साथ उसे देखा। वे दोनों ढेर तीस चालीस बरस पहले की पुरानी फाँसी के हिस्से थे। पहले उस जगह फाँसी घर रह चुका था। इस जेल में बहुत अरसे से फाँसी देना बन्द कर दिया गया था और पुरानी फाँसी की सब ऊपरी चीज़ें हटा दी गई थीं। हम लोगों ने उसकी बुनियादें खोज निकालीं और उन्हें निकाल कर फेंक दिया। जेल के मेरे सब साथियों ने, जिन्होंने इस काम में मदद दी थी, इस बात पर बहुत ख़ुशी मनाई कि आख़िरकार हमने उस मनहूस चीज़ का नाम निशान मिटा दिया।

अब मैंने फावड़ा अलग रखकर उसकी जगह क़लम हाथ में ले लिया। आज कल की हालत पर मैं उस वक़्त तक नहीं लिख सकता जब तक कि मैं आजकल की चीज़ों में ख़ुद अमली हिस्सा लेने के लिए आज़ाद न होऊँ। जहाँ तक इस ज़माने का ताल्लुक़ है आदमी उसमें कुछ न कुछ ख़ुद अमली काम करने की ज़रूरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महसूस करता है। काम करते हुए ही मैं इस ज़माने को अपनी आंखों के सामने देख और समझ सकता हूं। और तभी मैं आसानी से और थोड़ी बहुत सहूलियत से उस पर लिख सकता हूं। जेल के अन्दर रहते हुए आजकल के किसी सवाल पर कोई पक्की और साफ़ साफ़ राय क़ायम कर सकना बहुत मुश्किल होता है। चीज़ों का उनके असली रूप में अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। सब चीज़ें धुंधली और साये की तरह नक़ली मालूम होती हैं जब तक कि उनसे ख़ुद भिड़ा और लड़ा न जावे। जेल में मेरे लिए आज कल का समय 'आजकल का समय' नहीं रह जाता। और न आजकल के ज़माने का मुक़ाबला हम किसी बीते हुए ज़माने से कर सकते हैं क्योंकि बीता हुआ ज़माना बिलकुल पत्थर के बुत की तरह मुर्दा होता है जिसमें अब कोई तब्दीली नहीं की जा सकती।

मैं पैग़म्बर का बाना पहनकर आगे आनेवाले दिनों के बारे में भी कोई पेशीनगोई नहीं कर सकता। मेरा दिमाग़ आगे आने वाले दिनों के बारे में अक्सर सोचा करता है और भविष्य के परदे को हटाकर दूसरी तरफ़ देखने की कोशिश करता हुआ, आगे आने वाली चीज़ों को अपने मुताबिक़ रँगने की कोशिश करता है। पर ये सब बेकार के ख़याल दौड़ाने हैं। सच यह है कि आगे आने वाले दिनों के बारे में कोई बात पक्की तौर से न कही जा सकती है और न जानी जा सकती है। हमें कोई इस बात का भरोसा नहीं है कि आगे आनेवाले दिन हमारी उम्मीदों पर पानी नहीं फेरेंगे और इन्सान के सब सपनों को झूठा साबित नहीं कर देंगे।

अब रह गया बीता हुआ ज़माना। उसके बारे में इतिहास लिखनेवालों या आलिमों की तरह मैं शास्त्रीय ढंग से नहीं लिख सकता। न मेरी जानकारी उतनी है, न मुझमें क़ाबलियत है और न मैंने उस तरह की तालीम पाई है। इस तरह के काम में मुझे दिलचस्पी भी नहीं है। जब मैं गुज़रे हुए ज़माने का ख़याल करता हूँ तो बहुत करके तो मुझे परेशानी होती है और कभी कभी यह देख कर जोश आता है कि गुज़रे हुए ज़माने में भी कुछ ऐसी चीज़ें मिलती हैं जिनका आज कल के ज़माने से सम्बन्ध है और जो इस ज़िन्दा ज़माने का ही एक पहलू दिखाई देती हैं। जब कभी ऐसा नहीं महसूस होता तो गुज़रा हुआ ज़माना मेरे लिए बिलकुल बेजान, [illegible] मुर्दा और फीका मालूम होता है। पिछले ज़माने के [illegible] में मैं उसी तरीक़े से लिख सकता हूं, जैसे पहले [illegible] चुका हूँ। यानी अपने मौजूदा विचारों और [illegible] उसका कुछ रिश्ता जोड़ कर तब लिखूँ। गेटे ने [illegible] जगह कहा है कि इस तरह की तारीख़ लिखना आदमी [illegible] पर से पिछले ज़माने के बोझ को कुछ हलका कर देता है। मैं समझता हूं यह तरीका साइकोएनालिसिस (Psycho-analysis) से कुछ मिलता जुलता है यानी अपने मनकी और अपने दिल की हालत को अच्छी तरह समझ कर उसके साथ बाहर की दुनिया का मिलान करना। फ़रक सिर्फ़ इतना है कि साइकोएनालिसिस में सिर्फ़ एक आदमी के दिल और दिमाग़ को देखा जाता है और इस तरह के इतिहास लिखने में [illegible] क़ौम बल्कि सारी इन्सानी क़ौम के दिल और दिमाग़ को देखा जाता है।

पिछले ज़माने की अच्छी और बुरी चीज़ों का [illegible] परेशान कर देता है और कभी कभी तो बेचैन कर देता है। यह बात हममें से उन लोगों के बारे में [illegible] सच है जिनका हिन्दुस्तान और चीन जैसी पुरानी [illegible] ताओं से वास्ता है। जर्मन दार्शनिक नीतज़े ने एक [illegible] कहा है कि 'पिछली सदियों की अक़्लमन्दी ही नहीं [illegible] उनका पागलपन भी हम पर असर डालता है। अमर [illegible] किसी का वारिस होना ही बड़ा ख़तरनाक है।'

मुझे क्या वसीयत मिली है? मैं किस चीज़ [illegible] वारिस हूं? मैं उन सब चीज़ों का वारिस हूं जिसे इन्सान ने दसियों हज़ारों बरस में हासिल किया है, जिन [illegible] उसने ग़ौर किया है, जिनके लिए उसने मुसीबतें [illegible] हैं, और जिनमें उसने दिलचस्पी ली है। मैं इन्सान [illegible] विजय के नारों, हार की बेहद पीड़ा और उनके [illegible] सब अजीब ग़रीब दिलेरी के कामों का वारिस हूं जो [illegible] जाने कितने पहले शुरू हुए थे, जो अभी तक जारी [illegible] और हमें अपनी तरफ़ खींच रहे हैं। हम इन सब [illegible] के वारिस हैं। हम और सब इन्सान इनके वारिस हैं। लेकिन हम हिन्दुस्तान वालों को एक ख़ास [illegible] मिली है। वह सिर्फ़ हमारे ही लिए नहीं है क्योंकि [illegible] की भी बाक़ी दुनिया से अलग हस्ती नहीं होती, [illegible] इन्सान ही की क़ौम में से हैं। पर यह वसीयत हम [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ज्यादा लागू होती है। कुछ ऐसी चीज़ है कि जो हमारे रग रग में भरी हुई हैं। जिस चीज़ ने हमें मौजूदा हालत तक पहुंचाया है और जो हमें आगे भी कुछ बनानी वाली हैं।

इस ख़ास वसीयत के ख़याल और मौजूदा ज़माने में उसके अमल ने बहुत दिनों से मेरे दिमाग़ को घेर रक्खा है। इसी के बारे में मैं लिखना चाहता हूं। लेकिन यह सवाल इतना टेढ़ा और उलझा हुआ है कि इस पर लिखने की हिम्मत नहीं होती, ख़ास कर जब कि मैं इसकी ऊपरी तह तक ही पहुँच सकता हूँ। ज़ाहिर है कि इस सवाल के साथ मैं इन्साफ़ नहीं कर सकता फिर भी इसको हल करने की कोशिश में मैं अपने दिमाग़ को साफ़ करने और उसे अगले क़दम के लिए तय्यार करने में, शायद अपने साथ ज़रूर कुछ इन्साफ़ कर सकूँ।

ज़ाहिर है कि सवाल को हल करने का तरीक़ा अक्सर मेरा अपना तरीक़ा होगा। किस तरह से वह सवाल मेरे दिमाग़ में पैदा हुआ, उसने क्या क्या शकलें बदलीं और किस तरह उसने मुझ पर और मेरे कामों पर असर डाला वगैरह। कुछ ऐसे भी बिलकुल निजी तजरबे हैं जिनका असल सवाल से कोई सीधा ताल्लुक़ नहीं है मगर जिन्होंने मेरे दिमाग़ पर एक ख़ास तरह का असर डाला है जिसकी वजह से कुल सवाल को हल करने के मेरे तरीक़े पर असर पड़ गया है। इसमें जो चीज़ सब से ज़्यादा असर करती है वह यह है कि हमारे उन मुल्कों और लोगों के साथ निजी ताल्लुक़ात हैं या नहीं और अगर हैं तो कैसे हैं। अगर हम किसी मुल्क के लोगों से निजी तौर पर परिचित नहीं हैं तो सिर्फ़ इस एक वजह से हम उनके बारे में ग़लत राय क़ायम कर सकते हैं। वह हमें बिलकुल विदेशी और एक दूसरी ही शकल में दिखाई देंगे।

जहां तक हमारे अपने मुल्क का सम्बन्ध है हमारे निजी ताल्लुक़ात बेहद हैं। इन ताल्लुक़ात की वजह से हमारे दिमाग़ में अपने देश-वासियों की कई तसवीरें या मिलीजुली तसवीरें बन जाती हैं। इस तरह मैंने भी अपने दिमाग़ में तरह तरह की तसवीरें जमा कर रक्खी हैं। कुछ तसवीरें बिलकुल साफ़ और सजीव हैं, एक ऊँचाई से मेरी तरफ़ देख कर मुझे ज़िन्दगी के कुछ ऊँचे असूलों की याद दिला रही हैं। फिर भी ये तसवीरें बहुत पहिले की मालूम पड़ती हैं और ऐसा मालूम होता है जैसे मैंने कोई कहानी पढ़ी हो। कई और भी तसवीरें हैं जो पुराने साथियों और उनके साथ के अच्छे ताल्लुक़ात की याद दिलाती हैं जिसकी वजह से ज़िन्दगी में मधुरता आ जाती है। इनके साथ ही साथ हिन्दुस्तान की जनता, मर्द, औरत और बच्चों की अनगिनत तसवीरें हैं जिनमें जनता एक जगह इकट्ठा है, मेरी तरफ़ देख रही है और मैं यह जानने की कोशिश कर रहा हूँ, कि ये हज़ारों आखें किन उमीदों से मेरी तरफ़ निहार रही हैं।

खोज

इन बरसों में जब मैंने काम किया और ख़ूब सोचा भी, मेरे दिमाग़ में हिन्दुस्तान की ही बाबत सारे ख़याल भरे रहे। मैंने हिन्दुस्तान को समझने की कोशिश की और उसकी बाबत मेरे जो ख़याल थे उनकी छानबीन की। मैंने अपने बचपन की याद की और यह याद करने की कोशिश की कि मैं उस वक़्त क्या महसूस करता था, मेरे बढ़ते और फैलते हुए दिमाग़ में हिन्दुस्तान की कितनी धुँधली तसवीर थी और बाद के नए नए तजरबों से वह और कैसे गढ़ी गई। कभी कभी यह तसवीर मेरे सामने से ओझल होजाती पर मेरे दिमाग़ में वह बराबर बनी रही, धीरे धीरे बदलती गई। हिन्दुस्तान के बारे में मेरी यह तसवीर पुरानी कहानियों कहावतों और आजकल की सच्ची हालत का एक अजीब ग़रीब मिलाव थी। उसने मेरे अन्दर अभिमान की एक लहर के साथ ही साथ शर्म की भी लहर पैदा करदी। मुझे अपने चारों तरफ की हालत देख कर शर्म आती थी। अंधविश्वास के साथ पूरे किये जाने वाले रीत रिवाजों, पुराने सड़े गले ख़यालों और सबसे ज़्यादा अपने मुल्क की गुलामी और ग़रीबी की हालत को देख कर मुझे शर्म आती थी।

जैसे जैसे मैं बड़ा होता गया और हिन्दुस्तान की आज़ादी को नज़दीक लाने वाले कामों में हिस्सा लेने लगा, वैसे वैसे हिन्दुस्तान की हालत को देखकर मुझे तकलीफ़ होने लगी। मैं सोचता था कि यह कैसा हिन्दुस्तान है जहां मैं रहता हूं, जो मुझे बार बार अपनी तरफ़ खींचता है और काम करने की प्रेरणा देता है जिससे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अपनी धुँधली पर गहरी दिली ख़ाहिशों को महसूस कर सकें। हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए काम करने की पहले पहल जो प्रेरणा मुझे हुई उसकी वजह एक तो मेरा ज़ाती और क़ौमी अभिमान था और दूसरे किसी भी विदेशी हकूमत का विरोध करने और अपने मुताबिक़ आज़ादी से ज़िन्दगी बसर करने की हर इन्सान की ख़ाहिश। यह देख कर मुझे बड़ी हैरानी होती थी कि हिन्दुस्तान सरीखा एक बड़ा देश, जिसका पिछला ज़माना कितना पुराना और शानदार रह चुका है, एक बहुत दूर पर बसे हुए टापू का ग़ुलाम है जो मनचाही हकूमत करते हैं। यह देख कर हैरानी और बढ़ जाती थी कि इस जबरदस्ती के मेल की वजह से देश में कितनी भयंकर ग़रीबी और ज़लालत फैल गई है। यह सब काफ़ी वजहें थीं जिन्होंने हमें और दूसरे लोगों को अपने मुल्क की आज़ादी के लिए काम करने का बढ़ावा दिया।

लेकिन मुझे संतोष देने के लिए यह काफ़ी नहीं था। मैं सोचा करता था कि जुगराफ़िया के नक़शे और क़ुदरती रूप रंगों, हवा, पानी मिट्टी के अलावा यह हिन्दुस्तान क्या है? पिछले ज़माने में उसकी क्या हस्ती थी? किस चीज़ ने उस वक़्त इसको मज़बूत बनाया? किस तरह उसने अपनी पुरानी ताक़त खोदी और क्या क़तई खो दी? इन्सानों की एक बहुत बड़ी बस्ती होने के अलावा इस वक़्त क्या इसके पास कोई ख़ास चीज़ है जो दूर से चमकती हो? आजकल की दुनियाँ में इसकी क्या हैसियत है?

सवाल के इस अन्तराष्ट्रीय पहलू पर मेरा ध्यान ज़्यादा गया। मैंने महसूस किया कि दुनिया से अपने को अलग रखना नामुनासिब है और नामुमकिन भी है। आगे आने वाले दिनों ने मेरे दिमाग़ में जिस तरह शक्लें अख़्तियार कीं वह इस रूप में थीं कि दुनिया के दूसरे मुल्कों से हिन्दुस्तान का राजकाजी, माली और कलचरल मामलों में गहरा सहयोग हो। लेकिन आने वाले दिनों के पहले मौजूदा ज़माना था और मौजूदा ज़माने के पीछे लम्बा और उलझा हुआ पिछला ज़माना था जिससे आजकल का ज़माना पैदा हुआ था। इसलिए पहले मैं पिछले ज़माने को समझने की कोशिश करने लगा।

इतिहास का पिछला सिलसिला

मेरे ख़ून में हिन्दुस्तानियत थी। यहाँ कई ऐसी बातें थीं जो मुझे बढ़ावा देती थीं। फिर भी मैंने मौजूदा हालत को नापसन्द करते हुए और पुराने ज़माने की बहुत सी तारीख़ी चीज़ों से नफ़रत करते हुए हिन्दुस्तान को बिलकुल एक विदेशी आलोचक की हैसियत से देखना शुरू किया। हिन्दुस्तान में एक तरह से मैं पश्चिम से होकर आया था और उसे एक ऐसे दोस्त की निगाह से देखता था जैसे कोई भी पश्चिम से आया दोस्त देख सकता है। मैं हिन्दुस्तान को एक नए सांचे में ढालने के लिए बेचैन था। उसे बिलकुल नया बना देना चाहता था। फिर भी मेरे अन्दर कई तरह के शक पैदा होते थे। क्या मैं हिन्दुस्तान को अच्छी तरह समझता हूँ? मैं—जो हिन्दुस्तान के पिछले ज़माने से चली आने वाली काफ़ी चीज़ों को ख़तम कर देना चाहता हूँ। मेरा ख़याल है कि ऐसी बहुत सी चीज़ें हैं जिनका अब कोई काम नहीं रहा और अब उन्हें ख़तम ही कर देना चाहिये। लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दुस्तान की पिछले जमाने की हालत जैसी सचमुच थी, वैसी न होती तो उसकी तहज़ीब हज़ारों साल तक चलने लायक नहीं हो सकती थी अगर उसमें कोई ख़ास टिकाऊ गुण न होता, कोई ख़ास काम की चीज़ न होती। वह क्या चीज़ थी?

हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिमी इलाक़े की सिन्ध की घाटी में मैं मोहन-जे-दरो के एक टीले पर खड़ा हुआ था। मेरे चारों तरफ़ इस पुराने शहर की इमारतें और सड़कें थीं। कहा जाता है कि यह शहर पाँच हजार साल पहले उस जगह बसा हुआ था, और उस समय वह एक ज़्यादा पुरानी और बड़ी सभ्यता की निशानी था। प्रोफ़ेसर चाइल्ड (Childe) लिखते हैं कि "[illegible] की सभ्यता हमें यह बताती है कि उस वक़्त किस तरह किसी ख़ास वातावरण या माहौल के अन्दर, इन्सान की ज़िन्दगी के सभी पहलुओं पर बराबर ध्यान रखते हुए सुभीते से ज़िन्दगी बसर की जा सकती थी। इस तरह की सभ्यता बरसों तक धीरज के साथ काम करने का नतीजा हो सकती थी। ख़ास बात यह है कि यह सभ्यता बराबर टिकी रही। यह साफ़ हिन्दुस्तानी सभ्यता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल की हिन्दुस्तानी कलचर की बुनियाद इसी पर है।" यह एक अजीब बात है कि किसी भी कलचर या सभ्यता का इतना लम्बा सिलसिला पांच या छै हज़ार बरस या इससे ज़्यादा तक रहा हो। यह सिलसिला किसी वक़्त रुका नहीं, न इसकी बढ़ती कभी बन्द हुई क्योंकि हिन्दुस्तान बराबर बदलता और तरक़्क़ी करता रहा है। उसका ईरान, मिस्र, यूनान, चीन, अरब, मध्य एशिया और रूमसागर के रहने वालों से बराबर गहरा सम्बन्ध रहा। हालांकि हिन्दुस्तान ने इन सब मुल्कों पर असर डाला और साथ ही साथ उनसे ख़ुद भी सीखा मगर हिन्दुस्तान की अपनी कलचरल बुनियाद बराबर पक्की रही। इस ताक़त का क्या राज़ था ? यह कहां से आई थी ?

मैंने हिन्दुस्तान की तारीख़ पढ़ी। उसके पुराने अदब (साहित्य) के बहुत बड़े ख़ज़ाने में से कुछ हिस्सा पढ़ा। उसके ख़याल की मज़बूती, साफ़ साफ़ ज़बान, और दिमाग़ की उस तेज़ी ने जो इन सब चीज़ों में से झलक रही थी, मुझ पर गहरा असर डाला। पुराने ज़माने में चीन, पच्छिमी और मध्य एशिया से कई बहादुर मुसाफ़िर हिन्दुस्तान आए थे। वे इस सारे देश में अच्छी तरह घूमे और उन्होंने अपने सफ़रनामे भी लिखे हैं। मैंने इन सबको पढ़ा और उनकी नज़र से हिन्दुस्तान को समझने की कोशिश की। पूरबी एशिया, अंकोर (Angkur), बोरोबुदुर (Borobudur) और कई दूसरी जगहों में हिन्दुस्तान ने जो काम किए उन पर मैंने ग़ौर किया। इन पुरानी किताबों की मार्फ़त मैं हिमालय पहाड़ पर घूमा। हिमालय का हमारे मुल्क के पुराने भेद भरे किस्सों और कहानियों से गहरा सम्बन्ध रहा है। इन किस्से कहानियों ने हमारे ख़यालों और अदब पर गहरा असर डाला है। पहाड़ों से मेरी मोहब्बत और काश्मीर से मेरे नाते की वजह से मेरी दिलचस्पी इन चीज़ों की तरफ़ ख़ासतौर से बढ़ी। इन चीज़ों में मैंने सिर्फ़ आजकल की ज़िन्दगी, जान और ख़ूबसूरती ही नहीं देखी बल्कि बहुत पुराने ज़माने का लुभानेवाला सौन्दर्य भी देखा। हिन्दुस्तान की विशाल नदियों ने, जो इस महान पर्वत से निकलकर मैदानों में बहती हैं, मेरा ध्यान अपनी तरफ़ खींचा और हमारी तारीख़ के अनगिनत पहलुओं की याद मुझे दिलाई। 'इन्दस' या 'सिन्धु' जिसकी वजह से हमारा मुल्क इन्डिया या हिन्दुस्तान कहलाया और जहां से होकर कौमें, जातियां, कारवां, फ़ौजें वग़ैरह हज़ारों साल तक हिन्दुस्तान आती रहीं; ब्रह्मपुत्र नदी, जिसका हिन्दुस्तान के प्रचलित इतिहास से तो सीधा ताल्लुक़ नहीं रहा लेकिन जिसका पुराने किस्से कहानियों में ज़िकर आता है, जो हिन्दुस्तान के उत्तर-पूर्वी पहाड़ों को फाड़ती हुई जंगलों से भरे मैदानों और पहाड़ों में तेज़ी के साथ, बिना शोर किए इस तरह बहती है कि देखकर दिल ख़ुश हो जाता है; जमना, जो अपने आसपास खेल कूद और नाच के पुराने किस्सों के लिए मशहूर है; और नदियों में सब से ज़्यादा पाक समझी जाने वाली गङ्गा जिसने हिन्दुस्तानियों के दिलों को मोह लिया है और जिसने तारीख़ की शुरुआत से न जाने कितने करोड़ों आदमियों को अपनी तरफ़ खींचा है। गङ्गा की कहानी तो, उसके निकलने के मुकाम से लेकर समुद्र में गिरने तक और पुराने ज़माने से लेकर अभी तक, हिन्दुस्तान की कलचर और उसकी सभ्यता, राज्यों के उत्थान और पतन, बड़े बड़े और महान शहरों, इन्सान के बहादुरी के कामों, दिमाग़ की खोज जिसमें हिन्दुस्तान के दार्शनिकों ने बेहद दिलचस्पी ली, ज़िन्दगी में सब तरह के सुखों का भोग और साथ ही साथ सब तरह के सुखों का त्याग, उतार-चढ़ाव, बढ़ती-बरबादी और जीने-मरने की, एक लम्बी कहानी है।

मैंने पुरानी यादगारों, खंडहरों, पुराने ज़माने के लेखों और दीवारों की चित्रकारियों—अजन्ता, एलोरा, एलीफैन्टा की गुफ़ाओं और दूसरी जगहों को अच्छी तरह देखा। मैंने बाद के ज़माने की ख़ूबसूरत इमारतें भी आगरा और दिल्ली में देखीं जहाँ का हर एक पत्थर हिन्दुस्तान के बीते ज़माने की अपनी अपनी कहानी सुनाता मालूम होता है।

हमारी कलचर का टिकाऊपन

ख़ुद मेरे शहर इलाहाबाद में या हरद्वार में मैं नहान के बड़े बड़े मेलों, जैसे कुम्भ मेले, में जाता था और लाखों आदमियों को वहाँ आते देखता था। इनके पहले के लोग हज़ारों साल से बराबर हिन्दुस्तान के कोने कोने से इसी तरह गङ्गा नहाने आते रहे हैं। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्योहारों को जब मैं देखता था तो तेरह सौ बरस पहले के चीनी यात्रियों और दूसरे लोगों के लिखे इन मेलों के बयान मुझे याद आजाते थे। उस वक्त भी ये मेले बहुत पुराने समझे जाते थे और यह पता लगाना मुश्किल था और है कि यह मेले कब से चले आरहे हैं। मुझे हैरानी होती थी कि यह कौन सा इतना ज़बरदस्त विश्वास है जिसकी वजह से अनगिनत पीढ़ियों से लगातार, हमारे देशवासी, इस मशहूर गङ्गा नदी की तरफ खिचते चले आरहे हैं।

मैंने खूब सफ़र किया, जगह जगह जाकर चीज़ों को देखा और अपने पिछले अध्ययन की रोशनी में इन पर ग़ौर किया। इस तरह मुझे पिछले ज़माने की चीज़ों को सही तरीक़े से समझने में बड़ी मदद मिली। इन चीज़ों के बारे में सिर्फ़ दिमाग़ी सोचविचार से मेरी जो राय बनी थी उसके साथ अब ख़ास तरह के जज़बात मिल गए। हिन्दुस्तान के बारे में अपने दिमाग़ में मैंने जो तसवीर बनाई थी उसमें धीरे धीरे अब एक असलियत महसूस होने लगी। मेरे पुरखों की ज़मीन पर अब ज़िन्दा आदमी बसने लगे जो हँसते और रोते थे, जो आपस में मोहब्बत करते थे और तकलीफें सहते थे, उनमें ऐसे आदमी भी थे जो ज़िन्दगी को जानते और अच्छी तरह समझते थे। अपनी अक़्ल के मुताबिक़ उन्होंने एक ढाँचा तय्यार किया था जिसने हिन्दुस्तान की कलचर को इस तरह पक्का और टिकाऊ बना दिया कि वह हज़ारों साल तक चली। इस बीते हुए ज़माने की सैकड़ों साफ़ तसवीरें मेरे दिमाग़ में भरी रहती थीं। जब कभी मैं इनसे ताल्लुक़ रखने वाली कोई ख़ास जगह देखने जाता था तो यह तसवीरें मेरी आखों के सामने आजाती थीं। बनारस के पास सारनाथ में मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे भगवान बुद्ध ख़ुद धर्म के बारे में अपना पहला उपदेश दे रहे हों। किताबों में लिखे हुए उनके कुछ शब्द ढाई हज़ार बरस के अरसे के बीच से मुझे गूँजते हुए मालूम पड़ते थे। अशोक की लेखों से भरी हुई पत्थर की लाट ख़ुद अपनी कहानी कहती हुई मालूम होती थी। वह बताती थी कि अशोक महाराजाधिराज होते हुए भी किसी राजा या महाराजाधिराज से कहीं बड़ा और ऊंचा था। फ़तेहपुर सीकरी में अकबर, अपने सारे राजकाज को भूलकर, कुछ नई बातें जानने और इन्सान के हमेशा से चले आने वाले सवालों के हल पर कुछ रोशनी पाने की ग़र से, दरबार करता था जहाँ वह सब धर्म मज़हबों के मानने वाले लोगों से सलाह-मशवरा और बहस करता था।

इस तरह धीरे धीरे हिन्दुस्तान की तारीख़ का सिलसिला उसके उतार-चढ़ाव, हार-जीत समेत मेरे दिमाग़ के सामने खुलता चला गया। मुझे यह एक अनोखी बात मालूम होती थी कि पाँच हज़ार बरस की तारीख़, बाहरी हमलों और इनक़लाबों से गुज़रने के बावजूद हिन्दुस्तान का कलचरल सिलसिला बराबर जारी रहा। यह एक ऐसा सिलसिला था जो जनता के बहुत दूर दूर तक फैला था और जिसने उनपर गहरा असर डाला था। सिर्फ़ चीन में इस तरह का सिलसिला और कलचरल ज़िन्दगी मिलती है। पिछले ज़माने का यह ख़ूबसूरत सिलसिला धीरे धीरे मौजूदा बरबादी के ज़माने में समाता चला गया। मौजूदा ज़माने में हम यह देखते हैं कि हिन्दुस्तान अपनी तमाम पिछली महत्ता और दृढ़ता के बावजूद ग़ुलाम है और ब्रिटेन का एक तरह से दुमछल्ला बना हुआ है। और दूसरी तरफ़ एक ख़ौफ़नाक जंग दुनिया भर में फैल रही है और इनसानों को बदल कर फाड़ खाने वाले जानवर बना डाल रही है। लेकिन पिछले पाँच हज़ार बरस के उस नज़ारे को सामने रखकर मैं चीज़ों को नए ढंग से समझने लगा। इस ज़माने की मुसीबतों और ज़िल्लतों का बोझ कुछ हलका होता मालूम हुआ। ऐसा मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान में एक सौ अस्सी बरस का अँगरेज़ी राज इस हज़ारों बरस के लम्बे इतिहास में ऐसा ही है जैसे बीच बीच में और भी कई बार बुरे दिन आते और जाते रहे हैं। हिन्दुस्तान फिर अपने असली रूप को समझ लेगा। हिन्दुस्तान में अँगरेज़ी राज इस बड़ी किताब का एक छोटा सा अध्याय है जिसका भी अब आख़िरी पन्ना लिखा जा रहा है। उसी तरह से दुनिया भी आज के भयंकर हत्याकाण्ड और ख़ूंरेज़ी से बच जावेगी और नई बुनियादों पर फिर से अपने आपको खड़ा कर लेगी। इस तरह से हिन्दुस्तान का ख़याल करने में मैं अकसर अपने भावों से ज़्यादा काम लेता था, फिर भी मैं जो कुछ सोचता था उसमें बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बाहर के देशों से अपने सम्बन्ध और भाई चारे वगैरह का ख़याल रहता ही था। हर बार मैं यही देखता था कि हिन्दुस्तान में नेशनलिज़्म यानी राष्ट्रीयता होनी चाहिये। बहुत से लोग अपनी राष्ट्रीयता के साथ दूसरे देशों का ख़याल और उनसे सम्बन्ध को भूल जाते हैं। आजकल की हिन्दुस्तान की हालत में राष्ट्रीयता का भाव ज़रूरी है और होना चाहिये। यह एक क़ुदरती जज़बा है। इससे हमारी तनदुरुस्ती का सबूत मिलता है। किसी भी ग़ुलाम मुल्क के लिए पहली और सबसे ज़बरदस्त चीज़ अपनी क़ौम की आज़ादी होनी चाहिये। हिन्दुस्तान का तो इतना पुराना इतिहास है। उसकी एक अपनी हस्ती, एक अपना अलग वजूद है। हिन्दुस्तानी अपनी इस बात को ख़ूब महसूस करते हैं इसलिए हमारे लिए तो यह और भी ज़्यादा ज़रूरी और क़ुदरती है कि हम पहले अपनी क़ौम की आजादी की सोचें।

क्या हिन्दुस्तान फिर से जवान हो सकता है

हमारी क़ौम एक पुरानी क़ौम है बल्कि यूं कहना चाहिये कि हमारे अन्दर बहुत सी क़ौमें अजीब तरह से मिली हुई हैं। हमारी इन क़ौमों या नसलों की याद हमें उस ज़माने तक ले जाती है जब दुनिया का इतिहास शुरू हुआ था। लेकिन सवाल होता है कि क्या हमारे दिन हो चुके? क्या हमारी ज़िन्दगी का यह ढलता हुआ पहर या ज़िन्दगी के सूरज के डूबने का वक़्त है? क्या हम सिर्फ़ उस बूढ़े आदमी की तरह हैं जिसका जोश ठंडा हो चुका है, जिसके हौसले मिट चुके हैं, जो अब कोई नई चीज़ दुनियां में नहीं कर सकता, जो सिर्फ़ शान्ति से सो जाना चाहता है और सिर्फ़ अपनी आख़िरी घड़ियां गिन रहा है।

दुनिया की कोई क़ौम या कोई जाति बहुत दिनों तक एक सी नहीं रह सकती। हर क़ौम बराबर दूसरों से मिलती मिलती और बदलती रहती है। कभी दिखाई देता है कि एक क़ौम क़रीब क़रीब मर रही है और फिर वह एक नई क़ौम की तरह या अपने पुराने वजूद के एक नए रूप की तरह फिर उठती हुई दिखाई देती है। पुरानी क़ौम और नई क़ौम में या इसी क़ौम के पुराने और नए रूपों में कभी तो बिलकुल एक अलहदगी दिखाई देती है, दोनों साफ़ दो अलग अलग क़ौमें मालूम होने लगती हैं और कभी कभी दोनों रूपों को एक दूसरे से जोड़ते हुए, विचारों का एक सिलसिला दिखाई देता है जो दोनों को ज़िन्दा रखता है।

इतिहास में इसकी बहुत सी मिसालें मिलती हैं कि पुरानी और अच्छी तरह जमी हुई सभ्यताएँ या तो धीरे धीरे मुरझा गईं या अचानक ख़त्म होगईं और ज़्यादा जानदार नई तहज़ीबें उनकी जगह आगईं। क्या कोई ऐसी जीवनी शक्ति है, कोई अन्दर की ताक़त, जो किसी तहज़ीब और किसी क़ौम को ज़िन्दा रखती है और जिसके बग़ैर सब कोशिशें उसी तरह बेकार हैं जिस तरह किसी बहुत बूढ़े आदमी की, किसी जवान आदमी की तरह काम करने की कोशिश बेकार होती है।

आजकल की दुनिया की कौमों में यह जीवनी शक्ति मैंने ख़ासकर तीन क़ौमों में महसूस की है—अमरीकन, रूसी और चीनी इन तीनों की जोड़ी है ज़रा अजीब!

अमरीका वालों की जड़ें तो पुरानी दुनियां में हैं लेकिन फिर भी वे हैं एक नई कौम। उनमें कोई पुराने तास्सुब या पक्षपात नहीं हैं। पुरानी क़ौमों की सी आदतों और रीत रिवाजों का बोझ भी उनके दिल और दिमाग़ों पर नहीं है। उनमें इतनी ज़बरदस्त जान कैसे आगई इसका समझना भी आसान है। यही हाल कनैडा वालों, आस्ट्रेलिया वालों और न्यूज़ीलैण्ड वालों का है। यह सब के सब पुरानी दुनिया से बहुत दर्जे तक अलग कट चुके हैं और ज़िन्दगी को बिलकुल एक नए तरीक़े से देख रहे हैं और नए नए तजरबे कर रहे हैं।

रूसी क़ौम कोई नई क़ौम नहीं है। फिर भी पुराने रूसियों और नए रूसियों में एक इतना ज़बरदस्त अलगाव मालूम होता है कि जैसे पुरानी रूसी क़ौम ने मर कर नया जनम लिया हो। इस तरह की कोई दूसरी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। रूसी क़ौम फिर से जवान होगई है। उनमें इतनी जान और इतनी ताक़त आगई है कि जिसे देख कर हैरानी होती है। रूसी लोग फिर से अपनी कुछ पुरानी जड़ों को भी ढूँढ रहे हैं लेकिन जहां तक उनके कुछ करने धरने का या दूसरों के साथ उनके सम्बन्ध का सवाल है, रूसी बिलकुल एक नई क़ौम हैं, एक नई नसल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और रूसी सभ्यता एक नई सभ्यता है।

रूस की मिसाल से यह दिखाई देता है कि कोई क़ौम किस तरह फिर से जवान हो सकती है। उसमें किस तरह फिर से जान पड़ सकती है। इसके लिए ज़रूरत यह है कि वह क़ौम अपने फिर से जवान होने की क़ीमत देने को तय्यार हो और उसकी जनता में जो शक्ति और जो बल छिपा और दबा पड़ा है उसे जगाने और काम में लाने के लिए तय्यार हो। यह जंग बहुत ही ख़ौफ़-नाक और भयंकर थी, फिर भी मुमकिन है इस जंग की वजह से, उन और क़ौमों में भी, जो इस आफ़त से बच जावें, फिर से जवानी आजावे।

चीनी क़ौम इन सबसे बिलकुल अलग है। चीनी कोई नई क़ौम नहीं हैं और न चीनी क़ौम को इतना ज़बरदस्त धक्का लगा है, न वे सिर से पांव तक इस तरह बदल गए हैं जैसे रूसी। इसमें शक नहीं कि सात साल की ज़ालिमाना जंग ने उन्हें बदल दिया है। यह होना ही था। मैं यह नहीं जानता कि उनमें जो कुछ तब्दीली हुई है उसकी वजह कहां तक यह जंग है और कहां तक कोई ज़्यादा गहरी चीज़ें हैं, या दोनों का मिल कर असर है। लेकिन इस बात को देख कर मैं हैरान होगया कि चीनी क़ौम में कितनी जान है। मैं यह सोच ही नहीं सकता कि जिस क़ौम में इतनी जान हो, जो शक्ति की इतनी ज़बरदस्त चट्टान पर खड़ी हो, वह कभी हार सकती है या मिट सकती है।

जो जान मैंने चीन के लोगों में देखी कुछ उसी तरह की चीज़ मैंने कभी कभी हिन्दुस्तान के लोगों में महसूस की है। मैंने यह चीज़ हमेशा नहीं देखी। से कम मेरे लिए पूरी तरह महसूस कर सकना मुमकिन नहीं होता। मुमकिन है कि जो मैं चाहता उससे मेरे सोचने पर भी असर पड़ता हो और मैं न सोच पाता हूं। लेकिन हिन्दुस्तान के लोगों में जगह घूमते हुए मैं हमेशा इस चीज़ की तलाश में हूँ। अगर हिन्दोस्तानियों में यह जान है तो वही बात है और उस सूरत में वे अपनी सब कमी पूरी लेंगे। अगर उनमें इतनी जान नहीं है तो हमारे कल कोशिशें करने और चिल्लाने से कोई ख़ास मतलब निकलेगा। यह सब हमारा सिर्फ़ मनबहलाव होगा। तरह का कोई पोलिटिकल समझौता या इन्तज़ाम में, जिससे हिन्दुस्तान के लोग पहले ही की तरह उससे थोड़ा बेहतर ज़िन्दगी बसर करते रहें, मुझे दिलचस्पी नहीं है। मैंने यह महसूस किया है कि स्तानियों में बहुत बड़ी ताक़त और क़ाबलीयत जगह दबी पड़ी है। मैं इन ताक़तों को उभार चाहता हूं, और चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी फिर से अन्दर जान महसूस करें और अपने को जवान हिन्दुस्तान की कुछ बनावट ही ऐसी है कि यह दुनियां में किसी से घटिया होकर नहीं रह सकता। तो हिन्दुस्तान दुनियां पर अपना पूरा असर डालेगा बिलकुल मिट जावेगा।

—अनु० पुरुषोत्तम

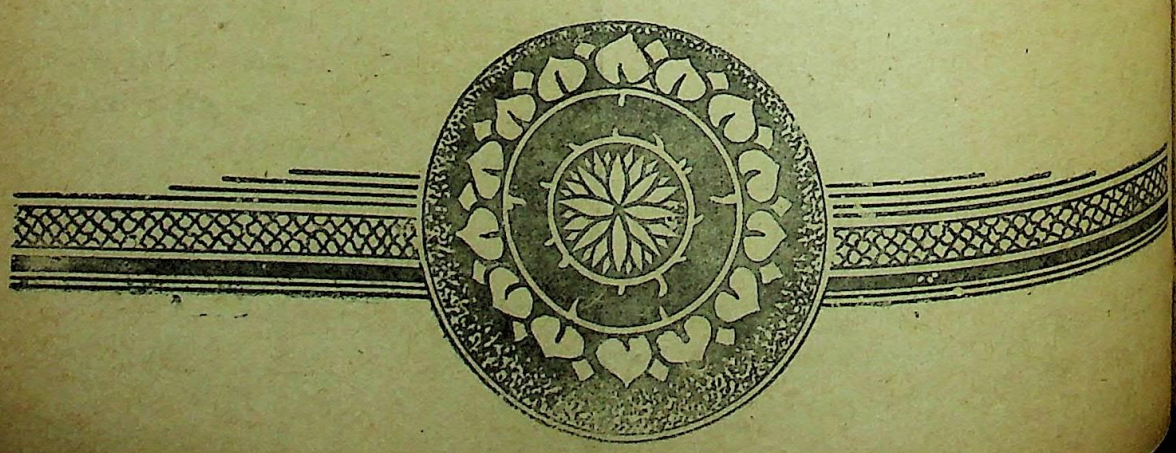

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबुली सभ्यता और संस्कृति

पण्डित सुन्दरलाल

मेसोपोटामिया या इराक़ में सभ्यता के इस दूसरे दौर को 'बाबुल (बाब + इल = ईश्वर का फाटक) की सभ्यता' के नाम से पुकारा जाता है। बाबुल का शहर ईसा से लगभग ३००० बरस पहले का बसा हुआ था और २००० साल बाद तक संस्कृति, साहित्य और राज शक्ति का एक बड़ा केन्द्र रहा। 'बाबुल' या बाबिल शब्द के माइने (बाब = द्वार, इल = ईश्वर) ईश्वर का द्वार' यानी हरिद्वार है। शायद संसार की कोई दूसरी राजधानी इतने लम्बे काल तक धन और ऐश्वर्य का केन्द्र नहीं रही। सम्राट हाम्मुराबी के बाद से इतिहास में सुमेर की जगह बाबुल ही का नाम सुनाई देता है।

सम्राट हाम्मुराबी

सुमेर, अक्कद और इलाम को जीतने के बाद, हाम्मुराबी एक होशियार शासक के रूप में लोगों के सामने आया। देश की तरक्की के हर साधन पर उसने गौर किया। धरती की कुदरती पैदावार को बढ़ाने के उसने ज़रिये निकाले। अपने देशवासियों के सुख और आराम की तरफ उसने ध्यान दिया। हाम्मुराबी का एक अपना बयान है जो हाल की खुदाई से निकला है। उसमें लिखा है—

"मैं हाम्मुराबी, बाबुल का शक्तिशाली सम्राट हूं। 'अनु' और 'बेल' की दया से सुमेर और अक्कद का राज मेरे हाथों में आया। देवताओं की कृपा से मुझ हाम्मुराबी ने आदमियों के भले के लिये यह बड़ी नहर खुदवाई। यह नहर जल की अटूट मिकदार सुमेर और अक्कद के देशों में लाती है। इस नहर के दोनों ओर की ज़मीन, जो पहले बंजर पड़ी थी, आज धन-धान्य से भरी है। इस जमीन में मैंने खूब बीज बुआए। सिंचाई के लिये मैंने इतने जल का इन्तज़ाम कर दिया जो कभी खत्म न हो। इस देश की बेइन्तज़ामी को मैंने इन्तज़ाम में बदला और यहां की बिखरी हुई क़ौमों को मैंने एकता के सूत्र में बांधा। जनता को मैंने धनी और खुशहाल बनाया। मैंने उन्हें अमन और आमान दिया। मैंने उन्हें वह जीवन दिया जिससे वह जितनी चाहे तरक्की कर सकते हैं।"

जिस देश में बारिश करीब करीब नहीं के बराबर होती थी वहां हाम्मुराबी की बनाई हुई यह विशाल नहर सिंचाई के लिये फायदेमंद साबित हुई। इसके बाद हाम्मुराबी ने इमारतें बनाने का काम हाथ में लिया। बाबुल में उसने अकाल के बुरे दिनों के लिये एक बहुत बड़ा नाज का भंडार बनवाकर उसमें गेहूँ जमा किया। लारसा और सिप्पर में उसने सूरज के आलीशान मन्दिर बनवाए। सिप्पर नगर की चहारदीवारी को उसने उसीके शब्दों में "पहाड़ के समान" चारों ओर से ऊँचा उठाया। सिप्पर के पास उसने एक और नई नहर खुदवाई। बारसिप्पर और बाबुल में भी उसने बड़े बड़े मन्दिर बनवाए। कलबाधा में (बगदाद के पास) उसने अपने रहने के लिये एक बड़ा महल तय्यार कराया। सुमेर के पुराने ग्रन्थों को उसने खोज खोजकर इकट्ठा किया। विद्या और संस्कृति की दृष्टि से उसने बाबुल को बड़े ऊँचे रुतबे तक पहुँचाया। बाद में जब हुकूमत बाबुल के हाथों से निकलकर असुरिया की राजधानी निनेवे में पहुँच गई तब भी बाबुल संस्कृति का केन्द्र बना रहा। असुरी सम्राट धर्म के मामलों में बाबुल से ही शिक्षा लेते थे। असुरी राजधानी निनेवे योधाओं का घर था, बाबुल विद्वानों का जमघट था, और उसका शुरू हाम्मुराबी की कोशिशें थीं। हाम्मुराबी महान बाबुली सत्ता का असली बानी था। हाम्मुराबी ने अपने विशाल साम्राज्य पर ४३ साल तक अमन के साथ हुकूमत की।

हाम्मुराबी की सल्तनत ठोस बुनियादों पर कायम हुई थी। उत्तर और दक्खिन दोनों ने उसके उत्तराधिकारियों की सत्ता को मान लिया। साम्राज्य के अमन चैन में साहित्य कला और विज्ञान को उस तरक्की का मौका मिला जिसका फैलाव बाद की सदियों तक दुनिया को ज्ञान की रोशनी देता रहा।

हाम्मुराबी के सुधार

हाम्मुराबी के समय में बाबुल का सब से बड़ा देवता 'मारदूक' समझा जाने लगा। हम्मुराबी ने बाबुल के समाज को नए सिरे से तरतीबें दीं। उसने सारी आबादी को तीन श्रेणियों में बांटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) 'अमेलु'—इसमें पुरोहित, धर्माचार्य, सरकारी अफ़सर, और फ़ौज के सिपाही होते थे।

(२) 'मुशकिनु'—इसमें व्यापारी, दूकानदार, शिक्षक, कारीगर, मज़दूर, और किसान होते थे।

(३) दास—इसमें युद्ध के कैदी, दासों की औलाद और नए ख़रीदे हुए ग़ुलाम होते थे।

सिपाही दो तरह के होते थे। इनमें ख़ास 'जाँ निसार" (Shock troops) होते थे। ये घमासान लड़ाई लड़ते थे। राजा ख़ुद इनका सरदार होता था। ये सात सात की क़तार में चलते थे। राजा जब लड़ाई में जाता था तो बदन पर काछा पहनकर, कन्धे पर मृगचर्म डालकर, और सिर पर सिरस्त्राण (बख़्तर) पहनकर जाता था।

सिपाहियों को जो ज़मीन गुज़ारे के लिए या इनाम में मिलती थी वह 'इल्कु' कहलाती थी। इल्कु की जायदाद न ज़ब्त हो सकती थी और न बेची जा सकती थी, और न महाजन उसे क़र्ज़ के एवज़ में ले सकता था। सिपाहियों को छोड़कर बाकी जनता से युद्ध का एक ख़ास कर या टैक्स लिया जाता था।

हाम्मुराबी को मुजरिमों की सज़ा के मामले में सुमेरियों के मुकाबले में कुछ ज़्यादह सख़्ती बरतने की ज़रूरत महसूस हुई। एक लेखक सुमेरियों और हाम्मुराबी के क़ानूनों की तुलना करते हुए लिखता है—

"सुमेर में पहले व्यभिचार की सज़ा 'तोबाह और बेइज़्ज़ती' थी किन्तु हाम्मुराबी के समय में व्यभिचार करने वालों को मौत की सज़ा मिलने लगी। सुमेर में जो कोई किसी के जुर्म करके भागे हुए ग़ुलाम को पनाह देता था तो उसे २५ शेकल चांदी का जुरमाना देना होता था। हाम्मुराबी के कानून के मुताबिक़ इस अपराध के लिये भी प्राणदण्ड मिलने लगा। सुमेरी गुस्ताख़ ग़ुलाम को बेच देते थे, नए क़ानून के मुताबिक़ गुस्ताख ग़ुलाम को कान काटने की सज़ा मिलने लगी···।"

एक पति की एक पत्नी का रिवाज ज्यों का त्यों क़ायम रहा।

हाम्मुराबी के कानून के अनुसार तलाक के जुर्म में आधा मीना चांदी का जुरमाना होता था। शुद्ध चरित्र स्त्री को यदि उसका पति यों ही छोड़ देता था या अपने से अलग रखता था तो वह दहेज़ समेत तलाक की हक़दार हो जाती थी। अगर स्त्री दुराचार में साबित होती थी तो उसे नदी में फेंक दिया जाता था। कोई पति बीमार या अपाहिज पत्नी को तलाक़ न दे सकता था।

यदि स्त्री व्यभिचार करते हुए पकड़ी जाती थी उसे उस मर्द के साथ बाँधकर नदी में फेंक देते थे। यदि पति या राजा चाहता था तो दोनों को माफ़ कर सकता था। यदि पत्नी को महज़ सुनी हुई बात पर लगाया गया हो तो वह शपथ लेकर अपने को निर्दोष सकती थी, और उसकी शपथ मान ली जाती थी।

जायदाद, विरासत और लेन-देन के बारे में सुमेर के अधिकार स्त्री को हासिल थे।

मुक़दमों के मामले में भी हाम्मुराबी ने कुछ कायदे बनाए। मुद्दई को कभी कभी बाबुल आना पड़ता था, या उसकी तरफ से कोई वकील पैरवी कर सकता था। कभी तीन और कभी चार पंच या जज अदालत में बैठते थे। गांव के बड़े बूढ़े या कभी कभी परिवार की मुखिया पंच मुकर्रर कर दिये जाते थे। इन पंचों में स्त्रियां भी होती थीं। ऐसे मुक़दमों में जिनमें मौत की सज़ा मिल सकती थी झूठी गवाही देने पर गवाह को मौत की सज़ा दी जाती थी। रुपए पैसे के मामले में गवाह के झूठ बोलने पर उसे पूरा हरजाना देना पड़ता था। गवाह अगर सफर में कहीं बाहर गया हो तो कई महीने तक मुक़दमा मुलतवी हो सकता था। किसी चीज़ के ख़रीदते समय लिखा पढ़ी या गवाही न हुई हो तो ख़रीदार चोर समझा जा सकता था।

अदालतों के अधिकारों की भी हदबन्दी (Jurisdiction) थी। हाम्मुराबी के शासन के २८ वें साल में बाबुल के जजों ने एक मुक़दमा लेने से इनकार करते हुए यह कहा था कि यह मुक़दमा ज़ान्ते से सिप्पार की अदालत मे दायर होना चाहिये था।

हाम्मुराबी के शासन में नीचे लिखे अपराधों पर मौत की सज़ा मिलती थी—क़त्ल के मुक़दमे में झूठी गवाही देने पर, महल या मन्दिर में चोरी करने पर, चोरी का माल ख़रीदने पर, नाबालिग से बग़ैर लिखा पढ़ी या गवाही के उसकी जायदाद ख़रीदने या गिरवी रखने पर, ग़ुलाम को भागने में मदद देने या भागे हुए ग़ुलाम को पनाह देने पर, फ़ौज में सिपाही बनने से इनकार करने पर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी कुमारी लड़की को भ्रष्ट करने पर, पिता की मरज़ी के खिलाफ़ लड़की को बहकाने पर, सरकारी निर्ख मुक़र्रर से शराब की ज़्यादा क़ीमत लेने पर, किसी चीज़ के बदले में दाम के एवज़ जौ लेने से इनकार करने पर या दाम के एवज़ में ज़्यादा चांदी मांगने पर, किसी स्त्री के लिए बावजूद खुशहाली के अपने लड़ाई में कैद हुए पति की ग़ैरहाज़िरी में पति की जायदाद उड़ाने पर, और व्यभिचार पर।

मां बेटे के अनुचित सम्बन्ध पर दोनों को ज़िन्दा जला दिया जाता था। जो देवदासी शराब खाने में पकड़ी जाती थी उसको और आग लगने के समय कहीं चोरी करने वाले को भी मौत की सज़ा मिलती थी। अगर कोई आज़ाद आदमी महाजन की मारपीट से मर जाय तो महाजन के बेटे को मौत की सज़ा मिलती थी। यदि किसी के हमले से किसी आज़ाद स्त्री को गर्भपात होकर उसकी मृत्यु हो जाय तो हमला करनेवाले की लड़की को प्राण-दण्ड मिलता था। यदि मकान गिर जाने से किसी की मौत होती थी तो मेमार को मौत की सजा दी जाती थी।

अपने पिता को मारनेवाले के हाथ काट दिये जाते थे। अगर किसी धाय के दूध न पिलाने से बच्चे की मौत हो जाय तो धाय की छातियां काट दी जाती थीं। बेटी के साथ दुष्कर्म करने पर बाप को देश निकाले की सज़ा मिलती थी।

जिस शहर या सूबे में डाका पड़ता था वहां के नुक़सान का तख़मीना अदालत लगाती थी और सब नुक़सान का हरजाना उस सूबे के गवर्नर या उस शहर के पटेसी को अदा करना पड़ता था।

आर्थिक संगठन

विवाहिता स्त्री अपनी निजी जायदाद की केवल आमदनी या निजी रुपए का केवल सूद खर्च कर सकती थी। अस्ल जायदाद या पूंजी पर उसके बच्चों या बच्चों के न होने पर उसके पिता या भाई का अधिकार होता था। लेकिन देवदासियों को अपनी निजी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार होता था।

ऊसर ज़मीन पर उसी आदमी का अधिकार समझा जाता था जो उसे साफ़ करके उस पर पहले क़ब्जा कर ले। प्रान्तों के गवर्नरों को अपनी फौज के लिए इस तरह की ज़मीन की पहली पैदावार, चारे और भूसे का हक़ होता था। गवर्नर लड़ाई के समय जनता से सिपाही, जानवर, और रथ ज़बरदस्ती ले सकते थे। नहरों की सफाई, सड़कों की मरम्मत या बनाई और दूसरे सार्वजनिक कामों के लिये भी गवर्नर जनता से बेगार ले सकता था।

किसान अपने काम के लिये सालाना नौकरी पर हलवाहे और चरवाहे रख सकते थे। वे बरसालिये कहलाते थे। मजदूरी में उन्हें जौ, ऊन, और कभी कभी थोड़ी चांदी या जानवर दिये जाते थे।

कानून छोटे किसानों की हिफ़ाज़त और उसके हित का ख़ास ध्यान रखता था। ज़मीन ख़रीदने के लिये किसी किसान के पास पूरा पैसा न हो तो राज्य छोटी छोटी क़िस्त मुक़र्रर कर देता था। किसी किसान ने किसी महाजन से क़र्ज़ लिया हो और उसे यह उम्मीद हो कि फ़सल होने पर वह कर्ज़ अदा कर देगा और इत्तफ़ाक़ से फ़सल ख़राब हो जाय तो उसके क़र्ज़े की अदायगी अगले साल के लिये मुलतवी कर दी जाती थी। किसान अपने खेतों को गिरवी रख सकते थे।

हर गांव में पंचायती चरागाह का ख़ास प्रबन्ध होता था। मेसोपोटामिया में बारिश कम होती है इसलिए चरागाह की सिंचाई का राज की तरफ़ से इन्तज़ाम किया जाता था। किसान अपने गधों, भेड़ों और बैल गाय को इन चरागाहों में मुफ़्त चरा सकते थे। केवल चरवाहे को उसकी साल भर की मज़दूरी के लिये ५५½ बोझ जौ देना होता था। अगर चराते हुए कोई पशु खो जाता था तो उसकी क़ीमत चरवाहे को देनी पड़ती थी। बाग़ों और बाड़ियों की पैदावार का दो तिहाई मालिक का होता था और एक तिहाई बाग़बान या काछी का होता था।

हर मकान की ज़मीन (प्लाट) ज़ाब्ते से नापी जाती थी और उसका रक़बा और औसत क़ीमत शहर के सरकारी रजिस्टर में दर्ज की जाती थी। मकान बनाने वाले मेमार को चांदी के सिक्कों में, नौ शेकेल फ़ी सार, (ज़मीन का एक माप) के हिसाब से मज़दूरी मिलती थी। किसी मकान की दीवार गिर जाती थी तो मेमार को गिरी हुई दीवार अपने ख़र्च पर फिर से बनानी पड़ती थी। दीवार गिरने से सामान ख़राब हो जाता था तो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सामान की क़ीमत देनी पड़ती थी। कोई ग़ुलाम दबकर मर जाता था तो उसका मुआविज़ा देना पड़ता था। और अगर मालिक दबकर मर जाता था तो मेमार को मौत की सज़ा मिलती थी।

ग़ैर सरकारी कारख़ानों के अलावा राज के अपने कारख़ाने भी होते थे। राज की तरफ़ से तमाम कारख़ानों की जांच के लिये एक अफ़सर रहता था। वह अफ़सर कारख़ानों के मालिकों को अपने काम में तरक़्क़ी देने के लिये समय समय पर क़ीमती सलाहें दिया करता था। वह इस बात का ध्यान रखता था कि मालिक अपने कारीगरों के साथ प्रेम और इन्साफ़ का व्यवहार करें। राज यह समझता था कि कारीगरों और मज़दूरों की ख़ुशी में ही देश की भलाई है।

कोई भी कारीगर किसी लड़के के मां-बाप की रज़ामन्दी से उस लड़के को अपने यहां रखकर अपना व्यवसाय सिखा सकता था। अगर लड़का उस व्यवसाय में होशियार हो जाता था तो उस पर फिर उसके मां-बाप का कोई अधिकार न रह जाता था लेकिन अगर लड़का कुछ न सीख सके तो वह अपने मां-बाप के यहां लौट सकता था। बाद में ईरानियों के ज़माने में क़ायदा बन गया था कि अगर उस्ताद शागिर्द को काम न सिखा सके तो उस्ताद को लड़के के बाप को हरजाना देना पड़ता था।

नदियों और नहरों के ज़रिये तिजारत होती थी। फ़िरात नदी के रास्ते ईरान की खाड़ी से फ़िलिस्तीन और सुरिया (सीरिया) तक तिजारत होती थी। फ़िरात के दोनों किनारों पर बड़े बड़े शहर बसे हुए थे। नावों से आना जाना और व्यापार होता था। एक नाव की क़ीमत २० शेकेल से ३० शेकेल (चांदी का एक सिक्का) तक होती थी।

दूर दूर के शहरों और मुल्कों के साथ तिजारत करने के लिये बाबुली व्यापारियों में मिलकर पत्तीदारी यानी शेयर पार्टनरशिप का रिवाज था। इसे तरह की कम्पनियों की तरफ से जगह जगह एजेन्सियां या आढ़तें खोली जाती थीं और एजेण्टों को अपने काम के बदले में माल की बिक्री पर मुनाफ़े में हिस्सा मिलता था। उत्तर और पच्छिम के देशों के साथ बाबुलवालों की ख़ूब तिजारत होती थी।

पत्तीदारी की कम्पनियां एक तरह की [illegible] कम्पनियां होती थीं। उनकी मियाद कभी कभी [illegible] समय के लिये होती थी और कभी कभी कई [illegible] लिए। नफ़े-नुकसान के सम्बन्ध में बीच बीच में [illegible] नामे होते रहते थे। जब कोई पत्तीदारी कम्पनी [illegible] की जाती थी तो हिसाब साफ़ करने के मामले में [illegible] लत को दख़ल देने का पूरा अधिकार होता था।

चीज़ों की या जायदाद की क़ीमत में नाज भी दि[illegible] जा सकता था, दूसरी चीज़ें भी दी जा सकती थीं [illegible] चांदी के या दूसरे सिक्के भी दिये जा सकते थे। खेत [illegible] मालिक अगर दूसरे को अपना खेत उठावे तो ज़्यादा [illegible] ज़्यादा तीन बरस और आमतौर पर एक बरस के लि[illegible] उठाया जाता था।

राज्य की तरफ़ से एक अफ़सर मुक़र्रर था जिसके सामने हर क़र्ज़े की लिखा-पढ़ी होती थी। उसी के सामने सूद की दर तै होती थी। क़र्ज़ की अदायगी भी उसी अफ़सर के सामने की जाती थी। ग़रीब आदमी इस सुविधा से महाजनों के ज़ुल्मों से बच जाते थे। क़र्ज़ बहुत बार जौ के रूप में मिलता था। अगर कोई साहूकार देने या लेने के समय तोलने के ग़लत बाट इस्तेमाल करता था तो उसका क़र्ज़ा और सारा हक़ [illegible] कर दिया जाता था।

साथ ही साहूकार के हित का भी क़ानून ध्यान रखता था। साहूकार को यह हक़ था कि क़र्ज़ की अदायगी को पक्का करने के लिये क़र्ज़दार से ज़मानत में बीवी, बच्चे, ग़ुलाम, खेत, मकान, हुंडी, बरतन, [illegible] वग़ैरह कर्ज के एवज गिरवी रखे जा सकते थे। क़र्ज़दार अपने वादे के अनुसार कर्ज अदा न कर पाता था तो [illegible] ग़ुलाम बनाया जा सकता था। गिरवी या बन्धक रखने वाला साहूकार बन्धक की चीज के खो जाने पर उसका ज़िम्मेवार होता था।

ये सब कायदे कानून और अमन आमान बाबुल के साम्राज्य को ज्यादहतर हाम्मुराबी की देन थे। हाम्मुराबी के बाद सन् १७६१ ई० पू० तक देश में बिल्कुल अमन रहा। इस बीच १६०० ई० पू० के लगभग एशिया कोचक के खत्तियों ने बाबुल पर हमला किया। वे आंधी की तरह आए और चले गए केवल बाबुल का पहला राजकुल खत्म होकर उसके बाद दूसरा राजकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तख़्त पर आ गया। लेकिन बाबुल के साम्राज्य या क़ौमी ज़िन्दगी पर खत्तियों का और कोई ख़ास असर नहीं रहा।

कुशान राजकुल

सन् १७६० ई० पू० में पूरब की तरफ से अर्धसभ्य कुशान या कश्शु क़ौम ने बाढ़ की तरह बाबुल पर हमला किया। बाबुल के सम्राट ने वीरता से मुक़ाबला किया, लेकिन खूंखार और नीम जङ्गली कश्शुओं ने एक बार सभ्य बाबुली राज को खत्म करके बाबुल पर कब्जा कर लिया। मुमकिन है बाबुलियों में बहुत दिनों के अमन से कुछ आरामतलबी पैदा हो गई हो। उन्हें नए खून की ज़रूरत रही हो। कुशान वहीं बस गए।

इन अर्धसभ्य लोगों ने, जब वहां रहकर बाबुल की सभ्यता, संस्कृति, कला और विज्ञान को नज़दीक से देखा तो उनकी आंखें खुल गईं। उन्होंने बाबुल को जीत लिया लेकिन बाबुल की सभ्यता और संस्कृति ने थोड़े ही समय में उन्हें जीत लिया। धीरे धीरे इस विदेशी क़ौम पर बाबुल की ऊँची सभ्यता पूरी तरह छा गई। कश्शु विदेशी विजेता बनकर आए थे लेकिन बाबुल में रहकर वे पूरी तरह बाबुली हो गए। बाबुल से उन्होंने ज्ञान विज्ञान की तालीम पाई। बाबुलियों के साथ शादियां करके उन्होंने बाबुलियों के पुराने खून में अपने नए ताज़ा खून का संचार किया। बाबुल में एक नई जागृति और ज़िन्दगी शुरू हो गई।

इस कुशान राजकुल ने बाबुल में सन् १७६० ई० पू० से ११८५ ई० पू० तक क़रीब ६०० बरस राज किया। बाबुल का यह तीसरा राजकुल कहलाता है। बाबुली समाज और बाबुली सभ्यता अपनी निश्चित परिपाटी के मुताबिक़ चलती रही। कुशान या कश्शु बाबुलियों के साथ पूरी तरह मिल-जुल गए। उन्होंने बड़ी बड़ी इमारतें बनवाईं, नहरें खुदवाईं और शहरों की चहार दीवारियां बनवाईं। ये बाबुल ही के देवताओं की पूजा करने लगे। इनमें और मिस्र के पेरोओं में पत्र-व्यवहार और शादी-ब्याह होने लगा।

आइसिन का राजकुल

कुशान राजकुल के बाद बाबुल का चौथा राजघराना ११८५ ई० पू० से १०५३ ई० पू० तक १३२ बरस राज करता रहा। यह राजघराना आइसिन राजकुल इसलिए कहलाता था क्योंकि उस कुल का संस्थापक आइसिन नगर का रहने वाला था। कुशान राजकुल और आइसिन राजकुल के खत्म होने का हाल बयान करने से पहले अब इस एक हज़ार बरस की बाबुली सभ्यता और वहां के रस्म रिवाज पर एक और नज़र डाल लेना ज़रूरी है।

बाबुल का सबसे बड़ा देवता मारदूक

ऊपर आ चुका है कि हाम्मुराबी ने बाबुल शहर के देवता मारदूक को देश का सबसे बड़ा देवता मान लिया था। मारदूक का सालाना त्यौहार देश का सबसे बड़ा उत्सव होता था जिसे 'अकिति' कहते थे। मारदूक के बड़े पुजारी को 'युरिगल्लु' कहा जाता था।

'निसान' महीने की दूसरी तारीख़ को युरिगल्लु सूरज निकलने से दो घण्टे पहले ब्राह्म मूहूर्त में उठता था। फ़िरात नदी के जल में स्नान करके ख़ास कपड़े पहनकर वह मन्दिर में जाता था, वहां मंत्र पढ़ता था। इसके बाद देवता के पट खुलते थे। भजनीक मंडली आकर देवता के सामने भजन गाती थी। फिर देवता को भोग लगता था। रात को सब लोग रात भर जागकर भजन गाते रहते थे। दूसरे दिन सूरज डूबने से तीन घंटे बाद तीन कारीगर और एक बुनकर मन्दिर में नई मूर्तियां बनाने आते थे। ये मूर्तियाँ सात-सात अंगुल ऊँची होती थीं। इन मूर्तियों को लाल कपड़े और जवाहरात पहनाए जाते थे। इनकी कमर में खजूर की पत्तियों का कमरबन्द होता था। इन मूर्तियों के एक हाथ में सांप और एक में बिच्छू होता था। छै दिन के उत्सव के बाद सातवें दिन इन मूर्तियों का अग्नि संस्कार कर दिया जाता था।

इसके चौथे दिन दजला और फ़िरात के पाक जल से मन्दिर को धोया जाता था। फिर एक भेड़ का खून छिड़ककर मन्दिर की दीवारें पाक की जाती थीं। बाद में इस भेड़ की लोथ को फ़िरात में फेंक दिया जाता था। जो दो पुजारी खून छिड़कने का काम करते थे वे उत्सव ख़त्म होने तक फिर शहर में न आ सकते थे। इस तमाम समय में बड़ा पुजारी युरिगल्लु बराबर अपने को मन्दिर में ही बन्द रखता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खून छिड़कने के चार घण्टे बाद युरिगल्लु जाप और ध्यान के बाद पूजा का आयोजन करता था। सम्राट भी उस दिन मन्दिर में आता था। बाबुल से कुछ मील के फ़ासले पर बार सिप्पर का देवता 'नेबो' था जो सम्राट के साथ लाया जाता था। सम्राट आकर मन्दिर के आंगन में खड़ा हो जाता था। युरिगल्लु आकर सम्राट के शाही कपड़े उतार देता था। उन कपड़ों को वह मारदूक के सामने चौकी पर रख देता था। फिर वह सम्राट के गाल पर हलके से चांटा मारकर उसे मारदूक के सामने ले जाता था। वहां वह सम्राट का कान पकड़कर उसे घुटनों के बल बैठाता था। उसके बाद सम्राट नम्र भाव से मारदूक के सामने नीचे लिखी प्रार्थना करता था—

"हे देव, हे दुनिया के मालिक, मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ और न मैंने तेरी शान के ख़िलाफ़ कोई बात की।

"न मैंने बाबुल को नष्ट किया और न उसे उजाड़ा। मैंने धर्म का रास्ता पकड़ा और धार्मिक कर्मकाण्ड पर अमल किया।

"मैंने न प्रजा को सताया और न उन्हें बेइज़्ज़त किया। मैंने बाबुल की तरक़्क़ी पर ध्यान दिया। मैंने उसकी दीवालें नहीं तोड़ीं।"

इसके बाद युरिगल्लु कहता था—"निर्भय हो जाओ!

"बेल (देवता) सदा कल्याण करेगा, वह तुम्हारे दुश्मनों का नाश करेगा और तुमसे डाह करने वालों का ख़ात्मा कर देगा।"

सम्राट फिर मन्दिर से बाहर निकलता था। उसकी शाही पोशाक, मुकुट और छत्र उसे वापस दिये जाते थे। एक बार युरिगल्लु फिर उसके गाल पर चाँटा मारता था। उस समय सम्राट की आंखों में भक्ति के आंसू छल छलाना ज़रूरी था। नहीं तो सूखी आंखें उसके लिये अशुभ समझी जाती थीं।

मन्दिर के आंगन में बीचों बीच एक हवन-कुण्ड होता था। उसी दिन सूरज डूबने के बाद ४० सरकंडों को खजूर की पत्तियों से बांधकर हवन कुंड के ऊपर रखा जाता था। उस पर शहद, मक्खन, और तेल छोड़ा जाता था। सम्राट अपने हाथ से हवन में आग देता था। उसके बाद वेदी के पास एक सफ़ेद बैल की बलि दी जाती थी।

सातवें दिन मारदूक का सिंगार होता था। उसे क़ीमती हीरों और जवाहरात से जड़े हुए कपड़े पहनाए जाते थे।

आठवें दिन मारदूक का जुलूस निकलता था। सम्राट खुद देवता का हाथ पकड़कर चलता था। मारदूक पहले मन्दिर के आंगन में लाया जाता था। बाबुल के सब मन्दिरों के देवता वहां मारदूक को प्रणाम करने के लिये लाये जाते थे। इसके बाद जुलूस फ़िरात नदी पर जाता था। वहां से नाव में बैठकर मारदूक को एजूर के मन्दिर में ले जाते थे, जहां ११ दिन तक मारदूक का वास रहता था। फिर उसी रास्ते जुलूस लौटता था। मारदूक जब अपने मन्दिर में वापस आ जाता था तब बाबुल के सब देवता अपने अपने मन्दिर में जाते थे। इनके जाने के बाद बारसिप्पर का देवता नेबे बारसिप्पर लौट जाता था।

बाबुल की सभ्यता

लगभग एक हज़ार बरस तक बाबुल ज्ञानियों और विद्वानों का देश समझा जाता था। इस अरसे में साहित्य ने और तरह तरह की दस्तकारियों ने राज की मदद से काफ़ी तरक़्क़ी की। चारों तरफ अमन और ख़ुशहाली दिखाई देती थी। बाबुलवाले धार्मिक तबियत के आदमी थे। समाज में स्त्री की काफ़ी इज़्ज़त थी। उनकी सभ्यता का आधार बल और युद्ध पर ही नहीं था। वे दुश्मन के साथ भी दया और रहम का बर्ताव करते थे। वे ज़्यादहतर धार्मिक पूजा-पाठ में लगे रहते थे। सदाचार का वे ख़ास ख़याल रखते थे। दूसरी बड़ी बड़ी इमारतों के अलावा उन्होंने देश भर में नहरों का एक जाल बिछा दिया था।

हिन्दुस्तान के साथ उनकी लगातार तिजारत जारी रही। ऋग्वेद में जिन समुद्र पार यात्राओं का ज़िक्र है वे सुमेर और बाबुल ही की तरफ होती थीं। बौद्ध ग्रन्थ "बाबेरु जातक" में लिखा है कि हिन्दुस्तान के व्यापारी अनन्तकाल से बाबेरु (बाबुल) के साथ व्यापार करते रहे हैं। उस ज़माने के हिन्दुस्तानी बड़े अच्छे मल्लाह होते थे। जातक कहानियों में इस तरह के जहाज़ों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िक्र है जिनमें सात सात सौ आदमी तक एक साथ सफ़र कर सकते थे। 'महाजनक जातक' और 'संख जातक' में हिन्दुस्तानी व्यापारियों के सिंहल (लंका), बाबुल और स्वर्णभूमि (मिस्र?) जाने का ज़िक्र है। हिन्दुस्तान के पूरब के बन्दरगाह चम्पा और ताम्रलिप्ति और पच्छिम के बन्दरगाह भारुकच्छ और सुराठ दूर दूर के देशों के साथ व्यापार के लिये हज़ारों बरस तक मशहूर रहे।

बाबुल ख़ास तौर पर मन्दिरों का देश कहा जाता था। हर सम्राट को यह उमंग रहती थी कि वह बड़े से बड़े मन्दिर बनवाए। जिस तरह मिस्र के पैरोए पिरेमिड बनवाने के लिये मशहूर हैं या जिस तरह बाद के असुरी सम्राट बड़े बड़े महल बनवाने के लिये मशहूर हैं उसी तरह बाबुल के सम्राट अपने बड़े बड़े मन्दिरों और ऊँचे बुर्जों जिग्गुरातों के लिये मशहूर हैं। बाबुल वालों के नाम ज़्यादहतर 'इल' ईश्वर या देवता के नाम पर रखे जाते थे।

मर्दों के नाम इस तरह के होते थे—

इलि—अर्थात् मेरे ईश्वर,

इलि-दुरि—मेरा ईश्वर मेरा दुरि (दुर्ग = क़िला) है,

इलि—अमराउनी—मेरा ईश्वर मुझे देख रहा है,

इलि-इशमिअन्नि—मेरे ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुनी,

इलि अमुर्रम—मेरा ईश्वर अमुर्रु है,

इलिमि-अलि—मेरा ईश्वर मेरा बाप है,

मन्तुम किमाइलि—मेरे ईश्वर के बराबर कौन है?

स्त्रियों के नाम इस तरह के होते थे—

इलि इम्दि—अर्थात् मेरा ईश्वर मेरा सहारा है,

इलि अर्दिल्मि रबि—मेरे पति का ईश्वर महान है।

ऊपर आ चुका है कि 'इल' को वे लोग सब देवताओं के ऊपर और उन सबका पैदा करने वाला निराकार ईश्वर मानते थे।

बाबुल के ऊंचे-ऊंचे मन्दिरों में मज़हबी किताबों, पूजा के गीतों वग़ैरह के अलावा वहां की दस्तकारियों पर भी अच्छी अच्छी किताबें जमा रहती थीं।

मन्दिरों में मामूली लोग सदा नंगे पैर जाते थे। मन्दिर के महन्त और पुजारी पूजा के समय अपना सर ढके रहते थे। वे धारीदार लम्बा चोग़ा पहनते थे और इस चोगे के ऊपर एक सदरी। पुजारियों की समाज में बड़ी इज़्ज़त की जाती थी। लेकिन किसीको पुजारी होने का पैदायशी हक़ न था। केवल विद्वानों को ही चाहे वे स्त्री हों या पुरुष पुजारी बनने का हक़ होता था। इस तरह के विदेशी लोग भी जो वहां की विद्या और धर्म शास्त्र में विद्वान हों बाबुल में पुजारी बन सकते थे।

पुजारी सम्राट के पास जा सकते थे। वे न्यायाधीश के पद पर बैठ सकते थे। जनता के चढ़ावे उन्हें धन की चिन्ता से मुक्त कर देते थे। वे शादी करते थे और अपने बाल-बच्चों के साथ रहते थे।

बाबुल के सम्राटों ने देश में जगह जगह बहुत से पुस्तकालय और विद्यालय जारी कराये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभङ्ग—बौद्ध दर्शन

भिक्षु धर्मरक्षित धर्मशास्त्री

भगवान बुद्ध का उपदेश व्यवहार और परमार्थ के हिसाब से दो भागों में बाँटा जा सकता है। जन साधारण की समझ में आने लायक उपदेश व्यावहारिक और विद्वानों तथा पण्डितों के लिये पारमार्थिक। व्यावहारिक उपदेश देखने में सीधे और सहज जान पड़ते हैं, किन्तु हैं वे भी गम्भीर। जहाँ परमार्थ सम्बन्धी दार्शनिक उपदेश हैं, उनकी गम्भीरता का क्या पूछना। उपदेश में भाषा सम्बन्धी गम्भीरता नहीं है, उनमें रहस्य भरी बातें भी नहीं हैं, उनमें केवल प्राणि-मात्र को सारे दुःखों से छुटकारा दिलानेवाले उपदेश हैं! जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने ज्ञान के मुताबिक समझ पड़ते हैं।

"भन्ते, जो ऐसा कहा जाता है कि यह प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर और गम्भीर के तौर पर दिखाई देनेवाला है, वह मुझे बिल्कुल छिछला और छिछले के तौर पर जान पड़ता है।"—आनन्द स्थविर के ऐसा कहने पर भगवान् ने कहा था—"आनन्द, ऐसा मत कहो, आनन्द, ऐसा मत कहो, आनन्द, यह प्रतीत्य समुत्पाद गम्भीर और गम्भीर के तौर पर दिखाई देने वाला है।"*

स्वयं भगवान् को भी बुद्धत्व प्राप्ति के बाद आठवें सप्ताह में तपस्सु और भल्लिका के दिए भोजन को खाकर, जा अजपाल नामक बर्गद वृक्ष के नीचे बैठे हुए अपने हासिल किए अनुपम और अनुत्तर धर्म की गम्भीरता दीख पड़ी थी, जिससे कि उन्हें थोड़ी देर के लिए धर्मोपदेश करने के प्रति अनुत्साह पैदा हुआ और उन्होंने सोचा—"मैंने अत्यन्त गम्भीर, कठिनाई से सूझ पड़ने वाले, दुर्ज्ञेय, शान्त, केवल तर्क के बल से अप्राप्य, निपुण और पण्डितों द्वारा जानने योग्य इस धर्म को पाया, किन्तु यह जनता कामोपभोग में लीन है, कामोपभोग को ही अपना घर बनाकर रमण कर रही है। ऐसी जनता के लिए यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है, बड़ा ही दुर्दर्शनीय है, और ये भी दुर्दृश्य हैं जो कि यह सभी संस्कारों का शमन, सभी उपाधियों (काम, स्कन्ध, क्लेश और अभिसंस्कार) का परित्याग, तृष्णा का नाश, विराग, निरोध और निर्वाण है। मैं धर्मोपदेश करूँ और उसे दूसरे न समझ पावें, तो उनके लिए वह एक तरद्दुद और पीड़ा होगी।*

इससे बुद्ध धर्म की गम्भीरता स्पष्ट है और इसमें सुत्तन्त तथा विनय की अपेक्षा यह जो [illegible] सम्बन्धी अभिधर्म-पिटक है, वह तो और भी गम्भीर है। (१) धम्मसङ्गणी (२) विभङ्ग (३) कथावत्थु (४) पुग्गलपञ्ञत्ति (५) धातु-कथा (६) यमक और (७) पट्ठान यह सात प्रकरण अभिधर्म के नाम से पुकारे जाते हैं जिनमें द्वितीय विभङ्ग प्रकरण है। और यही 'विभङ्ग' शब्द संक्षेप में विभागार्थ में प्रयुक्त हुआ है। "भिक्षुओ, तुम्हें भद्देकरत्त के उद्देश और विभङ्ग का उपदेशता हूँ" आदि स्थानों पर भी—विभङ्ग का विस्तार के साथ विभाजन करने के ही अर्थ में [illegible] है।† विभङ्ग प्रकरण में ऐसे अठारह धर्मों का बड़े [illegible] और आकर्षक ढंग से सविस्तार वर्णन किया गया है। प्रत्येक विभङ्ग के नाम से पुकारे जाते हैं। (१) [illegible] विभङ्ग (२) आयतन विभङ्ग (३) धातु विभङ्ग (४) [illegible] विभङ्ग (५) इन्द्रिय विभङ्ग (६) प्रतीत्यसमुत्पाद [illegible] (७) स्मृति-प्रस्थान विभङ्ग (८) सम्यक् प्रधान [illegible] (९) ऋद्धिपाद विभङ्ग (१०) बोध्यङ्ग विभङ्ग (११) [illegible] विभङ्ग (१२) ध्यान विभङ्ग (१३) अप्रमाण्य [illegible] (१४) शिक्षापद विभङ्ग (१५) ज्ञान विभङ्ग [illegible] प्रतीत्य समुत्पाद विभङ्ग (१७) क्षुद्रक-वस्तु विभङ्ग (१८) धर्म हृदय विभङ्ग।

स्कन्ध विभङ्ग सूत्रान्त और 'अभिधर्म' बँटने [illegible] हैं तथा 'प्रश्नपृच्छक' के क्रम से तीन भागों में बँटे हैं। जो पाठ्य क्रम से पांच भाणवार+ हैं और [illegible] के हिसाब से अनन्त और बेहिसाब होते हैं। इसके आयतन विभङ्ग आदि भी इसी तरह तीन-तीन भा[illegible]

* दीघ निकाय २.२

* दी० नि० महापदान सुत्त

† मज्झिम निकाय ३. ४. १

+ एक भाणवार में गाथा-गणना के क्रम से [illegible] हज़ार (२५० × ३२) अक्षरें होती हैं। उस [illegible] भाणवारों के हिसाब से ही पढ़ाई होती थी।—[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँटे हुए हैं। उनमें आयतन विभङ्ग एक भाणवार से अधिक है। धातु विभङ्ग और सत्य विभङ्ग दो-दो भाणवार हैं। इन्द्रिय विभङ्ग में सूत्रान्त बटने लायक नहीं है, यह भी पाठ्य-क्रम से एक भाणवार से कुछ अधिक है। प्रतीत्य समुत्पाद विभङ्ग छै भाणवार है। इसमें प्रश्नों का सिलसिला नहीं है। स्मृतिप्रस्था विभङ्ग एक भाणवार से अधिक है। ऐसे ही सम्यक प्रधान, ऋद्धि-पाद, बोध्यङ्ग और मार्ग विभङ्ग भी। ध्यान विभङ्ग दो भाणवार है। अप्रमाण्य विभङ्ग अतिरेक भाणवार मात्र है। शिक्षा-पद विभङ्ग में सूत्रान्त बँटने लायक नहीं है, वाच्य क्रम से यह भी एक भाणवार मात्र ही है। इसी प्रकार प्रतिसम्मित विभङ्ग भी है। ज्ञान विभङ्ग दश भागों में विभक्त है। जो पाठ्य-क्रम से लगभग दो भाणवार से अधिक है। सभी विस्तार के हिसाब से अनन्त और बेहिसाब होते हैं। इस प्रकार विभङ्ग प्रकरण में वाच्य-क्रम से कुल पैंतीस भाणवार हैं, और विस्तार की सीमा का कोई हिसाब नहीं है। अब यहाँ एक-एक का विस्तार दिया जायगा।

(१) स्कन्ध-विभंग

इस विभङ्ग में पञ्चस्कन्ध का बड़े सुन्दर ढङ्ग से वर्णन है। प्रारम्भ में बतलाया गया है कि पञ्चस्कन्ध ये हैं— (१) रूप-स्कन्ध (२) वेदना-स्कन्ध (४) संस्कार-स्कन्ध (५) विज्ञान-स्कन्ध। फिर प्रत्येक की व्याख्या सूत्रान्त तथा अभिधर्म भाजनीयों में करके 'प्रश्नपृच्छक' में प्रश्नोत्तर के तौर पर सभी अभिधर्म मात्रिकाओं के साथ मिला-मिलाकर पूछा गया है। जैसे—

"पांचों स्कन्धों में कितने कुशल हैं? कितने अकुशल हैं? कितने अव्याकृत (= अकथ) हैं?...कितने सरण हैं? कितने अरण हैं? फिर जवाब देते हुए बतलाया गया है—

रूप-स्कन्ध अकथ हैं, चार स्कन्ध (वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) कुशल हो सकते हैं, अकुशल हो सकते हैं, अकथ हो सकते हैं...ये...रूप-स्कन्ध अरण हैं, चारों स्कन्ध सरण हो सकते हैं, अरण हो सकते हैं।

इन प्रश्नोत्तरों में सभी मात्रिकाओं को ले लेकर प्रश्न पूछे गए हैं, किन्तु उत्तर केवल उन्हींका दिया गया है जो कि लक्ष्य हैं।

सूत्रान्त के बँटने लायक हिस्सों में पञ्चस्कन्धों का अलग-अलग अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्मिक, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूरस्थ और समीपस्थ के हिसाब से व्याख्या की गई है। अभिधर्म के बांटने लायक हिस्से में एकविध, द्विविध त्रिविध, चतुर्विधादि को बताए हुए हिसाब से ग्यारह प्रकार से रूपों का विभाजन किया गया है। धम्मसंगणी के रूप काण्ड में रूप विषयक पाठ ही यहाँ भी आया है। वेदना स्कन्ध का दश प्रकार से द्विक मात्रिकाओं के साथ द्विक-मूलक, त्रिक मात्रिकाओं के साथ त्रिक-मूलक और दोनों को मिलाकर 'उभयतो-वर्द्धक' एवं सात प्रकार से, चौबीस प्रकार से, तीस प्रकार से तथा बहुत प्रकार से वेदना का वर्णन किया गया है। ऐसी ही संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का भी वर्णन किया गया है।

धर्मराज तथागत आदित्य बन्धु ने इन पञ्चस्कन्धों में रूप को फेन (=गाज) के समान, वेदना को पानी के बुलबुले के समान, संज्ञा को मृग-मरीचिका के समान, संस्कार को केले के तने के समान और विज्ञान को माया के समान सार, नित्य, ध्रुव, शुभ, सुखादि से एकदम रहित बतलाया है। ये केवल प्राणियों को लुभा-लुभाकर बहेलिये के समान मारने वाले हैं।

(२) आयतन-विभंग

आयतन बारह होते हैं— (१) चक्षु आयतन (२) रूपायतन (३) श्रोत्र-आयतन (४) शब्दायतन (५) घ्राण-आयतन (६) गन्धायतन (७) जिह्वायतन (८) रसायतन (९) कायायतन (१०) स्पर्शायतन (११) मनायतन और (१२) धर्मायतन। इस विभङ्ग में इन आयतनों का बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से विश्लेषण किया गया है।

'आयतन' शब्द पालि वाङ्मय में निवास, आकर, समोसरण, उत्पत्ति स्थान और हेतु के अर्थ में प्रयुक्त है। यहां इन सभी अर्थों में उपयुक्त है। चक्षु आदि में ही सभी चित्त-चैतसिक धर्म निवास करते हैं। यही इनके आकर हैं। वस्तु, द्वार आदि आलम्बनों से सभी का यहाँ समोसरण (=जुटना) होता है। यही इनकी उत्पत्ति भूमि है। यही इनके हेतु हैं, क्योंकि इनके अभाव में उनका भाव सिद्ध नहीं। कहा है—

"चक्षु के कारण रूप में चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तीनों का समागम स्पर्श है। स्पर्श के कारण वेदना होती है। जिसे वेदन (= अनुभव) करता है, उसे जानता है, जिसे जानता है, उसके विषय में वितर्क करता है। जिसके विषय में वितर्क करता है, उसका प्रपञ्चन करता है। उसके कारण आदमी को भूत, भविष्यत्, वर्तमान सम्बन्धी चक्षु द्वारा विज्ञेय रूपों में प्रपञ्च के ख्याल बने रहते हैं।"

ऐसे ही घ्राण विज्ञेय गन्धों में, जिह्वा विज्ञेय रसों में, श्रोत्र विज्ञेय स्पर्शों में और मनो-विज्ञेय धर्मों में भी समझना चाहिए। यदि अपनी आंख दुरुस्त नहीं, रूप विद्यमान नहीं, आलोक नहीं और नहीं है मन, तो चक्षु-विज्ञान सम्भव नहीं, और उसके अभाव में स्पर्शादि की उत्पत्ति भी असम्भव है। औरों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिये।

अभिधर्म के बांटने लायक अंगों में इनका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि यह जो चारों महाभूतों को लेकर बनी सनिदर्शन और सप्रतिघ प्रसाद-चक्षु है, जिससे कि व्यक्ति रूप को देखता है, देखेगा अथवा देखे, वही चक्षु आयतन है। इसी प्रकार श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय के विषय में भी क्रमशः शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श के साथ योजना ज्ञातव्य है। मनायतन का विस्तार विज्ञान-स्कन्ध जैसा ही है क्योंकि जो मन है वही विज्ञान है, चित्त है, आत्मा है। ये सभी एक के ही पर्याय हैं। धर्मायतन कहते हैं मन के विषयों को। जो हैं वेदना स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, सोलह सूक्ष्म रूप और असंस्कृत धातु (= निर्वाण)।

बारह आतयनों में छै आध्यात्मिक और छै बाह्य हैं। सभी ध्रुव, शुभ, सुख, आत्मादि से रहित, नाशमान्, अशुभ, दुःख और अनात्मा हैं। कहा है चक्षु, रूप श्रोत्र, शब्द, घ्राण, गन्ध, जिह्वा, रस, काय, स्पर्श, मन और धर्म सभी अनित्य हैं, अनात्मा हैं, परिवर्तनशील हैं।

(३) धातु-विभंग

'धातु' शब्द स्वभावार्थ में प्रयुक्त है, जो स्वभावार्थ है, वह शून्यार्थ है, जो शून्यार्थ है वह निर्जीवार्थ है। इस प्रकार 'धातु' शब्द को स्वभाव, शून्य और निर्जीव के अर्थ में जानना चाहिए।

सूत्रान्त भाजनीय में छै छै धातुओं के साथ तीन छक्के धातुओं का वर्णन है—(१) पृथ्वी धातु, आप (जल)-धातु, तेजो (अग्नि) धातु, वायो-धातु, आकाश-धातु और विज्ञान धातु। (२) सुख धातु, दुःख-धातु, सौमनस्य-धातु, दौर्मनस्य धातु, उपेक्षा-धातु और अविद्या-धातु। (३) काम धातु, व्यापाद धातु, विहिंसा धातु, नैष्क्रम्य धातु, अव्यापाद धातु और अविहिंसा धातु।

अभिधर्म भाजनीय में भी अठारह धातुओं की देशना हुई है, जो सूत्रान्त से भिन्न हैं—(१) चक्षु धातु (२) रूप-धातु (३) चक्षुर्विज्ञान-धातु (४) श्रोत्र धातु (५) शब्द धातु (६) श्रोत्र विज्ञान-धातु (७) घ्राण-धातु (८) गन्ध-धातु (९) घ्राण-विज्ञान धातु (१०) जिह्वा-धातु (११) रस-धातु (१२) जिह्वा विज्ञान-धातु (१३) काय-धातु (१४) स्पर्श-धातु (१५) काय विज्ञान धातु (१६) मनोधातु (१७) धर्म-धातु और (१८) मनो-विज्ञान धातु।

इन दोनों भाजनीयों में इनका उद्देश-निर्देश के क्रम से बड़े सुन्दर ढङ्ग से विवेचन किया गया है। सूत्रान्त भाजनीय की धातुयें सहज विज्ञेय हैं। संक्षेप में आध्यात्मिक केश, लोम, नख, दांत, त्वक् (= चमड़ी) मांस, स्नायु, अस्थि (हड्डी), अस्थि के भीतर की मज्जा, वृक्क, हृदय (कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (= तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, उदरस्थ वस्तुयें, पाखाना, मस्तिष्क आदि जो बीस प्रकार के कर्कश स्वभाववाले भाग हैं तथा बाह्य लौह, काष्ठादि सभी पृथ्वी धातु हैं। ऐसे ही आध्यात्मिक पित्त, कफ, पीव, लोहू, पसीना, मेद (= वर) आंसू, चर्बी, लार, पोंटा, लसिका (शरीर के जोड़ों में स्थित तरल पदार्थ) और पेशाब—यह बारह प्रकार के पघरने के स्वभाववाले भाग तथा बाह्य जलादि सभी आपो-धातु हैं। शेष धातुओं को भी ऐसे ही समझकर जानो। विज्ञान धातु छै प्रकार की होती है—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मनो-विज्ञान।

कामोपभोग सम्बन्धी तर्क-वितर्क ही काम धातु है, ऐसे ही दूसरों को भी जानना चाहिए। अभिधर्म भाजनीय में जो कुछ कहना है, वह आयतन-विभङ्ग तथा पूर्व लेखों में यथासम्भव बतलाया जा चुका है।

शेष धातुओं को भी इसी प्रकार जानना चाहिए। मनोधातु कहते हैं—पञ्चद्वारावर्जन, सम्प्रतिच्छन्नद्वय विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को। धर्म-धातु धर्मायतन को ही जानो। केवल नानात्व है 'धातु' और 'आयतन' मात्र का। अरसठ (६८) मनोविज्ञान धातु है।

प्रश्नपृच्छक में सोलह धातुयें कामावचर तथा दो चतुर्भूमिक लौकिक और लोकोत्तर बतलाई गई हैं।

(४) सत्य-विभंग

चार आर्य-सत्य हैं— (१) दुःख आर्य सत्य (२) दुःख समुदय आर्यसत्य (३) दुःख निरोध आर्य सत्य और (४) दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद् आर्य सत्य।

"यह सत्य है गम्भीर अति दुर्दृश्य, कर तू भावना।
कारण! बिना इसके लगा सबका सदा सद्भावना॥
पर है हमारी लघु-विभावन की यहां भी धारणा।
विस्तार में संक्षेप ही ज्ञातव्य धर्म-प्रवारणा॥"

जन्मना भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक, परिदेव (रोना-कांदना), दुःख-दौर्मनस्य, परेशानी भी दुःख है, किसी चीज़ की इच्छा करके उसे न पाना भी दुःख है, थोड़े में कहो तो पञ्च-उपादान-स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) ही दुःख हैं—इसे दुःख कहा जाता है। जो नन्दी (तृष्णा) उन उन भोगों का अभिनन्दन करने वाली है, राग से संयुक्त फिर फिर जन्मने की तृष्णा है, जैसे कि (१) काम-तृष्णा (२) भव-तृष्णा (३) विभव तृष्णा। यही दुःख समुदय है। जो उस तृष्णा का सम्पूर्णतया विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिस्सर्ग, मुक्ति, अनालय है—यही दुःख निरोध है। यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद है, जैसे कि (१) सम्यक दृष्टि (२) सम्यक संकल्प (३) सम्यक वाचा (४) सम्यक कर्मान्त (५) सम्यक आजीव (६) सम्यक व्यायाम (७) सम्यक स्मृति और (८) सम्यक समाधि।

चतुरार्यसत्यों में दो आर्य सत्य कठिनता से देखे जाने के कारण गम्भीर हैं और अन्तिम दो गम्भीरता के कारण लोगों से ओझल रहते हैं। दुःख सत्य पैदा आदि होने से प्रगट है। मार-पीट-प्रहार, रोगादि में "अहो दुःख! अहो दुःख!!" कहना होता है। समुदय सत्य भी खाने की इच्छा, पीने की इच्छा आदि रूपों से प्रगट है। अन्य दो अति गम्भीर हैं। इन दोनों के दर्शनार्थ प्रयोग अवीचि-नर्क को छूने के लिए पैर पसारने की भांति है। सौ टुकड़े हुए बाल के कोटि-प्रतिपादन के तुल्य है। जैसे लोक में चन्द्र और सूर्य हैं ऐसे ही ये चारों आर्य-सत्य बुद्ध-धर्म में प्रगट हैं। भगवान् ने कहा था—

भिक्षुओ! चतुरार्यसत्य के न जानने और न समझने के ही कारण मेरा तथा तुम्हारा इस प्रकार चिरकाल तक दौड़ना धूपना लगा रहा।

सूत्रान्त भाजनीय में उद्देश-निर्देश के बाद उनके प्रत्येक भागों की उनके नाना शब्द, कृत्यादि पर्यायों से की गई है। अभिधर्म भाजनीय में आर्य सत्य न कहकर केवल "चार सत्य" कहा गया है और उनका निर्देश इस प्रकार हुआ है—

दुःख समुदय क्या है? तृष्णा ही दुःख समुदय है। दुःख क्या है? अवशेष क्लेश, अवशेष अकुशल धर्म, तीन आश्रव-युक्त कुशल मूल, अवशेष आश्रव-युक्त-कुशल धर्म तथा आश्रव युक्त कुशल-अकुशल कर्मों के विपाक, और क्रिया-चित्त, जो कि न तो कुशल हैं, न अकुशल, न कर्म-विपाकवाले एवं सम्पूर्ण रूप—इसे दुःख कहते हैं। दुःख निरोध क्या है? तृष्णा का छोड़ना ही दुःख-निरोध है। दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा क्या है? जिस समय भिक्षु निर्वाण के पास ले जानेवाले, भव संचय रहित दृष्टि-गत (=मिथ्या-दृष्टि) के छोड़ने और प्रथम-भूमि (=स्रोतापत्ति-मार्ग) की प्राप्ति के लिए कामों से अलग हो···दुखा-प्रतिपद् और मंद-बुद्धिवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, उस समय अष्टाङ्गिक मार्ग होता है...इसे दुःख निरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग कहते हैं।

यहाँ आर्य सत्य कहने पर अवशेष क्लेश और आश्रव-युक्त कुशल धर्म संगृहीत नहीं हो सकते, यह भी नहीं कि केवल तृष्णा ही दुःख लाती है, ये भी अवशेष क्लेशादि प्रत्यय होते हैं। अस्तु, इन प्रत्ययों को भी दिखलाते हुए आर्य सत्य न कहकर यहाँ केवल "चार सत्य" कहा गया है। निर्देश करते हुए पहले दुःख को निर्दिष्ट न करके भली-भाँति समझाने के हेतु प्रथम दुःख समुदय का निर्देश किया गया है। निरोध सत्य भी तृष्णा और अवशेष क्लेशों का प्रहाण कहकर समुच्छेद-प्रहाण के हिसाब से पाँच प्रकार से निर्दिष्ट है। मार्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य प्रथम ध्यान स्रोता-पत्ति मार्ग के रूप में धम्म-सङ्गणी में बतलाये नियम पर ही क़ायम है।

अभिधर्म भाजनीय तीन महावारों, पन्द्रह भागों और साठ हजार नयों से प्रतिमण्डित है। प्रश्नपृच्छक में स्कन्ध विभङ्ग के अनुसार ही कुशलादि भाव जानना चाहिए। यह विभङ्ग भी लौकिक-लोकोत्तर धर्मोपदेश से मिला हुआ है।

(५) इन्द्रिय-विभंग

कुल इन्द्रियाँ बाइस प्रकार की होती हैं—(१) चक्षु-न्द्रिय (२) श्रोतेन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय (४) जिह्वेन्द्रिय (५) कामेन्द्रिय (६) मनेन्द्रिय, (७) जीवितेन्द्रिय (८) स्त्री-इन्द्रिय (९) पुरुषेन्द्रिय (१०) सुखेन्द्रिय (११) दुःखेन्द्रिय (१२) सौमनस्येन्द्रिय (१३) दौर्मनस्येन्द्रिय (१४) उपेक्षेन्द्रिय (१५) श्रद्धेन्द्रिय (१६) वीर्येन्द्रिय (१७) स्मृतेन्द्रिय (१८) समाधेन्द्रिय (१९) प्रज्ञेन्द्रिय (२०) अनज्ञातज्ञस्यामीतिइन्द्रिय (२१) अज्ञेन्द्रिय और (२२) अज्ञातावेन्द्रिय।

'इन्द्रिय' शब्द का अर्थ है इन्द्रस्थ करना, इन्द्रखील के समान अचल करना। जो चक्षु द्वार पर इन्द्रस्थ करती है वही चक्षुन्द्रिय है। शेष के साथ भी इसी प्रकार योजना ज्ञातव्य है।

चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काम, स्त्री, पुरुष, सुख, दुःख और दौर्मनस्य इन्द्रियाँ कामावचर की हैं। मनेन्द्रिय, जीवितेन्द्रिय, उपेक्षेन्द्रिय, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, और प्रज्ञेन्द्रिय चतुर्भूमिक हैं। सौमनस्येन्द्रिय कामावचर, रूपावचर और अरूपावचर त्रिभूमिक हैं। अन्तिम तीन इन्द्रियाँ केवल लोकोत्तर हैं। जिनमें स्रोता-पत्ति मार्ग के ज्ञान को अनज्ञातज्ञस्यामीतेन्द्रिय और अर्हत्य फल के ज्ञान को अज्ञातावेन्द्रिय कहते हैं। बीच के स्रोतापत्ति फल, सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी फल, अनागामी मार्ग, अनागामी फल तथा अर्हत् मार्ग के इन छै ज्ञानों को अज्ञेन्द्रिय के नाम से पुकारते हैं।

इस विभङ्ग में सूत्रान्त भाजनीय नहीं है। कारण? सुत्तन्त में कहीं भी इन बाइस इन्द्रियों का एकीकरण नहीं है, कहीं दो, कहीं तीन, कहीं पाँच। अस्तु, भगवान् ने इस अभिधर्म देशन में भी सुत्तन्त में न होने के कारण तथा केवल इसी पर्याय को पर्याप्त समझकर सूत्रान्त भाजनीय को नहीं बताया है। कहा है—

इन्द्रियों में संयम रखनेवाला संवेग बहुल [illegible] (सभी) इन्द्रियों को भली-भाँति जानकर दुःख का क्षय (= निर्वाण) पा लेता है।

(६) प्रतीत्य समुत्पाद-विभंग

प्रतीत्य समुत्पाद बहुत ही गम्भीर और दुर्बोध है। भगवान् ने स्वयं कहा है—"गम्भीरो चायं आनन्द पटिच्चसमुप्पादो गम्भीरावभासो च।" उन्होंने बतलाया है कि इसको न जानने और न समझने के ही कारण यह जनता अझुराई तांत सी हो गई है, बँधी गाँठ सी हो गई है, मूँज-भाभड़ सी बन गई है और इसीलिए नर्क की दुर्गति में बार-बार पड़ने के चक्कर को नहीं त्यागती।

'प्रतीत्य समुत्पाद" का अर्थ है एक के कारण दूसरे की उत्पत्ति। बिना कारण, बिना हेतु, बिना [illegible] के किसी धर्म की उत्पत्ति सम्भव नहीं। वह प्रतीत्य समुत्पाद नय इस प्रकार है—

अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं।
संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान होता है।
विज्ञान के प्रत्यय से नाम और रूप होते हैं।
नाम और रूप के प्रत्यय से छै आयतन होते हैं।
छै आयतनों के प्रत्यय से स्पर्श होता है।
स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है।
वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है।
तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है।
उपादान के प्रत्यय से भव होता है।
भव के प्रत्यय से जन्म होता है।

और जन्म के प्रत्यय से बुढ़ापा, मरण, शोक, [illegible] (= रोना-काँदना), दुःख-दौर्मनस्य, और परेशानी (उपायास) उत्पन्न होती है। इस प्रकार सारे [illegible] समूह उठ खड़े होते हैं।

प्रतीत्य समुत्पाद के अविद्या और संस्कार [illegible] कालिक जन्म, जरा और मरण भविष्यत कालिक [illegible] बीच के आठ प्रत्यय वर्तमान कालिक—यह तीन [illegible] विभाग होते हैं। (१) अविद्या (२) संस्कार (३) विज्ञान (४) नाम-रूप (५) छै आयतन (६) [illegible] (७) वेदना (८) तृष्णा (९) उपादान (१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) जन्म और (१२) जरा-मरण—यह बारह अङ्ग हैं। अविद्या और संस्कार के ग्रहण से तृष्णा, उपादान और भव भी गृहीत हैं, ऐसे ही तृष्णा, उपादान और भव के ग्रहण से अविद्या और संस्कार। जन्म, जरा के ग्रहण से विज्ञानादि तत्प्रसूत पाँच फल भी गृहीत होते हैं।

अतीते हेतयो पञ्च इदानि फल पञ्चकं।
इदानि हेतयो पञ्च आयतिं फल पञ्चकं॥

इसका अर्थ—विभावन इस प्रकार जानना चाहिए—पूर्व जन्म के समय किए कर्मों में मोह, अविद्या, राशि-करण संस्कार, इच्छा, तृष्णा, उपगमन उपादान, चिन्तना भव—यह बातें जो होती हैं वह अगले जन्म की प्रति-सन्धि का प्रत्यय होती हैं। वहाँ फिर प्रतिसन्धि-विज्ञान, नामरूप, प्रसाद आयतन, छूना स्पर्श, अनुभूति वेदना—यह पांच पहले किए कर्मानुसार यहां उत्पन्न होते हैं। पुनः इस जन्म में आयतनों के परिपाक के कारण मोह, अविद्या, कुशलाकुशल का राशिकरण संस्कार, चाह, तृष्णा, उपगमन उपादान, चिन्तना भव, यह पाँच धर्म जो यहां किए जाते हैं वह अगले जन्म में पांच फल उत्पन्न होते जाते हैं।

तृष्णा और दुःख के बीच एक जोड़ (सन्धि) होता है वैसे ही दुःख और भव के बीच, तथा भव एवं जन्म के बीच। इस प्रकार चारों अंगुलियों के बीच तीन छेदों के समान तीन सन्धि और चार भाग (संक्षेप) होते हैं। बीस आकार प्रगट ही हैं।

अविद्या, तृष्णा और उपादान—यह तीन क्लेश-वर्त्त हैं, कर्मभव, और संस्कार कर्मवर्त्त तथा उत्पत्ति-भव एवं अवशेष सभी विपाक-वर्त्त कहे जाते हैं। चूँकि अविद्या और तृष्णा के न होने से दुःख की सम्भावना नहीं, इसलिए इन्हीं दो को सबका मूल कहते हैं।

अभिधर्म भाजनीय में "अविद्या-मूलक मात्रिका" का हेतु, सम्प्रयुक्त, और परस्पर (अञ्ञमञ्ञ) चतुष्कों के अनुसार उद्देश किया गया है। तदनन्तर इनका बड़े ही मनोहर ढङ्ग से निर्देश है। पुनः अकुशल, कुशल, अव्याकृत (अकिरिय) और अविद्या-मूलक प्रत्ययों का नय-निदर्शन हुआ है। तत्पश्चात् कुशल मूलक विपाक और अकुशल मूलक विपाक का। सूत्रान्त भाजनीय और अभिधर्म भाजनीय में विशेषता यह है कि जहां सूत्रान्त भाजनीय में नाना चित्तों के प्रत्ययाकार का विश्लेषण किया गया है, वहां अभिधर्म भाजनीय में दिखलाया गया है कि ये प्रत्यय एक चित्त-क्षण में भी कैसे मौजूद रहते हैं? पूर्वोक्तानुसार इस विभङ्ग में 'प्रश्न पृच्छक' नहीं है। कहा है—

गम्भीरे पञ्चयाकारप्पभेदे इध पण्डितो।
यथा गाधं लभेथेव मनुयुञ्जे सदा सतो॥

इस गम्भीर प्रत्ययाकार के भेदों में यदि पण्डित आदमी हमेशा होश बनाए हुए भिड़ा रहे तो अवश्य ही वह योग्य प्रतिष्ठा (= निर्वाण) को पा जायेगा।

(७) स्मृति प्रस्थान-विभंग

'स्मृति प्रस्थान' का अर्थ है होश को सर्वदा सामने रखना। यह स्मृति का उपस्थान चार प्रकार से होता है और उन्हें ही चार स्मृति प्रस्थान कहते हैं—(१) कायानुपश्यना स्मृति-प्रस्थान (२) वेदनानुपश्यना स्मृति प्रस्थान, (३) चित्तानुपश्यना स्मृति प्रस्थान और (४) धर्मानुपश्यनापश्यना स्मृति-प्रस्थान।

कायानुपश्यना कहते हैं आश्वास-प्रश्वास का ख्याल रखते काय में उत्पत्ति, विनाश आदि धर्मों को देखने की। ऐसे ही ईर्यापथ, चार-सम्पजन्य, प्रतिकूल मनसिकार, धातु मनसिकार और नव सीवथिक (श्मशान) के रूप में भी। सुख, दुख, उपेक्षा के हिसाब से आमिष वेदनाओं को अनुभव करते होश बनाए रखने को वेदनानुपश्यना कहते हैं। सरागादि सोलह प्रकार के चित्तों को जानते हुए उनकी अवस्थाओं में उनका होश बनाए रखने को चित्तानुपश्यना कहते हैं। पांच नीवरण, पञ्च-स्कन्ध, द्वादश आयतन, सात-बोध्यङ्ग और चार आर्य सत्य के अवलोकन में होश बनाए रखने को धर्मानुपश्यना कहते हैं।

इन स्मृति प्रस्थानों का आनृशंस (गुण) दिखलाते हुए धर्मराज भगवान सम्यक् सम्बुद्ध ने कहा था—"भिक्षुओ, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानों को इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसके लिए दो फलों में से एक अवश्य आकांक्ष्य है—(१) इसी जन्म में अर्हत् फल (= आज्ञा) की प्राप्ति अथवा (२) उपधियों (काम-स्कन्ध, क्लेश और अभिसंस्कार) के शेष होने पर अनागामी-भाव। रहने दो भिक्षुओ सात वर्ष। जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानों को छै वर्ष, पाँच वर्ष, चार वर्ष,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, सात मास, छै मास, पांच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, आधे मास, सप्ताह भर (भी) भावना करे तो उसके लिए दो फलों में से एक अवश्य आकांक्ष है।"

"भिक्षुओ, यह जो चार स्मृति प्रस्थान हैं, वह सत्त्वों के शोक, कष्ट की विशुद्धि के लिए, दुःख दौर्मनस्य के अतिक्रमण के लिए, न्याय (सत्य) की प्राप्ति के लिए, निर्वाण के लाभ और साक्षात्कार के लिए अकेला मार्ग है।"

अभिधर्म भाजनीय में स्रोतापत्ति मार्ग के एक चित्त क्षण में भी इनके अस्तिभाव का निदर्शन किया गया है। यह भाजनीय अस्सी हजार नयों से प्रतिमण्डित है। 'प्रश्नपृच्छक' में भी केवल लोकोत्तर ही धर्मोपदेश हुआ है।

(८) सम्यक प्रधान विभंग

'सम्यक प्रधान' का अर्थ है उचित वीर्य, उपाय-उत्साह, योग्य व्यायाम, ठीक मेहनत आदि। यह अपने नाना चैतसिक कृत्यों के अनुसार चार प्रकार का होता है—(१) उत्पन्न बुरे पाप धर्म को दूर करने के लिए प्रयत्न करना (२) अनुत्पन्न बुरे पाप धर्म को न उत्पन्न होने के लिए प्रयत्न करना (३) अनुत्पन्न कुशल धर्म की उत्पत्ति के लिए प्रयत्न करना और (४) उत्पन्न कुशल धर्म को खूब बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना।

अभिधर्म भाजनीय में धम्मसङ्गणी में आए चार सम्यक प्रधान का ही निर्देश हुआ है। जिनमें प्रथम सम्यक प्रधान के स्रोतापत्ति मार्ग के ध्यानाभिनिवेश में शुद्धक प्रतिपद, शुद्धक शून्यता, शून्यता प्रतिपद शुद्धक-अप्रणिहत और अप्रणिहित-प्रतिपद—इन पांचों में दो दो चतुष्क और पञ्चक नयों के हिसाब से दस नय होते हैं। ऐसे ही शेष में भी। इस प्रकार बीस अभिनिवेशों में दो सौ नय होते हैं। ऐसे ही शेष में भी। इस प्रकार बीस अभिनिवेशों में दो सौ नय हुए उन्हें चार अधिपतियों के साथ जरब (= गुणन) करने पर आठ सौ अस्सु सब नय हजार होते हैं। वैसे ही शेष तीन सम्यक् प्रधान और और मार्गों से भी। फलतः सम्पूर्ण बीस हजार नय हुए। सूत्रान्त भाजनीय लौकिक लोकोत्तर मिश्र है। शेष तीन सम्यक प्रधान और मार्गों में भी। फलतः सम्पूर्ण बीस हजार नय हुए। सूत्रान्त भाजनीय लौकिक लोकोत्तर मिश्र है। शेष दो केवल लोकोत्तर ही।

(९) ऋद्धिपाद-विभंग

'ऋद्धि-पाद' कहते हैं समृद्धि के पादों को। कुशल धर्मों की प्रतिष्ठा हेतु पाद स्तम्भ सदृश है। छन्द ऋद्धिपाद (२) वीर्य-ऋद्धिपाद (३) चित्त-ऋद्धि और (४) वीमंसा ऋद्धिपाद—यह चार ऋद्धि होते हैं।

जब भिक्षु छन्द को अधिपति करके समाधि की एकाग्रता को प्राप्त करता है, तब उसे छन्द कहते हैं, तदनन्तर वह सम्यक प्रधान की भावना विशेष तौर पर छन्द करता है, उत्पन्न कुशल धर्म बने रहने और वैपुल्य भाव पाने के लिए, तब उसके प्रतिष्ठार्थ में छन्द-ऋद्धि पाद होता है। अन्य भी विभा वन ऐसे ही ज्ञातव्य है।

अभिधर्म भाजनीय बत्तीस हज़ार नयों से प्रतिमण्डित है, लोकोत्तर चित्तों में इन चारों की स्थिति किस प्रकार और कैसी होती है? भली-भाँति समझाया गया है। प्रश्न पृच्छक में भी लोकोत्तर मात्र ही संगृहीत हैं।

(१०) बोध्यंग विभंग

बोधि कहते हैं चारों मार्गों के ज्ञानों को। उन चारों मार्गों के ज्ञानों की प्राप्ति के लिए जो अङ्गभूत हैं, उन्हें बोध्यङ्ग कहते हैं अथवा बोधि उस योगी का भी नाम है जो परम ज्ञान बूझता है, उस बूझनेवाले के अङ्ग जो सात धर्म हैं, वही सात बोध्यङ्ग कहे जाते हैं। वे (१) स्मृति संबोध्यङ्ग (२) धर्म-सम्बोध्यङ्ग (३) वीर्य सम्बोध्यङ्ग (४) प्रीति सम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धि सम्बोध्यङ्ग (६) समाधि सम्बोध्यङ्ग और (७) उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग।

जब भिक्षु होशवाला परम स्मृति और प्रज्ञा से सम्पन्न होता है, बहुत पहले के किए तथा कहे का स्मरण करता है—यह उसका स्मृति सम्बोध्यङ्ग होता है। वैसे विचरण करते उस धर्म को प्रज्ञा से चुनता है, विचार कर उसका चयन करता है, विचारता और वीमंसता यह उसका धर्म-विचय सम्बोध्यङ्ग होता है। उस धर्म प्रज्ञा से वैसा करते वीर्य आरब्ध होता है, वह पीछे हटा देनेवाला नहीं होता—यह उसका वीर्य सम्बोध्यङ्ग है। आरब्ध वीर्य भिक्षु को निरामिष प्रीति उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—यह उसका प्रीति सम्बोध्यङ्ग होता है। प्रीति से युक्त मन वाले का काय (वेदना, संज्ञा, संस्कार) और चित्त दोनों प्रश्रब्धित (= विशेष कर शान्त) होते हैं—यह उसका प्रश्रब्धि सम्बोध्यङ्ग होता है। प्रश्रब्धित काय वाले सुखी व्यक्ति का चित्त एकाग्र होता है—यह उसका समाधि सम्बोध्यङ्ग होता है। वह वैसे एकाग्र-चित्त के प्रति बिल्कुल उपेक्षा करता है—यह उसका उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग होता है।

अभिधर्म भाजनीय में सातों बोध्यङ्गों को एक में मिलाकर उद्देश किया गया है, निर्देश अलग-अलग हुए हैं। यह भाजनीय बत्तिस हजार नयों से प्रतिमण्डित है।

(११) मार्ग-विभंग

जिस पर व्यक्ति प्रतिपन्न हो सभी दुखों का क्षय कर परम सुख निर्वाण को प्राप्त कर सकता है, वही मार्ग यहाँ अभिलक्षित है। जिसे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग कहते हैं क्योंकि निर्वाण रूपी प्रासादाभि रोहण के लिए इस सोपान में आठ पाद-पीठकायें हैं और वे हैं—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाक् (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीव (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को ही मध्यमा-प्रतिपदा (= बीच का मार्ग) कहते हैं, जिसके लिए भगवान ने कहा था—भिक्षुओ, यह मध्यमा-प्रतिपदा आँख देने वाली है, ज्ञान देने वाली है, शान्ति, निर्वेद, सम्बोधि और निर्वाण को प्राप्त करने के लिए समर्थ है।

थोड़े में—चार आर्य सत्य के ज्ञान को ही सम्यक् दृष्टि कहते हैं, विस्तार से यह पाँच तरह की होती है। नैष्क्रम संकल्प, अव्यापाद संकल्प तथा अविहिंसा संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं। झूठ बोलने, चुगली खाने, कटुवचन और बकवाद से विरत को ही सम्यक् वाक् (वाणी) कहते हैं। जीव हिंसा, चोरी और व्यभिचार से बचना सम्यक् कर्मान्त है। सभी मिथ्या आजीविकाओं को न करना सम्यक् आजीव है। चारों सम्यक प्रधान सम्यक व्यायाम कहे जाते हैं। चारों स्मृति-प्रस्थान ही सम्यक् स्मृति हैं और सभी ध्यान जो मिथ्या ध्यान के प्रतिपक्षी हैं सम्यक् समाधि कहे जाते हैं।

(१२) ध्यान-विभंग

सूत्रान्त पर्याय से चार ध्यान तथा अभिधर्म पर्याय से पाँच ध्यान होते हैं। चार अरूप समापत्तियां होती हैं। इनका वर्णन संक्षेपतः पूर्व लेख में किया जा चुका है। इस विभङ्ग में ध्यान और ध्यान प्राप्ति का नियम बड़े मनोहर तथा सरल ढंग से वर्णन किया गया है। वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता सहित प्रथम ध्यान होता है। द्वितीय ध्यान विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता सहित। तृतीय प्रीति, सुख, एकाग्रता सहित। चतुर्थ ध्यान सुख, एकाग्रता सहित और पञ्चम ध्यान उपेक्षा, एकाग्रता सहित। अरूपावचर ध्यान हैं—(१) आकाशानन्त्यायतन, इस ध्यान की अवस्था में योगी को केवल 'आकाश अनन्त है, आकाश अनन्त है' का मनसिकार बना रहता है। उपेक्षा और एकाग्रता इसके भी अङ्ग हैं। (२) विज्ञानानन्त्यायतन, इसमें आकाशानन्त्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है, विज्ञान अनन्त है' का मनसिकार होता है। (३) आकिञ्चन्यायतन, इसमें विज्ञानानन्त्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है, कुछ नहीं है' का ख्याल होता है। (४) नैवसंज्ञानासंज्ञा, इसमें आकिञ्चन्यागतन कर सर्वथा अतिक्रमण कर 'नैवसंज्ञा नासंज्ञा का ख्याल होता है।

(१३) अप्रमाण्य विभंग

अप्रमाण्य चार हैं, जिन्हें ब्रह्म विहार भी कहते हैं क्योंकि इनकी भावना कर व्यक्ति ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है अथवा अपनी श्रेष्ठता के कारण भी ब्रह्मविहार कहे जाते हैं। 'ब्रह्म शब्द श्रेष्ठार्थ तथा उत्तमार्थ का द्योतक है। ये चारों ब्रह्म-विहार हैं—(१) मैत्री (२) करुणा (३) मुदिता (४) उपेक्षा।

(१४) शिक्षापद विभंग

शिक्षापद पांच हैं, जो सहज विज्ञेय हैं—

१—प्राण हिंसा से विरत रहने का शिक्षापद।

२—बिना दिए हुए लेने (चोरी करने) से विरत रहने का शिक्षापद।

३—कामों (संभोगों) में मिथ्या आचार (व्यभिचार) से विरत रहने का शिक्षा पद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—झूठ बोलने से विरत रहने का शिक्षापद।

५—सुरा मेरय (कच्ची शराब)-मद्य प्रमादस्थान (नशीली चीज़ों) से विरत रहने का शिक्षापद।

इस विभङ्ग में सूत्रान्त भाजनीय नहीं है। देशना लौकिक ही है।

(१५) प्रतिसम्भिदा विभंग

प्रतिसम्भिदायें चार होती हैं—(१) अर्थ प्रतिसम्भिदा (२) धर्म प्रतिसम्भिदा (३) निरुक्ति प्रतिसम्भिदा और प्रतिभान प्रतिसम्भिदा।

'प्रतिसम्भिदा' का शाब्दिक अर्थ है प्रभेद। जो यहां ज्ञान-प्रभेद के अर्थ में प्रयुक्त है। नाना अर्थों का उसके लक्षण विभावन, आदि करने में समर्थ अर्थ-प्रभेद में लगा हुआ ज्ञान अर्थ प्रतिसम्भिदा है। ऐसे ही धर्म, निरुक्ति (व्याकरण) और प्रतिभान प्रतिसम्भिदाओं को भी जानना चाहिए।

(१६) ज्ञान विभंग

इस विभङ्ग में (१) एक विध ज्ञान वस्तु (२) द्विविध ज्ञान वस्तु (३) त्रिविध ज्ञान वस्तु (४) चतुर्विध ज्ञान वस्तु (५) पञ्चविधि ज्ञान वस्तु (६) षड् विध ज्ञान वस्तु (७) सप्तविध ज्ञानवस्तु (८) अष्टविध ज्ञानवस्तु (९) नवविध ज्ञानवस्तु (१०) दश विध ज्ञान वस्तु—इन दश मात्रिकाओं के हिसाब से ज्ञान सम्बन्धी बिस्तार किया गया है।

चूँकि इस विभंग में छोटी-छोटी बहुत सी बातें आ गईं हैं, इसलिए इसका नाम क्षुद्रक विभंग पड़ा है। इस विभङ्ग में बतलाया गया है कि अमुक अमुक बात (१) निगण्ठ (निर्ग्रन्थ+जैन), (२) ब्राह्मण, (३) आजीवक आदि धर्मों में किस प्रकार आईं हैं और किस तरह वे निस्सार एवं मिथ्या-प्रज्ञप्त हैं।

(१८) धर्म हृदय विभंग

इस विभङ्ग में काम, रूप, अरूप और लोकोत्तर हिसाब से (१) पञ्चस्कन्ध (२) द्वादश आयतन (३) अ रह धातु (४) चतुरार्य सत्य (५) बाइस इन्द्रिय (६) आहार (७) सात स्पर्श (८) सात वेदना (९) सात (१०) सात चेतना (११) सात चित्त तथा (१२) का सविस्तार वर्णन किया गया है।

यह विभङ्ग दश नयों में विभक्त है। पहले नय स्कन्ध आदि बारह भागों के हिसाब से सर्व-संग्रह दिखलाया गया है। दूसरे में उन्हीं धर्मों का काम आदि में बार बार उत्पन्न होने और मरने का नय र्शन है। तीसरे में प्राप्याप्राप्य-नय के हिसाब से किया गया है। चौथे में उत्पत्ति लक्षण में विद्यमान अविद्यमान धर्म को दिखलाया गया है। पांचवें उत्पत्ति-भूमि की विशेषता की विभावना है। छठवें उत्पादक कर्म और आयु का प्रमाण बतलाया है। सातवें में अभिज्ञेय धर्मों का वर्णन आठवें में आलम्बन और अनालम्बन का विभ हुआ है। नवें में स्कन्ध आदि धर्मों का दृष्ट, आदि के हिसाब से सभी का संग्रह कर में कुशल-त्रिकादि के हिसाब से नय निदर्शन गया है।

इसमें भी अभिधर्म भाजनीय, सूत्रान्त भाजनीय प्रश्न-पृच्छक नहीं हैं। यहाँ धर्म-सङ्गणी की भांति निर्देश, धर्मोद्देश और अर्पण के क्रम से धर्म विभङ्ग का वर्णन किया गया है।

संक्षेप औ, विस्तार से करके विभङ्ग-विभावना है पूर्ण अब देखो यहां तजकर विविध प्रस्तावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिख धर्म का मध्य मार्ग

प्रोफ़ेसर तेजासिंह एम० ए०

सिख धर्म उस वक्त तक सिर्फ़ एक मज़हबी आन्दोलन था जब तक कि दुनियावी ताक़त की हविस का उस पर असर न हुआ था। शुरू के सिख गुरुओं ने ज़ालिम हाकिमों से लड़ाई ज़रूर लड़ी थी मगर वह किसी लोभ में न आए थे। छठे सिख गुरु ने जितनी लड़ाइयां लड़ीं उन सबमें फ़तह पाई और दसवें गुरु साहब ने भी ज़्यादातर लड़ाइयों में फ़तह पाई थी, मगर उन लड़ाइयों में जीतने पर भी उन्होंने एक इञ्च ज़मीन पर भी क़ब्ज़ा नहीं किया। जो कुछ ज़मीन उनके पास थी उसको उन्होंने या तो नक़द रुपया देकर ख़रीदा था या उनके चेलों ने उन्हें नज़र भेंट दी थी।

सिख गुरुओं के पास जब ऐशो-आराम के सारे साधन मौजूद थे तब भी उन्होंने अपना रहन-सहन सादा ही बनाये रखा। जिन रागियों की साखियां ग्रन्थ साहब में जमा की गई हैं उन्होंने हमेशा औसत दर्जे के रहन सहन के तरीक़े को ही सराहा है। इसे वे राजयोग कहा करते थे—ऐसा योग जो त्याग और भोग दोनों के बीच का रास्ता है। यह कहना ठीक नहीं है कि पांचवें या छठे सिख गुरु के ज़माने से सिख धर्म का मयार गिर गया और गुरुओं को सच्चा बादशाह और उनकी गद्दी को तख़्त और सिखों की संगत को दरबार कहा जाने लगा। लेकिन शुरू के गुरुओं और ख़ासकर उन रागियों की तहरीरों से जिनकी साखियां दूसरे गुरु के वक्त से ही लिखी जाने लगीं थीं यह साफ़ मालूम होता है कि इस तरह के लफ़्ज़ बाद में नहीं चले बल्कि शुरू से ही काम में आते रहे हैं। एशिया में फ़क़ीर महात्माओं का दर्जा बादशाहों से बड़ा माना जाता रहा है और उनकी शान में इसी तरह की उपाधियां काम में लाई जाती रही हैं। ख़ुद गुरु नानक को नानक शाह कहा जाता था।

सिख धर्म में कुछ तबदीली बाद में ज़रूर हुई लेकिन यह तबदीली उस वक्त से ही नज़र आती है जब आख़िरी गुरु साहब पंजाब से चले गये थे और दकन में जाकर उन्होंने शरीर त्याग दिया था। गुरु के जिन चुने हुये भक्तों ने गुरु गोविन्द सिंह से दीक्षा पाई थी और जिनकी मौजूदगी से आम सिखों में सच्चाई की भावना क़ायम रह सकती थी उनको गुरु के शरीर त्यागने के बाद कमज़ोरों की रक्षा करने के लिए अपनी ज़िन्दगी बचाना और ज़ालिमों से लड़ना पड़ गया और उन्हें आम लोगों से दूर चला जाना पड़ा। उस वक्त आम सिखों को या तो अपनी क़िस्मत पर भरोसा करना पड़ा या उन पुराने पेशेवर गुरुओं से दक्षिणा लेनी पड़ी जिन को अब रुपया लेकर अपने पुराने पेशे को दोबारा जारी करने का मौक़ा मिल गया था। सिख गुरुद्वारे मठधारी महंतों के हाथ में पड़ गए और संगतों से जब पहले के दक्षिणा-धारी सिख ख़तम हो गए तो हुकूमत उन्हीं महंतों के हाथ में आ गई जो गुरुद्वारों पर क़ब्ज़ा रखते थे।

एक बात और भी थी जिससे सिख धर्म के सचाई के साथ बढ़ने में ख़लल पड़ गया। सिखों की तारीख़ के आख़िरी दौर में सिख धर्म में दाख़िला सिर्फ़ एक क़ौम के लिए रह गया। चूंकि इस पहलू पर आमतौर से विचार नहीं किया गया है इसलिए मैं इसको कुछ तफ़सील के साथ बयान करना चाहता हूँ।

सिख धर्म सब ज़ातों और फ़िरकों के लिए था। और शुरू में हिन्दू और मुसलमान दोनों में से ही सिख लिये जाते थे। गुरु नानक ने एशियाई कोचक, ईरान और दूसरे दूसरे मुल्कों में, जहां जहां वह गये थे, बहुत से मुरीद बनाये थे। सेवा दास ने अपने ग्रन्थ "जन्म साखी" (१५२८ ई०) में बहुत सी ऐसी जगहों का ज़िकर किया है जैसे "पठानों की किरी", जहां बहुत से मुसलमानों ने सिख धर्म अपनाया था। सिखों की इस फ़हरिस्त से जो भाई गुरु दास (१६२९) ने अपने ग्यारहवें गीत में दी है इसमें और नामों के साथ ऐसे नाम भी लिखते हैं जैसे मरदाना जो गुरु नानक के साथ रहा था, दौलत ख़ां पठान जो बाद में एक सिख संत हुआ है और गूजर लोहार जो गुरु अंगद का चेला था। उसने अपने गांव में सिख धर्म की लोगों को तालीम दी थी। इनके अलावा हमज़ा और मियां जमाल बराबर गुरु गोविन्द की ख़िदमत में हाज़िर रहते थे। तारीख़ में हमको मुसलमानों के बहुत से नाम मिलते हैं जो सिख धर्म को सराहते थे; मसलन् राय बूला रतलवन्डी का मुसलमान सरदार जो गुरु नानक के माँ बाप की निस्बत भी गुरु नानक की ज़्यादह क़दर करता था। अल्लाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यार और हुमेनी शाह, जिन्होंने गुरु अमरदास से रूहानी सबक़ लिया था, क़रीब क़रीब सिख ही समझे जा सकते हैं। अकबर की रवादारी पर और सती के रिवाज के बन्द करने पर भी गुरु अमरदास का असर था। साईं मियाँ मीर का गुरु अर्जुन देव से इस क़दर गहरा ताल्लुक़ था कि गुरु जी अमृतसर के गुरुद्वारे की नींव रखने के लिये साईं मियाँमीर को लाये थे। गुरुद्वारे की नींव साईं मियाँमीर के हाथों की रखी हुई है। दारा शिकोह का सिखों की तरफ़ इतना ज़्यादह झुकाव था कि इसी वजह से औरंगज़ेब ने उसके साथ ज़्यादतियां की थीं। सैयद बुद्धू शाह, साकिन सुधौरा, काले ख़ां और सैयद बेग गुरु गोविन्द सिंह की तरफ़ से लड़े थे। इनके सिवाय और बहुत से ऐसे लोग भी थे जिन्होंने सिख धर्म क़ुबूल कर लिया था। इनमें से सिर्फ़ थोड़े से नाम यहां दिये जा सकते हैं। मसलन्—

सज्जन—जो कि पहले एक डाकू था मगर गुरु नानक के उपदेश से सिख हुआ और उनके धर्म का उसने प्रचार किया; एक नवाब का लड़का जिसको डला के भाई यारू ने जलंधर दोआब में सिख बनाया था; वज़ीर ख़ाँ—अकबर का एक नायब वज़ीर था और ख़ुफ़िया तौर पर गुरु अर्जुन देव की तालीम पर अमल करता था; बुधन शाह—गुरु नानक का बड़ा भक्त था और आख़िर में गुरु हर गोविन्द के ज़माने में सिख होकर ही मरा; बीबा गोलदन—लाहौर के क़ाज़ी की लड़की थी और उसको गुरु हर गोविन्द ने सिख धर्म की दीक्षा दी थी; साफ़ा बाद रियासत पटियाला के रहने वाले सफ़ी उद्दीन को गुरु तेग़ बहादुर ने ऐन अपनी गिरफ़्तारी से पहले सिख बनाया था; सैयद शाह को भाई नन्दलाल ने सिख बनाया। एक मुसलमान फ़क़ीर इब्राहीम ने सबसे पहले अपने को गुरु गोविन्द सिंह के रूबरू सिख धर्म अख़्तियार करने के लिये पेश किया था। गुरु ने उसका नाम अजमेरसिंह रखा और सिखों को एक हुकुम जारी किया कि, "अगर कोई मुसलमान अदना हो या आला, सच्चाई से ख़ालसा धर्म स्वीकार करना चाहता हो तो मुनासिब है कि उसको दीक्षा दी जाय और संगत में शामिल कर लिया जाय।"

बहुत से नामों में से जिन्होंने सिख धर्म अख़्तयार किया था ये सिर्फ़ चन्द नाम हैं। इन नये सिखों की हालत की जाँच करने पर, जो गुरु नानक और उनके बाद संगत में शामिल हुए थे, ऐसा मालूम होता है कि पठान, सैयद और शिया जिनको मुग़लों ने शिकस्त दी थी सिख मज़हब को ज़्यादह पसन्द करते थे। जब कि घमण्डी मुग़ल उन लोगों का धर्म अख़्तियार करना अपनी तौहीनी समझते थे जिनको उन्होंने जंगो में शिकस्त दी थी। जहाँगीर को गुरु अर्जुन के ख़िलाफ़, जैसा कि जहांगीर ने ख़ुद "तोज़क जहांगीर" में लिखा है, सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि "बहुत से सीधे सादे हिन्दू ही नहीं बल्कि बहुत से बेवकूफ़ मुसलमान भी गुरु अर्जुन की तालीम और तरीक़ों से मोहित हो जाते हैं।" गुरु ने बहुत ऐसे लोगों को भी दीक्षा दी थी जो नीची जातों के थे। मसलन् रामदास जो मोची थे। गुरु गोविन्द सिंह ने पहुल (सिख बनने) का दरवाज़ा सबके लिये यकसां खोल दिया था। यहां तक कि मेहतरों को भी दीक्षा दी थी। और उन्हें उनके मज़बूत विश्वास की वजह से मज़हबी कहा जाता था। उन मज़हबों को बाज़ वक़्त 'रँघरीटा' भी कहते हैं। इसकी वजह यह हो सकती है कि उनमें से बहुत से लोग 'राँगड़' जाति के मुसलमान थे। इन लोगों ने गुरु तेग़ बहादुर की कटी हुई लाश को निकाल लाने में निहायत जवाँमर्दी से काम लिया था। इस पर गुरु गोविन्द सिंह ने उनको 'रंघ रेटे के बेटे' कह कर पुकारा था।

बिला किसी फ़रक़ के सबको अपने मज़हब में शामिल कर लेने के अलावा और भी ऐसे तरीक़े थे जिनसे सिख धर्म की इस भावना को क़ायम रखा जाता था। गुरुओं का "लङ्गर", जिसमें बिला लेहाज़ छोटे बड़े सबको खाना मिलता था, इसलिये क़ायम किया गया था कि वे तमाम रुकावटें जो फ़िरके और मज़हब के तास्सुब की बिना पर क़ायम थीं दूर हो जाँय और सब बराबर हो जाँय। इसीलिये यह क़ायदा रक्खा गया था कि जो भी खाना खाने आए, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, सबको एक ही पंगत में बैठकर एक साथ खाना खाना होगा, यहां तक कि अकबर और राजा साहब हरी पूरे को भी, जब वह गुरू अमर दास से मुलाक़ात करने गये थे, उसी तरह सबके साथ बैठकर खाना खाना पड़ा था। यह ज़ाहिर करने के लिये कि मुसलमान और नीची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जात के हिन्दू सब वैसे ही रहते हैं जैसे ऊँची ज़ात वाले, गुरु अर्जुन देव ने* ग्रन्थ साहब में इन लोगों की साखियां भी शामिल की हैं। इनमें कबीर साहब मुसलमान जुलाहे थे, फ़रीद एक मुसलमान फ़क़ीर, भीखन एक मुसलमान आलिम, साईं नामई, नामदेव छीपी, रविदास मोची, सदाना मुसलमान, मिरदहा और बहुत से दूसरे मुसलमान रागी शामिल हैं। यह बात और भी साफ़ हो जाती है जब हम यह देखते हैं कि सिख लोग उस पूरे ग्रन्थ साहब को जिसमें यह सब राग साखियां वगैरह शामिल हैं हिन्दुओं की या इलहामी समझते हैं और उसकी बेहद इज्ज़त करते हैं।

इन बातों का असर उस ज़माने के सिखों की आदतों और रसम-रिवाज़ों पर बराबर दिखाई पड़ता है। उस वक़्त लोग हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही निगाह से देखते थे और मज़हबी तौर पर अपने को इनमें से किसी फ़रीक़ में शामिल नहीं करते थे। गुरु नानक का वह क़ौल जब उन्होंने प्रचार करना शुरू किया था वह था कि "ना कोई हिन्दू ना मुसलमान" और जब उनका चोला छूटा तो हिन्दू मुसलमान दोनों उनको अपना बताते थे। गुरु अर्जुन ने अपनी किताब में निहायत दिलेरी से साफ़ साफ़ कहा है—

"मैं न हिन्दू व्रत रखता हूं और न रमज़ान के रोज़े।"

"मैं सिर्फ़ उसीकी इबादत करता हूं 'वही मेरा आख़िरी पनाह' है।"

"मैंने हिन्दू और तुर्क दोनों से नाता तोड़ लिया है।"

"मैं सिर्फ़ एक मालिक को मानता हूं जो अल्लाह है।"

"न मैं मक्के को हज करने जाऊँगा और न हिन्दुओं के तीर्थों में पूजा करने।"

"मैं सिर्फ़ उस एक की बन्दगी करूँगा किसी दूसरे की नहीं।"

"मैं न मूर्तियों को पूजूँगा और न नमाज़ पढ़ूंगा।"

"मैं अपने दिल को सिर्फ़ उस एक के क़दमों में लगाऊँगा जो सबसे ऊपर है।"

"हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान।"

"हमने अपने तन और अपनी जानों को अल्लाह राम के अर्पण कर दिया है।"—भैरों राग।

दबिस्तां का लेखक छठे और सातवें गुरुओं के ज़माने में पंजाब आया था। वह सिखों की बाबत लिखता है—

"गुरु नानक के सिख मूर्ति पूजा को बुरा कहते हैं। उनका विश्वास है कि सब गुरु गुरु नानक के ही अवतार हैं। वह हिन्दू मन्त्रों को नहीं पढ़ते और न हिन्दू मन्दिरों की कोई ख़ास इज्ज़त करते हैं। वे हिन्दू अवतारों को नहीं मानते और न संस्कृत ही पढ़ते हैं जो हिन्दुओं की राय में देवताओं की ज़बान है।"

सिखों को हिन्दू शास्त्रों में लिखे हुये रीत-रिवाजों पर कोई विश्वास नहीं और न वे खाने-पीने के मुतल्लिक छूत-छात की पाबन्दियों के ही क़ायल हैं। एक विद्वान हिन्दू प्रताप मल ने जब यह देखा कि उसका लड़का इसलाम की तरफ़ झुका है तो उसने उससे कहा था—"तुमको मुसलमान होने की कोई ज़रूरत नहीं अगर तुम खाने पीने की आज़ादी चाहते हो तो अच्छा हो तुम सिख हो जाओ।"

गुरु के लङ्गर खोलने और बराबरी सिखाने के लिये सब को एक साथ बैठा कर खाना खिलाने के सिवाय सिख अपने गुरुद्वारों में किसी तरह की कोई बड़ी रस्म अदा नहीं करते। इसलिये आपस में तनाज़े का कोई सबब नहीं पैदा होता और न उनमें अलग-अलग फ़िरके ही पैदा हुये। अमृतसर के गुरुद्वारे में मज़हबी पूजा सिर्फ़ यह होती है कि रात दिन अखंड पाठ ग्रन्थ साहब का जारी रखा जाता है। सिर्फ़ आधी रात के क़रीब एक दो घंटा बीच में बन्द रहता है। बाक़ी तमाम वक़्त रागी लोग ग्रन्थ साहब के शब्द बारी बारी से मिलकर गाया करते हैं। किसी तरह की कोई लेक्चरबाज़ी या बहस-मुबाहसा वहाँ नहीं होता और इसलिये कोई हुज्जत आपस में पैदा नहीं होती। सिखों का यह सादा और ख़ुशनुमा रिवाज़ २५० बरस पहले सुजान राय बटाला वाले ने देखा था। उसने १६९७ ई० में अपनी किताब "खुलास उल तवारीख़" में लिखा है—

* "सारी सङ्गत एक साथ बिला लेहाज़ बरन या धर्म के लङ्गर खाने में दाख़िल होकर एक पंगत में बैठी थी और समझा जाता था कि सब एक बराबर हैं और पाक हैं।"—सूर्य प्रकाश, रास १—बाब ३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उनके लिये पूजा का सिर्फ़ यह तरीक़ा है कि वह अपने गुरुओं के बनाये हुए भजनों को मीठे सुरों में साज़ और बाजों के साथ मिलकर गाते हैं।"

गुरु गोविन्द सिंह ने बिलकुल साफ़-साफ़ कहा है कि सिख दूसरी क़ौमों से हमदर्दी और मुहब्बत रखते हुये भी ऐसा न करें कि अपने मयार को दूसरों के साथ मिलाकर गड़बड़ कर दें। "सिख अपनी रस्मों को चारों वर्णों के लोगों से अलग ही रखेंगे। वह सबसे मुनासिब बर्ताव करेंगे लेकिन उनका विश्वास और ज़िन्दगी का काम का अमल सबसे अलग रहेगा।"* सिख अपने सिद्धान्तों (उसूलों) को बहुत दिनों तक अलग रख सके गो कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के मेल से बहुत फ़ायदा उठाते रहे और अपनी तरक़्क़ी को दोनों तरफ़ के ग़लत असर से बचाते रहे। लेकिन जब सिखों को मुग़ल हुकूमत से लड़ना पड़ा तो उनकी यह भावना कम होने लगी। गुरु गोविन्द सिंह मुहब्बत के भण्डार होने के सबब से अपने दुश्मनों के दिलों में भी मुहब्बत पैदा कर सके। औरंगज़ेब का एक सिपहसालार सैयद बेग गुरु से जंग करने आया। लेकिन उनसे मुलाक़ात होने पर उसे अफ़सोस हुआ और शर्म से लौटकर उसने अहद कर लिया कि ज़ुल्म की मदद के लिए मैं कभी जंग न करूंगा। बुद्धू शाह, नबी खां और ग़नी खां मुसलमान ही थे जिन्होंने बहुत नाज़ुक वक्त पर गुरु की मदद की थी। सिखों से मुसलमानों की बढ़ती हुई नफ़रत का नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों में सिख धर्म की बढ़ती पर असर पड़ा और मुसलमानों का सिखों में शामिल होना, कम होता गया। यहां तक कि जब बाद के मुग़ल बादशाहों की सख़्तियाँ बाबा बन्दा के हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ बढ़ गईं तो सिखों में दीक्षा सिर्फ़ हिन्दुओं तक ही महदूद हो गई। नतीजा यह हुआ कि सिख धर्म ने जो नया आचार-विचार पैदा किया था उसमें पुराने हिन्दू आचार-विचार भी शामिल होने लगे।

यही हाल ईसाई धर्म का भी हुआ था। शुरू में जब ज्यादहतर यहूदियों में से ही ईसाई बनते थे तो नये ईसाईयों के साथ पुराने यहूदी तरीक़े पर बरताव होता था। उस तरीक़े में अन्दर के हलक़े के मुरीदों और बाहर वाले मुरीदों में फ़रक़ समझा जाता था।

अन्दर के हल्के के मुरीदों का ख़तना हुआ था और वह यहूदी रसम अदा किया करते थे, जिन्हें सबसे अन्दर के हिस्से तक जाने के हक़दार होते थे। बाहर के हलक़े के मुरीदों को जो उन रस्मों की पाबन्दी न करते थे सिर्फ़ 'हमदर्द' समझा जाता था, उनको सिर्फ़ गिरजे के दरवाज़े पर से ही पूजा करने की इजाज़त होती थी। ईसाईयों ने भी यहूदियों और ग़ैर यहूदियों में यही फ़र्क़ रखा।* ईसाई गिरजे के कुल हक़ तो लोगों को दिये जाते थे जो यहूदियों से ईसाई होते थे जिन का ख़तना होता था।

इसी तरह जब पुराने सिख जिनको गुरु गोविन्द सिंह ने ख़ुद तालीम दी थी, शहीद हो गये और उनकी औलाद जलावतनी (परदेस) में रहने के लिये मजबूर हो गई और संगतें बिना सरदारों के रह गईं तो पुराने रसम-रिवाजों और विश्वासों की तरफ़ ढल गईं। जो लोग छोटी कौमों में से आये थे उनसे और उन लोगों से फ़रक होने लगा जो ऊंची ज़ातों से आये थे। दीक्षा लेने के बाद भी कुछ को तो सिर्फ़ दरवाज़े पर ही जगह मिलती थी; और दूसरों को मन्दिर के अन्दर दाखिल होने का हक़ होता था। कुछ लोग ऐसे थे जो उस मुसीबत के ज़माने में खुले तौर पर सिख होने का इक़रार करने की हिम्मत नहीं करते थे। उनको इजाज़त दी गई कि वह सिख धर्म की ऊपरी निशानियों के बग़ैर ही काम चलायें और ऐसे आदमियों को 'सहजधारी' कहा गया। उन दिनों जब लम्बे केश रखना मौत को बुलाना था, कोई आदमी उनके उस भेस बदलने पर एतराज़ करे का ख़्याल दिल में नहीं लाता था जो सहजधारियों ने अख़्तियार कर रखा था। उनको सिख धर्म पर एतक़ाद था मगर वह इसके लिये मरने को तैयार न थे। जिन सहजधारियों ने यह रिआयती तरीक़ा अख़्तियार कर रखा था वह असली सिखों की बराबरी का दावा नहीं करते थे। यह अपने जलावतन भाइयों की दिलेरी और उनकी ज़ाहरी शक़्ल का हमेशा ख़्याल रखते

* सूर्यप्रकाश—रुत ३—अध्याय ५०।

*फिर भी बन्दा के सरहद फ़तह करने पर मुसलमानों ने सिख धर्म अख़्तियार किया था (दस्तूरूलनेशा, मुसन्निफ़ बाज़ मुहम्मद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हर तरह उनकी मदद किया करते थे।

इस तरह सिख स्पिरिट और तर्ज़-ज़िन्दगी ख़ालसा की सूरत में उस वक्त भी क़ायम रखा गया जब कि क़स्बों और शहरों में पाबन्दियाँ ढीली पड़ गईं थीं। सरदार रतनसिंह के लिखे हुए "पन्थ प्रकाश" में, लिखा है कि मुसीबत के ज़माने के बाद भी जिसमें होकर वह गुज़र चुके थे लड़ने वाले सिखों के दिलों में पुरानी भावना अब भी साफ़ साफ़ और मुस्तैदी से मौजूद है। वह अब भी मूर्ति-पूजा से दूर रहते हैं और नये तरीके पर शादी करते हैं और पन्थ का हुकुम सबसे बढ़कर मानते हैं। जो सुझाव (तजवीज़ें) उनकी संगत या पंचायत में तै होती हैं उन पर अमल करते हैं। बनेऊ, अवतार, जात-पाँत या छुआ-छूत को नहीं मानते और आज़ादी से उन लोगों को वापस ले लेते हैं जो मुसलमान हो गये थे। बहुत से मशहूर सिखों ने ऐसी मुसलमान औरतों से शादी की जिन्होंने सिख धर्म को अपना लिया था। उनमें से बाज़ के नाम यह हैं— अनूपसिंह जो चन्द्र थाल का रहने वाला ब्राह्मण था, तख़्त सिंह पेजगढ़ का खत्री था, नन्द सिंह बेरार, खीर सिंह अंधावा, और कर्म सिंह मान वग़ैरह। एक मुसलमान को जिसका नाम सोनता था सिख बनाकर उसका नाम भी रामसिंह रखा गया था और उसकी लड़कियों की शादियाँ राम गढ़इया के सरदारों के यहां हुई थीं। मेदों के भाई हरीसिंह पैदायशी मुसलमान थे। उनको भाई ओनेसिंह कन्थल वाले ने सिख बनाया था। एक मुसलमान, जिसका सिख नाम नेहालसिंह रखा गया था, गुरुद्वारा भलियानी का महन्त हो गया था। महाराजा नरेन्द्र सिंह पटियाला नरेश के इशारे से एक शख़्स सदरुद्दीन सिख बनाया गया था और महन्त हईया सिंह ने उसका नाम फ़तहसिंह रखा था। यह शख़्स ६६ साल तक धर्मशाला फूल का महन्त रहा और सन् १८६१ में मर गया। इसी तरह महाराजा रणजीत सिंह के ज़माने में हज़ारों मुसलमान मर्द और औरतें सिखधर्म के हलक़े में शामिल हुये थे।

लेकिन महाराजा रणजीत की हुकूमत में हिन्दू असर ने सिख धर्म को सख़्त धक्का पहुँचाया। उसका असर ख़ालसा सिपाहियों पर भी पड़ा, अगरचे इन सिपाहियों में सिख धर्म क़रीब क़रीब अपनी पुरानी पाकीज़गी में मौजूद था। नई ऐश पसन्दी ने सिखों की सादगी और आज़ादी को बरबाद कर दिया। असल में सिख धर्म एक सादा और सख़्त धर्म है और आसानी से सिख लोग ऐश और आराम की तरफ़ नहीं झुकते। सिखों के मज़हबी और दुनियावी रस्मों में अकसर सिवाय भजन गाने और प्रार्थना करने के और कुछ नहीं होता।

एक महाराजा अपने बराबर वाले महाराजों में अपना मर्तबा किस् तरह क़ायम रख सकता है जब तक कि वह गद्दी पर बैठने वा अपनी शादी के मौक़े पर नजूमियों और पंडितों को बुला कर उन रस्मों और जलसों को शानदार न बना दे। सिख राजाओं और अमीरों को सिख धर्म को अपनी पसन्द के मुताबिक बना लेना हमेशा मुशकिल रहा है। इस लिये जब कभी वह दिखावा और रस्में पूरी करना चाहते हैं तो सिख धर्म के दायरे के बाहर जाने के लिये मजबूर होते हैं।

महाराजा रणजीत सिंह के बाद जब बादशाहत सिर्फ़ ज़ेवरों और क़ीमती कपड़ों तक ही रह गई तो ऊँचे खानदानों के लिये सिख धर्म भी महज़ पगड़ी और डाढ़ी का फ़ैशन रह गया। नतीजा यह हुआ कि आगे चलकर ऐसे लोगों ने, जिनके रहन-सहन के तरीके सख़्त और जिनमें ज़ब्त मौजूद था, सिख सरदारों के हाथ से हुकूमत छीन ली। आम सिखों में अभी पुरानी स्पिरिट कुछ बाक़ी थी लेकिन वह भी गुरुद्वारों की हालत बदल जाने और लड़ाई में धक्का पहुँचने की वजह से कम होने लगी। अंगरेज़ों ने उससे फ़ायदा उठाने की कोशिश की और सिखों की शरीफ़ाना बहादुरी को सराहते हुये अपनी पिछली दुशमनी को भुला दिया। इस दोस्ती से सिखों में फिर कुछ हौसला बढ़ा। और वह अंगरेज़ी फ़ौज में भर्ती होने लगे जहाँ वे अपनी सिख निशानियों को जैसे का तैसा ही क़ायम रख सकते थे। लेकिन और सब बातों में सिखों में कोई जीवन नहीं रह गया था। उनमें न तो धार्मिक जीवन था और न क़ौमी जीवन। वह उन्हीं पुराने देवताओं को पूजने लगे थे और वही पुरानी और लचर रसमें अदा करते थे जिनमें से उन्हें निकालने के लिये उनके गुरुओं ने निहायत बहादुरी से कोशिश की थी। सिखों की दीक्षा और पाँच निशानियाँ महज़ बराय नाम रह गईं। आजकल की सिंह सभा सिखों को फिर पुराने ठीक रास्ते पर लाने की कोशिश कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलका नूरजहां

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

नूरजहाँ बेगम का नाम हिन्दुस्तान की ऐतिहासिक स्त्रियों में सबसे प्रमुख है। हिन्दुस्तान के इतिहास के मध्यकाले ज़माने में सुल्ताना रज़िया को ही तख़्त पर बैठने तथा राज काज संभालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यों मुग़ल ज़माने में माहम बेगम, गुलबदन बेगम, माहम अंगा, सुल्ताना सलीमा बेगम, जहान आरा तथा ज़ेबुन्निसा बेगम के नाम बहुत मशहूर हैं। लेकिन नूरजहाँ बेगम का नाम सबसे ऊँचो जगह पाता है। तैमूरी ख़ानदान की किसी भी स्त्री ने नूरजहाँ के समान साहस तथा राजनैतिक प्रभुता नहीं दिखलाई। एक इतिहासकार का कहना ठीक है कि, सम्राट जहाँगीर की हुकूमत के आख़री पन्द्रह वर्षों में नूरजहां साम्राज्य की सबसे शक्तिशाली और प्रमुख व्यक्ति थी।

नूरजहां का जन्म कन्दहार के पास सन् १५७५ ई० में उस समय हुआ था, जबकि उसका पिता मिर्ज़ा गयास बेग हिन्दुस्तान की ओर सफ़र करते हुये आ रहा था। उसका लालन-पालन बड़ी योग्यता के साथ उसकी माता असमत बेगम ने किया था। उसका बचपन का नाम मेहरुन्निसा (स्त्रीत्व की झलक) था उसको संगीत, नृत्य, शायरी, तथा चित्रकारी की शिक्षा दी गई थी। विवाह योग्य होने पर उसका विवाह अली कुली इस्ताजलू (जो कि इतिहास में शेर अफ़ग़न के नाम से मशहूर है) के साथ कर दिया गया। शेर अफ़ग़न बंगाल के सूबे में बर्दवान का जागीरदार था। शेर अफ़ग़न की मृत्यु की घटना तो सबको मालूम ही है और यह घटना सम्राट जहांगीर के शासन-काल के दूसरे वर्ष (सन् १६०७) में हुई थी। शेर अफ़ग़न की विधवा मेहरुन्निसा और उसकी बेटी लाडली बेगम को शाही हरम में भेज दिया गया जहां मेहरुन्निसा सलीमा बेगम की मातहती में रहने लगी। चार साल के वैधव्य के बाद मई सन् १६११ ई० में मेहरुन्निसा का निकाह सम्राट जहांगीर के साथ हो गया। अब मेहरुन्निसा का नाम बदलकर नूर महल (महल की ज्योति) रख दिया गया। शेर अफ़ग़न की मृत्यु और विधवा मेहरुन्निसा का सम्राट जहांगीर से निकाह इतिहास की रहस्य भरी घटनायें बनकर रह गईं हैं। इस रहस्य पर मुग़लकालीन भारतीय इतिहास के सभी लेखक अपनी अपनी अलग अलग राय रखते हैं।

सम्राट जहाँगीर से विवाह के समय नूरमहल की उम्र तीस वर्ष से भी ज़्यादा थी; फिर भी उसकी ख़ूबसूरती और जवानी अपने शिखर पर थी। समकालीन जहाँगीर के समय के इतिहासकार नूरजहाँ की सुन्दरता का बयान करने में असफल ही रहे हैं। एक इतिहासकार के मुताबिक़ उसका इकहरा बदन था, गोल चेहरा था, चौड़ा ललाट था, बड़ी बड़ी काली आँखें थीं और छोटे छोटे पतले ओंठ थे। उसकी सुन्दरता निराली थी। जो भी चित्र उस समय के मिले हैं, उनमें चित्रकारों ने उसकी सुन्दरता को प्रकट करने की कोशिश की है।

नूरजहाँ असाधारण युवती थी। उसका दिल और दिमाग़ दोनों ही शक्तिशाली थे। सम्राट जहांगीर के साथ वह शिकार करने भी जाया करती थी। वह घोड़े की बहुत अच्छी सवार थी और उसका निशाना भी अचूक था। उस समय के एक दरबारी ने लिखा है—

नूरजहाँ गरचे बज़ाहर ज़न अस्त।
दर सफ़े मरदां ज़ने शेर अफ़ग़न अस्त॥

अर्थात्—गोकि नूरजहां एक औरत है, परन्तु वह आदमी के भेष में एक औरत है जो कि शेर को पछाड़ सकती है। तुजुके जहांगीरी में एक जगह लिखा हुआ है कि नूरजहां ने कई बार शेर और चीते का शिकार बादशाह के साथ किया था। एक समकालीन लेखक का कहना है कि शाही शिकार में नूरजहां महज एक तमाशबीन नहीं रहती थी, बल्कि ख़ुद शिकार भी करती थी। ऊपर बतलाया जा चुका है कि बचपन में ही नूरजहां को फारसी में तालीम दी गई थी। शेरअफ़ग़न की मौत के बाद जब विधवा नूरजहां सुल्ताना सलीमा बेगम के साथ थी तब उसकी रुचि फारसी शायरी की ओर और बढ़ी। सुल्ताना सलीमा बेगम ख़ुद फारसी ज़बान में शायरी करती थी। नूरजहां का दादा ख़्वाजा मुहम्मद शरीफ़ तथा उसका पिता मिर्ज़ा ग़यासबेग फ़ारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। नूरजहां बेगम ख़ुद शायरी करती थी। ख़फ़ी ख़ां इतिहासकार ने लिखा है कि उसका तख़ल्लुस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुलफ़ी" था। ख़फ़ी ख़ां ने नूरजहां बेगम की कविता के नमूने दिये हैं—

तराना तकमये लालस्त बरक़बाये हरीर।
शुदास्त क़तरये ख़ूने मनत गरेबांगीर॥

अर्थात्—(सम्राट से) आपके रेशमी चोग़े पर यह लाल का बटन नहीं है, बल्कि मेरे ख़ून का क़तरा है, जिसने पनाह मांगने के लिये आपका दामन पकड़ा है।

दिल व सूरत न दिहम, ता शुदा सीरत मालूम।
बन्दये इश्क़म व हफ़तादो व दो मिल्लत मालूम।
ज़ाहिदा हौले क़यामत, मफ़ेगन दर दिले मा।
हौल हिजरां गुज़रानीदेम, क़यामत मालूम॥

अर्थात्—मैं अपने दिल को किसी की बाहरी शक्ल पर निछावर नहीं करती, जब तक कि मुझे उस शख़्स की आन्तरिक आभा का प्रमाण न मिल जाय। मैं दास की दास हूँ और मैं धर्म के ७२ साधनों को पहचानती हूं। ऐ ज़ाहिद, मुझे क़यामत के दिन का डर न दिखाओ मैं जुदाई के सदमे सहन कर चुकी हूँ इसलिये मैं क़यामत से घबराती नहीं क्योंकि अपने प्यारे से बिछुड़ना ही मेरे लिये क़यामत है।

नूरजहां बेगम शायरी करने में बहुत ही प्रवीण थी और जब भी कभी उसे कोई तरह मिसरा दिया जाता तो वह फ़ौरन ही उसे पूरा कर देती थी। इतिहासकार नईम ने अपनी पंजाब की तवारीख़ में एक घटना का बयान किया है कि एक दिन ईद के चांद को देखकर सम्राट जहांगीर ने कहा—

हिलाले ईद बर औजे फ़लक हवैदा शुद

अर्थात्—आकाश में ईद का चांद प्रगट हो गया है।

नूरजहां बेगम ने तत्काल ही दूसरा मिसरा बनाकर कहा—

कि लीदे मैकदा गुमगश्ता बूद पैदा शुद

अर्थात्—वह रास्ते के राहगीरों का सहारा है जो कि खो गया था और अब फिर मिल गया है।

जहांगीर तथा नूरजहां की फ़ारसी की शायरी का जिन आधुनिक विद्वानों ने किया है उनका विचार है कि उसकी भाषा और विचार दोनों उच्च कोटि के हैं। नूरजहां बेगम हमेशा शायरों का आदर करती थी और उसके दरबार में बहुत से विद्वान कवि शरण पाते थे।

सब इतिहासकार मानते हैं कि नूरजहां ने मुग़ल दरबार की शान-शौकत को बढ़ाया। उसने औरतों के पहनने के कपड़ों तथा आभूषणों में नये नये नमूने निकाले। फ़र्श-ए-चांदनी की ईजाद नूरजहां ने ही की थी। पसवाज़, पंचतौलिया, ओढ़नी, बादल तथा जिनारी सब उसीकी बुद्धि के नये नमूने थे। ये वस्तुयें सुन्दर होने के साथ साथ सस्ती होती थीं। उसने विवाह के अवसर पर वर और कन्या के लिये नये वस्त्रों के नमूने बताये थे, जिनका मूल्य २२) से ७५) तक होता था।

नूरजहां बेगम सहृदय तथा दयावान स्त्री थी। ख़ाफ़ी खां का कहना है कि वह हमेशा दीन-दुखियों की सहायता करती थी। इतिहासकार मुहम्मद हादी लिखता है कि बेगम उन सबकी मदद करती थी जो उसके पास आते थे और मुसीबत में जो भी उसका दामन पकड़ता था। उस समय के इतिहासकारों का कहना है कि बेगम ने अपने ख़र्च से ५०० ग़रीब मुसलमान कन्याओं के विवाह किये थे। जो भी ग़रीब मुसलमान हज करने मक्का शरीफ़ जाते थे, वह उनकी पूरी सहायता करती थी। यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि नूरजहां की रुचि अपने धर्म की ओर भी थी।

सम्राट जहांगीर के शासनकाल की जितनी भी इमारतें हैं, उनके निर्माण में नूरजहां का प्रमुख हाथ था। उस काल की सबसे प्रसिद्ध इमारत एतमादुद्दौला का मकबरा है। यह नूरजहां बेगम के पिता ग़यासबेग का मकबरा है, जिसकी मृत्यु सन् १६२२ ई० में हुई थी। नूरजहां अपने पिता का बहुत आदर करती थी और उसीकी याद में उसने अपनी देखरेख में आगरे में यमुना के बायें किनारे पर संगमरमर का यह मकबरा बनवाया था। इस इमारत की नक्काशी फ़ारस की भवन निर्माण कला के आधार पर की गई है। कुरान की जो आयतें लिखी हैं, वे अत्यन्त सुन्दर हैं। पीटर मण्डी नामक यूरोपीय यात्री ने नूरजहां की बनाई हुई एक सराय का भी वर्णन किया है जिसमें ५०० घोड़े तथा ५०० यात्रियों के विश्राम के लिये स्थान था। यात्रियों की सुविधा के लिये नूरजहां ने बावलियां भी बनवाई थीं, पीटर मण्डी ने इस तरह की एक बावली का सुन्दर वर्णन किया है। नूरजहां ने अपने निजी ख़र्च से लाहौर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहदरा में सम्राट जहांगीर का मकबरा बनवाया। इस मकबरे का भी नमूना आगरा के ऐतमादुद्दौला का मकबरा था।

फ़र्क यह है कि जहांगीर का मकबरा बहुत विशाल आकार का है। हिन्दुस्तान के मुगल सम्राटों में बाबर के बाद नूरजहां का ही नाम आता है, जिसे बाग लगवाने का बहुत शौक था। उसने लाहौर तथा काश्मीर में अनेक बाग लगवाये। 'गार्डन आफ़ दि ग्रेट मुग़ल्स' नामक पुस्तक में आगरा, दिल्ली, लाहौर तथा काश्मीर के बागों का सुन्दर वर्णन मिलता है। लाहौर में शाहदरा में रावी नदी के पार एक अच्छा बाग था। काश्मीर में जितने भी बाग हैं उनमें दरोग़ बाग सबसे बड़ा है। काश्मीर में ही लालारूख़ बाग़ है जो बेगम का 'उपवन भवन' था। आगरे का 'रामबाग' भी नूरजहां और जहांगीर के समय में अच्छी हालत में रक्खा जाता था। काश्मीर के निशात बाग़ तथा नसीम बाग भी अति सुन्दर थे।

इतिहासकार इस बात को मानते हैं कि सम्राट जहांगीर की हुकूमत में नूरजहां बेगम एक मुख्य और प्रभावशाली शक्ति थी। सम्राट जहांगीर उससे बेहद प्रेम करता था। उसे यह विश्वास था कि उसकी बेगम के हाथ में अगर राज्य शासन दे दिया जायगा तो वह उसे पूर्ण रूप से सँभाल सकेगी। नूरजहां में वह सब काबलीयत मौजूद थी जो कि एक साम्राज्ञी में होनी चाहिये। बादशाह की यह इच्छा थी कि साम्राज्ञी को भी साम्राज्य के प्रतिदिन के वातावरण में लाया जाय। यह कोई नई बात न थी, क्योंकि चग़ताई तुर्कों में यह प्रथा थी कि सम्राट के साथ साम्राज्ञी को भी समानता का पद दिया जाता था। मंगोल विजेता चंगेज़ ख़ां के समय से यह प्रथा चली आ रही थी। बाबर ख़ुद अपनी बेगम माहम से राजनैतिक बातों में सलाह लेता था। प्राचीन भारतीय सभ्यता और रीति-रिवाज ने चग़ताई तुर्कों की इस प्रथा को कुछ कमज़ोर बना दिया परन्तु यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि माहम बेगम, गुलबदन बेगम, सुल्ताना सलीमा बेगम, तथा जहानआरा अपने अपने समय में, बाबर, हुमायूँ, अकबर और शाहजहां के समय में, देश की राजनीति में प्रमुख भाग लेती थीं। फिर अगर जहांगीर ने नूरजहां को राज्य के मामलों में प्रमुख स्थान दिया तो वह कोई नई बात न थी, न हमें इससे यह समझ लेना चाहिये कि जहांगीर शासन से अलग हो गया था। चग़ताई वंश की जितनी भी स्त्रियां भारतीय इतिहास में मशहूर हैं, उनमें नूरजहां अत्यन्त विचारशील तथा प्रगतिशील थी। एक इतिहासकार का कथन है कि राजनैतिक दांव पेंच वह आसानी से समझ जाती थी और एक अच्छे राजनीतिज्ञ की तरह उन पर अपने विचार प्रगट करती थी। भारतीय इतिहास में तुर्क साम्राज्य के समय में प्रथम बार ही सम्राट और साम्राज्ञी का नाम एक ही साथ सिक्कों पर आया। जिन जिन सिक्कों पर नूरजहां बेगम का नाम खोदा गया था उन पर ये वाक्य अंकित थे—

ब हुक्म शाह जहाँगीर याफ़्त सद ज़ेवर।
बनामे नूरजहां बादशाहे बेगम ज़र॥

अर्थात्—सम्राट की आज्ञानुसार सोने का मूल्य सौगुना और बढ़ गया है क्योंकि उसपर साम्राज्ञी नूरजहां बेगम का नाम खोद दिया गया है।

राज्य के सरकारी हुक्मों पर नूरजहां बेगम की मोहर भी लगती थी और उस मोहर पर लिखा रहता था—

हुक्म अलीम आलिम अहद आलिमा नूरजहां बेगम बादशाह।

(By order of Her Exalted Majesty Nur Jehan Begam)। सुल्ताना सलीमा बेगम की मौत के बाद नूरजहां का पद और बढ़ गया और वह साम्राज्य की स्त्रियों में रुतबे में अव्वल बन गई। नूरजहां ने अपनी बचपन की आया दिलआराम को शाही हरम सरा की प्रधान नियुक्त किया था। साम्राज्य के सदर-मुक़ाम को यह हुक्म था कि वह बिना नूरजहां के हुक्म के भेजे के किसी भी शख़्श को शाही ख़ज़ाने से किसी प्रकार की रक़म न दे। 'पंजाब का इतिहास' के लेखक लतीफ़ साहब का कथन है कि नूरजहां बेगम झरोखे में बैठकर अपनी प्रजा को दर्शन देती थी तथा सूबों से जो भी सरकारी काग़ज़ात आते थे, उनका ख़ुद ही जवाब लिखती थी तथा नये हुक्म जारी करती थी। राज्य के ऊँचे अहदों पर बिना उसकी रज़ामन्दी के कोई भी नियुक्ति नहीं की जाती थी। लतीफ़ साहब का विचार है कि बिना उसकी सलाह से किसी भी बाहरी मुल्क के साथ किसी प्रकार की सुलह वग़ैरह नहीं की जाती थी। इतना सब कुछ होते हुये भी इस बात के साफ़ साफ़ सुबूत नहीं मिलते कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना पर यह कहा जाय कि बेगम ने अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग किया। नूरजहां का कोई ऐसा फ़रमान नहीं मिलता जो इस बात को साबित कर सके कि वह रोजमर्रा के शासन-प्रबन्ध में अड़चन पैदा करती थी। इस तरह के तमाम इलज़ाम बेबुनियाद हैं। यह माना जा सकता है कि वह शाही हरम के प्रबन्ध के सम्बन्ध में फ़रमान जारी करती हो, परन्तु इस प्रकार की प्रथा तो पहले भी थी, और फिर यह ठीक भी मालूम पड़ता है कि वह शाही हरम की देखभाल ख़ुद करती हो।

जहाँगीर और नूरजहां का दाम्पत्य जीवन सुखी था। मलका अपने बादशाह से प्रेम करती थी तथा एक आदर्श नारी के समान अपने पति की सेवा करती थी। जीवन के अन्तिम दिनों में जब सम्राट का स्वास्थ बिगड़ने लगा तब बेगम ने जी जान से बादशाह की तीमारदारी की। तुजुक-ए-जहांगीरी में सम्राट ने ख़ुद लिखा है कि मलका की देख-रेख और प्रेम ने ही मदिरा और अफ़ीम का सेवन कम करा दिया था। एक इतिहासकार का कहना है कि बचपन में सलीम, दानियाल, और मुराद के समान कठोर स्वभाव का था, परन्तु नूरजहाँ के अच्छे स्वभाव के प्रभाव में आकर वह भी अन्तिम दिनों में कठोर स्वभाव का न रह सका। मलका हमेशा सम्राट के साथ ही रहती थी। सुख और दुख में उसका साथ देती थी।

नूरजहां साम्राज्ञी होने के बाद भी अपने सम्बन्धियों को न भूल सकी। अपनी माता और पिता से उसका अगार प्रेम था। अपनी बहिन मानीजाह बेगम के पति आसिम ख़ां का भी वह ख्याल रखती थी तथा अपनी दूसरी बहिन ख़दीजा बेगम के पति हकीम बेग को भी वह मुसीबत के वक्त मदद देती रहती थी। कुछ विद्वानों का मत है कि नूरजहां का जहांगीर से विवाह होने के बाद उसके पिता ग़यासबेग तथा भाई आसफ़ ख़ां राज्य के उच्च पदो पर पहुँच गये थे। परन्तु अधिकतर इतिहासकार इस विचार से सहमत नहीं हैं। इतिहासकार हब्बु हसन ने अपनी पुस्तक 'सैन्ट्रल स्ट्रकचर आफ़ दि मुग़ल ऐम्पायर' में जो विचार प्रगट किये हैं, उनसे यह बात स्पष्ट है कि ग़यासबेग और आसफ़ ख़ां अपनी काबलियत के बल पर ही साम्राज्य में प्रमुख और उच्च पद पा सके थे।

मसीह उल-उलेमा, तुजुक-जहांगीर तथा अन्य पुस्तकों में मिर्ज़ा ग़यास बेग तथा आसफ़ ख़ां की योग्यता का वर्णन है। इतिहासकार हब्बु हसन के विचारों से ग़यास बेग अपनी निजी योग्यता, के ही कारण उच्च पद पर पहुंचा था। सम्राट जहांगीर ने ग़यास बेग को वज़ीर बनाने के बारे में अपनी जीवनी तुजुके-जहांगीर में उसकी क़ाबलीयत का उल्लेख किया है। आसफ़ ख़ां तो जहांगीर और शाहजहां के समय का सरकारी आय और व्यय का प्रसिद्ध विद्वान था। शासन-प्रबन्ध में भी वह ऊँची योग्यता रखता था। आसफ़ ख़ां की अपनी कुछ निजी योग्यतायें थी, जिनसे कि वह अपने समय में साम्राज्य के सर्वोच्च पद पर पहुँच गया था। यही विचार मसीह उल-उमरा के लेखक का भी है। यह कहना बिलकुल ग़लत है कि नूरजहां के विवाह के बाद ही ग़यास बेग तथा आसफ़ ख़ां साम्राज्य के उच्च पदों पर पहुँचे। एक दूसरे विद्वान ने मिर्ज़ा ग़यास बेग और आसफ़ ख़ां के उच्च पदों पर नियुक्ति के विषय में जो विचार प्रगट किये हैं वे भी विचारणीय हैं। उनका कहना है कि उस समय एक तो अच्छे उम्मीदवार न थे, जिनमें से छांटने में सम्राट को किसी प्रकार कठिनाई का सामना करना पड़ता और दूसरे चग़ताई तुर्कों में यह पहला मौक़ा न था जबकि इस प्रकार की नियुक्ति की गई हो, क्योंकि बाबर के समय में वज़ीर मेहदी ख़्वाजा जोकि सम्राट की बड़ी बहिन ख़ानज़ादा बेगम का पति था, इसी प्रकार हुआ था। अकबर के समय में बैरम ख़ां और आदम ख़ाँ के उच्च पदों पर पहुँचने का भी कुछ यही कारण था, क्योंकि सुल्ताना सलीमा बेगम तथा माहम अंगा का सम्राट पर बहुत प्रभाव था। अन्त में यह कहा जा सकता है कि ग़यास बेग तथा आसफ़ ख़ां अपनी निजी योग्यता के ही कारण उच्च पद प्राप्त कर सके और नूरजहां बेगम का उसमें कुछ भी हाथ न था।

नूरजहां बेगम पर यह भी दोष लगाया जाता है कि वह तानाशाह थी। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि जो भी अधिकार उसके पास थे, क्या उसने उनका प्रयोग किसी निजी अज्ञान से किया था या उस समय की परिस्थिति में वही हो सकता था। शाहजहां के समय के जो इतिहासकार हैं उन्होंने बेगम पर यह दोष लगाया है कि जहांगीर के जेठे बेटे खुसरो की मौत में उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ था। यूरोपीय यात्रियों ने भी इस सम्बन्ध में बाज़ारी ख़बरों के आधार पर अपने विचार प्रगट किये हैं। इन्हीं विचारों के आधार पर कुछ वर्तमान इतिहासकार भी यह मानने लगे हैं, कि शहज़ादा खुसरो की मृत्यु में शाहजहां का हाथ था। परन्तु यह बिलकुल असत्य है। शहज़ादा खुसरो की मृत्यु की सबसे ज़्यादह ज़िम्मेवारी शहज़ादा खुर्रम पर थी, जोकि उस समय बुरहानपुर में सूबेदार था। कुछ लेखकों का विचार है कि सन् १६२२ ई० की क़न्दहार की हार की असली वजह नूरजहां बेगम ही थी। लेकिन यह ठीक नहीं है। उस समय बेगम सम्राट के साथ रजौरी में थी। वे लोग काश्मीर जा रहे थे। जहांगीर क़न्दहार को फिर से जीतना चाहता था। वह उस समय स्वस्थ न था परन्तु वह चाहता था, कि कोई ऐसा मनुष्य क़न्दहार जाय जोकि सारे मन्सबदारों का प्रिय हो। जहांगीर की नज़र उस समय शहज़ादा खुर्रम पर पड़ी। बादशाह जानता था कि शहज़ादा एक वीर योद्धा और कुशल राजनीतिज्ञ है। परन्तु खुर्रम भारतवर्ष के बाहर जाने को तैयार न था। बादशाह जानता था कि शहरयार क़न्दहार की लड़ाई के लिये ठीक न रहेगा। फिर भी अन्त में यह कहना पड़ता है कि शहज़ादा खुर्रम ने अपनी निजी भलाई के सामने राज्य की भलाई नहीं सोची और इसी से क़न्दहार जहांगीर के शासन काल में न जीता जा सका।

शहज़ादा खुर्रम की बग़ावत के लिये भी कुछ इतिहासकार नूरजहां बेगम की कूटनीति को ही ज़िम्मेदार ठहराते हैं। जब जहांगीर ने खुर्रम को क़न्दहार जाने को कहा तो वह बेकार की शर्तें रखने लगा, उसने कहा कि पंजाब, काबुल और सिन्ध के सूबे उसे दे दिये जांय, तथा दक्षिण के तीनों सूबे भी जोकि उसके अधिकार में थे, वे उसीके अधिकार में रहें। कहने का मतलब यह है कि वह आधे राज्य का अधिकार चाहता था। दूसरी बात उसने धौलपुर की जागीर पर क़ब्ज़ा करने को अपने आदमी भेज दिये। धौलपुर की यह जागीर नूरजहां की थी। खुर्रम आगरा के निकट रहना चाहता था, इस कारण वह ज़बरदस्ती धौलपुर की जागीर पर क़ब्ज़ा करना चाहता था। इस सबके बाद भी जब बादशाह ने उससे अपनी फ़ौज भेजने को कहा तो वह आनाकानी करने लगा। मुख्य बात यह थी कि वह दक्षिण को छोड़ना नहीं चाहता था क्योंकि बीजापुर और गोलकुण्डा के साथ उसकी मित्रता थी। फिर वह भारत से बाहर जाना नहीं चाहता था और तीसरी यह कि वह आगरा के निकट रहना चाहता था। अन्त में यह कहा जा सकता है कि उसने ही ख़ुद ऐसा वातावरण बना लिया कि वह विद्रोह करने को मजबूर हो गया। अपनी बग़ावत के लिये वह सम्राट को क़ुसूरवार ठहरा नहीं सकता था, न आसफ़ ख़ां पर ही दोष लगा सकता था क्योंकि वह उसका ससुर था, फिर दोष लगाने के लिये सिवाय नूरजहां बेगम के और कोई दूसरा न था। शाहजहां के समय के तमाम इतिहासकारों ने भी अपने आका को प्रसन्न करने के लिये खुर्रम के विद्रोह का दोष मलका के सर पर मढ़ दिया। यह सच है कि नूरजहां ने अपनी योग्यता से साम्राज्य के प्रधान सेनापति महावत ख़ां की सहायता की और खुर्रम के विद्रोह को समाप्त किया।

जहाँगीर के अन्तिम दिनों में महावत ख़ां ने भी विद्रोह किया। उस विद्रोह की ज़िम्मेदारी भी बेगम पर लगाई जाती है। महावत ख़ां को आसफ़ख़ां की कूटनीति ने बाध्य किया कि वह अपनी रक्षा के लिये सम्राट के ख़िलाफ़ बग़ावत करे। आसफ ख़ां शहज़ादा शहरयार, महावत ख़ां और नूरजहां के संगठन को तोड़ना चाहता था, क्योंकि उसे अपने दामाद शहज़ादा खुर्रम के भविष्य का ख़याल था। दूसरी बात यह है कि आसफ़ ख़ां का महावत ख़ां से कुछ निजी झगड़ा भी था। खुर्रम के विद्रोह के बाद महावत ख़ां शक्तिशाली बन गया था। आसफ ख़ां उसकी शक्ति को कम करना चाहता था। महावत ख़ां बंगाल भेज दिया गया। आसफ़ ख़ां चाहता था कि किसी प्रकार बादशाह और बेगम महावत ख़ां से अप्रसन्न हो जांय। आसफ़ख़ां अब सचिव था। उसने महावत ख़ां को एक फ़रमान भेजा कि वह किसी राजा की लूट का हिसाब दे। उस समय महावतख़ां बिना किसी सहायक के था। वह अपने मामले को सम्राट के सामने लाना चाहता था। महावत ख़ां का व्यवहार एक विद्रोही का-सा न था। वह सम्राट से मिलना चाहता था, परन्तु आसफ़ ख़ां ने अपनी बहिन की सहायता से उसे मिलने न दिया। जहांगीर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूरजहां की नज़रबन्दी के बाद महावत ख़ां ने शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में नहीं लिया, न उसने सम्राट या सम्राज्ञी का अपमान ही किया। अन्त में महावत ख़ां का विद्रोह भी दबा दिया गया। महावतख़ां के विद्रोह का मुख्य कारण आसफ़ ख़ां की कूटनीति ही थी। उसमें नूरजहां का सिर्फ़ इतना ही हाथ था कि वह अपने भाई के कहने में आकर महावत ख़ां के साथ न्याय न कर सकी। वास्तव में महावत ख़ां के विद्रोह का कारण आसफ़ ख़ां ही था।

कुछ इतिहासकारों का विचार है कि नूरजहां ने सम्राट की शक्ति को बिलकुल नष्ट कर दिया था क्योंकि वह खुद राज्य करना चाहती थी। उनका कहना है कि अकबर अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जहांगीर राज-काज से दूर भागने लगा था या राजनीति से उसे अरुचि हो गई थी तो उसकी एक-मात्र दोषी नूरजहां बेगम ही है। इस सम्बन्ध में डा० ईश्वरी प्रसाद का विचार है कि जहांगीर के चरित्र का सबसे बड़ा अवगुण यह था कि वह अपने आसपास रहने वाले लोगों के प्रभाव में आसानी से आ जाता था। सम्राट अकबर के शासन-काल के अपनी मित्र-मंडली के ही प्रभाव के कारण उसने अपने पिता से विरोध किया था और इलाहाबाद में विद्रोह खड़ा कर दिया था। जहांगीर के अपने चरित्र के लिये किसी अन्य व्यक्ति को दोषी ठहराना ठीक नहीं है। यह सच है कि नूरजहां इतनी लायक थी कि वह साम्राज्य के शासन-प्रबन्ध को संभाल सकती थी, परन्तु इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि कभी उसने राज्य के मामलों में हस्तक्षेप खड़ा किया हो। जहांगीर ने अपने जीवन चरित्र में लिखा है कि नूरजहां में इतनी शक्ति और योग्यता है कि वह सारे साम्राज्य पर राज्य कर सकती है। एक इतिहासकार का कहना है कि 'नूरजहां ने राजा और राज्य का शासन किया' बिलकुल ग़लत मालूम पड़ता है। नूरजहां के समय के इतिहासकार बेगम के विरोधी थे, इसलिये उन्होंने ही ऐसी बातें लिखी हैं। इतिहासकार एत-बार ख़ां का कहना है कि 'जहांगीर की बादशाही सिर्फ़ नाम की ही थी', ठीक नहीं मालूम पड़ता क्योंकि जब तक बादशाह का स्वास्थ्य बिगड़ न गया, तब तक वह राज्य की देखभाल ख़ुद करता था। नूरजहां ने कभी राज्य के मामलों में दखल नहीं दिया। सब इतिहासकार यह मानते हैं कि उसकी योग्यता बहुत से मुग़ल बादशाहों से बढ़ कर थी जो कि औरंगज़ेब के बाद सिंहासन पर आये।

एक इतिहासकार का कहना है कि जहांगीर के शासन काल में जो भी राज्य की अवनति हुई उसकी ज़्यादातर जिम्मेवारी नूरजहां पर है। इस बात से अधिकतर इतिहासकार सहमत नहीं है। डा० वेणीप्रसाद जी का कहना है कि अकबर के समय की साम्राज्य की शान-शौकत को जहांगीर और नूरजहां ने किसी भी क्षेत्र में न सिर्फ़ कम नहीं होने दिया बल्कि उसको पूरी तरह से बढ़ाने की कोशिश की और उस शान-शौकत और ऐश्वर्य का पूरा रूप शाहजहां के शासन काल में दिखाई दिया। जहांगीर के शासन-काल में व्यापार की उन्नति हुई, भवन निर्माण कला और चित्रकला तो एक उच्च सीमा पर पहुँच गई थी। इस काल में साहित्य की सबसे अधिक उन्नति हुई।

वर्तमान इतिहासकारों में कुछ का विचार है कि नूरजहां अपने जीवन के अनेक प्रयोगों में असफल रही। एक विद्वान का कथन है कि जब उसके हाथ में शक्ति आई तब वह उसको संभाल न सकी। अगर नूरजहां को कहीं सफलता नहीं मिली तो वह उत्तराधिकार की लड़ाई में। आसफ़ ख़ां शहज़ादा ख़ुर्रम को चाहता था। नूरजहां अपनी बेटी (शेर अफ़गन से) लाड़ली बेगम के पति शहज़ादा शहरयार को चाहती थी। लेकिन शहरयार को उस समय के इतिहासकारों ने 'नशूदनी' की उपाधि दे दी थी। शहरयार न तो अच्छा योद्धा था और न कुशल राजनीतिज्ञ। यह मानना पड़ेगा कि कम से कम शहज़ादा ख़ुर्रम और महावत ख़ां को तो बेगम की कूटनीति के सामने झुकना ही पड़ा। अगर उत्तराधिकार के युद्ध में उसे सफलता नहीं मिली, तो उसके लिये उस समय की परिस्थिति ज़िम्मेवार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान में मुग़ल हुकूमत का ढंग

प्रोफ़ेसर श्रीराम शर्मा एम० ए०

हिन्दुस्तान में मुग़ल बादशाहों की मज़हबी पालिसी पर इतनी गरमा गरम बहस होती रही है कि मुग़लों के हुकूमत करने के तरीक़े के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है। कोई कहता है कि मुग़लों की हुकूमत बिलकुल एक एशियाई तानाशाही थी और कोई कहता है कि वह एक इसलामी यानी मज़हबी हुकूमत थी। यहां तक दावा किया गया है कि हिन्दुस्तान का राज मुग़लों को ख़ुदाई देन थी और कुछ लोग मुग़ल बादशाहों को अल्लाह के मुक़र्रर किये हुये कहते हैं, यानी यह कि ख़ुद अल्लाह ने उन्हें इस मुल्क पर हुकूमत करने का हुकुम दिया था। बदक़िस्मती से इन नतीजों पर पहुंचने से पहले लोगों ने उन असली किताबों और दस्तावेजों को अच्छी तरह नहीं देखा जो हमारे पास हिन्दुस्तान में मुग़ल हुकूमत के बारे में इस वक्त मौजूद हैं। शुरू के अरब क़ानून बनाने वालों के क़ानूनी मसलों और दूसरे मुल्कों में मुसलमान बादशाहों के कामों, या हिन्दुस्तान के बाहर के लेखकों की बड़ी बड़ी लफ्ज़ी बहसों से यहां की मुग़ल हुकूमत का ठीक ठीक रूप समझने में हमें कोई मदद नहीं मिलती। हां, उन बातों को ध्यान में रखकर हम अपनी तहक़ीक़ात आगे बढ़ा सकते हैं।

मुग़ल ज़माने के कुछ इतिहास लिखने वालों और कुछ हाल के लेखकों ने बाज़ मुग़ल बादशाहों की बाबत यह दावा किया है कि उन्हें ख़ुदा ने बादशाहत का हक़ दिया था। पहले हम इसी दावे पर ग़ौर कर लेना चाहते हैं। अकबर और उसके बाद के बादशाहों को उस ज़माने के तारीख़ लिखने वालों और ख़ासकर शाही इतिहास लेखकों ने अकसर ख़ुदा का ख़लीफ़ा या नायब कहकर बयान किया है। जब जहांगीर के बेटे ख़ुसरू ने अपने बाप के ख़िलाफ़ बग़ावत की थी तो जहांगीर ने ख़ुद अपनी डायरी (तोज़क जहांगीरी) में दावा किया था कि उसे ख़ुदा ने हिन्दुस्तान का शहनशाह बनाया है। शाहजहां ने गोलकुण्डा के आदिलशाह के नाम अपने एक ख़त में अपने को "ज़िल्ले अल्लाह" (ख़ुदा का साया) लिखा है। औरङ्गज़ेब ने अपने को दुनिया में ख़ुदा का वकील लिखा है।

यह सब दावे साबित करते हैं मुग़ल बादशाह मानते थे कि उन्हें राज करने का हक़ ज़ाहिरा देखने में ख़ुदा से मिला हुआ है। लेकिन जब हम ज़रा ग़ौर से देखें तो पता चलता है कि इन बादशाहों के यह सब दावे सिर्फ़ इस आम इसलामी यक़ीन को दोहराते हैं कि दुनियां में जो कुछ होता है वह ख़ुदा के ही हुकुम से होता है। इन बातों से यह साबित नहीं होता कि मुग़ल बादशाहों का यह दावा था कि वह मामूली इनसानों से कुछ भी ऊंचा रुतबा रखते थे और न इन चीज़ों से उन्हें कोई मज़हबी या दीनी रुतबा हासिल होता था। उस ज़माने के यूरोप के बहुत से बादशाहों को यह दावा था कि उनको तख़्त नशीनी के वक्त उनके सर पर पवित्र तेल की मालिश किये जाने से उनको एक ख़ास मज़हबी रुतबा हासिल हो जाता था जो आम इनसानों को हासिल नहीं था। इस बारे में मुग़ल बादशाहों का जो ख़्याल था और यूरोप के (Divine Right) दैवी हक़ माननेवाले बादशाहों का जो ख़्याल था उन दोनों का फ़र्क़ सत्रहवीं सदी के इङ्गलिस्तान की तारीख़ को देखने से अच्छी तरह समझ में आ सकता है। जब जेम्स अव्वल ने राज के लिये अपने हक़ को ख़ुदा का दिया हक़ बताया तो यह एक नया मज़हबी उसूल पैदा हो गया कि बादशाह की किसी चीज़ की किसी को मुख़ालिफ़त नहीं करनी चाहिये और सबको बादशाह का हुकुम चुपचाप मान लेना चाहिये। बादशाह से बग़ावत करना सिर्फ़ एक क़ानूनी जुर्म ही नहीं रहा बल्कि मज़हबी गुनाह समझा गया जिसकी सज़ा परलोक या आख़िरत में भुगतनी पड़ेगी। इसीसे इङ्गलैंड के इनक़लाब के बाद ऐसे पादरी पैदा होगये थे जिन्होने विलियम और मेरी से वफ़ादारी की क़सम खाने से इनकार कर दिया था। उनमें उस ज़माने के इङ्गलिस्तान के कुछ बड़े से बड़े पादरी भी शामिल थे। उन्होने यह ख़्याल ज़ाहिर किया कि जेम्स दूसरा, जो समुन्दर पार चला गया था, उनका क़ानूनी बादशाह है। इन्हींमें से कुछ लोगों ने मिलकर हालैंड से विलियम को बुला भेजा ताकि जेम्स दोयम इङ्गलिस्तान को कैथोलिक बना डालने की कोशिश न कर सके। शाही मर्तबा के बारे में इस तरह का ख़्याल मुग़ल ज़माने के हिन्दुस्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौजूद न था। जब सलीम ने अपने बाप अकबर के ख़िलाफ़ बग़ावत की तो किसी क़ाज़ी ने उसके ख़िलाफ़ मज़हबी फ़तवा नहीं दिया और न जब ख़ुर्रम ने जहांगीर के ख़िलाफ़ बग़ावत की तो किसी क़ाज़ी ने उसे गुनहगार ठहराया। अलबत्ता यह सच है कि औरङ्गज़ेब को पढ़ने और उसके शहनशाह होने का ऐलान करने से इनकार कर दिया था, इसलिये कि औरङ्गज़ेब का बाप शाहजहां उस वक़्त ज़िन्दा मौजूद था। मगर उस मिसाल से मुग़ल ताज के दैवी या ख़ुदाई होने का असूल साबित नहीं होता। अकबर के ज़माने में भी जब उसके सौतेले भाई हकीम ने हिन्दुस्तान पर हमला किया तो अकबर ने कोई ख़ुदाई हक़ पेश नहीं किया बल्कि बाबर की सल्तनत को विरासत में पाने के लिये सिर्फ़ अपनी फ़ौजी ताक़त पर ही भरोसा किया था। इस तरह जहां कहीं ख़ुदाई हक़ का ज़िक्र शाही ताक़त या शाही हुकूमत के सम्बन्ध में आता है वह सिर्फ़ एक रिवाजी चीज़ है या वह लफ़्ज़ों का हेर फेर है या यह है कि और सब चीज़ों की तरह बादशाह का पैदा करने वाला भी अल्लाह ही है। अब हम अपने दूसरे मसले पर आ जाते हैं यानी यह कि मुग़ल गवर्नमेण्ट कहां तक एशियाई तानाशाही थी। उससे यह सवाल भी पैदा होता है कि "एशियाई तानाशाही" क्या चीज़ है। इस बात में बहुत शक है कि एशिया में कभी किसी ख़ास क़िस्म की तानाशाही गढ़ी गई हो जो यूरोप की तानाशाही से ज़्यादा बुरी हो। इस क़िस्म की हुकूमत में पूरब और पच्छिम, एशिया और यूरोप का कोई फ़र्क़ नहीं। जैसे फ्रान्स में लुई चौदहवां यह दावा करता था कि मैं ही हुकूमत हूं वैसे ही हिन्दुस्तान में औरङ्गज़ेब ने उससे बढ़कर कोई बात नहीं कही। बल्कि आम तौर पर यह दावा भी नहीं किया।

इसमें कोई शक नहीं कि मुग़ल बादशाहों की हुकूमत मुतलक़ी हुकूमत थी। उस ज़माने में आम जनता के चुने हुये लोगों की कोई इस तरह की कौंसिलें या पार्लिमेण्ट वग़ैरह नहीं थीं जिनके ज़रिये बादशाह के कामों पर रोक-थाम रखी जा सकती। लेकिन अगर उसके यह मानी लें कि मुग़ल बादशाह अपनी रिआया के जान-माल के पूरे मालिक थे और जो चाहे कर सकते थे या पोलिटिकल मामलों में भी जो चाहे हुकुम दे सकते थे, उन्हें कभी भी क़ानून के मातहत नहीं माना गया, बल्कि वे अकसर ख़ुद अपने को क़ानून के नौकर कहते थे तो दूसरी बात है। जायदाद वग़ैरह सब तरह के मामलों में रिआया का कुल ज़ाती क़ानून हिन्दू धर्म शास्त्र और मुसलिम शरअ पर चलता था। मुग़ल बादशाह मानते थे कि उन्हें उसमें तबदीली करने का कोई अख़्तियार नहीं है। जहां तक पता चलता है सिर्फ़ शाहजहां ने एक मौक़े पर हिन्दू धर्म शास्त्र में कुछ तबदीली की थी। यह उस वक़्त जब शाहजहां ने यह हुकुम जारी कर दिया कि अगर कोई हिन्दू इसलाम को अपनाना चाहे तो उसके घर के लोग उस पर जायदाद वग़ैरह के डर का बेजा दबाव न डालें। मुमकिन है कि इससे धर्म शास्त्र के जायदाद के विरासत के क़ानून में कोई तबदीली पैदा हुई हो। क्योंकि धर्म शास्त्र का क़ानून यह रहा होगा कि मज़हब बदल लेने पर कोई शख़्स अपनी ख़ानदानी विरासत नहीं पा सकता। और शाहजहां के क़ानून के मुताबिक़ एक हिन्दू मुसलमान हो जाने पर भी अपनी ख़ानदानी विरासत पा सकता था। मुसलमानों की शरअ में तो कभी किसी बादशाह ने किसी तबदीली की कोशिश नहीं की।

इसी वजह से कुछ मशहूर यूरोपियन मुसाफिरों ने यह अजीब बात कह डाली है कि मुग़लों के ज़माने में कोई लिखा हुआ क़ानून था ही नहीं। लिखा हुआ क़ानून तो ज़रूर था लेकिन उसके बनाने में मुग़ल राज का कोई हाथ नहीं था। इन यूरोप वालों को कोई मुग़ल क़ानून नहीं मिले क्योंकि मुग़लों ने कभी नये क़ानून बनाये ही नहीं। लिखे हुये क़ानून तो उस ज़माने में इतने ज़्यादा थे कि औरङ्गज़ेब ने, जो ख़ुद बड़ा आलिम था, यह महसूस किया कि मुसलिम शरअ की पेचीदगियों में से रास्ता मिलना भी कभी कभी मुशकिल हो जाता है। इसलिए औरंगज़ेब ने शरअ के क़ानून को फ़िर से तरतीब देकर लिखवाया। इस काम में औरंगज़ेब ने बादशाह की हैसियत से अपना कोई अख़तियार नहीं जताया। "फतवए आलमगीरी" नाम की किताब तैयार कराई गई। बहुत से आलिमों ने मिलकर उसे तैयार किया। किताब के नाम के साथ आलमगीर के नाम से यह नहीं समझना चाहिये कि उसमें कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलमगीर का हुकुम शामिल है। हर बात जो किताब में कही गई है उसके लिये किताब लिखने वाले आलिमों ने शरअ की किसी न किसी पुरानी किताब से हवाला दिया है।

मुग़ल ज़माने में ही हिन्दू धर्म शास्त्र की भी कई संस्कृत किताबें तय्यार कराई गईं; लेकिन इनमें भी किसी बादशाह के हुकुम से कोई बात नहीं लिखी गई। कमलाकर, रघुनन्दन, मित्र मिश्र, नरसिंह और बहुत से छोटे-मोटे पंडितों ने धर्म शास्त्र के अलग अलग हिस्सों पर मेहनत की। इन विद्वानों ने हमेशा पुराने शास्त्रों से ही लेकर अपनी राय ज़ाहिर की है। कहीं कहीं इतना ज़रूर किया है कि जहां इन्हें पुरानी किताबों में तरह तरह की एक दूसरे के ख़िलाफ़ रायें मिलीं हैं वहां उन्होंने उन्हींमें से किसी एक राय को लेकर अपना एक नया रास्ता बनाया है। इस मामले में हिन्दुओं को एक और रिआयत थी जो मुसलमानों को नहीं थी। हिन्दुओं की अपनी कचेहरियां थीं जो पञ्चायतें कहलाती थीं। धर्म शास्त्रों का मतलब मालूम करने में जहां दिक़्क़त होती थी यह पञ्चायतें उस पर आख़िरी फ़ैसला देती थीं। आम मुग़ल ज़माने के अन्दर किसी मुग़ल बादशाह की तरफ़ से इन पञ्चायतों के रंग रूप, उनके पंचों या उनके काम के ढंग को बदलने या उसमें दख़ल देने की कोशिश नहीं की गई।

फौजदारी का क़ानून यानी जुर्मों की सजा देने का क़ानून इसलामी क़ानून था। मामूली तौर पर रेआया रेआया के और राज्य और रेआया के ताल्लुक़ इसलामी क़ानून से चलते थे। अकबर ने मुग़ल राज्य की मज़हबी पालिसी को बदलकर एक ख़ासी नई तबदीली की थी। लेकिन जो तबदीलियां अकबर ने कीं वे भी असल में मुल्क के अमन आमान से ही वास्ता रखती थीं। ऐसे मौकों पर आम तौर पर राज्य की तरफ़ से यह ऐलान कर दिया जाता था कि कुछ क़ायदे क़ानूनों को तोड़ देने पर भी सरकार, ख़ास कर, ग़ैर मुसलिम मुजरिमों पर मुक़दमा नहीं चलावेगी। कभी कभी यह एलान किया गया था कि जो मुसलमान कोई मज़हबी जुर्म करेगा यानी अपने किसी मज़हबी फ़र्ज़ को पूरा नहीं करेगा उस पर भी ख़ास हालतों में शरअ के मुताबिक़ मुक़दमा नहीं चलाया जायगा। मानना पड़ता है कि मुग़ल बादशाहों ने इस मामले में लोगों को काफ़ी रिआयतें दी थी। बाज़ लोग समझते हैं कि इसकी पहल अकबर ने की थी लेकिन यह ग़लत है। अकबर से पहले अलाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ इसी तरह का आज़ाद रुख़ अख़्तियार कर चुके थे। अकबर ने ख़ुद अपने सुलतान आदिल या इमाम आदिल होने का जो क़रार उलमाओं को जमाकर के उनसे जारी कराया था जिसके मुताबिक़ उलमाओं की एक दूसरे के ख़िलाफ़ दो रायों में किसी एक को ठीक एलान कर देने का अकबर को हक़ मिल गया था और जिसे यूरोप वाले ग़लती से "इनफ़ालिबिलिटी डिक्री" यानी बादशाह की मासूमियत का फ़रमान' कहते हैं। वह भी असल में मुसलिम शरअ को बदलने वाली चीज़ नहीं थी बल्कि एक बहुत बड़े दर्जे तक मुल्लाओं को तसल्ली देने वाली चीज़ ही थी। अलाउद्दीन ने यह एलान कर दिया था कि मैं शरअ का क़ानून नहीं जानता और इसीलिए जो मेरा दिल कहता है वही करता हूँ।" इसके ख़िलाफ़ अकबर का यही कहना था कि मैं जो करता हूँ शरअ के मुताबिक़ करता हूँ। सिर्फ़ शरअ के जानने वाले मुख़्तलिफ़ आलिमों की जो अलग अलग राय एक दूसरे के ख़िलाफ़ मौजूद हैं उनमें से मैं किसी एक राय को चुन लेता हूँ। इसका मतलब यह हुआ कि जहां तक उसूल की बात है अकबर ने भी शरअ को बदलने का अधिकार अपने हाथ में नहीं लिया। यह दूसरी बात है कि अमल में उसने शरअ के कुछ हुकुमों की परवाह नहीं की और उसका अमल किसी बात में शरअ के ख़िलाफ़ रहा।

औरङ्गज़ेब ने शरअ के बदलने के इस हक़ को बिलकुल ही हाथ खींच लिया। बार बार देखने में आता है कि औरङ्गज़ेब न सिर्फ़ दीवानी और फ़ौजदारी के मामले में ही शरअ के आलिमों की राय लेता था बल्कि सरकारी टैक्स लगाने के मामले और तिजारत और व्यापार के क़ायदे क़ानून बनाने में भी वह अक्सर शरअ का हुकुम देखता था। अहमदाबाद में कुछ लोगों ने बहुत दिनों से तार बनाने का पूरा काम अपने हाथों में ले रखा था। औरङ्गज़ेब ने आलिमों से तय्यार कर इस इजारे को तोड़ दिया और सबको तार बनाने और बेचने की इजाज़त दे दी। एक मर्तबा औरङ्गज़ेब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ग़ल्ला वग़ैरह चीज़ों का निर्ख़ बांध देना चाहा लेकिन जैसे ही उसे मालूम हुआ कि ऐसा शरअ के खिलाफ़ है उसने अपनी कोशिश बन्द कर दी। उसे किसी के मुसलमान होने पर ख़ुशी होती थी लेकिन फिर भी एक मर्तबा जब किसी आदमी ने, जिसे क़त्ल के जुर्म में मौत की सज़ा दी गई थी, मुसलमान हो जाने और जान बख़्शवाने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की तो औरङ्गज़ेब ने उसकी जान बख़्श देने के बजाय उसे काज़ी के पास हुकुम के लिये भेज दिया। औरङ्गज़ेब का ज़माना मुल्लाओं के पूरे ज़ोर का ज़माना था और औरङ्गज़ेब ख़ुशी से मुल्लाओं के फ़ैसले के सामने सर झुका देता था।

अब यह सवाल पैदा होता है कि मुग़ल राज्य मज़हबी राज्य था। मुगल राज्य से पहले के यानी शुरू ज़माने के मुसलिम बादशाहों का अमल चाहे कैसा भी रहा हो मुगलों की हुकूमत इसलामी या मज़हबी हुकूमत नहीं कही जा सकती। मज़हबी हुकूमत का मतलब यह है कि हुकूमत यानी सरकार पुरोहितों, पादरियों या मुल्लाओं के मातहत हो। इसलाम ने ईसाई चर्च की तरह कभी मुसलिम मुल्लाओं का संगठन नहीं खड़ा किया। इसलाम में कभी भी कोई ख़ास पुरोहित यानी मज़हबी रसमें अदा करने कराने वाली कोई ख़ास जमाअत नहीं रही। मज़हबी तौर पर इसलाम में कभी कोई ख़ास छोटे-बड़े पुरोहित या पादरी नहीं हुए। इसलिए मज़मून में मज़हबी हुकूमत मुसलिम राज्य में हो ही नहीं सकती थी जब कि किसी को किसी वक्त भी शरअ का ऐसा मतलब बता देने का हक़ नहीं था जिसमें ग़लती न हो सके। मुसलमानों में ख़लीफ़ा हुये हैं। कभी कभी एक साथ एक से ज़्यादह भी ख़लीफ़ा हुये हैं। लेकिन ख़लीफ़ा उन माइनों में मुसलमानों का रूहानी हाकिम नहीं होता था जिन माइनों में अभी तक पोप कैथलिक ईसाइयों का रूहानी हाकिम है। जिस तरह पोप को ईसाई धर्म के मामिलों में इस तरह के हुकुम जारी करने का हक़ है जिनका मानना हर ईसाई का फ़र्ज़ है उस तरह ख़लीफ़ा को कभी आम मुसलमानों के लिये हुकुम जारी करने का हक़ हासिल नहीं हुआ। इसलाम अभी तक मज़हबी मामिलों में सिर्फ़ एक ही चीज़ को सनद मानता है और वह है रसूल की हदीसों और सहाबा की ज़िन्दगी के वाक़यों की रोशनी में क़ुरान का हुकुम। इसमें सिर्फ़ एक तबदीली मान ली गई थी। वह यह कि तमाम मुसलिम दुनिया मिलकर जिस चीज़ को जायज़ कह दे वह जायज़ है।

जब कि सब जगह इसलाम की सूरत यह थी तो हिन्दुस्तान में और ख़ास कर मुग़ल हिन्दुस्तान में तो यह बात और भी ज़्यादह ज़रूरी थी। इस मुल्क में हिन्दुस्तान की आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से के साथ इसलाम की शरअ का कोई ताल्लुक़ नहीं था। जिस मुल्क में आबादी के इतने बड़े हिस्से को बड़े बड़े मामलों में उनके अपने कानून के मातहत छोड़ दिया गया था वहाँ इसलाम की कोई मजहबी हुकूमत हो ही नहीं सकती थी। इस मामले में औरंगज़ेब ने भी कोई तबदीली करने की कोशिश नहीं की।

लेकिन एक बात ऐसी थी कि जिसमें मुग़ल राज्य ने एक मज़हबी आलिम के अख़तियार को बहुत दर्जे तक मान लिया था। सद्र-उस सुदूर राज्य का ख़ास आलिम होता था। शायद मुल्क भर में वह शरअ का सबसे ज़्यादह जानने वाला समझा जाता था और मुमकिन है कि शरअ पर सबसे ज्यादह वाक़िफ़ भी वही हो। सब मुग़ल बादशाहों ने शरअ का मतलब एलान करने का पूरा हक़ सदर को दे रखा था। सिर्फ़ अकबर ने यह हक़ अपने हाथ में ले लिया था कि जब कभी उलमाओं की राय न मिलती थी तो बादशाह आदिल की हैसियत से अकबर ख़ुद उनमें से जिस राय को ठीक समझे उसी पर अमल करे। लेकिन इस एलान पर भी अकबर उस वक्त तक अमल न कर सका जब तक कि उसने अपने पुराने सद्र-उस-सुदूर को निकालकर उसकी जगह दूसरा सदर मुक़र्रर न कर लिया। अब्दुल नबी को निकालकर उसकी जगह सदरजहाँ को मुक़र्रर किया गया। उलमाओं के फ़तवे का एलान भी तब तक नहीं हो सका जब तक कि सद्र-उस सुदूर ने खास पर दस्तख़त नहीं कर दिये। यह एक अजीब सूरत थी। सद्र-उस-सुदूर जब तक सद्र-उस-सुदूर रहता था तब तक सिर्फ़ उसे ही यह एलान करने का हक़ था कि शरअ का हुकुम क्या है। लेकिन बादशाह सदर को मुक़र्रर और बरख़ास्त कर सकता था। वह बादशाह के मातहत न था पर बादशाह उसे निकाल सकता था। औरंगज़ेब के तख़्त पर बैठने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे. वक्त इसकी बहुत अच्छी मिसाल देखने को मिली। सद्र-अस्-सुदूर ने शाहजहां के ज़िन्दा रहते हुये औरंगज़ेब को बादशाह क़रार देने से इनकार कर दिया। औरंगज़ेब को उसे बरख़ास्त करके दूसरा सद्र मुक़र्रर करना पड़ा। इस दूसरे सद्र ने पहले ही से यह राय ज़ाहिर कर दी थी कि चूंकि शाहजहां क़ैद में होने की वजह से काम करने के क़ाबिल नहीं इसलिये उसके ज़िन्दा रहते हुए भी औरंगज़ेब के नाम का ख़ुतबा पढ़ा जा सकता है। इस तरह मुग़ल बादशाहों के लिये अपने किसी काम को ठीक साबित करने के लिये यह लाज़मी था कि वह कोई न कोई ऐसा आलिम ढूंढ़ लें जो सद्र-अस् सुदूर बनकर बादशाह के काम को जायज़ करार दे सके। औरंगज़ेब के ज़माने में एक और तरह से यह चमक गया कि शरअ के मामले में बादशाह किस तरह दूसरे के मातहत था। कुछ अफ़सर इस काम के लिये मुक़र्रर किये गये थे जो रिआया को इजाज़त देते थे कि वे अगर बादशाह के ख़िलाफ़ कोई नालिश करना चाहें तो कर सकें। यह अफ़सर वकला शरअ कहलाते थे। ये मुक़दमे बादशाह के ख़िलाफ़ उस तरह के ज़ाती मामलों में दायर किये जा सकते थे जिस तरह कि अंग्रेज़ी क़ानून में पेटेन्टस आफ़ राईट के मातहत दायर किये जाते हैं। औरंगज़ेब की हुकूमत की पालिसी से इनका कोई ताल्लुक़ नहीं था और न कोई उनके मुताबिक़ मुल्क के राजकाज में दख़ल दे सकता था।

मुग़ल सल्तनत मज़हबी सल्तनत तो नहीं थी लेकिन कई बातों में मुग़ल बादशाह इसलाम के एजन्टों की तरह भी काम करते थे। यहां एक उसूल की बात है। मुग़ल बादशाह और सबसे ज्यादह औरङ्गज़ेब, इसलाम के एजेन्ट से ज्यादह और कुछ न थे। अकबर इस बात के कहने में फ़ख़ करता था कि मेरी फ़तहों से इसलाम के उसूल दूर दूर तक फैलते हैं और इसलाम के पैग़म्बर का हुकुम उन मुल्कों तक पहुंचता है जहां पहले कभी पैग़म्बर का नाम भी नहीं सुना गया था।

जहांगीर और शाहजहां दोनों अपने को सच्चे दीन के रक्षक मानते थे और दीन के जायज़ हक़ों का ख़याल रखते थे। औरंगज़ेब की सबसे बड़ी ख़्वाहिश यह थी कि न सिर्फ़ मुसलमानों में बल्कि कम से कम बाहर के रहन-सहन में ग़ैर मुसलमानों में भी मुसलिम रहन-सहन को बढ़ाया जावे। साथ ही औरंगज़ेब को भी इस मामले में ईसाइयों के साथ यह रिआयत करनी पड़ी थी। उन्हें शराब पीने की इजाज़त दी गई थी जब कि बहुत तमाम रिआया के लिये शराब पीना क़ानूनन मना था। लेकिन इस्लामी हुकूमत के वे उसूल जो ख़ासकर क़ुरान पर नहीं बल्कि बाद के मुसलिम बादशाहों के रिवाज और ईरान के ग़ैर मुसलिम बादशाहों की रियायतों पर ढाल लिये गए थे आसानी से हिन्दुस्तान में न चल सकते थे। एक सवाल यह था हिन्दुस्तान दारूल-सलाम है, या दारुल हरब। दारुल-सलाम के माने है मुसलमानों का घर और दारूल-हरब के मानी हैं मुसलमानों के हमले की जगह। इस तरह के सीधे सादे मामले में भी औरंगज़ेब जैसे बादशाह के लिये भी उन मुसलिम रिवाजों को जो हिन्दुस्तान से बाहर पैदा हुये थे हिन्दुस्तान में जारी करना नामुमकिन था। उससे पहले के हिन्दुस्तान के मुसलिम बादशाहों ने कभी कभी मुसलिम शरअ या मुसलिम रिवाज के ख़िलाफ़ अमल करने की भी हिम्मत न की थी। मालूम होता है कि इसलाम के हिन्दुस्तान आने के शुरू के दिनों में ही यह बात समझ ली गई थी कि तमाम हिन्दुस्तान का इसलाम को अपनाना नामुमकिन है। यह मामला यहीं पर रह गया और इसी की वजह से हिन्दुस्तान के अन्दर इसलामी क़ानून और इसलामी रिवाज में काफ़ी तबदीलियां करनी पड़ीं। इसका क़ुदरती नतीजा यह हुआ कि यह उसूल बिलकुल ख़त्म हो गया कि हिन्दुस्तान में यहां के मुसलमान बादशाह महज़ इसलाम के एजेन्ट बनकर हुकूमत करें।

अब हम फिर यह देखना चाहते हैं कि मुग़लों की हुकूमत का ढंग क्या था। मुग़ल हुकूमत शख़्सी हुकूमत यानी एक आदमी की हुकूमत तो थी ही लेकिन वह एक हद के अन्दर ही शख़्सी हुकूमत थी। बादशाह आम तौर पर यह दावा करता था कि मैं इसलाम के एजेन्ट की हैसियत से काम कर रहा हूं। लेकिन इसलाम उससे क्या चाहता है इसका वह ख़ुद फ़ैसला करता था। मुग़ल राज्य एक ऐसी शख़्सी हुकूमत था जिसके उसूल के तौर पर भी और अमली तौर पर भी लोगों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ आज़ाद ज़िन्दगी बसर करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बहुत बड़ा मैदान छूटा हुआ था।

लेकिन इस बारे में एक बहुत ज़रूरी बात याद रखनी चाहिये। कई बातों में मुग़ल बादशाहों के अख़्तियार बँधे हुये थे फिर भी अगर कोई बादशाह उन हदों से बढ़ जाने का फ़ैसला कर लेता था तो राज्य के तौर तरीक़ों में पार्लिमेण्ट या असेम्बली या कौंसिल जैसी कोई ऐसी चीज़ मौजूद नहीं थी जो बादशाह को ऐसा करने से रोक सके। बादशाह की किसी पालिसी के साथ अपनी नाराज़गी ज़ाहिर करने का रिआया के पास सिर्फ़ एक तरीक़ा था और वह था बग़ावत करने का तरीक़ा। वह तरीक़ा उन दिनों हमेशा ठीक तरीक़ा माना जाता था। मसलन उस ज़माने के इङ्गलैंड में बादशाह के ख़िलाफ़ इस तरह की बग़ावत एक मज़हबी गुनाह समझी जाती थी। हिन्दुस्तान में यह बात न थी। इसके अलावा शुरू शुरू ज़माने के मुसलिम क़ानून में बादशाहत के बारे में कोई ऐसा क़ायदा नहीं था कि किसी बादशाह के बाद वही उसके लड़के को ही मिले। शुरू के मुसलमान बादशाहों ने अपने अमल में भी इस तरह का कोई क़ायदा नहीं माना। यह सही है कि शियों ने इस तरह का दावा किया था और इसी वजह से शियों और सुन्नियों में फ़रक़ पड़ गया। मिस्र में ख़लीफ़ा ही मुसलमानों का हाकिम होता था। ख़लीफ़ा को मुसलमान अपने में से चुनते थे। शियों को छोड़कर क़ुरान या हदीस में से किसीने भी बेटे के बाप की गद्दी पर बैठने के हक़ या उसूल को नहीं माना। यहां तक कि बादशाहत के मामले में मुसलमानों में कोई ख़ास क़ानून एक के बाद दूसरे के गद्दी पर बैठने का है ही नहीं। बादशाहत के लिये किसी इनसान का ज़ाती हक़ इसलाम नहीं मानता। इसलाम के मुताबिक़ बादशाहत किसीकी ज़ाती मिलकियत नहीं होती और न किसी की बपौती ही समझी है। क़ुदरती तौर पर तख्त का कौन हक़दार है और कौन नहीं, इस पर न किसी क़ानून की ज़रूरत थी और न कोई क़ानून माना जा सकता था। हिन्दुस्तान में शुरू के मुसलमान बादशाहों ने इस मुशकिल को इस तरह हल किया कि उन्होंने कम से कम कहने के लिये अपने को ख़ुद मुख़्तार बादशाह नहीं माना। वे कहते थे कि हम अपने किसी जाती हक़ से बादशाहत नहीं कर रहे हैं बल्कि उस दूर बैठे हुये मुसलिम बादशाह के मुक़र्रर किये हुए अफ़सर या नायब की हैसियत से काम कर रहे हैं जो अपने को ख़लीफ़ा कहता है। बाबर और उसके बाद के बादशाहों ने इसलिये इस पुरानी फ़र्ज़ी रस्म को मानने से इनकार कर दिया क्योंकि उस वक़्त वह ख़ुद दुनियां भर में सबसे बड़ा मुसलमान हाकिम था। अपने को ख़लीफ़ा का नायब मानने से कुछ दिनों तक यहां के बादशाहों का काम ज़रूर चल गया लेकिन उससे इस बात का कोई क़ायदा न बन पाया कि एक बादशाह के बाद तख्त का हक़दार कौन और कैसे हो। इस बारे में न कोई क़ानून था और न पुराने बादशाहों के अमल से कोई मदद मिल सकती थी। क़ुदरती नतीजा यह था कि क़रीब क़रीब मुग़ल बादशाहों के मरने के वक़्त तख्त के लिये ख़ासी गर्मा गर्मी और भागदौड़ दिखाई देती है। जिस वक़्त बाबर मौत के बिछौने पर पड़ा हुआ था उसका वज़ीर आज़म इस फ़िक्र और साज़िश में लगा हुआ था कि हुमायूँ को किस तरह तख़्त से अलग रखा जावे। हुमायूँ की मौत इतनी अचानक हुई और हिन्दुस्तान में मुग़लों की हालत उस वक़्त इतनी नाज़ुक थी कि उस वक़्त तख़्त के लिये ज़्यादह झगड़ा न हो पाया। अकबर की मौत के बाद जहाँगीर तख़्त पर बैठा लेकिन जहाँगीर के सबसे बड़े बेटे ख़ुसरू ने अपने बाप के उस हक़ के ख़िलाफ़ हाथ पाँव मारे। जहाँगीर की हुकूमत के आख़िरी दिनों में तख़्त के लिये तरह तरह की भद्दी साज़िशें हुईं। जहाँगीर के मरने के वक़्त शाहजहाँ दखन में था इसलिये शाहजहाँ के लिये तख़्त को तय्यार रखने की ग़रज़ से बदक़िस्मत बुलाक़ी को चुना गया। शाहजहाँ के पहुंचते ही बुलाक़ी मार डाला गया और तख़्त के दूसरे दावेदारों के ख़ून में से अपना रास्ता बनाकर शाहजहाँ बाप के तख़्त पर बैठा। औरङ्गजेब ने शाहजहाँ से बदला चुकाया। उसने शाहजहां को क़ैद करके शाहजहां की ज़िन्दगी में शाहजहां के नाम पर नहीं बल्कि ख़ुद अपने नाम पर बादशाहत करनी शुरू की। इस सबसे ज़ाहिर होता है कि इस ज़माने के बारे में मुसलमानों में जो आम ख़्याल था इसीसे मिलता जुलता मुग़लों का अमल था। यह बात नहीं थी कि एक बादशाह के बाद दूसरे को गद्दी मिलने का कोई माना हुआ क़ानून या रिवाज रहा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और किसीने ज़बरदस्ती बग़ावत करके उसे तोड़ा हो। बल्कि जो कुछ होता था वह एक मामूली चीज़ थी और और इसलिये होता था कि इस मामले में कोई ख़ास क़ानून पहले से नहीं था।

यह भी याद रखना ज़रूरी है कि मुग़ल बादशाहों ने रिआया को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ आज़ाद ज़िन्दगी बसर करने की बहुत बड़ी आज़ादी दे रखी थी। उसमें बादशाह कोई दख़ल न देता था। यह वह ज़माना था जब यूरोप में वे बादशाह भी जो बिलकुल ख़ुद मुख़्तार थे और वे भी जिनके यहां पार्लिमेण्ट बनी हुई थीं, दोनों अपनी अपनी रिआया को साफ़ साफ़ यह हुकुम देते थे कि रिआया इस ख़ास क़िस्म के मज़हबी अक़ीदों (विश्वासों) को माने और उसके ख़िलाफ़ किसी दूसरे अक़ीदे को न माने। मिसाल के तौर पर इंगलैण्ड में जो एडवर्ड छठे के नाम पर हुकूमत करता था उसने हुकुम दे दिया कि तमाम अंग्रेज़ कौम प्रोटेस्टेण्ट मज़हब को माने और सारा इंगलिस्तान प्रोटेस्टेण्ट हो गया। इसके बाद मलका मेरी तख़्त पर बैठी और गोया किसी ने जादू कर दिया। फ़ौरन तमाम इंगलिस्तान के लोग फिर से रोमन कैथलिक हो गये। मलका मरी और पहिया फिर घूम गया। सारा इंगलिस्तान अब एंग्लीकन मज़हब का मानने वाला हो गया। आजकल हम इस बात को सुनने के बहुत आदी हो गए हैं कि राज्य या बादशाह रिआया के मज़हब में कोई दख़ल नहीं देता। मगर हिटलर और उसके वारिस आज कल भी दुनियां को इस तरह की आज़ादी देने के लिये तैयार नही हैं। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में दुनियां के हर मुल्क के अन्दर राज्य को इससे गहरा ताल्लुक़ होता था कि रेआया किस मज़हब को मानती है। लेकिन हिन्दुस्तान में मुग़ल बादशाहों ने अपनी रिआया के मज़हबी विश्वास में दख़ल नहीं दिया और इस मामले में रिआया को आज़ाद छोड़ दिया था। इस बात में मुग़ल बादशाह अपने ज़माने के लेहाज़ से अपनी एक अलग मिसाल थे। सोलहवीं सदी में एक दूसरे के बाद इङ्गलैण्ड के कई बादशाहों ने एक्ट आफ़ सुप्रिमेसी और एक्ट्स आफ़ यूनिफ़ार्मिटी के क़ानून पास करके ज़बरदस्ती यह हुकुम दे दिया कि इंगलैण्ड के लाखों रोमन कैथलिक अपने मज़हब को छोड़कर अपने गिर्जों में बादशाह के मज़हब यानी प्रोटस्टेण्ट मज़हब की लिखी हुई दुआएं पढ़ा करें और हर मज़हबी बात में सबसे बड़े पुरोहित पोप के बजाय प्रोटेस्टेण्ट बादशाही हुकुम मानें। इस शाही फ़रमान के न मानने पर हज़ारों रोमन कैथलिक पादरियों को कड़ी सज़ाएं दी गईं। इसी तरह सन् १५६२ ई० में इंगलैण्ड में राज्य की तरफ़ से उन्तालिस मज़हबी उसूलों की एक फ़ेहरिस्त क़ानून की शकल में पास कर दी गई और उनमें से हर उसूल का मानना मुल्क के हर आदमी का क़ानूनी फ़र्ज़ क़रार दिया गया। यह बात भी याद रखनी चाहिये कि उस वक्त तक इङ्गलैंड के मुख़्तलिफ़ ज़िलों में पचास फ़ीसदी से लेकर नब्बे फ़ी सदी तक आबादी रोमन कैथलिक थी। इन सबको ज़बरदस्ती अपना मज़हब छोड़कर उस वक्त के बादशाह का मज़हब मानना पड़ा। मुग़ल बादशाहों ने कभी इस तरह के कोई क़ानून जारी नहीं किये। और अपनी रिआया की एक बहुत बड़ी तादाद को, जो ग़ैर मुसलिम थी, मज़हब के मामले में पूरी तरह आज़ाद रखा। मुसलमानो के लिये भी किसी मुग़ल बादशाह ने या तो इसलाम छोड़कर दूसरा मज़हब अख़्तियार करनेवालों को कभी कोई सज़ा दे दी और ज़्यादा से ज़्यादा यह हुकुम दे दिया कि आम रहन सहन में मुसलमान एक ख़ास ऊंचे तरीके की पाबन्दी करें, मसलन यह कि लोग शराब न पियें, वग़ैरह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबदुर्रहीम ख़ानेख़ाना

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना एम० ए०, डिप० साइ०

अबदुर्रहीम ख़ानेख़ाना उस ईरानी शिया तुर्कमान बैराम ख़ां के पुत्र थे, जिसने "हुमायूँ के रास्ते से अफ़ग़ानी कांटे दूर किये थे"[1], जिसकी "बुद्धिमत्ता, उदारता, सचाई, भलाई, विनय तथा नम्रता अद्वितीय थी, जिसके कारण हुमायूँ का भारत साम्राज्य का स्वप्न एक दिन सत्य सिद्ध हुआ था[2]", जिसे हुमायूँ ने अपने आत्मचरित्र में 'यार वफ़ादार, हमदमे गुमसार[3]' कहकर पुकारा है और हुमायूँ ने जिसकी कृतज्ञता को उसे अपना वकील (प्रधान मंत्री) तथा ख़ानेख़ाना (प्रधान सेनाध्यक्ष) बनाकर प्रकट किया तथा जिसकी काव्य प्रतिभा तथा बुद्धिमत्ता का लोहा उसे सन् १५५५ नवम्बर में[4] अकबर का अभिभावक बना कर माना। भारत में दूसरी बार सन् १५५४ में आने पर, अपने समकक्ष आदर देने के ख्याल से बैराम का ब्याह हुसेन खां मेवाती के चचेरे भाई जमाल खां की छोटी लड़की के साथ किया और अपना ब्याह बड़ी लड़की के साथ। इसी जमाल खां की छोटी लड़की के गर्भ से सोमवार, १७ दिसम्बर सन् १५५६[5] (शुक्ल पक्ष १४ मार्ग शीर्ष विक्रम संवत् १६१३ मिथुन लग्न[6]) को सूर्योदय के समय लाहौर[7] में रहीम का जन्म हुआ था।

अकबर बैराम ख़ां को ख़ाने बाबा कहकर पुकारता था। बदायुनी जैसा कट्टर सुन्नी हमें बतलाता है कि अवस्था आने पर अकबर ने जब होश सँभाला तो राज काज की बागडोर उसने अपने हाथ में ली। चुगलखोरों ने अकबर के कान बैराम खां के विपरीत भरने शुरू किए और धीरे-धीरे अकबर की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा ने बैराम ख़ां की शक्ति क्षीण कर दी। कई वर्षों तक साम्राज्य का वास्तविक शासक रहने के कारण अमीर लोग बैराम ख़ां से ईर्ष्या करते थे। तर्दी बेग को बैराम ख़ाँ ने कत्ल करवाया था इससे वे और भी सशंकित हो गये थे। सन् १५६० ई० में १८ वर्ष की अवस्था होने पर अकबर ने अपनी स्वतंत्र सत्ता का फरमान बैराम ख़ाँ के पास भेज दिया। बाध्य होकर अप्रैल सन् १५६० ई० में बैरम ख़ाँ बयाना की ओर चल पड़ा जहाँ उसके पुराने शत्रुओं ने उसे घेरकर मार डाला। कुटुम्ब के लोग भागकर लाहौर चले आये। रहीम इस समय केवल चार वर्ष के थे। सन् १५६२ में अकबर ने सारे परिवार को अपने पास आगरे बुला लिया। रहीम की शिक्षा-दीक्षा लालन-पालन का पूरा प्रबन्ध अकबर ने अपने हाथ में ले लिया।

जब रहीम बालिग़ हो गये तो उन्हें अकबर ने मिर्ज़ा ख़ां की पदवी दी और ख़ाने आज़म की बहिन माहबानू बेगम से रहीम का विवाह कर दिया। इससे रहीम के चार संतानें हुईं, जिनमें मिर्ज़ा दराब ख़ाँ, मिर्ज़ा एरिज और शाहे नवाज़ ख़ां राज्य के गौरवपूर्ण ओहदों पर रहे। दराब खां तथा एरिज ने कई युद्धों में पराक्रम दिखलाया। एरिज[1] की वीरता की प्रशंसा अभिमन्यु कवि ने, और दराब ख़ाँ[2] की प्रशंसा गंग ने की है।

१—मुल्ला अबदुल्ला बकी—'मुसासिरे रहीमी'
२—अबदुल क़ादिर बदायुनी
३—हुमायूँ नामा
४—अकबर नामा
५—मआसिर उल उमरा, भाग २
६—रहीम ख़ानेखाना की जन्म कुंडली (रहीम रत्नावली पृ० ३४ में मुंशी देवीप्रसाद के खानखाना नामा से उद्धृत)
७—मआसिर उल उमरा, भाग २

१—जैसे मृगराज के छौना गजराज पै,
छोटे छोटे धावन करत आय धावे है,
तैसे लरिकाई ही ते एलच बहादुर ने,
भारी फौज मारी, मानो अंगद को पाँव है,
कहे 'अभिमन्यु' कुल दच्छिन तैं जेर करी,
और कोन देश जाय मूछों देत ताव है,
दादे ते सरस बाप, बाप ते सरस आप,
महाबली बैरम के बन्स को सुभाव है॥

२—कश्यप के तरनि औ, तरनि के करन जैसे,
उदधि के इंदु जैसे, भए यों जिजाना के।
दशरथ के राम और, श्याम के समर जैसे
ईस के गनेश औ, कमलपत्र आना के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर ने गुजरात की ओर सन् १५७२ ई० में पहली बार ध्यान दिया और मिर्ज़ा मुज़फ़्फ़र ख़ां को हरा कर खाने आज़म को वहाँ का शासक नियुक्त किया था। सन् १५७७ ई० में रहीम को पाटन की जागीर दी गई और वे नाम मात्र के लिये गुजरात के शासक नियुक्त हुए। शासन का प्रबन्ध वस्तुतः वजीर ख़ां के हाथ में था। इस समय रहीम की अवस्था २१ बरस की थी। इन इक्कीस वर्षों के अंदर वे आगरे में कई कवियों, विद्वानों, और सूफियों के संसर्ग में संभवतः आ चुके थे। फारसी, संस्कृत और हिन्दी का पूर्ण ज्ञान उन्हें हो चला था और वे कविता करने लगे थे। नगर शोभा, मदनाष्टक आदि यदि रहीम की ही रचनाएं हैं तो उनका बीजारोपण इसी समय हुआ होगा।

सन् १५५६ से १५७७ ई० के बीच अकबर के दरबार से नरहरि (१५०५—१६१० ई०), गंग (१५३६ ई०—१६१७ ई०), बीरबल (१५२८ ई०—१५८३ ई०); टोडरमल (१५२३ ई०—१५८९ ई०—ये १५७३ ई० में दरबार में आये थे), फ़ैज़ी (१५४६ ई०—१५९६—ये १५६८ ई० में दरबार में आये थे), अबुलफ़ज़ल (१५५१ ई०—१६०२ ई०—ये १५७५ ई० में दरबार में आये), अब्दुल क़ादिर बदायूनी (१५४० ई० में जन्म, १५७४ ई० में दरबार में आये), तथा शेख मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी (१४७३ ई०—१५६३ ई०; आगरा १५५९ ई० में आये उसी समय अकबर उसका शिष्य हुआ, १५६३ ई० में आगरे में ही मृत्यु हुई) आदि का संपर्क हो चुका था। इसी भांति अजमेर के शेख सलीम चिश्ती के संपर्क में अकबर रहता था। उनके यहाँ गर्भावस्था (सन् १५-६९ ई०) में अपनी बेगम (राजा बिहारीमल की लड़की जिससे १४ जनवरी सन् १५६२ को विवाह हुआ था) को अकबर ने भेजा था और वहीं सलीम (जहाँगीर) का जन्म ३० अगस्त १५६९ ई० को हुआ था। शेख के नाम पर ही सलीम का नाम रखा गया। शेख सलीम चिश्ती की मृत्यु सन् १५७२ ई० में हुई थी। ये सूफी संत थे। इनके बीच कबीर (१३९९ ई०—१४८९ ई०), जायसी (१४९४ ई०—१५९१ ई०), नानक (१४५९—१५३९ ई०) की वाणियों और प्रेम गाथाओं का प्रचार संभवतः चल आ रहा था। ऐसे संसर्ग में इन कवियों की वाणियों का प्रभाव रहीम पर पड़ना स्वाभाविक था। कबीर के दोहे केवल नाम भेद अथवा कहीं थोड़े से शब्द अंतर के साथ रहीम की रचनाओं में पर्याप्त संख्या में मिलने का कारण सूफियों द्वारा विशेष कर सलीम चिश्ती के द्वारा ही अधिक संभव हो सकता है। अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, बीरबल और बदायूनी जैसे संस्कृत तथा फ़ारसी के प्रकांड पंडितों तथा गंग, नरहरि आदि हिन्दी के कवियों के संपर्क में रहकर रहीम में इन भाषाओं तथा उनके काव्य का प्रेम न जागरित होता तो यह आश्चर्य की बात होती। फारसी का तो वह युग ही था। राज-काज और जीविकोपार्जन के लिए उसका विशेष अध्ययन परम आवश्यक था। रहीम उसमें विशेष सफलता पा सके इसका प्रमाण उनका बाबर चरित का उल्था तथा फारसी दीवान है।

किंतु दरबार के संपर्क के अतिरिक्त भी काव्य साहचर्य रहीम के निकट ही था। आगरा से मथुरा तथा ब्रजमंडल दूर न था। ब्रजमंडल में इस समय भक्त कवियों और संगीतज्ञों की धूम थी। हरिदास (रचना काल १५४५ ई०), तानसेन (१५३९ ई०—१६२६ ई०), वल्लभाचार्य (१४७३ ई०—१५३१ ई०), विट्ठलनाथ (१५१५ ई०—१५८५ ई०), गोकुलनाथ (१५५१ ई०—१६४० ई०), सूरदास (१५०३ ई०—१५ नन्ददास (ई० १५६८ में विद्यमान), कृष्णदास (१५१९ से १५८३ तक बल्लभ संप्रदाय में रहे, १५८३ में मृत्यु), परमानन्ददास (१५४९ में विद्यमान), धर भट्ट (ई० १५२७ में विद्यमान), रसखान (१५ ई०—१६२३ ई०) आदि भक्तों तथा दांपत्य प्रेमी भ कवियों की काव्य धारा ब्रजभूमि में संगीत की प्रेम उछाल रही थीं। रहीम इनके प्रवाह में भी 'जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को

सिंधु के ज्यों सुरतरु, पवन के ज्यों हनुमान,
चंद्र के ज्यों बुध, अनिरुद्ध सिंहबाना के।
तैसेई सपूत खान बैरम के खानखाना
वैसेई दराब खाँ सपूत खानखाना के।

कहा जाता है कि इस कवित्त पर रहीम ने गंग को छत्तीस लाख रुपये भेंट किये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लतवानी', 'कमल-दल नैननि की उनमानि', 'छवि आवन मोहन लाल की' जैसी रचनाएँ कृष्ण काव्य के कवियों के स्पष्ट प्रभाव की सूचना उसी प्रकार दे रही हैं जिस प्रकार 'तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल शुकारो मुरार' जैसी रचनाएँ एक साथ ही संस्कृत और फारसी के अध्ययन की बात का भेद बता रही हैं। इनके अतिरिक्त तुलसी (१४९८ ई०—१६२३ ई०), केशव (१५५५ ई०—१६१७ ई०) और बिहारी (१५९३ ई०—१६६३ ई०) के संपर्क में भी रहीम रहे।

यौवन के आरंभ के ये पंद्रह-बीस वर्ष (१५६२ से १५७७ ई०) साहित्य और विद्याध्ययन तथा सत्संग की दृष्टि से रहीम के जीवन के सबके महत्वपूर्ण वर्ष हैं। उनके भावी जीवन की आंतरिक धारा का निर्माण इन्हीं वर्षों में हुआ। आगे आनेवाले समय में वाह्य जीवन के अनुभव ही प्रधान रहे हैं। समय समय पर ऐसे भी अवसर कदाचित् आये हैं जिन्होंने उनकी साहित्यिक रुचि को उत्तेजना दी। जिससे युद्धों के संकटपूर्ण जीवन तथा राजनैतिक कुचक्रों के बीच भी भी वे काव्य-रचना के लिये समय निकाल सके। दूसरे की कविताओं को सुन-कर उन्हें उत्साहित करने की सुरुचि दिखला सके और चुने हुए कवियों, भक्तों, महात्माओं आदि के संपर्क में आने का प्रयत्न करते रहे।

सन् १५७७ ई० में गुजरात के सूबेदार बनने के चार ही वर्ष बाद उन्हें मीर अर्ज़ की उपाधि मिली। और सन् १५८२ ई० में उन्हें अजमेर की सूबेदारी मिली। गुजरात में रहीम ने चार वर्ष (१५७७—८१ ई०) यों ही नहीं खोए होंगे। वे अवश्य ही वहां के प्रसिद्ध भक्त कवि नरसी मेहता (१५५०० ई—१५८० ई०)[1] के संपर्क में आए होंगे। १५८२ ई० के आरम्भ में वे अजमेर चले आये जहां सूफियों के संपर्क में आये बार उससे मिले। १५८२ ई० में अबुलफ़जल के अनुसार ११ मार्च से २९ मार्च तक लगातार अठ्ठारह दिन सारे साम्राज्य के महान् कर्मचारियों, धार्मिक व्यक्तियों, पंडितों और विद्वानों की सभा हुई थी। लोग इसी सभा को दीने इलाही के उद्घाटन के नाम से जानते हैं किंतु महान् कार्यों का कई दिशाओं में आरंभ इस समय से शुरू होता है। बदायुनी फतःउल्ला आदि को संस्कृत ग्रंथों महाभारत, हरिवंश, लीलावती, पंचतंत्र, अथर्ववेद आदि का फारसी में अनुवाद करने का काम इसी समय सौंपा गया।

अकबर अजमेर के शेख सलीम चिश्ती और शेख मुईनुद्दीन का बड़ा भक्त था। वह प्रति वर्ष फतहपुर सीकरी से पैदल अजमेर की यात्रा (सम्भवतः १५७९ ई० तक[1]) लगातार करता रहा। राह में एक एक कोस पर आरामगाह, स्मारक-स्तंभ (हजीरे) तथा कुएँ बने हुए थे[2]। दूरी २२८ मील की होने से एक सौ चौदह हजीरे मार्ग में थे। जिनके बारे में सन् १५८२ ई० में हीरविजय सूरि से बातचीत करते हुए अकबर ने कहा था—

"देखे हजीरे हमारे तुम्ह, एक सो चउद कीए वे हम्म,
अके के सिग पंच से, पंच पातिग करता नहिं खलखंच ॥

ऋषभदास कृत 'हरिविजय सूरि रास'

इस १५८२ की सभा में रहीम भी जहांगीर (सलीम) की जन्म-भूमि से आये थे। इसी साल के अंत में[3] रहीम जैसे विद्वान योग्य बहुभाषी कवि तथा नीतिनिपुण वीर व्यक्ति को अकबर ने सलीम का संरक्षक, शिक्षा-गुरु तथा अभिभावक बनाया[4]।

सन् १५८४ की जनवरी में अहमदाबाद (गुजरात) से तीन कोस की दूरी पर सरखेज नामक स्थान पर रहीम

एक दिसम्बर १५८१ ई० को अकबर काबुल से फतहपुर सीकरी लौट आया था। ८२-८३ में राज्य कुमार की व्यवस्था में हम उसे पाते हैं। १८ फर्वरी १५८० से १६०३ ई० के बीच यूरोप के प्रतिनिधि पाँच

१—K. M. Munshi—Gujarat and its Literature p. 149.

१—Douglas—Bombay & Western India I, 289.

२—Badayuni—(W. H. Low. M. A. Badayuni—Vol. II, p. 170.)

३—अकबर सन् १५७२ ई० से सन् १५९४ ई० तक बराबर जैन साधुओं के सम्पर्क में रहा।

४—कुछ लोगों के अनुसार रहीम सन् १५८४ ई० में सलीम के अभिभावक बनाए गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मिर्ज़ा मुज़फ़्फ़र खां तीसरे को हार दी थी और अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया था। जिसके उपलक्ष में अकबर ने इन्हें पांचहजारी का मनसब और खानेखाना की उपाधि दी। गुजरात में शांति स्थापित करने के बाद वे सम्भवतः सन् १५८६ में दरबार चले आये थे।[1] बदायूनी हमें बतलाता है कि १ दिसम्बर १५८७ को लाहौर में अकबर, मानसिंह और रहीम खानेखाना साथ थे। अकबर का ध्यान अब सिंध विजय पर था इसलिए रहीम खानखाना को यह भार सौंपा गया और राजा टोडरमल उनके साथ कर दिये गये।

रहीम ने ठट्ठ विजय कर १५८८, ८९ ई० में सिंध के शासक मिर्जा जानी बेग को हराया। राजा टोडर मल २० नवम्बर १५८९ ई० को युद्ध में मारे गये। जानी बेग को हराने से फ़ुर्सत पा रहीम ने अपना वह महान् साहित्यिक कार्य समाप्त किया जिसका आरम्भ सम्भवतः उन्होंने सन् १५८२ ई० में कर दिया था। यह कार्य 'वाकयाते बाबरी' का तुर्की से फारसी में उल्था करना था। बदायुनी के अनुसार रहीम का अनुवाद सबसे सुन्दर और प्रामाणिक था। रहीम की काव्य की ख्याति तथा उदार दानशीलता की कहानी इस समय तक फारस तक पहुँच चुकी थी। फारस से कवि तथा साहित्यिक खिंच खिचकर रहीम तथा मुग़ल दरबार के आश्रय में चले आ रहे थे। सिंध में रहीम के आश्रय में फ़ारस के कवि हकीम रुक्नाए काशी (हकीम रुक्न उद्दीन 'मसीह'); हकीम सद्रा सीराजी 'मसीहुज़ ज़मीन, तथा मुल्ला शकीबी इस्पहानी जैसे व्यक्ति विद्यमान थे। शकीबी ने रहीम की सिन्ध विजय के अवसर पर यह शेर बनाया था—

हुमाए कि बर चर्ख कर दी ख़िराम,
गिरफ़्तो वो आज़ाद कर दी मुदाम॥

रहीम तथा मिर्ज़ा जानी बेग ने इस शेर पर एक एक हज़ार अशर्फियां शकीबी को इनाम दी थीं। इसी भांति 'उर्फी' नामक फारसी कवि को एक कसीदे पर प्रसन्न होकर रहीम ने एक लाख रुपये इनाम दिये थे। नजीरी को भी किसी अन्य समय जहांगीर ने तीस हजार अशर्फियां और खानखाना ने एक लाख रुपये दिये थे। (सर-कुश, कुलीयात उश शुअरा ने ख़ानखाना के बारे में लिखते समय इस बात का जिक्र किया है)। अपने 'शकी नामा' में शकीबी ने रहीम की सहृदयता के बारे में लिखा है—

बया साक़ी आं आबेहयां बदाह।
ज़ सर चश्म ए खानेखाना बदाह,
सिकन्दर तलब कर्द लेकिन नयाफ़त,
कि दर हिन्द बूदो बि ज़ुल्मत सताफ़त,

सन् १५९० ई० में सम्भवतः 'वाक़याते बाबरी' के अनुवाद को रहीम ने अकबर को भेंट किया। इसकी बड़ी प्रशंसा हुई और खानखाना को जौनपुर की जागीर मिली तथा वे 'वकील' बना दिये गये। मिर्ज़ा जानी बेग को अच्छी तरह से परास्त कर अपने साथ वे उसे १५९३ ई० में दरबार में ले गये। वहां बड़े समारोह के साथ उनका स्वागत हुआ।

इसी वर्ष (१५९३ ई०) में अपनी जौनपुर की जागीर देखने सम्भवतः रहीम पूरब आये। हो सकता है गोसाईं तुलसीदास जी से इस समय मिले हों। कदाचित रहीम के द्वारा अकबर ने तुलसीदास जी के लिये दरबारी मनसबदार बन जाने का पट्टा भेजा था जिसकी बात सुन कर तुलसीदास जी ने वह आत्मनिष्ठ राम भक्तिमय उत्तर दिया था जो तुलसीदास जी को अकबर से भी ऊँचा उठा देनेवाला होने से उनके जीवन इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाने योग्य है—

हम चाकर रघुवीर के, पढ़ौ लिखौ दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार॥

तुलसीदास जी के सत्संग का जो अवसर रहीम को मिला होगा उसे वे भुला न सके। उनके अनेक दोहे ऐसे हैं जिनमें रहीम इतना अधिक रम गये कि वे दोहे ही रहीम के नाम की छाप लेकर चलने लगे। मानस, सतसई, तथा दोहावली के अनेक दोहे थोड़े अन्तर के साथ रहीम में मिल जाते हैं।

दक्षिण में गड़बड़ी थी। अकबर ने खानखाना को दक्षिण की विजय के लिए सन् १५९५ ई० में भेजा। फरवरी में वे वहीं आस पास की भूमि में अहमद

१—कहा जाता है कि रहीम ने इस विजय से लौटते समय अपना सब कुछ दान दे डाला था। कलमदान तक दान में दे दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर से युद्ध करने में लगे हुए थे। पीछे से मुराद भी पहुंचे। किसी तरह ख़ानख़ाना और मुराद में मनोमालिन्य हो गया। ख़ानख़ाना सन् १५९८ ई० में मालवा (उज्जैन) चले आये। अकबर ने इन्हें दरबार में बुला लिया और दक्षिण के युद्ध की व्यवस्था पूछी। ख़ानख़ाना ने मुराद को वापिस बुलवाने की राय दी जो अकबर को पसन्द न आई, किन्तु दक्षिण के जैसे समाचार मिलते चले जा रहे थे उन्हें देखते हुए १५ फ़रवरी १५९९ ई० को अबुलफ़ज़ल मुराद को लिवा लाने के लिये भेज दिए गए। मुराद अबुलफ़ज़ल से मिलना नहीं चाहता था। इसलिये शाहपुर से वह अहमदनगर की ओर चल देता है और १२ मई १५९९ ई० को सन्निपात से[1] उसकी मृत्यु हो जाती है।

मुराद के मरने पर दानियाल दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। और ख़ानख़ाना भी साथ भेज दिये गये। १६०० ई० में ये लोग बुरहानपुर पहुँचे, दानियाल अत्यधिक शराबी था उसका स्वास्थ्य बिगड़ता गया और २८ अप्रैल १६०५ ई० को बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई।

सलीम की बगावत के कारण अकबर को उत्तर की तरफ़ आना पड़ा। जनवरी १६०२ ई० में वह दक्षिण से आगरे की ओर चल दिया। ३ अक्तूबर १६०५ ई० को बीमार पड़ा और २५-२६ अक्टूबर १६०५ ई० को उसकी मृत्यु ही होगई।

अकबर की मृत्यु के बाद अहमदनगर निज़ाम शाह के प्रतिनिधि मुर्तज़ा द्वितीय के हाथ में नाम मात्र को रहा। दक्षिण में मलिक अंबर की बढ़ती हुई शक्ति का ही उस पर अधिकार था और वह अपनी शक्ति बढ़ाता चला जा रहा था। सन् १६०८ के अन्त में जहांगीर ने राजा मानसिंह को दक्षिण पर चढ़ाई करने का आदेश दिया। जब मानसिंह तैयारी करने में लगे हुए थे, ख़ानख़ाना १६०९ ई० के आरम्भ में बुरहानपुर के उत्तर में आये और कहा कि पर्याप्त सहायता और धन मिलने पर दो ही साल में विजय प्राप्त की जा सकती है। मानसिंह कछवाहा, आसफ ख़ाँ, तथा शाहज़ादा परवेज़ (जहाँगीर का दूसरा लड़का जो खानदेश का सूबेदार नियुक्त किया गया था) सितम्बर १६०९ में सहायता के लिये चले। परवेज़ को इब्राहीम आदिलशाह से आक्रमण का अँदेशा था, इसलिए उसने शाही प्रतिनिधि आदिलशाह के दरबार में भेजने के लिए मांगा। उधर मलिक अम्बर ने भी इब्राहीम आदिलशाह से संधि करके कंधार का किला मांग लिया था। इस पर परवेज़ ने खानखाना की राय के विपरीत[1] १६१० ई० में अपरिचित बीहड़ राह से मुर्तजा द्वितीय के राज्य पर आक्रमण कर दिया। मराठों ने रसद काट दी, जिससे सेना को अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ीं और परवेज़ की बुरी तरह हार हुई। उधर मलिक अंबर ने अहमद नगर कबज़े में कर लिया। दूसरे सरदारों[2] ने परवेज़ की हार का दोष खानखाना पर मढ़कर कान भरना शुरू किया। रहीम को अपने शत्रुओं का पूरा पता था। वे नित्यप्रति राजकाज की होने वाली घटनाओं का पता अपने सब जगह फैले जासूसों से ले लिया करते थे[3]। इस समय की मनोदशा का पता देनेवाला उनका वह दोहा है जो रसखान की कुछ ऐसी ही दशा की अभिव्यक्ति के मेल में इस प्रकार है—

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पत-राखन हार है, माखन-चाखन-हार॥

कहा करे रसखान को, कोई कुटिल लबार।
जो पै राखनहार हैं, माखन चाखन हार॥
(रसखान-घनानन्द, पृ० ८) (रागरत्नाकर पृ० ४७२)

१—केम्ब्रिज हिस्ट्री, चौथा भाग, पृष्ठ १४४

१—केम्ब्रिज हिस्ट्री चौथा भाग, पृ० २६०—"In 1610 Prince Parviz, against the advice of Khan Khana attempted to invade Murtaza's territories by the eastern route which was little known and difficult. His supplies were cut off by Maratha auxilliaries and he suffered a disastrous defeat..... Jahangir most unjustly blamed the Khan Khana for these disastors and recalled him from the Deccan, but other generals had no better success.

२—डा० परमात्माशरण—मध्यकालीन भारत, पृ० २५१

३—मआसिरुल उमरा, भाग २, पृ० १९९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रहीम को शायद पता न था कि बादशाह और राजा कान के कच्चे भी होते हैं। जहांगीर ने सन् १६१० ई० में दक्षिण का भार पीर खां लोदी को सौंप दिया और महावत खां खानखाना के पद पर प्रतिष्ठित हो गये। रोटी कटते देख रहीम का हृदय रो उठा—

पट चाहे तन, पेट चाहत छदन, मन चाहत
.....धन जेती सम्पदा सराहवी।
तेरोई कहाय कै रहीम कहे दीनबन्धु,
अपनी विपत्ति जाय काके द्वार काहिवी।
पेट भर खायो चाहे, उद्यम बनायो चाहे,
कुटुम जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबो।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारौ,
ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहा साहिबो॥

ई० १६१२ में जहांगीर ने उन्हें सम्भवतः जब दरबार से भी चले जाने की बात कही तो उन्होंने वह कवित्त कहा जिसे अनीस के भी नाम से सेंगर ने (पृ० १३/३३ पर) दिया है किंतु जो वस्तुतः रहीम का ही है—

सुनिए बिटप प्रभु पुहुप तुम्हारे हम
राखिए हमैं तौ सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजिहौ हरस तौ बिरस ते न चारो कछू
जहां जहां जैहैं तहां दूनी छवि पाइहैं।
सुरन चढ़ैंगे सुर नरन चढ़ैंगे सीस
सुकवि रहीम हाथ हाथ ही बिकाइहैं।
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे,
काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहाइहैं॥
(सरोज पृ० ३०२)

जहांगीर पर इसका इतना ही असर हुआ कि रहीम को उसने काल्पी और कन्नौज की बगावत दबाने भेज दिया।

जीवन की इस कटु अनुभूति में रहीम ने अपने अधिकांश दोहे लिखे हैं जो उनकी इस समय की स्थिति और मानसिक दशा के पूर्ण परिचायक हैं। कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आंसु गारिबो खीस॥
रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपो तरैयन खोय॥
रहिमन रिस को छांड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअतहूं, सांप सहज धरि खाय॥
रहिमन मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय॥
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बांटि न लैहैं कोय॥
रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो नृप बासर निसि कहै, तो कचपची दिखाव॥
रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
परबस परे, परोस बस, परे मामिला जानि॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
अधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय॥
रहिमन तुम हम सों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुबीर॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।
भूप गनत लघु गुननि को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरिते भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप॥
नात नेह दूरी भली, जो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि॥

और कहीं दूर ही चले जाने में रहीम ने इस समय श्रेय समझा, क्योंकि उनका कहना था—

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥

और सम्भवतः वे किसी 'दुरथल' में ही गये। अनुमान ऐसा होता है कि लखनऊ के किसी नीच घर के सिपाही (सम्भवतः मुहम्मद मासूम) के यहां वे कुछ दिनों रहे। यहां ओछे बचन सहते हुए भी अपने गौरव के विपरीत उन्होंने यही सोचते हुए सब सह लिया कि दुर्दिन पड़ने पर बड़ों को भी घटिया काम करने पड़ते हैं। ओछे बोल सुनकर भी चुप रहना पड़ता है—

रहिमन दुर्दिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पांच रूप पांडव भए, रथवाहक नलराज॥
समय परे ओछे बचन, सब के सहे रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76230

मन ऐसी स्थिति में आग उगलना चाहेगा और जिह्वा आकाश पाताल एक कर देना चाहेगी। पर परिणाम? जिह्वा तो कहकर चुप हो जावेगी और कपाल दुनियाँ खावेगा।

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आप तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥

अनेक प्रकार से उन्होंने अपने हृदय को आश्वासन देते हुए कहा होगा—

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर॥

पर जब वहां रह सकना असम्भव ही हो गया होगा और उन्हें अपने उस जीवन से विरक्ति सी होने लगी होगी तब वे अन्यत्र चले गये होंगे। असंभव नहीं उनका प्रयाण इस समय चित्रकूट की ओर गया हो और वे वहाँ वैरागी का वेष बनाकर चल दिये हों और मोटा-झोटा खा-खाकर भी उन्होंने अपने कुछ दिन बिताए हों। उनके कुछ दोहों में इस प्रकार के जीवन बिताने के से संकेत मिलते हैं।

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥
काह कामरी पांमड़ी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज॥

चित्रकूट में रहकर राम की ओर किसी अंश तक उनका क्षुब्ध हृदय जाने सा लगता है और ऐसे दोहे बनने लगते हैं जिनमें रहीम के विश्वास की झलक है। शायद इस समय रहीम ने भक्ति सम्बन्धी बरवे ही तुलसी दास के पास भेजे, शृंगारी बरवे यदि उन्होंने गोसाईं जी के पास भेजे थे तो वे १५९३-९४ ई० में भेजे होंगे।

"कवि रहीम बरवे रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेह सुन्दर छन्द में रचना कियेउ प्रकास॥"

मूलगोसाईं रचित

रहीम ने तुलसीदास जी के पास बरवे भेजे थे या नहीं भेजे हों किन्तु यह तथ्य है कि रहीम के बरवे बहुत सुन्दर हैं और बरवे छन्द में गुंसाई जी ने रामायण रची है। कवि की भावना, मानसिक स्थिति और शैली का ध्यान देने से यह रचना सतसई, पार्वती मंगल, जानकी मंगल के साथ ही साथ रची गई जान पड़ती है। मैं इसका रचना काल १५८६-१५९० ई० के आस पास मानता हूँ। सतसई और पार्वती मंगल के रचना काल का ध्यान रखते हुए सन् १५८६ से १५९३ ई० अथवा १६१४ ई० तक भी कोई उसका समय खींचना चाहे खींचे, किन्तु भूल न जाना चाहिए कि बरवे रामायण अपने प्रकाशित रूप में अपूर्ण ग्रंथ है और मनोवृत्ति के दृष्टिकोण से गीतावली के रचना काल से काफी पहले की रचना है। इसलिये १५८०-१५९० ई० के आस पास उसका रचना काल मानना ठीक होगा। माताप्रसाद गुप्त १५८६-१६०८ और बाबू श्यामसुन्दर दास १६१२ ई० मानते हैं।

संभवतः १६१३ ई० के मध्य में जहाँगीर ने रहीम को आगरा बुला लिया। इस समय मेवाड़ के राणा अमर सिंह से युद्ध चल रहा था। ७ सितम्बर १६१३ को जहांगीर के साथ रहीम भी अजमेर गये थे। खुर्रम की फौज ने राणा को जंगल जंगल भटकने को बाध्य कर दिया था। राणा ने अपने मित्र कवि रहीम के पास कविता में अपनी विपत्ति की गाथा लिख भेजी थी, जिसका उत्तर रहीम ने एक दोहे में दिया था—ईश्वर पर भरोसा रक्खो, मुगल नष्ट होंगे और धरती धर्म ही शेष रह जावेंगे।

जहांगीर ने यद्यपि अनुभवी रहीम को हटा कर अन्य व्यक्तियों को दक्षिण भेजा था किन्तु वहां के कार्य में वे लोग भी विशेष सफल न रहे। तो फिर १६१४ ई० में जहाँगीर ने खानखाना को उनका पुराना पद देकर, अबुलहसन के साथ दक्षिण भेज दिया। रहीम का पुत्र शाहनेवाज भी साथ था। पर्वेज़ तथा अन्य सर्दारों की नीति मार्ग में रोड़े अटकाने की थी। इससे अनेक अड़चनें हो रही थीं। अस्तु सन् १६१६ ई० में पर्वेज़ इलाहाबाद भेज दिया गया और उसके स्थान पर खुर्रम दक्षिण गया। इस बार रहीम के पुत्र शाहनेवाज ने मलिक अंबर को पूरी तरह परास्त किया, और १६१६ ई० के अंत तक गोलकुण्डा और बीजापुर के सुलतानों ने खुर्रम की आधीनता स्वीकार कर ली। जहांगीर ने अहमदनगर, बरार और खानदेश की सूबेदारी खानखाना को दी और बाला घाट शाहनेवाज को दिया। खुर्रम को 'शाहेजहां' की पदवी दी गई और उसका विवाह शाहनेवाज की लड़की से कर दिया। शान्ति स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाने के बाद खानख़ाना भी आगरा चले आये।

सन् १६१८ के आस पास खानखाना के पुत्रों एरिच, रहमानदाद और शाहनेवाज की मृत्यु हो गई। अब खानखाना के बुरे दिन आने लग गये थे। जहाँगीर नूरजहाँ के हाथ में था।

महावत खाँ ने चाल चलकर खानखाना को अपनी ओर मिलाने का यत्न किया था और वह सफल भी हो गया। शाहजहाँ को मलिक अंबर तथा गोलकुंडा से भी सहायता नहीं मिली। वह पूरब की ओर चल दिया। महावत खाँ को भी रहीम पर विश्वास नहीं था इसलिए वे नज़रबन्द कर लिये गये। इन्हीं विपदा के दिनों को उन्होंने इलाहाबाद चित्रकूट में बिताया था। किसी दिन वे कह उठे—

रहिमन विपदाहू भली जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥

और कदाचित् महावत ख़ां की बात सोचकर उन्होंने लिखा।

फ़रज़ी साह न है सके, अति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर॥

नूरजहाँ अब तक महावत खाँ की मक्कारियों से भली भाँति परिचित हो चुकी थी इसलिये उसे परबेज से अलग करने के लिए उसने काबुल भेज दिया। १६२६ ई० में पर्वेज़ की मृत्यु हो गई। खानख़ाना अब इलाहाबाद से दर्बार में बुला लिए गये और उन्हें फिर से उनकी पदवी तथा शक्ति दे दी गई।

इधर महावत खाँ ने जहांगीर को कैद कर लिया किंतु नूरजहां ने अपनी बुद्धिमत्ता से उसे छुड़ा लिया और खानखाना को महावत को ज़ेर करने में लगाया। महावत खां ने इन्हें लाहौर से दिल्ली लौटने के लिए बाध्य कर दिया। दिल्ली में १६२७ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। इसी वर्ष ७ नवम्बर को जहांगीर की भी मृत्यु हो गई। अकबर के राज्यारोहण से लेकर जहांगीर के मरने तक रहीम ने मुगल साम्राज्य का साथ दिया।

रहीम पर संस्कृत फारसी के कवियों के अतिरिक्त जायसी, तुलसी और कृष्ण काव्य के तथा अन्य शृंगारी कवियों का प्रभाव दिखाई देता है। 'खण्ड कौतुक' की रचना ज्योतिक राय बहुगुना से ज्योतिष की शिक्षा पाकर हुई। भाषा की दृष्टि से उनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।

रहीम का सम्पर्क उच्चवर्ग के लोगों से लेकर सामान्य जनता के लोगों, साधु संतों, फक्कड़ों, महात्माओं, लड़ाके सिपाहियों, नीतिज्ञों, दरबारियों आदि से रहा। वे जौनपुर, बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद, काल्पी, कन्नौज, आगरा, दिल्ली, पंजाब, सिंध, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, हैदराबाद, मध्यप्रांत आदि अनेक स्थानों पर रहे। कवियों और सामान्य लोगों के संपर्क में आये। जिस प्रकार उन्होंने फारसी, खड़ी बोली, बृज-भाषा मिश्रित कविता के साथ ही साथ शुद्ध ब्रजभाषा और अवधी में और फारसी तथा संस्कृत में रचनाएँ रची हैं उसी प्रकार उनकी ऐसी भी कृतियाँ है जिनमें एक ओर शुद्ध राजस्थानी रूप है वहां एक ही छंद में सभी भाषाओं का मेल भी है। नीचे के इस एक ही छंद में संस्कृत, फ़ारसी, खड़ी बोली, तेलगू, पंजाबी, मराठी, राजस्थानी, गुजराती, और संयुक्त प्रान्त के ग्रामीण बोलचाल के शब्दों के दर्शन कर लीजिए—

भर्ता प्राची गतो में बहुरि न बगेद,
शुँ करूँ हवे हूँ मांझी कर्माचि गोष्ठी।
अब पुन शुंणसि गांठ धेलो न ईठे।
म्हारी तीरा सुनो रा खरच बहुत है।
ईहरा टावरा दो दिट्ठी टैंडी दिलो दी।
इश्क इल फिदा जोइपोई वच नाऊ।

रहीम संकीर्ण बुद्धि के न थे। उनके विपुल ज्ञान और अनुभव तथा उदार व्यक्तियों के संसर्ग ने उन्हें व्यापक मानव भूमि में पहुंचाने में बहुत सहायता दी। इसी कारण वे एक साथ ही भाग्यवादी, कर्मवादी, नीतिज्ञ और उदार, दीन और वैभव सम्पन्न गरीबों के रक्षक और अमीरों के प्रिय हो सके थे।

रहीम की कृतियों के अंतर्गत खेदुकौतुक, रहीम काव्य (संस्कृत - हिन्दी - मिथिला), शृङ्गार-सोरठ फुटकर पद, मदनाष्टक, बाकयाते बाबरी (का अनुवाद), दोहावली (सतसई अथवा बीजक), पंचाध्यायी, बरबे, नायिका भेद और नगर की गिनती होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमशू मिस्त्री

श्री विष्णु

जिस समय मुश्ताक मेरे कमरे में आया तो वह कुछ घबराया सा था। आते ही उसने कहा—निशिकान्त! हमारे पुराने ताऊ चल बसे।

मैं फाइल में टैग लगा रहा था, उसे उसी तरह झुककर अचरज से उसे देखने लगा। वही फिर बोला—हां! उनका भतीजा आया है। आज सबेरे उनका इन्तक़ाल हो गया!

मैंने कहा—सच।

हां।

मेरे दिल को धक्का लगा। मैं जानता था वे बीमार हैं। पैर सूज गये हैं। बचने की आशा कम है पर मौत इतनी जल्दी आ जायेगी ऐसी आशा नहीं थी! बात यह है कि मरने की अवस्था होने पर भी स्वार्थवश मनुष्य जीने की आशा नहीं करता। मुझे भी इसी कारण उनके मरने की आशा नहीं थी। मैं एक बार उनसे मिलना चाहता था। अब वह चाह केवल बीती बात बनकर रह गई। मैं कुछ नहीं कह सका। बैठा शून्य में ताकता रहा। मुश्ताक फिर बोला—कहते हैं रात उन्हें पता लग गया था कि वे अब नहीं बचेंगे। जो कुछ उनके पास था उसमें से वक़्फ़ को देकर जो बाक़ी रहा वह सब मरने वालों में बांट दिया।

लेकिन मैंने कहा—उन्होंने तो भतीजे को गोद ले लिया था।

हां! वह उनका वारिस है लेकिन दूसरे भाई के जो वारिस बच्चे थे उन्हें भी उन्होंने भुलाया नहीं। जब सब कुछ बांट चुके तो नमाज़ पढ़ी। फिर दो ज़ानू बैठ कर ख़ुदा से दुआ मांगने लगे। जब थक गये तो लेटने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। और लेटने के बाद चन्द लम्हों में कलमा पढ़ते पढ़ते उन्होंने इस दुनिया को छोड़ दिया। मेरा दिल भरा आ रहा था। मैंने कहा—वाक़ई वे बड़े नेक दिल थे।

मुश्ताक मुस्कराया—और ख़ुशदिल भी। उनके साथ जितना मज़ाक़ हम करते थे उतना क्या कोई सह सकता है!

कहते कहते मुश्ताक की आंखें आप ही आप मेरे कमरे में लगे हुये लम्बे लम्बे दानवी लोहे के रैकों पर जा पड़ीं। रैक उन्होंने ही बनाये थे और इन्हीं रैकों पर उनका काला और गन्दा तौलिया हम अकसर फेंक दिया करते थे और तब वे जल्दी जल्दी बनावटी क्रोध प्रकट करते हुये कहते—अरे! अरे! बाबू निशिकान्त ...बाबू मुश्ताक़ ...क्या करते हैं? नहीं, नहीं...मैं साब बहादुर से कहूँगा...नहीं, नहीं, निशिकान्त...।

मैं अकड़ता—तो इतना गन्दा तौलिया लेकर फिर दफ़्तर में आओगे?

नहीं!

खाओ क़सम।

ख़ुदा की कसम...निशिकान्त! मैं ग़रीब आदमी हूं...।

मैं तौलिया उतार देता कि पीछे से आकर मुश्ताक उसे फिर खींच लेता—जी! ये ग़रीब हैं। कंजूस, मक्खीचूस! जोड़ जोड़कर तिजोरी भर रहे हैं। न आस न औलाद; न खाते हैं न पीते हैं। शमशू मिस्त्री तब अपनी लोहे की लम्बी छड़ी, जिसे उन्होंने स्वयं ही बनाया था, लेकर मुश्ताक़ के साथ चूहे बिल्ली का खेल खेलते। आवाज़ तेज़ होती और बड़े बाबू अपने कमरे से चिल्लाते—क्या शोर मचाया है! शर्म नहीं आती! दफ़्तर है यह। मुश्ताक हांफता हांफता कहता—बाबू जी! ताऊ हैं।

बड़े बाबू चिढ़ते—ताऊ! ताऊ कौन?

जी, शमसू मिस्त्री! देखिये कितना गन्दा तौलिया लेकर दफ़्तर आते हैं। शरम नहीं आती इन्हें।

मिस्त्री को देखकर बड़े बाबू का क्रोध निमिष मात्र में काफूर हो जाता। वे मुस्कराने लगते—अरे शमशू मिस्त्री हैं।

शमशू मिस्त्री आगे बढ़ते—देखिये बाबू जी! ये निशिकान्त और मुश्ताक मुझे तंग करते हैं।

ठीक तो है। यह दफ़्तर है या घर और घर में गन्दा रहना किसने बताया है। मुश्ताक! इस तौलिये को फेंक दो और अगर कल फिर ये इस तरह आये तो दफ़्तर में मत घुसने दो।

मुश्ताक ने तौलिया उठाकर पीछे जंगले से फेंक दिया। शमशू मिस्त्री चुपचाप छड़ी को फर्श में गाड़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर अपना बोझ डाले देखते ही रह जाते। उनके दिल में क्या उठता कौन जाने पर उसकी छोटी मूँछों और मेंहदी से रची हुई छोटी सी डाढ़ी में स्मित हास्य की हल्की रेखा फैल जाती और वे मुस्करा कर कहते—अच्छी बात है। आज से हम दफ़्तर नहीं आवेंगे।

अच्छा है, बड़ा अच्छा है। तुम्हारे न आने से सूरज नहीं डूब जावेगा। उल्टी हमें राहत मिलेगी।

अच्छी बात है···।

यह बात तौलिये तक सीमित रहती थी ऐसा नहीं था। एक दिन मैं कार्यवश दफ़्तर देर से पहुँचा। वहां जाकर देखता हूँ--गहरा शोर मचा है। सब लोग खुल कर हँस रहे हैं।

सोचा—आख़िर दफ़्तर में इतनी हंसी क्यों? लेकिन कुछ आगे बढ़ा तो देखा—सामने शमशू मिस्त्री जल्दी जल्दी आ रहे हैं। उनके कन्धे पर तौलिया नहीं है। उनका कुरता फट गया है। सिर की टोपी अस्त व्यस्त है। वे काँप रहे हैं।

मैंने अचरज से कहा—अरे मिस्त्री साब! यह क्या हुआ।

मिस्त्री उबल पड़े—तुम सब लोग शैतान हो। तुमने मुझे पागल समझ रखा है। मैं आज से तुम्हारे दफ़्तर में नहीं आऊँगा·····।

आगे उनके शब्द फुसफुसाहट में खोने लगे। उनके पीछे दफ़्तर के लगभग सभी बाबू थे। सभी हँस रहे थे।

परिस्थिति समझकर मैंने कहा—आख़िर हुआ क्य?

हुआ क्या? देखते नहीं मेरा कुर्ता फाड़ डाला है।

कुरता—मैंने बनावटी अचरज से कहा—किसने फाड़ा तुम्हारा कुरता?

बड़े बाबू! सरमा साहब ने।

शर्मा जी ने। बड़े अचरज की बात है। वे तो तुम्हारे बड़े दोस्त हैं।

अजी दोस्त...। बस मैं अब यहां नहीं आऊंगा। ये लोग मेरी इज़्ज़त उतार लेते हैं। और वे तेज़ी से कम्पाउन्ड से बाहिर निकल गये। उनका वह गन्दा काला कुरता दो हिस्सों में होकर हवा में उड़ रहा था और वे बड़बड़ा रहे थे—इन लोगों ने मुझे क्या समझा है। मैं अब कभी भी इनके पास नहीं आऊँगा, कभी नहीं·····।

उनकी मुद्रा और उनके बोलने का ढंग यह प्रगट कर रहा था कि वे अब सचमुच दुखी हैं और उनकी प्रतिज्ञा वास्तविक प्रतिज्ञा है। मैंने कहा—मुश्ताक़! क्या सचमुच मिस्त्री अब नहीं आयेंगे?

जी—मुश्ताक ने व्यंग किया—वे अब नहीं आयेंगे।

एकाउण्टैण्ट हँस पड़े—अब हमारी लालटैन कौन ठीक करेगा?

छोटे बाबू बोले—और मेरे तो कई ताले अब उनके पास पड़े हैं।

कब से पड़े हैं?

लगभग दो महीने से।

तो बस सबर कर लीजिये! ताऊ उन्हें बेच खा गये।

छोटे बाबू हंस पड़े। बोले—मुश्ताक! शमशू मिस्त्री जिस दिन खरीद फरोख्त की कला सीख जावेंगे उसके बाद उनके दर्शन तुम्हे नहीं मिलेंगे।

मैंने कहा—तो आप समझते हैं वे अब नहीं आवेंगे?

जी हां आयेंगे और अभी आयेंगे।

और उनका कहना ठीक था। मुश्किल से एक घंटा बीता होगा शमशू मिस्त्री मेरे सामने आ खड़े हुये। उन्होंने सफेद कुरता पहिना था। उनकी टोपी भी नई थी। उनके कन्धे पर लाल धुला हुआ तौलिया था। सदा की तरह बड़ी बेतकल्लुफ़ी से कुरसी सरका कर बैठ गये। मैंने उन्हें देखा कुछ अचकचाया, कुछ मुस्कराया और फिर सब कुछ अनदेखा करके काम में लग गया। वे कुछ क्षण मुझे देखते रहे फिर बोले धीरे से—बाबू निसिकान्त। ये सब लोग गन्दे हैं लेकिन·····

मैंने गरदन उठाकर उन्हें देखा। उनकी आंखों में वही सदा बहने वाली निश्छलता थी। उन्होंने वाक्य पूरा किया—लेकिन तुम्हे मैं अपना आदमी समझता हूँ।

(मैं आज मान लूं मैं तब भी गम्भीर नहीं था) मैंने कहा—ताऊ। मैं तुम्हारा ही हूँ पर मुझे तुम क्या दोगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे हंस पड़े—ग़रीब आदमी हूं। क्या दे सकता हूँ।

पर बोलो क्या खाओगे ?

बस···।

पेड़े, इमरती, लड्डू···?

मैं हंस पड़ा—मिस्त्री साब! क्या बात है तुम्हें मिठाई बहुत पसन्द है ? बदन भी तुम्हारा लम्बा चौड़ा है। पिछले मोहर्रम के जुलूस में तुम्हारी तलवार के हाथ मैंने देखे थे। सच कहता हूं तुम पिछले जन्म में मथुरा के पण्डा थे।

मिस्त्री भी खुलकर हंसे। बोले—बाबू निसिकान्त! हम मुसलमान हैं। अगले पिछले जन्म का हमें कुछ पता नहीं पर इतना ज़रूर है कि मथुरा के पण्डों की बही में अभी तक हमारे ख़ान्दान का नाम लिखा है। अभी दो तीन वर्ष पीछे तक पण्डे मेरे पास आते थे। मैं उन्हें दक्षिणा दिया करता था···।

अब नहीं आते ?

उसका स्वर कुछ धीमा पड़ गया—नहीं निसिकान्त, अब नहीं आते। तुम जानते हो अब तो मुल्क में हवा ही दूसरी चल पड़ी है। लड़के बाले पढ़ लिखकर कुछ और ही सोचने लगे हैं। पिछली बार जब वे आये तो नई भतीजों को बुरा लगा। पण्डे समझदार थे फिर नहीं आये।

मैं अचानक कुछ गम्भीर हो उठा, फिर बोला—चिट्ठी किस किसको लिखनी है ?

और फिर वह कृतज्ञ होकर मेज़ पर झुककर धीरे धीरे मुझे समझाने लगे कि किसको क्या लिखना होगा। लेकिन यह गम्भीरता आप ही आप अचानक किस वक्त समाप्त हो गई कुछ पता नहीं लगा। उनका कुरता फिर मैला हो गया। तौलिये में फिर बदबू आने लगी और वे फिर उसी तरह बेंत लिये हमारे पीछे भागने लगे। एक दिन मुश्ताक ने उन्हें बहुत तंग किया तो मैंने कहा—ताऊ! यह मुश्ताक तुम्हें बहुत तंग करता है।

अजी बड़ा बदमाश है।

मैं बोला—मैं तुम्हें इसका एक इलाज बताता हूं।

वे बोले—क्या ?

तुम्हारे कोई लड़की है।

नहीं।

कोई भतीजी, भानजी···।

हां है ! क्यों···।

क्यों क्या ! उसका इस मुश्ताक से निकाह पढ़ा दो। कमाऊ बेटा है, शेख है।

शमशू मिस्त्री पहिले तो हँसे फिर एकाएक उनकी मुद्रा कठोर हो गई लेकिन वे बोले कुछ नहीं। दूसरे साथी एकाएक हँस पड़े। एक बोला—ठीक है ताऊ! फिर तुम्हें चिट्ठी लिखाने के लिये जने-जने की खुशामद नहीं करनी पड़ेगी।

और मुश्ताक भी इस गुलामी से बचेगा। उसे गद्दी मिलेगी।

और तिजोरी भी !

जी हां—पहिले साथी ने कसा—तिजोरी का धन तो ताऊ मरने पर भी नहीं देंगे।

बातें आगे बढ़ीं पर मिस्त्री चुप रहे और चुपचाप चले भी गये परन्तु जैसे ही मैं काम से छुट्टी पाकर घर पहुँचा तो देखा—वे मेरी बाट जोहते मेरे घर के बाहर टहल रहे थे ! मैं मुस्कराया—कहो मिस्त्री साहब, यहाँ कैसे ?

गम्भीर वे बोले—तुमसे कुछ बातें करनी हैं।

वे अक्सर गोपनीय बातों पर विचार करने के लिये घर आया करते थे, इसलिये मुझे तनिक भी अचरज नहीं हुआ। मैंने बैठक के किवाड़ खोलकर कहा आओ।

वे अन्दर आ गये और बोले—किवाड़ बन्द कर लो।

अब मुझे जरा अचरज हुआ। मैंने कहा—बहुत वैसी बात है ?

अब तक उनका गम्भीर चेहरा तनकर कठोर बन चुका था। उनकी वाणी में तलख़ी आ गई थी।

उन्होंने तीव्रता से कहा—निसिकान्त ! मैं तुम्हें अपना आदमी समझता था।

मैं चौंका—तो फिर क्या बात हुई ?

बात पूछते हो ? तुमने आज मेरी आबरू मिट्टी में मिला दी। यह तुम थे। दूसरा होता तो वहीं गले पर अंगूठा रख देता।

मैंने देखा—उनका वृद्ध शरीर कांपने लगा है। उनके नथुने फड़क रहे हैं। उनकी आंखें आरक्त हैं और उनकी वाणी तीव्र है। मैंने घबराकर कहा—मिस्त्री ! आखिर बात क्या है, बताओ तो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमने आज दफ़्तर में क्या कहा था ?

क्या कहा था··· ।

मैं सोचने लगा। क्षण भर में सब बातें मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट हो गईं। मैं मुस्करा उठा। मैंने कहा—तो आप इस लिये इतना तेज़ हैं। वह सब तो मज़ाक की बात थी।

मज़ाक ! वह थर्रा उठा—तुम इसे मज़ाक़ कहते हो। किसीकी बहू-बेटी को लेकर मज़ाक़ किया जाता है ?

मैं अन्दर ही अन्दर घबरा रहा था। (मैं मानता हूं वह मेरी गलती थी परन्तु) ऊपर से मैं कुछ क्रुद्ध हो उठा क्योंकि आखिर वह मज़ाक़ था और मेरा मंशा हरगिज बुरा नहीं था। मैंने कुछ दृढ़ होकर कहा--मिस्त्री साहब ! इतना तेज़ होने की ज़रूरत नहीं है। मेरा मंशा बुरा नहीं था। मैंने मज़ाक़ में वह बात कह दी थी और फिर मुश्ताक़ कोई आवारा लड़का नहीं है। उसका खान्दान···

उसका ख़ान्दान--वे एक दम बोले--वह शेख़ है और जिनकी कोई ज़ात नहीं होती वे शेख़ होते हैं। उनका हमारा क्या मुकाबला ?

तुम शेख़ नहो हो ?

नहीं।

तो !

हम राजपूत हैं। हमें सब कुंवर कहते हैं··· ।

मैंने देखा-'कुंवर' शब्द कहते कहते उनकी छाती उफन उठी है। नेत्र चमक आये हैं। गरदन तन गई है। मैंने उन्हें कभी इस रूप में नहीं देखा था। मैं जानता था वे वृद्ध होकर भी दुर्बल नहीं हैं, परन्तु उनके निश्छल मन में इतना गहरा अभिमान है यह कभी मेरे दिमाग़ में नहीं आया था। मैंने कहा—मैं नहीं जानता था तुम कुंवर हो। मुझे दुख है। मैं माफी चाहता हूँ। मैं समझता था तुम मुसलमान हो। वह आज जाना है कि··· ।

वे बीच में बोल उठे—हाँ। मैं मुसलमान हूँ पर मुसलमान होने से क्या किसी की इज़्ज़त नहीं रहती ?

मैंने कहा -मिस्त्री साहब ! इसमें इज़्ज़त की बात नहीं है। आपको इतना नाराज़ नहीं होना चाहिये।

नाराज नहीं होना चाहिये ! तुम किसी की इज़्ज़त उतार लेते हो और उसकी नाराज़गी भी बुरी लगती है। और कोई होता तो खून पी जाता।

मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा—तो पी लेते। गये। अब पी सकते हो। मैं तुम्हारे सामने हूं। करते हो। एक जरा सी बात··· ।

जरा सी बात···!'

हाँ ! जरा सी बात को तुम इतना तूल दे रहे हो तुम्हारे साथ इतना मज़ाक होता है तो कभी कोई वैसी बात भी हो जाती है। मैं नहीं जानता था तुम छोटे दिल के हो अब से मेरे पास आने की कोई नहीं है। जो कुछ हुआ उसके लिये मैं माफी चाहता हूं और चाहो तो तुम मुक़दमा चला सकते हो···।

मैं तब क्रोध और ग्लानि से काँपने लगा था। बोली लड़खड़ा रही थी। उसने मुझे देखा। वह शिथिल हो चला। बोला—अच्छी बात है अब आऊँगा। तुम्हें अपना समझता था तभी घर आया नहीं तो·····

और वाक्य पूरा किये बिना वह शीघ्रता से दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गये। मैं क्रुद्ध-दुःखित-कम्पित उसी तरह बैठा रह गया। मेरे मस्तिष्क में न चाहते भी एक बात उठने लगी—आख़िर वह मुसलमान और सब मुसलमान एक से होते हैं। एक से·····।

और उस घटना को तीन दिन बीत गये। वे न पर आये न दफ़्तर में। मैंने भी सोचा—चलो अच्छा हुआ। हर वक्त तंग करते थे। चिट्ठी लिख दो, बात होना घर पर दौड़े आते—बा० निशिकान्त, साहब मेरे भतीजे के पीछे पड़े हैं। निशिकान्त, ओवरसियर बड़ा कांइयां है। निशिकान्त, मुझे भरोसा है। निशिकान्त, बड़े बाबू से कहना रहे ख़्याल रखे।

और दिवाली आती तो कहते—मिठाई नहीं ओगे ?

मैं कहता—जी मिठाई खायेंगे आप पर तो टूटी पड़ी है।

तो भेजी क्यों नहीं ?

भेजी नहीं ! कितने भोले बनते हो ? पन्द्रह दुकान पर पड़ी है।

वह हंस पड़ते—भई, तुमने बताया क्यों आज ही बनाता हूं।

और जाड़ों के लिये हमाम ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भी अगले हफ्तों मिलेगा—

और फिर हफ्ते बीत जाते। उनका वायदा पूरा नहीं होता। न जाने किस किसके वायदे उनकी जेब में पड़े थे। उनकी दुकान स्वयं एक अजायबघर का नमूना थी, एक गन्दे और अस्त-व्यस्त अजायबघर का नमूना। एक कोने में धौंकनी थी जिसके पास वह लोहे की सीट पर बैठते थे। दूसरे कोने में टूटे फूटे, छोटे बड़े टीन के डब्बे, मशीन के पुरजे, दरांती, खुरपी और न जाने क्या क्या भरा हुआ था। तीसरे में सान रखने की मशीन थी। बीचे में लोहे की कमानियां, टुकड़े, और पीतल की छड़ें। काली दीवारों पर अजीबो-गरीब पुरजे लटक रहे थे। आंखों में कील, हथौड़ी, रेती और जम्बूर यूं हीं पड़े थे। कोई ग्राहक आ जाता तो घण्टों वह इन्हीं चीजों को इधर से उधर, उधर से इधर करते रहते थे। सब रुक्कर वाले उनसे तंग थे, नाला थे पर फिर भी जब तीन दिन बीत गये और वे न आये तो सबको अपने जीवन में एक अभाव खटकने लगा। बड़े बाबू बोले—अरे भाई! शमशू मिस्त्री दिखाई नहीं देते। क्या बीमार हैं?

मुश्ताक ने कहा—ताऊ के बिना जी नहीं लगता।

एकाउन्टैन्ट ने भी कहा—हां! कई दिन हो गये हंसने को मन करता है।

मैंने कहा—वे अब नहीं आयेंगे।

नहीं आयेंगे! क्यों?

क्योंकि उन्हें मज़ाक बुरा लगता है।

मुश्ताक बड़े ज़ोर से हँसा—तुम उन्हें नहीं जानते मिस्टर कान्त। मैं जानता हूँ एक बार कबर से उठकर भी वे हमें हँसाने के लिये आवेंगे।

मैंने इस बात का जवाब नहीं दिया। सच तो यह है कि मैं इस बात का विरोध नहीं करना चाहता था। न जाने क्यों मुझे स्वयं ऐसा लग रहा था उन्हें आना ही चाहिये। और अचरज वे उसी दिन सन्ध्या को आ पहुँचे। मैंने देखा उन्होंने तंजेब का नया कुरता पहिना है। उसकी बाहों पर फूलदार बेल टकी है। सिर पर सफेद साफा है। पैरों में चारखानेदार चौड़ी किनारी का लाल तहदम और लाल ही रंग का सलेमशाही जूता है। हाथ में लोहे की मूठ की बेंत है। उनकी डाढ़ी मेंहदी में लाल रँगी है और वे मुस्करा रहे हैं। मुझे लगा पतझड़ में बसन्त फूट पड़ा है। मैं बरबस मुस्करा उठा परन्तु बोला नहीं। उन्होंने फुर्ती से एक काग़ज़ मेरे सामने रखा और कहा—इस पर दस्तख़त करो।

मैंने आश्चर्य से उस काग़ज़ को पढ़ा। उन्होंने अपने भतीजे को गोद लिया था उसी उत्सव के उपलक्ष में वह भोज का निमन्त्रण था। मैंने एक बार उन्हें देखा और अपने नाम के आगे सही कर दी। काग़ज़ उठाकर उन्होंने फिर उस स्वर में कहा—और सुनो। तुम्हें जल्दी पहुंचना होगा, बहुत जल्दी।

क्यों?

क्यों? जानते नहीं जितने हिन्दू साहबान आयेंगे उनका इन्तज़ाम तुम्हें ही तो करना होगा।

और फिर मुड़ते मुड़ते बोले—हां! एक बात और है। अगले हफ्ते उसकी शादी है। बारात में चलना होगा। समझे तैयार रहना।

और फिर वे शीघ्रता से मुड़ चले। मुझसे अब नहीं रहा गया। मेरा मन भरा आ रहा था। मैंने पुकारकर कहा—सुनो तो।

बोले—कहो।

उस दिन मेरी गलती थी मैं माफ़ी चाहता हूं।

उस वक्त उनके मुख पर जो भाव आये वे किसी भी चित्रकार की पवित्र धरोहर हो सकते हैं। शब्द उन कोमल भावनाओं को नहीं बांध सकते। उन्हें मैंने देखा—वे मेरी बात सुनकर मुस्करा उठे हैं। उस मुस्कराहट में न गर्व है न मात्सर्य। गहरा अपनत्व है जिसके मधुर आलोक में उनका मुक्त हृदय स्पष्ट झलक रहा है।

उन्होंने सीधे स्वभाव कहा—गलती इन्सान से होती है पर उसे दिल में बैठा लेना ठीक नहीं है।

दूसरा दिन आया, दफ़्तर में गहरा कोलाहल व्याप्त हो गया। अनेक स्वर एक साथ पुकार उठे—लो! ताऊ आ गए। अरे मिस्त्री! बुढ़ापे में यह क्या…? ओ हो! आज न्योता है……।—लो मुश्ताक।

मुंह धो डालो तुम रह गये। ताऊ ने भतीजा गोद लिया है। आज हमारी दावत है। आदि आदि…!

क्षण भर तो मैं इस शोर को द्रवित मन सुनता रहा परन्तु दूसरे ही क्षण आंसू को रोकने में असमर्थ उस आनन्दमय मुक्त कोलाहल में सम्मिलित होने के लिये बाहर चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान की बुनियाद

श्री गार्गीशङ्कर मिश्र

"मुझे इतिहास में ऐसी कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती कि मज़हब बदलने वाले या उनकी औलाद अपने पूर्वजों के ख़िलाफ़ एक अलग राष्ट्र होने का दावा करें। यदि हिन्दुस्तान इस्लाम के आने से पहले एक राष्ट्र था, तो उसके बाशिन्दों के एक बड़ी तादाद में मज़हब बदलने के बाद भी वह एक राष्ट्र रहेगा।"—महात्मा गांधी

वैज्ञानिक खोजों के साथ ही साथ रफ़्तार में काफी तेज़ी आई। रफ़्तार की तेज़ी ने दूरी को, वक्त के लिहाज़ से बेहद कम कर दिया। इसके साथ अभूतपूर्व विध्वंसक शस्त्रों ने मिलकर, ज़मीन के किसी भी भाग में स्थित देश को संसार विजयी बड़ी ताक़तों की कुम्भकर्णी भूख से अपनी हिफ़ाज़त कर सकने में क़तई लाचार कर दिया। यहां तक कि कोई बड़ा राष्ट्र, आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित आक्रमणकारी राष्ट्रों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यही कारण था कि इस दूसरे महायुद्ध में आक्रमणकारी धुरी राष्ट्रों का मुक़ाबला ब्रिटेन ने अकेले न कर मित्रराष्ट्रों के रूप में संघ-बद्ध होकर किया।

यह परिस्थिति तो संसार के उन राष्ट्रों की हुई जो वैज्ञानिक साधनों से परिपूर्ण तथा धन, जन, कारख़ानों और युद्ध में लगने वाले हरेक कच्चे माल से भरे पूरे हैं। और छोटे राष्ट्र तो सम्पूर्ण युद्ध में इन बातों में लैस न होने के सबब से बेबस होकर बड़े राष्ट्रों द्वारा, पैरों से रौंदे जाकर, आज आर्थिक, फौजी, तथा अन्य कई बातों में आधे गुलाम हो चुके हैं। यह हालत संसार में हर जगह देखने में आती है।

बलकान और बाल्टिक के यूरोपीय राष्ट्र आज रूस के असर में हैं। इसी तरह दक्षिण अमेरिका के राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के असर में हैं। मध्यपूर्व और सुदूर पूर्व के सब राष्ट्र नाम को आज़ाद हैं पर हर तरह ब्रिटिश साम्राज्य तथा अमेरिकन पूंजीवाद के आधीन हैं।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान के टुकड़े करके फिर साम्राज्यवादी ब्रिटेन के शोषक पञ्जों से छुटकारा पाने की बात सोचना लचर और बेकार है।

डाक्टर बेनीप्रसाद ने लिखा है—

"बँटा हुआ हिन्दुस्तान अपने को उन बड़े राष्ट्रों के चुनौती के सामने बिलकुल बेबस पाएगा, संसार पर क़ब्ज़ा करने की जिनकी महत्वाकांक्षाओं को रक्षार्थ पुष्ट करने में सहायता पहुँचाई है।"

आज दुनिया के शोषित राष्ट्र हिन्दोस्तान की ओर निगाह गड़ाकर देख रहे हैं, और अपनी आज़ादी के लिये प्रेरणा पा रहे हैं। ऐसी सूरत में हम अपनी एकता को नष्ट करके पाकिस्तान या ऐसे ही टुकड़ों में बँटकर आने वाले युग में सफलता से कैसे रह सकेंगे?

श्री एन० बाई० नूरी कहते हैं :—

"पाकिस्तान हिन्दुस्तान को कमज़ोर बना देगा और वह एशिया का मुखिया रहने के क़ाबिल न रह जाएगा।"

सैकड़ों वर्षों तक मुसलमान बादशाहत हिन्दुस्तान में रही तब किसी ने हिन्दुस्तान में या हिन्दुस्तान से पाकिस्तान बनाने की न सोची। सन १८५७ में हिन्दू और मुसलमान मिलकर अपनी गुलामी की जंजीरें काटने के लिये कुर्बान हुए। तब तक फूट की बात किसी हिन्दुस्तानी ने न सोची थी, अलबत्ता शासकों ने अवश्य सोचना शुरू कर दिया था। सन '५७ की नाकामयाबी ने हथियारों के ज़रिये आज़ादी हासिल करने की बात को असम्भव-सा बना दिया। हथियारों की दौड़ में हम लोग दुनिया से बेहद पिछड़ गए। पर आज़ादी की लगन क़ायम थी। अतः लोगों में विदेशी के प्रति नफ़रत और स्वदेशी के प्रति प्रेम बढ़ने लगा। जनतंत्रात्मक स्वशासन की मांग करने के लिये जनता की जागृति को राष्ट्रीय भावना की ओर प्रवाहित करने के लिये सन १८८५ में इण्डियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। जनता तेजी से जाग्रत हो रही थी। साथ ही स्वशासन की मांग भी बढ़ रही थी। इस दरम्यान कुछ सद्विवेकी अंग्रेजों के मन में भी हिन्दुस्तान को ब्रिटिश छत्र-छाया में कुछ दरजे तक जनतंत्रात्मक शासन देने की इच्छा हुई। परिणामस्वरूप सन् १८९२ में मिस्टर चार्ल्स ब्रैडला ने पार्लिमेण्ट में हिन्दुस्तान को जनतंत्रात्मक शासन देने का प्रस्ताव पेश किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे इस प्रस्ताव को निरर्थक बना देने के लिये, और हिन्दुस्तानियों को जनतन्त्रात्मक शासन के अयोग्य साबित करने के लिये, कुछ तरकीबें सोचने की ज़रूरत महसूस की। यह काम एम० ए० ओ० कालिज, अलीगढ़ के तत्कालीन प्रिन्सिपल मिस्टर बेक को सौंपा गया। उन्होंने मुसलमानों की ओर से एक प्रार्थना पत्र तय्यार कराया। इसका मुख्य अंश यह था कि "हिन्दुस्तान एक मुल्क नहीं है। अतः जन-तन्त्रात्मक शासन प्रणाली उसके लिये फ़ायदेमन्द नहीं हो सकती।"

सन १८८३ में एक "एंग्लो ओरिएण्टल डिफेंस एसोसियेशन" का जन्म हुआ। इसके सेक्रेटरी ये ही मि० बेक थे। इस एसोसियेशन के उद्देश्य इस प्रकार थे—

१—ऐसे कामों में मदद दी जाय जिनसे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश हुकूमत मजबूत बने।

२—हिन्दुस्तानियों में राजनैतिक हलचलें न फैलें इसकी कोशिश की जाय।

३—मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की माँग पेश की जाय।

राष्ट्रीय जागृति के ख़िलाफ़ एक पासंग के रूप में अंग्रेजी हुकूमत को मुसलमानों की जरूरत थी। इसीलिये यह एसोसियेशन बनाया गया। इसी बेक ने अपने एक लेख में लिखा था—

"अंग्रेजों और मुसलमानों के लिये अब यह ज़रूरी हो गया है कि वे राजनैतिक आन्दोलनकारियों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिये और जन-तन्त्रात्मक शासन प्रणाली के अमल को रोकने के लिये मिलकर एक हो जावें। क्योंकि जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली इस देश की कैफ़ियतों और ज़रूरतों के बिल्कुल ख़िलाफ़ है।"

यह बेक साम्प्रदायिक फूट फैलाने में कितना सफल हुआ और इसमें ब्रिटिश सत्ता का कितना हाथ था, इसका राजा गुलजार ख़ां के उद्गारों से जाहिर होता है—

"ब्रिटिश हुकूमत ने साम्प्रदायिक तनातनी की कटुता को बढ़ाने में कम सहायता नहीं की है। एक अंग्रेज मि० बेक खासकर इसी उद्देश्य से हिन्दुस्तान भेजा गया था। पाकिस्तान की जड़ इसी बेक द्वारा स्थापित 'एंग्लो मोहम्मडन एसोसियेशन' में दिखाई देती है—जो इण्डियन नैशनल कांग्रेस के जन्म के बाद ही क़ायम किया गया था।"

बीसवीं सदी के शुरू में राजनैतिक हलचल एक सुसंगठित और मजबूत रूप धारण कर चुकी थी। जनता की इच्छाओं पर ध्यान न देना, शासकों के लिये असम्भव सा हो गया था। अतः उन्हें हिन्दुस्तान की जनता को शासन में कुछ अधिकार देना जरूरी मालूम हुआ। यह बात सन १९०६ में लार्ड मिण्टो ने क़बूल की थी।

"हिन्दुस्तान की सरकार मौजूदा हालतों को नजर-अन्दाज नहीं कर सकती। राजनैतिक वातावरण तब्दीलियों से भरा है। हमारे सामने कई सवाल हैं जिन्हें हम भूल नहीं सकते। हमें उनका जवाब अवश्य ही देना होगा। मुझे यह अत्यन्त महत्वपूर्ण दिखाई देता है कि शुरुआत हमारी ही तरफ से की जाए, ताकि ऐसा न समझा जाये कि हिन्दुस्तान की सरकार ने राजनैतिक हलचलों से दबकर कुछ किया है।"

हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सत्ता ने जो भी छोटे मोटे अधिकार दिये हैं सदा राजनैतिक हलचलों से प्रभावित होकर ही। लेकिन दम्भ के साथ कहा यही गया है कि ये अधिकार खुशी से दिये गये हैं। नौकरशाही का यह दम्भ आज भी मौजूद है।

इस तरह एक भारी हलचल से बचने के लिये हिन्दोस्तानियों को शासन में कुछ अधिकार देना ज़रूरी समझा गया। और उससे भी कहीं ज्यादह ज़रूरी यह समझा गया कि दिये जाने वाले अधिकारों का उपयोग मुल्क के फ़ायदे के लिये न हो सके। साथ ही उन्हें निष्क्रिय और ज्यादह से ज्यादह अंश में ब्रिटिश शासन के लिये फ़ायदेमन्द बना सकने की तरकीबें भी सोची गईं।

अंग्रेज़ यह अच्छी तरह समझते रहे हैं कि इतनी बड़ी जन संख्या के देश में जब तक फूट फैलाकर किसी ख़ास वर्ग को लालच देकर अपनाया नहीं जाता, तब तक ज्यादह वक्त के लिये शासन भी नहीं किया जा सकता। और यदि वे इतने बड़े राष्ट्र को, अपने शोषण के जाल से निकल जाने देंगे तो उनका जो भी महत्व संसार के अन्दर है, नष्ट हो जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन १९१० में मिस्टर चर्चिल ने कहा था—

हिन्दुस्तानी हमारे ख़िलाफ़ यदि एकमत हो जावेंगे तो सब खेल ख़त्म हो जावेगा। यदि वे हमसे किसी भी तरह का सम्बन्ध न रखने के लिये तय्यार हो जाते हैं, तो पूरी इमारत ढह जावेगी।

इसी ग़रज़ से दिये जाने वाले अधिकारों को एक-राष्ट्रीयता के खिलाफ, फूट द्वारा कई राष्ट्रीयताओं में बांट कर हमें कमज़ोर बनाने का तरीक़ा ईजाद किया गया।

यह तरीक़ा है—प्रान्तीय, केन्द्रीय, धारा सभा या अन्य निर्वाचित संस्थाओं में, साम्प्रदायिक बुनियादों पर चुनाव, साम्प्रदायिक चुनाव और अल्पमतों को उनकी अपनी तादाद से ज्यादा हक़। इस प्रकार निर्वाचन-पद्धति के साथ ही फूट का निश्चित और संगठित तरीक़ा भी हमारे राजनैतिक क्षेत्र में फैलाया गया।

मि० बेक के बाद अलीगढ़ कालेज के उनके उत्तराधिकारी मि० आर्चिबाल्ड हुए। आर्चिबाल्ड हिन्दुस्तान में मुसलमानों को तोड़ने के काम में मि० बेक के सच्चे उत्तराधिकारी साबित हुए। ता० १० अगस्त १९०६ को मि० आर्चिबाल्ड ने नवाब मोहिसन-उल-मुल्क को एक ख़त लिखा। वह इस प्रकार था—

"वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल डनलप स्मिथ, मुझे सूचित करते हैं कि—हिज़ एक्सेलेन्सी प्रतिनिधि मण्डल से मिलने के लिये राज़ी हैं। वे सलाह देते हैं कि आप एक बाज़ाप्ता दरख़ास्त वायसराय के दर्शनों की आज्ञा के लिये उन्हें भेज दें।

"इस बारे में मैं आपको कुछ सुझाव देना चाहता हूँ। दरख़ास्त में कुछ मुखिया मुसलमानों के दस्तख़त होने चाहियें। प्रतिनिधि-मण्डल में हर सूबे के नुमाइन्दे होने चाहियें।

"तीसरी विचारणीय बात है—दरख़ास्त का विषय। मैं इसके बारे में यह सुझाव रखता हूं कि आप उसकी शुरूआत सरकार के प्रति अपनी वफादारी ज़ाहिर करते हुए करें। स्वशासन के प्रति उठाए गए सरकार के इस क़दम की क़द्र भी की जानी चाहिए। लेकिन अपनी ओर से इस बात का ख़दशा ज़ाहिर किया जाये कि यदि चुनाव का सिद्धान्त लागू किया गया तो वह मुस्लिम अल्पमत के दिलों के लिये घातक सिद्ध होगा। आपको अदब के साथ यह सुझाव पेश करना चाहिये कि मुस्लिम विचारधारा की अनुकूलता प्राप्त करने के लिये नामज़दगी या चुनाव मज़हबी बिना पर तय किया जाना चाहिये।

"आप लोग यह भी कहें कि हिन्दुस्तान सरीखे देश में, ज़मींदारों के तरफ़ भी ख़ास ध्यान देना चाहिये। इन सब बातों में मैं परदे के पीछे से काम करूंगा। ये सब सुझाव आपकी ही ओर से आने चाहियें। मैं आप के लिये दरख़ास्त का मसौदा तय्यार कर सकता हूँ या तय्यार मसविदे में मुनासिब तब्दीलियाँ कर दे सकता हूँ।"

अंग्रेज़ी हुकूमत की इच्छाओं को मि० आर्चिबाल्ड ने नवाब साहब के सामने जिस चतुराई से रखा था वह ब्रिटिश कूटनीति का एक नमूना है। इसी प्रतिनिधि मण्डल के संगठन के लिये—जिसमें हरेक प्रान्त के नुमाइन्दे आ जावें पूरे हिन्दुस्तान के मुसलमानों की संस्था बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। और ता० ३० दिसम्बर १९०६ को आल इण्डिया मुस्लिम लीग का जन्म हुआ; जो जन्म से आज तक देश में साम्प्रदायिक द्वेष को बढ़ाकर अपने जन्मदाता, ब्रिटिश, साम्राज्यशाही के शोषण को हिन्दुस्तान में सरल बना रही है।

प्रतिनिधि-मण्डल वायसराय से मिला। ब्रिटिश कूटनीति पूरी तरह कामयाब हुई और परिणामस्वरूप मार्ले-मिण्टो रिफार्म के नाम पर हमें साम्प्रदायिक चुनाव और साम्प्रदायिक वज़न मिला।

साम्प्रदायिक निर्वाचन का उद्देश्य है—राष्ट्र की एकता को नष्ट करके विभिन्न विरोधी वर्गों को पैदा करना और उन विभिन्न वर्गों को, राजनैतिक महत्व देकर उनमें से नुमाइन्दों का निर्वाचन करना। ये नुमाइन्दे ख़ास ख़ास सम्प्रदायों और वर्गों के हितों की राष्ट्रीय हितों के विरोध में घोषणा करते हैं। वे अपने ही सम्प्रदाय या वर्ग के हानि-लाभ पर ध्यान देते हैं। पूरे राष्ट्र की भावनाओं का उनमें अन्त हो जाता है। 'साम्प्रदायिक वज़न' का उद्देश्य बहुमत वाले सूबों में बन्दर बांट की कैफ़ियत पैदा कर देना है। इसका नतीजा यह होता है कि बहुमत वालों के मन में अल्पमत वालों के खिलाफ और अल्पमतवालों के मन में बहुमत वालों के खिलाफ धारणा पैदा हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदायिक निर्वाचन के प्रति प्रसिद्ध इतिहासकार मेजर बी० डी० बसु ने लिखा था—

"लार्ड मिण्टो ने मिथ्या ही कल्पना बना ली थी कि किसी भी देश में विभिन्न धार्मिक वर्ग भिन्न-भिन्न हित रखते हैं। यह कल्पना लीग आफ नेशन्स की किसी भी अल्पसंख्यक (हितों की रक्षा हेतु बनाई) नियमावली से नहीं मिलती।"

साम्प्रदायिक निर्वाचन-पद्धति के बारे में पहिली गोलमेज़ परिषद के समय मिस्टर रैमज़े मैकडानेल्ड ने कहा था—

"यदि हर निर्वाचन-क्षेत्र में किसी ख़ास जाति या हितों को संरक्षित कर दिया जाय तो सब सम्प्रदायों, सब जातियों, सब धर्मों और सब विश्वासों को सम्मिलित करने वाले, राजनैतिक संगठन को बढ़ने और ताक़तवर होने की कोई गुंजाइश न रह जायगी। यदि हिन्दुस्तान के राजनैतिक जीवन को दृढ़ता से बढ़ने देना है तो ऐसे राष्ट्रीय दल को पनपने के लिये मौक़ा देना चाहिये जो हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण हितों का ख़याल करे।"

इसी तरह मि० माण्टेगू तत्कालीन भारत सचिव ने कहा था—"हम निस्संकोच यह नतीजा निकालते हैं कि उन राष्ट्रों का स्वायत्त शासन का इतिहास जिन्होंने संसार में उसे विकसित किया और फैलाया निश्चित तौर से विभाजन के विरुद्ध है। वह उन दलों के भी ख़िलाफ है जो अपने देश के लोगों को इस तरह से बढ़ावा देते हैं कि वे अपने को किसी विभाग या इकाई की प्रजा समझें न कि समूचे राष्ट्र की।"

संसार के किसी की राष्ट्र में जहां जन-तन्त्रात्मक शासन प्रणाली है—सम्पूर्ण राष्ट्र को कमज़ोर बनाने वाले, संकुचित वर्गों को कोई राजनैतिक स्थान नहीं है। श्री एडमण्ड बर्क के विचार इस विषय पर काफी प्रकाश डालते हैं—

"पार्लिमेण्ट भिन्न भिन्न और विरोधी हितों के नुमाइन्दों की सभा नहीं है जहां प्रत्येक हित अपने ऐसे नुमाइन्दे और वकील रखे, जो दूसरों के हितों और वकीलों की मुख़ालफ़त करते रहें। पार्लिमेण्ट तो एक राष्ट्र की एकहित वालों की एक ऐसी धारा सभा है जिसकी रहनुमाई में मुकामी इरादों और मुकामी तरफ़दारियों को जगह नहीं होनी चाहिये। उसके द्वारा व्यापक न्याय तर्क से सम्पूर्ण राष्ट्र की व्यापक भलाई की जानी चाहिये।

प्रिवी कौन्सिल के माननीय न्यायाधीश लार्ड शा ने एक मुक़दमे का फैसला देते हुए दिखाया था—"साम्प्रदायिक प्रतिनिधत्व का सिद्धान्त अंग्रेज़ी जनता की क़ानूनी किताबों में स्थान नहीं पा सकता।"

ब्रिटेन में जो बात राष्ट्रीय एकता को नष्ट करनेवाली समझी जाकर त्याज्य है वही हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय एकता को नष्ट कर अंग्रेजी हुकूमत और उसके शोषण को सरल तथा चिरस्थायी बनाने वाली होने के कारण क़ानूनन् जायज़ है—और शासन द्वारा संरक्षित होकर प्रोत्साहन पा रही है। इस तरह का उदाहरण संसार के किसी भी राष्ट्र की शासन-प्रणाली में नहीं पाया जाता। हिन्दुस्तान की धारा-सभाएं राजनैतिक धारा सभाएं नहीं हैं। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने कहा है—"वे धर्म की सभाएं हैं।" यह कुचक्र सिर्फ हिन्दू और मुसलमानों में तफ़र्क़ा पैदा करके शान्त नहीं हुआ। इसने हरिजन-सवर्ण हिन्दू, जमींदार-किसान, मज़दूर-व्यापारी, सिख-पारसी आदि कई प्रकार के बँटवारे खड़े कर दिये हैं। परिणाम-स्वरूप राष्ट्रीय एकता नष्ट हो गई है और पाकिस्तान, सिखिस्तान, द्रविड़िस्तान, ख़ालिस्तान आदि कई प्रकार के विभाजनों की आवाज़ें बुलन्द हो रही है। साम्प्रदायिक-निर्वाचन का ही यह विकास है जो तरह तरह की शक्लों में हमें दिखाई दे रहा है।

डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है—"साम्प्रदायिक निर्वाचन और साम्प्रदायिकता के अनुसार धारा सभाओं के विभिन्न विभाजनों में, स्थानों के संरक्षण के उपरान्त पाकिस्तान की मांग उनका एक सरल और प्राकृतिक विस्तार है। फूट की भावनाएं एक मर्तबा भी यदि अंकुरित हुईं और यदि शासन-प्रणाली द्वारा पोषण पा सकीं तो फिर ख़ुद ही बढ़ती जाती हैं। (इसी तरह से बढ़कर आज) अपने निराले ही तर्क शास्त्र द्वारा राष्ट्र के टुकड़े करने की मांग तथा अपने सम्प्रदायों को प्रादेशिक विभागों में विभाजित करने की मांग को, इस बुनियाद पर अकसर किया जाता है कि वे और किसी भी तरह से अपने भेदों को नहीं मिटा सकते।"

सन् १९३४ के सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन के तरीक़े को और भी उत्तेजना दी गई। डाक्टर बैनर्जी के विचार देखें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साम्प्रदायिक निर्वाचन का तरीक़ा ख़त्म वा कम करने के बजाय और पक्का कर दिया गया। उसे कई ऐसी दिशाओं में फैलाया गया जो अभी तक इससे अप्रभावित थीं। ब्रिटिश हुकूमत द्वारा तो यह भी कोशिश की गई कि हिन्दू जाति में फूट पड़ जाये और उसके दो हिस्से हरिजन और सवर्ण हो जावें।"

लार्ड कर्जन ने सबसे पहले बंगाल का बटवारा कर मुस्लिम बहुमत वाले पूर्वी बंगाल को एकदम अलग प्रान्त बनाने का इरादा किया था। फिर उसने पंजाब से सरहद को, जो पूर्णतया मुस्लिम प्रान्त है, अलग किया। सन् १९३४ में बम्बई प्रान्त से, सिन्ध को अलग करके एक स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया गया। इस तरह से अलग अलग मुस्लिम और हिन्दू प्रान्त तय्यार किये गए। ये ही आज पाकिस्तान के रूप में हमारे सामने हैं।

ब्रिटिश हुकूमत ही असल में पाकिस्तान की प्रवर्तक है। यह बात हिन्दुस्तान की सरकार के एक पदाधिकारी मि० जे० कोटमैन के शब्दों से जाहिर होती है—"ताक़तवर और संयुक्त हिन्दुस्तान का तैयार करना, जिसमें पूरा ब्रिटिश हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तानी रियासतें तथा पश्चिमोत्तर सरहद के सरहदी इलाक़े, जिनको हिन्दुस्तान में शामिल करना, उसकी राष्ट्रीयता का पहिला और खास बुनियादी सवाल है। इसे दिन प्रति दिन असम्भव बनाया जा रहा। और इसकी जगह यह दिखाई पड़ता है कि—उत्तर और उत्तर पूर्व में एक शक्तिशाली मुस्लिम रियासत तैयार की जा रही है, जिसकी निगाह निश्चित तौर से, हिन्दुस्तान से हटकर, शेष मुस्लिम संसार पर रहेगी, जो उसकी (मुस्लिम संसार की) सरहद पर ही (स्थित) है, और सुदूर दक्षिण तथा पूर्व में हिन्दू हिन्दुस्तान रहेगा।"

पाकिस्तान की जन्म कहानी का एक अध्याय तो यह हुआ। उसका दूसरा अध्याय वह है जिसमें उसने मुस्लिम जनता में प्रवेश पाया। श्री लतीफ जाफ़री के शब्दों में—

"कई वर्ष पहिले कुछ मशहूर अंग्रेज़ प्रोफ़ेसरों द्वारा प्रभावित एक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले नवयुवक मिस्टर सिद्दीक कैरी ने पाकिस्तान का ख़ाका एक कुटिलता पूर्ण प्रस्ताव के रूप में तैयार किया जो वर्षों बाद जिन्नाह साहब की सर्वाधिकारी लीडरी द्वारा अहमियत पाकर मुस्लिम लीग की मुख्य माँग बन गया। [illegible] मि० जिन्नाह ने कुछ वर्षों पूर्व ही उस विचार को [illegible] सनक और बचपन से भरे दिमाग़ की एक सूझ [illegible] था।"

किस तरह से यह योजना मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्ताव के रूप में अपनाई गई, यह भी उन्हींके शब्दों में देखें—

"सन् १९४० में जब सर सिकन्दर हयात खाँ की सरकार ने गोली चलवाकर कई ख़ाकसारों की जान ले [illegible] तब पूरे हिन्दुस्तान और ख़ासकर पंजाब की मुसलमान जनता बहुत ज़ोरों से पंजाब सरकार के ख़िलाफ़ हो गई और सिकन्दरी सरकार के ख़िलाफ़ २६ अविश्वास के प्रस्तावों के रखे जाने की सूचना मिली। सर सिकन्दर ने स्थिति की गम्भीरता को समझा, और अपनी सरकार की इज्ज़त बचाने के लिये अपने कुछ विश्वास-पात्र व्यक्तियों को आश्चर्यजनक बात ईजाद करने का काम सौंपा ताकि खाकसार गोली-काण्ड की तड़प मुसलमानों के दिलों से निकाली जा सके और उनके विरोधी और [illegible] भावों में कुछ नरमाई आ सके तथा यह बनावटी प्रदर्शन किया जा सके कि उनकी सरकार ही मुस्लिम हितों की सच्ची संरक्षक सरकार है। सिकन्दर तथा उनके साथी व्यक्तियों ने यह सोचा कि ऐसा प्रस्ताव जिसमें एक अलहदा स्वतन्त्र मुस्लिम रियासत तैयार की जाने की पंजाब सरकार की रक्षा कर सकेगा। तथा इस तरह मुस्लिम विचार-धारा को अपनी ओर मोड़कर उनकी सहानुभूति प्राप्त की जा सकेगी। सर सिकन्दर के आदेश मि० जिन्नाह के पास इस चाल के साथ गए। मि० जिन्नाह सर सिकन्दर के इस दाँव को मंजूर करने के लिये तैयार हो गए। परिणामस्वरूप पाकिस्तान का प्रस्ताव पास हो गए।

इस घटना से सर सिकन्दर को तो लाभ हुआ ही लेकिन मि० जिन्नाह को, जिनका अन्य अल्पमत प्रान्तों की तरह पंजाब की राजनीति में खास दख़ल नहीं था, पंजाब में राजनैतिक महत्व मिल गया। तबसे जब कभी [illegible] राष्ट्र की आज़ादी का सवाल आया मिस्टर जिन्नाह ने पाकिस्तान के अड़ंगे को सामने रखा है। नतीजा यह है कि देश की एकता नष्ट होकर आज़ादी का सवाल पिछड़ता जा रहा है और अंग्रेज़ी हुकूमत को सँभलने के सामने हिन्दुस्तान की फूट का रोना रोने की [illegible] सामग्री मिल रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान की आज़ादी और मिस्टर जिन्नाह

श्री एच० एन० ब्रेल्सफ़ोर्ड

असेम्बलियों का चुनाव चलता जाता है और उस बहस-पहल के बीच में दो आदमी हिन्दुस्तान के दो ध्रुवों की तरह चमकते रहते हैं। ये हैं—पण्डित जवाहरलाल नेहरू और मिस्टर मोहम्मदअली जिन्नाह। दोनों को मुख़्तलिफ़ सूबों में ख़ास तौर पर तक़रीर करने के लिये बुलाया जाता है। जब दोनों सफ़र करते हैं तो स्टेशनों पर भारी भीड़ जमा हो जाती है। लेकिन इन दोनों में जितना फ़र्क़ है उतना शायद ही किन्हीं दो दूसरे आदमियों में हो।

मिस्टर जिन्नाह एक ख़ूबसूरत बूढ़े आदमी हैं। वे बहुत नफ़ीस यूरोपियन पोशाक पहनते हैं। उनमें बिलकुल गहरे गन्दुमी रङ्ग के कुछ भी हिन्दुस्तानियत नहीं है। वे देसी उर्दू के मुक़ाबले में अङ्गरेज़ी बड़ी शुस्तगी और लताफ़त के साथ बोलते हैं। उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे अपने उसूल और हठ के पक्के हैं। उनके सुभाव में एक सख़्ती है। उनके साथ बात करने वाला बस उनकी सुने जाय या बीच में सवाल कर ले। बुढ़ापे में, उनके हाथ में ताक़त आई है और इस ताक़त को वह एक ऐसे आदमी की तरह इस्तेमाल करते हैं जिसने मुद्दत तक नाकामयाबियों का बोझ ढोया हो।

मिस्टर जिन्नाह के तरीके

चाहे बातें हों और चाहे काम हों, मिस्टर जिन्नाह इस बात की परवाह नहीं करते कि उनके मातहत और उनके साथी क्या राय रखते हैं। वे उन पर अपनी मर्ज़ी लाद देते हैं। वे एक तरीके से सोचते हैं और उसी पर अमल करते हैं, न झुकते हैं और न सुलह करते हैं। लेकिन वे उसी वक़्त तक मज़बूत रहते हैं जब तक अपने विरोधी के मुक़ाबले में कामयाबी के साथ एक के बाद दूसरे अड़ङ्गे लगा सकें।

समझाने का हुनर तो वह जानते ही नहीं। आज हिन्दुस्तानी मुसलमानों की एक बड़ी जमात उनके पीछे है फिर भी वे पाकिस्तान की एक ऐसी ठोस शक्ल नहीं बना सके जो मुमकिन हो और दूसरों को क़ुबूल हो। पाकिस्तान उनकी मुट्ठी में है और हमेशा की तरह उसका एक ही मतलब है—हिन्दुस्तान में आपसी सुलह न होने पाये।

पाकिस्तान के ख़्याल में नीति की बात कम है नफ़रतों और उमंगों का ज़ोर ज़्यादा है। मुसलमान जब हिन्दुओं की तादाद और उनकी दौलत की ताक़त को देखते हैं तो अपनी नाउम्मीदों और डर को वे पाकिस्तान की मांग से ज़ाहिर करते हैं।

नेहरू—दुनिया के नागरिक

हम पच्छिम के रहने वाले पण्डित नेहरू को हिन्दुस्तान का ही नहीं दुनिया का नागरिक समझते हैं, और वह हैं भी। हमारे नज़दीक वे सबसे पहले हमारे सोशलिस्ट साथी हैं। हम हमदर्दी के साथ देखते हैं—उनकी सार्वभौम कल्चर को, उनकी साइन्स की तालीम को, अङ्गरेज़ी शायरी से उनके प्रेम को और इतिहास की उनकी जानकारी को, जिसकी रोशनी में वे अपनी उन कोशिशों को देख सकते हैं कि जिनके लिये उन्होंने अपनी ज़िन्दगी दे डाली है।

लेकिन बावजूद अपनी पच्छिमी संस्कृति के वे एक ऐसे हिन्दुस्तानी हैं कि जो अपने चारों तरफ़ को किसान और मज़दूर जनता के साथ एका महसूस करते हैं। वे हमदर्दी के साथ और खुले दिमाग़ से सबकी बातें सुनते हैं। लोग हमेशा उनसे मिल सकते हैं। उनमें न तो आपको कोई सख़्ती मिलेगी और न कोई नाउम्मेदी। लम्बे बरसों की जेल की ज़िन्दगी ने भी उनमें कड़ुआपन नहीं पैदा किया है। हाल में मुझे उनके पास ठहरने का मौक़ा मिला और मेरे ऊपर इस बात का बड़ा असर पड़ा कि वे कितनी संजीदगी से आजकल की दिक़्क़तों और आनेवाले ज़माने की उलझनों को सुलझाने की कोशिश करते हैं।

अपनी हिन्दुस्तान की इस यात्रा में मैं बीसियों ऐसे मर्द और औरतों से मिला कि जो और किसी बात में नहीं तो कम से कम इस बात में तो पण्डित नेहरू से मिलते हैं कि सबने बरसों जेलख़ाने में ज़िन्दगी गुज़ारी है। बहुत सों को पुलिस ने पीटा है। कइयों के रिश्तेदारों की जानें आन्दोलन में गई हैं। आन्दोलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सख़्त रहा है और उसकी इतनी क़ीमत देनी पड़ी है कि ओहदों के लोभी और मौक़ेबाज़ों के साथ साथ तमाशबीन और कमज़ोर दिलवाले आन्दोलन से छँट-कर अलहदा हो गये।

इस आज़ादी की लड़ाई के अगुओं के दिलों में अपने ऊपर जितना विश्वास है उसकी तुलना इस वक्त की दुनिया में किसीसे नहीं हो सकती। जाशीले लोगों की यह जमात करोड़हा जनता में अपना विश्वास भर देती है। हिन्दुस्तान के नौजवान, क्या करें क्या न करें इस बारे में वे अपने बहादुर नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू का महज़ इशारा भर चाहते हैं। यह एक ताज्जुब की बात है कि जब लोग इस तरह उनकी पूजा करते हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू इतने नम्र बने रहते हैं!

हिन्दुस्तान का सवाल

मैंने पण्डित नेहरू से आगे के बारे में बातें कीं। वे उन सब दिक़्क़तों से वाक़िफ़ हैं जिनसे पार पाना है। अभी तक जनता पर तो नहीं पर पण्डित नेहरू पर तीन अङ्गरेज़ वज़ीरों के भेजे जाने का असर पड़ा है। इसमें उन्होंने सरकार की समझौते की ख़ाहिश का सुबूत पाया है। उन्होंने अपनी तरफ़ की बात करते हुये इस बात पर ज़ोर दिया कि हिन्दुस्तान वाले पूरी तरह आज़ाद होने का पक्का इरादा कर चुके हैं।

जब मैंने पूरी आज़ादी के गोलमोल लफ़्ज़ का मत-लब जानने की कोशिश की तो मुझे उसका बहुत सीधा-सादा और साफ़ जवाब मिला—हिन्दुस्तानी अङ्गरेज़ी साम्राज्य के भीतर नहीं रहना चाहते। कनाडा, आस्ट्रे-लिया जैसी नौआबादियों जैसे स्वराज्य के लिये उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं है। हिन्दुस्तान और इङ्गलैण्ड के बीच कनाडा और आस्ट्रेलिया की तरह मां-बेटी का ताल्लुक़ नहीं है। हिन्दुस्तान की परम्परा और संस्कृत इङ्गलिस्तान की परम्परा और संस्कृति से बिल्कुल जुदा है। नौआबादी वह है जहाँ हमारी अङ्गरेज़ जाति की औलाद रहती हो। हिन्दुस्तानियों के लिये नौ आबादी वह है जहाँ से प्रवासी भारतीयों को निकाला जाता हो।

पण्डित नेहरू ने बातचीत के सिलसिले में कहा कि उनकी यह ख़ाहिश है कि आज़ाद हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के बीच बराबर के साझीदारों का सा सुलहनामा हो जाय जिसमें दूसरे की हिफ़ाज़त और माली सहयोग की शर्तें भी शामिल हों।

पहली रुकावट

यह पहली रुकावट है जिससे हमें पार पाना है। क्या हमारी यह तैयुदा राय है कि हिन्दुस्तान पहले नौआबादी का दरजा क़ुबूल करे और फिर अगर चाहे तो पूरी तरह आज़ाद हो जाय? नरमदल के हिन्दुस्तानी इस तरीक़े को मानने को तय्यार हैं। पर इससे न तो जनता में कोई जोश पैदा होगा और न वे शक-शुबहे मिटेंगे जिन्होंने हमारे आपसी ताल्लुक़ात को ज़हरीला बना रखा है।

जिस दिन से मैंने हिन्दुस्तान में क़दम रखा उस दिन से दिन दिन मेरा यह यक़ीन पक्का होता गया कि हमारे लिये सबसे ज़्यादा समझ की बात यह है कि हम दोनों के एक सुलहनामे के ज़रिये दो आज़ाद कौमों का एक संघ बनायें। हिन्दुस्तानी अच्छी तरह जानते हैं कि इस ख़तरनाक दुनिया में वे अकेले नहीं खड़े हो सकते। रूस जो कुछ ईरान में कर रहा है उसे वे परेशानी के साथ देख रहे हैं। वे ख़ुशी से कुछ दिनों के लिये अपनी फ़ौजों के सङ्गठन में अङ्गरेज़ अफ़सरों से मदद ले लेंगे।

तब वे अलहदगी की लकीर कहां खींचते हैं? आख़िर इस पूरी आज़ादी का मतलब क्या है?

पण्डित नेहरू की बातें सुनते सुनते, मैं समझता हूं, मैंने इस सवाल का जवाब पा लिया—हम तमाम ताक़त और ख़ासतौर पर फ़ौजी ताक़त हिन्दुस्तानियों के हाथों में सौंप दें। साफ़ लफ़्ज़ों में बीच के थोड़े से अरसे को छोड़कर हम हिन्दुस्तान से अङ्गरेज़ी फ़ौजें ज़रूर हटा लें। फ़ौजों का हटाना होते होते होगा पर एक ख़ास तारीख़ तक पूरा हो जायगा। जब तक इसका फ़ैसला नहीं होता तब तक हिन्दुस्तानी अपने आपको अपने घर का मालिक नहीं समझेंगे।

मिस्टर जिन्नाह की रुकावट

दूसरी रुकावट जो पार करनी है वह मिस्टर जिन्ना की खड़ी की हुई है। मुझसे बातें करते हुये मिस्टर जिन्नाह ने जोश के साथ उसी बात को दोहराया जो वे जनता के सामने कह चुके थे यानी वे किसी आरज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलहिन्द सरकार या विधान बनाने वाली कुल हिन्दुस्तान की मजलिस में शामिल नहीं होंगे। उनके बार बार के इन ऐलानों को देखते हुये यह समझना मुशकिल है कि वे किस तरह समझौता करेंगे। चुनावों ने उनकी बाज़ी को और कमज़ोर कर दिया है।

आसाम पर वे बेतुका दावा कर रहे थे उसे कांग्रेस ने जीत लिया।

सूबा सरहद में कांग्रेस ने न सिर्फ सब मिलाकर बहुमत हासिल किया है बल्कि मुसलिम सीटों का भी बहुमत हासिल कर लिया है।

सिन्ध में लीगी वज़ारत की हालत डाँवाडोल है। वह अपनी ज़िन्दगी के लिये अङ्गरेज़ मेम्बरों पर भरोसा करती है।

पञ्जाब में लीग को अच्छे वोट मिले लेकिन न तो उसका बहुमत हो सका और न वह मिली-जुली वज़ारत बना सकी। बङ्गाल के नतीजे निकलने अभी बाक़ी हैं।

इस तरह उत्तर-पच्छिम भारत में ठोस मुसलिम हुकूमत क़ायम करने का ख़याल हवा में उड़ गया। ज़िलों में पूरी आबादी के प्लेबीसाइट (सब बालिग़ों की राय लेने) की बात अभी कही जा सकती है पर मुझे इस बात में शक है कि उससे कुछ फ़ायदा होगा।

आजकल के कट्टरपन की हवा में पाकिस्तान की अच्छाई बुराई पर किसी तरह की बहस नामुमकिन है। एक बात बिलकुल साफ़ है कि सरहदी सूबे को निकाल कर पाकिस्तान मोरचेबन्दी के लिहाज़ से बेकार हो जाता है। इस तरह का पाकिस्तान बनने से हिन्दुस्तान की हिफ़ाज़त मुमकिन नहीं।

अगला क़दम तीन अङ्गरेज़ मिनिस्टरों के ऊपर है। मुसलमान जिन्हें लड़ाई के दिनों में सरकारी मेहरबानी हासिल थी, अभी तक इस बात को नहीं समझ रहे हैं कि अङ्गरेज़ सचमुच हिन्दुस्तान की हुकूमत जनता के हाथों में सौंपना चाहते हैं। जब यह बात उनके दिल में पूरी तरह बैठ जायगी तब भी क्या वे समझौता करने से इसी तरह इनकार करेंगे?

इतिहास की सीख

इतिहास और भूगोल उन्हें बताते हैं कि मुसलमान अपने हिन्दू देशवासियों के साथ मिल-जुलकर रहें। पाकिस्तान बन भी जाय तब भी तीन करोड़ मुसलमान पाकिस्तान से बाहर रहेंगे। वे उस वक़्त हिन्दुओं के साथ मिलकर रहने की बात सोचेंगे जब उन्हें महात्मा गान्धी के शब्दों में यह यक़ीन हो जायगा कि अङ्गरेज़ हाकिम की हैसियत से भारत छोड़ रहे हैं। पहला सवाल साफ़ है। मिस्टर जिन्नाह के शामिल न होने पर भी क्या हम राष्ट्रीय सरकार के हाथों में ताक़त सौंपने को तय्यार होंगे?

जब लोग इस बात को समझ जायंगे तो उनके लिये ऐसे नुमाइन्दे चुनना मुमकिन होगा जिनमें मिस्टर जिन्नाह के न आने पर भी कुछ बाइज़्ज़त मुसलमान शरीक हों। कांग्रेस की समझदारी और उदारता से बहुत काम बन सकता है। जो मुसलमान दलीलों से काम लेते हैं उन्हें यह समझाना कांग्रेस का काम होगा कि कुल हिन्द संघ के अन्दर कम तादाद वालों को कांग्रेस जो हिफ़ाज़त दे रही है वह इतनी काफ़ी है कि उससे उनका डर जाता रहना चाहिये। कामयाबी बहुत कुछ कांग्रेस के फ़ैसलों पर है।

क़हत सर पर है, बेकारी का भूत सामने खड़ा है, जहाज़ियों की बग़ावत और दंगों की सरगरमी हमने देखी है। ये सब इनक़लाबी आंधी की अलामतें हैं।

जब तक राष्ट्रीय सरकार नहीं बन जाती तब तक जनता न तो किसी सरकारी नुमाइन्दों पर एतबार करेगी, न किसी की बात मानेगी। जब तक नैतिक और क़ानूनी सत्ता अलग अलग है तब तक कोई ताक़त नहीं जो मुनाफ़ाख़ोरों को शर्मा सके और समाज के दुश्मनों को डरा सके। जब तक दिल्ली में एक सच्ची राष्ट्रीय सरकार क़ायम नहीं होती तब तक कामयाबी के साथ भूख और दङ्गों से नहीं लड़ा जा सकता।

[कपीराइट लेखक के पास]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनेमा और क़ब्रिस्तान

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

बम्बई के क्वीन्स रोड पर जो क़ब्रगाह है, उसकी चहारदीवारी पर आए-दिन शहर में चलने वाली सिनेमा की तसवीरों के इश्तहार चिपकाए जाते हैं। क्या इस घटना का कोई भीतरी अर्थ है—अर्थात् क्या सिनेमा और क़ब्रिस्तान में कोई अंतर्निहित संबंध है? ज़ाहिरा अर्थ तो कुछ भी नहीं है लेकिन इन्सान की चेतना में कहीं कोई स्तर ऐसा अवश्य है जहाँ ये दोनों कभी-कभी मिल बैठते हैं।

कहा जाता है कि सुख नाम की चीज़ चंचल होती है, वह टिकती नहीं। सिनेमा भी सुख की तलाश का एक रास्ता है जिसमें वर्त्तमान सभ्यता ने ख़ास कौशल अख़्तियार किया है। चुनाँचे क़ब्र और क़ब्रिस्तान के नियम सिनेमा पर भी लागू हैं।

एक और भी अर्थ में सिनेमा से क़ब्रिस्तान की याद आती है। मुल्क के एक मशहूर रिसर्च-इंस्टिट्यूट के अध्यक्ष महोदय ने एक रोज़ मज़ाक़-मज़ाक़ में कहा था कि सिनेमा का अर्थ 'सिन+मा' अर्थात् पापों की जननी है। और बाइबिल ने कहा ही है कि पाप का पारिश्रमिक मौत होती है। सिनेमा और मौत का यह नाता निरे बादरायण संबंध से कुछ अधिक गहरी चीज़ है।

तो प्रश्न यह उठता है कि क्या सिनेमा सचमुच ही सात्त्विक जीवन की क़ब्र है?

दरअसल बात तो यह है कि पंडितों और मुल्लाओं की बात छोड़ देने पर भी देश में सुसंस्कृत लोगों की एक श्रेणी ऐसी अवश्य है जिसकी धारणा है कि भली ज़िंदगी बसर करने वाले के लिये सिनेमा की सैर फ़ायदेमन्द नहीं होती। उनकी दलील यह है कि सात्त्विक जीवन इन्द्रियगत पार्थिव सुखों से विमुक्त होता है, जब कि सिनेमा की फ़िल्में इन्हीं विषयगत सुखों से गले तक भरी रहती हैं। सिनेमा के शौक़ीन शायद इसे न मानें लेकिन इस बात में बहुत-कुछ सार है कि आजकल के अधिकांश स्नायविक विकारों और रोगों का मूल उन विकृत विचारों में है जिनसे सिनेमा जानेवाली भोली जनता के दिमाग़ भर उठते हैं। हकीम और मन के रोगों के विशेषज्ञ आपको आंकड़े देकर समझा सकते हैं कि चटपटी और चुलबुली सिनेमा की तसवीरें, हालीवुड के जादू, किस तरह आज के तरुण-सम्प्रदाय की प्राणशक्ति को घुन की तरह खा रहे हैं।

किशोरावस्था में चित्त पर ये सब दृश्य और विचार झकझोर देनेवाला प्रभाव पैदा करते हैं। सिनेमा के चित्रों में वे प्रेम-घृणा-क्रोध इत्यादि के तूफ़ान देखकर वापस लौटा करते हैं लेकिन उस आंधी में उड़कर उनका दामन जिन कांटों में उलझ जाता है, वहां वह अटका ही रह जाता है। उनका सरल और मधुर भाव-जगत् भीतर ही भीतर उथल-पुथल अनुभव किया करता है।

सुंदर और पवित्र जीवन का आधार मनुष्य के जीवन के केन्द्र में स्थित शांति है। वे सारी वृत्तियां जो इस शांत और संतुलित स्थिरता को पक्का करती हैं, हममें अधिक से अधिक मात्रा में होनी चाहिएं। जो शांति को झटके के साथ विचलित करनेवाले भाव हैं, जो केन्द्र से हमें उड़ाकर दूर ले जाते हैं, त्याज्य हैं। जो हमें संयत बनानेवाली वृत्तियां हैं उन्हें प्रश्रय देना चाहिए, जो विकेन्द्रीकरण करनेवाले विचार हैं उन्हें निर्वासन मिलना चाहिए। कच्ची उम्र में जब कि व्यक्तित्व तिल-तिल करके बन रहा है, जब कि नींव डाली जा रही है, आंधी-तूफ़ान विचलित करने वाली चीज़ें ही हैं। किशोर का मन बहुत सूक्ष्म होता है इसीसे उसके लिये ख़तरा भी ज़्यादा होता है। अगर सिनेमा का टानिक ज़रूरी ही हो तो इस टानिक की कुछ बूँदें ही काफ़ी होंगी—ख़ासा डोज लेना अनुचित और अस्वास्थ्यकर होगा।

शिक्षा विशारदों की प्रधान शिकायत आजकल यह है कि स्कूल के लड़के लड़कियाँ यौन-रहस्यों के बारे में उल्टी दिशा से बहुत-सी ग़लत जानकारियों से अपना मस्तिष्क को भर लेते हैं—उनके विषय में वे अत्यंत उग्र रूप से आत्मचेतन हो उठते हैं। संयम से जिस छन्द का आविर्भाव होता है वह उनमें नहीं मिलता। और की ख़ूबसूरती उनमें देखने को नहीं मिलती। और बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसकी ज़िम्मेवारी सिनेमा की 'सैक्स-अपील' को है। आज अधिकांश तसवीरें मनुष्य के निम्नस्तर की वृत्तियों

[शेष अगले पृष्ठ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

देशी राज्यों की अन्तिम ज्योति—लेखक : राजकुमार मानसिंह; प्रकाशक : राजस्थान साहित्य मण्डल, केसरगंज, अजमेर ; मूल्य २)

१७४ पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने मौजूदा देशी नरेशों की शासन प्रणाली को प्रजा के लिये अहितकर और अव्यवहारी बताया है और निरंकुश राज सत्ता की जगह वैधानिक राजतंत्र (Constitutional monarchy) की स्थापना पर ज़ोर दिया है। प्रजा के लिये वांछित मताधिकार और सानुपातिक प्रतिनिधित्व को उपयुक्त बताया है। राजा और प्रजा दोनों के सहयोग के शासन को सर्वोत्तम कहा है।

राजकुमार मानसिंह प्रजा के हाथों में शासन के सम्पूर्ण अधिकार देने के पक्ष में नहीं हैं। वह राजा को मुखी के रूप में रखना ज़रूरी समझते हैं। पर हमें विश्वास है 'देशी राज्यों की अन्तिम ज्योति' को इस रूप में भी रखना जनता पसन्द करेगी। देशी राज्यों की संस्था ही इतनी सड़ गल गई है कि उसका एक ही उपाय शेष रह गया है और वह यह कि इसे जड़ मूल से नष्ट कर दिया जाय और ये सम्पूर्ण रियासतें आज़ाद भारत में मिला ली जाँय। अधूरे इलाज से किसी को कोई लाभ न होगा।

मनुष्य जाति की प्रगति—लेखक : श्री भगवान दास केला ; मूल्य : ३॥); प्रकाशक : भारतीय ज्ञानमाला, दारागञ्ज, प्रयाग ; पृष्ठ ३७२

श्री केला जी हिन्दी साहित्य के तपस्वी साधक हैं। बावजूद बुढ़ापे और दुर्बल स्वास्थ्य के वे विचार पूर्ण साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य का भंडार भरने का निरन्तर उद्योग कर रहे हैं। उनकी भारतीय ग्रन्थमाला में राजनीति, अर्थ शास्त्र और नागरिक शास्त्र की उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं और हिन्दी पाठकों की विचार परिधि को काफ़ी व्यापक बनाती रहती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक नौ भागों में बँटी हुई है जिसमें प्रागैतिहासिक काल से मानव प्रगति के विकास को आधुनिक काल तक दिखाया गया है। मानव की आदिम अवस्था, औजारों का उपयोग, पशु-पालन, खेती, उद्योग धन्धे, विवाह की संस्था, परिवार, समूह, धर्म, सदाचार, राज्य, क़ानून, युद्ध, अहिंसात्मक सत्याग्रह आदि को शारीरिक, सामाजिक और राजनैतिक विभागों में बांटा गया है। छठवें भाग में मानसिक प्रगति और सातवें भाग में आर्थिक व्यवस्था है; आठवें भाग में समाज व्यवस्था, वर्णाश्रम, अफलातून के विचार, धार्मिक साम्यवाद, समाजवाद, अराजवाद, फासिज्म आदि की चर्चा की गई है; नवें भाग में आगे के लिये महत्वपूर्ण सुझाव पेश किये गये हैं। पुस्तक के अन्त में महत्वपूर्ण घटनाओं की तालिका भी दी गई है।

गांव की बात—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त; मूल्य आठ आने।

पचास सफ़ों की इस छोटी सी पुस्तक में गांव के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, सेवा-सुधार आदि पर बड़े काम की बातें बताई गई हैं।

को उकसाने या अपील करनेवाली होती हैं। यही ज़्यादा ख़र्चीली हैं और निर्माताओं के जेब भी भरती हैं।

यही नहीं, इसी से एक सामाजिक मसला भी संबद्ध है। विवाह के बारे में विकृत धारणाएँ, उसकी पवित्रता को नष्ट करनेवाले ख़्यालात फैलते जा रहे हैं। दूसरी ओर विवाहित जीवन के उत्तरदायित्व से बचने की इच्छा प्रबल होती जा रही है। ये दोनों झुकाव अधिक तौर से सिनेमा की ओर से ही आए हैं। इसीसे कहने की इच्छा होती है कि वर्तमान समय में सिनेमा सात्विक जीवन को समाधि की ओर ले जा रहा है।

जो कुछ सुन्दर है, सुरुचिपूर्ण है, शिल्प की दृष्टि से कमनीय है, वह सिनेमा में सस्ता बना दिया जाता है। और फिर भी इसे कौन अस्वीकार करेगा कि आज की दुनिया में सिनेमा एक ताक़त है। क्या हम आशा करें कि एक तरफ़ सिनेमा के निर्माता जनता के प्रति, देश की बढ़ती हुई जवानी के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी समझेंगे और दूसरी तरफ़ जनता ख़ुद उनसे सुन्दर और सुरुचिपूर्ण तसवीरों की मांग करेगी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल्दीघाटी की एक रात—लेखक : श्री शिशुपाल सिंह 'शशु' ; प्रकाशक : मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, हैदराबाद (दक्षिण) मूल्य बारह आने ।

सोलहवीं सदी की राजपूती भावनाओं को छन्दों में व्यक्त किया गया है ।

परीक्षा—लेखक एवं प्रकाशक उपर्युक्त ।

शिवाजी से सम्बन्धित एक घटना को कवि हृदय की भावना को तुष्ट करने के लिये कविता में प्रकाशित किया गया है । ८५ पृष्ठों की अजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है ।

साहित्य—लेखक श्री मधुसूदन दास चतुर्वेदी ; मिलने का पता उपर्युक्त ।

इस छोटे से निबन्ध में युग दृष्टि से साहित्य की विचारपूर्ण विवेचना की गई है ।

तथागत—सम्पादक : श्री पूर्णगिरि गोस्वामी; प्रकाशक: साधना परिषद काशी; मूल्य : सवा रुपया ।

काशी विश्वविद्यालय के सात तरुण कवियों की इन कविताओं के इस इक्यावन पेजी संग्रह का नाम है—तथागत । कविताओं में प्रवाह है, भावनाएँ हैं और भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है । ये कविताएँ इन तरुण कवियों के उज्ज्वल भविष्य की निर्देशक हैं ।

घास-पात (कविता-संग्रह)—लेखक: श्री हरिशङ्कर शर्मा ; प्रकाशक : रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा; मूल्य : ढाई रुपया; पृष्ठ: १६८

श्री हरिशङ्कर शर्मा शिष्ट हास्य और व्यङ्ग के लेखक के रूप में हिन्दी संसार में काफ़ी प्रसिद्धि पा चुके हैं । यह उनकी फुटकर कविताओं का संग्रह है । सभी विषयों पर सभी तरह की ३३ कविताएँ इस संग्रह में हैं । कृष्ण, बुद्ध, महावीर, दयानन्द, बापू, जवाहरलाल पर भी कविताएँ हैं । विक्रम-विजय शीर्षक कविता में लेखक ने भारत निर्माण करने वाले विक्रमादित्य से लेकर जवाहरलाल तक के जो नाम गिनाये हैं उनमें कवि की दृष्टि, में एक भी मुसलमान नहीं आया । कवि की राष्ट्रीयता शुद्ध हिन्दू राष्ट्रीयता है । ग़रीबी के चित्रण जैसे 'घसेरिन' शीर्षक कविता में भी कवि के पास ग़रीबों को देने के लिये आशा का कोई सन्देश नहीं । सम्भव है ये सब कविताएं पुरानी हों क्योंकि श्री हरिशङ्कर शर्मा को हम 'कर्मयोग' के जिस सम्पादक के रूप में देख रहे हैं उसमें हमें नवजीवन और नवयुग का स्पष्ट सन्देश दिखाई देता है ।

झपकियां (कहानी संग्रह)—लेखक श्री ओंकारनाथ अग्रवाल 'शरद' और श्री अनन्त प्रसाद विद्यार्थी प्रकाशक: उपर्युक्त; मूल्य ।।।≈)

दोनों तरुण कहानीकारों की १७ कहानियों का यह संग्रह है । अधिकांश कहानियां रोमाण्टिक प्रेम, तृप्ति भावुकता और विदग्ध क्लाइमैक्स का परिचय देती हैं । संग्रह की 'टूटा धागा' 'अतृप्त' और 'सुन्दरिया' शीर्षक कहानियाँ सुन्दर हैं ।

मालिनियां ऐसी बनी (कहानी संग्रह)—लेखक : श्री रामसरन शर्मा; प्रकाशक : विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली; मूल्य डेढ़ रुपया ।

इस संग्रह में लेखक की छोटी छोटी इक्कीस कहानियां हैं । कहानियां सभी तरह की हैं—पहले दर्जे से तीसरे दर्जे तक की । पहली कहानी 'आज मैं तुम्हें गुइयां' कला, कथानक और क्लाइमैक्स की दृष्टि से एक घटिया कहानी है । फिर पता नहीं इस सस्ती यौन आकर्षण की कहानी को संग्रह में पहली जगह क्यों दी गई । शायद तरुण युवक और युवतियों को बिक्री के ख़याल से आकर्षित करने के लिये । कुछ कहानियों में सचमुच गहरी-अनुभूति है । 'मालिनियां ऐसी बनी', 'पड़ोसी का दुख' 'पेड़ के पत्ते' इसी श्रेणी की हैं । 'कटी कलाई' क्लाइमेक्स की दृष्टि से सर्वोत्तम है ।

लेखक में प्रतिभा है और उसने यदि अपनी प्रतिभा को बाज़ारी न होने दिया तो सुन्दर भविष्य उसके सामने है ।

रातरानी (कहानी संग्रह)—लेखक: श्री शम्भुनाथ सिंह; प्रकाशक: प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य: १)—छपाई, सफ़ाई सुन्दर, गेटअप और कवर आकर्षक ।

लेखक की ९ कहानियों का यह संग्रह है । पहली कहानी 'जीवन और मृत्यु के बीच' और अन्तिम कहानी 'रातरानी' है । अन्य कहानियां हैं—प्रतिशोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन संघर्ष, मृत्यु शय्या, दस मिनिट, उलझन, तीन दृष्टिकोण और जीवन पथ। लगभग सभी कहानियों में जीवन के सुख, दुख, रोमान्स एक मनोवैज्ञानिक भूमिका में पिरोए हुए हैं। पहली कहानी इस संग्रह की सबसे सुन्दर कहानी है। और कहानियां भी अच्छी हैं पर उनका क्लाइमेक्स भाव-क्रम में उलझ जाता है। कथाकार कुछ कहता है, कुछ नहीं कहता और कुछ अपने ही कथानक में खो जाता है। पर कहानीकार में प्रतिभा है। यह उसका पहला कहानी संग्रह है। इस दृष्टि से आशापूर्ण है।

—विश्वम्भरनाथ

हिन्दी पुस्तक-साहित्य—लेखक, डा० माताप्रसाद गुप्त एम० ए०, डी० लिट्०; प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद; मूल्य, १०) ; पृष्ठ संख्या ८३१

प्रस्तुत पुस्तक में १८६७ और १९४२ ई० के बीच प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की खास खास किताबों की फेहरिस्त है। १८६७ ई० की सीमा इस वजह से रखी गई है कि उसी साल रजिस्ट्रेशन आफ़ बुक्स एण्ड प्रेस ऐक्ट बना और हर छपी किताब प्रांतीय सरकारों के यहां रजिस्टर होने लगी। उनमें से ज्यादातर सभी का नाम सूबों के सरकारी गज़टों में निकल जाता था। दूसरे १८६७ ई० के पहले हिन्दी प्रकाशन की रफ़्तार बड़ी धीमी थी। तीसरे १८६७ ई० के लगभग से ही हिन्दी का भारतेन्दु युग शुरू होता है।

लेखक की इन तीन दलीलों में पहली दलील दूसरे शब्दों में यों कही जा सकती है कि १८६७ ई० के पहले प्रकाशित हुई पुस्तकों के लेखक तथा प्रकाशक का नाम पाने के लिए लेखक को जो मेहनत करनी पड़ती उसके लिये लेखक को न तो रुचि ही थी और न फुर्सत। उसने गज़ट में ही हिन्दी साहित्य के इतिहास का अथ और इति पा लिया। जो पुस्तकें ग़ज़ट में नहीं दी गईं लेखक ने उन्हें छोड़ दिया। समझ लिया कि पुस्तक प्रकाशित ही नहीं हुई।

१९४२ ई० की सीमा की भी यही हालत है। लेखक ने दो तर्क दिए हैं। पहला यह कि १९४२ ई० में गज़ट होना बन्द हो गया। और दूसरा यह कि क़ागज़ की तकलीफों की वजह से १९४३ से प्रकाशन रुक सा गया है। १८६७ ई० के पहले तर्क के विषय में जो कुछ कहा गया है वही १९४२ के पहले तर्क के बारे में कहा जा सकता है। १९४३ में और उसके बाद बहुत सी महत्वपूर्ण किताबें प्रकाशित हुई हैं।

अपनी इस फेहरिस्त को लेखक ने कई भागों में बांटा है। पहले भाग में उसने एक भूमिका लिखकर हमारे प्रकाशित साहित्य पर जो एक नज़र डाली है वह बहुत सरसरी है। फिर उसने 'हमारा आगामी कार्य' में आगे काम करने के लिए हमें कुछ क्रियात्मक संकेत दिए है। ये संकेत महत्वपूर्ण हैं। इसके बाद लेखक ने विषय-वस्तु के मुताबिक किताबों की एक वर्गीकृत फेहरिस्त दी है। फिर पुस्तकों की लेखक-बार सूची है। आखिर में पुस्तकों के नामों की एक अनुक्रमणिका है जिसकी मदद से पुस्तकें इस फेहरिस्त में ढूँढ़ी जा सकती हैं।

केवल फेहरिस्त बनाने का काम है तो बड़ा महत्वपूर्ण परन्तु साहित्य के दूसरे या तीसरे दरजे के विद्वानों की शक्ति इसमें व्यय होनी चाहिए थी। डा० गुप्त जैसे विद्वान दिल्ली जाकर इसे तैयार करें, यह तो शक्ति की फिजूलखर्ची है। लेकिन उन्होंने सारा कार्य स्वयं ही किया है। फिर भी इस सूची में बहुत सी ग़लतियां रह गई हैं। ये ग़ल्तियां छै तरह की हैं—

(१) पुस्तकों का ग़लत वर्गीकरण,

(२) अनुक्रमणिका में पुस्तकों का नाम न होना और फेहरिस्त में उनका मौजूद होना,

(३) प्रकाशकों का अधूरा पता,

(४) किताब के लेखक का नाम न देना,

(५) लेखक सूची में पुस्तक का नाम मिलना और वर्गीकृत पुस्तक सूची में नाम न मिलना, और

(६) लेखक का असाधारण नाम देना।

एक सातवीं प्रकार की गल्ती या तो डा० गुप्त ने की है, या गज़ट ने। वह है कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का नाम न देना।

पहली ग़ल्ती का उदाहरण बजरंगबली विशारदकृत तुलसी रचनावली है। इस ग्रंथ में यह पुस्तक पृष्ठ ३४९ पर तुलसी पर लिखी गई आधुनिक समालोचना की पुस्तक बताई गई है। वास्तव में यह तुलसी के मानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सिवाय और कृतियों का संग्रह है जो अपने पाठ के लिए तुलसी ग्रंथावली का विशेष एहसानमंद है। दूसरी गल्ती का उदाहरण सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन कृत शेखर—एक जीवनी है। अनुक्रमणिका में इसका नाम नहीं परन्तु लेकिन सूची में इसका उल्लेख पृष्ठ ६५४ पर है। तीसरी का उदाहरण पृष्ठ ४७४ पर है। 'गो करुणानिधि' के प्रकाशक के विषय में दिया गया है—'लेखक, बनारस १९८१'। पता नहीं कोई यदि यह पुस्तक खरीदना चाहे तो कहां जाए। चौथी गल्ती का उदाहरण जायसी की पद्मावती आदि है। सारी पुस्तक में मालक मुहम्मद जायसी का लेखक के रूप में कहीं पर भी उल्लेख नहीं है। जहाँ उनके ग्रन्थों का उल्लेख है वहां पर उनके सम्पादकों का नाम दिया गया है। इस सम्बन्ध में लेखक का कोई यकसां सिद्धान्त नहीं मिलता। उदाहरणार्थ लेखक ने तुलसी दास का नाम दिया है और उनके नाम के आगे उनके ग्रंथ सम्पादकों के नाम हटाकर दिए हैं। पांचवीं गल्ती का उदाहरण सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन कृत 'शेखर—एक जीवनी' है। हिन्दी उपन्यास की फेहरिस्त में इसका नाम नहीं है और लेखक सूची में पृष्ठ ४७४ पर है। छठवीं गल्ती की मिसाल 'अज्ञेय' हैं। इनका नाम लेखक ने सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन ही दिया है, 'अज्ञेय' नहीं। सातवीं गल्ती का उदाहरण कासिम-शाह दरियाबादी कृत 'हंस जवाहर' है। यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य के इतिहास में बड़ा अहम है। इसका हवाला ० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में और डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में दिया है। इसके दो संस्करण हुए हैं, एक तो स्टीम प्रेस अयोध्या से और दूसरा नवल किशोर प्रेस लखनऊ से। लखनऊ वाले संस्करण का तो तीसरा संस्करण आजकल बाज़ार में है।

यदि लेखक किताब पूरी तैयार हो जाने पर अपने किसी जिम्मेदार सहयोगी या तालिब इल्म को दे देता तो किताब में इतनी भद्दी भूलें न रहतीं। इन भूलों पर हमें दरअसल शर्म और दुख है। पुस्तक की अहमियत को हम खूब समझते हैं। हिन्दी को एक इस तरह की फेहरिस्त की बड़ी ज़रूरत थी। जब हमने किताब लिखनेवाले की जगह पर डा० माताप्रसाद गुप्त का नाम देखा तो हमें विश्वास हुआ कि हिन्दी के सबसे ज्यादा मेहनती शख्श के हाथों ने इसको पूरी जिम्मेदारी के साथ किया होगा। लेकिन ये भूलें देखकर हमें शर्म आई और अफसोस हुआ।

—कमल कुलश्रेष्ठ

यातना—लेखक श्री वैद्यनाथ; प्रकाशक: तारा मण्डल मुज़फ़्फ़रपुर; मूल्य आठ आने।

२७ पृष्ठों की १८ वर्षीय छात्र की यातना शीर्षक यह एक कविता है। यह इसीलिये प्रकाशित की गई है कि पाठकों को कवि के समुज्ज्वल भविष्य का ज्ञान हो जाय।

DEMONSTRATING the People's Will—लेखक: सैम एम० नेकाल्त ख़ाँ; भूमिका लेखक: श्री बी० जी० खेर; प्रकाशक: हमारा हिन्दुस्तान पब्लिकेशन्स, बम्बई; मूल्य: छै आना

धारा सभाओं के चुनाव के अवसर पर हमारा हिन्दुस्तान प्रकाशकों ने छोटी छोटी कई पुस्तिकाएं प्रकाशित की हैं। २४ पृष्ठ की मौजूदा पुस्तिका भी इसी मक़सद से लिखी गई है। इसमें हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य शाही के शोषण और ज़ुल्म का संक्षिप्त विवरण है और हिन्दुस्तान के भविष्य का ख़ाका है। पुस्तक के अन्त में वोटरों से नेताओं की अपील भी है।

THE INDIAN NATIONAL CONGRESS and Indian Overseas (पत्र) जवाहर लाल नेहरू के नाम एक पत्र)—लेखक बी० के० दादा चान जी; प्रकाशक: उपर्युक्त मूल्य १)

पण्डित नेहरू की मलाया यात्रा के समय प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में और ख़ासकर बर्मा और मलाया के भारतीयों के सम्बन्ध में यह पत्र लेखक द्वारा लिखा गया है भारत सरकार प्रवासी भारतीयों के कष्टों के सम्बन्ध में कितनी उदासीन है और भारतीयों की क्या क्या समस्याएं हैं इस पर इस पुस्तक में रोशनी डाली गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

[इस महीने से 'सम्पादकीय विचार' का शीर्षक बदलकर हम उपरोक्त शीर्षक दे रहे हैं —सम्पादक]

अगला क़दम

चार महीने के बाद चुनाव की ज़बर्दस्त चहल-पहल ख़त्म हो गई। कई सूबों में कांग्रेस की वज़ारतें बन गईं और जहां नहीं बनीं वहां हफ़्ते भर में बन जायँगी। केन्द्र में मुसलिम लीग यूरोपियन मेम्बरों की मदद से वज़ारत कर रही है पर उसकी बुनियादें इतनी खोखली हैं कि हवा का हर हल्का झोंका उसे डगमग कर देता है। बङ्गाल के पूरे नतीजे निकलकर कैफ़ियत साफ़ होने में अभी वक़्त लगेगा। लेकिन वहां भी यूरोपियन मेम्बरों के सहारे ही मुसलिम लीग की मिनिस्ट्री वजूद में आ सकती है। हिन्दुस्तान की सियासत में यह एक अफ़सोसनाक नज़ारा है कि मुसलिम लीग अपनी वज़ारतों की हस्ती क़ायम रखने के लिये बजाय अपने हमवतन हिन्दू और मुसलमानों की मुहब्बत पर भरोसा करने के अङ्गरेज़ लेखों के तलुवे सेहलाना कहीं ज़्यादा बेहतर समझती है। और तब यह शुबहा ज़्यादा पक्का हो जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही और मुसलिम लीग एक ही ज़ंजीर के दो रुख़ हैं। कांग्रेस की आज़ादी की मांग को और उसकी आज़ादी की लड़ाई को मुसलिम लीग अपने ख़िलाफ़ जेहाद समझती है। और समझे भी क्यों न? जो नवाब और नवाबज़ादे, ताल्लुक़ेदार और राजे मुसलिम लीग की रहनुमाई कर रहे हैं कांग्रेस के पञ्चायती राज में इन रियासतदारों की तो जगह रहेगी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्यशाही अब तक इस फ़िरक़ेवाराना रजतपसन्दी (साम्राज्यशाही प्रतिक्रियावाद) की मदद से अपने ख़ूंख़ार शिकञ्जों में हिन्दुस्तान को कसती रही है और दुनिया की कैफ़ियत और ख़ुद इस मुल्क की कैफ़ियत इतनी ख़तरनाक हो गई है कि मुसलिम लीग, हिन्दू सभा या ब्रिटिश क्लासेज़ फ़ेडरेशन की टूटी किश्तियों के सहारे साम्राज्यवाद का बेड़ा पार नहीं लग सकता। और तभी कैबिनेट मिशन को दो बातें साफ़ कर देनी पड़ी हैं कि (१) मज़दूर सरकार ने हिन्दुस्तान की जनता को पूर्ण आज़ादी देने का फ़ैसला कर लिया है और (२) किसी भी अक़ल्लीयत (अल्पमत = माइनारिटी को इस आज़ादी के रास्ते में रोड़ा बनने का हक़ नहीं है।

चुनावों पर एक नज़र

असेम्बलियों के इस चुनाव ने एक बात साफ़ कर दी है कि जनरल सीटों से कांग्रेस के मुक़ाबले में सब मिलाकर विरोधियों को पांच फ़ी सदी वोट भी नहीं मिले। मुसलिम सीटों से ज़ाहिरा मुसलिम लीग को कामयाबी मिली है। लेकिन साथ ही साथ इस चुनाव ने मुसलिम लीग की वाहिद नुमाइन्दगी के दावे को चकनाचूर कर दिया। जिस पञ्जाब में मुसलिम लीग के सब से ज़्यादा यानी ८६ में से ७९ मेम्बर चुने गये हैं वहाँ मुसलिम लीग के उम्मीदवारों को जबकि ६,७९,७९१ वोट मिले हैं उसके विरोधी अहरार, युनियनिस्ट, जमय्यत और ख़ाकसार उम्मीदवारों को १३,९६,४११ वोट मिले। मुसलिम लीग के विरोधियों के वोट आपस में ही लड़कर बँट गये और कामयाबी का सेहरा मुसलिम लीग के सर पर बँधा। पर एक बात साफ़ हो गई कि यदि मुसलिम लीग ने पाकिस्तान की बुनियाद पर चुनाव लड़ा था तो पञ्जाब ने उसके इस दावे का ख़त्म कर दिया। ख़ुद यू० पी० के सूबे में, जो लीग का गढ़ समझा जाता है, लीग को ५,०१,७५१ वोट मिले हैं जब कि कांग्रेस और नैशनलिस्ट उम्मीदवारों को २,६५,९६४ वोट मिले। इसका मतलब यह हुआ कि ६५ फ़ीसदी वोटरों ने पाकिस्तान के तरफ़ हमदर्दी ज़ाहिर की और ३५ फ़ीसदी लोगों ने उसके मुख़ालफ़त की। ज़रा सी मेहनत से इस ३५ फ़ीसदी को ५५ फ़ीसदी बनाया जा सकता है। यही कैफ़ियत सिन्ध और बिहार की भी है। सूबा सरहद में मुसलमान वोटरों में से ७० फ़ीसदी वोटरों ने पाकिस्तान के ख़िलाफ़ राय ज़ाहिर की है। इस सारे चुनाव में मुसलिम लीग ने हद दरजे की ज़्यादतियाँ और हिंसा की, सरकारी अफ़सरों ने हर जगह उसका साथ दिया लेकिन फिर भी वह अपनी वाहिद नुमाइन्दगी (Sole representative character) साबित नहीं कर सकी।

कांग्रेस मिनिस्ट्रियों के आगे काम

पिछली मिनिस्ट्री छोड़ने और इस बार मञ्ज़ूर करने के इस बीच के अरसे में मुल्क को जिन हैवतनाक ज़ुल्मों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बीच से गुज़रना पड़ा है वह बयान के बाहर है। सन् '४२ की आज़ादी की लड़ाई में ४०,००० आदमी जिनमें ज़्यादहतर आदमी बेक़ुसूर थे, गोली से उड़ा दिये गये, हज़ारों आदमियों को बरसों जेल में सड़ाय गया, गाँव के गाँव लूटे गये और जला दिये गये, बेटियों और बहुओं की इज़्ज़त आबरू हर ली गई, लड़ाई के नाम पर और सामूहिक जुर्माने के नाम पर जो करोड़ों रुपया वसूल किया गया उसका एक बड़ा हिस्सा सरकारी नौकरों की जेबों में चला गया। पुलिस का काम रह गया था लोगों को सताना, जुये और शराब से मुनाफ़ा हासिल करना, डराना, धमकाना और सरेआम लोगों को बेइज़्ज़त कर देना। रेवेन्यू, कण्ट्रोल और सप्लाइ के दफ़्तर की ईंट ईंट रिश्वत और ग़रीबों के गाढ़े ख़ून से तर हो गई। बङ्गाल के ३५ लाख आदमी दाने दाने को तरस कर मर गये और लिनलिथगो के वायसराय भवन में नाचरङ्ग, शराब और दावतें उड़ती रहीं। फ़ाक़ाकशी की जानबूझ कर ऐसी योजना बनाई गई कि हिन्दुस्तान की पूरबी सरहद पर चटगाँव और बंगाल के दूसरे ज़िलों में हज़ारों बङ्गाली बहुओं और बेटियों के पास खाने पीने का कोई दूसरा ज़रिया नहीं रह गया सिवाय अमरीकी, अफ़रीकी, अङ्गरेज़ और दूसरे फ़ौजियों को अपना तन बेचने के। सरकारी हुकूमत क्या थी सर से पैर तक बेरहमी, बेअदली, लूट, रिश्वत और ज़ुल्म में डूब गई। दिल का संकोच और आँखों की हया सब काफ़ूर हो गई। किसानों पर जो ज़ुल्म हुये बयान से बाहर। साहूकारों ने अगर सप्लाइ अफ़सरों से मिलकर तिजारती लूट की तो ज़मीदारों ने रेवन्यू अफ़सरों से मिलकर लाखों किसानों को बेदख़ल कर दिया। युक्तप्रान्त में सन् १९४४ में १,५८,७६८ किसानों को बेदख़ल किया गया। किसान की ज़मीन अगर हाथ से निकल जाय तो सिवाय फ़ौजी रंगरूटों में भरती होने के उसके पास कोई दूसरा ज़रिया ही नहीं रह जाता था। और युक्त प्रान्त के नौजवान किसान ऐसे गठीले और ऐसे तड़ङ्गे हैं कि देखकर तबियत ख़ुश हो जाय।

इन हालतों में देश के ये ७ बरस गुज़रे हैं। लोगों ने सब कुछ धीरज से सहा सो वह सदियों से सहते आ रहे हैं। पर कांग्रेस मिनिस्ट्री का फ़र्ज़ है कि वह जनता के आंसू पोछे और उस पर जो ज़्यादतियां हुई हैं उनका मुआविज़ा दिलाये—

(१) जिन लोगों के घरबार जला दिये गये हैं उन्हें घरबार दिये जांय,

(२) जिनकी बेक़ुसूर जानें ली गई हैं उनके परिवार वालों के भरण-पोषण का इन्तज़ाम किया जाय,

(३) सामूहिक जुर्माना लौटाया जाय,

(४) किसानों की बेदख़ल ज़मीनें वापस कराई जांय, और

(५) जिन सरकारी अफ़सरों ने घृणित ज़ुल्म किये हों उन्हें कठोर सज़ायें दी जांय।

इसके अतिरिक्त पूरी कोशिश हो कि किसान-मज़दूर राज क़ायम करने की जितनी भी दागबेल कांग्रेस मिनिस्ट्रियां डाल सकें डालें। पिछली वज़ारतों के दिनों में हमें यह बड़ा कड़ुआ तजुर्बा हुआ था कि कांग्रेसी वज़ीरों में एक नाख़ुशगवार ग़ुरूर पैदा हो गया था। उनका रहन सहन, तर्ज़ तरीक़ा कुछ बदल सा गया था। जनता उनके साथ अपनापन महसूस करने में हिचकती थी। के० एम० मुन्शी जैसे भी मिनिस्टर थे जो मज़दूरों पर गोलियां चलाने को जायज़ ठहरा सकते थे। कांग्रेस के कार्यकर्त्ता उस पूरे अरसे में मिनिस्टरों के दुमछल्ले बन गये थे। वह सब ग़लतियां हमें इस बार दोहरानी नहीं। कांग्रेस सङ्गठन को अपना आज़ाद रवय्या जारी रखना है। उसे वज़ारतों की मदद से नहीं बल्कि जनता की सेवा से कांग्रेस की जड़ों को गहरा करना है।

आने वाली मुश्किलें

अभी सब जगह कांग्रेस की वज़ारतें बनी नहीं लेकिन कुछ मायूस और खार खाई हुई सियासी और साम्प्रदायिक जमातें अभी से क्या कुछ न कर डालने की धमकियां देने लगी हैं। बहुत दिन नहीं बीतेंगे और मुल्क में फिर मज़दूरों की हड़तालें और साम्प्रदायिक फ़साद पैदा करने की कोशिश की जायगी। कांग्रेस के लिये इससे बढ़कर ज़िल्लत और नामर्दी की कोई दूसरी बात न होगी कि वह क़ानून और पुलिस की मदद से इन चीज़ों को दबाने में रज़ामन्दी दे। कांग्रेस का फ़र्ज़ है कि वह संजीदगी से मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों और हरिजनों के साथ मेल और मुहब्बत को बढ़ाये। अपने प्रेम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...दमत से उन्हें वश में करे। मुसलमान और हरिजन ...नुक़्ते नज़र से इस मुल्क की सबमें ज़्यादा ग़रीब ...चुकी हुई जमातें हैं। उनमें मुशकिल से पांच फ़ी ...स्थायी स्वार्थ वाले हैं। कांग्रेस इनके लिये रोज़ी ...। हिन्दुस्तानी समाज में इन्हें जो घटिया दरजा ...जाता है क़ानूनन् उसे बन्द करवाये। उनमें ...का ज़्यादा से ज़्यादा प्रचार करे। तालीम के ...को बदलवाये। सही इतिहास की पुस्तकों का ...फैलाये। और उन तमाम बातों को ख़त्म करने का ...उठाये जो हिन्दुओं के जातीय अभिमान के सबब ...मनमुटाव का ज़रिया बनी हुई हैं। खान-पान, ...छूत, जात-पांत और हमारे अन्ध विश्वास ७५ फ़ी ...हमारी साम्प्रदायिकता के लिये ज़िम्मेदार हैं। जब ...हम इन्हें दूर न करेंगे, जड़ को न सुधारेंगे तब तक ...का इलाज करने से काम न बनेगा।

"हिन्दू और मुसलमान चाय-वग़ैरा"

गान्धी जी ने १७ मार्च के "हरिजन-सेवक" में ...लिखी सुर्खी से लिखा है—

"स्टेशनों पर हिन्दू चाय और मुसलमान चाय ...चीज़ें अलग अलग बिकती हैं। बाज़ दफ़ा खाने ...जगह भी अलग रहती है। कई बार हरिजनों को ...ही नहीं मिलती। यह सब हमारी दुर्दशा की ...और अङ्गरेजी सल्तनत पर धब्बा है। सल्तनत ...के मामलों में दख़ल न दे यह मैं समझ सकता ...लेकिन स्टेशन पर अलग अलग धर्मियों के लिये ...अलग चाय पानी वग़ैरह का इन्तज़ाम रखना तो ...अलगाव पर मुहर लगाना जैसा हुआ। रेलवे और ...स्टेशन तो लोगों के ऐब दूर करने, उनमें एकता ...समाज में सभ्यता के साथ बरतने और सफ़ाई ...कामों को सिखाने के अच्छे ज़रिये बन सकते हैं। ...जब हिन्दू मुसलिम चाय वग़ैरह का भेद भाव ...जाता है तो रेलवे के हाकिम नाक़ाबलियत की ...तक पहुंच जाते हैं। अगर कोई मुसाफ़िर ...भाव रखना चाहे तो वह भले भूख प्यास को ...करे। रेलवालों से भेद-भाव रखने के इन्तज़ाम ...कोई उम्मीद न रखे। यह दूसरी बात है कि ...और शाकाहारी लोगों के लिये उनकी मरजी के मुताबिक़ खाना मिलने का इन्तज़ाम तो आज भी है।"

गान्धी जी के इन विचारों के पीछे एक गहरी तड़प है। वे रोग को मानो जड़ में जाकर पकड़ लेते हैं। उनका पहला क़दम था—क़ुरान, गीता, बाइबिल, जेन्द अवस्ता आदि का साथ साथ पाठ और पारायण। दूसरा क़दम है—अन्तर्जातीय खान-पान। इस साथ साथ खाने पीने का बड़ा असर पड़ता है। २४ मार्च के 'हरिजन सेवक' में आज़ाद हिन्द फ़ौज के श्री रामसिंह रावल लिखते हैं—"समूचे पूरबी एशिया में आज़ाद हिन्द संघ का जाल सा बिछ गया था। हर शाखा में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई मिल-जुलकर काम करते थे। जहाँ कहीं भी कार्यकर्त्ता बड़ी तादाद में रहते—एक गिरोह में रहते और एक जगह खाते थे।...हिन्दू, मुसलिम, सिख और ईसाइयों के रहने और खाने के लिये कोई अलग इन्तज़ाम नहीं था। सभी धर्मों और मज़हबों के लोगों के लिये एक ही रसोई घर होता था। सब एक साथ रहते थे, एक मेज़ पर खाना खाते थे और एक साथ काम करते थे।" इसपर टिप्पणी करते हुये गान्धी जी लिखते हैं—...इसमें दी गई बातें बड़े काम की हैं। सहज ही सवाल उठता है कि अब चूँकि ये सिपाही अपने देश में वापस आगये हैं, क्या उनमें वैसा ही भाई चारा बना रहेगा? रहना तो चाहिये।"

आज़ाद हिन्द फ़ौज ने देश के सामने हिन्दू मुसलिम मेल-जोल और मोहब्बत का एक नया और बाअसर पैमाना रखा है। इस नये नाप से अब हमें देश की राष्ट्रीयता को नापना होगा और जो इसमें खरा न उतरे उसे साम्प्रदायिक मानकर उसकी हमें तिलाञ्जलि देनी होगी। हमें यह देखना होगा कि हममें कितना हिन्दूपना है, कितनी मुसलमानियत है और कितनी राष्ट्रीयता। गान्धी जी ने बारदोली के सवर्ण हिन्दुओं को हरिजनों की तरफ़ उनके बर्ताव पर ठीक ही झिड़की दी है—"जो गुजराती लोग हरिजनों को अपना ही नहीं मान सकते, आज भी आम कुओं पर उन्हें पानी नहीं भरने देते, मन्दिरों में उन्हें जाने नहीं देते...वे मेरा मान सम्मान किसलिये करेंगे? या उनके मान सम्मान को मैं कैसे हज़म करूँगा? और उनकी क़ीमत भी क्या होगी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग की जड़ पर हमला

अपने अन्दर से साम्प्रदायिक और कम्यूनल मनोवृत्ति को हटाने के लिये हमें रोग की जड़ों पर हमला करना चाहिये। आख़िर हम साम्प्रदायिक बनते क्यों हैं? इसकी वजह अलग अलग मज़हब नहीं बल्कि हमारी सामाजिक व्यवस्था है। हममें हिन्दू, मुसलमान, हरिजन और प्रान्तीय भेद भावों के अलावा हजारों ऐसे नसली या ख़ानदानी ज़ातों और बिरादरियों के भेद हो गये हैं जिनसे हम हिन्दू और मुसलमान भी नहीं रहे। खोजा लोगों की शादी खोजों में होती है और भाटियों की भाटयों मे। वे शुरू से आख़िर तक खोजे और भाटिये ही रहते हैं। इस तरह के रिश्ते हमारे दिमाग़ों में अलहदगी का भाव पक्का कर देते हैं। किसी भी तरह की सच्ची राष्ट्रीयता का भाव पैदा करने के लिये यह सारा भेद भाव दूर करना होगा। इसके लिये एक ही दवा है और वह है अन्तर्जातीय विवाह। यूँ शादी एक व्यक्तिगत मामला है। हम किसी पर जबर्दस्ती नहीं कर सकते कि वह किसी दूसरी बिरादरी की लड़की से मुहब्बत करे। लेकिन ख़ुशक़िस्मती से हिन्दुस्तान में मुहब्बत की बिना पर होने वाली शादियों की तादाद बहुत कम है। आमतौर पर मां-बाप ही शादियां तय करते हैं। इसलिये अगर अन्तर्जातीय विवाह की ज़रूरत मान ली जाय तो ऐसी हज़ारों शादियों को बिना किसी दिक़्क़त के तै किया जा सकता है। एक जवान स्काट लन्दन जाता है और वहां बस जाता है। किसी अच्छी अङ्गरेज़ लड़की से मिलता है और शादी कर लेता है। उसका बेटा भी यही करता है। दूसरी तरफ़ मद्रास का रहने वाला गुजराती और गुजरात का रहने वाला मद्रासी अपने अपने सूबों में जाकर विवाह करते हैं। यह कितनी बेतुकी बात है कि हिन्दू मुसलमानों की दो जवान सन्तानों को, जिनके घर शायद एक दूसरे से मिले रहते हैं आपस में विवाह नहीं करने दिया जाता और उन्हें अपना जीवन साथी ढूँढ़ने के लिये दूर जाना पड़ता है। जरूरत यह है कि हममें भी गुजराती, मराठा या पंजाबी नसलों की हिन्दुस्तानी सन्तानें हों। अपनी अलग अलग खालों को तोड़कर हमें एक हो जाने की ज़रूरत है। यह हिन्दू, मुसलमान और हरिजनों के अन्तर्जातीय विवाहों से ही मुमकिन हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क

विश्ववाणी का अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क इसी अप्रैल में हमने निकालने का ऐलान किया था। हमें निकट पूर्व, मध्य पूर्व, सुदूर पूर्व, चीन, यूरोप, अमरीका आदि पर ५० से अधिक लेख भी मिल चुके हैं। एजेण्टों की फुटकर मांग को देखते हुये हम इस अङ्क की २००० अधिक प्रतियां छपाना चाहते थे। काग़ज़ की अतिरिक्त व्यवस्था के लिये हमने लिखा था किन्तु अतिरिक्त काग़ज़ मिलना तो दूर रहा न्यूज़प्रिण्ट की कमी के कारण समाचार पत्रों के कोटे में ही इस महीने से २५ फ़ी सदी की कमी हो गई। यही कारण है हम अपना यह विशेषाङ्क इस महीने पाठकों की सेवा में नहीं भेज सके। जैसे ही काग़ज़ का अतिरिक्त परमिट मिला हम विशेषाङ्क का प्रकाशन कर देंगे। पाठकों से एक बात हम कहना चाहेंगे कि हमारा यह विशेषाङ्क 'विश्ववाणी' की पुरानी मर्यादा के अनुकूल होगा—अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त उपयोगी अत्यन्त महत्वपूर्ण। पाठकों को इसके लिये अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ रही है किन्तु हम विवश है और परिस्थिति को समझकर पाठक हमें क्षमा करेंगे।

भूल सुधार

कृपा करके मार्च १९४६ के अङ्क में श्री सुबोध प्रकाश के "गुप्त साम्राज्य और भारत के जनतन्त्रात्मक गणराज्य" के पृष्ठ २०५ कालम २ पंक्ति ७, नोट १, ११, में कोह की जगह कोट्ट पढ़ें और पृष्ठ २०६ कालम २, पंक्ति ४ में 'रुद्रदामा' की जगह 'रुद्रसेन' पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा नया प्रकाशन

महावीर वर्धमान

और

जैन धर्म

लेखक

डाक्टर जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०

पचासों प्रामाणिक जैन और बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के आधार पर भगवान महावीर के जीवन की आधुनिकतम व्याख्या

मूल्य १।) रु०, डाकखर्च सहित १॥=)

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म की अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

...पण्डित सुन्दरलाल
...विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : बैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

...का नी. पी. कुड़ाया

...र्षिक मूल्य ६)]

मई १९४६

[एक अङ्क का]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

मई : १९४६

१—प्राचीन असुरिया का साम्राज्य—पण्डित सुन्दरलाल ३२१
२—ज्वार भर आया ! (कविता)—श्री महेन्द्र भटनागर ३३६
३—मैक्सिको का संक्षिप्त इतिहास—स्व० पुरुषोत्तम लाल जी ३३७
४—चन्द्रगुप्त मौर्य के इतिहास पर नवीन प्रकाश—श्री बुद्ध प्रकाश ... ३४०
५—नत हो जाता स्वयं ज़माना (कविता)—श्री उपेन्द्र ३४२
६—क्राइस्ट और कन्फ़ुत्सू—श्री प्रभाकर माचवे ३४३
७—उन्मुक्त पथिक (कविता)—श्री छोटेलाल भरद्वाज ३४५
८—साठ पैसे (रेखा-चित्र)—श्री सागर ... ३४६
९—सन्त साहित्य में योग साधना और ब्रह्मानुभूति—श्री बैजनाथ प्रसाद खेतान ... ३४८
१०—मानव जगत का निर्माता बालक—श्री बंसीधर ३५४
११—मेरी माँ (आत्मकथा)—मैक्सिम गोर्की ३६१
१२—गीत (कविता)—श्री देवेन्द्र ... ३६६
१३—दो राष्ट्र और पाकिस्तान—राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद ... ३६७
१४—अंगार पर ! (कविता)—श्री नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश' ३६९
१५—मेरा हिन्दू भाई !—डाक्टर मोहम्मद आज़म ३७०
१६—"जनाब" और "श्रीमान"—श्री किशोरलाल मशरूवाला ... ३७८
१७—कैबिनेट डेलीगेशन और भारत—आचार्य नरेन्द्रदेव ३८०
१८—ज्योति-पुरुष (कविता)—श्री उपेन्द्र ... ३८४
१९—सिद्धान्त की कसौटी पर पाकिस्तान—श्री गार्गी शङ्कर मिश्र ३८५
२०—विवाह—श्री लक्ष्मी नारायण ... ३८६
२१—पुस्तक परिचय ३९१
२२—अपनी बात ... ३९७-४०२

ठग और जालसाज़ जीवनदास गुप्त

'विश्ववाणी' के पाठकों और जनता को सूचना दी जाती है कि जबाहर गञ्ज जबलपुर, का रहने वाला जीवनदास गुप्त, सांवला रंग, चेचक के दाग, एक २४ वर्षीय युवक रीवाँ रियासत, मध्य प्रान्त और बम्बई में घूमकर कहीं इलाहाबाद कांग्रेस कमेटी के नाम पर, कहीं हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के नाम पर, कहीं 'विश्ववाणी' के नाम पर, कहीं इलाहाबाद जर्नलिस्ट एसोसियेशन के नाम पर, कहीं पण्डित सुन्दरलाल के नाम पर और कहीं आज़ाद हिन्द वालण्टियर कोर के नाम पर लोगों से चन्दा माँगता फिरता है। जीवनदास गुप्त का इनमें से किसी संस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। लोगों को धोखा देने के लिये उसने झूठी रसीद बहियां छपवा ली हैं। जनता इस ठग और जालसाज़ से बचे और मिलने पर उसे पुलिस के हवाले कर दे।

—विश्वम्भरनाथ
३—५—४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६, भाग ११] मई : १९४६ [अङ्क ५, पूरे अङ्क ६५

प्राचीन असुरिया का साम्राज्य

पण्डित सुन्दरलाल

जबकि बाबुल का साम्राज्य अपने पूरे ज़ोर पर था बाबुल के और उत्तर में दजला नदी के किनारे एक और नए साम्राज्य की नींव रखी जा रही थी। यह साम्राज्य 'असुरिया' का मशहूर साम्राज्य था।

असुरी या असुरिया देश का रक़बा केवल ७५,००० मुरब्बा मील यानी पुर्तगाल के रक़बे से दुगना था। उस देश का सब से बड़ा देवता वैदिक "असुर" था। इसीलिए देश का नाम असुरिया पड़ा। जिस शहर में असुर का सबसे बड़ा मन्दिर था वह भी 'असुर' कहलाता था। देश के रहनेवाले असुरी कहलाते थे। 'असुर' की पूजा का ज़िक्र उस देश में सबसे पहले २४०० ई० पू० में मिलता है।

बाबुल के मुक़ाबले में यह देश समुद्र की सतह से बहुत ऊँचा था। इसीलिए वहां सरदी ज़्यादह पड़ती थी। जाड़े के मौसम में कहीं कहीं बरफ़ भी पड़ता था। आबहवा बहुत अच्छी थी। उत्तर और पूरब में ऊंचा पहाड़ था।

३००० ई० पू० में और उसके पहले तुर्की से लेकर असुरिया तक पुरानी आर्य क़ौम की एक मशहूर शाख़ 'खत्तियो' (क्षत्रियो) का राज था। टर्की में इन लोगों की रियासत 'खेतसार' (क्षेत्रसार) कहलाती थी। इन्हीं के मिलती हुई एक दूसरी शाख़ 'मित्तन्नी' (मित्र के उपासक) कहलाती थी। असुरिया की बाद की राजधानी निनेवेह के आस पास, जो इस समय कम से कम पांच हज़ार साल का पुराना शहर समझा जाता है, इन लोगों के एक देवता तेशुव (केशव) की मूर्तियां मिली हैं। इनके दूसरे देवता भी जैसे मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और नासत्य वैदिक देवता थे। ये एक देवी महामाया की भी पूजा करते थे जिसे वे सारे जगत की जननी मानते थे।

कई हज़ार साल तक पच्छिम एशिया में इन लोगों का ख़ूब ज़ोर रहा। मिस्र और बाबुल के सम्राटों के साथ बराबर की शर्तों पर इनकी संधिया होती थीं और खत्ती और मित्तन्नी राजकुलों के साथ मिस्र और बाबुल के राजकुलों की ब्याह शादियां होती थीं।

१५०० ई० पू० के क़रीब सुमेर और बाबुल से बहुत से नए लोग जाकर असुरिया में बस गए। पुराने बाशिन्दे या तो इन्हींमें मिल गए और या और पच्छिम की खत्ती और मित्तन्नी रियासतों की तरफ़ चले गए। इसलिए जिस ज़माने का ज़िक्र अब हम कर रहे हैं उस ज़माने के असुरी और बाबुली एक ही दादा की औलाद और एक ही क़ौम थे। उन दोनों की ज़बान, संस्कृति और धर्म सब क़रीब क़रीब एक थे। धीरे धीरे इन ही लोगों की असुरिया में हकूमत क़ायम हो गई।

असुरिया के ये नए राजा शुरू में सुमेरवालों के बाजगुज़ार थे और उन्हें ख़िराज देते थे। उसके बाद असुरिया के राजा बाबुल के "इशाक्कु" यानी सूबेदार कहलाने लगे, और बाबुल के सम्राट् को ख़िराज देने लगे। सदियों यही सूरत रही।

बाबुल के दक्खिन में ईरान की खाड़ी के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशान क़ौम के लोगों ने एक और छोटी सी रियासत क़ायम की थी जो 'करदुनयाश' कहलाती थी। करदुनयाश भी बाबुल ही का एक सूबा समझा जाता था और वहां के राजा बाबुल के सम्राट को ख़िराज देते थे।

१५ वीं सदी ई० पू० में मिस्र के ज़बरदस्त पेरोए थुतमोसे तीसरे ने एशिया पर चढ़ाई की। सारा पच्छिमी एशिया एक बार उसके हमले के सामने थर्रा उठा। फ़िरात के किनारे तक मिस्र का झण्डा फ़हराने लगा। न केवल सुरिया (शाम) और फ़िलस्तीन ने ही बल्कि एक बार असुरिया, बाबुल और करदुनयाश तक ने मिस्र को अपना अधिराज मान लिया। असुरिया के राजा ने असली लाजवर्द का एक बहुत बड़ा टुकड़ा और कई क़ीमती चीज़ें मिस्र के पेरोए को नज़र कीं। मिस्र के इस हमले से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो बाबुल की नज़रों में असुरिया और करदुनयाश दोनों की इज़्ज़त और असुरिया के राजाओं की उमंगें दोनों बढ़ गईं। असुरिया और करदुनयाश दोनों की सरहदें नए सिरे से मुक़र्रिर हो गईं। इन दोनों में और बाबुल के राजकुल में आपस में ब्याह शादियां होने लगीं। और इन तीनों एशियाई राजकुलों की लड़कियां मिस्र के राजकुमारों से ब्याही जाने लगीं। एशिया और अफ़रीका दोनों की सभ्यताओं को इस तरह के सम्बन्ध से बढ़ने और पनपने का ख़ूब मौक़ा मिला। असुरिया के एक राजा असुर-उबल्लित और मिस्र के मशहूर पैग़म्बर-सम्राट इखनातन में बड़ी दोस्ती थी।

असुरिया के राजा के दिल में अब अपना एक स्वाधीन साम्राज्य क़ायम करने की उमंग पैदा हुई। सबसे पहले सन् १३०० ई० पू० में राजा शालमन-ईश्वर पहले ने असुरिया से निकलकर उत्तर-पूरब और पूरब-दक्खिन के कुछ इलाक़े को अपने राज में मिला लिया। उसके बाद उसने पच्छिम में फ़िरात को पार कर सुरिया के उत्तर में मुसरी देश को जीता। असुरिया में निनेवेह से मिले हुए काला नगर में उसने अपनी नई राजधानी बनाई जो बाद में निनेवेह ही का एक हिस्सा बन गई।

क़ुदरती तौर पर असुरिया ने अब बाबुल को ख़िराज देना बन्द कर दिया। सन् ११०० ई० पू० के क़रीब बाबुल के राजा नेबु चद्रेश्वर पहले ने असुरिया पर चढ़ाई की। राजा असुररिश इसी असुरिया के तख़्त पर था। एक घमासान लड़ाई हुई जिसमें बाबुल की फ़ौज को हारकर पीछे हट आना पड़ा। नेबु चद्रेश्वर ने दोबारा चढ़ाई की तय्यारी की। फिर उसने असुरिया पर हमला किया। फिर एक भयंकर युद्ध हुआ और आख़ीर में फिर बाबुल की रही सही शान को मैदान में खोकर नेबु चद्रेश्वर हारकर अपनी राजधानी लौट आया।

इसके कुछ बरस बाद ही तिगलथ पिलेश्वर पहला असुरिया के तख़्त पर बैठा। यह तिगलथ पिलेश्वर पच्छिम एशिया के बहादुर से बहादुर और क़ाबिल से क़ाबिल सम्राटों में गिना जाता है। अब असुरिया की बारी थी। तिगलथ पिलेश्वर ने एक बड़ी फ़ौज जमा करके बाबुल पर हमला किया। बाबुल का समय होचुका था। बाबुल के आइसिन कुल का आख़री सम्राट नबुशुर (१०६६—१०५३ ई० पू०) हारा। बाबुल विजय के बाद सम्राट तिगलथ ने मारदूक के मन्दिर में जाकर मारदूक की पूजा की और ईश्वर को धन्यवाद दिया। नए असुरियन सम्राट ने बाबुल के शहर या प्रजा को बिना किसी तरह का नुक़सान पहुँचाए शहर और आस पास के इलाके दोनों को ख़ाली कर दिया और वहां का राज वहीं के राजा के हाथों में रहने दिया। लेकिन इसी समय से इराक़ यानी मेसोपोटामिया का राजनैतिक केन्द्र बाबुल से हटकर असुरिया में आ गया।

तिगलथ पिलेश्वर ने इसके बाद चारों तरफ़ चढ़ाइयां कर रोम सागर तक के तमाम देशों को विजय करके असुरिया के साम्राज्य में मिला लिया। वह ख़ुद लिखता है—

"तख़्त पर बैठने के पांच बरस के अन्दर ही मैंने मदियन के पहाड़, फ़िरात नदी, खत्तियों के देश और दक्खिन ज़ाब नदी से लेकर रोम सागर तक बीच के ४२ देशों को विजय किया। मैंने उन्हें एक मत और एक विचार का बनाया। मैंने उनसे ख़िराज और देन वसूल किये और उसकी ठीक ठीक अदायगी के लिए उनके ख़ास लोगों को बन्धक (hostage) रखा।"

तिगलथ पिलेश्वर ने हर देश के देवताओं के मन्दिर बनवाए। देश देश से तरह तरह के घोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर जानवर लाकर असुरिया में बसाए। और जगह जगह से अच्छे अच्छे फलदार दरख़्त हज़ारों की तादाद में लाकर असुरिया में लगवाए। तीस बरस की ज़ोरदार और क़ाबिल हकूमत के बाद इस महान असुरी विजेता की मृत्यु हुई।

कई सम्राटों के बाद सन् ९५० ई० पू० में तिगलथ पिलेश्वर दूसरा असुरिया की गद्दी पर बैठा। उसके समय से ही असुरिया के सम्राटों की सही सही तालिका मिलती है। तिगलथ पिलेश्वर दूसरे के बाद ८८५ से ८६० ई० पू० तक असुर नसिर पाल असुरिया का सम्राट रहा।

असुर नसिर पाल ने तख़्त पर बैठते ही असुरिया से खाबूर नदी से लेकर लेबनान यानी रोमसागर तक दौरा किया। अपने सारे साम्राज्य को उसने कुछ अलग अलग प्रान्तों में बांट कर हर प्रान्त में नए सिरे से प्रान्तीय गवरनर मुक़र्रिर किये जिनमें कुछ उन्हीं देशों के थे और कुछ असुरिया के। कहीं कहीं उसके नई नौ आबादियां और नए नए शहर आबाद किये। इन शहरों के चारों तरफ उसने बड़ी बड़ी चहार दिवारियां बनवाईं, ताकि लड़ाई के मौक़ों पर ये शहर देर तक अपनी रक्षा कर सकें। लेबनान से उत्तर की तरफ़ मुड़कर वह अमानुस पहाड़ तक गया। यहां उसने सिदार, सर्व और मेल्बरी के कुछ दरख्तों की सुन्दर लकड़ी कटवाकर निनेवेह में इश्तर के मन्दिर के लिये भेजी। राबर्ट विलियम राजर्स लिखता है—

"सम्राट असुर नसिर पाल की यह चढ़ाई या उसका यह दौरा एक अजीब दौरा था, क्योंकि इस दौरे भर में किसी पर किसी तरह की ज़्यादती हुई, न कोई क़त्ल किया गया और न किसी भी शहर को बरबाद किया गया।"

असुर नसिर पाल के शासन के बाक़ी दिन भी निर्माण के कामों में ही बीते। उसने काला के नगर और वहां की नहर को नए सिरे से बनवाया। उसने अपने लिये १३१ गज़ लम्बा और १०६ गज़ चौड़ा एक महल बनवाया। यही महल सदियों तक बाद के बादशाहों का निवास स्थान रहा। सबसे ज़बरदस्त काम जो उसने किया, वह यह था। काला नगर में पानी की कमी थी। ऊपर की तरफ़ एक ऊंचा पहाड़ था और उसके दूसरी तरफ़ खाब नदी थी। नदी और शहर में कई मील का फ़ासला था। असुर नसिर पाल ने आजकल के नेगुला गांव के पास से नदी के बांध को तोड़ वहां से पहाड़ में एक लम्बी सुरंग बनाकर उस सुरंग के ज़रिये वह इधर के मैदान में पानी लाया। इसके बाद एक खुली नहर के ज़रिये वह पानी राजधानी तक पहुँचाया गया। रास्ते भर इस नहर के दोनों तरफ़ उसने तरह तरह के फलदार दरख़्त लगवाए। जगह जगह अंगूर की टट्टियां लगाईं और इस नहर का नाम 'बाबेलात खिगल' रखा जिसके माने 'फल देनेवाली' है। इस तरह शहर के लिए अटूट पानी का इन्तज़ाम हो गया।

सन् ८६० ई० पू० में असुर नसिर पाल का दौर ख़त्म हुआ। असुरिया के लिए उसने दुनिया में एक नाम और इज़्ज़त क़ायम कर दी और अपने जानशीन के लिये ऐसा ख़ुशहाल और धनधान्य से भरा हुआ और बाअमन साम्राज्य छोड़ा जैसा पहले कभी देखने में न आया था।

शालमन ईश्वर दूसरा (८५९-८२५ ई० पू०) अपने पिता असुर नसिर पाल की गद्दी पर बैठा। पूरे २६ साल तक वह ठीक अपने बाप की तरह हर साल अपने साम्राज्य भर का दौरा करता।

पच्छिम में दमिश्क और उत्तर में उरार्तु (खत्तियों की रियासत) कभी कभी असुरी साम्राज्य से अपनी आज़ादी ज़ाहिर करते रहे, और अपनी ख़ुदमुख़्तारी पर ज़िद करते रहे लेकिन 'बाबुल' उसके ज़माने से बराबर असुरिया को ख़िराज देता रहा और अपने को असुरिया का बाज गुज़ार मानता रहा। शालमन ईश्वर ने ३१ साल हुकूमत की। उसके मरने के बाद असुरिया में घरेलू लड़ाइयां शुरू हो गईं और कुछ दिनों के लिए ऐसा मालूम पड़ा कि असुरिया का बड़प्पन भी ख़त्म हो चुका।

इसके बाद कई नरेश असुरिया की गद्दी पर बैठे। इनमें से एक ख़ास अदद निरारी (८११-७८३ ई० पू०) था। मशहूर महारानी सम्मुरात जिसे यूनानी सेमी रामी कहते हैं इसी अदद निरारी की मां या कुछ इतिहासकारों के अनुसार शायद उसकी पत्नी थी। यह महारानी अपनी योग्यता और बहादुरी के लिए एक बार सारी दुनिया में मशहूर हो गई। उसने बलूचिस्तान को पार कर हिन्दुस्तान को भी जीतने और असुरिया के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य के मिलाने की कोशिश की। लेकिन यूनानी इतिहासकार नियारकस लिखता है कि सिन्धु नदी के इस पार के हिन्दुस्तानी राजा ने आसुरिया की फौज को इस बुरी तरह हराया कि सेमीरामी की सेना के केवल बीस आदमी बचे, जिन्हें लेकर मलका सेमीरामी फिर सिन्धु को पार कर पीछे हट गई। फिर भी अपने महान कामों से वह असुरी इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ गई। सम्राट असुर निरारी दूसरे (७५४ से ७४५ ई० पू०) के बाद साम्राज्य में फिर जगह जगह बग़ावतें और बद अमनी फैल गई।

इसी बद अमनी के दिनों में एक होशियार बहादुर और क़ाबिल दरबारी तिगलथ पिलेश्वर तीसरे (७४५-७२७ ई० पू०) के नाम से असुरिया के सिंहासन पर बैठ गया। बाबुल पर इस अरसे में अरामी (आरमी-नियम) क़ौम के एक राजा ने क़ब्ज़ा कर लिया था। वहां की प्रजा अरामियों के ज़ुल्मों से लाचार और दुःखी थी। तिगलथ पिलेश्वर ने अपनी तख़्त नशीनी के पहले ही साल बाबुल पर चढ़ाई की। बाबुल की जनता ने तिगलथ पिलेश्वर का बड़े ख़ुश होकर साथ दिया। अरामियों को बाबुल से निकाल दिया गया। शासन का नया और ठीक ठीक इन्तज़ाम कर दिया गया। 'बाबुल' पर अब असुरिया का पूरा पूरा क़ब्ज़ा हो गया। नाम के लिए बाबुल का राजा नवनासर गद्दी पर बना रहा लेकिन असली इन्तज़ाम सब असुरिया के सम्राट के हाथों में आ गया।

दक्खिन में अमन क़ायम करके वह पूरब की तरफ़ और फिर वहां से उत्तर की तरफ़ मुड़ा। जगह जगह उसने बग़ावतों को शान्त किया। उत्तर के उरार्तु देश में खत्ती राजा सरदून दूसरा राज कर रहा था। उसने पच्छिम का बहुत सा इलाक़ा जीतकर उरार्तु में मिला लिया था। वह अपने को 'सूरी' (सुरिया यानी शाम) का भी राजा कहता था। उत्तर के १२ और राजाओं के साथ उसने दोस्ती की सन्धि कर ली थी। खाल्पी के पास इस मिली हुई सेना और तिगलथ पिलेश्वर की सेना में घमासान हुआ जिसमें उरार्तु की सेना तितर बितर हो गई। असुरिया का साम्राज्य उन हिस्सों में फिर पक्का हो गया। अलग अलग सूबों में तिगलथ पिलेश्वर ने अपने प्रान्तीय गवरनर मुक़र्रिर करके भेजे।

सन् ७३२ ई० पू० में दमश्क पर भी असुरिया का क़ब्ज़ा हो गया। उत्तर-पच्छिम में तिगलथ पिलेश्वर ने असुरिया के साम्राज्य की सरहद को इतनी दूर तक बढ़ा लिया जितनी दूर तक पहले कभी न रह चुकी थी। एक ख़ास काम उसने यह किया कि उसने दूर दूर के देशों से हज़ारों लोगों को लाकर उनकी बड़ी बड़ी आबादियें असुरिया में बसाईं और असुरिया से हज़ारों लोगों को ले जाकर उन देशों में बसाया। इससे साम्राज्य के अलग अलग हिस्सों में प्रेम बढ़ा। एक सा क़ानून सब जगह दिखाई देने लगा। दूसरे देशों के अपने अलग देवताओं के साथ साथ असुरिया के ख़ास देवता 'असुर' की पूजा भी सब जगह होने लगी। एक सभ्यता और एक संस्कृति सब जगह उन्नति करने लगी। साम्राज्य के व्यापार को भी बढ़ाने की उसने भरसक कोशिश की। असुरिया की तिजारती मंडियां तुरिया और फ़ीनीशिया के शहरों में खुल गईं। उसने बहुत से विद्वानों को पुराने इतिहास की खोज करने और तिथियों यानी तारीख़ों को ठीक ठीक तय करने पर मुक़र्रर किया। बाबुल उसके ज़माने में और उसकी मदद से साहित्य और इल्मों की खोज और उनकी तरक्क़ी का ख़ास घर बन गया।

तिगलथ पिलेश्वर के बाद शालमन ईश्वर चौथा और उसके बाद सरगन दूसरा असुरिया के सम्राट हुए। तिगलथ पिलेश्वर की तरह सरगन भी किसी राजकुल का न था। उसने ७२१ ई० पू० से ७०५ ई० तक राज किया।

सरगन के तख़्त पर बैठते ही समरिया (फिलस्तीन) में एक बहुत बड़ी बग़ावत हुई। वहां की आबादी यहूदी थी। सरगन ने समरिया पर हमला किया और वहां से ज़बरदस्ती २७,२९० आदमियों को सैकड़ों मील दूर मदियन (ईरान) के पहाड़ों पर बसा दिया। समरिया पर असुरी गवरनर मुक़र्रर कर दिया गया। उरार्तु के एक विद्रोह को भी सरगन ने बड़े कड़े हाथ से दमन किया।

बड़ी बड़ी इमारतों के बनाने में सरगन ने जो दिलचस्पी ली उतनी उससे पहले किसी असुरी सम्राट ने नहीं ली थी। पहले की कोई इमारत सरगन की इमारतों की विशालता को न पाती थी। बड़ी बड़ी फ़ौजी चढ़ाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का इन्तज़ाम करने में वह अपनी मिसाल न रखता था। बड़े बड़े और घमासान संग्रामों को वह पलक मारते जीत लेता था। हाकिम और विजेता की हैसियत से वह सचमुच महान था। तिगलथ पिलेश्वर तीसरे ने जिस साम्राज्य को क़ायम किया सरगन दूसरे ने उसे पक्का और मज़बूत किया।

सरगन के मरने पर उसके बेटे सेन्नाकेरिब (७०४-६८१ ई० पू०) ने बाप की जगह ली। बाबुल ने फिर असुरिया के ख़िलाफ़ एक ज़ोरदार बग़ावत हुई। सेन्नाकेरिब ने बाबुल पर हमला किया। तिगलथ पिलेश्वर शालमन ईश्वर या सरगन ने अपने किसी काम या किसी बात से बाबुल का कभी अपमान करने की कोशिश न की थी। वे सदा बाबुल के विद्वानों और वहां के मन्दिरों और देवताओं की इज़्ज़त करते रहे थे। असुरिया के सम्राट हर साल बाबुल जाकर पुराने क़ायदे के मुताबिक़ मारदूक का हाथ पकड़ते थे। और ठीक ठीक तरीक़े से मारदूक की पूजा करते थे। सेन्नाकेरिब ने अब पहली बार बाबुल के साथ सख़्ती करने की ज़रूरत महसूस की। बाबुल को फिर से जीतकर वहां के २,०० आदमियों को क़ैद करके वह असुरिया ले आया। वहां के ८९ शहरों और ८०० गाँवों को उसने ज़मीन में मिला दिया।

इसके बाद सेन्नाकेरिब पूरब में भी मीडिया (पच्छुमी ईरान) और पच्छिम में सुरिया, फ़िलस्तीन और फ़ीनीशिया की बग़ावतों को दमन करता हुआ मिस्र की सरहद तक पहुंच गया लेकिन यहां पर उसकी फ़ौज में हैजे की बीमारी फैल गई। जिससे वह मिस्र पर हमला न कर सका और वापस असुरिया लौट आया।

सन् ६८९ ई० पू० में बाबुल में फिर विद्रोह हुआ इस बार सेन्नाकेरिब ने अपना बदला लिया। राजर्स लिखता है—

"बाबुल के शहर को लूट लिया गया, आबादी को शहर से बाहर निकाल दिया गया। चहारदीवारी गिरा दी गई। इसके बाद शहर में आग लगा दी गई। बड़े बड़े महल और मन्दिर धू धू करके जल उठे। हज़ारों फ़लक की उन्नत और महान सभ्यता का वह शानदार केन्द्र राख का ढेर बन गया। इनसानी दस्तकारों के हज़ार हाथों ने उस समय तक ख़ूबसूरती ऐश्वर्य, कीर्ति, बड़प्पन और शान की जो ज़िन्दा मूर्ति बनाकर तय्यार की थी वह एक बहुत बड़े खण्डहर के रूप में दिखाई देने लगी। इसके बाद सदियों के ऐश्वर्य की बरबादी के इस ढेर के ऊपर फ़िरात नदी की धारा मोड़ दी गई जिससे पुरानी दुनिया का वह सबसे बड़ा शहर दलदल में बदल गया। बाबुल के देवता मारदूक को बाबुल से ले जाकर असुरिया की राजधानी में स्थापित कर दिया गया।"

मालूम होता है पुराने और अभिमानी बाबुलवाले कभी भी दूसरे के बड़प्पन को पूरी तरह न मान सके और न शायद कभी अपनी कमज़ोरियों पर उनकी निगाह गई। उनमें ज़िन्दगी को क़ायम रखनेवाली लचक और तब्दीली की ताक़त न रह गई थी। सेन्नाकेरिब के इस भयंकर बदले में एक बात साफ़ चमकती है। उसने सब शहरियों की जान बख़्श दी और उनके ख़ास देवता के मान को क़ायम रखा। आठ साल बाद सन् ६८१ ई० पू० में सेन्नाकेरिब के बेटों ने उसे मार डाला।

सेन्नाकेरिब के बाद उसका एक बेटा ईशर हद्दन गद्दी पर बैठा। कहते हैं बाबुल के नाश से ईशर हद्दन को बड़ा दुख था। वह बाबुल की पुरानी संस्कृति का भक्त था। उसे अपने बाप के कार्य पर पश्चाताप था। गद्दी पर बैठते ही बेहद धन ख़र्च करके उसने बाबुल को फिर से बनवाना और आबाद करना शुरू कर दिया। बाबुल फिर एक शहर की तरह दिखाई देने लगा और उसकी पुरानी आबादी अपने नए घरों में वापिस आ गई।

सन् ६७३ ई० पू० में ईशर हद्दन ने मिस्र पर हमला किया। फ़िलस्तीन पर उन दिनों असुरिया की हकूमत थी। लेकिन उससे बहुत अरसा पहले फ़िलस्तीन मिस्री साम्राज्य का एक हिस्सा रह चुका था। मिस्र के गौरव के दिन ख़त्म हो चुके थे। मिस्री कमज़ोर हो चुके थे, लेकिन साम्राज्य की चाह मिस्रियों के दिल से न गई थी। मिस्र के सम्राट बार बार फ़िलस्तीन के यहूदियों को असुरिया के ख़िलाफ़ उकसाते रहते थे। बग़ावतें होती रहती थीं और आए दिन असुरी सम्राट को उन बग़ावतों के दबाने के लिए फ़िलस्तीन जाना पड़ता था। असुरी सम्राट इन बग़ावतों के असली सबब को समझते थे। उन्होंने सीधा मिस्र पर हमला करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोची। ईशर हद्दन एक बहुत बड़ी सेना लेकर मिस्र की सरहद पर पहुंचा। इथियोपिया का एक हब्शी सरदार तिहरका उन दिनों मिस्र का पेरोए था। मिस्र के सम्राट के साथ असुरी सम्राटों का बहुत दिनों तक दोस्ती का व्यवहार रह चुका था। इसलिये ईशर हद्दन मिस्री पेरोए को केवल एक गम्भीर चेतावनी देकर मिस्र की सरहद से लौट आया। मिस्री पेरोए ने उस चेतावनी की ज़्यादह परवाह नहीं की।

सन् ६७० ई० पू० में ईशर हद्दन ने दोबारा मिस्र पर चढ़ाई की। इस बार बाज़ाब्ता लड़ाई हुई। तिहरका की सेना हारकर ज़िल्लत के साथ दक्खिन की तरफ़ भाग गई। असुरी फ़ौज मिस्र के अन्दर बढ़ती गई। उसने राजधानी मेम्फ़ी को चारों ओर से घेर लिया। बहुत दिनों तक घेरा जारी रहा। आख़ीर में मेम्फी नगर पर असुरी सेना का कब्ज़ा हो गया। मेम्फी के शहर को लूटने के बाद जलाकर ख़ाक कर दिया गया। हज़ारों बरस की सुन्दर इमारतें और पुरानी दस्तकारी के क़ीमती नमूने, करोड़ों बल्कि शायद अरबों का माल जलकर ख़ाक हो गया। दक्खिन में नूबिया तक ने ईशर हद्दन को अपना उचित राजा मान लिया। ईशर हद्दन बहुत सा लूट का माल लेकर, जिसमें ५५ मिस्री सम्राटों की मूर्तियां थी, नेचो नाम के एक मिस्री सरदार को असुरिया की तरफ़ से मिस्र का प्रधान गवरनर यानी गवरनर जनरल नियुक्त करके असुरिया लौट आया।

मिस्र से लौटकर उसने पूरब की तरफ़ निगाह डाली। वहां भी ईरान के उस हिस्से के छोटे छोटे राजा जो असुरिया के अधीन थे आए दिन बग़ावत करते रहते थे। ईशर हद्दन ने पटुशर्र के देश (देमावन्द) पर हमला किया और दो ईरानी राजाओं क्षेत्रपर्ण और अपर्ण को क़ैद कर लिया।

और ज़्यादह पूरब से झुंड के झुंड नीम जंगली ख़ाना बदोश लोग अपने देश को छोड़कर असुरिया के पूरबी प्रान्तों में बस रहे थे। ये लोग बराबर आगे बढ़ने की चेष्टा करते थे और असुरिया की फ़ौजें इन्हें सदा पीछे हटाती रहती थीं।

सन् ६६८ ई० पू० में ईशर हद्दन ने अपने एक बेटे असुर बनीपाल को असुरिया का युवराज बनाया और दूसरे बेटे शम्स शुन उकिन को बाबुल का राजा बना दिया। मिस्र में फिर कुछ विद्रोह हुआ। ईशर हद्दन एक बड़ी फ़ौज लेकर मिस्र के लिये रवाना हुआ। लेकिन ६६८ ई० पू० में मार्चेशवां महीने के दसवें दिन रास्ते ही में अचानक उसकी मृत्यु हो गई। बहैसियत सम्राट के ईशर हद्दन का रुतबा तिगलथ पिलेश्वर तीसरे और सरगन दूसरे के बराबर था। वह बहुत बड़ा विजेता था उसने असुरिया के हाथों में सब से बड़ा साम्राज्य छोड़ा। जिस मिस्र को सदियों तक असुरी ख़िराज़ देते रहे थे वही मिस्र आज असुरिया का एक मातहत सूबा था।

निनेवेह में उसने दो बड़े बड़े पक्के ख़ज़ाने बनवाए। एक में लाखों तरह तरह के हथियार जमा किये और दूसरे में हज़ारों मन सोना और चांदी। तबारिस और काला में उसने नए महल बनवाए। लेकिन उसका सबसे ज़बरदस्त और नेक काम बाबुल का फिर से बनवाना था। उसमें दया और क्रूरता का एक अजीब मेल था। बिला शुबह वह महान था।

पिता के बाद असुर बनीपाल निनेवेह में असुरिया की गद्दी पर बैठा। यह असुर बनीपाल नई नई पुस्तकें लिखवाने और दूर दूर के देशों से पुरानी किताबों का संग्रह करने के लिये मशहूर है। उसका पुस्तकालय अपने ज़माने का एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था।

असुर बनीपाल ने अपने बाप के काम को पूरा करने के लिए दो बार मिस्र पर चढ़ाई की। दूसरी बार सन् ६६७ ई० पू० में मिस्र के धार्मिक केन्द्र और हज़ारों साल की पुरानी राजधानी थीबी को उसने खूब लूटा। वहां के विशाल मन्दिर में अटूट धन सम्पत्ति भरी हुई थी। थीबी से सोने, चांदी और जवाहरात के ख़ज़ाने लादकर और मिस्र में अपने गवरनर मुक़र्रर करके वह निनेवेह लौट आया। थीबी की इस लूट का उस ज़माने के सारी सभ्य दुनिया पर बहुत गहरा असर पड़ा। पेरोए का महान मिस्र इस बार इस तरह पराजित और पददलित हुआ जिसकी किसी को स्वप्न में भी कल्पना न हो सकती थी।

सन् ६६० ई० पू० में मिस्र ने फिर अपने को आज़ाद ऐलान कर दिया। असुरिया के गवरनर मारकर भगा दिये गए। असुर बनीपाल ने यह सब सुना लेकिन अब उसकी तबियत मुल्क फ़तह करने की निस्बत साहित्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ई १९४६]

...ज़्यादह थी। उसने मिस्र को फिर से विजय करने ...कोई कोशिश नहीं की।

धीरे धीरे उरार्तु (आजकल का आरमीनिया) के ...ने भी अपने को असुरिया के शासन से आज़ाद ...कर दिया। असुर बनीपाल ने फ़ौरन उरार्तु के ...की आज़ादी को मानकर उसके साथ भी दोस्ती ...बराबरी का बर्ताव शुरू कर दिया।

असुर बनीपाल ने अब अपना सारा वक़्त अपने ...कालय को बढ़ाने में देना शुरू किया। इस ...कालय को वह अपने साम्राज्य से कहीं ज़्यादह ...समझता था। बाबुल और दूसरे शहरों के तमाम ...कालयों से पुराने और नए ग्रन्थ निनेवेह लाए जाते ...वहां उनकी नक़लें करने के बाद उन्हें फिर उसी ...लौटा दिया जाता था। चिकनी नरम मिट्टी की ...पतली तख़्तियां बनवाकर उन पर ये ग्रन्थ लिखे ...। इसीलिये आग लगने और शहरों के नष्ट होने ...भी ये तख़्तियाँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। यह ...कालय कोई मामूली पुस्तकालय न था। इस ...कालय में उसने गणित, ज्योतिष, दर्शन, धर्म, ...कविता, इतिहास, विज्ञान वगैरह के हज़ारों ...जमा किये। उन ग्रन्थों पर उसने बड़े बड़े विद्वानों ...भूमिकाएँ, ग्रन्थ का वर्णन, तिथिक्रम, और बड़ी बड़ी ...लिखवाईं। इस तरह के हज़ारों पुराने ग्रन्थों ...अलावा उसने विद्वानों को नियत करके उनसे हर ...के हज़ारों ही नए ग्रन्थ लिखवाए।

राजर्स लिखता है—

"साहित्य और दस्तकारी की तरक्की के लिए असुर ...का ज़माना अद्वितीय था। मन्दिरों को बड़ा ...गया। वह पहले से कहीं ऊँचे, कहीं शानदार, ...सुन्दर और कहीं ज़्यादा मालदार बनाए गए। हर ...की साइन्स चाहे वह ज्योतिष हो या गणित तरक्की ...शिखर पर पहुंची। गीत और कहानी, धर्म और ...व्याकरण और कोष पर नए सुरुचिपूर्ण तर्ज़ और ...परिपाटी की उत्तम से उत्तम पुस्तकें लिखाई गईं। ...असुरिया वाले जब इन पुस्तकों को देखते थे तो उनका ...गर्व से ऊपर उठ जाता था।.....दुनिया के हर ...में असुरिया के व्यापारी दिखाई देते थे और बेहिसाब तेज़ी से असुरिया में धन और दौलत बढ़ रही थी।"

लेकिन राजनैतिक खयाल से असुरिया की ताक़त तेज़ी से कमज़ोर हो रही थी। साम्राज्य टूट रहा था। मिस्र और उरार्तु असुरिया के हाथ से निकल चुके थे। सुरिया और फ़िलस्तीन क़रीब क़रीब आज़ाद हो गए थे। बाबुल भी नाम मात्र को ही असुरिया के मातहत था। पूरब की तरफ मीडिया देश के ईरानियों की ताकत बढ़ रही थी। असुरिया की राजनैतिक कमज़ोरी से फ़ायदा उठा कर हो सके तो असुरिया पर ईरानी साम्राज्य कायम करने की लालसा उनमें पैदा हो चुकी थी।

सन् ६२६ ई० पू० में असुर बनी पाल के मरते ही असुरी साम्राज्य में और ज़्यादह अराजकता फैल गई। बहुत से मातहत प्रान्तों ने अपनी अपनी आज़ादी का ऐलान कर दिया। कई कमज़ोर सम्राटों के बाद शिन शार इश्कुम असुरिया के तख़्त पर बैठा। उसके ज़माने में उत्तर पूरब से शकों ने एक भयंकर हमला किया। उत्तर ईरान से लेकर रोम सागर तक के अनेक देश इनके हमलों से बरबाद हो गए। असुरिया की ताक़त तो कमज़ोर हो ही रही थी और रही सही शकों के हमलों से जर्जर हो गई।

ईरान के मीडिया प्रान्त पर उवक्षत्र राज कर रह था। दो बार वह असुरिया पर हमला कर चुका था। तीसरी बार हमला करने की उसने तय्यारियां शुरू कीं। बाबुल का राजा और इलाम का राजा भी उससे मिल गए। दक्खिन से इलामी और बाबुली फ़ौजों और पूरब से ईरानी फ़ौजों ने एक साथ निवेवेह पर हमला किया।

शिनसार इश्कुम ने दोनों तरफ़ के हमलों का बहादुरी से मुक़ाबला किया। उसने अपने मशहूर सेनापति नवपलेश्वर को बाबुल और इलाम की फ़ौजों के मुक़ाबले के लिये दक्खिन भेजा और ख़ुद राजधानी में रहकर ईरानी फ़ौजों के मुक़ाबले की तय्यारी की।

नवपलेश्वर एक क़ाबिल सेनापति और चलता हुआ दरबारी था। वह असुरिया के दुश्मनों से मिल गया। उवक्षत्र ने उससे वादा कर लिया कि फ़तह के बाद नवपलेश्वर को बाबुल की और असुरिया के दूसरे दक्खिनी प्रान्तों की हुकूमत दे दी जायगी। उवक्षत्र ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बेटी अमिति की शादी नबुपलेश्वर के बेटे नबु कुदुर्रि असुर (या नबुकुदर्रेश्वर) के साथ कर दी।

नबुपलेश्वर ने अपनी सारी फ़ौजें अपने बेटे के अधीन जो अब उवक्षत्र का दामाद था, उवक्षत्र की मदद के लिये भेज दीं और खुद बाबुल जाकर वहाँ की गद्दी पर एक आज़ाद शासक की हैसियत से बैठ गया।

उवक्षत्र ने निनेवेह को जाकर घेर लिया। दो साल तक मोहासरा चला। आख़ीर में राजर्स लिखता है—"ऐसी लज्जाजनक घटना असुरिया के इतिहास में कभी न हुई थी। निनेवेह की शहर पनाह से ज़्यादह मज़बूत दीवारें दुनिया में कहीं नहीं थीं न अपनी रक्षा के इतने बेअन्त साधन ही किसी शहर के पास थे। मीडिया वालों के दीवार तोड़ने के औज़ार बिलकुल बेकार साबित हुए। शहर पनाह के अन्दर एक ऐसी फ़ौज के बचे हुए लोग थे जिसने बड़े से बड़े दुश्मनों के ख़िलाफ़ सैकड़ों मैदानों में लड़ाइयां जीती थीं। फिर भी निनेवेह को अपने तईं मीडिया वालों के हाथों में सौंप देना पड़ा। निनेवेह को बुरी तरह लूटा गया। एक एक इंच चीज़ खोज खोजकर हमला करने वालों ने हथिया ली। क़त्लेआम शुरू हो गया। इसके बाद शहर में आग लगा दी गई। आख़री असुरी सम्राट शिनसार इस्कुन असुरिया के सारे वैभव और ऐश्वर्य के साथ अपने महल की लपटों में जलकर ख़ाक हो गया।" कुछ इतिहास लेखक यह भी लिखते हैं कि दजला नदी की भयंकर बाढ़ से निनेवेह की शहर पनाह दो मील तक टूट कर बह गई और इसी टूटी हुई दीवार के रास्ते जाकर सन् ६०६ ई० पू० में ईरानियों ने निनेवेह को क़ब्ज़ा कर लिया।

असुरी साम्राज्य उवक्षत्र और नबुपलेश्वर में आधा आधा बंट गया। उत्तर का हिस्सा ईरानियों को मिला और दक्खिनी हिस्से पर नबुपलेश्वर का क़ब्ज़ा हो गया।

ज्वार भर आया !

श्री महेन्द्र भटनागर

नदी में ज्वार भर आया !

प्रभंजन वेग सा स्वर कर,
नदी में ज्वार भर आया !
प्रलय हिल्लोल ऊँची आ
निलय मुख चूमने प्रतिपल
उठी बढ़ कर
सतत क्रम चल रहा अविरल।
किनारे टूटते जाते,
शिलाएँ बह रही हैं साथ
भू को काटती
गहरी बनातीं घाटियाँ जातीं
अमित लहरें बनी तलवार
आकर एक के उपरान्त
नहीं हो शान्त
दृढ़तम तीव्र
लहर-लहर हहर कर आज।
हर मैदान, पर्वत, वन,
नगर औ गाँव पर
यह दौड़ती सरिता,
कि मानो लिख रहा कवि वेग से कविता—
बुलाता क्रान्ति की घड़ियाँ,
भयङ्कर नाश का तूफ़ान,
जन-विद्रोह,
भीषण आग,
ऐसे गान की आँधी सरी का ज्वार
भर आया !
नदी में ज्वार भर आया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेक्सिको का संक्षिप्त इतिहास

स्व० पण्डित पुरुषोत्तम लाल

यह रचना आज से आधी सदी पहले जोधपुर के स्व० पण्डित पुरुषोत्तम लाल जी ने तय्यार की थी। अभी तक यह अप्रकाशित पड़ी थी। उनकी कन्या श्रीमती नीमावती देवी ने इसे हमारे पास प्रकाशन के लिये भेजा है। हम ज्यों का त्यों इसे यहां दे रहे हैं। —सम्पादक

मेक्सिको की स्थिति तथा भौगोलिक रचना

मेक्सिको प्रदेश की विस्तृत सीमा यों तो पाठकों ने संसार के मान चित्र में देखी ही होगी, परन्तु जिस मुख्य स्थान में प्राचीन मेक्सिकन निवास करते थे वह इस देश का एक छोटा सा भाग है। उत्तरी अमेरिका के दक्षिण भाग में दो महासागरों के मध्य एटलांटिक महासागर के तट की ओर १८° से २१° तक तथा प्रशान्त महासागर की ओर १४° से १९° उत्तर आक्षांश के मध्य 'अनाहुक' नामी एक विस्तृत मैदान है। इस क्षेत्र की भूमि समुद्र के धरातल से ७५०० फीट ऊँची और अंडाकार रूप में चारों ओर ऊँची पहाड़ियों से घिरी है जिसका क्षेत्रफल लगभग ७०० वर्ग मील है।

ऐसा प्रतीत होता है मानो इस छोटे से भू-खण्ड की रचना में प्रकृति ने अपनी सपूर्ण कला दिखा देने का प्रयत्न किया है। क्यों कि इस प्रदेश में विषुवत रेखा के उष्ण स्थानों से लेकर ध्रुव जैसे शीत प्रधान स्थानों तक का जलवायु होने के कारण सभी प्रकार के पशु पक्षी, पैदावार तथा खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इस क्षेत्र का दसवां भाग पाँच अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तीर्ण जलाशयों से ढका हुआ है और इसके चारों ओर ऊंची ऊंची पहाड़ियाँ हरे भरे वृक्षों से आच्छादित ऐसी मनोहर लगती हैं मानो इस विचित्र भू-भाग की रक्षा के लिये प्रकृति ने इसके चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर बना दी हो। इन जलाशयों अथवा झीलों के किनारे किनारे अनेक सुन्दर बस्तियाँ हैं और इन्हींमें एक बड़ी झील के बीच एक टापू पर 'मेक्सिको का प्रथम ऐतिहासिक नगर बसा हुआ है।

ऊष्ण कटिबन्ध में स्थित होने पर भी इस स्थान का जलवायु अत्यन्त आनन्ददायक है परन्तु यहां तक पहुँचने के लिए यात्री को अनेक प्रकार के कष्टप्रद जलवायु का सामना करना पड़ता है। उसे पहले तो एटलांटिक महासागर के भयंकर ऊष्ण तट, फिर इंगलैंड जैसे ठंडे प्रदेश और तदुपरान्त रूस तथा नारवे के समान ऐसे शीत प्रधान स्थानों को पार करना पड़ता है जहाँ पृथ्वी वर्ष भर बर्फ से ढकी रहती है। पाठक स्वयं अनुमान कर सकेंगे कि जहां प्रकृति इस प्रकार पग पग पर अपना रूप बदलती चली गई हो वहाँ के निवासियों को पैदावार की दृष्टि से किस वस्तु की कमी रहती होगी। मेक्सिकनों को विभिन्न प्रकार के अन्न, मेवे, मसाले तथा फल-फूल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। यहां संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसके लिये ये लोग अन्य देशों के अपेक्षित हों। शीतल सुखद जलवायु तथा बहुमूल्य उपज के साथ ही साथ यहाँ की भूमि खनिज पदार्थों से भी परिपूर्ण है।

मेक्सिको के निवासी

लगभग ११०० वर्ष हुए 'टालटेक्स' नामक एक जाति, उत्तर की ओर से, इस घाटी में आकर बसी थी। यद्यपि इस विचित्र जाति की जन्म भूमि तथा वास्तविक निकास के विषय में कुछ प्रमाण नहीं मिला है परन्तु यह निश्चित है कि वह असभ्य नहीं थी। यहाँ बसने के पश्चात् इसने खेती की, नगर बसाए, मन्दिर बनाए, कलों का आविष्कार किया और बड़ी सभ्यता पूर्वक इस प्रदेश पर बहुत काल तक शासन करती रही। योरुप वालों की अपेक्षा 'टालटेक्स' लोगों ने सुगम रूप से समय का विभाग दिन, मास तथा वर्षों में किया किन्तु लगभग ४०० वर्ष तक इस प्रकार शासन करने पर भी यह जाति ऐसी शान्ति पूर्वक इस देश से लुप्त हो गई जिस प्रकार कि इसमें आई थी। टालटेक्स के प्रस्थान के अनन्तर, लगभग सौ वर्ष पीछे एक दूसरी जाति पश्चिम की ओर से इस घाटी में प्रविष्ट हुई किन्तु वह भली भाँति इसमें बसने भी न पाई थी कि एक अन्य अर्द्ध सभ्य जाति ने इसका पीछा किया और अन्त में उस पर विजय प्राप्त कर ली।

अनुमान से ऐसा ज्ञात हुआ है कि इस अर्द्ध सभ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति का निकास 'टालटेक्स' जाति से ही था। इसमें दो शाखाएं अधिक प्रसिद्ध थीं। एक 'एज़्टेक्स' अथवा 'मेक्सिकन' और दूसरे 'टेज्केकन'। 'एज़्टेक्स' जाति ने उक्त झील के टापू पर मेक्सिको नगर बसाया तथा इसी झील के पूर्वी किनारे की ओर टेज्केकन वंश ने 'टेज़्कुको' नगर की नींव डाली। इन दोनों नगरों का निर्माण काल सन् १३२५ ईस्वी माना जाता है।

इन दोनों वंशों की राज्य-सीमा पृथक होने पर भी इनमें परस्पर मेल था और एक दूसरे की सहायता के लिये सदा तत्पर रहते थे। इसी कारण थोड़े समय में ही इन्होंने इस भू प्रदेश की अन्य जातियों पर विजय प्राप्त कर ली। किन्तु इन दोनों वंशों में से भी धीरे धीरे मेक्सिकन जाति की शक्ति बढ़ने लगी। मेक्सिको नगर भी 'टेज़्कुको' की अपेक्षा धन-वैभव में बहुत बढ़ चढ़ गया, यहाँ तक कि सुदूर भागों के राजा और शासक मेक्सिको के सम्राट के अधीन होकर उसे कर देने लगे। अनाहक क्षेत्र की सम्पूर्ण धन-राशि धारा रूप में प्रवाहित होकर मेक्सिको के राज-कोष रूपी जलाशय में एकत्र होने लगी।

शासन तथा राज्य-वैभव

उपयुर्क्त उन्नति मेक्सिको साम्राज्य को अपने सम्राट 'मोटे ज़मान' प्रथम के शासन काल में प्राप्त हुई जो सन् १५०२ ईस्वी में गद्दी पर बैठा था। अपने वंश में मोटे ज़मान सर्वोत्तम, शक्तिशाली तथा वैभव शाली सम्राट हुआ है। इसने अनेक युद्ध जीते, कई देश अधीन कर उन पर अत्यन्त कठोर शासन किया। यद्यपि यह सम्राट बुद्धिमान, दूरदर्शी, तेजस्वी तथा उदार शासक था किन्तु अन्धविश्वास और धार्मिक कट्टरता के कारण हृदयहीन तथा अविश्वासी हो गया था।

इसके राज्य में छोटे छोटे अपराधों पर प्राण दण्ड दे देना एक साधारण सी बात थी। न्यायालय के नियम बड़े ही कठोर थे। राजा अपने आपको देवता रूप मान कर प्रजा को अपने प्रति श्रद्धा भक्ति दिखाने के लिये विवश करता था। मोटे ज़मान का आतंक धीरे धीरे यहां तक फैला कि प्रजा इसके नाम से काँपने लगी। जहां कभी यह बाहर निकलता लोग कपड़ों से अपना मुंह ढक लेते थे जिसका आशय यह था कि वे अपने शासक के तेज को सहन करने में असमर्थ हैं।

मेक्सिको के राज-कोष में अटूट चाँदी, सोना, मणिरत्न आदि भरे थे। राज प्रासाद सुदृढ़, सुविशाल और सुख-सामग्री से परिपूर्ण थे। असंख्य दास-दासी रात दिन इस सम्राट की सेवा में तत्पर रहते थे। राज्य-कर बहुत भारी थे। लगभग प्रत्येक घरू सामान पर कर की टेक्स देना पड़ता था। किसानों के कर भी अधिक थे। पराजित राज्यों से प्रति वर्ष सैकड़ों थान ज़री के सहस्रों गज़ रेशमी कपड़ा, बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र, सोने की ईंटे, (आकार में ९" × ४" × २" होती थीं) पशुओं के बने हुए अत्यन्त सुन्दर तथा विचित्र प्रकार के वस्त्र यहां की एक अनोखी कला थी, लकड़ी का खूबसूरत क़ीमती सामान, जंगली जानवरों की खालें, मेवे, मिठाइयां, सोने की बुलाकें, नथें, बालियां, कहवा, पकी पकाई रोटियां, मणि-रत्नों से भरे थाल, रुई, सूती वस्त्र, स्वर्ण-भस्म, चूना, काग़ज़, सोने की अँगूठियाँ, ताज मुकुट इत्यादि अनेकानेक प्रकार की उत्तमोत्तम वस्तुएं दूर दूर से भेंट-स्वरूप सम्राट मोटे ज़मान के पास आया करती थीं।

राज-मन्त्री तथा अन्य सर्दार भी इस राज्य में बड़ी ठाठ बाट से रहते थे। किसी शासक की मृत्यु होने पर इन सर्दारों को मृत राजा के परिवार में से (उसके पुत्र, पौत्र, भाई अथवा भतीजे में से जिसे ये योग्य समझें) अपना राजा चुनने का अधिकार था। किन्तु जब तक यह राजा युद्ध में यश प्राप्त न कर लेता और राज्याभिषेक के अवसर पर बलिदान के लिये बहुत से बन्दी अपने साथ न ले आता इसको शासनाधिकार नहीं दिये जाते थे।

अन्य सभ्य देशों के समान यहाँ भी राज्याभिषेक के समय बड़े बड़े उत्सव मनाए जाते और तरह तरह के धार्मिक कृत्य (पूजा-पाठ इत्यादि) होते थे। पर यह सब उसी समय सम्भव था जबकि राजा युद्ध में यशस्वी होकर लौटता और अपने साथ असंख्य बन्दी शुभावसर पर बलिदान के निमित्त लाता। बलिदानों की संख्या के अनुसार ही राजा के भाग्य तथा देश के लिये उसके शुभाशुभ होने का अनुमान लगाया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन प्रबन्ध

मेक्सिको देश का शासन अत्यन्त सुव्यस्थित और प्रशंसनीय था। यद्यपि राज-नियम अधिक कठोर थे किन्तु देश-काल की परिस्थिति को देखते हुए अनुचित नहीं थे। चोर, घूसख़ोर हाकिम, दुराचारी, नशेबाज़, अपव्ययी और धोखेबाज़ व्यक्तियों को प्राण दंड दिया जाता था। नाबालिग़ स्वामी के ऐसे संरक्षक तथा अभिभावक को भी मृत्यु दण्ड मिलता था जो अपने स्वामी के धन का दुरुपयोग करता अथवा उसका हिसाब ठीक न रखता हो। ये नियम यद्यपि अत्यन्त कठोर समझे जाते हैं किन्तु इनके परिणाम स्वरूप मेक्सिकन घरों में सार्वजनिक कुन्डे का रिवाज न था, न पर्दे की प्रथा ही थी। न्याय उचित ढङ्ग से होता था। नीचे के उदाहरण से पाठकों को मेक्सिकन तथा टेज़्केकन न्याय का कुछ आभास मिल सकेगा—

'टेज़्कुको' नगर में राज-प्रासाद के विशाल प्रांगण के सामने दो बड़े भवन थे। इनमें से बड़ा भवन ईश्वरीय न्यायालय कहलाता था। इसमें एक ओर सोने की ठोस, रत्न जटित चौकी बिछी रहती थी। इस चौकी के सामने सोने की जड़ाऊ तिपाई पर एक नर खोपड़ी रक्खी रहती थी जिसके ऊपर मुकुट के स्थान पर बहुत बड़ा पन्ना (रत्न) जगमगाता रहता था। इसके आस पास अनेक अस्त्र-शस्त्र, सोने चांदी के खिलौने, खिलौने और रंग बिरंगे सुन्दर बहुमूल्य मोरछल आदि सजावट के लिए रक्खे जाते थे। भवन की दीवारें सोने की कीलों और जंजीरों से लटकती हुई जंगली जानवरों की खालों में ढकी रहती थीं। इनके ऊपर कारचोबी काम का रेशम और परों से बना हुआ ऐसा शामयाना तना रहता था जिसके किनारों पर मणियों की झालरें लटकी रहती थीं। स्वर्ण-चौकी के दोनों ओर अत्यन्त सुगन्धित मोम-बत्तियाँ जला करती थीं जिनकी सुगन्धि से सारा कमरा महक जाता था और इनके प्रकाश से कमरे की जगमगाहट सहस्रों गुना बढ़ जाती थी।

इस ईश्वरीय सिंहासन के सामने वैसा ही एक दूसरा सिंहासन और था जिसका मूल्य ईश्वरीय सिंहासन के बराबर तो नहीं किन्तु इसकी सजावट आदि सब उसीके समान थी, बिछा रहता था। यह राज-सिंहासन था। इसी सिंहासन अथवा चौकी पर बैठकर टेज़्कुको का शासक मृत्यु दण्ड के अपराधों का निर्णय करता था। अभियोग की पूर्ण रूप से जांच करने के पश्चात जब न्यायाधीश (सम्राट) किसी को मृत्यु दण्ड सुनाता तो वह अपने सिंहासन से नीचे उतर कर ईश्वरीय सिंहासन की ओर बहुत सम्मान पूर्वक धीरे धीरे बढ़ता, और इसके पीछे पीछे अन्य चौदह सर्दार, जो इस निर्णय में सम्मिलित होते थे, हाथ बांधे हुए अत्यन्त गम्भीर आकृति बनाए हुए चलते थे। बड़ी चौकी के पास पहुंच कर सम्राट अपना राज मुकुट उतार कर चौकी पर रख देता और अन्य सर्दार भी अपनी अपनी पगड़ियाँ हाथों में लेकर शान्ति पूर्वक खड़े हो जाते थे। ईश्वरीय सिंहासन को प्रणाम करके सम्राट अभियुक्त और उसके विपक्षी की ओर देखता जिसका आशय यह था कि यदि इस सम्बन्ध में अब भी किसी को कुछ कहना हो तो कहे। तत्पश्चात् वह खोपड़ी के आगे से एक तीर (बाण) उठाकर अपने बाएं हाथ में लेता और अपना दाहिना हाथ खोपड़ी पर रखकर अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक बोलता "मैं अमुक, बेटा अमुक इस देश का शासक ईश्वर को सर्व व्यापक तथा सर्वान्तर्यामी जानते हुए अमुक व्यक्ति, बेटा अमुक को अमुक अपराध के लिये, जो मेरे विचार से इस पर पूर्ण रूप से लागू होता है, मृत्यु दण्ड देता हूँ।" इन वाक्यों के समाप्त होते ही सम्राट की आज्ञा का पालन हो जाता था।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रगुप्त मौर्य के इतिहास पर नवीन प्रकाश

श्री बुद्ध प्रकाश एम० ए०

चन्द्रगुप्त मौर्य का भारतीय इतिहास में अद्वितीय महत्व है। उन्होंने भारत भूमि को यूनानियों से स्वतन्त्र ही नहीं किया वरन् इस देश और संस्कृति के विच्छिन्न सूत्रों को संकलित करके एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण किया जिसकी छत्रछाया में भारतीय सभ्यता की ज्योति समस्त सभ्य भूमण्डल को प्रदीप्ति करने लगी। इतिहास के इस महान निर्माता का प्रभाव जन-समाज पर इतना अधिक पड़ा कि उसने उन्हें इतिवृत्त की शुष्क और संकीर्ण परिधि से ऊपर कल्पना और किंवदन्तियों के लोक में प्रतिष्ठित किया। भारतीय जन समाज के प्रत्येक वर्ग ने ब्राह्मणों, बौद्धों, जैनों—सभी ने उनके विषय में अनेक अनुश्रुतियों को सुरक्षित रक्खा जो नितान्त विभिन्न होने पर भी सुदृढ़ ऐतिहासिक आधार शिला पर स्थित हैं। कुछ ऐसी अनुश्रुति एक फ़ारसी के ग्रन्थ मजमुल-उत्-तवारीख़ में संग्रहीत हैं जिसे रेनो ने फ्रेंच भाषा में अनूदित किया था। फ्रेंच अनुवाद के एक विशिष्ट भाग को सर एच० एम० इलियट ने अपने 'हिस्ट्री आफ़ इन्डिया एज़ टोल्ड बाइ हर ओन हिस्टोरियनस्' के प्रथम भाग में भाषान्तरित किया है। अनुवाद का यह भाग किसी संस्कृत ग्रन्थ पर आधारित है जो रेनो के मतानुसार ईसवी संवत् के प्रारम्भ-काल में लिखा गया था और जो राजतरङ्गिणी और शायद महाभारत से भी पुराना है।

अतः यह अनुमान स्वाभाविक है कि ग्रन्थ में कुछ वास्तविक ऐतिहासिक अनुश्रुतियों का संग्रह है और विशेषतः मौर्य काल के सम्बन्ध में जो लिखा गया है वह तो बहुत कुछ सत्य ही है क्योंकि लेखक का काल मौर्य काल के निकट ही था। तथापि जिस रूप में तवारीख हमारे सामने है उसमें विभिन्न ऐतिहासिक कालों की जन-श्रुतियों को जोड़-जाड़कर एक धारावाहिक तारतम्य स्थापित किया गया है। परन्तु फिर भी इसमें कुछ ऐसे प्रच्छन्न संकेत अवश्य हैं जिनमे भारतीय इतिहास के कितने ही अस्पष्ट पन्नों पर प्रकाश पड़ता है। गुप्त वंश के महाराज रामगुप्त का इतिवृत्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की शक-विजय तथा राज्य-प्राप्ति का इसमें सविस्तार वर्णन है। यहाँ हमें एक और संकेत पर विचार करना है, जिसकी ओर विद्वानों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया है, और जो सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में प्रतीत होता है।

तवारीख में लिखा है कि "सैद देश में तीन राजा हुए। अन्त में हिन्दुओं का समस्त प्रदेश राजा 'कफन्द' के राज्य के अन्तर्गत आ गया, जिसे उसने अपने पराक्रम से प्राप्त किया। एक ब्राह्मण ने उसे आशीर्वाद दिया था और कहा था कि समस्त प्रभुत्व' उसके हाथ में आ जाएगा।[1]

मेरे मतानुसार 'कफन्द' चन्द्रगुप्त का संक्षिप्त उच्चारण नामान्तर है और निम्नलिखित स्थापनाओं के फलस्वरूप मैं उसे मौर्य-वंश का यशस्वी प्रवर्त्तक समझता हूँ।

(१) कफन्द को, जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, एक ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया था और कहा था कि वह समस्त भारत भूमि का स्वामी होगा। यह निश्चित और निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त ने प्रसिद्ध ब्राह्मण राजनीतिज्ञ विष्णुगुप्त कौटिल्य की प्रेरणा और प्रज्ञा से मगध का साम्राज्य प्राप्त किया था।[2]

---

१. इलियट और डाडसन : हिस्ट्री आफ इन्डिया जिल्द १, पृष्ठ १०८

२. देखिए :—

(i) विष्णु पुराण (४,२४) कौटिल्य एवं चन्द्रगुप्त
राज्येऽभिषेक्ष्यति।

(ii) कामन्दकीय नीतिसार (प्रस्तावना) एकाकी
मंत्रशक्त्या यश्शक्त्या शक्तिधरोयमः।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम्।

(iii) हेमचन्द्र कृत परिशिष्ट पर्व (८,३७६२ श्लोक)
चक्रे समर्थमर्घेन तेन मौर्यं चणिप्रसूः।
धिया निधिरमात्यो हि कामधेनुर्महीभुजाम्

(iv) मुद्राराक्षस (द्वितीय अङ्क)
अस्तित तावत्.....चाणक्य मति
परिगृहीतैश्चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वरबलैरदधिम्
समन्तादुपरुद्धं।

(v) महावंश (५, १६—१७) आनन्द कौसल्यायन का हिन्दी अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मई १९४१]

(२) तवारीख़ में चन्द्रगुप्त के असंस्कृत रूप पर ज़ोर दिया गया है। 'यह कफन्द हिन्दू नहीं था'[3]। जस्टिन ने भी चन्द्रगुप्त की निम्न व्युत्पत्ति का वर्णन किया है और 'मुद्राराक्षस' तथा विष्णुपुराण' की टीका में उसे वृषल कहा गया है। यद्यपि डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ के मतानुसार[4] यह शब्द यूनानी शब्द बसिलियस् का संस्कृत रूपान्तर है और किसी तरह भी नीचत्व का द्योतक नहीं है और यद्यपि बौद्ध साहित्य में उसे हिमवलिवन के 'मोरियों' का वंशज कहा गया है जो दीघनिकाय के महापरिनिब्बान सुत्तान्त के अनुसार क्षत्रिय होने के नाते भगवान बुद्ध की शरीर-भस्म के हिस्सेदार बने थे; यह बात विवाद-रहित है कि चन्द्रगुप्त हिन्दुओं के विशुद्ध रूढ़िबद्ध समाज से बाहर थे।

(३) तवारीख़ में कफन्द को सिकन्दर-आज़म का समकालीन बताया गया है। प्लूटार्क ने भी लिखा है कि सैन्द्रोकोतस् ने युवावस्था में सिकन्दर के दर्शन किए थे[5]। चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर की समकालीनता इतनी स्वतः-प्रमाणित है कि इस विषय की विशेष विवेचना करना अपेक्षित नहीं है।

(४) तवारीख़ में लिखा है "कफन्द को कुछ स्वप्न दिखाई दिए जिनका अर्थ उसने ब्राह्मण से पूछा।"[6] जस्टिन ने भी इस बात की चर्चा की है कि चन्द्रगुप्त को साम्राज्य प्राप्त करने की प्रेरणा दैवी संकेतों से मिली। उसने लिखा है[7]: "जब वह (सेन्द्रोकोतस) थककर गहरी नींद में सो रहा था एक बड़ा शेर उसके पास आकर उसका पसीना चाटने लगा और जब, वह उठा, शेर में वहां से चला गया। यह प्रथम शगुन था जिसने उसे राज्य प्राप्ति के लिए प्रेरित किया।"

(५) तवारीख़ में कफन्द को सम्पूर्ण भारत का साम्राज्य स्थापित करने का श्रेय दिया गया है। चन्द्र प्रथम ऐतिहासिक सम्राट माने जाते हैं जिन्होंने भारत के विच्छिन्न राज्यों को एक केन्द्रीय साम्राज्य विधान में गुंफित किया था।

उक्त कारणों से तवारीख़ के कफन्द और चन्द्रगुप्त मौर्य की एकता प्रतिपादित होती है। इस स्थापना की आधारशिला पर स्थित होकर चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में जो नवीन सूचना मिलती है उसे हम संक्षेपतः लिपिबद्ध करते हैं।

चन्द्रगुप्त मानव-समाज का जन्म-जात नेता था। उसने जनता को अपने प्रशस्त वंश तथा भव्य पितृत्व से आकर्षित नहीं किया बल्कि अपने सुचारु चरित्र और राष्ट्रीय भावना से भारतीय जन समाज को प्रभावित किया। "उसकी साधु वृत्ति और न्यायशीलता से सब उसके अधीन हो गये। उसने अपनी ओजस्विनी वाणी और वाक्पुटता से जनसमाज की राष्ट्रीय तथा धार्मिक भावनाओं को जाग्रत कर दिया।"[8] राज-सत्ता के सारे इच्छुकों की तरह उसने सत्य और धर्म के पक्ष को महत्व दिया जो उसके मतानुसार, कुछ यूनानी विदेशियों के कारण और कुछ नन्दों के लोभ और शोषण के परिणामस्वरूप, पददलित हो गया था। जैसा कि तवारीख़ में लिखा है "उसने लोगों का उत्साह बढ़ाया और उसे अपने कृत्यों में चरितार्थ किया। चन्द्रगुप्त के गुरु कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि राजा को अपनी सेनाओं का इस प्रकार उत्साह बढ़ाना चाहिए "तुल्य वेतनोऽस्मि, भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यं, मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्यः वेतेष्वप्यनुश्रूयते समाप्त-दक्षिणानां यज्ञानामवभृतेषु सा तेषां गीतर्या शूरस्य।"[9] हमने अभी प्लूटार्क के कथन की समीक्षा की है कि चन्द्रगुप्त सिकन्दर से पञ्जाब में मिला था। स्पष्टतः उसका ध्येय मगध-विजय के लिए सिकन्दर की सहायता प्राप्त करना था। प्लूटार्क ने स्वयं इस तथ्य की ओर निर्देश किया है। उसने लिखा है कि चन्द्रगुप्त कहा करता था कि सिकन्दर के लिए भारत पर अधिकार प्राप्त कर लेना कठिन नहीं था क्योंकि प्रजा नन्द राजा से घृणा करती थी क्योंकि वे नीच वंश और निम्न मनोवृत्ति

---

३. इलियट और डाडसन : वही पृ० १०८
४. इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (१९४१) मेक्रिण्डिल : इन्वेज़न आफ इन्डिया बाई एलेक्ज़ेन्डर दि ग्रेट पृष्ठ ३११।
५. इलियट और डाडसन : वही पृ० १०८
६. मेक्रिण्डिल : वही पृष्ठ ३२८

८—इलियट और डाडसन : वही
९—कौटिल्य अर्थशास्त्रम्, आर० श्यामशास्त्री का संस्करण पृष्ठ ३६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पुरुष थे।[१०] इस अंश की समीक्षा करते हुये डाक्टर हेमचन्द्र रायचौधरी ने लिखा है "इस अंश से यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर को मगध के नृशंस राजा के विनाश के लिए उद्यत करने के उद्देश्य से, उससे भेंट की।"[११] इस प्रकार सिकन्दर से मेल करने के लिए चन्द्रगुप्त ने उसे सरल विजय का ही लोभ नहीं दिया होगा बल्कि उसे समुचित प्राभृत और संधि प्रस्ताव से अपनी ओर करने का प्रयत्न किया होगा। यहाँ तवारीख़ से बहुत मूल्यवान सूचना प्राप्त होती है। उसने (चन्द्रगुप्त ने) सिकन्दर से सुलह करनी चाही और अपनी कन्या, एक बुद्धिमान दार्शनिक और एक कांच की सुराही उसे भेंट की।"[१२] इस उक्ति का अर्थ स्पष्ट है और सिकन्दर को भारतीय चिकित्सकों और दार्शनिकों से जो स्नेह था उससे इसकी पर्याप्त पुष्टि होती है। सिकन्दर ने ओनेसीक्रतु के द्वारा दाण्डन्यन (डान्डामिस) को जो आमंत्रण दिया था और उसने जो प्रत्युत्तर दिया था वह सिकन्दर के विद्यानुराग का परिचायक है। उसके केम्प में भी भारतीय चिकित्सक रहते थे। जहाँ तक विवाह सम्बन्ध का प्रश्न है, यह सिकन्दर की दृष्टि में पूर्व में यूनानी संस्कृति के प्रचार करने का मुख्य साधन था। उसी दृष्टि से उसने फारस के सम्राट दारा की कन्या रुख्साना से विवाह किया था तथा ईरान में सम्मिलित दावतों का आयोजन किया था। बाद में शैलाज (सेल्यूकस) ने भी चन्द्रगुप्त के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था। वस्तुतः उस काल की राजनैतिक धारणाओं के अनुसार विवाह चिरस्थायी मित्रता के सर्वश्रेष्ठ उपादान समझे जाते थे। कांच की सुराही की भेंट सिकन्दर की सुरुचि को आकर्षित करने का प्रयत्न था। इस प्रकार भेंट के निर्वाचन में भी चन्द्रगुप्त ने वही मर्मज्ञता दिखाई जैसी उसने लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने और उन्हें राष्ट्रीय सूत्र में बाधने में प्रदर्शित की थी। सिकन्दर ने इस प्रस्ताव पर अवश्य ध्यान दिया लेकिन नन्दों की सैनिक शक्ति की ख़बरें इतनी ख़तरनाक थीं कि यूनानी सेनाओं का हौसला पस्त हो गया और वह भारत से भागने पर मजबूर हो गये। चन्द्रगुप्त को स्वयं अपनी शक्ति से ही दुश्मन को हराना पड़ा।

१०—मेक्रिण्डल : वही पृष्ठ ३११

११—रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐन्शियन्ट इन्डिया पृष्ठ २१८

१२—इलियट और डाडसन, वही

नत हो जाता स्वयं ज़माना

श्री उपेन्द्र

हंसकर मिट्टी चूम चले जो झंडा उनका यहां झुका कब ?
विहंस मौतसे जूझ गये जो हैं उनका अभियान रुका कब
असफलताएं आयीं पग-पग मिट न सका विश्वास अमर पर
चिर अजेय नाविक के आगे लहराता तूफान टिका कब !
रुक न सके वे कभी, जिन्होंने सीखा संघर्षों से बढ़ना
उन्हीं कर्मवीरों के चरणों पर झुक जाता स्वयं जमाना !

× × ×

वह मानव क्या, जिसके दिलमें जल न रहा अंगार प्रखर है,
लहराता जिसमें न ज्वलित कटु प्रतिशोधोंका ज्वार प्रखर है,
जिसमें महाकाल से लड़ने का न सहज अभिमान भरा हो,
जिसकी वाणी गरज न बन जाती विप्लवका दुर्द्धर स्वर है,
ज्योति जगा जाता जगती में जिनकी राखोंका कण कण भी,
उन मृत्युंजय वीरों के सम्मुख झुक जाता स्वयं मरण भी।

× × ×

तिमिरांचल में पलती आई नव प्रभात की स्वर्णिम लाली,
और पली खामोशी में ही विप्लव की आंधी मतवाली,
पला ओट में घने बादलों की, दिन का मार्त्तण्ड निराला,
जलती लू में यहाँ पली है यौवन की कोमल हरियाली,
लहरों पर चलने वालों का जीवन बनता स्वयं कहानी,
सेनानी की स्वेद बूंद बन जाती खूं की अमिट निशानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्राइस्ट और कन्फुत्सू

श्री प्रभाकर माचवे एम० ए०

मैं एक आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिक की तरह ही अपराधी हूं।

कहते हैं महर्षि ताल्स्ताय को मोची के रूप में ईसा दर्शन दिये। मेरे रूसी साहित्य के जाननेवाले मित्र कहते हैं कि पुश्किन को साइबेरिया के भयानक जाड़े की क्रांति के उष्ण विश्वास में, तुर्गनेव को धरती की अचूक शस्यमयता में जिसके सहारे प्रतिवर्ष किसान की ज़िन्दगी पनपती है, दस्तवास्की को प्रेयसी की आंखों की उस निष्कम्प ज्योति में, गोर्की को उस सत्य में जो कि रक्त के समुद्र में भी नहीं डुबोया जा सकता—अपने 'ईश्वर' के दर्शन हुए थे। हुए होंगे। मैं अपराधी हूं। मैं ईश्वर नहीं मानता। मैं यहां बन्द हूं। क्षण भर के लिए मान लो, लाल किले जैसी जेल में ही बन्द हूं। मेरी जाति, मेरा जन्म स्थान, मेरा नाम, मेरा देश सब शंकास्पद है! चेहरा मोहरा मेरा मंगोल है, रहन-सहन ईसाई। धमनियों में यांग तीसीक्यांग के सींचे हुए चीनी के नाज से उपजा ख़ून बहता है। मैं पढ़ा-लिखा ग्रामीण हूं। द्वंद्वात्मकवाद मानता हूँ। हिंसा को साधन मानता हूं। अतः ईश्वर को निरी कल्पना समझता हूं।

परन्तु यह क्या है जो जुम्मे की नमाज़ बड़े सवेरे आसमान में गूँजती-सी सुनाई देती है? इतवार की शाम को गिर्जेघर के घण्टे इस तरह बजाने, एक-स्वर, थका-देनेवाले, उबा-देनेवाले, अश्रांत क्यों बजते रहते हैं? क्या वे फांसी के घण्टे हैं? क्या वे शादी के घण्टे हैं?...

आज २५ दिसम्बर है। कल २६ हो जायगी। क्रिसमस बीत जायगा। रात-दिन न जाने कई बच्चे क्रिसमस-ट्री के आस पास अधमुँदी आँखों से सोने का बहाना करेंगे। फादर क्रिसमस उनके लिए बड़े बड़े मोज़े लावेगा न? मोमबत्तियों के झाड़-फ़ानूस, लटकते हुए मोज़े; बुड्ढा, बर्फ़ानी डाढ़ीवाला फादर क्रिसमस, और क्रिसमस कार्ड्स—आह, हम भी कभी बच्चे थे! यह सब कुछ प्रवंचना सच समझते थे। पर आज, आज सिर पर लटकती तसवीर है, सामने मौत के पंजे, पीछे क़ब्रें हैं, एक ओर एटम-बम्म है, दूसरी ओर, दूसरी ओर मशीनगनों की दीवाल सी मोटी पाँत है...

वीभत्स! जुगुप्सित! थू—

मगर कल रात मैं भी एक बच्चा बन गया, न जाने कैसे। मैंने एक सपना देखा। मैंने देखा क्राइस्ट मुझे मिलने आये थे। साथ में और भी एक बुड्ढे, बहुत ही बुड्ढे आदमी थे मूँछे जिनकी चीनी कट की थीं और भौंहें थीं पकीं, सफेद, ज़मीन को चूमने झुकीं पड़ रही थीं।

क्राइस्ट ने मुझसे कहा—आज़ाद ईसाई चीनी सैनिक, यह हैं कन्फ़्यूशियस। मुझसे पांच सदी बड़े। बुजुर्ग हैं।'

मैंने अभिवादन किया।

मैंने उनसे पूछा—कहिये कन्फुत्सुजी, सुना है कि आप तो स्वयम् न्यायमन्त्री थे। आपका प्राणदण्ड के सम्बन्ध में क्या मत है?

कन्फुत्सू कुछ मुस्कुराये। फिर गर्दन हिलाकर बोले, बेटा, मेरी स्मृति कुछ क्षीण हो गई है 'चंग-यंग' और 'सुन-यु' यह दो ग्रन्थ मैं अपने साथ लाया हूँ, उनमें देख लेता हूँ। यह देखो, मैंने दो हज़ार बरस पहिले ही कहा था—"जनता में क़ानून योग्य प्रकार से प्रकाशित न करते हुए अज्ञात नियम भङ्ग करने के अपराध से दंड देनेवाला राजा कैसा राजा? पहिले से सूचना न देते हुए जो टैक्स वसूल करे वह राजा अन्यायी है। अपराध की कल्पना न देते हुए प्रजा को प्राण दंड देनेवाला राजा स्वयम् अपराधी है।...एक बार राजा 'शन' ने पूछा कि अच्छे आदमी की रक्षा के लिए बुरे आदमी को प्राण दण्ड तो देना ही होगा। मैंने कहा कि...'देहांत दण्ड की आवश्यकता ही क्यों उत्पन्न हुई? प्रजा यदि अच्छी हो ऐसी आपकी इच्छा है तो उस प्रकार प्रयत्न क्यों नहीं करते? स्वभाव से ही सोना जिस प्रकार से कठिन और आग उष्ण होती है आदमी अच्छा होता है...।"

कन्फुत्सु का यह ग्रंथवाचन सुनते-सुनते मैंने देखा कि ग्रंथ और कन्फुत्सू सब धुँआ बनकर ग़ायब हो गये या कहिये ईसामय हो रहे हैं और स्वप्न में केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्राइस्ट बचे हैं। मैंने उनसे पूछा—प्रभु मसीह! तुम्हारी इस सम्बन्ध में क्या राय है?

क्राइस्ट ने कहा—मुझ पर भी मुक़दमा चला था। मेरे ख़िलाफ़ भी झूठी गवाही पेश की गई थी। मुझसे पूछा गया था तू ईश्वर का बेटा है? मैंने कहा कि अगर मैंने कहा तो तुम भरोसा नहीं करोगे। और अगर कुछ पूछा तो तुम जवाब भी नहीं दोगे, न मुझे छोड़ ही दोगे। जो कुछ मैंने कहा है सबके सामने कहा है। चोरी—छुपके तो कुछ कहा नहीं। इस पर मुझे ज़लील किया गया था और कहा गया था—मुख्य अधिकारी को ऐसा उत्तर देते हो? मैंने कहा था—अगर मेरा कहना ग़लत हो तो वैसा साबित करने के लिए गवाह लाइये; और अगर वह सच है तो मुझे मारते क्यों हो?...नतीजा क्या हुआ? मेरे कपड़े फाड़े गये। सब ने ठहराया कि मैं देहांत दण्ड के योग्य हूं। मुझ पर थूका गया।...पांटियस पायलेट के आगे भी क्या हुआ? मुझ पर झूठे-झूठे इलज़ाम लगाये गये। हीराड से पायलेट के पास फिर आया। यहूदियों ने बैरबस को छोड़ दिया। मुझे सूली दे दी।...यह देखो तबका सिंदूरी चोगा, कांटों का मुकुट, बल्कि बेंत, वह भी छिन चुका—अब सब वही पुराने वस्त्र हैं—वस्त्रांतर है; मृत्यु नहीं है—आकाशस्थ पिता, उन्हें क्षमा कर, वे नहीं जानते, वे क्या कर रहे हैं!

सपने का एक अंश धीरे-धीरे बिलम गया।

क्या हमें भी फांसी देंगे? मगर हमें फांसी देने के बाद क्या क़िले की नींव के दो टुकड़े होंगे? भूचाल आयेगा? चट्टानें टूटेंगी? क़ब्रें फट पड़ेंगी? जो संत सोते रहे हैं, वे जाग पड़ेंगे? क्या ईसा का पुनरुत्थान वाला दृश्य सिर्फ ईसा के ही भाग्य में है? कहां ईसा, कहां मुझ-सा पापी पामर!

सपना आगे चल रहा है। क्राइस्ट और कन्फुत्सू का हाथ पकड़े मैं युद्धोत्तर यूरोप और चीन-जापान और न जाने कहां कहां घूम रहा हूँ।

युरोप। राख की एक ढेरी। गर्म और ताज़ा। युद्ध का अग्निकांड समाप्त। ढाई करोड़ तो अकेले रूसी ही स्वाहा हो गये। होम-कुण्ड की हाहुताश बहुत ही बुभुक्षिता रही। क्राइस्ट कह रहे हैं, धीमे-धीमे

'गैलिली में हर्मन टेकरी पर शिष्यों के सामने मैंने कहा था—शांति प्रवर्तक धन्य हैं। 'मा हिंस'। 'दुष्ट प्रति शाठ्यम्' तो बहुत सुना होगा, पर दुष्ट का प्रतिकार न कर। जो तेरे दाहिने गाल में थप्पड़ मारे, तू उसके आगे बांया गाल बढ़ा। अगर कोई तुम्हारा कुर्ता ले रहा हो तो उसे अपना कोट दे डालो। अगर कोई तुम्हें एक मील तक ले जाए, तुम उसके साथ दो मील जाओ। जो कुछ मांगे, दो; जो कोई तुमसे उधार मांगे, उसे भी नकारो नहीं। अपने पड़ोसी पर प्रेम करो। शत्रु का तिरस्कार करो—यह बहुत बार तुमने सुना होगा—मगर अपने शत्रु पर भी प्रेम करना सीखो। जो तुम्हारा तिरस्कार करते हैं, उनका कल्याण करो। जो तुम पर प्रेम करते हैं, उन पर उलटे तुम प्रेम करो, इसमें नवीनता क्या है? एक कलाल भी दूसरे कलाल से प्रेम करता ही है।

एक रूसी सैनिक, अलेक्सी टालस्टाय की कहानी पढ़ रहा था, जिसका शीर्षक था 'हेट', जिस पर स्तालिन का एक शीर्षक वाक्य है—शत्रु को हृदय के अंतस्तल से तिरस्कार करना सीखो! किन्तु अब तो रूस में ईसाई, इस्लामी और अन्य सभी धर्मों को स्वतंत्रता दी जाने लगी है।

धर्म से तिरस्कार बढ़ता है? या प्रेम...

सपना चल रहा है...

कन्फुत्सु से मैंने पूछा—'लोगों के लिए क्या करना चाहिए?

'लोगों को सघन बनाओ।'

'और?'

'उन्हें शिक्षित बनाओ।'

'और राजसत्ता?'

'राजसत्ता का लोकहित से अधिक कोई ध्येय नहीं

(शु-किंग),

मगर चीन जापान। एक दूसरे के गले पर उतरे। खत्म हो गये बिचारे। और चीन आपस में ही। यही था संत कन्फुत्सू और लाओत्सू और सन-यात-सेन और उसका सन मिन चुहह। एक एटम बम के मुहताज, सैकड़ों बरसों से संधिपत्र पर हस्ताक्षर न हुए मिकाडो के राजघराने के कई सैनिक [illegible] सामुदायिक हाराकिरियां। एशियाई नवजागरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत्स्वप्न बृहत्कथा, कथा सरित्सागर बन गये। पैशाची में लिखे नहीं, नई जापानी लिपि में।

मैं यह सब देख रहा हूं। और काँप उठता हूँ। आदमी के क्या इरादे हैं? क्या मौत की बागडोर के झटके हैं। और फिर भी संतों के रूप में बार-बार वह तिलमिली सी इस पापी हत्यारे दिल में तैर जाती है कि शायद है, कोई 'है', जो मैटर से, एटम से, जर्मनी और जापान से, हिटलर और स्तालिन से, मैकार्थर और चर्चिल से, मुझसे और मेरे जजों से, क्राइस्ट और कन्फुत्सू से सबसे बढ़कर, सबके ऊपर, सबसे परे और फिर भी सबके अंदर है। मेरे दिल की धड़कन में वह है, और जिस दिन फाँसी का फन्दा मेरे गले झूल जायगा और यह धड़कन बन्द भी हो जायगी, फिर भी वह बना रहेगा। वह सिर्फ है। तत् सत्...(स्याद-अस्ति?)

शुक्रवार को नौ बजे सबेरे ईसा को सूली पर चढ़ाया गया। कीलें ठोक दी गईं। खून बह निकला। उन्नीस सौ पैंतालीस बरस बीत गये, खून अभी सूखा नहीं। दिन को तीन बजे वह चिल्लाया—'ओ मेरे मालिक! तूने मुझे क्यों अकेला छोड़ दिया?'

—क्या मैं यही कह पाऊँगा? जब, जब न क्राइस्ट मेरे साथ होंगे न कन्फुत्सू। 'चिंतातीत होने इतना मैं सद्गुणी नहीं; दुखातीत होने इतना मैं चिन्तक नहीं; भयातीत होने इतना मैं सुखी नहीं।'—कन्फुत्सू का यह वचन कितना मानवोचित है!

और सपने की कड़ियाँ टूटकर बिखर गईं। क्रिसमस की रात का कुहरा पिघल रहा था। पहरेदार बदल चुके थे। हाज़िरी शुरू हो गई थी—एक, दो, तीन...मैं एक अकेले 'सेल' में हूँ। तूने मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया?

उन्मुक्त पथिक

श्री छोटेलाल भारद्वाज

[१]

प्रति निमिष कसकता रहता है,
अन्तर में कोई चिर अभाव,
तृष्णा न थाह पाती, इतना
दुर्गम यह अविरल अश्रुश्राव;
युग युग से सुनता आया हूं—
मानव अस्थिर, मानव अपूर्ण;
जिसकी लयलय पूर्णत्व-भरी
मैं उस वीणा का लघु स्वर हूं।
जिसकी गति गति में जीवन है
मैं उन चरणों का नूपुर हूँ।

[२]

परिवर्तन के हामी जग में लो
फिर युग - परिवर्तन आया;
यह जीवन का माली मानव
क्षण भर विराम कब कर पाया;
भ्रम भ्रम अभिमानी भृङ्ग आज
शूलों से बिंधा कराह रहा,
कर रहीं मत्त, मद-गंध पिला—
मैं उन अलियों का मर्मर हूं।

[३]

जीवन भर की सारी पीड़ा
मुझको फिर फिर झांका करती,
जग की सुन्दरता बार बार
मेरा कुरूप आंका करती;
अपनी माया के ही रहस्य में
विवश उलझता जाता हूं,
निज कल कल स्वर में मुक्ति-कथा
कहता चलता मैं निर्झर हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बासठ पैसे

श्री सागर

सांझ हो गई। धीरे धीरे अन्धकार बढ़ता जा रहा था। लालू के टोकरे में कुछ फल बचे हुये थे। उसकी आंखें बाजार के इस सिरे से उस सिरे तक फिर गयीं। यदा कदा कोई राहगीर नजर आता था। इनमें से उसके फल कौन ख़रीदेगा! शायद वह बाबू जो नंगे सर आ रहा है। वह उसीकी ओर देखता रहा। इतने में बाबू समीप आ गया। उसका ध्यान दूसरी तरफ था। लालू ने ज़ोर से हांक लगाई—चमन के मेवे!

बाबू ने एक बार उसकी तरफ देखा और ख़तम होती हुई सिगरेट का एक लंबा कश लगाकर बचा हुआ टुकड़ा वहीं फेंककर चला गया। लालू उसे देखता ही रह गया। यह बाबू कहां से ख़रीदता। एक सिगरेट शौकीन अगर पतलून पहने हुये हो और फिर पैदल चल रहा हो; उसमें फल ख़रीदने की हैसियत कहां! क्लर्क के पेशेवाला आदमी अगर फल खाये तो सिगरेट जैसे अनिवार्य वस्तु कहां से लाये!

इतने में दो और आदमी उसके क़रीब से गुज़र गये। अबकी बार उसने हांक नहीं लगाई। उन्होंने भी उसकी तरफ नहीं देखा। शायद अँधेरे के कारण। उसके पास दीया तक भी तो नहीं। आख़िर उसका सौदा किस तरह ग्राहक की नज़रों में जँचेगा। इतने में किसी ने पूछा—

"आज क्या फल हैं तुम्हारे पास?"

"नाशपातियां" उसके मुँह से झट निकल गया। नज़र उठाकर देखा तो सामने एक मैला कुचैला आदमी सर पर छब्बा उठाये खड़ा था। छब्बे में मिट्टी के तेल का टीन का बना हुआ चिराग धुयें की एक मोटी लहर हवा में छोड़ता हुआ धड़धड़ जल रहा था।

"छन-न-नन"

लालू के छब्बे में पैसा गिरने की आवाज आई—

"लो एक नाशपाती दे दो"

लालू ने हाथ से पैसे टटोलते हुये एक बार फिर सर-पर छब्बा उठाये हुये ग्राहक की तरफ देखा।

"यह फल खायेगा—यह छब्बे वाला—!!"

यह अपना छब्बा खाली कर आया है। इसके पास धड़धड़ जलता हुआ चिराग़ है न। क्या यह चिराग़ एक रात के लिये मुझे नहीं दे सकता। अब इसके किस काम का—लेकिन क्यों—यह अपनी चीज़ मुझे क्यों दे। इसका मेरा कौन है। वह अन्धा फकीर यहां ठीक ही गाता करता है—

"इस जग में है अपना कौन—"

मेरा भी कौन है। लेकिन चुन्नू, हां चुन्नू है। बेचारी मरने वाली की निशानी। वही मेरे घर की लक्ष्मी थी। उसके बाद तो एक रोज भी पूरे डेढ़ रुपये की आमदनी नहीं हुई—उसके होते भला कभी ऐसा हुआ था कि चार चार रोज़ फलों ही पर गुजर करनी पड़े। रोटी देखने तक को न मिले—मेरा चुन्नू हफ्ते हफ्ते भर रोटी के लिये तड़पता रहे और मैं उसे फल खिलाने पर विवश रहूं। आज उसे ज़रूर रोटी खिलाऊंगा। लेकिन ···लेकिन यह फल जो बच गये हैं। मेरे पास भी चिराग़ हो तो रात भर सिनेमाओं के पास चक्कर लगाकर सब फल समाप्त कर डालूं। चिराग़·····उसके पास चिराग़ है मांग लूं·····! अगर नाराज़ हो गया और अपना पैसा लेकर चला गया। नहीं चिराग़ मांगना ठीक नहीं। ग्राहक को नाराज़ नहीं करना, छब्बेवाला है तो क्या, उन सिगरेट-शौकीन बाबुओं से तो अच्छा है। महीने में एकाध बार ही सही पैसे दो पैसे के फल तो खा लेता है। नहीं उससे चिराग़ नहीं मांगूगा। ग्राहक से उधार का व्यापार शुरू करना अच्छा नहीं।"

उसने एक नाशपाती उठाकर ग्राहक को दी। लेकिन वहाँ कौन था! ग्राहक कब का जा चुका था। जाने कब उसके हाथों ने अनजान ही बंधी मुट्ठी के होते हुये भी उसे नाशपाती दे दी थी।

बाज़ार ख़ाली हो चुका था। लालू ने अपना छब्बा सर पर उठाया और जेब में ही पैसों को गिनने की कोशिश करता हुआ चल पड़ा। आज उसने दिल में फैसला कर रखा था कि जितने भी पैसे एक रुपये से अधिक होंगे वह अपने इकलौते चुन्नू को रोटी खिलाने के लिये अलग कर लेगा। आज वह चुन्नू से पक्का वादा करके आया था। और वादा न करता भी किस तरह। कल शाम से चुन्नू भूखा है। उसने फल खाने से इनकार कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हर रोज फल, हर रोज फल—मैं अब फल नहीं खाऊंगा" उसने आँसू भरी आंखों से यह वाक्य कहे थे और पिता से चिमट गया था। उसके सामने तो नहीं; कुछ देर बाद कहीं अलग होकर लालू खुद भी रो दिया था। वह बालक को यह विश्वास नहीं दिला सका था कि फल दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है जिसके लिये अमीरों के बच्चे आपस में लड़ते झगड़ते हैं। लेकिन चुन्नू की दलील भी कुछ कम नहीं थी। आख़िर वह सर्वश्रेष्ठ वस्तु कैसे हो सकती है जिसके बदले में एक निकृष्ट वस्तु नहीं मिल सकती। सारी दुनिया वही निकृष्ट चीज़ खाती है वह भी वही खावेगा। फल नहीं खावेगा।

बच्चे की बातें सुनकर लालू को यह विश्वास हो गया कि अमीरों की कोई भी वस्तु जब ग़रीब के घर पर पहुंचती है तो वही दीनता की दलील बन जाती है।

× × ×

तन्दूर वाले की दूकान के सामने ही बिजली का खम्भा था। इसीके नीचे खड़े होकर लालू ने अपनी जेब में सारे पैसे निकालकर गिने। पूरे बासठ थे—बासठ!! एक रुपया भी पूर्ण न हो सका। एक क्षण के लिये वह चुन्नू और उसकी रोटी का ख़याल भूल गया। उसे कल की चिन्ता ने घेर लिया—कल·····कल नये पैसे वह कहां से लायेगा। मेवामन्डी में एक रुपये से कम वाले ग्राहक को थोक के भाव फल नहीं मिल सकते। फिर—यह दो पैसे की कमी—यह कौन पूरी करेगा—और—उसका कौन है, वह फकीर ठीक ही गाया करता है—

"इस जग में है अपना कौन"

कोई नहीं। कोई नहीं जो दो पैसे की कमी पूरी कर दे। उसकी जिस हथेली में पैसे थे उसीपर आंसुओं की बूंदें आ पड़ीं। आंसू, जिनका उद्देश्यविहीन जल हथेली की एक ओर बह गया। "काश वे खून के दो कतरे होते जो फैलते फैलते लाल लाल तांबे के दो गोल पैसे बन सकते। तन्दूर वाले ने पूछा, "क्या चाहिये ?"

जवाब के स्थान पर लालू ने भी सवाल किया, "आपको फल चाहिये ?"

"हमारे पास फालतू पैसे नहीं।"

तन्दूरवाला अपने कार्य में व्यस्त था। लालू कुछ देर रुककर बोला, "दो रोटियों से ही बदला कर लो।"

"हा हा हा!" तन्दूरवाला अपने काले नंगे पेट पर हाथ रखकर कहकहाते हुये बोला, "रोटी से हमारा पेट भरता है, इन अमीरी चोचलों से नहीं।

× × ×

लालू बहुत देर में घर पहुंचा। चुन्नू अभी सोया नहीं था। भूखे पेट नींद भी नहीं आती। उसने उठते ही बाप का छब्बा देखा और अतीव निरीह सूरत बनाकर पूछा, "आज भी रोटी नहीं ?"

"क्यों नहीं बेटा"

"तो कहां है रोटी ?"

लालू ने अपनी जेब से बासठ पैसे निकाल कर बेटे के हाथ पर रख दिये चुन्नू ने खुशी के मारे कहा, "यह सब—"

"हां, यह सब। जितने चाहिये ख़र्च कर।" बेटे ने आशा भरे स्वर में पूछा, "इसके बाद फिर और मिलेंगे ?"

लालू केवल इतना ही कह पाया, "इसके बाद—फिर——!"

और फिर हंस दिया।

चुन्नू ने पूछा, "क्या हुआ बापू—?"

"हुआ नहीं—होगा—!"

बाहर घनी बदली के कारण घनघोर अन्धकार छाया हुआ था अचानक ज़ोर की कड़कड़ाहट हुई। बिजली गिरी और एक समीप का वृक्ष अपनी शाखों समेत जलकर राख हो गया।

—अनु० प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए०, श्री पुरुषोत्तमदास मुरारका साहित्यरत्न

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-साहित्य में योग-साधना और ब्रह्मानुभूति

श्री बैजनाथ प्रसाद खेतान

'अज-अनादि-अनन्त-असीम-अनश्वर-अविनाशी सर्व सम्बन्ध विश्वव्यापी' ब्रह्म की उपलब्धि योग-मार्ग, भक्ति-मार्ग और ज्ञान-मार्ग तीनों से हो सकती है, पर इन सब के पूर्व 'मैं क्या हूँ' इससे अवगत होना अत्यन्त अनिवार्य है, क्योंकि जब तक अमुक को यही नहीं मालूम होगा कि वह क्या है, क्या नहीं है, तब तक वह किस तरह अपने मूलोद्गम की ओर लौ लगाये रहेगा ? बिना अपने 'अहं' से परिचित हुए, कोई भी अपने बीज रूप से मिलने की चेष्टा नहीं कर सकता; अगर करेगा भी तो उसकी समस्त चेष्टाएं वैसी ही होंगी जैसे कोई बौना छोटी सीढ़ी पर चढ़कर आकाश कुसुम को तोड़ रहा हो। हमारे श्रद्धास्पद आचार्यों की दृष्टि में मनुष्य का आदि और अन्त दोनों अमृत-भाव से युक्त हैं। इसीलिये उसे 'अमृतस्य पुत्रः' की संज्ञा दी गयी है। इस चिरन्तन सत्य से परिचित होकर उसे उपनिषद् के शब्दों में 'मृत्योर्माऽमृतं गमय' की प्रार्थना सच्चिदानंद से करनी होगी, क्योंकि उसे तो मृत्यु से अमृत की ओर जाना है, जिससे कि वह उद्भूत हुआ है। एक प्रकार से देखा जाय तो अमृत-प्राप्ति की प्ररणा वैदिक-काल से ही मिलती आयी है। निवृत्ति भावनाओं की ओर आसक्ति षड्-दर्शन का कोई नया विषय नहीं। 'भोग की प्रवृत्ति स्वाभाविक है, पर बड़ी दुःखदायी है, इसीसे निवृत्ति महाफलदायिनी मानी गयी है। परन्तु निवृत्त कैसे हो सकती है ? जैमिनि, पातञ्जलि, व्यास और कृष्ण ब्रह्मवाद प्रचार के अनन्तर निवृत्ति मार्ग पर ही चिन्तन करते हैं।'[1] इसके मूल में अमृत का श्रोत प्रवाहित हो रहा है। इसीके रसास्वादन के लिये योगियों ने योग-दर्शन की मान्यता स्वीकार की है। गोरख-पंथियों पर भी इस विशिष्ट साधना का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है पर इसमें वे गुरू का पथ-प्रदर्शन बहुत आवश्यक समझते हैं। हिन्दू दृष्टिकोण से भी सत्य के रहस्योद्घाटन में जितनी प्रधानता सत्संग और गुरु को दी गयी है, उतनी सम्भवतः ग्रंथों को भी नहीं दी गयी। तभी तो एक शिष्य बात-बात पर अपने गुरु से शङ्का-समाधान किया करता था क्योंकि उसकी आस्था जितनी गुरु पर थी उतनी शास्त्रीय ज्ञान पर नहीं। कोरे ज्ञान की प्रतिष्ठा तो उपनिषदों में भी नहीं मिलती। जहाँ उसमें एक ओर ज्ञान-कांड की व्यवस्था है, वहां दूसरी ओर उपासना-कांड की व्यवस्था है, वहां तीसरी ओर उपासना कांड का उल्लेख। केवल तत्व-चिन्तन तो उपासना से ब्रह्म की उपलब्धि किया करते हैं, न कि तर्क से। नैषा तर्केण मतिरापनेया।'[2] 'मुसलमान तो ग्रंथ या लिखित शास्त्र को शैतान का साधन समझते हैं।'[3] यही शैतान साधक को उसके पथ से विचलित कर देता है। 'पद्मावत' में रत्नसेन को विचलित करनेवाला अलाउद्दीन है, जिसे कवि के द्वारा शैतान के रूप में चित्रित किया गया है। इससे बचने के लिये पीर की अत्यन्त आवश्यकता है। सूफ़ी धर्मावलम्बियों ने इसी कारण व्यक्तिगत अनुभूति और 'पीर' को श्रद्धा की दृष्टि से देखा है। तन्त्र-शास्त्र में गुरु को 'शिव' के समस्तर पर स्थान दिया गया है। रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क सभी इस बात से सहमत हैं कि गुरु ब्रह्म का प्रतिनिधि और [illegible] है। उसका सम्मान सांसारिक वस्तुओं में सर्वाधिक है। विष्णु पुराण में भी शास्त्र-जन्य ज्ञान से विवेक-ज्ञान की महत्ता अधिक स्वीकार की गयी है। शास्त्र-जन्य ज्ञाय तो निम्न श्रेणी का है क्योंकि 'न निर्याति तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया।' (दीपक की बात सुनने से ही अन्धकार दूर नहीं हो जाता) इसीलिये कहा गया है—

'आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते।
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम॥'

ज्ञान दो प्रकार का है—शास्त्रजन्य और विवेक-जन्य। इसमें शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का ज्ञान विवेकजन्य। महर्षि पातञ्जलि के मतानुसार अष्टाङ्गयोग[4] के अनुष्ठान से विवेक-

१—भारतीय ईश्वरवाद—पं० रामवतार शर्मा

२—तर्क के द्वारा 'उसे' कभी नहीं पाया जा [illegible]

३—कबीर पदावली—डा० रामकुमार वर्मा

४—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध हो सकती है। 'योगाभ्यास के बिना कोई भी मुक्त वेदान्ती परब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता।'[५]

निर्विकल्पसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम्।
अन्यथा चलतया मनोगतेः प्रत्यान्तर रवि मिश्रितं भवेत्॥

निर्विकल्प समाधि के द्वारा ही निश्चय रूप से ब्रह्म तत्त्व का स्फुट ज्ञान होता है, अन्यथा मन की चञ्चल वृत्ति के कारण ब्रह्मतत्व विजातीय प्रतीतियों से मिश्रित हो जाता है।

पर निर्विकल्प समाधि के लिये भी योगियों ने गुरु कृपा को अभीष्ट समझा है। वैष्णव भक्तों के अनुसार गुरु की दो कोटियां हैं—शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु। शिक्षा गुरु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं और देवावस्था में दीक्षा गुरु भी भगवान् के ही तुल्य हैं।

अस्तु, गुरु में कौन कौन-सी विशेषता हो, इस ओर दृष्टि रखते हुए उन्हें चार प्रकार की शुद्धियों से विभूषित होना श्रेयस्कर बतलाया गया है। वे चार शुद्धियां हैं—'आनुवंशिक शुद्धि' क्रियागत शुद्धि, और विशुद्ध चैतन्य में स्थिति रूप परम शुद्धि।'[६] ऐसे सर्वगुण सम्पन्न को ही 'गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म' से अभिनीत किया गया है। 'सच्चा गुरु तो एक बार के दृष्टि-निक्षेप मात्र से, एक बार के स्पर्श से, एक बार के संकल्प से अपने योग्य शिष्य मे शक्तिपात कर सकता है। वह मीलों दूर रहकर अपने शिष्य की काया-पलट कर सकता है; क्योंकि विचारों की गति में जो संवेग है, उससे भी अधिक संवेग उसके विचारों मे, उसके संकल्प में होता है।'[७]

सच्चे गुरुदेव के विषय में सुन्दरदास जी ने लिखा है—

काहू सौं न रोष तोष काहू सौं न राग दोष
काहू सौं न वैर भाव काहू को न घात है।
काहू सौं न बकवाद काहू सौं नहीं विषाद
काहू सौं न संग न तौ कोउ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट बैन काहू सौं न लैन दैन
ब्रह्म को विचार कछु और न सुहात है।
सुन्दर कहत सोई ईसनि को महाईस
सोई गुरुदेव जाकै दूसरी न बात है॥

गोरख-बानी में भी गुरु की विशेषता को बतलाते हुए कहा गया है कि योनि-मुख से जो बिन्दु की रक्षा करे और अग्नि के ऊपर से जो पारे की रक्षा करे, वही हमारा गुरु है।

भग मुषि ब्यंद अगनि मुषि पारा।
जो राषौ सो गुरु हमारा॥

गोरखनाथ की गुरु पर इतनी श्रद्धा है कि सब कुछ रहते हुए भी उनके बिना अमृत का रसास्वादन नहीं किया जा सकता।

गगन मंडल में ऊंधा कूवा जहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होइ सो भरि भरि पीवै निगुरा जाय पियासा॥

आकाश-मङ्गल (शून्य अथवा ब्रह्मरंध) में एक औंधे मुंह का कुंआ है जिसमें अमृत का बास है। जिसने अच्छे गुरु की शरण ली वही जो भर-भर कर पी सकता है। बिना गुरु वाला यो तृषित ही रह जायगा।

गुरु तो लोहे के सदृश्य है जिससे सबका काम चल सकता है—

'ऊं लोहा पीर तांबा तकदीर।
रूपा महमद सोना बुदाई।
दुहुँ बिचि दुनिया गोता षाई॥
हम तो निरालम्भ बैठे देखत रहैं।
ऐसा एक सुषण बाबा रतनदास जी कहैं॥

—गोरखबानी

पीर लोहे के समान है और उसकी योग युक्ति तांबे के समान। मुहम्मद चांदी के सामान और खुदा सोने के समान। लोहे और तांबे का उपयोग तो सभी जगह होता है, सोने और चांदी से तो वस्तुएं केवल अलंकृत होती हैं। सोने और चांदी ही की तरह मुहम्मद और खुदा हैं जिन दोनों के बीच दुनिया गोता लगा रही है। हम तो निराधार बैठे देखते रहते हैं। यह उक्ति बाबा रतनदास जी हाजी ने कही है।

कबीर ने तो गोविन्द से भी अधिक महत्ता गुरु को दी है। सद्गुरु के प्रसाद से ही उन्होंने सब कुछ पाया है।

५—योग से ही वेदान्त की उत्पत्ति—श्री युत महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज एम० ए०, डी० लिट्, डी० फिल्, साहित्यरत्न, महामहोपाध्याय, विद्यावाचस्पति, विद्यावारिधि, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, साहित्यवाचस्पति, साहित्यभूषण, काव्यविनोद, काव्यकण्ठ, काव्यशास्त्रविनोद, काव्यरत्न, साहित्यशास्त्री, साहित्यविशारद, साहित्यालंकार, साहित्यरत्न, साहित्यसुधाकर, साहित्यसुधानिधि, साहित्यसुधानिधि, साहित्यसुधाकर, साहित्यसुधानिधि, साहित्यसुधाकर, साहित्यसुधानिधि, साहित्यसुधाकर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पांय,
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ।'

❀ ❀ ❀

'गुरु सेवा तो भगति कमाई ।
तब इस मानस देहि पाई ॥'

❀ ❀ ❀

'गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै ।'

❀ ❀ ❀

'गुरु प्रेम का अंक पढ़ाय दिया,
अब पढ़ने को कुछ नहीं बाकी ।'

❀ ❀ ❀

'इह बसती ता बसत सरीरा ।
गुर प्रसाद सहजि तरे कबीरा ॥'

❀ ❀ ❀

'माया दीपक नर पतंग,
भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत
कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं
एक आध उबरन्त ।'

—कबीर

'मध्याचार्य के द्वैतवाद में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा के बीच 'वायु' का विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार कबीर के ईश्वरवाद में गुरु का।[८] वह गुरु लौकिक और आध्यात्मिक गुणों से युक्त उन्नति और अवनति से विज्ञ, माया-मोह से विलग और पथ-प्रदर्शन के योग्य हो, यह आवश्यक है। कबीर ने ऐसे गुरु को ही गुरु की संज्ञा दी है।

'काली विलास तन्त्र' में—

'गुरु पूजां बिना देवि स्वेष्टपूजां करोतियः ।
मंत्रस्य तस्य तेजांसि हरते भैरवः स्वयम् ॥' के द्वारा गुरु पूजा के बिना साधक की सारी साधना को निष्फल बतलाया गया है।

इन दृष्टांतों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि योग साधना में गुरु का सहयोग किसी तरह नगण्य नहीं बतलाया जा सकता। हिन्दी साहित्य में इस विशिष्ट योग-साधना की झलक नाथपंथियों की कृतियों और कबीर के शब्द साखियों में अत्यधिक मिलती है। कवियों ने इसका विरोध अवश्य किया क्योंकि मार्ग प्रेम का मार्ग था, साधना का नहीं। प्रेम में की प्रधानता होती है, साधना में तपस्या की समस्या कुछ और ही रूप ले लेती है जब कि सूफियों अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इस सम्प्रदाय प्रेम-मार्ग का समर्थन करके भी यौगिक क्रियाओं प्रतिष्ठा अपने काव्य में की। हो सकता है, रहस्य कौतूहल की प्रवृत्ति के कारण ऐसा हुआ हो—और हुआ भी। पर नाथ-पंथियों ने तो जान-बूझकर क्रियाओं का समावेश अपने काव्य में किया है। इस बिशेष का मूल बौद्धों की वज्रयान शाखा है। बुद्ध कट्टर विरक्ति विधायक नियमों की प्रतिक्रिया वज्रयान शाखा के अश्लील विधानों के रूप में हुई और वज्रयान शाखा के अश्लील विधानों की प्रतिक्रिया गोरखनाथ नाथ पंथ के रूप में हुई। इस नाथ पन्थ में नग्न विचार का बहिष्कार किया गया, पर इसके होते हुए भी योगी गोरखनाथ के गुरु मछन्दरनाथ सिंहलद्वीप पद्मिनी स्त्रियों के बीच जाकर भोग-लिप्सा में लिप्त गये। ऐसी किंवदन्ती है कि 'जाग मछन्दर गोरख आया' कहकर गोरखनाथ ने ही अपने गुरु को मोहिनी निद्रा से जागरूक किया था। इन्हें स्त्री जाति से आग पानी का सा बैर था, फिर भी उन्होंने शिव-शक्ति उपासना शृङ्गारमयी वाणी में की है।

"बङ्गाल के दिनाजपुर आदि ज़िलों में गोरक्षनाथ अनुवर्ती कहे जानेवाले योगियों में 'धमाली' नाम प्रचलित बहुतेरे अश्लील गानों का पता चला है। योगियों से इस अश्लील गानों का कैसे सम्बन्ध हुआ यह बात अनुसंधान योग्य है। इस प्रसंग में केवल बात याद दिला देना चाहता हूँ जिस पर अगर अनुसंधान किया जाय तो कुछ नयी बात प्रकाश में आयेगी। युक्त प्रान्त और बिहार में होली के अवसर पर अश्लील और अश्राव्य गान गाये जाते हैं उन्हें 'जोगिड़ा' कहते हैं। जोगिड़ा गा लेने के बाद लोग 'कबीर' हैं जो और भी भयङ्कर होते हैं। क्या इन जोगिड़ों कबीरों के साथ योगियों और कबीर पंथियों की प्राचीन प्रतिद्वन्द्विता की स्मृति जड़ी हुई है अश्लील ज्ञान भी उलट बांसियों की ही भांति

८—कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रस्तुत अन्तर्निहित सत्य की ओर इशारा करनेवाले माने जाते हैं।"

इन कतिपय पंक्तियों को मैंने जान-बूझकर इसीलिये नोट-कापी उद्धृत किया है कि पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी इसमें ऐसी विशिष्ट समस्या की ओर संकेत करते हैं जो अब तक छिपी रही है। आशा है, इस ओर विद्वान समीक्षकों की दृष्टि जायगी।

हां, तो जैसा मैंने कहा, गोरखनाथ की कृतियों में योग-साधना की अभिव्यक्ति यत्र-तत्र हुई है। यथार्थ में पतञ्जलि के योग-दर्शन का सबसे अधिक प्रचार उन्होंने और उनके सम्प्रदाय नाथ-पन्थ ने विशेष रूप से किया। अशिक्षित जनता उनके चमत्कारों से अवश्य प्रभावित हुई, पर शिक्षित जनता पर इन अलौकिक प्रदर्शनों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी कारण इस सम्प्रदाय विशेष की कृतियों को शुद्ध साहित्य की कोटि में स्थान नहीं दिया है। उनके शब्दों में 'उनकी रचनाएँ तांत्रिक विधान, योग-साधना, आत्म-निग्रह, श्वास-निरोध, भीतरी चक्रों और नाड़ियों की स्थिति, अन्तर्मुख साधना के महत्व इत्यादि की साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र है; जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों और दशाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं (देखिये, हिन्दी साहित्य का इतिहास--रा० च० शुक्ल)।

कबीर को इसीलिये लोग हिन्दी का पहला रहस्य-वादी कवि कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गोरखनाथ की कृतियों में जीव और ब्रह्म की मिलन भावना है, पर इस मिलन-भावना में ज्ञान का तत्व अधिक और वृत्ति का सामञ्जस्य नहीं के बराबर है। पर भावना प्रधान जीव और ब्रह्म की मिलन भावना को ही रहस्यवाद की कोटि में रख दी जाती है; ज्ञान-प्रधान मिलन भावना तो शुद्ध रहस्यवाद की कोटि की वस्तु हुई।

लेकिन इतना तो असंदिग्ध है कि गोरखनाथ द्वारा प्रचारित हठयोग ईश्वर की प्राप्ति का प्रधान रूप माना जाता था। इसमें ईश्वर में बलपूर्वक मिलने की क्षमता मानी जाती है। 'हठ' शब्द ही किसी वस्तु को बिना विचलित न होने की ओर संकेत करता है। हठयोग अंगों के अभ्यास पर पूर्ण अधिकार जमा मन को एकाग्र कर उसे समाधि अवस्था में ब्रह्म से तादात्म करती है। यह विशिष्ट साधनात्मक हठयोग महर्षि मार्कण्डेय, भरद्वाज, मरीचि, जैमिनि, पाराशर, भृगु, विश्वामित्र आदि की कृपा से परिष्कृत और सुसङ्गठित हुआ। इसमें स्थूल साधना प्रधान है और सूक्ष्म साधना गौण। हठ-योगियों की दृष्टि से स्थूल का प्रभाव सूक्ष्म पर पड़ेगा ही। 'सूक्ष्म शरीर के भाव के अनुरूप ही स्थूल शरीर का सङ्गठन होता है तथा सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर एक सम्बन्ध युक्त होकर रहते हैं तब इसमें क्या बाधा है कि स्थूल शरीर के कार्यों द्वारा सूक्ष्म शरीर पर आधिपत्य नहीं किया जा सकता?'[९] इसे ध्यान में रखते हुए हठयोगी स्थूल शरीर की साधना से सूक्ष्म को प्रभावित कर चित्तवृत्ति निरोध के द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार करते हैं। पर इस क्रिया के पूर्व हठयोग के सात अङ्गों को क्रियात्मक रूप देना अनिवार्य बतलाया गया है। वे सात अङ्ग हैं--षड्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन सब की अपनी-अपनी विशेषताएँ है। समष्टि रूप ब्रह्मानुभूति है। षड्कर्म द्वारा शरीर शोधन होता है, आसन के द्वारा दृढ़ता आती है, मुद्रा के द्वारा स्थिरता, प्रत्याहार के द्वारा धीरता, प्राणायाम साधन द्वारा लाघव, ध्यान द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष और समाधि द्वारा निर्लिप्तता का मुक्ति लाभ। हठयोग में तैंतीस आसन, आठ प्रकार के प्राणायाम[१०], चार प्रकार की अवस्थाएँ[११] और पच्चीस मुद्रा साधन की विधियां बतलायी गयी हैं। इन मुद्राओं से मन एकाग्र चित्त होकर समाधि लाभ को प्राप्त करता है।

पर योगाभ्यास के पूर्व योग शास्त्र में यह बतलाया गया है कि 'साधक पहले अपने आपको शुद्ध कर ले, अपनी इन्द्रियों को वश में करे, अपनी सब इच्छाओं को दूर कर दे और यम में स्थित हो और तब मूलाधार में स्थित सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की चेष्टा करे।'[१२] इस कुण्डलिनी के विषय में डा० रामकुमार वर्मा ने

९--कल्याण साधनाङ्क

१०--सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली

११--आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्यवस्था

१२--योग का सोपान--स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर के रहस्यवाद में लिखा है कि 'यह मूलाधार चक्र की योनि के मध्य में विद्युलता के आकार की कुण्डलिनी है जो सुषुम्णा नारी के मुख की ओर है।' वह जाग्रतावस्था में तो अमृत का रसास्वादन करती है पर सुषुप्तावस्था में सूर्य के द्वारा उस अमृत का शोषण हो जाता है। इसी के नष्ट हो जाने से वृद्धावस्था आती है। अमृत प्राप्ति के लिये कुण्डलिनी को इड़ा और पिङ्गला के मध्य स्थित सुषुम्णा नाड़ी के छः चक्रों[१३] से होती हुई ब्रह्मरंध्र तक एक लम्बी यात्रा करनी होती है। अगर यों देखा जाय तो शरीर में कोई तीन लाख पचास हज़ार के क़रीब नाड़ियां है, । पर इन सबों की महत्ता कुछ एक नाड़ियों को छोड़कर नगण्य सी है। नाड़ियों में चौदह प्रधान मानी गयी हैं—सुषुम्णा, इड़ा, पिङ्गला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहु, सरस्वती, पूषा, शङ्खिनी, पयस्विनी, वारुणी, अलम्बुषा, विश्वोदरी और यशस्विनी। इनमें भी इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा प्रधान हैं। पुनः इन तीनों में सुषुम्णा नाड़ी सर्व प्रधान है। सिद्धि लाभ में इसीकी उपयोगिता सर्व अधिक मानी गयी है। इस सुषुम्णा नाड़ी के मध्यगत चित्रा नाड़ी के मध्य सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ब्रह्मरंध्र है। कुल कुण्डलिनी शक्ति इसी ब्रह्मरंध्र के द्वारा मूलाधार से सहस्त्रार में गमन करती है और परम शिव से मिल जाती है। कबीर और गोरखनाथ ने इसी साधनात्मक पद्धति विशेष को काव्य का रूप दिया है, परन्तु जहाँ गोरखनाथ में इसकी शास्त्रीय विवेचना मिलती है, वहाँ कबीर में इसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति।

गोरखनाथ ने कोई ६० पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से गोरक्षकीय सम्वाद, गोरक्ष चिन्तामणि, ज्ञान सिद्धान्त योग, योग मार्तण्ड, विवेक मार्तण्ड और सिद्ध सिद्धान्त ही उपलब्ध हैं। उनकी अधिकांश पुस्तकें हिन्दी और संस्कृत भाषा में लिखी गयी हैं, केवल 'अमरनाथ सम्वाद' का प्रणयन मराठी भाषा में हुआ है। कोई निश्चित तिथि इन रचनाओं के विषय में नहीं कही जा सकती। कोई विद्वान तो इनका समय सन् ईस्वी से भी पूर्व मानते हैं, कितने विद्वानों ने विक्रम की सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक इनका समय माना है। अधिकांश विद्वानों की सम्मति में उनका जन्म बारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था। चाहे इनका जन्म किसी भी ईस्वी में क्यों न हुआ हो, पर इतना तो निश्चय है कि इनके जीवन-काल में नाथ-सम्प्रदाय का प्रभुत्व विशेष रहा होगा। यही कारण है कि उनकी अधिकांश पंक्तियां साधनात्मक हठयोग से सम्बन्ध रखती हैं जैसे—

गिगनि मंडल में गाय बियाई कागद दही जमावा।
छाछि छांणि पिंडवा पीवीं सिधां भाषण पावा।
—गोरख बानी

एक कामधेनि बारि सिधि के गगन सिषर लैं बांधी।
लागि जीव ऊपरि बारि सिधि की ल्यौं निरंजन सूं सांधी।

कबीर आदि सन्त कवियों को यह साधनात्मक पद्धति पूर्ववर्त्ती नाथ पंथियों से उत्तराधिकार के रूप में मिली, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कला-कृतियों में हुई। जैसे—

पिय ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया
लगी नाम की डोरिया।
चाँद सुरज सम दियना बरत है
ता बिच भूली डगरिया।
पाँच पचीस तीन घर बनिया
मनुआं है चौधरिया।
मुन्शी है कोतवाल ज्ञान को
चहुँ दिसि लगी बजरिया।
आठ मराताब दस दरवाजे
नौ में लगी किबरिया।
खिरकि बैठ गोरी चितवन लागी
ऊपरां झाँप झोपरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
गुरु चरनन बलिहरिया।

इस साधनात्मक हठयोग की जो योगी साधना में हैं उन्हें 'हद' को छोड़कर 'बेहद' में जाना,

---

१३—गुह्य स्थल में मूलाधार चक्र चतुर्दलयुक्त, हृदय में अनाहत चक्र द्वादशदल युक्त, लिंग मूल में में स्वाधिष्ठान चक्र षड्दल युक्त, कण्ठदेश में विशुद्ध चक्र षोडश दल युक्त, नाभि मण्डल में मणिपूर चक्र दशदल युक्त, भूमध्य में आज्ञा चक्र द्विदल युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औघट को प्राप्त करना वा 'सुन्नि' में स्नान करना बतलाया गया है।

यह 'सुन्नि क्या है, जिसे हम शून्य कहते हैं? माध्यमिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य नागार्जुन ने शून्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'इसे शून्य भी नहीं कह सकते, अशून्य भी नहीं कह सकते। फिर भी यह भी नहीं कह सकते कि यह शून्य भी नहीं है, अशून्य भी नहीं है।' 'जो इस शून्यता को समझ सकता है, वह सभी अर्थों को समझ सकता है। जो शून्यता को नहीं समझ सकता, वह कुछ भी नहीं समझ सकता।'[१४] इस तरह शून्यवादियों ने शून्य का दार्शनिक निरूपण किया है। अगर इसी का दूसरी दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो उसे हम 'कुछ भी नहीं' कह सकते, अन्यथा इसका शाब्दिक अर्थ आकाश भी होता है जो सभी जगह व्याप्त है। चूंकि ब्रह्म की भी व्याप्ति उसी प्रकार की है इसलिये उसे भी शून्य का पर्यायवाची कह सकते हैं। संभवतः इसी कारण दादू का शून्य 'कुछ नहीं' तो है ही नहीं, अपितु वह पूर्ण सरोवर आत्म सरोवर, और हरि सरोवर है। योग दर्शन के अनुसार शून्य ब्रह्मरंध्र का छिद्र है, जो शून्य या विन्दु के रूप का होता है। इसी स्थान पर ब्रह्म का निवास माना गया है। प्राणायाम की उत्कृष्ट स्थिति में योगी इसी विन्दु में आत्मा को ले जाते हैं और वही आत्मा 'सोऽहम्', 'अहम् ब्रह्मास्मि', 'अयमात्मा ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' आदि का अनुभव करती है। उसी समय उसे 'अनाहत नाद' सुनाई देता है।

अनाहत नाद की उद्भावना सुरत शब्द योग से हुई है। 'सुरत' जिसे 'सुरति' भी कहते हैं, 'स्रोत' शब्द का अपभ्रंश है। यह शब्द योग की वह क्रिया है, जिसमें मन को एकाग्र चित्त कर शब्द में लीन किया जाता है। शब्द तो शरीर के भीतर और बाहर सदा होता रहता है, पर अज्ञानवश उसकी अनुमति हम नहीं कर पाते। योगियों ने इसे ही अनाहत नाद कहा है। यह 'अनाहत नाद' उन्हें तब सुनाई देता है, जब कि 'सहज समाधि' में मन को केंद्रित किये रहते हैं।

पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि गोरखनाथ हठवादी योग सम्प्रदाय कबीर आदि परवर्ती साधकों के मार्ग से भिन्न है। आचार्य श्यामसुन्दरदास जी के शब्दों में 'योगाश्रयी शाखा तथा कबीर की ज्ञानाश्रयी शाखा में सबसे प्रधान अंतर यह है कि योग मार्ग उपाय या आचरण या जीवन की साधना का मार्ग है, जो उन साधनाओं को पार करता हुआ अलौकिक सत्ता की ओर ले जाता है परन्तु ज्ञान मार्ग योग की चरम-कोटि पर पहुंचकर ही प्रतिष्ठित होता है। जब योगी अपने साधना के परिणाम स्वरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब योग की क्रिया छूट जाती है। कबीर ने स्थान-स्थान पर योग या साधना की प्रशंसा की है परन्तु जहाँ वे ज्ञानी की दृष्टि से देखते हैं, वहाँ योग की निन्दा भी करते हैं। इस योग के निंदा से उनके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो मिथ्या योगियों की प्रवंचना से जनता को सावधान करना और दूसरे तात्विक रूप से योग या क्रिया मार्ग को मायिक रूप सिद्ध करना।[१५]

इसके अतिरिक्त कबीर की योग-साधना में सूफी मत और इस्लामी एकेश्वरवाद का सम्मिश्रण है, पर गोरखनाथ द्वारा प्रचारित हठयोग पूर्णतः भारतीय हठयोग है। पर इस भिन्नता के रहते हुए भी ब्रह्मानुभूति दोनों में साध्य है। इन दोनों की साधनाधीन में जलंधरनाथ, कणोरीनाथ, चौरंगीनाथ, चर्पट, बालानाथ, धूँधलीमल आदि के साधनात्मक हठयोग के शब्द यदा-कदा सुनाई दे जाते हैं। पर उन सबों के शब्द में अपने को ब्रह्म से मिलने की अटूट लालसा है और वह लालसा उनमें काव्य में आदि से अंत तक प्रवाहित हो रही है। बीसवीं शताब्दी में इसकी उपेक्षा कोई करे तो करे, पर भविष्य की उपेक्षा या अपेक्षा की कल्पना कर साधक की साधना अवरुद्ध नहीं हुआ करती। किसी कला-कृति विशेष का मूल्याङ्कन उस युग को दृष्टि में रखकर किया जाता है, जिस युग में उसका प्रणयन हुआ हो।

१४—'प्रभवति च शून्यतयं यस्य प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः। प्रभवति न तस्य किंचित न भवति शून्यता यस्य॥'

—नागार्जुन

१५—योग धारा (निबंध)—श्यामसुन्दरदास जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव जगत का निर्माता बालक

श्री बंसीधर, सम्पादक 'हिन्दी शिक्षण पत्रिका'

आज दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई है। जहां-तहां उथल-पुथल मची हुई है। जहां जाओ, जहां देखो, सभी जगह स्वतंत्रता की चर्चा है, परतन्त्रता और परवशता का जुआ उतार फेंकने के लिए सभी कटिबद्ध दिखाई देते हैं, व्यक्तित्व को नष्ट करने वाली पाबन्दियां और बन्धनों से सब ऊब गये हैं। अन्याय-अत्याचार, अपमान-अनादर सहन करने के लिये अब कोई तैयार नहीं है। सदियों से पददलित और पीड़ित जातियां अपनी कुम्भकरणी नींद से जाग रही हैं और अपनी स्वतन्त्रता के लिए आंदोलन कर रही हैं। घर की चहारदीवारी में बन्द रहने वाली स्त्रियां भी अपने अधिकारों के लिये जद्दो जहद कर रही हैं। परदे और बुरके में बन्द न रहकर वे भी अपना उत्थान और विकास करना चाहती हैं। युवक भी बड़ों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिये संगठित हो रहे हैं। भेड़-बकरी का-सा जीवन बिताने वाले सीधे सादे किसान-मजदूर भी हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठे हैं। अपनी स्वाधीनता के लिये वे भी प्रयत्नशील हैं। अब कोई किसी का गुलाम बनकर रहना नहीं चाहता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सभी सिर-धड़ की बाजी लगा रहे हैं। अब अधिक समय तक कोई किसी को गुलाम बनाकर रख नहीं सकता। चिकनी-चुपड़ी बातों के दिन अब बीत गये। हां में हां मिलाने और 'जी हजूरी' का युग अब बीत गया। लेकिन बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मानव जगत के निर्माता बालक की स्वतन्त्रता का सवाल जब हमारे सामने आता है, तो हम आंखें दिखाने लगते हैं, नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं जैसे बालक का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह कितनी आश्चर्य और लज्जा की बात है कि जिस बालक को हम अपना सर्वस्व मानते हैं, जिसके लिये हम भारी से भारी त्याग कर सकते हैं, उसकी स्वतन्त्रता का हम विचार ही नहीं करते। मानव निर्माता के साथ इतना अन्याय! इतना जुल्म!

बालक को हम आज भी निर्बल, निस्तेज, तुच्छ और हीन समझते हैं। उसकी इच्छाओं, आवश्यकताओं और सुविधाओं का हम जरा भी ख्याल नहीं करते। उसकी रुचि-अरुचि की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। उसे कठोर नियन्त्रण और अनुशासन में रखते हैं। उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। न वह आजादी से घूम फिर सकता है और न आजादी से खेल-कूद सकता है। न आजादी से कोई काम कर सकता है और न आजादी से खा-पी सकता है। उसे रात दिन बड़ों के आदेशों और इशारों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है। बिना चूं-चरा के उनकी जा-बेजा सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता है। बड़ों के खिलाफ मुंह खोलना अक्षम्य अपराध समझा जाता है। घर में बालक की कोई आवाज नहीं, कोई अधिकार नहीं, कोई राय नहीं। बड़ों की हां में हां मिलाना ही मानो बालक का परम कर्त्तव्य है। जरा सी गलती हो जाने पर बालक पर आफत का पहाड़ टूट पड़ता है। बुरी तरह फटकार पड़ती है, चपत लगते हैं। ऐसी दशा में आदर-सत्कार की बात ही क्या? उफ! घर में ही बाल-देवता की दुर्दशा, इतना अपमान! शाला में भी बालक को राहत नहीं मिलती। वहां तो बालक की घर से भी बुरी दशा होती है। उसकी कल्पना करके तो रोमांच हो आता है। आज की शाला बालक के लिये नहीं बल्कि बालक शाला के लिये है। वहां शिक्षक का ही बोलबाला है, वही सत्ताधीश है। रटा रटाकर बालक का दिमाग खराब कर दिया जाता है। पाठ समझ में आये चाहे न आये, बेचारे बालक को शिक्षक के डंडे से अपनी रक्षा बचाने के लिये किसी न किसी तरह तोते की तरह रटना ही पड़ता है। अगर कहीं सबक याद नहीं हुआ तो मार मारकर बालक का कचूमर निकाल दिया जाता है। "गुरू जी की चोट और विद्या की पोट" शायद सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली है। ठूंस ठूंसकर बालक के दिमाग में ज्ञान भरना शिक्षक अपना परम कर्त्तव्य समझता है। निम्न-लिखित मूलमन्त्र शिक्षक का प्रदर्शन करता है—

Ram it in, ram it in,
Children's heads are hollow,
Ram it in, ram it in,
Still there's more to follow,

ऐसी प्राणघातक शाला में बालक क्या खाक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास कर सकता है, यह शाला नहीं जेलखाना है जहां बालक का दम हरदम घुटता रहता है, घर और शाला की तरह समाज में भी बालक के लिये कोई स्थान नहीं है। संसार में सब के लिये नियम-कायदे बनते हैं, लेकिन बालक के लिये कोई नियम-कायदा नहीं। उसे माता-पिता और शिक्षकों की दया पर छोड़ दिया गया है। वही उसके भाग्य विधाता हैं। यही कारण है कि बालक आज पराधीन और परतन्त्र है, सचमुच आज का बालक संसार का विस्मृत व पद्दलित नागरिक है। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि बालक के महत्व को हमने नहीं समझा है। मुझे यह कहते जरा भी संकोच नहीं होता कि मानव समाज की आज जो अधोगति हो रही है उसका मुख्य कारण बालक के साथ किया जाने वाला हमारा दुर्व्यवहार है। गड्ढे में पड़े हुए मानव समाज को ऊपर उठाने का केवल एक ही उपाय है और वह है बालक। यदि मानव समाज को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ करना है, दुनिया में शान्ति स्थापित करना है तो हमें बालक को समझना होगा उसका सम्मान करना होगा।

बालक विपथगामी, नासमझ और निर्बुद्धि नहीं है। बालक कोरा कागज, खाली बर्तन या मिट्टी का ढेला नहीं है जिसे हम जैसा चाहें बना सकें। बालक अद्भुत शक्तियों का भंडार है, सद्गुणों की खान है। उसकी शक्तियों और गुणों की कोई मर्यादा या सीमा नहीं है। फ्रेडरिक होम्स ने बिलकुल ठीक लिखा है कि "प्रत्येक नवजात शिशु में ईसामसीह छिपा हुआ है। मनुष्य जन्म से ही खराब होने के बदले जन्म से ही ईश्वर बनने की शक्ति लेकर पैदा हुआ है।" विद्वानों, विचारकों, तत्ववेत्ताओं, शिक्षा शास्त्रियों और मानस शास्त्रियों ने मुक्त कंठ से बालक की प्रशंसा की है, उसकी महिमा का बखान किया है। प्राचीन काल के एक महान् आचार्य ने तो यहां तक लिख दिया है कि "जो कोई भी इन 'नन्हों' पर अत्याचार करता है, उचित हो चक्की का पाट गले में डालकर उसे समुद्र में डुबो दिया जाए।" बालक एक स्वतंत्र व्यक्ति है। अपना विकास आप करने की उसमें शक्ति है। जान लाक लिखता है—"बालक भी हमारी तरह स्वतन्त्र है। जिस तरह बड़े-बूढ़े स्वतन्त्र हैं, उसी तरह बालक भी स्वतन्त्र है। वे जो कुछ अच्छा करते हैं, सो सब अन्तःस्फूर्ति से ही करते हैं। वे स्वाधीन और सम्पूर्ण हैं। आपको जो पसन्द हो, वह अगर बालक को पसन्द न हो, उसमें उसकी रुचि न हो, तो वह काम उससे कभी न करवाइए। सीखने के विषयों की अपेक्षा सीखनेवाले का महत्व अधिक है। क्या सीखना और क्या न सीखना, इसका निर्णय सीखनेवाले को ही करना चाहिए सिखानेवाले को नहीं। बच्चों के रहनुमा बनने की अपेक्षा उनका अनुकरण करनेवाले बनो।" रूसो के शब्दों में—"जन्म से मनुष्य सदा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता मनुष्य का लक्षण है। पूर्ण मनुष्यत्व उसमें है जो दूसरों के दिये हुए प्रमाणों या सम्मतियों से आंदोलित हुए बिना स्थिर रहता है, अपनी ही आंखों से देखता है, अपने ही हृदय से अनुभव करता है और जो केवल स्वतन्त्र प्रजा का ही अधिकार स्वीकार करता है।। इसलिये शिक्षा का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि जिसके फल स्वरूप मनुष्य अपना स्वाभाविक विकास कर सके और जीवन के चाहे जैसे विकट बाह्य प्रसंगों में भी केवल अपनी वृत्ति का अनुकरण करके जीवन बिता सके। अतः बालक पर शारीरिक, बौद्धिक किसी भी प्रकार का दबाव हमें नहीं डालना चाहिए। उसे जो कुछ भी सीखना है, वह जीवन और प्रवृत्तियों से सीखना है। ऊपर से उस पर हम कुछ लाद नहीं सकते।" जान लाक और रूसो की तरह बाल शिक्षा के प्रवर्तक पेस्टेलाजर और फ्रूबेल ने भी बालक के महत्व पर खूब प्रकाश डाला है। दोनों ही बाल-देवता के पुजारी थे। बालसेवा ही उनके जीवन का ध्येय बन गया था। एक दुनियादार के सवाल का जवाब देते हुए पेस्टेलाजी ने कहा था—'जी हां, बच्चा ही हूं, और मरते दम तक बच्चा ही रहना चाहता हूं। आपको क्या बताऊं कि बालक बने रहने में दिल को कैसी राहत मिलती है।' फ्रूबेल का भी यही हाल था। बालक पर होते अत्याचार को देखकर आप रो पड़ते थे। किंडरगार्टन पद्धति का आविष्कार आपने ही किया था। बालक का अपमान आप सहन नहीं कर सकते थे। आप कहा करते थे कि बालक गुण्डा और शैतान नहीं होता अगर बालक में कोई बुराई है तो उसके लिये बालक नहीं बड़े जिम्मेवार हैं।

आज तो बालक का और भी गहराई से निरीक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अध्ययन किया जा रहा है। उन्नतिशील देशों ने बालक के महत्व को ख़ूब समझ लिया है। बालक के विकास के लिये वहां दिल खोलकर रुपया ख़र्च किया जाता है। अनुसंधान के लिये प्रयोगशालाएं खुल रही हैं। बड़े बड़े मानस-शास्त्री बाल-मानस के अध्ययन में लगे हुए हैं। बालक के विषय में उन्होंने जो खोजें की हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण और आश्चर्यपूर्ण है। जगत विख्यात डाक्टर मोन्टीसोरी ने इस दिशा में जो काम किया है, वह बाल-शिक्षा और बाल-विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा। इन्होंने बालक का गर्भावस्था से लेकर सूक्ष्म निरीक्षण किया। बालक कैसे बढ़ता है, कैसे वृद्धि पाता है, इस बीच में वह क्या क्या क्रियाएं करता है और किस प्रकार, अपना विकास करता है आदि बातों का शास्त्रीय ढंग से पूर्ण अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप इनके बालक विषयक विचारों में अद्भुत परिवर्तन हुआ। बालक से यह इतना प्रभावित हुईं कि इन्होंने अपना सारा जीवन ही बाल सेवा में लगाने का निश्चय कर लिया। गत चालीस वर्ष से डाक्टर, मोन्टीसोरी जी-जान से इस काम में जुटी हुई हैं। इनके नवीन और क्रान्तिकारी विचारों ने शिक्षा जगत में भूकम्प-सा पैदा कर दिया, खलबली मचा दी। इनका कथन है कि "बालक अपनी आस पास की दुनिया को जानने तथा ज्ञान प्राप्ति के लिये जन्म से ही उत्सुक रहता है। इस आयु में (जन्म से छः साल तक) ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति भी बालक में अत्यन्त प्रबल होती है। स्वयं ज्ञान प्राप्ति के लिये बालक बिना थके, बिना परेशान हुए, बिना दबाव के, बिना बाह्य निमन्त्रण के खुशी-खुशी अगाध परिश्रम किया करता है। सोने के समय को छोड़कर वह हर समय किसी न किसी प्रवृत्ति में लगा ही रहता है। स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्ति करते रहना बालक का प्राण है। पढ़ाई के विषयों का चुनाव भी वह ख़ुद ही करता है, बालक का स्वभाव प्रगतिशील है। वह सदा पूर्णता की ओर जाता है। बालक एक महान सन्देश लेकर जन्म लेता है। उसे पूर्ण मानव बनना है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल्य काल मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट समय है। बाल जीवन मानव जीवन की नीव है। जैसे बीज से वृक्ष का निर्माण होता है, उसी प्रकार बीज रूपी बालक में से मनुष्य रूपी वृक्ष का निर्माण होता है। जैसे सभी जीवित प्राणियों में सम्पूर्ण छिपी रहती है, उसी प्रकार बालक में भी जन्म से ही मनुष्यत्व मौजूद रहता है जो प्रत्येक मनुष्य का आदर्श है।" सचमुच बालक महान् व्यक्ति है, मनुष्य में जो शक्तियां पाई जाती हैं, उन सब का निर्माण बालक ही करता है। निर्माण करने की बालक में ग़ज़ब की शक्ति है। गर्भ में ही बालक निर्माण कार्य में लग जाता है। फिर जन्म से छः साल तक निर्माण करते करते पूर्ण मनुष्य बन जाता है। शून्य से पूर्ण मनुष्य बनने की शक्ति प्रकृति ने बालक को ही दी है। मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है। हवाई जहाज़ बना सकता है। मशीनगनें तैयार कर सकता है, अणु बम का आविष्कार कर सकता है, और भी अनेक प्रकार के चमत्कार कर सकता है। लेकिन मनुष्य का निर्माण करने में वह सर्वथा असमर्थ है। यह शक्ति केवल बालक में ही है। इसीमें ही बालक की महानता है। इसीलिए बालक मानव जगत का निर्माता है।

बालजीवन के प्रथम छः साल बड़े ही महत्व पूर्ण हैं। ये वे साल हैं जिनमें बालक का जीवन बन सकता है या बिगड़ सकता है। जेजुएट धर्म का एक पादरी कहा करता था—"शुरू के छः सालों तक बालक को हमें सौंप दो। इसके बाद जहां उसकी इच्छा हो, वहां उसे जाने दो।" विज्ञान की नवीन तम खोजों ने सिद्ध किया है कि इन छः सालों में भी प्रथम तीन वर्ष अधिक महत्व के हैं। बर्ट्रेंड रसल का कथन है कि—"प्रथम वर्ष में बालक जितना विकास करता है, उतना विकास वह अपने सारे जीवन में भी नहीं कर सकता।" प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता कर्ल के अनुसार बालक दो और तीन वर्ष की आयु में जितना ग्रहण करता है; उतना मनुष्य दस वर्ष की आयु में भी ग्रहण नहीं कर सकता। जापानी शिक्षा शास्त्री ने भी इन्हीं विचारों का समर्थन किया है। वह लिखता है कि "तीन वर्ष की आयु में जो स्पिरिट भर दी जाती है, वह सौ साल तक काम करती रहती है। डाक्टर मोन्टीसोरी ने भी प्रथम तीन वर्ष को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। वे लिखती हैं— During the first year of his life, the child lives intensely, he is keyed up to a degree

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of sensitivity such as he will never again experience during the rest of his life, nothing is lost to him so much so that by the time he ends his third year he is already old, अर्थात् प्रथम वर्ष में बालक इतनी तेजी से प्रगति और विकास करता है कि तीन साल की समाप्ति पर विकास की दृष्टि से वह वृद्ध हो जाता है। कितना महत्वपूर्ण है बालजीवन का प्रथम वर्ष। एक साल की इस आयु में बालक अपने आस पास की सभी चीजों को जानने-पहचानने लगता है। व्यवस्था का भी इस समय बालक को बड़ा ध्यान रहता है। सब चीजों को वह यथा समान देखना चाहता है। जरा सी भी अव्यवस्था से वह हैरान-परेशान हो जाता है। दो साल की आयु में बालक का ध्यान इतनी सूक्ष्म चीजों की ओर जाता है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस समय बालक की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। इस समय काम करने के लिये बालक बड़ा उत्सुक रहता है। अपने अज्ञान के कारण हम उसे काम करने का अवसर न देकर उसके विकास में बाधा डालते हैं। इस समय काम करने की बालक को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। काम करते करते तीन साल तक बालक अपना शारीरिक और मानसिक विकास पूरा कर लेता है। शेष तीन सालों में प्राप्त शक्तियों का पूर्ण विकास करता है। यह सब कुछ बालक स्वयं ही अपने परिश्रम से करता है। इसके लिये बालक को केवल उपयुक्त वातावरण चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक सहायता और कुछ नहीं। विकास का काम बच्चों को ही करने देना चाहिए। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उस काम को बिना किये ही छोड़ देना चाहिए। बालक को खुद ही अपनी शक्तियों और इन्द्रियों का उपयोग करना चाहिए। जो शक्तियां बच्चों का विकास करती हैं, वे उसके अंदर से ही पैदा होती हैं। इन शक्तियों का पुष्ट करना, काम में लाना और विकसित करना सिवाय बालक के और किसी का कर्तव्य नहीं है।" यह बात सदा याद रखने की है कि जो कुछ बालक सीखता है वह स्वयं सीखता है और कोई उसे सिखा नहीं सकता।" भाषा इसका ज्वलंत उदाहरण है।

बालक को भाषा कौन सिखाता है? बालक को भाषा कोई नहीं सिखाता। वह स्वयं अपनी प्रकृतिदत्त शक्ति से वातावरण से भाषा ग्रहण करता है। यह कहना बिलकुल गलत है कि बालक मां से भाषा सीखता है। यदि यह बात सही होती तो नवजात शिशु की माता के मर जाने पर बालक सदा गूंगा ही रहता। लेकिन ऐसा होता नहीं। पहले बालक कुछ खुले शब्द बोलने लगता है। फिर शब्द और वाक्य बोलने लगता है। यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता है। बालक अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। लेकिन आश्चर्य यह है कि इन सब आवाजों में से बालक केवल मनुष्य की आवाज को ही ग्रहण करता है। ढाई वर्ष की आयु में बालक खूब बोलता है। पांच वर्ष की आयु तक व्याकरण सहित भाषा को बालक सीख जाता है। इसके लिये बालक को किसी भाषाशास्त्री या व्याकरणाचार्य की जरूरत नहीं पड़ती। अन्दाज़ा लगाया गया है कि सुसंस्कृत वातावरण में पला हुआ बालक पांच वर्ष की आयु में तीन हजार शब्द और छः साल की आयु में पांच हजार शब्द सीख जाता है। नये नये शब्द सीखने के लिये बालक बड़ा ही उत्सुक रहता है। इस समय में बालक खेल-खेल में कठिन से कठिन भाषा को सीख जाता है। बालक ही भाषा को जीवित रखता है। यदि बालक में यह शक्ति न होती तो एक पीढ़ी में ही भाषा का अन्त हो जाता। भाषा सीखने का काम एक निर्धारित समय में ही होता है जिसे संवेदनकाल कहते हैं। साढ़े पांच और छः वर्ष की आयु में भाषा की संवेदनशीलता कम हो जाती है। इस समय भाषा ग्रहण करने का उत्साह बालक में इतना नहीं रहता जितना कि संवेदन काल में होता है। भाषा की तरह बालक लिखना भी सरलता से सीख जाता है। हां, लेखन के लिये पूर्व तैयारी की जरूरत है। लिखना सीखने के लिये तीन से छः साल का समय उपयुक्त है। आठ और नौ वर्ष के बालक में लिखने की शक्ति या उत्साह बिल्कुल नहीं रहता। संवेदन काल विकास के लिये बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इस समय बालक की जिज्ञासा बड़ी तीव्र होती है। वह नित नयी बात जानना और सीखना चाहता है। सीखने की उसकी भूख बढ़ती ही रहती है। इस समय ज्ञान के भंडार अगर बालक के सामने खोल दिये जाए, तो बड़ी सरलता से वह जटिल विषयों का ज्ञान स्वानुभव से प्राप्त कर सकता है। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय वनस्पतिशास्त्र, प्राणी शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, खगोलविद्या, इतिहास-भूगोल, रसायन शास्त्र, अंकगणित-बीज गणित आदि विषय साधनों और चित्रों द्वारा बालकों के सामने रखने चाहिएं। बालक इन विषयों में बड़ा रस लेते हैं। यह कोरे सिद्धान्त की बात नहीं है। यह तो एक ठोस सचाई है। यह ध्यान रहे कि यह सब कुछ संवेदन काल में ही सम्भव है जो निश्चित समय पर ही आता है। संवेदन काल में ही बालक में ग्रहण करने की शक्ति प्रबल होती है। प्रकृति ने भिन्न भिन्न वस्तुओं के लिये भिन्न भिन्न संवेदन काल निश्चित किये हैं।

जिस प्रकार बालक भाषा आदि सीखता है, उसी प्रकार वह अपनी जाति और राष्ट्र की विशेषताओं को अपनाता है, जब बालक जन्म लेता है, तो उस समय वह हिन्दू मुसलमान, सिख-इसाई, पारसी-जैनी, रोमन कैथलिक-प्रोटेस्टेन्ट आदि कुछ नहीं होता। और वह हिन्दुस्तानी, जापानी, चीनी, रूसी, अमरीकी या अंग्रेज आदि होता है। वह केवल बालक होता है। लेकिन धीरे धीरे वह जिस धर्म या जाति में पैदा होता है, उसी धर्म और जाति को अपना लेता है। इसी प्रकार वह कांग्रेसी, नाजी, फासिस्ट, समाजवादी, कम्यूनिस्ट आदि बन जाता है, बालक को यह सब कुछ कौन सिखाता है? बालक खुद ही वातावरण से इन सब बातों को ग्रहण कर लेता है। प्रकृति ने बालक को एक ऐसी विलक्षण शक्ति दी है कि जिससे वातावरण की विशेषताओं को वह अपने जीवन का अंग बना लेता है। बालक समय और थल विशेष के अनुकूल अपना व्यवहार और निर्माण करता है। भारत में पैदा हुआ बालक गाय का जितना आदर-सत्कार करेगा, उतना इङ्गलैंड में पैदा हुआ बच्चा कदापि न करेगा। वातावरण के अनुकूल बन जाने की शक्ति बालक में ही होती है, बड़ों में नहीं। बालक को किसी भी वातावरण में रख दीजिए, वह अपने को उसके अनुकूल बना लेगा। लेकिन प्रौढ़ ऐसा नहीं कर सकते। जो व्यक्ति शान्त वातावरण में रहता है, उसे अपार कोलाहल-पूर्ण वातावरण में रख दिया जाए, तो वहां उसकी नाक में दम आ जाएगा और वहां से छुटकारा पाने पर ही उसे चैन मिल सकेगा। लेकिन बालक में यह बात नहीं है। आज सुधार पर सुधार होते हैं, परिस्थितियां बदलती हैं। भाषा में परिवर्तन होता है। बालक ही समाज में है, फैले हुए अर्थहीन रस्म रिवाजों, विनाशक परम्पराओं, प्राणघातक अंधविश्वासों, मानवता को कलंकित करने वाली छुआछूत, रंग भेद, जाति भेद तथा अन्य अनेक प्रकार के गले-सड़े विचारों का अंत कर एक नये ही ढंग रहित, जाति रहित, सम्प्रदाय रहित तथा पंथ रहित समाज का निर्माण कर सकता है। बालक ही ऐसी क्रांति कर सकता है। बड़ों से ऐसी आशा रखना आकाश-कुसुम के समान है। बिखरी हुई मानव जाति को एकता की लड़ी में पिरोने की शक्ति केवल बालक में ही है। भिन्न भिन्न कुटुम्बों, भिन्न भिन्न जातियों तथा भिन्न भिन्न धर्मों के बालक प्रेम से हिल मिलकर साथ साथ खेलते हैं, साथ साथ खाते हैं, साथ साथ काम करते हैं। छोटे-बड़े अमीर-गरीब, छूत-अछूत, राव-रंक, हिन्दू मुसलमान आदि का अप्राकृतिक भेद भाव उनमें नहीं होता। यह भेद भाव और कृत्रिमता तो बालक में वातावरण से आती है। युद्धों का अन्त और विश्वबन्धुता को स्थापना भी बालक ही कर सकता है। राष्ट्र संघों, शान्ति परिषदों और सुरक्षा समितियों से युद्धों का अन्त न तो आज तक हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। यह तो मनोवृत्ति बदलने का सवाल है जो बचपन में ही बदली जा सकती है। बाल्यकाल ही ऐसा समय है जिसमें सब कुछ संभव है। यही कारण है कि जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासिस्टवाद, जापान में सैनिकवाद और रूस में समाजवाद की जड़ जमाने के लिये बालक की शरण ली गई। शालाओं में डटकर इन वादों का प्रचार किया गया। जिसके फलस्वरूप जर्मनी का बच्चा बच्चा नाजी, इटली का बच्चा बच्चा फासिस्ट, जापान का बच्चा बच्चा सैनिक और रूस का बच्चा बच्चा समाजवादी बन गया। बचपन में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे अमिट होते हैं। किसी के मिटाये वे मिट नहीं सकते। महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल भारतीयों में अनुशासन हीनता की शिकायत किया करते हैं। शोर गुल और कोलाहल से परेशान हो जाते हैं। इस अव्यवस्था के कारण श्रोताओं को उपदेश भी दिया जाता है और फटकारा भी जाता है। लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकलता। निकल भी नहीं सकता। अन्य गुणों की तरह अनुशासन की नींव बचपन में ही रखी जा सकती है। स्वतंत्र वातावरण में पला हुआ बालक बड़ा होकर कभी अनुशासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगा। स्वतंत्र देशों का उदाहरण इसका जीता जागता उदाहरण है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जन्म से छः साल का समय मानव जीवन का बहुमूल्य समय है। मनुष्यों में पाये जानेवाले अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों का कारण आज बचपन में ही खोजा जाने लगा है। गर्भाधान और गर्भकाल के आघातों के कारण बालक अनेक रोगों का शिकार हो जाता है जिनका दूर करना सम्भव नहीं है। जन्म के बाद जो आघात होता है उसका असर भी कुछ कम नहीं होता। वैज्ञानिकों का कथन है कि गर्भाधान, गर्भकाल, जन्म और जन्म के बाद तक बालक को यदि ठीक वातावरण मिलता रहे तो तीन साल के अन्त तक बालक को आदर्श बन जाना चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं। जन्म से छः साल तक जिस ढंग से बालक का लालन-पालन होना चाहिए, वह नहीं होता फलतः बड़ा होकर बालक अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। अकेले अमेरिका में प्रतिवर्ष एक लाख आदमियों को पागलों के अस्पताल में भेजा जाता है। इसके अलावा प्रतिवर्ष पन्द्रह हज़ार आदमी वहां क़तल कर दिये जाते हैं। अगर शुरू के छः साल पूरा पूरा ध्यान रखा जाए तो कितने ही आदमियों को मूर्ख और पागल बनने से बचाया जा सकता है। इस आयु में बालक की उपेक्षा करना, उसे दबाकर रखना, उसकी उमंगों और भावों को कुचलना एक ऐसा अपराध है जो कभी भी माफ नहीं किया जा सकता।

जन्म से छः साल का समय केवल शारीरिक और मानसिक विकास के लिये नहीं बल्कि चरित्र निर्माण के लिये भी महत्वपूर्ण है। इस समय बालक स्वयं ही चरित्र निर्माण की बातों को ग्रहण करता है। चरित्र विकास प्राकृतिक प्रेरणा या अन्तः शक्ति से होता है। यह ऊपर से लादा नहीं जा सकता। चरित्र निर्माण के लिये बालक को स्वतन्त्र रूप से अपनी मन पसन्द प्रवृत्तियां करने के लिये योग्य वातावरण मिलना चाहिए। प्रवृत्ति करते करते बालक में योगियों जैसी एकाग्रता आ जाती है। अपने काम में वह इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने आस पास की दुनिया को बिलकुल भूल जाता है, उसे अपनी जरा भी सुध बुध नहीं रहती। उस समय का दृश्य देखते ही बनता है। एकाग्रता द्वारा बालक इच्छा शक्ति की रचना करता है जिससे चरित्र का निर्माण होता है। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि उपदेश द्वारा चरित्र निर्माण का प्रयत्न करना बालू में से तेल निकालने के समान है। उपदेश हृदय को स्पर्श नहीं करता; बुद्धि तक ही सीमित रहता है। उपदेश अच्छा बनने की तो प्रेरणा दे सकता है, लेकिन अच्छा बनाने की उसमें शक्ति नहीं है। सदियों से हम उपदेश और प्रवचन सुनते आ रहे हैं। उपदेशों से भरपूर पुस्तकों के पढ़ने में भी हम कोई कसर उठा नहीं रखते। लेकिन जब अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो अपने को हम कोरा ही पाते हैं। हमारी वाणी और अमल में जरा भी मेल नहीं है। हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऊपर से तो हम प्रेम का राग अलापते रहते हैं, लेकिन अन्दर से ईर्ष्या द्वेष की भट्टी में जलते रहते हैं। बात तो हम विश्वबंधुता की करते हैं, लेकिन अपने पड़ौसी का गला घोंटने के लिये हम हरदम तैयार रहते हैं। हमारा आज का जीवन शत प्रतिशत दुरंगा होगया है। जिन्हें हम अपना धर्म गुरू मानते हैं, जीवन में उनके सिद्धान्तों के बिलकुल विपरीत ही चलते हैं। हजरत मुहम्मद और प्रभु ईसा के अनुयाई भ्रातृत्व और प्रेम का संदेश फैलाने के बदले खून की नदियां बहाने और निर्बलों को कुचलने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। भगवान महावीर बुद्ध के भक्त सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के बजाए येनकेन प्रकारेण धन बटोरने में लगे हुए हैं। यही हाल कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासकों का है। और मान लीजिए महात्मा गांधी वर्षों से सत्य और अहिंसा तथा हिन्दू मुस्लिम एकता का उपदेश दे रहे हैं। छूआछूत को मिटाने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं। लेकिन यह एक खुला रहस्य है कि सत्य और और अहिंसा तथा हिन्दू मुस्लिम एकता से हम कोसों दूर हैं। छुआछूत से भी हम चिपटे हुए हैं। कारण स्पष्ट है। बचपने से जो संस्कार रग रग में घुस गये हैं, उनका निकालना संभव नहीं है। सत्य अहिंसा का प्रचार करने के लिये, हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिये छुआछूत को मिटाने के लिये बाल्यकाल ही सर्वश्रेष्ठ है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, बालक ही सुधारों को, नये विचारों को सरलता से अपना सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः उपदेशों पर शक्ति खर्च न करके बालक की ओर ध्यान देना चाहिए। उसके विकास के लिये सुन्दर वातावरण बनाना चाहिए। जीवन निर्माण के लिये वातावरण बनाना चाहिए। जीवन निर्माण के लिये वातावरण बालक का प्राण है। वातावरण बालक का निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है—"जन्म का राम वातावरण के प्रभाव से रावण बन जाता है।"

स्वतन्त्रता की दृष्टि से भी बालक का महत्व कुछ कम नहीं है। सदियों से मानव जाति ने स्वतंत्रता के नाम पर पानी की तरह अपना खून बहाया है, भारी से भारी बलिदान किया है। लेकिन हम देखते हैं कि आज भी मानव जाति गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई है, पराधीनता की चक्की में पिस रही है, राजनीतिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अमेरिका, इङ्गलैंड, रूस आदि देश स्वतंत्र है, वे किसी अन्य जाति के गुलाम नहीं हैं। लेकिन वास्तव में वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं। आज से कुछ दिन पहले इस प्रकार की स्वतन्त्रता जर्मनी, जापान और इटली को भी प्राप्त थी। लेकिन महायुद्ध ने उनकी स्वतन्त्रता को मिट्टी में मिला दिया है। आज वे परतन्त्र और पराधीन हैं। और कौन कह सकता है कि आज जो स्वतंत्र हैं, कल उन्हें भी अपनी स्वतंत्रता से हाथ धोना पड़े। सच्ची और स्थायी स्वतंत्रता मानवजाति के परम हितैषी और परम मित्र बालक को स्वतंत्र करने से ही आएगी। यह खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जब तक बालक गुलाम है, तब तक मानव समाज गुलाम ही रहेगा। बालक के गुलाम रहते हुए स्वतंत्रता का ख्वाब देखना हास्यास्पद है। वृक्ष को हराभरा और सर सब्ज रखने के लिये जड़ को न सींचकर पत्तों और टहनियों को पानी देते रहना मूर्खता नहीं तो और क्या है। अतः स्वतंत्रता का सवाल है। विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व और विश्वकल्याण के लिये बालक को स्वतंत्र करना अनिवार्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार की सभी जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिये बालक नहीं तो कल हमें बालक की शरण लेनी ही पड़ेगी। इसके सिवाय दूसरा कोई चारा ही नहीं है। बालक की महिमा का कहां तक बखान किया जाए। बालक प्रेम और उदारता का खजाना है। वह किसी घृणा नहीं करता अत्याचारी को भी वह अपने प्रेम वंचित नहीं रखता। अन्याय-अत्याचार को वह जल्दी भूल जाता है। हमारे मनोभावों को जान की बालक में विलक्षण शक्ति है। स्व० गिजुभाई ने ही अच्छा लिखा है—"हम सारी दुनिया को ठग सकते हैं, बालक को नहीं ठग सकते। हम सारी दुनिया बेवकूफ बना सकते हैं; लेकिन बालक को मूर्ख नहीं सकते। हम अपने चरित्र को सबसे छिपा सकते लेकिन बालक से नहीं छिपा सकते। प्रकृति ने न कौन सी शक्ति उसे दी है वह फ़ौरन हमारी पहचान लेता है, वह तुरन्त ही जान लेता है कि जबान में कटुता है या मिठास है, हमारी आवाज हुक्म है या नरमी है, हमारे स्पर्श में कोमलता है कर्कशता है, हमारे दिल में शान्ति है या अशान्ति हमारे मन में आदर है या अनादर है।"

बालक प्रकृति की अनमोल देन है, सुन्दरतम है, सबसे निर्दोष वस्तु है। बालक मनोविज्ञान का है, शिक्षक की प्रयोगशाला है। बालक कुल का है; माता पिता का सर्वस्व है। बालक का जीवन है। अमीर ग़रीब, ज्ञानी अज्ञानी, राव-रंक, सभी बालक को प्यार करते हैं। बालक जगत का निर्माता है। बालक के विकास पर का विकास निर्भर है। बालक की सेवा ही सेवा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी मां

[गोर्की की आत्मकथा का एक मार्मिक चित्र]

अनु० श्री सुमङ्गल प्रकाश

एक रोज़ सनीचर के दिन बहुत सवेरे मैं पेत्रोवना के सब्ज़ी के खेत में बुलबुल पकड़ने के लिये जा घुसा। वहां मैं बहुत देर तक रहा, क्योंकि वे इतनी तेज़ थीं कि मेरे जाल में फंसती ही नहीं थीं। उनकी ख़ूबसूरती ने मुझे बुरी तरह से लुभा लिया था। चांदी से चमकते जमे हुए बर्फ़ पर वह फुदकती फिरती, और बर्फ़ से ढकी हुई झाड़ियों की डालों पर उड़कर जा बैठती थीं और बर्फ़ का दुनिया बुरादा सा चारों तरफ़ झड़ उठता था। यह मुझे इतना मनोहर लग रहा था कि मैं अपनी नाकामयाबी की परेशानी भूल गया। यों भी मैं शिकार के फ़न में उस्ताद नहीं था, क्योंकि दरअसल अपना शिकार पाने से ज़्यादा मुझे उसके पीछे लगे फिरने में मज़ा आता था और सबसे अधिक आनन्द पक्षियों के तौर-तरीक़े जानने और उनके बारे में सोचने-विचारने में मिलता था। बर्फ़ से ढके हुए एक खेत के किनारे अकेले बैठे बैठे, उस बर्फ़ीले दिन के घोर सन्नाटे में, चिड़ियों की चहचहाहट सुनने में मैं मस्त था कि किसी गाड़ी की घण्टियों की टुनटुनाहट मुझे दूर पर, हलकी सी, सुनाई दी, किसी पपीहे के करुण गान की तरह।

बर्फ़ में बैठा बैठा मैं अकड़ सा गया था और मुझे लगा कि मेरे कान बर्फ़ में बिलकुल जम गए हैं। इसलिये जाल और पींजड़ों को बटोरकर मैं दीवाल पर चढ़ बगीचे में कूद आया और घर आ पहुंचा।*

सड़क की ओर का फाटक खुला पड़ा था और एक बहुत बड़ा, लम्बा-चौड़ा आदमी, मौज में सीटी बजाता, एक बड़ी सी बन्द गाड़ी में जुते हुए पसीने से तरबतर तीन घोड़ों की रास पकड़कर अहाते से बाहर लिये जा रहा था। मेरा दिल उछलने लगा।

"किसे लेकर आए थे तुम ?"

उसने मेरी ओर मुड़कर अपनी बांहों के नीचे से मुझे देखा और कोचवान की गद्दी पर चढ़कर जवाब दिया—"पादरी साहब को।"

---

*बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने के बाद गोर्की अपनी अपनी मां के साथ नाना-नानी के पास रहने लगा था। उसके नाना रंगरेज़ थे, और बड़े भले स्वभाव के थे। गोर्की की मां कुछ दिन ही वहां रहकर कहीं बाहर चली गई, और गोर्की अपनी स्नेहमयी नानी की छत्र छाया में पलने लगा। —अनुवादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे यक़ीन नहीं आया; और अगर पादरी साहब ही हों तो वह किसी किराएदार के ही यहाँ आए होंगे।

"चल-चल!" कोचवान ने घोड़ों को हांका, और उनकी पीठ पर लगाम फटकारते हुए मौज के साथ फिर सीटी बजाने लगा।

घोड़े मैदान को चीरते हुए दौड़ चले, और मैं खड़ा खड़ा उनकी ओर ताकता रहा फिर मैंने फाटक बन्द कर दिया। सूने पड़े रसोई घर में घुसते ही सबसे पहली आवाज़ मैंने अपनी माँ की सुनी। पासवाले कमरे में अपनी ज़ोरदार आवाज़ में वह कह रही थीं—"तो अब चाहते क्या हैं आप? मेरी जान लेंगे?"

अपनी बाहरवाली पोशाक बदले बिना ही मैं पींजड़ों को पटक-पटकाकर दौड़ा हुआ बाहर के बरामदे में आया और नानाजी से टकरा गया। उन्होंने मेरी गरदन दबोच ली और अपनी खूंख़्वार सी आँखें मेरे चेहरे पर गाड़ दीं, और बड़ी मुश्किल से एक घूँट सी सटक कर भारी गले से बोले—

"तेरी माँ फिर आ गई है...जा उसके पास... ठहर...!" उन्होंने इतनी ज़ोर से मुझे झकझोर डाला कि मैं मुश्किल से गिरते-गिरते बचा और अन्दर के दरवाज़े तक लुढ़कता चला गया। "चला जा...! जा...!"

मैं दरवाज़े से जा टकराया, जिस पर ऊन और मोमजामा चढ़ा हुआ था, पर खटका गिराने में मुझे काफ़ी देर लग गई क्योंकि मेरा हाथ सरदी से ठिठुरकर बिलकुल सन्न हो गया था और घबड़ाहट के मारे कांप रहा था। जब अन्त में मैं धीरे से अन्दर घुसा तो बिल्कुल स्तब्ध और विस्मित सा देहली पर ही रुक गया।

"यह आ गया!" मेरी माँ बोल उठीं, "हे परमात्मा, कितना बड़ा हो गया है यह! क्यों, मुझे पहचानता नहीं है?...यह कैसे कपड़े पहनाए हैं इसे मां?...और, देखो तो, इस के कान बिलकुल सफ़ेद पड़े जा रहे हैं! बतख़ की चरबी तो लाओ माँ, ज़रा जल्दी से।"

कमरे के बीचों बीच खड़ी वह मेरे ऊपर झुककर मेरी बाहर की पोशाक उतारने लगीं और मुझे इस तरह उलट पुलट कर देखने लगीं मानो मैं कोई गेंद हूँ। उनके लम्बे-चौड़े बदन पर एक गरम मुलायम, ख़ूबसूरत पोशाक थी, मर्दों के पूरे लबादे सी बड़ी; और कन्धे से लेकर कमर तक उस पर काले काले बटन तिरछी बटन में टँके हुए थे। पहले कभी मैंने वैसी कोई पोशाक नहीं देखी थी।

उनका चेहरा पहले से छोटा लग रहा था, आँखें पहले से ज़्यादा बड़ी और धँसी हुई थीं; पर उनके बालों का सुनहरापन और भी गहरा हो उठा था। कपड़े उतार-उतार कर वह देहली के उधर फेंकती जा रही थीं, और घृणा से अपने लाल-लाल ओंठ सिकोड़े लगातार बोलती ही चली जा रही थीं—"बोलता क्यों नहीं है तू? ख़ुशी नहीं हुई तुझे मेरे आने की? उफ़! कैसी गन्दी है यह कमीज़..."

फिर उन्होंने बतख़ की चरबी से मेरे कान मलने शुरू किये जिससे मुझे तकलीफ़ होने लगी। पर इतनी बढ़िया ख़ुशबू निकल रही थी उनके कपड़ों से उस वक़्त कि तकलीफ़ जितनी हो रही थी उससे कम मालूम हुई।

मैं उनकी आँखों की ओर ताकता हुआ उनसे चिपटता ही चला जा रहा था। आवेश के कारण मेरे मुंह से आवाज़ नहीं निकल पा रही थी। और उनके शब्दों के साथ साथ बीच बीच में नानी की धीमी दुखभरी आवाज़ मेरे कानों तक पहुंच रही थी—"इसने मनमानी करने लगा है यह...ज़रा किसी की नहीं सुनता। अपने नाना तक से नहीं डरता, ज़रा भी...अरी वारिया! वारिया!"

"क्या पें-पें कर रही हो मां, चुप भी रहो। इस तरह बक के क्या कर लोगी?"

सभी चीज़ें मां के सामने छोटी लगने लगी थीं। करुणा की पात्र, और बूढ़ी! मैं ख़ुद भी बूढ़ा-सा लगने लगा था, नाना जी-सा बूढ़ा।

अपने घुटनों से मुझे चिपटाकर मेरे बालों पर बार-बार गरम-गरम, भारी हाथ फेरती हुई वह बोलीं—"इस कड़े आदमी की देखभाल में रखने की ज़रूरत है तुझे। और अब स्कूल भी तो जाना चाहिये।...कुछ सीखा सीखना चाहता है कि नहीं? क्यों रे?"

"मैं तो सब सीख चुका, जो जानना था।"

"और भी थोड़ा-बहुत सीखना बाक़ी है रे!...कितनी ताक़त आ गई है तुझमें!" और मेरे साथ तमाशा करती हुई वह अपनी तेज़ मीठी आवाज़ में खोलकर हँसने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी वक़्त नानाजी अन्दर दाख़िल हुए। उनका चेहरा एकदम सफ़ेद पड़ गया था, आँखें लाल हो रहीं थीं, और ग़ुस्से के मारे वह काँप रहे थे। मेरी माँ ने उन्हें देखते ही मुझे दूर हटा दिया और ऊँची आवाज़ में उनसे पूछा—"तो फिर क्या तय किया आपने बाबू जी? मुझे नहीं रहने देंगे यहाँ?"

नाना जी खिड़की के पास खड़े होकर अपनी उंगलियों के नाखूनों से शीशे पर जमा बरफ़ खुरचने लगे, और बड़ी देर तक कुछ नहीं बोले। स्थिति बहुत ही नाज़ुक और तकलीफ़देह थी और, जैसा कि ऐसे संगीन मौक़ों पर मेरे साथ हमेशा होता था मुझे लग रहा था मानो मेरे शरीर भर में आंख ही आंख और कान ही कान हैं। मेरी छाती के अन्दर न जाने कैसा होने लगा। और मेरी बड़ी ज़बर्दस्त इच्छा हुई कि चीख़ उठूँ।

"लेक्सी, तू जा यहां से!" नाना जी ने रुखाई के साथ मुझसे कहा!

"क्यों?" मेरी मां ने मुझे फिर अपनी ओर खींचते हुए उनसे पूछा। "नहीं, तू यहाँ से नहीं जाएगा। मैं मना कर रही हूं।" और किसी गुलाबी बादल की तरह तनकर मेरी माँ धीरे धीरे नाना जी के पीछे जा खड़ी हुईं।

"ज़रा सुनो तो बाबू जी—"

नाना जी उनकी ओर मुड़कर चीख़ उठे—

"चुप रह।"

"अपनी ज़बान को क़ाबू में रखिये, बाबू जी," शान्ति-पूर्वक माँ ने जवाब दिया।"

नानी कौच पर से उठ खड़ी हुईं और अपनी उंगली दिखाते हुए उन्होंने मा को टोका—"यह कौन, बारबारा?"

और नाना भी बुदबुदाते हुए बैठ गए—"अच्छा देखें तो ज़रा! मैं यह जानना चाहता हूँ कि किसने—? कौन था वह?.....कैसे हुआ यह सब?"

और अचानक ऐसी आवाज़ में जो उनकी नहीं मालूम पड़ती थी वह गरज उठे—"मेरा मुंह काला कर दे, बारका!"

"भाग यहां से!" नानी मुझसे बोलीं, और मैं कमरे के अन्दर में जा दाख़िल हुआ। ऐसा लग रहा था मानो मेरा दम घुटा जा रहा है। तन्दूरी चूल्हे के ऊपर मैं जा चढ़ा, और बहुत देर तक वहां बैठा बैठा उन लोगों की बात चीत सुनता रहा, जो बीच की दीवाल के बावजूद सुनाई पड़ रही थी। या तो वे सब के सब एक साथ बोलने लगते थे, और या बड़ी देर तक बिलकुल चुप रहते, मानो सो गए हों। उन लोगों की बातचीत का विषय था कोई बच्चा, जो हाल ही में मेरी मां के पैदा हुआ था और किसी के यहां छोड़ दिया गया था। पर मैं यह नहीं समझ सका कि नानाजी की नाराज़ी किस बात पर थी—उनसे बिना पूछे बच्चा पैदा किया गया इस पर या इसलिये कि वह उस बच्चे को नानाजी के यहाँ नहीं लाईं।

बाद को वह रसोई घर में चले आए। उनके बाल बिखरे हुए थे, चेहरा नीला सा पड़ रहा था, और बेहद थके हुए दिखाई दे रहे थे। उनके पीछे पीछे नानी भी आ पहुंचीं, अपने गालों पर बहते हुए आंसुओं को कुरते से पोंछती हुई। नाना जी एक बेंच पर ऊपर पैर करके बैठ गए और अपने हाथ भी उसी पर टेककर कांपते कांपते अपने पीले पड़ गए ओठों को काटने लगे। और नानी उनके आगे घुटनों के बल झुक गईं और शान्ति-पूर्वक पर बहुत ज़ोर देकर बोलीं—"बाबू जी, माफ़ कर दो उसे! ईसामसीह के लिये, माफ़ कर दो उसे! क्या इस तरह उसे छोड़ ही दोगे बिलकुल? क्या तुम्हारा ख़याल है कि बड़े आदमियों और रईसों के घर ऐसी बातें नहीं होतीं? जानते तो हो कि औरतें कैसी होती हैं। देखो, माफ़ कर दो उसे इस बार! ग़लती किससे नहीं होती बाबू जी?"

नाना जी ने दीवाल के सहारे अपनी पीठ टेककर नानी की ओर देखा। और फिर कड़वी हँसी हँसकर—हँसे क्या, रोना भरा था उस हँसी में—वह भुनभुना उठे—"और? फिर इसके बाद? कोई भी है ऐसी ग़लती जो तुम माफ़ न कर दो? क्यों? अगर तुम्हारी चल सके तो सभी को माफ़ी मिल जाया करे।.....ध —त् तेरे की।"

और नानी के ऊपर झुककर, उनके दोनों कन्धे पकड़ कर वह उन्हें हिलाने लगे और जल्दी जल्दी फुसफुसाते हुए बोले—"पर तुम क्यों इतनी परेशान हो? मेरे अन्दर दया नहीं रह गई है ज़रा भी। देखो न, बिलकुल क़ब्र में पैर लटकाए बैठे हैं हम लोग, फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बुढ़ापे में दण्ड ही दण्ड भोगना पड़ रहा है ! न ज़रा भी चैन मिल पाता है, न सुख.....और न कभी मिलेगा अब ।.....और इसके अलावा.....देख लेना तुम !.....मरने के पहले भीख मांगने की नौबत आएगी—हां, भीख !"

नानी ने उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया, और उनकी बगल में बैठी बैठी धीरे धीरे हँसती हुई बोलीं—"अरे, छिः छिः ! तो भीख मांगने से घबड़ाते हो तुम ! अच्छा मान लो, इस भीख माँगने की ही नौबत आ गई ! तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा तब, तुम घर पर बैठे रहा करना और मैं भीख माँग लाया करूँगी । —मुझे भीख मिल जायगी, तुम फिक्र न करो ।—हमारा घर तब भी भरा-पूरा रहेगा; इसकी चिन्ता तुम बिलकुल छोड़ दो !"

वह अचानक ठहाका मारकर हंस पड़े और बकरे की तरह अपना सिर हिलाने लगे। और फिर उन्होंने नानी की गरदन पकड़कर उन्हें अपनी छाती से लगा लिया। बिलकुल ज़रा से और सिकुड़े-सिकुड़ाए से लग रहे थे वह नानी की बगल में !

"ओह, कैसी नादान हो तुम," वह बोल उठे, "कितनी भोली भाली !—बस अब तुम्हीं तो एक मेरी रह गई हो ! तुम समझती नहीं हो न कुछ, इसीलिये किसी भी बात की घबड़ाहट नहीं होती तुम्हें। पर पीछे तो फिर कर देखो ज़रा—और सोचो तो, कि कितनी मेहनत की है तुमने और मैंने इनके लिये——कैसे कैसे पाप तक किये हैं मैंने इनकी ख़ातिर—पर फिर भी, इतना करने पर भी, आज—"

अब मैं अपने को रोक नहीं सका—मेरे आंसू किसी तरह भी नहीं रुक रहे थे—और मैं चूल्हे पर से नीचे कूद पड़ा और उनके पास दौड़ गया। मेरी आंखों से आनन्द के आंसू बह रहे थे—यह देख कर कि इतने अद्भुत प्रेम के साथ नाना-नानी एक-दूसरे से बात कर रहे हैं। और मेरे आंसू इसलिये भी थे कि उनकी बातें सुन कर मुझे दुख हो रहा था, और इसलिये भी कि मेरी मां आगई थीं, और फिर अन्त में इसलिये भी कि उन्होंने मुझे—आँसुओं समेत लेकर अपनी छाती से लगा लिया। उन्होंने मुझे कसकर चिपटा लिया और मेरे साथ खुद भी रोने लगे।

बड़ी धीमी आवाज़ में बुदबुदाते हुए से नाना जी मुझसे कहने लगे—"तो तू यहां था, शैतान की दुम ! ले, तेरी मां फिर आ गई है, और अब तो हमेशा तू उसीके पीछे लगा फिरेगा न, क्यों ? और बूढ़े खूसट नाना जी अब जायं भाड़ में ! है न यही बात ! और नानी ने तो बिलकुल चौपट ही कर दिया है तुझे..... सो वह भी नहीं चाहिये अब——क्यो ! ध—तू तेरे की !"

हमें हटाकर वह उठ खड़े हुए और ऊंची आवाज़ में गुस्से के साथ बोले—"सबके सब छोड़ते जा रहे हैं हमें—सब मुंह फेरे ले रहे हैं हमारी ओर से।—तो तो फिर बुला लाओ उसे अब, देर क्यों करती हो जल्दी !"

नानी रसोईघर से चली गईं, और नाना जी कोने में जाकर सिर झुकाए खड़े हो गए।

"हे दया-निधान !" उन्होंने बुदबुदाना शुरू किया। "देख—तू तो हमारे दिल की सब जानता है !" और अपनी छाती पर उन्होंने एक घूंसा मारा।

यह सब मुझे अच्छा नहीं लगा। असल में परमात्मा से विनती करने का उनका ढङ्ग ही मुझे बहुत बुरा लगता था, क्योंकि अपने निर्माता के आगे भी मानो वह अपने ही को बड़ा समझते थे।

जब मां अन्दर आईं तब उनकी लाल पोशाक से सारा रसोईघर रोशन हो गया, और जब वह मेज़ के आगे नाना जी और नानी के बीच में बैठ गईं तब उनकी पोशाक की चौड़ी-चौड़ी ढीली बांहें नाना जी और नानी के कन्धों पर लहराने लगीं। वह धीरे धीरे गंभीरतापूर्वक उन्हें कुछ सुनाने लगीं, और वे दोनों चुपचाप, बीच में दख़ल देने की कोशिश किये बग़ैर इस तरह मेरी मां की बात सुनने लगे मानो वही उनकी मां है और वे उनके बच्चे।

आवेश के कारण मैं इतना थक गया था कि कोने पर बैठे बैठे ही मुझे गहरी नींद आ गई।

शाम को नाना जी और नानी अपनी अच्छी अच्छी पोशाक पहन कर 'वेस्पर्स' की प्रार्थना के लिये गिरजाघर चल दिये। नाना जी रंग साज़ों के मुखिया की अपनी वर्दी में चमचमा रहे थे, जिसके ऊपर रोएंदार ऊनी लबादा पड़ा हुआ था, और उनकी तोंद शरम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[मई १९४६

साथ बाहर को निकली हुई थी। चुलबुलाहट के साथ उसकी ओर आंखों का इशारा करके नानी मेरी मां से बोलीं—"ज़रा देख तो बाबू जी को! कितने शानदार बन रहे हैं न!—छोटे से बकरे की तरह फ़ुरतीले।" और मां खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

जब मां के कमरे में उनके साथ मैं अकेला रह गया तब वह कोच के ऊपर पालथी मारकर बैठ गईं और अपनी बगल की ओर इशारा करती हुई बोलीं—"आ, यहां बैठ जा। अच्छा बता, कैसा लगता है तुझे यहां? अच्छा नहीं लगता, क्यों?"

"कैसा लगता है मुझे यहां?" कैसा प्रश्न था यह!

"मैं क्या जानूं?"

"नानाजी पीटते हैं तुझे? क्यों?"

"अब उतना नहीं पीटते!"

"ओ!—अच्छा, अब मुझे अपनी सारी बातें सुना —जो कुछ कहना चाहता हो कह डाल—हां, तो?"

नाना जी के बारे में मैं उनसे कुछ नहीं कहना चाहता था। इसलिये मैं उन्हें उस भले आदमी की बातें सुनाने लगा जो ऊपर की कोठरी में रहा करता था और जो किसी को भी अच्छा नहीं लगता था और नाना जी ने जिसे निकाल दिया था। पर मैं समझ गया कि यह बातें उन्हें अच्छी नहीं लग रही थीं, क्यों कि वह बोलीं—"ठीक, और बातें सुना।"

उन तीन लड़कों की बात मैंने कही और किस तरह उस कर्नल ने अपने अहाते से मुझे निकाल बाहर किया था, यह भी सुनाया। और यह सब सुनते सुनते उन्होंने मुझे अपनी बांहों में और भी कस लिया।

"ये क्या बेहूदी बातें!" उनकी आंखें जल उठीं, और एक मिनिट तक फ़र्श की ओर वह चुपचाप ताकती रहीं।

"नाना जी क्यों बिगड़ रहे थे तुमसे?" मैंने पूछा।

"क्यों कि मैंने ग़लती की है, उनके हिसाब से।"

"कि उस बच्चे को यहां नहीं लाईं तुम—?"

वह मानो आस्मान से गिरीं—एकदम चौंक पड़ीं, भौंहें सिकुड़ गईं और अपने ओंठ काटने लगीं। फिर ठहाका मारकर हंस पड़ीं और मुझे और भी कसकर चिपटा के बोलीं—"तू तो बड़ा शैतान है रे! देख ख़बरदार, कभी किसी से नहीं कहना यह बात, समझा! कभी मुँह से न निकले—बस, भूल ही जा कि कभी यह बात सुनी थी।"

और कुछ देर तक वह गम्भीरतापूर्वक और कड़ाई के साथ मुझसे बातें करती रहीं; पर उन्होंने जो कुछ कहा वह मेरी समझ में नहीं आया और फिर वह उठ खड़ी हुईं और अपनी ठोड़ी पर उंगलियां मारती हुई कमरे में टहलने लगीं—उनकी घनी भौंहें कभी तन जातीं, कभी ढीली पड़ जातीं।

मेज़ पर जलती हुई मोमबत्ती पिघलती चली जा रही थी और शीशे में उसका प्रतिबिम्ब जगमगा रहा था। फ़र्श पर काली काली छायाएँ लोट रही थीं। कोने में मूर्त्ति के आगे रोशनी जल रही थी। और बर्फ़ से ढकी हुई खिड़कियों के शीशों पर चांदनी ने चांदी कर दी थी। मां चारो ओर इस तरह देख रही थीं मानो नंगी दीवालों या छत पर कुछ ढूंढ़ रही हों।

"सोने का क्या वक़्त है तेरा?"

"थोड़ी देर और रहने दो मुझे यहां!"

"ओ हां, आज दिन में भी तो थोड़ा सो लिया है," उन्हें याद आया।

"क्या तुम फिर चली जाना चाहती हो?" मैं उनसे पूछ बैठा।

"कह!" वह चौंक सी पड़ीं, और मेरा सिर ऊपर को उठा कर मेरी ओर इतनी देर तक ताकती रहीं कि मेरी आँखों में आंसू आ गए।

"क्या बात है रे?" उन्होंने पूछा।

"गरदन दुख रही है।"

दिल भी दुख रहा था मेरा, क्यों कि सहसा मैं यह समझ गया था कि वह हमारे घर नहीं रहेंगी और फिर चली जाएंगी।

"अपने बाप-सा होता जा रहा है तू", पायदान को ठोकर से एक ओर को हटाते हुए वह बोलीं। "उनके बारे में कुछ बताया है तुझे—तेरी नानी ने?"

"हां।"

"वह मैक्सिम को बहुत प्यार करती थीं—बहुत ही ज़्यादा। और वह भी इन्हें प्यार करते थे—"

"मैं जानता हूँ।"

मां मोमबत्ती की ओर देखने लगीं और उनकी भौंहें सिकुड़ गईं। फिर उन्होंने उसे बुझे दिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"अब ठीक है।"

सचमुच इससे हवा में ताज़गी और स्वच्छता आ गई, और काली-काली छायाएं गायब हो गईं। जगह-जगह फ़र्श पर तेज़ दूधिया रोशनी बिखर गई और खिड़की के शीशों पर सुनहरे कण चमक उठे।

"मगर इस बीच थीं कहां तुम?"

कई शहरों के नाम उन्होंने बताए—कुछ इस तरह मानो बहुत पहले भूली किसी बात को याद करने की कोशिश कर रही हैं। और इस बीच बराबर किसी बाज की तरह सारे कमरे में बिना ज़रा भी आवाज़ किये चक्कर काटती रहीं।

"वह पोशाक कहाँ से मिली?"

"मैंने ही बनाई है। अपने सारे कपड़े मैं ही बनाती हूं।"

यह सोचकर मुझे अच्छा लग रहा था कि वह औरों से भिन्न हैं। पर अफ़सोस यही था कि वह बोलती बहुत ही कम थीं। जब तक मैं कुछ पूछता नहीं था तब तक वह प्रायः चुप्पी ही साधे रहती थीं।

अब वह फिर आकर मेरे पास कोच पर बैठ गईं; और चुपचाप, एक-दूसरे से चिपटे हम दोनों उसी तरह बैठ रहे—जब तक कि नाना-नानी लौट नहीं आए। वह लोग जब आए तब उनमें से मोम और धूपबत्ती की महक आ रही थी, और एक अद्भुत सी गंभीरता और मधुरता थी उनके व्यवहार में।

रात का खाना हम लोगों ने उत्सवों के दिन की तरह खाया—वैसी ही गम्भीरता के साथ। और खाते वक्त बहुत ही कम बोले और इतने धीरे-धीरे मानो बहुत ही हलकी नींद कोई सोया हुआ है जिसके जग जाने का डर है।

—'माई चाइल्डहुड' से

गीत

श्री देवेन्द्र एम० ए०

कब हुई किसी की मन चाही?

कुसुमों ने चाहा खिले रहें
हो अमर हमारा मधुर हास,
भ्रमरों का गुञ्जन रहे सदा
यह रहे सदा मादक सुवास;
झर गये कुसुम, मिट गया हास, बन गये भ्रमर अपने राही!

रजनी ने चाहा रोक रखे
अपने सुन्दर शृङ्गारों को—
चांदनी, चाँद, अगणित झिलमिल
हीरे-चांदी के तारों को।
आया प्रभात, रजनी रोई, हंसता था गगन अरुण-वाही!

प्रेमी ने चाहा अमर करे
अपने बन्धन, उन्माद सभी
उसके जीवन में आ न सके
नीरस विराग—अवसाद कभी।
बन्धन टूटे, वह बीत गई जो बात अमर करनी चाही।

वन-उपवन ने चाही बहार
यौवन भाया नादानों को
मानव ने चाहा सच कर ले
अपने सपनों,—अरमानों को;
प्रतिभर में "मर-मर" बन रोया
जर्जर होकर यौवन रोया
झूठे सपने, टूटे सपने
पाकर मानव का मन रोया
अरमान न पूरे हो पाये देखा जग में क्रम ऐसा ही।

कुछ ने सोचा—'हमको केवल
प्रभुता-सुख का अधिकार मिला,
औरों को मिली दासता औ'
जीवन का विषम विकार मिला'।
जो गिरे, उठे, उन्मुक्त हुये, मिट गई क्रूर सत्ताएं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो राष्ट्र और पाकिस्तान

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

जब तक लोगों की राय न ली जाये, मैं इस बात में विश्वास नहीं कर सकता कि मुसलमानों का बहुमत मुस्लिम लीग द्वारा मांगे गये पाकिस्तान के हक़ में है। अगर उन्हें ठंडे दिमाग से इस सवाल पर विचार करने का मौक़ा दिया जाये तो वे पाकिस्तान की मांग की कभी ताईद नहीं कर सकते। क्योंकि अगर भारत को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो भागों में बांट दिया जायेगा, तो हिन्दुस्तान में रहने वाले अल्पसंख्यक मुसलमान तुरन्त ही यह महसूस करने लग जायेंगे कि वे विदेशी बन गये हैं। उद्योग, शिक्षा और आर्थिक मामलों में पिछड़े रहने के कारण वे बिलकुल पंगु बन जायेंगे और उन्हें हिन्दू बहुमत की दया का ही भरोसा रह जायेगा। दूसरी तरफ पाकिस्तान में मुसलमानों की स्थिति अधिक कमजोर और खतरनाक बन जायेगी, क्योंकि पाकिस्तान में कहीं भी मुसलमानों का बहुमत इतना अधिक नहीं रहेगा जितना हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का होगा।

भारत की स्थिति ऐसी है कि इसमें न तो एक इकाई की केन्द्रीय सरकार सफलता पूर्वक कार्य कर सकती है और न भारत को दो राष्ट्रों में विभक्त करने का प्रयास ही सफल हो सकता है। मुसलिम लीग के प्रस्ताव में निहित पाकिस्तान पर मैंने हर एक दृष्टिकोण से विचार किया है। मैंने इस बात पर भी विचार किया है कि भारत के भविष्य के सम्बन्ध में इस मांग का क्या प्रभाव होगा। एक मुसलमान की हैसियत से मैंने यह भी गौर किया है कि भारत के मुसलमानों पर इसका क्या असर होगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि हरएक दृष्टिकोण से मैंने इस प्रश्न पर विचार किया है और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यह न केवल समस्त भारत के लिये वरन मुसलमानों के लिये भी हानिकारक है, क्योंकि यह किसी समस्या को हल करने के बजाय अनेक जटिल प्रश्न उपस्थित कर देता है।

शरीयत के खिलाफ

पाकिस्तान शब्द ही मेरी शरीयत के खिलाफ है। इसके दो यही मालूम होता है कि भारत का एक भाग अपवित्र है और दूसरा अपवित्र। देश को पवित्र और अपवित्र दो भागों में विभक्त करना इस्लाम के विरुद्ध और कट्टर ब्राह्मण धर्म से सामंजस्य रखनेवाला है। इस प्रकार का विभाग करना इस्लाम धर्म के मूल तत्व की अवज्ञा करना है। इस्लाम धर्म इस प्रकार के विभागों को स्वीकार नहीं करता। हज़रत पैगम्बर का कहना है कि 'ईश्वर ने समस्त विश्व को हमारे लिये मस्जिद बनाया है।'

इसके अलावा पाकिस्तान की योजना पराजयवाद का प्रतीक है और इसका निर्माण यहूदियों की एक अलग राष्ट्र कायम करने की मांग पर आधारित है। उससे तो यही मालूम होता है कि भारत के मुसलमान हिन्दुस्तान में अपने अस्तित्व को बनाये रखने में असमर्थ हैं और इसलिये भारत के एक कोने में अपना अलग अस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं। यहूदी दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में बिखरे हुए हैं। इसलिये उनकी 'राष्ट्रीय गृह' सम्बन्धी मांग से तो लोगों की सहानुभूति हो सकती है, क्योंकि विभिन्न देशों में फैले रहने के कारण वे किसी देश के शासन में भाग नहीं ले सकते। भारतीय मुसलमानों की स्थिति इससे बिलकुल पृथक है। भारत में उनकी संख्या ६ करोड़ के करीब है। मुसलमान शासन और नीति सम्बन्धी समस्त प्रस्तावों को प्रभावित करने के लिये संख्या और योग्यता दोनों में पर्याप्त हैं। प्रकृति भी उनके अनुकूल है क्योंकि वे खास अंचलों में केन्द्रित हैं। ऐसी दशा में उनकी पाकिस्तान की मांग का कोई महत्व नहीं है। एक मुसलमान की हैसियत से मैं अपने को एक क्षण के लिये भी, समस्त भारत के अपने राज्य तथा उसके भावी राजनीतिक और आर्थिक जीवन की रूपरेखा के तैयार करने में अपने अधिकार से वंचित नहीं रख सकता। अपनी पैत्रिक सम्पत्ति से हाथ धोकर उसके एक टुकड़े पर सन्तोष करना मेरे ख्याल में कायरता है।

दो राष्ट्रों का सिद्धांत

मि० जिन्ना की पाकिस्तान योजना दो राष्ट्रों के उसूल पर क़ायम है। मि० जिन्ना के निबन्धानुसार भारत की धार्मिक भिन्नताओं के आधार पर अनेक राष्ट्र सम्मिलित हैं। उनमें दो बड़े राष्ट्र हिन्दू और मुसलमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसलिये इन राष्ट्रों के दो अलग राज्य होने चाहियें। जब डा० एडवर्ड टामसन ने एक बार मि० जिन्ना से बातचीत करते हुए यह कहा था कि हिन्दू और मुसलमान भारत के भिन्न शहरों, नगरों एवं गांवों में एक साथ पड़ोसी की भांति रहते हैं, तब उन्होंने उत्तर देते हुए कहा था कि इससे दो राष्ट्रों सम्बन्धी मेरे सिद्धांत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मि० जिन्ना के अनुसार हर एक गांव, नगर और शहर में दोनों राष्ट्र एक दूसरे से संघर्ष करते हैं, इसलिये उनको दो पृथक राष्ट्रों में बांट देना आवश्यक है।

मैं इस प्रश्न पर अन्य सभी दृष्टिकोणों से विचार न कर केवल मुसलमानों के स्वार्थ की दृष्टि से ही विचार करने के लिये तैयार हूं। इतना ही नहीं एकदम आगे बढ़कर मैं यह भी कहता हूं कि यदि कोई मुझे यह बतला दे कि इस योजना से मुसलमानों को लाभ होगा, तो मैं इसे स्वीकार करने और कार्य रूप में परिणत करने के लिये तैयार हूँ। यदि मैं मुसलमानों के एक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भी विचार करता हूं तो मुझे इसी निर्णय पर पहुँचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि न तो यह मुसलमानों को किसी प्रकार लाभ पहुँचा सकता है और न उनको भय से ही मुक्त कर सकता है। अगर पाकिस्तान की योजना को कार्यान्वित किया जाये तो इसका परिणाम क्या होगा, इस बात पर हमको ठंढे दिमाग से विचार करना चाहिये।

भारत दो भागों में बँट जायेगा, एक में हिन्दुओं का बहुमत होगा और दूसरे में मुसलमानों का। हिन्दुस्तानवाले राज्य में ३॥ करोड़ मुसलमान होंगे जो सारे प्रदेशों में बिखरे हुए होंगे। युक्तप्रांत में १७, बिहार में १२ और मद्रास में ९ प्रतिशत मुसलमान होंगे। हिन्दू प्रधान प्रांतों में आज उनकी जो स्थिति है, उससे वे अधिक कमजोर बन जायेंगे। हजारों वर्षों से वे इन प्रांतों में रहते हैं, और मुसलिम सभ्यता और संस्कृति के प्रसिद्ध केन्द्र यहाँ बना डाले हैं। वे तुरन्त ही यह महसूस करेंगे कि हम तो अपने ही प्रांतों में विदेशी बन गये। पाकिस्तान में अगर मुसलमानों का अत्यधिक बहुमत हो भी गया तो, इससे हिन्दुस्तान के मुसलमानों की समस्या हल नहीं हो सकती। बल्कि एक दूसरे के अल्पसंख्यकों को लेकर नयी समस्या उठ खड़ी होगी और बदला लेने की भावना जोरों से जड़ खड़ी होगी। इसलिये पाकिस्तान योजना मुसलमानों की समस्या को हल नहीं करती। जहां वे अल्पसंख्या में हैं, वहाँ यह उनके अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकती और न तो पाकिस्तान के नागरिक ही भारतीय और विदेश सम्बन्धी मामलों में वह स्थान प्राप्त कर सकेंगे जो भारतीय संघ में एक बड़े राष्ट्र की हैसियत से प्राप्त कर सकते हैं।

ठण्ढे दिमाग से विचार करें

पूछा जा सकता है कि जब पाकिस्तान इतना अधिक मुसलिम स्वार्थ-विरोधी है, तब क्या कारण है कि इतनी अधिक संख्या में मुसलमान इसके पीछे पागल हो उठे हैं। इसका उत्तर कुछ अति उग्र हिन्दुओं के दृष्टिकोण में पाया जा सकता है। जब मुसलिम लीग ने पाकिस्तान की मांग आरम्भ की, तो उन्हें इसमें अखिल इस्लामिक षड्यन्त्र की बू मिली और वे इसका विरोध इसलिए करने लगे कि इससे भारत के मुसलमानों से मिलने की आशंका को आश्रय मिलता है। उग्र हिन्दू विरोध ने लीग के समर्थकों के इस विचार को प्रोत्साहन दिया कि जब हिन्दू इसका विरोध कर रहे हैं तो उसमें मुसलमानों का लाभ अवश्य होगा। रोष और आवेश का वातावरण इतना अधिक गर्म हो उठा कि विवेक दुम दबाकर भाग चला। मुसलमानों में जो भावुक और कम उम्र थे, उनपर इसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जब यह रोष और आवेश ठंढा पड़ जायेगा और इस प्रश्न पर बिलकुल ठंढे दिमाग से विचार किया जायेगा, तो इस समय जो लोग पाकिस्तान का समर्थन कर रहे हैं, वे इसे मुसलिम स्वार्थ के लिये घातक कर उसे अस्वीकार कर देंगे।

समस्या का वास्तविक समाधान

जिस फार्मूले को मैं कांग्रेस द्वारा स्वीकार कराने में सफल हुआ हूं, उसमें पाकिस्तान योजना के सारे गुण मौजूद हैं, लेकिन उनके अवगुणों से वह मुक्त है। पाकिस्तान का आधार मुसलमानों का यह भय है कि मुसलिम प्रधान अंचलों में केन्द्र की सरकार, जो हिन्दू बहुमत की होगी, हस्तक्षेप करेगी। कांग्रेस इस भय को दूर करने के लिये प्रांतों का पूर्ण स्वायत्त शासनाधिकार अपने खुचे अधिकारों के साथ स्वीकार करती है। केन्द्र सरकार के आधीन जो विषय रहेंगे, उनके [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस ने दो फेहरिस्तें बनायीं हैं। एक अनिवार्य है और दूसरी स्वेच्छाधीन। इसलिये अगर कोई प्रांत चाहे तो वह थोड़े से विषयों को केन्द्र के जिम्मे छोड़कर बाकी सब पर अपना अधिकार रख सकता है। इसलिये मुसलिम प्रधान प्रांतों को आंतरिक मामलों में अपनी इच्छा के अनुसार उन्नति करने का अधिकार है, केवल उन विषयों को छोड़कर, जिनका समस्त भारत पर प्रभाव पड़ सकता है। सारी बातों पर विचार करने के बाद मैंने यही निश्चय किया है कि केवल कांग्रेस के फार्मूले के आधार पर ही समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसमें प्रांतों और समस्त भारत के उन्नति करने का काफी मौका है। इसमें मुसलिम बहुमत प्रांतों के उस डर को भी दूर करने की कोशिश की गयी है, जिसके लिये पाकिस्तान की मांग की जाती है।

अंगार पर !

श्री नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश'

चलते रहो अंगार पर !

जलते रहो, पर अश्रु आँखों में न आ
खोल जी के भेद दे दुख-भार खा
बलते रहो, दीपक बने, जल स्नेह से
दूर करते रहो तम हिय-गेह से
साधना को छोड़ मत, रोना मना
अमर बनकर हँस मिटो संसार पर।
अंगार पर,
चलते रहो अंगार पर।

राह से बेराह कंटक-झाड़ में
भटकनेवाले पथिक तुम कौन हो ?
छिद रहा तन और लथपथ रक्त से
सोचते क्या आज असमय मौन हो ?
चूकना अवसर कभी पा सत्य का—
बैठ जाना हार है मनमार कर।
अंगार पर,
चलते रहो अंगार पर।

बाँसुरी की तान पर तज राह को
भटक जाना प्रेम की कर कामना
बदलियों के बीच में घनश्याम का
रूप मोहन ही सतत पहचानना
क्रान्ति का अपमान है कुछ ध्यान दो
कालरूपी चक्र में विस्तार पर।
अंगार पर
चलते रहो अंगार पर ॥

उड़ रहीं चिनगारियों के बीच में
तुम खड़े निरखो प्रलय का ज्वार अब
गरम लोहू की रवानी कह रही
उठ जवानी फेंक मन का भार अब
खेल जीवन-खेल, जग में चल अकड़
विहँसकर तलवार की ही धार पर।
अंगार पर,
चलते रहो अंगार पर।

विघ्न-बाधा की उपेक्षा कर चलो,
दूर मंजिल है, पथिक अनजान हो
पड़ गये संघर्ष-पथ में आज तो
विश्व के कर्त्तव्य का भी ज्ञान हो
अग्नि-पथ के पथिक हँस-हँसकर मिटो
विश्व-जन की आर्त्त-दीन-पुकार पर।
अंगार पर,
चलते रहो अंगार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा हिन्दू भाई !

अनु० श्री राम भाई

डाक्टर मोहम्मद आज़म का निम्नलिखित लेख 'एशिया' में प्रकाशित हुआ था। यह हमारे देश के हिन्दू मुसलिम प्रश्न पर काफ़ी महत्वपूर्ण रोशनी डालता है और हमें इस प्रश्न के अनेक पहलुओं पर सोचने को मजबूर करता है— सम्पादक

'एक दिन की बात है कि मैं पहाड़ों के बीच घूम रहा था तो देखता क्या हूं कि कुछ दूर पर कोई चीज़ है। मैंने समझा कि कोई जानवर होगा। मैं ज़रा पास पहुंचा तो मुझे लगा कि कोई आदमी है। मैं ज़रा और पास पहुँचा तो मैंने देखा कि यह तो मेरा भाई है।'—

मेरा जन्म एक गांव का है। वह गांव बहुत दूर, हिन्दुस्तान के एक कोने में बसा हुआ है। जिस घराने में मैं पैदा हुआ वह घराना मुल्लाओं का है। मेरे दादा, परदादा अरबी बहुत ही अच्छी जानते थे और मज़हब के मामले में लोग उन्हें बहुत इज़्ज़त की निगाह से देखते थे। हमारे गांव में निरे मुसलमान ही मुसलमान हैं। असल में वह आबादी ही बहुत करके मुसलमानों की है। हमारे घर से एक मील चलिये तब कहीं कोई हिन्दू घर मिलता है। जिस ढंग से मैं पाला-पोसा गया, हमारे घर के रीति-रिवाज, संगत, उठना-बैठना, बचपने की मेरी पढ़ाई इन सबने मुझे एक गहरा मुसलमान बना दिया। मैं दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ता था। सारे रमज़ान रोज़े रखता था। सच तो यह है कि हर रीति-रिवाज को ईमानदारी और लगन के साथ अदा करता था। मेरे नाना, मां और मामा, सबके सब, धर्म के बहुत मानने वाले थे।

हफ़्ते में एक बार हिन्दू नाई और धोबिन हमारे घर आया करते थे। इनको तलब साल दर साल मिलती थी। जब मैं कोई बारह बरस का रहा हूंगा धोबिन कोई पचास साल की होगी, लेकिन वह मुझे अपना 'मियां' कहकर पुकारती थी और मैं समझ नहीं पाता था कि वह ऐसा क्यों करती है, लेकिन उसकी इस बात का मैंने कभी बुरा नहीं माना और न इस पर कभी बिगड़ा ही। जब मुझे वह मियां कहती तो मैं हंस देता और वहां से खसक जाता और नाई जो था वह तो हमारे ख़ान्दान को बहुत ही मानता था। मेरा यक़ीन है कि हमारे 'सरों' का उसे बहुत ख़्याल रहता था क्योंकि थोक हिसाब पर दो दर्जन हजामतों का उसे एक रुपया मिल जाता था।

हिन्दुओं में मेरी जान-पहचान पहले-पहल इन दो जनों से हुई—एक तो यह नाई और दूसरी वह धोबिन। अजीब बात यह है कि किसीने मुझसे यह कभी नहीं कहा कि इनसे अलग रहा करो। नाई तो मुझे हर वक़्त छूता था—मेरा हाथ छूता और किसी तकल्लुफ़ के कान भी पकड़ता था। धोबिन का तो कुछ पूछिये मत—जो हंसी हंसी का रिश्ता उसने मुझसे बना लिया था उसको क़ायम रखे रही। अकसर इन दोनों को खाने के लिये हम लोग कोई ख़ुरक चीज़ जैसे मुरीचीरा दे देते थे। यह दस्तूर था कि उनके खाने पर घर का कोई आदमी भी सामने नहीं लेकिन मैं कभी कभी अंदर पहुँचकर नाई के साथ झाड़ने लगता था। मैं समझता था कि नाई टोकेगा लेकिन जब उसने कोई एतराज़ नहीं किया मुझे बड़ा ही ताज्जुब हुआ। खुशी भी हुई। मगन मन वह खाता और मैं बैठे बैठे देखा करता। उसकी से संतोष झलकता था। जिस जगह बैठकर खाता वहां छप्पर तना हुआ था। चारों तरफ़ की दीवार की थी जिसमें छेद थे। उन छेदों को होकर सूरज रोशनी आती थी। यही मेरे दिल में अपने हिन्दू की पहली तस्वीर है।

हमारे मज़हब में साल में दो बार ईद मनाई है। इस मौके पर गाय की क़ुरबानी की जाती तरह तरह के खाने पकते हैं। कभी कभी यह खुशी दिन तक मनाई जाती है। हम यह जानते थे कि पड़ोस में जो हिन्दू रहते हैं वह गाय की पूजा करते लेकिन हमने यह कभी नहीं महसूस किया कि खुशियों वगैरह से इनके दिल को कोई चोट पहुंच है। उजियाली रात जब होती थी तब तो ख़ास की साइत पर हिन्दू लड़के दूर दूर गांवों से आते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर खड़े होकर तमाशा देखते थे। इन लड़कों में से एक से मेरा विशेष प्रेम था। मदरसे में मेरा उसका साथ भी होता, हम दोनों थे तो एक ही उमर के लेकिन वह मुझसे एक दर्जा पीछे था। हो सकता है कि किसी को इस बात पर हंसी आये या 'हैरत' हो लेकिन यह सच है कि हम दोनों एक दूसरे को बहुत चाहते थे। हम दोनों के मां-बाप यह अच्छी तरह जानते भी थे, और हमारे इस प्रेम की तारीफ़ ही करते थे।

हम दोनों अलग अलग धर्म के थे लेकिन इस चीज़ ने कभी भी कोई दिक्कत पेश नहीं की। बचपने के अपने इस दोस्त के साथ रहकर ही मैंने यह सीखा कि सुख-दुःख में कैसे हिस्सा लिया जाता है और उसका कितना अहसानमन्द होऊं उतना थोड़ा है। मेरी दिन रात यह कोशिश रहती कि खूब पढ़ूं और ज़्यादा अच्छे नम्बर लाऊं—क्योंकि मैं जानता था कि इससे मेरे भाई की निगाह में मेरी इज़्ज़त बढ़ेगी और वह प्यार भी ज़्यादा करेगा। जब मेरे इम्तिहान का नतीजा निकलता और मेरे नम्बर मालूम होते तो मेरे भाई ख़ुशी के मारे फूला न समाता था। उसका चेहरा मारे ख़ुशी के चमक उठता था। बहुत बार ऐसा हुआ कि हम दोनों कहीं छिपकर एक साथ खाते थे। लेकिन हमें यह कभी नहीं ध्यान आया कि हम अपने धर्म के ख़िलाफ़ जा रहे हैं। बल्कि बात उल्टी ही हुई। मैं इस्लाम और ज़्यादा समझने लगा। इसके बाद मैंने धर्म की किताबें पढ़नी शुरू कर दीं और अपने ऊपर कुछ पाबन्दियां भी लगा लीं ताकि अपने में जादू पैदा हो और मैं आगे चलकर प्रेम व त्याग की मिसाल बसर कर सकूँ। ऐसा करने से मेरे कामों में भी कुछ फ़र्क नहीं पैदा हुई और न दूसरों को ही कुछ ऐसा महसूस हुआ कि मैं बौरा गया हूँ।

मैंने कई मदरसों में पढ़ा, उसके बाद हाई-स्कूल और कालिज में पढ़ा। वहां मुझे बीसियों हिन्दू लड़कों के साथ का इत्तफ़ाक हुआ। लेकिन मुझे एक दफ़ा कभी याद नहीं कि उनमें से किसी से कभी कोई झगड़ा हुआ हो। उस वक्त के अपने हिन्दू मास्टरों और हिन्दू साथियों की जो याद मुझे वहाँ हुई है वह तो बहुत ही अच्छी है। कभी कभी मैं यह महसूस करता था कि हिन्दू मास्टर मेरी तरफ़दारी करते हैं, मेरा ख्याल है कि सिर्फ़ एक बार मुझे ऐसा लगा कि मेरे मास्टर साहब को कुछ हो गया है और यह हुआ तब जब मैंने देखा कि एक ऐसे लड़के ने जिसने इफ़्तेवारी इम्तिहान में मेरी हू-बहू नकल उड़ाई है, मुझसे ज़्यादा नम्बर पाये हैं। लेकिन यह तरफ़दारी, अगर इसे तरफ़दारी कहा जाये, एक हिन्दू लड़के के साथ नहीं बरती गई थी। वह नक़ल करने वाला भी एक मुसलमान ही था।

कालिज की याद

ऐसे ही एक दूसरे मौक़े पर मेरे एक ब्राह्मण प्रोफ़ेसर ने बहुत ही फूहड़पन से कहा कि तुम्हारी कापी औरों की बनिसबत कहीं ज्यादा सख्ती से जाँची गई है वरना जिस हिन्दू लड़के को आज सबसे ज्यादा नम्बर मिले हैं उसको तुमसे आधे नम्बर भी नहीं मिलते। मैं नहीं जानता कि एक कट्टर हिन्दू मास्टर एक मुसलमान लड़के की तारीफ़ में कुछ इससे ज्यादा कह या कर सकता है। जब घंटा ख़त्म हुआ और प्रोफ़ेसर चलने लगे तो उन्होंने मेरी तरफ़ देखा भी नहीं। लेकिन मैं तो जानता था कि उनके चेहरे पर एक ख़ुदाई मुस्कराहट है—वही, वही मुस्कराहट जो मुझे अपने भाई के चेहरे पर हमेशा मिलती थी।

उसी कालिज में एक दूसरे हिन्दू प्रोफ़ेसर थे। यह ज़रा बूढ़े थे और बोलते बहुत कम थे। उनकी-सी तबियत के उनके एक मुसलमान दोस्त थे। यह दोनों पास ही पास रहते थे—मकानों के बीच थोड़ा-सा फ़ासला था। जब हिन्दू प्रोफेसर अपने मुसलमान दोस्त से कहते, "चलिये, साहिब ! टहल आयें," तो वह तुरन्त राज़ी हो जाते थे। दोनों टहलने चल देते और दो मील घूमकर लौट आते थे। लेकिन इस बीच दोनों ही चुप रहते, सिर्फ़ एक दूसरे से विदा होते वक्त नमस्कार-नमस्कार हो जाती और उन दोनों में बहुत ही मार्के की दोस्ती थी। उनके खिले हुए चेहरों को देखकर हर लड़का इस दोस्ती को मान जाता था और ज़ईफी ने तो पकाकर इसे और भी मीठा और रसीला बना दिया था।

हाँ, तो यह प्रोफेसर साहब ऐसे थे कि मुँह दर मुँह किसी लड़के की तारीफ़ नहीं करते थे। मुझसे जितने नम्बरों की वह उम्मीद रखते थे अगर उससे कम आते तो वह अपने इन अनोखे लफ़्ज़ों में मुझे धमकाते थे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'समझ लो अच्छी तरह से, कान खोल कर सुन लो। अगर सालाना में कुछ गड़बड़ी की तो मुझसे ज़रा-सी भी मदद की आस न रखना।'

एक दिन का ज़िक्र है कि दर्जे में पहुंचने में मुझे कुछ देर हो गई। मैं जाकर चुपके से ठीक उनके पीछे खड़ा हो गया और सबके सब लड़के मन ही मन मुस्करा रहे थे। प्रोफेसर कुछ काम हर एक लड़के को दे रहे थे। मुझे नहीं पाने पर धीमे से उन्होंने कहा, "आज वह शैतान कहाँ है—वह जो—" उन्होंने चारों तरफ को देखा। पीछे निगाह डालने पर उन्होंने देखा कि मैं खड़ा हूँ तो लड़के बहुत हंसे और प्रोफ़ेसर के काटो तो ख़ून नहीं।

हमारे मदरसों में क्या, स्कूलों या कालिजों में क्या, हिन्दू लड़के आमतौर पर साफ़ कपड़े पहन कर आते थे। मुसलमानों की बनिस्बत वह ज्यादा तन्दुरुस्त और ख़ूब-सूरत दिखाई पड़ते थे। इसकी वजह यह है कि हिन्दुस्तान के बाशिन्दों में से हिन्दुओं के पास पैसा ज्यादा है जिससे उनका रहन सहन भी किसी क़दर ऊँचा उठा हुआ है। जहां तक पढ़ने-लिखने की बात है, हिन्दू और मुसलमान क़रीब क़रीब एक से हैं लेकिन हिन्दू जो है वह मुसलमान की बनिस्बत ज्यादा एकजाई से पढ़ाई जारी रखता है। हज़ारों मिसालें इस तरह की हैं कि हाई स्कूलों में जो लड़का गिरे हुए पाये के नम्बर पाता है वह आगे चलकर शोहरत हासिल कर लेता है लेकिन उससे कहीं ज्यादा तेज़ और ज्यादा नम्बर पाने वाला मुसलमान कहीं का भी नहीं रह जाता क्योंकि वह पढ़ाई नहीं जारी रख पाता है। यह एक आम चाल समझिये यों कुछ मिसालें इसके ख़िलाफ़ भी मिलती हैं। लेकिन आजकल के साहित्य-अदब, कला, संगीत, विज्ञान और टैकनिकल में ज्यादातर जगह हिन्दुओं की ही है।

मुझे कभी किसी ऐसे स्कूल में पढ़ने का इत्तफ़ाक नहीं हुआ जिसमें मुसलमान ही मुसलमान हों, कहीं मुसलमान लड़के ज्यादा मिले, कहीं हिन्दू ज्यादा। जिन्होंने मुझे पढ़ाया उसमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे और कुछ गोरे भी। अपने दर्जों में हम अकसर हिन्दू-मुसलिम सवालों पर बहस करते थे लेकिन कभी किसी को ज़रा सी भी चोट नहीं पहुँचती थी। और जैसी लड़कों की आदत होती है हम अकसर अपने मास्टरों की नुकताचीनी भी किया करते थे, और कभी कभी इतना तक होता कि जिस मास्टर से हमें चिढ़ होती उसकी आवभगत में हम सबके सब अपने पैरों की जूतियों को फ़र्श पर रगड़ते थे। मास्टर के या लड़कों के पूछे सवाल तो शायद ही कभी उठता था। लेकिन सूरत में फ़िरकेवाराना आग को भड़काया जा सकता है मेरा ख्याल है कि कभी कभी इस तरह की हरकत भी गई थी, मगर करने वाले कौन होते थे!—मायूस लोग जो अपनी नालायक़ी को छिपाने के धर्म की आड़ लिया करते थे। तिसपर भी, ऐसा बहुत कम था।

अकसर ही हिन्दू मुसलमान लड़के अलग तर्ज़ से कपड़े पहनते थे। जब मैं स्कूल और कालिज था तो ठेठ मुसलमान की पोशाक में रहता था हिन्दू पहनाव से मैं गुरेज़ करता था। मुझे एक मुसलमान का ही ढंग भाता था, यहां तक कि छोटी बात भी उसकी रविश पर करता था, कि सोने पर सर कैसे रखा जाय। बाल काटने मुँह किधर को किया जाये, वग़ैरह वग़ैरह। भी कहूँगा कि किसी हिन्दू ने कभी कोई नाजायज़ कोशिश इस बात की नहीं की कि मेरे असर डाले। मेरा यह भी ख्याल है कि मेरी मुसल पोशाक से अपने हिन्दू साथियों के बीच मेरे में किसी तरह की कमी नहीं आई। मुझे एक याद है कि मेरे एक हिन्दू दोस्त ने मेरी दावत की। उसने मुझसे ज़ाहिर नहीं किया, फिर भी मेरे वजह से, ख़ासतौर से तुर्की टोपी की वजह से, हिचकिचाहट हो गई थी, मज़ाक में आकर टोपी उतारकर ख़ुद पहन ली, फिर उसकी तह और इस बीच कोई दिलचस्प चर्चा छेड़ दी ध्यान बँटा रहे, तह करके वह टोपी को जेब ही रहा था कि मैंने झट से अपनी टोपी मना कैसे करता, मैंने टोपी ओढ़ ली और जानता था कि दावत में सब हिन्दू होंगे; अपनापन ही भाता है और वेष बदलकर दूसरों पाने के बजाय मुझे उनकी नफ़रत ज़्यादा ख़ुशी इस बात की है कि मेरे तुर्की टोपी भी दावत में सबका वक़्त बड़े मज़े से कटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान में एक दस्तूर यह है कि यूनिवर्सिटी वाले इम्तिहान के पहले एक जाँच-सी की जाती है। ऐसी ही एक जाँच के बाद हमारे एक हिन्दू प्रोफ़ेसर की घरवाली दूर गई। जब हम दर्जे में पढ़ रहे थे तो यह ख़बर दूर गई। जब हम दर्जे में पढ़ रहे थे तो यह ख़बर मालूम हुई। दूसरे लड़कों के साथ मैं भी उन प्रोफ़ेसर से हमदर्दी जताने गया। हमारी इत्तला होने पर प्रोफ़ेसर साहब बाहर आये। उनकी आंखें रोते रोते लाल पड़ गई थीं। उन्होंने कहा—"मैं उसे रोक नहीं पाया"। इतना कहकर, एक बच्चे की तरह उन्होंने मुझे अपने सीने से चिपटा लिया और चीख़ मारकर रोने लगे। क़ुदरती बात है कि मेरे दिल पर बहुत सदमा था। दूसरों के दिल पर भी था। बहुत से हिन्दू लड़के उनकी हमदर्दी में आये थे लेकिन ताज्जुब है कि उन्होंने अपना जी हलका करने के लिये एक मुसलमान लड़के को ही चुना।

मैं बोर्डिंग वापिस आया। कुछ दिन बाद जब घर जाने लगा तो मैंने प्रोफ़ेसर साहब के नाम तसल्ली देने की ख़ातिर एक चिट्ठी लिखी उसका जो जवाब आया वह मैं हरगिज़ नहीं भूल सकता—

प्रिय अज़ीज़,

तुमने मुझसे जो करने को कहा है वह कौन कर सकता है। तुम देखते नहीं कि मेरे अन्दर अब कुछ दम भी रह गया है? फिर भी, जो तुमने कहा उसे मैं करूँगा। तुम मेरे लिये रहबर फ़रिश्ते हो। तुम्हारे पते से मालूम है कि तुम इस शहर में नहीं हो वरना मैं दौड़ कर तुम्हारे पास आता और कुछ शान्ति हासिल करता। मुझे नहीं मालूम कि कितनी बार मैंने तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी और पढ़ता गया हूं, रोता गया हूं। तुम्हारी वाणी जीवनहार की सी वाणी है—लेकिन तुम हो बड़े रहम।"

यह चीज़ परदेस के लोग शायद ही समझ पायें। और अगर किसी दूसरी जगह से यह आती तो मैं ख़ुद ख़याल करता कि इसमें कुछ मुबालग़ा होगा। लेकिन मैं क्या करता—मैंने तो अपने भाई के चेहरे पर आँसू की मोती देखे थे।

तक़लीद और बर्दाश्त

साल पर साल बीतते गये। मैं और ज़्यादा मुसलमान महसूस करने लगा। अपने धर्म का निचोड़ भी मैं ज़्यादा समझने लगा। क़ुरान-पाक में कहा है कि "धर्म में कोई जबरियापन नहीं है।" इस वजह से धर्म की चढ़ाइयों से मुझे नफ़रत थी। क़ुरानपाक की एक दूसरी आयत है जिसमें यह कहा गया है कि ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी क़ौम को उसका रसूल नहीं भेजा गया हो। इस वजह से बड़े बड़े हिन्दुस्तानी सन्तों को, जैसे कृष्ण और बुद्ध को, मैं ख़ुदा की तरफ़ से भेजी हुई शक्तियां मानता था। मैंने हिन्दुओं के शास्त्र गीता और वेद पढ़े, मशहूर कहानियां—रामायण और महाभारत—मैंने पढ़ीं, और मनुस्मृति, वेदान्त, रामकृष्ण के प्रवचन भी पढ़े। इन सबको पढ़कर मुझे बहुत रोशनी मिली और ख़ुशी हुई। लेकिन जब तक इस्लाम का मेरा मजहब मेरी उन चाहनाओं को पूरा करता है जो दीन, दुनिया और दिमाग़ से ताल्लुक़ रखती हैं, तब तक एक पल भर के लिये भी मुझे यह ज़रूरत महसूस नहीं होती कि अपना धर्म छोड़ दूं, मुझे अपने मज़हब से उतना ही प्यार है जितना अपनी मां से और अपने वतन से। मैं तो अपने में भी इनमें से एक के भी बदलने का ख़्याल नहीं कर सकता, लेकिन अपने मज़हब की बाबत मैंने एक बात बहुत शिद्दत के साथ ज़रूर महसूस की है। वह यह कि मैं जितना ज़्यादा इसे मानता हूँ और जितनी ज़्यादा लगन से इस पर अमल करता हूँ उतना ही मेरे अन्दर दूसरे धर्मों की बर्दाश्त और इज़्ज़त बढ़ती जाती है। ठीक भी है, क्योंकि एक सच्ची और भली औलाद को ही यह हक़ और तमीज़ होता है कि दूसरों के मां-बाप की इज़्ज़त कर सके।

एक दिन अगन-बोट पर मैं गङ्गा पार कर रहा था। मेरे पास तीसरे दर्जे का डेक का टिकट था। मेरे हाथ में एक पुराने संत की लिखी पोथी थी। उसने जो लिखा है उस पर हँसी छूटती है। वह कहता है कि औरत के अन्दर रूह-आत्मा नहीं होती, औरत पैदायशी कमज़ोर होती हैं, वग़ैरह वग़ैरह। जब मैंने देखा कि इसी नाव पर एक हिन्दू सन्यासिन भी चल रही है तो बहुत ख़ुश हुआ। मैं मुसलमानी पोशाक में था लेकिन उनके पास चला गया और सटाक से, लेकिन आदर के साथ, उनसे वह सवाल किया जो मुझे परेशान कर रहा था कि "क्या औरत होने के नाते आप बुनियादी तौर से कमज़ोर नहीं हैं और इस वजह से अपने दीन को पाने में पिछड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहेंगी ?" वह मुस्कराई और बिना सोचे-सांचे फ़ौरन जवाब दिया। "धर्म के मानों में मर्द और औरत कोई अलग अलग चीज़ नहीं हैं, तुम तो मर्द हो—अगर दीन के लिहाज से मुझसे ज़्यादा कमज़ोर निकले, तो तुम्हें औरत माना जायगा। बात यह नहीं है कि औरत कमज़ोर होती हैं बल्कि यह कि जो कमज़ोर हो वही औरत है।" अपने ज़िन्दगी में मैंने इतने बड़े ख़्याल को इतने कम लब्ज़ों में और इतने सफ़ाई के साथ ज़ाहिर करते कभी नहीं देखा। उस औरत से बढ़कर योगी भी मैंने नहीं जाना! इसका सबूत ?—इसका सबूत है उसका चेहरा व उसकी आंखें, उसकी मुस्कान—आप उन्हें देखकर यह कह ही नहीं सकते कि यह ख़ुदाई नहीं हैं।

एक और वाक़या है। मेरी मुलाक़ात एक हिन्दू-औरत से हो गई। वह बड़ी उमर की थी। उन्होंने मुझे अपने यहां बुलाया, मेरी उमर के तीन हिन्दू जवान भी बुलाये गये थे, हम सबकी दावत थी। औरत के मियां भी शरीक थे। हम लोगों ने कुछ बातचीत की लेकिन मुझे ख़बर न थी कि वह इतना असर कर लेगी। जब और सब चले गये तो उन्होंने मुझे ज़रा ठहर जाने के लिये कहा। मुझे तो कोई ख़्याल भी नहीं था। वह मुझे अपना घर अन्दर से दिखलाना चाहती थीं—पूजा-पाठ की जगह जहां मुसलमान मुश्किल से ही जा सकता है, शराफ़त की ख़ातिर मैंने अपने जूते बाहर उतार दिये। घर के बच्चे भी हमारे साथ हो लिये, कुछ अर्से के बाद एक बार शाम को उन्होंने फिर मेरी दावत की, एक तश्तरी में मिठाई लेकर आईं और वह तश्तरी मुझे देते हुए बोलीं, "बेटा! जबसे मैंने तुम्हें देखा है मैंने यही महसूस किया कि तुम मेरी औलाद हो। तुम मुसलमान लोग पुनर्जन्म नहीं मानते हो, लेकिन अपने इस ख़याल का तुमसे क्या सबूत दूँ ? ऐसी सूरत में, तुम ज़रूर मेरे रहे होगे।" इस अजनबी औरत का ख़याल मुझे जब आता तब मानों मां का ख़याल आता है और सचमुच अपने निर्मोह प्रेम ने उसने मेरे ऊपर यह हक़ पा भी लिया है।

बेरोज़गारी और धर्म-भेद

हिन्दुस्तान के अन्दर बेरोज़गारी का सवाल एक संगीन सवाल है। हज़ारों हिन्दुस्तानी जवानों की तरह मुझे भी टेढ़े वक़्त के चपेटे उठाने पड़े। मेरे पास जो थोड़े-बहुत ज़रिये थे वह ख़तम हो चले और मुझे रहने की नौबत आ गई। दोस्तों के बीच मेरी यही कोशिश रही कि ख़ुश-ख़ुर्रम मालूम होंगे, लेकिन जब मेरी गांठ में सिर्फ़ एक रुपया रह गया तो मेरे होश फ़ाख़्ता हो गये। मेरे पास इतना भी पैसा नहीं था कि अख़बारों में निकले इश्तहारी मांगों के जवाब देने के लिये टिक्कट ख़रीद सकूँ, न बस या स्ट्रीट-कार में बैठने का ही पैसा उड़ा सकता था। बहुत ही तंगदस्ती की हालत ने मुझे नीचे गिरा दिया और मैंने धर्म से काम निकालने का निकम्मा काम शुरू किया। गौर्मिन्ट के ऊपर अच्छा असर डालने के लिये मैंने कुछ अर्ज़ियों में लिखा कि मैं एक ऊँचे घराने का मुसलमान हूँ, इतना ही करता तो ग़नीमत थी। मैंने यह किया कि यह दिखलाने की कोशिश की कि हकूमत के एक मामले में यह बड़ी नाइन्साफ़ी है कि हिन्दू कहीं ज़्यादा तादाद में हैं और एक जगह के लिये जो मैंने दरख़्वास्त दी तो यह लिखा कि वह जगह मुझे मिलनी ही चाहिये क्योंकि एक तो इसकी क़ाबलियत मुझमें है और दूसरे मैं मुसलमान हूं! ज़ाहिर बात है कि रोटी की ख़ातिर जो जद्दोजिहद करनी पड़ती है उसकी यह अलामत थी—ऐसी अलामत उस गिरावट की वजह से पैदा होती है जिसको ग़रीबी और भुखमरी से बढ़ावा मिलता है। मैं अच्छी तरह से वाक़िफ़ था कि यह जो फ़िरक़ेवाराना जज़्बों के लिये अपील कर रहा हूं इसके माने हैं अपनी हार और अन्दर एतक़ाद की कमी का इक़रार करना। लेकिन मैं इन्सान था और इससे ज़्यादा कुछ नहीं। मुझे इस बात की है कि अपने रोब को मैं जानता था वजह से मैं फिर इन्सान बन गया और कोई बुरा नहीं बना। अब मुझे इतनी तमीज़ हो गई है फ़िरक़ेवाराना रोग को ठीक से शनाख़्त कर सकता इस रोग के मरीज़ आज हज़ारों की तादाद में वे, हिन्दू और मुसलमान, मेरी ही तरह, ग़रीबी ज़बरदस्त भार नहीं सहकर नाउम्मेदी का रास्ता हैं, इसीलिये तो हम आंखे बन्द करके यह बैठते हैं कि हर चीज़ के लिये धर्म को दोषी ठहरा हैं, यह सोचते भी नहीं कि धर्म उसके लिये ज़िम्मेदार है या नहीं। यही कीना भरी ताक़तें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूट डालती हैं और इन्हें पहचाने बिना ही हम रोग का इलाज करने लग जाते हैं, हां, तो अपने क़िस्से पर आऊँ—मैं नौकरी की तलाश करते करते थक गया।

एक रात मेरे पास खाने को—अगर इसे खाना कहा जाये—सिर्फ़ एक गिलास पानी था उसके बाद मैं जाकर लेट रहा, नींद का आना हराम था। मैं यही सोचने लगा कि मैंने कहां कहां अर्ज़ियां भेजी हैं। मगर एक जगह हो तो याद रहे। दूसरे दिन सवेरे आठ बजे मैं नाश्ते की तय्यारी करने लगा, नाश्ता याने मेरे पास चार आने पैसे थे। मैं सोच रहा था कि इन्हें कैसे ख़रच किया जायेगा। उसी उक्त किसी ने दरवाज़े पर खटखटाया और अपना हवाला बताते हुए कहा कि एक कट्टर हिन्दू हूँ, मेरा एक टैकनिकल स्कूल है जिसके लिये दो महीने पहले आपने अर्ज़ी दी थी। उस स्कूल में पढ़नेवाले बहुत कम लड़के मुसलमान थे और मुझसे पहले कोई मुसलमान मास्टर नहीं रखा गया था, उस स्कूल में मास्टरों और लड़कों से, दोनों से मेरे ताल्लुक़ बहुत ही कमाल के रहे।

मेरे हिन्दू अफ़सर

इसके बाद मैंने आरज़ी तौर पर जगह जगह काम किया और अक़सर मेरे अफ़सर हिन्दू लोग रहे, उनमें से ज़्यादातर का मेरे साथ बर्ताव मेहरबानी और सलामती का रहा। सिर्फ़ एक ऐसा था जो मुझे पसन्द नहीं आया। वह मुझे कुछ कठोर और फ़िरक़ेवाराना तबियत का जान पड़ा। इसकी वजहें भी थीं—वह उमर में बूढ़े थे, तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं रहती थी और औलाद भी बहुत देर में, हाल ही में हुई थी। मुझसे ज़्यादा उमर के एक हिन्दू महराज थे। उन्होंने मुझसे वायदा किया था कि स्कूल-कमेटी की मेम्बरी के लिये मेरा वोट आपको मिलेगा। लेकिन वह वोट उन्होंने मुझे नहीं दिया। जब मुझे इसका पता चला तो मैंने उनसे साफ़ कह दिया कि जो आपने नाइन्साफ़ी मेरे साथ की है उससे कहीं ज़्यादा दुःखदायी वह नाइन्साफ़ी है जो आपने अपने साथ की। मेरी ख़्वाहिश है कि आप मुझे इस काम में मदद दें कि आपकी उमर और तालीम के लिहाज़ से मैं आपकी कुछ ज़्यादा इज़्ज़त कर सकूँ।" मुझे दुःख ज़रूर हुआ, लेकिन यह ज़रा भी ख़्याल नहीं आया। कि यह एक फ़िरक़ेवाराना तरफ़दारी है। और आता भी क्यों जबकि ऐसा था ही नहीं।

एक बार मैं गल्ती से सरकारी टिकट जिन पर "सर्विस" लिखा रहता है अपने काम में ले आया। चिट्ठी डाक में छोड़ने के बाद मैंने फ़ौरन ही डाक के सुपरिण्टेण्डेण्ट को एक ख़त लिखा और साथ में बराबर दाम के सादे टिकट रख दिये। मैं अपने अफ़सर के पास गया और अपनी ग़लती साफ़ साफ़ क़बूल कर ली। वह बोले, "ग़लतियां तो हर एक से हुआ ही करती हैं, लेकिन आदमी आदमी में फ़र्क़ यही होता है कि कौन उन्हें क़बूल करता है और कौन उनकी इसलाह की दिल से कोशिश करता है काश, मुझे ऐसी और ग़लतियों का पता चल जाता! याद रखिये—जिसने कभी ग़लती नहीं की उसने कभी कुछ नहीं किया।" इन लब्ज़ों में किसी को हिन्दू धर्म का पुट कहीं मिलता है या नहीं?

एक और किस्सा है, एक बार मेरे एक हिन्दू अफ़सर ने मुझे इस बात के लिये फटकारा कि आप जो काम करते हैं सो अपनी ज़िम्मेदारियों का पूरा पूरा ख़्याल नहीं रखते। मामला ज़रा पेचीदा था। मेरे नीचे काम करने वाले एक आदमी ने (जो हिन्दू था) ऐसा जुर्म किया था कि जान के लाले थे। बात ऐसी आन पड़ी कि जब तक उस जुर्म में मैं थोड़ा-सा हिस्सेदार न बनूँ तब तक उनको ज़रा-सा भी छुटकारा नहीं मिल सकता था और मेरे क़बूल कर लेने पर भी सिर्फ़ इतना ही होता कि उनकी नौकरी क़ायम रहती हों सज़ा तो मिलती ही। लेकिन मैंने सारे मामले को एक नये सिरे से ही अक्लदारों के सामने पेश किया और नतीजा यह हुआ कि वह तो बिल्कुल बच गया और मुझे एक हलकी-सी डांट उठानी पड़ी, मुझे यकीन है कि मेरे अफ़सर ने साफ़ पहचान लिया कि मेरे दिल में क्या है। उसने जो दो लब्ज़ मुझसे डांट में कहे, उनको कहने में उसे जितना नाज़ था उतना ही मुझे उनको सुनने में था।

यह क्या! मैं यह नहीं कहता कि सभी हिन्दू फरिश्ते होते हैं। न सब हिन्दू फरिश्ते होते हैं न सब मुसलमान ही। लेकिन दोनों ही इन्सान हैं और यह सबसे बड़ी दलील है इस बात की कि आपस में मेल हो, मुहब्बत हो, भाईचारा हो, हम दोनों एक ही सर ज़मीन-पर पैदा हुए, हम दोनों के पुरखे एक—इनकी वजह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हमें विरासत मिली है वह भी बुनयादी तौर से एक है। तिस पर भी हम लड़ते हैं। एक दंगे में एक हिन्दू लड़के ने एक मुसलमान को जिसे मैं अच्छी तरह से जानता था जान से मार दिया। इन दोनों ने एक दूसरे को पहले कभी देखा भी नहीं था। थोड़ा अर्सा हुआ कि एक जवान मुसलमान कलकत्ते में एक हिन्दू किताब वाले की दूकान पर गया और दूकानदार को मार डाला क्यों कि उसके यहां एक ऐसी किताब थी जिसमें रसूल-उल्लाह की तसवीर थी। इन शहीदों की रूह को हिन्दुस्तान की कमबख़्त हवा पर मंडराते हुए मैंने अकसर देखा है। शिकायत दोनों की एक, और वह शिकायत किसी हिन्दू या मुसलमान के ख़िलाफ़ नहीं होती बल्कि गुण्डों की उस बदमाश क़ौम के ख़िलाफ़ होती है जो धरती पर इन्सानी समाज को हर जगह बदनाम करती है, उसकी इज़्ज़त को उतारती है। किसी हिन्दुस्तानी मुसलमान के ख़िलाफ़ नफ़रत का अंडा सेने के लिये हिन्दू होना लाज़मी नहीं है, या हिन्दू के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने के लिये मुसलमान होना। क्या केन ने ही अपने भाई आबेल को नहीं मारा? क्या जारब्बेक़ को उसके भाइयों ने ही नहीं तर्क कर दिया था? इन्सान का ख़ून पीने और ख़ूँरेज़ी नफ़रतों की सैकड़ों मिसालें इस दुनिया में मिलती हैं— इनकी वजह सिर्फ़ फिरकेवाराना भेदभाव नहीं हैं गो कि यह ग़ैर को फायदे देते हैं। जर्मनी की तरह हिन्दुस्तान की हालत गिरावट और ख़्वारी का नतीजा है। हिन्दुस्तान को भी गिराने वाली चीज़ है उसकी जलालत भरी गरीबी, जर्मनी को गिराने वाली चीज़ थी उसकी गौर्मिन्ट की हद के बाहर ताक़त।

जिन्हें कहा जाता है कि यह हिन्दुओं की "मांगें" हैं उनके बारे में बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें मैं पसन्द नहीं करता। ऐसे ही बहुत-सी वैसी चीजें हैं जिन्हें मुसलमान होने के नाते मैं हिन्दुओं से नहीं मांगूँगा। जब एक हिन्दू यह कहता है कि मुसलमानों के गो-मांस खाने पर मुझे एतराज़ करने का "हक़" है या आप चाहें कुछ भी करें तो वह भी नमाज़ के वक़्त मस्जिद के आगे ज़बरदस्ती बाजा बजाएगा, तो मुझे ज़रूर शिकायत पैदा होती है। लेकिन मेरा कहना तो यह है कि हम अपने अलग अलग हक़्कों को इज़्ज़त के साथ निभा सकते हैं और इन्सान होने के नाते जो हमारे बुनियादी हक़ हैं उन्हें भी हमें नहीं छोड़ना पड़ेगा।

सभ्यता की आपस में क़दर

मैं पूछता हूं कि क्या अपनी इस्लामी सभ्यता, तहज़ीब की बढ़ोतरी के लिये हम हिन्दुओं के अहसानमन्द नहीं हैं? अरबी क़ुरान हिन्दुस्तान में सौ पीछे निबानवे मुसलमान क्या समझ सकते हैं? हिन्दुस्तान की एक ज़बान में इसका तरजुमा एक हिन्दू ने ही किया था। वह ज़बान हिन्दुस्तान की बड़ी ज़बानों में से है और जिस हिस्से की वह ज़बान है वहां के मुसलमान कसरत से उसे बोलते हैं। उसी आदमी ने "मुसलमानों सन्तों की ज़िन्दगी" का भी अरबी से तरजुमा किया था। यह दोनों काम वह बरसों मेहनत करके कर पाया था और ऐसी लगन से उसने किये कि तारीफ़ के बाहर है। वह तो आज नहीं है लेकिन जो रोशनी उसने जगाई थी वह आज चमक रही है। उस रोशनी में मुझे अपने कोई हिन्दू भाइयों का असली चेहरा साफ़ दिखाई पड़ रहा है।

कुछ गोरे लोगों ने कुछ मुसलमान बादशाहों का हाल बहुत कड़े और भद्दे लफ़्ज़ों में तंगदिली के साथ बयान किया है, जैसे औरङ्गज़ेब और सिराजुद्दौला। लेकिन दो हिन्दुओं ने ही इनके बारे में जो जो इत्तलायें दी सकती हैं उन्हें चुनचुन कर असलियत साफ़ साफ़ बयान की है। यह दो हिन्दू सर यदुनाथ सरकार और अक्षय कुमार मित्र हैं। किसकी हस्ती है कि इनके लिखे पर क़लम चला सके।

हिन्दुस्तान के सबसे बड़े शायर टैगौर थे, टैगौर ने ईरान के शायर हाफ़िज़ से बहुत कुछ हासिल किया है और हाफ़िज़ की बहुत-सी नज्मों का तरजुमा भी एक हिन्दू ने ही किया है जिसका नाम है कृष्णचंद्र मजूमदार। दूसरी तरफ़ भी यही हाल है। हिन्दू धर्म की किताबों का जो ख़जाना है वह सिर्फ़ एक मुट्ठी भर ब्राह्मणों की ही चीज़ थी। नीच जातों के लोगों का गीता या वेद पढ़ना ब्राह्मण एक पाप समझते थे, लेकिन आम रैयत की भाषा में इसका उल्था जिन्होंने पहले-पहल किया वह लगन के पक्के और दिल के सच्चे मुसलमान ही थे, शायद कोई ऐसा हिन्दू होगा जो कला-हुनर, सभ्यता-तहज़ीब की मुसलमानी यादगारों को प्रेम से याद न करता हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे आगरे के ताज की, दिल्ली के कुतब की। संगीत के अन्दर तो मुसलमान अव्वल ही हैं और आज भी यह हालत है कि संगीत का शौक़ीन कट्टर से कट्टर हिन्दू तानसेन का नाम बहुत ही ज़्यादा आदर के साथ लेता-सिवाता है। मुसलमानों के बारे में यह बहुत ख़्याल किया जाता है कि यह लड़ने वाली क़ौम है। लेकिन हिन्दुस्तानी इतिहास का हर जानकर यह ख़ूब जानता है कि राजपूत सभी लड़ाई के फन में किसी से उन्नीस नहीं पड़ते।

हिन्दुओं के अंदर जात-पाँत की प्रथा है। इसकी बुनियाद उस कारगर उसूल पर हुई थी जिसका नाम है काम का बंटवारा, लेकिन धीरे धीरे इस जात-पांत ने समाज को अलग अलग टुकड़ों में जकड़ दिया। कोई भी समझदार हिन्दू ऐसा नहीं है जो छूत-छात मानता हो, क्योंकि सैकड़ों मिसालें ऐसी हैं कि उसके ऋषियों, मुनियों और देवताओं ने इस फ़र्क को नहीं माना है या अपने को उससे ऊपर उठा लिया है!

यह भी अकसर कहा जाता है कि हिन्दू और मुसलमान मज़हब एक दूसरे के सख़्त ख़िलाफ़ हैं, लेकिन ईसाई मत के तिगुट्ट (ट्रिनिटी) की तरह ब्रह्मा, विष्णु, महेश का इशारा भी सिर्फ एक की तरफ़ है, एकमेव द्वितीय नास्ति, सिवाय एक के दूसरा नहीं। अद्वैतवाद जो है वह हिन्दू धर्म की एक ख़ास शाख़ है, इसी तरह इस्लाम में तौहीद है। अपने कर्ता से मिल जाने पर एक बड़े भारी मुसलमान दरवेश ने ज़ोर से पुकार कर कहा था, 'अनलहक़—मैं ही सच्चाई हूं,' ऐसी ही हालत में एक हिन्दू संत ने कहा था, अहं ब्रह्मास्मि—मैं ही सिरजनहार हूं।' वे एक दूसरे को न मानते थे, न एक दूसरे का कभी नाम सुना था। दोनों के बीच हज़ारों साल का फ़ासला था। तिस पर भी वे एक दूसरे के कितना पास थे...

सच पूछा जाये तो एक हिन्दू और एक मुसलमान के बीच दीवार बहुत करके बनावटी होती है—बहुत करके ऊपरी है। इसकी अगर ठीक से जाँच की जाये तो यह दीवार ग़लत फ़हमी की एक पतली तह की तरह मालूम पड़ेगी—तह भी ऐसी जो एक ही मां की औलादों के बीच देखी जा सकती है।

मैं यह साबित करने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ कि हम हिन्दू मुसलमान आपस में लड़ते नहीं हैं। लड़ते हैं—जो हमारे लिये बहुत शर्म और पानी पानी हो जाने की बात है। हिन्दुस्तानी जात की जो बेतहाशा तबाही होती है इसकी वजह है हमारी वह ताक़त जिसका इस्तेमाल ही ग़लत ढंग पर होता है, इसकी वजह है हमारी वह मुहब्बत जो किसी काम में नहीं लाई जाती। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, हमको एक सी विरासत का नाज़ है, विरासत है तो पुरानी लेकिन उसका नतीजा यह नहीं हो पाया कि हमारी मौजूदा ज़िन्दगी एक जानदार चीज़ होती। हिन्दू तो जाग रहे हैं लेकिन मुसलमान अभी ज्यादातर सोए ही हुए हैं।

लेकिन आज का हिन्दुस्तान एक हिन्दू हिन्दुस्तान या एक मुसलिम हिन्दुस्तान नहीं है। असल में तो यह हिन्दुस्तान हिन्दुओं और मुसलमानों का (दूसरी अक़ल्लियतों का भी) कुल का कुल हिन्दुस्तान है। यह हिन्दुस्तान है मुसलिम लोकराज और हिन्दू दर्शन का, हिन्दू ज्योतिष और मुसलिम अलजबरे का, मुसलिम क़ुरान के हिन्दू तरजुमों और हिन्दू रामायण के मुसलिम तरजुमों का, मुसलिम बादशाहों के हिन्दू सिपहसालारों और हिन्दू महाराजाओं के मुसलिम दीवानों का, हिन्दू त्योहारों व मुसलिम मेलों और हिन्दू बनियों और मुसलिम रैयत का, हिन्दू कारख़ानों के मुसलिम कारीगरों और मुसलिम लड़कों के हिन्दू मास्टरों का। यह हिन्दुस्तान वह है जिसमें हिन्दू हिन्दुस्तान और मुसलिम हिन्दुस्तान की क़लमें एक साथ लगी हुई हैं—इससे जो फूल निकला है वही है हिन्दुस्तान। यह हिन्दुस्तान एक है और एक होकर रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जनाब" और "श्रीमान्"

श्री किशोरलाल मशरूवाला

'हिन्दू-पानी' और 'मुसलमान-पानी', 'हिन्दू-चाय' और 'मुसलमान-चाय' वग़ैरा का आजकल हमारे नेता बार-बार निषेध कर रहे हैं। यह ठीक ही है। ये भेद नाबूद होने ही चाहियें। लेकिन, साथ साथ एक दूसरी तरह का और अधिक बुरा भेदभाव खुद हम लोगों ने—याने, शहरों के, कांग्रेस के तथा पढ़े-लिखे लोगों ने-इन २५-३० सालों में नया पैदा किया है। उसकी ओर मैं ध्यान खींचना चाहता हूं। यह है हमारे आदर-अदब के शब्दों और तरीकों के विषय में।

जहां तक मुझे याद है बीसवीं सदी की शुरू में जुदे-जुदे प्रान्तों में किसी शख्स का अदब से नाम लेने के लिए जनाब, रा० रा० (राजमान्य राज्यश्री) मि० (मिस्टर), महाशय वगैरा शब्द बरते जाते थे। कहीं कहीं नाम के पीछे 'जी' या साहब शब्द जोड़ दिया जाता था। जिनके बरतने में उस शख्स की जात-पांत या मज़हब का कोई ख्याल रक्खा न जाता था। जनाब भगवानदास साहब और महाशय मुहम्मदअली, मि० श्रीनिवास और रा० रा० जमाल साहब कोई भी विशेषण चाहे जिस नाम के साथ बेखटके लगाते थे। सन् १९२० तक अहमदाबाद के शिष्ट लोग गांधीजी को 'गांधी साहेब' कहते थे, और महाराष्ट्र में 'तात्या साहेब' 'नाना साहेब' 'बापू साहेब' आदि कहना आम था और अदब माना जाता था। श्री भी बेसंकोच उपयोग होता था, और अंग्रेजी में तो उसीका इस्तेमाल होता था।

फिर, देश में राष्ट्रीय जागृति का ज्वार आया। उसने दो रूप लिये। एक अंग्रेजी-विरोधी और दूसरा अपनी अपनी जाति का पुराना अदब और संस्कृति का गर्व बढ़ानेवाला। अंग्रेजी के विरोध में हमने मि०, रा० रा०, आदि अंग्रेजी भाषा और राज की इज्जत बढ़ानेवाले शब्दों को छोड़ना शुरू किया। अगर इस नयी जागृति का स्वरूप इतना ही रहता, तो संभवतः हम 'महाशय' या 'जनाब' ये दो शब्द जो लोगों को शायद ज्यादा मालूम थे उन्हींसे काम चला लेते और उन्हें बगैर भेद-भाव के हर किसी शख्स के नाम के साथ लगा देते। लेकिन साथ-साथ अपनी अपनी पुरानी संस्कृति का अभिमान भी जाग उठने से हम न सिर्फ आदमियों की जातपांत की, बल्कि लफ्जों के बाप-दादों की भी जांच करने लगे, और उन्हे भी मजहबों के साथ जोड़ने लगे। इस समय तक 'श्री' बगैर भेद-भाव हर किसी को लगाया जाता लगा। अंग्रेजी में भी वह दाखिल हुआ। लेकिन फिर के साथ जनाब भी पीछे हटने लगा, और इस संकुचित 'श्रीमान्' ने स्थान जमा लिया। इसमें हिन्दु मुसलमान भाषा की बू उठी, मुसलमान नाराज़ होने लगे। गुजराती की तरफ जनाब शब्द बहुत परिचित न था फिर भी मुसलमानों को कौनसा विशेषण प्रिय है इसका लोगों को ठीक पता न था। कई शब्द एक के बाद एक निकाले गये। हेतु यही कि मुसलमान भाइयों को उनका प्रिय विशेषण लगाया जाय। आखिर के चुनाव में हाल में 'जनाब' शब्द का उपयोग किया जा रहा है।

इस ओर कई हिन्दू श्रीमान्, साहब शब्द से नफरत करने लगे। कुछ साल पहले जो तात्या साहेब अण्णा साहेब वगैरा कहे जाने में अपनी इज्ज़त समझते थे, तात्याराव, अण्णाराव कहने—कहलाने का आग्रह करने लगे। 'हिन्दू पानी' और 'मुसलमान पानी' का इत्तफाक होते हुए भी, इसमें शक नहीं कि इस ज़माने में देहात की बदौलत खाने-पीने की छुआछूत कम ही हुई है, लेकिन, विद्वानों और राजकीय नेताओं की बदौलत शब्दों की छुआछूत बढ़ गई है।

जो बात आदरसूचक शब्द लगाने के बारे में है वैसी ही वन्दना के शब्द और रीति के बारे में है। हिन्दुओं में भिन्न भिन्न पंथों में बीसों प्रकार के अपने वन्दना के शब्द और रूढ़ियां हैं। राम जयरामजी, जय गोपाल, जय श्रीकृष्ण, जुहार, पालागन, 'श्रीमान्' वगैरा तरह-तरह के शब्दों रीतियों से वे अपने हमधर्मियों, रिश्तेदारों और का सत्कार करते हैं। लेकिन, बीसवीं सदी के यह बात नहीं थी कि कोई हिन्दू 'सलाम' कहने से हिचकिचाता था। राष्ट्रीय जागृति के परिणाम जयगोपाल, जयरामजी वगैरा शुद्ध सांप्रदायिक उपयोग कम होता चला, और उनका स्थान वन्दे मातरम्, नमस्ते, प्रणाम वगैरा शब्दों ने लिया। तरह 'सलाम' शब्द के माने में कोई मजहबी बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह इनमें भी नहीं। लेकिन संस्कृत-अरबी का सवाल खड़ा हुआ। कई हिन्दू सलाम से एतराज़ करने लगे, और कई मुसलमान वन्दे, नमस्ते से। इस वक्त 'पाय हिन्द' की नई फैशन शुरू हुई है। लेकिन, कोई भी शब्द निकाला जाय, हिन्दू-पानी और मुसलमान-पानी की तरह उसके माँ-बाप संस्कृत हैं या अरबी-फारसी यह बात महत्व की हो पड़ी है।

हिन्दू-पानी और मुसलमान-पानी का भेद अच्छी चीज़ तो नहीं, फिर भी अगर कोई पुराने ढंग का हिन्दू मुसलमान के हाथ का पानी नहीं लेता तो समझदार मुसलमान को उससे नफरत नहीं होती। बल्कि, पुराने ढंग को जाननेवाला मुसलमान वैसी आशा ही नहीं रखता। वह जानता है कि हिन्दू लोग सिर्फ हिन्दू-पानी और गैर हिन्दू-पानी का ही भेद नहीं करते, बल्कि ब्राह्मण-क्षत्री-बनिया-कहार के पानी का भी भेद करते हैं। इसलिए इस रूढ़ि को बरदाश्त कर लेने की इसे आदत हो गई है। लेकिन, फर्ज कीजिये कि वह मुसलमान सज्जन हिन्दू को कहे कि, 'आइये जनाब, सलाम-अलेकुम, कहिये बन्दा क्या हुक्म है?' और वह हिन्दू उसे कहे कि, 'नहीं, नहीं, मैं तो असल हिन्दू हूँ। मुझे जनाब, साहब, सलाम कहकर मेरी संस्कृति को न बिगाड़िए' तो मुझे जरूर बुरा मालूम होगा। इसी तरह अगर किसी मुसलमान को 'श्रीमान्, महाशय, प्रणाम' कहने से अपमान मालूम हो तो वह भी बुराई ही है।

फिर भी इन २५-३० वर्षों में नई नई बुराई पैदा हो गई है। दो तरह के आदर-अदब के शब्द और रीति होना ही मैं बुरा समझता हूं। हिन्दू-चाय और मुसलमान-चाय से भी 'श्रीमान, हिन्दू, नमस्ते' और 'जनाब, मुसलिम साहब, सलाम' का भेद ज्यादा बुरी चीज़ है। एक के लिये आदर और वन्दना के एक से शब्दों और रिवाजों पर हमें आना चाहिये। कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि चाहे एक आदमी श्रीमान और नमस्ते की आदत कर ले चाहे जनाब और सलाम की, उसे बरतने में कोई भेद-भाव न रक्खे। हिन्दू-मुसलमान अंग्रेज, पारसी, सिक्ख सभी के लिए किसी भी रस्म का उपयोग करने में न उसे और न सामने वाले आदमी को कोई संकोच या बुरा मालूम न होना चाहिये। जिस तरह धोती और पजामा, तथा कोट और अचकन दो तरह के रिवाज हैं, और हिन्दू मुसलमान सब में एक से हैं, वैसे ही ये माने जायें।

लेकिन, एक तरफ से तो यह जात-पांत तोड़ने की बातें करते हैं, और दूसरी तरफ से शब्दों की भी जात-पांत देखने का धंधा उठा लिया है। हिन्दुओं के लिये एक लिपि, मुस्लिमों के लिए दूसरी, हिन्दुओं के लिए संस्कृतिया जुबान, मुसलमानों के लिए अरबी-फारसी, हिन्दुओं के लिए दो हाथ का प्रणाम और मुसलमानों के लिए एक हाथ का सलाम—यह हम सोचें तो—बिल्कुल बेहूदा और नादानी की बात है।

फिर भी आज हमारी यह मनोदशा है कि "श्रीमान राव नमस्ते" कहें तो हिन्दुओं को जीत होती है, "जनाब, साहब सलाम" कहें तो मुसलिमों की; नागरी पढ़ें तो हिन्दुओं, उर्दू पढ़ें तो मुसलमानों की। क्यों हिन्दू जीत जांय? दोनों हार जांय तो हर्ज नहीं; लेकिन किसी एक को जीत दूसरे को हरगिज बरदाश्त न होगी। हिन्दू ज्यादा होते हुए भी, क्यों मुसलमानों से हारें? और मुसलमान कम हैं। इसीलिए क्यों हिन्दुओं से दब जांय?

हमें इस मनोदशा के ऊपर उठना ही होगा। हिन्दू-मुसलमान-सिख-पारसी-यहूदी-ईसाई सभी के लिये एक ही तरह का आदर अदब का तरीका कायम करना होगा। फिर वह "भाईजी" और "बाईजी" तथा भला हो इतना ही क्यों न हो।

अगर जनाब-सलाम से हिन्दू का हिन्दूपन और श्रीमान वन्दे से मुसलिम का इसलाम घट जाता है, तो वह हिन्दूपन और मुसलिमपन दोनों छोड़ने लायक हैं।

"तग्ग न हिन्दू पाइया,
तग्ग न मूसलमान।
दोनों भूले राह ते,
ग्रालिब भया शैतान॥"

(नानक)

[खादी-जगत्]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैबिनेट डेलीगेशन और भारत

आचार्य नरेन्द्रदेव

श्री एटली के बयान का भारत में अच्छा स्वागत हुआ है। जहाँ तक बयान का सम्बन्ध है, कुल मिलाकर वह अच्छा ही है। लेकिन इस बयान से हमें ब्रिटिश सरकार की योजना का पता नहीं लगता। इसके हक़ में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इसमें सौहार्द की भावना झलकती है और इसके शब्द अच्छे हैं। हमारे कुछ नेताओं ने इस बात को नहीं छिपाया है कि वे प्रतिनिधि मण्डल की कामयाबी के बारे में आशावादी हैं। किन्तु दूसरे ऐसे लोग भी हैं—जिनके मत को हम सम्मान की दृष्टि से देखते हैं जो इस सम्बन्ध में निराशावादी हैं—और जिन्होंने अपनी ओर से जनता को चेतावनी दे दी है।

ब्रिटिश साम्राज्य की अन्तिम घड़ियां

किसी व्यक्ति का आशावादी अथवा निराशावादी होना अंशतः परिस्थिति सम्बन्धी उसकी व्याख्या पर निर्भर है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार अब भारत पर अपनी ताक़त के बल पर हुकूमत नहीं कर सकती। महायुद्ध के फलस्वरूप शक्ति-संतुलन में परिवर्तन हो गया है। भारत और ब्रिटेन का संघर्ष अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न माना जाने लगा है। भारतीय समस्या आज ब्रिटिश साम्राज्य का घरेलू प्रश्न न रहकर संसार की समस्या बन गयी है। भारतीय जल और स्थल-सेना में ब्रिटिश विरोधी भावना की लहर उत्तरोत्तर बढ़ते जाने से सरकार उसके ऊपर अब भरोसा नहीं कर सकती, सरकार के दूसरे कर्मचारियों में राष्ट्रीय आत्मसम्मान की एक नयी भावना के प्रचार के फलस्वरूप, जो कि उस पुलिस में भी घर कर गयी है जिसमें अब तक राष्ट्रीय सम्मान अथवा राष्ट्रीयता की कोई भावना नहीं पायी जाती थी, ब्रिटिश सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह भारतीय समस्या का निपटारा एक नये आधार पर करे। समूचे एशिया में आग लगी हुई है और ब्रिटिश साम्राज्य अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। कोई समझदार अङ्गरेज़ यदि शुद्ध हृदय से वर्तमान स्थिति की विवेचना करे तो वह इसी परिणाम पर पहुंचेगा कि उसके लिए अब साम्राज्य से अपने को पृथक् कर लेने का समय आ गया है। किन्तु मनुष्य विवेक की अपेक्षा भावनाओं से अधिक नियंत्रित होता है, और स्वार्थ उसके निर्णय को ढंक देता है। ब्रिटेनवासी फूंक-फूंककर और सावधानी से कदम रखनेवाले व्यक्ति हैं। वे समझौते की कला में बहुत दक्ष हैं। एक सीमा तक तो वे आगे बढ़ते हैं, किन्तु इसके बाद जब तक उन पर जबरदस्त दबाव नहीं पड़ता आगे नहीं बढ़ते। विगत समय में उन्हें इतनी अधिक बार सफलता मिल चुकी है कि वे यह सोचने लगे हैं कि इस बार भी वे किसी-न-किसी प्रकार संकट को टाल ले जायेंगे। नयी दिशा में बढ़ना उनके लिए बड़ा कठिन है, वे पुरानी प्रणालियों तथा परम्पराओं से बंधे रहते हैं।

भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध भंग की हुई प्रतिज्ञाओं से भरा हुआ है जिसके कारण भारतवासियों का मस्तिष्क सरकार के इरादों के सम्बन्ध में अविश्वास से भर गया है। हम यह नहीं भूल सकते कि ब्रिटिश सरकार की नीति हिन्दुस्तान में एक साथ ही एक ओर दमन और दूसरी ओर सुधार की रही है। आज भी इस प्रकार की अफवाह है कि सरकार उस भारतीय आन्दोलन को कुचल देने की तैयारियों में व्यस्त है जो उसे भय है कि आमात्य-मण्डल की असफलता पर अवश्य ही छिड़ेगा। मैं इन अफवाहों को कोई महत्व नहीं देता। किन्तु इस प्रकार की अफवाहों से पता चलता है कि ब्रिटेन के इरादों के सम्बन्ध में जनता में कितना घोर अविश्वास फैला हुआ है। जनता द्वारा यह बात कही जाती है कि यदि सरकार सचमुच भारत की मांग पूरी करने के लिए तैयार होती तो उसने अपने प्रस्तावों के स्वागत के उचित वातावरण तैयार करने के लिए सभी राजबन्दियों को मुक्त कर दिया होता। यह बताया गया है कि इंग्लैण्ड में यूरोपीय युद्ध का अन्त होते ही राष्ट्रीय-सरकार बनी मोजले (ब्रिटिश फासिस्ट-दल के नेता) के साथी रात छोड़ दिये गये थे। उनकी रिहाई के लिए प्रयत्न सागर के युद्ध का अन्त होने तक सरकार रुकी नहीं किन्तु भारत में अब भी कितने ही महान् देशभक्त जनता के नेता जेलों में सड़ रहे हैं जब कि इंग्लैण्ड मजदूर-सरकार कायम है, सर्वग्रासी युद्ध समाप्त हुए महीने बीत चुके हैं और पहली अप्रैल की वह तिथि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीत गयी जो युद्ध का अन्त सूचित करने के लिए अनमाने ढंग पर निश्चित की गयी थी। किन्तु भारत-सरकार जड़, कल्पनारहित और प्रतिक्रियावादी है। भारत और ब्रिटेन की जनता के सौहार्द के मार्ग में एक बहुत बड़ा रोड़ा भारत में ब्रिटिश नौकरशाही का उच्च कर्मचारी वर्ग है।

प्रश्न के सभी अंगों की ओर दृष्टि डालते हुए इस समझौते के सम्बन्ध में आशावादी होना कठिन है। किन्तु हम समझौते की बातें करने से इनकार भी नहीं कर सकते। सदाशयतापूर्वक तर्क करने के लिए शान्त वातावरण निस्सन्देह सहायक होता है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग अपना विचार स्पष्ट और दृढ़ भाषा में न प्रकट करें। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के लिए देशभक्ति का तकाजा यही है कि वे अपने विचारों को प्रकट करने का लोभ संवरण किये रहें; किन्तु भारतीय राजनीतिज्ञों की देशभक्ति यही कहती है कि वे अपने विचारों को उपयुक्त भाषा में व्यक्त करें।

बुनियादी सवाल

मुझे आशा है कि बुनियादी प्रश्नों पर हम लोग अन्त तक डटे रहेंगे। इस बात की घोषणा पहले ही कर दी गयी है कि ऐसा कोई भी हल स्वीकार नहीं किया जा सकता जो यूरोप के बालकन राष्ट्रों की भांति भारत के भी टुकड़े करता हो, और स्टर्लिंग पावने के प्रश्न का निपटारा इस ढंग से होना चाहिये जो भारतीयों को क्षोभप्रद हो। यह बात कांग्रेस के अधिकारियों द्वारा स्पष्ट कर दी गयी है कि यदि दो विधान-सभाएं बुलायी जायेंगी तो कांग्रेस कोई समझौता नहीं करेगी।

पंडित जवाहरलाल ने यह कहकर ठीक ही किया है कि विधान-सभा में देशी रियासतों की जनता को भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। श्री एटली के वक्तव्य में रियासती प्रजा की उपेक्षा की ही बात कही गयी थी और उसमें केवल राजाओं की बात कही गयी थी, यह दृष्टि महत्वपूर्ण थी। भारत मन्त्री ने प्रेस-प्रतिनिधियों के सम्मेलन में ही एक प्रश्न के उत्तर में बताया है कि रियासती प्रजा की ओर नहीं ध्यान दिया जा सकता क्यों कि उसकी कोई वैधानिक स्थिति नहीं है। यह विचित्र बात है कि मजदूर-दल का एक मन्त्री इस प्रकार के सारहीन तर्क का सहारा लेकर जनता के दावे की उपेक्षा करे। देशी नरेशों के उस वर्ग के साथ जो सामन्तवादी है और देश की एक प्रतिक्रियावादी शक्ति है, मजदूर-दल का ऐसा प्रेम कब से उमड़ आया? भारतमन्त्री ने अपने वक्तव्य में कहा है कि स्वतन्त्र भारत को पुरानी सरकार का देना-पावना दोनों साथ ही स्वीकार करना पड़ेगा। हम जानते हैं कि राजाओं का वर्ग इस 'पावने' के अन्तर्गत ही आता है। देश की प्रगतिशील शक्तियों के साथ संघर्ष करने के लिए इसे जबर्दस्ती जीवित रखा गया है। इस वर्ग की रक्षा के लिये पुरानी सन्धियों की दुहाई दी जा रही है। दूसरा पावना है साम्प्रदायिक मतभेद जो ब्रिटिश शासन की देन है। दोनों ही प्रकार के पावने का हम जल्द से जल्द भुगतान करना चाहते हैं। हिन्दू और मुसलमान साम्प्रदायिक एकता की स्थापना करेंगे और दोनों मिलकर राष्ट्र बन जायंगे। देशी नरेशों का वर्ग मिटा दिया जायगा क्योंकि आज के युग में वह प्राचीन काल का ऐसा अवशेष है जिसकी आज कोई आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। सभी लोकतन्त्र-विरोधी समुदायों का दमन करना होगा जिससे लोकतन्त्र प्रणाली पूरी तरह फल-फूल सके। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि पुरानी सन्धियों के अधिकारों को विशेष महत्व न दिया जाय। सन्धियों की पवित्रता की यथार्थता हम अच्छी तरह जानते हैं। आज देशी रियासतों का ब्रिटिश सर्वोपरि सत्ता के साथ जो सम्बन्ध है वह सम्बन्ध रियासतों को भारतीय लोकसत्तात्मक राज्य के साथ रखना पड़ेगा। यह देखना राज्य का कर्तव्य होगा कि देशी रियासतों का कार्य लोकतन्त्रात्मक विधान के साथ आरंभ होता है।

मित्रता-सन्धि का मायाजाल

इस लेख का उद्देश्य जनता का ध्यान प्रश्न के उस विशेष पहलू की ओर दिलाना है जिस पर कम जोर दिया गया है। मेरा मतलब उस मित्रता की सन्धि से है जिसका उल्लेख ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के वक्तव्य में किया गया है।

ब्रिटेन की यह पुरानी चाल है कि नाम में तो राष्ट्र की स्वाधीनता मान ली जाय किन्तु वास्तविक नियन्त्रण-कारी शक्ति संधि की शर्तों के अन्तर्गत अपने हाथों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित रखी जाय। जिस प्रकार बिच्छू का डंक उसकी पूंछ में रहता है उसी प्रकार ब्रिटेन के स्वाधीनता के प्रस्ताव का डंक उस मैत्री की सन्धि में निहित रहता है जो इस प्रकार के समझौतों के साथ अनिवार्य रूप से लगी रहती है। मेरा तात्पर्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की निन्दा करना नहीं, मैं तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के एक ख्यातनामा ब्रिटिश लेखक की सम्मति दे रहा हूँ जिस पर ब्रिटिश-विरोधी भावना रखने का आरोप नहीं किया जा सकता। पाठक श्री जे. एम. गैथोर्न हार्डी की 'शार्ट हिस्ट्री आफ़ इण्टरनेशनल अफेयर्स, १९२१-१९३०' नामक पुस्तक के निम्नलिखिन उद्धरण को देखें। स्मरण रहे कि यह पुस्तक रायल इन्स्टिट्यूट आफ़ इण्टर नेशनल अफेयर्स के तत्वावधान में छपी है—'जब ब्रिटिश कूट-नीति समझौते की अपनी स्वाभाविक भावना से प्रेरित होकर स्वतन्त्रता की छाया अर्पित करते हुए नियन्त्रण का अधिकार अपने हाथों में ही बनाये रखना चाहती है तब वह सन्धि के उपाय का सहारा लेती है···१९२२ की फरवरी में ग्रेट ब्रिटेन ने मिस्र से कह दिया कि वह पूर्णतः स्वाधीन हो गया, साथ ही ऐसी शर्तें भी जोड़ दीं जिनके कारण मिस्र की स्वाधीनता सीमित रह गयी।' (पृष्ठ २२६)

ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा करने और साम्राज्य के यातायात के मार्ग को सुरक्षित रखने की दृष्टि से मिस्र की भूमि पर ब्रिटिश सेना बैठा दी गयी। साथ ही सन्धि में यह बात भी कही गयी कि ब्रिटिश-फौजों की मौजूदगी मिस्र पर ब्रिटेन का अधिकार नहीं समझी जायगी और इससे मिस्र के सर्वोच्च अधिकारों में कोई कमी नहीं आयगी। सन्धि का यही तरीका इराक और आयरलैण्ड के साथ भी बरता गया। आयरलैण्ड के सम्बन्ध में तो स्वाधीनता की घोषणा भी नहीं की गयी; क्योंकि आयर-लैण्ड की भौगोलिक और सामरिक स्थिति ऐसी थी जिसके कारण ब्रिटेन की दृष्टि में उसे स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थिति नहीं प्रदान की जा सकती थी। ब्रिटेन की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण होने के कारण आयरलैण्ड को यह नाममात्र की स्वाधीनता भी नहीं दी जा सकती थी। आयरलैण्ड ब्रिटेन का उपनिवेश न होकर उसी के साथ सम्बद्ध था इस कारण उसे औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता था, और दूसरे औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त देशों को अपना स्वतन्त्र बेड़ा रखने का जो अधिकार है वह आयरलैण्ड को नहीं दिया गया। आयरलैण्ड के साथ की जानेवाली संधि में ब्रिटेन के रक्षा सम्बन्धी हितों को ही सबसे अधिक ध्यान में रखा गया था और १९२१ में होनेवाली मित्रता की संधि की शर्तें इसी दृष्टि से गढ़ी गयीं थीं। आयरलैण्ड के अपनी सेना खड़ी करने और सैनिकों को ट्रेनिंग देने के अधिकार भी सीमित कर दिये गये थे, और इस सम्बन्ध में जिन तर्कों का प्रयोग किया था उनमें से कुछ तो बिल्कुल हास्यास्पद थे। एक तर्क यह भी पेश किया गया था कि सैनिक सामग्री और सेना रखने के सम्बन्ध में असीमित अधिकार होना स्वयं आयर-लैण्ड की दृष्टि से हानिकर होगा क्योंकि अगर उत्तरी और दक्षिणी आयरलैंड दोनों को सैनिक तैयारियां करने का असीमित अधिकार दिया गया तो इन दोनों में संघर्ष हो जायगा। ईरान के साथ जो सन्धि की गई उसमें भी हम यह देखते हैं कि राष्ट्र-संघ का सदस्य होने से पूर्व उसके सर्वोच्च अधिकार नियन्त्रित कर दिये गये थे, साथ ही यह बात बराबर दुहरायी जाती रही कि उसकी प्रभुसत्ता की रक्षा की जायगी। इस प्रकार परामर्श अथवा सहायता देने के नाम पर अथवा ब्रिटेन के सैनिक हितों की रक्षा के नाम पर सन्धि में सेना-सम्बन्धी अथवा दूसरी धाराएं जोड़ दी गयीं और यह घोषणा कर दी गयी कि देश स्वतन्त्र हो गया। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि इस प्रकार की सन्धि को मित्रता की सन्धि किस प्रकार कहा जा सकता है अथवा इस प्रकार की सन्धि का आधार स्वतन्त्रता कैसे मानी जा सकती है। इन राष्ट्रों को विवश होकर ही इस प्रकार की सन्धियां करनी पड़ी थीं। छोटे राष्ट्र होने के कारण वे उन थोड़े बहुत अधिकारों को भी ठुकराना ठीक नहीं समझते थे जो उन्हें दिये जा रहे थे।

ब्रिटिश शासकों के इरादे

मेरे कहने का यह अर्थ बिल्कुल ही नहीं है कि भारतीय सन्धि भी इन्हीं सन्धियों की ठीक-ठीक प्रतिलिपि होगी। इन सन्धियों में भी समय-समय पर संशोधन होता रहा है और इन देशों पर से कुछ पिछले नियन्त्रण हटा दिये गये हैं। मिस्र की सन्धि में फिर संशोधन होने जा रहा है; किन्तु मुझे भय है कि ब्रिटेन की रक्षा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76280

से कुछ सेना सम्बन्धी धाराएं अवश्य रखी जायंगी। चूंकि भारत के पास अपना कोई ऐसा समुद्री बेड़ा नहीं है जिसे समुद्री बेड़ा कहा जा सके, इसलिए भारतीय तट की रक्षा का ब्रिटिश बेड़े का तब तक अधिकार माना जायगा जब तक भारत के पास अपना बेड़ा न हो जाय। भारतीय तटों की रक्षा में प्रारम्भ से भारत का भाग अवश्य रखा जायगा, किन्तु भविष्य में अनेक वर्षों तक भारत अपना नौ सैनिक बेड़ा नहीं बना पायेगा और ब्रिटिश नौ सेना ही भारतीय तटों की रक्षा करती रहेगी। साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से इंग्लैंड कुछ नौ सैनिक तथा दूसरे सामरिक अड्डों की मांग भी अवश्य करेगा, सदा के लिए नहीं तो कम से कम युद्धकाल के लिए। विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के नाम पर भारत में ब्रिटिश सेना को रखने के लिए भारतीयों को राजी करने का प्रयत्न किया जायगा। ब्रिटेन की मांगों का हमें डटकर विरोध करना चाहिये। ब्रिटिश सेना को हिन्दुस्तान जरूर खाली कर देना चाहिये। हिन्दुस्तानी सेना, जैसी भी है, हमारा काम चलाने के लिए ठीक है। उसमें जो कमियां हैं उनकी पूर्ति अन्तर्राष्ट्रीय सहायता द्वारा की जा सकती है। हर हालत में, इस बात की आशंका नहीं है कि ब्रिटेन के भारत से चले जाने के बाद कोई दूसरा बड़ा राष्ट्र इस देश पर आक्रमण करेगा। सेना के सम्बन्ध में ब्रिटेन के साथ रियायतें करना हमारे लिए हानिकर हो सकता है।

औपनिवेशिक स्वराज्य के खतरे

इस सिलसिले में इस प्रश्न का उत्तर देना भी आवश्यक होगा कि भारत औपनिवेशिक स्वराज्य क्यों नहीं चाहता। औपनिवेशिक स्वराज्य के विरुद्ध आपत्ति केवल भावनामूलक नहीं है, इस स्थिति को स्वीकार न करने के कई कारण हैं—पहली बात तो यह कि भारत भौगोलिक और संस्कृति दोनों की ही दृष्टि से ब्रिटेन से भिन्न है। फिर, दक्षिणी अफ्रिका भी जहां इतना वर्ण-विद्वेष है और भारतीयों के साथ जहां अस्पृश्यों का सा व्यवहार होता है, इस ब्रिटिश साम्राज्य का सदस्य है। औपनिवेशिक स्वराज्य के विरुद्ध दूसरी आपत्ति यह है कि आज ब्रिटेन की आर्थिक प्रणाली के साथ बँधना नहीं पसन्द करता। वह अपने लिए उपयुक्त आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का स्वयं विकास करना चाहता है। ब्रिटेन की वैदेशिक नीति के साथ घसीटा जाना भी भारत को पसन्द नहीं। यद्यपि उपनिवेश ब्रिटेन की वैदेशिक नीति निर्धारित करने में भाग लेते हैं, किन्तु यह नीति ब्रिटेन के वैदेशिक विभाग द्वारा कार्यान्वित होती है। भारत की स्थिति और उसके हितों की दृष्टि से आवश्यक है कि उसकी स्वतन्त्र वैदेशिक नीति हो। दक्षिण-पूर्वीय एशिया की रक्षा में भारत का महत्वपूर्ण भाग होगा। वह शान्ति के लिए केवल इसी दृष्टि से प्रयत्न नहीं करेगा कि उसकी परम्परा शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने की रही है वरन् इसलिए भी कि उसका हित इसी में है। स्वतन्त्र भारत को अपनी समूची शक्ति एक बड़े अर्से तक रचनात्मक कार्यों में लगानी पड़ेगी और यदि कोई युद्ध छिड़ गया तो इस कार्य में बहुत बड़ा व्याघात पहुंचेगा, उसकी आर्थिक और सामाजिक प्रगति को धक्का लगेगा।

भारत का कर्तव्य न केवल अपने पड़ोसियों के साथ वरन् संसार के दूसरे महान् राष्ट्रों के साथ भी शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना होगा। उसे सभी देशों के साथ अनाक्रमण-सन्धि करनी होगी और दूसरों के झगड़ों में पड़ने से इनकार करना होगा। इसके अतिरिक्त अरब राष्ट्रों, ईरान, बर्मा और मलाया में ब्रिटेन के इरादे साफ नहीं हैं। इन देशों के सम्बन्ध में ब्रिटेन की मौजूदा नीति किसी अच्छे आरम्भ की सूचना नहीं देती। महान राष्ट्रों की अपना प्रभाव बढ़ाने की नीति अब भी जारी है। इंग्लैण्ड ईरान में अपनी तेल सम्बन्धी सुविधाएँ छोड़ने को तैयार नहीं। ईरान की खाड़ी पर अपना सैनिक प्रभुत्व भी वह बनाये रखना चाहता है। इस बात की सम्भावना है कि ब्रिटेन और रूस के बीच एक सन्धि हो जाय और ब्रिटेन उत्तरी ईरान में रूस का वैध हित स्वीकार कर ले। इस प्रकार संसार में शान्ति कायम रखी जायगी, किन्तु साम्राज्यवाद का अन्त करके और न्याय तथा समानता पर आधारित एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना द्वारा नहीं वरन् प्रतिस्पर्धी महा-शक्तियों के बीच आपसी समझौते के द्वारा प्रभाव-क्षेत्रों का बँटवारा करके। १९०७ में भी इंग्लैण्ड और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारशाही रूस के बीच इसी प्रकार के समझौते द्वारा निपटारा हुआ था। ब्रिटेन के प्रभाव-क्षेत्र में सम्मिलित होकर हम अपने को ब्रिटिश साम्राज्यशाही के पापों के लिए जिम्मेदार बना लेंगे, साथ ही इंग्लैंड के युद्धों में अपने को उलझा लेंगे।

भारत के तटों की रक्षा

यह तर्क पेश किया जायगा कि संसार की रक्षा की दृष्टि से भारतीय समुद्र-तट को अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। उत्तर में मैं कहूँगा कि जापान की शक्ति के विनाश के उपरान्त यदि भारतीय तटों को कुछ समय के लिए अरक्षित भी छोड़ दिया जाय तो कोई खतरा नहीं है। यदि संसार के बड़े समुद्री बेड़े वाले केवल दो राष्ट्र इंग्लैंड और अमेरिका आक्रमण करने का इरादा न रखते हों तो भारत की तटरक्षा सम्बन्धी कमजोरियों से नुकसान न होगा। रूस की शक्ति स्थल सेना की है, जल सेना की नहीं। साथ ही यदि ब्रिटेन और अमेरिका सचमुच भारत की स्वाधीनता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें तो रूस भी ऐसा न करेगा। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि अपना अच्छा समुद्री बेड़ा तैयार करने में भी भारत को बहुत विलम्ब न लगेगा।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हम ब्रिटेन के साथ परस्पर रक्षा की सन्धि नहीं कर सकते। इस प्रकार की सन्धि से रूस स्वभावतः सशंक हो उठेगा, उसका रुख हमारे प्रति अमित्रतापूर्ण हो जायगा। हम यह नहीं भूल सकते कि रूस की मित्रता, यहाँ तक कि उसकी तटस्थता भी हमारे लिए आनेवाले दिनों में कितनी महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। हमारा हित इसीमें है कि हम बड़े राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धा से अपने को अलग रखें। एक राष्ट्र को हम तरजीह नहीं दे सकते। इंग्लैण्ड के कुछ दावों का निपटारा करने के लिए एक सन्धि करनी होगी। व्यापार सम्बन्धी शर्त रखी जा सकती है, यदि उससे दोनों देशों का लाभ हो। दोनों देशों में अनाक्रमण-सन्धि भी हो सकती है, किन्तु इस प्रकार की मित्रता की सन्धि नहीं की जा सकती जिसके अनुसार भारत को सोवियट रूस के विरुद्ध ब्रिटेन-अमेरिका के गुट में सम्मिलित होना पड़े।

('नेशनल हेरल्ड' से)
'आज' में अनूदित

ज्योति-पुरुष

श्री० उपेन्द्र

रुका तूफान क्या अब तक भला दुर्द्धर पहाड़ों से
झुका पौरुष कभी क्या बन्धनों से, कटु प्रहारों से
तिमिर क्या घेर सकता दीप्त तू अंगार ज्योतिर्मय
नहीं कोई डिगा सकता प्रखर तलवार तू दुर्जय
किरण का तेज, लहरों की चपल गति, भानु की ज्वाला
धधकती आग लोहू में अडिग तू सिंह मतवाला
रुका क्यों देखकर सम्मुख खड़े दुर्गम पहाड़ों को
लगाये तू गले से बढ़ सदा खूनी दुधारों को
जमीं पर, आसमां पर बोलतीं कुर्बानियां तेरी
कि भर तू आखिरी हुंकार मंजिल सामने तेरी

× × ×

छिपा इस बीन में ही तो अनल का तार वह भी है
छिपी मृदु रागिनी में ही प्रलय झंकार वह भी है
विपुल जल राशिमय अम्बर, छिपी पर ज्वाल विद्युत की
अचल उस मौन गिरि-उर में ज्वलित हुंकार वह भी है
सकीं क्या रोक उसको आंधियां जो बढ़ चला निर्भय
कफन सर पर लपेटे जो बढ़ा अविराम मृत्युंजय
वही दे खून अपना है नया इतिहास रच जाता
कि ठोकर दे युगों की धार जो उलटी बहा पाता
किरण-सँग यश-सुरभि उसकी चतुर्दिक व्याप्त वह देखो
उसी की ज्योति से दीपित गगन जल, थल, मही देखो

× × ×

मनुज वह मर गया तो क्या, अभी अभिमान बाकी है
चिता की राख है साक्षी, अमर बलिदान बाकी है
लगा दे आग अम्बर में, अभी आवाज वह बाकी
जगा दे क्रान्ति की ज्वाला अभी तो याद वह बाकी
सकी बढ़ पीढ़ियाँ, मौजूद वह अब भी निशानी है
नहीं इतिहास में, घर-घर अमर उसकी कहानी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त की कसौटी पर पाकिस्तान

श्री गार्गीशङ्कर मिश्र

पाकिस्तान की मांग के औचित्य के विषय में जिन्नाह साहब जो तर्क पेश करते हैं वह विचार करने योग्य हैं। इस तर्क को पेश करते हुए मि० जिन्नाह ने १७ दिसम्बर १९४४ को महात्मा गांधी को जो पत्र लिखा था उसका एक अंश इस प्रकार है :—

"हम इस बात पर दृढ़ हैं और हमारा विश्वास है कि मुस्लिम और हिन्दू राष्ट्र की किसी भी कसौटी या परिभाषा से दो वृहद् राष्ट्र हैं। हमारा १० करोड़ की आबादी का एक राष्ट्र है और ज्यादा क्या कहें हम अपनी अलग सभ्यता और संस्कृति, भाषा और साहित्य, कला और शिल्प, नाम और नामावलि, परिमाण और परिमिति का ज्ञान, कानून-कायदे और नैतिक नियम, रीति रिवाज और पञ्चाङ्ग, इतिहास और चलन, झुकाव और महत्वाकांक्षाएं, मुख्तसर में हमारी जीवन की और देखने पर अलग ही दृष्टि है, अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के हर रूप से हम एक अलग राष्ट्र हैं।"

दो राष्ट्र के सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिये मिस्टर जिन्नाह द्वारा उपरोक्त तर्क पेश किया गया है। यह विचार करना है कि क्या यह तर्क सही है।

सभ्यता और संस्कृति

मैथ्यू अरनाल्ड के अनुसार संस्कृति का अर्थ 'दूसरों से घृणा पैदा करना है।' यदि एक व्यक्ति पीड़ित है तो दूसरे व्यक्ति को भी (उसके लिये) अवश्य दुखी होना चाहिये।'

डा० डी० एन० बैनर्जी ने लिखा है, 'संस्कृति दूसरों से पृथक होने की भावना को लक्ष्य नहीं बनाती, किन्तु वह नरमाई, सहिष्णुता वृहद् सद्भावना तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच के सद्व्यवहार का पोषण करती है। ताकि सब लोग आत्मा के प्रकाश में रहें।'

सभ्यता संस्कृति का ही एक अंग है। अतएव जो समाज सभ्य और सुसंस्कृत है वह घृणा, फूट और भेद-भाव को प्रश्रय ही कैसे दे सकता है। और जब इस्लाम सभी मानवता को शान्ति दया और भ्रातृत्व का पाठ सिखलाता है तब उससे यह उम्मीद ही कैसे की जा सकती है!

भाषा और साहित्य

हिन्दुस्तान में कई भाषाएं बोली जाती हैं। और कइयों की लिपियां भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। प्रत्येक भाषा के क्षेत्र में रहने वाले—चाहे वे किसी भी जाति के हों—उसी भाषा को बोलते हैं और उसी साहित्य को अपनाते हैं। उदाहरण के लिये गुजराती भाषा और साहित्य को लीजिये। गुजरात, कच्छ और काठियावाड़ के मुसलमान भी गुजराती ही बोलते हैं। गुजराती लिपि में ही लिखते हैं। मुस्लिम लीग का जिन्नाह साहब द्वारा संरक्षित पत्र "वतन" गुजराती ही में निकलता है। अतः यह कारण सिर्फ गलत ही नहीं भ्रमोत्पादक भी है।

कला और शिल्प

कला के अनेक भेद हैं। संगीत एक कला है और वह जितनी हिन्दुओं की है उतनी ही मुसलमानों की भी है। यदि पण्डित ओंकार नाथ संगीत के आचार्य हैं तो फैयाज खां भी एक बड़े भारी उस्ताद हैं। अतः कला में हिन्दू और मुस्लिम कला कहकर भेद नहीं डाला जा सकता। शिल्प के बारे में मैं अंग्रेज़ विद्वान मि० हैवेल के विचार देना पर्याप्त समझता हूं। वे लिखते हैं :—

'ताजमहल या बीजापुर की विशाल इमारतों के बनाने में प्रेरणा जहां से आई, अध्ययन करने के उपरान्त हम पाते हैं कि वह हिन्दुस्तान की शिल्प कला है, न कि अरब ईरान या यूरोप की। सेण्ट पाल का गिरजा घर या वेस्टमिन्स्टर एबे जितने इङ्गलैण्ड के हैं उससे ज्यादा वे हिन्दुस्तान के हैं। अरब, तातार, पर्सियन और मुगलों के हिन्दुस्तान में आने के बाद हिन्दू सभ्यता को बहुत कुछ शिक्षा मिली, और मुस्लिम शिल्प कला की महत्ता, उसने स्वीकार की। ताजमहल हिन्दुस्तान का है न कि इसलाम का। अकबर जहांगीर और शाहजहां के समय के हिन्दू शिल्पकारों ने ईरानी चलन को लेकर, उसमें अपनी कला का सम्मिश्रण कर उसका कायाकल्प कर दिया। शिल्पकला में वह (ताज) निराला ही है। लेकिन उसे न अरब अपना कह सकते हैं न मुगल अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों कि वह शरीर और आत्मा दोनों से ही हिन्दुस्तानी है।'

आगे वे कहते हैं—

'मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तान की विजय के सदियों पूर्व, बग़दाद के विद्वान हिन्दुस्तानी साहित्य और विज्ञान का अध्ययन करते थे। महमूद ग़ज़नवी की राजधानी, हिन्दुस्तान के उच्च कोटि के शिल्पियों के कौशल के कारण ही पूर्व के सुन्दरतम शहरों में से एक गिनी जाती थी। हिन्दुस्तान की मुस्लिम कला, अत्यन्त आरम्भ काल से ही हमेशा भाव और कारीगिरी में हिन्दुस्तानी रही है। उसकी सजावट के तरीके इण्डो आर्यन रहे हैं। फ़र्क़ इतना ही रहा है कि जहां हिन्दू शिल्पी सजावट के लिये पशु-पक्षियों की आकृतियां बनाता था वहां कुरान की आयतें दे दी गई हैं।

यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हिन्दुस्तान में मुस्लिम शिल्पकला स्वतंत्र रूप से है ही नहीं। जो भी मुग़लकालीन या उसके पूर्व के मुस्लिम शासन के समय की इमारतें हैं वे हिन्दुस्तानी कला का उन्नत और विकसित रूप हैं।

हिन्दू और मुसलमानों की नामावलि भिन्न अवश्य है। लेकिन यह कोई कारण नहीं हो सकता कि नामावलि में भिन्नता हो जाने से राष्ट्रीयता में भी फ़र्क़ पड़ जाये। यदि यह बात सम्भव हो सकती है तो नामावलि में साम्य होने से विभिन्न राष्ट्रीयताओं को एक भी हो जाना चाहिये। और इसलिये अमेरिका और ब्रिटेन को समान नामावलि होने के कारण एक राष्ट्र हो जाना चाहिये। लेकिन यह बात जितनी असम्भव है उससे कम असम्भव जिन्नाह साहब का यह तर्क भी नहीं है।

इसी प्रकार कानून कायदों में साम्य होने से विभिन्न राष्ट्रीयताओं को भी एक हो जाना चाहिये। और इसलिये कि दुनिया के सब शिया मुसलमानों को जो ख़ास क़ायदों को मानते हैं एक राष्ट्र हो जाना चाहिये। यह बात भी पहिले वाली बात के ही समान हास्यास्पद है।

रीति रिवाज और पञ्चांग

यदि सचाई के साथ देखा जाय तो हरेक प्रान्त के रहवासियों के रीतिरिवाज खानपान, भाषा, साहित्य, पहिरावा तथा अन्य कई विषयों में कुछ न कुछ अन्तर दिखाई देगा। अतः यह कारण कोई खास महत्व नहीं रखता।

और पञ्चाङ्ग का तो यह हाल है कि ज्यादातर धार्मिक कृत्यों के अलावा कहीं भी हिन्दुस्तान के किसी भी धर्म का पञ्चांङ्ग उपयोग में नहीं लाया जाता। इस तरह के पञ्चाङ्गों का स्थान तो ईसवी पञ्चाङ्ग ने ले लिया है। अतः दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के लिये यह बात कहां तक पोषक होती है यह उसके प्रवर्तक ही जानें।

जीवन पर दृष्टि और जीवन की दृष्टि

जिनका जीवन नेतागिरी का जीवन नहीं है—साधारण जनता का जीवन है, किसान और मज़दूर का जीवन है शायद उनके जीवन के प्रति लक्ष्य कर यह बात जिन्नाह साहब ने नहीं कही। अन्यथा वे यह समझ सकते कि जिनकी जीवन की दृष्टि रोटी के ही सवाल तक सीमित है। वे नेताओं की स्वार्थजन्य, कृत्रिम साम्प्रदायिक कटुता से मुक्त हैं। आज भी देहातों में वे बग़ैर किसी वैमनस्य के रहते हैं। एक ही सुजलां सुफलां भारतीय भूमि पर उनकी जो दृष्टि-आशाएं और आकांक्षाएं अंकुरित होती हैं—लहरातीं हैं—झूमती हैं। जब कभी दुर्दैव अकाल के भीषण प्रहार को अनावृष्टि के रूप में देखते हैं, तब—अपनी अपनी जीवन की दृष्टि को नाम नामवाले ईश्वर की गुहार में सम्पूर्ण भावनाओं सहित समर्पित कर देते हैं। वे कभी नहीं सोचते हिन्दुस्तान में वर्षा न हो पाकिस्तान में हो—या मुसलमान के खेत में न हो हिन्दू के खेत में हो। पैंतीस लाख बंगाली-हिन्दू और मुसलमान-अंग्रेजी हुकूमत द्वारा अकाल में तड़प कर मर गए। क्या कभी उन्हें यह भासित हुआ होगा कि वे 'भूखे' के अलावा और भी कुछ हैं?

मन का झुकाव और महत्वाकांक्षाएं

इस बात को किस तरह सोचा जाए? एक कुटुम्ब के ही दो व्यक्तियों के मन के झुकाव और महत्वाकांक्षा को देखें तो अन्तर दिखाई देता है। एक भाई पूरी सरकारी नौकरी के लिये प्रयत्नशील दिखाई देता है तो दूसरा कबाड़ी की दुकान ही को सर्वश्रेष्ठ समझता है। अतः ४० करोड़ व्यक्तियों की एक ही महत्वाकांक्षा और मन के झुकाव का होना—एक अभूतपूर्व और आश्चर्यजनक बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास और रिवाज

बाहर से इतने मुसलमान हिन्दुस्तान नहीं आए थे जितने आज यहां हैं। लगभग पूर्णतया जितने भी मुसलमान हिन्दुस्तान में हैं—वे उन हिन्दुओं की सन्तान हैं जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तन कर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। अतः प्रत्येक मुस्लिम परिवार का पूर्वेतिहास और रिवाज एक हिन्दू का रिवाज और इतिहास था। धर्म परिवर्तन करने मात्र से ही—धर्म परिवर्तन के पूर्व का इतिहास धुलकर साफ नहीं हो जाता।

जिन्नाह साहब ने जिन कल्पनाओं के बल पर दो राष्ट्रों का सिद्धान्त बनाया है वे सारहीन, काल्पनिक और मिथ्या हैं। और यदि इसी बल पर अलग राष्ट्र की आकांक्षा किये बैठे हैं—तो उन्हें जान लेना चाहिये कि वे अन्धकार में हैं।

मि० जिन्नाह ने "अन्तर्राष्ट्रीय कायदे" के हर पहलू से—और राष्ट्र की हर परिभाषा से हिन्दुस्तान के मुसलमानों को अलहदा राष्ट्र समझने का दावा किया है। वहां राष्ट्र की परिभाषा पर स्तालिन के शब्द हैं—

"राष्ट्र भाषा, सीमा, आर्थिक जीवन, और मानव चरित्र द्वारा रचित तथा इन सब बातों से परिपूर्ण एक ऐतिहासिक और सुदृढ़ कौम है, जिसके विकास का पूर्व इतिहास है। हमें एक राष्ट्र सिर्फ तभी प्राप्त हो सकता है जब उसमें ये सब विशिष्ट लक्षण मौजूद हों।

"इसके अलावा यह बात और भी जोरों से कही जा सकती है कि उपरोक्त लक्षणों में से कोई भी एक लक्षण राष्ट्र की परिभाषा पूर्ण करने के लिये पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा इनमें से यदि एक भी लक्षण कम हो तो वह राष्ट्र बन ही नहीं सकता।"

राष्ट्र की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार यदि "पाकिस्तान" का एक अलहदा मुस्लिम राष्ट्र का विचार किया जाय तो एक क्या कई लक्षणों की कमी राष्ट्र बनाने में आवश्यक होती है, वहां जिन्नाह साहब की सिर्फ धार्मिक भावना के बल पर मुसलमानों को भिन्न राष्ट्र बनाने की कल्पना निरर्थक, असत्य तथा व्यक्तिगत स्वार्थों से पूर्ण दिखाई देती है। उसके पीछे ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसकी ४० करोड़ मानवता का शोषण सरल और चिरस्थायी बनाने के लिये बर्ती जाने वाली 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति की शैतानी छाया साफ नजर आती है।

जब तक हिन्दुस्तान गुलाम रहेगा, उसके पड़ोसी मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व के राष्ट्र-अर्धस्वतन्त्र या परतन्त्र रखे जायेंगे ताकि साम्राज्यवादी राष्ट्र उनका शोषण सरलता से कर सकें। इनमें अधिकता मुस्लिम राष्ट्रों की ही है। हिन्दुस्तान की गुलामी के ही साथ उनकी भी तक़दीर गुँथी हुई है।

मि० जिन्नाह ने लखनऊ के मुस्लिम लीग के इजलास में कहा था कि वे ५ प्रान्तों (पाकिस्तान) के मुसलमानों की भलाई के लिये शेष हिन्दुस्तान के मुसलमानों के हितों को उतना महत्व नहीं देते। काश वे अपना दृष्टिकोण ज्यादह उदार बनाकर दुनिया के पददलित राष्ट्रों के बारे में सोचते तो-सिर्फ इन पांच प्रान्तों की ही दुहाई न देते और मध्य और सुदूरपूर्व की आजादी की राह का रोड़ा हिन्दुस्तान की गुलामी को नष्ट करने के लिये ऐक्य स्थापन करने का प्रयत्न करते।

अंग्रेज़ मोरक्को से इन्डोनीशिया तक के लगभग सब मुस्लिम राष्ट्रों को किसी न किसी रूप में दबाए बैठे हैं। आज अंग्रेज़ इसलाम के लिये ख़तरा नहीं बल्कि हिन्दुओं को इस्लाम के लिये खतरा बतलाया जा रहा है।

मि० ज़िन्नाह इस प्रान्त के रहवासी हैं जहां मुसलमान अल्पमत में हैं। उनके सहयोगी-मुस्लिम लीग के सरमायादार भी ज़्यादातर अल्पमत वाले प्रान्तों के ही हैं। इसके अलावा वे मुख्यतः जमींदार, नवाब तथा खान बहादुर, सर आदि ही हैं। ये लोग जो कुछ भी हैं ब्रिटिशराज की कृपा से हैं। इसलिये अंग्रेजी हुकूमत की मुखालफ़त कभी भी नहीं कर सकते।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान के सब मुसलमानों के, खास कर मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों के मुसलमानों के लीडर बने रहने के लिये इसके सिवा दूसरा चारा ही न था। यदि वे 'इस्लाम खतरे में' है का नारा न लगाते तो उनकी लीडरी भी नामुमकिन होती।

मि० जी० एम० सय्यद साहब ने मुस्लिम लीग से स्तीफा देते समय जो वक्तव्य दिया था वह इस विषय पर काफी प्रकाश डालता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुस्लिमलीग की समूचे हिन्दोस्तान की नीति, आज सब काम चलाऊ मामलों में जो मुस्लिम अल्पमत वाले प्रान्त कहे जाते हैं—इन्हीं प्रान्तों के मुस्लिम लीडरों द्वारा सञ्चालित और प्रभावित है, तथा हिन्दू राज्य के चंगुल से बचाने का दावा करते हुए, ये मित्र खास तौर से हमें, अपने क़ब्जे में कर रहे हैं। केन्द्र में अपनी लीडरी बरकरार रखने के लिये तथा उसे पोषण करने के लिये, यह सब है। वे (मुस्लिम बहुमत वाले) प्रान्तों में, सिर्फ प्रतिक्रियावादी ताक़तों को ही नहीं उभारते किन्तु पीड़ित जनता का शोषण करने वालों में से भी हैं और जो उनके हाथ की कठपुतली से ज्यादा नहीं दिखाई देते।"

आगे वे कहते हैं—

"उन्होंने हिन्दू जनता के खिलाफ घृणा का राग अलापने के सरल मार्ग का आश्रय लिया है। इस योजना की कार्य प्रणाली ने हमें सिर्फ मुस्लिम जनता की सेवा करने से सर्वथा वंचित कर दिया है, और हमें ब्रिटिश हाथों से अपनी स्वतन्त्रता छीनने से लाचार कर दिया है, क्योंकि कोई भी नवाब या जागिरदार कभी भी ब्रिटिश हुकूमत का मुक़ाबला करने की बात सोचने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। दूसरी ओर कांग्रेस तथा लीग के बीच की खाई बढ़ती ही जा रही है—जिसका हानिकारक परिणाम हिन्दुस्तान पर जिसमें पाकिस्तान भी है, और पूर्व के लड़ने वाले अन्य राष्ट्रों पर भी हो रहा है।"

इस बात से यह साफ ज़ाहिर हो जाता है कि साम्प्रदायिक समस्या और पाकिस्तान, शासकों के लिये शोषण को सरल तथा चिरस्थायी बनाए रखने के उद्देश्य से; हमें गुलामी की ज़ंजीर में जकड़े रखने के लिये विदेशी हुकूमत की प्रेरणा से मूलतः एक कृत्रिम समस्या है। यदि हम इस फूट का उपाय फूट—यानी 'पाकिस्तान' ही समझ लेते हैं तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा।

इस सम्बन्ध में जनाब लतीफ जाफ़री साहब लिखते हैं—

"ब्रिटिश इस देश की एकता और शक्ति को नष्ट कर देने के लिये, ताकि इस देश का शोषण उनके हक में सरल बना रहे, हिन्दुस्तान में कई 'पाकिस्तान' तय्यार कर देने के इच्छुक हैं, उसी तरह से जैसा कि उन्होंने आयरलैण्ड, तुर्की, और अरब के साथ किया, जिनके टुकड़े कर दिये गए, और उनकी एकता तथा शक्ति नष्ट कर दी गई, तथा इस तरह वे यूरोप के लुटेरे शोषकों और यहूदियों के शिकार बन गए। इसी तरह का दुर्भाग्य 'पाकिस्तान' बन जाने के बाद हिन्दुस्तान का भी हो जावेगा। कर्नल लारेन्स ने अरबों और यहूदियों को फिलिस्तीन में पाकिस्तान बनाने के लिये जबर्दस्त धोखा दिया था।"

संसार के कई राष्ट्रों में अल्पसंख्यकों के प्रश्न बड़े भीषण रूप में वर्तमान हैं। और इन प्रश्नों को राष्ट्र की एकता को नष्ट किये बग़ैर ही सुलझा लिया गया है। जिन देशों में अल्पमत के प्रश्न हैं उनमें से सोवियत् रूस भी एक है। और उसका यह प्रश्न हिंदुस्तान के सवाल से भी ज्यादा उलझा हुआ है। लेकिन उसे सफलता पूर्वक हल करके और अपनी शक्ति को केन्द्रित करके आज वह संसार की महान शक्तियों में गिना जा रहा है। आजसे २० वर्ष पूर्व वह यूरोप का सबसे पिछड़ा हुआ राष्ट्र समझा जाता था।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने लिखा है :—

"सोवियत् रूस में साम्प्रदायिक समस्या मौजूद है। जिसकी पेचीदगी, प्रकार और गुरुत्व के समक्ष हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या बिलकुल थोथी दिखाई पड़ती है और जिसे मूल राष्ट्र से सम्बन्ध विच्छेद किये बगैर ही सुलझाया गया है, वही तरीका हिन्दुस्तान के लिये पूर्णतया उपयुक्त तथा लागू करने योग्य है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह

[ख़लील जिब्रान के विचार]

श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय

विवाह—दो अलग अलग जीवन की कड़ियों, को जोड़ने वाला एक ऐसा सूत्र है जिसमें गहरी आत्मीयता, एकात्मकता एवं त्याग है।

पुरुष और प्रकृति—दोनों का संयोग अवश्यंभावी है। यह धर्म जागतिक है। इसमें व्यक्तिक बन्धनों, परिस्थितियों को कोई स्थान नहीं। पुरुष अपनी प्रकृति से, प्रकृति अपने पुरुष से अभिन्न होते हुए भी सांसारिक भूमिका में अभी तक अनभिज्ञ थे। अपरिचित स्थिति में थे। विवाह यही अनभिज्ञता —यही अपरिचित स्थिति दूर करता है। परस्पर के लिये निर्मित अधूरेपन को जोड़ भर देता है।

आत्मिक सम्मिलन! व्यक्ति का व्यक्ति में लीन होना। दो व्यक्तियों का एकीकरण। बिछुड़े हुओं का मिलन। अलग अगल साधनाओं का जोड़। अनुभूति का स्वर्गीय सामञ्जस्य। प्रेम की स्वतंत्र उपलब्धि एवं विकास। बिखरी हुई एवं एकता के लिये उन्मुक्त वृत्तियों की उच्च शृङ्खला।

पुरुष की प्रकृति से मिलने की आकुलता और प्रकृति की पुरुष से मिलने की उत्कट अभिलाषा—किसके द्वारा पूर्ण हो सकती है? दोनों की आकुलता एवं व्यग्रता की सात्विक एवं आत्मिक पूर्ति किसके ज़रिये हो सकती है? विवाह—विवाह से ही हो सकती है। विवाह पुरुष प्रकृति का मिलना है। मिलन की सीमा है। मिलन की भूमिका है। सृष्टि का तत्व है।

दो हृदय—दो आत्माएँ—दो आवश्यकताएँ—दो रुचियाँ, दो निसर्ग धर्म और दो जीवन-रसों का एकीकरण यही विवाह है। विवाह पवित्रतम मिलन की भूमिका है। जिम्मेवारी का प्रथम-पुंज है।

विवाह में परस्पर के लिये त्याग है। त्याग इसलिये कि आत्मीयता की चरम सीमा है। आत्मीयता इसलिये है कि एकात्मकता का सृजन है। सृजन इसलिये कि जीवन-वृत्तियों का आविष्कार है। सबका सार है—प्रेम। प्रेम की एक विशेष स्वरूप की सीमा है। प्रकृति-पुरुष का मिलन है। आत्माओं का एकीकरण है। दो हृदयों का संग्रह है। जीवन-रसों का एकीकरण है। यही विवाह है। साधना है।

इस मिलन में दो अस्तित्व संपूर्णतः एक हो जाते हैं? संपूर्णतः एक हो जाना यही चरम सीमा है। आदर्श स्थिति है। एकाकी स्थिति का अंत हो जाता है। वह प्रेम की पराकाष्ठा है! और इन्हीं दोनों अस्तित्वों के सम्पूर्ण एक हो जाने के मानी हैं, जीवन की एक स्थिर स्थिति!

यह 'स्थिर स्थिति' जीवन के लिये क्यों कर अनुकूल हो सकती है? जीवन के रास्ते में यह विराम है। यह विराम याने एक प्रकार का अंत है।

इसलिये विवाह मिलन है। प्रकृति-पुरुष का एकीकरण है। आत्माओं का सामंजस्य है—तब भी व्यवहार में रहना है, संसार में रहना है, न-न जीवन का प्रयास करना है। आत्मिक एकता के साथ यथार्थ में दो अस्तित्व मानना है। प्रकृति-पुरुष के अलग अलग अस्तित्वों का संपूर्ण एकीकरण—एकात्मकता विकास को अवरुद्ध करने वाली है। इसी अवरुद्धता को जिब्रान ने नहीं माना, नहीं चाहा है। आत्माओं का—हृदयों का एकीकरण मानते हुए भी स्वतंत्र हस्तियों का लोप नहीं माना है। दोनों हस्तियों की एकात्मक-लीनता को नहीं माना है। इसलिये कि प्रकृति के लिए पुरुष एवं पुरुष के लिये प्रकृति होते हुए भी, दोनों का मिलन अवश्यंभावी होते हुए भी, दो प्रवाहों की परस्पर मिलने की उत्कटता स्वाभाविक होते हुए भी पुरुष पुरुष है, प्रकृति प्रकृति है। दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है। दोनों की अपनी हैसियत हैं, महत्व है, आवश्यकता है। दोनों का जब स्वतन्त्र अस्तित्व है तो मिलन में किसी एक का अस्तित्वांश क्यों लोप हो!

पुरुष-प्रकृति का उद्भव साथ हुआ है। परस्पर के लिये हुआ है। परस्पर को साथ ही रहना है।

मृत्यु की विभीषिका, मृत्यु का प्रहार, भी उस बन्धन को, आत्मिक सम्मिलन के बन्धन को तोड़ने में असमर्थ है! शरीर जुदा जुदा हो जायगा—लेकिन जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकात्मकता हुई है, वह कायम रहेगी।

क्योंकि प्रभु की इच्छा से ही यह बात तयशुदा है। भगवान ने ही यह संयोग बनाया है। इसलिये सामंजस्य अवश्यम्भावी है।

तब भी यह मिलन इतना निकटतम नहीं, जिससे किसी एक का अस्तित्व लोप हो जाय। उतना अन्तर तो रहना ही चाहिए।

इसलिये कि विकास-रास्ता अवरुद्ध न हो। जीवन की प्रगतिशीलता में बाधा न पहुँचे, जीवन-रस स्थिरता न धारण कर ले, उस प्रकार के बन्धन का आगमन न हो, जिससे अटक कर गिर पड़े। स्वतन्त्रता तो कायम रहनी ही है। बेड़ी बन जाने से तो दोनों को हानि है।

दोनों का प्रेम प्रेम रहे। अस्तित्वनाशक, बन्धन कारण एवं जीवन-प्रवाह-रोधक बेड़ी न बने। इसीमें प्रेम की भी सचाई है। प्रेम की महत्ता है, यथार्थता है। प्रेम बेड़ी बनने के लिये है ही नहीं।

दोनों की आत्माओं का एकीकरण हो जावे, अस्तित्व लोप नहीं, बल्कि द्वंद भाव, द्विविधवृत्ति, द्वैत का लोप हो! दोनो की आत्माओं को एक करने की कड़ी—बस इतना ही प्रेम का सम्बन्ध रहे, यही विवाह है।

दोनों का भरा हुआ प्याला एक रहे! दोनों की रोटी एक रहे। दोनों का उन पर अधिकार रहे, मगर वह प्याला उच्छिष्ट होकर बेकार न हो जाय। रोटी टूटकर खंडित न हो जाय। दोनों खाएँ, दोनों पीयें मगर एक ही प्याले से नहीं, एक ही रोटी को नहीं। एक दूसरे के लिये रोटी बनाएँ—अपनी रोटी दें—मगर एक रोटी को दोनों न तोड़ें।

वीणा अलग अलग तारों के अस्तित्व को कायम रखते हुए भी किस प्रकार मधुर और एक ही स्वर निकालती है! उसी प्रकार दो जीवन-तारों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहते हुए भी जीवन-रस एक ही बहे—एक ही रहे! दो धाराएँ रहें, पर रुचि एक रहे। रंग एक रहे!

जीवन-प्रवाह साथ साथ हो! परस्पर के सुख दुख परस्पर के रहें। परस्पर का जीवन परस्पर के लिये रहे! जीवन-रस एक ही बहे। मगर जीवन दो रहें! क्यों कि वह यथार्थ है! जीवन-क्रम के लिये यही आवश्यक है।

विवाह में दो हृदयों का अर्पण है आपस में। परस्परों के हृदय परस्परों को अर्पण होना विवाह के लिये आवश्यक है।—तत्रापि कौन किसके संरक्षण में हो! जब कि परमेश्वर के हाथों हमारे हृदय हैं। उसके संरक्षण में हैं, तब परस्पर का संरक्षण किस लिये?

यहाँ जिब्रान स्पष्ट नहीं हो पाये हैं।

दोनों साथ खड़े हैं—लेकिन सटकर नहीं। खड़े रहें लेकिन अस्तित्वहीन होकर नहीं।

जिब्रान दो आत्माओं का, दो हृदयों का, दो जीवन-रसों का मिलन चाहते हैं लेकिन दोनों का अस्तित्व-लोप नहीं! वे परस्पर का अस्तित्व स्वतन्त्र चाहते हैं। वह अस्तित्व परस्पर के लिये रहे—मगर लुप्त होकर नहीं।

अस्तित्व लोप क्यों नहीं? अस्तित्व-लोप होने से वे एकाकी ही रहेंगे—यानी जिसमें अस्तित्व लोप होना चाहिये वहाँ न होकर अनधिकृत स्थान पर लोप हो रहा है। पति-पत्नी, पुरुष-प्रकृति परस्पर के लिये रहें मगर परस्पर के ही लिये न रहें। दोनों का व्यक्तित्व महान है। वह लोप होने के लिये नहीं। लोप करना उचित नहीं। मनुष्य के लिये ईश्वरीय शक्ति ईश्वरीय देन का लोप करना अनधिकार चेष्टा है।

ईश्वर ने पुरुष-प्रकृति का निर्माण किया है। परस्पर के लिये निर्मित किया है। लेकिन वे परस्पर के लिये रहें, इतना ही ईश्वर का आदेश है। ईश्वर की दी हुई चीज़ का उपयोग करें—मगर अर्पण करना है तो ईश्वर को ही न? जिसकी दी हुई चीज़ उसीको अर्पित होनी चाहिये न? ईश्वर ने प्रकृति-पुरुष को स्वतन्त्र अस्तित्व देकर निर्माण किया है। उस अस्तित्व का उपयोग परस्पर के लिये होना ही चाहिये; पर उससे आगे बढ़कर वह अस्तित्व दोनों परस्पर में अर्पित करने लगें तो वह अनधिकार चेष्टा न होगी? इसीलिये जिब्रान कहते हैं—दो आत्माएँ एक हों, हृदयों का मिलन हो—अस्तित्व का पूरा उपयोग हो, मगर अस्तित्व का दान तो उसी ईश्वर के चरणों पर होना चाहिये, जिससे वह प्राप्त हुआ है।

और बस ईश्वर याने समष्टि। समष्टि के लिये अस्तित्व लोप हो व्यष्टि से समष्टि में परिणत हो। अपने अकेले में ही न रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

हमारी राजनैतिक समस्याएं—लेखकः श्री [illegible] प्रसाद वर्मा; प्रकाशक : नवयुग साहित्य सदन, [illegible]; पृष्ठ संख्या २८१; मूल्य पाँच रुपया।

लेखक की यह महत्वपूर्ण पुस्तक पाँच भागों में [illegible] हुई है। पहले भाग में हिन्दू मुसलिम सम्बन्ध, [illegible] राजनीति और साम्प्रदायिकता और मुस्लिम [illegible] और पाकिस्तान की माँग पर सरसरी रोशनी डाली [illegible] है। दूसरे भाग में अङ्गरेज़ी शासन और हमारी [illegible] प्रगति, भारतीय राजनीति के प्रमुख तत्व, [illegible] स्थिति और राजनैतिक गत्यावरोध की चर्चा [illegible] गई है। तीसरे भाग में पाकिस्तान और उसकी [illegible] कठिनाइयाँ, पाकिस्तान और सैद्धान्तिक [illegible] और विभाजन की कुछ अन्य योजनाओं पर [illegible] किया गया है और चौथे भाग में संघ शासन, [illegible] के आधार भूत सिद्धान्त, वैधानिक विकास [illegible] दिशा, समझौते की दिशा में वैधानिक प्रयत्न और [illegible] पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में अनेक प्रचलित [illegible] का निराकरण करने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में आजकल की साम्प्रदायिक समस्या के [illegible] पहलुओं—आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, और [illegible] और भाषा सम्बन्धी प्रश्नों पर गम्भीरता के [illegible] जानबीन की गई है। लेखक का दृष्टिकोण [illegible] गान्धीवादी दृष्टिकोण है और उसने जड़ में [illegible] परिस्थिति का विश्लेषण किया है। सांस्कृतिक [illegible] की यदि अधिक विस्तार से विवेचना की जाती तो [illegible] उससे ज्यादा लाभ उठाते। लेखक सांस्कृतिक [illegible] और मिश्रित हिन्दुस्तानी भाषा का समर्थक है। [illegible] दृष्टि से लेखक ने अनेक योजनाओं पर विचार [illegible] है। परिशिष्ट में कांग्रेस का बुनियादी अधिकारों [illegible] प्रस्ताव भी दिया गया है।

पुस्तक सब मिलाकर महत्वपूर्ण है। मूल्य पाँच [illegible] बहुत अधिक है और इसी कारण पुस्तक का [illegible] उपयोग होना चाहिये न हो सकेगा।

विजयनगर साम्राज्य का इतिहास—लेखक [illegible] उपाध्याय; प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, [illegible] दिल्ली; पृष्ठ संख्या : २७८; मूल्य चार रुपया।

लेखक ने काफ़ी मेहनत के साथ विजय नगर का यह इतिहास लिखा है। जहाँ तक वास्तविक घटनाओं का सम्बन्ध है मतभेद का प्रश्न नहीं पैदा होता किन्तु जहाँ लेखक ने generalizations किये हैं वहाँ वह ऐतिहासिक क्रम प्रचारक अधिक होगया है और जो नतीजे उसने निकाले हैं वे सचाई के प्रतिकूल पड़ते हैं। डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी ने पुस्तक की भूमिका लिखी है, लेकिन लगता है उन्होंने पुस्तक पढ़ने का कष्ट नहीं उठाया अन्यथा पुस्तक में विजयनगर और बहमनी राजाओं के संघर्ष की अनैतिहासिक विवेचना पर वे टिप्पणी अवश्य करते।

दक्षिण की हिन्दू संस्कृति, जिसकी रक्षा की दुहाई बारबार लेखक ने दी है शुद्ध और एकांगी ब्राह्मण संस्कृति थी। लेखक ने मुसलमानों के शासन को जीभर कोसा है लेकिन जिस सामाजिक पृष्ठ भूमि में मुसलमानों का शासन सम्भव हुआ उनके कारणों पर उसने बहुत कम दृष्टि दौड़ाई है। फिर भी यदाकदा सचाई बरबस उसकी क़लम से निकल गई। जैसे—"दक्षिण भारत में बौद्ध तथा जैन मतों का ह्रास वैष्णव और शैव सन्तों के द्वारा किया गया"—(पृष्ठ १२)। किन्तु पृष्ठ २६ पर वह लिखता है—"हिन्दू संस्कृति के विनाशक मुसलमानों से···सबने लोहा लेना स्वीकार किया।" बहमनी राज्य के प्रसिद्ध सुलतान मुहम्मद शाह पर भी, जो भारतीय संस्कृति के प्रेम के लिये प्रसिद्ध था, लेखक ने धार्मिक विद्वेश का आरोप लगाया है। लेखक ने विजयनगर और बीजापुर राज्य की दर्जनों आपसी लड़ाइयों को हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के निमित्त लड़ाई बताया है किन्तु पृष्ठ ४० में एक बार के युद्ध के कारण को बयान करते हुये वह लिखता है—"विजयनगर का शासक एक स्वर्णकार की लड़की से विवाह करना चाहता था। वह लड़की इस कार्य से सहमत न थी और वह बहमनी राज्य में भाग गई।" इसी को लेकर दोनों राज्यों में घनघोर युद्ध हुआ। ये लड़ाइयाँ इसलाम और हिन्दू-धर्म की लड़ाइयाँ न थीं। विजयनगर की सेनाओं में हज़ारों मुसलमान भरती होकर बीजापुर के मुसलमान राजाओं के विरुद्ध लड़ते थे। लेखक स्वयं इस बात को क़ुबूल करते हुये पृष्ठ ५० पर लिखता है—"देवराय द्वितीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने···अपनी सेना में दस सहस्र तुर्की घुड़सवार नियुक्त किये···देवराय ने अपनी सेना में दो हज़ार मुसलमान धनुषधारी नियुक्त किये। इनका मुख्य कार्य हिन्दू सैनिकों को धनुष सिखलाना था। राजा ने इनके लिये मसजिद तथा कसाईखानें का प्रबन्ध किया। राजा अपने सिंहासन के समीप कुरान की पुस्तक रखता था जिससे किसी भी मुसलमान को उसके सामने झुकने में सङ्कोच न हो।" हिन्दू और मुसलमान राजा मिलकर कभी कभी तीसरे हिन्दू राजा पर चढ़ाई करते थे। जैसे—"कपिलेश्वर ने बहमनी के सुलतान से मिलकर तैलिंगाना पर चढ़ाई करदी।"—(पृष्ठ ५५)। उस समय हिन्दू साम्राज्य भी कई छोटे छोटे राज्यों में बँटगया था और बहमनी राज्य भी अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, तथा बरार की पाँच रियासतों में विभक्त होगया था। इन सबों में कृष्णा और तुंगभद्रा के दोआबे के लिये निरन्तर लड़ाई होती रहती थी। दोआबे के लिये इन लड़ाइयों को हिन्दू संस्कृति की लड़ाई कहना इतिहास से मुँह फेरना है। आपसी लड़ाइयों में जब हिन्दू जीतते थे तो वे मुसलमानों की मसजिदों को भी उसी तरह गिरा देते थे जिस तरह मुसलमान मन्दिरों को गिराते थे। पुस्तक के पृष्ठ ८१ पर लिखा है—"विजयनगर की सेना ने मसजिदें गिरा दीं और उसमें मूर्तियाँ स्थापित कीं। सारे महल को जला दिया गया। बाल, स्त्री, वृद्धों को मारा गया। इस प्रकार अहमद नगर बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। इस अत्याचार से मुसलमान प्रजा त्रस्त होगई।" इसके बाद मुसलमान सेनाओं ने कई वर्षों के बाद विजय नगर पर हमला किया, और लेखक के अनुसार—"राजधानी के सुन्दर भवन, विशाल अट्टालिकायें तथा भव्य मन्दिर नष्ट कर दिये गये।"

हिन्दू मुसलमानों के उस समय के आपसी सम्बन्ध पर रोशनी डालते हुये पृष्ठ १२८-१२९ में लेखक बरबस वास्तविक सचाई का उल्लेख कर बैठता है। वह लिखता है—"मुसलमान राजा विजयनगर के शासकों की शरण में आते तथा सहायता माँगा करते थे। मुसलमान धनुषधारी तथा तुर्की घुड़सवारों को हिन्दू नरेशों द्वारा अपनी सेना में भरती किया जाना इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि दोनों जातियों में घनिष्ट प्रेम था। अली आदिलशाह ने भी हिन्दुओं को अपनी सेना में रखा था। विजयनगर में अम्बर खाँ सेनापति के पद पर काम करता था और उसको पुरस्कार में एक ग्राम दिया गया था। यही नहीं रामराय ने भी अनेक मुसलमान सेनापति नियुक्त किये थे। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये विजयनगर के राजाओं ने उनकी संस्थाओं को दान दिया। नरसिंह ने एक दरगाह के लिये एक गांव दान में दिया था। राजा अपने कोश से मसजिदें बनवाने के लिये रुपया दिया करता था। उनको शहर में निवास करने के लिये एक पृथक स्थान दे दिया गया था। मुसलमानों ने वहां मसजिदें बनाईं। विजयनगर के तेलगु कवि गंगाधर मन्त्री ने अपनी पुस्तक गोलकुण्डा के नबाब इब्राहीम मलिक को समर्पण की थी। यह सारी बातें इस बात को प्रमाणित करती हैं कि विजयनगर शासनकाल में हिन्दू मुसलमानों में मेल था और दोनों शान्तिपूर्वक जीवन बिताया करते थे। शासनगण मेल पैदा करने के लिये अनेक उपायों को काम में लाते थे।"

जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले। जब स्वयं लेखक के अनुसार यह परिस्थिति थी तो फिर उसने जगह-जगह पुस्तक में हिन्दू मुसलिम सांस्कृतिक संघर्ष की बात क्यों लिखी है। विजय नगर और बहमनी राजाओं के शासन युग में पुर्त्तगाली भी दक्षिण भारत में पहुँच गये थे। उनके सम्बन्ध में लेखक पृष्ठ १६८ में लिखता है—"विजय नगर राज्य में पुर्त्तगालियों के स्वागत में पादरियों ने ईसाई धर्म के फैलाने का प्रयत्न किया। सबसे प्रथम मदुरा का ब्राह्मण अध्यापक ईसाई बन गया। पादरी लोगों ने सैकड़ों हिन्दुओं को ईसाई बनाया परन्तु अपनी कूटनीति के कारण विजय नगर के राजाओं ने उनको नहीं रोका।"

पुस्तक के राजनैतिक अंश को छोड़ कर जिसमें लेखक भ्रमपूर्ण विश्लेषणों में पड़गया है पुस्तक के अन्य अंश काफ़ी परिश्रम और नेकनीयती के साथ लिखे गये हैं। विजयनगर की शासन प्रणाली, साहित्यिक विकास, धार्मिक और सामाजिक अवस्था, भौतिक जीवन और ललितकला आदि पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। यानी राजा सैकड़ों शादियाँ करते थे। निरन्तर युद्धों के चलाने के लिये जायज़ नाजायज़ हर तरह के कर लगाये किये जाते थे, दासों की प्रथा थी और ब्राह्मणों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मई १९४६]

में भारी सत्ता थी। लेखक के अनुसार स्त्रियों को समाज में आदर पूर्ण स्थान प्राप्त था और शिल्प और निर्माण कला में विजयनगर ने हिन्दू राजाओं की संरक्षा में अभूतपूर्व उन्नति की।

पुस्तक के अन्त में कुछ उपयोगी बातें भी परिशिष्ट में दी गई हैं।

साधना के पथ पर—लेखक : श्री हरिभाऊ उपाध्याय ; प्रकाशक : नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर ; पृष्ठ संख्या : २३८ ; मूल्य तीन रुपये।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय देश के एक त्यागी और निगूढ़ कार्यकर्त्ता हैं। उनका सारा जीवन निरन्तर तपस्या में बीता है। वे अपने को साधना पथ का पथिक कहते हैं। इस पुस्तक में उन्होंने अपने जीवन के संस्मरणों को उपरोक्त शीर्षक से लेख बद्ध किया है। वे गान्धीजी, जमनालाल जी और आश्रम वासियों के निकट सम्पर्क में आये हैं। इन संस्मरणों में इन सबके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

पुस्तक को और अधिक छोटा और सस्ता बनाया जाता तो उचित होता।

मनन—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त ; मूल्य : सवा रुपया ; पृष्ठ संख्या : ११३

लेखक ने अपने मन में उठने वाली उमंगों को विचार कणों के रूप में इस पुस्तक में संजोया है। इनके विषय में वह स्वयं लिखता है—"इस मनन में पाठकों को बालुकण, शंख, सीप, मूँगा व मोती सभी मिलेंगे।" इन विचारकणों को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् आदि दस कणों में बाँटा गया है।

विश्व की विभूतियां—लेखक : श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय ; प्रकाशक : हिन्दी मन्दिर प्रयाग ; पृष्ठ संख्या १४९ ; मूल्य: डेढ़ रुपया।

पुस्तक में महात्मा गान्धी, टाल्सटाय, सुकरात, मुसोलिनी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर मोहम्मद इक़बाल, जोन आफ आर्क, गैरीबाल्डी, अब्राहम लिंकन, वाशिंगटन, कमाल अतातुर्क, आर्किमिदीज़, न्यूटन, एडीसन, क्यूरी दम्पति और जगदीशचन्द्र बसु की संक्षिप्त जीवनियाँ दी गई हैं। पुस्तक साधारण विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है पर जीवनियों के चुनाव में कौनसा उसूल बर्ता गया है यह समझ में नहीं आया।

मालिक और मज़दूर—मूल लेखक : लिओ टाल्सटाय ; अनुवादक : श्री शोभालाल गुप्त ; प्रकाशक: नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर; पृष्ठ संख्या : ११० ; मूल्य सवा रुपया।

आजकल जब कि मालिक और मज़दूर का संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है महर्षि टाल्सटाय की यह मशहूर पुस्तक इस समस्या के नैतिक और व्यावहारिक पहलू को एक नये दृष्टिकोण से देखने में मदद देगी। पुस्तक ११ अध्यायों में बांटी गई है—मानव समाज में शोषण, काम का बँटवारा; एक भीषण अन्याय, ज़मीन का विभाजन, मालिकों का कर्तव्य, मज़दूर क्या करें, उद्धार का उपाय, सत्ता बनाम स्वतन्त्रता, समाजवाद, अराजकवाद और तीन उपाय।

आज समाज जिस विषम श्रेणी भेद में बँटा हुआ है वह एक दम ज्वालामुखी की तरह ख़तरनाक है। इसमें दो राय हो ही नहीं सकतीं कि उसे बदलना है। उसे बदलने के जितने उपाय बताये गये हैं सभी का इस पुस्तक में विश्लेषण किया गया है और उनकी कमियों और कमज़ोरियों पर रोशनी डाली गई है! टाल्सटाय के सुझाव हैं कि—

(१) ज़मीन व्यक्ति विशेष की न होकर सारे राष्ट्र की मिल्कीयत समझी जाय और—

(२) मज़दूर धार्मिक शपथ लेलें कि यदि सम्भव हो तो वे पूँजीपतियों के अधीन काम न करेंगे, कम मज़दूरी पर काम न करेंगे और पूँजीपतियों की ओर मिलकर और उनके हितों का पोषण करके अपनी अवस्था न सुधारेंगे और राजकीय बलप्रयोग में किसी प्रकार का सहयोग न देंगे।

अपने तीन उपायों में टाल्सटाय बताते हैं—

(१) अपने लिये दूसरों से काम न कराना। भोग-विलास की चीज़ों की माँग न करना जिनके लिये कि अतिरिक्त परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ती है।

(२) जो काम कठोर और अरुचिकर हो उनको अपने लिये और यदि सम्भव हो तो दूसरों के लिये भी स्वयं करना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) ऐसे तरीकों का आविष्कार करना जिनसे परिश्रम की कठोरता कम हो जाय।

अन्त में टाल्सटाय लिखते हैं—लोगों ने गुलामी की प्रथा मिटा दी और अपने घरों में गुलामी को बन्द कर दिया, किन्तु अपना अमीराना रहन सहन नहीं छोड़ा। दिन में कई बार वे कपड़े बदलते हैं, रहने के लिये उन्हें दस दस कमरे चाहियें, पकवानों से भरे थाल चाहियें और मोटर फ़िटिन चाहियें। यह सब भोग विलास की सामग्री कहां से आये यदि मनुष्य कारख़ानों में गुलामों की भाँति काम न करें?"

सच तो यह है इस आर्थिक समस्या का हल केवल नैतिक हो सकता है।

रियासती जनता की समस्याएँ—लेखक: श्री बैजनाथ महोदय; प्रकाशक उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या ६१; मूल्य बारह आने

श्री बैजनाथ महोदय इन्दौर प्रजा मण्डल के परखे हुए नेता हैं। रियासती जनता की सेवा करते हुए उन्होंने काफी कष्ट सहे हैं और रियासती जनता के लिये वे अधिकार के साथ बात कर सकते हैं। उनकी लिखी हुई यह छोटी सी पुस्तक एक कीमती हैण्डबुक की तरह है। इसमें रियासतों की संक्षिप्त जानकारी, उनके नियंत्रण की सरकारी व्यवस्था, शासन का तरीक़ा, बटलर कमेटी के सुझाव, सन्धियों और सुलहनामों की निस्सारता और रियासतों के प्रति कांग्रेस का रुख, रियासतें और फ़ेडरेशन और रियासती जनता की समस्याओं पर इस पुस्तक में संक्षेप में महत्वपूर्ण रोशनी डाली गई है। रियासती शासन की जानकारी के लिये यह छोटी से पुस्तक उपयोगी है।

पागल—खलील जिब्रान के The Madman का अनुवाद; अनुवादक: चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य; प्रकाशक: उपर्युक्त; पृष्ठ संख्या: ५९; मूल्य: एक रुपया

सीरिया के मशहूर अरब दार्शनिक ख़लील जिब्रान की पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद पाठकों के सामने छोटी छोटी कहानियों के द्वारा चिन्तन और विचारों की एक नई प्रणाली पेश करता है। कहानियां अत्यन्त सुन्दर, शिक्षा प्रद और मर्मस्पर्शी हैं।

किसानों का सवाल—लेखक: आचार्य नरेन्द्रदेव, मिलने का पता काशी विद्यापीठ; पृष्ठ संख्या: ३२; मूल्य: चार आने

आज युक्त प्रान्त में ज़मीन्दारी प्रथा को ख़त्म करने की चर्चा ज़ोरों से चल रही है। किसानों का प्रश्न अधिक से अधिक महत्व ग्रहण करके आज लोगों के सामने है। आचार्य नरेन्द्रदेव किसान आन्दोलन के प्रणेता हैं और इस दृष्टि से उन्होंने इस पुस्तिका में राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठ भूमि में किसानों के प्रश्न को विचारकों के सामने रखा है। पहले महायुद्ध के बाद से भारतीय किसानों में जाग्रति पैदा हुई और सन् १९२९ के संसारव्यापी आर्थिक सङ्कट में किसान आन्दोलन ने शक्ति हासिल की। लगानबन्दी आन्दोलन उसी आर्थिक मन्दी का परिणाम था। भारत सरकार ने इसके लिये कुछ सुधार आन्दोलन जारी किये और एक शाही कृषि कमीशन बैठाया। कांग्रेस वज़ारतों ने भी किसानों की स्थिति में सुधार करने की कोशिश की किन्तु निहित स्वार्थों के डर से ये कोशिशें अधूरी रहीं और कांग्रेस की संस्था किसानों के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की बात न सोच सकी।

इस पृष्ठ भूमि में आचार्य नरेन्द्रदेव कांग्रेस से अलग किसानों की सभाएं बनाने पर ज़ोर देते हैं। कांग्रेस पर मध्य वर्ग का आधिपत्य है इसीलिये कांग्रेस कमेटियां किसानों की मांगों को अपनी सम्पूर्णता के साथ नहीं स्वीकार कर सकतीं। इसी परिवर्तन के लिये किसान सभाओं द्वारा किसान आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने की ज़रूरत है। किन्तु दोनों में संघर्ष न हो इसके लिये आचार्य जी की सलाह है कि—"किसान सभाएं कांग्रेस कमेटियों से मित्रता का सम्बन्ध रखें और अपना काम भरसक उनके सहयोग से चलावें।" किसान सभाएं कांग्रेस की प्रतिस्पर्धी न बनें। खेतिहर मज़दूरों की समस्या पर विचार करते हुये आचार्य जी कहते हैं कि उनकी हालत में उस वक्त तक सुधार नहीं हो सकता जब तक किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार न हो। पुस्तक के अन्त में आचार्य जी ने किसान कार्यकर्त्ताओं को राह के ख़तरे से आगाह किया है। प्रत्येक राजनैतिक कार्यकर्त्ता को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालीस साल बाद (तेलगु के दो प्रहसन)—मूल लेखक : श्री विश्वनाथ कविराजु; अनु० श्री ब्रजनंदन वर्मा; प्रकाशक : दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, नागरायनगर, मद्रास; पृष्ठ संख्या ७४; मूल्य: बारह आने

इस पुस्तक में 'बीसवीं सदी का नौजवान' और 'चालीस साल बाद' नामक दो प्रहसन हैं। हम इस सरल और सरस अनुवाद का स्वागत करते हैं। इससे उत्तर भारत के लोग तेलगु भाषा के सुन्दर विनोद से परिचय प्राप्त करेंगे।

—विश्वम्भरनाथ

तैमुन्ना;

कूल किनारा (उपन्यास)—लेखक श्री शिवचन्द्र; प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद; मूल्य क्रमशः २।) और ३॥)

ये दोनों उपन्यास बिहार के तरुण उपन्यासकार श्री शिवचन्द्र के लिखे हुये हैं। तैमुन्ना नामक एक मुसलमान लड़की रमेश नामक हिन्दू युवक से अकस्मात प्रेम करने लगती है। तैमुन्ना का भाई हैदर तास्सुबी है। वह इस प्रेम को सहन नहीं कर पाता। तैमुन्ना रमेश के साथ कराची भाग जाती है। रमेश से उसे एक लड़का पैदा होता है। हैदर पता लगाता कराची जाकर दोनों को क़त्ल कर देता है। रमेश का लड़का सुरेश दोनों की स्मृति रूप अपने दादा के पास रहता है। संक्षेप में यही कहानी है। उपन्यासकार ने और भी कई पात्र खाना पूरी के लिये गढ़े हैं पर अपनी इन सभी कृतियों को वह देर सबेर मौत के घाट उतार देता है। उन्हें निभा नहीं पाता। कथानक में क्लाइमेक्स भी टूट टूट कर आता है। लेखक में व्यक्त करने की क्षमता है और आज नहीं तो कल हम उससे किसी सुन्दर कृति की आशा रख सकते हैं।

'कूल किनारा' उसका दूसरा उपन्यास है। आलोक नामक दार्शनिक युवक की शाखा नामी पत्नी है। आलोक बेकार है। कठिनता से एक नौकरी मिलती है जिसे वह खत्म में गँवा देता है। फिर मर जाता है। मालती के घर वाले उसे घर से निकाल देते हैं। आलोक को एक भक्त प्रोफेसर के साथ उसकी भेंट होती है। उसके अभिभावक प्रोफ़ैसर उसपर कलुषित निगाह डालता है, वह उसे छोड़कर चली जाती है किन्तु प्रोफेसर के आग्रह से वह उसके बेटे टुन्नू को ले जाती है। एक विक्षिप्त दार्शनिक का चित्रण करते करते लेखक भी अपने कथानक में विक्षिप्त सा होगया है।

कच्चा धागा (कहानी संग्रह)—लेखक : श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण; प्रकाशक : शिक्षा सदन, बनारस; पृष्ठ संख्या : ११२; मूल्य : दो रुपया

इस पुस्तक में लेखक की दो अध्याय, प्रतिकार, हृदय का घाव और कच्चा धागा नामक चार कहानियां संग्रहीत हैं। पुस्तक का गेट अप, कवर डिजाइन और छपाई जितनी घटिया है कहानियाँ उतनी ही श्रेष्ठ और उत्कृष्ट हैं। लेखक में प्रतिभा है, कला है और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि है। उसकी भाषा में प्रवाह है, भावों को क्लाइमेक्स तक लेजाने में वह चतुर है। हिन्दी के उत्कृष्ट कहानीकारों में उसका निश्चित स्थान है।

टीला (ग्राम्य जीवन की कहानियाँ)—लेखक : उपर्युक्त; प्रकाशक : विद्याभास्कर बुक डिपो, बनारस; पृष्ठ संख्या : १०२; मूल्य : एक रुपया।

इस संग्रह में लेखक की रावण, मुन्शी जी और केला के तीन पेड़ नामक तीन कहानियाँ हैं। रावण शीर्षक कहानी में हिन्दू मुसलिम प्रेमभाव का अत्यन्त सजीव चित्र है। मुंशी जी शीर्षक कहानी में दो मित्रों के अनन्य प्रेम भाव, मनोमालिन्य, शत्रुता और अन्त में एक मित्र की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी के प्रति दूसरे मित्र की संवेदना और सहायता किन्तु ग़लतफ़हमी के कारण घटना क्रम का दुखद अन्त। तीसरी कहानी में साहूकार, ज़मीदार और किसानों की शानबान और संघर्ष का सजीव चित्रण है। तीनों कहानियाँ ऊँचे दरजे की हैं।

इन कहानियों के बल पर द्विजेन्द्रनाथ हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कहानीकारों में गिने जा सकते हैं। हम हृदय से उनकी प्रतिभा का विस्तार चाहते हैं।

नया रोज़गार—लेखक श्री गोपाल प्रसाद व्यास; प्रकाशक : नवयुग साहित्य सदन इन्दौर; मूल्य तीन रुपया।

इस पुस्तक में श्री व्यास की २३ व्यंगात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताओं का संग्रह है। इनमें से अनेक कविताएँ "हिन्दुस्तान" दिल्ली में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकाश्य, अप्रकाश्य और फूहड़ सब तरह का व्यंग इन कविताओं में है। पुस्तक की सफ़ाई छपाई और शीर्षक चित्र सब बहुत सुन्दर हैं। व्यास जी में व्यंग की प्रतिभा है और प्रयत्न करने पर वे उसे ऊँचा उठा सकते हैं। हिन्दी में सुन्दर और अप्रकाश्य व्यंग की बेहद कमी है और जो भी प्रयत्न इस दिशा में हों वे स्वागत के योग्य हैं।

—वि० संन्यासी

विचार-चित्र—(निबन्ध-संग्रह) लेखक, सुरेन्द्र शर्मा; प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड संस आगरा, प्रयाग; मूल्य ॥≋); पृष्ठ संख्या १२४।

विचारधारा—(निबन्ध संग्रह) लेखक, प्रकाशक, मूल्य वही; पृष्ठ संख्या १०३।

हिन्दी साहित्य के सभी अंगों को आजकल मोटा बनाने का एक सामूहिक प्रयत्न किया जा रहा है; यद्यपि यह प्रयत्न अनेक कारणों से बहुत देर में आरम्भ किया गया है परन्तु फिर भी इसे बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है।

इसके साथ ही साथ हमें एक बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जो रचनाएं लिखी जा रही हैं, वे किस दरजे की हैं? इस प्रश्न को मन में रखकर जब हम हिन्दी साहित्य को परखते हैं तो आधुनिक काल में बड़ी निराशा सी होती है। प्रस्तुत दोनों निबन्ध संग्रह हमारी आशा के प्रतिकूल निकले? इन निबन्धों में यद्यपि पं० रामचन्द्र शुक्ल की सी गम्भीरता और गुरुता नहीं है, डा० धीरेन्द्र वर्मा की सी पूर्णता एवं सरलता नहीं, पं० प्रताप नारायण मिश्र का सा चुटीलापन नहीं, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का सा साहित्य-सेवा का भाव नहीं परन्तु फिर भी हम इस बात को अनुभव करते हैं कि इनमें लेखक का विस्तृत अध्ययन है, राष्ट्रीय जागरण का दृष्टिकोण है, और शैली की स्पष्टता है। कुछ निबन्धों का सम्बन्ध समाज से है, कुछ जीवन चरित्र हैं, कुछ इतिहास सम्बन्धी हैं और कुछ मनोविज्ञान सम्बन्धी। परन्तु हर निबन्ध को पढ़कर तबियत प्रसन्न होती है, नई बातें समझ में आती हैं और चीज़ों को एक ज्यादा खुली नजर से देखने की ताक़त हमको मिलती है। जीवनियों में कुछ दूसरे मुल्कों के लोगों के हालात भी हैं परन्तु वे उन लोगों के हालात हैं जिनके लिए सारी दुनियां ही उनका घर है।

हम इन निबन्धों का स्वागत करते हैं। आशा करते हैं कि श्री सुरेन्द्र शर्मा की दावात में अभी काफ़ी दिनों न सूखने की ताक़त है और कागज तो अब सरलता से मिल ही जाता है उसकी कोई दिक्क़त नहीं बची।

प्राणदीप (कविता-संग्रह)—लेखक, श्रीनन्द किशोर; प्रकाशक तारामण्डल मुज़फ़्फ़रपुर; मूल्य, ॥); पृष्ठ संख्या ७९ (डिमाई)।

प्रस्तुत कविता संग्रह सम्भवतः लेखक की तीसरी काव्यकृति है। अपने, समाज, भारत तथा दुनिया और मानवता पर कविताएं लेखक ने लिखी हैं। हिन्दी में प्रकाशित होने वाले साधारण संग्रह से इसकी कुछ कविताएं तनिक ऊंची हैं। परन्तु अधिकतर कविताएं साधारण ही हैं। हमें विश्वास है कि चिन्तक की जिस सीढ़ी पर अभी लेखक खड़ा है उससे अधिक ऊँचे चढ़ने का प्रयत्न वह करेगा। लेखक में यह शक्ति है, यह बात हमें इस संग्रह से पता लग जाती है।

— कमल कुलश्रेष्ठ

वेद में कविता—लेखक, डा० आर्येन्द्र शर्मा; प्रकाशक—मारवाड़ी नवयुवक मंडल, मारवाड़ी बाजार, पो० ब० ११४ हैदराबाद (दक्षिण), मूल्य ।)

मान मंडल निबन्धमाला ने अपनी संख्या २ के रूप में इस पुस्तक को (Pamphlet) रूप में निकाला है। इसका उद्देश्य "हिन्दुओं की संस्कृति और सभ्यता के आदि स्रोत वेद" की कविताओं का परिचय कराना है। वेद के अन्य अंगों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, परन्तु वैदिक-साहित्य के उदात्त-अनुदात्त स्वरों में बँधे हुये सरल और स्वाभाविक कवित्व की उपेक्षा हुई है। लेखक ने इसी दृष्टिकोण से ऋग्वेद से कुछ उदाहरणों को चुन कर वैदिक साहित्य के कवित्व का सूक्ष्म परिचय कराया है।

प्रकृति-वर्णन के विभिन्न रूप, मद्यपान तथा जुआ में हारने की मनःस्थिति तथा मण्डूक-सूक्त से हास्य के उदाहरण लेखक ने प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि इसमें विवेचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव है, पर परिचयात्मक स्वरूप से लेखक का प्रयास सराहनीय है।

—रघुवंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

ये नये चंगेज़ खाँ !

पिछले महीने दिल्ली में असेम्बलियों के मुसलिम लीगी सदस्यों का एक कन्वेन्शन हुआ। उसमें अपनी तक़रीरों के दौरान में चौधरी ख़लीकुज़्ज़माँ और सर फ़ीरोज़ खाँ नून ने इस बात की चेतावनी दी कि अगर पाकिस्तान के रास्ते में कोई रुकावट डाली गई तो हर मुसलिम लीगी चंगेज़ खाँ और हुलाकू ख़ाँ बन जायेगा।

हमें सन्देह होता है कि मुसलिम लीगी नेता इसलाम के इतिहास से बिलकुल नावाक़िफ़ हैं वरना चंगेज़ और हुलाकू वाली बात उनकी ज़बान से कभी न निकलती। अव्वल तो ये दोनों क्रूर विजेता मुसलमान नहीं थे। उनके नामों के आगे 'ख़ान' शब्द लगा होने से नून और चौधरी साहब उन्हें मुसलमान समझ बैठे। ये दोनों मंगोल 'हान' क़बीले के थे। उनका अपना अलग मज़हब था। यह हान शब्द ही बिगड़ कर 'ख़ान' बन गया।

तेरहवीं सदी के शुरू से मंगोलों ने बग़दाद के अब्बासी ख़लीफ़ाओं के साम्राज्य के ख़िलाफ़ अपने हमले शुरू किये। सन् १२१५ ईसवी में ख़लीफ़ा नासिर ने अपनी लड़ाइयों के दमन में चंगेज़ ख़ाँ से मदद की दरख़्वास्त की थी। मुसलमान इतिहास लेखक इसे एक बड़ा मनहूस क़दम समझते हैं। मंगोल आये लेकिन ईरान के पास से वापस लौट गये। अपनी इस यात्रा में चंगेज़ खाँ के सिपाहियों ने मध्य एशिया के पचासों मुसलिम संस्कृति के केन्द्रों को नेस्तनाबूद कर दिया। क्योंकि उस समय चीनी लड़ाइयों में व्यस्त थे इसलिये वे ख़ोरासान और समीरा से ही वापस लौट गये।

सन् १२४२ में अन्तिम ख़लीफ़ा मुतास्सिम बुग़दाद की गद्दी पर बैठा। चंगेज़ का पोता हुलाकू उस समय मंगोलों का सरदार था। वह इसलामी सल्तनत पर टूट पड़ने की प्रतीक्षा में था। १२५७ ईसवी में उसने ख़लीफ़ा अल मुतास्सिम को बग़दाद की चहार दीवारी गिरा देने का हुक्म दिया। मुतास्सिम ने इनकार कर दिया। जनवरी सन् १२५८ में हुलाकू ने बग़दाद पर धावा बोलकर उसे घेर लिया और मार्च सन् १२५८ में शहर पर क़ब्ज़ा करके ख़लीफ़ा अल मुतास्सिम और लाखों मुसलमानों को तलवार के घाट उतार दिया गया और बग़दाद का शहर लूटकर बरबाद कर दिया गया। ख़लीफ़ा के वंश के एक एक आदमी को चुनचुन कर क़त्ल कर दिया गया। तमाम प्रमुख इसलामी शहरों की ईंट से ईंट बजा दी गई।

तत्कालीन मुसलमान इतिहासकार चंगेज़ खाँ और हुलाकू खाँ को इसलामी तहज़ीब और इसलामी कल्चर का सबसे बड़ा दुशमन मानते हैं। उनके अनुसार मुसलमानों के ऊपर इन दोनों मंगोल सरदारों के हमलों से बढ़कर कोई दूसरी क़यामत बरपा नहीं हुई।

तब हमारी समझ में नहीं आया कि मुसलिम लीगी नेता इसलाम के सबसे बड़े दुशमन क्यों बनना चाहते हैं। यह सही है कि जो रवय्या वे बरत रहे हैं उससे बढ़कर अहित वे इसलाम का नहीं कर सकते थे। आज उनकी पाकिस्तान की माँग और उस माँग को पूरा करने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही के साथ उनका गठबन्धन इसलाम की संस्कृति और उसकी परम्परा के बिलकुल प्रतिकूल है। और जब वे चंगेज़ और हुलाकू बनने का दावा करते हैं तो मानो इस बात का ऐलान करते हैं कि हम इसलाम के दुशमन हैं और अपने वशभर हम इसलाम को मिटाकर छोड़ेंगे।

पर मुसलमानों के सन्तोष की एक ही बात हो सकती है और वह यह कि जब असली चंगेज़ और हुलाकू इसलामी सभ्यता और संस्कृति को नहीं मिटा पाये तो ये नक़ली चंगेज़ और हुलाकू उसका क्या बिगाड़ सकते हैं ! इसलाम की ताक़त उसकी बिरादराना समता का बुनियादी उसूल है। उसका ईमान उसकी ढाल है और मानव भ्रातृभाव उसकी परम्परा है। वह शक्ति में नहीं त्याग में पनपा है। सुलतानों, ख़लीफ़ाओं और क़ातिलों ने नहीं बल्कि सूफ़ी, सन्तों और फ़क़ीरों ने उसकी जड़ों को गहरा और मज़बूत बनाया है। तसल्ली की बात यह है कि बावजूद मुसलिम लीग के इसलाम विरोधी रवय्ये के आज भी इस देश में राष्ट्रपति आज़ाद मौ० मदनी और ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार जैसे लाखों मुसलमान हैं जो इसलामी परम्परा के अनुसार अपना जीवन बिता रहे हैं और यही लोग असली इसलाम के बीमा हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसी खूंरेज़ी या सिविल वार

लोगों के लिये सिविल वार की बात कह देना आज बड़ी आसान सी चीज होगई है। मिस्टर जिन्नाह जिस पाकिस्तान की माँग करते हैं उसी की अपूर्ति की सूरत में उनके अनुयायी आपसी खूँरेज़ी की चर्चा करते हैं। किन्तु वे ये भूल जाते हैं कि सिविलवार के भी क़ायदे होते हैं। दो सङ्गठित सेनाएँ ही सिविलवार कर सकती हैं। आज देश की किसी भी राजनैतिक जमात के पास न तो संगठित सेना है और न लड़ाई के अस्त्र शस्त्र। ज़्यादा से ज़्यादा जो चीज़ हो सकती है वह हिन्दू-मुसलिम दङ्गे—ऐसे दङ्गे जिनमें निराश्रित और निरपराध व्यक्तियों को जान और माल का नुक़सान पहुँचता है और जिससे ५-७ दिन में ही दोनों पक्ष ऊब उठते हैं। यह सही है कि इस तरह के दङ्गों से हज़ारों निरपराध व्यक्ति मारे जायँगे किन्तु सिविल वार के थोथेपन को समझने के लिये शायद सिवाय उस आग के बीच से निकलने के कोई दूसरा चारा नहीं है। मुसलिम लीग के नेता आज जिस ग़ैर ज़िम्मेवारी के साथ अपने वक्तव्य देते हैं उनसे न तो देश का लाभ होने की आशा है और न मुसलमानों का। यदि वे यह समझते हैं कि देश की प्रगति को गुण्डापन से रोका जा सकता है तो वे बहुत बड़ी ग़लती पर हैं। आज भी देश में करोड़ों हिन्दू और मुसलमान ऐसे हैं जो ठण्ढे दिमाग़ से इस सारी समस्या पर ग़ौर करते हैं और उनका यह विश्वास है कि तीसरी ताक़त के अलग हटते ही आपसी ग़लत फ़हमी और मनमुटाव के जितने भी बादल हैं वे एक क्षण में छँट जायंगे। हमारे देश का एक हज़ार वर्ष का इतिहास हमें धीरज बँधाता है और यह आश्वासन देता है कि देश के हिन्दू मुसलमान एक थे, एक हैं और एक रहेंगे और कितना ही ज़हरीला प्रचार क्यों न हो वे मानव कल्याण के पथ से न कभी भ्रष्ट हुए हैं और न कभी होंगे।

अन्न की समस्या

पिछली १५ फ़रवरी को इलाहाबाद में आल इण्डिया न्यूज़ पेपर्स एडीटर्स कान्फ्रेंस के सामने भारत सरकार के अन्नमंत्री श्री बी० आर० सेन ने यह कहा था कि भारत से इस बीच अनाज का निर्यात नहीं हुआ। श्री सेन के इस वक्तव्य का कलकत्ता चैम्बर आफ़ कामर्स के श्री खेमका ने खण्डन करते हुये कहा था कि अकेले कलकत्ता के बन्दरगाह से ४६,००० मन से अधिक चावल बाहर भेजा गया है। जवाब में श्री सेन ने कहा कि यह निर्यात लङ्का के लिये हुआ था। प्रत्युत्तर में श्री खेमका ने आँकड़े देकर बताया कि इसमें से लगभग १००० मन चावल ही लङ्का गया है। तब से 'हरिजन' में हज़ारों मन चावल, मूँग, मूँगफल्ली आदि के निर्यात का विवरण प्रकाशित हो चुका है और जिसके खण्डन की कोई कोशिश भारत सरकार की ओर से नहीं की गई।

गत पहली अप्रैल सन् १९४६ को नई दिल्ली के इम्पीरियल होटल में भारत सरकार के अन्न सदस्य सर ज्वाला प्रसाद श्रीवास्तव ने आल इण्डिया न्यूज़ पेपर्स एडीटर्स कान्फ्रेंस की स्टैण्डिङ्ग कमेटी के सामने एक आश्चर्यजनक वक्तव्य दिया। उन्होंने बताया कि सितम्बर-दिसम्बर १९४५ में बङ्गाल से १,१०,०२० मन चावल बाहर के देशों में भेजा गया। बङ्गाल सरकार ने बेहिसाब चावल ख़रीद लिया था। उसे रखने के लिये उसके पास गोदाम नहीं थे। उसने भारत सरकार से उस चावल को रखवाने की प्रार्थना की। भारत सरकार ने मजबूरी ज़ाहिर की। इस पर बङ्गाल सरकार ने लन्दन की सरकार से प्रार्थना की। लन्दन की सरकार ने बतौर अहसान वह चावल लेकर बाहर भिजवा दिया !!!

खाद्य स्थिति के सम्बन्ध में सर ज्वाला ने बताया कि १६ लाख टन गेहूं फूडबोर्ड से मिल चुका है और १४ लाख टन जुलाई तक मिल जायगा और परिस्थिति जैसी संकट पूर्ण थी वैसी नहीं है। जब लोगों ने सर ज्वाला का ध्यान सर रामस्वामी मुदालियर के वक्तव्य की ओर दिलाया कि जिसमें उन्होंने कहा है कि यदि अनाज न मिला तो एक करोड़ चालीस लाख हिन्दुस्तानी कुछ ही में मर जायँगे तो सर ज्वाला ने जवाब दिया कि मुदालियर का वक्तव्य इस दृष्टि से ठीक है कि यदि अनाज लाने के लिये जहाज़ न मिले तो लोग अन्न रहते हुये भी भूखों मर जायँगे।

बाद में सर गिरजाशंकर, श्री जे० जे० सिंह और श्रीमती पर्लबक के जो बयान निकले हैं उनसे मालूम हुआ कि १४ लाख टन गेहूं देने की बात सफ़ेद झूठ थी और कम्बाइण्ड फूडबोर्ड ने हिन्दुस्तान के लिये कोई निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित नहीं की थी। अब जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसके अनुसार भारत को कुल जमा ६०,००० टन गेहूँ फिलहाल मिला है। इधर भारत सरकार की ओर से फिर पक्का देने वाले वक्तव्य प्रकाशित होरहे हैं। जावा से भारत के संकट को देखकर एक बहुत बड़ी मिक़दार में चावल देने की बात कही है किन्तु बक़ौल पण्डित जवाहरलाल के इस चावल को स्वीकार करने में राजनीति बीच में हायल है।

इधर युक्त प्रान्त के प्रधान मन्त्री पण्डित गोविन्द-वल्लभ पन्त का बहुत तसल्लीबख़्श बयान निकला है। उन्होंने ग़ल्ले की एक साधारण मिक़दार की माँग किसानों से की है और उसके हासिल होने के बाद वे दावा करते हैं कि युक्तप्रान्त में अकाल न पड़ेगा। किन्तु इस अनाजवसूली में एक बड़ी रुकावट भारत सरकार का ग़ल्ले का निर्ख है। बाज़ार भाव से यह निर्ख़ बेहद कम है और जब तक यह निर्ख़ नहीं बढ़ाया जाता तब तक किसानों को अपना ग़ल्ला देने में काफ़ी पशोपेश हो रहा है।

सच तो यह है कि भारत सरकार का अन्न-विभाग इतना निकम्मा और इतना नालायक़ है कि उसके रहते अन्न की समस्या हल होनी मुश्किल दिखाई देती है। ज़रूरत इस बात की है कि केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार बने और वह अन्न की समस्या को अपने हाथ में ले।

ताकि इनका नशा चले

पिछले महीने दिल्ली में एक पत्र सम्पादक ने सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स से बातचीत के सिलसिले में गत शिमला कान्फ्रेंस भङ्ग होने का रहस्य बताया। उक्त सम्पादक के अनुसार नवाबज़ादा लियाक़त अली ख़ां ने वायसराय को यह बात की इत्तला दे दी थी कि लीग केन्द्रीय सरकार में चार मुसलिम लीगी सदस्य लेने को तय्यार है। लीग के इस फ़ैसले से सभी हल्कों में सन्तोष था। लीग को यह विश्वास था कि यदि लीग अस्थायी सरकार में शरीक न हुई तो लार्ड वावेल केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल बना देंगे और लीग हुकूमत से बाहर रह जायगी। जैसे ही यह फ़ैसला वायसरीगल लाज में पहुंचा वहाँ पर सर फ्रान्सिस मूडी (आजकल सिन्ध के गवर्नर उस समय भारत सरकार के होम मेम्बर) सेसिल होटल में नवाबज़ादा से मिलने आये और उन्होंने नवाबज़ादा को यह विश्वास दिलाया कि यदि मुसलिम लीग आरज़ी सरकार में शरीक होने से इनकार कर देगी तो आरज़ी सरकार नहीं बनेगी। सर फ्रान्सिस के इस आश्वासन दिलाने पर नवाबज़ादा पाँचों सीटों की मांग पर फिर डट गये और उसके बाद का क़िस्सा तो सभी को मालूम है।

उक्त पत्र सम्पादक ने सर स्टैफ़र्ड को यह बताया कि इस बार भी अनेक ऊँचे अङ्गरेज़ अफ़सर इस बात का जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं कि लीग पाकिस्तान से कम में किसी तरह राज़ी न हो।

यद्यपि सर स्टैफ़र्ड ने इस बात का आश्वासन दिलाया कि तीनों मन्त्री ईमानदारी के साथ भारत के हाथों में ताक़त सौंपना चाहते हैं और वे दक़ियानूसी अङ्गरेज़ अफ़सरों की चालों में न आवेंगे फिर भी यह इस बात की कितनी बड़ी दलील है कि जब तक अङ्गरेज़ हिन्दुस्तान ख़ाली नहीं करते हिन्दू मुसलमानों में समझौता होना मुशकिल काम है।

कांग्रेस बनाम पाकिस्तान

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अल्पमत और भौगोलिक इकाइयों के सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रस्तावों को और अधिक सफ़ाई के साथ पेश किया है। "आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपनी बम्बई की बैठक में इस बात को साफ़ कर दिया था कि कांग्रेस ऐसी किसी भी तजवीज़ से सहमत नहीं हो सकती जिसमें किसी भौगोलिक इकाई को भारतीय संघ से अलग होने का हक़ मिले। कांग्रेस भारतीय स्वाधीनता और एकता के लिये प्रयत्नशील है और आजकल की दुनिया में जब कि लोग अधिक से अधिक बड़े संघों के निर्माण को अपनी सुरक्षा के लिये जरूरी समझते हैं उस समय मुल्क के बँटवारे की बात सोचना बेहद तकलीफ़देह है। फिर भी आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों को उनकी ऐलान की हुई मरज़ी के ख़िलाफ़ भारतीय सङ्घ में ज़बर्दस्ती नहीं रख सकती। इस उसूल को स्वीकार करते हुये इस तरह की तमाम कोशिशें की जायँगी जिससे विविध इकाइयों में एक मिली जुली और सहयोग पूर्ण क़ौमी ज़िन्दगी पैदा हो। इस उसूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्वीकार करके हम यह मान लेते हैं कि ऐसी कोई नई तब्दीलियाँ न की जांय जो और नई समस्याएँ पैदा कर दें जिससे संघ के भीतर बसने वाली इकाइयां किसी तरह की मजबूरी महसूस करें। हर भौगोलिक इकाई को संघ के अन्दर अपने दायरे में, सिर्फ़ इस बात का लिहाज़ रखते हुये कि राष्ट्रीय सरकार की मज़बूती क़ायम रहे, पूरी आज़ादी होनी चाहिये।"

कुछ स्वार्थी आदमी कांग्रेस पर इस बात का इलज़ाम लगा रहे थे कि कांग्रेस हर इकाई को यूनियन से अलग रहने की स्वेच्छा देती है। मौलाना आज़ाद ने इस बात को साफ़ कर दिया है। पहले से किसी इकाई को अलग होने का अधिकार नहीं है हां बाद में यदि कोई इकाई चाहे तो वह संघ से अलग हट सकती है। पहले से ही मिस्टर जिन्नाह की पाकिस्तान की माँग को कांग्रेस नहीं स्वीकार कर सकती। कांग्रेस ने अखंड भारत के आदर्श को स्वीकार किया है और उसूली नुक्ते नज़र से पाकिस्तान के सिद्धान्त को वह कभी भी नहीं मान सकती।

कैबिनेट डेलीगेशन की तजवीज़

दिल्ली से सिमले की ओर रवाना होने से पहले ब्रिटिश मंत्रियों के डेलीगेशन ने प्रस्तावित सिमला सम्मेलन में बुनियादी बहस के लिये एक यह भी तजवीज़ रखी है कि मुसलिम प्रान्तों का एक अलग संघ हो और बाक़ी प्रान्तों के लिये एक अलग और इन दोनों संघों का एक यूनियन बने कि जिस यूनियन के मातहत सुरक्षा, वैदेशिक नीति, और रेल तार आदि हों।

मन्त्रिमण्डल की यह तजवीज़ बुनियादी तौर से एक ग़लत तजवीज़ है। यदि यह उसूल स्वीकार कर लिया गया तो सूबा सरहद को इच्छा या अनिच्छा से मुसलिम संघ में शामिल होने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। जिन्नाह साहब तो किसी तरह की केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध हैं। सुरक्षा को लेकर वे दोनों संघों के बीच केवल आपसी सुलहनामे की बात सोच सकते हैं। दूसरी ओर मौलाना आज़ाद इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सब इकाइयों का एक संघ होना ज़रूरी है जो सुरक्षा, वैदेशिक नीति, आवागमन के साधन आदि बातों पर नियंत्रण रखे। अब प्रश्न यह है कि इस संघ का निर्माण किस उसूल पर हो। इसे सलाह देने के लिये क्या केन्द्रीय धारा सभा का होना ज़रूरी नहीं है? या वह हिन्दू मुसलिम इकाइयों का एक लचीला केन्द्र होगा? क्या केन्द्र को उन सब बातों में पूरी ज़िम्मेवारी होगी जो उसे अता की जायँगी? किन्तु डेलीगेशन ने इस पर कोई रोशनी नहीं डाली।

इस समय की सेना का क्या होगा? क्या उसके दो टुकड़े किये जायंगे जिसमें मुसलमान सैनिक मुसलिम संघ और हिन्दू सैनिक ग़ैर मुसलिम संघ के हवाले किये जायँगे? शायद सिख सिपाही सिखिस्तान वालों को दिये जायं! श्री एच० एन० ब्रेलफ़ोर्ड ने हाल में अपने एक लेख में लिखा है—"सेना अपने तमाम अस्त्र-शस्त्रों और सङ्गठन के साथ नैतिक रूप से पूरे भारत की चीज़ है। वह ऐसी ही सरकार के सुपुर्द होनी चाहिये जो उसे ज्यों की त्यों सुरक्षित रखके पूरे प्रायद्वीप की सुरक्षा के लिये उसे इस्तेमाल करे। यदि इस बात को साफ़ कर दिया जाय तो हम लोग भारतीय संघ के निर्माण के अधिक निकट पहुंच जायं।"

शायद भारत मन्त्री ने मिस्टर जिन्नाह से यह बात साफ़ करदी है कि सेना के दो टुकड़े न हो सकेंगे। सेना को तोड़कर क्या पाकिस्तान को मुसलमान सैनिक और हिन्दुस्तान को ग़ैर मुसलिम सैनिक दे दिये जांयगे? चूंकि मुसलिम सैनिक केवल ३० फ़ीसदी हैं क्या ये पाकिस्तान की हिफ़ाज़त कर सकेंगे? सम्भव है इसके लिये मिस्टर जिन्नाह औपनिवेशिक स्वराज का ज़रिया निकालें जिससे पाकिस्तान में स्वायत्त शासन भी होजाय और उसकी हिफ़ाज़त के लिये अङ्गरेज़ी सेना भी बनी रहे। इसी मुसलिम लीग ने शायद इसी की भूमिका स्वरूप मुसलिम लीग का ध्येय स्वाधीनता के बजाय पाकिस्तान बना लिया है। ब्रिटिश फ़ौजों की संरक्षा के एवज़, मुमकिन है, मिस्टर जिन्नाह उन्हें पाकिस्तान में व्यापार की मण्डियाँ दे दें।

अङ्गरेज़ सैनिकों के हिन्दुस्तान ख़ाली करने के कोई आसार तक नहीं दिखाई दे रहे। सेना के भारतीयकरण की कमाण्डर इन-चीफ़ की योजना एक लम्बी योजना है जिसमें दर्जनों बरस लगेंगे। अङ्गरेज़ फ़रेब, रिश्वत सितानियों और अपनी कूटनीति के लिये मशहूर है। वह हर उपाय से पाकिस्तान को सोवियत् और हिन्दुस्तान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...एक बफ़र स्टेट बनाकर रखेगा। पाकिस्तान की ...में वह हिन्दू और मुसलमान दोनों जनता का ...करना चाहेगा। किन्तु क्या देश की हिन्दू और ...मान जनता इस चीज़ को बर्दाश्त करेगी? उसने ...का पाठ पढ़ा है, वह खुला विद्रोह करना जानती ...किन्तु क्या भारतीय-ब्रिटिश सम्बन्ध का आख़री ...भी ख़ून से ही लिखा जाना चाहिये? शायद ...सही है कि नौकरशाही यही चाहती है, दक़ियानूसी ...यही चाहते हैं और, हमारा अनुमान ग़लत हो, ...जिन्नाह भी यही चाहते हैं। लेकिन साथ साथ ...भी सही है कि भारत के हिन्दू और मुसलमान ...से प्राप्त की हुई स्वाधीनता को भीख माँगी ...स्वाधीनता से ज़्यादा पसन्द करते हैं।

मौलाना आज़ाद ने, ख़बर है, प्रधान मंत्री को ...कमाण्डर-इन-चीफ़ के बीस साला फ़ौजी प्रोग्राम की ...देकर कहा है कि मेहरबानी करके इस बात का ...करदें कि अङ्गरेज़ सेना हिन्दुस्तान कब ख़ाली ...करेगी? और हिन्दुस्तान की आज़ादी की तारीख़ मुक़र्रर ...दी जाय। अगले हफ़्ते में बहुत सी बातें साफ़ हो ...जायेंगी।

ये मानवता के पोषक!

लन्दन का समाचार पत्र 'डेली वर्कर' फ़ील्ड मार्शल स्मट्स के सम्बन्ध में लिखता है—"दक्षिण अफ्रीका के ...प्रधान मन्त्री ने ऐसा क़ानून बनाया है जिसके सबब ...हिन्दुस्तानी दूसरे दरजे के इनसान समझे जायेंगे। दक्षिण अफ़्रीका के आदिवासियों के साथ स्मट्स की सरकार का व्यवहार पशुओं से भी गया बीता है।"

यह सब संयुक्त राष्ट्रों के उस घोषणा पत्र की नीति से एकदम विपरीत है जिसमें दुनिया के सब इनसानों को आज़ादी देने की बात कही गई थी। 'डेलीवर्कर' इस पर एक प्रश्न पूछता है—"इस घोषणा पत्र का बनाने वाला कौन था?" और फिर स्वयं इसका जवाब देता है—"ख़ुद फ़ील्ड मार्शल स्मट्स!"

इस पर स्मट्स के वकील दबी ज़बान से यह जवाब दे सकते हैं कि—तब लड़ाई चल रही थी और अङ्गरेज़ी साम्राज्य और ख़ुद अफ़रीका की यूनियन सरकार का अस्तित्व ख़तरे में था। पर हिन्दुस्तानियों को भी आशा है कि वे इस कूटनीति का जवाब किसी दिन ठीक ठीक दे सकेंगे।

कमाण्डर-इन-चीफ़ की नई योजना

जब कि दुनिया की आँखें हिन्दुस्तान की मुक़म्मिल आज़ादी की ओर लगी हुई हैं और ब्रिटिश सेना के इस देश से रफ़े दफ़े होने की बात लोग सोच रहे हैं कमाण्डर-इन-चीफ़ ने सेना के भारतीयकरण की ऐसी योजना पेश की है जिसके अनुसार २० वर्ष में जाकर सेना पूरी तरह भारतीय हो सकेगी। नई योजना के अनुसार भारत में २,५०,००० सेना होगी जिसमें ८८०० अफ़सर होंगे। इन अफ़सरों में १००० इमरजेन्सी कमीशन के अफ़सर होंगे और ७०० रेगुलर अफ़सर होंगे। यह १७०० की तादाद अप्रैल १९४७ तक पूरी हो जायगी। ८०० अफ़सर वी० सी० ओ० और आई० ओ० आर० मे लिये जायंगे। इनमें ३३ फी सदी अफ़सर हिन्दुस्तानी होंगे। २४०० ज़ाब्ते के अङ्गरेज़ अफ़सर होंगे और मिलीटरी एकेडमी हर साल ३०० अङ्गरेज़ अफ़सर भेजेगी। इस योजना के अनुसार २० से ३० साल के अन्दर सेना के सब अफ़सर हिन्दुस्तानी हो सकेंगे। यही कैफ़ियत हवाई सेना की होगी। नौ सेना में से हिन्दुस्तानी अफ़सरों को चुन चुन कर निकाला जा रहा है।

यदि सेना की यह कैफ़ियत होगी तो फिर मुल्क की आज़ादी के तबादले का क्या मतलब होगा? सेना की टेकनिकल टुकड़ियों—सिगनल, आर्डनैन्स, और दूसरी टैकनिकल कोरों में भी ज़िम्मेवारी के पदों पर सब अङ्गरेज़ हैं। हम जानना चाहते हैं कि जो ८००० हिन्दुस्तानी इमरजन्सी कमीशन में भरती हुये थे क्या उनमें अफ़सरों के गुण नहीं पैदा हुये? यदि नहीं तो इसके लिये ज़िम्मेवार कौन है?

भारतीय जनता के निकट उस आज़ादी की कोई क़ीमत नहीं कि जिसके सीने पर ब्रिटिश फ़ौजें अपनी मशीन गनें रखे खड़ी हों।

फ़िलिस्तीन का फ़ैसला

फ़िलिस्तीन अरबों का देश है। लीग आफ़ नेशंस के हुक्म से वहां अंगरेज़ों की हुकूमत है। अंगरेज़ों के संरक्षण में दुनिया भर के यहूदी वहां जमा किये जा रहे हैं, इतने अधिक कि अरबों को डर है कि कहीं यहूदियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तादाद ज्यादा न हो जाय। इस बात के निपटारे के लिये अङ्गरेज़-अमरीकनों की एक सम्मिलित कमेटी बैठी थी। उसने यह फ़ैसला दिया है कि फ़िलिस्तीन में एक लाख यहूदी और दाख़िल हो सकते हैं। कमेटी ने यह भी सिफ़ारिश की है कि इस बात का ऐलान कर दिया जाना चाहिये कि न तो यहूदी अरबों पर हुकूमत करेंगे और न अरब यहूदियों पर। कमेटी ने साफ़ लफ़्ज़ों में रिपोर्ट दी है कि "फ़िलिस्तीन न तो यहूदी राज्य रहेगा और न अरब, बल्कि आख़िरी तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय हिफ़ाज़त के बल पर एक ऐसा राज्य होगा जो मुसलमानों, यहूदियों और ईसाइयों के हितों की एक समान रक्षा करेगा।"

यह अन्तर्राष्ट्रीय हिफ़ाज़त क्या होगी इसका अन्दाज़ा सभी आसानी से लगा सकते हैं। १९१७ की बालफ़ोर घोषणा में फ़िलिस्तीन को 'यहूदियों का देश' करार दिया गया था। किन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अरबों में एक नई राजनैतिक जान आगई और उन्होंने अङ्गरेज़ी हुकूमत को मजबूर किया कि वह १९३९ में फ़िलिस्तीन को अरब देश स्वीकार करे। किन्तु लड़ाई के ख़त्म होते ही मध्यपूर्व के इस सैनिक मोरचे को अङ्गरेज़ और अमरीकन मिलकर अपनी ग़ुलामी में रखना चाहते हैं। अरब इस रिपोर्ट का भयंकर प्रतिवाद करने पर कमरबस्ता हैं। ज़ाहिर है सोवियत् से उन्हें हर तरह की मदद मिलेगी। जहां तक हिन्दुस्तान का सम्बन्ध है हमारी पूरी हमदर्दी अरबों के साथ है।

वैदेशिक मन्त्रियों का सम्मेलन

पैरिस में होने वाले वैदेशिक मन्त्रियों के सम्मेलन में आजकल इटली के उपनिवेशों के निपटारे की बात चल रही है। सोवियत् ने महीनों पूर्व इस बात की मांग की थी कि इटली के उपनिवेश ट्रिपोलिटानिया में उसे भी ट्रस्टी बनाया जाय। अङ्गरेज़ों को भूमध्यसागर में भला सोवियत् की उपस्थिति कैसे बर्दाश्त होती? ब्रिटिश वैदेशिक मन्त्री मिस्टर अर्नेस्ट बेविन ने ट्रस्टीशिप का मामला ख़त्म करने के लिये सम्मेलन में प्रस्ताव रखा कि ट्रिपोलिटानिया और साइरेनेशिया को आज़ाद घोषित कर दिया जाय। ज़ाहिर है इन देशों की आज़ादी अङ्गरेज़ों के लिये वैसी ही फ़ायदेमन्द होगी जिस तरह ट्रान्स जोरडन की। इन देशों की आज़ादी से सीरिया अङ्गरेज़ों के लिये सुरक्षित रहेगा और सोवियत् से संघर्ष की सूरत में जिब्राल्टर से सीरिया तक अङ्गरेज़ हर जगह अपने को महफ़ूज़ समझ सकेगा।

स्वर्गीय मौलवी तुफ़ैल अहमद साहब

विश्ववाणी के पाठकों को यह जानकर बेहद दुःख होगा कि गत ३० मार्च को प्रसिद्ध विद्वान, विचारक और शिक्षक मौलवी तुफ़ैल अहमद साहब का ७६ वर्ष की उम्र की अवस्था में रुड़की में देहावसान होगया। इन पंक्तियों के लेखक को स्वर्गीय मौलवी साहब के क़दमों के पास बैठकर मज़हबे इन्सानियत का पाठ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी तर्कपूर्ण बातें सीधा दिल में जगह करलेती थीं। यूं तो वे सर सय्यद अहमद के साथी और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक पोषकों में से थे परन्तु मुसलमानों के राह से भटक जाने का उन्हें बेहद दुख था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मुसलमानों का रोशन मुस्क़बिल' मज़हबी उदारता, राजनैतिक आज़ादी और सच्ची पूर्ण विचार धारा की ज्वलन्त प्रतीक है। मुसलमानों के अन्दर राष्ट्रीयता का प्रचार करने में जितना इस पुस्तक से मदद मिली है उतनी किसी भी दूसरी चीज़ से नहीं। सैकड़ों ही कट्टर और गुमराह मुसलमान इसे पढ़कर राष्ट्रीयता के हामी होगये हैं। अच्छा होता कि हर हिन्दू इस पुस्तक को एक बार पढ़ने की तकलीफ़ उठाता। इसे पढ़कर मुसलमानों की वास्तविक स्थिति से वह पूरी तरह परिचित होजाता और अपनी कमियां भी दूर कर लेता।

देश के लिये उनकी अनेक पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी सबसे बड़ी देन उनके पुत्र मौलवी मोहम्मद अहमद क़ाज़मी साहब हैं। मोहम्मद अहमद साहब प्रसिद्ध वकील और अहरारों के मशहूर नेता हैं। सेण्ट्रल असेम्बली के चुनाव में वे मुसलिम लीग के जनरल सेक्रेटरी नवाबज़ादा लियाक़त अली ख़ाँ के मुक़ाबले में मेरठ डिवीज़न से खड़े हुये थे।

हम स्वर्गीय मौलवी तुफ़ैल अहमद साहब की आत्मा की शान्ति के लिये नतमस्तक प्रार्थना करते हैं और अल्लाह से दुआ मांगते हैं कि वह हिन्दुस्तान के मुसलमान नौजवानों में स्वर्गीय मौलवी तुफ़ैल अहमद साहब की रूह फूंक दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें जो ज़रूर पढ़नी चाहियें

१–क़ुरान और धार्मिक मतभेद

लेखक

राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

मूल्य डाकख़र्च सहित १।=)

२–महावीर वर्धमान और जैन धर्म

लेखक

डा० जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०

मूल्य १।) डाकख़र्च सहित १॥=)

३–बोस बाबू ज़ियाउद्दीन के रूप में

लेखक

श्री उत्तम चन्द

४–लाल क़िले में

लेखक

पण्डित सत्यदेव विद्यालङ्कार

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रमाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी म[illegible] पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

✓ १–हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

✓ २–गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

✓ ३–हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

✓ ४–महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म की अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

[illegible]श्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

पण्डित सुन्दरलाल
विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : वैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

जून १९४६

[एक अङ्क का ।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

जून : १९४६

१—असुरिया की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति—पं० सुन्दरलाल ४०३
२—मेक्सिको का सामाजिक जीवन—पं० पुरुषोत्तमलाल ४१२
३—नवचेतना (कविता)—श्री प्रभाग चन्द्र शर्मा ४१६
४—मैथिलीशरण गुप्त में आदर्श नारी की भावना—कु० राजेन्द्र निगम एम० ए० ... ४१७
५—मध्यकालीन भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या—श्री गोपालकृष्ण मल्लिक ... ४२४
६—सोवियत का आत्मनिर्णय का सिद्धान्त और पाकिस्तान—श्री० गार्गीशंकर मिश्र ... ४३१
७—अनंत (कविता)—श्री० आरसी प्रसाद सिंह ४३४
८—अहम्!—श्री रामावतार विद्याभास्कर ... ४३५
९—गीत (कविता)—श्री० नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश' ४४२
१०—किसकी करनी, किसकी भरनी! (कहानी)—श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ... ४४३
११—गान्धी जी के महान चिन्तक शिष्य विनोबा—श्री० रामनारायण उपाध्याय ... ४५४
१२—न्याय मन्दिर में पहली बार—प्रो० जगदीशचन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी० ४५७
१३—बँध न सकी उन्मत्त जवानी (कविता)—श्री० उपेन्द्र ४५९
१४—दुनिया की रातनीति में अरब-सङ्घ की जगह—श्री० डोरोथी एडेलसन ... ४६०
१५—हिमालय के शिखर पर ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल से भेंट—आचार्य श्री० गुरुदयाल मल्लिक ४६५
१६—पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म—आचार्य धर्मानन्द कोशाम्बी ४६७
१७—पुस्तक-परिचय ४७०
१८—अपनी बात ४७३

'विश्ववाणी' के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से 'विश्ववाणी' नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते है। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख भी दर्ज करते हैं। किन्तु डाकखाने के भूत बीच में छापा मारकर कई प्रतियाँ गायब कर देते हैं हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में असमर्थ हैं। 'विश्ववाणी' हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखना भूल जाते हैं। 'विश्ववाणी' सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

वर्ष ६, भाग ११] जून : १९४६ [अङ्क ६, पूरे अङ्क ६६

असुरिया की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति (२)

पण्डित सुन्दरलाल

निनेवेह की इस बरबादी के थोड़े ही दिनों के अन्दर [illegible] के पानी और नदी की बाढ़ ने मिलकर नगर के खण्डहरों की मिट्टी को नरम और चिकना कर दिया। [illegible] बोता और धीरे धीरे प्रकृति ने हरी हरी दूब की [illegible] चादर ऐश्वर्य के इस ढेर के ऊपर बिछा दी। [illegible] जगह कांटेदार जंगली दरख़्तों ने उगकर उस [illegible] लम्बे चौड़े टीले को एक छोटे मोटे जंगल का रूप [illegible] दिया। इससे बाद के लोग यह भी भूल गए कि इस ढेर [illegible] नीचे असुरिया की हज़ारों बरस की शान दफ़न पड़ी [illegible] है। सन् ४०१ ई० पू० में मशहूर यूनानी सेनापति [illegible] अपनी चुनी हुई फ़ौज सहित ईरान से यूनान की [illegible] लौट रहा था। रात भर उसने इस टीले के ऊपर [illegible] डालकर आराम किया। उसे किसी ने यह भी नहीं [illegible] कि तिगलक पिलेश्वर, सरगन, ईसर हद्दन और [illegible] बनीपाल जैसे महान सम्राटों का सदियों का सारा [illegible] और वैभव इसी ढेर के नीचे दबा हुआ है।"

निनेवेह के बाद इराक़ के अन्दर राजनैतिक ताक़त [illegible] सबसे बड़ा केन्द्र एक बार बाबुल फिर बन गया।

असुरिया में ज़मीन की पैदावार इतनी अच्छी न थी [illegible] बाबुल में। लेकिन तरह तरह की धातुओं की यहां [illegible] थीं। लोहा, तांबा और सीसा निनेवेह के पास [illegible] के पहाड़ में बहुतायत से पाया जाता था। पास [illegible] कुर्दिस्तान के पहाड़ों में रंग-बिरंगे संगमरमर की चट्टानें [illegible] थीं। इस संगमरमर की सिलें नदी से नाव के ज़रिये [illegible] ले जाई जा सकती थीं। चूना, मिट्टी का तेल, [illegible], फिटकरी, और नमक बहुत पाये जाते थे।

सामाजिक व्यवस्था

असुरियन समाज में सबसे ऊपर राजा समझा जाता था। राजा इस पृथ्वी पर प्रभु 'असुर' का प्रतिनिधि था। उसका फ़र्ज़ प्रजा के साथ न्याय करना और यह देखना था कि बलवान निर्बलों को न सताने पावें। कई तरह के धार्मिक कामों में भी वह प्रजा का नेता होता था। बाक़ी जनता के दो बड़े हिस्से थे। एक आज़ाद लोग और दूसरे गुलाम या दस्यु। असुरिया में ग़ुलामी का रिवाज था। ग़ुलाम बेचे और ख़रीदे जा सकते थे। उन्हें अपने मालिक का काम करना पड़ता था और मालिक का फ़र्ज़ उन्हें पालना-पोसना और उनसे साथ अच्छा बर्ताव करना था। लेकिन इतनी बात को छोड़कर बाबुल या असुरिया के ग़ुलामों की हालत सैकड़ों साल बाद के रोम के ग़ुलामों की हालत से कई गुना अच्छी थी और उनके साथ कहीं ज़्यादह अच्छा सलूक होता था। असुरिया में बाल-बच्चों वाला कोई दस्यु अकेला नहीं बेचा जा सकता था। उसकी बीवी, लड़के और लड़कियां, उसकी विधवा माँ, नाबालिग़ छोटे भाई उसके साथ जाते थे। बाबुल और असुरिया दोनों में दस्यु माल और जायदाद रख सकते थे। आमतौर पर दस्युओं के अपने खेत, बाग़ और मकान होते थे। उन्हें अलग तिजारत करने का अधिकार था। एक आजाद आदमी की तरह हर गुलाम के पास भी अपनी सील मोहर होती थी जिससे वह दस्तावेज़ों को सील कर सकता था। दस्यु गवाही दे सकते थे और कभी कभी कोई कोई दस्यु राज के ऊँचे से ऊँचे पदों पर भी पहुंच जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबुल की तरह असुरिया में भी एक पति तथा एक पत्नी का ही रिवाज था। लड़की मां-बाप की मरज़ी के बग़ैर शादी न कर सकती थी। किसी गुलाम या नौकर लड़की के साथ व्यभिचार करना गुनाह था। रखैल अलग होती थीं। अगर कोई लड़की बाप के क़र्ज़ के एवज़ में किसी के यहां गुलाम बनाकर गिरवी रक्खी हुई है तो वह आदमी उस लड़की को आजाद करके उसके साथ शादी कर सकता था। बदचलनी या बलात्कार पर लड़की का बाप उस आदमी को अपनी लड़की को फ़ौरन आज़ाद करने और उससे शादी करने पर मजबूर कर सकता था।

वर कन्या के सर पर कोई खुशबू छोड़ देता था तो सगाई की रस्म अदा हो जाती थी। इस रस्म के बाद लड़की अपने ससुर के परिवार की समझी जाती थी। अगर सगाई के बाद किसी तरह भी लड़के की मौत हो जाती थी तो उस लड़की का विवाह उसके किसी देवर के साथ हो जाता था। अगर कोई देवर न हो तो पति के किसी भतीजे के साथ विवाह होता था बशर्ते कि वह लड़का बहुत कम उमर का न हो। कोई भतीजा भी न हो तब लड़की का बाप वह तमाम ज़ेवर वगैरह उपहार जो लड़के के घर से आये होते थे लौटाकर उस लड़की की शादी किसी दूसरे ख़ानदान में कर सकता था। अगर सगाई के बाद लड़के के किसी शादी हुए हुए भाई की मौत हो जाती थी तो वह सगाई टूट जाती थी और उस लड़के को अपनी विधवा भौजाई से शादी करनी पड़ती थी।

सुमेर और बाबुल में परदे का बिल्कुल रिवाज नहीं मिलता, लेकिन असुरिया में परदे का रिवाज था। कोई आज़ाद विवाहिता स्त्री बग़ैर परदे के मुंह खुले सड़क पर न निकल सकती थी। परदे ही से आज़ाद स्त्री को देवदासी या दासी यानी गुलाम से अलग पहचाना जा सकता था। आज़ाद स्त्रियों में भी विवाहिता स्त्री ही परदा कर सकती थी। कुमारी या रखेल को परदे का अधिकार न था।

१००० ई० पू० के करीब असुरिया में पत्नी किसी ऐसे व्यापार में शरीक़ न हो सकती थी जिसमें घर वालों की पत्ती न हो। न वह पहले के ज़माने की तरह खानदान से बाहर व्यापार ही कर सकती थी न किसी से करज़ ले सकती थी।

व्यभिचार के लिये पुरुष और स्त्री दोनों को सख़्त सज़ाएँ दी जाती थीं। बलात्कार की सज़ा मौत थी। किसी स्त्री पर झूठा दोष लगाने वाले को और सज़ा के अलावा ५० कोड़ों की सज़ा मिलती थी। गर्भपात करवाने को भी बड़ी कड़ी सज़ा थी। अगर किसी गर्भवती स्त्री पर कोई हमला करे और उस स्त्री का हमल गिर जाय तो हमला करने वाले को मौत की सज़ा दी जाती थी।

पति के तलाक़ देने पर पत्नी दोबारा शादी कर सकती थी। अगर किसी का मर्द पांच बरस से लापता हो तो वह स्त्री दोबारा शादी कर सकती थी। ऐसी सूरत में उसे विधवा होने का सरटीफ़िकट मिल जाता था।

पिता परिवार का मुखिया होता था। पिता के मरने पर बड़ा लड़का परिवार का मुखिया होता था और परिवार के हर शख़्श को उसकी मरज़ी के मुताबिक चलना पड़ता था।

न्याय

बाबुल और असुरिया के क़ानूनों और कचहरियों में ज़्यादह फ़रक़ न था। बाबुल में एक मुक़दमे के फ़ैसले के लिये कई कई पंच बैठते थे, असुरिया में सिर्फ़ एक ही जज की अदालत होती थी। दीवानी मुक़दमे में वह हमेशा लिखा हुआ सबूत मांगती थी। सज़ाओं में मौत की सज़ा, उङ्गली, कान, नाक, वगैरह काट डालना, बेंत, बेगार और जुरमाने की सज़ाएँ थीं। चोरी करने पर बेगार, ५० कोड़े और जुरमाने की सज़ा दी जाती थी। अगर कोई व्यापारी अपने माल की क़ीमत बढ़ाकर लिखाए तो वह व्यापारी और उसका मुंशी दोनों चोर समझे जाते थे।

खेती और व्यापार

अकसर एक जगह कई कई किसान मिलकर खेती करते थे और वह जमीन सबकी मिली हुई मिलकीयत समझी जाती थी। अगर कोई किसान किसी दूसरे किसान की ज़मीन को अपनी मेड़ में शामिल कर लेता था तो जांच होने पर उसे दाबी हुई ज़मीन से तिगुनी ज़मीन मुद्दई को देनी पड़ती थी। अगर किसी दूसरे की ज़मीन में कोई मकान बना लेता था तो ईंटों की हर के अलावा ५० कोड़े, एक महीने की बेगार और हरजाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भाग १८४४]

...ज़मीन देनी पड़ती थी। सरकार किसी भी ...लगान माफ़ कर सकती थी। उसे किसान को ...से माफ़ी की तख़्ती मिल सकती थी। नहरों से ...सिंचाई होती थी। तिजारत में हुंडियों का रिवाज ...सोने, चांदी, सीसे, कांसे के ख़ास वज़न के टुकड़े ...लेन-देन के काम में आते थे।

...बाबुल की तरह असुरिया वाले भी अपने बीवी-...को क़र्ज़ के एवज़ में बन्धक रख सकते थे। इस तरह ...क़र्ज़ का साहूकार न सर मुड़वा सकता था और न ...मार-पीट सकता था और न बेच सकता था।

असुरिया का धर्म

असुरिया और बाबुल के धार्मिक विश्वास और रीति ...में कोई ख़ास फ़रक़ न था। सिर्फ़ बाबुल के सबसे ...देवता मारदूक की जगह असुरिया का ख़ास क़ौमी ...असुर था। वह और सब देवताओं का पैदा करने ...और उनका मालिक था। और सब देवता क़रीब ...वही थे। किसी को बाबुल में ज्यादह महत्व दिया ...था और किसीको असुरिया में। दुनिया कैसे बनी, ...किसे कहते हैं, आदमी कैसे पैदा हुआ—इन सब ...पर पौराणिक कहानियें ज्यों की त्यों थीं। पूजा के ...मन्दिर, हवनकुण्ड सब उसी तरह के थे। ...ई० पू० में असुर का कोई अलग मन्दिर न रह ...था। हर मन्दिर में उसकी मूर्ति रहती थी और ...होती थी। असुरिया की जनता 'असुर की सेवक' ...थी और असुरिया के दुश्मन 'असुर के दुश्मन' ...मानते थे। असुर की पूजा ही उनका ख़ास धर्म ...'असुर' असुरिया के क़ौम की रक्षा करने वाला ...उनके दुश्मनों का नाश करने वाला था।

असुर की मूर्ति इन्सान की शक्ल की होती थी। ...उसका एक सिर होता था और कहीं कहीं तीन सिर ...थे। इतिहासकारों की राय है कि मिस्र में फ़िक्सन, ...और ताह, ईरान में अहुरमज़्द, मित्र और ...यूनान में मोना, लोगा और साइक और भारत ...विष्णु और महेश से जो दुनिया के पैदा करने, ...करने और नाश करने वाले से मतलब है, वही ...की इस त्रिमूर्ति का भी महत्व था।

...हिन्दुओं में जिस तरह लक्ष्मी और विष्णु, पार्वती और शिव, सीता और राम वग़ैरह की मिली हुई पूजा होती है उसी तरह असुरिया में भी उसी मन्दिर में देवता के साथ उसके नारी रूप की भी पूजा होती थी। लेकिन सब जगह ऐसा नहीं था। देवी 'ईश्वर' महाकाली की तरह अलग रहती थी। 'बेल्ति' और 'गुल', सरस्वती और लक्ष्मी की तरह अपनी उपासना के बदले में भक्तों को वरदान देती थीं।

छोटे देवताओं में अनु का एक बेटा 'मर्तु' (संस्कृ० मृत्यु) भी था जो 'यम के देश' या 'अन्धेरे लोक' का हाकिम कहलाता था। दजला और फ़िरात दोनों की पूजा होती थी। सुमेरी 'इल' का असुरिया में पता था। इन देवताओं के अलावा असुरिया वाले अच्छे और प्रेतों, भूतों या जिनों पर भी विश्वास करते थे जो देवताओं और इन्सान के बीच में बुराई या भलाई के ज़रिये बनते थे।

असुरिया वाले जब किसी दुश्मन को जीतते थे तो कभी कभी उसके देवताओं को भी अपने देश ले आते थे। उन्हें वे बड़े पूजा-पाठ और आदर के साथ उनके मन्दिरों से हटाते थे और फिर बाजे-गाजे के साथ इन्हें असुरिया लाकर वहां के ख़ास मन्दिरों में उन्हे आदर के साथ ही बाजब्ता स्थापित करते थे।

देवताओं की मूर्तियां सोने, चांदी, कांसे, मिट्टी और पत्थर की होती थीं।

देवताओं की पूजा भेंट और बलि से होती थी। बलिदान राजा के लिये जरूरी था। जनता बलिदान को देवता के ख़ुश करने का ज़रिया समझती थी। बैल की ख़ास तौर पर कुरबानी होती थी। बलि दिये हुए जानवर के ख़ास ख़ास हिस्सों की हवन में आहुति दी जाती थी।

राजा ही देश का सबमें बड़ा पुरोहित समझा जाता था। बाबुल के युरिगल्लु की तरह असुरिया में राजा और देवता के बीच में कोई पुजारी हो सकता था। लेकिन आम जनता बिना पुजारियों के पूजा न कर सकती थी। पुजारी लम्बे-लम्बे कपड़े पहनते थे और सर पर एक अजीब सी पगड़ी बांधते थे। भक्त कभी ख़ाली हाथ मन्दिर में न आता था। कुछ न कुछ चढ़ावा लाना ज़रूरी था। आम तौर पर वह एक बकरी का बच्चा लाता था। असुरिया के पुजारी मिस्री पुजारियों की तरह डाढ़ी मूंछ मुड़वाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास और व्रत पर बड़ा ज़ोर दिया जाता था। कभी कभी उपवास रखना धर्म का एक हिस्सा समझा जाता था। उपवास के दिन राजा से लेकर मामूली जनता तक अपने मामूली कपड़ों को उतार कर बोरिये के कपड़े पहनते थे, अपने सरों के ऊपर राख मलते थे और उपवास में न खाना खाते थे और न पानी पीते थे। जानवरों के ऊपर भी उपवास के दिन बोरियां डाल देते थे और उन्हें भी न चारा देते थे और न पानी। उस दिन सब कारबार बन्द रहता था और सब मिल-कर असुर से प्राथना करते थे। वे उससे अपने पिछले पापों की माफी और आगे के लिये दुआ मांगते थे।

जार्ज रालिन्सन लिखता है—"असुरिया वालों में मज़हब और गहरे धार्मिक भाव थे। वे हद दरजे की धार्मिक प्रवृत्ति वाले आदमी थे। वे सच्चाई के साथ ईश्वर से प्रार्थना करते थे। जनता के जीवन में सदा परोपकार की भावना रहती।"

असुरिया के देवताओं की मूर्तियों में किसी तरह की अश्लीलता नहीं मिलती। वहां भी हिन्दुओं, यूनानियों वगैरह की तरह लिंगपूजा का रिवाज था।

कारीगरी

तरह तरह की कारीगरी में असुरिया के लोग नई नई ईजादें करने में बड़े तेज़ थे। रालिंसन लिखता है कि इन कारीगरियों—नक्काशी, खुदाई, ढलाई, कारचोबी का काम, हाथी दांत का काम, कांच का सामान बनाने और कसीदे के काम वगैरह में, वे अगर किसी पुराने देश से आगे नहीं थे तो कम से कम उनके बराबर ज़रूर थे। यहूदी, अरामी और यूनानी इतिहासकार शुरू से असुरिया वालों की दस्तकारियों की तारीफ करते हैं।

असुरिया वालों के मन्दिर आमतौर पर महल का एक हिस्सा होते थे। असुरिया में मन्दिरों को वह अलग रुतबा हासिल न था जो बाबुल और मिश्र में था। उनकी असली कारीगरी उनके महलों में थी। इन महलों के बनाने में कारीगर के हाथों की सारी सफ़ाई और ख़ज़ाने का बेशुमार धन खर्च होता था।

असुरी महल एक बड़े ऊंचे चबूतरे पर तामीर किया जाता था। चबूतरे के चारों तरफ़ पक्की ईंटें या पत्थर लगे होते थे। बीच में कच्ची ईंटों के पर्त भरे होते थे। फ़र्श पत्थर या पक्की ईंटों का होता था। ईंटों की लम्बाई चौड़ाई कभी कभी दो मुरब्बा फ़ुट होती थी। पत्थर की सिलों पर या तो लेख खुदे होते थे, या सुन्दर चित्रकारी होती थी।

महल में कई बड़े बड़े आंगन-बड़े बड़े कमरे, दरबार के लिए कई कई हाल और रहने के छोटे छोटे कमरे होते थे। निमरूद के एक महल में एक दरबार हाल १२० × ९० फुट का था। खोरसाबाद में सरगन के महल में चार दरबार हाल थे। इनमें तीन १८० × १८० फ़ुट और एक २५० × १५० फ़ुट था। खोरसाबाद का महल करीब ७१ फ़ुट ऊंचा था और उसकी दीवालें करीब ८० फुट मोटी थीं। निमरूद में असुर इसर पाल के महल का बड़ा हाल १६० फुट लम्बा और ४० फ़ुट चौड़ा था। महल में औरतों के रहने के हिस्से को 'हरीम' कहते थे इसी से अरबी और फ़ारसी 'हरम' और 'हरमसरा' बने। हरीम इस तरह बनाया जाता था कि महल के आने जाने वालों को ज़नानखाने की चीज़ें दिखाई न दे सकें। महल एक से ज्यादा मंज़िल के भी होते थे।

महल से लगा हुआ एक मन्दिर होता था। जिसके सदर फाटक के बाहर बैलों या शेरों की बड़ी बड़ी मूर्तियां होती थीं। भीतर देवी देवताओं की मूर्तियां होती थीं। कभी कभी इन मूर्तियों पर धार्मिक लेख या पत्र लिखे होते थे। मन्दिर के अन्दर के हिस्से में जो पत्थर लगाए जाते थे इनमें तरह तरह की मीनाकारी और पच्चीकारी होती थी। इस मीनाकारी में यह ध्यान रखा जाता था कि फूल, पत्ती या दृश्य सब धार्मिक भाव लिए हुए हों। छतें सनोबर या देवदार जैसी लकड़ी की होती थीं। चित्रकारी आमतौर पर 'असुर' की हिफ़ाज़त में बाहर के देशों के साथ सम्राट की लड़ाइयों के दृश्य होते थे।

मामूली मकानों में खिड़कियां न होती थीं। छतों में रोशनदान होते थे। छतें गोल गुम्बद या मीनार की तरह भी होती थी। दरवाज़े मेहराबदार और पटे हुए होते थे। दरवाज़े अन्दर की तरफ खुलते थे। नालियें मेहराब दार और इस सुन्दर अन्दाज़ से ढाल देकर बनाई जाती थीं कि अपने आप साफ़ होती रहती थीं।

मकानों में आम तौर पर हलके नीले, हलके हरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हलके पीले रंग इस्तेमाल होते थे। कभी कभी नीले, हलके, लाल और काले रंग भी इस्तेमाल होते थे। मकानों में सतून और खम्भे होते थे।

दीवालों या चट्टानों पर खुदी हुई मूर्तियाँ और धातु, धात की ढली हुई मूर्तियां, हाथी दांत का काम, मिट्टी की मूर्तियां, ईंटों पर इनेमल पत्थर या जवाहरात की नक्काशी असुरी कला की खास चीजें थीं। हाथ पैर और आस पास की चीज़ों के औसत क़रीब क़रीब बिलकुल ठीक होते थे। इन बातों में असुरिया और मिस्र की चित्रकारी में ख़ासी समानता थी। असुरी कला में सबसे सुन्दर चीज़ उनकी पत्थरों पर उभरी हुई मूर्तियां (bascrelifs) थीं।

"पिमेंटिक कला जिस जिस चीज़ को चित्रित कर सकती थी उन सब के लिये यह उभरी हुई मूर्तियां इस्तेमाल होती थीं। इन चित्रों में असुरी अपने धार्मिक विश्वासों और अपने विचारों को, अपने सम्राटों के ऐश्वर्य को, और आनेवाली सन्तानों के लिये अपने देश के इतिहास को चित्रित करते थे। इन चित्रों में वे घर की मामूली जिन्दगी और रोजमर्रा के सामाजिक व्यवहार का ख़ाका खींचते थे, प्रकृति के दृश्य और दस्तकारी के नमूने, महल और मन्दिर, देश के पशु-पक्षी, फल फूल, और इञ्जीनियरी के वे सब तरीके दिखाते थे जिन तरीक़ों से वे बड़ी बड़ी इमारतें बनाया करते थे। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इन चित्रों के ज़रिये हम न सिर्फ़ असुरी कारीगरी से ही परिचय करते हैं बल्कि उस ज़माने के लोगों के जीवन के सब पहलू हमारे सामने आ जाते हैं।"

इनमें पांच खास तरह के चित्र हैं—

(१)—युद्ध, जिनमें घमासान लड़ाई, मोहासरे, दुश्मन के देश की बरबादी, समुद्री हमले और विदेशों की लड़ाइयों से विजय हासिल कर के धन-दौलत के ढोकर लाती हुई सेना के दृश्य।

(२) धार्मिक और पौराणिक कथाओं के दृश्य और धार्मिक कर्मकाण्डों के चित्र।

(३) खिराज लाते हुए अलग अलग देशों के प्रतिनिधियों के जुलूस।

(४) शिकार और आखेट के दृश्य, जंगली जानवरों का पीछा करना, जाल बिछना, चिड़ियों का निशाना लगाना वग़ैरह।

(५) रोज मर्रा की ज़िन्दगी, सफ़र माल लादकर ले जाना, बड़े बड़े बैल प्रकृति के दृश्य, मन्दिर, ज़नान-ख़ाने का जीवन, बाग़ वग़ैरह।

रंगों के मिलाने में भी असुरी बड़े होशियार थे। धातों की ढलाई में वे माहिर थे।

असुरी कारीगरी की चीज़ों में हमें साफ़ मिस्री असर दिखाई देता है। सम्राट सरगन (दूसरे) के समय से असुरी कारीगरी पर मिस्री असर शुरू हुआ। असुरिया के मिट्टी के बर्तनों में उनकी शक्ल, उनकी गढ़न और उनके इस्तेमाल पर साफ मिस्री छाप दिखाई देती है। कान की बालियां, हाथ के कंगन, बाज़ूबन्द वग़ैरह जेवर सोने, चांदी और कांसे के होते थे। क़ीमती पत्थरों में वे लाजवर्द (लैपिस लाज़ूली, सरपेन टाइन, जैसपर, (chalcedemy, cornelian, aqate, sienite, quarlz, load stone, amazon stone) वग़ैरह इस्तेमाल करते थे।

लिखने के लिये वे चिकनी रूंधी हुई मिट्टी के बने हुए पतले पतले क़लम और इसी मिट्टी की बनी हुई पतली पतली तख़्तियां काग़ज़ की जगह काम में लाते थे।

मिट्टी के पालिश किये हुए और बग़ैर पालिश किये हुए बर्तन पानी पीने में और घर के दूसरे रोज़ाना काम में आते थे। मिट्टी के गमले, दिये, सुराही, शकोरे, तश्तरी और हंडियें खुदाई में मिली हैं। इन बरतनों की मिट्टी बहुत ही अच्छी और हलका पीला रंग लिये हुए है। इसमें सबसे अच्छे मुरदों के लिये मिट्टी के कफ़न या बक्स हैं। कुछ दिये भी बड़े ही सुन्दर हैं। इन्हींसे मालूम होता है यूनानवालों ने दिये बनाना सीखा।

असुरिया में कांच के बर्तन या तो रंगीन होते थे, या साफ़ जिसमें आर पार दिखाई दे। कांच वे मिस्रियों की तरह रेत, (चकमाक) साइलेक्स, और चूना (अलकली) मिलाकर बनाते थे। दूधिया (अपारदर्शी) ओपेक कांच भी इस्तेमाल करते थे जिसे वे रंग लेते थे।

सामान में मेज़, कुरसियें, काउच, ऊंचे स्टूल, पैर रखने की चौकी, सामान रखने की अलमारियां, आराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्सियां, तख़्त, पलंग वग़ैरह क़ीमती लकड़ियों से तय्यार किये जाते थे। इन पर अमीर घरों में कहीं कहीं सोना चांदी और कांसा भी मढ़ा होता था। असुरिया के तख़्त और कुर्सियां बड़ी ख़ूबसूरत होती थीं। पाए जानवर के पैरों की शक्ल के होते थे। शेर के पैर की शक्ल आम-तौर पर पायों के लिये इस्तेमाल होती थी।

पोशाकों और सरकारी लिबासों पर ख़ूब क़सीदे कढ़े होते थे। आमतौर पर बांहों के सिरों पर या पोशाक के नीचे के सिरों में काम बना होता था। राजाओं की पूरी पोशाक में सुन्दर क़सीदा और सलमें सितारे का काम होता था।

वे बड़े बड़े पत्थर, जिसमें एक एक कई कई सौ मन का होता था, एक जगह से दूसरी जगह पचासों मील आसानी से ले जाते थे और फिर उन्हें ८० और ९० फ़ुट की ऊँचाई पर ठीक जगह बैठा देते थे।

नदी से पानी ऊपर चढ़ाने के लिये वे दमकल (क्रेन) का इस्तेमाल करते थे। कुएं से डोल ऊपर उठाने और नीचे करने के लिये चरखी काम में लाते थे। वे दो घोड़ों की गाड़ी भी इस्तेमाल करते थे। घोड़ों को चने के बजाय जौ खाने को दिये जाते थे।

रस्म-रिवाज

सम्राट आमतौर पर एक लम्बा टखने तक नीचा चोंगा पहनता था जिसमें ख़ूब काम हुआ होता था। उसके ऊपर कमर में एक चौड़ी पेटी होती थी। इसके ऊपर एक चादर होती थी जिसका एक सिरा सामने की तरफ़ और एक पीछे की तरफ़ पड़ा रहता था। दोनों हाथ इस चादर से बाहर निकले रहते थे। सर पर कपड़े का तियारा या एक तरह का मुकुट होता था जिस पर ख़ूब सोने-चांदी का काम होता था। कभी कभी वे पगड़ी या साफ़े के क़िस्म की चीज़ भी बांधते थ।

पैरों में खड़ाऊँ या चप्पल या अङ्गरेज़ी शू की क़िस्म की एक चीज़ होती थी। कमर-पट्टे से दो-दो तीन-तीन जड़ाऊ मूठवाले ख़ंजर लटके रहते थे। कन्धे पर पेटियां होती थीं जिनमें बांई तरफ़ एक तलवार लटकती रहती थी। सम्राट कानों में बालियां, गले में क़ीमती मालाएँ और हाथों में कड़े पहनते थे।

राजा की पूजा की पोशाक ज़रा दूसरी तरह की थी। उस समय राजा के बांए हाथ में एक गदा होना ज़रूरी था।

असुरिया वाले बाद के यूनानियों, ईरानियों और हिन्दुस्तानियों की तरह स्त्रियों को अलग ज़नानख़ाने में रखते थे। इसीलिए असुरिया की तसवीरों में स्त्रियां बहुत कम दिखाई देती हैं।

एक पुराना चित्र मिला है जिसमें सम्राट ज़नानख़ाने में एक काउच के ऊपर बाईं कोहनी के सहारे बैठा हुआ है। सामने एक शानदार कुर्सी पर मलका बैठी हुई सम्राट को देख रही है। दो ख़ोजे राजा के पीछे और दो रानी के पीछे खड़े होकर पंखा झल रहे हैं। सम्राट और मलका दोनों के लम्बे बाल एक ही तरह से संवारे हुए हैं। सम्राट के सर पर मुकुट है। मलका पैरों तक लम्बा साया पहने है जिसमें ख़ूबसूरत काम किया हुआ है। उसके ऊपर उसने एक कामदार फ्राक पहन रखा है जो घुटनों तक लम्बा है। पीठ पर सुनहली चादर पड़ी हुई है। मलका के पैरों में जूतियां हैं। मुकुट के अलावा वह बालियां, मालाएँ, कंगन और बाज़ूबन्द पहने हुए है। सम्राट और मलका दोनों सोने के प्यालों में कुछ पी रहे हैं। प्याले को दोनों दाहिने हाथ के अंगूठे और उङ्गलियों से पकड़े हैं। एक साथ उठाकर वे उस प्याले को ओठों से लगाते हैं। सामने मेज़ पर मेज़पोश पड़ा हुआ है। उसपर एक छोटा-सा बक्स और तश्तरी है जिसमें कुछ मिठाई रखी है। सम्राट अपने बांए हाथ में एक पंखा लिए है जो आजकल के जापानी पंखे से मिलता है।

जनता आसानी से सम्राट के दर्शन कर सकती थी और अपनी दाद फ़रियाद उसके सामने पेश कर सकती थी। वज़ीर और ख़्वाजासरा भी जनता की दिक़्क़तें सम्राट तक पहुंचाते थे। सम्राटों को शिकार का शौक़ होता था और वह पैदल शेर का शिकार करता था।

गाने और बजाने का भी ख़ूब रिवाज था। क़रीब आठ-नौ तरह के बाजे होते थे—बांसुरी, ढोल, ढांलक, तम्बूरा, मंजीरा, हार्प, (एक तरह की सारंगी जिसमें ९ या १० तक तार होते थे) और लायर जिसमें ५ या ७ तार होते थे। लायर बिलकुल मिस्री आर्प से मिलता था। वे सितार, बीन और बैग पाइप भी बजाते थे। स्काटलैण्ड वालों के-से डबल बैग पाइप भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जून १९४१

का रिवाज था। असुरिया के संगीत का यूनानी संगीत पर बेहद असर पड़ा। बाजे के स्वर और आवाज़ को सुर मिलाते थे। राग-रागनियों का उन्हें ज्ञान था। दिजलात नदी के ज़रिये आर्मीनिया और दूसरे देशों से व्यापार होता था। असुरिया से तरह तरह का माल बाहर जाता होता हुआ मिस्र, क्रीट और यूनान वगैरह पहुंचाया जाता था। खुश्की और तरी से पांच या छै व्यापारी रास्ते थे। सोना, टिन, हाथी-दांत, सीसा, तरह तरह के कीमती पत्थर, मोती, देवदार की लकड़ी बाहर से असुरिया आती थी। कपड़ा और दूसरी चीज़ें बाहर भेजी जाती थीं। भारत और असुरिया में व्यापार हेरात और काबुल होकर होता था। भारत से शाल, मलमल, हाथी दांत, नील, गरम मसाले आदि चीजें असुरिया जाती थीं।

आमतौर लोगों की पोशाक में घुटनों तक का लम्बा कुरता होता था। जिसकी आस्तीन बहुत छोटी होती थी। कमर में चौड़ी पेटी बंधी होती थी। सर में लम्बे बाल होते थे जो पीछे कन्धों पर पड़े रहते थे। सिपाही और सरकारी कर्मचारी ही सर पर कोई चीज़ पहनते थे। बाकी लोग सर नङ्गा रखते थे। मज़दूरों की दाढ़ी एक सी होती थी। पुरोहित और ख़्वाजे डाढ़ी-मूंछ रखते थे। खुशहाल घरों की स्त्रियें धारीदार झालरदार पूरी आस्तीन का साया पहनती थीं। साए के ऊपर वे एक लबादा डालती थीं जो सामने से खुला होता था। बाल छोटे छोटे घुँघराले लच्छों में संवारे जाते थे और कान के पीछे कन्धों पर लटकते रहते थे। जापानी स्त्रियों की तरह एक काछा लपेटे रहती थीं उनकी लम्बी पोशाक को ज़मीन में लिथरने से बचाता था। उसके पैर या तो खाली रहते थे या वे जूतियां पहनती थीं। औरतें क़रीब क़रीब वही गहने पहनती थीं जो मर्द पहनते थे। उनको तरकियों में मोती पिरोते थे। उङ्गलियों में कांच की अंगूठियां पहनती थीं। दूर देखने के सुन्दर हैण्डलदार शीशे, जो मिस्र के शीशों से मिलते हैं, इकहरे और दुहरे दांतोंवाली कंघियां, कांच की खूबसूरत डिबियें और शीशियें असुरिया की खुदाई में काफ़ी मिली हैं। असुरिया की स्त्रियां अपने सिंगार के लिये मशहूर थीं और उनका सिंगार समझा जाता था कि हद को पहुँच गया था। औरतें और मर्द खुशबूदार तेल और इत्र इस्तेमाल करते थे।

वे ज्यादहतर रोटी खाते थे। उनका आटा पत्थर की चक्की से पीसा जाता था। अमीर लोग गेहूं की रोटी और ग़रीब जौ और गेहूँ मिले दुरें के आटे की रोटी खाते थे। रोटी के साथ वे दूध, मक्खन, शहद तेल या चरबी भी इस्तेमाल करते थे। गोश्त वे कम खाते थे। लेकिन कभी कभी मछली, बैल, भेड़ और बकरे का मांस खाते थे। फलों में छुआरे, अनार, अंगूर, सेब और अनन्नास उन्हें पसन्द थे। ये फल वहां बहुतायत से होते भी थे। अंगूर की बेहद टट्टियां थीं। अंगूर ताज़े भी खाए जाते थे और किशमिश या मुनक्का की तरह सुखाकर भी। शराब का रिवाज भी था।

दावतों का भी रिवाज था। कभी कभी मेहमान स्टूलों पर बैठते थे और खाना सामने मेज़ों पर परसा जाता था। दावतों में संगीत का भी रिवाज था। दावत की जगह को फूलों से सजाया जाता था। गुलाब या दूसरे फूलों की मालाएं मेहमानों के गलों में डाली जाती थीं।

असुरिया वालों को बाग़ लगाने का शौक़ था। बाग़ में वे एक लाइन में एक ऊँचा और उसके बाद एक छोटा दरख्त लगाते थे। दरख्तों में बराबर बराबर फ़ासला रखते थे। बाग़ों में एक-सी दूरी पर रास्ते होते थे जो एक दूसरे से मिलते थे। नहरों से इन बाग़ों में ख़ूब सिंचाई की जाती थी ताकि ये हमेशा हरे-भरे रहें। बाज़ बाज़ लोगों को ऊंचे ऊंचे चबूतरों पर बाग़ लगाने का शौक था।

फ़ौज

फ़ौज के तीन हिस्से होते थे। एक रथ पर लड़ने वाले, दूसरे घुड़सवार और तीसरे पैदल। मिस्री और यूनानियों की तरह ये लोग पीछे से रथ पर चढ़ते थे। रथ में दो या तीन घोड़े जुतते थे। एक लेखक लिखता है कि अकेले निनेवेह में १२ हज़ार घुड़सवार थे। एक दूसरा लेखक पूरे असुरिया में फ़ौज की तादाद में १७ लाख पैदल, दो लाख दस हज़ार घुड़सवार और दस हज़ार छै सौ रथ बताता है। प्रधान सेनापति 'तुरतान' कहलाता था। सेना के साथ सफ़रमैना पल्टन रास्ता साफ़ करती और बनाती चलती थी। फ़ौज वाले सिर के लिए हेल्मेट (helmet) इस्तेमाल करते थे। क़द आदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढालें होती थीं। हथियारों में धनुष बाण, भाले, तलवार, गदा, गोफ़न (ढेलवांस), कुल्हाड़ी, फ़रसा और खंजर होते थे। सम्राट क़रीब क़रीब हमेशा अपनी फ़ौज के साथ जाता था।

फ़ौज के साथ खेमे होते थे। अफ़सरों के ख़ेमों में टेबुल, काउच, कुर्सियां, स्टूल और इस्तेमाल के बर्तन होते थे। राजा कभी कभी फ़ौज के साथ रथ पर जाता था और कभी पालकी में। दीवाल तोड़ने के इंजन इस्तेमाल होते थे और कभी कभी ये सुरंग लगाकर दीवार तोड़ते थे। दलदल की जगहों में ये लोग सरकडो की नावें इस्तेमाल करते थे।

साम्राज्य

असुरिया का साम्राज्य अपने समय का बहुत बड़ा साम्राज्य था। रकबे में वह एक समय मिस्र और बाबुल के साम्राज्य से भी बड़ा था। कुछ दिनों के लिए उसमें सुसियाना, मीडिया, बाबुल, मेतीन, जगरास, उरार्तु, इराक़, आर्मीनिया, सुरिया, फ़िलस्तीन, कप्पाडोशिया, साइलीसिया, फ़ीनीशया, इदूमिया, अरब का उत्तरी और पूरबी हिस्सा, क़रीब क़रीब पूरा मिस्र और साइप्रस सब शामिल थे। कहीं कहीं वहां के राजा सालाना खिराज देते थे और कहीं कहीं असुरिया से गवरनर और दूसरे अफ़सर मुक़र्रर होते थे। सम्राट हर साल फ़ौज़ लेकर सब मुल्कों का सफ़र करता था और सबको काबू में रखता था।

असुरिया की सभ्यता को बयान करते हुए रालिन्सन लिखता है—

"वे मेहराब बनाने के तरीक़े से पूरी तरह परिचित थे। वे सुरंगों, ज़मीन के नीचे नीचे डाटदार नहरों और फालतू पानी को निकलने के तरीक़ों से परिचित थे। वे कुएं से मशीन के ज़रिये ऊपर पानी चढ़ाना जानते थे। वे लीवर और रोलर के उसूल से भी वाक़िफ़ थे। वे मीनाकारी और धातों पर इनेमल करना भी जानते थे। धातों के बर्तनों पर वे नक्काशी भी कर लेते थे। वे बड़ी चतुराई और ख़ूबसूरती के साथ हीरे जवाहरात काट सकते थे। उन्हें खुर्दबीन का भी ज्ञान था। हम आज-कल के ज़माने के लोग अपनी ईजादों की डींग हांकते हैं लेकिन असुरिया वालों की सभ्यता हमारी सभ्यता से कुछ बहुत पीछे नहीं थीं।"

लेकिन सभ्यता की इस ज़बरदस्त तरक्की के होते हुए भी असुरिया एक साम्राज्य प्रेमी देश था। साम्राज्य के क़ायम करने, बढ़ाने और उसकी रक्षा करने के लिए उसे वे सब तरीक़े इस्तेमाल करने पड़ते थे जिनसे पहले आमतौर पर बड़े बड़े साम्राज्य खड़े किये जाते हैं। असुरिया वालों ने बाबुल के शहर का सर्वनाश करके उसपर फ़िरात नदी की धारा फेर दी थी। मिस्र के हज़ारों बरस की पुरानी दस्तकारियों के संग्रह का उन्होंने नाश किया। हज़ारों और लाखों लोगों को अपने घर से सैकड़ों मील दूर दूसरे देश में लाकर उन्होंने नई दस्तकारी बसाया। सम्राट असुरबना पाल को हमने यहां विद्या और साहित्य के प्रेमी की हैसियत से देखा है। वह शान्ति पसन्द करता था। अपनी उम्र का अधिक हिस्सा उसने विद्वानों के साथ रहने में और पुस्तकों के जमा करने में बिताया। लेकिन उसके भी अपने देश के रिस्ते में साम्राज्य बनाए रखने के लिए क्या किया यह हम उसी के लफ़्ज़ों में बताना चाहते हैं। प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने भी किसी समय साम्राज्य की लालसा में कलिंग के लाखों आदमियों का खून बहाया था। असुरबना पाल अपने करतूतों को बयान करते हुए लिखता है—

"मैंने सूसा का नगर जीत लिया। यहीं सुसिया के देवताओं के बड़े बड़े मन्दिर थे। इसी नगर में मैंने कर सूसा के पैग़म्बरों ने सूसा के भले के लिये पेशी गोइयां की थीं। महाप्रभु 'असुर' और देवी 'इश्तर' की आज्ञा से मैं सुसा के सम्राट के महल में दाख़िल हुआ। मैंने अभिमान और उमंग के साथ उसका मुक़ाबला किया। मैंने वहां के ख़ज़ाने खुलवाए जिनमें अनन्त से आज तक इलाम के राजाओं ने बेशुमार चांदी, जवाहरात और धन दौलत जमा कर रखी थी। इस ख़ज़ाने पर मुझसे पहले किसी शत्रु का हाथ न था। मैंने उस सारे ख़ज़ाने पर कब्ज़ा कर लिया।

"इलाम के राजाओं ने सात बार सुमेर और अक्कद पर हमला किया था और यहां से वे बेशुमार धन दौलत उठा ले गए थे। हीरे और मोती, नीलम और पन्ने, मुकुट और राजदण्ड, शाही ज़ेवर इन सबका इलाम के ख़ज़ाने में चमक रहा था। वह सब दौलत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून १९४६]

हजार साल से ज़्यादा में इलाम नरेशों ने जमा की थी। कीमती कपड़े और ज़ेवर, जड़ाऊ हथियार, योद्धाओं के पहनने के गहने, जड़ाऊ फर्नीचर, सुन्दर अलमारियां जिन पर सजावट की चीजें रखी जाती थीं, खाने पीने के सोने-चांदी के बर्तन, कीमती सिंगारदान, रथ, गाड़ियां, पालकियें, जिन पर ख़ूबसूरत काम किया हुआ था, घोड़े और बड़े बड़े खच्चर, जिन पर सुनहली और चांदी की जीनें कसी हुई थीं—सबका सब मैं इलाम से असुरिया ले आया।

"सुसा का जिग्गुरात (ऊंचा मन्दिर) जिस पर लाजवर्द जड़ा हुआ था मैंने गिराकर ढेर कर दिया। जिग्गुरात की कांसे से जड़ी चमकती हुई मीनार मैंने नष्ट कर दी। सुसा के देवी देवताओं शुशिनाक, शुमुद, लगमरु, [illegible], अम्मान कसिवर, उदूरन, सपक, रगिबा, सुन [illegible], कर्ष, किरसमस, शुदानु, बिलाल, पाणीनि तिम्र, [illegible], किन्द कर्पु वग़ैरह को मैं मय उनके पुरोहितों, पूजा के सामान, सोने-चांदी और जवाहरात के बर्तन और देवताओं की बैलगाड़ियों के असुरिया ले आया।

'सुसा नरेशों की सोने चांदी वगैरह की तीस मूर्तियां और उनके देवी देवताओं की क़ीमती मूर्तियां मैं असुरिया उठा लाया। मैंने मन्दिरों के द्वारपालों की मूर्तियां और पूजा के बैलों की मूर्तियां नष्ट कर दीं। इलाम के एक एक मन्दिर को मैंने ज़मीन से मिला दिया। दूसरे देवी और देवताओं की मूर्तियों को मैंने चूर कर धूल में मिला दिया। उनके पाक क़बरिस्तानों में जहां कोई अजनबी न जा सकता था मेरी जां निसार फ़ौज (shok troops) ने घुसकर क़बरों को खोद डाला और लाशों को आग की लपटों में फेंक दिया। इलाम के और आजकल के राजाओं के कफ़न उन राजाओं के जिन्होंने कभी महाप्रभु असुर की पूजा नहीं की और जिन्हें मेरे पूर्वजों ने शान्ति से जीवन बिताने दिया, मैंने खुलवा डाले और उनकी हड्डियां मैं असुरिया उठा लाया। उनकी 'एदम्मु' (आत्मा) कफ़न से निकलकर अब सदा के लिये तड़पती फिरेगी। मैंने उनके पिंजरों के पास से पानी के बर्तन और दूसरी खाने की चीज़ें हटा लीं। अब उन नरेशों की आत्मा सदा भूखी प्यासी रहेगी।

"एक महीना २५ दिन के लगातार सफ़र में जो भी शहर रास्ते में पड़े मैंने नष्ट कर दिए। मीठे पानी के चश्मों और कुओं में मैंने नमक छुड़वा दिया और सारे देश में कटीली झाड़ियों के बीज बुवा दिये। राजा के लड़के, राजा की बहिनें, शाही ख़ानदान के बूढ़े और जवान, शहर के अफ़सर, धनुष बाण वाली फ़ौज के मुखिया, प्रान्तों के गवरनर, सारथी, अमीर, तीरन्दाज़, बरकन्दाज़ जितने भी कारीगर मिले सब, और सुसा के हर बाशिन्दे, मर्द और औरत, छोटे और बड़े, घोड़े, खच्चर, गधे, भेड़ें, गाएं, भैंसें जिनकी तादाद टिड्डी दल की तरह थी—इन सबको मैं असुरिया ले आया।

"आइन्दा के लिए असुर और इश्तर की कृपा से मेरे जो वारिस असुर और इश्तर के इस देश असुरिया में राज्य करेंगे वह मेरे इस शिला-लेख को जो उस वक्त तक खण्डहर के ढेर में छिप जायगा और जिस पर मेरा, मेरे बाप का और मेरे दादा का नाम लिखा है वे उस ढेर से निकालकर पढ़ें और इस पर तेल चुपड़ें। वे इसके सामने बलि दें और इसे खण्डहर से उठाकर अपनी इमारत के शिला-लेख के बराबर में रखें। सब देवी-देवता मुझे और मेरे उस योग्य वारिस को शक्ति दें जो मेरे शिला-लेख का आदर करे।

"जो मेरा वारिस इस शिला-लेख को नष्ट करेगा या इस शिला-लेख को जिस पर मेरा, मेरे बाप और दादा का नाम लिखा है अपने शिलालेख की बराबरी में न रखेगा उससे अष्पु और सिन, शमश, अदाद और बेल, नाबू, निनेवेह की इश्तर, अरबेला की इश्तर, इनुर्ता, नरगल और नुश्कु ख़ौफ़नाक बदला चुकाएंगे।"

सम्राट असुर बनापाल का यह शिला-लेख सन् ६३९ ई० पू० का लिखा हुआ है।

सम्राट असुर बनापाल असुरिया का आख़री बड़ा सम्राट था। ईरानी उवक्षत्र और बाबुली नबुपलेश्वर ने मिलकर किस तरह निनेवेह के पुराने सुन्दर नगर को एक मिट्टी का टीला बना दिया और उसके साथ साथ असुरिया के साम्राज्य को सदा के लिए ख़त्म कर दिया उसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। जिन तरीक़ों से असुरिया के सम्राटों ने दूसरे देशों की आज़ादी नष्ट की क़ुदरत के कठोर हाथों ने उन्हीं तरीक़ों से असुरी साम्राज्य को भी नष्ट कराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैक्सिको का सामाजिक जीवन

पण्डित पुरुषोत्तमलाल

मेक्सिको में दासों के विभिन्न भेद थे। जो व्यक्ति युद्ध में बन्दी होते और जिन्हें एक नियत समय तक बलिदान के लिये जीवित रक्खा जाता था, दास कहलाते थे। किसी अपराधी को उसके अपराध-निर्णय तक दास समझा जाता था। ऋणी मनुष्य अथवा ऐसे बच्चे जिन्हें उनके माता-पिता या अभिभावकों ने आर्थिक कष्ट के कारण बेच डाला हो दास थे। ऐसे व्यक्तियों के साथ इतनी सहानुभूति अवश्य रक्खी जाती थी कि यदि किसी मनुष्य ने अपने एक पुत्र को आर्थिक कष्ट के कारण बेच डाला हो और वह अपने स्वामी की कुछ समय तक सेवा कर चुका हो तो ऐसे बालक के माता पिता को अधिकार था कि वे अपने इस पुत्र के बदले दूसरे पुत्र को दास बनाकर पहले को स्वतन्त्र करा लें। दूसरे पुत्र को भी इसी प्रकार तीसरे से बदला जा सकता था। एक व्यक्ति के जीवन पर्य्यन्त दास बने रहने की अपेक्षा यह दास वृत्ति, थोड़े थोड़े समय तक, परिवार के अन्य व्यक्ति बटा सकते थे। दासों के साथ व्यवहार कठोर न था। दासत्व काल में वे निजी सम्पत्ति रख सकते थे और बहुधा इन दासों के भी दास होते थे। इसके अतिरिक्त दासों की सन्तान दास नहीं कहलाती थी। मेक्सिको में प्रत्येक व्यक्ति जन्म से स्वतन्त्र माना जाता था।

डाक प्रबन्ध

मेक्सिकनों का दूसरा प्रशंसनीय कार्य्य उनका डाक प्रबन्ध था। इस देश में घोड़े नहीं थे और रेल अथवा तार का तो समय ही कहाँ से आया था। इस पर भी ये लोग अपने पत्र और कभी कभी भारी भारी पार्सलें एक ही दिन में चार चार सौ मील के अन्तर पर पहुँचा दिया करते थे। इनका दिन भी हमारे दिन के बराबर था। डाक की चौकियाँ, मेक्सिको में छः छः मील की दूरी पर बनी हुई थीं। हमारी भाषा की भाँति मेक्सिकन भाषा में शब्द न थे। ये लोग संकेतों अथवा भिन्न भिन्न के रंगीन चित्रों द्वारा पत्र लिखा करते थे। इन्हीं संकेतों को लिये हुए डाकिया एक चौकी से दूसरी चौकी तक, अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर दौड़ता चला जाता था। वहाँ दूसरा डाकिया पहले से तैयार रहता और इस आगन्तुक से डाक लेकर आगे की चौकी की ओर दौड़ जाता था। इस प्रकार सारे देश में यथासमय डाक पहुंच जाया करती थी। (मेक्सिकनों को बचपन ही से दौड़ने का अभ्यास कराया जाता था।) सारांश यह कि आज जो मछली चार सौ मील दूर समुद्र में तैर रही हो वह कल बादशाह के भोजन में दिखाई दे सकती थी।

युद्ध और योद्धा

मेक्सिकनों का सर्वोत्तम मनोरंजन युद्ध था। शासक, जैसा ऊपर वर्णन हो चुका है एक अत्यन्त अनुभवशील साहसी योद्धा होता था और सबसे बड़ा देवता भी युद्ध का देवता ही समझा जाता था। युद्ध की विशेषता अधिकाधिक जीवित बन्दियों की संख्या के अनुसार समझी जाती थी। इन बन्दियों को, क्योंकि इन्हें युद्ध देव के मन्दिर में बलिदान किया जाता था, इसलिये ऐसी ऐसी युक्तियाँ सोची जाती थीं जिनसे युद्ध में उन्नति हो और योद्धाओं का सम्मान बढ़े। धर्म-शास्त्र के अनुसार युद्ध-क्षेत्र में मृत मेक्सिकन सीधा सूर्य-लोक में पहुंच स्वर्गीय ऐश्वर्य प्राप्त करने का अधिकारी था।

योद्धाओं की वर्दी अत्यन्त सुन्दर और बहुमूल्य होती थी। प्रत्येक सिपाही वर्दी के नीचे डोरे की बुनी हुई एक चुस्त बंडी पहनता था जिससे शत्रु के तीरों का उसके शरीर पर प्रभाव न पड़ सके। ये बनियान इतने पक्के, हल्के, कोमल और टिकाऊ होते थे कि स्वयं स्पेन वालों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की थी और अपनी सेना के लिये भी इसी प्रकार के बनियाइन बनवाये थे।

यहाँ के राजा और सर्दार लोग इन बनियानों के स्थान पर कभी सोने चांदी की चादर की बनी हुई जाकेट पहनकर उस पर परों का बना हुआ बहुमूल्य भारी कोट पहनते थे। मेक्सिकन लोग परों के सुन्दर वस्त्र बनाने की कला में अत्यन्त निपुण थे। पशु-पक्षियों के सिरों की आकृति की लकड़ी से बनी हुई टोपियां पहनने का भी इन लोगों में रिवाज था जिनमें भाँति भाँति के रत्न जड़े रहते थे और ऊपर की ओर मनोहर रंगों के कोमल कोमल पंख। सैनिक गले में सोने के कठले, बाजू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े बालों पहनते थे। सेना के प्रत्येक समूह में ८००० सैनिक होते थे। कप्तान के अधीन एक अलग कंपनी होती थी जिसके अधिकार में ३००० से ४००० तक सैनिक रहते थे। प्रत्येक विभाग का चिन्ह विभिन्न रंगों के सुन्दर परों से बनाया जाता था जिस पर उस विभाग का नाम तथा नम्बर मेक्सिकन भाषा में लिखा होता था। जब सेना किसी शत्रु पर धावा करने को चलती होती तो चाँदी, सोने और परों के मुकुट, सैनिकों के कपड़ों और चमकते हुए हथियारों से एक विचित्र दृश्य दिखाई देने लगता था।

इनका सेना-संचालन भी बड़े अच्छे ढंग से होता था। प्रत्येक टुकड़ी उत्साहपूर्वक, सुव्यवस्थित रूप से युद्ध के लिये प्रस्थान करती और फौजी बाजे के साथ सारे योद्धा प्रसन्न मुख जोशीले राग गाते हुए आगे बढ़ते थे। शत्रुओं को युद्ध में मारने की अपेक्षा मेक्सिकन जीवित शत्रु पकड़ने का अधिक प्रयत्न करते थे। युद्धभूमि में पीठ दिखाना इन लोगों ने सीखा ही न था। प्रत्येक सैनिक की वीरता और साहस का अनुमान उसके द्वारा पकड़े गये जीवित बन्दियों से लगाया जाता था। इसलिये एक बार पकड़े हुए बन्दी को धन के बदले छोड़ देने का इनके यहाँ नियम न था। राज-व्यवस्था और सैनिक-व्यवस्था और उसके नियम भी अत्यन्त कठोर थे। तनिक आज्ञोल्लंघन पर मृत्यु-दण्ड दे दिया जाता था। अपनी पलटन को छोड़ना, बिना संकेत किये युद्ध बन्द करना, दूसरे सिपाही के पकड़े हुए बन्दी को छीन लेना प्राण-दण्ड के अपराध थे। एक राजा ने अपने दो पुत्रों को इसी अन्तिम अपराध पर (क्रोध भर जाने के पश्चात) अपने ही हाथ से मार डाला।

सेना में डाक्टरों और कम्पाउंडरों का भी अच्छा प्रबन्ध था। स्पेन वालों ने इन लोगों की युद्ध-विद्या और सुप्रबन्ध की बहुत प्रशंसा की है।

प्रासाद, नगर तथा पालतू पशु-पक्षी

मेक्सिकनों के देवता, मन्दिर और उनकी पूजा के विषय साधनों को लिखने से पहले थोड़ा सा विवरण उनके नगर, जन संख्या, जीविकोपार्जन के साधन आदि के विषय में जान लेना ठीक होगा।

मेक्सिको नगर जैसा ऊपर वर्णन हो चुका है एक बड़ी झील के टापू पर बसा हुआ था। शहर से झील के किनारे तक पहुँचने के लिये एक बड़ा ही सुदृढ़ पुल बना हुआ था जिसमें तीन स्थानों पर नाव निकलने के लिये मार्ग रक्खा गया था। नगर की गलियाँ सीधी और चौड़ी थीं जिनके दोनों ओर पत्थर के सुन्दर सुन्दर मकान बने हुए थे। मकान अधिकतर एक ही मंजिल के बने थे पर कहीं कहीं दो-चार अमीरों के दुमंजिले महल भी दिखाई देते थे। छोटे और साधारण घरों में भी चौड़े चौड़े, खुले, हवादार आंगन रक्खे जाते थे जिनमें पानी के फ़व्वारे उछलते रहते थे। गरीबों के मकान भी पत्थर के ही बने हुए थे परन्तु पटाव बहुत नीचा था। कहीं कहीं ईंटों के भी मकान थे जिनकी छतों पर लकड़ी का पटाव था। बाज़ार खूब खुला हुआ था और सड़क के दोनों ओर थोड़ी थोड़ी दूर पर छोटे छोटे बग़ीचे लगे हुए थे जिनमें तरह तरह के फूल बारहो मास खिले रहते थे। राजमार्ग पर कहीं कहीं पत्थरों का पटाव था जिसके बीच में साफ पानी की नहरें बहती थीं। इन नहरों पर कई सुन्दर पुल बने हुए थे और इनके नीचे छोटी छोटी डोंगियां जल-विहार के लिये बँधी रहती थीं।

हरी तरकारियाँ और तर मेवा के पौधे यहाँ बहुधा पानी पर बोए जाते थे। हलकी हलकी लकड़ियाँ बेड़े की तरह बाँधकर उस पर पतली घास बिछा दी जाती थी और फिर नर्म मिट्टी डालकर उसमें बीज बो दिया जाता था। ये चलती फिरती खेतियां बहुधा दो-दो सौ फीट तक लम्बी और तीन से लेकर चार फीट तक चौड़ी होती थीं। खेत का मालिक अथवा रखवाला भी इसी पर अपनी झोपड़ी छा लेता था और बल्ली के सहारे अपनी खेती को एक स्थान से दूसरे स्थान तक खेकर ले जाता था।

बादशाह मोटे ज़मान का महल इतना सुदृढ़, सुन्दर, सुसज्जित और विशाल था कि 'कोर्टियस' (मेक्सिको का विजेता) लिखता है कि इसकी टक्कर का स्पेन भर में कोई महल न था। इस राज-भवन की छत इतनी लम्बी चौड़ी थी जिस पर तीस घुड़सवार घोड़ों पर बैठकर भली भाँति युद्ध का अभ्यास कर सकते थे। महल के दरवाजों में पच्चीकारी का काम था जिसमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे। छत सुगन्धित लकड़ी की बनी हुई थी जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर खुदाई का बारीक काम था। महल के एक ओर शस्त्रालय था जिसमें अनेक प्रकार के विचित्र अस्त्र-शस्त्र भरे हुए थे। दूसरी ओर चिड़ियाघर था। भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक पक्षी इसमें पाले गये थे। इन पक्षियों की संख्या और चिड़ियाघर की लम्बाई चौड़ाई का अनुमान आप इससे लगा लें कि केवल इन पक्षियों की देख रेख के लिये तीन सौ मनुष्य नियत थे। जंगली जानवरों के लिये पिंजरे अलग बने हुए थे। इन पशुओं के आहार के लिये प्रतिदिन पाँच सौ जीवों की हत्या की जाती थी। जंगली जानवरों के पास ही पालतू जानवरों का स्थान था। यहाँ किसी पशु के लिये नर्म नर्म परों, किसी के लिए हरी घास और किसी के लिये कोमल बारीक रेत का बिछौना बिछा रहता था। पशु-पक्षियों के लिये दाने पानी के हौज बने हुए थे और जो आहार अथवा वस्तु जिस पशु पक्षी के लिये आवश्यक होती वह उसे प्रतिदिन दी जाती थी।

पशु-पक्षियों के अतिरिक्त विचित्र आकृति और प्रकृति के मनुष्य तक इस अजायब घर में पाले गये थे। अजायब घरों के चारों ओर बड़े बड़े बाग़ लगे हुए थे जिसकी दीवारों पर तरह तरह की लताएं चढ़ी हुई थीं और जगह जगह फुहारे चलते थे। हौज़ों में रङ्ग-बिरङ्गी छोटी-बड़ी अनेक भाँति की मछलियाँ तैरा करती थीं।

राजाओं का भोजन

बादशाह सदा एकान्त में भोजन करता था। जिन सर्दारों की भोजन परोसने की बारी होती वे एक ही बार में थाल सजा कर कमरे से बाहर निकल जाते थे और फिर कोई अन्दर न आने पाता था। बादशाह के भोजन में तीन सौ प्रकार के व्यंजन नित्य बनते थे। इनमें से जो कुछ उसे पसन्द आता खाता था। केर्टियर्स का एक फौजी सर्दार लिखता है कि कभी कभी बादशाह के भोजन में छोटे बच्चों का मांस भी रक्खा जाता था परन्तु साधारणतया नित्य के भोजन में मुर्गी, सुअर, खरगोश, कबूतर, हरिण और पक्षियों के मांस ही रहते थे।

बादशाह चौकी पर बैठकर भोजन करता था। पास की मेजों पर, जिन पर धुली हुई चादरें बिछी रहती थीं भोजन चुना रहता था, भोजन के समय चार कोमलांगी सुन्दर दासियां उसके हाथ धुलाने को खड़ी रहती थीं। चौकी पर बैठते ही दर्वाजों में भारी परों के पर्दे डाल दिये जाते थे ताकि बादशाह को नज़र न लगे। भोजन के समय किसी भी प्रकार का शोर गुल अथवा खाँसी को आवाज़ न होने पाती थी। ऐसे समय आहट करने वाले व्यक्ति को तुरन्त मार डाला जाता था।

बादशाह का भोजन प्रतिदिन काली मिट्टी की तश्तरियों में परोसा जाता था क्योंकि एक बार किसी बर्तन में वह खाना खा लेता वह दूसरी बार काम में नहीं लिये जा सकता था। ख़र्चा अधिक पड़ने के कारण सोने-चांदी के बर्तनों में बादशाह भोजन नहीं कर सकता था। भोजन के कमरे में सुगन्धित बत्तियां जला करती थीं जिनसे बिलकुल धुंआ न होने पाता था। मांस और रोटी के पश्चात बादशाह के सामने मिठाइयां रक्खी जाती थीं। फिर मेवे और फल लाए जाते थे और अन्त में शराब। बादशाह मोटे ज़माने शराब नहीं पीता था इसलिये रीति के अनुसार शहद चख लिया करता था। शहद का प्याला और चम्मच सोने के होते थे। जिनके दस्तों पर कछुए की कामदार हड्डी लगी रहती थी।

भोजन करने के पश्चात् वे ही दासियाँ बादशाह के हाथ धुलाती थीं।

बादशाह नित्य नहाता था और नहाने से पहले कोई चीज़ नहीं खाता था। वह दिन में केवल एक बार कपड़े बदलता और जो कपड़ा एक बार उतार देता दुबारा न पहनता था।

भोजन के पश्चात् बड़ी सुगन्धित तम्बाकू बादशाह के सामने लाई जाती थी। तम्बाकू पीते पीते जब नाक से धुआँ निकालने लगता तो यह संकेत था कि नींद आ रही है। तुरन्त ही सारे सर्दार हट जाते और बादशाह सो जाता था।

मेक्सिको का व्यापार

राजप्रासाद के आसपास कोई दूकान नहीं इसलिये आओ यहाँ से बाज़ार की ओर चलें। एक बड़े अहाते के अन्दर चारों ओर बड़ी बड़ी दूकानें एक दूकान केवल एक ही प्रकार के माल से भरी और जिस प्रकार का माल जिस दूकान में है उसके चिन्ह उस दूकान के दरवाज़े पर पहचान के लिये हुआ है। किसी दूकान में यहाँ सोने के केवल बर्तन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनते हैं तो किसी में स्वर्ण के आभूषण और किसी में चांदी के खिलौने। खिलौने, यद्यपि, पशु पक्षियों की नक़ल के ही बनाए जाते हैं किन्तु इनकी कारीगरी देखने योग्य है। धातुओं के मिलाने की कला में मेक्सिकनों की निपुणता अराहनीय है अर्थात् यदि किसी पक्षी की शक्ल बनाई कोई खिलौना बनाया गया है तो उसमें भिन्न भिन्न धातुएं इस प्रकार मिलाई गई हैं कि वह मिला हुआ मसाला स्वयं पक्षी के प्राकृतिक रंग का बन गया है। यह क्रिया बड़ी कठिन है वरन् यह कहना चाहिये कि संसार के किसी देश में ऐसी कारीगरी देखने में नहीं आई। इसके अतिरिक्त इन खिलौनों में एक और विशेषता पाई जाती है कि प्रत्येक जानवर का स्वभाव उसकी आकृति से प्रकट किया जाता है। जैसे, यदि किसी कारीगर ने एक कुत्ता बनाई है तो वह अगले दो पैरों से अपना सिर खुजला रही है, कुत्ता दुम हिला रहा है, पक्षी पर खुजला रहा है इत्यादि इत्यादि।

बड़े बड़े बर्तन सोने और चांदी के ढले हुए हैं जिन पर सुन्दर चित्रकारी की गई है। कोई सोने के कटोरे इतने बड़े हैं कि एक आदमी उनको अपनी कोली में नहीं भर सकता। लकड़ी के प्याले भी बड़े हलके और सुन्दर बने हुए हैं। मिट्टी के बर्तनों पर परों का काम हो रहा है और वे छोटे-बड़े सभी प्रकार के मिल सकते हैं। कपड़ों के थान, रुई की गांठें, सादे और रंगीन कपड़े, सिली-सिलाई पोशाकें, परदे और गिलाफ़ आदि सब अलग दूकानों पर मिल रहे हैं। बाज़ार के दूसरे भाग में बेंत, कुर्सी, बेंच, जलाने की लकड़ी, कागज के बने हुए हुक्के, तम्बाकू, टीन और तांबा की बनी हुई कुल्हाड़ियां और भांति भांति के अस्त्र-शस्त्र दिखाई देते हैं। धनुष-बाण, चौड़ी दांतेदार तलवारें सब तांबे के बने होते हैं।

किसी स्थान पर जंगली जानवरों की खालें बिकती हैं तो कहीं स्त्रियां मछली और सिंघाड़े बेच रही हैं। यहां की झीलों में एक प्रकार का कन्द पैदा होता है जो देखने में काली मिट्टी के ढेले के समान दिखाई देता है परन्तु स्वाद में बहुत मीठा और खुशबूदार होता है। किसी ओर सब प्रकार के मांस की दूकानें हैं तो कहीं अनाज के ढेर लगे हैं और कहीं पका पकाया खाना बिक रहा है। एक ओर शराब और नशीली चीज़ें बिक रही हैं। एक पेड़ के पत्तों के रस से यहां शराब बनाई जाती है जो फलों की शराब से अधिक नशीली होती है। इसे पिलकी कहते हैं।

एक ओर नाई की दूकानें हैं और दूसरी ओर पंसारियों की यहां सौदा नकदी से नहीं मिलता। कुकु नामक मेवा की छोटी छोटी थैलियां (जिनका मूल्य उनके आकार पर निर्भर है), छोटे छोटे टीन के टुकड़े जिन पर 'T' के समान कोई अक्षर लिखा होता है, पक्षियों के पर जिनमें स्वर्ण भस्म भरी रहती है प्रत्येक वस्तु से बदले जा सकते हैं।

यहां बाट तराजू बिलकुल नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु नाप और संख्या से बिकती हैं। बाज़ार में प्रतिदिन चालीस चालीस हज़ार मनुष्य क्रय-विक्रय करते रहते हैं फिर भी किसी प्रकार का शोर-गुल नहीं होता। बेईमानी का दण्ड देने के लिये बाज़ार में तुरन्त ही मजिस्ट्रेट पहुंच जाता है।

स्त्री-पुरुष सभी बाजारों में घूमते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का रंग अधिक उज्ज्वल है। इनकी आंखें बड़ी बड़ी लाली लिए होती हैं परन्तु चेहरे पर एक प्रकार की उदासी और गंभीरता-सी दिखाई देती है। बाज़ार में छेड़-छाड़ या हंसी ठट्ठे का कहीं नाम भी नहीं है। स्त्रियों के केश सदा कपड़े से ढके रहते हैं। बड़े घरों की स्त्रियां बालों में चांदी के फूल, जवाहरात और मोती गूंथती हैं। ये स्त्रियां एक ही साथ कई कई चोलियां पहन लेती हैं जिनकी बाहों पर सुन्दर कसीदा होता है। इनकी लम्बाई किसी नाप पर निर्भर नहीं है। चोलियों के ऊपर एक ढीला कपड़ा पहना जाता है जो टखने तक लटकता है। पुरुष चुग़े के समान टख़नों तक लटकता हुआ कपड़ा जो गले के पास से मिला हुआ होता है, पहनते हैं। कपड़े की विशेषता पहनने वाले की आर्थिक दशा पर निर्भर है। चुग़े के अन्दर तंग जाकेट पहनी जाती है जो कभी रुई की कभी बालों की और कभी परों की बनी हुई होती है। इस जाकेट में कमर के पास एक मोटा फीता कमर बांधने के लिये लगाया जाता है।

इन विचित्र मनुष्यों के रहन-सहन का वर्णन पढ़ने पर पाठकों ने समझ लिया होगा कि मेक्सिकन असभ्य न थे। इनके नगर अच्छे बसे हुये थे और प्रत्येक नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुन्दर सुन्दर मकान बने हुए थे। राजव्यवस्था और न्यायालय के नियम देश की परिस्थिति के अनुसार ही बनाये गए मालूम होते थे। सेना असंख्य थी और मजिस्ट्रेट ही न्यायाधीश था। यह लोग व्यापार भी करते थे। सारांश यह कि जो जो बातें किसी सुव्यवस्थित और सभ्य देश में होनी चाहियें वह सब इनके यहां प्रस्तुत थीं। ये लोग विवाह करते थे, गुरु बनाते थे, एक दूसरे के यहां मिलने जाते थे और बड़े बड़े जातीय उत्सव मनाया करते थे। सबसे बड़ी बात स्त्रियों के साथ इनका सुसभ्य व्यवहार था। ये सदा उनका सम्मान करते थे जो सभ्यता की मुख्य पहचान है। किन्तु इन सब बातों के होते हुए भी इनका शहर अत्यन्त भयानक और घृणा के योग्य था। इनके धार्मिक कृत्य जिनका आगे वर्णन किया जायगा बहुत ही भयङ्कर थे। मनुष्यरक्त शहर की गलियों में बहते रहना एक साधारण बात थी और ऐसे ही नर-भक्षण भी।

नवचेतना

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

कह रहे हैं मीत अब बदला ज़माना
प्रेम-विरही की व्यथा कवि अब न गाना;
मूल्य-परिवर्तन हुआ नवचेतना है
गा सको तो मूल स्वर ही गुनगुनाना।

अन्यथा वाणी तुम्हारी क्षुब्ध होगी
महद् मौलिक सृष्टि में अवरुद्ध होगी;
बुद्धि का वह दृष्टि-पथ देखो ज़रा तो
सीमिता अभिव्यक्ति यों ही क्षुद्र होगी।

देश-काल-ससीमताएं कँप गई हैं
रूप-सौरभ, वासना सब झँप गई हैं;
बीन के स्वर, नूपुरों की रुनुन, रुनझुन
मनुज की चीत्कार से फिर तप गई है।

यह विषम संक्रान्ति है, समताल छोड़ो
यह अनूठी भ्रान्ति है, सुख जाल तोड़ो;
जोड़ लो बस नाश से नाता न झिझको
राजरथ सुनसान पथ की ओर मोड़ो।

आज नभ से भूमि तक सुनसान है पथ
आज कवि की उर्वरा वाणी हुई श्लथ,
आज क्यों बहिरंग-अन्तर रंग फीके
क्यों अकेला नाचता निर्लज्ज मन्मथ।

फरफराहट विहग-पंखों की न ओझल
दृष्टि-पथ पर रूप सौरभ है अचंचल;
प्रकृति निश्चल है, अचल हैं स्वर सभी तो
किसलिये अज्ञात मन में व्यर्थ हलचल।

भूमि वैसी ही भुवन में है न अन्तर
प्राण तेरे ही हुए हैं आर्त, जर्जर;
श्वास से अब वाष्प-शक्ति उतर चली है
ज्वाल-जीवन भी इसीसे मन्द, कृषतर।

शून्य प्रतिविम्बित दिखा है कवि स्वयं का
मृत्यु की प्रतिध्वनि स्वयं यह स्वर न यम का;
यों न अपने आपमें नैराश्य देखो
उठो, जागो फट रहा है कल्प तम का।

प्राणदायी, ओजमय किरणें निरखकर
क्षितिज से बाहें पसार रहीं उभरकर;
करो अंगीकार, नवयुग की निशानी
धरो गठरी वह पुरानी इस लहर पर।

मद नहीं है, नहीं है मधु, सत्य है यह
रस नहीं है, विरस है व अनित्य है यह;
अग्नि है पर ये स्फुल्लिंग समेट तो लो
राष्ट्र जीवन दीप्ति है, अब मर्त्य है यह।

तुम उठो, उठकर बढ़ो यों मन न मारो
मरण पर बहुमूल्य यह जीवन न हारो;
आपदाएं आयेंगी, फिर आयेंगी ही,
किन्तु अपनी सुगमता ले पथ बुहारो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिलीशरण गुप्त में आदर्श नारी की भावना

कुमारी राजेन्द्र निगम एम० ए०

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में आदर्श नारी की प्रेरणात्मक कल्पना में चार तत्व प्रमुख हैं—

१—प्राचीन आदर्शों का प्रभाव

२—रीतिकाल की भावना से तीव्र विरोध

३—सामयिक उदार दृष्टिकोण

४—मौलिक दृष्टिकोण

भारतवर्ष के आश्रमवासी ऋषियों ने जीवन-यापन के लिए वर्णाश्रम धर्म की सुन्दर योजना मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ प्रस्तुत की थी। गुप्त जी की नारियों की गति इसी समाज के अन्दर है। इस समाज का जीवन मर्यादापूर्ण है। वर्णाश्रम की व्यवस्था मर्यादा से जरा भी स्खलित नहीं होने पाई है। प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित वर्ग के लिये स्थिर किये हुये कर्त्तव्यों को पालन करने के लिये बाध्य है। वह जन्मान्तर कर्म फल भोग के सर्वसम्मत आदर्शों का पालन करता हुआ, शास्त्रानुमोदित व्यवस्था के अनुसार ही जीवन के क्षेत्र में अग्रसर है। आर्य भारतवर्ष में नारी के जो आदर्श ऋषियों द्वारा निर्धारित कर दिए गये थे उसी पर गुप्त जी के नारी भावना के आदर्श केन्द्रित हैं। उनके चरित्रों में अनियंत्रित वृत्तियां और व्यक्तिगत स्वाधीनता नहीं हैं। गुप्त जी के विचार इस उक्ति से साम्य रखते हैं कि—"न गृहं गृह मित्याहु : गृहिणी गृह मुच्यते" घर वास्तव में घर नहीं बल्कि गृहवाली से घर है। वे पारिवारिक मर्यादा के भीतर से गति पाने में संतोष पाते हैं। उनके अनुसार कर्तव्यशीलता ही जीवन का सुख से बड़ा गौरव है। विघ्नों पर विजय प्राप्त कर सुख का अर्जन एवं उपभोग पाश्चात्य आदर्श है परन्तु भारतीय नारियों के लिए आदर्श दुखों पर विजय प्राप्त कर सुख का अर्जन एवं उपभोग करने में सुख की चरम परिणति नहीं है वरन उसको त्यागने में है। किन्तु इस त्याग में भी मर्यादा अनिवार्य है। गुप्त जी मर्यादा के सम्बन्ध में कहते हैं—

निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे

आर्य संस्कृति के अनुसार स्त्रियाँ अर्द्धाङ्गिनी हैं। उनका स्थान वाम पार्श्व है। वे पुरुष जीवन की

... ...

मुझ अर्द्धाङ्गिनी बिना अभी।
हैं अर्द्धाङ्ग अधूरे ही,
सिद्ध करो तो पूरे ही।

वे गृहलक्ष्मी हैं पर राजनीति आदि के मामलों में भाग नहीं लेतीं। घर के बाहर उनका क्षेत्र नहीं है पर आवश्यकता पड़ने पर वे रण-चंडी का रूप धारण कर सकती हैं। पातिव्रत धर्म में वे पूरी आस्था रखते हैं—

उड़ जायेगा दग्ध देश का,
सती श्वास से ही बल-वित्त।

अभिमन्यु के बिना उत्तरा का जीवन शून्य है पर उसे अपने सतीत्व में विश्वास है। इसलिये वह उसे अवश्य पायेगी—

तज दो भले ही तुम मुझे मैं तज नहीं सकती तुम्हें
वह थल कहाँ पर है जहाँ मैं पा नहीं सकती तुम्हें
है विदित मुझको वह्नि-पथ त्रैलोक्य में हो तुम कहीं
हम नारियों की पति बिना गति दूसरी होती नहीं।

मृत्यु अभिमन्यु को उससे अलग कर देती है। उसकी आत्मा दुख से कातर हो उठती है और उसका हृदय चीत्कार कर कह उठता है—

हे उत्तरा के धन, रहो तुम उत्तरा के पास ही।

वेदों में विवाह का जो आदर्श था उसी आदर्श पर गुप्त जी की सामाजिक भावनायें स्थित हैं। 'साकेत' में उन्होंने अपने विचार स्पष्ट रूप में व्यक्त किए हैं। साथ ही साथ विधवाओं के आदर्श के भी उज्जवलतम संकेत दिए हैं—

धन्य वह अनुराग निर्मल राग
और शुचिता सा अपूर्व सुहाग
अग्निमय है अब तुम्हारा याग
सह मरण के धर्म से भी ज्येष्ठ
आयु भर स्वामी मरण है श्रेष्ठ

भारतीय संस्कृति में माता का शृङ्गार वर्जित है। गुप्त जी ने भी ऐसा ही किया है—सीता को मातृ स्वरूप समझकर उनके शारीरिक सौन्दर्य वर्णन में शृङ्गार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन की उपेक्षा सर्वत्र है। उनके प्रति श्रद्धा तथा भक्ति भाव से सदा कवि का मस्तक नत है।

नारी के जिस आदर्श को वह लेकर चले हैं वह अपनी चरम सीमा पर प्राचीन भारत में था। किन्तु रीतिकाल में आकर वही नारी एकमात्र भोग्य वस्तु के रूप में देखी जाने लगी। गुप्त जी को यह देखकर महाग्लानि हुई—

उद्देश्य कविता का प्रमुख शृङ्गार रस ही हो गया
उन्मत्त होकर मन हमारा अब उसीमें खो गया।
कवि कर्म कामुकता बढ़ाना रह गया देखो जहां,
वह वीर रस भी स्मर-समर में हो गया परिणत यहां।

शृङ्गार परक लेखकों की ओर सकेत करते हुये उन्होंने कहा है कि—

वे हैं नरक के दूत किंवा सूत हैं कलिराज के
वे मित्र रूपी शत्रु ही हैं देश और समाज के।

सङ्गीत की दुगति देखकर वे कहते हैं—

संगीत में जब से मदन की मूर्ति अंकित हो गई
वह भावुकों की भक्ति वाणी भी कलंकित हो गई।

अतः उन्होंने आदेश दिया—

अब तो विषय की ओर से मन की सुरति को फेर दो
जिस ओर मन हो संयमी उस ओर मति को फेर दो।
गाया बहुत कुछ राग तुमने योग और वियोग का
संचार कर दो अब यहां उत्साह का, उद्योग का।

गुप्त जी इस शृङ्गार विरुद्ध उग्र भावना का पूर्ण रूपेण निर्वाह तो नहीं कर सके हैं फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि उनका शृङ्गार वर्णन सर्वथा संयत है, उच्छृङ्खल नहीं। उन्होंने प्रायः शृङ्गारिक वर्णनों को अंगों की नग्न माधुरी से बचाये रक्खा है। 'सूक्ष्म तथा सफल शृङ्गारिक वर्णन वे ही समझे जाने चाहियें जो चुपके से हमारी सुप्त सौन्दर्य भावना को सजग कर दें और सो भी उतनी दूर तक जिसमें वह वासना के आंगन में पैर न रखने पाये। स्थूल ऐन्द्रिक परिस्थितियों के सहारे शृङ्गार का जो उद्भावन होगा उसे उच्च कोटि का नहीं कहा जा सकता।

(गुप्त जी के काव्य की कारुण्य धारा, पृष्ठ ५३)

जहां कहीं उन्होंने सीता का शृङ्गार वर्णन किया है, तुलसी के समान अत्यधिक भक्ति भावना शृङ्गार रस के परिपाक में बाधक सिद्ध हुई है।

रसवादियों की दृष्टि से चाहे इस प्रकार के वर्णन रस-परिपाक में बाधक हों पर गुप्त जी को आदर्शों का निर्वाह ही मान्य था। उसके लिये काव्य के और अंगों की उपेक्षा करने को वे तैयार हैं। नारी सौन्दर्य के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी उनमें रीतिकाल कवियों की अपेक्षा बहुत कम हैं। न उनकी नारी रीतिकाल की नायिकाओं की भाँति 'पगन में छाले परे, लांघबे को नाले परे, ताऊ लाल लाले परे रावरे दरस के' कहने वाली है और न अपने प्रिय से उलझी हुई लट को सुलझाने वाली है।

गुप्त जी की प्रकृति समन्वयवादी है। वह तो अपने आदर्शों की पुष्टि करने वाले तर्कों एवं गुणों को सभी जगह खोज लेते हैं। वे समाज सुधार के पक्षपाती हैं अवश्य हैं पर समाज की नैया को अपनी प्राचीन संस्कृति से बांधकर गतिहीन नहीं देखना चाहते। वे अपने विचार को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में बतलाते हैं—

हमको समय को देखकर ही स्वयं चलना चाहिये
बदले हवा जिस तरह हमको भी बदलना चाहिये,
विपरीत विश्व प्रवाह के निज नाव जा सकती नहीं
अब पूर्व की बातें सभी प्रस्ताव पा सकती नहीं
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियां हों जो बुरी
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है
जैसी अवस्था हो जहां वैसी व्यवस्था ठीक है

वर्तमान विज्ञानवाद के चकाचौंध पैदा करने वाले प्रकाश के दिनों में निरी प्राचीनता की कंदरा में छिपे रहना कवि को इष्ट नहीं है। वह नवयुग का स्वागत करते कहता है—

तू सुनवीन
मैं प्राचीन
दोनों का सम्मिलन प्रौढ़ता प्रगट करे स्वाधीन।

आधुनिक काल में समाज का नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण है। वह दलितों व उपेक्षितों के दुख से अभिभूत युग-युगों की तिरस्कृता नारी के मंगलमय रूप के दर्शन करना चाहता है। सामाजिक उदार दृष्टिकोण से प्रभावित होकर 'यशोधरा' में महात्मा बुद्ध के मुख से भी पददलित नारीत्व के लिये उन्होंने यह उद्गार निकाले हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीन नहीं नारी कभी।

यशोधरा के शब्दों में—

अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ
मेरी भी कुछ मति है।

पुरुष के पुरुषार्थ का पूरक नारी-चरित्र के महत्व का परिचय हमें उनके काव्य में मिलता है।

गोपा बिना ग्राह्य गौतम भी मुझको

दूसरी ओर युवक जोनस इउडोसिया से कहता है

मेरी गति केवल तुम्हीं हो इउडोसिया
बोलो क्या करूं मैं ?

इउडोसिया उत्तर देती है—

"अलमिति हाय ! सखे आज जब सब के
सम्मुख उपस्थित है प्रश्न जीवन-मरण का
प्रश्न तब व्यक्तिगत स्वार्थ का क्या उचित है ?
कातर हमारी मही माता दस्यु दलिता
नीर भरे नेत्रों से निहार रही हमको
छाती पर भूरि भार बोल नहीं पाती है
और हम उसकी प्रस्तुति युवा-युवती
कामियों का क्रंदन करें हा ! यहां बैठ के ?
प्रेम के प्रलाप रहे आ सब ओर से
निष्ठुर कर्तव्य ही पुकारता है हमको

'द्वापर' में नारी विषयक अधिकारों की चर्चा 'विदुला' शीर्षक के अन्तर्गत की गई है—

अधिकारों के दुरुपयोग का कौन कहाँ अधिकारी।
इस भी स्वत्व नहीं, रखती क्या अर्द्धाङ्गिनी तुम्हारी ?

सौन्दर्य के नाम पर नारी की जो दुर्दशा हुई है उसके प्रति भी उन्होंने आवाज़ उठाई है। 'काबा' में वे कहते हैं—

एक अकिंचन रोता आया शेरशाह के पास
अबलाओं की अबलाओं को क्या रूप-रंग भी शाप ?
क्या विधाता करे और क्या दंड सहें वे आप ?

शेरशाह को उस समय बग़दाद देश के खलीफ़ा का एक नारी के प्रति न्याय याद आ गया। जब उस नारी की दुर्दशा पर राजकर्मचारियों ने अधिकार कर लिया तो वह कहती है—

धन धरा धन धाम गया तो अक्षत रहा स्वधर्म।

उस नारी का न्याय खलीफ़ा करता है—

छोड़ दिया नर होकर तुमने अपना आप अराति
फिर वह तो थी दया-क्षमा की निधि ही नारी जाति।

गुप्त जी की नारी भावना सामयिक विचार धारा से पूर्ण रूपेण प्रभावित है। गांधीवाद की अस्पष्ट छाया भी उनके काव्य में दृष्टिगोचर होती है। सामाजिक क्षेत्र में गांधी जी की दरिद्रदेव की सेवा और परिवार-न्याय दोनों का साकेत में सुन्दर वर्णन है और सीता तो उनकी चर्खा-योजना का भी प्रचार करती मालूम पड़ती हैं—

तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में
आओ; हम कातें, बुनें गान की लय में।

द्वापर में विधृता 'अहिंसावाद' का संदेश लेकर अवतरित होती है। यज्ञों में बलि होते देख उसका हृदय क्षोभ से भर जाता है और भावनायें वाणी में व्यक्त हो पड़ती हैं—

.....पशु वध करते करते सूखे हृदय तुम्हारा
भाव मिटें वे औ हे ईश्वर इन्हीं बालकों द्वारा
स्वयं स्वर्ग फलवाली भी उस लोलुपता का लय हो
क्षमतामय हो कर्म हमारा धर्म सुगमतामय हो।

गुप्त जी के स्त्री पात्रों में नवचेतना है, ज्ञान की गरिमा है तथा विस्तृत उदार दृष्टिकोण है। वह अपने परिवार तथा प्रिय-सम्बन्धी जनों में ही अपने हृदय की समस्त भावनाओं को केन्द्रीभूत नहीं कर देना चाहती, विश्व प्रेम से भी उनकी आत्मा उद्वेलित है। 'साकेत' में उर्मिला अपनी आत्मा को विश्वप्रेम से मिला देती है—

प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें।

तथा

मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा

उसका विश्व प्रेम दूसरे रूप में व्यक्त होता है। उर्मिला संसार की तुच्छ से तुच्छ वस्तु में भी सद्गुण देखती है। वह दूसरों को सुखी देखकर दुख नहीं मानती। उसके विरह में मानवता की पुकार है—

लेकर मानो विश्व विरह उस अंतःपुर में
समा रहे थे एक दूसरे के ही उर में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिली शरण गुप्त के दृष्टिकोण में मौलिकता भी है। मौलिकता का यह तात्पर्य नहीं है कोई बिलकुल ही नई बात जिसकी किसीने कल्पना न की हो कही जाय। जिस बात की गहराई में और लोग न गये हों, उसे जगत के सामने नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में भी मौलिकता हो सकती है। गुप्त जी ने प्राचीन तथा नवीनता के आवरण में मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। समाज नीति में कवि ने पूर्व व पश्चिम का समन्वय किया है। समाज में दो विरोधी धारायें हैं—एक रूढ़ि प्रिय प्राच्य आदर्शों के उपासकों की, दूसरी क्रान्तिकारी पाश्चात्य आदर्श प्रेमियों की। कवि ने प्राच्य आदर्शों के ऊपर जमी हुई मलिनता को स्वच्छ कर उनका नवीन संस्कार किया है एवं जीवन की मधुरता को धर्म तथा नीति से सम्बद्ध कर समाज में एक मर्यादा स्थापित करने की चेष्टा की है। इस समन्वय प्रवृत्ति को गुप्त जी ने अपने काव्य में चित्रित किया है। उनके लगभग सभी पात्र प्राचीन हैं परंतु वे आधुनिक समस्याओं को सुलझाने में संलग्न है। गुप्त जी मनोविज्ञान के अध्ययन के युग में हैं। पुरानी बातों को उसी रूप में अपनाने में वे विश्वास नहीं करते, फिर उन्हें तो नारी जाति के प्रति न्याय करना था—काव्य की उपेक्षिताओं को संसार के सामने मनोवैज्ञानिक तत्वों के साथ लाना था। इसके लिये उन्हें कुछ मौलिक उद्भावनायें करनी पड़ीं। गुप्त जी ने एक ओर तो उर्मिला, मांडवी, कैकेयी आदि उपेक्षित पात्रों को अपनाया दूसरी ओर उपेक्षित प्रसंगों का चयन करके उनका विस्तृत चित्रण किया। सब से पहली बात यह है कि उर्मिला के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाली समस्त घटनायें कवि के मस्तिष्क की उपज हैं। 'साकेत' की पुष्पवाटिका में केवल सीता ही नहीं हैं उर्मिला भी है। वह भी राम एवं लक्ष्मण के दर्शन करती है। चित्रकूट की सभा में कैकेयी स्वयं अपनी सफाई देती है। कैकेयी अपने वात्सल्य की दुहाई देकर अपने कृत्य का मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित करती है। कवि की सम्वेदना का यह अभूत-पूर्व उदाहरण है। कैकेयी-मंथरा संवाद में मनोविज्ञान का ही आश्रय लिया गया है 'गई गिरा मति फेर' का नहीं।

गुप्त जी ने यशोधरा के चरित्र को ऊँचा उठाने का वहीं तक प्रयास किया जहाँ तक उनके आदर्शों में व्याघात नहीं पहुँचा है। उन्होंने अपने नारी पात्रों का 'साधारणीकरण' किया है। वह मानवी है और वह साम्राज्ञी हैं, रानी हैं, राजवधू हैं, आर्य कुल ललना हैं पर फिर भी कोई साधारण नारी उनकी समता कर सकती है। सीता पंचवटी में पौधों को पानी देती हैं। इस लघुतम कार्यों में ही उनके चरित्रों की महत्ता है। राधा का और कवियों ने भी चित्रण किया है पर गुप्त जी की राधा में त्याग की भावना मूर्तिमान हो उठी है—वह अति मानवी है। महाभारत के एक श्लोक के संकेत मात्र से प्रभावित होकर उन्होंने विधृता के चित्र में नारी के प्रति पुरुषों के अन्याय के विरोध में जो आवाज उठाई है उसमें उनकी मौलिकता दृष्टिगोचर होती है।

गुप्त जी की नारी भावना का आदर्श

गुप्त जी व्यक्तिगत साधना का सन्देश लेकर चले हैं पर वह नारी भावना के आदर्शों की स्थापना उन्होंने लेकिन मानवी धरातल पर ही करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के आदर्श चार प्रकार के हो सकते हैं—सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक। इन सब के सामंजस्य से ही जीवन में पूर्णता आती है। गुप्त जी की नारियाँ सब से पहिले सामाजिक हैं। उनका असाधारण व्यक्तित्व नहीं है। वे गृह-स्वामिनी हैं जहां उन्हें कर्तव्यों की वेदी पर समर्पित होना पड़ता है। उन नारी के रूप हैं—माता, बहन, भाभी, पत्नी तथा अन्य परिचित स्त्रियाँ। गुप्त जी के काव्य की नारियां वन में योगिनी बनकर घूमने वाली साधनालीन नारियाँ नहीं हैं, वे गृह देवियाँ हैं और सम्मिलित परिवार में उनके जीवन का विकास होता है। उनके जीवन में उच्छृङ्खलता को स्थान नहीं एक मर्यादा उनके जीवन को घेरे रहती है। लोक-हित शील तथा संकोचपूर्ण गरिमा के बीच वह रहती है। नारी जीवन का पूर्ण विकास नारीत्व और मातृत्व के समन्वय में है। नारीत्व मातृत्व में ही मुखरित होता है। 'काबा' में मातृ भक्ति का सुन्दर चित्र है—

धर्म-युद्ध सेना में भरती होने एक युवक चला
हजरत ने पूछा "तेरे घर और कौन जन है भला?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक मात्र मां"—सुनकर उससे
बोले नबी, "नहीं, नहीं
मां के पैरों तले स्वर्ग है
जा तू पा उसको वहीं।

नारी त्याग की मूर्ति है, आत्मसमर्पण ही उसके जीवन की साध है। वह विलास की प्रतीक नहीं वरन जीवन के पग पग पर अपने उदार व्यक्तित्व से पथ को आलोकित करती चलती है। वासना में ही नारी जीवन का केन्द्र स्थित नहीं है। गुप्त जी का हृदय नारी के प्रति ऐसी भावना को ही पोषण दे सका है। 'द्वापर' में विधृता कहती है—

पुत्र वधू ने क्या वर विषयक एक वासना पाई
नहीं और कोई क्या उसका पिता पुत्र औ भाई।

वह और भी कहती है—

वह गुण किसने तोड़ा जिसमें यह जोड़ा जकड़ा था
एक कठोर डालने को ही क्या यह कर पकड़ा था
केवल चाटुकारिता ही थी क्या वह गिरा तुम्हारी
कि नहीं दो दो मात्रायें नर से भारी नारी।

उनके स्त्री पात्रों में नैतिकता का भी उचित समावेश है। उनमें सदाचार है और साथ ही आत्मिक बल भी है। उनमें मानवी दुर्बलतायें हैं, उनकी उपेक्षा भी कैसे की जा सकती है। पर लेखक के आदर्शवादी होने के नाते वे वहीं तक मान्य हैं जहाँ तक उसके आदर्शों को कोई आघात नहीं पड़ता।

धर्म सदा से जीवन का एक अंग रहा है। धर्म के बिना भारतीय नारी के लिये एक पग भी आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। ईश्वर पर एकनिष्ठ सदाचार ही जीवन ही में धर्म है। सुधर्म को अपनाकर ही नारी आगे बढ़ सकती है। 'अर्जन' में कवि ने धर्म सम्बन्धी शब्द इउडोसिया के मुख में रक्खे हैं—'फलता नहीं कभी अर्जन अधर्म का'।

जीवन को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिये आवश्यक है कि वह राजनैतिक अंग से भी सम्बन्ध रक्खे। पर गुप्त जी नारी का क्षेत्र गृह में है जैसा कि वेद कालीन ऋषियों ने निर्धारित कर दिया था। इसलिये गुप्त जी को यही मान्य है। राजनीति में अगर वह विशेष भाग लेती है तो कुछ हानि नहीं पर सामयिक विचार धारा से प्रभावित कवि को यह भी मान्य नहीं है कि इस क्षेत्र में वह सर्वथा अज्ञानी रहे। नारी भी पुरुष के समान ज्ञान चेतना युक्त तथा बुद्धि प्रधान जीव है फिर वह क्यों अपने अधिकारों से वंचित रहे। 'द्वापर' में कवि ने स्त्री विषयक अधिकारों तथा पुरुष के नारी के प्रति किये गये अत्याचारों का विरोध बड़ी तीव्रता से किया है।

इन्हीं भावनाओं को लेकर गुप्तजी ने अपने आदर्श-नारी चित्रों का निर्माण किया है।

गुप्त जी के काव्य में नारी के आदर्श चित्र

गुप्त जी ने अपनी नारी विषयक आदर्श भावना को स्पष्ट करने के लिये अनेक नारी पात्रों की सृष्टि की है। 'साकेत' में उर्मिला, सीता, कैकेयी, मंथरा, कौशल्या तथा सुमित्रा के चित्र हैं। 'यशोधरा' में यशोधरा, 'पंचवटी' में सीता और शूर्पणखा, 'द्वापर' में राधा, गोपियाँ, विधृता और यशोदा, 'नहुष' में शची, 'जयद्रथ-वध' में उत्तरा, 'कुणाल गीत' में तिष्यरक्षिता तथा कुणालपत्नी, 'अर्जन विसर्जन' में इउडोसिया। वैसे तो इन समस्त नारी पात्रों में गुप्त जी की उच्च नारी भावना व्याप्त है पर प्रधानतः आदर्श नारी चित्र चार हैं—उर्मिला, यशोधरा, राधा और शची।

उर्मिला

सर्व प्रथम उर्मिला के दर्शन हमें अभिषेक अम्बुदों से घिरी हुई साकेत नगरी के राजमहल के एक प्रकोष्ठ में होते हैं जहां वह लक्ष्मण से हास-विलास करती हुई आनन्द की सृष्टि कर रही है। वह अपने सरल विनोद, अपूर्व रूप लावण्य तथा अनुपम चित्रकला से लक्ष्मण तथा पाठक को आकर्षित करती है। राम लक्ष्मण वनगमन सुन उसका आह्लाद तत्क्षण गलित हो जाता है। लक्ष्मण के जाते समय कौशल्या ने माता का आदर्श रक्खा, सुमित्रा ने क्षत्राणी का परन्तु उर्मिला क्या सोचती—

वह भी सब कुछ जान गई
विवश भाव से मान गई।

उसमें मानवी का कोमल हृदय है देवी का प्रस्तर हृदय नहीं पर वह मन से कहती है—

हे मन, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी दशा अत्यन्त करुण हो जाती है। उसकी इस दयनीय दशा का बोध सीता, राम, लक्ष्मण तथा कैकेयी सभी को है। सीता ने उसके लिये ठीक ही कहा है—

आज भाग्य जो है मेरा
वह भी हुआ न हा! तेरा।

उसे लक्ष्मण के साथ वन जाने का भी अवसर न मिला। राम भी उर्मिला की दशा से अपरिचित न रह सके—

मैं वन में भी रहा गृही
बनवासी, हे निर्मोही,
हुये, वस्तुतः तुम दो ही।

लक्ष्मण उस समय तो चुप हैं परन्तु चित्रकूट में अपनी कुटी में कृशकाय उर्मिला को देखकर अपने को रोक नहीं पाते—

वह काया है या है शेष उसीकी छाया

परन्तु स्वाभाविक मर्यादा के परे उर्मिला नहीं जन्मी है। वह न तो कुलकानि तजकर योगिनी बनकर घर से निकली और न उसके जीवन में ही साधारण जीवन से परे कोई प्रलयंकर विधान है। वह राज परिवार की वियोगिनी कुल-ललना है।

उसका आदर्श लक्ष्मी से भी ऊंचा है—

डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये उर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।

फिर भी उर्मिला में मानवी दुर्बलताओं संबंधी जो व्यक्तिगत दोष आ गये हैं उनका परिहार कवि ने यशोधरा के चरित्र में किया है।

यशोधरा

यशोधरा दो व्यक्तित्व लेकर हमारे सामने आती है, एक नारी का और दूसरा माता का—

आंचल में है दूध और आंखों में पानी

यशोधरा के इस व्यक्तित्व में जीवन का सार्वभौम प्रतिनिधित्व है। एक और महान भाव जो उर्मिला में नहीं है यशोधरा में मिलता है। वह स्वयं उसे बतलाती है—

वधूवंश की लाज दैव ने आज मुझी पर डाली

यशोधरा में अंतःकरण में व्याप्त होने वाला दुख है। इन्द्रिय जनित दुखों का परिताप उसमें न जाने कहां खो गया है। गौतम उसे बिना बताये चले गये हैं, उसे दुख है तो केवल इसी बात का—

सिद्ध हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात
पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात

बुद्ध ने उसके हृदय की महानता न समझी—

स्वयं सुसज्जित करके रण में
प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं—
क्षात्र धर्म नाते।

यशोधरा के नारीत्व में अनुराग तथा मान का विचित्र संयोग है। अनुरागिणी यशोधरा की चेतना बुद्ध से मिलने को व्याकुल है पर क्योंकि अंतिम विदाई के अवसर पर वह उससे मिलकर न गये यह प्रश्न उसके हृदय में व्याघात उत्पन्न कर देता है। उसके ये शब्द बिलकुल सच हैं—

मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहचाना?

उन्होंने तो उसे 'सिद्ध मार्ग' की बाधा' समझकर अपमानित किया। गोपा की गर्विणी नारी इस आघात से मर्माहत हो उठती है—

अयि मेरे अर्द्धाङ्गि भाव क्या विषय आज धे तेरे
हा! मेरे अंचल में किसने ये शृङ्गार बिखेरे।

इसकी प्रतिक्रिया होती है। कुसुमादपि सुकुमार यशोधरा वेदना के प्रथम परिचय में ही वधू वंश की लाज बचाने लिये वज्रादपि कठोर बन जाती है। यशोधरा का मान एक भारतीय रमणी का अर्द्धाङ्गिनी सुलभ मान है।

यशोधरा के मान के तीन आधारभूत स्तम्भ कहे जा सकते हैं—

क—पति के प्रेम में अविचल प्रतीति
ख—राहुल की उपस्थिति
ग—यशोधरा की आशावादी भावना

उसका सिद्धांत है 'भक्त कहीं जाते नहीं, आते हैं भगवान।' एक न एक दिन गौतम का गोपा के आंगन में आना अवश्यम्भावी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन, निश्चय मेरे राम,
यहीं इस आंगन में।

साथ ही राहुल की क्रीड़ा में वह अपनी पीड़ा भूल जाती है और अपने मन को सांत्वना देती है—

मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा बाल।

वह उससे बातें करती है, बालक की जिज्ञासाओं को शांत करती है। प्रतिदिन के जीवन के साधारण संलाप में भी पुत्र को योग, क्षमा आदि की शिक्षा देने में जननी यशोधरा की आदर्श-निपुणता का परिचय मिलता है। जननी यशोधरा के चित्रण में गाम्भीर्य है। यशोधरा के चरित्र में मनोविज्ञान का अंश अधिक है। यह मनोविज्ञान अवस्था जन्य और स्थिति-जन्य दोनों ही प्रकार का है। कवि की यही कामना है कि गौतम बुद्ध के साथ गोपा का नाम भी जनता में व्याप्त हो—

गोपा और गौतम का नाम भी जगत में
गौरी और शंकर सा गण्य तथा गेय हो।

राधा

हिन्दी काव्य में राधा का वर्णन पिछले पांच सौ वर्षों से होता रहा है। पर गुप्त जी की राधा इन सबसे भिन्न है। उसमें त्याग की भावना की ही प्रमुखता है और सब बातें गौण हो गई हैं। वह कृष्ण से प्रेम करती है और उसमें उनके लिये आत्मसमर्पण का भाव है पर वह अपने प्रेम का प्रतिकार नहीं चाहती—

नहीं चाहती मैं विनियम में
उन वचनों का वर्म हरे।
तुझको एक तुझीको अर्पित
राधा के सब कर्म हरे।

द्वापर की राधिका के प्रेम में ही परितृप्ति है, उसमें कृष्ण को अपने प्रेम-पाश में बांध रखने की प्रबल आकांक्षा नहीं है और न सूर की राधा की तरह कुब्जा के प्रति वैर भाव ही है। कृष्ण चाहें जिस मार्ग का अनुसरण करें, वह विरोध न करेगी। उसे तो उनकी सुधि ही पर्याप्त है—

मेरे तृप्त प्रेम से तेरी
बुझ न सकेगी क्षुधा हरे!
निज पथ धरे चला जाना तू
अलं मुझे सुधि-सुधा हरे!

उसे भय है कहीं कृष्ण उनकी इस भावना को उसका दर्प न समझ बैठें। इस कारण वह अपनी बात को और स्पष्ट करती है—

सब सह लूंगी रो-रोकर मैं देना मुझे न बोध हरे!

शची

'नहुष' की शची को देवी होते हुए एक आदर्श सती स्त्री के रूप में गुप्त जी ने हमारे सामने रखा है। यदि वह देवी है तो इसलिए कि वह दोनों ओर नहीं जा सकती—

देव सदा देव तथा दनुज सदा दनुज है
जा सकता किन्तु दोनों ओर ही मनुज है

परन्तु वह एक ओर जाकर भी दोनों ओर जाने वाले मानव पर विजय प्राप्त कर लेती है। आपत्ति काल में भी सत् रखने से नारी की रक्षा अपने आप हो जाती है, इसका पाठ हमें शची पढ़ा रही है।

गुप्त जी की कुशल तूलिका से चित्रित उनकी आदर्श नारी प्रतिमाओं की संक्षेप में यही रूप-रेखा है। वे भारतीय ही नहीं विश्व काव्य की अमर कला कृतियां हैं जो युग युग तक अमर रहेंगी तथा उनके साथ ही महाकवि गुप्त जी का व्यक्तित्व भी कभी लुप्त न होगा। हमें गुप्त जी की आदर्श नारी भावना पर गर्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालीन भारत में हिन्दू-मुसलिम समस्या

श्री गोपाल कृष्ण मल्लिक

कहा जाता है कि चिरकाल से हिन्दू-मुसलमान राजनैतिक अधिकारों के लिए आपस में एक-दूसरे पर हमला करते रहे हैं और चिरकाल से वे एक-दूसरे को कमज़ोर करने की कोशिश करते रहे हैं। दोनों एक-दूसरे को क़ाफिर और म्लेच्छ समझते आये हैं और दोनों का सामाजिक जीवन एक दूसरे से भिन्न रहा है।

विदेशी शासन की विषैली परिस्थिति में कुछ लोग भारतीय इतिहास के बिखरे हुए असंबद्ध उद्धरणों को याद कराकर इस बात की दुहाई देते हैं कि हिन्दू मुसलमानों का सम्बन्ध सांप-नेवले का सा है। अपनी इस स्थापना को तीसरी शक्ति के अप्रत्यक्ष इशारे से होने वाली घटनाओं (दंगे आदि) से पुष्ट किया जाता है, और कहा जाता है कि हिन्दू-राज्य और मुसलमान-राज्य में किसी एक में रहने की अपेक्षा अंग्रेजी राज्य की यूरोपीय छत्रच्छाया में रहना अच्छा है।

किसी जाति या राष्ट्र के सामाजिक तथा धार्मिक सम्बन्धों में जब तक सहिष्णुता का भाव पैदा नहीं होता, तब तक वहां राजनैतिक एकता स्थापित नहीं हो सकती। लगभग ईसा की सातवीं सदी से मुसलमान भारतवर्ष में आने लगे थे। इसी समय से हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर सम्बन्ध होना शुरू हुआ था। मुसलमानों का भारतवासियों से दो मार्गों से सम्बन्ध हुआ था, एक उत्तर की तरफ से और दूसरा पश्चिम की तरफ से। पश्चिम से आने वाले मुसलमान अरब थे। इनमें अरब जाति की स्वाभाविक तीव्रता विद्यमान थी; परन्तु व्यापारिक बुद्धि ने इनकी इस तीव्रता को मंद कर दिया था। पश्चिम से आने वाले मुसलमानों के हृदय में विजय तथा महत्वाकांक्षा की तृष्णा नहीं थी। इसलिए हम देखते हैं कि दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में तथा गुजरात में रहने वाले मुसलमानों में धार्मिक असहिष्णुता नहीं पायी जाती। गुजरात में जिन सुलतानों ने भयंकर अत्याचार किये थे वे उत्तर की तरफ से आने वालों में से थे। अरब में जिन लोगों ने इसलाम का झंडा अरब से बाहर पहुँचाया था, उनका जोश तथा धार्मिक अन्ध श्रद्धा को बढ़ाने वाले अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण यह भी था कि उन्होंने आसानी से फारस आदि देशों को इसलाम में दीक्षित कर लिया था। दमिश्क और बग़दाद के खलीफाओं की सेना ने भारत के सिवा अन्य देशों में जो कामयाबी हासिल की थी उसका मुख्य कारण यह था उन देशों के अन्दर मुक़ाबला करने की शक्ति नहीं थी। उनके पास कोई जीता-जागता दर्शन या सिद्धान्त नहीं था। फिर भी यह बात इतिहास के विद्यार्थियों से छिपी नहीं कि दमिश्क और बग़दाद के ख़लीफाओं में क्रमशः स्थानीय सभ्यता के कारण जोश मंद होता गया।

मुहम्मद क़ासिम के सिन्ध को जीत लेने पर यह प्रश्न उठा कि जीते हुए शहरों में ब्राह्मणों तथा उनके मंदिरों के साथ क्या व्यवहार किया जाय? विजित प्रजाओं के धार्मिक अधिकारों को कुचल दिया जाय या उनकी रक्षा की जाय? क़ासिम ने बग़दाद के खलीफा से इस सम्बन्ध में सलाह लेना उचित समझा। खलीफा ने इसका जो जवाब दिया वह प्रसिद्ध इतिहासज्ञ एलिफिस्टन के शब्दों में इस प्रकार है—

"क्योंकि इन शहरों के लोगों ने कर दे दिया है, इसलिए वे प्रजा के सब अधिकारों के अधिकारी हैं, उन्हें अपने मंदिर बनाने और अपने संस्कार करने का अधिकार है। मुसलमानों को ब्राह्मणों की सम्पत्ति और भूमि फिर दे देनी चाहिए और उनसे तीन तीन प्रतिशत कर लेते रहना चाहिए।" (पृष्ठ ३०३)

वे फिर लिखते हैं—

"उन (मुसलमानों) के सरदार कट्टर धर्म प्रचारकों से राजनैतिक शासक बन गये थे। अपने धर्म प्रचार की अपेक्षा उनका ध्यान परिवार की वृद्धि की तरफ झुक गया था, और वे उद्धत सिपाहियों से शानदार और विलासी राजाओं में बदल गये थे तथा वे युद्ध के सिवा दूसरे काम भी करते थे और विजय के समान ही दूसरे सुख भी उनके लिए आनन्ददायक थे।" (पृष्ठ ३०१)

क़ासिम के आक्रमण के बाद १०वीं सदी तक मुसलमानों ने भारत पर विशेष आक्रमण नहीं किया, केवल सिंध तथा पंजाब के कुछ शहरों व पश्चिमी गुजरात में इनका असर था। उस समय तक हिन्दुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध जटिल नहीं हुए थे। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदियों में अरब के मुसलमान व्यापारियों का भारत से जो सम्बन्ध रहा था उससे पता लगेगा कि उस समय के मुसलमान तथा हिन्दू आपस में किस तरह मिलकर रहते थे।

८५७ ई० में सुलेमान नामक अरब यात्री भारत में आया था। उसने भारत की राजनैतिक तथा साधारण अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है :—

"बल्हर अरबों का पक्षपात करता है और उसकी प्रजा उसका अनुकरण करती है।"

दसवीं सदी में बाहर के अनेक मुसलमान यहां आये थे। ये लोग हाथी-दांत और तरह तरह के मसालों का व्यापार करते थे। इसी सिलसिले में पश्चिमी किनारे पर भी मुसलमान भारी संख्या में भारत में आकर बसे। इन लोगों के कारण यहां मिली जुली आबादी बस गयी। इतिहासज्ञ आर्नल्ड लिखते हैं—"मुसलमान व्यापारियों और हिन्दू शासकों के बीच अच्छे सम्बन्ध थे। हिन्दू राजा उन्हें अपने संरक्षण में रखते थे। ताकि उनके द्वारा व्यापार की वृद्धि हो और देश की सम्पत्ति बढ़े और वे मुसलमानों के अपने धर्म-प्रचार में कोई बाधा उपस्थित नहीं करते थे।"

मलाबार में इस्लाम का प्रचार शांतिमय उपायों से हुआ था। वहां के लोग उच्च जाति वालों के अत्याचारों से तंग थे। कालीकट के ज़ामोरिन ने समुद्री व्यापार बढ़ाने के लिए मच्छीदारों को इस्लाम स्वीकार करने की छुट्टी दी थी।

हिन्दू-मुसिलम वैमनस्य या पारस्परिक ईर्ष्या का आरम्भ १०वीं सदी से होता है। १०वीं सदी में अफ़ग़ानिस्तान तथा ग़ज़नी के नये तीव्र स्वभाव वाले मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करने शुरू किये। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य पर दो दृष्टियों से विचार करना चाहिए। प्रथम शासक वर्ग या राजवंशों की दृष्टि से, और दूसरा जनता की दृष्टि से। इस समय भारतवर्ष में जागीरदारी प्रथा का समय था। जनता और शासक वर्ग में एक ही मातृ भूमि के पुत्र होने के सिवा दूसरा कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। राजशक्ति तथा प्रजाशक्ति एक दूसरे से निरपेक्ष थी। प्रजा या जनता गांवों में अपनी पंचायतों में मस्त थी। देश में राजशक्ति किसके किसके हाथ में है, इसकी इनको विशेष चिन्ता नहीं थी। जब तक कोई राजशक्ति उनके कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करती थी तब तक वे बेफ़िक्र रहते थे। जाति तथा उपजातियों के पैदा हो जाने से भारत के क्षत्रिय असंगठित थे। उनको एक सूत्र में पिरोने वाला कोई भाव न था। विदेशी आक्रमणकारी यह समझते थे कि किसी प्रान्त व देश को जीतने के लिए सारे नगर-वासियों को जीतना ज़रूरी नहीं है, केवल उनके राजा तथा राजदरबारियों को जीतना पर्याप्त है। समय समय पर साधारण जनता को अपने साथ मरने के लिए वे उनके धार्मिक भावों को उत्तेजित करने की कोशिश करते थे। परन्तु भारत में भिन्न-भिन्न धार्मिक भावों (वैष्णव, शैव, शाक्त आदि) के कारण जनता को किसी एक धार्मिक भाव के लिए उत्साहित करना मुश्किल था। परन्तु विदेशी आक्रमणकारियों में धार्मिक मतभेद न था। हिन्दुस्तान के राजाओं के पास कोई सिद्धान्त न था, जिसके द्वारा वे छोटी स्थिति के लोगों को ऊंची स्थिति के लोगों तक पहुंचने का मौक़ा दें। इसलिए इस काल के इतिहास का अध्ययन करते हुए हमें यह याद रखना चाहिए कि जिन लड़ाइयों या युद्धों का हम भारतीय इतिहास में वर्णन पढ़ते हैं, वे युद्ध केवल राजाओं में ही हुए थे। जनता का उनसे विशेष सम्बन्ध न था।

भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखते हैं :—

"राजवंशों ने, विशेषतः राजपूतों ने अपने आपको केवल अन्य वर्णों से ही नहीं परन्तु कृषि करनेवाले क्षत्रियों से भी बहुत अलग कर लिया था। इसलिए जनता राजनैतिक बातों से उदासीन हो गयी थी। उस समय यह माना जाता था कि राज तो राजा की निजी सम्पत्ति है। यदि राजपूत राजाओं ने अपनी सम्पत्ति खो दी, तो जनता अपनी राजशक्ति को दूसरे व्यक्ति के प्रति चाहे वह कोई हो, बदल देती थी। शासक ही अपने अधिकारियों की रक्षा करते थे।"

इस काल के कुछ मुसलिम इतिहास लेखकों ने मुसलमानों की विजयों को मजहबी रंग देने की कोशिश की है। ग़ज़नवी, गोरी आदि को गाजी सिद्ध करने की उन्होंने पूरी कोशिश की। इसलिए इन मुसलमान इतिहासज्ञों द्वारा लिखे गये इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए हमें आक्रमण-कर्त्ताओं की विजय यात्राओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन का सावधानी से अध्ययन करना चाहिए। ऐसा न करने का परिणाम यह होगा कि हम यह समझने लगेंगे कि भारत में जितने भी मुसलमान बादशाह आये थे वे सब इस्लाम के लिए मरने-मिटने वाले थे। हम यह नहीं सोचते कि यदि वे सच्चे मुसलमान होते तो वे आपस में ही क्यों लड़ते? ग़ज़नी, गोरी, ख़िलजी, लोदी, तथा मुग़ल वंश सब अपने से परिवर्त्ती मुसलमान राजवंशों को नष्ट करके ही निर्माण किये गये थे। श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने राजपूताने के इतिहास में यह साफ़ कहा है कि बुत-शिकन मुसलमान इतिहासज्ञों ने सोमनाथ की मूर्ति के तोड़ने का जो वर्णन किया है वह झूठा, मनगढ़न्त तथा मुसलमान इतिहासिकों की झूठी आत्मश्लाघा का द्योतक है।

हमें यह देखना चाहिए कि इस शासनकाल के मुसलमान बादशाहों का बाहर के मुसलमान बादशाहों तथा मुसलमान राष्ट्रों के साथ क्या सम्बन्ध था? क्या वे बाहर के मुसलमान राष्ट्रों की तरफ़ या मक्का मदीना की तरफ सदा टकटकी लगाये रहते थे? क्या इन बादशाहों ने अरब देश के इस्लाम को भारतीय इस्माल का रूप दिया था? यदि दिया था तो भारत के रीति-रिवाजों ने इस्लाम पर क्या प्रभाव डाला?

मुसलमान राजवंशों तथा भारत के हिन्दू राजवंशों के पारस्परिक युद्धों का समालोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने से पहले 'सूचि कटहन्याय' से उस काल की जनता की मनोवृत्ति या पारस्परिक स्थिति को स्पष्ट करना ठीक होगा। राजसत्तावाद के ज़माने में लेखक तथा इतिहासज्ञ राजाओं को ख़ुश करने का यत्न करते थे और जनता की तरफ़ विशेष ध्यान नहीं देते थे। इसलिए उन्हें स्वतन्त्र रूप से इस विषय पर विचार करना होगा। इस विचार के लिए हमारे पास दो मुख्य साधन हैं—

१—इस काल का प्राप्त धार्मिक हिन्दी साहित्य-फ़ारसी का साहित्य और संस्कृत साहित्य

२—भारत में आनेवाले भिन्न-भिन्न यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त।

इस काल में हमें सबसे पहले यात्री अलबेरुनी की पुस्तक मिलती है। उसने भारतीय साहित्य और वाङ्मय पर प्रकाश डालने में कमी नहीं की, परन्तु उसने हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। उसने केवल यही लिखा है कि हिन्दू-मुसलमान आपस में एक दूसरे को समझने का यत्न नहीं करते इसीलिए थोड़ी-बहुत अशांति दिखाई पड़ती थी। साहित्य से ही वे एक दूसरे को समझ सकते थे। इस समय के यात्रियों के वृत्तान्त से पता चलता है कि साधारण जनता न तो कट्टर हिन्दू ही है न कट्टर मुसलमान। जैसी राजशक्ति होती थी जनता वैसी ही बन जाती थी। जनता में पारस्परिक मज़हबी मतभेद के कारण होनेवाले दंगों का वर्णन तत्कालीन भारतीय इतिहास में नहीं मिलता। इस दीर्घ काल के इतिहास में केवल एक बार ऐसा हुआ है जब, दुर्गा-पूजा तथा मुहर्रम से जूलूस के कारण दंगा हुआ हो। फ्रेंच सेना अफ़सर एल० डी० ग्रैएडपी ने अपनी पुस्तक "Voyage in the Indian Ocean and to Bengal" (१७८९-९०, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६०) में लिखा है कि हिन्दू और अरबों ने दुर्गा माता और मुहर्रम के त्योहार एक दिन आ जाने से, दोनों के एक दूसरे के लिए रास्ता न देने के कारण दोनों ने एक दूसरे के साज-समान को तोड़ दिया। पर स्थानीय हाकिम ने शीघ्र झगड़ा शान्त कर दिया।

जनता में दंगे न होने के तीन कारण थे—

१—हिन्दू-मुसलमान दोनों के पास आत्मरक्षा के साधन थे। प्रान्तीय शासकों की सहायता की उन्हें आवश्यकता न थी। हिन्दू-मुसलमान राजाओं के पारस्परिक झगड़ों की जांच राजधानी तथा उसके आस पास ही रहती थी। वहाँ भी जनता की उदासीन वृत्ति इन दंगों को पैदा नहीं होने देती थी।

२—यदि कोई दिलचले मुसलमान तथा हिन्दू एक दूसरे से द्वेष करते थे, तो उन्हें राजनैतिक स्वार्थों को सिद्ध करने पर तुले हुए, आपस में लड़ते हुए, हिन्दू राजाओं की सेना में भर्ती होकर बदला लेने का मौका मिल जाता था। यहां तक कि वे अपने शत्रु को एक पक्ष में देखकर दूसरे पक्ष में, चाहे वह विधर्मी क्यों न हो, मिलना बुरा नहीं समझते थे।

३—हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को और मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को सहायता देने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उस समय कोई शक्ति न थी जो हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून १९४६]

मुसलिम जनता को आपस में लड़ाकर स्वार्थ सिद्ध करने में दत्तचित्त हो।

यहां सन्त तथा अन्य कवि लोगों के सामने यह आदर्श रखते थे कि हमें राजशक्ति की पर्वाह नहीं करनी चाहिये और स्वतन्त्र रहना चाहिए। जनता को अपने हाथ में रखने के लिए भिन्न-भिन्न समयों में भारत में आनेवाले मुग़ल, अफ़ग़ानों, पठानों तथा मराठे राजवंशों ने ब्राह्मणों को अपना कर उनके द्वारा जनता को अपने क़ाबू में रखने की नीति क़ायम रखी। ब्राह्मणों की शक्ति तथा विजित मुसलिम शासन-काल में किस प्रकार अबाधित रही, इसके लिए फ्रेंच सेना के उस अफ़सर की पुस्तक का यह उद्धरण देखिये —

"बनारस में, जिसकी प्रतिष्ठा वहां के विद्वानों के कारण अब भी बनी हुई है, ब्राह्मणों का अध्ययन अब भी जारी है। नवाब ने अपनी संपूर्ण शक्ति खो दी है और वह अंग्रेज कंपनी का एक दीन गुलाम मात्र रह गया है। "यदि बनारस किसी विजेता के शस्त्रों द्वारा अवनत कर दिया जाय तो भी युद्ध के अन्धकार में ब्राह्मण अपने अध्ययन से च्युत नहीं होंगे। मुगल साम्राज्य में जितनी क्रान्तियां हुईं, तथा मुसलमानों के आक्रमण से बङ्गाल की जो दुर्दशा हुई, उन सब के बीच भी ये अपने अध्ययन, अपने गुण, अपने रीति-रिवाजों की विशेषता, अपने सिद्धान्त की गोपनीयता और अपने वंश के सदाचार की उच्चता की रक्षा में ज्यों के त्यों बने रहे। इन गुणों की, उनके उन विजयी शत्रुओं ने भी प्रशंसा की है। इस प्रकार राज्य क्रान्तियां और दुर्घटनाओं की अपेक्षा अधिक उच्च विधि के साथ इन्होंने प्रत्येक जाति के मन पर अपनी महत्ता की छाप जमा रखी है। शस्त्रों द्वारा विजित साम्राज्य के बिना भी उन्होंने सब पर विजय पायी है, और विश्व के बीच विजित होकर भी उन्होंने स्वयं समय की गति पर भी विजय प्राप्त की है।"

इन ब्राह्मणों ने अपने प्रभाव से, अपने तत्वज्ञान के द्वारा मुसलिम शासन काल में भी जनता पर किसी क़िस्म के अत्याचार की आंच नहीं आने दी। हिन्दुस्तान की ब्राह्मणवृत्ति ने मुसलमानों पर भी असर किया। उसने उनके विचारों को और उनकी कल्पना को भारतीय बना दिया। मुसलमान होने पर भी उन्हें देशी भाषा हिन्दी में बृज की रंग-रेलियों का वर्णन करने में मज़ा आता था। इस काल में मुसलमान संस्कृत भाषा सीखते थे और यहां के तत्वज्ञान को अपनाते थे। संस्कृत के हिन्दू विद्वान मुग़ल बादशाहों से धार्मिक मतभेद होने पर भी उन्हें राजा की तरह मानते थे। उनके दरबारों में जाते और उन्हें अपनी वृत्तियां भेंट करते थे। राजकवि मुसलिम राजदरबारों में जो कविता बनाते थे, उनसे पता लगता है कि उन राजदरबारों को विदेशी राजदरबार नहीं समझते थे। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि राजपंडित जगन्नाथ देश के भिन्न-भिन्न राजदरबारों में भटक-भटक कर अन्त में यह श्लोक कहते हैं :—

"दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा मनोरथान्युरचितुं समर्थः।
नैपाल भूपैः परिदीपमानं, शाकाय वा स्याल्लवणाय स्यात्।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि देव ने अपनी कृति औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह को भेंट की थी—

दिल्लीपति नवरंग के, आजमसाहि सपूत।
सुन्यौ सराहो ग्रंथ यह, अष्टयाम संजूत॥

केशव ने जहांगीर चन्द्रिका लिखकर बताया कि मतभेद या धर्मभेद होने पर भी वह जहांगीर को राजा समझते थे। हिन्दी भाषा में इस काल के जितने भी महाकवि सूरदास, केशव, बिहारी, तुलसीदास आदि हुए हैं, उनमें भूषण को छोड़कर और किसी ने भी मुसलमानों के प्रति घृणापूर्ण भाव प्रकट नहीं किये। नहीं तो इतने बड़े कवियों के लिए उस समय की जनता की स्थिति को अपने काव्यों में चित्रित करना कठिन कार्य नहीं था। इन महाकवियों के काव्य पढ़ने से मालूम होता है कि साधारण जनता उस समय अमन-चैन में थी।

हिन्दी साहित्य को बनाने में मुसलमानों तथा हिन्दुओं का सम्मिलित हाथ था। आज की तरह उन्हें अपनी फारसी या उर्दू से विशेष पक्षपात नहीं था। बैरम खां के पुत्र रहीम की कविता का एक उदाहरण हम पेश करते हैं, जिससे पता लग सकता है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान की कल्पनाओं को किस प्रकार स्वीकार किया था—

"अहिल्या पाषाण प्रकृति पशु रासीन् कविचमूः॥
गुहो मूधाराडाल स्मतय मपिनौतः निजपदम्॥
अहंचिते नाश्यः पशुरपि तवार्चादि करणे।
क्रियाभिचाराड़ालाः रघुवरन मा यद्धि रसिकम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवियों ने अपने काव्यों में स्पष्ट दिखा दिया है कि काव्य के भाव-जगत में वे भी शुद्ध भारतीय हैं। मुसलमानों द्वारा लिखी गई हिन्दू घरों की कहानियों की सूची निम्न-लिखित है—

ग्रन्थ का नाम	रचना संवत्	लेखक
मृगावती	१५६२	कुतबन शेख
पद्मावती	१५९७	मुहम्मद जायसी
मधुमालती	१६०२	मंझन
माधवानल कामकन्दला	१६४८	आलम कवि
ज्ञानदीप	१६७६	शेखनबी
इन्द्रावती	१८०१	नूरमुहम्मद
प्रेम रतन	१९०५	फ़ाजिल शाह

राजदरबारों के कवि तथा अन्य प्रसिद्ध कवि समय-समय पर अवस्था तथा परिस्थिति भेद के कारण जनता की मनोवृत्त को असली रूप मे चित्रित करने में संकोच भी कर सकते हैं, परन्तु दिन-रात जनता में भ्रमण करने वाले संत, फ़क़ीर तथा साखी गाने वाले लोगों की साखियाँ और वाणियां लोगों की ज़बान पर चढ़ जाती हैं, और जनता के भावों को बताने तथा प्रकट करने वाली होती हैं। रामानन्द, कबीर, नानक, दादू, पलटू, बुल्लाशाह, यारी ये सब अपने गीतों में हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक भावों की निन्दा करके उन्हें कूप मंडूकता और अन्धविश्वासों से ऊपर उठाने का यत्न करते थे।

बुल्लाशाह मुसलमान थे, उनकी साखी सुनने लायक है—

ना खुदा मसीते लमदां ना खुदा ख़ाना काबे,
ना खुदा कुरान किताबा ना खुदा नमाज़े,
मसीतां बीच कोली रहे ये आसिफर फरहदां अलम्

ये संत जनता में भ्रमण करते थे। यही लोकमत को बनाते थे। आज भी देहातों के मेलो-त्योहारों को देखिये गानेवाले देहाती जिन गीतों को गाते हैं, उनमें हिन्दू-मुसलमान का फ़र्क़ नहीं किया जाता। दोनों अपनी-अपनी धुन से जनता को मुख़ातिब करते हैं। इन गीतों ने लोगों के दिलों से कट्टरता को दूर कर दिया था।

दिल्लीवासी मुसलमान यारी साहब (सं १७२५-८०) 'रत्नावली' में लिखते हैं—

वे वदन चून अकेला, हिन्दू तुरक से न्यारा है।
सोई दरवेस दरस जिन पायो,
सोई मुसलमान सासा है?
आवे न जाय मरै नहीं जावे,
यारी यार हमारा है॥

मुसलमान शासन काल में जिस प्रकार साधारण जनता राजा की दृष्टि में एक सी थी, वही अवस्था अंग्रेजों के भारत में आने के समय भी थी। जिस समय पंजाब को ब्रिटिश भारत के साथ मिलाने की चर्चा हो रही थी उस समय १८४९ ई० में एक अंग्रेज़ गवर्नर जनरल ने पंजाब के सम्बन्ध में यहां के लोगों के स्वभाव तथा रहन-सहन के बारे में एक चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी का निम्नलिखित अंश ध्यान देने लायक है—

"उसी सेना में सिक्ख, हिन्दू, मुसलमान और पूरबिया पियन एक साथ रहते हैं। मुसलमान भारतीयों के साथ अच्छी तरह मिल गये हैं। अंग्रेज़ जब भारत के विभिन्न प्रान्तों में राज्य स्थापित करते हैं, तब उन्हें जनता में हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य नहीं दिखाई देता और इसलिए वे इसका विशेष वर्णन ही करते हैं। जनता के सम्बन्ध में तो उनकी यही धारणा है कि वह निष्क्रिय आज्ञाकारिता की आदी है। अंग्रेज़ों ने भेद-नीति का प्रयोग अपने एक ही मज़हब के मानने वाले दरबारियों में भी किया है। पंजाब में तेजसिंह आदि को सिक्खों के विरुद्ध भड़काया गया, बंगाल में सिराजुद्दौला के विरुद्ध मीरजाफ़र तथा मीरक़ासिम जैसे मुसलमान को खड़ा किया गया। महाराष्ट्र में हिन्दू पेशवाओं में भी इसी नीति का प्रयोग किया गया था। अवध का नवाब जब पदच्युत किया गया तब भी वहां की साधारण जनता ने धार्मिक पक्षपात के कारण राजद्रोह के कार्य नहीं किये थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस समय की जनता में तीव्र वैमनस्य नहीं था। यदि वैमनस्य होता तो यूरोपियन शक्तियां इसका लाभ उठाकर उन्हें अवश्य आपस में लड़ातीं। परन्तु उस समय के इतिहास में इस तरह हिन्दू-मुसलमानों के आपस में लड़ने के कोई उदाहरण नहीं मिलते।"

अब हम राजाओं की पारस्परिक ईर्ष्या पर विचार करेंगे। भारत के मुसलमान राजवंशों का इतिहास पढ़कर हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इन राजवंशों के राजाओं में धार्मिक कट्टरता की अपेक्षा, सांसारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कांक्षा का प्राबल्य था। इन्होंने जो भी अत्याचार ...सख्तियां की हैं उनका प्रेरक भाव धर्म-प्रचार नहीं ...। इनमें औरंगज़ेब ही एक ऐसा मुसलमान बादशाह ...जिसके राज्यकाल में धार्मिक अत्याचार हुये। लेकिन ...बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि औरंगज़ेब ने ...मन्दिरों की जागीरें भी दीं।

महमूद गज़नवी एक वीर आक्रमणकारी विजेता ...। उसके हृदय में धार्मिक कट्टरपन भी थोड़ा-बहुत ...। परन्तु भारत की भिन्न-भिन्न विजय यात्राओं में ...को नष्ट-भ्रष्ट करने का मुख्य कारण यह भी था ...भारत के धर्म मंदिर भारतीय ऐश्वर्य के कोष थे। ...आदि जातियों को मुसलमान बनाने में जहां ...इस्लाम प्रेम था, वहां यह भी एक कारण था कि ...अपनी सेना में एकता रखने के लिए आवश्यक ...था कि सब सिपाही मुसलमान हों। महमूद ने ...समय पर प्रतिद्वन्दी मुसलमान राजाओं को नष्ट ...में लिहाज नहीं किया।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ एलिफिस्टन लिखते हैं कि महमूद ...कट्टर मुसलमान नहीं था। उसने लोगों को ...मुसलमान नहीं बनाया। उसकी इन वृत्तियों के ...फ़ारस में उसे नास्तिक कहा जाता था। ऐसे ...कांक्षी लोग समय-समय पर साधारण सिपाहियों ...बनाने के लिए धर्म ग्रन्थ के नाम पर उसी ...अपील करते थे, जिस प्रकार रणजीत सिंह समय-...पर सिक्ख सेनाओं को उत्साहित करने के लिए ...ग्रंथ साहब' के नाम पर। यह काल हिन्दुस्तान में ...नहीं, सारे संसार में धार्मिक असहिष्णुता का काल ...। भारत में दूसरे देशों की अपेक्षा यह धार्मिक ...सहिष्णुता कम थी। वह केवल राजाओं तक सीमित ...। राजा राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए हिन्दुओं ...मिल भी जाते थे। महमूद ग़जनी ने कन्नौज के ...से सन्धि कर ली और समयानुसार हिन्दू ...ओं को हराकर उनकी जगह हिन्दुओं को ही राजा ...।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीयुत सी० वी० वैद्य लिखते हैं ...शहाबुद्दीन ने जो विजय यात्रायें की थीं, उनका ...धर्म-प्रचार नहीं था, अपितु राज्य विस्तार था। ...प्रकार यही विद्वान आगे लिखते हैं कि कुतुबुद्दीन तथा अल्तमश आदि ने राजनैतिक भावनाओं से प्रेरित होकर इस्लाम का प्रचार करने पर ज़ोर देना बंद कर दिया था।

हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा शेरशाह सूरी ने धार्मिक कट्टरता को छोड़कर राजनैतिक दृष्टि से प्रजा के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया। अकबर के सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। दीने-इलाही का संगठन तथा अरबी नामों का वहिष्कार, ख़लीफ़ा बनना, गो-हत्या और जजिया बंद करना ये सब बातें उसके स्वभाव को प्रकट करती हैं। अकबर ने उन्नत राजा की तरह धर्मान्धता और युक्तिहीन मुस्लिम रीति-रिवाजों को नष्ट करने का निश्चय किया था। उसने समझ लिया था कि भारतीय राष्ट्र या दिल्ली दरबार की प्रतिष्ठा तब तक क़ायम नहीं हो सकती, जब तक भारत के रहने वाले राजवंशों को अपनाया न जाय। इसी प्रकार शेरशाह ने भी जो सुधार किये उसमें हिन्दू-मुसलमान सबको धार्मिक स्वाधीनता दी थी। धार्मिक मुबाहिसों द्वारा उसने कट्टर मुसलमानों तथा विदेशियों को म्लेछ समझने वाले हिन्दुओं के दिमाग को उदार करने का यत्न किया। औरंगज़ेब के नाम शिवाजी ने जो चिट्ठी लिखी थी, वह मुग़ल शासन काल के राजाओं का स्वभाव दिखाने के लिए पर्याप्त है।

दक्षिणी-भारत में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को देखने के लिए हम यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त का आश्रय लेंगे। इटालियन यात्री पेतनो देला बेले लिखते हैं कि 'गुजरात में धार्मिक स्वतंत्रता थी।' मैथोल्ड (१७वीं सदी) यात्री ने भी मुसलमानों की धार्मिक सहिष्णुता का वर्णन किया है। यूरोपियन यात्री ब्रटन ने भी जगन्नाथ के विषय में लिखा है कि वहां अकबर के समय में कोई कर नहीं लगता था।

दक्षिण भारत में मुगल दरबार के मुक़ाबले में हिन्दू और मुसलमान राजा कई बार एक होकर लड़े।

इस सामान्य विवेचन के बाद हम औरंगज़ेब और फिरोजशाह तुग़लक, अलाउद्दीन खिजली और बलबन जैसे मुसलमान बादशाहों के धार्मिक अत्याचारों के विषय में विशेष रूप से विचार प्रगट करना चाहते हैं। अलाउद्दीन खिजली ने जितनी भी सख़्तियां कीं वे सब राजनैतिक थीं। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एलिफ़िस्टन लिखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि अलाउद्दीन ने लोगों के अन्दर समानता का भाव लाने के लिए हिन्दू-मुसलमान दोनों की निजी संपत्ति को छीनकर ग्राम पंचायतों को दे दिया था, और स्वयं पैग़म्बर बनने का प्रयत्न भी किया था। इसके पूर्ववर्ती राजा जलालुद्दीन ने सीदी मौला के १०,००० भक्तों को राजद्रोह के अपराध में मरवा दिया था। अलाउद्दीन का कहना था कि कि धर्म का राजकीय शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है वह तो व्यक्तिगत जीवन की चीज़ है।

फ़िरोज शाह तुग़लक, बलबन तथा सिकन्दर लोदी ने हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये थे उनका कारण राजाओं का व्यक्तिगत स्वभाव था। एलिफिंस्टन ने भी इस बात का समर्थन किया है।

औरंगज़ेब की धार्मिकता के विषय में फायर ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखा है कि औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान की तरह इसलामी हुकूमत क़ायम करना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि धर्म और राष्ट्र दोनों में मुसलमान राजा का मुख्य अधिकार हो। अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए उसने अत्याचार करने में कमी नहीं की। लेकिन क्या औरंगजेब इतना अदूरदर्शी था कि वह समृद्ध साम्राज्य को अपनी अत्याचार पूर्ण नीति से नष्ट कर देना चाहता था? क्या वह इतना कट्टर था कि उसने इस्लाम के खातिर साम्राज्य की परवाह नहीं की? उसने जो युद्ध किये हैं और जो सुलहनामे तथा अहदनामें लिये हैं उनसे पता लगता है कि वह भी अन्य मुसलमान बादशाहों की तरह मुगल साम्राज्य को और स्थायी तथा संगठित करना चाहता था। उसने जो अत्याचार किये, उनमें भी राजनैतिक चाल थी। वह दाराशिकोह का प्रतिस्पर्धी था। वह उसे नष्ट कर स्वयं निष्कंटक राज्य करना चाहता था। दारा शिकोह हिन्दुओं का पक्षपाती था। इसलिए वह हिन्दुओं का द्वेषी बनकर कट्टर मुसलमानों को अपने साथ रखना चाहता था। तब कट्टर मुसलमानों की भावनाओं से फायदा उठाने में उसने कमी नहीं की। राजपूतों, मराठों और सिक्खों की औरंगजेब की अपेक्षा दाराशिकोह के साथ अधिक सहानुभूति थी। संशयात्मा औरंगज़ेब ने आत्मरक्षा के ख़याल से जहां तक बन सका अपने राज्य और दरबार में कट्टर मुसलमानों को ही रखा। उसके समय में शिया लोगों पर भी वैसे ही अत्याचार किये गये थे जैसे हिन्दुओं पर; क्योंकि शिया लोग दाराशिकोह के पक्षपाती थे। लेकिन एक बार आग भड़कने पर औरंगज़ेब उसे शांत न कर सका। इस आग ने ही मुगल साम्राज्य की शक्ति को क्षीण कर दिया। हठ तथा अविश्वास पूर्ण नीति के कारण उसे सब कुछ करना पड़ा परन्तु यदि हम उसके पत्रों को देखें तो मालूम होता है कि वह अपनी भूल का स्वयं अनुभव करता था। वह समझता था शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए धार्मिक सहिष्णुता आवश्यक है।

औरंगज़ेब के सेनापति मुहम्मद अमीन खाँ ने बादशाह के पास रियायत तथा तरक्क़ी के लिए प्रार्थना भेजी और उसमें लिखा था कि मुझे सुन्नी होते हुए भी तरक्क़ी नहीं मिली और दूसरों की तरक्क़ी दी गई है।

इस चिट्ठी का जवाब देते हुये औरङ्गज़ेब ने लिखा था—"धर्म का शासन-कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारा धर्म तुम्हारे साथ है और मेरा मेरे साथ। यदि मैं तुम्हारे साथ चलूं तो मुझे सब हिन्दू राजाओं को निकाल देना चाहिए।"

औरङ्गज़ेब के अत्याचारों के केवल हिन्दू ही शिकार नहीं थे, मुसलमान भी तंग थे। वह स्वेच्छाचारी निरंकुश सम्राट था। यदि औरङ्गज़ेब निरा कट्टर सुन्नी मुसलमान होता तो वह अपने दरबार में हिन्दू कवियों को क्यों स्थान देता? लाला सीताराम (The struggle between Farrukhsiyar and Jahandar shah पुस्तक की भूमिका में) लिखते हैं कि औरंगज़ेब हिन्दू द्वेषी होते हुए भी अपने दरबार में हिन्दू कवियों को रखता था जिसमें मुख्य कवि कालिदास त्रिवेदी था।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विदेशी इतिहासज्ञों की खोजों और उनकी कृतिओं के आधार पर अभी तक जो भारत के मध्ययुग का इतिहास लिखा गया है वह तस्वीर के एक गलत पहलू को हमारे सामने रखता है। एक विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इस विषय की खोज की बड़ी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत् का आत्म-निर्णय का सिद्धान्त और पाकिस्तान

श्री गार्गीशङ्कर मिश्र

ज़ारशाही के समय रूस में सफ़ेद रूसी और इतर ज़मींदार तथा जागीरदारों के स्वार्थ के लिये अन्य फूट फैलाकर आपस में लड़ाए जाते थे। धार्मिक भिन्नता के कारण तो लड़ना मामूली-सी बात थी। जैसे अर्मनी ईसाई तथा अज़रबैजान के मुस्लिम तथा काकेशस वासिक और सुन्नी उज़बेकों में हमेशा रक्तपात होता ही रहता था। लेकिन कई मौक़ों पर धार्मिक साम्य होने पर भी रक्तपात हुआ करता था, जैसे उज़बेक और ताजिक में, दोनों सुन्नी मुसलमान होते हुए भी लड़ते थे।

सन १९१७ की क्रान्ति के समय हरेक सम्प्रदाय जाति या वर्ण के लोग स्वतन्त्र राष्ट्र बनकर रूस से सम्बन्ध तोड़कर अलग हो जाने की बात सोच रहे थे। क्रान्ति के प्रवर्तकों की आत्म-निर्णय की आवाज़ ने उनको इसके लिये और भी प्रोत्साहित किया था।

लेकिन क्रान्ति के प्रवर्तक नेताओं ने सचाई और कुशलता से परिस्थिति को सम्हाल लिया। हरेक जाति को असंतोष से त्राण पाने के लिये ही स्वतन्त्र होना चाहती थी और नेताओं ने एक वक्तव्य निकालकर तथा उस पर ईमानदारी से अमल कर जनता पर विश्वास जमा लिया। उस वक्तव्य का मुख्य अंश हर प्रकार के शोषण को नष्ट करना था। हरेक सम्प्रदाय को उसकी संस्कृति, भाषा, विश्वास, सभ्यता, रीति-रिवाज, और आर्थिक बातों के प्रति पूर्ण स्वतन्त्र रख केन्द्रीय सोवियत् शासन द्वारा संरक्षण का विश्वास दिलाया जाता था। कोई किसी से छोटा न समझा जावे इसलिये केन्द्रीय सरकार के नाम में से 'रूस' शब्द तक निकाल दिया गया। एक के मज़हब, जाति, वर्ण तथा भाषा वाली जनता को स्वतन्त्र इकाई में संगठित कर स्थानीय मामलों में स्वतन्त्र कर दिया गया। जितनी इकाइयाँ तय्यार हुईं उनकी जन-संख्या, शक्ति और आर्थिक व्यवस्था के अनुसार तीन श्रेणियों में बाँटा गया। प्रथम श्रेणी में यूनियन रिपब्लिक 'संघ जनतन्त्र' आते हैं। इनकी संख्या ११ है। दूसरी श्रेणी में 'ख़ुद मुख़्तार जनतन्त्र' आते हैं। इनकी संख्या २२ है। तीसरी श्रेणी में शुद्ध प्रदेश आते हैं जो बहुत बड़ी तादाद में हैं।

प्रत्येक श्रेणी के जनतन्त्रों को सांस्कृतिक स्वतन्त्रता दी गई है जिससे वे अपने अन्दरूनी मामलों में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं और इनमें से प्रथम श्रेणी वाले जनतन्त्रों को तो केन्द्रीय शासन से सम्बन्ध-विच्छेद कर पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाने तक के अधिकार दे दिये गए हैं। फिर भी कोई जनतन्त्र केन्द्रीय शासन से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहता। इसका मुख्य कारण यह है कि कोई भी जनतन्त्र दूसरे जनतन्त्र पर दबाव नहीं डालता। मार्शल स्तालिन के उद्गार इस विषय पर अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। वे कहते हैं:—

"यह निश्चय ही सत्य है कि कोई भी संघ-शासित जनतन्त्र यू० एस०एस०आर० से सम्बन्ध विच्छेद करना नहीं चाहता, लेकिन इसका मतलब यह कभी भी नहीं कि हम विधान में 'यूनियन रिपब्लिकों को स्वतन्त्रता पूर्वक सम्बन्ध विच्छेद करने के अधिकार की धारा ही न रखें। यू० एस० एस० आर० में एक भी 'यूनियन-रिपब्लिक' नहीं है जो दूसरी किसी यूनियन रिपब्लिक पर बेजा दबाव डालती हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं होता कि हम यू० एस० एस० आर० के विधान में से यूनियन रिपब्लिकों के समानता के अधिकारों को रखनेवाली धारा को ही मिटा दें।"

इसके अलावा जो दूसरे छोटे छोटे रिपब्लिक हैं—गोकि उन्हें सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार नहीं है फिर भी उन पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता। इसके लिये भाषाओं का लिपि में विकसित किये जाने का उदाहरण लें। रूस की कई भाषाएं ऐसी थीं जिनकी वर्णमाला ही न थी। ऐसी भाषाओं की उनकी खुद भी वर्णमालाएं तय्यार की गईं। दूसरी प्रचलित जैसे रशियन आदि वर्णमालाएं इन भाषा-भाषियों पर नहीं लादी गईं।

"कई जातियाँ इतनी पिछड़ी हुई थीं कि उनकी भाषा की वर्णमाला ही न थी। सोवियत ने इस तरह

❀ यू० एस० एस० आर० रूस का आधुनिक नाम है जो क्रान्ति के उपरान्त रखा गया है। इसका अर्थ होता है—Union of Soviet Socialist Republics)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संगठन तय्यार किये जिनसे, जहां अक्षरों का ज्ञान न था वहाँ अक्षर तय्यार किये गए। इस तरह से सन् १९३४ तक ७२ जातियों को उनकी ख़ुद की वर्ण-माला तय्यार कर दी गई।"

अब यहाँ यह विचार उठता है कि बड़ी और शक्तिवान यूनियन रिपब्लिकों को ही सम्बन्ध-विच्छेद का अधिकार क्यों है। छोटी दूसरी और तीसरी श्रेणी वाली रिपब्लिकों को इस अधिकार से वंचित क्यों रखा गया है? इसका समाधान मार्शल स्तालिन के शब्दों से हो जाता है:—"यह सोचना ग़लत होगा कि एक छोटी सी सोवियत रिपब्लिक, छोटी सी फ़ौज के बल पर स्वतन्त्र राष्ट्र रह सकेगी। इसमें शंका नहीं की जा सकती कि साम्राज्यवादी हिंसक पशु उसे शीघ्र ही हड़प जाएंगे।"

इससे यह बात और भी साफ़ होती है कि स्वतन्त्रता-पूर्वक सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिये अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने योग्य शक्ति का होना ज़रूरी है।

पाकिस्तान बन जाने के उपरान्त क्या वह अपनी रक्षा करने की शक्ति तय्यार कर सकेगा? जब ४० करोड़ की जनसंख्या वाला इतना बड़ा राष्ट्र ग़ुलामी के बन्धन काटने में असमर्थ हो रहा है तब ६ करोड़ की जनसंख्या को लेकर (वह भी दो इकाइयों में विभाजित) साम्राज्यवादी हिंसक पशुओं की रक्त-पिपासा से अपनी रक्षा कैसे कर सकेगा? जिन्नाह साहब जो अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून की दुहाई देते हैं जरा आँख खोलकर इस चीज़ को देखें।

रूस की अनेक क़ौमों को संगठित करने में एक ज़ार की शोषक साम्राज्यशाही नीति का दमन भी था। जैसा कि मार्शल स्तालिन के उद्गारों से समझा जा सकता है—

"रूस के प्रति अविश्वास रखनेवाली मनोवृत्ति जिन लोगों में भी थी, वह ज़ारशाही की नीति द्वारा तय्यार हुई थी। किन्तु अब, जबकि ज़ारशाही का नाम-निशान तक नहीं रह गया है, उसकी दमनकारी नीति का नाम-निशान तक मिट गया है अतः इस अविश्वास का मिट जाना अवश्यम्भावी है और रूस की ओर झुकाव बढ़ना निश्चित है। मैं विश्वास करता हूं कि अब ज़ारशाही के नष्ट होने के उपरान्त $\frac{९}{१०}$ जनता सम्बन्ध-विच्छेद की इच्छा भी न करेगी।"

यदि आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से छुटकारा पा, हम भी मार्शल स्तालिन के शब्दों को दुहरावें, तो निस्सन्देह कह सकेंगे कि हिन्दू-मुस्लिम कटुता अंग्रेजी हुकूमत द्वारा तय्यार की हुई चीज़ है और इसके संरक्षण के लिये जो मशीनरी ब्रिटिश हुकूमत द्वारा उपयोग में लाई जा रही है, उसके नष्ट होते ही अविश्वास और कटुता मिटकर प्रेम और भाईचारे को स्थान मिलेगा।

रूस में जिस प्रकार ज़ारशाही की दमन-नीति थी उसी तरह यहां ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भी वही नीति है। शोषण को चिरस्थायी और सरल बनाने के उद्देश्य से शोषितों में फूट डाली जाती है ताकि वे कमजोर बने रहें। तथा अपनी शक्ति केन्द्रित कर शोषकों के ख़िलाफ़ न खड़े हो सकें। यदि कहीं कोई शोषित वर्ग ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है तो क़ानून और सुव्यवस्था के नाम पर शोषकों द्वारा दमन चक्र में पीस दिया जाता है। अतः शोषकों के अलग हटते ही उनकी फूट डालने वाली नीति का भी नष्ट होना अवश्यम्भावी है। और इसके उपरान्त अपनी रक्षा करने के लिये शोषितों का संघबद्ध होना भी अनिवार्य है।

अणु-शक्ति के प्रकाश में अन्तर्राष्ट्रीय समस्या की ओर देखें तो हिन्दोस्तान की हिन्दू-मुस्लिम समस्या बच्चों का खिलवाड़ दिखाई देती है।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व संसार में एक दर्जन से ज़्यादा बड़े राष्ट्र थे। महायुद्ध ख़त्म होने के कुछ दिनों पूर्व तक चार बड़े राष्ट्र (रूस, अमरीका, ब्रिटेन और चीन) रह गए थे। किन्तु युद्ध ख़त्म होते ही चार बड़ों में से चीन न जाने कहाँ ग़ायब कर दिया गया। आज जो कुछ भी हो रहा है तीन बड़ों तक ही सीमित है। इन तीन बड़ों में रूस, अमरीका (संयुक्तराष्ट्र) और ब्रिटेन हैं। इनमें ब्रिटेन शक्तिहीन, धनहीन, व्यापारहीन होकर अमरीका की दया के कारण बड़ा बना हुआ है। अन्यथा उसकी वास्तविक हालत आधे बड़े अथवा दूसरे दर्जे के राष्ट्र की है। इस तरह से वास्तविक रूप से देखा जाये तो दो बड़े राष्ट्र ही कुल जमा इस समय संसार में शेष हैं। और बाक़ी ये सब राष्ट्र 'छोटे राष्ट्र' Small nations बन गए हैं। 'छोटे राष्ट्र' 'Small nations' का [illegible] अर्थ होता है शोषण के लिये तय्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१९४६]

आज इन ढाई बड़ों में जो कशमकश चल रही है ...छोटे राष्ट्र' रूपी 'शोषण के लिये तय्यार क्षेत्र' ...के लिये है। सम्भवतः शीघ्र ही परमाणुशक्ति ...का बँटवारे का निर्णय हो जायगा। इसे कहा ...दूसरा महायुद्ध। इसमें यदि रूस जीता तो ...एक बड़ा राष्ट्र शेष रहेगा। यदि संयुक्त-...अमरीका और ब्रिटेन जीते तो एक बड़ा संयुक्तराष्ट्र ...चौथाई बड़ा ब्रिटेन अर्थात कुल सवा बड़े शेष ...संसार छोटे राष्ट्रों अर्थात 'शोषण के क्षेत्रों' ...परिणित हो जावेगा। तब कहां रहेगा पाकि-...रहेगा हिन्दोस्तान, कहां रहेगा एशिया और ...संसार?

...के ही नहीं सारे संसार के पीड़ित, शोषित ...बड़ों द्वारा पददलित राष्ट्र स्वतन्त्रता प्राप्त ...करने और शोषण को नष्ट करने के उद्देश्य से ...किये जा सकते हैं। आज यदि इतना बड़ा बोझ ...मालूम देता हो तो हमारे नेताओं को ...वे एशिया और अफ्रीका के ही राष्ट्रों को ...हर प्रकार के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ ...करें। यह कोई कठिन कार्य नहीं है।

...शिकार हैं वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए हैं। ...ने उनकी चेतना नष्ट कर दी है। लेकिन ...ही हमारे मार्ग का अनुसरण वे भी करेंगे। ...शिकार हैं जैसे मिस्र, फ़िलिस्तीन, हिन्द-एशिया ...तो हमारे स्वतन्त्रता संग्राम पर आंख गड़ाए ...है और हमारे युद्ध के हरेक पहलू से प्रेरणा ...है। अख़बारों से ज्ञात होता है कि मिस्र ने ...Egypt' (मिस्र छोड़ो) की आवाज़ लगाई है। ...हिन्द एशिया भी हिन्द एशिया छोड़ो की ...रहा है। इन प्रेरणाओं का मूल हिन्दुस्तान की ...की लड़ाई में प्रयुक्त 'Quit India' ...छोड़ो' नहीं है ऐसा कौन कह सकता है?

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पीड़ित राष्ट्र एकत्रित किये जा सकते हैं। अतः हमारे नेताओं को चाहिये कि अतिशीघ्र पीड़ित, शोषित तथा गुलाम राष्ट्रों की परिषद आमन्त्रित कर, संघबद्ध हो शोषकों के खिलाफ सङ्गठित रूप से, एक ही प्रोग्राम के अनुसार लड़ें। सफल होने के उपरान्त रक्षा के लिये इस संघ को क़ायम रखना ही होगा।

यह कार्य हिन्दुस्तान के अलावा दूसरा कोई भी राष्ट्र नहीं कर सकता। क्योंकि बग़ैर शस्त्रों के लड़ना सिवा हिन्दुस्तान के और कोई राष्ट्र जानता ही नहीं।

जब यह काम करने में हमारे नेता सफल होंगे तभी यह आवाज़ें लगाई जा सकेंगी—साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, शोषणवाद, भारत छोड़ो, एशिया छोड़ो और दुनिया छोड़ो।

हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या तो सुलझेगी ही।

श्रीमती अरुणा आसफ अली ने कहा है:—

तीसरी मर्तबा विश्वास न कर सकने वाली गप्प का, कि हिन्दू और मुसलमानों की फूट अमिट है, पर्दा फ़ाश हो गया। कलकत्ता और बम्बई में हिन्दू और मुसलमान कांग्रेस और लीग के झण्डे साथ साथ ऊँचे उठाये हुए साम्राज्यवाद के कर्मचारियों की गोलियां झेल रहे थे। यदि वे एक साथ मर सकते हैं तो वे एक साथ जी भी सकते हैं।

"अब तक हमेशा अंग्रेज़ों ने यही कहा है कि वे हिन्दू-मुस्लिम भेद के अमिट होने के कारण ही हिन्दुस्तान की मांग को मंजूर नहीं कर सकते। यह एक उदाहरण है जब वे एक हुए हैं। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत के पास देने को सिर्फ गोलियां ही हैं। चाहे कुछ न हो लेकिन कलकत्ता और बम्बई ने हिन्दू-मुस्लिम फूट की झूठी बात को सदा के लिये दफना दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्त

श्री आरसीप्रसाद सिंह

हर प्रकाश की रेखा कहती,
मेरे पीछे काला है ;
रात लगी हर दिन के पीछे,
तम के साथ उजाला है !

यह दुनिया जितनी लम्बी है,
उससे भी अनगिनत—गुनी
वह दुनिया है बड़ी, चली जो
आती है बे कही—सुनी !

ऊबड़-खाबड़, झील-सरोवर;
कम्पन है औ हलचल है !
पर्वत पर हैं फटी दरारें ;
घाटी है औ जंगल है !

कहीं न जीवन-पथ समतल है,
कहीं एक-सा नहीं सरस !
यह विचित्ररूपिणी स्वयं है
विविध विरोधाभास-विवश !

और सर्प-सी यह अबाध गति
क्रमशः बढ़ती जाती है !
जैसे चक्करदार मार्ग से,
सरिता छूटी आती है !

हर आदमी एक मस्तक पर
अपना ही संसार लिये
अपना ही ब्रह्माण्ड निराला
घृणा लिये या प्यार लिये

रखता है हर कदम सँभल कर
कहीं धरा पर गिर न पड़े !
सांस-सांस पर सोच-समझ कर,
जीवन हो अस्थिर न पड़े !

दिशा-काल से बँधा हुआ नर,
जितना उठता जाता है,
सुरसा-सा विस्तार व्योम का
मुँह फैलाता आता है!

और यहीं आश्चर्य-चकित हो
मानव कह उठता, विराट है !
अन्तहीन यह सृष्टि देखकर
मन्त्र-मुग्ध है, वह अवाक् है !

जिस प्रकार सोया अतीत है
धरा-गर्भ में आज विजित,
आगामी कल के हाथों से
वर्तमान् का बध निश्चित !

ज्यों-ज्यों बढ़ती ज्योति-रश्मियां,
त्यों-त्यों गहरी छाया भी !
जब तक अपना रूप न झलका,
वह पहचान न आया भी !

बिजली की हर चकाचौंध पर
काला घना अँधेरा है !
हर तरंग को खाई ने भी,
उसी तरह से घेरा है !

लेकिन, फिर भी बना नहीं यह
किसी निराशा का कारण !
निस्सन्देह मृत्यु यदि सच है,
तो उससे बढ़ कर जीवन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहम् !

श्री रामावतार विद्याभास्कर

सब प्राणियों को अपने आपे से अधिक प्रेम होता है। यह सर्वातशायी प्रेम ही मनुष्य का अन्तरात्मा या स्वरूप है। इस प्रेम रूपी स्वरूप में ही मनुष्य की शान्ति निहित है। प्रेमावस्था ही मनुष्य का निज रूप है, प्रेम रहित अवस्था स्वरूप विस्मृति है। प्रेम ही सकल संसार के उद्योगों का केन्द्र बिन्दु होने से यही समस्त जगत का अन्तरात्मा है। व्यष्टि प्रेम देहों को पालता है और समष्टि प्रेम संसार का पालन वाला है। समष्ट प्रेम जगत्पालन करने वाला विश्वस्रष्टा और यही जगत्लय करने वाला रुद्र है। इस व्यष्ट अहं का विश्वव्यापी प्रेम से भिन्न और कोई रूप नहीं है।

उद्देश्य ही फल है और फल ही कारण है। फल से ही पदार्थ उत्पन्न होते हैं और फल में ही विलीन हो जाते हैं। पदार्थ विलीन होते समय फल में कारण रूप में लीन होकर रहते हैं और आवश्यकता अर्थात् अनुकूल परिस्थिति आने पर फल में से फिर बाहर आ जाते हैं। जो वृक्ष का उत्पादक कारण ढूंढ़ना चाहें उन्हें उसका मूल न खोदकर उसकी अग्रशाखा पर लगे हुए फल को खोजना चाहिये और उस फल के भीतर छिपे हुए बीज को वृक्ष का आदि कारण जान लेना चाहिये। फल में से बीज उत्पन्न होता है। फल को उत्पन्न करके वृक्ष का जीवन सार्थक हो जाता है। संपूर्ण वृक्ष फल में बीज रूप में समाया हुआ रहता है। इसलिये बीज और स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। वृक्ष के इस उदाहरण के अनुसार संसार का मूल कारण ढूंढ़ने वाले को संसार का उद्देश्य जानना चाहिये। संसार का उद्देश्य जानने के लिये अपने जीवन का उद्देश्य जानना चाहिये। इस विशाल संसार में वे ही नियम काम कर रहे हैं जो हमारे ऊपर काम कर रहे हैं। मानव देह इस संसार रूपी विशाल ग्रन्थ को सरलता से समझ सकने का गुटका है। संसार में जो कुछ समझ में न आवे अपने ऊपर ध्यान देकर समझा जा सकता है। यदि मनुष्य संसार के उद्देश्य को जान जाय तो मूल कारण उसके में आ जाय। जिस बात से मनुष्य मात्र को आनन्द मिलता है, वही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है, वही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है वही इस जगत का कारण है, और वही इस जगत का फल है। जिस प्रकार फल को उत्पन्न करके वृक्ष का जन्म सार्थक हो जाता है उसी प्रकार शान्ति को उत्पन्न करके जगद्रचना सफल हो जाती है। प्रेम ही जीवन का उद्देश्य, प्रेम ही जगत का कारण और प्रेम ही जगत का फल है। पवित्रता तथा पूर्णता ही प्रेम का निर्मल रूप है। प्रेम का अर्थ आनन्द है। ब्रह्म को जो सच्चिदानन्द कहा जाता है उसके आनन्द रूप का यही विवरण है।

क्योंकि प्रेम या शान्ति ही संसार का उद्देश्य या फल है इसलिये प्रेम ही संसार का आदि कारण है इसी से जगत के कारण ब्रह्म को आनन्दस्वरूप कहा जाता है। जब प्रेम या शान्ति उत्पन्न हो जाती है तब संसार की रचना आधक हो जाती है। तब सारा संसार प्रेम या शान्ति में बीज रूप में प्रविष्ट हो जाता है। क्योंकि प्रेम या शान्ति के उत्पन्न होते ही मनुष्य को अपने जीवन का धन्य कहने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। इसलिये जीवन में धन्यता का दर्शन हो जाना ही जीवन की तथा जगत की सार्थकता का रूप है और यही इस जगद्रचना का फल है।

अहं अर्थात् मैं प्रेम का रूप लेकर जीवन में प्रकट हुआ है। यह समग्र जगत प्रेम रूप में प्रकट होने वाले इसी अहं का विस्तार है। अहं ही सारे संसार का बीज या मूल रूप है। वही समग्र विश्व के रूप में प्रकट हुआ है। माता के गर्भ में बालक के समान अहं में ही सारा संसार गर्भित है। इसीसे सारा संसार अपने को अहं! अहं! मैं! मैं! कहता है। यह समग्र संसार इसी अहं की विभूति है। जो हम सबका तथा समग्र संसार का स्वरूप है वही 'ब्रह्म' है।

यह ब्रह्म तत्व अपनी ही अन्तर्निहित स्वाभाविक शक्ति रूपी माया से एक रहता हुआ भी अनेक हो गया है; यह अव्यक्त रहता हुआ भी व्यक्त हो गया है। एक से अनेक हो जाना अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त हो जाना ही इस अहं रूपी ब्रह्मतत्व का विस्तार या इसका जगद्भाव है। यह जगद्भाव इस अहं तत्व का अत्याज्य स्वभाव है। अहं का जगद्भाव सदा से हो रहा है और सदा होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। अहं का जगद्भाव इसकी स्वरूप दर्शनार्थी ऐसी लीला है जो कभी समाप्त नहीं होगी।

अहं शब्द में प्रेम का झलक है। त्वं में प्रेम की झलक नहीं है। त्वं में भेद, पृथक् पृथक् अस्तित्व, घृणा तथा स्वार्थ का झलक है। यदि त्वं का जगद् रूप माने तो संसार में अनेकता तथा स्वार्थ का राज्य हो जाय और फिर सर्वत्र अशान्ति ही अशान्ति फैल जाय। त्वं तथा भेद का नित्य साथ है। त्वं जगत में विरोध फैलाने वाला जगद् ध्वंसक होने से जगत् का स्वरूप नहीं है; किन्तु जगत का एक बनाने वाला, जगत में प्रेम बढ़ाने वाला 'अहं' ही जगत का रूप है। अहं आत्ममूलक है और त्वं देह मूलक है। अहं ही ब्रह्म है। जगत भर का अनुभवरूप अहं 'पूर्ण अहं' या व्यापक ब्रह्म तत्त्व कहाता है।

यह 'अहं' अपने अस्तित्व मात्र से लोहे को गति देने वाले अयस्कान्त मणि के समान इस जगत का स्वाभाविक (कर्तृत्वाभिमान रहित) कर्ता है। अहं के साथ स्वाभाविक क्रियायें अत्याज्य रूप से जुड़ी हुई हैं। जहां अहं है वहां क्रिया है, जहां क्रिया है वहां अहं है। क्रियाहीन अहं कहीं नहीं है। अहं से हीन क्रिया भी कहीं नहीं है। अहं अपने विशुद्ध अहमात्मा के दर्शन करने के लिये जो अखण्ड अनन्त अथकाव्यक उद्योग कर रहा है वही उद्योग विराट् सृष्टि के विश्वव्यापी सन्तत कर्म के रूप में प्रकट हुआ है। अहं के स्वाभाविक कर्तापन से ही जगत में क्रियाओं का अनन्त नोदय बह रहा है। और सब अहं रूपी आत्मसागर में आ आकर गिर रहा है। इस जगदात्मा अहं का क्रिया करने का अभिमान नहीं है, फिर भी यह क्रिया कर रहा है। जिस प्रकार वृक्षों का फल देने का, नदियों का जल बहाने का या मेघों का जल बरसाने का अभिमान नहीं है और इनके द्वारा ये सब क्रियायें निरन्तर हो रही हैं, इसी प्रकार अहं का स्वभाव ही समस्त जगत की क्रियाओं का एक मात्र कारण या कर्ता बना हुआ है। कर्तापन का अभिमान न होने पर भी क्रिया होते रहना ही स्वाभाविक कर्तापन का रूप है। जगद् व्यापी पूर्ण अहं अपने स्वाभाविक कर्तृत्व से जगत भर को क्रियाशील बनाकर अपनी पूर्णता और अपनी विश्वव्यापिता के दर्शन के लिये कोटि कोटि उद्योग करने में संलग्न हो रहा है। अकर्तृत्व का दर्शन (मैं कुछ नहीं कर रहा इस सच्चाई का दर्शन) ही पूर्णता के दर्शन का स्वरूप है। अनावश्यकता ही पूर्णता है। वह अपने पूर्णत्व के दर्शन के लिये ही इस सब चराचर जगत के रूप में विभक्त हो गया है और अपूर्ण बनने का नाटक खेल रहा है। और अपने आप ही इसका द्रष्टा बना बैठा है। वह इस नाशवान संसार की ओट में छिपकर अपनी शुद्धता और अपनी अविनाशिता का झांका लेने में लग रहा है। उसके इस झांकी लेने के स्वभाव में से ही मानव का जन्म हुआ है।

शुद्ध अहं का अनुभव

अहं के अशुद्ध तथा शुद्ध दो रूप हैं। अशुद्ध अहं व्यक्तियों के रूप में प्रकट हुआ है और शुद्ध अहं समष्टि रूप में सबका अन्तर्याम है। जब मनुष्य अहं के शुद्ध निर्मल अविनाशी रूप को देखना चाहेगा तब उसे अपने ही भीतर अपने अन्तरतम प्रदेश में डुबकी लगानी पड़ेगी। जब मनुष्य अपने पावन अन्तप्रदेश में डुबकी लगायेगा तब देखेगा कि यह सम्पूर्ण व्यक्त संसार अहं को ही अपना मध्य बिन्दु बनाकर परिवर्तित हो रहा है और स्वयं सदा अपरिवर्तित रह रहा है। यदि मनुष्य परिवर्तनातीत अहं को देखना चाहेगा तो वह उसे सदा अपने पावन मन में देखेगा। मन के अपावन रहते हुये परिवर्तनातीत अहं का दर्शन प्राप्त नहीं होगा। अविनाशी अहं देखना होगा उसे अपने मन को पावन रखना पड़ेगा।

यद्यपि नाना विध भौतिक भेदों तथा नाना विध शरीरों के अस्तित्व के कारण एक निर्मल अपरिवर्तनशील अद्वैत तत्त्व का दर्शन कठिन सा प्रतीत होता है, परन्तु जब मनुष्य के मन में दर्शन करने का आग्रह उत्पन्न हो जाता है तब इन सब भिन्नताओं और नानात्वों का आवरण उसके दर्शन का साधन (विरोधी साधन) बन जाता है। शुद्ध मन इन सब विरोधी साधनों को इस प्रकार उपयोग करता है कि जिससे उसका जीवन प्रत्येक क्षण तथा जीवन के प्रत्येक व्यवहार में एक निर्मल अपरिवर्तनशील पूर्ण अहं का साक्षात्कार रहने लगता है। जिस दिन मनुष्य को पूर्ण अहं का साक्षात्कार होता है उस दिन उसका मन शुद्ध हो चुका होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना का न रहना ही मन की शुद्धता का स्वरूप है। जिस मनुष्य को अपने शुद्ध मन की शरण में जाने की कला प्राप्त हो जाती है वह अपने आपको सांसारिक परिवर्तनों से पृथक, उनके तटस्थ दर्शक या जगत्साक्षी के रूप में निर्लेपावस्था में पाने लगता है। वह भौतिक सीमाओं के बीच में घिरा रहकर भी अपने आपको निस्सीम पाने लगता है। वह अपने एकान्त हृदय मंदिर में जगत के स्रष्टा अहं के शुद्ध रूप को देखकर सिन्धु में बिन्दु के समान उसी में तल्लीन होकर आनन्द मग्न या आत्ममग्न रहने लगता है। असीम होकर आनन्द मग्न या आत्ममग्न हो जाना ही मन की शुद्धता का सच्चा स्वरूप है। इसको मनुष्य की 'अहं ब्रह्मता' कहा जाता है। इस भेद भरे संसार में अभेद रूपी तत्व को देखने वाला ही अहं की ब्रह्मता का रूप है।

यही अहं सन्तों का अपनाया हुआ जीवन क्षेत्र है। वे इसी जीवन क्षेत्र में विचरण करते रहते हैं। वे इसी अहं का अनुभव करके जगत के व्यापारों में रहते हुए भी उन्हें अपने में नहीं देखते। वे जीवन के प्रत्येक क्षण इस शुद्ध अहं में निवास करने को ही आत्मानन्द मानकर इसीमें मग्न रहते हैं। वे अपनी इन्द्रियों को साधारण प्राणियों के समान भोग के साधन न रहने देकर उन्हें आत्मानन्द को व्यक्त करने के यन्त्र बना लेते हैं। वे सब भूतों में इसी पूर्ण अहं का दर्शन करके सबसे कमलवत् व्यवहार करके जीवन भर अद्वैतोत्सव मनाते रहते हैं। यही मनुष्य जीवन की सर्वोत्तम अवस्था है। यही मनुष्य का शोकातीत अपना आपा या पूर्ण अहं है।

शोकातीत अवस्था में रहने वाला मनुष्य दूसरे के देहों में रहने वाले देही को अपने स्वरूप से भिन्न नहीं समझता। अज्ञानी मनुष्य नाशवान देहों की ममता या आसक्ति से ही शोक मनाता है और दूसरों से न करने योग्य व्यवहार करता है। अज्ञानी मनुष्य जिसे अपनाता है उसे विनष्ट होता देखकर शोकाकुल होता है। परन्तु जो अविनाशी, अव्यय सत्ता है, उसका विनाश या अभाव नहीं हो सकता। आत्मा सदा से जगत भर के अविनाशी का साक्षित्व करता आ रहा है। आत्मा को अपनाने वाले के पास शोक मनाने का प्रसंग कभी नहीं आता। संसार भर की देहों में एक समान प्रतीत होने वाला यह अविनाशी अव्यय पदार्थ ही सब देहों का एकमात्र अद्वैत देही या पूर्ण अहं है। जो इसे पहचान लेता है वह अपने-पराये देहों के देह स्वामी को अभिन्न अद्वैत रूप में पाता है और जीवन को उत्सव बना लेता है।

अपने देह के देही की पहचान हो जाना ऐसी पावनी अवस्था है कि इसके प्राप्त हो जाने पर अपने पराये भौतिक शरीरों में ममता या आसक्ति लुप्त हो जाती है। जब तक मनुष्य आत्म स्वरूप को नहीं पहचानता तब तक उसकी दैहिक ममता या आसक्ति नहीं हटती और पापाचरण समाप्त नहीं होते जब मनुष्य एक विश्वव्यापी अविनाशी आत्मा को अपना तथा सब भूतों का स्वरूप जान जाता है तब वह ज्ञान की शोकातीत अवस्था में पहुंचता है और निष्पाप जीवन का स्वामी बन जाता है। शोकातीत स्थिति में पहुँचे हुए मनुष्य के लिये अपनी परायी देहों से ममता रखना तथा परायी देहों के देही से अपने स्वरूप को भिन्न समझना ये दोनों बातें असंभव हो जाती हैं। देहासक्ति से मुक्त होकर निर्विकार शोकातीत आत्म स्वरूप तक दृष्टि पहुंचा देना ही 'ज्ञान की अवस्था' है। ज्ञानी की दृष्टि इतनी फैल जाती है कि वह अपने अहं में तथा सम्पूर्ण विश्व के अहं में एक ही आत्मा का दर्शन करता है। जिस प्रकार भिन्न भिन्न आधारों में भरे होने पर भी आकाश, वायु तथा जलों का एक ही तत्व होता है, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष संसार भर की देहों में एक ही देही को स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ हो जाता है। शोकातीत ज्ञान प्राप्त हो जाने की अवस्था ही आत्म दर्शन की अवस्था है। जो शोक नहीं मनाता वह आत्मदर्शी है। आत्मदर्शी पुरुष सर्वभूतस्थ आत्मा या पूर्ण अहं को ही अपना स्वरूप जानता है। वह देहों के जन्म-मरण को एक आत्मा के नवीन वस्त्र धारण तथा जीर्ण वस्त्र त्याग के रूप में देख कर शोकातीत उत्सवमय जीवन बिताता है और अपने जीवन को धन्य कर लेता है।

अहं का त्याज्य रूप

सब भूतों के एकात्म पूर्ण अहं ने इस भेद-संकुल संसार का अपने अभेद रूप का दर्शन करने का विरोधी साधन बनाया है। जैसे संसार में सर्वत्र विरोधों क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओट में ही, अनुकूलता का वास है इसी प्रकार अपने विरोधी भेद की ओट में ही अभेद का स्थान है। विरोधियों के विरोध का अपमान करने पर ही अविरोध का दर्शन होता है। यदि मनुष्य का मन पवित्र न होगा तो उसकी दृष्टि उस अभेद तक नहीं पहुँच सकेगी जो सूक्ष्म मनोगम्य है और वह अपने को भेद के साथ मोह-पाश में बाँध डालेगा तथा इन्द्रियों की दासता स्वीकार कर लेगा।

मनुष्य के मन में एक ऐसी शक्ति है कि यदि मनुष्य निर्मल अहं को अपना ले तो वह शक्ति उसे सन्त बना सकती है। मनुष्य की सन्त बनने की यह शक्ति ही अनुपयुक्त होने पर कामवासना, विषय शक्ति या अशक्ति के दूसरे दूसरे घातक रूपों में प्रकट होती है। जब मनुष्य सन्त बनने की शक्ति को काम में नहीं लाता, तब उसकी यही शक्ति अशक्ति बनकर उसीके लिये भयङ्कर बन्धन रज्जु बन जाती है। मनुष्य की सन्त बनने की शक्ति को प्रकट होने का अवसर मिले यही इस जगत की रचना का गूढ़ अभिप्राय है। सन्त बनने की शक्ति को प्रकट होने का अवसर देने के लिये ही यह जगन्नाटक खेला जा रहा है। इसलिये मनुष्य को इस जगत के उपयोग करने का ऐसा ढंग ढूँढ़ निकालना है कि जो इस अभिप्राय का विरोधी न हो। मनुष्य की जीवन नीति का इस अभिप्राय के साथ अविरोधी हो जाना ही सन्त जीवन का स्वरूप है। मनुष्य की जीवन नीति का इस उद्देश्य से विरोधी हो जाना ही पतित या लक्ष्य-हीन जीवन का स्वरूप है।

शक्ति के अनुपयोग या दुरुपयोग दोनों अशक्ति बनकर प्रकट होते हैं। आँख खुली हो तो देखकर चलने की शक्ति प्राप्त होती है। जब वह दर्शन शक्ति काम में नहीं लायी जाती, तब ठोकर खाकर गिरने के रूप में अशक्ति प्रकट होती है, देखकर मार्ग चलना मनुष्य के ग्रहण करने योग्य नीति है तथा ठोकर खाकर गिरना मनुष्य के त्यागने योग्य प्रवृत्ति है। इसी प्रकार शुद्धता, शान्ति, निर्मलता आदि का आनन्द लेना अहं का ग्राह्य रूप है; तथा अशुद्धता अशान्ति और मालिन्य आदि दोषों को अपनाना और इन दोषों का भ्रष्ट सुख भोगना अहं का का निकृष्ट घृण्य तथा त्याज्य रूप है। यही अहं सन्तों को सत्यारूढ़ बनाने के लिये उनके मन में त्याज्य असत्य के रूप में प्रकट होता है। वे इस असत् अहं को अर्थात ममता, मोह, माया को अस्वीकार कर देते हैं और अपने निर्मम, निर्मोह, निर्माय रूप की ओर झुककर पवित्र आचरणों को अपनाते हैं।

जब मनुष्य को भूख लगे उसे चाहिये कि वह अभोज्य पदार्थ को त्याग दे और भोज्य को खाकर अपने क्षुधा निवृत्ति रूपी स्वरूप का उपभोग करे। इसी प्रकार मनुष्य को ऐसी कला आनी चाहिये कि वह अशान्ति के कारणों के उपस्थित होने पर अपने विवेक (होश) को ठीक रख सके। उसे चाहिये कि वह तात्कालिक घटनाओं से उत्तेजित न होकर अर्थात् अशान्ति के कारणों को अपनाने की भूल न करके, अपने शान्त सन्तरूप को अपनाने का मार्ग स्वीकार करे। यदि मनुष्य ऐसा करेगा तो उसके शरीर की तथा इस जगत की रचना का गूढ़ अभिप्राय पूरा हो जायगा। इस संसार में आनेवाले प्रत्येक मनुष्य का यही पवित्र कर्तव्य है कि वह अशान्ति के कारणों को अपनाने से बचकर शान्त सन्त रूप को अपना ले। यही मनुष्य के विचार का सच्चा स्वरूप हो सकता है। जब मनुष्य विचार के इस सच्चे राजमार्ग को छोड़ देता है तब जगत क्यों और कैसे हुआ आदि नानाविध प्रश्नों को सुनते ही निश्चय हो जाता है कि प्रश्नकर्ता ने अहं का त्याज्य रूप अपना रक्खा है। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देना अकर्तव्य और अशान्ति देनेवाला तथा कभी समाप्त न होनेवाला मायाजाल है।

अहं के सच्चे रूप को अपनाने पर ही मनुष्य को शान्ति मिल सकती है। जो मनुष्य अपने इस सच्चे रूप से परिचित हो जाता है उसका इन्द्रियों से विषयों का स्पर्श करके सुखी होने का भ्रम मिट जाता है। वह इन्द्रियों से पदार्थों का सम्पर्क होने के अवसरों पर अपनी शान्ति को अपने हाथों से बाहर नहीं निकलने देता। वह उस समय धीरज रखता है और कर्तव्य, अकर्तव्य, अधिकार अनधिकार आदि का पूरा पूरा विचार करके, केवल कर्तव्य करता, और केवल अधिकार में हाथ डालता है। उसकी इन्द्रियाँ स्वभाव से जिन-जिन विषयों को उसके सामने लाती हैं वह उन सबसे उचित व्यवहार करता है। वह विवेक में स्थित तथा शान्ति में सुप्रतिष्ठित होकर उन विषयों से यथोचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार करके अपने आप अपनी शान्ति का विधाता बना रहता है। परन्तु जो लोग घटना के आते ही अशान्त बन जाते हैं वे इसीलिये अशान्त बन जाते हैं कि वे इन्द्रियों के बन्धन में फँसकर उनके दास बन जाते हैं और सदा उन को सुखी रखने के स्थान पर इन्द्रियों को सुखी बनाने के पीछे अन्धे होकर अपने आप ही अपने लिये अशान्ति की सृष्टि करने में लगे रहते हैं।

यदि मनुष्य व्यक्तिगत रूप से अशान्त बने रहेंगे तो उनसे बना हुआ सारा समाज अशान्त हो जायगा। यदि मनुष्य समाज में से अशान्ति को हटाना अभीष्ट हो तो समाज के प्रत्येक मनुष्य को, मनुष्य के इस सच्चे स्वरूप की पहचान करानी पड़ेगी और अशान्ति रूपी विषयासक्ति को समाज में से हटाना अर्थात् घटाना पड़ेगा।

विषयासक्ति ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को एक दूसरे के सुख को छीननेवाला लुटेरा बना देती है। यदि मनुष्यों के मनों में विषयासक्ति को जीवित रहने दिया जायगा तो फिर किन्हीं सिद्धान्तों या शासनों (कानूनों) के द्वारा से समाज में शान्ति स्थापित करने की दुराशा रखना बालू का भवन बनाना होगा। तब ये सब सिद्धान्त तथा नियम (कानून) अपने पेट में अशान्ति का वह लावामुखी लिये बैठे रहेंगे जिससे समय समय पर अवसर पर लूट खसोट या आक्रमण आदि के रूप में विस्फोट होते ही रहेंगे।

सुखी मनुष्य की यह पहचान है कि उसके मन में सुख की चाह तथा दुख का भय नहीं रहता। वह अपनी इस मनोदशा के कारण दूसरों के साथ सद्व्यवहार करने में समर्थ हो जाता है। वह उदार होकर दूसरों के जीवन-अधिकार को स्वीकार कर लेता है। वह अपने आप को समाज की शान्ति का संरक्षक (चौकीदार) बना लेता है। जो मनुष्य अशान्त मन लेकर समाज में रहते हैं, वे जीवन भर अपना तो अकल्याण करते ही हैं; वे साथी-समाज को भी अशान्त बनाये रखते हैं। उनका अशान्त मन ही अहं का त्याज्य रूप है।

त्याज्य अहं का किया हुआ अनर्थ

त्याज्य अहं मनुष्य को मनुष्य न रहने देकर उसे पशु बना डालता है। पशु एक दूसरे का भोजन छीनकर खाते हैं और एक दूसरे को भी खा डालते हैं। उन्हें इस काम में कोई धर्म-संकट नहीं होता। वे केवल जिस किसी प्रकार अपने को जीवित रखने के लिये पृथिवी पर आये हैं। वे दूसरों को सुख सुविधा में रखने का उत्तरदायित्व लेकर नहीं आये। उनकी बनावट ही ऐसी हीन है कि उन पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है। परन्तु मनुष्य जिस किसी प्रकार जीवन काटने के लिये पृथ्वी पर नहीं आया। मनुष्य के विधाता ने मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य छाँटने की विशेषता और उत्तरदायित्व से सुसज्जित करके भेजा है। यदि मनुष्य अपनी इस विशेषता और उत्तर-दायित्व को काम में नहीं लाता और पशुओं के समान एक दूसरे के भोग्य पदार्थों को लूटने तथा एक दूसरे को खाने लगता है तो वह मनुष्य के आकार का पशु बन जाता है। सच्चे मनुष्य से ऐसी आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि उसका मस्तिष्क विधाता की विशेष रचना है। विवेक ही मनुष्य के मस्तिष्क की विशेषता है। इस विशेषता के होने पर ही मनुष्य मनुष्य तथा मनुष्य समाज मनुष्य समाज बना रह सकता है। नहीं तो वह पशुओं का समाज हो जाता है। जब मनुष्य में से विवेक रूपी विशेषता लुप्त हो जाती है तब उसमें न तो पशुओं जैसी स्वाभाविकता रहती है और न तब उसमें मनुष्यों जैसी विशेषता पायी जाती है। ऐसे मनुष्यों से बना हुआ समाज अशान्त समाज हो जाता है। जब तक समाज के मनुष्यों को अपने आभ्यान्तरिक सुख का पता नहीं चलेगा तब तक वे भौतिक साधनों के आधार से सुखी होने का उद्यम करते ही रहेंगे और इस अपने अनर्थकारी उद्यम से तथा समाज के दुख के कारण बने रहेंगे—उनका यह उद्यम ऐसा उद्यम होगा जो सदा मनुष्य समाज की शान्ति और सुख का अपहरण करता रहेगा।

सच्चे अहं को खोजने की आवश्यकता

यह प्रश्न उठ सकता है कि मनुष्य सच्चे अहं को अपनाने के संकट में क्यों पड़े? वह अपनी इन्द्रियों को भोगों से तृप्त करने के उस संसारी मार्ग पर ही क्यों न चलता रहे जिस पर संसार का बहुमत जा रहा है। वह भोगासक्त रहने का ही प्रयत्न क्यों न करता रहे? इसका यही उत्तर है कि मनुष्य जिस सुखरूपी लक्ष्य को पाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये भोग करता है उसका वह लक्ष्य भोग के मार्ग में निश्चित रूप से अप्राप्त रहता है। भोगों में फँसने की अवस्था ऊपर ही ऊपर मे मीठी लगती है भीतर तो वह मनुष्य के असन्तोष की अवस्था है। भोग के मार्ग में असन्तोष का ज्वालामुखी धधकता रहता है। मनुष्य का स्वभाव मनुष्य को सच्चा मुक्त आनन्द लेने के लिये प्रेरित करता रहता है और जब तक वह मुक्त आनन्द न पा लिया जाय तब तक उसे व्याकुल बनाये रहता है। मनुष्य का स्वभाव मनुष्य को विवश करता है कि वह बद्ध न रहे, वह मुक्ति का आनन्द भोगे, और अहं की चादर में लिपटे हुए गुप्त सत्य को प्रत्यक्ष करे। जब मनुष्य अहं से आच्छादित सत्य को देख लेता है तब उसका जीवन शान्त तथा कृतकृत्य हो जाता है। और तब यह जगद्रचना भी सफल हो जाती है।

जब तक मनुष्य सर्वव्यापी, नित्यमुक्त, जगदात्मा, सत्य पूर्णअहं को अपना स्वरूप नहीं समझ लेगा तब तक उसके दिन शान्ति से नहीं कटेगें। जब मनुष्य अपने इस स्वरूप को भूल जाता है तब अस्थिर पदार्थों से सम्बन्ध जोड़ना चाहकर अशान्त होता रहता है। अस्थिर पदार्थ से मनुष्य का सम्बन्ध होना अनिवार्य है। अस्थिर पदार्थों से सम्बन्ध पड़ने पर यदि मन आत्मविस्मृति में चला जाय तो अशान्ति आ ही जाती है। जब मनुष्य अशान्ति के कारणों के सामने खड़े रहने पर भी आत्म-स्वरूप को अर्थात् अपने स्वरूपमाहात्म्य को नहीं भूलता तब शान्ति को मनुष्य के पास विवश होकर आना पड़ता है। अशान्ति के पास ही (अर्थात् अशान्ति को उलटा करके ही) शान्ति का दर्शन किया जा सकता है। शान्ति सदा कांटों की गोद में गुलाब के समान अशान्ति की ओट में बैठी रहती है। यह कभी नहीं हो सकता कि मनुष्य के पास अशान्ति के कारण न हों और फिर भी उसे शान्ति मिल जाय। क्योंकि अशान्ति का अपमान ही शान्ति का रूप धारण करता है। इसलिये सर्वभूतस्थ जगदात्मा या पूर्णअहं ने शान्ति का आनन्द लेने के लिये ही मनुष्य देह धारण करके चंचल तथा अशान्त इन्द्रियों के साथ रहना स्वीकार किया है। उसने सोचा है कि अशान्तियों का विद्रोही बन बनकर शान्तियों का आनन्द लिया करूँगा। परन्तु जब मन अशान्त इन्द्रियों से गठजोड़ा कर लेता है तब अशान्त हो जाता है। इन्द्रियां मनुष्य के ऊपर प्रत्येक समय अपना जाल फेंकती रहती हैं। जब मन इन्द्रियों के फेंके हुए पाश से अपने को बचा लेता है और आत्मा की ओर झुका है तब ही अमर शान्ति को पाता है। यदि मनुष्य आत्माभिमुख रहे तो उसे सांसारिक घटनायें विचलित नहीं कर सकतीं। मनुष्य का मन सांसारिक घटनाओं से विचलित न हो यही मनुष्य की शान्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप है।

भौतिक दृष्टि से प्रतिकूल घटनायें न हों और केवल अनुकूल घटनायें उसके सामने होती रहें, यह सर्वथा असंभव है। यदि मनुष्य भौतिक घटनाओं के साथ अपना सुख दुख जोड़ देगा तो उसे शान्ति से सदा ही वंचित रहना पड़ेगा। भौतिक घटनायें चाहे जैसी होती रहें; इनसे मनुष्य का मन सुखी दुखी न हो, मन अपने ऊपर इन घटनाओं का प्रभाव न पड़ने दे, यह मनुष्य की शान्ति का ऐसा रूप है जिसकी ताली उसीके हाथ में रहती है। जो मनुष्य शान्ति पाने के लिये बाह्य अनुकूलताओं पर निर्भर हो जाता है वह बिचारा नहीं जानता। सिद्धांत यह है कि कोई भी बाह्य पदार्थ या कोई भी दूसरा मनुष्य मनुष्य को शान्ति या अशान्ति का कारण नहीं होता। मनुष्य का अपना मन ही अपनी शान्ति या अशान्ति का कारण होता है। जब मन शान्त होकर अपने स्वरूप में रहता है तब बाह्य संसार उसे अशान्त करने में असमर्थ हो जाता है। तब बाह्य संसार को विवश होकर उसे शान्ति देने वाला बन जाना पड़ता है। आत्मस्थ पुरुष विरोधी अवस्थाओं से भी अपने मन को शान्त करने का काम लेने की कला में परम निपुण हो जाता है। मन के अशान्त होने पर समग्र जगत के अनुकूल होने पर भी मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। यहां यह बात समझ में आ गई कि स्वरूपस्थ मन ही शान्ति और स्वरूपविमुख मन ही मनुष्य की अशान्ति है। हम सब मनुष्यों के शरीर इस परिवर्तनशील विशाल संसार के भाग हैं। इनका अखिल संसार से पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जब तक मनुष्य इस सचाई को नहीं देखेगा, जब तक वह शरीरों में से ममता का सम्बन्ध नहीं हटायेगा, जब तक शरीरों को जगत से पृथक् समझना नहीं छोड़ेगा, जब तक सर्वभूतस्थ आत्मा को ही अपना स्वरूप नहीं मानेगा, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी और कदापि नहीं मिलेगी, तब तक मनुष्य जाति सत्य से वंचित होकर दुखी जीवन यापन पर ही विवश रहेगा।

जिस प्रकार बाह्य संसार परिवर्तनशील है उसी प्रकार मनुष्य का देह भी परिवर्तनशील है। जगत के उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय के संपूर्ण नियम शरीरों पर भी लागू होते रहते हैं। लाख चाहने पर भी शरीरों को प्राकृतिक परिवर्तनों से नहीं बचाया जा सकता। हाँ, मनुष्य के अन्दर एक ऐसी सचाई है जिस पर बाह्य परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वही सचाई ही मनुष्य का लक्ष्य है। इस सचाई को मनुष्य को कहीं बाहर से नहीं ढूंढना है। यह सचाई मनुष्य के मन में बसी हुई है। यदि मनुष्य इस अपने मन में से न हटकर इसके लिये कहीं बाहर भटकेगा तो अनन्त काल तक भी वह (सचाई) उसके हाथ न आयेगी। जब कि सत्य मन में है तब उसे उसकी ही एक विशेष अवस्था के रूप में जानना होगा। इसी मनुष्य के मन की अतीन्द्रिय तथा अनुभवगम्य अवस्था है। यदि मनुष्य सत्य की इस अतीन्द्रिय अपरिवर्तनशील अवस्था में स्थित हो जायगा तो उसे परमात्मा के दर्शन और स्वरूपावस्थान दोनों की प्राप्ति हो जायगी। मन की इस अपरिवर्तनीय नित्य स्थिर अवस्था को मनुष्य का दीर्घ जीवन ही 'ज्ञान' कहता है। जीवन में एक सा रहने वाला इस अवस्था को संसार के परिवर्तन संघर्ष उसमें कुछ परिवर्तन नहीं खोजते या देखते नहीं कर सकते। सन्तों की आत्म परीक्षाओं ने इस महासत्य को अनेक बार संसार के समक्ष प्रकट रूप में रखा है।

यह अवस्था केवल अपने भीतर देखी जा सकती है। सत्य मनुष्य को अपने मन में से ही मिलता है, बाहर से नहीं। जब सत्य मनुष्य को मन में पा जाता है तब उसको पाया हुआ सत्य बार संसार में फैल जाता है। फिर मनुष्य को सदा सर्वत्र सत्य ही सत्य दीखने लगता है। यही यह बात समझ में आयगी कि सत्य मनुष्य के हृदय की अन्तर्भावित अवस्था का नाम है अर्थात् मनुष्य का पवित्र मन ही सत्य रूपधारी पूर्णात्मा का परमेश्वर है। काम, क्रोध आदि नीच जीवों के वश में न आनेवाला मन 'शुद्धमन' कहाता है। मन पर होने वाले बाह्य जगत के प्रभाव काम, क्रोध आदि आवेशों के रूप में बाहर प्रकट होते हैं। मनुष्य का क्षुद्र अहं इन प्रभावों को अपनाता अर्थात् इन्हें प्यार करता है। प्रभाव ही मनुष्य को बाँधनेवाला बन्धन रज्जु है। मनुष्य का इस बन्धन से बचना है और अपने शुद्ध प्रभावहीन मन का श्रद्धालु उपासक बनना है। जिस दिन मनुष्य में ऐसा बनने की इच्छा आ जायगी उस दिन मनुष्य और सत्य दोनों एक हो जायेंगे। तब मनुष्य को मनुष्य के सत्य स्वरूप होने का मर्म समझ में आ जायगा। यदि मनुष्य इस सत्य का दर्शन कर लेगा तो उसका सदा के लिये सत्य से सम्बन्ध जुड़ जायगा, अर्थात् क्षुद्र अहं से तो पीछा छुट जायगा और पूर्ण अहं से सम्बन्ध जुड़ जायगा।

क्षुद्र अहं के ककेश ग्रह से मुक्त होने तथा पूर्ण अहं को पहचानने से ऊँचा मनुष्य जीवन में और कोई अवस्था नहीं है। इसी अवस्था को स्वरूप दर्शन, ईश्वर दर्शन, आत्म दर्शन, या ब्रह्म दर्शन आदि अनेक सम्मानित पुण्य नामों से स्मरण किया जाता है। यही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। सच्चे मनुष्यों को इसी अवस्था को पहचानना है और इसमें रहना है। यदि मनुष्य जाति इस पवित्रतम मनोदशा को पहचान ले और इसमें रहने लगे तो उसके दुःख, दारिद्र्य, कलह आदि पापों का बीज नाश होजाय और उसका जीवनयात्रा बड़ी शान्ति के साथ होने लगे। यही अवस्था मनुष्य जीवन का सच्चा स्वरूप है। यही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। यही सच्चा अहं है। इसी में मनुष्य को शान्ति तथा कृतकृत्यता का रहस्य विद्यमान है।

अहं के नाश का सच्चा स्वरूप

अहं का मिटाने का चर्चा बहुधा होता है। अहं को मिटाने का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य अपने आप को मिटा डाले। क्योंकि मनुष्य लाख चाहने पर भी अपना नाश नहीं कर सकता। जिस सत्ता में से मनुष्य व्यक्त हुआ है वह सत्ता आत्मनाशी सत्ता है। इन्द्रियासक्ति में फँसा हुआ मनुष्य अपने यह आत्मनाशी वास्तविक स्वरूप भूल जाता है। या यों कहें कि उसे यह स्वरूप दिखाई नहीं देता। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप सर्वव्यापी चेतना है वह उससे भिन्न नहीं है। परन्तु इन्द्रियासक्ति को अपनाने वाला मनुष्य अपने आप को विश्वव्यापी चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं समझता किन्तु उससे पृथक् देह मात्र में सीमित क्षुद्र सत्ता मान बैठता है। वह देह में सीमित अनित्य अस्तित्व को किसी प्रकार नित्य बना सकने के लिये नाना प्रकार के भ्रान्त प्रयत्न करने में लगा रहता है। सबसे पहले तो वह इन्द्रियभोग्य पदार्थों की रक्षा के लिये जी तोड़ परिश्रम करता है। फिर जब उसके भोग्य पदार्थ उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे पृथक् होते दीखते हैं तब वह इस जन्म से निराश होकर कुछ ऐसे कर्म करने का प्रयत्न करता है जिनके पुण्य के प्रभाव से अगले जन्मों में भी इन भोगों को अपने पास रख सके। जब इतने से भी उसका मन सन्तुष्ट नहीं होता, तब वह अपने लिये महा सुरक्षित मुक्ति नामक अशरीर स्थान की कल्पना करता है। इन नानाविध कल्पनाओं के रूप में जिस किसी प्रकार अपने अस्तित्व को संसार भर से पृथक् बनाये रखने का उद्योग ही प्रकट होता है जो अँधेरे की ढूँढ़ है।

स्वस्थ बुद्धि रखनेवाले प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन काल के लिये ही कुछ सोचने या समझने का अधिकार है। इस सीमा से बाहर निकलकर सोचने समझने या समझाने वाले मनुष्यों को अनधिकार चेष्टा करनेवाला पुरुष कहा जा सकता है। इन लोगों की बुद्धि स्वस्थ नहीं है। अपने जीवन काल के बाहर की बातें कहना और जीवन काल से बाहर की बातों पर विश्वास लाना मिथ्या प्रलाप करना और मिथ्या विश्वास से दब जाना है। मनुष्य का कर्तव्य केवल जीवन काल से सम्बन्ध रखता है। इस सीमा से बाहर के लिये कुछ सोचना कर्तव्य भ्रष्ट होना है। और मानव जीवन के लक्ष्य से पतित होना है। ऐसी बातें मनुष्य को कर्तव्य से हटाती और अकर्तव्य तथा अज्ञान में फांसती हैं। ऐसी बातों से मनुष्य की शान्ति खोई जाती है। ऐसी बातों से मनुष्य जीवन भर के लिये अशान्त हो जाते हैं। शान्त ही मनुष्य के मन की अमूल्य निधि है। शान्ति छीननेवाली किसी कल्पना को मान बैठना मनुष्य का अज्ञान है। मरणोत्तर मिलनेवाली मुक्ति मनुष्य की शान्ति छीननेवाली तथा उसे अशान्त बनानेवाली है। मनुष्य के मन में से शान्ति हटानेवाली इन असम्भव तथा अस्वाभाविक कल्पनाओं को भोगना शक्ति का दुरुपयोग जाल कह देना अनुचित नहीं है। ये सब कल्पनायें अहं के वास्तविक स्वरूप को न समझने से उत्पन्न हुई हैं। इन सब कल्पनाओं में किसी न किसी रूप में मिथ्या अहं का पूर्ण आधिपत्य है। मनुष्य को जीवन मुक्ति पानी है। उसे अदेह मुक्ति नहीं पानी है।

अहं के विनाश का सच्चा अभिप्राय मनुष्य का अपने इस सच्चे रूप को पहचान जाना है कि मेरा रूप व्यापक है। वह व्यापक ब्रह्म के रूप से पृथक नहीं है। अहं के त्याज्य रूप का त्याग हो जाना ही अहं के विनाश की स्थिति (मानी जा सकती) है। अहं के नाश का सच्चा अभिप्राय यही है कि मनुष्य अपने इस व्यापक स्वरूप को समझ जाय और दूसरे मनुष्यों के साथ व्यवहार करते समय शरीर के परिवर्तन में ममता रखना छोड़कर व्यवहार किया करे और नित्य सुख से आनन्दी रहने का सौभाग्य प्राप्त कर ले। यही मुक्त अहं के साक्षात् की अवस्था है।

गीत

श्री नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश'

नित जग का अतीत कहता है—
युगारम्भ के समय चक्र परिवर्त्तन का चलता रहता है।
होता है संघर्ष प्रबल जब
निकला करता नव स्फुलिङ्ग तब
विद्राही लहरें बढ़ती हैं—
आत्मसात करने जर्जरता, दानवता जग सब सहता है।
नित जग का अतीत कहता है।

कायरता जब बन जग-संबल
मानव को करती नित बेकल
तब ज्यातिर्मय, बलमय कोई—
संजीवन का मंत्र फूंक जग प्राणों को भरता रहता है।
नित जग का अतीत कहता है—
युगारंभ के समय चक्र परिवर्त्तन का चलता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसकी करनी, किसकी भरनी !

श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

लीला की माँ जब मरी, तब वह होगी कोई ग्यारह बरस की। ग्यारह बरस, कुल ग्यारह बरस तक ही उसने माँ का दुलार पाया था। माँ जब मरी, तब वह कन्या-पाठशाला के पाँचवें दरजे में पढ़ती थी, किन्तु आगे तो पढ़ाई चलने से रही। वह यदि स्कूल जाती तो घर का काम कौन सम्हालता ? घर में उसके दो भाई, बाबू जी और बुढ़िया दादी थी। उनके लिये समय से भोजन कौन तैयार करता ? बुढ़िया दादी के बल का यह सब काम नहीं था। एक तो आयु ही उनकी अस्सी के लगभग थी, उस पर आँखों में मोतियाबिन्दु। उनके लिये तो उल्टे एक नौकर की ज़रूरत थी; सो माँ के मरते ही लीला का स्कूल जाना बन्द हो गया। और दस बीतते न बीतते ही वह इस कच्ची उम्र में ही पक्की गृहस्थी बन गई। माँ के अभाव में उसे इस छोटी उमर में ही घर गृहस्थी के सभी कामों की परख हो गई। अपनी कार्य तत्परता से लीला ने अपने बाबूजी, को माँ का प्रभाव भी खलने नहीं दिया। बहुत सबेरे उठकर वह नौ बजे तक वह भोजन बना चुकती थी। बाबूजी भाइयों और दादी को खिला-पिला कर ग्यारह बारह बजे तक वह घर के सभी कामों से निबट जाती। इसके बाद दो बजे तक उसे छुट्टी ही छुट्टी थी। दादी तो सदा अनिन्दी-सी अपनी कोठरी में पड़ी रहती थीं। चाहती तो लीला यह सभी चार-पाँच घण्टे खेल में बिता सकती थी; गली पड़ोस में घर-घर घूमकर सबके चूल्हे झांक सकती थी; किन्तु, यह सब उसने एक दिन भी नहीं किया। माँ के जीते तो वह कभी कभी अपनी सखी सहेलियों के यहाँ चली भी जाती थी; पर जिस दिन से माँ मरी, किसी ने उसे देहली पर खड़े होकर किसी बिसाती को पुकारते तक नहीं सुना। दिन भर घर के संजोने में, टूटा-पुराना सीने में, और वह भी न होता, तो अपने दादी की लाई हुई पुरानी सी रामायण पढ़ने में वह अपना फालतू समय बिता डालती। वह स्वयं ही समझ-दार गई थी कि जिस काम के करने से टोले-पड़ोस के आदमियों की उंगली उठे, उसे कभी न करना चाहिये।

दूसरे जब से उसने दो चार जनियों को यह कहते सुना था कि—"राम प्रसाद की आबरू का तो अब राम ही मालिक है। घरवाली मर ही गई। माँ है, सो अन्धी है। घर में सयानी लड़की है, कोई दाबनेवाला है नहीं। अब तो वह खुली बछेड़ी है, चाहे किसी के खेत को चरले। और एक यह राम प्रसाद हैं कि दूसरे ब्याह को राज़ी नहीं होते। अरे दूसरी आवेगी तो क्या, लौंडिया पर नज़र तो रक्खेगी।" तब से लीला ने तो छत पर चढ़ना तक छोड़ दिया था।

बाबू राम प्रसाद भी ऐसी कन्या पाकर निहाल हो गये थे। अपने दोनों लड़कों से भी अधिक प्यारी थी उन्हें लीला। प्यारी होने की बात भी थी। दुनिया में सभी को काम प्यारा होता है, चाम नहीं। लीला का करुण मुख निहार कर ही बाबू राम प्रसाद ने जाति-बिरादरी, टोले-पड़ोस सब के कहने पर भी दूसरा ब्याह नहीं किया। वह जानते थे कि सौत के बच्चों को प्यार करनेवाली स्त्री बिरली ही होती है। राम जाने आ गई कोई कर्कशा, तो मेरे बच्चे बिरान हो जांयगे। लड़के तो ख़ैर बाहर रहेंगे, मुसीबत आ जायगी मेरी लीला को। न, तो वह ऐसा अवसर आने ही क्यों देंगे ! उन्होंने दूसरे ब्याह से साफ़ नाहीं कर दी। दुनिया में सब से मधुर फल अपनी सन्तान ही होता है। वैसे तो ऐसे प्राणियों की भी इस सतरंगी दुनिया में कमी नहीं है जो अपने सुख के आगे सन्तान के सुख-दुख की कोई परवाह नहीं करते। फिर भी बाबू राम प्रसाद उन आदमियों में नहीं थे। मां और बिरादरी के कई बड़े बूढ़ों नें जब बहुत ज़ोर दिया इस बात पर, तो उन्होंने साफ़ तौर पर कह दिया "भई, मैं इस अधेड़ उम्र में ब्याह रचा कर अपनी सफ़ेदी में स्याही नहीं लगाऊँगा। सयाने लड़के लड़कियों के सामने सिर पर मौर धरने का तमाशा कहीं सोहता भी है ? दूसरे लोग जिसकी इच्छा से ब्याह करते हैं, भगवान की दया से मेरे पास वह दोनों हीं हैं। लड़के भी हैं लड़की भी है। रोटी-पानी की तकलीफ़ भी मुझे नहीं है। अभी तो मेरी लीला ही घर सम्हालने को काफ़ी है। जब तक इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ पीले करने का समय आयगा, तब तक राम ने चाहा तो मेरे शिबू और त्रिलोकी में से किसी एक की बहू घर आ ही जायगी। मुझे तो आप इसके लिये क्षमा ही करें—!" अब इसके आगे कोई क्या कहता? 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त' वाली बात थी। साल-छः महीने टोंक टोंक कर सभी चुप होगये।

धीरे धीरे तीन साल बीत गये। लीला चौदह बरस की होगई। बाबू रामप्रसाद को अब उसके ब्याह की फ़िक्र पड़ी। यूँ उनकी दृष्टि में तो लीला अभी निरी बच्ची ही थी, पर जाति-बिरादरी का मुँह कैसे बन्द करते? सयानी लड़की को अधिक दिन कुंवारी बिठा रखने से भी तो दुनिया को नींद हराम हो जाती है। इसी से बेचारे इधर-उधर लड़का खोजने लगे। लड़कों की कमी नहीं थी···उनके शहर में ही कई लड़के उनकी बिरादरी के थे; किन्तु, उनकी नज़र में वह जंचे ही नहीं। वह चाहते थे कि चाहे घर एक बार ग़रीब ही हो, पर लड़का अच्छा हो। लड़के की शिक्षा और रूप दोनों ही वह चाहते थे। लड़के के 'रूप' की बात सुनने में ज़रा अजीब सी लगती है। भला लड़कों के रूप भी कहीं देखे जाते हैं? किन्तु, बाबू रामप्रसाद ने उसे भी देखा। वह कहते थे, "जब लड़के वाले पहिले लड़की का रूप देखते हैं, तो हम भी वैसा क्यों न करें? मैं तो लीला के जोड़ का लड़का न मिला तो चाहे उसे कुंवारी रखना पड़े ब्याह करूँगा ही नहीं।" लोग उनकी यह बात सुनते और हँसते, "पागल हुए हैं। राम प्रसाद की नज़र में तो कोई लड़का ही नहीं बैठता। अब क्या इन्दर का अखाड़ा चाहिये इनको"

ऐसे ही साल निकलने आगया। पर रामप्रसाद भी धुन के पक्के थे। किसी तरह खोज कर लखनऊ में ऐसा घर टटोल ही लिया, जो घर-वर दोनों से ही अच्छा था। रिश्ता भी तय होगया। लड़का बी० ए० में पढ़ता था। बाप की कपड़ों की एक अच्छी दुकान थी। घर में लड़के की माँ और एक छोटा भाई था, उससे दो साल छोटा। लड़का सुन्दर था, होनहार था। नक़द दो हज़ार की बँधनी तय करके रामप्रसाद ने लड़का रोक लिया। इतना देने की रामप्रसाद की हैसियत नहीं थी, पर अपनी लीला के लिये वह पीछे हटने वाले नहीं थे। कुछ पास में था, कुछ शिबू के ब्याह में मिला था और कोई पांच सौ ऋण ले लिया और दो महीने बाद ही फागुन में महीने में लीला को ब्याह भी दिया।

ऋण तो रामप्रसाद पर होगया ज़रूर, किन्तु इसका उनको रंज नहीं था। दामाद तो मन लायक़ मिल गया था न। ब्याह के बाद ही लीला का जो रंग निखरा था देही भर कर सुडौल हो आई थी उसे दो एक बार तृप्ति भरी दृष्टि से देख कर उन्होंने अपने को धन्य कर लिया था। चार महीने बाद गौना भी दे दिया, इच्छा तो नहीं थी उनकी अभी गौना देने की; लीला को अपनी आंखों से दूर करने को उनका मन ही न करता था। वही तो थी इस घर की शोभा। पर क्या करते? उधर से जब चिट्ठी पर चिट्ठी आने लगी तब लाचार होकर विदा की साइत लिखनी ही पड़ी। बिदा का दिन आया और दो तीन साथियों सहित आकर विनोद लीला को विदा भी कर ले गया।

लीला चली गई। बाबू रामप्रसाद को तो घर जैसे काटने दौड़ता था। पत्नी का अभाव उन्हें अब अखरा। ब्याह पर तो वह कुल चार दिन को गई थी और उन दिनों घर में मेहमान इतने भरे हुए थे कि कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। दो महीने को कह कर भेजा था, पर महीना बीतते न बीतते, उन्होंने लीला के ससुर को लिखा कि मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं रहती। आप कहें तो मैं त्रिलोकी को लीला को लिवाने भेजूं।' जवाब में तीन दिन बाबू राम प्रसाद ने बड़ी बेचैनी से काटे, प्रतीक्षा की घड़ियां कटने ही नहीं आती थीं। तीसरे दिन उत्तर आया, किन्तु पत्र पढ़ कर राम प्रसाद के प्राण नखों में आगये। लिखा था—"भेजने में तो कोई इनकार नहीं हमें, पर विनोद को आजकल माता दरस रही हैं। ज़रा वे हाथ दे जांय तो हम आप ही लिख देंगे। तब आकर लिवा लेजाना।"

राम प्रसाद का मन दिन-रात धुकड़-पुकड़ किया करता, "भगवान कुछ उल्टी-सीधी न हो जाये! परमात्मा मेरी लीला पर दया करना! बे-मां की बच्ची है, वैसे ही करम की हेटी है। कहीं उसके भाग्य में एक दम ही आग न लगा देना—"किन्तु, भगवान ने शायद यह सब नहीं सुना। दसवें दिन तार आ गया—"विनोद की दशा ख़राब है। मुंह देखना हो, तो आ जाओ।" रोते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ने राम प्रसाद लखनऊ पहुंचे। पर हाय उनकी लीला ...सोहाग सूर्य को तो सर्वग्रहण लग ही चुका था—!

(२)

लीला को विधवा हुये साल हो गया। यह पूरा साल ...ने अपने पीहर में ही काटा। बाबू राम प्रसाद ने ...ने दुसराल भेजा ही नहीं। क्या करते भेज कर ? वहाँ ...उसके लिये कौन सी सुख-सेज बिछी थी ? उनकी ...भागिनी बच्ची दिन रात कोल्हू के बैल की तरह जुतेगी ...सन्ध्या को दो रूखी-सूखी रोटी पेट में डाल पायेगी। ...पर चौबीसों घण्टे ताने सुनने पड़ेंगे, सो अलग। ...के तेरह दिनों में ही उन्होंने लीला के सुसराल ...का व्यवहार देख लिया था ! सो उन्होंने उसे ...ही नहीं। जब बुलाने की चिट्ठी आती, तभी एक ...एक बहाना कर देते किन्तु, अब तो बहाना ही नहीं ...सकता। उसकी सास की बीमारी की चिट्ठी आई ...। भला न भेजने से कैसे काम चलता ? हार कर ...दिया ले जाइये।' लीला के प्राण सूख रहे थे ...जाने के नाम से। गौने पर भी यही लीला ...हंसती-हंसती ऊपर के मन से ज़बरदस्ती चार आंसू ...कर भीतर ही भीतर फूलती हुई सुसराल गई थी। ...जाकर वह एक महीना तो जैसे सपनों में ही कट ...था उसका। विनोद के उस अल्हड़ प्यार में डूबी ...इस लीला को वे तीस दिन तीस घण्टों जैसे लगे थे। ...पर उस छोटे देवर सुबोध के हंसमुख स्वभाव ने तो ...शिबू और त्रिलोकी की याद आने ही न दी थी। ...काज में चतुर होने के कारण सास द्वारा भी उसे ...कोई खरी खोटी सुननी नहीं पड़ी थी, दान दहेज ...में उसके बाबू जी ने कहलवाने का काम ही नहीं ...था। विनोद को शीतला निकल आई, उसी में ...निया हो गया। "माता माता" करके उन पुराने ...के बुड्ढे-बुढ़ियों ने डाक्टरी इलाज को पास भी ...नहीं दिया। सो दस दिन में ही लीला की दुनिया ...करके पन्द्रह बरस की किशोरावस्था में ही उसे ...छोड़कर विनोद सदा के लिये चला गया। इसके ...तेरह दिन लीला और ससुराल रही थी। हाय, वहां ...लिये उन दिनों का काटना पहाड़ हो गया था। ...कुछ वही था। वही घर, वही सास, ससुर, देवर, ...उसके लिये बदल गया था शायद सभी कुछ। दुनिया ही बदल गई थी। वह जो विधवा हो गई थी। कल की लक्ष्मी आज की राक्षसी बन गई थी ! सास के उठते-बैठते ताने, ससुर की चलती फिरती बातें, और उस पर नाते-रिश्ते की आई-गइयों के व्यंगों से उसका वह दुखी मन इतने ही दिनों में बिधकर छलनी होगया था। तेरह दिन तक उन जाड़ों के दिनों में बिना किनारी की धोती लपेट कर उसे जो धरती पर सोना पड़ा था, उससे उसकी हड्डी हड्डी में ठंड घुस गई थी। देह अकड़ गई थी। उस पर भोजन की कुछ पूछो मत। उसके लिये पूछने वाला था ही कौन ? पूछने की आवश्यकता भी क्या थी ? दूसरे-तीसरे किसी को याद आई तो कह दिया—"जा रोटी खाले। देख जल्दी निबट जाइयो। नहीं तो चार बाहर की पल्ला लेनेवाली आ गईं तो महारानी के यह ढङ्ग देखेंगी तो क्या कहेंगी ?" और फिर लीला के गले से रोटी के ग्रास उतरने कठिन हो जाते थे। मां तो उसकी मर गई थी, छोटी सी ही की। उसका लाड़-चाव तो उसके भाग्य में नहीं था। किन्तु, अनादर अवहेलना जैसी वस्तु भी उसने आज तक नहीं पाई थी। अपने घर में भले ही वह दिन भर काम में लगी रहती थी, पर यह उसे अखरा नहीं कभी भी। काम करती थी तो क्या, घर की मालकिन भी तो वही थी। बाबू राम प्रसाद तो वेतन का पैसा पैसा उसके हाथ में सौंप कर ही निश्चिन्त हो जाते थे। अब तक भी, भाभी आ जाने पर भी, यहां लीला के इस अधिकार में कमी नहीं आई थी। उसी लीला को यहाँ का यह व्यवहार यदि असह्य हो उठे, तो क्या वह इसके लिये दंड की पात्री है ? जाने कैसे वे तेरह दिन निकाले। फिर तो उसके बाबू जी उसे ले ही आये थे। उन्होंने अपनी आँखों से ही वहां की दशा देख ली थी। साल निकल गया। पहिले जैसी बात तो यहां भी नहीं रही थी, लीला के लिये। उनके बाबू जी तो नहीं, हाँ भइया-भाभी के व्यवहार में अन्तर पड़ ही गया था। भाभी का मुख कुछ चढ़ा चढ़ा सा रहता था। कुछ तो अपने जले स्वभाव के कारण और कुछ ससुर द्वारा लीला के इतने आदर पाने के कारण। विधवा हो जाने पर भी बाबू राम प्रसाद ने लीला को बिना किनारी की धोती नहीं पहिनने दी। हाथ में दो-दो चूड़ियां भी डलवा दीं। लीला को एक दम नंगी बूची सफ़द धोती में देख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका कलेजा मुंह को आने लगता था। अभी उमर ही क्या है उनकी बेटी की! करम तो भगवान ने फोड़ ही दिये! बिछुये-सिन्दूर तो उठ ही गये उसके भाग से, पर चूड़ियों में तो कोई हरज नहीं...आजकल बहुत सी पहनती हैं! सो उन्होंने उसे चूड़ियां पहिनवा दी थीं। इन्हीं सब बातों को देख-सुनकर लीला की भाभी का मुंह चढ़ा रहता था। लीला भी समझती थी इसे। समझती कैसे नहीं, बच्चा थोड़े ही थी। पर बाबू जी के मन को दुखाना वह चाहती नहीं थी, इसीसे उसने चूड़ियां नहीं उतारीं। कुछ था, फिर भी ससुराल जैसे ताने देने वाला तो कोई नहीं था यहां। दिन भर शान्ती से घर का काम करती रहती, रात को अपने बिछौने पर जा पड़ती। गौने के उस एक महीने के सुपने की याद जब कभी अधिक विकल करती, तो किसी कोने में घुस कर या छत पर जाकर चार आंसू बहा कर अपना मन हल्का कर लेती। चिल्ला कर रोने को मन होता, तो आंचल मुंह में ठूंस कर रुलाई रोक लेती। हाय, बाबू जी सुनेंगे तो क्या कहेंगे—

अब साल पीछे ससुराल जाने की सुनकर उसके प्राण सूख रहे थे। हाय राम। सास बीमार है। कहीं बुढ़िया लुढ़क गई, तो और नाम हो जायगा कि मेरे आने से मरी है। क्या करूँ? पर तीसरे दिन सुबोध जब आही गया, तो उसे जाना पड़ा। जाते समय चूड़ियां और किनारी दार धोती वह उतार गई थी!

(३)

डरती, झिझकती लीला ने घर में घुस कर जैसे ही सास के पैरों को स्पर्श करना चाहा, वैसे ही उन्होंने उससे कहा, हां! हां! क्या करती है...! लीला हाथ समेट कर चुप खड़ी रह गई। उसे भौंचक सी निहारती पाकर सास ने रूखे स्वर में कहा—तेरी अक्कल भी क्या मारी गई है बहू। बिना नहाई धोई तू मुझे छूने लगी थी। पहले नहा के रेल के कपड़े उतार। और यह क्या? तू, अब भी 'सेमीज' पहनती है? बाबारे, रांड लुगाइयों के फ़ैसन का सौक तो सुहागनों से भी बढ़ गया—!" इतनी कड़वी बात लीला बड़ी मुशकिल से गले के नीचे उतार पाई। एक बड़ी सी सांस खींचकर वह कमरे के बाहर चली गई। सेमीज जैसे परदे के पहनावे में भी अब फ़ैशन घुस गया। क्या करे, ट्रङ्क भर खोज डाला था उसने लेकिन ब्लाउज़ और शेमीज ही भरी पड़ी थी। कहीं एक जम्फर मिल ही गया फिर नहाने चली। नहाते सोच रही थी कि गौने पर भी तो उसने रेल के कपड़ों से घर भर को छू लिया था!

दिन बीतने लगे। सास की बीमारी कम नहीं हुई बढ़ती गई। लीला ने अपने भरसक सेवा में त्रुटि नहीं की। एक नर्स से अधिक सतर्कता रखती थी वह। रात भर जाग कर समय से दवा पिलाती, मालिश करती; किन्तु सब बेकार रहा। घर का सारा काम सब में मरीज़ की तीमारदारी करना, ज़रा टेढ़ी खीर है फिर भी उसने कभी मुंह से उफ़ नहीं की। बड़ी लगी महरी को भी जब उसके जाने के तीसरे दिन सास ने जवाब दे दिया, तब भी उसने प्रतिवाद का शब्द भी नहीं कहा। सुबोध ने अवश्य ही एक बार से कहा था—कि "लाला जी घर में बीमारी का काम इतना अधिक है कि सम्हाले नहीं सम्हलता, उस पर महरी भी क्यों छुड़ा रहे हो?" तो लाला देवसरन मुंह चढ़ा कर उत्तर दिया, "कौन बहुत काम है! तो मैं मर्द होकर चुटकियों में कर सकता हूं! फिर यह भाभी और किस लिये है? काम नहीं करायेंगे क्या उसे आले में रख कर पालेंगे! भला करे बाबू रामप्रसाद का जिन्होंने यह कुलच्छनी पल्ले बांध दी। आते ही घर चौपट कर दिया!" फिर कुछ बोला नहीं, चुपचाप बाहर चला गया। यदि मेरे दोबारा कहने से वह भाभी को और खरी-खोटी सुनाने लगेंगे, तो इनका मुंह कौन थामेगा बस तो महरी छूट गई। लीला ने काम तो थाम लिया किन्तु हायरी उसकी जली क़िसमत कि सास को वह थाम सकी। तीन महीने तक चारपाई भोग कर वे देवसरन को अकेला छोड़कर चलती बनीं।

उस दिन सास का दसवां था। बाहर बिरादरी लोग लड्डू कचौरियों पर हाथ साफ़ कर रहे थे। देवसरन महापात्र को देने के लिये वस्तुएँ सँजो रहे कि लाला रामचन्द्र ने रुकते रुकते कहा—"लाला सरन! अब तो भई जल्दी से कहीं सुबोध का करलो। घर में सयानी बहू है, अकेली छोड़ना ठीक होगा।" देवसरन ने मुंह टेढ़ा करके कहा, "क्या भई! हमें क्या ख़बर थी कि रामप्रसाद की इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...पैर इतना बुरा है ! आते ही घर को मसान कर ...!" रामचन्द्र दूसरी तरह के आदमी थे। मन में ...दया माया भी थी; सो देवसरन की इन बातों से उन्हें ...दुख लगा, बात फेरने को बोले—हाँ लाला जी सब ...की बात है ! उस बेचारी ने भी दुनिया में कुछ ...देख लिया ? अब तो आपही उसके भैया-बाप हैं। ...तक होसके सुबोध का ब्याह करके अपने इस 'फ़रज़' ...अदा होजाओ। घर में भी बहू अकेली से दो ...होजायेगी।

देवसरन को मालूम था कि रामचन्द्र के यहाँ उनकी ...सयानी होरही है उसी का जोड़ तोड़ लगाने को ...बातें बनाई जा रहीं हैं। वे ज़रा गम्भीर होकर बोले, ...लाला जी सुबोध को ब्याह भी दूँ, तो बहू को कुछ ...होने से रहा। यह तो दो बरस में पढ़ लिख कर ...हो जायगा। अपनी बहू को लेकर जहां बदली ...फिरेगा। बहू फिर अकेली की अकेली। दूसरे अभी ...सुबोध का ब्याह करना भी नहीं चाहता। बी० ए० ...से पहले तो मैं इसका नाम भी नहीं लूंगा।" ...चन्द्र चुप हो गये। थोड़ी देर में दबी जुबान से ...—"तो बहू को क्या उसके पीहर भेजने का ...चार है ?"

"अजी राम भजो। भला अब वहाँ जाकर क्या ...? अरे यह सब मुसीबत तो मेरे सिर पड़ी है। ...ही। सोचा था इन दिनों बेटे बहू को गृहस्थी ...कर चार दिन रामभजन करूँगा, पर वह सब भाग ...था ? भगवान की इच्छा तो कुछ और ही दिख ...है। मुझे तो लगता है कि इस अपनी सफ़ैदी में ...लगानी पड़ेगी। इस बहू के कारण बुढ़ापे में फिर से ...रचाना पड़ेगा। हरे कृष्ण—हरे कृष्ण तुम्ही हो !" ...देवसरन की बात का मतलब सभी समझ गये; ...बाले, सुबोध और घर में घूंघट के बीच सिर ...अपने भाग्य पर रोती हुई लीला—सभी ! सुन-...सुबोध को पसीना आगया। लीला के होश गुम ...। हरे राम ! लाला जी के इरादे क्या फिर से ब्याह ...के हैं...पर इससे क्या ? इस घबराहट और ...से होता ही क्या है ? होगा वही, जो होता ...है। लाला देवसरन को तो बहू के लिये संगी ...को मजबूरन ब्याह करना ही पड़ेगा।

इसके कोई चार महीने बाद लाला देवसरन ने लीला को एक 'सोलह सत्तरह बरस की सयानी' सास की छत्र छाया में बसा दिया।

(४)

क्या कहें कि लीला पर अब क्या बीतती है ? कैसे कटती हैं उसके वैधव्य की वह क्रूर विषम घड़ियाँ ! जिनमें शान्ति की एक सांस भी वह मुशकिल से ले पाती है, फिर भी दिन कट रहे हैं।...वह तो कटते ही हैं रुकते नहीं। सुखी के, दुखी के, सभी के दिन तो कटते ही हैं; रोकर या हंस कर। सो लीला के भी दिन कट ही रहे हैं। उस सोलह की मधुमयी देहलता को पेवंद लगी मैली धोती में छिपाये वह दिन रात काम में जुटी रहती है। फिर भी इन नई सास के तेवर कभी सीधे ही नहीं रहते। हर समय कमान से तीर छूटे ही रहते हैं। वह तो लाला देवसरन की बुढ़ापे की युवती पत्नी थीं; दुहेजू का शृङ्गार थीं; उनके मान-दुलार और अधिकार का पूछना ही क्या ! सारे दिन कंघी चोटी और पानदान से फ़ुरसत ही नहीं मिलती कि घर के किसी काम को हाथ लगा सकें उस पर उनकी देह जो बादी के मारे दिन दूनी रात चौगुनी फूल रही है, उस दुःख के कारण तो उन्हें किसी का बोल भी नहीं सुहाता है। ग़रीब की लड़की थीं, पहिले पहल यहाँ आकर ही रुपये-पैसे का मुख देखा है। अब वे अपने इस सौभाग्य को कहाँ रक्खें ? उसका सारा भार सहन करना पड़ता है बेचारी लीला को। घर में और है ही कौन ? एक सुबोध और है, सो उसे नई मालकिन कह ही क्या सकतीं हैं ? देवसरन के सात पुरखों को पानी देने के लिये चौदह सन्तानों में बस वही तो एक बचा है। सो उस पर नई मां का कुछ अधिकार नहीं है। फिर भी सुबोध को थोड़ी-बहुत असुविधा होगई है। इन नई मां के आने से थोड़ी सी व्यथा भी उसे अनजाने ही मिल गई है। असुविधा होती है घर में अपनी स्वच्छन्दता कम होजाने से और व्यथा होती है लीला, उस अपनी किशोरी भाभी लीला पर आये दिन के अत्याचार देख कर। सीधे सीधे काम करते रहने पर भी लीला को जो दिन भर में सैकड़ों तीखे ताने व्यंग और फटकारें सुननी पड़ती हैं; मैला-फटा पहिन कर, बचा खुचा खाकर रहने पर भी नींद भर सोने को नहीं मिलता है, इसे वह अत्याचार-अमानुषिक अत्याचार-समझता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और वह जो खुली आंखों से यह सब देख कर भी इसका प्रतिवाद नहीं कर पाता, इसी से उसका मन उसे दिन रात धिक्कारता है। इसी से व्यथा होती है और इसी से उसका मन अशान्त रहता है। लीला मुंह से कुछ नहीं कहती—कहती तो ज़रूर, उसका बस होता तो वह इतनी जोर से चिल्ला कर कहती कि धरती कांप उठती किन्तु, कह सकती ही नहीं। मन ही मन अपना ही ख़ून पीकर वह जी रही है। सन्ध्या से ही जब नई सास बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में बिजली के पंखे के नीचे बैठ कर बाल संवारती हैं तब लीला रसोई घर में धुयें से भरी आखें लिये भोजन बनाती होती है। रात के नौ बजने से पहिले ससुर जी आकर अपने कमरे का द्वार बन्द कर लेते हैं और सुबोध अपने कमरे में लेटा-लेटा उपन्यास पढ़ता है, तब लीला बरतन मांजती होती है। उस समय उसका वह बांध बांध कर रक्खा हुआ मन चिल्ला कर रो उठता है। हाय उसने दुनिया में आकर क्या पाया? न माँ का दुलार, न स्वामी का प्यार; और ना ही नारी के विकास का प्रीतम सोपान—मातृत्व! कुछ भी नहीं, उस पर यह रात दिन की रें रें-खैं खैं। कैसे पार लगेगी लीला की- यह रूप राशि से सजी हुई दुखद जवानी?

उस दिन एकादशी थी। आज लीला 'बरती' थी। महीने में यह दो एकादशियां ही ऐसा भाग्यवान दिन होती हैं, जिस दिन वह थोड़ी देर के लिये पुस्तक हाथ में ले पाती है। भले ही वह पोथी गीता की ही हो। नहीं तो और किसी दिन नई सास यदि उसके हाथों में पुस्तक देख लें तो महाभारत मचा डालें। उस समय लीला की दवा कौन करेगा? कोई नहीं। एक बार सुबोध बोल पड़ा था बीच में, सो नई मां ने लाला जी से जाने क्या क्या लगाया था। सो सुबोध भी अब कुछ नहीं बोलता। मेहमान की भांति घर में रहता है और नातेदार की भांति दोनों समय रोटी खाकर चुपचाप अपने ऊपर के कमरे में पड़ा रहता है।

तो उस दिन एकादशी थी। लीला घर के धन्धों से निबट कर, नहा धोकर, कोई एक बजे दोपहर को पुस्तक लेकर बैठी। पर आज उसके हाथ में गीता नहीं थी; था महाभारत का पांडव बनवास नाम नाटक, घर में आल-मारी भर हिन्दी-अंग्रेजी की पुस्तकें हैं। किन्तु, लीला के भाग्य में उनमें से एक को भी छूना पाप है। पढ़-लिख कर ही तो अपना सोहाग नष्ट कर डाला है, नई सास ने अपना यह मत कई बार प्रकट कर चुकी हैं...किन्तु लीला का वह भूखा प्यासा मन, वह भटकती आत्मा पानी में तिनके के सहारे की भांति ज़रा सा सम्बल, ज़रा सा चैन ढूंढ़ती फिरती है—आज कई दिन हुये सुबोध के टेबिल के नीचे उसे यह नाटक मिल गया था। बड़े यत्न से तकिये के ग़िलाफ़ में उसे खोंस कर उसने आज सास जी की शनि दृष्टि से उसकी रक्षा की थी। फिर जाने कैसे कैसे रात को दीवे की मद्धिम लौ के बीच अपनी कोठरी के द्वार पर भीतर से धोती का परदा लटका कर, पिछली रात को जाग कर वह उसे थोड़ा-सा पढ़ पाई थी, थोड़ी सी शेष रह गई थी। जाने किस कमबख़्ती ने धक्का दिया था उसको कि आज वह गीता के बरले उसे लेकर पढ़ने लगी। अत्याचार की चक्की में पिस कर प्राणी का साधारण विवेक भी नष्ट होजाता है!...पढ़ते पढ़ते देर होगई। समय का कुछ ध्यान ही न रहा।

'ऐ महारानी जी! क्या आज सारी गीता हज़म करके ही उठोगी?' नई सास जी ने द्वार पर खड़े होकर कहा। तीन बजने वाले हैं!" लीला ने घड़मड़ करके पुस्तक बन्द करदी और उसे आंचल में छिपाते छिपाते बोली—अरे तीन बज गये।"

"नहीं जी, अभी तो सबेरा है! और तीन बज भी गये, तो क्या घर में एक और बांदी तो लगी ही है, ससुर ने बहूरानी के लिये दासी ब्याह के ला दी है, वही पीटेगी।"

सास की सभी बातें कानों के ऊपर उतार कर लीला आसन से उठ पड़ी किन्तु क्या करे वह अपनी इस पुस्तक का; सास के सामने उसे आलमारी में कैसे रक्खे? ऊपर जो उसके पंच पांडव का चित्र बना है।...नई सास दो मिनिट प्रतीक्षा करके फिर बोली,—"खूब है बाबा! अरे क्या धरती ने पकड़ लिया जो वहीं चिपकी खड़ी है।" लाचार बेबस लीला ने हाथ की ओट करके पुस्तक तख़्ते पर रखदी, रखनी ही पड़ी। फिर कांपते पैरों बाहर आगई, मन में आज उसके सिहरन और तन में कंपकपी आरही थी। भय के मारी वह जल्दी जल्दी रसोई घर में जाकर स्टोव जलाने लगी, नाश्ते के लिये हलवा बनाने को। हठात्—उसके हाथ से कलछी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी। सास के हाथ का एक धमाका खाकर वह सीधी होई।

मार खाने का यह पहिला ही अवसर था। लीला क्रोध से उबल कर उछल पड़ी दूर जाकर खड़ी हो ई।

"हरे भगवान यही है तेरी गीता ? क्योंरी ओ कुल-कुली ! इसी गीता के पढ़ने को एकादसी रहती होगी।" साथ ने वह नाटक की प्रति उसकी ओर फेंक कर कहा दे भी तो सोचती थी कि मेरी सती भगवती का मन इन कल गीता पाठ में बहुत रमने लगा है। अब समझी.....!" और लीला चुप, बिलकुल चुप, वृक्ष सी अचल, पत्थर सी निश्चल खड़ी थी।

(५)

सुबोध का मन दुखी है, बहुत दुखी है। दुख का कोई कारण नहीं है, फिर भी उसका मन दुखी है। घर के इस अवांछित वातावरण से उसका मन क्षुब्ध हो उठा है। पर कहां चला जाय वह ? दिन भर वह बाहर ही रहता है फिर भी घर पर सुबह-शाम के कुछ घन्टे काटने को उसे पहाड़ हो उठते हैं। उतने समय में ही उसे कितनी बार अपने को रोकना पड़ता है। बलात् मुख में ताला लगाकर, दम घोंटकर रहना पड़ता है। रहे न, तो क्या करे ? उसके तरफ़दारी करने से भाभी का अप-मान ही होता है, जब तक अनजान था, तब तक प्रायः रोज़ ही मां से लीला के पीछे एक-आध झगड़ा मोल ले लेता था। किन्तु जब से उसे ज्ञात हुआ है कि इससे लीला की मुसीबत और भी बढ़ जाती है, तब से वह चुप ही रहता है। यहां तक कि उसने अब लीला से बोलना भी छोड़ दिया है।

उस दिन लीला ने रसोई घर में अकेला पाकर उससे कहा था, "देवर जी तुम मेरे पीछे मां से झगड़ा न किया करो। लाला जी का मन भी तुम्हारी ओर से फिरा होता है, और मां का तो पूछना ही क्या ? तो फिर तुम्हें ने कह दिया था,—"लाला जी की नाराज़गी से भी तक डरूं ? मुझसे तो यह सब देखा नहीं जाता ?" लीला तब कलाप हंसी हंस कर बोली,—"पागल हो ये देवर जी ! जिस बात से मुझे कुछ लाभ नहीं उसमें हानि होती है, उसे करना ही क्यों ? और भई हाथ जोड़ती हूँ, किसी चीज़ की ज़रूरत हुआ करे, तो अपनी अम्मा से ही कहा करो।....."क्यों ? सुबोध ने चकित होकर पूछा। इस क्यों के उत्तर में लीला की आंखों से जो दो मोती टपक पड़े थे..... उन्हें देख कर सुबोध ने कुछ मांगना तो दूर फिर बोलना तक छोड़ दिया था। क्रोध करके नहीं, दुखी होकर। किन्तु, किसी के मन का दुख-सुख कोई कैसे जान सकता है ? मन की बात बिना कहे लीला कैसे समझती कि सुबोध अप्रसन्न नहीं है। लीला सोचती, देवर बाबू भी अब मुझसे मुंह मोड़ गये। घर में उन्हीं की दो मीठी बातों से उसके जलते हृदय पर जल के दो चार छींटे पड़ जाते थे, सो भगवान से वह भी न देखा गया। किन्तु वे किस बात से इतने बेरुखे हो गए कि अब एक बार भी बोलते नहीं।' लीला यह सोच कर भी याद नहीं कर पाई। पूछे भी कैसे ? दिन भर सास जी उसके अगल-बग़ल इधर-उधर फिरती जो रहती हैं।

अंत को उसने एक उपाय निकाला। दुकान का नौकर आया था। कोई तेरह-चौदह बरस का छोकरा होगा। नाम है उसका बनवारी, घर से पान के बीड़े लेने आया था, दुकान पर कोई मोटे असामी कपड़ा ख़रीदने आये थे उन्हीं के लिये। लीला ने पान लगाते लगाते उससे कहा, "बन्नू ! मेरा एक काम कर देगा भइया !"

"हां ! हां ! क्यों नहीं" बन्नू ने सहास मुद्रा से कहा। भाभी उससे कभी किसी काम के लिये क्यों नहीं कहतीं, इसका दुख उसके मन में सदा ही बना रहता था। सो उसने जल्दी से कहा—"कौन काम भाभी ?" 'ले', लीला ने इधर-उधर कुछ देख कर उसके हाथ में एक परचा थमा कर कहा, "छोटे बाबू को दे देना छोटे बाबू ,बाबू यानी सुबोध। 'दे देगा न भइया ?'

'हां हां ! दे दूंगा। कौन बड़ा काम है !'

"देख अकेले में दीजो और किसी से इसकी चरचा भी न कीजियो।"

नहीं-नहीं, "बनवारी ने निश्चित स्वर में कहा, "गंगा माई की कसम किसी से न कहूंगा।"

आज वह बड़ा प्रसन्न था। भाभी का राज़ दां बन गया है आज वह। यह नई मालकिन भी तो एक पनवाड़ी के यहां उसी के हाथ जाने कितने परचे भेजती और मंगाती है। यह भी बन्नू ही करता है। बदले में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे पैसे भी मिलते हैं। तो आज भाभी ने भी वही कराया। वह अधकचरी बुद्धि का किशोर बालक यही सोचता हुआ पान लेकर दुकान चला गया। कालिज से लौटते समय रास्ते में ही बन्नू ने सुबोध को वह पर्चा दे दिया। भाभी की लिखाई सुबोध पहिचानता है। पढ़ी चाहे पांचवीं तक हैं, किन्तु अक्षर उनके बड़े ही पक्के होते हैं। अपनी कई पुस्तकों पर उसने उनके हस्ताक्षर देखे थे। परचा देखकर सुबोध सन्न रह गया। वह भावुक युवक है। प्रेम और रोमांच उसे बहुत भाते हैं। किसी भी लड़की के हाथ की छिपी चिट्ठी पाने को जैसे उसके वे प्राण आतुर से रहते हैं। मन में एक अनजानी पीर छिपी हुई है उसके। भाभी का पत्र पाकर उसे जाने कैसा सा लगा, किन्तु पत्र पढ़कर वह सब मिट-सा गया। रह गई एक निविड़ उदासी और कसकती चुभन।

लीला ने सिर्फ़ लिखा था, देवर बाबू! क्या तुम भी अब नाराज़ हो गये? मैं तो जनम की अभागी हूँ, किसी को अपने से सुख नहीं दे सकी। किन्तु तुम भी जो मुझ दुखिया से इस तरह अनेही हो जाओगे, तो इस घर में दिन काटने मुझे कितने पहाड़ हो उठेंगे! इसे ज़रा सोच कर देखो·····

तुम्हारी
भाभी

(६)

नन्दू की मां ने बाहर से पुकारा, बहू!

तो लीला ने कराहते हुये स्वर में पूछा—कौन है, अम्मा?

अरी नहीं मैं हूँ, नन्दू की मां!

"आई चाची," लीला ने कांपते पावों से उठकर किवाड़े खोल दिये। फिर दीवार का सहारा लेकर खड़ी होगई।

"तेरी सास कहां है बहू?"

"रामसरन के घर गई हैं चाची! उनके पोते का जनेऊ है आज।"

"भली लुगाई है वह तो मुझसे तो कल कह रही थी कि जाते समय मुझे साथ लेलेना और आप चलदी पहले ही।"

लीला चुप ही खड़ी रही। उसे बुख़ार चढ़ा हुआ था। अधिक बोलने से सिर में और धमक होने लगती थी। नन्दू की मां ने उसका मुख तमतमाया हुआ देख कर पूछा,—"तेरा जी कैसा है बहू? क्या बुखार हो रहा है?"

"हाँ, कुछ लगता है," लीला ने दोनों हाथों से माथा दाब कर कहा,—"बैठो चाची, पीढ़ा लादूं।"

"नहीं बहू, मुझे भी अभी जाना है। और तू इस गरमी में भी भीतर रसोई करती है? आंगन में आँगठे पर क्यों नहीं कर लेती?" यह नन्दू की माँ भी कई बालकों की माँ है। उसके भी घर में जवान विधवा लड़की है। दुखिया के दुख का अनुभव उन्हें है, इसीसे लीला पर उन्हें तरस आता है।

"चाची!" लीला कुछ देर में बोली,—"आँगठों में कोयलों का ख़र्च बड़ा पड़ता है,"—और फिर माथा दाबे दाबे वहीं धरती पर बैठ गई।

नन्दू की मां ने उसे बैठते देखकर जैसे ही उसे सहारा दिया, वैसे ही चौंक के बोली, राम राम! अरे तेरे तो बड़ा तेज़ बुखार हो रहा है। जा कपड़ा ओढ़ कर लेट जा। मैं वहां से तेरी सास को भेज दूँगी।

नहीं, नहीं—"लीला त्रस्त होकर बोली,—"तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं चाची। ऐसा ग़ज़ब भी न करना। यह तो मरा तीसरे दिन चढ़ा रहता है। आज ज़रा जोर हो गया है, उतर जायगा कल तक!"

नन्दू की मां चुप हो गई। फिर दो मिनट बाद बोली, अच्छा तो किवाड़े बन्द कर ले, मैं जा रही हूँ।

लीला ने सांकल चढ़ा दी। फिर रसोई में जाकर कभी लेट कर, कभी बैठकर धीरे धीरे वह भोजन बनाने लगी।

दिन जैसे तैसे कट गया। पर सन्ध्या के भोजन बनाने के बाद लीला में इतना दम नहीं रहा कि बर्तन भी मांज डाले। पर कहे किससे? सास जी तो रामसरन से लौटकर सिर का दर्द लेकर अपने कमरे में पड़ी थीं। दूकान का नौकर भी आज नहीं आया, जो चार बर्तन मांज जाता। लीला की देह टूटी सी पड़ी थी। जैसे तैसे उसने सवेरे के काम लायक दो-चार बर्तन मांजे और शेष सारे बर्तन एक ओर सरका कर अपनी कोठरी में जा पड़ी। द्वार बन्द करने का दम भी तो नहीं था उसमें।

लीला चौंक पड़ी। जलते हुए मस्तिष्क पर किसी के बरफ़ से शीतल हाथ का कोमल स्पर्श पाकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी देह तप रही थी अंगारे जैसी। हिलने की शक्ति भी नहीं थी उसमें। फिर भी बल करके दोनों आंखें खोली, कराह कर पूछा कौन ?

"चुप"—सुबोध ने उसके मुख पर उंगली रखकर धीरे में कहा,—"मैं हूँ भाभी।"

लीला कांप गई, उस अध-बेहोशी में भी। किसी अज्ञात भय से उसका सारा शरीर सिहर उठा।

"देवर जी तुम कहां? उसने टूटे हुये गले से कहा —"अम्मा को पता लग गया, तो—"

भाड़ में जायें अम्मा!—"सुबोध ने चिढ़े हुये किन्तु धीमे स्वर में कहा—"भाभी मैं भी आदमी हूँ, जानवर नहीं। मेरे पास भी हृदय की जगह एक दम पत्थर ही नहीं रक्खा है। तुम्हें इस तरह तड़प तड़प बिना दवा-पानी के मरना मैं नहीं देख सकूँगा।"

लीला चुप हो गई। और कहती भी क्या? स्नेह की भेंट अस्वीकार करने वाले विश्व में कितने होते हैं? वह जान रही थी कि इस समय कोई आकर देख ले, तो उसकी खैर नहीं। किन्तु, मना करके, वह अपने इस सहारे को भी कैसे गंवा देती? वह भी तो अपनी बच्ची ही है। सोलह बरस के उस अरक्षित अल्हड़ बचपन को लिये हुये वह दिन-रात अत्याचार की चक्की में पिस रही है। आज जब कि स्वर्ग के देवदूत-सा ही वह सुबोध इस दुख-सुख की बेला में, उसके सिरहाने बैठकर माथा दाब रहा था, तब कौन-सा साहस कहां से बटोर कर, वह उसे वहां से हटाती? आंखे मींच कर पड़ी रही। पड़ी पड़ी उस स्नेह भरे स्पर्श की ममता अनुभव करती रही। आज शायद वर्ष भर बाद उसने किसी की सहानुभूति, प्यार, स्नेह, या करुणा जो भी कहो, का दैविक स्पर्श पाया था। उस विकलता में भी उसके प्राण जुड़ ही गये। माथा दाबते दाबते सुबोध ने कहा,—"भाभी हमारे पास ज़रा सी ऐस्परीन रक्खी है, कहो तो। दर्द हलका हो जायगा।"

लीला ने धीरे से कहा—"लाओ"।

वह जानती थी कि आज वह क्या कर रही है। जो पाने का उसे अधिकार नहीं है, इस एकान्त में उसकी छाया देखने का भी उसे निषेध है, वही आज उसके इतना निकट, इतना समीप है कि उसके प्रश्वास तक का वह अनुभव कर रही है। इस दुख-सुख की विष और अमृतमयी घड़ी को वह स्मृति के किस कोने में रक्खे!

सुबोध ने ऐस्परीन की पुड़िया खोली। पानी का ग्लास लाकर रक्खा और फिर सहारा देकर लीला को उठाकर खिला दी।

दो मिनट में ज़रा सा चैन पड़ने पर लीला ने पूरे नेत्र खोल कर कहा—"देवर जी अब जाकर आराम करो कोई देख लेगा, तो ग़ज़ब हो जायगा। मेरा दर्द भी अब हल्का है।"

सुबोध तब भी बैठा रहा। सिर दबा रहा था, दबाता रहा। दीवे के उस कांपते हुये क्षीण आलोक में अपनी उस किशोरी भाभी के करुण पीत मुख की ओर निहारता रहा। एक ही वर्ष में उसकी वह भाभी अपनी देह के आवश्यक रक्त मांस को भी स्वाहा कर चुकी थी। उस अपनी ऐसी भाभी को यन्त्रणा से छटपट करते छोड़कर उसका मन ऊपर जाने को नहीं कर रहा था। जब तक वह भाभी की चिन्ता को मन से दूर दूर रखकर चलता रहा, तब तक उसे यह सब इतना नहीं खला था। पर आज उस अकेले में जहां कोई अन्तर, कोई बाधा नहीं थी, वहाँ आंख भर इतना सब देख लेने के पश्चात वह कैसे उसे छोड़कर चला जाय?

देवर जी, लीला ने पांच मिनट बाद फिर कहा, बस करो! हाथ दुखने लगे होंगे। जाओ सोओ, किन्तु आंसुओं से उसका गला रुका पड़ता था।

चुपचाप लेटी रहो, सुबोध ने उसके मुख पर हाथ रखकर कहा, मैं इतना नाजुक नहीं हूँ! लीला तब शान्त सुबोध शिशु की भांति आंख मींच कर पड़ी रही।

(७)

दो चार दिन में लीला उठ खड़ी हुई। कुछ तो सुबोध की लाई हुई चोरी की दवा पीकर, कुछ उसके स्नेह की भीख पाकर। उसके मन को अब एक छोटा सा सहारा मिल गया था। उन कड़े कठोर नीरस बन्धनों में फटा पहिन कर, रूखा सूखा खाकर रहनेवाली उस लीला का वह नन्हा सा हृदय किसी की ज़रा सी सहानुभूति, ज़रा सी करुणा का भूखा रहता था। सुबोध से वही पाकर वह उसका दास हो उठा। और सुबोध, उस बाहरी दुनिया से बेख़बर सुबोध को भी अब भाभी की बड़ी चिन्ता रहने लगी थी। पिता के कठोर शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुजनों की अनावश्यक लज्जा के भार से दबा हुआ वह युवक भले ही गला फाड़ कर छाती फुला कर उस अत्याचार के विरुद्ध खड़ा न हो सकता था, यह ठीक है; फिर भी उसके पास हृदय था; हृदय में स्पंदन था और उस स्पंदन में पर दुख से कातर हो उठने वाली भावना भी।

दिन बीत चले। उनका यह सौहार्द्र भी बढ़ चला। समय के साथ ही। वह अब भाभी के सुख दुख की चिन्ता में अपने को भूल चला, सीमा छोड़ चला। सहानुभूति किस अजाने घड़ी पल में मोह के रूप में बदल गई, इसे वह जान ही नहीं पाया और लीला—उसे तो पता ही न लगा कि किस अच्छी या बुरी घड़ी में वह नारी की धर्म-मर्यादा की तिलांजली दे बैठी! श्रद्धा! वह सुबोध को करती थी सदा से ही, किन्तु भक्ति के सहयोग से वह श्रद्धा कब साकार हो उठी, इसकी विभाजक रेखा यदि वह खींचना चाहती तो भी न खींच पाती। नियति के काल चक्र में छूट कर परिस्थिति के सुदृढ़ बन्धन में घुल मिलकर जाने कब असम्भव सम्भव हो उठा। फिर भी लोग तो वह सब नहीं देखेंगे। देश, काल, परिस्थिति, कुछ भी। वह तो देखेंगे केवल एक बात और उसके लिये थूकेंगे। और कहेंगे छी! अभागिन मर न सकी क्या! लीला फिसल पड़ी। उसका वह समाज की प्राचीरों द्वारा डाला हुआ सुदृढ़ बाँध हल्के से स्नेह का धक्का भी न खा सका, टूट पड़ा। वह अत्याचार के झकोरे खाते खाते जीर्ण हो गया था न!

प्रकृति के प्रकृतिगत स्वभाव को नष्ट न कर पाकर सुबोध और लीला दोनों ही पतनोन्मुखी समाज की नज़र में पतित होगए।

सारे पड़ोस में जाने कैसे वह ख़बर फैल गई। दीवारों के कान जो होते हैं।

श्यामा ने राधा से कहा,—"अरी कुछ सुना? देव-सरन की बहू के कौतुक।"

"क्या क्या…?"

"अरी क्या बताऊं देखने में तो कितनी सीधी लगे थी, मुंह में बोल नहीं था। कोई किसी काम को कह दो, तो नाहीं करना जानती ही नहीं थी। पर उसके पेट में तो बड़े बड़े गुन भरे थे बाबा!"

"कुछ बता भी कि यूंही कथा कहे जायेगी।"

"इस बार राधा खीझ पड़ी। श्यामा ने तब उसके कान में सिर से सिर जोड़ कर धीरे धीरे कहा, सुना है उसके दिन चढ़ रहे हैं?"

"सच?" राधा की आंखें फटी रह गईं। "कौन कहता था?"

"ले कहेगा कौन? सारे पड़ोस में यह ख़बर फैल रही है। कोई झूठ थोड़े ही होगी,"—श्यामा ने मुंह बना कर उत्तर दिया, "और उसका मुंह भी उतर रहा है। परसों जब छत पे धोती सुखाने चढ़ी थी, तब देखी थी मैंने!"

"राम राम! कैसा कलयुग है! जाने किसके संग डूब गई!"

"अरे छी! मरने को कुंआ तालाब भी नहीं जुड़े थे उसे! अरे कुल में दाग लगा दिया कि विचारे देवसरन को तो कहीं मुंह दिखाने को ठौर न रहेगा।"

"अच्छा बीबी, चुप रहो। हमें क्या!" राधा ने उठते उठते कहा,—"चलूं…देखूं रामो बाबू आगये या नहीं।"

देख तुम्हें मेरी कसम, अभी किसी से कहियो मत।

"नहीं नहीं, क्या मैं पागल हूँ?" किन्तु इसी तरह राधा से ललिता और ललिता से विशाखा। तीन घन्टे में ही यह ख़बर गली की सीमा अति क्रमण करके शहर का चक्कर काटने लगी।

(८)

लीला ने अन्धेरी रात में मुन्डेरी पर चढ़ कर तीन बार पुकारा "देवर जी!" तब कहीं सुबोध ने एक बार धीरे से कहा—'हां'। उसका मुंह इन तीन ही दिनों में पीला होगया था। लीला तब मुन्डेरी फांद कर छत पे उतर आई। "द्वार खोलो," उसने धीरे से कहा। सुबोध ने जाने कैसे द्वार खोले। लीला से वह अब भूत से भी अधिक डरता था। प्रकृति अब अपना अंतिम कर्तव्य पालन करने जा रही थी न। सुबोध चुपचाप धरती की ओर आंखें गड़ाये खड़ा रहा। लीला ने एक बार उसके हल्दी पुते मुख को ताक कर धीरे धीरे कहा "अब क्या होगा?"

"अब!" यही तो सुबोध ठीक नहीं कर पा रहा है। क्या होगा अब? आंखों के आगे तारे से नाच रहे हैं उसके। सहानुभूति की लहर में बह कर वह कहां से कहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था, इसका जलता अनुभव उसे अब ही हुआ था। उफ़ कहाँ से कहाँ उसने लीला पर दया दिखाई ? उस वह 'दया' अपने नग्न रूप में नृत्य करके सुबोध के शरीर को कंटकित कर रही थी।

लीला ने दुखी होकर कहा "तुम ऐसे क्यों हो रहे हो ? जो तुम्हारी इच्छा हो साफ़ साफ़ कहो। यह बात और अधिक दिन तो दबाई नहीं जा सकती ?"

"भाभी !" सुबोध ने छोटे बालक की भाँति भीत स्वर में कहा, "क्या कहूँ, मेरी तो मति कुछ काम नहीं करती !

लीला इस बार खीज गई। बी० ए० के इस छात्र, सोलह बरस के युवक की बुद्धि इस ऐन समय पर जब उसके जीवन मरण की घड़ी आ रही हो, तब 'कुंद' होती ! उसने ज़रा सतेज होकर कहा, "लाला जी से एक साफ़ सब कुछ कह दो। इन चार ही दिनों में तुम्हारा साहस पिघल कर बह क्यों गया है ? आज कल तो पुनर्विवाह कोई बहुत बड़ी बात नहीं रही।"

"ओह !" सुबोध ने दोनों हाथों से कान दबा लिये, "लाला जी के सामने तो मेरी आंखें भी न उठेंगी !"

लीला अब रो पड़ी···हाय रे उसका भाग्य ! जिस देवर धन को तूने अनधिकार से ही अपना लिया था, जो आज भय से दूर खिसक रहा था, उस पर उसे चोरी का 'कलंक लगा कर ! "तो मैं अब क्या करूं ?" लीला ने रुद्ध स्वर में कहा "मैं कहां जाऊं ?" सुबोध घुटनों के बल झुका। एक मिनिट, दो मिनिट, पांच मिनिट और यह क्या—हठात् उसने एक अप्रत्याशित काण्ड कर डाला। "भाभी," उसने घुटने टेक कर लीला के चरणों पर अपना सिर रख दिया, मुझे क्षमा करो ! मुझे बचाओ !!"

लीला अवाक् रह गई, पागल सी खड़ी रह गई।

"यह क्या" उसने जल्दी से पांव समेटे "उठो देवर जी ! यह क्या करते हो !"

सुबोध तब भी न उठा। दोनों हाथों से मुंह ढंक कर एक बार 'ओ' कह कर वह वैसे ही पड़ा रहा। लीला क्या कहती ? उससे जो स्वयं इतना भीरु हो, जो नर से भी नारी से भी गया-बीता हो, उससे लीला क्या आशा करे ? लोक लाज से बंधी हुई, मृत्यु के द्वार में गले तक धंसी हुई, उस लीला को भी उस कमज़ोर युवक पर दया आगई। उसने झुक कर सुबोध को उठाते हुए कहा, तो कुछ तो कहो कि तुम चाहते क्या हो ? सच जानो, इस नरक में तुम्हारे ही नेह की हल्की घनी छाया में मैंने यह इतने दिन बिताये हैं। तुम्हारा यह अहसान मेरे मन के एक एक तार को बींध गया है। तुम जो कहोगे, मैं वही करूंगी।

सुबोध ने तब कांपते स्वर में कहा, "भाभी मुझे तुम इस बदनामी से बचा लो !"

"बदनामी !" लीला एक बार सन्न रह गई। पुरुष अपनी बदनामी से इतने डरते हैं और नारी ? "अच्छा !" उसने मृत्यु के स्पर्श से भी ठण्ढे, पर निश्चय भरे स्वर में कहा, "मैं तुम्हें बचाऊंगी !"

(९)

श्यामा ने एक सांस में गली पार की और राधा के किवाड़े पीट कर कहा, "राधी ! ओ राधी ! किवाड़ खोल।"

क्या आफ़त आगई ?" राधा ने द्वार खोल कर कहा, "इतना हांफ क्यों रही हो ?"

अरी देवसरन की बहू तो जल मरी !

"चल झूठी !"

"झूठ नहीं री वह तो एक दम भुन गई। कोई घड़ी भर की मेहमान है। चलती है देखने।"

"चल—राधा द्वार में ताला लगाती लगाती बोली—कैसे जली ?"

"राम जाने ! उसकी सास तो कह रही थी कि रोटी करते समय आँचल में लपट लग गई। पर मैं जानती हूं यह सब झूठ है। उसके सिर जो आफ़त बंध गई थी जब उससे छूट नहीं पाई तो उसने आपही आग लगा ली होगी ! पर बड़ी हिम्मत है भइया !"

"हिम्मत ? सिर तेरा जो जैसा करेगा वैसा भरेगा !"

"चल री ! पाप-पुण्य से लिखी सबकी मिट्टी की देह में प्राण है। राम ! राम !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धीजी के महान चिंतक शिष्य विनोबा

श्री रामनारायण उपाध्याय

यदि आप बीसवीं शताब्दी में अरण्य कालीन महर्षि के दर्शन करना चाहते हों, पौराणिक प्रवचनों के रूप में आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ विचार धारा से परिचित होना चाहते हों, मूक जनता की वाणी को युग धर्म के रूप में सुनना चाहते हों और सर्वोदय की कामना के साथ ज्ञानर्षि कर्मयोगी को जनता जनार्दन की सेवा उपासना में प्रत्यक्ष तल्लीन देखना चाहते हों तो एक बार महान चिन्तक विनोबा जी से अवश्य मिलिये।

गीता के कर्मयोग से आप कुछ इस क़दर तदाकार हो चुके हैं कि सर्वोदय के विधायक कार्यक्रम के किसी भी अंग से आपको अलग नहीं कहा जा सकता। आप के जीवन में ज्ञान और कर्म का अद्भुत समन्वय है। वेद और उपनिषद कालीन प्राचीन दर्शन का अध्ययन कर उसे आज की विचारधारा में रखने और उससे आज की परिस्थिति में आज के मानव की समस्याओं का हल कराने का प्रमुख श्रेय आपको ही है। आप मौलिक विचारक नहीं वरन् अपने प्रत्येक विचार को जीवन में उतारते भी हैं। आज भी आपमें विविध भाषायें पढ़ने और सीखने की ओर अद्भुत लगन और जिज्ञासा है। अभी तक आप संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, अंग्रेज़ी, तेलगू, कन्नड़ी और मलयालम का अध्ययन कर चुके हैं; साथ ही बाइबिल, कुरान, वेद, उपनिषद और गीता के तो आप विशेषज्ञ ही माने जाते हैं। भाषाओं की तरह ही विविध धर्मों के ग्रंथ और दर्शन पढ़ने की ओर आज भी आपमें विद्यार्थियों की तरह ही उत्सुकता और दिलचस्पी है। एक शब्द में यदि आपको "स्थित प्रज्ञ" कहें तो अत्युक्ति नहीं। स्वभाव से आप एकान्त प्रिय और बच्चों जैसे सरल और नम्र हैं। जीवन में आप समाजवाद और गांधीवाद को जोड़ने वाली वह कड़ी हैं जिसके आधार पर भारत में सही-सही तरीक़ों से "गांधीवाद और समाजवाद" का समन्वय साधा जा सकता है।

श्री विनोबा जी से बढ़कर अनवरत कर्मण्य और प्रसिद्धि से भागने वाले मौन साधक बिरले ही मिलेंगे। सबसे पहले वे जनता के परिचय में तब आये जब स्वयं गांधीजी ने ही प्रथम सत्याग्रही के रूप में आप को जनता के समक्ष रख दिया। महादेव भाई के शब्दों में वर्धा "प्रसिद्धि की जिनको कभी परवाह नहीं थी उनको गांधी जी के सत्याग्रह ने असाधारण प्रसिद्धि दे दी।" यह प्रसिद्धि मिल गई तो उससे भी वे जल कमलवत् निर्लिप्त रहे।

एक बार स्वयं गान्धी जी ने विनोबा जी का परिचय कराते हुये लिखा था—"वे संस्कृत के पण्डित हैं। उनकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभाव से ही अध्ययनशील हैं। तकली कातने में तो उन्होंने क्रान्ति ही कर दी है और उसके अन्दर छिपी हुई तमाम शक्तियों को खोज निकाला है। उनके हृदय में छुआछूत की गंध तक नहीं है। साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है जितना मेरा।"

श्री विनोबा जी दृढ़ निश्चयी हैं। किसी भी काम को धीरे धीरे करने या दो बार में करने में उनका विश्वास नहीं है। जिस रास्ते हमें नहीं जाना है उसका हमें "रास्ता ही काट देना" चाहिये, यह आपका जीवन सूत्र है। पहिले पहल जब आपने घर छोड़ा तो इसी नियम के अनुसार। इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं कि एक दिन "मुझे लगा कि मैं अब इस घर में नहीं समा सकता। जब घर छोड़ा उस वक्त इन्टरमीडियट में था। कितने ही मित्रों ने कहा कि अब दो तीन साल और लगेंगे बी० ए० पास होकर उपाधि लेकर जाओ। उन सबको एक ही जवाब दिया कि "विचार करने पर यह ढङ्ग मेरा नहीं है।" घर छोड़ने से पहिले भिन्न भिन्न विषयों के सर्टिफिकेट लेकर चूल्हे के पास बैठ गया और तापते तापते उन्हें जलाने लगा। मां ने पूछा—"क्या कर रहा है?" मैंने कहा "सर्टिफिकेट जला रहा हूँ।" उसने पूछा "क्यों"? मैंने कहा—"उनकी मुझे क्या जरूरत?" माँ ने कहा "अरे ज़रूरत न हो तो भी रहें तो क्या हर्ज है? जलाता क्यों है?" पड़े रहें तो क्या हर्ज है? इन शब्दों की तह में ऐसी वृत्ति छिपी हुई है कि, आगे कभी उनका उपयोग करने की जरूरत पड़े तो? लेकिन आख़िर ज़रूरत पड़े तो पड़े ही क्यों? जिस मार्ग हमें नहीं जाना है उसकी बात भी क्यों? उससे व्यर्थ परेशानी होती है? और अपनी राह चलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...रुकावट आती है। इसीसे अन्य सब मार्ग बन्दकर ...का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है, कारण उससे अपनी राह ...में मदद जो मिलती है। अतएव आपने कहा ...मतलब उस सर्टिफिकेट से? पैंतीस करोड़ में से ...करोड़ को "वोट" का अधिकार मिला है। बाक़ी ...करोड़ को नहीं मिला है। मैं उन्हींके साथ क्यों ...हूं!" और इस तरह आप अपने निश्चय पर दृढ़ ...हैं।

विनोबाजी "गांधी परिवार" के एक अभिन्न अंग हैं। ...अभी पिछली जेलयात्रा के दिनों सिवनी जेल से ...जी को लिखे गये आपके एक पत्र को जब जेल ...कारियों ने यह कहकर रोक दिया कि "जेल से कोई ...राजबन्दी अपने रिश्तेदार को ही पत्र लिख सकता है ...को नहीं और गांधी जी आपके रिश्तेदार नहीं," ...आपने यह कहकर कहीं भी पत्र लिखने की सुविधा ...से ही इन्कार कर दिया कि "महात्माजी मेरे लिये ...भी रिश्तेदार से बढ़कर हैं और यदि मैं उनको ही ...नहीं लिख सकता तो फिर मैं पत्र लिखने की सुविधा ...ही क्या करूंगा।"

किसी भी बड़ी से बड़ी बात को भी कम से कम ...में कह जाने में आप सिद्ध हस्त हैं। आपके पास ...को बड़ी बड़ी समस्यायें और प्रश्न लेकर आनेवाले ...आपके चन्द सूत्रवाक्यों से प्रभावित और संतुष्ट ...लौटे हैं। एक बार अपनी जेलयात्रा के दिनों में ...के लिये आये एक व्यक्ति द्वारा जेल के विषय ...पर आपने स्वयं उनसे ही एक प्रश्न पूछकर ...की बड़ी ही सुन्दर परिभाषा की थी। आपने पूछा, ...सरकस देखा है ना?" वे बोले—"हां।" आपने ...—"तो बस ठीक है। जेल को उससे बिल्कुल ...समझो। सरकस में आदमी पशुओं पर शासन ...है और जेल में पशु आदमियों पर। समझे?" ...ही प्रश्नकर्ता ही संतुष्ट नहीं हुआ वरन् मुलाकात ...बैठा आफिसर भी स्तब्ध रह गया। बेचारे ने ...की बात में जेल की ऐसी कड़ी आलोचना कभी न ...होगी।

अभी अभी जबलपुर में भी एक ऐसी ही घटना ...विद्यार्थी-कांग्रेस के अवसर पर परिषद का उद्घाटन ...के बाद जब आप निश्चिन्त हुये तो विद्यार्थियों ने आपको आ घेरा और हस्ताक्षर की मांग की। आपने कहा—"मैं कभी भी हस्ताक्षर नहीं करता।" लेकिन विद्यार्थी क्यों मानने चले। उन्होंने हठ ठानी। आपने लाख मना किया लेकिन किसीने एक न मानी। तो आपने विद्यार्थियों को विद्यार्थियों की तरह ही जवाब देने की एक तरकीब निकाली। बोले "सुनो भाई मैं बिना पारिश्रमिक लिये कोई काम नहीं करता।" सुनते ही विद्यार्थियों के चेहरे खुशी से चमक उठे। ५) लेकर ही हस्ताक्षर करने सम्बन्धी बापू जी की शर्त तो उनको मालूम ही थी। सोचा, देखते हैं आज विनोबाजी कितना लेते हैं। वे जो कुछ भी लेंगे—आज तो उन्हें हम वह सब कुछ देकर भी हस्ताक्षर लेकर ही छोड़ेंगे कि इसी बीच एक सूत्रबद्ध मंतव्य उनको सुनाई दिया। बोले—"तो सुनो भाई, मैं बिना पारिश्रमिक लिये कोई काम नहीं करता और हस्ताक्षर का कोई पारिश्रमिक नहीं लेता।" सुनते ही सारा विद्यार्थी समाज निरुत्तर और लाचार होगया। यद्यपि उनको हस्ताक्षर तो नहीं मिले लेकिन उससे भी बड़ी जो बात मिली वह था उपरोक्त सूत्रवाक्य।

इसी प्रकार यदि आपको विनोबा वाणी का रसास्वादन और करना हो तो एक बार उनकी 'स्वराज्य-शास्त्र', 'विनोबा-विचार' और 'विचार पोथी' पढ़ जाइये। आपने हज़ारों पृष्ठों वाली सैकड़ों पुस्तकें पढ़ी होंगी लेकिन कुछ सौ पृष्ठों में हज़ारों सूत्रवाक्य कह जाने वाली इस तरह की पुस्तकें आप बिरली ही कहीं पायेंगे। स्वराज्य शास्त्र में राज्य और स्वराज्य की परिभाषा करते हुए आप लिखते हैं:—

"राज्य और है स्वराज्य और। राज हिंसा से प्राप्त किया जा सकता है। स्वराज्य अहिंसा के बिना असंभव है। इसलिये विचारवंत राज्य नहीं चाहते लेकिन "आओ सब स्वराज्य के लिये जतन करें" कहकर तड़पते रहते हैं। "न त्वहं कामये राज्यं" और "यते माही स्वराज्ये" ये उनके निषेधक और विधायक राजनैतिक उद्घोष होते हैं। "स्वराज्य" यह एक वैदिक परिभाषा के अंतर्गत शब्द है। उसकी व्याख्या इस प्रकार की जाती है स्वराज्य—याने प्रत्येक का राज्य—याने ऐसा राज्य जो प्रत्येक को अपना लगे याने सबका राज्य अर्थात्—"रामराज्य"।

स्वराज्य के साधनों के विषय में विनोबाजी का यह दृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास है कि उसके लिये अहिंसा ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है। वे लिखते हैं:—"इस महायुद्ध में असंगठित हिंसा और सुसंगठित हिंसा नहीं-नहीं—अति सुसंगठित हिंसा-दोनों-या तीनों बेकार सिद्ध हो चुकी हैं। तब क्या किया जाय। "अहिंसा के प्रति अपनी निष्ठा दृढ़ करो।" इसके लिये जनता की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। जनता कभी भी वादनिष्ठ या पद्धतिनिष्ठ नहीं होती। वह तो जीवननिष्ठ होती है। जीवन सुचारु रूप से चलता रहे तो वाद या पद्धति कोई सी भी, क्यों न हो जनता को उसकी फ़िक्र नहीं होती। "वाद" तत्व-ज्ञानी निकालते हैं पद्धति व्यवहारी लोग बनाते हैं और समाज सहयोग देता है।

हिन्दुस्तान की जनता अहिंसक है। वह अहिंसावादी नहीं है। यह वाद तो उसके नाम पर विद्वान सेवकों को खड़ा करना है। वह अहिंसाकारी भी नहीं है। यह कार्य उसकी तरफ से उसके सत्याग्रही सेवकों को करना है। अगर व्यक्तिगत रूप से अहिंसा में हमारी श्रद्धा हो तो अहिंसा में से शक्ति का निर्माण करना हमारा कर्तव्य है। इस कार्य में जनता का उत्तम आशीर्वाद सदा हमारे साथ है। अहिंसा जैसे प्रश्न के विषय में, जनता के मत परिज्ञान की ज़रूरत नहीं है, उसका "स्वभाव-परिज्ञान" काफ़ी है।

किसी न किसी कारण से हमारी संस्कृति अहिंसक रही। तभी तो हमारी ३५ करोड़ (अब ४० करोड़) जनता है। यूरोपियन राष्ट्र दो करोड़ या चार करोड़ की ही बात कर सकते हैं, यहां ४० करोड़ हैं। यूरोप की लड़ाई हिंसक साधनों से हिंसक उद्देश्यों के लिये लड़ी गई। हमारी लड़ाई अहिंसक साधनों से अहिंसक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये है।"

श्री विनोबाजी सम्पूर्णतः मानवधर्मी और अपने जीवन के ज़रिये सही समाजवाद के प्रसारक हैं। श्रम की प्रतिष्ठा और पूरी मज़दूरी को ही आप समाजवाद का मूल मानते हैं। आप गांधीवाद और समाजवाद के समन्वयकर्ता आचार्य हैं। इस सम्बन्ध में आप लिखते हैं:—

"साम्यवाद कृति में परिणत हुआ अद्वैत है। साम्य-वाद जीवन में उतरा हुआ वेदांत है। गांधीवाद और साम्यवाद का करते बने तो समन्वय करो। साम्यवाद को तुरंत कार्यान्वित करने की सिफ़त का नाम "अहिंसा" है। अहिंसा हर एक से कहती है कि "तू अपने आपसे आरम्भ कर दे तो तेरे लिये आज ही साम्यवाद है। अहिंसा का चिन्ह है "खादी"।...खादी याने हाथ का कता हाथ का बुना और पूरी मज़दूरी देकर बनवाया हुआ कपड़ा।...पूरी मज़दूरी के सिवाय समाजवाद का साम्यवाद का दूसरा कोई इलाज नहीं। खादी के द्वारा द्रव्य का वितरण होता है।

"अब तक हम यह नहीं समझ पाये हैं कि, पैसे गवांकर हृदय कमाने में भी कुछ चतुराई है। जब तक कम से कम पैसे देने में चतुराई मानी जाती है तब तक गांधी जी की बात समझ में नहीं आ सकती और न अहिंसा का प्रचार ही हो सकता है।"

सब मिलाकर कहें तो विनोबा जी समन्वय के आचार्य हैं। ज्ञान और कर्म का, विचार और आचार का, व्यक्ति और समाज का, धर्म और राजनीति का, समन्वय तो उनका लक्ष्य है। जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में उनके यही विचार हैं। इस सम्बन्ध में भी कुछ सूत्रबद्ध विचारों का रसास्वादन कीजिये :—

"जिससे जनता का चित्त शुद्ध होता है वही उत्तम साहित्य है। पोथी का कुंआ डुबाता भी नहीं है और पोथी की नैया तारती भी नहीं है। वेदों के अक्षर पोथी में मिलते हैं किन्तु उनका अर्थ जीवन में खोजना है। मन भर चर्चा की अपेक्षा कण भर आचरण श्रेष्ठ है। ज्ञानीवंत प्राण ज्ञान को पद-पद पर जीवन में उतारता है। 'जीवन'—विचार अनुभव और श्रद्धा का घनमेल है। ऋषि से दर्शन, तत्ववेत्ता से ज्ञान, और सन्तों से अनुभव लेना चाहिये। सृष्टि याने देवता की आरती, पूजन यथासांग हो चुका है अब सिर्फ नमस्कार करना इतना ही हम पर बाक़ी है।"

हम भी उनकी तरह अपने प्रभु से निरन्तर यह प्रार्थना करें कि, "हे प्रभो, टेकड़ी सरीखे उच्च रहने में मुझे मज़ा नहीं आता मेरी मिट्टी आसपास की जमीन में फैल जाय उसी में मुझे आनन्द है।" उन्हींके स्वर में स्वर मिला कर हम भी आज कह दें कि "हे प्रभो! मुझे असत् से सत्य में ले जा, अंधकार में से प्रकाश में ले जा और मृत्यु में से अमृत में ले जा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय मन्दिर में पहली बार

प्रो० जगदीशचन्द्र जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दुस्तान के गाँवों में आजकल भी लोग कोर्ट-कचहरी के नाम से डरते हैं। गांवों में एक मसल मशहूर है "मुक़दमा और बीमारी किसी को न लगे।" कोर्ट-कचहरियों की बाबत बात करते हुए अक्सर ग्रामीण लोग कहा करते हैं—यह भी अच्छा इन्साफ़ है कि कोई लाठी मार दे, ऊपर से अदालत कहती है कि गवाह पेश करो, कोई कहाँ से गवाह पेश करे, कहाँ से सबूत पेश करे, और कहाँ से मुक़दमा लड़ने के लिये लाये रुपया। बदक़िस्मती से कोई जान-बूझकर अदालत की शरण नहीं लेता, वहां तो लाचार होकर जाना पड़ता है, चाहे वह गाँव का हो या शहर का।

बदक़िस्मती से एक दिन मैं भी चक्कर में आ गया। साइकिल पर जा रहा था। बीच में एक चौराहा आया, वहीं बीच में गड़े हुए खम्भे की प्रदक्षिणा न कर सीधा बीच में से ही दाहिनी तरफ़ को साइकिल ले दी। वहां पुलिस की छोटी-सी एक चौकी थी, उसके अन्दर एक कानिस्टबिल लम्बा होकर लेटा था। मुझे देखा गुर्राया—साइकिल! हमें कुछ शरारत सूझी और उसकी आवाज़ सुनी अनसुनी कर आगे बढ़ गये। कुछ दूर से निबटकर सोचा कि चलो दूसरे रास्ते से भाग चलें, लेकिन ख़्याल आया कि यह तो कायरता होगी। फिर उसी रास्ते से लौटे। कानिस्टबिल देखकर बैठ गया, और बोला "आवाज़ लगाने पर भी नहीं ठहरता, 'राङ्ग साइड' काहे को गया?" जी में आया कि फिर उसे चकमा देकर, पांव मारकर साइकिल ले गये, और देखें वह क्या करता है, लेकिन कुछ सोच कर रुक गये।

मुझसे उससे पूछा "तो क्या कहना है?" कानिस्टबिल—"तुम राङ्ग साइड काहे को गया, आवाज़ लगाने पर भी नहीं ठहरता?"

मैं—"अरे भाई, 'राङ्ग साइड' गया था इसीलिये साइकिल से उतर गया हूं। अब क्या मर्ज़ी है? क्या थाने ले चलना है?

थाने का नाम सुनकर उसका माथा ठनका क्योंकि अधिक से अधिक मुझे थाने की ही धमकी दे सकता था। उसने अपनी पगड़ी सँभाली और रुआब के साथ बोला—"हां चलो थाने चलो।"

मैं—"देखो, थाने जाने की मुझे कोई ख़ुशी नहीं है। मैं तो चाहता हूँ हम तुम दोनों यहीं निबट लें। फिर भी यदि तुम मुझे वहां ले चलना ज़रूरी समझते हो तो मैं कैसे इनकार कर सकता हूं?"

कानिस्टेबिल—"थाने में चलने की आपकी मर्ज़ी हो तो चलिये। हमारा तो काम ही यह है। हम तो बहुत से लोगों को ऐसे ही छोड़ देते हैं, लेकिन आप लोग आदमी को पहचानते नहीं।"

मैं—"देखो, अपनी मर्ज़ी से मैं थाने नहीं जा रहा हूँ, तुम मुझे लिये जा रहे हो। तुम लोग पब्लिक को नाहक परेशान करते हो। इस सुनसान सड़क पर भरी दुपहरी में यदि मैं 'राङ्ग साइड' चला गया तो कौन-सा अनर्थ हो गया, और उस पर मैं अपनी ग़लती स्वीकार कर रहा हूं। तुमने जो लोगों को छोड़ देने की बात कही तो भाई हमें भी छोड़ दो। कोर्ट में जाकर जो एकाध रुपया जुर्माना होगा उसे यहीं ले-देकर मामला ख़तम करो—दोनों का फ़ायदा है।

लेकिन मेरी बात चीत के तर्ज़ से शायद कानिस्टबिल को कुछ शक पैदा हो गया और उसने रिश्वत लेकर छोड़ना मुनासिब न समझा। उसने कहा—"नहीं आप थाने ही चलिये।"

रास्ते में कानिस्टबिल के और भाई-बिरादर मिले। जो मिलता ज़ोर से आवाज़ लगाकर पूछता—"कायरे! काय आणला?" (क्यों क्या लाये हो) मेरा कानिस्टबिल गर्व के साथ उत्तर देता—'राङ्ग साइड'। इस पर उसके भाई-बिरादर मेरी ओर उपेक्षा दृष्टि से देखते और आगे बढ़ जाते। उनकी नज़रों में मैं अपराधी था, परन्तु साथ ही उनके लिये यह बहुत असाधारण बात न थी। जो कुछ भी हो, अब तो मुझे भी धीरे-धीरे आभास होने लगा था कि मैं मुजरिम हूँ। थाने पहुँचे। सौभाग्य से इन्स्पेक्टर साहब जल्दी ही तशरीफ़ ले आये, और रजिस्टर में मेरा नाम धाम दर्ज कर, एक रुपया डिपाज़िट का रखकर, मुझे अगले दिन सुबह कोर्ट में हाज़िर होने को कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थाने से चलकर मैं फिर उसी रास्ते से लौटा तो देखता क्या हूं कि वही कानिस्टबिल चौकी के बाहर बैठा मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। उठकर उसने मुझे सलाम किया, और अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहने लगा—"मैं बहुत शर्मिन्दा हूं जो आप जैसे भले आदमी को मैंने परेशान किया—धर्म की क़सम, मैंने आपको सिनेमा का कोई एक्टर समझा।"

मैं मन ही मन बहुत हंसा और सोचने लगा कि न मैं बहुत ख़ूबसूरत हूं, और न एक्टरपने का कोई चिन्ह ही मेरे चेहरे पर नज़र आता है, फिर ऐसी कौन सी बात है जिससे मैं एक्टर बनने लायक़ हो सकता हूँ? फिर क्या एक्टर होना, हिन्दुस्तान में इतना बुरा है! ख़ैर, मैंने कानिस्टबिल को तसल्ली दी और कल कोर्ट में मिलने का वादा करके मैं चला आया।

शाम को मित्रों की गोष्ठी में आप बीती की चर्चा हुई। एक सज्जन बोले—"यह तो बहुत बुरा हुआ; आपको कोर्ट में जाना पड़ेगा, छोटी-सी बात के लिये।" दूसरे बोले—"नहीं, आप अपनी सफ़ाई पेश करें और ज़रूरत हो तो एक वकील कर लें। एक तीसरे सज्जन जो दुनिया देख चुके थे, बोले—"देखिये, आप इस चक्कर में भूलकर भी न पड़ियेगा। आप तो वहां जाकर चुपचाप अपना अपराध स्वीकार कर लें, चाहे आपने कुछ किया हो या नहीं। ज्यादा से ज्यादा आप पर एक-दो रुपया जुर्माना होगा, और कुछ नहीं।"

रात को मैं सो गया। परन्तु जैसे प्यासा मनुष्य रात भर पानी के स्वप्न देखा करता है, उसी तरह मैंने भी स्वप्न-जगत् में अनेक कोर्ट-कचहरियों के चक्कर काटे। सुबह होते ही मैं अपने एक मित्र को साथ लेकर कोर्ट को रवाना हुआ।

कोर्ट की बिल्डिंग पर बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था—न्याय-मन्दिर। 'न्याय मन्दिर' जैसा पवित्र शब्द पढ़कर प्राचीन भारत के न्यायालयों की स्मृति जागृत हो उठी। सोचने लगा—क्या कभी किसी न्यायालय में न्याय मिला है? उस ज़माने में मनमाने सामंत लोग और उनके इशारों पर नाचनेवाले न्यायाधीश ने अपराधियों को कड़े से कड़ा दण्ड देकर न्याय की रक्षा करने का दम भरा है, परन्तु क्या वह सचमुच न्याय था? एक ओर अटूट धन-वैभव, विशाल प्रसाद, अन्तःपुर की एक से एक बढ़कर सुन्दरियां और नाना प्रकार के भोग-विलास, दूसरी ओर खाने के लाले, रहने को स्थान नहीं, करने को काम नहीं, जीवन में घोर निराशा! फिर ऐसी विषमता में समाज में झूठ-चोरी आदि की वृद्धि न हो तो क्या हो?

इस सोच सोच में मैं न्याय-मन्दिर के विशाल भवन में दाख़िल हुआ। एक ओर बैठने के लिये कुछ कुर्सियां और बेंचें पड़ी हुई थीं, जहां मुजरिम लोग आ आकर बैठ रहे थे। पीली पगड़ीवाले कानिस्टबिल और पुलिस-इन्सपेक्टर अपने अपने मुजरिमों को लेकर बैठे थे। पास में एक कठघरा था जिसमें तीन मुजरिम बन्द थे, जो लँगोटी लगाये थे, या घुटनों तक जीर्ण-शीर्ण धोती पहने थे, केश इनके बढ़े हुए, लम्बी दाढ़ी, शरीर नंगा या फटे-पुराने कुरते से आधा ढँका। मैंने समझा कि इन मुजरिमों ने अवश्य कोई ख़ून किया होगा, या कहीं डाका मारा होगा, अन्यथा इनको कठघरे में बन्द करके रखने की क्या ज़रूरत थी? परन्तु मालूम करने पर पता चला कि वे लोग भिखारी हैं, और पारसी कालोनी में रहनेवाले कुछ पारसी सज्जनों ने पुलिस में इनकी शिकायत की जिससे पुलिस उनको यहाँ पकड़ कर ले आई है। इस 'मन्दिर' में मेरे जैसे और भी मुजरिम थे जो 'राह-चलन' के अपराध में यहाँ आये थे। किसीकी साइकिल में रात को लैम्प नहीं था, कोई सड़क पर पेशाब करते हुए पकड़ा गया था, किसीके घर की बिजली की रोशनी बाहर आ रही थी, वग़ैरह।

मजिस्ट्रेट साहब काफ़ी देर से न्यायालय में पधारे और कठघरे के सामने कुछ फ़ासले पर बने हुए एक छोटे से प्लेटफ़ार्म पर पड़ी हुई गद्देदार कुरसी पर बैठ गये।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। मुक़दमे शुरू हो गये। चन्द मुक़दमों का फ़ैसला सुनाने के बाद कठघरे में बन्द मुजरिमों की बारी आई। पुलिस इन्सपेक्टर ने मुक़दमा पेश करते हुए बयान दिया कि हुज़ूर, ये लोग पारसी कालोनी में वहाँ के रहने वालों को परेशान करते हैं। न० १ मुजरिम ने सफाई देते हुए कहा—हुज़ूर, मैं कई साल से बम्बई में मज़दूरी का पेशा करता हूं, मैं अपनी बहन और भानजी के साथ रहता हूं। एक दिन रात को मैं मज़दूरी की तलाश में बैठा था, इतने में पुलिस कानिस्टबिल ने आकर मुझे गालियां दी, पीटा और पकड़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवालात में बन्द कर दिया। हुज़ूर मैं तीन रोज़ से इसी हालत में हवालात में बन्द हूं। सौभाग्य से मजिस्ट्रेट का दरिन्दा, जो वहां मुजरिमों के नाम पुकारने और जुर्माना लिखने आदि का काम कर रहा था, मुजरिम नं० १ को जानता था। उसने बयान में कहा कि वह मुजरिम नं० १ को पन्द्रह साल से जानता है, और उसने उससे कई बार मज़दूरी का काम लिया है। मुजरिम नं० २ हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि स्थानीय भाषाओं से अनभिज्ञ था, अतएव उसने अपने पेट और मुँह पर हाथ रखकर बहुत से इशारों से किसी द्राविड़ी भाषा में न्याय की भीख मांगी। मुजरिम नं० ३ ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया और न्याय के आसन पर विराजमान न्यायाधीश की बहुत कुछ अनुनय-विनय की। न्यायाधीश संभवतः इन मुजरिमों के ख़िलाफ़ कोई सबूत न मिलने से इनको छोड़ देते, ख़ास कर मुजरिम नं० १ के विषय में यह साबित हो चुका था कि वह कोई चोर-उचक्का नहीं, बल्कि एक ईमानदार मज़दूर-पेशा आदमी है, परन्तु यह मुक़दमा पुलिस का था। पुलिस इन्स्पेक्टर ने मुजरिमों को रिहा कर देने की बात से असंतोष व्यक्त करते हुए मुक़दमे को बड़ी कोर्ट में ले जाने की इच्छा प्रकट की।

इसके बाद कुछ और मुक़दमे हुए। तत्पश्चात् मेरा नाम पुकारा गया—

"तुम 'राङ्ग साइड' गये ?"

"जी हां।"

"अच्छा, एक रुपया जुर्माना।"

मैंने अपने मित्र से कहा—"देखो, बिना मरे स्वर्ग नहीं दिखाई देता। इतनी दौड़-धूप तो करनी पड़ी, परन्तु फिर भी सौदा बहुत सस्ते में पटा !"

बँध न सकी उन्मत्त जवानी !

श्री० उपेन्द्र

बन्धन टूट चले शत-शत पर बँध न सकी उन्मत्त जवानी।
गिरि-उर से बहते निर्झर की गति को कोई साध सका क्या ?
जलती किरणों की तेजोमय द्युति को कोई बांध सका क्या ?
कारा में क्या बन्द कभी रह सकता है तूफान गरजता ?
चिर निस्सीम गगन को कोई ज्योतिर्द्धर है माप सका क्या ?
काल थका पर मिट न सकी विद्रोही की वह चरण-निशानी।
बन्धन टूट चले, शत-शत पर बँध न सकी उन्मत्त जवानी।

मनुज भले मर जाय किन्तु क्या मर सकता अभिमान प्रखर है !
वह मिट जाए किन्तु कभी क्या मिट सकता बलिदान अमर है !
बुझी चिता की राखों में है एक छिपा इतिहास चमकता,
शूरों की विभूति तलवारें, पौरुष का जय-गान समर है।
मिट्टी चूम चले लेकिन नत हो न सका मस्तक अभिमानी।
बन्धन टूट चले शत-शत पर बँध न सकी उन्मत्त जवानी।

यौवन मौन रहा कब सुनकर विप्लव की हुंकृति, ललकारें ?
खाली वार हुए कब जब-जब म्यानों से निकलीं तलवारें ?
सिंहासन कब हुआ न डावांडोल देवता का, सुन गर्जन ?
पदाघात खा एक बार कब, हुआ न भय से कंपित त्रिभुवन ?
व्यर्थ गए संघर्ष यहां कब, व्यर्थ गयी है कब कुर्बानी ?
बन्धन टूट चले शत-शत पर बँध न सकी उन्मत्त जवानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया की राजनीति में अरब-सङ्घ की जगह

श्री डोरोथी एडेलसन

अनु० श्री नारायणदत्त तिवारी

२२ मार्च, सन् १९४५ को अरब रियासतों के नये संघ ने जो पारस्परिक संधि की थी, उसने एक महीने बाद ही सान-फ्रान्सिस्को कान्फ्रेंस में एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या उत्पन्न कर दी। सन्धि पर दस्तख़त करनेवाले सात राष्ट्रों में से पाँच—सीरिया, इराक़, सऊदी अरब, लेबनान और मिस्र ने यह दिखा दिया कि अरब राष्ट्र भी पूर्ण अनुशासन क़ायम रखने की योग्यता रखते हैं।

सैनफ्रान्सिस्को कान्फ्रेंस पर तमाम दुनिया की निगाहें थीं। लीगों अरब संघ के प्रचार और प्रसिद्धि के लिये यह मौक़ा बहुत उपयुक्त समझा। होशियार अरब अख़बार नवीसों के प्रयत्न से दुनिया की जनता नये अरब संघ से ख़ूब परिचित हो गई। कान्फ्रेंस में रंग-बिरंगी सूरतों के छापने या उनके मनोरंजक चित्रण करने के भूखे अख़बार वालों के लिये सऊदी अरब के नुमाइन्दों के लम्बे, फरफराते हुए, सुनहरी गोटावाले चोग़े एक दिलचस्पी की चीज़ थे। कुछ ही अरसे के अन्दर नये अरब संघ को ज़िम्मेदार अमरीकन सम्पादक भी अपने लेखों में महत्व देने लगे।

पर यह सारा प्रचार कुछ अंशों में हानिकारक भी था। कुछ हलकों में अरब-लीग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हथियार के रूप में उपेक्षित की गई, जिसका उद्देश्य यह समझा गया कि अर्द्ध-सामन्त अरब सरदारों की ताक़त को बढ़ाया जाय जिन पर अंग्रेज़ लोग अरब जनता की अपेक्षा अधिक दबाव डाल सकते हैं। यह भी आरोप लगाया गया कि संघ का मुख्य उद्देश्य फिलिस्तीन में यहूदी सत्ता के उद्देश्य को ख़त्म करना है जो एक ऐसा मुद्दा है जिस पर प्रत्येक प्रतिस्पर्धी अरब नेता एकमत है। उस पर दूसरा आरोप यह था कि वह ब्रिटेन की साज़िश की मदद से मध्य-पूर्व में फ्रेंच प्रभाव को ख़त्म करना चाहता है।

मज़बूत मोर्चा

लेकिन इन सब, मुख़तलिफ़ रायों और विरोधी भावनाओं के बावजूद भी अरब-संघ ने सान फ्रान्सिस्को में अपने पाँच वोटों की शक्ति को इस तरह इस्तेमाल किया कि राजनैतिक दृष्टि से उनका महत्व हो गया। कान्फ्रेंस शुरू होने के कुछ ही दिनों के बाद इन मेम्बरों ने यह सुझाव पेश किया कि अरब-संघ को अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिये नमूने के तौर पर इस्तेमाल किया जाय। एक साथ काम करने की कोशिश पर उन्होंने ख़ास ज़ोर डाला, जैसे कि, जब कभी कान्फ्रेंस में सब के प्रतिनिधि का काम करता रहा, वह लगातार ज़ोर देकर कहता कि अरब राष्ट्र बहसतलब प्रस्तावों पर सामूहिक विचार करने के लिये समय की ज़रूरत है।

इन छोटी-मोटी घटनाओं से तीन मुख्य विषयों की इन राज्यों के संगठित होने का स्पष्ट आभास हो जाता है—पहला, फ्रेंच-सीरियन झगड़ा, दूसरा फ़िलस्तीन सुरक्षा-सम्बन्धी ख़ास योजना की माँग और तीसरा अरब-संघ का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के अन्दर एक महत्व पूर्ण स्थान पाने की इच्छा। इन सवालों का हल होना अभी बाक़ी है। सीरिया के झगड़े कान्फ्रेंस के द्वारा नहीं निपटाये गये क्योंकि वे उसके अधिकार की सीमा के बाहर हैं। कहा गया कि कान्फ्रेंस कोई सीमा-संबन्धी रद्दोबदल नहीं कर सकती। फ़िलस्तीन के पट्टे का प्रश्न भी असुलझा ही रहा, किसी वैधानिक परिवर्तन के होने तक पट्टेदारी क़ायम रखी जाने की घोषणा की गई। इसी तरह अरब-संघ के प्रादेशिक महत्व के प्रश्न के भी समर्थक नहीं मिले और वह योजना भी धरी रह गई।

दमिश्क के ऊपर फ्रेंच गोलाबारी ने अरब संघ निधियों का अपनी एकता का एक और प्रदर्शन करने का मौक़ा दे दिया। सानफ्रांसिस्को और काहिरा, दोनों जहाँ अरब-संघ के प्रधान दफ़्तर थे, सीरियन की पहुँचान का निश्चय किया गया और फ्रांसीसियों खुला घृणा का प्रदर्शन किया गया। फ्रांसीसियों गम्भीर गलतियों, अंग्रेजों के बीच में पड़ने और की घृणा की भावना—इन सबके परिणामस्वरूप हुई उलझनों, परिस्थितियों में ग़लत या सही जो कुछ रहा हो अरब-संघ का सीरिया के साथ सहानुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि बातें बिल्कुल उचित थीं क्योंकि निरपराध अरब ...नरिक विदेशी तोपों के शिकार हो रहे थे। नये संघ के ...द्द इसका अच्छा असर हुआ क्योंकि समस्त जनता की ...मूर्ति सीरियन जनता के साथ थी जो कि अपने ...चित मानवीय अधिकार को गोलियां सहते हुये भी ...रही थी।

कुछ लोग यह भी सोचते थे कि फ्रांस के उदार दल ...सीरियनों और लेबनान-निवासियों को स्वतन्त्रता ...चाहते हैं, इसलिये ऐसे समय में जब कि फ्रांस ...ोई हुई धाक फिर से जमाने की जी तोड़ कोशिश ...रहा है सीरियनों को पांच सौ फ्रेंच सैनिकों के सीरिया ...पर इतना हो-हल्ला नहीं मचाना चाहिये। ...जब सीरियन विद्रोह कर चुके और फ्रांसीसियों ने ...में गोलाबारी भी शुरू कर दी तो अरब-संघ के ...कोई चारा न रहा। केवल मोर्चा लेना ही बाक़ी ...था।

फ़िलिस्तीन का मामला

संघ अपनी दूसरी बड़ी योजना में कामयाब नहीं ...। वह योजना फ़िलिस्तीन को अरब अधिकार में न ...के बारे में थी। पार्लिमेंटरी विधान के लम्बे चौड़े ...को लेकर, क़ानूनी मार्ग पर फूँक फूँककर क़दम ...हुए, पांचों अरब ताक़तों ने अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस में ...धारा का जी तोड़ विरोध किया जिसके द्वारा विश्व-...चार्टर में फ़िलिस्तीन के यहूदियों के वे अधिकार ...उन्हें 'लीग आफ़ नेशंस' द्वारा दिये गये थे, ज्यों ...क़ायम रहते। चूंकि सानफ्रान्सिस्को कांफ्रेंस के ...में सीमा-सम्बन्धी सवाल नहीं आते थे, यह ...नाकामयाब रही। इसके अलावा अरब रियासतों ...ऐसे उदार क्षेत्रों का विश्वास खो दिया जो अरबों ...से 'बालफ़ोर घोषणा' के रद्द होने और ...अंतर्राष्ट्रीय पहलू के नष्ट हो जाने से डरते थे।

इस प्रकार शुरू से ही फ़िलिस्तीन के यहूदियों की ...को ख़त्म करने की कोशिश अरब-संघ का ...था। काहिरा-पैक्ट का भी यही उद्देश्य था, ...एक धारा यह स्पष्ट घोषित करती थी कि ...स्तीन एक अरब-राज्य माना जाय और अरब-संघ ...एक प्रतिनिधि भी रखा जाय। प्रेज़ीडेंट ट्रूमैन और प्रधानमंत्री चर्चिल को एक पत्र लिखकर संघ ने यह भी मांग पेश की थी कि फ़िलिस्तीन का 'मैंडेट' ख़त्म कर दिया जाय और फ़िलिस्तीन को एक अरब रियासत मान लिया जाय।

सानफ्रान्सिस्को में अनुभव होने के बाद शायद संघ के दृष्टिकोण में कुछ रद्दो-बदल हो जाय। अरबों को वहां कांफ्रेंस में और अख़बारों में दोनों जगह, काफी घुड़कियां मिलीं। फ़िलिस्तीन के मामले को अरब राजनीतिज्ञों ने काफी महत्वपूर्ण स्थान दे रखा था। यही एक मामला था जिस पर अरब-सल्तनतें एक थीं। यह फ़िलिस्तीनी मसला उनकी स्फूर्ति को क़ायम रखता था। यूं सानफ्रांसिस्को में अरबों को सीरियन स्वतन्त्रता की दुहाई देने में एक दूसरा बहाना भी था जिसको लेकर वह एक हो सकते थे किन्तु सीरियन मामला अरब स्वार्थों के लिये फ़िलिस्तीन के मसले के मुक़ाबले में कम घातक था। यह आवाज़ कि, "यहूदी हमें अपनी जन्मभूमि से निकाल रहे हैं" बाहरी दुनिया के कम पढ़े-लिखे या कम ख़बर जानने वालों को अवश्य आकर्षित करती थी और अरब जनता को भी उत्तेजित कर लेती थी।

उदाहरण के लिये, अरबों के इस कथन में कोई ऐसी महत्वपूर्ण और नवीन वस्तु नहीं थी कि उनकी ज़मीन का एक हिस्सा विदेशी अधिकार में चला जा रहा है। यह कोई अनहोनी घटना नहीं थी। इस प्रकार की सीमाओं की रद्दोबदल जिनमें स्थानीय जनता विदेशी अधिकार में चली जाती है, संसार के इतिहास में कई बार हो चुकी है। ट्रीस्ट, जहां कि इटालियन और यूगोस्लाव लोगों को झगड़ते झगड़ते विदेशियों का गुलाम हो जाना पड़ा, या कर्जन लाइन जिसके फलस्वरूप ३० लाख पोलैण्ड वालों को रूस में मिल जाना पड़ा आदि ऐसे दर्जनों उदाहरण मिल सकते हैं जिनसे उपर्युक्त कथन की सत्यता सिद्ध होती है। हां, अरबों की यह बात ठीक है कि केवल फ़िलिस्तीन में ही बाहर के लोग लाकर बसाये गये। पर यह नतीजा उस अंतर्राष्ट्रीय निश्चय का परिणाम था जिसके अनुसार फ़िलिस्तीन को ख़ानाबदोश यहूदियों का घर बना देने का निश्चय किया गया था और इसीसे प्रेरित होकर तमाम यहूदी वहां आये थे। उनके आने के हक़ को रोकना 'बालफ़ोर घोषणा' और लीग आफ़ नेशन्स की मुख़ालफ़त करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जिसमें लीग ने यहूदियों की इच्छाओं की पूर्ति का सुझाव रखा था।

यहूदियों की मांगें

अरब इस बात को भी ठीक तौर पर नहीं समझा सके थे कि वे एक ही मित्रराष्ट्रीय फैसले की दो मांगों में से एक को किस प्रकार मानते हैं और दूसरे का विरोध करते हैं। उस फैसले के एक भाग के अनुसार तुर्की सल्तनत के ९७ प्रतिशत भाग को अरब रियासतों में बदल दिया गया था और दूसरे भाग द्वारा केवल एक प्रतिशत भाग में यहूदियों का घर बसाने का निश्चय किया गया था। इस प्रकार के छोटे से सीमाबद्ध यहूदी दावे को न मानकर, राजनीतिज्ञों का ख़्याल था कि सीरिया, इराक़, सऊदी अरब और लेबनान के स्वतन्त्र होने की न्यायपूर्ण बुनियाद को कमज़ोर किया जा रहा था।

सीरिया के सम्बन्ध में किये जाने वाले फ़रांसीसी आक्षेप को फिलिस्तीन के मामले में भी सामने रखा जाता था, वह यह कि अरब लोगों के इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय फ़ैसले को बदलने का प्रयत्न, क़ानूनन् एक ग़लती थी। इसके अलावा अरब भी अंतर्राष्ट्रीय जमात के एक अंग थे, और यहूदियों के प्रति उनका विरोध एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के सुलझाने में रुकावट डालना था—यह समस्या दुनिया के ख़ानाबदोश यहूदियों के घर बसाने की थी।

अरबों के उन नेताओं के ऊपर, जो हृदय से अपनी जनता की भलाई चाहते थे उदार अमेरिकनों की इस भावना का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हें जान पड़ा कि फिलिस्तीन के ऊपर ज़बर्दस्ती लादा गया शासन एक खोखली जीत होगी। व्यावहारिक रूप में यह जीत हानिकारक होगी। यहूदियों को भी यदि एक बार यह ज्ञान हो जाय कि वे फिलिस्तीन में अपना बहुमत नहीं बना सकते तो फिर वे संजीदगी से यह सोचेंगे कि तो क्या फ़िलिस्तीन में उन्हें अपनी शक्ति को व्यर्थ गँवाना चाहिये, या वहां पर उन्हें पूंजी लगानी चाहिये या वहां उन्हें अपना वैज्ञानिक ज्ञान या मशीन-सम्बन्धी अनुभव आदि का प्रयोग करना चाहिये? उधर दूसरी ओर मध्य-पूर्व में एक यहूदी फिलिस्तीन होने पर वह औद्योगिक कला, नवीनतम खेती-सम्बन्धी योजनाओं व औजारों का प्रयोग-स्थल और स्वास्थ्य-सम्बन्धी, शिक्षा-इमक और मजदूर-विषयक नई उपयोगिताओं का केन्द्र हो जायेगा। पहले महायुद्ध से अब तक के अरसे में फिलिस्तीन की अरब जन-संख्या के दूने हो जाने से, जब कि चारों तरफ की अन्य अरब जन संख्या क़रीब क़रीब उतनी ही रही, यह स्पष्ट हो गया कि यहूदियों के बाहर से आकर वहां बसने का कितना प्रभाव पड़ रहा है। इसके अलावा, ऐसे इलाक़ों को जिन्हें अभी अधेसामंती के आर्थिक नियंत्रण से मुक्त होना हो, यहूदी फिलस्तीन के प्रगतिवादी नवीन प्रजातंत्र के नजदीक होने से काफी सहायता मिलती।

पहेलियां

यहूदी भी फिलिस्तीन के मामले पर बहस करते हुए यह राय ज़ाहिर करते हैं कि यह ज़ाहिरा कठिन समस्या हल करने में अति साधारण थी। धार्मिक स्थानों की सुरक्षा की अंतर्राष्ट्रीय गारंटी हो जाने के बाद अरब लोगों का, जो ज़मीन के स्पष्टतया भूखे नहीं थे, एक उन्नतिशील फिलिस्तीन हो जाने पर काफी फ़ायदा होता। इसके सिवाय मध्य-पूर्व की उन्नति में यहूदियों के हाथ बँटाने से उनका भी बहुत फायदा होता। अरबों और यहूदियों ने मध्यकालीन संसार में काफ़ी पारस्परिक सहयोग से काम किया था और अब भी ऐसा कर सकते थे।

कुछ लोग सोचते हैं कि वर्तमान जिच पिछले पच्चीस सालों के अन्दर यहूदी और अरब राजनीतिज्ञों के दिवालियेपन के कारण उत्पन्न हुई है। यहूदियों के आगमन को अरब राष्ट्रीयतावादी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के स्तम्भ के रूप में समझते थे। इस प्रकार आगन्तुक यहूदियों को अरब जनता का सहयोग न मिलने पर वे अंग्रेज़ों की मदद चाहने लगे। इससे उनके यूरोपीय रूप की ही पुष्टि हुई। इस सबका नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजों को अपने अस्तित्व को फिलिस्तीन में क़ायम रखने में मदद मिली। जैसा कि एक आलोचक ने कहा है कि अगर मध्य-पूर्व का उद्देश्य विदेशी ग़ुलामी से मुक्त होना है तो उसकी ओर पहला क़दम अरब-यहूदी समझौता हो जो कि ब्रिटेन को अनिश्चित समय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये फिलिस्तीन पर अपना फ़ौजी नियंत्रण रखने से रोक दे।

प्रादेशिक एजेंसियां

सानफ्रांसिस्को सम्मेलन में हुए अनुभवों का प्रभाव शायद अरब संघ के बुनियादी आधारों पर भी पड़े। दक्षिणी मुल्क, अपनी प्रादेशिक प्रणाली के स्वशासना-धिकार की मांग पर अड़कर, विश्व-संघ से उसके चार्टर में अपनी 'प्रादेशिक-ऐजेंसी' की योजना को मंजूर कराने में सफल हो गये थे। ये ऐजेंसी आत्मरक्षा कर सकती थी और घरेलू झगड़ों का निपटारा कर सकने का भी इन्हें स्वतः अधिकार था। 'प्रादेशिक ऐजेंसी' बनने की इच्छा लेकर अरब-संघ ने भी अपने 'पैक्ट', अपने संगठन की योजना को सम्मेलन के सामने रखा। पर मध्य-पूर्व में 'प्रादेशिक-ऐजेंसी' होने की मांग को मानते हुए भी सम्मेलन को अरब-संघ में कुछ कमज़ोरियां दिखाई दीं जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्य में सफल न हो सका। इस बात की उस समय और अधिक पुष्टि हो गई जब अरबों को 'प्रादेशिक स्वतन्त्रता' देने का प्रस्ताव कमेटी की वोटिङ्ग में ९ वोटों से गिर गया। मिस्र का सवाल अरब-संघ की मांग का एक अंग ही था।

अरब-संघ पर लगाया जानेवाला एक आरोप उसका धार्मिक व नस्ल-सम्बन्धी आचरण व बनावट थी। क़ौमियत और जाति के मसले को राजनीति में लाने की प्रवृत्ति को नापसन्द करते हुए अमेरिकन लोगों का कहना था कि प्रादेशिक सङ्गठन भौगोलिक दृष्टि से किया जाता है। अमेरिकनों का प्रदेश स्वयं एक गोलार्द्ध और महाद्वीप तक सीमित था। अरब सङ्घ भौगोलिक रूप में एक अस्पष्ट जमात थी जिसमें ईरान व टर्की शामिल न थे—उत्तरी अफ्रीका की ओर सीमा की कोई निश्चित रेखा न थी, जब कि अरब प्रतिनिधि अपने को सत्तर व अस्सी लाख अरबों के प्रतिनिधि कहा करते थे जिनमें कि उत्तरी अफ्रीका के लोग भी शामिल थे। अरब-सङ्घ दुमुहे तौर पर अरब-राष्ट्रों और अरब स्वार्थों के बारे में बात करता था जिसके कहा जाता था कि 'अरब-सङ्घ हरेक अरब-राज्य के स्वार्थों की देख-रेख के लिये है'। यह बढ़ने की कामना और क़ौमियत पर ज़ोर अन्य प्रतिनिधियों की दृष्टि में शान्ति और सुरक्षा के लिये एक खतरा ही था।

अल्पसंख्यक

मध्य-पूर्व की अल्पसंख्यक समस्या ने विशुद्ध अरब रियासतों की स्थापना की सम्भावना को और भी संदिग्ध कर दिया था। ईरान के अन्दर की अल्पसंख्यक कुर्द जनसंख्या इतनी अधिक थी कि राजनीतिज्ञ वहाँ अरब राष्ट्रीय भावना का प्रचार न कर इराकी राष्ट्रीयता पर ज़ोर देते थे। अरब-सङ्घ में अरब और मुसलमान होने पर ज़ोर देना, एक दृष्टि से लेबनान के लिये घातक था क्योंकि लेबनान की अधिकांश आबादी ईसाई धर्म को मानती है। और यही बात फिलिस्तीन के यहूदियों पर लागू होती है। इस क़ौमियत के आरोप का जवाब अरब-संघ ईसाई-लेबनान और यहूदी-फिलिस्तीन की प्रादेशिक स्वतन्त्रता को स्वीकार करके दे सकता है।

अरब-संघ के हाथों में सुरक्षा का सम्पूर्ण भार देने के विरुद्ध एक एतराज़ यह था कि आक्रमणकारी के विरुद्ध सफलतापूर्वक हथियार उठा सकने की क्षमता किसी अरब राज्य में नहीं है। कहा जाता है कि विदेशी फ़ौज ही सफलतापूर्वक मध्य-पूर्व में शान्ति स्थापना का कार्य कर सकती है।

यह दुरुस्त है कि अरब-संघ द्वारा स्थापित सङ्गठन अभी कमज़ोर और ढीला है। चापुल्टेपेक की सन्धि के अनुसार सुरक्षा के लिये एक स्थायी फ़ौजी कौन्सिल की स्थापना कर दी गई है। फिर भी अरब-संघ के पास कोई ऐसी मशीनरी नहीं है जिसके द्वारा वह यह संगठन बना सके। गोकि यह क़ानून पास कर दिया गया कि झगड़ों को तय करने में ताक़त इस्तेमाल न की जाया करे। फिर भी छोटी छोटी बातों पर झगड़े होने पर अरब-संघ कुछ निपटारा करने का अधिकारी था किन्तु इस सम्बन्ध में भी केवल सर्व सम्मति से पास हुए निश्चय ही अमल में आते रहे, और संघ के मेम्बरों को भी किसी समय अपनी मेम्बरी से बिना किसी कठिनाई के हट सकने का अधिकार था। यह भी कहा गया कि लीग के दो मेम्बर, ट्रान्स जोरडान और यमेन अंग्रेज़ों के संरक्षण में होने के कारण अरब-संघ के स्वतन्त्र सदस्य नहीं माने जा सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब एतराज़ों को बतलाते हुए, और अपने एक शताब्दी पुराने अमेरिकन ढांचे, 'मनरो सिद्धान्त' की न्यायसम्मत एकता को दिखाकर, पश्चिमी गोलार्द्ध के प्रतिनिधियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि अरब-संघ स्वायत्त संस्था बनने के बिल्कुल अनुपयुक्त है। कुछ सदस्यों ने यह भी राय दी कि स्वायत्त प्रतिनिधि बनने का अधिकार कुछ ही संस्थाओं तक सीमित रखा जाय और क्यूबा के प्रतिनिधि ने इस आशय का प्रस्ताव भी पेश किया किन्तु इस पर फैसला कुछ नहीं हो सका। भविष्य में भी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठनों को इस सवाल पर काफ़ी माथापच्ची करनी पड़ेगी क्योंकि अरब मुल्क इन्हें फिर से ज़रूर पेश करेंगे।

बढ़ता हुआ खतरा

अपनी अत्युक्तियों के बावजूद भी अरब-संघ इस माने में एक सफल संस्था कही जा सकती है कि उसके नीचे प्रतिस्पर्धी अरब राज्यों ने अपने भेद भुला दिये हैं और पारस्परिक सहयोग के लिये तैयार हो चले हैं। लेकिन इस प्रकार के संघ से ही समस्या हल नहीं होगी। अरब-संघ के फ़ौजी उद्देश्यों से ही उसके सदस्यों की ज़रूरतें पूरी नहीं हो जातीं। स्वतन्त्रता और स्वशासनाधिकार प्राप्त कर, अरब जनता को ग़रीबी, बीमारी, अशिक्षा और अर्ध-सामन्तशाही की गुलामी से बचाने की योजना बनानी ज़रूरी होगी।

इस प्रकार अत्युक्तियों पर पुनः विचार करने से हमें मालूम पड़ता है कि:—

सीरिया, अल्प संख्यकों की पारस्परिक विरोधी भावनाओं के बीच पड़ा हुआ, साठ प्रतिशत अशिक्षित, नाम मात्र को संघ का सदस्य कहा जानेवाला पर दरअसल अर्ध-सामन्तशाही के पैरों तले कुचला हुआ एक राष्ट्र है।

इराक़, इससे भी अधिक सामाजिक अधोगति को पहुंचा हुआ है, जहां फ़ौजी शासन है, जहां स्वतन्त्रता मिलने के कुछ ही साल बाद वहाँ के सारे असीरियन अल्पसंख्यकों का क़त्ल कर दिया गया।

लेबनान, जो कि आर्थिक दृष्टि के दबा हुआ है, मुस्लिम जनता के बीच में ईसाइयों की बस्ती के रूप में है।

मिस्र, जहाँ कि १ करोड़ ६० लाख बीमार व भूखे हैं, जहाँ का सारा धन केवल कुछ बड़े ख़ानदानों के हाथ में है।

सऊदी अरब, ख़ानबदोश और जाति-भेदों से भरी हुई, ग़ुलामों की प्रथा से युक्त, रेगिस्तानी रियासत है, जहां पर राजा का राज्य एक भूली हुई दुनिया पर शासन करने के समान है।

ऐसी हालत में हम सोचते हैं कि अरब देशभक्त को सामाजिक व आर्थिक संगठन में लग जाना चाहिये। पर अरब-संघ की वर्तमान जिम्मेदारियां केवल बाहरी और दिखावे की हैं। उसके अधिकांश नेता सामन्त-वर्ग के हैं। जिनका काम कूटनीतिक पेचों और राजनैतिक दावों पर बाज़ी लगाना है न कि बुनियादी मसलों को हल करना।

केवल अरब राष्ट्रीयता ने ही अरब-संघ को अंग्रेज़ों का एजेन्ट होने से बचाया है। बाहरी ग़ुलामी से मुक्ति की सम्भावना ने मध्य-पूर्व की जनता को प्रभावित कर दिया है। सीरिया की अशिक्षित जनता का विद्रोह इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। अपने नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थान्धता न देखते हुए भी, जनता स्वतन्त्रता के नाम पर विद्रोह कर उठती है। इस स्वतन्त्रता की उत्कट भावना ने ही सानफ्रान्सिसको में अरब मांगों के सामने अंग्रेजों को चुप रहने के लिये मजबूर कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76230

हिमालय शिखर पर ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल से भेंट

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

दिल्ली की लू, शोर ग़ुल, धूल धक्कड़ और मेहनत से कुछ दिनों के लिये छुट्टी लेकर जब ब्रिटिश मन्त्र-मडल हिमालय का धवल पवत श्रेणियों पर आराम करने के लिय गया तो उनका यह स्पष्ट इच्छा था कि वहां उनसे कोई मिल-जुले नहीं और उन्हें थोड़े दिनों के लिये, कश्मीर का उस उपत्यका में शुभ्राकाश के नीचे स्वास्थ्य प्रद और स्फूर्तिदायक वायु का सवन करने दिया जाय। किन्तु मैं साहस करके उनकी अपनी छाया के समान यह देखने के लिये उनके पीछे पीछे गया कि दुनिया की छत पर अपने उस शान्त विश्राम स्थान में उनके हृदय की पवित्र चेतनाओं पर पहाड़ की आत्मा की गुप्त भावना और उस शून्य स्थल में व्याप्त प्रकृति का नीरव स्वर उन पर क्या प्रभाव डालता है।

बूढ़े और ऋषि तुल्य लार्ड पेथिक लारेन्स ने अपने कमरे से बरामदे में कुर्सी निकालकर उस पर बैठते हुए कहा—"यह हिन्दुस्तान है!" उनकी दृष्टि के सामने हिमाच्छादित पवत श्रेणी चुप खड़ी हुई नीचे घाटी के कोने में चुपचाप कुछ कह रही थी। ढलते सूरज के प्रकाश में चमचमाती हुई चोटियां इस तरह खड़ी थीं मानो प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि तपस्या कर रहे हों। कुछ देर के लिये तो लार्ड पेथिक लारेंस को यह महसूस हुआ कि मानो वे ऋषियों का मन्त्रोच्चारण सुन रहे हैं, ऐसा मन्त्रोच्चारण जो आत्मानुभूति से पैदा होता है और स्वर लय के साथ दशों दिशाओं में गूंज जाता है। उन मन्त्रों से मानो यह ध्वनि निकल रही थी—

"जो सबों के अन्दर एक आत्मा को देखता है और जो सब को एक आत्मा में देखता है वह किसी प्राणी को अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देख सकता।

"यह विश्व है क्या? किन तत्वों से यह बना है और किन तत्वों में यह लीन हो जायगा? स्वतन्त्रता से इसका उत्पात होता है, स्वतन्त्रता में ही इसका पोषण होता है और स्वतन्त्रता में ही यह लीन हो जायगा।"

लार्ड पेथिक लारेन्स आश्चर्य में डूबे हुए थे, न उन्हें संध्या के साथ साथ बढ़ती हुई सर्दी का ही बोध हो रहा था और न निकट साफ़ पर बैठे हुए सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मिस्टर अलेक्ज़ण्डर का ही ज्ञान था। वे आत्मा के उस अनन्त रहस्य का साक्षात कर रहे थे कि जिसके प्रकाश में वास्तविक शक्ति के दर्शन हो सकते हैं फिर भी थोड़ी देर बाद उन्हें बाह्य परिस्थितियों का ज्ञान हुआ और अपने पास बैठे हुए साथियों का भी पता चला। केवल दो शब्द उनके बोध गम्य मस्तिष्क में गूंज रहे थे "स्वतन्त्रता" और "एकता"। उनका दिमाग़ इन शब्दों को तरह तरह से रख रहा था—"एकता में ही स्वतन्त्रता है", "स्वतन्त्रता एकता है", "भारत एक है" "जब भारत स्वतन्त्र हो जायगा तो वह एक हो जायगा।" आदि, आदि। ये सारे विचार इतने ज़ोरों के साथ उनके दिमाग़ में चक्कर लगा रहे थे और इतना असर उन पर डाल रहे थे कि सहसा वह ज़ोर से चिल्ला उठे—"स्वतन्त्रता" "एकता"।

इस पर पास बैठे हुए सर स्टेफ़र्ड ने लार्ड पेथिक-लारेन्स से कहा—"मालूम होता है मिस्टर गांधी ने आप पर वशीकरण फूंक दिया है। अपनी बातचीत के दौरान में उन्होंने अपने जीवन के जिन बुनियादी सिद्धान्तों पर ज़ोर दिया था, यानी भारत एक है और भारत की स्वतन्त्रता अवश्यम्भावी है, वह अब तक आपको यदि पागल नहीं बना रहे हैं तो परेशान ज़रूर कर रहे हैं। मालूम होता है मिस्टर गांधी का निजी विश्वास आपके ऊपर हावी हो रहा है।"

किन्तु लार्ड पेथिक लारेन्स ख़ामोश बैठे रहे। मालूम होता था वह अभी तक हिमालय के जादूभरे स्वर्ग-दुर्लभ प्रभाव से मुक्त नहीं हुए थे।

मिस्टर अलेक्ज़ण्डर ने कहा—"मिस्टर गांधी सचमुच एक जादूगर हैं। वे लोगों को अपने वश में कर लेते हैं।"

सर स्टेफर्ड बोले—"उसी तरह जिस तरह सपेरा सांप को वश में कर लेता है? आपका यही मतलब है न मिस्टर अलेक्ज़ण्डर?"

ठीक इसी समय खाने की घंटी बजी और ब्रिटेन के तीनों प्रतिनिधि जो शायद इतिहास में पहली बार बजाय बन्दूकों के अपनी शुभ कामनायें लेकर भारत आये थे, एक साथ खड़े हो गये और डाइनिंग रूम की तरफ रवाना हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुरी, चम्मच और कांटों की आवाज़ के साथ साथ वे दर्जनों विषयों पर बेतरतीबी से बातें करने लगे।

सर स्टेफर्ड बोले—"पता नहीं एडवर्ड टामसन का क्या हाल है। वह इधर बहुत बीमार थे। मैं उनके लिये बहुत चिन्तित हूँ।"

मिस्टर अलेक्ज़ेण्डर कहने लगे—"मुझे विश्वास है कि अब वह अच्छे होंगे। मैं चाहता हूँ कि वे अच्छे रहें ताकि हम लोग उनसे पाकिस्तान के जन्मदाता सर-मुहम्मद इक़बाल से हुई उनकी उस बातचीत के महत्व को ठीक ठीक समझ सकते कि जिसमें सर इक़बाल ने एडवर्ड से कहा था कि वह मसजिद की मीनार पर चढ़ कर पाकिस्तान का बिगुल इसलिये बजा रहे हैं चूंकि मुसलिम लीग के प्रेसिडेण्ट होने के नाते उन्हें ऐसा करने पर मजबूर किया गया है!"

लार्ड पेथिक लारेन्स बोले—"पाकिस्तान के जन्मदाता की चाहे जो राय रही हो किन्तु मुसलिम लीग के मौजूदा सदर पाकिस्तान को उसके जन्मदाता की अपेक्षा कहीं अधिक ज़ोरों से चिपटाये हुए हैं। अक्सर ऐसा होता है कि बच्चे को सौतेली माँ असली माँ से ज़्यादा प्यार करती है।"

सर स्टेफर्ड बीच में बोले—"मिस्टर जिन्नाह की राजनीतिज्ञता के बारे में सर मुहम्मद इक़बाल का जो तख़मीना था वह मुझे अक्सर ठीक मालूम पड़ता है, हालांकि जवाहरलाल की देशभक्ति के बारे में जो उनका अन्दाज़ा था उससे मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूँ।"

लार्ड पेथिक लारेन्स बोले—"ओह! कितना अच्छा होता यदि हमने इससे पूर्व जब जब भारत की समस्या हल करनी चाही थी तो बजाय राजनीतिज्ञों के देशभक्तों की बात सुनी होती। क्योंकि राजनीतिज्ञ हथौड़ा लेकर बात करता है और देशभक्त चाहे सही बात न भी कर रहा हो तब भी आपके साथ मुहब्बत से हाथ मिलायेगा। बेचारे मार्ले और मांटेगू संयुक्त-निर्वाचन के हक़ में थे, फिर भी वे वायसरायों के कहने में आकर पृथक निर्वाचन का समर्थन कर गये यद्यपि वह उनकी आत्मा को खटक रहा था। उस वक्त भी हिन्दुस्तान दुधारू गाय की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्य के लिये ढेर अधिक था।"

सर स्टेफर्ड बोले—"किन्तु क्या मांटेगू ने ही यह नहीं कहा था कि देश को धर्मों और वर्गों में बांट देने से अलग अलग राजनैतिक कैम्प बन जायेंगे और बजाय अपने को नागरिक समझने के एक दूसरे को अपना दुश्मन समझने लगेंगे?"

लार्ड पेथिक लारेन्स बोले—"इसीलिये तो इस मांटेगू ने जो कुछ क़रीब तीस बरस पहले बोया था उसी को आज काट रहे हैं। पाकिस्तान एक मनहूस विचार है, उसमें बजाय मेल-मुहब्बत के ख़रीद-फ़रोख़्त की भावना ज़्यादा है।"

सर स्टेफर्ड ने कहा—"किन्तु हमें इस बात को नज़र अन्दाज़ नहीं करना चाहिये कि पाकिस्तान की नीति और उसका प्रचार एक मुस्तक़िल चीज़ है और वह मुसलमान सम्प्रदाय की आकांक्षाओं और भावनाओं को प्रतिबिम्बित करता है।"

"किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये" लार्ड पेथिक लारेन्स ने कहा, "कि आधुनिक दुनिया की विचार धारा एकता और सहकारिता की तरफ जा रही है जब कि पाकिस्तान का कार्यक्रम अनेकता और ख़ानेबंदी सिखाता है। मेरी राय में बीमारी ख़तरनाक सीमा तक पहुँच गई है और हमें उसे फ़ौरन चीर-फाड़ करके दूर करना चाहिये।"

सर स्टेफर्ड ने पूछा—"तो क्या आपका यह मतलब है कि हम संघशासन और संयुक्त निर्वाचन का प्रचार करें?"

लार्ड पैथिक लारेंस—"बेशक! इसके अलावा भारत की राजनैतिक समस्या का कोई दूसरा हल खोजना भारत और ब्रिटेन के बीच सद् भावना क़ायम रखने के आखिरी मौक़े को हाथ से जाने देना है।

इस समय तक वे लोग अपना डिनर ख़त्म कर चुके थे। और चूंकि दिल्ली की बातचीतों का थकान अब तक उन पर तारी था इसलिये वे वक्त से पहले सोने चले गये। और जब वे गहरी नींद में सो रहे थे हिमालय की चोटियों पर बसने वाले भारत के दैवी प्रहरी उनके अचेतन मस्तिष्क में भारत के पुरातन ऋषियों का यह पवित्र सन्देश भर रहे थे कि—

"सत्य की ही सदा जय होती है, असत्य की नहीं।"

"और सत्य का मार्ग ईश्वरीय मार्ग है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म

आचार्य श्री धर्मानन्द कोशाम्बी

जैनों के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी हैं। उनके जन्म के २७८ वर्ष पहले पार्श्वनाथ का जन्म हुआ। वे तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर प्रव्रजित हुए और चार महीने के अन्दर उन्होंने 'केवल ज्ञान' प्राप्त किया। सौंव ७० वर्ष धर्मोपदेश करने के बाद १०० वर्ष की उम्र में एक मास उपवास कर वे निर्वाण को प्राप्त हुए।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह ये चार याम कहे जाते हैं, और इन्हींका धर्म चातुर्याम धर्म है। याम शब्द यम धातु से आया है। संयम करना, नियमन करना अथवा मर्यादा रखना—यह इसका अर्थ है। प्राणी की हत्या मत करो, सत्य मत छोड़ो, चोरी मत करो, और सम्पत्ति मत बटोरो—यह इन यामों का अर्थ है। इस मर्यादाओं को न छोड़कर, सर्व सत्कर्म करते ही रहो, यह धर्म है; क्योंकि वह मनुष्य जाति का धारण अर्थात् रक्षण करता है।

पार्श्वनाथ के पूर्वकाल में जो ऋषि-मुनि जङ्गल में रहकर तपश्चर्या करते थे, वे भी ये चार याम मानते थे। किन्तु वे इन यामों का लोगों में प्रचार नहीं करते थे। वे जङ्गल में ही अपना काल बिताते थे। इसलिए ब्राह्मण भी उनकी पूजा करते थे। मगर पार्श्वनाथ और उनके शिष्य, जिनको निर्ग्रन्थ कहते थे, इन यामों का सामान्य जनों में प्रचार करने लगे, और इस कारण उनका ब्राह्मणों से सङ्घर्ष होने लगा। क्योंकि पशु-हत्या करके यज्ञयाग करने से ब्राह्मणों की जो प्रतिष्ठा होती थी, वह कम होने लगी। यह सङ्घर्ष क़रीब एक हज़ार वर्ष चला, और अन्त में ब्राह्मणों को यज्ञयाग छोड़कर पुजारीपन से अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा।

पार्श्वनाथ के निर्वाण के १७८ वर्ष पीछे महावीर स्वामी का जन्म हुआ। तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने दीक्षा ली और बारह वर्ष तपश्चर्या कर वे केवली हुए। उनके ज़माने में तपश्चर्या का महत्त्व बहुत बढ़ा। जंगल में तो तपस्वी थे ही पर शहर अथवा ग्राम के पास रहनेवाले श्रमणों ने भी भिन्न-भिन्न प्रकार की तपश्चर्या करनी शुरू की। इन ग्राम-तपस्वियों में आजीवक सम्प्रदाय के श्रमण अग्रगण्य थे। नन्दवात्स और किस संकिच्च (किस संकिच्च) ये दोनों उस सम्प्रदाय में जिन हुए थे और उस समय में उस पन्थ का नेता मक्खलि गोसाल भी जिन था। 'जिन' शब्द का सांकेतिक अर्थ है—प्रकृति को जीतनेवाला। लेकिन निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में कोई जिन न था। क्योंकि निर्ग्रन्थ बहुत कम तपश्चर्या करते थे। वे एक, दो या तीन वस्त्र रखते थे। आजीवक अचेलक अर्थात् नग्न रहते थे। इससे निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय पीछे पड़ने लगा। महावीर स्वामी ने मक्खलि गोसाल के साथ रहकर तपश्चर्या आरम्भ की और बारह बरस के बाद वे भी अपने को जिन कहलाने लगे, और निर्ग्रन्थों ने उनको अपना नेता माना। किन्तु उस समय केवल महावीर स्वामी ही नग्न रहते थे। बाक़ी निर्ग्रन्थों में कुछ नग्न और कुछ वस्त्रधारी होते थे।

पार्श्वनाथ जीव या आत्मा मानते थे कि नहीं, यह जानना असम्भव है। लेकिन महावीर स्वामी के समय में निर्ग्रन्थ लोग जीव मानते थे। जीव को तपस्या और चार याम द्वारा प्रकृति से मुक्त कर कैवल्य प्राप्त कराना उनका ध्येय था।

फन्दमानं पजं दिस्वा मच्छे अप्पोदके यथा।
अञ्ञमञ्ञेहि ब्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि॥

अर्थात्—अपर्याप्त पानी में तड़पनेवाली मछली के समान परस्पर विरुद्ध जनता को दुःखी देखकर मुझे डर हुआ।

इस सुत्तनिपात के अत्तदण्डसुत्त की गाथा से मालूम होता है कि गोतम बोधिसत्त्व की उपरति का प्रमुख कारण मनुष्यों का आपसी कलह या युद्ध था। इस कलह को मिटाने का मार्ग वह खोज रहा था। इसीलिए आडार कालाम और उद्रक रामपुत्र के पास जाकर उसने योगाभ्यास किया। किन्तु योगाभ्यास से यह समस्या हल नहीं हो सकी। तब राजगृह जाकर उसने दूसरे सम्प्रदायों के धर्म का अध्ययन शुरू किया। इन धर्मों में से उसको चातुर्यामधर्म विशेष पसन्द हुआ, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि उसने अपने अष्टाङ्गिक मार्ग में उन यामों का समावेश किया है।

परन्तु चातुर्याम धर्म माननेवाले निर्ग्रन्थ भी तपश्चर्या करते थे। तपश्चर्या के बिना पुराना पाप नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता है यह उनका मत था। तब गोतम ने भी तपश्चर्या द्वारा तत्त्वबोध पाने का प्रयत्न किया। छः बरस के बाद उसको प्रतीत हुआ कि तपश्चर्या से मनुष्यों का कलह नहीं मिट सकता है। अन्ततः उसने बुद्ध होकर अष्टाङ्गिक मार्ग का शोध लगाया।

इस मार्ग का समावेश, शील, समाधि और प्रज्ञा, इन तीन स्कन्धों में होता है (देखिये चूलवेदल्लसुत्त, मज्झिमनिकायं)। सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्म और सम्यक् आजीव—इन तीन अङ्गों का समावेश शील स्कन्ध में होता है; सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक् समाधि, इन तीन अङ्गों का समावेश समाधिस्कन्ध में होता है, और सम्यक् संकल्प का समावेश प्रज्ञास्कन्ध में होता है।

इन स्कन्धों में शीलस्कन्ध बुद्धशासन की नींव है। बिना शील के आध्यात्मिक विकास असम्भव है। इसी शीलस्कन्ध में पार्श्वनाथ के चार यामों का अन्तर्भाव होता है। सम्यक् वाचा में सत्य का, सम्यक् कर्म में अहिंसा और अस्तेय का और सम्यक् आजीव में अपरिग्रह का समावेश है। इस शील स्कन्ध के या इन यामों के विकास के लिये समाधि और प्रज्ञा की ज़रूरत है। समाधि से शील उज्ज्वल होता है, मन को शान्ति मिलती है। वाद जाल से मुक्त रहने के लिये प्रज्ञा की आवश्यकता है। आत्मा और शरीर एक है या भिन्न है इत्यादि वादों से दूर रखकर, चार आर्यसत्यों का ज्ञान देना प्रज्ञा का कार्य है। दुनिया में दुःख है, यह दुःख मनुष्य की तृष्णा से उत्पन्न हुआ है, इस तृष्णा का निरोध ही निर्वाण है, और उपर्युक्त मार्ग इस निर्वाण का रास्ता है—ये चार आर्य सत्य हैं।

निर्ग्रन्थों ने तपश्चर्या को स्वीकार कर चार यामों का महत्त्व कम कर दिया। भगवान् बुद्ध ने तपश्चर्या का त्याग कर इन यामों का महत्त्व बढ़ाया। दीर्घनिकाय के पासादिक सुत्त में, भगवान् चुन्द को कहता है, "हे चुन्द, अन्य परिव्राजक शायद कहेंगे कि शाक्यपुत्रीय श्रमण ऐशआराम है। लेकिन ऐश चार प्रकार का है। कोई हिंसा कर ऐश करता है, कोई चौर्य कर ऐश करता है, कोई झूठ बोलकर ऐश करता है और कोई उपभोग्य वस्तुओं के संग्रह से ऐश करता है। ये चार ऐश (काम-सुखल्लिकानुयोग) हीन, ग्राम्य, पृथग्जनसेवित, अनार्य, और अनर्थकारक हैं।" भगवान् के मत से इन चार ऐशों का त्याग ही सच्ची तपश्चर्या है। उसके लिये देह दण्ड की कोई आवश्यकता नहीं है।

इन यामों का दूसरा बन्धन था आत्मवाद। निर्ग्रन्थों के मत में ये चार याम आत्मा को प्रकृति से मुक्त करने के वास्ते थे। लेकिन केस कम्बल के सदृश गुरु देहातिरिक्त आत्मा मानते न थे; और पूरण काश्यप के ऐसे गुरु, जो आत्मा नित्य मानते थे, कहते थे कि हत्या करो या लूटपाट करो, आत्मा को इससे कोई बाधा होना सम्भव नहीं। जब आत्मा ही नहीं अथवा है तो किसी पाप में बद्ध नहीं होता, तब चार यामों का काम क्या। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने आत्मवाद का त्याग कर चार आर्य सत्यों को स्वीकार किया। उसी पासादिकसुत्त में भगवान् कहते हैं—हे चुन्द, जीव, मरणोत्तर, पैदा होता है वा नहीं होता है इत्यादि प्रश्नों का मैंने स्पष्टीकरण नहीं किया; क्योंकि वह चर्चा निरर्थक है। लेकिन यह दुःख है, यह दुःखसमुदय है, यह दुःखनिरोध है और यह दुःख विरोधगामी मार्ग है—इसका मैंने स्पष्टीकरण किया; क्योंकि यह स्पष्टीकरण हितकर है।

निर्ग्रन्थों ने (जैनों ने) यद्यपि तपश्चर्या और आत्मवाद को नहीं छोड़ा तथापि साथ-साथ चार यामों का भी प्रचार किया। महावीर स्वामी ने इन यामों में ब्रह्मचर्य भी दाखिल किया, और इन पांचों को पञ्च महाव्रत कहने लगे। 'अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः' (योगसूत्र २।३०) इस योगसूत्र में इनको यम कहा है। और जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् (योगसूत्र २।३१) इस सूत्र में महाव्रत कहा है। पार्श्वनाथ के याम के बदले यम है और महावीर स्वामी का महाव्रत शब्द ही ले लिया है। किन्तु योगी सम्प्रदाय ने इन यामों का अथवा महाव्रतों का प्रचार नहीं किया। जैनों ने गृहस्थों को भी पत्नीव्रत और ब्रह्मचर्य पालन करने का उपदेश दिया और भगवान् बुद्ध ने तो यह गृहस्थों के पञ्चशील में ही दाखिल किया।

बौद्धों के साथ साथ जैनों ने भी भारत में चार यामों के प्रसारार्थ काफी प्रयत्न किया। लेकिन अनेक ब्राह्मण बन्धनों से बद्ध होने से जैन श्रमण परदेश में जा नहीं सके। वह कार्य बौद्ध श्रमणों ने किया। जो बाहर से शक, यवन, किरातादि लोग भारत में आए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा जैन धर्म स्वीकार कर हिन्दू-समाज में मिल गये। कालान्तर में ये दोनों श्रमण सम्प्रदाय अवनत हो गये। इसका प्रधान कारण राजाश्रय था। अशोक से लेकर बौद्ध भिक्षु-सङ्घ राजाश्रित हुआ, तदनन्तर जैन साधु-सङ्घ भी राजाश्रित हो गया। इससे इन सङ्घों की सम्पत्ति तो बढ़ी, किन्तु इनका आध्यात्मिक बल नष्ट हो गया।

राजा को तो हिंसा करनी ही पड़ती है। वह शत्रुओं को न मारे तो राज कैसे कर सकता है? इस राजकीय हिंसा का निषेध करने में ये श्रमण असमर्थ थे। क्योंकि इन्हीं राजाओं से इनके विहारों और उपाश्रयों को दान मिलता था। यह दान बढ़ाने के लिये वे पुराण कथा लिखने लगे। इस असत्य में तो बौद्ध भिक्षुओं की और जैन साधुओं की होड़ ही प्रतीत होती है। बौद्धों ने लिखा कि दीपङ्कर बुद्ध की ऊँचाई ८० हाथ और आयु १ लाख वर्ष थी, तब जैनों ने लिखा कि ऋषभ देव की ऊँचाई २००० हाथ और आयु ८४ लाख पूर्व (एक पूर्व = ८४०००० × ८४०००० वर्ष) थी। ऐसी-ऐसी असम्भाव्य कथा लिखकर इन श्रमणों ने सत्य का याम समूल नष्ट कर दिया। भगवान् बुद्ध ने चूलराहुलोवाद-सुत्त में कहा है—हे राहुल, जिस किसी को जानबूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं है, उसके लिये कोई भी पाप अकर्तव्य नहीं होगा।

ये श्रमण स्वयं चोरी नहीं करते थे किन्तु राजे या धनिक लोग जो सम्पत्ति ज़ोर-ज़बरदस्ती से कमाते थे उनसे अपने विहारों के और उपाश्रयों के लिये अवश्य परिग्रह करते थे। इतना ही नहीं, उस धनिक वर्ग की अत्युत्तम स्तुति भी करते थे। वे स्वयं परिग्रह नहीं रखते थे, लेकिन विहार और उपाश्रय ही उनका बड़ा परिग्रह था, और सबसे ज़्यादा था सम्प्रदाय-परिग्रह। अपना सम्प्रदाय बढ़ाने के लिये वे सब यामों का त्याग करना भी नहीं समझते थे।

तात्पर्य इन श्रमणों ने कृत, कारित अथवा अनुमोदित प्रकार से चार यामों का त्याग किया। नतीजा यह हुआ कि बौद्ध तो यहां से चल बसे, और जैन केवल अल्पसंख्या में बचे रह सके।

मुसलमान राजाओं के आक्रमण से तो इन यामों का और ही गया। जब अंग्रेज़ आए तब सामान्य जनता का दिल उनकी तरफ आकर्षित हुआ। परन्तु धीरे धीरे अंग्रेजों के भी दोष प्रतीत होने लगे। वे इस देश में शान्ति रखते हैं, लेकिन इसके लिये महायुद्ध करते हैं जिससे संहार तो होता ही है, और जनता को अकालादिक अनेक कष्ट—जैसे आजकल हो रहे हैं—सहन करना पड़ता है। वे तो चोरी नहीं करते, लेकिन उनके व्यापारी फ़ायदे की सीमा ही नहीं है। वे व्यक्तिशः असत्य नहीं बोलते लेकिन राजकीय क्षेत्र में असत्य का काफ़ी प्रयोग करने में नहीं हिचकते। उनके साम्राज्य-परिग्रह के सामने मुग़लों का और मराठों का परिग्रह था ही क्या? इस परिग्रह के लिये वे कौन-सा पाप नहीं करेंगे?

इस प्रकार के राज्य में असन्तोष फैलाना सहज था। कांग्रेस ने इस असन्तोष को सङ्घटित स्वरूप देने का प्रयत्न किया। किन्तु लोकमान्य तिलक के समान नेताओं का विश्वास हिंसा पर ही विशेष था। किन्तु—

"क्षमा से क्रोध को जीतना,
दुष्ट को साधुत्व से जीतना,
कृपण को दान से जीतना,
और असत्य को सत्य से जीतना।"

(धम्मपद)

यह बुद्धनीति महात्मा गान्धी सबसे पहिले राजकीय क्षेत्र में लाए। बौद्ध और जैन श्रमणों ने इस देश में जो चातुर्याम का बीज बोया था वह समूल नष्ट नहीं हुआ। इसलिये गान्धी जी का यह उपाय आम जनता बरदाश्त कर सकी और इसी उपाय से गत २५ बरस में हमारी बहुत उन्नति हुई।

आजकल युद्ध रूप में हिंसा दुनिया पर राज्य कर रही है। जहां हिंसा है वहां असत्य, स्तेय (चौर्य) और परिग्रह अवश्यम्भावी हैं। रूसी कम्यूनिस्टों ने जनता को परिग्रह से छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन वह हिंसा द्वारा सफल नहीं हुई। क्योंकि सोवियत यूनियन ही कम्यूनिस्टों का महापरिग्रह हो गया और जैसे साम्राज्य परिग्रही नेता अपने परिग्रह के रक्षण के लिये हिंसा और असत्य का प्रयोग करते रहे हैं, वैसे ही सोवियत नेता कर रहे हैं। अब सबके ऊपर अणु बम से आत्महत्या करने की बारी आ गई है, जिससे मुक्त होने का उपाय केवल चातुर्याम धर्म ही है। (धर्मदूत)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

बंगाल का काल (मुक्त छन्द)—लेखक श्री बच्चन; मूल्य : सवा रुपया; प्रकाशक : भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या : ६५; (इस पुस्तक से जो रायल्टी मिलेगी वह अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ भेंट कर दी जायगी) ।

श्री बच्चन जी की यह मुक्त छन्द कविता बंगाल के अकाल पर लिखी गई थी। बंगाल के उस समय के दारुण नाश को देखकर कवि कहता है—

हे कवि तेरे अमर गान की
सुजला, सुफला,
मलय गंधिता,
शस्य श्यामला,
फुल्ल कुसमिता,
द्रुम सुसज्जिता,
चिर सुहासिनी,
मधुर भाषिणी,
धरणी भरणी;
जगत वंदिता
बंग भूमि अब नहीं रही वह !
इसके विपरीत वह हो गई है—
मरघट सा अब रूप बनाकर
अजगर सा अब मुँह फैलाकर
खा लेती अपनी सन्तान ।

और तब सहसा कवि रोष में भरकर बंग मां से कहता है—

तू होती मां अगर न निर्बल,
अगर न दुर्बल,
तो तेरे यह लक्ष लक्ष सुत
वंचित रहकर उसी अन्न से,
उसी धान्य से, जिस पर है अधिकार उन्हीं का
क्योंकि उन्होंने अपने श्रम से
जोता, बोया, इसे उगाया सींच स्वेद से
इसे बढ़ाया,
काटा, माड़ा, ढोया
भूख-भूख कर
सूख-सूख कर,
पंजर पंजर गिर धरती पर
यों न तोड़ देते अपना दम
और नपुंसक मृत्यु न मरते !

और तब कवि इन लक्ष लक्ष सुतों की सन्तानों से कहता है—

मन से अब सन्तोष हटाओ,
असन्तोष का नाद उठाओ,
करो क्रान्ति का नारा ऊँचा,
भूखो अपनी भूख बढ़ाओ,
और भूख की ताक़त समझो,
हिम्मत समझो, जुरअत समझो, क़ूवत समझो;
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना ।

इसके बाद कवि भूख और क्रान्ति के पारस्परिक सम्बन्ध पर रोशनी डालते हुये फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का क़िस्सा बताता है कि किस तरह पेरिस के लाखों निवासियों ने भूख के कारण सफल क्रान्ति की थी और तड़प तड़प कर उन्होंने कुत्तों की तरह जान नहीं दी थी। किन्तु कवि की रोटी और अन्न के पीछे जीवन की एक फ़िलासफ़ी है। वह लिखता है—

नहीं अन्न से—आज ब्रह्म से वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से—आज धर्म से वंचित हो तुम,
नहीं अन्न से—आज कर्म से वंचित हो तुम।

और तब वह भूखों को आह्वान करते हुये कहता है—

उठो अन्न के लिये लड़ो तुम,
उठो धर्म के लिये लड़ो तुम,
उठो ब्रह्म के लिये लड़ो तुम ।

इसके बाद वह अन्तिम रूप से उन्हें कहता है—

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम,
और मानवी अधिकारों पर,
जब कि खड़े होगे तुम डटकर,
कोई शक्ति नहीं ऐसी जो
तुम्हें हटा दे तिल भर पीछे;
तुम्हें आत्म विश्वास चाहिये !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें जानना है—मनुष्य तुम,
जीवन में जो कुछ भी जीने
के लायक़ है उसकी रक्षा
में यदि प्राण गवाना हो तो
नहीं हिचकना कभी उचित है,
लेकिन भिन्न आत्महत्या से
तुम्हें आत्म बलिदान चाहिये !

बच्चन जी की महान प्रतिभा दरिद्र नारायण के यज्ञ-यज्ञ में जो निर्मल और आशा पूरित आहुति लाई है हम उसका हृदय से स्वागत करते हैं। इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषय के अनुरूप ही भाषा का इसमें उपयोग किया गया है। हमें विश्वास है इस पुस्तक का हिन्दी पढ़ने वालों में यथेष्ट आदर होगा।

ख़ैयाम की मधुशाला—(रुबाइयात उमर ख़य्याम का अङ्गरेज़ी से हिन्दी छन्दों में अनुवाद)—अनुवादक : श्री बच्चन जी ; प्रकाशक : लीडर प्रेस, इलाहाबाद ; मूल्य : दो रुपया

भूमिका और टिप्पणी सहित इस प्रसिद्ध पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। इसका पहला संस्करण सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। अनुवाद की भाषा और भाव की सभी आलोचकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। श्री बच्चन जी ने कवि की मूल भावनाओं के अन्दर डूबकर लगता है उसे अपने प्राणों में उतारा है। इसी से इसका अनुवाद अनुवाद न रहकर सप्राण हो उठा है।

इस तीसरे संस्करण में भूमिका के ऐतिहासिक प्रसंग को छोड़कर, जो बच्चन जी का विषय नहीं है, बाक़ी हिस्से में रुबाइयों के मर्म को समझने में काफ़ी सहायता मिलती है। असल में उमर ख़य्याम के सम्बन्ध में लोगों को वास्तविक जानकारी बहुत कम है। उमर ख़य्याम अपने समय के बहुत बड़े गणितज्ञ, ज्योतिषी, और दार्शनिक थे। बीज गणित (अल-जबरा) के सिद्धान्तों पर उन्होंने अरबी भाषा में १८ जिल्दें लिखी हैं। गणित, ज्योतिष पर उनकी कई पुस्तकें हैं। दर्शन पर भी उनके कई ग्रन्थ हैं। संगीत और निर्माणकला पर भी उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इन ग्रन्थों में से अनेक अब भी पेरिस के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। वे सन् ४५७ हिजरी में संस्थापित निज़ामी विश्वविद्यालय के संस्थापक, अल्प अर्सलान के वज़ीर निज़ामुलमुल्क के बड़े घनिष्ट मित्रों में से थे। अरबी, फ़ारसी, तुर्की, यूनानी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के वे ज्ञाता थे। उनकी मृत्यु ११२३ ईस्वी अथवा ५१७ हिजरी में हुई। अपने ज़माने में वे कवि से अधिक गणितज्ञ की हैसियत से प्रसिद्ध थे। रेखा गणित में भी उन्होंने कई नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अल-जबरा पर उनके ग्रन्थ का पहला संस्करण सन् १८५१ में Woepcke ने सम्पादित किया। उमर ख़य्याम का पूरा नाम उमर बिन इब्राहीम अल ख़य्यामी था। यह एक बड़े दुख की बात है कि जिस गणितज्ञ ने अल-जबरा की शक्ल बदल दी और रेखा गणित को नये नये थिअरम दिये उसे संसार गणितज्ञ की अपेक्षा कवि के रूप में ही अधिक जानता है।

पुस्तक के अन्त में विषय को समझाने के लिये सुन्दर टिप्पणियाँ दी गई हैं।

नागरिक शास्त्र—लेखक : श्री भगवानदास केला; प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, प्रयाग; मूल्य : सवा दो रुपया ; पृष्ठ संख्या २०८

यह इस पुस्तक का दूसरा संस्करण है। पहला संस्करण सन् १९३२ में मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर ने प्रकाशित किया था। असल में सुसभ्य नागरिक किसी भी राष्ट्र की रीढ़ होते हैं। नागरिकता का अधिकार मनुष्य का पहला अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को शारीरिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और अपने विचारों के प्रदर्शन की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। नागरिक के अपने प्रति कुछ कर्तव्य हैं, कुछ कर्तव्य हैं उसके अन्य नागरिकों के प्रति, कुछ समाज के प्रति और कुछ राष्ट्र के प्रति। देश के शासन प्रबन्ध में मताधिकार द्वारा हिस्सा लेने का हर नागरिक को अधिकार है। यह दूसरी बात है और ज़रूरी बात है कि उनका वह सदुपयोग करे। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं सब बातों पर विस्तार से रोशनी डाली गई है।

भारतीय अर्थ शास्त्र (चौथा संस्करण)—लेखक : श्री भगवानदास केला; मूल्य, चार रुपये; प्रकाशक : उपर्युक्त; पृष्ठ संख्या : ३७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्र पर केला जी की यह पुस्तक हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। बेहद परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है और हिन्दी जगत ने इसका काफ़ी आदर भी किया है। पुस्तक छै भागों में बँटी है। पहले भाग में भारतीय अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्र के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है; दूसरे भाग पर उत्पत्ति के साधनों की व्याख्या की गई है; तीसरे भाग में उपभोग के अधिकारों का विवेचन है; चौथे भाग में मुद्रा और बैङ्क, पांचवें भाग में विनिमय और व्यापार और छठवें भाग में लगान, मज़दूरी, सूद, मुनाफ़ा, वितरण और समानता पर विस्तृत रोशनी डाली गई है और अन्त में परिशिष्ट में कांग्रेस की आर्थिक नीति का स्पष्टीकरण किया गया है। सब मिलाकर पुस्तक महत्वपूर्ण है।

जुगनू—लेखक : श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल; प्रकाशक : किताबिस्तान, इलाहाबाद; मूल्य ३); पृष्ठ संख्या : १२८

ला जर्नल प्रेस की छपी हुई और ख़ूबसूरत जिल्द बँधी हुई आचार्य अग्रवाल के लघुलेखों की यह सुन्दर संग्रह-पुस्तक है। यूँ तो अग्रवाल जी ने हाल में 'शिक्षा का माध्यम' और 'गांधी वादी आर्थिक योजना' नामक पुस्तकें लिखकर काफ़ी प्रसिद्ध प्राप्त की है किन्तु ९५ लघुलेखों की उनकी यह छोटी सी पुस्तक अत्यन्त विचार पूर्ण और काफ़ी गम्भीर है। रोज़मर्रा की छोटी छोटी घटनाओं को लेकर उन्होंने उनके चारों ओर जीवन की एक फ़िलासफ़ी गूँथी है जो गान्धीवादी दृष्टिकोण की समर्थक है। पुस्तक दिलचस्प है और साथ ही साथ मन पर असर करने वाली। पर मूल्य बहुत अधिक है यद्यपि छपाई सफ़ाई और गेटअप की दृष्टि से शायद बेजा नहीं।

कभी न कभी (उपन्यास)—लेखक : श्री वृन्दावनलाल वर्मा; प्रकाशक : सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर; मूल्य : २॥); पृष्ठ संख्या : १९२

इस उपन्यास में मज़दूरों के सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र खींचा गया है। देवजू और लछमन दो मज़दूर बलवन्त नगर में इमारत की तामीर में मज़दूरी करते हैं। देवजू बलिष्ठ, उदार, त्यागी और कर्तव्यनिष्ठ है, लछमन निर्बल, मुक्ताचलेतन तरुण, परावलम्बी किन्तु भोला भाला है। दोनों मज़दूरों में सगे भाई की तरह प्रेम हो जाता है। दोनों अविवाहित हैं। लछमन चाहता है पहले देवजू की शादी हो जाय। वह लीला नाम की एक मज़दूर लड़की को इसके लिये चुनता है। इसके वास्ते झूठी जन्मपत्री बनवाता है पर बजाय देवजू से उसकी शादी कराने के वह स्वयं उससे प्रेम करने लगता है। लड़की भी उससे प्रेम करने लगती है और अन्त में रोमाण्टिक परिस्थितियों में उनका विवाह हो जाता है। इस सारी स्थिति में देवजू और लछमन के हृदय की भावनाओं और द्वन्दों का इस उपन्यास में सफल चित्रण किया गया है। मज़दूरों की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का भी इसमें एक ख़ाका आ जाता है।

डाक्टर कोटनीस की अमर कहानी—मूल लेखक : ख्वाजा अहमद अब्बास; अनुवादक और रूपान्तरकार; श्री राजेश्वर गुरू; प्राप्ति स्थान : उपर्युक्त; मूल्य : एक रुपया।

चीन-जापान युद्ध में कांग्रेस ने जो मेडिकल मिशन चीन भेजा था उसमें एक शोलापुर के अविवाहित और युवक डाक्टर द्वारकानाथ कोटनीस भी थे। कोटनीस चीन गये और युद्ध क्षेत्र में एक अस्पताल का चार्ज लेकर वहां घायलों के इलाज में व्यस्त हो गये। मेडिकल मिशन के जब और लोग वापस आ गये तब भी कोटनीस वहीं बने रहे। वहीं उन्होंने एक चीनी कुमारी कुमी थिंग लान से सन् १९४१ में शादी कर ली और जुलाई सन् १९४२ में उनके पुत्र हुआ और ९ दिसम्बर सन् १९४२ को वे अत्यधिक परिश्रम करने के फल स्वरूप बीमार पड़े और उनकी मृत्यु हो गई। कहानी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है और एक शहीद की उज्ज्वल स्मृति है और इस दृष्टि से सबके पढ़ने लायक है।

—विश्वम्भरनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

नया वैधानिक प्रस्ताव

डेढ़ महीने के अनवरत परिश्रम के बाद ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने, भारतीय जन प्रतिनिधियों के आपसी समझौते के अभाव में, अपनी ओर से भारत की वैधानिक समस्या को हल करने के लिये नया प्रस्ताव रखा है। इस प्रस्ताव को मोटे तौर पर हम छै हिस्सों में बाँट सकते हैं—

(१) भारत का एक यूनियन होगा जिसमें देशी रियासतें और ब्रिटिश भारत दोनों शामिल होंगे। यूनियन वैदेशिक मामलों; सुरक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों और यातायात के साधनों के लिये ज़िम्मेवार होगा। इन बातों के लिये आवश्यक धन इकट्ठा करने की ज़िम्मेवारी भी यूनियन की होगी।

(२) यूनियन की एक कार्यकारिणी समिति होगी और एक धारा सभा, जिसमें देशी भारत और ब्रिटिश भारत दोनों के प्रतिनिधि होंगे। किसी भी प्रमुख साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिये उपस्थित सदस्यों का बहुमत, दो प्रमुख सम्प्रदायों का बहुमत और धारा सभा का बहुमत ज़रूरी होगा।

(३) यूनियन के उपरोक्त विषयों को छोड़कर समस्त प्रान्तीय और स्वायत्त विषयों के निर्णय का अधिकार प्रान्तीय धारा सभाओं को होगा।

(४) यूनियन के विषयों को छोड़कर देशी राज्यों को और सभी विषयों के निर्णय का अधिकार होगा।

(५) विविध प्रान्तों को कार्य कारिणी और धारा सभा में अपनी इकाइयाँ बनाने का अधिकार होगा और हर इकाई को समानहित के प्रान्तीय विषयों पर यकसाँ निर्णय और अमल करने का अधिकार होगा।

(६) यूनियन और प्रान्तीय समूहों के विधान में इस धारा यह भी रहेगी कि यदि कोई प्रान्त विधान में परिवर्तन कराना चाहे तो दस बरस के बाद अपने बहुमत से वह परिवर्तन करा सकता है और उसके बाद हर दस बरस के बाद ऐसे परिवर्तनों का वह निश्चय कर सकता है।

अन्तरिम कार्रवाई के लिये मिशन केन्द्र में एक कामचलाऊ सरकार क़ायम करने की तजवीज़ करता है।

प्रान्तीय समूहों की रूप रेखा

मंत्रिमण्डल ने अपने वक्तव्य में, कहा है कि वह विधान का केवल ढाँचा मात्र दे रहा है उसकी विस्तृत खाना पूरी करने का काम विधान निर्मात्री परिषद के भारतीय प्रतिनिधियों के सुपुर्द होगा। मिशन की राय में इसके लिये सब से उपयुक्त चुनाव का तरीक़ा बालिग़ मताधिकार द्वारा है किन्तु इसमें अत्यधिक देर लग सकती है और उससे नुक़सान हो सकता है इसलिये विधान निर्मात्री परिषद का चुनाव इस बार मौजूदा चुनी हुई असेम्बलियों के ही द्वारा हो जाना चाहिये। इसके लिये हर प्रान्त के सम्प्रदायों में आबादी के लिहाज़ से सीटें बाँट दी गई हैं जिन्हें उन प्रान्तों की असेम्बली के सदस्य चुनेंगे। भारत के समस्त प्रान्तों को तीन समूहों में बाँट दिया गया है। 'अ' समूह में मद्रास, बम्बई, युक्त-प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त और उड़ीसा होंगे। 'ब' समूह में पञ्जाब, सूबा सरहद और सिन्ध के प्रान्त होंगे और 'स' समूह में बङ्गाल और आसाम के प्रान्त होंगे। नीचे दिये हुये आँकड़ों के हिसाब से इन समूहों में सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व होगा—

'अ' समूह

प्रान्त	जनरल	मुसलिम	योग
मद्रास	४५	४	४९
बम्बई	१९	२	२१
युक्त प्रान्त	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्य प्रान्त	१६	१	१७
उड़ीसा	९	०	९
योग	१६७	२०	१८७

'ब' समूह

पञ्जाब	८	१६	४ (सिख)	२८
सूबा सरहद	०	३	—	३
सिन्ध	१	३	—	४
योग	९	२२	४	३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब' समूह			
बङ्गाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
	३४	३६	७०

पाकिस्तान का मसला

अपने इन वैधानिक प्रस्तावों पर बहस करते हुये पाकिस्तान के सम्बन्ध में मिशन का वक्तव्य है :—

"मुसलिम लीग जिस आज़ाद हुकूमत पाकिस्तान की माँग करती है पहले हमने उसकी छान बीन की। इस तरह के पाकिस्तान के दो क्षेत्र होंगे। एक पश्चिमोत्तर में जिसमें पञ्जाब, सिन्ध, सूबा सरहद और ब्रिटिश बलूचिस्तान के प्रान्त होंगे और दूसरा पूर्वोत्तर में जिसमें बङ्गाल और आसाम के प्रान्त होंगे। मुसलिम लीग चाहती थी कि पहले पाकिस्तान के उसूल को मान लिया जाय बाद में वह प्रान्तों के पुनर्विभाजन को स्वीकार कर लेगी। पाकिस्तान की ख़ुदमुख़्तार रियासत के लिये दो दलीलें दी गईं : एक यह कि मुसलिम बहुमत को अपनी पसन्द की सरकार बनाने का अधिकार है और दूसरी यह कि पाकिस्तान से मिला हुआ क्षेत्र, जहां मुसलमान अल्पमत में हैं, पाकिस्तान में मिला देना चाहिये ताकि आर्थिक और शासन सम्बन्धी दृष्टि से पाकिस्तान अमली चीज़ बन सके।

"पाकिस्तान के उपरोक्त छै प्रान्तों में ग़ैर मुसलमानों का भारी अल्पमत है जैसा कि १९४१ ईसवी की मर्दुम-शुमारी से ज़ाहिर है—

	मुसलिम	ग़ैर मुसलिम
पश्चिमोत्तर क्षेत्र		
पञ्जाब	१,६२,१७,२४२	१,२२,०१,५७७
सूबा सरहद	२७,८८,७६७	२,४६,२७०
सिन्ध	३२,०८,३२५	१३,२६,६८३
ब्रिटिश बलूचिस्तान	४,३८,९३०	६२,७०१
	२,२६,५३,२९४	१,३८ ४०,२३१
	६२·०७%	३७·९३%
पूर्वोत्तर क्षेत्र		
बङ्गाल	३,३०,०५,४३४	२,७३,०१,०९१
आसाम	३४,४२,४७९	६७,६२,२५४
	३,६४,४७,९१३	३,४०,६३,३४५
	५१·६९%	४८·३१%

"बाक़ी ब्रिटिश भारत में मुसलिम अल्पमत केवल दो करोड़ है और वह १८ करोड़ ८० लाख ग़ैर मुसलमानों के बीच में छितरा हुआ है। इन आंकड़ों से साबित है कि मुसलिम लीग जिस पाकिस्तान की माँग करती है उससे सा म्प्रदायिक अल्पमत का प्रश्न हल नहीं हो सकता। न हम इसी बात को न्याय्य समझते हैं कि बङ्गाल और पञ्जाब की ख़ुदमुख़्तार पाकिस्तान रियासत में पञ्जाब और बङ्गाल के ऐसे ज़िले और आसाम का प्रान्त जहां अधिकांश आबादी ग़ैर मुसलिम है, शामिल कर दिये जाँय। जो दलीलें पाकिस्तान के हक़ में इस्तेमाल की जा सकती हैं हमारी राय में वही दलीलें इन क्षेत्रों को पाकिस्तान में शामिल न करने के हक़ में भी इस्तेमाल की जा सकती हैं। यह दलील सिखों के सम्बन्ध में ख़ास तौर पर दी जा सकती है।

"इस लिये हमने सोचा कि क्या केवल मुसलिम बहुमत के क्षेत्र का संकुचित पाकिस्तान किसी समझौते की बुनियाद हो सकता है? किन्तु इस तरह के सीमित पाकिस्तान को मुसलिम लीग बेकार समझती है क्योंकि इसकी बिना पर पाकिस्तान से (अ) पूरी अम्बाला और जलन्धर कमिश्नरियाँ पञ्जाब से निकल जायँगी, (ब) सिलहट के ज़िले को छोड़कर पूरा आसाम निकल जायगा, (स) पश्चिमी बङ्गाल का एक बहुत बड़ा हिस्सा निकल जायगा जिसमें कलकत्ता भी शामिल है, कि जहां मुसलमानों की आबादी केवल २३·६% है। हम लोग इस बात से सहमत हैं कि ऐसा कोई हल जिसमें बङ्गाल और पञ्जाब के ये हिस्से अलहदा कर दिये जांयगे इन प्रान्तों की बहुत बड़ी आबादी के हित के विरुद्ध होगा। बङ्गाल और पञ्जाब की अपनी अपनी एक भाषा है। उनका अपना एक लम्बा इतिहास और परम्परा है। फिर पञ्जाब का कोई बंटवारा लाज़मी तौर पर सिखों को दो हिस्सों में बाँट देगा। इसलिये हम लोग इस नतीजे पर पहुंचने को मजबूर हुये हैं कि न तो छोटा पाकिस्तान और न बड़ा पाकिस्तान ही इस साम्प्रदायिक समस्या को हल करने में सफल हो सकता है।"

मिशन ने पाकिस्तान के ख़िलाफ़ सुरक्षा सम्बन्धी, यातायात सम्बन्धी और भौगोलिक दलीलें भी दी हैं। साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिये मिशन ने भारतीय प्रान्तों को तीन समूहों में बाँटा है। यह बंटवारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली स्थिति में लाज़मी बटवारा होगा; किन्तु जैसे ही वैधानिक प्रबन्ध निश्चित हो जायगा वैसे ही हर प्रान्त को यह अधिकार होगा कि वह जिस समूह में रखा गया है उस समूह से बाहर निकल सके। यह फ़ैसला उसी वक़्त हो सकेगा जब नये विधान के अनुसार उस प्रान्त की नई धारा सभा बन जायगी।

मंत्रिमंडल के इन प्रस्तावों के ऐलान के बाद आसाम, सूबा सरहद, बलूचिस्तान और सिन्ध के प्रमुख नेताओं ने अपने अपने प्रान्तों के पूर्वोत्तर और पश्चिमोत्तर समूहों में शामिल किये जाने का घोर विरोध किया है।

ज़ाहिरा देखने में जहाँ एक ओर मंत्रिमण्डल के ये प्रस्ताव पाकिस्तान की योजना को मानने से इनकार करते हैं वहां दूसरी ओर प्रान्तों को तीन समूहों में बांट कर वे आपसी संघर्ष को ज्यों का त्यों, जहां का तहाँ, छोड़ देते हैं। यदि पूर्वोत्तर और पश्चिमोत्तर प्रान्तों में केवल पञ्जाब और बङ्गाल ही रह जांय तब भी आपसी खींचतान तो कम नहीं होती और न गृह युद्ध की सम्भावनायें ही कम होती हैं। मिशन के प्रस्ताव कांग्रेस और मुसलिम लीग की मांगों की खिचड़ी हैं। यदि दोनों मिलकर चलते हैं तो प्रस्ताव, जो कुछ भी उनका महत्व है, कार्यान्वित होंगे और यदि कांग्रेस और मुसलिम लीग में मतभेद रहेगा तो इस योजना पर अमल कर सकना असम्भव होगा।

योजना के कुछ बुनियादी दोष

गान्धी जी की राय में योजना के कुछ स्पष्ट बुनियादी दोष हैं—

(१) मंत्रिमण्डल ने बयान जारी करने के साथ साथ कोई केन्द्रीय सरकार नहीं बनाई। जब कि करोड़ों आदमी खाने और कपड़े की कमी से नंगे और भूखे रह रहे हैं राष्ट्रीय सरकार के बनने में बड़ी देर लग रही है। गान्धी जी की नज़रों में यह इसका पहला दोष है।

(२) आरज़ी हुकूमत बनने के साथ साथ ब्रिटेन की सर्वोपरिसत्ता समाप्त नहीं होती। बीच की स्थिति में इस सत्ता के रहने से बहुत सी मुशकिलें देश को विरासत में मिलेंगी। गान्धी जी की सलाह है कि "अगर आरज़ी सरकार बनने के साथ ही साथ यह सत्ता ख़तम नहीं हो सकती तो इसका इस्तेमाल आरज़ी हुकूमत के सहयोग से और ख़ालिस रियासती जनता के फ़ायदे के लिये ही होना चाहिये। रियासतों की जनता ही आज़ादी चाहती है और वही उसके लिये लड़ रही है। राजाओं और नवाबों को जनता की आज़ादी कुचलने के लिये विदेशी ताक़त ने क़ायम रख रखा है गो कि वे यह दावा करते हैं कि विदेशी ताक़त ने उन्हें पैदा नहीं किया।" गान्धी जी इसे योजना का दूसरा दोष मानते हैं।

जहां तक आरज़ी हुकूमत के वक़्त अङ्गरेज़ी फ़ौजें रखने का सवाल है, गान्धी जी लिखते हैं—

"यह ऐलान किया गया है कि बीच के वक़्त में अन्दरूनी शान्ति रखने और बाहरी हमलों से मुल्क को बचाने के लिये अङ्गरेज़ी फ़ौजें यहां रहेंगी।...जो राष्ट्र अपनी अन्दरूनी और बाहरी हिफ़ाज़त के लिये विदेशी फ़ौजें रखना चाहता है या उन्हें अपने ऊपर लदवा लेता है वह आज़ादी के किसी भी माने में आज़ाद नहीं कहा जा सकता। वह तो एक निकम्मा और स्वराज्य के लिये नालायक़ राष्ट्र है। उसकी सच्ची कसौटी तो यह है कि वह अकेला अपने बल पर निडर होकर खड़ा रह सके...।"

जहां तक सिखों का सम्बन्ध है प्रश्न उठता है कि क्या वह अपनी मर्ज़ी के विरुद्ध पश्चिमोत्तर समूह में बांध दिये जायंगे? भारत में पञ्जाब ही उनका एक मात्र घर है। जिस तरह प्रान्तों को अपने अपने समूह से अलहदा होने का अधिकार है उसी तरह से सिखों को भी अलहदा होने या शामिल होने का अधिकार होना चाहिये था। सिख अपने आप एक मज़बूत इकाई हैं और उन्हें औरों की तरह आत्मनिर्णय का हक़ मिलना चाहिये था।

मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव और मुसलिम लीग

लगभग तीन सप्ताह के सोच विचार के बाद मुसलिम लीग की वर्किङ्ग कमेटी ने मन्त्रिमण्डल के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। अपने प्रस्ताव में उसने मन्त्रिमण्डल के पाकिस्तान विरोधी विचारों की निन्दा की है, "फिर भी मामले की गहराई को देखते हुये और समस्या के शान्तिमय हल की ज़बर्दस्त, ख़ाहिश रखने के कारण और छै मुसलिम प्रान्तों को लाज़मी तौर पर 'ब' और 'स' समूह में रखने के कारण कि जिसमें मुसलिम लीग की योजना बुनियादी तौर पर सन्निहित है"—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुसलिम लीग इस योजना को स्वीकार करती है और विधान निर्मात्री परिषद में शामिल होने का फ़ैसला करती है।" किन्तु मुसलिमलीग विधान बन जाने के बाद अपनी आख़री राय बनाने या बदलने का अधिकार अपने लिये सुरक्षित रखती है।

इस प्रस्ताव की व्याख्या करते हुये मिस्टर जिन्नाह ने वर्किंग कमेटी के सामने अपने भाषण में फ़रमाया—"मैंने तुम्हें क्रिप्स के प्रस्ताव अस्वीकार करने की सलाह दी थी, मैंने ही तुम्हें शिमला के फ़ारमूला को रद्द करने के लिये कहा था किन्तु मैं तुम्हें ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के प्रस्तावों को रद्द करने की सलाह नहीं दे सकता। मेरी सलाह है तुम इन्हें स्वीकार कर लो।...लाहौर प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं था कि पाकिस्तान की मांग फ़ौरन ही कुबूल हो जायगी। हमारे सामने बहुत बड़ा और लगातार संघर्ष है। पहला संघर्ष लीग के प्रतिनिधात्मक रूप को स्वीकार कराना था और उसमें हमें सफलता मिली।"

मिस्टर जिन्नाह ने सदा की तरह एक हज़ार एक निरर्थक धमकियाँ देकर अपने सहकारियों को योजना पर अमल करने की हिदायत दी है।

कांग्रेस और प्रस्तावित योजना

मंत्रि मण्डल की योजना के सम्बन्ध में कांग्रेस के सदर मौलाना आज़ाद ने वर्किङ्ग कमेटी की ओर से योजना की कुछ कमियों की ओर मंत्रि मण्डल का ध्यान दिलाया है। ये कमियाँ नीचे लिखी हैं—

(१) कहा गया है कि यूनियन को अपने विषयों के लिये आवश्यक आर्थिक प्रबन्ध का अधिकार होगा। इसके बजाय यह साफ़ साफ़ स्वीकार किया जाना चाहिये था कि यूनियन को अपनी ज़रूरतों के लिये रेवन्यू वसूल करने का अधिकार होगा। दूसरी बात यह कि करेंसी और जहाज़ी चुङ्गी को साफ़ तौर पर यूनियन के मातहत किया जाना चाहिये था। इनसे सम्बन्धित और दूसरी बातें भी यूनियन के मातहत होनी चाहियें थीं। औद्योगिक योजना भी यूनियन के मातहत ही रखी जानी चाहिये। औद्योगिक योजनाएँ केन्द्र में ही ठीक तरीक़े से बन सकती हैं यद्यपि उनपर अमल प्रान्तों में ही होगा। विधान के ठप होजाने पर और व्यापक ख़तरों के समय यूनियन को अधिकार हो कि वह शासन को चला सके।

(२) कांग्रेस वर्किंग कमेटी कार्यकारिणी और धारा सभा में प्रस्तावित बराबरी के अधिकार के विरुद्ध है क्योंकि वह उसे अन्यायपूर्ण और शरारत से भरा समझती है। यदि इस पर कोई समझौता न हो तो मामला पञ्चायत के सुपुर्द किया जा सकता है।

(३) जहाँ तक योजना के पुनर्विचार का सम्बन्ध है, यह कहा गया है कि, वह विधान निर्मात्री परिषद की तरह ही किसी संस्था द्वारा किया जायगा। किन्तु विधान निर्मात्री परिषद का इस बार का निर्माण मामले को जल्दी निपटाने के लिये किया जा रहा है। दस बरस के बाद जो विधान निर्मात्री परिषद बनेगी उसका चुनाव बालिग़ मताधिकार द्वारा ही होना चाहिये।

(४) विधान निर्मात्री परिषद का मौजूदा चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होना चाहिये ताकि छोटे से छोटे दल को उससे सन्तोष हो सके। व्यापक प्रतिनिधित्व देने के लिये धारा सभा के १० सदस्यों पर एक प्रतिनिधि चुने जाने के बजाय ५ सदस्यों पर एक प्रतिनिधि चुना जाय।

(५) प्रान्तों को समूहों में बाँटने का निश्चय विधान निर्मात्री परिषद पर छोड़ा जाना चाहिये था। फ़ेडरल यूनियन का विधान पहले बनना चाहिये था। उसके बाद प्रान्तों को अधिकार दिया जाता कि वे इस विधान को स्वीकार कर उसमें अपनी सुविधानुसार प्रान्तों के लिये और धारायें जोड़ लेते।

कांग्रेस के सदर ने मंत्रि मण्डल को यह सूचना दी है कि उनकी नज़रों में वैधानिक प्रस्तावों में उपरोक्त गम्भीर दोष हैं। यदि इन्हें दुरुस्त कर लिया गया तो वे कांग्रेस को सलाह देंगे कि वह विधान को स्वीकार कर ले। वे कहते हैं कि वे कोई क़दम ऐसा नहीं उठा सकते कि जो एक मुसीबत से देश को दूसरी कहीं बड़ी मुसीबत में डाल दे। और यदि दोनों दलों के लिये सम्माजनीय कोई समझौता इस समय नहीं हो सकता तो केन्द्रीय असेम्बली के प्रति ज़िम्मेवार एक आरज़ी केन्द्रीय सरकार फ़ौरन बना दी जाय जिसे केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य ही चुनें और विधान निर्मात्री परिषद सम्बन्धी कांग्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लीग के मतभेद एक स्वतन्त्र ट्रिब्यूनल के सुपुर्द कर दिये जाँय।

इस सम्बन्ध में और भी ख़त किताबत कांग्रेस के सदर और मंत्रिमण्डल के बीच हुई है। आरज़ी सरकार में वायसराय के वीटो के अधिकार पर भी एतराज़ किया गया है। वर्किङ्ग कमेटी की बैठक ९ जून सन् ४६ को होने वाली है और तभी अन्तिम रूप से मंत्रि मण्डल को 'हाँ', 'ना' में जवाब दिया जायगा।

ये ख़ूनी और जघन्य धब्बे

भारत की ९० प्रतिशत देशी रियासतों का इतिहास देश-द्रोह, राष्ट्र के साथ ग़द्दारी और अङ्गरेज़ी साम्राज्य-शाही के साथ वफ़ादारी का इतिहास है। रियासत की ९५ फ़ीसदी आमदनी जहाँ राजा अपने ऐशो-इशरत में उड़ा सकता हो, जहाँ ग़रीब प्रजा को कीड़े-मकड़ों से भी बदतर समझा जाता हो जहाँ किसी तरह की नागरिक स्वतन्त्रता न हो, जहाँ दीवानों का निरंकुश शासन चलता हो और जहाँ के अमीर-उमरा १६ वीं सदी की दुनिया में रहते हों—ऐसी जगहें भारत की देशी रियासतें हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के संस्थापन के समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा, अवध, झाँसी, सतारा, नागपुर, पूना, पंजाब, सिन्ध आदि के जिन हिन्दू, मुसलमान, सिख, मराठा, बलूची राजाओं ने अङ्गरेजी शहन्शाहियत को मदद न देकर उसके ख़िलाफ़ लोहा लिया उन्हें क्लाइव, हेस्टिंग्ज़, वेलेज़ली, एलेनब्रु, बेंटिङ्क, डलहौज़ी आदि ने अपने कूट नीतिक दाँव-पेंचों से कुचलकर नेस्तनाबूद कर दिया। जिन नरेशों में शान-बान और स्वतन्त्रता थी वे और उनके राजकुल सफ़ए हस्ती से मिटा दिए गये किन्तु जो अपने ही भाइयों को धोखा दे सके, जो अपनी ही जनता के गले पर छुरी चला सके और जो अपने ही मुल्क को फिरंगियों के हाथों बेंच सके और अपने को और अपनी पुश्तहापुश्त को रेज़ीडेण्टों और पेलिटिकल एजेण्टों के हाथों की कठपुतली बना सके वे बच गये। ऐसे ही नरेशों का ख़ूनी और जघन्य साया कभी कभी फैलकर भारतीय राजनीति को ढक लिया करता है।

टेहरी-गढ़वाल

लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व टेहरी-गढ़वाल के प्रसिद्ध जन सेवक श्री देव सुमन को टेहरी जेल में कहा जाता है कि भूख-हड़ताल के फलस्वरूप अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी। चारों तरफ़ से जाँच-पड़ताल की माँग की गई किन्तु टेहरी के शासक महाराजा सर नरेन्द्रशाह के कानों पर जूं तक न रेंगी। अखिल-भारतीय देशी राज्य प्रजापरिषद ने एक जाँच कमेटी मुक़र्रर की जिसने महाराजा को ही श्री देव सुमन की मृत्यु के लिये दोषी ठहराया था। क्राउन रिप्रेज़ेण्टेटिव से इस मामले में जाँच करके महाराजा को सज़ा देने की प्रार्थना की गई किन्तु उसने कोई ध्यान न दिया। रियासत की जनता में इसके कारण ज़बर्दस्त क्षोभ पैदा हो गया और हिन्दुस्तान में देव सुमन दिवस मनाया गया।

आख़िर में गत २६ मई को क्राउन रिप्रेज़ेण्टेटिव का एक वक्तव्य निकला है कि महाराजा नरेन्द्र शाह ने राजगद्दी से स्तीफा दे दिया। किन्तु नरेन्द्र शाह के राजगद्दी छोड़ने मात्र से कुछ नहीं हो सकता। देव सुमन की आत्मा को संतोष उस समय तक न होगा जब तक टेहरी-गढ़वाल से निरंकुश स्वेच्छाचारिता का अन्त न हो जाय।

जैसलमेर

एक अध्याय अभी बन्द भी न हो पाया था कि जैसलमेर के प्रसिद्ध देशभक्त श्री सागर मल गोपा की नृशंस मृत्यु का समाचार मिला। कहा जाता है कि श्री गोपा जी ने जैसलमेर जेल में आग लगाकर आत्महत्या कर ली। मामला इतना संगीन है और मृत्यु के पहले श्री गोपा जी पर इतने जुल्म किये गये कि बिना गैर-सरकारी जाँच के मामले की तह तक नहीं पहुँचा जा सकता। एक आम विश्वास है कि गोपा जी को जलाकर मार डाला गया। यह एक गंभीर आरोप है और जैसलमेर दरबार का यह फर्ज है कि वह गैर-सरकारी कमीशन बिठाकर इस आरोप की सचाई या झुठाई साबित करे। वरना एक दिन आयगा जब जैसलमेरी जनता तख्तो-ताज को मिटाकर इस नृशंस हत्या का बदला लेगी।

फ़रीदकोट

इधर नरेन्द्र मण्डल के चांसलर का वक्तव्य निकला था कि देशी राज्य भी अपने यहाँ की प्रजा को जनतंत्रात्मक अधिकार देना चाहते हैं और उधर जोधपुर, बीकानेर, डूंगरपुर और फरीद कोट में गिरफतारियाँ, जोर जबर्दस्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पशुता का नग्न प्रदर्शन शुरू हो गया और वह तब जब तीन विलायत के मंत्री भारत में मौजूद हैं। फरीद कोट में महीने भर तक बराबर हड़ताल रही। जत्थे पर जत्थे वहाँ पर जाते थे। उन पर लाठियाँ चलाई जाती थीं और पीटा जाता था और इसके बाद जेल में बन्द कर दिया जाता था। लगभग तीन हजार सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार कर लिया गया। आख़िर पंडित जवाहर लाल नेहरू फरीद कोट गये और निरंकुश राजा की सूझ-बूझ लौटी और उसने प्रजा को नागरिक अधिकार देने का और सत्याग्रहियों को छोड़ने का वादा किया। दोनों में समझौता हो गया और महीने भर के बाद दमन का तांता रुका।

काश्मीर

अभी पिछले साल जब मौलाना आज़ाद, पण्डित नेहरू और बादशाह ख़ान काश्मीर गये थे तो वहाँ मुस्लिम कान्फ्रेंस के लोगों ने न केवल इन नेताओं के विरुद्ध गुण्डा प्रदर्शन किया बल्कि एक पुल को उड़ाकर इनकी हत्या करने का भी षड़यन्त्र रचा। उस समय काश्मीर दरबार भारत के महान नेताओं के विरुद्ध ख़ामोशी से उस गुण्डेपन का प्रदर्शन देखता रहा। उस समय बादशाह खान ने एक वक्तव्य में कहा था कि काश्मीर के अधिकारी उस प्रदर्शन के लिये ज़िम्मेदार हैं। आज साल भर के बाद फिर काश्मीर के दरबार ने अपनी मूर्खता और निरंकुशता का परिचय दिया है। शेख़ अब्दुल्ला जिस समय पण्डित नेहरू से मिलने दिल्ली आ रहे थे सारी परिस्थिति पर परामर्श करने, उस समय उन्हें गिरफ़्तार करके काश्मीर दरबार ने जानबूझकर जनता के साथ इसलिये छेड़ख़ानी की ताकि शान्ति रक्षा के बहाने वह लोगों की आज़ादी की भावना को कुचल सके। लगभग आठ वर्ष पहले पण्डित नेहरू ने इस बात का ऐलान किया था कि काश्मीर की सुन्दर उपत्यका को भयङ्कर काले क़ानूनों द्वारा अंधकारमय बनाया जा रहा है। इस समय जो ज़ुल्म काश्मीर में हो रहे हैं पण्डित नेहरू ने उनकी तुलना अमृतसर के जालियानवाला बाग़ से की है। स्त्री और पुरुषों को सड़कों पर और उनके घरों में घुसकर गोलियों से उड़ाया जा रहा है। अंधाधुंध गिरफ़्तारियाँ की जा रही हैं। झीलों, नहरों और कमलों के देश को मुरदों का देश बनाया जा रहा है।

काश्मीर दरबार के ज़रख़रीद अख़बारी सम्वाददाता बाहरी दुनिया को यह कहकर भरमाने की कोशिश कर रहे हैं कि शेख़ अब्दुल्ला ने दिल्ली जाने से पहले सशस्त्र बग़ावत की योजना बना ली थी। शेख़ अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी के बाद से जो कुछ हुआ वह अब इतिहास का विषय बन गया है। शेख साहब अनेकों लड़ाइयों के माने-जाने जनरल थे। वे उन आदमियों में नहीं हैं जो अपनी सेना को गोलियों के हवाले करके भाग जायें। उन्होंने दिल्ली रवाना होने के समय तक अपनी कोई योजना नहीं बनाई थी। उन्होंने दिल्ली रवाना होने से पहले इस बात का ऐलान कर दिया था कि उनकी ग़ैर-हाज़िरी में न कोई आम सभा हो और न किसी तरह का आन्दोलन किया जाय। यह स्पष्ट है कि वह पण्डित नेहरू से सलाह करके तब अन्तिम फ़ैसला करने वाले थे। इस सचाई की पृष्ठभूमि में किसने मामले को उकसाया? काश्मीर दरबार जिसके हाथों में बन्दूकें थीं और ख़ज़ाने में ग़रीबों का सोना था अपने जोम में भरकर काश्मीर के पिछले १६ वर्ष के इतिहास को भूल गया और उस इतिहास को बनाने में शेख़ अब्दुल्ला ने जो रचनात्मक हिस्सा लिया है वह भी उसकी स्मृति से उतर गया। उसने सोचा शेख़ अब्दुल्ला को गिरफ़्तार करके वह दरबार के विरुद्ध जनता की अशान्ति को दमन कर सकेगा। किन्तु उसकी कल्पना ग़लत साबित हुई।

मौजूदा प्रधान मन्त्री से पहले राजा सर महाराज सिंह काश्मीर के प्रधान मन्त्री मुक़र्रर हुये किन्तु दरबार की दमन नीति को देखकर उन्होंने तीन ही महीने में स्तीफ़ा दे दिया। उनके बाद सर बी० एन० राउ प्रधान मन्त्री मुक़र्रर हुये। वे ज़रा थोड़े दिन अधिक रहे। सर राउ ने स्वीकार किया था कि—"मैं समझता था कि मैं प्रधान मन्त्री हूं किन्तु मेरे अलावा चार और छोटे प्रधान मन्त्री थे। उन्हीं में एक काक भी थे। काक-पावल-स्काट ने मिलकर अगस्त क्रान्ति के ज़ालिम मैक्सवेल और टाटेनहैम को भी शरमा दिया। किन्तु इन लोगों के दिन इने गिने हैं। शेख़ अब्दुल्ला फिर विजयी होंगे और काश्मीरी जनता काश्मीर पर हुकूमत करेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३१ में काश्मीर का आन्दोलन केवल मुसलमानों तक ही सीमित था। सन् १९३३ में शेख़ अब्दुल्ला ने सिखों और पण्डितों को भी शिरकत की दावत दी। दरबार ने इसके जवाब में हुक्मनामा १९-L निकाल कर भयंकर दमन किया, किन्तु अन्त में काश्मीरी जनता विजयी हुई। १९३८ में फिर शेख़ अब्दुल्ला को जेल भेज दिया गया और जनता पर कोड़े बरसाये गये।

सन् १९३५ में शेख़ साहब ने लाहौर में अपने एक वक्तव्य में कहा था—"पञ्जाब के सम्प्रदायवादी नेताओं के प्रचार के कारण सम्प्रदायवाद को विस्तार मिला। मैंने इरादा कर लिया है कि मैं अपने देश को इस ज़हर से मुक्त कर दूं।" सन् १९३९ में काश्मीर मुसलिम कान्फ्रेंस का नाम बदलकर "नैशनल कान्फ्रेंस" रख दिया गया और राज्य के हर सम्प्रदाय और हर वर्ग को उसमें शामिल होने की दावत दी गई। सभी दल और सम्प्रदायों में नैशनल कान्फ्रेंस का बेहद प्रभाव बढ़ गया। सन् १९४४ में जिन्नाह साहब ने काश्मीर जाकर शेख़ अब्दुल्ला और नैशनल कान्फ्रेंस को पाकिस्तान का समर्थक बनाना चाहा मगर शेख़ साहब ने जिन्नाह साहब के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जब सन् १९४५ में पण्डित जवाहरलाल काश्मीर गये तो उनका शाही स्वागत किया गया। जब मि० जिन्नाह ने इस पर जवाब तलब किया तो शेख़ साहब ने जवाब दिया—"मैं और नेहरू दोनों काश्मीरी हैं। हम दोनों की रगों में एक ही ख़ून बहता है। तुम दख़ल देने वाले कौन हो?"

अपनी गिरफ़्तारी से चार दिन पहले शेख़ साहब ने तक़रीर करते हुये कहा था—"इस देश के राजाओं और नवाबों के पास देश का चौथाई हिस्सा है और इन्होंने हमेशा भारतीय राष्ट्रीयता के साथ दग़ा की है। जब हम 'क्विट काश्मीर' का नारा लगाते हैं तो हम यह समझते हैं कि तमाम रियासतों के राजाओं और नवाबों को अपनी रियासतें छोड़नी होंगी। निज़ाम हैदराबाद के सामने भी यही माँग होगी। मुझे विश्वास है वहाँ भी लोग सर उठाकर कहेंगे—'हैदराबाद छोड़ो'।

शेख़ अब्दुल्ला पर आज कुछ पतित और अन्धे लोग सम्प्रदायवाद का इलज़ाम लगा रहे हैं। ये वे लोग हैं जो सम्प्रदायवाद की आड़ लेकर ग़रीब हिन्दू या मुसलिम जनता को कभी भी पनपने नहीं देना चाहते। श्री सावरकर ने काश्मीर दरबार को औरतों, बूढ़ों और बच्चों पर गोलियाँ चलाने के लिये बधाई का तार भेजा है। यदि यही हिन्दू धर्म है तो जितने शीघ्र इस हिन्दू धर्म का नाश हो उतना अच्छा। किन्तु ईश्वर का लाख लाख शुक्र है कि भारत में आज महान हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि गान्धी जी, जवाहरलाल, नेताजी, डा० भगवानदास आदि हैं वरना सावरकर, मुञ्जे और अणे आदि ने हिन्दू धर्म की कपाल-क्रिया करने में कोई क़सर बाक़ी नहीं छोड़ी। अगर काश्मीर की ९५ फ़ीसदी जनता अज़हद ग़रीब है, सताई हुई है, मज़लूम है, पीड़ित है, अपनी आज़ादी चाहती है तो सच्चा हिन्दू धर्म उसके रास्ते में किसी तरह बाधक बनकर न खड़ा होगा। यह कोई दलील नहीं कि काश्मीर की जनता मुसलमान है और राजा हिन्दू है लिहाज़ा राजा तमाम हिन्दुओं की हमदर्दी का पात्र है। हमें विश्वास है कोई समझदार आदमी ऐसी भोंड़ी दलील से सहमत न होगा।

अमृतसर की सन्धि

'काश्मीर छोड़ो' नारे की शेख़ साहब यह दलील देते हैं कि काश्मीर मौजूदा राजा की पुश्तैनी रियासत नहीं है। अङ्गरेज़ों ने उसे ग़द्दार गुलाब सिंह को अपने स्वामी महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र दलीप सिंह के साथ विश्वासघात करने के फलस्वरूप इनाम में दी थी। जम्मू और काश्मीर की रियासतें पहले पंजाब की सिख सत्ता के आधीन थीं। डोगरा सरदार गुलाब सिंह जम्मू का गवर्नर था और शेख़ इमामुद्दीन काश्मीर का गवर्नर था। महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद गुलाब सिंह अपने को, अपने स्वामी को और पञ्जाब की सिख रियासत को अङ्गरेज़ों के हाथों बेचने को तय्यार हो गया। इतिहासज्ञ विलियम एडवर्ड लिखता है कि बग़ैर एक गोली चलाये और बग़ैर एक आदमी का भी ख़ून बहाये गुलाब सिंह की मदद से अङ्गरेज़ी सेनाओं ने सतलज पार करके लाहौर पर क़ब्ज़ा कर लिया। सिख इतिहासकार गुलाब सिंह के इस घृणित और कुत्सित देश-द्रोह की कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा करते हैं। मौजूदा काश्मीर नरेश उसी देशद्रोही और ग़द्दार गुलाबसिंह के वंशज हैं। यदि काश्मीर की जनता और शेख़ इमामुद्दीन के वंशज काश्मीर पर अपने अधिकार को वापस माँगना चाहें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उनकी मांग की न्याय्यता से कौन इनकार कर सकता है ? जिस राजघराने की बुनियाद ही ग़द्दारी पर रखी गई उसे शेख़ अब्दुल्ला को ग़द्दार कहने की कैसे जुरअत हो सकती है। आज काश्मीर की जनता को इस बात के फ़ैसले का उसी तरह पूरा अधिकार है कि वह काश्मीर दरबार के मातहत नहीं रहना चाहती जिस तरह बरार की जनता को इस बात का कि वह निज़ाम के राज्य में वापस नहीं जाना चाहती।

हिन्दुस्तान और उसकी मुल्की ज़बान

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में २६ मई के 'हरिजन सेवक' में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं—

"गान्धी जी ने हिन्दुस्तान को बहुत सी चीज़ें दी हैं। मगर शायद कम लोगों का ध्यान इस तरफ़ गया होगा कि एक बड़ी चीज़ जो हिन्दुस्तान को उनके हाथों से मिली वह उसकी मुल्की ज़बान है। बहुत सी बोलियां रखने पर भी हिन्दुस्तान अपनी मुल्की बोली नहीं रखता था। गान्धी जी ने उसकी यह कमी पूरी कर दी।

"अङ्गरेज़ी ज़बान हुकूमत के दरवाज़े से आई लेकिन आते ही सारे मुल्क पर छा गई और इस तरह छा गई कि हमारी तालीमी, इल्मी और समाजी ज़बान की जगह उसको मिल गई। अब पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी अपनी मुल्की ज़बान में बात चीत करना शरम की बात समझने लगे थे। बड़ाई और इज़्ज़त की बात यही समझी जाती थी कि हर मौके पर ज़बान से अङ्गरेज़ी ही निकले। लोग अपनी निजी बातचीत में भी अङ्गरेज़ी को भुलाना पसन्द नहीं करते थे।

"पिछली सदी के आख़री हिस्से में मुल्क की नई सियासी जागृति शुरू हुई और इण्डियन नैशनल कांग्रेस की नींव पड़ी। अब कांग्रेस के जलसे इसलिये होने लगे थे कि मुल्क की क़ौमी मांगों और क़ौमी फ़ैसलों की आवाज़ दुनिया को सुनाई जाय। लेकिन यह आवाज़ भी अपनी ज़बान में नहीं उठती थी। अङ्गरेज़ी में उठती थी। हिन्दुस्तान अब इङ्गलैण्ड को यह बात सुनाना चाहता था कि उसका मुल्क ख़ुद उसके लिये है, दूसरों के लिये नहीं है, लेकिन यह बात कहने के लिये भी उसे अपनी हिन्दुस्तानी ज़बान नहीं मिलती थी। वह दूसरों की ज़बान उधार लेकर अपना काम चलाना चाहता था।

"लेकिन ज्योंही गान्धी जी ने मुल्क के सियासी मैदान में क़दम रखा अचानक एक नया इनक़लाब उभरना शुरू हो गया। अब मुल्क की आवाज़ ख़ुद उसकी अपनी ज़बान में उठने लगी और मुल्क की ज़बान में बातचीत करना शरम की बात नहीं रही। उन्होंने लोगों को यह याद दिलाया कि शरम की बात यह नहीं है कि हम अपनी ज़बान बोलें, शरम की बात यह है कि अपनी ज़बान भूल जायँ। उन्होंने सन् १९२०-२१ में सारे मुल्क का दौरा किया और सैकड़ों तक़रीरें कीं लेकिन हर जगह उनकी तक़रीरों की ज़बान हिन्दोस्तानी ही रही।

"मुझे याद है कि पहली बड़ी लड़ाई के ज़माने में जब मैं रांची में क़ैद था, तो मैंने अख़बारों में उस कान्फ्रेंस की कार्रवाई पढ़ी थी, जो १९१७ में लार्ड चेम्सफ़ोर्ड ने दिल्ली में बुलाई थी। गान्धी जी उस कान्फ्रेंस में शरीक हुये थे मगर उन्होंने यह बात बतौर शर्त के ठहराई थी कि वह तक़रीर हिन्दोस्तानी में करेंगे। उस वक़्त अख़बारों ने इस वाक़या को एक नया और अजीब तरह का कहा था। लेकिन यह नई बात मुल्क की सबसे ज़्यादा आम बात बनने वाली थी। चुनांचे आज हम सब देख रहे हैं कि जो जगह २५ बरस पहले अङ्गरेज़ी ज़बान की समझी जाती थी वह हिन्दोस्तानी ज़बान ने ले ली है।"

इस पर टिप्पणी करते हुये गान्धी जी लिखते हैं—"ऊपर का लिखान मेरी तारीफ़ के लिये नहीं है। जो आदमी अपना धर्म समझकर कुछ सेवा करता है उसमें तारीफ़ क्या ? मौलाना साहब विद्वान हैं। फ़ारसी और अरबी का ज्ञान रखते हैं। इसलिये उर्दू ख़ूब जानते हैं। लेकिन वह जानते हैं कि न तो अरबी-फ़ारसी भरी उर्दू हिन्दुस्तान की आम ज़बान हो सकती है और न संस्कृतमयी हिन्दी ही। इसलिये वह उर्दू और हिन्दी का मेल चाहते हैं और दोनों को मिलाकर बोलते हैं। मैंने उनसे प्रार्थना की है कि हर हफ़्ते एक छोटा सा हिन्दुस्तानी लेख देते रहें, जिससे हिन्दुस्तानी का एक नमूना 'हरिजन सेवक' पढ़ने वालों को मिलता रहे।"

वास्तव में हिन्दुस्तानी का सबसे बड़ा झगड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गरेज़ी को हटाने में है। हम यह तै कर लें कि चाहे हम किसी ज़बान में बोलें लेकिन अंगरेज़ी को बढ़ौती न दें। जिस दिन हम यह कर लेंगे उस दिन हिन्दुस्तानी का रूप अपने आप सँवर-निखर जायगा। संस्कृत और फ़ारसी-अरबी का बखेड़ा खड़ा करके हम राष्ट्रभाषा के असली मुद्दे को आड़ में कर देते हैं और भाषा का क्षेत्र साम्प्रदायिकता से कलंकित कर देते हैं।

बंगाल में किसकी हुकूमत है!

बङ्गाल के समाचार पत्रों में मैमनसिंह, ढाका, भैरव बाज़ार, अखौरा आदि के जो समाचार प्रकाशित हो रहे हैं उससे पता चलता है कि इन हिस्सों में चलने वाली लीग पिछले छै महीनों से भयङ्कर रूप से गुण्डों के आक्रमण हो रहे हैं। पाँच-पाँच सौ की तादाद में गुण्डे आते हैं, रेलगाड़ियों को रोकते हैं और मुसाफ़िरों का और मालगाड़ी का माल लूट लेते हैं। अपने माल की रक्षा करने में बहुत से मुसाफ़िरों की जान तक चली जाती है। ये गुण्डे अनेक महिला यात्रियों को भी ज़बर्दस्ती उठा ले जाते हैं। ये इतने ताक़तवर हैं कि गाड़ियों में सशस्त्र पहरा बैठा देने पर भी ये उपद्रव बन्द नहीं हुये। रेलवे अधिकारियों ने महीने भर पूर्व बङ्गाल के मुसलिम लीगी प्रधान मन्त्री को सारी परिस्थिति की सूचना दे दी है किन्तु अब तक उपद्रव की यह हानि बन्द नहीं हुई।

लोग हैरान हैं कि आख़िर बङ्गाल में किसकी हुकूमत है—अङ्गरेज़ शहन्शाहियत की, या मुसलिम लीगी मन्त्री मण्डल की, या गुण्डों की? कलकत्ते के दैनिक पत्र "हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड" ने बङ्गाल की सरकार को वहाँ फ़ौजी पुलिस रखकर आततायियों को दमन करने की सलाह दी है। हमें इस बङ्गाली दैनिक पर तरस आता है। छै महीने से बङ्गाल की बहू-बेटियों को गुण्डे संगठित रूप से ट्रेनों से उठा ले जाते हैं, उनसे बलात्कार करते हैं और बङ्गाली युवक की धमनियों के रक्त में उष्णता नहीं आई। पुलिस होती या न होती, जनता को अपना संगठन करना चाहिये था और यदि ये गुण्डे थे तो सैकड़ों की तादाद में आकर जनता को इन्हें इतनी ज़बर्दस्त सज़ा देनी थी कि वे अपने दुष्कर्मों को हमेशा के लिये भूल जाते। आख़िर कब तक हम अपनी सुरक्षा के लिये पुलिस और सैनिकों पर निर्भर करेंगे?

महिलाओं की सुरक्षा का प्रश्न

इधर अरसे से कलकत्ता, लाहौर, रावलपिण्डी आदि से निरन्तर ख़बरें अख़बारों में छप रही हैं कि चलती ट्रेनों में, सड़कों पर या मोटरों में गुण्डे जवान लड़कियों पर हमला करके या तो उन्हें लूट लेते हैं, या उनका अपहरण करके उनके साथ बलात्कार करते हैं। इस युद्ध के बाद कुछ ऐसी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियाँ हो गई हैं कि सम्भ्रान्त युवक तक इस तरह के कुकृत्यों को रोमांस समझकर करते हैं। हमारा सामाजिक, नैतिक और आर्थिक ढाँचा इतना लचर हो गया है कि ऐसी घटनायें हमें कँपा नहीं देतीं बल्कि समाज इन्हें प्रश्रय देता है।

अभी हाल में युक्त प्रान्त के डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन ने विद्यार्थी गुण्डों से स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों की हिफ़ाज़त की योजना बनाई है। उन्होंने लड़के विद्यार्थियों के दल बनाने की तजवीज़ की है जो लड़कियों को स्कूल पहुँचायेंगे और फिर वहाँ से वापस घर, और देखेंगे कि उन्हें कोई विद्यार्थी रास्ते में सताता नहीं। कितनी दयनीय स्थिति हमारे समाज की हो गई है!

किन्तु हम इन बहिनों से पूछना चाहते हैं कि वे कब तक अपनी सुरक्षा के लिये पुरुषों पर निर्भर करेंगी? जब तक वे ख़ुद अपनी रक्षा करने के क़ाबिल न होंगी ये घटनायें चलती रहेंगी। उन्हें सुरक्षा के लिये अपना व्यापक संगठन बनाने की जरूरत है। जगह जगह उन्हें "रानी झाँसी ब्रिगेड" खोलनी चाहिये। लड़कियों को ड्रिल, परेड, लाठी, छूरा, जुजुत्सु आदि की तालीम देनी चाहिये। जहाँ लड़कियों की लाठियों और छूरों से १०-२० शिक्षित और अशिक्षित गुण्डों के सर टूटे और गर्दनें कटीं फिर बहिनों के ऊपर ये हमले असम्भव हो जायंगे। लड़कियों के स्कूलों और कालिजों के अधिकारियों और उनके अभिभावकों से प्रार्थना है कि वे फ़ौरन लड़कियों के ऐसे दल बनाकर उनको शारीरिक शिक्षा देकर सदा के लिये इस गुण्डेपन को बन्द करने के लिये क़दम उठायें। अब वक्त आ गया है कि लड़कियाँ अपनी सुरक्षा के लिये बजाय मरदों के ऊपर निर्भर करने के अपनी ही शक्ति पर निर्भर करें। 'शक्ति' तो स्वयं ही स्त्रीरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोगों को स्त्रियों की शारीरिक शिक्षा का यह कार्यक्रम ज़रा अटपटा लगेगा। वे नारी को केवल सजी धजी, पुरुषों का मन लुभानेवाली अबला 'रमणी' के रूप में ही देखना चाहते हैं। कदाचित् नारी का वही स्वाभाविक रूप हो—हमें इसमें बहस नहीं, किन्तु हम समझते हैं कि ज़माना इतना संकटपूर्ण आ रहा है कि भारतीय नारी की स्थिति पर हमें गम्भीरता के साथ फिर से ग़ौर करना होगा। नारी लक्ष्मी रूप से धन की रक्षा करती है, अन्नपूर्णा रूप से भण्डार भरा रखती है, भगवती रूप से धर्म मर्यादा कायम रखती है, सरस्वती रूप से समाज के स्तर को ऊँचा रखती है। ये सब नारी के उत्तम और महत्वपूर्ण रूप हैं। किन्तु नारी ही दुर्गा और चण्डी के रूप में असुरों का सँहार भी करती है। आज की परिस्थिति को देखते हुये हमें नारी के इस रौद्र रूप की भी बहुत अधिक ज़रूरत है और जब हम बंकिम के शब्दों में यह कह सकेंगे कि—

के बोले मा ! तुमि अबले ?—

तब नारी रक्षा की सारी समस्या हल हो जायगी।

फ्रैटर्नाइज़ेशन

अङ्गरेज़ी का एक शब्द है fraternisation ! शब्द-कोष में इसका अर्थ है भाईचारा पैदा करना। किन्तु युद्ध के बाद इस शब्द का अर्थ ज़रा बदल गया है। विजेता सैनिक जिन जर्मन और जापानी कुमारियों से मेलजोल करके अपनी काम-लिप्सा तृप्त करते हैं उसे फ्रैटर्नाइज़ेशन या भाईचारे का बर्ताव कहा जाता है। इस निर्बन्ध भाईचारे का परिणाम यह है कि आज जर्मनी के अमरीकन अधिकृत प्रदेशों में जितने बच्चे पैदा हो रहे हैं उनमें से ५० फ़ीसदी इन्हीं अमरीकी सैनिकों की नाजायज़ सन्तान हैं। जिन प्रदेशों पर अङ्गरेज़ों का क़ब्ज़ा है वहाँ १० फ़ीसदी पैदा होने वाले बच्चे नाजायज़ रूप में जर्मन देश को अङ्गरेज़ सैनिकों का दान है।

शायद इस बीसवीं सदी में युद्ध और सदाचार से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। सन् १८५१ में जब अंग्रेज़ी फौजों ने अफ़गान युद्ध के बाद काबुल पर कब्ज़ा कर लिया था उस समय उन्होंने अफ़गान कुमारियों के साथ फ्रैटर्नाइज करना चाहा था मगर उसकी वह भयंकर सज़ा अफ़गानियों ने उन्हें दी कि हज़ारों अंग्रेजों का खून पीकर भी अफ़गानों का गुस्सा शान्त न हो सका। जापानी कुमारियों के साथ भी आज यही बर्ताव हो रहा है। फ़िर हैरत यह है कि ये पतित अमरीकन अपने इस जघन्य व्यभिचार को 'भाईचारा' कहते हैं। आखिर यह तक सभ्य दुनिया इसे बर्दाश्त करेगी ?

किन्तु यह मुसीबत महज जर्मनों और जापान के ऊपर ही नाज़िल नहीं हुई है। जो अमरीकी, कनाडी और आस्ट्रेलियन फौजें कई बरस से ब्रिटेन में पड़ी हुई हैं उनके द्वारा अंग्रेज कुमारियाँ और ऐसी स्त्रियाँ, जिनके पति लड़ाई पर थे, प्रति सप्ताह लगभग १००० नाजायज़ बच्चे पैदा कर रही हैं। इन बच्चों का क्या होगा, यह भी एक बहुत बड़ी समस्या है। जब सांस्कृतिक व्यवहार में सदाचार को कोई जगह नहीं रहती तो फिर न पराई बहू बेटियाँ बचती हैं और न अपनी।

भूलाभाई देसाई और एडवर्ड टामसन

गत ७ मई को प्रसिद्ध देशभक्त, वकील और वैधानिक नेता भूलाभाई जीवन जी देसाई की ६७ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। कई वर्षों से उनका स्वास्थ्य ख़राब चला आ रहा था। इधर आज़ाद हिन्द फ़ौज के पहले मुक़दमे के सिलसिले में उन्हें काफ़ी परिश्रम करना पड़ा जो उनकी मृत्यु को निकट लाने का कारण बना। बारदोली सत्याग्रह के समय भूलाभाई का राजनीति में प्रवेश हुआ और उनकी प्रतिभा असेम्बली में कांग्रसदल के नेता की हैसियत से काफ़ी चमकी। वे हर तरह की संकीर्णता से ऊपर थे और खुले हाथों हर अच्छी चीज़ के लिये दान देते थे। उनकी मृत्यु से देश को काफ़ी नुक़सान हुआ।

डाक्टर एडवर्ड टामसन की मृत्यु से भारत ने अपना एक अच्छा मित्र खो दिया। वे गान्धी जी, रवीन्द्रनाथ और जवाहरलाल जी के घनिष्ट मित्र और भारत की आज़ादी के प्रबल समर्थकों में से थे।

इस अङ्क में देरी

इलाहाबाद में साम्प्रदायिक उपद्रवों, कई दिन तक बीस घण्टे के कर्फ़्यूआर्डर और हड़ताल आदि के कारण प्रेस सप्ताह भर के लगभग बन्द रहा इसलिये यह अङ्क देर से प्रकाशित हो रहा है। पाठकों से इसके लिये क्षमा प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें जो ज़रूर पढ़नी चाहियें

१–क़ुरान और धार्मिक मतभेद

लेखक—
राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद
मूल्य डाकख़र्च सहित १।=)

२–महावीर वर्धमान और जैन धर्म

लेखक—
डा० जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०, पी-एच० डी०
मूल्य डाकख़र्च सहित १॥=)

३–बोस बाबू ज़ियाउद्दीन के रूप में (हिन्दी और उर्दू दोनों में)

लेखक—
श्री उत्तम चन्द
मूल्य डाकख़र्च सहित २।=)

४–लाल क़िले में

लेखक—
पण्डित सत्यदेव विद्यालङ्कार
मूल्य डाकख़र्च सहित २॥।=)

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है।
हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वभारती

वर्ष ६, भाग १२] जुलाईः १९४६ [अङ्क १, पूरे अङ्क ६७

मध्य-पूर्व की राजनैतिक उथल-पुथल

डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

जुलाई १९४६ [एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

४—[illegible] —श्री विष्णु [illegible]

समद ख़ां १९

५—त्रिपिटक पालि और उसका परीक्षण—
भिक्षु धर्म रक्षित २१

६—प्राचीन मेक्सिको में त्योहार और बलिदानों
की प्रथा—स्व० पं० पुरुषोत्तम लाल २५

७—बुद्धि का महत्व—श्री रामचन्द्र जैन ... २८

८—दिन निशि की भाँति नहीं रोता (कविता)—
श्री शीतलासहाय ३०

१३—साहित्यिक, अख़बार और जन जागरण—
श्री स्नेहांशुकान्त आचार्य ... [illegible]

१४—खादी का अर्थ—श्री रामाधार .... [illegible]

१५—पूर्वी अफ़्रीका में भारतीय—श्री० पी०
डी० मास्टर .... [illegible]

१६—हाल की जंग और उसका नतीजा—
पंडित सुन्दरलाल ... . [illegible]

१७—नई किताबें .... [illegible]

१८—हमारी राय .... [illegible]

'विश्ववाणी' के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से 'विश्ववा[illegible] नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववा[illegible] भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ भी दर्ज करते हैं। किन्त डाकखाने के [illegible] बीच में छापा मारकर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस [illegible] शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण [illegible] भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर [illegible] असमर्थ हैं। 'विश्ववाणी' हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक [illegible] ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन [illegible] हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक-नम्बर लिखना भूल जाते हैं। 'विश्ववाणी' [illegible] जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब [illegible] या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द [illegible]
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

वर्ष ६, भाग १२] जुलाई: १९४६ [अङ्क १, पूरे अङ्क ६७

मध्य-पूर्व की राजनैतिक उथल-पुथल

डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी

[तेहरान विश्वविद्यालय के डाक्टर दफ़्तरी प्रसिद्ध लेखक और अनेक अङ्गरेज़ी पत्रों के विशेष सम्वाददाता हैं। उनके इस लेख को हम उन्हीं के सौजन्य से छाप रहे हैं। विश्ववाणी पर डाक्टर दफ़्तरी की सदा से विशेष कृपा है —सम्पादक]

मध्य-पूर्व की राजनीति इस समय विकेन्द्रीकरण तथा आन्तरिक संगठन के एक कठिन दौर से होकर गुजर रही है। वहां के रहने वाले अङ्गरेजों के लिये वाद-विवाद का यही सबसे प्रमुख विषय है। अरब मुल्कों के राजनीतज्ञों के लिये मध्य-पूर्व की राजनीति अब जीवन-पूर्ण जीवन मरण का प्रश्न है। यहां तक कि फ़िलिस्तीन से आने वाली खबरों में भी सबकी गहरी दिलचस्पी पाई जाती है। उत्तरी ईरान का विद्रोह, मध्य-पूर्व में होने वाले इस संघर्ष की प्रथम सूचना थी।

ईरानियों की कुल जन-संख्या लगभग १ करोड़ २० लाख है। कुछ विदेशियों के मुताबिक़ तो ईरानी कुल ८० लाख हैं। लेकिन ईरानी सरकार का दावा है कि उसके देश की कुल आबादी १ करोड़ ६० लाख है। इस तथा अन्य तमाम बातों की तरह जो कि ईरान के बारे में कही या कही जाती हैं, वहाँ की जन संख्या का प्रश्न भी विवादित है। अजरबाइजान नामक ईरानी प्रान्त की जन-संख्या जो कि आजकल विवाद का मुख्य विषय बना हुआ है, निश्चित नहीं है, ईरानी सरकार के आंकड़ों के अनुसार अजरबाइजान की जनसंख्या सैनिक गणना के समय तो दस लाख रहती है पर चीनी की गणना के समय चालीस लाख हो जाती है।

अनुमानतः १ करोड़ २० लाख ईरानियों में से कम से कम १ करोड़ भूखे तथा अशिक्षित हैं। ८० लाख ईरानी गरमी की बीमारी से ग्रसित रहते हैं। पैदा होने वाले चार बच्चों में से तीन साल भर की उम्र से पहले ही मर जाते हैं।

ईरान के देश में जो कि जर्मनी, फ्रांस और स्पेन के सम्मिलित क्षेत्रफल से अधिक बड़ा है, सारा शासन केवल तेहरान से होता है। स्थानीय तथा प्रादेशिक कर्मचारियों का वहां अस्तित्व भी नहीं है। उसूल के तौर पर ईरान एक वैधानिक राजतंत्र है, जिस पर २६ वर्षीय शाह मोहम्मद रज़ा एक कैबिनट तथा एक मजलिस की सहायता से शासन करते हैं। कैबिनेट मजलिस के प्रति उत्तरदायी है। व्यावहारिक रूप में सारा मुल्क दो हजार अमीर ख़ानदानों के द्वारा ही शासित किया जाता है। वे ज़मीन के मालिक हैं, वे कैबिनट का निर्माण करते हैं, मजलिस भी उन्ही की है, सारा रुपया तथा फौज भी उन्हीं के हाथों में है। यहां तक कि 'तूदेह' (Tudeh) पार्टी (ईरान की प्रमुख राजनैतिक पार्टी) का बहुमत भी या तो जमींदारों का है या बहुत बड़े पूँजीपतियों का।

अफ़ीमची पार्लिमेंट

कुदरती तौर पर यह लाज़मी था कि वहां की राजनीति व्यक्तिगत तथा दूषित रहे। रूस के द्वारा उत्साहित 'तूदेह' पार्टी के जन्म के पहले तो ग़रीब वर्ग की जनता को राजनीति में कोई दिलचस्पी ही नहीं थी और न उनका कोई प्रतिनिधि ही था। आज भी ईरान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल दो राजनैतिक दल हैं—'तूदेह' पार्टी और 'तूदेह विरोधी राष्ट्रीय मोर्चा'। मजलिस में केवल तूदेह ही एकमात्र संगठित पार्टी है। बाकी मेम्बर लोग हिस्सों (फ्रेक्शसंस) में बटे हुए हैं जो कि बड़े बड़े और प्रमुख डिपुटियों (मजलिस के मेम्बर) का नेतृत्व मानते हैं और एक दूसरे के विरुद्ध षड़यंत्र रचते रहते हैं।

मजलिस में बढ़ते हुए व्यक्तिगत स्वार्थों ने सुधार की साधारण प्रवृत्तियों को भी रोक दिया है। साल भर के अन्दर मजलिस में सौ से अधिक बिल आर्थिक और सामाजिक सुधारों को लेकर पेश किए जा चुके हैं। पर चूंकि मजलिस के १२७ मेम्बरों में से ६५ का कोरम होना आवश्यक है, इसलिये पूंजीपति डिपुटी मजलिस के इन अधिवेशनों में नहीं आते ताकि कोरम के अभाव में इन सुधार बिलों पर बहस तक न हो सके।

अफीम पीना अभी तक एक राष्ट्रीय मनोरंजन है और मजलिस भी इसमें पूर्ण तरह से भाग लेती है। एक तिहाई डिपटी अभी तक नियमानुसार पाइप (अफ़ीम) पीते हैं और असेम्बली के प्रेसीडेन्ट बहुधा अधिवेशन को दोपहर के बाद स्थगित कर देते हैं क्योंकि उस वक्त हशीश (अफीम के पाइप) का तलब डिपुटियों के दिलों को काबू के बाहर कर देती है।

दूसरे आर्थिक मामलों में पिछड़े हुए मुल्कों की तरह ईरान भी अपनी आमदनी का सबसे बड़ा हिस्सा फ़ौज पर खर्च करता है। पुलिस और जेण्डारमो हथियारबन्द पुलिस की तनख्वाहों में समस्त आमदनी का पचास प्रति शत रुपया खर्च हो जाता है। एक सिपाही की तनख्वाह दस रुपया माहवार है (संसार के सबसे खर्चीले देशों में से एक में) और उसमें से भी उसे अधिक ख़तरनाक कामों से बचने के लिए अपने अफ़सरों को रिशवत देनी होती है।

इसी प्रकार देश का सामाजिक ढांचा अपनी बनावट में अस्त-व्यस्त है। इस सामाजिक ढांचे में हैं—दो हज़ार अत्यन्त धनाढ्य खानदान, केवल दो चोटी के व्यापारी, निम्न मध्य वर्ग; कम तनख्वाहें पाने वाला दूषित और राशी शासन तंत्र, सारे मुल्क में केवल पचास हज़ार मज़दूरों का एक औद्योगिक वर्ग तथा बासी रोटी और चाय पर बसर करने वाले एक करोड़ ईरानी। ईरान के भाग्य-विधायक दो हज़ार खानदानों ने स्वयं ही पिछले महायुद्ध के बारे में क्रांतिकारी रूस से नाता तोड़ लिया। उन्होंने अंग्रेजों से अपना राजनैतिक और सामाजिक सम्बन्ध जोड़ लिया और हिटलर के आविर्भाव के बाद जर्मनों से रिश्ता गांठा। उन्होंने पश्चिमी यूरोप की स्त्रियों के साथ शादियां की यहां तक कि धीरे धीरे ब्रिटेन की कोई ईरान सम्बन्धी नीति के अभाव में भी जर्मन प्रभाव के मिटाने के बाद अंग्रेज़ों का प्रभाव अत्यन्त उग्र हो गया। यह बात नहीं थी कि अंग्रेज़ों ने रूस के खिलाफ़ कोई मोर्चा बनाने की कोशिश की हो। यह तो केवल ब्रिटेन को सांत्वना पहुँचाने की दक्रियानूसी इरानियों की एक कोशिश मात्र थी।

जब, सन् १९४३ के लगभग, सोवियत् सरकार ने यह निश्चय किया कि ईरान में अंग्रेजी प्रभाव का कम होना आवश्यक है, तो उन्होंने ईरानी साहूकारों की कमज़ोरी को भांप कर सीधा हमला किया। 'तूदेह' पार्टी का संगठन हुआ। इस्फहान, तबरेज़ तथा तेहरान में ट्रेड-यूनियन बनाये गये। उन्होंने सरमायेदारों को विवश किया कि वे मज़दूरी को दूना बढ़ायें और कपड़े, कोयले और जूतों के लिये भी मज़दूरों को रुपया दें। वे खेती और किसान की हालत में सुधार करने की बात भी सोचने लगे, पर यहां 'तूदेह' और रूसियों को ज्यादा कामयाबी मिल सकी—और ये सुधार कोरी पटिया पर लिखे अक्षरों की तरह रह गये।

पर 'तूहेद' ने ग़लतियां भी कीं, जिनमें से खासकर दो इस सुधारवादी पार्टी के लिये हानिकर साबित हुईं। इस्फहान में इसने धर्म को गालियां देनी शुरू कीं और इस प्रकार अपने प्रभाव को खो दिया। पर इसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी इसका एक 'रूसी' पार्टी बन जाना था। जनता 'तूदेह' को बाहर से आई हुई पार्टी के रूप में देखने लगी। 'तूदेह' अखबार तथा 'तूदेह' नेताओं के अपने वक्तव्यों द्वारा इस शक को और भी बढ़ा दिया। पार्टी द्वारा मास्को से आने वाले आदेशों का अक्षरशः पालन किया जाने लगा। 'तूदेह' की दूसरी कमज़ोरी यह थी कि उसका नेतृत्व भी सेठ तथा जमींदार करते थे और उनमें जनता के साथ गठबंधन की वह आवश्यक भावना नहीं थी जो एक सुधारवादी दल के लिये होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष

इस प्रकार 'तूदेह' ब्रिटिश प्रभाव को ख़त्म करने के लिये उपयुक्त हथियार के दृष्टिकोण से असफल रहा। पर रूस ने शुरूआत तो कर ही दी।

सन् १९४४ के अन्त तक रूसियों ने इस बात की आवश्यकता समझी कि वे ईरान में अपने तथा ब्रिटिश प्रभाव की तुलनात्मक शक्ति का पता लगा लें। उत्तरी ईरान में उन्होंने १,५०,००० वर्ग मील क्षेत्र में तेल-सम्बन्धी सुविधायें ईरानी सरकार से गुप्त रूप में प्राप्त करने की बातचीत चलाई। बातचीत सफलतापूर्वक समाप्त होने ही वाली थी कि सहसा मजलिस ने एक बिल के द्वारा नये कुंओं के न खोदे जाने तथा विदेशी फ़ौजों के ईरानी सीमा के अन्दर रहने के समय तक तेल-सम्बन्धी कोई सुविधा न देने के बारे में क़ानून पास कर दिये। रूस के लिये यह एक हमला था। परिणाम स्वरूप रूसी राजदूत वापस बुला लिया गया।

इसी समय 'तूदेह' का झगड़ा ज़ोर पकड़ रहा था। सय्यद जिआ फ़िलस्तीन से, जहां उन्हें देश निकाला दिया गया था, ईरान वापस चले आये थे और 'तूदेह' के विरुद्ध आन्दोलन का संगठन कर रहे थे। उधर 'तूदेह' वाले अंग्रेज़ों पर इस बात का दोष लगा रहे थे कि वे सय्यद जिआ को ईरान वापस लाये। सय्यद ने "क़ौमी रफ़ाह" नामक एक आन्दोलन शुरू किया। रुपया देने तथा सरलतापूर्वक जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये उसने मुल्लाओं को अपने साथ लिया और 'तूदेह' के विरुद्ध एक धार्मिक आंदोलन शुरू कर दिया। शीराज़ में सुधारों का, जो मुल्लाओं के विरुद्ध रज़ा शाह के बनाये गये थे, सैयद पार्टी ने विरोध किया। 'तूदेह' की ट्रेड-यूनियनों की ताक़त को भी रोका गया। ज़मींदारों के 'गिल्ड' (संगठन) बनाये गये, तथा किसानों को ज़मींदारों की मदद से 'तूदेह' यूनियनों के दो हिस्से कर दिये गये, जिनमें से एक हिस्सा 'स्वतंत्र यूनियन' कहा जाने लगा। ये 'स्वतंत्र-यूनियन' असल में ज़मींदारों की यूनियनें थीं।

इस प्रकार युद्ध की समाप्ति तक रूसियों के लिये यह स्पष्ट हो गया कि 'तूदेह' को अन्य तरीक़ों से और अधिक मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। रूस ने अंग्रेज़ों को ईरान से निकालने की यही नीति अख़्तियार की जो उसने बल्कान में बर्ती थी। वही नीति सफल भी हो सकती थी।

अज़रबाइज़ान का झगड़ा

रूसियों ने अज़रबाइजान में स्वशासनाधिकार के आन्दोलन को प्रोत्साहित कर इस कार्य को सम्पन्न किया जिसके द्वारा केन्द्रीय ईरानी सरकार को कई स्थानों पर कड़ी चोट पहुँची। अज़रबाइज़ान सबसे धनाढ्य ईरानी सूबा है; वहां सबसे अधिक प्रभावशाली ईरानी राजनीतिज्ञों की कुछ जागीर भी हैं। ईरान का दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा शहर तबरेज़ भी वही है; और तुर्की और इराक के बीच का रास्ता भी ईरान के इसी प्रान्त से होकर गुज़रता है।

सबसे पहले बहुत से रूसी अज़रबैजानी ईरानी अज़रबाइज़ान में घुसाये गये। वे शक्ल सूरत में एक से थे, एक ही प्रकार की भाषा बोलते थे और साथ ही साथ मँजे हुए कम्यूनिस्ट भी थे। पहले तो कार्य धीरे धीरे आगे बढ़ा, पर बाद को अक्तूबर के शुरू तक सारी योजना ठीक तरह पर काम करने लगी। 'डेमोक्रेट' नाम की एक पार्टी खड़ी की गई और सब तूदेह मेम्बर उसमें शामिल हो गये। ज़ाहिरा तौर पर यह चेष्टा की जा रही थी कि ईरान के अन्य 'तूदेह' दल वालों को आने वाली घटना से अछूता व बेदाग़ रखा जाय ताकि उन-पर किसी तरह की कोई प्रतिक्रिया न हो।

'डेमोक्रेट' दल वालों ने 'सशस्त्र विद्रोह' शुरू कर दिया—लेकिन उनके इस आन्दोलन ने जन विद्रोह का रूप धारण नहीं किया। किसी गाँव या क़स्बे के रूसी यह ऐलान कर देते कि यहां की 'जेण्डारमी' के व्यवहार व शासन प्रणाली की नाकामयाबी के परिणाम-स्वरूप 'डेमोक्रेट' पार्टी शासन-सूत्र अपने हाथ में ले रही है फिर रास्ते के सशस्त्र डेमोक्रेट उन गाँवो या कस्बों के कुछ खास दफ़्तरों व सरकारी इमारतों पर क़ब्ज़ा कर लेते थे। कभी कभी गोलियां भी चल जातीं, तथा कुछ 'जेण्डारमी' या 'डेमोक्रेटों' के विरोधी मर जाते। शाम को 'डेमोक्रेटों' की भारी भीड़ तराने गाती हुई आती और सारा शासन अपने हाथ में ले लेती। रूसी सतर्कता पूर्वक गुप्त रूप से पीछे ही रहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले पहल आन्दोलन को काफी सफलता मिली। उसका प्रभाव दक्षिण की ओर बढ़ा। तेहरान की ओर जाने वाली सड़क पर कई शहर क़ब्जे में कर लिये गये। नवम्बर के आख़िरी हफ़्ते तक तेहरान के फाटक के क़रीब पहुंच गये। पर इस समय तक सारे संसार का ध्यान अज़रबाइजान पर लग गया था और यह नामुमकिन था कि आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर लड़ाई को जारी रखा जाता। इसलिये विवश होकर विद्रोहियों को तेहरान से वापस हटना पड़ा, रूसियों को भी शहर खाली करना पड़ा, और इस प्रकार अंग्रेज़ी प्रभाव को समाप्त करने की दूसरी रूसी कोशिश भी बेकार गई।

रूसी सफलता

ज़ाहिरा देखने में रूसी असफल रहे पर असल में उन्हें काफी सफलता मिली। अज़रबैजानी आन्दोलन ने उत्तर के जमींदारों को घबड़ा दिया और ईरानी सरकार की अपनी रक्षा करने की ताक़त कमज़ोर पड़ गई। इस प्रकार रूसियों को ईरानी सरकार की कमजोरी झलक गई। सारे अज़रबैजानी आन्दोलन के दौरान में 'तूदेह' शांति से बैठे रहे। उत्तरी ईरान में होने वाले वाक़यातों का कोई हाल 'तूदेह' अख़बारों में न छपता था। रूसियों को अब और भी ठोस सहायता मिलने लगी थी। वे सीधे जड़ को ही सुधारना चाहते थे। उनकी नीति अब एक 'मित्र' ईरानी सरकार स्थापित करने की हो चली जिसके फल स्वरूप वे रूस-विरोधी ईरानी नेताओं को निकाल सकें और तेल-सम्बन्धी सुविधायें प्राप्त कर सकें।

उन्होंने गवाम-उस्-सुल्तानह नामक व्यक्ति को, जो ईरान के सबसे शक्तिशाली व धनवान व्यक्तियों में से है तथा जो उत्तरी ईरान का एक बड़ा भारी जागीरदार तथा ईरान का भूतपूर्व प्रधान मंत्री भी था, अपनी तरफ मिला लिया। गवाम मजलिस के डिपुटियों को तटस्थ रहने का प्रचार करने लगा। उसका कहना था कि तमाम बाहरी ताक़तों से एक-सा व्यवहार किया जाय, रूस के विरुद्ध कोई ख़ास किस्म की नीति न बर्ती जाय।

निकालना शुरू

उसी समय ७२ वर्ष की अवस्था वाले ईमानदार ईरानी प्रधान मंत्री हकीमी पर भी यह ज़ोर डाला जाने लगा कि वे अपने मंत्रिमंडल के कुछ व्यक्तियों को, पुलिस के प्रधान अफसर और फौज के 'चीफ़-आफ़-स्टाफ़' (प्रधान सेनापति) को निकाल बाहर करें। इनके बारे में यह अफ़वाह गर्म थी कि ये अंग्रेजों के असर में हैं तथा सोवियत् के बढ़ते हुये प्रभाव को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकते। प्रधान मंत्री के सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि अगर वह उपर्युक्त अधिकारियों को निकाल न दें तथा अंग्रेज़ी अधिकारियों से सलाह लिये बिना सीधे मास्को से लेन देन करें, तो रूस की तमाम शर्तें उदार होंगी।

दिसम्बर के मध्य तक हकीमी ने यह विश्वास दिलाया कि उनके ऊपर कोई बाहरी दबाव न पड़ा था तथा उनका इरादा किसी को भी निकालने का न था। पर सहसा दूसरे ही दिन, तेहरान के मेयर को, जिनका नाम रूसी लिस्ट में सब से ऊपर था, निकाल दिया गया। प्रधान मन्त्री ने कहा कि इस घटना का सम्बन्ध परराष्ट्र नीति से बिल्कुल भी नहीं है। फिर भी तेहरान के नये मेयर ने बारह प्रमुख शहर के अधिकारियों को निकाल कर 'तूदेह' को सहानुभूति रखने वाले नये आदमियों को उनके स्थान पर रख दिया।

दस दिन बाद, वे व्यक्ति भी, जिनके विरुद्ध 'तूदेह' काफी गुल मचा रही थी, निकाल दिये गये। यह घोषित किया गया कि ईरानी गृह-मन्त्री ने, जिनके हाथ में पुलिस के प्रधान अफसर थे, स्तीफा दे दिया है। पर इन्हीं गृह-मन्त्री का ऐलान निकला जिसमें उन्होंने ख़बर को ग़लत बताया कि उन्होंने कोई स्तीफा दिया है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो गई कि उन्हें निकाला गया है। उस जगह पर प्रधान मन्त्री ने अपने व्यक्तिगत सलाहकार अल्लाहयार सालेह को नियुक्त किया। सालेह की नियुक्ति से यह मालूम हो गया कि अभी ईरानी सरकार की नीति रूस से खुले मेल जोल रखने की न होकर अनिश्चित ही है। इसलिये एक तीसरे मन्त्री के स्तीफ़ा देने पर किसी को भी आश्चर्य न हुआ।

दूसरी मार्च

इसी अनिश्चित नीति के अनुसार दिसम्बर के [illegible] तक तेहरान में मित्र राष्ट्रों से अपील की बातचीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी और एक मित्र राष्ट्रीय कमीशन को ईरानी मामलों में मध्यस्थ बनाने की अपील की जा रही थी। ज्यों ज्यों ही मार्च की दूसरी तारीख नज़दीक आती गई, ये सब बातें भी स्वयं भूली जाने लगीं। अब ईरान में कोई ऐसी ताक़त न रह गई जो रूस के प्रभाव को उत्तर में तथा तेहरान में बढ़ने से रोक सके। विकेन्द्रीकरण तथा छिन्न भिन्न होने की प्रवृत्ति अब तक बहुत तीव्र हो चुकी थी, और उसका मुक़ाबला करने की इच्छा भी किसी के हृदय में न रह गई थी।

अंग्रेज़ को अब एक नाज़ुक स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। ईरानी समाज के वे तत्व जो लाभ के न्यूनतम हक़दार हैं, यानी ईरानी सरमायादार, अंग्रेज़ों की और रूसी प्रभाव से मुक्ति पाने और अन्दरूनी रद्दोबदल से बचने के लिये ताकते हैं। एंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी तथा दक्षिणी ईरान में उसकी बड़ी बड़ी जायदादों का लोभ भी, ब्रिटिश नीति को तेल-सम्बन्धी स्वार्थ से बांधे रखता है। लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण चीजें दांव पर लगी हुई हैं, जो ज़ाहिरा नहीं देखी जा सकतीं, पर ईरान के अन्दर ही संघर्ष करती हुई दिखलाई देती हैं।

रूसी आक्रमण-स्थल

चाहे सही हो या ग़लत, सोवियत् यूनियन ने मध्य-पूर्व में हस्तक्षेप करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। इस दख़ल की पहली मंजिल उत्तरी ईरान है—यानी ईरान सम्बन्धी रूसी नीति एक बड़ी योजना की शुरुआत है। अगर रूसी स्वार्थ अपने को वहाँ जमा लेने में सफल हो जाते हैं—जैसा कि पूर्णतया सम्भव है, तो इस नीति के नये 'दौर' में तुर्की और ईरान का प्रभावित होना अवश्यम्भावी है और इन मुल्कों के साथ सारा मध्यपूर्व रूसी प्रभाव-चक्र में आ जाता है। रूसी यह जानते हैं कि किस प्रकार तुर्की और इराक की 'कुर्द जाति' को भड़काया जाय, इराक के सचेत नवयुवक-वर्ग को क्रान्ति के लिये उत्साहित किया जाय तथा ईरान और लेबनान में रहनेवाले अर्मनी लोगों को उत्तेजित किया जाय। बाद में रूसी अरब-संघ और यहूदियों के झगड़े निपटाने के लिये पंच भी बन सकते हैं।

वर्तमान परिस्थिति में इस संघर्ष के नतीजे के बारे में किसी को सन्देह नहीं है। अंगरेजों की वर्तमान नीति देखते हुये, उसका नतीजा अंग्रेज़ों की पूरी हार होगा; सारे मध्य-पूर्व में अराजकता फैल जायेगी; और संसार में अंगरेज़ों के विरुद्ध शक्ति का पलड़ा और भी भारी हो जायगा। यही कारण है कि यह ईरानी झगड़ा ईरानियों के ही आपस की चीज़ नहीं है, और न इसे रूस के एक कष्ट में पड़े पड़ोसी राष्ट्र को सहायता देना ही कहा जाता है। इसकी असलियत तो गहराई में है और इसके नतीजे भी बहुत दूर की चोट करने वाले हैं।

मध्य-पूर्व के राजनीतिज्ञों में अब बहुत अधिक प्रौढ़ता आ गई है और वे अनुदारवादी हो चले हैं। मैं यह सोचता था कि अगर अब कर्नल टी० ई० लारेंस (विगत महायुद्ध में मध्य-पूर्व में काम करनेवाले ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ) मेरे साथ यहां का हाल देखते तो वे इन राजनीतिज्ञों को पहचान जाते कि ये लोग वे ही पुराने कार्यकर्त्ता हैं, पर अब इनमें बहुत बड़ा फ़र्क़ आ गया है।

उस समय प्रथम महायुद्ध के बाद ये क्रान्तिकारी थे; समय के विरुद्ध चलनेवाली पुरानी दकियानूसी परम्परा तथा तुर्कों की मुख़ालफ़त करनेवाले विद्रोही थे; मध्य-पूर्व में प्रगतिवाद का झंडा इन्हीं लोगों ने ऊँचा किया था और अरब जागृति भी इन्हीं के द्वारा सम्भव हो सकी थी। आज ये लोग शक्तिवान् तथा प्रभावशाली पदों पर हैं, पुराने समय के क्रान्तिकारी नेता नहीं हैं, और न वे नये विचारों और युवक वर्ग के प्रतिनिधि ही रह गये हैं। वे अब माने हुये अनुदारवादी (कंज़रवेटिव) हैं जो अपनी पिछले पच्चीस सालों में प्राप्त की गई आमदनी व पदों को क़ायम रखने पर तुले हुए हैं।

मिश्र, फिलिस्तीन, सीरिया, ट्रांसजोर्डन, इराक और सऊदी-अरब आदि देशों का भी यही हाल है। पिछले पचीस सालों के अन्दर वहां कोई भी महान व्यक्ति नहीं हुआ है—केवल अरब-संघ के मंत्री अब्दुल रहमान अज्जम पाशा और यहूदी ऐजेंसी के नेता बेन गुरिअन और शेरटोक ही इसके प्रतिवाद माने जा सकते हैं। किसी हद तक क़ाबिल शासकों में मिस्र के शाह फ़ारुक़, और इराक के अमीर अब्दुल्लाह माने जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज़ पिछलग्गू

यह बात केवल मध्य-पूर्व के राजनीतिज्ञों पर ही लागू नहीं होती, पर उन अंग्रेज कर्मचारियों के बारे में भी कही जा सकती है जो उनके नीचे काम करते हैं और साथ ही साथ मध्य-पूर्व की वर्तमान ब्रिटिश कूट-नीति का संचालन भी करते हैं। इनमें श्री अर्नेस्ट बेविन द्वारा स्थापित नये मध्य-पूर्वी-ब्यूरो के सबसे प्रमुख सदस्य सर किनाहन कार्नवालिस, जो लारेंस के वक्त में (२५ साल पहिले) काहिरा में अरब-ब्यूरो के डाइरेक्टर थे, प्रमुख हैं। सर वाल्टर स्मार्ट जो हाल ही में कहिरा में 'पूर्वीय-मामलातों के मंत्री' बनाये गये हैं, मध्य-पूर्व में ब्रिटिश नीति को निर्धारित करने वालों में प्रमुख हैं। श्री कर्कब्राइड जो कि अम्मान राज्य में ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट तथा मध्य-पूर्व में सबसे योग्य ब्रिटिश अफसरों में से एक हैं, सन् १९२१ से ट्रांसजोर्डन में थे। इसी तरह अन्य कई पुराने ब्रिटिश अफसर तमाम मध्य-पूर्व में फैले हुए हैं। संसार में कहीं भी पिछले महायुद्ध के समय से काम करने वाले इतने पुराने ब्रिटिश कर्मचारी नहीं पाये जाते। यह पुराना दल अब अपना प्रभाव निश्चित रूप से दिखला रहा है।

बदनाम अंग्रेज

मध्य-पूर्व में अंग्रेजों की ख्याति अब नहीं रही। अंग्रेज़ी फ़ौजों को इराक, सीरिया, लेबनान, फिलिस्तीन और मिस्र के लोग अब नफरत की निगाहों से देखने लगे हैं। इस नफ़रत का अन्दाज़ उस वक्त तक कोई नहीं कर सकता जब तक कि वहाँ के युवकों से इस बारे में बातें न कर ले।

वे बूढ़े राजनीतिज्ञ भी, जो पिछले पच्चीस बरसों में अंगरेज़ों की मदद से प्रभावशाली जगहों के हक़दार बने बैठे हैं, अब अपनी ही जनता द्वारा आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते। ज़ाहिरा अंग्रेजों और मध्य-पूर्व के शासकों में मेल दिखाई पड़ता है, पर अब वर्तमान मध्य-पूर्व की असली हालतों को छिपाने के लिये एक धोखे की टट्टी के रूप में ही इस सम्बन्ध का महत्व रह गया है।

मध्य-पूर्व में अरबों, ईसाइयों तथा यहूदियों की एक नई पीढ़ी ताक़त हासिल कर रही है। यह पीढ़ी लारेंस, कार्नवालिस, स्मार्ट, नूरी और वेज़मैन के बारे में नहीं जानती और न जानने की परवाह ही करती है। वह अरब-विद्रोह के पुराने दास्तानों या ब्रिटिश शक्ति की कहानियों को भी सुनने की परवाह नहीं करती—वह अब मध्य पूर्व की असली राजनीति, कूटनीति और सामाजिक दशा का अध्ययन कर रही है।

सामाजिक तथा आर्थिक ज़िन्दगी

मध्य-पूर्व, स्वेज और ईरानी सीमा के बीच में मरु को छोड़कर सारे यूरोपीय महाद्वीप के बराबर क्षेत्रफल वाला, बड़े लन्दन से भी ज्यादा आबादी वाला इलाका है। फिर भी यहां की जिन्दगी स्वास्थ्य और शिक्षा-प्रणाली की तुलना मध्य-युग के यूरोप से की जा सकती है। केवल फिलस्तीन इस माने में कुछ आगे बढ़ा हुआ माना जा सकता है।

यह एक ऐसी गुत्थी है जो कि पहले महायुद्ध के बाद होने वाले अरब स्वतन्त्रता-आन्दोलन से भी नहीं सुलझ पाई। अंग्रेज़, फ्रेंच और उनके अरब दोस्त मध्य-पूर्व में एक सफल और मजबूत राजनीतिक ढांचा तो खड़ा कर पाये, पर जिन्दगी, स्वास्थ्य और साक्षरता के बुनियादी उसूल और उनमें पाई जाने वाली खराबियां दूर नहीं कर सके और न उनके निवारण की ओर समुचित ध्यान ही दिया। प्रजातंत्र का एकमात्र यही अर्थ रह गया कि आपस में झगड़ने वाले शासक दल सरकारी गद्दी पर बैठने के लिये ताक़त की आजमाइश करते रहें।

इराक

उदाहरण के तौर पर, इराक में ४७ सरकारें तख्त-नशीन हुईं। ये सरकारें राजनैतिक महत्व के कुछ व्यक्तियों के छोटे से गिरोह के बीच से ही छांटी गई। कोई भी सरकार इतने अरसे तक गद्दी पर नहीं रही कि वह महत्वपूर्ण आर्थिक व सामाजिक प्रश्नों को सुलझा सकती। यह अंदाजा है कि क़रीब बीस लाख 'फलाहीन' (किसान) और कुली जो कि सारी जन-संख्या के दो तिहाई हैं, सरकारी आंकड़ों के अनुसार केवल एक पैसे पर ज़िन्दगी बसर करते हैं ऐंद्रिक व आंख की बीमारियों के शिकार हैं। ईरान को छोड़ कर, सारे मध्य पूर्व में बच्चों की छुटपन में ही मृत्यु के बहुत बड़े आंकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...नत प्रकाशित होते हैं। इराक के तीन बड़े शहरों में सन् ...१९४८-४१ के बीच पैदा हुए प्रत्येक एक हजार बच्चों में ...लीसन दो सौ सत्ताइस बच्चे बीमारियों के शिकार हुए।

कुर्द लोग

इसी समय इराक के ६ लाख ५० हज़ार कुर्द बड़ी ...स्तरगी के साथ अपनी सीमा के बाहर उत्तरी-पश्चिमी ...न के दो लाख कुर्दों की प्रतिनिधि संस्था 'कुर्द मुक्ति ...टी' की ओर देख रहे हैं और अपनी वर्तमान स्थिति ...असन्तुष्ट हैं। यह आन्दोलन अभी अधिक महत्वपूर्ण ...नहीं है, पर यह उन्हीं स्थानों में बढ़ रहा है जहां ...का प्रभाव मध्यपूर्व में सबसे अधिक जोर मार रहा है।

...फिलहाल इराक़ी सरकार ने विद्रोही कुर्द क़बीलों ...को काफ़ी आर्थिक सुविधायें देकर कुर्दों की विद्रोह-...ज्वाला को सफलतापूर्वक दबा लिया है, हाला कि वह ...अपनी फ़ौज की मदद से उन्हें नहीं दबा सके थे। अंग्रेजी ...वायु सेना ने भी कुर्दों पर बम बरसाने से इनकार कर ...उनकी सहायता से मुँह मोड़ लिया था।

रूस का नया क़दम

यह सब घटनायें नई नहीं हैं। बरसों से ऐसा होता ...आ रहा है। लेकिन अब एक नई बात देखने में ...आती है। ऐसा निश्चित मालूम पड़ता है कि इराक रूसी ...प्रभाव-क्षेत्र के लिये दूसरा संघर्ष-स्थल बनेगा क्योंकि ...ईरान की तरह इराक में भी सामाजिक तथा अल्पमत के ...झगड़े हैं। फिर तुर्की के मुक़ाबले में इराक़, ...'बग़दादपैक्ट' के समान रूस के द्वारा उकसाई गई ...कठिनाइयों को सुलझाने के लिये बहुत कमजोर है। ऐसी ...किसी भी स्थिति के आते ही इराक़ में आमूल ...परिवर्तन हो जायेगा।

इस तरह की सम्भावना का ख़दशा अरब ...राष्ट्रवादियों व मध्य-पूर्व के अंग्रेज़ कर्मचारियों को होने ...लगा है। अंग्रेजों की मध्य-पूर्वीय कूटनीति को इधर इस ...दिशा में कुछ बदल दिया गया है। इससे कुछ ...महत्वपूर्ण परिणाम निकले हैं।

ब्रिटिश दांव-पेंच

अरब नेताओं ने मुझे बताया है कि वे वर्तमान ...अंग्रेजी कूटनीति के दांव पेंचों को रूसी प्रभाव के रोक-...थाम की कोशिश समझते हैं। वे दक्षिणी ईरान से इराक़, सीरिया लेबनान, फिलिस्तीन, मिस्र होकर यूनान तक ब्रिटिश फ़ौजी छावनियों की एक कतार देखते हैं। इसका उद्देश्य फ़ारस की खाड़ी, मध्य-पूर्व और पूर्वीय भूमध्य सागर की रक्षा और तुर्की को अन्दरूनी बढ़ावा व सहायता देना है। रूसी भी परिस्थिति को इसी पहलू से देखते हैं, और किसी भी व्यक्ति के लिये जो इस इलाके से गुजरता है, ब्रिटिश कूटनीति के इस चक्र को पहिचान लेना कोई मुश्किल बात नहीं।

यह चक्र सन १९१४ के युद्ध के द्वारा मध्य-पूर्व में खड़ी की गई सीमाओं की रक्षा करने के लिये संगठित किया गया है; पर इसके ढांचे के अन्दर एक दूसरा 'फ़ौजी इन्तजाम' भी किया गया है, जिसने इसको अब काफ़ी मजबूती से दृढ़ बना रखा है।

इब्न सऊद

यह इन्तजाम इब्न सऊद की सल्तनत के ऊपर जिसे उसने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा अपने मुल्क की खानाबदोश जातियों पर प्रभाव डालकर बनाया है, आश्रित है। उधर इराक में ३५,००० इराकी सिपाहियों की फ़ौज भी है, जिसने हमलावर जातियों को किनारे रखा और राजधानी को कुर्दों के विद्रोह से महफ़ूज़ रखा। यह फौज मौक़ा पड़ने पर हेजाज के अन्दर घुसकर इब्न सऊद के शासन को ख़तम कर सकती है, पर मध्य-पूर्व की ब्रिटिश राजनीति ने इब्न सऊद के शासन को स्वीकार कर लिया है और उसके प्रतिस्पर्धी 'हाशिमी' खानदान को इसके सामने झुकना पड़ा।

ट्रांसजोर्डन

इराकी फ़ौज के साथ ही साथ एक दूसरी ताक़त भी काफ़ी मददगार है। यह 'हाशिमी' ख़ानदान द्वारा शासित ट्रांसजोर्डन की पट्टेदारी पर दी गई सल्तनत है। इसके पास शायद मध्य-पूर्व में सबसे अच्छी स्थानीय सेना है, जिसका नाम 'अरब-लीजियन' है। यह फौलादी डिवीजनों से भी थोड़ी बहुत सुसज्जित है, सोलह हजार की इस फौज में कमांडर तथा ऊँचे अफसर अंग्रेज हैं और फौज की तनख़्वाह भी अङ्गरेज ही देते हैं।

एक अङ्गरेज अधिकारी ने मुझे बताया कि अकेली यह फोज इब्न साऊद की ताक़त का सफाया कर सकती है। इस प्रकार इब्न सऊद की सीमाओं पर 'हाशिमी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फौजों का होना—ब्रिटिश प्रभाव की भी सीमा है। अङ्गरेज लोग दोनों मुल्कों की सत्ता पर आक्रमण करने या मिला लेने की धमकी देकर अपना प्रभाव क़ायम रखते हैं। 'हाशिमी' वंश और इब्न सऊद का आपसी द्वेष उनकी मदद तो करता ही है।

इराक को खतरा

यह सब राजनैतिक दाँवपेच हाल में होनेवाली ईरानी घटनाओं से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। बहुत कम अरब नेताओं ने यह राय जाहिर की कि इराक सफलतापूर्वक अपनी रक्षा कर सकेगा। स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों ने, जो वहां की हालत जानते थे, इस बात का समर्थन किया। इराक के सबसे प्रमुख राजनीतिज्ञ व भूतपूर्व प्रधान मन्त्री नूरी सैयद ने पहले तो अरब संघ को फारस की सहायता के लिये निमन्त्रित किया, और बाद को मजबूर होकर तुर्की और इराक की खोखली और बाहरी मदद पर निर्भर राजनीति को निमन्त्रित किया।

उन्होंने पहले नवम्बर में होनेवाले अरब-संघ के जलसे में अपने विचारों और अपनी योजनाओं को पेश किया, पर दूसरी अरब शक्तियों ने अनिश्चित मदद देने का ही वादा किया। वह अफगानिस्तान और तुर्की से मिस्र तक एक बड़े मध्यपूर्वी रक्षा-प्रदेश का निर्माण करना चाहते थे। अब वह सीधे तुर्की चले गये हैं जहां सोचा जाता है कि वह तुर्की-इरानी अफसरों की गुप्त बातचीत को चला रहे हैं।

मिस्र से मेल-जोल

जब कि इराक ईरानी सीमा की ओर से आने वाले खतरे की ओर देखने में व्यस्त है, शाह इब्न सऊद का ध्यान घरेलू हालतों की ओर खिंचा हुआ है। मैं सउदी-अदब न जा सकने के कारण सच्ची जानकारी के माने में तो कह नहीं सकता, पर जानने वालों तथा ब्रिटिश अफसरों ने कसम खाकर यह बात कही है कि इब्न सऊद अपने बाद सऊदी अरब की हालत की कल्पना से घबड़ाया हुआ है।

वह 'हाशिमी' कल्पनाओं की बुद्धि से डरता है। शायद एक बड़ी सीरियन स्टेट बनाई जावे जो एक 'हाशिमी' राज के आधीन हो, वह इराक और ट्रांसजोर्डन की फ़ौजों को अपने लड़कों से हेजाज छीन लेने के डर से ऐसे भविष्य को सोचकर खौफ खाता है।

इसलिये इब्न सऊद उस दिन की प्रतीक्षा में है जब कि इंगलैंड उसके प्रतिस्पर्धी राज्यों को आक्रमण करने से रोकने में असमर्थ या नाकामयाब हो जाय। इस अगले वाले खतरे का सामना करने के लिये उसने मिस्र से साथ कड़ी मैत्री करने के प्रयत्न किये हैं। मिस्र और राजा फ़ारूक़ ने सऊदी अरब में इब्न सऊद के उत्तराधिकारी की रक्षा करने का वचन दे दिया है। पता नहीं सऊद ने बदले में कौन सा फ़ायदा मिस्र को पहुंचाने का वचन दिया है।

संघ-योजना

लेकिन मिस्र ने उत्तराधिकार सम्बन्धी आश्वासन के साथ ही साथ 'हाशिमी' इरादों को दबाने के लिये सऊदी अरब से गठ बंधन कर रखा है। यह इरादे दो प्रकार के हैं—पहला ट्रांसजोर्डन के अमीर अब्दुल्ला जब अर्नेस्ट बेविन के स्वतन्त्रता देने के प्रस्ताव पर विचार करने लंदन जायेंगे तो वह इराक और ट्रांसजोर्डन के एक संघ में मिल जाने की योजना भी पेश करेंगे। इराक के रीजेण्ट इस सिलसिले में अमीर के लंदन जाने के पहिले उनसे मिलने वाले हैं। अमीर एक ऐसा प्रस्ताव का सुझाव भी रखने वाले हैं जिसके द्वारा १३,००० सिपाहियों वाली अरब लीजिअन काबू में कर लें, पर उनकी तनख्वाह उन्हें न देनी पड़े।

इसके लिये अमीर अब्दुल्ला चाहते हैं कि ईराकी फ़ौज और अरब लीजिअन में गठबंधन हो जाय। दोनों फौजों की तनख्वाहें ईरान ही दे। इस प्रकार दोनों 'हाशिमी' राज्यों के पास समस्त मध्य पूर्व में सबसे ताक़तवर फ़ौज हो जायेगी। इब्न सऊद के दूसरे लड़के ने जो साऊदी अरब के परराष्ट्रमंत्री भी हैं इस योजना को अरब लीग के सन्मुख फैसले के लिये रखने की सम्मति दी है।

बृहत सीरिया

दूसरी हाशिमी योजना जिसे इब्न सऊद और अरब असफल करना चाहते हैं बृहत्-सीरिया की महत्व पूर्ण योजना है। मिस्र और सऊदी अरब दोनों इस संघ के प्रत्येक विरोधी तत्व को भड़का रहे हैं ख़ास कर लेबनान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुओं से आमदनी, सोना बेचना, तथा जहाज़ी आमदनी से हुई। किन्तु इन अंकों का वास्तविक अर्थ क्या है? उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि इटली जितने मूल्य की वस्तुऐं निर्यात करता है, उससे कहीं अधिक मूल्य की वस्तुऐं आयात करता है। इस समय जब कि वस्तुओं का नाम निशान भी नहीं है, जहाज़ी आमदनी का कोई ज़रिया खुला नहीं है और सोना भी देश के पास नहीं है, तब फिर इटली अपनी ज़रूरत की चीज़ें विनिमय में क्या देकर ख़रीदेगा? माना कि इटली कुछ चीज़ें का, तेल तथा शराबें इत्यादि, खाद्य पदार्थ तथा गन्धक और पारा जैसी कच्ची धातुऐं, थोड़ी मात्रा में निर्यात कर सकता है, पर केवल इस निर्यात के बल पर वह उतना कोयला और गेहूँ कैसे प्राप्त कर सकता है, जो उसे जीवित रखने के लिये आवश्यक हैं। इस समय उस कच्चे माल और तैयार वस्तुओं की तो बात ही क्या, जो कि युद्ध कालीन क्षति को पूरा करने के लिये आवश्यक हैं।

बहुत कुछ अंशों में यह काम इटली की शक्ति से परे है। यदि इटली को फिर से एक औद्योगिक देश बनाना है, तो उसे आर्थिक सहायता देनी पड़ेगी, और वह होगी, लगभग १ से लेकर १॥ अरब डालर मूल्य के खाद्य पदार्थ तथा ४ अरब डालर मूल्य के कच्चे माल के रूप में।

समस्या का स्वरूप

इस प्रकार स्वाधीन यूरोप के सभी देशों तथा जर्मनी तथा इटली के विषय में ऊपर दिये गये तथ्यों से क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? फ्रांस एक मित्रराष्ट्र है, उसके पास साधन हैं, और वह अपने आयात का मूल्य चुका सकता है। इटली एक भूतपूर्व शत्रु-राष्ट्र है—जिसके साधन क्षीण हैं, और वह अपने आयात का मूल्य नहीं चुका सकता।

इसके पहले कि विश्व के विजित राष्ट्र इन स्वाधीन और पराजित देशों के बारे में अपनी नीति निर्धारित करें, उन्हें संसार में शान्ति तथा अशान्ति के बीच में एक को चुन लेना होगा। क्या वे वास्तव में शान्ति के इच्छुक हैं और उसकी साधना के लिये निरन्तर लाभप्रद आर्थिक व्यवस्था के पक्षपाती हैं, जिसमें सबको काम और रोटी मिल सके, अथवा वे एक संकुचित व्यवस्था के हामी हैं, जिसमें दूसरे देशों का माल उनके घर में आ जाये? उनको इन दो रास्तों में से एक चुनना पड़ेगा।

यदि वे समस्या के वास्तविक स्वरूप को समझना चाहते हैं तो उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि यूरोप के स्वाधीन देशों की १८,००,००,००० जनता, जो आधे पेट खाकर बग़ैर कोयले के सरदी से ठिठुरती और यातायात के साधनों की कमी से और काम की कमी से दुखमय जीवन बिता रही है, कभी भी शान्तिपूर्वक नहीं रह सकती। ऐसे लोग न तो अच्छे ग्राहक ही हो सकते हैं और न अच्छे पड़ोसी ही, जब तक कि उनको ऐसा बनने में सहायता न दी जाये। इस समय इनके भाग्य का फ़ैसला मुख्य करके अमेरिका और ब्रिटेन के हाथों में है। चूंकि यही दोनों शक्तियाँ इस समय संसार के साधनों जहाज़ी सुविधाओं तथा धन पर अधिकार किये बैठी हैं मित्रराष्ट्र इन्हें भूलकर बहुत दिन तक सुख की नींद नहीं सो सकते। १८,००,००,००० मानव प्राणियों की भावनायें मूक नहीं रह सकतीं। यदि उनकी सरकारें उनकी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो दूसरी शक्तियों को उनकी रक्षा करनी चाहिये। यह पहला कदम होगा।

दूसरा निष्कर्ष पहले के आधार पर निकला है। चूंकि मित्र राष्ट्रों की नीति ही उनकी भाग्य-विधात्री है, अतः उसमें परिवर्तन आवश्यक है। कच्चे माल का निर्यात बढ़ाना होगा ताकि उन देशों की सारी जनता को काम मिल सके। और इस विशाल जन समूह को भूखों मरने से बचाने के लिये खाद्य पदार्थों की भी महती आवश्यकता होगी। बहुत से देशों में सम्भवतः इस समय सदावर्त ही बाँटना पड़ेगा, क्योंकि उनके पास बदले में देने को कुछ नहीं है, साथ ही साथ औद्योगिक मशीनरी के पहियों को चालू रखने के लिये, विदेशी विनिमय के रूप में उधार देने की व्यवस्था भी करनी होगी, ताकि वे अपने उद्योग-धन्धों और निर्यात व्यापार को फिर से चालू कर सकें। अन्तिम रूप से खाद्य पदार्थों को तथा कच्चे माल को ले जाने के लिये जहाज़ चाहिये और यह भी मित्रराष्ट्रों को ही देने पड़ेंगे। यह महान कार्य आज दो बड़ी मित्र शक्तियों के सामने है। देखें वे इसे कहाँ तक निभाने की योग्यता दिखाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलूचिस्तान का भविष्य

खान अब्दुल समद खां

[बलूचिस्तान का भविष्य क्या होगा—यह भारतवर्ष के सम्मुख आज एक महत्वपूर्ण समस्या है। खां अब्दुल समद ख़ां ने, जो बलूचिस्तान के माने हुए राष्ट्रवादी नेता हैं, इस लेख में इसी विषय पर अपने ऊँचे और सुलझे हुये विचार पेश किए हैं - सं०]

आज जब कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के सम्बन्ध में बात चीत चल रही है बलूचिस्तान की जनता ने भी अपने स्वायत्त शासन के लिए आवाज़ उठाई है। इस मांग के पीछे कई राजनैतिक संस्थाएँ, क़बीले और अन्य प्रामाणित संस्थाएँ हैं। बहुतेरे बलूची, जिनमें कुछ राजनैतिक चेतना आ गई है, सोच रहे थे पता नहीं इस बार उनका क्या होगा। वे १९०९,१९१९ तथा १९३५ के कटु अनुभवों को भूले न थे जब बाक़ी भारत तो आज़ादी की ओर काफ़ी अग्रसर हुआ पर बलूचिस्तान पीछे ही पड़ा रहा।

कुछ प्रमुख नेताओं का विश्वास था कि अंग्रेज़ों ने बलूचिस्तान को इस प्रकार से बहिष्कृत कर रक्खा है कि वे अब तक इस प्रान्त में किसी सुधार की ज़रूरत ही नहीं समझते। आज की हालत में इस बात पर ध्यान देना कि आनेवाली स्वतन्त्रता किस प्रकार की हो, बेमौक़े है। हमें तो आज प्रान्तीय स्वायत्त शासन की संयुक्त मांग पर अपनी शक्ति लगानी है। और अब जब कि यह उसूल मान लिया गया है इसका पूरा नक़्शा बाद में भी बन सकता है।

ब्रिटिश मंत्रि मिशन ने, जिसने यह घोषणा की है कि वह भारतवर्ष को छोड़ने के विचार से यहां आया है, हमारे नेताओं को अपनी तत्परता और ईमानदारी से प्रभावित कर हिन्दुस्तानियों के हाथों में किस तरह आसानी से शक्ति सौंपी जाय–इस पर बहस करने के लिए उनका सहयोग भी प्राप्त कर लिया। इस सहयोग का आख़री नतीजा क्या निकलेगा यह अभी नहीं बताया जा सकता। मन्त्रिमिशन ने आख़िर सम्पूर्ण भारत से कूच करने का निश्चय कर ही लिया है। मन्त्रिमिशन के अपना कार्य समाप्त करते ही विधान निर्मात्री सभा द्वारा क़ायम सरकार बलूचिस्तान के भविष्य का फ़ैसला ज़रूर करेगी।

निर्णय चाहे कुछ भी हो, देश के प्रतिनिधिगण, जो काफ़ी कार्य-कुशल हैं और जनता के हितैषी हैं, अंग्रेज़ों की भांति हम पर हरगिज़ ज़ुल्म नहीं ढायेंगे। सम्पूर्ण देश का ध्यान रखते हुए आवश्यकतानुसार वे अवश्य ही उन बातों में हमसे परामर्श करेंगे जिनका सम्बन्ध हम लोगों से ही होगा और धर्म, संस्कृति, भाषा तथा राजकर सम्बन्धी विषयों पर समस्त भारतवर्ष के लिए कुछ विस्तृत तथा मौलिक सिद्धान्तों का निर्माण करेंगे। यह आख़री फ़ैसला समझा जायगा। पर इसका हरगिज़ यह मतलब नहीं कि बलूचिस्तान की जनता अपने भविष्य के सम्बन्ध में विचार न प्रकट करे। हमें निस्सन्देह उन स्वार्थी लोगों के प्रयत्नों का तिरस्कार करना चाहिये जो इस समस्या को झगड़े का विषय बनाना चाहते हैं। वास्तव में बलूचिस्तान के भविष्य का पाकिस्तान से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि पाकिस्तान की मांग पूरी नहीं हुई तो भी बलूचिस्तान का मसला सुलझाना बाक़ी रहेगा और यदि पूरी हो गई तो इसके नीचे लिखे पांच सुलझाव हैं :

१—स्वतन्त्र पाकिस्तान के साथ इसका संसर्ग होने पर भी इसकी चौहद्दी यही रहे।

२—इसको सिन्ध के साथ मिला दिया जाय।

३—सीमा प्रान्त के साथ मिला दिया जाय।

४—इसके खण्ड-खण्ड कर दिए जायँ जिससे बलूची भाग सिन्ध से, पठान भाग सीमा प्रान्त से तथा कुछ भाग पञ्जाब से मिल जाय।

५—पठान भाग सीमान्त से मिल जाय और बलूची बोलान की रियासतें, नसीराबाद, अरस्था मोहम्मद, मरी बगाई तथा ख़तरान, पञ्जाब का डेरा ग़ाज़ी ख़ां तथा सिन्ध के बलूच भागों को तथा जैकोबाबाद आदि को मिलाकर एक नये बलूच प्रान्त की रचना की जाय जिसकी जनसंख्या २० से ३० लाख तक की होगी।

पहला सुलझाव स्वभावतः सब को अच्छा लगेगा कारण, हम सब हमेशा से ब्रिटिश सत्ता के आधीन रहे उससे पूर्व अफ़ग़ानों के अधीन एक साथ रहते आये हैं। परन्तु इसमें निम्नलिखित कठिनाइयां हैं। पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलूचिस्तान आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है। वर्तमान अवस्था एक करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता से चलती है। यदि हम न्याय, स्वास्थ्य, उद्योग-धन्धे, कृषि तथा शिक्षा आदि विभागों की व्यवस्था साधारण ढंग पर करना चाहें तो कम से कम ४ करोड़ रुपये की केन्द्र सहायता की ज़रूरत होगी जिसे या तो केन्द्र से वसूल करना होगा या और कहीं से। दूसरे, हमारी जनसंख्या कुल १२ लाख है। कोई भी व्यक्ति यह प्रश्न पूछ सकता है कि इतनी थोड़ी संख्या पर इतना अधिक ध्यान क्यों हो? ऐसी अवस्था में प्रान्त के कर को, जो खनिज, पेट्रोल, क्रीम, गन्धक, कोयला आदि से आता है, बढ़ाने के तरीक़े सोचने पड़ेंगे। निकट भविष्य में बलूचिस्तान की जनसंख्या में काफ़ी बढ़ती सम्भव नहीं। दूसरे प्रान्त वालों के अन्तःप्रवेश से तो यहां भी बर्मा, फ़िलिस्तीन तथा दक्षिणी अफ़रीका की भांति नई समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। साथ ही साथ तीन देशी रियासतों के भावी स्थान का प्रश्न भी स्थिति को जटिल बना रहा है।

भाषा सम्बन्धी गुत्थी को भी सुलझाना है। यह मानी हुई बात है कि किसी भी राष्ट्र की शिक्षा का माध्यम उसकी अपनी भाषा होनी चाहिए। बिना इसके राष्ट्र का विकास असम्भव है। पर बलूचिस्तान की भाषा का प्रश्न बड़ा जटिल है। अपने पड़ोसी अफ़ग़ानों तथा पख्तून के लाल कुर्त्ती आन्दोलन के प्रयत्नों से 'पश्तो' भाषा न केवल पुनर्जीवित की जा रही है बल्कि वह सर्व-साधारण भाषा बनती जा रही है। इसलिये बलूचिस्तान के बलूची कभी भी पश्तो की जगह उर्दू, सिन्धी या फ़ारसी को अपनाना न चाहेंगे। इसके फलस्वरूप वे भी शेष बलूचिस्तान के पठानों की तरह बलूचिस्तान के इतिहास से पिछड़े रह जायेंगे।

दूसरा उपाय यह है कि सिन्ध और बलूचिस्तान एक कर दिये जायँ। ऐसा करने से अर्थ और जनसंख्या का प्रश्न एक दम हल हो जाएगा पर संस्कृति और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ उग्र रूप धारण कर लेंगी। कारण, यह याद रखना चाहिए कि सिन्धी भाषा पूर्ण विकसित साहित्य से परिपूर्ण है। स्कूलों में यह शिक्षा का माध्यम है और अदालतों में भी इसीका प्रयोग होता है। बलूचियों के लिए यह एक बड़ी मुशकिल बात होगी कि वे अपनी मातृभाषा को छोड़कर नये सिरे से सिन्धी भाषा को अपनावें। इसके अलावा बलूची और सिन्धी के बीच सभ्यता, संस्कृति और रीति-रिवाज में भी बड़ा भेद है। सिन्धी अधिक शिक्षित और धनवान होने के कारण बलूची को सदा मज़दूर की हैसियत से अपने आधीन रखना चाहेगा। यह स्पष्ट है कि निकट भविष्य में भारत-वर्ष में एक नया युग आनेवाला है और तब जनता का आर्थिक शोषण भी एक नया रूप धारण करेगा। सरकारी नौकरियाँ इतनी अधिक हो जायेंगी कि आरम्भ में तो नौकरियां ही लोगों की प्रतीक्षा किया करेंगी। उदाहरण के लिए जनता की शिक्षा का विकास ही ले लीजिए जिसके लिए आशा की जाती है कि स्वतन्त्र भारत अपनी सारी शक्ति लगा देगा। यदि स्कूलों की संख्या दूनी कर दी गई तो क्या अध्यापक पर्याप्त संख्या में मिल सकेंगे? और यही अवस्था अस्पतालों, फैक्ट्रियों और अन्य कारख़ानों की भी होगी। कृषि उतनी लाभ-दायक नहीं सिद्ध हो सकेगी। केवल वाणिज्य और उद्योग-धन्धे अधिक से अधिक मुनाफा देकर शोषण के क्षेत्र तैयार कर सकेंगे। मान लीजिए कि १ करोड़ की कोई कम्पनी खुलती है और उसे सम्पूर्ण सिन्ध और बलूचिस्तान के कोयले की खुदाई का ठेका मिल जाता है तो यह स्पष्ट है कि बलूचिस्तान के लोग उस कम्पनी में नाम मात्र के लिए हिस्से ले सकेंगे। इसी प्रकार की और कम्पनियों जैसे एक खनिज पदार्थों की खुदाई की, दूसरी पेट्रोल की और तीसरी लकड़ी आदि की, का भी आप भली भांति अन्दाज़ा लगा सकते हैं। ऐसी हालत में बलूची ख़ुद अपने प्रान्त के उत्पादनों के उपभोग से वंचित रह जायेंगे। उन्हें तो नौकरियों और मज़दूरी से ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा और स्वयं उनके प्रान्त के पूँजीपतियों का उन पर बोलबाला रहेगा।

तीसरा सुझाव है कि बलूचिस्तान और सीमान्त एक हो जायँ। इससे पठानों को जो बलूचियों से संस्कृति और भाषा में अधिक भिन्न नहीं हैं, बहुत लाभ पहुंचेगा। और जो किसी ख़ास क़बीले से ताल्लुक नहीं रखते उन्हें भी लाभ पहुंचेगा। पर जो लोग एक अलग जाति बन-कर रहना चाहेंगे उन्हें यह स्कीम अच्छी नहीं लगेगी। आर्थिक प्रश्न यद्यपि उतना विकट नहीं रहेगा तथापि रहेगा अवश्य। मौजूदा हालत में सीमान्त तथा बलू-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिस्तान के स्वतन्त्र पठानों के विरुद्ध दण्ड और तथाकथित सुरक्षा की कार्रवाइयों के लिए केन्द्रीय सरकार लगभग ४ करोड़ रुपये ख़र्च करती है और जब ये कार्रवाइयाँ कार्य रूप में परिणित होती हैं तो बेचारे निहत्थे पठानों के ऊपर बमबाज़ी करके उनका सर्वनाश करने का प्रयत्न किया जाता है।

यदि केन्द्रीय सरकार यही रक़म भविष्य में भी दे तो नये प्रान्त के पुनर्निर्माण तथा विकास की स्कीम की आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी और इससे आज के १० लाख की अपेक्षा १ करोड़ जनता को लाभ पहुंचेगा। इसके अलावा यह स्कीम भाषा, संस्कृति तथा जनसंख्या की समस्या को सुलझाते हुए आर्थिक शोषण के प्रश्न को भी हल कर सकेगी। याद रहे कि अभी हाल में ही तख़्तमज (सीमा प्रान्त) के निवासी एक मामूली शीशे का कारखाना खोलने के लिए आपस में पर्याप्त रक़म न जुटा सके और उन्हें विवश होकर कलात के ख़ां के सामने २ लाख के लिए हाथ फैलाना पड़ा। पर सिन्ध की स्थिति ऐसी नहीं है। ऐसे ऐसे वहां कई कारख़ाने हैं। नये प्रान्त की जनता जो भी उन्नति कर सकेगी वह तो सरकार के पूरे सहयोग से ही प्रतिनिधियों की होगी और वह कभी यह न पसन्द करेगी कि एक गुट के लोग दूसरों का शोषण करें।

चौथी स्कीम नोश्की झीलवाल, सारावान, बोलान, खालान और लाखरान जैसे निवासियों के जाति सम्बन्धी सामंजस्य पर ध्यान देते हुए चाहती है कि उन सबको बलूचिस्तान के पठान प्रान्त में सम्मिलित कर लिया जाय। हो सकता है कोरी भावुकतावश यह व्यवस्था सराहनीय न हो और वर्त्तमान चौहद्दी को क़ायम रखने से सम्भवतः लास-बोला, नज़ीराबाद तथा कच्ची के लोगों को, जिन्होंने सिन्धी भाषा को अपना लिया है तथा जिनकी ज़मीन्दारी सिन्ध की नहरों के किनारे स्थित है, भी लाभ हो।

अन्तिम स्कीम के अनुसार हम महान पठान जाति के ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, पंजाब, बलूचिस्तान और सीमान्त में दैवयोग से बिखरे हुए अवशेषों को एकत्रित कर एक माला में पिरो सकते हैं। इस प्रकार बलूची भाषा जो आज मृतप्राय हो रही है, पुनर्जीवित भी की जा सकती है। इस स्कीम के सामने कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। प्रथम, यदि डेरा ग़ाज़ी ख़ां, मुलतान डिवीज़न तथा बहावलपुर स्टेट को नये प्रान्त में सम्मिलित करने के लिए निकाल लिया जाय तो मुसलिम बहुमत की शक्ति को अवश्य धक्का पहुँचेगा। इसी तरह लिंग सक्खर, जकोबाबाद, स्तरकाना और दादू को निकाल देने से हिन्दू-मुसलिम अनुपात में गड़बड़ी मच जायगी। सारांश यह कि प्रस्तुत बलूच विभागों का सम्मिलन पड़ोस के मुसलिम बहुमत वाले प्रान्तों के साम्प्रदायिक अनुपात को भंग कर देगा। यह विचार महान बहुसंख्यक जाति को टुकड़े टुकड़े करने के लिए तथा उनके वैयक्तिक अस्तित्व के अधिकार को सदा के लिए अस्वीकार करने के हेतु कदापि आवश्यक नहीं है। हां यदि वर्त्तमान अनुपात को क़ायम रक्खा गया तो कभी न कभी अम्बाला डिवीजन को पंजाब से निकाला ही जायगा। तीसरे, इस बँटवारे में शामिल होनेवाली चार रियासतें कलात, खैरपुर, बसीला और खलान शामिल हैं जो न उन्नतिशील हैं और न जनतन्त्रात्मक, और बिना भविष्य दुःख का साधन बना रहेगा। अभी बिखरे हुए भागों को सम्मिलित करने के लिए बलूचिस्तान में कोई आन्दोलन भी नहीं चल रहा है और न यह मालूम पड़ता है कि वे सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा सम्बन्धी सामजस्य स्थापित करने की भावना से प्रभावित हैं। इसके प्रतिकूल बलूची जहां कहीं भी जाते हैं वहां के निवासियों में घुलमिल जाते हैं और उनकी भाषा को अपना लेते हैं; जैसे सिन्ध और पंजाब के बलूचियों ने किया है।

अतः यदि बलूची युवक अपने धनिकों की सहायता से उपरोक्त कठिनाइयों को दूर कर दें तो भारत के सीमान्त दो मिले-जुले तथा सैनिक जातियों का उदय देखेगा। दोनों का आधार पूर्ण समानता होगा। उनकी भाषा, संस्कृति और सभ्यता भी एक होगी। दो स्वायत्त प्रान्त अपनी सैनिक परम्परा को पूर्ववत ही बाहरी हमलों के सम्मुख सुदृढ़ और प्राचीर का काम करेंगे और दोनों ही अपनी [illegible] तथा जनसंख्या सम्बन्धी पुनर्व्यवस्था का लाभ [illegible] सकेंगे।

[काशी राहुल]

नेशनल प्रेस [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उग्र राष्ट्रीयता को वे तरजीह देते हैं। इब्न सऊद अपने खानदान के लिये किसी विस्तृत साम्राज्य की कल्पना नहीं करता, वह तो केवल अपने प्रतिस्पर्धियों को महत्वपूर्ण स्थलों पर क़ाबिज़ होने से रोकना चाहता है। लेकिन पूर्व से आने वाली नई हवा ने इस खानदानी तकशे को भी उतना ही बेतरतीब कर दिया है जितना अङ्गरेज़ों की रक्षा कतार को।

नई योजना

मध्य पूर्व में रूसियों का प्रभाव फ़ौजी सरगमियां दिखलाने से नहीं बढ़ सकता। रूसी तो लारेंस की निर्धारित पद्धति के अनुसार चल रहे हैं। वे वही उपाय काम में ला रहे हैं जिनको कि बहुत बरस पहिले अङ्गरेज़ों ने तुर्कों के विरुद्ध प्रयुक्त किया था।

वे ईरान, सीरिया, लेबनान और मिश्र के पांच लाख आर्मीनियनों की मदद कर रहे हैं। यह कदम तुर्कों के विरुद्ध है। फिर रूसी किसी भी समय कुर्दों व इराक के असंतुष्ट वर्गों की खुल्लम खुल्ला मदद कर सकते हैं। उनकी तैयारी काफी हद तक पूरी हो चुकी है और इस प्रकार के आक्रमण से बचने के उपाय बहुत ही कम हैं। रूसी सीरिया और लेबनान के द्वारा उन पर ब्रिटिश-कब्जे व तत्संबन्धी संधि विरोध की भी खुले और दोनों उपायों से मदद कर रहे हैं। वे हर प्रकार लेबनान वासियों और सीरियनों की इस मांग को प्रोत्साहित कर रहे हैं कि अङ्गरेज़ मध्य-पूर्व से अपना बिस्तर उठा लें।

संक्षेप में अरब रियासतों की प्रतिक्रिया एक कुनौती के प्रत्युत्तर में है जिसे वह सारे मध्य-पूर्व की स्थिरता और बुनियाद को ही बदल कर उलट देने समझते हैं। गोकि अभी यह स्पष्ट नहीं है कि रूस कोई आक्रमण करने की मंशा है पर यह साफ है कि अङ्गरेज़ी प्रभाव को मध्य-पूर्व में तत्काल ख़त्म करना चाहता है। एक तरह से सोवियत का यह कदम अङ्गरेजों की पिछले महा युद्ध की कूटनीति से अधिक नपा तुला है।

नयी संकट

जिस तरह लारेंस और उनके साथी तुर्कों और जर्मनों के खिलाफ जीते उसी तरह रूसी भी अवश्य विजयी होंगे। पर इसके साथ ही साथ यह भी तय है कि सारे मध्यपूर्व में आतंक गड़बड़ी व बेतरतीबी फैल जायेगी और शायद अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष की नौबत भी आ जाय। सैनिक दृष्टि से सोवियत् रूस कई बरसों तक मध्य-पूर्व में वह सामान नहीं मोहय्या कर सकेगा जिसकी कि उसे अत्यन्त आवश्यक होगी।

इस प्रकार संकट अब आ चुका है। उसने कई रूप धारण कर लिये हैं। वह केवल सन् १९१८ की ही पुनरावृत्ति नहीं है। उस समय की आन्तरिक और वाह्य स्थितियों में और आज की स्थितियों में बहुत फ़र्क है। यहूदीवाद, अरब संघ, फिलिस्तीन का मामला आदि आज के प्रमुख मसले हैं और ये काफ़ी साफ़ मसले हैं। पर उनका उचित विश्लेषण गहराई तक पैठ कर ही किया जा सकता है। उनकी गहरी प्रवृत्तियां ही मध्य-पूर्व के संकट का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू बनाती हैं। अरब-यहूदी संघर्ष तो नगण्य है।

फिलिस्तीन और मिश्र में मैं जितने दिन भी ठहरा, मुझे ऐसा मालूम होता था मानो मध्य-पूर्व के ऊपर कोई श्राप सा लगा हुआ है। जनता और ख़ास कर राजनैतिक नेता खुले आम वह बात नहीं कहते थे जो उनके मन में होती थी; राजनैतिक मामले गुप्त और छिपे तौर पर सोचे-विचारे जाते थे। कोई भी उन्हें सार्वजनिक रूप से सामने रखने की कोशिश न करता था।

इस प्रकार की बातों से अविश्वास का डर बहुत अधिक है, खासकर जब मिस्र व फिलिस्तीन अगले ९ महीनों के अंदर यह निश्चय करेंगे कि मध्य-पूर्व में ब्रिटेन की स्थिति तथा प्रभाव पूर्ववत् रहेगा या नहीं। शायद बाज़ी इससे भी कहीं बड़ी है क्योंकि इस कशमकश में दुनिया की कुछ सबसे बड़ी ताक़तें लगी हुई हैं जैसे, अंग्रेज़, मुसलमान, यहूदी, अमेरिका, फ्रांस और सोवियत् रूस। यही दो मुल्क (मिस्र और फिलिस्तीन) इस बात की कसोटी हैं कि अया ब्रिटेन की मज़दूर सरकार परस्पर विरोध रखने वाले एक अहम मसले को हल कर सकती है या नहीं; अथवा घरेलू मामलों, और बाहरी मामलातों, दोनों में क्या समाजवादी सिद्धान्त पालन किये जा सकते हैं? आज तक कभी यह नहीं किया जा सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने ज़माने में ऐथेंस ने ऐसी असफल कोशिशें की थीं; रूस तो अभी कोशिशें कर ही रहा है।

फ़िलिस्तीन का सवाल

फ़िलिस्तीन की समस्या को ही ले लीजिये। ज़ाहिरा प्रत्येक अरब नेता पूरी तरह से यहूदियों के खिलाफ है। उसी तरह, सार्वजनिक रूप में बहुत कम यहूदी नेता सारे फ़िलिस्तीन में यहूदी राज्य कायम करने की अपनी मांग को कम करने को तैयार हैं, या यहूदी बहुमत, और बाहर से यहूदियों के बहुत बड़ी मात्रा में लाये जाने को ही रुकने देना चाहते हैं। ठीक इसी तरह, हरेक प्रमुख फ़िलिस्तीनी ब्रिटिश अधिकारी सार्वजनिक तौर पर केवल इस बात पर ज़ोर देता है कि यहूदी और अरबों का झगड़ा कभी नहीं सुलझ सकता, और वह केवल ब्रिटिश शस्त्रों के ज़ोर पर ही दबा रह सकता है।

व्यक्तिगत मत

पर जब हम उन्हीं अरब या यहूदी नेताओं को उनके व्यक्तिगत पहलू से देखते हैं तो बहुत बड़ा फ़र्क पाते हैं। ज़ाहिरा जो बात जनता के सामने कही जाती है, वही व्यक्तिगत तौर पर बिल्कुल दूसरी तरह कही जाती है। अरब संघ के एक नेता की 'व्यक्तिगत राय' का नमूना ले लीजिये :—

"फ़िलिस्तीन के मामले को दूरन्देशी से देखते हुए हम मध्य-पूर्व में अरब-संघ की दृष्टि से कह सकते हैं कि स्व-शासनाधिकारी यहूदी रियासत फ़िलिस्तीन के साथ जुड़ी होगी। यह प्रगति आनेवाले १० या १५ वर्षों के अन्दर हो जायेगी।

"यह शायद तब ही हो सकता है जब यहूदियों और अरबों में एक साथ काम करने की भावना और एक नागरिकता की भावना फैले। जैसे जैसे यूरोप की दशा ठीक होती चली जायेगी और वहां के यहूदी पुनर्निर्माण की योजनाओं में लग जायेंगे और इस तरह वहां के पीड़ित यहूदियों की पुकार, जो कि फ़िलिस्तीन के यहूदी-वाद को सबसे अधिक मदद देकर भड़का रही है, बहुत कुछ कम हो जायेगी।

"ऐसा मालूम पड़ता है कि धीरे धीरे फ़िलिस्तीनी यहूदियों की एक पार्टी खड़ी हो जायेगी जो न तो पोलिश होगी, न रूसी होगी, न जर्मन होगी, बल्कि फ़िलिस्तीनी रहेगी। यहूदी फ़िलिस्तीन के ऊपर फ़ख्र करेंगे और पश्चिमी संस्कृति को पूर्वीय सभ्यता से अधिक ऊंचा नहीं मानेंगे। लेकिन इस सबमें समय लगेगा, और वही धीरे यहूदी नेता इस बात को मानेंगे कि वे अधिक से अधिक तक अंग्रेजी संगीनों के बल पर नहीं टिक सकते।"

इस अरब नेता की राय में अरब-संघ की योजना तब तक काम नहीं कर सकती जब तक कि अरब-संघ लीग के अन्दर काम करने वाले प्रतिस्पर्धी खानदानी स्वार्थ ख़त्म नहीं हो जाते।

इसीलिये, इस नेता की राय के अनुसार चलने वाले अरब-नेताओं ने सीरिया को ट्रांसजोर्डन के अमीर अब्दुल्ला की योजनाओं का मुक़ाबला करने के लिये उक्साया, गोकि यह योजना अंग्रेज़ों के द्वारा पोषित की गई थी (यह योजना अब्दुल्ला के शासनाधिकार में एक बृहत् सीरिया की थी), इराक में भी, इस अरब नेता के अनुसार एक जन-तंत्र आन्दोलन शुरू हो जाने की सम्भावना है।

मिस्र को रूसी खतरा

मिस्र के बारे में इस नेता के हूबहू यह शब्द हैं— "मिस्र को तमाम अरब मुल्कों में से सबसे ज्यादा रूसी खतरा है। अपने सामन्तवादी शासन की वजह से, पूंजीपतियों और ज़मीदारों के शासन-गत प्रभाव के कारण और निम्न-वर्ग की अत्यन्त दयनीय हालत के कारण रूस का प्रचार वहां इराक और ट्रांसजोर्डन से कहीं ज्यादा असर करेगा।"

लीग के दूसरे मेम्बरों के ख़्यालात कुछ दूसरी तरह के भी हैं और वे उन पर काफी मज़बूत हैं। पिछले झड़ के समय संघ के योग्य मंत्री आज़म पाशा, जब गये उस समय इब्न सऊद ने अपने साथी अरब मेम्बरों को ख़तरे का अल्टीमेटम-सा दिया था।

उसने इस बात की धमकी दी थी कि अगर पूर्व के यहूदियों और अमेरिका के मध्य-पूर्व में वाले सामान का बायकाट न किया गया तो अरब के प्रतिनिधियों को वह संघ से वापस बुला लेगा। उसने यह भी प्रार्थना की कि अरब-संघ के अधिकार एक अरब सेना फ़िलिस्तीन भेजी जाय।

यह और इसी तरह की अन्य कट्टर मांगों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा विचार किया गया पर अंत में आज़म पाशा की उग्र नीति ही मानी गई और इतना कड़ा निश्चय न किया गया।

सोवियत् मुसलिम दल

इस समय रूसी भी अरब संघ में बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने काहिरा में शाह फ़ारूक़ से रिश्ता क़ायम कर लिया है। दूसरे प्रमुख अधिकारियों से सोवियत् दूतावास के दूसरे मुस्लिम सेक्रेटरी सुल्तानोव के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया गया। श्री सुल्तानोव मध्यपूर्व में रूसियों के मुख्य 'बात चीत और मेल मुलाक़ात' करानेवाले मध्यस्थ हैं। इनकी मदद के लिये हाल ही में रूसी 'ब्लाक' या मददगारों में से एक अन्य मुस्लिम, काहिरा में नये यूगोस्लाव राजदूत, आ गये हैं।

ज़ाहिरा तौर पर रूसी यह ख़याल करते हैं कि अरब संघ ब्रिटिश राजनीति के हाथों एक खिलौना है, पर अभी बिलकुल ही ऐसा नहीं है। दूसरी ओर संघ ने उनको दुबारा विश्वास दिलाया है कि मध्यपूर्व की राजनैतिक लड़ाइयों में वह तटस्थ है और अपने को दोनों के झगड़ों को ज्यादा बढ़ने से रोकनेवाली ताक़त समझता है न कि दोनों में लड़ाई बढ़ानेवाला।

सिर्फ़ फिलिस्तीन के मामले में ही संघ की कोई निश्चित नीति मालूम होती है। यहूदी रियासत की किसी भी तरह स्थापना के वे बहुत विरुद्ध हैं, और इसके लिये संघ और अरब-राज्यों ने, ख़ास कर यहूदियों के बाहर से लाये जाने की सारी जिम्मेदारी अंग्रेज़ी सरकार पर डाल दी है।

अगर उनसे आज्ञा-पालन करने को कहा जाय तो वे इन्कार कर देंगे, पर यह अभी संदिग्ध है कि वह किसी भी ब्रिटिश निश्चय का मुक़ाबला करेंगे या सिर्फ़ अपने गुस्से का इज़हार करके ही रह जायेंगे।

फिलिस्तीन के यहूदी नेताओं में भी सार्वजनिक तौर पर दूसरी क़िस्म की बातें करने और व्यक्तिगत रूप से दूसरा तर्ज़ अख़्तियार करने की आदत है। सैनिक और आर्थिक उन्नति के मुक़ाबले में स्थानीय राजनीति की असफलता का यह एक ज़बर्दस्त उदाहरण है।

भावनात्मक अकर्मण्यता

यहूदियों की उम्मीदें ब्रिटेन में मज़दूर सरकार के आते ही गईं। इसलिये बाद को होनेवाली नाउम्मीदी भी काफ़ी जबर्दस्त रही। ६० लाख यहूदियों के यूरोप में कत्ल हो जाने की ख़बर ने भी उनकी भावनाओं को काफ़ी धक्का पहुंचाया। उन मरे हुओं से कोई न कोई यहां फिलिस्तीन के कुटुम्बों का रिश्तेदार ज़रूर रहा होगा। इस तरह कड़वाहट तथा घृणा की भावनायें बढ़ गई हैं और नाउम्मीदी का सार्वजनिक वातावरण छा गया है।

इस घृणा की भावना ने यहूदियों को अपनी मांगों पर दृढ़ कर दिया है। उन्हें सल्तनत, बहुमत, बाहर से आने की इजाज़त, सब चाहिये। इससे कुछ भी कम देना, उनके प्रति धोखेबाज़ी होगी।

यह भावना का उफ़ान यहूदी नेताओं को लम्बी दृष्टि से अकर्मण्य कर देता है और उनको एक रास्ते पर और डाल देता है जिस पर ये जानते हैं कि वे ठहर नहीं सकते। जनता में ब्रिटेन के प्रति बहुत घृणा है, और यह जानकर कि फिलिस्तीन में अङ्गरेज़-यहूदी-अरब तीनों के साझे की मज़दूर सरकार को आवश्यकता है, जनता में उनके प्रति घृणा और भी बढ़ गई है। प्रत्येक क़दम पर उनके काम शंका की दृष्टि से देखे जाते हैं, कि कोई समझौता अरबों या अङ्गरेज़ों से बिना संघर्ष के हो सकता है।

छिपे तौर पर वे समझते हैं कि अगर अगले पांच साल के अन्दर यहूदियों का बहुमत नहीं होता तो उनके लिये अरबों को निकालना मुश्किल हो जायगा, जिनकी तादाद भी लगातार बढ़ती जा रही है।

अरबों की जनसंख्या में वृद्धि

आजकल फिलिस्तीन में अरबों की जनसंख्या का अनुपात सौ में पचपन है, जब कि यहूदियों की जनसंख्या का अनुपात सौ में तैंतीस ही है। इसके अलावा अरबों की मृत संख्या पूर्वीय देशों में सबसे कम है। इस प्रकार अगले पांच साल में अरब-जनता की तादाद चालीस हज़ार सालाना बढ़ेगी। इस संख्या में और भी वृद्धि की सम्भावना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह धारणा भी ज़ोरों पर है कि यह सत्रहवाँ कमीशन जो फिलिस्तीन में जांच करके बाहर जा रहा है, अगर यहूदियों और अरबों में समझौता कराने में सहायक हो, तो कितना अच्छा हो।

भड़कता हुआ मिस्र

मुझे ऐसा लगा मानो मिस्र फिलिस्तीन से भी ज़्यादा ख़तरे का चित्र बनने जा रहा है। फिलिस्तीन में तो आजकल का झगड़ा 'स्टर्न गैंग' और 'इरगुन ज्वेई ल्यूमी' नामक संस्थाओं के मेम्बरों द्वारा फैलाया हुआ है। ये दल संख्या में दो हज़ार से ज़्यादा नहीं हैं और ये 'अर्ध-सरकारी-यहूदी-सुरक्षा-संघ' से भी अलग हैं (इसका नाम 'हगानाह' है)। लेकिन मिस्र में अंग्रेज़ों के प्रति घृणा की एक भीषण लहर फैल रही है जो कि सरकारी ख़बरों में बहुत कम करके बतलाई जाती है।

शाह फ़ारूक के नज़दीकी दरबारी अङ्गरेज़ों से काफ़ी नाखुश हैं, ख़ासकर उन्हें अङ्गरेज़ राजदूत लार्ड किलअर्न से ज़बर्दस्त नफ़रत है। किलअर्न के ऊपर अलामीन की लड़ाई के दिनों में फ़रवरी सन् '४२ में, ज़बर्दस्ती हथियारों से धक्का दे कर मन्त्रि-मंडल बदलवाने का अभियोग लगाया जाता है।

स्वयं अङ्गरेजों और उनके तरफदारों के कत्ल को जारी रखे जाने की इच्छा कई प्रमुख मिस्री नागरिक करते हैं ताकि अङ्गरेज समय की रफ़्तार को पहचान सकें। बढ़ते हुए सामाजिक दबाव, ट्रेड-यूनियन और समाजवाद के बढ़ते हुए आन्दोलन, मुस्लिम भाईचारे की भावना की प्रगति, बढ़ते हुए कम्यूनिस्ट प्रचार आदि ने अनुदारवादी मिस्री दलों को ऐसी राष्ट्रीय मांगों का समर्थन करने को मजबूर किया है जिनसे भीतरी सुधार अथवा सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो सकती हैं।

अंगरेज़ विरोधी-नीति

इस सबका नतीजा यह है कि राजनीति से परिचित प्रत्येक मिस्री नागरिक सदा अंग्रेजों के मिस्र छोड़कर चले जाने के समय की प्रतीक्षा में रहता है। वह सूडान के वापस मिस्र को दिये जाने की भी प्रतीक्षा में है। अगर इन दोनों में से कोई भी कार्य शीघ्र नहीं होता तो अंग्रेज-विरोधी भावना बढ़कर प्रत्येक विदेशी के ख़िलाफ़ चाहे वह यहूदी, यूनानी, आरमीनियन कोई भी क्यों न हो, आन्दोलन के रूप में हो जायेगी। अंग्रेज तो इस ओर से बरी अवश्य ही नहीं होंगे, पर इसकी लपेट में, अरब संघ के मन्त्री आजम पाशा के अनुसार सारा फ्रेंच उत्तरी अफ्रीका भी आ जायगा।

सोवियत् रूस एक शान्त मध्य-पूर्व नहीं चाहता। वह सामाजिक और अल्प-संख्यक जातियों के सवाल से मध्य-पूर्व को सदा उत्तेजित रखना चाहता है। अमेरिका मध्य-पूर्वी मामले को अमेरिका व्यापार के फैलाव के उपयुक्त क्षेत्र के रूप में देखता है। उसकी बातचीत मिस्र जैसे मुल्कों से इस हद तक हो चुकी है कि ब्रिटिश पौंड पावने के हटते ही, अमेरिकन व्यापार आर्थिक क्षेत्र को हथिया लेगा।

फिलिस्तीन को छोड़कर सारा मध्य-पूर्व संसार के उन थोड़े से देशों में है जो दूसरे संसार-व्यापी महायुद्ध के फलस्वरूप होनेवाली सामाजिक क्रान्तियों से बचे हुए हैं। पर यह स्पष्ट है कि यह इलाका भी बाकी दुनिया के साथ उन्नति के मार्ग पर लँगड़ाता हुआ नहीं चल सकता। उसे भी अपनी सामाजिक प्रगति दुहरानी होगी और इस प्रकार वहाँ भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

[अनु०—नारायणदत्त तिवारी]

युग का अपराध

श्री० प्रभाकर माचवे

तुमसे क्या तक़रार, साथी, यह तो युग का ही अपराध

वादे किए जहाँ जाते हैं सिर्फ ज़बानी
नहीं निबाही जाती है शाब्दिक कुरबानी;
होठों से निकली कि हवा में बिलमी वाणी;
तुमसे कैसी रार, साथी, यह तो युग का आर्त-निनाद!

कल के मित्र शत्रु बनते हैं, बुरी हवा
कल तक जो थे रोग वही बन गए दवा;
कल तक जिसको कहते थे हक़ वही बन गया अब बकवास
तुमसे क्या इक़रार, साथी, यह तो युग से वाद-विवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीन यूरोप के देश

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात मित्र राष्ट्रों द्वारा स्वाधीन किये गये देशों में यूरुप के बहुत से राष्ट्र आ जाते हैं। फ्रांस, इटली, पौलैण्ड, डेनमार्क, बेलजियम, हालैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, युगो-स्लाविया आदि देश इसी श्रेणी के हैं। युद्ध के पहले ये स्वतन्त्र राष्ट्र थे। इनका अपना फलता-फूलता व्यवसाय वाणिज्य था, किन्तु हिटलर की आंधी के आगे यह बुरी तरह पददलित हुए। वह कई वर्षों तक अपने अधिकार में रखकर इनके साधनों का मनमाना उपयोग करता रहा। किन्तु मित्रराष्ट्रों द्वारा स्वाधीन कर दिये जाने पर उनमें से बहुतों की दशा आज पहले से भी बुरी है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है, जिसका समाधान होने में उन देशों की नई सरकारें असमर्थ जान पड़ती हैं। इन देशों की समस्या की गुरुता भली प्रकार हमारी समझ में आ सकती है यदि हम जान लें कि यह छोटे छोटे राष्ट्रों की नहीं वरन उनमें रहनेवाली १८,००,००,००० जनता की समस्या है। यह जन-संख्या ब्रिटेन की जन-संख्या के बराबर है। इनमें से अधिकांश राष्ट्र, विशेषकर फ्रांस, बेलजियम तथा हालैण्ड तो ब्रिटेन तथा अमेरिका की ही भाँति, आयात-निर्यात, व्यापार, आयात तथा बैंकिङ्ग पर निर्भर थे। युद्ध तथा जर्मनी के अधिकार का इन पर क्या प्रभाव पड़ा है, इस पर आगे प्रकाश डालने की चेष्टा की जायेगी।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि १९३९ में युद्ध के शुरू होने के पहले ये देश किस प्रकार व्यापार करते थे? संक्षेप में इसका उत्तर यह है कि युद्ध के पहले लगभग सभी वृहत परिमाण में कच्चे माल तथा खाद्य पदार्थों का आयात करते थे। वर्ष भर में फ्रांस बाहर से लगभग ५,००,००,००० टन, बेलजियम ३,००,००,००० हालैण्ड ३,००,००,०००, डेनमार्क १०,०००, इटली ३,००,००,००० पौलैण्ड ३,००००,००० चेकोस्लोवेकिया ५०,००,००० तथा युगोस्लेविया ३,००,००,००० टन माल मँगाते थे। इस प्रकार इनका कुल योग लगभग १४,१०,००,००० टन बैठता था, अथवा यों कहिये कि जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए मोटे तौर से प्रति वर्ष, प्रति मनुष्य १ टन माल का औसत पड़ता था। इन अङ्कों की यूनाइटेड स्टेट्स से तुलना कर सकते हैं, किन्तु वहाँ का वार्षिक आयात लगभग २,००,००,००० टन ही है, जिसका अर्थ होता है लगभग ½ टन प्रति मनुष्य प्रति वर्ष। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन देशों के जीवन में आयात-माल का कितना अधिक महत्व है।

इन देशों का निर्यात व्यापार इनके आयात का मूल्य चुकाने में युद्ध के पूर्व भी समर्थ नहीं होता था, अतः इन्हें सोना देकर अथवा दूसरे विदेशी यात्रियों और जहाज़ों की सेवाओं के रूप में शेष रक़म की पूर्ति करनी पड़ती थी।

किन्तु युद्ध काल से इन व्यापारिक राष्ट्रों की व्यवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया। हिटलर ने बात की बात में इन सब पर धावा बोल दिया और कुछ ही महीनों के भीतर सारे यूरोप के देश उसके अधिकार में आ गये। बाहरी दुनिया से उनका सम्बन्ध बिलकुल टूट गया, और आयात के सब मार्ग बन्द हो गये। ऐसे समय में हिटलर ने जो 'नूतन-युग' का प्रचार किया था, उसमें कैसे क्या होता था, यह तो उसके बर्लिन स्थित विधाताओं को ही ज्ञात होगा, किन्तु उसमें इतना अवश्य हुआ कि इन विजित देशों के आयात-का मार्ग फिर से खुल गया। लोग विश्वास नहीं करते थे, किन्तु उनकी आँखों के सामने हिटलर का 'नूतन-युग' प्रत्यक्ष था। सारे यूरोप के लिए उत्पादन की एक योजना थी, जो कि बर्लिन के केन्द्र से नियन्त्रित होती थी और उसके अनुसार भिन्न भिन्न देश राष्ट्र की फौजी और राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वस्तुएं तैयार करते थे। जर्मन सैनिक अधिकारी इस बात को जानते थे कि उन्हें भविष्य में होनेवाले युद्धों में अपरिमित धन-जन तथा यन्त्रों और वस्तुओं की आवश्यकता होगी, और वे अपनी योजना में सफल हुए। उनके अनुशासन काल में जर्मनी के चारों ओर घिरे रहने पर भी यूरोप के इन राष्ट्रों का व्यापार भली भाँति चलता रहा तथा आर्थिक व्यवस्था में कोई बाधा नहीं आई। मित्र राष्ट्रों के बहिष्कार का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे स्वयं-समर्थ होकर ४ वर्ष तक रायख़ की सेनाओं को सम्पूर्ण रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसज्जित रख सके। जर्मनी ने जिस प्रकार इन देशों की आर्थिक व्यवस्था को चालू रखने की चेष्टा की, वह सचमुच स्पृहणीय है। फ्रांस में लगभग ७०,००,००० टन तथा बेल्जियम में लगभग ५०,००,००० टन माल बाहर से 'ब्लाकेड' के होते हुए भी आता रहा तथा बहुत समय तक इटली में रेल के द्वारा १०,००,००० टन कोयला भी प्रतिमास पहुँचता रहा, जिससे उसके बिजली पैदा करनेवाले कारख़ाने चलते थे।

यह बात सत्य है कि यह सब फौजी शासन के अन्तर्गत था—और शक्ति का उपयोग भी किया जाता था। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि हिटलर को इस कार्य में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। सारा यूरोप एक नये सांचे में ढाल दिया गया था, और जिस प्रकार की व्यवस्था उनमें रखी गई थी, वह पूर्णतया उपयुक्त थी। उनका व्यापार चलता था—और वे रायख़ की सेनाओं की साज-सज्जा के लिये अन्न-वस्त्र तथा हथियार देने में समर्थ थे—और उनकी सामर्थ्य में चार वर्षों तक कोई कमी नहीं आई। नेपोलियन ने भी नई व्यवस्था चलाने की कोशिश की थी, किन्तु वह असफल रहा, परन्तु हिटलर की यह नूतन युगीन व्यवस्था काफी सफल रही।

किन्तु आज युद्ध की समाप्ति के बाद इन पूर्व जर्मन अधिकृत प्रदेशों तथा यूरोप के तथाकथित स्वाधीन देशों की इस समय क्या दशा है इस पर कुछ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

यूरोप के इन समस्त देशों में जिन्हें ब्रिटिश तथा अमेरिकन सेनाओं ने जर्मनी के पंजे से मुक्त किया है, आज नीचे लिखे लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रथम तो 'नूतन युग' की व्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने से जर्मनी से आयात और विशेष कर कहीं से भी कच्चे माल का आयात तो बिलकुल ही बन्द हो गया है।

चूंकि जर्मनों अथवा मित्र सेनाओं द्वारा पुल, रेलें तथा सड़कें इत्यादि नष्ट कर दी गईं थीं अतएव यातायात के साधनों का नितान्त अभाव है तथा किसी प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखना सम्भव नहीं।

कच्चे माल का आयात बन्द हो जाने के कारण कारख़ाने बन्द हैं, अतः धीरे धीरे बेकारी बढ़ती जा रही है। पुराना स्टाक ख़तम हो जाने पर उन्हें बन्दरा देने के अलावा कोई चारा नहीं है।

नाना प्रकार की आर्थिक कठिनाइयाँ, जो कुछ तो अत्यधिक मुद्रा-प्रसार के कारण, कुछ उदभोक्ता वस्तुओं के कारण, तथा मित्र सेनाओं के मुक्तहस्त हो कर ख़र्च करने के कारण उत्पन्न हो गई हैं, उन्हें शीघ्र दूर करना असम्भव सा जान पड़ता है।

किसी भी प्रकार की शक्ति, कोयला-बिजली इत्यादि का नितान्त अभाव है।

खाद्य पदार्थों की बड़ी कमी है, अतः चोर बाज़ार और अत्यन्त ऊँचे भावों पर मुनाफ़ाख़ोरी का बाज़ार गर्म है।

बन्दरगाहों में साज-सामान के नष्ट हो जाने के कारण माल ले सकने की योग्यता का अभाव है। और विदेशी विनिमय के अभाव में आवश्यकता की वस्तुएँ विदेशों से ख़रीदने में भी ये देश समर्थ नहीं हैं।

अब इनमें से विशेषकर फ्रांस तथा इटली के विषय में हमें विस्तार से जो सामग्री उपलब्ध है, उस पर विचार करना समीचीन होगा।

फ्रांस

फ्रांस को स्वाधीन करने के परिणाम स्वरूप उसका आर्थिक ढांचे की कड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। जब तक वह जर्मनों के अधीन था—वहाँ से बहुत सी वस्तुओं का आयात होता था, किन्तु वह सब बन्द हो गये। युद्ध के पहले फ्रांस में ५,००,००,००० टन माल प्रतिवर्ष बाहर से आता था। जर्मनी के अधिकार में रहने के समय यह परिमाण केवल ७०,००,००० टन प्रतिवर्ष था, किन्तु स्वाधीनता दिवस के बाद से १ जनवरी '४५ तक इस परिमाण का बहुत थोड़ा प्रतिशत माल ही बाहर से आ पाया। इसका मुख्य कारण था फ्रांस की भूमि पर बहुत अधिक संख्या में ब्रिटिश और अमेरिकन सेनाओं का कब्ज़ा, जिनके लिये माल बाहर से आने के कारण अन्य माल का आयात नहीं हो पाता था। इससे तात्पर्य यह निकला कि चार वर्ष तक जर्मनी के अधिकार में रहने पर तो फ्रांस को बाहर से १९३५ में आयात हुए माल के परिमाण का २० प्रतिशत तो मिल जाता था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीन होते ही, उसके यातायात के साधन, उसकी आयात-निर्यात की लाइनें एक बारगी टूट गईं। अतः बाहर से आनेवाला अत्यावश्यक माल एकदम बन्द हो गया। हम इस बात का सही अन्दाज़ इस प्रकार लगा सकते हैं कि यदि हम अनुमान करें कि बंगाल जैसे सूबे में हमारे देश में एक बहुत बड़ी संख्या में विदेशी फ़ौज रही है, बमों और अन्य दुष्परिणामों से कितना ही नुक़सान हो चुका है, भोजन वस्त्र की अत्यन्त कमी, पुल बढ़े हुए, काम नहीं, यातायात के साधन नहीं, कोयले की कमी और घोर जाड़ा, तथा इसी प्रकार की अन्य सैकड़ों कठिनाइयाँ, तब हम कहीं आज के फ्रांस की दशा का चित्र खींच सकते हैं।

फ्रांस को हमारे देश की तरह अधिक यातायात के साधनों भूखी भूमि को खाद और भूखी जनता के लिये भोजन की आवश्यकता है। किन्तु यातायात के साधनों के नष्ट होने से उनकी सब राहें बन्द हो गई हैं। पिछले दिसम्बर में, विशेषज्ञों ने हिसाब लगाकर बतलाया था कि फ्रांस के १९ रेलवे यार्डों में से १५ नष्ट हो गये थे तथा ५,००० इंजिनों में केवल १,००० काम लायक रह गये थे, जिनमें से अधिकांश मित्र फ़ौजों के अधिकार में थे। १९३९ में फ्रांस के पास ४,५०,००० भाड़े पर चलने वाली गाड़ियाँ थीं, किन्तु युद्ध के पश्चात् उनकी संख्या केवल २,०० ००० रह गई और उन पर भी मिलिटरी का पहला हक़ था। युद्ध के पहले फ्रांस में लग-भग ५,००,००० मोटर लारियाँ थी, किन्तु युद्ध के बाद उसके पास केवल १,२५,००० काम लायक बच पाई हैं, और उनमें भी अधिकांश १० वर्ष से अधिक पुरानी हैं। ऐसी दशा में यह असंभव प्रतीत होता है कि फ्रांस की नई सरकार इन साधनों के बल पर देश की पैदावार बढ़ा सके। उदाहरण के लिये एक वस्तु लीजिये—लड़ाई के पहले चुकन्दर की फ़सल लगभग ९,००,००० टन होती थी, किन्तु १९४४-४५ की फ़सल भी ६,००,००० टन है। इस चुकन्दर से चीनी बनाने के लिये, ५,००,००० टन कोयले की आवश्यकता है, किन्तु इतना कोयला नहीं मिल सका, अतः केवल ३,००,००० टन चीनी ही बनाई जा सकी। इसलिए मजबूर होकर फ्रांस को आज जब कि सारे संसार में शकर की कमी है, अपने लिये दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ेगा।

युद्ध के पूर्व फ्रांस में लगभग ८,००,००,००० टन कोयले का ख़र्च था, जिसमें से १,००,००,००० बाहर से आता था। अब फ्रांस केवल २,२०,००,००० टन कोयला निकालता है, किन्तु उसको भी प्रत्येक स्थान पर पहुंचाने के साधन प्रस्तुत नहीं है। इस प्रकार यह एक चक्रव्यूह-सा बन गया है। अधिक कोयला नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि इसके लिये गाड़ियां नहीं और अधिक नहीं बनाई जा सकतीं क्योंकि कोयला नहीं मिलता। कोयले की कमी से सभी उद्योग-धन्धों को भीषण क्षति पहुँची है और इसका परिणाम यह हुआ कि दिसम्बर १९४० में औद्योगिक उत्पादन उस समय के परिमाण का भी, जब कि फ्रांस जरमनी के अधिकार में था केवल एक चौथाई रह गया।

युद्ध के पहले लगभग ५,००,००,००० टन वस्तुयें फ्रांस बाहर से मंगाता था जिसमें कोयला और तेल ही लगभग ७३,००,००,००० टन होता था। किन्तु इनके अतिरिक्त तांबा, सीसा, जस्ता जैसी धातुएँ मैंगेनीज़ तथा गन्धक और कच्ची रूई, ऊन, जूट इत्यादि भी कम महत्वपूर्ण वस्तुएँ नहीं थीं। किन्तु आज इन वस्तुओं का आयात बिलकुल बन्द-सा ही है। अतएव इन प्रमुख आयात-वस्तुओं के अभाव में फ्रांस की आर्थिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने का भय है। जब हम फ्रांस की वर्त्तमान सरकार की कटु आलोचना करते या सुनते हैं, तो हमें उन बातों को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि राजनीति की ईंटें, आर्थिक कारणों की मिट्टी के बग़ैर नहीं बन सकतीं। यह आज भूख, गरीबी और अभाव से पीड़ित फ्रांस का चित्र है। वस्तुओं के अभाव में चोर बाज़ार और मुनाफ़ाखोरी ज़ोरों पर है। भाव बहुत ऊँचे हैं—विदेशी व्यापार सुलभ नहीं है, देश में अन्न-वस्त्र का भीषण अकाल है, बिजली तथा कोयले की शक्ति का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं, यातायात के साधन नहीं, और फलस्वरूप पैदावार पूरी नहीं। हिटलर के जुएं के नीचे शायद उसे इतनी समस्याओं का सामना न करना पड़ा होगा जितना कि मित्रराष्ट्रों द्वारा स्थापित सुराज्य में करना पड़ रहा है।

इटली

फ्रांस से बुरी हालत शायद इटली की है। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय तक इटली तीन प्रकार के भागों में बँटा देश था। एक भाग पर हिटलर का अधिकार था, एक पर मित्र-फ़ौजों का और एक पर वहां की राष्ट्रीय सरकार का। पाठक सोच सकते हैं कि इन त्रिमूर्ति के बीच त्रिशंकु की भाँति इटली की क्या दुर्दशा न हुई होगी।

युद्ध के पूर्व इटली का आयात-व्यापार २,००,००,००० टन के लगभग था, जिसमें से १,३०,००,००० के करीब केवल तेल और कोयला होता था। १९४३ में मित्र फौजों के सिसली में उतरने के पश्चात मित्र-फ़ौजों द्वारा अधिकृत प्रदेश में युद्ध पूर्व के आयात व्यापार का ८ प्रतिशत आयात होता है, वह भी अधिकतर गेहूँ तथा कोयले के रूप में। इस बात पर ध्यान देने पर कि हिटलर अधिकृत प्रदेश में जर्मनों ने चाहे अपने ही फ़ायदे के लिए सही बहुत से कारख़ानों को चालू रखा था, और परिणाम स्वरूप वहाँ का आयात व्यापार अन्य प्रदेशों का दुगुना, अर्थात लगभग १६ प्रतिशत अवश्य रहा होगा।

युद्ध में जो विनाश और क्षति हुई है, उसके अलावा भी एक प्रकार से इटली के आंतरिक व्यापार के रास्ते बन्द से हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत व्यापार बच रहा है, वह इटालियनों की दृढ़ता के कारण और उससे अधिक चोर बाज़ार के ऊँचे नफ़े के लालच के कारण। धन-जन की क्षति के अलावा नगर बर्बाद हो गये हैं, और उनके निवासी उन्हें छोड़कर चले गये हैं। बहुत सी भूमि में विस्फोटक सुरंगे अभी तक बची हुई हैं जो कृषि में बाधक हैं। यातायात के साधनों का प्रभाव तो अवर्णनीय है। जहां कहीं थोड़े बहुत टूटे हुए पुल अथवा सड़क फिर से तैयार की गई हैं, वे केवल मुख्य मार्गों पर फ़ौजी आवश्यकताओं को पूरा करने के विचार से ही। यातायात के साधनों की यह दशा है कि जहाँ युद्ध के पूर्व लगभग १,२५,००० लारियाँ चलती थीं वहाँ केवल ६,०००—७,००० मात्र रह गई हैं। रेलों का भी यही हाल है, मालगाड़ी के डब्बों की बेहद कमी है, मुसाफ़िर गाड़ियाँ भी बहुत कम हैं और बड़े नगरों तक नहीं पहुँच पातीं। यह जानकर कि नेपल्स से लेकर रोम तक सप्ताह में केवल तीन मुसाफिर गाड़ियाँ चलती हैं, इस दशा का अन्दाज़ हो जायगा। इस प्रकार यातायात के साधनों की अत्यधिक कमी से जीवन की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गई हैं।

साथ ही पैदावार की कमी का कारण ताक़त की बहुत कमी भी है। अब तक इटली की अधिकतर शक्ति पानी से बिजली बनाकर पैदा की जाती थी। उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक छिद्र था, जिसके द्वारा बिजली सप्लाई की जाती थी। किन्तु जर्मनों ने उन तमाम बड़े बिजलीघरों को नष्ट कर दिया और सैकड़ों मीलों तक फैले जाल को बारूद से उड़ा दिया। दक्षिण में ६० प्रतिशत से भी अधिक बिजलीघर नष्ट हो गये। समूचे इटली में मिलाकर युद्ध पूर्व के परिमाण की केवल १० प्रतिशत बिजली की शक्ति इस समय उपलब्ध है। रोम के नगर में रोशनी ट्रामवे इत्यादि के ख़र्च के बाद कारख़ानों के लिये मुश्किल से बिजली बचती है। कारख़ानों के अपने डायनमो बहुत से तो जर्मन लूटकर ले गये, हैं और जो बचे हैं वे कल-पुर्जों, बैबरिंग इत्यादि के अभाव में चल नहीं सकते। किन्तु यहीं पर इस कथा का अन्त नहीं हो जाता। अभी यह निश्चित रूप से पता नहीं है कि इटली के बड़े बड़े बाँध और उन पर बने बिजलीघर समूचे नष्ट हो गये हैं या शेष हैं। यदि वे नष्ट हो गये होंगे तो वर्षों तक इटली अपने खर्च लायक बिजली उत्पन्न करने योग्य नहीं हो सकेगा।

दक्षिण में यद्यपि अकाल तो नहीं है किन्तु दक्षिणी प्रान्त में तो मिलिटरी द्वारा बाहर से लाये गये गेहूं और आटे पर ही गुज़र होती है। बाहर से आई रोटी के बल पर ही इटली में काम चलता है। अगर आज गेहूं और रोटी का आयात बन्द कर दिया जाय तो इटली वालों को भूखा ही मरना पड़े। यह वहां की आर्थिक दुर्दशा है।

अब ज़रा भीतरी दशा की ओर भी दृष्टिपात कीजिये। इटली का मुख्य सिक्का 'लीरा' है। यद्यपि इसकी देश के भीतर क्रय-शक्ति सरकारी प्रयत्नों द्वारा बहुत कुछ अक्षुण रखी गई है, किन्तु विदेशी व्यापार में इसका मूल्य काफ़ी गिर गया है। उदाहरण के लिये १९३८ में इटली में ११४ बिलियन लीरा के मूल्य की वस्तुओं का आयात हुआ और केवल ८ बिलियन मूल्य की वस्तुओं का निर्यात। शेष ३·४ लीरा की पूर्ति 'अदृश्य निर्यात' (Invisible Exports)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपिटक पालि और उसका परीक्षण

भिक्षु धर्म रक्षित "धर्मशास्त्री"

(१)

बुद्ध शासन पर्य्याप्ति, प्रतिपत्ति, प्रतिवेध के क्रम से तीन भागों में बँटा हुआ है। पर्य्याप्ति कहते हैं दुःख-रहित परम शान्ति की प्राप्ति के लिए बतलाए गए मार्ग को। अथवा यों कहो कि सारा बुद्ध वचन ही पर्य्याप्ति शासन है। जो सम्पूर्ण रस के हिसाब से एक विध विमुक्ति रसमय है। धर्म और विनय के क्रम से दो तरह का। आदि, मध्यम और अन्तिम के क्रम से तीन प्रकार का। वैसे ही विनय, अभिधर्म, सूत्रान्त से भी। निकाय के भेदों से सम्पूर्ण पाँच भागों में बँट जाता है—दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दकनिकाय। सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधम्म और वेदल्ल—इन नव अङ्गों के क्रम से नवाङ्ग हैं। जो सारा चौरासी हजार धर्मस्कन्धों से भरा है। उसे हम सम्प्रति त्रिपिटक के नाम से जानते हैं।

प्रतिपत्ति कहते हैं धर्मानुधर्म का अवलोकन करते हुए उस पर अनुगमन करने को। प्रतिपत्ति का पालन कर फलस्वरूप जो (१) स्रोतापत्ति मार्ग और फल (२) सकृदागामी मार्ग और फल (३) अनागामी मार्ग और फल (४) अर्हत् मार्ग और फल की प्राप्ति है, उसे प्रतिवेध कहते हैं। स्पष्ट है कि प्रतिपत्ति एवं प्रतिवेध का कारण तथा लोभ का मूलभूत पर्य्याप्ति धर्म है।

(२)

बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात उदान स्वरूप जो बुद्ध ने कहा था—"बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा, इस काया रूपी कोठरी को बनाने वाले को खोजते हुए पुनः पुनः दुःखमय जन्म में पड़ता रहा। हे गृहकारक! अब तुझे पहचान लिया फिर तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियां भग्न हो गईं। गृह* का शिखर निर्बल हो गया। संस्कार-रहित चित्त से तृष्णा का क्षय हो गया।" वही प्रथम बुद्ध वचन कहा जाता है। महापरिनिर्वाण के समय कुसिनारा में दो शाल वृक्षों के बीच सोये हुए, जो उन्होंने कहा था—"हन्द दानि भिक्खवे आमन्तयामि वो वयधम्मा सङ्खारा अप्पमादेन सम्पादेथ।"* अर्थात् "भिक्षुओ! मैं तुम्हें कहता हूँ कि सभी संस्कार नाशमान हैं, अप्रमाद के साथ अपने जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करो।" यह अन्तिम बुद्ध वचन कहा जाता है। इन दोनों वचनोपदेश के बीच जो पैंतालिस वर्ष† तक उन्होंने धर्मोपदेश किया, वह सब मध्यम बुद्ध वचन कहा जाता है और उन्हें ही हम पर्य्याप्ति नाम से भी पुकारते हैं।

जैसा कि लिखा जा चुका है सारा पर्य्याप्ति धर्म विनय, सूत्रान्त और अभिधर्म—इन तीन भागों में बंटा हुआ है। विनय पिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों के नियम हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि यह संघ के क्रमिक विकास का महत्व पूर्ण वृत्तान्त है। भगवान की जीवनी के साथ तत्कालीन भारत के रीति-रिवाज, खान-पान, ओढ़ाव-पहनाव एवं नाना ऐतिहासिक सामग्रियों से यह भरा हुआ है। विनय पिटक भिक्षु-भिक्षुणियों के आचार नियम के हिसाब से तीन भागों में बंटा हुआ है—सुत्त विभङ्ग, खन्धक, परिवार। प्रकरण के क्रम से इसमें पाँच प्रकरण हैं—(१) पाराजिका पालि (२) पाचित्तय पालि (३) महावग्ग पालि (४) चूलवग्ग पालि (५) परिवार पालि।

सूत्रान्त पिटक में व्यावहारिक धर्मोपदेश हैं जो अनेक अवसरों पर उपदेशे गए हैं। इसमें सारिपुत्त मौद्गल्यायन कोटित महाकात्यायन महाकाश्यप आनन्द आदि भगवान के प्रधान शिष्यों के भी उपदेश संग्रहीत हैं। परन्तु ऐसा नहीं कि वे बुद्ध द्वारा बिना उपदेशे किसी नई बात का उपदेश करते हैं; उन्हींके शब्दों में—यं किञ्चि सुभासितं सब्बं तं तस्य भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स, ततो उपादायुपादाय मयञ्चञ्ञे, भणमातिं। जो कुछ सुभाषित है, वह सब उस भगवान अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध का वचन है, हम तथा अन्य उसीसे ले लेकर कहते हैं।

सुत्रान्त पिटक पाँच निकायों में विभक्त है, दीघनिकाय मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं—

* धम्मपद ११,८-९।

* महापरिनिब्बाण सुत्त दीघनिकाय २,३।

† अंगुत्तर निकाय ८, १, १, ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) खुद्दक पाठ (२) धम्मपद (३) उदान (४) इतिवृत्तक (५) सुत्तनिपात (६) विमानवत्थु (७) पेतवत्थु (८) थेर गाथा (९) थेरी गाथा (१०) जातक (११) निद्देस (१२) पटिसम्भिदामग्ग (१३) अपदान (१४) बुद्धवंस (१५) चरिया पिटक।

अभिधर्म पिटक में दर्शन विषयक भगवान के गूढ़ और गम्भीर उपदेश हैं। बिना अभिधर्म को जाने बौद्ध धर्म का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह सात प्रकरणों में विभक्त है—धम्मसंगणी विभङ्ग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञति कथावत्थु, यमक और पट्ठान। यह सातों अन्योन्य क्रमबद्ध हैं। इनका अवोध एवं अध्ययन क्रमशः अपेक्ष्य है।

उक्त तीनों पिटक ही त्रिपिटक पालि कहे जाते हैं।

(३)

बतला चुके हैं कि पर्य्याप्त धर्मस्कन्ध कुल चौरासी हज़ार हैं, जो प्रथम धर्म सङ्गीति के समय वर्तमान थे। आनन्द स्थविर ने जिन्हें लगभग भगवान के सब उपदेशों को सुनने का अवसर प्राप्त था और प्रथम संगीति में जिन्होंने अभिधर्म एवं सूत्रान्त पिटक सुनाया था, गोपक मगल्लन ब्राह्मण के पूछने पर उन्होंने कहा था।

द्वासीतिं बुद्धतो गण्हिं, द्वे सहस्सानि भिक्खुतो।
चतुरासीति सहस्सानि, येमे धम्मा पवत्तिनो॥*

मैंने बयासी हजार बुद्ध से ग्रहण किया और दो हजार भिक्षु लोगों से। इस प्रकार जो यह धर्म प्रवर्तित हैं, वह चौरासी हज़ार होते हैं।

इनमें से बयालिस हजार धर्मस्कन्ध केवल अभिधर्म पिटक में ही आ गए हैं, शेष सूत्रान्त और विनय में।

अब यह देखना है कि वर्तमान् त्रिपिटक पालि सम्पूर्ण धर्मस्कन्धों से परिपूर्ण है या नहीं? हम देखते हैं कि त्रिपिटक में जितने सूत्रादि संगृहीत हुए, वह बुद्ध द्वारा देशित उपदेशों के केवल एक अंश मात्र हैं। बुद्ध ने अपने पैंतालिस वर्ष जो रातों दिन धर्मोपदेश किए, वह सम्पूर्ण कैसे संगृहीत हो सकते थे? यहां हम गणना भी जानते हैं कि त्रिपिटक में केवल चौरासी हजार धर्मस्कन्ध संगृहीत किए गए थे और उन्हीं संगृहीत सूत्रों से हम यह भी जानते हैं कि—"अपरिमाणा पदा अपरिमाणा व्यञ्जना अपरिमाणा तथागतस्स धम्मदेसना तत्थ कुसलं भावेतब्बं, अकुसलं पहातब्बमेव विजानाति।" अप्रमाण पद हैं, अप्रमाण व्यञ्जन हैं और अप्रमाण तथागत (बुद्ध) की धर्म देशना है, उसमें कुशल की भावना करनी चाहिए एवं अकुशल का प्राहाण—यही (बात) आई हुई है। अधिकांश तौर पर आवश्यकता न जानकर पुनरोक्ति का विवर्जन करते हुए केवल—"तत्रथि सुदं भगवा...एतदेव बहुलं भिक्खूनं पातिमोक्खं कथं करोति इति सीलं, इति समाधि, इतिपञ्ञा।" यही भी भगवान भिक्षुओं को अधिकांशतः यही उपदेश करते हैं कि यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है आदि आया हुआ है। बहुत से सूत्रों में—"भगवान धार्मिक कथा...कहकर आसन से उठ चले गए।" अनेक स्थलों पर—"भिक्षु! एक समय भगवान् श्रावस्ती में देवलोक में पारिछत्रक वृक्ष के नीचे पांडुकंबल शिला पर विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने त्रायस्त्रिंश देवों को भद्देकरत्त के उद्देश और विभङ्ग कहे।"§ आदि ही वश पाठ आए हुए हैं!

इन सब कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते कि प्रथम संगीति के समय भिक्षु संघ को बुद्ध धर्मोंद्दे जितने सूत्रों अथवा धर्मस्कन्धों की आवश्यकता पड़ी संगायन किया गया। संगायन भी इस भांति गया कि नवाङ्ग बुद्ध वचनों का उलङ्घन न हो सैंतिस बोधि पाक्षपिक धर्मों की देशना पूर्ण रूप से जाय। सङ्गीति सुत्त, दसुत्तर सुत्त, ज्ञानवत्थु आदि से स्पष्ट है कि भगवान् के परिनिर्वाण के पूर्व संक्षिप्त तौर पर बुद्ध वचनों के प्रधान अङ्गों का कर लिया गया था ताकि तथागत के महापरिनिर्वाण पश्चात् किसी प्रकार का आपस में धर्म विषयक न उठ खड़ा हो, जैसा कि निग्रन्थ नाथपुत्त के मरण पश्चात् हुआ था।

सम्प्रति हमें कुछ ऐसे भी सूत्रों के नाम तथा

* थेरगाथा १०२४।

* अंगुत्तर निकाय ४,४,४,८।

† "भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायसना पक्कमीति।" —दीघनिकाय

§ मज्झिम निकाय ३,४,४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...मिलते हैं जो वर्तमान त्रिपिटक पालि में नहीं दीखते। ...वाद सुत्त, तिक्खिन्द्रिय, चतुपरिवत्त, नन्दोपनन्द दमन, ...दमन, कुलुम्पसुत्त, सीलूपदेश, यञ्ञा आरम्भणकथा, ...ण्ड आदि बुद्ध बचन है तथापि जो प्रथम, द्वितीय, ...संगीतियों में संगृहीत नहीं किए गये जिनके विषय ...अट्ठकथाओं का पाठ इस प्रकार हैं—तया सङ्गाहे ...सङ्गीति अनारूल्हं* अर्थात तीनों संगीतियों के ...जिसका संगायन नहीं हुआ। त्रिपिटक में इनका ...नहीं हो सकने के ही कारण आज ये सूत्र हमें ...नहीं। जो उपलब्ध हैं उनके नाम तथा थोड़े ...मात्र। कुलुम्प सुत्त का पाठ लगभग प्रत्येक अट्ठकथा ...में मिलता है और मिलता है केवल इतना ही—

...भिक्खवे ! इधेकच्चो समणोवा ब्रह्माणोवा ...चेतोवसीप्पत्तो अञ्ञिस्सा कुच्छिगतं गब्भं ...मनसानुपेक्खिता होति अहो वत यं तं कुच्छिगतं ...न सोत्थना अभिनिक्खमेय्याति एवम्पि भिक्खवे ...उपघातो होति।†

...सूत्रों के नाम तथा उनके पाठ उपलब्ध हैं वे ...अट्ठकथा परम्परा से चले आ रहे हैं। वे त्रिपिटक ...में संगृहीत न हो पाए यदि त्रिपिटक पालि में ...होते तो तयो सङ्गहे अनारूल्ह पाठ उनट्ठकथाओं ...मिलता। इस समय इसका परीक्षण करना भी ...दुष्कर है कि वर्तमान त्रिपिटक पालि सम्पूर्ण है ...। यह अवश्य है कि हमें देखने में बहुत न्यूनता ...पड़ती है। जो सूत्रान्त पिटक में स्पष्ट दीखती है।

चतुत्तिसेव सुत्तन्ता तिवग्गा यस्स संगहो।
एस दीघनिकायोति पठमो अनुलोमको॥

अट्ठकथा की इस गाथा से स्पष्ट है कि दीघ निकाय ...सूत्र हैं और तीन वर्ग जो आज भी वर्तमान हैं। ...ही—

दियड्ढससुत्तन्ता द्वे च सुत्तानि यत्थ सो।
निकायो मज्झिमो पञ्च दस वग्गे परिग्गहो

मज्झिम निकाय में १५२ सुत्त और १५ वर्ग हैं।

इस ग्रन्थ के विषय में भी कोई सन्देह नहीं है। यह अपने सब अङ्गों से परिपूर्ण है।

सत्तसुत्त सहस्सानि सत्त सुत्त सतानि च।
द्वासट्ठि चेव सुत्तन्ता एसो संयुत्तसंगहो॥
नव सुत्तसहस्हानि पञ्च सुत्त सतानि च।
सत्तपञ्चास सुत्तानि संखा अङ्गुत्तरे अयं॥

संयुक्तनिकाय में सात हजार सात सौ बासठ सुत्त हैं तथा अंगुत्तर निकाय में नव हजार पांच सौ सत्तावन सुत्त।

खुद्दकपाठ, धामपद आदि खुद्दक निकाय के पन्द्रह ग्रन्थ हैं। हमें जो न्यूनता का भान होता है, वह इसी खुद्दक निकाय के ही ग्रन्थों में। बहुत से सूत्र और गाथाएं ऐसी हैं जिनको खुद्दक निकाय में होना चाहिए किन्तु वे आज केवल अट्ठकथाओं में उपलब्ध हैं। सारिपुत्र महास्थविर के महापरिनिर्वाण के पश्चात्—

उसभो यथा छिन्नविसाण कोसो
अहेहयन्ती चरती पुरन्तरे।
तथा अयं विचरति सारिपुत्तो
परिनिब्बुतं वन्दथ सारिपुत्तं।
यो पब्बजि जाति सतानि पञ्च
पहाय कामानि मनोरमानि।
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं
परिनिब्बुत वन्दथ सारिपुत्त॥*

आदि पांच सौ गाथाओं के साथ भगवान ने उनकी प्रशंसा की थी, जिनमें केवल तीन गाथायें ही उपलब्ध हैं। ऐसे ही ब्राह्मण की अट्ठकथा में धनञ्जानि ब्राह्मणी द्वारा भाषित—

सचे मे अङ्गमङ्गानि कामं द्वेद्दसि ब्राह्मण !
नेवाहं विरमिस्सामि बुद्ध सेट्ठस्स सासने।
नाहं ओक्कावरधरा सक्का रोधयितुं जिना,
धीताहं बुद्धसेट्ठस्स द्विन्द वा मं पचस्सु वा॥

आदि धनञ्जानि गर्जन सम्बन्धी भी पांच सौ गाथायें रहीं। और भी अनागामी ब्राह्मण द्रोण द्वारा कुसिनारा में भाषित बारह हजार पदों में बुद्ध गुण की केवल उपलब्ध हैं—

* अत्थसालिनी द्वारका में धम्मकथा तथा ...पिरकट्ठकथा २,७ और भी देखो कङ्खवितरणी ...विनयत्थमञ्जुसा।

† अत्थसालिनी से यहाँ उद्धृत।

* अंगुत्तर निकाय एतदग्ग पालि की अट्ठकथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुणन्तु भोन्तो मम एक वाक्यं
अम्हाक बुद्धी अहु खन्तिवादो ।
नहि साधु यं उत्तम पुग्गलस्स
सरीर भागे सिया सम्यहारी ॥
सब्बेव भोन्तो सहिता समग्गा
सम्मोदमाना करोमट्ठभागे ।
वित्थारिका होन्तु दिसासु भूपा
बहूजना चक्खुमतो पसन्ना ॥*

—यही दो गाथाएँ ।

दूसरी बात यह देखने में आती है कि एक निकाय के सूत्र दूसरे निकाय में भी हैं । जैसे—सतिपट्ठान सुत्त दीघनिकाय और मज्झिम निकाय दोनों में थोड़े* अन्तर से आया हुआ है । संयुत्त निकाय के बहुत से सुत्त अंगुत्तर निकाय में हैं । ऐसी ही पुग्गलपञ्ञत्ति के भी । खुद्दक पाठ में आए मङ्गल सुत्त, रतन सुत्त, मेत्त सुत्त, सुत्तनि-पाठ में आए हुए हैं । धम्मपद की बहुत से गाथाएँ अन्य ग्रन्थों में मिलती हैं । सुत्तनिपात के सूत्र मज्झिम निकाय में दीखते हैं । सुत्तनिपात का खग्ग-विसाण सुत्त अपदान पालि में मिलता है । ऐसे ही थेर गाथा की बहुत सी गाथाएँ ।

चरियापिटक की अधिकांश गाथाएं जातक में संगृहीत निद्देस पालि सुत्त निपात में आई कुछ गाथाओं की अट्ठकथा स्वरूप वर्णन मात्र हैं । ऐसे ही पटिसम्भिदामग्ग पालि । कहते हैं यह दोनों ग्रन्थ सारिपुत्र महास्थविर द्वारा भाषित हैं । और भी दो पालि ग्रन्थ नेत्तिप्पकरण तथा पेटकोपदेस उपलब्ध हैं । इन ग्रन्थों के देशक महा कात्यायन कहे जाते हैं । यह दोनों ग्रन्थ त्रिपिटक पालि में संगृहीत नहीं हैं, कुछ आचार्यों ने इन्हें भी बरबस त्रिपिटक में लाने का प्रयत्न किया है और उन्होंने यह गाथा कहकर—

ठपेत्वा चतुरोपेते निकाये दीघसादिके ।
तदञ्ञं बुद्धवचनं निकायो खुद्दको मतो ॥

दीघ, मज्झिम आदि चारों निकायों के अतिरिक्त जो और कुछ बुद्ध वचन है, वह सब खुद्दक निकाय कहा जाता है—अपने मत की पुष्टि की है । परन्तु इन आचार्य भाषित ग्रन्थों को जो परम्परा से त्रिपिटक पालि में संगृहीत नहीं हैं, खुद्दक निकाय में सम्मिलित करना युक्ति संगत नहीं ।

जो कुछ भी हो, यह सर्वमान्य है कि त्रिपिटक पालि में कुछ कथायें या गाथायें नहीं मिलतीं अथवा कतिपय सूत्रों का अभाव जान पड़ता है, तो इससे धर्म में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं हुई है । भगवान् ने जो कहा था—"भिक्षुओ ! मेरे उपदेशित धर्मों का प्रसन्न, एकतायुक्त, विवाद रहित अभ्यास करो, जैसे कि चार स्मृति प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ।"† सब सब धर्म अपने विस्तृत रूप में मौजूद हैं । उपालि महास्थविर के ही वचनों में—

सीलं पाकारकं तत्थ ञाणं ते द्वार कोट्ठकं ।
सद्धा ते एसिका धीर ! द्वारपालो च संवरो ॥
सतिपट्ठानमट्टालं पञ्ञा ते चञ्चरं मुने !
इद्धिपादञ्च सिंघाटं धम्मवीथि सुमापिता ॥
सुत्तन्तं अभिधम्मो च विनयो चापि केवलं ।
नवङ्ग बुद्धवचनं एसा धम्मसभा तव ॥

यही त्रिपिटक पालि है और सम्पूर्ण अपने व्यञ्जनों के साथ ।

* दीघनिकाय २,३

* मज्झिम नि० ३,१,३
† अपदान पालि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मेक्सिको में त्योहार और बलिदानों की प्रथा

स्व० पं० पुरुषोत्तमलाल

प्राचीन मेक्सिको में नर-बलि की प्रथा थी। बलिदान की क्रिया में अभागे देह-धारी का कलेजा निकालने के पहले वध-शिला पर बिठाकर उसे खूब मारा जाता था। और उसके सारे शरीर को तीरों तथा बर्छियों से छेद कर लहू-लोहान कर दिया जाता था। कभी कभी तो इससे भी अधिक कष्ट उसे पहुंचाए जाते थे कि वह अभागा शीघ्रातिशीघ्र अपनी देह से छुटकारा पाने के लिये देवी से प्रार्थना करने लगता था।

कभी कभी नरदेव के साथ कुछ सद्व्यवहार भी हो जाता था। परन्तु यह सहानुभूति केवल ऐसे ही व्यक्तियों के साथ दिखाई जाती थी जो शत्रु-सेना में सेनापति अथवा कोई नामी अफसर रह चुके हों। इस व्यक्ति को लाने से पहले एक ढाल-तलवार दी जाती थी और फिर उसे कुछ योद्धाओं से लड़ने के लिये उत्साहित किया जाता था। संयोग से यदि यह अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय पा लेता (जो बहुत ही कम सुनने में आया है) तो फिर उसे अधिकार था कि अपने देश को भाग जावे। पर यदि वह दस-पाँच व्यक्तियों से युद्ध करने के पश्चात् पराजित होता, तब उसकी भी अन्य वध्य मनुष्यों के समान ही दशा होती थी। ऐसे अवसरों पर जब किसी विख्यात बन्दी को उसकी प्राण रक्षा का अवसर दिया जाता तो दोनों दलों के बीच में एक बहुत बड़ा गोल पत्थर रख दिया जाता था कि वह देह-धारी देवता बारी बारी से अपने विपक्षी के साथ युद्ध करने में समर्थ हो सके।

इस युद्ध-कौतुक को नगर के सहस्रों नर-नारी सड़कों और गलियों में खड़े हुए देखा करते थे।

पाठक यह न समझ लें कि मेक्सिकन लोग अपनी स्वाभाविक क्रूरता अथवा निर्दयता के कारण ऐसे काम करते होंगे। ऐसी बलियां उनके धर्मशास्त्र में कर्त्तव्य मानी गई थीं। अतः प्रत्येक बात में उनका अक्षरशः पालन किया जाता था, और कौतुक की दृष्टि से नहीं, वरन सच्चे धार्मिक विश्वास से, सहस्रों नर-नारी इन दृश्यों को देखने के लिये उपस्थित होते थे। इन रीति-रिवाजों में यदि कहीं भी कोई त्रुटि रह जाती तो वे लोग उसे अपशकुन समझते थे।

पुरुषों के समान कभी कभी स्त्रियों का भी बलिदान होता था और वर्षा अथवा अकाल की आशंका से छोटे छोटे बच्चे तक देवताओं की भेंट चढ़ा दिये जाते थे।

सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषणों और पुष्प-हारों से सुसज्जित कर, ऐसे बालकों को चौकियों पर बिठाकर ये पंडे पहले सारे नगर में घुमाते और फिर देवता के मन्दिर में पहुँचकर इन अभागे निरपराधों को उनके भाग्य से परिचित किया जाता था। ऐसी भयङ्कर सूचना को सुनकर जब बालक घबराकर रोने लगते तो दया करने की अपेक्षा जनता उसे शुभ शकुन समझती थी और सबको विश्वास हो जाता था कि अब वर्षा शीघ्र ही होगी।

बलिदान के लिये पंडे बच्चों को मोल ले लेते थे और माता-पिता का अन्धविश्वास भी सीमा पार कर चुका था क्योंकि वे बिना किसी हिचकिचाहट के अपने दूध पीते बच्चों को हत्या के लिये राक्षस पंडों के हाथ में सौंप देते थे।

अमेरिका के 'स्काट' नामी एक व्यक्ति ने मेक्सिकन लोगों की बलिदान-क्रिया का आद्योपान्त बड़ा ही दर्दनाक वर्णन किया है। उसीमें से अधिक भयानक और करुणा-जनक विवरणों को छोड़कर शेष अंश नीचे दिया जाता है। वह लिखता है कि :—

"यों तो इस सारे भू भाग ही में बलिदानों का चलन था किन्तु जैसी वृद्धि इस प्रथा में मेक्सिकन लोगों ने की वैसी संसार में अन्यत्र नहीं देखी गई। यदि इनकी संख्या का वर्णन किया जाय तो पाठकों को इसका कदापि विश्वास न होगा। लगभग सारे ही इतिहासकारों ने इन बलिदानों की संख्या बीस हजार प्रतिवर्ष से कम नहीं लिखी है, बहुतों ने तो यह संख्या पचास हजार प्रतिवर्ष पहुँचा दी है। इस पर भी यह संख्या केवल साधारण वर्ष में होने वाले बलिदानों की ही बताई जाती है। जिस वर्ष कोई बादशाह गद्दी पर बैठता अथवा किसी मन्दिर की प्रतिष्ठा होती, उस वर्ष तो हत्याओं का कुछ ठिकाना ही न था। 'हुइट ज़िलो-पाचली' (युद्ध-देव) के मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये जो सन् १४८६ में हुई थी, कई वर्ष पहले से बलिदान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये बन्दी इकट्ठे किये गये थे। जब यह शुभ (?) दिन आया और बन्दियों को राजधानी में लाया गया तो उनकी दोहरी पंक्ति दो मील लम्बी बनी थी और कई दिन-रात बराबर बलिदान होता रहा था। कहते हैं उस समय एक दिन के बलिदानों की संख्या सत्तर हज़ार तक थी। क्या पाठक इसका विश्वास कर लेंगे कि इतने मनुष्यों ने भेड़-बकरियों के समान अपने गले कटवा दिये होंगे और विरोध की तनिक भी भावना उनके दिलों में उत्पन्न न हुई होगी, किन्तु नहीं, यह बात बिलकुल ठीक है और भली भाँति प्रमाणित हो चुकी है। कई इतिहास लेखकों ने इसकी भी साक्षी दी है। इसके अतिरिक्त इन घटनाओं को अधिक समय भी नहीं बीता, इसलिये इनके सही होने में सन्देह नहीं हो सकता। इन बन्दियों की ओर से विरोध न होने का कारण मेक्सिकनों की मोक्ष-प्राप्ति की दृढ़ धारणा और अन्ध विश्वास के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता।

दूसरा प्रमाण इस बलिदान की संख्या के सही होने का यह है कि जिस मन्दिर की प्रतिष्ठा में जितने मनुष्य मारे गये हों उन सबकी खोपड़ियाँ मन्दिर की दीवारों के ऊपर खरंजे के समान, जमाए जाने का दस्तूर था। धार्मिक विश्वास के कारण मेक्सिकन लोग इसको अत्यन्त पवित्र समझते थे। जिन व्यक्तियों की खोपड़ियाँ इस प्रकार मन्दिर में जड़ी गई हों उनकी मोक्ष-प्राप्ति में तो कोई सन्देह ही नहीं था। कोर्टियस के दो सैनिकों ने एक साधारण मन्दिर की संख्या गिनने का कार्य हाथ में लिया तो उस मन्दिर की खोपड़ियों की संख्या एक लाख छत्तीस हज़ार से कुछ ऊपर ही निकली थी। इसे देख कर मेक्सिको के मन्दिरों में प्रति वर्ष हज़ारों की संख्या में बलिदान होने का विश्वास सहज ही किया जा सकता है। और यह भी निश्चित है कि विभिन्न भागों पर आक्रमण करने का उद्देश्य मेक्सिकन लोगों का केवल बलिदान के लिये कैदी पकड़ कर लाने का था।

'टेज़किला' के इलाके और मेक्सिको राज के बीच एक प्रतिज्ञा पत्र (अहद नामा) लिखा गया था जिसका आशय था कि 'वर्ष' के एक ख़ास महीने में एक निश्चित मैदान में दोनों सेनाएं परस्पर शत्रु रूप में मोरचा लें और युद्ध के पश्चात् जिस दल के हाथ जितने कैदी लगें पकड़ ले जाय।' वहाँ यह नियम न था कि भागती हुई पराजित सेना का पीछा करती हुई शत्रु सेना उसके राज्य पर आक्रमण करे अथवा युद्ध में सम्मिलित न होने वाले व्यक्तियों को भी पकड़ लिया जाय। हाँ, युद्ध-क्षेत्र में जिससे जितना लड़ा जा सके लड़े और जितने कैदी जिससे पकड़े जा सकें पकड़ ले जाय। युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् जब ये दोनों सेनाएं मैदान से हटती थीं तो एक दूसरे के प्रति घनिष्ट मित्रता का परिचय देती थीं और साल भर तक इसी प्रकार दोनों में बराबर मित्रता रहती किन्तु जब युद्ध का समय आता ये राज्य और उनकी सेनाएं एक दूसरे के घोर शत्रु बनकर उसी मैदान में आ पहुंचती थीं।

नर भक्षण

अभी तक मेक्सिकन लोगों की उसी धर्मान्धता और मिथ्या विश्वास का वर्णन किया गया है जिसके कारण इन लोगों को निश्चय था कि देवता पर बलि चढ़ाए जाने के पश्चात् वे सीधे स्वर्ग में पहुँच अनन्त काल तक चैन करेंगे। वृद्धावस्था में पहुँचकर रोग आदि से मरने की अपेक्षा युवावस्था में जब शरीर में शक्ति हो और हाथ पांव चलते हों, मरना उनके धर्मानुसार अच्छा समझा जाता था। इस प्रकार मरने में वे अपने आपको अत्यन्त भाग्यशाली और आदरणीय समझते थे। इन बातों से मेक्सिकन लोगों का ईश्वर और राज की प्रति सच्चा स्वभाविक और दृढ़प्रतिज्ञ, होना पाया जाता है वरन इस ओर तो इनका विश्वास इतना बढ़ गया था कि बहुत से व्यक्ति तो स्वयं बलिदान होने के लिये अपने राजा व रक्षक से प्रार्थना करते थे जो तुरन्त ही स्वीकार कर ली जाती थी। ऐसे लोग बध-शिला पर लेटकर हँसते हँसते अपने कलेजे चिरवा डालते थे। भारत में भी ऐसा अन्ध विश्वास काशी करवट के नाम से प्रसिद्ध है। मेक्सिकन लोगों के लिये स्वर्ग में पहुँचने का सबा मार्ग यही था। इस प्रकार बलिदान होनेवाले व्यक्ति का नाम बहुत ही आदरणीय और चिरस्मरणीय था और उसकी खोपड़ी ईश्वरीय न्यायालय में रक्खी जाती थी जिस पर हाथ रखकर न्यायाधीश शपथ लेकर किसी अपराधी को प्राण-दंड देने की आज्ञा सुनाता था। कभी कभी बादशाह अथवा शासक न्याय करते समय देवी खोपड़ियों की माला भी अपने गले में डाल लेता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णित होते हुए भी इन सब बातों को ध्यानपूर्वक देखने से मेक्सिकन लोगों को सच्चा धर्म-भीरू ही कहना चाहिए किन्तु इनके नर-भक्षण जैसे वीभत्स कर्म को देख कर इन्हें क्या कहा जाय! सारे संसार के नर-भक्षी मनुष्यों में मेक्सिकन सर्व प्रथम थे। जितने मनुष्य बलिदान किये जाते थे उन सबके शरीर इन लोगों के उदर-कूप में समा जाते थे। जो सैनिक जिस बन्दी को पकड़ कर लाता बलिदान के पश्चात उसका शरीर उसे प्रसाद रूप में मिलता था और वह उसे घर ले जाकर अपने इष्ट मित्रों को बांटकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से खाता था। इन लोगों के यहां यह दिन अत्यन्त शुभ माना जाता था और ऐसे अवसरों पर अनेक प्रकार के नाच-गान द्वारा उत्सव को और भी रोचक बनाया जाता था। अन्य समाज में जिस प्रकार किसी शुभ अवसर पर अनेक प्रकार के मनोरंजनों की तैयारियाँ होती हैं उसी भाँति इन के यहां भी नरमेध पर उत्सव होते थे।

धार्मिक कथाएं

मेक्सिकन लोगों में भी महाप्रलय के बाद संसार की पुनः सृष्टि होना माना गया है। यों तो हर जाति और धर्म में सृष्टि निर्माण के विषय में अनेक कल्पनाएं हैं कि हजारों वरन लाखों वर्ष के पीछे ऐसा समय आता है जब आग अथवा पानी के तूफ़ानों द्वारा सृष्टि का लोप हो जाता है किन्तु मेक्सिकन लोगों में इस विषय की अनेक धारणाएं थीं। कुछ लोग कहते थे कि महाप्रलय के पश्चात केवल दो प्राणी जीवित बचे जिनमें कोकस नामी पुरुष और स्त्री थे। मेक्सिकन लोगों के यहां इस घटना के विषय में ऐसे चित्र बनाए गये थे जिनमें मानों चारों ओर पानी ही पानी भरा हुआ है और बीच में एक पहाड़ी के नीचे दो स्त्री-पुरुष एक नाव पकड़े खड़े हैं, ऊपर हवा में एक फ़ाख्ता उड़ रही है जो केवल कोकस चिल्लाती हुई कोकस की सन्तान को वाणी प्रदान कर रही है।

दूसरे कुछ लोगों का विचार था कि उस नाव में जिसमें 'टेजकी' उस तूफान से बचा था सब प्रकार के पक्षी भरे थे। जब इस नाव को तैरते हुए बहुत दिन हो गये तो 'टेजकी' ने तूफ़ान की ख़बर लाने के लिये एक पक्षी को भेजा परन्तु वह वापिस न आया और पानी पर तैरते हुए देवों और दानवों के शवों को खाने लगा। जब बहुत काल तक यह पक्षी न लौटा तो एक दूसरे गाने वाले पक्षी को भेजा गया जो एक पेड़ की डाली लेकर वापिस आया। ये सब कथाएं बाइबिल से मिलती जुलती हैं जो बड़े आश्चर्य की बात मालूम होती है क्योंकि इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं कि केवल चार सौ वर्ष पूर्व ही संसार को मेक्सिकन लोगों का हाल मालूम हुआ है और उसी समय से मेक्सिकनों को भी उनके अतिरिक्त संसार में अन्य मनुष्यों के अस्तित्व का विश्वास हुआ था। अन्यथा इससे पहले न दुनिया इनसे परिचित थी न ये दुनिया से। इसके अतिरिक्त मेक्सिको के चूलूला नामी शहर में इसी नाम का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के भग्नावशेष मिट्टी के ढेर के रूप में आज भी बचे हुए हैं। यह मन्दिर पिरेमिड की आकृति का है जिसमें सामने की ओर कच्ची ईंटें लगी हुई है। वर्तमान समय में इसकी ऊँचाई १८० फीट है। इस मन्दिर के विषय में एक कथा है कि किसी समय प्रलय में बचे हुए देव-दानवों ने यह मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और वे चाहते थे कि इसे आकाश तक ऊँचा बनावें किन्तु देवताओं को इन राक्षसों की धृष्टता पर क्रोध आया और उन्होंने ऊपर से इस पर आग बरसानी शुरू कर दी जिससे इसके सारे कारीगर भाग गये और मन्दिर अधूरा रह गया। यह कथा भी बाइबिल से मिलती है। मेक्सिकनों के 'सेवा कूटल' देवी और इंजील की मामा 'हव्वा' की कथा भी एक समान है। मेक्सिकन 'सेवा कूटल' को जगत माता मानते थे। इसी स्त्री से सृष्टि उत्पन्न हुई और इसीसे संसार में पापों का अविर्भाव हुआ। इस देवी के चित्र में इसके पास सांप भी बना हुआ है। मेक्सिकन भाषा में सेवा कूटल का अर्थ 'सांप वाली स्त्री' है।

ये सब कथाएं बड़ी आश्चर्य जनक हैं किन्तु अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि ये मेक्सिको तक कैसे पहुंचीं। कुछ लोगों का विचार है कि ये कथायें वहां मिश्र से पहुंचीं, कुछ कहते हैं जापान से और किसी किसी का कहना है कि तातार से ये कथाएं मेक्सिको में आई थीं। किन्तु बहुत लोगों का विश्वास तो यही है कि सृष्टि के आदि पुरुष मेक्सिकन ही थे और संसार की [illegible]ी बस्ती वास्तव में मेक्सिकनों की सन्तान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि का महत्व

श्री रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल-एल० बी०

ऋग्वेद के परम प्रसिद्ध नासदीय सूत्र में निरूपित किया गया है कि आरम्भ में न सत्य था न असत्य, न नित्य तत्व था न अनित्य तत्व, न व्यक्त सृष्टि थी और न अव्यक्त सृष्टि। जो कुछ था वह एक ही था और एक के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उसमें स्फूर्ति थी। स्फूर्ति के अतिरिक्त या उससे परे और कुछ न था। वह स्फूर्ति ही परिवर्तनशील दृष्ट जगत का प्रथम आभास था।

यह जो भिन्न भिन्न नाम-रूप से सम्बोधित जगत दिखाई पड़ता है उसके मूल की व्याख्या करने का प्रयास करना है। जो भौतिक पदार्थ हम देखते हैं वे विशिष्ट शब्दों से सम्बोधित होते हैं और उनका एक विशिष्ट आकार होता है। यह शब्द और आकार सर्वदा एक-सा नहीं रहता, वह सर्वदा बदलता रहता है। जो शक्ति पदार्थ में परिवर्तन के आवेग को स्फूर्तिमान करती है वह विचारणीय है।

संसार में जितने पदार्थ दिखाई देते हैं उनके मूल में गुण धर्म-रूप जो द्रव्य मौजूद है उसे 'वस्तु-तत्व' कहते हैं और वही अधिकारी सत्य है। जल में जो जलत्व है यह अधिकारी सत्य है। जलत्व वह वस्तु है जो जल के गुणों का प्रकाश करता है। जल के गुणों से ही सृष्टि में इसके दूसरे वस्तु-तत्वों के साथ मिलने से विकास होता है अतः जल के गुण-धर्म की जल से भिन्न कल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार किसी वस्तु तत्व की कल्पना उस वस्तु से भिन्न नहीं की जा सकती जिस वस्तु का वह वस्तु-तत्व, वस्तु-तत्व है। अतः किसी दृष्यमान् नामरूपात्मक पदार्थ का वस्तु-तत्व भी पदार्थ ही है, पदार्थ से अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं।

वस्तु तत्व की उपयोगिता क्या है? वस्तु तत्व अपरिवर्तनशील निकम्मा गुण-रूप ही नहीं है। किन्तु उसमें उस वस्तु को विकास की ओर ले जाने की अनुपम शक्ति है। यह वस्तु-तत्व दूसरे पदार्थों के वस्तु तत्वों के सम्पर्क में आकर निरन्तर विकास की ओर उन्मुख है।

प्रत्येक पदार्थ की यह मूलभूत शक्ति न परमात्मा है, न पुरुष है और न क्षेत्र है किन्तु पदार्थ की ही गुणमयी शक्ति है। इसे अव्यक्त कहें तो हमें आपत्ति नहीं किन्तु यह निरन्तर प्रवाहशील है।

इस सत्य को जानने का, अनुभव करने का और कार्यरूप में परिणत करने का साधन क्या है?

हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि समभूतात्मक देह में बुद्धि उसका परमोत्कृष्ट गुण है। बुद्धि में जानने की शक्ति है; किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना उसका नैसर्गिक गुण है।

ज्ञान का सत्य स्वरूप किस प्रकार से प्राप्त हो सकता है? संसार के पदार्थों का प्रभाव मन पर पड़ता है। मन उनको संग्रह करता रहता है। अनुकूल को अपने अधिकार में रखता है और प्रतिकूल को निकालकर बाहर फेंक देता है। इस अवस्था में ज्ञान प्राप्त करने की तीन इकाइयां हैं। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। जिस वस्तु की बाबत हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उसका प्रतिबिम्ब हमारे मन पर पड़कर वह हमारे पहले के संग्रह किये हुए अनुभवों में मिल जाता है। ज्ञेय ज्ञाता में मिल जाता है। फिर ज्ञेय का अनुभव ज्ञाता में मिलकर नवीन ज्ञान को उत्पन्न करता है इसलिए ज्ञाता का अस्तित्व भी स्वतन्त्र नहीं रहता और वह प्रगतिशील अनुभव की शृंखला में मिल जाता है। इस प्रकार ज्ञाता का भी स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता। जो कुछ मूल सत्य रूप से रहता है, वह हमारा ज्ञान मात्र है। इसी ज्ञान को भगवान बुद्ध ने 'विज्ञानवाद' के नाम से सम्बोधित किया है।

इस प्रकार हमारी बुद्धि ज्ञानमयी होकर नित्य प्रगतिशील होती रहती है। यहां पर सृष्टि का यह मूल तत्व समष्ट के दूसरे व्यष्टिगत मूल तत्वों के सम्पर्क में आता है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध किस प्रकार क़ायम रहे क्योंकि दूसरे मनुष्य को भी जीने का अधिकार तो है? यहां हमारी बुद्धि का फिर विकास होता है और बुद्धि इस सिद्धान्त पर पहुंचती है कि हम भी जीयें किन्तु दूसरे को भी जीने दें। अगर हम दूसरे के जीवन के वस्तु-तत्व को पहचानने में भूल करेंगे तो संघर्ष होगा और असत्य धारणा पर सत्य की विजय होगी। द्विगुणित रूप में फिर उस समय का विकास होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि में पशु, पक्षी, मनुष्य, तारे, सूर्य, चन्द्रमा आदि अगणित पदार्थ हैं। मनुष्यों के समाज, ताराओं के समाज और सूर्यों के भी समाज हैं। इन सब के मूल में भी प्रवाहित होने वाली एवं विकास करने वाली शक्ति मौजूद है जो हमारे जीवन में मूल रूप से जीवन के सञ्चालन का काम कर रही है। हमारी बुद्धि को इन सबका अनुभव करना होगा और इन अनुभवों के रूप में समग्र सृष्टि के साथ साथ कर्तव्य पर अग्रसर होना होगा।

बुद्धि का यह बहुत बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है कि वह अपनी जीवन-शक्ति का अपर जीवन शक्ति के साथ सामञ्जस्य स्थापित करे एवं दृश्यमान विरोधों का समन्वय करे। दूसरी जीवन-शक्ति के साथ मिलकर वृहत्तर चेतन-शक्ति को जन्म दे, उसके साथ संघर्ष में आकर उसका संहार न होने दे। पदार्थ में गुण-रूप स्फुरणा है और वही उसके विकास की उत्तोरोत्तर वृद्धि करती है उसकी जीवन-शक्ति है।

जब मूल में एक ही पदार्थ था; नित्य और अनित्य द्वैत नहीं था तो इसका सर्व प्रथम भान बुद्धि को हुआ।

सम्पूर्ण इन्द्रियां कार्य करती हैं, व्यापार में निरन्तर लग रहती हैं। इन सबके कार्यों का एकीकरण कर अनुभव रूप से सूक्ष्म तत्व को सर्व प्रथम बुद्धि ने ग्रहण किया।

सृष्टि का सम्पूर्ण जीवन एक है। उसके मूल में एक ही जीवन-शक्ति प्रवाहित हो रही है। भिन्न भिन्न पदार्थों के मूल की शक्ति वस्तुतः एक ही है, इसका निर्णय भी बुद्धि ने ही किया।

बुद्धि का यह ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। प्रत्येक जीव का उद्देश्य सर्वभूतहितैक्य बुद्धि को प्राप्त करना है और सर्वभूतहितैक्य बुद्धि को प्राप्त कर इसी दृष्टिकोण से जीवन में व्यवहार करना परमोत्कृष्ट है। यही परम गति और मोक्ष है। जीवन का यही पूर्ण विकास है।

क्या बुद्धि में पदार्थ के परम रूप, अन्तिम रूप और चरम ध्येय को जानने और उसे पाने की सामर्थ्य है?

अब हमें यह जानना होगा कि पदार्थ की परम गति क्या है? सम्पूर्ण पदार्थ के मूल में बढ़ने वाली जीवन शक्ति ही ध्रुव सत्य है और इसीमें जीवन को विकसित करने की सामर्थ्य है। कहना नहीं होगा कि पदार्थ की परम गति अपने आपको इस जीवन शक्ति में ही परिवर्तित कर देना है। अपनी व्यष्टिगत सत्ता को खोकर उसे समष्टिगत जीवन-शक्ति के स्रोत में मिला देना है। जिससे यह समष्टि की जीवन-शक्ति परिवर्धित, परिपुष्ट और परम शक्तिशाली होकर सम्पूर्ण भूतों के हित को विशेष रूप से विकसित कर सके।

इस परम गति को प्राप्त करने में कौन-सी बाधाएं हैं? इसके स्वरूप का अज्ञान ही इसमें प्रमुख बाधा है। दूसरे पदार्थों में निरन्तर जीवन-शक्ति का प्रवाह चल रहा है। वह प्रवाह किस दिशा की ओर और किस गति-विधि से चल रहा है, हम इसे जानते नहीं या जानने का प्रयत्न नहीं करते। अतः हम जब दूसरे पदार्थों के साथ व्यवहार करते हैं तो हमारा दृष्टिकोण दूषित-अपरिपूर्ण और अपरियक्त रहता है और हम पारस्परिक आदान, प्रदान व व्यवहार में भूल कर बैठते हैं। उस समय हम यह भूल जाते हैं कि दूसरे पदार्थ में जो जीवन-शक्ति ओत-प्रोत है वह ठीक वैसी ही है जैसी हमारे अन्दर है। इस भिन्नता का, इस परत्व की भावना का त्याग कर देना अपने ज्ञान की अज्ञान ग्रन्थि का संहार कर देना है और अज्ञान ग्रन्थि का नाश कर अपने वास्तविक मूल-रूप को प्राप्त करना ही परमगति या चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लेना है। वेदान्तियों की भाषा में यह जीव की मुक्तावस्था या सिद्धावस्था है।

क्या ज्ञान की इस अज्ञान ग्रन्थि का मूल नाश कर देना बुद्धि के अधिकार में है? हम ऊपर प्रतिपादित कर चुके हैं कि ज्ञान प्राप्त करना बुद्धि का नैसर्गिक गुण है किन्तु यह ज्ञान आसानी से प्राप्त नहीं हो जाता। इसके लिए सतत परिश्रम की आवश्यकता है। योग द्वारा, ध्यान द्वारा, आन्तरिक अनुभूति द्वारा इन सिद्धान्तों के दृष्टिकोण को प्रत्येक सांसारिक व्यवहार में जीवन के साथ ओत-प्रोत रखते हुए जो मनुष्य संसार में विचर कर जीवन-विकास की ओर अग्रसर है वह धीरे धीरे अपनी बुद्धि को सात्विक बनाता जाता है। ध्यान रहे बुद्धि कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिस पर कोई आवरण है जिसे हटाया और मूल रूप अनुभव में आ गया। वेदान्ती आत्मा की तरह बुद्धि इस दृश्यमान नाटक की प्रमुख पात्र नहीं। जिसमें अमृत-तत्व पर नाम रूप का डाला हुआ आवरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधार की घण्टी बजते ही अलग कर दिया गया और उसने अपने असली स्वरूप को पहचान लिया । बुद्धि पदार्थ का एक विकसित रूप है और उसको शुद्धि व पवित्रता की सात्विक भावना का निरन्तर अनुभव करवा कर उसे परम विकास की ओर ले जाने की आवश्यकता है तो, इस प्रकार सतत प्रयत्न द्वारा वह अपने परम रूप को अवश्य पहुंच सकती है ।

अतः पदार्थवाद में अज्ञान को कोई स्थान नहीं है जो कुछ है वह ज्ञान ही है । ज्ञान की अज्ञान ग्रन्थि ज्ञान के अपूर्व विकसित माप का संबोधन करती है क्योंकि ज्ञान तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक पदार्थ शक्तिरूप में परिवर्तित नहीं हो जाता । अज्ञान नकारात्मक और निरूत्साही है अल्प ज्ञान के सामने विकास का अनियंत्रित क्षेत्र खुला पड़ा है अतः सकारात्मक और आशापूर्ण है। जब व्यष्टि पदार्थ अपने ज्ञान की इस चरम सीमा तक विकसित हो जाता है, जब दूसरे पदार्थ में प्रवाहित होने वाली जीवन शक्ति उसे अपनी जीवन शक्ति के समान ही दिखाई देने लगती है तो इन दोनों के मध्य जो शरीर पदार्थ की रुकावट पड़ी हुई है वह अलग हो जाती है और पदार्थ का परमोत्कृष्ट ज्ञान रूप जीवन शक्ति समष्टि की जीवन शक्ति में मिल जाती है ।

परम प्रयत्न द्वारा बुद्धि में यह सामर्थ्य है कि निज वेष्टित पदार्थ के इस मूलतत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सके और पदार्थ को अपना परम ध्येय प्राप्त करा सके अतः संसार में बुद्धि से विशेष महत्वशाली कोई पदार्थ तत्व नहीं है ।

दिन निशि की भांति नहीं रोता !

श्री० शीतला सहाय श्रीवास्तव

दिन निशि की भांति नहीं रोता !
दिन की न कभी भीगीं पलकें,
गीले न गाल, छितरीं अलकें,
दिन काली - काली जंजीरों में बँधकर कभी नहीं सोता !
दिन निशि की भाँति नहीं रोता !

दिन को न प्यार सूनेपन से,
विह्वल मन से, उन्मन मन से,
दिन ठंडी - ठंडी साँसें ले प्राणों में पीर नहीं बोता !
दिन निशि की भाँति नहीं रोता !

रवि शशि-सा पीला मुख न लिये,
निष्प्रभ न सजल तन क्षीण लिये,
दिन झूठे-झूठे सपनों में जीवन का ध्येय नहीं खोता !
दिन निशि की भाँति नहीं रोता !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलाम में स्त्रियों का स्थान

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

इसलाम ने स्त्री और पुरुष को समान सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार दिए हैं। कुरान में कोई ऐसी आयत नहीं मिलती जिसका यह अर्थ हो कि धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से स्त्री का स्थान पुरुष से नीचा है। हज़रत मुहम्मद ने कहा है कि स्त्री जाति की रक्षा करना और उसका आदर करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है।

कन्या का जन्म और शिक्षा

अरब में इसलाम धर्म के प्रचार के पहले नवजात कन्या को जिन्दा गाड़ देने की प्रथा थी। हज़रत मुहम्मद ने इस प्रथा की कड़े शब्दों में निन्दा की और कहा "अपने बच्चों को ग़रीबी के डर से नष्ट न करो, अल्लाह तुम और उन्हें दोनों को खाने को देता है; वास्तव में उनकी हत्या करना एक बड़ा पाप है।"

इसलाम के प्रारंभिक दिनों में भी स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। हजरत मुहम्मद की पुत्री हज़रत फ़ातिमा बहुत पढ़ी-लिखी महिला थीं। भारतवर्ष के मअले में सुलताना रज़िया ही अकेली सिंहासन पर बैठी परन्तु अन्य मुसलमानी देशों में बहुत सी स्त्रियों को शासन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ईरान की शाहख़ातून, टर्की के सुलतान मुहम्मद द्वितीय की माता आलम और धर्म-युद्ध के योद्धा सलादीन की भतीजी जैफ़ा खातून ने काफ़ी योग्यता से शासन किया। ये सब उच्च शिक्षा प्राप्त थीं। हज़रत अली की पुत्री ज़ैनब एक अध्यापिका थीं। हज़रत हुसैन की पुत्री सकीना भी पढ़ी लिखी स्त्री थीं। हज़रत हसन की पौत्री फ़ातिमा सूफ़ी धर्म की ज्ञाता थी। हिन्दुस्तान में मुग़ल काल में गुलबदन बेगम, सुलताना सलीमा बेगम, नूरजहाँ बेगम, ज़हानआरा बेगम तथा जैबुन्निसां बेगम उच्च शिक्षा प्राप्त थीं। अबदुर्रहीम ख़ानखाना की पुत्री धर्म-शास्त्र का अच्छा ज्ञान रखती थी और उसने इसलाम शरीफ़ पर आलोचना सम्बन्धी एक पुस्तक भी लिखी थी। मुसलमानों के समय में स्त्रियों को ऊँची शिक्षा देने के लिए विद्यालय न थे। बचपन में कन्याओं को मस्जिद या मक़तब में लड़कों के साथ ही पढ़ना पड़ता था। दस-बारह बरस की उम्र होने पर लड़कियों का बाहर जाना बुरा माना जाता था और उस समय उन्हें घर की स्त्रियाँ घर-गृहस्थी के काम-धन्धे सिखलाती थीं।

बीसवीं सदी से पहले साधारण जनता तथा मध्य श्रेणी के लोगों के लिये लड़कियों को ऊंची शिक्षा देना एक समस्या थी जो कि पूर्ण रूप से अब भी हल नहीं हुई है। इसलाम धर्म स्त्री की उच्च शिक्षा के विरुद्ध न था। भारतवर्ष के अलावा अन्य मुसलमानी देशों में स्त्रियों की ऊँची शिक्षा के लिये प्रबन्ध था। मिस्र के शासक मलिक-उ-त्ताहिर ने स्त्रियों की वैद्यक और क़ानून की उच्च शिक्षा के लिये कैरो में एक कालिज खुलवाया था। मिस्र के अलावा दमश्क, बग़दाद, कारडोवा तथा बसरा में उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। आज कल टर्की तथा अफ़ग़ानिस्तान में लड़के और लड़कियों की शिक्षा के लिये एक सा प्रबन्ध है। जिस समय स्पेन मुसलमानों के अधीन था उस समय वह स्त्री-शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र था। अफ़ग़ानिस्तान में स्त्रियों को डाक्टरी शिक्षा देने के लिये एक नया कालेज खोला गया है जहाँ पाँच सौ से अधिक युवतियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

बम्बई प्रान्त की मुसलिम महिलाओं के एक संगठन का एक अधिवेशन सन् १९२४ में हुआ था। उसमें श्रीमती मौलवी ने स्त्री शिक्षा सम्बन्धी एक प्रस्ताव पास कराया था। प्रस्ताव पर बोलते समय उन्होंने कहा था कि मुसलमान स्त्रियों को पर्दे की प्रथा ने ऊँची शिक्षा से वंचित रक्खा है। मर्दुमशुमारी के हिसाब से सन् १९२१ में सिर्फ़ $\frac{1}{2}$ प्रतिशत मुसलमान स्त्रियाँ शिक्षित थीं, दस वर्ष में उनकी संख्या चार प्रतिशत हो गई थी और यह प्रतिशत लगातार बढ़ता ही जाता है।

कन्या का विवाह

विवाह के विषय में हज़रत मुहम्मद ने कहा था, "सब युवा पुरुषों को विवाह करना चाहिये, क्योंकि यह पाप से बचाता है और जो विवाह नहीं कर सकते, उनको व्रत रखना चाहिये।" विवाह के बारे में मुसलमानों का विश्वास है कि वह मनुष्य को धर्म मार्ग पर ले जाता है। इसलाम में विवाह हिन्दुओं के समान एक धार्मिक संस्कार नहीं है परन्तु वह एक सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज़ीनामा है जो कि स्त्री और पुरुष की मर्ज़ी के अनुसार किया जाता है। कुरान के अनुसार प्रत्येक कन्या को अधिकार है कि वह चाहे जिसको अपना पति चुने। अगर किसी कन्या का विवाह उसकी बाल्यावस्था में कर दिया गया हो तो उसको अधिकार है कि वह युवा होने पर उस सम्बन्ध को तोड़ दे। विवाह लड़की की जानकारी और उसकी मर्जी के खिलाफ़ नहीं हो सकता। कुरान शरीफ में लिखा है कि 'जो आदमी शादी करना चाहता है, उसे पहले लड़की देख लेने दो'। इसलामी समाज में एक मुसलमान युवक अपनी निकट की चचेरी, ममेरी और बुआ की लड़की से भी विवाह कर सकता है।

हज़रत मुहम्मद से पहले अरब में एक मनुष्य चाहे जितनी स्त्रियों से विवाह कर सकता था। परन्तु इसलाम ने अधिक से अधिक चार स्त्रियों से विवाह करने की सीमा बांध दी। फिर भी यह शर्त थी कि मनुष्य का व्यवहार प्रत्येक स्त्री के साथ एक-सा होना चाहिये। हज़रत मुहम्मद के कुल मिलाकर सात स्त्रियां थीं, परन्तु उस समय की परिस्थितियों ने उनको ऐसा करने के लिये बाध्य कर दिया था। आधुनिक समय में मुसलमान स्त्रियां इस प्रथा के खिलाफ़ हैं। अखिल भारतीय मुसलिम महिला कानफरेंस के १९२४ के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास हुआ था कि जिस मनुष्य के घर में एक स्त्री है उसके साथ कोई मनुष्य अपनी कन्या का विवाह न करे।

तलाक़ की प्रथा

हज़रत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों से कहा था कि खुदा की नज़रों में सबसे नापसंद चीज़ तलाक़ है। भारतवर्ष के सन् १९३९ के मुसलमानी क़ानून के अनुसार एक स्त्री निम्नलिखित शर्तों पर तालाक दे सकती है, (१) अगर चार साल तक उसका पति लापता है—(२) अगर दो वर्ष तक पति अपनी स्त्री को आवश्यकतानुसार खर्च न दे सके, (३) अगर पति को सात साल के लिये कारावास का दंड मिला हो। (४) अगर पति निपुंसक या पागल हो अथवा अपनी स्त्री के साथ अत्याचार करता हो। कानूनन मुसलमान स्त्री तलाक दे सकती है परन्तु व्यावहारिक रूप से जब देखा जाता है तब यह बात साफ़ हो जाती है कि मध्यम श्रेणी की युवती अपने पति के विरुद्ध अदालत में फरियाद नहीं कर सकती। उसका मुख्य कारण समाज की रोक तथा पर्दे की प्रथा है। कानून जो पुरुष स्त्री को तलाक देता है उसको उसकी परवरिश के लिये धन देना पड़ता है जब तक कि वह दूसरी शादी न कर ले या मर न जाय। स्पष्ट है कि मुसलमान स्त्रियों में सिर्फ शिक्षित युवतियां तलाक की प्रथा से लाभ उठा सकती हैं। अशिक्षित मुसलमान स्त्रियां अपनी हिन्दू बहिनों के समान अपने पति के अत्याचारों को सहन करती हैं।

विधवा विवाह

इसलाम में तलाक़ दी हुई स्त्री या विधवा को पूर्ण अधिकार है कि वह अपना दूसरा विवाह कर ले। इसलाम के शुरू के ज़माने में ऊँचे ख़ानदानों की स्त्रियां कई बार शादियां कर लेती थीं। हज़रत मुहम्मद की पहली स्त्री ख़दीजा ने मुहम्मद साहब से विवाह करने के पहिले दो बार विवाह किया था। मुहम्मद साहब की सात स्त्रियों में से छै पहले की विधवा थीं। सम्राट अकबर ने अब्दुर्रहीम खानखाना की विधवा मुलताना सानिंसा बेगम से विवाह कर लिया था। जहांगीर ने विधवा नूरजहां बेगम से विवाह किया था। इस प्रकार इस्लाम में विधवा विवाह का प्रचलन काफ़ी था।

सतीत्व

प्राचीन काल से ही सब देशों और धर्मों में स्त्री के मनुष्य हमेशा से सतीत्व की कठिन कसौटी पर जांचते आये हैं। इसलाम के पहले अरब में पति को अधिकार था कि अगर उसे अपनी स्त्री के चरित्र के विषय में शंका हो तो वह उसे जान से मार सकता था। कुरान शरीफ़ ने इस विषय पर यह रोक लगा दी थी कि अगर व्यभिचार स्त्री की मर्ज़ी से किया गया हो तो उस स्त्री को व्यभिचारी से ही विवाह करना पड़ता था। मुहम्मद साहब का कथन था कि अगर कोई पुरुष किसी स्त्री के चरित्र पर दोष लगाये और अगर चार गवाह न ला सके तो उसको अस्सी कोड़ों की सज़ा दो। इसलाम सतीत्व में अपना दृढ़ विश्वास रखता है परन्तु स्त्रियों को पुरुषों की इच्छा पर नहीं छोड़ता। पुरुषों को स्त्री के सतीत्व पर संदेह करने के लिए काफी प्रमाण देने पड़ते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाहित जीवन

विवाहित जीवन को सुखी बनाने के लिये तथा स्त्रियों को गृह-स्वामिनी का पद देने के लिये कुरान शरीफ़ में पतियों को हिदायत दी गई है कि, "तुम सब में अच्छा वह है जो कि अपनी स्त्री के साथ अच्छा सलूक करता है।" परन्तु व्यावहारिक रूप से जब देखा जाता है तब कुरान के आदर्श से समाज बहुत दूर क्या विपरीत दिशा की ओर जाता दिखलाई पड़ता है। स्त्री अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकती, वह अपने स्वामी की दासी बन जाती है। आदर्श रूप में तो इसलाम यह मानता है कि पति अपनी स्त्री को अपने बच्चों के लिये खाना बनाने को बाध्य नहीं कर सकता है, बच्चों की देखभाल का भी पूरा जिम्मा उसके ऊपर नहीं डाल सकता है, परन्तु वास्तव में अवस्था कुछ और ही है। सन् १९२० में भारतीय मुसलमान स्त्रियों के विवाहित जीवन का चित्र खींचते हुये एक लेखक लिखता है कि उनकी अवस्था एक अपाहिज अबला के समान है जिसके जीवन की सम्पूर्ण खुशी उसके स्वामी की खुशी पर निर्भर रहती है। तनिक सी अप्रसन्नता पर स्वामी उसे एक घण्टे में घर से निकालकर उसके जीवन को बरबाद कर सकता है। यह बात सत्य है क्योंकि स्त्री शिक्षित नहीं है और वह अपने अधिकारों के लिये समाज से लड़ नहीं सकती। कुरान में लिखा है कि जिस मनुष्य के एक से अधिक स्त्रियां हों उसको सब के साथ एक सा बर्ताव करना चाहिये, परन्तु व्यवहार में यह नहीं होता है। धर्मानुसार भी विवाहित स्त्री की रखैल के सामने कुछ भी नहीं चलती। मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों से कहा था कि 'तुम्हें अपनी स्त्रियों पर अधिकार है और वे तुम पर अधिकार रखती हैं।" परन्तु असलियत तो यह है कि स्त्री पर पुरुष के सब अधिकार हैं और स्त्री के पुरुष पर कुछ भी नहीं।

पर्दे की प्रथा

स्त्रियों के पर्दे के विषय में मुहम्मद साहब ने कहा था कि, "स्त्रियां अपनी जीविका के लिये बाहर आ जा सकती हैं, परन्तु उनको अपनी आँखें हमेशा नीची रखनी चाहियें, और शरीर के उन हिस्सों को ढँके रखना चाहिये जो कि दूसरों में लालसा पैदा करते हैं और अपने आभूषणों को खुला नहीं रखना चाहिये।"

परन्तु आज टर्की ने पर्दे को समाप्त ही कर दिया है। वहाँ की स्त्रियों की प्रतिनिधियों ने देश के राष्ट्रपति से प्रार्थना की थी कि वह पर्दे की प्रथा के विरुद्ध एक कानून पास करायें जिसमें देश की सारी स्त्रियां सहयोग देंगी। रूसी तुर्किस्तान की स्त्रियों ने भी पर्दे के विरुद्ध सन् १९३१ में एक आन्दोलन किया था और उन्हें सफलता मिली थी। सीरिया, फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान सभी जगह आज पर्दे की प्रथा समाप्त सी है।

उपसंहार

भारतवर्ष के बाहर जहाँ जहाँ भी इसलाम धर्म फैला वहाँ स्त्रियों को पुरुषों के समान ही धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता दी गई थी। युद्ध-क्षेत्र में भी हज़रत मुहम्मद की स्त्री आयशा और उनकी पुत्री फातिमा गई थीं। टर्की की फातिमा खातून नामक स्त्री ने क्रीमियां की लड़ाई में बड़ा भाग लिया था। सुलताना रज़िया, नूरजहाँ बेगम तथा चांद बीबी भी अपने समय की योद्धा स्त्रियां थीं। भारत में रज़िया और नूरजहां के अलावा, जौनपुर की बीबी राज़ी, बहमनी वंश की मखदूम-ए-ज़हान, दारा की स्त्री शादी बेगम तथा भूपाल की सुलतान जहान बेगमों ने राज्य किया था। शाहजहाँ के समय में वज़ी खातून यूनानी वैद्यक-शास्त्र की अच्छी ज्ञाता थी। समस्त क्षेत्रों में भारतवर्ष तथा बाहर के देशों में स्त्रियां उच्च पदों पर पहुँच चुकी हैं। भारतीय मुसलमान स्त्रियों का भविष्य उज्ज्वल है, परन्तु उन्हें उत्साह के साथ अपने समाज, जाति और देश को ऊँचा बनाने में टर्की तथा अन्य इसलामी देशों का अनुकरण करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम साहित्य का एक नवीन कवि

श्री त्रिलोकी नारायण दीक्षित एम० ए०

अवध भारतवर्ष का एक इतिहास प्रसिद्ध प्रान्त है। बैसवारा इसीके एक छोटे भू-भाग का नाम है। अवध के दक्षिण में गंगा और सई नदी के मध्य में जो विस्तृत भू-भाग पड़ता है वह तीन भौगोलिक भू-भागों में बहुत प्राचीन काल से बँटा रहा है। इनमें ऊपर का भाग। बाँगर मध्य का बनौधा तथा इसके परे उखर कहलाता हैं बाँगर और बनौधा के मध्य में ही बैसवारा स्थित हैं। बैसवारा अपनी वीरता तथा देशभक्ति के लिए बहुत समय से प्रसिद्ध है। १८५७ के सिपाही विद्रोह में बैसवारा के वीरों ने बड़े शौर्य के साथ फिरंगियों का सामना किया था। साहित्यिक क्षेत्र में भी बैसवारा कभी पीछे नहीं रहा है। पूर्व समय में बैसवारा संस्कृत तथा हिन्दी पठन-पाठन का केन्द्र रहा है। भावन, भौन, घनसिंह राय, बेनी, शिवलाल दूबे, शम्भूनाथ त्रिपाठी, लालनदास, मलिन्द, बांकेराय, बन्दीजन, सुखदेव, शम्भूनाथ मिश्र, सुखराम, लालगिरधर, मान, जगन्नाथ, निहाल, प्राणनाथ गुणकर तथा प्रायः अन्य १५० कवियों ने समय समय पर जन्म लेकर अपने साहित्य सर्जन द्वारा हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया।[1] इन्हीं कवियों की अनेकानेक महत्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकें यत्र-तत्र अनधिकारी व्यक्तियों के पास छिपी पड़ी हैं। उनमें से एक प्रतिशत नहीं हो सकी। दुर्भाग्य से कुछ पुस्तकें ऐसे व्यक्तियों के पास पहुँच गयी हैं जो उनका मूल्य केवल ताले में बंद रखने तक ही जानते हैं। फलतः समय के प्रभाव से वे ग्रंथ नित्य-प्रति विनाश की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। बैसवारे के गावों में पंडितों के संग्रहों में ऐसे अनेकानेक हस्तलिखित ग्रंथ नष्ट होते जा रहे हैं। जिन पर हमारे साहित्य को गर्व हो सकता है और बैसवारी प्रकाश में आ सकती है। ऐसे ही एक संग्रह से 'रामचन्द्रिका' नामक हस्तलिखित पुस्तक मुझे उपलब्ध हुई है। इसके रचयिता बैसवारा प्रान्तान्तर्गत बेती ग्राम के निवासी यशस्वी कवि भौन थे।

प्रस्तुत 'रामचन्द्रिका' पुस्तक की कथा वस्तु चिरपरिचित रामचरित मानस की कथा है परन्तु कवि की अभिव्यंजना शैली तथा भाषा निजी है। प्रस्तुत पुस्तक में कथा का विभाजन रामचरित मानस जैसा विभिन्न काण्डों में न होकर 'प्रकाशों' में हुआ है। और इस पुस्तक में श्री राम के चरित्र तथा चरित्र का गुण-गान अड़तीस प्रकाशों में हुआ है जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है:— "इति श्री मत्सकल लोक लोचन चकोर चिन्तामणि श्री रामचन्द्र चन्द्रिकायाम् अपभ्रंश प्रकाश ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार सम्पूर्ण पुस्तक राम जन्म, राम विवाह, राम बन गमन, शूर्पणखा, सीता हरण, भरत समागम, उपवन बिनोद, लक्ष्मण सम्मोहन, भरत सम्मोहन, चित्रकूट, युद्ध इत्यादि अड़तीस प्रकाशों में कथा की अभिव्यञ्जना हुई है। युद्धप्रकाश के पश्चात् अन्तिम प्रकाश में लवकुश की कथा का चित्रण हुआ है। रामचरित की कथा समाप्त हो जाने के पश्चात् राम नाम महात्म तथा राम नाम स्तुति २५ छन्दों में वर्णित है। प्रस्तुत स्तुति में भगवान की भक्त वत्सलता तथा शबरी अहिल्या इत्यादि के उद्धार और मोक्ष का वर्णन है। रामस्तुति के अन्त अथवा पुस्तक की अन्तिम पँक्तियों में कवि ने स्वलिखित प्रार्थना का महत्व निम्नलिखित पँक्तियों में अभिव्यक्त किया है।

"राम स्तुति कवि भौन कृत पढ़ै जो तीनिहु काल।
संतति संपति हारी भगति लहै सुतजि जंजाल॥"
इति कवि भौन कृत राम स्तुतिः॥ शुभ॥"

पुस्तक के आदि में कवि ने श्री गणेश और शिव जी की स्तुति की है। इन प्रार्थनाओं के पश्चात् कवि ने अपने वंश, पिता, कुटुम्ब का परिचय बहुत ही विनम्र शब्दों में दिया है। परन्तु कई एक बरसातों का निरन्तर सामना करने के कारण ऊपर वाला प्रथम पृष्ठ तथा परिचय वाला अंश सर्वथा नष्ट हो चुका है। सम्भव है कि दूसरी कोई प्रति मिलने पर इस नष्ट पृष्ठ की पूर्ति की जा सके।

कवि ने अपनी इस रचना में अनेकानेक छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें गीतिका, नवपदी, अरिल्ला, दोहा, चौपाई, पादाकुल, पद्मावती, त्रिभंगी, सोरठा, मरहग, हरिगीतिका, आभीर, त्रोटक, विजया

---

(१) विशेष जानकारी के लिए देखिए हमारा लेख बैसवारे के साहित्यिक' माधुरी, अक्तूबर १९४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...शार्दूल विक्रीडित, बान दोहा, सवैया, तरांगिनी, ...इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छन्दों का ...करने के पूर्व प्रतिलिपिकार ने उनका नाम प्रत्येक ...पर बड़ी सतर्कता के साथ लाल रोशनाई से लिख ...है। समस्त पुस्तक पर दृष्टिपात करने के पश्चात ...हो जाता है कि दोहा, सवैया, शार्दूल विक्री-...हरिगीतिका, गीतिका तथा पद्मावती छन्द कवि को ...प्रिय थे।

...कवि की भाषा अवधी है। अवधी भाषा में अधिकांश ...का सम्मिश्रण है। संस्कृत के शब्दों का भी ...है। विशेष उल्लेखनीय बात भाषा के सम्बन्ध में ...कि यद्यपि बैसवारा उर्दू तथा मुग़लों के केन्द्र ...से ३० मील की दूरी पर है फिर भी कवि पर ...प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं होता है। कवि की रचना ...तथा फारसी के शब्दों का अभाव-सा है। भाषा में ...और बैसवारी का स्वाभाविक माधुर्य सर्वत्र ...होता है।

...चन्द्रिका की सामान्य दशा अत्यन्त असन्तोष-...है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपर के मोटे कवर ...बरसातें बीत चुकी हैं। फलतः ऊपर के कवर के ...पुस्तक के प्रथम पृष्ठ का नीचे का भाग गल ...। इसी सड़े हुए भाग में कवि के बंरा का परिचय ...नष्ट हो चुका है। पानी गिरने के कारण पुस्तक ...पृष्ठों के अलिखित भाग सड़ गये हैं। ...स्याही में प्राचीन काल में गोंद का प्रयोग होता ...कारण पुस्तक के अनेक पृष्ठ इस प्रकार चिपक ...उन्हें अलग करना भी असम्भव प्रतीत होता है ...करने में पृष्ठों के नष्ट हो जाने का भय है। ...के लेखक को इसी प्रकार की प्रायः १०० ...पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं जिनका विवरण दूसरे ...दिया जायगा।

...ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या २४० है। जिनकी ...चौड़ाई ९×६" है। पुस्तक का रचना काल ...निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु ...दृष्टिपात करने पर यह बात सिद्ध हो जाती है ...कवि की प्रौढ़ कृति है।

...साहित्य के सर्वप्रथम इतिहासकार शिवसिंह ...ग्रन्थ 'सरोज' में 'भौन' का परिचय इस प्रकार दिया है:—"भौन कवि (१) नरहर वंशी बन्दीजन, बेंती, ज़िला रायबरेली वाले, सं० १८८१ में उ०। यह महाकवि शृङ्गार रस के वर्णन में बड़े प्रवीण थे। अलंकार का शृङ्गार रत्नाकर नामक ग्रन्थ बनाया हुआ अत्यन्त ही सुन्दर है। इनके पुत्र दयाल कवि भी कविता में निपुण हैं।"[२]

'सरोज' के उपर्युक्त उद्धरण से तीन बातें प्रकट होती हैं। भौन नरिवंशी तथा बेंती ग्राम निवासी थे। इनका जन्म सं० १८८१ वि० था। इनके पुत्र दयाल दास 'दयाल कवि' शिवसिंह के समकालीन थे।

कवि के पुत्र दयाल कवि शिवसिंह के समकालीन थे और शिवसिंह रायबरेली में ही थानेदार थे। शिवसिंह काव्य रसिक थे इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। अतः यह सत्य जान पड़ता है कि शिवसिंह द्वारा लिखित कवि का परिचय ठीक है। कवि का जन्म सम्वत् १८८१ वि० में शुद्ध प्रतीत होता है।

परन्तु 'माधुरी' सम्पादक श्री पं० रूपनारायण जी पाण्डेय ने 'सरोज' के परिशिष्ट में संशोधन करते हुए शिवसिंह लिखित १८८१ सं० को इस प्रकार अशुद्ध सिद्ध किया है—"इनका जन्म १८८१ नहीं, १८२५ होना चाहिए, क्योंकि १८५१ में इन्होंने 'शक्ति चिन्तामणि' ग्रन्थ बनाया है।"[३] पाण्डेय जी द्वारा निश्चित सम्वत् १८२५ भ्रमपूर्ण मालूम देता है। पाण्डेय जी ने 'शक्ति चिन्तामणि' में लिखित तिथि के आधार पर अपना मत स्थापित किया है। 'शक्ति चिन्तामणि' की रचना सम्वत १८५१ में हुई अवश्य थी परन्तु यह ग्रंथ भौन कवि विरचित नहीं है। इस ग्रन्थ के रचयिता बैसवारे के अन्य प्रतिभावान कवि भवानी प्रसाद पाठक 'भावन' थे, जिन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ "काव्य शिरोमणि"[४] की रचना की थी। कदाचित् माधुरी सम्पादक 'भौन

२—देखिए शिवसिंह सरोज पृ० ४६६, नवलकिशोर प्रेस १९२६ ई०

३—देखिए शिवसिंह सरोज परिशिष्ट पृ० ४

४—यह ग्रन्थ अभी हाल ही में लेखक को प्राप्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'भावन' को एक ही कवि मान बैठे हैं। 'शक्ति चिन्तामणि' 'भौन' नहीं 'भावन' रचित है। इसका दूसरा प्रमाण यह कि यह पुस्तक बम्बई के ज्ञानसागर प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें लेखक का नाम भावन ही पड़ा है 'भौन' नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि माधुरी सम्पादक लिखित तिथि का आधार तर्कों द्वारा अशुद्ध ठहराता है, इस कारणसम्वत् १८२५ वि० अशुद्ध है।

'मिश्रबन्धु विनोद' में आचार्य मिश्रबन्धु ने कवि का केवल उल्लेख मात्र कर दिया है। उसमें तिथियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। [५]

भौन कवि के समय का ज्ञान हमें कुछ 'निराला जी' लिखित लेख 'भौन कवि' से भी पता चलता है।[६] लेख के अन्त में 'निराला' जी ने भौन कवि के कुछ छन्दों को उद्धृत किया है।[७] इन्हीं छन्दों में से एक इस प्रकार है :—

"जैहैं फूटि फूट सी तमाम तोप तोड़वालो,
कूटि जैहैं काबिल कमाल फौज बाना ते,
टूटि जैहैं देश को दिमाग, जोर छूटि जैहै,
लूटि जैहैं लाखन को माल तोसखाना ते।
भौन कवि कहत खोदाय की खबरि करो,
पीछे पछतावगे खराब खून खाना ते,
बैरन की बनिता सिखावती एकन्त कन्त,
कीजिए न रारि बेनी माधौ बक्स राना ते।[८]

५—देखिए 'विनोद' भाग ३ पृ० ९९२
६—चाबुक, कला मन्दिर, प्रयाग पृ० १-११
७—देखिए—चाबुक, प्रकाशक कला मन्दिर प्रयाग पृ० ७-११
८—वही पृष्ठ ९

उद्धृत पद्यांश की अन्तिम दो पंक्तियां विशेष ध्यान देने योग्य हैं जिनका कि अर्थ है कि "वैरियों की स्त्रियां अपने पति से एकान्त में कहती हैं कि राना बेनीमाधव बक्स से शत्रुता न कीजिए।" राना बेनीमाधव कौन थे और कौन थे उनके शत्रु, पाठक के मस्तिष्क में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। इसके लिए १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह का इतिहास उलटना पड़ेगा।

डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, रायबरेली देखने से पता चलता है कि राना बेनी माधव बक्स १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में बैसवारे के नायक तथा अपने बलिदान द्वारा देश को गौरवान्वित करने वाले थे। अंग्रेज़ों के वे कट्टर शत्रु थे।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भौन कवि ने राना बेनी माधव बक्स जी का उत्कर्ष देखाहोगा और वे राना के समकालीन रहे होंगे।

शिवसिंह सरोज में लिखित सम्वत् १८८१ वि० गणनानुसार सन् १८२५ ई० होता है। सिपाही विद्रोह की तिथि सन् १८५७ है। इस महान संघर्ष काल में भौन की अवस्था ३२ वर्ष की रही होगी। अतः यह बात सिद्ध होती है कि शिवसिंह में लिखित कवि का जन्म सम्वत् १८८१ वि० शुद्ध है।

कवि की मृत्यु तिथि निश्चित करने के लिए लेखक के पास कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। लेखक बैसवारे के कवियों की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील है। भविष्य में उपयुक्त प्रमाणों की प्राप्ति होने पर इस विषय पर प्रकाश डाल जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय हिन्द !

श्री रामकुमार चतुर्वेदी

ध्वनित करता जल-थल-आकाश उठा क़ौमी नारा जयहिंद !

(१)

घिरी थी घोर निराशा-निशा,
गगन में गूंज उठा घन-घोष,
नगर, वन, ग्राम हिलाता चला
विनाशक झंझाओं का रोष !

हिले तरु-पुंज, हिले गिरि-शिखर,
हिला आकाश, हिला पाताल,
गाज पर गाज गिरी, फट पड़ी
दिगन्तों के अंतर की ज्वाल !

काँपे थर-थर-थर-थर साम्राज्य,
युद्ध का ताण्डव नर्तन हुआ,
अन्य विस्फोटों ही के साथ
हिमालय का गुरु-गर्जन हुआ !

क्रांति का शंख फूंकते बढ़े
दीन भारत के वीर जवान,
ज़ुल्म से लोहा लेते किया
सैकड़ों ने जीवन बलिदान !

रुकावट किन्तु नहीं हट सकी, ज़ुल्म का रुका नहीं तूफ़ान,
बुझे मंदिर के दीपक बुझे, रात का दिखा नहीं अवसान,
किन्तु से तभी अचानक उठी भैरवी की ऊँची-सी तान,
अरुणा के पहले पार घाटियों में हँस पड़ा विहान !
सभी ने देखी नूतन ज्योति, सभी ने सुना लगाकर कान—
ध्वनित करता जल-थल-आकाश उठा क़ौमी नारा 'जयहिंद !

(२)

हिमालय के शिखरों से परे,
पुण्यमय गंगाजल से दूर,
शैल, निर्झर, वन-उपवन भरे
हिन्द के सीमाथल से दूर !

खड़ा था ब्रह्मदेश में आज
वंगमाता का कोई लाल,
दीप्त मुख मंडल, मांसल गात,
हिमालय-सा गर्वोन्नत भाल,

खड़ी थी उसकी सेना आज
कूच कर देने को तैयार,
फड़कते थे सौ-सौ भुजदंड,
गूंज उठता था जयजयकार !

लिए गद् गद् स्वर, जलमय नयन
हृदय में आज़ादी की ज्वाल,
तिरंगा ध्वज लहराकर बोल
उठा वह भारत मां का लाल !

"जवानो उठो ! तुम्हारा देश रहा है तुमको आज पुकार,
क्षितिज की गिरिमाला के पार बुलाती हैं गंगा की धार"
हुआ नेताजी का जयघोष, 'चलो दिल्ली' आई आवाज़,
चली आज़ाद-हिंद-वाहिनी चमकती ज्यों मेघों में गाज !
थरथरा उठे शत्रु के दुर्ग, डगमगा उठा ज़ुल्म का ताज़,
ध्वनित करता जल-थल-आकाश उठा क़ौमी नारा जयहिंद !

(३)

लिए आज़ादी का उन्माद,
सिपाही चरण बढ़ाते रहे,
कुसुम दल खिलते-झरते रहे,
'रात-दिन' आते-जाते रहे !

नदी, नद, निर्झर, गिरि, वन, कूल,
रूप की छटा दिखाते रहे,
किन्तु अपनी धुन में तल्लीन
सिपाही चरण बढ़ाते रहे !

अभी आया भारी तूफ़ान
तोड़ता विटप, हिलाता शृंग,
कभी सागर के उर पर उठी
घोष करती उत्ताल तरंग !

किन्तु प्रतिपल दिल्ली की ओर
सिपाही चरण बढ़ाते रहे,
क़ौम के लिए मिले जो प्राण
क़ौम के लिए लुटाते रहे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन शुरू हुआ घमसान, गोलियों की बौछारें हुईं,
लगीं तोपें बरसाने आग, सिन्धु जैसी हुंकारें हुईं!
गगन में वायुयान उड़ चले, धरा पर हुए घोर विस्फोट,
जले जंगल, फट पड़े पहाड़ ज्वलनशीलों की खाकर चोट,
रक्त से लिखती नव इतिहास चली आज़ाद-हिंद की फ़ौज,
ध्वनित करता जल-थल-आकाश उठा क़ौमी नारा 'जयहिंद'!

[४]

युद्ध की आग सुलगती रही,
सिपाही बढ़ते-हटते रहे,
रात-दिन लुटता रहा सुहाग
कुलों के दीपक बुझते रहे!
कहीं घायल भरते थे आह
कहीं पर था लाशों का ढेर,
कहीं था आत्म समर्पण और
कहीं लड़ते थे वीर दिलेर!

इधर लाखों गुलाम गद्दार
उधर मुट्ठी भर मां के लाल,
चुकी आज़ाद हिन्द की रसद,
किन्तु कब हुए वीर बेहाल!
घास पत्ती खा-खाकर लड़े
कि वे थे आज़ादी के दूत,
आन पर अड़े-अड़े मिट गए
कि वे थे मां के वीर सपूत!

किन्तु कब तक चलता यह हाल! भूख से शक्ति क्षीण हो गई
स्नेह से हीन दीप की ज्योति घोर तम में विलीन हो गई!
हुई आज़ाद हिंद की हार, बहा लाखों आंखों से नीर,
हुए नेताजी अंतर्धान बने बन्दी उनके रणधीर!
किन्तु साम्राज्यवाद के पृष्ठपोषकों ने विस्मय से सुना
हिलाता लाल क़िले के बुर्ज उठा क़ौमी नारा 'जयहिन्द'!

[५]

आज कहता सारा संसार
हुआ नेता जी का अवसान,
गया निष्फल उनका तप, योग,
गया निष्फल उनका बलिदान,
किन्तु कवि कहता 'ओ संसार!
गरजते तूफ़ानों को देख!
शहीदों की लाशों को देख,
सुलगते अरमानों को देख!
गूंज उठता है बारम्बार
आज नेताजी का जयकार,
मुक्ति-नभ के चुम्बन के लिए,
उमड़ता है जन-सिंधु अपार!
तिरंगे की लहरों के साथ
गूंजते आज़ादी के गान,
'चलो' दिल्ली उठती आवाज़
करोड़ों पग करते प्रस्थान!

रहे हैं एक-एक कर छूट
आज आज़ाद हिंद के वीर
टूटने ही वाली है आज
गुलामी की जर्जर जंजीर!

हिमालय की आंखों का स्वप्न पूर्ण होनेवाला है आज,
हड्डियों पर निर्मित साम्राज्य चूर्ण होनेवाला है आज।
हिन्द-सागर अपने घर आज जलाता है लहरों के दीप,
किरण की परी लिए संदेश गई पुरखों के आज समीप।
झांक कर नक्षत्रों से आज देखते होंगे कोटि शहीद—
हिंद होगा फिर से आज़ाद, हिन्द होगा फिर से आबाद,
कि उसके नगर-नगर से आज, कि उसके ग्राम-ग्राम से आज
ध्वनित करता जल-थल-आकाश उठा क़ौमी नारा 'जयहिंद'!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकी

विचार और कर्म

श्री विष्णु

पात्र

प्रबोध—एक मानवता प्रेमी युवक

बासुदेत, निसार } —प्रबोध के मित्र।

पिता—प्रबोध के धर्मभीरु पिता।

सलमा—एक स्वतन्त्र विचारों की मुस्लिम लेखिका।

माँ—प्रबोध की माँ।

प्रमिला—प्रबोध की पत्नि।

रामी—एक हरिजन बालिका।

[कथा भारत के बड़े नगर की है। एकांकी के दृश्य दो होकर भी उनके समय में कोई अन्तर नहीं है। सवेरे के लगभग नौ बजे से बारह बजे तक कथानक समाप्त हो जाता है।

घटना एक निम्नस्तर के मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार से सम्बन्ध रखती है। यह परिवार गाँव से आकर शहर में बस गया है। सम्पन्न न होकर भी प्रबोध प्रगतिशील है।

स्टेज पर उस परिवार के बैठने का कमरा दिखाई देता है। एक कोने में मेज है जिस पर अनेक पुस्तकें, कापियाँ, कागज की चिटें, कैलेन्डर, कलमदान, कुछ अखबार तथा कुछ तरतीब से रखे हैं। दूसरे कोने में एक बेंत का सोफा है, तीसरे में जूतों की एक रैकनुमा अलमारी तथा चौथे में धरती पर एक दरी बिछी है। दरी पर सफेद चादर है, बच्चों के खेलने के कारण वह कई जगह से मैली हो चली है। पैर पोछने का पायदान, अखबार रखने की लम्बी चौकी सब यथास्थान है। आलों और कार्निसों पर किताबें, खिलौने और नकली गुलदस्ते सजे हैं।

इस समय स्टेज के बीच में एक छोटी मेज है उस पर चाय का पूरा सामान लगा है। चार कुरसियां हैं, दो कुरसी है दो पर दो युवक बैठे चाय पी रहे हैं। एक युवक धोती कुरता पहिने और कन्धे पर चादर डाले है, चादर उतार कर अब गोद में रख लेता है। वह कुछ अधेड़ और प्रौढ़ नज़र आता है। दूसरा युवक कुरता पाजामा में है, अपेक्षाकृत सुन्दर परन्तु व्यग्र है। यह प्रबोध है और पहिला इसका मित्र बासुदेव]

प्रबोध (चाय की घूंट भरते हुये)—हाँ तो आप उस दिन भूखे ही लौटे।

बासुदेव (रोटी पर मक्खन लगाते हुए)-बिल्कुल! घर से आशा करके चला था बड़े सेठ हैं, पेट भर कर खाना मिलेगा परन्तु वहां एक सुन्दर प्लेट में चार छोटे छोटे बिस्कुट रखे थे। बिस्कुट इतने छोटे कि अचरज होता है।

प्रबोध (मुस्कराता है)-शायद आपके सेठ समझते थे कलाकारों की क्षुधा कला से शान्त होती है भोजन से नहीं। इसलिये उन्होंने आपके सामने अपने सौन्दर्य और कला प्रेम का प्रदर्शन किया था।

बासुदेव (रोटी खाते हुए)-ऐसे कला प्रेम को लेकर कोई क्या करे। एक बड़ा मज़ाक था वह और मज़ा यह उस दिन तुम्हारी भाभी ने भी छुट्टी करदी थी।

प्रबोध (हँसता है)-खूब! फिर तो आप सारे दिन भूखे रहे होंगे।

बासुदेव (चाय सिप करता है)-नहीं! उस दिन मुझे भूखा नहीं रहना पड़ा। लौटते समय मैं शाहिद के पास चला गया। वही जन नाट्य गृह वाले। कुछ बातें करनी थीं। वे एक मित्र के साथ चाय पी रहे थे। उनकी चाय बड़ी शालिड थी। गरम गरम हलुआ और...।

प्रबोध (चाय का प्याला खट से मेज पर रखता है)—तो वह हलुआ खाया आपने।

बासुदेव (अचरज)—खाता क्यों न, खाने की चीज़ खाई ही जाती हैं। इसमें है ही क्या?

प्रबोध (रूमाल से मुह पोछता है)—कुछ भी नहीं है। मैं तो इसे गतशीलता का चिन्ह समझता हूँ परन्तु सोचता था आप ब्राह्मण हैं शायद.....

बासुदेव (हंसता है)—ब्राह्मण मैं अवश्य हूँ परन्तु कलयुग का ब्राह्मण हूं। अन्तर केवल इतना है कि सतयुग में ब्राह्मणों के मुख से अग्नि निकलती थी कलयुग में वह कलम से निकलती है। इसलिये मुझे मुह जलने का डर नहीं है।

[दोनों हंस पड़ते हैं। बासुदेव रोटी पर मक्खन लगाता है। प्रबोध चाय बनाता है और सहसा हाथ की घड़ी देखता है]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबोध—नौ बज गये। निसार साहब अभी तक नहीं आये।

बासुदेव—ये निसार साहब हैं कौन ?

प्रबोध—उर्दू के अच्छे कवि हैं। सुरीला स्वर है। प्रतिभा भी है और मानव प्रेम के प्रबल समर्थक हैं...

[उसी समय निसार वहाँ आते हैं। काली शेरवानी और फैज पहिने हैं। युवक है, मुख पर दृढ़ता है। मुस्करा कर सबको अदाबअर्ज़ करते हैं]

प्रबोध (हंसते हुये उठता है)—आइये, आइये निसार साब! अदाबअर्ज़। अभी आपकी चर्चा हो रही थी।

निसार (हंसता है)—ठीक है Think of the devil and he is there, शैतानके बारे में सोचो और वह आ मौजूद होता है।

वासुदेव—इसे आप दूसरी तरह भी कह सकते हैं—देवता के बारे में सोचो और वह आ उपस्थित होता है।

निसार—माफ करिये (झिझकता है)।

प्रबोध (शीघ्रता से)—ठहरिये मैं आप लोगों का परिचय करा दूँ (निसार की ओर) आपकी चर्चा मैं कर चुका हूँ। मेरी स्कीम का हृदय से समर्थन करते हैं और आप···आप वासुदेव हैं हिन्दी के सुप्रसिद्ध विचारक और उपन्यासकार।

निसार-(मुस्कराकर) वासुदेव साहब आप हैं। आपके कई स्केच मैंने पढ़े हैं बहुत खूब लिखते हैं आप!

वासुदेव (गंभीर बनते हैं)—उर्दू में पढ़े हैं ?

निसार—जी नहीं। मैं हिन्दी जानता हूं।

वासुदेव—ओ-! बड़ी खुशी की बात है।

[वासुदेव और निसार हाथ मिलाते हैं और बैठते हैं]

प्रबोध—(चाय बनाकर कप निसार को देता है)—पीजिये। और हां! आप क्या कह रहे थे ?

निसार (चम्मच से चीनी घोलता है)—मैं वासुदेव साहब के देवता की बात कह रहा था। मुझे देवता से शैतान ज्यादा प्यारा है। असल में किसी सोसाइटी में देवता और शैतान का इतना सवाल नहीं जितना Haves और Have nots का है। Have वाले सदा Status-quo के हामी होते हैं। किताबों में इन्हीं को देवता कहा गया है। शैतान बेचारा Have nots का वकील है। वह Statusquo को पसन्द नहीं करता इसीलिये खुदा ने उसे जन्नत से निकाल दिया था। आज की सोसाइटी को ही ले लीजिये, जो Statusquo की मुखालफ़त करते हैं वे बाग़ी और गुण्डे; न जाने क्या क्या कहलाते हैं पर आप मानेंगे Statusquo तो मौत है। देवता कभी नहीं मरते। भला यह भी कोई जिन्दगी है (चाय पीता है)। यह तो बोझ है। सच कहता हूँ प्रबोध जी। ये देवता और ईश्वर सब Statusquo वालों के दिमाग की उपज हैं।

वासुदेव (गम्भीर ऊपर को देखता है)—मैं तो समझता हूं सोसाइटी में स्टेटसको वालों की ज़रूरत क्या रहती है।

प्रबोध—बेशक उनकी जरूरत अनिवार्य है। वे नदी की धारा रोककर तुगयानी का काम करते हैं।

[वासुदेव झेंपते हैं। निसार हँसता है। प्रबोध केटली उठाता है, खाली है]

प्रबोध (अन्दर की ओर)-अम्मा जी! अम्मा जी!!

[दूर से शब्द आता है]

स्वर—आई बेटा!

[हाथ में दो तश्तरी लिये माँ का प्रवेश। वृद्धा। बाल सफ़ेद होगये हैं। स्वास्थ्य अच्छा है। चौड़ी पार की धोती पहिने है]

प्रबोध [तश्तरी लेता है]—अम्मा जी चाय है!

निसार—अम्मा जी! सलाम।

मां (मुस्कराकर)—जीते रहो, बेटा। (प्रबोध से) चाय है; लाती हूँ।

[माँ लौटती है। पीछे प्रमिला एक हाथ में और दूसरे में केटली लिये खड़ी है। सुन्दर नहीं है व्यक्तित्व प्रभावशाली है। खद्दर की छपी साड़ी गरम ब्लाउज़ पहिने है]

मां—ओ! तुम ले आईं, (प्रबोध से) चाय ले बेटा।

[प्रबोध मुस्करा कर केटली और तश्तरी थाम है। माँ और प्रमिला का प्रस्थान]

निसार-(हलुआ खाता है)—प्रबोध आपका काम तारीफ के लायक है। दिमाग के साथ की फीस्ट करना भी तुम खूब जानते हो। दुनिया का सारा दारोमदार पेट पर है। पेट के मार्क इकनौमिक्स। इस इकनौमिक्स को लेकर आज दुनिया दो कैम्पों में बँटती जा रही है। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Haves और Have nots की है। तुम जिस फर्जे इन्सानी को लेकर दिन रात पागल रहते हो वह फक़त इस सवाल का एक पहलू है। मैं जानता हूं मुस्तकबिल Have nots का है। (चाय पीता है) इसलिये प्रबोध आइन्दा की मंशा है कि वक्त रहते हम लोग समझ जावें। इसके लिये एक ऐसी सोसायटी बनाना चाहते हैं जिसमें सब लोग इन्सानियत के तल पर मिल सकें.....

प्रबोध (मुस्कराता है)—बेशक वह सभा मेरे जीवन का स्वप्न है।

निसार (प्याला ठीक से रखता है)—मैं सपनों में बिल्कुल यकीन नहीं करता।

प्रबोध (गर्व से)—हरेक बड़ा काम पहिले स्वप्न होता है।

निसार-बिल्कुल नहीं। हर एक बड़ा काम पहिले होता है बगावत। इसीलिये मैं चाहता हूँ सपने मत देखो, बगावत करो। बगावत के बिना स्टेटसको भङ्ग नहीं हो सकता।

वासुदेव (शून्य में ताकता है)—मनुष्य केवल एक के प्रति विद्रोह कर सकता है—केवल एक के।

निसार—किसके?

वासुदेव (उसी तरह)—केवल अपने।

[निसार के मुँह पर उपेक्षा के भाव आते हैं तभी मां अन्दर से आती है]

मां—कुछ और चाहिये, बेटा!

प्रबोध—नहीं मां! यह सब उठवा लो। (निसार से) तुम्हारी बहस विषय से बहुत दूर जा रही है। (घड़ी देखकर) दस बजने वाले हैं। आओ सभा के विधान पर विचार करें। मैं किसी भी तरह उस काम को करना चाहता हूं। वह मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। आज की विशृंखल दुनिया में...।

निसार (घड़ी देखता है)—आज की विशृंखल दुनिया में आप घड़ी की सुइयों को मिला देना चाहते हैं। यकीन रखिये घड़ी की सुइयों को मिला देना आपके ख्याल में होने पर भी वक्त आपकी फिकर नहीं करेगा। वह सब रुकावटों को पार करता हुआ बढ़ता चला जायेगा।

[एक क्षण सब हंसते हैं। पर दूसरे ही क्षण सहसा गम्भीर हो उठते हैं, मां प्लेट उठाती है। परदा गिरने लगता है। प्रबोध बोलता है]

प्रबोध (मुस्कराकर) समय को रोकने का जो साहस करते हैं वे प्रतिगामी हैं। हम केवल उसे अपने साथ चलाना चाहते हैं और.....

[बोलते बोलते परदा गिर जाता है। फिर उठता है। मां प्लेट उठाकर चलती है। वे तीनों फर्श पर बैठ जाते हैं]

दूसरा दृश्य

[समय-पहिले दृश्य के ठीक बाद। स्टेज पर घर के भीतर रसोई और स्नानागार साथ साथ दिखाई देते हैं। रसोई में सुघड़ता है पर भीड़ है। बहुत से बरतन पानी के पीपे, आटा-दाल-घी-मसाले सभी समान अलग अलग चुगे हुये हैं। दोनों चूल्हे जल रहे हैं। पकवान की सुगन्ध से कमरा भरा है। प्रमिला पटरे पर बैठी आटा गूँध रही है। स्नानागार का द्वार खुला है। प्रबोध के वृद्ध पिता चौकी पर बैठे पूजा कर रहे हैं। इसी समय ट्रे उठाये हाँफते हाँफते माँ वहां आती है]

माँ—ले बहू! पहिले इन्हें सम्हाल। टूट न जाये। चीनी की प्लेट धो कर रख दे।

[मां उन्हें रखकर छांटने लगती है। पिता कुछ क्षण उसे देखते रहते हैं फिर एकदम चीख उठते हैं]

पिता (चीखकर)—अरे क्या करती है; तू देखती नहीं?

मां (कुछ)—ऐसे क्यों चीखते हो, क्या हुआ?

पिता (इतने तेज कि शब्द लड़खड़ाते हैं)—मैं चीखता हूँ। तू देखती नहीं सब बरतन मिला दिये।

माँ—मिला दिये तो क्या हुआ सभी जूठे बरतन हैं।

पिता (उसी तरह)—सभी जूठे हैं। उनमें एक मुसलमान भी तो है, उसके जूठे.....

[आगे वाणी अस्पष्ट हो जाती है। माँ का रंग सहसा पलटता है जैसे अपनी ग़लती पहचानती है परन्तु दूसरे ही क्षण स्वस्थ हो उठती है]

मां—तो क्या हुआ? यहां तो रोज मुसलमान आते हैं और खाते भी हैं। यह भी क्या गांव है? शहरों में इतनी छूत छात नहीं चलती। (प्रमिला से) बेटी! वह एक तश्तरी निकाल लेना। आग डाले देती हूं। लड़का सुनेगा तो क्या कहेगा?

पिता—कुछ भी कहे। मुझे यह सब नहीं देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता। वह तो कृस्टान बन गया है। जनेऊ भी उतार डाला उसने।

मां (खीजती है)--तो फिर लड़ लो उससे जाकर, मेरा सिर क्यों खाते हो ?

पिता--मैं सिर खाता हूं।

मां—और क्या करते हो ? जब देखो तब शेर की तरह खाने को आते हैं। बेटे के सामने मुँह पर ताला लग जाता है। नहीं देखा जाता तो जंगल में क्यों नहीं चले जाते।

पिता (क्रुद्ध)—चला जाऊँगा।

मां—जाओ फिर। मुझे तो खुशी होगी। रोज रोज की दांता किलकिल से पीछा छूटेगा। यह छू दिया, वह जूठा है, मुसलमान ने हमारे बरतनों में खाया है। एक मुसीबत है ? जानते हैं कि आजकल के लड़के इन बातों को नहीं मानते।

पिता—आज कल के लड़के यदि कुएँ में गिरते हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं भी गिर जाऊँ।

मां (तेज)—कौन कहता है गिरने के लिए...

पिता (तेज)—तुम...।

मां—मैं तो नहीं कहती। मुझे ज़रूरत क्या पड़ी है जो कुछ कहूँ। बेटे के पास रहूँगी तो उसकी बात करनी पड़ेगी (सहसा शान्त होकर) और उसे क्यों दोष दूँ ? बेचारा कभी कुछ नहीं कहता चाहे किसी रास्ते चलूँ। मेरा मन है, कायथ पंजाबी किसी के घर का नहीं खाती तो क्या वह मजबूर करता है ? रही मुसलमानों की बात आजकल ज्यादातर चीनी के बरतनों में खाते हैं। कभी ही ऐसा बरतन देना पड़ता है। वह आग डालकर साफ़ किया जा सकता है। आग तो सर्वभक्षी है। (क्षण भर चुप रहती है) और यह सब मेरे तुम्हारे रहने तक है। फिर तो क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सभी इसी चौके में बैठकर साथ साथ खायेंगे। समय समय की बात है। तुम्हारे बाप थे जाट के घर का भी नहीं खाते थे। छूत तो अब रही ही नहीं। रेल के सफर में मुसलमान, ईसाई, चमार, चूहड़े सभी एक सीट पर बैठते हैं (बरतनों को छांट छांटकर अलग करती रहती हूं) अपनी बात देख लो। मेज पर बैठकर प्लेट में खा लेते हो कि नहीं। गांव में थे तो क्या कभी चौके से बाहर खाया था ?

पिता (एकदम शान्त)—कभी नहीं।

मां (विजयोल्लास से पूरित)—तो फिर जो तुम्हारे बाप थे वह तुम नहीं हो। जो तुम हो वह तुम्हारे बेटे नहीं हो सकते। यह समझौता तो करना ही पड़ेगा। राम जी करे हम तुम बैठे रहें। देख लेना तुम्हारा पोता भंगिन की लड़की से विवाह करेगा और वह लड़की बी० ए० पास होगी। (मुस्करा कर बहू की ओर देखती है) प्रबोध जब बालक था तो उसके बाबा हंसा करते थे—इसका विवाह भंगिन की लड़की से कर दो। और जानता था कि भगवान ही उनके मुँह में बोल रहे हैं। पोते का न सही; पोते के बेटे का विवाह भंगन की लड़की से होना बुरा नहीं समझा जावेगा।

पिता (शीघ्रता से)—अजी ऐसा तो अभी से होने लगा है। मैंने अख़बार में पढ़ा था एक आदमी ने—बड़ा आदमी है—महात्मा गान्धी को लिखा है कि वह हरिजन लड़की से विवाह करना चाहता है।

मां (अचरज करती है)—सच !

पिता—हाँ।

मां—कैसा समय आ गया है ! गान्धी जैसे महात्मा कहते हैं छूतछात पाप है परन्तु अपना मन तो मानता नहीं !

[उसी समय बाहर से कोई पुकारता है। स्वर मधुर है, नारी]

स्वर—मिस्टर प्रबोध ! प्रबोध बाबू...।

[मां चौंक कर उठती है और द्वार पर आती है]

मां—कौन है ?

[बाहर झांकती है और अचरज से मुस्कराती है]

मां—किसे पूछती हैं आप ? अन्दर आ जाइये।

एक युवती का प्रवेश। सुन्दर है खद्दर की रेशमी साड़ी पहिने है, रंग नीला है। ब्लाउज भी नीला है। शरीर पर जेवर के नाम कानों में कुण्डलाकार कर्णफूल तथा हाथों में दो दो चूड़ियां है। आंखों पर चश्मा और पैरों में सैन्डिल पहिने है। पता नहीं लगता है हिन्दू है या अन्य कोई। प्रमिला और पिता दोनों एकटक उसे देखते हैं, वह झिझकती है]

युवती (झिझकती है)—मि० प्रबोध यहीं रहते हैं ?

मां (मुस्कराकर)—जी यहीं रहते हैं। कुछ काम है ?

युवती—जी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां—आइये, मैं बताती हूं।

[आगे मां, पीछे युवती जाती है। परदा गिरने लगता है। प्रमिला और पिता अभी तक अचरज से उसे देख रहे हैं। मां बोलती है]

मां—आप कहां रहती हैं ?

युवती—जी मैं लाहौर रहती हूं पर अब यहीं से आई हूँ।

[मां कुछ और पूछती है पर परदा गिर जाता है]

तीसरा दृश्य

[स्टेज की व्यवस्था लगभग पहिले दृश्य के समान है फ़र्क़ अन्तर यह है कि चाय की मेज हट गई है और सोफ़ों पर बैठे हैं। तीनों गम्भीर हैं। जान पड़ता है कुछ वाद विवाद हुआ है और वे एकमत नहीं हो पा रहे हैं। प्रबोध बोल रहा है]

प्रबोध—आप कुछ भी कहें यह मेरे जीवन का लक्ष्य है मैं किसी भी शर्त पर इसे पूरा करना चाहता हूं! अर्थात् अर्थनीति यहां तक कि स्वराज्य की भी मुझे परवाह नहीं है। क्योंकि मेरी दृष्टि में घृणापूरित समाज में स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं होता। इसलिये मैं कल्पना नहीं कर सकता कि जिस देश में मनुष्य मनुष्य से घृणा करता है, वह देश कभी आज़ाद हो सकता है। किसी शक्ति की बात करना अपने पाप को दूसरे के सिर थोपना है.....।

[मां का प्रवेश]

मां (मुस्कराती है)-अरे प्रबोध। ये आई हैं।

[युवती का प्रवेश]

प्रबोध (एकदम)—कौन ? (देखता है) आप

[वासुदेव निसार अचरज से युवती को देखते हैं]

प्रबोध (मुस्कराकर)—आप सम्भवतः...

युवती—मेरा नाम सलमा है। आपकी.....

प्रबोध [सहसा उठता है और हाथ जोड़ता है] नहीं कृपा की (मुड़कर) साथियो! आप उर्दू की [मां सहसा चकित होकर सलमा को देखती हैं] वासुदेव—आप सलमा अन्सारी हैं, प्रगतिशील लेखिका संघ की उपप्रधानां हैं।

निसार—मैंने आपके नाटक पढ़े हैं। आपसे मिलकर

सलमा (मुस्कराती है)—बैठिये बैठिये। आप लोगों से.....

प्रबोध—जी हां! (वासुदेव की ओर) आप श्रीवासुदेव हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, (निसार की ओर) आप प्रसिद्ध शायर, संस्कृति संघ के प्रबल समर्थक।

[सब हाथ जोड़ते हैं]

मां (धीरे से)-चाय ले आऊं ?

प्रबोध (धीरे से)-हां, ले आओ (मुड़कर) बैठिये। आप ठीक समय पर आईं। हम लोग उसी समस्या पर विचार करते हैं। यदि श्री वासुदेव उसके सदर बन जावें.....

निसार—मैं कहता हूं प्रबोध! सदर और सैक्रेटरी ये सब फिजूल है। बात काम की है। मैं चाहता हूँ इस सभा में कोई सदर न हो। यह बुर्जुआपन मुझे अच्छा नहीं लगता।

प्रबोध—फिर भी एक संचालक.....।

सलमा—(मुस्कराकर) संचालक नहीं डिक्टेटर।

वासुदेव—डिक्टेटर शब्द पर मुझे आपत्ति है। उसमें कम्पलशन अनिवार्य है और कम्पलशन किसी भी हालत में ठीक नहीं है।

निसार—कम्पलशन ठीक है या गलत पर उसके बिना काम नहीं चलता। काम करने के लिये जिस ताक़त की ज़रूरत होती है, वह अक़ल्लीयत या अक्सरीयत के पास नहीं होती। वह काम करने वाले के पास होती है और हर एक सोसाइटी में काम करने वाले चन्द होते हैं बल्कि मैं कहूँ वह एक ही होता है।

सलमा—आप ठीक कहते हैं। हमें कम से कम ओहदेदार रखने चाहियें लेकिन ये सब बातें मामूली हैं खास बात तो यह है क्या हम सब अपने को एक कुटुम्ब का मेम्बर मानने को तैयार हैं।

निसार—यह नामुमकिन है।

सलमा—कैसे?

निसार—इन्सानी खसलत की वजह से।

सलमा—इन्सानी खसलत क्या एकता नहीं चाहती ? क्या हमेशा झगड़े पैदा करती है।

वासुदेव—मैं प्रकृति की जटिलता को मानता हूं परन्तु उसे अनुकूल बनाया जा सकता है।

प्रबोध—बेशक असम्भव कुछ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निसार—क्यों नहीं है ! जो नामुमकिन है वह हमेशा नामुमकिन है। चाह कर भी इन्सान आसमान में छेद नहीं कर सकता।

प्रबोध (एकदम)—कर सकता है। आज न कर सके यह दूसरी बात है पर कल कर सकेगा वह बिल्कुल सम्भव है। एक युग था जब आकाश में उड़ना असम्भव माना जाता था परन्तु तब भी एक महान पुरुष ने भविष्यवाणी की थी कि मनुष्य एक दिन उड़ेगा। और वह उड़कर रहा। आज वह आकाश के नीचे उड़ता है कल को ऊपर उड़ेगा।

निसार (मुस्कराता है)—कभी नहीं, प्रबोध। इन्सान हमेशा आसमान के नीचे ही उड़ेगा। उसमें छेद करने के लिये वह जितना ऊँचा उठेगा, आसमान उतना ही ऊपर उठता चला जावेगा।

[सब उसकी बात समझ जाते हैं और झेंपते हैं]

निसार (हँसता है)—आखिर आसमान हमारी नजर की हद के अलावा और है क्या ? लेकिन प्रबोध बाबू ! फिर भी उसको छेदने का एक रास्ता मैं जानता हूँ।

प्रबोध (उत्सुक)—क्या ?

निसार—अपनी आँखें बन्द कर लीजिये। बन्द होते ही आसमान छाती के भीतर आ जायेगा। तब आप कुछ भी कर सकते हैं। इसी तरह आपके सवाल का हल सोसाइटियों में नहीं है; वह आपके भीतर है।

प्रबोध, बासुदेव, सलमा एक साथ बोलते हैं—

बेशक तुम ठीक कहते हो।

बेशक अन्दर भगवान है वे सब कुछ कर सकते हैं।

मैं मानती हूं ताकत अपने भीतर ही है।

(मां का प्रवेश—चाय की ट्रे लाई है)

प्रबोध—[चाय की ट्रे लेता है और सलमा से कहता है] लो, पहिले चाय पीलो।

सलमा [अचरज से]—अरे ! आपने मां को इतनी तकलीफ क्यों दी।

प्रबोध—अरे पीजिये भी.....।

[बासुदेव सहसा घड़ी देखता है और उठता है निसार भी उठता है]

बासुदेव—बहुत देर हो गई प्रबोध। मैं चलूं ! और देखो संस्थाओं के चक्कर में ज्यादा मत पड़ो। काम करो। फिर भी तुम चाहोगे तो मैं बाहिर नहीं हूँ।

निसार—मुझे भी इज़ाजत दो। दूर नहीं हूं। बुलाओगे तो दौड़ा आऊंगा।

प्रबोध [खड़ा हो जाता है]—मैं चाहता था आज वह सभा बन जाती। मनुष्य को आज मनुष्य की जितनी जरूरत है उतनी किसी भी युग में नहीं थी.....लेकिन खैर ! आप लोग मेरे उद्देश्य से सहमत हैं यही क्या कम है ?

[जाते हैं, नमस्कार आदाबअर्ज़ की गहरी आवाज गूँजती है और मिटती है प्रबोध आकर सलमा के पास बैठ जाता है। मां भी है]

सलमा [चाय बनाती है]—अब तो चाय का वक्त भी नहीं है (मां की ओर देखकर) इससे बेहतर तो यह था आप मुझे अपने चौके में बिठाकर खाना खिलाती। मां खिसिया जाती है पर उसे मुस्कराहट में छिपा कर कहती है। [बाहिर कोलाहल मचता है]

मां (धीरे से)—बेटी ! हम पुराने विचारों के लोग हैं। पुरुखों ने जो लकीर खींच दी है उसी पर चलते हैं।

सलमा (प्याला रखकर)—अम्मा जी। न जाने क्यों हमारे पुरुखों ने भेद की यह लकीर खींची थी। आज मेरा जी करता है जिस तरह आपने मुझे चाय पिलाई है मैं भी आपको अपने घर ले जाकर पिलाऊँ। क्या ऐसा हो सकता है। यह बेबसी कितनी बुरी है। आपस की मुहब्बत को इसने दीमक की तरह खा डाला है। आप लोगों में कितनी अच्छी बातें है ? सोचा करती हूं आपके पुरुखों ने अपने मजहब को नजर लगने से बचाने के लिये यह काजल का टीका लगा दिया था। आज उस काजल के टीके ने सारा मुंह ही काला कर दिया यह क्या आपके पुरुखे नहीं देखते।

[सहसा बाहिर कोलाहल तेज होता है। जैसे कोई मोटर तेजी से रुकी और चली गई, कोई तांगा हटा। कोई तेजी से चीखा]

मां [चौंक कर]—क्या हुआ [बाहिर जाती है]

प्रबोध—कोई हादसा हुआ होगा। आजकल अन्धे होकर चलते हैं। हां, मैं कह रहा था.....

[मां का घबड़ाये हुये प्रवेश]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां (हांफती है)-अरे प्रबोध ! एक लड़की मोटर के नीचे आगई ।

प्रबोध (लापरवाही से)-आगई होगी ! मैं क्या करूं तो !

[(मां झिझकती है, सलमा अचरज से देखती है]

मां—उसका सिर फट गया है । तेरे दोस्तों का तांगा बिगड़ गया था । मोटर जो बची तो लड़की सामने आगई

सलमा (द्रवित सी)- तांगा गया ।

मां (")-हां बेटी तांगा गया और मोटर भी । बहुत से आदमी इकट्ठे हो गये हैं पर.....

[नेपथ्य में शोर, मां फिर जाती है]

सलमा (एकदम)-देखिये न प्रबोध बाबू..... ।

[प्रबोध झिझकता है । नेपथ्य का शोर पास आता है मां के साथ एक युवक का [लड़की को उठाये प्रवेश]

मां—प्रबोध ! खाट बिछा जरा ! कहां है प्रमिला ? उससे कह दूध गरम करले और (लड़की से) बेटी रो मत ! कैसे कम्बख़्त हैं ये लोग खड़े मुह देखते रहे..... ।

[प्रबोध अब जल्दी से खाट बिछाता है । सलमा खड़ी खड़ी देखती है । युवक बालिका को लिटा देता है । बालिका का सिर और मुह रक्त से भरा है । उसके वस्त्र फटे और गन्दे हैं । उसके बाल छोटे और उलझे हैं ।]

मां (उसी तरह बोल रही है)-सब अन्धे हैं मार डाला बेचारी को, कोई उसे छूने को तैयार नहीं । तेरे वे दोस्त भी तांगे में बैठकर चले गये, यह न हुआ.... (अन्दर की ओर) प्रमिला ! ला बहू पानी ला और प्रबोध देख तितीन की आलमारी मे डिथोल होगा.... और रुई.....

[प्रबोध जो अब तक कुछ उद्विग्न था सहसा लड़की को गौर से देखता है]

प्रबोध-अरे मां । यह तो रामी है । हमारी भंगन की लड़की.....

मां (सहसा झिझकती है)—भंगन की लड़की... (एकदम सम्हलती है) तो फिर क्या हुआ ? मुर्दनी में भी तो जाते हैं । सिर धो डालूँगी । तू जरा डाक्टर को बुला ला बेचारी...(पुकार कर) अरे प्रमिला...अच्छा मैं जाती हूं (सलमा से) बेटी तुम जरा...

सलमा (सहसा जागकर) हां, हां, माजी मैं हूं यहां ।

[प्रबोध बाहर जाता है मां अन्दर । सलमा क्षण भर रक्त से लथपथ उस लड़की को देखती है फिर अपने को ; और एकदम झुककर उसके कपड़े ठीक करती है और धीरे धीरे रुई से जख्म साफ करती है । मां एक हाथ में दूध एक में चम्मच लिये आती है]

मां—मैंने दूध में हल्दी डाल दी है (बालिका से) ले, अब मत रो, दूध पी ले (चम्मच से दूध डालती है) अभी ठीक हो जाती है । हल्दी सब चोट चूस लेगी (मुड़कर सलमा से) वैसे शराब भी है (अन्दर की ओर मुड़कर) अरे प्रमिला बेटी.....

सलमा (प्रभावित होकर)—क्या चाहिये मांजी...।

मां—मैं कहती थी इसकी कमीज पलट देती । खून से भरी है । अच्छा, तुम जरा दूध मिला दो (कटोरा व चम्मच पकड़ाती है) मैं कमीज लाती हूं । बेचारी लड़की...कैसे आदमी हैं... !

[सलमा जाती है । इसी समय डाक्टर के साथ प्रबोध, रामी की मां तथा अन्य तीन चार आदमियों का प्रवेश । सलमा धीरे धीरे चम्मच से दूध पिला रही है । लड़की की मां अब आगे बढ़ती है । परदा गिरने लगता है फिर उठता है । डाक्टर जख्म की परीक्षा कर रहा है । लड़की की मां रो रही है । मां कमीज लेकर अन्दर से आती है । सलमा उन्हें देखती है ।

मां—ले बेटी कमीज बदल दे, जल्द !

डाक्टर....(देखकर) ओ ! डाक्टर आ गये....।

डाक्टर (गम्भीर स्वर)—जख्म गहरा है । टांके लगेंगे (मुड़कर प्रबोध से) आपने बहुत अच्छा किया जो इसे घर ले आये ! देर करने से.....

[परदा गिरने लगता है । प्रबोध और सलमा मां को देखते हैं, मां कभी डाक्टर को कभी लड़की को । लड़की की मां बराबर अपनी बच्ची को देखती है और रोती है]

मां (सहसा आगे बढ़कर)—रोती क्यों है ? अब कोई डर नहीं है !

रामी की मां (रोती रोती)—मां जी, आप.....

[आगे कुछ नहीं सुन पड़ता । परदा एकदम गिर जाता है ।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक, अख़बार और जन-जागरण

श्री स्नेहांशुकान्त आचार्य

नाज़ी गुलामी से जब फ्रांस स्वतन्त्र हुआ, उस वक्त दुनिया के दूसरे देशों के आज़ादी-पसन्द लोगों की तरह हम हिन्दुस्तानियों को भी बेहद खुशी हुई। स्वभावतः पश्चिमी शिक्षा प्राप्त लोगों को ही ज्यादा हर्ष हुआ। क्योंकि फ्रांसीसी साहित्य, सङ्गीत, शिक्षा और संस्कृति ने हमें मुग्ध ही नहीं किया है, बल्कि फ्रांसीसी क्रान्ति ने जनता को अपने मन्त्र से दीक्षित किया था। आधुनिक भारत के निर्माता श्री राममोहन राय ने १८३० ई० में विलायत जाते हुये उत्तमाशा अन्तरीप में फ्रांसीसी झंडे को समानता, भाईचारा और स्वतन्त्रता का झंडा कहकर अभिवादन किया। सन् १८३२ में उन्होंने फ्रांसीसी वैदेशिक मन्त्री को एक चिट्ठी लिखी थी उसमें भी फ्रांस को A country standing in the foremost rank of Civilized nations (एक राष्ट्र जो कि प्रथम श्रेणी के सभ्य राष्ट्रों में है) कहा था। समग्रविश्ववादियों की तरह हम भी महान फ्रांसीसी क्रान्ति के ऋणी हैं। समाजवादी सोवियत् संघ ने भी इस क्रान्ति को हमेशा श्रेष्ठ आसन प्रदान किया है, इसे सोवियत् क्रान्ति का पथप्रदर्शक माना है। आज का फ्रांस अपनी पुरानी गलतियों को दुहराने नहीं जा रहा है। नवजाग्रत जनता इसके लिये जो तैयारियां कर रही है उससे भविष्य में फ्रांस को कभी पराधीनता की यातना नहीं सहनी पड़ेगी।

फ्रांसीसी जनता तथाकथित स्वाधीनता के नाम पर स्वेच्छाचारिता को प्रश्रय देने के लिये तैयार नहीं। यह बात अचानक कुछ बेतुकी सी मालूम होगी। लेकिन बात तो सच है कि कोई भी स्वाधीनता प्रेमी क्या कभी स्वेच्छाचारी को किसी तरह का सुभीता दे सकता है। जो स्वाधीनता के उपासक हैं वे स्वेच्छाचारिता को बरदाश्त नहीं कर सकते। लेकिन जब स्वार्थी स्वेच्छाचारी स्वाधीनता की दोहाई देकर अपनी उच्छृङ्खलता को ढांकने का मौक़ा पा जाते हैं तब जरा पशोपेश में पड़ना पड़ता है। इससे उन्हें सिर्फ़ उच्छृङ्खलता के लिये मौक़े नहीं मिल जाते, बल्कि वे स्वाधीनता के प्रयास को भी बेकार कर देते हैं। इसकी मिसाल हमें अपने मुल्क के कुछ अख़बारों और साहित्यकारों की कार्यावली से मिल सकती है कि ये किस तरह से स्वाधीनता का जामा ओढ़कर जन स्वार्थों की मुख़ालिफत करते हैं।

ये अख़बार या साहित्यिक अपनी स्वार्थ सिद्धि करना चाहते हैं, अगर कोई इनके विरोध में खड़ा होता है तो ये उसका मुँह बन्द कर देना चाहते हैं। उनकी आज़ादी में दस्तन्दाज़ी की जा रही है, वग़ैरह कहते हुए ये देश-प्रेम की लम्बी चौड़ी बातें करने लगते हैं। जन स्वार्थ के ख़िलाफ़ जाने की हिम्मत इन्हें इसलिए होती है कि ये जानते हैं कि साम्राज्यशाही हुकूमत उनकी 'आज़ादी' की तोता-रटन्त बातों की क़ीमत जानती है, उनके कामों से उसे तो फायदा पहुंच रहा है। यह laissez fair की हालत उनके नीच और घिनौने कारनामों के लिए सबसे अच्छी है। मुझे याद है, ढाका के नौजवान लेखक और मज़दूर कार्यकर्त्ता सोमेनचन्द को जब देश द्रोहियों ने मार डाला तो हमारे कुछ नामधारी क़ौमी अख़बारों ने इस तरह से ख़बर छापी मानो सोमेनचन्द ही हत्यारा है। इसका प्रतिवाद करने के लिए जब हम कई आदमियों ने, जो उस वक्त ढाका में हाज़िर थे, उन अख़बारों के सम्पादकों से मिलकर सही बात उन्हें बतलाई तो किसी किसी अख़बार ने हमारी बातें छापी लेकिन सम्पादकीय टिप्पणियों और दूसरे बयानों में उल्टा ही राग अलापना शुरू किया। फिर प्रतिवाद करने पर उन्होंने अख़बारों की आज़ादी के बारे में बड़ी बड़ी बातें बनाईं। हम प्रतिवाद करने की स्वाधीनता या मौक़ा चाहते हैं, इस बात को सुनकर उन्होंने अख़बारों में जगह की कमी का बहाना बताया। ऐसी हालत को स्वतन्त्रता या स्वाधीनता न कहकर गोष्ठि-गत स्वार्थ-रक्षा-नीति ही कहना ठीक होगा। दुनिया में अपना स्वार्थ कौन नहीं देखता? लेकिन हैरान तो उस वक्त रह जाना पड़ता है जब ये घोर स्वार्थी और पक्षपाती दूसरे मुल्कों के अख़बारों पर पक्षपाती होने का जुर्म लगाते हैं। हमारे मुल्क के अख़बार नवीस, सम्पादक, साहित्यिक अकसर कहते सुने जाते हैं कि सोवियत के अख़बारों को स्वाधीनता देने का कोई सुभीता नहीं है, क्योंकि वे हमेशा एक ही राय का समर्थन करते हैं। उनकी बात से ऐसा मालूम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है मानो ब्रिटिश साम्राज्यशाही के पैरों तले रहकर भी सोवियत के अख़बारों से उन्हें ज्यादा आज़ादी मिली हुई है। इस स्वाधीनता का असली चेहरा हमारे किसी भी अखबार में देखा जा सकता है। हज़ारों, लाखों मजदूरों की सभा, हड़ताल, मांगों वग़ैरह की खबरों के के लिए पहिले तो अखबारों में जगह नहीं होती और अगर कहीं हुई भी तो वह मामूली सूचना से आगे नहीं जाती है, लेकिन वही किसी धनी के लड़के-लड़की की शादी, उसमें हाजिर लोगों की फेहरिस्त, संतान प्राप्ति, आने-जाने या किसी लीडर के सर्दी जुकाम के लिए कालम के कालम रंग डाले जाते हैं। इन्हीं बातों को देखकर इलाहाबाद में होनेवाली कुल-हिन्द एडिटर्स कानफरेन्स में पंडित नेहरू को जनता की खबरों के लिए ज्यादा जगह देने के लिए अपने भाषण में अपील करनी पड़ी थी।

हमारे साहित्यिकों में भी बहुतेरे अखबारों के अनुगामी हैं। वे भी मनमानी घरजानी करना चाहते हैं, चाहे देश को उससे फायदा हो या नुकसान। हमें याद है, जब कलकत्ते के किसी मासिक के मालिक सम्पादक अपने हर अंक में रवीन्द्रनाथ को गन्दी गालियां दिए बग़ैर अपना काम पूरा नहीं समझते थे और अगर कोई समझा बुझाकर उन्हें रोकने या उनका प्रतिवाद करने जाता तो वह फौरन बोल उठते—आप लोग हमारी साहित्यिक आजादी में नाजायज़ हस्तक्षेप कर रहे हैं। पर हां, 'साहित्यिक स्वाधीनता' के उसी अमोघ नियम से आज वे हजारों मुँह से रवीन्द्रनाथ का गुण-गान करते देखे जाते हैं। इन दो तरह के व्यापार और व्यवहार से साम्राज्यवादी दलित देश के 'स्वाधीनतावादी' साहित्यिक स्वाधीनता की मर्यादा बचाते हैं।

इसलिए हम देखते हैं कि हर तरह के यातायात को जाहिर करने के मौके को आजादी नहीं कहा जा सकता है। अगर ऐसा करने दिया जाता है तो आजादी को नेस्तनाबूद करने की आजादी चाहने वालों के हाथ मजबूत होते हैं। स्वाधीनता का अर्थ यही हो सकता है कि वही राय जाहिर करने की आजादी हो जिससे जनता को किसी तरह का नुक़सान न पहुंच सके। फ्रांस ने अपने बड़ी बड़ी मुसीबतें झेलकर, लाखों क़ुर्बानियां करके इसी बात को सीखा है। उसने यह भी सीखा है कि बहुतेरे अखबार और साहित्यिक ऐसे हैं जिनका एक मात्र पेशा है जनता के स्वार्थों का विरोध करना। किसी एक मनीषी ने एक बार कहा था—मैं तुम्हारे साथ शतरंज खेलने को तैयार हूँ अगर तुम उसके नियमों को मानो। लेकिन अगर कहीं हार गए तो शतरंज को उलट दो या मुझे खेलने का मौका न देकर जीतने की कोशिश करो तो मैं तुम्हें ऐसा करने के लिए मौका क्यों देने जाऊँ बल्कि कोशिश इसी बात की करूंगा कि तुम्हें वह मौका न मिले।

अखबारों या साहित्यिकों की आजादी की बात तभी उठती है जब जनता के स्वार्थ से उनका गहरा ताल्लुक़ होता है। फ्रांस तथा दूसरे यूरोपीय मुल्कों की हालत देखकर हम समझ सकते हैं कि इनक़लाब के बाद से सोवियत क्यों इतना चौकन्ना रहा है, विरोधियों को पूरी ढील नहीं दे दी थी। इनकलाब के बाद सोवियत निन्नानबे फी सदी लोगों का अपना मुल्क बन गया। एक फी सदी विरोधियों की स्वाधीनता का मतलब था निन्नानबे फी सदी को ग़ुलाम बनाए रखने की स्वाधीनता। इन्हीं एक फी सदी लोगों को सोवियत वाले निन्नानबे फी सदी के सत्यानाश करने के लिए किसी तरह का सुभीता देने के लिए तैयार नहीं थे, यही उनका घोर अपराध था। आज सोवियत में जनता के स्वार्थों के विरोधी नहीं रह गए हैं, इसीलिए पहले वाली कड़ाई भी नहीं रही। पिछली सोवियत की लड़ाई से बढ़कर इसका सबसे बड़ा जीता-जागता दूसरा दृष्टान्त और क्या हो सकता है? दूसरी ओर जरा यूरोप के दूसरे मुल्कों की ओर नज़र डालिए। स्वाधीनता के नाम पर इसके विरोधी आचरण के लिए उन देशों को देशी-विदेशी फासिस्तों के हाथों में कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। यद्यपि इनक़लाब की इस जन्म भूमि को फासिस्तों, जयचन्द, और मीरज़ाफरों को अपना मत ज़ाहिर करने की पूरी आज़ादी देकर स्वाधीनता के नाम पर वर्षों की पराधीनता सहनी पड़ी। इस बार जब से फ्रांस स्वतन्त्र हुआ तब से मुट्ठी भर जल्लादों के गुट्ट को मौत के घाट उतारकर नया फ्रांस अपनी पुरानी गलतियों के लिए प्रायश्चित्त कर रहा है। वहां की जनता अपने इस नए सबक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज़ा देकर ही रहेगी। हिन्दुस्तान तथा दूसरे मुल्कों के कुछ नाज़ुक दिलवालों को अगर तकलीफ होती है तो उन्हें सन सत्तावन के ग़दर से लेकर पहली लड़ाई के ज़माने में सशस्त्र इनकलाब की कोशिशें, जलियांवाला बाग, चटगांव अर्मरी लूट, आतंकवादी आन्दोलन तथा दूसरे जन आन्दोलनों की बात याद कर लेनी चाहिए, तभी वे समझ सकेंगे कि देश द्रोहियों और बाहरी दुश्मनों के प्रति उन्हें कैसा रुख अख़्तियार करना चाहिए।

फ्रांसीसी जनता सिर्फ़ बदनाम फासिस्तों या दुश्मनों से मिलकर देश का सत्यानाश करनेवालों से निपट कर ही चुप नहीं बैठ गई।

हिटलरियों की देख-रेख में जो अखबार निकलते थे उनका निकलना ही बन्द नहीं हुआ है, बल्कि आइन्दा उस नाम के कोई अखबार नहीं निकलने पावेंगे। इन क़ौम-फ़रोश अखबारों का नाम बहुतेरों ने सुना होगा—Le Journal, Le Petit, Parisien, Le Matin, Paris—Soir, इनमें से हरेक की काफी शोहरत थी, उनके ग्राहकों की तादाद लाखों में गिनी जाती थी। लड़ाई के पहिलेवाले जमाने में इनमें से हरेक को कौम-फरोशी करने का पूरा मौका दिया गया था। बहुतेरे अखबारों को जर्मन और इटालियन फासिस्त दफ़्तरों से लाखों रुपए मिलते थे। इनकी 'स्वाधीनता' की कीमत हिटलर-मुसोलिनी को मालूम थी। जिस तरह हमारी 'स्वाधीनता' की कीमत नैशनल वारफ्रंट, वीमेन्स आक्जिलियरी कोर आफ इण्डिया, मिलिटरी रिक्रूटमेंट डिपार्टमेंट वगैरह सरकारी दफ़्तर वालों और अमरीकनों को मालूम थी। अब फ्रांसीसियों ने भली भांति समझ लिया है कि वे स्वाधीनता का नाम लेकर कौम-फरोशी कर रहे थे। जिन्होंने इस लड़ाई की आग मे तपे हुए अख़बारों को अपने पथ-प्रदर्शक बनाया वे हैं L' Humanite, Populaire, L'Aube, Ce Soir, Figaro इत्यादि। L' Humanite ने पहली लड़ाई के पहिले अपने जन्मकाल से ही जनता के स्वार्थ को सबसे ऊपर ध्यान में रखा और विदेशी दुश्मनों से हमेशा होशियार रखने के लिए लड़ता रहा, पर वतन-फरोश अख़बारों की मीठी आवाजों में न जाने कैसा ज़हरीला जादू भरा हुआ था, उस वक्त लोग उसे नहीं समझ सके। ये अख़बार जर्मनी हुकूमत के वक्त बन्द कर दिए गए क्योंकि ये वतनफ़रोशी के लिए राज़ी नहीं हुए। इनमें से सभी कम्युनिस्ट मत को मानने वाले हों, ऐसी बात नहीं। ये 'कैथलिक डेमोक्रेटिक' 'सोसलिस्ट' वगैरह मतावलम्बी भी थे। इसके अलावा दूसरे अख़बार भी खुफ़िया तौर से लड़ाई के दर्मियान निकाले गए जैसे—Combat, Le Franc-Tiereur, Li beration, Resistance, Front National, France-Libre वगैरह। इन सभी का मक़सद एक था—फासिस्त दरिन्दों को नेस्त-नाबूद करना, हालां कि इनमें कम्युनिस्टों से लेकर दक्षिण पंथी सभी राजनीतिक ख़याल के लोग थे। ये ही 'प्रति-रोध' (Resistance) आन्दोलन के रहनुमा, आज़ादी के आन्दोलन के प्रतीक थे। लेकिन इन अख़बारों के बावजूद आज मुर्दा अखबार जनता को बहकाने में कामयाब हुए थे। इसीलिए आज फ्रांसीसी जनता चौकन्नी हो गई है।

फ्रांसीसी राष्ट्रीय लेखक संघ भी इसी तरह के लेखकों, कलाकारों वगैरह से पेश आया। इनमें से जिन्होंने अपनी क़लम और तूलिका जर्मनों के हाथों बेच दी थी, उनमें से कितने ही को अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ा है, बाकी लोगों को आगे लिखने का कोई मौका नहीं दिया जायगा। इनमें हमारे बहुतेरे परिचित नाम हैं—Paul Allard, Rene Benjamin, Henri Birand, Louis Ferdinand Celine, Jacques Chardonne, Pierre Drien la Rochelle Pierre Dominique, Alfred Fabre-Luce, Bernard Fay, Jean Giono, Alphonse de Chateaubriaut, Bernard Gassat, Sacha Guitry, Abel Hermant, Edmond Jaloux, Geerges de la Fouchardiere, Charles Maurras, Henri de Monterlant, Maurice Martindu Gard, Andre Salwon, Andre Therive और Paul Moraud, इनमें करीब सभी फ्रांस के मशहूर लेखक हैं। इनमें जिनकी जान बख्शी जायगी उनका नाम फ्रांसीसी राष्ट्रीय लेखक संघ से काट दिया जायगा। इनकी कोई भी रचना जनता के हाथों में न पहुँचने पावे इसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कभी नहीं भूल सकती। फ्रांस की जनता ने एक-एक देशद्रोही को उसके काले कारनामों के लिए यह सुनिश्चित इन्तज़ाम किया गया है कि अगर कोई पत्रिका या प्रकाशक इनकी कोई चीज़ लेता है तो सभी लेखक उनका बायकाट कर देंगे। एक तरह से, जिन्दा बतन-फ़रोश लेखकों की भी मृत्यु ही हो चुकी।

ऐसी उम्मीद की जाती है कि यूरोप के दूसरे मुल्कों के लेखकों के बारे में भी यही बात लागू होगी। नारवे का क्विसलिंग यमलोक पहुँचा दिया गया, किसी दिन उसके सहयोगी और समर्थक नूट हमसून (इसे नोबुल इनाम मिला था) को भी उसी रास्ते का राही बनना पड़ेगा। उसकी एक किताब का 'ग़रीबी के दिन' के नाम से हिन्दी अनुवाद छपा था। 'मैन' और 'ग़रीबी के दिन' के बङ्गला अनुवाद भी छपे हैं, क्विसलिंग के साथ मिलकर इसने भी हिटलरी दरिन्दों का स्वागत किया और अपने नारवेजियन देश भक्तों का क़त्लेआम करवाया। यूरोप की नवजाग्रत जनता इन देशद्रोहियों को कभी नहीं भूल सकती। आज सोवियत की मिसाल उसके सामने है। लड़ाई के पहले अखबार और साहित्यिक सरमायादारों की गुलामी करके जिन्दा रहते थे। इसीलिए तब विरोधी और बेबुनियाद प्रोपेगैण्डा के अन्दर से वहां की नई सभ्यता को पहचानना जरा मुश्किल काम था। बहुत थोड़े से उन्नत राजनीतिक खयाल के लोग ही सोवियत स्वाधीनता की बातों को समझते थे।

हमारे देश के कितने ही अखबार लेखक और साहित्यिक बेशर्मी से प्रतिक्रियाशील स्वार्थों का समर्थन करते हैं, झूठे प्रचार करते हैं, जनता के स्वार्थों का विरोध करते हैं। बीच बीच में गांधीजी, रवीन्द्रनाथ वग़ैरह का नाम लेकर अपने घिनौने कामों पर पर्दा डालने की कोशिश करते हैं। लेकिन फ्रांस की तरह अब हिन्दुस्तान की आजादी के दिन दूर नहीं हैं, उस दिन मोह-मुक्त सचेत जनता इन झूठे प्रचारों और धोखेबाज़ियों के फैसले की जिम्मेवारी अपने हाथों में लेगी।

खादी का अर्थ

श्री० रामाधार

खादी अपने मूलरूप में दो मुख्य कारणों से हमारी कौमी जिन्दगी में आई। पहला तो यह कि हमें बर्तानवी हुकूमत की तिजारती पालिसी के फन्दे से जहां तक हो बाहर निकलना था और दूसरा यह कि हमारे इस अभागे गरीब मुल्क की बढ़ती हुई बेकारी के परिणाम स्वरूप भूखों मरने वाले बेकारों को रोज़ी देना था। खादी का महात्मा गान्धी ने 'राहत की खादी' नाम रखा। इस राहत की खादी का यह रूप ही फला हुआ। तिजारती खादी से कोई यह अर्थ न लगाये कि उससे नफ़ा कमाने का ज़रिया बनाया गया। चर्खा संघ की पालिसी में नफ़ा बनाना एक गुनाह है और संघ ने यह गुनाह नहीं किया। गांधी जी जिसे तिजारत मानते हैं वह दुनिया में चलनेवाली आम तिजारत से बिलकुल जुदागाना चीज़ है। आम व्यवहार में तिजारत के मानी ही अधिक से अधिक नफ़ा से है। परन्तु गांधी जी के ख्याल की तिजारत करनेवाला अधिक से अधिक अपना खर्चा लेने का हकदार है। या कभी इससे ज़्यादा उसे कुछ मिला भी तो वह इसी तरह हो सकता है कि मान लीजिए कि उसका आवश्यक खर्च वगैरह जोड़कर उसकी दुकान में कोई चीज़ छः आने एक पाई प्रति गज़ में बिकनी चाहिये परन्तु यह दाम रखना असुविधाजनक होता है अतः सवा छः आने गज़ बेचता है। कीमत में इस तरह अन्तर आने के कारण जो मुनाफ़ा हो जाता है उसे गांधी जी नाजायज़ नहीं कहेंगे। परन्तु ऐसा मुनाफा भी उनकी नज़र में आम लोगों के फायदे के लिए खर्च होना चाहिए। इससे हम संघ के तिजारती नज़रिये में और आम लोगों के तिजारती नज़रिये में जो फर्क है उसे समझ सकते हैं।

गर्ज़ यह कि खद्दर की शुरूआत गरीब लोगों को राहत पहुँचाने के ख्याल से इस तरह की तिजारती खादी के रूप में हुई। लेकिन धीरे धीरे इसका रूप और अर्थ बदलने लगा। उसमें नये मूल्यों का प्रवेश होने लगा। खादी राष्ट्रीयता की निशानी हो गई। लोगों ने उसे कौमी वर्दी करार दिया जिसके परिणाम स्वरूप वह बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इज्जत और त्याग-की पोशाक मानी जाने जाने लगी। देश के नेताओं ने कहा, खद्दर हमें जन साधारण के साथ एकता, अपनापन महसूस करने में मदद करता है।

परन्तु गाँधी जी सिर्फ उतने से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका चरित्र प्रतिक्षण विकसित हो रहा है। फलस्वरूप उनके विचार उनकी, कल्पनायें भी स्थिर नहीं हैं। उन्होंने खादी अथवा चर्खे को अहिंसा का प्रतीक माना और उस पर अपने अनोखे व्यक्तित्व का सारा ज़ोर डाल दिया। उन्होंने खादी के अर्थ को बिल्कुल बदल दिया। वह वस्त्र न रहकर एक विचार अथवा विचार-पद्धति हो गई। इसलिए खादी को ग्रहण करने का अर्थ हुआ उस विचार-पद्धति को अपनाना। अनेकों ने श्रद्धा के साथ ऐसा ही किया, अनेकों ने विवेक से इसे ठीक समझा और दूसरे लोगों ने बिना कुछ समझे बूझे ही उसे अपने शरीर से चिपकाये रक्खा।

गांधी जी ने बताया खद्दर नवीन मूल्यों का प्रेरक है। उन्होंने यह भी कहा हमारी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की बुनियाद अनैतिक है। उनकी दृष्टि में हमारी वस्तुओं के मूल्यांकन की पद्धति भी अनैतिक है। इसलिए उन्होंने खादी में 'जीवन निर्वाह मजदूरी' के सिद्धांत का प्रवेश कराया। उसने खादी सम्बन्धी धारणा को और भी बदल दिया। उसमें गहरे नये रंग चढ़ गए। वैसे जीवन निर्वाह वेतन की कल्पना नई नहीं है। पश्चिम में रस्किन और टाल्सटाय इसके सबसे बड़े समर्थक रहे हैं। लेकिन उनके पास अपनी कल्पना को रूप देने के लिए कोई संगठन नहीं था। गांधी जी के पास उनका अपना ही खड़ा किया हुआ एक आला संगठन था। उस समय उनका प्रयोग किन्हीं कारणों से पूर्णता को नहीं पहुँचा। परन्तु इस वजह से वह प्रयोग छोड़ा नहीं गया। उस समय से खादी की परिभाषा में जीवन निर्वाह मज़दूरी का प्रवेश भी हो गया।

पर गांधी जी वहाँ भी कहां रुके? सन् '४४ में जेल से निकलकर उन्होंने कहा, सङ्घ ने मेरी कल्पना को सफल नहीं बनाया। वह तो सरकार की कृपा पर निर्भर करता है। अगर सरकार चाहती तो संघ को नष्ट कर सकती थी। ऐसे संघ की मेरी नज़र में कोई अहमियत नहीं। संघ द्वारा बनवाई हुई राहत वाली तिजारती खादी भी मुझे नहीं चाहिये। मुझे चाहिये हिन्दुस्तान में हर घर में समाई हुई स्वावलम्बी खादी। ऐसी खादी से ही अहिंसा सिद्ध होने वाली है। वही सच्चे स्वराज्य की खादी होगी। हम कुछ रुपये कतिनों और कारीगरों में बांट देने हो यह ठीक है। पर यह कोई भी कर सकता है। इससे हिंदुस्तान की कायापलट थोड़े ही होने वाली है। अब तो मैं तभी सन्तुष्ट होऊंगा जब हमारे देश का कोना कोना हर घर चर्खे की गूंज से ध्वनित हो उठेगा। इसके बिना मेरी कल्पना का स्वराज्य रामराज्य नहीं आएगा।

इस कथन के पीछे समूल क्रान्ति की वृहत् कल्पना छिपी हुई है। यह मानव को ही बदल देने की तैयारी है। एक नवसंस्कृति निर्माण करने का आयोजन है। इसमें सूत कातने का जो आह्वान है वह कोई जड़ क्रिया नहीं है। उसमें मानव की भावना, उसकी श्रद्धा मिश्रित होनी चाहिये। तभी तो वह सूत भी जीवित होगा। हम जीवित कातें और यह हमें नवीन जीवन नवीन स्फूर्ति प्रदान करेगा। वह सूत ही हमारी नवीन समाज रचना का आधार होगा। खादी को यह अर्थ ज़बर्दस्ती नहीं पहनाया गया है। खादी के जन्मदाता की साधना से उसे यह प्राप्त हुआ है। एक आदमी की साधना यदि उसके अन्दर इतना महत् प्राण भर सकती है तो राष्ट्र की साधना उसमें क्या नहीं भर सकती?

हमारी जीवन-मात्रा अधिकतर प्रतीकों के सहारे चलती है। धार्मिक विश्वास मानव जीवन का एक विशेष अंग है। परन्तु यह धार्मिक विश्वास किसके सहारे टिका हुआ है? किसी भी धर्म के अनुयाइयों को ले लीजिए उनकी समस्त धार्मिक भावना का आधार कोई न कोई प्रतीक होगा। वह प्रतीक एक के बजाय अनेक भी हो सकते हैं। उनका बहुत महत्व है, बड़ी महिमा है। परन्तु उनकी अपेक्षा खादी में एक बहुत बड़ी विशेषता है। खादी, चोटी या दाढ़ी अथवा मूर्ति या क्रास की तरह कोई निष्क्रिय प्रतीक नहीं है बल्कि उसके द्वारा जीवन की सांसारिक यात्रा में भी बहुत सहायता मिलती है। अतः यह कहना ठीक होगा कि यह किसी बड़ी चीज़ की, किसी बड़े ख्याल की सक्रिय प्रतीक है। इससे हमारे विश्वास हमारी श्रद्धा की वृद्धि को खुराक तो मिलती ही है साथ ही भौतिक दृष्टि से भी हमारा हित साधन होता है। अतः खादी को अपनाना और अपनाये रहना हमारा कर्तव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी अफ्रिका में भारतीय

श्री पी० डी० मास्टर

(प्रधान मंत्री—पूर्वी अफ्रीका भारतीय कांग्रेस)

शताब्दियों से भारतीय पूर्वी अफ्रिका में निवास कर रहे हैं। १८७५ में तत्कालीन भारत मंत्री लार्ड डर्बिसबरी ने भारतीयों के प्रवास तथा उनकी आबादी के बारे में बहुत कुछ कहा था। साथ ही उनके साथ सद्-व्यवहार करने तथा अच्छे अच्छे काम देने का भी आश्वासन दिया था। शाही अधिकार-पत्र (Royal Charter) की जो स्वीकृति ब्रिटिश ईस्ट अफ्रिका कम्पनी को दी गई थी उसका कारण बताया गया कि यह हमारी हिन्द महासागर की प्रजा के वाणिज्य व्यवहार तथा अन्य हितों के लिये लाभप्रद सिद्ध होगा। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे दूसरी सरकारों के अधीन हो जायेंगे और उनके ही आश्रय होकर व्यापार करने के विवश हो जायेंगे। श्री विन्सटन चर्चिल भी भारतीयों के पूर्वी अफ्रिका में बसने के पक्ष में थे। परन्तु वहीं पर दक्षिणी अफ्रिका के बोअरों की उपस्थिति तथा महायुद्ध के आगमन ने सारी स्थिति को बदल दिया। एक ओर भारतीय समरांगण में अपने लहू की धारा बहा रहे थे और दूसरी ओर पूर्वी अफ्रिका के यूरोपियन वहीं से भारतीयों को निकाल भगाने का दाव-पेंच खेल रहे थे। दक्षिणी अफ्रिका का द्वार तो भारतीयों के लिए बन्द कर ही दिया गया था, इधर पूर्वी अफ्रिका में भी यूरोपियनों ने अपना काम आरम्भ कर दिया। केन्या के यूरोपियनों ने कहा कि—"दक्षिणी अफ्रिका में तो हमने भारतीयों के लिए डरबन का द्वार बन्द कर ही दिया है अब हमें पूर्वी अफ्रिका में उनके लिए नान्बासा का द्वार भी बन्द करना चाहिए'। इस पर केन्या में यूरोपियन और भारतीय समुदायों के बीच संघर्ष शुरू हो गया। इसके फलस्वरूप १९२३ की जुलाई का वह श्वेत पत्र (White Paper) निकाला गया जिसे केन्या के भारतीयों ने किन्चिन्मात्र भी स्वीकार नहीं किया।

ब्रिटिश सरकार ने इस संघर्ष का अन्त धमकियों के बल पर किया कराया और देशान्तरवास के प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार ने अपने श्वेत पत्र में कहा कि—"हम अपने साम्राज्य के किसी भी भाग के प्रवासी को अपने साम्राज्य के दूसरे भाग से पृथक करने की बात तभी सोच सकते हैं जब कभी अत्यन्त भीषण अवस्था आ पड़े अन्यथा नहीं। प्रवास के नियमों में इस प्रकार का जाति-भेद चाहे स्पष्ट हो या लक्षित हमारी नीति के अनुकूल न होगा। इसलिए हम इस प्रकार का कोई भी नियम या कानून केन्या में लागू नहीं कर सकते।" साथ ही आगे यह भी कहा कि—"उपनिवेश के वर्त्तमान देशान्तरवास के नियम बिल्कुल साधारण रूप से लागू होने वाले हैं। यह केन्या के हित की बात है कि अनिच्छित यूरोप तथा अमेरिका-वासियों की भांति एशिया वासियों को भी यहाँ प्रवेश होने से रोका जाय। उपनिवेश सरकार का प्रथम कर्तव्य है अफ्रिकावासियों को समुन्नत करना और दूसरे देशों से आने वालों के प्रवाह से उनकी रक्षा करना ताकि उनकी आर्थिक उन्नति में बाधा न पड़े।"

इसके पश्चात वह इस सम्बन्ध में क्या क़दम उठाना चाहती थी इसके बारे में उसने कहा—"जैसे ही केन्या वासियों की प्रतिभा का विकास होगा वे भी कल-कारखाने छोटे छोटे व्यापार तथा क्लर्की के कामों में ब्रिटिश अफ्रिका के अन्य भागों के निवासियों की बराबरी का स्थान ग्रहण करेंगे। ब्रिटिश शासन का यह ध्येय होना चाहिए कि वह सभी उचित उपायों के द्वारा इस ओर प्रगति करने की चेष्टा करे। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह देखना चाहिए कि किसी भी जाति के अन्दर प्रवेश करने पर उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आगे कुछ ऐसी व्यवस्था ढूंढ़ निकालनी चाहिए जिससे अन्य जातियों के अन्तर्प्रवेश के प्रश्न पर पक्षपात रहित जांच हो सके। संभवतः इस कार्य को करने के लिए एक बोर्ड की नियुक्ति की जाय जिसमें भिन्न भिन्न समुदायों के प्रतिनिधि हों। केन्या के गवर्नर को आदेश दिया जायगा कि वहां लौटने पर इस प्रसंग का अनुसंधान करे और यूगांडा के गवर्नर की सम्मति से उपनिवेशों के मंत्री के पास देशान्तर निवास के सम्बन्ध में ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करे जो दोनों ही उपनिवेशों के निवासियों के आर्थिक हितों के लिए किसी प्रकार भी हानिकारक न हो।"

१९२३ के श्वेत पत्र के प्रकाशित होने के पश्चात केन्या के गवर्नर के आदेशानुसार केन्या सरकार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औपनिवेशिक कार्यालय की अनुमति से एक बिल प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था—'देशान्तरवास तथा काम-काज की व्यवस्था करने तथा उनके नियमों की ठोस बनाने के लिए एक सामयिक विधान।' इस बिल में कहीं भी स्पष्ट रूप से भारतीयों का जिक्र नहीं किया गया, पर यदि वह बिल क़ानून बन गया होता तो १९३३ से ही पूर्वी अफ्रिका में भारतीयों का प्रवेश बन्द हो गया होता। सौभाग्य से भारत सरकार तथा भारत की सर्व-साधारण जनता अपने देशवासियों की रक्षा करने के लिए तैयार हो गई और वह बिल क़ानून न बन सका।

पर भारतीयों को पूर्वी अफ्रिका से निकाल भगाने के लिए केन्या के यूरोपियनों का प्रयत्न जारी ही रहा। गत द्वितीय महायुद्ध में उन्होंने बड़ी चेष्टाएँ की और दांव पेंच खेलकर केन्या, टैंगानिका और यूगांडा की सरकारों के द्वारा 'सुरक्षा विधान' (Defence Regulation) जारी करवा ही दिये। ये विधान देखने में तो जाति-भेद रहित लगते हैं पर इनका उद्देश्य भारतीयों को वहां प्रवेश होने से रोकना रहा है। और जिस ढङ्ग से इन्हें बरता गया है वह उपरोक्त कथन की पुष्टि करता है। पूर्वी अफ्रिका की इन तीन सरकारों ने वहां के भारतीयों को तथा भारत सरकार को आश्वासन दिया था कि—"ये विधान खाद्याभाव के कारण जारी किए गये हैं और जैसे ही युद्ध समाप्त होगा इन्हें उठा लिया जायगा।" इसलिए पूर्वी अफरीका की भारतीय कांग्रेस ने मुम्बासा में अपने ६ अक्तूबर १९४६ के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया। उसमें उसने सरकार से अपने वचन का पालन करने का निवेदन किया। साथ ही भारत सरकार से भी सभी सम्भव उपायों से देश इन विधानों के रद्द करवाने का आग्रह किया। पूर्वी अफरीका की कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में केन्या सरकार और भारत सरकार के पास अपने प्रतिनिधि भी भेजे। केन्या के गवर्नर सर पी० बी० मिचेल ने कांग्रेस के सभापति श्री० ए० बी० पटेल को सूचित किया कि अब ये विधान प्रकाशित बिल के क़ानून बन जाने पर ही हटाये जायेंगे।'

आगामी जुलाई के प्रथम सप्ताह में एक ही समय पर केन्या, टैंगानिका और यूगांडा की धारा सभाओं में यह बिल उपस्थित किया जायगा। अतएव कोई आवश्यक क़दम उठाना अनिवार्य है।

हमें भय है कि यदि यह बिल जिस अवस्था में अभी है—ज्यों का त्यों क़ानून बन गया तो पूर्वी अफ्रीका के भिन्न भिन्न भागो के गवर्नरों को यह अधिकार हो जायगा कि वे इसे जाति भेद के आधार पर बरतें। बिल में जिस बोर्ड की चर्चा की गई है उसका प्रतिनिधित्व क्या होगा, कैसा होगा इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं बताया गया है। भारतीयों की संख्या इसमें औरों के बराबर होना आवश्यक है। बिल के ५ वें पद के अनुसार गांधी जी, पं० जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आजाद जैसे भारतीय नेता भी पूर्वी अफरीका में प्रवेश नहीं कर पायेंगे। दो चार दिनों के लिए भी नहीं। और प्रवेश के समय का डिपाजिट जो वर्तमान क़ानून के अनुसार कुल ५ पाऊंड का होता था अब नये क़ानून के अनुसार ७५ पाऊंड अर्थात १०००) एक हज़ार रुपये का हो जायेगा। ७ वें पद के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो पूर्वी अफरीका में रहकर ३१ अगस्त १९३९ से पहले वहां से चला गया है अथवा जो निवेदन पत्र देने की तिथि से पूर्व के ८ वर्षों में कुल मिलाकर कम से कम ५ वर्षों तक वहां नहीं टिका है उसे वहां रहने के लिए प्रमाण पत्र मिलना असम्भव हो जायगा। जो व्यक्ति युद्ध के दिनों में स्वेच्छापूर्वक वहां से चले आए उन्हें वापिस नहीं जाने दिया जायगा। इनमें वे विद्यार्थी भी थे जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वहां से बाहर गये थे। थोड़े में, यद्यपि यह बिल देखने में बिलकुल जाति भेद रहित लगता है इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वी अफरीका के सभी आर्थिक क्षेत्रों से भारतीयों को निकाल भगाना ही है। जब कि तीनों प्रदेशों को एक संस्था में पिरोने का यत्न किया जा रहा है, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने के लिए किसी 'परमिट' या अनुमति की आवश्यकता ही नहीं थी पर फिर भी ऐसा प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। कारण, यूरोपियन चाहते हैं कि भारतीय केन्या से न युगांडा जा सकें और न टैंगानिका।

इस बिल के उद्देश्यों के सम्बन्ध में प्रकाशित स्मृति पत्र (memorandum) में बताया गया है कि इसका उद्देश्य नीति सम्बन्धी आवश्यक बातों को स्पष्ट करना है।" यूरोपियन, जो पहले कहते थे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासियों के हित में ऐसा करना चाहिए, बाद में कहने लगे कि अफ्रीका वासियों के हित में नहीं, बल्कि स्वयं उनके हित में ऐसा करना चाहिए। अतः सरकार की नीति है कि यूरोपियनों के हितों की ही रक्षा करते हुए उन्हें अफ्रीका वालों का अधिक से अधिक शोषण करने में उनकी सहायता की जाय।

जहां तक अफ्रीका वासियों के हितों तथा उनके विकास का सम्बन्ध है भारतीय बहुत लाभकारी सिद्ध हुए हैं। इस विषय में उच्च अधिकारियों के असंख्य उद्धरित प्रमाण मौजूद हैं। १९०१ में सर हैरी जौन्सटन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"भारतीय व्यापार तथा उसके प्रवास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। पूर्वी अफ्रीका पूर्ण रूपेण हिन्दुओं (उनका अभिप्राय समस्त भारतीयों से था) का होना चाहिए।" हम तत्पश्चात् हिल्टन यंग कमीशन जिसे क्लोजर यूनियन कमीशन भी कहा जाता था और जिसकी नियुक्ति १९२७ में पूर्वी अफ्रीका के भिन्न भिन्न प्रदेशों के बीच अधिक से अधिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए हुई थी, ने कहा था कि—"निस्सन्देह भारतीयों ने इन प्रदेशों में जो लाभप्रद कार्य किया है वह कोई और नहीं कर सकता था। अफ्रीका वालों की धीरे धीरे सभ्यता की ओर प्रगति करने में भारतीयों का प्रमुख हाथ रहा है। उन्हीं छोटे छोटे दूकानदारों ने इन भूभागों में दूर दूर तक और अत्यन्त पौराणिक जातियों के बीच भी यूरोपियन समुदाय के उत्पादनों का प्रसार किया है। उनकी आवश्यकताओं को बढ़ाकर उन्हें प्रयत्नशील बना दिया और उनकी आर्थिक उन्नति का बीजारोपण किया। भारतीयों ने एक दूसरा लाभप्रद कार्य वहां की कृषि के सम्बन्ध में किया है। उदाहरण के लिए यूगांडा के उस भाग में जहां कपास की खेती होती है कपास का अधिकतर भारतीय ही करते हैं। उस भाग में कपास की खेती बढ़ाने में बड़ा सहयोग प्रदान किया है। वितरण के कार्य में मध्यस्थ का प्रमुख स्थान है और भारतीय मध्यस्थ जितना लाभ पहुंचा रहे उतना और कोई नहीं पहुंचा सकता। यूरोपियन इतने कम लाभ पर यह कार्य नहीं कर सकते। अफ्रीका वाले तो इस कार्य को करने योग्य अभी हुए ही

कहना नहीं होगा कि टैंगानिका, केन्या की अपेक्षा अभी १५ वर्ष पीछे है और जो कार्य अभी वहाँ भारतीय कर रहे हैं दूसरा कोई नहीं कर सकता। फिर यूरोपियनों की ही वहाँ अधिक से अधिक स्थान देनी की चेष्टा की जा रही है। गत द्वितीय युद्ध के दिनों में केन्या में २०० यूरोपियनों को बसाने का प्रस्ताव सरकार ने स्वीकार कर लिया था। पर, भारतीयों के लिए, जिन्होंने युगांडा के गवर्नर के शब्दों में "अफ्रिका के विकास में ऐसा लाभ प्रद कार्यकिया है जैसा और कोई नहीं कर सकता।" कोई इस प्रकार की योजना नहीं बनाई गई।

केन्या के शिक्षित अफ्रिकावासियों की संस्था केन्या अफ्रिकन स्टडी यूनियन के सभापति मि० गीशरूध ने, जो गत कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित थे अपने व्याख्यान में केन्या के भारतीय समुदाय को सदभावना का संदेश दिया और कहा कि—"केन्या प्रत्येक व्यक्ति के रहने के लिए पर्याप्त स्थान है"। फिर यह बिल किसलिए? इसका उत्तर यही है कि सरकार जाति-भेद की नीति को बर्तना चाहती है।

इस बिल का उद्देश्य है भारतीयों को चोट पहुंचाना। इसका उद्देश्य न केवल इन चार प्रदेशों के रहने वाले भारतीयों के आत्मसम्मान तथा उनके स्वार्थों को क्षति पहुंचना है बल्कि स्वयं भारतवर्ष का अपमान करना है। इस बिल के कानून बन जाने से विश्व की आध्यात्मिक जननी भारत का इतना बड़ा अपमान होगा जिसे वह सहन न कर सकेगी।

भारत सरकार तथा भारतीय जनता का कर्त्तव्य है कि वे इसे कानून न बनने दें। स्वर्गीय श्री निवासशास्त्री ने सर तेजबहादुर सप्रू से एक बार ठीक ही कहा था—"यदि केन्या हाथ से चला गया तो सब कुछ चला गया। द्वितीय श्रेणी की नागरिकता नहीं स्वीकार करनी चाहिए।" पूर्वी अफ्रिका के भारतीयों को ज्ञात है कि भारतवर्ष आज अपने इतिहास की बड़ी गम्भीर अवस्था से गुजर रहा है। फिर भी उन्हें आशा ही नहीं वरन विश्वास भी है कि उनके देशवासी विशेष कर वे जो कुछ रखते हैं, अवश्य इस बिल को गिराकर ही छोड़ेंगे और भारत के सम्मान की रक्षा करेंगे।

कापी रईट,
नेशनल प्रेस सिन्डीकेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल की जंग और उसका नतीजा

पण्डित सुन्दरलाल

इस ज़माने की दूसरी महाभारत अभी ख़तम हुई है. असल में यह पहली जंग का ही दूसरा हिस्सा है. जिस तरह आग और धुंए के तूफ़ान ज़मीन के नीचे उठ उठ कर कहीं भूचाल पैदा करते हैं, कहीं पहाड़ों से आग बरसा बरसा कर आस पास की ज़मीनों और आबादियों को बरबाद कर देते हैं, उसी तरह आदमी के दिल और दिमाग़ में ख़ुदग़र्ज़ी, नफ़रत और ग़ुस्से की आग और धुएं के तूफ़ान बराबर उठते रहते हैं और इनसानी समाज को तबाह और बरबाद करते रहते हैं. मुशकिल यह है कि जो ऊपरी आग इन से पैदा होती है हम उसे ही बुझाने में अपना सारा ध्यान और ताक़त ख़र्च करते रहते हैं, और यह नहीं सोचते कि जब तक ख़ुदग़र्ज़ी, आपा धापी, एक दूसरे से नफ़रत और ग़ुस्सा अपनी जगह मौजूद हैं तब तक हम इन आगों को बुझाने में कामयाब नहीं हो सकते. यह तो बराबर लगती ही रहेंगी. एक बुझेगी दूसरी लगेगी और यह अटूट सिलसिला हमेशा क़ायम रहेगा.

ज़रूरत इस बात की है कि हम रोग की जड़ को पहचानें. असली रोग हमारा स्वार्थ हमारी ख़ुदग़र्ज़ी है. ख़ुदग़र्ज़ी को पूरा करने के लिए हममें ख़ून की प्यास पैदा होती है. जब तक क़ौमों की यह ख़ुदग़र्ज़ी यह स्वार्थ न मिटे ख़ून की प्यास नहीं मिट सकती. इलाज इस ख़ुदग़र्ज़ी का होना चाहिए, तभी इन जंगों का सिलसिला टूट सकता है.

इस ख़ुदग़र्ज़ी का इलाज दौलत और ताक़त हासिल करने की अधा धुंध कोशिशें नहीं हो सकतीं. यह कोशिशें तो इसकी आग को और भी भड़काती हैं. असली इलाज सिर्फ़ अपनी आत्मा को ऊंचा करना और दिल को नेकी और सबके भले की तरफ़ लगाना है. आज कल के पच्छिम वाले इस इलाज में यक़ीन न रखते हों, पर दुनिया का इतहास इस बारे में हमें जो ख़ास सबक़ सिखाता है वह यह है कि ज़ोर ज़बरदस्ती इन्सानी समाज के बुनियादी मसलों को हमेशा के लिए हल नहीं कर सकती. इन मसलों को हल करने के लिये इनसानियत की ज़रूरत है.

बीते पच्चीस साल में हिन्दुस्तान ने अंगरेज़ी राज की हैवानी ताक़त का सामना अपने अन्दर के बल और सचाई के हथियारों से किया. दुनिया के लिये यह एक नई और अनोखी जंग थी. इसलिये दुनिया इसका सही अन्दाज़ा न कर सकी. पर आज यह बिलकुल साफ़ दिखाई दे गया कि हथियारबन्द जर्मनी और जापान, जो हैवानी ताक़त के बरतने में दुनिया के सरताज थे, आज परबस और पामाल हैं और निहत्था हिन्दुस्तान आज पूरी आज़ादी के महल में घुसता हुआ नज़र आ रहा है. यह आज की दुनिया की सबसे अचरज भरी बात है.

हाल की जंग का एक यह नतीजा हुआ है कि दुनिया की सारी फ़ौजी ताक़त और सब सुविधाएं तीन मुल्कों के हाथ में आ गई हैं--रूस, अमरीका और इंगलिस्तान. इन तीनों को जंग की तबाही और बरबादी का पूरा तजुरबा है. यह तीनों जंग के दिनों में बार बार दुहाई देते रहे हैं कि इनकी लड़ाई की सबसे बड़ी ग़रज़ दुनिया से जंग की जड़ों को उखाड़ फेंकना है. इनके बड़े से बड़े लीडर आज भी यही राग अलाप रहे हैं. पर इनके कारनामों से आदमी हैरान हो जाता है. जिधर देखो इनकी यही ख़ाहिश और कोशिश है कि दुनिया के बड़े से बड़े हिस्से पर हम क़ब्ज़ा जमा लें, अपनी तिजारत और फ़ौज के लिये रास्ते साफ़ कर लें और दूसरी बराबर वाली हकूमतों को ऐसा फ़ौजी लें कि वह किसी सूरत में भी हमारा मुक़ाबला न कर सकें.

रूस

रूस को लीजिये. इन तीनों में रूस सबसे ज़्यादा ग़रीबपरवर है. समाज में इनसाफ़ और भाईचारा पैदा करा देने को उसने अपना मक़सद बनाया है. वह सब इनसानों को बराबरी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मौक़े देना चाहता है, पर इस ऊंचे मक़सद को पूरा करने में रूस जिन तरीक़ों से काम ले रहा है वह वही पुराने तरीक़े हैं जो आज तक हकूमतें काम में लाती रही हैं. रूस इस वक़्त इस कोशिश में है कि उसका असर ऐड्रियाटिक समन्दर से लेकर चीन के पूरबी किनारों तक बल्कि और आगे बढ़ कर जापान तक फैल जाए और इधर साइबेरिया की उत्तरी सरहद से लेकर, एक तरफ़ मेडिटेरेनियन समन्दर तक, और दूसरी तरफ़ तुर्कस्तान और ईरान की खाड़ी यानी हिन्द सागर तक फैल जाय.

इन तीनों में से हर एक के काम का ढंग भी अलग है. रूस का सीधा सादा ढंग यह है कि जिस मुल्क पर वह अपना असर जमा पाता है उस के राज और माली साँचे को बिल्कुल अपने ढंग का बना लेता है, ज़मीन किसानों में बाँट देता है, ज़मींदारों और बड़े बड़े काश्तकारों का ख़ात्मा कर देता है, हर गाँव की सोवियट यानी पंचायत बनाकर उसे उसके दायरे में ख़ुद मुख़तार कर देता है. इसी तरह वह हर मुल्क वालों को अपनी पंचायती हुकूमत के साँचे में ढाल कर बाक़ी सब बातें, मज़हब, रहन, सहन जैसी बातों में बिलकुल आज़ाद छोड़ देता है, और वहाँ के पूंजी पतियों को ख़तम कर के वहाँ की दस्तकारी व्योपार वग़ैरह की बाग डोर पंचायती हुकूमत के हाथ में दे देता है. नतीजा यह होता है कि मुल्क के वह लोग, पूंजी पति वग़ैरह. जो इस इन्क़लाब का शिकार होते हैं इंगलिस्तान और अमरीका से मिल कर पुराने ज़माने को फिर से पास लाने की कोशिशें करने लगते हैं, और इंगलिस्तान और अमरीका वालों को उस देश में दख़ल देने और उथल पुथल मचाने का मौक़ा दे देते हैं.

दूसरे मुल्कों में जो रूस के असर से बाहर हैं और जहाँ राज के पुराने सांचे अभी क़ायम हैं सोशलिस्ट दल मौजूद हैं, जिनके ज़रिये रूस को दख़ल देने का मौक़ा मिलता है.

दुनिया भर में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रस्साकशी हो रही है, कहीं एक सिरा खिंच जाता है कहीं दूसरा, इस रस्साकशी का ख़ात्मा दिखाई नहीं देता.

अमरीका

अब अमरीका को लीजिए. सन् '१४ की जंग के ख़त्म से हाल की जंग के शुरू तक अमरीका अपनी राजनीत को अपने मुल्क की हदों के अन्दर ही रखना चाहता था. उसका असूल यह था कि न कोई हमारे घरेलू मामलों में दख़ल दे और न हम किसी दूसरे के मामले में. बाहरी दुनिया से अमरीका सिर्फ़ व्योपारी नाता रखना चाहता था. इसी असूल को 'मुनरो डाकट्रिन' कहते थे. पर अब अमरीका ने अपने बचाव के नाम पर इस असूल को बदल दिया है. अब वह अपने बचाव के लिये यह तीन बातें ज़रूरी समझता है. कुल पासिफ़िक सागर पर क़ब्ज़ा, एटलांटिक सागर में ख़ास खास बन्दरगाहों पर क़ब्ज़ा और दुनिया के हर मुल्क में अमरीका के फ़ौजी अड्डे. यानी वह अब सारी दुनिया पर अपना जाल बिछा देना चाहता है.

जहाँ तक दूसरे मुल्कों पर क़ाबू पाने का सवाल है अमरीका के और रूस के तरीक़ों में बहुत फ़रक है. रूस के तरीक़ों में जैसा हमने अभी कहा समाजी इनक़लाब बहुत ज़रूरी है. लेकिन अमरीका का क़ाबू पाने का तरीक़ा सिर्फ़ तिजारती हक़, तिजारती आज़ादी और तिजारती आसानी हासिल करना और इनको बनाए रखने के लिये जगह जगह अपने फ़ौजी अड्डे बनाने के समझौते कर लेना है. वह किसी देश की हकूमत में सीधे दख़ल देना नहीं चाहता, न वहां की समाजी हालत में कोई ख़ास इनक़लाब पैदा करना चाहता है. उसका मतलब सिर्फ़ इतना है कि उसे तिजारत करने की पूरी आज़ादी रहे, क्योंकि उसे पूरा भरोसा है कि इस वक़्त दुनिया का कोई मुल्क रुपए और तिजारत में उसकी बराबरी नहीं कर सकता. इस लिए बिना हकूमत में दख़ल दिये या समाज में इनक़लाब पैदा किये वह दूसरों की दौलत अच्छी तरह समेट सकता है. अमरीका की यह कोशिशें दुनिया के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरे से दूसरे सिरे तक ज़ोरों से चल रही हैं और जगह जगह इसकी टक्करें रूस और इंगलिस्तान दोनों से हो रही हैं. इन आपस की रगड़ों से कब आग पैदा हो जायगी और उसकी क्या शकल होगी इसका अन्दाज़ मुशकिल है. इस आग से बचने का तरीक़ा अपनी अपनी क़ौमी ख़ुदग़र्ज़ियों पर जमे रहना नहीं है और न अपनी फ़ौजों और एटम बम बनाने के वसीलों को बढ़ाना है. तरीक़ा ईमानदारी, इनसाफ़ और सबके भले के रास्ते अख़तियार करना है.

इंगलिस्तान

चीन और पासिफ़िक सागर से इंगलिस्तान एक हद तक हाथ धो बैठा है. अमरीका से वह टक्कर नहीं ले सकता. पर इंडोनीशिया और मलाया से लेकर पच्छिम अफ़रीक़ा के किनारों तक चप्पे चप्पे पर इसका फ़ायदा और इसकी चाल अमरीका के फ़ायदे और अमरीका की चाल से टकरा रही है. यह टक्करें ज़बरदस्त और गहरी हैं. पासिफ़िक सागर में हालैण्ड और फ्रांस की आड़ में इङ्गलिस्तान शिकार खेल रहा है. अमरीका और रूस के मुक़ाबले में हालैण्ड और फ्रांस अपनी टांगों पर खड़े नहीं रह सकते. इसलिए इण्डोनीशिया और इण्डोचीन वग़ैरह में इङ्गलिस्तान हालैण्ड और फ्रांस की टांगें बना हुआ है.

ईरान, फ़िलिस्तीन, मिस्र वग़ैरह

हाल की जंग की लूट में जिस तरह अमरीका के हाथ क़रीब क़रीब सारा पासिफ़िक आ गया है, और चीन और जापान पर उसके ज़बरदस्त मोरचे जम गए हैं, उसी तरह इङ्गलिस्तान के हाथ कुल बीच-एशिया का इलाक़ा और आधे से ज़्यादा अफ़रीका आ गया है. इङ्गलिस्तान के सामने बड़ा सवाल यह है कि वह इस आधी दुनिया को कैसे संभाले और समेटे, और उसको रूस और अमरीका की ख़ुदग़र्ज़ी और चालों से कैसे बचाए.

इस लम्बे चौड़े इलाक़े में जगह जगह इङ्गलिस्तान, रूस और अमरीका की टक्करें हो रही हैं. ईरान में रूस ने अब की बार अपने पंजे गहरे गाड़ दिए हैं. ईरान की आजकल की सरकार वहाँ की डेमोक्रेटिक पार्टी के हाथों में है जो रूस के कम्यूनिस्ट विचारों की है. वहाँ का बड़ा वज़ीर सुलताने ख़ुद कम्यूनिस्ट है. आज़रबाईजान में कम्यूनिस्ट ढंग का राज क़ायम हो चुका है. कुरदिस्तान में कम्यूनिस्ट विचारों के बीज बड़े पैमाने पर बोए जा चुके हैं, उस इलाक़े की ज़मीन वहां के किसानों में बांट दी गई है, इस सारे काम का ज़बरदस्त असर वहां के नए चुनाव में साफ़ दिखाई देने वाला है. इङ्गलिस्तान और अमरीका पग पग पर इस रास्ते में क़ानूनी और तरह तरह की रुकावटें डाल रहे हैं. चुनाव के वक़्त और भी खुल खेलेंगे. अगर चुनाव में डेमोक्रेटिक पार्टी जीती तो ईरान में रूस का पल्ला इङ्गलिस्तान और अमरीका के पल्ले से कहीं भारी हो जाएगा. यह ज़बरदस्त कांटा इङ्गलिस्तान के गले में अटका हुआ है. उसकी सारी सूझ बूझ इस कांटे को निकालने की कोशिश में लगी हुई है. रूस की इस मांग की बाबत, कि उसे बसरा में पैर जमाने की जगह मिलनी चाहिये, इङ्गलिस्तान के लीडर कहते हैं कि यह इंगलिस्तान की जीवनकड़ी या गले की नली को काट देने की कोशिश है. वह साफ़ कह रहे हैं कि हम अपनी जान पर खेल कर भी रूस की इस कोशिश को चलने न देंगे.

ईरान से आगे बढ़कर इराक़, सौदी अरब, सीरिया, लबनान, फ़िलिस्तीन, तुर्की और मिस्र इन सब मुल्कों में इस वक़्त इंगलिस्तान का इतना असर और दबाव है जितना किसी दूसरे मुल्क का नहीं है. रूस इस असर को मिटाने की उधेड़ बुन में लगा हुआ है. अमरीका वहीं पर अपने ढाई चावल अलग पकाने की कोशिश कर रहा है. इंगलिस्तान की सारी कोशिश यह है कि वह पच्छिम एशिया की इन सारी ताकतों को एक ऐसे संघ या फ़ेडरेशन का रूप देदे जो बढ़ते हुए रूस से अपने को बचाने के लिए इंगलिस्तान की मदद का मोहताज हो और इस मदद के बदले में इंगलिस्तान को तिजारत करने और जगह जगह अपनी फ़ौजें रखने की इजाज़त दे दे. इस काम में इंगलिस्तान को तुर्की से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़्यादा मदद मिल रही है, क्यों कि रूस दरेदानियाल पर क़ब्ज़ा करने पर तुला हुआ है और तुर्की वग़ैरह इंगलिस्तान और अमरीका की मदद के रूस को दरेदानियाल लेने से नहीं रोक सकता.

फ़िलिस्तीन में हैफ़ा से और मिस्र में नहर सूईज़ से इंगलिस्तान किसी तरह भी अपना फ़ौजी क़ब्ज़ा हटाना नहीं चाहता. यह दोनों बन्दरगाह उसकी ज़िन्दगी की पुरानी जंजीर की ज़बरदस्त कड़ियां हैं. इंगलिस्तान की यह ज़िन्दगी की जंजीर यानी जीवन लड़ी जिबराल्टर, माल्टा, सिकन्दरिया, सिरेनिका होती हुई इन बन्दरगाहों तक पहुँचती है. इस वक़्त इन दोनों मुल्कों मिस्र और फ़िलिस्तीन में इंगलिस्तान अपनी सारी कोशिश इस बात में लगा रहा है कि इन मुल्कों को दिखावे की आज़ादी दे दे और इंगलिस्तान के फ़ौजी अड्डों को वहां से हटना न पड़े. अगर यहूदियों और अरबों का मामला किसी तरह तय हो जावे तो अंगरेज़ी फ़ौज के हैफ़ा में बने रहने की कोई सूरत नहीं रह जायगी. इसलिये अरबों और यहूदियों का मसला दिन दिन और उलझता जाता है और सुइज़ का सवाल मिस्र के मसले को हल होने ही नहीं देता.

इसके साथ साथ मिस्र के मामले में सूडान की भी गुत्थी और है. सूडान मिस्र ही का बहुत बड़ा हिस्सा है. नील नदी इसी से होती हुई और मिस्र को सींचती है. मिस्र की सारी पैदावार और मिस्र वालों की ख़ुशहाली और ज़िन्दगी का सारा दारमदार नील नदी के पानी पर है. अगर सूडान में कोई ऐसी अलग हकूमत बन जाए जिसे मिस्र से हमदर्दी न हो तो वह नील के पानी की नहरों के ज़रिये मोड़कर और उसके बहाव को रोक कर मिस्र को एक रेगिस्तान या क़बरिस्तान बना सकती है. इस लिये सूडान की हकूमत का सवाल मिस्र के लिये मरने जीने का सवाल है.

मिस्र और सूडान हर माने में एक हैं. लेकिन अंगरेज़ी हकूमत ने हिन्दुस्तान के 'पाकिस्तान' और 'अखंड हिन्दुस्तान' के मसले की तरह वहां भी एक ख़तरनाक शोशा खड़ा कर दिया है. सूडान में दो दल पैदा हो गए हैं. एक कहता है कि हम मिस्र के साथ रहेंगे. दूसरा कहता है कि सूडान में अलग आज़ाद हकूमत होनी चाहिये. इंगलिस्तान इन आज़ाद हकूमत चाहने वालों के साथ है. असल में वह साथ किसी के भी नहीं हैं. ख़ाली इस टन्टे को ज़िन्दा रखना चाहता है, क्यों कि जब तक यह टन्टा रहेगा इंगलिस्तान की फ़ौजों का वहां रहना लाज़मी है, वहां 'अमन आमान' क़ायम रखने के लिये. यही दो ख़ास बातें हैं जो मिस्र की मुसीबत को ख़त्म होने नहीं देतीं.

अफ़रीका

अफ़रीका में इटली की नई बस्तियां भी सब इंगलिस्तान के क़ब्ज़े में हैं. रूस कह रहा है कि इन बस्तियों में उसे भी पैर रखने की गुंजाइश मिलनी चाहिए. इंगलिस्तान रूस की इस मांग से भी परेशान है. इसके अलावा सारा अफ़रीका बे आवाज़ और बेबस है. इंगलिस्तान अपनी पुरानी जीवन कड़ी को माल्टा, सूईज़ से हटाकर अब अफ़रीका के दक्खिनी और पूरबी हिस्सों की तरफ़ लेजा रहा है. फ़िर भी अभी तक वह अपनी पुरानी जीवन कड़ी यानी जिबराल्टर, माल्टा, सैरेनिका, सिकन्दरिया, सूईज़ वग़ैरह में अपनी फ़ौजी ताक़त का कम हो जाना बरदाश्त नहीं कर सकता.

नतीजा

यह उस सब बाहरी दुनिया का हाल है जो यूरोप और अमरीका की मंडियों का काम देती है. अगर यह मंडियां न हों तो यूरप की सारी तहज़ीब और ख़ुशहाली का ख़ात्मा हो जावे, क्यों कि यह तहज़ीब और ख़ुशहाली अभी तक दूसरों को लूटने, कमज़ोर रखने और मिटाने पर ही क़ायम है. अभी तक इन बुनियादों को बदलने का ख़याल तक इंगलिस्तान या अमरीका किसी के दिमाग़ में नहीं है. यह दोनों हकूमतें सिर्फ़ ऊपरी अदल बदल करके और नया रंग और रोग़न चढ़ा कर अपने पुराने सांचों को ही क़ायम रखना और पक्का कर लेना चाहती हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान

इंगलिस्तान की आज कल की करतूतों को समझने के लिये हमें यह याद रखना चाहिये कि हाल की लड़ाई के दिनों में कई ख़ुफ़िया समझौते रूस, इंगलिस्तान और अमरीका तीनों में हुए हैं. इन समझौतों की दो ख़ास कड़ियां हैं. पहली कड़ी यह कि हर मुल्क आज़ाद कर दिया जाए. आज़ादी का मतलब यह कि इंगलिस्तान, रूस या अमरीका उस मुल्क के अन्दर के इन्तज़ाम में किसी तरह का दख़ल न दें. अन्दर के इन्तज़ाम में दख़ल न देने के असली माने यह हैं कि इन्हें उस मुल्क की मरज़ी से पूरा दख़ल देने का मौक़ा मिल जाए, यानी अगर कोई इस तरह आज़ाद किया हुआ मुल्क तिजारत करने और फ़ौजें रखने की ख़ास रिआयतें इन तीनों ताक़तों में से किसी एक को दे दे, तो बाक़ी दोनों ताक़तें उसमें रुकावट न डालेंगी. दूसरी कड़ी यह है कि अगर इन तीनों में से कोई ताक़त किसी मुल्क को अपने मातहत बनाए रखना चाहे तो उसे बाक़ी दोनों ताक़तों को भी उस मुल्क में तिजारत करने वग़ैरह के वही सब हक़ देने होंगे जो उसे ख़ुद हासिल हैं. अगर हम इन दोनों कड़ियों को अपने सामने रक्खें, तो इंगलिस्तान की इस वक़्त की चालों के समझने में हमें बहुत मदद मिल सकती है. इंगलिस्तान की माली हालत इस वक़्त इतनी ख़राब है कि अगर हम उसे अमरीका के हाथ बिका हुआ कहें तो बेजा न होगा. तिजारती तरक़्क़ी और ताक़त में भी इंगलिस्तान किसी तरह अमरीका का मुक़ाबला नहीं कर सकता. इसलिये इस वक़्त उसके सामने एक ही सूरत है कि वह अपने मातहत मुल्कों को नाम के लिये आज़ाद कर दे और इस आज़ादी (?) के बदले में अपने लिए उनसे तिजारती और फ़ौजी हक़ और आसानियाँ समझौतों की शकल में पक्की करले. ऐसी सूरत में अमरीका और रूस इसके रास्ते में नहीं आ सकते, क्योंकि आज़ाद मुल्कों का मतलब ही इन्हों ने यह रक्खा है कि इन तीनों में से कोई उस मुल्क के अन्दर के मामलों जैसे निसिपेल्टियम्यूँ, यूनिवर्सिटियां वग़ैरह में दख़ल न दे. इंगलिस्तान की दिक़्क़तें छोटी मोटी कुछ और भी हैं, जैसे यह कि उसकी हकूमत के सांचे ने थोड़ा बहुत मज़दूर हकूमत का रंग ले लिया है, जिससे दूसरे मुल्कों को अपना गुलाम बनाए रखने में उसे पहले से कुछ ज़्यादा दिक़्क़तें पेश आ रही हैं. माली हालत की ख़राबी ने इंगलिस्तान के ब्योपार की कमर तोड़ दी है. यही वजह है कि जिधर देखो उधर मुल्कों को आज़ादी देने का बाज़ार गरम है. मिस्र, फ़िलिस्तीन, सीरिया, इराक़, ईरान और हिन्द हर जगह आज़ादी के नक़शे पेश हैं और उन्हें पूरा करने में इतनी जल्द बाज़ी से काम लिया जा रहा है, जैसे इसके बग़ैर दुनिया की तरक़्क़ी की गाड़ी अटक ही गई हो. यह उतावली इसलिये है कि आज़ादी के समझौतों से पहले ही कहीं अमरीका या रूस इन गुलाम मुल्कों को ज़्यादा आसानियां देकर इन पर अपने नक़शे जमा लेने में कामयाब न हो जावें. मिस्र और हिन्दुस्तान की हालत पर नज़र डालने से हमारी यह बात बिलकुल साफ़ हो जाती है.

हिन्दुस्तान को नाम की आज़ादी देकर असल में इंगलिस्तान अपने पुराने ब्योपारी हक़, आगे के ब्योपारी फ़ायदों और अपने फ़ौजी अड्डों को मज़बूत कर लेना चाहता है. इसी की एक कड़ी 'पाकिस्तान' और 'अखन्ड हिन्दुस्तान' का झगड़ा भी है. जब तक हिन्दू और मुसलमान, सिक्ख और अछूत एक दूसरे से टकराते हैं और एक दूसरे से अपने बचाव के लिए किसी तीसरे के मोहताज हैं, तब तक उनके हाथ इंगलिस्तान के दामन को पकड़ते ही रहेंगे और इस देश में शान्ति 'अमन आमान' क़ायम रखने का बहाना दुनिया को चुप करने के लिये बराबर इंगलिस्तान के तरकश में रहेगा. इन पहलुओं को सामने रखने से हमें इस वक़्त इंगलिस्तान की पालिसी की सारी नज़ाकत नज़र आ जाती है.

हमारा रास्ता

दुनिया की इस समय की हालत का एक ख़ाका हमने ऊपर देने की कोशिश की है. हम यह भी कह चुके हैं कि इनसानी समाज के इस रोग का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली इलाज राजनीतिक नहीं बल्कि इख़लाकी और रूहानी यानी नैतिक और आध्यात्मिक है. हमें अपने दिलों और दिमाग़ों को बदलना है, सारे इनसानी समाज को एक कुटुम्ब की तरह देखना है, अपने अपने मुल्क, अपनी अपनी क़ौम या अपने अपने गिरोह की जगह सबके भले को अपना मक़सद बनाना है और सच, झूठ, नेकी बदी के उन पुराने सुनहरे असूलों को जिन्हें हम ने अपनी अपनी क़ौमी और राज काजी ज़िन्दगियों से निकाल बाहर किया है फिर से अपनाना है. इसके सिवा दुनिया के भले का कोई दूसरा रास्ता नहीं है.

पर हम अपनी इस पिछड़ी हुई हालत में दूसरों को सबक़ सिखाने का हौसला तब तक नहीं कर सकते जब तक पहले अपने को ठीक न कर लें. इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि हम सब से पहले अपने मुल्क के लिए अपने आगे के रास्ते को अच्छी तरह समझ लें. हम इस वक़्त बहुत ही नाज़ुक हालत में से निकल रहे हैं. लम्बी ग़ुलामी के बाद क़ुदरत और ज़माने की हालत हमारे लिये आज़ादी का दरवाज़ा खोलती दिखाई दे रही है. हमारी ज़िम्मेदारी इस वक़्त बहुत जबरदस्त है. यह भी एक क़ुदरती बात है कि ऐसे मौक़े पर बड़े से बड़े मामलों में भी मुल्क वालों में तरह तरह के और एक दूसरे के ख़िलाफ़ ख़याल मौजूद हों. हमारी राय में तीन मोटी मोटी पर ज़रूरी बातें हैं जिनकी तरफ़ हिन्दुस्तान को ध्यान देना होगा—

(१) सन '१४ की लड़ाई से अब तक दुनिया के बड़े बड़े सोचने वाले, यहाँ तक कि वह लोग भी जिन्हें इन जंगों के करता धरता कहा जा सकता है, यह कहते चले आ रहे हैं कि दुनिया से हथियारों, गोले बारूद और फ़ौजों को मिटाए बिना दुनिया को शान्ति नहीं मिल सकती. सब यह कह रहे हैं कि देसों देसों के बीच के आपसी झगड़े पंचायतों और समझौतों से ही तय होने चाहियें. इसके लिये बड़ी बड़ी कानफ़रेन्सें भी हो चुकी हैं. पर अभी तक चूंकि दुनिया की सरकारों का सहारा बहुत कर फ़ौज और हथियार ही रहे हैं इसलिए दुनिया के हथियार घटने की जगह बढ़ते ही जा रहे हैं. हिन्दुस्तान जैसे देस को यह समझना होगा कि वह फ़ौजों और हथियारों के बल बूते पर अपने से कई गुनी ज़्यादा हथियार बन्द ताक़तों के सामने अपने को बचा कर नहीं रख सकता. हिन्दुस्तान को अपने में दूसरी ही ताक़त जगाना और बढ़ाना होगा. उस दूसरी ताक़त की झलक हमें अपनी पिछले पच्चीस बरस की कशमकश में मिल चुकी है. दुनिया उसे देख चुकी है. अब अगर हम आज़ाद हिन्दुस्तान की नई सरकार बिना फ़ौज और हथियारों के न चला सकें और इनसे बढ़कर कोई दूसरी ताक़त अपने अन्दर पैदा न कर सकें तो हम न अपनी आज़ादी को देर तक बचा सकेंगे और न दुनिया के अन्दर सच्ची सुख शान्ति के क़ायम करने में असली मदद दे सकेंगे.

(२) बड़े बड़े कल कारख़ानों और इनसानी ज़रूरत के सामान पैदा करने के उन नए पच्छिमी तरीक़ों से हिन्दुस्तान को बचना होगा जिन पर चलकर इंगलिस्तान, जापान और जर्मनी जैसे छोटे छोटे मुल्कों को अपने से कई गुनी बड़ी मंडियों की ज़रूरत पड़ी, जिनसे आजकल के पच्छिमी साम्राजों की और एशिया और अफ़रीका के ग़ुलाम बनाए जाने की नींव पड़ी, और जिनमें फँसकर आज भी इंगलिस्तान और अमरीका दुनिया के लिये बरकत होने की जगह शाप और लानत बने हुए हैं. हल हमारे सामने मौजूद है. निगाह डालने और सोच समझ कर चलने की ज़रूरत है.

(३) अलग अलग धर्म मज़हबों और पुराने रीत रिवाजों ने पूरब के मुल्कों को टुकड़े टुकड़े कर रक्खा है. 'मेरा क़ौम' 'तेरा क़ौम' के नए नारों ने पच्छिमी मुल्कों को छोटी छोटी ख़ुदग़र्ज़ियों में फँसा कर एक दूसरे का दुशमन बना रक्खा है. यह सब चीज़ें आदमी को आदमी से फाड़ने वाली हैं. हमें पहली को तोड़ना है और दूसरी से बचना है. हमें अपनी पुरानी तहज़ीब और दीन धरम की रोशनी में कुल इनसानी समाज को एकता की डोर में बांधना है, और उस एकता की जीती जागती तसवीर अपने दिलों और दिमाग़ों में बिठाना है. ['नया हिन्द' से]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई किताबें

इन कालमों में ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक साहित्य की विस्तृत समालोचना की जायगी। प्रगतिशील सृजनात्मक साहित्य की भी विस्तार से चर्चा रहेगी। अन्य साहित्य का केवल संक्षिप्त उल्लेख होगा। इसमें प्रकट की हुई रायों की ज़िम्मेवारी हमारी न होगी। किन्तु हम प्रत्यालोचना का भी स्वागत करेंगे —सम्पादक

हिन्दी पुस्तक-साहित्य [१८६७-१९४२ ई०]

मेरी ऊपर लिखी पुस्तक की एक आलोचना 'पुस्तक-परिचय' स्तंभ में अप्रैल, १९४६ की विश्ववाणी में प्रकाशित हुई है।

पहली गल्ती लेखक के अनुसार पुस्तकों का ग़लत वर्गीकरण है—और इसके उदाहरण में बजरंग बली विशारद, सं० 'तुलसी-रचनावली' को लिया गया है जिसे पुस्तक के पृ० ३४९ पर 'समालोचना' वर्ग के अन्तर्गत रक्खा गया है, किन्तु जो वास्तव में तुलसी के मानस के सिवाय और कृतियों का संग्रह है। वर्गीकरण-प्रणाली के सम्बन्ध में मैंने ग्रंथ की प्रस्तावना में (पृ० १०—१३) कुछ बातें कही हैं, और उनके अंत में मैंने यह भी कहा है 'प्रत्येक मुख्य वर्ग में किन-किन विषयों का समावेश होना चाहिए, इस संबंध में भी मतभेद के लिए अवसर पर्याप्त हो सकता है, और जितना ही अधिक उस पर विचार किया जाएगा उतनी ही अधिक उसमें सुधार की भी सम्भावना हो सकती है। किन किन विषयों का समावेश मैंने किस किस वर्ग में किया है, प्रस्तुत पुस्तक के उपयोग के लिए यही जानना यथेष्ट होगा, और यह 'भूमिका' के सिंहावलोकन की विषयानुक्रमणिका को देखकर हृदयंगम किया जा सकता है। यदि लेखक ने 'भूमिका' को देखकर वर्गीकरण-प्रणाली के समझने का तनिक भी यत्न किया होता तो सम्भवतः इस तरह की बात वह न लिखता। 'भूमिका' में 'वर्तमान युग का साहित्य' वाले खंड में 'समालोचना' साहित्य का सिंहावलोकन करते हुए (पृ० १७४—१७६) तुलसीदास-सम्बन्धी साहित्य को ही तीन समूहों में विभाजित कर उसका परिचय दिया गया है, और इन्हीं तीन में से एक समूह ग्रन्थावलियों और संकलनों का, जिसमें कि अन्यों के साथ 'बजरङ्गबली विशारद सं० 'तुलसी-रचनावली' (१९२६) भी है। फिर यह बात कुछ तुलसीदास की ही ग्रंथावली के सम्बन्ध में नहीं की गई है, सूरदास, जायसी, रहीम, केशवदास, भूषण, मतिराम, बिहारी, देव, पद्माकर, बांकीदास, रसिक गोविंद, दीनदयालुगिरि तथा अन्य लेखकों के सम्बन्ध में भी यही बात दी गई है।

लेखक ने दूसरी ग़ल्ती यह दिखाई है: "अनुक्रमणिका में पुस्तकों का नाम न होना, और फ़ेहरिस्त में उनका मौजूद होना," और उदाहरण में कहा है "सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन कृत 'शेखर—एक जीवनी' है। अनुक्रमणिका में इसका नाम नहीं परन्तु लेखक सूची में इसका उल्लेख पृ० ६५४ पर है।" अनुक्रमणिका कदाचित् लेखक ने देखी ही नहीं, क्योंकि उसमें पृ० ८०८ पर यथास्थान 'शेखर' नाम देते हुए भूमिका, विषय-सूची तथा लेखक-सूची में उसके अलग अलग उल्लेखों की तीन पृष्ठ-संख्याएँ भी अत्यन्त स्पष्टता के साथ दी गई हैं।

तीसरी ग़ल्ती लेखक ने यह दिखाई है: "प्रकाशकों का अधूरा पता," और इसके उदाहरण में पृ० ४७४ पर आनेवाली 'गो-करुणा निधि' नामक पुस्तक का उल्लेख किया है। गो-करुणा निधि उल्लेख उक्त पृष्ठ पर इस प्रकार आता है: "दयानन्द सरस्वती गो-करुणानिधि (१७) लेखक बनारस, '८१" प्रकाशक के स्थान पर स्पष्ट लिखा हुआ है "लेखक," और प्रकाशन-स्थान दिया हुआ है "बनारस", जिसका आशय हुआ कि लेखक ने स्वतः यह पुस्तक बनारस से प्रकाशित की। लेखक का अभिप्राय "पूरा पता" से यदि यह हो कि मुहल्ला या मकान नम्बर आदि भी दिया जाना चाहिए था, यह तो मैंने ग्रंथ भर में कदाचित् किसी भी पुस्तक के सम्बन्ध में नहीं किया है; और इस पुस्तक के सम्बन्ध में तो और भी यह समस्या नहीं उठती, क्योंकि काशी में सम्भवतः स्वामी जी का कोई निवास स्थान भी नहीं था।

चौथी ग़लती लेखक ने यह दिखाई है: "किताब के लेखक का नाम न देना", और उदाहरण में जायसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की 'पद्मावती' का उल्लेख करते हुए कहा है "सारी पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी का लेखक के रूप में कहीं पर भी उल्लेख नहीं है।" ग्रंथ में तीन बार जायसी के उल्लेख आए हैं, और वे इस प्रकार हैं :

(१) 'भूमिका' पृ० १७४ : "मलिक मुहम्मद जायसी के सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल सम्पादित 'जायसी-ग्रन्थावली (१९२४), जिसमें कवि की रचनाओं के अतिरिक्त एक विस्तृत और विशद समालोचनात्मक परिचय दिया है,"

(२) 'विषय-सूची,' पृ० २२६ : "मुहम्मद जायसी, लेखक : पद्मावत"

(३) 'लेखक-सूची, पृ० ५५४ : "मुहम्मद जायसी, लेखक : पद्मावत (२ आ०) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, ८१

[और इसके नीचे ही चार और विज्ञप्तियां भी 'पद्मावत' की कवि के नाम के नीचे 'वही' का चिन्ह लगा कर दी गई हैं]

फिर भी लेखक को ग्रन्थ भर में जायसी का उल्लेख लेखक के रूप में नहीं मिला।

लेखक ने यह भी लिखा है : "जहाँ उनके (जायसी के) ग्रन्थों का उल्लेख है वहां पर उनके सम्पादकों का नाम दिया गया है। इस सम्बन्ध में लेखक को कोई एकसा सिद्धांत नहीं मिलता, उदाहरणार्थ लेखक ने मंझनदास का नाम दिया है और उनके नाम के साथ उनके ग्रन्थ सम्पादकों के नाम हटाकर दिए हैं।" जायसी स्वतन्त्र रचनाओं अथवा उनकी कृतियों के सम्बन्ध में एक सामान्य उल्लेख प्रणाली का निर्वाह हुआ है, और कहीं भी कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ है : देखिए पृ० ४६३-४७१; पृ० ५५४; तथा पृ० ५८२ और कदाचित किसी अन्य लेखक के विषय में ऐसी कोई बात नहीं हुई है।

पांचवीं ग़लती लेखक ने बताई है : 'लेखक-सूची में लेखक का नाम मिलना और वर्गीकृत पुस्तक-सूची में नाम न मिलना,' और उदाहरण में पुनः सच्चिदानन्द वात्स्यायन कृत 'शेखर—एक जीवनी' का उल्लेख करते हुए कहा है, 'हिन्दी उपन्यास की फेहरिस्त में इसका नाम नहीं है, और 'लेखक-सूची' में पृ० ४७४ पर (पृष्ठ-संख्या सम्भवतः ६५४ होनी चाहिए, भूल से लेखक ने ४७४ लिख दी है) लेखक ने ऊपर दूसरी संख्या की जो ग़लती बताई है, या तो उसने पुनः उसी को यहां पांचवीं ग़लती कहा है या अगर कोई दूसरी तरह की ग़लती बताई है तो 'वर्गीकृत पुस्तक-सूची' से उसका आशय कदाचित् 'विषय-सूची' से है। किन्तु विषय-सूची में भी पृ० २४१ पर यथास्थान उसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है :

"सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन : शेखर ४१"

छठीं ग़लती लेखक ने बताई है "असाधारण नाम देना" और उदाहरण में उसने 'अज्ञेय' को रखते हुए कहा है "इनका नाम लेखक ने 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन' ही दिया है, 'अज्ञेय' नहीं।" 'अज्ञेय' जी की समस्त पुस्तकें पृ० ६५४ पर दी हुई हैं, और लेखक ने स्वतः इस पृष्ठ का हवाला दो बार ऊपर ही दिया है 'अज्ञेय' की भी रचनाओं का उल्लेख उपर्युक्त पृष्ठ पर इस प्रकार होता है :

"सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, 'अज्ञेय' : मनदूत (१) बी० एच० वात्स्यायन, लाहौर, ३३" और इसके नीचे ही उनकी अन्य चार पुस्तकों का भी उल्लेख लेखक के नाम के नीचे 'वही' का चिन्ह बना बनाकर दिया गया है। फिर न जाने क्यों लेखक ने इस प्रकार की बात कही है।

सातवीं ग़लती लेखक ने बताई है "कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का नाम न देना," और उदाहरण में कासिमशाह दरियाबादी कृत 'हंस-जवाहिर' का उल्लेख करते हुए कहा है "यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य के इतिहास में बड़ा अहम है। इसका हवाला पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में और डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में दिया है।" शुक्ल जी ने जो हवाला दिया है वह शब्दशः यह है :

"कासिमशाह—ये दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे, और सं० १७८८ के लगभग वर्त्तमान थे। इन्होंने "हंस-जवाहिर" नाम की कहानी लिखी, जिसमें राजा हंस और रानी जवाहिर की कथा है।" शुक्ल जी ने कासिमशाह को सूफ़ी प्रेममार्गी कवियों की परम्परा में रक्खा है किन्तु उनके कार्य को कितनी अहमियत प्रदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है उसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है जब कि उक्त परम्परा के अन्य कवियों के परिचयों का औसत ३½ पृष्ठ आता है, इनका २½ पंक्ति मात्र। सूफ़ी प्रेममार्गी-परम्परा में किसीका परिचय उन्होंने इतने कम शब्दों में नहीं दिया है।

डा० वर्मा ने जो हवाला दिया है वह शब्दशः यह है : "हंस-जवाहिर—इस ग्रंथ में राजहंस और जवाहर की प्रेम कथा है। इसके लेखक दरियाबाद (बाराबंकी) के निवासी कासिमशाह थे। इनका काल संवत् १७८८ माना गया है।" डा० वर्मा ने भी सूफ़ी प्रेममार्गी शाखा के साहित्य विवेचन में 'हंस जवाहर' को ठीक उतनी ही अहमियत दी है जितनी ऊपर शुक्ल जी ने। फलतः लेखक को इस रचना की अहमियत प्रतिपादन करने की आवश्यकता है, उसके प्रस्तुत प्रमाण कदाचित पर्याप्त नहीं हैं। किन्तु इस प्रकार के सुझाव का मैं स्वागत करता हूं, और ग्रन्थ की प्रस्तावना में ही मैंने स्पष्ट कहा है (पृ० ६) "अपूर्णता तथा त्रुटियों की सम्भावना इस प्रकार के चयन में अवश्यंभावी है। आशा है कि उन्हें यथासम्भव दूर करने में विद्वानों का सहयोग अवश्य प्राप्त होगा।"

—माताप्रसाद गुप्त

नवीन—(कविता संग्रह)—लेखकः श्री गोपालसिंह नेपाली; प्रकाशकः पुस्तक भण्डार, पटना; मूल्य २) रु०; पृष्ठ संख्या ६८

पुस्तक में कवि नेपाली की ३९ कविताएँ संग्रहीत हैं। इनमें सात कविताएँ भाषा की दृष्टि से सरल हिन्दुस्तानी, छन्द की दृष्टि से उर्दू बहर से प्रभावित और भाव की दृष्टि से आशा निराशा के द्वन्द्व से अनुप्राणित हैं। 'एक बार' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

जी रहा हूँ एक बार,
मर रहा हूँ एक बार,
सौदा अपनी जान का कर रहा हूं एक बार।
ज़िन्दगी तूफान है,
गर्द यह जहान है,
और उसके सामने, जवानी के चिराग़ को
धर रहा हूं एक बार
जलना है जल जायगा,
बुझना है बुझ जायगा,
सोच नहीं कुछ कि फिर
ज़िन्दगी के नाम पर धुआं-ही-धुआं छायगा।

कवि अपने जीवन को कर्म की बाज़ी पर लगाने से हिचकता नहीं और जीवन के प्रयोग में यदि उसे अपने सर्वस्व का त्याग भी करना पड़ता है तो उसे ग़म नहीं—

एक छोटी डाल पर खिल रहा हूं एक बार
बहार की बयार में हिल रहा हूँ एक बार
मैं चमन की धूल में मिल रहा हूं एक बार
टूटते हैं एक बार सितारे आसमान से
टूटते हैं एक बार आदमी जहान से
मैं भी अपनी डाल से हर सिंगार फूल सा
झर रहा हूं एक बार

और कवि के इस उत्सर्ग के बाद जो नया जीवन आयेगा। उसके सम्बन्ध में कवि कहता है—

सुन लो मेरे साथियो
काली रात चीरता कल सबेरा आयेगा
देश से सितारों के सूरज मेरा आयेगा
लाएगा वह साथ में सोने की जवानियां
लाएगा वह साथ में मौजों की कहानियां

जवानियां शीर्षक कविता में कवि कहता है—

आ रहीं जवानियां
खिड़कियों को खोल दे, किवाड़ियों को खोल दे
ग़ुलामियों की इन चहार दीवारियों को खोल दे
आज़ादियों की राह के मुसाफ़िरों से बोल दे
आ रहीं जवानियां
ज़िन्दगी के कानों में गा रहीं जवानियां

× × ×

रुक नहीं सकतीं कभी ये बीच के पड़ाव पर
रुक नहीं सकतीं कभी ये ज़िन्दगी के दाँव पर
झुक नहीं सकतीं कभी ये अपने तन के भाव पर
बिक नहीं सकतीं कभी ये आंसुओं के भाव पर
उछल रही जवानियां सुबह के आसमान में

श्री नेपाली की कविताएँ भाव, भाषा, प्रवाह, आदि की दृष्टि से बिलकुल एक नई धारा का निर्माण करती हैं। किन्तु अभी तक कवि के सामने नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माण का वह नक्शा साफ़ नहीं है जिसके लिये कवि जवानी का आह्वान करता है।

काल दहन (गीति नाट्य)—लेखक: श्री केदारनाथ 'प्रभात' एम० ए०; प्रकाशक : उपर्युक्त; मूल्य १); संख्या : ५२

पुस्तक के प्रवेशक में डाक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी कहते हैं—"कविवर प्रभात का 'कालदहन'...एक काव्य है, जिसमें सूक्ष्म मनोभावों तथा सिद्धान्तों एवं मांसल रूप दिया गया है।" काल दहन कथावस्तु में वृद्ध अतीत होमकुण्ड के सामने बैठकर का बार बार आवाहन करता है। इसी बीच विश्वास और आशा आकर उसे उत्तेजित करते पौरुष को बन्दी देखकर ये उसे प्रोत्साहित करते हैं वह प्रयत्न से विराट रूप में परिणित हो जाता है। दोनों का यह संवाद तीन अंकों में फैला हुआ है। में कई स्थलों पर बहुत सुन्दर और ऊँचे विचार किये गये हैं। चेतना पौरुष से कहती है—

शक्ति तेरे हृदय में है सो रही
तू उसे छू कर जगा !
देख अपने उस महान अतीत को
देख अपने उस विराट स्वरूप को
भाग्यवादी तू न बन—
उपहास है भाग्यवाद
मनुष्य के उस रूप का
विश्व जिसकी वंदना का श्लोक है !
कौन-सी वह शक्ति है संसार में
ध्वंस मेरा जो कि कर सकती कभी ?
विश्व का वह कौन सा षड़यन्त्र है
जो कि मेरा नाश कर सकता कभी ?
सर्व व्यापी मैं अनन्त असीम हूं !

आशा मानव को सम्बोधन करके कहती है—

मेरी आँखों ने देखा है
मानव ! तुममें संसार नया
आलोक पुत्र पाया तुमसे
मेरे प्राणों ने प्यार नया
सीमाओं के भीतर असीम
तुम ज्योति-पिण्ड से लगते हो
अपने में लिये अमिट ज्वाला
प्रतिपल सर्वत्र सुलगते हो
निर्ममता की स्वामिनी नियति ने
तुम्हें मरण का दान दिया

और तब पुरुष अपनी शक्ति को पहचान कर कहता है—

पथ छोड़ हटो
हो कायर पर्वत-प्रान्त
अपशकुन ! हटो
हे कुशकंटक दिग्भ्रान्त !
मेरी ज्वाला को
तुम न सकोगे रोक
मैं आज जलाने चला
काल का लोक
मेरे सन्मुख मत ठहरो !
हे आकाश
मैं चला छीनने
उज्ज्वल मुक्ति प्रकाश

हम प्रभात जी की इस पुस्तक का स्वागत करते हैं।

धरती (कविता संग्रह)—लेखक : श्री त्रिलोचन शास्त्री; प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य ३) ; पृष्ठ संख्या : १०६

पुस्तक में त्रिलोचन जी की ८८ कविताएँ संग्रहीत हैं। कविताएँ अधिकांश धरती, फल फूल, पेड़, पौधे, नदी पहाड़, बादल आकाश, प्रभात, संध्या पर हैं और इनके पीछे जो जीवन की एकरस अटूट धारा बहती है उसकी ओर संकेत करती हैं और बताती हैं कि मानव उसी अखण्ड जीवन का एक अंश है। वह नश्वर है सही पर उस महायज्ञ में उसकी आहुति का चिर महत्व है—

वन पर्वत पर सागर तल पर
व्योम विजन में महिमा-निर्भर
अपना चरण-चिह्न हम छोड़ें
अजर अमर गति-प्रेरक द्युतिधर
भावी मानव जिससे जानें
हो सशक्त आभार हमारा
लहरों का क्षण-कालिक जीवन
किन्तु अमिट है, उनका कम्पन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भी अपने क्रिया-कम्प से
दें प्रोत्साहन, दें नवजीवन
जिससे आगामी जन सोचें
यों विकास इतिहास हमारा

मानव को नये स्तर पर लाकर कवि जीवन के सम्बन्ध में कहता है—

अब तक जो होता आया है
उसमें जन-सम्मान नहीं है,
उसमें मानव का मानव के
सुख-दुख का कुछ ध्यान नहीं है
उससे व्यक्तिवाद पनपा है
उससे पूँजीवाद हुआ है
इन्हें नष्ट कर शोषित मानव !
शाप काट दो जग जीवन का।

'छा गये बादल, छिपे तारे, ढका आकाश' शीर्षक कविता में कवि वर्षा का वर्णन करते हुये कहता है—

हो रही है घन तिमिर में वृष्टि आज
नवल अंकुर नवल जीवन नव समाज

खेती का वर्णन करते हुये किसान पति अपनी पत्नी से कहता है—

यह पवन आज यों बार बार
खींचता तुम्हारा आँचल है
जैसे जब तब छोटा देवर
तुमसे हठ करता है जैसे
तुम चलो जिधर वे हरे खेत
वे हरे खेत—
है याद तुम्हें
मैंने जोता तुमने बोया
धीरे धीरे अंकुर आये
फिर और बढ़े
हमने तुमने मिलकर सींचा
फैली मनमोहक हरियाली
धरती माता का रूप सजा
उन परम सलोने पौदों को
हम दोनों ने मिल बड़ा किया
जिनको नहलाते हैं बादल
जिनको बहलाती है बयार
वे हरे खेत कैसे होंगे !

कवि में आत्म विश्वास की कमी नहीं है—

बढ़ अकेला
यदि न कोई सङ्ग तेरे पन्थ वेला
बढ़ अकेला

पुस्तक में और भी अनेक कविताएँ बहुत सुन्दर हैं।

उरबीती (कविता संग्रह)—लेखिका: कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या एम. ए ; प्रकाशक : नन्दकिशोर एण्ड ब्रादर्स, चौक, बनारस ; मूल्य १)

इस संग्रह में कवियत्री की ६० कविताएँ संग्रहीत हैं। प्रारम्भ में प्रो० विनय मोहन शर्मा की भूमिका है फिर स्वयं दिनेशनन्दिनी जी का ग्रन्थ परिचय है। कुमारी दिनेश नन्दिनी हिन्दी में गद्यकाव्य की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। यह उनका पहला पद्य-संग्रह है। अपनी रचनाओं की प्रेरणा के सम्बन्ध में वे कहती हैं—'दुख और सुख जैसा व्यक्ति का है वैसा ही सृष्टि का। सत्य शाश्वत है—यही विचार मुझे लिखने का उत्साह देता है। वही लिखती हूँ जिसे लिखे बिना जीवन असम्भव है। नहीं तो कठिनतर अवश्य हो जाता है।" वे लिखती हैं—

कौन यह मुझको बुलाता ?
हर घड़ी संकेत करता, हर घड़ी आँधी उठाता
रूप की बदली बना-सा कौन प्रतिपल पास आता !
कल्पना के गीत गाता—
कौन यह मुझको बुलाता ?

एक दूसरी कविता में अपने आत्मविश्वास को लेकर कवियत्री कहती हैं—

मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी
वह जीवन का चिर चिर बन्धन
रुक सकता प्राणों का स्पन्दन
आँसू पी जाये जो क्रन्दन
रूठे मन का पहला मधु क्षण
अग जग के सब स्वर खोलूँगी ;
मौन रहो तुम मैं बोलूँगी।

हम कवियत्री के इस पहले संग्रह का स्वागत करते हैं और भविष्य में उनसे बड़ी बड़ी आशायें रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी राय

गान्धी जी चिरायु हों

कैबिनेट मिशन से बातें ख़त्म करके जब गान्धी जी दिल्ली से पूना लौटे तो पूना से ६० मील इधर किसी ने उनकी इलेक्ट्रिकल स्पेशल को बड़े बड़े पत्थर लाइन पर रखकर उलटाने की कोशिश की। हालांकि इञ्जन को क्षति पहुँची किन्तु स्पेशल ट्रेन के यात्रियों को सिवाय झटके का धक्का लगने के और किसी तरह की चोट नहीं आई। देश के सौभाग्य से एक अकथनीय दुर्घटना होते होते बच गई। गान्धी जी का ईश्वर पर अखण्ड विश्वास है। पूना की प्रार्थना मीटिङ्ग में उस दिन उन्होंने कहा कि ईश्वर जिसकी रक्षा करनेवाले हों उसे दूसरा कोई नहीं पहुंचा सकता।

गान्धी जी के जीवन पर यह चौथा हमला था। पहला दक्षिण अफ़रीका में पठानों ने किया था और उन्हें मरा हुआ समझकर छोड़ दिया था। दूसरी बार पूना में हरिजन प्रचार के सिलसिले में उनकी मोटर के ऊपर बम फेंका गया था किन्तु सौभाग्य से उन्हें चोट नहीं लगी। तीसरी बार भागलपुर में सवर्ण हिन्दुओं ने उनकी मोटर के ऊपर लाठियां बरसाई थीं जिससे मोटर को तो क्षति पहुंची किन्तु गान्धी जी बच गये और इस लाठी-काण्ड के बाद से उन्होंने पैदल ही भ्रमण करने का निश्चय किया था जिससे आक्रमणकारी को आक्रमण करने की हर तरह सुविधा मिले। और इस बार सीधा हमला न करके उनकी जान लेने का यह कुत्सित षड्यन्त्र रचा गया।

हमें दुख, ग्लानि और लज्जा है कि गान्धी जी के जीवन पर ये समस्त घृणास्पद आक्रमण उनके ही अपने देशवासियों के द्वारा किये गये। जो अहिंसा और प्रेम से ओत-प्रोत हो उसकी जान लेने का प्रयत्न कितनी क्रूरता से भरा हुआ और लज्जाजनक है! जहां तक गान्धी जी का प्रश्न है उनके हृदय में इन घटनाओं का कोई असर नहीं है। हम सब उनके देशवासी हृदय से उनकी जीवन रक्षा पर ईश्वर को धन्यवाद देते हैं।

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का फैसला

७ जुलाई को बम्बई में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने कांग्रेस कमेटी के फ़ैसले की ताईद कर दी। समाजवादी मित्रों ने मौलाना आज़ाद के प्रस्ताव का विरोध किया और बताया कि विधान-निर्मात्री परिषद से देश को किसी तरह की कोई आज़ादी प्राप्त नहीं हो सकती। उनका कहना है कि जनता की क्रान्ति के द्वारा ही जनता को सच्ची आज़ादी मिल सकती है अन्यथा जो भी शान्ति प्राप्त होगी वह समाज के उच्च वर्ग तक सीमित रहेगी। जनता तक ऐसे स्वराज्य का कोई अंश न पहुँचेगा। दूसरा एतराज़ उनको यह है कि विधान-निर्मात्री परिषद का चुनाव बालिग़ मताधिकार द्वारा नहीं किया जा रहा है। जो प्रतिनिधि इस परिषद को चुन रहे हैं वह सच्चे अर्थों में जनता के प्रतिनिधि नहीं और इस दृष्टि से उनके फ़ैसले जनता के हित के फ़ैसले नहीं होंगे। कुछ वक्ताओं ने प्रान्तों को तीन समूहों में बांटे जाने पर एतराज़ किया। उनका कहना था कि लाज़मी तौर पर यह समूहीकरण पाकिस्तान के उसूल का अप्रकाश्य रूप से समर्थन करता है। वह यह भी चाहते थे कि चुनाव का तरीक़ा पृथक निर्वाचन का न होकर संयुक्त निर्वाचन का होना चाहिये था। श्री अच्युत पटवर्धन और श्रीमती अरुणा आसफ़अली ने प्रस्ताव के विरुद्ध बोलते हुए कहा कि प्रस्तावित सुधार किसी भी तरह उस क्रिप्स योजना से आगे नहीं जाते जिसे ठुकराकर हमने सन '४२ की प्रचण्ड क्रान्ति की थी। श्री जय प्रकाश जी ने प्रस्ताव के विरुद्ध बोलते हुये कहा कि अगस्त क्रान्ति यद्यपि सफल नहीं हुई तब भी उसने बहुत सी नई ताक़तें पैदा कर दी हैं। इस समय देश के सामने इन ताक़तों को इस्तेमाल करने का प्रश्न है। जहां तक विधान-निर्मात्री परिषद का सवाल है वह चूंकि अङ्गरेज़ी शासन और अङ्गरेज़ी फ़ौजों के संरक्षण में बनाई जा रही है इसलिये वह मुनासिब और आज़ाद फ़ैसलों पर पहुंचने में नाकामयाब होगी। अङ्गरेज़ी सरकार कठपुतलियों की डोरी खींचने का काम ज़रूर करेगी। इस तरह की परिषद से हमारी मुरादें पूरी नहीं हो सकतीं।

प्रस्ताव ५१ के विरुद्ध २०४ वोट से पास हो गया किन्तु विरोध से बहुत कुछ लाभ हुआ। बहुत-सी नई बातों पर प्रकाश पड़ा और विधान-परिषद में कांग्रेस के शामिल होने की नीति और अधिक साफ़ की गई। जवाहरलाल जी ने बताया कि विधान-परिषद में जाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस का फ़ैसला एक आरज़ी है, यह फ़ैसला ख़ाली परिषद में जाने का ही फ़ैसला है। पण्डित नेहरू ने अपने भाषण में कहा, "मंत्रि मिशन की अस्थायी और स्थायी योजनाओं पर काफ़ी चर्चा हुई। जहां तक मैं देखता हूँ हमारे किसी स्थायी या अस्थायी योजना को स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न ख़ाली हमारे विधान परिषद में जाने का है। हम उसी वक्त तक विधान परिषद में रहेंगे जब तक हम समझेंगे कि इससे देश का फ़ायदा होगा और जब हम समझेंगे कि इससे नुक़सान हो रहा है तो हम बाहर निकलकर लड़ाई छेड़ेंगे। हम वहां जाने को छोड़कर और किसी शर्त से बँधे हुये नहीं हैं। हम वहाँ सुन्दर व्याख्यान देने नहीं जा रहे हैं बल्कि अपनी कुछ समस्याओं को सुलझाने के लिये जा रहे हैं। मौलाना आज़ाद ने कहा कि यदि विधान-परिषद को हुकूमत के पूरे अधिकार न मिलेंगे तो कांग्रेस इस तरह की विधान-परिषद को ख़त्म कर देगी। जहाँ तक तफ़सील का सवाल है, उसका फ़ैसला विधान-परिषद करेगी न कि ब्रिटिश सरकार। पण्डित नेहरू ने यह स्वीकार किया कि मौजूदा विधान-परिषद का दायरा बहुत व्यापक नहीं है मगर बहुत संकुचित भी नहीं है और कोई वजह नहीं कि हम इससे फ़ायदा क्यों न उठायें।

जहाँ तक जनता का प्रश्न है उसे इस विधान-परिषद से कोई ख़ास उम्मीद नहीं। वह उसकी तरफ़ से उदासीन सी है। अगर बालिग़ मताधिकार द्वारा इस परिषद का चुनाव होता तब भी देश में एक ऐसा वातावरण होता जिसका असर परिषद के फ़ैसलों पर पड़ता किन्तु उसके अभाव में गान्धी जी के शब्दों में परिषद "स्वदेशी विधान" न बना सकेगी।

जहाँ तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के फ़ैसले का प्रश्न है, गान्धी जी के व्याख्यान का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा। गान्धी जी ने अपील की कि विधान-परिषद के प्रयोग को एक मौक़ा देना चाहिये। उन्होंने विधान-परिषद की तारीफ़ में एक भी बात नहीं कही बल्कि यह कहा कि परिषद एक आज़ाद परिषद न होगी ताहम उसे एक बार मौक़ा तो देना ही चाहिये। उन्होंने कहा कि—"सत्याग्रही की हैसियत से हमें किसी बात से डरना नहीं चाहिये। सत्याग्रही के लिये तो हार का प्रश्न ही नहीं है।"

जो भी तक़रीरें हुईं उनका समन्वय यही होता है कि न तो हमें विधान, परिषद में बहुत उम्मीदों के साथ जाना चाहिये और न उससे किसी तरह ख़तरा ही महसूस करना चाहिये। वह एक प्रयोग है जिसे प्रयोग समझ कर पूरा करना चाहिये।

सामान्य कांग्रेसजन क्या करें ?

प्रश्न उठता है जनता के थोड़े से नुमाइन्दे जब तक विधान-परिषद के इस प्रयोग को सफल या असफल होने का मौक़ा देंगे बाक़ी कांग्रेसजन क्या करेंगे ? और इस दृष्टि से कांग्रेस सोशलिस्ट कार्यकर्त्ताओं के व्याख्यान हमें सोचने पर मजबूर करते हैं। आज अधिकांश कांग्रेसजनों की यह भावना-सी बन गई है कि वे असेम्बली विधान-परिषद या इसी तरह के वैधानिक उपायों से आज़ादी हासिल करने का सपना देखने लगे हैं। वे यह भूल जाते हैं कि दो लड़ाइयों के बीच का सन्धिकाल ज़बर्दस्त तय्यारी का समय होना चाहिये। हमें देश में रचनात्मक कार्य का एक जाल-सा पूर देना चाहिये। किसानों, मज़दूरों, महिलाओं, विद्यार्थियों और पेशेवरों का एक दृढ़ संगठन कर लेना चाहिये। कांग्रेसी वज़ारतों के साथ में उन्हें अपनी आज़ादी की आख़री लड़ाई लड़ने की तय्यारी करने का फ़ायदा उठाना चाहिये। किन्तु हम देख रहे हैं अधिकांश कांग्रेसजन इस ओर से उदासीन हैं और जो आज़ादी की लड़ाई के लिये सचमुच एक घातक क़दम है।

पश्चिमी संस्कृति नष्ट होकर रहेगी

आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने बम्बई की बैठक में जो दूसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया वह दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के सत्याग्रह के समर्थन के सम्बन्ध में था। अब तक वहाँ लगभग १५० व्यक्तियों की शहादत मिल चुकी हैं। दक्षिण अफ़रीका के गोरों ने निरस्त्र और शान्तिप्रिय सत्याग्रहियों पर जिस तरह क्रूरतापूर्ण हमला करके दो एक की जानें ली हैं वह सब नितान्त अमानुषिक है। गान्धी जी ने दक्षिण अफ़रीका के सत्याग्रह को पाश्चात्य सभ्यता के जीवन-मृत्यु की कसौटी माना है। गत १० जुलाई को पूना में प्रार्थना-उपदेश में उन्होंने कहा—

"ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई में लगे हुये दक्षिण

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़रीका के भारतीय हमारे ही भाई हैं। वे वहां सन् १८७० में 'गिरमिटिया' कुली बनकर गये। वहां के गोरे निग्री लोगों से काम न ले सके। इसलिये वे यहाँ से गिरमिटिया कुलियों को ले गये। यह एक ग़ुलामी से मिलती-जुलती प्रथा थी। फ़र्क यह था कि ग़ुलाम ज़िन्दगी भर के लिये अपने मालिक से बँधा रहता है और ये मज़दूर पाँच-सात बरस के लिये बँधे होते थे। इन कुलियों के साथ साथ भारतीय व्यापारी भी वहां गये। इनमें अबु बक्र सबसे पहला व्यापारी था। इसके बाद काठियावाड़ के व्यापारी, सूरत के मेमन और बारडोली के पट्टीदार भी वहां गये जहाँ वे खोंचा लगाते थे या बिसातियों की दूकान करते थे। यह १८८२ की बात है। इन लोगों ने दक्षिण अफ़्रीका की उन्नति की और ख़ुद भी पैसा कमाया। उनकी औलाद डाक्टर और वकील हुई। यही लोग दक्षिण अफ़्रीका में आज भारतीय सम्मान की रक्षा के लिये लड़ाई लड़ रहे हैं। मैं जानता हूं वहां क्या हो रहा है। दक्षिण अफ़्रीका में मैंने अपने जीवन के सबसे अच्छे २० वर्ष बिताये हैं। सत्याग्रह का जन्म भी वहीं हुआ था।

"आज पश्चिमी दुनिया प्रायश्चित्त के बीच से निकल रही है। पराजित राष्ट्र विजेता के क़दमों पर पड़े हैं किन्तु विजेता जानते हैं कि उनकी हालत पराजितों से बेहतर नहीं है। परन्तु युद्ध में पश्चिमी सभ्यता की क़ब्र नहीं खुदी। उसकी क़ब्र दक्षिण अफ़्रीका में खुद रही है। एशियाई सभ्यता काले रंग वाले लोगों की सभ्यता है किन्तु दक्षिण अफ़्रीका की गोरी सभ्यता आज एशियाई सभ्यता के मुक़ाबले में कहीं अधिक काली लग रही है। अगर हमारे भाई आख़ीर तक मज़बूत और अहिंसात्मक बने रहे तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका शीतापूर्ण संग्राम पश्चिमी सभ्यता के कफ़न में, कि जो दक्षिण अफ़्रीका में अपना सच्चा रूप दिखा रही है, आख़री कील ठोंक देगा। दक्षिण अफ़्रीका के गोरे हैवानों का एक दूसरे से मुक़ाबला हो रहा है। और दोनों में कितना अन्तर है! गोरों ने वहां हिन्दुस्तानियों को 'घेटो' में रखने का जंगली क़ानून बनाया है। फ़ील्ड मार्शल स्मट्स दार्शनिक हैं और मुझे अपना मित्र कहते हैं। मैं जानता हूं कि उन्हें एशियाई संस्कृति के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कहना, उन्हें केवल गोरी संस्कृति की रक्षा के लिये ग़ैर क़ानूनी-क़ानून बनाने पड़े।...वे चाहते हैं कि मैं उनके क़दम का समर्थन करूँ। किन्तु मैं नहीं जानता कि किसी संस्कृति या सभ्यता को, जिसमें कुछ भी तथ्य है, क़ानूनी रक्षा की ज़रूरत होती है। भारतीय घेटो क़ानून का अहिंसात्मक और सभ्य तरीके से मुक़ाबला कर रहे हैं जब कि उनके मुक़ाबले में गोरे 'लिंच' क़ानून बरत रहे हैं।

"सच तो यह है कि अहिंसात्मक सत्याग्रह का जन्म एशिया में हुआ है। हज़रत ईसा स्वयं एशियाई थे। अगर आज हज़रत ईसा फिर से जन्म लेकर दक्षिण अफ़्रीका जायँ तो उन्हें 'घेटो' में रहना पड़ेगा।"

गान्धीजी ने इस बात पर सन्तोष ज़ाहिर किया है कि गोरे लोगों ने एक कमेटी बना दी है कि जो भारतीयों के सत्याग्रह से सहानुभूति प्रकट करती है। यदि यह कमेटी विस्तृत हो जाय, गुण्डापन बन्द हो जाय, एशिया-विरोधी क़ानून मिटा दिये जांय तो पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के मिलन की आशा है अन्यथा दक्षिण अफ़्रीका में पश्चिमी सभ्यता की क़ब्र खुद कर रहेगी।

भारत के पुर्त्तगाली और फ्रांसीसी टुकड़े

सन् १९४२ के बाद से भारत में आज़ादी की जो प्रबल भावना उठी है उसने न सिर्फ़ ब्रिटिश भारत को बल्कि रियासतों और भारत के ग़ैर ब्रिटिश हिस्सों यानी फ्रांसीसी और पुर्त्तगाली भारत में भी नई जान डाल दी है। वे अपनी नींद से अंगड़ाई लेकर बैठ गये हैं। परिणाम यह है कि अभी हाल में फ्रांसीसी विधान-परिषद में फ्रांसीसी भारत के प्रतिनिधि प्रो० एल० सारावान ने इस बात का ऐलान किया था कि फ्रांसीसी भारत अलग इकाई के तौर पर भारतीय संघ में न शामिल होगा बल्कि उसका हिस्सा बनकर शामिल होगा। इसके विपरीत हाल में गोआ की छोटी सी पुर्त्तगाली रियासत ने डाक्टर राममनोहर लोहिया पर गोआ में भाषण देने की पाबन्दी लगा दी। गोआ वालों ने इस पर अपने नागरिक अधिकारों की ज़ोरदार माँग की। डाक्टर लोहिया गिरफ़्तार करके गोआनी सरहद से बाहर कर दिये गये। गोआ शत प्रतिशत भारतीय है और गोआ वालों का प्रदर्शन भारतीय एकता और अखण्डता का प्रदर्शन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय जनता यदि भारत के काले ब्रिटिश धब्बे को मिटाना चाहती है तो वह पुर्त्तगाली और फ्रांसीसी धब्बों को भी मिटा देगी।

आज फ़रांसीसी भारत में ३,२३,२९५ और पुर्त्तगाली भारत में ६,२४ १७७ भारतीय इन यूरोपीय हुकूमतों के मातहत हैं। पिछले १८८ बरस से गोआ में सभाएँ करने और संगठन बनाने की इजाज़त नहीं है; यहाँ तक कि ग्रामोद्धार और खेलकूद के काम भी पुलिस की निगरानी में करने पड़ते हैं। फ्रांसीसी-भारत में स्थिति इससे कुछ बेहतर है किन्तु वहाँ भी राजनैतिक कामों की इतनी आज़ादी नहीं जो यहाँ हम लोगों को है यहाँ के लोग अपने को भारत का एक कटा हुआ अङ्ग-सा समझते हैं। पाण्डचेरी, चन्दरनगर, माहो, कारीकल और दूसरी फ्रांसीसी रियासतें और गोआ, दिऊ, दमन जैसी पुर्त्तगाली रियासतें आज साम्राज्यवाद के नीचे पिस रही हैं।

इन फ्रांसीसी और पुर्त्तगाली हाकिमों को यदि कोई ग़लत फ़हमी स्वतंत्र भारत के अन्दर इन राज्यों की स्थिति के सम्बन्ध में रह गई थी तो वह गान्धी जी के साफ़ ऐलान से दूर हो जानी चाहिये। गान्धी जी के शब्द हैं—"बग़ैर एक गोली चलाये हुये भारतीय जनता उस वक्त आज़ाद हुकूमत के नागरिक अधिकारों के पाने का दावा कर सकेगी" जिस वक्त पुर्त्तगाली हुकूमत को यह मालूम हो जायगा कि "गोआ के लोगों को उनकी मरज़ी के ख़िलाफ़ ग़ुलाम बनाये रखने में वह ब्रिटिश हथियारों पर निर्भर नहीं कर सकती।"

हमें अपने इन ग़ैर हुकूमतों के नीचे पिसने वाले भाइयों से पूरी हमदर्दी है और हम चाहते हैं कि वे अपने नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये बराबर संघर्ष जारी रखें। जहाँ तक आज़ादी का प्रश्न है उनकी वह लड़ाई तो ब्रिटिश भारत के अन्दर ही लड़ी जा रही है।

एटम बम का चौथा प्रयोग

पहली जुलाई को बिकिनी एटाल द्वीप के पास एटम बम नम्बर चार छोड़ा गया। आख़िर इसका उद्देश्य क्या था? एक तरफ़ तो महामन्त्रियों का सम्मेलन हो रहा है शान्ति की योजना बनाने के लिये और दूसरी ओर ज़बर्दस्त प्रचार के साथ एटम बम का प्रयोग हो रहा है। ज़ाहिरा इसका मन्शा यही है कि अमरीका सारी दुनिया को बताना चाहता है कि मेरे रास्ते में जो भी आयेगा उसे मैं अपनी इस भयंकर शक्ति से नेस्त नाबूद कर दूँगा। यह प्रयोग दुनिया को एक चुनौती और धमकी था। पंडित जवाहरलाल जी के शब्दों में—"यह तीसरे महायुद्ध की बढ़ती हुई काली छाया है।" पंडित जी इसके बाद निहायत मुनासिब प्रश्न करते हैं कि "क्या यही शान्ति क़ायम करने का तरीक़ा है? इससे तो दुनिया की दूसरी क़ौमों और मुल्कों में भय और आशंका पैदा होगी और वे भी इस नये अस्त्र की ईजाद करने की जी जान से चेष्टा करेंगे और इससे बचने के उपाय ढूढ़ेंगे।" इसके बाद पण्डित नेहरू उदासी से भरकर कहते हैं—"शान्ति का क़ायम होना एक ऐसा ख़्वाब मालूम पड़ता है जो कि ख़त्म हो चुका है और मानव समाज ज़ाहिरा ख़ुदकुशी की ओर जा रहा है। हाला कि एटम बम दुनिया को उड़ाने का दावा करता है लेकिन अब तक कोई बम ऐसा नहीं बना जो हुक्मराओं और अधिकारियों के दिमाग़ों को, जो दुनिया को क़ायम रखना चाहते हैं, लेकिन पुरानी लीकों से हटना नहीं चाहते, बदल दे। हमने चार तरह की आज़ादी और नई दुनिया के बनने की बाबत बहुत कुछ सुना लेकिन मालूम होता है कि जन समुदाय को महज़ एक ही आज़ादी है और वह है मरने की आज़ादी।" यह एक हैरतज़दा और शर्मनाक बात मालूम पड़ती है कि लोग इस क़िस्म के पागलपन को बर्दाश्त करते हैं।"

कुछ अमरीकन राजनीतिज्ञ कहते हैं कि एटम बम से ही अहिंसा क़ायम होगी। इसके हैवतनाक नज़ारे को देखकर लोग अहिंसा की तरफ़ झुकेंगे लेकिन यह एक असम्भव बात है। गान्धी जी इस पर लिखते हैं—"एटम बम की इस बेहद दर्दनाक कहानी से हमें यह सबक़ सीखना है कि जिस तरह हिंसा को हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता उसी तरह एक बम को दूसरे बम से नहीं मिटाया जा सकता। इनसान सिर्फ़ अहिंसा की मारफ़त ही हिंसा के गढ़े से निकल सकता है।"

यह अभी से कोई पेशीनगोई नहीं कर सकता कि भविष्य में इनसान की क़िस्मत में सिर्फ़ पागलपन और मौत ही लिखी है, लेकिन एक बात साफ़ है कि एटम बम का रास्ता शान्ति और आज़ादी का रास्ता नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

भाग ११, अङ्क ६१-६६
जनवरी-जून १९४६

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

सहायक सम्पादक
बैजनाथसिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

प्रकाशक
विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकवार विषय-सूची

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजाद
दो राष्ट्र और पाकिस्तान ... ३६७

श्री आरसी प्रसाद सिंह
अनन्त (कविता) ... ४३४

श्री उपेन्द्र
बिहार दर्शन (कविता) ... २३६
नत हो जाता स्वयं ज़माना ,, ३४२
ज्योति पुरुष (कविता) ,, ... ३८४
बँध न सकी उन्मत्त जवानी ! ,, ... ४५६

श्रीमती एल्ला व्हीलर विलकाक्स
धर्म कथा (कविता) ... ७५

कमल कुलश्रेष्ठ
मलिक मुहम्मद जायसी का प्रकृति-वर्णन २०९

श्री० करील
जय-हिन्द (कविता) ... ७७
विजया ,, ... १५३
स्वर्ण-संगीत ,, ... २३५

श्री० किशोरलाल मशरूवाला
'जनाब' और 'श्रीमान्' ... ३७८

आचार्य कृपलानी
प्रवचन ... १९१

श्री० गार्गी शंकर मिश्र
पाकिस्तान की बुनियाद ... ३१२
सिद्धांत की कसौटी पर पाकिस्तान ... ३८५
सोवियत का आत्म निर्णय का सिद्धांत और पाकिस्तान ... ४३१

श्री आ० गुरुदयाल मल्लिक
गांधी जी के साथ एक प्रातःकाल ... १४५
सिनेमा और क़ब्रिस्तान ... ३२०
हिमालय के शिखर पर ब्रिटिश मंत्रिमंडल से भेंट ... ४६५

श्री० गोपाल कृष्ण मल्लिक
मध्यकालीन भारत में हिन्दू मुस्लिम समस्या ४२४

श्री गोविन्द दास
सुख किसमें ? (नाटक) ... १२१, १७३

श्रीमती चन्द्रकिरण सोनरिक्सा
किसकी करनी ! किसकी भरनी ! ...

श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालकार
मि० जिन्हा का पाकिस्तान ...

श्री० छोटेलाल भारद्वाज
नेता जी के प्रति (कविता) ...
विष पान करा दो ! ,, ...
उन्मुक्त पथिक ,, ...

डा० जगदीशचन्द्र जैन
भूपेनदा कहां हैं ? ...
न्याय मन्दिर में पहली बार ...

पं० जवाहरलाल नेहरू
स्वराज्य की परिभाषा ...
हमारा हिन्दुस्तान है क्या ! ...

प्रो० एस० एल० जिन्दल
करबला में हज़रत इमाम हुसेन की शहादत

श्री० डोरोथी एडेल्सन
दुनिया की राजनीति में अरब-संघ की जगह

प्रो० तेजासिंह
सिख धर्म का मध्य मार्ग ...

श्री० देवेन्द्र
गीत ...
'आज़ाद हिन्द सेना के सिपाहियों के प्रति'

भिक्षु धर्म रक्षित
अभिधर्म : बौद्ध दर्शन ...
द्वादश आयतन और बौद्ध दर्शन ...
विभंग—बौद्ध दर्शन ...

श्री० धर्मानन्द कौशाम्बी
पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म ...

आचार्य्य नरेन्द्रदेव
कैबिनेट डेलीगेशन और भारत ...

श्री० नरेश कुमार
गीत ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० नरेश चन्द्र वर्मा 'नरेश'
अंगार पर ! (कविता) ... ३६९
गीत ,, ... ४४२
डा० निकोलस रोरिक
जीवन में कला का मूल्य ... ५
डा० पुरुषोत्तमलाल
मैक्सिको का संक्षिप्त इतिहास ... ३३७
मैक्सिको का सामाजिक जीवन ... ४१२
डा० पुरुषोत्तम त्रिपाठी
सांप का डसना और उसका इलाज ... २३६
डा० प्रकाशचन्द्र उपाध्याय
प्राचीन सुमात्रा में भारतीय संस्कृति ... १३
ब्रह्मदेश में भारतीय सभ्यता और संस्कृति १९२
मलका नूरजहां ... २८६
डा० प्रफुल्ल चन्द्र पट्टनायक
विप्लव (कविता) ... ७६
डा० प्रभाकर दिवाण
खादी का नया संस्करण ... ४४
डा० प्रभाकर माचवे
आइस्ट और कन्फ्युत्सु ... ३४३
डा० बटुकेश्वर दत्त
मेरा खून था ! ... ३८
डा० बुद्ध प्रकाश
गुप्त साम्राज्य और भारत के जनतंत्रात्मक गण राज्य ... २०३
चंद्रगुप्त मौर्य के इतिहास पर नवीन प्रकाश ३४०
एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड
हिन्दुस्तान की आजादी और मिस्टर जिन्नाह ३१७
बैजनाथ प्रसाद खेतान
संत-साहित्य में योग-साधना और ब्रह्मानुभूति ३४८
भगवती प्रसाद पांथरी
मार्जोन मिस और उसके राजवंश ... २६
मिस्र का पुरातन मेम्फिस राज्य ... १११
ब्रह्मचारी भगवानदीन
भ्रमण
महेन्द्र भटनागर ... ६९
घर भर आया ! (कविता) ... ३३६

डा० पी० एस० मंगल मूर्ति
एक महान क्रांतिकारी की याद में ! ... १
श्री० मारिस फ्रिडमेन
मानव और मशीन ... २२७
श्री० मुकुन्दी लाल
विचार-तरंग ... ५४
श्री० मैक्सिम गोर्की
मेरी मां ३६१
श्री० मोहम्मद आज़म
मेरा हिन्दू भाई ! ... ३७०
कुमारी रज़िया नक़वी
उषे (कविता) ... २३४
श्री० रतनलाल बंसल
स्मरणीय पत्र ... १३६
श्री० च० राजगोपालाचार्य
प्रवचन ... ७४
कुमारी राजेन्द्र निगम
मैथिलीशरण गुप्त में आदर्श नारी की भावना ४१७
श्री० रामकुमार चतुर्वेदी
विक्रम ... ७७
श्री० रामधारी प्रसाद रमन
स्थविर तिष्य की कथा ... १३३
श्री० रामनारायण उपाध्याय
भारत का महान तीर्थ—सेवाग्राम ... ७०
गांधी जी के महान चिन्तक शिष्य विनोबा ४५४
श्री० रामावतार
अहम् ! ... ४३५
श्री० लक्ष्मी नारायण
विवाह ... ३८९
श्री० लियोनार्ड विलियम्स
ब्लड प्रेशर या खून का दबाव ... ५५
श्री० एस० वंशीनाथ अय्यर
हनुमान का चरित्र ... २९
श्री० वंशीधर
मानव जगत का निर्माता बालक ... ३५४
श्री० विद्यानन्द सन्यासी
समाज में जब स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ होंगी ६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री० विनोबा
आत्मा को खण्ड खण्ड मत करो ... ४३
श्री० विश्वम्भर नाथ
कबीर साहब की स्मृति में (कविता) ९७
श्री० विष्णु
आत्मग्लानि ... ६५
शमसू मिस्त्री ... ३०७
श्री० वृजेन्द्र
नव वर्ष (कविता) ... ७५
श्री० श्यामसुन्दर झंवर
भारत में मृत्यु-कर का प्रश्न ... ४७
प्रो० श्रीराम शर्मा
हिन्दुस्तान में मुगल हुकूमत का ढंग ... २९२
श्री० शीतला सहाय श्रीवास्तव
गीत (कविता) ... २३८
श्री० शील चतुर्वेदी
बसन्त (कविता) ... २३८
श्री० श्रीधर 'पंकज' कुलश्रेष्ठ
आज़ाद हिन्द सेना (कविता) ... १५१
श्री० शंभु प्रसाद बहुगुना
अब्दुर्रहीम ख़ानेखाना
श्री० सरोजिनी नायडू ... २११
वस्तु क्रम (कविता)
श्री० सागर ... ७१
बासठ पैसे
श्री० के० सावजी जैन ... ३५
जैन धर्म का मूल तत्व ... ३१
पं० सुन्दरलाल
प्राचीन सुमेरी सभ्यता और संस्कृति ९९, १६१
बाबुली सभ्यता और संस्कृति ... २५१
प्राचीन असुरिया का साम्राज्य ... २६६
असुरिया की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति ४०१
श्री० हरगोविन्द गुप्त
बुन्देलखण्डी ग्रामोक्तियां ... १४१
आचार्य क्षितिमोहन सेन
पुरुषार्थ का अध्यात्मिक महत्व ... १०
रायबहादुर ज्ञानशंकर पंड्या
सारनाथ की कला ... ६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें जो ज़रूर पढ़नी चाहियें

१–क़ुरान और धार्मिक मतभेद

लेखक—
राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद
मूल्य डाकख़र्च सहित १।=)

२–महावीर वर्धमान और जैन धर्म

लेखक—
डा० जगदीशचन्द्र जैन एम० ए०; पी-एच० डी०
मूल्य डाकख़र्च सहित १॥=)

३–बोस बाबू ज़ियाउद्दीन के रूप में (हिन्दी और उर्दू दोनों में)

लेखक—
श्री उत्तम चन्द
मूल्य डाकख़र्च सहित २।=)

४–लाल क़िले में

लेखक—
पण्डित सत्यदेव विद्यालङ्कार
मूल्य डाकख़र्च सहित २॥।=)

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का
प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है।
हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि. श्रवणी

[...का १२] [संख्या २, पूर्ण संख्या ६८

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

[...मूल्य ६)]

अगस्त १९४६ [एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

अगस्त : १९४६

१—क्या वृन्दावन की राधा आधुनिक कल्पना है ?—डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त ए० एम०, डी० फिल ... ...

२—एटम बम और मानवता—विलियम रस्ट

३—मानव और दानव—(कविता) श्री० बैजनाथ सिंह एम० ए० ... ...

४—एशिया में प्रलयावशेष—श्री० गोपाल हलदार ... ...

५—जर्मनी का भविष्य—श्री० रमेशचन्द्र गोयल बी० काम० ....

६—जीवन का मोल (कविता)—श्री० नरेशचंद्र वर्मा 'नरेश' ... ...

७—यूरोप के यहूदियों का भविष्य—श्री० फिल पिएरिन एम० पी० ... ...

८—मैं चला अमर विश्वास लिए (कविता)—श्री० उपेन्द्र ... ...

९—जातीय संघर्षों का केन्द्र : अफरीका—श्री० वि० डे० हुब्बार्ड ... ...

१०—जब दिल पर लगती चोट कड़ी (कविता)—श्री० देवेन्द्र एम० ए० ... ... ६१

११—अफ़गानिस्तान की भौगोलिक रूप रेखा—प्रो० क़िज़िलबाश ख़ान ... ७८

१२—कहानी और कहानीकार—श्री० विष्णु ... ८०

१३—षोडशी (कविता)—श्री० करील ... ८१

१४—बीसलदेव रासो में ऐतिहासिक तत्व—श्री० मती विद्या गुप्त एम० ए० ... ८१

१५—युग-जीवन—श्री महेन्द्र भटनागर ... ८९

१६—हिंदी साहित्य का नया युग—श्री० आनन्द नारायण शर्मा— ... ९१

१७—अपने कवि से (कविता)—श्री० शीतला सहाय श्रीवास्तव ९२

१८—अफगानयुगीन भारत में शिक्षा-प्रचार—श्री० प्रकाशचंद्र उपाध्याय एम० ए० ... ९४

१९—सुभान खां (कहानी)—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ९५

२०—नई किताबें ... ...

२१—हमारी राय ...

विश्ववाणी के ग्राहकों और पाठकों को सूचना

(१) विश्ववाणी प्रेस से हिन्दुस्तानी मासिक "नया हिन्द" के प्रकाशन के कारण अब विश्ववाणी बजाय पहली तारीख़ के हर महीने १५ तारीख़ को प्रकाशित हुआ करेगी।

(२) काग़ज़के अभाव में हमें दुःख है हम "अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क" प्रकाशित नहीं कर सके। उस अङ्क के समस्त लेख हम गत जुलाई से 'विश्ववाणी' के साधारण अङ्कों में थोड़े थोड़े करके प्रकाशित कर रहे हैं। अगस्त की विश्ववाणी में भी उस अङ्क के कई लेख जारहे हैं। अच्छा होता यह उपयोगी सामग्री एक साथ प्रकाशित होती किन्तु मजबूरी के सबब ऐसा करना पड़ रहा है।

(३) डाकख़ानों की हड़ताल के कारण विश्ववाणी के ग्राहकों को काफ़ी असुविधा उठानी पड़ी जिसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

विनीत
नित्यानन्द चौधरी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
7623

वर्ष ६, भाग १२] अगस्त : १९४६ [अङ्क २, पूरे अङ्क ६८

क्या वृन्दावन की राधा आधुनिक कल्पना है ?

डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त ए० एम०, डी० फिल०

बङ्गाल में वैष्णव धर्म क़ायम करने वाले श्री चैतन्य थे। इनका पहला नाम निमाई पण्डित था। ये भारती के दसनामी शाख के थे। बङ्गाल में वैष्णववाद की शुरूआत सबसे पहले एक कट्टर पन्थी ब्राह्मण पण्डित ने की। शुरू में ब्राह्मणों ने ही उसे बढ़ाया। बङ्गाल में उस वक़्त महायान बौद्ध धर्म के फलस्वरूप तन्त्रवाद ख़ूब फैला हुआ था। उस समय इसलाम भी बङ्गाल में मौजूद था और कुछ लोग उसके नाम पर भी तास्सुब फैलाकर ज़ुल्म कर रहे थे। इस बीच बङ्गाल के तख़्तो-ताज में तबदीली आ गई। गनेश नाम का एक हिन्दू बङ्गाल की गद्दी पर बैठा। उत्तर भारत की मुसलिम हुकूमत के इतिहास में अकेली यही एक मिसाल है जब किसी हिन्दू ने ताक़त हथियाकर आज़ाद हुकूमत क़ायम कर ली। लेकिन गनेश का बेटा यदु मुसलमान बन गया और हिन्दुओं पर ज़ुल्म करने लगा। हिन्दू किसी हिन्दू राजा को तख़्त पर बैठाने के लिये बेकल हो गये। कहा जाता है उस वक़्त एक पेशीन गोई की गई कि नवद्वीप का राजा एक ब्राह्मण होगा।[1] इस पेशीनगोई का नतीजा यह हुआ कि—नवद्वीप के ब्राह्मणों पर बेहद ज़ुल्म होने लगे। लोग दुहाई देने लगे कि कोई आकर उनका उद्धार करे। इनमें से एक नरसिंह नदियाल के वंशज पण्डित अद्वैताचार्य भी थे जिनकी सलाह से गनेश बङ्गाल का स्वाधीन हिन्दू राजा बना था।[3] अद्वैताचार्य की सब लोग बहुत इज़्ज़त करते थे। इस तरह आर्थिक कारण राजनीति में अपनी प्रतिक्रिया पैदा करने लगे। यह प्रतिक्रिया समझदार हिन्दुओं के अवचेतन मस्तिष्क में एक क्रान्तिकारी भावना को उत्तेजित करने लगी। अद्वैत और दूसरे लोग प्रार्थना करने लगे कि, "हे कृष्ण भगवान फिर से जन्म लेकर मानवता की रक्षा करो" मँझले ज़माने में हर सामाजिक समस्या धार्मिक दृष्टिकोण से देखी जाती थी और स्थूल दुनिया धर्मशास्त्र की कसौटी पर परखी जाती थी। इसलिये भक्तों की दृष्टि में दुनिया पाप की खान थी और लोगों को अपने कर्मों की सज़ा मिलती थी। इसलिये जब चैतन्य श्रीकृष्ण के भक्त हो गये तो अद्वैत ने उनसे यह वादा करा लिया कि वह शूद्रों में कृष्ण नाम का प्रचार करके उनको उबार लेंगे।[4] यही उस सारे आन्दोलन की कुञ्जी है। हिन्दू जनता के लिये वैष्णव आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था। ईश्वरपुरी चैतन्य के पहले गुरू थे जिनसे चैतन्य ने दीक्षा ली। ईश्वरपुरी बङ्गाल के बाहर रहकर परिभ्रमण करते थे। ईश्वरपुरी अपने प्रान्त बंगाल से बाहर वैष्णव आन्दोलन के सम्पर्क में आये। ईश्वरपुरी के गुरू माधवेन्द्रपुरी माधवाचार्य सम्प्रदाय के थे। उस समय के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन के फलस्वरूप सारा

१—Vide Part I Chapter on Chaitanya Bhagwata (in Bengali).

२—Jayananda's Chaitanya Mangal.

३—Iswar Nagar—Adwaita Prakash.

४—Vide Chaitanya Bhagwat, Pt. Middle, Ch. VI.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान जाग्रत हो उठा था। बङ्गाल के वैष्णव वेदान्त पर माधवाचार्य की ही टीका को मानते थे। वैष्णव विचारक एक ऐसे ईश्वर की कल्पना करते थे जो लड़ने वाला और उनकी मुसीबतों से उन्हें मुक्ति दिलाने वाला हो। राजनैतिक दृष्टि से एक गुलाम जाति के लिये अकर्मण्य ईश्वर और हवाई सिद्धान्त निरर्थक है। इस-लिये वे वेदान्त के द्वैतवादी समर्थक बन गये। किन्तु बङ्गाल की क्रान्तिकारी सज्ञान जनता के लिये केवल इतना ही काफ़ी नहीं था। एक ओर जनता ब्राह्मण पुरो-हितों द्वारा सताई जा रही थी और दूसरी ओर इन अत्याचारों से निजात पाने के लिये लोग धारा प्रवाह रूप से इसलाम स्वीकार कर रहे थे।[५] इन दोनों बातों के रोकने के लिये एक जन आन्दोलन ज़रूरी था। जब निमाई पण्डित जैसा चमत्कृत विद्वान एक प्रकाण्ड तर्क-शास्त्री से कृष्ण का भक्त बन गया तो पुराने वैष्णव नेताओं को जब आन्दोलन का अवसर मिला और उन्होंने उसे अपना नेता ऐलान कर दिया।

किन्तु सन्यास लेने के बाद भी चैतन्य अपने जीवन भर सनातनधर्मियों के आचार-विचार मानते रहे। जो लोग उन्हें चारों ओर घेरे रहते थे उनमें से ज्यादातर सनातनी पण्डित और दकियानूसी ब्राह्मण थे। यहाँ भी वही बात हुई जो बुद्ध के समय हुई थी कि सुधारकों ने कट्टर समाज से दुश्मनी मोल नहीं ली।[६] बाद में चैतन्य ने अपने साथी नित्यानन्द को जो अवधूत था, जनता के बीच प्रचार करने को भेजा। नित्यानन्द ने समाज में आकर विवाह कर लिया और उन लोगों में मिलने-जुलने और खाने-पीने लगा जिन्हें सनातनी 'अनाचारणीय' कहते हैं अर्थात् ऐसे लोग जिनके हाथ का ब्राह्मण या सवर्ण जाति वाले पानी तक नहीं पीते।[७] इसके बाद नित्यानन्द के लड़के वीरचन्द्र गोस्वामी ने जनता के उद्धार का बीड़ा उठाया। उसके बारे में कहा जाता है कि "वह हरि रूप से पतितों और दलितों का उद्धार करता था और हिन्दू मुसलमानों के बीच कोई अन्तर नहीं करता था।"[८] लोक गाथा के अनुसार या तो नित्यानन्द ने या वीरचन्द्र ने 'सहजानी' भिक्षु और भिक्षुनियों को, जो सर मुड़ाते थे और 'नेदा' और 'नेदी' कहलाते थे, वैष्णव धर्म में दीक्षित किया। सच तो यह है कि वैष्णव धर्म के उत्कर्ष के बाद बङ्गाल में फिर बौद्धों के बारे में कोई बात नहीं सुनाई देती। जैन लोग तो इससे पहले दिखाई देना बन्द हो गये थे। एक दूर-दर्शी सामाजिक परिवर्तन बङ्गाल में दिखाई देने लगा। जो जातियाँ अब तक समाज से बहिष्कृत समझी जाती थीं, वैष्णव गोस्वामी अब उनके गुरू बनने लगे। ब्राह्मण पुरोहित अछूतों के यहां षोडश संस्कार और पूजा-पाठ कराने लगे। बौद्धों के प्रति सहानुभूति होने के कारण व्यापारी वर्ग को कट्टर पन्थी अब तक अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे, उनका दरजा अब फिर से ऊँचा कर दिया गया। सच तो यह है इस काल में हिन्दू समाज की अन्तिम रूप-रेखा ठीक की गई। हमारी राय में यह बङ्गाल के हिन्दू समाज की 'दूसरी सामाजिक अखण्डता' का प्रयत्न था।

शुरू शुरू में इस आन्दोलन ने धार्मिक क्षेत्र में जातियों के कठोर बन्धनों को ढीला कर दिया। महाप्रभु चैतन्य ने स्वयं कहा है—"जो लोग वैष्णवों के बीच में जाति-भेद पैदा करेंगे उनको मुसीबत उठानी पड़ेगी; इस जगत् में वैष्णवों के बीच में कोई जाति-गतभेद नहीं है।"[९] चैतन्य का आन्दोलन सनातनी ब्राह्मणों के प्रतिकूल था, यह नीचे लिखी बात से साबित है—"पण्डितों और सन्यासियों के गुरूर को तोड़ने के लिये चैतन्य ने नीच शूद्रों के बीच धर्म प्रचार करना शुरू किया।"[१०] जैसा कि ऊपर कहा गया है धार्मिक क्षेत्र में यह आन्दोलन मुसलमानों के बीच कोई फ़र्क नहीं करता था। इसका समर्थन ब्रह्म हरिदास ठाकुर, जो एक मुसल-मान के घर पैदा हुआ था, और चैतन्य के संवाद से होता है। ब्रह्म हरिदास कहता है—"मैं म्लेच्छों में अधम हूँ। मैं अछूत और पतित हूँ। मेरे शरीर में

५—Vide Barbora's Account of Bengal.
६—Vide Kerm—Manual of Buddhism.
७—देखो 'चैतन्य भागवत' और नरहरिदास का 'प्रेम विलास', पृष्ठ २४९
८—भक्ति रत्नाकर, लेखक—नरहरि चक्रवर्ती पृष्ठ २५०
९—'चैतन्य मङ्गल', लेखक—जयनन्द; पृष्ठ १०४
१०—'चैतन्य चरित्रामृत', भाग ५; पृष्ठ ३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुबर आप क्यों अपने को अपवित्र करते हैं ?" महाप्रभु दैन्य कहते हैं—"मैं ऊँच और नीच जातियों के भेद को नहीं मानता, जो भगवान कृष्ण के पुजारी हैं उनकी एक ही जाति है और वह है श्री वैष्णव जाति।"[११] इसी हरिदास पर बङ्गाल के मुसलमान सूबेदार ने काज़ी के यह कहने पर बहुत जुल्म किया कि वह मुसलमान होते हुये हिन्दू बन गया। इसलामी शरीयत के मुताबिक स्वधर्म-त्यागी की सज़ा मौत है। हरिदास के ऊपर मुक़दमा चला और गवर्नर ने उससे पूछा—"तुम ऊँची जाति (मुसलमान) होकर भी हिन्दू धर्म का पालन क्यों करते हो ?"[१२] इस प्रश्न में जातिगत भावना पर ज़ोर है, यानी शासक जाति का एक आदमी हिन्दू धर्म को मानने से, जो उसकी रिआया का धर्म है, अपने को नीचा गिराता है। इसीलिये उस पर मुक़दमा चला। अपने मुक़दमे में हरिदास ने कहा—"हिन्दू समाज ऐसे आदमी को त्याग देता है जो मुसलमान बन जाता है। इसी तरह तुम भी मुझे क्यों नहीं त्याग देते ?" किन्तु इसलामी शरीयत के मुताबिक हरिदास को मौत की सज़ा मिली। मुकदमे के दौरान में हरिदास ने कहा—"भाइयो ! अल्लाह रब्बुल आलमीन यानी सारी जहान का मालिक है।" कहा जाता है मुरदा समझकर हरिदास को गंगा में फेंक दिया गया किन्तु आश्चर्यजनक रूप से उसकी जान बच गई।[१३]

इन तमाम मिसालों से यह साबित है कि चैतन्य और उनके अनुयायियों के प्रचार से एक ऐसा जन आन्दोलन पैदा हो गया जो कट्टर हिन्दू और कट्टर मुसलमान दोनों के स्थायी स्वार्थों के विरुद्ध था। हम ऊपर देख आये हैं कि दोनों सम्प्रदायों के उदारमना लोगों का मेल आपसी मेल उन सम्प्रदायों के नेताओं पर आश्रित नहीं था। इसलिये और जगहों की तरह उस युग के भारत का जन आन्दोलन भी धार्मिक वेष में वर्ग संघर्ष था।

इस आन्दोलन के तर्ज़-तरीके को साबित करने के लिये और भी कुछ सुबूत दिये जा सकते हैं। ब्राह्मणों ने वैष्णव सन्त नरोत्तमदास दत्त (ठाकुर) की शिकायत की कि वह शूद्र होते हुये भी ब्राह्मणों को अपना शिष्य बनाता है और वैष्णव रीति के मुताबिक़ अपने पैर का पंजा उनके सिर पर छुआता है। ब्राह्मणों ने शिकायत की कि—"उसने जाने कहां से वैष्णव धर्म की शुरुआत करके देवी-देवताओं की पूजा छोड़ दी...ये लोग निराभिष भोजी हैं; मछली, मांस नहीं खाते और पागलों की तरह नाचते गाते हैं।" नरोत्तमदास के समय कुछ जगहों में देवी देवताओं की पूजा, बलिदान और जाति-पांति के भेद ग़ायब हो गये थे। नरोत्तमदास का कहना था—"न तो दूसरे देवताओं की पूजा करो और न उनका विरोध करो।"[१४] इस वैष्णव आन्दोलन का क्रान्तिकारी रूप इस बात से और बढ गया कि शूद्र भक्तों की श्रेणी में शामिल हो गये। "वैष्णव वन्दना" और श्यामानन्द गोस्वामी के गीतों से, जो कि शूद्र जाति के थे, इसकी पुष्टि होती है। इस तरह यह वैष्णव आन्दोलन उच्च जातियों के स्थायी स्वार्थों के विरुद्ध दलित जातियों का वर्ग आन्दोलन बन गया। उच्च जातियों को यह आन्दोलन अपील न कर सका। हिन्दू और मुसलमान दोनों इस आन्दोलन में शामिल हुए।

किन्तु नये आन्दोलन की प्रगति में ही एक विपरीत प्रबन्ध (anti-thesis) पैदा हुआ। कट्टर पन्थी ब्राह्मणों ने आन्दोलन पर क़ब्ज़ा कर लिया। उन्होंने देवी-देवताओं की पूजा के साथ साथ शालिग्राम की बट्टिया की यह कहकर पूजा शुरू की कि यह विष्णु की प्रतीक है और इस तरह शूद्रों को सीधी देव-मूर्ति की पूजा करने से रोक दिया। इस तरह ब्राह्मण पुजारियों की पूजा फिर से ज़रूरी अङ्ग बन गई। बङ्गाल के ऐसे वैष्णव जो वर्णाश्रम-धर्म में शामिल थे फिर से कट्टर ब्राह्मणवाद के फन्दे में फंस गये।

अब हमें यह देखना है कि वैष्णववाद के इस नव विधान ने कौन सी नई धार्मिक कल्पनायें जनता को दीं। चैतन्य ने जिस नये पन्थ के सिद्धान्तों का प्रचार किया

११—अद्वैत प्रकाश; पृष्ठ ८१
१२—चैतन्य भागवत, भाग पहला; अध्याय ११
१३—उपरोक्त
१३ अ—प्रेम विलास, पृ० १९३
१४—शिशिर कुमार घोष : अमिय निमाई चरित्र, भाग ६, पृ० २२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था उसका निचोड़ उनके भक्तों के शब्दों में यह है—"वृन्दावन बिहारी बृज कुमार श्रीकृष्ण हमारे आराध्य हैं। जिस तरह बृज वनिताएं पति रूप में श्रीकृष्ण की आराधना करती थीं उसी तरह हमारी भी यह आराधना होगी। हमारा धर्म ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। धर्म, धन, आकांक्षा और मुक्ति इन चारों भावनाओं के अतिरिक्त भगवान से प्रेम हमारी पाँचवी भावना है। यह श्री चैतन्य की राय है और हमें प्यारी है।"[१५]

इस उद्धरण से यह साफ़ है कि कृष्ण भक्ति का यह रूप, जिसका चैतन्य के अवसान के बाद बङ्गाल के वैष्णव पालन करते थे अब तक के ज्ञात भक्ति रूपों से अलहदा था। चैतन्य का अपना लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं जिससे उनके प्रामाणिक धार्मिक विश्वासों का पता चले। किन्तु वह प्रेम भक्ति द्वारा कृष्ण की पूजा करते थे। वे बहुत कड़े सदाचारी और साधु वृत्तियों के थे। चैतन्य और उनके भक्तों के कृष्ण वैष्णव साहित्य और कृष्ण भक्ति की परम्परा के कृष्ण नहीं हैं। चैतन्य के एक शिष्य सनातन गोस्वामी (१६ अ) कहते हैं—"श्रीकृष्ण के दूसरे अवतार उनसे भिन्न नहीं हैं फिर भी वे तमाम अवतारों के सार हैं। अवतार उन्हींके अन्दर व्याप्त हैं क्योंकि वे समस्त अवतारों के बीज रूप हैं।" (१६ ब)

जहाँ तक ब्रह्म की कल्पना का सम्बन्ध है बङ्गाल के वैष्णववाद का यही प्रवर्त्तक उपरोक्त उद्धरण में कहता है—"ब्रह्म निर्गुण है, निसङ्ग है, निर्विकार है, वह लीला से अपने भक्तों का हृदय विमोहित नहीं करता, इस तरह की कल्पना जिसमें ईश्वरतत्व न हो सच्चिदानन्द नहीं हो सकता और उसके ध्यान से कोई सुख नहीं मिल सकता।" वह आगे चलकर कहता है ईश्वर में तमाम विभिन्न गुण घटते हैं, वह समुद्र की तरह है। ब्रह्म होने के कारण वह साथी के गुण से भी युक्त है। फिर वह कहता है—"भगवान के चरण मङ्गलदायक हैं और जो भक्ति करते हैं वह उसे पाते हैं।" फिर वह 'माया' के सिद्धान्त का खण्डन करते हुये कहता है कि जीव और 'परब्रह्म' उसी तरह अलग अलग हैं जिस तरह अग्नि से अग्नि की चिनगारी। किन्तु जब जीव की विवेचना की जाती है तो जीव परब्रह्म का ही अंश दिखाई देता है, इसलिये वह उससे जुदा या भिन्न नहीं है। इससे स्पष्ट है कि बङ्गाल का वैष्णववाद शङ्कर के माया के सिद्धान्त को नहीं मानता और माधवाचार्य के भाष्य की ओर अधिक झुकता है। फिर वही प्रवर्त्तक भक्ति के सम्बन्ध में कहता है कि भक्ति [illegible] प्रकार की होती है और इनमें से किसी का भी पालन करने से भक्त बैकुण्ठ को जाता है; किन्तु उसके अनुसार प्रेम ही इस तरह की भक्ति का पोषक होना चाहिये अन्यथा बैकुण्ठ का मार्ग और दूसरी गति से रुद्ध हो जाता है। इस भक्ति का पालन संकीर्तन द्वारा अर्थात् गीत, भजन और ध्यान द्वारा हो सकता है। अन्त में यह कहता है कि बैकुण्ठ लोक में अयोध्या आदि स्थान हैं किन्तु भक्त का अन्तिम लक्ष्य द्वारिका पुरी है। किन्तु उससे भी परे अनन्त दूरी पर गोलक है। वह गोलक मथुरा के चारों ओर बृज भूमि की तरह है। वहीं वृन्दावन के पास मथुरापुरी है। यह श्री मथुरा जो गउओं से भरी हुई है 'गोलक' कहलाती है। यह प्रभु की रहस्यलीला के कारण मशहूर है। गोलक की प्रशंसा 'इन्द्र स्तुति' और 'हरिवंश' नामक ग्रंथों में की गई है। आगे चलकर वह कहता है कि जो लोग नन्द और यशोदा जैसे प्रमुख बृजवासियों के प्रेम का अनुकरण करेंगे, जो लोग नन्द दुलारे के प्रति राधा के प्रेम का अनुकरण करेंगे वे अपने इस पवित्र प्रेम द्वारा, जो ज्ञान और इन्द्रिय-जन्य कर्म से कहीं अधिक पवित्र है, गोलक में पहुंच सकते हैं (२-५-८१)। [illegible] की परिभाषा करते हुये यह लेखक कहता है कि यह कृष्ण को ईश्वर-स्वरूप मानकर नहीं प्राप्त किया जा सकता क्योंकि इससे भय पैदा होगा। यह तो नन्दसुत (श्रीकृष्ण) को अपना जीवन सखा मानकर ही किया जा सकता है। यह प्रेम बैकुण्ठ में भी नहीं हो सकता (२-५-८२,८३)। अन्त में जहां तक वन की रासलीला का सम्बन्ध है यही लेखक कहता है—"ईश्वर, जिसमें सभी जीवों का समावेश है, अभिन्न अङ्ग गोपों और गोपियों के साथ गोलक में

१५—राश बिहारी सांख्यतीर्थ द्वारा सम्पादित रूप-गोस्वामी के 'नाटक चन्द्रिका' की भूमिका से

१६ अ—गौड सम्राट हुसेन शाह का अर्थ मंत्री

१६ ब—सनातन गोस्वामी का "बृहद भागवत मित्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[...] मैं उस आदि पुरुष गोविन्द के आगे सर झुकाता [...] (२-९-९२)। यहां जीव और ब्रह्म एक हैं। इसका [...] में वर्णन किया गया है। वह आगे कहता है—[...] समस्त 'श्री' (गोपियाँ) 'कान्ता' (प्रेमिका) हैं [...] महान ईश्वर 'कान्त' है (२-७ ९४)। यहां एक [...] ध्यान में रखनी चाहिये कि इस पन्थ के एक बल्देव [...]भूषण ने 'वेदान्त सूत्र' पर एक भाष्य लिखा है [...] उसने व्यक्तिगत ईश्वर की पूजा का प्रचार किया [...] और कृष्ण की मूर्ति पूजा को न्याय्य ठहराया है। [...] गौड़ीय वैष्णववाद का मूल है। हमें अब देखना [...] है कि यह धारणा कहां से पैदा हुई। महाभारत और [...] में हमें कृष्ण का यह रूप देखने को नहीं मिलता। [...] नारदीय पुराण' में भी वृन्दावन की रासलीला [...] कोई ज़िक्र नहीं है किन्तु बाद के दिनों में हम 'ब्रह्म [...] पुराण' और 'श्रीमद्भागवत्' में राधा और उसकी [...] सखियों के साथ श्रीकृष्ण की बंशी-लीला का [...] पाते हैं। एक पुरानी आवृति में लिखा है कि [...] में श्रीदाम के श्राप के कारण राधा को अहीर [...] छोरी बनकर पैदा होना पड़ा (१३-९२)। राधा [...] के अर्धाङ्ग से वृषभानकिशोरी बनकर पैदा हुई [...] वह श्रीकृष्ण की ही अंश है (१ ९३)। [...] और कृष्ण दो तन एक प्राण के समान हैं। वेद में [...] है कि श्रीकृष्ण पुरुष हैं और श्रीमती राधिका [...] है (१३-९७)। राधा का नाम सुनने और [...] से समस्त पाप, व्यथा, दुख, जरा और मरण आदि [...] मनुष्य मुक्ति पा जाता है (१३-१११)। तब ब्रह्म [...] और माधव (कृष्ण) के विवाह में अग्नि को [...] देकर पुरोहित होगा (१३-११३)। ब्रह्म राधा [...] अपनी प्रार्थना में कहता है कि बैकुण्ठ और गोलक [...] तरह वह अचिन्त्य है (१५-१०५)। और वह [...] जीवों में वास्तविक स्वरूप बनकर सर्वशक्ति रूप [...] मौजूद है (१५-१०६)। तब ब्रह्मा ने वैदिक रीति [...] अनुसार राधा का विवाह श्री कृष्ण से कराया [...] (१५-११४-१३३)।

इसके बाद उपरोक्त ग्रंथ में रासमण्डल का वर्णन है, [...] कि पूर्ण चन्द्र प्रकट होता है और श्रीकृष्ण गोपियों [...] साथ रास रचाते हैं (१३-११८)। रास मण्डल के [...] में लिखा है कि वह फूलों से सुवासित एक कुञ्ज है (२८-७)। साफ़ है कि रूपक में सूर्य-मण्डल का वर्णन किया गया है। वहां कृष्ण राधा और गोपियों के साथ रासलीला करते हैं (२८-२३-३९)।

इस ग्रन्थ में हम देखते हैं कि राधाकृष्ण की अलंकारिक भाषा में सांख्य सिद्धान्त की विवेचना की गई है। उसमें राधा को मानवी रूप में चित्रित कर श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह कराया गया है। उसमें लीला को रासमण्डल कहा गया है। 'नारदीय पञ्चरात्र' मे देवी पार्वती कृष्ण से कहती हैं—"वृन्दावन के कुञ्ज वनों में और रासलीला में मैं ही तुम्हारी राधिका हूं और बैकुण्ठ में तुम्हारे चरणों को दबाने वाली महालक्ष्मी हूं।" (१-१२-५५)। इस ग्रन्थ में पशुपत (शैव) और पार्वती को राधा और लक्ष्मी के साथ तदाकार कर दिया गया है। यह विविध पन्थों में सामञ्जस्य पैदा करने की एक छिछली कोशिश थी। ग्रन्थ में लिखा है कि "प्रारम्भ में भगवान ने अपने दो टुकड़े किये। एक टुकड़े का स्त्रीरूप हुआ और वह 'विष्णुमाया' कहलाई और दूसरे टुकड़े से भगवान ने पुरुष रूप लिया" (२-३-२४)। भक्त 'रा' अक्षर का उच्चारण करके भक्ति और मुक्ति पाते हैं और 'धा' कहकर हरि-चरणों को पाते हैं (२ ३३८)। ग्रन्थ में आगे चलकर लिखा है—"हे नारद! चूँकि वह रास में तरुणी होकर हरि के सम्मुख रहती है इसलिये कवियों ने उसका नाम 'राधा' रखा है" (२-३-३६)। आगे चलकर लिखा है कि "राधा श्रीकृष्ण के वामाङ्ग से पैदा हुई। बैकुण्ठ में वह महालक्ष्मी है।" (२-६-१४)।

जहाँ तक 'गोपी' शब्द की धातु का प्रश्न है ग्रन्थ में लिखा है कि दुनिया और परम पुरुष की रक्षा के लिये 'गोपी' शब्द का व्यवहार किया गया है। 'जन' शब्द का व्यवहार प्रकृति से पैदा होने के अर्थ में किया गया है। 'गोपीजन' का अर्थ है ऐसे तत्व जो तमाम दुनिया को क़ायम रखते हैं। और यह तभी हो सकता है जब गोपियाँ श्रीकृष्ण को सम्पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण करें।

जहाँ तक 'कृष्ण' शब्द का सम्बन्ध है ग्रन्थ के मूल पाठ में लिखा है—'कृष' का अर्थ है = 'सत्त', 'न' का अर्थ है = 'आनन्द' और 'कृष्ण' का अर्थ है—जोतना यानी भक्तों के हृदय में पापों को उखाड़ देना। कृष्ण का श्याम वर्ण मन्त्रों के लिये है (३-५-२०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रंथ में सांख्य सिद्धान्त का रूपक में प्रतिपादन किया गया है और इन्हीं अर्थों में 'राधा', 'कृष्ण' और 'गोपी' शब्दों का व्यवहार हुआ है। दूसरी ओर 'हरिवंश' में वृन्दावन में राधा और गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेमलीला का कोई मध्य-प्रमाण नहीं है।

इन ग्रन्थों में हमें वृन्दावन लीला के वास्तविक तत्व का पता नहीं चलता जिससे बङ्गाली वैष्णवमत का रहस्य समझ में आ सके। यह वैष्णव सम्प्रदाय वृन्दावन में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का आधार 'श्रीमद्भागवत' ग्रन्थ को मानता है और 'श्रीमद्भागवत' में यद्यपि गोपियों का वर्णन है किन्तु राधा का वर्णन नहीं है। यह बङ्गाल के वैष्णवमत की ही विशेषता है। बङ्गाल का वैष्णव सम्प्रदाय पौराणिक अख्यायिकाओं से इनकार नहीं करता किन्तु वह वृन्दावन की गोचर-भूमि के गीत-नाटकों पर अधिक ज़ोर देता है। वह वृज में राधाकृष्ण की लीला के गीत गाता है। सनातन गोस्वामी ने अपने उपरोक्त ग्रन्थ में यह समझाने की चेष्टा की है कि 'श्रीमद्भागवत' में राधा का ज़िक्र क्यों नहीं आता। कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम का वर्णन करते हुये यही लेखक लिखता है—"गोपियाँ लोक और परलोक दोनों की चिन्ता छोड़कर और अपने पतियों और बच्चों को भी छोड़कर वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ राससीला में रत होती हैं।" (१०-७-४०)। इसके बाद राजा परीक्षित के मुँह से ग्रन्थकार कहलाता है—"जिस तरह मक्खी सुमेरु पर्वत को अपने मुह पर नहीं रख सकती उसी तरह मैं भी गोपियों का गुणगान करने में असमर्थ हूं।" (१-७-१३३) "जब मेरे गुरु गोपियों का गुणगान करते हैं तो वह ज्वालामय हो जाते हैं इसीलिये वह कभी उनका बखान अपने मुँह से नहीं करते।" (१-७-१३४)।

वैष्णवों के पौराणिक ग्रन्थों को देखकर पता चलता है कि कृष्णलीला की दो तरह चर्चा होती है। एक हरिवंश और भागवत् में श्रीकृष्ण का पौराणिक आख्यान है। इसमें कृष्ण, मथुरा और द्वारका की चर्चा है। बौद्ध ग्रन्थ 'घट-जातक' में वासुदेव का ज़िक्र आता है। प्रश्न उठता है कि क्या यह जातक 'ब्राह्मण' ग्रन्थों के जवाब में लिखा गया। "नारदीय पंचरात्र" में असंख्य गोपियों द्वारा 'राससीला' का रूपक के तौर पर वर्णन है। उसी ग्रन्थ के द्वारा सबसे पहले गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की लीला अस्तित्व में आई। इसके बाद श्रीमद्भागवत की रचना हुई, किन्तु उसमें राधा का ज़िक्र नहीं आया। भास के "बाल चरित्र" नाटक में भी, जो लगभग ३०० ई० में लिखा गया है, राधा का नाम नहीं आता। 'बाल चरित्र' में गायन-वादन के साथ दामोदर और गोपियों की राससीला का वर्णन है। उसमें बड़ी उम्र के गोपों की चर्चा है। उस समय अरितासुर बैल के रूप में हमला करता है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में वृन्दावन की अन्य कहानियों के साथ यह कहानी भी आती है। मालूम होता है आधुनिक नूतन वैष्णववादियों ने द्वारका के कृष्ण की कहानियों को वृन्दावन के कृष्ण के आख्यानों के साथ जोड़ दिया है। इस सम्मिश्रण ने कृष्ण को हर जगह मौजूद कर दिया है। छान्दोग्य उपनिषद में, कुरूक्षेत्र में, मथुरा में, द्वारका में और वृन्दावन में सभी जगह कृष्ण उपस्थित हैं। बाद के कृष्ण-भक्त वैष्णवों ने युगों के विस्तार में कृष्ण की परस्पर विरोधी कहानियों में सन्तुलन पैदा करने की कोशिश की। यदि छान्दोग्य उपनिषद में देवकी-पुत्र कृष्ण की कहानी बाद में नहीं जोड़ी गई तो इससे पता चलता है कि यह कृष्ण घोर-आंङ्गिरस के शिष्य थे और श्रीमद्भागवत के कृष्ण से भिन्न थे जोकि सन्दीपन या सन्दिपानी मुनि के शिष्य थे (हरिवंश-१८)।

ऐसा अनुमान है कि 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' और 'श्रीमद्भागवत' बहुत हाल के लिखे हुये ग्रन्थ हैं। शायद मुसलमानी हमलों के बाद ये ग्रन्थ लिखे गये हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खण्ड के अध्याय १० में बङ्गाल की आधुनिक जातियों की चर्चा है। उसमें 'जुलाहे' की भी चर्चा है और जुलाहे मुसलमान होते हैं। इसका अर्थ यह है कि ग्रन्थ का अन्तिम संस्करण या परिवर्तन निस्सन्देह इस हमले के बाद हुआ।

इसी तरह श्रीमद्भागवत के बारे में कहा जाता है कि वह बोपदेव शास्त्री की लिखी हुई है। यह वह समय है जब स्मृतिकार हेमाद्रि यादवराज देवगिरि का मन्त्री था।[१८] स्वर्गीय स्वामी दयानन्द[१९] के पास इस

१८—हरिवंश अध्याय ८९

१९—सत्यार्थ प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[...]लिखित ग्रन्थ था जिसमें इस बात का उल्लेख था कि [...]द्रि बोपदेव रचित श्रीमद्भागवत पढ़ने में इसलिये [...]र्थ था कि वह बहुत बड़ी थी और उसके पास [...] नहीं था। बोपदेव ने हेमाद्रि के लिये उसे संक्षिप्त [...]। यदि इसे ठीक माना जाय तो श्रीमद्भागवत [...] रचनाकाल ईसा की १४ वीं और १६ वीं सदी ई० [...] आता है। पञ्चरात्र भी पौराणिक ग्रन्थ नहीं माना [...]। जयदेव अपने 'गीत गोविन्द' में कुञ्जवन में [...] राधा और गोपियों की प्रेम कथा का वर्णन करता [...] इस तरह 'राधा' शब्द बहुत हाल का गढ़ा हुआ [...] पड़ता है। बङ्गाली वैष्णव साहित्य में उसमें बहुत [...]र्तन हुये हैं। पहले राधा को ही चन्द्रावली समझा [...] था बाद में उसका व्यक्तित्व भिन्न माना जाने [...]।

किन्तु बङ्गाली वैष्णवमत में वर्णित वृन्दावन लीला [...] रहस्यमयी राधा के सम्बन्ध में यह पर्याप्त व्याख्या [...] है। बङ्गाल के बाद के वैष्णवों ने वृन्दावन को [...] जिन भक्ति गीतों की रचना की है वह बङ्गाल के [...]मत की विशेष कृति हैं। इस वैष्णव पन्थ के लिये [...]वन एक प्रेम लीला की जगह है जहाँ अहीर का [...] कृष्ण वंशी बजाकर गोपियों का चित्त लुभाता है [...] जिसे गोपियां तन्मय होकर प्यार करती हैं। इन [...] में राधा सबसे प्रमुख है और उसकी अनेक [...] हैं। रूप गोस्वामी के गीतों के अनुसार वृन्दावन [...] गोचर भूमि—"एक रहस्यमय जगह है जो परम [...] से भरी हुई है। वृन्दावन में एक गुप्त जगह है—[...]—जो प्रेम से बनी हुई है। शास्त्रों की दलीलों [...] छोड़कर दोनों की पूजा करो। (निकुञ्ज रहस्य [...] ३१)। महत्वपूर्ण भक्तों को इसीमें जगह मिलेगी। [...] की सखियों का काम करेंगे। वृन्दावन लीला के [...] उनके नये स्त्री नाम रखे जाते हैं—जैसे 'अनङ्ग [...] आदि। गुरु उन्हें आध्यात्मिक दीक्षा देते हैं [...] विविध गुरुओं के विविध सम्प्रदायों के द्योतक अलग [...] आड़ नाम होते हैं। इस तरह एक भक्त जिसे [...]त्मिकता में ऊपर का दर्जा प्राप्त हो जाता है इस [...] लीला में भाग लेने का अधिकारी होता है।[२०]

[२०]—भक्ति रत्नाकर

वह अन्य भक्तों के यूथों में जुड़ जाता है। इनके ऊपर यूथपति होते हैं। जिनका आध्यात्मिक पद और ऊँचा होता है। इस आध्यात्मिक प्रेम-क्षेत्र में कृष्ण एकमात्र पुरुष होते हैं। प्रेमी की हैसियत से भक्तों की राधा और उसकी सखियों में शुमार हो जाती है। वह कृष्ण की चाहना में उसांसें भरते हैं। वे कृष्ण को तन्मयता के साथ प्यार करते हैं। वे उनकी प्रियतम की हैसियत से पूजा करते हैं। वे कृष्ण को अपना पति समझते हैं और कृष्ण से पूर्ण सम्मिलन की आकांक्षा रखते हैं।

इस आध्यात्मिक वृन्दावन में भक्त कृष्ण को उसी तरह प्यार करते हैं जिस तरह पत्नी अपने पति को प्यार करती है जब कि यशोदा कृष्ण को उसी तरह प्यार करती है जिस तरह मां बच्चों को करती है। इस तरह यहां बाल-गोपाल का भाव पैदा होता है।[२१] यहां कृष्ण यशोदा के छोटे बच्चे की तरह हैं और उसके आंगन में समस्त बाल लीला करते हैं और गोपाल की हैसियत से वे गोपियों से लीला करते हैं जो उनकी वंशी-ध्वनि सुनकर उनके लिये व्याकुल हो जाती हैं!

यही वृन्दावन की लीला का तथ्य है। यह बङ्गाल के वैष्णव रहस्यवादियों के लिये एक नई और साहसपूर्ण आध्यात्मिक कल्पना थी। यह वैष्णववाद के उसूलों से ज़रा हटकर एक चीज़ थी। शृङ्गारिक प्रेम द्वारा भक्ति की कल्पना भारतीय आर्यों के सम्पन्न धार्मिक अनुभवों में मध्यकालीन बङ्गाल की अपनी देन थी। स्वभावतः यह प्रश्न पैदा होता है कि बङ्गाल के वैष्णव रहस्यवादियों में यह विचार कब पैदा हुआ? हमें पुराने संस्कृत ग्रन्थों में यह विचार नहीं मिलता। श्रीमद्भागवत में, जिसे बङ्गाल के वैष्णव प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं, केवल गोपियों के साथ कृष्ण की लीला का वर्णन आता है (स्कन्द १०)। यह सही है कि वृन्दावन लीला का सूत्र हमें इसमें मिलता है किन्तु इसमें बङ्गाली रहस्यवादियों की भावना लेशमात्र भी नहीं मिलती। उनके लिये कृष्ण एक परम शक्तिवान परमेश्वर हैं कि जिनकी, भक्त गोपों के साथ खेलनेवाले गोपाल के रूप में आराधना की जानी चाहिये। वैष्णवों ने अव्यक्तिगत ईश्वर की कल्पना से ज़ोरों से इनकार

२१—India Old And New bv Hopkins.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया किन्तु फिर भी यह व्यक्तिगत ईश्वर बङ्गाली वैष्णवों द्वारा एक चरवाहा-बालक बना दिया गया। ज्ञानदास के गीत में[२२] इस ईश्वर की कल्पना इस प्रकार दी गई है—"दुबला-पतला श्यामवर्ण, गले में वैजयन्ती माला और पैरों में कड़े पड़े हुये।" यह बङ्गाली वैष्णवों के ईश्वर की ख़ास कल्पना है कि जिसकी वृन्दावन की रहस्यमय आध्यात्मिकता में उपासना की जाती है। भक्त उसकी शृङ्गारिक आराधना करते हैं और उसकी विरह की पीड़ा और मिलन के सुख को अनुभव करते हैं। वृन्दावन छोड़कर कृष्ण के मथुरा आकर बसने का वर्णन "माथुर" विचार धारा के अन्तर्गत किया गया है। काव्य में इस विरह का नाम ही माथुर है। "माथुर" भावना का बीज हमें मैथिल कवि विद्यापति के गीतों में मिलता है। किन्तु विरह गीतों का उत्कृष्ट रूप हमें बङ्गला साहित्य में मिलता है। बङ्गाल के वैष्णव साहित्य में इसकी विशेष रूप से चर्चा पाई जाती है।

प्रश्न उठता है कि यह विरह गीतों की भावना कैसे पैदा हुई और कब पैदा हुई। हमें यह पुराने संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलती। 'गीत गोविन्द' में भी विरह-व्यथा अर्थात् माथुर भावना नहीं मिलती। विद्यापति में यह विरह-कथा साधारण रूप में मिलती है।

किन्तु चण्डीदास ने अपने बङ्गला गीत-काव्य में कृष्ण द्वारा तिरस्कृत राधा की कथा का बहुत ज़ोरदार शब्दों में वर्णन किया है। हाल में "श्रीकृष्ण कीर्तन" नामक एक पुस्तक का पता चला है जो बरु चण्डीदास की लिखी हुई बताई जाती है किन्तु जो वास्तव में प्रसिद्ध कवि चण्डीदास की ही लिखी हुई है। इस पुस्तक के 'वृन्दावन खण्ड' में १६,००० गोपियों के साथ राधा की रासलीला का वर्णन है। राखालदास वन्दोपाध्याय के अनुसार यह ग्रन्थ चौदहवीं सदी के शुरू का लिखा हुआ है। उनके अनुसार यह १३८५ ई० के पहले का है। चैतन्य १४८५ ई० में नवद्वीप में पैदा हुए थे। इसी-लिये चैतन्य के जन्म से पूर्व ही बङ्गाल में राधा और उसकी सखियों के साथ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन पाया जाता है। किन्तु चैतन्य की भक्ति ने वृन्दावन लीला को एक रहस्यमय दार्शनिक जामा पहनाया। यह उन्हींकी ख़ूबी थी।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि 'वृन्दावन लीला' का उद्गम भारतीय इतिहास के मुसलिम काल में हुआ जब कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उसका सर्वथा अभाव पाया जाता है। इस युग में प्रेम की विस्तृत मनोवैज्ञानिक रूप-रेखा वृन्दावन-लीला के रूप में खींची गई किन्तु बङ्गाल के गीतों की कथा ने उसे ढँक दिया।

वैष्णव विचार धारा की इस उन्नति का कारण यह था कि इसलामी सूफ़ीमत भारतीय सम्पर्क में आकर हिन्दू मस्तिष्क पर असर कर रहा था। सूफ़ियों के प्रेम-मनोविज्ञान के 'हिजरा' (विरह व्यथा) और 'विसाल' (मिलन) को वैष्णव प्रेम-कथा में उतारा गया। यह बिलाशक कहा जा सकता है कि बङ्गाल की वैष्णव विचार धारा पर सूफ़ी सिद्धान्तों का असर पड़ा। इसमें कोई आश्चर्य न होगा यदि यह पता चले कि वृन्दावन लीला का उद्गम ही सूफ़ीमत के कारण हुआ। यह बात हमें याद रखनी चाहिये कि रूप (दबिरमवास) और सनातन (सकार मल्लिक) मुसलमान बादशाह के ऊंचे ओहदेदार थे। सनातन चैतन्य के पास एक दरवेश के रूप में आया था[२३]। इस युग में बङ्गाल में फारसी भाषा से भी अनेक लोग परिचित थे। इसमें यह कोई असम्भव बात नहीं कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप सूफ़ी विचार धारा ने बङ्गाल के वैष्णवमत पर असर डाला हो और विशेषकर वृन्दावन लीला के रहस्य को प्रभावित किया हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब इसलाम में ऐसे ईश्वर की कल्पना है जो पापियों को दण्ड देता है तो उसके सम्पर्क में ईश्वरीय गोपाल का विचार कैसे पैदा हुआ। इस युग में हिन्दू एक ऐसे परमेश्वर की कल्पना करते थे जो उन्हें दुखों से छुटकारा दिलाये। इस तरह एक व्यक्तिगत ईश्वर की कल्पना उनमें पैदा हुई। बङ्गाल के वैष्णवों ने इसी आदर्श को कायम रखा। उनके गोपाल कृष्ण सर्वशक्तिमान ईश्वर थे कि जिन्होंने आश्चर्यजनक कार्य किए और शत्रुओं से अपने भक्तों की रक्षा की। कृष्ण अपने भक्तों के

२२—ज्ञानदास की पदावली (बङ्गला में)

२३—चैतन्य चरितामृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। वे सेनाओं के स्वामी थे। बङ्गाल के शिक्षित वर्ग की अवचेतन भावनाओं को सर्वशक्तिमान कृष्ण के विचार से बड़ा सन्तोष मिला। इसके साथ ही साथ अवचेतन मस्तिष्क में राजनैतिक आज़ादी खोये जाने का दुख भी ऐसे कृष्ण की कल्पना कम करती थी। यह भावना वृन्दावन लीला के रहस्यमय माथुर गीतों में प्रकट हुई। ईश्वर के निश्चित गुणों के बावजूद उसकी कल्पना भक्तों के साथ खेलते हुये ईश्वर के रूप में की गई। यही उसको पाने का रास्ता था। इस भक्ति-मार्ग में ईश्वर की प्राप्ति की उत्कट चाहना पैदा करनी पड़ती थी। फिर विरह-व्यथा सहनी पड़ती थी और तब मिलन होता था। राजनैतिक कारणों से जो दुख और उदासी पैदा हुई उसने सूफ़ी रहस्यवाद के साथ मिलकर इस आदर्श को जन्म दिया। "ब्रजबोली" की वैष्णव कविताओं में भी हमें यही बात मिलती है। खोई हुई स्वतन्त्रता के लिये निःश्वास भरना और उसकी प्राप्ति की उत्कट चाहना करना, इन दोनों बातों के साथ प्रेम-भक्ति ने मिलकर वृन्दावन-लीला के रहस्य को जन्म दिया। यहाँ अवचेतन मस्तिष्क में राजनैतिक भावना पर रहस्य-आकांक्षा हावी हो गई। बंगाल के वैष्णव आन्दोलन को चैतन्य के बाद के नेताओं ने दूसरी धारा में बहाना चाहा। इसीलिये बङ्गाल में कबीर और नानक की निर्गुण भावना की जगह गोपाल कृष्ण के रूप में ईश्वर की भावना को जगह मिली। आन्दोलन के ऊपर व्यक्ति की छाप यहाँ स्पष्ट दिखाई देती है।

किन्तु समय के दौर में बङ्गाल की वैष्णवधारा ने अपना पूर्व रूप छोड़ दिया। चैतन्य अपने जीवन काल में ही अवतार मान लिये गये। मुरारी गुप्त जो उम्र में चैतन्य से बहुत बड़ा था चैतन्य के सम्बन्ध में अपने एक गीत में लिखता है—"अपने को गौराङ्ग के चरणों में अर्पित कर दो।"[२४] बाद में चैतन्य के भक्तों ने उन्हें कृष्ण की बराबरी का रुतबा दे दिया। उन्होंने कहना शुरू किया कि चैतन्य कृष्ण के अवतार थे। ज्ञानदास अपनी एक कविता में लिखते हैं—"जो पहले ब्रजनन्दन यानी कृष्ण थे वही अब शचि-पुत्र चैतन्य हैं और बलराम नेताई यानी नित्यानन्द हैं।" इनके अनुसार त्रेता और द्वापर के समस्त भक्त इस कलियुग में चैतन्य के भक्तों के रूप में जन्मे हैं। कहा गया कि मुरारी गुप्त हनुमान के अवतार हैं और चैतन्य भागवत के रचयिता वृन्दावनदास व्यास के अवतार हैं।[२५] इस तरह बङ्गाल की इस चैतन्यमार्गी भक्ति-भावना के आगे कृष्ण और राधा के चरित्र फीके पड़ गये। कृष्ण की जगह चैतन्य ने ले ली। लोग कृष्ण और बलराम के अवतार की तरह चैतन्य और नित्यानन्द की उपासना करने लगे। आजकल के बङ्गाल में चैतन्य के कुछ भक्तों ने चैतन्य की दूसरी पत्नी विष्णुप्रिया के नाम को अतीत के गर्त से निकालकर उसे गौराङ्ग प्रभु (चैतन्य) की अर्धाङ्गिनी के रूप में राधा और लक्ष्मी की जगह बैठा दिया।[२६] उनका कहना है कि चैतन्य और विष्णुप्रिया दोनों की साथ साथ उपासना की जानी चाहिये। वे दलील देते हैं कि विष्णुप्रिया का चरित्र राधा से इसलिये ऊँचा है कि विष्णुप्रिया चैतन्य की विवाहिता पत्नी थी। वे कहते हैं कि विष्णुप्रिया "धारित्री" की अवतार थीं।

इस तरह बङ्गाल के वैष्णवमत में वैयक्तिक ईश्वर की उपासना की जगह, कि जो भक्तों की प्रार्थना सुनता है और पाप करने वालों को सज़ा देता है, राधा और कृष्ण और वृन्दावन की रहस्यमयी लीला आ गई और इसी भावना की प्रतिक्रिया-स्वरूप चैतन्य और विष्णुप्रिया की उपासना शुरू हुई।

इस तरह कृष्ण की उपासना के द्वारा ऐसा सुधारक हिन्दू समाज जो कि जाति और क़ौम का फ़र्क़ नहीं मानता था फिर से विरोधी भावनाओं के असर के कट्टर ब्राह्मणों की प्रभुता के फन्दे में फंस गया।

२४—जीवद्र की श्री गौरपाद तरङ्गिनी, पृष्ठ ३०५

२५—उपर्युक्त

२६—हरिदास गोस्वामी का विष्णुप्रिया का जीवन चरित्र (बङ्गला में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एटम बम और मानवता

श्री विलियम रस्ट सम्पादक—"डेली वर्कर"

विज्ञान की दुनिया में एटम बम का आविष्कार विज्ञान की एक अद्भुत विजय है, पर साथ ही साथ दुनिया के लोगों में इसके कारण एक ज़बर्दस्त डर समा गया है। इन बातों से मज़दूरों के मूल सिद्धान्तों की पुष्टि होती है कि—मानव जाति अपने अन्त की ओर शीघ्रता से जा रही है। अगर उद्योग-धन्धों और उत्पादन के साधनों को समाज ने अपने हाथों में न लिया और इन्हें जन-हित के लिये इस्तेमाल न किया गया तो मनुष्य मात्र को इस नाश से कोई भी शक्ति नहीं बचा सकती।

लोगों ने वैज्ञानिक रूप से साम्यवाद की सच्चाई एटम बम के आविष्कार के बाद ही महसूस की है।

नागासाकी और हिरोशिया की बरबादी ने बूर्जुआ वर्गी (मध्यम श्रेणी के) विचारकों की शान्ति और आत्मसन्तोष को हर लिया और टोरी राजनैतिक पत्रकारों के होश-हवास डर से उड़ गये। चित्त को थोड़ी शान्ति देने के लिये उन्होंने उन सिद्धान्तों को मान लिया जिन्हें अभी कल तक वह घृणा की दृष्टि से देखते और दोषपूर्ण बतलाते थे।

'डेली मेल' में एक अग्रलेख 'नियन्त्रण करो या मिट जाओ' (Control or Perish) शीर्षक से छपा था। लेख घोर पीड़ा से कराहता मालूम देता था। रात भर ही में 'डेली मेल' के स्वामी नार्थक्लिफ़ हाउस में कितना बड़ा परिवर्तन हो गया! जहां इस अख़बार के सफ़े पहले टोरियों के दयनीय चुनाव प्रोपेगेण्डा से भरे रहते थे और जो पत्र हमेशा उत्पादन साधनों के राष्ट्र द्वारा संचालन का विरोध करता रहता था, वहां आज एकदम, बात की बात में, (चाहे थोड़े समय के लिए ही) उसका वह समस्त प्रचार बन्द हो गया है।

अग्रलेख के लेखक ने अपने लेख को एक विचित्र और डरावने रूप में ख़त्म किया है। वह लिखता है कि "हमारे जीवन-मरण की कसौटी यही है कि एटम बम के फूटने से जो समस्या खड़ी हो गई है उसका कौन सा हल मनुष्य का दिमाग़ खोजकर निकाल सकता है?

इस प्रकार की शंका क्यों? इस पीड़ित पत्रकार ने अपने लेख को किस पेचीदा और कुटिलता पूर्ण तर्क के साथ ख़त्म किया है! क्या यह सम्भव है कि जो चीज़ विज्ञान द्वारा प्राप्त की जाए वह मनुष्य के क़ाबू से निकल जाए? यह विचित्र बात है कि एक ज़बरदस्त वैज्ञानिक खोज, एक आधुनिक पत्र के कालमों में, मध्यकालीन मूढ़ विश्वास और रहस्यवाद पैदा करे।

'डेली मेल' के इन विचारों के सम्बन्ध में यह कहना ज़्यादा दुरुस्त होगा कि ये विचार ज़ाहिर करते हैं कि बूर्जुआ वर्ग के स्वार्थों पर पाला पड़ गया है। उनके विचार पूंजी-प्रथा के स्थायित्व में विश्वास रखने के कारण बहुत ही संकीर्ण हो चुके हैं।

इस पत्रकार ने एटम के टूटने से पैदा हुई समस्या से दूर रहने अथवा बचने का जीजान से प्रयत्न किया है। एटम बम मनुष्य के प्रकृति की शक्ति पर क़ाबू पाने के प्रयत्नों में शायद सबसे बड़ी जीत है।

हां, उसने एटम के प्रयोग पर रोक लगाने की बात पर ज़ोर दिया है। जो कि आज तक सान फ्रैनसिस्को सम्मेलन के फ़ैसले के सम्बन्ध में कि एक विश्व-रक्षा-संस्था बनाई जाय, उदासीन थे वे आज उसके पक्ष में हो गए हैं। यह जो दिल की तब्दीली हम देख रहे हैं वह शायद इस पहले धक्के का असर दूर होने के बाद न रह जाए। लेकिन फिर भी एक स्पष्ट निर्णय, कि युद्ध रोकने के लिये युद्ध के सामाजिक और आर्थिक वजहों को पहले दूर किया जाए और हुकूमत करने वाले किसी भी वर्ग के अधिकार कि वह विज्ञान को दुनिया की बरबादी के लिये इस्तेमाल करता रहे और उसे समाज की उन्नति के लिये प्रयुक्त न होने दे हमेशा के लिये ख़त्म कर दिया जाय। वे इन सब मसलों पर बिलकुल चुप्पी साध लेते हैं, उनके मुंह से बात तक नहीं निकलती।

उन्होंने मनुष्य के नैतिक जीवन में एक प्रकार की क्रान्ति पैदा करने की कोशिश की है। 'टाइम्स' से लेकर 'डेली मिरर' तक हरएक पत्र में सिर्फ़ मनुष्य की अन्दर की बुराई को ही सभी युद्धों का कारण बताया गया है। 'टाइम्स' लिखता है कि "हमें अगर इस सांसारिक अभिशाप को मिटाना है तो लोगों में शान्ति के लिये अपार प्रेम पैदा करके ही यह किया जा सकता है।" 'डेली मिरर' ने ऐलानिया कहा है कि "अगर कोई बुनियादी शक्ति है तो वह है चरित्र की शक्ति।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम सदाचार के सभी असूलों को गठिया लें—उन पर अमल करें और जो कि हमें एटम बम के बारे में बता देना चाहते हैं उन्हें उनके रास्ते पर बेरोक छोड़ दें। लेकिन हम अपने समाज के अन्दर के वर्गीकरण की सभी बुराइयों को निरसता के पहाड़ों से ढँक नहीं सकते। आप यह सवाल पूछ सकते हैं कि वही विज्ञान जो युद्धमन के समय में भूखों मर रहा था—कोई उसकी ओर ध्यान तक नहीं देता था, उसे इस युद्ध के समय में इतना ख़ूब ख़र्च करके तरक्क़ी दी गई। शान्ति के ज़माने में शायद ही किसी भी देश की सरकार मानव जाति के कल्याण के लिये वैज्ञानिक खोजों पर सात मिलियन पौण्ड (सात सौ करोड़ रुपया—सम्पादक) लगाए होती।

बिकनी चुपड़ी बातें करनेवाले उपदेशक, जो कि दुनिया को बुरी जगह कहते हैं, इसका कारण, दुर्भाग्य-वश सेव खा लेने को ही बताते हैं (बाइबिल—आदम ने ईडन के बाग़ में सेव खाने के वाक़ए की ओर इशारा है—सम्पादक)। इस बात को बेचारा सीधा सादा आदमी भली भांति जानता और समझता है।

वह बड़े बड़े एकाधिकारी लोग जिन्होंने विज्ञान को कई दिनों भूखा रक्खा—जिन्होंने कि फ़ासिस्तवाद को पनपने और तृप्त रक्खा—जिन्होंने कि बड़े बड़े कल-कारख़ानों को बन्द कर दिया और फिर दुनिया के पिछड़े हुए इलाक़ों में ज़बरदस्ती हिस्सा बँटाना चाहा, उन्होंने युद्ध करने वालों को भी भूखा रक्खा—उन्होंने मज़दूरों की आमदनी को ही कसौटी मानकर बाहुल्यता में कमी जैसी उल्टी बात पैदा कर दी।

इस भयंकर एटम बम के कारण सारी मानव जाति घोर निराश है क्योंकि पूंजीवाद के अन्दर इसके इस्ते-माल करने का हक़ धनवान और आत्महीन डिक्टेटरों के ही चला जाएगा।

यही ताक़त है कि जिसे हमें मिटाना है—जिसके असर को हमें उलटना है ताकि नई लड़ाइयों की तैयारियाँ जाती रहें और विज्ञान की ज़बर्दस्त जीत को मानव समाज की उन्नति के कार्यों में लगाया जा सके। जनता को अवश्य ही सारे ज़मीन का मालिक होना चाहिये और समाज का साम्यवाद के सिद्धान्तों पर फिर से संगठित होना चाहिये।

एटम बम के मनमाने समय में भी लोग एक सुन्दर भविष्य का स्वप्न देख रहे हैं, जब कि यह अपार शक्ति रोक-थाम में रक्खी जाएगी और हमारे सामाजिक जीवन और कल-कारख़ानों के लिये इस्तेमाल होगी जिससे जीवन अधिक सुखमय हो जायगा।

अभी कोई इस बात को नहीं कह सकता कि यह ज़बर्दस्त तरक्क़ी कब होगी परन्तु सभी वैज्ञानिक एक मत होकर कहते हैं कि परमाणु-शक्ति को क़ाबू में करने के बाद हमारे कारख़ानों और आमदरफ़्त वग़ैरह की वर्तमान अवस्था में एक प्रकार की क्रान्ति-सी पैदा हो जायगी। पेट्रोल से चलने वाले इन्जन एक पुरानी चीज़ हो जाएंगे। धातु सामग्री का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में बढ़ जायगा। सारी दुनिया खुशहाल और अमीर हो जायगी।

लेकिन एक आवाज़ फैल चुकी है कि इसका प्रयोग निषेधात्मक हो। इस तरह की चेतावनी सर जान एण्डर-सन (बंगाल के भूतपूर्व-गवर्नर नहीं बल्कि दि एक्स चांस्लर आफ़ दि ब्रिटिश एक्सचेकर—सम्पादक) द्वारा उनके एक ब्राडकास्ट में दी जा चुकी है। एकाधिकारी लोग अपने डिविडैण्ट (लाभांश) की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

एटम बम की अच्छाइयों पर सन्देह करने वालों में कैण्टरबरी के आर्चबिशप मिलेंगे जो कि सोचते हैं कि उनके लिये मनुष्य को, बाहुल्य और आराम तलबी के नैतिक जीवन पर पड़ने वाले बुरे असर से, आगाह करना बहुत ज़रूरी बात है। उन्हें इस बात का ख़ौफ़ है कि इस खोज से लोगों की ज़िन्दगी ज़्यादा आसानी से कटेगी। वह अपनी बात इन शब्दों से ख़त्म करते हैं, "बहुत ज़्यादा आराम आदमी के लिये लालच है जो कि बड़े से बड़े ख़तरों से भी अधिक ख़तरनाक है।"

युद्ध के दिनों में विज्ञान पर सात सौ करोड़ रुपया तो जरूर ख़र्च किया गया है लेकिन अब शायद ही इतना धन अमन-चैन के कार्यों पर ख़र्च किया जाय यद्यपि सभी लोग इस बात को मानते हैं कि एक बार फिर समान रूप से धन ख़र्च करना चाहिये।

एटम के टूट जाने और जर्मनी और जापान दोनों पर विजय प्राप्त कर लेने पर हम लोग मनुष्य जाति के इतिहास में एक ख़ास और अग्रसर हुए हैं। हमें अब तफ के आर्थिक तथा राजनैतिक वाक़ओं से जल्द नसीहत लेनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव और दानव

श्री बैजनाथसिंह एम० ए०

मानव है देव असुर मानव !
जब उर के नभ में सजल श्याम स्नेहिल घन आ छा जाते हैं,
करुणा की शीतलता से घुल घुल - घुल रस कन बरसाते हैं;
नव संसृतिमय हो जाती है तब हरी भरी जीवन - घाटी;
तब रंग - बिरंगे फूलों से रंग जाती है पर्वत - पाटी;
जग की सुषमा का वर मानव।

जब चिर अभाव की शीत वायु सर-सर कर देह कंपाती है;
जब कटुता के धूयें से मिल दुख की बदली छा जाती है;
जब घन का अंतर सरल तरल जमकर पत्थर हो जाता है;
तब मानव-उर का नभ-निर्दय क्षय के ओले बरसाता है;
जग के विनाश का स्वर मानव।

जब गरम - गरम वह शुद्ध प्यार मानव-उर को सहलाता है;
तब मोम-मृदुल वह जल - सा घुल जग-जीवन को नहलाता है;
जब ज्ञान - कर्म - सौन्दर्य - प्रभा अपना प्रकाश ले आती है;
तब अन्तर की धूमिलता को वह रच रचकर धो जाती है;
उज्ज्वल विकास का घर मानव।

जब घोर घृणा, अपमान, स्वार्थ छल की रजनी घिर आती है;
जब जीवन में आशा प्रकाश की किरण नहीं दिख पाती है;
आखें होती हैं लाल, दाँत मिचते, मुट्ठी बंध जाती है;
मानवता खोती सत्य, न्याय; पशुता ताण्डव दिखलाती है;
करता न मृत्यु का भय मानव।

जो आज घोर हत्यायें कर, बन्दी कारा के बन्धन में;
जो बलात्कार डाके वाले पिस रहे घृणा के शासन में;
उनका अभाव क्या ज्ञात तुम्हें मन न्याय अंध हो अभिमानी;
यों आज स्रोत जो सूख गये उनमें भी कभी रहा पानी;
मानव गांधी, चर्चिल मानव।

फिर एक व्यक्ति के भीतर ही दोनों हैं मानव, असुर भरे;
किसके न प्रेम से दिल उमड़े किसके न घृणा से हृदय भरे;
निर्णायक ! खोजो दिल अपना कुरुक्षेत्र सभी का उर-अंतर;
कुछ देव बने, कुछ दानव हैं, यह क्रूर नियति का शासन स्वर;
हम दानव हैं तुम अति मानव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया में प्रलयावशेष

श्री० गोपाल हालदार

१५ अगस्त, ४५ को जापान के आत्मसमर्पण के साथ महायुद्ध की समाप्ति ने पूर्व की समस्याओं को सामने ला खड़ा किया है। संसार में समस्याओं की कमी तो नहीं है। वास्तव में, महायुद्ध स्वयं ही इस बात का प्रमाण था कि वे कितनी गम्भीर प्रकृति की थीं, और शान्ति उन्हींके समाधान पर निर्भर है। जैसा कि सबको ज्ञात है, यह समस्याएं एक नहीं हैं और एक जैसी भी नहीं हैं; किन्तु वे एक आदि प्रश्न के चारों ओर गुथी हुई हैं। वह है प्रगति के विरुद्ध प्रतिक्रिया का प्रश्न।

संसार की इन दो शक्तियों—प्रगति और प्रतिक्रिया का हथियारबन्द संघर्ष तो अभी ख़त्म हुआ है। पहले की बची हुई प्रतिक्रिया की भावना जो एक युग से पनप रही थी, अपने ही पैदा किये हुए इस हथियारबन्द संघर्ष में अभी पराजित हुई है। अन्त में अत्याचारियों के विरुद्ध प्रगति की शक्तियों की ही विजय हुई। किन्तु इससे संघर्ष अथवा हिंसात्मक संघर्ष का अन्त तो नहीं हो गया। माना कि प्रतिक्रिया संसार में फ़ासिज़्म की पराजय के रूप में पराजित हुई है, किन्तु इससे प्रतिक्रिया की भावनाओं का समूल नाश तो नहीं हो गया। वह बहुत से छद्मवेश धारण कर लेती है, और उसने अपने बहुत से प्रतिनिधि प्रगति की ओर भी छोड़ रखे थे, यद्यपि उनका प्रगति से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसका कारण यह था कि प्रतिक्रियावादी शक्तियों में अन्दरूनी संघर्ष था, और वे आपस में समझौता करने में असमर्थ रहीं। वास्तव में, साम्राज्यवाद के आन्तरिक विरोध तो पूंजीवाद और समाजवाद के विरोध से भी ज्यादा शक्तिशाली साबित हुए। ऐसे ही प्रतिक्रियावादी शक्तियों में भी पूर्ण ऐक्य नहीं था। म्यूनिक में प्रतिक्रियावादियों की अन्तिम राजनैतिक विजय हुई थी। उसके बाद अपनी नीतियों में भी धुरी राष्ट्रों ने अपने मित्रों को खोया। फिर भी म्यूनिक के बाद वे यू० एस० एस० आर० के साथ एक शान्ति-मोर्चा में सम्मिलित नहीं हुए। किन्तु प्रतिक्रियावादियों की आन्तरिक विरोधिनी शक्तियों का पूरा लाभ तो तब चला जब कि पहले हिटलर (और फिर अन्त में जापान) सोवियट यूनियन के साथ एक नान-एग्रेशन पैक्ट (Non-agression Pact) में सम्मिलित होने के लिये दौड़े और इस प्रकार अपने मित्रों के 'म्यूनिक' वाले भ्रम को दूर किया। वह युद्ध जिसे मित्रराष्ट्र समाजवादी संसार के ख़िलाफ़ एक क्रूसेड (Crusade या धर्मयुद्ध) या जिहाद के रूप में शुरू करना चाहते थे, प्रतिक्रियावादी शक्तियों के आन्तरिक संघर्ष के रूप में आरम्भ हुआ, फासिस्ट जर्मनी फ़ासिस्ट पोलेण्ड पर चढ़ दौड़ा, और फिर सोवियत सेनाओं के सामने से भाग खड़ा हुआ, जिन्होंने कि वास्तव में जर्मनी की पूर्व की ओर प्रगति को रोका था। पश्चिमी यूरोप की शासक श्रेणियों ने सोचा कि फ़्यूहरर ने उनको धोखा दिया है। 'मीन कैम्प' (Mein kamp) के लेखक को ब्रिटेन के साथ भी युद्ध करना पड़ा, हालांकि कि तब भी ब्रिटेन वही चैम्बर लेन वाला ब्रिटेन था, जो "मौखिक युद्ध" में लगा हुआ था जबकि नाज़ी सारे यूरोप को अधिकृत करने के मसूबे बाँध रहे थे। धुरी राष्ट्रों का यह लुका छिपी का खेल बढ़ता ही गया। किन्तु युद्ध क्षेत्रों में विजय प्राप्त करते हुए भी हिटलर की वांछा पूरी न होस की। प्रतिक्रियावादियों का मोर्चा बुरी तरह से भग्न हो गया था। ब्रिटेन की लड़ाई से ब्रिटिश प्रतिक्रियावादी इस हानि को पूरा करने में और भी शक्तिहीन साबित हो गये। उल्टे इसने ब्रिटेन की विशाल जनता को और भी अधिक क्रुद्ध कर दिया कि वे हिटलर और मुसोलिनी का ख़ातमा करने पर उतारू हो गये थे। और अन्त में जब रूस बोलशेविज़्म के विरुद्ध तथा कथित क्रुसेड अर्थात धर्मयुद्ध का समाचार लेकर पहुंचा, तो २२ जून १९४१ के उस भयानक हमले के बाद भी हिटलर के ब्रिटिश और अमेरिकन मित्र उसको सहायता करने में असमर्थ और असहाय बने रहे। हिटलर ने तो अपने शत्रु के लिये उनको तोहफ़ा बनाकर पेश किया था—उस जनता को जो प्रजातंत्र और जीवन के अन्य उच्च सिद्धान्तों की प्रेमी थी। इन देशों की ये प्रगति की शक्तियां न केवल एकता के सूत्र में ही बँध गई थीं, वरन उन्होंने अपने अपने देशों में प्रो म्यूनिक तत्वों को भी आत्मसात कर लिया था। इस प्रकार उनकी विजय जो उनकी नीति के प्रताप से आरम्भ से ही निश्चित थी, केवल बिखरी हुई प्रतिक्रियावादी शक्तियों के अस्त्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि में तपकर शुद्ध होनी शेष थी। इसका यह अर्थ नहीं कि ये एकत्रित शक्तियाँ सब एक ही विचार की थीं, अथवा समान रूप से उन जन-हितों की रक्षा के लिये सचेष्ट थीं जिनके लिये यह जनयुद्ध लड़ा जा रहा था, किन्तु युद्ध के विषय में उन सबकी एक ही दृढ़ नीति रही। धुरी-शक्तियों से पूर्ण आत्मसमर्पण कराने के लिये वे सब एकमत थीं। उन्हें भय था कि वे इससे आगे नहीं बढ़ सकतीं। उनके भिन्न भिन्न जातीय हित थे, और राजनैतिक तथा सामाजिक व्यय के आदर्श भी भिन्न थे। इसलिये ज्योंही हथियारों की लड़ाई ख़त्म हुई, आदर्शों का संघर्ष प्रत्यक्ष हो उठा। जापान के युद्ध की समाप्ति ने ऐशियाई देशों में इस संघर्ष को तीव्रता से सामने ला खड़ा किया है।

युद्ध-एशिया की आंखों से

हमें इस बात को देखना है कि ऐशिया के अधिकांश भूभाग में संसार का यह दूसरा महायुद्ध, प्रथम महायुद्ध की केवल एक पुनरावृत्ति मात्र क्यों समझा गया। केवल चीन में इसकी वास्तविकता स्पष्ट हुई, किन्तु वहाँ भी बहुत समय तक कुओमितंग के अधिकारियों को यह ज्ञात न हो सका कि नाज़ियों से सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये या नहीं। पर्ल हारबर के आक्रमण ने ब्रिटेन और यूनाइटेड स्टेट्स को उनकी ओर कर दिया, तब जाकर कहीं राष्ट्रीय चीन की ग़लतफ़हमियां दूर हुईं। किन्तु शेष एशिया के लिये तो यह वस्तुस्थिति इतनी सरल और सुबोध नहीं थी। योरप के छोटे छोटे राष्ट्र एशिया के महाद्वीप को अपने साम्राज्यों के उपनिवेश बनाने में लगे थे। इनकी प्रकृति सुपरिचित थी। इन देशों में प्रगति का अर्थ केवल यही हो सकता था कि उन्हें इन उपनिवेशों में स्वाधीनता प्राप्त हो। एशिया की इन जातियों को कोरिया, चीन और मंगोलिया को छोड़कर जापानी अधिकार और शासन कोई नई या बुरी वस्तु नहीं मालूम होती थी। नैसर्गिक रूप से जापान ने एशिया की इन जातियों की मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से जो कि विभिन्न साम्राज्यों के उपनिवेशों में बन्द थी, लाभ उठाना चाहा। जापानी साम्राज्यवाद ने अपने आपको स्वाधीनता के वाहक के रूप में पेश करना चाहा।

एशिया केवल ऐशिया वालों के लिये

यह ब्रिटिश, फ्रेन्च, डच और पुर्तगाली साम्राज्यों के जुए के नीचे दबे लोगों के लिये एक शक्तिशाली संदेश था। वे लोग भी जो जापान का विश्वास नहीं करते थे- यद्यपि उनकी संख्या थोड़ी नहीं थी। वे सोचते थे कि यह एक साम्राज्यवादी युद्ध है, और उनका हित इसी में है कि इस परिस्थिति से लाभ उठाकर औपनिवेशिक जनता अपनी आज़ादी लौटा ले।

एशियाई स्वातन्त्र्य-आन्दोलन की युद्ध-नीति

इनका उद्देश्य निश्चय ही सराहनीय था, और किसी भी राजनैतिक नीति शास्त्र के अनुसार उसकी निन्दा नहीं की जा सकती। किन्तु फिर भी इन औपनिवेशिक स्वातंत्र्य-आन्दोलनों के लिये एक युद्ध-नीति तो निर्धारित करनी ही होगी, और चारों ओर की शक्तियों को ध्यान में रखते हुए आज़ादी की लड़ाई के तरीक़े और चालें तो निश्चित करनी ही पड़ेंगी। औपनिवेशिक जनता का सच्चा हित इसीमें है कि वे एक ऐसी शक्ति का साथ दें जो आज़ादी और स्वतन्त्रता का मूल्य समझती हो और इस आदर्श को क़ायम रखना चाहती हो। ऐसी शक्ति निश्चय ही अपने शत्रुओं से अधिक प्रगतिवादी होगी। अतएव अपने ही हितों के वश होकर औपनिवेशिक राष्ट्रीय नीति को चीन और सोवियत रूस की ओर झुकना चाहिये और साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियां उनके अनुचित लाभ न उठायें और न वे जापानी फासिज्म की शिकार बन जायें। इस प्रकार की युद्ध-नीति के परिणाम-स्वरूप जो तरीक़े और चालें चलनी पड़ेंगी वे तरीक़े होंगे तमाम साम्राज्यवादी शक्तियों, जापानी फासिस्टों या यूरोपीय प्रजातंत्रों के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिये अधिक से अधिक राष्ट्रीय शक्ति का संघर्ष। यह नीति स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये होगी ताकि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की स्वतंत्रता तथा प्रगति की शक्तियों को बल मिले। इस नीति के अनुसार मित्र-राष्ट्रों में भी जो प्रतिक्रियावादी तत्त्व हैं, जिनकी जड़ें उपनिवेशों के गढ़ों में मज़बूती से जमी हुई हैं, उनको किसी क़िस्म की कोई सहायता देने से इनकार करना होगा। किन्तु ऐसी भी कोई बात न करनी होगी जिससे किसी प्रगतिमूलक औपनिवेशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन को एशिया में फ़ासिज्म अथवा जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई में बाधा पहुंचे। एक प्रकार से कहना चाहिये यह दुतरफ़ा या डबल मोर्चे वाली लड़ाई होगी। किन्तु क्या यह द्वितीय महायुद्ध भी इसी प्रकार का नहीं है? कम से कम औरों के लिये (सोवियट यूनियन के अलावा जहां शक्ति जनता के हाथ में है)—विदेशी फ़ासिस्टों तथा प्रतिक्रियावादी शासक श्रेणियों के विरुद्ध यह जनता का युद्ध है?

किन्तु इस समस्या की गम्भीरता साम्राज्यवादी शक्तियों की वजह से और भी बढ़ गई जो उपनिवेशों में अपनी नीति के अनुसार अपने तरीक़ों से अपने स्वार्थ के लिये लड़ना चाहते थे। इस कारण से उपनिवेशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों के अस्त-व्यस्त तथा छिन्न-भिन्न हो जाने का डर है। फिर भी, नीति सदा विजय की ओर ही रहनी चाहिये। यह अवसरवादियों की सलाह भले ही मालूम पड़े किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि, ऐसे विश्वव्यापी महायुद्ध में सभी शक्तियों का ठीक अन्दाज़ लगाने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि धुरी राष्ट्र हथियारबन्दी के विचार से निश्चय ही शक्तिशाली थे, किन्तु वर्तमान व्यूह-रचना के युद्ध में वही जीतते हैं जो अधिक तोपें बना सकें और साथ ही उन पर अधिक आदमी भी रख सकें। युद्ध केवल मशीनों से नहीं जीता जाता किन्तु उन आदमियों के बल पर जो उन मशीनों का उपयोग करते हैं। फासिज़्म का दारोमदार जनशक्ति पर न होगा केवल यन्त्रों पर था। एक विश्वव्यापी महा-युद्ध में उसकी हार तो प्रारम्भ से ही निश्चित थी, और जल्द न सही किन्तु अन्त में जन-शक्ति की विजय निश्चित थी। इसलिये विजयी पक्ष के साथ रहने के लिये जन-शक्ति के साथ रहना आवश्यक है। यह केवल अवसरवादी का विषय नहीं किन्तु 'राजनैतिक निर्णय' (Political decision) की बात है उस समाज जनता के लिये जो राजनीति को समझती है! और संसार की शक्तियों का मूल्य आंक सकती है इस तथ्य की उपेक्षा सम्भव नहीं। इण्डियन नेशनल कांग्रेस का 'अगस्त-प्रस्ताव' इस विषय में एक उत्तम राजनैतिक चाल थी। कांग्रेस जनता की ओर थी। उसने स्वभवतः राष्ट्र की पूर्ण स्वाधीनता की मांग की ताकि वह अपना असली प्रभुत्व और शक्ति उन प्रगतिशील शक्तियों का साथ देने में लगा सके जिनकी विजय अन्त में निश्चित थी। उस प्रस्ताव में कभी केवल उसके कार्यात्मक अंश में थी। यह एक सैद्धान्तिक ग़लती थी। यदि उस समय असहयोग-आन्दोलन चलाया जाता तो वह कांग्रेस की ज़िम्मेदारी होती। बाद की घटनाओं ने इसे साबित कर दिया। किन्तु उसकी युद्ध-नीति जैसा कि अगस्त-प्रस्ताव में वर्णन की गई तथा जो इस विशेष कार्यात्मक अंश से अलग थी—निश्चय ही सही थी। इसके विपरीत भारतीय नेशनलिस्ट, जो जाकर जापानियों से मिल गये—अपनी युद्ध-नीति में ग़लती पर थे। वे देशभक्त अवश्य थे पर उनको अपने जन-बल या संसार के जन-बल पर कोई विश्वास नहीं था। वे धुरी राष्ट्रों की युद्ध की ताक़त और यन्त्रों से प्रभावित हुए। फ़ासिस्टों और उनके मित्रों की तरह वे भी सोचते थे कि युद्ध केवल फ़ौजी ताक़त और हथियारों के बल पर जीता जा सकता है। वे हारनेवाले पक्ष की ओर गये, इसलिये उनकी राजनैतिक चेतना भी ग़लत थी।

बहुत अंशों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतीय जनता को अन्धा बनाकर उसका विवेक हटा लिया था। एक उपनिवेश में यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। यह दृष्टि वीणता ओपनिवेशिक नेशनलिस्टों को अवश्य दुख देगी—इस समय में भी जब कि वे देखते हैं कि फ़ासिज्म पराजित हो गया है, और उनके मंसूबे धूल में मिल गये हैं। वे इस बात पर ज़ोर देंगे कि यह द्वितीय महायुद्ध प्रथम महायुद्ध से भिन्न नहीं था। स्वतन्त्रता का वह आन्दोलन जो यूरोप में इस समय चल रहा है उनके इस विश्वास को कि एशिया ने एक मौक़ा खो दिया और खो रहा है (यदि युद्धोत्तर गड़बड़ी और आन्दोलन इसी प्रकार दबा दिये गये)—और भी दृढ़ कर देगा। वास्तव में सुदूर पूर्व में युद्ध का यह प्रलयावशेष उनके इस तर्क को बल प्रदान करता है कि शायद यूरोप में भी द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप कोई परिवर्तन नहीं हुए, और ऐंग्लो अमेरिकन साम्राज्यवाद 'लाल-साम्राज्यवाद' के साथ शक्ति और राजनीति के खेल में व्यस्त है। औपनिवेशिक नेशलिस्ट लोग रायटर की रिपोर्टों तथा एशियाई मामलों पर ऐंग्लो-अमेरिकन रिपोर्टरों के संवादों की क़ीमत समझते हैं। किन्तु वे 'लाल-साम्राज्य-वादी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजनाओं के विषय में इन्हीं पश्चिमी साम्राज्य-वादी संवाददाताओं की बनाई और तैयार की हुई कैसी भी ख़बरों को सच मान लेते हैं। उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति का यह बिगड़ा हुआ रूप, जो उनकी औपनिवेशिक स्थिति का परिणाम है और उनको उन दशाओं के वास्तविक रूप का ज्ञान कराने में जिन्होंने उन्हें अपने ही देश में बन्दी बना दिया है—बाधक है।

एशिया में वस्तु-स्थिति का आकार

महायुद्ध की समाप्ति का एशिया के लिये क्या अर्थ है? इस प्रश्न पर हमें ठोस रीति से विचार करना है और प्रचलित मतों की भूल-भुलैयों में खो नहीं जाना है।

जापान

जापान की पराजय ने उसकी एक नूतन समस्या उपस्थित कर दी है। इस बात से सभी सहमत हैं कि जापान ने अपनी पुरानी सामन्त युगीन फ़ौजी-सत्ता की नींव के आधार पर आधुनिक उद्योगवाद को विशेष कर के उसकी निरंकुश तथा हृदयहीन भावनाओं को सफलतापूर्वक आत्मसात कर लिया था। आमतौर पर उद्योग-धन्धों का विकास जन-चेतना को जागृत करता है, और प्रतिक्रियावाद उसे दबाने की चेष्टा करता है। फासिज़्म इसी औद्योगिक उन्नति के साथ सामन्त युगीन पुरातन ग़ुलामी के बन्धनों को और भी दृढ़ करना चाहता है। जापान पश्चिमी देशों की तुलना में एक प्रकार से अच्छी स्थिति में था, उसने अभी सामन्तवाद का तिरस्कार नहीं किया था, उसका फ़ौजी साम्राज्यवाद का चक्र भी अछूता था, और वह अपने प्राचीन धर्मवाद की मन्ज़ूरी के बल पर इस कंगाल में फिर से नई शक्ति फूंक सकता था। जापानियों ने कभी भी मानव-अधिकारों के विचारों को पनपने का अवसर या प्रोत्साहन नहीं दिया। अतः जापान को किसी ठोस आधार पर स्थापित करना एशिया की जनता के लिये भविष्य में एक समस्या हो जायेगी। यद्यपि जापान अभी पराजित है, लेकिन एशियाई फिर उसका उत्थान देखना चाहेंगे किन्तु एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में नहीं जो जापानी साम्राज्य का जुआ एशियाई जनता की गर्दन पर रखे, और केवल पश्चिमी साम्राज्यों को स्थानान्तरित कर दे। इसलिये वे चाहते हैं कि जापान की यह पराजय उसे एक प्रगतिशील और प्रजातन्त्र राष्ट्र बनने और सामन्त-साम्राज्यवादी युग का अन्त करने में सहायक हो। किन्तु युद्ध के एंग्लो-अमेरिकन विजेताओं को अभी यह विश्वास नहीं है कि वास्तव में ये उनकी उस नीति के हित में होगा, जिसके अनुसार वे स्वयं एशिया में अपने साम्राज्य बनाए रखना चाहते हैं। जेनरल मैकआर्थर ने तो अब तक प्रतिक्रियावाद के विनाश का काम स्वयं जापानी प्रतिक्रियावादियों के हाथों में ही छोड़ रखा है। और यूनाइटेडस्टेट्स तथा सोवियत के साथ साझेदारी करने को तैयार न हों, जिससे कि एक नवीन स्वस्थ, प्रजातन्त्र और शान्ति-प्रिय जापान का पुननिर्माण हो सके। केवल सोवियत रूस का सहयोग ही इस बात का विश्वास दिला सकता है कि जापान एक नवीन मार्ग पर चलेगा और एशिया की शान्ति एशिया साम्राज्यवादियों के चंगुल से सुरक्षित रहेगी।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया

जापान की पराजय के बाद एशिया में चीन ही सबसे बड़ी शक्ति है। किन्तु सुविधा के विचार से हम पहले दक्षिणी-पूर्वी प्रशान्त के देशों को लेंगे—जहां कि पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियां उपनिवेशों में अपना जुआ उनकी गर्दनों पर फिर से रख रही हैं। यदि इस युद्ध में कुछ नई बात हुई तो केवल इतनी ही कि जापानी साम्राज्यवादियों ने पश्चिमी साम्राज्यवादियों की नैतिक और सैनिक शक्ति का खोखलापन प्रकट कर दिया है। केवल फिलीपाइन द्वीपों को छोड़कर इन पश्चिमी शासकों ने शत्रु के सामने कहीं भी साहस का प्रदर्शन नहीं किया। अपने दुर्भाग्य के दिनों में वे उन लोगों से भी अधिक दयनीय परिस्थिति में थे जिनके ऊपर वे शासन करते रहे थे। जापान ने श्वेत जातियों की इस तथा-कथित महत्ता और शक्ति की गल्प का एकबारगी भण्डाफोड़ कर दिया। किन्तु स्वयं एक दूसरी जापानी शक्ति-सत्ता का आतंक स्थापित करने में तो वे युद्ध की राजनैतिक तथा सैनिक परिस्थितियों के कारण असफल रहे। उन्हें अपने सरलता से जीते हुए देशों को अस्थिर उपायों के द्वारा एक सूत्र में बांधना पड़ा। प्रथम तो स्वाधीनता की इच्छुक औपनिवेशिक जनता को उन्हें अपनी ओर मिलाना था। अतः नैसर्गिक रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही वे उनके त्राण-कर्त्ता होने का स्वांग रचते रहें, और अपने चीन और कोरिया के कारनामों पर परदा डालने के लिये उन्होंने 'एशिया एशियावालों के लिये' का नारा बुलन्द किया; साथ ही "पूर्वी ऐशिया के सहयोगी-उन्नति-क्षेत्र" (Co-prosperity-Sphere in East Asia) की नीति का प्रचार किया। यह ब्रिटिश साम्राज्यवादी विचारों को चुराने का एक प्रयत्न मात्र था। Coprosperity शब्द केवल commonwealth के स्थान पर रख दिया गया था—तथा जापानियों के तरीके भी उनसे अधिक भिन्न नहीं थे, जैसा कि उनके भारतीय राजाओं की भांति मन्चूकुओं में एक सम्राट निश्चित करने तथा नानकिंग में कुछ पिट्ठू और अन्य स्थानों में सहयोगी रखने के प्रयत्नों से स्पष्ट है। युद्ध की आवश्यकताओं ने जापान से एक दूसरी महत्वपूर्ण घोषणा भी कराई—'युद्ध के बाद स्वाधीनता की गारण्टी' (जिससे हम परिचित हैं)—जो वास्तव में बीती मियाद वाली हुण्डी के समान है—और मध्य के संक्रान्ति काल में शासन के सीमित क्षेत्र में एक अस्थायी सरकार की स्थापना—जो कि जनता द्वारा निर्वाचित न होकर जापानी एजेण्टों द्वारा नामज़द की हुई होगी; और इस सबके ऊपर पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध में सहायता ढूंढने के लिये औपनिवेशिक जनता की 'एक राष्ट्रीय सेना' की तैयारी और शस्त्र-सज्जा। यह अन्तिम चरण इनसे अधिक महत्वपूर्ण था। यदि जापान की हार न हुई होती तो जापान की मुद्रा के समान थी जो कि विजेताओं के पीछे हटने पर भी बनी रही। इस राष्ट्रीय सेना तथा अधीनस्थ उन्नतिशील क्षेत्रों की स्वाधीनता का भी प्रश्न निश्चित होता। किन्तु जापान की पराजय ने बर्मा के बोस सेन तथा जावा के डा० सोकार्नो जैसे राष्ट्रीय नेताओं को—जिनके पास राजनैतिक बुद्धि और साहस था—जापान की इन बातों का लाभ उठाने का अवसर प्रदान किया। पश्चिमी साम्राज्यवादी, जो अन्य साम्राज्यवादियों की भांति किसी भी पुरानी बात को भूल नहीं सकते और कोई भी नई बात सीख नहीं सकते अब भी पुराने शासकों की भांति उपनिवेशों में वापस लौटने की आशा लगाये बैठे हैं। वे इस बात को नहीं सोच सके कि इंडोनेशिया में, तथा बर्मा में भी स्वतः ही पहले की परिस्थितियां वापस ज्यों की त्यों बनाई नहीं जा सकतीं। इन पश्चिमी शक्तियों ने अपने आत्मबल को ध्वंस होने के लिये छोड़ दिया था, किन्तु उपनिवेशों की जनता में युद्ध के कारण अब स्वाधीनता के भाव जाग्रत हो गये हैं, और बहुत अंशों में उनके पीछे इस समय हथियारबन्द सेनाओं की शक्ति है, इसलिये पूर्वपरिस्थिति को सरलता से लौटाकर नहीं लाया जा सकता। अतएव हथियारबन्द सेनाओं के बल पर इन उपनिवेशों पर फिर से विजय प्राप्त करनी होगी और वही प्रयत्न इस समय फ्रेञ्च इंडोचीन में फ्रांसीसियों द्वारा और इंडोनेशिया में अंगरेज़ों तथा डचों के द्वारा किया जा रहा है।

प्रलयावशेष के इस काल में दक्षिणी-पूर्वी एशिया का यह युद्ध अत्याचार और साम्राज्यवादी दमन के युद्ध का रूप धारण कर रहा है।

भारत का दृष्टिकोण

दक्षिणी एशिया में भारत की अपनी एक अलग समस्या है और सम्पूर्ण एशियाई दुनिया में उसका एक अनन्य स्थान है—चीन से भी अलग। उसकी आर्थिक अवस्था अधिक उन्नत है तथा उसका राष्ट्रीय आन्दोलन निश्चित रूप से अधिक पुरातन तथा सबल है। कुछ दूसरे क्षेत्रों में हम चीन की तुलना में अवश्य हीन हैं। किन्तु प्रत्येक दशा में हम संसार की भविष्य-शक्ति के लिये, या युद्ध के लिये प्रगति के लिये अथवा प्रतिक्रिया के लिये, उतने ही शक्तिमान हैं जितना कि चीन। हमें एशिया की स्थिति को ध्यान में रखते हुए और साथ ही अपनी आन्तरिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिसे हमारे नेता अपने क्रोध और लज्जावश महत्त्व नहीं देते अपने राष्ट्र की भाग्य-लिपि को पढ़ना है, और जो कार्य राष्ट्र के सामने है, उसे पूरा करना है। उन्हें एशिया की परिस्थितियों की चिन्ता है—और होनी भी चाहिये क्योंकि उनके लिये हमसे अधिक सामयिक महत्ता की वस्तु है। किन्तु फिर भी शब्दशः तथा सत्यता के विचार से भी ऐशिया का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय है। हमें चीन, कोरिया, जावा, स्याम, इंडो चीन, बर्मा, हिन्दुस्तान, ईरान, इराक, ट्रान्स-जोरडेनिया, फिलिस्तीन, सीरिया, लेवानन इत्यादि सभी देशों के प्रश्नों का पृथक-पृथक विचार करना और उनकी महता तथा प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उनके सामान्य अंगों पर भी विचार करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकट और मध्यपूर्व

एशिया में मोटे तौर पर विचार करने पर जैसा कि हम अभी तक करते आये हैं—निकट-पूर्व के अरब तथा अन्य देश अपनी वर्त्तमान राजनैतिक परिस्थिति में, एक तीसरे समूह की सृष्टि करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा भारत क्रमशः प्रथम और द्वितीय समूह है। निकट-पूर्व तथा मध्य-पूर्व प्रत्येक देश की अपनी समस्या का स्वरूप अलग है, किन्तु समष्टि रूप से विचार करने पर वह एक ऐसा क्षेत्र जान पड़ता है जहां संसार की प्रति-क्रियावादी शक्तियां, जो जावा तथा इंडो-चीन में एक हो गई हैं—अपने आन्तरिक विरोधों के फलस्वरूप विच्छिन्न हैं। यहाँ पर वे साम्राज्यवादी शोषक शक्तियाँ जो तेल, वायु-मार्गों तथा 'सांस्कृतिक हितों', इत्यादि भिन्न भिन्न साम्राज्यवादी बहाने लेकर जिनपे हम सुपरि-चित हैं—अपना पंजा फैला रही हैं, उनके उद्देश्यों में संघर्ष पैदा हो गया है। इसने इन देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों को एक अनुपम अवसर प्रदान किया था, यदि ये इराक़ के रशीद अली, ईरान के रज़ाशाह तथा जेरूसलेम के ग्रान्ड मुफ़्ती की तरह कोई सैद्धान्तिक ग़लती न करते। इस प्रकार लेबनान में फ्रांसीसी साम्राज्यवाद या 'दि-गाल-वार' की करारी हार हुई जिसका श्रेय बहुत अंशों में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को है, जो इस आशा से कि इस प्रकार वे निकट-पूर्व के देशों तथा अरब और पूर्वी भूमध्य सागर के देशों में उनके सरपरस्त के रूप में अपनी स्थिति को मज़बूत बना लेंगे राष्ट्रीय आन्दोलन की सहायता करते थे। अरब-लीग का यह उद्भव और उन्नति किसी भी अंश में ब्रिटिश सरपरस्ती के कारण नहीं हुई। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में यह संस्था मिस्र तथा अन्य अरब देशों में जिनको मित्र राष्ट्र 'मेन्डेट' (Mendate) अथवा 'प्रोटेक्टोरेट' (Protectotrate) के नाम से अपने अधिकार में किये हुए थे धुरी-राष्ट्रों के प्रभाव को रोकने का केवल एक प्रयत्न मात्र थी। किन्तु यही अरब लीग समय पर निश्चित रूप से उन्हीं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध एक शक्ति के रूप में प्रादुर्भूत होगी। इस समय फिलिस्तीन तो भगोड़े यहूदियों और बाशिन्दा अरबों के लिये उनके भाग्य में लिखा एक मात्र देश बन गया है, यह भी साम्राज्यवाद की कृपा है क्योंकि अमेरिकन साम्राज्यवादी यहूदियों का पक्ष लेते हैं तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी अरबों की तरफ़दारी करने को बाध्य हैं। यह अरब-यहूदी समस्या भी पिछले महायुद्ध के पश्चात अपने पुराने तरीक़ों के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा बनाई गई समस्या है। आज अमेरिका की यूनाइटेड स्टेट्स उसी यहूदी आन्दोलन की तरफ़दार को केवल फिलिस्तीन अरबों के विरुद्ध ही नहीं, वरन् ब्रिटेन के विरुद्ध भी काम में ला रही है, और उसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये—अर्थात निकट-पूर्व में उनका व्यापारिक तथा सामरिक प्रभुत्व बना रहे। फ्रांस भी इस दृश्य में रशीदअली को अवतारण कराकर कुछ बदला चुका लेता है, और अरब-लीग शायद ग्रान्डमुफ़्ती का अपने सभापति के रूप में स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रही है। प्रतिक्रियावाद के आन्तरिक विरोध आज भी जबकि फ़ासिज़्म का मुख्य आधार नष्ट हो चुका है जैसा कि हम देखते हैं—उसमें सरलता से कोई समझौता नहीं होने देते। और यही तो निकट-पूर्व की जनता को अवसर मिलता है। यदि भूमध्य सागर की दुनिया में सोवियत रूस किसी अवनत इटालियन उपनिवेश के संरक्षक के रूप में प्रवेश करता है, तो औपनिवेशिक जनता के हित में एक बहुत बड़ी शक्ति उस क्षेत्र में अपना आसन जमा लेगी।

चीनी समूह

एशिया में चौथा बड़ा समूह उन देशों का है जिनमें चीन मुख्य है। जापान की पराजय से और सोवियत रूस की सुदूर पूर्व के युद्ध में शामिल होने से वे अपनी स्वाधीनता के मार्ग पर पहुंच गये हैं। सोवियत के इस प्रवेश से बढ़कर ग़लतफ़हमी और किसी बात से नहीं हुई। किन्तु हमें निराशा ही हुई क्योंकि सोवियत ने युद्ध के समय में फ़ासिस्टों के शत्रु मित्र-राष्ट्रों से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया, और युद्ध के बाद भी इन बड़ी बड़ी शक्तियों से वह सम्बन्ध तोड़ने को तैयार नहीं। किन्तु परिस्थितियों के अनुकूल उसने सर्वप्रिय प्रणालीपूर्वक शक्तियों को अपने उपकरणों को एकत्रित करने में मदद देने की चेष्टा की। पोलैण्ड और बालकन में लाल योजनाओं की कहानियों से भी हमारी निराशा ही बढ़ी। हमारा क्रोध और भी भड़का जब कि वे ही लाल योजनाएँ यद्यपि युगोस्लेविया में काम में लाई गईं किन्तु ग्रीस में नहीं। और जब कि मोलोटोव ने सेन फ्रेन्सिस्को कान्फ्रेंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भारत तथा अन्य उपनिवेशों और उनकी स्वाधीनता के प्रश्न पर रोष प्रकट किया और बड़ी शक्तियों के 'सीटों' का अधिकार अक्षुण्ण रखने पर धमकी दी। हम एंग्लो-अमेरिकन प्रोपेगेन्डा के अनुसार यही समझते रहे कि यह छोटी शक्तियों पर सोवियत रूस का आक्रमण है न कि पुरानी लीग आफ़ नेशन्स (राष्ट्र-संघ) के ढंग की सरमायेदार शक्तियों पर। अन्यथा ब्रिटेन उस ४९ सदस्यों की यूनाइटेड-नेशन्स संस्थान में से भारत, इराक़, ट्रान्सजोरडेनिया प्रभृति लगभग एक दर्जन सदस्यों को तथा यूनाइटेड स्टेट्स दक्षिणी अमेरिका के बीस वा इससे भी अधिक राष्ट्रों को युद्ध या शान्ति के फ़ैसले में अपनी ओर मिला लेते और उन पर हावी हो जाते। हमने सोचा कि इस सबके ख़िलाफ़ एक बात ही काफ़ी है—चूंकि विजेता सोवियत ने हमारे राष्ट्र की स्वाधीनता के लिये हथियार-बन्द सेनाओं के द्वारा कोई क़दम नहीं उठाया इसलिये हमने समझ लिया कि कोरिया मंचूरिया तथा भीतरी मंगोलिया में 'लाल-साम्राज्यवाद' का बोलबाला हो गया है। तथा सारे चीन में आम तौर पर उनकी हुकूमत है। जापान ने जिस दिन आत्म-समर्पण किया, ठीक उसी दिन सोवियत-चीन संधि पर हस्ताक्षर हुए। उसकी शर्तें विलक्षण रूप से कोरिया के हित में तथा भीतरी मंगोलिया के आत्म-निर्णय और मन्चूरिया समेत एक संगठित चीन के पक्ष में थीं। १९१७-१८ के क्रान्तिकारी सोवियत की नीति-जिसने चीन और ईरान को वे क्षेत्र लौटा दिये थे, जो ज़ार-कालीन रूस ने उनसे छीन लिये थे—वही नीति विजेता सोवियत के द्वारा अभी १९४५ में भी काम में लाई जा रही थी। फासिज़्म का विनाश करने के बाद लाल सेनाएँ अब स्वाधीनता के युद्ध में अपना जौहर दिखा-कर (जहां तक उस समय की परिस्थितयों में संभव था) अपनी भूमि को वापस लौट रही थी। वास्तव में, हमें इतना गुमराह कर दिया गया कि हम भूल गये कि किसने हांग-कांग से हटने से इन्कार किया था, और चीन ईरान के तेल-क्षेत्रों और उसके भविष्य पर प्रभुत्व जमाना चाहता था; और हमें भय पैदा हुआ कि चीन के बेचारे कमूनिस्टों को मास्को वाले नेताओं ने मंझधार में छोड़ दिया है। यदि 'लाल नेता' देर लगाते थे, तो हमें उसमें लाल साम्राज्य की झलक मिलती थीं, और यदि वे उन क्षेत्रों को जनता के स्वाधिकार पर छोड़कर हट जाते थे तो इसमें हमें संसार में क्रान्ति के प्रति उनकी धोखेबाज़ी दिखाई देती थी, और यह सब एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवादियों के इशारों पर हो रहा था। हम इस प्रकार प्रतिक्रियावादियों के प्रोपेगेन्डा के शिकार थे।

सोवियत का पार्ट

हमें इस तथ्य को पहचानना है कि एशिया के देशों की जनता जो भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे के निकट थी और जिसने युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर सोवियत प्रभाव अथवा हस्तक्षेप को स्वीकार किया, वे उस शक्ति के बल पर आज एक नवीन भाग्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। अब इस नये ज़माने में अपनी भाग्य विधि को बनाना, चीन, कोरिया और मंगोलिया आदि देशों में जनता के अपने हाथ की बात है। यह उनकी राजनैतिक चेतना तथा शक्ति पर निर्भर करता है। एशियाई देशों के अन्य समूहों के लिये, सुदूर-पूर्वीय भारतीय तथा अरब देशों की जनता तथा सोवियत के बीच में इन देशों में स्वाधीनता के युद्ध का प्रसार करने की राह में बहुत सी गाथाए थी, और न कभी सोवियत ने ही क्रान्ति को दूसरे देशों में भेजने का विचार ही किया था। प्रत्येक देश में राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन प्रगतिशील शक्तियों की सहानुभूति का पात्र होता है, विशेषकर सोवियत का—किन्तु इन आन्दोलनों की सफलता उस समय भी जब कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ इतनी सहायक हों, तब भी आन्दोलनों की अपनी शक्ति तथा जनता की चेतना, सही नीति व्यूह रचना-कौशल तथा यह युद्ध विद्या नैपुण्य पर निर्भर करती है। युद्ध-पूर्व के काल में सोवियत यूनियन का अस्तित्व पूर्व की पीड़ित और दलित जातियों के लिये, और विशेषकर एशियाई जनता के लिये साहस का प्रतीक था, और यह मध्य-एशिया के राष्ट्र, जब वे स्वतन्त्र राज्य बन गये और उन्होंने सोवियत का अर्थ समझ लिया तो स्वेच्छा से उस यूनियन में सम्मिलित हो गये। विश्वव्यापी महायुद्ध में सोवियत यूनियन की विजय का अर्थ है कुछ और एशियाई देशों की स्वाधीनता, और अब यह चीन की प्रजातन्त्रीय शक्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा ईरान के नवीन ट्रेड-यूनियन आन्दोलन का काम है कि वे अपने आज़ादी की लड़ाई लड़ें और सोवियत विजय के फलस्वरूप जो परिस्थितियाँ पैदा हो गई हैं उनसे फ़ायदा उठायें। यह काम तो जनता का है, इसका अर्थ स्पष्ट है कि—सोवियत को प्रारम्भ से ही एशिया की दलित जातियों को स्वतन्त्र करने की इच्छा थी और उसके उत्थान के साथ १९१७ में वह कार्यान्वित हुई, तथा १९४४-४५ के इस युद्ध में भी उन्होंने और अधिक ऐशियाई देशों को मुक्त होने में मदद दी, और भावी युग में भी, एशिया की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में (क्योंकि यह सत्य है, और इस सत्य को पश्चिम के शासकों को भी नहीं भूलना चाहिये कि सोवियत सबसे बड़ी एशियाई शक्ति भी है) अधिकाधिक परिमाण में वह एशियाई देशों के लिमें मुक्ति दाता शक्ति होगी—ठीक उसी प्रकार जैसे कि इस महायुद्ध के पश्चात वह योरप के देशों के लिये एक मुक्ति-दाता शक्ति साबित हुई है।

इस परिस्थिति की महत्ता अभी देखने को बाक़ी है। प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध के अन्त में, सोवियत को व्यापारिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों की दृष्टि से शेष संसार से अलग कर दिया गया। किन्तु सोवियत फिर भी ज़िन्दा रहा, क्योंकि क्रांति की प्रेरणा समर्पण करना नहीं जानती, और उसके पास अपने निर्माण के लिये दुनियां का छठा भाग था। आज १९४४-४५ में सोवियत ने पुराने घेरे और बन्धन तोड़ दिये हैं, सारे यूरोप में पुराने शत्रु पराजित हो गये हैं (यद्यपि अभी वे समूल नष्ट नहीं हुए), और सर्वप्रिय मोर्चों वाली मित्र-शक्तियाँ शक्तिशालिनी हो गई हैं। यूरोप, जो बहुत कुछ अंशों में संसार की शान्ति और युद्ध का विधायक है, अब प्रगति के मार्ग पर बढ़ रहा है यद्यपि प्रतिक्रिया वादी उसकी राह में बाधाएँ उपस्थित कर रहे हैं, और अन्त तक करते रहेंगे। द्वितीय महायुद्ध की क्रान्ति के परिणाम वहां दृष्टिगोचर हो रहे हैं, और होंगे, क्योंकि यूरोप के लोग ऐशियाई जनता की अपेक्षा अपने चारों ओर की शक्तियों के प्रति अधिक सजग और सचेतन थे। ऐशियाई लोग उनकी तुलना में अभी कम जाग्रत हैं, और इसलिये आज भी यूरोपियन साम्राज्यवादियों के शिकार हो रहे हैं।

संघर्ष यहां है

संसार एक है, और एशिया की दुर्बल प्रगतिशील शक्तियों के ऊपर प्रतिक्रियावादी शक्तियों की विजय यूरोपीय प्रगतिशील शक्तियों तथा आमतौर पर सारे संसार के लिये बहुत बुरी होगी। यद्यपि इस युद्ध के कारण प्रत्येक देश में, ब्रिटेन, फ्रांस और हालैण्ड तथा यूनाइटेट स्टेटस में भी जन-मत में परिवर्त्तन हो गया है, और वहां की जनता अब इस बात को समझ गई है। उपनिवेशों से जो भारी लाभ उनको होता था उसके बिना उनके जीवन का मान शायद नीचा नहीं हो जायगा; दूसरे, वे अपनी समस्याओं में ही इतने अधिक उलझे हुए हैं, कि उनको हज़ारों मील दूर दूसरे लोगों की समस्याओं पर विचार करने का अवकाश ही नहीं है। अतएव, फ्रान्सीसी सरकार में वाम-पक्ष की प्रधानता होते हुए, तथा ब्रिटेन में लेबर केबिनेट होते हुए भी इन शासकों की वह पुरानी साम्राज्यवादी नीति अब भी काम में लाई जा रही है—और टैन्कों, बमों, तोपों, गोलों, शहरों पर बमबाज़ी (जो कि ऐशिया के एक बड़े भू-भाग पर की जा रही है)—इत्यादि के द्वारा उस नीति को मनवाने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रति-क्रान्ति (Counter Revolution) एशिया में अपनी स्थिति संगठन में संलग्न है, ताकि यूरोप में परवर्त्ती क्रान्ति का सामना कर सके। अतः यहां प्रगति के लिये संघर्ष जारी है। ब्रिटिश और फ्रांसीसी मजदूर दलों का भाग्य भी अधर में लटक रहा है। अब यह हम एशियावासियों का काम है कि युद्ध और उसके प्रलयावशेष के वास्तविक अर्थ को समझें। द्वितीय महायुद्ध ने स्वतन्त्रता और क्रान्ति की शक्तियों को आज़ाद कर दिया है; मोटे तौर पर संसार की प्रगति में एक मोड़ को पार कर लिया गया है। हम इसे विशेष रूप से यूरोप की परिस्थिति में देख सकते हैं। एशियाई देशों की जनता अभी अचेतन तथा कुछ अंशों में स्थर है, और उसे अभी बहुत मंजिल तय करनी है; और वह ऐसा करने में तभी समर्थ होगी जब कि वह प्रगतिशील शक्तियों के साथ रहे और सही नीति, सही व्यूह-रचना तथा तरीक़ों से अपने राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलनों का संचालन करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी का भविष्य

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०

विश्व-विजय का स्वप्न देखने वाले हिटलर और गोयरिंग का जर्मनी आज एक पराजित राष्ट्र है। हिटलर को पता नहीं ज़िन्दा है या मर गया और उसके स्वप्न भी उसीके साथ दफ़न हो गये, पर गोयरिंग आज भी न्यूरेमबर्ग की अदालत में अपने कर्मों का दण्ड भोगने के लिये फैसला सुनने की प्रतीक्षा में जीवित है।

किन्तु इन नेताओं को छोड़कर जर्मनी का और जर्मन राष्ट्र का भविष्य में क्या होगा? मित्रराष्ट्रों ने मिलकर पोट्सडेम कान्फ्रेंस में उसके भाग्य का फ़ैसला कर दिया है। ट्यूटानिक जाति के इस महाप्राण वर्ग को वे चरवाहों की जाति बना देना चाहते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि जर्मनी का दोष था, और वह जाति जो संसार में दो महायुद्धों का कारण बनी, उसे शक्तिशाली रूपकर जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, फिर भी उसे एकदम से निःशस्त्र करके तथा उसके धन और उत्पादन के साधनों को नष्ट करके उसे नितान्त पंगु और हीन बना देना शायद मित्रराष्ट्रों के हक़ में बहुत अच्छा न होगा। चूंकि जर्मनी आज पराजित है, इसलिये उस पर मनचाही शर्तें लादी जा सकती हैं। किन्तु राष्ट्रों का प्रण है कि वे उसे इस योग्य नहीं छोड़ेंगे कि वह फिर भविष्य में कभी विश्व-शांति को ख़तरे में डाल सके। अतः उसे आर्थिक दृष्टि से पंगु और मुर्दा बना देना आवश्यक है ताकि वह कभी खुलकर सांस भी न ले पाये। औद्योगिक उत्पादन के उसके सारे साधन छीन लिये जायेंगे तथा उसके अन्य साधन भी ज़ब्त करके देश की आर्थिक अवस्था का पूर्ण विकेन्द्रीकरण कर दिया जायगा। विश्व की शान्ति को सुरक्षित रखने एवं अलक्षित रूप से एक आर्थिक जगत के बड़े रक़बे को पछाड़ने के उद्देश्य से यह सब किया जायगा।

पोट्सडेम कान्फ्रेंस की शर्तों की महत्ता को जानने के लिये जर्मनी की युद्ध-पूर्व की स्थिति पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। एवं उस समय के यूरोप की आर्थिक अवस्था का ज्ञान भी आवश्यक है। यूरोप, रूस को छोड़कर संसार के एक तिहाई से भी अधिक व्यापार पर अधिकार किये बैठा था। वह संसार का सबसे महत्व-पूर्ण व्यापारिक भूभाग था, जिसने ब्रिटेन तथा अमेरिका के भी चौथाई व्यापार पर अधिकार जमा रखा था। किन्तु इस सारे चक्र का मूलाधार जर्मनी था। यदि अंकों को लेकर चलें, तो यूरोप के व्यापार का $\frac{1}{5}$ भाग उसके अधिकार में था, किन्तु आर्थिक दृष्टि से उसका महत्व और भी अधिक था। वह संसार की व्यापारिक जातियों में तीसरे नम्बर पर था, फ्रांस तो उससे बहुत पिछड़ा हुआ था। अतएव उसकी औद्योगिक व्यवस्था का नाश, संसार की व्यापार सम्पन्नता तथा लोगों के जीवन मान के लिये हानिकारक सिद्ध होगा। इससे स्थिर आर्थिक सन्तुलन को क़ायम रखने में गड़बड़ी होगी, और फल-स्वरूप वह विश्व-शान्ति के लिये एक ख़तरा बना रहेगा। यदि मित्र राष्ट्र उसे केवल एक कृषिप्रधान देश के रूप में ही जीवित रखना चाहते हैं, तो उन्हें सदैव उस पर एक उपनिवेश की भाँति शासन करना होगा।

किन्तु यदि इसे सम्भव भी मान लिया जाय, तो प्रश्न उठता है कि यह व्यवहारिक रूप में कैसे सफल हो सकेगा? युद्ध के पूर्व जर्मनी की जन संख्या सात करोड़ थी। किन्तु अपने यहां कृत्रिम खाद का उत्पादन बढ़ाकर उसकी सहायता से वह अपनी खाद्य-सामग्री का ८३ प्रतिशत भाग देश में ही उत्पन्न कर लिया करता था। बड़े परिमाण में कृत्रिम वैज्ञानिक खाद का उपयोग लगभग १३० kg प्रति हेक्टर अधिक पैदावार होने का मुख्य कारण था। किन्तु यह खाद तो लोहे और इस्पात के उद्योग से प्राप्त होती थी। अधिकतर स्लैग (Slag) जिससे फासफेट की खाद तथा नाइट्रोजन युक्त खाद बनती थी लोहे से ही निकलता था। जर्मनी के अन्य विशाल कारखाने भी इसमें सहायता करते थे। किन्तु अनुद्योगीकरण की योजना में ये सब नष्ट कर दिये जायंगे। खाद न मिलने से पैदावार कम हो जायेगी। साथ ही उद्योगों के कारण खाद्य पदार्थों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांग ही तो कृषि की उन्नति का मुख्य कारण थी। इस प्रकार उसे दोनों ओर से हानि सहनी पड़ेगी। मन्दी का बाज़ार उसे और भी पेंदे में बैठा देगा। और फिर सबसे बढ़कर बात यह होगी कि जर्मनी का कुछ भाग काटकर रूस को दे दिया जायगा। तब जर्मनी जीवित कैसे रहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक है कि उसे आवश्यक आयात व्यापार की सुविधाएं दी जायेंगी, पर उनके दाम तो उसे देने पड़ेंगे। किन्तु यह समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की घाटे में चलने वाली कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था उनका दाम कैसे चुकायेगी, जबकि उसके सारे उद्योग नष्ट हो जायेंगे, और औद्योगीकरण पर रोक लगा दी जाएगी। अतः यह स्पष्ट है कि पोस्ट्डेम कान्फ्रेन्स में निश्चित की गई यह आर्थक नीति पिछले महायुद्ध के बाद हुई वार्साई की सन्धि से कम भयंकर नहीं होगी। साफ़ शब्दों में इसका मतलब यह है कि यदि मित्रराष्ट्र चाहते हैं कि जर्मनी को एक कृषि प्रधान देश बनाकर संसार में शान्ति क़ायम रखें तो उन्हें जर्मनी के लिये अपने भोजन में से कुछ दान करके उसकी क़ीमत चुकानी पड़ेगी, अन्यथा बहुत संभव हो सकता है कि जर्मनी फिर किसी दूसरे प्रकार की अराजकता का शिकार हो जाये।

अतएव यह आवश्यक है कि जर्मनी पर यह जो ग़रीबी जबर्दस्ती लादी जा रही है इसका परिणाम क्या होगा, उसे अच्छी तरह सोच लिया जाये। कुछ आंकड़ों से जर्मनी की परिस्थिति स्पष्ट हो जायेगी। १९३६ में कुल राष्ट्रीय आय लगभग ६४.९ मिलियार्ड रीशमार्क हुई, जिसमें से लगभग ३४.२ मिलियार्ड रीशमार्क—अर्थात आधी से अधिक—बड़े उद्योगों के उत्पादन के फलस्वरूप थी। उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के साथ न केवल यह आय नष्ट हो जायगी, वरन इनसे सम्बन्धित व्यापार तथा यातायात के धन्धे भी बन्द हो जायंगे, और उनसे होनेवाली आय का स्रोत भी बन्द हो जायगा। सेनाएं जिनमें देश की १७ प्रतिशत जनता थी, अब बहुत कम कर दी जायेंगी, और इस प्रकार जन-संख्या का एक बहुत बड़ा भाग बेकार हो जायेगा। एक औद्योगिक देश ही अपनी आवश्यकताओं के लिये सुव्यवस्थित, ख़र्चीली, विशाल सेना रख सकता है तथा उसका भार सहन कर सकता है। तब भला कृषि प्रधान जर्मनी अपनी विशाल जन-संख्या का पालन किस प्रकार करेगा। युद्ध के पूर्व जर्मनी में जंगलात में काम करने वालों तथा मछुओं को मिलाकर कृषि पर ४० लाख से भी कम जनता अपनी गुज़र बसर करती थी। यदि हम इनमें उनके परिवारवालों की संख्या भी जोड़ दें तो भी यह संख्या ८० लाख से अधिक नहीं हो सकती, जबकि जर्मनी की आबादी ७ करोड़ मिलियन है। मित्र राष्ट्र किस प्रकार इतनी बड़ी जन संख्या से कहने का साहस कर सकते हैं कि 'जाओ, और भूमि से अपना भोजन मांगो'। जर्मन लोग ईसा के मेमने नहीं हैं, जो यह सब होने देंगे, अथवा बहुत दिनों तक इसे चुपचाप सहते रहेंगे। जर्मन जाति संसार की महान और वीर जातियों में से है, और अब तो हिटलर ने उनमें अपूर्व आत्माभिमान का भाव भर दिया था। वह पालतू बकरियों की भाँति बाड़े में बन्द करके, बहुत दिनों तक भूखी नहीं रखी जा सकती। जर्मनी की मुद्रा तथा करेन्सी की इस समय बड़ी बुरी दशा है भिन्न भिन्न राष्ट्रों द्वारा अधिकृत भिन्न भिन्न प्रदेशों में उन्होंने अपने नये मार्क (जर्मनी का सिक्का) प्रचलित कर दिये हैं। जर्मनी का मार्क रीशमार्क कहलाता है, किन्तु अब 'सोवियत् मार्क' और 'अमेरिकन मार्क' भी खूब चलते हैं, तथा इनकी विनिमय की दर रीशमार्क से ऊँची है। रीशमार्क का मूल्य घट गया है तथा घटता जा रहा है। जनता में उसका साख उठती जा रही है। उन पर बट्टा लगने लगा है। इस प्रकार करेन्सी अत्यन्त अव्यवस्थित अवस्था में है, जिसके परिणामस्वरूप व्यापार-वाणिज्य में असुविधा होती है। जब तक यह समस्या हल नहीं होती, जर्मनी के आर्थिक पुनर्निर्माण का प्रश्न यों ही पड़ा रहेगा।

संक्षेप में इस समय जर्मनी की आर्थिक अवस्था बड़ी दुर्दशामय है, युद्ध-पूर्व के मूल्य एवं मान तो बिल्कुल भिन्न हो ही गये हैं; मुद्राआस्फालन खूब ज़ोरों पर है, आय का वितरण वैषम्यपूर्ण तथा अव्यवस्थित हो गया है—मज़दूरों को काम पर रखने और उचित मज़दूरी देने की नीति निर्धारित नहीं है। जर्मनी ही नहीं सभी स्वाधीन योरप के देशों में यही रोना है। इन समस्याओं के समाधान के लिये मनीषी विद्वान तरह तरह के उपाय सोच रहे हैं। पर वे कितने सफल होंगे, यह केवल भविष्य ही बतला सकेगा।

किन्तु इस अन्धकार में भी आशा की एक किरण दिखाई देती है। मित्रराष्ट्र जर्मनी के आर्थिक संगठन को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहते। वे उसे भविष्य में युद्ध के लायक सबल नहीं होने देना चाहते, पर उसको उसे सदा अपने आधीन रखने का इरादा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं कि एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन जर्मनी में क़ायम किया जाय, और उनकी आधीनता में एक नाम मात्र की केन्द्रीय सरकार कार्य-भार संभाले। उन्होंने यह भी घोषणा की है कि उनका इरादा जर्मन जाति को नष्ट कर देने, या उसे सदा के लिये गुलाम बनाकर रखने का नहीं है। इसीलिये वे केवल जर्मनी के साज़ो-सामान को वहां से हटा रहे हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन काल में विजेता लोग सोना लूटकर ले जाया करते थे। वे जर्मनी को फिर एक मौक़ा देना चाहते हैं कि वे अपने पैरों पर खड़े हों और यदि प्रजातन्त्र और शान्ति के सिद्धान्तों के अनुसार चलें तो संसार के राष्ट्रों में अपना स्थान प्राप्त कर लें। इसमें समय अवश्य लगेगा, परन्तु जर्मनी का पुनर्जागरण निश्चित है। किन्तु यह कौन कह सकता है फिर किसी हिटलर का उदय नहीं होगा, क्योंकि हिटलरवाद या फ़ासिज़्म तो मित्रराष्ट्रों की कूटनीति तथा ब्रिटेन की व्यापारिक नीति का ही परिणाम था। अतः संसार में शान्ति क़ायम रखने के लिये न केवल जर्मनी में ही राजनैतिक तथा आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता है, वरन मित्रराष्ट्रों के लिये भी अपनी राजनैतिक तथा आर्थिक नीति में आमूल परिवर्त्तन और एक प्रकार के नैतिक कायाकल्प की आवश्यकता है। सही एक मार्ग है, जिस पर चल कर संसार की रक्षा हो सकती है। अन्यथा भविष्य के गर्भ में अभी पता नहीं कितने महा-युद्ध छिपे रहेंगे।

——

जीवन का मोल

श्री नरेशचन्द्र वर्मा 'नरेश'

करोगे क्या जीवन का मोल
बना जीवन है साँध्य - सुमन;
विहँसता पी-पीकर दुख - दर्द
तड़प रह जाता व्याकुल मन—
कि छू लूँ अरुण-अरुण रवि-रश्मि
चूम लूँ अस्तप्राय जीवन;
कि जिसमें छिपा बीज-सा सत्य
मरण में हँसती आदि किरण!

और इन दोनों के ही बीच
ध्वंस का गूँज रहा नव राग,
और उसकी ध्वनियों पर थिरक
नाँच नवयुवक मनाते फाग—
रक्त से रंजित, हो उन्मत्त
अरुण पश्चिम-पूरब भू-भाग,
जला जाता स्वदेश निर्दोष
जल रही कहीं प्रलय की आग!

हृदय में उठते हैं तूफ़ान
लौट जाती आ-आकर क्रांति,
विश्व-हलचल में दब सो रही
नींद-सी मीठी-मीठी शान्ति,
मौन, विस्मय-विमुग्ध हिय त्रस्त
खोजता पथ-दर्शक-संकेत,
निछावरकर जिस पर अस्तित्व
नष्ट कर दें जग-जीवन भ्रांति।

और तुम करते जीवन-मोल
अरे यह जीवन है अंगार,
आँख दिखलाना कब सहनीय
नयन खुल जाय, जले संसार,
बन्द आँखें हैं, हम सो रहे
खो रहे जग में बाजी हार,
जागरण-गान बना मधु-गीत
लुटाता वह असमय में प्यार।

और तुम आंक रहे कवि-सत्य!
ज्ञान से भाव रहे हो तोल!
झोपड़ी रो-रोकर मिट रही
महल के सुनते स-र-ग-म बोल;
शब्द हैं कभी वज्र टंकार
और मधु मिसरी के भी घोल;
बता सकती न भारती स्वयं
कि क्या कवि के जीवन का मोल?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप के यहूदियों का भविष्य

श्री फ़िल पिराटिन एम० पी०

इस युद्ध की प्रमुख दुर्घटनाओं में यूरोप के अन्दर यहूदियों की बरबादी भी एक है। यहूदियों का मसला कई बरसों से चला आता था और अन्त में वह युद्ध के कारणों में से एक बन गया।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि जंग के दौरान में और उससे पहले क़रीब साठ लाख यहूदी मारे गए, और लगभग पन्द्रह लाख इधर उधर यूरोप भर में तितर-बितर हो गये।

जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली के विभिन्न कनसण्ट्रेशन कैम्पों में लगभग अस्सी हज़ार यहूदी छिटके हुये पड़े थे। अब जंग के बाद सवाल उठता है कि आख़िर यूरोप के यहूदियों का भविष्य क्या होगा—उनका हश्र क्या होगा?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यूरोप से नाज़ीवाद के ख़त्म हो जाने के बाद भी वहां उसका कुछ न कुछ तो असर होगा ही फिर भी मध्य और पूरबी यूरोप में, जहां ख़ास तौर पर यहूदी अधिक संख्या में रहते हैं, नए प्रजातन्त्रात्मक राज्य स्थापित हो रहे हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य हर प्रकार के ज़ुल्म और अत्याचार को मिटाना है। इन देशों में फिर से प्रजातन्त्रात्मक राज्य क़ायम हो रहे हैं और साथ ही आर्थिक मामलों में भी परिवर्तन हो रहे हैं जिनसे मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा सुख और शान्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार की ख़बरें यहूदियों के सुखमय और शान्तिमय भविष्य की ओर निस्सन्देह संकेत करती हैं।

यहूदी लोग जिन्होंने कि सैकड़ों साल से विपरीत प्रतिक्रियाओं का मुक़ाबला किया हो और फ़ासिस्टवाद का उसके आरम्भ से ही विरोध किया हो, आज उनके लिये यह बात अति आवश्यक है कि जिस देश में उन्हें सम्मान प्राप्त हो वहां वे अपनी सारी शक्ति एक ऐसे राज्य के स्थापित करने में लगा दें कि जो फासिस्टवाद का विरोधी हो।

इस समय भी यूरोप में अस्सी हज़ार यहूदी ऐसे हैं कि जिन्हें अपने घरों और देशों में लौटने की सुविधा नहीं मिली है। अभी तक यह संख्या प्राप्त नहीं है कि कितने यहूदी किस राष्ट्र के हैं, तो भी ऐसा अनुमान किया जाता है कि अधिकांश यहूदी जर्मन और आस्ट्रियन हैं और कुछ पोलेण्ड, बालटिक और बलकान आदि देशों के हैं।

बजाय इसके कि यहूदियों की बुरी हालत का ख़्याल किया जाए और उनके दुःखों को दूर करके उन्हें फिर उनकी पूर्वावस्था में लाने की कोशिश की जाय अंग्रेज़ और अमरीकन मिलिटरी अफ़सरों ने (जो कि स्वयं इस बात के लिये ज़िम्मेदार थे) उनके साथ दुर्व्यवहार किया। उनके व्यवहार में इनके प्रति तनिक भी सहानुभूति और सहृदयता न थी।

मुझे विश्वसनीय सूत्र से ख़बरें मिली हैं कि आज जर्मनी में लोगों में यह बातचीत का आम विषय है कि हिटलर ने यहूदियों को देश से निकालकर बहुत ही अच्छा काम किया। फिर भी इसके ख़िलाफ़ कोई भी किसी क़िस्म का प्रोपेगेण्डा नहीं हो रहा है। ऐसी भी मिसालें हैं जिसमें कि अंग्रेज़ी फ़ौजी सरकार द्वारा जर्मन यहूदियों को निकालकर नाज़ियों को नौकर रखा गया है। ऐसे भी वाक़ए हैं कि जिसमें यू० एस० गवर्नमेण्ट कोर्ट ने एक स्थानीय अफ़सर के हुक्म को रद्द कर दिया जिसने कि एक कंसण्ट्रेशन कैम्प से छूटे हुए यहूदी को स्थान देने के लिए एस० एस० के आदमी के कुटुम्ब को किसी मकान के किसी तल्ले से क़ानूनी तौर पर निकाल दिया था।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि इस हुकूमत में नाज़ियों ने अपने संगठन द्वारा यहूदियों के विरुद्ध प्रदर्शन किये और फलस्वरूप उनकी हिम्मतें भी ख़ूब बढ़ गईं।

युद्ध के कारण जो यहूदी दुनिया के भिन्न भिन्न देशों में भाग गए उन्होंने वहीं पर अपने सामाजिक तअल्लुक़ात बढ़ाने आरम्भ कर दिये, और उन देशों की सरकारों के लिये उन्हें फुसलाकर या उनके विश्वास को जीतकर उन्हें उनके पुराने देशों में वापस भेजना नामुमकिन हो गया।

दूसरी तरफ़ ज़िआनिस्ट प्रोपेगेण्डा (यह कि फ़िलिस्तीन को सम्पूर्ण रूप से यहूदी राज्य बना दिया जाय—अनुवादक) इस समय परिपूर्ण हो चुका है। उनका दावा है कि क़रीब ६०,००० यहूदी फ़िलिस्तीन आना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात के समझने में मुशकिल नहीं होनी चाहिये कि कुछ यहूदी इतनी तक्लीफ़ें झेलने के बाद भी अपने पुराने देशों को क्यों नहीं जाना चाहते। कुछ दिनों बाद जब कि सब बातें ठीक हो जाएं, यहूदी अपनी पूर्व अवस्था में आ जाएं तो शायद अपनी जन्म भूमि जाने के बारे में वे अपना इरादा फिर बदल दें। यहूदी आन्दोलनकारियों का कहना है कि उनका अन्तिम लक्ष्य है मध्य और पूर्वी यूरोप के नए प्रजातन्त्रात्मक राज्यों को बढ़ावा देना, उनकी हर तरह से सहायता करना, ताकि इन देशों के यहूदी राष्ट्रवादी एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में अपना पूरा पूरा सहयोग दे सकें।

ज़िआनिस्टों के इस तरह की ऊंचे दरजे की सम्भावनाओं को ठुकराने और सिर्फ़ फ़िलिस्तीन के मामले को ही हर मसले का हल समझकर उसी पर दृष्टि जमाए रहने से उन लोगों की ताक़त बढ़ रही है जो इन देशों में प्रजातन्त्रात्मक उन्नति को जड़ से उखाड़ना चाहते हैं।

हमारे लिये सबसे चिन्ता की बात यह है कि हम इधर उधर तितर-बितर यहूदियों को, जो शरीर और मस्तिष्क से अपना भविष्य सोचने के क़ाबिल नहीं हैं, यह अच्छी तरह आश्वासन दे दें कि अगर वे अपने पुराने देश में फिर बसें तो उन्हें हर प्रकार की सहायता जुटाई जाएगी।

साथ ही, जब कि यहूदियों को उनके पुराने देश में बसाने की कोशिश हो रही हो हमें उनके वहां पहुंचाने के लिये भी इन्तज़ाम करना चाहिये कि जो वहां जाने के लिये तैयार हों क्योंकि यह अच्छी तरह मालूम है कि कुछ ऐसे भी यहूदी हैं जो कि अपने पुराने देशों में बसने के लिये कभी नहीं जाएंगे।

कुछ ऐसे भी होंगे जो किसी और देश जाने के बजाय ले फ़िलिस्तीन जाना पसन्द करेंगे। यह शायद इसलिये कि वहां उनके रिश्तेदार रहते हैं या उन्हें अपनी रक्षा के लिये वहां अपने देशवासियों के साथ रहने में कहीं अधिक इतमीनान है अथवा वे राजनैतिक ज़िआनिस्ट हैं कि जिन्हें इस सपने के पूरे होने की उम्मीद है कि फ़िलिस्तीन में यहूदियों का राज्य स्थापित हो जायगा।

इन बातों को लेकर यहूदियों का सबसे ज़बर्दस्त प्रोपेगेण्डा है जो कि फ़िलिस्तीन और यहूदियों के भविष्य से तआल्लुक़ रखता है।

ज़िआनिस्ट लोग जो कि इस मत को लेकर खड़े हैं वह यहूदियों के एक अंश मात्र की ही नुमाइन्दगी करते हैं। वे फ़िलिस्तीन को एकमात्र यहूदी राज्य बनाने के अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये इन तितर-बितर और परेशान यहूदियों के नाम से लोगों की आम सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं।

अगर इस बात को हमारी पहले की कही बात के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन दोनों समस्याओं की विवेचना दो प्रकार से होनी चाहिये :

ज़िआनिस्ट लोगों का इस समय का यह बार बार कहना कि इधर उधर छिटके हुए परेशान यहूदियों की समस्या का एक ही हल है यानी सारे फ़िलिस्तीन के मामले का हल मेरी समझ में उनकी यह ज़िद, कुछ दिन बीतने पर दो में से किसी भी मसले को हल न कर सकेगी।

विदेश से यहूदियों के फ़िलिस्तीन में आने के प्रश्न का हल प्रजातन्त्रात्मक दृष्टि से वहां के लोगों के बीच हुए समझौते के आधार पर होना चाहिये।

फ़िलिस्तीन के भविष्य से सम्बन्ध रखने वाला जो बड़ा प्रश्न है वह सारे मध्य-पूर्व के प्रश्न से घिरा हुआ है और जिसका हल संयुक्त राष्ट्रों के निर्णय पर ही हो सकता है। इस समय यहूदियों के फ़िलिस्तीन में दाख़िल होने के लिये १,००,००० सनदों की एकतरफ़ा मांग का मतलब है विभिन्न देशों में पड़े हुए यहूदियों के साथ नाइन्साफ़ी और ज्यादती करना।

इन समस्याओं का हल निम्नलिखित रूप में हो सकता है :—

१—यूरोप में इधर उधर तितर-बितर यहूदियों के प्रश्न को ब्रिटिश और अमरीकन मिलिटरी अधिकारियों, और ख़ास ख़ास सरकारी अधिकारियों के हाथ सौंप देना चाहिये। इन लोगों में इंगलैण्ड और अन्य जनतंत्रात्मक यहूदी राज्यों के संगठनों के भी प्रतिनिधि शामिल होंगे।

इस काम को पूरा करने के लिये सरकारी अधिकारियों को यू० एन० आर० आर० ए० (यूनाइटेड नेशंस रिलीफ़ एण्ड रिहैबिलिटेशन ऐसोसिएशन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक) से मिलेगा ताकि वे इन यहूदियों के आराम, पढ़ाई और बसने का पक्का इन्तज़ाम कर सकें। अगर किसी को ऐसा महसूस हुआ कि जहां उसे जगह दी जा रही है वह उसके लिए ठीक नहीं है तो उसके लिए अधिकारियों को दूसरी जगह तलाशनी पड़ेगी।

२. जिन ब्रिटिश नागरिकों के सम्बन्धी यूरोप में पड़े हुए इन तितर-बितर यहूदियों और आश्रितों में हों उन्हें अपने सम्बन्धियों को बसने के लिये उचित स्थान मिलने के समय तक, अगर वह बुलाना चाहें तो बुलाने की आज्ञा दे दी जावे।

३. इन यहूदियों को फिर से बसाने के दौरान में इस बात का ख़ास ख़याल रखना चाहिये कि उन्हें इस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वह फिर अपने पुराने देश चले जांए।

मुझे पूरी आशा है कि जब यहूदियों को अपने पहले के देश की सही स्थिति मालूम हो जाएगी तो वे जरूर अपने पुराने देश चले जाने का इरादा कर लेंगे।

४. इन यहूदियों को ठीक से बस जाने के बाद यह यकीन दिला देना चाहिये कि अब वे जनतंत्रात्मक देशों में रहकर पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं।

वे यहूदी जो कि किसी भी हालत में फ़िलिस्तीन में बसने का इरादा रखते हैं उन्हें वहाँ के लोगों से मानवता के आधार पर बात करके जगह दिलवा देना चाहिये।

५. सरकार को चाहिये कि वह जल्द से जल्द अरबों और यहूदियों में एकता पैदा करे। और अगर ज़रूरत पड़े तो यहूदी और अरबों दोनों से सीधे सीधे परामर्श कर लें, और इस तरह संयुक्त राष्ट्रों के सहयोग से फ़िलिस्तीन के लिये एक ऐसे राज्य की रूप-रेखा तय्यार कर डालें जिससे दोनों जाति वाले मेल मुहब्बत से साथ साथ रह सकें।

मैं चला अमर विश्वास लिये

श्री उपेन्द्र

मैं ऊपर से पत्थर निर्भय पर किसलय-सा कोमल अंतर,
मैं शान्त जलधि की वेगवंत, बहती अबाध, उद्दाम लहर,
जो अभय मौत से जूझ चले मैं वह उन्मुक्त जवानी हूं,
लोहू में आग लगा दे जो मैं वह जलती क़ुर्बानी हूँ,
शाश्वत सुन्दरता का गायक पौरुष का किन्तु पुजारी मैं,
आंसू की कोमल लड़ियों में ही छिपी हुई चिनगारी मैं,
अधरों पर मृदु मुस्कान न, पीड़ाओं की जली निशानी है!
मेरा जीवन खुद संघर्षों की लम्बी एक कहानी है!

\+ \+ \+

यह नहीं कि मेरे जीवन में अरमानों के उद्गार नहीं,
यह नहीं कि मेरे अंतर में बहती करुणा की धार नहीं,
यह नहीं कि मेरी वाणी में प्रणयाकुल प्यार-पुकार न हो,
यह नहीं कि मेरे उर में सपनों का स्वर्गिक संसार न हो,
पर संघर्षों से लड़ते-लड़ते जीवन में लाचार हुआ,
इसलिए आज मेरा विद्रोही स्वर सहसा अंगार हुआ,
मैं मूक बढ़ा जीवन-पथ पर पीकर अरमानों की हाला!
मेरा वह 'मौन' मुखर सहसा विप्लव को बन दुर्दम ज्वाला।

\+ \+ \+

मैं वह दीपक, तूफानों में भी जो अविरल जलता आया,
मैं वह नाविक, उठती-गिरती लहरों पर जो बढ़ता आया,
जीने के लिए मरण से जो नित यहां जूझता जाता है,
मैं ज्योति-पुत्र, जो तिमिर-अंक से ऊर्ध्व विहंसता आता है,
है नहीं निराशा डिगा सकी मैं चला अमर विश्वास लिये,
रुक सके कभी ये पांव नहीं मैं बढ़ा अमिट उल्लास लिये,
तप की ज्वाला में जल-जलकर जीवन सोने-सा निखर गया,
मेरे लहू का कण प्रतिकण चिनगारी बनकर बिखर गया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातीय संघर्षों का केन्द्रः अफ़रीका

श्री वि० डे० हुब्बार्ड

अफ़रीका को समझने और उसके बारे में पूरी जानकारी हासिल करने के लिये हमें उसे हर पहलू से देखना होगा। ख़ाली अंग्रेज़ी उपनिवेशों और रियासतों पर ग़ौर करने से काम न चलेगा यद्यपि अफ़रीका के सभी उपनिवेश एक दूसरे से अलग छिटके हुए हैं फिर भी वे रेल, तार, नदियों, टेलीफ़ोन और मोटर लारियों आदि आधुनिक उपायों द्वारा एक दूसरे से मिला दिए गए हैं। आज से पचास साल पहले अफ़रीका को अन्धकारमय महाद्वीप (Dark Continent) कहते थे, लेकिन आज वह 'प्रकाशमय अफ़रीका' (Brightened Africa) है। वह आज बड़े वेग से तरक़्क़ी कर रहा है। उसका भविष्य महान और उज्ज्वल है। जिस जगह कि प्रारम्भ में चन्द साहसी शिकारी, मिशनरी और व्यापारी ही अपने क़दम रखते थे वहाँ आज अच्छे होटल, बिजली की रोशनी और बरफ़ की फ़ैक्ट्रियां हैं। सैर करनेवालों की टोलियां विक्टोरिया फ़ाल तक रेल-गाड़ियों में जाती हैं। एजेण्टों की सहायता से बड़ी बड़ी टोलियां केपटाउन से कैरो तक जाती हैं हालांकि उन्हें रेल, नाव, मोटर कार, स्टीमरों और हवाई जहाज़ों जैसी कितनी ही सवारियों से होकर जाना पड़ता है। अफ़रीका अब अन्धकारमय अफ़रीका नहीं रह गया। अन्धकारमय अफ़रीका तो ग़ायब हो गया। उसके बदले एक बिलकुल नया देश बस गया है।

इस विशाल महाद्वीप पर, जो कि समूचे यूरोप और उत्तरी अमरीका के बराबर है, क़रीब अट्ठारह करोड़ लोग रहते हैं जिनमें विभिन्न जातियों, धर्मों और विश्वासों के लोग शामिल हैं। वहां पर मुसलमान, ईसाई और अनगिनत विश्वासों वाले वहां के ख़ास निवासी रहते हैं। उन्हें क़ाबू में रखने के लिये पचास लाख भी गोरे नहीं हैं। इनमें से भी दस लाख दक्षिणी अफ़रीका में हैं।

गोरों का प्रवेश

अफ़रीका में इस थोड़े से अरसे में, इन मुट्ठी भर गोरों ने बड़ा काम किया है। उन्होंने वेल्स की खाड़ी के पास नेटाल की राजधानी केपटाउन से घुसना प्रारम्भ किया और फिर ज़ञ्ज़ीबार, मिस्र और कांगो, नाइगर और सेनिगल दरियाओं के मुहानों से वे अफ़रीका के अन्दर हर दिशा से घुसे। पहले पहल अन्दर घुसनेवालों में ग़ुलाम पकड़ने वाले, हाथी दाँत की खोज में फिरने वाले और अन्वेषक ही थे। उनमें से अधिकांश ज़ालिम और कठोर हृदय थे। वे वहां के निवासियों को पकड़कर उनसे निर्दयतापूर्वक बेगार लेते थे। वे उन्हें झुण्ड के झुण्ड को पकड़कर तेज़ चलनेवाले जहाज़ों में भरकर दूर देशों में बतौर ग़ुलामों के बेचने को भेज देते थे। हाथियों के शिकारी जिनमें कि न्यूमैन जैसे फ़ौलादी इरादे वाले थे, उन जंगली लोगों में बस गए और उन्हें अकेले ही क़ाबू में कर लिया। लिविंगस्टोन, स्टेनली, मोफ़ात पाशा और मेकेञ्ज़ी जैसे साहसी और बुद्धिमान लोगों ने पठार पर सफ़र किया और वहां से जो ख़बरें फैलाईं उससे लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। लोग वहाँ बाहर से आकर बसे और नई नई सरकारें बनीं। इसका नतीजा यह हुआ कि ग़ुलामों के लिए हमले बन्द हो गए। बसनेवाले वहां अपनी खेती-बाड़ी क़ायम करने और उसे तरक़्क़ी देने में सफल हुए। यहां तक कि लोग रेलगाड़ियां चलाने का स्वप्न देखने लगे। खानों के लिए जगहें भी निश्चित की गईं और अफ़रीका की असली उन्नति शुरू हुई और वह साम्राज्यवाद को पुख़्ता करने के काम आ सका।

कच्चा माल

हमारी वर्त्तमान सभ्यता की बुनियादी ज़रूरतों के लिये रुई, तांबा, कोयला, ऊन, क्रोम, सोना, पीतल और तेल जैसे कच्चे पदार्थ की सबसे अधिक ज़रूरत है। अफ़रीका में सिवाय तेल के हर चीज़ मौजूद है। दुनिया भर के सोने की उपज का $\frac{3}{5}$ हिस्सा अकेले जोहांसबर्ग में होता है। कांगो के मध्य भाग में तांबे की खुदाई होती है और उसे गलाया भी जाता है। साफ़ किया हुआ तांबा एक बहुत टेढ़े मेढ़े रास्ते से गुज़रने वाली रेल से पुर्तगाली पूर्वी अफ़रीका तक पहुंचाया जाता है। सामान ले जाने में इतना ख़र्च पड़ने पर भी यहां का तांबा न्यूयार्क में वहीं की मोन्टाना की खान के तांबे से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सस्ते भाव पर नफ़े के साथ बेचा जाता है। अफ़रीक़ा अपनी ऊन की उपज के लिये मशहूर है। अफ़रीका से कोयला भी बाहर जाता है। उसके अन्दरूनी भाग में ये ज़रूरी पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। अफ़रीक़ा में न्यू कालेडोनिया क्रोम में एकाधिकार रखने वाले दुनिया के देशों में से एक है। रूई भी बहुत दूर तक बोई जा सकती है। न्यासालैण्ड की रूई प्रथम श्रेणी की रूइयों में गिनी जाती है। सीसल, चाय, तम्बाकू, फल, अनाज, कहवा, सुपारी, छालें, रबर, चीनी और काफ़ी की उपज काफ़ी मात्रा में होती है। पश्चिमी किनारे से नारियल का तेल, टीन, महोगनी, पीआसाव, अदरक, कोको और दालचीनी आदि चीज़ें आती हैं। पूरबी किनारे से लौंग, ऊंचे दरजे की काफ़ी, रूई, मोम (मधु मक्खी का), सीसल, अनाज, और बंकर कोयला आता है। उत्तरी भाग से खजूर, रूई, सीसा, जस्ता, फास्फेट्स और अरबी गोंद बाहर भेजा जाता है।

देश में रेलें बहुत बाद में बनाई गईं। एक लाइन कोंगो तक पहुँची और दूसरी लाइनें हर तरफ़ से बनाई गईं जो कि क़रीब क़रीब चारों तरफ के हिस्सों को जोड़ती हैं। कुछ भागों में रेलें अन्दर की तरफ़ बनती ही जा रही हैं। उन्हें पठार तक बनाया जा चुका है जो कि अपने साथ बसने वाले, व्यापारी, वर्तमान कल पुर्जे और मोटे काम के जानवर ले आती हैं।

बहुत दिन नहीं बीतने पाए कि पठार पर जाकर बसने की बान उलट गई और लोग पठारों से नीचे जाने लगे। यह बात अरसे से दिखाई पड़ रही है। यूगान्डा में इतनी अधिक रूई पैदा होती है कि रेलें पूरी उपज को ले जा नहीं पातीं। यातायात के पूरे साधनों के अभाव में रूई, अनाज, चीनी, गोश्त, कोयला, जस्ता और दूसरी चीज़ें नदियों के रास्ते पठार से नीचे की तरफ़ ले जाई जाती हैं। बन्दरगाह आजकल कहीं अधिक चालू हैं। जिस जगह बीस वर्ष पहले बीस से पचीस बिजली के क्रेन थे वहां आज सौ तक हो गये हैं। शहरों में बहुत अधिक शोर-गुल और चहल-पहल हो गई है और रेलें दोहरे रास्ते से चलने लगी हैं।

आर्थिक साधन

जिन लोगों ने अफ़रीका की जलवायु और भूतत्व शास्त्र का अध्ययन किया है वह अफरीका के असीम आर्थिक साधनों से परिचित हैं। इस सम्बन्ध में अफ़रीका की स्थिति किसी भी देश से कम नहीं है। अफ़रीका की जल-बिजली की शक्ति दुनिया भर की जल-बिजली की शक्ति की एक तिहाई है। अफ़रीका में सोना और उपजाऊ ज़मीन का बाहुल्य है। शीतोष्ण से लेकर गरम जलवायु तक हर तरह की जलवायु वहां पाई जाती है। वहां रेलें हैं, मोटरें चलती हैं, कचेहरियां, अच्छी इमारतें, सुन्दर होटल, बड़ी खानें आदि सभी चीजें हैं। माल भी बड़ी मिक़दार में बाहर भेजा जाता है। ऐसी स्थिति में अफ़रीका का भविष्य क्या होगा! जब कि समस्त आर्थिक साधनों का उपभोग शुरू हो जायगा तो अफ़रीका किसके हाथों में जायगा!

आज अफ़रीका में वहां के क़रीब अट्ठारह करोड़ काले निवासी हैं। वहां के जानवरों, बकरियों, भेड़ों और सुअरों की गणना नामुमकिन है। रोडेसिया और पूर्वी पुर्तगाली अफ़रीका में देखने से पता चलता है कि वहां के हरएक निवासी के पास कम से कम एक पालतू जानवर ज़रूर रहता है। जोती-बोई जाने वाली ज़मीन भी इसी निसबत में है। अगर यह बात सही है तो अफ़रीका में यूनाइटेड स्टेट्स के बराबर घरेलू जानवर हैं। उससे ६ करोड़ अधिक आबादी है और उसके मुक़ाबले बोई जाने वाली आधी ज़मीन है। लेकिन दोनों में एक बड़ा भेद यह है कि यूनाइटेड स्टेट्स के लोग गोरी जाति के हैं और अफ़रीका हबशियों की जगह है।

इस समय हबशी अपनी ज़रूरत से थोड़ा ही ज़्यादा पैदा करते हैं। अच्छे साल में पठार भर का हर गांव थोड़ी बहुत बकरियां, भेड़, चिड़ियाँ, घरेलू जानवर, अण्डा, सब्ज़ियाँ, गल्ला, मकई, छीमी, मूँगफली, सुपारी, टमाटर, ख़रबूज़ा और केले पैदा करता है। ये चीज़ें बेची जाती हैं। यद्यपि हर गांव इन सब चीज़ों को पैदा नहीं करता तथापि शायद कोई भी ऐसा गांव हो जो कि इनमें से कम से कम नौ चीज़ें पैदा न करता हो। इनमें से कोई भी ऐसी चीज़ नहीं जो कि गोरे किसान द्वारा पैदा की हुई चीज़ का मुक़ाबला न कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन साथ ही भाव में भी फ़र्क़ है। वहां के निवासियों का बनाया सामान सस्ता बिकता है।

उपज में वृद्धि

हबशियों की संख्या दिन दिन बढ़ रही है। किस वेग से उनकी संख्या बढ़ रही है, यह कहना मुशकिल है लेकिन इसमें तनिक भी शक नहीं कि उनकी संख्या बढ़ रही है। अगर उनकी संख्या में उसी प्रकार वृद्धि हुई जिस प्रकार कि उपज के साधनों में, तो कोई हानि नहीं है। लेकिन इसके लिये तारीख़ नियत नहीं की जा सकती। उपज में वृद्धि आबादी के मुक़ाबले में कहीं ज्यादा हुई है और शायद यह बाद में भी हमेशा जारी रहे। तब फिर?

अगर यह सिर्फ़ अनाज की उपज का सवाल होता तो कोई ऐसी बात नहीं थी। हबशियों के पैदा किये ग़ल्ले की खपत उसी जगह खान इत्यादि में हो जाती और बाक़ी का ग़ल्ला बाहर भेज दिया जाता। आजकल यह बात थोड़ी मात्रा में सही भी है। लेकिन अब वहां के रहने वाले अपनी उपज में उन्नति कर रहे हैं। दक्षिणी रोडेशिया की सरकार ने हबशियों को बैल दिये हैं ताकि हलवरों की हालत सुधरे। यूगाण्डा में हबशियों को रुई के बढ़िया बीज दिये गए और उन्हें रुई बीनने-बोने का तरीक़ा भी सिखाया गया। पूरे अफ़रीका में जिन हबशियों ने किसानों के यहां काम किया है उन्हें या तो चोरी करके या इनाम पाकर अपने बीज से बढ़िया बीज मिल गया। पूर्वी पुर्तगाली अफ़रीका के हबशी चीनी, रुई, धान और फल गल्ले के मुक़ाबले बेचते हैं।

हबशियों के बढ़ते हुए स्तर (स्टैण्डर्ड) के मानी यह ये हैं कि गोरे आदमियों के साथ उनका मुक़ाबला है। इसमें कोई शक नहीं कि जैसे जैसे हबशियों की संख्या बढ़ती जाती है उनकी उपज भी उसी मात्रा में बढ़ती जाती है और साथ ही उसकी किस्म भी अच्छी होती जाती है। इस तरह हबशियों का भी कुछ सामान बाज़ार में आएगा जो कि पहले सिर्फ़ गोरे लोगों के माल के लिये ही खुला था। इस माल के लिये हबशी भी गोरे लोगों के बराबर दाम पाएगा। किन्तु इसी जगह एक कठिनाई भी पैदा होता है।

अफ़रीका में गोरे लोग काले लोगों पर श्रम के लिये निर्भर करते हैं। अधिकांश देशों में जहां कहीं कि गोरे लोग हकूमत करते हैं हर झोपड़ी पर एक सालाना टैक्स लगता है जो कि ५ शिलिंग से १० शिलिंग के अन्दर घटता बढ़ता रहता है। इससे हर बालिग़ आदमी को यह टैक्स देना पड़ता है। इस टैक्स से अभिप्राय यह है कि वहां के निवासियों को मज़दूरी करने के लिये मजबूर किया जाता है। यह टैक्स सिर्फ़ नक़द सिक्के ही देकर अदा किया जा सकता है। गोरों ने इस टैक्स को इसी-लिये लगाया था कि मजबूरी हालत में इन हबशियों को काम करना ही पड़ेगा।

अफ़रीका के निवासियों की बुद्धि

लेकिन अगर वहां के लोग अपने गल्ले, जानवर, रुई, चीनी, तम्बाकू और दूसरी और चीजों को बेच सके तो उन्हें कम से कम गोरे लोगों की मजदूरी तो न करनी पड़ेगी और कुछ दिनों बाद वह धन के लिये गोरे लोगों के ऊपर निर्भर न करेंगे और पूरी तरह आज़ाद हो जाएंगे। अगर उतना न सही तो कम से कम उनसे अपने को अलग तो रख सकेंगे। वहां के निवासी आज खेतों में, रेल में, खानों में काम करते और जानवरों को चराते दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें से बहुतेरे ईंट बनाने वाले स्टोरकीपर, स्टेनोग्राफ़र, फार्मफोरमेन, रसोई बनाने वाले, माली, इन्जन चलाने वाले, मोटर ड्राइवर, विमान चालक, पुलिस, अनुवादक और नर्स हैं। ये काम ऐसे नहीं जिन्हें बेवकूफ लोग कर सकें। अगर अफ़रीका की एक दर्जन विभिन्न जातियों में से एक हज़ार आदमी लेकर उन्हें ठीक से सिखाया-पढ़ाया जाए तो मालूम होगा कि औसत दर्जे का हबशी औसत दरजे के गोरे से कम बुद्धिमान नहीं है। और यह तब जब उसे न तो एक गोरे आदमी की-सी जानकारी है और न उसके वैसे संस्कार हैं। फिर भी वह बुद्धिमान है।

युगाण्डा और ब्रिटिश पूर्वी अफ़रीका के गोरों को हबशी मज़दूर मुशकिल से मिलते हैं। वहां के हबशी टैक्स के नक़द सिक्के देने के लिये गोरों की मज़दूरी पर निर्भर नहीं करते। कारण यह है कि वह नफ़ा देने वाली रुई और तम्बाकू जैसी खेती करते हैं। इसके अलावा उन्हें अंडे और चिड़ियों के बेचने से भी काफ़ी पैसे मिल जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन मिशन

काले और गोरों को अफ़रीका में एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा करने वाला एक तीसरा कारण भी है और वह है मिशन। यह मुक़ाबला सिर्फ़ आज के लिये ही नहीं बल्कि भविष्य के लिये भी है। ये मिशन तीन प्रकार के हैं—(१) कारबारी (२) औषधीय और चिकित्सासम्बन्धी और (३) धार्मिक। मेरे दिल में पहले दोनों मिशनों के लिये श्रद्धा है। वे सचमुच हबशियों को सहायता पहुँचा रहे हैं, उन्हें तरक्की दे रहे हैं। लेकिन धार्मिक मिशन के लिये मेरे दिल में किसी भी तरह की ज़रा भी इज्ज़त नहीं है और न वे मेरी निगाह में हबशियों को किसी प्रकार का फ़ायदा ही पहुँचा रहे हैं।

कारोबारी मिशन द्वारा हबशी ईंट बनाना, दीवाल बनाना, लकड़ी चीरना, बढ़ईगीरी, बाग़बानी, कपड़ा धोना, खाना पकाना, नर्सिङ्ग इत्यादि सीख रहे हैं। ये पेशे उन्हें पहले के मुक़ाबले में ज्यादा पैसा पैदा करने में मदद देते हैं। उनका वक्त आसानी से कट जाता है और उन्हें हबशी फोरमैन की कड़ी देख-भाल में काम नहीं करना पड़ता। वे इस तरह अपनी कमाई से अपने गोरों के यहां के काम करने वाले साथियों के मुक़ाबले में अधिक कपड़े, माल, बीवियां, खाना और जानवर प्राप्त कर सकते हैं और दुनिया में तरक्की की सीढ़ी पर आगे क़दम रख देते हैं। कारोबारी मिशन में हबशी अपनी मातृभाषा और अंग्रेज़ी ज़बान लिखना-पढ़ना सीख लेते हैं। वे चित्रों द्वारा गोरे लोगों के बहुत से औज़ारों का प्रयोग जान जाते हैं। वे हर क्षेत्र में तरक़्क़ी कर रहे हैं और साथ ही अपने आत्मसम्मान का भी ख़याल रखते हैं।

मेडिकल मिशन ने भी हबशियों के दुःख-दर्द कम करने में बड़ी सहायता पहुंचाई है और साथ ही देश-व्यापी बीमारियों को भी रोकने का प्रयत्न किया है। वे हबशियों की भी चिकित्सा सम्बन्धी बातों को जानते हैं। इससे हबशियों, गोरों और सरकार सभी को लाभ पहुँचता है।

धार्मिक मिशन

धार्मिक मिशन वालों ने हबशियों के सदियों पुराने विश्वासों को गहरा धक्का पहुँचाया, उन्हें चूर चूर कर डाला पर उनके बदले उन्हें कोई अच्छी चीज़ नहीं दी। उन्होंने हबशियों के बहुत से रीति-रिवाजों को बुरा बताया। जहां रोक सके उन्हें रोक भी दिया। इस तरह धार्मिक मिशन ने उन्हें बजाय कुछ सिखाने के और हबशी समाज में कुछ रचनात्मक काम करने के उनकी सामाजिक एकता को धक्का पहुँचाया। वे बेचारे अपने सीधे रास्ते से भटक गए। धार्मिक मिशन द्वारा शिक्षा पाए हुए आदमी को वहां के निवासी नफ़रत की निगाह से देखते हैं। उससे रास्ता बचाकर चलते हैं। जगह जगह वे झगड़ों की जड़ बने रहते हैं। वे समाज की दृष्टि में बुरे समझे जाते हैं। वे अपनी इज़्ज़त खो बैठते हैं। किसी कराल-निवासी बहादुर आदमी या किसी हबशी व्यापारी के मुक़ाबले में एक धार्मिक हबशी बिलकुल तुच्छ और नीच माना जाता है। वह आम तौर से चोर और डींग मारने वाला और काहिल होता है।

अफ़रीका एक असाधारण तौर से उपजाऊ और धनी देश है। नया देश होते हुए भी एक पुराना देश है। एक ऐसा काले लोगों का महाद्वीप है जिसकी आबादी बहुत काफ़ी है और दिन दिन बढ़ती ही जा रही है। ये लोग रंग के काले तो ज़रूर हैं पर इनका दिल गोरा और चमकदार है। ये दयावान, मेहनती, समझदार और तीव्र बुद्धि वाले होते हैं। इनकी जाति पुरानी है पर ये पिछड़े हुए देशों में से हैं और कपड़ा बहुत कम पहनते हैं लेकिन उनके सरदार बहुत ही धनी और बुद्धिमान होते हैं। उन्हें गरम जलवायु लाभदायक है और वे पुरातन काल से वहीं के रहने वाले हैं।

इस देश की धन दौलत, आदमी, जानवर, व्यापार हुकूमत सभी चीज़ें मुट्ठी भर गोरों के क़ब्ज़े में हैं।

मुमकिन नतीजे

आख़िर में परिणाम क्या होगा? क्या गोरे लोग हबशियों की ज़मीन की मांग के आगे झुक जाएंगे और अपने अर्पित अधिकार को छोड़ देंगे? या उन्हें मजबूर करके क़ैद में रक्खेंगे? क्या वे ऐसा कर सकते हैं? गोरों ने वहां रूई, रबर, कोको, खान, रेल, सिंचाई वग़ैरह में बहुत रुपया ख़र्च किया है। क्या ये सब वे छोड़ देंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरे काले लोगों को भी देश की सरकार में कुछ हिस्सा देंगे और इस तरह उन्हें आज़ादी की सीढ़ी पर चढ़ने के लिये रास्ता देंगे ?

मैं इन प्रश्नों में से किसी का भी उत्तर नहीं दे सकता। मुझे ऐसा लगता है कि इसमें तीन बातें सम्भव हो सकती हैं—(१) अफ़रीक़ा आख़ीर में फिर पहले के समान पूरी तरह एक काले लोगों का देश हो जायगा, (२) गोरे लोग काले लोगों को बिलकुल बरबाद करके इस दुनिया से मिटा देंगे, (३) काले गोरे आपस में शादी-ब्याह करेंगे और एक नई भूरी जाति होगी जो कि अफ़रीका के सारे धन को कब्ज़े में करेगी। मुझे इसी बात की उम्मीद है कि आख़ीर में अफ़रीका फिर काले लोगों का देश हो जाएगा। हाला कि मुझे इस बात का पूरी तरह से यक़ीन नहीं है फिर भी मैं अफ़रीका में काले लोगों का कब्ज़ा देखना चाहता हूँ। गोरे लोग हन हबशियों से जीवन के सबसे बड़े उद्देश सन्तोष और आत्मसुख के मामले में ज़रा भी आगे नहीं बढ़े हैं। जहाँ तक सन्तोष और आत्मसुख का सम्बन्ध है हम रेल, टेलीफ़ोन, बिजली वग़ैरह रखते हुए भी अफ़रीका के निवासियों से बहुत पीछे हैं। क्या हमारे जीवन का एकमात्र लक्ष्य आत्मसुख प्राप्त करना नहीं है—फिर चाहे हम गोरे हों, काले हों या भूरे हों ?

जब दिल पर लगती चोट कड़ी !

श्री देवन्द्र एम० ए०

वह कौन न जिसने प्यार किया ?
हिमगिरि का वह पाषाण - हृदय
हो गया पिघल पानी - पानी !
कितने सरिता के आलिंगन—
कितनी यौवन की नादानी !
पर गिरि से ऊब चली सरिता
सागर का करने आलिंगन,
वह योगी अचल, वियोगी बन
मन ही मन करता है क्रन्दन
जब दिल पर लगती चोट कड़ी
गहरा, हो जाता मूक रुदन !
दुर्बल मन के समान पत्थर ने भी व्यवहार किया !
जग जिसे 'शून्य' कहता आया
कितने आंधी, तूफान वहाँ !
कितना अभाव उसके उर में,
कितना असीम सुनसान वहाँ !
निःसीम भुजायें फैलाकर
किसके आलिंगन को विह्वल ?
किसके वियोग से विक्षोभित
आहें भरता है नभ प्रतिपल
युग के युग बीत गये, बीती
न निशा ऐसी यह शून्य गगन
जिसमें न कभी रोया हो कुछ
अपने अगणित वे खोल नयन !
मेरी ही तरह मूक होकर अम्बर ने 'हाहाकार' किया !
है प्रथित विश्व में सागर वह
सुस्थिर, प्रशांत मर्यादामय !
लेकिन अन्तर की ज्वाला से
उसका भी होता रहता क्षय।
कुछ आज नहीं, युग से जलता
आया, पाया है बड़वानल
उसमें मर्यादा है लेकिन
नभ छूने चलता उसका जल—
जब शशि मुख आमंत्रित करता
स्पन्दित कर उसका रोम-रोम,
अपनी सीमायें भूल, एक
कर देता है वह भूमि—व्योम !
उस दुग्ध - धवल ज्योत्स्ना में फिर
लहरों-किरनों का आलिंगन !
पुलकाकुल था निशि का यौवन
सागर का मन, मेरा भी मन !
उच्छृंखल वह जग ने जिसकी मर्यादा का सत्कार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ग़ानिस्तान की भौगोलिक रूप-रेखा

प्रो० क़िज़िलबाश ख़ान (काबुल)

अफ़ग़ानिस्तान एशिया के ठीक बीचों बीच उस जगह पर वाके है जहां कि बड़ी बड़ी पहाड़ियां मिलकर हिन्दुस्तान की ओर एक पर्वतमाला बनकर मुड़ जाती हैं।

अफ़ग़ानिस्तान ग्वालों और किसानों का देश है। आज भी यहां की क़रीब क़रीब चौथाई जनता ख़ाना-बदोश है।

अफ़ग़ानिस्तान का रक़बा ६,५५,००० वर्ग किलो-मीटर है, पर उसकी आबादी ९५,००,००० से ज़्यादा नहीं है। त्रिभुजाकार पर उत्तर-पूर्व की ओर थोड़ी संकुचित सीमा लिये हुए, अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर में सोवियत रूस के तुर्कमेनियन, उज़बेक और ताज़िक जनतंत्र, पश्चिम में ईरान, और दक्षिण व दक्षिण-पूर्व में भारत और अंग्रेज़ी बलोचिस्तान हैं।

मौजूदा अफ़ग़ानिस्तान के संगठन से पहले जो कि अठारहवीं सदी में किया गया, यह मुल्क कई हिस्सों में बंटा हुआ था, जिनका इतिहास विभिन्न था। इसकी भौगोलिक स्थिति ने इस सारे इलाके को मध्य-पूर्व से सुदूर-पूर्व को मिलाने वाले केन्द्र का रुतबा देकर दुनिया की मुख्य शाह राहों में प्रमुख स्थान दे दिया है। एक वक्त था जब कि यूरोप और एशिया से बड़ी बड़ी फ़ौजों और आबादियों ने इस मुल्क के अन्दर से गुजरकर हिन्दु-स्तान में क़दम रखा। अफ़ग़ानिस्तान में पार्थी, हूण और सक जातियां आईं; मेसीडोन के सिकन्दर महान् ने भी इस मुल्क को जीता; चंगेज़ ख़ाँ के गिरोहों, तैमूरलङ्ग की फ़ौजों और इसलाम क़ायम करने वाली अरब फ़ौजों ने भी इस देश पर वक्तन-फ़-वक्तन क़ब्ज़ा किया। पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक बस्तियां बनतीं और नष्ट होती रहीं। कोई भी ऐसा आक्रमण नहीं हुआ जिसके फलस्वरूप यहां नये आदमियों की कोई नई बस्ती आबाद न हुई हो। यहीं से बड़े बड़े साम्राज्यों के सौभाग्य-सूर्य का उदय हुआ और यहीं से वे अतीत के ऐतिहासिक चिह्न-मात्र रहकर विलीन भी हो गये।

अपनी भूमि के ⅘ भाग के पहाड़ियों से घिरे होने के कारण अफ़ग़ानिस्तान एक पहाड़ी देश है। इसलिये यहां की जनता का बड़ा भाग बड़ी या छोटी घाटियों में, नदियों के किनारे या उत्तर व दक्षिण-पश्चिम के सकरे सीमावर्ती मैदानों में निवास करता है।

हिन्दूकुश का बड़ा पर्वत देश को दो भागों में बांट देता है—उत्तरी और दक्षिणी, जिनमें कि भौगोलिक और आबादी-सम्बन्धी फ़र्क़ है। देश के सबसे बड़े लेकिन हर नखलिस्तान उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान में ही हैं, जहां दर्जनों जातियां और फ़िरक़े निवास करते हैं। यही हिस्सा दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान को खाना देता है जोकि चट्टानी और अफ़ग़ान जातियों से बसी ऊसर ज़मीन है।

सबसे ऊँचे पहाड़ उत्तर-पूर्व में हैं, जहां कि समुद्र की सतह से तीन या चार हजार मीटर तक की ऊँचाई के बहुत से दर्रे हैं। हिन्दूकुश, कुह-इ-बाबा के नाम से आगे फैलकर आमू दरिया और सिन्ध के बीच के मैदान में पानीघर का काम करता है। मध्य अफ़ग़ानिस्तान 'हज़ार-जत' नाम के कठोर पहाड़ी हिस्से से बना व घिरा है। पश्चिम की ओर कुह-इ-बाबा पहाड़ी तीन श्रेणियों में बँट जाती है जो कि धीरे धीरे बकवा, हिलमन्द और रेगिस्तान की चट्टानी और बालूदार ज़मीन में तबदील हो जाती है।

अफ़ग़ानी जातियों का जन्मस्थान भारत तुलेमान पहाड़ियों के उस पार है। बलूचिस्तान चग़ताई के पहाड़ों के दक्षिण में है।

यह पहाड़ी श्रेणियां देश को अलग अलग भागों में विभक्त कर देती हैं, गोकि हाल ही में बनी सड़कों ने अलग अलग प्रान्तों को एक सूत्र में बांधने में सहायता दी है—लेकिन स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। उत्तरी और दक्षिणी हिस्सों को मिलाने वाली एक मुख्य कड़ी ख़ानाबदोश अफ़ग़ान जातियां हैं, जो कि हर साल मुल्क को पार करती हैं और दक्षिण से उत्तर में हिरात मेमाना और कताघान-बदख़्शां के प्रान्तों को जाती हैं।

अफ़ग़ानिस्तान का पूर्वीय प्रान्त भारतीय सीमा से मिला हुआ है। इस प्रान्त का मध्य जलालाबाद का मैदान है। यहां की जलवायु उष्ण है, जहां कि खजूर व अन्नों की खेती होती है। काबुल और कुनार नदियों की घाटियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत घनी आबाद हैं; पर उत्तर की ओर नूरिस्तान तक पहाड़ है जो कि अभी तक दुर्गम ही है।

नदी की घाटियों को छोड़कर इस प्रान्त की सारी ज़मीन उपजाऊ नहीं है और खेती केवल पहाड़ों पर बिखरे हुए अलग अलग खेतों पर ही होती है।

पूर्वीय प्रान्तों की जनसंख्या अफ़ग़ान जातियों से बनी है जो कि कोहियानी, शिनवारी, मोहमन्द, सफ़ी वग़ैरह नस्ल की हैं। इनमें से कुछ जातियां अभी भी ख़ेमों में रहती हैं। प्रान्तीय केन्द्र जलालाबाद ही यहां का एकमात्र क़स्बा है। पेशावर से काबुल जानेवाले रास्ते पर स्थित यह जगह काबुल के धनी-मानी पुरुषों की जाड़ों के रहने की जगह है। इसके उपनगरों में बहुत से सुन्दर बगीचों से घिरे हुए राजमहल भी हैं।

दक्षिण की ओर यह प्रान्त दक्षिणी प्रदेश-भाग से मिला हुआ है जिसमें अफ़ग़ानी पहाड़ी बाशिन्दों की लड़ाकी, मनाल, जाड्रन, दरवेश-खेल, वज़ीरी आदि जातियां बसती हैं। इन पहाड़ी गाँवों में बड़ी ग़रीबी है। यहां की मिट्टी की तोल सोने के बराबर है, क्योंकि मनुष्य उसे हाथ और सिर में भर और रखकर ऊँचे पर्वतों में अपने चट्टानी खेतों तक ले गये हैं। अपने इस अथक परिश्रम से भी लोगों की गुज़र नहीं होती और कुटुम्ब के भरण-पोषण भोजन-प्राप्ति के लिये भारत की ओर चल पड़ते हैं।

पूर्वी और दक्षिणी प्रान्त उन लड़ाकू अफ़ग़ान जातियों के रहने के प्रदेश हैं जो कि सुलेमान पर्वत से नीचे चली आई हैं। उत्तर और पश्चिम की ओर बढ़कर इन जातियों ने बाहरी आक्रमणकारियों के मार्ग को रोक लिया और पहली अफ़ग़ान रियासत की बुनियाद डाली। दक्षिणी सीमा के पार भी कई ज़िले हैं जो कि अफ़गानों से ज़्यादा आबाद हैं। यह कबाले, जो कि अपने मुल्क से जबरदस्ती अलग कर दिये गए हैं, 'स्वतन्त्र कबीलों के प्रदेश' में अपनी निजी भूमि में रहते हैं। एक शताब्दी से अंग्रेज़ों द्वारा जीते जाने के प्रयत्नों का मुक़ाबला करते आये हैं। कितने ही छोटे-छोटे फौजी दस्ते इनको दबाने के लिये भेजे जा चुके हैं; चन्दे इकट्ठे किये जा चुके हैं और उनके नेताओं को घूस देकर फोड़ लेने के प्रयत्न भी हुए हैं। पर उनके रक्षात्मक मोर्चे को कभी नहीं तोड़ा जा सका।

अफ़ग़ानिस्तान में आने वाले यात्री यहां की जातियों और निवासियों में फैली अव्यवस्था को देखकर दंग रह जाते हैं। यह इस मुल्क की भौगोलिक स्थिति का ही परिणाम नहीं है, जिसने कि पिछले दिनों में कई प्रकार की जातियों के लिये रास्ता बनाया। इसका कारण कुछ सीमा तक ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति भी है, जिसने इस देश की सीमाओं को भी निर्धारित किया। ब्रिटेन अफ़ग़ानिस्तान को एक 'बफर' (रुकावटी) रियासत बनाने पर तुला हुआ था। इस प्रकार, उसकी सीमाओं में ऐसे ज़िले भी हैं जहां तुर्कमानियन, उज़बेक व ताज़िक जातियां रहती हैं, जब कि दक्षिण में ४० लाख से ज्यादा (४१,७८,५००) अफ़ग़ानी जनता अपने मुल्क से अलग करके हिन्दुस्तान और बलोचिस्तान में मिला दी गई है। यह हिस्सा स्वतंत्र क़बीलों का और बन्नू, पेशावर, कोहाट, डेरा इस्माइल ख़ां और भारतीय हज़ारा के उत्तर-पश्चिमी सीमोत्तर प्रान्त में है।

अफ़ग़ानिस्तान में निवास करने वाली प्रमुख जातियां अफ़ग़ान (४४,८४,५६२), ताज़िक (२१,०६,०००), उज़बेक (८,०२,०००) और हज़ारा (८,६७,०००) हैं। बाकी जनता तुर्कमानियनों और अन्य दूसरी जातियों, जैसे नूरिस्तान, तैमिनी, फिरुजकुह, जमशीदी, तैमूरी, बलूची, अरब, हिन्दुस्तानी, तुर्की, यहूदी, किआनी, कुर्द और किपचाक लोगों से बनी है।

अफ़ग़ान जातियां मुख्यतया दक्षिण की ओर पाई जाती हैं, जब कि हिन्दूकुश के उत्तर में स्थित मुल्क के बाकी हिस्से में, अफ़ग़ान अल्पसंख्यक व थोड़े ही हैं।

अफ़ग़ानी चार मुख्य हिस्सों में बंटे हैं—शरबानी, ग़िलजाई, केरलानी और गुरश्त। इनमें से भी हर शाखा कई फिरक़ों, ख़ानदानों और बड़े या छोटे कुटुम्बों में बँट गई है। पश्चिमी गुट्ट के खानदानी क़बीलों का शासन-प्रबन्ध पुश्तैनी 'ख़ान' नामक अफ़सर करते हैं। लेकिन पूर्वीय केरलानी गुट्ट में आज भी बड़े-बूढ़ों के पंचायती-मंडल जिन्हें 'जिर्गा' कहा जाता है, क़बीलों का नियंत्रण करते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान एक वैधानिक राजतंत्र है। यहां का शाह, जो साथ ही साथ समस्त फौजी टुकड़ियों का कमांडर इन-चीफ़ भी है, यहां की सबसे ऊंची सत्ता है। यहां की पार्लिमेण्ट में दो चैम्बर, एक राष्ट्रीय असेम्बली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके नुमाइन्दे जनता चुनती है और एक सेनेट होता है जिसके सदस्य ख़ानदानी अमीरों और सरदारों में से शाह की अनुमति द्वारा चुने जाते हैं।

विधान के द्वारा पार्लिमेंट को बिल पेश करने व पास करने की स्वतन्त्रता है। उसके द्वारा सरकारी क़ानून भी बनाये जाते हैं और संधियों को स्वीकार करने या न करने का अधिकार भी उसीको है। दूसरे शब्दों में, पार्लिमेण्ट को क़ानून बनाकर मंत्रियों को उनके अनुसार शासन के लिये ज़िम्मेदार बनाना है। पर असलियत में विधान में ऐसे नियम भी हैं, जिन्होंने पार्लिमेण्ट की ताक़तों को सीमाबद्ध कर दिया है जैसे कि विधान में यह भी है कि राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा के निश्चय सरकारी नीति या इस्लाम के विरुद्ध नहीं होने चाहियें। पार्लिमेण्ट सरकार के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव नहीं पास कर सकती और न मंत्रिमंडल के इस्तीफे की ही मांग कर सकती है। मंत्री लोग प्रधानमंत्री की राय से शाह द्वारा नियुक्त किये या निकाले जाते हैं।

इस समय ज़ाहिरा तौर पर अफ़ग़ानिस्तान ने भारतीय सीमा के 'स्वतन्त्र क़बीलों' की रक्षा-नीति को त्याग दिया है। इन क़बीलों के कुछ नेताओं का यह विश्वास है कि ब्रिटेन ने अफ़ग़ानिस्तान को उनके विरुद्ध करने के लिये कुछ आर्थिक रियायतें दीं हैं जिनमें अफ़ग़ान माल के भारत से होकर गुज़रने देने की अनुमति और उस देश से अधिक व्यापार करने की सांत्वना भी शामिल है।

अगर यहां पर देखा जाय कि अफ़गानिस्तान का अधिकतर आयात भारतीय सीमा के भीतर से ही होता है तो उपरोक्त सम्मति सच मालूम देती है।

काबुल से दक्षिण की ओर मुड़कर, कुछ घण्टों के सफ़र के बाद ग़ज़नी नामक प्रान्त के ग़ज़नी ही नामक केन्द्र में पहुंचते हैं। महमूज ग़ज़नवी के समय में ग़ज़नी ही मुल्क की राजधानी थी। उसकी ख्याति की शुरूआत दसवीं शताब्दी में ही हो गई थी, जब कि वह दक्षिण-पूर्वी ईरान की राजनीति का केन्द्र था।

ग़ज़नी पहले चंगेज़ ख़ां द्वारा और बाद को अमीर हुसैन के द्वारा नष्ट कर दिया गया था। इस चोट से शक्तिहीन होकर शहर की अवनति हो चली है उसकी प्राचीन चमक-दमक के अंतिम निशान कुछ टूटी हुई शानदार क़ब्रें और एक पुराना क़िला-मात्र ही रह गये हैं।

ग़ज़नी प्रान्त में अफ़ग़ान जाति का १६,२५,००० आबादी वाला ग़िलज़ाई फ़िरक़ा रहता है। हज़ाराजात तक सारा ग़ज़नी का पठार इन्हीं जातियों से बसा है, जिनका व्यवसाय खेती और गोदाम इकट्ठे करना है, पर वहां मिट्टी की बहुत कमी है और ग़िलज़ाइयों में से एक हिस्सा हर साल ख़ानाबदोशी के लिये भारत की ओर निकल जाता है। और भी दक्षिण की एक और बड़ी, फैली हुई घाटी में मुल्क की पुरानी राजधानी कंदहार है। यहां का तापमान सदा, जाड़ों में भी पानी जमने के तापमान से अधिक नहीं घटता। कन्दहार दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान का एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र है। काबुल जानेवाली सड़कों और हिरात को भारत से मिलाने वाले रास्तों का भी यह केन्द्र है।

कन्दहार और फ़राह प्रान्त जिनके उपजाऊ नख़लिस्तान हेलमन्द, अरग़नदाब और फ़राह रूद की घाटियों में हैं, १४,४०,००० आबादी वाले दुर्रानी जाति के हैं—जो कि मुल्क का शासन करने वाली अफ़ग़ान जातियों में से सबसे महत्वपूर्ण हैं। इसी फ़िरके में से शासकों और ऊँचे ओहदों के सरकारी कर्मचारियों को छांटा जाता है।

ग़ज़नी से क़न्दहार जाने वाली सड़क से गुज़रते हम किसानों को अपने छोटे से खेतों को अपने लकड़ी के हलों से, जोतते या पत्थर और लकड़ी को कुदालियों से खोदते देख सकते हैं। सारे दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान में (हज़ाराजात की पहाड़ी तलहटियों को छोड़कर) खेती सिंचाई के ऊपर निर्भर है, पर सिंचाई बड़े ही पुराने तरीकों से होती है, वे पुराने बाँध, जिन्होंने यहां सिंचाई से बड़े बड़े उपजाऊ नख़लिस्तान बना दिये थे, अब नहीं रहे। नये बाँध बनाये भी नहीं जा रहे हैं। एशिया और एराकोशिया के इतिहास प्रसिद्ध शहरों के आज खंडहर ही वहां नज़र आते हैं। पुरानी बस्तियों के मकानवाले भी रेत से पटे जा रहे हैं।

क़न्दहार से फ़राह जानेवाली सड़क पर भेड़ों के बड़े झुण्ड चरते हैं। काली पगड़ी और ढीले लम्बे पहने अफ़ग़ान गड़रिये उन्हें चराया करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की आर्थिक ज़िन्दगी में जानवरों का पाला भी विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसके द्वारा कुछ सा कच्चा सामान जैसे ऊन, चमड़ा और 'कारा-कुल' आयात के लिये पैदा होता है।

दुनिया में ऐसा कोई मुल्क नहीं है जहां कि अफ़ग़ानिस्तान की तरह निवासियों की ख़ानाबदोश ज़िन्दगी में परिवर्तन हुए हों, सारे साल भर जानवरों के झुण्ड के झुण्ड चरते रहते हैं और देश की चौथाई आबादी नया चरागाह ही ढूँढ़ने में व्यस्त रहती है। ग्रीष्म ऋतु की गर्मी दक्षिण के चरागाहों को सुखा देती है, जिससे हज़ारों अफ़ग़ान उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक हर साल चरागाहों की खोज में भटकते फिरने पर मजबूर होते हैं। भेड़ों, बकरों और ऊँटों के बड़े बड़े झुण्ड सड़कों में भरे रहते हैं और उनके साथ हज़ारों आदमी चढ़ते रहते हैं। उनके साथ उनका काला तम्बू और सीधा-सादा सामान भी रहता है। अपने 'खानों' और बड़े-बूढ़ों के नेतृत्व में यह क़ाफ़िले सदा गतिशील रहते हैं।

जब पतझड़ आता है, तो यह क़ाफ़िले अपने जाड़ों के चरागाहों की ओर वापस चले जाते हैं। हरएक जाति और फ़िरक़े के अपने निजी रास्ते हैं, और उन लोगों की दुर्दशा होती है जो दूसरे क़बीलों के चरागाहों को हथियाने का प्रयत्न करते हैं। अच्छे चरागाहों की कमी के कारण कई ज़िलों में इस प्रकार के हथियारबन्द झगड़े होते रहते हैं, जहां पर आक्रमणकारियों के ख़िलाफ़ क़िलों का उपयोग किया जाता है।

ये ख़ानाबदोश धीरे धीरे घूमते हैं—कस्बों में ऊन, चमड़ा और फर बेचते हैं और बदले में रुई कपड़ा, बारूद, कारतूस और राइफल ख़रीदते हैं।

अधिकतर आदमी हथियार रखते हैं। ज़िन्दगी के लिये आराम की वस्तु नहीं है और वे सदा तैयार रहते हैं। उनकी कठिनाइयों में उनकी बहादुर मुसलमान औरतें, माता और बच्चे भी उनका साथ देते हैं। अपने शहर की बहिनों की तरह ग्रामीण अफ़ग़ान अपनी ख़ानाबदोशी में पर्दे का प्रयोग नहीं करते।

अफ़ग़ान एक ख़ूबसूरत और मेहनतकश क़ौम है। वे लम्बे मज़बूत पुट्ठों वाले, नपे-तुले सुडौल क़द के और घुंघराले बालों वाले होते हैं।

अफ़ग़ान अपने स्वतन्त्रता-प्रेम के लिये मशहूर हैं। बूढ़े अपनी लड़ी गई पुरानी लड़ाइयों का वर्णन करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान ने ब्रिटेन से तीन लड़ाइयां लड़ीं। १८३८-४२ की लड़ाई में अंग्रेज़ी फ़ौजें हारीं। दूसरी लड़ाई १८७८-८० में हुई। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप अफ़ग़ानिस्तान ब्रिटेन के पूरे क़ब्ज़े में नहीं तो आधीनता में तो आ ही गया। सन् १९१९ में लड़ी गई तीसरी लड़ाई से, जिसमें अफ़ग़ानिस्तान के समीप ही सोवियत रूस की फ़ौजें भी थीं, अफ़ग़ानिस्तान को आज़ादी मिल गई।

पूर्वीय अफ़ग़ान जातियों ने अपने विशेष प्रकार के प्रजातांत्रिक पंचायती रूप को स्थिर रखा है—पर पश्चिमी जातियों, विशेषकर ग़िलज़ाई और दुर्रानी फ़िरक़ों का क़बीली संगठन टूट रहा है और उनमें पूंजीपतियों और सामंतों का प्रभुत्व बढ़ रहा है। यह जातियां अब ख़ानाबदोशी छोड़कर सिंचाई वाली जमीन पर बस रही हैं। क़बीलों के ऊँचे ख़ानदान सारी ज़मीन को हथिया लेते हैं और क़बीले के सरदार बन जाते हैं। यह उच्च वर्ग धीरे धीरे बढता जा रहा है। इससे क़बीले वालों को नुकसान है। ये सरदार ख़ान उन गड़रियों से ऊन ख़रीद लेते हैं जिन्हें उन्होंने उधार देकर क़र्ज़दार बना दिया है। ये ख़ान सरकार के लिये टैक्स भी वसूल करते हैं।

क़न्दहार से फ़राह तक की यात्रा गर्मियों के दिनों में बरदाश्त नहीं की जा सकती क्योंकि गर्मी बहुत सख़्त पड़ती है। पर बसन्त की शुरुआत में यह ज़िले बहुत ख़ुशनुमा हो जाते हैं। गिरिश्क के नज़दीक गहरी हिलमन्द घाटी को यह सड़क पार करती है। 'दिलाराम' नामक स्थान के पास से याकवा नामक रेगिस्तान शुरू होता है। इधर अब ख़ानाबदोशों के तम्बू भी बहुतायत से लगने लगे हैं।

फ़राह नामक प्रान्तीय राजधानी, जिसको पहले फेदरा कहते थे, पहले एक सांस्कृतिक केन्द्र थी। इसके दक्षिण में रुस्तम का मशहूर शहर निमरूज़ है। पुराने ज़माने में यह भाग सीस्तान के नाम से मशहूर था, यहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत सी सिंचाई की नहरें थीं और यहां की खेती भी बढ़ी-चढ़ी थी। इसका सबसे अधिक विस्तार यूनानियों के समय में हुआ था।

पर मंगोलों ने सब कुछ नष्ट कर दिया। आख़िरी प्रहार तैमूरलंग द्वारा किया गया, जिसने हिलमन्द नदी के सब बाँधों और सब सिंचाई की नहरों को नष्ट कर दिया। नतीजा यह हुआ कि रेगिस्तान सीस्तान को पार कर सारे प्रदेश में फैल गया और आज फ़राह की हालत अत्यन्त दयनीय है।

फ़राह से उत्तर की ओर जाते हुए, हम काले तम्बुओं (ख़ानाबदोशों के) के देश को छोड़कर उन जिलों में प्रवेश करते हैं जहाँ पश्तो नामक अफ़ग़ानी बोली बहुत कम सुन पड़ती है।

हम एक पहाड़ी सड़क पर चलकर उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान चले जाते हैं, जहां हम हिरात की उपजाऊ घाटी में रुकते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का चौथा नम्बर का शहर हिरात, इस घाटी के बीचों बीच में है, जो लम्बाई में १२० किलोमीटर और चौड़ाई में ३० किलोमीटर है।

हिरात की पुरानी शान चली गई है। शहर की आबादी आज भी २५,००० आदमियों से अधिक नहीं है, लेकिन यह एक परम्परागत तथ्य है कि मंगोल आक्रमण के पहले हिरात की आबादी दस लाख थी।

हिरात की घाटी में 'ताज़िकों' की काफी बड़ी आबादी है। ताज़िक मुल्क के बहुत पुराने बाशिन्दे हैं और अफ़ग़ानों के बाद इन्हींकी आबादी सबसे ज़्यादा है। आजकल ये अधिकतर अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर में रहते हैं ख़ासकर हिरात प्रान्त में जहाँ वे कुल आबादी के ३४ प्रतिशत हैं; काबुल प्रान्त (२८.८ प्रतिशत), कताघान-बदख़्शां प्रान्त (४६ प्रतिशत) और मजर-ई-शरीफ प्रान्त में (२३.७ प्रतिशत)। वे हिन्दूकुश, ग़ोरबन्द पंजरशि, नेजराव, नूरिस्तान और लोगर पहाड़ियों में भी रहते हैं।

ताजिक मेहनतकश आदमी हैं। पर वे अधिकतर किसान हैं और भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों पर काम करते हैं। ये लोग चेरीकर कहलाते हैं और बहुत ग़रीबी में रहते हैं। सूखी या ताज़ी मलबरी ही इनका आहार है। बहुत से गाँवों में ज्वार का दलिया जिसमें घास भी मिली रहती है, बहुत स्वाद से खाया जाता है।

हरिरूद और बालामुरग़ाब की घाटियों में और उनके दक्षिण में भी, किसानों को लकड़ी के हलों से ज़मीन जोतते हुए देखा जा सकता है।

किसान अफ़ग़ानिस्तान की आबादी के ७० प्रतिशत हैं, लेकिन उनको केवल दो-तिहाई हेक्टर जमीन प्रति व्यक्ति मिलती है।

खेती की जानेवाली भूमि का क्षेत्रफल १५,००,००० है, जिसमें से ९,००,००० बड़े जमींदारों के पास है; बाकी मुल्लाओं के पास है। ६० प्रतिशत किसानों के पास या तो कोई जमीन नहीं है और किसी के पास है भी तो बहुत थोड़ी।

'लतीफ़ुंदिया' नामक इलाकों में, जो कि उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान में हैं, हज़ारों हेक्टर ज़मीन है, जिनमें कि साझेदार लोग काम करते हैं और उन्हें अनाज का सिर्फ नवां गट्ठा मिलता है। ये लोग अपना नवां हिस्सा तभी अच्छी फसल होने पर पाँचवा हिस्सा—पाने के लिये दिन रात काम करते हैं—कुदालियों से भूमि खोदते हैं। इस प्रकार के क़ानूनों से खेती की उन्नति नहीं हो सकती।

अफ़ग़ानियों की ज़िन्दगी इस तरह चलती रहती है पर ख़ानाबदोशों के तम्बुओं में पुरानी शान्ति ही विराजती है। प्रत्येक नये अप्रैल के महीने ग्वाले और उनके जत्थे वरों के झुण्ड अपनी यात्रा के लिये रवाना होते हैं, जैसे कि शताब्दियों से करते आये हैं। प्रत्येक बसन्त को क्रियाशील तथा तत्पर जल-प्लावन उत्तर की ओर ढकेलता है, जब कि पतझड़ उसे वापिस अपने उद्गम स्थान ले आता है।

—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी और कहानीकार

श्री० विष्णु

जीवन एक कहानी है। चेतन-शक्ति जब अस्तित्व में आई तो अचरज से भरकर उसने अपने को देखा, अपने चारों ओर देखा, फिर सोचा, मैं कौन हूँ? मैं कहां से आया? क्यों आया? किसलिये आया? और फिर तभी उसने ही अपने प्रश्नों का उत्तर देना शुरू कर दिया। वह क्रम आज तक चला आ रहा है परन्तु न तो प्रश्न समाप्त होते हैं और न उनका उत्तर। हरएक उत्तर में से एक नया प्रश्न पैदा हो जाता है। और इसी प्रश्नोत्तर में से निकलकर यह विराट जीवन चारों ओर बिखर गया है। इसमें जिज्ञासा भी है और आत्माभिव्यक्ति भी। मनुष्य (चेतन-शक्ति) अपनी बात करता है और अपने चारों ओर जो संसार फैला है उसको जानना चाहता है। इसी कहने और जानने में कहानी का जन्म होता है। यह सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है और इसीलिये संसार के पुराने से पुराने ग्रन्थों में कहानी का अस्तित्व मिलता है। वेद, शास्त्र, जातक, बाइबिल, पुराणादि धर्म-ग्रन्थों में कथा साहित्य की प्रचुरता है। रामायण महाभारत ऐसे ग्रन्थ तो स्वयं ही महाकथायें हैं। दूसरे देशों का पौराणिक साहित्य (माइथालोजी) भी कथाओं का संग्रह मात्र है। अरस्तु ने ग्रीस के दुखान्त नाटकों का मुख्य उद्देश्य कहानी कहना ही निश्चित किया था।

समय समय पर युग के आदर्शों को, जो मनुष्य की जिज्ञासा और आत्माभिव्यक्ति के कारण पैदा हुये इन्हीं कथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया। आज भी हम लोक प्रचलित कहानियों द्वारा किसी जाति या देश की मनोकांक्षा, आकांक्षा और आदर्श का पता लगाते हैं। आज भी प्रत्येक घर में छोटे बच्चे रात को सोने से पहिले माँ से कहते हैं—कहानी सुनाओ। और फिर उस कहानी को सुनते सुनते शान्त होकर सो जाते हैं। कहानी उन्हें मनोरंजन और ज्ञान दोनों देती है।

परन्तु प्रश्न उठता है जिज्ञासा की सन्तुष्टि तो दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि अनेक विषयों द्वारा हो जाती है फिर कहानी की आवश्यकता क्यों हुई? इनमें और कहानी में जो अन्तर है वही अन्तर कहानी का महत्व है। बहना पानी का स्वभाव है। वह सदा नीचे की ओर बहता है अर्थात जिधर वह सरलता से बह सकता है उधर ही बहता है। मनुष्य का स्वभाव भी ऐसा ही है। वह चाहता है जिज्ञासा का समाधान इतना सरल इतना सीधा हो कि उसे समझने के लिये बुद्धि पर जितना थोड़ा ज़ोर लगाना पड़े उतना ही अच्छा है। इतिहास में अधिकतर राजनैतिक चर्चा होती है। निबन्ध में केवल मात्र सिद्धान्त और तथ्य की बात बताई जाती है, इसके विपरीत कविता की प्रतिरंजित भावना तथ्य को बहुत कुछ छिपा लेती है परन्तु कहानी में वस्तु के उस रूप के दर्शन होते हैं जो वास्तविक है। मनुष्य कहानी में अपने या दूसरे मानव की जीवन घटनाओं के द्वारा जीवन रहस्य को आसानी से समझ लेता है। कहानीकार राजनीति, धर्म, विज्ञान सभी का वर्णन मनुष्य के जीवन से व्यावहारिक सम्बन्ध बताते हुये करता है। कहानी जीवन के ज़्यादा पास है और थोड़े से शब्दों में जीवन के अनेक जटिल रहस्यों को सरलता से समझा देती है। वह सिद्धान्त के लिये उदाहरण का काम देती है।

उदाहरण के लिये कल्पना की आवश्यकता होती है। कल्पना का सीधा साधा अर्थ योजना बनाना है। मनुष्य कल्पना करने में जितना चतुर होता है उतना क्रिया में भी। कल्पना की निर्बलता क्रिया की अर्थात समाज की निर्बलता है। साहित्य को इसीलिये समाज का दर्पण कहा गया है।

ऊपर कहा है कि मनुष्य जिज्ञासु है उसमें आत्माभिव्यक्ति की प्रबल भावना है और वह आराम पसन्द है। बुद्धि के सारे चमत्कार उसने अपने जीवन को सरल से सरल बनाने के लिये पैदा किये हैं। अपने इन्हीं स्वभावों के कारण वह आकाश में उड़ा, पाताल में कूदा, उसने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की यात्रा की तथा अब सदेह स्वर्ग में जाने को आतुर है। परन्तु इनके साथ उसका एक और प्राकृतिक गुण है। वह उसका सौन्दर्य प्रेम है। उसके सौन्दर्य का आधार अच्छा लगना है। अच्छा लगने में रोचकता और उपयोगिता दोनों हैं। यहीं पर साहित्य के साथ कला का सम्बन्ध जुड़ता है। कला सजाने का काम करती है। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगिता और रोचकता दोनों की दृष्टि से साहित्य को सुन्दर बनाती है।

तब कहानी की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। कहानी में चेतन-शक्ति की जिज्ञासा का समाधान इस प्रकार व्यक्त होता है कि वह जीवन के विकास को गति देता हुआ उसे अधिक से अधिक बोधगम्य और व्यापक बना देता है। इसे जीवन की आलोचना भी कह सकते हैं। आलोचना में व्याख्या अन्तर्निहित है। दूसरे शब्दों में कहानी में मनुष्य अपने को जानता है। वह स्वयं जीवन है। एक महान साहित्यकार ने जीवन को आत्मरक्षा कहा है। 'मैं हूँ' के साथ साथ 'मैं जानता हूँ' इस सत्य की रक्षा भी आत्मरक्षा है। परन्तु आत्मरक्षा की इस एकांगी भावना से डरना नहीं चाहिये। मनुष्य जब समझ लेता है कि औरों के अस्तित्व में ही उसका अस्तित्व है तो वह जीवन को समझ लेता है।

कहानीकार का उत्तरदायित्व इसीलिये ज्यादा है कि वह व्याख्या है। इसलिये उसके लिये यह ज़रूरी है कि वह अपने चारों ओर की दुनिया से घनिष्ट से घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करे। उधर से मुंह मोड़कर वह दार्शनिक बन सकता है परन्तु कलाकार नहीं। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि चूंकि कहानी का जीवन से व्यापक सम्बन्ध है इसलिये उसे वैयक्तिक ज़्यादा नहीं होना चाहिये। ऐसी कहानी पाठक के लिये आसानी से ग्राह्य नहीं होती यह ठीक है। समाज से व्यक्ति अलग नहीं हो सकता। व्यक्ति के विश्लेषण को लेकर कहानी हमेशा लिखी जाती रहेगी परन्तु मनोविश्लेषण या मनोवैज्ञानिक अध्ययन ऐसा नहीं होना चाहिये कि कहानी साहित्य उसका लक्षण ग्रन्थ बन जावे। मनोविज्ञान का आविष्कार अस्वथ्य मन और मस्तिष्क के विकारों की परीक्षा के लिये हुआ था। यह स्थिति रोग का निदान करने के लिये तो ठीक है परन्तु इलाज के लिये कदापि नहीं। यदि हम मनोविज्ञान को आधार मानकर ही चलेंगे तो हमारे साहित्य में अस्वथ मन और अर्द्धविक्षिप्त चरित्रों का बाहुल्य हो जावेगा। जैसा कि हुआ है। हम मनोविज्ञान या व्यक्ति के मनो-विश्लेषण का विरोध नहीं करते। बात केवल इतनी है कि कहानी एक व्यक्ति तक सीमित न रहे वह व्यक्तियों की चर्चा अधिक करे जिसे साहित्य में साधारणीकरण कहते हैं। कहानीकार को अपनी दार्शनिकता को मानव समाज में निरन्तर मच रहे संघर्ष की कसौटी पर परखना चाहिये। तभी वह उस दार्शनिकता का मूल्य समझ सकेगा। इसके अभाव में कहानी अधूरी रह जावेगी। हमें यह समझ लेना चाहिये कि जो दुनिया में सबसे नीचे हैं उनकी आत्मा भी अनन्त है। उनका जीवन भी समुद्र की भाँति गहरा और आकाश की भांति प्रशस्त है। इसलिये कहानीकार को सदा अपने सम्पर्क को व्यापक बनाना चाहिये। यदि वह आंखें खोलकर चलेगा तो कहानी के असंख्य प्लाट चलते-फिरते दिखाई देंगे। जन जीवन में साहित्य भरा पड़ा है और उससे सम्पर्क स्थापित करने पर ही वह सफल लेखक हो सकता है।

व्यापक सम्पर्क के लिये व्यापक दृष्टिकोण और व्यापक ज्ञान आवश्यक है। परम्परा को यदि आगे न बढ़ाया जावेगा तो तालाब का जल सड़ उठेगा। साहित्य सर्वभक्षी है। परम्परा के अर्थ केवल इतने ही नहीं हैं कि "जो चलती आ रही है" बल्कि उसमें "चलती रहेगी" यह भी गर्भित हैं। रही में प्रवाह की शर्त है। इसलिये कछुये की तरह अपने में सिमटकर बैठने से काम नहीं चलेगा। अपने से बाहर देखना होगा और इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को अपने में पचाना होगा। ज्ञान अध्ययन से मिलता है। अध्ययन को हमें एक पेशे के रूप में स्वीकार करना होगा। और ऐसा करते हुए अपने समकालीन और पूर्ववर्ती सभी साहित्य के प्रति एक आलोचक की दृष्टि रखनी होगी। आलोचक की दृष्टि इसलिये कि उसके बिना कुछ ग्रहण करना कठिन है बल्कि अक्सर ऐसा हो जाता है कि हम अपने अस्तित्व को भुलाकर किसी के हो जाते हैं। यह स्थिति कलाकार के लिये आत्मघात के समान है। वह कभी किसी का डिक्टेशन नहीं ले सकता। इसीलिये उसे जागरूक रहकर ही अध्ययन करना चाहिये। वह जागरूक है तो ग्रहण करना न नकल है न चोरी। क्योंकि विचार और भावना किसी की बपौती नहीं है। चिन्तनशील रहते हुये अगर किसी नये लेखक को भावना किसी दूसरे समकालीन अथवा पूर्ववर्ती लेखक से मिल जाती है तो वह भावना को व्यापकता का परिचय है। तो भी इसका यह अर्थ न हो कि किन्हीं दो लेखकों की वाक्य-रचना भी मिल सकती है। वर्णमाला के अक्षर होते हुये यह उसी तरह असम्भव है जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृश्य मनुष्यों के रहते हुये किन्हीं दो शक्लों का हूबहू मिलना। यों तो दस इन्द्रियां सभी मनुष्यों के क्या लगभग सभी जीवों के होती हैं।

ऊपर कथाकार को व्याख्याता कहा गया है परन्तु व्याख्याता का अर्थ प्रचारक नहीं है। कथाकार के लिये यह आवश्यक है कि वह कला और प्रचार के अन्तर को समझ ले। उसके अपने कुछ विचार होते हैं परन्तु उसे उन्हें इस प्रकार प्रगट नहीं करना चाहिये कि वे पाठक के मन पर सीधे उभर आवें और वह स्पष्ट समझ जावे कि यह लेखक तो एक विशेष विचारधारा का प्रचार करना चाहता है। यह नारेबाज़ी कलाकार की असफलता का नारा बुलन्द करती है। राजनीतिज्ञ, धर्मगुरु और सुधारक—ये सब प्रचारक हैं परन्तु कथाकार नहीं है। वह जिस प्रकार डिक्टेशन नहीं ले सकता उसी प्रकार वह किसीको डिक्टेट भी नहीं कर सकता। इसलिये उसे इस प्रकार लिखना चाहिये कि उसके विचार उसकी अपनी अचेतनता में इस तरह घुल-मिल जावें, इस प्रकार रम जावें कि पाठक उन्हें कभी भी कलाकार की कला से अलग न कर सके। कहानी के पात्र इस तरह अपनी बात कहें कि पाठक कलाकार के अस्तित्व को भूल जावे। और यह तभी सम्भव हो सकता है जब लेखक अपनी कला में रस ले। अर्थात् वह दर्शक न बन कर अभिनेता बने। जब वह अपने पात्रों से इस प्रकार तन्मयता स्थापित कर लेता है तो कला और जीवन में कोई अन्तर नहीं रहता और कलाकार अपनी बात पाठक के हृदय में पहुँचाकर भी प्रचारक नहीं बनता।

इस दोष से बचने के लिये कहानीकार को कुछ और बातों का भी ध्यान रखना चाहिये। पहिली बात तो यह है कि वह ईमानदार बने। बिना ईमानदारी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है लेकिन ईमानदारी का अर्थ कठमुल्लापन नहीं है, संतुलन मात्र है। कहानी पाठक के हृदय को छूले लेकिन ऐसा न हो कि आँसू आँखों की दृष्टि हर ले। वह उसके मस्तिष्क को चेतन करे परन्तु लेखक और उसके आशय को समझने के लिये पाठक को माथा-पच्ची न करनी पड़े। उस अनुभव की गहराई में डूबकर निकलना चाहिये ऐसा करने से वह न केवल ईमानदार ही होगा बल्कि प्रचारक होने से भी बच जावेगा। दूसरी बात आत्मविश्वास की है। आत्मविश्वास का अर्थ अहंकार नहीं है। कुछ नये लेखक ऐसा समझ बैठते हैं। वे सोचने लगते हैं हम जो कुछ लिखते हैं वह कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। हमें अब कुछ नहीं सीखना है, हम तो सिखाने वाले हैं। यह गति पर अंकुश है। गति के अभाव में प्रगति की कोई शर्त नहीं होती। इस प्रकार की भावना विष के समान है। आत्मविश्वास को केवल इसी अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है कि व्यक्ति सब कुछ कर सकता है, सब कुछ जान सकता है और करने तथा जानने की कोई सीमा नहीं है। यह ठीक है कि आदर्श स्थिर नहीं हैं, मनुष्य सदा नये नये आदर्शों का निर्माण करता रहा है और करता रहेगा परन्तु आदर्श की आवश्यकता तो हमें स्वीकार करनी ही पड़ेगी। उसके अस्तित्व से इन्कार करना प्रगतिशील दृष्टिकोण नहीं है। तीसरी बात यह है—कथाकार केवल यथार्थ का चित्रण करने वाला नहीं है बल्कि वह यथार्थ क्यों और कैसे सम्भव हुआ, यह भी सुझाने वाला है। क्या यह स्थिति ठीक है? यदि नहीं है तो क्या होनी चाहिये? इन प्रश्नों से आज के कथाकार को मुँह नहीं मोड़ लेना है। प्रचारक न होते हुये भी उसे भविष्य की झाँकी देनी चाहिये। क्योंकि वह केवल जीवन का चितेरा ही नहीं है, सृष्टा भी है। इसलिये सृष्टा का गहन दायित्व भी उसे सँभालना चाहिये। उसे सृष्टा की तरह सृष्टि के जीवन में बिल्कुल लय हो जाना चाहिये। ऐसा करने पर ही वह संसार व्यापी द्वेष, विरोध, बेकारी, गरीबी, शोषण, छलना और पतन के रहस्य को समझ सकेगा।

अन्त में एक बात और है। वह यह कि क्या कथाकार को कथा लिखने की टेकनीक का अध्ययन करना आवश्यक है? जो लेखक केवल टेकनीक के पीछे पड़कर ही आगे बढ़ते हैं वे और कुछ भले ही बन जायें परन्तु कथाकार नहीं बन सकते। उनमें प्रवाह का अभाव रहता है और प्रवाह जीवन की शर्त है। जिस लेखक ने जीवन की गहराई को आँका है अथवा जिसने अपने दृष्टिकोण को व्यापक बना लिया है, उनके हृदय से जो कुछ भी कहानी के रूप में निकलेगा वह कहानी की दी गई टेकनीक पर अवश्य पूरा उतरेगा, अथवा वह नई टेकनीक का निर्माण करेगा। छन्द घोट घोटकर कोई कवि नहीं बना है। इसी तरह टेकनीक याद करके कहानी लिखना किसीने नहीं सीखा बल्कि कहानीकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरोत्तर विकास ही टेकनीक बन गया है। कहानीकार स्वयं टेकनीक का निर्माता है इसीलिये वह अडिग भी नहीं है बल्कि सदा परिवर्तनशील है। इतनी बात समझ कर यदि कहानीकार टेकनीक का अध्ययन करता है तो वह धोखा नहीं खा सकता।

वैसे टेकनीक का प्रश्न कला के अन्तर्गत आता है। कहानी का आदि और अन्त, विकास और चरम सीमा और उनके नाम शीर्षक और प्रकार, पात्रों की संख्या, ये सब उसके कलेवर को सँवारने और सजाने का काम करते हैं, इसलिये उनको भूलने की बात नहीं उठती लेकिन वह लेखक के मस्तिष्क का बोझ बन जावे, यह स्थिति अधीन नहीं है।

भाषा का प्रश्न भी आजकल एक समस्या बन गया है परन्तु जिस कथाकार का सम्पर्क जीवन और जनता से है उसके लिये भाषा का प्रश्न कोई अहमियत नहीं रखता। वह उसी भाषा में लिखेगा जिसमें जनता चाहती है अन्यथा उसका पतन हो जायेगा। जिस लेखक का लिखा हुआ पढ़ा नहीं जाता वह कितने दिन जी सकता है!

फिर भी भाषा हो या टेकनीक लेखक सब क्षेत्रों में नये नये प्रयोग करने को सदा स्वतन्त्र है। बन्धन केवल उस पर एक ही है—उसके साहित्य का जीवन से सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिये।

षोडषी

श्री० करील

१

पाकर नव तारुण्य उषा ने अपनी मृदु मुसकान बिखेरी।
मंगल गीत दिवस ने गाये जागी जीवन की निधि मेरी॥
बजी जागरण की जल-थल में स्वर भरती अम्बर में भेरी।
सुन्दरता ने सुन्दर होकर अपनी दृष्टि भुवन पर फेरी॥
जाग उठे सुख के सब साधन मुक्त हुई छन्दों की वाणी।
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

२

मंजुमना यह हुलस प्रकृति ने जिस पर निज लावण्य लुटाया
यह मृदुला जिस पर कमलों ने अपना प्रिय आरुण्य लुटाया
इसके वर से वर वसना ने वसुधा में तारुण्य लुटाया।
यह वह जिस पर निखिल भुवन ने अपना संचित पुण्य लुटाया
आज भावना खुल खुल खेली आज हँसी छन्दों की वाणी
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

३

इसके इन चरणों की रज ने धरती का शृङ्गार संवारा।
इसके चंचल नव नयनों ने प्राणों में उल्लास पसारा॥
इसके सुयश भरे हाथों से सरस बना संसार हमारा।
इसके मृदु अधरों से बरसी जीवन की मंजुल रस-धारा॥
खिली हृदय की प्रणय-साधना, आज खुली मानस की वाणी
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

४

यह कवि के शब्दों का वैभव इसमें सुख-सम्पत्ति समायी।
यह ममता की गौरव-गाथा इसमें त्रिभुवन की छवि छायी॥
मानवता की पुण्य कथा यह इसने मन की ज्योति जगायी।
इसकी इस कंचन-काया में मंगलमय माया मुसकायी॥
इस विकास की कल्पलता से धन्य हुई छन्दों की वाणी।
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

५

नव पल्लव इन वन बागों के इसकी चंचलता से डोले।
इसके मोहक स्वर साधन से विहंगों ने अपने मुँह खोले॥
छवि ने इसकी रूप-राशि से चाहा आज पुरस्कृत होना।
इसके विकसित नव यौवन से हँसकर धरती के वन बोले।
आज बसी भावों के वन में यह कुसुमाकर की वर वाणी।
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

६

मन की इस आशा ने चाहा यौवन में जीवन लय होवे।
सुख की परिभाषा ने चाहा मधुर सुधा का संचय होवे॥
उर की अभिलाषा ने चाहा वह घर घर मंगलमय होवे।
कवि की मृदु भाषा ने चाहा उसके वैभव की जय होवे॥
गूंजी आज हृदय की वीणा, मुक्त हुई प्राणों की वाणी।
आज षोडषी बनकर उतरी यह भव की कविता कल्याणी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीसलदेव रासो में ऐतिहासिक तत्व

श्रीमती विद्या गुप्त एम० ए०

"बीसलदेव रासो" डिंगल भाषा में रचित हिन्दी साहित्य का प्राचीनतम प्रामाणिक प्राप्त ग्रन्थ है। कथानक में ऐतिहासिकता का पुट होने के कारण इसका केवल साहित्यिक महत्व ही नहीं, ऐतिहासिक महत्व भी है। यद्यपि एक सामान्य चारण द्वारा प्रणीत होने के कारण घटना-क्रम में विपर्यय तथा तिथियों का निरूपण विचारपूर्ण गवेषणा द्वारा नहीं हुआ और इस प्रकार इसका महत्व ऐतिहासिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता, किन्तु फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में निहित ऐतिहासिक तत्व इतिहास प्रेमियों के लिए आकर्षण का विषय है।

ग्रन्थ की मुख्य ऐतिहासिक घटना—नायक बीसलदेव का परम प्रतापी धाराधिपति भोजराज की कन्या राजमती से विवाह तथा उड़ीसा-यात्रा है।

ग्रन्थ की इन दो मुख्य घटनाओं के अन्दर अन्य छोटे-मोटे ऐतिहासिक तथ्य भी निहित हैं जिनसे हमें तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का कुछ थोड़ा-सा ज्ञान होता है। जैसे—बीसलदेव का भोज कन्या से विवाह के पूर्व सात वर्ष तक बाहर युद्धादि में प्रवृत्त रहना, उसके दरबार में मुसलमान सरदारों का होना तथा उसकी राज्यसीमा का विस्तार। इसके अतिरिक्त 'आणा सागर' का बखान, सरदारों के नामों की ऐतिहासिकता तथा बीसलदेव की पारिवारिक स्थिति से भी हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी परिचित हो जाते हैं।

परंतु ऐतिहासिक कसौटी पर इन सारे तत्वों की समीक्षा करने में उलझन डालने वाली घटना है—कवि द्वारा कथित ग्रन्थ-निर्माण की तिथि। कवि का कथन—

बारह सै बहोत्तरा हां मझारि
जेठ बदी नवमी बुधवारि।

है। आलोचकों ने इस तिथि-संकेत से तीन अर्थ निकाले हैं—

१—लाला सीताराम इसे १२७२ वि० मानते हैं।
२—मिश्रबन्धु के अनुसार यह १२२० वि० है।
३—श्री सत्य जीवन वर्मा का निष्कर्ष १२१२ वि० है।

उपर्युक्त तिथियों में श्री सत्यजीवन वर्मा के निष्कर्ष के स्वर्गीय आचार्य शुक्ल भी सहमत थे और कुछ काल के लिए यह तिथि सर्वमान्य हो गई थी।

किन्तु इस "बारह सै बहोत्तरां" तिथि के उल्लेख ने बीसलदेव के व्यक्तित्व तथा ग्रन्थ की प्रमाणिकता को ही धुन्ध में डाल दिया। सम्पूर्ण ग्रन्थ में वर्तमान कालिक क्रियाएं प्रयुक्त हैं जिससे बीसलदेव और कवि का समकालीन होना प्रमाणित होता है और इस प्रकार तिथि द्वारा निरूपित कथा नायक बीसलदेव चतुर्थ ठहरता है। बीसलदेव चतुर्थ को यदि हम कवि की रचना का नायक मान लें तो एक उलझन उपस्थित हो जाती है, धारनरेश के तथा बीसलदेव के राज्यकाल में लगभग १५० वर्षों का व्यवधान। यद्यपि परम प्रतापी राजा भोज के समय के विषय में भी इतिहासकार एकमत नहीं फिर भी हम देखते हैं कि धाराधिपति भोजराज के राज्यारोहण के तिथि-निरूपण में विभिन्न सम्मतियों में कुछ ही वर्षों का अन्तर पड़ता है। ओझा जी के अनुसार भोज के राज्यारोहण की तिथि १०५५ वि० है कुछ अन्य इतिहासकारों ने भोज की तिथि १०७५ मानी है किन्तु यह भी ग्रन्थ में वर्णित तिथि और घटनाओं से मेल नहीं खाती। ग्रन्थकार स्पष्टतः "बारह सै बहोतरां हां मझारि" कह रहा है। अतः उपर्युक्त सभी तिथियां बीसलदेव चतुर्थ और भोज के राज्यकाल से मेल नहीं रखतीं; और इस प्रकार बीसलदेव चतुर्थ और भोजकन्या राजमती का विवाह सिद्ध नहीं होता। किन्तु श्री सत्यजीवन वर्मा कथा नायक बीसलदेव चतुर्थ को ही मानते हैं। इस समस्या का समाधान आप राजमती को परमार वंशीय कोई राजकन्या मानकर करते हैं जिसकी पुष्टि लोक-कथाओं में प्रत्येक दानशील राजा के भोज नामकरण से तथा प्रत्येक पराक्रमी राजा की उपाधि "विक्रमादित्य" होने से होती है। आचार्य शुक्ल भी अपने गंभीर विवेचन के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

श्री सत्यजीवन वर्मा के कथा नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने का एक पुष्ट आधार है बीसलदेव चतुर्थ का कवि द्वारा कथित १२१२ वि० तिथि के समकालीन होना। इतिहास में बीसलदेव चतुर्थ की राज्य-तिथि १२२० वि० से १२२० वि० तक सिद्ध है। श्री वर्मा जी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान का दूसरा आधार है नायक के उड़ीसा-गमन का उल्लेख। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से बीसलदेव की उड़ीसा-यात्रा प्रामाणित नहीं होती और न उसके १० वर्षीय अल्प कालीन राज्य में उड़ीसा का १२ वर्षीय दीर्घ-कालीन प्रवास ही संभव प्रतीत होता है। श्री सत्यजीवन वर्मा केवल इस आधार पर कि बीसलदेव चतुर्थ ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग में विन्ध्याचल से लेकर हिमालय तक के देशों को विजय किया था, यह अनुमान लगाते हैं कि संभवतः इसी प्रसंग में बीसलदेव ने उड़ीसा की भी यात्रा की हो और कवि ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के लिए उसका प्रवासकाल १२ वर्ष लिख दिया हो। किन्तु इस कल्पना का कोई प्रामाणिक आधार न होने के कारण कथा नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानना अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

श्री सत्य जीवन वर्मा के कथा नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानने का दूसरा आधार है "आणा सागर" का उल्लेख। आपका अनुमान है कि यह आणा सागर अर्णोराज द्वारा बनवाया गया था जो कि बीसलदेव चतुर्थ का पिता था।

इस प्रकार इस कल्पना का आधार आणा सागर की स्थिति है, अन्यथा ३६ वर्ष की अल्पायु वाले, केवल १० वर्ष राज्य करने वाले बीसलदेव चतुर्थ का कथा नायक होना सर्वथा निराधार प्रतीत होता है। किन्तु स्वयं वर्मा जी यह स्वीकार करते हैं कि अर्णोराज द्वारा झील का बांध निर्माण करने की कल्पना भी एतिहासिक आधारों पर निरूपित न होकर केवल किंवदन्तियों पर निर्भर है। अतएव ग्रन्थ के नायक बीसलदेव चतुर्थ का नायक-पद विवाद-ग्रस्त हो जाता है।

इस संशय का मुख्य और ठोस कारण है बीकानेर में श्री गजराज ओझा द्वारा प्राप्त "बीसलदेव रासो" की एक प्राचीन हस्त लिखित प्रति जिसमें रचना-तिथि

"संवस सहस तिहत्तर जाणि"

लिखी है।

अब यदि हम इस १०७३ वि० तिथि को प्रामाणिक मान लें तथा श्री राजेन्द्र लाल मित्र द्वारा निर्धारित भोज का समय १०२६ से १०८३ और बीसलदेव द्वितीय का १०३० से १०५६ तक मान लें तो राजा भोज और बीसलदेव तथा कवि समकालीन सिद्ध हो जाते हैं। फिर भी रचना काल में बीसलदेव के राज्यकाल से १७ वर्ष का अन्तर बना ही रहता है और साथ ही एक अन्य संकेत जो हमें ग्रन्थ में मिलता है उससे मेल नहीं खाता। यह संकेत है भोजराज की कन्यादान के समय अवस्था। कवि के कथन से प्रतीत होता है कि वरान्वेषण का समय भोजराज की जीवन-सन्ध्या का समय था और इसी कारण राजमती की माता अपने पति से प्रार्थना करती है—

बारह बहतई आपणइ

कुँवर परणावौ, सोझउ बींद।

अर्थात् अपने जीवनकाल में ही वरान्वेषण कर कन्या-सम्प्रदान कर दीजिए। स्पष्ट ही है कि भोजराज की अवस्था अवसानोन्मुख है; अन्यथा इन शब्दों का महत्व क्या है?

इसी प्रकार कन्या-सम्प्रदान से परितुष्ट भोज का कथन भी महत्वपूर्ण है—

मोहि तुठो छइ सिरजणहार

आषर लिखाया बेह का।

भोजराज की इस वृद्धावस्था का संकेत हम भोजराज की राजकालीन तिथि और बीसलदेव द्वितीय की तिथि निरूपण में नहीं पा सकते। क्यों कि बीसलदेव द्वितीय भोज की वृद्धावस्था के पूर्व ही निर्माण प्राप्त कर लेते हैं। अतः भोज के अन्तिम दिनों में उनकी कन्या से बीसलदेव का विवाह करना सिद्ध नहीं होता।

इस संक्षिप्त समीक्षा के बाद यदि हम विग्रहराज तृतीय को कथा-नायक मानकर ऐतिहासिक आधार के लिए बीजोलिया के शिलालेख की सहायता लें तो हमें अपनी कल्पना के पांव भूमि पर टिकाने को एक ठोस आधार मिल जाता है, क्योंकि इस शिलालेख में बीसल-देव को राजदेवी का पति माना है और राजदेवी का 'राजमती' में परिवर्तित हो जाना असम्भव नहीं। यह बहुत सम्भव है कि कवि ने इन्हीं राजदेवी और बीसलदेव तृतीय को अपनी कथा का नायक-नायिका निर्धारित किया हो। बीजोलिया के शिलालेख के अतिरिक्त अन्य कोई ऐतिहासिक आधार हमें अपनी कल्पनाओं को सहारा देने के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। तिथियों की विषमता अनुमान को अनुपयुक्त सिद्ध कर देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सभी तिथियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्या नायक बीसलदेव चतुर्थ नहीं, बीसलदेव द्वितीय अथवा तृतीय ही हो सकता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि डा० रामकुमार वर्मा कथा नायक को बीसलदेव द्वितीय ही मानते हैं।

ग्रन्थ में वर्णित अन्य ऐतिहासिक तत्व आणा सागर तथा बीसलदेव की उड़ीसा यात्रा आदि स्वयं ही ऐतिहासिक कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इनका आधार अनुमान एवं किंवदन्ती मात्र है।

ग्रन्थ में हमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है—बीसलदेव के सरदारों में मीर कबीर का उल्लेख। बीसलदेव के सरदारों में मीर कबीर का होना ऐतिहासिक सत्य रखता है। इसके आधार पर हमें तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का आभास मिलता है। इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट है कि अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के नेतृत्व में हिन्दू-शक्तियों ने मुसलमानों के विरुद्ध एक संघ स्थापित किया था जिसमें अनंगपाल भी सम्मिलित था। इस प्रकार अनंगपाल के संघ में सम्मिलित होने से स्पष्ट है कि १००१ वि० में हिन्दू संघ की स्थापना करने वाला बीसलदेव प्रथम ही हो सकता है जो मुसलमानों का विरोधी था। तदुपरान्त १०३० से १०५६ तक राज्य करने वाले बीसलदेव को हम द्वितीय मान सकते हैं और उसके राज्यकाल में उसके सरदारों में मुसलमान सरदारों की कल्पना करना अनुपयुक्त प्रतीत होता है। हां आगे चलकर विरोध के हटने की सम्भावना की जा सकती है और परिणाम स्वरूप बीसलदेव तृतीय के राज्यकाल में मुसलमानों के देश में बस जाने पर राजदरबारों में पहुंच जाने की कल्पना सम्भव प्रतीत होती है। इस प्रकार बीसलदेव तृतीय के सरदारों में मीर कबीर का उल्लेख राजनैतिक वातावरण की एक महत्वपूर्ण घटना प्रतीत होती है।

'रासो' के प्रणेता ने बीसलदेव की यान-सज्जा के अवसर पर मीर कबीर का उल्लेख कर हास्य रस का विधान किया है। यह उपहास "अमल खलीती" तथा "सीना पोसता छांडया छाँणि" में अत्यन्त प्रच्छन्न रूप से व्याप्त है। इस वर्णन में हमें वह वैज्ञानिक तथ्य मिलता है जिसके कारण बहुधा हम अपने उन साथियों पर जिनकी उपस्थिति हमें अभिप्रेत नहीं, व्यंग के छींटे उड़ा देते हैं। इन पंक्तियों में नियोजित हास्य-विधान गूढ होते हुए भी सरल है और परिस्थिति का निर्देश करता है।

कथा-प्रसंग में कवि ने नायक की भाभी का उल्लेख किया है। श्री सत्यजीवन वर्मा ने नायक को बीसलदेव चतुर्थ मानते हुए इस 'भाभी' को जगद्देव की पत्नी माना है और इस प्रकार उसे ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्रदान किया है, किन्तु क्योंकि हमें बीसलदेव चतुर्थ को कथा नायक मानने में आपत्ति है हम इस भाभी को कथा प्रसंग में 'पंच सखी' के समान एक काल्पनिक पात्र मात्र मानते हैं। साथ ही ग्रंथ में उल्लिखित भतीजे का नाम 'कोकि' भी यह सिद्ध करता है कि वह जगद्देव का पुत्र नहीं क्यों कि उसका नाम पृथ्वी भट्ट इतिहास सम्मत है।

ग्रन्थ में ऐतिहासिक तिथियों तथा तथ्य निरूपण की इस संक्षिप्त-सी समीक्षा के बाद भी हम इतना कह सकते हैं कि ग्रन्थकार का उद्देश्य किसी ऐतिहासिक वृत्त विशेष का निरूपण नहीं। वह तो जनता के मनोरंजनार्थ "अखा रसायण" का वर्णन करता है। ग्रंथकार की इस मनोवृत्ति का परिचय हमें उसके स्त्री प्रकृति के चित्रण में अनेक स्थान पर मिलता है। भोजपत्नी का कन्या के वरान्वेषण के आग्रह में, विवाह के अवसर पर सखियों का वर से हास-परिहास तथा दाम्पत्य-जीवन के बहुरंगी चित्रों में नारी स्वभाव का चित्रण स्पष्ट कर देता है कि कवि वीर-चरित्र-गान की अपेक्षा शृङ्गार रस को अधिक महत्व देता है और इसके निमित्त कथा के नायक-नायिका उन प्रख्यात व्यक्तियों को बनाता है जो जनता के अधिक निकट और प्रिय थे। कथानक को अधिक मर्मस्पर्शी बनाने के लिए वह इसमें शृङ्गार रस के दोनों पक्षों का निरूपण करता है और इस कारण नायक का वीरत्व प्रकाशित नहीं हो पाता और कवि का दृष्टिकोण स्पष्टतः ही ऐतिहासिक तथ्य निरूपण से दूर जा पड़ता है, और सम्पूर्ण कथा इतिहास से बहुत दूर एक राजा के संयोग-वियोग की सामान्य कथा मात्र रह जाती है। केवल नाम ऐतिहासिक हैं अन्यथा हमें कहीं भी कोई ठोस ऐतिहासिक वृत्त नहीं मिलता और यदि हम बीसलदेव, राजा भोज और राजमती के नामों की ऐतिहासिक सापेक्षता को दूर हटाकर उन्हें शृङ्गार रस प्रधान काव्य के सामान्य नायक-नायिका मानें तो हमारे सम्मुख कोई ऐसा ऐतिहासिक तत्व नहीं आता जो उनके काल्पनिक व्यक्तित्व को वास्तविकता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिधान पहना सके। अतः हमें इन नामों की ऐतिहासिकता उतनी ही खोखली प्रतीत होती है जितनी रीतिकालीन सभी कवियों के नायक नायिकाओं का राधा-कृष्ण होना। इस अनुमान की पुष्टि कवि के वर्णनों में परम्परा के पालन के भाव से और भी होती है। स्थान स्थान पर "बारा बरस की गोरड़ी" का वर्णन तथा नायक बीसलदेव को २२ वर्ष के नवयुवक के रूप में चित्रित करना केवल परम्परागत है। सात वर्ष तक बाहर रहकर शत्रुओं से लोहा लेने वाले ६० रानियों के पति बीसलदेव की आयु २२ वर्ष मात्र मानना इतना ही हास्यास्पद प्रतीत होता है जितना तरुणी राजमती को "बारह बरस की गोरड़ी" मानना। इसी प्रकार आगे चलकर अपनी नवपरणीता रानी के क्षुद्र से व्यंग से चिढ़कर प्रतापी बीसलदेव का १२ वर्ष तक अकर्मण्य भाव से उड़ीसा में पड़े रहना भी उपहासजनक है और यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर देता है कि कवि का उद्देश्य इस प्रवास काल की योजना में केवल विरहिणी की विरह-व्यथा गाकर जनता का मनोरंजन मात्र है और इसके अन्तराल में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं।

कवि ने काव्य के प्रारंभ में है। लिखा है—

हंस-वाहिणि, मिग लोचनि नारि
सीस संवारइ दिन गिणइ
जिण सिरजइ उलगण घर नारि
जाई दिहाणेउ भूरितां।

एक दूसरी शंका तब उठती है जब कि हम दौत्य के लिए नियुक्त ब्राह्मण को राजमती से यह पूछते देखते हैं—

"राजा कौण उणिहारइ, कौण सारिखो।

क्या उसने कभी अपने परम प्रतापी राजा के दर्शन भी न किए थे?

प्रश्न उठता है—क्या नाल्ह वास्तव में कथा-नायक का समकालीन है? यदि हां, तो उसे नायक बीसलदेव के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहिए और दौत्य के लिए प्रेषित ब्राह्मण के मन में ऐसी शंका उठाना अनुचित है। प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार और बीसलदेव समसामयिक नहीं हैं। ग्रन्थ में वर्तमान कालिक में क्रियाएं होने से यह आवश्यक नहीं कि कवि राजा का समकालीन अवश्य हो। ग्रन्थ में वर्तमान कालीन क्रियाओं का प्रयोग घटनाओं को सत्य रूप देने के लिए तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भी ऐतिहासिक वर्त्तमान काल के रूप में किया जा सकता है। बहुधा कवियों ने यह शैली अपनाई है। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की सम्मति में नरपति नाल्ह बीसलदेव से १५० वर्ष पीछे हुआ और तब जैसलमेर, अजमेर, आणासागर आदि के वर्तमान होने के कारण इनके नाम अपने काव्य में भर दिए।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार ग्रन्थ रचना की तिथि "संवस सहस तिहत्तर जाणि" पुनः अप्रमाणिक-सी सिद्ध हो जाती है और हमें ग्रन्थ रचना की तिथि निरूपण के लिए पुनः अन्य आधार ढूँढने पड़ते हैं। श्रीयुत अगरचन्द नाहटा ने १५ हस्तलिखित प्रतियों से ग्रन्थ की रचना तिथियाँ क्रमशः १०७३, १०७७, १२७२, १३७७, और १७७३ वि० दी हैं। इनके अनुसार ग्रन्थ की भाषा भी १६ वीं अथवा १७ वीं शताब्दी की है, पर अन्य विद्वान इसमें प्राचीनता के चिन्ह वर्तमान पाते हैं और इस १२वीं अथवा १३वीं शताब्दी की रचना मानते हैं।

ग्रन्थ रचना की उपर्युक्त तिथियों मे सर्वाधिक युक्तिसंगत १०७३ ही प्रतीत होती है क्योंकि इसके द्वारा हमें ग्रन्थ में वर्णित एकमात्र ऐतिहासिक तथ्य बीसलदेव तृतीय के भोज कन्या राजमती से विवाह का कुछ युक्ति-भ्रान्ति संगत प्रमाण मिलता है। नाल्ह की रचना में जो जनक उक्तियाँ हैं और उनका एक मात्र कारण कवि में विद्वत्ता का अभाव प्रतीत होता है। "बीसलदेव रासो" एक अप्रौढ़ रचना है जिसमें परिष्कृत कल्पना, और प्रबन्धपटुता का स्पष्ट अभाव है। साहित्यिक सौन्दर्य का भी "बीसलदेव रासो" में उत्कर्ष नहीं, वह एक लोक गीत शैली में प्रचलित साधारण रचना है जो कवि के राजकीय वातावरण के परिचित होने की अपेक्षा उसका ग्राम्य-जीवन से सम्पर्क ही अधिक स्थापित करती है। प्रमाण के लिए कवि की कुछ मौलिक उपमाओं को यहां उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा। कवि ने विरहणी राजमती के कृशांगों के वर्णन में मार्मिक सूझ का परिचय दिया है जैसे—

मूंगफली सी आंगुली
कुसुम-कली कर नख जीसा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उसकी अस्थिशेष अँगुलिया मूंगफली के समान हैं, उनकी सुगोलता और सुकुमारता नष्ट हो गई है और नख कुसुम-कली के सदृश श्वेत पड़ गए हैं। इस उक्ति में चातुर्य होने पर भी मूंगफली से अँगुली की तुलना साहित्यिक सौन्दर्य की सृष्टि न कर केवल ग्रामीणता का ही बोध कराती है।

इसी प्रकार—

चांद पुलाणो बनी गयो
खीर की तौलड़ी कूँ रहइ सेर।

उक्ति भी किसी विशेष साहित्यिक सौन्दर्य का विधान नहीं करती। पूर्ण चन्द्र के अभाव में क्षीर-पात्र के नाप का लोह निर्मित सेर ही रह गया—कहने में चमत्कार अवश्य है; किन्तु मुख-शोभा को क्षीर-पात्र की उपमा देना मुख शोभा की ओर आकर्षित न कर वक्ता की भोजन-प्रियता की ओर ही आकर्षित करता है।

कवि को राजकवि मानने में हमें संकोच होता है। कवि की प्रतिभा राजकीय जीवन से सर्वथा अपरिचित है और उसमें हमें चन्द की साहित्यिक सुरुचि और सौष्ठव का कोई प्रमाण नहीं मिलता। ग्रन्थ के अध्ययन के बाद पाठक को कवि को एक साधारण चारण और रचना को एक अप्रौढ़ मस्तिष्क की सृष्टि भर मानने में कोई संकोच नहीं होता। साथ ही कवि की अनेक भ्रान्तिपूर्ण उक्तियों के कारण ग्रन्थ की ऐतिहासिकता भी विवादग्रस्त हो जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बीसलदेव रासो के ऐतिहासिक पक्ष की ओर हम साहित्यिकों को ध्यान नहीं देना चाहिए। हमारे लिए इसका साहित्यिक पक्ष पर्याप्त है। जहां तक रचना काल का प्रश्न है हम सं० १०७३ वि० मान सकते हैं। कवि का राजकवि होना विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

युग-जीवन

श्री० महेन्द्र भटनागर

प्रगति ही ध्येय जीवन का बना संबल !
गहन जीवन समुन्दर में रहीं प्रतिवार उठ - गिर वेग से लहरें,
बना सुख-दुख किनारे ज़िन्दगी बहती सरल-दृढ़ बन बिना ठहरे,
उमड़ते ज्वार के सम्मुख थिरक कर रोम कंपित हो नहीं सिहरे,
जटिलता राह की कब कर सकी दुर्बल ?
झुका कब शीश मानव का निमिष भर पत्थरों की चोट से शापित,
हुआ कब धैर्य जीवन का, सबल युग प्राण का, किंचित यहाँ विगलित,
प्रहारों से हुआ देदीप्य मुख, बढ़ती गई तन कान्ति हो ज्योतित,
सतत युग साधना व्रत चल रहा अविरल !
हिमालय-सी अड़ी निश्चिन्त बाधाएँ सुदृढ़तम रोककर, बढ़कर,
बरसते लाल शोले आसमां से विश्व का आँसू भरा सागर,
गिरा देना कठिन पथ पर हवाएँ चाहतीं बहतीं प्रखर सर-सर,
चरण पर बढ़ रहे हैं ज्वाल में जल-जल !
बनी तूफ़ान स्वर साथिन अमर यौवन भरी ललकार यह मेरी,
शिरा - सी वायु में कंपित अहिंसा ज्योतिमय तलवार यह मेरी,
हिला देगी सुदृढ़ पर्वत - शिला अन्याय की, हुंकार यह मेरी,
हृदय में आग नवयुग की मची हलचल !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य का नया युग

श्री आनन्द नारायण शर्मा

१९३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन के पश्चात् हिन्दी साहित्य का एक नया युग--एक संक्रान्ति युग—प्रारम्भ होता है। इस संक्रान्ति का कारण जानने के लिए हमें भारतीय समाज का ऐतिहासिक विकास देखना होगा।

मैकॉले की अँगरेज़ी शिक्षा ने भारत में एक शिक्षित 'निम्न मध्यवर्ग' को जन्म दिया। यह वर्ग इतना बढ़ा कि भारत की शासन-व्यवस्था उसे अधिकारी के रूप में खपा न सकी; और उसे बेकारी, भूख एवं ग़रीबी का शिकार बनना पड़ा। हर दृष्टि से इस वर्ग की बड़ी दुर्गति हुई। अँगरेज़ी शिक्षा-दीक्षा के कारण उसकी रूढ़िवादी हिन्दू-समाज में कोई जगह न थी और स्वयं उसके लिए यह सम्भव नहीं था कि वह अपना सब कुछ छोड़कर उस पिछड़ी हिन्दू नैतिकता को अपना ले, जो भारतेन्दु-युग से आरम्भ होकर मैथिली शरण गुप्त तक पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। वर्णाश्रित हिन्दू समाज के निषेधों और प्रतिबन्धों ने इस शिक्षित 'निम्न-मध्यवर्ग' के सामाजिक जीवन को कठिन बना डाला, जिसकी प्रतिक्रिया में इस वर्ग के कवियों ने पलायनवाद (Escapism) का रास्ता पकड़ा और हिन्दी कविता में अशरीरी छायावाद, रहस्यवाद आदि का बीजारोपण हुआ। इस काल के सभी प्रमुख कवियों ने हवाई महल बनाए और अपने-अपने देवी-देवताओं को उसमें प्रतिष्ठित किया। पन्त ने प्राकृतिक सुषमा से तादात्म्य स्थापित किया और तारों, ओस, विहंग, पत्तियों, झुरमुटों में अपने को खो दिया। 'प्रसाद' और 'निराला' ने भी इस जग को छोड़कर दूसरे जग में चले जाने की कामना प्रकट की।

छायावादी कविता में कल्पना की प्रधानता थी, विद्रोह के साथ भावुकता थी। कवि यह सोच-सोचकर व्यथित होता था कि मैं आसमान के तारे तोड़ना चाहता हूं, पर तोड़ क्यों नहीं पाता? लेकिन आगे चलकर वह सचेत हुआ और उसने देखा कि इस भावुकता का भी जीवन में कोई स्थान नहीं। वहां तो संघर्ष और केवल संघर्ष है। और इस संघर्ष में उसे पग-पग पर किसानों, मज़दूरों की आवश्यकता होगी। इसलिए उसने छायावादी कल्पना व बग़ावत की, तथा वह कविता को जीवन के निकट लाने के लिए यथार्थवाद की ओर झुका। उसने जीवन में कविता भरी और कविता में जीवन भरा।

बग़ावत का एक रूप वह भी था जिसका सम्बन्ध नारी से है। छायावादी कवि ने उसे स्वर्ग लोक की परी बना दिया था। नए कवि ने उसे फिर देवी से नारी बनाया। अब हृदय की टीस के साथ नारी के नग्न सौन्दर्य या उसकी कुरूपता का भी वर्णन होने लगा।

पन्त और 'निराला' दोनों ने ही सामाजिक यथार्थों को अपनी कविता का विषय बनाया। पन्त ने नूतन प्रभावों के लिए अपने को प्रस्तुत किया। उन पर यथार्थवाद का इतना गाढ़ा रंग चढ़ा कि उनके विषय में कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थों ने यदि किसी कवि को सम्यक् रूप से अपने हथौड़े से गढ़ा तो वह पन्त था। 'पल्लव' और 'गुंजन' से 'युगवाणी' एवं 'ग्राम' तक जो उन्होंने मार्ग तय किया है, वह क्रमशः बढ़ती हुई सामाजिक चेतना का मार्ग है। 'निराला' में भी यही 'क्रमशः बढ़ती हुई सामाजिक चेतना' देखी जा सकती है। 'कुकुरमुत्ता' का कवि, 'तोड़ती पत्थर' और 'स्फटिक शिला' का कवि, 'परिमल' और 'गीतिका' का कवि नहीं है।

महादेवी की कविताओं में कोई तात्विक अन्तर नहीं-सा हुआ है। वह जिस प्रकार 'नीहार' तथा 'रश्मि' में पीड़ा और वेदना का वरण कर रही थीं, उसी प्रकार 'दीपशिखा' में भी कर रही हैं। उनका विकास अन्तर ही-अन्दर गहराई की ओर हुआ है। उनकी कविता सामाजिक बिफलता (Frustration) अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो चुकी है। इतने वर्षों की सामाजिक परिस्थितियों के अधिकाधिक विषम होते जाने के साथ उनकी कविता उसी अनुपात में अन्तर्मुखी होती गई है। वेदनामूलक रहस्यवाद के रंग में उनकी कविता रंगी है, पर इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपनी दार्शनिक मान्यताओं को उन्होंने सामाजिक यथार्थों से रगड़ खाने से बचाया है।

राष्ट्रीय आन्दोलनों का भी हमारे साहित्य पर विशेषकर कविता पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। इनके कारण राष्ट्रीय कविताओं की एक ख़ासी अच्छी बाढ़ आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible]-स्वरूप तो 'नवीन' आदि की रचनाओं में प्रगति-[illegible] तत्व है, पर चूंकि उनके पीछे कोई वैज्ञानिक [illegible]-दर्शन नहीं था इसलिए उनके जीवन के तत्व [illegible] होते गए। वह कविता क्रमशः निर्जीव और [illegible]वाली होती गई। यहां तक कि सोहनलाल द्विवेदी [illegible] पुस्तकों में छाया मात्र रह गई है। इसका कारण एक [illegible] भी है। इन कवियों ने छायावाद से बग़ावत अवश्य [illegible], पर वे यथार्थवाद की ओर न आकर आदर्शवाद [illegible] ओर मुड़ गए। वे उन आदर्शों को लेकर चले जो [illegible]वाद से भी गए बीते हैं। इसे 'दिनकर' ने पुनः [illegible] किया और राष्ट्रीयता के साथ वैज्ञानिक [illegible]-दर्शन को अपनी कविता में स्थान देकर तथा [illegible]वादी बनाकर एक नई धारा को प्रश्रय दिया।

दूसरी बार जब पुनः आर्थिक और सामाजिक संकट [illegible] आन्दोलन की विफलता से पैदा हुई बेकारी [illegible] तो कवियों ने—बच्चन, नरेन्द्र, अंचल आदि ने—[illegible]वाद की अशरीरी भावनाओं का पल्ला न पकड़ [illegible] मांसल कायावाद का पल्ला पकड़ा और विवाहेतर [illegible] की प्रतिष्ठा की। आज के आर्थिक और [illegible]जिक ढांचे में विवाहेतर सम्बन्धों की कल्पना [illegible] अस्वाभाविक नहीं है। 'बच्चन' अपना [illegible]वाद लेकर आए और जान पड़ा कि उनके प्याले [illegible] के सारे दुःख-संताप खो जाएंगे। यही दशा [illegible], नरेन्द्र, भगवती चरण वर्मा की भी थी। परन्तु [illegible] ही नारी के शरीर में अपने को खो देने की [illegible] इन सभी कवियों पर स्पष्ट हो गई। इस प्रकृति [illegible] ने इन कवियों को सामाजिक चेतना का जोर [illegible] पर बाध्य किया। सामाजिक अभिज्ञता का प्रसार-[illegible]वादी चेतना का प्रसार—इस खेवे के प्रायः सभी [illegible] में देखा जा सकता है। 'निशा निमन्त्रण' तक [illegible]-आते 'बच्चन' का वह उल्लास जाता रहा। [illegible] यथार्थ में अब आंखे खोलकर देख लिया है कि [illegible] अग्नि-पथ है और उस पर चलनेवाला व्यक्ति [illegible] लहूलुहान हो जाता है—

यह महान दृश्य है—
चल रहा मनुष्य है—
अश्रु, स्वेद, रक्त से लथपथ लथपथ लथपथ !
अग्नि-पथ, अग्निपथ, अग्नि-पथ !

'अंचल' में यद्यपि अभी भी उनका स्थूल कायावाद शेष हैं, पर उनकी सामाजिक चेतनता भी निःसन्देह बढ़ी है। जिसके फलस्वरूप उन्होंने सोवियत रूस और बर्बर जापानी फ़ैसिज्म के विरुद्ध चीन के विलक्षण प्रतिरोध को लेकर गीत लिखे हैं। जिनमें से कुछ बहुत अच्छे बन पड़े हैं। और वैसे भी उनकी अनेक कविताएं हैं जिनमें उन्होंने भूत को तजकर वर्तमान को ग्रहण किया है। नरेन्द्र ने भी इसी प्रकार 'योम सोवियत' "यकुम मई" 'लाल निशान', 'नील लहरों के पार' जैसे कुछ प्रौढ़तम जनगीत लिखे हैं, जो भाषा के प्रवाह, छन्दों की तरलता, भावों की सरल क्रान्ति और जनता में गाए जा सकने के कारण श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। एक उदाहरण—

नील लहरों के पार।
लगी है चीन देश में आग, लगी जो चीन देश में आग,
बढ़ी आ रही हिन्द की ओर, जाग रे हिन्दुस्तानी जाग।
कर रही दुनिया हाहाकार, नील लहरों के पार॥
आज गिरने को सिर पर गाज, लगे मंडराने उड़न जहाज,
जाग रे हिन्दुस्तानी जाग, लगी है चीन देश में आग।
आग आ पहुंची तेरे द्वार, नील लहरों के पार॥

'मिट्टी और फूल' में संगृहीत कविताएं ऐसी ही प्रौढ़ यथार्थवादी किन्तु व्यक्तिवादी रचनाएं हैं।

केदारनाथ अग्रवाल ने आर्थिक और सामाजिक जीवन की विषमताओं को लेकर कविताएं लिखी हैं। शोषितों के साथ उनकी हमदर्दी सुधारवादी ढङ्ग को नहीं, क्रान्तिकारी ढङ्ग की है। उन्होंने अपनी रचनाओं को ज़ोरदार बनाने के लिए अधिकतर मुक्त छन्द का आश्रय लिया है। 'कटुई के गीत', 'प्रेम तीरथ', 'मज़दूर' 'चन्दू' आदि से उपर्युक्त कथन की सत्यता जानी जा सकती है।

अब हम उपन्यास और कहानी पर विचार करें। प्रेमचन्द के पश्चात हिन्दी उपन्यास और कहानियों का विकास कुछ रुक-सा गया था। उनके बाद जैनेन्द्रकुमार और 'अज्ञेय' दो विशिष्ट प्रतिभाएं हिन्दी को मिलीं, जो न्यूनाधिक प्रेमचन्द की ही देन हैं। जैनेन्द्र या 'अज्ञेय' की प्रतिभा, प्रेमचन्द की प्रतिभा से बीज-रूप में भिन्न है। प्रेमचन्द एक बहिर्मुखी कलाकार थे। उन्होंने जीवन की समष्टि को देखा, शोषित जन समाज को देखा और उसका यथातथ्य चित्रण किया। जैनेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'अज्ञेय' व्यक्ति को अपने अध्ययन का केन्द्र मानते हैं। उसकी मानसिक उथल-पुथल, घात-प्रतिघात से उन्हें मतलब है। सामाजिक विपर्यय प्रकारान्तर से ही उनकी कृतियों में पाया जाता है। उनका चित्रण व्यष्टिगत एवं मनोवैज्ञानिक है। यहीं से हिन्दी में एक नए व्यक्तिवाद का प्रादुर्भाव होता है। 'सुनीता' एक ऊँचा उपन्यास है, लेकिन उसमें किसी वर्ग या समाज की समस्याएं नहीं सुलझाई गई हैं। ग्रामीण व्यवस्था और कुनबे की एकता को प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' और 'बड़े घर की बेटी' में क्रमशः नष्ट होते दिखलाया है। पूंजीवाद के विकास के मुक़ाबले में अर्द्ध-सामन्ती परम्परा के नष्ट होने के चित्र हैं। पूंजीवादी विकास के साथ व्यक्ति-स्वातंत्र्य का भ्रम लगा होता है। इसकी परिपुष्टि जैनेन्द्र की कृतियों में भी थोड़ी बहुत है। 'नीलम देश की राजकन्या' में कुछ सामाजिक कहानियाँ हैं। उनमें तीन पात्र आते हैं—पति, पत्नी और एक प्रेमी; कभी-कभी एक बच्चा भी। 'अज्ञेय' में पहुंचकर तो ये तीन पात्र भी नहीं रह जाते। 'शेखर' एक किशोर के मनोविज्ञान का चित्र है। जैनेन्द्र और 'अज्ञेय' का व्यक्तिवाद उन्हें फ़्रायड के बहुत समीप खींच ले गया है। सम्भव है उन्होंने ये सब फ़्रायड से प्रभावित होकर ही लिखा हो। राधाकृष्ण प्रसाद का 'टूटती कड़ियाँ' नामक उपन्यास भी यही दृष्टिकोण रखकर लिखा गया है। लेखक ने बहुत जगहों पर अपनी तटस्थता खो दी है और अविनाश के रूप में अपने को ही उपस्थित किया है। 'पहाड़ी' के उपन्यास और कहानियों पर भी फ़्रायड का व्यापक प्रभाव है।

शहर के 'निम्न-मध्यवर्ग' को लेकर अनगिनत उपन्यास लिखे गए हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी और सर्वदानन्द वर्मा ने साधारण जीवन को रोमांस और कल्पना से रंग दिया है। सर्वदानन्द वर्मा असुप्त वासना की नंगी तसवीर हैं। इनके उपन्यास पढ़कर बहुधा ग्लानि होती है। सामान्य गृहस्थी को लेकर स्व० 'कौशिक' तथा सियाराम शरण गुप्त ने अच्छे उपन्यास लिखे हैं। 'कौशिक' ने कहीं-कहीं—उपन्यासों एवं कहानियों में—स्वाभाविकता की सीमा को पार कर लिया है। सियाराम शरण की कृतियों में 'नारी' और 'नोट' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस वर्ग के जीवन की अनगढ़ एकरसता को राधाकृष्ण ने अपनी कहानियों में अच्छा पकड़ा है। कहानियों के प्रति यशपाल का दृष्टिकोण समाजवादी है। यद्यपि 'हरीश' एक रोमांटिक कृति है, उतनी ही रोमांटिक जितना शरतचन्द्र का 'सव्यसाची'। राजा राधिका रमण का 'राम-रहीम' हिन्दी के इस युग के अत्यन्त रोचक उपन्यासों में है। पर राम-रहीम की एकता दिखाने में लेखक के अनजाने ही भारतीय संस्कृति का महत्व कुछ कम और विषय वस्तु सजीव रोचकतामय हो गई है। साथ ही भाषा के लालित्य के लिए भी लेखक धन्यवाद का पात्र है।

कविता, कहानी, उपन्यास आदि की यह प्रगति देखकर नाटककारों के सामने यह प्रश्न आता है कि वे जीवन की नग्न परिस्थितियों को कला से सुसज्जित करके उपस्थित करें या जीवन के मौलिक एवं विकृत रूप को यथातथ्य घटनाओं से छानबीन कर रंगमंच पर रख दें। यह 'रेशमी टाई' की भूमिका में नाटककार के सामने समस्या है। परन्तु प्रायः नाटक में वह अपना व्यक्तित्व छिपा लेता है।

सेठ गोविन्द दास ने नाटकों में बातचीत को स्वाभाविक बनाने की पूर्ण चेष्टा की है। बंगाली, मराठी, अँगरेजी आदि भाषाभाषियों से अशुद्ध हिन्दी बुलवाकर हास्य उत्पन्न करने का उनका पेटेन्ट ढंग है। उनके पात्रों की बातचीत बड़ी स्वाभाविक होती है। उनके नाटकों की कथावस्तु सामयिक क्रान्तियों से ली गई है। गोविंद वल्लभ पंत का ऐतिहासिक नाटक 'राजमुकुट' खूब खेला गया और खूब लोकप्रिय हुआ। पंत जी की कथावस्तु सीधी होती है और वह अपने भाव सहज में ही दर्शकों तक पहुंचा देते हैं। पंत जी कवि भी हैं। अतएव उनके नाटक सुन्दर गीतों से सजे होते हैं।

बहुत से नाटक ऐसे होते हैं, जो साधारण घटनाओं से ही हृदय को छू लेते हैं। उनमें लेखक का अपना व्यक्तित्व सब पात्रों को छाप लेता है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और उदयशंकर भट्ट के नाटकों में बहुधा यह गुण पाया जाता है। क्योंकि इन लोगों ने जीवन को देखा और पढ़ा ही नहीं, उसमें प्रवेश भी किया है। इनकी कला जीवन का चित्र निकट से देने में ही है। भुवनेश्वर प्रसाद का 'आदम ख़ोर' आधुनिक काल का एक प्रगतिशील नाटक है। इस पर समय का पूर्ण प्रभाव पड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि नाटक में कुछ अस्वाभाविकता अवश्य है, पर प्रसाद ने उसका दुर्गुण दूर कर दिया है।

नाटककारों की एक विशेष प्रवृत्ति और रही है। इन दिनों कुछ समस्यामूलक नाटक लिखे जाने लगे हैं। इनकी समस्याएँ नारी के चारों ओर एक वृत्त बनाकर चक्कर काटा करती हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र के अधिकतर नाटकों की गणना इसी श्रेणी में है। किन्तु घटना-वैचित्र्य तथा हास्य-व्यंग्यादि के अभाव में वे कुछ फीके हो गए हैं। हाँ, कवि मैथिलीशरण गुप्त का 'चन्द्रहास' एक सफल नाटक है। और मन बहलाने के लिए जी. पी. श्रीवास्तव के प्रहसन तो हैं ही।

आज हिन्दी में नाटकों की कमी नहीं रह गई है। जैसी प्रगति होनी चाहिए थी वैसी नहीं हुई है और हो रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी नाटककारों को अपनी प्रतिभा का विकास करने के लिए साहित्य के दूसरे अवयव मिल गए हैं। 'प्रसाद' और पंत सुमित्रानंदन पंत का नाम उदाहरण-स्वरूप पेश किया जा सकता है। इसलिए नाटक कुछ पीछे छूट गए।

इस युग में हिन्दी साहित्य की एक नई प्रवृत्ति देखने में आ रही है। यह है संस्मरणात्मक निबन्ध और छोटे स्केच लिखने की। सियारामशरण गुप्त का 'झूठ-सच' और महादेवी वर्मा का 'अतीत के चल-चित्र' इस विषय की बहुत ही महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। सियाराम शरण का गद्य बोल-चाल की भाषा के अधिक पास है और महादेवी के गद्य में कविता की रंगीनी है। पर दोनों ही प्रभावोत्पादक हैं। भाव की दृष्टि से 'अतीत के चलचित्र' में एक सराह्य खुलापन है, जो प्रायः उनकी कविताओं में नहीं पाया जाता है। प्रकाश-चन्द्र गुप्त ने भी कुछ अच्छे स्केच लिखे हैं, जैसे— लेटर बाक्स, अल्मोड़े का बाज़ार, पुरानी स्मृतियाँ आदि।

आज के स्वच्छन्द और यथार्थवादी युग में नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। पुरानी रूढ़ियों का उल्लंघन करना ही इस युग में मौलिकता समझा जाता है। आज हमारा साहित्यिक 'नवीन' के शब्दों में 'राजनैतिक तथा सामाजिक जागृति का शकट-वाहक' बन गया है। पर यह उसके लिए अमृत है या विष! हम नहीं चाहते कि हमारा साहित्य 'हमारी रंगीन वासनाओं के पैर का घुँघरू' बना रहे, पर हमें उसे 'विप्लव के तांडव का डमरू' भी तो नहीं बनने देना है। अन्यथा उसकी अपनी क्रियात्मक सत्ता ही मिट जाएगी। समाज, जाति, देश और विश्व का भार उसके कंधों पर है।

अपने कवि से—

श्री० शीतला सहाय श्रीवास्तव

कब तक आह भरोगे कवि तुम ?
कब तक प्रेयसि के वियोग में
होगी सिहरन, होगा कम्पन
कब तक उर में बनी रहेगी
पीर भयंकर, रीस चिरन्तन
प्राणों में ज्वाला भर अन्तर्दाह करोगे कवि तुम!
कब तक नीरव नयनों से तुम
अश्रु ढारोगे सुधि कर कर
कब तक झूठे सपनों में तुम
विह्वल बने रहोगे भुज धर
छाया से मिलने की कल्पित चाह करोगे कवि तुम!
कब तक बनी रहेंगी गीतों—
में करुणामय ध्वनि-रागिनियाँ
कब तक विषय रहेंगी कविता—
की चंचल दृग की कामिनियाँ
कब तक नभ में मधुर कल्पनाओं से राह करोगे कवि तुम!
यदि तुमको आहें ही प्रिय हैं
चलो जहाँ बसते भिखमंगे
लूले लंगड़े हीन अपाहिज
मरते हों नित भूखे नंगे
तब उनकी आहों से मिलकर सच्ची आह भरोगे कवि तुम!
भर लो अपनी कविताओं में
युग की व्यथित करुण पीड़ायें
जन - गण की कराहती वाणी
शीतल श्वासों की क्रीड़ायें
तब मानूँ मैं, सोये जग की उठकर बाँह धरोगे कवि तुम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ग़ानयुगीन भारत में शिक्षा-प्रचार

श्री० प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

हिन्दुस्तान में मुसलमानों के आने से पहले शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। नालन्दा, तक्षशिला तथा अन्य कई स्थान उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। बौद्ध धर्म से पहले ब्राह्मणों के आश्रम एवं गुरुकुल थे, जहां पर विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद बौद्ध विहार शिक्षा के केन्द्र बन गये और नालन्दा तथा तक्षशिला के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बने और उनमें हज़ारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे। पुरानी खोजों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल और संध्या काल में राज्य व्यवस्था में शिक्षा का कोई विशेष विभाग नहीं होता था, परन्तु प्रत्येक मन्दिर, मठ तथा विहार ही धर्म और शिक्षा का प्रचार करते थे। राजा तथा उसके दरबारी सामाजिक प्रथा के अनुसार शिक्षा प्रेमी होते थे और विद्वानों का आदर करते थे। गुप्त सम्राटों के समय में, कनिष्क के समय में तथा सम्राट हर्षवर्द्धन के समय में राजा देश के विद्वानों का आदर करते थे, और शिक्षा संस्थाओं को भी राज्य की ओर से व्यय के लिये धन दिया जाता था। सम्राट हर्ष के बाद उत्तर भारत में प्रत्येक राजा के दरबार में राजकवि होता था। साहित्य के अलावा ज्योतिष, गणित, व्याकरण, वैद्यक तथा दर्शन शास्त्र के भी विद्वान थे। परन्तु इन सब बातों के बावजूद भी यह मानना ही पड़ेगा कि उस समय में शिक्षा-प्रचार का कोई विशेष सुव्यवस्थित तथा सुनिश्चित आयोजन नहीं किया जाता था। राज्य की ओर से सरकारी पाठशालायें न थीं और न शिक्षा प्रबन्ध के लिये कोई अधिकारी ही नियुक्त किया जाता था। जनता में शिक्षा-प्रचार करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य न था, सदाचार के नाते जिन स्थानों में शिक्षक अपनी पाठशालायें खोल लेते थे, उनको आर्थिक सहायता राज्य से मिल जाती थी। शिक्षा-प्रचार का कोई सुचारु रूप से प्रबन्ध नहीं था। शिक्षा प्रेमी गुरु के आश्रम या पाठशाला में जाते थे, और गुरु की सेवा कर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध को जीता परन्तु उसकी थोड़े दिनों की जीत ने वहां की शिक्षा-प्रणाली में कोई अन्तर नहीं पैदा किया। महमूद गज़नवी ने गज़नी में एक बड़ा शिक्षा-केन्द्र बनाया था। वहाँ के पुस्तकालय में असंख्य पुस्तकें थीं, परन्तु भारत में तो वह सिर्फ लूट-मार करने आया था। मुहम्मद ग़ोरी पहला मुसलमान था जिसने अजमेर में कुछ मदरसे खुलवाये।[1] मुहम्मद ग़ोरी शिक्षा-प्रेमी था, उसने अपने गुलामों की शिक्षा के लिये अच्छा प्रबन्ध किया था।[2]

गुलाम वंश और शिक्षा-प्रचार

गुलाम वंश का पहला सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक था, वह सन् १२०५ में हिन्दुस्तान का शासक बना। कुतुबुद्दीन सुल्तान मुहम्मद ग़ोरी का गुलाम था और स्वयं अरबी और फ़ारसी भाषा का अच्छा विद्वान था। वह विद्वानों का आदर करता था। कुतुबुद्दीन ने अपने राज्य के अनेक भागों में बहुत सी मसजिदें बनवाईं। उस समय जन साधारण को मसजिद के मुल्ला ही शिक्षा दिया करते थे। सुल्तान इल्तमश भी विद्वान था, इसके अमीर खुसरू तथा फ़ख़रुल मुल्क उसामी नामक विद्वान उसके दरबार में रहते थे। दर्शन शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान अमीर हसानी का भी सुल्तान बहुत आदर करता था। इल्तमश ने शिक्षा-प्रचार के लिये अपने राज्य में बहुत से मदरसे खुलवाये, उसके समय के एक मदरसे का वर्णन सुल्तान फीरोज़ तुगलक की 'फ़ुतूहातु-य-फ़ीरोज़शाही' में भी मिलता है।[3] सुल्ताना रज़िया को भी विद्या से प्रेम था, और दिल्ली के 'मिज़्ज़ी कालेज के प्रबन्ध को वह स्वयं देखती रहती थी। मिज़्ज़ी कालेज सुल्ताना रज़िया के समय में बहुत अच्छी अवस्था में था और उच्च शिक्षा का केन्द्र था।[4] सुल्तान नासिरुद्दीन

१—Elliot & Dawson : History of India Vol. II, p. 215.

२—Tarikh-i-Farishta, Vol. I, p. 2[illegible]
N. N. Law : Promotion of Learning in India, p. 18.

३—Elliot & Dawson, Vol. III, p. 383.

४—Tarikh-i-Farishta Vol, I, p. [illegible]
Tabkat-i-Nasiri, pp. 637-646.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय का विद्वान सुल्तान था और उच्च शिक्षा का प्रेमी था। उसके समय में शिक्षा की बड़ी उन्नति हुई। जालन्धर में एक ऊँची शिक्षा का कालेज था। उसीके प्रेम के कारण देहली में 'नासीरिया कालेज' बना, जिसके अध्यक्ष पद पर प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाज-ऐ-सिराज कुछ समय तक रहा था।[५]

सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन का दरबार अपने समय के समस्त एशिया के दरबारों में अपनी सानी नहीं रखता था। उसके दरबार में उच्च कोटि के विद्वान रहते थे, जिनमें अमीर खुसरो, शेख़ उसमान तिरमिज़ी, शेख़ फ़रहुद्दीन आरिफ़, मीर हसन, सय्यद मौला, शेख़ शकर गंज, बहाउद्दीन तथा कुतुबुद्दीन बख़तियार मुख्य थे। सुल्तान बलबन ने अपने अफ़सरों को हुक्म दे दिया था कि वे हर जगह से विद्वानों को खोज खोजकर उसके दरबार में लावें।[६] सुल्तान बलबन का बड़ा पुत्र शहज़ादा मुहम्मद ज्ञानशिक्षा का प्रेमी था। इतिहासकार बर्नी का कथन है कि शाहजादे के दरबार में अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान रहते थे। उसके महल में विद्वानों की सभायें होती थीं, जिनमें अमीर खुसरो सदर होता था। शहज़ादे मुहम्मद ने दो बार शेख़सादी को बुलाने आदमी भेजे, परन्तु सादी ने जो कि उस समय बूढा था, आने से लाचारी ज़ाहिर की। शहज़ादे की समितियों की बैठकों में शाहनामा, दीवान-ए-ख़ाकानी तथा दीवान-ए-सनाह बड़े प्रेम से पढ़े जाते थे।[७]

ख़िलजी वंश और शिक्षा-प्रचार

ख़िलजी वंश का संस्थापक सुल्तान जलालुद्दीन ख़िलजी अरबी और फारसी भाषा का अच्छा विद्वान था। वह विद्या प्रेमी था और विद्वानों का आदर करता था। जब कभी भी उसे राजकार्य से अवकाश मिलता वह विद्वानों की संगत करता तथा उनके विचारों को ध्यान से सुनता था। उसके समय में अमीर खुसरो, ख़्वाजा हसन, ताजुद्दीन इराक़ी, अमीर अर्सलान, सादुद्दीन काशग़री, रुख़्नुद्दीन यासरी तथा क़ाजी मुग़लिस बड़े विद्वान थे। कवि सम्राट अमीर खुसरो शाही किताबघर की देख-रेख करता था। सुल्तान खुसरो का बहुत आदर करता था।[८] इतिहासकार फरिश्ता ने अपनी पुस्तक में सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी के समय के पैंतालिस विद्वानों के नाम अपनी पुस्तक में दिये हैं जो कि साहित्य, दर्शन-शास्त्र, इतिहास, गणित और विज्ञान के विद्वान थे और साम्राज्य के भिन्न भिन्न शिक्षा क्षेत्रों में विद्या-प्रचार करते थे। अमीर खुसरो के अलावा अमीर हसन प्रसिद्ध कवि था और वह 'हिन्दुस्तान का सादी' माना जाता था। सुल्तान अलाउद्दीन का वजीर तथा प्रधान मन्त्री शमशुल मुल्क भी अपने समय का बड़ा विद्वान तथा शिक्षा-प्रेमी था।[९] मुबारक शाह ख़िलजी ने अपने समय में विद्वानों का पूरा पूरा आदर किया और दिल्ली के मदरसों को सरकारी इमदाद देने का बन्दोबस्त कराया।

तुग़लक वंश और शिक्षा-प्रचार

ग़यासुद्दीन तुग़लक भी पढ़ा-लिखा सुल्तान था। वह अरबी और फारसी भाषा का अच्छा ज्ञाता था। कुरान-शरीफ़ से उसे अधिक प्रेम था। दिल्ली के पास तुग़लक़ाबाद से कुछ दूरी पर जो 'नाई का क़िला' कहा जाता है, उसे कुछ विद्वान ग़यासुद्दीन का बनवाया हुआ मदरसा मानते हैं।[१०] ग़यासुद्दीन के बाद सुल्तान मुहम्मद तुग़लक गद्दी पर बैठा। मध्यकालीन समय में जितने भी सुल्तान देहली के तख़्त पर बैठे उनमें मुहम्मद तुग़लक सबसे अधिक विद्वान था।[११] मुहम्मद तुगलक के समय में एशिया के अन्य देशों से अनेक विद्वान उसके दरबार में आये और उनका अच्छा स्वागत किया गया। कुछ विद्वान मानते हैं कि सुल्तान ने अपनी नई राजधानी

५—Elliot & Dawson, Vol. II, p. 344.

६—Farishta, Vol. 1, p. 251.

७—Elliot and Dawson, Vol. III, pp. 109-110, 565.

८—Farishta, Vol. I, pp. 292-293.

९—Farishta, Vol. I, pp. 353 and 373.; Elliot and Dawson, Vol. VI, p. 485.; Archaeology of Delhi By C. Stephen, p. 56

१०—Delhi—Past and Present by Franshame p. 291.

११—Farishta, Vol. I, p. 480.; Ibn Batuta, p. 290

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौलताबाद में भी शिक्षा प्रचार के लिये मदरसे बनवाये थे।[१२] सुल्तान फीरोज़ तुग़लक़ भी बड़ा विद्वान था। उसने अपने शासनकाल का वर्णन 'फ़ुतूहात-ए-फीरोज़-शाही' में किया है। सिराज़ आरिफ़ तथा ज़ियाउद्दीन बर्नी नामक प्रसिद्ध इतिहासकार उसीके समय में थे। मौलाना आलिम, मौलाना ख़्वाजगी, काज़ी अब्दुल क़ादिर तथा अज़ीज़ुद्दीन ख़ालिद ख़ानी इस समय के अन्य प्रसिद्ध विद्वान थे जो कि धर्मशास्त्र, इतिहास, भूगोल, दर्शनशास्त्र और इसलामी राजशास्त्र के प्रमुख लेखक थे। फीरोज़ ने पुराने मदरसों की इमारतों की मरम्मत करवाई और साम्राज्य भर में नये मदरसे खुलवाये। इतिहासकार फरिश्ता, निज़ामुद्दीन तथा अब्दुल बाकी के कथनानुसार सुल्तान ने पचास नये मदरसे खुलवाये जिनमें शिक्षकों की तनख़्वाह सरकारी खज़ाने से दी जाती थी। फीरोज़ का जो मदरसा देहली में था उसमें उच्च कोटि की शिक्षा का प्रबन्ध था।[१३]

सुल्तान फीरोज़ तुगलक के समय में १,८०,००० गुलाम थे। सुल्तान ने मुहम्मद ग़ोरी की तरह गुलामों की शिक्षा के लिये अच्छा प्रबन्ध किया था। इतिहासकारों का कथन है कि उनमें से १२,००० गुलाम अच्छे विद्वान, कारीगर और नौकरियों के लायक बन गये थे।[१४]

सैय्यद और लोदी वंश के समय आम शिक्षा

ख़िज्र ख़ाँ सय्यद तथा मुबारिक शाह सय्यद के समय में दिल्ली के अलावा बदाऊँ के और कुटैर विद्या के नए केन्द्र बन गये थे। इन शहरों में मदरसे और मसजिदें थीं यहाँ पर शिक्षा दी जाती थी।[१५] 'मासिरे रहीमी' से मालूम होता है कि सुलतान बहलोल लोदी ने अपनी प्रजा की शिक्षा के लिये अनेक मदरसे खुलवाये। सुल्तान सिकन्दर लोदी भी अच्छा विद्वान था। वह कविता भी करता था और उसका उपनाम 'गुलरुख़' था। 'तारीख़-ए-दाऊदी' के लेखक अब्दुल्ला का कथन है कि सत्तरह बड़े बड़े विद्वान हमेशा सुलतान के साथ रहते थे, जिनमें कन्नौज के सय्यद सदरुद्दीन, सीकरी के अब्दुर रहमान और सम्मल के मियां अज़ीज़ उल्लाह भी थे। इतिहासकार फरिश्ता का कथन है कि सुलतान सिकन्दर लोदी के समय में शिक्षा का खूब प्रचार हुआ था। वर्तमान आगरा को सिकन्दर लोदी ने ही बसाया था। आगरा भी उसके समय में विद्या का केन्द्र बन गया था।[१६]

भारतीय इतिहास में पहली बार सिकन्दर लोदी के समय में मुसलमानों के साथ हिन्दू भी फारसी पढ़ने आने लगे। अब से पहले व्यक्तिगत रूप से भारतवासी अरबी और फारसी पढ़ते थे। सय्यद सुलैमान नदवी ने लिखा है कि महाभारत के समय में भी भारतवर्ष में लोग अरबी भाषा जानते थे। परन्तु पहली बार सिकन्दर लोदी के समय में मुसलमानी मदरसों में हिन्दू शिक्षा प्राप्त करने के लिए आए। फरिश्ता ने इस का समर्थन किया है।[१७]

जौनपुर के सुलतानों का शिक्षा-प्रेम

दिल्ली के बाद हिन्दुस्तान की प्रान्तीय सल्तनतों ने सबसे अधिक शिक्षा-प्रचार जौनपुर के शर्क़ी सुलतानों ने किया था। हिन्दुस्तान के इतिहास में एक समय ऐसा जौनपुर को 'हिन्दुस्तान का शीराज़' कहा जाता था। सुल्तान इब्राहीम शर्क़ी ने जौनपुर के राज्य की स्थापना की थी। शर्क़ी सुल्तानों के समय में अनेक विद्वान दूर दूर से पढ़ने आते थे। शिक्षकों और विद्वानों में मुख्य नाम शेख अल्लाहदाद जौनपुरी, ज़हीर दिलावरी, काज़ी शहाबुद्दीन दौलताबादी, मौलाना अली अहमद, मौलाना हसन बख़्शी तथा नूरुल हक़ थे। 'तज़किरात-उल-उलमा' तथा 'सियारुल मुल्क' से मालूम होता है

१२—Promotion of Learning in India by N. N. Law, p. 47.

१३—Tarikh-i-Firoz Shai: by Barni—pp.562-566.

Elliot and Dawson, Vol. III. 338.

१४—Tarikh-i-Hindustan by M. Zakaullah Vol. II, p. 208.

१५—Shah Alam by Franklin, p. 57.
Promotion of Learning in India By N. N. Law—p. 71.

१६—Imperial Gazetteer of India Vol. IV, p. 408.

१७—Farishta, Vol. I, p. 587
Promotion of Learning in India—pp. 75-76.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि शर्की सुल्तान मदरसों के व्यय के लिये जागीरें देते थे। एक इतिहासकार ने जौनपुर को मध्यकालीन समय का 'भारतवर्ष का पेरिस' कहा है। मिस्टर लो का कथन है कि जिस प्रकार मुसलमानी शिक्षा के केन्द्र दमिश्क, बग़दाद, नेशापुर तथा कारडोवा थे, और अब जिनकी याद ही रह गई है, उसी प्रकार जौनपुर के प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र का बस नाम ही नाम रह गया है।[१८]

बंगाल में शिक्षा-प्रचार

बंगाल के सुलतान ग़यासुद्दीन प्रथम (१२१२—१२२७ ई०) ने अपने समय में नये मदरसे बनवाये थे। ग़यासुद्दीन द्वितीय ने भी, जो कि ख़ुद अच्छा विद्वान और लेखक था, उच्च शिक्षा का एक कालेज खोला, जिसका नाम 'दरसवरी' था। अर्त्तापुरा के पास जो 'मदरसा-टीला' है वह भी पुराने समय में शिक्षा का केन्द्र था।[१९] बंगाल के हुसेनी वंश में हुसेन शाह और नसरतशाह ने अपने समय में विद्या का ख़ूब प्रचार कराया। सारे राज्य में शिक्षा-प्रचार के लिये मदरसे खुलवाये। अरबी और फ़ारसी भाषा के अलावा बंगला भाषा की भी राज्य की सहायता से पर्याप्त उन्नति हुई। सुल्तान नासिर शाह (१२८२-१३२५) के समय में महाभारत का पहला अनुवाद बंगला भाषा में हुआ था। यह सुल्तान बंगला भाषा का अच्छा प्रेमी था और महाकवि विद्यापति ने अपना एक गीत उसीको समर्पित किया है। सुल्तान ग़यासुद्दीन द्वितीय के कहने पर ही कृत्तिवास ने रामायण का बङ्गला भाषा में रूपान्तर किया था। श्री दिनेशचन्द्र सेन के अनुसार सुल्तान हुसेन शाह ने ही भागवत पुराण का अनुवाद मलधर वसु से कराया था। पराग़ल खाँ ने महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद बङ्गला भाषा में किया था।[२०]

गुजरात के सुलतानों का शिक्षा-प्रचार

गुजरात के सुल्तान अहमदशाह (१४११—१४४१) ने अहमदाबाद में शिक्षा प्रचार के लिये अनेक मदरसे खुलवाये, जिन्हें सरकारी इमदाद मिलती थी। अहमदशाह के बाद गुजरात के सुल्तान मुहम्मदशाह, महमूद बिग़ारा, मुज़फ़रशाह द्वितीय तथा मुज़फ़रशाह तृतीय ने शिक्षा-प्रचार का पूर्ण रूप से प्रबन्ध किया था। अहमदाबाद शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था।[२१] मालवा के सुल्तान हुसंगशाह ने भी धार को मुख्य शिक्षा का केन्द्र बनाया था। वहाँ दूर दूर से विद्वान् आते थे। मालवा में शिक्षा की उन्नति सुल्तान महमूद ख़िलजी के समय में भी ख़ूब हुई थी।[२२] मध्यकाल में काश्मीर भी शिक्षा का केन्द्र था। काश्मीर के शासकों में सुल्तान सिकंदरशाह, ज़ैनुल आबदीन तथा हुसैनशाह शिक्षा के बड़े प्रेमी थे।[२३]

दक्षिण भारत में शिक्षा-प्रचार

अहमद नगर, बीजापुर-तथा गोलकुंडा के मुसलमान शासक शिक्षाप्रेमी थे। उन्होंने अपने अपने राज्यों में शिक्षा का प्रचार किया। आदिलशाही सुलतानों के समय में बीजापुर शिक्षा का मुख्य केन्द्र बन गया। सुलतान यूसुफ़ आदिलशाह तथा इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय बहुत बड़े विद्वान थे। प्रसिद्ध इतिहासकार फ़रिश्ता, सुलतान यूसुफ़ आदिलशाह के दरबार में ही रहता था। सुल्तान ने संगीत के 'नवरस' पर एक पुस्तक लिखी थी। गोलकुण्डा के कुली कुतुबशाह तथा अब्दुला कुतुबशाह अरबी और फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे। गोलकुण्डा के दरबार में इब्न निशानी नामक लेखक ने सुल्तान कुतुब कुली शाह के समय में 'तूती नामा' तथा 'फूलबन' नामक दो पुस्तकें लिखीं थीं। दक्षिण में गुलबर्गा, बीदर, एलिचपुर, दौलताबाद तथा देवल शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

१८—Farishta, Vol. IV, 365

Promotion of Learning By Law pp. 103 and 104-105.

Archeaological Survey of India, Vol. 1. 21-22.

१९—History of Bengal By Stewart, pp. 56-57.

Promotion of Learning in India. p. 108. Survey of India, Vol. XV. p. 76.

२०—History of Bengal by Slewart pp. 111-113 and 401.

History of Bengali Literature by D. C. Sen pp. 10-14., 140 and 220.

२१—Farishta Vol I,V. p. 97.

२२—Ibid. pp. 106, 197, 210, 213, and 234.

२३—Ibid. pp. 469-470.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभान ख़ां

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

'क्या आपका अल्लाह पश्चिम में रहता है ? वह पूरब क्यों नहीं रहता !'

सुभान ख़ां की लम्बी, सुफ़ेद, चमकती, रोब बरसाती दाढ़ी में अपनी नन्हीं उँगलियों को घुसाते हुए मैंने पूछा। उनकी चौड़ी, उभड़ी पेशानी पर एक उल्लास की झलक और दाढ़ी-मूँछ की सघनता में दबे पतले अधरों पर एक मुस्कान की रेखा दौड़ गई। अपनी लम्बी बांहों की दाहिनी हथेली मेरे सिर पर सुहलाते हुए उन्होंने कहा—

'नहीं बबुआ, अल्लाह तो पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्खिन सब ओर है !'

'तो फिर आप पश्चिम मुँह खड़े होकर ही नमाज़ क्यों पढ़ते हैं ?'

'पच्छिम ओर के मुल्क में अल्लाह के रसूल आए थे, वहां हमारे तीरथ हैं। हम उन्हीं तीरथों की ओर मुँह करके अल्लाह को याद करते हैं।'

वे तीरथ यहां से कितनी दूर होंगे ?'

'बहुत दूर !'

'जहाँ सूरज-देवता डूबते हैं ?'

'नहीं, उससे कुछ इधर ही !'

'आप उन तीरथों में गए हैं सुभान दादा ?'

देखा, सुभान दादा की बड़ी-बड़ी आंखों में आंसू डबडबा आए; उनका समूचा चेहरा लाल हो उठा। भाव-विभोर गद्‌गद कंठ से बोले—

'वहाँ जाने में बहुत ख़र्च पड़ते हैं बबुआ ! मैं ग़रीब आदमी ठहरा न ! इस बुढ़ापे में भी इतनी मेहनत-मशक्कत कर रहा हूं कि कहीं कुछ पैसे बचा पाऊँ और उस जगह की ज़ियारत कर आऊँ।'

उनकी आंखों को देखकर मेरा बचपन का दिल भी भावना से ओतप्रोत हो गया।

मैंने उनसे कहा—

'मेरे मामाजी से कुछ कर्ज़ क्यों नहीं ले लेते दादा ?'

'कर्ज़ के पैसे से तीरथ करने में सबाब नहीं मिलता बबुआ। अल्लाह ने चाहा तो एक-दो साल में इतने जमा हो जाएंगे कि किसी तरह वहाँ जा सकूँ।'

"वहाँ से मेरे लिए भी कुछ सौगात लाइएगा !"

'वहां से लोग खजूर और छुहारे लाते हैं।'

'हाँ' ! हाँ, ! मेरे लिए छुहारे ही लाइएगा—लेकिन एक दर्जन से कम नहीं लूंगा, हूँ।'

सुभान दादा की सुफेद दाढ़ी-मूँछ के बीच उनके सुफेद दाँत चमक रहे थे। कुछ देर तक मुझे दुलारते रहे। फिर कुछ रुक कर बोले—'अच्छा जाइए, खेलिए। मैं जरा काम पूरा कर लूँ। मजदूरी भर पूरा काम नहीं करने से अल्लाह नाराज हो जाएँगे।'

'क्या आपके अल्लाह बहुत गुस्सवर हैं !'—मैं तुनक कर बोला।

आज सुभानदादा बड़े ज़ोरों से हँस पड़े; फिर एक बार मेरे सिर पर हथेली फेरी और 'बच्चों से वह बहुत ख़ुश रहते हैं, बबुआ ! वह तुम्हारी उम्र दराज करें।' —कहकर मुझे अपने कंधे पर ले लिया। मुझे लेते हुए दीवाल के नजदीक आए, वहाँ उतार दिया और झट अपनी कढ़नी और बसुली से दीवाल पर काम करने लगे।

\+ + +

सुभान ख़ां एक अच्छे राज समझे जाते हैं। जब जब घर की दीवालों पर कुछ मरम्मत की ज़रूरत होती हैं, उन्हें बुला लिया जाता है। आते हैं, पांच-सात रोज यहीं रहते हैं, काम ख़त्म कर चले जाते हैं।

लम्बा, चौड़ा, तगड़ा है बदन इनका। पेशानी चौड़ी, भवें बड़ी सघन और उभड़ी। आँखों के कोनों में कुछ लाली और पुतलियों में कुछ नीलेपन की झलक। नाक असाधारण ढङ्ग से नुकीली। दाढ़ी सघन, इतनी लम्बी कि छाती तक पहुँच जाए—वह छाती, जो बुढ़ापे में भी फैली, फूली हुई। सिर पर हमेशा ही एक दुपलिया टोपी पहने होते और बदन में नीमस्तीन। कमर में कच्छेवाली धोती, पैर में चमरौधा जूता। चेहरे से नूर टपकता, मुँह से शहद झरता। भलेमानसों के बोलने-चालने, बैठने-उठने के कायदे की पूरी पाबन्दी करते वह।

किन्तु, बचपन में मुझे सबसे अधिक भाती उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सुफ़ेद, चमकती हुई दाढ़ी। नमाज़ के वक़्त कमर ...दार लुँगी और शरीर में सादा कुरता पहन, ...टेक, दोनों हाथ छाती से जरा ऊपर उठा, आँखें ...मूंद कर जब वह कुछ मन्त्र-सा पढ़ने लगते, मैं ...विमुग्ध होकर उन्हें देखता रह जाता! मुझे ऐसा ...होता, सचमुच उनके अल्लाह वहां आ गए हैं, ...की झपकती आंखें उन्हें देख रही हैं, और ये होठों-...की बातें उन्हीं से हो रही हैं।

एक दिन बचपन के आवेश में मैंने उनसे पूछ ही ...—'सुभानदादा' आपने कभी अल्लाह को देखा है?

'यह क्या कह रहे हो; बबुआ? इन्सान इन आंखों ...अल्लाह को देख नहीं सकता!'

'मुझे धोखा मत दीजिए, दादा। मैं सब देखता हूँ। ...रोज़ आधी आँखों से उन्हें देखते हैं, उनने बुदबुदा ...बातें करते हैं,—लेकिन मुझे क्या जानकर चकमा ...हैं।'

'मैं उनसे बातें करूँगा! सिर्फ रसूल की उनसे बातें ...थीं, बबुआ। ये ही बातें कुरान में लिखी हैं।

'अच्छा दादा'! क्या आपके रसूल साहब को भी ...थी?

'हां'! हां,! थी। बड़ी ख़ूबसूरत, लम्बी सुनहली—...भी उनकी दाढ़ी के कुछ बाल मक्का में रखे हैं। ...अपने तीरथ में उन बालों के भी दर्शन करते हैं।

'बड़ा होने पर जब मुझे दाढ़ी होगी, मैं भी दाढ़ी ...ऊँगा, दादा! ख़ूब लम्बी दाढ़ी।

सुभान ख़ां ने मुझे उठाकर गोद में ले लिया; फिर ...पर चढ़ा कर इधर-उधर घुमाया। तरह-तरह की ...सुनाईं, कहानियाँ कहीं। मेरा मन बहला कर वह ...अपने काम में लग गए। मुझे मालूम होता था, ...और अल्लाह—ये ही दो चीज़ें संसार में उनके ...सब से प्यारी हैं। काम करते हुए अल्लाह को नहीं ...थे और अल्लाह से फुर्सत पाकर फिर झट काम ...या जुत जाना अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। ...काम और अल्लाह का यह सामंजस्य उनके दिल ...की वह मन्दाकिनी बहाता रहता था, जिसमें मेरे ...बच्चे भी बड़े मजे में डुबकियाँ लगा सकते थे, ...ले सकते थे।

+ + +

नानी ने कहा—'सवेरे नहा-खा लो' आज तुम्हें हुसैन साहब के पैक में जाना होगा! सुभान ख़ां आते ही होंगे!

कितने देवताओं की मनौती के बाद मां ने मुझे प्राप्त किया था, उसमें एक हुसैन साहब भी थे। नौ साल की उम्र तक, जब तक जनेऊ नहीं हो गया था, मुहर्रम के दिन मुसलमान बच्चों की तरह मुझे भी ताजिये के चारों ओर रंगीन छड़ी लेकर कूदना पड़ा है और गले में गंडे पहनने पड़े हैं। मुहर्रम उन दिनों मेरे लिये कितनी ख़ुशी का दिन था! नए कपड़े पहनता, उछलता कूदता, नए-नए चेहरे और तरह-तरह के खेल देखता—धूम-धड़क्के में किस तरह चार पहर गुज़र जाते! इस मुहर्रम के पीछे जो रोमांचकारी, हृदय को पिघलानेवाली, करुण रस से भरी दर्द अंगेज़ घटना छिपी है, उन दिनों उसकी ख़बर भी कहाँ थी!

ख़ैर, मैं नहा-धोकर, पहन-ओढ़कर इन्तजार ही कर रहा था कि सुभान ख़ां पहुंच गए, मुझे कन्धे ले लिया और अपने गांव में ले गए।

उनका घर क्या था—बच्चों का अखाड़ा बना हुआ था। पोता-पोतियों, नाती नतिनों की भरमार थी उनके घर में। मेरी ही उम्र के बहुत बच्चे! रंगीन कपड़ों से सजे-धजे सब मानों मेरे ही इन्तज़ार में। जब पहुंचा सुभानदादा की बूढ़ी बीवी ने मेरे गले में एक बद्धी डाल दी, कमर में पैक बांध दिया, हाथ में दो लाल छड़ियाँ दे दीं और उन बच्चों के साथ मुझे लिए-दिए करबला की ओर चलीं। दिन भर उछला-कूदा, तमाशे देखे, मिठाइयां उड़ाईं और शाम को फिर सुभानदादा के कन्धे पर घर पहुंच गया।

ईद-बकरीद को न सुभानदादा हमें भूल सकते थे, न होली-दीवाली को हम उन्हें! होली के दिन नानी अपने हाथों से पूए खीर और गोश्त परोस कर सुभान दादा को खिलातीं। और तब मैं ही अपने हाथों से अबीर लेकर उनकी दाढ़ी में मलता। एक बार जब उनकी दाढ़ी रंगीन बन गई थी मैंने कहा—

सुभानदादा रसूल की दाढ़ी भी तो ऐसी ही रंगीन रही होगी?

'उन पर अल्लाह ने ही रंग दे रखा था बबुआ; अल्लाह की उन पर ख़ास मेहरबानी थी। उनके सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नसीब हम मामूली इन्सानों को कहां ? ऐसा कहकर, झट आंखें मूँद कर कुछ बुदबुदाने लगे—जैसे वह ध्यान में उन्हें देख रहे हों !

मैं भी कुछ बड़ा हुआ, उधर दादा भी आख़िर हज कर ही आए। अब मैं बड़ा हो गया था, लेकिन वह छुहारे की बात भूला नहीं था। जब मैं छुट्टी में शहर के स्कूल से लौटा, दादा यह अनुपम सौगात लेकर पहुंचे। इधर उनके घर की हालत भी अच्छी हो चली थी। दादा के पुण्य, और लायक बेटों की मेहनत ने काफ़ी पैसे इकट्ठे कर लिए थे। लेकिन उनमें वही विनम्रता और सज्जनता थी। आए, पहले की ही तरह शिष्टाचार निबाहा। फिर छुहारे निकाल कर मेरे हाथ में रख दिए —'बबुआ, यह आपके लिए ख़ास अरब से लाया हूं। याद है न, आपने इसकी फ़रमायश की थी।' उनके होंठ आनन्दातिरेक में हिल रहे थे।

छुहारे लिए, सिर चढ़ाया—ख़ाहिश हुई, आज फिर मैं बच्चा हो पाता और उनके कन्धे से लिपट कर उनकी सुफेद दाढ़ी में, जो अब सचमुच नूरानी हो चली थी, उँगलियां घुसाकर उन्हें 'दादा' दादा कहकर पुकार उठता ! लेकिन, न मैं अब बच्चा हो सकता था, न ज़बान में वह मासूमियत और पवित्रता रह गई थी ! अँगरेज़ी स्कूल के वातावरण ने अजीब अस्वाभाविकता हर बात में ला दी थी, पर, हां, एक चीज़ अब भी पवित्र थी, वे थीं आंखें। आंखों ने अपने को आंसू की छलकन से पवित्र कर चुपचाप ही उनके चरणों में श्रद्धांजलि चढ़ा दी !

\+ × ×

हज से लौटने के बाद सुभानदादा का ज्यादा वक्त अब नमाज-बन्दगी में ही बीतता। दिन भर उनके हाथों में तसबीह के दाने घूमते और उनकी जबान अल्लाह की रट लगाए रहती। अपने जवार-भर में उनकी बुजुर्गी की धाक थी। बड़े बड़े झगड़ों की पंचायतों में दूर दूर के हिन्दू मुसलमान उन्हें पंच मुकर्रर करते। उनकी ईमानदारी और दयानतदारी की कुछ ऐसी ही धूम थी।

सुभानदादा का एक अरमान था, मस्जिद बनाने का। मेरे मामा का मन्दिर उन्होंने ही बनाया था। उन दिनों वह साधारण राज थे। लेकिन, तो भी कहा करते —अल्लाह ने चाहा तो मैं भी एक मस्जिद [illegible] बनाऊँगा।

अल्लाह ने चाहा और वैसा दिन आया। उनकी मस्जिद भी तैयार हुई। गांव के ही लायक एक छोटी-सी मस्जिद—लेकिन बड़ी ही ख़ूबसूरत। दादा ने अपनी जिन्दगी भर की कला इसमें ख़र्च कर दी थी। हाथ में इतनी ताकत नहीं रह गई थी कि अब खुद कड़ुनी या बसुली पकड़ें, लेकिन दिन भर बैठे-बैठे एक-एक ईंट की जुड़ाई पर ध्यान रखते। और उसके भीतर जो बेल बूटे काढ़े गए थे, उनके सारे नक़्शे उन्होंने ही खींचे थे और उनमें से एक एक का काढ़ा जाना उनकी ही बारीक निगरानी में हुआ था !

मेरे मामाजी के बगीचे में शीशम, सखुई, कटहल आदि, इमारतों में काम आनेवाले, पेड़ों की भरमार थी। मस्जिद की सारी लकड़ी हमारे ही बगीचे से गई थी।

जिस दिन मस्जिद तैयार हुई थी सुभानदादा ने जवार भर के प्रतिष्ठित लोगों को न्योता दिया था। जुमा का दिन था। जितने मुसलमान थे सबने उसमें नमाज पढ़ी थी। जितने हिन्दू आए थे, उनके लिए दादा ने हिन्दू हलवाई रखकर तरह तरह की मिठाइयां बनवाई थीं, पान लायची का प्रबन्ध किया था। अब तक भी लोग उस मस्जिद के उद्घाटन के दिन की दादा की मेहमानदारी भूले नहीं हैं।

× × ×

ज़माना बदला। मैं अब शहरों में ही ज्यादातर रहता। और, शहर अब हिन्दू-मुस्लिम दंगों के अखाड़े बन जाते थे। हां, आए दिन ! देखिए, एक ही सड़कों पर हिन्दू मुसलमान चल रहे हैं, एक ही दूकान पर सौदे खरीद रहे हैं, एक ही सवारी जानू ब-जानू आ-जा रहे हैं, एक ही स्कूल में पढ़ रहे हैं, एक ही दफ़्तर में काम कर रहे हैं, कि अचानक [illegible] सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड़, मारकाट, खूनख़राबी, आग लगी—सब ख़ुराफातों की जड़। घर महफूज, न शरीर, न इज्ज़त ! प्रेम, भाईचारा, सहृदयता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशंस [illegible] का उल्लङ्ग नृत्य !

शहरों की यह बीमारी धीरे-धीरे देहात में [illegible] लगी। गाय और बाजे के नाम पर तकरार होने [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दगी भर कसाईखानों के लिए अपनी गाएं बेचते
वे ही एक दिन किसी एक गाय के काटने का नाम
कर ही कितने इंसानों के गले काटने को तैयार होने
। जिनके शादी-ब्याह, परब-त्योहार बिना बाजे के
होते, जो मुहर्रम की गमी के दिन भी बाजे-गाजों
धूम किए रहते, अब वे ही अपनी मस्जिद के सामने
गुजरते हुए एक मिनट के बाजे पर खून की नदियां
को उतारू हो जाते !

कुछ पंडितों की बन आई, कुछ मुल्लाओं की चलती
। संगठन और तंजीम के नाम पर फूट और कलह
बीज बोए जाने लगे। लाठियां उछलीं, छुरे निकले।
ड़ियां फूटीं, अँतड़ियां बाहर आईं। कितने नौजवान
—घर फुँके। बाकी बच गए खेत, फुंके खलिहान—
अङ्गरेज़ी अदालत के खर्चे में पीछे कुर्क हुए !

खबर फैली, इस साल सुभानदादा के गाँव के मुसल-
कुर्बानी करेंगे। जवार में मुसलमान कम थे, लेकिन
जोश का क्या कहना ! इधर हिन्दुओं की जितनी
पर ममता न थी, उतना अपनी तादाद पर घमंड
तनातनी का बाज़ार गर्म ! खबर यह भी फैली कि
न खाँ की मस्जिद में ही कुर्बानी होगी।

फूँ! सुभान खां की मस्जिद में कुर्बानी ? नहीं, ऐसा
ही सकता !'

'अगर हुई तो क्या होगा ?, हमारी नाक कट
गी! लोग क्या कहेंगे—इतने हिन्दू के रहते गो-
के गले पर छुरी चली ?'

छुरी से गो-माता को बचाना है तो गौरागौरी के
खाने पर हम धावा करें ? और, अगर, सचमुच
है, तो चलिये मुजफ्फरपुर अङ्गरेज़ी फ़ौज की
पर ही धावा बोलें। कसाईखाने में तो बूढ़ी गाएँ
हैं, छावनी में तो मोटी ताजी बछियां ही काटी
है।'

किन वे तो हमारी आंखों से दूर हैं। देखते हुए
कैसे निगली जाएगी ?'

ध्यान कीजिए, दूर नज़दीक की बात नहीं है। बात
की, ताकत की। छावनी में आप नहीं जाते
कि वहां सीधे तोप के मुंह में पड़ना होगा।
मान एक मुट्ठी हैं, इसलिए आप टूटने को
!!

'आप सुभान खाँ का पक्ष ले रहे हैं। दोस्ती निभाते हैं ! धर्म से बढ़कर दोस्ती नहीं !'

कुछ नौजवानों को मेरे मामाजी की बातें ऐसी बुरी लगीं कि सख्त-सुस्त कहते वहाँ से उठकर चल दिये। लेकिन कितना भी गुस्सा किया जाए, चीखा-चिल्लाया जाए—यह साफ बात थी कि मामा की बिना रजामंदी के किसी बड़ी घटना के लिए किसी को पैर उठाने की हिम्मत नहीं हो सकती थी। इधर सुभानदादा के दरवाजे पर भी मुसलमानों की भीड़ है। न जाने दादा में कहाँ का जोश आ गया है, वह कड़ककर कह रहे हैं—

'गाय की कुर्बानी नहीं होगी ! ये फालतू बातें सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ। तुम लोग हमारी आंखों के सामने से हट जाओ।'

'क्यों नहीं होगी ? क्या हम अपना मजहब डर के मारे छोड़ देंगे ?'

'मैं कहता हूं, यह मजहब नहीं है। मैं हज से हो आया हूँ, कुरान मैंने पढ़ी है। गाय की कुर्बानी लाजिमी नहीं। अरब में लोग दुम्बे और ऊंट की कुर्बानी अमूमन करते हैं।'

'लेकिन हम गाय की ही कुर्बानी करें, तो वे रोकने वाले कौन होते हैं ? हमारे मजहब में वह दस्तन्दाज़ी क्यों करेंगे ?'

'उनकी बात उनसे पूछो—मैं मुसलमान हूँ कभी अल्लाह को नहीं भूला हूं। मैं मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मैं आपकी कुर्बानी न होने दूँगा, न होने दूंगा।'

दादा की समूची दाढ़ी हिल रही थी, गुस्से से चेहरा लाल था, होंठ फड़क रहे थे, शरीर तक हिल रहा था। उनकी यह हालत देख, सभी चुप रहे। लेकिन एक नौजवान बोल उठा—

'आप बूढ़े हैं, आप अब अलग बैठिए, हम काफिरों से समझ लेंगे।'

दादा चीख उठे—

'कल्लू के बेटे, जबान सम्भाल कर बोल। तू किन्हें काफिर कह रहा है ? और मेरे बुढ़ापे पर मत जा—मैं मस्जिद में चल रहा हूँ। पहले मेरी कुर्बानी हो लेगी, तो गाय की कुर्बानी होगी।'

सुभानदादा वहां से उसी तनतने की हालत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्जिद में आए। नमाज पढ़ी। फिर तसबीह लेकर मस्जिद के दरवाजे की चौखट पर 'मेरी लाश पर ही कोई भीतर घुस सकता है'—कहकर बैठ गए! उनकी आंखें मुंदी हैं, किन्तु आंसुओं की झड़ी उनके गाल से होती, उनकी दाढ़ी को भिगोती, अजस्र रूप में गिरती जा रही है। हाथ में तसबीह के दाने हिल रहे हैं, और होठों पर जरा-जरा जुंबिश है—नहीं तो उनका समूचा शरीर संगमरमर की मूर्त्ति-सा लग रहा है—निश्चल, निस्पंद धीरे-धीरे मस्जिद के नजदीक लोग इकट्ठे होने लगे। पहले मुसलमान; फिर हिंदू भी। अब गाय की कुर्बानी का सवाल दादा की आंसुओं की धारा में फंसकर न जाने कहां चला गया था! वह साक्षात देवदूत-से दीख पड़ते थे! देवदूत—जिसके रोम-रोम से प्रेम और भाईचारे का संदेश निकलकर वायुमंडल को व्याप्त कर रहा था।

अभी, उस दिन, मेरी रानी, मेरे दो वर्ष जेल में रह जाने के बाद, इतने लंबे अर्से तक राह देखती-देखती, आखिर मुझसे मिलने गया जेल में आई थीं।

इतने दिनों की बिछुड़न के बाद, मिलने पर, जो सबसे पहली चीज उसने मेरे हाथों पर रखी, वे थे रेशम और कुछ सूत के अजीबोगरीब ढंग से लिपटे लिपटाए डोरे, बद्धियां, गंडे आदि। यह सूरज देवता के हैं, यह अनंत देवता के, यह ग्राम देवता के, यों ही गिनते-गिनते, आखिर में बोली—'ये हुसैन साहब के गंडे हैं—आपको मेरी ही कसम, इन्हें जरूर ही पहन लीजिएगा।'

ये सब मेरी मां की मन्नतों के अवशेष चिन्ह हैं। मां चली गई, पिताजी चले गए; रानी चार बच्चों की मां बन चुकी है, मैं पिता बन चुका हूं; लेकिन, तो भी ये मन्नतें अब भी निभाई जा रही हैं। रानी जानती है, मैं नास्तिक हूँ। इसलिए जब-जब इनके मौके आते हैं, खुद इन्हें मेरे जेब में डाल देती है। आज इस जेल में जेल-कर्मचारियों और खुफिया पुलिस के सामने उसने ऐसा नहीं किया—लेकिन, कसम देने से नहीं चूकी। मैंने भी हँसकर, मानो, उसकी दिलजमई कर दी।

रानी चली गई, लेकिन वे गंडे अब भी मेरे सूटकेस में सँजोकर रखे हैं।

जब-जब सूटकेस खोलता हूं और हुसैन साहब के उन गंडों पर नजर पड़ती है, तब-तब दो अपूर्व तस्वीरें आंखों के सामने नाच जाती हैं—

पहली करबला की—

एक ओर सिर्फ बहत्तर आदमी हैं, जिनमें बच्चे और औरतें भी हैं। इस छोटी-सी जमात के सरदार हैं हजरत हुसैन साहब। इन्हें बार-बार आग्रह करके बुलाया गया था, फूफा की गद्दी पर बिठलाने के लिए! लेकिन वहां पर बिठाने के बदले, आज उनके लिए एक चुल्लू पानी का मिलना भी मुहाल कर दिया गया है। सामने फुरात नदी बह रही है, लेकिन उसके घाट-घाट पर पहरे हैं। उन्हें पानी लेने नहीं दिया जा रहा है। कहा जाता है, दुराचारी, दुराग्रही यजीद की सत्ता कबूल करो, नहीं तो प्यासे तड़प कर मरो।

बच्चे प्यास के मारे बिलला रहे हैं; उनकी मां और बहनें तड़प रही हैं। हाय रे, एक चुल्लू पानी!—मेरे लल्ला के कंठ सूखे जा रहे हैं, उसकी सांस रुकी जा रही है! पानी, पानी—एक चुल्लू पानी!

पानी की तो नदी बह रही है और तुम्हें इज्जत और दौलत भी कम नहीं बख्शी जाएगी—क्योंकि तुम हजरत रसूल के नाती जो हो। लेकिन, शर्त एक है—यजीद पर बैत करो।

यजीद पर बैत! दुराचारी, दुराग्रही यजीद की सत्ता कबूल करे रसूल का नवासा! हो नहीं सकता। हम एक चुल्लू पानी में डूब मरना पसंद करेंगे, लेकिन यह नीच काम रसूल के नाती से नहीं होगा!

लेकिन, बच्चों के लिए तो पानी लाना ही है! उन्हें यों जीते-जी तड़प कर मरने नहीं दिया जा सकता!

एक ओर बहत्तर आदमी जिनमें बच्चे और [illegible] भी, दूसरी ओर दुराचारी यजीद की अपार सजो-[illegible] फौज! लड़ाई होती है, हजरत हुसैन और उनका काफिला उस करबला के मैदान में शहादत पाता है। शहीदों के रक्त से उस सहरा के रजकण लाल हो उठे हैं, बच्चों की तड़प और अबलाओं की चीख से [illegible] वरण थर्रा उठता है। इतनी बड़ी दर्दनाक घटना [illegible] के इतिहास में मिलना मुश्किल है। मुहर्रम उसी [illegible] का करुण स्मारक है। संसार के कोने-कोने में [illegible] हर मुसलमान मनाता है। भाईचारा बढ़ने पर [illegible]

(शेष १२९ सफ़े पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई किताबें

कर्ण—(नाटक) लेखक, सेठ गोविन्दास; प्रकाशक, विद्यामन्दिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर); मूल्य २); पृष्ठ संख्या १२६; छपाई—बहुत सुन्दर।

सेठ गोविन्ददास ने हिन्दी नाट्य साहित्य के भण्डार को अभी तक लगभग छोटे-बड़े चालीस नाटकों से भरा है। कर्ण उनकी नवीनतम कृति है। महाभारत से इस पौराणिक पात्र को लेकर लेखक ने कथा एवं पात्रों में क्रम से कम परिवर्तन कर इस नाटक की रचना की है। मूल के प्रति इतना सजग भाव इस बात का द्योतक है कि लेखक को नाटककार के उत्तरदायित्व का पूरा ज्ञान है।

इस नाटक का कथानक मूल के प्रति इतना अधिक सजग होने के कारण कथानक के सौन्दर्य से हीन-सा है। घटनाओं का वही शिथिल विकास, वही शिथिल क्रम और यदि पाठक ने महाभारत नहीं पढ़ी तो घटनाओं की अपूर्णता कथानक के प्रमुख दोष हैं। परन्तु फिर भी कथानक में गठन है। लेखक ने घटनाओं का जो चयन किया है, प्रभाव की इकाई को ध्यान में रखकर किया है।

चरित्र-चित्रण में भी कुछ शैथिल्य है। न तो कर्ण का चरित्र बहुत अधिक मार्मिक एवं महान है और न अन्य पात्रों का। कर्ण जैसा महान पुरुष अपने विचार और कर्म में इतना विभिन्न हो, यह एक विचित्र बात है। इस विरोधाभास को लेखक पूर्ण सफलता के साथ चित्रित नहीं कर सका है। अतः कुछ बेढंगापन-सा आ गया है। कथा नायक कर्ण भी कथा नायक-सा नहीं है। कथा के वे अंश लेखक ने हमें दिए हैं जिनका सीधा सम्बन्ध कर्ण से है परन्तु कर्ण घटनाओं का कर्त्ता एवं नियामक नहीं के बराबर है। विशाखदत्त के मुद्रा राक्षस में जो परिस्थिति चन्द्रगुप्त की है, उससे भी नीचे स्तर पर यहाँ कर्ण है। उसके गुणों को भी लेखक ने इतना अधिक उभारा नहीं है कि वह चमक उठे। दुर्योधन के साथ उसकी मैत्री न तो किसी गहरे सिद्धांत पर ही टिकी है और न किसी गहरे स्वार्थ पर।

अतः नाटक की कोई सुनिश्चित एवं मार्मिक मुख्य संवेदना भी नहीं है। नाटक का वातावरण हमें हिन्दू युग में लाकर नहीं बैठा देता।

उपर्युक्त पंक्तिओं में हमने इस नाटक की जो रूप-रेखा दी है, वह पाठक में यह भ्रम उत्पन्न कर सकती है कि नाटक निम्न कोटि की रचना है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। लेखक ने अपने को मूल कथानक (महाभारत) से इतना अधिक बांध लिया है कि उसमें ये दोष अवश्यंभावी थे। महाभारत की कथा अपना एक विशेष लक्ष्य एवं अर्थ रखती है, उसका कथानक उस लक्ष्य एवं अर्थ के दृष्टिकोण से सही है, उसके पात्र भी उसी दृष्टिकोण से हैं। गोविन्ददास जी का यह नाटक न तो वह लक्ष्य रखता है और न वह अर्थ। अतः वे विशेषताएं जो महाभारत में गुण हैं, यहां दोष बन गई हैं। फिर भी जहां तक लेखक की प्रतिभा का प्रश्न है यह नाटक उसका सुन्दर परिचय हमें देता है। सेठ गोविन्ददासजी अपनी प्रतिभा का परिचय हमें कई अन्य कृतियों के द्वारा भी दे चुके हैं। वे हिन्दी के आज के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में हैं। उनकी यह कृति पाठनीय है।

चिन्तन-कण—(निबंध) लेखक, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'; प्रकाशक, विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर); मूल्य १); पृष्ठ संख्या १०३

इस पुस्तक में श्री० मिलिन्द जी के एक दर्जन निबन्धों का संग्रह है। निबंधों की विषय वस्तु का संबंध अधिकतर भारतीय समाज और साहित्य से है। कुछ समस्याओं को लेखक ने उठाया है परन्तु उनकी तह में पड़े कारणों अथवा समाधानों पर लेखक ने गहराई से नहीं सोचा। बहुधा परिस्थिति के एक असुश्रृंखलित विश्लेषण मात्र से लेखक ने संतोष कर लिया है। कहीं कहीं पर तो विश्लेषण भी बड़ा ही साधारण है—एकाध लेख में तो गलत भी है। यदि लेखक सोच विचार कर लेख लिखता तो अधिक सफल रहता।

नागरी का अभिशाप—(निबंध) लेखक, चन्द्रबली पांडे; प्रकाशक, विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर); मूल्य १); पृष्ठ संख्या ७६

इस पुस्तक में श्री चंद्रबली पांडे ने अपनी प्रचारक की सर्वथा अवैज्ञानिक एवं असंयत शैली में नागरी लिपि की एक गलत ढंग से हिमायत की है। पुस्तक का पहला वाक्य है—'पाकिस्तान के छलकते हुए प्याले की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी को लपकते हुए देख न जाने कितने महानुभावों ने अपनी अखंड भारत की कंठी उतार फेंकी।' लेखक ने इसी प्रकार की बातें कहकर पाठकों को गुमराह करने का प्रयास किया है। नागरी लिपि के पक्ष में जो वैज्ञानिक तर्क हैं भी, उनमें से एकाध को लेखक ने इस बेतरतीब से रखा है कि वह भी सर्वथा प्रभावहीन हो उठा है। पुस्तक अत्यन्त साधारण है।

—कमल कुलश्रेष्ठ

पांच धागे (कहानी-संग्रह)—लेखक : श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव; प्रकाशक : विद्या मन्दिर, मुरार, ग्वालियर।

वे चेहरे (कहानी संग्रह)—लेखक : श्री शम्भुनाथ सक्सेना; प्रकाशक उपर्युक्त; मूल्य १)

झांकी—(कहानी)—लेखक श्री दौलतराव परशुराम; प्रकाशक और मूल्य उपर्युक्त

प्रतिध्वनि—(कविता-संग्रह)—लेखक श्री जगदम्बा प्रसाद त्यागी; प्रकाशक उपर्युक्त; मूल्य २)

'पांच धागे' कहानी संग्रह में पुनीत रक्षा-बन्धन को लेकर लिखी गईं लेखक की पांच कहानियां संग्रहीत हैं। कहानियों में कुछ सुन्दर भी हैं और कुछ साधारण भी। 'वे चेहरे' कहानी संग्रह में लेखक की दस कहानियां हैं। भूमिका में श्री जैनेन्द्र कुमार लिखते हैं—लेखक ने कहानियों में गहरी उलझन में निगाह डालने और कुछ उधेड़बुन करने का साहस किया है। 'झांकी' एक तीसरा कहानी संग्रह है। लेखक की इसमें छै कहानियां हैं, उसके मत के अनुसार वे आधुनिक और परिवर्तित हैं। 'प्रतिध्वनि' में कवि की ३७ कविताएं संग्रहीत हैं। लेखक के अनुसार उसका बाल कवि मचल-मचल पड़ा और ये कविताएं लिख गईं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त इन कविताओं के सम्बन्ध में अपने आशिर्वाद में लिखते हैं—भावों में एक भोलापन है जो भला लगता है।

आत्म दर्शन—(दो भाग) लेखक: श्री पूर्णचंद्र आत्मदर्शी जौहरी; पुस्तक प्राप्तिस्थान : पूनम चंद किशन लाल, सराफा, उज्जैन (मालवा) सी० आई०; मूल्य नहीं दिया।

इस पुस्तक में लेखक ने आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी अपने कुछ विचार दिए हैं जिन्हें उसने निज अनुभव के आधार से सबके हित के लिए प्रकाशित किया है। ये विचार दर्शनशास्त्र या धर्मशास्त्र के विद्यार्थी के विचारों के रूप में न देकर एक दार्शनिक या धार्मिक व्यक्ति के विचारों के रूप में दिए गए हैं। हम इस प्रकार के प्रयत्नों का स्वागत करते हैं।

उनमन (गद्य गीत)—लेखिका : कुमारी दिनेश नन्दिनी चौरड्या; प्रकाशक : साहित्य भवन, लिमिटेड, प्रयाग; मूल्य ३)

संग्रह में कुमारी नन्दिनी के १०६ गद्य गीत हैं। गीतों की भाषा सुन्दर, कल्पनायें मधुर और ऊँची, एक गहन वेदना से तर, प्रियतम के अनन्त पथ पर एकाकी पथिक-सी अग्रसर। इसमें कोई सन्देह नहीं दिनेश नन्दिनी हिन्दी की सफल और उत्कृष्ट गद्य गीत लेखिका हैं।

अपने पथ पर (कविता ग्रंथ)—लेखक : श्री शिशुपाल सिंह; प्रकाशक : मारवाड़ी नवयुवक मंडल, हैदराबाद (दक्षिण); मूल्य १)

पुस्तक में मेवाड़ के इतिहास की एक घटना का कविता में वर्णन है।

महात्माराम, क्यों सलाम करूँ, शीलवती—लेखक : स्वामी सत्यभक्त, सत्याश्रम, वर्धा; मूल्य क्रमशः ।), =), और =)॥

'महात्मा राम' में राम का चरित्र, 'क्यों सलाम करूँ' में सरकार और नागरिकों की मर्यादा बतलाने वाली कहानी, 'शीलवती' में वेश्याओं के जीवन सुधार की योजना है। ये तीनों पैम्फलेट बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखे गये हैं।

धूप दीप—लेखक : श्री जगदीश चन्द्र आयुर्वेदाचार्य; प्रकाशक : शरद साहित्य सदन, पंसारी बाज़ार, सहारनपुर; मूल्य १।)

प्रस्तुत संग्रह में लेखक की सात कहानियों का पहला संग्रह है। बाज़ बाज़ कहानियों में विचार सुन्दर ढङ्ग से व्यक्त किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे सहयोगी

मधुकर—(पत्रकार अंक)—सम्पादक, श्री० बनारसी [illegible] चतुर्वेदी; सह० सम्पादक, यशपाल जैन; प्रकाशक, [illegible] नरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़; इस अंक का मूल्य ।=); पृष्ठ संख्या ५४।

पाक्षिक मधुकर का यह विशेषांक 'पत्रकार अंक के रूप में हमारे सामने है। विशेषांक में पत्रकार विद्यालय', [illegible] श्रमजीवी पत्रकारों का संगठन' 'किशिचयन साइंस मॉनीटर', 'पत्रकार का कर्त्तव्य', 'सिंहावलोकन' तथा सम्पादकीय विचार शीर्षकों में दी गई सामग्री का ही सम्बन्ध पत्रकार कला से है। शेष सामग्री का पत्रकार कला से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कहना न होगा कि इन शीर्षकों में दी सामग्री पर्याप्त वैज्ञानिक एवं पाठकों के लिए उपयोगी है। हिन्दी पत्रकारों की दैनिक आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों पर सम्पादकीय विचारों में सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार-संघ के सभापति के सम्पादकत्व में प्रकाशित इस विशेषांक का हम स्वागत करते हैं।

आजकल—(नववर्षाङ्क)—सम्पादक, श्री० अनंत मराल शास्त्री; प्रकाशक, यूनाइटेड पब्लिकेशंस, दिल्ली; वार्षिक मूल्य ५); इस अंक का मूल्य ।।।);

'आजकल' की चर्चा हमने अपने पत्र में आज से लगभग एक वर्ष पहले की थी। यह उसी पत्र का नव वर्षाङ्क है। अत्यन्त रोचक साहित्यिक सामग्री तथा चित्रों से पूर्ण यह अंक पठनीय अवश्य है परन्तु यदि लेखों कहानियों, एवं कविताओं का स्तर और ऊँचा होता तो विशेष सुन्दर होता।

—कमल कुलश्रेष्ठ

(१२६ सफ़े से आगे)

[illegible] ने भी इसे अपना त्यौहार बना लिया था, जब सब तरह [illegible] योग्य था।

और, दूसरी सुभानदादा की—

जिनके कंधे पर चढ़कर मैं मुहर्रम देखने जाया [illegible] था।

वह चौड़ी पेशानी, वह सुफेद दाढ़ी, वे ममता भरी [illegible], वे शहद टपकानेवाले होंठ, उनका वह नूरानी [illegible]! जिनकी जवानी अल्लाह और काम के बीच बराबर हिस्से में बँटी थी, जिनका बुढ़ापा अल्लाह में ओत-प्रोत था। जिनके दिमाग में आला खयाल थे और जिनके हृदय में प्रेम की धारा लहराती थी, वह प्रेम की धारा—जो अपने-पराये सबको समान रूप से शीतल करती और सींचती है!

मेरा सिर सिज्दे में झुका है—करबला के शहीद के सामने! मैं सप्रेम नमस्कार करता हूँ—अपने प्यारे सुभान दादा को!

['हुङ्कार' के सौजन्य से]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी राय

हरबर्ट जार्ज वेल्स

१३ अगस्त की रायटर की ख़बर के मुताबिक़ प्रसिद्ध विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और उपन्यासकार हरबर्ट जार्ज वेल्स (एच० जी० वेल्स) की ७९ वर्ष की अवस्था में १३ अगस्त को ४ बजे शाम को मृत्यु हो गई।

२१ सितम्बर सन् १८६६ में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता जोसेफ़ वेल्स क्रिकेट के व्यवसायी खिलाड़ी थे। स्कालरशिप की सहायता से साउथ केनिङ्गस्टन के रायल साइन्स कालेज से वे ग्रैजुएट हुये और सन् १८८८ में लन्दन के विश्वविद्यालय से उन्होंने प्रथम श्रेणी में सम्मान के साथ बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। कुछ दिनों तक उन्होंने स्कूल में शिक्षक की हैसियत से विज्ञान की शिक्षा दी। १८९३ में वे पत्रकारिता के क्षेत्र में आये और सन् १८९५ में उनकी पहली पुस्तक *Select conversations with an uncle* प्रकाशित हुई और इसके बाद घड़ल्ले के साथ एक के बाद दीगरे उनके अत्यन्त प्रभावशाली और रोमाञ्च से भरे हुये उपन्यासों का प्रकाशन शुरू हुआ। उनका सब से पहला उपन्यास *The Time Machine* था। इस समय तक विज्ञान के क्षेत्र में उनकी "अत्यन्त प्रतिभाशाली नवयुवक वैज्ञानिकों" में गिनती होने लगी थी। किन्तु वे अपने वैज्ञानिक ज्ञान को करोड़ों जनता को उपन्यासों के माध्यम से देने का संकल्प कर चुके थे। १८९६ में उनकी दो पुस्तकें The Wonderful Visit और The Stolen Bacillus and Other Stories प्रकाशित हुईं। इसके बाद जीवन के हर क्षेत्र को लेकर उन्होंने उपन्यासों की रचना शुरू की। उनके उत्कृष्ट वैज्ञानिक उपन्यासों में The Invisible Man, In the War of the worlds, The Food of the gods, The First men in the Moon और The Sleeper Awakes प्रमुख हैं। रचनात्मक समाजवाद पर उनकी पुस्तक In Anticipations ने काफ़ी प्रसिद्ध प्राप्त की। समकालीन सामाजिक परिस्थिति के चित्रण में उनका उपन्यास The Story of a Simple Soul उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति समझी जाती है। उनकी अन्य पुस्तकों में The Salvaging of Civilization, Washington and the Hope of Peace, The Outline of History, A short History of the World आदि ने काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। वेल्स ने अपने करोड़ों पाठकों पर जो प्रभाव डाला है वह अन्दाज़ के बाहर है। वे धीरे धीरे होनेवाले प्रजातन्त्रात्मक सुधारों के कारण बेचैन थे। दूसरों के दक्रियानूसी विचार भी उन्हें बेसब्र कर देते थे। उनमें ही इतना साहस था कि वे इङ्गलिस्तान के परिवार की प्रतिष्ठा के विरुद्ध अपनी आवाज़ लगाते।

जार्ज बर्नार्डशा ने वेल्स की मृत्यु पर अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है—"वेल्स ईमानदार शान्त और मेहनती थे। मेधावी व्यक्तियों में आमतौर से ये गुण नहीं होते। वे तरुणों को इकट्ठा करते थे और उनके लिये नये नये खेलों की ईजाद करते थे और सीटी लेकर पुराने खेलों में रेफरी का काम करते थे। उन्होंने यूरोपीय युद्ध की पहले से कल्पना कर ली थी—टैंक, हवाई जहाज और एटम बम—सब की।"

वेल्स जिन शब्दों में अपने विरोधियों का ज़िक्र करते थे वह तर्ज़ तरीक़ों से बँधे हुये व्यक्तियों को अप्रिय लगता था किन्तु वे छिपाव-दुराव में ज़रा भी विश्वास नहीं करते थे और न किसी व्यक्ति के कारण अपने विचारों में किसी तरह का कोई परिवर्तन करते थे। और शायद इसीलिये जनता उनसे बेहद प्यार करती थी।

आज एच० जी० वेल्स के निधन से न केवल अङ्गरेज़ी साहित्य की ही क्षति हुई है, वरन् मानवता का एक बहुत बड़ा हिमायती और हमदर्द उठ गया है। वे जिस ऊँचाई पर खड़े थे वहां जाति, धर्म और देशों की सीमायें मिट जाती हैं।

डाक्टर हीरानन्द शास्त्री

१५ अगस्त को बनारस से भेजी हुई एक ख़बर १६ अगस्त के 'लीडर' में छपी है कि प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर हीरानन्द शास्त्री की मृत्यु गुरुदासपुर में हो गई। मृत्यु की तिथि आदि की कोई सूचना इस समाचार में नहीं थी।

हमें इस अधूरी ख़बर को पढ़कर दुःख और क्षोभ हुआ। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन भर भारतीय इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पुरातत्व के गड़े हुये खण्डहरों से निकालकर प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में कोई विस्तृत समाचार किसी भी पत्र में नहीं छपा जबकि निकृष्ट समाचारों को कालम के कालम दे दिये जाते हैं। हरप्रसाद हीरानन्द, बड़ोदा स्टेट में डाइरेक्टर आफ़ आर्कियालाजी थे और उससे पूर्व उन्होंने हिन्दुस्तान के विविध भागों में स्वयं खुदाई में हिस्सा लेकर महत्वपूर्ण खोजें की थीं। वे सच्चे अर्थों में पुरातत्ववेत्ता थे। अनेक नौजवानों ने उनके चरणों के निकट बैठकर पुरातत्व की शिक्षा पाई। वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के नव संस्करण के उपासक थे। हिन्दी और संस्कृत के प्रखर पण्डित थे। पुरातत्व पर 'नालन्दा' आदि अनेक उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। अपना जीवन चरित्र भी वे लिखने वाले थे। हमें नहीं मालूम कि पूर्ण हुआ या नहीं। उनकी मृत्यु से भारत का एक वृद्ध पुरातत्ववेत्ता उठ गया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने एक पुत्र की मृत्यु से उन्हें हार्दिक सन्ताप पहुँचा था। सम्भवतः उसी सन्ताप ने उनकी मृत्यु के दिनों को निकट ला दिया।

हिन्दी साहित्य को जो उनकी सब से बड़ी देन है वह है अपने मेधावी पुत्र सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन (अज्ञेय) की। हम अज्ञेय जी के इस शोक में उनके परिवार के अन्य लोगों के साथ हार्दिक सम्वेदना प्रकट करते हैं।

गोआ का पुर्त्तगाली शासन

डाक्टर राममनोहर लोहिया के प्रयत्न से पहली बार गोआ के पुर्त्तगाली शासन की नंगी तस्वीर भारतीयों के सामने आई। गान्धी जी, पण्डित नेहरू और कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने गोआ में नागरिक अधिकारों के नितान्त अभाव पर अपना खेद और रोष प्रकट किया। जवाब में गोआ के गवर्नर-जनरल ने गोआ को पुर्त्तगाल का अविभाज्य अङ्ग बताया और कहा कि गोआ में पुर्त्तगालियों का शासन गोआवालों के लाभ के लिये है। पुर्त्तगाली सरकार की तारीफ़ में उन्होंने बड़े बड़े राग अलापे। उनके ये सब इतिहास विरुद्ध दावे पढ़कर हैरान रह जाते हैं।

सबसे पहला पुर्त्तगाल निवासी जिसने भारत में क़दम रखा वास्को दे गामा था। २२ मई सन् १४९८ ई० को वह अपना जहाज लेकर कालीकट पहुंचा। कालीकट के सामुरी (ज़ामोरिन) राजा ने वास्को दे गामा और उसके साथियों की खूब ख़ातिरदारी की। उन्हें उसने व्यापार की इजाज़त दी। सन् १५०० में पुर्त्तगालियों ने कालीकट में अपनी एक व्यापारी कोठी बनाई। तीन साल बाद उन्होंने सामुरी की इजाज़त से कोठी की किलेबन्दी कर ली और एक फ़ौजी अफ़सर अल्बुकर्क को क़िलेदार मुक़र्रर किया। अल्बुकर्क ने किनारे किनारे उत्तर की ओर बढ़कर सन् १५०६ में गोआ नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। सन् १५१० में पुर्त्तगालियों का कालीकट के राजा के साथ कुछ झगड़ा हो गया जिसमें पुर्त्तगालियों ने कालीकट के राजमहल को आग लगा दी और शहर को लूट लिया। १२ बरस पहले इन विदेशियों पर अनुग्रह करने का सामुरी को यह फल मिला।

सौ सवा सौ साल के अन्दर पुर्त्तगालियों ने भारतीय व्यापार से इतना अधिक धन कमाया कि उसे देखकर अन्य यूरोपवासी दङ्ग रह गये और इसी समय के अन्दर पुर्त्तगाली मङ्गलोर, कच्चिन, लङ्का, दिउ, गोआ, बम्बई और नेगापट्टन के मालिक बन बैठे। पुर्त्तगालियों के उस समय के व्यापार की दो बातें ख़ास तौर पर जानने योग्य हैं। एक यह कि इन लोगों के कुछ जहाज़ भारत के पूर्वी और पच्छिमी तटों के बराबर बराबर घूमते रहते थे और किसी भी भारतीय जहाज़ को पास से निकलते देखकर उसे पकड़कर लूट लेते थे। कभी कभी किनारे की आबादियों पर धावा करके उसे भी लूट लेते थे और मौक़ा पाकर वहां के स्त्री पुरुषों को ग़ुलाम बनाकर पकड़ ले जाते थे। ये लोग अफ़रीका से हब्शियों को पकड़कर लाते थे और उन्हें भारत में सस्ते दामों पर बेच देते थे। भारत के जिन हिस्सों पर पुर्त्तगालियों का क़ब्ज़ा हो गया था वहां की प्रजा के साथ इन लोगों का व्यवहार अत्यन्त अनुदार था। ये लोग कट्टर ईसाई थे और जिस देश पर इनका राज होता था वहां की प्रजा को ज़बर्दस्ती ईसाई बना लेना वे अपना धर्म समझते थे। गोआ में इन्होंने अपनी ग़ैर ईसाई प्रजा को पकड़ कर और उन्हें लामज़हब कहकर मार डालने और ज़िन्दा जला देने के लिये एक अदालत क़ायम कर रखी थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे 'इनक्वीज़ीशन' कहते थे। इसीलिये आज तक गोआ की अधिकांश आबादी ईसाई है। अपनी हिन्दुस्तानी प्रजा की बेहतरी के लिये पुर्त्तगालियों ने कभी किसी तरह के यत्न नहीं किये।

१७ वीं सदी के शुरू में पुर्त्तगालियों का व्यापार बङ्गाल की ओर फैलने लगा। बङ्गाल के किसी हिस्से पर उनका राज तो क़ायम न हो सका लेकिन वहां भी वही लूट मार, ज्यादतियाँ, वही ग़ुलाम और बांदियों का व्यापार चल पड़ा। इस समय तक मुग़ल साम्राज्य की जड़ें पक्की हो चुकी थीं। शाहजहाँ अब दिल्ली के तख़्त पर था। बङ्गाल की हुकूमत दिल्ली सम्राट के अधीन एक सूबेदार के हाथों में थी। सूबेदार ने अपने अहलकारों के ज़रिये पुर्त्तगालियों को आगाह किया लेकिन पुर्त्तगालियों ने इसकी ख़ाक परवाह न की। इन बातों की शिकायत शाहजहां के कानों तक पहुंची। उसने तुरन्त उनके दमन के लिये एक सेना भेजी। पुर्त्तगाली हरा दिये गये। उनकी हुगली की कोठियाँ गिरा दी गईं। उनके जहाज जला डाले गये और बचे-खुचे पुर्त्तगाली क़ैद करके आगरे पहुँचा दिये गये। यहीं से पुर्त्तगालियों की भारतीय सत्ता का अन्त शुरू होता है।

भारत से पुर्त्तगालियों की सत्ता के इतनी जल्दी मिट जाने का एक सबब यह भी बताया जाता है कि बहुत अधिक धनाढ्य हो जाने से ये लोग भोग विलास में पड़ गये। एक पुर्त्तगाली लेखक लिखता है—

"पुर्त्तगालियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में सलीब (क्रास) लेकर भारतवर्ष में प्रवेश किया, किन्तु जब उन्हें यहाँ बहुत अधिक सोना नज़र आया तो उन्होंने सलीब को अलग रखकर उस हाथ से अपनी जेबें भरनी शुरू कर दीं और जब उनकी जेबें इतनी भारी हो गईं कि वे उन्हें एक हाथ से न संभाल सके तो उन्होंने तलवार भी फेंक दी। इस हालत में जो लोग उनके बाद आये वे आसानी से उनपर हावी हो सके।"

[Alfonzo-de-Souza, Governor of Portugese India, 1545]

ये हैं पुर्त्तगालियों के शासन की बुनियादी ईंटें। अफ़रीका के हब्शियों के साथ उन्होंने जो कुछ किया वह मानवता की समस्त सीमाओं को पार कर गया। दर असल पुर्त्तगाली साम्राज्यवाद एक निकृष्ट साम्राज्यवाद है। पिछले १५० बरस से पुर्त्तगालियों की हुकूमत में गोआ आदि ने किसी तरह की नागरिक स्वाधीनता की कोई बात नहीं जानी। हमें ख़ुशी है कि गोआवासियों ने अपने अधिकारों का संग्राम छेड़ दिया है और कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ने यह ऐलान कर दिया है कि गोआ और अन्य भारतीय पुर्त्तगाली टापू भारतीय प्रजातन्त्र के अविभाज्य अङ्ग होंगे।

रायटर ने लिसबन का यह समाचार भेजा था कि पुर्त्तगाली सरकार ने एक सशस्त्र जहाज़ गोआ के आन्दोलन को कुचलने के लिये रवाना किया है। ख़बर पढ़कर हँसी आती है कि 'भेंढकी को भी ज़ुकाम हुआ है।'

स्वागत राजा महेन्द्र प्रताप

३१ वर्ष के बाद राजा महेन्द्रप्रताप के स्वदेश आगमन पर उनका प्रत्येक देशवासी हर्ष और उत्साह के साथ उनका स्वागत करता है। सोने का चम्मच मुँह में लेकर वे पैदा हुए थे किन्तु अपने देश की ग़ुलामी की तड़प ने उन्हें अपना समस्त धन वैभव छोड़कर विदेशों में मारे मारे फिरने को मजबूर कर दिया। पिछले महायुद्ध के समय अपने देश की आज़ादी की खोज करने वे रूस, जर्मनी, अफ़ग़ानिस्तान, इटली, तुर्की आदि में ठोकरें खाते फिरे। युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार उनकी जानी दुशमन बन गई। इस युद्ध की समाप्ति पर वे जापान में युद्ध-बन्दी बना लिये गये और अब उन्हें स्वदेश लौटने की अनुमति मिली है।

निर्वासन से पूर्व राजा साहब ने भारत में ग्रह उत्पन्न के प्रचार की विस्तृत योजना बनाई थी और इसी के लिये वृन्दावन में प्रेम महाविद्यालय की नींव डालकर उसमें अपनी निजी सम्पत्ति अर्पित करदी थी। वह विद्यालय आज तक उसी तरह चल रहा है।

राजा साहब प्रसिद्ध एकता प्रेमी हैं। यूरोप में उन्होंने अपना नाम तक पीटर मोहम्मद प्रताप रख छोड़ा था। स्वदेश आकर उन्होंने यह घोषणा की है कि वे एकता के लिये अपनी समस्त शक्ति लगायेंगे। हम उनके प्रयत्नों को बड़ी दिलचस्पी से देखेंगे।

राजा साहब के स्वागत के समय हमें कई निराशा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशभक्तों की याद आती है—लाला हरदयाल, मौलवी बरकत उल्लाह आदि—जो इस संसार में नहीं हैं और जिनकी स्वदेश लौटने की आकांक्षा पूरी न हो सकी। किन्तु सरदार अजीतसिंह जैसे देशभक्त अब भी निर्वासन में पड़े हैं। हमें विश्वास है कांग्रेस की अस्थायी सरकार इन्हें स्वदेश लौटने की अति शीघ्र अनुमति देगी।

यही होना था

१६ अगस्त को मुसलिम लीग ने कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के ख़िलाफ़ जो 'जेहाद दिवस' मनाया उसका लौफ़नाक नज़ारा कलकत्ते में दिखाई दिया। केवल तीन दिन के अन्दर ३००० व्यक्ति मरे, ५००० घायल हुये, १५०० घरों में आग लगाई गई, सैकड़ों दूकानों को लूटा गया, बच्चों को क़त्ल किया गया, स्त्रियों के साथ बलात्कार करके उन्हें मौत के घाट उतारा गया और बहुत से आदमियों को हावड़ा के पुल से नीचे गंगा में फेंक दिया गया।

कांग्रेस के बड़े नेता डाक्टर बिधान राय, श्री किरन शङ्कर राय के मकानों में और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में बार बार आग लगाने की कोशिश की गई। अनेक समाचार पत्रों के कार्यालयों को भी फूँकने की चेष्टा की गई। तलवार, बन्दूक, लाठी, छुरा और बम आदि तरह तरह के हथियार इस क़त्ले आम में इस्तेमाल किये गये।

बहुत दिन नहीं बीते जब फ़ीरोज़ ख़ाँ नून, नाज़िमुद्दीन और दूसरे मुसलिम लीगी नेताओं ने दिल्ली की बैठक में इस बात का ऐलान किया था कि एक एक मुसलिम लीगी चंगेज़ और हुलाकू ख़ाँ बन जायगा और सचमुच वादे के पक्के लोगों ने इसे करके दिखा दिया। पर मुसलिम लीग के ये दोस्त एक ख़तरनाक सूरत पैदा कर रहे हैं। जिस तलवार को वे चला रहे हैं वह दुधारू है। वे यह न समझें कि इससे ख़ाली कांग्रेस का गला कटेगा बल्कि इस भयंकर आग में मुसलिम लीग भी सुरक्षित न रह सकेगी। हमें दुख है बंगाल के मुसलिम लीगी मन्त्रिमण्डल ने १६ अगस्त को सरकारी दिवस मनाकर देश के सामने जो मिसाल रखी है वह विस्फोटक मसाले का काम कर सकती है। 'सन्डे टाइम्स' लिखता है कि मुसलिम लीग ने जानबूझकर ग्रहयुद्ध का दरवाज़ा खोल दिया है। नाज़िमुद्दीन ने अभी चन्द रोज़ हुये कहा था कि—"हमारा जेहाद ख़ाली अहिंसात्मक न होगा।" और सचमुच उनका जेहाद अहिंसात्मक नहीं रहा। 'स्टेट्समैन' जैसा पत्र जो हमेशा मुसलिम लीग के साथ याराना बरतता है, हैरान होकर लिखता है—"बङ्गाल का चीफ़ मिनिस्टर मुसलिम लीग का प्रमुख नेता है। वही उस एक दिन ऐसे जुलूस का नेतृत्व करनेवाला था जो उसकी पुलिस की राय के मुताबिक़ हिंसा कर सकता था, और वही चीफ़ मिनिस्टर पुलिस का हाकिम है और यह उसका फ़र्ज़ है कि वह शहर की हिफ़ाज़त करे।" किन्तु प्रश्न यह है कि बङ्गाल के गवर्नर महोदय क्या कर रहे थे? क्या वे मुसलिम लीग मंत्रिमण्डल को जनता की ज़िन्दगी के साथ इस तरह खेल खेलने देंगे?

पण्डित जवाहरलाल जी ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वे चन्द सिर-फिरे लोगों की वजह से आरज़ी केन्द्रीय सरकार बनाने से न रुकेंगे। उन्होंने यह भी साफ़ कर दिया है कि यदि आरज़ी सरकार मज़बूत होगी तो वह इस तरह की ख़ून-ख़राबी का मुक़ाबला करेगी और अगर वह कमज़ोर होगी तो डरकर घुटने टेक देगी। ज़ाहिर है कांग्रेस को एक बार मुस्तैदी के साथ इस आग और धुंए का उसी तरह मुक़ाबला करना पड़ेगा जिस तरह उसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुक़ाबला किया है और निश्चय ही वह उस अग्नि परीक्षा से उसी तरह विजयी होकर निकलेगी जिस तरह सन् १९४२ के आन्दोलन से निकली है।

आख़िर कब तक मुसलिम लीगी नेता मुसलिम जनता को व्यर्थ के खून-खच्चर के बीच से ले चलेंगे। आज वह एक भंवर में फंस गई है लेकिन निश्चय ही उसकी आत्मा में एक छटपटाहट महसूस होगी और वह इस ज़हरीले बन्धन से अपने को मुक्त करेगी और तब तक लोगों को लीग की इस लड़ाई को हिन्दू-मुसलिम रूप देने से गुरेज़ करना होगा। किन्तु साथ ही साथ उन्हें यह भी देखना होगा कि वह अपने बच्चों की हिफ़ाज़त कर सकें और अपनी स्त्रियों को इस तरह की तालीम दे सकें कि वे अपनी आत्मरक्षा स्वयं कर सकें।

हमें कलकत्ते के इस रक्त स्नान से एक ज़बर्दस्त सबक़ लेना चाहिये कि अनुशासनहीन जनता चाहे वह मुसलिम लीगी ही क्यों न हो, कोई नुमायाँ काम नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकती। और जो नेता इतने निकम्मे हों कि जनता उनके क़ाबू से बाहर हो जाये उन्हें अपनी नेतागिरी के दावे को जल्द से जल्द छोड़ देना चाहिये।

साम्प्रदायिक दंगे और अहिंसा

कलकत्ते के ख़ौफ़नाक नज़ारे हमारे सामने एक गम्भीर सवाल पेश करते हैं कि क्या इन दंगों को बग़ैर फ़ौज या पुलिस की सहायता के हम किसी तरह दबा सकते हैं? सरकार के ख़िलाफ़ हमारे हज़ारों नौजवानों ने अहिंसात्मक तरीक़े से अपने प्राणों की आहुति दी किन्तु वही बहादुर लोग इन दङ्गों में किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। इसकी कई वजूहात हैं। एक तो दङ्गों का नियमित रूप और निश्चित समय नहीं होता। दूसरे अचानक जहां तहां दङ्गई गलियों से निकलकर निरीह राहगीरों पर हमला करके ग़ायब हो जाते हैं और तीसरे सरकारी अधिकारी ग़ैर-सरकारी तरीक़े से दङ्गों को रोकने के लिये प्रोत्साहन नहीं देते। फिर एक बात और है, कांग्रेस कर्मियों को ब्रिटिश सरकार के ख़िलाफ़ अहिंसात्मक सत्याग्रह में जितना विश्वास है उतना दङ्गाइयों के ख़िलाफ़ नहीं। गान्धी जी इस मनोदशा पर टिप्पणी करते हुये ४ अगस्त के 'हरिजन' में लिखते हैं—"जो लोग अहिंसा में विश्वास करते हैं उनके लिये इस वातावरण में जो कि हिंसा से भरा हुआ है काम करना बहुत कठिन है। लेकिन अहिंसा के रास्ते में हिंसा के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा हिम्मत की ज़रूरत होती है। हम अब तक इस तरह की अहिंसा का सुबूत देने में कामयाब नहीं हुये हैं।" इसके बाद गान्धी जी अहमदाबाद के हाल के हिन्दू-मुसलिम दङ्गे को रोकने की कोशिश करते हुये अहिंसक सेवक दल के श्री वसन्तराव और श्री रजबअली के बलिदान के प्रति आदर व्यक्त करते हुये कहते हैं—"हम श्री गणेशङ्कर विद्यार्थी, श्री रजबअली और श्री वसन्तराव के बलिदान को बहादुरों की अहिंसा के रूप में देख सकते हैं। किन्तु साम्प्रदायिक भावनाओं की बाढ़ आती है तब हम इन बलिदानों के प्रभाव का कोई प्रदर्शन नहीं कर पाते। अहमदाबाद में कोई भी श्री रजबअली और श्री वसन्तराव के दिखाये हुमें मार्ग पर नहीं चल सका। यह एक ऐसी सचाई है जो यह ज़ाहिर करती है कि हमने अब तक बलिदान की वह भावना अपने अन्दर जाग्रत नहीं की कि जिससे अहिंसात्मक तरीक़े से हम अपने जीवन का बलिदान चढ़ा सकें। इसके लिये हमें अनेकों गणेश शङ्कर विद्यार्थी की आहुति चढ़ानी होगी।...इस परिस्थिति में मुझे स्वयं अमल करना होगा फिर चाहे कोई मेरे साथ आये या न आये। यह मेरे लिये बड़ी लज्जाजनक बात होगी कि मैं घर पर बैठा रहूँ और दूसरों से कहूँ कि वे जाकर अपने प्राणों की बलि चढ़ायें। यह तो अहिंसा का मार्ग नहीं हुआ। मुझे अब तक साम्प्रदायिक दङ्गों में अपनी अहिंसा को परखने का मौक़ा नहीं मिला। दलील दी जा सकती है कि अपनी बुज़दिली के कारण मैंने ऐसा मौक़ा नहीं खोजा। जो भी हो, यदि ईश्वर ने चाहा तो मुझे अब भी ऐसा मौक़ा मिल सकता है कि वह मुझे आग में झोंककर पवित्र करे और अहिंसा के मार्ग को साफ़ करे। इससे कोई यह न समझे कि मेरे जीवन के बलिदान से तमाम हिंसा रुक जायगी। यदि चारों तरफ़ फैली हुई इस ख़ौफ़नाक हिंसा को रोकना है और अहिंसा की हुकूमत को सर्वोपरि बनाना है तो मेरी जैसी बहुत सी जानों का बलिदान चढ़ाना होगा। एक कवि ने गाया है—

"हरिनो मारग छे शूरानो नहिं कायरनुँ काम जोने
"और हरि का मार्ग अहिंसा का मार्ग है।"

घने बादलों में रुपहली रेखा

कलकत्ते के दङ्गे की ख़ौफ़नाक ख़बरों के बीच १६ अगस्त को एसोशियेटेड प्रेस ने नीचे लिखा समाचार कलकत्ते से भेजा—"एक मुसलिम मोहल्ले में ५०-६० हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और पुरुषों को मोहल्ले के मुसलमानों ने आश्रय देकर उनकी हिफ़ाज़त करने का अहद किया है। एक दूसरे हिन्दू मोहल्ले में मोहल्ले के थोड़े से मुसलमानों को बचाने के लिये हिन्दू बाशिन्दों ने एक रक्षा-समिति बनाई है। ऐसी बहुत-सी मिसालें सामने आ रही हैं कि हिन्दुओं ने मुसीबतज़दा मुसलमान परिवारों को और मुसलमानों ने हिन्दू परिवारों को परस्पर शरण में लेकर रक्षा की।"

दानवता की प्रज्वलित अग्नि-शिखाओं के बीच मानवता का यह शीतल स्पर्श किसके हृदय को शान्तिवना न पहुंचायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलाम और यह जेहाद

ऐन रमज़ान के पवित्र महीने में कलकत्ते में मुसलिम लीग ने कांग्रेस के ख़िलाफ़ जिस जेहाद का ऐलान किया उसने इसलाम और अरब की पवित्रतम मर्यादाओं को ठुकरा दिया। इसलाम के जन्म के हज़ारों बरस पहले इसलाम की संस्थापना के समय से अरब में यह रिवाज चला आता था कि रमज़ान के महीने में कट्टर से कट्टर दुश्मनियाँ बन्द हो जाती थीं और लोग निर्भय होकर जहाँ चाहे आ जा सकते थे। इसलाम के प्रारम्भिक दिनों में हज़रत मोहम्मद पर जब मक्के के कोरेश तरह तरह के अत्याचार कर रहे थे उस समय रमज़ान के महीने में हज़रत पैग़म्बर को स्वतन्त्रता के साथ इसलाम के प्रचार का मौक़ा मिलता था। क्योंकि उस मौक़े पर वे तरह तरह के हमले से अपने को महफ़ूज़ समझते थे। इसलाम की इस मर्यादा का यदा कदा ही कभी उल्लंघन किया गया। इसीलिये इस्लाम के हर पैरोकार को अपनी शर्म से नीचे झुका लेनी चाहिये क्योंकि रमज़ान के इसी पवित्र महीने में कलकत्ते के मुसलिम लीगियों ने आश्रित और निरीह अबलाओं और बच्चों पर इसलाम का ऐलान कर दिया। हज़ारों बरस की इसलाम की मर्यादा को उन्होंने धूल में मिला दिया।

और आख़िर इस दङ्गे का नतीजा क्या निकला? क्या पाकिस्तान एक इञ्च भर भी क़रीब आया? बच्चों, बूढ़ों और औरतों के क़त्ल से ही क्या पाकिस्तान की बुनियाद रखी जायगी? हमें विश्वास है समझदार लीगी इस तरह के घृणित अमल के विरुद्ध लीग के भीतर और बाहर ज़ोरदार आवाज़ लगायेंगे।

आग और धुंआ क्यों?

लीग की जिस बौखलाहट का परिणाम कलकत्ते का इसलाम है उसके कारण हमें लीग की पिछले छै बरस की राजनीति में ढूँढ़ना होगा। सन् १९४० के आल इण्डिया मुसलिम लीग के लाहौर अधिवेशन के बाद उसने ब्रिटिश बेयोनेट की मदद से जिस पाकिस्तान की कल्पना का ख्वाब देखना शुरू किया था वह आज मध्यपूर्व की राजनीति से टकराकर चूर चूर हो गया। महायुद्ध के समय ब्रिटिश राजनीति जिस ख़ूबसूरती के साथ मुसलिम लीग का इस्तेमाल करती रही आज अब उसे उसकी ज़रूरत नहीं है। मध्यपूर्व में एक ओर जहाँ इराक़, ईरान, सीरिया, फ़िलिस्तीन, मिस्र आदि अङ्गरेज़ी प्रभाव से धीरे धीरे मुक्त होते जा रहे हैं वहाँ दूसरी ओर सोवियत् रूस का लाल दामन इनके ऊपर उसी तरह धीरे धीरे फैलता जा रहा है।

अङ्गरेज़ इस चीज़ को ख़ूब समझ रहा है। आगामी युद्ध में सोवियत् के साथ उसका दृढ़ मुक़ाबला होने की सम्भावना है। ऐसी सूरत में वह असन्तुष्ट भारत को अपने पीछे नहीं रखना चाहता और न पाकिस्तान का दायरा बनाकर भारत की सैनिक शक्ति को कम करना चाहता है। जब तक तीसरे महायुद्ध का निपटारा नहीं हो जाता और जो सम्भवतः ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, पञ्जाब और संयुक्त प्रांत के मैदानों में लड़ा जायगा, अङ्गरेज़ सैनिक दृष्टिकोण से अखण्ड भारत का एक बड़े दरजे तक समर्थन करेगा। वह लीग की थोथी ताक़त के मुक़ाबले में कांग्रेस की ठोस शक्ति पर निर्भर होना अधिक पसन्द करेगा। हमें हैरत है कि लीग के नेता इतनी साधारण-सी बात नहीं समझ पाते। अब तक मुसलिम लीग अपने को अङ्गरेज़ की चहेती बीवी तसव्वुर करती थी इसी लिये ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और लार्ड वावेल का यह रुख़ उसके लिये एक अनबूझ पहेली हो रहा है। रूठकर उसके नेताओं ने ख़िताब छोड़े, विधान-निर्मात्री परिषद का बहिष्कार किया, डाइरेक्ट एक्शन का प्रस्ताव पास किया, जगह जगह जुलूस निकाले और कलकत्ते में अपनी निकृष्ट प्रवृत्ति का परिचय दिया। किन्तु अब ये नख़रे और प्रतिहिंसात्मक रुख़ मिस्टर जिन्नाह के हाथों में भारतीय राजनीति की पहल नहीं दे सकते। वह पहल तो आज कांग्रेस के हाथों में है। उसने आरज़ी सरकार बनाने की दावत क़ुबूल की है और विधान-निर्मात्री परिषद के प्रस्ताव का वह हर तरह से प्रयोग कर लेना चाहती है।

प्रश्न उठता है कि क्या विधान निर्मात्री परिषद से किसी मुल्क को आज़ादी हासिल हो सकती है? क्या कभी ऐसा हुआ है? लोग कहते हैं कि आज़ादी तो जन-क्रान्ति से ही प्राप्त हो सकती है और जनता ही उस आज़ादी की रक्षा भी कर सकती है।

प्रश्न अपनी जगह पर बहुत मुनासिब है। लेकिन कांग्रेस ने यदि आज विधान-निर्मात्री परिषद में जाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ैसला किया है तो वह केवल जनता की शक्ति के बल पर ही। वह वहाँ भिक्षा लेने नहीं जा रही है। वह यह समझती है कि आज़ादी के लिये क़ीमत देनी होती है। इस क़ीमत को अदा करने से उसने कभी आनाकानी भी नहीं की। और यदि परिषद का प्रयोग असफल रहा तो सन् '४२ से पचासों गुना भयंकर आन्दोलन चलाने को वह तत्पर बैठी है। ऐसी सूरत में परिषद का प्रयोग एक शुद्ध प्रयोग मात्र है। उसके पीछे त्याग से हटने, क़ुर्बानी से बचने, जन-क्रान्ति से घबराने की कोई धारणा नहीं है। लेकिन यह ज़रूरी है कि कांग्रेस जन इस सारे समय को अधिक से अधिक जन सम्पर्क बढ़ाने में ख़र्च करें। हमें प्रतिज्ञा करनी है कि हम इस बहुमूल्य समय का एक भी क्षण व्यर्थ बरबाद न करेंगे।

आबादी और अनाज

भारत सरकार के प्रतिनिधि बार बार यह ऐलान करते नहीं थकते कि अनाज की कमी के लिए बढ़ती हुई आबादी ज़िम्मेवार है। उनका कहना है कि पिछले तीस बरस में हिन्दुस्तान की आबादी में ७ करोड़ की वृद्धि हुई है। ये सरकारी प्रतिनिधि इस बात को भूल जाते हैं कि दूसरे मुल्कों में इससे कहीं अधिक अनुपात में आबादी में वृद्धि हुई है। इनसे सवाल किया जाना चाहिये कि जब कि दूसरे देशों ने खेती की पैदावार को काफ़ी बढ़ाया है हिन्दुस्तान में सन् १९११ से लेकर १९४४ तक वह ज्यों की त्यों मुस्तक़िल रही है। इस तमाम अरसे में हर साल क़रीब ढाई करोड़ टन चावल की उपज हुई है। १९३७ से लेकर १९४४ तक जो ज़मीन चावल और गेहूं की काश्त के लिये इस्तेमाल की गई वह १०,८०,००,००० एकड़ से ज्यादा नहीं बढ़ी। जरनल आफ़ साइण्टिफ़िक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च ने कुछ आंकड़े प्रकाशित किये हैं जिनसे पता चलता है कि जब कि जापान में हर एकड़ पीछे ७५ गट्ठा चावल पैदा होता है भारत में सिर्फ़ २९ गट्ठा। फ़सल की पैदावार बढ़ाने के लिये जब कि हालैण्ड में ६०.४ पौण्ड नाइट्रोजेन खाद की तौर पर मिलाते हैं भारत में उसका औसत आधा पौण्ड भी नहीं पड़ता। किन्तु सरकार को तो बस एक रोना आता है और वह यह कि—आबादी बढ़ रही है

स्वर्गीय महादेव भाई

गत १५ अगस्त को स्वर्गीय महादेव देसाई की चौथी मृत्यु तिथि थी। चार वर्ष पूर्व आगा खाँ के महल में यकायक उनकी मृत्यु हो गई।

महादेव भाई एक होनहार वकील थे। असहयोग आन्दोलन में वे देश-सेवा का व्रत लेकर आगे बढ़े। गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के वे कई वर्ष मन्त्री और सभापति रहे। और उसके बाद उन्होंने अपने को पूरी तरह गान्धी जी की सेवा में डाल दिया। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य लिखते हैं—"महादेव ने गान्धी जी की सच्ची सेवा के ज़रिये हिन्दुस्तान की जनता की सेवा करके वह महत्व पा लिया कि आज उनकी जगह कोई नहीं ले सकता।"

पण्डित जवाहरलाल जी उनकी इस चौथी बरसी के समय लिखते हैं—"उनके बारे में कुछ लिखना मुश्किल है, जो मेरे प्यारे दोस्त और साथी थे और जिनके साथ मेरी ज़िन्दगी की कई नज़दीकी यादें जुड़ी हुई हैं। ज्यों ही मैं उनके बारे में सोचता हूं वे यादें ताज़ा हो जाती हैं और गुज़रा हुआ ज़माना उनके साथ बीते हुये दिनों की कई तसवीरें लेकर सामने आ खड़ा होता है।"

महादेव भाई गान्धी जी के माध्यम द्वारा देश की अनन्य सेवा करके असमय में ही चल दिये। काश उनकी बड़ी उमर होती तो दुनिया को गान्धी जी के जीवन का और उनके अहिंसात्मक फ़लसफ़े का वह साहित्य मिल जाता जो दूसरा कोई नहीं दे सकता। उनकी असामयिक मृत्यु से साहित्य की एक बहुत बड़ी क्षति हुई है।

किन्तु महादेव भाई सच्चे कर्मयोगी थे और कर्म में रत होते हुये ही उनका निधन हुआ। आज उनकी इस चौथी मृत्यु-तिथि पर उनके हम सब देशवासी आदरपूर्वक उनकी याद करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस

हिन्दी का श्रेष्ठ प्रगतिशील मासिक-पत्र,

प्रेमचन्द का स्मारक, और उनका सजीव परम्परा वाहक;

क्रान्तिकारी राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत कहानियां और कविताएं साहित्य और समाज-विषयक गम्भीर, चिन्तन-पूर्ण लेख, और आलोचनाएं,

हंस को हिन्दी के सभी महत्वपूर्ण लेखकों का सहयोग प्राप्त है, हंस के स्थायी लेखकों की तालिका स्वयं अपना परिचय दे रही है:—

हजारी प्रसाद द्विवेदी	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
नन्ददुलारे वाजपेयी	राम बिलास शर्मा
भगवत शरण उपाध्याय	प्रकाश चन्द्र गुप्त
सुभद्रा कुमारी चौहान	बृन्दावनलाल वर्मा
चन्द्रगुप्त विद्यालंङ्कार	उपेन्द्रनाथ अश्क़
गिरिजा कुमार माथुर	रांगेय राघव
राधाकृष्ण	बच्चन

नयी प्रगतिशील हिन्दी कविता की स्वस्थ कान्ति देखनी हो, आधुनिक साहित्य के महत्वपूर्ण नये और पुराने लेखकों की भाव धारा का पूर्ण परिचय पाना हो तो

हंस

आपका पत्र है

हंस के देखने से हिन्दी साहित्य के भविष्य में आपका विश्वास दृढ़ होगा ।

पता—

हंस, बनारस

वार्षिक मूल्य सिर्फ छै रुपया

सम्पादक

अमृतराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अद्वितीय, अनूठी और क्रान्तिकारी पुस्तक

टोकियो से इम्फाल

पृष्ठ संख्या २२८ : बिलकुल नये चित्र २१ : मूल्य २॥) : डाक से २॥।=),

लेखक—सरदार रामसिंह रावल; सम्पादक दैनिक 'आजाद हिन्द' बैंकाक (थाइलैण्ड)

हिन्दी में—प्रसिद्ध पत्रकार और जब्त 'जय हिन्द' के यशस्वी लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार

भूमिका—अगस्त ४२ की क्रान्ति की लक्ष्मी श्रीमती अरुणा आसफअली

महान क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द की भावना से आयोजित प्रचण्ड क्रान्ति का पूर्ण प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास।

पुस्तक में क्या है ?

* बैंकौक से इम्फाल तक की ३००० मील पैदल यात्रा का रोमांचकारी विवरण।
* श्री रासबिहारी बोस और राजा महेन्द्रप्रताप आदि की प्रवृत्तियों का पूरा परिचय।
* इम्फाल और अराकान के मोर्चों के खूनी जंग का आँखों देखा पूरा हाल।
* बाल सेना और नेताजी के नये व दुर्लभ चित्र और एक नक़शा।

पुस्तक की भाषा और शैली कहानी की तरह रोचक,
उपन्यास की तरह मोहक और नाटक की तरह आकर्षक है।

हिन्दी तो क्या, किसी भी भाषा में ऐसी पूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई।

आज ही अपनी पुस्तक का आर्डर भेजिये।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नया हिन्द'

हिन्दुस्तानी बोली और हिन्दी उर्दू लिखावट में
हिन्दुस्तान की मिली जुली कल्चर का बेजोड़ मासिक पत्र

सम्पादक मण्डल

पण्डित सुन्दरलाल
डाक्टर ताराचन्द
श्री मन्ज़र अली सोख़ता
सय्यद मुज़फ़्फ़र हसन
महात्मा भगवानदीन
पण्डित विश्वम्भरनाथ

सालाना क़ीमत छै रुपया — एक कापी दस आना

आज ही ग्राहक बनें या नमूने की कापी मंगायें

"नया हिन्द" आफ़िस, बाई का बाग़, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का
प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इस्लाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदवाणी

भाग १२] [संख्या ३, पूर्ण संख्या ६६

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

सितम्बर १९४६ [एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

सितम्बर : १९४६

१—मस्तिष्क के नये सीमान्त—प्रोफ़ेसर जे० डी० बार्नल एफ० आर० एस० ... १३७

२—अरब देशों की एकता की समस्या—डाक्टर लतीफ़ दफ़री एम०ए०, डी० फ़िल० १४१

३—नासदीय (कविता)—श्री आरसीप्रसाद सिंह १४६

४—जापान की आर्थिक व्यवस्था और उसका आधार—डाक्टर सत्यरञ्जन सेन एम० ए०, डी० लिट. १४७

५—चीन की न्याय प्रणाली—प्रोफ़ेसर कृष्ण किङ्कर सिंह १५१

६—संस्कृत साहित्य में वक्रोक्तिवाद—साहित्याचार्य श्री जनार्दन मिश्र शास्त्री, बी० ए०, साहित्यरत्न १५६

७—राजपूताने में चित्रकला की विपुल सामग्री—श्री अगरचन्द नाहटा ... १६१

८—तुम मुझको पहचान सके क्या ? (कविता)—श्री उपेन्द्र १६५

९—प्राचीन मैक्सकोवासियों के धार्मिक विश्वास—स्वर्गीय पण्डित पुरुषोत्तमलाल १६७

१०—पूँजीवाद और मुसलिम विरासत के क़ानून—श्री ओंकारप्रसाद श्रीवास्तव बी० ए०, एल-एल० बी० ...

११—सीताहरण और सोने की लङ्का—श्री शम्भु प्रसाद बहुगुणा एम० ए०, डिप० टाइ० ...

१२—निरा कम्यूनल (कहानी)—श्री विष्णु ...

१३—स्थानाङ्ग सूत्र और अङ्गुत्तर निकाय—उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम ...

१४—जैन कवि बनारसीदास और हिन्दू मुसलिम प्रश्न—श्री जमनालाल जैन विशारद ...

१५—सोलह महाजनपद—श्री गोविन्दसिंह कण्डारी

१६—मानवता का उपेक्षित भूभाग—श्री अखिल विनय ... ...

१७—क्रान्ति का अहिंसात्मक तरीक़ा—श्री धीरेन्द्र मजूमदार ...

१८—रूपान्तर (कविता)—विश्वम्भरनाथ ...

१९—पौराणिक अछूत—श्री मुकुन्दीलाल बी० ए० (आक्सन), बार-एट-ला ...

२०—नई किताबें (आलोचना) ...

२१—हमारी राय ...

विश्ववाणी के ग्राहकों और पाठकों को सूचना

(१) विश्ववाणी प्रेस से हिन्दुस्तानी मासिक "नया हिन्द" के प्रकाशन के कारण अब "विश्ववाणी" बजाय पहली तारीख़ के हर महीने १५ तारीख़ को प्रकाशित हुआ करेगी ।

(२) काग़ज़के अभाव में हमें दुःख है कि हम "अन्तराष्ट्रीय अङ्क" प्रकाशित नहीं कर सके। उस अङ्क के समस्त लेख हम गत जुलाई से 'विश्ववाणी' के साधारण अङ्कों में थोड़े थोड़े करके प्रका कर रहे हैं। सितम्बर की विश्ववाणी में भी उस अङ्क के कई लेख जा रहे हैं। अच्छा होता यह सामग्री एक साथ प्रकाशित होती किन्तु मजबूरी के सबब ऐसा करना पड़ रहा है।

(३) डाकख़ानों की हड़ताल और इलाहाबाद के निरन्तर दङ्गों और कर्फ़्यूआर्डर के विश्ववाणी के लेट होने से ग्राहकों को काफ़ी असुविधा उठानी पड़ी जिसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

विनीत
नित्यानन्द बैनर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान

वर्ष ६, भाग १२] सितम्बर : १९४६ [अङ्क ३, पूरे अङ्क ६९

मस्तिष्क के नये सीमान्त

प्रो० जे० डी० बार्नल एफ़० आर० एस०

पचास साल पहिले जिस ज्ञान की उत्पत्ति से विज्ञान जगत में जबर्दस्त हलचल मच गई थी वास्तविक क्षेत्र में उसी ज्ञान के प्रथम व्यापक प्रयोग से आणविक बम बनाया गया है। इस नए आविष्कार से भी उसी प्रकार का कोलाहल मच गया है। १८९५ ई० में राएटजेन ने एक्सरे (X-Ray) का आविष्कार किया और बाद में बेकरेल ने रेडिओ-ऐक्टिविटी (Radio-Activity) ईजाद की। ये दोनों ही आविष्कार अप्रत्याशित थे। भौतिक जगत में पूर्व निर्दिष्ट किसी स्वरूप के चित्र से ही उन्नीसवीं सदी सन्तुष्ट थी; इन दोनों आविष्कारों के फल स्वरूप वह भावना चकनाचूर हो गई और वैज्ञानिक मतवाद के क्षेत्र में एक विशाल विप्लव शुरू हो गया। इसके बाद आया रदरफोर्ड का मतवाद— अणु के अन्दर भारी केन्द्र बिन्दु (nuclues) और उसके साथ ही इलेक्ट्रान दिखाई पड़ा। इससे भौतिक जगत को एक ऐसा नया चित्र दीखा जो पहिले की धारणाओं से बिलकुल अलग था; प्लैंक और बोहर के क्वाण्टम मतवाद से देखा गया कि उस भौतिक पदार्थ का हस्तेमाल साधारण अभिज्ञता से और ज्यादा अलग और भिन्न है।

इन मतवादों के बाद निउट्रन, पजिट्रन, मेसन आदि एक के बाद दूसरे आविष्कार होने लगे, अन्त में युद्ध के पहिले यूरेनियम आइसोट्रोप का तोड़ना भी सम्भव हुआ। यही आणविक बम का आधार है। यही बम पचास साल की गम्भीर मौलिक वैज्ञानिक गवेषणा का प्रथम व्यापक और वास्तविक परिणाम है।

इस आणविक शक्ति के इस्तेमाल के फलस्वरूप मानव-समाज कहां पहुंचेगा यह अभी तक साफ़ मालूम नहीं हो रहा है। जो इस विषय में सब से ज्यादा जानते हैं वे लड़ाई की पोशीदगी के वजह से कोई ब्योरा नहीं दे सकते हैं। मैं इस काम में कभी भी संश्लिष्ट नहीं था, इसीलिए इसके विषय में लिख सकता हूं। अणु के केन्द्र बिन्दुओं की गति और प्रगति के प्रयोग की तात्कालिक सम्भावना के बारे में ठीक ठीक हिसाब लगाना ही सब से बड़ी चीज नहीं है। इसके प्रयोग से समाज में कैसी प्रतिक्रिया अनिवार्य रूप से दिखाई पड़ेगी यही सोचने की बात है। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आज हम ऐसी शक्ति का समावेश करने में सफल हुए हैं जो कि पहिले की शक्ति से दस लाख गुना अधिक है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इस ग्रह की संचय योग्य शक्ति का परिणाम हम लोगों ने कुछ भी बढ़ा दिया है। मूल पदार्थ की दुष्प्राप्यता, आइसोट्रोपों को बाहर निकालने में नाना प्रकार की सच्ची असुविधाएं और उसे तोड़ने की प्रक्रिया में निपुणता के अवश्यम्भावी अभाव वग़ैरह के कारण इस शक्ति के प्रति यूनिट उत्पादन का खर्च कई सालों तक तेल और कोयले से ज्यादा बैठेगा। किन्तु आणविक बम बनाने के काम में जितनी वैज्ञानिक गवेषणा और सच्ची निपुणता लगाई गई है उसे अगर जारी रखा गया तो कुछ ही वर्षों के अन्दर ये सारी असुविधाएं दूर हो जायंगी, ऐसा सोचना ग़लत नहीं होगा।

लेकिन उस दिन के आने के पहिले ही आणविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम सी शक्ति के संचित उद्गम को तरह तरह के कामों में लाया जा सकता है। तेल और कोयले से ज्यादा खर्च होने पर भी इसका प्रयोग कहीं कहीं पर किया जा सकता है। दुनिया की जिन जगहों में कोयला या तेल ले जाने का खर्च बहुत ज्यादा है वहां यह शक्ति स्वभावतः आर्थिक दृष्टि से उपयोगी समझी जायगी। इन्हीं स्थानों में आणविक शक्ति पहिले पहल सस्ती होगी; लेकिन यह सोचना ग़लत होगा कि सभी क्षेत्रों में आणविक शक्ति बड़ी आसानी से यांत्रिक शक्ति में रूपान्तरित हो जायगी। विस्तृत अर्थनीतिक क्षेत्र में यह सम्भव होने के बहुत पहिले अत्यधिक गर्मी और दबाव पैदा करने के काम में आणविक शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। नई धातु विद्या, पात्रादि के निर्माण कार्य और व्यापक इञ्जिनियरिङ्ग के कामों में भीषण शक्तिशाली विस्फोटक के तौर से इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। आशातीत और कल्पनातीत परिमाण में नाना प्रकार के रेडिओ-ऐक्टिव पदार्थ अब मिल रहे हैं, इनकी सहायता से रसायन, जीव विद्या और चिकित्सा विद्या की इतनी शीघ्रता से उन्नति हो सकती है कि यह पहिले के सभी वैज्ञानिकों की कीर्त्ति को बहुत पीछे छोड़ देगी। इसके अलावा, आज अथवा कल ऐसा समय आवेगा जब आणविक शक्ति को सावधानी से खर्च करने से परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से मानव की कितनी ही जरूरी मांगें पूरी हो सकती है। इस शक्ति का स्थूलतम तौर से इस्तेमाल हो सकता है, वह चाहे पम्प से पानी ऊपर लाने का काम हो या खाद तैयार करने का, इससे खेती बारी की व्यापकता और गहराई दोनों बढ़ेगी, साथ ही साथ आवागमन के साधनों की सुविधा भी कई गुना बढ़ जायगी। इससे खेतों की पैदावार बहुत जल्दी लोगों के पास पहुंच जायगी। इसका मतलब यह है कि खाने की चीजों की प्राप्ति की जो असुविधा आज दुनिया में बुरी तरह दिखाई पड़ रही है वह दूर हो जायगी।

किसी नए खजाने के मिल जाने का यह मतलब नहीं कि इस्तेमाल बड़ी तेजी से होने लगेगा। कोलम्बस ने नई दुनिया ढूँढ़ निकाली, लेकिन इसके साथ ही साथ मध्ययुग के यूरोप के रहन-सहन में परिवर्तन नहीं हुए, बल्कि एक नई दुनिया दिखाई पड़ी थी। और उसके साथ निरन्तर विस्तारशील उस नई दुनिया ने विशाल रूप से मनुष्य की संख्या और रहन-सहन के दर्जे को बढ़ा दिया था। आणविक बम के आविष्कार से [illegible] एक नया संकेत मिला, एक नया सीमान्त दिखाई पड़ा है। पहाड़ों और जंगलों के भौगोलिक सीमान्त से यह सीमान्त और भी उन्नत है, क्योंकि दुनिया की किसी भी सीमान्त रेखा से यह घिरा हुआ नहीं है। यह सीमान्त मनुष्य की बुद्धि और सहकारिता की शक्ति पर ही निर्भर करता है। नई दुनिया का जब आविष्कार होता है तब आदमियों में जो दुःसाहसी हैं वे जिस तरह पुरानी दुनिया की रोक-टोक को मानकर चुप नहीं बैठे उसी तरह वे अब से पुरानी उत्पादन पद्धति की संकीर्णता के अन्दर स्वभावतः बौखला उठेंगे और विज्ञान ने उनके हाथों में जो शक्ति प्रदान की है उसके शीघ्रतम और सर्वोत्तम विकास की मांग करेंगे।

आणविक बम ने जो भय और आतंक पैदा किया है वह निराधार नहीं है, लेकिन छुटकारे का रास्ता यही है। इस शक्ति को छिपा रखने या संकीर्ण सीमा में आबद्ध रखकर नियंत्रण करने की कोशिशें बेकार होंगी। डर और सन्देह से छुटकारा पाने का सही रास्ता नियन्त्रण नहीं है, बल्कि इसे तेज़ी से बढ़ाना ही सही रास्ता है। कहा जाता है कि हमारे इस युग और खास कर संयुक्तराष्ट्र अमरीका जैसे उद्योग-धंधे वाले मुल्क की अधिकांश समस्याओं का कारण यह है कि फैलाव का युग ख़त्म हो गया है और अंतिम सीमान्त हमारे सामने बन्द हो गया है। फैलाव की अनियंत्रित सम्भावना के सामने पारस्परिक सन्देह और ज़िन्दा रहने के लिए ज़मीन के लिए लड़ाइयां नहीं होंगी। उत्तेजना, अनिश्चितता, आशा और भविष्य के सपने को लेकर अब विश्वव्यापी नई सृष्टि की प्रचेष्टा में लग जायगा।

नए जगत के आविष्कार की उपमा को अधिक दूर तक खींच ले जाना ठीक नहीं होगा। अमरीका में ज़मीन, जंगल, खान वग़ैरह जो चीज़ें हमें मिली थीं वे हमारा पहिले से ही परिचय था। अमरीका ने हमें जो चीज़ें स्वप्नातीत परिमाण में प्रदान की। हमारी सम्पदा भौतिक जगत की सामग्री नहीं है। यह विज्ञान के कण-कण बढ़ते हुए सुसम्बद्ध परम्परा की देन है। अतएव सुचारु और सुनियंत्रित प्रगति की सहायता से ही इसका सुफल भोगना सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस अपूर्व वैज्ञानिक संगठन और उद्योगधंधों को जिस से आणविक बम बनाना सम्भव हुआ है आणविक बम से यह संगठन और उत्पादन कुछ कम अचरज की चीज़ नहीं है।

तीन साल पहिले जो गवेषणागार की चीज़ थी, एक प्रकार से घर में बनाए औज़ारों की सहायता से और खुर्दबीन के नीचे दिखाई पड़नेवाली चीज़ से भी कम परिमाण में लेकर जिसकी गवेषणा शुरू हुई थी, तीन साल के अन्दर उसी गवेषणा ने व्यावहारिक क्षेत्र में ऐसी शक्ति पैदा की जो पहिले की किसी भी शक्ति से लाखों गुना अधिक है। भौतिक दुनिया के किसी भी आविष्कार से इसका गुरुत्व और तात्पर्य अधिक है। किसी भी काम करने की पद्धतियों के भविष्य की सम्भावनाएं अनन्त हैं। सामाजिक आविष्कार का कारण यह है कि चिन्ता जगत के किसी भी विशिष्ट क्षेत्र में यह आबद्ध नहीं है। हमने अपने शत्रु पर जो हमला किया है वह हमारे ऊपर भी न हो इसी उत्कंठा के कारण वैज्ञानिक बहुत दिनों से जिस बात पर विश्वास करते आ रहे थे वह सच निकली।

आधुनिक विज्ञान की संभावनाएं सच निकल रही हैं। इसका कारण समझना बहुत सहज है, विज्ञान के लिए आज काफी शक्ति लगाई जा रही है।

विज्ञान एकाधिक उपायों से आधुनिक रहन-सहन को जिस तरह से प्रभावित कर रहा है उससे जनता अभ्यस्त हो गई है। इससे देखने में आता है कि संकीर्ण सीमा के अन्दर जो विशृंखल वैज्ञानिक गवेषणाएं और प्रयोग हो रहे हैं उससे अधिकांश लोग संतुष्ट हैं। इन अधिकांश लोगों में बहुत से वैज्ञानिक भी हैं। यह पद्धति या पद्धतिहीनता अब नहीं चल सकती। आणविक बम बनाने में २० करोड़ डालर (१ डालर = ३।- —सम्पादक) खर्च हुए हैं। गवेषणा भी वैज्ञानिक, औद्योगिक और सामरिक संगठनों के पूरे सम्मिलन से की गई। इससे मालूम हो जाता है कि इस तरह का काम अगर विशाल पैमाने पर व्यापक तौर से किया जाता है तो कितनी सफलता मिल सकती है।

आणविक बम की तरह हलचल मचा देने वाली न होने पर भी इतनी ही गुरुत्वपूर्ण और भी सैकड़ों वैज्ञानिक योजनाएं हैं, जिन्हें सिद्धान्त की दृष्टि से कार्य रूप में परिणत करना सम्भव है। इस युद्ध में एक का परिचय हमें मिला है, वह है पेनिसिलिन। आणविक बम से जितने आदमी मरे हैं या मर सकते हैं उससे कई गुणा अधिक आदमियों को पेनिसिलिन ने बचाया है। यहां दिखाई पड़ता है कि पचास साल की स्वाभाविक प्रगति को यथायोग्य कर्म प्रचेष्टा के द्वारा दो वर्षों में ही सम्भव किया जा सका है। इसी तरह की एक और योजना है— प्रोटीन की बनावट के बारे में। खेती बारी, खाद्य और बीमारी से इसका सम्बन्ध है। इसके अलावा नए और ज़रूरी जीव को बनाने के लिए प्रजनन विज्ञान के नियंत्रण की समस्या भी है। देह और मन के सम्बन्ध को लेकर शरीर तत्व और मनस्तत्व-सम्बन्धी विशाल समस्या भी है।

यूरेनियम के पहिलेवाले युग की वैज्ञानिक प्रगति के बारे में आदमी जितना जानता था उतने से ही जब तक सन्तुष्ट था, तब तक कुछ चिन्ताशील वैज्ञानिकों को छोड़ कर आज तक विज्ञान के उपयुक्त वास्तविक प्रयोग की सम्भावना की बात किसी ने नहीं सोची। तब उनकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लेकिन आज जब सभी देख रहे हैं कि प्रगति की गति कितनी द्रुत हो सकती है तब वैज्ञानिक किताबों में लिखी सम्भावनाओं को अपनी आनेवाली पीढ़ियों के भोगने के लिए छोड़ जाने के लिए तैयार नहीं हैं। अपने जीवन काल में ही इस सम्भावना को वह सम्भव देखना चाहते हैं। जिस नए आणविक युग का आज श्रीगणेश हुआ उस युग में विज्ञान की चर्चा और विज्ञान के प्रयोग मनुष्य के असाधारण काम की जगह प्रधान काम होंगे। लड़ाई के पहिले उद्योग प्रधान आधुनिक राष्ट्र की आमदनी का $\frac{१}{१०००}$ से $\frac{१}{३००}$ तक विज्ञान की गवेषणा के लिए ख़र्च किया जाता था। लड़ाई में यह बढ़कर $\frac{१}{१००}$ से अधिक हो गया है। लेकिन विज्ञान की जो नई सम्भावनाएं दिखाई पड़ी हैं उससे पूरी तरह देखकर कोई भी इतने कम ख़र्च से खुश नहीं हो सकता। सालाना बढ़ती हुई यह अदद किस जगह आकर स्थिर हो जायगी, इसे निर्द्धारित करना हमारे लिए सम्भव नहीं। लेकिन हमारे जीवन काल में ही यह $\frac{१}{५}$ तक पहुँच सकती है। इसका अर्थ शिक्षा व्यवस्था का नए सिरे से निर्माण करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन सिर्फ वैज्ञानिक कामों के बढ़ाने से ही काम नहीं चलेगा, वास्तविक अच्छे काम से उसे संयुक्त करना होगा। क्या करना चाहिए यानी विज्ञान का बाहरी काम समाज की हालत पर निर्भर करता है। कभी कभी लड़ाई जैसी अस्वाभाविक स्थिति में विज्ञान द्वारा ध्वंस करने वाले सबसे भीषण आविष्कार करने पड़ते हैं, लेकिन आमतौर से विज्ञान का उद्देश्य है हरएक आदमी को उसकी अन्तर्निहित शक्ति और सम्भावना के बारे में सचेत करना। यह शक्ति और सम्भावना कला में हो, विज्ञान में हो या चाहे स्वाभाविक मानवीय सम्पर्क में हो। दुनिया की मौजूदा जनता की भोजन, ठौर और काम की ज़रूरत को पूरा करना होगा और भविष्य में उसे बढ़ाने का इन्तज़ाम करना होगा। इसे संगठित करना होगा। सारे संसार के आधार पर संकुचित और अलग अलग दायरों में विज्ञान का काम नहीं चल सकता। दुनिया के सारे वैज्ञानिकों के सम्मेलन और मतों के लेन-देन से काफी मात्रा में पारस्परिक अनुप्रेरणा पैदा सकती है। विज्ञान की प्रगति एकमात्र इसी तरह से सम्भव है।

आणविक शक्ति के जिस सम्भव प्रयोग का चित्र हम अंकित कर रहे हैं वह वास्तविक चित्र का एक मामूली अंश है। पद्धति और नीति को छिपाना और खास खास देशों में उसे सीमित रखना दो दृष्टियों से ख़तरनाक साबित होगा। एक तो आणविक विज्ञान की रफ़्तार धीमी हो जायगी; दूसरे एक दूसरे को संदेह की नज़र से देखने की वजह से आणविक शक्ति का प्रयोग बन्द हो जायगा। दूसरा परिणाम बहुत ही भीषण होगा। स्वतंत्र समालोचना के विस्तीर्णतम क्षेत्र में ही विज्ञान का विकास सम्भव है। प्रकाशन और नियंत्रण का एक दूसरे से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। अगर प्रकाशन बन्द करके नियंत्रण जारी रहता है तो हमारा पारस्परिक संदेह कभी दूर नहीं होगा, इसका नतीजा यह होगा कि वैज्ञानिक उद्यम को धक्का पहुंचेगा। इस नीति के कारण शक्ति के जीते जागते उद्गम रुद्ध हो जायंगे और उत्पादन जितनी तेजी से होगा वह उतनी तेजी से लोगों के काम में न आकर लड़ाई के लिए इकट्ठा किया जायगा। दुनिया के अग्रणी वैज्ञानिकों ने इस बात को समझ लिया है। सर जेम्स शैडविक ने कहा है :

"आणविक बम के मौलिक सिद्धान्त इतने अधिक जाने हुए हैं कि ब्रिटेन और अमरीका की छिपी हुई बातों को न जानते हुये भी हरेक देश उन्हें थोड़े अरसे के अन्दर खोज निकालेगा। हमारा देश इस छिपे तथ्य को जानता है इसीलिए इसे निरापद समझना ठीक नहीं है। इसके इस्तेमाल के नियंत्रण की कुछ चेष्टा ज़रूरी है।"

इसकी ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है। बहुतों को मिलकर इसे संभालना होगा। प्रतिक्रियाशील शक्ति के चंगुल से सभी देशों को मुक्त करके जनतांत्रिक देशों ने अपना पहला कर्त्तव्य पूरा किया है। जिस अस्त्र से यह सम्भव हुआ उसीके आतंक से ये देश कहीं ढंक न जाय यह हमें अब सोचना होगा। सारी बुद्धि, सारी राजनीतिक प्रज्ञा का प्रयोग करके अब उन्हें अपने ऊपर विजय पाना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरब-देशों की एकता की समस्या

डा० लतीफ़ दफ्तरी एम० ए०, डी० फ़िल०

बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है, 'क्या अरब वास्तव में एकता चाहते हैं?' किन्तु इसके पीछे उन शक्तियों का हाथ छिपा हुआ है जो आज अरब-देशों पर तेल और अन्य खनिज पदार्थों के लोभ से दाँत गड़ाये बैठी हैं। वास्तव में प्रश्न यह है कि क्या अन्य देश उन्हें एक होने देंगे? सन् १९४४ के अक्तूबर में सिकन्दरिया के अरब सम्मेलन ने यह साबित कर दिया कि अरबों में सहयोग की भावना उससे कहीं अधिक थी, जितनी कि उनके मित्र आशा करते थे। अरब नेताओं ने उसके बाद अधिक समय नहीं खोया और १९४५ के फ़रवरी तथा मार्च में क़ाहिरा में दूसरी कान्फरेन्स करके एक ऐसे संगठन का 'इक़रारनामा' तैयार किया, जिसमें सारे अरब देश एकता के सूत्र में बंध सकें।

अरबों की इस एकता की भावना के पीछे एक लम्बा इतिहास है। किन्तु उसको देखने से पहले यह देख लिया जाय कि जिन सात देशों ने इस इक़रारनामे पर हस्ताक्षर किये हैं, उनकी क्या अवस्था है और विदेशी शक्तियों का उनके प्रति क्या रवैया है। वे सात देश हैं—मिस्र, ट्रांसजोरडानियाँ, लेबनान, सीरिया, इराक़, उत्तरी अरब तथा यमन। इस इक़रारनामे के मुताबिक़ इन सातों राष्ट्रों ने अपने राजनीतिक कार्यों में सहयोग, इसके लिये आपस में सम्मिलित योजना और झगड़ों के लिये परस्पर समझौते कर लेने की इच्छा प्रकट की है। इसके अतिरिक्त जो कौन्सिल बनी है, उसे अन्त-र्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बन्ध बनाये रखने के अतिरिक्त, आपस में आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक सहयोग बनाये रखने का कार्य सौंपा गया है। इसके लिये संयुक्त सैनिक कमीशन बैठाने का विधान है। किसी भी राष्ट्र के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप की मनाही है।

इस प्रकार जो अरब देशों ने अपनी एकता के हेतु संगठन बनाया है, उसके पीछे युगों के राष्ट्रीय अरब आन्दोलन की सामूहिक चेतना है। यह स्वतन्त्र राष्ट्रों का आन्दोलन है, जिसके अपने सिद्धान्त हैं, अपनी भावनाएं हैं, अपनी भावनाएं हैं और अपने आदर्श हैं। इसकी अपनी कार्य प्रणाली भी है। यह पश्चिमीय देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों की नकल मात्र नहीं है; और न यह साम्राज्यवादी शक्तियों अथवा फासिस्ट प्रोपेगैन्डा द्वारा अथवा केवल अन्ध-घृणा द्वारा उत्तेजित प्रतिक्रिया का प्रदर्शन ही है (यद्यपि इसे ऐसा रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है)। वरन यह स्वतन्त्र अरब राष्ट्रों का अपनी स्वतन्त्रता और एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये अप्रत्याशित प्रयत्न है।

अप्रत्याशित इसलिये है कि एकता के साधनों से सम्पन्न होते हुए भी अरब जाति, आज हज़ार वर्षों से अधिक हुआ, कभी राजनैतिक रूप से संगठित नहीं हुई। इतिहास बतलाता है कि किसी भी जाति के संगठन के लिये तीन मुख्य बातों की आवश्यकता हुआ करती है। प्रथम तो नैसर्गिक सीमाएं और बन्धन आवश्यक हैं, जिनसे जातियों के दैनिक दुख-सुख का समान समीकरण होता है। दूसरे उनकी भाषा तथा धर्म भी एक होने चाहियें। अरब जाति के लिये प्रकृति ने सभी स्थानों पर लगभग एक ही से वातावरण की सृष्टि की है। अरब के रेगिस्तान और अफ्रीका के रेगिस्तानों में विशेष अन्तर नहीं, टाइग्रिस के किनारे बसे हुए बग़दाद और नील के ऊपर स्थित क़ाहिरा में भी विशेष अन्तर नहीं, बसरा के ऊँटों के काफ़िले, येरुशलेम के बाज़ार और नील की घाटी के खजूर—सभी एक ही वातावरण की उपज हैं। अरबी जैसी सम्पन्न भाषा भी सब जगह समान भाव से समादृत होती है, इसलिये नहीं कि सब लोग उससे परिचित हैं, परन्तु इसलिये कि उनकी धर्म पुस्तक कुरान उसमें लिखी गई है। और सबसे बढकर जो चीज़ उन्हें एकता के सूत्र में बाँधे हुए है वह है इस्लाम और उसकी संस्कृति। यद्यपि सारे अरब इस्लाम धर्म को नहीं मानते, किन्तु कुरान को पवित्र तो सभी मानते हैं। ईसाई अरब भी उसके प्रति श्रद्धा रखते हैं और वे भी पुराने अरब साम्राज्य की सांस्कृतिक देन के ऋणी हैं। पूर्व और मध्य-पूर्व के देशों में धर्म का यह बन्धन सब वस्तुओं से अधिक कारगर होता है। किन्तु फिर भी इन सब संगठन के साधनों से सम्पन्न होते हुए भी अरब लोग राजनैतिक रूप से आज तक संगठित क्यों नहीं हो सके? इसका उत्तर खोजने के लिये दूर नहीं जाना होगा। ऐसे पारस्परिक बन्धन स्वयं तो एकता उत्पन्न नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकते। कोई ऐसा लक्ष्य, ऐसा उद्देश्य भी तो होना चाहिये, जिस पर वे अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। किन्तु योरप की जातियों से भिन्न अरबों ने कभी राजनीति को महत्व नहीं दिया। वे अपनी मध्ययुगीन संस्कृति और धर्म की रक्षा में ही कर्त्तव्य की इति-श्री समझते रहे। जब तक समाज में धार्मिक विश्वासों का पालन होता रहे, उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि राज्य किसका है। वास्तव में बाद के ख़लीफ़ाओं का काम ही केवल धर्म और संस्कृति की रक्षा मात्र रह गया था। किन्तु उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में यूरोपीय शक्तियों तथा पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण से नई समस्याएं उत्पन्न हुईं, तो इस्लाम के पास उनका कोई समाधान नहीं था। यही उसका दिवालियापन साबित हुआ और धर्म तथा समय के बीच की खाई गहरी होती गई। उसको भरने का प्रयत्न—पान-इस्लामिक आन्दोलन द्वारा कुछ अंशों में किया गया। वह इस विषय में प्रथम प्रयास था जिसका मूल सिद्धान्त था, टर्की के सुलतान के प्रति वफ़ादारी की भावना, जो कि उस समय इस्लाम के ख़लीफ़ा माने जाते थे। किन्तु जब यह प्रयत्न असफल रहा तो अरबों के सामने पहले पहल अपने राजनैतिक पद और व्यवस्था की समस्या खड़ी हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोपियन नियन्त्रण के बढ़ते हुए प्रभाव की उत्तेजना, टर्की के केन्द्रीकरण की प्रतिक्रिया तथा पूर्व में फैलते हुए नवीन राष्ट्रीय विचार ये सब मिलकर अरब जाति में जागृति पैदा करने में समर्थ हुए। किन्तु सब देशों में समान भाव से एक ही समय में यह जागृति उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु बहुत सी छोटी मोटी प्रतिक्रियाओं, असन्तोषों और आन्दोलनों ने इसे जन्म दिया। अतएव इसके पिछले इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा।

१९१५ में सीरिया के राष्ट्रीय नेताओं ने अरब विद्रोह के नेताओं को जो योजना दी थी, उसके अनुसार एक केन्द्रीय सरकार की आधीनता में सारे अरब देशों की स्वाधीनता ही मुख्य थी। उस समय उनके सारे पारस्परिक झगड़े हवा हो गये थे, किन्तु ज्यों ही नवीन राज्य और संरक्षित राज्यों का अस्तित्व कायम हुआ, इन झगड़ों ने फिर नवीन रूप धारण कर लिया। अब अरब नेताओं के सामने दुगुना काम था। संगठन को मज़बूत करना और साथ ही उसे सामाजिक क्रान्ति के लिये उपयोगी बनाना। पुराने मुस्लिम समाज का ढांचा बहुत हो चुका था। १९वीं सदी में मिस्र और तुर्की में यह बिलकुल छिन्न-भिन्न हो चुका था। इस प्रकार अरब देशों में एक प्रकार की सामाजिक अराजकता का जन्म हुआ, जो कि पश्चिमी सिद्धान्तों तथा तौर-तरीक़ों की हवा से और भी बढ़ गई। जिन लोगों पर इन समस्याओं के सुलझाने का भार था, वे स्वयं पश्चिमी शिक्षा से अभिभूत थे और पाश्चात्य उदार प्रजातन्त्र को ही राष्ट्र की मुक्ति और एकता के लिये रामबाण समझते थे। उनके हाथ में राजनैतिक शक्ति जाते ही, उन्होंने उन्हीं सिद्धान्तों पर अपनी शासन-नीति को आश्रित किया। फल-स्वरूप भिन्न भिन्न राष्ट्रीय दलों की उत्पत्ति हुई। मिस्र में तो ब्रिटेन के अधिकार के बाद १८८२ में ही शिक्षित मिस्रियों का ध्यान मिस्र की ओर केन्द्रित हो गया था, जिससे एक नई-राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। वही बात इराक में भी हुई और हाल ही में सीरिया और लेबनान में भी उसकी पुनरावृत्ति हम देख चुके हैं।

इससे भी अधिक भयानक सामाजिक समस्याएं थीं। दुनियाँ स्थिर तो थी नहीं, पहले महायुद्ध और इस महायुद्ध के बीच असमय में अरब देशों की जन-संख्या बेतहाशा बढ़ गई थी। यद्यपि उनके धनोत्पादन का परिमाण भी तेज़ी से बढ़ा पर समाज में विषमता भी बढ़ती गई। इन नई समस्याओं का सरकार के पास कोई हल नहीं था। राजनैतिए दल वादे करने में तेज़ थे, पर पूरा करने में पीछे रहते थे। ऐसी दशा में अरबों के लिये यह स्वाभाविक था कि वे प्रजातंत्रीय शक्तियों की मदद लेते। वास्तव में दो वही शक्तियाँ—ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस इस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये कानूनी और नैतिक रूप से बाध्य थीं, पर ब्रिटेन के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमियों के कारण वह सहयोग न प्राप्त हो सका। ये शक्तियाँ अरब-आन्दोलन की वास्तविक महत्ता को समझने में असमर्थ रहीं। उनकी संकुचित दृष्टि तथा संकीर्ण नीति ने अरबों के साथ उनके सम्बन्धों को और भी कटु बना दिया। इन पाश्चात्य शक्तियों का अस्तित्व भी उन्हें खलने लगा और वे समझने लगे कि हमारे स्वार्थ इनके हाथों [illegible] जा रहे हैं तथा हमारे नेता केवल साम्राज्यवादियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों की कठपुतली बन रहे हैं।

इन असफलताओं से 'प्रजातंत्र' की खोखली ढपली के स्वरों में असन्तोष बढ़ता गया और इस सामूहिक राजनैतिक चेतना ने सामाजिक समस्याओं के घनीभूत असन्तोष के फल-स्वरूप वामपक्ष राष्ट्रीय आन्दोलन का आश्रय लिया। उग्रवादी लोग वास्तव में पान-इस्लामिक आन्दोलन के वारिस थे, जिसकी जगह अब पान-अरब आन्दोलन ने ले ली थी। राष्ट्रीयता के पाश्चात्य विचार भी अब उसमें घुस गये थे। चूंकि १९१६-१९१८ की अरब क्रान्ति की आशाएँ निराशा में परिणत हो गई थीं, इसलिये सामूहिक चेतना को इस राष्ट्रीयता में नया बल मिला। द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के कुछ वर्ष पहले ही राष्ट्रीयता का यह आन्दोलन उग्ररूप धारण कर चुका था।

इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के छिड़ने के साथ ही जैसे जैसे अरब देश फ़ौजी क्षेत्रों के समीप आते गये, राजनैतिक असन्तोष उग्र रूप धारण करता गया। मिस्र में ब्रिटेन के विरुद्ध प्रच्छन्न विद्रोह के चिह्न वर्त्तमान थे। इराक़ में यह अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था। यों तो १९३६ से ही वहां के कुछ सैनिक अफ़सर सुयोग द्वारा पान-अरब संगठन का स्वप्न देख रहे थे, किन्तु युद्ध छिड़ने के बाद तो दो वर्ष के प्रचार के बाद जिसमें येरुशलेम के मुफ़्ती का हाथ भी था तथा जिसकी दमन की आशा थी, उन्होंने उपयुक्त अवसर देख कर १९४१ में विद्रोह छेड़ दिया। किन्तु अन्य अरब देश चुपचाप रहे और नेताओं के पकड़े जाने या भाग जाने के बाद विद्रोह दबा दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंसा पर विश्वास रखने वालों को असफलता का यह बुरा धक्का लगा और वैधानिक उपायों वाले नेताओं को उभरने का अवसर मिला।

किन्तु इस समय मिस्र और इराक़ में इन वैधानिक नेताओं के सामने तथा १९४३ के बाद सीरिया और लेबनान में राष्ट्रीय नेताओं के सामने जो समस्याएँ थीं, वे बहुत भिन्न थीं। राजनीतिक हलचल, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं की आड़ में दब गई थी। युद्ध-जनित अभाव और मंहगाई ने विकट रूप धारण कर लिया था। भाव बहुत चढ़ गये थे, युद्ध के ठेकों और चढ़े भावों के फलस्वरूप, ज़मींदारों तथा व्यापारियों की जेबें भर गई थीं पर जनता की दशा बहुत बुरी हो गई थी। मित्र राष्ट्रों ने मध्यपूर्व के युद्ध पर जो ३½ बिलियन डालर की रकम ख़र्च की थी उसका बहुत बड़ा भाग अरब देशों को मिला। बहुत से प्रदेशों में टीड़ी दल की तरह मित्रराष्ट्रों की फौजें छा गई थीं, जो भोजन की वस्तुओं पर ठीक उसी प्रकार हाथ साफ़ कर देती थीं। टीड़ियां तो बदले में कुछ नहीं देतीं, पर इनसे अच्छे पैसे मिलते थे। लाखों मज़दूर काम पर लगे, और उन्हें आज जितनी मज़दूरी कभी ज़िन्दगी भर नहीं मिली थी। लोगों ने लड़ाई के ठेकों में ख़ूब कमाया और देखते देखते बहुत से लखपती पैदा हो गये। किन्तु यह सब था नोटों का ही कारबार। उपभोक्ता वस्तुओं की अत्यन्त कमी थी। अतः दाम १० गुने और इससे भी अधिक बढ़ गये थे।

अरब देशों के मुख्यतया कृषि प्रधान होने पर भी वितरण की कोई व्यवस्था नहीं है। और इन देशों की सरकारें इस प्रकार के काम में बिलकुल असमर्थ रहीं। नियंत्रण और राशनिंग केवल काग़ज पर लिखी वस्तुएँ थीं। लोगों ने सुयोग से लाभ उठाकर मुनाफ़ाखोरी का बाज़ार गर्म कर दिया था और रुपया बटोरने लगे थे। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि जनता उन्हें अपना शत्रु समझने लगी है। अरब जनता के कानों में बहुत दिनों से यह बात घुस रही है कि उनके मंत्री और बड़े अफ़सर दूसरे राष्ट्रों के हाथ की कठपुतली मात्र हैं, और जब कि ब्रिटेन ने स्पष्ट ही प्रतिक्रियावादियों को सहायता देना शुरू कर दिया तो उनका सन्देह और भी दृढ़ हो गया है। वे इस बात को समझने लगे हैं कि उनके शत्रु ये ही ज़मींदार सामन्त और बड़े पूंजीपति व्यापारी हैं जो उनके देश की सम्पत्ति को विदेशियों के हाथ सौंपते रहे हैं। इस प्रकार की भावनाएँ जनता में ज़ोर पकड़ती जा रही हैं। पिछली फ़रवरी में काहिरो में भोजन के प्रश्न को लेकर जो दंगे हुए थे उनका विस्तृत समाचार 'न्यूयार्क टाइम्स' में छपा था। इस प्रकार के प्रदर्शन सीरिया, लेबनान तथा इराक़ में भी हुए थे—किन्तु इन वस्तुओं की ख़बरें बड़ी कठिनता से बाहर की दुनियां को मिल पाती हैं। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के असन्तोष तथा विरोध की भावनाओं का परिणाम जनमत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवाद या साम्यवाद की ओर झुकाव होता किन्तु अरब देशों में यह असन्तोष राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्रता प्रदान करता है। चूंकि सारे अरब देशों की मुद्रा किसी न किसी प्रकार स्टरलिंग से जुड़ी हुई है, अतः ब्रिटेन का प्रभाव और नियंत्रण बना रहता है, यद्यपि सऊदी अरब, यमन, मिस्र, लेबनान, सीरिया तथा इराक़ अब स्वतंत्र राज्य हैं। अतः उन्हें भारतवर्ष की भाँति यह भय है कि यदि भविष्य में ब्रिटेन अपने स्वार्थ के विचार से पाउन्ड का मूल्य घटा देता है तो उन्हें बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। सोने का भाव यद्यपि सरकारी तौर पर ३५ डालर प्रति आउन्स है, पर वे दूनी या उससे अधिक क़ीमत पर भी खरीदने को तैयार रहते हैं। ब्रिटेन से उन्हें अपने आयात व्यापार में भी कुछ आशा नहीं है, और स्टरलिंग पर यह अविश्वास है। अतः वे यदि यह सोचने लगें कि हमारी सारी मुसीबतों की जड़ यूरोप और ब्रिटेन है तो क्या बेजा है। वे सोचते हैं कि यह यूरोपीय महायुद्ध सारी आफ़त की जड़ था—इससे निर्यात व्यापार बन्द हो गया, आयात व्यापार चौपट हुआ और यूरोपियन जहाज़ों पर निर्भर रहने से उन्हें बहुत सी बातों से वंचित रह जाना पड़ा। अतः वे स्वयं क्यों न अपनी व्यवस्था को सुधारें। यूरोप के प्रभाव और ब्रिटेन के चंगुल से बाहर निकलकर अपनी स्वतंत्रता का दावा करें, और फिर अपने हितों की रक्षा के लिए अपने साधनों का उपयोग करें।

यह सत्य है कि युद्धकाल में अरब देशों की सहायता के लिये मध्यपूर्व-सप्लाई-केन्द्र (Middle East Supply Centre) ने जो पहले केवल ब्रिटेन का और बाद में ब्रिटेन तथा अमेरिका का संयुक्त प्रयत्न था काफ़ी काम किया। खाद्य-सामग्री के वितरण तथा अन्य बाहर से आनेवाली वस्तुओं के सम्बन्ध में इसने बहुमूल्य सेवाएं कीं, किन्तु जहाजों की तथा वस्तुओं की कमी के कारण, अभाव का रोना तो स्वाभाविक ही था। मगर मजे की बात यह हुई कि इसी केन्द्र के उदाहरण को लेकर अरब नेता यह सोचने लगे कि यदि मध्य-पूर्व के सारे अरब-देश आर्थिक इकाई में संगठित हो जायें और औद्योगिक प्रसार में लग जायें, तो उनकी समस्याएं आसानी से सुलझ जायें। इससे भी बड़ी बात यह हुई कि इसकी बदौलत इन छोटी छोटी सरकारों ने परस्पर मिलकर कृषि तथा आर्थिक समस्याओं पर विचार-विनिमय करना सीखा और कान्फरेन्सों की महिमा तथा बड़े पैमाने पर योजनाएँ बनाने और कार्यान्वित करने के लाभ उनको ज्ञात हुए।

अतएव इन सब बातों के फलस्वरूप अरब एकता के आन्दोलन को उत्तरोत्तर बल प्राप्त होता गया। यह १९४३ में लेबनान में चरम सीमा पर पहुँच गया, जब कि फ्रांस के साथ तनातनी बढ़ गई थी। उसको यद्यपि ब्रिटिश सहायता से दबाने की चेष्टा की गई थी, किन्तु आज भी परिस्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है। आज सब अरब देश एक होकर सीरिया और लेबनान के प्रदेशों से फ्रांसीसी फ़ौजों के हटाने की मांग कर रहे हैं। ब्रिटेन बेचारा बड़ी मुश्किल में है। वह अरबों को नाराज़ नहीं करना चाहता। फ्रांस से भी कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि पता नहीं कब यूरोप में उसे उनकी सहायता की आवश्यकता पड़ जाये। साथ ही वह ऐसे प्रदेश में जो उसके साम्राज्य की जीवन-रेखा पर है, कोई संघर्ष भी पैदा होने देना नहीं चाहता। विचित्र त्रिशंकु गति हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटेन फ्रांस से अपने प्रादेशिक हक़ छोड़ देने के लिये ज़ोर देगा, परन्तु उन्हें मध्य-पूर्व के आर्थिक विकास में साझेदार बना लेगा। अमेरिका का लक्ष्य रहेगा कि सीरिया और लेबनान की स्वतंत्रता न छिनने पाए, क्योंकि लेबनान में बेरूत या त्रिपोली के बन्दरगाह पर, जहाँ अमेरिकन कम्पनी की तेल की पाइप लाइन ख़तम होती है, वह अपना प्रभुत्व रखना चाहता है।

सोवियत यूनियन की उपेक्षा ने इन देशों के विषय में उसे कुछ सोचने का मौक़ा ही नहीं दिया। किन्तु वह इनसे मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील है। इन अरब देशों में सोवियत राजदूतावास है जो लोग रहते हैं वे अरबी भाषा तथा इस्लामी संस्कृति में पारंगत होते हैं। सीरिया और लेबनान में अरबी की 'सोवियत यूनियन के मित्र' नामक समितियां बन गई हैं और वहां की जनता स्तालिन को सर्वश्रेष्ठ वीर मानती है। मिस्र में भी रूसी प्रभाव बढ़ रहा है। सोवियत यूनियन नहीं चाहती कि कोई भी बड़ी शक्ति अरब-देशों में अपने पांव जमा ले, क्योंकि इससे उसके आवागमन यातायात (हवाई तथा समुद्री) में बाधा पड़ने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की शान्ति ख़तरे में पड़ने की आशंका है। अतः रूस ...अमेरिका तथा ब्रिटेन की भांति ऊपर से तटस्थ है पर ...से मित्रता का इच्छुक अवश्य है। संक्षेप में यही ...देशों की वर्त्तमान परिस्थिति है।

परन्तु वास्तविक समस्या का रूप कुछ अधिक ...है। ये अरब-देश न केवल २७,५०,००,००० ...मान अरबों के धर्म और संस्कृति के ही केन्द्र हैं, ...यूरोप से एशिया के मार्ग में महत्वपूर्ण स्थल हैं, ...कर इस युग में जब कि हवाई यातायात इतना ...है तथा आजकल के सबसे बहुमूल्य खनिज ...तेल का सबसे बड़ा भंडार इनमें सुरक्षित है, ...पर इस समय सभी देशों की आंखें लगी हैं। अब ...लोग यह समझने लगे हैं कि शक्तिशाली ब्रिटिश ...अमेरिकन कम्पनियों के हाथ में तेल के रहने से, ...उसके लाभ का बहुत कम भाग मिल पाता है। ...में इन कम्पनियों द्वारा पिछले दिनों में बनाई गई ...एं बहुत कुछ गुप्त हैं, किन्तु इसका स्पष्ट अर्थ ...है कि वे एक प्रकार का कारटेल (Cartel) बनाने ...रहे हैं, जिसके अनुसार मध्यपूर्व के इन देशों के ये ...क्षेत्र एक निश्चित सीमा तक ही उपयोग में लाए ...जायं—और एक निश्चित निर्धारित नीति के अनुसार ...का वितरण होगा। यद्यपि ब्रिटिश, फ्रेंच तथा ...न देशों के बाहर भी अपना तेल बेचने में अरब ...को अधिक लाभ होगा, किन्तु कम्पनियां वैसा क्यों ...गीं? इस विषय में और भी शिकायतें हैं। इराक़ ...म कम्पनी ने १० वर्ष पूर्व इराक़ के मोसल ...से लेकर भूमध्यसागर के तट पर स्थित त्रिपोली ...देश के बन्दरगाहों तक दो पाइप-लाइनें बैठाईं ...उत्तरी लाइन सीरिया और लेबनान में तथा दक्षिणी ...ट्रांस जोरडन और फिलस्तीन में होकर जाती है, ...तक इन चारों देशों में से किसी को भी कुछ भी ...नहीं मिली है। अतएव अरबों का यह सोचना ...नहीं है कि पिछले २५ वर्षों से बड़ी कम्पनियां ...तेल के क्षेत्रों से अपरिमित लाभ उठाती रही हैं ...उनकी निर्बल सरकारें विदेशी शक्तियों के प्रभाव में ...उन्हें मुंहमांगी शर्तों पर तेल के ठेके दे देती ...।

इसके अतिरिक्त और भी शिकायतें हैं, जो उनके अपने देशों की निजी समस्यायें हैं। कृषि योग्य भूमि के अधिकांश भाग के स्वामी सामन्त और सरदार हैं। अधिकतर किसान मज़दूर हैं, जिनके पास अपनी भूमि नहीं हैं और वे गुलामों की भांति किसी प्रकार मज़दूरी पर दिन काटते हैं। लाखों की संख्या में ग़रीब लोग भोजन की कमी और महामारी से काल-कवलित हो जाते हैं। १९४२-४३ में केवल मिस्र और सीरिया में सिर्फ मलेरिया से ही १,००,००० आदमी काल के गाल में समा गये। दवा के अभाव में ऐसा होना स्वाभाविक ही था, जब कि कुनीन दुर्लभ थी और उसके दर्शन केवल चोर बाज़ार में ही हो सकते थे।

ऐसी दशा में इन सब कठिनाइयों से पूर्ण भविष्य में यह युद्ध एक प्रकार से वरदान बनकर ही अरबों की एकता को दृढ़ करने के लिये अवतरित हुआ। मित्रराष्ट्रों की सेनायें जब उनकी भूमि को पद-मर्दित करने लगीं तब उन्हें दुनियां में क्या हो रहा है, इसको जानने की चेतना जागृत हुई। अब वे रेडियो और अखबारों के द्वारा पाश्चात्य प्रचार को सुनते हैं और समझने की चेष्टा करते हैं। उनमें जो शिक्षित हैं, वे इस बात को अनुभव करते हैं कि सारे संसार में पीड़ित और दलित जातियों की मुक्ति के लिये संघर्ष हो रहा है। किन्तु जब वे अपनी ओर देखते हैं तो अपने को मध्ययुगीन बेड़ियों में जकड़ा हुआ पाते हैं, जो उन्हें उच्चतर जीवन की ओर बढ़ने नहीं देतीं। स्कूल, काफ़े तथा बाजारों में जनता में वर्त्तमान दशा के प्रति घोर असन्तोष देख पड़ता है। वे अब मित्र राष्ट्रों की थोथी बातों की पोल को समझने लगे हैं।

विदेशी कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाये हुए अरब युवकों तथा युवतियों में राष्ट्रीयता की यह भावना और भी बलवती है। पाश्चात्य स्वतंत्रता के पुजारियों, वाशिंगटन, रूसो तथा लिंकन के उदाहरण उनके हृदय में असन्तोष और क्रान्ति की ज्वाला धधका देने के लिये पर्याप्त हैं। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरब साहित्य में पुनर्जागरण हुआ है, जिसकी उत्पत्ति लेबनान में हुई थी, किन्तु मिस्र में उसकी पुष्टि होकर अब वह सारे अरब देशों में फैल गया है। इस साहित्य ने भी नवीन पीढ़ी की भावनाओं को उत्तेजित किया है। उन्हें बताया है कि एक समय उनके पूर्वज साम्राज्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासक थे, और एक दिन उन्होंने यूरोप को सभ्यता का पाठ पढ़ाया था। किन्तु वे आज दलित और पंगु हैं। यह नवीन पीढ़ी वर्ग-संघर्ष के प्रति भी जागरूक है और मिस्र, सीरिया तथा लेबनान में विद्यार्थियों ने प्रदर्शनों में खूब भाग लिया था। वे इस बात को समझते हैं कि थोड़े से पूंजीपतियों का अस्तित्व ही उनके दुख, दैन्य तथा परतंत्रता का मूल है।

ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने अरब-देशों की इन प्रवृत्तियों को पहचाना है तथा उन्हें दबाने की चेष्टा भी की है। किन्तु कुछ थोड़े से सरदार तथा उनके पिट्ठू ही उनके प्रभाव में है। वर्त्तमान युद्ध ने प्रच्छन्न रूप से बहुत से अरबी हथियार बन्द कबीलों की जनता के मस्तिष्क में क्रान्ति के बीज बो दिये हैं। यह कहा जाता है कि अरब युवकों में साहसी नेताओं की भी कमी नहीं हैं। वे केवल उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में हैं। अतएव यदि इस प्रकार के नेताओं के हाथ में शक्ति आ जाये तो उसका क्या परिणाम होगा यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

ब्रिटिश राजनैतिज्ञ ऐसे असन्तोष को बढ़ने नहीं देना चाहते क्योंकि अरब देशों में किसी प्रकार की गड़बड़ी का अर्थ है, उनके साम्राज्य की सीमा पर ख़तरा। अतः वे इसे रोकने के लिये सतत प्रयत्नशील रहते हैं। १९४३ में जब लेबनान में फ्रांस के साथ तनातनी बढ़ गई तो ब्रिटेन ने तुरन्त बीच में पड़कर फ्रांस पर जोर डाला कि वह लेबनान की इच्छा-पूर्ति कर दे। इसी फ़िलिस्तीन में यहूदियों पर जो रोक लगा दी गई है, वह इसलिये नहीं कि ब्रिटिश यहूदियों से अरबों को ज्यादा चाहते हैं, वरन इसलिये कि यदि अरब विद्रोह कर देते तो वह और मुस्लिम देशों में फैल जाता। यद्यपि इस प्रकार अब तक अरबों के राष्ट्रीयता-आन्दोलन को रोका गया है, पर भविष्य में युद्ध जनित नवीन परिस्थितियों के कारण वह अधिक उग्र रूप धारण करेगा और तब उसे रोकना शायद सम्भव न होगा। कौन कह सकता है कि ईरान की कहानी की पुनरावृत्ति अरब देशों में भी न होगी?

नासदीय

[भगवान् तिलक के अनुवाद के आधार पर]

श्री आरसी प्रसाद सिंह

तब न कोई भी असत् था, या सत् न था!
था न दिग्मण्डल कहीं कोई गगन था!
आवरण डाला कहाँ? किसके लिये फिर?
जल कहाँ ऐसी अवस्था में गहन था?

था अमृत क्या? जब नहीं कोई मरण था!
रात्रि-दिन की भिन्नता का साधन न था!
एक ही वह, शक्ति से अपनी अकेला;
था नहीं कुछ भी, न किंचित् भी पवन था!

जो कहा जाता कि तम से व्याप्त जल था;
और वह भी एक माया-वृत विकल था!
मूल में था ब्रह्म ही, आगे प्रकट जो
हो गया बहु रूप में, वह तपोबल था!

काम था, मन का प्रथम जो बीज निकला!
फिर उसी से सृष्टि का आकार बदला!
बुद्धि से निश्चित किया कवि ने हृदय में,
था असत् से वही सत्-सम्बन्ध पहला!

फैल फिर, इसमें गयी थी रश्मि सुन्दर!
यदि कहें नीचे, भला तो क्या न ऊपर!
शक्ति थी इस ओर, उधर प्रभाव उसका;
कुछ बड़े भी हो गये फिर बीज बढ़कर!

है कहाँ से यह असीम विसर्ग आया!
किस लिये इतना प्रचुर विस्तार पाया!
देव भी पश्चात, कोई जानता क्या!
फिर जहाँ से यह हुआ, भ्रम-जाल छाया!

यह अमित फैलाव सत का है किया जो,
है किया अथवा नहीं, है ज्ञात किसको!
कह सकेगा कौन? जो अध्यक्ष नभ में
जानता हो या न वह भी जानता हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान की आर्थिक व्यवस्था और उसका आधार

डा० सत्यरञ्जन सेन एम० ए०, डी० लिट०

आज जब कि जापान पूर्ण रूपेण पराजित हो चुका है तथा मित्रराष्ट्र उसे नितान्त पंगु बना देने के मन्सूबे बाँध रहे हैं, लोग समाचार पत्रों में यह समाचार पढ़कर आश्चर्य करते हैं कि जापान की बनी वस्तुएं निकट भविष्य में ही फिर बाज़ारों में नज़र आयेंगी। इतने वर्षों के युद्ध के बाद भी जो आर्थिक व्यवस्था इतनी समर्थ हो सकती है, उसके विषय में अधिक जानने का कौतूहल स्वाभाविक है। अतः यह प्रश्न किया जाता है कि आख़िर किस प्रकार जापान युद्ध कालीन आपत्तियों को झेलता हुआ जीवित रह सका। कौन सी भित्ति है, जिस पर उसकी आर्थिक व्यवस्था टिकी हुई है? इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर जापान के आर्थिक संगठन के अध्ययन से मिलेगा।

कहा जाता है कि जापान ने युद्ध के पूर्व कितने ही वर्षों से अपनी आर्थिक व्यवस्था को उस सांचे में ढालना शुरू कर दिया था जिसे अङ्गरेज़ी में Totalitarian Economy कहा जाता है, अर्थात एक साम्राज्यवादी आधार पर अपनी आर्थिक व्यवस्था का संगठन। और इस प्रकार की व्यवस्था को इटली और जर्मनी में किये गये मुसोलिनी और हिटलर के प्रयोगों से बल मिला था। उनकी सफलता ने जापानी साम्राज्यवादियों को प्रोत्साहन दिया। किन्तु यह कहना भी ग़लत नहीं कि जापानी शासन से ही सदा से एक प्रकार के साम्राज्यवादी रहे हैं और उनकी सम्राट-पूजा उनके राजनैतिक तथा आर्थिक शोषण और दूसरों पर उनके प्रभुत्व की भावना की प्रतीक है। उगते सूरज के देश के निवासी अपने सम्राट के इतने अन्ध-भक्त हैं कि वे उसे साक्षात सर्व-शक्तिमान परमात्मा का अवतार मानते हैं—और उसके विरुद्ध कुछ भी कहना, सुनना अथवा करना पसन्द नहीं करते। शिन्तोधर्म ने भी जापानी आर्थिक व्यवस्था को मज़बूत बनाने में बहुत दरजे तक मदद दी। सन १८६८ की फ्रेंच क्रान्ति के पश्चात् पहले पहल जापान का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश हुआ और वर्त्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में रूस की पराजय ने उसकी गति को तेज़ कर दिया। अब जापान अपने पड़ोसी देशों पर प्रभुत्व जमाने के स्वप्न देखने लगा। इस विचार से उसने अपनी आर्थिक व्यवस्था को धीरे धीरे फासिस्ट ढाँचे में गढ़ना शुरू किया यद्यपि उस समय फ़ासिज्म का नाम अज्ञात था। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक शक्ति कुछ मुट्ठी भर आदमियों के हाथों में पहुँच गई जो अपने पैसे के बल पर शासन करते थे। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। १८८० में सरकार ने फैक्टरियों को सरकार के क़ब्जे से निकालकर अन्य व्यक्तियों के हाथ में देने के लिये एक क़ानून बनाया। इसके अनुसार बहुत से कारखाने सरकार के हाथ से निकलकर व्यक्तियों के अधिकार में चले गये। यह 'जियूतो' अथवा देश की लिबरल (नरम दली) पार्टी के शक्तिशाली हो जाने का परिणाम था। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अब से बहुत पहले १८८० में भी जापान के उद्योग अधिकांश में सरकार के अधिकार में थे। जैसा कि मि० आरचर्ड ने, जो जापान और उसकी समस्याओं के अनुभवी विद्वान हैं, एक बार लिखा था कि "आज जापान में ऐसे बहुत कम उद्योग हैं जो गवर्मेंण्ट के ही उत्साह के फल हैं। बहुत से उद्योगों में, गवर्नमेण्ट ने स्वयं उन्हें चालू किया और ज्योंही वे भली भांति जम गये, उन्हें स्वयं ही व्यक्तियों के हाथों में सौंप दिया, किन्तु सभी उद्योगों में ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका और उनमें सरकार आज भी मुख्य भाग ले रही है।" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पिछले ५०-६० वर्षों से जापान की शक्ति का मूल यही उद्योग-धन्धों पर राज्य का स्वत्व था और इसी एकाधिकार ने उसे संसार-व्यापी युद्ध के लिये तैयार होने में मदद दी।

१९२९ की विश्वव्यापी मन्दी ने जापानियों की आंखें खोल दीं। मिनिसितो पार्टी के शक्तिशाली होने के साथ ही वे अपनी आर्थिक योजनाओं को दृढ़ करने में जुट गये। उस समय जापान में बेकारी का ज़ोर बढ़ रहा था। किसानों की दशा बड़ी बुरी थी, क्योंकि उन्हीं पर मन्दी का भयंकर असर पड़ा था, देश के बजट में घाटा था। ऐसी दशा में सरकार के बड़े दृढ़ क़दम उठाने की आवश्यकता थी, ताकि वह एक सुदृढ़ आर्थिक नीति के द्वारा देश की आर्थिक व्यवस्था के उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण-हीन ढाँचे में फिर से नया जीवन फूंक सके। सौभाग्य से तत्काकालीन अर्थ-सचिव ताकाहाशी बहुत बुद्धिमान पुरुष था। उसने देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिये कमर कसी और औद्योगिक उन्नति के प्रयत्न में जुट गया। जल-थल सेना पर १९३२ में देश की कुल आमदनी का लगभग ३१ प्रतिशत ख़र्च पड़ता था। १९३६-३७ में यह बढ़कर ४७ प्रतिशत हो गया। किन्तु साथ ही देश का उत्पादन और व्यापार भी बहुत अधिक बढ़ गया। बेकारी कम हो गई और देश की रक्षा के साधन मज़बूत होने से जनता में जीवित रहने और आगे बढ़ने के लिये खोया हुआ विश्वास फिर लौट आया। देश के बजट का कुल ख़र्च युद्ध के पहले २$\frac{1}{2}$ हज़ार मिलियन येन था किन्तु १९३९ में बढ़कर ९$\frac{1}{2}$ हज़ार मिलियन येन तक पहुंच गया। वास्तव में ताकाहाशी की नीति ही जापान सरकार की उस साम्राज्यवादी नीति की आधार-शिला थी, जिसने कि जापान को इस युद्ध में ला पटका था। ताकाहाशी के बाद उसके गद्दी-नशीन बाबा नामक अर्थ-सचिव ने भी उसी नीति को जारी रखा और उसकी अर्द्ध-युद्ध-कालीन नीति के फल-स्वरूप जापान इतना शक्तिशाली हो गया कि वह विश्व-विजय के मन्सूबे बांधने लगा।

किन्तु जापान की इस आर्थिक--फासिज्म की नीति का परिणाम क्या हुआ? इसका नैसर्गिक प्रतिफल यह हुआ कि जनता का जीवन बहुत संकुचित और बन्धन-मय हो गया। देश का राष्ट्रीय ऋण १९३६ की अपेक्षा दुगुना हो गया। मार्च १९३७ में १५६९ मिलियन येन के नोट चलन में थे, किन्तु दो ही वर्ष बाद मार्च १९३९ में नोटों की संख्या बढ़कर २४०१ मिलियन येन हो गई। जापान का निर्यात-व्यापार कम होता जा रहा था। देश की सोने की थाती का अधिकांश भाग सरकार ख़र्च कर चुकी थी। देश में वस्तुओं के दाम इतने बढ़ गये थे कि दूसरे देशों को निर्यात करने में कठिनाई होने लगी थी। उसके ग्राहक टूट रहे थे। इस प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका तथा भारतवर्ष जैसे देशों के साथ उसका निर्यात व्यापार बराबर कम होता जा रहा था। क्योंकि ये उसके प्रभाव से बाहर थे, और ऊँचे भावों पर उसका माल लेते ही क्यों? किन्तु 'येन ब्लाक' के देशों, अर्थात उसके प्रभाव में जो देश थे, जैसे चीन, मंचूरिया और कोरिया आदि उनके साथ उसका निर्यात व्यापार बढ़ रहा था। १९३६ में उसके कुल निर्यात व्यापार का लगभग २४ प्रतिशत माल इन देशों में जाता था, किन्तु १९३९ में यह परिणाम बढ़कर लगभग ४६ प्रतिशत हो गया। उसकी आर्थिक अवस्था में परिवर्तन का एक दूसरा चिन्ह टेक्सटाइल (सूती वस्त्र इत्यादि) के निर्यात व्यापार का घट जाना है। १९३६ में उसके निर्यात व्यापार का ५३ प्रतिशत भाग टेक्सटाइल वस्तुओं का होता था, किन्तु १९३८ में यह घटकर ४५ प्रतिशत रह गया। अपने सब से मुख्य उद्योग टेक्सटाइल्स के निर्यात को बढाने के लिये उसे विदेशों से अपना आयात कम करना पड़ा किन्तु इससे उत्पादन-वस्तुओं तथा उपभोक्ता-वस्तुओं के बीच अन्तर की खाई अधिक चौड़ी हो गई। यहां यह याद रखना चाहिये कि जापान अपने आयात के लिये लगभग ७६ प्रतिशत वस्तुएँ अपने साम्राज्य के बाहर के देशों से मँगाता था, किन्तु उन देशों को अपने निर्यात व्यापार का केवल ५७ प्रतिशत माल बेचता था। अतः युद्ध-काल में निश्चय ही, इन सब देशों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने से कारण उसका विदेशी व्यापार ठप हो गया। साथ ही अपने जहाज़ों से उसे जो ख़ासी आमदनी होती थी, वह भी कम हो गई। अतः इस सबका लोगों के रहन सहन पर बड़ा असर पड़ा। उसका औद्योगिक विकास बीच में ही रुक गया और एक युद्ध-कालीन व्यवस्था का बोझ उसके कमज़ोर कन्धों पर आ गिरा। युद्ध का पहला फल मुद्रा-आस्फालन (Inflation) प्रचुर मात्रा में बढ़ा, और बेतहाशा नोट निकले। कृत्रिम रूप से वस्तुओं के भाव ऊँचे कर देने का भी कोई परिणाम नहीं हुआ और जापान एक दुष्चक्र आर्थिक दुरावस्था के शिकंजे में फँस गया।

यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार एक साथ ही दो मोर्चों पर लड़ाई छेड़ने वाले जापानी नेता मूर्ख नहीं थे। वे वर्षों पहले से इस प्रकार के युद्धकालीन जीवन की तैयारी और अभ्यास जनता को करा चुके थे। ताकाहाशी के समय से ही सरकार ने अपने आर्थिक प्रोग्राम में 'दख़लअन्दाज़ी' की नीति को सिद्धान्त रूप लिया था। वे १०० वर्षों से एक सुदृढ़ तथा सम्पन्न साम्राज्य का स्वप्न देख रहे थे और अब उसके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय-यात्रा करने को प्रस्तुत थे। जापानी साम्राज्य-वाद—चीन मुख्य साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के संगठन से था। वे थीं कच्चे माल की भूख, व्यापार के लिये विस्तृत बाज़ार और एक बढ़ती हुई जन संख्या। चीन में तेल, रबर, टिन, लोहा इत्यादि कच्चे माल की कमी है जो उसकी आर्थिक तथा औद्योगिक उन्नति के लिये आवश्यक है। या तो वह इनके लिये कोई नई वस्तुएँ निकालता या फिर उसके सामने दूसरा एक रास्ता था, और वह था मलाया तथा पूर्वी-द्वीप समूह से उन्हें छीन लेना। सोयाबीन वहाँ का एक खाद्य पदार्थ है, किन्तु उसके लिये उसे दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। चावल तो उसके आधीन फारमोसा तथा कोरिया जैसे देशों से उसे मिल जाता है, चीनी भी उसे बहुत चाहिये किन्तु वह मंचूरिया में उगाई सोयाबीन से प्राप्त हो जाती है। रबर एक ऐसी वस्तु है जिसे उसे केवल मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह के देशों से लेना पड़ता है। तेल आधुनिक युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है और चूंकि सारे संसार के तेल का ९० प्रतिशत भाग अमेरिका, रूस, ईरान और इराक़ से आता है; अतः उसे इसके लिये डच ईस्ट इण्डीज़, नीदरलैंड तथा पूर्वी द्वीप समूह पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः उसे स्वाभाविक रूप से दक्षिण के देशों पर आक्रमण करना पड़ा; ताकि वह जो कुछ बचा-खुचा है उसे दूसरे साम्राज्यों के पेट में जाने देने से पहले ही अपने पेट में कर ले। अपनी इन नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति को एक परोपकारी भावना की आड़ में छिपाने के उद्देश्य से उसने 'एशिया एशियावालों के लिये' का नारा बुलन्द किया, और उन देशों की जनता के लिये 'सम्मिलित-सुख-सम्पन्न भूभाग' (Co-prosperity Sphere) के सपने दिखलाये। पश्चिमी साम्राज्यवादियों से उसने भी पूर्व को सभ्यता का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न किया, पर समय की गतिविधि उसके विरुद्ध थी। इसका उसे पता नहीं था।

कोई देश शान्तिकाल में भी युद्ध-कालीन अर्थ-व्यवस्था के मुताबिक़ जनता को नियमों तथा बन्धनों में रखना चाहता है, तो उसे अपनी शक्ति को केन्द्रित करना होगा। इसका अर्थ होगा जनता के जीवन पर अत्यधिक नियन्त्रण। यही बात जापान में भी हुई। १९३७ से ही जापान में जनता के आर्थिक जीवन पर भयंकर नियन्त्रण रखा गया है। सरकार की शक्ति के साथ अपने सम्राट की पूजा की भावना ने तो शान्तिकाल में भी जन-जीवन को लोहे की शृंखलाओं से जकड़ दिया था। जापान के युद्ध-प्रेमी नेता और फौजी अफ़सर, जिनकी पीठ पर हमेशा सेना की सहायता रही है; युद्ध के बहुत पहले से जनता के जीवन पर ऐसे ऐसे नियंत्रण लगा रहे थे, जिनमें से अधिकांश के सामने आजकल के युद्ध-कालीन नियंत्रण बेचारे कुछ भी नहीं हैं। भाँति भांति के आर्डीनेन्सों के द्वारा जनता के आर्थिक जीवन को जकड़ दिया गया था, यद्यपि उनका उपयोग केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही होना चाहिये। सरकार ने भावों के नियन्त्रण से शुरू किया, जो कि धूमकेतु की भाँति बढ़ते जा रहे थे, और उन्हें एक प्रकार से अधःपतन की ओर ढकेल दिया। इस प्रकार सर्वहारावादी-आर्थिक-व्यवस्था देश में प्रचारित की गई। विदेशी विनिमय के नियन्त्रण के लिये क़ानून बना, आयात और निर्यात व्यापार पर नियन्त्रण करने के लिये क़ानून बनाये गये, ऐसे भी क़ानून बनाये गये जिनके अनुसार व्यापारियों को जबरन निर्यात-व्यापार-संघ (युंशुत्सु कुमियाई) में भाग लेना पड़ता था। इसी प्रकार आयात व्यापार संघ के लिये भी कानून बने। पूंजी पर नियन्त्रण करने के लिये भी क़ानून बने जिससे सदियों से जापान के छोटे धन्धों और ग्रामोद्योगों को हानि पहुंची और देश की पूंजी खिंचकर भारी प्रधान उद्योगों में लग गई, और देश की सारी बचत क़ानूनन उनमें लगाई गई। परिणाम स्वरूप टेक्सटाइल तथा रेयन (Rayon) जैसे उद्योग अवनति को प्राप्त हुए, और भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका के साथ इनका निर्यात व्यापार भी कम हो गया। धातुओं, लोहे और इन्जीनियरी के कारख़ानों की वृद्धि होने लगी और उपभोक्ता-वस्तुओं का उत्पादन कम होने लगा। इस प्रकार जापान की प्राचीन उदार आर्थिक व्यवस्था का सेना की सहायता से संगठित सरकार के एक बार से ही अन्त हो गया और उसके स्थान पर पूंजीपतियों तथा युद्ध-नेताओं की मनमानी का राज्य हो गया।

आर्थिक-व्यवस्था में इस प्रकार के परिवर्तन क्यों संभव हुए? इसके कई कारण हैं। बहुत कुछ अंशों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वहां के सम्राट की वीर-पूजा की भावना से प्रोत्साहित होकर किये गये। सम्राट की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है—उसे न मानने की हिम्मत किसी की नहीं हो सकती। अतः सम्राट के नाम से थोड़े से पूंजी-पतियों और युद्ध-नेताओं की सरकार कुछ भी कर सकती थी। उसके खिलाफ़ जनमत का कोई प्रश्न नहीं। तथा वहां पर भयंकर ग़रीबी के कारण, निरन्तर बढ़ती हुई जन-संख्या के कारण, सस्ते तथा बहुतायत से मिलने वाले मज़दूरों के कारण भी ऐसा परिवर्तन आसानी से सफल हो सका। यद्यपि सदियों से छोटे छोटे कारखानों पर ही जापान की सत्ता टिकी हुई है, किन्तु उत्पादन को शीघ्र ही बड़े पैमाने पर बदला जा सकता था। अधिकतर कारख़ानों में औरतें और लड़कियां ही काम करती हैं, जो बड़ी मेहनती हैं और सस्ती मज़दूरी पर २-३ शिफ्ट काम कर सकती हैं। उनकी इस कमज़ोरी तथा बेबसी का लाभ उठाकर सरकार ने उनका और अधिक शोषण करने के हेतु शान्तिकालीन ढंग की छोटे पैमाने पर उत्पादन की व्यवस्था को युद्ध-कालीन भीमकाय कारख़ानों के रूप में बदल दिया। जो थोड़े से पूंजीपति स्वयम् देश की राजनीति पर अपना प्रभुत्व जमाये बैठे थे, उन्होंने नाना प्रकार के उपायों से देश की राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था को युद्ध के लायक बनाने में कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ी। जापानियों की वह कुशलता और उत्पादन-कौशल जो उनकी सदियों की अर्जित और संचित कमाई थी, इस युद्ध के गाढ़े समय में उनके काम भी आई। जापान जैसे छोटे देश ने इतने वर्षों तक जिस प्रकार युद्ध को जारी रखा और साम्राज्य-स्थापना की चेष्टा थी, उसके पीछे जबर्दस्त कारण हैं।

किन्तु इस विश्लेषण से एक परिणाम पर पहुंचा जा सकता है और वह यह कि कच्ची नींव के आधार पर कृत्रिम उपायों के द्वारा किसी देश की शक्ति को बहुत दिन तक क़ायम नहीं रखा जा सकता। पूंजी और मज़दूर, जो किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था में प्रारम्भिक वस्तुएं हैं, उनके एक हुए बिना वास्तविक संगठन की आशा नहीं की जा सकती। यह बात जापान के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष हो गई। सदियों से वहाँ की सामन्त युगीन मनोवृत्तियें जनता को दबा रहीं थीं—और इन्हीं सामन्त-युगीन संस्कारों के फल-स्वरूप सम्राट की वीर पूजा की भावना ने वहाँ के जनमत को बिलकुल आक्रान्त कर रखा था। इन्हीं के बल पर जापान ने एक फ़ौजी ताक़त तो खड़ी कर ली, और वह जनता की बेबसी और सीधेपन से लाभ उठाकर अपनी आर्थिक व्यवस्था को भी आमूल-परिवर्तित करने में समर्थ हुआ, पर उसकी यह ताक़त स्थायी न हो सकी। आज यद्यपि वह पराजित और परिमर्दित है, पर उसके पतन से संसार के अन्य प्रतिक्रियावादी देश सबक़ ले सकते हैं।

निष्कर्ष रूप से यह स्पष्ट है कि जापान की आर्थिक व्यवस्था का आधार प्राचीन काल में जो सामन्त युगीन भावनायें रहीं, उन्होंने वहाँ की विशाल और परिश्रमी किन्तु अबोध जनता को भेड़ बना दिया। थोड़े से शक्तिशाली पूंजीपतियों और सैनिक सम्राटों ने धार्मिक अन्ध विश्वास के बल पर, उनकी वीर-पूजा की भावना से लाभ उठाकर उनका मनमाना शोषण किया, और वे एक छोटे से देश को उन्नत एवं समर्थ बनाने में बहुत हद तक सफल भी हुए। किन्तु प्रजातंत्र के इस युग में जनमत के बिना राजनीति तथा अर्थ के क्षेत्र में स्थिरता नहीं मिलती। शिन्तोइज्म और साम्राज्यवाद का शक्तिशाली समन्वय इसमें सन्देह नहीं कि जापानियों की अद्भुत सूझ थी, किन्तु वे दूरदर्शी नहीं थे। उन्होंने समय के प्रवाह को पहचानने में ग़लती की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन की न्याय प्रणाली

प्रोफ़ेसर कृष्णकिंकर सिंह एम० ए०

प्रजातन्त्र की स्थापना के पहिले चीन में शासन प्रबन्ध करने, न्याय करने और क़ानून बनाने—इन तीनों का अधिकार सम्राट को था पर राज कर्मचारियों और अफ़सरों के नियुक्त करने और उनके द्वारा किये गए बुरे कामों की जांच-पड़ताल कर उन्हें दंड देने का अधिकार पूर्ण रूप से सम्राट के हाथों में नहीं था। इन कामों के लिये अलग संस्थायें थीं जो स्वतन्त्रतापूर्वक काम करती थीं। आधुनिक युग में प्रायः सभी उन्नतिशील और सभ्य राष्ट्रों ने अपनी सरकार के तीन विभाग रखे हैं—शासन प्रबन्ध करने, न्याय करने और क़ानून बनाने के, जो एक दूसरे से अलग और अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक काम करते हैं। पर चीनी प्रजातन्त्र के आधुनिक विधान में सरकार के पांच विभाग रखे गए हैं। शासन प्रबन्ध करने, न्याय करने, क़ानून बनाने, सरकारी अफ़सरों के चुनने के लिये परीक्षा लेने और नियन्त्रण करने के विभाग। इसे पंच-शक्ति-विधान (Quintuple Power Constitution) कहते हैं। ये पांचो विभाग अपने अपने क्षेत्र की सबसे ऊँची संस्था हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक काम करती हैं। कहना नहीं होगा कि इनमें प्रथम तीन तो विदेशी राष्ट्रों से लिये गये हैं पर पिछले दो चीन की परम्परागत चीज़ हैं।

उपरोक्त लिखित पंच-शक्ति विधान के अनुसार चीन की सरकार के पांच विभाग (युआन्) हैं—शासन प्रबन्ध युआन्, न्याय युआन्, व्यवस्थापिका युआन्, परीक्षा युआन् और नियन्त्रण युआन। न्याय युआन चीन की राष्ट्रीय सरकार सम्बन्धी कामों की सबसे बड़ी संस्था है। इसे सरकारी अफ़सरों और कर्मचारियों द्वारा अनुशासन-भंग सम्बन्धी किये गये अपराध के लिये सज़ा देने तथा शासन प्रबन्ध-सम्बन्धी मुक़दमों के न्याय करने तक का भी अधिकार है। यह राज परिषद् (State council) के पास किसी अभियुक्त को दिए गए मृत्यु दंड को माफ़ करने और किसी के छीने गए नागरिक अधिकार को पुनः दिलाने की सिफ़ारिश कर सकती है और न्याय सम्बन्धी मामलों के क़ानून बनवाने के लिये व्यवस्थापिका युआन में बिल पेश कर सकती है।

चीनी प्रजातन्त्र का न्याय सम्बन्धी काम निम्न अदालतों द्वारा होता है—(१) साधारण अदालत (२) शासन प्रबन्ध सम्बन्धी अदालत (३) अनुशासन रक्षा कमीशन। इन सभी अदालतों के क्षेत्र भिन्न हैं और वे निर्धारित क़ानून द्वारा अपने अपने क्षेत्र में काम करती हैं। सभी दीवानी और फ़ौजदारी मुक़द्दमे साधारण अदालत के क्षेत्र में आते हैं। इसके तीन दरजे होते हैं—(१) जिला अदालत (२) हाईकोर्ट और (३) सुपीम कोर्ट। हर अदालत में एक अध्यक्ष और कई जज होते हैं। हर अदालत के दो भाग होते हैं—दीवानी और फ़ौजदारी। हर विभाग का भी एक अध्यक्ष होता है। दीवानी मुकदमे दीवानी अदालतों में और फ़ौजदारी मुक़द्दमे फौजदारी अदालतों में पेश होते हैं। एक मुकदमे की तीन सुनवाइयां हो सकती हैं। कुछ विशेष प्रकार के मुकदमों को छोड़कर प्रायः सभी मुकदमे पहिले ज़िला अदालत में पेश होते हैं। अगर ज़िला अदालत के फ़ैसले से किसी दल को सन्तोष न हो तो वह हाईकोर्ट में अपील कर सकता है। हाईकोर्ट के फ़ैसले से भी सन्तोष न होने पर सुप्रीम कोर्ट में अपील हो सकती है। सुपीम कोर्ट का फ़ैसला अन्तिम माना जाता है। पर साधारण मुकदमों की दो ही सुनवाइयाँ होती हैं—एक ज़िला अदालत में और अपील करने पर हाईकोर्ट में। इसके लिए सरकार ने नियम बनाया है कि फौजदारी मुकदमों में अगर सजा तीन वर्ष तक की है और दीवानी मुकदमों में अगर दावा ५२० डालर तक का है तो हाईकोर्ट का फ़ैसला ही अन्तिम होता है। इनकी अपील सुप्रीम कोर्ट में नहीं हो सकती है। जो मुकदमे सीधे हाई कोर्ट में पेश होते हैं उनकी भी दो ही सुनवाइयाँ होती हैं—एक हाईकोर्ट में और अपील करने पर सुप्रीम कोर्ट में। जब मुकदमा खुलता है तो मुद्दई और मुद्दालेह दोनों ही उपस्थित रहते हैं और दोनों दलों द्वारा मौखिक रूप से दिए गए बयान पर ही जज अपना फैसला देते हैं। मुकदमा खुली अदालत में चलता है।

हर जिले में जिला अदालत होती है। पर जिले का क्षेत्रफल बहुत कम होने पर कई जिलों के बीच एक अदालत होती है। जो जिले बहुत बड़े हैं वहां जिले के विभिन्न स्थानों पर शाखा जिला अदालतें हैं। म्युनिसिपैलिटियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी जिला अदालतें हैं। कुछ खास प्रकार के मुकदमों को छोड़ जिनकी पेशी हाईकोर्ट में ही हो सकती है, शेष सभी प्रकार के मुकदमे पहिले जिला अदालतों में ही पेश होते हैं। जिला अदालत में मामूली मुकदमों की जांच एक ही जज करते हैं पर बड़े मुकदमों की जांच तीन जज एक साथ बैठकर करते हैं। पर चीन के सभी जिलों में अभी तक न्याय करने के लिये जिला अदालतों की स्थापना नहीं हो सकी है। इस प्रकार के जिलों में मुकदमों की सुनवाई के लिये दो प्रकार की अस्थायी प्रणालियाँ चालू की गई हैं। एक प्रणाली यह है कि जहां जिला अदालत नहीं है वहां जिला सरकार के भीतर ही न्याय ब्यूरो की स्थापना की गई है। इस ब्यूरो में एक या एक से अधिक जज होते हैं। यह ब्यूरो जिला मजिस्ट्रेट से स्वतंत्र अपना न्याय संबंधी अधिकार रखता है। जिला मजिस्ट्रेट इस ब्यूरो में रहते हैं ज़रूर पर उनका काम केवल प्रोक्युरेटर (Procurator) का होता है। ब्यूरो को जिले भर के समस्त दीवानी और फौजदारी मुकदमों के फैसला करने का अधिकार है। यह जिला अदालत का संक्षिप्त रूप है। दूसरी प्रणाली यह है कि जिन जिलों में न जिला अदालत हैं और न न्याय ब्यूरो ही वहां जिला मजिस्ट्रेट को ही शासन प्रबन्ध के अधिकार के साथ साथ न्याय करने का अधिकार भी दिया गया है। इस प्रकार के हर जिले में जिला मजिस्ट्रेट को न्याय के काम में सहायता देने के लिये एक एक अफ़सर नियुक्त किये गए हैं जिन्हें मजिस्ट्रेट की अपेक्षा न्याय सम्बन्धी क़ानूनों की अधिक शिक्षा मिली होती है। ये अफ़सर सुप्रीम कोर्ट के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। उपरोक्त लिखित न्याय ब्यूरो द्वारा किया गया फैसला उतना पक्का नहीं माना जाता है जितना जिला अदालत द्वारा किया गया। इसलिये न्याय ब्यूरो द्वारा संगीन मुकदमों में दिये गये फैसले तब तक लागू नहीं होते जब तक उस प्रान्त का हाई कोर्ट या शाखा हाईकोर्ट उन फैसलों की छानबीन करके स्वीकृति की मोहर न लगा दे। छानबीन करने पर अगर कहीं गलती ज्ञात होती है तो वह न्याय ब्यूरो पुनः न्याय करने को कहती है। अगर वह ज़रूरत समझती है तो स्वयं मुकद्दमा सुनती और फैसला देती है या अपने एक जज को पुनः न्याय करने के समय न्याय ब्यूरो की सदारत करने के लिये भेजती है।

हर प्रान्त में एक हाई कोर्ट है। बड़े प्रान्तों में आवश्यकतानुसार कई शाखा-हाई कोर्ट भी होते हैं। हाईकोर्ट का अधिकार प्रान्त भर के सभी मुकदमों पर है। अक्सर जिला अदालत के फैसले की अपील ही हाईकोर्ट में ली जाती है पर कुछ खास मुकदमे सीधे हाई कोर्ट में पेश होते हैं जैसे राज (State) की आंतरिक और वाह्य सुरक्षा सम्बन्धी फ़ौजदारी मुकदमे और ऐसे अपराध सम्बन्धी मुकदमे जिनसे विदेशी राष्ट्रों के साथ हुई मित्रता भंग होती हो। हाई कोर्ट का एक अध्यक्ष होता है और न्याय करने के लिये कितने ही जज होते हैं। दीवानी और फौजदारी मुकदमों के अलग अलग विभाग होते हैं। हर विभाग में एक प्रधान होता है। तीन जज एक साथ बैठकर कोई मुकदमा सुनते और फैसला करते हैं। इन तीन जजों की मंडली में एक जज मंडली की सदारत करता है। अगर दीवानी मुकदमे का दावा ५०० डालर से अधिक है और फौजदारी मुकदमे में सजा तीन वर्ष से अधिक है तो मुद्दालेह हाई कोर्ट के फैसले के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील कर सकता है अन्यथा हाई कोर्ट का फैसला ही अन्तिम होता है।

सुप्रीम कोर्ट देश भर की सबसे बड़ी अदालत है और देश भर में एक ही है जो राजधानी में स्थित है। सारे देश में स्थित हाईकोर्ट के फैसले के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील होती है। सुप्रीम कोर्ट में भी फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुकदमों का फैसला करने के लिये अलग अलग विभाग हैं। हर विभाग में एक प्रधान होता है और कई अदालतें होती हैं। तीन या पांच जजों की मंडली एक मुकदमे को सुनती और फैसला करती है। मंडली के जजों में से एक उसका अध्यक्ष होता है। सब जजों की सम्मिलित राय होने पर ही फैसला दिया जाता है। सुप्रीम कोर्ट का एक अध्यक्ष होता है। न्याय युआन् का अध्यक्ष ही सुप्रीम कोर्ट का भी अध्यक्ष होता है।

उपरोक्त तीन प्रकार की अदालतों में जजों के अलावे प्रोक्युरेटर (Procurators) भी होते हैं। सुप्रीम कोर्ट में प्रोक्युरेटर ब्यूरो होता है जो प्रोक्युरेटर जनरल के अधीन रहता है। हाईकोर्ट और जिला अदालतों में प्रोक्युरेटर आफिस होते हैं जो प्रधान प्रोक्युरेटर के अधीन रहते हैं। इन प्रोक्युरेटरों की भी योग्यता जज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हवाली ही होती है। फौजदारी मुकद्दमे जब अदालत में दायर होते हैं तो यह प्रोक्युरेटर का ही काम होता है कि वह मुकदमे की प्रारंभिक जांच-पड़ताल करे और यह देखे कि मुकद्दमा चलने योग्य है या ख़ारिज होने के योग्य। प्रोक्युरेटर द्वारा सिफ़ारिश करने पर ही कि मुकद्दमा चलने योग्य है, जज मुकद्दमा सुनता और फैसला देता है। जांच-पड़ताल के बाद अगर वह मुकद्दमे को सच्चा नहीं पाता है तो कोर्ट में सिफ़ारिश करता है कि मुकद्दमा खारिज कर दिया जाय। प्रोक्युरेटर केवल पेश किए गए मुकद्दमों की ही प्रारम्भिक जांच-पड़ताल नहीं करता बल्कि जब कभी वह किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह करता या जब किसी अपराधी द्वारा आत्मसमर्पण किया जाता है तो वह इस प्रकार के मुकद्दमों की भी प्रारम्भिक जांच-पड़ताल करता है। प्रोक्युरेटर का खुली जांच-पड़ताल नहीं करता है और न मुद्दई तथा मुद्दालेह को ही इस जांच पड़ताल में वकील देने का अधिकार है। प्रोक्युरेटर को यह भी अधिकार है कि वह मुकद्दमे की सुनवाई में भाग ले और फौजदारी मुकद्दमों के फैसलों की तामील करावे।

केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के शासन-प्रबन्ध के किसी विभाग द्वारा अगर किसी नागरिक पर कोई ऐसी कार्रवाई की गई है जिसे वह नागरिक ग़ैरक़ानूनी समझता है तो वह उस विभाग के बड़े अफ़सर के पास अपील तथा क्षतिपूर्ति के लिये दरखास्त पेश कर सकता है। अगर उसे बड़े अफ़सर के फैसले से भी संतोष न हो या दरखास्त देने के दो महीनों के अन्दर उसे फैसला ही न मिले तो उसे अधिकार है कि वह उस सरकारी विभाग पर मुकद्दमा दायर करे और मुकद्दमे के साथ क्षति-पूर्ति का भी दावा करे। इस प्रकार के मुकद्दमे साधारण अदालतों में नहीं पेश होते बल्कि इसके लिये एक अदालत है जो शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अदालत (Administrative Court) कहलाती है, इस अदालत को सारे देश के शासन प्रबन्ध सम्बन्धी मुकदमों के फैसला करने का अधिकार है। इस अदालत की अपनी एक मंडली होती है और उसके एक अध्यक्ष होते हैं। इस अदालत में मुद्दई कोई नागरिक होता है और मुद्दालेह कोई शासन प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाला सरकारी अधिकारी। अदालत के सामने दोनों का दर्जा एक समान होता है। यहां मुकद्दमे की सुनवाई लिखित बयान द्वारा होती है। इस अदालत में खुला मुकदमा नहीं होता है और मुद्दई तथा मुद्दालेह वकील भी पेश नहीं कर सकते हैं। इसका फैसला अन्तिम होता है; अपील नहीं होती है। पर मुद्दई अगर अदालत के फैसले से संतुष्ट न हो तो उसी अदालत को पुनः विचार करने की प्रार्थना कर सकता है। अगर मुद्दई मुकदमा जीतता है तो उस सरकारी विभाग के अफ़सर को जो मुद्दालेह है निर्धारित कानून के अनुसार दंड मिलता है या उनके उपर विभाग द्वारा अनुशासन की कार्रवाई की जाती है।

चीन सरकार का नियन्त्रण युआन् का एक प्रधान काम है कि वह देखे कि कौन सरकारी अफ़सर गैरक़ानूनी तरीकों से अपना कर्तव्य करता है। इस काम की देख-भाल, नियन्त्रण युआन् के इन्सपेक्टरगण करते हैं। इन्सपेक्टरों की एक परिषद् होती है। अगर इस परिषद् में कोई इन्सपेक्टर किसी सरकारी अफ़सर पर गैरकानूनी तरीके से काम करने का दोषारोपण करता है और वह दोष प्रमाणित हो जाता है तब उस पर विचार करने और फैसला देने के लिये वह मुकद्दमा न्याय युआन् के अनुशासन रक्षक कमीशन (Disciplinary Commission) के पास भेज दिया जाता है। इस कमीशन को राजनीतिक पदों (Political offices) पर जो अफ़सर काम करते हैं उन्हें छोड़ सम्पूर्ण चीन के सभी सरकारी अफ़सरों पर लगाए गए अभियोगों का न्याय करने का अधिकार है। राजनीतिक पदों पर जो अफ़सर काम करते हैं उन पर लगाए गए अभियोग के न्याय करने का अधिकार क्वोमिन्ताङ् (चीन की राष्ट्रीय महासभा जिसके संरक्षण में चीन की वर्त्तमान सरकार है) के केन्द्रीय प्रधान दफ़्तर को है। कमीशन के दो विभाग हैं—केन्द्रीय और स्थानीय। केन्द्रीय विभाग राजधानी में स्थित हैं और उसे देश भर के 'रिकोमेंडेड एप्वांइटमेंट'*

*चीन में अच्छी नौकरियों के तीन विभाग हैं:—प्रथम सिलेक्टेड एप्वांइटमेंट। इसमें आठ दर्जे होते हैं। पहला दर्जा स्पेशल एप्वांइटमेंट कहलाता है और बकिये सात सिलेक्टेड एप्वांइमेंट। इस विभाग में मुशाहरा ४३० डालर से ८०० डालर तक है। दूसरा रिकोमेनडेड एप्वांइटमेंट। इसमें १२ दर्जे हैं और मुशाहरा १८० डालर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इससे ऊपर के दर्जे (सिलेक्टेड एप्वांइटमेंट) तथा केन्द्रीय सरकार के 'डेलिगेटेड एप्वांइटमेंट' दर्जे के अफ़सरों पर लगाए गए अनुशासन भंग सम्बन्धी अभियोग के न्याय करने का अधिकार है। स्थानीय विभाग प्रान्तों और म्युनिसिपैलिटियों में है, इसे प्रान्तों और म्युनिसिपैलिटियों के 'डेलीगेटेड एप्वांइटमेंट' दर्जे या इससे नीचे के दर्जों के अफ़सरों और कर्मचारियों पर लगाए गए अभियोग के न्याय करने का अधिकार है। केन्द्रीय कमीशन में कमिश्नरों की एक परिषद् होती है और परिषद का एक अध्यक्ष होता है। किसी मुकद्दमे के लिये सात कमिश्नरों का कोरम आवश्यक है। स्थानीय कमीशन में भी कमिश्नर होते हैं जो स्थानीय अदालतों के जजों में से चुने जाते हैं। मुकद्दमों के फैसले के लिये पांच कमिश्नरों का कोरम ज़रूरी होता है। अगर मुकद्दमा फौजदारी ढग का होता है तो पहिले अभियुक्त को साधारण फौजदारी अदालत में न्याय के लिये भेजा जाता है। फौजदारी अदालत उसे चाहे सजा दे या बरी कर दे पर जब तक उसे नागरिक अधिकार है कमीशन उसे अनुशासन सम्बन्धी सजा दे सकती है। यानी अभियुक्त फौजदारी कचहरी में भी सजा पा सकता है और कमीशन द्वारा अनुशासन सम्बन्धी सजा भी। फौजदारी कचहरी से बरी हो जाने पर भी अगर कमीशन अनुशासन भंग सम्बन्धी दोष पाता है तो उसे सजा देता है। आफिस से हटा दिया जाना, ओहदा तोड़कर नीचे कर दिया जाना, मुशाहरा घटा देना आदि अनुशासन सम्बन्धी सजाएं हैं। किसी सरकारी आफिस से हटा दिये जाने पर वह कम से कम एक वर्ष तक किसी सरकारी आफिस में काम नहीं पा सकता है।

जनता को सरकारी अफ़सर की अनावश्यक छेड़-खानी से बचाने के लिये बड़े अच्छे क़ानून हैं। अगर कोई मुजरिम अदालत के वारंट से या बिना वारंट के गिरफ़्तार किया जाता है तो गिरफ़्तार करने वाले अफ़सर द्वारा वह निश्चित स्थान पर ले जाने के चौबीस घंटों के अन्दर अदालत के सामने न्याय के लिये पेश किया जाना चाहिए। जांच करने के बाद वह तुरत रिहा कर दिया जाना चाहिए अगर कोई ऐसा कारण न हो जिससे मुजरिम को रोक रखना ज़रूरी हो। अगर अदालत के अलावे किसी दूसरे सरकारी विभाग द्वारा कोई मुजरिम फौजदारी जुर्म के लिये गिरफ्तार किया जाता है तो उसे सरकारी विभाग द्वारा वह निश्चित स्थान पर ले जाने के चौबीस घंटों के अन्दर अदालत में जांच के लिये उपस्थित किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो मुजरिम की तरफ से कोई भी नागरिक उस जगह की जिला अदालत में अर्जी पेश कर सकता है कि निश्चित क़ानून के अनुसार मुजरिम को तुरन्त न्याय के लिये अदालत में उपस्थित किया जाय।

युद्ध काल में जो भाग शत्रु के अधीन हो गये थे या युद्ध-क्षेत्र घोषित किए गए थे वहां से विभिन्न कारणों से ज़िला अदालतों के हट जाने के कारण वहां के लिये मजिस्ट्रेटों को ही न्याय करने का अधिकार भी दिया गया था। पर अपील सुनने के लिये प्रबन्ध यह किया गया था कि अगर उस क्षेत्र में कोई हाईकोर्ट या शाखा हाईकोर्ट नहीं है जहां कि लोग अपील कर सकें तो उस क्षेत्र के किसी दूसरी जिला अदालत को अपील सुनने का अधिकार दिया गया था। अगर उस क्षेत्र में कोई जिला अदालत है न कोई हाईकोर्ट या शाखा-हाईकोर्ट ही तो उसके निकट के दूसरे इलाके में स्थित जिला अदालत या हाईकोर्ट या शाखा-हाईकोर्ट (जो जहां है) को अपील सुनने का अधिकार दिया गया था। इस प्रबन्ध के अलावे घूमते फिरते कोर्ट की भी स्थापना की गई थी। इस अदालत की निगरानी हाईकोर्ट के जज करते थे। सबसे अन्तिम अपील सुनने के लिये सुप्रीम कोर्ट की शाखाएं भी सुविधाजनक स्थानों पर खोली की गई थीं।

चीन की अदालतों में भी वकील होते हैं। स्कूल के स्नातक और अध्यापक तथा पेंशन पाए हुए जज या प्रोक्यूरेटर आदि ही वकील हो सकते हैं। कोर्ट में वही वकालत कर सकता है जिसे सरकार न्याय शासन प्रबन्ध विभाग ने वकालत करने की दी है और जिसने हाईकोर्ट में अपना नाम दर्ज लिया है तथा जो नियमानुसार स्थानीय वकालत (Local Bar Association) का सदस्य हो

से ४०० डालर तक है। तीसरा डेलीगेटेड एप्वांइटमेंट। इसमें सोलह दर्जे हैं और मुशाहरा ५५ डालर से २०० डालर तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कोई मुकद्दमा प्रारम्भिक जांच पड़ताल के बाद ठीक माना जाता है और अदालत के सामने न्याय के लिये पेश किया जाता है तब मुद्दई और मुद्दालेह मुकद्दमे की पैरवी के लिये वकील रख सकते हैं। मुद्दालेह का प्रतिनिधि, मुद्दालेह का पति (अगर मुद्दालेह स्त्री हो) या पत्नी (अगर मुद्दालेह पुरुष हो), कुल के लोग जो मुद्दालेह के साथ रक्त का सम्बन्ध रखते हैं, तीन पीढ़ी के अन्दर के सगोत्र, परिवार का मुखिया या उसका कोई सहृदय मुद्दालेह के लिये वकील दे सकता है। कोई भी आदमी तीन से अधिक वकील एक मुकद्दमे में नहीं रख सकता। वकील अपने नज़रबन्द मुवक्किल के साथ मुकद्दमे के सम्बन्ध को लेकर मुलाकात या पत्र-व्यवहार कर सकता है। पर अगर उस वकील पर इस प्रकार के सन्देह का काफ़ी प्रमाण हो कि वह मुवक्किल या मुवक्किल के साथ के उसी मुकद्दमे के दूसरे अभियुक्तों के साथ मिलकर षड़यन्त्र कर रहा है या गवाह को झूठ-मूठ गवाही देने या दी हुई गवाही को बदलने कहता है तो उसमे अभियुक्त के साथ भेंट करने या पत्र व्यवहार करने का अधिकार छीन लिया जाता है। किसी भी वकील को कोर्ट में किसी मुकद्दमे की तरफ़ से वकालत करने के पहिले उसे अदालत में यह पेश करना पड़ता है कि मुद्दई या मुद्दालेह ने उसे अपनी ओर से मुकद्दमे की पैरवी करने का अधिकार दिया है। पांच वर्ष से अधिक सजा पाये हुए मुद्दालेह को अगर उसने अपने मुकद्दमे की अपील की है और वह ग़रीब है तथा वकील नहीं रख सकता है तो अदालत उसके लिये वकील का प्रबन्ध करती है और वकील को सरकार की ओर से मेहनताना मिलता है।

चीन में दो प्रकार के क़ानून हैं—एक न्याय सम्बन्धी (Judicial) और दूसरे शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी (Administrative)। न्याय सम्बन्धी कानून में फौजदारी और दीवानी कानून तथा नियम आते हैं जो विभिन्न अदालतों द्वारा लागू किये जाते हैं और जिनकी निगरानी चीन सरकार की न्याय युआन करती है। शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कानून राजस्व, उद्योग-धन्धे, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक उन्नति, युद्ध, वैदेशिक मामलों के ऊपर लागू होते हैं और इनके लागू करने का अधिकार अदालतों को नहीं बल्कि राष्ट्रीय सरकार की शासन-प्रबन्ध युआन के विभिन्न विभागों को है। ये विभाग चाहे दर्जे में छोटे हों या बड़े; इन पर साधारण अदालतों में कोई भी नागरिक न तो दीवानी मुकद्दमा ला सकता है और न सरकारी प्रोक्युरेटर फौजदारी मुकद्दमा ही। इनके द्वारा किए गए जुल्मों से छुटकारा पाने का उपाय यह है कि जिस विभाग ने जुल्म किया है उसी विभाग के बड़े अफ़सर के पास शिकायत की जाय और उनके द्वारा शिकायत की जांच न करने पर शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी अदालत में मुकदमा पेश किया जाय।

युद्ध के पहिले बहुत से विदेशी राष्ट्रों को चीन में अतिरिक्त प्रादेशिक अधिकार (Extra-territorial rights) प्राप्त थे। इसके अनुसार अधिकार प्राप्त राष्ट्रों के चीन स्थित नागरिक चीन में किसी भी प्रकार का जुर्म करके भी चीनी न्याय क्षेत्र से बाहर ही रहते थे। चीनी अदालतों में उनपर मुकद्दमा नहीं चल सकता था। उन्हींके देश के काउन्सल के सामने उन पर मुकद्दमा चलता था। इस कारण न्याय ठीक तरह से नहीं होता था। साथ साथ यह सरासर अन्याय था कि चीन के साथ मित्रता रखने वाले कुछ विदेशी राष्ट्रों को तो यह अधिकार हो और कुछ को न हो। और सब से बड़ा अन्याय यह था कि विदेशी राष्ट्रों को तो चीन में यह अधिकार हो पर चीन को यही अधिकार उन राष्ट्रों में न हो। दर असल जब कि चीन बहुत कमजोर हो गया था विदेशी शक्तिशाली राष्ट्रों ने चीन से संगीन के बल पर ये अधिकार ले लिये थे। पर इस युद्ध काल में ही सब विदेशी राष्ट्रों ने यह अधिकार छोड़ दिया और इस प्रकार अब देशी तथा विदेशी नागरिक चीनी न्याय क्षेत्र के भीतर आ गये हैं और अब बिना भेद-भाव, ऊँच-नीच का विचार किए सब पर समान भाव से चीनी अदालत में मुकदमा चल सकता है। किसी भी देश की सरकार तभी पूर्ण सभ्य और उन्नतिशील कही जा सकती है जब उसके यहाँ न्याय करने का ठीक प्रबन्ध हो और गरीब-अमीर सबों के लिये न्याय कराना सुलभ हो। चीन की सरकार अपने यहां अच्छी से अच्छी न्याय-प्रणाली कायम करना चाहती है। पर विभिन्न कारणों से वह अब तक वैसा नहीं कर सकी है लेकिन आशा की जाती है कि इस द्वितीय महायुद्ध के बाद वह निश्चय ही इस दिशा में कदम बढ़ाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत साहित्य में वक्रोक्तिवाद

साहित्याचार्य श्री० जनार्दन मिश्र 'पंकज' शास्त्री बी० ए०, साहित्यरत्न

संस्कृत साहित्य का इतिहास बड़ा ही सम्पन्न है, उसका भांडार अनन्त और अक्षय है। 'वक्रोतिः काव्य जीवितम्' के मन्त्रद्रष्टा आचार्य कुन्तल संस्कृत साहित्य में कुन्तल, कुन्तक और कुन्तलक तीनों नामों से अभिहित हुए हैं। किन्तु आचार्य महिम भट्ट, विद्याधर और भट्ट गोपाल के मतानुसार आप कुन्तक नाम से ही विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। डा० बेलवल्कर को अनुसन्धान के सिलसिले में 'वक्रोक्ति जीवित' की एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई थी। दुर्भाग्यवश प्रति अधूरी निकली, फिर भी उससे आचार्य कुन्तक और उनकी साहित्यिक कृतियों का आंशिक स्पष्टीकरण हो ही जाता है।

आचार्य कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्ति जीवित' में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य-नाटक-अलंकारादि ग्रंथों से बहुत कुछ उदाहरण लिये हैं। उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उन ग्रंथों की रचना वक्रोक्ति-जीवित से पूर्व अवश्य हो चुकी है।

वक्रोक्तिकार पर भामह का स्पष्ट प्रभाव है। आचार्य भामह को कुन्तक के पथ-प्रदर्शक होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने खुले शब्दों में वक्रोक्ति को प्रधानता दी है और कहा है कि, वक्रोक्ति ही सभी अलंकारों का मूल स्रोत है और वक्रोक्ति के बिना काव्य हो ही नहीं सकता। कदाचित उनकी दृष्टि में वक्रोक्ति वाग्वैदग्ध्य भणिति—अर्थात बोलने की एक विशिष्ट एवं विचित्र-भङ्गी है। यही कारण है कि भामह ने स्वभावोक्ति, हेतु, सूक्ष्म, लेश, प्रभृति को अलंकार नहीं माना है। साधारण स्वाभाविक घटनाओं को जिन रूपों में वे घटी हैं, हूबहू उन्हीं रूपों में कह देने में भङ्गि वैचित्र्य बिलकुल नहीं रह जाता। उदाहरणार्थ, चांद निकल आया, सूर्योदय हुआ, कमल खिल उठे—इस तरह के वाक्य काव्य नहीं हो सकते। कारण स्पष्ट है। इनमें भङ्गि-वैचित्र्य नहीं है। आचार्य कुन्तक के वक्रोक्तिवाद का मूलाधार भामह द्वारा वर्णित एवं स्वीकृत वक्रोक्ति है, फिर भी वक्रोक्ति को व्यापक—विस्तृत रूप में पुनर्जीवित और पूर्ण विकसित करने का उसका प्रयास सफल और श्लाघ्य अवश्य कहा जायगा। वक्रोक्ति का बीज अथवा द्विदल अंकुर उन्हें भामह में अवश्य मिला, लेकिन उसको पल्लवित, पुष्पित और फलित रूप में सभ्य संसार के सामने साहित्यिक रंगमंच पर लाने वाले आचार्य कुन्तक ही हैं। बहुत कुछ सम्भव था, यदि कुन्तक ने भामह के वक्रोक्ति वाले बिरवे को अपने साहित्यिक प्रस्वेद-जल से सींचा न होता, सुपुष्ट और सुदृढ़ न किया होता, तो आज हमें उसका पल्लवित और पुष्पित रूप देखने को न मिलता। सच तो यह है कि भामह की इस बुनियाद पर उसने अपनी कई मंजिल वाली इमारत खड़ी कर दी। वक्रोक्तिवाद की अभ्रंकष अट्टालिका आज भामह की उसी भित्ति पर प्रतिष्ठित और मर्यादित है।

साथ ही कुन्तल ने अपने घोर अध्यवसाय और अटूट लगन के साथ वक्रोक्ति का वेश-विन्यास किया, उसे सजाया, संवारा और उसमें मौलिकता और विशेषता लाने की भरपूर चेष्टा की। जहां तक भामह की दूरदर्शिता काम कर सकी. उन्होंने अपनी वक्रोक्ति को, उक्ति वैचित्र्य की व्यापक शक्ति को अलंकारों की संकीर्ण परिधि तक ही सीमित कर रखा था। किन्तु उसमें नवीनता का नया अध्याय कुन्तक ने ही जोड़ा। इन्होंने ही उसमें नक्काशी का काम किया है—बेलबूटे काढ़े हैं। बेलबूटों से हमारा तात्पर्य है कि उन्होंने वक्रोक्ति का व्यापक सिद्धान्त कायम किया। उसमें गुण, रीति, रस-ध्वनि सभी को समाविष्ट किया है।

भामह और दण्डी ने वामन अथवा रुद्रट की तरह वक्रोक्ति को एक शब्दालंकार के रूप में स्वीकार नहीं किया है। रुद्रट के मतानुसार तो वक्रोक्ति एक प्रकार का अलंकार ही है। इसमें एक विशेषता है। इस अलंकार में शब्द श्लेष के कारण अथवा काकु की वजह वक्ता जिस अर्थ में शब्द प्रयोग करते हैं, श्रोता उसका विपरीत अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। जैसे—

अहो केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा गुण निर्मिता।
त्रिगुण श्रूयते बुद्धिर्नतु दारुमयी क्वचित।

यहाँ वक्ता का प्रश्न है—"किसने तुझे ऐसी दारुण बुद्धि दी है?" श्रोता ने इसका विपरीत अर्थ ग्रहण किया और उत्तर दिया—"बुद्धि त्रिगुण है, ऐसा सुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारु निर्मित (काठ की बनी हुई है) ऐसा तो कभी
हुआ।"

सम्भवतः, बाद में चलकर भामह की इस उक्ति को
वर्ती लोगों ने विभिन्न अर्थ में ग्रहण किया। दण्डी ने
ष्ट शब्दों में कहा है कि स्वभावोक्ति के अतिरिक्ति सभी
लंकार ही वक्रोक्ति मूलक हैं। उन्होंने वक्रोक्ति को, यही
रण है, कि अलंकार-सामान्य वचन कहकर निर्दिष्ट
या है। अथच अलंकार—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति
स्वतन्त्र घोषित किया है। यह आनन्द वर्द्धनोक्त
क्षितवाच्य-व्यङ्ग्य के अनुरूप है।

वक्रोक्तिजीवित में ध्वनिकार आनन्द वर्धन और
ब्द नाट्यकार कवि राजशेखर का उल्लेख है। साथ
कुन्तक ने राजशेखर के 'बालरामायण' और 'विद्ध-
भंजिका' नाटकों से बहुत से उदाहरण लिये हैं।
शेखर ९वीं सदी के अन्त और १०वीं के आरम्भ
र्त्तमान थे, इस पर यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका
कुन्तक संभवतः अभिनव गुप्त के समकालीन और
शताब्दि के अन्त अथवा एकादश के प्रारम्भ में
होंगे।

आचार्य महिम भट्ट अभिनव गुप्त के परवर्त्ती हैं और
कारण है कि उनके 'व्यक्तिविवेक' में अभिनव गुप्त
उल्लेख मिलता है।

आचार्य रुय्यक, जो सम्भवतः १२वीं सदी में
मान थे, व्यक्तिविवेक-कार की मार्मिक आलोचना
है। अतएव हम इस निष्कर्ष पर अनायास पहुँच
हैं कि महिम भट्ट ग्यारहवीं सदी के अन्त में और
कुन्तल उसके मध्य में रहे होंगे।

सम्भवतः आचार्य कुन्तल ध्वनिवाद के सर्व-
महारथी थे। किन्तु पश्चात-ध्वनि सिद्धान्त के
होने के कारण उनका वक्रोक्तिवाद टिक न सका।
भी उनकी साहित्य-मर्मज्ञता और मार्मिक आलोचना
नीय है। संस्कृत-साहित्य की आचार्य-परम्परा में
दिनों वक्रोक्ति एक नवीन और अद्भुत वस्तु थी।
भामह के मस्तिष्क की उपज होने पर भी कुन्तक के
साहित्यिक क्षेत्र में पनपी, पली और फैली। अपने
आचार्य से बल-पुष्टि पाकर उस वक्रोक्तिवाद ने
साहित्य की निर्बाध गति से बहने वाली धारा का
एक नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया। तत्कालीन
आचार्यों को अवाक् और हतबुद्धि कर देने वाली इस वक्रोक्ति पर भामह, दण्डी और वामनादि आचार्य-पुंगवों ने साधुवाद दिया। उन्होंने एक स्वर से वक्रोक्ति की प्रशंसा की और मान्यता स्वीकार कर ली। आचार्य मम्मट, रुद्रट और उनके अनुयायियों द्वारा भी इसकी प्रशंसा-प्रतिष्ठा हुई।

साधारणतः वक्रोक्ति का अर्थ वक्र-उक्ति अर्थात शब्द और अर्थ को सुशोभित करने वाली कवि-कौशल द्वारा वर्णित साधारण उक्ति से भिन्न एक विशिष्ट शैली है। अङ्गरेज़ी में इसे एक शब्द में Crooked speech कह सकते हैं। इसका अर्थ काकु द्वारा स्पष्ट होता है। इसे कुछ लोग Pretended speech भी कहते हैं। इसे डा० सुशील कुमार के शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं—

"The Vakrokti is a mere poetic figure based upon a play on words and occurs as a kind of pretended speech in which a sentence or word spoken in one sense by a speaker is taken in another sense by another speaker."

इसे हम आगे भी स्पष्ट कर आये हैं। वास्तव में उच्चारित शब्द अथवा कोई वाक्य जब काकु (एक विशेष प्रकार की कण्ठ-ध्वनि) के द्वारा अर्थान्तर में संक्रमित हो जाता है और श्रोता उसका पूर्व अर्थ ग्रहण नहीं कर लेता है, वक्रोक्ति कहलाता है। इसके शब्द दो अर्थ ग्रहण करते हैं, अतएव इसे द्वि-अर्थक (द्वयर्थक) भी कहते हैं। इस प्रकार वक्रोक्ति जब तब श्लेष हो जाती है। स्मरण रहे, भामह और कुन्तक के पूर्व भी वक्रोक्ति ९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में रचित रत्नाकर की 'वक्रोक्ति पंचाशिका' में पायी जाती है। फिर भी इतना हम कह सकते हैं कि यह इस रूप में नहीं थी, जैसा कि 'राघव-पाण्डवीय' में इसका वर्णन हुआ है। सुबुद्धि और बाण भट्टादि वक्रोक्ति प्रयोग में निष्णात माने जाते हैं।

'वक्रोक्ति जीवित' एक असमाप्त ग्रंथ है। यों तो उसमें चार उन्मेष हैं, लेकिन कलकत्ता ओरियन्टल सीरीज से प्रकाशित पुस्तक में तीन ही उन्मेष हैं। ग्रंथ के अन्त में लिखा है—'असमाप्तोऽयमुन्मेषः ग्रन्थश्च'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके—कारिका, वृत्ति और उदाहरण—ये ही तीन अंग हैं। आये हुए सभी उद्धरण पूर्व रचित ग्रन्थों के ही हैं।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में वक्रोक्ति का बट-बीज अपने सूक्ष्मरूप में वर्त्तमान है। उक्त रामायण के किष्किन्धाकांड में राजमद में भूले हुए श्रीराम की सहायता से विमुख सुग्रीव के प्रति लक्ष्मण की निम्न-लिखित उक्ति आज भी विद्वानों के बीच समादृत है—

"नहि स संकुचितः पन्थाः येन वाली हतो गतः।"

वस्तुतः लक्ष्मण की उक्ति आचार्य कुन्तक की वक्रोक्ति को अक्षरशः चरितार्थ कर रही है। आज इटली निवासी बेनडिटो क्रोचे (Benditto Crose) को जिस अभिव्यञ्जनावाद (Expressionism) का मन्त्रद्रष्टा या प्रवर्त्तक माना जा रहा है, इस भारतीय वक्रोक्तिवाद से वे पूर्ण प्रभावित और उसके ऋणी हैं। यह वक्रोक्ति—जिसे हम वाग्वैदग्ध्य या वाग्वैचित्र्य भी कहते हैं, कितनी प्राचीन है, सुविज्ञ पाठक उसे अच्छी तरह समझ गये होंगे।

आचार्य महिम भट्ट ने 'व्यक्तिविवेक' (पृ० २८) में अधोलिखित कारिका को कुन्तल के नामोल्लेख के साथ ही उद्धृत किया है। वह यह है—

'शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापार शालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विद ह्लादकारिणी।

(वक्रोक्ति जी० १ ७)

उपर्युक्त श्लोक से यह स्पष्ट है कि शब्द और अर्थ अपने सम्मिलित अर्थ में काव्य है। किसी किसी के मत से कवि कौशल कल्पित कमनीयतातिशय शब्द ही काव्य है, और किसी किसी की राय में चमत्कार उत्पन्न करने वाला रचना-वैचित्र्य ही काव्य है।

आचार्य कुन्तल ने वक्रोक्ति को स्पष्टरूप से काव्य का जीवन या आत्मा स्वीकार कर लिया है। उन्होंने वक्रोक्ति जीवित के प्रथम उन्मेष के १०वें श्लोक में वक्रोक्ति को वैदग्ध्य भङ्गी-भणिति कहा है। विदग्ध का भाव है—वैदग्ध्य (कवि कर्म-कौशल) और उसकी भङ्गी अर्थात् विच्छित्ति द्वारा प्रकटीकृत भणिति ही वक्रोक्ति है।

भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' लिखकर कुन्तल का रास्ता साफ़ कर दिया था। वस्तुतः इस पर तर्क की दीवारें खड़ी की जा सकती हैं। वाचक और वाच्य अर्थात् शब्द और अर्थ की सम्मिलित सत्ता ही काव्य है, न तो केवल शब्द को ही काव्य कह सकते हैं और न केवल अर्थ को ही। शब्द और अर्थ—इन्हीं दोनों के बीच आह्लादकारित्व का बीज निहित है। अथच इन दोनों का युगवत् मिलन ही काव्य की संज्ञा पाता है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि-कौशल-कल्पित कमनीय शब्द समूह या वैचित्र्य के द्वारा प्रकाशित होने वाला चमत्कारप्रद अर्थ—किसी भी दशा में काव्य नहीं कहला सकता। कुन्तल ने तो साफ़ शब्दों में कहा है,—'प्रतिभा की दरिद्रता के कारण जो केवल शब्दाडम्बर या शब्दच्छटा की माधुर्य्य सृष्टि करना चाहते हैं वे वास्तव में काव्यत्व की यथार्थ श्री-सम्पत्ति प्रकाशित नहीं कर सकते।

इस प्रसङ्ग में हम सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त महाशय के शब्दों का सारांश देते हुए 'मालती माधव' नाटक से एक श्लोक उद्धृत किये देते हैं। कोई कापालिक किसी सुन्दरी नायिका का वध करना ही चाहता है। उस समय कोई निकटस्थ दर्शक नायिका के असाधारण सौन्दर्य्य का वर्णन कर रहा है।

"असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं
निरालोकं लोकं मरण शरण बान्धवजनं
अदर्पं कन्दर्पं जननयननिर्माणसफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधाजतृं व्यवसितः।

इस श्लोक में कवि के चित्त में नायिका के मारे जाने पर संसार का कितना बड़ा नुकसान होगा, वर्णन करते हुए एक-एक बात की याद आ रही है, साथ ही उसके चित्त में यह भाव भी उठ रहा है कि मैं जो जो हानियाँ बतला रहा हूँ, वे ही पर्याप्त नहीं हैं। पहले उसके चित्त में यह भाव उठा कि नायिका यदि मारी गई तो यह संसार ऊपर हो जायगा। किन्तु यह भाव ज्यादा देर तक टिक न सका। दूसरा भाव उठा कि, यदि ऐसा हुआ तो त्रिभुवन का एकमात्र रत्न ही चोरी चला जायगा, पृथ्वी का प्रकाश ही मिट जायगा। आँखों की आवश्यकता ही न रह जायगी। संसार सूखा जंगल हो जायगा। इस प्रकार जल-तरंगवत अनेक भाव उठते जा रहे हैं। यदि कवि इतना ही कहकर रह जाता कि उसके मरते ही उसके बन्धु-बान्धव मृत्यु-शय्या पर पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[...]ते, तो इसमें फिर कोई चमत्कार ही नहीं रहता। [...] भाव के बाद दूसरा भाव उठकर जो आकांक्षा उत्पन्न [...], और नवीन भाव उठकर उसकी पूर्त्ति न कर [...], तो इसमें मनोहरता ही क्या रह पाती।

काव्य का विशेष लक्षण बतलाते हुए वक्रोक्तिकार ने [...] और अर्थ के निरूपण में निम्नलिखित श्लोक [...] है:—

"वाच्योऽर्थोवाचकः शब्दः प्रसिद्धमिति यद्यपि।
तथापि काव्यमार्गेऽस्मिन् परमार्थोऽयमेतयोः।
प्र० उ०, ८ श्लोक।

जो वाचक है, वही शब्द है, जो वाच्य (अभिधेय) [...] अर्थ है। शब्दार्थ का वाच्यत्व और वाचकत्व [...] है, तथापि अलौकिक काव्य मार्ग में—कवि [...] में यह उन दोनों (शब्द और अर्थ) का वक्ष्य-[...] लक्षण ही है। वक्ष्यमाण इसलिये कि वह शब्द [...] में विवक्षितार्थ—एक वाचक है। क्योंकि अन्य [...] वाचकों के बावजूद भी विवक्षित होने के कारण [...] वाचक है।

दूसरा उद्धरण कविकुल-तिलक कालिदास के प्रबन्ध [...] 'कुमार सम्भव' से लिया गया है। निम्नलिखित [...] साहित्याध्यायियों के लिये सुपरिचित और प्राचीन [...] होगा।

"द्वय गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागम-प्रार्थनया कपालिनः
कला च सा कान्तिमती कलावत—
स्तवमस्य लोकस्य च नेत्र कौमुदी।

[...]—कपाली (महादेव) के सम्पर्क में आने से [...] ही दो वस्तुएँ शोचनीय हो गई हैं। अर्थात ये ही [...] ऐसी हैं, जो हम लोगों के दुःखी होने का कारण [...] चन्द्रमा की कला और दूसरी सारे संसार की [...]-स्वरूप तुम। महादेव के सहस्र नाम हैं, [...] कपालिन् शब्द का प्रयोग कितना सार्थक है, [...] तो दुःख का विषय है कि ऐसी सुन्दर वस्तु [...] कपाली के पास। पहले तो शोक का एक [...] था। और वह यह कि महादेव के ललाट पर [...] को देखकर देखने वाले ठंढी आहें भरते थे। [...] तो शोक करने का दूसरा कारण भी उपस्थित [...] वह कि सारे जगत् की नेत्र-ज्योत्स्ना सम पार्वती भी इसी से आ मिली। पहले उतना दुःख नहीं होता था जितना कि अब, इस समय हो रहा है। 'सम्प्रति शोचनीयतां' में कितना चमत्कारित्व निहित है, यह साहित्य-रसिक पाठकों से अविदित नहीं। फिर भी दुःख कम हो सकता था यदि ये दोनों बलात पकड़कर लाई जातीं। किन्तु, अफसोस ये दोनों ही इच्छापूर्वक आकर कपाली से मिली हैं। प्रार्थना, इस शब्द के द्वारा इस कथन में कितनी रमणीयता आ गई है। 'सा च त्वञ्च'—से स्पष्ट है कि पार्वती चन्द्रकला के समकक्ष है—उससे कुछ भी कम नहीं। इससे भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि निपुण काव्य शिल्प की रचना करते समय ऐसे शब्दों का संचयन होना चाहिये, जिससे कवि का मनोभाव यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हो सके।

कुन्तल के शब्दों में—

"कवि विवक्षित विशेषाभिधानक्षमत्व मेव वाचकत्व-लक्षणं, यस्मात प्रतिभायां तत्कालोल्लिखितेन केनचित परिस्पन्देन परिस्फुरन्तः पदार्थाः प्रकृत प्रस्ताव समुचितेन केनचिदुत्कर्षेण वा समाच्छादित स्वभावाः सन्तो विवक्षा विधेयत्वेनाभिधेयता पदयो मवतवन्तः तथाविध विशेष प्रतिपादन समर्थेन अभिधानेन अभिधीय मानाश्चेतन चमत्कारिताम् आ पद्यन्ते।"

इसी एक पंक्ति में आचार्य कुन्तल ने बहुत सी सूक्ष्म बातों का आभास दे दिया है। पहली बात यह कि काव्य-रचना करते समय बाह्य जगत के जो जो रमणीय पदार्थ कवि के चित्त में रूप ग्रहण करते हैं, वे नितान्त ही बहिर्वस्तु के अनुरूप नहीं होते। अङ्गरेजी में कहा है, —The external objects take an ideal or emotional form. इस प्रकार के अलौकिक रूप में उपस्थापित विषय वस्तु बाहर की परिदृश्यमान जड़ वस्तु से बहुत अंश में भिन्न है। यह कवि के भावलोक के ही अनुरूप है।

अब पाठक गौर करें तो पूर्वालोचित कालिदास के 'कुमार-संभव' वाले श्लोक में चमत्कारित्व और रमणीयत्व की पराकाष्ठा नज़र आयगी। शिव वाचक सहस्र शब्दों के रहते हुए भी 'कपाली' शब्द बीभत्सरसावलम्बन विभाव वाचक शब्द है। यहाँ वाचक वक्रता है। 'सम्प्रतिद्वय' से ध्वनित है कि चन्द्रकला और नेत्र कौमुदी पार्वती—दो अति रमणीय वस्तुएँ दुर्व्यसन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित्व से अर्थात् कुसंग में पड़कर ही शोचनीय हो गई हैं। यहां 'प्रार्थना' शब्द कितना गूढ़, सार्थक और विवेच्य है। यहां काकतालीय न्याय से नहीं, बल्कि स्वेच्छा से ही कान्तिमती चन्द्रकला और जगत की नेत्र-कौमुदी पार्वती का समागम हो गया है यहां कवि विवक्षित विशेषाभिधान क्षमत्व वाचकत्व-लक्षण है।

शब्दार्थ के साहित्य-सम्बन्ध में कुन्तक का कहना है कि अर्थ-ज्ञान नहीं रहने पर भी, साधुकाव्य का शब्द-विन्यास ही ऐसा होता है कि पढ़ते ही उसमें सौंदर्य्य छलक उठता है और संगीत-लहरी की भांति हृदय को आनन्द रस-प्लावित कर डालता है।

आचार्य कुन्तल ने अपने वक्रोक्ति जीवित में सामान्यतः छः प्रकार की वक्रताओं का उल्लेख किया है और उनमें भी अवान्तर भेद किया है।

(क) वर्ण विन्यास-वक्रता, (घ) प्रत्यय-वक्रता,
(ख) पद-वक्रता, (ङ) वाक्य-वक्रता,
(ग) पद-पूर्वार्द्ध वक्रता (च) प्रकरण-वक्रता
और (छ) प्रबन्ध-वक्रता
(अवान्तर)

सौंदर्य्योपादक धर्म की आलोचना करते हुए कुन्तल ने एक अन्तरंग और दूसरे बहिरंग धर्म की आलोचना की है। उनमें अन्तरंग धर्म का नाम सौभाग्य और बहिरंग धर्म का नाम लावण्य है। इन्हें अङ्गरेजी में Subjective और objective aesthetic quality भी कह सकते हैं।

प्रतिभा-व्यापार के फलस्वरूप जो चेतन-चमत्कारित्व पैदा होता है, उसे सौभाग्य और बहिरंग-सन्निवेष-विशेष में जो सौंदर्य्य प्रकट होता है, उसे लावण्य कहते हैं। वाक्य अथवा अर्थ और वाचक या शब्द दोनों में अन्तरंग और बहिरंग सौन्दर्य्योपादक धर्म दिखाई पड़ता है।

'वक्रोक्ति जीवित' पर विहंगम दृष्टि रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कुन्तक ने वामनाचार्य की दोनों और दण्डी की तीनों रीतियों को स्वीकार कर लिया है। उन्होंने कहा है कि किसी भी देश विशेष पर रीति का नाम चल नहीं सकता। कारण, रीति देश-विशेष का धर्म नहीं है। कवि-स्वभाव के भेद से रीति-विभिन्नता हुआ करती है। साधारण तौर पर रीति तीन प्रकार की हो सकती है।

(क) सुकुमार, (ख) विचित्र और (ग) तदुभयात्मक मध्यम।

कुन्तक की दृष्टि में कवि कालिदास की काव्य-रचना सुकुमार रीति पर है। इसकी विशेषता यह है कि कवि ने अपने वाक्यों को विच्छित्तिशाली करने का कहीं भी आयास या चेष्टा नहीं की है। कुन्तक की दृष्टि में विचित्र रीति में काव्य रचना अत्यन्त दुःसाध्य है।

वक्रोक्ति जीवित का प्रथम उन्मेष निम्नलिखित श्लोक से आरम्भ होता है—

'वन्दे कवीन्द्र वक्त्रेन्द्र लास्य मन्दिर नर्तकीम।
देवी सूक्ति परिस्पन्द सुन्दराभिनयोज्ज्वलाम्।

आगे चलकर वह भामह की भांति ही काव्य का प्रयोजन बतलाता है और अपनी इस कृति को काव्यालंकार बतलाता है। वक्रोक्ति को स्पष्ट करता हुआ कुन्तक 'स्वभावोक्ति' को अलंकार मानने वालों की धज्जियां उड़ाता है। वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा स्वीकृत करते हुए वह बतलाता है कि यह वक्रोक्ति ही है, जो काव्य शरीर में प्राण फूँक सकती है। इससे रहित तो काव्य हो ही नहीं सकता। वह कुछ काव्योचित गुणों का भी उल्लेख करता है, जिनमें ओज, लावण्य और आभिजात्य हैं। बाद में वह वैचित्र्य मार्ग, सुकुमार मार्ग और उभयसबलित मार्ग का उल्लेख करता है।

द्वितीय उन्मेष वर्णविन्यास-वक्रता लेकर बढ़ता है। संभवतः कुन्तक की वर्णविन्यास-वक्रता प्राचीन आचार्यों के अनुप्रास का रूपान्तर अथवा मिलता-जुलता रूप ही है। उनका कहना है कि उपनागरिका या अन्य वृत्तियां वर्णविन्यास-वक्रता से ही साम्य रखती हैं। यमक भी एक प्रकार की वर्णविन्यास वक्रता ही है।

तृतीय उन्मेष में वक्रोक्तिकार वाक्य-वैचित्र्य-वक्रता पर प्रकाश डालता है। इस सिलसिले में वह वस्तु-वक्रता को भी लेकर आगे चलता है। उसकी दृष्टि में वस्तु-वक्रता सहज या आहार्य हो सकती है। साथ ही सहज और आहार्य की गुत्थियां सुलझाना इस उन्मेष में कठिन हो गया है। आगे चलकर वक्रोक्तिकार रसवद्, प्रेय, ऊर्जस्वि, समाहित, उदात्त को अलंकारों की पंक्ति से दूर रखना देना चाहता है। वह उन्हें अलंकार स्वीकार नहीं करता।

चौथे उन्मेष में प्रकरण-वक्रता और प्रबन्ध-वक्रता पर विचार किया गया है। प्रकरण-वक्रता के उदाहरण में वह रघुवंश के कई श्लोकों को उद्धृत करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूताने में चित्रकला की विपुल सामग्री

श्री आगर चन्दना हटा

भारतीय चित्रकला का अभी व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो पाया। जिस सामग्री के आधार से इस सम्बन्ध में मत निर्धारित किये गये हैं वह बहुत ही सीमित है। हजारों कलाकृतियें अभी तक कला प्रेमियों एवं मर्मज्ञों से सर्वथा अज्ञात अवस्था में पड़ी हैं। उनके अध्ययन से पूर्व निर्धारित मत परिवर्तन करने पड़ेंगे एवं बहुत कुछ नवीन ज्ञातव्य प्राप्त होगा। प्राचीन राजघरानों एवं सामन्तों के यहाँ भी बहुत सी अनमोल सामग्री है। जैन भण्डारों में भी मध्यकालीन चित्रकला के इतने अच्छे उपादान संग्रहीत हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।[1] लगभग १७ वर्षों से पचासों जैन भण्डारों एवं अनेक संग्रहालयों के अवलोकन का सुयोग लेखक को प्राप्त हुआ है। इसके अनुभव के बल पर निर्विवाद कहा जा सकता है कि भारतीय चित्रकला का अध्ययन एवं आलोचना अभी बहुत ही अपूर्ण है। एक राजपूताने को ही लीजिये, यहां की सामग्री इतनी विशाल है कि एक व्यक्ति की ज़िन्दगी तो केवल अवलोकन और अध्ययन में ही समाप्त हो जायगी और उसकी आलोचना के लिये शायद दूसरा ही जन्म धारण करना पड़े। आए दिन एक से एक अधिक सुन्दर कला कृतियां देखने में आती हैं जिससे हृदय आनन्द विभोर हो जाता है।

मेरे अन्वेषण का प्रधान उद्देश्य साहित्य ही रहा है अतः चित्रकला सम्बन्धी मेरा अनुभव बहुत ही सीमित है। फिर भी साहित्य की शोध करते हुए जो चित्रकला की सामग्री मेरे सामने आई उसकी अनुभूति ने कला प्रेमियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के लिये मेरे हृदय में एक आन्दोलन सा मचा दिया, उसीके फलस्वरूप प्रस्तुत लेख पाठकों के समक्ष उपस्थित है।

१—"जैन पुस्तक प्रशस्त" संग्रह की प्रस्तावना में युगप्रधानाचार्य मुनि जिन विजय जी लिखते हैं गुफाओं के अतिरिक्त ऐसे छोटे परन्तु विविध रंगों से सज्जित इतने पुराने चित्र हमारे देश में और नहीं मिलते। इसलिये चित्रकार के इतिहास और अध्ययन की दृष्टि से ताड़ पत्र के ये चित्र बड़े मूल्यवान और महत्वपूर्ण हैं।

राजपूताने में मेरा अवलोकन बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर के राजकीय संग्रहालयों के कतिपय चित्र एवं चित्रित ग्रन्थों तक ही सीमित है। बहुत से विशिष्ट चित्र जो कि प्राइवेट स्थानों में रखे हुए हैं उनका अवलोकन भी नहीं कर सका। इसी प्रकार कई जागीरदारों एवं सेठों के यहां भी अच्छा संग्रह है पर उसे अभी तक मैं देख नहीं पाया। अतः इस लेख को पाठक केवल दिशा सूचन रूप ही समझें एवं स्वतन्त्र रूप से अन्वेषण एवं अध्ययन की ओर अग्रसर हो यही मेरा नम्र अनुरोध है।

मुगल सम्राटों के समय से तो राजपूताना कलाकारों का केन्द्र सा हो गया था पर दुर्भाग्यवश उनकी कदर करनेवाले अत्यन्त थोड़े से व्यक्ति ही हुए, अतः क्रमशः ह्रास होते हुए इस समय तो कलाकारों की बड़ी भारी कमी हो गयी है। फिर भी जितने हैं उन्हें प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाना हम सभी का परम कर्तव्य है। जयपुर एवं नाथद्वारे के चित्रकारों को समुचित प्रोत्साहन दिया जाय और अन्य प्रान्त के कलाकारों एवं कला कृतियों से उन्हें परिचित करवाया जावे तो उनका अच्छा विकास हो सकता है। यह राजपूताने के लिये गौरव की बात होगी। मैं उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रहा हूँ जिस दिन हमारे राजाओं और धन कुबेरों का ध्यान इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर आकर्षित होगा। मेरे अवलोकन में राजपूताने के जो चित्र संग्रहालय में आये हैं उनका नाम निर्देश करते हुए कतिपय चित्रित प्रतियों की सूची दे रहा हूँ जिससे संग्रहालयों एवं सचित्र ग्रन्थों के सम्बन्ध में पाठकों को कुछ जानकारी आयगी और एवं अन्वेषण करनेवालों के लिये सुगमता हो जायगी।

बीकानेर

१—यहां के पुराने गढ़ एवं लालगढ़ के महलों में बहुत से सुन्दर चित्र लगे हुए हैं। और अनूपसिंह संस्कृत लाइब्रेरी में अनेकों सचित्र प्रतियां हैं।

२—राजकीय संग्रह के अतिरिक्त हमारे स्थापित "नाहटा-कला-भवन" में पचासों राजा, महाराजाओं, और जैन एवं प्रासंगिक चित्र हैं, कपड़े के कई सचित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पट्ट हैं जिनमें बौद्ध पट्ट बड़ा ही सुन्दर एवं प्राचीन है। इसका सूक्ष्म रेखाङ्कन विभिन्न रंग एवं कला दर्शनीय है। एक अन्य पट्ट भी ६०० वर्ष प्राचीन है। उदयपुर का विज्ञप्ति पत्र विशेष रूप से दर्शनीय है। सचित्र प्रतियें, चित्रित पुट्ठे, डबीयें आदि चित्रकला के बहुत से उपादान संग्रहीत हैं।

३—कुँवर मोतीचंद जी खजांनची का संग्रहः आपने संग्रह कार्य हाल ही में प्रारम्भ किया है पर कई चित्र बड़े सुन्दर हैं। फुटकर चित्रों का संग्रह १०० से अधिक है एवं कई चित्रित प्रतियें हैं।

४—मैसंदानजी कोठारी के मकान में कई मूल्यवान चित्र लगे हुए हैं।

५—मानमलजी कोठारी का संग्रह-आप के यहां भी कई चित्र हैं।

६—महाराव जी की हवेली—श्रीयुत गोपालसिंह जी वैद्य के मकान में राजमाता का पूरा सेट एवं कई अन्य चित्र हैं।

७—बड़ा ज्ञानभण्डार—बड़े उपासरे में खरतर गच्छ संघ का वृहद हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार है, जिसमें बीस पचीस फुटकर चित्र एवं कई सचित्र प्रतियें हैं—यहां का 'बीकानेर विज्ञप्ति' पत्र दर्शनीय है।

८—श्री पूज्य जी का संग्रह—आपके संग्रह में कई आचार्यों के चित्र एवं सचित्र प्रतियें हैं।

९—जयचन्द्र जी का संग्रह—आपके संग्रह में कई फुटकर चित्र और सचित्र प्रतियें हैं।

१०—यति जयकरण जी—आपके पास भी कई चित्र हैं।

बीकानेर नगर के अतिरिक्त बीकानेर रियासत में भी चुरु की सुराणा लायब्रेरी, छापर में मोहनलाल जी दुधेड़िये एवं चुरु के श्री धनपतसिंह जी कोठारी के यहां एक सुन्दर सचित्र शाहनामा है।

जोधपुर

यहां के म्युज़ियम में फुटकर चित्रों के साथ कई महत्वपूर्ण सुन्दर सचित्र प्रतियें हैं जिनमें सैकड़ों चित्र हैं।

उदयपुर

राजकीय सरस्वती भण्डार में सचित्र प्रतियों का बहुत ही सुन्दर संग्रह है जिसमें से २०वीं शताब्दी तक के सैकड़ों चित्र हैं। इन चित्रों के पीछे स्टेट का १० हजार व्यय हुआ है। उदयपुर के राज्य के बनेड़ा आदि ठिकानों में रागमाला आदि के अनेक सुन्दर चित्र हैं।

गत वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रदर्शनी में इनका प्रदर्शन किया गया था।

जैसलमेर

यहां के दुर्गस्थ जैन ज्ञान भण्डार में एवं शहर के अन्य दो-एक ज्ञानभण्डारों में सैकड़ों ताड़पत्र की प्रतियां हैं जिनमें से कइ प्रतियों में प्राचीन चित्र हैं एवं कई काष्ट मूलक पर चित्रित हैं। ये सब चित्र मध्यकालीन चित्रकला के अध्ययन के लिये मूल्यवान साधन हैं क्योंकि मध्यकालीन ऐसे चित्र अन्यत्र अप्राप्य हैं। यहां के रहे आश्रम के पंचायती भण्डार के काष्ट मूलक के चित्रों का रंग इतना चमकीला है कि ५००-६०० वर्ष प्राचीन होने पर भी चित्र आज के किये से प्रतीत होते हैं। इस उपाश्रम में सम्राट पृथ्वीराज चौहान के दरबार का बड़ा एक सुन्दर चित्र भी टंगा हुआ है।

अलवर

यहां के संग्रहालय के अवलोकन का सुयोग लेखक को प्राप्त नहीं हुआ पर 'अरावली' पत्र के अलवर अंक में प्रकाशित १ कलम किताब और कृपाण एवं अलवर का अजायबघर आदि लेखों द्वारा पता चलता है कि वहां के संग्रहालय में भी मुगलकालीन चित्रों का सुन्दर संग्रह है।

श्रीयुत् रामनिवास जी हारित ने अभी राजपूताने के कई स्थानों मे चित्रों का संग्रह किया है और उनमें से चुने हुए चित्रों का एक अलबम भी प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन चित्रों की श्रीयुत् गांगुली आदि मर्मज्ञों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। खोज करने पर राजपूताने के सभी राजघरानों एवं पुराने खानदानों में सुन्दर से सुन्दर चित्र मिलेंगे।

फुटकर चित्रों की सूची देना सम्भव नहीं अतः केवल हमारे अवलोकन में आई हुई सचित्र प्रतियों की ही सूची दी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहद् ज्ञान भण्डार में सचित्र प्रतियें

कल्प सूत्र	...	कपड़े पर चित्र
कालिकाचार्य कथाएं	...	अढ़ाई द्वीप के नवसे आदि
संघयणी प्रकरण		
हंसराज बच्छराज चौपई		
चन्दुलेहा चौपई		
शालिभद्र चौपई		
शकुनावली		
सुरसुन्दरी रास		
चन्दन मलायागिरी रास	...	विशिष्ट चित्रपट
भक्तामर स्तोत्र (श्री पूज्य जी के संग्रह) में	...	बीकानेर विज्ञप्ति पत्र

हमारे संग्रह में[1]

कल्पसूत्र (४ प्रतियें)	...	कपड़े पट्ट
कालिकाचार्य कथाएं (४ प्रति)	...	स्टेंकार पट्ट
चन्दन मलयागिरी चौपई	...	बौद्ध पट्ट
शालिभद्र चौपई (३ प्रति)	...	अढ़ाई द्वीप के नक्शे
संघयण प्रवरण	...	वर्द्धमान विद्या
प्रिय मेलक चौपई	...	आदि के २१ पट्ट
भागवत (१४ चित्र)		
कृष्ण चरित्र		
चौबीशी (२४ चित्र)	...	विशिष्ट
" (५ चित्र)	...	उदयपुर विज्ञप्ति पत्र

बीकानेर अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में सचित्र ग्रंथ[2]

१—महाभारत
२—श्रीमद्भागवत
३—भगवद्गीता
४— "
५—गणेश स्तौत्रादि
६— " " भँवर गीता, ध्रू चरित्र, इन्द्राक्षी, रामस्तवराज, महिम्न स्तोत्र, हनुमानस्लोकादि।
७—गीता विष्णुसहस्र नाम, रामरक्षादि
८— "
९—मेघदूत टीका
१०—दुर्गा सप्तशती
११— "
१२—लैलामजनूँ निजामी
१३—तुलसी शब्द सागर (हिन्दी ग्रन्थ)
१४—रुक्मणी मंगल
१५—कृष्ण रुक्मणि केलि
१६—राजस्थानी वार्ताओं के २ गुटके (जिनमें दाढाला एकलगिड वाराहरी वात, पलक दरिघरवरी वात, फूलजी फूलमती, ससि पनेदी वात आदि हैं)
१७—शालिहोत्र (अश्व परीक्षा व चिकित्सा—इसमें विविध प्रकार के अश्वों के चित्र हैं)
१८— "
१९—जन्म पत्री (नरुकीजीरी अलवर नरेश की पुत्री और बीकानेरनरेश की पत्नी)
२०—जड़ी बूटी चित्रावली (एक वैद्यक ग्रन्थ में)
२१—हथियार चित्रावली (आइने अकबरी में)

१—विशेष जानने के लिये देखें बीकानेर का एक संग्रहालय शीर्षक लेख।
२—इस सूची के तैयार करने में मेघराजजी गोस्वामी एवं दीनानाथ जी का सहयोग प्राप्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोधपुर स्टेट संग्रहालय में[3]

१—दुर्गा चरित
२—रामायण
३—ढोलामारू की बात
४—नाथ चरित्र की कुछ कथाएँ
५—सिद्ध सिद्धान्त पद्धति
६—भागवत् दशम स्कन्ध
७—शिवपुराण (कुछ भाग)
८—शिवरहस्य (कुछ भाग)
९—सूरज-प्रकाश (,,)
१०—पंचतन्त्र
११—गजेन्द्र मोक्ष
१२—कृष्णलीला

उदयपुर में

१—महाभारत
२—भागवत्
३—भगवद्गीता
४—रामायण
५—हरिवंश
६—कादम्बरी
७—मालती माधव
८—गीत गोविन्द
९—नैषधकाव्य
१०—रघुवंश
११—पंचारकरन
१२—योग वाशिष्ठ
१३—शार्ङ्गधर पद्धत्ति
१४—पृथ्वीराज रासो
१५—बिहारी-सतसई
१६—रसिक प्रिय
१७—सुन्दर-शृङ्गार
१८—राजमाला
१९—केलिकृष्ण रुक्मणी
२०—काशीखंड
२१—प्रबोध-चन्द्रोदय

ये ग्रंथ लगभग ६०,०००) रुपये की कीमत १९६० से १९०० के बीच में तैयार किये गये हैं।

(Catlogue of m. s: in the Library H. H. the Maharana of Udaipur उदय से संकलित।

इन संग्रहालयों की सचित्र प्रतियों के अतिरिक्त जैन मंदिरों आदि में चित्रकारी (प्राचीन एवं आधुनिक) काम किया हुआ पाया जाता है।

राजपूताने की बहुत सी सचित्र प्रतियाँ एवं फुटकर चित्र यहाँ से बाहर भी चले गये हैं जिनमें से कलकत्ते के बाबू पूर्णचन्द्र जी नाहर का संग्रहालय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पचीसों सचित्र प्रतियें, अनेकों चित्र एव अन्य विज्ञप्ति लेख आपके संग्रहालय में हैं।

अब हम कुछ उपयोगी योजनाएँ उपस्थित करते हैं—

संग्रह एवं संरक्षण की आवश्यकता

हमारी अनभिज्ञता एवं उपेक्षा के कारण बहुत सी सुन्दर सामग्री नष्ट होगई व हो रही है। कई चित्र दीवालों में जड़े हुए थे वे दीवार की सर्दी आदि के कारण नष्ट हो गए। कई रंग के दोष से नष्ट गये व हो रहे हैं। अतः हमारे कलाकारों की अनमोल धरोहर के संग्रह संरक्षण की परमावश्यक है। काशी के भारतीय कलाभवन की भाँति राजपू में भी एक आदर्श कलाभवन स्थापित होना चा जिसमें योग्य व्यक्ति अपने संग्रह से कलापूर्ण चि देकर सहायता करें था अच्छा फंड एकत्र कि जाय जिससे खरीद कर संग्रह भी किया जा सके। नष्ट होती हुई सामग्री भी बच जायगी और अन्वेषण लिये भी कई स्थान पर बहुत कुछ सामग्री मिल जायेगी सुभीता होगा। कलाभवन में एक दो व्यक्ति ऐसे भी जायँ जो बाहर घूम घामकर कलाकृतियें बटोर सुन्दर चित्रादि जो कलाभवन को प्राप्त होना संभव उनकी प्रतिलिपि रखी जांय।

३—म्युज़ियम के सचित्र प्रतियों की सूची महा. श्री विश्वम्भरनाथ जी रेऊ द्वारा प्राप्त हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकारों को प्रोत्साहन

प्रोत्साहन नहीं मिलने के कारण कला के प्रसार का ह्रास हो रहा है। 'बहुत से कलाकार तो पैदा भये विलाय गये, बिना भये मसहूर' की उक्त्यानुसार अब नहीं रहे हैं, जो भी बच पाये हैं उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयत्न अत्यावश्यक है एवं जिन व्यक्तियों की इस ओर अभिरुचि हो उन्हें सीखने के साधन जुटा देना जरूरी है। शान्तिनिकेतन की भांति यदि उपयुक्त कलाभवन में चित्रकला के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध रखा जाय तो बहुत सुन्दर हो।

योग्य[1] छात्रों को स्कालरशिप देकर विशेष अध्ययन करने के लिये कलाकेन्द्रों एवं शिक्षणसंस्थाओं में एवं कलामर्मज्ञों के पास देश विदेश भेजा जाय तभी हमारी इस महत्वपूर्ण सामग्री का उचित मूल्याङ्कन हो सकेगा।

जन साधारण की रुचि इस ओर विशेष रूप से आकर्षित करने के लिये एक चलती-फिरती प्रदर्शनी खोली जाय जिससे समय समय पर सर्वत्र इन कृत्तियों के अवलोकन का सुभीता हो।

विशिष्ट चित्रों के अलबम प्रकाशित किये जाँय। इनका संकलन विविध दृष्टिकोण से किया जाय। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कई चित्रों का महत्व बहुत अधिक है। अतः राजा, महाराजों, सेठ साहूकारों, यति श्री पूज्यों आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के चित्रों का भी अलबम प्रकाशित हो।

चित्रकला के शिक्षण के सम्बन्ध में उपयोगी साहित्य एवं आलोचनात्मक ग्रंथ आदि प्रकाशित किये जांय एवं अधिकारी विद्वानों को निमंत्रित कर उनके भाषण करवाये जांय।

और भी जो जो साधन आवश्यक हों योग्य विद्वानों के परामर्श से जुटाकर भारतीय कला के पुनरुद्धार की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये। आशा है कला-प्रेमी सज्जन इस ओर ध्यान देंगे।

---

[1] खोज करने पर इस ओर अभिरुचि रखनेवाले या योग्य व्यक्ति मिल सकेंगे। साहित्य सम्मेलन के उदयपुर अधिवेशन से लौटते हुए चित्तौड़ में ड्राइंग टीचर लक्ष्मीनारायण से परिचय हुआ। आपकी इस ओर अच्छी रुचि है।

तुम मुझको पहचान सके क्या ?

श्री उपेन्द्र

मेरे सुने दर्दीले तुमने विहंस किया सादर अभिनन्दन;
क्या दी, सम्मान दिया, नत मस्तक हो जब मिले पुलक-मन;
दृग छलका जो आंसू बनकर क्या उसकी इतनी ही क़ीमत ?
किन कभी सुना आदर पर ही पलता यह मानव जीवन ?
मेरे विहंग के गान मधुर पर उसका उजड़ा नीड़ न देखा।
मेरे तुम्हें गाये कवि के, पर उसकी पीड़ा जान सके क्या ?
तुम मुझको पहचान सके क्या ?

प्राण मांगते उस जीवन से जिसकी आग बुझा दी तुमने;
मेरे राग चाहिए, वीणा की पर झंकार सुला दी तुमने;
इस बलिदान नया क्या, अपने जीवन तक की बलि दे डाली;
मेरी ज्योति क्या, जबकि दीप का अंतर ही थिर खाली;
देगा क्या प्रकाश वह जग को खा आघात बुझा जो खुद ही;
शब्द-शब्द पर झूम उठे लख सूखे-से अरमान सके क्या ?
तुम मुझको पहचान सके क्या ?

चूस हलाहल, अब तक मैंने जीवन के मधुगान लिखे हैं;
लघु गीतों की कड़ी-कड़ी में बिखरे-से अरमान गुंथे हैं;
जितनी जलन, वेदना उर में उतने गीत कहां गा पाया;
दिल में जितनी आग अभी तक उतनी कहां उगल मैं पाया;
कटु अनुभूति मिली जीवन में, रुदन मिला, कुछ गान मिले हैं
छोड़ विषय अभिशाप एक भी दे अब तक वरदान सके क्या ?
तुम मुझको पहचान सके क्या ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मैक्सिकोवासियों के धार्मिक विश्वास

(स्व०) पण्डित पुरुषोत्तम लाल

जिन लोगों ने अच्छी शिक्षा नहीं पाई वे साधारणतया धार्मिक ढकोसलों पर पूरा विश्वास कर लेते हैं और अपने विचारों के अनुसार उनमें वृद्धि करते जाते हैं। इनकी देखा देखी उनके अन्य साथी भी ऐसे विचारों को ग्रहण कर लेते हैं और धीरे धीरे यही अन्ध-विश्वास एक धार्मिक रीति बन जाते हैं जिसका आरम्भ में कोई मूल कारण नहीं होता। यह रिवाज धीरे धीरे इतना प्रभावशाली हो जाता है कि उसके आगे धर्म की सीधी-सच्ची बातों का कोई मूल्य नहीं रहता। यही हाल इस मेक्सिकन जाति का हुआ। मैक्सिकनों की शिक्षा-दीक्षा, दिनचर्या में धर्म इस प्रकार घुल मिल गया था कि उनमें से किसी बात पर तर्क करना दैवी कोप समझा जाता था। अतः एक ओर जहां इस धर्म में सच्चा धार्मिक विश्वास पाया जाता है वहां दूसरी ओर भयङ्कर निर्दयता और निष्ठुरता दिखाई देती है। एक ओर सौन्दर्य है, तो दूसरी ओर बीभत्सता का साम्राज्य।

मेक्सिकनों के लोक-परलोक सम्बन्धी विचार

जैसा कि हम सब नश्वर मनुष्यों को इस बात के जानने की उत्कण्ठा रहती है कि पिछले जन्म में हम कौन थे और मृत्यु के पश्चात् हमारी क्या दशा होगी ठीक इसी की खोज मेक्सिकन भी करते थे। अनित्यता को इन्होंने चार भागों में विभक्त किया था। जिसके प्रत्येक भाग में लाखों ही वर्षों की संख्या थी। यह विचार इनका हिन्दू धर्म से मिलता जुलता था अर्थात् जिस प्रकार हमारे यहां सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नियत किये गये हैं और इनमें से प्रत्येक की बारी लाखों ही वर्ष पीछे आती है उसी प्रकार मेक्सिकन भी मानते थे। इनके विचार से हर बार अनित्यता के चतुर्थ भाग के अन्त में आग अथवा पानी द्वारा सृष्टि का लोप माना गया था। यहां तक कि आकाश से सूर्य भी लुप्त हो जाता था और फिर कुछ काल पश्चात् पुनः सृष्टि-निर्माण होना माना जाता था।

मृत्यु के पश्चात् इनके विचार से जीव तीन श्रेणी में रक्खे जाते थे। प्रथम पापी लोग जिनकी संख्या अधिक मानी गई थी, अपने पापों का दण्ड पाने के लिये एक अंधेरे (अन्ध कूप) स्थान में छोड़ दिये जाते थे जहां प्रकाश और वायु की पहुँच न थी। किन्तु वहां इन्हें बराबर जीवित अवस्था में रहना पड़ता था। यही इनका नरक था। दूसरी श्रेणी में ऐसे जीवों को रहने के लिये ऐसा भावी जीवन मिलना कल्पित किया गया था जिसमें न तो कोई आनन्द था और न उन्हें किसी प्रकार के उलाहने की आवश्यकता थी। बस जैसे किसी रोगी की दशा इस संसार में होती है कि न मरने न जीने में, उसी प्रकार ये दूसरी श्रेणी वाले जीव भी मृत्यु के पश्चात् जीवन व्यतीत करते थे। इन्हें सदा उदासीनता में एक सी अवस्था में रहना पड़ता था। तीसरी श्रेणी इनका स्वर्ग था। यह उन जीवों को प्राप्त होता था जो या तो युद्ध में मारे जावें या किसी देवता पर बलि किये जावें। देवता पर बलिदान किये जाने वाले लोग सीधे सूर्य लोक को चले जाते थे जहां इनकी सेवा केवल इतनी ही होती थी कि वे सूर्य के रथ के साथ साथ मीठे राग गाते हुए घूमा करें। कुछ काल तक ऐसी सेवा करने के पीछे ये आत्माएं या तो रंगीन बादलों में समा जाती थीं या गाने वाले सुन्दर पक्षी बनकर स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाती थीं, (यह विचार इन लोगों का इसलाम धर्म से मिलता था)।

ईश्वरीय सत्ता

ईश्वर को ये लोग भी हमारे ही समान सारी सृष्टि का रचयिता तथा स्वामी मानते थे। आराधना के समय ऐसे शब्द बोलते थे कि "हे ईश्वर तू सर्व व्यापक सर्वान्तरयामी, सबका दुःख सुख जानने वाला है। तेरी ही द्वारा हम जीवित रहते और संसार का कार्य करते हैं।" किन्तु ऐसे विचार होते हुए भी ये मेक्सिकन ईश्वर की शक्ति को भूल कर न जाने क्यों धीरे धीरे दूसरे देवताओं की पूजा करने लगे थे जिसे देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि ऐसे निर्दय और क्रूर व्यक्ति कभी ईश्वर के उपासक रहे होंगे।

मेक्सिकनों के देवताओं की संख्या २१८ थी और उन सब के लिये एक एक दिन अलग अलग रक्खा गया था जिसमें कोई उत्सव अथवा भोज उस देवता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शेष किया जाता था। इस लम्बी चौड़ी देवताओं की मूर्तियों में सब से ऊपर भयंकर युद्ध-देव रक्खा गया था। इसका नाम इनकी भाषा में 'हुईरजिलोपाचली' था। यह नाम दो शब्दों से बना है। पहले भाग का अर्थ 'गाने वाला पक्षी' और पिछले भाग का अर्थ 'बायां' होता है क्योंकि इस देवता के बाएँ पैर में एक सुन्दर पक्षी के पर बँधे रहते थे। इसके विषय में यह विश्वास था कि यह देवता अस्त्र-शस्त्र धारी ही जन्मा है। इसके दाएँ हाथ में भाला, बाएँ हाथ में ढाल थी और सिर पर सुन्दर रंग के परों का मुकुट पहने हुए था। यही देवता मेक्सिकनों का रक्षक और सब से अधिक शक्तिशाली देव माना जाता था। इसकी भयानक मूर्ति को मेक्सिकन सोने रुपये के आभूषण पहनाते थे और दूसरे देवताओं से इसका मन्दिर भी बहुत बड़ा और सुसज्जित बनाया जाता था। जिस जिस स्थान पर इस देवता के मन्दिर थे वहाँ में लगभग ३६५ दिन नर-रक्त बहा करता था। इस देवता के पश्चात् 'कुइटज़ल कोटल' नामक देव का नाम था। जिसका अर्थ 'पर दार सांप' होता है। इसे ये लोग पवन देव मानते थे। इस देवता के जन्म के विषय में लोगों के विचित्र विचार थे।

कहते हैं कि यह देवता स्पेन वालों के आक्रमण से कई शताब्दी पूर्व, पूर्व की ओर से मेक्सिको में आया था। इसकी आकृति बड़ी सुन्दर, लम्बा क़द, गोरा रंग, लाल और बहुत लम्बी नीची नीची दाढ़ी थी। मेक्सिको के मैदान में यह बहुत वर्षों तक निवास करता रहा और इस बीच में इसने मेक्सिकनों को अनेक भाँति का कौशल सिखाए और इसके रहन सहन में बहुत सी उन्नति और परिवर्तन किया। इसने इन्हें विभिन्न वस्तुओं की विशेषताएं और उनके परस्पर मिश्रण की सफाई सिखाई। यह कला ऐसी थी जिसकी समानता संसार के किसी और राजव्यवस्था आदि सिखाई। जब तक यह इस देश में रहा इस भूमि पर बिना उगाए ही फल फूल उगते रहे। कहते हैं मक्का का भुट्टा उसके समय में बड़ा और भारी होता था कि जिसे एक बलवान मनुष्य कठिनाई से उठा सकता था। उसके सामने रुई की पैदाइश तरह तरह के रंगों की पौदे ही से निकलती थी जिसके रंग सब बिलकुल पक्के और चमकदार होते थे। जिस प्रकार फलों का रंग पेड़ में बदला करता है उसी प्रकार मेक्सिकनों की इच्छानुसार रुई का रंग भी पौदे में बदला करता था।

वायु में ऐसा प्रभाव था कि प्रत्येक मेक्सिकन को उसकी मनोहर प्राकृतिक सुगन्ध से एक प्रकार का नशा सा चढ़ा रहता था। हवा के साधारण झोके से भी इन्हें बड़े मीठे मीठे राग सुनाई देते थे।

दुर्भाग्य से कोई कारण ऐसा हुआ बतलाते हैं (जिसका ठीक विवरण किसी को अच्छी तरह याद नहीं है) कि इस कुइट-ज़ल-कोटल की और मेक्सिकनों के किसी अन्य देवता की परस्पर अनबन होगई और इसने मेक्सिको छोड़ देने का विचार कर लिया। अतः यह पूर्व को चल दिया और चुलूला नगर में जाकर ठहरा। यहाँ के निवासियों ने इसका हृदय से स्वागत किया और एक बड़ा मन्दिर इसकी भेंट किया जिसके भग्नावशेष आज तक भी चुलूला में पाये जाते हैं। इनके देखने से तत्कालीन मेक्सिकन-वास्तु-कला अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कुछ बढ़ी चढी मालूम होती है।

जब 'कुइट जल कोटल' मेक्सिको की खाड़ी के किनारे पहुंचा अपने साथियों से विदा हुआ और एक सांप के केंचुल में घुस कर समुद्र में कूद पड़ा। किन्तु समुद्र में कूदने से पहले इसने अपने साथियों से कहा था कि उसकी सन्तान अथवा उसके देश वासी जिनका रंग रूप उसी के समान गोरा होगा पूर्व की ओर से आवेंगे और इस देश पर अधिकार करेंगे। इस भविष्यवाणी ने मेक्सिकनों के दिलों पर पूरा पूरा प्रभाव डाला था और उन्हें पूर्ण विश्वास होगया था कि किसी न किसी समय ऐसा अवश्य होकर रहेगा। अर्थात् उनका देवता 'कुइट जल कोटक' निश्चय ही इस देश पर चढ़ाई करेगा।

अतः जब स्पेन वाले अमेरिका पहुंचे तो प्रत्येक व्यक्ति यही कहता हुआ सुना जाता था कि "वह भविष्य वाणी झूठी न थी। अन्त में श्वेत रंग वाले पूर्व से ही यहां आये। अब कोई सन्देह नहीं कि ये लोग मेक्सिको पर अधिकार न जमालें इस लिये इनसे लड़ना या युद्ध का विचार करना भी व्यर्थ है।" बस इसी विश्वास के कारण स्पेनी कोर्टियस को इस देश के विजय करने में अधिक कष्ट न उठाना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिर

मेक्सिकन भाषा में मन्दिर 'टयोकलस' कहलाते हैं। (कदाचित यह भारतीय 'देव कलश' शब्द का अपभ्रंश हो।) बड़े बड़े नगरों में इनके सैकड़ों ही नहीं वरन सहस्रों ही मन्दिर बने हुए थे। इनमें बहुत से निम्न श्रेणी के जिनकी बनावट को मन्दिर न कह कर मिट्टी का ढेर कहा जाय तो अनुचित न होगा। ऊँची श्रेणी के मन्दिरों की आकृति मिश्र के पिरेमिडों अथवा वहां की शाही क़बरों से मिलती थी। इसमें तीन अथवा चार मंज़िल तक होती थीं जिनमें प्रत्येक ऊपर वाली मंज़िल नीचे वाली से छोटी बनाई जाती थी। ऊपर चढ़ने के लिये बाहर के एक कोने से आरम्भ होकर चक्कर खाती हुई सीढ़ियाँ ऊपर की मंज़िल तक पहुँचती थीं जिससे चढ़ने वाला छत तक पहुंचने में मन्दिर की कई परिक्रमा कर लेता था'। इस छत पर एक बहुत लम्बा चौड़ा मैदान होता था जिस पर एक या दो गुमटी अथवा छतरियाँ बनी रहती थीं जो चालीस से लेकर पचास फीट तक ऊँची होती थीं। उनके बीच में एक ऊँचे चबूतरे पर जिस देवता का मन्दिर होता उसकी मूर्ति खड़ी की जाती थी। इस देवता के सामने एक या दो बड़े बड़े पत्थर गड़े रहते थे जिन पर मनुष्यों का बलिदान किया जाता था। इन पत्थरों के पास ही दो ऊँचे ऊँचे चबूतरों पर दिन रात आग जला करती थी। मेक्सिकनों के बड़े बड़े मन्दिरों में इन अग्नि कुंडों की संख्या छः सौ तक पहुँच गई थी। यहाँ हज़ारों ही मन्दिर ऐसे थे जिनमें कम से कम दो अग्नि कुंड तो दिन रात दहकते ही रहते थे। अँधेरी रात में तो इन कुण्डों के प्रकाश से नगर का एक विचित्र दृश्य दिखाई देता था। शहर की सड़कें गलियाँ और बाज़ार इन से खूब प्रकाशित रहते थे और मन्दिर की बनावट ढालू होने के कारण जो कुछ पूजापाठ अथवा बलिदान आदि मन्दिर में होते थे वे नीचे से भली भाँति दिखाई देते रहते थे।

इन मन्दिरों में पंडे पुजारियों की संख्या भी अधिक थी। जब पण्डे पूजा अथवा बलिदान के लिये ऊपर चढ़ते तो असंख्य दर्शक इनके पीछे पीछे चलते थे। गलियों और सड़कों पर भी इस भयंकर कृत्य को देखने के लिये हजारों लोग इकट्ठे होजाया करते थे। जनता की आकृति पर उस समय ऐसी गम्भीरता दिखाई देती थी मानो वह धर्म में तत्पर बड़ी ही श्रद्धाभक्ति से अपने इष्ट देव से प्रार्थना कर रही हो और उसके कोपित होने से भयभीत हो रही हो।

पंडे अपने धार्मिक कृत्यों में दिन दिन ऐसी उन्नति करते जाते थे और ऐसे ऐसे धर्मोत्सव मनाया करते थे कि बिचारी भोली भाली जनता को अपने धर्म के विषय में सोचने विचारने का अवकाश तक न मिलता था। ये लोग सदा ऐसे ऐसे भयङ्कर काम करते थे जिनसे घोर लोगों के दिलों पर इनका आतंक छा गया था। यहाँ कोई मास वरन दिन ऐसा न था जो किसी बड़े देवता के लिये नियत न हो और उस दिन कोई मुख्य पूजन न होता हो। हाँ, बहुत से उत्सव यहां जनता के आमोद प्रमोद के लिये भी नियत थे जिनमें स्त्री पुरुष दोनों ही को सम्मिलित होने का अधिकार था। स्त्रियाँ अपने सिर पर मेवे मिठाई के थाल रक्खे हुए गाती नाचती देवता के मन्दिर तक जातीं और इनके पीछे पीछे पुरुष समूह चलता था। मन्दिर में पहुंच कर प्रथम, देवता को रिझाने के लिये नाच गान होता, फिर केवल पशुओं के बलिदान से ही उत्सव समाप्त कर दिया जाता था। ऐसे अवसरों पर नर-बलि निषिद्ध समझी जाती थी।

मेक्सिकनों की सभ्यता को यों तो यदि उच्च कोटि में न रक्खा जावे तो नितान्त निकृष्ट भी नहीं कहा जा सकता परन्तु नर-हत्या ने इसे संसार की सभ्य जातियों की दृष्टि में अत्यन्त हेय और घृणास्पद बना दिया था। इनकी कला कौशल, युद्ध विद्या आदि को इस घृणित प्रथा के कारण ही अधिक सम्मान नहीं मिल सका। स्पेन वालों के आक्रमण के २०० वर्ष पूर्व इनके यहां इस भयङ्कर प्रथा का केवल आरम्भ ही था अर्थात् अत्यन्त आवश्यक अवसर पर ही नर-बलि दी जाती थी। किन्तु जैसे जैसे इनकी शक्ति बढ़ी तथा देश विस्तृत हुआ वैसे ही वैसे इस नर-हत्या में भी वृद्धि होने लगी और फिर तो ऐसा कोई पूजन अथवा त्योहार न बचा जिसमें नर-बलि न दी जाती हो। इस क्रूर प्रथा का विस्तार पूर्वक वर्णन करना शक्ति से बाहर है अतः पाठकों की जानकारी के लिये केवल एक ही उदाहरण पर्य्याप्त होगा।

मेक्सिकनों के यहां बड़े त्योहारों में उनके देवता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केटली कूपा' की पूजा होती थी। जिसका पद युद्ध-
दूसरे दरजे का था। 'टेज़ केटली' का अर्थ इनकी
में संसार की आत्मा (हिन्दुओं का ब्रह्मा) है। वर्षा-
पर इस देवता को उस अत्यन्त सुन्दर युवक की बलि
जाती थी जिसे मेक्सिकन युद्ध में बन्दी करते थे।
भागे को एक वर्ष तक स्वयं 'टेज़ केटली' मान
जाता था। कई पंडे इस युवक की शिक्षा दीक्षा
नियत किये जाते थे जो इसे समयानुसार काम
सिखाते थे। बढ़िया से बढ़िया वस्त्राभूषण इस
पुरुष को पहनाए जाते और सुगन्धित पुष्पों से
इसका शृंगार किया जाता था। वस्त्रों में इत्र लगा
सजाकर जब यह नर-देव बाहर निकलता तो
जनता पृथ्वी तक झुक कर इसका अभिवादन
करती। राज घराने के बड़े बड़े सर्दार इसके पीछे पीछे
पूर्वक चलते थे और जब यह देवता धार्मिक
गाने लगता तो दर्शक इस प्रकार सम्मान में हाथ
बड़े हो जाते मानो वह स्वयं ईश्वर ही हो।

इसकी सेवाके लिये बहुत ही सुन्दर चार दासियाँ
की जाती थीं। इन स्त्रियों के वास्तविक नाम चाहे
भी हों उस अवसर में इन्हें चार देवी पुकारा जाता
इस वर्ष में यह नर-देव खूब ही आनन्द मनाकर
जगह दावतें खाता और जिस सर्दार के घर पहुंचता
उसके सम्मान में अपना सर्वस्व दे डालने को बाध्य
होते तो इस देव के लिये एक अत्यन्त विशाल और
सुन्दर महल था ही परन्तु फिर भी इसे अधिकार था
चाहे जिस सर्दार के भवन को वह अपना विलास
बना ले।

किन्तु बलिदान के दिन इसके ये सब आनन्द समाप्त
होते थे। इस अभागे के सभी वस्त्राभूषण उतार
लेते और इसे अपने इष्ट मित्रों से विदा होने का
समय दे दिया जाता था। इसके बाद इस नर-देव को
नौका में बैठाकर इसी देवता के नाम वाले मन्दिर
ले जाया जाता जहाँ पहले ही से हज़ारों ही नर-नारी
यह तमाशा देखने को एकत्र रहते थे।

जब यह शरीरधारी देवता मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगाता तो मार्ग में फूलों के हार तोड़ तोड़कर फेंकता जाता था। जब पुष्पाभूषण समाप्त हो जाते तो वाद्य यन्त्रों के फेंकने की बारी आती जिनके द्वारा इसने गत वर्ष आनन्द मनाया था।

मन्दिर की छत पर पहुंचने पर छः बलवान पंडे इसका स्वागत कर वध स्थान तक ले जाते थे। (इन पंडों में से पांच पंडों के वस्त्र काले और एक के लाल होते थे) इनके काले लम्बे बाल काले कपड़ों तक लटकते हुए उस समय अत्यन्त भयानक लगते थे। पंडों के इन वस्त्रों पर उनकी भाषा में मन्त्र आदि लिखे हुए होते थे जो इनकी आकृति को और भी अधिक भयावना बना देते थे। वह पत्थर जिस पर इसे बलिदान किया जाता ऐसा ढालू रक्खा गया था कि नीचे वाले भली भांति नर-बलि का तमाशा देख सकें।

इस पत्थर पर इस शरीर धारी देवता को बलपूर्वक लिटा दिया जाता। पांच काले वस्त्रों वाले पंडे इस अभागे के हाथ पांव और सिर पकड़ते और छठा पंडा (लाल वस्त्र वाला जो कदाचित उसके खूनी होने की पहचान थी) इस मनुष्य के कलेजे को अपने खंजर से चीर डालता। इस कार्य में वह इतना दक्ष था कि बड़ी आसानी से वह साबित कलेजा क्षण भर में निकाल लेता था।

पहले कलेजे को वह सूर्य की ओर दिखाता और फिर बड़ी भक्ति के साथ उस देवता के चरणों में चढ़ा देता। इस भेंट के चढ़ते ही सारे दर्शक श्रद्धा पूर्वक मस्तक झुका लेते और पुजारी पंडा बड़ी गम्भीर वाणी में जनता को उपदेश देता "देखो संसार वह स्थान है जहां आरम्भ में मनुष्य बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करता है जैसा इस अभागे व्यक्ति ने व्यतीत किया, जिसे अभी देवता की भेंट किया गया है परन्तु अन्तिम परिणाम इसका भयानक निकला। इसलिये संसार की विषय वासनाओं में लगकर उसके सुखों पर मनुष्य को भरोसा नहीं करना चाहिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूंजीवाद और मुस्लिम विरासत के कानून

श्री ओंकारप्रसाद श्रीवास्तव बी० ए०, एल-एल०बी०

जहाँ तक जायदाद का सम्बन्ध है इस्लाम मालिकाना हक को मानता है और व्यक्तिगत अधिकार की पूर्ण रक्षा करता है लेकिन साथ ही साथ वह सारी जायदाद को परमेश्वर की एक अमानत मानता है। मुसलिम व्यवस्थाकारों ने मालिकाना हक की हामी भरते हुए दो प्रकार से व्यक्तिगत जायदाद के वितरण की योजना कर पूंजीवाद के कटु-परिणामों से समाज को बचाने का प्रयास किया है—एक 'ज़कात' से और दूसरा विरासत के नियमों से।

'ज़कात' के नियमों के हिसाब से हर मुसलमान का यह फ़र्ज़ है कि वह अपनी आमदनी या जायदाद का एक निश्चित हिस्सा गरीबों और मुहताजों को देवे। 'ज़कात' का शाब्दिक अर्थ कलम द्वारा खेती करना है। इससे स्पष्ट है कि 'ज़कात' की योजना का आधार धर्म की आड़ में आर्थिक सिद्धान्तों पर ही विशेष रूप से स्थित है। 'ज़कात' की रकम अगर गरीबों को बाँटने के उपरान्त भी कुछ बच जाती थी तो वह "बैतुल-माल" सार्वजनिक कोष, में जमा कर दी जाती थी। इतिहास बतलाता है कि यह मदद और खैरात का इतना अच्छा सुव्यवस्थित तथा सरल तरीका इतने बड़े परिमाण पर अमल में लाया जाता था कि इससे मुस्लिम संसार की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएं सदियों तक आसानी से हल होती रहीं। आज भी जिन मुस्लिम देशों में जैसे नज्द में, ज़कात इकट्ठा की जाती है, वहां शायद ही कोई ज़रूरतमन्द मुहताज मुसलमान मिले।

दूसरा तरीका जायदाद वितरण का विरासत के क़ानून द्वारा है। यह कानून खुद की कमाई हुई और खानदानी जायदाद में भेद नहीं मानता। जायदाद पाने के लिये स्त्री-पुरुष का भेदाभेद नहीं। सब अपने अपने हक़ में जायदाद पाते हैं। एक ही दर्जे के वारिसों में जायदाद का बटवारा हिस्सेदारों के अनुपात में बराबर बराबर होता है न कि वारिसों की पीढ़ियों के अनुपात में। इस कानून में प्रतिनिधित्व को स्थान नहीं और हर एक को अपनी जायदाद को मनमाने तौर पर बेचने का हक़ रहता है।

इस कानून के अनुसार (५) पांच किस्म के वारिस हर हालत में जायदाद पाते हैं जैसे बाप, मां, लड़का, लड़की खाविन्द या बीबी।

यह क़ानून वारिसों को तीन दर्जों में विभाजित करता है। पहले दर्जे के वारिस जो हिस्सेदार कहलाते हैं, बारह होते हैं, जिनमें आठ औरतें होती हैं, जैसे—पत्नी या पत्नियां, लड़कियां, लड़कों की लड़कियां (चाहे जिस पीढ़ी की हों) सगी बहनें, सौतेली बहनें (एक मां से या एक बाप से), मां, सगी दादी (चाहे जितनी ऊंची पीढ़ी की हो), बाप, सगा दादा (चाहे जितनी ऊँची पीढ़ी का हो), भाई, खाविंद। इन हिस्सेदारों के हिस्से क़ानूनन् निश्चित रहते हैं और वे उसी अनुपात में मुनवफी की जायदाद पाते हैं।

हिस्सेदारों के बाद असबाह् का हक़ आता है। ये भी तीन प्रकार के होते हैं। पहले वे होते हैं जो अपने हक़ में जायदाद लेते हैं! इनमें मुतवफी के वारिस नरीना, सौतेले भाई व उनके वारिस नरीना, और पूर्व के वारिस नरीना, चाहे जिस पीढ़ी के हों शामिल रहते हैं। दूसरे दर्जे के असबाह वे होते हैं जो दूसरों के हिस्से में से हिस्सा लेते हैं जैसे पुत्री जब पुत्र के साथ हो, नतिनी लड़के से जब नतिनी (लड़के से) के साथ हो, सगी सौतेली बहनें जब सगे या सौतेले भाई के साथ हों आदि। तीसरे दर्जे के असबाह में सगी या सौतेली बहनें (एक बाप की) की जब वे पुत्री या पुत्री के लड़के के साथ होती हैं, गिनती होती है।

इनके बाद दूर के रिश्तेदारों को मुतवफी की जायदाद मिलती है।

इसलामी क़ानून के मुताबिक स्त्रियों का व्यक्तिगत और जायदाद पाने का हक़, पति के व्यक्तित्व अथवा विरासत के हक से कोई खास सम्बन्ध नहीं रखता। शादी हो जाने के कारण अपने पुराने हक हकूकों को नहीं बैठती जैसा कि दूसरे कानूनों में होता है। उसे पति का साहूकार बनाती है जब तक कि उसे मेहर अदा नहीं हो जाती।

मुसलमानी कानून राजा को वारिस करार नहीं देता यदि कोई मुसलमान लावारिस मर जावे तो उसकी जायदाद राजकोष में न जाकर 'बैतुल' नामक एक सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोष में जमा होगी जिसकी कि कौड़ी कौड़ी गरीब मुसलमानों के फायदे में ही खर्च की जाती है। शिया कानून खासतौर पर 'बैतुलमाल" संस्था को नहीं मानता किन्तु वह शहर के गरीबों को ही ऐसी लावारिस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी करार देता है। इस तरह इसलामी कानून ने अपने मूल नियम को 'कि सारी जायदाद खुदा की है, खूब निभाया है।

मुस्लिम विरासत के कानूनों का अवलोकन यह स्पष्ट रूप से बताता है कि मृत-व्यक्ति की जायदाद छोटे छोटे हिस्सों में विभाजित होकर बहुत से वारिसों में बँट जाते हैं जिसके फलस्वरूप तीन पीढ़ियों के अन्दर ही वह एक ही खानदान के व्यक्तियों को ही नहीं किन्तु दर्जनों खानदानों के व्यक्तियों को मिलकर बहुत दूर दूर के रिश्तेदारों तक पहुंच जाती है। इस प्रकार का विरासत का क्रम हर एक व्यक्ति की जायदाद के बाबत लगातार जारी रहने का फल यह होता है कि समाज के अन्दर सम्पत्ति का हमेशा समान रूप से वितरण होता रहता है और मालिकाना हक की भी सार्थकता बनी रहती है। जिस तरह एक स्वस्थ शरीर में खून का उचित अनुपात में सब अंगों में बहाव होता रहता है उसी प्रकार इस जाति में सम्पत्ति के बहाव की व्यवस्था है। समाज के भीतर जीवन संग्राम की मार व्यक्ति के पेट पर न पड़ने पावे इसकाबखूबी ख्याल मुस्लिम कानूनज्ञों ने रखा है। यदि सामाजिक सम्पत्ति अल्प है तो उसमें मुहताजी कसरत से रहेगी ही किन्तु जब समाज धनवान है तब फाक़ेकशी का कोसों दूर रहना अनिवार्य है। सम्पत्ति पुश्तहा-पुश्त के लिये एक ही खानदान में केन्द्रित हो दूसरों को जीविका के लिये उस खानदान का हमेशा को गुलाम नहीं बना सकती। यही इस कानून की सफलता का मन्त्र है; इसी के कारण ही पूंजीवाद की—ममत्व की उच्चत्तम पराकाष्टा की—खैर नहीं। जहां ममत्व हद के अन्दर है वहां मनुष्यत्व का होना अनिवार्य है। वहां मनुष्य स्वतः अपनी जाति का भक्षक बनने नहीं पाता किन्तु रक्षक ही रहता है।

यही कारण है कि यद्यपि उस समाज में भी सम्पत्तिशाली और सम्पत्तिहीन मनुष्य रहते हैं किन्तु उनमें कोई भी आर्थिक-फिरकेबन्दी दृष्टिगोचर नहीं होती। उस समाज में आर्थिक-वर्ग-संघर्ष सतह पर आ खुल खेलने नहीं पाता। फलतः उसमें पारस्परिक सामंजस्य और सहयोग सदा विद्यमान रहता है।

यह निर्विवाद है कि जीवन-संग्राम में अर्थ का बहुत बड़ा महत्व है। बहुधा आर्थिक भावना ही जीवन की प्रवृत्तियों की जड़ में रहती है जो कि समय पाकर समाज में दो विरोधी दलों—पूंजीवादी और पूंजीहीन—को जन्म देती है। मुस्लिम कानूनदाओं ने इस आर्थिक अन्तर्विरोध को एक निर्दिष्ट हद के अन्दर रख अपनी अनुपम दूरदर्शिता तथा मानव स्वभाव के ज्ञान का खासा अच्छा परिचय देते हुए समाज को जान दी है। यद्यपि आज दुनिया में मुस्लिम समाज गुलामी में जकड़ा हुआ है; विद्या तथा सभ्यता में कई—उन्नति-शील राष्ट्रों से पिछड़ा हुआ है पर जो पारस्परिक समवेदना और एकता उसमें विद्यमान है वह दूसरी जातियों तथा राष्ट्रों के लिये स्पर्धा की चीज है। जिस आर्थिक-वर्ग-संघर्ष को मिटा, पारस्परिक सामञ्जस्य तथा हमदर्दी स्थापित करने के लिये, पाश्चात्य देशों ने भरसक प्रयत्न किया, शासन प्रणालियों में उथल-पुथल मचा शक्ति का सहारा ले, देश-कल्याण के नाम पर अमानुषिक अत्याचारों से मानव इतिहास के पृष्ठों को काले कारनामों से रंग डाला किन्तु —सफल न हुए, उसे मुस्लिम विरासत के कानूनों ने सहज ही में मुस्लिम-समाज को हस्तगत करा दिया है। जिसका अनिवार्य परिणाम यह है कि उसमें अमीर और गरीब एक दूसरे के हामी बन, कंधे से कंधा भिड़ा—अग्रसर हो रहे हैं। उस समाज के प्रत्येक प्रयास में सामूहिक दृढ़ता का दुनिया को परिचय मिल रहा है। यह मुसलमानों के लिये ही फ़ख्र की बात नहीं किन्तु सारे पूर्वीय देशों के लिये नाज़ की चीज़ है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता-हरण और सोने की लंका

श्री शंभुप्रसाद बहुगुना, एम. ए., डिप. साइ.

सीता-हरण और सोने की लंका की कहानी राम-रावण युद्ध से संबन्धित होकर भारतीय जीवन में न जाने कब से चली आ रही है। भावुक जनता के हृदयों पर इस कथा के पौराणिक काव्य-रूप ने अपना अमिट प्रभाव छोड़ा है। अनुश्रुति ने कथा-साहित्य को बहुत कुछ हद तक कल्पना से अति रंजनापूर्ण बनाया है किन्तु कवियों की प्रतिभा से स्वयं अनुश्रुतियाँ भी कम अनुप्राणित नहीं हुई हैं। साहित्यिक तथा सामान्य परंपरागत इन दोनों ही रूपों में यह कथा साधारण जनता के अडिग विश्वास की वस्तु बनी हुई है। प्रत्येक युग ने अपनी छाप इस कथा पर छोड़ी है और कथा ने भी किसी न किसी रूप में हर एक युग को आशा और विश्वास का शक्तिवान संदेश दिया है।

बुद्धिवादी युग अपनी समस्त साहित्यिक संपत्ति को भी तर्क की वैज्ञानिक कसौटी पर कसने का आदी होता है। वह सत्य को नग्न-स्वरूप में देखना चाहता है, कृष्ण और राम के ऐतिहासिक मानवी रूप को जानने की प्रेरणा इसी वृत्ति का एक सामान्य रूप है।

आरम्भ में तो राम और कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व ही सन्देह की खटाई में पड़ गये थे और परस्पर विरोधिनी सभ्यताओं के संघर्ष के साहित्यिक रूप मात्र उनकी जीवन गाथाओं में समझे जाते थे और अब उसके लिए ऐतिहासिक आधार भी ढूँढ़ा जाने लगा है। राम-रावण युद्ध दो महान् व्यक्तियों का व्यक्तिगत युद्ध रहा हो न रहा हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं वह दो परस्पर-विरोधिनी सभ्यताओं अथवा नैतिक-भावनाओं का संघर्ष हो कर साहित्य में आया है और अनेक महान् कवियों ने उसे अपनी अपनी प्रतिभा से सजीव बनाया है।

विरोधी-संस्कृतियों के संघर्ष में यह एक सामान्य बात है कि अपने अपने साहित्य में परवर्ग को अतिरंजना पूर्ण कलुषता से भर दिया जाता है। दक्षिण-प्रसार की इच्छुक अध्यात्मवादी आर्य जाति ने भौतिक सत्तापूर्ण द्रविड़ सभ्यता के प्रतिनिधि को दशमुख का वह विचित्र जन्तु बना दिया जिस के सिर पर एक और शिर गधे का भी माना जाता है और राक्षस के नाम से जिसे आज रावण संज्ञा दी जाती है। महत्वाकांक्षापूर्ण भौतिकवादियों के प्रति शून्य हुई भावनाओं के अध्यात्मवादियों का ऐसा दृष्टि कोण होना स्वाभाविक ही था। किन्तु इसी स्वाभाविकता में उस अलंकारिक प्रतीकात्मकता के भी बीज निहित रहते हैं जो आगे चल कर पहिचानने भी कठिक हो जाती है।

साहित्य में सीता मन्दोदरी की पुत्री के रूप में भी मिलती है। जनक की वह पोषिता पुत्रिका थी और रक्त नहीं। (शैव) रावण तथा (शैव) जनक को जोड़ने वाली इस शृंखला (सीता) का सम्बन्ध वैष्णव आर्य-धर्मावलम्बी राम से धनुष-भंग (शैव धर्म की कुटिलता तोड़ने) के पश्चात हुआ। और आगे चल कर सुवर्ण मृग से मोहित इस लक्ष्मी (भारत की आत्मजा) का अपहरण रावण ने किया।

रावण के द्वारा सीता-हरण का होना और राम का रावण को मार कर सीता का उद्धार करना काव्य की दृष्टि से उतनी ही सुन्दर और मार्मिक वस्तु है, जितनी सोने की लंका की कल्पना। किन्तु सांस्कृतिक संघर्ष के लाक्षणिक प्रतीकात्मक रूप में इस कथा को समझने का यत्न किया जाय तो उसका वह रूप नज़र आ सकता है जो आज की घोर वास्तविकताओं में हमारे आँसू पोंछ हमें आगे बढ़ने का हृदयानुमोहित आत्मबल देने वाला है।

रावण के राज्य में भौतिक सभ्यता, जिसके मुख्य अंग, यंत्र वाद, पर अवलंबित भोगविलासी जीवन, धन का केन्द्रीकरण, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा आर्थिक शोषण हो जाते हैं, अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गई थी। 'यम, वरुण, पवन, इन्द्र, कुबेर आदि दिक्पाल उसके यहाँ नौकरी करते थे, समुद्र उसके चरण धोता था, सूर्य-चन्द्रमा, छत्र-चँवर करते थे और लोक उससे थर्राता था' आदि उक्तियों का तथ्य रूप में यही अर्थ अधिक सम्भव जान पड़ता है कि उसके यहाँ भौतिक तथा रक्षण शास्त्र अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गये थे। जिसके अवश्यम्भावी परिणाम विलासप्रियता, आर्थिक वैषम्य, व्यापार-विकास, साम्राज्य-विस्तार की बढ़ती हुई लिप्सा और मानव जीवन को त्रस्त कर देने वाली दर्पपूर्ण हुकूमत हुई। भौतिक विज्ञान के विकास से (उस रावण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्यापार, उसका वैभव, उसका साम्राज्य, उसका विलास उत्कर्ष की उस सीमा पर पहुंचा जहाँ आज पश्चिम का पूंजीवाद पहुँचकर लोक हृदय के लिए राज रोग बन गया है। साम्राज्यवाद के आतंक से लोक कांपता था पर भारत की आत्मा राम नहीं। राम से स्वयं साम्राज्यवाद सशंकित रहता था, कुछ वैसी ही स्थिति समझनी चाहिये, जैसी आज साम्राज्यवाद (जिसका आधार पूंजीवाद है) और गांधी जी की है। भारत का आर्थिक शोषण रावण के साम्राज्यवाद का प्रमुख ध्येय उसी भाँति हो रहा था, जिस भाँति पश्चिम के लिए इस युग में है। सोने की चिड़िया से सोने के अंडे निकालने की उक्ति तो अभी परसों की है। हिरण्यगर्भा भारत की इस भूमि में सुवर्ण के प्रवाह विस्मृत अतीत से प्रवाहित होते रहे हैं और समय-समय पर पृथु, वेन, आदि इसके सुवर्ण धन की धाराओं को खींच-खींच कर अपने स्वार्थ-देशों को भरते रहे हैं। रावण ने भी यही किया तब उसकी देश भूमि लंका को सोने का बनते क्या देर लगती थी।

लक्ष्मी, जो कि सुवर्ण मानी जाती है, धन की देवी का ही नहीं वरन् स्वयं धन का भी एक नाम है, और भारत का धन-चमकीली चीजों (स्वर्णमृग) के जरिये खिंच खिंच कर लंका जा रहा था। अवतार की भावना में सीता लक्ष्मी की अवतार मानी जाती हैं। तब भारत के धन का हरण (अथवा शोषण), लक्ष्मी-का हरण और लक्ष्मी का हरण सीता के हरण का द्योतक हो गया। साहित्य में लाक्षणिक प्रतीक की यही कथा कवि प्रतिभा की शक्ति और श्रद्धालु जनता की भावना से सिंचकर सीता हरण के रूप में विद्यमान है और भारत के धन से सम्पन्न हुई लंका को सोने की लंका के रूप में देखने की वृत्ति ने भी प्रतीक से हटकर सामान्य जनता की कल्पना में वास्तविकता का दिव्य रूप ले लिया है।

निरा कम्यूनल

श्री विष्णु

निशिकान्त की आंख खुली तो प्रकाश गहरा हो रहा था। सामने छत पर, बैठक के आले में चिड़िया ने जो घोंसला बना लिया था उसमें एक चिड़िया बड़ी अदा से गरदन मटका मटकाकर गा रही थी और दूर तालाब के किनारे मोर के बोलने की आवाज़ आ रही थी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने रात भर भयङ्कर सपने देखे थे इसलिये उसका मन बेतरह घबरा रहा था और वह उद्विग्न विचलित कुछ करना चाहता था लेकिन क्या...वह स्वयं नहीं जानता था।

उसने अर्ध निद्रा में पुकारा—गोपाल भइया।

उत्तर नहीं मिला। उसे होश आया—तभी किरणों ने उसका माथा चूम लिया। वह मुस्करा कर बोला—सुप्रभात।

लेकिन वह मुस्कराहट क्षणिक थी। उसने गोपाल की खाली खाट को देखा और बड़बड़ाया—चला गया होगा। उसने जगाया भी नहीं।

उसने दोनों बिस्तर लपेटे और नीचे उतरने लगा—नीचे के बिल्कुल पास पंडित मेलारामजी का कमरा था। वे तब तन्मय होकर रामायण के पद गा रहे थे। प्रसंग युद्ध-कांड का था। लक्ष्मण, इन्द्रजीत की शक्ति से मृत्यु शय्या पर पड़े थे। राम का कातर वियोग दिल कंपा देने वाला था लेकिन पंडित जी का स्वर ठीक दोपहरी में भैरवी गाने के समान था। निशिकान्त ने मुस्करा कर उन्हें देखा और शीघ्रता से नीचे उतर गया। और मुँह धोते धोते उसे याद आया, "आज क्या हम लक्ष्मण की तरह मूर्च्छित नहीं पड़े हैं। घर घर में राम विलाप कर रहे हैं लेकिन हनुमान का कहीं पता ही नहीं है।" वह तब अकेला था। मां बहुत दिन से बड़े भाई के पास गई हुई थी इसलिये खाने पीने का बन्दोबस्त उसे स्वयं करना पड़ता था। वह इन बातों का आदी था। और पाक-विद्या में वह किसी भी स्त्री से होड़ ले सकता था। यह बात दूसरी थी जब कभी उसका मन रोटी बनाने को नहीं करता था तो वह दलिया बना लेता या पकते दूध में सेव, अंगूर, केला आदि फल डाल देता था। और ऐसे अवसर कम नहीं होते थे। आज भी उसका मन भारी और झुंझलाहट से भर रहा था। आह!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना पकाना मेरा काम नहीं है। मैं नहीं बना सकता और मैं नहीं बनाऊँगा।

उसी समय किसीने दरवाज़े पर पुकारा—बाबू जी, दूध लीजिये। उसकी निद्रा टूटी और यन्त्र की तरह उसने बाल्टी उठाई। दूध लिया, उसे छाना, फिर अंगीठी जलाई और उस पर रख दिया। अब वह कुछ देर के लिये निश्चिन्त था यद्यपि घर में काफी अस्त व्यस्तता और गन्दगी थी। वह पुराने ढङ्ग का मकान था उसके दरवाज़ों पर किवाड़ बहुत कम थे। जाली तो किसी में थी ही नहीं इसीलिये सब कोनों में ढेर का ढेर कूड़ा जमा पड़ा था। गरदा अक्सर इतना भर जाता था कि मां उसे बूरा कहकर मजाक उड़ाया करती थी।

जो कुछ भी हो, वह अब अकेला था और...और उसे याद आया—आज रविवार है। उसे आर्य समाज की सभा में जाना है।

उसने सोचा—मैं नहीं जाऊँगा। एक दिन न जाने से क्या होता है। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे जाना ही होगा। बस, वह उठा, दूध की आग मंद की; शीघ्रता से कपड़े पहिने और निकल पड़ा। आज मजहबी दंगे को हुये दो दिन बीत गये इसलिये बाहिर अपेक्षाकृत कम सन्नाटा था। लोगबाग सड़कों पर घूम रहे थे यद्यपि हिन्दू मुसलमानों में अभिवादन के आदान-प्रदान की प्रथा पर अभी अंकुश लगा था तो भी कारणवश वे बोल उठते थे। उसने उन्हें घूरकर देखा और चाहा बात करने का कोई बहाना मिल जाये। वह कच्चे दिल का आदमी था इसलिये उसमें अपरिचित से परिचय प्राप्त करने का साहस नहीं था। उसे बहाना भी नहीं मिला और वह परेशान और चुपचाप आर्य समाज मन्दिर की ओर चला गया। जिस समय वह वहां पहुँचा हवन समाप्त हो चुका था और वे शांति-पाठ के मन्त्र पढ़ रहे थे और बीच बीच में इधर उधर देख लेते थे।

फिर तो नियम चल पड़ा। यज्ञ वेदी पर से उठकर सब आदमी हॉल में जा बैठे और मिलकर ईश्वर स्तुति का एक गीत गाया। उस गीत से संगीत का इतना ही सम्बन्ध था जितना अग्नि और जल का। उसके बाद ईश्वर की प्रार्थना हुई। कुछ लोग आंखें मीचकर ध्यानावस्थित हो गये। कुछ निद्रा देवी से प्रेमालाप करने लगे। कुछ ऐसे थे जिन्हें कोई न कोई समस्या तंग कर रही थी। कुछ भी हो वे सब ध्यान मग्न नहीं थे। और उनका ध्यान तभी टूटा जब प्रार्थना करनेवाले महोदय ने बड़े मधुर परन्तु बड़े ओजस्वी शब्दों में उस निर्विकार निरंजन के दरबार में करुण गुहार की—परम दयालो! यह कैसा न्याय है तेरा। परसों तेरे भक्तों के खून से विद्यार्थियों ने होली खेली और तू देखता रहा। दीन बन्धो! निर्दोष कोमल सुकुमार बालक, प्रेमी तरुण, शिक्षित और प्रतिष्ठित वृद्ध तेरे देखते देखते धराशायी हो गये। यह तेरी कैसी लीला है। दयामय तू दयालु है, तू न्यायकारी है, तू अन्तर्यामी है, तू घट घट व्यापी है, तू क्या जानता नहीं प्रभो! उनका अत्याचार बढ़ता चला जा रहा है। तू क्या नहीं समझता निरंजन! उनके मनोविकार कितने घृणित और हेय हैं। उनके द्वारा तेरे आर्य जनों को कितना भयङ्कर कष्ट मिल रहा है।

प्रभो! प्रभो! मैं भूला! मैं तुझ पर आरोप लगाने लगा। तू तो निर्लिप्त है न निरंजन! तुझे जग की घटनाओं से क्या वास्ता। तू हमें बल दे, शक्ति दे, ओज दे, शौर्य दे, हम बलशाली हों। हमारे कन्धे ऊँचे हों, हमारी बाहुएं विशाल हों। हमारे रक्त में उष्णता हो और हम अपने शत्रुओं का दलन करदें, तभी हमारा कल्याण है। इसलिये हम—तेरे विनम्र बालक—तुझसे प्रार्थना करते हैं तू हमारी मनोकामना पूरी कर। तू हमें दिग्विजयी बना जिससे हम तेरे आदेश पर की गई उस महान प्रतिज्ञा को "कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्" पूरा कर सकें। और हमें में दयालो प्रभो, हमारे देश में वर्षा समय पर करो हमारे देश में तीव्रगामी घोड़े हों। हमारे देश में विनयी ब्राह्मण, तेजस्वी क्षत्री, धनी वैश्य और आज्ञा शूद्र हों। हमारे देश में अन्न-धन की कमी न रहे उसमें सदा आर्यों का निवास हो। आर्य जिसे अनार्य नष्ट हो जायें। अभी तुझमे मेरी और तेरे समाज के सभी सदस्यों की इतनी प्रार्थना है। स्वीकार कर, स्वीकार कर, स्वीकार कर। ओ३म् शान्ति, शान्ति।

प्रार्थना सुनकर सभा गद् गद् हुई। कुछ लोगों आंखें तो निश्चय रूप से सजल हो उठीं परन्तु निर्विकार के भीतर एक विद्रोह फूट पड़ा। उसने कहा—अरी तुझसे कुछ नहीं चाहता! तू अपना काम कर और उन्हें अपना करने दे। परन्तु मन ही मन इतना कहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर से शान्त बना रहा। सभा-मंडप में गीत का स्वर फिर गूंजने लगा। कोयल से लेकर गर्दभ देव तक सब पुकार उठे—हे दयामय, हम सबों को शुद्धताई दीजिये। इसके बाद व्याख्यान देने का अवसर आया। गम्भीर स्वर में मंत्री ने घोषणा की—सज्जनो! जो कुछ हुआ उसकी याद इतनी ताजा है कि मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। रायबहादुर हमारे प्रधान रह चुके हैं। उन्हींके एक कुलवासी ने इस आर्य समाज की स्थापना की थी। इसके साथ साथ यह आर्य जाति के जीवन मरण का प्रश्न है। हमारे सामने चुनौती फेंकी गई है। हमें उस पर विचार करना है। इस प्रश्न से बढ़ कर विचारणीय विषय क्या हो सकता है। हम गुलाम हैं फिर तो भी एक गुलाम दूसरे गुलाम को मार डालना चाहता है। यह तभी सम्भव है जब मालिक उसकी गुप्त रूप से सहायता करते हों। उसका बर्ताव न्याय के विरुद्ध है, मनुष्यता के विरुद्ध है। क्या हम उस बर्ताव को इसी तरह सहते रहेंगे! सज्जनो! मुझे अधिक नहीं कहना है अब आपके सामने डा० धर्म प्रकाश जी राय-बहादुर के सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित करेंगे। मंत्री जी बैठ गये। तालियां बजते-बजते रह गईं। वातावरण गम्भीर था और रायबहादुर की मौत बहुतों के लिये हृदयद्रावी होकर भी आर्य जाति के लिये दुख का कारण थी। डा० धर्मप्रकाश उठे क्षणभर उन्होंने हाल में उपस्थित सज्जनो पर दृष्टि डाली और फिर गम्भीर वाणी से बोले—सज्जनो! मुझे आज्ञा हुई है—मैं यह प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित करूं। मेरा दुर्भाग्य है मुझे आपके सामने यह शोक प्रस्ताव लेकर आना पड़ा। रायबहादुर के आगे स्वर्गीय शब्द जोड़ते हुए मेरा दिल कांपता है, आंसू राह टटोलते हैं और मुझे लगता है आर्य जाति का एक उज्वल रत्न.....एक उज्वल रत्न खो गया। चमकते हुए आकाश का एक प्रज्वलित तारा टूट गया। कौमियत की बाँह टूट गई। हमारा सर झुक गया। आंधी आई और उस दरख्त को, जिसकी छाया में हम पनप रहे थे, उखाड़ती हुई निकल गई। आह! सज्जनो, आपने सोचा यह क्यों हुआ? आपने विचारा यह क्या हुआ? आज हम क्यों गिर गये? क्यों हमारे देखते-देखते उन्होंने हमारे रत्नों को, हीरों को लूट लिया, हमारे समाज की भावी आशाओं को कुचल डाला.....आह, आर्य बन्धुओं! क्यों हमारा रक्त पानी बन गया। क्यों हम टुकर-टुकर निहारते रहे? हमारा क्षत्रित्व क्या हुआ? हमारी शक्ति कहां जाकर सो गई? सज्जनो! सोचा कभी आपने? आह, नहीं सोचा। मैं बताता हूँ। हम स्वामी दयानन्द के असूलों को भूल गये। उस प्यारे ऋषि की वाणी पर हमने विश्वास नहीं किया। उसने जो नियम बताये थे उन पर हम नहीं चले। हम सन्ध्या नहीं करते; हम ब्रह्मचारी नहीं हैं; हमारा संस्कारों में विश्वास नहीं, वेद को हम धर्म पुस्तक नहीं मानते.....ऐसी हालत में सज्जनो, जो कुछ होना चाहिये था वही हुआ। अब भी समय है, हम चेतें और प्यारे ऋषि की प्यारी वाणी पर विश्वास करें। तभी आर्यों का कल्याण है, तभी हम अपनी रक्षा कर सकेंगे। उसके बाद उन्होंने प्रस्ताव पढ़ा और बैठ गये। सभा केवल उन पुरुषों के अतिरिक्त जो दीवार के सहारे बैठे थे—बिल्कुल शान्त और स्तब्ध थी। वे सज्जन सदा की भांति एक नींद ले चुके थे और भूरे मास्टर साहब, जिनका निचला ओठ बेतरह मोटा था, गरदन के भार को सहार सकने में असमर्थ बार बार जाग उठते थे, अब शान्त थे। मंत्री ने खड़े होकर कहा—अब श्री पं० निशिकान्त इसका समर्थन करेंगे।

निशिकान्त चौंका नहीं। यद्यपि उसकी इच्छा नहीं थी तो भी मंत्री जी की चिट उसके सामने आ चुकी थी। वह उठा और बोलने लगा—उपस्थित महानुभावो! प्रस्ताव आपके सामने है। रायबहादुर की मौत हमारे लिये जीवन-मरण का प्रश्न है। वह इतनी ताजा है कि कुछ कहते नहीं बनता है। दिल भरा जाता है। आंसू मार्ग टटोलते हैं। पर महानुभावो के आंसू रक्त के आंसू हैं। आखिर यह क्या है? आखिर भाई ने भाई को क्यों मार डाला? यह सोचने की बात है। अवसर है। राय-बहादुर हमारी समाज के प्रतिष्ठित सदस्य थे, हमारे नेता थे। हमारे प्यारे थे। उन पर हमें गर्व था उनकी उदा-रता, उनका चरित्र उनका.....(जैसे वह कांपा)..... उनका व्यक्तित्व अब कहां देखने को मिलेगा। वे शहीद हुए हैं और दुनिया शहीदों की पूजा करती है। और बा० मोहन कृष्ण! वह देवता था। उसका परिवार आज अनाथ हो गया। उसने किसी का क्या बिगाड़ा था। वह क्यों मार दिया गया? रामनाथ का लड़का उसके दिल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या घृणा थी और प्रेमा का मासूम बच्चा और ला० देवीदीन.....आर्य जाति के ये पांच रत्न, पांच पवित्र आत्मायें; इनका बलिदान क्या व्यर्थ जा सकता है। महानुभावो, वे तो शहीद हो गये हैं परन्तु हमारी आंखे खोल गये हैं। जो जाति अपने सदस्यों की रक्षा नहीं कर सकती उसे जीने का अधिकार नहीं है। अतः हमें चाहिये या तो हम हिन्द महासागर में डूब मरें या हिमालय में गल जायें। नहीं तो जियें और एक वीर जाति की तरह जियें। महानुभावो मुझे कुछ भी नहीं कहना है। हम मृत आत्माओं की सदगति के लिये प्रार्थना करते हैं। शोक संतप्त परिवारों से हमें पूरी सहानुभूति है। निशिकान्त के स्वर में क्रोध था; दुख था; घृणा थी और थी एक व्यंग भरी करुणा। वह स्वर को ठीक समय पर उठाना और गिराना जानता था। वह आज बहुत थोड़ी देर बोला। पर जैसे ही वह बैठा, लगा कोई स्वप्न भंग हो गया। उसके बाद सबने खड़े होकर प्रस्ताव पास किया और एक गीत तथा शांति-पाठ के बाद सभा समाप्त हो गई और वे लौट चले। उनमें गोपाल भी था और चन्द्रकुमार भी। गोपाल प्रसन्न था और कुमार गम्भीर। निशिकान्त के पास आकर गोपाल ने कहा—निशिकान्त, तुम खूब बोलते हो। आज भी तुम्हारी वाणी कांप रही थी परन्तु कभी कभी ऐसा लगता था जैसे तुम्हें किसी अज्ञात भय ने जकड़ लिया है। कुमार बोला—हां, मैंने भी ऐसा ही अनुभव किया। क्या रायबहादुर की मौत का दुख गहरा है?

आह! निशिकान्त मुस्कराया; इसका बिल्कुल उलटा है कुमार। रायबहादुर की मौत की याद आते ही मेरा मन घृणा से भर उठता है, लेकिन मेरा दुर्भाग्य उसीकी प्रशंसा आज मुझे करनी पड़ी।

लेकिन तुम्हें उससे घृणा क्यों हुई?

क्यों हुई तुम नहीं जानते कुमार?

जवाब दिया गोपाल ने—निशिकान्त! रायबहादुर को सभी जानते हैं पर यह दुनिया है। यहां मन की कौन कर पाया है। चारों ओर से बन्धनों ने हमें जकड़ रक्खा है।

निशिकान्त हंस पड़ा—तुम्हारा ज्ञान कितना नपुंसक है भइया और मेरा भी। यह शायद हम नहीं जानते जिस दिन जानेंगे उस दिन मनुष्य को मुक्ति मिलेगी। उससे पहिले नहीं।

गोपाल ने अपने मन की भाषा पढ़ ली। वह चुप गया और कुछ गम्भीर होकर बोला—निशिकान्त आदमी ये पाश क्यों नहीं तोड़ पाता।

क्योंकि तोड़ना नहीं चाहता—चाहेगा उस दिन पाश स्वयं खुल जायेगा।

गोपाल ने फिर पूछा—तोड़ना नहीं चाहते यह बात मेरी समझ में नहीं आती। भारत की आज़ादी के लिये सभी आतुर हैं। उसके लिये बलिदान भी क्या कम हुए हैं। फिर भी वह स्वप्न बनकर रह गई है।

निशिकान्त मुस्करा उठा—तुमने भारत की आजादी चाही ही कब थी।

उसने फिर कहा—हां मेरे दोस्त! तुमने भारत की आजादी कभी नहीं चाही। तुमने केवल यही चाहा कि तुम सुख से रहो और तुम्हें आजादी मिले। तुम्हारी आजादी की व्याख्या तुम्हारे पड़ोसी की आजादी की व्याख्या से भिन्न है। और क्यों न हो मात्र तुम्हारा स्वार्थ है, तुम्हारे पड़ोसी का नहीं। इसीलिये बजाय इसके कि वह दुश्मन से जाकर टकराये—पड़ोसी का दुश्मन हो गया है। और हम सब सत्य को आंखें रहते भी नहीं देख पाते। इससे बड़ा भी दुर्भाग्य क्या किसी जाति का हो सकता है। वह पैनी छुरी की तरह घुसती चली गई। वे दोनों तिलमिला उठे। लेकिन अचरज, तिलमिला कर भी कुमार के पर मुस्कराहट फैल गई। लेकिन वह कुछ कहे पहिले एक आदमी उनके सामने आ खड़ा हुआ उसने निशिकान्त को सलाम किया और कहा—जी! जल्दी चलिये, साहब बहादुर आपको बुलाते हैं।

वह हांफ रहा था और उसके चेहरे पर स्पष्ट थी। वह निशिकान्त के दफ़्तर का चपरासी निशिकान्त क्रोध से कांप उठा। आज इतवार है।

जी!

फिर!

जी, साहब बहादुर ने फरमाया है उन्हें कुछ की ज़रूरत है। लाहौर से तार आया है।

अभी।

जी!

दफ़्तर में और कौन है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बाबू हैं !

चलो, मैं आता हूं।

चपरासी ने फिर सलाम झुकाई और लौट गया। गोपाल बोला—कैसी मुसीबत है, छुट्टी के दिन भी चैन नहीं है !

कुमार ने कहा—निशिकान्त, तुम्हें इसका विरोध करना चाहिये। यह क्या जड़ता है ?

निशिकान्त जाते-जाते रुका और मुस्कराकर बोला—कुमार जिस बात की चर्चा हम कर रहे थे यह उसी का उदाहरण है। इस छाती में जिस दिन विरोध जाग उठेगा उस दिन क्या धरा ध्वंस न हो जायेगी।

निशिकान्त क्रोध से भरा पड़ा था रास्ते भर वह अपनी इस बेबसी पर सोचता रहा लेकिन सोचकर किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका। क्रोध सदा निर्णय में बाधक है। इसलिये जब वह दफ्तर पहुंचा तो उद्विग्न हो रहा था। उसने देखा—बड़े बाबू शांत चित्त मेज पर झुके तेजी से लिख रहे हैं। बीच बीच में वे आप ही आप बोलने लगते हैं और उनकी गरदन हिल उठती है। वह सीधा अपने कमरे में पहुंचा और ताला खोलकर किवाड़ों को बड़े ज़ोर से धक्का दिया।

बड़े बाबू चौंक पड़े बोले—कौन निशिकान्त !

जी !

इधर आओ।

जी, आता हूँ।

और कहकर वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया। बैठा रहा, उठकर बड़े बाबू के पास नहीं गया।

उन्होंने फिर पुकारा—बाबू निशिकान्त.....।

निशिकान्त चुप है बोले कैसे ? झुंझलाहट के कारण उसका मन अवसाद और विषाद से कड़ुवा हो गया है। वह रविवार के दिन दफ़्तर बुलाने का बदला लेना चाहता है।

बड़े बाबू का स्वर तेज हुआ—बाबू निशिकान्त ! क्या है ! सुनते क्यों नहीं ! साहब आने वाले हैं..... फाइल चाहिये।

ठनक कर बोला—कैसी फाइल ?

सारा सभा के प्रश्नोत्तर की !

जल्दी करो, आने वाले हैं।

साहब आने वाले हैं तो मैं क्या करूँ। छुट्टी का दिन है।

बड़े बाबू क्रोध से भर उठे, बोले—जनाब ! सरकारी नौकर के लिये कोई छुट्टी नहीं होती। वह चौबीस घंटे का नौकर है।

जवाब मिला—लेकिन मैं नहीं हूँ।

तो स्तीफा दे दीजिये।

क्यों दूँ स्तीफा ! आप डिसमिस करा दीजिये। नहीं देता फाइल और.....और.....।

आगे शब्द फुस फुसकर रह गये और क्रोध ने उसकी वाणी को जकड़ लिया आंखें आरक्त हो आईं ! शरीर कांपने लगा। हाथ में जो फाइल लिये था उसे उसने जोर से मेज़ पर दे मारा। बड़े बाबू ने अचरज से देखा। क्रुद्ध वे भी थे पर न जाने क्यों वे उस समय शान्त पड़ गये, मुस्कराकर बोले—निशिकान्त बाबू। इतना आत्मसम्मान है तो फिर तुमने नौकरी क्यों की ?

तीर चूक गया। निशिकान्त क्या जवाब दे। बड़े बाबू उठे और उसके पास आकर बोले कौंसिल के सवाल हैं। कल जवाब मांगा है। साहब बेचारा बेबस है और तुम्हें इसी लिये बुलाया है, तुम समझदार हो। और किसीको वह बताना भी नहीं चाहता है। जानते नहीं वक्त कितना खराब है ? और सवाल साम्प्रदायिक है।

फिर क्षण भर रुके और मुस्कराये। निशिकान्त धीरे धीरे निशस्त्र हो रहा था। क्रोध को चीरकर हृदय में गुदगुदी होने लगी थी। वह बोला नहीं, चुपचाप बैठा रहा। बड़े बाबू ने कहा—हां देखो ! वह फाइल ले आओ और क्लर्कों की नियुक्ति की फाइल, साम्प्रदायिक अनुपात की गुप्त फाइल, ये सब फाइलें निकाल लाओ। साहब के साथ बैठ कर जवाब देना है। सब चीजें तैयार चाहियें, समझे। इसी प्रकार अफसर की निगाह में चढ़ा करते हैं। इसी प्रकार तरक्की का रास्ता खुलता है.....

और फिर बिना कुछ कहे वे शीघ्रता से चले गये। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि उस दिन निशिकान्त चार बजे तक घर नहीं जासका और जब गया तो देखा दूध बिल्ली पी गई है।

उसका भूखा शरीर तमतमा कर रह गया।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानाङ्ग सूत्र और अंगुत्तर निकाय

उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम

भाषा और भाव एवं प्रतिपादन करने की रीति बौद्ध और जैन आगमों में इतनी मिलती है कि आश्चर्य होता है। पाली और अर्ध मागधी के वाङ्मय को तुलनात्मक रूप से छानबीन करने की बहुत आवश्यकता है। खेद है कि इस ओर विद्वानों का ध्यान जा नहीं रहा! हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि यदि जैन और बौद्ध विद्वान एक स्थान पर बैठकर, निष्पक्ष बुद्धि से भारत के इन दोनों महान वाङ्मयों का सम्मिलित रूप से अवगाहन करें तो इस देश की बहुत बड़ी सांस्कृतिक सेवा होगी, इतिहास का उद्धार होगा और धूल में छिपे हीरे हमारे हाथ लगेंगे। अथवा, जिन्हें जैन और बौद्ध आदर्शों से प्रेम है और अर्ध मागधी तथा पाली वाङ्मयों का जिन्होंने अध्ययन-अनुशीलन किया है, वे ही आगे आवें। यह कार्य एक आदमी से सध नहीं सकता विद्वानों की संगठित शक्ति ही इस कार्य को कर सकती है।

हमने अपनी सीमित शक्ति के अनुसार इस दिशा में जो थोड़ा सा प्रयत्न किया है, वह कम से कम हमारे लिए बहुत ही उत्साहवर्धक है। 'जैन विद्या' के पहले अंक में "जैन और बौद्ध ग्रन्थों की समानता" दिखलाने के बाद हमें अंगुत्तर निकाय देखने का अवसर मिला तो अद्भुत समानता पाकर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। यहाँ पर अंगुत्तर निकाय में से और स्थानांग सूत्र में से कुछ कुछ पाठों की समानता प्रदर्शित कर देना अप्रासंगिक न होगा।

स्थानांग सूत्र
(चतुर्थ स्थान)

१—चत्तारि उदका पन्नत्ता तं जहा—
उत्ताणे णाममेगे उत्ताणो भासी।
उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी।
गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी।
गम्भीरे णाममेगे गम्भीरोभासी।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया.....

स्थान ४. उद्देश्य ४. सू० ३५८.

२—चत्तारि मेहा पन्नत्ता तं जहा—
गज्जित्ता णाकमेगे णो वासित्ता।
वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता।
एगे गज्जित्तावि वासित्तावि।
एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाया...

स्थान ४ उद्द० सू० ३४६

अंगुत्तर निकाय
(चतुर्थ निकाय)

१—चत्तारो मे भिक्खवे उदकरहदा कतमे चत्तारो?
उत्तानो गम्भीरोभासो।
गम्भीरो उत्तानोभासो।
उत्तानो उत्तानोभासो।
गम्भीरो गम्भीरोभासो।
इमे खो भिक्खवे चत्तारो उदकरहदा

निपात ४. वलाहक वग्गो १०४.

२—चत्तारो' मे....वलाह का कतमे चत्तारो?
गज्जित्ता नो वस्सित्ता।
वस्सित्ता नो गज्जिता।
नेव गज्जित्ता नो वस्सिता।
गज्जित्ता च वस्सिता च।
एवमेव....चत्तारो'मे वलाहकूपमा पुग्गला...

निपात ४. १०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76230

-चत्तारि पुरिसजाता पन्नत्ता तं जहा—
उन्नते नाममेगे उन्नते ।
उन्नते नाममेगे पणते ।
पणते नाममेगे उन्नते
पनते नामेगे पणते ।

स्थान ४, उद्देश्य १, सू० २३६

-चत्तारि पुरिसजाता प्रन्नत्ता तं जहा—
तमे नाममेगे तमे ।
तमे नाममेगे जोती
जोती णाममेगे तमे ।
जोती णाममेगे जोती ।

स्थान ४, उद्देश्य ३, सू० ३२७

-चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता तं जहा—
साले नाममेगे सालपरियाते [परिवारे]
साले नाममेगे एरंडपरियाए ।
एरंडे नाममेगे सालपरियाते ।
एरंडे नाममेगे एरंडपरियाते ।

स्थान ४, उद्देश्य ४, सू० ३४६

-चत्तारि फला पण्णत्ता तं जहा—
आमे णामं एगे आममहुरे.
आमे णाममेगे पक्कमहरे ।
पक्के णाममेगे आममहुरे ।
पक्के णाममेगे पक्कमहुरे ।
एवामेव चत्तारि पुरिसजाता....

स्थान ४, उद्देश १, सू० २५३

-चत्तारि पुरिसजाया पन्नत्ता तं जहा—
आतंभरे नाममेगे नो परंभरे ।
परंभरे नाममेगे तो आतंभरे ।
एगे आतंभरेवि परंभरे वि ।
एगे नो आयंभरे नो परंभरे ।

स्थान ४, उद्देश ३ सू० ३२७ ।

३—चत्तारो' मे पुग्गला कतमे चत्तारो
ओणतोणतो ।
ओणतुण्णतो ।
उण्णतोणतो ।
उण्णतुण्णतो ।

निपात ४ मचलवग्ग ८६

४—चत्तारो मे...पुग्गला कतमे चत्तारो ?
तमो तम परायनो ।
तमो जोति परायनो ।
जोति तम परायनो ।
जोति जोति परायनो ।

नियात ४, मचलवग्ग ८५

५—चत्तारो मे भिक्खवे रुक्खा कतमे चत्तारो ?
फेग्गु फेग्गुपरिवारो ।
फेग्गु सारपरिवारो ।
सारो फेग्गुपरिवारो ।
एवमेव चत्तारो' में रुक्खूपमा पुग्गला....

निपात ४, वलाहकवग्ग १०६

६—चत्तारिमानि अम्बानि, कतमानि चत्तारि ?
आमं पक्कवण्णि ।
पक्कं आमवण्णि ।
आमं आमवण्णि ।
पक्कं पक्कवण्णि ।
एवमेव चत्तारो' मे अम्बूपमा पुग्गला.....

निपात ४, वलाहकवग्ग १०६ ।

७—चतारो' में...पुग्गला-कतमे चत्तारो ?
अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय ।
परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय ।
नेव अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय ।
अत्तहिलाय च पटिपन्नो परहिताय च ।

निपात ४, असुखवग्ग ९६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—चत्तारि पुरिसजाया पन्नत्ता तं जहा—
णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे ।
निक्कट्ठे नाममेगे अणिक्कट्ठे ।
अणिक्कट्ठे नाममेगे णिक्कट्ठे ।
अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे ।

स्थान ४, उद्देश ४, सू० ३५२

८—चत्तारो मे...पुग्गला, कतमे चत्तारो।
तिकट्ठायो अनिकट्ठचित्तो।
अनिकट्ठकायो निकट्ठचित्तो।
अनिकट्ठकायो च अनिकट्ठचित्तो च।
निकट्ठकायोच निकट्ठचित्तो च।

निपात ४, पुग्गलवग्ग, १२

ये समान पाठ तो चतुर्थ स्थान और चतुर्थ निपात के ही हैं, स्थानांग और अंगुत्तर के अन्य स्थानों तथा निपातों में अवश्य ही और भी समान पाठ होंगे। स्थानांग के दश स्थान हैं और अंगुत्तर के एकादश निपात हैं। अंकोत्तर तो वास्तव में दो हैं।

ऊपर जो समानताएं प्रदर्शित की गई हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय तो परस्पर अत्यन्त साम्य रखती हैं। तृतीय में थोड़ा सा शब्द भेद है। स्थानांग में पणत—प्रनत है और अंगुत्तर में ओणत-अवनत है। चतुर्थ में केवल इतना अन्तर है कि अंगुत्तर 'परायनो' भी देता है। स्थानांग में 'तमे नाममेगे तमे' मात्र है। पञ्चम पाठ में हम एक स्थान में एरंड पाते हैं तो दूसरे स्थान में फेग्गुफल्गु पाते हैं। परन्तु तात्पर्य एक ही है एरण्ड भी तुच्छ है, निस्सार है और फेग्गु-फल्गु का तो अर्थ निस्सार है ही। छठे में एक जगह 'महुरे' है तो दूसरी जगह 'वण्णि' है। सातवां पाठ यह है कि 'आतंभरे णाम मेगे नो परंभरे (स्थानांग) और 'अत्तहिताय परिपन्नो नो परहिताय।' फिर भी अन्तर्गत भाव दोनों में एक ही है। आठवें पाठ में अंगुत्तर 'काय' और 'चित्त' अधिक देता है। इन सब यत्किञ्चित शाब्दिक भेदों के होते हुए भी आठों तुलनाएं अद्भुत रूप से सामञ्जस्य रखती हैं।

आठों तुलनाओं में एक और भेद है। स्थानांग से पुरिस-पुरुष पाठ है और अंगुत्तर में पुग्गल-पुद्गल है। जैसे कि "चत्तारि पुरिस जाता" और "चत्तरो मे पुग्गला" इसका समाधान क्या होगा ?

वास्तव में पुद्गल पुरुष का पर्याय है और जीव का भी, जैसे निम्नलिखित सूत्रों से प्रकट होता है—

"सिद्धे णं भंते कि पोग्गली पोग्गले ? गोयमा! पोग्गली पोग्गले, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पोग्गले ? गोयमा! जीवं पडुच्च से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ सिद्धे नो पोग्गली पोग्गले, सेवं भंते! भंते।"[1]

"जीवत्थि कायस्स णं भंते! केवतिया अभिवयणा पण्णत्ता ? गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता जहा—जवेतिवा जीवत्थिकायेति वा भूएति वा सत्तेति वा विन्नूति वा चेयाति वा आयाति वा रंगणाति वा रंगणाति वा हिंडुएति वा पोग्गलेति वा माणवेति वा कत्ताति वा विकत्ताति वा जएति वा जंतुतिवा जोणीति वा सयंभूति वा ससरी रीति वा नायएति वा अंतरप्पति वा जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते जाव अभिवयणा।

मौद्गल्यायन स्थाविर ने भी अपनी अभिधान चिन्तामणि पिका (पालिकोष) में पुद्गल को प्राणी और पुरुष का पर्याय बतलाया है जैसे कि—

"पाणो, सरीरि, भूतं (वा),
सत्तो, देही (च), पुग्गलो।
जीवो, पाणि, पजा, जन्तु,
जनो, लोको, तथागतो ॥"[3]

१—भगवती सूत्र, शतक ८, उद्देश १०, सू० ४६ (आगमोदय समिति)
२—भग० सू० शतक २०, उद्देश २, सू० ६
३—अभिधानप्पदीपिका (गुजरात पुरातत्व ग्रन्थावली) पठमो सग्गकंडो, ६१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन कवि बनारसीदास और हिन्दू-मुसलिम प्रश्न

श्री जमनालाल जैन, विशारद

हिन्दी-साहित्य के भक्ति काल की ज्ञानाश्रयी-शाखा और प्रेममार्गी शाखा का महत्व, हिन्दू-मुस्लिम एकता और प्रेम-प्रसारण की दृष्टि से भारतीय इतिहास में बहुत कुछ माना गया है। हिन्दी साहित्य मर्मज्ञों एवं इतिहासकारों का प्रायः यह विश्वास सा हो गया है कि यदि भक्ति के क्षेत्र में इन दो धाराओं का उद्भव हिन्दी साहित्य द्वारा भारत में न हुआ होता तो कहा नहीं जा सकता था कि उस अभाव की अवस्था में निराश भारतीय समाज की क्या गति होती। निश्चय ही साधारण जनता—और वही भारत की प्राण भी है, पथ-भ्रष्ट हो जाती और साम्प्रदायिक हठ और वैमनस्य के प्रभाव में रक्त की नदियाँ बह जातीं तथा रही-सही धार्मिक भावना भी ध्वस्त हो जाती। इन दोनों ही धाराओं से भारतीय जन समाज—विशेषकर उत्तरापथ—को काफ़ी ढाढ़स और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। यही कारण है कि उत्तरापथ अब तक उनकी ज्ञान-गुदड़ियों और 'प्रेम की पीर' को विस्मृत नहीं कर पाया है।

यह तो है ही; परन्तु इसे भी नहीं भुलाया जा सकता कि कबीरदास और जायसी ने जो कुछ भारतीय समाज के सामने रखा है, वह कोई नई वस्तु नहीं थी। ब्रह्म की उपासना, आत्म ज्ञान की महिमा और प्रेमाख्यान की धारा बहुत पहिले से ही यहाँ अपने विस्तृत और गम्भीर रूप में प्रचलित थी। नवीन खोज के आधार पर, कतिपय विद्वानों ने यह सिद्ध कर बताया है कि कबीरदास जी ने जिस विचारधारा का प्रतिपादन अपनी अटपटी वाणी में किया है, वह, मगध देश से चली हुई, भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध की ही आत्मवाद की धारा थी। प्रेम के वियोग और संयोग विषयक कथाओं से भी विशाल जैन-वाङ्मय भरा पड़ा है।

रहस्यवाद या गूढ़वाद की परंपरा—भारतवर्ष में उपनिषद् तथा प्राकृत साहित्य से होती हुई अपभ्रंश और फिर हिन्दी में आ गई। हिन्दी में भी वह कोई विशेष समय और परिस्थिति में आई हो, यह भी नहीं कहा जा सकता। दसवीं सदी से ही हिन्दी भाषा अपना क्षेत्र स्वच्छ और भिन्न करके सर्वथा स्वतंत्र हो गई थी। अतएव, इस काल में यदि कबीर और जायसी ने अपनी तान छेड़ी है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। संक्षेप में कहना तो यह पड़ेगा कि सिद्धान्त प्राचीन था, उदाहरण और दृष्टान्त नया था, सामयिक था। इस काल और परिस्थिति में पड़कर कोई भी सन्त-हृदय-महात्मा कबीर के पथ पर ही आरूढ़ हो सकता था। हम, आगे चलकर इस स्थिति को, कृष्ण काव्य परम्परा में भी देख सकते हैं। सूरदास और अष्टछाप के कवि-पुङ्गवों का जन-समुदाय पर वह प्रभाव पड़ा कि जिससे सहृदय मुस्लिम कवि भी अछूते न रह सके। रहीम, रसखान आदि कतिपय व्यक्ति इतने सुन्दर कवि और भक्त होगए हैं कि केवल उनकी रचनाओं को देखकर बड़े से बड़ा काव्य-मर्मज्ञ भी उन्हें अहिन्दू हृदय से प्रभूत रचनाएँ नहीं कह सकता। कहने का सारांश यह है कि समय की गति-विधि से दूर होकर कवि अपने पद का निर्माण नहीं कर सकता, उसके हृदय की आंखें प्रत्यक्ष में दीखने वाली जनसमाज की कठिनाइयों, समस्याओं और आवश्यकताओं को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकतीं।

कवि-शेखर बनारसीदास जी भी इस सामयिक प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। बनारसीदास जी ने भी अपने ढंग से हिन्दू-मुसलमान समस्या पर धार्मिक दृष्टि से प्रकाश डाला है। बनारसीदास जी जिस जमाने में जीवित थे, उस समय सम्राट अकबर का शासन-सूर्य चमक रहा था। सम्राट अकबर से उन्हें बेहद प्रेम था। जब संवत् १६६२ विक्रम में अकबर की मृत्यु हुई तब उस समाचार को सुन बनारसीदास सुधिहीन हो कर गिर पड़े और लहू-लुहान हो गए थे—

अकसमात बानारसी, सुनि अकबर कौ काल।
सीढ़ी परि बैठ्यो हुतो, भयौ भरमचित चाल॥
आइ तबाला गिरि परयौ, सक्यौ न आपा राखि।
फूटि भाल लोहू चल्यौ, कह्यौ 'देव' मुख भाखि
लागी चोट पखान की, भयौ गृहांगन लाल।
हाइ! हाइ! सब करि उठे, मात तात बेहाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रेम की पीर' का सच्चा अनुभव करने वाले ऐसे ही व्यक्ति हुआ करते हैं जो अपने जीवन को भी सङ्कट में डाल देते हैं! प्रेम की पीर का वर्णण करना कुछ और है और उसको कृति में उतार अनुभव करना कुछ और। पहिली वस्तु कला है, दूसरी सजीव-पीड़ा!

हिन्दी-साहित्य के लिए यह महान् गौरव की बात है कि कवि बनारसीदास ने भी अपने विचार हिन्दू-मुस्लिम समन्वय पर प्रकट किए हैं। यद्यपि उन्होंने बहुत ही थोड़े में—अति संक्षेप में—अपने विचारों को लिखा है, परन्तु उनमें जो अर्थ गाम्भीर्य, भव्य भावनाएं और मार्मिक तथ्य छिपा हुआ है वह केवल अनुभव करने की ही चीज़ है। फिर, उनके सम्बन्ध में इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि वे एक शुद्ध 'जैन' कवि थे। जैन कवि यद्यपि शुद्ध मानवता और नैतिकता के कवि रहे हैं, तथापि वे साम्प्रदायिकता के लिए अति से अधिक बदनाम भी रहे हैं और हैं। ऐसी हालत में यदि बनारसीदास जैसा फक्कड़-शिरोमणि कवि राष्ट्रीय समस्या पर 'कुछ-भी' कहता है तो, वह गौरव की वस्तु होजाती है। कविवर ने मुसलमान का लक्षण देते हुए कहा है कि—

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होय।
ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोय॥

कितना सुन्दर विचार और लक्षण है! मुसलमानों के लिए 'पराए' 'विदेशी' आदि शब्दों को लगा कर उन्हें दूसरा मानने की कल्पना भी नहीं उठ सकती! मन को मूस कर-मस कर (वश में कर), और साहिब के रुख—(आत्मोन्मुख) होकर, जो ज्ञान-मुसल्ला गह—(केवल ज्ञान को प्राप्त कर), टिक जाता है—सिद्ध हो जाता है, वही मुसलमान है। हिन्दू मुसलिम भेद पर वे कहते हैं—

"मन की द्विविधा मान कर, भये एक सो दोय।"
अन्यथा दो होने की कौन सी बात थी।

बनारसीदास जी की दृष्टि मे हिन्दू और मुसलमानों की लड़ाई उन दो भाइयों के समान थी जो अपने खेत में अलसी और जवस बोने के लिए लड़ रहे थे, पर वस्तु वास्तव में एक ही थी। वह लड़ाई ज्ञानी 'द्विभाषिया' के मिलने पर तत्काल शान्त होगई।

बनारसीदास हिन्दू मुसलिम विभेद पर कहते हैं—

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की द्विविधा मान कर, भये एक सो दोय॥
दोऊँ भूले भरम में, करें वचन की टेक।
'राम-राम' हिन्दू कहें, तुर्क 'सलामालेक'॥
इनके पुस्तक बांचिये, वेहू पढ़ें कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे शोभा, ज़ेब॥
तिन को द्विविधा-जे लखें, रंग विरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिये, घट-घट अन्तर राम॥

आज का राष्ट्रीय वातावरण भी हिन्दू-मुस्लिम समस्या से आच्छन्न है। आज यदि लोग बनारसी दास जी की आँखों से देखने का कष्ट करें तो, उन्हें स्पष्ट दृष्टि गोचर होगा कि यह समस्त भेदाभेद 'मन की द्विविधा मान कर' ही पैदा हुआ है और उसी के चक्कर में फँस मनुष्य भ्रम में भूल कर भेद-भाव पर अड़ा हुआ है।

क्या विश्वास किया जाए कि आज के इस द्विविधापूर्ण समय में हमारे साहित्यिक, राष्ट्रीय नेता तथा समर्थ समालोचक, हृदय में भव्य भावनाओं को प्रश्रय दे, मन के विकारों को नष्ट कर, शान्त और स्थिर चित्त से कवि शेखर बनारसी दास जी के उच्चतम हृदय-श्रोत से प्रस्फुटित भव्य विचारों को अपने 'रहस्य' विषय बनाएंगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलह महाजनपद

श्री गोविन्दसिंह कंडारी 'चातक'

वैदिक समाज कई कबीलों में विभक्त था। इन कबीलों को वे लोग 'जन' कहा करते थे। उनका विश्वास चला आता था और अभी भी कुछ जातियों में चला आता है कि उनके 'जन' के सभी व्यक्तियों का पूर्वज एक जोड़ा—केवल एक स्त्री एक पुरुष—रहा होगा। उसकी संतान हुई। संयुक्त कुटुम्ब बढ़ती गई और एक बड़ा जत्था हो गया। तात्पर्य यह है कि 'जन' के सभी व्यक्ति अपने को एक ही परिवार के मानते थे। इसीलिए 'जन' के सभी लोग अपने को 'सजात' और 'सनाभि' और दूसरे जन वालों को 'अन्यानाभि' अथवा 'निष्ठय' (निकाले हुए) कहा करते थे। यद्यपि वैदिक आर्य शिकारी जीवन को छोड़ चुके थे—अब वे पशुपालन और कृषिकार्य करने लगे थे किन्तु उनके समाज में पूर्णतः स्थिरता न आई थी—और जब वे 'जन' धीरे धीरे एक स्थान पर स्थिर होने लगे तो वे स्थान 'जनपद' कहलाने लगे। वे जनपद इसीलिए कहलाने लगे क्योंकि अब वहाँ पर 'जन' के 'पद' (पैर) स्थिर हो गए—वे स्थान अब 'जन' के अधिष्ठान बन गए।

जनपद तो 'जनों' के मूल स्थान थे और महाजनपद अंततः वे जनपद कहलाते थे जो दूसरे विशाल प्रदेशों को भी किसी तरह अपने प्रदेश में मिला लेते थे। इस प्रकार के सोलह महान जनपद भारतीय इतिहास में उल्लेखनीय हैं। यह युग भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है यद्यपि तत्संबंधी पर्याप्त सामग्री अभी उपलब्ध नहीं है। इन सोलह महाजन पदों में चार—(१) कोशल (२) मगध (२) अवन्ति (४) वस्त—प्रमुख हैं; शेष हैं—(५) अंग (६) काशी (७) वृजि (८) मल्ल (९) चेदि (१०) कुरु (११) पांचाल (१२) मत्स्य (१३) शूरसेन (१४) अश्यक (१५) गांधार (१६) कंबोज। इन सोलह महाजनपदों को आठ समीपवर्ती जोड़ियों में इस प्रकार बाँटा जा सकता है :

(१) अंग-मगध (२) काशी-कोशल (३) वृजि-मल्ल
(४) चेदि-वत्स (५) कुरु-पांचाल (६) मत्स्य-शूरसेन
(७) अश्यक-अवन्ति और (८) गांधार-कंबोज।

अङ्गदेश की राजधानी चम्पा थी। यह नगरी चम्पा नदी के पूर्वी तट पर आधुनिक भागलपुर के पश्चिमी हिस्से पर स्थित थी। यहां से सुवर्ण भूमि (आधुनिक बरमा के तट) तक माल से भरी हुई नावें जाती थीं। यों तो पूर्व की ओर अन्य स्थानों से भी व्यापारी जाया करते थे किन्तु चम्पा के निवासी प्रधानतः पूर्वीय व्यापार से खूब धन कमाते थे (देखिए: महाजनक जातक)। अंग और मगध एक दूसरे के पड़ोसी थे। मगध की राजधानी राजगृह भी चम्पा की तरह ही तत्कालीन प्रमुख एवं समृद्ध नगरियों में से थी। चम्पेय्य जातक में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि दोनों राज्यों में परस्पर वैमनस्य भी रहा करता था।

कोशल, मगध और अवन्ति की भाँति ही काशी भी बहुत उन्नत 'राष्ट्र' था। लगभग ६५० ई० पू० तक काशी की सामरिक शक्ति अतुलनीय थी। कोशल को भी, जो स्वयं एक महान राष्ट्र था, काशी ने अपने अधीन रखा था। इतना ही नहीं अश्यक की राजधानी पौदन्य या पोतन भी उसके राज्य की सीमा के अंतर्गत बताई जाती है किन्तु धीरे धीरे काशी की शक्ति क्षीण होती गई और दूसरी ओर कोशल शक्तिशाली बनता गया। यहां तक कि 'महाकोशल' ने काशी को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। कोशल की राजधानी श्रावस्ती एक प्राचीन नगरी थी जो अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे स्थित थी, यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगरी थी। साकेत की महत्ता भी किसी अन्य नगरी से कम न थी।

वृजि लिच्छिवियों का संघराज्य था। कहते हैं कि लिच्छिवियों के ७७०७ राजा थे। संभवतः गाँव गाँव के अलग अलग राजा थे (और सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि को भी 'राजा' संज्ञा दी जाती थी) किन्तु राज्य-प्रबन्ध राज्य परिषद करती थी और वह शासन शक्ति थी। लिच्छिवियों ने इन पृथक पृथक संघों को मिलाकर एक संघ बनाया था जिसका नाम वृजि था। इसकी राजधानी वैशाली थी। यहीं आँठवीं शताब्दी ई० पू० में प्रसिद्ध सुधारक महावीर का जन्म हुआ था।

वत्सदेश की राजधानी कोशाम्बी थी जो अब इलाहाबाद के ज़िले में यमुना के तट पर 'कोयस' गाँव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में हैं। वत्स का शासक उदयन था। कोशाम्बी व्यापार और राजपथों का केन्द्र था। यहां से यमुना-गङ्गा से होकर अनेक 'पट्टनों' (बन्दरगाहों) और सुवर्ण भूमि को माल से भरी हुई नावें जाती थीं (देखिए: समुद्दवणिज जातक)। आधुनिक भरुच से वाराणसी और श्रावस्ती को माल आता जाता था। मध्यदेश, उज्जयिनी, साकेत, श्रावस्ती, वैशाली और कई बन्दरगाहों—भरुकच्छ, सुपारक (भरुच, सोपारा) आदि से आते हुए मार्ग यहीं कोशाम्बी से होकर ही गुजरते थे। इसी से इसकी व्यापारिक सम्पन्नता का अनुमान किया जा सकता है।

कुरु व्रज के उत्तर में था और पांचाल देश आधुनिक रुहेलखंड और फर्रुखाबाद-कन्नौज जयपुर का प्रवेश माना जाता है। ये दोनों देश बहुत प्राचीन हैं। राजनीतिक महत्व न होने पर भी इनका धार्मिक महत्व था। 'शील' और 'धम्म' में जिसे 'कुरुधम्म' कहते थे प्रसिद्ध थे। इसीलिए अन्य राष्ट्रों के विद्यार्थी भी 'कुरुधम्म' सीखने आते थे (देखिए कुतधम्म जातक)। मत्स्य (मेवात, अलवर जयपुर प्रदेश) और शूरसेन (मथुरा प्रदेश) भी इनके समान ही प्राचीन राष्ट्र थे।

अवन्ति चार प्रमुख महाजन पदों में श्रेष्ठ मानी जाती है। इसकी राजधानी उज्जयिनी पश्चिमी समुद्र तट, मध्य प्रदेश के व्यापारियों के लिए मुख्य पड़ाव थी। अश्यक की राजधानी पौदन्य या पोतलि नगर थी। यहां से विदिशा, कुसीनगर, श्रावस्ती, प्रतिष्ठान आदि सभी प्रमुख नगरों को मार्ग जाते थे। वहां का व्यापार बढ़ा चढ़ा था।

सुदूर उत्तर में गांधार देश अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध था। जिस तरह कुछ दिन पहिले विलायत से डिगरी ले आना महान गौरव की बात मानी जाती थी, वैसे ही उस समय तक्षशिला में अध्ययन करना सौभाग्य माना जाता था। वहां के विद्यार्थी बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इसलिए वहां एक दीन-हीन ब्राह्मण से लेकर बड़े बड़े महाजनों के पुत्र, राजकुमार सभी विद्याध्ययन के लिए आते रहते थे। महाकोशल के पुत्र प्रसेनदि या प्रसेनजित् ने यहीं शिक्षा पाई थी। यहां अनेक जगह प्रसिद्ध आचार्य रहते थे। जो 'तीन वेद और अट्ठारह विद्यास्थानों' की शिक्षा देते थे जिसमें धनुर्विद्या, वैद्यकशास्त्र भी शिक्षा के मुख्य अंग माने जाते थे। एक एक आचार्य के पास ५०० विद्यार्थी रहते थे। जब ये विद्यार्थी भी शिक्षा समाप्त कर अन्यत्र जाते थे तो इनके पास भी कई विद्यार्थी इकट्ठा हो जाते थे।

तक्षशिला गांधार की राजधानी थी और अपनी विद्याओं के कारण मध्य-प्रदेश से यहां तक का राजपथ थी जिसमें विद्यार्थी निरस्त्र होकर भी सुरक्षित और निर्भय यात्रा करते थे। दूसरा मार्ग राजगृह से साकेत होता हुआ पंजाब में शाकल (स्यालकोट) से गुजरता था। पामीर के पठार तथा उसके पश्चिम बदख़्शां प्रदेश कम्बोज कहलाता था।

ये सोलह देश तो महाजनपद थे जो शक्ति और विस्तार में महान थे। जातक कथाओं में शिवि, सौवीर, मद्र, विराट कई देशों के नाम आए हैं जो अप्रधान हैं। इनमें नैपाल की तराई में अचिरावती और रोहिणी नदी के मध्यस्थ शाक्यों का गणराष्ट्र विशेष उल्लेखनीय है जिसमें शाक्यमुनि गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। शाक्य लोग कोशल के रहने वाले थे जो हिमालय की तराई में चले आए थे।

भारत का इतिहास इसी महाजनपद युग में प्रारम्भ होता है। यद्यपि इस समय कई प्रदेश वनों से आच्छादित थे किन्तु यह हमारे लिये गर्व की विषय है कि हमारा इतिहास ऐसे समय से प्रारम्भ होता है जब हम सभ्य थे; देश विदेश से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था, व्यापारिक नगरों का जाल बिछा था और गौतम तथा महावीर जैसे सुधारक थे जो कीट पतंगों से देवताओं तक एक समदृष्टि का प्रचार करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता का उपेक्षित भू-भाग

श्री अखिल विनय

गरमियों में इस बार विचार तो था बदरीनाथ की यात्रा करने का लेकिन एक तो सरकारी नियंत्रण था और दूसरे मेरे कलाकार साथी 'युक्त प्रान्त का बहिष्कृत प्रदेश' देखने की ओर झुके हुए थे। स्वामी शिवानंदाश्रम में दिव्य-जीवन-संघ का साधना-सप्ताह समाप्त होते ही हमने एक-एक करके मुनि की रेती, लक्ष्मण झूला, स्वर्गाश्रम आदि सब दर्शनीय स्थान देख डाले और ऋषिकेश से देहरादून जाने वाली 'बस' में सवार हुए। दोपहर का वक्त था, आंधी चल पड़ी, बादल उमड़े और बहुतेरा पानी पड़ने लगा। गंगा का पानी तो पिछले रोज से ही गँदला आ रहा था। लगभग आध घंटे तक ओले वर्षा हुई; इससे यह फायदा हुआ कि मोटर के खुले कच्चे रास्ते में धूल से छुट्टी मिल सकी और गर्मी, जो बस में बैठने से पहले हम महसूस कर रहे थे, सर्दी में परिणत होकर सुहावनी प्रतीत होने लगी। रास्ते के दोनों ओर हरी-भरी वनस्पतियाँ पहाड़ों को आच्छादित कर रही थीं, मौसम भी मनोहर हो गया था। डेढ़ साल पहले मंसूरी से दून की घाटी का दृश्य देखा था। शाम होते-होते हम देहरादून पहुँच गये। हमें कालसी जाना था लेकिन वहाँ की बस निकल चुकी थी। अतः स्वतः ही मिले देहरादून नगरी की छटा निरीक्षण करने का सुअवसर मिल गया। हम प्रातः ही मोटर में बैठ कालसी के लिए चल दिये।

मानवता के उस उपेक्षित भू-भाग (जहां आज भी एक स्त्री को पांच-पांच व्यक्तियों को पति रूप में स्वीकार करना पड़ता है। ऐसा दूसरा भाग भारत में नीलगिरि पहाड़ियों पर है, जहां 'टोडा' जाति बसती है।) का प्रारम्भ कालसी से ही होता है। यहीं यमुना के किनारे सम्राट अशोक का प्रसिद्ध ऐतिहासिक शिलालेख देखने को मिला। इस पर ब्राह्मी-लिपि और पालि भाषा में अशोक की आज्ञायें खुदी हुई हैं। शिला क्या है, चट्टान है। एक बड़ी चट्टान पर ऊपर उठाये हुए एक हाथी' की सुन्दर आकृति बड़ी स्पष्ट खुदी है। २२०० वर्ष पूर्व की यह शिला कृतियाँ आज भी विद्यमान है। कुछ समय के लिए हम उन कृतियों में लीन हो गये, जब भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तक महाराज अशोक का एक छत्र शासन था, प्रजा सुखी थी, राज्य में अमन-चैन था। सम्राट अशोक का (जिन्होंने बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय अपने पुत्र महेन्द्र और और पुत्री संघमित्रा को भारत से बाहर भेजकर सांस्कृतिक-पताका फहराई थी) कीर्ति-स्मारक शिलालेख आज भी उनका यशोगान कर रहा है। किन्तु आज उसके इर्द-गिर्द रहने वाले लोग अपढ़, अनपढ़ और अशिक्षित हैं। उन्हें हर दस साल बाद भारत की जन गणना में बहिष्कृत या जंगली लिखा जाता है। बहुत कम लोगों को यह मालूम है कि संयुक्त-प्रान्त में भी एक जंगली कहा जाने वाला इलाक़ा है। यहाँ भारत सरकार का १९३५ का एक्ट लागू नहीं होता। यह सीधे प्रान्तीय गवर्नर के शासनाधिकार में है। यह प्रदेश "जौनसार बावर" कहलाता है।

कालसी इस प्रदेश का प्रवेशद्वार है। पहाड़ की घाटी में स्थित, कालसी, आज एक उजड़ी हुई बस्ती है। प्राचीनकाल में यह एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र-स्थान था। दूर-दूर से, यहाँ तक कि तिब्बत तक के व्यापारी यहाँ माल लाते और ले जाते थे। धर्मशाला के नाम पर यहाँ खण्डहर ही अवशेष है अतः हम आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरे। समाज के भवन की विशालता कालसी के विगत वैभव का स्मरण कराती है। कहते हैं—इसकी नींव स्वामी श्रद्धानन्द के हाथों पड़ी थी। कालसी फिर भी गौरवास्पद है क्योंकि जौनसार बावर प्रदेश के ६०-७० हजार व्यक्तियों के मध्य उच्च शिक्षा का केन्द्र "मिडिल स्कूल" यहीं अवस्थित है! इस प्रदेश के लोगों का असूल है कि कालसी से नीचे यमुना के उस पार जाना त्याज्य है क्योंकि वहाँ से मैदानी इलाक़ा शुरू हो जाता है। इस प्रदेश के निवासी यदि कभी देहरादून चले जायँ तो अहोभाग्य ही समझिए।

इन लोगों का शेष भारत से बहुत कम सम्बन्ध रहा है। प्रदेश के अन्तरतम में स्त्री पुरुष हिन्दी भाषा भी बोल-समझ नहीं सकते। इसी लिए जहाँ शिक्षा के अभाव ने इनमें कुछ त्रुटियाँ उपस्थित कर दी हैं वहाँ शेष भारत इनसे बहुत कुछ सीख भी सकता है। पहली बात तो यह है कि यहाँ के लोग स्वावलम्बी हैं। अपनी निजी आवश्यकताओं के लिए ये किसी पर निर्भर नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका पहिनावा अति साधारण है। जाड़ों के लिए घुटनों तक का कोट, अपनी ही भेड़ों की ऊन से स्वयं ही कात-बुन कर तय्यार कर लेते हैं। ग्रीष्म में सिर्फ एक लँगोटी ही पहनते हैं। इन्हें मिलों के कीमती कपड़े और लङ्काशायर की शर्टिंग की ज़रूरत नहीं पड़ती। भोजन-सामग्री भी तथा मक्का, गेहूं, चावल, मण्डुआ (ग़रीबों का भोज्य) व शाकों में आलू, अर्वी (घुइयां), अदरक, टमाटर, कई प्रकार की दालें यहीं पैदा कर लेते हैं। प्रदेश के पहाड़ी होने के कारण समभूमि का प्रायः अभाव ही है, फिर भी पहाड़ों को काट-काट कर बड़े श्रम से भूमि को सम किया जाता है और एक के ऊपर एक चक्करदार (क्यारियाँ कहिए) खेत बनाये जाते हैं। दूसरे यहाँ मानव मानव का भेद नहीं है। यहां जातीय बन्धन शेष भारत की भाँति संकीर्ण नहीं। ब्राह्मणों और राजपूतों में केवल खान-पान ही नहीं, परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी बिना किसी प्रतिबन्ध के हो जाता है। हरिजनों (जिन्हें ये 'कोल्टा' कहते हैं) के साथ भी उच्च वर्णों का सलूक अच्छा है।

कालसी से कुछ चना-चबेना लेकर इस प्रदेश के सबसे प्रमुख व्यक्ति (जिसे यहाँ 'चौंतरू' कहा जाता है) रायसाहब ठाकुर श्री शेरसिंह जी से मुलाकात करने चल दिया। उन दिनों वे बौसाण (अपनी ज़मींदारी के स्थान) पर ही ठहरे हुए थे। वह स्थान कालसी से ४, ५ मील दूर है। ठाकुर साहब बड़े मिलनसार व्यक्ति हैं। आयु में वृद्ध हैं लेकिन शरीर से जवान। वे देहरादून डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य भी हैं। इस प्रदेश के सम्बन्ध में उनसे काफी बातें हुईं। उन्होंने बतालाया कि तालीम के प्रसार और औषधालय खोलने से ही यहाँ की वर्तमान अवस्था में सुधार किया जा सकता है। हमें यहाँ से 'बागी' नामक गांव में जाना था। वहां 'अशोक आश्रम विद्यामन्दिर' चलता है। 'अशोक आश्रम' इस प्रदेश में सुधार-कार्य करने वाली रजिस्टर्ड संस्था है। बापू के भक्त व दर्शनों के पण्डित श्री धर्मदेव शास्त्री यहां सेवा-कार्य में संलग्न हैं, उन्हीं के व्यवस्थापकत्व में आश्रम विगत ३॥ वर्षों से चल रहा है।

बौसाण से यमुना किनारे-किनारे सँकरी पगडण्डी मिलती है। आजू बाजू में मनोहर दृश्यावलियाँ, बीच में मन्थर गति से कल-कल करती यमुना बहती है। थोड़ी देर बाद एक गाँव दिखाई पड़ा, जिसे हमने 'बागी' ही समझा। लेकिन वह 'व्यास' गाँव था और बागी से पहले 'गास्की' नाम का एक गाँव और पड़ता है। बौसाण में हमें बतलाया गया था—"बागी तौ दूर ना।" वहाँ से एक-डेढ़ मील दूर आगे आकर देखा, इन लोगों की चातुरी का एक नमूना—यमुना के सँकरे पाट पर विचित्रतापूर्वक लकड़ी से बनाया गया एक पुल। ख़ासा लक्ष्मणझूला ही लगता था। फ़र्क यही कि वह लोहे का है और गंगा पर है और विशाल है। यह छोटा है पर भारतीय कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है। पास-पड़ोस के बनों की लकड़ी से ही बनाया गया है। कई स्थानों पर पानी-द्वारा आटा पीसने की चक्कियां) भी देखीं जिन्हें ये लोग "घराट" कहते हैं। चलते-चलते बड़ी देर होगई लेकिन अभी तो गास्की ही न पहुँच सके थे, पैर भी जवाब दे रहे थे, उधर दिन भी धीरे-धीरे ढल रहा था, निशा अपना राज्य जमाने के लिये व्यग्र हो उठी थी। किसी तरह रास्ते के किनारे एक बन्द 'छानी' (खेत की टपरिया) के पास आग जला कर, जगते-जगते रात गुज़ारी। जाड़ा भी पड़ रहा था, रात्रि अत्यन्त अँधेरी थी, मन में भय का भूत सवार था। दूसरे दिन प्रातः बड़ी मुश्किल से गास्की पहुंचे और वहां से बागी। राह भूल गए थे। लेकिन बागी ग्राम को जाने वालों के साथ-साथ बागी पहुंच गये। भोजनोपरान्त वहां के लोगों से बातें कीं। थोड़ा विश्राम कर शिखर दोपहरी में 'नागथात' के लिए चल पड़े।

नागथात जौनसार प्रदेश का केन्द्रस्थान है। यहां का जलवायु बड़ा स्वास्थ्यप्रद है। २९ अक्टूबर १९४४ को हरिजन-सेवक-संघ के प्रधान मन्त्री श्री ए० वी० ठक्कर बापा इस प्रदेश की दुरावस्था को देखने के लिये यहां पधारे थे। बहुपति प्रथा के कारण यहाँ स्त्री-रोगों का बाहुल्य है, उनमें वन्ध्यात्व एवं ऐन्द्रिक रोगों की अधिकता है। पुरुषों में भी गर्मी, सुजाक, उपदंश आदि रोग फैले हुए हैं लेकिन स्त्रियों की दशा तो दयनीय है। असमय में ही वे वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाती हैं। बाल विवाह भी इसका एक कारण है। बापा जी के प्रयास से कस्तूर बा राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट फण्ड की ओर से यहां एक महिला-अस्पताल चल रहा है। लेडी डाक्टर श्रीमती रामीदेवी जुव्वल बड़ी लगन से सेवा-कार्य में लगी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैपाली होने के कारण पहाड़ों पर सुविधा-पूर्वक आ जा सकती हैं। अब जच्चाएँ और बच्चे दोनों ख़तरे से बाहर हैं। आस-पास १२ से १४ मील के दायरे के लोग उससे लाभ उठाते हैं। आवश्यकता है कि अस्पताल में—'अन्तर रोगी निवासग्रह' अवश्य और शीघ्र बने।

नागथात के ज़रा नीचे दो मील के करीब बिसोई गांव है। यहीं के स्याना (गांव का प्रमुख व्यक्ति) श्री सूरत सिंह जी ने व बिसोई 'खत' (खत = ९वा कम, ज़्यादा गावों का समूह) के सदर स्याना श्री ठाकुर गुलाब सिंह जी ने ही १० बीघा भूमि आश्रम के नागथात केन्द्र के लिए दान दी है। ठाकुर साहब से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ का जंगली फल जिसका खट्टा-मीठा स्वाद होता है—"अच्छू" कहलाता है, बिसोई में खूब खाने को मिला। इधर अखरोट भी काफी तादाद में होते हैं। निकट के एक और ग्राम "द्वैना" में हम पंडित सियाराम जी से मिले। ये बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं और इस देश के सुधारकों में हैं। उन्होंने यहां के विचित्र रीति-रिवाजों को अच्छे ढंग से समझा कर हमें बताया। इस प्रदेश के ठाकुर सेवकसिंह तो कांग्रेस-आन्दोलनों में कई बार जेल भी हो आये हैं। बिसोई के नज़दीक ही 'क्वाबा' गांव है, जहां का एक युवक वीर आजाद हिन्द फ़ौज में भर्ती होगया था, जिसे दिल्ली में फांसी लगी थी। क्या यह प्रदेश अब भी पिछड़ा ही कहा जायगा!

नागथात से तीसरे दिन प्रातः ही आगे चले। साथ में खाने के लिये सत्तू मिला। यहां के लोग सत्तू और बच्चे दूध को जमाकर बनाई हुई छाछ का बहुत सेवन करते हैं। 'सैया' तक ७-८ गांव रास्ते में पड़े। इन लोगों के मकान देवदार की लकड़ी के बने होते हैं जिनमें ३-४ मंज़िल होती हैं, सब से नीचे वाली मंज़िल ज़मीन में ही होती है, जिसमें पशुओं के लिए चारा व अन्य स्टाक रहता है। ज़मीन की सतह वाली मंज़िल में जाड़ों में पशु बांधते हैं। ऊपर वाली में स्वयं रहते हैं, छत ढालू भी होती है, जिसे स्लेटी पत्थर से ढांकते हैं। कई मकान तो ३००-३५० वर्ष पुराने हैं लेकिन झाड़-बुहार व लीप-पोत कर साफ़-सुथरा रखते हैं। सैया से हम कालसी आने वाली 'बस' में सवार हुए। पिछली सवारी में तारकोल से बनी, पहाड़ के अँचल में लिपटी यह सड़क ६० मील लम्बी है।

कालसी में अशोक आश्रम के श्री धर्मदेव शास्त्री जी से मिलने का अवसर मिला। कई बातों के अनन्तर जब मैंने उनसे पूछा कि ये लोग आश्रम की बुराई और आप पर दोषारोपण क्यों करते हैं तो उन्होंने स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—"यह हमारे देश का दुर्भाग्य है और क्या कहें!" यह कहते हुए कि एक बार इससे निराश होकर मैंने बापूजी को यह सब लिख दिया था, महात्मा गांधीजी का अपने हाथ से लिखा हुआ प्रत्युत्तर मुझे दिखलाया। बापू ने लिखा था—

"धर्मदेव, अच्छे कामों का शुरुआत दुःखदायी ही होता है, लोग उसका विरोध करते ही हैं। हमें सदा आशावान बनना चाहिये। मेरा भी विरोध होता है, मैं कोई देवता नहीं तुम्हारी ही तरह मनुष्य हूँ। अगर मैं भी तुम्हारा विरोध करूँ तो तुम्हें वह उपयोगी कार्य छोड़ना न चाहिए।"

बापू की महानता मूर्त्तरूप हो हमारे सामने नाच उठी। उनके ये शब्द कि "भारत का स्वराज्य गाँवों में है; गांवों में जाओ और रचनात्मक कार्य करो, इसी से भारत माता को शान्ति और संतोष मिल सकता है," हमारे कानों में गूँज उठे। उन मूक ग्राम-सेवकों के लिए हमारे मुँह से बरबस 'धन्य हैं' शब्द निकल पड़े।

हम सड़क के किनारे खड़े-खड़े देहरादून जाने वाली 'बस' का इन्तज़ार कर रहे थे और विचार कर रहे थे कि रचनात्मक कार्य करना कितना कठिन है और इसके बिना मुक़म्मिल आज़ादी की मञ्जिल भी तय नहीं की जा सकती। जब तक गांव-गांव और जन-जन में (हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव को छोड़ कर) आज़ादी की लहर न लहरायेगी तब तक हिन्दुस्तान की आज़ादी नज़दीक होने का ख़याल ख्याली पुलाव है। 'आनरेरी' और 'पेड' कार्यकर्त्ता के वे भाव जिनके कारण अनेक सच्चे कार्यकर्ताओं को सेवा-कार्य से घृणा हो जाती है, हम तक पहुँचे बिना न रहे। जब तक किसी भी संस्था के सञ्चालकगण अपने कार्यकर्त्ताओं के साथ पुत्रवत् व्यवहार नहीं करते, उनकी सुविधा का ख्याल नहीं रखते, उनके सम्मान की रक्षा नहीं करते तब तक उस संस्था को योग्य कार्यकर्त्ता मिलने कठिन ही हैं; और यदि मिल भी जाते हैं तो ज़्यादा दिन ठहरते नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्ति का अहिंसात्मक तरीका

श्री धीरेन्द्र मजूमदार

संसार में आज जिस क़दर तानाशाही राष्ट्रवाद, 'टोटलिटेरियनिज्म' का बोलबाला है उससे मानवता जर्जरित है। केन्द्रीय शासन की इस प्रकार की सर्वाधिकारी प्रवृत्ति ने प्रजा की स्वतंत्रता को लेशमात्र भी बाकी नहीं छोड़ा है। आज लोकतन्त्रवादी, फासिस्ट-वादी और समष्टिवादी सभी राष्ट्र विराट एकाधिपत्य स्थापित कर मानव स्वतन्त्रता के निर्दलन में लगे हुये हैं। गान्धीजी जनता की इस दयनीय दशा को देखते रहे और इस परिस्थिति को बदलने का उपाय ढूँढ़ते रहे। इस खोज के सिलसिले में गान्धी जी ने देखा कि समाज के स्वरूप की प्रगति मनुष्य के ज़िन्दा रहने की चेष्टा के अनुरूप ही हुआ करती है। ज़िन्दा रहने की चेष्टा का मतलब है ज़िन्दगी की आवश्यकताओं की उत्पत्ति का प्रकार। अतः उन्होंने देखा कि जब तक प्रजा अपनी ज़िंदगी की आवश्यकताओं की उत्पत्ति अपनी व्यवस्था और साधन से न करेगी तब तक वह स्वतन्त्र नहीं हो सकती। केन्द्रित उत्पत्ति के प्रकार में उत्पत्ति के साधन और तरीके केन्द्रित होने के कारण व्यवस्था को कुछ थोड़े लोगों के हाथों में केन्द्रित करना ज़रूरी हो जाता है। मनुष्य के प्रभुत्व करने की साधारण प्रवृत्ति के कारण ऐसी स्थिति में केन्द्रीय उत्पत्ति के व्यवस्थापक स्वयं प्रभु बन जाने की चेष्टा करते हैं और ज़िन्दगी की आवश्यकताओं का साधन उनके हाथ में होने से प्रजा को अपने अधिकार के नीचे कर लेना उनके लिये आसान हो जाता है। प्रजा चाहे जितनी स्वतन्त्रताप्रेमी क्यों न हो, स्वतन्त्रता-प्रेम से ज़िन्दा रहने की उसकी प्रवृत्ति अधिक ज़ोरदार हुआ करती है, क्योंकि सृष्टि की मूल प्रवृत्ति अपनी स्थिति को क़ायम रखना यानी ज़िन्दा रहना है। अतः व्यवस्थापक के प्रभुत्व की चेष्टा को रोकने के लिये जब प्रजा उनसे लड़ाई छेड़ती है और यह देखती है कि ज़िन्दा रहने के साधन के लिये वह उन्हीं व्यवस्थापकों की मुहताज है तो उसका स्वतन्त्रता-प्रेम कुंठित हो जाता है और वह कामचलाऊ वैधानिक समझौता करके जिन्दा रहने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार केन्द्रित उत्पत्ति के तरीके से प्रजा की स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं हो पाती है। नतीजा यह होता है कि केन्द्रीय व्यवस्थापक क्रमशः ज़िन्दगी के हर पहलू पर क़ाबिज़ होकर सारे समाज में तानाशाही तन्त्र का संघटन कर लेते हैं।

विकेन्द्रित उत्पत्ति से प्रजा की स्वतन्त्रता की रक्षा

गान्धीजी मानव समाज के आज के बढ़ते हुए केन्द्रीय अधिनायक तन्त्र का विघटन केन्द्रीय उद्योगवाद को ही विघटित करके करना चाहते हैं। वे उत्पत्ति के साधन तथा तरीक़े को केन्द्रित रखकर शक्ति को केन्द्रित रखते हुये वैज्ञानिक तरीके से प्रजा को क़ानूनी हक़ दिलाना नहीं चाहते हैं, क्योंकि वैसा हक़ कचहरी से डिग्री पाये हुये, पर ज़मीन पर कब्ज़ा न पाने वाले ज़मीन के मालिक की तरह उत्पत्ति पर प्रजा का प्रभुत्व वास्तविक न होकर लाक्षणिक हो जायगा। वे उत्पत्ति के तमाम साधनों को ही विकेन्द्रित करके उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रजा के हाथ में दे देना चाहते हैं, ताकि समाज के केन्द्रीय व्यवस्थापक प्रजा के हाथ से सत्ता छीनने की ज्यों ही चेष्टा करें त्यों ही प्रजा उनसे असहयोग करके उसे विफल कर सके। यही कारण है कि गान्धी जी चर्खे को केन्द्र मानकर मनुष्य को ज़िन्दा रहने के लिये आवश्यक, प्राथमिक तथा अनिवार्य वस्तुओं की उत्पत्ति प्रजा को खुद प्रत्यक्ष रूप से कर लेने की सलाह देते हैं, ताकि वह अपनी सत्ता की रक्षा करने की शक्ति हमेशा अपने ही हाथों में रख सके। जिन लोगों को अहिंसा की बात ठीक ठीक समझ में नहीं आती है और जो समाज का संगठन हिंसा के आधार पर ही होना सम्भव समझते हैं, वे भी, आदर्श प्रजातन्त्रवादी सरकार द्वारा भी प्रजा के हाथ से बन्दूक छीन कर सरकारी शस्त्रागार में केन्द्रित करने की चेष्टा का विरोध करते हैं। ऐसा वे इसलिये करते हैं कि अगर कभी जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार भी प्रभुत्व के लालच में प्रजासत्ता का निर्दलन करना चाहे तो प्रजा अपने रक्षित अस्त्र से अपनी सत्ता की रक्षा कर सके। गान्धी जी की दृष्टि में केन्द्रित उत्पत्ति के प्रकार में घरेलू उद्योग धन्धों का साधन नष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रजा की आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीकरण हो जाता है और इस प्रकार जब केन्द्रीय
था के व्यवस्थापक प्रभु शक्ति को प्रजा से छीनकर
अपने हाथ में लेना चाहते हैं तो प्रजा में सत्याग्रह या
रचनात्मक असहयोग करने की शक्ति नहीं रह जाती
और केन्द्रीय शक्ति से समझौता करने के लिये
मजबूर हो जाती है।

अहिंसात्मक समाज का आदर्श

गान्धी जी खादी की नयी योजना द्वारा इसी उद्देश्य
को केन्द्रित स्वावलम्बी समाज यानी अहिंसात्मक समाज
की दिशा में निश्चित कदम उठाना चाहते हैं।
इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुख्यतः दो बातों की
आवश्यकता है। प्रथमतः समाज का नेतृत्व सीधा जनता
से हो, क्योंकि बिना अपने नेतृत्व के जनता की
संस्था स्वावलम्बी हो ही नहीं सकती। दूसरी बात यह
कि कार्यक्रम इस प्रकार का हो कि जिससे व्यक्ति और
समाज में अहिंसात्मक प्रवृत्ति का विकास हो सके।
इसके लिये यदि शासनहीन समाज की स्थापना करनी
है तो समाज में निःस्वार्थ और अहिंसात्मक वृत्ति का
होना आवश्यक है, बिना इसके समाज में स्वावलम्बन
आ नहीं सकता।

अहिंसात्मक समाज की स्थापना की ओर पहला क़दम

गान्धी जी समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन
अहिंसात्मक तरीकों से ही करते हैं। अपने लक्ष्य की
ओर रास्ते में एक क़दम उठाकर जब वह क़दम खूब
मजबूत हो जाता है तभी वे दूसरा क़दम उठाते हैं।
जनता का नेतृत्व स्थापित करने की ओर जाने में भी
यही तरीक़ा रहा है। सन् १९२१ में गांधीजी ने
देखा कि देश का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में है जिनसे
जनता का कोई सम्पर्क नहीं है। कुछ रईस श्रेणी के
लोग अंग्रेजी सरकार से सहूलियतें पाने की कोशिश
कर रहे थे। इससे कुछ पढ़े लिखे ऊँचे तबके के लोगों में
जागृति आ रही थी लेकिन मुल्क की असली जनता से
उनका कोई सम्पर्क न रहने से उसकी बेहोशी ज्यों
की त्यों बनी हुई थी। जब तक जनता में जागृति नहीं
आती और वह अपनी स्थिति को समझ कर उसे
बदलने की चेष्टा खुद नहीं करती तब तक हालत में
परिवर्तन होना असम्भव सा ही है। गान्धीजी ने देखा कि
जनता में जागृति लाने के लिए ज़रूरी है कि नेतृत्व
ऐसे लोगों के हाथ में हो जिनसे जनता का सम्पर्क हो।
ऐसे लोग उस परिस्थिति में मध्यम श्रेणी के बाबू वर्ग
से ही निकल सकते थे। अतः गान्धी जी ने अपना पहला
कदम जनसम्पर्कहीन रईसों के नेतृत्व के बदले जनता
से सम्पर्क रखनेवाले बाबुओं का नेतृत्व कायम करने की
ओर रखा। इसके लिये पहले उन्होंने रईस वर्ग के लोगों
को अपना वर्ग त्याग करके बाबू वर्ग में शामिल होने
की अपील की और दूसरी ओर से वकील, विद्यार्थी,
नौकरी पेशा वाले और दूसरे मध्यम पेशे के लोगों को
आन्दोलन में शामिल होकर नेतृत्व के लिये तैयार होने
को कहा। दूध का दही बनाने के लिये थोड़ा सा जामन
लेकर दूध में डालकर जिस प्रकार उसे हिलाकर मिला
दिया जाता है उसी प्रकार गांधी जी ने रईस नेतृत्व को
रईसी छुड़ाकर उन्हें बाबू श्रेणी में मिलाकर आन्दोलन
द्वारा उसे खूब हिला दिया। फलतः बिना किसी जोर
ज़बर्दस्ती के नेतृत्व की तबदीली अपने आप ही होगयी।
जो लोग अपनी श्रेणी त्याग कर नीचे उतर आये वे
उसमें शामिल हुये और बाक़ी को अलग हो जाना पड़ा।

इस प्रकार के बदले हुए नेतृत्व से गान्धी जी ने
२१ साल तक जन-जागृति का कार्यक्रम चलाया और
रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा जन-सम्पर्क तथा जनशक्ति में
वृद्धि करके समय समय पर असहयोग और सत्याग्रह
आन्दोलनों द्वारा जनता में जागृति तथा आत्मविश्वास
पैदा करते रहे। सन् १९४२ में जनता द्वारा सरकारी
हमले के स्वाभाविक और व्यापक विरोध से यह साफ
हो गया कि जिस उद्देश्य से नेतृत्व को बदल कर नीचे
की श्रेणी में लाया गया था वह पूर्णतया सफल हुआ।
आज कोई यह नहीं कह सकता कि भारत की जनता
किसी तरह बेहोश है। अब आवश्यकता इस बात की है
कि सीधे जनता की ओर से तथा जनता द्वारा संगठित
रूप से सक्रिय व संयोजित आन्दोलन चले। वरना केवल
जागृति से समाज कुछ निश्चित तथा स्थायी प्रगति नहीं
कर सकता है और न मुल्क आज़ादी की प्राप्त की ओर
ही बढ़ सकता है। अतः गांधीजी अपना तात्कालिक
लक्ष्य भारत की आज़ादी प्राप्त करना और अन्तिम
ध्येय संसार में विकेद्रित स्वावलम्बी समाज व्यवस्था का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघटन, इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये खादी की नयी योजना द्वारा आज जन-जागृति के लिये संघटित बाबू नेतृत्व को भी बदल कर सीधा जनता का यानी किसान और मज़दूर का नेतृत्व क़ायम करने की ओर निश्चित क़दम रख रहे हैं।

बाबू-नेतृत्व को बदल कर जन नेतृत्व क़ायम करने के लिये गांधीजी वही अहिंसात्मक और स्वाभाविक तरीक़ा काम में ला रहे हैं जो वे सन् १६२१ में काम में लाये थे। आज वे बाबू श्रेणी के लोगों से अपील कर रहे हैं कि वे अपनी श्रेणी का रंग बदल कर गाँव में जाकर किसान और मजदूर जैसा बनकर उनमें मिलकर और अपने को उनका स्वजन बनाकर उनमें व्यक्तित्व का विकास करें। अर्थात् वे फिर से वही दही जमाने का हिसाब लगाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि ग्रामसेवक गांव में किसान मजदूर बनकर बैठें और ग्रामीण जनता में उन्हीं के साधन तथा व्यवस्था से उनकी सर्वाङ्गीण प्रगति का कार्य-क्रम चलावें। वस्त्रस्वावलम्बन योजना के साथ, कृषि, गोपालन, शिक्षा, संस्कृति, सफ़ाई आदि की व्यवस्था जब जनता अपने साधन तथा व्यवस्था से करने लगेगी तो गांव में स्वाभाविक नेतृत्व का विकास अपने आप होता जायगा। मतलब यह है कि जिस प्रकार सन् १६२१ में रईस वर्ग के जिन लोगों ने अपनी रईसी छोड़ कर बाबू वर्ग में अपने को मिला दिया था उनका और असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप बाबू वर्ग से निकले हुये कार्यकर्ताओं का सम्मिलित नेतृत्व कायम हुआ और बाकी पुराने नेता हट गये। उसी प्रकार आज गान्धी जी जो लोग बाबूगिरी छोड़ कर किसान मज़दूरों में जा मिलेंगे उनका और समग्र ग्राम-सेवा आन्दोलन के नतीजे से जनवर्ग से निकले हुये सेवकों का सम्मिलित नेतृत्व कायम करना चाहते हैं। दूसरे लोग भी नेतृत्व की बात करते हैं, लेकिन वे जिस तबदीली की बात करते हैं उसमें और गान्धी जी की कल्पना में फर्क है। दूसरे लोग जो हेर फेर करना चाहते हैं वह नेतृत्व को बाबू वर्ग के हाथ से निकल जाने की कल्पना नहीं करते। वे बाबू वर्ग में ही दक्षिण पक्ष और वाम पक्ष ऐसा दो भेद करके कहते हैं कि अमुक पक्ष जनता का सच्चा हितैषी नहीं है, सच्चे हितैषी हम हैं। अतः उनको छोड़कर हमको मानो। गान्धी जी का कहना है कि सभी तुम्हारे हितैषी हैं, लेकिन तुम्हें हितैषी के पीछे न चलकर अपनी चिन्ता खुद करनी है। अर्थात् वे सीधा जनता का नेतृत्व कायम करना चाहते हैं।

आज दुनिया में चारों तरफ़ एक ही नारा सुनाई दे रहा है—'किसान मज़दूर की जय' 'किसान मजदूर का राज हो' इत्यादि। गांधीजी भी तो कहते हैं कि किसान मज़दूर का राज हो लेकिन राज जिसका हो उसी को इन्तजाम करना पड़ेगा। अतः सारी योजना आज उन्हीं की प्रेरणा, साधन और व्यवस्था में चलाने की चेष्टा की जा रही है। अब प्रश्न यह उठता है कि अगर राज किसानों का होगा यानी शासन किसानों-मजदूरों का होगा तो क्या बाकी लोग शासित रहेंगे? गान्धीजी वर्ग को रखना ही नहीं चाहते। उनके कार्यक्रम का नतीजा समाज में एक ही वर्ग यानी किसान और मजदूर का होना है। अर्थात् समाज श्रमिकों का या उत्पादकों का एक वर्गहीन समूह मात्र रह जाता है। गांधीजी आज लोगों को अपनी बाबूगिरी छोड़कर गाँव के शारीरिक श्रम करनेवालों में जाकर उन्हीं के जैसे रहने की अपील कर रहे हैं और उसकी तैयारी में अपने को की सभी संस्थाओं में शारीरिक श्रम का स्थान सब से ऊँचा रखते हैं। यह समाज को वर्गहीन करने के लिये लोगों को वर्गत्यक्त (डीक्लास्ड) कराने का एक निश्चित क़दम है। सवाल यह है कि केवल इस अपील से कितने लोग स्वेच्छा से ऐसा करेंगे? जिन्होंने स्वेच्छा से नहीं किया उनका क्या होगा? पहिले ही कहा गया है कि गान्धीजी का हर सवाल को हल करने का तरीक़ा अहिंसात्मक होता है। अगर बाकी लोगों के साथ हिंसात्मक तरीके से पेश आना हो तो फिर वही करना होगा जो जर्मनी में यहूदी; रूस में कुलक या दूसरे बाबू वर्ग के लोगों के साथ किया गया है। लेकिन गान्धीजी का अहिंसात्मक हल क्रमशः और निश्चित कदम से होता है। प्रथम और सबसे शक्तिशाली क़दम तो स्वेच्छा से त्याग कराकर लोगों को आगे बढ़ाना है। दूसरी चीज़ इससे हल्की है लेकिन वह भी नैतिक है। वह है प्रत्येक मनुष्य से किसी न किसी अंश में शारीरिक श्रम द्वारा बुनियादी आवश्यकताओं के किसी न किसी की उत्पत्ति खुद करने की अपील। मनुष्य का अस्तित्व विभाजन दो तरह ही हो सकता है—१ या तो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक उत्पत्ति में शामिल है या २ वह परोपजीवी है। अगर समाज में श्रमिकों का यानी उत्पादकों का एक वर्ग होना है तो हर एक को उत्पादक बनना है। इस सिलसिले में यह समझ लेना चाहिये कि साधारणतः लोग श्रमिकों में बौद्धिक श्रम करनेवाले और शारीरिक श्रम करनेवाले ऐसा जो दो विभाग करते हैं, गान्धीजी के यहाँ उसका कोई स्थान नहीं है। शारीरिक श्रम करने वाले और बौद्धिक श्रम करनेवाले, दोनों एक ही वर्ग के हैं यह कहना निरा शब्दजाल है, इसमें वास्तविकता का अंश लेशमात्र भी नहीं है। इसी आधार पर गान्धीजी ने खादी की नई योजना में यह नियम रखा कि जो कोई खादी खरीदे वह शुरू में कम से कम दो पैसे का सूत प्रति रुपये की खादी के लिये कात कर दे और देश भर में 'जो कातें सो पहिनें' और 'जो पहिनें सो कातें' का नारा बुलन्द किया। यह ठीक है कि यह क़दम बहुत हल्का और लाक्षणिक है। वस्तुतः एक रुपये की खादी के लिये दो पैसे के सूत के लिये कताई करने में कुछ बाबूगिरी ख़तम नहीं हो जाती है। लेकिन इतना करना लाजिमी बनाकर उन्होंने लोगों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। इस छोटी सी बात से उन्होंने परोपजीवी लोगों को उत्पादकों के साथ नैतिक एकता लाने का रास्ता बता दिया। इस प्रक्रिया को बढ़ाकर उक्त दिशा में प्रगति करने का विचार तो है ही।

वर्ग हीन समाज-रचना की दिशा में गान्धी जी का तीसरा क़दम बहुत व्यापक और व्यवस्थित है। वस्तुतः यह क़दम क़रीब क़रीब आख़िरी ही है। लोग इसे गान्धी जी की आख़िरी नादानी भी कहते हैं। यह है उनकी नई तालीम की योजना। इस योजना में उन्होंने सामाजिक उत्पत्ति को ही तालीम का ज़रिया बनाया है, इस ढंग की तालीम में जो कोई शिक्षित होगा उसे मुख्यतः उत्पादक बनना पड़ेगा। अर्थात् बुद्धि की प्रधानता रखनेवाले व्यक्ति को भी शारीरिक श्रम करके उत्पत्ति में भाग लेना होगा और तालीम सार्वजनिक और सुलभ हो जाने के कारण प्रत्येक शारीरिक श्रमप्रधान उत्पादक का बौद्धिक विकास सहज ही होता जायगा। यह कहा जाता है कि सम्पत्ति का समान बँटवारा होना चाहिये। लेकिन मनुष्य की सम्पत्ति केवल रोटी ही तो नहीं है, रोटी के बँटवारे में सामंजस्य तो होना ही है। उसके अलावा शिक्षा, संस्कृति, कलाकौशल, बुद्धि, आध्यात्मिकता सभी का समान बँटवारा ज़रूरी है। फिर दुनिया में अधिकार के साथ जिम्मेदारी भी तो छाया की भाँति साथ ही रहती है। अतः सम्पत्ति के उत्पादन का, जिम्मेदारी का समान बँटवारा भी ज़रूरी है। यही कारण है कि गांधी जी की कल्पना के समाज में जहाँ हर व्यक्ति के लिये बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास होना ज़रूरी है वहाँ हर एक को शारीरिक श्रम द्वारा शरीर धारण के साधनों का किसी न किसी रूप में उत्पादन करना आवश्यक है। नई योजना में हर एक खादी धारी से कताई का आग्रह भी तो इसी सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

हम देखते हैं कि जिस प्रकार बारीक लेकिन जोरदार जलस्रोत आगे चलकर विराट नदी बन जाते हैं और फिर अगम अथाह समुद्र में जा मिलते हैं, उसी प्रकार गान्धी जी का अहिंसात्मक कार्यक्रम बहुत छोटे लेकिन गहरे क़दम से शुरू होकर बड़ी आसानी से और स्वाभाविक तौर पर विराट रूप लेकर फिर अपार समाज का एक हिस्सा बनकर उसी में लीन हो जाता है। वर्गत्याग की व्यक्तिगत अपील द्वारा मनुष्य के विवेक का विकास करके गान्धी जी जिन थोड़े से साथियों को गांवों में भेज रहे हैं वे गिनती में थोड़े ज़रूर हैं लेकिन उनका नैतिक बल गंगोत्री की लहर जैसा ज़ोरदार होगा। शुद्ध वैयक्तिक विवेक से शुरू करके दूसरा क़दम वे व्यक्तिगत न्याय वृत्ति को जगाने की अपील के साथ साथ सूत कातने का एक हल्कासा सामाजिक विधान जोड़कर उठाते हैं। अन्त में समाज का मुख्य कार्यक्रम यानी शिक्षा के विधान में इस कदर क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देना चाहते हैं कि उसकी सारी प्रगति स्वभावतः समाज की वर्गहीनता पर जाकर लीन हो जाती है। इस प्रकार जैसे गान्धी जी विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था द्वारा केन्द्रीय शासन तन्त्र के काम के दायरे घटाकर और प्रजा की प्रत्यक्ष तथा स्वावलम्बी व्यवस्था को बढ़ाकर शासन को विघटित करते हुये और स्वावलम्बन को संघटित करते हुये समाज को शासन हीनता की ओर ले जाने की चेष्टा कर रहे हैं उसी तरह प्रत्येक मनुष्य को उत्पादन की जिम्मेदारी देकर श्रमिकों के वर्गहीन समाज की ओर सारी दुनिया को ले जाने की कोशिश कर रहे हैं। यह है क्रान्ति का आहिंसात्मक तरीका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपान्तर !

विश्वम्भरनाथ

वर्षा ऋतु आई लेकर मेघों की वेणी ;
छाई चारों ओर सजल श्यामल घन-श्रेणी ।
सारे दिन छाया सी कुछ आई रहती है ;
तपनहीन मध्याह्न, घटा छाई रहती है ।

उस दिन की संस्मृति अब तक ताज़ा है मन में ;
विरह-व्यथा रोती रहती है वृन्दावन में ।
संस्मृति-पट पर अङ्कित है अभिसारित ऊषा ;
बसी हुई अब तक मनमें प्रेमिल मंजूषा !

उस दिन भी यह मलय पवन यूँ ही बहता था ;
बृज-बनिता का मन रह रह कम्पित करता था !
चकित सुनयना कुछ कह कहकर रुक जाती थीं ;
आशाएँ उन्माद लिये झुक झुक जाती थीं !

मेघ भरा स्वर कहता था कुछ मर्म-कहानी ;
जलधर अङ्कित करता था उन्मुक्त निशानी ;
रह रह कर अश्रान्त वृष्टि धारा बन जाती ;
पथिक-वधू खोई सी राग मल्हार सुनाती !

यक्ष-सुन्दरी वीणा ले नर्तन करती थीं ;
वर्षा की रिमझिम पर स-र-ग-म स्वर भरती थीं ;
बीते वैभव पर बृज रह रह साँसें लेता ;
भरा हुआ सा गहरी, तप्त उसासें लेता !

यमुना के उस पार नमित कदम्ब डाली पर ;
श्रावण का यह तिमिर सिमिटती छाया देकर ;
सुनता है अब भी झङ्कार लास्य, नृत्यों की ;
पीड़ा हरता है बृज बनिता के चित्तों की !

अब भी रक्षित वृन्दावन मानव के मन में ;
विरह पीर की गाथा उठती वन उपवन में ;
अब भी होता रहता रूठा खेल लजीला ;
अवहेला के बाद मेल की होती लीला !

अब भी होती रास शरद पूनो आंगन में ;
पागलपन नर्त्तन करता साजन के मन में ;
अब भी यमुना के तट पर वंशी-ध्वनि होती ;
अब भी मन की कुञ्ज कुटी में राधा रोती ![1]

१—गुरुदेव की रचना पढ़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक अछूत

श्री मुकुन्दीलाल बी० ए० (आक्सन), बार-एट-ला०

अछूतों के प्रति उच्चजाति के सवर्ण-हिन्दुओं का जो व्यवहार है, उनको अस्पृश्य करार देने, उनका तिरस्कार करने, उनको नीच और हेच समझने के कारण, हरिजनों को कितना दुःख होता है, उनके हृदय पर कितना आघात होता है, इसका अनुभव केवल अछूत ही को हो सकता है। अछूतों के विषय में जितने लेख, निबन्ध और पुस्तकें लिखी गई हैं; और अस्पृश्यता के विरुद्ध जितना आन्दोलन किया गया है, वह प्राय, या तो उच्चजाति के उदार चित्त समाज सुधारकों ने किया है, या उन हरिजन नेताओं ने अछूतों की वेदना का प्रचार किया है जिनका, अपना निजी अनुभव, इस विषय में नहीं के बराबर है।

संस्कृत की पोथियों में लिखा है कि ब्रह्मा ने चार वर्ण बनाये। अपने अपने वर्ण में सब बड़े हैं। शूद्रों को विधि की रचना के अनुसार रहना चाहिये। अपने वर्ण की सीमा के अन्तर्गत रहते हुये वे अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सकते हैं और मुक्ति को भी प्राप्त हो सकते हैं। शास्त्रों के लेखक, पीड़ित लोग, यह बात भूल जाते हैं कि सुख तथा आनन्द, जिसको अङ्गरेज़ी भाषा में 'कम्फर्ट्स' कहते हैं, वह ऐशो-आराम और सुन्दर पदार्थों के खाने, बहुमूल्य सुन्दर आभूषणों के पहनने, और सुसज्जित प्रासादों में निवास करने पर प्राप्त नहीं होता। सुख व आनन्द का उपभोग और अनुभव वस्त्रहीन, निर्धन व्यक्ति को भी एक मामूली घर के, एक झोपड़ी के अन्दर भी हो सकता है, और होता है। यद्यपि सुख-दुःख और उनकी उपस्थिति अथवा अभाव हमारे चित्त की स्थिति पर निर्भर हैं तथापि सुख-भोग और आनन्द चित्त के अनुभव हैं। उनकी उपस्थिति तथा अभाव हमारे आस-पास के जीव, पदार्थ और घटनाओं पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त एक ही व्यक्ति अथवा घटना कभी परम आनन्द दायी होती है। और कभी वही अत्यन्त दुःखदायी हो जाती है। अस्तु सुख और दुःख हमारी भावना और घटना हैं जो प्रसंग-वशात् और सम्बन्धित पदार्थों की स्थिति और भावना पर निर्भर हैं।

मेरी इस धारणा और निजी अनुभव के समर्थन में बहुतों उदाहरण दिये जा सकते हैं। केवल आधुनिक काल से ही नहीं, वरन प्राचीन काल से भी।

योग वाशिष्ट में दिये एक उपकथन के अनुसार, कोसल देश में गादी नामका एक बड़ा गुणवान्, महा पण्डित, ब्राह्मण, रहता था। वह अपनी वर्तमान दशा से असन्तुष्ट था। अपनी स्थिति की उन्नति के लिये उसने घर-बार, बीवी, बच्चे, मित्रजन, छोड़कर, वन में जाकर तपस्या की। मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म भोटान प्रदेश में, एक ग़रीब श्याम वर्ण शिल्पकार (हरिजन) के घर में हुआ। बड़े होने पर उस 'कतञ्जा' नामी शूद्र ने अपने लिये एक पर्ण-कुटीर बनाई। अपने गांव की एक अछूत बाला से विवाह किया। दोनों बड़े सुख से जीवन व्यतीत करने लगे। उसके कई पुत्र कन्या उत्पन्न हुये। कालान्तर में मलेरिया ज्वर ने उसके सारे परिवार को नष्ट कर दिया। वह अपना गांव छोड़कर चला गया, घूमता, फिरता, वह, कुछ दिनों में, किरात प्रदेश में पहुंचा। वहां का राजा पुत्रहीन मर गया था। उस राज्य की प्रथा के अनुसार एक सोने के साज से सुसज्जित हाथी राजा का उत्तराधिकारी ढूँढ़ने के लिये छोड़ दिया गया था। उस हाथी के पीछे प्रजागण बड़े समारोह और बाजे गाजों के, साथ चल रहे थे। रास्ते में नगर की ओर आता हुआ सब से पहले वह 'कतञ्जा' अछूत मिला। हाथी ने उसे अपनी सूंड से उठाकर, पीठ पर बिठा लिया। प्रजागण उस अछूत को राज प्रासाद में लाये, चन्दन इत्यादि सुगन्धित तैल से उसको स्नान करवा कर उसका शृंगार किया। उसके बदन को नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित किया। उसका नामकरण हुआ—राजा 'गवाल।' गवाल का एक राज कन्या से विवाह हुआ। आठ वर्ष तक उसने बड़े ऐश्वर्य के साथ राज्य किया। इस बीच उसका जीवन बड़े सुख से व्यतीत हुआ। एक दिन, सहसा, उसके दिल में, एक तरंग उठी कि वह ग़रीब प्रजा की दशा को देखे, वह आभूषण और राज चिन्हों को उतार कर, नगर की गलियों में, घूमने लगा। एक गली में उसको, सहसा, एक अछूत आत्मीयजन मिला। 'कतञ्जा' (राजा गवाल) को देखकर उस अछूत को बड़ी ख़ुशी हुई। उसने गवाल को गले लगाया। यह दृश्य एक प्रजागण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने देखा। जब राजा गवाल लौटकर महल में आया तो उसके पीछे पीछे यह खबर भी राज प्रासाद में पहुंच गई कि, राजा तो चाण्डाल है। उसकी रानी जो गवाल के रूप और गुणों पर बड़ी मुग्ध थी, उस पर आसक्त थी और मन्त्री गण जो राजा के अनन्य भक्त थे, यह ख़बर सुनते ही सब बदल गये। राज प्रासाद के नौकर, चाकर, दासियां भी, सब के सब उससे दूर खड़े होगये। ब्राह्मण पूछे गये कि अब इस चाण्डाल स्पर्श व अछूत के संसर्ग, उसके साथ खान पान, रहन-सहन का प्रायश्चित्त क्या होसकता है। पंडितों ने बताया कि जिन व्यक्तियों का उसके साथ संसर्ग रहा है, उन सबको अग्नि में भस्म हो जाना चाहिये। तब वे इस पाप से मुक्त हो सकते हैं। अन्यथा, वे भी, आजन्म, अछूत रहेंगे। सारे राजपरिवार और सेवकों को अग्नि में जलकर भस्म होते देख, गवाल का हृदय विदीर्ण हुआ। उसने अपने मन में कहा—"जब मुझको स्पर्श करने के कारण और मेरे सहवास और संसर्ग से सारा राज-परिवार इस प्रकार नष्ट हुआ है, तो मैं भी इसका प्रायश्चित्त क्यों न करूँ।" वास्तव में उसे रानी से बड़ा प्रेम होगया था। उसकी मृत्यु के कारण जो दुःख गवाल को हुआ उसे वह बर्दाश्त न कर सका। अस्तु, उसने भी अपने लिये चिता बनवाई और उसमें कूद कर अपने अछूत शरीर को अग्निदेव की भेंट कर दिया।

इस पौराणिक कथा के आधार पर आधुनिक सनातन धर्म के स्तम्भ कहते हैं—कि अछूत प्रश्न प्राचीन है। धर्म अथवा वर्ण भेद की आड़ में आजकल जो अत्याचार और अन्याय शूद्र जनता के साथ होता है, उसी का फल है कि भारतवर्ष के उच्च वंशों की जनता भी परदेशियों द्वारा अपमानित की जाती है और उनको पाश्चात्य लोग अछूत समझते हैं। कुछ ब्रिटिश उपनिवेश ऐसे हैं, जहां हिन्दुस्तानी नितान्त अछूत माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी वहां के स्वेतांग लोगों के साथ, रेल के एक ही डब्बे में सफ़र नहीं कर सकते हैं। उनके लिये रेल-गाड़ियों में, सफर करने के लिये कम्पार्टमेन्ट (डब्बे) अलाहिदा हैं। कुछ खास-खास सड़कों पर हिन्दुस्तानी चलने नहीं पाते। उनकी बस्ती भी (जैसे हमारे यहां हरिजनों की बस्ती होती है) गांव से बाहर अलग होती है। और अब दक्षिण अफ्रिका के औपनिवेशिक प्रजातंत्र ने एक नया कानून बनाया है कि काले लोग, ख़ास कर भारतीय, मकान बनाने को ज़मीन उस पड़ोस में नहीं खरीद सकते जहां स्वेतांग (यूरोपियन) लोग रहते हैं। और यह उस समय बना जब भारतीय सिपाही साम्राज्य के लिये अपना खून बहा रहे थे। उच्च जाति के हिन्दुओं के साथ इन उपनिवेशों में वही बर्ताव होता है, जो हम अपने देश में, अपने अछूत भाइयों से करते हैं। मानों इस तरह हमको अपने कर्मों का फल ब्रिटिश उपनिवेशों में मिलता है।

उक्त पौराणिक कथा के आधार पर कट्टर हिन्दू अस्पृश्यता को शास्त्रों द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा मात्र करें परन्तु वह एक काल्पनिक घटना, 'योग वाशिष्ठ' में एक स्वप्न के रूप में, केवल यह दर्शाने को दी गई है कि सुख दुःख, छुआछूत, सब भावना मात्र हैं बाह्य वस्तुओं और अज्ञान पर निर्भर हैं। वही गाथा सर्व सम्पन्न ब्राह्मण अपने जीवन से असन्तुष्ट होकर करने गया। चाण्डाल के घर जन्म लेकर कुछ काल सुख से रहा। फिर परिवार के नष्ट होने पर, घरबार कर, अवारागर्दी करने लगा। हाथी ने उठाकर उसे (गवाल) बनवा दिया। वह था तो हरिजन (चाण्डाल पर यह ज्ञान राज परिवार को नहीं था, कि वह शूद्र और जब उन्हें मालूम हुआ कि वह अछूत है, तो राजपरिवार, जो पहले उसके प्रेम और गुणों में था, उससे घृणा करने लगा और उसके संसर्ग के प्रायश्चित्त करके मृत्यु की शरण ली। था तो वह ही व्यक्ति जो इस सब सुख दुःख का कारण अछूतोद्धार का बीड़ा भारतीय देश भक्तों और सुधारकों ने उठाया है पर अस्पृश्यता और हरिजन तिरस्कार की यन्त्रणा का अनुभव हमारे उदार समाज सुधारकों को नहीं हो सकता। जिस अछूत ने श्यता की वेदना को स्वयं अनुभव किया हो, वही के दुःख को दर्शा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई किताबें

वीरांगना अरुणा आसफ़अली—सम्पादक सुरेश गान्धी; प्रकाशक : वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमिटेड, ३ राउण्ड बिल्डिङ्ग, कालबादेवी रोड, बम्बई—२; मूल्य : दो रुपया; पृष्ठ संख्या : १०१

१०१ पृष्ठों की इस छोटी सी पुस्तक में अरुणा आसफ़अली का संक्षिप्त जीवन चरित्र और अज्ञात वास के बाद उनके कई व्याख्यानों और कार्यों का विवरण है। पुस्तक के कुछ अध्यायों में अगस्त क्रान्ति पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है किन्तु पुस्तक के बहुत से स्थल असम्बद्ध भी हैं जिनका अरुणा के जीवन और कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं। पुस्तक के प्रारम्भ में एक बेतुकी सी कविता भी है। पुस्तक की छपाई सफ़ाई अच्छी है।

ईशु ख्रिस्त—लेखक श्री किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला; प्रकाशक : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; मूल्य : चौदह आना; पृष्ठ संख्या ९१

गान्धीवादी विचारधारा के महान प्रतिपादक श्री मशरूवाला की यह पुस्तक हज़रत ईसा के सम्बन्ध में एक नया और जीवनप्रद दृष्टिकोण हमारे सामने रखती है। पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में फ़िलिस्तीन और यहूदियों का इतिहास, यहूदी धर्म, योहान का जन्म और जीवन चरित्र, ईसा का जन्म और बाल्य-काल, उनका उपदेश और जीवन की प्रमुख घटनायें और अन्त में क्रूसारोहण का वर्णन है। दूसरे खण्ड में विस्तार पूर्वक हज़रत ईसा के उपदेश और बाइबिल की कहानियां हैं और तीसरे खण्ड में अन्य सत्य-शोधकों के साथ हज़रत ईसा का तुलनात्मक अध्ययन है। पुस्तक के अन्त में एक शब्द सूची भी दी हुई है।

यह छोटी सी पुस्तक हर विचारशील पाठक के पढ़ने योग्य है।

हमारी बा—लेखिका श्री वनमाला परीख और डाक्टर सुशीला नय्यर; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद; मूल्य दो रुपया; पृष्ठ संख्या २१३; आनुवादक काशीनाथ त्रिवेदी।

स्वर्गीया कस्तूर बा की यह जीवन झाँकी अत्यन्त सादगी और सुन्दरता के साथ लिखी गई है। पुस्तक दो भागों में है। पहला भाग श्री वनमाला परीख का लिखा हुआ है और दूसरा भाग डाक्टर सुशीला नय्यर का। पहले भाग में जन्म और विवाह, बा का बाल गृहस्थाश्रम, आदर्श सहधर्मचारिणी, सङ्कट की साथिन, सत्याग्रह की गुरू, अपरिग्रह की दीक्षा, जोहान्सबर्ग में बा का घर, बा की दृढ़ता, बापू को बचाया, पहली स्त्री सत्याग्रही, बा की सेवा सुश्रूषा, बा की अङ्गरेज़ी, खादी परिधान, आश्रम की बा, हरिजनों की माँ, बा की दिनचर्या, कर्मयोगी बा, हरिलाल भाई, सार्वजनिक जीवन में और विदा आदि अध्याय हैं। इसी भाग के परिशिष्ट में बा को लिखे बापू के पत्रों से लिये गये कुछ नमूने के पत्र भी दिये गये हैं।

दूसरे भाग में डाक्टर सुशीला नय्यर ने 'वात्सल्य मूर्ति बा' शीर्षक से बा के सम्बन्ध में ६० पृष्ठों में अपने अनमोल और रोचक संस्मरण लिखे हैं। पुस्तक के अन्त में देवदास गान्धी और गोशी बहिन कैप्टन के 'अन्त्येष्टि' और 'बा' शीर्षक लेख हैं।

पुस्तक की छोटी सी भूमिका पूज्य गान्धी जी ने लिखी है। बा का परिचय देते हुये बापू जी लिखते हैं—"बा का ज़बर्दस्त गुण महज़ अपनी इच्छा से मुझमें समा जाने का था। यह कुछ मेरे आग्रह से नहीं हुआ था। मैं नहीं जानता था कि बा में यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू शुरू के अनुभव के अनुसार बा बड़ी हठीली थीं। मेरे दबाव डालने पर भी वे अपना चाहा ही करतीं। इसके कारण हमारे बीच थोड़े समय की या लम्बी कड़ुआहट भी रहती, लेकिन जैसे जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया वैसे वैसे बा खिलती गईं और पुख़्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे काम में समाती गईं। जैसे जैसे दिन बीतते गये, मुझमें और मेरे काम में, सेवा में—भेद न रह गया। बा धीमे धीमे उसमें तदाकार होने लगीं। शायद हिन्दुस्तान की भूमि को यह गुण अधिक से अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बा की उक्त भावना का यह मुख्य कारण मालूम होता है।"

सम्पूर्ण पुस्तक इतने सुन्दर, स्वाभाविक और रोचक ढङ्ग से लिखी गयी है कि एक बार उठाकर समाप्त करने का ही जी चाहता है। भारतीय साहित्य की एक बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी कमी पूरा करने के लिये ये दोनों बहिनें हमारे धन्यवाद की पात्र हैं। हर हिन्दुस्तानी स्त्री पुरुष को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

गो सेवा—लेखक महात्मा गान्धी; प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; मूल्य डेढ़ रुपया; पृष्ठ संख्या १६८

पुस्तक दो भागों में बँटी हुई है। पहले भाग में नवजीवन में प्रकाशित गान्धी जी के गो रक्षा सम्बन्धी ३२ लेख उद्धृत किये गये हैं। दूसरे भाग में स्वर्गीय महादेव देसाई, काका कालेलकर, विनोबा भावे आदि के गोरक्षा सम्बन्धी लेख हैं। अन्त में परिशिष्ट में गो सेवा संघ का विधान, अखिल भारतीय गो रक्षा मण्डल का विधान, गो सेवा संघ और आश्रम की गो शाला का आँकड़ा दिया हुआ है

'गान्धी जी अपना पहला लेख प्रारम्भ करते हुये लिखते हैं "गोरक्षा मुझे बहुत प्रिय है। मुझे कोई पूछे कि हिन्दू धर्म का बड़े से बड़ा बाह्य स्वरूप क्या है तो मैं गो रक्षा को बताऊँ। मुझे वर्षों से दीख रहा है कि हम इस धर्म को भूल गये हैं। दुनिया में ऐसा कोई देश मैंने नहीं देखा जहाँ गाय के वंश की हिन्दुस्तान जैसी लावारिस हालत हो। तुलना में ढोरों की जितनी पसलियाँ हम हिन्दुस्तान में देखते हैं उतनी और कहीं देखने में नहीं आतीं।"...."मेरी शक्ति हो और मुझे वक्त मिले तो मैं पिंजरापोलों को सुधारने में, पशु पालन का शास्त्र ज्ञान जनता को देने में, निर्दय हिन्दुओं को अपने जानवरों पर दया करना सिखाने में और ग़रीब से ग़रीब बालक और रोगी के पास साफ़ दूध पहुंचाने में गो रक्षा मण्डलियों को लगाऊँ। सबसे पहले मैं हिन्दुओं से इन मण्डलियों की व्यवस्था का भागीरथ कार्य कराऊँ। बाद में अङ्गरेज़ों से गो मांस छोड़ने की प्रार्थना करूं। राजा लोग अङ्गरेज़ मेहमानों की ख़ातिर गोमांस से करते हैं। उन्हें इस अधर्माचरण से मुक्त होने के लिये प्रार्थना करूँ और शर्माऊँ। इतना करूँ तभी मुझे अपने मुसलमान भाइयों से गोवध बन्द करने के लिये कहने का हक़ मिले। इस तरह हमारा धर्म साफ़ दिखाई देता है। जो काम हमें अन्त में करना है वह हम पहले करने लग गये हैं।"

गान्धी जी के लेखों में गो रक्षा का अर्थ गो रक्षा का धर्म, गो रक्षा की शर्तें, गाय बनाम भैंस, गो रक्षा के तरीक़े, चर्मालय, गो वध कैसे रुके, गो धन की रक्षा, कपड़े का अर्थ शास्त्र, अपङ्ग ढोरों का क्या हो, खस्सी करने का धर्म, बैल बनाम मोटर, आदि लेख बहुत महत्वपूर्ण और सुझावों से भरे हुये हैं। वास्तव में गो रक्षा के प्रश्न को जब तक हम गान्धी जी के बताये हुये तरीक़े से वैज्ञानिक दृष्टिकोण से न देखेंगे यह प्रश्न पूरी तरह हल नहीं हो सकता।

गो सेवा से दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक सज्जन को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

आज़ादी किस क़ीमत पर?—लेखक—श्री सिरिल मोड़क; प्रकाशक: न्यू लिटरेचर, २५७ चक, प्रयाग; मूल्य ३।।।); पृष्ठ संख्या १९६

सन् १९४० में हिन्दुस्तान की राजनीति ने एक नया और अभूतपूर्व मार्ग ग्रहण किया। पाँच बरस तक वह क्रम किसी न किसी रूप में चलता रहा। भारतीय राजनीति ने इस ज़माने में बहुत से उतार चढ़ाव देखे। उसी को अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से श्री सिरिल मोड़क ने अपनी इस पुस्तक में लिखा है। पण्डित जवाहरलालजी ने इस पुस्तक की छोटी सी भूमिका में लिखा है—"श्री सिरिल मोड़क में अपनी इस पुस्तक में इन्हीं वर्षों की कथा लिखी है। जो कुछ इन्होंने लिखा है उसमें से बहुत कुछ से तो मैं सहमत नहीं हूँ लेकिन उनकी शैली मनोमुग्धकारी और अत्यन्त सजीव है। वर्णित कथा बड़ी हृदय विदारक है। पुस्तक रोचक है और इन वर्षों की गहरी यातना को बहुत कुछ सामने लाने में सफल हुई है। वह उन समस्याओं को जिनसे हम भाग न सके और उभरती हुई जनता के उभड़ते जोश को और उनके ऊपर किये गये क्रूर दमन को, रूप देने में समर्थ हुई है। इसलिये जो इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो इन वर्षों के बारे में कुछ जानेंगे—और जो दूसरों की अनुभूति रही है उसको कुछ अनुभव करेंगे।"

पुस्तक आठ अध्यायों में बँटी हुई है—तूफ़ान के बादल, बादलों की गरज और बिजली, तूफ़ान आ गया, तूफ़ान की चपेट, हमारे बलिदान, तूफ़ान के बाद की रात, सुबह की सुर्खी और दिनका प्रकाश और निराशा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की भाषा में प्रवाह है और वह एक ज़िन्दा ...र सामने खींचकर रख देती है।

हिन्दी पाठकों की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य अधिक ...

संक्षिप्त जैन इतिहास—(भाग ३—खण्ड ४—...भारत का मध्यकालीन अन्तिम पाद का इतिहास) ...श्री कामता प्रसाद जैन; मूल्य सवा रुपया; पृष्ठ ...१५२।

इस संक्षिप्त पुस्तक में चालुक्य राज्य में जैन धर्म, ...राजवंश, होयसाल राजवंश, दक्षिण भारत का ...कालीन इतिहास, होयसाल कालीन जैन साहित्य व ...शीर्षक अध्यायों के अन्तर्गत जैन धर्म की ऐतिहा-...राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का ख़ाका खींचा ...है।

जैन धर्म एक समय दक्षिण में अत्यन्त शक्तिशाली ...था। होयसाल राज्यवंश जैनों के उद्योग से ही क़ायम ...। जैन साहित्य और कला जो दक्षिण में फली और ...वह काफ़ी उत्कृष्ट थी। पुस्तक में इन्हीं सब बातों ...र्णन है किन्तु वह इतने संक्षेप में किया गया है कि ...की रोचकता और ऐतिहासिक महत्व बहुत कम ...है। फिर भी पुस्तक देखने से एक बात स्पष्ट हो ...है कि लेखक ने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से ...लिखी है।

...शाली—लेखक श्री विजयेन्द्र सूरि; प्रकाशक ...इण्डिया पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, मूल्य एक ...पृष्ठ संख्या ४१।

...पुस्तिका में प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान वैशाली ...शास्त्रों की दृष्टि से स्थान निर्णय और महावीर ...के जन्मस्थान निर्णय की विवेचना की गई है। ...वासुदेव शरण अग्रवाल ने पुस्तक की छोटी सी ...लिखी है। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपनी ...देते हुये लिखा है—"भारतवर्ष के प्राचीन इति-...वैशाली का प्रमुख स्थान है। कुछ दिनों से बिहा-...वहां की स्मृति क़ायम रखने के लिये मेला लगाना ...दिया है जिसमें तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक विवेचना ...प्रकार के सांस्कृतिक विषयों पर लेख पढ़े जाते हैं। श्री विजयेन्द्रसूरि ने जैन, बौद्ध और वैदिक दृष्टि कोण से विदेह वैशाली और अन्य स्थानों का भौगोलिक और ऐतिहासिक परिचय कराने का प्रयत्न इस पुस्तिका में किया है जो स्तुत्य है। इसे पढ़ कर पाठक उनके महत्व को जानेंगे और इतिहास के एक विस्मृतप्राय पन्ने को फिर सहज में उपलब्ध कर सकेंगे।"

पुस्तिका का मूल्य बहुत अधिक है।

ध्रुव पद शिक्षण—लेखक श्री श्रीराम बाजपेयी; प्रकाशक लोक साहित्य मण्डल, २५७ चक, इलाहाबाद; मूल्य २॥)

पण्डित श्रीराम बाजपेयी, हिन्दुस्तान स्काउट एसोसिएशन के आर्गेनाइजिंग कमिश्नर हैं। उन्होंने स्काउट सम्बन्धी शिक्षा का इस पुस्तक में विस्तृत विवेचन किया है। पुस्तक हर स्काउट के पढ़ने योग्य है। पुस्तक में बीसियों चित्र और चार्ट हैं।

कैम्प फ़ायर—लेखक श्री जानकी शरण वर्मा; प्रकाशक न्यू लिटरेचर, २५७ चक, प्रयाग, मूल्य १।)

यह भी स्काउटिंग से सम्बन्ध रखने वाली उपयोगी और प्रत्येक स्काउट के पढ़ने योग्य पुस्तक है।

गीतालङ्कार—लेखक श्रीपद वन्द्योपाध्याय; प्रकाशक सरकार ब्रदर्स, ४ दरियागंज दिल्ली; मूल्य बारह आना।

सङ्गीत सीखने वालों के लिये स्वर ज्ञान कराने के लिये यह अलङ्कारों का संग्रह इस पुस्तिका में दिया गया है। पुस्तिका छोटी सी है किन्तु उपयोगी है।

अधिनायकतंत्र—लेखक श्री गुप्तनाथ सिंह, प्रकाशक राष्ट्रीय प्रकाशन परिषद झबुआ (शाहाबाद); मूल्य छै आने।

इस पैम्फ्लेट में अधिनायक तंत्र की व्याख्या की गई है।

युगांकिनी—(कहानी संग्रह)—लेखक श्री जगन्नाथ चौधरी; प्रकाशक नरेन्द्र साहित्य कुटीर इन्दौर; मूल्य डेढ़ रुपया।

इस पुस्तक में १० कहानियां संग्रहीत हैं। लेखक का यह पहला कहानी संग्रह है और विश्वास है आगे चलकर वह सफल कहानी लेखक बन सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी राय

ज़िम्मेदार ? यूनियन जैक

हम यह नहीं मानते कि आज कल बंगाल या कलकत्ते में लीग का राज है और न यह मानते हैं कि यू० पी० या किसी सूबे में भी कांग्रेस का राज है। हमारे सर पर गोरे वाइसराय और गवरनर के रहते और देश में यूनियन जैक के फहराते हम यह कैसे मान लें, यह हमारी समझ में नहीं आता। आज, इस लेख के लिखने की तारीख़ तक, हिन्दुस्तान के चप्पे चप्पे पर गोरी क़ौम का राज है।

कलकत्ता में जो हालत हिन्दू मुसलमानों की हुई और जो लूट उनके माल असबाब की हुई वही हालत अगर कलकत्ते में रहने वाले मुट्ठी भर अंगरेज़ों की हुई होती या अँगुलियों पर गिनी जाने वाली अंगरेज़ी दूकानों की हुई होती तो क्या वहां का गवरनर फ़ौज बुलाने में चौबीस घण्टे ढील डालता ? और अगर ऐसा करता तो क्या वह फ़ौरन ही वापिस न बुला लिया गया होता ? और अगर बर्क जैसे लोग आज भी अंगरेज़िस्तान में मौजूद होते तो क्या उसको वारन हेस्टिंग्ज़ की तरह कपड़े लत्ते और मकान दुकान से बरबाद न कर दिया गया होता ? कलकत्ते के हिन्दू-मुसलमानी शैतानी कारनामो को सुनकर लन्दन के तख़्त संभालने वालों के क़लम और उनकी ज़बानें तो हिलती और कांपती हैं और सोडा वाटर की बोतल के उबाल की तरह छूं छां और फूं फां भी करती हैं, पर उनके दिल पत्थर की तरह बेहिस हैं। इतना ही नहीं वह बल्लियों उछलते हैं और तसल्ली मानते हैं कि हमारा राज सदियों के लिए नहीं तो दसियों के लिए ज़रूर अटल हो गया। इङ्गलिस्तान की मजदूर सरकार भले ही सच्चे जी से हिन्दुस्तान को आज़ाद करना चाहती हो पर वह अपनी सैकड़ों बरस की क़ौमी आदत से मजबूर है। आदत से मजबूर होकर उससे भूलें होती ही रहेंगी। बचपन से पाला हुआ शेर अपने मालिक का हाथ प्यार से चाटते चाटते ख़ून ज़बान पर लगने से अपनी नसली आदत में फिर से आ जाता है। वह यह समझता ही नहीं कि वह जो कुछ कर रहा है प्यार के सिवा कुछ और भी हो सकता है। वह मालिक को समूचा खा जाने पर भी यह नहीं [illegible] पाता कि उसने अपने मालिक के साथ कोई दुश्मनी [illegible] है। यह ठीक है इनसानी आदतें बदलती रहती हैं [illegible] यह भी ठीक है कि जब एक आदमी में बदलने में [illegible] सैकड़ों दिन लेती हैं तो एक क़ौम में वह सैकड़ों [illegible] तो दसियों बरस ज़रूर लेंगी।

अपने ऊपर होनेवाले हमले की गुमनाम चिट्ठी [illegible] लोग होशियार रहते हैं। दस्तख़ती चिट्ठी पाकर वह [illegible] भी ज़्यादा इन्तज़ाम करते हैं। न करें तो उनके [illegible] उन्हें बेवकूफ़ बतलाते हैं। इस तरह उनको नुक़सान [illegible] उठाना पड़ता है और बेवकूफ़ भी बनना पड़ता [illegible] बंगाल के गवरनर को सोलह तारीख़ का पूरा पता था [illegible] जो तरह तरह के बयान निकल रहे थे वह भले ही इस [illegible] या धमकी भी न रहे हों, पर तय्यार रहना हर तरह [illegible] था। अगर यह सब नहीं हुआ तो हम कैसे मानें [illegible] बंगाल के बड़े वज़ीर, और बंगाल के गवरनर में [illegible] गाँठ न रही हो। क्या अंगरेज़ी आबादी के ख़िलाफ़ [illegible] तरह की धमकी पाकर गवरनर यही करता जो उसने [illegible] किया ?

इस दंगे से हमारा दिल हिला है, दहला नहीं [illegible] पर वह कहीं ज़्यादा दहला हुआ है इस बात से [illegible] हिन्दू और मुसलमान आज़ादी के रास्ते चलते [illegible] बहक कर गुलामी की राह चल पड़े। भाई भाई [illegible] में गले काटें यह गुलामी की राह चलना ही नहीं [illegible] की राह चलना है।

लीग और कांग्रेस दोनों ही कोठों पर चढ़ [illegible] नारे लगा रही हैं—"आज़ादी लेकर रहेंगे, आज़ादी [illegible] रहेंगे !" लेकिन दोनों ही कलकत्ते के दंगे में पुकार [illegible] हैं—"दुहाई है लाट साहब की ! दुहाई है इंगलिस्तान [illegible] के बड़े वज़ीर की !" इसकी जगह अगर वह—"दुहाई [illegible] है मि० जिन्ना की ! और दुहाई है पंडित नेहरू की [illegible] चिल्लातीं तो हमें कुछ सब्र आता।

जिनकी वह दुहाई पीट रही हैं उनको वह [illegible] दार क्यों नहीं समझतीं ? वह क्यों ज़िम्मेदार [illegible] हैं उनके हाथ की कठपुतलियों को ? यही इस [illegible] सबसे बुरा पहलू है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताक़त बरदाश्त में है

न जाने क्यों यह ग़लत ख़याल हर समझदार और नासमझ में बैठ गया है कि जोश और ग़ुस्से से ताक़त आती है! इसी लिए लड़ाकू क़ौमें शराब पी पी कर लड़ती और लड़ाती हैं, अख़बारों में झूठी बातें लिख कर ग़ुस्सा दिलाती हैं, और समझती हैं कि वह लोगों में ताक़त फूंक रही हैं। ताक़त का ताल्लुक़ जोश, झूट और ग़ुस्से से ज़रा भी नहीं है। जो ताक़त इनके ज़रिये उभरती मालूम होती है वह ताक़त है ही नहीं ताक़त की तसवीर है, ताक़त की छाया है और अगर ताक़त है तो रोगी और कमज़ोर ताक़त है। ताक़त है सचाई, ताक़त है बरदाश्त, ताक़त है धीरज, ताक़त है समझ।

जो जोश हिन्दू मुसलान अख़बारों ने, हिन्दू मुसलमानों में उठा रखा है वह टिकाऊ नहीं है क्यों कि वह झूट और ग़ुस्से की आग से पैदा किया गया है। नशा उतरने पर बदन टूटने लगता है। यही हाल दो दिन में हिन्दू और मुसलमान का होगा। महाभारत की लड़ाई के बाद अर्जुन के ख़ानदान की औरतों को डाकू लूट रहे थे और धनुष धारी अर्जुन खड़ा खड़ा ताक रहा था। यही हाल हिन्दू और मुसलमानों का होकर रहेगा। उन्हें चाहिए वह समझें।

सिविलवार नहीं, गुलामों का हुल्लड़

गोरे अख़बार कलकत्ते के दंगे को सिविलवार का नाम भले ही दें दुनिया उसे ग़ुलामों का हुल्लड़ ही कहेगी। इसकी वजह है—

अगर यह सिविल वार होती तो मुसलमान एक हिन्दू मार कर दस बताता और अपनी दस मौतों को एक गिनाता। हिन्दू भी कहता हम दस मार आए और हमारा एक न मरा, जब कि असल बात चाहे यह होती कि अपने दस कटवाए होते और उनका एक भी न मार पाए होते। यह हुआ सिविलवार का झूठ।

ग़ुलामों के हुल्लड़ में इसका उलटा होता है। मुसलमान दस हिन्दू मार कर कहता है मैंने एक मारा, और अपना एक मर जाने पर कहता है मेरे दस मर गए। हिन्दू भी इसी तरह मरे दस बताएगा और मारे एक। वजह साफ़ है—काले या गेहुँवें ग़ुलामों को गोरे मालिक से फ़ैसला जो कराना है। दुकान जलाने, माल लूटने, मन्दिर मसजिद गिराने में भी इसी तरह के झूठ से काम लिया जाता है। इस झूठ का उनके साथियों पर क्या असर होता है इससे उनको कोई मतलब नहीं।

सिविलवार में मारकाट लूटपाट से कलचर को नुक़सान तो पहुंचता है, पर दिल दिमाग़ को कुछ मिल भी जाता है। ग़ुलामों के हुल्लड़ में कलचर मिट्टी में मिल जाती है, ईमान खड़ा खड़ा रोता है, दिल दहल जाते हैं, सिर घूम जाते हैं, नुक़सान ही नुक़सान। हां, एक नफ़ा होता है। ग़ुलामी का पौदा लहलहाने लगता है। बंगाल के बड़े वज़ीर के मुंह से साफ़ बात निकल ही तो गई—'अंगरेज़ अब हिन्दुस्तान छोड़ना नहीं चाहते।"

इनक़लाब बनाम समझौता

अंगरेज़ी सरकार में एक बड़ा ऐब है। वह उस ऐब को ऐब नहीं समझती और इसीलिए उसको दूर करने की उसने कभी कोशिश नहीं की। उसके इस ऐब से हिन्दुस्तान का भले ही नुक़सान होता हो इंगलिस्तान का नफ़ा था। वह ऐब यह कि वह अपने नीचे काम करने वाले सरकारी अफ़सरों की ग़लतियों को अपनी ग़लती समझती थी और इसी लिए यह साबित करने की कोशिश किया करती थी कि वह ग़लतियां नहीं हैं, सोच समझ कर किए हुए काम हैं और ठीक हैं। देश ने कई बार चाहा कि उन मजिस्ट्रेटों और पुलिस अफ़सरों के ख़िलाफ़ मुक़दमा चले जिनके ज़िलों या हद में कोई बेक़ानूनी हुई है। पर अंगरेज़ी सरकार ने, बस चलते, वैसा न होने दिया। ठीक यही ऐब ज्यों का त्यों हिन्दुस्तानी कहलाने वाली सरकारें अपनाती जा रही हैं। किसी गांव के पटवारी की बदमाशी को भी अपना समझती हैं और इस वास्ते वह यह साबित करने की कोशिश करती हैं कि पटवारी ने जो किया वह ठीक किया। यही वजह है कि बड़े बड़े दंगे हो जाते हैं और न गुन्डे हाथ आते हैं न किसी मैजिस्ट्रेट से जवाब तलब होता है। इन सरकारों को समझ लेना चाहिए कि वह वहां जनता की नुमाइन्दा बन कर बैठी हैं। जनता ने उनको इस ख़याल से वहां भेजा है कि ज़िले ज़िले के सरकारी अफ़सर, तहसीलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गांव के नौकर जनता को तकलीफ़ न देने पावें जैसी उन्हें ईस्ट इन्डिया कम्पनी के वक़्त से आदत पड़ी हुई है। जिस दिन यह नई सरकारें इस बात को समझ लेंगी उस दिन के बाद न दंगे होंगे और न रिशवतों की शिकायत रह जायगी।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान का राज महारानी विक्टोरिया को सौंपा और साथ ही साथ राज की सारी बुराइयाँ भी सौंप दीं। अब महारानी विक्टोरिया की औलाद उसी राज के कुछ बोझल पर बेफल हिस्से को कुछ हिन्दुस्तानियों के हाथ सौंप रही है और साथ ही साथ उसकी सारी बुराइयों को भी। सौंपा सौंपी में यही होता है। हां, अगर आज़ाद हिन्द फौज बढ़ते बढ़ते हिन्दुस्तान के एक हिस्से पर भी जम जाती, या देश के अन्दर की सत्याग्रही सेना बिना हथियारों के इनक़लाब के ज़रिए किसी हिस्से पर भी क़ब्जा कर पाती, तो अंगरेज़ी राज की सारी बुराइयां छूट जातीं और वह राज बहुत दर्जे तक खरा सोना होता। ज़ेवर की खोट हाथ बदलने से नहीं जाती, तपा कर नया गढ़ने से ही जाती है। हकूमत का ऐब इनक़लाब ही निकालता है, समझौता या सुधार नहीं।

क़सूर हमारा

इन दंगों की जड़ में असल चीज़ यह है कि छोटी से छोटी सरकारी नौकरी, तनख़ाह के लिहाज़ से करेन्सी नोटों का छापाख़ाना बनी हुई है। हम कहना तो चाहते थे चांदी की खान, पर चांदी तो अब कहीं रही नहीं। जब तक नौकरियां और वज़ारतें नोटों का छापाख़ाना बनी रहेंगी तब तक हमारा राज होने पर भी, जो अभी कहीं दूर है, सुख का राज न होगा। सुख का राज उसी दिन होगा जब हिन्दुस्तान अपने धन्दों से इतना कमाने लगेगा कि उसे सरकारी नौकरी सिर्फ़ फ़ज़्ल समझ कर ही करना पड़ेगी, फ़ायदा समझ कर नहीं। फ़र्ज़ में तो कुछ नुक़सान ही सहना पड़ता है। आज़ाद हिन्द फ़ौज की मिसाल मौजूद है।

दंगा और धरम साथ रहने वाली चीज़ नहीं। जहां दंगा है वहां धरम ईमान नहीं, और जहां धरम ईमान है वहां दंगा नहीं। मुसलमान 'सात बरस की लड़की के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती' क़ुरान शरीफ़ की किस आयत से साबित कर सकते हैं? और अगर साबित कर सकते हैं और ज़रूर कर सकते हैं क्योंकि विलायत से इसी लिए तो बैरिस्ट्री पास करके आए हैं तो फिर उनकी वह तफ़सीर और टीका शैतानी और आसुरी ही समझी जायगी। कलकत्ते के दंगे में हिन्दू और मुसलमानों के बच्चे मारना, औरतों के साथ ज़बरदस्ती करना जैसे काम धर्म के नहीं थे, आदमी के नहीं थे, जानवरों के भी नहीं थे। दोज़ख़ यानी नारकी हमने देखे नहीं, शायद उनके भी नहीं हो सकते। भेड़िया सब में बुरा जानवर है। उसके भिट से भी आदमी के ज़िन्दा बच्चे पाए गए हैं, पर कलकत्ते के हिन्दू मुसलमान कहलाने वाले दुपाए भेड़िये ऐसे खूंख़ार चौपाए से भी गिर गए। उनको हिन्दू मुसलमान कहते हमारा क़लम रुकता है, रोता है, लिखता है यह समझ कर नहीं कि वह उन्हें हिन्दू या मुसलमान समझता है बल्कि यह समझ कर कि उन्हें और क्या कह कर लिखे।

देश के हिन्दू मुसलमानो! हिन्दू मुसलमान बनो, एक दूसरे को सगे भाई के बजाय दुशमन समझने में ईश्वर अल्लाह की बिजली न गिरवाओ। क़ादिर के क़हर से डरो, भगवान के बज्रपात से ख़ौफ़ खाओ! ऊपर हाथ उठा कर कहो—क़ुसूर हमारा! क़ुसूर हमारा! क़ुसूर हमारा!

—सुन्दरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस

हिन्दी का श्रेष्ठ प्रगतिशील मासिक-पत्र,

प्रेमचन्द का स्मारक, और उनका सजीव परम्परा वाहक;

क्रान्तिकारी राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत कहानियां और कविताएं साहित्य और समाज-विषयक गम्भीर, चिन्तन-पूर्ण लेख, और आलोचनाएं,

हंस को हिन्दी के सभी महत्वपूर्ण लेखकों का सहयोग प्राप्त है, हंस के स्थायी लेखकों की तालिका स्वयं अपना परिचय दे रही है:—

हजारी प्रसाद द्विवेदी
नन्ददुलारे वाजपेयी
भगवत शरण उपाध्याय
सुभद्रा कुमारी चौहान
चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार
गिरिजा कुमार माथुर
राधाकृष्ण
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
राम बिलास शर्मा
प्रकाश चन्द्र गुप्त
बृन्दावनलाल वर्मा
उपेन्द्रनाथ अश्क़
रांगेय राघव
बच्चन

प्रगतिशील हिन्दी कविता की स्वस्थ कान्ति देखनी हो, आधुनिक साहित्य के महत्वपूर्ण नये और पुराने लेखकों की भाव धारा का पूर्ण परिचय पाना हो तो

हंस

आपका पत्र है

हंस के देखने से हिन्दी साहित्य के भविष्य में आपका विश्वास दृढ़ होगा ।

पता—

हंस, बनारस

वार्षिक मूल्य सिर्फ छै रुपया

सम्पादक

अमृतराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अद्वितीय, अनूठी और क्रान्तिकारी पुस्तक

टोकियो से इम्फाल

पृष्ठ संख्या २२८ : बिलकुल नये चित्र २१ : मूल्य २॥) : डाक से २॥।=),

लेखक—सरदार रामसिंह रावल; सम्पादक दैनिक 'आजाद हिन्द' बैंकाक (थाइलैण्ड)

हिन्दी में—प्रसिद्ध पत्रकार और ज़ब्त 'जय हिन्द' के यशस्वी लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार

भूमिका—अगस्त ४२ की क्रान्ति की लक्ष्मी श्रीमती अरुणा आसफअली

महान क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द की भावना से आयोजित प्रचण्ड क्रान्ति का पूर्ण प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास।

पुस्तक में क्या है ?

* बैंकौक से इम्फाल तक की ३००० मील पैदल यात्रा का रोमांचकारी विवरण।
* श्री रासबिहारी बोस और राजा महेन्द्रप्रताप आदि की प्रवृत्तियों का पूरा परिचय।
* इम्फाल और अराकान के मोर्चों के खूनी जंग का आँखों देखा पूरा हाल।
* बाल सेना और नेताजी के नये व दुर्लभ चित्र और एक नक़शा।

पुस्तक की भाषा और शैली कहानी की तरह रोचक, उपन्यास की तरह मोहक और नाटक की तरह आकर्षक है।

हिन्दी तो क्या, किसी भी भाषा में ऐसी पूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई।

आज ही अपनी पुस्तक का आर्डर भेजिये।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नया हिन्द'

हिन्दुस्तानी बोली और हिन्दी उर्दू लिखावट में
हिन्दुस्तान की मिली जुली कल्चर का बेजोड़ मासिक पत्र

सम्पादक मण्डल

पण्डित सुन्दरलाल

डाक्टर ताराचन्द

श्री मज़्ज़र अली सोख़्ता

सय्यद मुज़फ़्फ़र हसन

महात्मा भगवानदीन

पण्डित विश्वम्भरनाथ

सालाना क़ीमत छै रुपया — एक कापी दस आना

आज ही ग्राहक बनें या नमूने की कापी मंगायें

"नया हिन्द" आफ़िस, बाई का बाग़, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का
प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदवाणी

भाग १२]
[संख्या ५, पूर्ण संख्या ७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

[नवम्बर : १९४६]

१—मंझले ज़माने की हिन्दुस्तानी तहज़ीब और उसके बुनियादी उसूल—डा० ताराचंद ... २६७
२—गिरि-पथ (कविता)—श्री० वैजनाथ सिंह २७२
३—लाल एशिया (कविता)—श्री० शिवशङ्कर प्रसाद २७३
४—बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन के मुख्य—सिद्धांत—श्री० उदयचंद्र जैन ... २७५
५—राष्ट्र-निर्माण (कविता)—श्री० शीतला सहाय श्रीवास्तव २८२
६—हिन्दी साहित्य में प्रकृति वर्णन—श्री० विद्या गुप्त २८३
७—रसखान का समय श्री० त्रिलोकी नारायण २८७
८—जैन कन्नड़ वाङ्मय—श्री० के० भुजबली २८९
९—गीत (कविता) श्री० महेन्द्र भटनागर २९१
१०—टालस्टाय और नारी—श्री गोपालकृष्ण मल्लिक २९२
११—प्रयाण गीत (कविता)—श्री० शरदेन्दु २९५
१२—यह जीत या हार ! —प्रो० श्री रंजन ... २९६
१३—ध्रुव के तीन रूप—श्री प्रभाकर माचवे ... २९९
१४—रोमां रोलां की डायरी के कुछ पृष्ठ—श्री महादेव साहा ३००
१५—दो कविताएं (कविता)—श्री० कमला प्रसाद 'विमल' ३०२
१६—खादी का विस्तार—श्री० वि० श० चतुर्वेदी ३०३
१७—बङ्गाल का अकाल—१९४३ : बङ्गाल का काल—१९४६ (कविता)—श्री० छोटेलाल भारद्वाज ३०६
१८—हमारी शिक्षा पद्धति में इतिहास का अध्ययन—श्री० रामजीलाल शर्मा ... ३०७
१९—कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों की आर्थिक रूप-रेखा—श्री० रमेशचंद्र गोयल ... ३०९
२०—कैसे नव निर्माण करोगे ? (कविता)—श्री० बालकृष्ण बहुगुणा ... ३११
२१—पुष्टमार्ग और उसके प्रचारक—श्री० श्याम सुन्दर ३१२
२२—वह इनसान था !—महेशचंद्र 'सरल' ... ३१६
२३—हिन्दू मुस्लिम संस्कृति पर एक दृष्टि—श्री गङ्गाप्रसाद शास्त्री ३२१
२४—समस्या !—श्री मनोहरलाल मिश्र ३२५
२५—राष्ट्रीय मुसलिम विश्वविद्यालय की रजत-जयन्ती—श्री गुरुदयाल मल्लिक ... ३२६
२६—सद्गुरु का फ़रमान—श्री काजी अशरफ़ महमूद ३३०
२७—नई किताबें ३३१
२८—अपनी बात ३३५

विश्ववाणी के ग्राहकों और पाठकों को सूचना

(१) विश्ववाणी प्रेस से हिन्दुस्तानी मासिक "नया हिन्द" के प्रकाशन के कारण अब "विश्ववाणी" बजाय पहली तारीख़ के हर महीने १५ तारीख़ को प्रकाशित हुआ करेगी ।

(२) डाकख़ानों की हड़ताल और इलाहाबाद के निरन्तर दङ्गों और कर्फ़्यूआर्डर के कारण विश्ववाणी के लेट होने से ग्राहकों को काफ़ी असुविधा उठानी पड़ती है। जिसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६, भाग १२] नवम्बर : १९४६ [अङ्क ५, पूरे अङ्क ७१

मंझले ज़माने की हिन्दुस्तानी तहज़ीब और उसके बुनियादी उसूल

डाक्टर ताराचन्द एम० ए०, डी० फ़िल०

[१]

संस्कृति, कलचर और तहज़ीब तीनों के असली और निकासी माने एक हैं—संस्कार करना, सुधारना, काटना छांटना, बेहतर बनाना। तहज़ीब फ़ारसी लफ़्ज़ है। वह 'हज़ब' से बना है जिसके माने दरख़्त को काटना छांटना और उसको साफ़ सुथरा बनाना है, आदमी एक जानवर है। अक़ल और शऊर उसे और सब जानवरों से अलग करते हैं। जैसे जैसे हैवानियत का मैल कुचैल दूरतर और साफ़ होता है वैसे वैसे इनसान तरक़्क़ी की राह पर आगे बढ़ता है। उसकी आदतों, ख़सलतों, चाल चलन, रहन सहन में सुथराई आती है। वह तहज़ीब की मंज़िलें तय करता है। मुहज़्ज़ब या तहज़ीबदार कहलाता है। यह तहज़ीब के निकासी माने हुए। लेकिन तहज़ीब का लफ़्ज़ एक और माने में भी आता है। तारीख़ की किताबों में पत्थर और धात के ज़मानों की तहज़ीब का बयान है, जब कि दुनिया में आदमी ने पहले पहल पत्थर और उसके बाद धात के औज़ारों से काम लेना सीखा। इन किताबों में पुरानी और नई तहज़ीब, पूरबी और पच्छिमी तहज़ीब, मंझली और आज कल की तहज़ीब का मुक़ाबला किया जाता है। इन मानों में तहज़ीब लफ़्ज़ के अन्दर आदमी के वह सब काम आ जाते हैं जिनका लगाव उसकी ज़िन्दगी के अलग अलग व्यापारों और पहलुओं के साथ है. जैसे आदमी अपने बचाव के लिए हथियार बनाता है, पेट भरने के लिए खेती और दस्तकारी करता है, औज़ार बनाता है, गरमी, सरदी, धूप और पानी से बचने के लिए कपड़े और मकान तैयार करता है। आदमी को खेल तमाशे का भी शौक़ है, गाना बजाना, दौड़ना, खेलना कूदना उसकी ज़िन्दगी के हिस्से हैं। अपनी अक़ल को जताने और बढ़ाने के लिए वह इल्म और अदब, विद्या और कला, साइन्स और फ़िलासफ़ी से काम लेता है। तहज़ीब के लफ़्ज़ में इन सब की तरफ़ इशारा होता है।

तहज़ीब के यह दोनों माने यह बताते हैं कि तहज़ीब में क्या क्या शामिल है पर इस बात पर पूरी रोशनी नहीं डालते कि तहज़ीब की बुनियाद उसका असल उसूल क्या है। अगर तहज़ीब के इन दोनों पहलुओं पर गहरी नज़र डाली जाय और जानवरों और आदमियों की ज़िन्दगी को ध्यान से देखा जाय तो यह असलीयत समझ में आ जाती है, जानवर और आदमी में एक फ़र्क़ बिलकुल खुला हुआ है। जानवर क़ुदरत के क़ानूनों में बंधा हुआ है। आदमी भी इनसे आज़ाद नहीं दिखाई देता। पर फ़र्क़ यह है कि जानवरों को इन क़ानूनों की जानकारी नहीं है आदमी को है। यह जानकारी ही आदमी को जानवरों से ऊंचा कर देती है। इस जानकारी की वजह से आदमी क़ुदरत के यानी प्रकृति के क़ानूनों को अपनी ख़्वाहिशों के आधीन करता है और उनसे आज़ाद हो जाता है। आज़ादी ही आदमी की सब कोशिशों का एक मक़सद है।

आज़ादी के दो रुख़ हैं। एक अन्दर की आज़ादी और दूसरी बाहर की। आदमी के अन्दर हर घड़ी एक खींचातानी होती रहती है। उसकी ख़्वाहिशें उसे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ़ खींचती हैं, भले बुरे की समझ दूसरी तरफ़। ज़रूरतऔर भलाई,बदी और नेकी,दुनिया और दीन, मन और आत्मा की शक्तियों में उपरातली होती रहती है। आदमी को निजात, मुक्ति या आज़ादी उसी वक्त मिलती है जब उसकी ख़्वाहिशों पर भलाई के ख़याल, दुनिया पर दीन, मन पर आत्मा की जीत होती है।

इसी तरह कुदरत के साथ भी आदमी की लड़ाई है। जानवर तो अपने ऊपर कुदरत के राज को चुपचाप मान लेता है। इसीलिए वह अपनी आगे की तरक़्क़ी को ख़तम कर देता है। लेकिन आदमी प्रकृति की शक्तियों पर क़ाबू पाने की अनथक कोशिश करता रहता है। जैसे जैसे वह कामयाबी हासिल करता है वैसे वैसे उसकी आज़ादी का घेरा फैलता और बढ़ता जाता है। वह तरक़्क़ी की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ ऊपर और ऊपर उठता है।

इन दो तरह की आज़ादियों के हासिल करने के लिए आदमी के पास एक ही औज़ार इल्म या विद्या है। इल्म के ज़रिये हमारी आत्मा उस रोशनी को, उस ज्ञान को, हासिल करती है जो उसे जिस्मानी ख़्वाहिशों, हैवानियत और खुदी के अंधेरे से छुटकारा दिलाता है। इल्म ही हमें अपने मक़सदों के हासिल करने और रहन सहन को ऊंचा ले जाने के लिए प्रकृति की ताकतों से काम लेने में मदद देता है। इल्म ही पर तहजीब का दारमदार है। किसी समाज की तहजीब का पता लगाना हो, उसे मापना हो तो उसके इल्म की जांच करनी चाहिये।

इल्म की जांच के बारे में कई सवाल पैदा होते हैं। इल्म की असलियत क्या है? इल्म की कसौटी क्या है? इल्म के हासिल करने का क्या ज़रिया है और क्या अमल है?

इन सवालों के जवाब दुनिया की अलग अलग तहज़ीबों ने अलग अलग दिये हैं।

यूनान की पुरानी तहज़ीब दो बातों की अनोखी मिसाल थी। एक यह कि यूनान ने फ़न की शान बढ़ाई और कला को कमाल तक पहुंचाया और दूसरी यह कि यूनान ने बता दिया और दिखा दिया कि आदमी की अक़्ल की पहुँच कितनी दूर तक है। यूनान ने ऐसे शायर, अदीब, फ़िलासफ़र और कलाकार पैदा किए जिनका जवाब मुशकिल से किसी ज़माने या मुल्क में मिलता है। यूनानी तहज़ीब की बुनियाद विद्या पर इल्म के जिस ख़याल पर क़ायम थी उसको अफ़लातून की ज़बान से सुनिए। अपनी मशहूर किताब "रिपब्लिक" के सातवें हिस्से में वह एक मिसाल देकर समझाता है कि जाहिल और आलिम, अनाड़ी और ज्ञानी में क्या फ़रक़ है—जाहिल उन लोगों की तरह हैं जो ज़मीन के अन्दर एक ग़ार या खोह में रहते हैं। ग़ार के पीछे की तरफ़ एक दरवाज़ा है जिसमें से रोशनी आती है और सारे ग़ार में फैल जाती है। यह जाहिल लोग बचपन से यहीं रहते आए हैं। इनकी गरदनें और टांगें ज़ंजीरों से इस तरह बँधी हैं कि वह उन्हें हिला नहीं सकते। वह सामने की तरफ़ ही देखने पर मजबूर हैं। उनके पीछे के ऊपर और पीछे कुछ दूर आग जल रही है और उन कैदियों और आग के बीच में एक ऊंची सड़क है और सड़क के किनारे एक दीवार है जो उस परदे की तरह है जिस पर कठिपुतलियों का तमाशा दिखाई देता है। पीछे सड़क पर आदमी आते जाते हैं। उनके हाथ में तरह तरह के बर्तन, मूरतें, लकड़ी और पत्थर के बने जानवर और तरह तरह के सामान हैं। इनमें कुछ बोल रहे हैं और कुछ चुप हैं। ज़ंजीरों से जकड़े हुए इन्हें देख नहीं सकते सिर्फ़ इनकी परछाइयों को देख सकते हैं। उनके लिए असलियत सिर्फ़ मूर्त्तियों के साये या परछाइयों का नाम है।

जब यह कैदी ग़ार से निकलते हैं और उजाले में आते हैं तो उनकी आंखें चुँधिया जाती हैं और उन्हें दुनिया की चीज़ें धुँधली दिखाई देती हैं। धीरे धीरे आंखों को उजाले में देखने की आदत पड़ती है। पहले तो परछाइयों को देखते थे, फिर चीज़ों के अक्सों को देखने लगते हैं और बाद में चीज़ों को असली रूप में देखते हैं। कुछ अरसे में वह चांद सितारों को जगमगाते आसमान पर निगाह जमाते हैं और फिर में इस क़ाबिल हो जाते हैं कि सूरज को देखें।

इस मिसाल से अफ़लातून उस सारे रास्ते को करता है जिस रास्ते चलकर आदमी विद्या या हासिल करता है। यह रास्ता छूने, देखने, चाखने और सूंघने यानी इन्द्रियों या हवास से, शुरू होता है, बढ़ते बढ़ते दिल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रिये साइन्स के क़ानूनों तक पहुँचता है और आख़ीर में जाकर उस विद्या पर ख़तम होता है जिसका सम्बन्ध उस सचाई, भलाई और सुघड़ाई से है जिसका न शुरू है न आख़िर। यही रूहानियत या ब्रह्म है।

यूनानी तहज़ीब के मुताबिक़ इल्म का शुरू और आख़िर इस बात में है कि आदमी अलग अलग चीज़ों को देखकर और जानकर उनको क़िस्म बना ले। इस क़िस्में बनाने को 'कुल्लिया' कहते हैं।

कुल्लिया का मतलब वह दिमाग़ी कल्पना है, जो चीज़ों की क़िस्मों को अलग अलग करती है। उनकी अलग अलग जमातें बनाती है।

आंख कान हाथ और ज़बान के ज़रिये हम दुनिया की चीज़ों के असरों को दिमाग़ तक पहुंचाते हैं, फिर अक़्ल या मन के ज़रिये चीज़ों के ख़याल और उनकी क़िस्में या जातें बनाते हैं। इस तरह इन्द्रियां और अक़्ल दुनिया और हक़ीक़त को समझने के दो साधन हैं। जब अक़्ल इन्द्रियों के असरों से ख़यालों को बनाती और बिगाड़ती हुई आख़ीर में उस एक जात उस कुल्लिये पर पहुँच जाती है जो सबके ऊपर है और जिसका इन्द्रियों से कोई वास्ता नहीं तो इल्म और विद्या की हद आ जाती है।

अब योरप की उस वक़्त की तहज़ीब पर निगाह डालिए, जब योरप का मझला ज़माना आख़िरी सांस ले रहा था और नया दौर शुरू हो रहा था। उस वक़्त योरप के बदन में एक नई ज़िन्दगी की लहर दौड़ रही थी। लूथर और कालविन जैसे सुधारकों के हंगामों ने योरप की ईसाइयत को चकनाचूर कर दिया था। क़ौमों की माली और समाजी हालतें बदल रही थीं, दिमाग़ों में इनक़लाब था। नई नई विद्याएं और दुनिया को देखने के नए नए ढंग निकल रहे थे। हिसाब और ज्योतिष के नए नए भेद खुल रहे थे। इल्म का वह ख़याल जो मंझले ज़माने में फैला हुआ था ख़तम हो रहा था। क़ौमीयत, एकियत यानी व्यक्तित्व और इंडिवादी की बाढ़ आ रही थी। उस सदी में इस्पीनोज़ा जैसा फ़िलासफ़र हुआ जिसने अपनी फ़िलासफ़ी में मंझले ज़माने की फ़िलासफ़ी और नई साइन्स के असूलों और तरीक़ों दोनों को मिलाया, और एक बहुत अनूठे, बहुत ऊंचे, दिलों में घर करने वाले दर्शन या फ़लसफ़े को जनम दिया। इस्पीनोज़ा ने उस इल्म का राग अलापा जिसपर आजकल का नया योरप चला है और चल रहा है।

अफ़लातून की तरह इस्पीनोज़ा की फ़िलासफ़ी भी हिसाब की दलीलों पर चलती है और सच्चाई की खोज के लिए उक़्लैदस (रेखा गनित) के तरीक़ों को ज़रूरी समझती है। इस फ़िलासफ़र की राय में इल्म के तीन दरजे हैं। सब से नीचे दरजे का इल्म छोटे छोटे महदूद और अधूरे ख़यालों का जमघट है जिनका वास्ता अलग अलग चीज़ों और उनकी तफ़सील के साथ है और जिनका दारमदार हमारी इन्द्रियों पर है। इससे ऊंचा वह दर्जा है जिसे हम साइन्स के तरीक़ों में देखते हैं। यहां आदमी की अक़्ल कुल्लियों से जानकारी हासिल करती है। हमारे दिमाग़ में ऐसे ख़याल पैदा होते हैं जिनके अन्दर तरतीब और सिलसिला पाया जाता है, और इसलिए वह पूरे और काफ़ी हैं। इनके जानने के लिए इन्द्रियों की मदद की ज़रूरत नहीं। यहां आकर चीज़ों का आपस का रिश्ता और सिलसिला ज़ाहिर होता है और क़ुदरत के वह क़ानून जिनके अधीन हर जानदार और हर चीज़ है, मालूम हो जाते हैं। हमारी अक़्ल सृष्टि की हर चीज़ और हर जानदार को एक ऐसी सचाई के मातहत पाती है जो हमेशा से हमेशा तक रहने वाली है। जब हम इल्म के इस दरजे पर पहुंच जाते हैं तो आख़री मंज़िल की तरफ़ क़दम बढ़ाते हैं। यहां पहुँच कर आदमी वहदत यानी जगत की बुनियादी एकता की जानकारी हासिल करता है। साइन्स की सचाइयों की भीड़ इस असल हक़ीक़त की इकाई में समा जाती है। अलग अलग चीज़ों और फ़रक़ों की खेंचतान जो आदमी को दुनिया के माल असबाब की ख़ाहिशों में उलझाए रखती है और उसे जज़बों यानी वासनाओं का ग़ुलाम बनाती है, इस नई जानकारी की उमंग के बहाव में धीमी पड़ जाती है। एक अनोखा आनन्द आदमी की ज़िन्दगी पर छा जाता है। एक अनूठा प्रेम उसे उस सचाई की तरफ़ खींचता है जहां प्रकृति की बहुतायत वहदत यानी एकता में बदल जाती है। आदमी न सिर्फ़ अपने ख़याल में बल्कि अपने चलन में भी हलकापन और आज़ादी महसूस करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो सदियां और बीतती हैं। पच्छिमी तहज़ीब अपनी जवानी की तरफ़ तेज़ी के साथ बढ़ती है। इनक़लाब पर इनक़लाब आता है। योरप के अन्दर खेती और कारीगरी की तरक़्क़ी दुनिया को अचरज में डाल देती है। माल और दौलत की बढ़ती ख़याल की हदों से भी आगे जाती है। क़ुदरत की ताक़तों पर साइंस का राज क़ायम होता है। योरप वालों की हिम्मत दुनिया के दूर से दूर के मुल्कों को पच्छिम के आधीन बना देती है और मुशकिल से मुशकिल कामों को आसान कर देती है। पच्छिमी तहज़ीब का कोने कोने में डंका बजने लगता है। एशिया, अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया उसका लोहा मानने पर मजबूर होते हैं। उन्नीसवीं सदी की पहली अधियाई वह ज़माना है जब पच्छिमी अपने सामने दुनिया की दूसरी नसलों और तहज़ीबों को हेच और तुच्छ समझता है और अपनी ताक़त के नशे में मस्त और चूर दिखाई देता है।

इस पच्छिमी तहज़ीब की कामयाबियों की जड़ में वह इल्म है जिसने सत्रहवीं और अठारवीं सदियों में अनोखी तरक़्क़ी की। उस इल्म का असली रूप समझने के लिए कान्ट और हीगल की फ़िलासफ़ी पर ध्यान देने की ज़रूरत है।

हीगल ने विद्या या इल्म को एक सफ़र माना है। यह सफ़र रूह का रूहानियत की तरफ बढ़ना है। रूहों की तरफ़ चलना ही रूहानियत है। हीगल के शब्दों में The pilgrimage of the spirit from the spirit to the spirit. सचाई या हक़ीक़त की खोज क्या, क्यों और कैसे शुरू होती है। उस वक्त रूह सिर्फ़ एक ख़यालो चीज़ होती है। क़ुदरत उससे उलटी यानी असली चीज़। दुनिया में ख़याल अपने से अजनबी मालूम होता है, ख़ुद को नहीं पहचानता। ख़याल मकान और ज़मान, देश और काल की क़ैद से परे है। नेचर देश और काल की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई है। जब रूह यानी हक़ीक़त अपनी इस बेगानगी को जान जाती है तो ख़याल और प्रकृति को एकजा करती है, रूठों को मनाती है, बिछड़ों को मिलाती है. ख़याल और नेचर, पुरुष और प्रकृति दोनों का मरकज़ आत्मा है जहां दोनों का मेल होता है। आख़िर रूह उस जगह पहुँच जाती है जहां वह अपनी असलियत को पहचान लेती है। मगर उस जगह तक पहुँचने के लिए उसे तीन सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। पहली सीढ़ी दाखली शऊर की है, दूसरी ख़ारजी शऊर की और तीसरी कामिल या मुतलक़ शऊर की। इन तीनों शऊरों को आदमी की पिन्डी बुद्धि, समाजी बुद्धि और परा या पूरन बुद्धि कहा जा सकता है। इसीलिए दाख़ली शऊर से हीगल की मुराद उस शख़्सी अक़्ल से है जो हर आदमी को अपनी अलग अक़्ली और अमली दुनिया बनाने पर मजबूर करती है, और उसे इस नतीजे पर लाती है कि आदमी अपने ही शऊर, अपनी ही समझ और अपने ही इरादे का बन्दा है।

ख़ारजी शऊर नाम है क़ानून, समाज और राज के संगठन का। जब एक का शऊर दूसरे के शऊर को पहचानता है तो सब शऊरों में सबको एक ही असलियत दिखाई देती है। मैं और तू का भेद मिट जाता है। समाज का जनम होता है। इस ख़ारजी शऊर के बढ़ने की आख़री मंज़िल राज है जिसकी तारीफ़ में हीगल ने लफ़्ज़ों के पुल बांध दिये हैं। राज वह चीज़ है जिसमें कुल और उसके हिस्से मिलकर एक हो जाते हैं, आदमी के सब मक़सद और ग़रज़ें पूरी हो जाती हैं, इनसानियत अपने कमाल पर पहुँच जाती है। यह वह इरादा, वह संस्था है जो हर पाबन्दी से आज़ाद, नेकी की ज़िन्दगी की हद, खुदाई जलवे का मज़हर, भगवान का रूप है।

यहां तक हीगल की फ़िलासफ़ी की दलीलों का दरिया ज़ोर शोर के साथ उमँडता दिखाई देता है। लेकिन जब वह राज की अच्छाइयों के बयान पर पहुँचता है तो उसकी चाल धीमी हो जाती है, और शऊर मुतलक़ या पूरन बुद्धि का बयान तो बहुत ही फीका, प्यासा और अधूरा रह जाता है। शऊर मुतलक़ के लिए वह यह कह कर बस करता है कि उस जगह पर रूह के आइने में रूह का चेहरा देखती है, और कला मज़हब और फ़िलासफ़ी सब उसके रूप हैं।

अब अगर अफ़लातून, इस्पीनोज़ा और हीगल के ख़यालों का मुक़ाबला करें तो यह पता चलता है कि पच्छिमी तहज़ीब के यह तीनों झंडाबरदार विद्या के बारे में लगभग एक से ख़याल पेश करते हैं। इल्म की आख़री हद और गरज़ उस हक़ीकत को जानना है जिसमें प्रकृति या नेचर का बड़ा हिस्सा है। सचाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हक़ीक़त तक पहुंचने के लिए इन्द्रियों और अक़्ल दोनों का सहारा लेना ज़रूरी है। हक़ीक़त, सचाई, इल्म सब का दारमदार अक़्ली कुल्लियों पर है।

पच्छिमी तहज़ीब के हर कारबार में इल्म इन्हीं मानों में आता है। यहां कला, साइन्स और अदब के अलग अलग हिस्सों पर बहस करने की गुंजाइश नहीं है लेकिन अंगरेज़ी साहित्य जो पच्छिमी तहज़ीब का आइना है मजबूत में पेश किया जा सकता है। स्पेन्सर की 'फ़ेअरी क्वीन' मंझले ज़माने के ख़ातमे और नए दौर के शुरू की यादगार है; मलका एलिज़बेथ इस नज़्म की हीरोइन है। और अगरचे इस नज़्म में जादूगरों, देवों, भूत प्रेतों का ज़िक्र है, नेकी और बदी की जंग का बयान है, फिर भी अपनी नेचरियत की वजह से इस कविता को आज-कल के ज़माने के अदब का शाहकार या महाकाव्य या मास्टर पीस समझा जाता है। शेक्सपियर के बारे में एक अंगरेज़ी अदब की तारीख़ लिखने वाला लिखता है—"जैसे जैसे मंझला ज़माना गुज़रता जाता है वैसे वैसे आदमी की ज़िन्दगी का वह हिस्सा जिसका नाता इस दुनिया से है हद दरजे की दिलचस्पी की चीज़ होता जाता है। यह दिलचस्पी आज़ाद कला में नाटक के ज़रिये ज़ाहिर होती है। मार्लो दुनयवी खोज की लगन को एक शकल देता है, लेकिन शेक्सपियर के नाटक इस खोज के नतीजों से कला के ख़ज़ाने को मालामाल कर देते हैं। शेक्सपियर पहला नाटक लिखने वाला है जिसने इनसानी ज़िन्दगी की तसवीर अपनी कला में खींची और सब नाटक लिखने वालों से इस बात में बढ़ गया।"

शेक्सपियर के बाद अठारहवीं सदी के ख़तम होते तक जितने शायर पैदा होते हैं सब नेचर के रंग रूपों की तसवीरें खींचते हैं। किसी ने मध्यम और ठंडे रंगों की तसवीर बनाई है, किसी ने शोख़ और भड़कीले रंगों में। वर्ड्सवर्थ, बर्न्स, कीट्स और शैले रोमानी (रोमांटिक) शायर हैं। और रोमानियत आदमी के ज़ज़्बों को प्रकृति के नज़ारों के साथ गहरा नाता रखती है। पिछली सदी की अङ्गरेज़ी शायरी आदमी के दिमाग़ के भेदों और दुनिया की ज़िन्दगी के बेपनाह लुत्फ़ों के बारे में भरी है।

यूरोप के इल्म का नेचर गान वहां के अदब और शायरी की जान है। इसीलिए योरप ने साइन्स में अचरज भरी तरक़्क़ी की है। पच्छिमी तहज़ीब की अन्दर की और बाहर की आज़ादी के माने हैं नेचर पर आदमी की हकूमत।

इस लम्बे दीबाचे के बाद हिन्दुस्तान के मंझले ज़माने की तहज़ीब की तरफ़ ध्यान दीजिए। यह तहज़ीब दो तहज़ीबों के मेल जोल से पैदा हुई। एक पुरानी हिन्दू तहज़ीब और दूसरी नई इसलामी तहज़ीब। सातवीं सदी के बीच से मुसलमानों का हिन्दुस्तान के साथ रिश्ता क़ायम हुआ और तेरहवीं सदी तक वह क़रीब क़रीब सारे मुल्क में फैल गए। लेकिन हिन्दुस्तान में जो मुसलमान ऐसे आए कि हमेशा के लिए बस गए वह ईरान, तूरान और अफ़ग़ानिस्तान से आए थे। उनके रीत रिवाज, रहने सहने के ढङ्ग, ज़बान, अदब और फ़िलासफ़ी पर इसलाम की मोहर थी। लेकिन चूँकि वह इसलाम के गहवारों से दूर के रहने वाले थे इसलिए उन पर अरबीपन का असर कम था और ग़ैर-अरबीपन का ज्यादा। शायद यही वजह है कि इसलाम के पच्छिमी मुल्कों शाम, मिस्र, स्पेन में यूनानी फ़िलासफ़ी के बहुत से माननेवाले पैदा हुए जैसे अलकन्दी मिस्री, फ़ाराबी, अख़वानुस्सफ़ा, इब्नसीना, इब्न मसकूयह, इब्न रशद वग़ैरह। लेकिन पूरबी मुल्कों में मुसलमान आमिल पूरबी और हिन्दी ख़यालों के असर में आए जिसका नतीजा तसव्वुफ़ यानी सूफ़ीमत की सूरत में दिखाई दिया। सूफ़ियों की फ़ेहरिस्त में ईरानियों की तादाद ज्यादा है। मंसूर अल्लाह जो सूफ़ियों का सरताज है तसव्वुफ़ की तारीख़ में ख़ास मरतबा रखता है। उसने सूफ़ी मत की फ़िलासफ़ी और उनके अमल की काया पलटी। वह दक्खिनी ईरान के शहर तूर में पैदा हुआ और सन ९२२ में फांसी पर चढ़ा। उससे पहले बहुत से नामवर सूफ़ी गुज़रे जिनके नाम देना ग़ैर ज़रूरी है।

मंसूर के बाद सूफ़ी मत की फ़िलासफ़ी ने बाक़ायदा रंग रूप लिया। इसकी पहली किताब 'किताबुललमअ फ़िलतसव्वुफ़' अबूनस्र अल सर्राज ने ९८८ ई० में लिखी। हाल ही में निकलसन ने इसे शाया किया है। अबुलक़ासिम अल 'क़ुशैरिया' सन १०७४ ई० में लिखा गया। अली बिन उसमान अल हुजवैरी जो ग़ज़ना का रहनेवाला था और 'कशफ़ुल महजूब' का लेखक था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महमूद ग़ज़नवी के ज़माने का था। लेकिन जिन किताबों ने सब से ज्यादा असर पैदा किया वह इब्न अल अरबी की 'फ़सूसुल हिकम' और 'फ़तूहाते मक्किया', ग़िज़ाली की 'अहिया उल उलूम', शाहबुद्दीन सोहरावर्दी की 'अवारिफ़ उल मआरिफ़', जील की 'इन्साने कामिल' और जामी की 'लवायह' थीं।

ईरानी शायरों का सूफ़ी मत के असूलों को जनता में फैलाने और हर दिल अज़ीज़ बनाने में बड़ा हिस्सा है। फ़रीदुद्दीन अत्तार, सनाई, जलालुद्दीन रूमी, शब्सतरी और उनके पीछे चलने वालों ने शायरी को सूफ़ी मत के रंग में ऐसा रंगा कि उस पर मुद्दतों दूसरा रंग न चढ़ सका।

हिन्दुस्तान में इसलामी तहज़ीब की अमली बुनियादें इसी फ़िलासफ़ी में मिलती हैं। लेकिन इससे पहले कि इस मुल्क के मुसलिम संतों और विद्वानों के विचारों पर कुछ लिखा जाए मुनासिब मालूम होता है कि हिन्दू तहज़ीब के उसूलों पर एक निगाह डाल ली जाए। इसे हम दूसरे लेख के लिए उठा रखते हैं।

गिरि-पथ

बैजनाथसिंह एम० ए०

अगम है गिरि-पंथ राही, शक्ति प्राणों में भरे चल।

चढ़ रहे हो तुम शृँगों पर,
प्रगति पथ पर बढ़ रहे हो।
शैल खण्डों से कठिन,
प्रत्येक पग पर लड़ रहे हो।
खींचती धरती तुम्हें, हैं—
खींचती गिरि शृंखलाएं।
शृङ्ग करते हैं उमंगित,
गहन गह्वर भय दिखायें।
किन्तु है उन्नति शिखर में, भक्ति प्राणों में भरे चल।
अगम है गिरि पंथ राही शक्ति प्राणों में भरे चल॥

घाटियों में और समतल—
भूमि पर कुछ भय नहीं है।
श्रम नहीं, संकट न, हिंसक
जंतु का संशय नहीं है।
किन्तु यदि निर्मल मलय का—
प्राण में बल चाहते हो।
अगर हिम का रजत स्वर्णिम
रूप चंचल चाहते हो।
तो पथिक भय-भक्ति रूपासक्ति प्राणों में भरे चल।
अगम है गिरि-पंथ राही शक्ति प्राणों में भरे चल॥

गिरि खड़ा है व्योम में,
निज गर्व-अविचल सर उठाये।
जड़ अचल पाषाण को,
मानव प्रबल क्या सर झुकाए?
शीश पर उसके पराक्रम
का विजय-केतन लगाने।
बढ़ रहे हो सिद्धि के—
उल्लास से अम्बर सजाने।
हो न भय-संकोच, पथ-अनुरक्ति प्राणों में भरे चल।
अगम है गिरि पंथ राही शक्ति प्राणों में भरे चल॥

शैल-पथ कुछ एक रस;
या विरस जग-जीवन नहीं है।
सर्पिणी की वक्रगति—
अभिमान मय नर्तन यहीं है।
है यहाँ उत्थान, क्षण-क्षण,
पतन, क्षण-क्षण पर भयंकर।
द्रुम-लता मय, कुसुम-कानन,
नग्न गिरिवर, सरित, निर्झर।
है तुझे चिर प्रगति-प्रिय, तो शक्ति प्राणों में भरे चल।
अगम है गिरि-पंथ राही, शक्ति प्राणों में भरे चल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल एशिया

श्री शिवशंकर प्रसाद साहित्य-भूषण

आज क्रान्ति की ज्वाल एशिया !
लाल एशिया, लाल एशिया !

आज नया युग जाग गया है !
आज नया जग जाग गया है !
जाग गया तरु पात-पात है,
मग में पग-पग जाग गया है !

जाग गया मग में पग पग तो,
पथिकों की मिट गई विवशता !
पद-चिन्हों ने नया रूप-रँग—
पाई है अभिनव चेतनता !

कब तक रहती मौन मनुजता ?
कब तक सहती जुल्म मनुजता ?
कब तक चलती यहां गुलामी—
देशों की, पैसों की प्रभुता ?

और, कहां तक सोता रहता.
यह बलधर भूचाल एशिया ?
लाल एशिया ?

बादल ने सोखे नद-नाले,
झीलें, झरने, नदी-पनाले,
सोख लिया पृथ्वी तक का रस,
किन्तु गया वह यहीं पर बरस !

सप्त-सिन्धुओं ने पर हिलडुल,
सोख लिए अनगिन दल-बादल;
नदी नर्मदा से मिल करके—
सोख लिया सारा विन्ध्याचल

सूख गया अर्बली, महाबलि;
सूख गया सुरभित मलयाचल;
सूख गया सारा सुमेरु ही;
नील सिन्धु का घर नीलाञ्चल !

यह पामीर पठार हो गया !
सुलेमान सुनसान हो गया !

उत्तर से लेकर दक्षिण तक—
खंड खंड वीरान होगया !

फ़ारस मुक्ता राशि खो चुका;
पाटल चीन महान खो चुका;
अरब बहा अपनी हरीतिमा
तपता रेगिस्तान हो चुका !

इस शोषण को धरा उर्वरा
वीर-प्रसविनी यह वसुंधरा
सहती कब तक मन मसोसती,
दुर्गति को सन्तोष समझती ?

प्राण दान मांगता गले में
कब तक झोली डाल एशिया ?
लाल एशिया ?

संस्कृति पावन गई मिटाई;
भाषा, औ' भावना भुलाई !
आज मुहम्मद की वाणी पर
जमा दी गई कितनी काई ?

वातावरण अशान्त कर दिया !
सारा पूरब भ्रान्त कर दिया !
बुद्ध-गिरा को कोलाहल में—
दाब मनुज को क्लान्त कर दिया !

फिर भी भूल गया वह पश्चिम,
ईसा का उपदेश चिरन्तन !
वह अपने पर रह न सका दृढ़,
बना विश्व का दूभर जीवन !

कभी किसी ने एक जाति को
मिटा चैन से पाया है सो ?
संस्कृतियों को पलट कभी—
तलवार सकी अपनी खेती बो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कभी कोई मानव-मन,
कोई जाति न अर्ध अचेतन,
रह पाई अपनी संस्कृति से,
भाषा से, भावों से उन्मन!

तो यह जीवित होकर रहता—
कैसे विवश बेहाल एशिया?
बहुत दबा है, अब न दबेगा,
अब न झुकेगा;
तन करके उठ खड़ा हुआ है,
युग युग का पामाल एशिया!
लाल एशिया!

पानी भी कब देख सका है
अपने घर में आग लगाते?
मीलों उछला शान्त सिन्धु भी
अणु-बम के उत्पात मचाते!

तो यह पुण्य भूमि-बलशाली,
अनगिन सागर, पानी वाली,
कैसे अपने घर में रुकती
देख सुलगती यह चिनगारी?

अग्नि ज्वाल विकराल जल उठी!
धू धू लपट कराल जल उठी!
जठरानल जलता था युग से,
अब बाड़व की ज्वाल जल उठी!

रोम-रोम जल उठा धरा का,
वीर-प्रसविनी वसुंधरा का!
सांस-सांस जल उठी धरा की,
नयन-नयन जल उठा धरा का!

जला मिस्र नव साहस ले कर—
फ़िलिस्तीन, सीरिया जल उठा,
चीन, कोरिया, जावा, बर्मा,
जला अरब-ईरां का कण कण!

नए युद्ध का नए विश्व का
नेता आज विशाल एशिया!
लाल एशिया!

असन्तोष अब व्यक्ति का नहीं;
संघर्षण अब व्यक्ति का नहीं;
यह विद्रोह, मुक्ति-आन्दोलन
कुचला गया समष्टि का कहीं!

इसे रोकने की मत सोचो;
इसे कुचलने की मत सोचो;
यज्ञ अग्नि को आहुतियों को
आज बुझाने की मत सोचो!

बुझ न सकेगी क्रान्ति ज्वाल अब!
धधक उठी जनता विशाल है!
उर के संचित असन्तोष का
अदमनीय यह अमर राग है!

तुमने तो साम्राज्यवादियो
किया खून से लाल एशिया!
किन्तु, इसी में चमक रहा है
आत्म-दीप्ति नव भाल एशिया!
लाल एशिया!

अप्राकृतिकताएं घुट घुट कर
आज रहीं अपना दम तोड़!
पशुता आज रही है अपना
पाप पूर्ण चोला यह छोड़!

एक अदृश्य महापर्वत है,
इस लघु-विल की ओट;
पल-छिन में ही होने को
है वह व्यापक विस्फोट—
जो रच देगा इस पशुता
का गर्हित घृणित मशान!
विश्व-शांति को लौटा करके
देगा यह वरदान—
'यहां रहो मैं पुनः तुम्हारा
हूं आदिम प्रतिपाल एशिया;
सरल एशिया, सबल एशिया,
व्यापक, अजय, विशाल एशिया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन के मुख्य सिद्धान्त

श्री उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य, बौद्धदर्शन शास्त्री

विश्व के इतिहास में ईसा पूर्व छठी शताब्दी चिरस्मरणीय रहेगी। उस समय लोगों के मन में प्रचलित धर्म के प्रति नई नई शंकायें उत्पन्न हो रहीं थीं। वह आध्यात्मिक अशान्ति का युग था। मनुष्य जन्म-जरा-मरण आदि दुःखों से छुटकारा पाने के साधन खोज रहे थे। वे ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे जो उन्हें मोक्ष का मार्ग बतलाता, जो सांसारिक दुःखों से उन्हें बचाता और जो धर्म के उच्च आदर्श को उनके सामने रखकर उन्हें कल्याण-पथ का पथिक बना देता। ऐसे समय में भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध ने जन्म लिया।

यह बात सर्व विदित है कि वर्तमान बौद्ध धर्म के जन्मदाता गौतम बुद्ध हैं। बौद्ध धर्म के विषय में हम यह कहेंगे कि यह धर्म सादि है—गौतमबुद्ध ने इसे चलाया है, लेकिन संभवतः बौद्ध ऐसा मानने को तैयार नहीं हैं। जैनों के यहाँ जिस प्रकार 'जिन' एक पद है उसी प्रकार बौद्धों के यहाँ भी 'बुद्ध' एक पद है और प्रत्येक प्राणी उस पद को प्राप्त कर सकता है। इस बात का संकेत निम्न श्लोक से मिलता है—"ये च बुद्धा अतीता ये, ये च बुद्धा अनागताः। पच्चुप्पन्ना च ये बुद्धो अहं वन्दामि सब्बदा"॥ अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल-वर्ती बुद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ। बौद्धधर्म के सादि अनादि के विवाद में न पड़कर हमें केवल वर्तमान बौद्ध-धर्म पर विचार करना है।

जैन धर्म में जिस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध की कारण दर्शनविशुद्ध्यादि षोड़श भावनायें बतलाई गई हैं उसी प्रकार बौद्धधर्म में भी बुद्धत्व प्राप्ति के लिये १० पारमिताओं का अभ्यास आवश्यक बतलाया गया है। श्री गौतम के बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्वभवों में उन पारमिताओं के नाम इस प्रकार हैं—१. दान २. शील ३. निष्कामता ४. प्रज्ञा ५. वीर्य ६. शान्ति ७. सत्य ८. अधिष्ठान ९. मैत्री १०. उपेक्षा। गौतम ने अपने अनेक जन्मों में इन पारमिताओं का अभ्यास कर वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन कपिलवस्तु नाम की नगरी में राजा शुद्धोदन के यहाँ मायादेवी के गर्भ से जन्म लिया। जन्म के सातवें दिन इनकी माँ का स्वर्गवास हो गया और इनके पालन-पोषण का भार इनकी मौसी पर पड़ा। ज्योतिषियों द्वारा राजा शुद्धोदन को यह मालूम हो गया था कि यदि यह कुमार घर में रहेगा तो इस भूमण्डल का एकाधिपत्य प्राप्त करेगा, चक्रवर्ती होगा। और यदि घर छोड़ दिया तो संसार का महान् उपकारक होगा। राजा ने सोचा कि क्यों न ऐसा उपाय किया जाय कि कुमार को वैराग्य का मौका ही न मिले। अतः कुमार के निवास के लिये बड़े बड़े महल बनवाये गये, सुन्दर सुन्दर आराम और वाटिकायें तैयार की गईं। नृत्य-गीत आदि का यथोचित प्रबन्ध किया गया। राजकुमार होने के कारण सिद्धार्थ को किसी बात की कमी न थी। वे समवयस्क राजकुमारों के साथ बाल्यकाल व्यतीत करने लगे। बाल्यकाल की समाप्ति होने पर राजा शुद्धोदन ने कोलिय वंशीय क्षत्रिय कन्या यशोधरा के साथ सिद्धार्थ का विवाह कर दिया। कुमार ने महलों के अन्दर ही २९ वर्ष व्यतीत कर दिये। उन्हें संसार का कुछ भी ज्ञान न था। २९ वर्ष की अवस्था में उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'राहुल' इस कारण पड़ा था कि पुत्र जन्म के समाचार को पाकर उनके मुख से 'राहुल' यह शब्द निकला था। राहुल पारसी भाषा में विघ्न को कहते हैं। पुत्र जन्म के दिन सिद्धार्थ को नगर में घूमने का अवसर मिला। उन्हें ऐसी ऐसी बातें देखने को मिलीं जिनका उन्हें किंचिन्मात्र भी बोध न था। उन्होंने क्रमशः वृद्ध, रोगी, मृत और एक साधु को देखा। संसार की अवस्था पर विचारकर उनका हृदय वैराग्य की भावना से भर गया। उन्होंने सोचा—देखो, यह साधु कैसा शान्त है, इसके अंग-अंग से तेज टपक रहा है, इसके दर्शन से शान्ति मिलती है। क्यों न मैं इसी साधु की भांति सुखमय जीवन व्यतीत करूं। फिर क्या था। राजकुमार लौटकर महलों में गये। भोग-सामग्री को भोगने की बात तो दूर रही देखने में भी उनका मन न लगा। आधी रात के समय बिना किसी से कहे सुने कुमार वन को चल दिये। उस दिन को महाभिनिष्क्रमण दिवस कहते हैं।

यहाँ यह बात जान लेना आवश्यक है कि ऊपर जो तप का कारण बतलाया गया है वह बुद्ध चरित आदि ग्रन्थों के अनुसार है। किन्तु आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने 'विश्ववाणी' के बौद्ध-संस्कृति अंक के अपने लेख में सिद्धार्थ के तप का दूसरा ही कारण बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि सिद्धार्थ के जन्म-समय कोशल देश के उत्तर में शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा-सा गणतन्त्र राज्य था। उस समय इस प्रकार के तीन-चार राज्य थे। प्रत्येक गाँव का एक राजा होता था जो गांव की जनता द्वारा चुना जाता था। ये राजा स्वयं खेती का काम करते थे और भृत्यों से भी करवाते थे। सिद्धार्थ भी अपने पिता के साथ कृषि कार्य में सहयोग देते थे। शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदी के पानी के बारे में झगड़ा हो जाया करता था। एक समय जब झगड़ा उपस्थित हुआ तो सिद्धार्थ से उसके लिये सेना तैयार कर लड़ने को कहा गया। सिद्धार्थ का हृदय बालकपन से ही कोमल था। उन्होंने एक छोटी-सी बात के कारण हिंसा करना उचित न समझा। इधर उन्होंने यह भी सोचा कि कहीं मेरे कारण शाक्यों की स्वतंत्रता में धक्का न लगे अतः उन्होंने उस समय घर छोड़कर वैराग्य धारण करना ही सर्वोत्तम मार्ग समझा।

इस विषय में एक बात और जान लेने योग्य है। आ० धर्मानन्द कोसम्बी ने जो सिद्धार्थ के तप का कारण बतलाया उसका वर्णन पाली ग्रन्थों में दूसरे प्रकार से किया गया है। बुद्धत्व प्राप्त करने पर एक दिन बुद्ध ने सुना कि रोहिणी नदी के पानी के कारण शाक्यों और कोलियों की सेना युद्ध के मैदान में तैयार है। बुद्ध तुरन्त वहाँ पहुंचे। उन्होंने कहा—हे क्षत्रियो, इस पानी का कितना मूल्य है। उत्तर मिला, कुछ नहीं। फिर पूछा गया कि तुम्हारा कितना मूल्य है। उत्तर मिला, महाराज सारी प्रजा का भार हमारे ऊपर है। फिर बुद्ध ने कहा—तुम्हारी स्त्री, बाल-बच्चों का कितना मूल्य है? उन्होंने कहा—महाराज, उनके ऊपर हम अपने प्राण भी न्योछावर करने को तैयार हैं। इस प्रकार बुद्ध उन युद्ध के लिये उद्यत क्षत्रियों को लज्जित कर अनेक प्राणियों के निरर्थक वध को रोक अपने स्थान चले आये। अस्तु।

सिद्धार्थ ने गया के समीप निरंजना नदी के तीर उठवेल के जंगल में जाकर ६ वर्ष तक घोर तपश्चर्या की। वे महीनों तक एक तन्दुल खाकर रहे। बुद्ध ने स्वयं कहा, "मैंने अपना निवास-स्थान एक भयानक जङ्गल में बनाया जहां किसी के भी रोंगटे खड़े हो जाते मेरा शरीर सूखकर अत्यन्त कृष हो गया। जब बुद्ध का शरीर अत्यन्त कृष होने लगा तो उन्होंने सोचा कि इस प्रकार व्यर्थ काय-क्लेश से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके लिये मुझे दूसरे मार्ग का अवलम्बन लेना चाहिये।" अतः उन्होंने आहार लेना प्रारम्भ कर दिया। बुद्ध के उन पाँच शिष्यों ने, जिन्होंने तपश्चर्या काल में बुद्ध से दीक्षा ली थी, बुद्ध को चरित्र भ्रष्ट समझकर साथ छोड़ दिया। बुद्ध अकेले रहकर ज्ञान की खोज में जीवन व्यतीत करने लगे। बुद्ध एक दिन गया के समीप पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठे और यह प्रतिज्ञा की कि चाहे प्राण चले जाँय पर बिना बुद्धत्व प्राप्त किये यहां से नहीं उठूंगा। वैशाख शुक्ल पूर्णिमा के दिन उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया। जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध ने बोध-लाभ किया उसका नाम 'बोधि वृक्ष' पड़ा और उस स्थान का नाम 'बुद्ध गया'। वे कई सप्ताह तक स्वात्मानुभूति का अनुभव करते हुये वहां बैठे रहे। फिर उन्होंने सोचा कि इतने कष्ट के साथ जिस ज्ञान का लाभ मैंने संसार के कल्याण के लिये किया उसका उपयोग करना चाहिये। उन्होंने विचारा, मेरे विचारों को कौन सुनेगा? फिर उन्हें याद आया कि पूर्व के मेरे पञ्च शिष्य जो इस समय सारनाथ में हैं मेरी बात को सुन और समझ सकेंगे। वे बुद्ध गया से चल दिये, सारनाथ आये। उन शिष्यों ने दूर से बुद्ध को आते देखा और विचारा कि इस चरित्र-भ्रष्ट का आदर-सम्मान नहीं करना चाहिये। लेकिन बुद्ध के पास आते ही वे नतमस्तक हो गये। बुद्ध का सारनाथ में प्रथम उपदेश हुआ जिसका नाम धम्म चक्क पवत्तनसुत्त पड़ा। बुद्ध ने कहा, हे भिक्षुओ, दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिये। इन अन्तों का सेवन दुःखकर है, संसार में घुमानेवाला है। दो अन्त ये हैं—कामासक्ति और देह-क्लेश। कामों का, तृष्णाओं का त्याग करना बुद्ध ने पहिला कर्तव्य बतलाया। संसार में तृष्णा ही एक ऐसी वस्तु है जिसके कारण प्रत्येक प्राणी सदा दुखी रहता है और बड़े बड़े राष्ट्र भी इसी तृष्णा के मोह में पड़कर धरातल में पहुंच जाते हैं। यदि प्राणी तृष्णा का त्याग कर दें तो इसमें सन्देह नहीं कि इसी पृथ्वी पर स्वर्गोदय, सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है।

कायक्लेश के त्याग पर भी बुद्ध ने जोर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि बुद्ध को घोर कायक्लेश करने पर भी ज्ञान लाभ न हुआ था। अतः बुद्ध ने कायक्लेश को निरर्थक समझ कर मध्य मार्ग का उपदेश दिया। अर्थात् न तो विषयों में लीन होना ही अच्छा है और न अत्यन्त कायक्लेश।

बुद्ध ने कहा कि चार आर्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक का कर्तव्य है। चार आर्य सत्य ये हैं—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग। इनको दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं—संसार और संसार के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारण। इनका नाम आर्य सत्य इसलिये पड़ा कि आर्य जन ही इन सत्यों तक पहुंच सकते हैं। दुःख आर्य सत्य—संसार दुःखमय है। जिधर देखिये उधर ही दुःख दृष्टिगोचर होता है। जन्म-जरामरण आदि के दुःख तो हैं ही इसके अतिरिक्त क्षुधा, तृषा, रोग आदि न जाने कितने दुःखों से यह संसार व्याप्त है। जिसको थोड़े समय के लिये हम सुख समझते हैं वह भी यथार्थ में दुःख ही है। इसका नाम दुःख आर्य सत्य है। इसका ज्ञान आवश्यक है। समुदय आर्य सत्य—जिसके कारण उत्पन्न होता है उसे समुदय कहते हैं। इस प्रकार दुःख के कारणों का नाम समुदय है। यद्यपि दुःख के कारण अनन्त हैं लेकिन उनमें तृष्णा को प्रधानता दी गई है। तृष्णा ही दुःख का प्रधान कारण है। इस समुदय आर्य सत्य का ज्ञान उपादेय है। निरोध आर्य सत्य—दुःखों के नाश या अभाव को निरोध कहते हैं। अतः जहाँ पर समस्त दुःखों का अभाव है उस निर्वाण अवस्था को निरोध आर्य सत्य के नाम से कहा गया है। इस आर्य सत्य का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। मार्ग आर्य सत्य—निरोध के उपाय क्या हैं, मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है। इन बातों के ज्ञान के लिये मार्ग आर्य सत्य के ज्ञान के ८ भेद किये गये हैं इसको अष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग भी कहते हैं। ८ भेद ये हैं—१. सम्यग्दृष्टि २. सम्यक संकल्प ३. सम्यक वचन ४. सम्यक कर्मान्त ५. सम्यक जीव ६. सम्यक व्यायाम ७. सम्यक स्मृति और ८. सम्यक समाधि।

बुद्ध ने कहा—हे भिक्षुओ, इन चतुरार्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त करने पर ही सर्वज्ञत्व प्राप्त होता है। मैंने चतुरार्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, मैं सर्वज्ञ हूँ। सर्वज्ञत्व के विषय में बुद्ध ने बतलाया कि चतुरार्य सत्यों का ज्ञान होना ही सर्वज्ञत्व है।

हमें ऐसे ज्ञान की आवश्यकता है जिससे संसार का दुख नष्ट हो सके। संसार में कीड़े-मकोड़ों की संख्या का ज्ञान प्राप्त करना उपयोगी नहीं है। जो हेय और उपादेय तत्वों को उपाय सहित जानता है वही पुरुष प्रमाणभूत है; वही सर्वज्ञ है। यह आवश्यक नहीं है कि जो दूर की बात जान या देख सके वही सर्वज्ञ है किन्तु सर्वज्ञत्व प्राप्ति के लिये इष्ट तत्त्व का ज्ञान आवश्यक है। यदि दूरदर्शी को प्रमाण या सर्वज्ञ माना जाय तो फिर गृद्धों की उपासना करना हमारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिये।

बुद्ध का अनात्मवाद

जैनों की प्रतिक्रिया वेदों की अपौरुषेयता, ईश्वरवाद और यज्ञ-विधानों तक ही सीमित रही, बौद्ध धर्म ने वेदों के आत्मवाद को स्वीकार करने से बिलकुल इन्कार कर दिया। अपने जीवन में जिसे हम पकड़ ही नहीं सकते, मानसिक और भौतिक जगत् में जिसका चिन्ह भी नहीं मिलता उस कल्पित स्थिरतत्व के विषय में चिन्तन करने से क्या लाभ। तत्व दर्शन की कल्पित समस्याओं में उलझकर मनुष्य अपने जीवन की प्रत्यक्ष समस्याओं को भूल जाते हैं और उनका नैतिक पतन होने लगता है। अपने समय के जन समाज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके क्रान्ति-दर्शी बुद्ध ने यही परिणाम निकाला कि जीवन के परे आत्मा परमात्मा जैसी वस्तुओं के विषय में बहस करना जीवन के अमूल्य क्षणों को बेमोल बेच डालना है। बुद्ध ने सोचा कि संसार में—यह मेरा और यह तेरा—यही सब झगड़ों की जड़ है। यदि झगड़े की जड़ का ही उन्मूलन कर दिया जाय तो सम्भव है कि संसार में सुख और शान्ति का साम्राज्य हो सके। अतः बुद्ध ने कहा—नात्मास्ति। आत्मा नहीं। प्रश्न हुआ, तो जन्म मरण किसका होता है। स्कन्धमात्रं तु कर्म क्लेशाभिसंस्कृतम्। अन्तरामवन्तत्या कुक्षिमेति-प्रदीपवत्। पञ्च स्कन्ध कर्मक्लेशों से सम्बन्धित होने पर अन्तरामवसन्तति के क्रम से जन्म धारण करते हैं। अन्तरामवसन्तति का वर्णन इस प्रकार है। मृत्यु और जन्म के बीच की अवस्था का नाम अन्तराभव है। इस प्रकार बौद्ध धर्म में पञ्च स्कन्ध मात्र ही जन्म धारण करते हैं और पञ्च स्कन्ध की सन्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समयानुसार क्लेश और कर्मों के कारण बढ़ती है और परलोक को प्राप्त होती है। इस प्रकार यह संसार का चक्र चलता रहता है। इस भवचक्र का नाम प्रतीत्य समुत्पाद है और इसके बारह अंग निम्न प्रकार हैं—१. अविद्या, २. संस्कार ३. विज्ञान ४. नाम रूप ५. षजयतनक स्पर्श ७. वेदना ८. तृष्णा ९. उपादान १०. भव ११. जाति १२. मरण। इनमें अविद्या और संस्कार का सम्बन्ध भूतकाल से है। जाति और मरण का सम्बन्ध भविष्यत् काल से है। शेष का सम्बन्ध वर्तमान काल से है। इसका नाम प्रतीत्य समुत्पाद इसलिये पड़ा कि एक का आश्रय पाकर दूसरे की उत्पत्ति होती है जैसे अविद्या के होने पर संस्कार उत्पन्न होते हैं। प्रतीत्य समुत्पाद का वर्णन अभिधर्म कोश में किया गया है। पूर्व भव के कर्मों को संस्कार कहते हैं। योनिगत पञ्च स्कन्ध को विज्ञान कहते हैं। षडायतन की उत्पत्ति के पहिले उन्हीं स्कन्धों का नाम रूप है। मन और पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का नाम षडायतन है। इन्द्रियों विषय और विज्ञान के संयोग से स्पर्श की उत्पत्ति होती, है। बाह्यार्थानुभव को वेदना कहते हैं। भोगों में अभिलाषा रखना तृष्णा है। भोगों की प्राप्ति के लिये उद्योग करना उपादान है। पुनर्जन्म उत्पन्न करनेवाले कर्म को भव कहते हैं। जन्म का नाम जाति और अविद्या से वेदना तक का नाम जरामरण है।

सृष्टि कर्तृत्व के विषय में बौद्ध मत

बुद्ध अवसरवादी थे। उनका प्रधान लक्ष्य संसार के संतप्त प्राणियों का उद्धार करना था। जब कोई शिष्य उनसे सृष्टि-कर्तृत्व, जीव और शरीर की भिन्नता, अभिन्नता के विषय में पूछता था तो वे इन प्रश्नों को अव्याकृत—कथन के अयोग्य बतलाते थे क्योंकि ऐसे प्रश्न उपयोगी न थे। इस विषय में उन्होंने एक सुन्दर दृष्टान्त दिया। यदि कोई मनुष्य विषाक्त बाण से विद्ध होकर पड़ा हो तो क्या आपका कर्तव्य यह होगा कि आप यह जानना चाहेंगे कि यह बाण किस दिशा से आया है, किसने छोड़ा है, छोड़नेवाले का रूप-रंग कैसा है, बाण बड़ा है या छोटा अथवा आप उस पीड़ित प्राणी को शीघ्र ही अस्पताल ले जाकर इलाज प्रारम्भ करेंगे। निःसन्देह आपका कर्तव्य दूसरा होगा। बुद्ध की भावना थी—कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशिनम्। वे जब कभी किसी दुःखी दरिद्री की बात सुनते थे तुरन्त वहाँ पहुँचते थे। एक समय बुद्ध को मालूम हुआ कि उनके संघ में एक भिक्षु अत्यन्त रोग ग्रस्त है। उन्होंने स्वयं वहां पहुंच कर उसकी सेवा की। एक बार यह जानकर कि एक ग्राम में एक बहुत ही दरिद्र व्यक्ति रहता है, वे वहां पहुँचे और इसका उद्धार किया।

बौद्धेतर मतावलम्बी साधु बौद्ध भिक्षुओं को देख कर बुद्ध और संघ के विषय में तरह तरह के अपशब्द कहते थे लेकिन बुद्ध ने कहा—जैसे युद्ध भूमि में हाथी बाणों को सहन करता है इसी प्रकार मैं अपशब्दों को सहन करूँगा। यदि कोई मेरे धर्म व संघ की निन्दा करे तो न तुम्हें इससे दुःखी होना चाहिये न अप्रसन्न। भिक्षुओ, यदि डाकू आकर तुम्हारा अंग-अंग भी काट दें तब भी जो क्रोधित हो जाय वह मेरा भिक्षु नहीं है। मैत्री के विषय में वे कहते थे—जिस तरह मां अपने प्राण भी देकर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है उसी तरह से हर आदमी को संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति भावना रखनी चाहिये। छोटी छोटी बातों के विषय में भी बुद्ध कहा करते थे—माता पिता की सेवा, स्त्री-बच्चों का पालन-पोषण करना और निर्दोष कामों में लगना यही सब से बड़ा सौभाग्य है।

बुद्ध के उपदेशों का संग्रह त्रिपिटक है। सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक में बुद्ध के उपदेश हैं, विनय में भिक्षु और श्रावकों के सदाचार सम्बन्धी नियम बतलाये गये हैं और अभिधम्मपिटक में बुद्ध के उपदेशों की दार्शनिक चर्चा की गई है। त्रिपिटक का सार निम्न प्रकार है—सभी प्रकार की बुराइयों से बचो। अच्छे काम करो और दिल को पवित्र रक्खो, यही बुद्ध की शिक्षा है। बुद्ध ने कहा—हे भिक्षुओ, मैंने जिस धर्म का उपदेश दिया है वह स्वयं कल्याण के लिये है पकड़ रखने के लिये नहीं। जाओ भिक्षुओ, सर्वजन हिताय सर्वत्र विचरण करो, पवित्र धर्म का उपदेश करो। बुद्ध ने ४१ वर्ष तक संसार के संतप्त प्राणियों को उपदेशामृत का पान कराकर वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त किया। जन्म, बोधि प्राप्ति तथा निर्वाण प्राप्ति की घटनायें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही तिथि वैशाख पूर्णिमा को घटित हुई थीं। अतः बौद्ध धर्म में यह तिथि अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।

कुछ लोगों ने आकर बुद्ध से कहा कि ब्राह्मण कहते हैं हम ही सब से बड़े हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुये हैं, स्वर्ग में भी हमारा ही अधिकार है। बुद्ध ने उत्तर दिया—ब्राह्मणों को स्त्रियाँ गर्भवती देखी जाती हैं, उनके बच्चे पैदा होते हैं, वे स्तनपान भी करते हैं फिर ब्राह्मणों का यह कहना कि हम ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुये हैं, कहां तक संगत है। उनका कहना था—कोई जन्म से शूद्र और ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से ही शूद्र और ब्राह्मण होते हैं। बुद्ध के अनुसार ब्राह्मण का लक्षण निम्न प्रकार है—'जो विप्रवाहित पाप, मल, अभिमान बिनु संपत रहे। वेदान्त पाए, ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी सत्य से। सम नहिं कोई जिस सम जगत सो होई ब्राह्मण ब्राह्मणा। मन वच और काय के द्वारा जो कोई दुष्कर्म नहीं करता वही ब्राह्मण है।

बौद्ध धर्म में 'मामेक शरणं व्रज की' प्रवृत्ति नहीं है। बुद्ध से लोग कहा करते थे कि हम लोगों के पास भिन्न भिन्न मतावलम्बी भिक्षु आते हैं और कहते हैं कि हमारा धर्म अच्छा है। बतलाइये हम क्या करें। तो बुद्ध ने यह कभी नहीं कहा कि मैं ही सब से बड़ा हूँ, मेरा ही धर्म सर्वोत्तम है। उन्होंने कहा, तुम इस कारण किसी बात को अच्छी न समझो कि वह तुम्हारे बाप-दादाओं से चली आई है। या तुमने किसी के द्वारा सुनी है। किन्तु यह सोचो कि यह बात कल्याण-कारक है तो ग्रहण करो अन्यथा छोड़ दो। बौद्ध धर्म की एक और विशेषता लोक भाषा में उपदेश देने की है। बुद्ध ने बहुजन हिताय अपना उपदेश उस समय की प्रचलित लोक भाषा में दिया। इससे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को समझने में लोगों को सरलता हुई।

बौद्ध धर्म का उत्कर्ष

बुद्ध के बौद्ध धर्म का अधिक उत्कर्ष हुआ। इसके कई कारण हैं। इसके नियम सरल थे। राज्याश्रय भी इसके उत्कर्ष में प्रधान कारण था। अशोक ने ई० पू० तीसरी शती में जन्म लेकर बौद्ध धर्म की उन्नति में पूरा सहयोग दिया। अशोक ने अफगानिस्तान, सीरिया, बर्मा आदि देशों में कई प्रचारक भेजे यहाँ तक कि अपने पुत्र महेन्द्र को भी धर्म प्रचार के लिये भेजा था। वास्तव में अशोक ने बौद्ध धर्म पर और बौद्ध धर्म ने अशोक पर असर किया। चीन में यह धर्म प्रथम शती में पहुंचा था। चीन से फाहियान और ह्युनत्सांग ने यहां आकर बौद्ध धर्म के अपार साहित्य को चीन पहुंचाया। बौद्ध युग में वास्तुकला, शिल्पकला, मूर्तिकला और चित्रकला का अद्वितीय विकास हुआ। नालन्दा बौद्ध युग का महान् शिक्षा-केन्द्र था। वहां ८५०० स्नातक और १५०० अध्यापक थे।

बौद्ध धर्म का अपकर्ष

महान् आश्चर्य की बात है कि जिस बौद्धधर्म ने भारतवर्ष में ही जन्म पाया और जो यहां से ही दूसरे देशों में फैला उसका भारतवर्ष से क्यों लोप हो गया। इसके भी कई कारण हैं। अशोक से फाहियान तक बौद्ध धर्म दृढ़ता से शासन करता रहा। ५ वीं शती में गुप्तों के सहारे से ब्राह्मण धर्म उठा। बौद्ध श्रमणों को राज्याश्रय मिला था। इसके बिना संघारामों का चलना मुश्किल था। बौद्ध मठों को जो जागीरें मिली थी उनमें रहने वालों का उत्पीड़न होने लगा। बौद्ध-मतावलम्बियों के हीनयान और महायान यह भेद भी अवनति के कारण हुये। महायान सम्प्रदायवालों ने वरिष्ठ वर्ग को प्रसन्न रखने के लिये संस्कृत में रचना की जिससे साधारण जनता का बौद्ध धर्म से सम्बन्ध छूट गया। ७वीं शती में कुछ राजाओं ने बौद्ध धर्म पर आक्रमण किये। कुमारिल और शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म का खण्डन करके उसके महत्व को घटा दिया। पुनः मुसलमानों के आक्रमण से उन सबका संहार हो गया। शेष श्रमणों ने तिब्बत आदि देशों में आश्रय लिया। इस प्रकार बौद्ध धर्म की अवनति हो गई।

बौद्ध धर्म यद्यपि भारत से एकदम चला गया था फिर भी बुद्ध की शिक्षायें यहां से नहीं जा सकतीं। महात्मा गान्धी ने लिखा है—बौद्ध धर्म नाम वाली चीज भले ही हिन्दुस्तान से दूर हो गई हो मगर बुद्ध भगवान् का जीवन और उनकी शिक्षायें तो हिन्दुस्तान से दूर नहीं हो सकतीं।

बौद्ध धर्म ने नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति जैसे महान् दार्शनिकों को पैदा किया जिन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी विचार शैली में महान् परिवर्तन किये और शताब्दियों तक जो विचार संघर्ष होते रहे उसीसे न्याय वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शनों का विस्तार हुआ। भारतीय न्याय दर्शन जहां तक आज पहुँचा है वहां तक न पहुँचता यदि वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति ने उसे उतना सोचने पर बाध्य न किया होता।

बौद्ध मत के दार्शनिक सिद्धान्त

क्षणभंगवाद—यह बौद्धदर्शन का सबसे बड़ा सिद्धान्त है। संसार के सारे पदार्थ क्षणिक हैं, वे प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, विश्व में कुछ भी स्थिर नहीं। चारों ओर परिवर्तन ही परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है हमें अपने शरीर पर ही विश्वास नहीं है। जीवन का कोई ठिकाना नहीं। इन्हीं भावनाओं के कारण क्षणभंगवाद का आविर्भाव हुआ। वैसे तो प्रत्येक मतावलम्बी भंग को मानता है लेकिन बौद्ध की यह विशेषता है कि उनके यहां कोई भी चीज एक क्षण से दूसरे क्षण में वही नहीं रहती। दर्शन के आधार पर इसकी सिद्धि इस प्रकार की गई है। सर्वं क्षणिकं सत्वयात्। सब पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि सत् हैं। और 'अर्थ क्रिया कारित्वं सत्वं' जो अर्थ क्रिया—कुछ काम करे वही सत् है। अब विचारना यह है कि अर्थ क्रिया नित्य में हो सकती है या क्षणिक में। बौद्धमत का कहना है कि नित्य में अर्थ क्रिया हो ही नहीं सकती। नित्य यदि युगवत् अर्थ क्रिया करता है तो संसार के सारे पुरुष एक समय में ही हो जायंगे। क्रम से भी वह अर्थक्रिया नहीं कर सकता क्यों कि वह समर्थ है उसे दूसरे की अपेक्षा नहीं। फिर क्यों न वह एक समय में ही काम करेगा। अतः नित्य में अर्थ क्रिया न हो सकने के कारण अनित्य में ही वह हो सकती है। पूर्व क्षणवर्ती पर्याय उत्तर क्षण को उत्पन्न करके नष्ट हो जाती है। तिरहेतुक विनाश—क्षण भंग के कारण ही बौद्ध दर्शन विनाश को भी तिरहेतुक मानता है। विनाश स्वयं होता है किसी दूसरे के द्वारा नहीं। घट का जो विनाश दण्ड के द्वारा होता हुआ देखा जाता है वह घट का विनाश नहीं किन्तु कपाल की उत्पत्ति है।

प्रमाणवाद—बौद्ध दर्शन में प्रमाण का लक्षण अविसंवादिता माना गया है। प्रमाण दो हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। और पदार्थ भी दो हैं—स्वलक्षण और सामान्य। प्रत्यक्ष स्वलक्षण को जानता है और अनुमान सामान्य को।

यह ध्यान रखने की बात है कि बौद्ध दर्शन ने सामान्य को पदार्थ मानकर भी अवस्तुभूत माना है और उसको जानने वाले ज्ञान को अनुमान प्रमाण माना है। यह क्यों? इसीलिये कि अनुमान के द्वारा यद्यपि मिथ्याभूत सामान्य का ज्ञान होता है फिर भी वह ज्ञान परम्परया स्वलक्षण की प्राप्ति का कारण होने से प्रमाणभूत है। जैसे कि मणि प्रदीपप्रभयोः मणिबुद्ध्याभिधावतो। मिथ्याज्ञानाविशेषेऽपि विशेषोऽर्थ क्रियां प्रतिः॥

एक व्यक्ति ने मणि की प्रभा को मणि समझा, दूसरे व्यक्ति ने दीपक की प्रभा को मणि समझा। दोनों का ज्ञान मिथ्या है। लेकिन मणि प्रभा में मणिज्ञान वाला पुरुष यदि उसके पास जाता है तो उसे मणि की प्राप्ति होने के कारण उसका ज्ञान परम्परा प्रमाण ही माना जायगा इसी प्रकार अनुमान भी प्रमाण है।

चार्वाकों के प्रत्यक्षैक प्रमाणवादिता के खण्डन करने के लिए संभवतः बौद्धों ने अनुमान प्रमाण की प्रमाणिकता सिद्ध की हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। धर्मकीर्ति ने चार्वाक के लिये अनुमान की प्रमाणता को बताते हुये लिखा है—प्रमाणेतरसामान्यस्थितेस्यधियोगतेः। प्रमाणान्तर सद्भावः प्रतिषेध्यच्च कस्यचित।

नैयायिकों द्वारा कल्पित नित्य, एक और व्यापक सामान्य का बौद्ध दार्शनिकों ने बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से खण्डन किया है। नयाति नचतणासीदन्ति पश्चाच्च चांशवत्। जहातिपूर्वं नाधारम हो व्यसनसन्ततिः। इस कारिका द्वारा सामान्य का जैसा निराकरण किया गया है उसका निराकरण नैयायिक न कर सके।

अन्यापोहवाद

बौद्ध दर्शन कहता है कि शब्द और अर्थ का कुछ सम्बन्ध नहीं है। शब्दों के द्वारा स्वलक्षण का कथन कदापि नहीं हो सकता। स्वलक्षण अवाच्य है अतएव निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के विषय होते हैं। एक बात यह भी है कि शब्द अर्थ के अभाव में भी देखे जाते हैं जैसे राम रावणादि शब्द। शब्द के द्वारा अर्थ की उपलब्धि भी नहीं होती। अग्नि शब्द से दूसरे प्रकार का ही ज्ञान होता है और अग्नि-सम्बन्ध से भिन्न प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः बौद्धों का कहना है कि शब्द अर्थ का कथन न करके अन्यापोह अर्थात् अन्य के अभाव का कथन करते हैं। आपने पुस्तक शब्द कहा तो पुस्तक शब्द तत्त्वार्थ सूत्र वा सागरधर्मामृत को न बता कर मेज, तख्त, लालटेन आदि पुस्तकेतर सब चीजों के अभाव को कहेगा। अर्थात् यह कहेगा कि सागरधर्मामृत पुस्तक मेज नहीं है, तख्त नहीं है, लालटेन नहीं और इस प्रकार आप समझ जायंगे कि यह पुस्तक है।

अब मैं संक्षेप में बौद्धदर्शन के चार दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन करूँगा। चार सिद्धान्त ये हैं—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक।

वैभाषिक—इस मत के मुख्य दार्शनिक दिङ्नाग और धर्मकीर्ति हैं। वैभाषिक मत का सिद्धान्त है कि बाह्यअर्थों का प्रत्यक्ष होता है। हम अपने ज्ञान के द्वारा बाह्य पदार्थों को स्पष्ट जानते हैं। सौत्रान्तिक—इस मत के प्रमुख आचार्य कुमारलब्ध कहे जाते हैं। सौत्रान्तिक बाह्य अर्थ को प्रत्यक्ष न मानकर अनुमेय मानते हैं। सौत्रान्तिक का कहना है कि यद्यपि बाह्यार्थ प्रत्यक्ष नहीं हैं फिर भी हमको जो घट-पटादि का ज्ञान होता है वह बाह्यार्थ के बिना नहीं हो सकता। अतः ज्ञान के द्वारा अर्थ का अनुमान किया जाता है कि अर्थ भी होना चाहिये क्यों कि ज्ञान की उत्पत्ति देखी जाती है। योगाचार—इसके प्रवर्तक असंग और बसुबन्धु हैं। बसुबन्धु के अभिधर्मकोश और लंकावतार सूत्र ये दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अपूर्वबोध भी इसी मत का अनुयायी थी। योगाचार सौत्रान्तिकों से भी एक कदम आगे बढ़कर कहता है कि जब बाह्य अर्थ का प्रत्यक्ष नहीं होता तो उसे मानने की भी क्या आवश्यकता है। अतः योगाचार ने विज्ञानवाद के सिद्धान्त को माना। संसार में विज्ञान को छोड़कर और कुछ नहीं है। यदि विज्ञान मात्र ही तत्त्व है तो ज्ञान और ज्ञेय की कल्पना कैसे होती है। इसका उत्तर भी सौत्रान्तिक इस प्रकार देते हैं कि जिस प्रकार भ्रम के कारण एक चन्द्र में भी दो चन्द्र का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार विपर्यासित बुद्धिवाले ज्ञान में भी ग्राह्य और ग्राहकत्व की कल्पना करते हैं।

अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शने
ग्राह्यग्राहकसंवित्ति भेदवानिव कल्प्यते।

योगाचार के यहां बाह्यार्थों की उपलब्धि ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार स्वप्न में प्राणी नाना प्रकार के अर्थों का अनुभव करता है।

माध्यमिक—इस मत के संस्थापक नागार्जुन हैं। इनकी मूलमध्यकारिका प्रसिद्ध पुस्तक है। माध्यमिक योगाचार से भी एक कदम आगे बढ़ गये और कहा कि जब अर्थ नहीं है तो ज्ञान के मानने की भी क्या आवश्यकता है। माध्यमिक के शून्यवाद का अर्थ यह लगाया गया कि संसार में कुछ भी नहीं है। समस्त पदार्थों का अभाव है। लेकिन कुछ लोग माध्यमिक के शून्यवाद की भावात्मक व्याख्या भी करते हैं। वे शून्यवाद को शून्य रूप में नहीं मानते किन्तु अनिर्वचनीय रूप में मानते हैं। विश्वतत्त्व बुद्धिगम्य नहीं है। मूल मध्यम कारिका के निम्न श्लोक देखिये—

अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम्।
अनेकार्थमतानार्थमनागममनिर्गमम्॥
शून्यमिति न वक्तव्यमशून्यमितिवाभवेत्।
उभयं नोभयञ्चेति प्रज्ञप्त्यर्थं तुकथ्यते॥

इसका यही अर्थ है कि वस्तुतः विश्वतत्व अनिर्वचनीय है।

इस प्रकार मैंने बौद्धधर्म और बौद्धदर्शन के मुख्य मुख्य सिद्धान्त बतलाये। आज संसार को जैन धर्म और बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को समझने या समझाने की आवश्यकता है। बुद्ध का हृदय दार्शनिक से भी अधिक मानव हृदय अथवा कवि हृदय था उन्होंने विश्व की करुणा को देखा ही नहीं अनुभव भी किया। बुद्ध का सिद्धान्त था—

यदाहम परेषां च भयं दुःख च न प्रियम्।
तदात्मनः को विशेषो यत् तं रक्षामि नेतरम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र-निर्माण

श्री शीतला सहाय श्रीवास्तव

आज मैं हूं कर रहा नव राष्ट्र का निर्माण।
फूँकता हूं देश की सोयी नसों में प्राण।
आज हलचल है नया आया हुआ तूफ़ान।
आज करवट ले रहा है शक्ति का अभिमान।

उड़ चले पीताभ पत्ते जर्जरित रस-हीन।
है धराशायी हुये तरु-पुञ्ज जड़ विक्षीण।
मेघ नभ में घोष करते कर प्रलय का गान।
तड़प उठती बिजलियाँ हैं हो उठीं बेम्यान।

आज सर-सरिता-जलधि सब ताल-नाले-झील।
उमड़ उठते, ज्वार फेनिल हो उठे गति शील।
ये बहाकर ले चले भव का समस्त सड़ाव।
डोलती डग मग कि जिनमें रूढ़ि की पड़ नाव।

जल उठे आकाश में ये सूर्य्य उल्का-पिंड।
हो उठे कम्पित हिमांचल और पर्वत विन्ध्य।
आज इनके साथ काँपी बर्बरा दुर्नीति।
मिट चलीं भोले जगत की भ्रान्तियाँ, भय-भीति।

आज यह जब क्रान्तिमय है हो उठा संसार।
क्रान्तिमय फिर क्यों न हों मेरे प्रचंड विचार।
चाहता, मैं राष्ट्र को देखूँ नहीं परतंत्र।
देखता इसको रहूं निर्बन्ध मुक्त स्वतंत्र।

चाहता, देखूँ नहीं इसका करुण सा ह्रास।
चाहता इसके निवासी रह न पायें दास।
एक के हाथों न हो अपनी धरा का राज्य।
भूमि-स्वामी, सेठ पूँजीपति सदा हों त्याज्य।

आज जब गँदला हुआ अपना पवित्र समाज।
क्यों न गिर पड़ती अरे इस पर गगन से गाज।
आज दीनों को न मिलती दाल, रोटी-नून।
पेट-ज्वाला से व्यथित इस जून क्या उस जून।

आज मानव का दनुज है कर रहा संहार।
आज शोषण नाग बनकर छोड़ता फुंकार।
देखता हूं गाँव का जब श्यामवर्ण किसान।
हड्डियों के बीच जिसके पल रहे हैं प्राण।

बैल सा बन जेठ की जो सह रहा है धूप।
बन पसीना गल रहा जिसमें तपी का रूप।
देखता हूं जब नगर में एक मिल मज़दूर।
बस रहा जो पेट के ख़ातिर पिता से दूर।

शीत की ठिठुरन बिना दो वस्त्र कितनी क्रूर।
अंग सब प्रत्यंग जो झकझोरती भरपूर।
आप नंगा रह अरे! बुन बुन वसन के ढेर।
दे रहा जो विश्व को सुख-शान्ति से मुख फेर।

आज अपने मालिकों का यह महा अन्धेर।
बीस रुपयों की झलक में वह रहा चुप हेर।
देखता हूँ राष्ट्र के जब ये गिरे घर-गाँव।
और नगरों के प्रकाशित ये महल कुछ ठाँव।

तब न क्या कर्तव्य! सारा राष्ट्र बदला जाय।
साथ ही न समाज क्या यह आज बदला जाय।
आज भारत विश्व को फिर से वही दे सीख।
माँगता था झुक कभी जिसकी सदा ही भीख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य में प्रकृति वर्णन

श्रीमती विद्या गुप्त एम० ए०

आदि काल से ही प्रकृति के विविध उपादान मानव की अन्तर्वृत्तियों को उद्वेलित करते आए हैं। प्रकृति के साथ मानव का जो अटूट अविछिन्न सम्बन्ध रहा है उसीके सतत सौन्दर्य की आभा से हमारा हिन्दी साहित्य आलोकित है। इहलोक और परलोक दोनों ही के साधक प्रकृति की ओर कौतूहलपूर्ण उन्मुख दृष्टि बढ़ाए चंचल बालक के सदृश उसका अंचल पकड़ भावों की भीख मांगते रहे हैं। नगरों का कोलाहल इस प्रवृत्ति का दमन न कर सका; योगियों की साधनारत दृष्टि कन्या बाला की अस्त-व्यस्त, स्वच्छन्द शोभा के प्रति तिरस्कार न हो सकी। यही कारण है कि योगी और भोगी दोनों ही इस बहुरंगिणी के प्रति समान रूप से आकर्षित हो अपनी अपनी भावनाओं के अनुरूप इसके गुण गाते रहे। संत कबीर अपनी कुटिया में 'झीनी झीनी' चदरिया बिनते समय भी प्रकृति में चलते व्यापार के दर्शन से वंचित न रहे, तभी तो वृक्षों को सविषाद सिर हिलाते देख वह कह उठे—

बाढ़ी आवत देख करि तरवर डोलन लाग।
हम कटे की कुछ नहीं पंखेरू घर भाग।

इस प्रकार भक्त तुलसी की वाणी में प्रकृति-दर्शन ब्रह्म ज्ञान का उपदेशामृत स्थान स्थान पर जनता के हृदय में पीयूष-वर्षा करता है—

बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चलि उतराई।
जनु थोरे धन खल बौराई॥

इस प्रकृति वर्णन का मूलाधार विधान विद्वानों ने प्रकार से—अर्थ ग्रहण और बिंब ग्रहण योजना द्वारा किया है।

अर्थ-ग्रहण विधान में कवि अथवा द्रष्टा वर्णन में सूक्ष्म प्रकृति दर्शन का परिचय नहीं देता जो दर्शक या श्रोता के नेत्रों के सम्मुख एक स्पष्ट चित्र अंकित करे, उसका वर्णन उस रेखा-चित्र सा है जो केवल हमें किसी के आकार का आभास देता है किन्तु उसके रूप, सुषमा आदि का कुछ भी परिचय नहीं देता। इस चित्र में तैल चित्र का मनोहर, नेत्ररंजक सौन्दर्य नहीं। जो कुछ है वह संकेतात्मक है, वर्णनात्मक नहीं। उदाहरणार्थ, कमल खिला है, नदी बह रही है; जैसे वर्णन अर्थ ग्रहण की प्रवृत्ति के सूचक हैं।

बिंब ग्रहण में इस रुचि के विपरीत दृश्य के एक सम्पूर्ण चित्र को उपस्थित करने की प्रवृत्ति मिलती है। दृश्य किसी इन्द्रिय विशेष का विषय नहीं; वह तो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और श्रवण पंचेन्द्रियों का विषय है। अतः बिम्ब ग्रहण विधान में जो चित्र होगा वह केवल नेत्र रंजक न होकर पंचेन्द्रियों की अनुभूति का विषय होगा। जैसे—सुरभित मंजरियों से मकरन्द वर्षा करती हुई आम्र तरु राजि की सुषमा मन्द पवन से उद्वेलित हो प्राणिमात्र को रोमांचित कर रही थी, और इस सम्पूर्ण वातावरण को कुहुक कुहुक कर कोकिल मादक बना रही थी।

प्रकृति वर्णन के ये दो विशिष्ट मूलाधार तत्व विभिन्न रुचि और शैली के योग से अन्य चार प्रकारों में विभाजित हो गए। विद्वानों ने वर्णन-विधान की शैली पर इनके विशिष्ट स्वरूपों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—आलंबन, उद्दीपन, आलंकारिक तथा उदात्त।

प्रकृति वर्णन की इन चार शैलियों में हमें प्राचीन काल के कवियों में उद्दीपन और आलंकारिक योजना की बहुलता मिलती है। प्रारम्भ में हमें भक्त कवियों की वाणी में प्रकृति द्वारा उपदेश निरूपण की भावना का दर्शन हुआ जिसे हम उनका दृष्टि-स्वातन्त्र्य कह सकते हैं। इस उपदेश निरूपण की भावना का स्वतन्त्र अस्तित्व है, अतः इन चार शैलियों के अन्तर्गत हम उन्हें नहीं ले सकते। इन भक्त और तत्वान्वेषी कवियों की वाणी में हमें यत्र तत्र प्रकृति वर्णन के अन्य स्वरूप भी मिल जाते हैं जैसे भक्त तुलसी का काव्य। इसमें जिज्ञासु को सभी प्रकार की शैली और तत्वों का विधान मिल सकता है। किन्तु तुलसी के बाद आने वाले युग में रीति काल के कवियों की दृष्टि मुख्यतः उद्दीपन विधान और अलंकारिक विधान तक ही सीमित हो गई। कवियों ने प्रकृति के विराट सौन्दर्य को केवल नायक-नायिका के विरह ताप अथवा उनकी शृंगारिक चेष्टाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सहायक मात्र मान उसी दृष्टि कोण से उसका विधान किया है। दृष्टि की इस संकीर्णता के फलस्वरूप प्रकृति निरूपण में कृत्रिमता आ गई और उसका मोहक स्वरूप आकर्षण विहीन होने लगा। वर्णनों में ऊहात्मक प्रयोग हास्यास्पद सीमा को पहुंच गए। रीति ग्रन्थों के आचार्यों की दृष्टि में वन, उपवन, ऋतु आदि शृंगार के 'उद्दीपन' मात्र होने के कारण नायक-नायिका को केवल हँसाने अथवा रुलाने मात्र के साधन रह गए। इस प्रकार "रस दृष्टि के परिमित हो जाने से उसके संयोजक विषयों में से कुछ तो 'उद्दीपन' में डाल दिए गए और कुछ 'भावक्षेत्र' से ही निकाले जाकर 'अलंकार' के हाते में हांक दिए गए।" फल स्वरूप प्रकृति में अन्तर्हित जीवन का स्पन्दन इस काल के कविगण देख न सके और प्रकृति के सजीव, सरस दृश्य चित्रण करने में उनकी लेखनी अक्षम रही। फिर भी इस कथन का तात्पर्य यह नहीं कि रीति काल के कवियों ने प्रकृति के आलम्बन स्वरूप को सर्वथा ही त्याज्य समझा। क्यों कि बिहारी, सेनापति और घनानन्द आदि रीति कालीन सभी प्रमुख कवियों की रचनाओं में हमें यत्र तत्र प्रकृति के सुन्दर स्वतन्त्र चित्र मिलते हैं जो कि मरुभूमि में नखलिस्तान (ओएसिस) के समान सुखद प्रतीत होते हैं। अलंकारिक शैली के सुप्रसिद्ध कवि बिहारी की लेखनी से ऐसे ही दो स्वतन्त्र प्रकृति-चित्र हमें इन दोहों में मिलते हैं–

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधु नीर।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजर कुंज समीर।
चुवत स्वेद मकरन्द कन तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तें थक्यौ बटोही बाइ।

इसी प्रकार सेनापति और घनानन्द में भी हमें जहां तहां प्रकृति के आलम्बन स्वरूप का चित्रण मिलता है।

अलंकारिक शैली के वर्णन तो हमें सभी काल के कवियों में प्रचुरता से मिलेंगे। अलंकार निरूपण का प्रेम सभी युग के कवियों में किसी न किसी मात्रा में पाया जाता है। अलंकारिक शैली के आचार्य केशव का नाम इस क्षेत्र में प्रसिद्ध है। इनके प्रकृति वर्णन के सम्बन्ध में हमें विषम रूप से विभिन्न सम्मतियों का प्राचुर्य मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा की सम्मति में "केशव का प्रकृति-चित्रण बहुत व्यापक है। उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अलंकारों के प्रयोग से प्रकृति के दृश्य बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किए हैं।" इस उक्ति के विपरीत डा० बड़थ्वाल की सम्मति है कि "प्रकृति के जितने भी वर्णन उन्होंने दिये है वे प्रकृति-निरीक्षण से प्रभावित होने का ज़रा भी परिचय नहीं देते।" आचार्य शुक्ल जी के अनुसार "केशव के लिए प्राकृतिक दृश्यों में कोई आकर्षण न था" और वह हृदयहीन कवि माने गए हैं। किन्तु इस विषय में सभी विद्वान सहमत हैं कि केशव की अलंकार-प्रिय रुचि निम्नतम विषयों की भी, साधारण से साधारण वस्तु को अलंकार सज्जा से विभूषित कर जनता के सामने प्रस्तुत करती थी फिर भला प्रकृति के चित्र अलंकार विहीन कैसे हो सकते हैं। इसी कारण आचार्य दण्डकारण्य का दर्शन निम्न रूप में करते हैं—

राजति है यह ज्यों कुल-कन्या।
धाई विराजति है सँग धन्या॥

तथा—

बर भयानक सी अति लगै।
अर्क समूह जहाँ जगमगै॥

इस वर्णन में स्पष्टतः ही अर्थ-ग्रहण की प्रवृत्ति मात्र है और पाठक के नयनों के सम्मुख प्रकृति का अलंकार विभूषित स्वरूप कोई भी रूप रेखा न खींच सका। केशव में यह रुचि बहुलता से मिलती है। प्रकृति वर्णन में जहाँ विस्तार है वहीं पाठक कुछ सार ग्रहण करने में सक्षम प्रतीत होता है। पर केशव में ऐसे स्थल बहुत कम हैं और नाम मात्र गिनाने की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। यथा—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारि केर बर॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी सुक कुल कलित चित्त कोकिल अति मोहैं॥

हिन्दी काव्य साहित्य में उपर्युक्त तीनों प्रकार–आलम्बन, उद्दीपन और अलंकारिक के वर्णन हमें प्रचुर मात्रा में मिलेंगे; किन्तु चतुर्थ प्रकार—उदात्त वर्णन के उदाहरण अत्यन्त विरल हैं। संस्कृत काव्य साहित्य में प्रकृति के उदात्त वर्णन बहुलता से मिलेंगे किन्तु हिन्दी में कवियों ने इस प्रकार के वर्णन की ओर पूर्णतः उपेक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप धारण कर लिया है। केवल 'मानस' कार तुलसी में ही प्रकृति के उदात्त स्वरूप के दर्शन होते है। रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने 'बुद्ध-चरित्र' में प्रकृति के इस स्वरूप का चित्रण किया है। मानवीय भावनाओं से स्पन्दित होने वाली, मानव जीवन की चिर सहचरी मनुष्य के महान् कार्य से किस प्रकार प्रभावित हो उनका अभिनन्दन करती है इसका चित्रण शुक्ल जी ने कुमार सिद्धार्थ के अलौकिक कार्य 'महाभिनिष्क्रमण' के अवसर पर किया है—

शीतल श्वास-समीर आय चूम्यो फहरत पट।
जोह्यो नहीं प्रभात सुचन खोल्यौ सौरभ-चट॥

प्राचीन विद्वानों द्वारा निरूपित प्रकृति वर्णन के इन विशिष्ट मूलाधारों के अतिरिक्त हमें अपने काव्य साहित्य में और भी कई प्रकार की शैली प्रचलित मिलती हैं। उदाहरणतः दर्शन के अध्ययन से प्रभावित ज्ञान द्वारा प्रकृति को रहस्यमयी उद्गारों द्वारा रहस्यमयी बनाने की चेष्टा। सूफी कवियों का प्रकृति प्रेम भी दार्शनिकता से पूर्ण था। यही कारण है कि जायसी के काव्य में जहां हमें उद्दीपन और अलंकारिक वर्णनों का प्राचुर्य मिलता है वहीं स्थान स्थान पर प्रकृति की उस परम पुरुष से मिलने के निमित्त विरहाकुल उन्मुख चेष्टाओं की भी सुलभता दृष्टिगोचर होती है। सत्य तो यह है कि जायसी का सम्पूर्ण प्रेम काव्य अलौकिक प्रेम व्यंजना से पूर्ण रूपोक्ति द्वारा आध्यात्मिकता के रंग में रँगा है। इस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य-संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। विरह व्यंजना का उत्कृष्ट विधान उन्होंने प्रकृति के विरह विधुरा स्वरूप के वर्णन द्वारा निम्न शब्दों में किया है—

उन्ह बानन अस को जो न भरा।
बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने।
वे सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी।
साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े।
सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े॥

आधुनिक काल में यह दार्शनिक प्रवृत्ति हम मुख्यतः श्री जयशङ्कर 'प्रसाद', श्री निराला, श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री रामकुमार जी में छायावाद के अन्तर्गत पाते हैं। किन्तु आधुनिक युग की विशेष और प्रमुख प्रवृत्ति है प्रतीकात्मक शैली तथा मानवीकरण। छायावाद का जन्म सामन्ती युग की रूढ़ि ग्रस्त, व्यक्तित्व विहीन भावनाओं के विरोध में हैं। जब जब स्थूल की प्रभुता असह्य हुई, तभी सूक्ष्म ने उसके विरुद्ध क्रान्ति की है। इस क्रान्ति और विद्रोह के प्रोद्भास-रूप जो गान कवि की आत्मा ने उन्मत्त होकर गाए हैं उनसे निसृत सूक्ष्म भावनाओं के मधुर प्रतीक आज की छायावादी कविता के प्राण हैं। अतः कवि कहीं तो प्रकृति के मूर्त गोचर स्वरूप को अमूर्त, अगोचर उपमानों द्वारा चित्रित करते हैं और कहीं अगोचर अमूर्त उपमेयों के मूर्त, गोचर उपमानों का विधान करते हैं। यथा—

कहीं कहीं विमलाम्बु भी था भरा
महज्जनों के उर-सा पीयूष-सा।

तथा—

गिरिवर के उर से उठ उठकर,
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर हैं
झांक रहे नीरव नभ पर।

छायावादी कविता का विशिष्ट स्वरूप है प्रकृति के कण-कण में मानवीय भावनाओं की स्पन्दन-अनुभूति। इस अनुभूति का चित्रण कुशल कवि की लेखनी प्रतीकात्मक शैली द्वारा जब करती है तब उसमें एक अनूठा चमत्कार आ जाता है। रूप और गुण अथवा केवल अनुभूति का साम्य लेकर चलने वाले प्रतीक यद्यपि कहीं कहीं दुरूह हो जाते हैं किन्तु इन उपलक्षणों के समझने पर चमत्कार की गूढ़ता विशेष आनन्दायिनी प्रतीत होती है। इस प्रकार के गूढ़ प्रतीकों का विधान 'प्रसाद' और पंत ने विशेष कुशलतापूर्वक किया है। 'प्रसाद' जी की सुप्रसिद्ध रचना "आँसू" इस प्रकार के अनुभूति पर आधारित उपलक्षणों के प्रयोगों से भरी पड़ी है। "आँसू" के कुछ छन्द तो काव्य के अद्भुत सुन्दर उदाहरण हैं। यथा—

झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सब ने आ डेरा डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे सूखे-से फुलवारी में।
किसलय दल कुसुम बिछाकर आए तुम इस क्यारी में।

"लहर" भी अनूठे उपमानों से भरी दार्शनिक तत्वों को निहित किए एक सरस रचना है जिसमें हमें प्रकृति के अनुपम रूप के दर्शन होते हैं। उदाहरणतः

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अंगड़ाई-सी,
मलयानिल की परछाईं-सी
इस सूखे तट पर छहर-छहर॥

पंत जी ने प्रकृति-रूपसी के जिन शब्द चित्रों को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है वे अत्यन्त कमनीय रूप-लावण्य से आपूर्ण हैं। पंत जी की रचना "बादल", "छाया", "प्रथम रश्मि" तथा "नौका विहार" में 'तापसी' गङ्गा का रजत परिधान युक्त शुभ्र स्वरूप वे अमर कला कृतियां हैं जो हिन्दी साहित्य में प्रकृति वर्णन के सर्वोत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत करती हैं।

छायावादी युग की विशेष प्रवृत्ति प्रकृति में मानवीय भावनाओं के आरोपण होने के फलस्वरूप हमें अपने काव्य में स्थान स्थान पर हास-अश्रु के निर्झर प्रवाहित दिखाई पड़ते हैं। स्थान पर आशा-निराशा की धूप-छाया खिलती-मुंदती मिलती है जो हमारे कलाकारों की मानसिक दशा का सजीव चित्रण अंकित करती है। अश्रु-निर्झर की ऐसी ही सतत स्रोतस्विनी हम महादेवी वर्मा के काव्य में प्रवाहित पाते हैं। वेदना के अजस्र स्रोत उनके काव्य से झर झर बहते हैं।

सर्वत्र मानवीय भावनाओं के इस आरोपण की प्रवृत्ति के कारण हमारे काव्य-संसार में एक प्रलयंकरी झंझावात 'तहस-नहस' का सन्देश लेकर आया। राजनैतिक जगत का विक्षोभ काव्य धारा में बहकर प्रकृति से प्रलय की मांग कर उठा और फल स्वरूप प्रकृति बाला के काली स्वरूप के भी हमें दर्शन हुए। 'दिनकर' और भगवतीचरण वर्मा की क्रान्ति की मांग से पूर्ण भैरव हुंकार विध्वंस की आकांक्षा करती है। पंत जहां घन मंडल से 'नव जीवन के कण' बरसाने का वरदान मांगते हैं वहां भगवतीचरण वर्मा सृजन की सलौनी कल्पना को छिन्न-भिन्न कर घन-मंडल से विनय करते हैं-

बरसो बरसो और सघन घन
महा प्रलय की धार।

हिन्दी साहित्य में प्रकृति बाला ने कितने परिधान पहने और कितने विभिन्न स्वरूपों से मानवीय भावनाओं को विलोड़ित किया है इसका यह संक्षिप्त-सा परिचय है। प्रकृति के इस अपर्याप्त दर्शन से हम देखते हैं कि कभी तो यह बहुरंगिणी अलंकारों से विभूषित हो हमारी भावनाओं को हँसाती-रुलाती है और कभी मानवीय महत्वपूर्ण कार्य से मुग्ध हो उस पर अपना वरदान बिखेरती है। कभी वह मनुष्य को सरल ज्ञानोपदेश द्वारा उचित मार्ग निर्देश करती है और कभी रहस्यमयी चुंदरी ओढ़ दार्शनिकों के लिए गूढ़ चिन्तन का कारण बन जाती है। यही नहीं कभी यह चंचला स्वयं मानवीय स्वरूप धारण कर, छायावादी अवगुंठन से झांक जगत को विमोहित करती है और कभी भीम-भयंकरी हो क्रुद्ध गर्जन करती है। अपने सभी रूपों में वह सदैव आकर्षक और मनोहारिणी है अतः कविगण उसके अंचल को सदा ही अल्हड़ भाव से पकड़े रहते हैं।

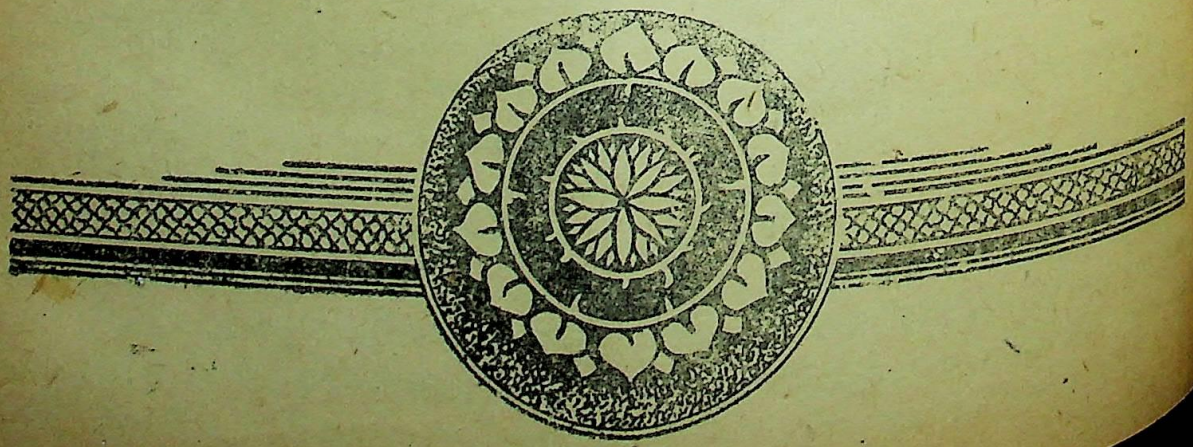

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसखान का समय

श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित एम० ए०

भक्त कवियों में अपना जीवन-चरित्र लिखने की प्रवृत्ति नहीं थी। वे महत्वाकांक्षा को मनुष्य की दुर्बलताओं में गिनते थे। उनके लिए शान्त चित्त से भगवत् भजन करना सबसे बड़ा कल्याण मार्ग था। माया तथा संसार को अनित्य कहकर उसे त्यागने वाले तथा दृढ़ मन, अनादिशक्ति की पद-रज की कामना करने वाले भक्तों को महत्व से क्या प्रयोजन? आराध्य के गुण-गान में लिखे हुए पद अथवा साखी साहित्य के भण्डार को पूर्ण करने के हेतु नहीं, यश के लिए भी नहीं, वरन् भजन गाने तथा पूज्य को प्रसन्न करने के लिए। इसी कारण महाकाव्यों की रचना कर चुकने पर भी उन्हें अपने विषय में उल्लेख करने का कभी कोई अवसर नहीं उपलब्ध हो सका। सब कुछ लिख चुकने के बाद कृष्णार्पण कर देने वाले ज्ञान भक्तों की वीणा से निःसृत स्वरों में एक भी स्वर उनके विषय में नहीं उपलब्ध होता। विनय तथा आत्म ग्लानि की दशा में आत्म-चारित्रिक विषयों का भले ही उल्लेख हो गया हो परन्तु जन्म-व्यक्तित्व इत्यादि विषयों में उनकी लेखनी अधिकतर जड़ ही बनी रही है। अन्तर्साक्ष्य के अभाव में हमें बहिर्साक्ष्य तथा किम्बदन्तियों का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। रसखान का जीवनी, समय इत्यादि के विषय में अन्तर्साक्ष्य से प्रायः नहीं के बराबर सहायता मिलती है। एकाध उदाहरण यदि कहीं उपलब्ध भी होता है तो वह इतना सन्दिग्ध तथा अस्पष्ट है कि उसके मूल में प्रवेश पाने के लिए अनुमान तथा कल्पना का कच्चा डोर पकड़कर कठिन प्रतीत होता है। अतः रसखान के विषय में उपलब्ध बहिर्साक्ष्य अधिक विचारणीय तथा लाभप्रद है।

'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' नामक पुस्तक रसखान के विषय में सब प्रथम बहिर्साक्ष्य प्रमाण है। यह वार्ता गोकुलनाथ कृत मानी जाती है। परन्तु कुछ विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं। असहमत विद्वानों का कथन है कि प्रस्तुत पुस्तक का रचना अठारहवीं शताब्दी के पश्चात हुई। '२५२ वैष्णवों की वार्ता' चाहे प्रामाणिक हो अथवा अप्रामाणिक परन्तु ध्यान देने योग्य विशेष बात यह है कि प्रायः सभी इतिहासकारों तथा विद्वानों ने रसखान पर लेखनी उठाने के हेतु इस ग्रन्थ का आश्रय अवश्य लिया है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उल्लेख किया है कि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में आये हुए विवरण का उल्लेख करते हुए शुक्ल जी ने उक्त वार्ता के अनुसार रसखान के विषय में प्रचलित कथाओं का उल्लेख किया है। शुक्ल जी ने रसखान के कविता काल का अनुमान निम्न शब्दों में किया है "इनका रचनाकाल सं० १६४० के उपरान्त ही माना जा सकता है, क्यों कि गोसाईं विट्ठल नाथ जी का गोलोक वास सं० १६४३ में हुआ। 'प्रेम-वाटिका' का रचना काल १६७१ है। अतः शिष्य होने के उपरान्त ही इनकी मधुर वाणी "प्रस्फुटित हुई होगी।"

श्री० मिश्रबन्धु के अनुसार "इनको बहुत लोग सैयद इब्राहीम पिहानी वाले समझते हैं परन्तु वास्तव में यह महाशय दिल्ली के पठान थे जैसा कि '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में लिखा है।"

डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने आलोचनात्मक इतिहास में '२५२ वैष्णवों की वार्ता' की कथाओं के अतिरिक्त रसखान के काल अथवा जीवन पर कोई नया प्रकाश नहीं डाला।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सन् १९०० से १९२२ तक रसखान विषयक कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में भी रसखान का कोई उल्लेख नहीं है।

श्री० वियोगी हरि 'ब्रज माधुरी सार' में लिखते हैं "कुछ लोग इन्हें सैयद इब्राहीम पिहानी वाले समझते हैं पर '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में इनकी चर्चा नहीं है। यदि ऐसा होता तो स्वयं रसखान 'दिल्ली' और 'पठान' की जगह 'पिहानी' और 'सैयद' लिख देते।"

'हिन्दी के मुसलमान कवि' में भी २५२ वार्ता वाली कथाओं का दुहराया गया है। शिव सिंह ने अपने 'सरोज' में उल्लेख किया है कि रसखान पिहानी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैयद थे परन्तु समय का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है।

'मूल गोसांई चरित' में रसखान के रामचरित मानस सुनने का हाल। दिया हुआ है "मानस को नरों में सब से पहले सुनने का सौभाग्य जनकपुर के रूगारुण स्वामी को प्राप्त था।.....गोसांई जी ने स्वयम् उन्हें 'राम चरित मानस' सुनाया था। फिर संडीले के स्वामी नन्दलाल के शिष्य सुदासलाल जी ने गोसांई जी की मूल प्रति से इसकी प्रतिलिपि की और संडीले जाकर उसे अपने गुरु को सुनाया। तदन्तर इन्हों सुदास से ३ वर्ष तक यमुना के तट पर रसखान उसे सुनते रहे।"[1]

मूल गोसांई चरित की प्रामाणिकता पर सन्देह न करके यदि हम उसके इस उल्लेख को सत्य मान लें तो रसखान ने रामचरित मानस सं० १६३४ के लगभग सुना होगा। कारण कि इस महाकाव्य की रचना प्रायः सं० १६३३ में समाप्त हुई थी। और रसखान ने 'प्रेमवाटिका' की रचना सं० १६७१ में की थी। इसके आधार पर लेखकों के रसखान की अवस्था तिथि का अनुमान सं० १६१५ लगाया है अर्थात् रसखान ने इस ग्रन्थ की रचना प्रायः ५६ वर्ष की अवस्था में की थी। रसखान के मानस-श्रवण तथा 'प्रेम-वाटिका' रचना के मध्य में ३७ वर्षों का अन्तर (सं० १६७१–सं०१६३४) पड़ता है। अनुमान किया जाता है कि रसखान की अवस्था प्रेम वाटिका की रचना के समय ५६ वर्ष की थी अतः उन्होंने मानस २२-२० वर्ष की अवस्था में सुना होगा। इस प्रकार गणनानुसार (सं० १६३४-२४) सं० १६१० रसखान का जन्म संवत निर्धारित होता है।

'सरस्वती' के अगस्त १६२७ ई० के अंक में शील जी ने संवत निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। शील जी के कथनानुसार "दिल्ली नगर मसान"[2] का उल्लेख नादिरशाह के आक्रमण के आधार पर किया है। इस प्रकार शील जी ने सिद्ध किया है कि प्रेम वाटिका की रचना वि० सं० १८०६ तदनुसार सन १७४९ के निकट हुई होगी। परन्तु शील जी का यह अनुमान असंगत प्रतीत होता है। कारण कि साहिबी के हित दिल्ली पर नादिर शाह ने पहली बार सन् १७४९ में ही आक्रमण नहीं किया था, दिल्ली बहुत समय से पठान बादशाहों द्वारा आक्रमणित रही है।

विट्ठलनाथ जी का समय संवत् १६३०-१७०० तदानुसार सन १५७३-१६४३ माना जाता है। रसखान का आविर्भाव इसीके निकट होना चाहिए।

"ठसक छांड़ि रसखान" स्पष्ट है कि रसखान का वंश राज सत्ता को छोड़ चुका था। उनमें महत्वाकांक्षा अवश्य अवशिष्ट थी। अपनी सत्ता को पुनः स्थापित करने के लिए संवत १६१२ तदानुसार सन् १५५५ में सूर वंशीय पठान विशेष उत्सुक हो रहे थे। पर हेमू की हार के साथ उनकी पनपती हुई आशा समूल नष्ट हो गई। सम्भवतः इसी समय के निकट रसखान ने दिल्ली छोड़ी होगी।

इस लेख के तर्कों द्वारा ऊपर यह अनुमान किया जा चुका है कि रसखान का जन्म संवत १६१० के निकट ही था। प्रेम वाटिका की रचना सं० १६७१ है। अर्थात रसखान सं० १६७१ के कुछ वर्ष बाद तक अवश्य जीवित रहे होंगे। अतः यदि हम रसखान की आयु ८५ वर्ष भी मान लें तो उनका समय संवत १६१० से १६९५ तक निश्चित होता है।

१—गोस्वामी तुलसीदास—पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० ८६

२—देखि गदा हित समति की, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा वंस की ठसक छांड़ि रसखान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन कन्नड़ वाङ्मय

श्री के० भुजबली शास्त्री विद्याभूषण

दक्षिण भारत में प्रचलित प्रख्यात पंच द्राविड़ भाषाओं में कन्नड़ भी एक है। इस भाषा-वर्ग की अवशिष्ट चार भाषाएं तमिल, तेलुगु मलेयालम एवं तुलु हैं। द्राविड़ भाषाएं संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं से भिन्न इसलिये मानी जाती हैं कि एक तो इन भाषाओं में व्यवहारपर्याप्त स्वतन्त्र शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि इन भाषाओं को किसी भी आर्य भाषा से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। दूसरी बात यह है कि इस भाषा-वर्ग का व्याकरण संस्कृत आदि आर्य भाषाओं के व्याकरणों से बहुत कुछ भिन्न है। इसके लिये कुछ उदारण इस प्रकार हैं—

द्राविड़ भाषाओं में लिंग अर्थपरक है; संधिक्रम भिन्न है; संज्ञाओं के एक वचन तथा बहु में एक ही प्रकार की विभक्तियां हैं; गुणवाचक शब्दों में तरतम भाव नहीं है; सम्बन्धार्थक सर्वनाम का सर्वथा अभाव है; कर्मणि प्रयोग कम हैं; क्रियाओं में निषेधरूप है और कृत्तद्धित प्रत्यय स्वतन्त्र हैं।

ऊपर कहा गया है कि द्राविड़ भाषा-वर्ग में व्यवहार-योग्य स्वतन्त्र शब्द अधिक संख्या में पाये जाते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस भाषावर्ग में संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्द हैं ही नहीं। पीछे समय के प्रभाव से संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्दों को कौन कहे, क्रमशः इनमें उर्दू, अंग्रेज़ी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी आ मिले हैं। विदेशी शब्दों की यह रफ़्तार केवल द्राविड़ भाषाओं में ही नहीं, प्रत्युत सभी भारतीय भाषाओं में इसी प्रकार जारी रही। इस प्राकृतिक अटल नियम को कोई रोक नहीं सकता। एक दृष्टि से यह है भी उपादेय। अन्यथा किसी भी भाषा के शब्द-भाण्डार की वृद्धि नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, प्रत्येक भाषा की सीमित शब्दावली से काम भी नहीं चल सकता। बल्कि भाषातत्त्व के धुरंधर विद्वान डा० कालूडीवेल के मतानुसार अक्क, अक्क, कुटि, कोट, नीर, वल्लि, मीन, एड, मरुत्त, हेरंब, मद्दु, आम्र, मुकुल, कुंतल, पालि, मंड, पल्लि, काक, कोकिल, मेक, सीर, ताल, वरुक, उल्क, तटित् या तडित् मलय, आलि, कलि, गंड, मुन्दि, खलीन, तल्प, कल्य, खर्जु आदि शब्द द्राविड़ भाषाओं से ही संस्कृत कोषों में लिये गये हैं।[1] इसी प्रकार दीनार, होरा आदि शब्द संस्कृत में लैटिन, ग्रीक आदि से लिये गये हैं। कई पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों का मत है कि संस्कृत व्याकरण में प्रचलित ध्वनिविषयक खास कर टवर्गाक्षर द्राविड़ भाषाओं से ही लिये गये हैं।

यों तो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि स्थानों में उपलब्ध चित्र-लिपियों से द्राविड़ भाषाओं का मूल वेदपूर्व काल सिद्ध होता है। ब्राह्मी लिपि की तरह उस समय भी इन भाषाओं की लिपि मौजूद थी।[2] फिर भी खेद है कि दूसरी शताब्दी के पूर्व का कन्नड़ साहित्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। हां, द्वितीय शताब्दी के कुछ कन्नड़ शिला-लेख हमें अवश्य प्राप्त हुये हैं। साथ ही साथ ज्ञात हुआ है कि मिस्र में इसी शताब्दी के लिखे गये एक नाटक में भी कुछ कन्नड़ शब्द वर्तमान हैं[3]। सुदीर्घ काल से ही कन्नड़ साहित्य की ओर ध्यान देने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिये जिस समय हिन्दी, बंगला, मराठी एवं गुजराती आदि भाषाओं का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय भी कन्नड़ साहित्य का भण्डार अनेक बहुमूल्य ग्रंथ रत्नों से भरा हुआ था।

प्राचीन कन्नड़ साहित्य को उच्च एवं प्रौढ़ बनाने का सारा श्रेय जैन आचार्यों एवं कवियों को दिया जाता है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जैनों के ही द्वारा कन्नड़ भाषा का उद्धार तथा प्रसार हुआ है और उन्होंने ही इस भाषा के साहित्य को एक उच्च श्रेणी की भाषा के गौरव-योग्य बनाया है। कन्नड़ साहित्य को उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचाने में असीम प्रयत्न करके इन्होंने उक्त साहित्य में सदा के लिये अपना नाम अमर कर दिया है। इसीसे आज भी सम्पूर्ण कर्नाटक बड़े आदर के साथ इनके सुयश का गीत गा गाकर अपनी कृतज्ञता

१—'कर्णाटक कविचरिते' भाग ३ की प्रस्तावना देखें।

२—'कन्नड़ संस्कृति' पृ० ८० देखें।

३—'कर्णाटक कविचरिते' भाग १ एवं २ की प्रस्तावना देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट करता है। १३वीं शताब्दी तक कन्नड़ भाषा के जितने उद्भट ग्रंथकर्त्ता हुये हैं वे प्रायः सब के सब जैन हैं।

'जैन ही कन्नड़ भाषा के आदि कवि हैं। आज तक की उपलब्ध सभी प्राचीन एवं उत्तम कृतियां जैन कवियों की ही हैं। ग्रंथ रचना में जैनों के प्राबल्य का काल ही कन्नड़ साहित्य की उच्च स्थिति का काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड़ भाषा के सौन्दर्य एवं कांति के विशेषतया कारण भूत हैं। उन्होंने शुद्ध और गंभीर बोली में ग्रंथ रचकर ग्रंथ-रचना कौशल को उन्नत स्तर पर पहुंचाया है। प्रारम्भिक कन्नड़ साहित्य उन्हीं की लेखनी द्वारा लिखा गया है। कन्नड़ भाषाध्ययन के सहाय-भूत छन्द, अलंकार, व्याकरण और कोष आदि ग्रंथ विशेषतः जैनों के द्वारा ही रचे गये हैं।'

बोल-चाल की भाषा को ग्रंथ रूप देने का सारा श्रेय जैन कवियों को प्राप्त है। उपलब्ध कन्नड़ साहित्य में नृपतुंग का 'कविराजमार्ग' ही आदिम ग्रंथ एवं कवितागुणार्णव महाकवि आदि पंप ही आदि कवि है। कर्नाटक के राजकीय इतिवृत्त से भी जैनों का निकट सम्बन्ध है। कविचक्रवर्ती महाकवि रन्न काव्य-निर्माण-कला में महाकवि भवभूति से कम नहीं था। जिनसमय दीपक यह रन्न वस्तुतः कन्नड़ साहित्य का एक समुज्ज्वल रत्न था। कन्नड़ काव्य में 'कविचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त पोन्न, रन्न तथा जन्न ये तीनों वास्तव में जैन 'रत्न-त्रय' हैं। विलक्षण कविता सामर्थ्य प्राप्त उपर्युक्त महाकवि पंप अद्वितीय कीर्तिशाली कवि था। इसी प्रकार महाकवि नाग चन्द्र के द्वारा प्रशंसित 'अभिनववाग्देवी' उपाधि-धारिणी कंति आदि-कवयित्री है।

कन्नड़ जैन पुराणों में आदि पंप [ई० सन् ९४१] का आदि पुराण, पोन्न [ई० सन् लगभग ९५०] का शान्तिनाथ पुराण, रन्न [ई० सन् ९९३] का अजित नाथपुराण, चाकुण्डराय [ई० सन ९७८] का चाकुण्ड-राय पुराण, नागचन्द्र [ई० सन् लगभग ११००] का मल्लिनाथपुराण, कर्णपार्य [ई० सन् लगभग ११४०] का नेमिनाथपुराण, अग्गल [ई० सन् ११८९] का चन्द्रप्रभपुराण, आचण्ण [ई० सन् लगभग ११९५] का वर्धमानपुराण, नेमिचन्द्र [ई० सन् लगभग ११७०] का अर्धनेमिपुराण, बन्धुवर्मा [ई० सन् लगभग १२००] का हरिवंशपुराण, पार्श्वपण्डित [ई० सन १२०५] का पार्श्वनाथ पुराण, जन्न [ई० सन् १२०९] का अनन्तनाथपुराण, द्वितीय गुणवर्मा [ई० सन् लगभग १२२५] का पुष्पदन्तपुराण, कमलभव [ई० सन् लगभग १२३५] का शान्तीश्वरपुराण, मधुर [ई० सन् लगभग १३८५] का धर्मनाथपुराण, मंगरस [ई० सन् १५०८] का नेमिजिनेशसंगति, शान्तिकीर्ति [ई० सन् १५१९] का शान्तिनाथपुराण, दोड्डय्य [ई० सन् १५५०] का चन्द्रप्रभपुराण और रत्नाकर वर्णी [ई० सन् १५५७] का भरतेशवैभव प्रमुख हैं। इनमें पदलालित्य, प्रसाद, और सौष्ठव आदि काव्योचित सभी गुण मौजूद हैं।

इसी प्रकार षट्पदि ग्रंथों में मंगरस का सम्यक्त्व-कौमुदी, कुमुदेन्दु [ई० सन् ल० १२७५] का कुमुदेन्दु-रामायण, कवि भास्कर [ई० सन् १४२४] का जीवं-धरचरित, कल्याणकीर्ति [ई० सन् १४३९] का ज्ञान-चन्द्राभ्युदय, बोम्मरस [ई० सन् १४८५] का सनत्कुमारचरित, कोटेश्वर [ई० सन् १५००] का जीवंधर षट्पदि मंगरस का जयनृपकाव्य; सांगत्य में रत्नाकर वर्णी का भरतेशवैभव, पद्मनाभ [ई० सन् ल० १६८०] का रामपुराण, चन्द्रम [ई० सन् १६४५] का गोम्मटेश्वरचरितः शतक ग्रंथों में रत्नाकर वर्णी का शतत्रयी; व्याकरण ग्रंथों में नागवर्मा [ई० सन् ल० ११४५] का भाषा-भूषण तथा शब्दस्मृति, केशिराज [ई० सन् ल० १२६०] का शब्दमणिदर्पण, भट्टा-कलंक [ई० सन् १६०४] का शब्दानुशासन; छन्दः-शास्त्र में नागवर्मा का छन्दोम्बुधि एवं अलंकार ग्रन्थों में नृपतुंग [ई० सन् ८१४—८७७] का कविराजमार्ग, नागवर्मा का काव्यावलोकन, उदयादित्य [ई० सन् ल० ११५०] का उदयादित्यालंकार और साल्व [ई० सन् ल० १५५०] का रस-रत्नाकर आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त जैन कवियों ने वैद्यक, ज्योतिष आदि लोकोपकारी विद्याओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। वैद्यक ग्रंथों में सोमनाथ [ई० सन् ल० ११५०] का कल्याणकारक, मंगराज [ई० सन् ल० १३६०] का खगेंद्रमणिदर्पण श्रीधर देव [ई० सन् ल० १५००] का वैद्यामृत, साल्व का वैद्य सांगत्य, अभिनवचन्द्र [ई० सन् ल० १४००] का अश्वशास्त्र, कीर्तिवर्मा [ई० सन् ल० ११२५] का गोवैद्य; ज्योतिष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में श्रीधराचार्य [ई० सन् १०४९] का जातक-तिलक ; गणित ग्रंथों में राजादित्य [ई० सन् ल० ११२०] के व्यवहार गणित, क्षेत्र गणित, व्यवहार रत्न, वृत्तवर्तात, चित्रहसुगे, जैनगणितटीकोदाहरण एवं सूपशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथों में मगरस का सूपशास्त्र आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाकवि नागचन्द्र अगर उपासना प्रिय हैं तो कवि अभिचन्द्र पक्के शृंगारोपासक हैं। कवि चक्रवर्ती जन्न फिर अहिंसा प्रेमी हैं तो विरक्त कवि बन्धुवर्मा अध्यात्म-प्रिय हैं इसी प्रकार महाकवि अग्गल अगर संस्कृत अनुवादी थे तो कवि अण्डय्य कन्नड पक्षपाती। सर्व-प्रथम संस्कृत भाषा के बहुमूल्य भूषणों को पहना कर कन्नड वाग्देवी को सजाने का श्रेय एवं पीछे उस अलंकार भार से दुःखी उसे उस भार से मुक्त करने का श्रेय इन्हीं जैन कवियों को ही प्राप्त है।

साथ ही साथ कन्नड़ भाषा में जब क्रमशः शिथिलता आने लगी, तब उसमें दृढता लाने वाला वैयाकरण नागराज भी जैन था। इस प्रकार प्रत्येक पहलुओं से जैन कवियों ने कन्नड भाषा की अटूट सेवा की है। यह अनुपम सेवा कभी भी भुलाई नहीं जा सकती। जैन ग्रन्थों में हमें केवल काव्य धर्म ही नहीं; किन्तु आत्म-धर्म, साम्यवाद, अपेक्षावाद, अहिंसावाद और स्याद्वाद आदि सभी मिल रहे हैं। पुराणों में भी हमें अभीष्ट महापुरुष की जीवनी के साथ साथ अनुकरणीय आदर्श चरित्र का संकेत भी मिलता है। अगर इनके पूर्वार्ध में शृङ्गार रस की स्वच्छ यमुना बहती है तो उत्तरार्ध में नियम से शान्तरस की विमल गंगा बहती मिलेगी। जैन पुराण एवं काव्यों में उल्लेखनीय यह एक खास बात है।

पंप, रन्न, नागचन्द्र तथा जन्न इन जैन कवियों के नाम कन्नड साहित्य में आचन्द्रार्क अमर रहेंगे। अण्डय्य, नेमिचन्द्र जैसे प्रौढ़ कवियों ने कथाओं को भी लिखा है जो कि बीसवीं शताब्दी के नामी उपन्यासों से किसी भी दृष्टि से कम नहीं हैं। रसिक कवि रत्नाकर का भरतेशवैभव तो एक अद्भुत चीज है। इससे रत्नाकर के विशाल अध्ययन एवं व्यापक ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है। पम्प तथा रन्न का महाभारत एवं नागचन्द्र की रामायण दुर्योधन तथा रावण जैसे व्यक्तियों में भी आदर-बुद्धि उत्पन्न कराती है। सारांशतः जैन कवियों ने हमें काव्य, काव्य-लक्षण, जीवनोपयुक्त ज्ञान आदि सब कुछ दिया है।

गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होय्सल, विजयनगर तथा मैसूर आदि शासक उपर्युक्त मान्य कवियों के पोषक एवं प्रोत्साहक बने रहे। इन्हीं राजामहाराजाओं का आश्रय पाकर पंप, रन्न, पोन्न और जन्न जैसे महाकवियों ने अपनी अमर कृतियों के द्वारा कन्नड वाग्देवी का मुख उज्ज्वल किया है।

गीत

श्री महेन्द्र भटनागर

आज ऊसर भूमि पर गंगा बहाओ !

रेत के कण तापमय भीषण झुलसते,
दृढ़ कड़े पाषाण भू पर गिर चटकते,
अग्नि की लहरें हवा में उड़ रही हैं ;
आँधियां नभ में गरजती मुड़ रही हैं,
रूप घन का शान्तिमय जग को दिखाओ।

त्रस्त, नत मानव प्रकम्पित, पात से झर,
झुक गए सब आततायी के चरण पर,
श्वान रिरियाते हुए से चोट मृत स्वर
थूक, ठोकर, त्रास, दुख, निर्भय मरण पर
आत्म धन उत्सर्ग की ध्रुव लौ जगाओ !

कर रहा उपहास सूनी रात कुहरा,
दिगदिगन्तों में गया छा ; विश्व बहरा
सुन न पाया जो घृणा के स्वर रुँधे से,
मानवी स्वर कटु विवशता में बँधे से,
इसलिए इन्सानियत को फिर बुलाओ !

बह चुकीं हैं खून की नदियाँ, विरानी
भू हुई, सत् की असत् ने कुछ न मानी,
स्तब्धता, भय को लिए फूटा सबेरा
नाश का आह्वान सूचक, डाल घेरा,
सूर्य पर छाये हुए बादल हटाओ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टालस्टाय और नारी

श्री गोपालकृष्ण मल्लिक

"कौन-सी उँचाई है जहां स्त्री चढ़ नहीं सकती? कौन-सा स्थान है जहां वह पहुंच नहीं सकती! हजारों अपराध करो, वह क्षमा कर देती है। जब किसी बात पर अड़ जाय तो संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। ऐ देवी! बिना तेरे संसार के पुरुषों का क्या हाल होता? निराशा, उदासी, दुख सब मिलकर तेरे हृदय से प्रेम-भाव को नहीं छीन सकते।" — कार्लटन

काउण्ट टालस्टाय की गणना यूरोप के महापुरुषों में की जाती है। वह एक महान विचारक और कला-मर्मज्ञ थे। जीवन को उच्च और सुन्दर बनाने वाले प्रायः प्रत्येक विषय पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। मौलिकता और सूक्ष्मता उनकी विचार-प्रणाली के मुख्य अंग हैं। उनके अपने समय में स्त्रियों की जो दुरावस्था थी उस पर भी उन्होंने अपनी कलम उठायी। स्त्री-पुरुष मानव जीवन के अभिन्न रूप हैं। काउण्ट टालस्टाय ने स्त्री जीवन पर "स्त्री और पुरुष" नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें स्त्री-जीवन की हीनावस्था, उसकी मार्मिक और अन्तःपीड़ा का उन्होंने दिग्दर्शन कराया है। इसे लिखने में समाज एवं समय की छोटी से छोटी आवश्यकता पर काफ़ी ध्यान दिया गया है। साथ ही आरम्भ से अन्त तक इस बात का खयाल रखा गया है कि स्त्रियां ऐसी बनें जिससे मानव-संस्कृति का आदर्श पूरा हो। इसकी रचना इस बात को ध्यान में रखकर की गई है कि स्त्रियां दीन-हीन नहीं भविष्य की आशा से भरी हुईं, अपने अन्दर विश्वास रखने वाली बनें, वे लज्जित, संकुचित अबलायें नहीं नारीत्व की कोमलता और प्रकाश से पूर्ण बनें, वे कुंठित, मृतभाव और प्राणहीन माताएं नहीं, आत्म-विसर्जन की प्रतिमा और अपने हृदय के अमृत से भविष्य की भावी सन्तति को सींचने वाली माता बनें।

नारी और उसके जीवन-आदर्श का विचार करते हुए एक दो वाक्यों में टालस्टाय का विचार इस प्रकार है—

"जीवन भावनाओं में उड़ने का नाम नहीं है, जीवन प्रतिक्रिया में बहने का नाम नहीं है, लोक-प्रियता प्राप्त करने का नाम भी नहीं है। जीवन सिद्धान्त एवं भावों के संग्रथन और साधनाओं एवं विधियों के समझौते का नाम है।"

दुनिया सुख का मार्ग खोजने में निकल है। वह धीरे-धीरे चलती है, वह दौड़ती है, वह ठहरकर सोचती है, वह रोती और अट्टहास करती है। वह सागर की छाती चीरकर पृथ्वी को नापती है, वह पहाड़ लांघकर आकाश को छूती है! वह दूसरों से लड़ती है, गुलाम बनाती है; वह मनुष्य को पशु होना सिखाती है। वह दूसरों से मेल करती है; सहायता करती है और दूसरों को मित्र बनाती है; पशु को मनुष्य, मनुष्य को मनुष्य बनाती है। ये सुख की खोज के साधन हैं—वह सुख के लिए विकल है, वह अधीर होकर शांति के लिए छटपटा रही है पर वह शांत होकर ही शांति पा सकती है, यह बात वह भूल गई है।

समाज का मूल व्यक्ति है और इसलिए व्यक्तित्व का मूल भी मनुष्य का व्यक्तित्व है। आत्मशोध और आत्मनिरीक्षण की भावना उदय होने से व्यक्ति का विकास होता है और व्यक्ति के विकास होने से समाज का कल्याण होता है। समाज व्यक्ति का एक विकसित रूप है। इसलिए सर्व प्रथम व्यक्ति की पवित्रता पर टालसटाय की भावना केन्द्रित है। एक पवित्र लड़की के कर्त्तव्य का जिक्र करते हुए उन्होंने अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखा है :—

"एक पवित्र लड़की को क्या करना चाहिये? उसे को प्रलोभनों से दूर और पवित्र रखना चाहिए। ईश्वर, मनुष्य की पूर्णतया सेवा करने के योग्य बनने के लिए उसे चाहिए कि अधिकाधिक पवित्र बनने की कोशिश करे। मानसिक पवित्रता की प्राप्त करने की कोशिश करे।" (स्त्री और पुरुष; पृष्ठ २४)

एक प्रश्न, जो इस समय बहुत जोर पकड़ रहा है वह है स्त्री-पुरुषों का अथवा पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध। इनका परस्पर का व्यवहार और आचरण किस प्रकार होना चाहिए, जिससे प्रेम-ग्रंथि अटूट रहे और जीवन-नौका स्नेह-वीचि पर अबाध विचरण करती रहे। टालसटाय ने बताया कि स्त्री-पुरुष का संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक नहीं है; सिर्फ काम तृप्ति और सन्तानोत्पति मात्र के लिए नहीं है बल्कि—

"स्त्री-पुरुष की शारीरिक एकता मानव-जीवन के उच्च विकास की एक आवश्यक शर्त है। विवाह तमाम परिपक्व वय के स्त्री-पुरुषों के लिए प्राकृतिक और वांछनीय अवस्था है। यह कोई अनिवार्य नहीं कि उनका शारीरिक सम्बन्ध हो ही, वह सम्मिलन केवल आध्यात्मिक ही हो सकता है। विवाहेच्छु स्त्री-पुरुषों की परिस्थिति और प्रकृति तथा इससे भी बढ़कर योग्यायोग्य के विवेक के अनुसार विवाह शारीरिक या आध्यात्मिक सम्मिलन के नजदीक पहुंच सकता है। पर यह तो निस्संदेह समझिये कि सम्मिलन जितना ही अधिक आध्यात्मिक होगा उतना ही अधिक संतोष देनेवाला होगा।" (स्त्री और पुरुष, पृष्ठ ३३)

"स्त्री को भले ही वह तुम्हारी पत्नी हो—एक भोग और आमोद-प्रमोद की सामग्री यदि समझते हो तो तुम व्यभिचार करते हो। शारीरिक नियम की पूर्ति के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध के मानी हैं एक भागीदार या उत्तराधिकारी का प्राप्त करना। वह स्वार्थमय आनन्द से मुक्त रहता है। पर विषयानन्द के खयाल से तो वह पतन है। सर्व साधारण पुरुष के लिए चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित यह पाप है कि वह स्त्री को अपनी भोग-सामग्री समझे।"

यह बिलकुल सत्य है कि स्त्री के विषय में कितनी ही हानिकारक और पुरानी धारणायें हमारे समाज में प्रचलित हैं। स्त्रियों के लिए सिर्फ पुस्तकालय और अन्य सुविधायें खोलने वाला समाज उनके लिए रास्ता साफ न कर सकेगा और न यह उनके लिये अधिक कल्याणकर सिद्ध होगा। इस सम्बन्ध में टालस्टाय ने लिखा है—

"किसी भी काम के विषय में यह न समझा जाय कि वह केवल स्त्रियों का ही काम है और उसे करते हुए उन्हें बुरा मालूम हो। बल्कि शारीरिक तौर पर कमज़ोर समझकर हमें प्रत्येक काम में उसकी सहायता करनी चाहिए, जितना हो सके, हमें उसके काम को हलका करने की कोशिश करनी चाहिए।

स्त्री के अधिकारों को लेकर आज गरमा-गरम बहस और वाद-विवाद चलता रहता है। स्त्रियों की ओर से आवाज निकाली जा रही है कि पुरुषों जितना ही उसको अधिकार और स्वतंत्रता होनी चाहिए—आदि-आदि। स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए वे कहते हैं—

"जो स्त्री, पुरुषों के जैसा काम और स्वाधीनता चाहती है, वह यथार्थ में अनजाने स्वच्छन्दता की अभिलाषी है। फलतः वह जहां ऊपर चढ़ने की, उन्नति करने की सोच रही है, उसी में उसकी अवनति है। प्रत्येक स्त्री और पुरुष का धर्म है—मानव-जाति की सेवा। इस सार्वभौम तत्व को तो, मेरा खयाल है, सभी नीतिमान् पुरुष मानेंगे। इस कर्त्तव्य की पूर्त्ति में स्त्री और पुरुषों के बीच उसकी पूर्ति के साधनों की योजना के अनुसार महान भेद है।"

"तब सवाल उठता है कि क्या स्त्री हमेशा पुरुषों से निम्न होती है? बिलकुल नहीं। अविवाहित स्त्रियां तो प्रत्येक बात में पुरुषों के समान होती हैं। स्त्रियां इस समय केवल समानता का ही नहीं, श्रेष्ठता का भी दावा कर रही हैं। बात यह है कि हमारा पारिवारिक जीवन विकासशील है। उसमें पुरानी प्रथा का भी कुछ समय के लिए छिन्न-भिन्न होना अनिवार्य है। स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध एक नई शक्ल धारण करने जा रहा है, पुरानी शक्ल टूट रही है।

"मैं मानता हूं कि स्त्रियों के अधिकार पर कोई नियंत्रण न हो, उसका आदर और प्रेम पुरुषों के समान किया जाय और अधिकारों के विषय में भी वे पुरुष के समान हों। पर यह कहना कि एक औसत औरत में एक साधारण पुरुष के जितनी ही बुद्धि है, आज के समय गलत होगा।"

लड़के-लड़कियों के प्रेम के सम्बन्ध में आज किसी न किसी प्रकार पाश्चात्य सभ्यता की ताईद और अनुकरण किया जा रहा है। यह भूल है। इसको स्पष्ट करते हुए महात्मा टालस्टाय ने इस प्रकार लिखा है—

"स्त्री-पुरुष सम्बन्धी प्रेम-विषयक जो वर्तमान कल्पनायें हैं, उन्हें बदल दें। माता पिताओं द्वारा लड़के-लड़कियों को यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाह के पहले तथा बाद में स्त्री-पुरुष का आपस में प्रेम करना और बाद में स्त्री-पुरुष का आपस में प्रेम करना और उसके बाद विषय भोग में मग्न हो जाना, कोई काव्यमय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उच्चकोटि की प्रशंसनीय बात नहीं है। यह तो पशु-जीवन का चिह्न है, जो मनुष्य को नीचे गिरा देता है।"

लोग मानते हैं कि लड़का जन्म भर कुँवारा रह सकता है, लड़की नहीं। और इसीलिए लड़की की अनिच्छा से भी उसकी शादी को अनिवार्य मानकर अपनी लाचारी में जिस-तिस तरह से शादी कर देने में उतारू होते हैं। ऐसे लड़के कितनी अनिच्छा से अविवाहित होते हैं जो स्वेच्छाचारी और कुमार्गगामी होते हैं। स्त्रियाँ अविवाहित नहीं रह सकतीं, इसका उन्हें अधिकार नहीं! हमारा विचार इसमें कितना असंस्कृति-मूलक, भूल तथा प्रमाद से भरा है वह महात्मा टालस्टाय की निम्न पंक्तियों से जान सकेंगे—

"जनता में यह धारणा फैली हुई है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अवश्य ही विवाह करना चाहिए इसको त्याग कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह मानना चाहिए कि स्त्री और पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी पवित्रता की रक्षा करे, जिससे अपनी तमाम शक्तियों को परमात्मा की सेवा में अर्पण करने में उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न हो। पुरुष अविवाहित रह सकता है तो स्त्री भी। पुरुष को इसका अधिकार है तो स्त्री को भी सहज रूप से यह अधिकार प्राप्त है।" (स्त्री और पुरुष, पृष्ठ ७८)

"पर समाज की यह कल्पना कि लड़की को अविवाहित रहना, चर्खा चलाते रहना, बहुत बुरा है, सत्य से उतनी ही दूर है, जितनी कि अन्य कई महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्ध रखने वाली समाज की धारणाएँ। ब्रह्मचारी रहकर मनुष्य जाति की सेवा करना, दीन-दुखियों की संकट में सहायता करना किसी भी विवाहित जीवन से कहीं अधिक श्रेयस्कर है। सभी मनुष्य इस कथन की सत्यता को स्वीकार न कर सकेंगे। परमात्मा ने जिनको निर्मल विवेक दिया है वही इसकी यथार्थता का अनुभव कर सकेंगे।" (स्त्री और पुरुष, पृष्ठ १३१)

टालस्टाय की एक बेटी उनकी सेवा के लिए आग्रह पूर्वक कुमारी रही। टालस्टाय ने कभी भी उस पर जबरन विवाह का प्रस्ताव न रक्खा। विवाह के अनेक संदेश आने पर भी उसने विवाह का विचार तक न किया। अन्त में पिता की मृत्यु के बाद कोई ४६ वर्ष की उम्र में उसने विवाह किया।

इसके साथ ही ब्रह्मचर्य, मानव-जाति की सेवा, आत्मिक-विकास आदि के सम्बन्ध में उनका विचार विश्व-वंद्य गांधी जी से मिलता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

"मैं समझता हूँ कि मनुष्य के कल्याण के लिए मानव-जाति की सेवा के लिये यह आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री दोनों पूर्ण ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करने का उद्योग करते रहें और इसके पश्चात उनके लिए इसका परिणाम वही होगा जो होना चाहिए। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जब मनुष्य आवश्यकता से अधिक प्रयत्न करेगा तब वह अवश्य उच्चता तक पहुँच सकेगा। परन्तु यदि इसके विपरीत मनुष्य जान-बूझ कर शारीरिक सम्बन्ध के लिए ही प्रयत्न करता रहेगा जैसा कि इस समय हम लोगों में होता है, चाहे विवाह के रूप में ही क्यों न हो, उसका उन बातों में फँस जाना (पतन) अनिवार्य है, जो अनुचित (अन्याय) और विकार युक्त हैं।" (स्त्री और पुरुष, पृष्ठ ९३)

"प्रत्येक लड़की से और खासकर उनसे जिनके अन्दर आध्यात्मिक शक्ति ने काम शुरू कर दिया है, मैं यह सिफारिश करूंगा और सलाह दूंगा कि वह समाज की उन बातों की ओर ध्यान न दे, जिसके देखने मात्र से विवाह की आवश्यकता, कल्पना या औचित्य दिखाई देता हो। यथार्थ में वे विवाह से सम्बन्ध रखनेवाली तमाम बातों को टालती रहें। उपन्यास, संगीत, गपशप, नाच-खेल, ताश आदि चटकीले कपड़ों से भी दूर रहें। सचमुच घर पर रहकर अपना कपड़ा सीना या कोई दूसरा उपयोगी काम करना, बाहर इधर-उधर अधिक से अधिक खुश-मिजाज लोगों के साथ घंटों आमोद-प्रमोद में बिताने की अपेक्षा आनन्द-दायक है। फिर यह आत्मा के लिए कितना फायदेमन्द है!"

एक ज़बर्दस्त प्रश्न स्त्रियों के स्वरूप के विषय में है। यहां स्वरूप से मतलब बाह्य सौन्दर्य से नहीं, बल्कि आन्तरिक भाव से है। हमारा सनातन आदर्श था कि स्त्रियां शक्ति हैं, पवित्रता की मूर्ति हैं, प्रेम की उद्गम हैं। किन्तु आज हम उनको अपनी दासी या चेरी मानते हैं। और उन पर मनमाना रोब गांठते हुए गर्व अनुभव करते हैं और हमेशा उन्हें नीचा समझते हैं। उनके स्वरूप के विषय में टालस्टाय ने थोड़े ही शब्दों में महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र रखा है—
...स्त्री-धर्म सबसे ऊँचा—सर्वश्रेष्ठ मानव धर्म है। मेरा
...है कि स्त्रियां, पुरुषों से किसी बात में कम नहीं
...उनके अन्दर भी वही आत्मा है जो पुरुषों में है,
...भी वही चेतना है जो पुरुषों में है; कर्त्तृत्व-शक्ति,
...और बलिदान की भावना, विचार तथा बुद्धि की
...और स्रोत तथा भंडार उनमें भी वही है जो पुरुषों
...स्त्रियों को पुरुषों से किसी भी प्रकार हेटा समझना
...असत्य है, जो हमें प्रलय के निकट ला कर खड़ा
...देगा।"

मानव जाति के लिए यह संकट का काल है। समाज अपनी समस्याओं को लेकर चिन्तित और विक्षिप्त है। जो विचारक हैं वे कुछ न कर सकने की निष्फलता से भरे हुए हैं। परिस्थिति का निर्माण कर सकने की शक्ति रखने का दावा मनुष्य भूल गया है। लोग कहते हैं, अमुक बात गलत है, पर उसके सिवा क्या किया जा सकता है यह बहुत कम लोग सोचते हैं।

स्त्री-सम्बन्धी महत्वपूर्ण गुत्थी पर काउण्ट टालस्टाय ने महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है—उसे एक प्रकार से मौलिक रूप से सुलझाने का यत्न किया है और हमारा खयाल है कि टालस्टाय को उसमें पूरी सफलता भी मिली है।

—

प्रयाण-गीत

श्री शरदेन्दु

...ो नौजवां बढ़े चलो, स्वतन्त्रता पुकारती,
...सी भिखारिणी जननि सतृष्ण दृग पसारती।
...तुम्हारा प्रण अटल रहे, अशेष रक्त दान दो,
...सपूत मातृभूमि के हो, आज यह प्रमाण दो।

...क़दम-क़दम बढ़े चलो प्रगति कहीं रुके नहीं,
...करोड़ों बिजलियां गिरें, तुम्हारा सिर झुके नहीं;
...ो चल पड़ा रुके नहीं अरे वतन का कारवां,
...सपूत मातृ भूमि के—दिखा दो वीर नौजवां।

...रेक कदम में जोश हो, विनाश, इन्क़लाब हो,
...नियति उधर को चल पड़े जिधर तुम्हारा पाँव हो;
...तुम्हारे साथ युग बहे, हवा तुम्हारे साथ हो,
...विजय उधर चली चले जिधर तुम्हारा हाथ हो।

...तुम्हारे रक्त से सदा रही हैं लाल वेदियां,
...नहीं सदा से भर रहे मरण की शून्य गोदियां।
...क्या गगन में हँस रही तुम्हारे रक्त में रँगी,
...तुम्हारे ख़ूँ की लालिमा ही जा पलाश में पगी।

क़दम-क़दम बढ़े चलो स्वतन्त्रता का पर्व है,
सपूत मातृ भूमि के—जननि को तुम पै गर्व है।
विजय हुई स्वतन्त्र हो, जो मर गये शहीद हो,
बढ़ो, तुम अपनी शान के, गुमान के प्रतीक हो।

स्वतन्त्रता पुकारती—अशेष रक्त दान दो,
सपूत मातृभूमि के हो—आज यह प्रमाण दो।
तुम्हें कुचलने को बढ़ी हैं दानवों की पंक्तियाँ,
तुम्हें मसलने को उठीं नियति की क्रूर शक्तियाँ;

मगर तुम्हारे ख़ून में भरी हुई जवानियां,
तुम्हारा साथ दे रहीं अतीत की कहानियाँ—
करोड़ों ही स्वतन्त्रता पर आत्मबलि चढ़ा गये,
लहू का अपने दान दे अमित दिये जला गये;

यह उनके दिव्य तेज का जो जल रहा प्रकाश है
तुम्हारा पथ समक्ष है, बढ़ो न कोई त्रास है!
उतारना हमें अरे स्वतन्त्रता की आरती,
अमर हमारा देश है, अमिट हमारी भारती।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जीत या हार !

प्रो० श्री रंजन एम० ए०

अजमेर जेल की कोठरी में बन्द था। उस समय जापान को किसी भी प्रकार जल्द से जल्द ख़त्म करने की मित्रराष्ट्रों की योजनायें चल रहीं थीं। प्रशान्त युद्ध में रूस का सक्रिय सहयोग मिल सके इसके लिये भी राजनीतज्ञों के दाँव-पेच जारी थे। लड़ाई का एक पहलू ख़त्म हो चुका था और इस ख़ात्मे ने इत्तहादी मुल्कों की ऊपरी शान को काफी बढ़ा दिया था। जीत की इस पहिली ख़ुशी के इज़हार में एक जोश और उमंग थी और साथ ही साथ थोड़ी दूर पर 'प्रशान्त' की जीत भी दिखलाई पड़ने लगी थी। क्योंकि अब तो सवाल सिर्फ़ वक्त का था, नतीजे का नहीं। नतीजा तो साफ था कि जापान हारेगा और बिना शर्त हथियार डाल देगा। पर आश्चर्य उस दिन हुआ जब थोड़े ही दिनों बाद एक दिन जेल के डाक्टर आकर कहते हैं—"आपको मालूम है, जापान ने हथियार डाल दिये !"

"हथियार डाल दिये ?" मैंने निश्चय करने के इरादे से पूछा। 'जी, हाँ, लड़ाई बन्द हो चुकी है। विराम सन्धि की शर्तों पर चर्चा होनेवाली है।' मुझे उनके कथन पर एकाएक विश्वास न हुआ पर विश्वास न करने की भी कोई वजह नहीं थी। यह मैं जानता था कि जापान हारेगा जरूर, लेकिन प्रशान्त के सारे व्यापक क्षेत्र में फैली हुई ताक़त क्या इस तरह नाटकीय तौर पर हार सकती है ? यह समझ में न आता था।

जापान की इस हार ने जितना मुझे आश्चर्य में डाला था उससे कम शायद स्वयं मित्रराष्ट्रों को भी नहीं डाला होगा। वे स्वयं भी इतनी सस्ती जीत की उम्मेद तो कभी न करते थे। और इसीलिये लड़ाई के बाद की सुनहली दुनियाँ की ख़याली बुनियादें धीरे धीरे ही डाली जा रहीं थीं। जर्मनी की हार के बाद इनका सारा जोर जापान को हरा देने की ओर लग रहा था। स्थायी संधि-चर्चा को लेकर वक्त खोना उन्होंने उचित भी न समझा था। हालाकि अमरीका के एक कोने में बैठा हुआ एक निष्पक्ष राजनीतज्ञ बार बार चिल्ला कर कह रहा था—'स्थायी संधि-चर्चा की योजना का जितना असली और ठोस नक़्शा लड़ाई के जमाने में तैयार किया जा सकता है, उतना जीत के बाद नहीं। क्योंकि जीत के बाद विजयी देशों का ध्यान छीना-झपटी और स्वार्थ की ओर अधिक होता है। उद्देश्य और आदर्श की पूर्ति में कम।' बात कितनी सच्ची थी और अमरीका का वह सच्चा सपूत वि० विल्की आज दुनिया में होता तो उसे अपने कथन की सच्चाई का तमाशा देखने को मिल जाता। वही हुआ। मित्रराष्ट्र यूरोप भाग्य का निपटारा भी न कर पाये थे कि 'एजेण्डा' सुदूर-पूर्व और जुड़ गया। कठिनाई की एक दीवार पार न हो पाई थी कि कि दूसरी दीवार सामने आ और खड़ी हो गई।

पाठक ख़्याल कर सकते हैं कि यह कौन मुसीबत है। असली मुसीबत तो लड़ाई जीतना है। जीत के बाद संधि-पत्र तैयार करना और शर्तों पर हस्ताक्षर करने तो कोई जोर नहीं आता। मगर सच बात यह है कि असली जीत की बुनियाद तो सैनिक-विजय (military victory) के बाद ही पड़ती है। इतिहास के निर्माण में सैनिक विजय का इतना महत्व नहीं होता जितना पूर्ण विजय (Total victory) का। सैनिक विजय असली जीत को अमल में लाने का एक अवसर देती है इसलिये असली शांति कभी भी सैनिक-विजय के बाद नहीं होती वरन पूर्ण विजय के बाद उसका चित्र होता है। इसमें दोनों पक्षों को एक साथ रचनात्मक ढङ्ग से नये निर्माण और नये विकास की ओर बढ़ने का मौका मिलता है। अतः कोई भी सैनिक विजय बिना इस प्रकार की पूर्ण विजय के केवल ही नहीं वरन अस्थायी भी है। आज हम यदि से सारी हालत की जांच करें, तो मित्रराष्ट्रों की विजय भी कुछ ऐसी ही मालूम देती है। जितने बीत जाते हैं, मामला उतना ही और उलझता है। केवल इतना ही नहीं, अब तो हमारे सामने है कि क्या वास्तव में जिस उद्देश्य के लिये व्यापक नर-बलि की गई, वह उद्देश्य क्या आज हो गया है ?

दुनिया का जो नक़शा आज हमारे सामने मौजूद वह सन् १९३५ या '३९ के नक़शे से बिल्कुल भिन्न सन् १९३५ या '३९ में लड़ाई के पहले शांत बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनियाँ में फैली थीं। आज स्थिति बिल्कुल दूसरी है। आज संसार की तीन बड़ी ताक़तें जर्मनी, इटली और जापान अपने स्थान से बहुत नीचे गिर गये हैं। आज वहाँ की सभाओं में वैदेशिक नीति पर चर्चा नहीं होती। फ्रांस भी आज बहुत कमजोर हो गया है। चीन की हालत केवल नाजुक ही नहीं वरन् एक तरह से वह बदल ही गई है। ऐसी हालत में जहाँ पहिले सात बड़े बड़े राष्ट्र हमारे सामने थे वहाँ आज तीन रह गये हैं—संयुक्तराष्ट्र अमरीका, सोवियत रूस और ब्रिटेन। यह परिवर्तन कल्पना से ज्यादा हुआ है। उस समय इन बड़े राष्ट्रों के सामने अपनी ताक़त को बढ़ाने के कई पहलू मौजूद रहते थे। एक के असफल होने पर वे दूसरे को अजमा सकते थे। पर आज वैसा नहीं है।

उदाहरण के लिये इस युद्ध से पहिले फ्रांस और ब्रिटेन के आपसी संबंध दूसरी तरह के थे। पिछले युद्ध में एक साथ अनेक स्थानों पर उन्होंने अपना खून बहाया था। वे बराबरी के दरजे से बँधे थे। रूस और जापान उपेक्षित देश समझे जाते थे। उस समय एक प्रकार से रूस के सम्बन्ध इंग्लैण्ड की अपेक्षा जर्मनी से अधिक अच्छे थे। अमरीका से उसका बिल्कुल तटस्थ सम्बन्ध था। सन् १९३९ में रूस ने जर्मनी के साथ एक समझौता किया और इस प्रकार उसे अपनी पश्चिमी ताकतों के खिलाफ़ सहायता दी। लेकिन १९४१ में सम्बन्ध एकदम बिगड़ गये। हिटलर के रूस पर हमला करते ही पश्चिमी ताकतें रूस से मिलकर हिटलर को ख़त्म करती हैं। उस समय का हुआ इन तीन का 'गठबन्धन' किसी प्रकार कागज पर तो आज भी क़ायम है। लेकिन असली हालत ऐसी नहीं है। आज तो रंग-मंच पर दो दल खड़े दिखलाई पड़ते हैं। वह चाहे पेरिस की वैदेशिक मंत्रियों की कानफ्रेंस हो, चाहे पोस्टडम की बातचीत-चर्चा और चाहे सुरक्षा कौंसिल के वाद-विवाद का स्थान, सभी जगह हमें दो दल अलग अलग खड़े हुये दिखलाई पड़ते हैं। अतः आज इन तीन में जो 'गठ-बन्धन' हुआ है वह इस प्रकार है, अमरीका और ब्रिटेन एक ओर और सोवियत रूस दूसरी ओर। यह उम्मीद करना कि इंग्लैण्ड के ख़िलाफ अमरीका कभी रूस का साथ देगा नितान्त असम्भव है। और चूँकि आज उन दोनों को मिलाये रखने वाला शत्रु 'हिटलर' सामने नहीं है, इसलिये कोई जादू आज उन्हें एक साथ खड़ा नहीं रख सकता। ऐसी हालत में इस मैत्री का टूटना अनिवार्य है। और जितनी अधिक सम्भावना इस मैत्री के टूटने की बढ़ती जाती है उतनी ही तेजी से संसार के सामने नये संकट के आसार घने होते जा रहे हैं।

कुछ लोगों का यह ख्याल है कि रूस और इंग्लैण्ड के झगड़े में अमरीका को मध्यस्थ का कार्य करना चाहिये। उनके ख्याल से विश्वशांति के विचार से अमरीका को किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिये। यह तभी सम्भव हो सकता था जब रूस और ब्रिटेन की ताकत बराबर होती। लेकिन इस लड़ाई ने रूस को उपर उठा दिया है। ब्रिटेन और रूस की ताकत आज बराबर नहीं है। ऐसी हालत में अमरीका की निष्पक्षता रूस की ताक़त को और अधिक बढ़ा देगी। तब अमरीका को जल्दी ही यह तय कर लेना है कि क्या वह इंग्लैण्ड पर रूस की विजय देख सकने को तैयार है यानी यूरोप और एशिया दोनों पर रूस के बढ़ते हुये प्रभाव को क्या वह सहन कर सकता है? निश्चय ही रूस की यह बढ़ती हुई ताक़त अमरीका के लिये ख़तरनाक साबित होगी। इस लिये अमरीका ने तय कर लिया है कि इंगलैण्ड का साथ देना ही सब दृष्टियों से उसके लिये हितकर है।

ऐसी हालत में विजय के बाद दुनियाँ की असलियत दम्भ और कूटनीति से खाली नहीं है और इसी कूटनीति की शतरंजी चालों के सहारे यह तीनों दुनिया के छोटे राष्ट्रों को बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सीधा करने में बुरी तरह संलग्न हैं। ऐसे नाजुक समय में मिस्र, फिलस्तीन, ईरान, जावा आदि में होने वाली घटनायें हमारे संदेह को और भी पक्का करती हैं। एक ओर तो हिटलर का ख़ात्मा और दूसरी ओर विजय-जनित व्यापक विश्व-क्षेत्र का लोभ! इस लोभ का संवरण करना आज परोक्ष रूप से तीनों के लिये असंभव है। लड़ाई द्वारा कमजोर हो चुकने वाले छोटे-छोटे देश जिनके कि अन्दर अपने अपने प्रभाव को बढ़ाने का पूरा योग इनके सामने है। रूस भी इस लोभ के सामने हार चुका है और आज की हालत से फायदा उठाकर उसने यूरोप में अपना एक साम्राज्य-सा ही कायम कर लिया है।

युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व के भाग्य-निर्णय की रेखायें खींचने के लिये पोस्टडम में जो बैठक हुई थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो योजना युद्धोत्तर-कालीन संसार के निर्माण के लिये रखी गई थी वह योजना एकदम राजनैतिक दृष्टि से औचित्य से भरी हुई थी। उस सारी योजना में एक ही बात स्पष्ट थी और वह यह कि प्रतिद्वन्द्विता की दौड़ में इन तीनों में से कोई एक भी इतना आगे न बढ़ने पाये कि दूसरे के लिए ख़तरा उत्पन्न हो जाय। इसीलिये सब तरफ से ऐसी बन्दिशें तैयार की गईं थीं जो विजित देशों में शांति-व्यवस्था कायम करने के बहाने अपने अपने स्वार्थ लिये हुये थीं। आज उस योजना का अंग-भंग हो रहा है। रूस द्वारा अधिकृत जर्मनी की वस्तु-स्थिति का पता तक किसी को नहीं मिल रहा है। विजित देशों में जो सरकारें कायम की गई हैं। उन सबमें इन तीनों ने अपने अपने पक्ष के लोगों को भरने की कोशिश की है। इधर रूस का ऐसा ख्याल मालूम होता है कि दक्षिणी यूरोप और रूस के बीच में वह जर्मनी की एक बफ़र-स्टेट कायम करना चाहता है जिससे कि भविष्य में इस महायुद्ध वाला ख़तरा फिर न दुहराया जा सके। इधर अमरीका यह चाहता है कि उसके द्वारा अधिकृत भाग में वह एक प्रतिनिधि सरकार कायम करके जल्दी ही यहाँ से भाग निकले। अंगरेज अपने द्वारा अधिकृत प्रदेश को अपने साम्राज्य का ही एक अंग मान बैठे हैं। हालाकि ऊपर वे सुव्यवस्था और लोकतंत्रात्मक शासन का जामा पहिनाने की कोशिश कर रहे हैं। इधर फ्रांस वाले यह निश्चय किये बैठे हैं कि सम्पूर्ण जर्मनी अब फिर कभी पहिले जैसा अभिन्न और अखंड न रह सके। इसीलिये जब कभी अखंड जर्मनी की चर्चा होती है तो फ्रांस उसमें कोई न कोई बाधा डालता है।

जैसे जैसे दिन बीतते जाते हैं समझौते की आशा निराशा में बदलती दिखलाई पड़ती है। पोस्टडम में सन्धि की सारी चर्चा कोई परिणाम न ला सकी। इसके बाद वैदेशिक मंत्रियों के प्रतिनिधियों ने फिर एक बार मिलकर कोई हल ढूढ़ने की कोशिश की पर उसका भी नतीजा कुछ न निकला। तीसरा प्रयत्न पेरिस बैठक के रूप में हमारे सामने आया पर लम्बे वाद-विवाद के बाद बैठक १५ जून तक के लिये स्थगित कर दी गई थी। इस बैठक में भी इटली के उपनिवेश, भूमध्यसागर दरेंदानियाल के सवाल हल नहीं किये जा सके। इधर उस बैठक के खत्म होते ही 'ईरान' के नाटक का एक नया सीन आकर पेश हो गया। जिससे प्रतीत होता है कि इस सारे नाटक के पीछे रूस का ही हाथ है। तेहरान और अज़रबेजान प्रान्त की गुत्थी जिस तरह से सुलझाने की सुरक्षा-कौंसिल में कोशिश की गई वह कुछ सफल नहीं हुई। आज मिस्र की समस्या अपने विकट रूप मे सामने आगई है। मिस्र ने संधि के दुहराने की जो रूप-रेखायें पेश की थीं उन्हें अंगरेजी सरकार न मान सकी। अतः अंगरेजी सुझावों को मिस्र ने एकदम ठुकरा दिया है। आगे क्या होता है यह साफ है। अगर 'सूडान-प्रान्त' के सवाल को अंगरेजी राजनीतज्ञों ने उदारता-पूर्वक हल न किया तो संघर्ष अनिवार्य है। इधर दरेंदानियाल की माँग रूस फिर बड़े आग्रह के साथ करने लगा है। समस्याओं की एक के बाद एक गुत्थी सामने आ रही है। पर पारस्परिक सन्देह, संकीर्ण स्वार्थ और शक्ति-लोभ किसी को हल नहीं होने देते। निकट भविष्य में इन तीनों के कहीं भी मेल खाने की कोई सम्भावना नहीं है। संधि-पत्र पर हस्ताक्षर होने का पवित्र काम बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। स्थिति इतनी गम्भीर होती चली जा रही है कि ऐसा लगता है कि बड़ी ताकतें फिर संघर्ष की ओर बढ रही हैं—शांति की ओर नहीं। अगर आपस में नीति-संबंधी मेल स्थापित न हो सका तो दुनियां के लिये एक नये महानाश का संकेत होगा। उस जीत के स्वप्न में हम एक समृद्ध शांत और गौरव पूर्ण दुनियाँ की तस्वीर देखने लगे थे आज वही जीत इन मित्रराष्ट्रों को ऐसी पराजय की ओर लिये जा रही है जिसके भंयकर परिणाम से बच निकलना अबकी बार असम्भव होगा।

इधर पराजित देशों और साम्राज्यवादी मित्रराष्ट्रों द्वारा पहिले से अधिकृत देशों में एक असन्तोष और विद्रोह की आग भड़क उठी है। जिसने समस्या को और अधिक पेचीदा बना दिया है। अतः आज मित्र-राष्ट्रों के सामने केवल जीते हुये देशों की व्यवस्था का ही सवाल नहीं है पर अपने अङ्ग के अलग अलग टुकड़ों और हिस्सों को मिलाये रखने का प्रश्न भी है जिनके कि खंड खंड होने और सर्वत्र विद्रोह की भी सम्भावना दिनों दिन बढ़ रही है एक निष्पक्ष पाठक इन सारी बातों के ऊपर से बार बार अपने से पूछ सकता है कि मित्रराष्ट्रों की यह जीत है या हार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुव के तीन रूप

श्री प्रभाकर माचवे

"जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च"
(गीता २;२७)

मनु का पौत्र, उत्तानपाद का लड़का, पिता की उपेक्षा से, माता के उपदेश और नारद की प्रेरणा से वन में तपस्या करने गया। ऐसा दृढ़ प्रतिज्ञ था वह, कि अपनी तपस्या में वह अडिग, अविचल, निश्चयी सदा तपानुतप बैठा रहा। विष्णु उस पर प्रसन्न हुए और उसे तारक मंडल में एक ध्रुवस्थान दिया। यह है कथा का नायक-ध्रुव! डिकेंस ने एक छोटी सी सुन्दर कहानी इसी अंग्रेज़ी लोक-विश्वास को लेकर लिखी है कि बच्चा जब मर जाता है, तब आकाश में वह तारा रूप हो जाता है। पंत ने 'पल्लव' में 'नक्षत्र के प्रति' में 'नभवाचक', 'व्योम* के शिशु' आदि शब्दों से इन्हीं चमकने वाले प्रकाश के नन्हे पुंजों को संबोधित किया है। तारे और बच्चे—बहुत समता है दोनों में: दोनों खिलखिलाते हैं, टिमटिमाते हैं; दोनों आज की कृत्रिम सभ्यता से बहुत दूर के आदर्श हैं; दोनों हमारे दिशा-दर्शक हैं।

कथा के ध्रुव से भिन्न रूप ज्योतिष-शास्त्र के ध्रुव-तारक का है। वह नक्षत्र-लोक और तारा-मंडल का मध्य-बिंदु है। वह हमारी पृथ्वी से ४६·५ प्रकाशवर्ष दूरी पर है। एक प्रकाश वर्ष का अर्थ है १४६६४२४०००० मील। इतने दूर का एक छोटा सा प्रकाश-बिंदु, और इतने सदियों से हमारे नाविकों को, नौका नयन चालकों को, प्रवासियों को और ग्रामीणों को दिशा का ज्ञान देता रहा। 'का दिशा ?' के युगों-युगों के मौन प्रश्न का अक्षरशः 'उत्तर' दिया। हम जो पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में रहते हैं, उन्हें तो उत्तर दिशा का ज्ञान इसी तारे से मिलता है। भूमध्य रेखा से यह ध्रुव क्षितिज से मिला हुआ जान पड़ता है, जितना ही उत्तर की ओर चलें उतना ही वह क्षितिज से ऊपर उठता जायेगा।

यदि हम उत्तरी ध्रुव एस्किमो के देश पहुँच जायँ तो ध्रुव सीधा हमारे सिर पर दिखाई देगा जैसे मध्याह्न में सूर्य। प्रकाशमान वह इतना है कि, आभा की दृष्टि से तारात्रों का जो वर्गीकरण किया है, उनमें ध्रुव का नम्बर दूसरे वर्ग में है, जिसमें ६४ उसके और मित्र हैं। महासप्तर्षि के नीचे के दोनों तारों को मिलाकर यदि उस रेखा को बढ़ा दिया जाय तो वह सीधे ध्रुवच्छेदन करेगी।

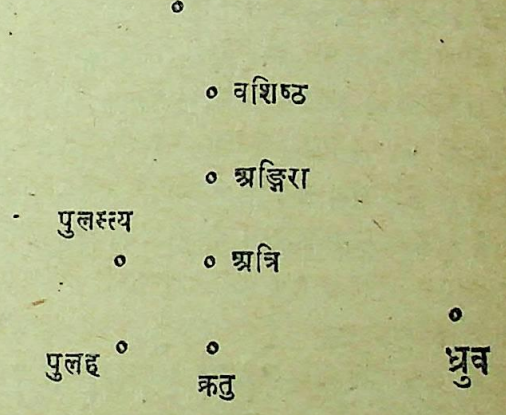

शायद ऐसी ही रेखा को जिन्होंने अपने जीवन में सार्थक किया, उन मनीषियों को कबीर ने 'ध्रुव का भेदी' कहा है। साहित्यिकों ने भी ध्रुव को बहुत प्रकार से सराहा है। गीता के आदि दार्शनिक का अस्त की भांति 'जन्म-मरण' के ध्रुव 'चक्रनेमिक्रम' का उल्लेख लेखारम्भ किया ही है। याज्ञवल्क्य ने अपनी संहिता में विवाहोपरान्त सप्तर्षि और ध्रुवदर्शन के बहुत ही भव्य मंत्र लिखे हैं। वधू वर को ध्रुवदर्शन कराती है और "अपना, हम दोनों का प्रेम वैसा ही ध्रुव, अटल रहे," ऐसी मांग करती है। इसी प्रसंग का उल्लेख आगे चलकर आधुनिक कवियों में 'अज्ञेय' ने अपनी 'चिन्ता' में किया है। वैसे 'कामिनी' में भी नरेन्द्र शर्मा ने कुछ तारक-गीत लिखे हैं, जिनमें ध्रुव पर भी एक है। 'प्रसाद' के एक नाटक का नाम है 'ध्रुवस्वामिनी' और जैनेन्द्रकुमार के कहानी-संग्रह का 'ध्रुवयात्रा'।

कथा और ज्योतिष के ध्रुव से भिन्न ध्रुव का एक तीसरा रूप है, जो वायवी की अथवा काल्पनिक नहीं, सर्वथा मानवीय, ठोस और स्थूल है। वह है भूगोल का

---

* तिब्बती यह मानते हैं कि जब एक तारा आकाश में प्रकाशित होता है, पृथ्वी पर एक नये पुत्र का जन्म होता है। निकोलस रोरिक ने इसपर एक बहुत सुन्दर चित्र बनाया है—भाग्य-तारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी ध्रुवप्रदेश। हिमावृत, बारहमास बर्फ़ से जकड़ा, वालरस और सी-हार्स, एस्किमो और 'नोवाया ज़ेल्लिया' (रूसी शब्द अर्थ-नई ज़मीन) का देश; जहाँ पर अनेकानेक स्वीडिश, जर्मन नार्वेजियन, इंग्लिश, फ्रेंच और रूसी साहसिक वैज्ञानिकों ने अपनी बलि चढ़ाई। मानव की प्रकृति पर विजय (जिसे हम 'संस्कृति' कहते हैं) उसकी महायात्रा में इन निष्काम ज्ञान-विज्ञान सेवियों ने अपने प्राण होम दिये, अपना सर्वस्व हँसते हँसते चढ़ा दिया। आज तो नौवें दर्जे का विद्यार्थी भी जानता है कि 'सूरेवस' और 'टेरर' जहाज़ों में प्रवास करनेवाले अपार साहसी फ्रैंकलिन और उसके दल का बर्फ़ानी दरिया में क्या हश्र हुआ? कैसे एक सदी तक उनकी खोज चलती रही, और फिर भी मानव ने प्रकृति से कभी हार नहीं मानी। नर्देन्स्कजोल्द द्वारा शुरू किया हुआ उत्तरी ध्रुव का संशोधन आज हमारे इतने लंबे-चौड़े शस्य-श्यामल देश में रेडियो-स्टेशन बमुश्किल एक दर्जन मिलेंगे; वहाँ सिर्फ उत्तरी साइबेरिया के हिम-जड़ित, निर्जन प्रदेशों में सोवियत् ने पचासों रेडियो-स्टेशन बनाये हैं—उनके सहारे उनकी वातावरण-विज्ञान-शाखा के संशोधक (मीटिआरालाजिस्ट) निरन्तर मानव के संचित ज्ञान-कोष और भविष्य की सुख सुविधाओं में वृद्धि करने के हेतु अथक परिश्रम कर रहे हैं। हम उनकी ध्रुव वृत्ति से कुछ सीखें।

आज आदर्श बन रहे हैं। सभ्यता संक्रमणकाल में से गुज़र रही है। लेनिन का एक वाक्य यहां मुझे याद आ रहा है—'Nothing is final'। वैसे ध्रुव कुछ नहीं है, अन्तिम कुछ नहीं है। यदि कुछ ध्रौव्य है तो वह हमारे मन के कृतनिश्चय में है। मन की जब दोलायमान स्थिति होती है तब यही ध्रुव तारे से हमारे कुछ आदर्श हमारे काम आवेंगे। अन्यथा सब कुछ निरर्थक है—'सर्वं क्षणिकम् क्षणिकम् क्षणिकम्' है।

'ध्रुव' शब्द से मेरे मन में जितने विचार उठे, मैंने बेतरतीब ऊपर लिख दिये हैं। शायद उनमें आप कुछ लाभ ग्रहण करें।

रोमां रोलां की डायरी के कुछ पृष्ठ

श्री महादेव साहा

"गोर्की से मेरी गहरी मित्रता थी क्योंकि दुनिया की दो दिशाओं से हम एक दूसरे की मित्रता की ओर संघर्ष के अन्दर से आगे बढ़े थे। गोर्की आये थे प्राचीन रूस से, शक्तिशाली और स्वस्थ जनता के बीच से। और मैं आया था प्राचीन फ़्रांसीसी मध्यम वर्ग से, दुर्बल शरीर पर बलवान मन लेकर। जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्दर से अग्रसर होते हुये गोर्की ने शिक्षा प्राप्त की थी; और मैंने शिक्षा प्राप्त की थी स्कूल और विश्वविद्यालय की बेन्चों में घुटने रगड़कर। यह बात सच है कि गोर्की का वास्तविक जीवन मेरे जीवन से अत्यधिक कटु था लेकिन गोर्की का मानसिक जीवन निश्चित रूप से मुझसे अधिक कठोर नहीं था। क्योंकि हम दोनों जीर्ण कुसंस्कारों के नदी-नालों और जङ्गलों को पार करते हुये अपने लक्ष्य स्थल की ओर आगे बढ़ते गये थे। जनता के अपने कुसंस्कार हैं, मध्यम वर्ग के भी हैं और बुर्जोआ वर्ग का तो कहना ही क्या। कुसंस्कार, अज्ञता और षड़यन्त्रों के इस घने अन्धकार को भेद कर ज्ञान की रोशनी फैलाना अत्यन्त कठिन है।

"हम दोनों दो दिशाओं से निरन्तर संग्राम करते हुये अन्त में एक दूसरे से मिले और आंखें चार होते ही हमने अनुभव किया कि हम दोनों मित्र हैं।

"१९१९ में 'मन की स्वतन्त्रता' से मैं जो कुछ समझता था उसकी शाखा प्रशाखायें ऊर्द्ध-मुखी थीं। लेकिन आज़ादी के इस वृक्ष की जड़ मिट्टी में है। इस वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें अवश्य सूख जायंगी अगर इसकी जड़ अत्याचारित मानवता की कड़ी मिट्टी में नीचे तक नहीं पहुँचती। गोर्की आये थे उसी दुखी मिट्टी के नीचे से। अत्याचारित मानवता और वह एक थे। वे उसके सिरताज थे।

"गोर्की का भाग्य लेकर हम इस दुनिया में नहीं आए। पश्चिमी यूरोप में हमने इस मानवता की व्यर्थ ही छानबीन की है, व्यर्थ ही हमने चेष्टा की है मानवता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ट्टी के रस से अपने विचारों की जड़ों को पुष्ट करने की। ...ले तीस वर्षों तक मैंने उनकी तलाश की है.... ...किन यूरोप में उनसे मेरा साक्षातकार नहीं हुआ। ...न से ही मैं बाट जोह रहा हूँ, बारम्बार उन्हें आह्वान ...या है, लेकिन कहीं भी कोई उत्तर नहीं मिला। ...म की हमारे चारों ओर की मिट्टी सूखकर पथरा ...है। फिर भी मेरे मन की जड़ उस पथरीली मिट्टी को ...कर गहराई तक पहुंची है। यूरोप की कड़ी, पथरीली ...ट्टी की कितनी ही परतों को पार कर मैं उस सोवियत ...नता के उपजाऊ स्तर पर पहुँचा हूँ जहाँ दोनों किनारों ...लबालबा करती हुई नवजीवन की लहर आई है। ...पर, उसी गहराई में मेरे मन की जड़ ने गोर्की के मन ...र्श को अनुभव किया है। वहीं पर हमारी एक दूसरे ...री मित्रता हुई है" —रोलां। [१० मई १९३१]

...लां और आर्नस्ट टालर

रोमों रोलां आजीवन जीवन के उपासक रहे हैं। वे ...र के पुजारी थे, लेकिन उनकी उपासना या अर्चना ...क्षण के लिये भी आत्मकेन्द्रिक नहीं थी। उनकी ...ता की जड़ कितनी गहराई तक पृथ्वी में चली गई ...अनुमान यूरोप के नवीन लेखकों और कलाकारों ...उनके मनोभावों से किया जा सकता है। १९२१ ...कथित भारतीय अहिंसावाद ने उन्हें प्रभावित ...था, लेकिन उस वक्त भी उन्होंने अपनी स्वाभा-...न्तरिकता और सत्यनिष्ठा के कारण ही आर्नस्ट ...जैसे यूरोप के कम्यूनिस्ट क्रान्तिकारी कलाकार ...भा को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करके प्रोत्साहित ...और उन्हें प्रेरणा प्रदान की।

...१९२१ में रोलां की चिट्ठी के उत्तर में आर्नस्ट ...की जेल से भेजी हुई चिट्ठी, नीचे दी जाती है। ...लिखते हैं—

...शय रोलां,

—१९२१

...आज ही आपकी चिट्ठी मिली। यह चिट्ठी मेरे ...कितनी मूल्यवान है इसे मैं ही जानता हूँ। विदेशी ...में लिखी होने के कारण जेल-अधिकारियों ने ...चिट्ठी मुझे नहीं दी थी। मेरी मां ने इसका जर्मन ...करा कर भेजा; तब यह मुझे मिली। ...आपके कुछ लिखने से मुझे कितना आनन्द होगा इसकी शायद आप कल्पना भी नहीं कर सकेंगे। आपकी चिट्ठी जब मैंने अपने एक जेल के मित्र को दिखाई तो उन्होंने हँसकर कहा—'इस तरह की चिट्ठी मिलने पर कोई भी व्यक्ति जेल आना चाहेगा।' इस बात पर साधारण तौर से विचार करें। क्योंकि जेल में मनुष्यत्व कलंकित हो जाता है।

"बन्दी-जीवन में रचित अपने गीत और कवितायें आज की ही डाक से आपके पास भेज रहा हूँ। गीत गीत से कुछ अधिक हैं, वे मेरे आह्वान हैं, उन्हें मेरी घोषणा कहा जा सकता है। आज जो लोग उदास होकर चलते फिरते हैं, वे नहीं जानते कि उनकी यह उदासीनता उनके अपराधों के बोझ को कितना भारी बना रही है, दायित्व बोध होने पर भी जो लोग दायित्वहीन हैं, मेरे गीत उन्हींके लिये लिखे हैं। आज की दुनिया, आज का युग प्रेत के जलते हुये पात्र की तरह अपराध, हिंसा, अत्याचार, अनाहार से क्या खौल नहीं रहा है? क्या वह मनुष्य के मन और शरीर को रौंद नहीं रहा है? अराजकता के इन दिनों में मेरा गीत कौन सुनेगा? मेरे गीतों का सुर किसकी अन्तर्दृष्टि को गंभीर बनायेगा, किसके लुप्त और सुप्त भ्रातृत्व बोध को जगाएगा? महान व्यक्तियों के? बड़े नेताओं के? जो मनुष्य को संकट की एक चोटी से दूसरी पर ले जाते हैं वे सुनेंगे मेरी बात, मेरा गीत? वे मेरा गीत नहीं सुनेंगे।

"जो भविष्य के मानव हैं, जो तरुण मानवता के पुनरुज्जीवन में विश्वास करते हैं, मानवता ही जिनके जीवन में परम सत्य है, राजनीतिज्ञों के हज़ारों सत्य से जिनका सत्य महान है, जिनमें अत्याचारितों का वर्ग-बोध है, अनुभूति है, जो इस शोषण और अत्याचार को मिटाने के लिये हृदय से कामना करते हैं, मेरे गीतों का स्वर उन्हींके कानों में ध्वनित होगा।

"अन्न के बीज की तरह मेरे गीत अगर भविष्य में स्वर्णिम फसल उत्पन्न करते हैं तो सफल होंगे, धन्य होगी मेरी कला, धन्य होऊँगा कलाकार मैं!

"ह्विटमैन ने कहा है—'एक ग्रंथ को स्पर्श करने का अर्थ है ग्रंथ-लेखक को स्पर्श करना।' यह बात किसी भी ग्रंथ और कला के सम्बन्ध में सच है।

"व्यक्तिगत अनुभव ही कविता का उद्गम स्थल है। कवि का प्रेम ही कविता का रूप है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो कविताएँ

श्री कमला प्रसाद 'कमल'

श्री कमला प्रसाद 'कमल' लौतोका (फ़ीज़ी) के निवासी एक प्रवासी भारतीय हैं। इस दृष्टि से उनकी कविता महत्त्वपूर्ण है। हमारे पाठक इस कविता के द्वारा हिन्दी के प्रसार की सीमा की एक रूप-रेखा बना सकते हैं। —सम्पादक

बल के तीन प्रतीक

(१)

एक दिन प्रभु से प्रभु का भक्त
लगा कहने हो शिथिल उदास—
"प्रेम में भी है कोई शक्ति
नहीं मुझको इसका विश्वास"।
और प्रभु ने हँस कर तत्काल
भर दिया जग में नवल प्रकाश
लखा उसने आँखों को खोल
और देखा ईसा का क्रास।

(२)

किसी दिन फिर वह पागल भक्त
लगा कहने हो व्यथित उदास—
"आत्म बल में है कुछ भी शक्ति
करूँ मैं यह कैसे विश्वास"।
और प्रभु ने हँस कर इस बार
उसे दी सुन्दर वस्तु विचित्र,
लखा उसने आँखों को खोल
और देखा गाँधी का चित्र।

(३)

एक दिन फिर वह पागल भक्त
लगा कहने जा प्रभु के पास—
"प्रभो पशुबल में भी है शक्ति
करूँ इस पर कैसे विश्वास"।
और प्रभु ने हो व्यथित उदास
उसे दी वस्तु शक्तिमय एक,
लखा उसने आँखों को खोल
दिखा नीलाभ यूनियन जैक।

सान्ध्य-तारा !

हँस रहा आकाश में वह सान्ध्य तारा।
हर रहा है क्लान्त मन का शोक सारा॥
आज सहसा सुप्त नव-उद्गार मेरा
वह चला है खोल उर का द्वार मेरा,
मैं अचानक आँख मल कर देखता हूँ
आज नव आलोक में संसार मेरा—
उड़ चला है खोजने नभ में सहारा।
हँस रहा आकाश में वह मुग्ध तारा॥
ज्योति तारा की मधुर किसको न भाये,
आज नव जागृति जगत् में क्यों न आये;
ज्योति-जीवन ज्योति नभ से फूट निकली
क्यों न सारा विश्व-जीवन गीत गाये;
है चमकता सामने नभ का दुलारा।
हँस रहा अविराम वह उन्मत्त तारा॥
मानवों की भाग्य-रेखा कौन जाने,
वह उठा है एक संदेशा सुनाने;
दूर कारागार में विक्षुब्ध व्याकुल
बन्दियों को ज्योति आशा की दिखाने—
फूट निकली व्योम से सौन्दर्य-धारा।
हँस रहा आकाश में सौन्दर्य-तारा॥
हास तारा का लिये मुक्ता मनोहर
है जगाता विश्व के अन्तस्तलों को,
भेद कर यह सिन्धु का गंभीर गर्जन
देश की स्वाधीनता के पागलों को—
क्षितिज के उस पार से किसने पुकारा।
हँस रहा आकाश में उद्दाम तारा॥
खेलती है सिन्धु में ज्योत्स्ना मनोहर
काँपता है सिन्धु मानव-रक्त पीकर,
ज्योति तारा की मुझे पथ है दिखाती,
मैं खड़ा हूँ इस तरंगित सिन्धु-तट पर;
दूर जीवन-सिन्धु का है क्या किनारा?
हँस रहा आकाश में आलोक-तारा॥
दूर—वह कैसी भयंकर गर्जना है;
आज सारा विश्व समरांगण बना है;
राष्ट्र मिटते और बनते जा रहे हैं
आज मेरे देश को भी देखना है—
डूबता अथवा चमकता है सितारा।
हँस रहा आकाश में सौभाग्य-तारा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खादी का विस्तार

श्री वि० श० चतुर्वेदी

औरों की अपेक्षा खादी के विस्तार की मेरी अपनी भिन्न प्रकार की है। वस्त्र की समस्या को हल के रूप में मैंने खादी की महत्ता को कभी स्वीकार किया है, वस्त्र के मूल में जो भावना काम करती मैंने उसी भावना को महत्ता दी है। शरीर रक्षा ही परिधान का मूल हेतु है। लेकिन शरीर-रक्षा किस । शरीर रक्षा का मुख्य उद्देश्य समझे बिना उसके कुछ भी करने लगने से मानव जीवन की महत्ता ट हो जाती है।

देह के अन्दर निवास करनेवाला जो देही है उसे , जागृत करे। आज देही प्रसुप्तावस्था में है। देह धार को सबल बनाकर हम देही की मूर्छा को भंग सकते हैं अथवा सत्य के समीप पहुंच सकते हैं। इस देह रूपी मशीन का संचालक मन है इसलिए को सतत जागरूक रखना, लक्ष्य का स्मरण , उसे लक्ष्य की ओर गतिवान् बनाना यह हुई साधना और इस साधना में शरीर हमारी पूरी करता रहे, यह हुआ शरीर रक्षा का उद्देश।

सत्य की शोध या सत्य की उपासना के लिए मन त्विकीकरण की आवश्यकता होती है। आसपास ावरण के अलावा मन के निर्माण में अन्न और का प्रमुख भाग होता है। जब गृह उद्योग की बात ती है तब अन्न और वस्त्र को मन के सात्विकी- के उपयुक्त बनाने का लक्ष्य ही रहता है। कार्य साथ यदि उस कार्य की भावना का स्मरण रहे प्रकार कार्य में जड़ता बढ़ती है वैसे ही उसके भी जड़ता वास करने लगती है। इसीसे भावना- काम करने का बार बार स्मरण कराया जाता है, के साथ कार्य की भावना का संयोग न होने से देही रण या सत्य के शोध की संभावना ही नहीं और इसीसे मानव के अन्तस् में गुलामी की जड़ जाती है।

आज के विकसित सभ्य या उन्नत समाज का लक्षण माना है आवश्यकताओं की अधिकता। पर जैसे आवश्यकतायें अधिक होती जाती हैं, भोग वृत्तियां जाती हैं, भोग वृत्तियां सात्विकीकरण की विरोधिनी हैं तब फिर सत्य की शोध का रास्ता बन्द हो जाता है। और मनुष्य दासता की जंजीरों में धीरे धीरे जकड़ता जाता है।

आवश्यकतायें बढ़ाने से उत्पादन की शक्तियां भी बढ़ानी पड़ती हैं और मनुष्य की श्रम-शक्ति पर्याप्त न होने के कारण अन्य मनुष्येतर शक्तियों का आश्रय लेना पड़ता है जिसके कारण मनुष्य की श्रम शक्ति क्षीण होती जाती है। शरीर श्रम न करने के कारण मनुष्य के समय का उपयोग विनाशात्मक अशान्तिकर कार्यों की ओर होता है जिसके कारण पाशविकता, अन्याय और अधर्माचरण को बल मिलता है। इस प्रकार सत्य असत्य की चादर ओढ़ लेता है और मनुष्य पतन के गर्त में गिर पड़ता है। आजकल के वर्गवाद को जन्म देनेवाली भी ये ही प्रवृत्तियां हैं।

भोगवाद की प्रवृत्तियों को सीमित एवं दिव्यीवृत करने के लिए मनुष्य की श्रम-शक्ति का पूरा पूरा उचित उपयोग होना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के जीवन-निर्वाह के अन्न और वस्त्र ये ही दो मुख्य साधन हैं। इसलिए इन्हीं दो साधनों पर मानव-श्रम का अधिकतर विनियोग किया जाना चाहिए। अन्न वस्त्र के साथ साथ भावना निर्माण का भी तो काम होता ही रह सकता है। और उसमें भी मानव-श्रम का उपयोग किया जा सकता है। पर सिर्फ़ मनोरंजन के लिए मानव-श्रम का वियोग करना मानव जीवन को अमानवीय बनाना ही कहा जा सकता है।

आज देश में अन्न के लिए अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन किया जा रहा है। इस आन्दोलन में सरकार भी अपना सक्रिय भाग ले रही है। इसलिए जीवन निर्वाह की दूसरी महत्वपूर्ण चीज़ वस्त्र के लिए भी देश व्यापी आन्दोलन की ज़रूरत है। और उसमें भी सरकार को सक्रिय भाग लेने की आवश्यकता है।

वस्त्र की समस्या को तीन भागों में बाँटा जा सकता है— १. कच्चा माल कपास आदि। २. उत्पादक श्रम कत्तिन, बुनकर आदि। ३. वितरण बिक्री आदि।

कच्चामाल

१. देश में जितना आवश्यक है उतना कपास नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा होता। जितना पैदा होता है उसमें से अधिकांश अच्छी जाति का नहीं होता दूसरे उसका बीनना भी अशास्त्रीय ढङ्ग से होता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसमें बहुत सी छीजन चली जाती है। इस सब को ठीक करने के लिए सरकार को फिलहाल प्रत्येक जिले में कपास के लिए एग्रिकलचर फार्म खोलने की जरूरत है जहां उसकी प्रत्येक क्रिया शास्त्रीय पद्धति से की जावे और उससे जिले के लोगों को शिक्षण मिले।

२. प्रत्येक तहसील में बढ़िया सुपुष्ट बिनौला बिक्री के लिए स्टोर रखे जावें जिससे कि कोई बोने के लिए आसानी से अच्छे बीज ले सकें। ऐसे प्रत्येक सीड-स्टोर पर एक इन्स्पेक्टर रहे जो कि कपास बोने, पौदे के रक्षण आदि के सम्बन्ध में किसानों को शास्त्रीय निर्देशन दे सके। और विभिन्न स्थानों में घूमकर कपास की खेती की कीड़ों आदि से रक्षा करने में उनकी मदद कर सके।

३. प्रत्येक तहसील में कपास की खरीद और बिक्री के लिए कोआपरेटिव स्टोर्स हों जहां पर किसान से कपास खरीद कर एकत्रित की जावे और उसका योग्य वितरण हो सके।

४. गाँव गांव, देहात देहात में 'कपास अधिक पैदा करो' का आन्दोलन किया जावे।

उत्पादक श्रम

उत्पादक श्रम के मुख्य साधन कत्तिन और बुनकर हैं। बुनकर आज अपने लिए अधिक से अधिक सुविधा चाहता है, पर इसके लिए स्वयं कुछ नहीं करना चाहता। और इसीलिए वह मिल के सूत को ही बुनना अधिक पसन्द करता है। मिल का सूत समान और मजबूत होता है, बुनने में टूटता कम है। इसलिए बुनाई में परेशानी कम होती है लेकिन मिल का सूत मिल जाने के कारण हाथ सूत बुनने की न तो उसमें प्रवृत्ति रहती है और न वह प्रक्रिया ही रह जाती है जिसके कारण हाथ सूत आसानी और सफ़ाई के साथ बुना जा सकता है। इधर हाथ सूत की विशेष पूछ न होने के कारण देश की अधिकांश जनता की श्रम-शक्ति नष्ट हो जाती है। या फिर उसका अन्य विनाशात्मक कार्यों में उपयोग होता है। इस शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि :

१. हाथ बुनाई के लिए मिल के सूत की बिक्री न की जावे अर्थात् मिल में उतना ही सूत उत्पादन जितना कि उसमें बुना जा सके, और इस प्रकार उत्पादन पर सरकार का नियन्त्रण रहे।

२. हाथ सूत की बुनाई में आनेवाली परेशानि को दूर करने के लिए बुनकरों में बुनाई की शास्त्री प्रक्रिया का प्रचार किया जावे। कांजी-माडी के युक्त साधन जुटाये जावें जिससे सूत के बल के घर्षण दुबारा क्षय होने से बचाव हो और बुनने के समय नहीं के बराबर आवे। इसके अलावा जो अन्न मा बनाने के काम में आता है उसकी भी बचत हो।

३. कत्तिनों में समान और मजबूत सूत कातने प्रवृत्ति पैदा की जावे और इसके लिए जहां उनमें शास्त्री ज्ञान देने का कार्य किया जावे वहां कत्तिन और बुन के पारस्परिक सम्पर्क को भी बढ़ाया जावे। जिससे दो एक दूसरे की परेशानियों को समझ सकें। और उन्हें करने में प्रवृत्त हो सकें।

४. कताई व बुनाई का सरंजाम ऐसी पद्धति वितरण किए जाने की भी व्यवस्था की जावे ताकि व्यक्ति उक्त सामान को एकमुश्त रकम देकर न ख सकते हों वे भी आसानी से ले सकें। उक्त सामान निर्माण की व्यवस्था सरकार को अपने हाथ में र चाहिए।

५. सरंजाम सुधारने के लिए ऐसे व्यक्तियों नियुक्ति की जावे जो गांव गांव घूमकर उनके औ एव साधनों को देखते भालते रहें और उन्हें ज्यादा ठी करते रहें, वहां वे उनके सुधारने की शिक्षा भी देते र ऐसे व्यक्तियों को कपास से लेकर बुनाई तक की स प्रक्रियाओं का क्रियात्मक ज्ञान होना चाहिए जिसके इस दिशा में भी लोगों को शिक्षा दे सकें।

३. 'सूत अधिक कातो' का देशव्यापी आन्दो किया जावे।

वितरण

सूत और वस्त्र पर व्यक्तियों का अधिकार रहे आजकल चोरबाजार और मुनाफा खोरी का बाजार ग है। और इसे तब तक शान्त नहीं किया जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक कि मनुष्य की भावना को उन्नत न बनाया जावे। व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थ की भावना का जब तक परिष्करण न हो तब तक इन दोनों पर ही सरकारी नियन्त्रण की आवश्यकता है। यह नियन्त्रण प्रत्यक्ष नियन्त्रण न रख कर अप्रत्यक्ष नियन्त्रण के लिए सार्वजनिक संस्थाओं के द्वारा संग्रह और वितरण का कार्य कराना चाहिये। और इन संस्थाओं पर सरकारी नियन्त्रण होना चाहिए।

१. अधिकांश में लोगों की इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपने लिए तो कात कातकर बुनवा ही लें। यदि आरम्भ में 'अपने लिए कातो' की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए उनके लिए आवश्यक कपड़े का उनके ही सूत से बुनवाने में यदि मुफ़्त बुनवाने की मदद भी करनी पड़े तो कर देना चाहिए। फिर यह रकम चाहे तो सरकार को किसी विशेष मद से देनी पड़े या मिल के कपड़े पर कर लगा देने की व्यवस्था करनी पड़े। बुनवाने की व्यवस्था भी किसी सार्वजनिक संस्था के सुपुर्द कर देना चाहिए।

२. सूत अव्यवस्थित न हो या इधर उधर मारा मारा न फिरे इसके लिए सूत-बैंक और सूत-मुद्रा को प्रोत्साहन देना चाहिए।

३. यों तो मिल के कपड़े की बिक्री करने का अधिकार भी किसी व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। इसके लिए स्थान स्थान पर कोआपरेटिव स्टोर्स खुलवाना चाहिए। और उन्हीं के द्वारा उसकी बिक्री होनी चाहिए। उसे तो सार्वजनिक संस्थाओं के ही हाथ में देना चाहिए।

४. प्रत्येक प्रकार के सूती वस्त्र की बिक्री आंशिक रूप लेकर ही की जानी चाहिए और जब तक पर्याप्त मात्रा में वस्त्रोत्पादन न होने लगे तब तक वस्त्र का राशन कायम रखना चाहिए।

५. मिल के वस्त्र पर सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए और उसकी कीमत हाथ कते बुने वस्त्र से किसी भी हालत में कम नहीं रहनी चाहिए।

ऊपर सुझाये हुए उपायों पर लोग कह सकते हैं कि:

१. इस प्रकार की कड़ाई होने से जनता सरकार के विरुद्ध हो जावेगी।

२. हाथ कते सूत को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा मिल की पूरी शक्ति का क्यों न उपयोग किया जावे। वे जितना ज्यादा सूत दे सकते हैं उतना उनसे लिया जावे और हाथ बुनाई के ताने में उसका उपयोग किया जावे। इससे बुनकरों की समस्या हल हो जावेगी और हाथ सूत का बाने में आसानी से उपयोग किया जा सकेगा।

संस्था के नियन्त्रण और व्यक्तिगत व्यवसाय बन्द करने पर भी लोग टीका-टिप्पणी कर सकते हैं। लेकिन यह डरने की बात नहीं है। सुधार के प्रत्येक कार्य में हमेशा ही विरोधों का सामना करना पड़ता है। असद्भावना से किए गए कार्यों के विरोध पर ही ध्यान देने की जरूरत है। पर सद्भावना से प्रेरित होकर आम जनता के लाभ के लिए जो कार्य किए जाते हैं उनके विरोधों को सहना चाहिए। और जनता में सद्भावना का प्रचार करना चाहिए। इससे विरोध खुद आप शान्त हो जावेगा।

रही मिल के सूत को ताने में देकर उससे बुनवाने की बात। मैं अपना दृष्टिकोण पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि जनता की श्रम शक्ति का बलिदान मशीन की शक्ति के लिए हमें नहीं करना, बल्कि मैं तो मशीन के कपड़े को चलाने की बात भी नहीं सोचता। इसलिए मैंने उसका यहां जिक्र नहीं किया है। और हाथ सूत का कैसे प्रचार हो सकता है इसी बात को ध्यान में रखा है। देश के हित के लिए मिलों के राष्ट्रीयकरण की अपेक्षा मैं तो मिलों की बिदाई ही ज्यादा पसन्द करता हूँ इसलिए इतने नियन्त्रण को मैं मंगलकर ही मानता हूँ।

पूज्य बापू जी मिल के कपड़े को शहर में ही रखना चाहते हैं। हाथ बुने वस्त्र का आन्दोलन गांव में करना चाहते हैं। लेकिन गांवों पर शहरों का असर अधिक है। उसे कम करने के लिए यह आन्दोलन शहरों से ही आरम्भ होना चाहिए। बल्कि शहर और देहात दोनों पर ही इसका समान आन्दोलन करना चाहिए। उसी प्रकार वस्त्र का वितरण भी इसी नीति से करना चाहिए। यदि शहर वाले हाथ कपड़ा तैयार करने लगें तो गांव में मिल के कपड़े का चलन बन्द होने में देर नहीं लगेगी। साथ ही गांव विषमता के प्रसार से बच जावेंगे। लेकिन इतना सब होने पर हमें अपने मुख्य मुद्दे को नहीं भूल जाना चाहिए और वह है भावना को उन्नत बनाने के लिए किए जाने वाले प्रयत्न। उसी पर हमारी यह बहुत कुछ दारोमदार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंगाल का अकाल–१९४३ : बंगाल का काल–१९४६

श्री छोटेलाल भारद्वाज

उस दिन जब था कलकत्ता मरघट भूखे कंकालों का,
प्यास बुझाती थी मां पीकर खून, गोद के लालों का।
जीवित मुर्दे सड़कों पर बिखरे जैसे कंकड़-पत्थर,
कुछ महलों के लिए हुए थे, कोटि कोटि मानव बेघर।
देख न पड़ता था मां-बेटा, भाई-भाई का नाता,
कौर छीन सुत के हाथों से पिता स्वयं ही खा जाता।
फटी फटी बेबस आखें लखती ऊँची दीवारों को,
पेट थाम कर कोस रहीं मानवता के हत्यारों को।
सड़कों पर भूखा मानव अपना ही मांस चबाता था,
भले बुरे का ख्याल कहां ? मैला भर भर कर खाता था।
कुछ फुट की दूरी पर गोदामों में था सड़ रहा अन्न,
हाय ! स्वार्थ, मानव ने ही मानवता कर दी छिन्न-भिन्न।
हिन्दू-मुस्लिम नहीं, भूख उस दिन मज़लूमी मज़हब था,
ढोंग-भरे सीमित धर्मों में शेष नहीं कुछ भी दुम था।

आज भूल सब गये बन्धु उस महाकाल का हाल,
हाय ! खींचते थे कुत्ते मानव की जीवित खाल !
मां की कोख पुकार रही तुम एक दूध के लाल,
आज खून का नहीं अन्न का भूखा है बंगाल।

दो दानों में यहां नारियों की इज़्ज़त लुट जाती थी,
भूख ! भूख की ज्वाला में मानवता झुलसी जाती थी।
एक ओर नाली में बिलख रही नर-पशुओं की टोली,
खुलकर खेल रहा था ज़ालिम जिनके जीवन से होली।
और दूसरी ओर महल में हँसता पशु नर-तन-धारी,
जिसकी सड़ी व्यवस्था ने कर डाली दुनिया हत्यारी।
तरस मरे दाने दाने को यों चालीस लाख मानव,
और लुटेरा शासन फिर भी करता अपने पर गौरव।
तुम गुलाम हो, इसीलिए क्या कुत्तों से भी बदतर हो
भूखे हो क्या, इसीलिए उस ज़ालिम से भी बर्बर हो ?
नहीं, गुलाम नसों में फिर से नया खून भर आया है,
पर इन मज़हब के पुतलों ने उलटा तार चढ़ाया है।
उस दिन मज़हब कहां गया था जरा इन्हें पूछो बढ़कर
एक भूख की डोर बंधे हिन्दू-मुस्लिम सब कुछ तजकर।

अरे, एक होकर बन जाओ तुम ज़ालिम का काल,
अरे भूख के नाते ही करदो उसको पामाल,
मां की कोख पुकार रही, ओ एक दूध के लाल।
आज खून का नहीं अन्न का भूखा है बंगाल !

आज लुट रही हैं मां-बहनें खुले आम बाजार यहां,
हाय ! पिता के सन्मुख पुत्री पर होता व्यभिचार यहां !
जला दिया जाता शिशु मां की बेबस आखें देख रहीं,
हाय अभागिन मौन तुम्हारा प्रलय नहीं बन जाय कहीं।
उस दिन बिना कफ़न सोया गोदी में आंखों का तारा,
जीर्ण हृदय को चीर आज फिर उमड़ पड़ी आंसू धारा।
किसी कलेजे के टुकड़े, भावी आशा भारत-मां की,
हुए हजारों शिशु अनाथ ठोकर खा-खाकर पशुता की।
हाय ! ख़ून को ख़ून खा गया मां का दूध हराम किया,
अरे गुलामो ! अपने हाथों अपना प्राण विराम किया !
खेल देखते धरे हाथ पर हाथ खून के व्यापारी,
एक प्रलय का ताण्डव यह ओछी गुण्डाशाही सारी !
मगर गुलामो ! याद रखो सिर पर यह काला दाग़ लगा,
जाग उठी स्वातंत्र्य-चण्डिका फिर जल थल में आग लगा।

स्वर्णिम-समय, धधक, उट्ठी है आज़ादी की ज्वाल,
आज चढ़ा लो साथ साथ इस वेदी पर शिरमाल !
एक दूध की सन्तानो ! ओ आर्य भूमि के लाल,
आज खून का नहीं अन्न का भूखा है बंगाल !

ओ चालीस सहस की संख्या शतशत में गिनने वाले,
अब न टिकेंगे क्षणभर ये हत्यारे सिंहासन काले।
एक ओर 'न्यूरेम्बर्ग' में पहन न्याय-पद का जामा,
करते जो बर्बाद बमों से कितने ही 'हीरोशामा'।
वे हत्यारे हाथ खून से लथपथ अब डगमगा रहे,
युग के सिंह-द्वार पर फिर सैनिक रण-भेरी बजा रहे।
ओ भूले राही ! भारत का आज अँधेरा दूर हुआ,
अरी हड्डियों पर निर्मित साम्राज्य मूल से चूर हुआ।
अब चाहे हर गांव नगर में बहले शोणित की नाली,
एक नहीं खाली हो जाएँ फिर शत शत 'नोआखाली'।
पर जननी का दूध एक, तन एक, एक मन प्राण,
भूले सुबह सांझ को घर आएँगे हिन्दू-मुसलमान,
यह भूखा बंगाल कि भारत-माता का मस्तक-सिंदूर,
घोर विषमता-बन्धन की कड़ियां कर देगा चूर चूर
हिन्दू-मुस्लिम गले मिलो तुम एक दूध के लाल,
तड़प रही है गोद जननि की कर दो आज निहाल,
तुम्हें जगा देना है भूखी आहों से भूचाल,
मगर खून का नहीं अन्न का भूखा है बंगाल !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हमारी' शिक्षा-पद्धति में इतिहास का अध्ययन

श्री० रामजीलाल शर्मा एम० ए०

ज्यों ज्यों देश में राष्ट्रीयता की भावना बढ़ रही है, त्यों त्यों इतिहास को एक नई दृष्टिकोण से देखने की जिज्ञासा भी जाग्रत होती जा रही है। हमारे देश के गण्य मान्य नेताओं का ध्यान इस ओर जा रहा है कि स्कूलों में कोमलमति बालकों को जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह अधूरा और ग़लत है। बच्चों के सामने विगत युगों की कुछ घटनाओं और व्यक्तियों के कारनामों का ढेर लगा देना मात्र इतिहास का सच्चा पाठन नहीं है। युक्त प्रान्त के माननीय शिक्षामंत्री संपूर्णानन्द ने बरेली में एक व्याख्यान में कहा था, हम अपनी पाठशालाओं में बच्चों को जो इतिहास पढ़ाते हैं, उसके द्वारा बच्चों के मन पर यह भावना जम जाती है कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से बिल्कुल पृथक हैं। उसके द्वारा बच्चे को यह ज्ञान नहीं हो पाता कि भारतवासी एक ही हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृतियाँ भिन्न भिन्न नहीं हैं तथा हमने मिलजुलकर ही जीवन के अनेक क्षेत्रों में सम्मिलित सफलताएँ प्राप्त की हैं। बच्चा अपनी शिक्षा के किसी स्तर पर पहुंचकर यह नहीं समझ पाता कि दुनिया में 'हिन्दुस्तानी' नाम का भी कहीं कोई जीव है। फल यह होता है कि बच्चों के छोटे छोटे दिमागों में भी साम्प्रदायिकता और अलहदगी का ज़हर भर जाता है। इसी समय पर देश के अन्य नेताओं ने भी इतिहास की शिक्षण-पद्धति पर कुछ ऐसे ही विचार प्रगट किये हैं।

इतिहास शास्त्रीय दृष्टि से क्या है और क्या नहीं इस विवाद को तो यहाँ उठाना ठीक और संगत न होगा, परन्तु जहाँ तक हमारे स्कूलों की छोटी कक्षाओं का सम्बन्ध है, वह अवश्य ही केवल विगत घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं है। यदि इतिहास का अर्थ केवल गड़े मुर्दे उखाड़ना मात्र है, तो उसे दूर से ही नमस्कार कर देना चाहिए। कारण कि वर्तमान की समस्याएँ और भविष्य के प्रश्न ही क्या कम हैं, जो भूत के विषयों में माथा-पच्ची की जाय। फिर तो शायद यही कहना उचित होगा—बीती ताहि बिसारदे, आगे की सुधि लेय'।

अतः सचमुच में इतिहास विगत युग का लेखा मात्र नहीं है। समाज का शरीर भी एक प्राणी के शरीर के समान है। जिस प्रकार मनुष्य का विकास बालक में छिपा रहता है ठीक उसी प्रकार हमारे वर्तमान का विकास भी भूत के गर्भ में होता है। इस दृष्टि से देखने पर इतिहास अप्रत्यक्ष रूप से समाज शास्त्र का आकार धारण कर लेता है। मनुष्य जब तक मनुष्य है, उसे समाज में रहना होगा। समाज के भेद हो सकते हैं, उसके रूपों में परिवर्तन हो सकता है, कहीं उसका कम और कहीं अधिक विकास हो सकता है, परन्तु हमारा उसका सदा सम्बन्ध रहा है तथा रहेगा। समाज के इस लम्बे विकास में कुछ शुभ और कुछ हानिकारक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होंगी। यह सामाजिकता ही इतिहास का गूदा अथवा सत्व है, और बच्चे को इसी से परिचित कराना हम सब का कर्त्तव्य है। शायद इसी कारण आज इतिहास लेखन की नवीन पद्धति में कालविभाजन या युगनामकरण व्यक्तियों के अनुसार न किया जाकर, प्रवृत्तियों के अनुसार होता है।

अतः यह मान लेने पर कि इतिहास के शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक को उन प्रवृत्तियों से परिचित कराना है जो लोक के लिए शुभ एवं कल्याणकारी है, यह प्रश्न ही नहीं रह जाता कि हम केवल घटनाओं और व्यक्तियों तथा सन् सम्वतों को महत्व दें। हमें तो उन कारणों और उद्देश्यों को स्पष्ट करना होगा जिसके आधार पर मनुष्य-समाज में सहयोग और सद्भाव बढ़ते हैं, या उनका नाश हो जाता है।

इस दृष्टि पर इतिहास में हमें आर्थिक और औद्योगिक विकास की एक अविछिन्न धारा बहती दिखाई पड़ती है। मनुष्य के रहने-सहने के, जीवीकोपार्जन के विभिन्न युगों में क्या साधन रहे हैं, किस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति से लड़ा है, किस प्रकार उसने विजय या पराजय प्राप्त की है, और इस विजय और पराजय ने क्या क्या रूप धारण किए हैं आदि इतिहास के ऐसे पक्ष हैं जो बच्चों की दृष्टि से रोचक भी हैं और साथ ही उपादेय एवं लाभदायक भी।

आज के युग का बालक अपने चारों ओर ज्ञान-विज्ञान के अविष्कार और चमत्कार देखता है, उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव होता है कि मनुष्य ने प्रकृति को संपूर्ण रूप से अधिकृत कर रखा है, उसके पास विभिन्न प्रकार के औज़ार और मशीनें हैं। परन्तु एक युग ऐसा भी तो था जब मनुष्य साधनहीन और निहत्था था। उस समय उसने प्रकृति और परिस्थितियों से किस प्रकार युद्ध किया, उसे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वह उन पर किस प्रकार विजय प्राप्त करता गया आदि बातें इतिहास का रोचक पक्ष हैं। इस इतिहास को हम केवल मनुष्य के शक्ति-संग्रह या भौतिकता के प्रेम का इतिहास कहकर नहीं टाल सकते। अपितु उसमें मनुष्य के धैर्य्य, लगन, उत्साह और आत्मा की सभी शक्तियों का इतिहास है।

जब बालक इतिहास का आरम्भ करता है, तो उसकी जिज्ञासा बड़ी बड़ी घटनाओं की ओर नहीं होती। उदाहरण के लिए अकबर के सम्बन्ध में उसे ज्ञानियों का ज्ञान नहीं चाहिए। उसकी उत्सुकता तो यह जानने की होती है कि अकबर कैसा भोजन करता था, कैसे कपड़े पहनता था, कैसे खेल खेलता था। उसे अपने छोटे से जगत या वायुमण्डल में जिन चीजों से नित्यप्रति का सम्बन्ध रहता है ठीक उन्हीं बातों को वह विगत युगों के सम्बन्ध में भी जानना चाहता है। अतः इतिहास पढ़ाते समय हमें बालक को उसके छोटे से जगत से बाहर घसीट कर एक बड़े जगत में बरबस नहीं ढकेल देना चाहिए। उसकी सहानुभूति का विस्तार क्रमशः होता है। अतः इतिहास की जितनी बातें हम बच्चे के जगत की सी बनाकर रख देंगे। वे ही उसको होंगी। अन्यथा तो इतिहास बुद्धि का व्यायाम या स्मरण शक्ति की परीक्षा-मात्र रहेगा।

इतिहास के सम्बन्ध में यह धारणा कि वह केवल शासन सत्ता और उससे सम्बद्धित घटनाओं और व्यक्तियों का ब्योरा है, बड़ी भ्रामक है। क्यों कि बालक जब छोटा रहता है तो समाज के इन बड़े प्रश्नों से उसका सम्बन्ध नहीं रहता। अपने आसपास की वस्तुओं तक ही उसका ध्यान जाता है और उन्हीं के सम्बन्ध में उसकी सहानुभूति होती है। वह दियासलाई से आग जलाते हुए मनुष्य को देखता है, कुए से डोल-रस्सी से पानी निकालते हुए देखता है, वह देखता है कि एक भारी बोझे को जिसे सम्भवतः दस मनुष्य भी नहीं उठा सकते, एक आदमी पहियों की गाड़ी पर रखकर सरलता से खींच ले जाता है। इस प्रकार चाहे छोटे रूप में ही सही, परन्तु वह देखता है कि प्रकृति मनुष्य के आधीन है। परन्तु मनुष्य सदा ऐसा शक्तिशाली न था। उसने कभी इस दिशा में क्षीण प्रयत्न किए और उन्नति करते करते इस दशा को पहुंचा, यही बालक के इतिहास का प्रारम्भिक रूप होना चाहिए। इसीको एक विद्वान ने विज्ञान और इतिहास का योग कहा है। इस तरह से बालक की कर्तृत्व शक्ति प्रोत्साहित होती है।

बालक को इतिहास का प्रारम्भिक पाठ पढ़ाने के लिए उसके इर्द गिर्द जो अनेक पेशे और व्यवसाय होते हैं, कुछ उनकी जानकारी करानी भी आवश्यक है क्योंकि भिन्न भिन्न पेशे-लुहारी, बढ़ईगिरी, सुनार, राज धोबी, तेली, जुलाहा, कवि, चित्रकार, गोटावाला आदि हमारी सभ्यता के विकास के विभिन्न स्तरों से सम्बन्ध रखते हैं, और उनके द्वारा मानव समाज के विकास का एक ढांचा बालक के सामने रखा जा सकता है।

इस दृष्टि से जीवन चरित्रों का भी अच्छा उपयोग हो सकता है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास समाज को कुछ विशेष परिस्थितियों में ही हो सकता है। अतः ऐसे व्यक्ति इतिहास के स्तम्भ होते हैं। इतिहास के अध्यापक अपनी ही भाषाओं में लिखे हुए कुछ छोटे छोटे जीवनचरितों का प्रयोग भी करें तो इतिहास की पाठन पद्धति में एक वाञ्छनीय सुधार हो सकता है।

हर्ष की बात है कि अब ऐसे प्रश्नों की ओर हमारे अध्यापकों का ध्यान जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केबिनेट मिशन के प्रस्तावों की आर्थिक रूपरेखा

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०, साहित्यरत्न

गत १६ मई को केबिनेट मिशन ने जो प्रस्ताव देश के सामने रखे थे, उन पर अब तक बहुत-सी विविध चर्चा हो चुकी है। किन्तु राजनैतिक दृष्टिकोण को लेकर जितना विचार-विनिमय हुआ है, उसका शतांश भी आर्थिक दृष्टिकोण से शायद नहीं हुआ। वस्तुतः देखा जाय तो प्रस्तावों का आर्थिक पक्ष अधिक महत्व का है। इस देश की आर्थिक अवस्था इस समय इतनी जर्जर एवं पद-दलित है कि उसको सुधारने का प्रयत्न किये बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता का भविष्य अन्धकार-मय ही बना रहेगा। यद्यपि प्रस्ताव भावी विधान की एक रूप-रेखा मात्र ही हैं, और उनको लेकर निश्चित धारणाएं स्थिर नहीं की जा सकतीं, तथापि कुछ मोटी मोटी बातों पर विचार करना असमीचीन न होगा। विशेषकर इस समय जब कि मूल रूप में प्रस्तावों को देश के बड़े बड़े राजनैतिक दलों ने स्वीकार कर लिया है और दिसम्बर मास में ही भावी विधान-निर्मात्री परिषद का अधिवेशन होने जा रहा है, इस देश की आर्थिक समस्याओं की विवेचना अनुचित न होगी। हमें देखना यह है कि मिशन के प्रस्तावों के आधार पर जो विधान विधान-निर्मात्री परिषद बनायेगी, उसमें प्रान्तों और केन्द्र की आर्थिक व्यवस्था, पर क्या प्रभाव पड़ेगा, और उसकी रूपरेखा क्या होगी।

मिशन की योजना के अनुसार प्रान्तों को ए० बी० सी० तीन ग्रूपों में विभक्त कर दिया जायगा, और उनका सम्बन्ध यूनियन केन्द्र से होगा। इस तथ्य से सभी सहमत हैं कि वर्त्तमान प्रान्तों का विभाजन आर्थिक दृष्टि से समीचीन नहीं है—ये प्रान्त वास्तव में प्राकृतिक दृष्टि से परिपन्न नहीं है, अतः आत्म-निर्भर नहीं हो सकते। इसे यह भी सर्वमान्य है कि देश की सर्वांगीण उन्नति के लिये समग्र प्रान्तों में प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक सारे देश की आर्थिक उन्नति की योजनाओं में एकता तथा सामंजस्य की भावना नहीं होगी, उनकी सफलता असंदिग्ध रहेगी। अतएव यह आवश्यक है कि आर्थिक योजनाओं के लिये सभी प्रान्तों में केन्द्र द्वारा प्रचारित एक केन्द्रीय नीति काम में लाई जाय, जिससे देश की सर्वांगीण उन्नति संभव हो सके। इस युग में आर्थिक शक्ति के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है।

केबिनेट मिशन ने अपने प्रस्तावों में पाकिस्तान की योजना को कोई स्थान नहीं दिया है, वह उनकी आर्थिक समस्याओं के प्रति जागरूकता का परिचायक है। पाकिस्तान किसी शेखचिल्ली के स्वप्न के समान जान पड़ता है। यदि लीग के मतानुसार पश्चिमी और पूर्वी दोनों मुस्लिम प्रधान प्रदेशों को पाकिस्तान मान लिया जाय, तो यह दोनों आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त निर्बल तो रहेंगे ही, साथ ही इनके बीच में ७०० मील का 'हिन्दुस्तान' भी रहेगा, जिसमें वे आकाश-गंगा की भाँति एक पुल बनाना चाहते हैं, जो पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान को मिला सकें। पाकिस्तान में उसकी अपनी मुद्रा, अपनी आर्थिक व्यवस्था, अपनी विनिमय दर तथा अपनी सेना और अपना विदेशी व्यापार होगा। यह कैसे सम्भव होगा? इसका कोई समाधान तो लीग की ओर से पेश नहीं किया गया, पर वे चाहते यही हैं। प्रथम तो ऐसा करना भारत जैसे ग़रीब महादेश के टुकड़े करके उसको और भी ग़रीबी के गर्त्त में ढकेल देना, और संसार की प्रगतिशील जातियों की दौड़ में उसे कम से कम ५० वर्ष पीछे खींच लेना है। दूसरे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों में शासन का ख़र्च बेतहाशा बढ़ जायगा, जिसके लिये अधिक टैक्स लगाने की आवश्यकता होगी। उसका फल यह होगा कि देश की औद्योगिक उन्नति की राह में बाधाएँ खड़ी हो जायेंगी। भिन्न भिन्न प्रकार के टैक्स, भिन्न भिन्न प्रकार की टैरिफ-नीति, और व्यापार तथा जनता के अधिकारों पर प्रतिबन्ध, यह सब ऐसी दीवारें, दोनों प्रदेशों के बीच खड़ी हो जायेंगी, जिससे देश की आर्थिक प्रगति में हानि होगी। इस प्रकार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों आर्थिक दृष्टि से निर्बल तो रहेंगे ही, किन्तु वर्त्तमान युग में दूसरी शक्तियों के आक्रमण के सामने वे अपने बचाव में भी अशक्त रहेंगे। पाकिस्तान की योजना कार्यान्वित होने पर प्रान्तों में आपस में एक से दूसरे में पूंजी का आना जाना शुरू हो जायगा, जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी ब्रिटिश इण्डिया से देशी राज्यों में हो रहा है। इसका कुफल औद्योगिक उन्नति का रुक जाना होगा। साथ ही इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से निर्बल प्रदेश सहज ही विदेशी व्यापार में टिक नहीं सकेंगे, और संसार की दूसरी जातियां अपने माल से हमारे बाज़ारों को पाट देंगी। हमारे उद्योग धन्धे बेमौत मर जायंगे।

अतएव यह आवश्यक है कि एक केन्द्रीय सुदृढ़ सत्ता रहे जिसके पास, मुद्रा, विदेशी विनिमय, विदेशी व्यापार स्वयं डिफेन्स इत्यादि के अबाध अधिकार रहें, और इस दृष्टिकोण से मिशन ने पाकिस्तान की योजना को अस्वीकार करके बुद्धिमता का परिचय दिया है। किन्तु इसके साथ ही मिशन ने अपने प्रस्तावों में प्रान्तों को विभिन्न ग्रूपों में विभक्त करने की जो योजना बनाई है, उसने बहुत सन्देहों और समस्याओं को जन्म दिया है, जिनके कारण देश की उन्नति और आर्थिक प्रगति में बाधा होगी। मिशन ने केन्द्र को जितने सीमित अधिकार दिए हैं, उनको देखते हुए यह सन्देह होता है कि कुछ विषयों में पूरे अधिकार होते हुए भी केन्द्र की स्थिति बहुत निर्बल रहेगी। ऐसे निर्बल और अशक्त केन्द्र से भारत जैसे महादेश की रक्षा की आशा नहीं की जा सकती। वास्तव में मिशन ने केन्द्र को निर्बल बनाकर और प्रान्तों को विचित्र ग्रूपों में विभक्त करके पाकिस्तान के समर्थकों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की है, जैसा कि स्वयं सेक्रेटरी आव स्टेट लार्ड पेथिक लारेन्स ने स्वीकार किया है, "हमने पाकिस्तान का लाभ उठाने की योजना बनाई है, जिसमें विभक्त भारत के ख़तरे निहित नहीं है।" पता नहीं किस सिद्धान्त अथवा उद्देश्य को सामने रखकर प्रान्तों को विभिन्न ग्रूपों में रखने की यह योजना बनाई गई है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि केन्द्र को निर्बल रखना, भारत के हित में लाभदायक नहीं होगा। जब तक केन्द्र की व्यवस्था सबल एवं सुदृढ़ न हो, देश में राजनैतिक आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्रों में प्रगति की आशा नहीं की जा सकती। आर्थिक उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि केन्द्र की नीति ही योजनाएँ बनाने और उनको कार्यान्वित करने में प्रयुक्त हो। इसके अतिरिक्त मुद्रा, सिक्के, टैरिफ़, कस्टम, आन्तरिक और विदेशी व्यापार लेबर तथा फैक्टरी सम्बन्धी क़ानून इत्यादि विषयों के लिये भी एक ही केन्द्रीय निर्धारित नीति होनी चाहिये।

इस विषय में एक निर्धारित केन्द्रीय नीति की आवश्यकता के अलावा भी हमारे देश की ऐसी बहुत-सी आर्थिक समस्याएँ है, जो प्रान्तों को विभिन्न स्वतन्त्र ग्रूपों में बाँट देने पर और भी उलझ जायेंगी। उनमें सबसे बड़ी हमारी स्टरलिङ्ग बैलेन्सेस की समस्या है। हमारी १२०० करोड़ रुपये से अधिक की यह थाती इस समय ब्रिटेन के पास सुरक्षित है और हम इसे देश की औद्योगिक उन्नति के लिये काम में लाने के लिये व्याकुल हैं, किन्तु यदि मिशन के प्रस्ताव के अनुसार ए० बी० सी० तीनों ग्रूपों को पूर्ण स्वाधिकार मिल जायेंगे, तो इनका वितरण और विभाजन किस प्रकार होगा? केन्द्र का शासन तो वे मानेंगे नहीं, क्योंकि वे अपनी मनमानी करने के लिये स्वतन्त्र होंगे, और फिर सबको समान भाव से उसका लाभ मिलेगा कैसे? इसके अतिरिक्त यहीं भारत सरकार ने लगभग ९०० करोड़ का ऋण इस देश की जनता से ले रखा है। यह भला किस प्रकार किस आधार पर उन तीनों ग्रूपों में बांटा जायगा? यह दो बड़ी बड़ी पेचीदा समस्याएँ हैं, जिनका समाधान अवश्य ही होना चाहिये।

इस प्रकार सम्भव है कि इनमें उलझ कर विधान निर्मात्री परिषद का काम रुक जाए, अथवा उसमें वर्षों की देरी लगे। उतने समय तक विभिन्न प्रान्तों में बनी हुई आर्थिक उन्नति की योजनाएं तो धरी ही रह जायेंगी। अर्थात देश की ग़रीबी को इतने दिन तक और भी बढ़ने दिया जायगा। फिर यदि कहीं इन ग्रूपों को अपनी मुद्रा रखने का अधिकार मिल गया, तो प्रत्येक ग्रूप अपनी अलग मुद्रा और उसकी विनिमय दर रखना चाहेगा, और दूसरों को लाभ की अपेक्षा हानि पहुंचाने की चेष्टा करेगा। जो संघर्ष स्टरलिंग और रुपये को लेकर ब्रिटेन और भारत में चल रहा है, यही तीनों ग्रूपों के बीच भी शुरू हो सकता है। फलस्वरूप व्यापार को आघात पहुंचेगा। तीनों ग्रूपों में दरों की विभिन्नता रहेगी उसको रोकने के लिये टैरिफ़ और कस्टम की दीवारें खड़ी होंगी, और संक्षेप में जिस प्रकार दो देशों में संघर्ष होता है, उसी प्रकार से इस देशमें केन्द्र और ग्रूपों में संघर्ष होगा। वास्तव में होना तो यह चाहिये था, कि जिस प्रकार केन्द्र को डिफेन्स, विदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामलों और यातायात के साधनों के विषय में एकाधिकार दिया गया है, उसी प्रकार से एक मुद्रा, एक-सी विदेशी व्यापार तथा आन्तरिक आर्थिक नीति रखने का भी स्वत्वाधिकार उसे मिलना चाहिये था। सारे संसार में एक-सी राजनैतिक प्रणाली के साथ यह विषय जुड़े हुए होते हैं। अन्यथा गड़बड़ी और संघर्ष की कोई सीमा नहीं रहेगी। मिशन ने तीनों ग्रुपों और देशी रियासतों को अपना ज़कात इत्यादि लगाने का अधिकार देने की सिफारिश की है। इसका परिणाम यह होगा कि आज की स्थित के अन्दर दुहरी तिहरी ज़कात देनी पड़ती है उसी प्रकार ग्रूपों में देनी पड़ेगी। इस प्रकार व्यापार को बड़ा धक्का पहुंचेगा, और उत्पादन बढ़ने के बजाय कम हो जायगा। इन दिनों में कई बार ऐसी आवाज़ उठाई गई है, कि प्रान्तों तथा रियासतों में टैक्स समान दर से लगने चाहियें! अन्यथा टैक्स के भय से उद्योग-पति अपने धन्धे रियासतों में फैलाना पसन्द करते हैं। किन्तु ग्रूपों को जब स्वाधीन आर्थिक नीति रखने का अधिकार मिल जायेगा, तब वहां भी यही बात होगी।

इन सब समस्याओं के अतिरिक्त सबसे बड़ी मुसीबत यह होगी, वह यह कि अभी तो जातीय-द्वेष से हमारी राजनैतिक और आर्थिक अवस्था जर्जर है ही, किन्तु जब तीन विभिन्न ग्रूपों में विभिन्न जातियों और पार्टियों का दलबन्दी का शासन होगा, तो इस देश में विदेशी जातियों के पांव और भी मज़बूत हो जांयगे, और वे अवश्य ही इसका लाभ उठाकर इन दीवानों को एक दूसरे के विरुद्ध उकसाते रहेंगे।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि मिशन ने प्रान्तों और केन्द्र को जो अधिकार देने का प्रस्ताव किया है, उनसे हमारी आर्थिक समस्याएँ सुलझने के बजाय और भी उलझ जायेंगी, और अन्य नई समस्याओं का जन्म होगा। सम्भव है कुछ थोड़े से लोग जो ग्रूपों में अपनी अधिकता समझे बैठे हैं अपने एकाधिकारों, और उनसे होनेवाले लाभों की बात सोचकर प्रसन्न हो रहे हों, किन्तु बाद में उन्हें दलबन्दी और जातीय-विद्वेष के साथ राजनैतिक मतभेद से उत्पन्न कठिनाइयों का कटु अनुभव होगा। आशावादी नेता अब भी ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से अखण्ड भारत की एकता को अविच्छिन्न बनाये रखने की बात करते हैं, किन्तु मिशन के प्रस्ताव यदि इसी रूप में कार्यान्वित किये गये, तो वे अवश्य ही एक भयङ्कर अन्तर्प्रान्तीय अथवा अन्तर्दलीय आर्थिक गृह-युद्ध को जन्म दे सकते हैं।

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि भावी विधान निर्मात्री परिषद जो विधान बनाये उसमें केन्द्र को सबल बनाने के लिये इसे आर्थिक विषयों में पूर्ण स्वत्वाधिकार दिये जायें, और ग्रूपों और प्रान्तों को एक केन्द्रीय आर्थिक नीति का पालन करने के लिये बाध्य किया जाये, ताकि इस देश की नंगी भूखी ४० करोड़ जनता की ग़रीबी कुछ हद तक दूर की जा सके। क्या विधान-निर्मात्री परिषद के सदस्यों से जो अधिकांश केवल अपनी राजनैतिक पार्टियों के प्रतिनिधि मात्र हैं, यह आशा की जा सकती है कि वे अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह निभायेंगे ?

कैसे नव-निर्माण करोगे ?

श्री बालकृष्ण बल्दुवा

तड़पे बिना न कभी दूसरों की तड़पन तुम मिटा सकोगे।
और गिराये बिना खण्डहर, कैसे नव-निर्माण करोगे ?
खंडहर से ममता है—माना; किन्तु बिना ममता के त्यागे,
बिना त्याग की नींव जमाये, कैसे नव-निर्माण करोगे ?

१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्टि मार्ग और उसके प्रचारक

श्री श्यामसुन्दर

भारतीय दर्शन की विविध लहरों में अद्वैतवाद सब से प्रबल है। किन्तु यह प्रबल लहर कालान्तर में परिवर्तित और परिवर्द्धित हो गई। शुद्धाद्वैतवाद इसी अद्वैतवाद का एक विकसित रूप है। वल्लभाचार्य ने इस दर्शन के आधार पर एक धार्मिक सम्प्रदाय चलाया जिसका नाम पुष्टिमार्ग है।

शुद्धाद्वैतवाद के अनुसार कृष्ण सच्चिदानन्द परम ब्रह्म हैं। वे अखिलरसामृत मूर्ति, अखिल लीला-निकेतन हैं। गोलोक उनका वासस्थान है। वे संसार की रचना अपनी क्रीड़ा के लिये करते हैं जो कि साम्प्रदायिक शब्दावली में 'लीला' कहलाती है। यह जगत भगवान की लीला है।

भगवान के बहुत से अवतार हुए हैं। उनमें अन्य अवतार तो आंशिक हैं परन्तु कृष्णावतार सम्पूर्ण सोलह कलाओं का है। भगवान की शक्ति माया है। वे उसी की सहायता से सृष्टि की रचना करते हैं। यह माया मिथ्या नहीं है। राधा इसी माया की प्रतीक है। इस माया और आविर्भाव तथा तिरोभाव नामक भगवत्-शक्तियों के कारण इस जगत की उत्पत्ति, विकास तथा लय होता है। यह जगत दो तरह का है—

१. चेतन

२. जड़

चेतन जगत सत् और चित् गुणों को लिये हुए है, सच्चिदानन्द परम ब्रह्म के आनन्द गुण का इसमें तिरोभाव है। यह जगत अग्नि से स्फुलिंगों के समान उस परब्रह्म से आविर्भूत हुआ है। जड़ जगत में सत् गुण है, चित् और आनन्द गुण का उसमें तिरोभाव है।

भूतल में वृन्दावन उस गोलोक का प्रतीक है। भगवान कृष्ण वहीं पर अपनी क्रीड़ा करते हैं। उनकी क्रीड़ा का चरम तन्मय रूप रासलीला में है।

इस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर वल्लभाचार्य ने अपना पुष्टि मार्ग चलाया। वल्लभाचार्य ने देखा—

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥
गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥
अहङ्कारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥

(कृष्णाश्रयस्तोत्र)

अर्थात समस्त देश म्लेच्छों के आक्रमणों से ध्वस्त हो गये हैं; गङ्गादि तीर्थ अन्तर्धान हो गये हैं ऐसे विपरीत समय में क्या ज्ञान की निष्ठा हो सकती है? यज्ञ-यागादिकों का यथोचित अनुष्ठान हो सकता है? अथवा भक्ति का ही क्या आचरण भली भांति हो सकता है? नहीं, कभी नहीं।

पुष्टि मार्ग में मर्यादा मार्ग का सुप्रसिद्ध सिद्धान्त 'कर्मानुरूपं फलम्' नहीं स्वीकार किया गया। पुष्टि मार्ग का सिद्धान्त था—

समस्तविषयत्यागः सर्वभावेन यत्र हि।
समर्पणं च देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते॥

(हरिरायकारिका)

अर्थात समस्त विषयों का त्याग और सर्व भाव से देह आदि का समर्पण पुष्टि मार्ग कहलाता है। इस प्रकार इस पुष्टि मार्ग में साधना के दो अंग हैं—

१—सब विषयों का त्याग

२—सर्व भाव समर्पण

सब विषयों के त्याग से तात्पर्य आत्म शुद्धि से है और सर्वभाव समर्पण अपने को भगवान की इच्छा पर छोड़ देना है। 'पुष्टि' का अर्थ 'अनुग्रह' है अर्थात पुष्टि मार्ग में व्यक्ति विषय मात्र से आसक्ति हटा कर भगवान की दया पर अपने को छोड़ देता है।

साम्प्रदायिक व्यवस्था में पहले 'ब्रह्म सम्बन्ध' विधि का पालन होता है। यह विधि एक अनुष्ठान कहलाती है। इस अनुष्ठान के द्वारा गुरू प्रत्येक शिष्य का भगवान के साथ सम्बन्ध करा देता है। गुरू उसे 'भगवान श्री कृष्ण ही हमारे शरण हैं' अर्थ वाला मन्त्र 'श्रीकृष्णः शरणं मम' बतलाते हैं। यह शरण मंत्र कहलाता है। वल्लभाचार्य ने इस मन्त्र के विषय में कहा है—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे यतिः॥

इसके बाद वह गुरू भगवान के विग्रह के निकट ले जाता है, तुलसी की माला देता है तथा दीक्षा-मन्त्र का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा देता है और शिष्य से उसका उच्चारण कराता है। यह दीक्षा-मन्त्र आत्म-निवेदन मन्त्र कहलाता है। इसे हृदय गोप्य रखा जाता है। यह भक्त का आत्म समर्पण मन्त्र है। इसमें भक्त अपनी समस्त वस्तुओं का—अपनी देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तः करण को भगवान को समर्पण कर देता है। इस मन्त्रोपदेश के बाद वह भक्त गोपियों को अपना आदर्श मान कर अपना जीवन सेवा-निरत जीवन बिताता है। उसे अपने जीवन में कोई ममता नहीं बचती। उसका जीवन स्वतन्त्र नहीं रहता। अब वह भगवान का दास बन जाता है और उसका जीवन भी भगवान का ही हो जाता है। कर्मों में उसे कोई लगाव नहीं बचता। कर्म के मूल में उसकी इच्छा नहीं वरन हरि-इच्छा रहती है। उसे भगवान को आत्मनिवेदन मात्र का अधिकार शेष रहता है। कष्टों में वह भगवान से निवेदन मात्र कर सकता है। यदि भगवान का अनुग्रह होगा तो वे उसे उस कष्ट से उबार लेंगे। वह अपनी ओर से कोई प्रयत्न उस कष्ट से छूटने का नहीं कर सकता।

हमने ऊपर बतलाया है कि श्रीकृष्ण उस परब्रह्म के अवतार हैं और गोपी बनना प्रत्येक भक्त का आदर्श है। सम्प्रदायिक विश्वासों के अनुसार कृष्ण का यह अवतार नित्य है। आज हम अपने दृष्टि-दोष के कारण देख नहीं पाते। यदि हमारी दृष्टि पवित्र होती जैसी कि शुद्ध भक्तों की है तो हम देखते कि कृष्ण की क्रीड़ायें वृन्दावन में आज भी हो रही हैं। आज भी सर्वभाव से आत्मसमर्पण किये हुए समस्त विषयों को त्यागकर गोपियां कृष्ण के प्रेम में प्रमत्त होकर रास-क्रीड़ा कर रही हैं और ये गोपियां क्या हैं? ये भक्त आत्मायें ही हैं। तिरोभूत आनन्द गुण का आविर्भाव इन चेतन आत्माओं में भगवान के साथ क्रीड़ा करने में हो जाता है, जीवों की अपूर्णता दूर हो जाती है। प्रत्येक भक्त पहले तो अपनी दृष्टि को पवित्र बनाता है और उसके पश्चात रास-क्रीड़ा में भगवान के साथ भाग लेता है। यही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पुष्टि मार्ग में नित्य कर्म और वार्षिकोत्सवों का विधान है। नित्य कर्म और वार्षिकोत्सव को हम संसारी व्यक्ति अवतार का अभिनय कह सकते हैं। मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति रहती है। कृष्ण के नित्य कर्मों का अभिनय रोज होता है—अर्थात् सवेरा होने पर भक्तगण कहने लगते हैं कि भगवान सोकर जाग गये हैं। थोड़ी देर बाद वे कहते हैं कि भगवान 'छाक' कर रहे हैं। संध्या को बतलाते हैं कि भगवान वन से लौट आये। रात को भगवान सोते हैं। नित्य कर्मों की रूप-रेखा प्रायः रोज़ ऐसी ही रहती है। संसारी लोगों को यह अभिनय कुछ अजब-सा लगता है। परन्तु संसारी लोगों की दृष्टि को दूषित माना जाता है। भक्ति भाव से भरे व्यक्तियों के लिये यह अभिनय नहीं होता, वे इसे सत्य मानते हैं। उनको ऐसा प्रतीत होता है मानो ये घटनायें उनकी आखों के आगे घटित हो रही हैं।

वार्षिकोत्सवों में कृष्ण की किशोरावस्था तक की प्रमुख घटनाओं का अभिनय होता है। इन घटनाओं में गोवर्द्धन-धारण, रास-क्रीड़ा आदि प्रमुख हैं। गोवर्द्धन-धारण की तिथि के दिन चाहे पानी बरस रहा हो या उजली खुली धूप हो; भक्त गण कहते हैं कि अरे, कितनी ज़ोर से वर्षा हो रही है! इन्द्र कितना कुपित है। मालूम पड़ता है कि आज सारा ब्रजमण्डल वर्षा में बह जायगा। फिर थोड़ी देर के बाद वे पुकार पुकार कर कहने लगते हैं—भगवान श्रीकृष्ण हमें बचाइये! इस प्रकार वे कुछ देर तक पुकारते रहते हैं। फिर एकाएक कह उठते हैं कि अहा! भगवान ने गोवर्द्धन-धारण कर लिया है! अहा! भगवान में कितनी शक्ति है। एक छिंगुली पर इतना बड़ा पर्वत धारण किये हुए हैं।

रास लीला की तिथि के दिन ये भक्त-गण इसी प्रकार रासलीला का कल्पित चित्र देखते हैं। अब तो रास-मण्डलियों का प्रचार हो रहा है। रास-क्रीड़ा के दिन ये मण्डलियां रास का अभिनय करती हैं और भक्त गण परम भक्ति के साथ उन्हें देखते हैं। मथुरा की रास-मण्डलियां तो सारे हिन्दुस्तान में मशहूर हो रही हैं।

इसी प्रकार अन्य वार्षिक कृत्य किये जाते हैं। इन कृत्यों का लक्ष्य कृष्णावतार का वातावरण तैयार करवाना है।

पुष्टि मार्ग में भगवान के भोग लगाने के लिये बड़े स्वादिष्ट पकवान बनवाये जाते हैं। भगवान के भोग के पश्चात् भक्तगण उन्हें प्रसाद के रूप में ग्रहण करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अब यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि साधारण व्यक्ति पुष्टि मार्ग का अर्थ शरीर को पोषण—शरीर को परिपुष्ट करना ही समझने लगा है। कुछ अंगरेजों ने तो पुष्टि मार्ग का अर्थ nourishment of the body बतलाया है। उन अंगरेजों को यह भ्रम कदाचित इस भोग-सामग्री को देखकर ही उत्पन्न हो गया होगा।

संक्षेप में पुष्टि मार्ग की यही रूप रेखा है। भागवत के तृतीय स्कन्ध, दसवें अध्याय के चतुर्थ श्लोक में पुष्टि या पोषण को भगवान का अनुग्रह बतलाया गया है—

पोषणं तदनुग्रहः।

इसी श्लोकांश के आधार पर वल्लभ ने अपने सिद्धान्त को पुष्टि के नाम से पुकारा है। इस शब्द का यह उत्पति-स्थल ही स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर रहा है कि यह श्री मद्भागवत की देन है।

परन्तु श्री भगवान के अनुग्रह को ही मुक्ति का एक मात्र साधन मानने का सिद्धान्त एकदम आधुनिक ही नहीं है। मुण्डकोपनिषद में लिखा है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

अर्थात आत्मा की उपलब्धि का कारण न तो प्रवचन है, न मेधा और न बहुत से शास्त्रों का सुनना, प्रत्युत जिस पर उसकी कृपा होती है वही उसे प्राप्त कर सकता है।

कठोपनिषद में भी लिखा है—

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमान-मात्मनः

जिसका तात्पर्य यही है कि भगवान के प्रसाद से ही आत्म स्वरूप के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार यह सिद्धान्त तो प्राचीन है परन्तु इसके सम्प्रदाय को चलाने वाले श्रीमद्भागवत का बड़ा महत्व है। पुष्टिमार्गी सर्वप्रमुख कवि सूरदास ने कहा था—

श्री भागवत सुनै जो कोई।
ता कहँ हरि पद प्रापति होई॥

पुष्टि मार्गी सम्प्रदाय से सम्बन्धित व्यक्तित्वों में वल्लभाचार्य सर्वप्रमुख हैं।

ये उत्तरादि तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों को भगवान ने वरदान दिया था कि मैं सौ सोमयाग पूरे होने पर तुम्हारे वंश में जन्म ग्रहण करूँगा। कहा जाता है कि श्री वल्लभाचार्य के पिता श्री लक्ष्मण भट्ट के हाथों से सौ सोमयाग पूरे हुए। तदनुसार श्री भगवान का वल्लभाचार्य के रूप में श्री लक्ष्मण भट्ट की पत्नी यल्लमागारु के गर्भ से प्रादुर्भाव हुआ। ये प्रयाग के निकट अरेल नामक स्थान पर रहा करते थे। इन्होंने कई बार ब्रज में श्री नाथ जी के मन्दिर की स्थापना की थी। ये विवाहित थे और इनके सन्तान भी थीं। वैसे ये बड़े त्यागी थे। सारी उम्र इन्होंने धोती और उत्तरीय के सिवा ऊपर के वस्त्रों का भी परिग्रहण नहीं किया। इन्होंने अपने मत के प्रचारार्थ तीन बार सारे भारतवर्ष के तीर्थों की यात्रा की थी। जहां इनके विराजने के स्थान उपलब्ध हुए हैं। वे 'बैठक जी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका सारा जीवन ग्रंथ निर्माण, सम्प्रदाय प्रचार और भगवदाराधन में ही गया। बावन वर्ष की अवस्था में सन् १४७९ ई० में इन्होंने अपनी इह लीला समाप्त की। इनके लिखे ग्रंथों में अणुभाष्य, पूर्वमीमांसा भाष्य तथा सुबोधनी प्रमुख हैं। सुबोधनी इनकी अन्तिम कृति है जो कि इनकी असामयिक मृत्यु के कारण अधूरी ही रह गई है। यह श्रीमद्भागवत का भाष्य है।

वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी वल्लभाचार्य के बाद उनकी गद्दी पर बैठे। सम्प्रदाय में इनकी भी प्रसिद्धि भगवदवतार के रूप में है। इनको 'श्री प्रभु चरण' भी कहते हैं। ये बड़े विद्वान और महिमाशाली व्यक्ति थे। पुष्टि मार्ग सम्प्रदाय का संगठन इन्होंने ही किया था। इन्होंने आठ पुष्टि मार्गी कवियों का एक संगठन 'अष्टछाप' के नाम से किया। इस अष्टछाप में चार श्रीमद्वल्लभाचार्य के शिष्य थे और चार विट्ठलनाथ के। सेवा की क्रमिक सशास्त्र पद्धति इन्होंने ही ने नियत की और पूर्ण रूप से उसका प्रचार भी किया। हम ऊपर बतला आये हैं कि वल्लभाचार्य बाल गोपाल कृष्ण के भक्त थे। इन्होंने इस सम्प्रदाय में राधा के पूजन का प्रवेश करवा दिया।

विट्ठलनाथ जी के बाद श्री गोकुल नाथ जी उनकी गद्दी पर बैठे। ये भी बड़े विद्वान और प्रतापी थे। इन्होंने, कहा जाता है कि दो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता
२—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

नामक ग्रंथ लिखे। इन ग्रन्थों में यह प्रमाणित हो चुका है कि दूसरा ग्रंथ उनका लिखा हुआ कदापि नहीं है। पहला ग्रंथ इनका लिखा ही माना जाता है।

गोस्वामी हरिराय जी भी पुष्टि मार्ग के प्रचारकों में मुख्य हैं। इनके ग्रंथ वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाले, गूढ़ और सारमय हैं।

इन गुरुओं के अतिरिक्त पुष्टि मार्ग के प्रचारकों में अष्टछाप कवियों का भी नाम लिया जाना चाहिए।

इन अष्टछाप के कवियों में सर्व प्रमुख सूरदास है। सूरदास का जन्म आगरे और मथुरा के बीच रुनकता नामक स्थान पर हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके माता पिता के विषय में हमें विशेष ज्ञान नहीं है। कहा जाता है कि ये पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्द के वंशज थे परन्तु इस विषय में प्रायः सभी विद्वानों का अब मत हो गया है कि यह गलत है। ये अन्धे थे। कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध बतलाते हैं और कुछ का विचार है कि ये जन्मान्ध न थे, बाद में नेत्र-ज्योतिहीन हो गये थे। इनमें दूसरा कथन अधिक सही मालूम पड़ता है। इनके परिवार था जिसमें इनकी पत्नी और बच्चे थे।

पहले ये विनय के पद बनाया करते थे जिसमें अत्यन्त दीनता-पूर्वक भगवान से ये आत्मोद्धार की याचना किया करते थे। एक बार जब वल्लभाचार्य जी ब्रज गये तो वहीं पर सूरदास ने उनसे भेंट की और अपने कुछ पद सुनाये। वल्लभाचार्यजी ने उनसे कृष्ण सम्बन्धी पद बनाने के लिये कहा। सूर ने उसे स्वीकार किया और तत्काल कृष्ण सम्बन्धी एक पद बनाकर सुनाया। वल्लभाचार्य जी उससे अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्हीं दिनों वल्लभाचार्य जी ने ब्रज में श्री नाथ जी के मन्दिर की स्थापना की थी। उसमें और सब कुछ पूरा था केवल एक गीतकार की आवश्यकता थी जो नित्य कर्म और उत्सव-सूचक गीतों की रचना कर सके। वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को उस स्थान पर नियुक्त किया। सूरदास जी उसी मन्दिर के द्वार पर बैठे रहते थे और नये गीत बना बनाकर गाया करते थे।

सूर की जीवन सम्बन्धी अन्य घटनाओं का हमें ज्ञान नहीं है। इनकी जन्म-तिथि लोग अनुमान से सन् १४८३ ई० के लगभग मानते हैं और मृत्यु १५६३ ई० के लगभग। इतना निश्चित है कि वल्लभाचार्य की मृत्यु हो जाने के काफी दिनों बाद इनकी मृत्यु हुई थी। सूरदास का पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले और बाद का साहित्य सारा का सारा सूरसागर के नाम से संग्रहीत है। वैसे तो इन्होंने कहा है कि—

व्यास कहे सुकदेव सों, द्वादस स्कन्ध बनाय।
सूरदास सोई कहे, पद भाषा करि गाय॥

परन्तु सूरसागर भागवत का एक मात्र अनुवाद ही नहीं है। भागवत में राधा का नाम-निशान भी नहीं है और सूरसागर का लगभग पंचमांश राधा से अनुप्राणित है। इसके अतिरिक्त भ्रमर गीत आदि अंश भी भागवत से मौलिक अन्तर रखते हैं।

सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के दूसरे प्रमुख कवि नन्द दास हैं। नन्द दास के माता पिता और जन्म तिथि सम्बन्धी बातें हमें ज्ञात नहीं है। कहा जाता है कि ये एक खत्रानी स्त्री पर आसक्त हो गये थे और उसी के पीछे पीछे ब्रज आये थे। ये विट्ठल नाथ जी के शिष्य थे। इनकी रचनाओं में रूप मंजरी, विरह मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, भंवर गीत, स्याम सगाई, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भागवत दशम स्कन्ध प्रमुख हैं। कहा जाता है कि इन्होंने सम्पूर्ण भागवत का हिन्दी अनुवाद कर लिया था। ब्राह्मणों ने गोसाईं विट्ठल नाथ जी से जाकर कहा कि अगर नन्द दास का यह अनुवाद प्रचलित हो जायगा तो लोग उनसे संस्कृत का भागवत न सुनेंगे और उनकी रोजी मारी जायगी। इस पर गोसाईं जी की आज्ञा से नन्द दास ने अपना सारा अनुवाद यमुना नदी में प्रवाहित कर दिया। उसका थोड़ा-सा अंश बच गया है और वही हमें आज मिलता है।

सूरदास और नन्द दास के अतिरिक्त अष्टछाप में छः कवि और थे। अष्ट छाप के बाहर भी पुष्टि मार्ग में दीक्षित भक्तों की संख्या सैकड़ों पर थी। परन्तु पुष्टि मार्ग के प्रसार की दृष्टिकोण से वे लगभग महत्वहीन हैं।

इस प्रकार पुष्टि मार्ग उपर्युक्त सिद्धान्तों को लेकर चला और ऊपर उल्लखित व्यक्तित्वों ने उसका प्रसार किया। मध्य युग में जितना सुगठित यह सम्प्रदाय था उतना कोई दूसरा न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इनसान था !

श्री महेशचन्द्र 'सरल'

जाफ़री जिस समय गली में घुसा, चारों ओर अंधेरा सिमट कर गाढ़ा हो चुका था। उर्दू के एक राष्ट्रीय कवि की एक नज्म की कुछ पंक्तियां वह गुनगुनाता जाता था, हिन्दू-मुस्लिम एकता में जो वह विश्वास करता था। परस्पर राजनीतिक मतभेद से चारों ओर का वातावरण जैसा क्षुब्ध और गम्भीर होता जा रहा था उससे जिस परिणाम की आशा की जा रही थी वह जैसे और भी जटिल समस्या बनकर मस्तिष्क को उलझा देती थी। जाफ़री स्वतः ही कहने लगा—"आज़ादी तो हम लेंगे ही। मज़हब की आड़ लेकर हमसे जो कुछ न करने को कहा जा रहा है, मैं वही करूँगा। मैं देश के प्रति गद्दार नहीं बनूँगा।"

नज्म की पंक्तियां भी तूफ़ान के झंझावात की भांति चारों ओर मँडराने लगीं।

सहसा आहट पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा और ठीक उसी समय किसी के आहत होकर गिरने और कुछ लोगों के भागने की पग-ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ी। वह पल भर में सतर्क होकर जहां का तहां खड़ा होकर रह गया। उसने सोचा—ऐसे स्थान से भाग चला जाए। स्थान स्थान पर गुण्डों द्वारा छुटपुट हमले हो रहे हैं और यह सोचकर वह आगे पग बढ़ाने को हुआ भी किन्तु फिर न जाने क्या सोचकर वह उल्टे पैरों पीछे की ओर लौट आया। वह सच्चा मुसलमान है। उसे अपने दीन-ईमान पर विश्वास है। वह तो अपना कर्तव्य निभाएगा और फिर घायल मनुष्य को छोड़ जाना कायरता है। और पीछे लौटते-लौटते उसके शरीर में जैसे नया बल आ गया। वह क्रोध से कांपने लगा। यह भी क्या बहादुरी है ? हम तीसरी ताक़त से तो लड़ नहीं पाते और अपने ही भाइयों की पीठ में छुरा भोंकने को तैयार हैं। छिः घृणा से उसका रोम-रोम जलने लगा।

दूसरे ही क्षण वह घायल व्यक्ति के निकट आ गया। गली में बिजली का प्रकाश नहीं था। लैम्प कहीं-कहीं पर लगे थे और सो भी अभी तक जल नहीं सके थे। अन्धकार और भी गहरा होता जा रहा था। जाफ़री ने देखा कोई सीधा-सा युवक है। धोती, कुर्ता और चप्पल पहने है। उसकी पीठ में छुरा घुसा है और उसके कपड़े लहू में रंग गए हैं। वह बेसुध-सा लुढ़क पड़ा है। सारा साहस एकत्रित कर वह उस नितान्त निर्जन और अँधेरी गली में सिमट कर रह गया। कुछ मिनिट तो उसे यही निश्चय करने में लगे कि उसे अब करना क्या चाहिए ! मानवता पश्चाताप के आँसू बहाकर कह रही थी—'देखता क्या है यह तेरा भाई ही पड़ा है।'

जाफ़री के सामने अधिक सोचने-विचारने का समय नहीं था। उसने साहस भरकर, दोनों आंखें मूँदकर आहत व्यक्ति की पीठ से छुरा खींच लिया। उसने मुँह खोलकर आह की एक साँस खींची और फिर दूसरी ओर को लुढ़क गया।

जाफ़री के सम्मुख अब दो समस्याएँ थीं। एक यह कि वह कुछ और मनुष्यों को बुलाकर एकत्रित कर ले और दूसरे उस युवक का परिचय प्राप्त कर ले, किन्तु कुछ भी सम्भव नहीं हो सका और जो कुछ हुआ उसकी वह कल्पना भी नहीं कर सका था। शहर में पिछले कई दिनों से लगातार इसी प्रकार के छुटपुट हमले हो रहे थे और एक दो व्यक्ति नित्य ही मौत के घाट उतर जाते थे। पुलिस इस ओर बड़ी सतर्क थी और फ़ौज की लारियों के साथ ही सशस्त्र पुलिस के सिपाही टोलियों में गली-गली घूमा करते थे। उन्हीं का पेट्रोल आ पहुंचा। उन्होंने हेड-लाइट के प्रकाश में पल भर में सब कुछ देख लिया।

खून से भरा छुरा एक सिपाही के हाथ में देते हुए उसने कहा—"लो, अभी कुछ लोग इस बेचारे को घायल कर भाग गए हैं। आप लोग इसे सँभालें, तब तक मैं घर से दौड़कर पानी ले आऊँ। अभी होश में आया जाता है।"

पुलिस की सजग और तेज़ निगाहें जाफ़री पर जमकर रह गईं। उन्हें क्या उसके कहने के अनुसार ही करना चाहिए ? वह क्या ठीक कह रहा है ? क्या उसी ने यह हत्या नहीं की है ?

जाफ़री ने अपनी स्थिति स्पष्ट समझाते हुए कहा—"आप लोग मेरे हाथ में छुरा देखकर मुझे ही क्रातिल समझ रहे होंगे। पर आपको यह बात बिल्कुल ही भूलनी चाहिए कि अगर कोई अपने भाई की मार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ता है तो दूसरा उसे बचाने को अपनी जान भी दे ...ता है। अफ़सोस है उन लोगों पर जो यह नहीं ...सकते कि वे अपने भाई की पीठ में छुरा नहीं मार ...हे हैं, बल्कि सारे मुल्क की पीठ में घाव करके उसे मुर्दा ...र कमज़ोर बना रहे हैं। मरते हुए इन्सान के मुँह में ...ती डालना सबाब का काम ही नहीं है बल्कि इन्सा-...यत का पहला फ़र्ज़ है। लीजिए, जल्दी कीजिए, अभी ...की जान का ख़तरा नहीं है। होश में आते ही इसे ...स्पताल ले चलने का इन्तज़ाम कीजिए।"

पुलिस के सिपाहियों के पास और अधिक अविश्वास लाए रखने का समय नहीं था। जाफ़री की बातों में ...हें सत्य का अंश मिलता दिखाई दिया। एक सिपाही ने हाथ बढ़ाकर छुरा ले लिया। खून की अन्तिम बूँद ...ी समय टपक कर नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ी।

तभी घायल व्यक्ति ने पीड़ा से छटपटा कर ...खें खोल दीं। जाफ़री कहने लगा—"लीजिए अब ...की ज़रूरत नहीं रही। स्ट्रेचर लाइए जल्दी से।"

दो सिपाही सड़क की ओर बढ़ गए। तीसरे ने ...से कहा—"आपको भी हमारे साथ चलना होगा। ...कुछ आप देख चुके हैं उस सबको बता दीजिएगा।"

"मैं चलूँगा, आप फ़िक्र मत कीजिए। जो कुछ ...ों से ही देख चुका हूँ उसे छिपाकर रखना भी तो ...ाह है।" कहकर जाफ़री युवक के निकट पृथ्वी पर ...ते हुए उससे कहने लगा—"आप घबड़ाइए नहीं, ...हल्का ही लगा है। अभी आपको अस्पताल लिए ...ते हैं। आजकल जो कुछ भी हो रहा है मैं जानता हूँ ...एक मुसलमान के नाते मैं आपके सामने शर्मिन्दा ...।"

जब तक सिपाही 'स्ट्रेचर' ले आएँ, तब तक धीरे-...जाफ़री ने युवक से उसका नाम-पता आदि पूछ ...। आध घंटे के भीतर ही वह अस्पताल की गद्देदार ...पाई पर जा लेटा। घाव एक ही था और गहरा ...नहीं था, इससे युवक फिर अचेत नहीं हुआ।

जाफ़री कुछ देर बैठकर फिर उसके घर में सूचना ...ने के लिए चला गया।

(२)

युवक का नाम था राजेन्द्र। एक दैनिक पत्र के ...दकीय-विभाग में काम करता था। कलकत्ता हत्या-काण्ड के सम्बन्ध में उसने जो कुछ लिखा था, उसे जान पाकर उन हत्यारे और नर-पिशाचों के सहयोगी और मानव-हत्या के समर्थकों में से कुछ उद्दण्ड व्यक्ति उसकी जान के ग्राहक बन गए थे। वे इस अवसर में रहने लगे कि उसे भी किसी प्रकार उसी परिणाम को भोगने के लिए बाध्य कर दिया जाए, और जब देश के प्रमुख नगरों में छुरा भोंकने की कायरतापूर्ण और घृणित घटनाएँ घटने लगीं तो राजेन्द्र के पीछे लगकर वे लोग उसे सत्य लिखने के अपराध में मौत के घाट उतारने के लिए, उसकी खोज में फिरने लगे। कई दिन बाद उस दिन कहीं वह अंधेरी गली में उन्हें मिल गया और वे इसे स्वर्ण-अवसर समझकर हाथ चला ही बैठे।

राजेन्द्र अपनी पत्नी के साथ रहता था। जिस समय जाफ़री उसके घर सूचना देने पहुंचा, वह खाना बनाकर उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। दोनों एक साथ ही खाते थे ऐसा उनका नियम था। जाफ़री को खुद ही स्मरण हो आया कि वह भी अभी दफ़्तर से लौटकर घर नहीं जा सका है। उसकी स्त्री भी तो बाट जोह रही होगी और उसका छोटा बच्चा तो उसकी प्रतीक्षा में अब तक भूखा ही बैठा होगा। बच्चे की ममता अनायास ही उसके हृदय को और अधिक सजग करती गई।

उसने राजेन्द्र के दरवाज़े पर हल्की-सी थपकी दी। उसकी पत्नी ने आकर कहा—"वह अभी आए नहीं हैं' और फिर उसने यह भी जानने का प्रयत्न किया कि वह पुकारनेवाले को पहचान भी ले। अब तक उससे मिलने आनेवालों से वह भिन्न ही थी।

जाफ़री यह भी नहीं चाहता था कि जो कुछ वह सुनाए उसे सुनकर राजेन्द्र की पत्नी अपना सारा धैर्य खो दे। वह बेचारी यहां अकेली ही तो है और शहर में फैलनेवाली सनसनी तो वह सुन ही चुकी होगी। उसने यह भी सोचा कि कहीं ऐसा भी न हो जाए कि वह उसके कथन पर विश्वास भी न करे! परदेश में फूँक-फूँक कर पैर रखना पड़ता है।

उसने धीरे से दरवाज़े के और निकट बढ़कर कहा—"मैं उनका दोस्त हूँ। इस वक्त वह एक ऐसे ही काम में फंसे है कि घर नहीं आ सकते। आप मेरे साथ चली चलें। मुझ पर यक़ीन भी आपको करना ही होगा। मैं मुसलमान हूँ पर ईमान और मज़हब का सच्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसे ठीक से अमल में लानेवाला। आप शक न करें।

वह मौन खड़ी सुनती रही। उसके पैरों तले से जैसे पृथ्वी खसकने लगी।

जाफ़री फिर कहने लगा—"चलिए, घर में ताला डाल दीजिए। देर करने से आपको परेशानी ही उठानी पड़ेगी। 'करफ़्यू आर्डर' का वक्त भी आ रहा है, उसके पहले ही यदि हम नहीं पहुंच सके तो समझिए सब कुछ बिगड़ जाएगा। आपको चलना ही चाहिए। आप फ़िक्र क्यों करती हैं, राजेन्द्र बाबू मजे में हैं।"

वह दुविधा में पड़ गई। उसे क्या करना चाहिए। यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था। जाफ़री एक मुसलमान है और मुसलमानों ने सारे देश में कैसी मनोवृत्ति फैला रखी है, यह वह भली भाँति जानती थी। राजेन्द्र से उसका इन बातों को लेकर विवाद भी बढ़ जाता था। उसने रुकते-रुकते कहा—"आप जब तक सब कुछ बता नहीं देंगे, मैं घर से बाहर पैर नहीं निकालूँगी।"

जाफ़री ने अपने स्वर में और नम्रता लाते हुए कहा—"सभी आदमी एक-से नहीं होते। राजेन्द्र मेरा छोटा भाई है। मै इस्लाम की कसम खाता हूँ कि जो कुछ कह रहा हूं सब सही है। राजेन्द्र बाबू को गुण्डों ने..., पर आप परेशान न हों। वह ठीक हैं। बातचीत कर रहे हैं, तभी तो मैं आपको बुलाने आया हूं।"

उसे विश्वास करना ही पड़ा, और कोई चारा भी नहीं था। उसने कहा—"चलिए, किन्तु....।" आगे वह जो कुछ कहना चाहती थी, उसे अपने ही में कहकर रह गई। जाफ़री उसे नहीं जान सका।

जाफ़री कहने लगा—"मैं आपको जो कुछ समझता हूं सो बता ही चुका हूं। यक़ीन आपको करना ही होगा। काश कि आप मेरी मजबूरी भी जान पातीं!"

सड़क पर एक तांगे में बैठते हुए बिजली के प्रकाश में जाफ़री ने एक बार उसे देखने का असफल प्रयत्न किया और राजेन्द्र की स्त्री ने उसे ध्यान पूर्वक नीचे से ऊपर तक देख लिया। जाफ़री की कच्ची दाढ़ी, घनी मूँछें। भावपूर्ण नेत्र, सब कुछ वह निहार गई। अब भी उसे हर प्रकार से विश्वास नहीं हो सका था। वह मौन प्रतिमा-सी तांगे में बैठी रही। सड़क निर्जन थी, घोड़ों की टापों से वह गूँज उठी।

जाफ़री कहता रहा—"आप राजेन्द्र बाबू की वैसी हालत में देखकर घबरा न जाइएगा। आप तो पढ़ी-लिखी हैं। गुण्डों की इन हरकतों को अल्लाह तो क्या इन्सान भी माफ़ नहीं करेगा। उन्हें कानून सज़ा देगा ही। जिससे लड़ना चाहिए उसकी क़दमबोशी करते हैं और अपने भाई के साथ ग़द्दारी!"

वह फिर भी चुप ही रही। अस्पताल आ गया। जाफ़री उसे तांगे से उतारकर अपने साथ ले जाते हुए बोला—"अब मेरा काम खत्म हो गया है। पुलिस ने इस मामले में अभी दो-चार गिरफ़्तारियां भी की हैं। आपको राजेन्द्र के पास करके मैं भी अपने घर जाऊंगा। मेरी भी बीवी है, बच्चा है। वे भी रास्ता देख रहे होंगे। ज़माना जब बुरा है, तो सभी के लिए एक-सा है—चाहे हिन्दू हो या मुसलमान। हिन्दू जिस तरह मुसलमान को अपना दुश्मन समझता है, ठीक उसी तरह मुसलमान भी वैसा ही समझते हैं और इस दुश्मनी का बीज बोया है अंगरेज़ों ने। हमें आपस में लड़ाए रखकर वह हमेशा के लिये यहां रहना चाहते हैं। वह सब तो आप जानती हैं, मैं कहां तक बताऊं? पर हमें भाई-भाई का नाता निबाहना ही होगा, तभी हम यहां रहकर जी सकेंगे, नहीं तो इसी तरह एक दूसरे को छुरे भोंककर अपनी ताक़त खुद ही कमज़ोर करते जाएंगे।"

राजेन्द्र के वार्ड में जाकर चारपाई के निकट जब एकाएक उसकी पत्नी आ खड़ी हुई और उससे कुछ हटकर जाफ़री, तो वह सहसा विश्वास नहीं कर सका। उसे आशा नहीं थी कि इस प्रकार रुंधे वातावरण में एक हिन्दू स्त्री रात के समय, एक मुसलमान की बातों में आस्था रखकर उसके साथ आने को तैयार हो जाएगी। उसने और अधीरता न प्रकट कर मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा—"तुम आ गईं, किन्तु तुम्हें धैर्य से ही काम लेना होगा। मैं जल्द ही ठीक हो जाऊंगा।"

पत्नी के नेत्र सजल हो आए किन्तु वह अपने को यथासाध्य रोके रही। राजेन्द्र का स्वभाव वह जानती थी। वह उससे भी अधिक कोमल हृदय की है। अधीरता प्रकट कर वह उसे और भी विचलित कर सकती है। वह उसकी ओर निहारती ही रही।

जाफ़री ने कहा—"अब मुझे इजाज़त दीजिए राजेन्द्र! घर में लोग रास्ता देख रहे होंगे। मैं जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76280

जाऊँगा, वह खाना भी नहीं खाएंगे। सवेरे फिर फिर होऊंगा।"

कृतज्ञता से राजेन्द्र का कण्ठ भर आया। वही तो उसकी प्राण-रक्षा कर सका है, गली निर्जन थी, उसे मार डालने में गुण्डे क्या कुछ उठा भी रखते? उसने प्रेम से जाफ़री को अपनी चारपाई के निकट बुलाकर दोनों हाथ जोड़ कर माथे पर टेकते हुए कहा—"आपने अपना कर्तव्य पूरा किया है, मैं आपका आजीवन कृतज्ञ रहूंगा। आप सचमुच ही इन्सान हैं। हमें अब आपके जैसे ही उदार हृदय मुस्लिम भाइयों की आवश्यकता है।"

"जी-जी, अब आप आराम कीजिए। यह सब तो घर में भी कहा जा सकता है। मैं कहीं चला नहीं जाऊंगा।' कहकर वह वार्ड के बाहर हो गया। राजेन्द्र की पत्नी इस परोपकारी मुसलमान युवक के विचारों से प्रभावित होकर दरवाज़े की ओर देखती रही।

(३)

जाफ़री जिस समय घर पहुँचा, उस समय सारे मोहल्ले की स्त्रियां अन्दर एकत्रित थीं और बाहर कमरे में कई बुजुर्ग परस्पर फुस-फुस कर रहे थे। उसे आया देखकर एक ने कहा—"लो आ तो गया, मैंने कहा था न? वही सब तो हो रहा है। आज तक मेरी कोई बात ग़लत निकली हो तो बता दो।" कहकर उसने दूसरे की ओर देखकर समर्थन चाहा।

उसने कहा—"और क्या, जैसे ही मैंने सुना कि मैं समझ गया, सिवा इसके और उनका हिमायती हो ही क्या सकता है? अपने भाई मारे जा रहे हैं सो कुछ नहीं, उन्हें देखने भी नहीं जाता और अपनी जान देने के लिए उनके साथ इतनी रात गए तक अस्पताल में रुका रहता है। मैं देख रहा हूं, इधर इसके पैर बराबर पाकिस्तान की तरफ़ बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी ही हमदर्दी करनी थी तो उन्हीं में क्यों नहीं मिल जाते?"

एक तीसरे ने घूरते हुए कहा—"कहो ख़ैरियत से घर आ गए, यही क्या थोड़ा है? पुलिस के सिपाहियों के भी तो रुझालात बदल गए हैं। कहीं कोई हिन्दू पा जाता तो गोली मार देता। 'करफ़्यू' का तो वक्त है! कह देता कि छुरा फेंककर भागना चाहता था।"

एक बुजुर्ग कहते रहे—"सुना जाफ़री? तुझे इन सब इल्ज़ामों का जवाब देना ही होगा। यह अल्लाह का हुक्म है, तुझे मानना ही पड़ेगा। बोल, आज से क़सम खा कि तू उन लोगों का साया भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देगा जो तेरी ही नहीं, सारी मुसलमान क़ौम की छाती पर सवार होते जा रहे हैं। आज़ादी मिलेगी तो उनका राज होगा। हम लोग रहने ही नहीं दिए जाएँगे, लेकिन तू इन सब सियासी दाँव-पेंचों को समझे भी तब न?"

जाफ़री के मुख की ओर सब की दृष्टि जमी थी। उसने दृढ़ता से कहा—"मैं आप लोगों की अक़्ल की तारीफ़ करूँगा इसलिए कि आप लोग बुजुर्ग हैं, लेकिन आपके कहने को मैं 'फ़तवा' नहीं मान सकता! मैं वही करूँगा जो मैं ठीक समझता हूं। मज़हब से मैं मुसलमान हूँ और हमेशा रहूँगा। उसके उसूलों से मैं हिन्दू होऊँ तो आप मुझे सज़ा दे सकते हैं, पर हिन्दुस्तान को मैं अपना घर ज़रूर समझूँगा, जहां इतना बड़ा हुआ हूँ उसकी आज़ादी के लिए और ग़ुलामी से उसे छुड़ाने के लिए मैं जो कुछ कर सकूँगा ज़रूर करूँगा; इसलिए कि वह मेरा फ़र्ज़ है। आपने क्या सुना नहीं 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना—हिन्दी हैं, हम-वतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।' अगर न सुना हो तो आज सुन लें। और मैं यक़ीन करूँगा कि आप लोग अपने वतन की आज़ादी की लड़ाई में पूरा हाथ बटाएँगे। गद्दारी बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। उसका मुँह काला होता है, यह आप लोग सोच रखिए।"

बिजली के बटन दबा देने से जिस प्रकार अँधेरा पल भर में दूर हो जाता है, उसी प्रकार जाफ़री की बातों से सब के चेहरे फ़क़ हो गए। वे परस्पर एक दूसरे की ओर देखते रहे।

एक और मनचले मियां जी बोले—"और क्यों, तांगे पर किसे लिए जा रहे थे? तुम समझते हो कि कोई कुछ देखता ही नहीं है।"

जाफ़री की पत्नी के साथ ही और स्त्रियों ने इसका उत्तर सुनने के लिए विशेष रूप से अपना ध्यान केन्द्रीभूत कर लिया। वह कहने लगा—"यह बातें तो आपकी समझ में ख़ूब आती होंगी। आप जानते हैं, मेरे भाई राजेन्द्र को गुण्डों ने छुरा भोंक दिया। मैं उस वक्त घर आ रहा था। उसके गिरने की आवाज़ सुनकर पीछे लौट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा। गुण्डे भाग गए। उसे अस्पताल में पहुंचा कर, उसके घर का पता लगाकर, उसकी बीवी को भी वहीं कर आया। मैंने कुछ गुण्डों के नाम भी लिखा दिए हैं। जेल में पड़े-पड़े सड़ते रहेंगे।"

एक बुजुर्ग न चाहते हुए भी पूछ उठे—"और तुम्हें कोई मार देता...तो क्या कोई बचाने आता? वह तो एक छुरा और मार देता।"

जाफरी ने गर्व से कहा—"तब तो मेरे लिए वह और भी खुशक़िस्मती की बात होती। एक सच्चा मुसलमान तो हमेशा दूसरों की मदद करना चाहेगा।"

धर्म के ठेकेदार और सफेद दाढ़ीवाले अब अधिक देर तक बैठे न रह सके। एक-एक कर सभी खड़े हो गए और बाहर आ गए। उनके पीछे-पीछे अन्दर से स्त्रियां भी चली गईं। जाफरी ने सुना एक स्त्री कह रही थी, "अल्लाह रे! कैसा मुँहफट है? मैंने तो इसे आज ही जाना। बढ़े-बूढ़ों की बातें गाजर मूली की तरह काट देता है। धोखा उठाएगा कभी तो आंखें खुलेंगी।"

जाफरी ने मन में कह लिया, "उसके लिए मैं तैयार हूं, यह मुझे कितनी बार समझाना होगा।"

उसकी पत्नी ने कहा—"आप भी खूब हैं? बुजुर्गों का ज़रा भी ख़्याल नहीं करते? और ठीक ही है; हम लोग न जाने कब से परेशान हो रहे हैं। आपका पता भी नहीं चला। वक़्त इतना बुरा लगा है कि कहा ही क्या जाय? घर से निकलने के बाद खतरा ही ख़तरा है। यह लोग न आते तो मेरी क्या हालत होती, सो मैं ही जानती हूं। आप तो फ़र्ज़ अदायगी में लगे रहे।"

जाफरी रोष में नहीं आया। जहां इतने बूढ़े यह सब कह सकते हैं, वहां एक स्त्री कहे तो बात ही क्या है? वह स्नेहपूर्वक उसे समझाते हुए बोला—"तुम मेरी बीवी हो; यह तुम्हें नहीं भूलना चाहिए। मज़हब को थोड़ा बहुत तुम भी समझती हो, तब इन बेकार की बातों में क्यों फँसती हो? तुम्हें मैंने जो किताबें ला दी हैं उनमें तुम क्या यही पढ़ती हो, क्यों? तुम जहां पली हो, उसे बरबाद होते देखोगी? तुम्हारी तो कई हिन्दू सहेलियां भी हैं। उनकी चिट्ठियां भी तुम्हारे पास आती हैं। उन्हें अब तुम गैर समझने लगोगी? जिसके गले मिलकर रो चुकी हो, अब उससे रिश्ता ही तोड़ लोगी? बोलो, तुम यह कर सकोगी? और क्या यह ठीक भी होगा?"

स्त्री के पास इन सब का कोई उत्तर नहीं था। उसे चुप ही होना पड़ा।

जाफरी ने कहा—"अब बहस बहुत हो चुकी, खाने को भी दोगी?"

और खाना परोसते समय उसकी पत्नी का मन नहीं माना तो वह फिर कह उठी—"अल्लाह न करे ऐसा हो, पर यह सब लोग आपसे नाराज होकर गए हैं कहीं कुछ·····।"

"सो अभी से क्यों फिक्र में पड़ जायँ," उसने बीच ही में बात काटकर कह दिया—"ऐसा हो भी जाएगा तो ज़माना देखेगा और मुसलमानों की तवारीख़ में यह भी लिखा जाएगा कि अपने ही भाई का गला काटने वाले लोग अब भी मौजूद हैं। मुझे मारकर अगर वे लोग कुछ पा सकें तो बुरा भी क्या है? मैं गद्दारी बर्दाश्त नहीं करूँगा।"

जाफ़री ने और बात नहीं बढ़ाई। खाना खाकर वह बच्चे को लेकर लेट गया, फिर जब तक नींद नहीं आ गई राजेन्द्र और उसकी स्त्री की कहानी सुनाता रहा। वह सोया भी तो इसी विचार को लेकर कि सवेरे ही उसे राजेन्द्र को देखने अस्पताल जाना है।

(४)

जाफरी की स्त्री जो अमङ्गल कल्पना करती रही, वास्तव में वह होकर ही रही। वह सोकर अंधेरे ही उठ गया। थोड़ी देर बाद तैयार होकर जब वह घर से निकला तब भी सड़क निर्जन थी। अभी प्रकाश भी नहीं फैल सका था। करफ्यू के डर से लोग वैसे भी घर से कम निकलते थे। वह गली पार कर सड़क पर जा भी नहीं पाया था कि पीछे से एक छुरा उसकी बगल के नीचे आ घुसा। वह आहत होकर गिर पड़ा गिरते-गिरते वह बड़बड़ाया—"इस प्रकार की बुज़दिली कब तक चलेगी!" और उसके बाद वह बेसुध हो गया।

छुरे ने घाव गहरा और भरपूर किया था। जाफ़री की आंखें अस्पताल में ही खुलीं। राजेन्द्र के निकट ही दूसरी चारपाई पर वह पड़ा था उसकी स्त्री और बच्चा भी अस्पताल पहुँच गए थे। दो-एक पड़ोसी और भी थे।

उसने चारों ओर देखा फिर उठने का प्रयत्न करते हुए कहा—"राजेन्द्र भइया, मैं तो तुम्हें देखने आ रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी तबियत है ?"

राजेन्द्र के नेत्र भर आए। दो आंसू उसकी आंखों से ढुलक पड़े। जाफ़री उसके लिए ही मारा गया है। वह विचलित होकर कह उठा—"भाई जाफ़री, यदि कहीं भगवान कहीं है तो उससे मेरी यही प्रार्थना है कि वह मुझे ले ले और तुम्हें अच्छा कर दे। तुम अच्छा हो।"

डाक्टर ने कहा—"धैर्य से काम लीजिए आप दोनों ठीक हो जाएंगे।"

राजेन्द्र की पत्नी ने बढ़कर जाफ़री के बच्चे को गोद में उठा लिया फिर उसकी पत्नी के गले से लिपट गई। दोनों जो कुछ देख रहीं थी, उस पर पहले कौन विश्वास कर सकता था!

राजेन्द्र और जाफ़री परस्पर एक दूसरे की ओर देख रहे थे।

और दूसरे दिन समाचार पत्र में मोटे शीर्षक देकर यह समाचार छापा गया—"हिन्दू-मुस्लिम एकता का कट्टर समर्थक, अपने ही गद्दार भाइयों द्वारा घायल किया गया।"

जिस जाफ़री को देखकर लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, उसे देखने नगर के सैकड़ों व्यक्ति अस्पताल आने लगे।

——

हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति पर एक दृष्टि

श्री गङ्गाप्रसाद शास्त्री

विवेक पर ग्रह

सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य जाति प्रकृति की अन्तिम कृति मानी जाती है। आचार्यों के कथनानुसार प्रकृति ने मनुष्य का सृजन कर अपनी सुन्दरतम कला का प्रदर्शन किया है; अपने इस अन्तिम शिशु में उसने विवेक-दीप प्रज्वलित कर अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय दिया है। विवेक सम्पन्न होने के कारण मनुष्य-जाति को प्राणियों में विशेष स्थान प्राप्त है। विवेक ही मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों के बीच पार्थक्य-रेखा खींचता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य, शुभाशुभ का ज्ञान मनुष्य को विवेक द्वारा होता है। यही हम सबको शिवमार्ग पर चलने को प्रेरित करता है और अशिव से रोकता है। इसी के ही कारण इंसान को अशरफुल मख़लूकात कहा गया है, परन्तु आज की स्थिति का यदि हम परीक्षण करें तो केवल असन्तोषजनक निष्कर्ष के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। जितना ही मनुष्य भौतिक विज्ञान में अधिकाधिक विशारद होता है, अनुपाततः उसकी प्रवृत्ति भी उतनी ही पाशविक होती गई है। फलस्वरूप दिन प्रतिदिन वहिर्मुखी ही होता जाता है; आत्म समाजीकरण न होकर वैयक्तिक रङ्ग उस पर गहरा होता जा रहा है। धर्मशास्त्रों से सुन्दर-सुन्दर पंक्तियाँ उद्धृत कर वक्ता और लेखक—दोनों श्रोताओं एवं पाठकों के मध्य गौरवान्वित हो जाना ही अपना अन्तिम लक्ष्य समझते हैं, उनकी कथनी और करनी में कोई समन्वय नहीं दिखाई देता, विवेक सृजन की अपेक्षा संहार का कारण बन गया है। कौन कह सकता है कि माना व-विवेक पर आज ग्रह नहीं है। हम यह भी कहने का साहस नहीं कर सकते कि हमारा हज़रत मुहम्मद से कोई रिश्ता है, बुद्ध, महावीर, कृष्ण हमारे पूर्वज थे, यह मूलतः असत्य प्रतीत होता है। सम्पूर्ण धर्म की पोथियाँ यह उद्घोषित करते नहीं थकतीं कि एक इनसान की खुशी दूसरे इनसान की खुशी से बाबस्ता है, एक का आनन्द दूसरे के आनन्द से सम्बद्ध है। अगर किसी इनसान को यह मालूम हो जाय कि फलाँ पड़ोसी भूखा पेट सो गया है तो उसके मुँह में जाने वला नेवाला जहर का लुकमा है। उसको चाहिये कि भूखे इनसान को फौरन जाकर आसूदा करे वरना खुदाई क़हर से बच नहीं सकता, यह एलान है पाक कुरान शरीफ का उपनिषदों के कथनानुसार सम्पूर्ण सृष्टि को मानस स्थित विशाल व्यक्तित्व का प्रतिरूप माना गया है। फिर अपना और पराया क्या ? पर आज न तो हिन्दुओं को वेद की ऋचाओं से कोई सम्बन्ध है और कुरान के पाक कलामों से मुसलमानों को। मानवता के स्तर से नीचे गिर जंगली भैंसों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान हिन्दू-मुसलमान आपस में युद्ध कर रहे हैं। क्या कलकत्ता और बम्बई की दिन प्रतिदिन की घटनायें मानवीयता के मर्मस्थल पर निर्मम आघात करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं ? काश हिन्दू और मुसलमान अपने गत सांस्कृतिक इतिहास पर एक नजर डालते। हिन्दू-मुस्लिम दोनों जो एक दूसरे की गर्दन नापने को तैयार बैठे हैं, अपने किए पर शर्म खाते; पाकिस्तानी भूत उतर जाता; संस्कृति का तात्विक अर्थ क्या है, स्पष्ट हो जाता। स्वामी रामतीर्थ का कथन कि लोग न अपने कानों से सुनते हैं; न अपनी आंखों से देखते हैं; पूर्णतः सत्य है। यदि हिन्दू और मुसलमान स्वार्थियों के चक्कर में न पड़कर प्रत्येक घटना को अपने खुले दिमाग और खुली नजरों से देखने का प्रयास करें तो वस्तु-स्थिति का वास्तविक बोध हो जाय; यह स्पष्ट हो जाय कि हिन्दू-मुसलमान दोनों एक ही टहनी के दो पुष्प हैं। चीज़ें वहीं हैं, जहां थीं, केवल हम विवेक-दोष से ग्रस्त हैं।

बौद्धिक आदान-प्रदान

सदियों से भारत भूमि ने अन्यान्य जातियों के लिये जो बाहर से आईं, अपने द्वार को स्वागतार्थ खोल रक्खा है। सच पूछिये तो विभिन्न संस्कृतियों और जातियों के लिये यह भारत मिलन-स्थान रहा है। मुख़्तलिफ वेश-भूषा, और धर्म-कर्मों ने यहां आकर आर्यों की भारतीय संस्कृति में एक गुणात्मक परिवर्तन कर दिया है। इन सबका समवेत रूप एक ऐसे अविच्छिन्न घटक के समान हो गया है जिसका खण्ड करना असंभव है। ऐतिहासिक ख्यातिसम्पन्न बड़े बड़े सुप्रसिद्ध योद्धा, मर्दे मैदां अपनी विजय लालसा को मूर्त रूप देने हिन्दुस्तान में आये, कामयाबी भी नसीब हुई, विजय श्री के स्वामी भी बने, पर केवल एकमात्र राजनैतिक दृष्टि से। सांस्कृतिक बिन्दु से देखें तो कुछ वर्ष के पश्चात विजयी अपनी संस्कृति को पृथक क़ायम नहीं रख पाता है। नूतन शैली और जीवन के समावेश से भारत की पुरातन संस्कृति के जीवन में एक शक्ति-सम्पन्न आत्मा का प्रादुर्भाव होता है। मार्क्स के शब्दों में इसको नूतन-बल कह सकते हैं। इतिहास के पढ़ने से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि विजयी और विजित के मध्य विरोध और समागम का क्रम निरंतर चला करता है। पर दोनों की संस्कृतियां एक दूसरे में प्रवेश कर गंगा जमुना की भांति क्रमशः तरंगित होने का उपक्रम भी करने लगती हैं। ठीक यही दशा मूलतः भारत में मुसलमानों के आने के बाद हुई।

मुसलमानों के आगमन-काल के पूर्व भारतीय मानस क्षितिज पर वादों की कई एक रेखायें स्पष्टतः दिखाई दे रही थीं। भारतीय चेतना उद्विग्न थी कि वैष्णव-मार्ग श्रेयस्कर है या शैव। मत मतान्तरों का तांता लगा था। मानसिक सन्तुलन किसी भी राष्ट्र का मेरु-दण्ड होता है। भारत में इसका अभाव पदे पदे खटकता था, किन्तु इसलाम धर्मावलम्बी आंखों के सम्पर्क में आते ही वादों की दौड़ में अद्वैतवाद आगे निकल गया। शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद की लतिका को इसलामी दर्शन से यथेष्ट शक्ति मिली। उपनिषद् उच्च स्वर में चिल्ला रहे थे कि प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष, व्यक्ताव्यक्त जगत सम्पूर्ण सृष्टि के अणु-अणु में ब्रह्म व्याप्त हैं। पर कौन सुने ? अन्य वादों के सेवारों का भेदन कर ब्रह्मवाद का कमल-नाल ऊपर नहीं आ सकता था। इस्लामी दर्शन एक पूरक के रूप में आया। 'अहं शिव' के स्वर में अनलहक, मनखुदाअम, मन ख़ुदा का स्वर मिला। निहायत बुलन्दी से एलान किया गया कि खुदा की वहदानियत में दुई की बू नहीं, कुदरत के जर्रे जर्रे से मालिक-ए-दो जहां का नूर आशकारा है। फिर क्या था, अद्वैतवाद के मुखड़े पर चार चांद लग गये। दोनों के समागम से सूफीवाद की हम-वो अस्त (वही है) अज़-हम-वो अस्त (सब उसी से हैं) धाराओं का आविर्भाव हुआ। भारतीय जीवन, शैली, दृष्टिकोण, आचार-विचार आदि पर क्रमशः प्रभाव पड़ने लगा। वस्तु-स्थिति को लोग अपेक्षाकृत विशाल दृष्टिकोण से देखने लगे। मानव-चेतना ने अलौकिक जगत का परित्याग कर भौतिक जगत में ही अन्तिम सत्य की तलाश करना अधिक तर्क संगत समझा। खुदाई रहमत का हकदार वह शख्स है जो उसकी उम्मत से मुहब्बत करता है। 'हम एक खुदा के बन्दे हैं, ऐसे उपदेशों ने व्यक्तिगत अहं के उन्मूलन में काफी सहायता की। व्यक्तिवाद पर कुरान के उपदेश का हथौड़ा गिरा, जनवाद का शिशु उत्पन्न हुआ। भारतीय संस्कृति ने इन विचारों को सुन्दर स्थान दिया। मौलाना रूम, हाफिज आदि की कृतियों का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इनकी कृतियों में दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतियों की समन्वित इकाई हैं। आज साधिकार यह कहना कि सांस्कृतिक भारत का अमुक अंश वेदों और उपनिषदों से प्रजनित है और अमुक इसलामी तहजीब की देन है, पूर्णतः असम्भव है।

भारतीय संस्कृति का भी इसलामी तहज़ीब पर कम प्रभाव नहीं पड़ा है। और केवल हिन्दुस्तानी मुसलमान ही नहीं, बल्कि अरब और फारस के धर्मशास्त्र इसके ऋणी हैं। बौद्ध-पताका मिस्री गङ्गा (नील नदी) के तटस्थल पर फहरा रही थी। इसकी शक्ति से लोग विशेष प्रभावित थे। काशमीर और पंजाब बौद्धों के प्रमुख अड्डे थे। बाहर से मुसलमान विद्यार्थी आकर बौद्ध धर्म का अध्ययन करते थे। सूफी मत पर अद्वैतवाद के साथ-साथ बौद्ध धर्म का भी काफी प्रभाव पड़ा है। सूफी विद्वानों की कृतियों से बौद्ध आत्मा स्पष्टतः झलकती है। आठवीं सदी में उत्तरी भारत नाना प्रकार के मत मतान्तरों का केन्द्र हो गया था। विचारों के सम्पर्क में रहने से लोगों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। मुहम्मद बिन कासिम की विजय के पूर्व अरब के व्यापारियों का ट्रावनकोर के व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। मलावार का राजा इसलाम से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि राज्य-कार्य छोड़ मक्का शरीफ हज्ज करने चला गया। शंकर की जन्म भूमि काल्पी का राजा भी मुहम्मद का अनुयायी हो गया। तलवार के बल से नहीं बल्कि इसलाम की जादू भरी ताक़त से इन लोगों में धर्म परिवर्तन का विचार आया। ये धर्म-परिवर्तन स्वतः सिद्ध करते हैं कि इसलाम में अवश्य ही अपूर्व शक्ति रही और मैं हम यह कहने का साहस करें कि शंकर ऐसे प्रकाण्ड पण्डित भी इसलामी बिजली के कौंध से अपने को तटस्थ रख सके तो अनुचित न होगा। भारतीय संस्कृति की एकीकरण शक्ति ने भी इसलाम के आचार्यों और बाद-के अनुयायियों को अपनी ओर काफी खींचा और मुहम्मद के मुसलमान जैन उद्दीन ने, जो अपने पाण्डित्य के लिये प्रसिद्ध थे, बहुत सी संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद फारसी जुबान में किया और इस कार्य में सहायता करनेवाले पण्डितों को अधिक से अधिक पारितोषिक दिया। अकबर के शासन-काल में धर्म, विचारादि को इतना प्रोत्साहन मिला कि कुछ न कहना ही अच्छा है। उसके दरबार को यदि विचार-विनिमय आफिस (Exchange office of Learning and Thought) कहा जाय तो कोई बुरा न होगा। महाभारत एवं रामायण का अनुवाद अकबर ने ही फारसी भाषा में कराया। दारा शिकोह संस्कृत भाषा एवं भारतीय दर्शन का पण्डित समझा जाता था। उसके अथक परिश्रम से योग-वाशिष्ठ, भगवद्गीता तथा अन्य पोथियों का तर्जुमा फारसी जुबान में हुआ। स्वयं उसने हिन्दू दर्शन से प्रभावित होकर कई एक पुस्तकों की रचना की। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतिओं में समन्वय स्थापित करने के लिये सूफी आचार्यों को एकत्रित किया। नानक, कबीर, तुकाराम, स्वामी रामतीर्थ ऐसे ही लोगों के सुप्रयास के फल हैं; दोनों संस्कृतियों के घात प्रतिघात से उत्पन्न ये लोग संघात स्वरूप हैं। एक छोटे से लेख में सम्पूर्ण तथ्यों को विस्तारपूर्वक रखना असम्भव है। परन्तु इन थोड़े से उदाहरणों से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि न तो अब आर्यों की ही संस्कृति रह गई है और न मुसलमानों की। दोनों संस्कृतियों की धाराओं से मिलकर संस्कृति की तीसरी धारा उत्पन्न हो गई जो दोनों से गुणात्मक भेद रखती है।

कला आदि पर एक दूसरे का प्रभाव

हिन्दुस्तान की भाषाओं को भी मुसलमान सुल्तानों से विशेष प्रोत्साहन मिला। बहमनी राजाओं के काल में मराठी भाषा को कचहरियों में स्थान मिला। हुसेन शाह के शासन काल में बङ्गाली साहित्य पल्लवित हो चला था। बङ्गाल के वैष्णव गीत और गान, दोनों संस्कृतियों के समन्वित भावों के प्रतीक हैं। कवितायें जो पहले अभौतिक जगत में चक्कर काट रही थीं, क्रमशः भौतिक जीवन से सामीप्य स्थापित करते दिखाई पड़ती हैं। वैष्णव रचनाओं की यह घोषणा कि मनुष्य ही उच्चतम सत्य है, इसलाम के सम्पर्क का फल है। मुसलिम आचार्यों ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को परिपुष्ट करने में विशेष मदद की। अपनी लेखनी द्वारा मुस्लिम भावों को हिन्दी साहित्य में स्थान दिया। रसखान, अब्दुल रहीम खान खाना, कबीर आदि का हिन्दी-साहित्य में किसी से कम महत्व का स्थान नहीं। प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी इनके नाम को सादर लेता है। आज का हिन्दी-साहित्य अकबर की सेवाओं को भूल नहीं सकता। कविराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीरबल और अब्दुल रहीम खानखाना से जो कुछ भी हिन्दी को प्रोत्साहन मिला है, उसमें अकबर महान का एक उच्च स्थान है। व्रजभाषा को फारसी जुबान ने अपने शब्द, भाव, माधुर्य, शैली को भर दिया है। यही कारण है कि देहाती औरतें भी उर्दू शब्दों का प्रयोग किये बिना नहीं रह सकतीं। हमारा सम्पूर्ण साहित्य उर्दू शब्दों से भरा पड़ा है। महाकवि तुलसी भी उर्दू शब्द से पृथक न रह सके, रामायण में यत्र-तत्र उर्दू शब्द दिखलाई पड़ते हैं। रहस्यवाद का हिन्दी-साहित्य में अपना एक स्थान है, इससे कौन इनकार कर सकता है। पर इस वाद का प्रजनन दो संस्कृतियों के समागम से हुआ है। इधर चकबस्त, बिस्मिल आदि ने उर्दू साहित्य को धनी बनाने में कम सहायता नहीं दी है। हिन्दी और उर्दू के दो रूपों में एक ही शैली एवं आत्मा का दर्शन होता है।

जीवन पर साहित्य के सदृश ही वास्तुकला का भी प्रभाव पड़ता है। मध्यकालीन उत्तरी भारत में उन्नत वास्तुकला का श्रेय किसी एक को नहीं दिया जा सकता है, दोनों संस्कृतियों की यह सम्मिलित देन है। वास्तु-कला के क्षेत्र में हिन्दू शैली का शुद्ध उदाहरण केवल दक्षिणी भारत के इने-गिने स्थानों में मिल सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इन पर मुसलमान कलाकारों का प्रभाव पड़ा ही नहीं, पड़ा है पर बहुत कम। मध्य-कालीन उत्तरी भारत के प्रासादों, दुर्गों, मकबरों आदि के निरीक्षण से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उन पर फारस की वास्तुकला का विशेष प्रभाव पड़ा है। फारसी कला से प्रभावित होने के कारण पुरातन भारत की शैली एवं पद्धति का अवसान नहीं हो गया है, ये भी स्पष्टतः दिखाई देती हैं। दक्षिणी भारत के मन्दिरों की बनावट में सीधी रेखाओं एवं कोणों को प्रमुख स्थान प्राप्त है, देवा-लयों में सीधे खम्भों का अधिक प्रचलन है, पर उत्तरी भारत में इसका रूप कुछ और ही है। उत्तरी भारत के मन्दिरों में सीधी रेखा और कोण की परिपाटी को छोड़-कर वृक्षाकार मेहराब को अधिक महत्व दिया गया है। मुस्लिम वास्तुकला भी भारत के पुरातन वास्तुकला से कुछ कम प्रभावित नहीं हुई। दिल्ली, अजमेर, मालवा, गुजरात, जौनपुर, आगरा आदि की शाही इमारतों को यदि निरीक्षणात्मक दृष्टि से देखा जाय तो यह जानते देर न लगेगी कि दोनों संस्कृतियां उनकी ईंट-ईंट से स्वयं प्रगट हो रही हैं। कमल और कलश को पुरातन वास्तु-कला में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है पर मुस्लिम बादशाहों ने उनको कम स्थान नहीं दिया है। सुलतान मुहम्मद ग़ज़नवी भारतीय कला से प्रसन्न होकर सैकड़ों वास्तुकला के पण्डितों को अपनी राजधानी में ले गया और कुछ को वहां से मध्य एशिया में भेज दिया। मोनीर एवं हैवेल के लेखों से प्रगट होता है कि दोनों संस्कृतियों की कलाओं का अब कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, उनके सम्मिश्रण से वास्तुकला में नूतन शैली का सृजन हो गया है।

वाद्य एवं चित्रकला को भारत ने पुरातन काल से ही अपनाया है, उनका भारतीय संस्कृति में उच्च स्थान है। मुस्लिम सम्पर्क से इनके पूर्ण रूप में घोर परिवर्तन हुआ, नये नये राग-रागिनी का जन्म हुआ। मुस्लिम वाद्य-विशारदों द्वारा अनुसंधानित ख्याल ने यहां के रागों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। इनके सम्मिश्रण से रागों में अधिक मधुरता का समावेश हो गया है। मुसलमान उस्तादों ने इस कला को सम्पूर्ण भारत में फैलाया है। मुसलमान उस्तादों की सेवाओं के लिये भारत का कण-कण उनका आभारी है। उनके सम्पर्क से चित्रकला में भी कम विकास नहीं हुआ है। दो भिन्न धाराओं के मेल से नई नई शैलियों का जन्म हुआ है।

पर स्वतः यह प्रश्न उठता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से एक होते हुये भी हम एक दूसरे के खून के प्यासे क्यों हैं? साम्प्रदायिकता के नाम पर जगह जगह रक्त पात हो रहा है, विवश किया जा रहा है धर्म परिवर्तन के लिये। क्यों? इसका एक मात्र कारण है चेतनाभाव, घोर जड़ता का प्रजनन परतन्त्रता के गर्भ से होता है और अवसान होता है स्वातन्त्र्य प्रकाश से। हमारी सम्पूर्ण व्यथाओं का उन्मूलन केवल एकमात्र ब्रिटिश पूंजीशाही को उखाड़ फेंकने में है। केवल गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े होने के कारण हम कुछ का कुछ समझ लेते हैं। विवेक भ्रष्ट होकर ठीक काम नहीं देता। यदि इंगलिस्तानी चश्मे को थोड़ी देर के लिये उतार दें तो हिन्दुस्तानी तसवीर कुछ ठीक जँचने लगे; हिन्दुस्तानी तहजीब व तमद्दुन, भारतीय संस्कृति व सभ्यता का तात्विक स्वरूप क्या है, उनको ज्ञात हो जाय। काश! देखने के लिये दो अपनी आंखें होतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या !

श्री मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०, एल-एल०बी०

[बम्बई की लेजिस्लेटिव असेम्बली ने हाल में दूसरी शादी के विरुद्ध एक क़ानून पास किया है उसी से प्रभावित होकर लेखक ने यह लघु उपन्यास लिखा है —सम्पादक]

अपनी पत्नी की मृत्यु होने पर मैंने यह निश्चय कर लिया कि मैं अब दूसरी शादी न करूँगा। जब मैं अपने इस निश्चय को दृढ़ स्वरों में अपने मित्रों के सामने दोहराता तो वे जवाब देते सभी पुरुष अपनी पत्नी के मरने के बाद ऐसा ही कहते हैं पर जैसे जैसे समय बीतता है वैसे वैसे उनका निश्चय भी ढीला होता जाता है और अन्त में किसी सयानी बेटी का बाप उनके गले में शादी का फन्दा डाल जाता है और यदि पहिली पत्नी की मृत्यु के समय पुरुष की अवस्था कम हुई तो दूसरी शादी होने में देर नहीं लगती।

जिस समय मेरी पत्नी मीरा की मृत्यु हुई उस समय मैं केवल २८ वर्ष का था। वकालत मेरी ज़ोरों से चमक रही थी और अभी एक लम्बी उम्र कमाने के लिये पड़ी हुई थी। जब मैंने दूसरी शादी न करने का निश्चय किया तो उसके पीछे दुःख की इतनी भावना न थी जितनी विरक्ति की थी। इस वियोग की प्रतिक्रिया में अभाव उतना नहीं था जितना क्रम-भङ्ग। सच कहूँ तो शादी से कुछ ऐसी चिढ़-सी हो गई थी कि दुबारा फिर बन्धन में पड़ना चाहता था। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि मुझ में और मीरा में प्रेम न था। हम दोनों खूब सुखी थे। पर फिर भी बन्धन तो बन्धन ही है और ऐसा बन्धन जिसके पीछे कर्तव्य भार हो। इस बन्धन का पूरा ज्ञान मुझे उस समय हुआ जब मीरा की चिता ठंढी करके हम लोग स्मशान से घर वापस पहुँचे। अपने कमरे में बैठकर वहां की सब वस्तुओं पर नज़र पड़ते ही एक अजीब हालत हुई। मैं सोचने लगा कि इसी कमरे में मीरा के साथ मैंने छै साल काटे हैं। एक एक चीज़ में उसकी आत्मा का आभास दिखाई देता। हरएक चीज उसकी याद दिलाती। एक अजीब प्रकार की सनसनी रग रग में दौड़ती। पर फिर भी कहने का मतलब यह नहीं कि मीरा की मृत्यु पर मुझे कोई ख़ास अफसोस था। कहने योग्य नहीं पर सत्य है और इसके लिए खुद मुझे अपने मन में शर्म अनुभव होती है—मुझे मीरा के मरने की खुशी ज़रा भी न थी पर दुःख भी न था, उसकी मृत्यु पर कुछ कुछ लापरवाही का-सा था। इस पर मैं मन ही मन अपने आपको धिक्कारता। स्वभाव से मीरा बहुत अच्छी थी। मेरी उससे खूब पटती थी। मैं उस पर विश्वास करता और वह भी मुझसे खूब प्रेम करती थी। हमारे दिन अनायास कटते जाते थे। मकान सजाने का उसे एक खास शौक था। गृहस्थी मजे में चलती थी। नौकर-चाकर सभी खूब खुश रहते थे। घर में बदइन्तजामी न थी और चारों तरफ शान्ति छाई रहती थी।

उसकी मृत्यु के बाद अपने कमरे में बैठा-बैठा मैं जीवन के उल्टे हुये वर्कों को फिर स्मृति में ताजा करने की कोशिश करता। मुझे वे दिन याद आते जब मेरी अवस्था २० वर्ष की थी। वकालत पास करने के बाद इलाहाबाद में प्रेक्टिस करने के इरादे से मकान लेकर रहना शुरू किया था। दिल में उमंगें थीं। वकालत की उच्चतम सीढ़ी पर चढ़कर सर तेज ही बनना चाहता था। यही सोचा करता कि कौन-सा दिन होगा जब मैं सर तेज से टक्कर लूँगा। बड़े बड़े मुकदमे हाईकोर्ट में लड़ा करूंगा। सामने जज और जूरी होंगे और पीछे हजारों आदमी मेरी बहस सुनने के लिये खड़े होंगे। और मैं अपनी वक्तृता से, अपनी बहस से जज और जूरियों को पेचीदे मामले समझाता हुआ पुरअसर तरीके से कभी रुलाता कभी हँसाता, कभी मन को गिराता उठाता मुक़दमे जीता करूंगा। मैंने एक नामी वकील के यहां उम्मेदवारी शुरू की थी। तीव्र उमङ्ग और आकांक्षा के कारण अपने काम में खूब मन लगाता था। सबेरे से शाम तक मुकदमे समझता। रात में घर आकर अकेले में बहस करता। मां को जज बनाता। वह कभी रोती, कभी हँसती, मैं अपने को सफल समझता। किन्तु इलाहाबाद आने के छै ही महीने बाद मां की मृत्यु हो गई। वकालत का जोश था इसलिये मां का मरना न अखरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं दिनों मीरा से भेंट हुई। जिन वकील के यहां मैं उम्मेदवारी करता था वहीं पर रमेश भी काम सीखता था। हम दोनों में मित्रता हो गई। अकसर मुझे अपने घर पर वह भोजन का निमन्त्रण देता पर मैं एक-न-एक बहाना बताकर टाल देता। दावतों में समय खोना मुझे अपराध मालूम होता। इस तरह समय गँवाकर मेरी आकांक्षायें कैसे पूरी हो सकेंगीं। इसीलिये मैं कहीं न जाता। आखिर एक दिन रमेश ने बिला जमानती वारण्ट से मुझे गिरफ़्तार ही कर लिया। वह न माना और मुझे उसके घर जाना ही पड़ा। वहां रमेश की विधवा माँ और उसकी बहिन से भेंट हुई। मीरा उसका नाम था। वह मां को खाना बनाने और परोसने में मदद कर रही थी। रमेश की माँ बड़ी हुँसमुख थी। खाने के बाद उन्होंने मुझसे कहा कि रमेश तुम्हारी बड़ी तारीफ करता है। मेरा भी मन तुम्हें देखने को करता था इसलिये तुम्हें बुला भेजा था। मीरा शादी के लायक है बेटा! रमेश के मन में है कि तुम्हीं से उसकी शादी हो। तुम और रमेश दोनों एक ही हो। मुझे क्या एतराज हो सकता है। मैं रूढ़ियों में चलनेवाली नहीं हूँ। तुम भी मीरा को देख लो। और वह भी तुम्हें देख ले। फिर जैसा निश्चय हो मुझसे अपनी मां समझकर कहो। जैसा कहोगे मैं वैसा ही करूंगी। मेरी आंखें मीरा की ओर गईं। मीरा सुन्दर थी। हसमुख और लिखी-पढ़ी। यह तो मैं स्वयं ही देख रहा था कि वह ग्रहस्थी के कामों में निपुण थी। उस रोज तो कुछ न कह सका पर कुछ रोज बाद मेरी शादी मीरा के साथ पक्की हो गई। शादी होते ही मेरा भाग्य खुला। मीरा को तो पाया ही साथ ही साथ वकालत एकदम चमक उठी। जिन वकील साहब के साथ मैं काम करता था उन्हें एक दिन एकाएक ज्वर हो आया और वे कचहरी न जा सके। उस दिन उनका एक बड़ा मुकदमा पेश था। वकील साहब ने मुझसे ही बहस कराना निश्चित किया। उन्हें मेरे ऊपर विश्वास था। मैं बेहद मिहनती था। मुकदमे की बहस इस बार टाली न जा सकती थी क्योंकि दो बार वह टल चुकी थी। मैं भी अनुपम उत्साह लिये अदालत पहुंचा। मालूम नहीं कैसे क्या हुआ। मैं तो नशे के आलम में था। बाद में रमेश ने बताया कि 'वाक़ई तुमने आज कमाल किया।' बड़े बड़े वकील तुम्हारी बहस सुनकर दङ्ग रह गये। बस, उसी दिन से मेरी वकालत चमक उठी। भाग्य-लक्ष्मी मुसकराई और रुपये बरसने लगे। अब मेरे लिए केवल दो ही बातें रह गईं। बाहर वकालत और घर पर मीरा। मजे से जिन्दगी कट रही थी। शादी के साल ही भर बाद मुन्नू का जन्म हुआ। फिर तो घर एक नये और अनुपम आनन्द से भर गया। पैसे की कमी न थी। मुन्नू के लाड़-प्यार में काफी ख़र्च होता। हम लोग आपस में सोचते कि मुन्नू बड़ा होगा तो विलायत भेजेंगे। मीरा तो हरदम उसके बारे में ही सोचती। कहने का मतलब यह कि हमारा घर आनन्द-भवन हो गया। समय के पंख लग गये थे कि इतने में एकाएक मीरा चल बसी। हम लोग नुमाइश देखने गये थे। खूब घूमे फिरे। लौटते समय मैंने उत्साह में भर कर मोटर का एक्सीलरेटर तेज कर दिया। नई गाड़ी थी। हवा से बातें करने लगी और घर आते आते उसे ज्वर हो गया। ठंड के दिन थे। मीरा को ठण्ड लग गई। मामूली दवा की पर दो दिन बाद ज्वर न्युमोनिया में परिवर्तित हो गया और पेश्तर इसके कि बड़े बड़े डाक्टर कुछ कर सकें मीरा चल बसी। मृत्यु के समय उसने अपनी बड़ी बड़ी नीली आंखें मेरे मुख पर गाड़ कर कहा था—"स्वामी! चाहे अपनी मीरा को भूल जाना पर देखना अपने मुन्नू को मन से न उतारना।"

मैं सकते के आलम में था, न कुछ बोल सका और न रो सका। मेरी सारी भावनायें जैसे सुन्न हो गई थीं इसलिये मैं अपनी हालत पर खुद ही हैरान था। दोस्तों के सामने कोशिश करने पर भी न रो सका। अपने आपसे घृणा हो रही थी। बार बार मन में यही प्रश्न उठता कि क्या मैं मीरा का प्यार न करता था। पर उत्तर कुछ भी न पाता। दिखाने के लिये भी मैं रो न सका। इसका कारण शायद यह था कि मीरा मेरी पत्नी थी। अगर वह मेरी मित्र होती तो मैं जरूर खूब रोता। पर आप यह न समझें कि मैं उसे प्यार न करता था या उसके मर जाने से मैं खुश था। मुन्ना मेरी गोद में बैठा था। उसका हाथ मेरे हाथ में था। मीरा की कमी महसूस हो रही थी पर फिर भी मैं यह कहता हूँ कि मेरी हालत उस अपराधी के समान थी जो जेल में वर्षों रहने के बाद अपनी रिहाई का हुक्म पाता है। उस समय उसे जेल छोड़ने का दुःख तो जरूर होता है पर बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलने की खुशी भी होती है। इन्हीं सब विचारों के बीच मैंने निश्चय किया कि अब दूसरी शादी न करूँगा।

मित्र आते, सहानुभूति प्रकट करते और दुबारा शादी की सलाह देते। पर मैं हमेशा 'न' कह देता। जगदीश भी कभी कभी आता था। जगदीश मेरे ख़ास दोस्तों में था। पहिले वह अक्सर आया करता था। मीरा की मृत्यु के बाद उसका आना बहुत ही कम हो गया। जब कभी मिलता और मैं शिकायत करता तो यही कहता कि कुछ दिन अकेले छोड़ देने पर तुम्हारा दुःख कम हो जायगा। जगदीश ने शादी नहीं की थी। वह निर्बन्ध घूमकर ज़िन्दगी के मजे लेता। पर शादी के जंजाल में न फंसता। अच्छे कपड़े पहिनता और पार्टियों में शामिल होता। दोस्त खूब बनाता पर शादी न करता। एम० ए० पास करने पर कुछ दिन प्रोफेसरी की फिर छोड़ दी। घर का धनी था। कहने लगा कि नौकरी न करूंगा। आजकल हमारा विश्वविद्यालय म्युसिपैलिटी से भी गया बीता हो रहा है। इल्म की कदर नहीं है। नौकरी पढ़े लिखे लोगों के आत्म सम्मान के खिलाफ है। अब अपना रोजगार करूंगा। पर एक दिन वह मेरे यहां आया। मीरा को मरे लगभग छः महीने हो चुके थे। मैं मुन्ना और वकालत में मगन था। आते ही बोला। क्या हाल है ? मुझे तुम्हारी शादी की फिकर है।"

मैंने मुस्करा कर कहा—"पहले अपनी फिकर तो कर फिर मेरी करना !"

"उसने कहा, मेरे भाग्य में शादी नहीं है और न मैं इस लायक ही हूं। फिर मैं शादी करके बन्धन में रह तो नहीं सकता। तुम्हारी बात दूसरी है। तुम्हें दूसरी शादी करना चाहिये। मुन्ना कैसा है। उसके लिये ही कर लो।"

मैंने कहा "न, मैं वैसी कोई बात न करूँगा। तुम्हें मालूम ही है पुरानी एक नौकरानी है, ऊँचे खानदान की पढ़ी-लिखी विधवा। वही मुन्ना की देख भाल करती है। मुन्ना उसे खूब चाहता है और वह मुन्ना को खूब प्यार करती है। मुन्ना उसे ही अपनी मां समझता है। वही मेरा घर भी सम्हाले हुये है। हमें अब किसी और की जरूरत नहीं है। जिन्दगी गुज़र रही है और गुजर जायगी। खैर, छोड़ो इन बातों को। कहो आजकल तुम्हारा क्या हाल है ?"

उसने कहा, "तो फिर दूसरी शादी न करने का ही पक्का विचार है ?"

मेरे 'हां' कहते ही वह ज़ोर से ठहाका मार कर हँसा। उसके हंसने में एक विचित्रता रहती है। उसकी हंसी में लोगों को उसके बड़प्पन का आभास होता है। हंसते-हंसते ही उसने कहा।

"और तुम्हारी शादी न करने की जिद्द क्यों है ?"

मैंने कुछ कड़ाई से उत्तर दिया "क्यों कि मैं दूसरी शादी नहीं करना चाहता। मेरे विचार से दूसरी शादी करना ठीक नहीं है। मैंने केवल एक से प्रेम किया है। उसीसे प्रेम करते रहना ही ठीक है। वह चली गई। अब मेरी जिन्दगी के केवल दो ध्येय हैं—मुन्ना और वकालत।

उसने फिर पूछा, "और जब तबियत नहीं लगती तब क्या करते हो हज़रत !"

"तब मैं किताबें पढ़कर या नये नये शहरों में घूम कर तबियत लगा लेता हूं।"

वह फिर हंसा और बोला, "दूसरी शादी का विचार मन से अलग करने के लिये किताबें पढ़ना और देश विदेश घूम कर तबियत लगाना बड़ा ही अच्छा तरीका है। क्यों ?"

ऐसा कहकर वह गंभीर हो गया और बोला, "तुम ठीक ही कहते हो। मैं भी दूसरी शादी में विश्वास नहीं करता। मेरे ख्याल से भी दूसरी शादी वाले सुखी नहीं रह सकते।"

हम दोनों की बातचीत में अब गम्भीरता आ गई थी। हम दोनों हंसना छोड़ कर दूसरी शादी के फलसफ़े पर बातचीत कर रहे थे। जगदीश के यह कहने पर कि वह भी दूसरी शादी में विश्वास नहीं रखता मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर पहले तक वह मुझे दूसरी शादी करने पर ज़ोर दे रहा था। मैंने पूछा, "जगदीश क्या कह रहे हो ? मैं तो अभी तक यही समझ रहा था कि तुम दूसरी शादी को पहिली शादी से भिन्न नहीं मानते !"

उसने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया, "नहीं ! तुम्हारा ख्याल ग़लत है। मैंने दूसरी पत्नी वाले बहुत लोग देखे हैं। वे सुखी नहीं हैं। गो कि मैं अभी तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंवारा ही हूं पर मैं यह खूब समझता हूं। कांच का प्याला टूटने की तरह स्त्री बदली नहीं जा सकती। शादी होने पर पति पत्नी में कुछ आत्मिक सम्बन्ध हो जाता है जो स्त्री के मरने पर भी नहीं टूटता। यह सम्बन्ध मृत्यु के बाद भी कायम रहता है। दोनों में से किसी एक के मर जाने पर भी यह सम्बन्ध बना रहता है और वे दोनों फिर भी पति पत्नी ही रहते हैं। यह सम्बन्ध अटूट है। यही कारण है कि मैं दूसरी शादियों को घृणा की दृष्टि से देखता हूं।"

मैं उसका मुंह देख रहा था। बातें इतनी गम्भीर हो उठेंगी इसका ज़रा भी गुमान न था। मैं उसकी बात सुन ही नहीं रहा था। पर उसे अपनी ओर ताकते देख मैं बोल उठा, "जगदीश, तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई।" उसने कहा, "मेरा मतलब यह है कि पहिली स्त्री की आत्मा दूसरी शादी के समय मौजूद रहती है। वह दूसरी स्त्री के साथ साथ भांवरों में घूमती है। दूसरी स्त्री के हमेशा साथ रहती है। सोहागरात जैसे नाजुक मौकों में भी वह साथ नहीं छोड़ती। चाहे वह कुछ भी क्यों न करे, कहीं भी क्यों न जाय। उसकी आत्मा अपने पति के घर में जहां उसका पति दूसरी स्त्री के साथ रहता है हमेशा मौजूद रहती है।" मुझे यह सुन कर कुछ हंसी आई। और मुस्करा कर मैंने पूछा, "तुमने आत्माओं के विषय में कब से जानकारी हासिल की?" उसने कहा, "मैं आत्माओं के बारे में नहीं बात कर रहा हूँ। हमारी बातों का विषय है—दूसरी शादी। दूसरी शादी में मृतात्मा व्याप्त रहती है!"

मैंने पूछा, "यह मालूम कैसे होता है?"

"ईर्ष्या के रूप में" कहकर वह जाने के लिये खड़ा हुआ। "ईर्ष्या के रूप में!" उसने फिर दुहराया। मरे लोग जीवितों से और जीवित मरों से ईर्ष्या करते हैं। यही दूसरी शादियों में एक कांटा है जो हमेशा चुभता है। दूसरी पत्नी या दूसरे पति के साथ पहली पत्नी या पहिले पति की आत्मा हमेशा रहती है। उसे अपनी जगह पर दूसरे को देख कर ईर्ष्या होती है। इस भाव को वह अपने पति या पत्नी के हृदय पर किसी न किसी प्रकार अंकित करती रहती है। दूसरे पति या दूसरी पत्नी को पहिले पति या पहिली पत्नी से हमेशा ईर्ष्या रहती है। उनकी याद उन्हें हर कामों में व्याकुल कर देती है। इसी कारण दूसरी शादी दर असल में सुखकर नहीं साबित होती।" मेरे सिर से मानो भार-सा उतर गया। यह विश्वास हो गया कि कम से कम जगदीश अब मुझसे दूसरी शादी करने पर कभी ज़ोर न देगा। मैंने रहा सहा शक मिटाने के लिये पूछा—"तो तुम सच में दूसरी शादी से घृणा करते हो?"

वह फिर वही बड़प्पन की हँसी हँसा। इस बार की हँसी में मुझे तंग करने वाली चुटकी भी भरी थी। हँसते हँसते बोला, "मेरे और तुम्हारे घृणा करने से क्या होता है। सच बात तो यह है कि जो दूसरी शादी करते हैं वे सुखी नहीं रहते। चाहे हम तुम घृणा करें या न करें।" उसने हाथ उठाये और नमस्कार करके चल दिया।

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय मुसलिम विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

पिछले कई वर्षों से शहरों के रहने वाले पढ़े लिखे हिन्दू और मुसलमानों का आपसी सम्बन्ध लुभावनी राजनीति की निर्दय दृष्टि पड़ जाने के कारण बिरादराना नहीं रह गया है। इसलिये यह देख कर दिली खुशी होती है कि हमारे इतिहास के मौजूदा कलुषित अध्याय में कम से कम एक उज्ज्वल जगह दिखाई देती है जहाँ मुसलमान बच्चे इसलाम के धार्मिक और बुनियादी उसूलों की तालीम पाकर सच्चे मुसलमान बनने का प्रयत्न करते हैं, जहां वे परोपकार, सर्वधर्म समभाव, समता और समानता आदि गुण ग्रहण करने की शिक्षा पाते हैं, जहाँ उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की पृष्ठभूमि में भारत की मौजूदा स्थिति बताई जाती है, जहां उन्हें पाकिस्तान के साम्प्रदायिक और प्रतिकूल आदर्श के मुक़ाबले में विशुद्ध राष्ट्रीयता की शिक्षा दी जाती है और जहां उन्हें शुरू और बाद में केवल राष्ट्रीय मुसलमान बने रहने की तालीम दी जाती है। और वह जगह दिल्ली की राष्ट्रीय मुसलिम विद्यापीठ (विश्वविद्यालय) है, कि जिसे आम-तौर पर लोग 'जामिया मिल्लिया इसलामिया' कहते हैं और जो इसी मास के मध्य तक अपनी रजत जयन्ती मनाने जा रहा है।

जामिया मिल्लिया की शुरूआत हमारे दिमाग़ में एक चौथाई सदी पहले के उन समुज्ज्वल दिनों की याद ताज़ा करता है जब कि अपने प्राचीन इतिहास की परम्परा से नवजाग्रति की भावना लेकर हमारी मातृभूमि ने उस समय की परिस्थितियों के विरुद्ध अपना विस्फोटक असन्तोष आदर्शों और व्यवहार द्वारा, प्रकट किया था। उस समय शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ बड़े बड़े मुसलमान नेताओं, जैसे हकीम अजमल ख़ाँ और डाक्टर अन्सारी का विश्वास था कि—"कोई राष्ट्र अपने नागरिकों की तालीमी डिगरियों के बल पर उन्नति नहीं करता बल्कि उनमें जो उच्च गुण होते हैं उनके कारण उन्नति करता है और जो विश्वविद्यालय अपने नौजवानों में धार्मिक और नागरिक आदर्श नहीं पैदा करता वह एक ख़तरनाक मज़ाक़ की तरह है।" इसी विचार को सामने रखते हुये डाक्टर ज़ाकिरहुसेन और अन्य अनेक उत्साही कार्यकर्ताओं की सहायता से उन्होंने जामिया मिल्लिया क़ायम की।

इस मक़सद को पूरा करने के लिये उन्होंने यह आदर्श अपने सामने रखा—

"जामिया का सर्वोच्च आदर्श इसलाम को लक्ष्य बनाकर मुसलमानों के लिये जीवन का एक ऐसा ताना-बाना तय्यार करना है जिससे सार्वभौम मानव संस्कृति के साथ हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का सामञ्जस्य क़ायम हो सके। जामिया इस आदर्श की पूर्ति को सामने रखती है कि सच्ची धार्मिक शिक्षा जहां मुसलमानों में एकता पैदा करेगी वहां उनमें इस बात की आकांक्षा भी पैदा करेगी कि वे राष्ट्र की सेवा करें और उसके वास्तविक हितों को आगे बढा सकें कि जिसमें भारत को पूरा लाभ हो और वह मानवता की सेवा में अपना पूरा हक़ अदा कर सके और दुनिया भर में प्रगति, शान्ति और न्याय क़ायम हो सके।"

इस तरह इस उन्नत संस्था के बुनियादी संस्थापकों ने एक ही बार में तीनों समस्याएँ हल करनी चाहीं। यानी अपने सम्प्रदाय के नवयुवकों में ईश्वर, देश और मानव समुदाय के प्रति वफ़ादारी की भावना पैदा हो सके। यह एक ऐसी समस्या थी कि जिसने संसार भर के शिक्षा-शास्त्रियों के दिमागों और उनके सद् प्रयत्नों को अरसे से बेकार कर रखा है।

किन्तु कुछ लोग पूछ सकते हैं कि यह आकांक्षा तो बहुत अच्छी थी किन्तु रोज़मर्रा के जीवन में यह आकांक्षा कहां तक खरी उतरी? इस तरह के ईमानदार और सन्देही व्यक्तियों के लिये इस बात का एक ही उचित उत्तर होगा और वह यह कि—"जब से जामिया ने जन्म लिया तब से कहां तक उसने इन आदर्शों को स्वयं पूरा किया है और कहां तक दूसरों को इनसे प्रोत्साहित किया है—यह जानने के लिये आप ख़ुद जामिया जाइये और स्वयं अपनी आँखों से वास्तविकता देख लीजिये।" सरकारी तौर पर भी यदि कोई दर्शक उस विश्वविद्यालय में जायेगा, जो कि राजधानी दिल्ली से बाहर, ओखला में स्थापित है, तो वह अपने साथ वहाँ से यह स्पष्ट स्मृति लेकर आयेगा कि किस तरह वहां का वातावरण आध्यात्मिक प्रकाश और मधुरता से भरा हुआ है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस तरह पुराने गुरुओं के आदर्श—सादा जीवन और उच्च विचार—का वहां पालन होता है।

सोने के पिंजड़े में बैठे तोतों के रटने जैसी कोई बात जामिया में नहीं है। वहां के वातावरण की अज़हद सादगी, पढ़ाने और पढ़ने का तरीक़ा, हाथ की दस्त-कारियां, कला के माध्यम से दिलों को विस्फोटक भावना से भरने का तरीक़ा, अधेड़ों की शिक्षा की योजना, इस-लाम का गुरुतर और गम्भीर अध्ययन और विविध समाज विज्ञानों का पाठ्य-क्रम आदि इस बात के स्पष्ट और निश्चित सुबूत हैं कि जामिया के आदर्शों का अक्षरशः पालन हो रहा है। इसके अतिरिक्त वहां के शिक्षक और विद्यार्थियों को हमेशा अपने बुनियादी आदर्शों की याद रहती है। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन जो सदा जागरूक रहते हैं और जो एक सच्चे जिज्ञासु हैं और उनके अत्यन्त योग्य सहयोगी इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि मुर्दा रूढ़ि नहीं बल्कि जीवित सत्य उनकी संस्था का व्यावहारिक आदर्श है।

मुसलिम लीग की आजकल की गरम और असहिष्णु राजनीति में सम्भव है जामिया की आवाज़ नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ की तरह हो। किन्तु वह एक ऐसे पैग़म्बर की आवाज़ की तरह है कि जो गोपनीय किन्तु निश्चित और ज़ोरदार तरीक़े से सम्प्रदाय के जीवन के आन्तरिक स्रोत को छूती है और उसके गर्भ में शक्ति और उत्पादन की वह सम्भावना निहित करती है जैसी सरसों के बीज में होती है कि जिसके सम्बन्ध में हज़रत ईसा ने २००० वर्ष पूर्व कहा था—ऐसा बीज जो देखने में छोटा किन्तु समय पाकर पहाड़ों को भी हिला देनेवाला। और क्या जामिया भारत के सबसे अच्छे मुसलमानों का हमारी समन्वयात्मक संस्कृति के लिये सबसे सच्चा और सबसे उदार उपहार नहीं है?

और जब मुसलिम लीग का तम्बू उखड़ जायगा उसके बहुत बाद तक भी जामिया का कारवां आगे बढ़ता जायगा। ईश्वर करे ऐसा ही हो!

सद्गुरु का फरमान

श्री क़ाज़ी अशरफ़ महमूद

सुन सद्गुरु का फरमान रे!

दया बिना सब धर्म वृथा है,
कर्म बिना सब ज्ञान रे!
भाव बिना सब भजन वृथा है,
भक्ति बिना सब गान रे!
सत्य बिना सब सिद्धि वृथा है,
शुद्धि बिना सब ध्यान रे!

शील बिना सब शौर्य वृथा है,
स्नेह बिना सब मान रे!
न्याय बिना सब नीति वृथा है,
विनय बिना सब दान रे!
ताज बिना सब साज वृथा है,
शक्ति बिना सब शान रे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई किताबें

विक्रम स्मृति ग्रन्थ—सम्पादक मण्डल : डाक्टर रमाशंकर त्रिपाठी, पण्डित सूर्यनारायण व्यास, श्री युधिष्ठिर भार्गव, श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव और श्री हरिहर निवास द्विवेदी; प्रकाशक : विक्रम द्विसहस्राब्दी समिति, ग्वालियर राज्य, पृष्ठ संख्या ६२० रायल अठपेजी साइज़, मूल्य उद्धृत नहीं; चित्र रङ्गीन १६ और सादे ४६।

ग्रन्थ को तीन खण्डों में बाँटा गया है। पहले खण्ड में विक्रमादित्य तथा उनके नव रत्नों से सम्बन्धित रचनायें हैं। दूसरे खण्ड में उज्जयिनी, मालव तथा ग्वालियर राज्य सम्बन्धी रचनाएं हैं। तीसरे खण्ड में भारतीय संस्कृति के विकास से सम्बन्धित लेख हैं। अधिकांश लेख मान्य विद्वानों के हैं। इनमें प्रमुख डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप का विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता, महामहोपाध्याय श्री विक्रमादित्य रेऊ का विक्रमादित्य और विक्रम संवत, डाक्टर मोतीचन्द्र का विक्रम कालीन कला, श्री सम्पूर्णानन्द का जनता का विक्रमादित्य, श्री फाचर का चीनी साहित्य में विक्रमादित्य, डाक्टर बनारसीदास जैन का जैन साहित्य में विक्रमादित्य, मौलवी महेश प्रसाद का अरबी फ़ारसी में विक्रमादित्य, डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी का चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, श्री राहुल सांकृत्यायन का यौधेयगण और विक्रम, डाक्टर राजाराम नारायण सालेतूर का चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में सामाजिक जीवन, श्री बृजकिशोर चतुर्वेदी का विक्रम के नवरत्न, डाक्टर उमेश मिश्र का भारतीय दर्शनों का स्वरूप निरूपण, आचार्य क्षितिमोहन सेन का सहज और शून्य, डाक्टर गोरख प्रसाद का भारतीय ज्योतिष का इतिहास, श्री राधाकमल मुकर्जी का ललित कलाओं का समन्वय, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का काव्य कला और नगेन्द्रनाथ घोष का प्राचीन भारत की स्थापत्य तथा लक्षण कला आदि लेख हैं। लेखों के अतिरिक्त अनेक सुन्दर कविताएँ भी ग्रन्थ में दी गई हैं। रङ्गीन चित्रों में श्री असित कुमार हल्दार का विक्रम और कालिदास, श्री उपेन्द्र महारथी का विक्रमादित्य की विजय यात्रा, श्री निकोलस रोरिक का कराल महाकाल कालं कृपालुम, श्री नन्दलाल वसु का बाहगुहा में गीत-नृत्य दृश्य और श्रीमती महादेवी वर्मा का शान्ति दूत आदि बहुत उच्चकोटि के अत्यन्त भावपूर्ण चित्र हैं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ सम्राट विक्रमादित्य से सम्बन्धित ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और कलात्मक सामग्री से भरा पड़ा है। हम विक्रम द्विसहस्राब्दी समारोह समिति ग्वालियर को इस तरह की बहुमूल्य सामग्री से परिपूर्ण सुन्दर ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये हृदय से धन्यवाद देते हैं। ग्रन्थ की छपाई सफ़ाई बहुत उत्तम है किन्तु ऐसे भारी भरकम ग्रन्थ के लिये जिल्द ज़रा घटिया लगाई गई है।

प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रकाशक: प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, टीकमगढ़ सी० आई०; मूल्य दस रुपया, पृष्ठ ७५१ (डबल क्राउन अठपेजी)

यह अभिनन्दन ग्रन्थ श्री नाथूराम जी प्रेमी को उनकी विद्वत्ता और सतत साधना द्वारा हिन्दी की अपूर्व सेवा करने के कारण समर्पित किया गया है।

ग्रन्थ को ९ भागों में बांटा गया है। पहले भाग के लेखों में प्रेमी जी का अभिनन्दन किया गया है। इसके लेखकों में सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन्, श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री काका कालेलकर, श्री धन्यकुमार जैन, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री बेचरदास जी दोशी, श्री जैनेन्द्र कुमार, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, रायकृष्णदास, श्री माया वरेरकर, श्री जिन विजय आदि हैं। दूसरे भाग में भाषा विज्ञान और हिन्दी साहित्य पर लेख हैं। तीसरे भाग में भारतीय संस्कृति, पुरातत्व और इतिहास विषयक लेख हैं, इनमें श्री किशोरलाल मश्रुवाला का संस्कृति या सभ्यता, संत निहाल सिंह का हमारी संस्कृति का अधिकरण, आचार्य क्षितिमोहन सेन का दादू और रहीम, डाक्टर सुकुमार सेन का उत्तर भारत के नाथ सम्प्रदाय की परम्परा में बंगाली प्रभाव, पण्डित सुन्दर लाल का हिन्दू मुसलिम सवाल का आध्यात्मिक पहलू, डाक्टर वासुदेव अगरवाला का जैन और वैष्णवों के पारिवारिक मेल मिलाप का एक शासन पत्र आदि लेख महत्वपूर्ण है। तीसरे भाग में जैन दर्शन पर लेख हैं जिनमें पं० सुखलाल संघवी का जैन तत्वज्ञान और पं० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य का जैनदर्शन का इतिहास और विकास लेख प्रमुख हैं। पांचवें भाग में संस्कृत और जैन साहित्य विषयक लेख हैं जिनमें श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का जैन साहित्य श्री रामसिंह, तोमर का जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन और श्री कामता प्रसाद जैन का जैन साहित्य में प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री नामक लेख मुख्य हैं। छठवें भाग में मराठी और गुजराती साहित्य और सातवें भाग में बुन्देलखण्ड विषयक लेख हैं। आठवें भाग में समाज सेवा और नारी जगत और नौवें भाग में विविध विषयक लेख। इसके अतिरिक्त श्री प्रेमी जी से सम्बन्धित और अन्य लेखों से सम्बन्धित ३४ चित्र हैं।

ग्रंथ इलाहाबाद के प्रसिद्ध ला जरनल प्रेस में छपा है जो अपनी छपाई, सफाई और जिल्द के लिये मशहूर है।

हम इस सुन्दर ग्रंथ के आयोजन के लिये समिति के प्रधान डाक्टर वासुदेव सरण अग्रवाल, उप प्रधान और अभिनन्दन भावना के प्रणेता पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी और मंत्री श्री यशपाल जैन को बधाई देते हैं।

हलाहल—लेखक श्री बच्चन; प्रकाशक भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; मूल्य २॥) रुपया

इस पुस्तक में १४८ चौपदों में श्री बच्चन जी की हलाहल सम्बन्धी कविता है। लीक छोड़कर नया विषय और उसे व्यक्त करने का ढङ्ग सुन्दर और आकर्षक।

पर क्या जगत-घट सचमुच हलाहल है और क्या नारी के मधु आवरण में वह पुरुष को समर्पित किया गया है? विषय इस चौपदे से शुरू होता है:—

जगत घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर नारि तुम्हारे अधरों का मधुसार;

फिर आदम और हव्वा के वर्जित फल की कहानी के रूपक के तथ्य को लेकर कवि कहता है:—

नहीं तो कबका देता तोड़ पुरुष विषघट यह ठोकर मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद हलाहल पी जाता संसार!

देवताओं ने मानव को पथ-भ्रष्ट करने के लिये नारी रूपी पाश बनाया और तभी उसके हाथों पुरुष यह गरल पान कर सका, ऐसा कवि का मन्तव्य है तभी तो वह नारी को सम्बोधन करते हुये लिखता है—

जगत-घट तुमको दूँ यदि फोड़,
प्रलय हो जायेगा तत्काल,
मगर सुमदि, सुंदरि, सुकुमारि,
तुम्हारा आता मुझको ख्याल,
अगर तुमसे लेता मुंह मोड़,
विनिन्दित होता है पुरुषत्व
नहीं तो कहता मेरा नाश,
मुझे छूकर यह घातक तत्व,
अगर जाती है मेरी लाज,
करूंगा क्या रखकर मैं सांस
मनाओ यमदूतो आनन्द,
तुम्हारा सफल हुआ छल पाश।

कवि अपनी इस हार को गरल समझ कर पान करता है और फिर उस हलाहल को पचाकर साह्लाद कहता है—

मगर जो उत्सुक मन झुक झूम
हलाहल पी जाते साह्लाद,
उन्हें इस विष में होता प्राप्त,
अमर मदिरा का मादक स्वाद।

और इस गरल-पान के बाद ही जीवन की माधुरिमा कवि को दिखाई देती है तभी वह कहता है—

मुझे आया है मधु का स्वाद,
हलाहल पी लेने के बाद!

इसके बाद कवि की गीत-धारा सहसा मुड़ जाती है और वह संसार की असारता का बड़े मार्मिक तरीके से वर्णन करता है। जन्म और मृत्यु, उत्पत्ति और विनाश की आंख मिचौनी पर वह बड़े सुन्दर सुन्दर चौपदे लिखता है और हलाहल को इसी विनाश क्रम का प्रतीक मानता है। और तब उससे ऊपर उठकर मानव से कहता है—

हलाहल पीकर लेगा जान,
कि तू है कितना महिमावान,
नहीं है जग में तेरा स्थान,
कि जिनका होता है अवसान!
हुई है फिर फिर जगकी सृष्टि,
हुआ है फिर फिर जग का नाश
कि तू दोनों स्थितियों से भिन्न,
तुझे हो फिर फिर यह विश्वास।

और मानव की यह महिमा कितनी प्रतिभावान हो जाती है कि—

नहीं साहस कर सकता व्योम,
कि आकर बैठे तेरे साथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं साहस कर सकती आग,
कि आकर पकड़े तेरा हाथ,
नहीं साहस कर सकता सिन्धु,
कि तेरे आँसू से ले होड़!
नहीं हिम्मत है झंझावात,
सके साँसों से नाता तोड़।
नहीं सकता है अम्बर फैल,
जहां तक फैला तेरा हाथ।
जगत का सब से तीव्र समीर,
नहीं दे सकता तेरा साथ!
ज्वलित सबसे नभ का नक्षत्र,
नहीं रखता किरणों में ज़ोर।
कि छू भी ले उस तम का छोर,
जहां तू कर आया है भोर!

और इस तरह के मानव की महिमा के और कई चौपदों के साथ पुस्तक समाप्त हुई है।

पुस्तक का प्रारम्भ पुराने रूढ़िग्रस्त फ़लसफ़े के साथ हुआ है जो आगे बढ़कर मानव समस्याओं की उलझनों में फंस कर भरमा सा गया है और कवि ने उससे स्वाभाविक रूप से पैदा होने वाले निस्सारता और असारता के भाव प्रदर्शित किये हैं, किन्तु फिर वह जीवन के अमर सत्य, नीलकण्ठ के वृहत स्वरूप के दर्शन करता है और आत्मा के अमरत्व, गीता में निहित सत्य, का पाठकों को परिचय कराता है।

अगर कविता के १४८ चौपदों में से ढाई दर्जन चौपदे अलग कर दिये जाँय तो कविता का ढीलापन निकल जाय, उसमें एक चुस्ती आजाय और विचार क्रम में अनुपात और सामञ्जस्य क़ायम होजाय।

इस सबके बाद भी पुस्तक में वर्णित विषय अत्यन्त सुन्दर है और बच्चन जी के यश में चार चाँद लगाने वाला है।

पाकिस्तान—(तीन अङ्कों में एक नाटक)—लेखक: सेठ गोविन्द दास; प्रकाशक: किताब महल, इलाहाबाद; मूल्य: तीन रुपया; पृष्ठ संख्या: १६६

कथानक के परिचय में प्रकाशक लिखते हैं—"नाटक के पात्रों में पीरबख़्श और दुर्गा क्रमशः पाकिस्तान और अखण्ड भारत के समर्थक हैं और शान्ति प्रिय और जहांनआरा एक भारत राष्ट्र के। लेखक ने कल्पना की है कि पाकिस्तान हो गया। और फिर दोनों फ़ेडरेशनों में झगड़ा शुरू हो गया और दोनों राष्ट्रों की राष्ट्र सभाओं में क्राइसीज़ उपस्थित हो गई और जहांन आरा और अमरनाथ मिनिस्ट्री से इस्तीफ़ा देकर देश के दोनों भागों को मिलाने के लिये एक विराट आन्दोलन खड़ा करते हैं।"

इसी ढांचे में पूरे नाटक का ताना बाना बुना गया है। पाकिस्तान की मौजूदा राजनैतिक रूप रेखा को लेकर लेखक ने व्यावहारिक कसौटी पर कसकर उसे खोटा साबित किया है। जहांनआरा और शान्तिप्रिय का अन्तर्द्वन्द इसी समस्या की विफलता का करुण ख़ाका है। नाटक सुन्दर ढङ्ग से शुरू होता है, समस्या की गुत्थियों को लेकर आगे बढ़ता है और एक क्लाइमेक्स के साथ ख़त्म होता है। यह सही है कि लेखक ने समस्या की गहराइयों, उसकी जड़ों में प्रवेश नहीं किया है फिर भी जो कुछ उसने कहा है सुन्दर ढङ्ग से कहा है और उससे नाटक के गुणों, उसके अटूट पन, उसके विस्तार क्रम और उसकी समाप्ति में एक तारतम्य क़ायम रहा है। पुस्तक की छपाई सफाई सुन्दर है।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—सम्पादक श्री प्रहलाद ब्रह्मभट्ट; मूल गुजराती से अनुवादक श्री सुधारक त्रिवेदी; प्रकाशक बोरा एण्ड कम्पनी, ३ राउण्ड बिल्डिङ्ग, कालबा देवी रोड; बम्बई, २ मूल्य तीन रुपये; पृष्ठ संख्या १८८

नेताजी की अनेक जीवनियां पिछले सवा वर्ष में लिखी गई हैं किन्तु यह जीवनी बड़ी छानबीन और परिश्रम के साथ तय्यार की गई है। इसमें २६ जनवरी सन् ४१ के बाद की घटनायें विस्तार से दी गई हैं। अनेक चित्रों से पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। पुस्तक के अन्त में लाल क़िले के सेनानियों और उनके मुक़दमों का भी हाल दिया गया है।

बलिया में क्रांति और दमन—लेखक श्री देवनाथ उपाध्याय; प्रकाशक किताब महल; मूल्य ३॥); पृष्ठ संख्या २१६

सन् १९४२ की अगस्त क्रान्ति में बलिया का स्थान देश में सबसे ऊँचा रहा। बलिया ही एक ऐसा ज़िला था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां से ब्रिटिश हुकूमत ख़त्म हो गई थी और जहां दो सप्ताह तक अस्थायी प्रजातन्त्र हुकूमत क़ायम रही। किन्तु उसके बाद ही बलिया में जो भयङ्कर दमन हुआ उसकी भी मिसाल सन् ४२ में कहीं नहीं मिलती। क्रान्ति के उस सारे इतिहास को लेखक ने इस सचित्र पुस्तक में विस्तार से बताया है। पुस्तक का मूल्य अधिक है।

गांधीवाद और मार्क्सवाद—लेखक श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल; प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा; मूल्य तीन रुपये; पृष्ठ संख्या २६२

श्री पालीवाल युक्त प्रान्त के ख्याति प्राप्त कांग्रेस नेता हैं। उन्होंने सर्व साधारण के लिये भारतीय राजनीति पर अनेक चलती हुई पुस्तकें लिखी हैं। उनकी यह मौजूदा पुस्तक भी ऊपरी बातों को लेकर सरसरी तौर पर लिखी गई है। पुस्तक के विविध अध्याय गान्धीवाद, नात्सीवाद, समाजवाद, वर्ग संघर्ष, मार्क्सवादी दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति और सोवियत के प्रयोग आदि विषयों पर हैं। अन्त में मार्क्सवाद से गान्धीवाद की सरसरी तुलना भी है। लेखक ने दोनों के समन्वय को दुनिया के लिये कल्याणकर माना है।

नियोजित अर्थ व्यवस्था का गान्धी वादी मार्ग—लेखक (मूल अङ्गरेज़ी के) श्री जे. सी. कुमारप्पा; अनुवादिका कुमारी ललितादेवी एम. ए.; प्रकाशक अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ, मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार; मूल्य पांच आने।

इस छोटी सी बहुमूल्य पुस्तिका में गान्धीवादी अर्थ-शास्त्र के सर्वोच्च व्याख्याता आचार्य कुमारप्पा ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला है। उन्होंने गान्धीवाद का उद्देश्य, उसके साधन, उसकी राजनीति, सच्चे प्रजातन्त्र के साथ उसका सम्बन्ध, सत्याग्रह, शासनतंत्र और उसके अर्थ शास्त्र के सिद्धान्तों की गहरी विवेचना की है। प्रत्येक कांग्रेसजन को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तिका हाथ के बने काग़ज़ पर छपी हुई है।

धम्मपद-धर्मनां पदो—धम्मपद सरल गुजराती अनुवाद सहित; सम्पादक पंडित बेचर दास दोशी; प्रकाशक सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद; मूल्य एक रुपया; पृष्ठ संख्या १३७; छपाई सफ़ाई बहुत उत्तम।

श्री दोशी जी बौद्ध और जैन साहित्य के प्रमुख विद्वानों में से हैं। इस अनुवाद के द्वारा उन्हों ने धम्मपद को गुजराती पढ़े लिखे पाठकों के लिये बेहद सुलभ कर दिया है। आरम्भ में ३७ पृष्ठों की भूमिका में उन्होंने धम्मपद के साथ विविध धार्मिक ग्रंथों का सन्तुलन किया है जिससे पुस्तक और अधिक उपयोगी होगई है।

गुदगुदी—लेखक डाक्टर एस. पी. खत्री, प्रकाशक गोपाल अग्रवाल, १, बैंक रोड, इलाहाबाद, मूल्य १); संख्या ११२।

पुस्तक में हास्यरस के छोटे छोटे सैकड़ों चुटकुले हैं जो सञ्जीदा से सञ्जीदा तबियत वाले को एक बार गुदगुदा देते हैं। इन चुटकिलों को लेखक ने पांच हिस्सों में बांटा है—घर में, स्कूल में, अदालत में, सफ़र में और सब जगह। अधिकांश चुटकिले सुरुचि पूर्ण हैं किन्तु लेखक ने अधिकतर तवज्जह जाने क्यों सिख सरदारों के तरफ़ दी है। 'दूसरों की क़ीमत पर' मज़ाक़ का रिवाज है किन्तु उस क़ीमत में एक अनुपात होना चाहिये।

युगवाणी; प्रतिभा—दो नई मासिक पुस्तिकायें—

(१) युगवाणी—के सम्पादक हिन्दी संसार के सुपरिचित श्री जगदीश एम० ए० हैं और प्रकाशक प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद। अभी इसका पहला अङ्क हमारे सामने है। इसमें के० टी० शाह का युद्ध और शान्ति; रजनती पामदत्त का महायुद्ध नम्बर दो; ज़. फ़. टुले का यू. एन. ओ. और श्री जे. डी. बर्नल का युग का प्रश्न युग का उत्तर आदि लेख मुख्य हैं। पत्रिका की छपाई बहुत सुन्दर है। हम इसके अगले अङ्कों की प्रतीक्षा में हैं।

(२) प्रतिभा—सम्पादक पं० सीताराम चतुर्वेदी हरिहर शरण मिश्र, भवानी प्रसाद तिवारी, रामेश्वर प्रसाद गुरु और रुद्रनारायण शुक्ल; प्रकाशक हिन्दी किताब, पोस्टबक्स १२६१, बम्बई। प्रस्तुत अङ्क में श्री कन्हैयालाल मुन्शी, आनन्द कौसल्यायन, श्री चन्द्रबली पांडे आदि के सुन्दर लेख हैं। पहले अङ्क को देख कर हमें पुस्तिका का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

महामना मालवीय जी

गत् १२ नवम्बर को ८५ वर्ष के दीर्घ जीवन के बाद महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इस जीवन से नाता तोड़ लिया। यूँ तो इधर कई वर्षों से वे देह से बिलकुल जर्जर हो गये थे किन्तु मन उनका अब भी स्वस्थ और सबल था। और यदि पिछले दिनों साम्प्रदायिक दङ्गों का कलुषित अध्याय न खुला होता तो शायद मालवीयजी जीवन में दो चार वर्ष और खींच ले जाते। नोआखाली की दुर्घटना ने, सम्भवतः उनके जीवन द्वार को सहसा बन्द कर दिया।

यूँ तो मालवीय जी कांग्रेस के महान नेता थे किन्तु उनकी प्रतिभा चहुँमुखी थी। धार्मिक, सामाजिक, तालीमी आदि अनेक क्षेत्रों में उनकी तपस्या का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। त्याग, तपस्या, सदाचार और चरित्र बल उनके जीवन के आधार स्तम्भ थे अपने विचारों के अनुसार व्यवहार करने की उनकी क्षमता भी असीम थी। इसकी वे कभी परवाह न करते थे कि वे अकेले हैं या उनके साथ जन समूह है। शिक्षक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ, समाज सुधारक सभी कुछ वे थे।

कांग्रेस में सब से पहली बार वे सन् १८८६ की कलकत्ता कांग्रेस में शरीक हुए। वहीं पहली बार उनका व्याख्यान हुआ। तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त वे कांग्रेस के सच्चे सेवक बने रहे। कभी अनुयायी के रूप में, कभी नेता के रूप में, कभी कर्त्ता धर्ता के रूप में और कभी विरोध प्रदर्शन करने वालों के रूप में, कभी असहयोग के विरोधी बनकर और कभी सत्याग्रही होकर जेल जाने वाले बनकर—तरह तरह से वे कांग्रेस को अपनाये रहे। नरम दल के नेता सभी एक एक कर कांग्रेस से अलग हो गये लेकिन मालवीय जी तमाम उतार चढ़ावों में, प्रशंसा और बदनामी, किसी की भी परवाह न करते हुये सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे। कभी वे अपनी लोकप्रियता की चरम सीमा पर होते तो कभी कांग्रेस मञ्च से लोग उनका भाषण सुनना तक पसन्द न करते। वे १९०९ की लाहौर कांग्रेस, १९१८ की दिल्ली कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुये।

यूँ तो हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी स्मृति क़ायम रखने के लिये बहुत काफ़ी है किन्तु फिर भी मालवीय जी अपने आप एक संस्था थे और भारतीय राजनीति के इतिहास में उनको सदा के लिये एक अमिट जगह है।

हम विश्ववाणी परिवार की ओर से उनकी स्मृति में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। —वि० ना०

हिन्दू मुसलिम दंगे

नोआखाली की दर्दनाक ख़बरें सारे मुल्क में फैल चुकी हैं. बहुत कम ऐसे दिल होंगे जो उन्हें सुन सुन कर दहल न गए हों. उसके बाद और भी इधर उधर से आपसी झगड़ों और मारकाट की ख़बरें आरही हैं. यह चीज़ कहां तक फैलेगी और क्या क्या दिखलाएगी कोई अभी नहीं कह सकता.

इस देश के अन्दर हिन्दू और मुसलमानों के साथ साथ रहने के बारह सौ बरस के इतिहास में मुल्क को इस तरह की हालत का सामना आज तक कभी भी करना न पड़ा था. हिन्दू राजा और मुसलमान बादशाह एक दूसरे से लड़े. हिन्दू हिन्दू भी लड़े और मुसलमान मुसलमान भी लड़े. पचासों लड़ाई के मैदानों में हिन्दू और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर भी एक दुशमन का मुक़ाबला किया. इस बीच देश में बड़े से बड़े हिन्दू राज भी रहे और मुसलिम राज भी, पर इस देश की तारीख़ में पहला हिन्दू मुसलिम दंगा सन सत्तावन से कुछ पहले उन्नीसवीं सदी के शुरू में महाराजा रंजीतसिंह के दरबार के अंगरेज रेज़ीडेन्ट के साथ के कुछ मुसलमान सिपाहियों और कुछ हिन्दुओं और सिक्खों के बीच अमृतसर में हुआ. सन ५७ से पहले और सन ५७ में हमें फिर हिन्दू और मुसलमानों में वह मेल मिलाप दिखाई देता है जिसकी मिसाल दुनिया की तारीख़ में मिलनी कठिन है. इसके बाद कभी कभी दस बरस बाद या पन्द्रह बरस बाद जहां तहां छोटे मोटे दंगे सुनाई देते रहे. बीसवीं सदी में इनकी तादाद तेज़ी से बढ़ी. यहां तक कि सन १९२१ से सन १९३१ तक, दस बरस के अन्दर, ठीक चालीस दंगे मुल्क के अलग अलग हिस्सों में गिने गए. इनमें सबसे आख़ीर और सबसे भयंकर कानपुर का वह दंगा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें क़रीब चार सौ जानें गईं, लगभग १२०० घायल हुए और क़रीब २५ लाख का नुक़सान हुआ.

तब से अब तक हालत बद से बदतर होती चली जा रही है. यहां तक कि कलकत्ता और नोआखाली में जानों का नुक़सान हज़ारों से ऊपर और माल का नुक़सान करोड़ों से ऊपर पहुँच चुका है.

यहां हम इस इतने हाल की और इतनी दुखभरी घटना के सिर्फ़ कुछ मोटे मोटे पहलुओं पर निगाह डालना चाहते हैं. हम यहां उन बातों को ही लेना चाहते हैं जो, हमारे ख़याल से थोड़ा या बहुत, हर हिन्दुस्तानी के दिल में उठ रही हैं. नामुमकिन है कि कलकत्ता या नोआखाली जैसी वारदातें बिना पहले से भरपूर और लम्बी तय्यारी के हो सकतीं. नामुमकिन है कि बंगाल की सरकार को इन तय्यारियों का पहले से पता न हो और उनका इनमें किसी न किसी तरह का हाथ न हो. नामुमकिन है कि बंगाल के अंगरेज़ गवरनर के बग़ैर चाहे यह तय्यारियां या यह वारदातें हो सकतीं. सन १९४२ में इससे सौवां हिस्सा भी जान या माल का नुक़सान किसी एक सूबे में नहीं हो पाया था. उस वक़्त एक एक सूबे के अंगरेज़ गवरनर ने तहरीक को दबाने और उसमें हिस्सा लेने वालों की अक़्ल ठिकाने करने के लिये जो जो किया वह सारे देश को मालूम है. एक नहीं कई ज़िलों में ज़मीन से मशीनगनों और हवाई जहाज़ों से बम दोनो से काम लिया गया. तहरीक में हिस्सा लेने वालों के संगसाथियों पड़ोसियों या आसपास के गांववालों पर भी कोई ज़ुल्म उस वक़्त पुलिस और फ़ौज ने उठा नहीं रक्खा. और अब ? यह भी नामुमकिन है कि बंगाल का गवरनर बिना लार्ड वेवेल के चाहे यह सब कुछ होने दे सकता. ईस्टर्न कमान्ड के आफ़ीसर कमान्डिंग जनरल बुचर का बयान और उसका ढंग मुल्क के इस ख़याल को और भी पक्का कर देता है. इसलिये इन सारी वारदातों के बारे में सब से पहली और साफ़ बात यह है कि इनकी बुनियादी ज़िम्मेदारी इस मुल्क की अंगरेज़ सरकार, लार्ड वेवेल और बंगाल के अंगरेज़ गवरनर पर है. ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां ने बिलकुल ठीक और साफ़ कहा है कि मुल्क में जो अंधेर इस वक़्त मचा हुआ है वह अंगरेज़ सरकार ही की करतूत है. आज अगर हिन्दुस्तानी जनता उसी तरह अपने मुल्क के बुरा करने वालों पर मुक़दमा चला कर उन्हें सज़ा दे सकती, जिस तरह जापान और जरमनी में अंगरेज़ और अमरीकन सरकारों ने वहां के पुराने हाकिमों और नाज़ी सरदारों को दी है, तो सबसे पहले दो मुक़दमे लार्ड वेवेल और बंगाल के गवरनर पर चलाए जाते. उसके बाद फ़ेहरिस्त में मुमकिन है कुछ हिन्दुस्तानियों के भी नाम होते. पर हिन्दुस्तान इस वक़्त पूरी तरह परवस है.

इंगलिस्तान इस वक़्त मुल्कों की मिली जुली पंचायत 'यू. एन. ओ.' की तय्यारी कर रहा है. वह अपनी तसल्ली भर के लिये दुनिया को यह दिखा देना चाहता है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी ठीक उसी तरह बिना अंगरेज़ों की मदद और उनकी छत्रछाया के अमन से ज़िन्दा नहीं रह सकते जिस तरह फ़िलस्तीन में अरब और यहूदी. यह भी ज़ाहिर है कि जो छोटे मोटे दिखावटी, बनावटी, नक़ली राजकाजी अधिकारों के खिलौने हमें दिल्ली में दिये गए हैं या सूबों में हिन्दुस्तानी हाथों में छोड़े गए हैं वह सिर्फ़ रूस के बढ़ते हुए असर को रोकने के लिये हैं. इसमें भी शक नहीं कि अगर दो चार दस बरस के अन्दर इंगलैंड और अमरीका का रूस के साथ आधे पड़दे पर कोई समझौता होगया या किसी तरह रूस का डर जाता रहा तो हमारी बेड़ियों को और ज़्यादा जकड़ कर रखने में इंगलिस्तान हमारी आज की हालत से पूरा पूरा फ़ायदा उठाएगा. मुल्क में जो कुछ होरहा है सब उसी की तय्यारियां हैं.

ऊपर के ब्योरे से एक बात साफ़ समझ में आती है. वह यह है कि ग़ैर क़ौम की हकूमत यानी हमारी बीमारी को बढ़ाने वाले बाहर के जर्मस् जितना जितना देर पकड़ते जा रहे हैं उतना उतना ही हमारे अन्दर की सब बीमारियां चमकती बढ़ती और ज़ोर पकड़ती जारही हैं. इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख़री इलाज तो रोग के इन कीड़ों से आख़री छुटकारा पाकर ही होगा. पर इस बीच भी हम बहुत कुछ कर सकते हैं और ज़िन्दा रहने के लिये हमें करना होगा.

क्या करें ?

सबसे पहले हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि अगर वह दिन नहीं रहे तो यह दिन भी सदा नहीं रहेंगे. कोई हंगामा, कोई क़त्ले आम, कोई हत्याकांड, ऐसा नहीं हो सकता जिससे इस मुल्क का कोई सूबा, कोई हिस्सा या कोई इलाक़ा मुसलमानों से या हिन्दुओं से खाली हो जाए. न हिन्दू इस मुल्क से मिट सकते हैं न मुसलमान और न इनमें से किसी का मिटना हमारे लिये या मुल्क के लिए सराहने की, ख़ुशक़िस्मती की या बरकत की चीज़ हो सकती है. हमें आख़िर एक एक मोहल्ले, एक एक गली और एक एक गांव में मिल जुल कर रहना है. इसलिये जो लोग भी अपने दिलों और दिमाग़ों को ठंडा रख सकें उन्हें भरसक कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे हमारी आगे की वह मिली जुली ज़िन्दगी और ज़्यादा कड़वी और दूभर होजाए. ऐसे ही जहां तक हमारी समझ काम दे सकती है हमें जो भी बन पड़े इस तरह के काम करने चाहियें जिनसे इन बादलों के छट जाने पर हमारी मिली जुली ज़िन्दगी फिर से मेल मिलाप, रवादारी और प्रेम की ज़िन्दगी बन सके, और हम इन हंगामों से एक दिन उसी तरह जाग सकें जिस तरह आदमी किसी डरावने सपने के बाद जागता है.

जहां तक एक दूसरे पर हमले की बात है, हर मर्द और औरत को अपने घर वालों और अपने पड़ोसियों के बचाव का हक़ हासिल है. पर हम मजबूर हैं. हम इस देश के हिन्दू मुसलमानों को एक जिस्म के अलग अलग हिस्से या एक कुनबे के भाई बहनों की तरह ही देख सकते हैं. इस बुरी हालत में भी करोड़ों हिन्दुस्तानियों की यही निगाह है और हमें पूरा भरोसा है कि आख़ीर में सारे मुल्क की फिर यही निगाह होगी. ऐसी सूरत में ज़्यादा तारीफ़ के क़ाबिल वही लोग होंगे जो अपने भाई की तरफ़ से हमला होते हुए भी हिम्मत और बेख़ौफ़ी से अपने को बचाते हुए, अपनी पूरी ताक़त भर इसकी कोशिश करें कि बहके हुए भाई का बाल बाँका होने न पाए. हम यह भी समझते हैं कि हर हालत में इसे निभा सकना इतना आसान काम नहीं है. इसी लिए हम अपने बचाव और सिर्फ़ बचाव भर के हक़ को हर मर्द और औरत के लिए चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान जायज़ हक़ मानते हैं.

पर किसी हालत में भी किसी बेगुनाह पर हमला किसी तरह जायज़ नहीं हो सकता. अगर एक फ़िरक़े या एक मज़हब के किसी आदमी ने कहीं पर दूसरे फ़िरक़े या दूसरे मज़हब के किसी भाई या बहिन पर अपना नापाक हाथ ऊँचा कर दिया तो उससे दूसरे फ़िरक़े या दूसरे मज़हब के किसी भी मर्द या औरत को यह हक़ नहीं हो जाता कि वह कहीं पर भी पहले फ़िरक़े या मज़हब के किसी भी भाई या बहन पर अपना हाथ उठा दे. दुनिया का कोई मज़हब इस गुनाह की इजाज़त नहीं देता. इस तरह के पाप किसी गिरोह या मुल्क को ऊँचा नहीं ले जा सकते.

अगर मुल्क में कोई गिरोह ऐसा है जो यह समझता है कि बे गुनाहों पर इस तरह के हमलों से वह किसी तरह का फ़ायदा अपने लिये उठा सकता है तो वह बड़ी भयंकर भूल में है. हमने हिन्दू धरम और इसलाम, दोनों को ध्यान से पढ़ा है. हमें सबसे ज़्यादा दुख इस वक़्त इस चीज़ का है कि जो लोग इस तरह के पाप कर बैठते हैं या कर रहे हैं वह सबसे ज़्यादा अपने दीन, अपने धरम को कलंक लगा रहे हैं. हमें मौलाना हिसामुद्दीन लुधियानवी की इस तड़प के साथ पूरी हमदर्दी है कि जिस इस्लाम का बुनियादी असूल मज़हब के बारे में यह आयत है—

ला इकरहा फ़िद्दीन (२-२५६)

यानी "दीन धरम के मामले में किसी के साथ किसी भी तरह की ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिये" और जिसके पैग़म्बर ने लड़ाई पर लोगों को भेजते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्त भी उन्हें हमेशा यही हिदायत की कि—

"कभी किसी सूरत में भी किसी बूढ़े आदमी, कमजोर आदमी, बीमार, बच्चे, औरत, किसी दूसरे मज़हब के पुरोहित पादरी या किसी ऐसे इनसान पर हमला न करना जो हथियार लेकर तुम्हारे मुक़ाबले के लिये तुम्हारे सामने न आए, किसी सूरत में भी किसी फलदार दरख्त को न काटना" (सही बुखारी और सही मुसलिम) उस इसलाम को इस बीसवीं सदी में नोआखाली के मुट्ठी भर बहके हुए भाइयों ने इस बुरी शकल में दुनिया के सामने पेश किया ! इसी तरह जिस हिन्दू ने किसी भी बे गुनाह मुसलमान पर हाथ उठाया उसने अपने धरम को कलङ्क लगाया.

इन काली घटाओं के अन्दर से निकलने वाले सूरज की खबर देने वाले वह हिन्दू और मुसलमान थे जिन्होंने कलकत्ते में ठीक उन पागलपन के दिनों में अपनी अपनी जान पर खेल कर भी हिन्दुओं ने मुसलमानों की और मुसलमानों ने हिन्दुओं की जान बचाई. इस तरह के कुछ लोग उन दिनों में भी क़लकत्ते की गलियों में चिल्लाते फिरते थे "हिन्दू मुसलिम भाई भाई !" जो कर सकें उनके लिये ऐसे मौक़ों पर करने के सब से अच्छे काम यही है. मुबारक वह लोग होंगे, धन्य वह आत्माएँ होंगी. जो ऐसे संकट में भी इन हंगामों को हिन्दू या मुसलमान की निगाह से नहीं. बल्कि हिन्दुस्तानी और आदमी की निगाह से देख सकें. एक ऐसे सज्जन से जो नोआखाली होकर आए हैं हमने सुना है कि हंगामा करने वालों में काफ़ी तादाद ज़िले से बाहर के लोगों की थी और ज़िले के रहने वाले मुसलमान भाइयों में ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपने हम मज़हब लोगों से अपने हिन्दू पड़ोसियों का बचाव करके पड़ोसी होने का फ़र्ज़ अदा किया.

जिन गलियों मोहल्लों या गांवों में आग भड़क कर कुछ कुछ ठंडी हो चुकी. या जहां इस आग की लपटें अभी तक नहीं पहुंचीं, और देश का बहुत बड़ा हिस्सा अभी तक इन लपटों से बचा हुआ है और हमें आशा है बचा रहेगा. उनमें पहले से एक दूसरे से मिलने, मेल मिलाप बढ़ाने और जत्से करने, बाहर की लपटों से अपने इलाक़े को बचाने के लिये मिले जुले संगठन और मिले जुले वालंटियर दल खड़े करने का काम भी बहुत ही मुबारक और जरूरी है. इस तरह की कोशिशें देश के कई हिस्सों में हो भी रही हैं.

इस सिलसिले में मौलाना हिसामुद्दीन की यह तजबीज़ कि वह देश भर से शान्ति प्रेमी मुसलमान वालंटियर जमा करके नोआखाली ले जावें बहुत ही सराहने की चीज़ है. जहाँ कहीं हिन्दुओं की तरफ़ से ज़्यादतियां या बदले हो रहे हैं या होने का डर है वहाँ इसी तरह की कोशिशें हिन्दू धरम और हिन्दुओं के बड़प्पन को चमकावेंगी.

हमें अटल विश्वास है कि यह हंगामें चार दिन के हैं. दूसरे का जादू और हमारे अन्दर का पागलपन दोनों ही खत्म होंगे. हिन्दू और मुसलमान इस मुल्क में मिलकर रहेंगे और प्रेम से रहेंगे. उस दिन के लिये हम अपने दिलों दिमागों और अपने आस पास की हवा को जितना भी बचा कर रख सकें अच्छा है.

—सुन्दरलाल

गांधीजी की नोआखाली यात्रा

नोआखाली जाने के अपने उद्देश्य के बारे में गांधी जी लिखते हैं—"मैं वहां लोगों के एक सेवक की हैसियत से जा रहा हूं। मैं वहां के हिन्दू मुसलमान दोनों से मिलूँगा। आज कुछ मुसलमान मुझे अपना दुश्मन समझते हैं, लेकिन वे हमेशा ही मुझे दुश्मन नहीं मानते थे। मैं उनके गुस्से की परवाह नहीं करता। क्या खुद हिन्दू ही मुझ पर कभी कभी गुस्सा नहीं होते ? अपनी १७ साल की उमर से ही मैंने यह सबक़ सीखा है कि सभी इनसान, फिर वे किसी भी क़ौम, रंग या मुल्क के क्यों न हों, मेरे अपने सगे हैं, रिश्तेदार हैं। अगर हम भगवान के सेवक हैं तो हमें उसकी सारी सृष्टि का खिदमत के भी सेवक बनना चाहिये।

"मैं वहाँ जाकर बङ्गालियों से कहूंगा कि हिन्दू और मुसलमान कभी एक दूसरे के दुश्मन नहीं हो सकते। वे सब हिन्दुस्तान में ही पैदा हुये हैं, यहीं पले-पुसे हैं और उन्हें यहीं जीना और मरना है। धर्म या मज़हब के बदलने से यह बुनयादी बात नहीं बदल सकती। अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग यह मानना चाहते हों कि धर्म बदल जाने से क़ौम भी बदल जाती है तो भी उनके लिए एक दूसरे के दुश्मन बनना ज़रूरी नहीं।

आज लगभग तीन हफ़्ते से गान्धी जी बङ्गाल में हैं। उनके जाने का वहां काफ़ी प्रभाव पड़ा है। नोआखाली में हजारों मुसलमान उनके स्वागत और उनकी प्रार्थना में उपस्थित होते हैं। एकता के लिये उनके हृदय से निकले हुये उद्गार जन सामान्य पर काफ़ी असर डाल रहे हैं। यह सही है कि इक्का दुक्का घातक हमले अब भी होते रहते हैं किन्तु इस तरह के धर्मान्ध व्यक्तियों को अब जनता का सहयोग नहीं मिल रहा। जिस प्रेम के मिशन को लेकर गान्धी जी बङ्गाल गये हैं वही सम्प्रदायवाद के ज़हर को दूर करने का एक मात्र स्थायी तरीक़ा है। सारा भारत गान्धी जी के इस प्रयोग को उत्सुकता और उत्कण्ठा के साथ देख रहा है।

जो ज़हरीला इञ्जेक्शन नोआखाली में भारत की सरकार देह में दिया गया था उसके ज़हर का प्रभाव निकृष्ट फोड़ों के रूप में छपरा, पटना, मुङ्गेर और भागलपुर में दिखाई दिया। गान्धी जी वहां के सारे समाचार पढ़ कर तड़प उठे। उन्होंने कम से कम खाना शुरू कर दिया और इस बात का ऐलान कर दिया कि यदि बिहार में दङ्गे बन्द नहीं हुये तो उनका वह अल्पाहार आमरण अनशन में बदल जायगा। गान्धी जी ने बिहारियों से अपील करते हुये लिखा कि—"यह कहना कि बिहार में जो कुछ हो रहा है वह तो बङ्गाल का ही नतीजा है (कुछ मुनासिब बात नहीं)। अगर कोई दल बुरा काम करे तो उसके मुख़ालिफ़ दल को वैसा ही बुरा काम करने का कोई हक़ नहीं मिलता, ख़ास कर जब उसे अपने से लम्बे और बड़े से बड़े राजनीतिक या सियासी काम का गर्व हो।—बिहारी हिन्दुओं की यह काली करतूत क़ायदे आज़म जिन्नाह के इस उलाहने को ग़लत साबित कर सकती हैं कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है।

बिहार के बहुसंख्यकों का यह फ़र्ज़ है कि वे अपने यहां रहने वाले थोड़े से मुसलमानों को अपना भाई समझें और उनकी उतनी ही हिफ़ाज़त करें जितनी वे अपनी करते हैं। जिस बिहार ने कांग्रेस की इज़्ज़त को बचाने में इतना काम किया है वही उसकी कब्र खोदने में सबसे आगे न हो।—इसमें कोई बहादुरी नहीं कि हज़ारों लोग मिलकर कुछ सौ लोगों को मार डालें। यह तो बुज़दिली से भी बुरी चीज़ है। यह न हमारे धर्म को शोभा देती है और न हमारी राष्ट्रीयता को। अगर आपने घूँसे के बदले घूँसा मारा होता तो किसी को आपके ख़िलाफ़ उङ्गली उठाने की हिम्मत न पड़ती। अभी तो आपने अपने को गिराया है और हिन्दुस्तान को उसकी ऊँची जगह से नीचे घसीटा है।"

सन्तोष की बात है कि महात्मा जी के वक्तव्य का बिहार के नेताओं पर और आम जनता पर काफ़ी हितकर प्रभाव पड़ा। वे गाँवों में घुसकर ज़ोरदार तरीक़े से जनता से एकता की अपील करने लगे। किन्तु बिहार के ज़हरीले फोड़े को गान्धी जी की तरह प्रेम के नश्तर से अच्छा करनेवाला कोई नेता वहां मौजूदा न था। उसमें समय और शक्ति जो बहुत लगती है। पण्डित नेहरू और श्री कृष्ण सिंह ने अङ्गरेज़ हुक्मरानों के तरीक़े से बम और गोलियां बरसा कर उसे दुरुस्त करने का कार्यक्रम बनाया। नतीजा यह हुआ कि लगभग तीन सौ व्यक्तियों को सरकारी गोलियों का मूल्य प्राण देकर चुकाना पड़ा। दङ्गा दब ज़रूर गया किन्तु उसने एक ऐसी कड़वाहट दिलों में पैदा करदी जो आत्मा में एक काँटे की तरह चुभती रहेगी।

बिहार का दमन और गांधी जी

इस सम्बन्ध में हमें पटने के सहयोगी "योगी" की निम्न लिखित टिप्पणी बेहद जँची और उसे हम ज्यों का त्यों यहाँ दे रहे हैं—

"गांधी जी को बिहार के दंगों से जितना दुःख पहुंचा है, दंगों को रोकने के लिए किये गए उपायों से भी उन्हें उतनी ही तकलीफ होगी। बल्कि, नगरनौसा काण्ड के घटित होने के पहले ही उन्होंने कलकत्ता की अपनी प्रार्थना-सभा में कहा था, 'दोषी दल से पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि केन्द्रिय सरकार इन उपद्रवों को बर्दाश्त नहीं कर सकती। इसका दमन करने के लिए अगर हवाई जहाजों से बम बरसाने की जरूरत समझी गई, तो सरकार वह भी करेगी। लेकिन, ये तरीक़े अंग्रेज़ों के हैं। कांगरेस तो जनता का दल है, क्या कांगरेस अब विनाश और बर्बादी के विदेशी तरीक़ों का इस्तेमाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक उन्हीं लोगों के ख़िलाफ़ करेगी जिनका कि वह प्रतिनिधित्व करती है ? दंगों के दमन के लिए फ़ौज बुलाना हिन्दुस्तान की आज़ादी का दमन करना है। और तब भी अगर जनता के हृदय पर से कांगरेस का प्रभाव उठ गया हो तो पण्डित जी के सामने कौन उपाय रह जाता है ? इसलिए, अगर जनता अनुशासन और अक़्ल की बात नहीं समझ पाती तो अच्छा है कि शासन की बागडोर कांगरेस वाले छोड़ दें।'

गांधी जी के बिहार न जाने की शिकायत

कलकत्ते में एक मुसलमान दोस्त ने गान्धी जी को इस बात के लिये आड़े हाथों लिया कि वे बिहार या मुल्क के दूसरे हिस्सों में न जाकर नोआखाली क्यों जाना चाहते हैं, क्या इस लिये कि वहां हिन्दुओं पर ज़ुल्म हुये हैं। इसके जवाब में गान्धी जी ने कहा—"मैं हिन्दुओं और मुसलमानों में इस तरह का कोई फ़र्क़ नहीं करता। अगर आपकी बताई जगहों में कहीं नोआखाली जैसी वारदातें होतीं तो मैं सीधा वहीं जाता। ज़ुल्मों की शिकार बनी बहिनों की पुकार ने मुझे नोआखाली आने पर मजबूर किया।—मुमकिन है मैं वहां एक साल या उससे भी ज्यादा ठहरूँ। अगर ज़रूरत हुई तो मैं वहीं मरूँगा। लेकिन मैं हार नहीं मानूँगा—।"

असल में गान्धी जी प्रेम द्वारा एकता का जो ज़बरदस्त प्रयोग करना चाहते हैं उसके लिये सर्वोत्तम प्रयोगशाला नोआखाली ही हो सकता है छपरा नहीं। छपरा की हिंसा तो गान्धी जी की अहिंसा के सामने दो दिन भी नहीं ठहर सकती। वे तो नोआखाली की दुर्दमनीय हिंसा की थाह लेना चाहते हैं और इसी लिये वे कहते हैं—"अगर मैं इस उम्मीद को सच साबित न कर सकूँ तो मेरा हमेशा के लिये आंखें मूँद लेना ही बेहतर होगा।"

साम्प्रदायिक दंगे और कांग्रेसजन

गढ़ मुक्तेश्वर और मेरठ ज़िले के भीषण साम्प्रदायिक दङ्गों पर श्रीमती मृदुला साराभाई और मेजर जनरल शाहनवाज़ ख़ाँ ने अपने जो वक्तव्य प्रकाशित किये हैं उनमें इस बात की ज़बर्दस्त शिकायत की है कि कांग्रेसजन बावजूद अपनी क़ुरबानियों और शानदार सङ्गठन के निकम्मे और ढीले साबित हुये।

मेरठ में ही नहीं काँग्रेस जनों की यह कैफ़ियत सारे हिन्दुस्तान में रही। कहीं वे डर कर चुपचाप बैठे रहे, कहीं रास्ता न सूझने के कारण अकर्मण्य रहे और कहीं कच्चा दिल होने के कारण उन्होंने वही किया जो सावरकर का कोई अनुयायी कर सकता था ? असल में कांग्रेसजनों को इस बात की तो शिक्षा मिली है कि वे सरकार से ज़बरदस्त मोरचा लें किन्तु अपने ही देश की समाज विरोधी ताक़तों से मोरचा लेने की उन्हें तालीम नहीं मिली। या तो वे जेल जायेंगे या फिर तू-तू मैं-मैं करने और चुनाव लड़ने में व्यस्त रहेंगे। इनकी यह हालत देख कर बड़ा सदमा होता है। अङ्गरेज़ आज है कल चला जायगा पर अगर यही कैफ़ियत रही तो कांग्रेसजन वास्तविक और चहुमुखी क्रान्ति के अवसर पर देश की नय्या न खे सकेंगे। आज बहुमत ऐसे कांग्रेसजनों का है जो साम्प्रदायिक विचारधारा से आक्रान्त हैं, जो जात पांत और छुआछूत मानते हैं, जिनके घरों में औरतें परदा करती हैं, जो अपने बेटों के ब्याह में दहेज़ लेते हैं और जो अपनी क़ुरबानी का हरजाना, म्युनिसिपैल्टी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, और असेम्बली के मेम्बर बन कर वसूल करते हैं।

हैरत तो इस बात पर है कि यह निकम्मे लोगों की जमात गान्धी जी के हाथों में पड़ कर कभी कभी सोना बन जाती है और गान्धी जी इससे ऐसे ऐसे प्रभाव पैदा कर दिखाते हैं कि जो विस्मयजनक होते हैं। पर क्या यही कैफ़ियत सदा रह सकती है ? अर्जुन के गाण्डीव की शक्ति कृष्ण की मृत्यु के बाद लुप्त होगई थी और गांधी जी यदि उदासीन हो जांय तो काग्रेसजनों की शक्ति का भी कोई पता न चले।

विश्ववाणी के प्रकाशन में देरी

इलाहाबाद की निरन्तर छुरेबाज़ी और २४ घण्टे के कर्फ़्यू के कारण प्रेस इत्यादि का का सारा काम हफ़्तों बन्द होजाता है। इसी लिये प्रयत्न करने पर भी 'विश्ववाणी' समय पर नहीं निकल पाती। आशा है पाठक हमारी विवशता को समझ कर हमसे रुष्ट न होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अद्वितीय, अनूठी और क्रान्तिकारी पुस्तक

टोकियो से इम्फाल

पृष्ठ संख्या २२८ : बिलकुल नये चित्र २१ : मूल्य २॥) : डाक से २॥।=),

लेखक—सरदार रामसिंह रावल; सम्पादक दैनिक 'आजाद हिन्द' बैंकाक (थाइलैण्ड)

हिन्दी में—प्रसिद्ध पत्रकार और जब्त 'जय हिन्द' के यशस्वी लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार

भूमिका—अगस्त ४२ की क्रान्ति की लक्ष्मी श्रीमती अरुणा आसफअली

महान क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द की भावना से आयोजित प्रचण्ड क्रान्ति का पूर्ण प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास।

पुस्तक में क्या है ?

* बैंकौक से इम्फाल तक की ३००० मील पैदल यात्रा का रोमांचकारी विवरण।
* श्री रासबिहारी बोस और राजा महेन्द्रप्रताप आदि की प्रवृत्तियों का पूरा परिचय।
* इम्फाल और अराकान के मोर्चों के खूनी जंग का आँखों देखा पूरा हाल।
* बाल सेना और नेताजी के नये व दुर्लभ चित्र और एक नक़शा।

पुस्तक की भाषा और शैली कहानी की तरह रोचक,
उपन्यास की तरह मोहक और नाटक की तरह आकर्षक है।

हिन्दी तो क्या, किसी भी भाषा में ऐसी पूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई।

आज ही अपनी पुस्तक का आर्डर भेजिये।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी क्रान्तिकारी पुस्तक

राजा महेन्द्रप्रताप

पृष्ठ १०० से ऊपर : कई चित्र : मूल्य १॥) डाक से १॥।-)

लेखक—'टोकियो से इम्फाल' पुस्तक के नामी लेखक और बैंकोक के दैनिक 'आज़ाद हिन्द' के सम्पादक सरदार रामसिंह जी रावल और हिन्दी के ख्यातनामा लेखक श्री सत्यदेव जी विद्यालङ्कार।

बत्तीस वर्षों के निर्वासन के बाद स्वदेश लौटने वाले सुप्रसिद्ध और महान क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप की विस्तृत जीवनी सब से पहिले हिन्दी में ही प्रकाशित हो रही है। इसमें आप राजाजी के प्रारम्भिक जीवन के साथ पढ़िये कि कैसे राजाजी बिना पासपोर्ट के स्विटजरलैण्ड होकर जर्मनी गये, कैसर विलियम से मिले, काबुल में आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की, ६००० सैनिकों की फौज ले हिन्दुस्तान पर हमला किया, रूस में ट्राटस्की से मिले, सारे संसार का पांच बार दौरा किया, जापान में आर्य सेना खड़ी की, विश्व-संघ के नाम से संसार का नक़शा तैयार किया।

अपने लिये तुरन्त एक प्रति मंगा लें।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

नया क्रान्तिकारी कहानी संग्रह

आग और आँसू

लेखक : डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी एम० ए०, डी० लिट्० (पैरिस)

डाक्टर रायपुरी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, उत्कृष्ट विचारक और क्रान्तिकारी समाज सुधारक हैं। कहानीकार की हैसियत से उनकी बेहद ख्याति है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह इस समय प्रेस में है।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नया हिन्द'

हिन्दुस्तानी बोली और हिन्दी उर्दू लिखावट में
हिन्दुस्तान की मिली जुली कल्चर का बेजोड़ मासिक पत्र

सम्पादक मण्डल

पण्डित सुन्दरलाल

डाक्टर ताराचन्द

सय्यद मुज़फ़्फ़र हसन

महात्मा भगवानदीन

पण्डित विश्वम्भरनाथ

सालाना क़ीमत छै रुपया — एक कापी दस आना

आज ही ग्राहक बनें या नमूने की कापी मंगायें

"नया हिन्द" आफ़िस, बाई का बाग़, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का
प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है।
हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक विश्वनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदवाणी

भाग १२] [संख्या ४, पूर्ण संख्या ७०

...कालय
...ज कांगड़ी

...क मूल्य ६)] अक्तूबर १९४६ [एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत

विषय-सूची

[अक्तूबर : १९४६]

१—गांधी जी की एक झलक—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक २०१
२—गांधी-जयन्ती (कविता)—श्री करील ... २०२
३—गांधीवादी उत्पादन व्यवस्था—प्रो० निर्मल कुमार बसु २०३
४—गीत (कविता)—श्री अनंत कुमार 'पाषाण' २१२
५—पत्थर की मूर्ति—डा० अख्तर हुसेन रायपुरी एम० ए०, डी० लिट्०. ... २१३
६—वेद कालिक अंतिम संस्कार—श्री० राम-प्रताप त्रिपाठी शास्त्री ... २१८
७—सुनो !— मुग़ल सम्राट अकबर ... २२४
८—दीन बनाम नेशन—महात्मा भगवान-दीन २२५
९—लहर आप ही झुक जाएगी (कविता)—श्री० उपेन्द्र २२९
१०—भिक्षु निकाय और उसके सिद्धांत—भिक्षु धर्म रक्षित धर्म शास्त्री २३०
११—गांधी जी की एक और झाँकी—आचार्य गुरुदयाल मल्लिक २३३
१२—महात्मा गांधी और उनकी साल-गिरह—श्री मंज़र अली सोख़्ता ... २३७
१३—चीन के दो धर्म— मारिस केन ... २४२
१४—वंदना (कविता)—श्री ब्रह्मदत्त विद्यार्थी २४५
१५—क्या वह गुण्डा था ?—श्री पुरुषोत्तम-दास मोदी २४६
१६—वीर व्रती (कविता)—काज़ी अशरफ महमूद २४७
१७—विधान-परिषद में स्त्रियों का भाग—श्रीमती कृष्णा कुमारी नाग ... २४९
१८—कलकत्ते की आंखों देखी दो वारदातें—श्रीमती शकुंतला प्रभाकर ... २५१
१९—मिट्टी और फूल (कविता)—श्री सरोजनी श्रीवास्तव २५३
२०—साहित्यिक सूचनाएं २५४
२१—नई किताबें २५५
२२—हमारी राय २६०

विश्ववाणी के ग्राहकों और पाठकों को सूचना

(१) विश्ववाणी प्रेस से हिन्दुस्तानी मासिक "नया हिन्द" के प्रकाशन के कारण अब "विश्ववाणी" बजाय पहली तारीख़ के हर महीने १५ तारीख़ को प्रकाशित हुआ करेगी ।

(२) काग़ज़ के अभाव में हमें दुःख है कि हम "अन्तरराष्ट्रीय अङ्क" प्रकाशित नहीं कर सके। उस अङ्क के समस्त लेख हम गत जुलाई से 'विश्ववाणी' के साधारण अङ्कों में थोड़े थोड़े करके प्रकाशित कर रहे हैं। अच्छा होता यह उपयोगी सामग्री एक साथ प्रकाशित होती किन्तु मजबूरी के सबब ऐसा करना पड़ रहा है।

(३) डाकख़ानों की हड़ताल और इलाहाबाद के निरन्तर दङ्गों और कर्फ़्यूआर्डर के कारण विश्ववाणी के लेट होने से ग्राहकों को काफ़ी असुविधा उठानी पड़ी जिसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

वर्ष ६, भाग १२] अक्तूबर : १९४६ [अङ्क ४, पूरे अङ्क ७०

गांधीजी की एक झलक

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

नदी के तीर, बाँस की बनी एक झोपड़ी में, अपने सरल देश के सरलतर उपकरणों से सरलतम देशवासी हाथों बनाई हुई कपास की 'गादी' पर, मिट्टी की दीवार से टिका हुआ संन्यासी जैसा कोई व्यक्ति बैठा था। उसका विशाल मस्तक आकाश के गुम्बज-सा दीख रहा था। उसके नेत्रों की राह अंतर की गंभीर चिंता बीच-बीच में चश्मे को भेदकर बाहर झलक उठती थी। उसका मुख, मुख नहीं, मानो प्रतिष्ठक हो। जान पड़ता था मानो वह पवित्रता तथा एक परिश्रम के जीवन का जीवंत अवतार हो। इस समय वह स्पष्टतया मनुष्यों की दुनिया का कोई बहुत गहरा मसला सुलझाने में डूबा हुआ था। चारों ओर नदी तीरवर्ती बालुका राशि भी विस्तृत थी, शांति में जो अस्तगामी सूर्य के सुनहले प्रकाश में चमक रही थी।

साँप ! साँप !!—कोई व्यक्ति उत्तेजित स्वर में पुकार उठा और पल भर में ही भीतर आकर कुटिया की आत्मा के निकट खड़ा हो गया।

सरीसृप की छन्दोमय देह को आगन्तुक के हाथ में झूलते हुए देखकर भगवान् तथागत की प्रशांत मुद्रा में सीमाहीन करुणा की याद दिलाने वाले धीर कंठ से प्रश्न आया—क्या ज़हरीला है ?

हो सकता है ; किन्तु मैं ठीक कह नहीं सकता !—आगन्तुक ने उत्तर दिया।

तब उसे जाने दो, आदेश आया, दुनिया इतनी काफ़ी बड़ी है कि उसे भी तनिक-सा अवकाश खेलने-खाने और प्रेम करने के लिये मिल जाएगा।

साँप की दोनों आँखें तारिकाओं की भाँति चमक उठीं। बन्धनमुक्त होते ही वह अपने जेलर के हाथों से मुक्ति पाकर अपरिसीम विश्व में विलीन हो गया। किन्तु जाने से पूर्व उसने कुटिया के प्राणों के चरणों पर अपनी दुहरी जीभ एक बार स्नेहपूर्वक फेर ली। ठीक भी था ; उन्हींकी अनुकम्पा ने, जो जीव मात्र पर श्रावण-घन की तरह निरपेक्ष बरसा करती है, क्या उसे नवीन मुक्ति और नवीन प्राणों का वरदान नहीं दिया था ?

अहिंसा का अर्थ क्या है ? अर्थ है सृष्टिकर्ता की निखिल सृष्टि पर छा जानेवाली काली मृत्यु को प्रेम के पुनीत जल से शुद्ध कर लेना —जीवन और प्राणों का जहाँ तक साम्राज्य है वहाँ तक अपने मानवीय प्रेम का साम्राज्य प्रसारित करना, समाज का आध्यात्मीकरण ! अहिंसा का मर्म निहित है—साक्षात् शंकर की मंगल-मयी मूर्त्ति में !

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धी-जयन्ती

श्री 'करील'

जागा वसुधा का भाग्य आज भव भर में आज क्षमा जागी।
बल की पौरुष की मंजुलता लेकर गौरव गरिमा जागी॥
वैभव से व्याकुल भव जागा, नव जीवन की प्रतिमा जागी।
जागी सब का कल्याण लिये मानवता की महिमा जागी॥
बस हृदय हृदय में हर्ष भरा पीयूष भरी बरसी वाणी।
भारत माता के आँगन में उतरी सुन्दरता कल्याणी॥
शोभित जननी की मृदु काया जल-थल-नभ में उमड़ी माया।
लीलामय पुरुष पुरातन का उपहार भुवन भर में छाया॥
आशा की किरणों से रवि ने कवि के स्वर में रस बरसाया।
गाया, गाया बस मानव ने मानव का मंगल-यश गाया॥
अवतार महात्मा गान्धी का जनता ने देखा आज हुआ।
धरती ने जाना जीवन में उसका स्वाधीन समाज हुआ॥
बह उठी पवन में मादकता फूलों ने सुषमा बरसायी।
उत्तुंग हिमालय की शोभा सागर के जल में लहरायी॥
दुखियों के सुख के दिन जागे भारत ने अपनी निधि पायी।
उमड़ी सुख के वरदान लिये प्रभुता जन जन की मनभायी॥
यह महाशान्ति मय क्रान्ति लिये यह विश्व प्रेम का मतवाला।
उतरा प्रलयंकर शिव शंकर हँस हँसकर विष पीने वाला।
उमड़ी गंगा, उमड़ी यमुना, उमड़ी सरयू की रस-धारा।
उस दिन तो सुजला सिन्ध हुई ले करके पुण्योदक सारा॥
मानस से उमड़ा ब्रह्मपुत्र, मृदु हुआ सिन्धु का जल खारा।
उल्लसित विन्ध्य की घाटी से नर्मदा लगाती थी नारा॥
अति प्रमुदित गोदावरी हुई, गाती थीं कृष्णा-कावेरी।
माँओं बहिनों के स्वर भरती बरसी उस दिन कविता मेरी॥
विधि ने था बल-विक्रम सिरजा हरि ने था स्नेह सरस पाला।
शिव के ताण्डव से बिखर पड़ी उस दिवस क्रान्ति बन विकराला॥
आदर्श हमारा प्रकट हुआ—सन्तप्त भुवन ने कह डाला।
यह राम-कृष्ण का कर्मयोग गान्धी चरखे करघे वाला॥
चालीस कोटि हम नर नारी माता के दृढ़ बन्धन खोलें।
बस आज महात्मा गान्धी की आओ सब मिलकर जय बोलें॥
यह दीन जनों का वरद बन्धु! यह आर्यश्रेष्ठ! यह महाप्राण!
यह महाक्रान्ति का अग्रदूत! यह सत्य-पूत पावन महान!!
यह इस अशान्ति की परम शान्ति! यह साधु जनों का अमर गान!
सब भ्रान्ति व्यथायें मेट रहा यह अपने युग का बल निधान॥
परतंत्र देश के हम प्राणी सदियों के दृढ़ बन्धन खोलें।
बस आज महात्मा गान्धी की, भारत माता की जय बोलें॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीवादी उत्पादन व्यवस्था

प्रोफ़ेसर निर्मलकुमार बसु एम० ए०

किसी भी विषय पर गांधी जी के विचारों को ठीक से समझने के लिये हमें उनके उन विषयों के सम्बन्ध के लेखों का बहुत ही ध्यान से अध्ययन करना चाहिये। साथ ही इस बात का भी ख़याल रखना चाहिये कि उन्होंने किस परिस्थिति में कौन सी बात कही है। इस प्रकार हम अपनी शङ्काओं को दूर कर सकेंगे फिर चाहे भले ही उनके विचार बिलकुल ही बदल गए हों। इस तरह हमें इस बात का भी आप ही उत्तर मिल जाएगा कि उनके विचार किसी विषय पर किसलिये बदले। इस प्रकार के अध्ययन से पता चलेगा कि उनके मूल सिद्धांत बहुत कम बदलते हैं, लेकिन उनके मतलब और अन्तर्गत बातों में अवश्य ही बढ़ते हुए अनुभव के साथ परिवर्तन हुआ करता है। सारी दुनिया के लोगों की धारणाओं के अनुसार भी उनमें तब्दीली हुआ करती है। वह उतना ही दूसरों से सीखते हैं जितना कि अपने अनुभवों द्वारा। इसी ढंग से हमें उनके मशीनरी और उद्योगवाद सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करना चाहिये। साथ ही हमें उनके प्रस्तावों को भी देखना है जो हिन्दुस्तान को इस वर्त्तमान (राजनैतिक तथा आर्थिक ग़ुलामी के परिणाम स्वरूप) सारी हालत और ग़रीबी से ऊपर उठाने से सम्बन्ध रखते हैं।

उद्योगवाद के विरुद्ध आरोप

जिस समय गांधी जी दक्षिण अफ़रीका में थे उन्होंने सन् १९०८ में गुजराती में एक छोटी-सी किताब लिखी थी। उस पुस्तक का फिर बाद में "हिन्द स्वराज" या इण्डियन होमरूल, शीर्षक से अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। इस किताब में "वर्तमान सभ्यता" की बड़ी निन्दा की गई है। अपने विचारों को समझाने के लिये गांधी जी ने पहले रेल तथा मशीन की बनी चीज़ों के कारण भारत के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले असरों का विवेचन किया है और फिर इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि उनका प्रभाव हर तरह बुरा पड़ा।

उन्होंने लिखा है—

"मशीन ने यूरोप को बरबाद करना शुरू कर दिया है। विनाश इङ्गलैण्ड के दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है। वर्त्तमान सभ्यता का मुख्य लक्षण मशीनरी है जो पाप का ही रूप है।

"बम्बई की मिलों में काम करने वाले बिलकुल ग़ुलाम बन चुके हैं। जिन हालतों में औरतें मिलों में काम करती हैं वह मन को कँपा देने वाली हैं, घृणात्मक हैं। जब कि ये मिलें नहीं थीं तो ये औरतें भूखों नहीं मरती थीं। अगर हमारे देश में मशीनरी के लिये प्यास बढ़ती गई तो भारत एक दुखी देश हो जायगा। लोग इन बातों को पाखण्डपूर्ण बातें समझ सकते हैं लेकिन मैं इस बात के कहने के लिये मजबूर हूं कि हमारे लिये यह ज्यादा अच्छा होता अगर हम मैनचेस्टर का मामूली कपड़ा ख़रीदकर पहनते बनिस्बत इसके कि हिन्दुस्तान में मिलों की संख्या बढाई जाती। मैनचेस्टर का कपड़ा इस्तेमाल करके तो हम सिर्फ़ अपना धन ही बर्बाद करेंगे लेकिन हिन्दुस्तान में एक दूसरा मैनचेस्टर पैदा करके तो हम अपने रुपये को अपने ख़ून की क़ीमत पर रखेंगे क्योंकि इससे हमारा सदाचार और धार्मिक जीवन बिलकुल नष्ट हो जायगा। इन बातों की गवाही और पुष्टि के लिये हम इन मिल मजदूरों को ही देख सकते हैं।

"और जिन लोगों ने इन फ़ैक्टरियों से बहुत सा धन इकट्ठा किया है वह दूसरे अमीरों से किसी भी हालत में अच्छे नहीं हैं.....हमें इस बात को भी मानना ही पड़ेगा कि धनी लोग ही अंग्रेज़ों की सहायता करते हैं—उनका पक्ष लेते हैं क्योंकि उनका हित अंग्रेज़ों के भारत में रहने में ही है। भूखा और ग़रीब हिन्दुस्तान आज़ाद हो सकता है लेकिन दुराचार द्वारा अमीर बनाया गया हिन्दुस्तान कभी भी अपनी स्वतन्त्रता हासिल नहीं कर सकता.....यह मशीन ही है कि जिसने आज भारत को दरिद्र बना दिया है.....मुझे मशीनों के पक्ष में एक भी अच्छी बात दिखाई नहीं देती।"

यह एक अभिशाप है

बहुत दिनों बाद उन्होंने यूरोप में एक जन समूह के सामने कहा:

"मुझे डर है कि उद्योगवाद मानव जाति के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अभिशाप होने जा रहा है। उद्योगवाद दूसरों से अपना स्वार्थ पूरा करने की ताक़त पर सोलह आने निर्भर करता है, खासकर जब कि विदेश के बाज़ार उसके सामने खुले पड़े हों और कोई प्रतियोगी न हो। इंग्लैण्ड में बढ़ती हुई बेकारी का कारण सिर्फ़ यह है कि उसकी ये सब सुविधाएँ अब दिन पर दिन कम होती जा रही हैं। भारतीय बहिष्कार ने तो पिस्सू के काटने का काम किया। अगर यह हाल इङ्गलैण्ड जैसे मुल्क का है तो भारत जैसा विशाल देश उद्योगवाद से फ़ायदा उठाने की आशा कैसे कर सकता है? सचमुच, जहां भारत ने और देशों का शोषण शुरू किया—जैसा कि उसे उद्योगवादी बनने पर करना पड़ेगा—वह और राष्ट्रों के लिये कष्टदायक हो जायगा और दुनिया के लिये तो विनाश का कारण बन जायगा। भला मैं हिन्दुस्तान को कारोबारी बनाकर उसे दूसरे राष्ट्रों का शोषण करने के लिये छोड़ देने की बात कैसे सोच सकता हूं। क्या आप इस दुखद परिस्थिति को नहीं देख सकते कि इङ्गलैण्ड अपने तीस ३० लाख मज़दूरों को काम नहीं दे सकता जब कि हम अपने यहां चर्खा चलवाकर ३० करोड़ आदमियों को काम दे सकते हैं। उद्योगवाद का भविष्य अन्धकारपूर्ण है। इङ्गलैण्ड के लिये अमरीका, जापान, फ्रांस और जर्मनी जैसे प्रतियोगी मौजूद हैं। उसके प्रतियोगियों में भारत के भी चन्द मिलवाले हैं। इसी प्रकार दक्षिण अफ़रीका में भी जागृति होगी, जिसके पास साधनों की कमी नहीं फिर चाहे वह प्राकृतिक हों, खनिज हों या मानवीय हों। यूरोप के लोग अफ़रीका की ज़बर्दस्त जातियों के आगे बौने नज़र आते हैं। उन्हें किसी भी हालत में भद्र जंगली कहा जायगा। वे सचमुच शरीफ़ हैं—जंगली नहीं और कुछ ही दिनों में पाश्चात्य राष्ट्रों को अपने माल को अफ़रीका में बेचना मुशकिल हो जायगा। अगर उद्योगवाद का भविष्य पश्चिमी देशों के लिये अन्धकारमय है तो क्या वह भारत के लिये और भी अधिक अन्धकारमय न होगा?

"सचमुच पश्चिम में उद्योगवाद और शोषण इस हद तक बढ़ चुका है कि अजीर्ण होने की नौबत आ गई है। असल बात यह है कि यह औद्योगिक सभ्यता अनिष्टकारी होने के कारण एक प्रकार का रोग है। हमें इसके मीठे और उत्साहजनक भुलावे में न आना चाहिये। मेरी टेलीग्राफ़ अथवा स्टीमशिप से कोई लड़ाई थोड़े ही है। अगर वे चाहें तो बिला उद्योगवाद और उसकी सहायक चीज़ों के भी ज़िन्दा रह सकती हैं। वे स्वयं लक्ष्य नहीं हैं बल्कि किसी उद्देश्य की पूर्ति की साधन हैं। हम स्टीमशिप और टेलीग्राफ़ के वास्ते शोषण बरदाश्त नहीं कर सकते। वे जाति की स्थायी सुख-शान्ति के लिये किसी भी हालत में बहुत ज़रूरी नहीं हैं। चूंकि अब हम भाप और बिजली का इस्तेमाल जान गए हैं, हम उसे (उद्योगवाद से छुटकारा पाकर) ज़रूरत महसूस होने पर फिर इस्तेमाल में ला सकते हैं। इसलिये हमारा लक्ष उद्योगवाद को जड़ से किसी भी हालत में मिटा देना ही है। इस समय का दुख अब सहा नहीं जाता। दरिद्रता को जड़-मूल से मिटाना है और इसके लिये उद्योगवाद दवा नहीं है। बैलगाड़ी के इस्तेमाल में कोई बुराई नहीं है। पाप असल में हमारे स्वार्थ और पड़ोसियों की ओर से उदासीन रहने में है। अगर हमारे अन्दर अपने पड़ोसियों के लिये प्रेम नहीं है तो किसी भी तरह के परिवर्तन से कुछ भी लाभ न होगा।"

जनता का अधिकार

एक प्रस्ताव यह भी सामने रक्खा जा सकता है कि व्यक्तिगत कन्ट्रोल में होने के बजाय उत्पादन को पूरी तरह से जनता के हाथों में दे दिया जावे। इससे न सिर्फ़ बहुत सी बेकार होने वाली मिहनत बच जायगी बल्कि इससे लोगों के रहन-सहन का स्टैण्डर्ड इतना बढ़ जायगा कि जितना उत्पादन की वैज्ञानिक उन्नति को इन्कार करने से कभी नहीं हो सकता। इस बात का उत्तर गान्धी जी यह देते हैं कि उद्योगवाद द्वारा भारत की इतनी बड़ी जन संख्या को काम नहीं दिया जा सकता। अगर सबको काम मिल भी जाय तो ऐसी उत्पत्ति में धन विभिन्न दर्जे के लोगों में बराबर बराबर नहीं पहुंचेगा और उनमें काफ़ी भेद हो जायगा। इससे बचने का यही एक रास्ता है कि हम बचा हुआ माल बाहर भेज दिया करें। लेकिन जिस काम को इङ्गलैण्ड करके देख चुका है—जिस काम से अन्य राष्ट्रों को घोर दुख पहुँचा है, भारत भी उसी काम को क्यों करे? उसी रास्ते पर क्यों चले? यह भी कहा जा सकता है कि बाहर भेजने के बजाय हम अपने ही देश की खपत को बढ़ा सकते हैं ताकि सभी स्वस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी पूरी तरह काम में लगे रहें। इस मामले में भी गांधी जी का यही जवाब होगा कि मशीन द्वारा उत्पत्ति का तरीक़ा स्वयं ही ऐसा है कि जिससे उत्पादन कुछ लोगों के ही हाथों में ही रह जाता है। इस तरह उत्पादन का भार जनता के हाथ सौंप कर उद्योगवाद के थोड़े बहुत दोष कम तो ज़रूर हो जाते हैं फिर भी इससे साधारण मनुष्य के हाथ में शक्ति पूरी तौर से नहीं आजाती बल्कि चन्द लोगों ही के हाथों में रह जाती है और जनता की अधीनता और भी बढ़ जाती है। इसीलिये गान्धी जी ने लिखा है कि—

"पण्डित नेहरू इसलिये उद्योगवाद के पक्ष में हैं कि वह सोचते हैं कि अगर यह समाज के हाथों में हो जायगा तो पूंजीवाद की बुराइयों से परे हो जायगा, लेकिन मेरा अपना ख़्याल है कि यह दोष उद्योगवाद की जड़ में है और किसी भी मात्रा में इसे समाज के हाथों में देने से इसके अन्दर की बुराइयां दूर नहीं हो सकतीं।"

गान्धी जी मशीनों के इसलिये ख़िलाफ़ हैं कि उनकी यह धारणा है कि इसीके कारण बड़े पैमाने पर शोषण सम्भव हुआ। इसलिये वह इसका नियमित इस्तेमाल पसन्द करते हैं। इस विषय को साफ़ तरीक़े से समझने के लिये गान्धी जी के लेखों से कुछ टुकड़े दिये जाते हैं—

"जीवन में मशीन का भी एक खास दर्जा है, उसका ख़ास महत्व है, लेकिन उसे इतना बढ़ावा न देना चाहिये कि वह मनुष्य को उसके काम पर से हटा दे—उसकी रोज़ी छीन ले। अगर इस वर्तमान हल में कुछ सुधार करके इसे ज़्यादा कारामद बना दिया जाय तो बहुत अच्छी बात है लेकिन अगर मनुष्य अपनी अक़्ल से कोई ऐसी मशीन का आविष्कार करे कि वह किसी तरह अकेले ही सारे भारत के खेतों को जोत सके और सारे ग़ल्ले को अपने क़ब्ज़े में कर ले तो करोड़ों आदमी बेकार हो जाएंगे, उनके पास कोई काम नहीं रह जायगा, वे भूखों मरेंगे, वे काहिल और मूर्ख हो जाएँगे, जैसा कि कुछ हो भी चुके हैं। इस हालत में औरों के भी गिर जाने की सम्भावना है। घरेलू उद्योग-धन्धों के कल पुर्ज़ों में हर प्रकार का सुधार मैं पसन्द करता हूँ लेकिन मैं यह जानता हूँ कि हाथ के काम को हटाकर बिजली से चलने वाले करघे इस्तेमाल करना उस समय तक पाप होगा जब तक कि कोई इस प्रकार बेकार हुये सैकड़ों मजदूरों को धन्धा देने की ज़िम्मेवारी न ले ले।"

प्रश्नः—क्या आप मशीनों के किसी प्रकार के भी इस्तेमाल के ख़िलाफ़ हैं?

उत्तर—मेरा ज़ोर के साथ जवाब है 'नहीं', लेकिन मैं मशीनों के बिला सोचे समझे विस्तार के ख़िलाफ़ हूँ। मैं मशीनरी की दिखावटी जीत से चकाचौंध नहीं होता। लेकिन इस प्रकार की मशीनों का जिससे कि हाथ के काम करने वाले को आसानी होती है, जिससे हज़ारों लाखों श्रमियों का कुछ बोझ हल्का होता है, मैं स्वागत करता हूं।

"उसी मशीन का इस्तेमाल जायज़ है जो कि सब के हित के अनुकूल है।"

एक बार एक अनजान आदमी ने गान्धी जी से पूछा मुझे ऐसा लगता है कि आप इस मशीन काल के ख़िलाफ़ हैं। इस बात का गान्धी जी ने तुरन्त जवाब दिया—

"इस तरह की बात कहना हमारे विचारों का मज़ाक़ उड़ाना है। यूं तो मैं मशीनरी के ख़िलाफ नहीं हूं लेकिन जब हमारे ऊपर मशीन अपना स्वामित्व जमाने लगती है तो मैं इसके ख़िलाफ़ ज़रूर हो जाता हूं।"

प्रश्न—क्या आप भारत को एक उद्योगी देश नहीं बनाएंगे?

उत्तर—मैं ऐसा करूँगा और अवश्य करूँगा लेकिन इसके लिये मेरी अपनी शर्तें हैं। हमें गांव-संघ क़ायम करने होंगे। भारत में गाँव के लोग हर प्रकार की चीज़ें पैदा करके शहर और क़स्बों की ज़रूरतों को पूरा करते थे, जब से शहरों में मामूली और सस्ता माल आने लगा और देहातों के सभी उद्योग-धन्धे इनके कारण मन्दे पड़ गए तभी से भारत ग़रीब हो गया।

प्रश्न—तो फिर आप पुनः प्राकृतिक मितव्ययिता की ओर जाएंगे?

उत्तर—नहीं, तो फिर मुझे शहर की ओर झुकना पड़ेगा। मैं इस योग्य हूं कि बड़ा से बड़ा व्यावसायिक साहस कर सकूँ, लेकिन मैं ने जान बूझकर अपनी इस इच्छा को मारा, बलिदान के नाते नहीं बल्कि मेरे दिल ने इसके ख़िलाफ़ मुझे मजबूर किया। सिर्फ़ इसलिये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि हमारा भी हाथ अपने देश की बरबादी में न हो जो कि ख़ुद दिन पर दिन बरबादी की सीढ़ियों पर चढ़ रहा है। लेकिन मैं देहातों को अपने निराले ढङ्ग से कारोबारी बनाऊँगा।

घरों में सामूहिक उत्पादन

गान्धी जी सामूहिक उत्पादन पसन्द करेंगे बशर्ते कि उसमें ज़ोर ज़बरदस्ती न हो। चर्खे का उद्देश्य ही यही है। सामूहिक उत्पादन ज़रूर हो लेकिन सारा काम घर पर ही हो। अगर आप किसी के व्यक्तिगत उत्पादन को लाखों करोड़ों से गुणा कर दें तो क्या वह बड़ी मात्रा में सामूहिक उत्पादन नहीं कहलाएगा ?.....मेरी स्पष्ट रूप से यही धारणा है कि इस विश्व व्यापक संकट का कारण सिर्फ़ सामूहिक उत्पादन के लिये सनक ही है। थोड़ी देर के लिये मान लिया जाए कि मशीनरी द्वारा मनुष्य मात्र की सभी ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं फिर भी इस काम से उत्पादन का केन्द्रीकरण किसी एक भाग में हो जाएगा जिससे वितरण की समस्या ज़रा टेढ़ी हो जाएगी। लेकिन इसके ख़िलाफ़ अगर उत्पादन और वितरण एक ही जगह होंगे (अर्थात जहां जिस चीज़ की मांग हो उसी जगह उसका उत्पादन हो) तो सब कुछ आप ही आप ठीक हो जाएगा और झूठ, सट्टे और दग़ाबाज़ी के लिये कोई रास्ता ही न रह जाएगा। जब, जहां जिस चीज़ की मांग हो उसी जगह उस चीज़ का उत्पादन होना शुरू हो जाएगा तो अन्धा धुन्ध उत्पादन बन्द हो जाएगा और हमारी जितनी भी आर्थिक समस्याएँ हैं वह ख़त्म हो जाएँगी। इससे न चन्द लोगों के ही जेब ज़रूरत से ज्यादा भरे रहेंगे और न इतना धन देश में होते हुए भी लोग भूखे रहेंगे। आप देखिये और समझिये कि ये राष्ट्र (यूरोप और अमरीका) दुनिया के कमजोर राष्ट्रों का शोषण कर रहे हैं। एक बार जहां इन कमज़ोर राष्ट्रों में इस बात की चेतना पैदा हुई फिर उनका शोषण मुश्किल हो जाएगा। वे जितना पैदा करेंगे उतने में ही सन्तुष्ट रहेंगे। तब जहां तक कि अति आवश्यक पदार्थों का सम्बन्ध है उनका सामूहिक उत्पादन बन्द हो जाएगा।

प्रश्न—आप इसलिये मशीनरी के ख़िलाफ़ हैं चूंकि उससे उत्पादन और वितरण का केन्द्रीकरण किसी एक भाग में और कुछ ही लोगों के हाथों में हो जाता है ?

उत्तर—बिल्कुल ठीक आपने समझा। मुझे विशेषाधिकार या एकाधिकार से बड़ी नफ़रत है। जिस चीज़ में जनता के लोगों का हिस्सा न लग सके वह चीज़ मेरे लिये त्याज्य है। बस मुझे इतना ही कहना है।

आर्थिक समस्या और उसका विकेन्द्रीकरण द्वारा समाधान

गान्धी जी ने अपने 'हिन्द स्वराज्य' या इन्डियन होमरूल नामक पुस्तक में लिखा है कि जन साधारण अपनी पुरानी आर्थिक दशा को पुनः पहुंच सकते हैं अगर उत्पादन गांवों में गांवों की ही मात्रा में हो। लेकिन १९२१ के असहयोग आन्दोलन के बाद ही उनको इस ख़्याल पर बड़े पैमाने में काम करने का मौक़ा मिला। उनके लेखों में ऐसे टुकड़े मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में मिलों के चलाने के वे कितने ज़्यादा ख़िलाफ़ थे। वे देहातों की दस्तकारी को प्रोत्साहन देने की भरसक कोशिश करते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि इससे हर आदमी को धन और काम मिल जाता है और इस प्रकार लोग स्वेच्छा से काम करते हैं और धन का वितरण अधिक न्यायसंगत होता है।

गान्धी जी ने लिखा है—"इस समस्या का हल मिलों की तादाद बढ़ाने में नहीं है। साठ करोड़ रुपया बाहरी कपड़ों पर दिया जाता है। इस रुपये के बाहर जाने को मिलों द्वारा रोकने में काफ़ी वक्त लगेगा और इस रुपये का हर घर में न्यायपूर्वक वितरण भी नहीं हो सकेगा। वे केवल श्रम और धन का केन्द्रीकरण कर सकते हैं। इससे यह बिगड़ी हुई दशा को और भी बिगाड़ देंगे।

"हमारे यहां की मिलें हमारी कपड़े की आज की मांग को पूरा नहीं कर सकतीं, और अगर वे कर भी सकें तो वे भाव कम नहीं करेंगी जब तक कि इसके लिये मजबूर न कर दी जाएँ। यह एक खुली बात है कि वे सिर्फ रुपया पैदा करने वाली हैं। वे कभी भी राष्ट्र की ज़रूरतों के लिहाज़ से नियमित काम नहीं करेंगी। चर्खा इसीलिये बनाया गया है कि मिलों में जाने वाले लाखों रुपये ग़रीब देहातियों के हाथों में चले जांय। हर एक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेतीहर मुल्क में कुछ ऐसे भी सहायक कारोबार होने चाहियें जिससे कि किसान अपने फालतू समय का उचित उपयोग कर सकें। इस प्रकार के कारोबार के लिये चर्खा ही हिन्दुस्तान में हमेशा चलता रहा है।"

"हम अपनी राष्ट्रीय शक्ति को सिर्फ उत्पादन के सब से अच्छे तरीक़े को अपना करके संगठित नहीं करेंगे बल्कि उत्पादन और वितरण दोनों के सबसे अच्छे तरीक़ों का सन्तुलन करके उसीको अख़्तियार करेंगे।"

"इस समय हिन्दुस्तान में यह ज़रूरत नहीं है कि धन कुछ ही हाथों में रह जाए बल्कि ज़रूरत इस बात की है कि हमारे ७½ लाख गावों में उसका सुन्दर वितरण हो जाए जो कि इस १,००० मील लम्बे और पन्द्रह सौ मील चौड़े महाद्वीप के प्रमुख अङ्ग हैं।"

"स्वदेशी के असली माने हैं औद्योगिक-पुनरुज्जीवन जिसका कि अर्थ है कंगाली और दरिद्रता का अन्त और फिर जब हम ऐसा महसूस करेंगे कि हम कपड़े इत्यादि के मामले में स्वयं सम्पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर हो चुके हैं और हमें राज्य की सहायता की कोई ज़रूरत नहीं है—हम हिन्दुस्तान के ग़रीबी जैसे मसले को हल कर सकेंगे जो कि इस समय असम्भव सा प्रतीत होता है, तब हमें अपने ऊपर पूरा पूरा भरोसा हो जायगा कि हम अपने देश का काम संभाल लेंगे।"

"आज सर विलयम विन्सेण्ट (भारत सरकार के उस समय के होम मंत्री) हमें अपनी उँगलियों पर नचा रहे हैं, लेकिन यह सब उस समय बदल जायगा। उस समय सर विलयम विन्सेण्ट का व्यवहार बिलकुल बदल जायगा। और तब उन्हें मालूम हो जायगा कि हम अपने जीवन की सभी ज़रूरतों के लिये अंग्रेजों या किसी और विदेशी शक्ति के ऊपर निर्भर नहीं करते।"

"मुझे अब पूरा यक़ीन हो गया है—जितना शायद पहले कभी नहीं था—कि हिन्दुस्तान की ग़रीबी को दूर करने के लिये चर्खा कातने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। किसी एक सहायक कारबार के न होने से हिन्दुस्तान के लाखों किसान भूखों रह रहे हैं। अगर वह अपनी थोड़ी कमाई को बढ़ाने के लिये चर्खा कातना शुरू कर दें, तो वे अकाल और ग़रीबी के पंजों से अपने को सफलतापूर्वक छुड़ा सकते हैं। इतनी बड़ी समस्या को मिलों द्वारा हल नहीं किया जा सकता। सिवाय चर्खे के कातने के इसका कोई और हल नहीं हो सकता। जब हिन्दुस्तान को कातना छोड़ने पर मजबूर किया तो उसे इसके बदले कोई दूसरा धन्धा नहीं मिला। अब आप ऐसे आदमी की हालत सोचिये जिसे कि यकायक अपनी आमदनी के चौथाई भाग से हाथ धो देना पड़ा हो। हिन्दुस्तान के पचासी फी सदी लोगों के रोज़ाना की ज़िन्दगी का एक चौथाई समय बेकार में ख़राब जाता है। इस जबरन सर पर मढ़ी बेकारी से वह शीघ्रता से दिन प्रति दिन ग़रीब होता जा रहा है। असली समस्या यह है कि राष्ट्र के इन बेकार होने वाले लाखों घण्टों का सही उपयोग कैसे किया जाय। जवाब यही कहा जा सकता है कि चर्खे का फिर से जारी होना ही इस जटिल समस्या का हल है। इन बातों का मशीनों से सम्बन्ध रखने वाली मेरी विशेष धारणाओं से या विदेशी माल के सम्पूर्ण बहिष्कार से कुछ भी तअल्लुक़ नहीं है। भारत इस जवाब को एक साल के ऊपर ही दे सकता है। अब इस समस्या के पीछे पड़ना पागलपन से तनिक ख़ाली नहीं। मैं इस बात को गुनगुनाती हुई लहरों के सामने लिख रहा हूँ। स्वयं जगन्नाथ की छाया में झुण्ड के झुण्ड केवल ठठरीदार, मांसरहित स्त्री, पुरुष और बच्चों को देखकर मुझे दुख होता है और यह बात मेरे दिल में बार बार आती है। अगर मेरा वश चले तो मैं वहां सभी कार्यों को बन्द कर दूँ। और हर जगह चर्खा का प्रचार करूँ, और इन्हीं बच्चों को भावी चर्खा कातने के मास्टर बनाऊँ, सभी बढ़इयों को चर्खा बनाने के लिए उभाड़ूँ, इन्हीं बच्चों (भावी मास्टरों) से घर घर जाकर जीवन प्रदान करने वाली मशीनों का प्रचार करने को कहूँ। मैं हिन्दुस्तान में ऐसे केन्द्र स्थापित करूंगा जो इस कते सूत को लेंगे और बुननेवालों में बाटेंगे और अगर मुझे सुशिक्षित और मेहनती काम करने वाले मिल जाएं तो मैं अपने देश की दरिद्रता एक साल में नष्ट करने का बीड़ा उठा लूं। लेकिन इस बात के लिए दृष्टिकोण और रुचि में अन्तर होना अनिवार्य है। मैं दूसरे सभी सुधारों को अफ़ीम जैसी हानिकारक वस्तु के समान मानता हूं जो कि हमारी आत्मा को ही नष्ट कर देते हैं, हमें पुश्त दर पुश्त, इस दिन बदिन जटिल होती जाने वाली समस्या के हल के लिए इन्तज़ार करने से साफ़ इन्कार कर देना चाहिये। प्रकृति के नियम निहायत कड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं, और वह न्याय में तनिक भी रहमदिली नहीं दिखाती। अगर हम जल्द ही नहीं जागते तो हमें अवश्य ही संसार से मिट जाना होगा। मैं अविश्वासियों से कहता हूं कि वह उड़ीसा के गांव में घुसकर इस बात की जांच करें, और समझें कि हमारी स्थिति क्या है और तभी वह मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि एक औंस भी विदेशी कपड़ा पहनना भारत और स्वयं मानवता के ख़िलाफ़ जुर्म करना है।

"शायद ही कुछ कार्यकर्ताओं ने इस बात का अनुभव किया हो कि चर्खा कातने से जो लोगों का स्वेच्छाधीन सहयोग प्राप्त होता है उसके मुक़ाबले का सहयोग दुनिया ने कभी भी देखा न होगा। इसका मतलब है, करोड़ों ऐसे लोगों में सहयोग जो कि बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं और जो कि अपने नित के जीवन के लिये रोटी कमाने में लगे हुए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि खेती में अधिक सहयोग की ज़रूरत है लेकिन चर्खा कातने में तो उससे भी अधिक सहयोग और ईमानदारी की जरूरत है। गेहूं मनुष्य की बनिस्बत कुदरत की ईमानदारी से अधिक पैदा होता है। लेकिन अपने घरों में सूत कातने के काम में केवल आदमी की ईमानदारी ही आवश्यक है। चर्खे का काम कभी भी सफल नहीं हो सकता जब तक कि करोड़ों मनुष्य स्वेच्छा से इसमें अपना सहयोग न दें। हमें इस काम को इस हालत तक ले जाना है कि जिसमें सूत कातने वालों को अपने सूत के बराबर भाग पर उतना ही विश्वास हो जाय जितना कि चांदी और रुई की मांग पर चांदी और रुई के कारबारियों को होता है। क्या मैं कोई अजनबी बात करता हूँ जब कि मैं कहता हूं कि चर्खा कातते कातते मैं भारत की दरिद्रता जादू की तरह एकदम उड़ा सकता हूँ! मेरे एक अंग्रेज दोस्त ने मेरे पास एक अखबार की कतरन भेजी थी जिसमें दिखाया गया था कि चीन में मशीन की ख़ूब तरक्क़ी हो रही है। स्पष्ट है कि वह सोच रहे थे कि मैं चरखे को मैशिनरी के रूप में फैला रहा हूँ। मैं इस प्रकार का कोई भी काम नहीं कर रहा। मैं बहुत बड़ी मात्रा में में मशीनों के प्रचार के पक्ष में हो जाऊँगा अगर इससे भारत की दरिद्रता और बेकारी दूर हो सके। मैंने वर्तमान स्थिति में चर्खे को ही ग़रीबी दूर करने वाला तथा धन्धे और धन के अकाल से मुक्ति देने वाला पाया है। चर्खा स्वयं एक छोटी-सी मशीन है और मैंने उसमें हर प्रकार के सुधार, जो भारत की वर्तमान स्थिति के अनुकूल थे, किये हैं। इस समय जो समस्या भारत तथा मानवता के प्रेमी के सामने दरपेश है वह है कि भारत की इस दरिद्रता को क्रियात्मक तरीकों से कैसे दूर किया जा सकता है। खेती-बाड़ी तथा सिंचाई से होने वाले किसी भी प्रकार के सुधार से, जो कि मानव जाति के दिमाग़ से निकल सकता है, भारत की इतनी बड़ी फैली हुई आबादी के मसले को हल नहीं किया जा सकता और न उनको काम दिया जा सकता है जो कि बराबर बेकारी की हालत में पड़े रहते हैं। आप एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना कीजिये जो कि औसत तरीके से दिन में सिर्फ़ पांच ही घण्टे मिहनत करता हो सो भी मजबूरन, तो आपके सामने हिन्दुस्तान का एक सच्चा नक़्शा खिंच जाएगा।

"अगर पाठक इस तस्वीर को अपनी आंखों के सामने लावें तो उनके दिमाग़ से शहर की चहल-पहल और फ़ैक्ट्री की जबर्दस्त थकान का नक़्शा बिलकुल हट जाएगा। यह सब भारत की स्थिति के सामने कुछ नहीं है। अगर भारत का ढांचा देखना है तो भारत के ऐसे अस्सी फी सदी लोगों की कल्पना करनी होगी जो कि स्वयं अपने खेतों में काम करते हैं और जिनके पास वास्तव में, कम से कम साल के चार महीनों में कुछ काम नहीं रहता जो कि उस समय भूखों मरने की नौबत पर आ जाते हैं। यह एक साधारण स्थिति की बात हो रही है। बार बार अकाल पड़ने से लोगों की बेकारी और बढ़ जाती है। तो इन लोगों के लिए कौन-सा ऐसा काम है कि जिससे ये लोग अपनी अति अल्प आमदनी को बढ़ा सकते हैं? क्या अब भी कोई सन्देह है कि यह सिवाय चर्खे के और कोई दूसरा काम हो सकता है? और मैं इस बात को दावे के साथ कहता हूं कि अगर अच्छे कार्यकर्त्ता मिल जाएं तो चरखे का देशव्यापी प्रचार किया जा सकता है। इसने एक तरह से देश भर के लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। सिर्फ कुछ दक्ष आदमियों को इसमें लगने की जरूरत है। लोग चरखे को अपनाने को तैयार हैं क्योंकि चरखा उनके लिये नई चीज़ नहीं है। वे अभी हाल तक चरखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाने के आदी रहे हैं। उसे फिर से चलाने के लिये होशियारी ईमानदारी और ऐसे सहयोग की जरूरत है जैसा दुनिया ने कभी भी देखा है। और अगर भारत को इस तरह का सहयोग मिल सके तो वह सिर्फ़ इस एक काम से अपने को स्वराज्य के योग्य बना लेगा।

"मेरा यह दावा है कि जैसे ही हम विदेशी कपड़ों का बहिष्कार पूरा कर लेंगे (हाथकती हाथबुनी खादी तैयार करके) हम राष्ट्र के पुनरुज्जीवन का एक ऐसा जरिया बना लेंगे जो जनता के हृदय में बैठी हुई सादगी के अनुकूल होगा। तब हम साम्राज्यवाद के दायरे में न खींचे जायँगे कि जिसका दुनिया की कमजोर क़ौमों के शोषण द्वारा निर्माण होता है और जो हवाई और जहाजी शक्ति द्वारा एक शर्मनाक भौतिक सभ्यता की रक्षा करता है और जिसने शान्तिमय जीवन को लगभग असम्भव बना दिया है।"

मशीनों से उत्पादन कम हो

गान्धी जी जब चरखे पर ज़ोर देते हैं तो यह जानकर देते हैं कि उससे भारत में आधुनिक मशीनें पूरी तरह ख़त्म नहीं हो जायँगी और वे एक व्यावहारिक आदमी की हैसियत से इस बात को स्वीकार करते हुये कहते हैं—

"मुझसे अकसर पूछा जाता है कि क्या मैं मिलों के रोज़गार को नष्ट करना चाहता हूँ? अगर मैं करना चाहता तो मैं एक्साइज़ कर को मिटाने का आन्दोलन न करता। मैं चाहता हूं कि मिल का व्यवसाय फले-फूले किन्तु वह देश की क़ीमत पर नहीं। इसके विपरीत यदि देश चाहे कि मिल का व्यवसाय ख़त्म कर दिया जाय तो मैं बिला उज्र ख़त्म हो जाने दूँगा।"

उन्होंने एक दूसरी जगह लिखा—"खद्दर तमाम मशीनों को नष्ट नहीं करना चाहता किन्तु वह उनको बरसाती पौध को नियमित करना चाहता है। वह मशीनों को ग़रीब से ग़रीब आदमियों की सेवा के लिये उन्हीं के झोंपड़ों में इस्तेमाल करना चाहता है। चरखा खुद एक उम्दा मशीन है।"

"मैं खुद बड़ी बड़ी मशीनों द्वारा पूँजी के एक जगह इकट्ठा होने के ख़िलाफ़ हूं किन्तु इस वक्त मेरे सामने असल शोषण के उस बड़े ज़रिये को नष्ट करना है जो हिन्दुस्तान को बरबाद कर रहा है। अगर हिन्दुस्तान खादी को अपना लेता है तो मुझे उम्मीद है कि वह आधुनिक मशीनों को सिर्फ़ उसी हद तक स्वीकार करेगा जो ज़िन्दगी को सहूलियत देने के लिये ज़रूरी होंगी और जो मिहनत को आसान करेंगी।"

गान्धी जी ने असहयोग आन्दोलन की व्याख्या करते हुये एक जगह लिखा था—

"असहयोग आन्दोलन यदि सम्भव हो तो वह एक ऐसी चेष्टा है जिससे मशीनों के पीछे काम करने वाले आदमियों में मानव भावना पैदा हो सके। थोड़े से आदमियों के हाथों में बहुत से आदमियों का शोषण करने के लिये मशीनों के संगठन द्वारा पूंजी और शक्ति दे देने को मैं बिलकुल ग़लत समझता हूं। आधुनिक युग की मशीनों का अधिकांशतः सङ्गठन उसी तरह का है। चरखे का आन्दोलन इस बात की एक सङ्गठित कोशिश है कि मशीनों को इस एकाधिकार और शोषण के क्षेत्र से हटाकर मुनासिब जगह रखा जाय। मेरी योजना के अन्दर जिन लोगों के हाथों में मशीनों का चार्ज है वह केवल अपने या अपने राष्ट्र के ही लाभ की बात न सोचेंगे बल्कि तमाम इनसानी क़ौम के लाभ की बात सोचेंगे। इस तरह लङ्काशायर हिन्दुस्तान के शोषण के लिये मशीनों का इस्तेमाल न कर सकेगा बल्कि ऐसा तरीक़ा निकालेगा जिससे हिन्दुस्तान अपने गाँवों की रुई से गाँवों के अन्दर ही कपड़ा बना सके। मेरी योजना के मातहत अमरीका वाले भी अपने अन्वेषणों द्वारा दुनिया की दूसरी क़ौमों को चूसकर खुद मोटे न हो सकेंगे।

"एक बार यदि व्यक्ति को अपनी आज़ादी प्राप्त हो जाय यानी अपने आर्थिक भाग्य को गढ़ने की उसे स्वतन्त्रता मिल जाय तो वह दूसरों के साथ मिलकर जीवन के स्तर को ऊँचा करने की बात सोच सकता है। यह वह उसी तरह करेगा जिस तरह वह अपने पड़ोसियों के साथ मिलकर बुनियादी आर्थिक या राजनैतिक इकाइयाँ बनाता है। इस तरह अपनी स्वतन्त्रता क़ायम रखकर वह एक दूसरे के ऊपर निर्भर होकर सबके काम आने वाली मशीनरी को इस्तेमाल कर सकता है। इस तरह की मशीनरी लाभ के लिये नहीं बल्कि सबके फ़ायदे के लिये होगी।"

समस्त नैतिक चलन और जायदाद के मालिकाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार बिल्कुल नई बुनियादों पर क़ायम होंगे और गान्धी जी का गाँवों में केन्द्रित समाज और सभ्यता भारत की प्राचीन सभ्यता से सर्वथा भिन्न होगी। गान्धी जी इस बात को पूरी तरह समझते हैं और इसीलिये उन्होंने एक बार लिखा था—

"इतिहास का मझला ज़माना बुरा रहा होगा लेकिन मैं इसलिये किसी चीज़ को बुरा कहने को तय्यार नहीं हूं चूंकि वह मँझले ज़माने की है। चरखा बिलाशक मँझले ज़माने का है लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह क़ायम रहेगा। हालांकि चीज़ वही है लेकिन आज वह एकता और आज़ादी का प्रतीक बन गया है जब कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के वक्त वह ग़ुलामी का प्रतीक था। आधुनिक भारत ने उसके अन्दर वे गहरे और सच्चे माने पाये हैं जिसकी कल्पना तक हमारे पुरखों ने न की थी।" ["हरिजन" १६—१०—३७, पृष्ठ ३००]

माना कि विकेन्द्रीकरण से किसी भी समाज के व्यक्तिगत सदस्यों को किसी दरजे तक काम और दौलत मिल जायगी फिर भी एक सवाल क़ायम रहता है—क्या ऐसा समाज जो भारी उद्योग-धन्धों को सीमित करता है और केन्द्रीय-नियंत्रण को पसन्द नहीं करता, अपने आपको आन्तरिक उथल-पुथल और बाहरी हमलों से बचा सकेगा? दूसरे शब्दों में—क्या अहिंसा के ज़रिये सामाजिक रक्षा हो सकना सम्भव है? सैनिक रक्षा का सवाल वास्तव में महत्वपूर्ण है। यदि गान्धी जी की उत्पादन व्यवस्था इस मामले में मदद-गार साबित नहीं हुई तो उसका भविष्य अन्धकारमय होगा। अब हम ज़रा इस बात पर ग़ौर करें कि कोई राष्ट्र आजकल हथियारों से अपनी किस तरह रक्षा करता है।

आधुनिक विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि कोई एक राष्ट्र अकेले अपने बूते पर, फिर चाहे वह राष्ट्र कितना ही बड़ा क्यों न हो, अपनी सीमाओं की रक्षा नहीं कर सकता। राष्ट्रों को मिलकर हमलावर राष्ट्रों के ख़िलाफ़ अपना सङ्गठन करना पड़ता है। फिर भी इनमें से कोई भी समूह विज्ञान की नई ईजाद से मुक़ाबले में पिछड़ सकता है।

उनका युद्ध सम्बन्धी उद्योग निरर्थक हो सकता है और यह भी हो सकता है कि युद्ध के लिये आवश्यक कोई नयी धातु उन्हें अपनी सीमाओं में प्राप्त न हो सके। इस तरह राष्ट्रों की रक्षा ऐसी परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिन पर मनुष्य का कोई वश नहीं होता। वे राष्ट्र शक्ति और स्वतन्त्रता के साथ उसी हद तक जीवित रहकर टिक सकते हैं जिस हद तक क़िस्मत और कूट-नीति उनका साथ देती है और जिस हद तक प्रकृति ने उनके यहां कच्चा माल और खनिज द्रव्य के उत्पादन की व्यवस्था की है, या जिस हद तक भौगोलिक सीमायें उन्हें आक्रमण से बचने में मदद देती हैं।

यही सब देखते हुये गान्धी जी की राय है कि यह जनतन्त्र की रक्षा का कोई उचित उपाय नहीं है। जनतन्त्र की उस वक्त तक रक्षा नहीं हो सकती जब तक आत्मरक्षा और आत्मजीवन के साधनों को भी जनतंत्रा-त्मक न बनाया जाय। यानी उस वक्त तक जनतंत्र की पूरी तरह रक्षा नहीं हो सकती जब तक कि दुनिया की छोटी से छोटी क़ौम अपनी रक्षा करने में अपने को समर्थ न समझे। केवल अहिंसात्मक तरीक़े से ही यह सम्भव है। उसी क़ौम को जीने का अधिकार है जो बग़ैर आक्रमणकारी की जान लिये अपनी रक्षा के निमित्त अपना जीवन अर्पण करने की क्षमता रखती है। ऐसी मिसालों से आक्रमणकारी क़ौम और उस क़ौम के व्यक्तियों का दिल बदलता है और इस तरह से एक ऐसी दुनिया का निर्माण सम्भव हो सकता है जो युद्ध से मुक्त हो। यदि गान्धी जी का प्रयोग भारत में सफल हो गया तो वह दुनिया में जनतंत्र की रक्षा कर सकता है। इसके अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

गान्धीवादी योजना

सामाजिक संगठन के ध्येय को सामने रखते हुये गान्धी जी ने लिखा था—

"दिमाग़ी और नैतिक उन्नति के साथ साथ मानव मात्र के कल्याण की भावना इसका उद्देश होना चाहिये। यह उद्देश्य विकेन्द्रीकरण से पूरा हो सकता है। समाज के अहिंसात्मक गठन में योजना का केन्द्रीकरण बेमेल और बेमौक़ा है।" [हरिजन, १८-१-४२, पृष्ठ ५]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम-तन्त्र के सम्बन्ध में कुछ महीनों बाद अपने विचार व्यक्त करते हुये गान्धी जी ने लिखा—

"मेरे विचार में ग्राम-स्वराज एक ऐसा सम्पूर्ण जनतन्त्र है जो अपनी महत्वपूर्ण ज़रूरतों के लिये तो अपने पड़ोसियों से स्वाधीन हो पर जिन बातों में पड़ोसियों पर निर्भर होना ज़रूरी हो उन पर निर्भर करता हो। इस तरह हर गांव का पहला काम गांव के खाने के लिये भोजन सामग्री का और पहनने के कपड़ों के लिये कपास का पर्याप्त उत्पादन करना है। गांव के जानवरों के लिये एक चरागाह और अधेड़ों और बच्चों के दिल बहलाव और खेलने के लिये मैदान का होना भी ज़रूरी है। और यदि इसके बाद उस गांव में ज़मीन बच जाती है तो वहां गांजा, तम्बाकू, अफ़ीम आदि की खेती के बजाय कुछ आमदनी करनेवाली जिंसों की खेती होनी चाहिये।

"गांव में एक थियेटर एक स्कूल और एक सार्वजनिक हाल का इन्तज़ाम होना चाहिये। उसका अपना पानीघर होना चाहिये जहां स्वच्छ पीने के पानी का प्रबन्ध होना चाहिये। यह काम नियन्त्रित कुओं और तालाबों से लिया जा सकता है। फ़ाइनल बुनियादी पाठ्य-क्रम तक शिक्षा ज़रूरी होगी। जहां तक सम्भव होगा हर काम सहयोग समिति के आधार पर किया जायगा। जिस तरह आजकल जात पांत का क्रम और उसीसे छुआछूत का आयोजन है ग्राम-स्वराज में वह सब कुछ न होगा। गांव के रहने वालों के पास अहिंसात्मक सत्याग्रह का अस्त्र होगा। लाजिमी तौर पर गांव की रक्षा का काम क्रमपूर्वक गांव वालों को करना होगा और इसके लिये गांव का एक रजिस्टर होगा जिसमें इस क्रम का ब्योरा दर्ज किया जायगा। गांव की सरकार पांच आदमियों की ग्राम पञ्चायत होगी जिसे गांव के वयस्क स्त्री पुरुष हर साल मिलकर चुनेंगे। मतदाताओं की योग्यता की शर्तें बहुत साधारण होंगी। इस पञ्चायत को तमाम अधिकार और शक्ति होगी। चूंकि आजकल की तरह सजाओं का तरीक़ा न होगा इसलिये यही पञ्चायत गांव भर के लिये साल भर तक क़ानून बनाने वाली धारा सभा, दीवानी अदालत और एक्जीक्यूटिव हुकूमत भी होगी।

"मौजूदा सरकार के मातहत भी यदि कोई गांव चाहे तो ऐसा जनतन्त्र बना सकता है। आजकल की सरकार का गांवों से सिर्फ़ इतना ही ताल्लुक़ होता है कि वहां से वे मालगुज़ारी वसूल करते हैं। मैंने यहां दूसरे गांवों और केन्द्र से इस ग्राम जनतन्त्र का क्या सम्बन्ध होगा इसकी विवेचना नहीं की। मेरा मक़सद यहां सिर्फ़ ग्राम सरकार का ख़ाका खींचना है। यहां व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर क़ायम पूरा जनतंत्र है। व्यक्ति ही अपनी सरकार का गढ़ने वाला है। अहिंसा का क़ानून उसे और उसकी सरकार को चलाता है। वह और उसका गांव दुनिया की ताक़त की अवहेलना कर सकते हैं। हर गांव वाले के लिये एक ही क़ानून होगा कि वह अपनी और अपने गांव की इज़्ज़त की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बलि चढ़ा दे।"

["हरिजन" तारीख २६—७—४२ ; पृष्ठ २३८]

हिन्द स्वराज

"मैं यहां कोई नया विचार नहीं रख रहा। वे सब विचार मेरी १९०८ में लिखी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में मिलेंगे। उस वक्त तक सत्याग्रह का विचार पूरी तरह परिपक्व नहीं हुआ था। चरखा इस प्रेम की योजना का अङ्ग हो गया है। जब मैं अहिंसात्मक स्वराज्य की तस्वीर खींच रहा था तो मैंने देखा कि उच्च विचारों के साथ साथ समाज की गढ़न भी उतनी ही सादी होनी चाहिये। भोजन और वस्त्र हमेशा ज़िन्दगी की मुख्य ज़रूरतें रहेंगी। यदि इन दोनों को प्राप्त करने में मुशकिल हो तो ज़िन्दगी नामुमकिन हो जाती है। इसलिये अहिंसात्मक रक्षा योजना में समाज का सङ्गठन इस तरह होना चाहिये कि आन्तरिक झगड़े-फ़सादों और बाहरी आक्रमणों में ये दोनों चीज़ें समाज का हर सदस्य अपने आप मुहय्या कर सके।

"जिस तरह खाना पकाने के लिये हर घर का अपना अलग चूल्हा होता है उसी तरह कपड़ा बनाने के लिये तकली, चरखा और करघा मामूली जरूरतें हैं। अहिंसा की बिना पर जो समाज क़ायम होगा उसमें गांवों में बसे हुये ऐसे समूह होंगे जो स्वयं दिये हुये सहयोग से सामाजिक जीवन को शान्तिपूर्ण और शानदार बनाएंगे। जो समाज हिंसा की हिंसा से मुक़ाबला करने की बात सोचता है वह ख़तरनाक जिन्दगी बसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है और रक्षा के लिये बड़े बड़े शहर आबाद करता है और शस्त्रागार बनाता है। यूरोप के शहरों की आजकल की हालत को देखते हुये यह सोचना ग़लत न होगा कि उसके बड़े बड़े शहर, बड़े बड़े कारखाने और विशाल शस्त्रागार एक दूसरे से इतने सम्बन्धित है कि एक के बगैर दूसरा रह ही नहीं सकता। अहिंसा की बिना पर जो सभ्यता क़ायम होगी उसकी तसवीर हम हिन्दुस्तान के ग्रामों में देख सकते हैं। मैं मानता हूँ कि इन गावों में मेरी कल्पना और परिभाषा की अहिंसा नहीं थी फिर भी उसके बीज तो वहां थे ही।"
["हरिजन"; १३-१-४०; पृष्ठ ४१०]

इसी लेख में गान्धी जी ने लिखा था—

"मैं उस वक्त तक दलील देता रहूँगा जब तक कि मैं अपने प्रतिपक्षियों को अपनी राय का न बना लूँ या खुद उनकी राय का न हो जाऊँ। मेरा मिशन हर भारतवासी को अपनी राय के अनुकूल बनाना है फिर चाहे वह हिन्दू हो मुसलमान हो या कोई भी क्यों न हो। मुझे अङ्गरेजों को भी और आखीर में दुनिया को भी इस राय का बनाना है कि अहिंसा से ही आपसी सम्बन्ध का संतुलन होना चाहिये फिर चाहे वह सम्बन्ध राजनैतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो। अगर मुझ पर यह इलजाम लगाया जाता है कि मेरे हौसले बहुत बढ़े चढ़े हैं तो मैं यह अपराध स्वीकार करता हूँ। अगर मुझसे यह कहा जाता है कि मेरा सपना कभी पूरा न होगा तो मैं यह कहकर कि—यह सम्भव है—अपनी राह चलता जाऊँगा। मैं एक सधा हुआ अहिंसात्मक सिपाही हूँ और मुझमें अपने विश्वास को क़ायम रखने की शक्ति है और इसीलिये चाहे मेरा एक साथी हो या एक भी न हो मैं बराबर अपना प्रयोग करता जाऊँगा।"

इस तरह पाठक देखेंगे कि गान्धीजी का आर्थिक कार्यक्रम उनके अहिंसात्मक सङ्गठन का एक अङ्ग है। गान्धी जी के आर्थिक सङ्गठन में शोषण की कोई जगह नहीं और शक्ति केवल व्यक्ति के अन्दर केन्द्रित होती है। गान्धी जी की राय में जब तक ऐसा न हो तब तक सत्याग्रह पूरी तरह सफल नहीं हो सकता।

इस तरह हम देखते हैं कि गान्धी जी का अहिंसात्मक असहयोग एक ऐसी ग्रामीण सभ्यता से सम्बन्धित है जिसकी कल्पना गान्धी जी की अपनी है। दोनों उस सृजनात्मक क्रान्ति के अङ्ग है कि जिससे होकर साधारण मनुष्य स्वराज के उस मक़सद को प्राप्त करता है कि जिसमें ऐसी कैफ़ियतें पैदा होंगी जिनमें हर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा मौक़ा मिल सकेगा।

गीत

श्री अनन्त कुमार 'पाषाण'

धरती आज नहाये,
छिटक-छिटक चाँदनी चटक यह
धरती पर छा जाये।

मंदिर में घड़ियाल बज उठें,
जले आरती, साज सज उठें,
और देवता के चरणों में
भक्त फूल बिखराये।

धूप-दीप का धूम तब उड़े,
हृदय हृदय से विकल तब जुड़े,
और देवता देख भक्त को
मन्द मन्द मुस्काये।

अपनी फूल मूँद लें आँखें,
गन्ध उड़े, मन खोले पाँखें,
भक्त देव से, देव भक्त से
एक बने मिल जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर की मूर्त्ति

डा० अख्तरहुसेन रायपुरी एम. ए., डी. लिट. (पेरिस)

तालाब के किनारे ऊँचे से टीले पर शराबखाना था। घास-फूस की झोपड़ी जिसके अन्दर लकड़ी के बेडौल पटरे टूटी-फूटी टांगों पर खड़े हुए शराबियों का बोझ उठाते थे। और औंधी-सीधी मेज़ें थीं जो चीड़ के संदूकों को काट-छांटकर बनायी गयी थीं। धुंवे से लिपी हुई दीवारों पर दीवट जिनमें शाम होते ही धुंधले दिये टिमटिमाने लगते थे। और एक कोने में कलवार की चौकी जो ताड़ी के मटकों और ठर्रे की बोतलों की ढेरी में अपने काले-कलूटे शरीर के साथ यों घुल-मिल जाता था जैसे सिरके का बहुत बड़ा पीपा हो। शराबखाने के दरवाजे पर एक जवान औरत बैठी अंगारों पर कबाब भूना करती थी। और आग की आंच में दूर से उसका तमतमाया हुआ चेहरा बड़ा भला लगता था।

दिन भर शराबख़ाने में सन्नाटा रहता था। लेकिन शाम होते ही उसमें जीवन की लहर दौड़ने लगती थी। मिस्तरी, कसाई, बढ़ई और ऐसे ही लोग एक-एक दो-दो करके जमा होने लगते। पहिले वह तालाब में हाथ-मुँह धोते और कई तो बेझिझक उसके पानी में नङ्ग-धड़ंग नहाने लग जाते थे। जैसे ही दीवट के दिये जगमगाते और कबाब वाली हवा में अपनी महक फैलाती शराब-खाने में जान-सी पड़ जाती थी। बोतल के काग उछलते, मटके टकराते, कबाब की सीखें तिलमिलातीं, पीछे की कोठरी में कौड़ियां खड़कतीं, दिन भर की थकन दम भर में काफ़ूर हो जाती और दिलों के दुख ठर्रे की बूँदों से धुल जाते थे।

उस रात को भट्टी में बड़ी भीड़ थी। मवेशियों का बाज़ार अभी पूरी तरह भरने भी न पाया था कि हैज़े के डर से म्यूनिसिपल कमिटी ने उसे बन्द कर दिया। गूजर और ग्वाले हैज़े से ज्यादा कमेटी को कोसते हुए औने-पौने सौदा चुकाकर वापिस चले गये। मगर शरूर के कसाई और गड़रिये कौड़ियों के मोल बकरी-भेड़ ख़रीद कर जशन मनाने शराबखाने मे आ जमा हुए।

गड़रियों के चौधरी नामी ने हर आदमी को ठर्रे का एक एक अद्धा भेंट किया और कबाब वाली को गोद में खींचकर कहा, "अरी, आज तो मैं तुझे भूनकर खा जाऊँगा।"

चम्पा ने ललचायी हुई चितवनों से नामी के शलूके की जेब को ताका जिसकी सीवन रुपयों के बोझ से उधड़ रही थी, पर कलवार के डर से उसे कुछ कहने का हियाव न हुआ।

पता नहीं, राजू धोबी कब से दरवाज़े की ओट में खड़ा यह तमाशा देख रहा था। हसरत से उसकी यही हालत थी। कलवार का ऋण चुकाने की उसमें सकत न थी और भट्टी में उसका आना-जाना बिलकुल बन्द था। बेचारा राजू रात के अंधेरे में आता, बाहर खड़ा कबाब और शराब की महक सूंघता और मन मारे उलटे पांव लौट जाता। पर आज नामी की उदारता ने उसे सहारा दिया, और ठीक उस समय जब नामी के आदेश पर उपस्थित सज्जनों के ख़ाली कुल्हड़ दोबारा भरे जा रहे थे, राजू अन्दर घुस आया। तीर की तरह वह चौधरी नामी के सामने आया और हाथ जोड़कर बोला, "चौधरी, आज तो मुझ दुखिया पर भी दया हो जाये।"

आज नामी का रोआं-रोआं सहानुभूति में शराबोर था। मवेशियों के बाज़ार में उसने ऐसा सस्ता सौदा किया था कि हज़ार रुपये से कम लाभ की आशा न थी। फिर यह राजू लाख गया-गुज़रा सही, फिर भी इसमें एक बड़ा गुण था। उसके गले में बड़ा रस था और जब वह गाता तो उसकी तान बादलों की ख़बर लाती थी। सुनने वालों का बयान था कि कई बार सांप उसके गाने पर सर धुनते पाये गये, और यह तो सब जानते थे कि राजू के गले से आवाज़ निकलते ही तालाब के मेंढकों का कोरस बिलकुल बन्द हो जाता था।

इसलिये कलवार के प्रतिवाद की परवाह न कर के नामी ने आज की रात राजू को आश्रय देने का निश्चय कर लिया। अपनी गिरी हुई भूलों को ताव देने की बेकार कोशिश करते हुए उसने रईसाना शान से कहा, "राजू आओ, भले बिराजो। बोलो, क्या पियोगे? ताड़ी या ठर्रा?"

राजू ने एक सांस में ताड़ी की लबनी ख़तम कर दी, और देर तक बैठा होंठ चाटता रहा। कलवार जो उसके करतूतों से जला जा रहा था, अब चुप न रह सका और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकार उठा, "बड़ा चार सौ बीस है यह राजू। काम न धाम, न गांठ में दाम। दिन भर मदकख़ानों में पड़ा मदकचियों को कहानियां सुनाता और मुफ़्त मदक पीता है। रात को यहां दारू की टोह में आया है। मैंने तो इसका आना-जाना बन्द कर दिया है।"

राजू के पड़ोसी रुस्तम कसाई ने इस अभियोग का समर्थन किया, "अजी, बड़ा अपाहिज है यह राजू। ऐसा निखट्टू तो कभी देखने में नहीं आया। इसकी बूढ़ी मां सवेरे से शाम तक घर-घर पानी ढोती है, चक्की पीसती है और इसे रोटी खिलाती है, मगर यह साला सांड बना यहां-वहां की सैर करता फिरता है।"

सबने, यहां तक कि नामी ने भी राजू को गुस्से से घूरना शुरू किया पर उस निर्लज्ज के माथे पर बल तक न आया। अपनी भीगी हुई मूछों को जीभ की नोक से चाटते हुए वह मुस्कराकर बोला, "भाइयो, रामजी की मरजी यही है कि कुछ काम करें और कुछ बैठे खायें। यह साधू-महन्त और लाला-बनिये कौन-सा पहाड़ तोड़ देते हैं। फिर भी हलवा-पूरी के सिवा किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाते। तो फिर मैंने ही कौन-सा पाप किया है!"

सम्भव है कि बात बढ़ जाती, पर उसी पल दरवाज़ा अपनी चूल पर चरमराया और पंचम मिस्तरी की शकल नज़र आई। अब तो शराबखाने ने नई करवट बदली। क्यों कि पंचम बूढ़ा हुआ करे फिर भी गाने में राजू का मुकाबला उसके सिवा कोई न कर सकता था। लोग उस दिन की प्रतीक्षा करते थे जब यह दोनों मिल बैठें। ऐसे संगत-सुख का अवसर कम ही मिलता था।

पंचम की आवभगत में हर तरफ़ से नारे बुलन्द हुए। बल्कि राजू ने भी अपने टूटे हुए स्टूल पर उछल कर पुकारा, "उस्ताद, बहुत दिनों बाद पकड़ में आये।"

पचम ने अपनी कमज़ोर आंखों पर हाथ की छाया करके उसे निहारा और जब पहिचान चुका तो मुस्कुरा कर बोला—"ठहर जा, रे लुच्चे, आज मैं तेरी पोल खोल कर रहूंगा। अरे, तू न ताल का, न सुर का, चला है मुझसे बातें बनाने!"

किसीने टोककर कहा, "मिस्तरी, यह न कहो। राजू जो भी सही, है भूरे खां उस्ताद का सिखाया हुआ।"

पंचम के गले का घूंट वहीं अटक गया, 'ऐं, तुम जैसे नौसिखिये भी मेरे मुँह आने लगे। आख़िर इस भूरे ख़ां को ही क्या आता था? ठुमरी के सिवा वह गा भी क्या सकता था? और उसकी आवाज़"—पंचम ने नाक भौं चढ़ाकर छत की तरफ़ देखा, "उसकी आवाज़ कोमल से ऊपर चढ़ते ही बांस की तरह फट जाती थी। पंचम सुर में तो एक पंचम मिस्तरी ही गा सकता है।"

तुलसी पनवाड़ी ने बात में बात मिलायी, "क्यों न हो, पार्वती देवी की देन है मिस्तरी!" पर राजू के किसी समर्थक ने बीच में कह दिया, "अजी उस देवी में भी गुण है। पत्थर की मूरत न मिस्तरी के काम की और न किसी के काम की।"

पंचम उस ढीठ को मार ही बैठता, वह तो कहो नामी चौधरी ने बीच-बचाव कर दिया। उसने राजू को डांटा, "क्या तुझे मैंने रंग में भंग डालने के लिये बुलाया है?"

अब तो राजू को भी जोश आ गया, "चम्पा, निकालना तो तबले की जोड़ी!"

नामी ने ललकार लगायी, "पिला दो सब को एक एक अद्धा!"

किसीने तबले को थाप दी, राजू ने मल्हार का अलाप खींचा और कलवार अपनी शिकायत को भूल कर चिल्लाया, "अरी, देखती क्या है बांध ले घुँघरू।"

बादल बरसकर खुल चुके थे और हवा में मिट्टी की सोंधी सोंधी सुगन्ध बसी हुई थी। हवा में एक मस्ती सी थी। और आकाश ऐसा निखर गया था कि धरती से तारों की संकेत-वाणी साफ सुनी जाती थी। राजू के गले से राग के बोल निकले, सुर गोया हवाई सीढ़ियों पर चढते गये, चढ़ते गये—और बादलों की ओर जाकर गायब हो गये। एकाएक वह बिजली की सी तेज़ी से नीचे झपटे और पास आकर चारों तरफ़ बिखर गये। मल्हार का स-र-ग-म कभी बादलों की तरह उमड़-घुमड़ आता, कभी गरजता और कभी कभी हौले हौले बरस कर खुल जाता था चम्पा अपने मैले लहँगे के घिरे को एक हाथ में थाम और दूसरे से ओढ़नी का छोर मुँह पर डाले ज़मीन पर ठोकर लगाती, शराबी दिलों को घुँघरू की छमाछम पर नचाती इधर-उधर चक्कर काट रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जब राजू चुप हुआ तो दम भर वैसा ही सन्नाटा रहा जैसा ज़ोर की बारिश के अचानक थम जाने से होता है। फिर जब जादू टूटा तो हर समझदार और नासमझ का सिर वाह! वाह! की धुन पर हिल रहा था। कलवार अपने भारी-भरकम शरीर को ज्यों-त्यों संभालता हुआ पास आया और एक पूरी बोतल राजू के मुँह से लगाकर बोला, "जीते रहो राजू, कमा खाओगे।"

अब पंचम मिस्तरी की बारी थी। उसने बिहाग के बोल निकाले थे कि सब सांस रोककर चुप बैठ गये। जैसे इस देश की थकी-हारी मानवता की प्राचीन पीड़ा कराह उठी और वह लोग जिनका दैनिक जीवन गन्दगी और बेदर्दी में सना हुआ था, आप ही आप किसी नामालूम दर्द के अहसास से रो उठे। राग घायल हिरन की तरह तड़पा, कराहा, कभी ऊपर उछला और कभी नीचे गिरा। बूढ़े गवय्ये की हर तान एक हूक थी जो फांस बनकर हर सुनने वाले के दिल में खटक उठी।

इसी तरह देर तक वह गाते रहे और सङ्गीत की मौज ने उनके दिलों के मैल को धो दिया। जब रात बहुत बीत गयी तो वह सब लड़खड़ाते, डगमगाते उठे और नामी चौधरी ने चम्पा की कमर में हाथ डालकर गाना शुरू किया :

"नदिया नाले बहा आयी कंगना!"

सबने आवाज़ मिलायी और चम्पा ने घुंघरू की ठोकर लगाकर इस हाव-भाव से सास-बहू के झगड़े का चित्र खींचा कि सबकी तबीयत फड़क उठी—और नामी को तो चम्पा कबाब से भी ज्यादा मजेदार मालूम हुई!

पंचम पैदायशी गवय्या था। इस शौक़ में वह दूर दूर मारा फिरा। बरसों किसी गायक का हुक्का भरा, किसी उस्ताद के पांव दबाये, किसीके लिये भङ्ग घोंटी। जवानी में उसके गाने की ऐसी धूम मची कि पार्वती के मन्दिर में वह नौकर रख लिया गया। इस इलाके का यह सबसे बड़ा मन्दिर था और राज-रजवाड़ों ने उसकी रखवाली के लिये अच्छी ख़ासी जागीर दे रखी थी। पंचम सांझ-सवेरे मन्दिर जाता और भजन-कीर्तन गाते हुए कभी इस सुन्दरी को घूरता कभी उससे आंखें लड़ाता। जब उसने ज्यादा हाथ-पांव निकाले तो पुजारी ने निकाल बाहिर किया। यों तो पुजारी खुद सदाचार का पुतला न था। बंजर औरतों की गोद भरने के गुर उसे खूब याद थे। पर एक तो वह ठहरा ब्राह्मण और फिर मौरूसी पुजारी। चेले-चाटों को वह ताक-झांक की इजाज़त कभी न देता था और मन्दिर के सेवकों को लंगोट के सच्चेपन का उपदेश दिया करता था।

पंचम को भी अपनी कला पर बड़ा घमंड था। मन्दिर से निकाला मिलने के बाद उसने अपने घर पर पार्वती की मूर्ति बिठायी। एक अंधेरी-सी कोठरी में उसने ताक पर देवी बिठलायी। उसे सेंदूर से लाल-गुलाल किया, चांदी की आंखों से सजाया। हर रोज़ उस पर फूल चढ़ाता और घी के दिये उसके सामने जलाता। मुंह अंधेरे वह मूर्ति को नहलाता और दिया-जले उसके सामने बैठकर सङ्गीत का अभ्यास करता था। पर न तो बस्ती के लोगों ने देवी का आदर-मान किया और न देवी ने उन्हें कोई वरदान दिया। इस बीच में कई बार चेचक, प्लेग और हैजे का हमला हुआ पर पंचम की देवी अपने आसन पर गुम-सुम बैठी रही। किसी की विनती पर उसने ध्यान न दिया और तो और पंचम की दरिद्रता पर भी उसे दया न आई। फिर एक दिन वह आया कि सबने देवी के दर्शन बन्द कर दिये और पंचम तंग आकर मोटर के कारखाने में मिस्तरी बन गया।

जो भी हो, देवी पर पंचम की श्रद्धा में कोई कमी न हुई, देवी की कोठरी टूट फूट गयी, दीवारों की सफेदी झड़ गई, छत की कमच्चियों को घुन खाने लगी, चांदी की आंखों की जोत मंद पड़ गयी। अन्त में पञ्चम के बाल-बच्चों ने भी मूर्ति के दर्शन बन्द कर दिये, लेकिन पंचम की आस्था तनिक भी न घटी। हर रोज सवेरे वह कुए से पानी लाता और मूर्ति को नहलाता; हर शाम को टूटा हुआ सितार उठाता और एक-दो गत उसे सुनाता। जब उसके पास घी या फूल के लिये पैसे न होते तो वह देवी के आगे फूट फूटकर रोता—देवी सबने तुझे भुला दिया और तूने मुझे भी भुला दिया। पर मैं तो तेरा पुजारी हूं, मां। तू संसार की माता है। एक बार जाग जा और इन पापियों को दिखला दे कि असल पार्वती तू है; वह नहीं जो छैल-छबीली बनी बड़े मन्दिर में बैठी पापों का तमाशा देखा करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पंचम को महसूस होता कि पार्वती की आंखें अंधेरे में मुस्कुरा रही हैं।

लोगों की याद में ऐसा हैजा पहिले कभी न आया था। अस्पताल बीमारों से, मरघट और कब्रिस्तान मुर्दों से पटे पड़े थे। कफ़न चोरों और गिद्धों की बन आई थी। कपड़े और लकड़ी के दाम चौगुने हो गये थे। डाक्टर यमदूत के पीछे पीछे फिरकी की तरह चक्कर लगा रहे थे और बीमा कम्पनियों के एजेण्ट अपने काग़जात लेकर चम्पत हो गये थे। घरों में और घरों के बाहर बूढ़े और बच्चे क्या अच्छे-अच्छे कड़ियल जवान मालूम नहीं कैसे बीमार हो होकर घड़ी भर में मर जाते थे और उनकी लाशों को उठाने वाले भी न मिलते थे।

डाक्टरों और वैद्यों से मुंह मोड़कर लोगों ने मन्दिर और दरगाहों का रास्ता पकड़ा। पार्वती के मन्दिर में तो दिन रात आदमियों की भीड़ लगने लगी। वह सब प्रसाद का हलवा खाकर और बावली का पानी पीकर समझते थे कि हैजे से छुटकारा मिल गया। लेकिन एक दिन सबके देखते देखते पुजारी खुद हैजे का शिकार हो गया। इसके बाद उसके चेलों में हैजा ऐसी तेजी से फैला कि भक्तों ने उधर का रास्ता चलना भी छोड़ दिया। थोड़ी मुद्दत में मन्दिर के कलस पर उल्लू अपनी डरावनी आवाज में मौत का राग गाने लगे और उसके दालानों में चमगादड़ें पर फड़फड़ाने लगीं। डाक्टरों, पीरों और पुजारियों से निराश होकर लोग अपने घरों में पड़े मौत की बाट जोहने लगे।

इतने में अफवाह उड़ी कि पंचम मिस्तरी की देवी जाग गयी है और हैजे के कई बीमार उसके दर्शन से अच्छे हो गये हैं। पहिले तो किसीको इस चमत्कार पर विश्वास न हुआ। जब इतने बड़े मन्दिर की देवी इस महामारी को रोक न सकी तो बूढ़े मिस्तरी के घर में पड़ी हुई पत्थर की मूर्ति में क्या सकत थी।

पर इसे संयोग कहिये या और कुछ, अफवाह निरी बेबुनियाद न थी। पंचम के मोहल्ले में अब तक हैजे की आहट न सुनी गयी थी। अगर किसीको हैजे का खटका हुआ तो पंचम ने देवी के दर्शन कराके और चुल्लू भर प्याज का पानी पिलाकर उसे अच्छा कर दिया।

अब तो सारी बस्ती में पंचम की देवी का डंका बज गया। कोई तीस साल बाद पंचम मिस्तरी की मनोकामना पूरी हुई और बड़े मंदिर पर उसकी मूर्त्ति को जीत हासिल हुई। भक्तों ने देखते देखते उसकी कोठरी को दुल्हन बना दिया। छत पर नई कड़ियां पड़ गयीं, दीवार पर सफ़ेदी हो गयी। मूर्त्ति की आंखों में सोना भर दिया गया, सेंदूर के बदले उसपर चंदन का लेप चढ़ने लगा। डेवढ़ी पर रंग-बिरंगी झंडियां उड़ने लगीं और रात को उसके घर पर दीवाली सजने लगी। प्रातःकाल उसकी चौखट पर फूल-पत्तियों का पहाड़ खड़ा हो जाता था।

रात को अनगिनत दर्शक उसके घर के सामने जमा होते और पंचम के साथ झूम झूमकर भजन गाया करते थे। बकरे के लहू से देवी रोज़ नहलायी जाती और जोश की हालत में कोई भक्त तलवार की नोक जीभ के आर-पार कर लेता था, पर देखने वालों का बयान है कि उसे ज़रा भी चोट न आती थी। वह भीड़-भाड़ और धूम-धाम होती कि कहा नहीं जा सकता। हर्षातिरेक से देवी के पांव चूमकर पञ्चम चिल्ला पड़ता: "संसार की माता, तूने मुझ पापी की पुकार सुन ली। जिन्हें तुझ पर भरोसा न हो उन्हें मौत के मुंह में झोंक पर जो तेरी डेवढ़ी पर आये हैं, उन्हें जीवन की भीख दे।"

थोड़े ही दिनों में पंचम सारे शहर का पुजारी बन गया। जनता को दर्शन-प्यास बुझाने के लिये उसने मूर्त्ति को अंधेरी कोठरी से निकालकर बरामदे में चंदन-चौकी पर बिठाया। उजाले में आकर देवी का मुखड़ा तेज से जगमगा उठा। शहर के ब्राह्मण दूर से देवी को नमस्कार करके मन ही मन पंचम की लोकप्रियता पर कुढ़ने लगे।

अब पंचम को अपने जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा पूरी होती हुई दिखाई दी। बचपन से वह देखता आया था कि सावन की पूर्णमासी को बड़े मंदिर की देवी रथ-यात्रा करती है। बहुत बड़े रथ पर वह सजा-बजाकर बिठलाई जाती है और सैकड़ों आदमी इस रथ को कंधों पर उठाये गली-कूचों में फिरते हैं। ढोल, मंजीरे और शहनाई के परे के परे साथ होते हैं और सारी बस्ती की रंडियां रथ के आगे नाचती चलती हैं। घंटे और शंख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाद से हवा थर्रा उठती है। दूर दूर से लोग दर्शन को आते हैं और ऐसा जुलूस साल भर में कभी नहीं निकलता।

इस जुलूस को देखने के बाद पंचम अपनी देवी के पास आता और रो रोकर गिड़गिड़ाता, "मां, मेरी एक कामना पूरी कर दे। तुझे मैं ऐसे ही रथ पर बिठलाऊं और तेरी यात्रा ऐसी हो कि लोग युग युग याद करें।"

कितनी मुद्दत बाद उसका अरमान पूरा हुआ। नगरवासियों ने पंचम का कहा कान लगाकर सुना। और जब सावन की चौदहवीं आई तो उन्होंने बड़े मन्दिर के भांडार को खोला। उसमें से रथ, अंबारी और दमामे निकाले। पंचम की देवी के लिये बनियों ने मख़मल और कमख़्वाब के लिबास दिये। धीरजसिंह ज़मींदार ने अपने दोनों हाथी यात्रा की शोभा के लिये भेजे। उन पर बड़े बड़े नगाड़े रखे गये और पीछे घोड़ों पर सेवा समिति के वालेंटियर शङ्ख बजाते हुए नज़र आये। बैंड वालों ने भी अपनी सेवा अर्पण की और फटी-पुरानी वर्दियों को झाड़कर भांति भांति के बाजों के साथ जुलूस में शामिल हुए। छज्जों पर औरतें आरती की थालियां लिये जमा हुईं और सड़कों के दायें-बायें हज़ारों बच्चे-बूढ़े आ खड़े हुए। रथ के रुपहले कलस धूप में जगमगाने लगे और सैकड़ों हांफते-कांखते आदमी उसे कंधे पर लादे खींचने लगे। रथ के अंदर ढोल-मंजीरों के शोर से कान के परदे फटे जा रहे थे और बीच बीच में उनकी आवाज़ को दबाकर पीतल के वज़नी घंटे बड़ी शान से बज उठते थे। रथ के भीतर देवी के ठीक सामने आसन जमाये सुध-बुध बिसारे पंचम मिस्तरी गा रहा था। पार्वती की मूर्त्ति फूलों की ढेरी में छिपी हुई थी। केवल उसकी सुनहली आंखें धूप में अंगारों की तरह चमक रही थीं। उसके आगे जो लाल चादर बिछी हुई थी वह रुपयों और छोटे-मोटे गहनों से लद गई थी। छज्जे से लगातार पुष्प वर्षा हो रही थी और जय जयकार के नारों से आकाश गूंज रहा था।

यह पंचम के जीवन का सबसे बड़ा दिन था। उसका चेहरा खुशी के मारे दमक रहा था, आवाज़ जोश के मारे भर्रा रही थी, गाल हर्ष के आंसुओं से भीगे हुए थे। उसके पास राजू धोबी बैठा दोनों हाथों से चढ़ावे के रुपये-पैसों को बटोर रहा था। कभी वह चांदी के बिछुवों को हाथों में तौलता, कभी सोने के छल्लों के दाम आंकता। फिर बीच बीच में देवी के आगे शीश नवाकर कोई नया राग छेड़ देता था।

रथ चींटियों की चाल चलता हुआ बड़े मंदिर के सामने पहुँचा और एकाएक 'पार्वती की जय' के गगन-भेदी नारे से उसके सुनसान दरो-दालान गूंज उठे। ढोल, मंजीरों और घंटों का तुमुल नाद हवा को कंपाने लगा। राजू धोबी के इशारे पर हर तरफ़ मशालें सुलग उठीं और गैस के लैंप जगमगाने लगे।

बड़े मंदिर को तो जैसे सांप सूंघ गया था। लोग कह रहे थे कि चोरों ने देवी के गहने चुराकर मूर्त्ति को बावली में फेंक दिया है। किसीने उधर आंख उठाकर भी न देखा। बल्कि एक बिगड़े दिल ने सबको सुनाकर कहा कि पंचम की पार्वती को बड़े मंदिर में जगह मिलना चाहिये।

पंचम इससे बड़ी सफलता और सुख का सपना भी न देख सकता था। वह गोया किसी और दुनिया में पहुंचा हुआ था। गौरी राग गाते गाते उसे गुमान हो रहा था कि देवी सचमुच उसे देख देखकर मुस्करा रही हैं।

अचानक—वह त्योरा कर आसन से गिरा और मंजीरे उसके हाथ से नीचे ढुलक पड़े। हर तरफ़ सन्नाटा छा गया, बाजे बंद हो गये, हाथी घोड़े खड़े हो गये, सब को जैसे पाला मार गया।

पंचम का शरीर तड़फड़ाया, उसमें ऐंठन हुई और फिर वह ठंडा हो गया। उसकी आंखें फटी की फटी रह गयीं और चेहरे का रंग बदलने लगा। उलटी उसके मुंह से निकलकर गरदन और छाती पर बहने लगी। सहमकर सब लोग पीछे हट गये, कई के मुंह से चीख़ निकल गई। रथवानों ने अपने कंधे अलग कर लिये।

पंचम का सिर हिला और उसने धीमी आवाज़ में कहा, "चुप क्यों हो गये राजू! गौरी राग गावो भइया! देवी को यह राग बहुत पसंद है।"

और गौरी का स-र-ग-म विलाप बनकर आकाश की ओर उड़ा। वह ठुकराये हुए अरमानों की तरह बिलख बिलखकर रोया। राग के बोल मेले में भटके हुए बच्चे की तरह मचल मचलकर रोते रहे और किसी तरह चुप न हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद कालिक अन्तिम संस्कार

श्री० रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

संसार की समस्त सभ्य जातियों के जीवन में दैहिक संस्कारों का स्थान है। यह बात दूसरी है कि किसी में वे प्रमुख रूप से बद्धमूल हो गए हैं और किसी में गौण रूप से गृहीत हुए हैं। इसे मान लेने में कदाचित् किसी को कोई आपत्ति न होगी कि जो जाति जितनी ही अधिक संस्कृत तथा उन्नत रही है उसमें दैहिक संस्कारों का भी उतना ही सम्मान और उच्च स्थान रहा है। परलोकवादी अर्थात् आस्तिक कही जानेवाली जातियों में इन दैहिक संस्कारों ने जीवन रूप-सा धारण कर लिया है। उनमें जीवात्मा के जन्म-धारण के समान ही ये अनिवार्य रूप में मनुष्य के अविभाज्य अंग-से बन गए हैं। आर्य जाति की वर्ण-व्यवस्था इसी भावना से उद्भावित हुई है। द्विज या द्विजाति शब्द का अर्थ ही यही है कि जो एक बार माता के गर्भ से जन्म लेने के अनन्तर दैहिक संस्कारों से जन्म लेता (संस्कृत होता) है। यही कारण कि गर्भाधान के थोड़े ही दिनों के बाद से लेकर जब कि माता के गर्भ में अवस्थित भावी शिशु शरीर के चिन्हादि से भली भाँति संयुक्त भी नहीं हुआ रहता, मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक विविध संस्कारों की अनिवार्यता उसके लिए की गई है। परलोक न माननेवाली नास्तिक जातियों में ऐसे दैहिक संस्कारों का कोई उच्च वा आध्यात्मिक स्थान नहीं है। उनकी शारीरिक शुद्धि भी ऐसो-आराम की दृष्टि से ही होती है। ठीक भी है, क्योंकि जब इस लोक के बाद इस भस्मान्त[1] शरीर का कुछ होना ही नहीं है और इस सुन्दर स्वस्थ शरीर के अतिरिक्त संसार में कुछ है ही नहीं तो आत्मा की शुद्धि वा तन्मूलक संस्कारों से उनका प्रयोजन ही क्या ठहरा?

देह की विद्यमानता में जो संस्कार किये जाते हैं उनका शरीर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है; पर अन्त्येष्टि अर्थात् अन्तिम संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो शरीर के विनष्ट होने के उपरान्त किया जाता है और उसका सम्पन्न करनेवाला यह नहीं देख पाता कि मृतात्मा पर उसके किए हुए संस्कार का क्या प्रभाव पड़ता है? अप्रत्यक्ष फल के विश्वास पर वह एक रूढ़ पद्धति से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अन्तिम संस्कार सम्पन्न करता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष फलदायी इस अन्तिम संस्कार का हिन्दू जाति में आज भी प्रमुख स्थान है। यदि हम यह कहें कि हिन्दू जाति में सोलहों संस्कारों के स्थान पर यही एक ऐसा संस्कार शेष रह गया है जो किसी न किसी रूप में आज भी अपनी सत्ता बनाए हुए है तो विस्मय न करना चाहिए। यद्यपि यज्ञोपवीत संस्कार भी आज तक ब्राह्मणों में किसी न किसी रूप में अपनी साँसें गिन रहा है पर आज उसका जो विकृत रूप समाज में प्रचलित है उसे देखते हुए उसको भी निरर्थक ही समझना चाहिए। द्विजाति में परिगणित होनेवाले क्षत्रिय तथा वैश्यों में तो इस यज्ञोपवीत संस्कार का प्रायः विलोप-सा हो गया है। इनमें बहुधा विवाह के अवसर पर किसी देवी देवता के आयतन में चढ़ाकर वा उनके 'प्रसाद' के साथ वर को यज्ञोपवीत पहना दिया जाता है। पर इन सब बातों के बावजूद भी ब्राह्मणों से लेकर अन्त्यज कही जानेवाली जातियों तक में इस अन्तिम संस्कार का कोई न कोई रूप विद्यमान है।

प्राचीन काल में आर्यों में अग्नि-पूजा की अनिवार्यता के कारण साग्निक और निरग्नि दो भेद माने जाते थे। आज इन भेदों का कुछ भी अवशेष नहीं है। मृत्यु के उपरान्त साग्निकों में दाह-संस्कार के बाद कुछ ऊर्ध्व दैहिक यज्ञ-यागादि शान्ति-क्रियाएँ होती थीं और निरग्नियों में केवल दाह-संस्कार ही होता था। मृत्यु के अनन्तर शरीर एकदम शोभा विहीन ही नहीं हो जाता, प्रत्यक्ष अंग-प्रत्यङ्गों की निश्चलता तथा मुख श्री के एकदम विकृत हो जाने के कारण अत्यन्त भयानक भी बन जाता है। उस भीषण मलिन मुख को देखकर पाषाण हृदय भी काँप जाता है। यदि उस स्थिति में दो एक दिन भी लाश रखी जाय तो वह सड़ जाती है और उस महान् यशस्वी एवं शोभायमान शरीर से दुर्गन्ध निकलने लगती है। इसीसे मृत्यु के उपरान्त तुरन्त ही लाश को स्थानान्तरित कर देने का सामान्य नियम-सा सभी जातियों व सब देशों में प्रचलित है, भले ही वह किसी प्राणप्रिय व्यक्ति का ही शरीर क्यों न रहा हो।

कुछ वैदिक आख्यानों एवं मन्त्रों से यह पता लगता

१—यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मृतात्मा के शरीर को आर्य लोग या तो जल में डुबा देते थे या किसी सुनसान मैदान में गाड़ देते थे या अग्नि में जला देते थे। यद्यपि पहले शव के गाड़ने की ही प्रथा सामान्यतया आर्यों में भी प्रचलित थी पर बाद में चलकर पृथक पृथक व्यवस्था की गई कि किस प्रकार का शव जलाया जाय और किस प्रकार का नहीं। उसी समय यह विधान भी प्रचलित किया गया कि जो शव जलाया न जाय वह या तो गाड़ दिया जाय या जल में प्रवाहित कर दिया जाय। पीछे चलकर धर्म शास्त्रकार ने निम्न प्रकार के शवों को जलाने के अयोग्य ठहराया है और किसी किसी की और्ध्वदेहिक शान्ति-क्रियाओं का भी निषेध किया है।

जिस व्यक्ति का प्राणान्त सींग, दाँत वा नखवाले पशु के आघात से हो जाता है, अथवा सर्प के काटने से, अग्नि में जलकर, पर-स्त्री-प्रसंग के समय, जल में डूबकर वा जलक्रीड़ा के समय हो जाता है, उसका अग्नि संस्कार नहीं करना चाहिए। यदि कोई मारने के लिए सर्प को खिजाने से या बिजली गिरने से मर जाता है तो शास्त्रीय नियमानुसार उसकी भी दाह-क्रिया नहीं करनी चाहिए। चोरी और व्यभिचार करते समय जिस पापात्मा का शरीर घायल हो जाता है और बाद में चलकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है उसके शव को भी नहीं जलाना चाहिए। औषधि के बहाने से किसी को विष देनेवाले, आग लगानेवाले, भोजन में विष मिलानेवाले, चाण्डाल आदि के साथ कलह कर मृत्यु प्राप्त करनेवाले का शरीर भी मृत्यु के बाद जलाना नहीं चाहिए। जो नराधम क्रोध वा अमर्ष में आकर स्वयं विष खा लेता है, आग में वा जल में कूदकर शरीर त्याग कर देता है, अस्त्र-शस्त्रादि से आत्महत्या कर लेता है, उसे भी जलाना नहीं चाहिए। इसी प्रकार फांसी की सजा प्राप्त करने वाले, निर्झर, पर्वत शिखर तथा वृक्ष से गिरकर मरने वाले, ब्राह्मण होकर जूता आदि बेचकर गर्हित जीविका अर्जन करनेवाले तथा विकृत मुख जल्लाद जैसे पापियों का शव भी नहीं जलाना चाहिए। नपुंसक एवं निर्दोष ब्राह्मणादि को राजा द्वारा नियुक्त होकर दण्ड देनेवाले और पातकी की भी अन्त्येष्टि नहीं करनी चाहिये। ऐसे मृतात्माओं का आत्मीय स्वजन की आंखों से आंसू न निकलने चाहिए। यदि कोई भूल से ऐसे पापात्माओं की अन्त्येष्टि क्रिया वा श्राद्धादि करता है उसे तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित करके शुद्ध होना चाहिए।

वेदों के समय में द्विजाति की और्ध्वदेहिक क्रिया जिस प्रकार सम्पन्न होती थी आज उसका सर्वथा विलोप-सा हो गया है। पौराणिक काल ने उन सारी प्राचीन परम्पराओं पर पानी फेर दिया है। विभिन्न प्रकार के साम्प्रदायिक मतों ने उन वैदिक मान्यताओं में आविष्ट होकर ऐसा नवीन रूप धारण कर लिया है कि वह उससे सर्वथा भिन्न हो गई है, यही नहीं सब कुछ मिल घुलकर अन्त्येष्टि का एकदम विचित्र रूप बन गया है। इस संस्कार की प्राचीन वेद कालिक एवं आधुनिक सनातनिष्ट रस्मों पर विवेचना करते हुए यदि हम यह कहें कि आज दिन होने वाली सनातन धर्मानुमोदित और्ध्वदेहिक क्रियाओं में घोर अवैदिक एवं अनार्य कुरीतियाँ भी घुस गई हैं तो किसीको बुरा न मानना चाहिए। कदाचित इन सब कुरीतियों के प्रवर्तन का मूल कारण अनार्यों का संसर्ग एवं अविद्या ही रही है। मृत्यु के बाद भूतों-प्रेतों की कल्पनाएँ, नरक लोक की यमदूतों द्वारा दी जाने वाली विभिन्न यातनाएँ, स्वर्ग के अनुपम काल्पनिक ऐश्वर्य, तीर्थों एवं क्षेत्रों के ऐन्द्रजालिक अद्भुत माहात्म्य, विविध प्रकार के दान एवं पिण्डदान के विद्युत् किरणों के समान सद्यः फलदायी अमोघ माहात्म्य —इन सबने मिलकर वैदिक और्ध्व देहिक संस्कार को आजकल एक विचित्र तमाशा-सा बना दिया है। वैदिक काल में तीर्थ एवं गङ्गा आदि की मृत्यु के लिए इतनी महिमा नहीं थी और न स्वर्ग प्राप्त करने के लोभ से कोई मरने के लिए घर छोड़कर कहीं जाता ही था।

उस समय लोग अपने प्रिय परिवार के बीच अपने घर पर ही प्राण छोड़ते थे। प्राण छूटने के बाद मृतात्मा के प्रिय पुत्र से वा अभाव में किसी प्रिय परिजन से पुरोहित तुरन्त ही एक होम कराता था। बौधायन की व्यवस्थानुसार हवन के समय मृतक का दाहिना हाथ छूकर गार्हपत्य अग्नि में चार बार आहुति छोड़ी जाती थी। भरद्वाज के मत से आहवनीय अग्नि में आहुति डालनी चाहिए। आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार पितृ मेध का प्रथम होम उस समय न करने से भी काम चल जाता है। इस प्रथम हवन के सम्पन्न हो जाने के बाद मृतक के शरीर को घर से सदा के लिए बिदा करने की रस्म अदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाती थी। उसके लिए बन्धु-बान्धव एक चारपाई के आकार की शैय्या बनाते थे। जिस पर कृष्णसार मृग का चर्म बिछाया जाता था, जिसमें चर्म का लोम वाला भाग नीचे की ओर रहता था। तदनन्तर आत्मीय जन शव का मस्तक दक्षिण दिशा की ओर करके चित्त सुला देते थे। फिर मृतक का पुत्र या कोई प्रिय परिजन कोई नया कपड़ा पहनता था और ऊपर से दूसरा वस्त्र भी ढांक देता था। उस समय यह मंत्र कहा जाता था—

इदं त्वा वस्त्रं प्रथमं न्वागन्। अपैतदूह यदि हाविभः पुरा।

अर्थात् 'यह वस्त्र आपके पास प्रथम बार (नवीन) आया है, इसके पहले आपने जो वस्त्र पहना था, उसे अब छोड़ दीजिए।' तदनन्तर शव को उठाकर श्मशान भूमि में ले जाते थे। पीछे चलकर यह प्रथा प्रचलित हो गई कि ब्राह्मण का मुर्दा शूद्र नहीं छू सकता. मनु आदि धर्म शास्त्रकारों ने मृतक ब्राह्मण का शव शूद्रादि से छूने में निषिद्ध बतलाया है, और इसी तरह विष्णु, यम प्रभृत अन्यान्य स्मृतिकारों ने भी उसे मान्य किया है—

न विप्रं स्वेषु निष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्र संस्पर्श दूषिताः॥

मनुस्मृति ५।१०४

अर्थात् 'अपनी जाति का सदस्य होने पर ब्राह्मण का मृतक शरीर शूद्र से नहीं ढोआना चाहिए, क्योंकि शूद्र के छू जाने पर वह दूषित आहुति मृतात्मा को स्वर्ग प्रदान नहीं करा सकती।'

किन्तु वेदकाल में यह नियम नहीं था। ब्राह्मण के मरने पर भी शूद्र आदि उसे श्मशान भूमि में पहुँचाते थे, क्यों कि उनके लिए कहीं निषेधमूलक वचन नहीं मिलते। यही नहीं बल्कि यदि शव को कन्धे पर ले जाने में कोई असुविधा पड़ती थी तो बैलगाड़ी पर रखकर श्मशान भूमि तक लोग पहुंचाते थे। इस बात का पता निम्न मंत्र से चलता है—

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुखीय य वोटवे।
आभ्यां यमस्य सदनं सुकृतञ्चापि गच्छतात्।

तैत्तिरीय आरण्यक ६।१।४।

इस मंत्र में शव को गाड़ी पर रखनेवाला मृतात्मा से कह रहा है—'आपको ले जाने के लिए हम इन दो बैलों को गाड़ी में नाध (जोत) रहे हैं। ये आपको यमराज के पवित्र लोक में, जहां पुण्यात्मा जन निवास करते हैं पहुँचा देंगे। अग्निदेव आपके समस्त पुण्य कर्मों को जानते हैं, वही बेड़ा पार लगाने वाले हैं।'

श्मशान किसी नदी तट जलाशय के समीप अथवा एकान्त स्थल में होता था। श्मशान भूमि में ले जाते समय शव को मार्ग में तीन जगह पर उतारकर रखा जाता था। नीचे जमीन पर शव को रखे जाने के बाद सहगामी पुरोहित एवं पुत्रादि निम्न मंत्रों का पाठ करते थे—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसा ताभ्यां राजन् परिदेह्यं नं स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि।

तैत्तिरीय आरण्यक ६।१।८

पूषा त्वेतश्चयावयत प्रधिद्धाननष्टपशुं भुवनस्य गोपाः। स त्वैतेभ्यः परिददात् पितृभ्योऽग्नदेवेभ्यः। सुविदत्रेभ्यः।

तैत्तिरीय आरण्यक ६।१।५।

ऊपर वाले मन्त्र में पुरोहित और सहगामी पुत्रादि यमराज से इसलिए प्रार्थना कर रहे हैं कि इस मनुष्य लोक से इस बेचारे अजनबी जीव को प्रेत लोक जाने में ठीक रास्ता मिले और मार्ग की कठिनाइयाँ दूर हो जायँ। उनका विश्वास है कि जीवात्मा यहाँ से शरीर छोड़कर जिस लोक को जाता है वह यमराज का लोक है। वहां का सारा शासन प्रबन्ध यमराज के हाथ में है। उनके पास दो भयानक कुत्ते हैं। अगर यमराज से प्रार्थना की जायगी तो वह अपने उन दोनों भयानक कुत्तों को भेजकर दुर्गम प्रेत लोक का पथ दिखाने में और आगन्तुक विघ्न बाधाओं को दूर करने में इस प्रेत की सहायता करेंगे। उक्त मन्त्र में वे कह रहे हैं—'हे यम महाराज! आपके चार आंखों वाले जो दो भयानक कुत्ते हैं, जो दुर्गम प्रेतलोक के बीहड़ पथ पर और आपके आस पास रात दिन चौकसी रखते हैं और जिनसे भय के कारण साधारण मनुष्य बहुत दूर रहना चाहते हैं, उन्हें इस एकाकी प्रेत के साथ चलने के लिए भेज दीजिए। उनके द्वारा इसे सुख और निश्चिन्तता मिलेगी। कृपया आप उन्हें यहां तक भेजकर इस एकाकी प्रेत को अवश्य सुखी और नीरोग (निश्चिन्त) बनाइये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे मंत्र द्वारा प्रार्थी प्रेत को सम्बोधित कर कह रहा है, 'पूषा देव उस पथ को (जिस पर आपको जाना है) भली भाँति पहचानते हैं। आपको यहाँ तक पहुंचाने वा ले जाने के लिए उनके पास सुशिक्षित और शान्त पशु (अश्व) विद्यमान हैं। वह निखिल भुवनों के रक्षक हैं। अतः आपको यहाँ से निर्बाध पितृलोक को ले जायँगे।'

इन उद्धृत मंत्रों के अर्थ से यह पता चल जाता है कि हमारे पूर्वज आर्य लोग प्रेत लोक का पथ पहचानने में अनेक कष्टों की सम्भावना वा कल्पना करते थे और उसके लिए ऐहिक साधनों की भाँति उपयुक्त सहचरों की खोज भी करते थे।

श्मशान तक ले जाते हुये शव को तीन बार उतार कर पिण्ड-दान करने की प्रथा बिहार-युक्तप्रान्त आदि में आज भी वर्तमान है किन्तु बङ्गाल में इसका चलन एक-दम नहीं है। वहाँ सामान्य लोगों का विश्वास है कि श्मशान ले जाने वाले शव को मार्ग में उतारकर नीचे रखने से ग्राम में महामारी आदि उपद्रव फैलते हैं। यही नहीं यदि मार्ग में कोई शव किसी संयोग से नीचे उतारा जाता है वा गिर पड़ता है तो उसकी शान्ति के लिए गाँव भर के गृहस्थ अपने अपने द्वार पर सात घोंघे बांधते हैं और सात घड़े जल छोड़ते हैं।

नीचे उद्धृत मंत्रों से यह पता चलता है कि आर्य लोग मृतक के शव के साथ श्मशान भूमि में एक गाय ले जाते थे जिसे अग्रस्तरणी वा राजगवी कहते थे। वह गाय उमर में प्रायः बुड्ढी होती थी। किसी कारण वश ऐसी गाय के न मिलने पर जिस गाय के रोएं, खुर और आँखों के प्रान्त भाग काले होते थे उसीसे काम चलाया जाता था। ऐसा भी संकेत मिलता है कि उक्त गाय के न मिलने पर कुछ लोग काला बकरा भी ले जाते थे।

श्मशान भूमि में पहुंचकर पहले चिता का निर्माण किया जाता था। उसका क्रम इस प्रकार होता था। पहले एक गड्ढा खोदा जाता था, जो बारह अंगुल गहरा पाँच अंगुलिश्त चौड़ा और मृतक के शरीर से करीब डेढ़ हाथ अधिक लम्बा होता था। उक्त गड्ढे के ऊपर पवित्र काष्ठ की चिता बनाई जाती थी। तदन्तर शव को पुनः नहला धुलाकर चिता पर सुलाते थे। इसके बाद निम्न मन्त्र का पाठ कर राजगवी का वध किया जाता था। इस बात का तैत्तिरीय आरण्यक में स्पष्ट कोई उल्लेख नहीं मिलता कि राजगवी का वध किस प्रकार किया जाता था पर इतना पता लगता है कि उसके पैर से लेकर सिर तक का सारा चमड़ा मृतक के शव को ऊपर से ढांकने के काम में आता था—

अथैनं चर्मणा सशीर्षबालपादपेन उत्तर लोम्ना प्रोर्णोति'

(तैत्तिरीय आरण्यक के उक्त स्थल का सायण भाष्य)

वध के अवसर पर गाय से जो प्रार्थना की जाती थी वह इस प्रकार है—

"पुरुषस्य सयावर्षपेदघानि मृज्महे। यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति।" [तैत्तिरीय आरण्यक ६। १। २। १०]

"पुरुषस्य स पावरि विते प्राणमसि स्रसं। शरीरेण महीमिहि स्वधयेहि पितृणप प्रजयाऽस्मानिहाबद्ध।" [तैत्तिरीय अरण्यक ६। १। २। ११]

"मैवं मास्ता प्रियेऽहं देवी सतो पितृलोकं यदैषि। विश्ववारा नभसा संव्ययन्त्युभौ नो लोकौ पयसाऽभ्याव वृतस्व।"

[तैत्तिरीय आरण्यक ६।१। २। १२]

अर्थात् "हे मृतात्मा की सहगामिनि! मैंने आपके द्वारा प्रेतात्मा के पाप का इस प्रकार शोधन किया है जिससे वृद्धावस्था अथवा पूर्वावस्था का कोई पाप हमारे पास न भटक सके।"

"हे मृतव्यक्ति की अनुगामिनि। हमने आपके प्राण नष्ट किए हैं। आप अपने दिव्य शरीर द्वारा भूमि और स्वधा द्वारा पितृलोक को प्राप्त कीजिए। इस भूतल पर पुत्रादि समेत हमारा अपराध क्षमा करना।"

"हे प्रिये! (राजगवि!) हितकारिणि! तुम मन में यह भाव मत लाना कि तुम मारी गई हो, क्योंकि तुम साक्षात् देवी और सती हो। द्युलोक से पितृलोक में आना जाना तुम्हारा काम है। अपनी सहज कृपा द्वारा इस लोक और परलोक में हमें क्षीरादि से परिपूर्ण बनाइये।"

राजगवी के वध की इस प्रक्रिया का प्रसंग आज के अहिंसक आर्य युग में बहुत ही निन्द्य तथा घोर पाप माना जायगा पर प्राचीन काल में गोवध का यज्ञ-यागादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यों में कोई निषेध लक्षित नहीं होता। यही नहीं उनके वध के अनेक प्रकरण यत्र तत्र भरे पड़े हैं। कालिदास ने मेघदूत[1] में जिस राजा रन्तिदेव की कीर्तिरूपा चर्मण्वती (चंबल) नदी के सत्कार की चर्चा की है वह गवालम्भ यज्ञादि में निहित गौओं के राशिरूप चर्म में लगे हुए रक्त के निष्पन्दों से ही उत्पन्न मानी गई है। इस विषय में टीकाकार मल्लिनाथ की भी स्पष्ट वाणी सुनिये—

"पुरा किल रन्ति देवस्य गवालम्भेष्वकृत्र संभृतार्द्रक्त निष्पन्दा च्चर्म राशेः काचिन्नदी सस्यन्दे। सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति।"

इसी प्रकार भवभूति के उत्तर रामचरित में भी 'वत्सरी मडमडायते' कहकर स्पष्ट ही मुनि द्वारा एक गाय की बछिया के चबाने का संकेत किया है।

इस प्रकार राजगवी के बध के अनन्तर शव के अंग-प्रत्यङ्गों पर यज्ञ के पात्र रखे जाते थे।

आश्वलायन के मतानुसार राजगवी का मांस भी काट-काटकर शव के सारे शरीर पर रखा जाता था। वध के अवसर पर यदि कोई उपद्रव या विघ्न पड़ जाता था तो राजगवी के बाएं पैर का खुर तोड़कर छोड़ देते थे। कहीं कहीं पर उक्त प्रसंग में मांस के अभाव में चावल अथवा जव का सना हुआ पिसान का पिण्ड रखते थे। संभवतः बाद में चलकर यही प्रथा पिण्डदान के रूप में प्रचलित हुई होगी, जो आज तक प्रचलित है। उक्त पिण्ड को अक्सर साँवाँ के चावल, तिल तथा जव के सने पिसान से आज भी बनाया जाता है।

इस पिण्डदान के उपरान्त मृतक के हाथ में, यदि वह ब्राह्मण है तो सुवर्ण खण्ड, क्षत्रिय है तो धनुष, और वैश्य है तो रत्न रखा जाता था। इसके बाद मृत व्यक्ति की विधवा नारी स्नानादि कर उसी चिता पर पति की बाईं ओर सो जाती थी। इस अवसर पर आश्वलायन ने पति के मस्तक के पास सोने की व्यवस्था दी है। शव में अग्नि देने से पहले पुरोहित अथवा मृतक का पुत्र, सहोदर अथवा अन्य कोई निकट का संबंधी चिता के समीप खड़ा होकर निम्न मंत्र पढ़ता था—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणञ्चेह धेहि॥ १३॥
[तैत्तिरीय आरण्यक ६। १। ३]

अर्थात्—'हे प्रेत! यह नारी पतिलोक प्राप्त करने की कामना से तुम्हारी मृत देह के पास पड़ी है। इसने सदा पति-परायण रहकर अपने समस्त धर्मों का यथेष्ट पालन किया है। अतः इस लोक में रहने की अनुज्ञा देकर अपनी प्रजा (सन्तति) और धन के यथेष्ट पालन के लिए मुक्त कीजिए अथवा उपयुक्त सन्तति लाभ और धन प्रदान कीजिए।' तदन्तर मृतक का छोटा सहोदर भाई अथवा कोई पुराना नौकर यह बात कहकर उस विधवा को हाथ पकड़कर चिता पर से उठा लाता था—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकयितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तमेतत् पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव। १४।
[तैत्तिरीय आरण्यक ६। १। ३]

अर्थात्—'हे नारि! आप अपने मृतक पति की बगल में क्यों पड़ी हैं? यहाँ से उठकर जीवित लोगों के पास चलिए। आपका जो पाणि पकड़ना चाहे उसके साथ रहना आपके लिए उचित होगा।' इस मंत्र के पढ़े जाने के बाद विधवा नारी पति के हाथ से सुवर्णादि निकालकर चिता छोड़कर सहगामियों के बीच में चली आती थी। किन्हीं किन्हीं के मत से पुरोहित और पुत्रादि सुवर्ण उठाते थे, विधवा पत्नी केवल उठकर चली आती थी। इस उपर्युक्त मंत्र को साम्प्रदायिकों ने अपनी संकुचित सीमा के मिथ्या अभिनिवेश से बाध्य होकर कई जगह से बदल दिया है जिसका कुछ दूसरा अर्थ भी हो जाता है। इस प्रसङ्ग पर इतना अधिक विवाद है कि किसी दूसरे अवसर पर उसका उठाना ठीक होगा।

इस प्रकार अन्त्येष्टि के उपर्युक्त आयोजनों के हो जाने के उपरान्त दास कर्म करनेवाला निम्न मंत्र का पाठ करके चिता में अग्नि स्थापन करता था—

"मैनमग्ने विदहो माऽभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।

१—व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्,
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥
पूर्व मेघश्लोक ४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...शृतं करवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः ॥
...ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा घाञ्च गच्छ पृथिवीञ्च धर्मणा ।
...पो वा गच्छ यदि तत्र ते द्वितमोषधिषु प्रतिष्ठिताः शरीरैः ।"

अर्थात्—'हे अग्नि देव ! देखना इसे एकदम जला-...भस्म मत कर देना । इसे जलाने में बहुत कष्ट मत ...चाना । जलाते हुए चमड़े अथवा शरीर को एकदम ...सकर व्याकुल मत कर देना । हे जात वेदस् ! इसके ...र को जलाने के उपरान्त तुम इसकी आत्मा को ...लोक में सुखपूर्वक पहुंचा देना ।

'हे प्रेत ! तुम्हारी आँखों की ज्योति सूर्य में आविष्ट ..., तुम्हारे प्राण वायु में मिलें । इसी प्रकार अपने कर्मा-...सार पृथिवी, आकाश अथवा जल—जहाँ कहीं जाने ... तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ जाओ और भिन्न भिन्न ...षधियों को प्राप्त कर पुनः शरीरधारी बनो ।

शव में अग्नि लगाकर उसे भली भांति जला दिया ...ता था फिर अग्निदाता चिता को उत्तर ओर तीन ...ढे बनाता था और उनके चारों ओर बालू और ...र रखता था । साथ के लोग सब उन गड्ढों को ...म संख्यक कलशों के जल से पूरित करते । और फिर ... सहगामी, जो चिता के एकदम आस पास रहते उसी ...स्नान करते । स्नान कर लेने के बाद अग्निदाता ...ढे के दोनों किनारों पर पलाश की दो लकड़ियां गाड़-... उनके अगले भाग को रस्सी से बांधकर मिला देते । ... जाति बिरादरी वाले उसे कूदकर लांघते अग्नि-... को सबसे आखीर में डांकना पड़ता था ।

इस प्रकार स्नानादि के उपरान्त श्मशान भूमि से वापस आने का दो प्रकार से नियम होता था । कहीं पर तो आकाश में तारा निकलने के समय तक ... लोग श्मशान में रहते थे और तब घर आते थे ... कहीं कहीं दूसरे सूर्योदय तक घर नहीं लौटते थे ।

इसके बाद अस्थि-चयन संस्कार होता था । यह ...-चयन शव-दाह के अनन्तर किस दिन या तिथि को ... किया जाता था इस पर भिन्न भिन्न आचार्यों के ... अपने मत हैं । वौधायन के मत से

"अपरेद्युस्तृतीयस्यां पंचम्यां सप्तम्यां वा अस्थीन् ...न्वन्ति" कहकर स्पष्ट ही स्त्री लिङ्ग विशेषण द्वारा तृतीया पंचमी वा सप्तमी तिथि का संकेत किया है । प्रश्न यह होता है कि यह तिथियां क्षेत्रों पक्षों की सामान्य तिथियां हैं व शवदाह के बाद की तीसरे, पांचवें वा सातवें दिन हैं ? आश्वलायन ने कृष्ण पक्ष की एकादशी, त्रयोदशी वा अमावस्या तिथि को अस्थि-सञ्चयन करने की व्यवस्था दी है । इस प्रकार आश्वलायन का मत आजकल सर्वथा उपेक्षित हो गया है, क्योंकि मृतक के शवदाह के तेरह दिन भीतर यदि कृष्ण पक्ष की उक्त तिथियां नहीं मिलतीं तो तेरही के बाद अस्थियों का सञ्चयन होगा जो समीचीन नहीं मालूम पड़ता । जो हो आजकल तो सामान्यतया तीसरे वा पांचवें दिन अस्थि-सञ्चयन कर दिया जाता है ।

अस्थि-संचयन के लिए प्रेतात्मा की चिता पर दुग्ध और जल के छींटे देकर एक पुनीत काष्ठ से राख में से हड्डियों को अलग किया जाता था । और इस प्रकार सारी हड्डियों को एकत्र कर राख चिता की दक्षिण ओर फेंक दी जाती थी । पीछे मृतक की विधवा पत्नी वहां पहुंचकर लाल और नीले धागे के छोर से पत्थर बांधकर उसी के द्वारा बाएँ हाथ से अस्थियां बांधकर उठा लाती थी । उस समय वह निम्न मंत्र का पाठ करते हुए मृतात्मा को सम्बोधित करती थी—

"उपतिष्ठाऽतस्तणुवं सम्भरस्व मेह णत्रमवहा मा शरीरम् ।
यत्र भूस्यै वृणु से तत्र गच्छ तत्र त्वा देवः सविता दधातु ।
इदन्त एकं पर उत एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।
संवेशनस्तनुवै चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ।"

अर्थात्—'हे मृतात्मा ! अब आप यहाँ से उठिये और नवीन शरीर धारण कीजिए ! यहाँ अपने मात्र अथवा शरीर का कुछ अंश छोड़ न जाइयेगा । आप यहाँ से जहाँ कहीं भी जाना चाहें, वहाँ जायँ । सविता देव वहाँ आप को सुखपूर्वक रखें । यह आपकी पुरानी अस्थियाँ हैं, अब आप तृतीय (अन्यान्य ?) अस्थियों के साथ मिलकर प्रकाशमान हों । आप अन्य उत्कृष्ट स्थानों में देवताओं के प्रेम-पात्र बनकर सुखपूर्वक निवास करें ।'

इस प्रकार अस्थि-चयन कर लेने के बाद उन्हें पवित्र जल से धोकर चिता के भीतर रखा जाता था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कहीं उन्हें कृष्णसार मृग के चर्म में बाँधकर रखने की व्यवस्था मिलती है। फिर अग्निदाता उस कुम्भ में मधु, दही एवं कुछ विशेष औषधियों को रखकर ऊपर से दूब द्वारा ढंक देता था और तब किसी पवित्र स्थान में पूर्व-पश्चिम लम्बा गड्ढा बनाकर उसीमें गाड़ देता था। तदनन्तर उस पर बालू पत्थर और ईंटें रखकर सँजो देता था। इस अस्थि-संचयन संस्कार का तात्पर्य मृतक के एक प्रतीक की रक्षा मालूम पड़ता है। पर आजकल यह प्रथा सामान्यतया लुप्त-सी हो गई है। अस्थियाँ आजकल किसी पवित्र तीर्थ में प्रवाहित कर दी जाती हैं।

अन्तिम संस्कार की उक्त वैदिक प्रथाओं का आज कोई अस्तित्व नहीं है। यह केवल अपने विकृत अवशेष में इतिहास की वस्तु बन गई हैं।

सुनो !

मुग़ल सम्राट अकबर

१—पहले मैं लोगों से इस्लाम क़बूल करवाता था लेकिन अब नहीं। अब जान गया हूँ कि मैं तो खुद ही इस्लाम को ठीक ठीक जानता मानता नहीं हूं—दूसरों को क़बूल करवाने का हक़ ही मेरे पास कैसे हो सकता है ?

❀

२—यदि मुझे कोई भी क़ाबिल आदमी मिल जाए, मैं अपना सारा राज-काज उसे फौरन सौंप दूँगा और शांति की जिन्दगी बसर करूँगा।

❀

३—आहार और निद्रा साधन हैं, साध्य नहीं।

❀

४—हिन्दू पनिहारिनें अपने सिर पर एक के ऊपर एक कई घड़े रख लेती हैं और ऊँची-नीची जमीन पर अपनी सखियों और संगिनियों से बातें करती हुई चलती हैं। उनके घड़े कभी नहीं गिरते। उनसे तुम सब्रक़ सीखो। दुनियां में हँसते, बोलते, चलते, फिरते तुम भी इसी तरह रहो और अपना मन अपने बनाने वाले में लगाए रहो।

❀

५—शोक ! सम्राट हुमायूँ की मृत्यु इतने शीघ्र हो गई और मैं उनकी कुछ भी सेवा न कर सका।

❀

६—अपने पेट को जानवरों की क़ब्र मत बनाओ।

❀

७—अगर कोई मेरे शरीर का मांस खाकर एक जानवर की जान छोड़ने को राज़ी है, तो मैं तैयार हूँ।

❀

८—क़साई और मछुए मेरी प्रजा से न मिलने पावें। और अगर मिलें तो उनको सज़ा मिलनी चाहिए।

❀

९—जितनी कम जानें तुम मारोगे, तुम्हें उतना ही कम पाप लगेगा। गोश्तखोरो, हाथी का गोश्त खाया करो।

❀

१०—बड़े आदमियों के नामों पर अपने बच्चों का नाम मत रखो। अपने बच्चों की मुहब्बत में फँसकर बड़े आदमियों का अपमान मत करो।

❀

११—नदी वही है जो साल भर बहती रहे।

❀

१२—सत्य वह है जो कान के रास्ते दिल में पहुंच जाए।

❀

१३—अगर शिष्य को गुरु से भी अधिक ज्ञान हो जाए तो भी उसे झुककर ही रहना चाहिए।

❀

१४—'मैंने खुदा को देखा है', इस वाक्य का ठीक ठीक अर्थ समझो। खुदा आंखों से नहीं दिखलाई पड़ता।

❀

१५—काले बाल भी सफेद हो जाते हैं। पतितों और पापियों को इस पर ग़ौर करना चाहिए।

❀

१६—मुझे अगर पहले ही आज जैसी अक़्ल मिल जाती तो मैं अपनी प्रजा की बहिन-बेटियों से शादी न करता। मेरी प्रजा तो खुद ही मेरी सन्तान के समान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीन बनाम नेशन

महात्मा भगवानदीन

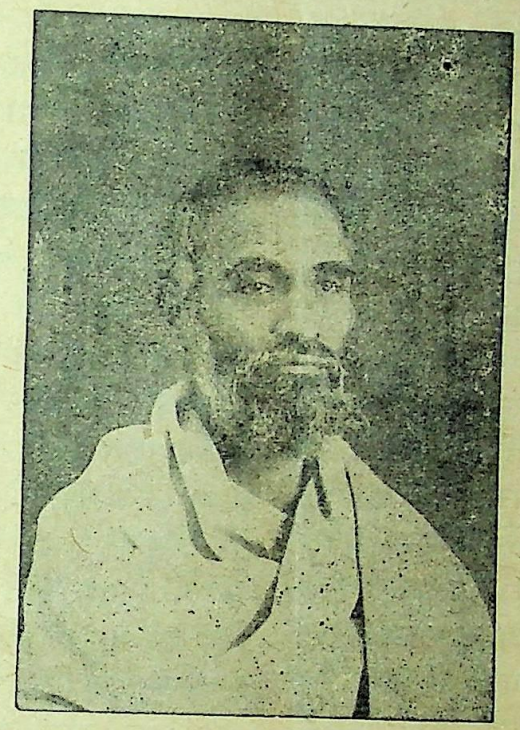

हिन्दुस्तानी बोली में नेशन के जोड़ का कोई लफ़्ज़ नहीं है. नेशन लफ़्ज़ हिन्दुस्तानी में घुल मिल गया है, अगर नहीं, तो घुला मिला लेना चाहिये.

नेशन से बड़े लफ़्ज़ हैं धर्म और दीन. हिन्दू, इसलाम, ईसाई धर्म हैं, नेशन नहीं. हिन्दू नेशन कह कर हिन्दू धर्म को बट्टा लगाना है. मुसलिम नेशन, या ईसाई नेशन जैसे जोड़ नहीं बन सकते. नेशन की उमर बहुत कम, दीन धर्म की उमर बहुत लम्बी होती है. नेशन का तन एक मुल्क होता है. धर्म का तन सारी दुनिया. ईसाई धर्म सारी दुनिया भर में फैला हुआ है, ईसाई-जर्मन-नेशन सिर्फ़ जरमनी में थी, जो अब बिखर गई है. धर्म दीन एक है अनेक नहीं, हर धर्म में सारे धर्म समाए हुए रहते हैं. हिन्दू धर्म में इसलाम, ईसाई, बौद्ध, जैन सभी धर्म समाए हुए हैं. इसलाम में हिन्दू, ईसाई, बौद्ध वग़ैरा सब मौजूद हैं. हर धर्म सब धर्मों को दोस्त मानता है. नेशन अनेक होती हैं, एक नहीं. एक नेशन में दूसरी नेशन नहीं समा सकती. नेशन आमतौर से फाड़खाऊ जमाव होता है. धर्म, मेल मिलाऊ. 'मिल्लत' अरबी बोली में धर्म का एक नाम है. नेशन बनना धर्म से गिरना है. नेशन बनना इस से इंकार करना है कि सारी दुनिया एक अल्लाह की है या सारे जगत का कोई एक मालिक है और इससे भी इन्कार करना है कि सब आदमी एक राम रहमान के बन्दे हैं. नेशन को आदमी खुदा के बन्दे नहीं दिखाई देते, भाई भाई तो बिल्कुल नहीं. इसी तो नेशन आदमियों को खाने को दौड़ती है. जो नेशन का पुजारी है वह धर्म का पुजारी नहीं. वह हिन्दुस्तानी हो सकता है, हिन्दू नहीं. अरब नेशनियत वाला इसलाम धर्मी होना ज़रूरी नहीं. हिन्दू धर्मात्मा, हिन्दू मुसलमान ईसाई सब को भाई समझेगा और उसी नाते उनको प्यार करेगा और झिड़केगा. ऐसा ही मुसलमान धर्मात्मा करेगा. सन्तरा जैसे सन्तरा है, उसे सिलहट, मालटा, नागपुरा ख़याल नेशन बात है. ठीक इस जमात धर्म धर्म है. उसे हिन्दू, इसलाम, ईसाई नामों से पुकारना बेकार है. नेशन नाम का जमाव अपने ढंग का निराला है. उस जैसी चीज़ और है ही नहीं. मिसाल किससे दें? दो नेशन मिलती हैं एक दूसरे को हड़प जाने के लिए. एक कहावत है, एक साँप ने दूसरे साँप की दुम मुंह में ली और दोनों एक दूसरे को खा गये. यह बात सच हो या न हो, पर यह सच है कि 'अ' नाम की नेशन 'ब' नाम की नेशन को खा सकती है और 'ब' नाम की नेशन 'अ' नाम वाली को, और दोनों ही ख़त्म हो सकती हैं.

नेशन बला साबित होती रही हैं और होती रहेंगी. यह ताक़त के भूकों की ईजाद हैं, संतोशी संतों की नहीं, अवतारों रसूलों की नहीं.

ऊंचे चाल चलन के लोग, धर्म रस में डूबे, एक अल्लाह के मानने वाले, सारी दुनिया की भलाई नज़र में रखकर, अगर ज़मीन के किसी हिस्से में बस जायें और एक सरकार बनाकर उस मुल्क नाम वाली नेशन से अपने को पुकारने लगें, तो ख़ुशहाल हो सकते हैं, और अपने ऊंचे चलने से बड़ी ताक़त बन सकते हैं, और सैकड़ों बरस नेशन बने जीते रह सकते हैं. उनके घर भरे पूरे होंगे. उनके मुल्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुख चैन का राज होगा. आस पास की नेशन उन्हें सराहेंगी, उनसे ताक़त पायेंगी. उनसे डरेंगी नहीं और न उन्हें डरायेंगी. दीनदार जमातें नेशन बनकर नेशन नाम को रौशन कर जाती हैं. गुस्सा, घमन्ड, बदले की आग से जलती जमातें नेशन बन कर नेशन का मुंह काला कर जाती हैं और दो चार दिन की शानदार ज़िन्दगी बिता कर ग़ुलामी के भंवर में ऐसी फंसती हैं कि फिर एड़ी चोटी का ज़ोर लगाकर भी नहीं निकल पातीं. मटियामेट हो जाती हैं.

इनसान बनने से पहले अगर कोई जमात या जमातें नेशन बनने की बात सोचती हैं तो वह नेश, लेकिन अब नहीं पातीं. आपस में ही फूट पड़ जाती हैं. अगर किसी तरह नेशन बन ही बैठीं तो ज़िन्दा नहीं रह पातीं. दीन धर्म इनसान में ईमानदारी की आदत डालता है. ईमानदारी के माने हैं इनसानी हमदर्दी यानी दिल को दिल से राहत और चाहत. अपने बच्चों और अपनी मादा से प्यार तो जानवर भी करते हैं. इतना प्यार इनसानी सिफ़त न हैऔर न हो सकता है. प्यार की यह हद तो हैवानियत है. इनसानी सिफ़त है अपनों के अलावा औरों को भी प्यार करना, इज़्ज़त की नज़र से देखना, उनके दुख दरद में शरीक होना. इसी सिफ़त के सहारे क़बीले क़ायम हुए हैं, इदारों की बुनियाद पड़ी हैं, संस्थाएं खड़ी हुई हैं, व्याह शादी के रिवाज चले हैं, कफ़नाने दफ़नाने दाह करने के तरीक़े निकले हैं, मन्दिर मसजिद तामीर हुई हैं, मदरसे खुले हैं, क्लब घरों ने जनम लिया है, मिल बैठने की आदतें पड़ी हैं. इन सब की जड़ में है सब्र, संतोष, त्याग, क़ुरबानी. यह सिफ़तें जानवरों में हैं पर बढ़ नहीं पातीं, अपनों तक रह जाती हैं और हैवान हैवान बने रह जाते हैं. दो कुत्ते एक मुर्दे पर लड़ते हैं, जो उनकी कई दिन की ख़ुराक हो सकता है, पर पाँच आदमी एक थाली में ख़ुश होकर खा लेते हैं वह चाहे उनकी एक वक्त की ख़ुराक भी न हो. यह है इनसानियत. यह आम तौर से दीन धर्म की किताबों से मिल जाती है. पर बाज़आदमियों में यह पैदायशी होती है. जिनमें यह पैदायशी होती है उनमें मरते दम तक रहती है. किताबों से सीखी जड़ पकड़ती भी है, नहीं भी पकड़ती. असल बात यह है कि इनसानियत नेशन बनने की पहली और ज़रूरी शर्त है. यह शर्त पूरी किये बग़ैर कोई जमात नेशन बनने की हक़दार नहीं और अगर बन गई तो दुनिया के लिए शायद, पर अपने लिए ज़रूर बला साबित होगी. दीनदार और धर्मात्माओं की नज़र में वह जमात ऊंची जगह नहीं पा सकेगी.

कोई जात नेशन नहीं बन सकती, कोई कुटुम्ब जात नहीं बन सकता. हमदरदी के गोंद से जुड़े कुटुम्ब जात बन सकते हैं. हमदरदी से जुड़ी जातें नेशन बन सकती हैं. दुनिया के परदे पर एक जात की कोई नेशन नहीं है. अगर है तो कुत्ते की मौत मरेगी. ईसाई जात ने यहूदी जात से मुहब्बत तोड़ कर जर्मन नेशन को क्या से क्या कर दिया! (यह यहाँ ख़याल रहे जब जब हम अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी कहते हैं तब तब हमारा मतलब हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी जात से होता है, धर्म से नहीं. जात के ख़ाने में सभी अपने को हिन्दू या मुसलमान लिखाते हैं. हिन्दू धर्मी, इसलाम धर्मी, ईसाई धर्मी यानी धर्मी दुनिया में बहुत कम मिलते हैं) हिन्दू, इसलाम, ईसाई, जैन, बौद्ध धर्म तो एक हैं और एक रहेंगे पर हिन्दुस्तान में तो इस वक्त हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध जात भी हैं, और हिन्दुस्तानी नेशन बनने के लिए सब को मुहब्बत के गोंद से जुड़ना ज़रूरी है. हिन्दू अपनी तादाद के सहारे अगर नेशन बनायेंगे तो जर्मन नेशन की तरह हाथ मल कर रह जायंगे. मुसलमान अगर अपने अक्खड़पन के सहारे नेशन बनायेंगे तो ऐसा पछतायंगे कि फिर कुछ बनाये न बन पड़ेगा. नेशन होती ही है जातों का जोड़ और कोरा जोड़ नहीं, दो तन और एक मन और एक जान वाला जोड़. नेशन आदमियों की एक तादाद का नाम नहीं है, नेशन कुटुम्बों की एक तादाद का नाम भी नहीं है, जातों की एक तादाद को भी नेशन नहीं कहा जा सकता. अलग अलग जातों में मिल बैठने की ज़ोर की ख़ाहिश नेशनियत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेशनेलिटी) कहाती है, और वह जब एक मुल्क में कोई हकूमत क़ायम कर लेती है तो नेशन नाम से पुकारी जाने लगती है. नेशनियत पहले, नेशन पीछे. लड़भिड़ कर नेशन नहीं बना करतीं. लड़ाई से, हाँ, नेशनियत को दबाये रखने वाले दल ख़त्म हो जाते हैं, और नेशनियत जाग उठ कर नेशन बनाने में लग जाती है. नेशन हमेशा नेशनियत का नतीजा होती है. नेशनियत और इनसानियत एक ही चीज़ हैं. कलकत्ते में हिन्दू और मुसलमान जात लड़ीं, हिन्दू धर्म और इसलाम नहीं. हिन्दू धर्म और इसलाम उस ख़ूनी कीचड़ से उठ कर कंवल की तरह खिल उठे. ऐसे हिन्दू और मुसलमान घराने नेशनियत के बीज हैं. वह जड़ पकड़ेंगे, फूलेंगे फलेंगे. हिन्दू धर्म और इसलाम ने उस मारकाट में खड़े होकर डंके की चोट कह दिया, 'जात जात लड़ो,' जात बहुत होती हैं, धर्म एक है और हम एक हैं, हम क्यों लड़ें ? हम प्यार से रहेंगे और प्यार से रहना सिखायेंगे.' जहां धर्म होता है वहाँ इनसानियत होती ही है. धर्म प्यास बुझाने की ताक़त है. इनसानियत प्यास बुझाना है. धर्म रोशनी की ताक़त है. इनसानियत रोशन हो उठना है. धर्म ख़याल है. इनसानियत अमल है. अगर कभी नेशन की बुनियाद पड़ी तो दीन धर्म वाली बची बचाई आत्माएं ही डालेंगी. हिन्दू और मुसलमान जात-वालों का बहा ख़ून शायद इस काम आ जाय कि और रूहों में नेशनियत जगादे. नेशनियत आयगी तभी नेशन बनेगी. आज कल की मारकाट का सीधा नतीजा नेशनियत नहीं है. सीधा नतीजा तो नेशनियत से दूर फेंक देना है. हां, दूर का नतीजा शायद नेशनियत निकल आए. जातों का मुहब्बत के डोरे में गुथ जाना नेशनियत कहाता है, और नेशन बनने के लिए ऐसा करना ही होगा.

दीनदार नेशन तो दुनिया का भला कर जाती है, पर बेदीन नेशन ख़ुद मिट्टी में मिलकर भी ऐसी बदबू छोड़ जाती हैं जिससे बरसों दुनिया वालों को तकलीफ़ भुगतना पड़ती है. किसी मुल्क की जमातों का दुनिया पर क़ब्ज़ा जमाने की नियत से एक होकर कोई सरकार क़ायम करना बेदीन नेशन बनाना है. यों नेशन नाम की चीज़ बड़ी गन्दी चीज़ है. दीन धर्म नेशन के आदमियों में अलग अलग रूह फूंकता है, और यह सिखाता है कि आदमी अलग भी कोई चीज़ है. नेशन के जाल में फंसे आदमियों की एक ही धुन होती है—'ताक़त, ताक़त, ताक़त !' सब के सब अपनापन भूल एक रंग में रंग जाते हैं. इनमें फ़रक़ होते हैं, पर उमर के, मर्द औरत के, बच्चे बूढ़े के. मिज़ाज के फ़रक़ मिट जाते हैं. जिसमें दीन धर्म की तालीम से जैसे ही ज़रा मैं-पन जागा उसने वैसे ही नेशन नाम की मशीन का पुरज़ा होने से इनकार किया, और फिर उस पर नेशन की आफ़त आई. 'ईश्वर एक और सब इनसान उसके बन्दे'—यह ऊंचा ख़याल नेशन की जड़ पर इस ज़ोर का कुल्हाड़ा जमाता है कि नेशन का ज़बरदस्त पेड़ एक चोट खाकर ही थर थर कांप उठता है. हज़रत मुहम्मद ने किसी अलग नेशन की बुनियाद नहीं डाली. वह तो अपने अल्लाह से यही संदेश लाए थे—"सब इनसान एक वाहिद उम्मत हैं." यही उन्होंने कहा और किया. औतारों, रसूलों, तीर्थङ्करों का जनम ही इनसानों की तफ़रीक़ को तोड़ने के लिए होता है. पहले चार ख़लीफ़ाओं के बाद अरबों ने अरब नेशन बनाली. भले ही वह कुछ दिनों दीनदार नेशन रही हो पर वह नेशन लोगों के दिलों में एक अल्लाह को न बिठा सकी. हज़रत मुहम्मद जो दूध-धर्म दे गए थे उसको बाद के ख़लीफ़ाओं ने बढ़ाया तो, पर दूध डाल कर नहीं. इसलाम आया था दुनिया को एक करने, ले बैठा अलग अलग शरीअतों के झगड़े 'अल्लाह एक है और दूसरा कोई नहीं है'—इतना ही अगर वह दुनिया वालों के गले उतार देता तो दुनिया कभी की एक होगई होती. पर मुशकिल यह हुई कि वह अरब नेशन में बदल गया, और नेशन जब ज़ोर पकड़ती है तब ऐसा मालूम होता है कि वह दौड़ में धर्म से भी बाज़ी ले जायगी. पर असल में ऐसा होता नहीं. वह लाखों बरस जमने की सोचती है और टिक नहीं पाती चार दिन भी.

बुरक़ा पहन कर सारी औरतें एक शकल की हो जाती हैं. नेशन के बुरक़े में सारे आदमी एक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाते हैं, एक ही नारा लगाते हैं—हम यह करके रहेंगे, हम वह करके रहेंगे, हम दुनिया भर में अपना झण्डा फहरायंगे ! नेशन की धुन में न जाने वह क्या क्या कह डालते हैं. नेशन वालों को अपने दिल दिमाग़ और देह ही दिखाई देते हैं और वह भी नेशन के हाथ बिक चुके होते हैं. आत्मा भी उनमें है यह उनको ख़याल ही नहीं रहता. और यह ख़याल जब किसी एक में भी आता है तो वह ऐसी बात कह बैठता है जो नेशन के जी लगती नहीं होती. और अगर वह ज़ोरदार साबित हुआ तो नेशन की तराज़ू की डंडी को किसी एक तरफ़ झुका देता है, और नेशन में हलचल मच जाती है. और लोगों में भी अपनापन जाग जाता है. दीन धर्म की तरफ़ तबियतें झुक जाती हैं. नेशन की बेदीनी को धक्का लगता है, और एक अजब हालत पैदा हो जाती है.

इनसानियत जब जाग जाती है तब ऊंची बातें सूझने लगती हैं. नेशन इस सूझ को सुलाए रखती है और आदमी को मशीन का पुर्ज़ा बनाए रखती है. इस चाल के ज़रिये वह आदमी से डूबतों की जान भी बचवा सकती है और डूबतों को और डुबा भी सकती है. एक बच्चे की जान बचाने के लिए वह आग में कुदा सकती है और उसी से एक बच्चा आग में फिकवा सकती है. इनसानियत जब जागी हुई होती है तब वह जान बचा सकती है, ले नहीं सकती. यों नेशन अलग अलग आदमियों के लिए बड़ी ख़तरनाक चीज़ है, इनसानियत की जानी दुश्मन है. उसके ईमान में इनसानी भाई चारा कुफ्र है.

आदमी में आदमीयत का बीज रहता है. वह अपने ढंग से फलता फूलता है. नेशन उस बीज को फूलने फलने से रोक देती है. आदमी के अपने मन की कुछ उमंगे ही नहीं रह जातीं. नेशन की उमंगों को उसे ज़बरदस्ती अपनाना पड़ता है. वह उमंगें चाहे उसके दिल से मेल खाती हों या न खाती हों. बहुत तो अपनी उमंगों को भूल ही जाते हैं, और नेशन मशीन के पक्के पुरज़े बन जाते हैं. फिर अपने पराए किसी को भी काटने में उन्हें कोई झिझक नहीं रह जाती.

आग से पानी की भाप बनती है. भाप की ताक़त का सब को पता है. आदमियों की भीड़ से एक और भी ज़ोरदार भाप पैदा की जा सकती है. उसका पता कम लोगों को है. नेता वह भाप बनाना जानते हैं. वह पहले आदमी को डराते हैं, फिर हिम्मत का जोश देते हैं. आदमियों की भीड़ चट भाप में बदल जाती है. किसी हिन्दू भीड़ से कहिये—'हिन्दू धर्म गया, तुम्हारे बाल बच्चे सब ख़त्म हुए, बचाओ अपने आप को' यह सुन कर हिन्दू भीड़ पानी पानी हो जायगी. फिर कहिये—'तुम राम कृष्ण की औलाद हो, अर्जुन भीम का तुममें ख़ून है, तुम क्या नहीं कर सकते !' यह सुनकर उसमें जोश आयगा और पानी बनी भीड़ भाप में बदल जायगी. अब आप उससे जी चाहे ज़ुल्म कराइये. ऐसे ही मुसलमान भीड़ को भड़काया जा सकता है. भीड़ में शामिल होकर आदमी की अक़ल पर परदा पड़ जाता है, दीन धर्म भाग जाता है. उस वक्त भी जिसकी अक़ल सही सलामत रहे वही सच्चा हिन्दू और वही सच्चा मुसलमान. नेशन समझती हैं कि वह धर्म से ज़िन्दा नहीं रह सकतीं. वह सचाई को ताक़त ही नहीं मानतीं. वह इनसान का धर्म इनसानियत हो नहीं मानतीं. वह तो इनसान को दो टांग वाला हैवान समझती हैं, और यों इनसान का धर्म हैवानियत मानती हैं.

अपनी अपनी जान सब को प्यारी होती है. यह जज़बा इनसानियत के जज़बों में से एक है. इसके बूते भलाई के काम हो सकते हैं, पर नेशन इस इनसानी भाव से और ही फ़ायदा उठाती है. वह आदमी को डराकर पहले उसे अपने घर का चौकीदार बनाती है, और जब वह हर उस आदमी पर टूट पड़ना सीख जाता है जो उसके मकान के पास होकर निकले, तब उस को पुलिस में ले लेती है या फ़ौज का सिपाही बना देती है. यों नेशन पके पकाए ज़ालिम आसानी से पा जाती है. घर के घर बे कौड़ी पैसे के ज़ालिम तय्यार करने के कारखाने बन जाते हैं. आदमियों की निगाहें दूर तक नहीं जातीं, उनके इरादे छोटे रह जाते हैं, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेशन नाम की छोटी सी जमात ही उनकी दुनिया हो जाती है.

दीन आदमी में बसे .खुदग़रज़ी के ज़हर को चूस लेता है. नेशन इसके ख़िलाफ़ आदमी में और भी .खुदग़रज़ी का ज़हर भरती है. मतलबी आदमी बहुत बुरा समझा जाता है, पर मतलबी नेशन बहुत अच्छी समझी जाती हैं. धर्मात्मा को मतलबी नेशन उतनी ही बुरी मालूम होती है जितना हम सबको मतलबी आदमी. नेशन यानी लुटेरों को पूजने वाली जमात. नेशन यानी बच्चों की जान लेने वाली जमात. नेशन यानी औरतों को बेइज़्ज़त करने वाली जमात. नेशन यानी मकानों में आग लगाने वाली जमात. किसी नेशन की कहानी पढ़ जाइये. वहां लुटेरों, जान लेने वालों की पूजा के सिवा कुछ न मिलेगा. अब नेशन और दीन साथ साथ कैसे बैठ सकते हैं. मतलबी का दीन मतलब, और नेशन होती है मतलबी, और उसको होना भी चाहिये, फिर उसको दीन धर्म से क्या लेना देना.

नेशन, बेशक, जैसी है वैसी ही रहेगी. हम 'दुनिया का मालिक एक, दुनिया के बन्दे एक' की आवाज़ उठाए ही जायंगे. हम नेशन के पुजारी नहीं बनेंगे. हम तो उन इक्के दुक्के के पुजारी ही रहेंगे जो इस दोज़ख़ बनी दुनिया में कभी कभी जन्नत की लहर उठा देते हैं.

लहर आप ही झुक जाएगी !

श्री उपेन्द्र

तूफानी नाविक, चरणों पर लहर आप ही झुक जाएगी !

क्या परवाह कि बढ़े चले निज साहस की पतवार लिए जब ;
खेल गए उठती लहरों पर पौरुष की तलवार लिए जब ;
सागर के गर्जन से ऊपर बोल रही हुंकार तुम्हारी ;
नयी आग पैदा कर देती जीत तुम्हारी, हार तुम्हारी ;
यों ही कुछ क्षण अट्टहास कर आंधी आप गुज़र जाएगी ;
तूफानी नाविक, चरणों पर लहर आप ही झुक जाएगी !

आन्दोलित हो रहीं दिशाएं अभी दूर वह मौन किनारा ;
तरी भँवर में खेल रही है शान्त अभी ऊच्छृङ्खल धारा ;
यह खामोशी कुछ ही क्षण में लाएगी तूफान भयङ्कर ;
बह जाएंगे तिनके उसमें खो देगा अस्तित्व किनारा ;
एक ज्योति फिर भी लहरों पर निश्चय तिरती रह जाएगी ;
तूफानी नाविक, चरणों पर लहर आप ही झुक जाएगी !

खून पसीना एक हुए कब एक हुई हिम्मत कुर्बानी ;
एक तुला पर तुले गए कब जलती ज्वाला, खारा पानी ;
एक साथ चल सके भला कब दिव्य प्रकाश गहन अंधियाली ;
यहां लहू से लिखी गई नित बलिदानों की अमर कहानी ;
एक फूंक से नभ की अक्षय दीप-मालिका बुझ जाएगी ;
तूफानी नाविक, चरणों पर लहर आप ही झुक जाएगी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षु निकाय और उसके सिद्धान्त

भिक्षु धर्मरक्षित "धर्मशास्त्री"

धर्म-प्रचार

भगवान् बुद्ध ने शिष्यों सहित अपने जीवन के पैंतालिस वर्ष तक पैदल घूम-घूमकर जिस धर्म का प्रचार किया; वस्तुतः वह उन्हींके जीवन काल में भारत के कोने-कोने तक फैल चुका था।

हम देखते हैं कि बुद्ध स्वयं पैदल चलकर उत्तर में हिमालय की तलहटी के सापुग[1] निगम और उसीरध्वज[2] पहाड़ तक, पूरब में कजङ्गला निगम के मुखेलु वन[3] तक, पूर्व-दक्षिण में सललवती नदी के तीर तक, तथा दक्षिण में सुंसुमारगिरि[4] आदि विन्ध्याचल के आसपास वाले निगमों तक, पश्चिम में मथुरा[5] और कुरु प्रदेश की राजधानी थुल्लकोट्ठित[6] तक पहुंचे थे। हमें यह भी विदित है कि आयुस्मान पुण्णम ने सूनापरान्त प्रदेश[7] के अम्बट्ठ पर्वत पर रहते हुए वाणिज्यग्राम (सम्भवतः बम्बई), समुद्रगिरि, मातुलगिरि, मकुलकाराम, आदि में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार किया था। अट्ठकथाचार्य कहते हैं कि भगवान् भी पाँच सौ ऋद्धिमान भिक्षुओं के साथ वहाँ गए थे। उन्होंने मार्ग में सत्यबन्ध पर्वतवासी एक परिव्राजक को भिक्षु-संघ में दीक्षा भी दी थी, जिसने बाद में उस प्रदेश में बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार किया। कहते हैं, बुद्ध ने नर्मदा नदी तथा सत्यबन्ध पर्वत की चोटी पर अपने पद-चिन्ह भी बना दिये थे।[8] तक्षशिला का राजा पुक्कुसाति भी बुद्ध के पास प्रव्रजित होने के लिए पहुंचा था[9] ग्वालियर, उज्जैन आदि प्रदेशों में महाकात्यायन ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। स्वयं वे उज्जैन के राजपुरोहित के पुत्र थे[10]। उत्कल (उड़ीसा) प्रदेश भी इससे अछूता न रहा[11]। कुक्कुटवती[12] का राजा कप्पिन और उसकी भार्या एक सौ बीस योजन चलकर श्रावस्ती में प्रव्रजित हुए थे।[13]

तात्पर्य, बुद्ध काल में ही बौद्ध धर्म के प्रचारक भारत के हरएक प्रदेश में पहुँच चुके थे और वे अपने पवित्र उद्देश की पूर्ति में सतत प्रयत्नशील थे। उनके कानों में सर्वदा बुद्ध की यह वाणी गूँज रही थी—

"मेरे धर्म-घोष का उद्घोषण करते,
मेरे धर्म-नगाड़े को पीटते,
भली भाँति मेरे धर्म-शंख को फूँकते,
तुम लोग देव और मनुष्यों की भलाई के लिए घूमो॥
संसार में मेरे विजय की ध्वजा उड़ाते,
मेरे धर्म-केतु को फहराते,
मेरे धर्म रूपी भाले को उठाते,
देव और मनुष्य लोकों में घूमो॥*

संघ-भेद का प्रयत्न,

ऐसा समृद्धि-प्राप्त धर्म भारत से क्यों विदा हो गया?

१—अंगुत्तर निकाय ४, ४, ५, ४

२—महावग्ग का चम्मक्खन्धक, सम्भवतः हरिद्वार के पास का कोई पहाड़

३—मज्झिम नि० ३, ५, १७ कंकजोल, संथाल परगना (बिहार)

४—मिर्जापुर जिला, बनारस कमिश्नरी।

५—अंगुत्तर नि० ५, २, १० (इस सूत्र में मथुरा के पाँच दोष दिखाये गए हैं)

६—मज्झिम निकाय १, ३, ३१ दिल्ली के आसपास का कोई तत्कालीन प्रसिद्ध नगर।

७—मज्झिम नि० ३, ५, ३

८—पपञ्चसूदनी ३, ५, ३, १४५

९—मज्झिम नि० २, ४, १४०

१०—अंगुत्तर नि० १०, १, ३, ६

११—पपञ्चसूदनी ३, २, ७

१२—सम्भवतः कटा या सिन्ध प्रदेश का कोई तत्कालीन समृद्ध नगर

१३—धम्मपदट्ठकथा ६, ४,

*"उग्घोसयन्ता मम धम्मघोसं,
समाहनन्ता मम धम्मभेरिं।
साधुं धमेन्ता मम धम्म सङ्घं
चराथ तुम्हे सनरामरानं॥
जयद्धजं मे भुवनुक्खिपन्ता,
उस्सापयन्ता मम धम्मकेतुं।
अथुक्खिपन्ता मम धम्मकुन्तं,
चराथ लोकेसु सदेवकेसु॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अनेक कारण थे। उन सब कारणों में मूलभूत जो था, वह केवल भिक्षु-संघ में आपस की फूट थी। जिसके सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध ने पहले ही कहा था—

(१) जब भिक्षु सूत्रों को ठीक से नहीं धारण करते, (२) बात मानने वाले नहीं होते, (३) धर्म जानने वाले दूसरों को ठीक से नहीं पढ़ाते, (४) स्वार्थी और जोड़ने-बटोरने वाले होते, तथा (५) संघ में फूट पैदा हो जाती है; तब सद्धर्म का अन्तर्धान अवश्यम्भावी होता है।[१४] प्रायः यह सब बातें क्रमशः भिक्षु संघ में आती गईं और उन्हींके अपराधों के कारण नये-नये दुश्मन उठ खड़े होते गए। जिससे ऐतिहासिक अनभिज्ञ नहीं। फलतः बौद्ध धर्म को भारत से विदा करने वाले पापी-भिक्षु भी अपने श्रमण-वेष को सम्हालने में असमर्थ हो गए।

यों तो बुद्ध के ही समय में देवदत्त और कोकालिक ने अजातशत्रु का मन पाकर भिक्षु संघ में फूट डालने का प्रयत्न किया था, किन्तु वे असफल रहे। कौशाम्बी का फूटा भिक्षु-संघ भी चार-पाँच महीने के भीतर ही अपने झगड़ों का निपटारा कर एक हो गया था।

भेद के चिन्ह और संगीति

बुद्ध महापरिनिर्वाण के बाद ही सुभद्र नामक एक नये बूढ़े भिक्षु ने पुनः भिक्षु-संघ के भेद की बात बोली थी। उसने कहा था—"आवुसो, मत तुम लोग फिक्र करो, मत ग़म खाओ। प्रसन्नता की बात है कि अब हम लोग उस श्रमण से छुटकारा पा गए। इसे सुनकर महाकाश्यप ने भिक्षु संघ को जमाकर सबको समझाया और बुद्ध वचनों को एकाबद्ध करने का परामर्श किया। फलतः उसी वर्ष वैदेहि पुत्र अजातशत्रु की देख रेख में राजगृह के वैभार पहाड़ की सप्तपर्णी नामक गुहा में महाकाश्यप प्रधान पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं द्वारा बुद्धोपदेशित सम्पूर्ण धर्म और विनय का संगायन किया गया। जिसे हम प्रथम सङ्गीति के नाम से जानते हैं।

उस प्रथम सङ्गीति में संगृहीत धर्म तीन भागों में बाँटा गया—जो सामाजिक, व्यावहारिक, और दार्शनिक वस्तु—प्रतिपादक होने के कारण विनय, सुत्तन्त और अभिधर्म कहे गए, जिन्हें हम त्रिपिटक नाम से पुकारते हैं। इनमें न केवल बुद्ध द्वारा कहे गए ही सूत्रों का समावेश हुआ, उनके कतिपय प्रधान शिष्यों के भी कुछ सूत्र संगृहीत किए गए। जो प्रायः बुद्ध के सम्मुख कहे गए थे और जिनका उन्होंने अनुमोदन किया था। पायासि राजन्य[१५] बक्कुल[१६] सुत्त आदि कुछ ऐसे भी सूत्र अङ्गीकार किए गए, जो बुद्ध महापरिनिर्वाण के पश्चात् कहे गए थे, किन्तु जिनका त्रिपिटक में होना लाजिमी समझा गया।

नये निकाय का जन्म

अजातशत्रु के पश्चात् एक शताब्दि के भीतर मगध के राजसिंहासन पर (१) उदयभद्र (२) अनुरुद्ध (३) महामुण्ड (४) नागदास और (५) सुसुनाग इन पांच राजाओं ने राज्य किया। इनके राज्यकाल में बौद्ध धर्म की कोई विशेष उन्नति या अवनति न हुई। सुसुनाग के बाद कालाशोक पाटलिपुत्र की गद्दी पर बैठा। उसके राज्य काल में वैशाली के भिक्षुओं ने विनय विरुद्ध दश बातों को अपनाया, जिसके कारण सम्पूर्ण भारत के भिक्षु संघ में खलबली मच गई। फलतः यश, रेवत, सब्बकामी आदि सात सौ प्रधान भिक्षुओं ने कालशोक की मदद से वैशाली के बालुकाराम[१७] में जमा होकर पुनः आठ महीनों तक त्रिपिटक का संगायन किया। संगायन में प्रथम सङ्गीति में आए दो लाख, पचहत्तर हजार, दो सौ, पचास (२,७५,२५०) ग्रन्थों[१८] का साङ्गोपाङ्ग समावेश हुआ।

द्वितीय सङ्गीति सम्बुद्ध परिनिर्वाण के ठीक सौ वर्ष बाद हुई थी, उस समय भारत में बारह लाख भिक्षु मौजूद थे। इस सङ्गीति में वैशाली के दश हजार पापी-भिक्षु बुद्ध शासन से निकाल दिये गए। उन बहिष्कृत भिक्षुओं ने अपना पक्ष मज़बूत करने के लिए "महासाङ्घिक" नाम से एक नये निकाय की सृष्टि की जिसे महासङ्गीतिक और महानिकायिक भी कहते हैं।[१९] कहते

१४—अंगुत्तर नि० ५, ४, २, ६

१५—दीघ निकाय २, १०

१६—मज्झिम नि० ३, ३, ४

१७—दीपवंस में "कूटागार शाला" नाम लिखा है

१८—यहाँ ग्रन्थ शब्द पुस्तक वाची नहीं, प्रत्युत अक्षरों के गिनने का एक पुरातन नियम है। एक ग्रन्थ में ३२ अक्षरें होती हैं—

अट्ठक्खरा एक पदा, गाथा एका चतुप्पदा।
बत्तिस अक्खरा गन्था, सम्बुद्धदेन पकासिता॥

१९—दीपवंसो ५,२,७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं इन्होंने अपने नये त्रिपिटक बनाये, सूत्रों तथा धर्मों में ऊटपटांग बातें लिखीं। त्रिपिटक में इन्हें परिवार, अभिधर्म के छः प्रकरण, प्रतिसम्भिदामार्ग, निद्देस, और जातक के कुछ भाग मान्य नहीं हुए। यहां तक कि इन्होंने अपने वेष, नाम, परिष्कार, ओढ़ने पहनने का ढङ्ग इत्यादि सभी बातों में परिवर्तन कर डाला।[२०]

इन्होंने बुद्ध सिद्धान्त के विरुद्ध नाना मतवाद पैदा किये। ये मानते थे कि सम्यक् आजीव 'रूप' हैं जिसे कि त्रिपिटक धर्म तीन विरति नाम से चैतसिक धर्म मानता है।[२१] ऐसे ही चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय—इन पाँच विज्ञानों से युक्त व्यक्ति के लिए मार्ग-भावना और उन्हें आभोग सहित मानते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति लौकिक और लोकोत्तर दोनों शीलों से युक्त होता है।[२२] उनका यह भी कहना था कि शील अ-चैतसिक भी होता है। वे मानते थे कि शील ग्रहण करने मात्र से शील की अभिवृद्धि अहर्निश होती रहती है।[२३] इस प्रकार अपने मिथ्या मतों से ये बिल्कुल बुद्ध धर्म से बहिष्कृत हो गए। इनके सिद्धान्तों की भली-भाँति जानकारी कथावत्थुप्पकरण से होती है।[२४]

जो भिक्षु त्रिपिटक धर्म के माननेवाले स्थविर परम्परा के असम्भिन्न प्रतिपादक थे, अब उनका नाम 'स्थविर निकाय' पड़ गया। जो आज भी लङ्का बर्मा और स्याम में मौजूद हैं।

इस तरह बुद्ध निर्वाण की दूसरी शताब्दि में प्रथम बौद्ध धर्म के भिक्षु, स्थविर तथा महासङ्घिक—इन दो निकायों में बँट गए।

निकायों की बाढ़

थोड़े ही दिन पीछे महासाङ्घिक निकाय से दो और नये निकाय फूट निकले (१) गोकुलिक (२) एकव्यावहारिक।

गोकुलिक सम्भवतः मथुरा के आस पास के रहने वाले थे। इनका मत था कि सभी संस्कार भउरे और अंगार के समान जल रहे हैं।[२५] जहां कि त्रिपिटक सुख और दुःख दोनों को स्वीकार करता है। एकव्यवहारिक निकाय भी अपना एक नया ही सिद्धान्त प्रज्ञप्त करता था, जो महासाङ्घिकों के भी विरुद्ध था।

गोकुलिक निकाय से भी दो अन्य आचार्य कुल उठ खड़े हुए—प्रज्ञप्तिवादी और बाहुलिक। इन्हींको बहुश्रुत भी कहते हैं। उनसे भी 'चैत्यवादी' नाम का एक नया निकाय फूट निकला। इनमें विशेष अन्तर न होने कारण हम नहीं जान पाते कि महासाङ्घिकों से किन-किन बातों में इनकी प्रतिकूलता थी।

इस तरह बुद्ध निर्वाण से लेकर लगभग दो सौ वर्ष के भीतर महासाङ्घिक निकाय से उक्त अन्य पांच निकाय उत्पन्न हो गए। जो उनके साथ छः होते हैं।

ठीक उसी समय इधर स्थविर निकाय से भी दो नये निकाय फूट पड़े—अहिंसासक प्रति संख्या और अप्रतिसंख्या। इन दोनों निरोधों को एक कर निरोध सत्य कहते थे,[२६] जहां कि त्रिपिटक एक ही निरोध (निर्वाण) मानता है। इनका कहना था कि प्रतीत्य समुत्पाद असंस्कृत है जो कि बुद्ध धर्म में प्रत्ययों से उत्पन्न संस्कृत माना जाता है।[२७] इनका मत था कि आकाश असंस्कृत है,[२८] जिसे कि त्रिपिटक अजटाकाश को संस्कृत और परिच्छेदाकाश तथा कृत्स्नाकाश को प्रज्ञप्ति मात्र मानता है।[२९] इनका अपना वाद था कि

२०—इनके सिद्धान्तों के लिए देखिए कथावत्थुप्पकरण (१) २,१०,२ (२) २,१०,३-११, (३) ३,११,१-४ (४) ३,११,७ (५) ३,१२,१-४ (६) ३,१४,१ (७) ३,१५,१-३ (८) ३,१५,५ (९) ४,१६,१ (१०) ५,२१,८

२१—"नामं लिङ्गं परिक्खारं, आकप्पकरणी यानि च।
पकतिभावं जहेत्वा, तञ्च अञ्ञं अकंसु ते॥"
दीपवंसो ५,२,७७

२२—कथावत्थुप्पकरणं २,१०,२

२३—वही २,१०,६

२४—वही २,१०,९

२५—वही १,२,८

२६—वही १,२,११

२७—वही २,६,२

२८—अभिधर्म कोश (वसुबन्धु कृत) में भी आकाश को असंस्कृत माना गया है, जो बुद्ध धर्म के विरुद्ध है। "आकाशं द्वौ निरोधौ च"—१,५

२९—वही २,६,६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म, वाक् विज्ञप्ति से उत्पन्न रूप ही कायकर्म और वाक्कर्म है, वह कुशल विज्ञप्ति से कुशल और अकुशल विज्ञप्ति से अकुशल होता है।[३०] यह तीनों विरतियों को रूप मानते थे, जो कि चैतसिक धर्म हैं।[३१]*

वात्सीय पुत्रों का मत था कि अर्हत् भिक्षु भी अपने अर्हत्व से च्युत होता है,[३२] जो बुद्ध धर्म के सर्वथा विपरीत था।

वात्सीय पुत्रों से भी चार और निकाय प्रादुर्भूत हुए—धर्मोत्तरीय, भद्रयानिक, छन्नागारिक और सम्मितीय। इनमें धर्मोत्तरीय और छन्नागारिक निकायों का कोई विशेष अपना सिद्धान्त न था, यदि रहा भी हो, तो हमें उसका ज्ञान नहीं। भद्रयानिक अर्हत्व की प्राप्ति क्रमशः मार्गों से क्लेश प्रहाण के पश्चात मानते थे, यह उनका मत नाना अभिसमय का प्रतिपादक था।[३३] जो बुद्ध धर्म के बिल्कुल प्रतिकूल होता है क्योंकि अभिसमय एक क्षण में होता है न कि नाना क्षणों या कालान्तरों में।

सम्मितियों के विरुद्ध वाद का हिसाब-किताब बड़ा विस्तृत था। ये अर्हत् की च्युति स्वीकार करते थे।[३४] इस लोक में ब्रह्मचर्य्यवास को नहीं मानते थे।[३५] क्लेशों का प्रहाण टुकड़े-टुकड़े करके इन्हें मान्य था।[३६] इनका कहना था कि अनागामी की काम-लिप्सा पृथक्जन अवस्था से ही दूर हो गई होती है।[३७] ये भी नानाभिसमय के हामी थे। इनका कहना था कि गोत्रम् अवस्था वाले व्यक्ति की भी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया है।[३८] ये मानते थे कि चतुर्थ ध्यान की अवस्था में यही मांस-चक्षु ही दिव्य चक्षु हो जाता है।[३९] ऐसे ही दिव्य श्रोत भी। इस प्रकार वे अपने नाना मिथ्या मतों से सारे बुद्ध धर्म को कलंकित कर रहे थे*।

उन्हीं दिनों महिंसासक निकाय से भी सर्वास्तिवादी तथा धर्म गुप्तिक नाम के दो निकाय पैदा हुए। जिनमें सर्वास्तिवादी भी अर्हत् की च्युति स्वीकार करते थे।[४०] इनका कहना था कि सभी भूत, भविष्यत्, वर्तमान् के धर्म अपने स्कन्ध के स्वभाव को नहीं त्यागते, वे सभी सर्वदा मौजूद रहते हैं।[४१] ये भी नानाभिसमय को मानते थे। एक चित्त-क्षण में भी उत्पन्न एकाग्रता को समाधि न मानकर, इन्हें चित्त-सन्तति ही समाधि मान्य था।[४२] उक्त इनके सभी सिद्धान्त बुद्ध धर्म के विरुद्ध, किन्तु उसके प्रतिरूपक थे। धर्म गुप्तिकों की भी अपनी कोई इनसे विशेषता थी।

कुछ समय बाद सर्वास्तिवाद से भी काश्यपीय और काश्यपीय से सङ्क्रन्तिक तथा सङ्क्रन्तिक से सूत्रवादी निकाय प्रादुर्भूत हुए। जिनमें काश्यपीय निकाय अतीत की किसी-किसी बातों को वर्तमान होने का दावा करता था।[४३] और यही उसकी विशेषता थी। सङ्क्रन्तिक और सूत्रवादियों के बाद की हमें जानकारी नहीं, क्योंकि इनका विशेष दार्शनिक मतभेद नहीं था, जो था वह सामाजिक अर्थात् विनय सम्बन्धी।

इस प्रकार थोड़े समय के भीतर ही स्थविर निकाय से फूटकर यह ग्यारह आचार्य कुल अथवा निकाय बने जो स्थविर निकाय के साथ बारह होते हैं। वस्तुतः बुद्ध निर्वाण की दूसरी शताब्दि में ही बौद्ध धर्म का भिक्षु-संघ अठारह निकायों में बँट गया था—

३०—वही २,८,२
३१—वही २,१०,२
* इनके सिद्धान्तों के लिए देखो कथावत्थुप्पकरण शेष कथा—
(१) ४,१६,७ (२) ४, १८,६ (३) ४,१९,८ (४) ५,२०,५।
३२—वही १,१,२
३३—वही १,२,९
३४—वही १,१,२
३५—वही १,१,३
३६—वही १,१,४
३७—वही १,१,५
३८—वही १,३,५
३९—वही १,३,७
४०—वही १,१,२
४१—वही १,१,६
४२—वही ३,११,८
४३—वही १,१,८
* इनके शेष सिद्धान्तों के लिए देखिये कथावत्थुप्पकरण की कथा (१) २,७,५ (२) २,८,२ (३) २,८,७ (४) २,८,९—११ (५) २,१०,१० (६) ३,११,१—३ (७) ४,१६,७—८ (८) ४,१८,७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

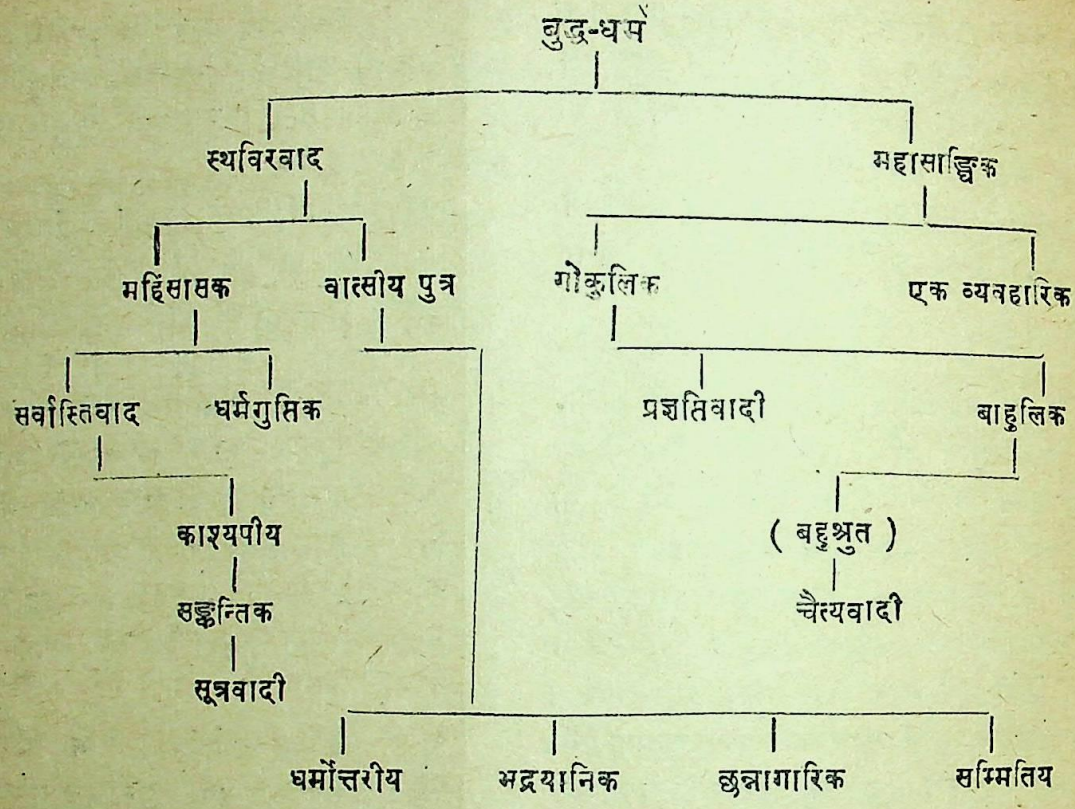

निकायों का सर्वनाश

द्वितीय सङ्गीति के समय में जो भिक्षु संघ से बहिष्कृत हुए थे, उन्होंने धीरे-धीरे अपनी काफी धाक जमा ली। कलाशोक के पश्चात् धर्माशोक ने फिर भिक्षु संघ के सुधार पर ध्यान दिया। उसने मौद्गलिपुत्र तिष्य नामक अर्हत् भिक्षु की प्रार्थना कर तीसरी सङ्गीति कराई। यह सङ्गीति पाटलिपुत्र के अशोकाराम नामक विहार में हुई थी। कहते हैं उस समय स्थविरवाद के विरुद्ध सभी निकाय वालों का मर्दन किया गया। और वे गृहस्थ बना दिये गए। क्योंकि इनमें प्रायः बौद्ध धर्म के विरुद्ध शाश्वत, एकान्तशाश्वत, सान्तानन्त, अमर विक्षेप, अधिपत्यसमुत्पन्न, संज्ञी, असंज्ञी, नैवसंज्ञी, उच्छेद, दृष्ट धर्म निर्वाण आदि वादों के मानने वाले थे। वस्तुतः इनके सिद्धान्तों की जाँच-पड़ताल के लिए ही कथावत्थु-प्पकरण की रचना भी हुई थी।

फिर नये निकायों का प्रादुर्भाव

तृतीय सङ्गीति (बुद्धाब्द २३६) के बाद ही और भी नये नये निकायों का जन्म हुआ। जिनके नाम हैं— हैमवत, राजगिरि, सिद्धार्थिक, पूर्वशैलीय, अपर शैलीय, वाजिरिय, वैतुल्य, अन्धक, और अन्य महासाङ्घिक। जिनके अपने सिद्धान्त-प्रतिपादक नये ग्रन्थ थे। कहते हैं, हैमवतिकों ने बुद्ध धर्म के प्रतिरूपक प्रीति ग्रन्थ "वर्ण-पिटक" की रचना की। राजगिरि वालों ने 'अङ्गुलिमाल-पिटक', सिद्धार्थिकों ने 'गूढ़नेस्सन्तर', पूर्व-शैलियों ने "रट्ठपाल गज्जन", अपरशैलियों ने 'आलव-गर्जन', वाजिरिय भिक्षुओं ने (१) गूढ़-विनय, (२) माया-जाल तन्त्रम् (३) समाज-तन्त्रम् (४) महासमय तत्व (५) तत्व-संग्रह (६) भूत-चामर (७) वज्रामृत (८) चक्रसंवर (९) द्वादश-चक्र (१०) भेरुकाद्बुद (११) महामाया (१२) पद-निःक्षेप (१३) चतुष् पिषट (१४) परामर्द (१५) मरीच्युद्भव (१६) सर्वबुद्ध (१७) सर्व गुह्य (१८) समुच्चय (१९) मरीचि कल्प (२०) हेरम्ब कल्प (२१) श्रि समय कल्प (२२) राज कल्प (२३) वज्रगन्धार कल्प (२४) मरीचि गुप्त कल्प (२५) शुद्ध समुच्चय कल्प (२६) माया मरीचिकल्प इत्यादि अनेकों ग्रन्थों की रचना की।

वैतुल्य वादियों ने वैतुल्य-पिटक बनाया। ऐसे ही अन्धकों ने रत्नकूट आदि शास्त्र। अन्य महासाङ्घिकों ने अक्षर-सारिय आदि। इन नये निकायों में से वैतुल्यवादी

* देखिये सिंहली "निकाय संग्रह" का चतुर्थ परिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाजिरिय वादी और रत्न कूट वादी—यह तीन निकाय लंका में उत्पन्न हुए थे।

कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा के अनुसार पूर्व-शैलिय, अपरशैलीय, राजगिरि और सिद्धार्थिक—यह चार निकाय अन्धक-निकाय के अन्तर्गत ही हैं।[४४] इनके सिद्धान्तों का विवेचन भी वहीं जानना चाहिए।

लङ्का में

बुद्ध परिनिर्वाण के चार सौ चौवन वर्ष बाद—जब कि 'वलगम् अबा' नामक राजा लंका में राज्य कर रहा था—भारत के पल्लराराम नामक विहार से 'धर्मरुचि' महास्थविर लङ्का पहुंचे, जो वात्सीय पुत्र निकाय के थे। उन्होंने अपने नाम से एक नये निकाय का आरम्भ किया, जिसका प्रधान स्थान था अनुराधपुर का अभय गिरि विहार।

धर्मरुचि निकाय के पश्चात् व्यवहार तिष्य के राज्य काल में एक भारतीय वैतुल्यवादी भिक्षु द्वारा यहां वैतुल्यवाद ने भी जोर पकड़ा। जो उसी समय उसके राज-मंत्री कपिल द्वारा धर्मरुचि निकाय के साथ ही बरबाद कर दिया गया। उसके बाद भी सागलिय निकाय और वाजिरिय निकाय पैदा हुए। जो मत्वत्नसेन के समय से अज्ञान वश फैल रहे थे।

एक विचित्र निकाय

जिस समय लङ्का में कुमारदास नामक राजा राज्य कर रहा था, ठीक उसी समय दक्षिण भारत में मदुरा की राजगद्दी पर श्रीहर्ष सुशोभित था। कहते हैं, इसी समय सम्मितिय निकाय का एक दुरात्मा भिक्षु रात्रि में चीवर उतारकर नीले वस्त्र धारण कर वेश्या के पास जाया करता था। एक रात्रि वह भूल वश वेश्या-गृह से लौटने पर नीले वस्त्र बिना उतारे ही सो रहा। सबेरे शिष्यों तथा अन्य भिक्षुओं ने नील-वस्त्रधारी आचार्य को देख दांतों तले अंगुली दबाई और इसका कारण पूछा। उसने उसकी प्रशंसा में 'नीलपट दर्शन' नामक ग्रन्थ की रचना कर डाली। जिसमें वेश्या, सुरा पान, कामदेव सम्बन्धी नाना श्लोक थे, जिन्हें कि रत्न कहा गया था। यथा-

"वेश्या रत्नं सुरा रत्नं देवो मनोभवः।
रतद्रत्नत्रयं वन्दे ह्यन्यत्काचमणित्रयम्॥

जब यह ग्रन्थ श्री हर्ष के हाथों में पहुँचा तब उन्होंने उसे बुलवाया और पूछा। उस भिक्षु ने राजा को समझाते हुए कहा—

"न किं पिबसि दुर्मेध! नारकं गन्तुमिच्छसि?
लवणोदक संयुक्तास्सुरासस्वर्गेपि दुर्लभाः॥"

कहते हैं श्री हर्ष ने ग्रन्थ रचयिता के साथ उसके सभी अनुगामियों को आग में झोंक मारा था।

महायान का भुलौवा

बहुत से निकाय उत्पन्न हुए और नाश हो गए, किन्तु स्थविर परम्परा से चला आता असम्भिन्न स्थविर निकाय आज तक अपने ग्रन्थों के साथ मौजूद है। पाठकों के सामने महायान का भुलौवा बरवश आ पहुंचेगा और अवश्य यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि उक्त वर्णित निकायों में हमारे चिर परिचित महायान तथा हीनयान क्यों नहीं आये? इसका कारण यह है कि महायान धर्म के सारे सिद्धान्त उक्त निकायों में ही आ गए हैं। महायानियों ने अपने पूर्व का नाम का परिवर्तन कर अपने को महायानी और स्थविर वादियों को हीनयानी बताया। उन्हें केवल स्थविरवाद की निन्दा अपेक्ष्य थी, वस्तुतः लङ्कावतार सूत्र जैसे ग्रन्थों की रचना उसका ही फल है। स्थविर निकाय कभी भी 'हीनयान' शब्द अङ्गीकार नहीं कर सकता, क्योंकि भगवान बुद्ध के ही वचनों में "निर्वाण-प्राप्ति के लिए केवल एक मार्ग है और है वह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग[४५]। सबके निर्वाण प्राप्ति में असदृश्यता भी नहीं होती। निर्वाण प्राप्त व्यक्तियों में हीन ऊँच का स्थान नहीं। सुमना देवी के पूछने पर बुद्ध ने कहा था कि "सुमने! विमुक्त होकर विमुक्त (निर्वाण) पाये का मैं फर्क नहीं कहता।"[४६]

महायानियों का कथन है कि (१) श्रावक बोधि (२) प्रत्येक बोधि तथा (३) सम्बुद्ध—इन तीन बोधियों (ज्ञानों) में हम लोग न तो श्रावक-ज्ञान के इच्छुक हैं और न प्रत्येक बुद्ध ज्ञान के ही। हमें केवल बुद्धत्व ही प्रार्थित है। बुद्धत्व के लिए चार असंख्येय कल्पों में संचित पुण्य-सम्भार की आवश्यकता है, श्रावक् बोधि के लिए ऐसा नहीं, अस्तु, हमारा मार्ग बहुत दीर्घ है

४४—देखिए १,१,९

४५—धम्मपद २०,१ ४६—अंगुत्तर नि० ५,२,४,१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और श्रावक् बोधि-प्रार्थित जनों का लघु। इसलिए हम महामार्गी अथवा महायानी हैं और दूसरे लघुमार्गी अर्थात् हीनयानी हैं। स्पष्ट है कि यह 'हीनयान' शब्द स्थविर वादियों के शिर बलात्कार थोपा गया है।

महायान कब उत्पन्न हुआ और कहाँ से आया? जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो स्पष्ट दीखता है कि महायान यथार्थ में महासाङ्घिकों के छः निकायों का रूपान्तर मात्र है, जिन्हें कि महासंङ्गीतिक और महानिकायिक भी कहते हैं। इसकी पुष्टि "महावस्तु" से हो जाती है। आज महायान के उपलब्ध ग्रन्थों को देखने से जान पड़ता है कि इन्होंने किस प्रकार स्थविर-वाद से अपनी श्रेष्ठता का वर्णन किया है और कैसे बुद्ध की मूल शिक्षाओं का उलंघन कर डाला है। इनके ग्रन्थ हैं—(१) महावस्तु (२) लङ्कावतार (३) तथागतगुह्यकम् (४) सद्धर्मपुण्डरीकम् (५) प्रज्ञापारमिता (६) दशभूमीश्वरः (७) गण्डव्यूहः (८) समाधिराजः (९) सुवर्ण प्रभासः (१०) ललितविस्तर आदि।

सम्प्रति

सम्प्रति लङ्का, बर्मा, श्याम और कम्बोज आदि स्थविरवादी देशों में श्याम निकाय, अमरपुर निकाय, रामाण्य निकाय, स्वेजिंग निकाय आदि बहुत से छोटे बड़े निकाय हैं, यहाँ तक कि केवल अमरपुर निकाय में ही चौबीस आचार्य कुल हैं, किन्तु सिद्धान्तों में अन्तर नहीं है, केवल खान-पान, ओढ़ने-पहनने आदि में ही थोड़ी-थोड़ी विशेषतायें, हैं। फिर भी ये साङ्घिक कर्मों में सर्वथा अलग होते हैं। महायान में भी वज्राचार्य, गुप्तक, मंजुश्री, समाजतंत्री आदि कतिपय भेद हैं और उनके अपने-अपने रस्म रिवाज अपने लिए ही सीमित हैं।

गान्धी जी की एक और झांकी

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक

हर वर्ग और हर धर्म के लोगों की भीड़ एक पब्लिक हाल में ठसाठस भरी हुई थी। सन्ध्या का समय था। गो धूल बेला थी, जब खेतों से चरकर गाय अपने अपने थानों में लौट रही थीं। उनके पैरों से ठोकर खाकर धूल बादल बनकर उड़ रही थी और दिन भर की थकी माँदी दुनिया को अपनी पवित्रता से ढक रही थी। हाल में उपस्थित जनता उत्सुक हृदय उस दिन के मेहमान की बात सुनने की प्रतीक्षा में थी। मेज़बान ने सारे शहर की तरफ़ से मेहमान का स्वागत करते हुये परिचय दिया था कि मेहमान एक ऐसे गुरू हैं जिन्होंने अपनी आत्मा के साथ साक्षातकार किया है, वे एक बहादुर योधा, और चतुर बनिया हैं। उस दिन के मेहमान महापुरुषों के योग्य नम्रता की मूर्ति थे, वे सदा सच्चिदानन्द की तलाश में रत रहे हैं। वे वेदव्यास की तरह जिज्ञासु, भीष्म पितामह की तरह योद्धा और बाज़ार में बैठने वाले नानक की तरह आत्मदर्शी थे। सत्य की राह में ये विविध रूप मिलकर उनके अन्दर प्रकाशवान हुये थे।

अन्त में पुष्पहारों से भूषित, उस दिन के मेहमान, जो स्वयं गान्धी जी ही थे उत्सुक जनता के सामने व्याख्यान देने खड़े हुये। ये उनके पहले वाक्य थे।

"जलसे के सभापति ने मुझे इस बात के लिये सराहा है कि मैंने अपने जीवन में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों का सन्तुलन किया है। किन्तु उन्होंने मेरे चरित्र की बुनियादी चीज़ को नज़र अन्दाज़ किया है कि मैंने सदा एक ऊँचे शूद्र-मानवता के सेवक—बनने की आकांक्षा की है...।"

उस समय स्वर्ग की सुनहरी छत से वे रजत आत्माएँ जिन्होंने प्राचीन काल में प्रगति के दुर्गम पथ पर मानवता का मार्ग प्रदर्शन किया था, एक स्वर में बोल उठीं—"तुम हममें से एक हो और हमेशा हमेशा के लिये तुम्हारी जगह हमारे बीच में सुरक्षित है।"

जनता ने बेशक यह गुप्त वार्ता नहीं सुनी किन्तु जब उसने हर्षोन्माद से तालियां बजाईं तो मानो वह अवचेतन दशा में उस युगों के सत्य का समर्थन कर रही थी कि—

"जो बड़ा होना चाहे उसे सेवा करनी चाहिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी और उनकी सालगिरह

श्री मंज़रअली सोख़्ता

अक्तूबर की दूसरी तारीख़ महात्मा गांधी की साल गिरह का दिन है। हमारा देश उस दिन को ऐसे मनाता है जैसे कोई बड़ा त्यौहार हो। हज़ारों मीटिंगें देश भर में होती हैं। लाखों आदमी चरख़ों पर जुट जाते हैं। लाखों सड़कें साफ़ करते हैं, गांव में झाड़ू लगाते हैं और वहां की गन्दगी उठा उठाकर फेंकने में न उन्हें नफ़रत होती है न उसमें अपनी तौहीन समझते हैं। यह सारी धूमधाम दो दो हफ़्ते तक जारी रहती है। महात्मा गांधी में क्या बात है कि उनसे देश को इतनी गहरी मुहब्बत है? सारा देश क्यों उनकी दिल से इज़्ज़त करता है?

इस मुहब्बत और इज़्ज़त की असली वजह यह है कि इन ७७ वर्षों में से लगभग ५० साल महात्मा गांधी ने हमारी सेवा में ख़र्च किए हैं, किसी एक की नहीं देश की, संसार की सेवा में और सेवा भी कैसी जिसमें उन्होंने अपना घरबार दौलत, ताकत, सुख, चैन, बीवी, बच्चे सभी हम पर निछावर कर दिये। सच्ची सेवा में ही यह शक्ति है। वह एक तरफ़ तो सेवक को महान आत्मा बना देती है और दूसरी तरफ़ हर इन्सान को उसका प्रेमी और भक्त बना देती है।

इस महान आत्मा की ज़िन्दगी इसी अटल सिद्धान्त की ज़िन्दा मिसाल है। जो लोग भी इस सिद्धान्त को अपनाते और इस पर चलते हैं वह दुनिया में अपनी ज़िन्दगी के ऊँचे मक़सदों में हमेशा कामयाबी पाते हैं।

महात्मा गांधी की ज़िन्दगी को जब हम इस असूल की रोशनी में देखते हैं तो हमें उनकी कामयाबी की असली वजह समझ में आ जाती है। इनकी मुट्ठी भर मांस और हड्डियों का पिंजर एक मामूली इंसान से भी गया गुज़रा है। मगर आज इसी शरीर का तेज चारों तरफ़ फैला हुआ है और इसकी रोशनी दुनिया के कोने कोने में पहुँच रही है।

महात्मा गांधी की सेवाओं का घेरा देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ है और इन सेवाओं का अमृत रस गंगा और जमुना की फैलती हुई लहरों की तरह हमारे समाज के हर दायरे को सींच और पनपा रहा है। बरसों दक्षिणी अफ़रीक़ा में वहां की हुकूमत के ज़ुल्म सहकर वहां के गोरे रहने वालों को मारें और ठोकरें खाकर बार बार जेल जाकर और अपनी जान को ख़तरों में डालकर महात्मा गांधी ने अपने लाखों देश भाइयों की बहुत-सी मुसीबतों और ज़िल्लतों को कम किया, उसी लड़ाई के दौरान में सत्य और अहिंसा की बुनियाद बनाकर उन्होंने सत्याग्रह का एक ऐसा ज़बरदस्त हथियार तैयार कर लिया जिसकी मदद से पश्चिम की हुकूमतों की फौजों और हथियारों का और उसके हर किस्म के ज़ुल्म और ज्यादती का मुक़ाबला कामयाबी के साथ किया जा सके। पश्चिम के पास लाठी का ज़ोर और हैवानी ताकत है, महात्मा गांधी ने इसका मुकाबला करने और उसे बेकार बता देने के लिये देश में आत्म बल और रूहानी ताकत पैदा कर देने का ऐसा सीधा और कामयाब तरीक़ा निकाल लिया जिसे दुनियां ने न कभी देखा था न सुना था। इस तरीके में बड़ी खूबियां हैं। इसमें कभी हार नहीं होती। इसे बरतने में सत्याग्रही और उसके सामना करने वालों को कम से कम नुकसान पहुँचता है और थोड़े से थोड़े समय में बड़ी से बड़ी कामयाबियां हासिल हो जाती हैं।

अफ़्रीका में सालों घमासान लड़ाई करने और बहुत से मार्के जीत लेने के बाद महात्मा गांधी ने देखा कि वहाँ जो मुसीबतें और ज़िल्लतें हिन्दुस्तनियों को उठानी पड़ रही हैं वह अफ़्रीका में लड़ाई करते रहने से दूर नहीं हो सकतीं क्योंकि इनकी असली जड़ें हिन्दुस्तान की गुलामी में हैं और बग़ैर हिन्दुस्तान को आज़ाद किये दूसरे देशों में हिन्दुस्तानियों को बराबरी और इज़्ज़त का स्थान नहीं मिल सकता। यह बात दिल पर जम जाने के बाद महात्मा गांधी अपना सत्याग्रह का शस्त्र लेकर हिन्दुस्तान में आए जिसमें कि हमें इस शस्त्र को इस्तेमाल करने के तरीके सिखा दें और इसकी मदद से हमारी गुलामी की ज़ंज़ीरों को काट डालें।

हिन्दुस्तान में आकर उन्होंने सत्याग्रह आश्रम बनाया। इसमें बैठकर उन्होंने सत्याग्रह के सिपाही तैयार करना शुरू किया। इसीके साथ साथ अपना बल बढ़ाने और देशवालों के दिलों पर क़ब्ज़ा पाने के लिये उन्होंने देश-सेवा का सीधा और अनमोल रास्ता अख़्तियार कर लिया और क़दम क़दम पर ज़बरदस्त कामयाबियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासिल कीं। बारडोली के किसानों से सरकार की ना-इन्साफ़ी का मुकाबिला करवाया। खेड़ा ज़िले के लोगों को जगाया और सरकार की ज्यादतियों के ख़िलाफ़ टक्कर लेने की इनमें दिली हिम्मत व ताक़त पैदा की। चम्पारन जिले के लाखों मज़दूरों को उनकी सदियों पुरानी मुसीबतों से और गोरे मालिकों की जुल्म ज्यादतियों से छुटकारा दिलवाया। हिन्दुस्तानियों का कुली बनकर दूसरे देशों को जाना बन्द करवा दिया। रोलेट एक्ट पर गवर्नमेंट से टक्कर ली और सत्याग्रह करने का प्रोग्राम देश के सामने रक्खा। सरकार इस प्रोग्राम का असर दक्षिणी अफ्रीका की लड़ाइयों में देख चुकी थी। वह घबरा गई और उसने यह कोशिश की कि पेश्तर इसके कि यह आन्दोलन देश में फैले वह अपनी तलवार के ज़ोर से इसे कुचल डाले और देश की कमर ऐसी तोड़ दे कि फिर वह मुद्दतों तक अपने पैरों पर खड़ा न हो सके। शुरू ही में इसने जालियांवाले बाग़ का खूनी नक़शा मुल्क के सामने पेश किया और डरे हुए हाथी की तरह तमाम पञ्जाब को अपने पैरों से कुचल डाला। महात्मा गान्धी ने फ़ौरन अपनी तहरीर रोक दी और इस तरह सरकार की बौखलाहट को कम करके सारे मुल्क को बरबादी और खून-ख़राबी से बचा लिया। वे खुद पंजाब में बहुत से साथियों को लेकर पहुंच गये। पंजाब उस वक्त सहम गया था और थर थर कांप रहा था। इन्होंने उसे गले से लगाया। उसके जख़्मों की मरहम पट्टी की, उसके दुःख को दूर किया और दम के दम में उसे नयी जान देकर फिर से क़ौमी लड़ाई के मैदान में लाकर खड़ा कर दिया। महात्मा गांधी ने जो आन्दोलन चलाया था उसे रोक दिया मगर जितना हुआ उतने ही से इस काले ऐक्ट की कमर टूट गई और सरकार ने खुद ही अपने ही हाथों से उसे दफ़ना दिया।

रोलेट ऐक्ट के ख़त्म होने के बाद महात्मा गांधी ने खिलाफ़त के आन्दोलन को जो उस समय आँधी की तरह उठ रहा था अपने हाथ में लिया और उसे ऐसे चलाया कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से दूध और शक्कर की तरह आपस में मिल गये और देश में इस मेल से वह ताक़त व हिम्मत पैदा हो गई जैसी पहले कभी पैदा नहीं हुई थी। इस तरह हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से मिलाकर महात्मा गांधी ने देश में असहयोग आन्दोलन को चलाने के लिये ऐसी फिज़ा पैदा कर ली कि जिसे देखकर दुनिया दंग रह गई। असहयोग आन्दोलन चलाने से पहले इन्होंने कुछ और भी तैय्यारियाँ कीं जिनका कि हम नीचे ज़िक्र करते हैं।

लड़ाई के लिये रुपये की ज़रूरत होती है महात्मा गांधी ने १ करोड़ रुपया तीन महीने के अन्दर जमा किया। यह देश के लिये अपने क़िस्म की पहिली मिसाल थी। इससे देश की हिम्मत बढ़ी और उसमें राजकाज के लिये खुले दान देने की ताक़त पैदा हुई। उनके इस आन्दोलन ने देश के अमीरों को स्वराज्य की लड़ाई में खींच लिया। यह रुपया उन्होंने कांग्रेस को दिया और इसकी मदद से कांग्रेस ने सारे देश में अपना संगठन फैलाया और उसे मजबूत बनाया। इसीके साथ साथ कांग्रेस के सामने महात्मा गान्धी ने दस लाख चर्खों के चलवाने और २० लाख मेम्बर बनाने का प्रोग्राम रखा, इस प्रोग्राम को पूरा करने की कोशिश का नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस का असर देश के कोने कोने में फैल गया।

इस सब तैयारी के बाद उन्होंने अपना वह मशहूर असहयोग आन्दोलन चलाया जिसने दुनिया को अचम्भे में डाल दिया और जिसने ब्रिटिश हकूमत की बुनियादों को हिला दिया। कौंसिलों का, कालिजों का, अदालतों का और खिताबों का छोड़ना देश के सामने रखा गया। कौंसिल छोड़ने के प्रचार ने कांग्रेस का सिक्का देश के तमाम वोटरों पर जमा दिया। कालेजों में से हज़ारों लड़के ऐसे निकल आये जो हमेशा के लिये देश के सिपाह बन गये। इसी तरह सैकड़ों वकीलों ने अपना पेशा छोड़कर क़ौम की लड़ाई ही को अपना ख़ास काम बना लिया और जिन्होंने देश की मांग को नहीं सुना उनका असर राजकाजी मैदान से जाता रहा। खिताब वालों में से जिन्होंने अपने ख़िताब छोड़ दिये वह हमेशा के लिये सरकार से अलग हो गये, जिन्होंने नहीं छोड़े उनका लोगों पर कुछ असर नहीं रहा। इस आन्दोलन ने देश में इतना जोश पैदा कर दिया कि जिसका संभालना मुश्किल हो गया, जगह जगह आगें भड़कनी शुरू हुईं। चौरी चोरा का हत्याकाण्ड उठ खड़ा हुआ। महात्मा गांधी देश को अच्छी लड़ाई और खून-खराबी और बर्बादी से बचाना चाहते थे। इसलिये जिस तरह जालियांवाले बाग़ के बाद उन्होंने अपने सत्याग्रह आन्दोलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बन्द कर दिया था। उसी तरह अपने इस असहयोग आन्दोलन को भी पं० मोतीलाल, देशबन्धु दास और लाला लाजपतराय जैसे ज़बरदस्त लीडरों की राय और मरज़ी के ख़िलाफ़ बन्द कर दिया और ६ साल की सज़ा लेकर जेल चले गये।

दो साल बाद जब वह जेल से निकले तो असहयोग आन्दोलन की आग ठंढी हो चुकी थी। देश में पं० मोतीलाल और देशबन्धु दास ने स्वराज्य पार्टी कायम की थी और उसका ज़ोर बराबर बढ़ता जा रहा था। महात्मा गांधी ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की मगर वह इसे रोकने में कामयाब न हुए। उन्ह ने देखा कि देश सुस्ताना और क़ानून और कौंसिलों के अन्दर रहकर अपनी कौमी लड़ाई चलाना चाहता है। उन्होंने इसे उसीके रास्ते पर यह कहकर छोड़ दिया कि तजुर्बा साबित कर देगा कि यह रास्ता स्वराज्य तक नहीं पहुंचा सकता।

सत्याग्रह के उसूल के मुताबिक सिर्फ असहयोग सिविलनाफर्मानी, पिकेटिंग और अनशन व्रत इत्यादि ही सत्याग्रह की लड़ाई की सूरतें नहीं हैं यह तो मौके मौके के मोर्चे हैं। सत्याग्रह की असली लड़ाई किसी सत्याग्रही के लिये एकदम के लिये कभी नहीं रुकती। या तो वह मोर्चा लेता है या दूसरा मोर्चा लेने की तैयारी में अपना सारा ध्यान और ताकत खर्च करता रहता है। महात्मा गांधी ने जेल से निकलते ही अपना सारा ध्यान और ताकत उस मशहूर तामीरी प्रोग्राम पर लगाना शुरू कर दिया जिसे उन्होंने अपने गिरफ़्तार होने से पहिले असहयोग आन्दोलन रोकने के बाद देश के सामने रखा था।

इस मशहूर रचनात्मक यानी तामीरी प्रोग्राम की ख़ास ख़ास बातें यह पांच थीं—(१) खादी प्रचार (२) हिन्दू-मुसलिम एकता (३) हरिजन उद्धार या छूआछूत को मिटाना (४) नशीली चीज़ों से परहेज और (५) अनपढ़ मर्द औरतों को हिन्दुस्तानी सिखाना या पढ़ाना। इस प्रोग्राम में कौमी ज़िन्दगी के हर पहलू की सबमें बड़ी कमज़ोरी को दूर करने का सबसे सीधा आसान और ज़रूरी रास्ता बताया गया है, इस प्रोग्राम की यह खूबी थी कि अगर यह एक अच्छे पैमाने पर पूरा कर लिया जाता तो सारे देश में वह साधन और संगठन पैदा हो जाता और इसमें वह ताक़त और हिम्मत आ जाती कि कोई हकूमत, वह अपनी हो या बाहिरी, सच्चे स्वराज और मुकम्मिल कामिल आज़ादी को देश में कायम होने से नहीं रोक सकती थी, मगर कांग्रेस और देश इस ज़बरदस्त और शानदार प्रोग्राम की ख़ूबियों को नहीं समझ पाया और इसलिये उसने इसे अपनाने और पूरा करने की कोशिश दिल से और सच्चाई के साथ नहीं की, महात्मा गांधी ने एक दफ़ा इन दुःख भरे शब्दों में अपना ख़याल जाहिर किया था—

"मैं यह हज़ारवीं दफ़ा दुहरा रहा हूं कि बिना रचनात्मक प्रोग्राम को पूरा किए स्वराज नहीं मिल सकता। अगर मिल भी जायगा तो हम इसे क़ायम नहीं रख सकेंगे। और अगर हमने क़ायम रख भी लिया तो वह असली स्वराज न होगा जिसके मैं ख़्वाब देखता हूं।"

देश ने इनकी यह दुःख भरी आवाज़ नहीं सुनी और न इनकी सलाह को कभी दिल से अपनाया। लेकिन फिर भी महात्मा गांधी ख़ुद बराबर इस प्रोग्राम के पूरा करने की कोशिशों में अटल रीति से जमे रहे और इसके एक एक टुकड़े के पूरा करने में जो कोशिशें उन्होंने की हैं और जो कमाल दिखाया है यह उनकी महान शक्ति और सेवा का सबमें बड़ा सबूत है। इससे इनके आत्मबल और रूहानी ताक़त का अन्दाज़ा लगता है। बहुत से कांग्रेसी नेताओं की मरज़ी और रुचि के ख़िलाफ़ उन्होंने चर्खे को क़ौमी झण्डे की और खादी को कांग्रेसी सिपाहियों की वर्दी बना दिया। अथक कोशिश से खादी बनाने और पहनने के आन्दोलन को देश भर में फैला दिया और इस तरीके पर हमें विदेशी चीज़ों को त्यागने और स्वदेशी चीज़ों को इस्तेमाल करने के ख़्याल को मज़बूत बनाया, और करोड़ों रुपया देश के ग़रीब और बेबस बुनकरों के घरों में पहुंचा दिया। इसी तरह कांग्रेस की पूरी मदद और कोशिश न रहते हुए भी महात्मा गांधी ने हरिजन आन्दोलन को इस ताक़त और शान के साथ चलाया और बढ़ाया कि जिसकी मिसाल हिन्द के इतिहास में नहीं मिलती। इन्होंने एक बार कहा था कि अगर मेरा यह आन्दोलन सफल होगा तो हिन्द के सारे समाज की काया-पलट हो जायगी। उसके दुःखों और बरबादी की घटायें छितर-बितर जांयगी और उसके नये जीवन का तेज भरा सूरज फिर से उदय हो जायगा। हम उन कोशिशों को देखते हैं कि जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने नशीली चीज़ों और शराब के दुःखों से देश के ग़रीबों को बचाने के लिये की हैं तो हम दंग रह जाते हैं। अलावा मुहम्मद साहब के संसार में किसी दूसरे ने न शराब के रोकने की इतनी कोशिश की न अपनी कोशिशों में इतनी कामयाबी हासिल की। यह ठीक है कि रचनात्मक कार्यों के मैदानों में जो आंधियाँ यह पैदा करते हैं उनके झोंके हमारे शरीरों को मीठे धक्के देते हुए निकल जाते हैं, लेकिन हमें मज़बूत और अटल तरीके पर इनके रास्तों पर क़ायम कर देने में कामयाब नहीं होते। फिर भी महात्मा गांधी की तूफ़ान उठाने की शक्ति और हमें बार बार हिलाने और जमाने की कोशिश कम नहीं होती। जिस तरह बिजली का डाइनिमो अपनी ताक़त को हज़ारों कोस तक फैलाता और पहुंचाता है और बेतादाद बिजली के दियों, इन्जिनों, कलों इत्यादि को चलाता है इसी तरह इस महान आत्मा की शक्ति बराबर देश भर में नहीं बल्कि सारे संसार में फैलती और इसके सेवा कार्यों को सींचती और हराभरा बनाती रहती है। फ़र्क़ इतना है कि बिजली के डाइनिमों की ताक़त नपी-तुली होती है और समय बढ़ने के साथ साथ कम होती जाती है लेकिन महात्मा गांधी की शक्ति अथाह और अपार है और तमाशा यह है कि उम्र के बढ़ने के साथ साथ इसमें तरक़्क़ी होती जाती है। आज उनकी ७८ वीं सालगिरह है। आज संसार में कोई ऐसा आदमी नहीं है कि जिसके नाम से पूरब और पश्चिम में मिलाकर इतने आदमी वाक़िफ हों कि जितने महात्मा गांधी के नाम से वाक़िफ हैं और जो इन्हें अपना मित्र और संसार का सबसे बड़ा सेवक न मानते हों।

यह सब इनके त्याग और सेवा की महिमा है, अगर किसीमें इनकी तरह दिली सचाई त्याग और श्रद्धा और अटल इरादे के साथ इनके दिखाये हुए रास्ते पर चलने की ताक़त हो तो उसके लिये यही कामयाबी और ऐसा ही आलीशान रुतबा खुला हुआ है।

हमने ऊपर कहा है कि दक्खिनी अफ्रिका से ये अपने साथ हिन्दोस्तान में सत्याग्रह का हथियार और हिन्दोस्तान को आज़ाद करने का इरादा साथ लेकर आए थे। अब देखना यह है कि इस हथियार की मदद से यह अपने मकसद को कितना पूरा कर सके। दुनिया की हथियार बन्द ताक़तों में जर्मनी सबसे बड़ी ताक़त थी, जापान भी अपनी ताक़त का सिक्का दुनिया पर जमाए हुए था। यूरोप की और एशिया की दूसरी क़ौमें अपनी फ़ौजों और हथियारों पर अकड़ती रहती थीं और इन्हींकी अपनी मुकम्मिल आजादी की बुनियाद समझती थी। आज जर्मनी के दुश्मनों ने उसके जिस्म के चार टुकड़े कर डाले हैं और इन टुकड़ों पर अलग अलग अपनी हुकूमतें क़ायम कर रखी हैं। जापान, अमेरिका के पांव पर अपना सर रगड़ रहा है और वह चाकुओं से मार मारकर उसका शक्ति बल निकाल रहा है। हथियार और फ़ौजों की सारी ताक़त इस वक्त तीन हुकूमतों रूस, अमरीका और इङ्गलैण्ड के हाथ में जमा हो गई है। बाक़ी दुनिया की सब हथियार-बन्द हुकूमतें अपना तेज़ और शक्ति खो बैठी हैं और आज इन तीन हुकूमतों के सामने गिड़गिड़ा रही हैं और बेबसी से इनकी निगाहें तक झुक रही हैं। यह हाल आज उन देशों का है जिन्हें अपनी फ़ौज और हथियारों का घमंड था।

दूसरी तरफ़ अगर हिन्द पर नज़र डालें तो हमें आज दुनिया का सबसे बड़ा अचरज नज़र आयगा। संसार के बड़े देशों में हिन्दोस्तान ही एक निहत्था देश था जिसके पास न हथियार थे न फौज़ें। इस निहत्थे देश के हाथ में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का हथियार दिया। इस हथियार के चलाने की इसे तालीम दी और इसकी मदद से अंगरेज़ी सरकार से जो दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त समझी जाती थी बार बार टक्करें लीं। इन टक्करों ने एक तरफ तो ब्रिटिश हुकूमत की जड़ों को खोखला कर दिया दूसरी तरफ़ देश को ऐसा जगाया, उभारा और निडर बनाया कि इसका काबू में रखना सरकार के लिये दूभर हो गया। आखिरी जंग जब अपनी चोटी पर पहुंची हुई थी और ब्रिटिश सरकार जापान के मुक़ाबिले में पूरब का एक के बाद दूसरा देश खाली कर रही थी उस वक्त महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार की ख़ुदगर्ज़ी नाइन्साफी और ढिठाई से तंग आकर उससे ये प्रार्थना की कि अब आप हिन्दोस्तान से भी तशरीफ ले जाइए। इस प्रार्थना ने "क्विट इण्डिया' (भारत छोड़ो) वाले आन्दोलन का रूप धर लिया। देश की और सरकार की टक्कर हुई। मालूम होता था कि अब की बार सरकार कांग्रेस और उसके सारे साथियों को हमेशा के लिये नेश्तनाबूत कर देगी मगर आज हम क्या देख रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार यहां से आप ही अपना बोरिया बँधना बांधे हुए हुए भागने को तैयार है। दुनिया हैरान है कि यह तमाशा क्या है। मशहूर है कि दूध का जला छाछ को फूंक-फूंक पीता है। इसी तरह हम भी अपने पुराने तजुर्बे की बिना पर आज भी डर रहे हैं लेकिन दुनिया बदल चुकी है। दुनिया के साथ साथ हिन्दुस्तानी सर से पाँव तक बदल चुका है। इसमें शक नहीं कि अभी इसके ऊपर की केंचली बाक़ी है इसलिये हम इसके अन्दर की हालत पूरी तरह समझते हैं। वह यह महसूस करते हैं कि सत्याग्रह के आन्दोलनों ने और महात्मा गांधी की महान देश-सेवा ने देश में इतना जोश और संगठन और ताक़त पैदा कर दी है कि अब पहिले की तरह इसे अपने वश में नहीं रख सकते। हिन्दुस्तानी फौजें जिन पर इसका दारोमदार था आज महात्मा गांधी के नारे लगा रही हैं और देश-सेवा के गीत गा रही हैं। हिन्दोस्तान का अङ्गरेज़ी सेनापति अपने पुराने घमण्ड भरे तरीक़ों को छोड़कर यह एलान कर रहा है कि मैं हिन्दुस्तान का सेवक हूं और हिन्दुस्तानी वजीर के हुक्मों को सर आंखों पर रखना मेरा फ़र्ज़ है। इसमें हिन्दोस्तान की हालत और वक्त की ज़रूरत बोल रही है।

महात्मा गांधी का देश को आजाद करने का मक़सद धीरे धीरे पूरा हो रहा है। वह देश की इस ख़ुश नसीबी को देख देखकर हंस रहे हैं मगर साथ साथ यह कह रहे हैं कि अभी मेरा काम पूरा नहीं हुआ अब इनका काम एक तो संसार में शान्ति और सुख का दौर लाना है दूसरे ख़ुद हिन्दोस्तान की कौमी हुकूमत को पश्चिम के रास्ते पर चलने से रोकना और इन पर अपनी सभ्यता का सिक्का जमाना है। यह कार्य अङ्गरेज़ी हुकूमत को हटा देने से भी ज्यादा मुशकिल है। इसीलिये महात्मा गांधी ने अपने रचनात्मक प्रोग्राम को पहिले से बहुत ज्यादा फैला दिया है। इसमें बहुत सी नई नई बातें शामिल की हैं और पहिले से कहीं ज्यादा जोर शोर के साथ इस प्रोग्राम को चलाने की धुन में रमे हुए हैं। इनकी कोशिश यह है कि यह अपने रचनात्मक काम की सुनहली ज़ंजीरों में सूबे की और बीच की हमारे क़ौमी सरकारों को फंसा ले। इनका जादू हमेशा सर पर चढ़कर बोलता है और अगर यह जादू चल गया तो हमारी सूबे और नई दिल्ली की सरकारें इनके तामीरी प्रोग्राम को पूरा करने का जरिया बन जायंगी।

मगर यह बात आसान नहीं है। हमारे तालीम याफ़्ता लोग और बहुत से बड़े बड़े नेता पश्चिम के गहरे रंग में रंगे हुए हैं और उनकी दिली ख़्वाहिश और कोशिश यह है कि हमारा देश पश्चिम वालों की हुकूमत को तो अपने ऊपर से हटा दे, मगर पश्चिमी सभ्यता के गहरे रंगों में ख़ुद डूब जावे। महात्मा गांधी इस मुश्किल को देख रहे हैं। शायद इसीलिये वह बार बार दोहराते हैं कि मैं अभी एक सौ पचीस बरस जीना चाहता हूं। हम सबकी और सारी दुनिया के लोगों को ईश्वर से यह प्राथना है वह इनकी इस नेक ख़्वाहिश को पूरा करे। क्योंकि इसके पूरा होने में इस देश का ही नहीं बल्कि सारी दुनिया का सच्चा कल्याण है। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिये कि महात्मा गांधी के मक़सद को पूरा करना हमारे हाथ में है। हम इनकी दर्द भरी आवाज को सुन लें कि बिना तामीरी प्रोग्राम पूरा किये हमें सच्चा और टिकाऊ स्वराज कभी नहीं मिल सकता। इसकी गहराई को समझ लें और अपने दिल से नेक नियती के साथ अपनी सारी ताक़त को इस प्रोग्राम के पूरा करने में लगा दें। कुछ ही दिनों की कोशिश में मुल्क का बेड़ा पार हो जाय। यह महात्मा गांधी के हित के लिये नहीं बल्कि ख़ुद हमारे और संसार के हित के लिये ज़रूरी है। हम सबको ईश्वर से प्राथना यह है कि वह हमें इतनी समझ और शक्ति दे कि हम महात्मा गांधी के रचनात्मक प्रोग्राम की ख़ूबियों और गहराइयों को पूरी तरह समझ सकें और इसे अपने देश में पूरा कर सकें।

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन के दो धर्म

श्री मॉरिस केन

कन्फुत्सु धर्म

कन्फुत्सु धर्म का नामकरण उसके चलाने वाले महात्मा कन्फुत्सु के नाम पर हुआ है। महात्मा कन्फुत्सु का समय ५५१ से ४७९ ईसा पूर्व तक माना जाता है।

उनके समय में चीनी सम्राट एकदम निर्बल हो गये थे। उनके अधिकार में जो जागीरदार या गढ़पति थे वे लगभग स्वतंत्र और स्वच्छन्द शासक बन गये थे। प्रत्येक बुद्धिमान गढ़पति और जागीरदार अपनी शक्ति और प्रभुत्व बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयत्न कर रहा था। ऐसी अराजकता की अवस्था में महात्मा कन्फुत्सु का जन्म हुआ। कहा जाता है उनके जन्म के समय बहुत-सी अलौकिक घटनाएं घटीं परन्तु इस जनश्रुति की ऐतिहासिकता मे सन्देह है। उनके जन्म और बचपन की घटनाएं आज समय के आवरण ने ढँक ली हैं। इतिहास रूपी दीपक की किरणें उस आवरण को अभी तक नहीं भेद सकीं। महात्मा कन्फुत्सु का झुकाव बचपन से ही धार्मिक क्रिया काण्ड की ओर था और पन्द्रह साल की अवस्था में उनका मन पूरी तरह से अध्ययन में लग गया था। उन्तीस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया। और विवाह के बाद एकाध वर्ष में ही वे 'अन्न बांटने वाले' (Grain Distributer) के ओहदे पर काम करने लगे। इक्कीस वर्ष की आयु में वे 'खेतों के ओवरसियर' (Farm Overseer) बना दिए गए। जब उनकी आयु बाईस वर्ष की हुई तो उन्हें विद्यानुरागी विद्यार्थियों ने घेर लिया। वे अपनी जीविका-उपार्जन उन विद्यार्थियों को दर्शन शास्त्र की शिक्षा देकर करने लगे। उनकी जिन्दगी का यह सिलसिला बहुत सालों तक चलता रहा। वे उन विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ ही साथ स्वयं भी पढ़ते रहे। एक संगीतज्ञ से उन्होंने संगीत की शिक्षा लेनी भी प्रारम्भ कर दी।

एक बार वे धार्मिक क्रिया-काण्ड के विषय में कुछ बातें निश्चित रूप से जानने के लिए चीन की राजधानी गए। वहां पर उन्हें महात्मा लाओत्ज़े मिले जिनकी चर्चा आगे की जाएगी। कहा जाता है कि लाओत्ज़े ने उनसे कहा, 'पुराने महात्माओं के शरीर तथा शरीर की हड्डियां गलकर समाप्त हो चुकी हैं, केवल उनके शब्द बचे हैं। उत्साही वीर पुरुष यदि अनुकूल परिस्थितियां पा जाते हैं तो ऊपर उठ जाते हैं और संसार में सच्चा यश कमाते हैं, जो अनुकूल परिस्थितियां नहीं पाते, औरों के पीछे पीछे चलते हैं, जैसे घास हवा के रुख की तरफ़ झुकी रहती है। अच्छे सौदागर अपनी पीठ पर अपना सामान रखे रहते हैं, अत्यन्त बुद्धिमान पुरुष अपने गुणों को उसी प्रकार छिपाए रहते हैं और उनके मुख पर किसी प्रकार की असाधारण व्यंजना से भरी मुद्रा नहीं रहती। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी सारी अहमन्यता और बाह्याडंबर को तिलांजलि दे दो, अपनी वासनाओं को दबाओ और अपनी आवश्यकताएं कम करो। मैं तुमसे इतना ही कहना चाहता हूं।' कन्फुत्सु पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वह विद्यार्थियों से दूर भागने की कोशिश करने लगे। परन्तु उनके विद्यार्थियों ने उन्हें न छोड़ा। उनकी संख्या दिन-दिन बढती ही जाती थी।

बयालीस साल की अवस्था में वे 'ल्यु' नामक प्रान्त के एक नगर का न्यायाधीश और शासक बना दिए गए। उन्हें अपने शासन सिद्धान्तों को परखने का अवसर मिला। उन्होंने अपने नए सिद्धान्तों के सहारे इतनी सफलता से शासन किया कि वहां के अधिपति ने उन्हें शीघ्र ही अपने मन्त्रि-मण्डल में रख लिया।

एक बार अधिपति ने पूछा कि क्या तुम्हारे सिद्धांत सारे प्रांत में इतनी ही सफलतापूर्वक लगाए जा सकते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, 'ज़रूर, वे ल्यु के प्रान्त पर ही नहीं, वरन सारे साम्राज्य पर लगाए जा सकते हैं।'

किन्तु शीघ्र ही कन्फुत्सु के शत्रु पैदा हो गए। उनके प्रान्त में सदाचार और ईमानदारी इतनी बढ़ गई कि आस पास के सूबे इस उन्नति को देखकर चौंक उठे। उन्होंने पहले तो निश्चय किया कि इस अधिपति की जागीर का कुछ हिस्सा छीन लें, तो वह कन्फुत्सु को निकाल देगा। परन्तु बाद में वेश्याओं और सुन्दर घोड़ों को उसके सूबे में भेजकर उन्होंने अधिपति के कान कन्फुत्सु के ख़िलाफ़ भरने की कोशिश की। इस नैतिक पतन को देखकर स्वयं ही कन्फुत्सु वहां से चले गये। यह घटना ४९६ ई० पू० में घटी। अपने शिष्यों के साथ वे लगातार तेरह साल तक यहां वहां एक ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागीरदार की खोज में घूमते रहे जो उनके सिद्धान्तों पर शासन प्रबन्ध चलाए। अड़सठ वर्ष की अवस्था में ल्यु के अधिपति ने उनसे लौटने की प्रार्थना की। उन्होंने यह निमन्त्रण स्वीकार किया और वह ल्यु चले गये। लेकिन जिन्दगी के बचे हुए पांच वर्ष उन्होंने पुस्तकों की रचना में व्यतीत किए। शासन या समाज सुधार में नहीं।

कन्फुत्सु चीन के सबसे पुराने कवियों और इतिहासकारों में हैं। उनके पहले जो चीनी कविता मिलती है वह साहित्यिक गुणों से अधकतर हीन है। जब उन्होंने जान लिया कि उनकी मृत्यु दिन दिन निकट आती जा रही है, तो कहा, "कोई भी बुद्धिमान शासक उन्नति नहीं करता है, देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो मुझे अपना गुरु बना ले, और मेरा अन्तिम समय निकट आता जा रहा है।" उसके मन में यह बात बैठती जा रही थी कि वह एक दैवी सदेश लेकर भूमि पर आए हैं जिसे लोग समझ नहीं पा रहे हैं।

उनकी मृत्यु के दो सौ वर्षों के अनन्तर लोगों ने उन्हें महात्मा समझा और स्वीकार किया कि उनके पास दैवी सन्देश था। उन्होंने एक बार स्वयं भी कहा था, 'मैं सीखते सिखाते थकता नहीं हूँ।' उनका उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण बनाना था। वह इसी पूर्णता की राह अपने शिष्यों को बतलाते थे। संयम, शील, सहनशीलता, धैर्य, दया वासनाओं का दमन, अध्ययनशीलता, लगन, सहिष्णुता, कर्त्तव्य-परायणता, सौजन्यता और सौहार्दता का ही वह सदा उपदेश देते थे। उनका कहना था, 'जो सलूक तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ और न करें, वह तुम भी उनके साथ न करो।' एक बार उनके एक शिष्य ने पूछा, 'एक सिद्धान्त है कि यदि कोई हमें हानि पहुंचाए तो हमें उससे दया एवं प्रेम का ही बर्ताव करना चाहिए, इसके विषय में आपकी क्या राय है?' उन्होंने उत्तर दिया, 'हानि का उत्तर न्याय है और दया एवं प्रेम का उत्तर दया एवं प्रेम है।' उनके इस कथन से पता चलता है कि वह कितने व्यावहारिक, और नैतिज्ञ शासक थे।

कन्फुत्सु संसार के नियामक और निर्माता में अस्पष्ट रूप से विश्वास रखते थे। वे इस प्रकार की लोकोत्तर सत्ताओं की अपेक्षा लौकिक वस्तुओं और समस्याओं पर सोचना-विचारना अधिक पसन्द करते थे। वे मनुष्य के विषय में इतना ही कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य रहता है। परन्तु इसके विषय में उन्होंने विस्तार से कुछ नहीं कहा। उनकी रचनाओं में स्वर्ग-नर्क की चर्चा नहीं है। मृत महान पुरुषों के लिए चीन में जो बलिदान किए जाते थे, उनमें कन्फुत्सु का विश्वास था। वर्ष में दो बार चीनी सम्राट को पाकिङ्ग नामक स्थान पर कन्फुत्सु के लिए बलि चढ़ाने के लिए जाना पड़ता था। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह श्रद्धा की अभिव्यक्ति मात्र है।

ताओ धर्म

ताओ धर्म प्रारम्भ में तो एक दर्शन था, धीरे धीरे वह धर्म बना और आज अन्धविश्वासों के रूप में चीन में प्रचलित है। इसके विकास की तीन अवस्थाएं हैं—

१—प्राचीन

२—मध्यकालीन

३—आधुनिक

पहले तो कुछ नैतिक और राजनैतिक सिद्धांत मात्र प्रचलित थे। ६०० ई० पू० के लगभग लाओत्ज़े नामक महात्मा ने उन सिद्धान्तों को सँवारा। ये सँवारे हुए सिद्धांत २०० ई० पू० तक प्रचलित रहे। इसके बाद इनमें फिर परिवर्तन आया और इनका रूप बदल गया। आधुनिक काल में ताओ धर्म का जो स्वरूप हमारे सामने है, वह इतना पतित है कि हम उसे देखकर यह सहसा विश्वास भी नहीं कर सकते हैं कि यह पुराना ताओ धर्म ही है।

लाओत्ज़े का 'ताओ' शब्द से क्या अभिप्राय था, यह जानना कठिन है। जिस पुस्तक में उन्होंने अपने सिद्धान्तों की व्यवस्था की है वह 'ताओ-नेह-किङ्ग' कहलाती है। 'किङ्ग' शब्द का अर्थ है क्लासिकल या प्राचीन। जब चीनी लोग इस पुस्तक को क्लासिकल मानने लगे तो उसमें उन्होंने 'किङ्ग' शब्द जोड़ दिया। 'तेह' शब्द का अर्थ पार्कर महोदय इस प्रकार बतलाते हैं, "ताओ' से निकलना 'तेह' है। इससे तात्पर्य उस 'क्रिया के सिद्धान्त' से है जो 'ताओ' में विश्वास रखने से उत्पन्न होता है और समझ में आता है। 'तेह' का अर्थ दया, क्षमा, सौजन्य आदि नहीं है।" फिर क्रिया के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए पार्कर महोदय 'तेह' का अर्थ 'अनुग्रह' बतलाते हैं। सचाई यह है कि 'ताओ' शब्द का यों तो अर्थ 'रास्ता' या 'सड़क' है परन्तु ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक मतलब महात्मा लाओत्ज़े के मस्तिष्क में भी साफ़ नहीं था। अन्त में पार्कर महोदय 'ताओ' का अर्थ 'सर्व शाक्तिमान' मानते हैं। लीग्गी महोदय 'ताओ' का अर्थ 'रास्ता' ही मानते हैं। परन्तु डगलस महोदय का विचार है कि 'ताओ' का अर्थ 'रास्ता' मात्र नहीं लाओत्ज़े का तात्पर्य 'रास्ते' से अधिक है, 'रास्ता' तो एक संकुचित शब्द है। वे कहते हैं, 'तुम इसकी तरफ देखो, तुम्हें कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ेगा। तुम इसे सुनने की कोशिश करो, तुम्हें कुछ भी सुनाई नहीं पड़ेगा। तुम इसे स्पर्श करने की कोशिश करो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं चलेगा। तुम इसका उपयोग करो, यह कभी समाप्त नहीं होगा। इसे शब्दों में तो कहा ही नहीं जा सकता। यह स्थिर रहता है, परन्तु तो भी कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसे यह पूरा कर देता हो। सारी दुनिया इससे निकली है, इसीसे परिवर्तित होती है और अन्त में इसीमें लीन हो जायगी। इसका कोई भी नाम नहीं है, लेकिन सभी नाम इसीके है। जगत का आदि इसीमें है। यह सद्पुरुष की नैतिक प्रकृति है और सारे सिद्धान्तों का सार है।' बाल्फोर महोदय इसका तात्पर्य 'प्रकृति—सिद्धांत' बतलाते हैं जिसमें से संसार की सभी वस्तुएं निकली हैं।

पार्कर महोदय के शब्दों में इस ग्रंथ का सारांश इस प्रकार है—

"ताओ' अनादि है परन्तु सारे तत्वों का आदि है। यह निर्गुण, निराकार, अस्पृश्य, अदृश्य और कारण-करण है। स्वर्ग और पृथ्वी का आदि-कारण यही है। इसके लिए आत्मा, मन और जड़ प्रकृति एक ही हैं। आत्मा, मन और जड़ प्रकृति इसमें समाए हुए हैं। इसमें सारे विरोधी गुण हैं। यह सदा स्थिर अकर्मण्य नहीं है। समय, सीमा और इच्छाएं इसे अपने बन्धन में नहीं बांध सकतीं। इसे किसीसे राग-द्वेष नहीं है। जो इस पर पूर्ण विश्वास रखते हैं, उन्हें यह अपने में लीन कर लेता है। उन लोगों को मोह, मद, मत्सर नहीं होते। वे शीलवान, धैर्यवान और स्थिर मति होते हैं। मृत्यु से उन्हें भय नहीं रहता। वे सदा धनी रहते हैं क्योंकि सन्तोष का खजाना उनके पास रहता है। उनका शरीर सदा स्वस्थ रहता है क्योंकि उनके मन में किसी तरह का कोई भी विकार नहीं रहता। किसीके लिए उनके मनमें दुर्भावना नहीं रहती। परोपकार उनका परिधान है। वे रूप की अपेक्षा सार को ग्रहण करते हैं और सत्य बात जानने के सदा इच्छुक रहते हैं। मनुष्य को संयम से रहना चाहिए और अपनी इच्छाओं और वासनाओं का दमन करना चाहिए। प्रकृति-दत्त शक्तिओं का कम से कम उपयोग करना चाहिए। जीवन में कोई सुनिश्चित लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। जिसका 'ताओ' से तादात्म्य हो चुका है वह सम्राटों से भी बड़ा है। राजा को चाहिए कि वह ऐश-आराम से दूर रहे, प्रजा पर सख़्ती न करे और कम से कम कर लगाए। मछली बहुत ज्यादा पकाने से ख़राब हो जाती है और प्रजा बहुत अधिक शासन-कर से। प्रजा को इतना बुद्धिमान नहीं बना देना चाहिए कि वह अपने शासकों से भी अधिक बुद्धिमान हो जाए। व्यवसायों पर प्रतिबंध नहीं लगाने चाहिएं इससे आर्थिक विकास रुकता है। प्रतिबंध जितने कम हों उतना ही अच्छा है। व्यवसायों में मशीन का प्रयोग सदा रोकना चाहिए क्योंकि इससे देश में आराम तलबी और बेकारी बढ़ती है।"

'ताओ' से तादाम्य कर लेना, एक महान आदर्श है। डगलस के शब्दों में 'ताओ' से तादात्म्य कर लेना रहस्यवाद है। लाओत्ज़े के संक्षेप में ये ही विचार थे।

लीहेत्से और च्वांगत्से नामक दो और महात्मा हुए हैं जिनका 'ताओ' धर्म के विकास में महत्वपूर्ण हाथ है। लीहेत्से (५वीं सदी ई० पू०) आदर्श समाज के चित्र स्वप्नों के रूप में खींचा करता था। उसने एक सम्राट को यह स्वप्न दिखलाया है कि वह सम्राट एक देश में पहुँच गया है जहां पर कोई शासक ही नहीं था। वहां प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक और अपनी वासनाओं पर पूरा अधिकार रखनेवाला था। आग और पानी उन्हें जला या डुबा नहीं सकते। न तो वे जीवन में ऐशो आराम की चाहना करते हैं और न मृत्यु के भय को। काल की गति से वे चौंकते या भयभीत नहीं होते। वे अपने रिश्तेदारों को नहीं जानते इस कारण राग-द्वेष से परे हैं। वे भूमि पर सोते हैं और इसमें उन्हें सुख तथा संतोष मिलता है। डगलस का कथन है कि इस अन्योक्ति में उस परिवर्तित विचारधारा की ओर संकेत मिलता है जो मध्यकालीन ताओ धर्म में विकसित हुई।

च्वांगत्से (४थी सदी ई० पू०) की विचारधारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीहरसे .से एक कदम और आगे बढ़ गई। डगलस के कथनानुसार वह मनुष्य के प्रयत्न की निरर्थकता पर ज़ोर देता था।

"अगर संसार को अनियंत्रित कर अपनी ही गति पर छोड़ दिया जाए तो लोग अपने काते और बुने हुए कपड़े पहनेंगे और अपना उगाया अन्न खाएंगे, न तो पहाड़ों पर रास्ते बनेंगे और न समुद्र में जहाज़। सारे प्राणी अपने प्राकृतिक आनन्द में लीन रहेंगे। जंगली जानवर झुण्डों में स्वच्छन्द घूमेंगे और पक्षी जी खोलकर वृक्षों पर कलरव करेंगे। सारा संसार पवित्रता के रंग में रँग जाएगा और ज्ञान मनुष्य को असदवृत्तियों की ओर नहीं ले जाएगा।' मध्ययुग का ताओ धर्म इसी प्रकार के सपनों में लीन रहता था।

आधुनिक काल में जादू और चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। लोग सच्चे ताओ धर्म को दिन दिन भूलते जा रहे हैं लेकिन फिर भी ऐसे लोग सर्वथा दुर्लभ नहीं हैं जो सारे विरोधी गुणों से संयुक्त 'ताओ' से रहस्यवादात्मक तादात्म्य करने के स्वप्न को सच बनाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं, जो सान्तता की दुर्भेद्य सीमा को भेद कर अनन्त को प्राप्त करना चाहते हैं।

वंदना

श्री ब्रह्मदत्त विद्यार्थी

उन पदों की वन्दना कि जो उठें, उठे जहान!
उस नज़र की वंदना कि जो लखे सभी समान!

जो बढ़े कदम, करोड़ पद निशान पर बढ़े,
जो अड़े कदम, करोड़ बन पहाड़ हैं खड़े
जो उठी नज़र जहान दृष्टि युक्त हो गया
तम अथाह राह का नज़र उठी औ' खोगया
खून से रँगी धरा को शांति का मिला सुदान,
उन पदों की वंदना कि जो उठें, उठे जहान!

इस घड़ी की वंदना संदेश पा रहा जगत,
इन पदों पर हो रहा सकल जगत सहर्ष नत,
आर्त-दीन विश्व की पुकार कौन सुन रहा
दीन 'औ' गुलाम हेतु कौन शीश धुन रहा!
यह उसी महान के है जन्म की घड़ी महान,
उन पदों की वन्दना कि जो उठें, उठे जहान!

देश की स्वतन्त्रता-सँदेश ले के जो चला
मातृ भूमि के लिए प्रकाश पुंज बन बला
त्रस्त मानवों का सखा दीन के सिरों का ताज
यह उसी का जन्म-दिन मना रहा है हिन्द आज
विश्व में फहर रहा उसी के सत्य का निशान,
उन पदों की वन्दना कि जो उठें, उठे जहान!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या वह गुंडा था ?

श्री पुरुषोत्तमदास मोदी

हां, वह गुण्डा था, मनुष्य की पहचान मनुष्य की ही दी हुई संज्ञा बन जाती है। चाहे उसमें सत्य का कोई अंश हो या नहीं। हां तो उसका विशेषण गुण्डा था। यों तो उसके मां बाप उसे 'नासिर' कहकर पुकारते थे। मेरी उसकी जान-पहचान कब और कहां हुई, यह ठीक-ठीक नहीं जानता। उस समय छोटा था। केवल इतना ही याद है कि वह मेरे स्कूल का पंखा-कुली था। इसलिए शायद उसकी मेरी सबसे पहली मुलाकात स्कूल में ही हुई होगी। खैर, जो भी हो मैं आगे की बात कहूँगा। क्योंकि इस पर रिसर्च करूँ भी तो डाक्टरेट मिलेगी नहीं। यों तो मैं स्कूल में थर्ड से मैट्रिक तक पढ़ा लेकिन उसे पंखा खींचते सिक्स्थ क्लास में देखा था। वह भी सिर्फ़ उसी वर्ष ६ महीने। उस समय वह गुण्डा नहीं था—मैं बता दूँ उस वक्त भी उसके दो ही हाथ थे, दो ही पैर थे, दो ही आंखें थीं और नाक भी ऐसी ही थी जैसी कि इस वक्त है, फिर भी वह गुण्डा कैसे कहा जाने लगा, यह अजीब-सी बात नहीं। यह कैसे, मैं फिर बताऊँगा।

दूसरी बार मैंने उसे पूरे चार साल बाद चौक में चाय बेचते देखा। उसकी शकल में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था। इसलिए तुरन्त ही पहचान लिया। मेरी इच्छा हुई मैं उसकी चाय लेकर पीऊँ और मैं चाय लेने बढ़ भी गया—"ओ चाय वाले।" उसने मुझे देखा और मेरी ओर बढ़ आया—"बाबू आप!"

"नासिर, तुम हो!"

"हाँ मालिक, मैं ही आपका नासिर पंखा-कुली हूँ।"

"अच्छा तो चाय पिलावो, इतने दिन क्या करते थे! चाय कब से बेचने लगे!"

"चाय मालिक, आप मेरी चाय पीयेंगे! मैं तो मुसलमान हूं।"

"बको मत, मैं इन्सान के ही हाथ की तो चाय पीता हूँ। मैं नहीं जानता इन्सान-इन्सान में भी फ़र्क़ होता है। जात तो हमारी तुम्हारी बनाई हुई है, हम इसे तोड़ भी तो सकते हैं जिस तरह क़ानून तोड़े जा सकते हैं। मैं तो इन्सान की आवाज़ और दिल पहचानता हूं।"

उसने चाय बनाना शुरू किया। प्याले में बहुत-सा दूध डाला और चीनी भी खूब डाली और बहुत बढ़िया जितनी बढ़िया वह अपने उन सामानों से बना सकता था बनाया और मेरी ओर बढ़ाया।

"तो तुम इतने दिन कहां थे नासिर?"

"मैं मालिक गांव चला गया था, भाई मर गया इसलिए मुझे ही खेती संभालनी पड़ी और अब मां भी मर गई तो मैं अपने खेत बेच-बाचकर शहर चला आया। एक तो देहात में मेरा मन यों ही नहीं लगता है दूसरे अब है ही कौन जिसके लिए खून-पसीना बहाऊँ। अब यहां आकर चाय बेच रहा हूं। पन्द्रह दिन हो गये।'

मैंने उसके आगे चार आने बढ़ाए। यों तो एक' प्याले चाय का दाम अमूमन चार ही पैसे होता है परन्तु मेरी इच्छा चार आने देने की हो गई।

"क्या मालिक! आप यह क्या कर रहे हैं! नहीं, नहीं, मैं पैसे न लूँगा। एक तो अपनी चाय पिलाकर आपका मैंने धर्म बिगाड़ा और ऊपर से पैसे लूँ यह मुझसे नहीं हो सकेगा।"

"अरे पागल, धर्म क्या यों खाने पीने से बिगड़ जाता है। तुम ही सोचो वह धर्म कितना कच्चा होगा जो सिर्फ़ खाने-पीने से चला जाय। हमें तो एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर उसे और मज़बूत बनाना है।"

फिर भी मेरे इस भाषण का उस पर कोई असर न हुआ। और उसने पैसे नहीं ही लिए। मैं सोचता रहा इस जाति-भेद की दिन प्रतिदिन फैलती हुई खाई को किस तरह एक में मिलाया और भरा जाय। उसके बाद मैं बनारस यूनिवर्सिटी चला आया।

फिर तो मैंने उसे पूरे सात वर्षों बाद ही बक्सीपुर में एक फर्नीचर मार्ट में देखा। अपने लिए कुछ फर्नीचर का आर्डर देने गया था क्योंकि मैं अब एडवोकेट हो गया था। वहां मैंने उसे देखा। अब वह हट्टा-कट्टा साढ़े पांच फीट का तहमत बांधे पूरा जवान था। वह फर्नीचर पर पालिश करता था। वह फर्नीचर मार्ट उसीकी वजह से अपनी पालिश के लिए मशहूर था लेकिन उसमें अब एक ऐसा ऐब था यानी वह गुण्डा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। इसी वजह से उसकी इज़्ज़त इतनी नहीं होती थी जितनी होनी चाहिए थी। उसने मुझे सलाम किया। मैंने पूछा—"कहो कहां थे ? यहां कैसे आ पहुंचे !"

उसने कहा—"यह सब पूछ कर आप क्या करेंगे अब तो वार्निश करता हूं, अपनी मजदूरी करता हूँ...।" वह इतना ही कह पाया था कि मैनेजर जो कि तगड़ा जवान सिक्ख था बोला—"मि० शर्मा वाट आर यू टाकिङ्ग विद हिम ? डू यू नो ही इज बुली, परफेक्ट बुली, दो ही पालिमेज वेरी नाइस।"

मैंने उनके इस जवाब को सुना और तब नासिर से यानी उस गुण्डे से कहा—"नासिर, कल मेरे यहां आना। मेरा वही मकान है सिविल लाइन्स वाला तुम जानते हो न।"

"हां मालिक, उसे कभी भूल सकता हूँ।" मैनेजर मेरा मुंह देखने लगा—"ओह मैनेजर, ही वाज इन माई सरविस लांग बिफोर।"

मैं अपना आर्डर देकर चुपचाप चला आया। दूसरे दिन सबेरे ही वह मेरे यहां आ पहुंचा। मैं उस दिन की पत्रिका पढ़ रहा था।

"मालिक, सलाम !"

"तुम आ गये नासिर ! अच्छा बैठो।"

"कहो तब से कहां कहां थे !" अख़बार से निगाह हटाते हुए मैंने पूछा।

उसने बताया कि वह एक साल तक तो चाय बेचता रहा। फिर देहात चला गया। वहां गांव के लोहार और बढ़इयों के यहां दो साल तक काम करता रहा—तभी ४२ में गांव में भी आन्दोलन छिड़ा। लोगों ने थाने वग़ैरह पर कब्जा कर लिया। लेकिन दूसरे ही दिन मिलिटरी आ गई और लोगों पर गोलियां चलाने लगी, घर लूटने लगी। उसके बगल में एक भले आदमी जो किसानों को पढ़ाते थे और शायद किताब भी लिखते थे उनको सभों ने गोली से मार डाला। दूसरे दिन उनकी तलाशी लेने आये—घर में सिर्फ़ उनकी औरत थी और वे उन्हींकी ओर बढ़े। वे चिल्लाने लगीं। नासिर दरवाजे पर ही बैठा था। वह तुरन्त दौड़ा दौड़ा अन्दर गया। और दोनों मिलिटरी के सिपाहियों की नटई (गला) थामी और जमीन पर गिरा दिया। उनकी किरच छीन ली और दोनों के बदन में घुसेड़कर मार डाला और जाकर पास ही के तालाब में फेंक आया। वे मां बेटी घबड़ाने लगीं। उन्होंने कहा—नासिर हमें शहर पहुँचा दो। राम तुम्हारा भला करेगा। वह उन्हें शहर ले आया और उनके रिश्तेदार के यहां पहुंचा दिया। तब से वह शहर ही में हैं। गुण्डे का खिताब सबसे पहले गांववालों ने ही उसे दिया है। क्योंकि उनकी निगाह में वह दोनों औरतों को भगाकर ले गया। पहले नासिर सिपाहियों वग़ैरह की इज्जत करता था और उनसे डरता भी था। लेकिन अब जरा भी नहीं। जहां जरा भी शरारत करते या अकड़ते देखा, दे मारा। नम्बर दस में कई बार चालान भी हो चुका है। एक बार तो एक ट्रक ड्राइवर को जो शराब पीकर ट्रक ड्राइव कर रहा था और एक बुढ़िया को कुचल दिया था—जान से मार डाला और उस ट्रक में आग लगा दी। इस तरह उसे गुण्डे का खिताब मिला। दो साल तक तो इधर उधर लकड़ी वग़ैरह चीरता रहा। अब एक साल से इस फर्नीचर मार्ट में पालिश करता है।

मैंने देखा कि वह पान खूब खाता है और सुर्ती भी काफ़ी खाता है। जहां कहीं लापरवाही से थूक देगा। और गालियों का तो अम्बार ही रहता है उसके मुँह में। उसने अपनी सारी कहानी ईमानदारी से बता दी बिलकुल खुलकर। कुछ भी उसने छिपाया नहीं। मैंने कृष्ण से उसे कुछ चावल दाल घर में से दिलवाया।

"हां नासिर, देखो मेरे फर्नीचर खूब अच्छे बनने चाहिएँ। और पालिश भी खूब बढ़िया होनी चाहिए।"

"अरे मालिक, आप भी क्या कहते हैं। आप देखिएगा आपके फर्नीचर कितने बढ़िया होते हैं। आज ही जाकर उन बढ़इयों की चांद पर वार्निश करूँगा और पालिश तो मैं खुद ही करूँगा।" और वह चला गया।

मैं अभी कचहरी जाने ही वाला था कि शोर होने लगा—"दंगा हो गया, शहर में दंगा हो गया।' डाइरेक्ट ऐक्शन डे है। लोग लड़ पड़े। मां रोती हुई आई—मेरा बेटा !

कृष्ण अभी अभी स्कूल गया था। उसका स्कूल उसी मुहल्ले में था जहां दंगा हो रहा था। मैं भी घबड़ाया अब क्या करूँ। उधर की तरफ दौड़ा। लेकिन थोड़ी ही दूर गया होऊँगा कि आगे जाने की मेरी हिम्मत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी। गोलियाँ चल रही थीं और हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे पर ढेले और छूरियां चला रहे थे। कुछ दूकानों में आग भी लगा रहे थे। मैं एक बन्द दूकान के कोने में छिपकर खड़ा हो गया। तभी उधर से नासिर आता हुआ दिखाई दिया। मेरी हिम्मत बँधी और उसे पुकारा "नासिर भाई, सुनना।"

"कौन मालिक आप यहां कैसे!" यहाँ तो गोलियां चल रही हैं।"

मैं रो पड़ा क्योंकि अब मुझे कृष्ण के बचने की आशा बिलकुल न थी। फिर भी मैं उसे सारी बात बता गया।

"मालिक, आप जरा भी न घबड़ायें। मैं कृष्ण बाबू को अभी खोज कर लाता हूँ। मैं उन्हें पहचानता हूँ वही मुझे चावल दे गये थे। आप तुरन्त घर लौट जाइये अभी उधर दंगा नहीं हो रहा है।"

मैं किसी तरह रोता रोता घर पहुँचा। माँ उधर अलग रो रही थीं और सरोजन जीजी और उसकी भाभी रो रही थी। पर उपाय क्या था। तीन घण्टे हो गये मगर उसका पता न लगा।

करीब दो बजे दंगा शुरू होने के चार घंटे बाद एक पुलिस लारी मेरे बँगले के सामने खड़ी हुई। दो पुलिस कृष्ण को लेकर मेरे बँगले में घुसे। कृष्ण को देखकर मैं खुश हुआ लेकिन यह क्या वह तो बिलकुल खून से भीगा था। लेकिन पास जाने पर देखा उसके बदन पर एक भी घाव नहीं था।

तब मैंने कृष्ण से उसके यहां तक आने की कहानी पूछी। उसने कहा—"मैं स्कूल पहुंचने भी नहीं पाया था कि कि दंगा शुरू हो गया। मैं सड़क पर एक कोने में खड़ा रहा। गोलियां चलने लगीं तब मैं घबड़ाया और दूसरी गली में भागा। वहां भी भीड़ आ रही थी। फिर दूसरी ओर भागा। तभी नासिर आता हुआ दिखाई दिया। उसने मुझे पुकारा कृष्ण बाबू। मैं रुक गया। उसने कहा, जल्दी चलिए आपके भैया खोज रहे हैं आप को और आपकी मां रो रही हैं। और वह मुझे गोद में उठाकर दौड़ा दौड़ा चौक तक पहुंचा। तभी कुछ हिन्दू उसके पीछे पीछे दौड़े। उन्होंने समझा वह मुझे मार डालने के लिए ले जा रहा है। वह तेजी से भागता ही रहा। वे उस पर ईंट पत्थर फेंकते ही रहे। कई जगह उसके घाव भी होगये। मगर मेरे जरा भी चोट न लगी। यह उसीके घावों का खून है। तभी उधर से एक पुलिस लारी आ रही थी। उसने नासिर को पहचाना और गुण्डा कहकर चिल्लायी और गोली चला दी। गोली उसकी कनपटी पर लगी और वहीं वह गिर पड़ा। मैं भी उसकी गोद में गिर पड़ा। तभी पुलिस आई। मुझसे मेरा और उसका नाम पूछा और सारी बातें पूछी और तब यहां आया। लेकिन भैया ये पुलिस वाले कहते थे कि वह गुण्डा था तुमको मार डालता।"

तो वह गुन्डा था? मैं सोच रहा हूँ। नहीं वह गुण्डा नहीं था। वह इनसान था और एक ईमानदार इनसान था।

वीर-व्रती

काज़ी अशरफ़ महमूद

हे मातृ-मुक्ति के वीर व्रती! सुन दूर बहुत है जाना रे,
दुर्गम गिरि के उच्च-शिखर पर जय-ध्वज है फहराना रे॥
सङ्कट-मय इस कण्टक-पथ में शत-शत होंगे दुख सहने,
पर जब तक हो मुक्ति न माँ की मुख में आह न लाना रे।
पग-पग में हो यम के प्रहरी रोकेंगे तव पथ आकर,
पर पथ में तू विपथ न होना भय पर है जय पाना रे।
अग्नि-पथिक! यह पथ भी तेरा शायद आगे साथ न दे,
पर अविकल तू आगे ही चल आगे मार्ग बनाना रे।
रात्रि-तिमिर में क्या जाने कब तारे तेरा साथ न दें,
पर निर्भय इस निष्प्रभ निशि में आगे क़दम बढ़ाना रे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधान-परिषद में स्त्रियों का भाग

श्रीमती कृष्णा कुमारी नाग एस० ए०

भारत के इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि राष्ट्र के संबन्ध में विचार-विनिमय एवं निर्णय करेंगे। अब तक भारत के लिये ब्रिटिश पार्लिमेण्ट को ही विधान निर्णय करने का अधिकार था। जनता के प्रतिनिधियों का वैधानिक मामलों में कोई स्थान नहीं था। सारे राष्ट्र को विधान पंचायत में प्रथम बार मौका मिलेगा जब कि उनके प्रतिनिधि देश के राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे की रूपरेखा खींच सकें। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान काल में राज्य की शक्ति कितनी बढ़ती जा रही है। और वह किस प्रकार एक नागरिक के जीवन को प्रभावित कर रही है। आज नागरिक स्वतंत्रता के लिये इतनी मांग नहीं है जितनी कि राज्य-शासन पर नागरिकों के अधिकार की है। अतः हमारे राष्ट्र का भविष्य अंधकारमय हो अथवा उज्ज्वल, यह राष्ट्र के विधान पर बहुत कुछ निर्भर करता है। हमारे सामाजिक संगठन की कैसी बुनियाद होगी यह भी बहुत कुछ विधान पर निर्भर है। आज जब हम अपने विधान की रूपरेखा खींचने जा रहे हैं, यह स्वाभाविक है कि सदियों से पद-दलित एवं सामाजिक बन्धनों से बंधे हुए व्यक्ति इस बंधन से उन्मुक्त होने की मांग राष्ट्र के सामने पेश करें। भारत का स्त्री समाज जिसकी संख्या लगभग २० करोड़ के है, अपने अधिकारों के औचित्य को राष्ट्र के सामने बताने के लिये तैयार है।

राष्ट्र के लिये यह बड़े गर्व और संतोष की बात है कि उसकी महान राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस का विधान परिषद में बहुमत है। कांग्रेस सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है और राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के स्वत्व कांग्रेस के हाथ में सुरक्षित हैं। राष्ट्र की महान संस्था होने के नाते हमें विश्वास है कि कांग्रेस सब के हितों की विधान परिषद में अवश्य रक्षा करेगी। आरम्भ से ही कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलनों द्वारा स्त्रियों में अद्भुत जागृति पैदा कर दी है। कांग्रेस की यह नीति रही है कि राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों का अधिक से अधिक भाग रहे। उनको सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों से ऊँचा उठाकर कांग्रेस ने उनका राष्ट्रीय जीवन में एक विशिष्ट स्थान बना दिया है। कांग्रेस ने सन् १९३१ के करांची अधिवेशन में मूल अधिकारों पर जो प्रस्ताव पास किया था उसमें स्त्रियों के सिद्धान्त को मान लिया था। उसीके आधार पर कांग्रेस द्वारा स्थापित राष्ट्र निर्माण समिति ने निम्न-मूल सिद्धान्त स्त्रियों के सम्बन्ध में निर्धारित किये हैं :—

(अ) समाज में स्त्री और पुरुषों के अधिकार समान होंगे। दोनों के कर्तव्य और अधिकार में कोई भेद-भाव नहीं होगा।

(ब) स्त्री होने के कारण जीवन के किसी क्षेत्र से उन्हें पृथक न रखा जावेगा।

(स) राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियों को वोट देने का, प्रतिनिधित्व करने का और किसी पद पर कार्य करने का पुरुषों के समान अधिकार होगा। दोनों के लिये ही संयुक्त निर्वाचन-पद्धति रहेगी।

(द) प्रत्येक स्त्री को जायदाद रखने, खरीदने और बेचने का पुरुष के समान अधिकार होगा। स्त्री होने के नाते उसके आर्थिक अधिकारों पर किसी प्रकार की रुकावट न डाली जावेगी।

उपर्युक्त बुनियादी अधिकारों के अतिरिक्त समिति ने विवाह इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें रखी हैं। समिति की इन सिफारिशों से स्पष्ट है कि कांग्रेस की स्त्री सम्बन्धी नीति बहुत साहसपूर्ण है। स्त्री जीवन को उन्नत करने में कांग्रेस को तनिक भी हिचकिचाहट न होगी। अतः हमें विश्वास है कि कांग्रेस अपनी बहुमत से प्राप्त शक्ति का स्त्री-स्वत्वों की रक्षा के लिये विधान परिषद में अवश्य उपयोग करेगी। कांग्रेस की इस नीति के सबूत हमें पिछले मास में ही मिल चुके हैं। विधान पंचायत के सदस्यों के चुनाव के समय प्रान्तीय कमेटियों को विशेष तौर पर आदेश दिया गया कि राष्ट्रीय पंचायत में अधिक से अधिक स्त्रियां ली जावें। कांग्रेस कार्य करिणी में भी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व अधिक कर दिया गया था। कांग्रेस कार्य कारिणी में प्रथम बार दो स्त्रियाँ हैं।

यह सब कुछ होने पर भी यदि हम विधान परिषद की स्त्री सदस्यों की ओर ध्यान देते हैं तो हमें सन्तोष नहीं होता है। देश की निर्वाचित संस्थाओं में स्त्रियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधित्व इतना कम है और स्त्री आन्दोलन इतना कमजोर है कि स्त्री-स्वत्वों की रक्षा के लिये हमें अभी भी पुरुषों की ओर ताकना पड़ता है। उदाहरणतः सन् १९३५ विधान के अनुसार केवल ६० लाख स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया गया है जब कि २ करोड़ ६० लाख पुरुष वोट देने के अधिकारी हैं। सन् १९४१ की जन संख्या के अनुसार स्त्री तथा पुरुषों की आबादी करीब करीब बराबर है। क्या कारण है कि भारत की २ करोड़ ९० लाख स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं मिला। यह विषमता विधान परिषद के चुनाव में अपना प्रभाव दिखा चुकी है। विधान परिषद के कुल ३८५ मेम्बर हैं जो ४० करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब कि भारत में स्त्री व पुरुषों की संख्या बराबर बराबर है ३८५ में से १९२ स्त्री मेम्बर होनी चाहियें थीं परन्तु वास्तव में लगभग बीस स्त्रियाँ बीस करोड़ स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करेंगी। भारत के भावी विधान में स्त्री अधिकारों की रक्षा के लिये इन बीस स्त्री प्रतिनिधियों को पुरुषों का सहारा लेना पड़ेगा। हमें डर है कि अल्पमत में होने के कारण स्त्रियां विधान पंचायत में इतना काम न कर सकेंगी जितना कि देश की २० करोड़ स्त्रियों के लिये आवश्यक है। इस त्रुटि को दूर करने के लिये हम एक सुझाव रखते हैं। साम्प्रदायिक प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय करने के सम्बन्ध में जिस प्रकार हिन्दू और मुसलमान मेम्बरों को अलग अलग बहुमत की आवश्यकता होगी और यदि कोई भी एक सम्प्रदाय साम्प्रदायिक प्रश्नों को फेडरल कोर्ट के सामने पेश करने का अधिकार रखता है उसी प्रकार स्त्री संबंधी प्रश्नों पर जब तक विधान परिषद की स्त्री सदस्याएँ बहुमत से अपना निर्णय न दे दें तब तक ऐसे कानून को पास न किया जावे। यदि स्त्री सदस्याएँ आवश्यक समझें तो कानूनन उनका अधिकार होना चाहिये कि वे स्त्री सम्बन्धी मामलों को फेडरल कोर्ट के सामने राय के लिये पेश कर सकें। ब्रिटिश मिशन योजना में एक मूल अधिकार समिति का आयोजन भी है। इस समिति में स्त्रियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व भी होना चाहिये। समय समय पर यह समिति विधान परिषद को स्त्रियों के मूल अधिकारों के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें पेश करती रहेगी। साथ ही साथ इस समिति को विधान परिषद के कार्यों के प्रति जागरूक रहना चाहिये। कांग्रेस ने जो अपनी एक विधान विशेषज्ञ समिति बैठाई है उसमें कोई भी स्त्री सदस्य नहीं है। कांग्रेस वर्किंग कमेटी को चाहिये कि किसी एक योग्य स्त्री को उसका सदस्य नियुक्त करे। देशी राज्यों की स्त्रियों का भी विधान पंचायत में प्रतिनिधित्व होना आवश्यक है। देशी राज्य प्रजा मंडलों को भी इस सम्बन्ध में आदेश देना आवश्यक है क्योंकि रियासतों में स्त्रियों की स्थिति और भी खेद जनक है।

विधान पंचायत में यद्यपि स्त्रियों का प्रतिनिधित्व उनकी संख्या देखते हुए कम है परन्तु इसमें स्त्री आन्दोलन की अग्रगण्य एवं अनुभवी नेत्री हैं। श्रीमती हंसा मेहता ने इसी वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक बैठकों में भारत की प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया है। इस समिति ने सिद्धांत रूप से यह निश्चय किया है कि प्रत्येक राष्ट्र में स्त्री जाति को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में पुरुष के समान अधिकार रहेंगे। मूल-अधिकार समिति के सामने यह भी सिफारिश रखी गई है कि मूल अधिकारों का चार्टर बनाते समय स्त्री के अधिकारों का विशेष रूप से ध्यान रखा जावे। इस महायुद्ध के पश्चात् संसार के स्त्री आन्दोलन में एक बुनियादी परिवर्तन हुआ है। युद्ध-काल में स्त्रियों ने यह पूर्णतः साबित कर दिया है कि वे प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान कार्य कर सकती हैं। अब तक यह केवल स्त्रियों की मांग थी, अब वह एक वास्तविक सत्य बन चुकी है। इसी सत्य पर स्त्री अधिकारों का निर्माण होना चाहिये। श्रीमती हंसा मेहता को संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन के समय विभिन्न राष्ट्रों की स्त्रियों से सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। हमें आशा है कि उन्होंने स्त्री आन्दोलन के इस नवीन परिवर्तन पर भारतीय दृष्टिकोण से अवश्य विचार कर लिया होगा। वे विधान पंचायत की स्वतंत्र सदस्य भी निर्वाचित हो चुकी हैं। हमें आशा है कि वे इस बात का प्रयत्न करेंगी कि भारतीय स्त्रियों के अधिकार किसी भी प्रकार अन्य राष्ट्रों की स्त्रियों से कम न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलकत्ते की दो आंखों देखी वारदातें

श्रीमती शकुन्तला प्रभाकर

[१]

मां, मेरी भी मां !

एक गुजराती परिवार था—खाता पीता, लिखा पढ़ा. परिवार के मुखिया एक फ़ैक्टरी के मैनेजर थे. उनका मकान फ़ैक्टरी के क़रीब ही स्यालदह स्टेशन के आस पास था. १६ अगस्त को सड़कें सूनसान बे सवारी की देख कर भी वे वजह न समझ पाए. उन्हें अख़बारों का शौक़ नहीं है, अपने काम से काम.

फ़ैक्टरी के दरबान से मालूम हुआ आज लीग की तरफ़ से हड़ताल है इसलिए कारीगर नहीं आए. घर आकर बैठ गए, बड़बड़ाते हुए. घर में दो बच्चे थे—एक लड़की और एक लड़का. उनकी उमरें १५-१६ के क़रीब रही होंगी. मकान सड़क के किनारे पर ही था. आसपास की बस्ती मुसलमानी बस्ती थी, कहने को ही कहीं कोई हिन्दू का घर था. उनके मकान के नीचे भी मुसलमान भाइयों की दुकानें थीं.

शाम तक लड़के और लड़कियों के जलूस निकलते रहे—शान्ती अमन क़ायम रखते हुए, हां, नारों की आवाज़ के साथ. नीचे के दुकानदार शरीफ़ आदमी थे. सोलह की रात आराम से गुज़र गई. कोई ख़ास बात नहीं हुई. बाहर की वारदातों की ख़बर भी उन तक नहीं पहुंच पाई.

१७ तारीख़ को बच्चों ने सुबह सुबह शोर सुना. ऊपर से सड़क पर झांका. सड़क की दोनों पटरियों पर आदमी ही आदमी थे. किसी के हाथ में छुरा, किसी के पास नङ्गी तलवार, कोई भाला लिए, कोई लाठी संभाले, कोई नल का टुकड़ा ही उठाए, कोई पत्थर ही हाथ में लिए शोर मचा रहा है. सड़क पर आते जाते दूसरे दल वालों को अपने वारों का निशाना बना रहे हैं. बच्चे देखते थे, बिलखते थे 'मां, देखो क्या होता है' कहते दौड़ते थे. फिर आते थे, देखते थे, बिलखते थे, हाथ फेंकते थे, फिर कहते थे --देखो उसे मारा छुरा, उसे लाठी लगी. देखो वह भागा ! वह उसके पीछे दौड़े, वह पकड़ा, वह गिरा, वह मरा !

मां यह सब न देख सकी. बोली—'बेटा, तुम भी अन्दर आ जावो. मेरे लिए वह भी तुम जैसे ही हैं. मैं यह सब नहीं देख सकती.' मां चल दी, बच्चे न हटे. देखते रहे.

बारह बजे तक शोर होता रहा. धर पकड़, मारकाट चलती रही. अचानक कुछ गुण्डों की नज़र ऊपर खड़े हिन्दू बच्चों पर जा पड़ी. अब क्या था. लगे पत्थर चलने, उन बच्चों को निशाना बनाकर. शरीफ़ मुसलमान पड़ोसी भाइयों से यह न देखा गया. लगे—'क्या करते हो ! क्या करते हो !' की आवाज़ लगाकर रोकने, पर उनकी सुनता कौन था ? भीड़ अब दरवाज़ा तोड़ने आगे बढ़ी. फटाफट दरवाज़े पर चोटें पड़ने लगीं. यह देख आवाज़ों के ज़रिये रोकने वाले अब ख़ुद आगे बढ़े और हमला करने वालों को हाथों से रोकना चाहा. रोकें रोकें कि दरवाज़ा खुल गया. अब बचाने वाले पूरा ज़ोर लगा ज्यों त्यों कर गुण्डों के ऊपर जाने से पहिले दरवाज़े पर जा पहुंचे. डट गए. बोले—'जान दे देंगे पर ऊपर चढ़ने नहीं देंगे.' गुण्डों ने मार डालने की धमकी दी पर वह डटे रहे. भीड़ में से एक ने आवाज़ लगाई—'मारकर हटा दो, पकड़ कर घसीट लाओ !' अब सीन बदल गया. मुट्ठी भर लोग और भीड़ का क्या जोड़ ! एक बुरी तरह ज़ख़्मी हुआ. बाक़ी घसीट बाहर किए गए. और गुण्डे ऊपर चढ़ गए. ऊपर जाकर मार डालने की धमकी देते हुए रुपए मांगे. गुजराती परिवार कांप गया. माँ ने हिम्मत कर जान की भीख मांगी और जो रुपए थे सब दे दिए. रुपये लेकर भीड़ नीचे उतर आई. परिवार दरवाज़ा बन्द कर अपनी मौत की घड़ियां गिनने लगा. घड़ी भर भी न बीत पाई थी कि दरवाज़े पर फिर चोटें पड़ने लगीं जो हथौड़ों की चोट से भी कहीं ज़ोर की थीं. मां ने फिर हिम्मत की और दरवाज़ा खोला. इस बार ज़ेवर की पोटली गुन्डों के हाथों सौंप जान बचाई.

ख़ून मुँह लगे शेर की तरह गुण्डों ने फिर धावा बोला. इस बार भीड़ की तादाद काफ़ी बढ़ गई थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़ ने शोर मचाया—'दरवाज़ा खोलो नहीं आग लगाते हैं.' देने को अब कुछ न था. जान बची थी और उस ही की बारी थी. पास पड़ोसियों ने, शरीफ़ दुकानदारों ने देखा अब इस परिवार की खैरियत नहीं. उन्होंने उस परिवार को वहां से अलग करने की बड़ी कोशिशें कीं पर कोई कोशिश फल न लाई. गुण्डे हर कोशिश को बेकार कर देते थे. कोई चारा न देख शरीफ़ मुसलमान भी बड़ी तादाद में ऊपर चढ़ गए और मां से बोले—'मां, डरो नहीं, हमारे रहते तुम्हें कोई हाथ न लगा सकेगा.'

मां—'बेटो, मरना तो एक दिन हमको भी है. आज ही मरने दो, तुम हमारे लिए क्यों जान खोते हो.'

उनमें से एक महमूद बोला—'नहीं मां, ऐसा नहीं हो सकता. हमारे जीते जी तुम्हारे जिस्म की तरफ़ भी कोई हाथ बढ़े, यह हम बरदाश्त नहीं कर सकते. हम आप से दरख़ास्त करते हैं आप सब एक कमरे में हो जाइये और दरवाज़ा बन्द कर लीजिए. आख़िर आप मेरी भी तो मां हैं.'

बात पूरी होते होते हल्ले के साथ भीड़ ऊपर आ गई. 'मारो काटो', 'हिन्दू हैं हिन्दू हैं.'

महमूद मुट्ठी भर साथियों समेत दरवाज़े पर खड़ा हो गया, कड़क कर बोला—'अन्दर नहीं जा सकते. इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है. बेचारे बाल बच्चेदार आदमी हैं. न किसी का कुछ लेते हैं न देते हैं.'

पीछे से आवाज़ आई—'मारो साले को, नमक हराम है, मुसलमान होकर मुसलमानों को रोकता है.' बस, महमूद पर उठी लाठी, पड़े थप्पड़, जमें घूंसे और यही हाल उसके साथियों का हुआ. महमूद से कुछ बनते न बना. पर वह हटा नहीं. मुंह ख़ून लगी भीड़ अन्दर घुस सामान को लूटने लगी. बन्द दरवाज़े पर चोट पर चोट पड़ने लगी. हार कर पागल भीड़ के सामने सर झुकाना पड़ा और दरवाज़ा खोलना पड़ा. लड़के और बाप को तो कुछ लोग गरदन पकड़ कर नीचे ले गए और लड़की और मां को हाथ पकड़ कर घसीटने लगे. अंधेरे में बिजली चमकी ! भीड़ में से एक आवाज़ उठी—'औरतों को न छेड़ना.' फिर अँधेरा. एक आवाज़ उठी—'औरत बच्चा एक न बचने पाएँ.' फिर बदली में से चांद निकला. दो जानें डट गईं और मां को बचाते बचाते शहीद हो गईं. शहीदों के साथियों ने मां के बचाने में जी जान एक कर दिया. इसी बीच लड़की बच निकली, नीचे पहुँची. भाई को आफ़त में फंसा देख उसके अन्दर का सूरमा जाग उठा. भाई का हाथ छुड़ा कर बोली—'पहले मुझे मारो, भाई को पीछे.' भाई पर के वार को अपने ऊपर लिया. इतने में किसी ने पीछे से छुरे वाले का हाथ पकड़ लिया. आवाज़ आई—'बुज़दिल, लड़की पर हाथ उठाता है !'

खर खर खर फ़ौजी लारियों की आवाज़ सुनाई दी. हमला करने वाले नौ दो ग्यारह हो गए. शहीदों की पुकार ईश्वर तक पहुंची और उसने सीन बदल दिया.

गुजराती परिवार आंखों में पानी भरे उनकी जान बचाने के लिए अपनी जानों पर खेल जाने वाली तीनों लाशों को जो ख़ून से लथपथ थीं निहारता, आहें भरता थाने के लिए रवाना हुआ. हिन्दू मां अपने कोख के पैदा हुओं से भी ज़्यादा प्यारे मुसलमान लालों को जी से आशीर्वाद देती अपने सारे परिवार को जीता जागता लेकर भारी दिल लिए चल दी.

सारा परिवार आज भी उन शहीद मुसलमान भाइयों के गुनगान करते थकता नहीं है. और मां, मां तो मां ही है. उसके तीनों लाल उसकी आंखों के सामने ख़ून से लथ पथ नाच उठते हैं और मां का गला भर आता है. वह कुछ न कहकर बहुत कुछ कह देती है.

परवरदिगार उन रूहों को जन्नत दे जो ईमान को बनाए रखने की ख़ातिर जिहाद करती हुई शहीद हो गईं और हिन्दुस्तानियों का सर ऊँचा कर गईं और इसलाम क्या है, इसका सच्चा सबक़ दे गईं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

आओ बेटा

अलीपुर के डिस्ट्रिक्ट जज बड़े नेक समझदार और तजुरबेकार आदमी थे. उनका ख़ासा बड़ा परिवार था. उनका बंगला एक शान्त हिफ़ाज़त की जगह खड़ा था.

सोलह अगस्त छुट्टी का दिन रहा. लीग की सरकार थी और लीग की ही तरफ़ से हड़ताल थी. जज साहब को उठते ही अख़बार पढ़ने का शौक़ था. जब तक अख़बार न पढ़ लें चाय तक न पीते थे. आज सत्रह तारीख़ थी. अख़बार का इन्तज़ार था. बार बार दरवाज़े की तरफ़ जाते थे और झुंझलाते लौट आते थे. बात क्या है ? अभी तक अख़बार वाला नहीं आया. इतनी देर तो उसे कभी न होती थी. इतने में उनकी बड़ी लड़की आई. बोली—'चाय तय्यार है.'

जज साहब—'चाय तय्यार हो गई ! अभी अख़बार तो आया नहीं. अच्छा ठहरो, अभी आता हूँ.'

लड़की—'आज अख़बार नही आएगा. कल लीग की हड़ताल जो थी.'

जज साहब—'अरे हां ! याद आया. आज पेपर नहीं आयगा. पहले क्यों नहीं बताया. मेरा इतना वक़्त बेकार ख़राब किया.'

लड़की हंसती हुई अपने पापा का हाथ पकड़ कर चाय के लिए अन्दर ले गई.

जज साहब हिन्दू थे. बंगले के आसपास की बस्ती भी हिन्दू बस्ती थी. छोटे मोटे मुसलमान फल वाले या ग़रीब मुसलमान धोबी परिवार भी थे. सोलह तारीख़ अमन से गुज़र चुकी थी. जज साहब को पता तक न था कि शहर में कुछ हुआ है.

जज साहब के बंगले के पीछे उनके खानसामा के घर से लगा एक धोबी का घर था. धोबी के परिवार में आठ दस आदमी थे. कई बच्चे थे.

अचानक हिन्दुओं का एक दल साफ़-सुथरे कपड़े पहने बड़े शोर-शराबे के साथ, हाथों में डंडे, लाठी, तलवार लिए उस ग़रीब मुसलमान धोबी के घर में घुस पड़ा. घर के सभी प्रानी स्त्री, बच्चे, बूढ़े बड़े कांप गए. बात की बात में इस ज़मीन के पर्दे से उनका निशान मिट गया. न जाने कैसे एक पांच बरस का बालक किसी तरह भीड़ की आंखों में धूल झोंकता घर के बाहर भाग निकला.

जज साहब चाय पी रहे थे. उसी वक्त पास से शोर सुनाई दिया. चाय छोड़ बाहर भागे.

उन्होंने देखा एक नन्हा सा पांच बरस का बच्चा 'बचाओ, कोई बचाओ' चिल्लाता उन्हीं की तरफ़ भागा आ रहा है. उसके पीछे है पचास साठ का झुण्ड. मासूम बच्चा कांपता चिल्लाता छोटी सी जान लिए आंख बन्द किए दौड़ता चला आ रहा है. भीड़ पीछा कर रही है. आवाज़ें आ रही हैं—'मारो साले को, यह मुसलमान है.' ओफ़ !

घबराया हुआ बच्चा जज साहब को आते देख उनकी तरफ़ लपका. 'बचाओ' 'बचाओ' कहकर जज साहब से जाकर लिपट गया. जज साहब ने भी 'आओ बेटा, तुम्हें कोई कुछ नहीं कह सकता' कहकर गोदी में उठा लिया, पुचकारा और दिलासा दिया. उसकी आंखें भरी थीं, इनकी भी आंखें भर आईं.

अभी जज साहब आंखें पोंछ भी न पाए थे कि भीड़ पास आ गई और शोर मचा मचाकर कहने लगी—'इसे छोड़ दो, इसे छोड़ दो, यह मुसलमान है, इसकी जान लिए बिना हम न रहेंगे.'

जज साहब—'नहीं, मैं इसे नहीं छोड़ सकता. इस नन्हें बच्चे को मारकर क्या लोगे ?'

भीड़—'यह मुसलमान का बच्चा है, मालूम है कुछ आपको ?

जज साहब—'इसने किसी हिन्दू को नहीं मारा, यह किसी को मार भी नहीं सकता, किसी को मारेगा भी नहीं.'

भीड़—'यह सब हम नहीं सुनना चाहते. छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ो'.

बदले के जोश में गरम भीड़ और गरम होती चली गई. इधर इन्साफ़ और जान बचाने के जोश से गरम जज साहब भी और गरम होते गए. शेर की तरह गरज कर बोले—'नहीं, मैं इसे नहीं छोड़ सकता. अब यह मेरा बच्चा है, मेरी गोद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है, मेरा है और मेरा है.'

भीड़—'हम कहते हैं, और फिर कहते हैं, इसे छोड़ दो. नहीं तो तुम्हें भी जान से हाथ धोना पड़ेगा.'

जज साहब—'हाँ, मुझे मारो, इसे हाथ नहीं लगा सकते.'

आवाज़ उठी—'मारो, मारो, बड़ा बना है इन्साफ़ बघारने वाला.'

इस आवाज़ के ख़त्म होते होते जज साहब के सर पर लाठी का जमा हाथ बैठा और बग़ल में छुरे का वार. मासूम बच्चा फड़का, काँपा और बेहोश हो कर गिर पड़ा.

भीड़ ने उसके साथ क्या किया, क़लम नहीं लिख सकती, शैतान भी होता तो आंख बन्द कर लेता.

बच्चा बचा न उसका धर्म पिता. सफ़ेद पोश पागल भीड़ की ख़ून की प्यास फिर भी न बुझी. आगे बढ़ी, जज साहब के घर में घुस गई, कोने कोने को छान डाला. पर कहीं कोई मुसलमान न मिला, न प्यास बुझी, न नशा उतरा. आंसू बहाती मां बेटी से पूछा—बताओ मुसलमान कहां छिपा रक्खे हैं, बताओ नहीं तो मकान में आग लगाते हैं.'

मां से अब न रहा गया. रोना छोड़ फट पड़ी—"आग लगा दो, हम सब को मार डालो, अब तक यहां कोई मुसलमान नहीं था, अब सौ मुसलमान छिपे हैं, नहीं बताते. करो जो जी में आये."

भीड़ का रंग बदल गया. वह लौट पड़ी.

परिवार अब दहाड़ मारकर रो पड़ा और अपना दुख दूर करने लगा.

मां अपने पति की मौत का ज़िक्र करते फूल उठती है, और बेटी, उसका चेहरा खिल उठता है, पर बच्चे को न बचा सकने की कसक से आंखें भीग जाती हैं. कसक बनी ही है.

मिट्टी और फूल

श्री० सरोजिनी श्रीवास्तव

आज बुझते जा रहे अरमान हैं,
जागते लेकिन सजीले गान हैं,
मैं चकित-विस्मित-भ्रमित-सी देखती—
दैव! यह अभिशाप या वरदान है?

कल्पना कहती कि वह मधुमास है,
डालियों की गोद में उल्लास है,
इन्द्र-धनु लज्जित जिसे है देखकर
आज कलि के पास वह मृदुहास है।
आज तरु के मोद में पिक बोलती,
और कानों में सुधा-रस घोलती,
बन्द थे जो पट मुखर उल्लास के
स्वर-करों से वह उन्हें है खोलती।'

सत्य कहता है कि यह है कल्पना,
कवि तुम्हारे मृदु हृदय की जल्पना,
स्वप्न है झूठा, असार, असत्य है,
किन्तु है संसार सत्यों से बना।' १

कल्पना कहती कि 'देखो फूल को',
सत्य कहता है कि 'देखो धूल को',
और देखो—शूल डाली में लगे,
क्षुद्र मिट्टी में गड़े इस मूल को।'

कल्पना औ सत्य की इस बात को,
स्वामिनी औ भृत्य की इस बात को,
सुन रही थी मैं नयन निज मूँदकर
और बोली रोक वाद-विवाद को—

'कल्पना औ सत्य दोनों हैं यहां—
जो करे इन्कार वह नर है कहां?
बात ऐसी क्यों नहीं तुम सोचते
कल्पना औ सत्य दोनों हों जहां—

'भूमि पर मिट्टी पड़ी म्रियमाण है,
मुस्कुराते फूल की वह प्राण है,
जब कि मुरझा भूमि पर गिरता कुसुम
एक मिट्टी मात्र उसकी त्राण है। २

'सत्य भूमि है और कल्पना उसमें फूल उगाती।
सत्य आदि है और विकस-हंस उसमें ही खो जाती॥' ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक सूचनाएँ

१—हमें सूचना मिली है कि 'जनवाणी' नामक एक समाजवादी मासिक पत्रिका काशी विद्यापीठ, बनारस से प्रकाशित होनेवाली है।

इसके आदर्श और उद्देश्य इसके प्रधान सम्पादक आचार्य श्री नरेन्द्र देव जी के शब्दों में इस प्रकार हैं—

"भारतीय समाज में महान् परिवर्तन होनेवाले हैं। देश में नवजीवन हिलोरें ले रहा है। भारत की अवरुद्ध जीवन शक्ति अब फिर वेगवती हो चली है। भारत का नया मानव अपने को सार्थक करने को निकल पड़ा है। इस नवजीवन प्रवाह को रोकने का प्रयत्न निरर्थक है। इसे रोकने का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। इस तरह सामाजिक शक्ति नष्ट करने से व्यक्तियों तथा समूहों को रोकना है। और सामाजिक शक्ति की दिशा निर्धारित करनी है, उसका नियन्त्रण करना है।

पुराने आदर्शों से आज नये नेतृत्व की आवश्यकता है। समाजवाद ही यह नया नेतृत्व प्रदान कर सकता है। जनता के विस्तृत तथा व्यापक हित के आधार पर निर्मित यह सम्पूर्ण सामाजिक सिद्धान्त ही हमारा पथ-प्रदर्शन करें सकता है। जन-साधारण की तथा जन क्रान्ति की रीति ही समाज के समुचित विकास का साधन बन सकती है।

समाजवाद का सवाल केवल रोटी का सवाल नहीं है। समाजवाद मानव-स्वातन्त्र्य की कुंजी है। समाजवाद ही एक स्वतन्त्र सुखी समाज में सम्पूर्ण स्वतन्त्र मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर सकता है। समाजवाद ही श्रेणी-नैतिकता तथा मात्स्य-न्याय के बदले जन प्रधान नैतिकता तथा सामाजिक न्याय की स्थापना कर सकता है। समाजवाद ही स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृ भाव के आधार पर एक सुन्दर तथा सबल मानव-संस्कृति की सृष्टि कर सकता है।

ऐसी सभ्यता तथा संस्कृति उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करते ही नहीं हो जायगी। इसके लिए पुनर्निर्माण का कार्य ही समुचित रीति से करना होगा। मानव-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए नागरिक स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्वपूर्ण प्रजातन्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता होगी। सुन्दर और सम्पूर्ण मनुष्यत्व की सृष्टि तभी हो सकती है, जब साधन भी सुन्दर तथा मानवोचित हो। उद्देश्य और साधन परस्पर सम्बद्ध तथा परस्पर निभर होते हैं। दोनों का अपना अपना महत्व है।

इसके अतिरिक्ति इतने काल के सामाजिक विकास के बाद जो मौलिक मानवीय सत्य प्रतिष्ठित हो गये हैं, उन पर जोर देना, उन्हें समाज के पुनर्निर्माण में उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। इनकी अवहेलना करके सभ्य और सुन्दर सामाजिक जीवन नहीं चलाया जा सकता। श्रेणी-नैतिकता के नाम पर सभी पुराने आदर्शों और सिद्धान्तों का बहिष्कार उचित नहीं। समाज के दीर्घकालीन अनुभव तथा संचित ज्ञान का निरादर अनुचित होगा। इसके विपरीत पुराने आदर्शों और प्राचीन संस्कृति का अध्ययन आवश्यक है। हमारी नवीन संस्कृति के निर्माण में इसका बहुत बड़ा हाथ होगा।

'जनवाणी' इस सर्वोत्तम सामाजिक कर्तव्य की पूर्ति करने की चेष्टा करेगी। समाजवाद के आलोक से समस्त सामाजिक जीवन को जगमग कर देना और सभी सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना 'जनवाणी' का उद्देश्य होगा। 'जनवाणी' समाज के सम्पूर्ण सर्वाङ्गीण विकास का साधन बनने का प्रयत्न करेगी। इस प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और कलात्मक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयों पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न 'जनवाणी' करेगी।

हम इस पवित्र कार्य में सभी जनोत्कर्ष के प्रेमियों और जनशक्ति के पुजारियों के सहयोग की प्रार्थना करते हैं।"

इसके सम्पादक मण्डल में आचार्य नरेन्द्र देव, श्री० बी० पी० सिन्हा, श्री राजाराम शास्त्री और श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' होंगे।

२—सम्पादक 'कहानियाँ' कदमकुआँ, पटना ने हमें सूचित किया है कि सर्वसाधारण को जानकर खुशी होगी कि बिहार प्रान्त से कहानियों का एक सुन्दर संग्रह सिरीज़ रूप में प्रतिमास निकालने का आयोजन किया गया है। यह संग्रह कम से कम एक प्रतिमास निकलेगा। कहानियों की जितनी मासिक पत्रिकाएँ इस समय निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं उनसे मेरा दृष्टिकोण इसलिए भिन्न रहेगा कि उन्होंने बाजार में नीचे दर्जे की चीज़ें फेंकी हैं जिन्हें न तो सचाई से सरोकार है और न साहित्य से। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हमारी सेवा से अच्छी कहानियों के भूखे पाठक अवश्य संतुष्ट होंगे। इसके प्रधान सम्पादक सूर्य पुरा नरेश श्री राजा राधिकारमण प्रसादजी द्वेदी रहेंगे।

३—यशपाल जैन, मंत्री, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, टीकमगढ़ ने हमें सूचित किया है कि श्रद्धेय नाथूराम जी प्रेमी की सेवाओं से हिन्दी-जगत् भली भाँति परिचित है। प्रेमी जी उच्चकोटि के लेखक हैं और अनुसन्धान के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया है, वह हिन्दी के बहुत कम विद्वान कर पाये हैं। उनकी सुप्रसिद्ध संस्था 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' द्वारा प्रकाशित हिन्दी की पुस्तकों ने साहित्य-प्रेमियों के बीच बड़ी लोक-प्रियता प्राप्त की है और उनके द्वारा प्रकाशन का मान-दण्ड (स्टैण्डर्ड) भी ऊँचा हुआ है।

आज से लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व प्रेमी जी की सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट करने का आयोजन हुआ था। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि वह आयोजन अगले मास पूर्ण हो रहा है। ग्रंथ की तैयारी में हिन्दी, गुजराती, मराठी, बङ्गला और अङ्गेज़ी के लगभग चार दर्जन विद्वान और एक सौ पैंतीस लेखकों का सहयोग रहा है। छपाई इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस में हुई है। ग्रंथ में निम्नलिखित विभाग हैं :

१. अभिनंदन

इसमें सर राधाकृष्णन्, पुरुषोत्तमदास टण्डन, काका कालेलकर, हरिभाऊ उपाध्याय, बेचरदास जी० दोशी, सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्रकुमार, डा० ए० एन० उपाध्ये, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं० देवकीनन्दन, प्रो० गो० खुशाल, मुनि जिनविजय, मामा वरेरकर प्रभृति विद्वानों की रचनाएँ संग्रहीत हैं।

२. भाषा विज्ञान और हिन्दी साहित्य

इस विभाग में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० आर्येन्द्र शर्मा, प्रो० पी० के गोडे, डा० मंगलदेव शास्त्री, मैथिलीशरण गुप्त, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, ठा० गोपाल शरण सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, प्रो० सत्येन्द्र डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, सुधीन्द्र, उदय शङ्कर भट्ट आदि की रचनाएँ हैं।

३. भारतीय संस्कृति और पुरातत्व

इसमें श्री किशोरलाल घ० मश्रूवाला, सन्त निहाल सिंह, आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं० सुन्दरलाल, डा० प्रबोधचन्द्र बागची, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० मोतीचन्द्र, डा० जगदीशचन्द्र जैन, पं० माधव स्वरूप 'वत्स' प्रभृति विद्वानों के खोजपूर्ण निबन्ध हैं।

४. जैन दर्शन

इस विभाग में पं० सुखलाल. प्रो० दलसुख मालवणिया, जैनेन्द्रकुमार, पं० महेन्द्रकुमार, पं० कैलाशचन्द्र पं० वंशीधर आदि के लेख हैं।

५. संस्कृत, प्राकृत और जैन साहित्य

इसमें डा० बहादुरचन्द्र जावड़ा, डा० बनारसीदास जैन, प्रो० बलदेव उपाध्याय, पं० सुखलाल, डा० ए० एन० उपाध्ये, मुनि पुण्यविजय, अगरचन्द्र नाहटा, दरबारी लाल कोठिया आदि विद्वानों की रचनाएँ हैं।

६. मराठी और गुजराती साहित्य

इसमें प्रो० प्रभाकर माचवे, रावजी ने० शाह, प्रो० डांगे, साराभाई मणि० नवाब, प्रो० मुन्डी, श्री धनजी शाह, प्रो० सांडेसरा प्रभृति गुजराती और मराठी के विद्वानों की रचनाएँ हैं।

७. बुन्देलखण्ड:

इस विभाग मे डा० रघुवीर सिंह, वृन्दावनलाल वर्मा, देवेन्द सत्यार्थी, गौरीशङ्कर द्विवेदी, शिवसहाय चतुर्वेदी, राधाचरण गोस्वामी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', बनारसीदास चतुर्वेदी, यशपाल जैन आदि के लेख हैं।

८. समाज-सेवा और नारी-जगत

इसमें मुनि अमरचन्द उपाध्याय, बा० अजित प्रसाद, महात्मा भगवानदीन, भगवानदास केला, प्रो० धर्मेन्द्र-नाथ, कमला देवी चटोपाध्याय, सत्यवती मल्लिक, डा० यतीन्द्र विमल चौधरी, श्री जयलाल मेहता, चन्दाबाई, कु० प्रेमलता कौल आदि की रचनाएँ हैं।

९. विविध

इस विभाग में कुछ स्फुट और कुछ उन लेखों का समावेश किया गया है, जो देर से प्राप्त होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उपर्युक्त विभागों में नहीं जा सके। लेखकों में डा० सत्यप्रकाश, काशिनाथ त्रिवेदी, जुगलकिशोर मुख्तार, परमेष्ठीदास जैन, शंकरदेव विद्यालङ्कार, सुरेश सिंह प्रभृति के नाम उल्लेखयोग्य हैं।

पूरे ग्रन्थ में प्रेमी जी के बारे में कुल पचास पृष्ठ रक्खे गये हैं। शेष पृष्ठों में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दार्शनिक एवं पुरातत्व-सम्बन्धी सामग्री है। इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस की छपाई का तो कहना ही क्या ? बारह पाइन्ट मोनो टाइप में पूरा ग्रंथ कम्पोज़ हुआ है। लगभग साढ़े छः सौ पृष्ठ २०×३० अठपेजी आकार के हैं।

चित्रों में पुरातत्व विभाग के सौजन्य से प्राप्त देवगढ़ के अनेक सुन्दर चित्रों के अतिरिक्त ग्वालियर तथा अन्य स्थानों के बहुत से महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ चित्र हैं। बुन्देलखण्ड-चित्रावली तो अपने ढंग की एक ही है ! इनके अलावा श्री सुधीर खास्तगीर तथा अन्य चोटी के कलाकारों की कलापूर्ण कृतियाँ हैं।

ग्रंथ का मूल्य दस रुपया होगा; लेकिन जो बन्धु २० सितम्बर तक हमारे पास २) पेशगी भेजकर ग्राहक बन जायँगे, उन्हें आठ रुपये में ही दे दिया जायगा।

४—श्री रघुनंदन प्रसाद गर्ग ने हमें सूचित किया है कि चन्दौसी में अखिल भारत वर्षीय नागरी समाचार पत्र प्रदर्शनी १० अक्तूबर को हो रही है। यूँ तो हर वर्ष इस प्रकार की प्रदर्शनी होती ही रहती है लेकिन इसमें कुछ विशेषताएँ भी होंगी जैसे—

(१) हिन्दी के सभी मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, षट्-मासिक, वार्षिक अथवा सप्ताह में दो बार निकलने वाले सभी पत्र-पत्रिकाएँ होंगी। वे भी पत्र होंगे जो निकलना बंद हो चुके हैं।

(२) विदेशी हिन्दी के पत्र भी होंगे अब तक जो प्रदर्शनी हुई हैं। उनसे जनता ने विशेष लाभ नहीं उठाया कारण वे किसी पुस्तकालय की ओर से नहीं हुईं ताकि वे प्रतियाँ नमूने के तौर पर पुस्तकालय में रहतीं या उनकी सूची छापी जाती जिससे हिन्दी प्रेमी जनता को यह मालूम हो जाता कि इतने पत्र हिन्दी के ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों से निकल रहे हैं।

(३) इसका कोई विशेष क्रम बद्ध रूप नहीं है जिससे हर वर्ष यह मालूम हो सके कि कौन से हिन्दी के नये पत्र चालू हुये, कितने बंद हुये और किस कारण से।

(४) नियमानुसार या क्रमानुसार हर वर्ष प्रदर्शनी भी बदल बदल कर प्रान्तों में भी नहीं होती ताकि हिन्दी का कोई प्रचार हो सके।

(५) हमारा यह प्रयत्न होगा कि इसके लिये एक अखिल भारत वर्षीय सम्पत्ति कायम करें जिसमें हर भाषा का पत्र अगली प्रदर्शनी में आ सके।

इस अवसर पर श्री राव साहब रंगनाथन् जी पुस्तकाध्यक्ष, काशी विश्वविद्यालय, शास्त्री श्री मुरारीलाल जी नागर तथा श्री परमेश्वरीलाल जी गुप्त सम्पादक 'सैनिक' आगरा पधार रहे हैं।

५—प्रचार मन्त्री ने हमें सूचित किया है कि अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आगामी वार्षिक अधिवेशन सिन्ध प्रान्त के करांची नगर में हो रहा है। राष्ट्रभाषा का प्रश्न वैसे तो सदैव महत्वपूर्ण रहा है किन्तु इस समय के वातावरण में उसका महत्व कई गुना बढ़ गया है। स्वतन्त्रता के निकट आने के साथ हमें अपनी भाषा तथा उसके साथ बँधी हुई संस्कृति की रक्षा तथा विकास के लिये भी सचेत रहना नितान्त आवश्यक हो गया है।

सिन्ध भारत के एक कोने में है तथा अधिकतर नगरों से सुदूर भी है। किन्तु भारतीय संस्कृति का सब से प्राचीन केन्द्र होने का सौभाग्य इसी वृहस्पति क्षेत्र को है। भारत के प्राचीन गौरव का स्मृति-चिन्ह 'मोहन-जो-दड़ो' तथा सक्खर का महान तीर्थ 'साधुबेला' करांची से अधिक दूर नहीं है। सिन्धु-नद पर निर्मित सक्खर का विशाल सेतु एक दर्शनीय स्थल है। स्वयं करांची नगर भारत के सब से सुन्दर नगरों में एक है। अतः कष्ट होते हुए भी आपका सम्मेलन के अधिवेशन में आना आवश्यक है।

दिसम्बर की २६-२७-२८-२९-३० तारीख को यहां सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा है। हम अनेक परिषदों तथा मूल अधिवेशन के अतिरिक्त एक विराट कवि-सम्मेलन, एक प्रदर्शनी, एक साहित्यिक नाटक, एक लेखक-सम्मेलन, प्रान्तीय भाषाओं का सम्मेलन आदि अनेक आयोजन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई किताबें

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (प्रथम भाग)—लेखक, पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०; भूमिका लेखक, दीवान बहादुर हरविलास शारदा भूतपूर्व एम० एल० ए०; प्रकाशक, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर; विक्रेता, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर; मूल्य ३)

राजस्थान के लम्बे चौड़े रेगिस्तान में जो विस्तृत हिन्दी काव्य सागर लहरा रहा है उसकी कुछ लहरों का परिचय हमें श्री मेनारिया जी ने इस किताब में दिया है। इसमें मेवाड़ के तीन किताब घरों—सरस्वती भण्डार, सज्जन वाणी विलास और विक्टोरिया हाल लाइब्रेरी में रखी हुई हिन्दी की हाथ-लिखी किताबों की फेहरिस्त और उनका परिचय दिया गया है। लेखक के शब्दों में इनमें सरस्वती भंडार सबसे पुराना और बड़ा किताबघर है। महाराना भीमसिंह (सं० १८३४-८५) के वक्त में कर्नल टाड ने इस किताबघर को टटोला था और कुछ किताबों की नकल करवाकर वे इङ्गलैंड ले गए थे। उसके बाद ठीक से किसी ने भी इसकी जांच नहीं की। यह उस राह में पहला क़दम है। और दो किताब घर छोटे-छोटे हैं लेकिन छोटे होने से उनकी अहमियत कम नहीं हो जाती। उदयपुर के और प्राइवेट किताबघरों से भी लगभग दस किताबों के विवरण इसमें दिए गए हैं।

इस खोज रिपोर्ट में जिन किताबों और कवियों का विवरण दिया गया है उनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनका नामो-निशान हमें इसके पहले कहीं नहीं मिला था। कुछ किताबों की ऐसी पोथियां इस खोज रिपोर्ट में दी गई हैं जिनकी अहमियत बहुत ज़्यादा है। मलिक मुहम्मद जायसी को ग़ौर से पढ़ने वाले रामचन्द्र शुक्ल कृत जायसी ग्रन्थावली पर कितना झुँझलाते हैं, यह उन्हीं के दिलों को मालूम है लेकिन क्या करें? न होने से तो काना बेटा ही भला होता है। इस खोज रिपोर्ट में जायसी की पद्मावति की एक पोथी का उल्लेख है। अगर उसको मूल प्रति मानकर सम्पादन किया जाए तो जायसी ग्रंथावली के पाठ से भिन्न पाठ तैयार होगा और शायद वह ज्यादा सच्चा होगा। पृथ्वीराज रासो की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। बिहारी सतसई के छपे हुए सबसे अच्छे पाठ बिहारी रत्नाकर की भाषा मेनारिया जी के ही शब्दों में बिहारी की नहीं वरन् रत्नाकर की है। इस खोज रिपोर्ट में इन किताबों की अच्छी पोथियों का विवरण है।

पं० मोतीलाल मेनारिया ने बड़ी जिम्मेदारी के साथ इन पोथियों को पढ़ा और यह रिपोर्ट लिखी है। हमें उम्मेद है कि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की तरह उन्होंने कहीं पर भी लापरवाही नहीं दिखलायी है। टैसीटरी के बाद राजपूताने में काव्य रस की धारा को खोजने की यह पहली कोशिश है। हमारी कामना है कि हिन्दी के विद्वान इस रिपोर्ट से सच्चा लाभ उठावें और मेनारिया जी इस काम को और आगे बढ़ाकर पूरा करें। यह किताब का पहला हिस्सा ही है।

हिन्दुस्तानी (हिन्दी-तिमाही)—सम्पादक, श्री रामचन्द्र टण्डन; प्रकाशक, हिन्दुस्तानी ऐकडेमी, संयुक्त प्रांत इलाहाबाद; मूल्य, वार्षिक ४), एक प्रति का १)

इस तिमाही पत्रिका का जनवरी-मार्च '४६ का अंक हमारे सामने है जिसके सम्पादक श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी हैं। इसमें छः लेखों का संग्रह है जिनका सम्बन्ध रिसर्च कार्य से है। सभी लेख उच्चकोटि के हैं लेकिन अगर सम्पादक ने अपनी जिम्मेदारी कुछ पहिचानी और निभायी होती तो शायद पत्रिका और सुन्दर हो जाती।

श्री बलदेव उपाध्याय का 'अलंकार शास्त्र का एक परिचय' शीर्षक लेख भारतीय साहित्य समालोचना के सिद्धान्तों को बड़े वैज्ञानिक ढंग से हमारे सामने रखता है। प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा का 'खाद्य समस्या' शीर्षक लेख भी गहरा है। श्री अगरचन्द नाहटा का 'कविवर जान का सबसे बड़ा ग्रंथ 'बुद्धि सागर'' लेख हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए मनोरंजक है। इस लेख में लेखक ने लिखा है कि इसे लिखने में उन्हें मूल प्रेरणा मई '४५ की 'विश्ववाणी' में प्रकाशित एक लेख से मिली है। उस लेख में लेखक ने लिखा था—'इन्होंने (जान कवि ने) अपने बड़े से बड़े ग्रंथ के बनाने में १२ दिन से अधिक नहीं लगाए।' और हमने सम्पादकीय टिप्पणी दी थी, 'जान कवि के सभी ग्रंथ आकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे हैं। बड़े से बड़ा ग्रन्थ बीस-पचीस पृष्ठों का है।' नाहटा जी ने 'बुद्धिसागर' की एक दो प्रतियाँ खोजकर इन दोनों कथनों का प्रतिवाद किया है और साथ ही यह भी कहा है कि अगर बुद्धिसागर की ये प्रतियां न भी मिलतीं तो भी 'विश्ववाणी' के दोनों कथन गलत थे। पहले के विरोध में नाहटा जी कहते हैं कि 'रतन-मंजरी' की रचना १२ दिनों से अधिक की है। और दूसरे के विरोध में कहते है कि 'पुहुपबरिषा' नामक ग्रंथ २७ पृष्ठों का है।

इन बातों के 'विश्ववाणी' से संबंधित होने के कारण हम अपना दृष्टिकोण बतलाना चाहते हैं। जिस 'हिन्दुस्तानी' नामक पत्रिका में यह लेख प्रकाशित हुआ है उसीके जनवरी-मार्च १९४५ के अंक में 'कवि जान' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें हिन्दुस्तानी एकेडेमी में सुरक्षित एक पोथी के आधार पर यह बतलाया गया था कि 'बुद्धि सागर' नामक ग्रन्थ का विस्तार २६ पृष्ठ है। इस प्रकार जहाँ तक 'बुद्धिसागर' के विस्तार का प्रश्न है वह 'हिन्दुस्तानी' का ही है 'विश्ववाणी' का नहीं। 'रतनमंजरी' का विस्तार २६४ दोहे हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने अपने अन्य ग्रंथों की भाँत रचना समय नहीं दिया। परन्तु 'कमलावती' नामक ग्रंथ जिसका विस्तार २०४ दोहे हैं, में लेखक ने स्पष्ट कहा है—

द्वादस दिन में जान कवि
कही सुमिरि जगदीस

जब २०४ दोहे का ग्रंथ १२ दिनों में जान लिख सकते थे तो २६४ दोहों के ग्रंथ को भी वह १२ दिनों में लिख लेंगे, यह अनुमान गलत ही होगा—यह नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात यह भी है कि १२ स्वयं एक एक दर्जन का सूचक शब्द है और अपने में उतना सीमित नहीं है।

सम्पादकीय टिप्पणी के विरोध में दो तर्क नाहटा जी ने रखे हैं। पहला तो यह कि 'बुद्धिसागर' की जो प्रतियाँ उन्हें प्राप्त हुई हैं वे बड़ी-बड़ी हैं और दूसरा यह कि 'पुहुप बरिषा' २७ पृष्ठों की रचना है, इस प्रकार २०-२५ पृष्ठों का आकार गलत हो जाता है। पहले तर्क के उत्तर में हमारा यही निवेदन है हमारे सामने एकेडेमी की पोथी और पत्रिका का वह अंक था। कोई भी सम्पादक उसका आधार ले सकता था। दूसरे तर्क के उत्तर में निवेदन है कि २०-२५ पृष्ठ कहना ही यह बतलाता है कि '२५' का अर्थ २५ ही नहीं है। '२०-२५' में '२५' का अर्थ '२५' ही समझने वाले व्यक्ति पर हमें तरस आता है।

जहां तक 'बुद्धि सागर' की इन नवीन प्रतियों का प्रश्न है, उस पर अधिक गहराई से विचार करना चाहिए। नाहटा जी ने 'बुद्धिसागर' की विषय वस्तु का विस्तार से परिचय इस लेख में नहीं दिया। जिन प्रतियों का उल्लेख उन्होंने किया है उनकी तथा एकेडेमी की प्रतियों की परीक्षा अभी तक एक ही व्यक्ति ने नहीं की है। प्रस्तुत लेखक ने एकेडेमी की प्रति देखी है और नाहटा जी ने वह नहीं देखी। नाहटा जी के पास जो पोथी है वह प्रस्तुत लेखक ने नहीं देखी। ऐसी दशा में किसी निर्णय पर पहुँचना संभव ही नहीं है।

नाहटा जी इधर लगभग दो-तीन वर्षों से जान कवि को हमारे सामने ला रहे हैं। हम उनके इस प्रयत्न के लिए कृतज्ञ हैं परन्तु फिर भी दो-एक बातें उन्हें सलाह के रूप में बतलाना चाहते हैं। मौलिकता के पीछे लाठी लेकर दौड़ना अशोभन लगता है। जब किसीको गलत कहना हो तो तर्क तो उथले देना लेकिन गरजती-चमकती आवाज़ से यह कहना कि अमुक गलत है और हम सही हैं, गंभीर पाठकों की हँसी का विषय बन जाता है। कवि जान के ग्रन्थ की एक ऐसी पोथी उन्होंने ढूँढ़ निकाली है जो महत्वपूर्ण है, उसके लिए वे प्रशंसा एवं श्रद्धा के पात्र हैं परन्तु जिस ढंग से वे अपनी खोज को हमारे सामने रखते हैं, वह उस पर पर्दा डालने की कोशिश करता है। हमारा दूसरा अति विनम्र निवेदन यह है कि जान कवि कोई महत्वशील व्यक्तित्व नहीं था। यों तो इतिहास में कोई भी घटना महत्वहीन नहीं है परन्तु फिर भी समाज, जीवन और कला के दृष्टिकोण से कुछ ही व्यक्तित्व महत्वशील होते हैं और जान उनमें नहीं आ सकते। उनके ग्रंथों की खोज करना तो हमारा कर्त्तव्य है परन्तु उनकी इतनी अधिक चर्चा करना अपनी शक्ति का अपव्यय है। हिन्दी में रिसर्च करने वालों की कमी है। नाहटा जी जिस लगन से इस दिशा में कार्य कर रहे हैं उस पर हमें गर्व है परन्तु वे यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सीमित शक्ति का अपव्यय न करें तो हिन्दी साहित्य पर उनकी कृपा होगी।

इस पत्रिका का चौथा लेख डा० देवसहाय त्रिवेदी कृत 'भारतीय इतिहास के अध्ययन का शिलान्यास' है। इसमें भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों का ध्यान कुछ महत्वपूर्ण बातों की ओर आकर्षित किया गया है। पत्रिका का पांचवां लेख श्री हरिहरप्रसाद गुप्त कृत 'गाय के नाम' है। यह लेख ग्रामीण संस्कृति (Folk Culture) का अध्ययन हमारे सामने प्रस्तुत करता है। लेख का सम्पादन यदि सम्पादक महोदय कर देते तो वह आकार में कुछ छोटा किन्तु अधिक प्रभावशाली हो जाता। ग्रामीण संस्कृति का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय है। हरिहर प्रसाद जी के इस प्रयत्न की जितनी सराहना की जाए कम है। अंतिम लेख श्री रामप्रताप शास्त्री का 'वत्सराज उदयन' है जो कि पिछले अंक के प्रकाशित किसी लेख का अन्तिम अंश है।

इन लेखों के पश्चात सामयिक साहित्य की समालोचना दी गई है जो समालोचक की गहरी पैठ तथा प्रौढ़ लेखनी का परिचय देने में सर्वथा असमर्थ है।

इस पत्रिका के इस अंक में प्रूफ की अशुद्धियां बहुत अधिक हैं। किसी भी रिसर्च-पत्रिका के लिए इतनी अधिक गलतियां बड़ी लज्जा की बात है। कई स्थलों पर पूर्ण विराम खड़ी पाई के स्थान प्रश्नवाचक चिह्न का प्रयोग किया गया है।

वैसे पत्रिका का यह अंक सुन्दर है।

विक्रमार्चन (एकांकी नाटक संग्रह)—संग्रहकर्ता, नाम नहीं दिया; प्रकाशक, विद्यामन्दिर प्रकाशन, सुरार ग्वालियर; मूल्य २)

इस पुस्तक में विक्रमादित्य से सम्बन्धित डा० रामकुमार वर्मा, श्री सत्येन्द्र, श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', श्री गिरिजा कुमार माथुर, श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' और श्री भानुप्रताप सिंह जी के छः एकांकी नाटकों का संग्रह है। सभी नाटक साहित्यिक और मनोरंजक और कला की दृष्टि से साधारण हैं। उदयशङ्कर भट्ट जैसे कलाकार ने इस विषय पर कलम चलाई होती तो शायद विक्रमादित्य के विराट वैभव की एक कलात्मक झांकी हमें दिखलाई पड़ जाती।

इन नाटकों की ऐतिहासिकता पर यदि एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगाकर उसकी परीक्षा की जाए तो शायद ही एकाध खरा उतरेगा। ऐतिहासिक नाटकों की जिम्मेदारी से पूरी तरह के शायद ही इन लेखकों में कोई परिचित हो। नाट्यकला की दृष्टि से कहीं कहीं पर कथोपकथन शिथिल हो उठे हैं और कहीं कहीं पर लेक्चरबाजी का आनन्द मिलने लगता है। एकांकी नाटकों में वह खटकता है। इनकी भाषा भी कहीं कहीं खटकती है। एक स्त्री पात्र कहती है—'मैं सम्राट की कृतज्ञा हूँ।' यहां पर 'कृतज्ञ' शब्द पर्याप्त था। 'कृतज्ञा' गढ़कर लेखक ने अच्छा नहीं किया। एक दूसरा लेखक विक्रमादित्य के मुख से एक नर्तकी को सम्बोधित कराते हुए कहलाता है—'ये बौद्ध! तो तुम किसी बौद्ध की प्रव्रज्या में फँस गयीं?' यहां पर 'फँसना' शब्द अनुपयुक्त है। भाषा की ये बहुत छोटी-छोटी भूलें तनिक सी सावधानी से दूर हो सकती थीं। सारी पुस्तक को पढ़ने के पश्चात विक्रमादित्य के व्यक्तित्व के विषय में जो बातें पाठक के हृदय में घर कर लेती हैं वे अपने में ही विरोधाभास उपस्थित करती हैं। इसका कारण यह है कि किसी जिम्मेदार व्यक्ति ने इस संग्रह का सम्पादन नहीं किया है। प्रकाशक की जो स्कीम है, वह तो अत्यन्त सराहनीय है लेकिन जो प्रयत्न है वह अत्यन्त साधारण है। डा० रामकुमार वर्मा का नाटक इस पुस्तक में सबसे पहला रखा गया है और वह वास्तव में सर्वश्रेष्ठ है।

—कमल कुलश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

बापू की ७८वीं जन्म-तिथि

हिन्दू पञ्चांग के अनुसार गत २२ सितम्बर को और रोमन कैलेण्डर के मुताबिक़ २ अक्तूबर को सारे देश ने बापू की ७८वीं जन्म-तिथि मनाई। यूँ तो अनेक महापुरुषों की जन्म-तिथि देश में मनाई जाती है किन्तु बापू की जन्म-तिथि उन समस्त उत्सवों से भिन्न है। हमारे लिये बापू की जन्म-तिथि हमारे देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति का पैमाना है। १९१६ से १९४६ तक के ३० वर्षों पर गान्धी जी की अमिट छाप है। गुलामी की असह्य यन्त्रणा से छटपटाते हुये बेबस देश को उन्होंने सञ्जीवनी देकर दारुण बेबसी से मुक्त किया। ४० करोड़ का राष्ट्र अपने आपे में आया। शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उसने टक्कर ली। कई बार उसे अग्नि-परीक्षाओं से गुज़रना पड़ा। सारे संसार ने हमारी अद्भुत लड़ाई को विस्मय-विमुग्ध होकर देखा, हमारी प्रशंसा की और हमें नैतिक सहानुभूति दी। दुनिया के महान तत्त्वज्ञों, दार्शनिकों और विचारकों ने हमारे सत्याग्रह के प्रयोग में, हमारी अहिंसा में, हमारे चरखे में हमारे गृह-उद्योग में तमाम दुनिया की मुक्ति की आशा-किरण देखी और यह समझा कि गान्धी जी के सिद्धान्तों की ज़रूरत न केवल पराधीन भारत को ही है वरन समस्त संतप्त संसार को है।

आज गान्धी जी के इस ७८वें जन्म-दिन पर यदि हम आज़ादी की मंज़िले मक़सूद पर नहीं पहुंचे हैं पर फिर भी उसके फाटक तक पहुंच गये हैं, जहाँ से हमें उसकी झलक साफ दिखाई दे रही है और यह भान हो रहा है कि वह आज़ादी हमारी है और हमें उसे प्राप्त करने से कोई ताक़त नहीं रोक सकती।

गान्धी जी विनाशकारी क्रान्ति के ही नहीं निर्माणकारी क्रान्ति के भी प्रवर्त्तक

किसी भी देश की राजनैतिक क्रान्ति के हमेशा दो रुख होते हैं—विनाशक और निर्माणकारी। देश की मौजूदा शासन-व्यवस्था जब तक नष्ट नहीं होती तब तक नेताओं का निर्माण कार्य नहीं शुरू होता। लगभग सभी देशों की क्रान्ति की यही कहानी है। किन्तु गान्धी जी की क्रान्ति-योजना इससे भिन्न है। उन्होंने सन् १९२१ में जब ब्रिटेन की शैतानी हुकूमत के ख़िलाफ़ देश में जङ्ग का ऐलान किया तो पंच बहिष्कारों के साथ साथ रचनात्मक-कार्य क्रम पर भी बेहद ज़ोर दिया।

उन्होंने विलायती वस्त्रों के बहिष्कार की बात कही लेकिन साथ ही साथ चरखा और खादी को स्वराज की कुञ्जी बताया। अदालतों का बहिष्कार करके उन्होंने पञ्चायती अदालतें क़ायम करने की बात कही। सरकारी तालीम की जगह उन्होंने बुनियादी तालीम की योजना रखी। उन्होंने हरिजन-उद्धार, हिन्दू-मुसलिम एकता, स्त्रियों की आज़ादी ग्रामोद्योग, किसानों, विद्यार्थियों और मज़दूरों के सङ्गठन पर ज़ोर दिया, उन्होंने इलाज का सस्ता और सुलभ तरीक़ा निकाला, उन्होंने सर्वधर्म समन्वय की बात कही। ग़रज़ यह है कि उन्होंने इस बात का इन्तज़ार नहीं किया कि जब अङ्गरेज़ जायँ तब निर्माण की पञ्च वर्षीय योजनाएँ बनें। लोगों ने गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की मिसाल दुनिया के विविध देशों की क्रान्ति के इतिहासों में ढूँढ़ी और सादृश्य न मिलने पर उसकी सफलता में संशय प्रकट किया पर गान्धी जी की अहिंसात्मक क्रान्ति की मिसाल ही लासानी है, रचनात्मक कार्यक्रम उसका प्राण है। उनके पारस्परिक सहयोग से ही देश ताक़त पाता है।

संशयात्माओं के कारण गान्धी जी को जो सहयोग रचनात्मक कार्यों के लिये मिलना चाहिये यद्यपि वह नहीं मिला ताहम उसके थोड़े से ही सफल प्रयोग से मुल्क में एक अभूतपूर्व आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तालीमी जागृति दिखाई देने लगी। भारत का जो ग्रामीण रूप और ग्रामीण सभ्यता है उसके साथ गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का तादात्म्य है। उससे भारत के व्यापक जन रूप का सँवार और सिंगार होता है। गान्धी जी की बात राजनीतिज्ञ नहीं समझते पर वह भारत की ग्रामीण आत्मा ख़ूब समझती है। उनके रचनात्मक कार्यक्रमों में ही उनके नेतृत्व की सफलता है, इन कार्यक्रमों की प्रगति में ही देश की राजनैतिक प्रगति निहित है। इसीलिये गान्धी जी की बारीक़ थरथराती आवाज़ अपने विस्तार क्रम में डायनामाइट का काम करती है और धुरन्धर क्रान्तिकारियों की दहाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविकता की चट्टानों से टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाती है। तभी जवाहरलाल जी कहते हैं कि गान्धी जी क्रान्ति के पूर्ववर्त्ती और पारवर्त्ती दोनों कार्यक्रम एक साथ चलाते हैं। गुलामी की जितनी दीवार वे गिराते हैं आज़ादी की भव्य इमारत की उतनी ही दीवार वे उठाते हैं।

गांधी अराजकवादी

बहुतों को इस बात से बड़ा आश्चर्य होता है कि गान्धी जी की राय बहुत सी बातों में समय पाकर बदल जाती है। वे उपहास के तौर पर इसे गान्धी जी की अस्थिरता (inconsistency) कहते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि गान्धी जी जीवित, जाग्रत और स्थितिप्रज्ञ मनुष्य हैं। वे जीवन को सत्य का एक प्रयोग मानते हैं। वे मनुस्मृति की तरह कोई व्यवस्था ग्रन्थ नहीं हैं जिसमें न कोई रद्दोबदल की सम्भावना है न हेरफेर की। इसीलिये वे अपने नाम से सम्बन्धित किसी कार्यक्रम को गान्धी-वाद के नाम से नहीं पुकारना चाहते। वे रूढ़ियों के जनक नहीं बनना चाहते। वे एक वैज्ञानिक की तरह अपने प्रयोगों को आगे बढ़ाते हैं। उन्हीं सिद्धान्तों पर बराबर प्रयोग करते हैं और पिछली भूलों को दूर करते हैं। वे भूलों को सम्भव मानते हैं और कहते हैं कि सिवाय परमात्मा के सब से भूलें होती हैं। अपनी बड़ी से बड़ी भूल को वे मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। पच्छिम की शिक्षा पाये राजनीतिज्ञ जिनका राजनैतिक व्यवसाय ही धोखा-धड़ी से चलता है, मुस्कराकर कहते हैं —'देखो गान्धी जी कितने असङ्गत हैं!' पर इस टिप्पणी के अन्दर इन कूटनीतिज्ञों का अपना बौनापन छिपा रहता है। उनके 'असत्य के प्रयोगों' में इस साफ़-गोई को कोई जगह नहीं होती।

एक बार इन पंक्तियों के लेखक ने पण्डित जवाहर लाल जी से प्रश्न किया था कि गान्धी जी अपने राज-नैतिक सिद्धान्तों के कारण क्या 'समाजवादी' कहे जाने के मुस्तहक़ हैं? जवाब में पण्डित नेहरू ने गान्धी जी की राजनैतिक विचारधारा का विश्लेषण करते हुये कहा था—गान्धी जी बेहद अमली आदमी हैं। एक ओर उनका दिमाग़ जहाँ आदर्शों के क्षितिज का चक्कर काटता है वहाँ दूसरी ओर उनका हाथ जनता की नब्ज़ पर रहता है। इसीलिये उनके आन्दोलन इतने बावक्त होते हैं कि देखकर हैरत होती है। वे जनता की प्रगति के पथ के मील के पत्थर होते हैं। गान्धी जी का व्यवहारवाद उन्हें लम्बी लम्बी बातें करने से रोकता है किन्तु वे समय से पीछे नहीं होते। उन्हें समाजवादी की अपेक्षा अराजकवादी कहना ही ठीक होगा। समाजवाद का सिद्धान्त तो एक जगह जाकर रुक जायगा किन्तु अराजकवादी को तो वस्तुस्थिति से कभी सन्तोष नहीं होता। गान्धी जी तो समाजवादी भारत को भी उन्नततम अवस्था में ले जाने का प्रयत्न करेंगे।

इसे याद है सन् १९३४ में पटने की आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक के समय कांग्रेस समाजवादियों का एक डेपुटेशन यह बात कहने के लिये गान्धी जी से मिला कि कांग्रेस कमेटियों के नये चुनावों में समाज-वादियों को भी जगह मिले और गान्धी जी स्वयं समाज-वादी पार्टी में शरीक हो जायें। गान्धी जी ने संजीदा होकर जवाब दिया—"आप कांग्रेस कमेटियों पर क़ब्ज़ा करने के बजाय जनता पर क़ब्ज़ा कीजिये। जब जनता पर क़ब्ज़ा हो जायगा तो कांग्रेस कमेटियाँ अपने आप आपके हाथ में आ जायँगी।" और फिर हँसकर कहा था कि—"जब जनता पर आपका क़ब्ज़ा हो जायगा तो गान्धी कोई जनता से बाहर थोड़े ही है!"

गांधी जी रूढ़ियों के हामी नहीं

गान्धी जी का व्यवहारवाद ही उन्हें चरखे के पीछे पागल बनाये हुये है। हाल के दिल्ली के एक प्रार्थना-प्रवचन में उन्होने कहा था—"भारत में सालाना ३०० करोड़ रुपये के कपड़े की खपत है।" देसी मिलें यदि आठ आठ घण्टों की तीन शिफ़्टों में काम करें तो भी ४० करोड़ रुपया सालाना से ज्यादा कपड़ा नहीं बना सकतीं। ८ करोड़ रुपया का कपड़ा मिल के सूत और करघों से बन सकता है। बाक़ी के लिये हमें विदेशी कपड़ों पर निर्भर करना पड़ेगा। ऐसी सूरत में या तो हम २५० करोड़ रुपया बाहर भेजें, जो किसानों की कमाई का पञ्चमांश है, या हर भारतीय सूत कातने में योग देकर इस बड़ी रक़म को देश में बचाने का प्रयत्न करके मौजूदा वस्त्र सङ्कट को टाले। इतनी मिलें बनाने का कार्यक्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक नहीं है। उसके लिये हमें दसियों वर्ष इन्तज़ार करना होगा। लेकिन तब तक नंगा भी तो नहीं रहा जा सकता। इसीलिये गान्धी जी सूत कताई में हर व्यक्ति का योग-दान चाहते हैं। इसीलिये 'जो काते सो खादी पहने' का उसूल बनाया गया है। गान्धी जी ने बार बार कहा है—मैं चरखे को रूढ़ि नहीं बनाना चाहता। जनता के मौजूदा आर्थिक संकट को दूर करने का मुझे कोई दूसरा उपाय बता दो तो मैं चरखे को जला दूँ।' लेकिन गान्धी जी कहते हैं—"चरखा कातो समझ बूझकर कातो।" ऐसे चरखे से उनका कोई सम्बन्ध नहीं जो आज़ादी के निकट हमें न ले जाये। तभी वे कहते हैं—"जब हम ग़ुलाम बने तब भी हम चरखा चलाते थे, वह ग़ुलामी का चरखा था। आज जवाहरलाल जो चरखा चलाते हैं वह आज़ादी का चरखा है।"

पहले वे वर्णाश्रम के क़ायल थे, लेकिन अब उन्हें वह निरर्थक मालूम होता है। अब वे जात पाँत को समूल नष्ट कर देना चाहते हैं। इसीलिये वे भङ्गी कालोनी में रहते हैं और अपने को भङ्गी कहते हैं। मुल्क के नेताओं और अङ्गरेज़ वज़ीरों तक को उनसे मिलने भङ्गी कालोनी में ही जाना पड़ता है। जहां पददलित हैं, जहां श्रमिक हैं, जहाँ नीच से नीच हैं वहीं गान्धी जी भी अपनी जगह मानते हैं। तभी तो उनके नारायण 'दरिद्रनारायण' हैं और उनके जनार्दन 'जनता-जनार्दन' हैं।

एक ओर वे अहिंसा के प्रतिपालक हैं, साँप तक को नहीं मारने देते, किन्तु दूसरी ओर उन्हें बछड़े और बन्दरों को मारने में भी कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। उनकी अहिंसा रूढ़िवादी और निष्प्राण अहिंसा नहीं किन्तु सजीव और व्यावहारिक अहिंसा है। तभी वह इतनी व्यापक और विस्फोटक है।

आक्रामक अहिंसा

हज़रत ईसा ने उपदेश दिया था—'यदि कोई तुम्हें बाएँ गाल में चपत मारे तो तुम अपना दाहिना गाल भी उसके आगे कर दो और यदि कोई तुम्हारा कोट ले ले तो तुम उसे अपना कुरता भी दे दो। भगवान महावीर, बुद्ध, कन्फ्यूसियस आदि ने इसी से मिलते-जुलते उपदेश दिये थे। इन महापुरुषों की अहिंसा व्यक्तिगत अहिंसा थी, निष्क्रिय अहिंसा थी जब कि गान्धी जी की अहिंसा सक्रिय, आक्रामक और सामूहिक अहिंसा है। सन् '३० में उन्होंने कहा था—'मुट्ठी टूटे पर नमक न छूटे'। उनकी अहिंसा में 'मरो' 'करो' का पर्यायवाची है। गान्धी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह ने एक बेबस और निरस्त्र देश को आज़ादी के दरवाज़े पर लाकर खड़ा कर दिया। आज पश्चिम के देश भौतिकवाद के भँवर में पड़कर निस्सहाय अवस्था में एटम बाम्ब से ज़िन्दगी और मौत का खेल खेल रहे हैं। चुम्बक की तरह नाश और बर्बादी उन्हें अपनी ओर खींच रही है। वे एक ऐसे ज़हरीले चक्र (vicious circle) में फँस गये हैं जिसमें से निकलने का उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है। तभी रह रहकर सहसा पश्चिम के विचारक और दार्शनिक गान्धी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह को एटम बाम्ब का पर्याय कहने लगते हैं।

अहिंसा और चरखे की व्यापक परिधि

असल में पश्चिमी दुनिया की बीमारी का एटम बाम्ब निदान नहीं, लक्षण है। वह वस्तु-स्थिति का परिणाम है। उसके पीछे १५० बरस की घटनाओं का एक तारतम्य है। वह भस्मासुर का वरदहस्त है।

एटम बाम्ब की कहानी का श्री गणेश वहाँ से होता है जब कोलम्बस और वास्को दे गामा अपने अपने जहाज़ लेकर भारत और अमरीका के तटों पर उतरे थे। उस दिन से दुनिया ने 'व्यापार का सर्वाधिकार', 'उद्योगवाद', 'पूँजीवाद', 'साम्राज्यवाद', 'शोषण', 'युद्ध', 'डिक्टेटरशिप' (जनता की हो चाहे फ़ासिस्टों की हो), 'महायुद्ध' और 'एटम बाम्ब' की एक श्रङ्खलाबद्ध घटनावली देखी है।

सान्फ्रान्सिस्को और पैरिस के सम्मेलनों में लोगों को 'विश्व की भावी शान्ति' की झलक नहीं दिखाई देती। अभी से लोग तीसरे महायुद्ध की खुले आम चर्चा करते हैं। एटम बाम्ब के नये नये प्रयोग हो रहे हैं। सब मूढ़-गति से विनाश के, भयंकर बरबादी के पथ पर बढ़े चले जा रहे हैं। दुनिया में एक भी राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं जो ज़ोरदार हाँक लगाकर दुनिया को प्रलय की ओर बढ़ने से रोक सके। सब ऊपरी इलाज करना चाहते हैं, व्यापक इलाज की ओर कोई ध्यान नहीं देता।

असल में दुनिया को फिर एक बार पीछे जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। उद्योगवाद जब तक ख़त्म न होगा साम्राज्यवाद और युद्ध के समाप्ति की आशा करना बालू से तेल निकालना है। इसीलिये अहिंसा का चरखे और घरेलू धन्धों से ख़ास सम्बन्ध है। एक के बगैर दूसरा रह नहीं सकता। एक की सफलता में दूसरे की सफलता है। चरखा और घरेलू धन्धे दुनिया से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा और साम्राज्यवाद को नष्ट कर सकते हैं। जब ये दोनों चीज़ें नहीं रहीं तो युद्ध और एटम बाम्ब की ज़रूरत नहीं रह जायगी। तब राजनैतिक झगड़े सुलझाने के लिये दुनिया में अहिंसात्मक सत्याग्रह एक अमोघ साधन बन जायगा।

गान्धी जी वैज्ञानिक उन्नति के विरुद्ध नहीं किन्तु वे चाहते हैं कि विज्ञान मानव का दास बनकर रहे, स्वामी बनकर नहीं। सार्वजनिक हित के लिये उसके उपयोग के वे विरुद्ध नहीं।

दुनिया को निकट या दूर भविष्य में गान्धी जी के इन्हीं सिद्धान्तों का अवलम्बन करना होगा इसके सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं।

—विश्वम्भरनाथ

योरप की हालत

हाल की जंग से जितनी बरबादी योरप की हुई है उतनी चीन और जापान को छोड़कर दुनिया के और किसी हिस्से की नहीं हुई. योरप का हर मुल्क एक घायल जिस्म की तरह तड़प रहा है, कराह रहा है और उसकी जान के लाले पड़े हुए हैं.

मिसाल के लिए हम एक हंगरी को ले लेते हैं. और वहां की कुछ मोटी मोटी बातें लिखते हैं.

लंदन के 'कार्ट नाइटली' नाम के अख़बार में एक अमरीकन ने हंगरी देश का इस वक्त का हाल बयान किया है. वह लिखता है कि वहां खाना कपड़ा जैसी मामूली ज़रूरत की चीज़ों को लेकर एक आदमी फ़रवरी सन १९४५ तक जितने पैंगो माहवार में गुज़र बसर कर सकता था सितम्बर सन १९४५ में ठीक उसी तरह रहने के लिए उससे दस गुना पैंगो लगते थे, और अब उसके ठीक डेढ़ हज़ार गुना लगते हैं. पैंगो हंगरी का एक सिक्का है जो हमारे लगभग दस आने के बराबर है. जंग से पहले एक सेर चीनी वहां सवा पैंगो में आती थी. अब अव्वल तो चीनी मिलनी ही मुशकिल है और अगर मिल भी जाय तो एक सेर के दाम सवा पैंगो की जगह दो लाख पैंगो हैं. दूध छोटे बच्चों के लिए भी मिलना क़रीब क़रीब नामुमकिन है. जो गाएं बच गई हैं उनके थन चारा न मिल सकने की वजह से सूख गए हैं.

छोटे बड़े नौकरों की तनख़ाहें वहां सरकारी हुकुम से बढ़ा दी गई हैं. जंग से पहले जिस आदमी को एक पैंगो महीना मिलता था उसे अब एक हज़ार पैंगो महीना मिलता है. पर इससे काम नहीं चलता. जंग से पहले जितने पैंगो से ढाई मन मक्खन ख़रीदा जा सकता था आज उसके एक हज़ार गुने पैंगो से सिर्फ़ तीन सेर मक्खन मिल सकता है.

कपड़े की इतनी कमी है कि देश के अच्छे से अच्छे लोग सर्दी में सड़कों पर कांपते दिखाई देते हैं.

देश के सौ पीछे सत्तर कारख़ाने टूटे और बेकार पड़े हैं. ज़मीन की पैदावार आधे से कम रह गई है. मवेशियों और दूध देने वाले जानवरों में से तीन चौथाई या तो मर गए या देश से बाहर चोरी चले गए और या लोगों ने भूख में उन्हें खा डाला. सिक्कों की जगह काग़ज़ ही काग़ज़ सब जगह दिखाई देते हैं. जनवरी सन १९४६ में वहां बारह हज़ार अरब पैंगो के नोट चलते थे. अब तीन लाख अरब पैंगो से ऊपर के नोट चल रहे हैं और खाने पीने की चीज़ें बाज़ार में कहीं दिखाइ नहीं देतीं.

इस अकाल से जब कि मुल्क के लोग मिट रहे हैं उसी देश में रहने वाले अमरीकनों, अंग्रेज़ों और रूसियों को कोई तकलीफ़ नहीं है. क्योंकि इन सब के अपने अपने सिक्के चलते हैं और देसी सिक्कों में अपने सिक्कों की क़ीमत यह लोग जैसे जैसे चीज़ों का भाव बढ़ता है, बराबर ज़ोरों से बढ़ाते रहते हैं.

एक दूसरा लेखक हंगरी के अख़बार "डेमोक्रेशिया" में लिखता है कि इस अकाल की वजह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंगरी के लोगों का सदाचार, उनका चलन भी बेहद गिर गया है और गिरता जा रहा है. औरतें ही घर की जान होती हैं.

अब हम यह भी बता दें कि हंगरी की हालत योरप के और देशों की हालत से ज़्यादा बुरी नहीं है. बहुत सी बातों में हंगरी औरों से अच्छा है. आस्ट्रिया, इटली, बलकान की जनता बहुत सी बातों में इससे भी ज़्यादा मुसीबतों में फंसी हुई है.

यह तो एक तरह की मुसीबतें हैं. दूसरी तरफ़ योरप के ज़रा .खुशहाल देशों में क़ानून की बुनियादें बिलकुल हिल गई हैं और ऐसी सूरतें सामने आ रही हैं जो कभी कोई सोच भी नहीं सकता था. अभी कल की बात है कि .खुद इंगलिस्तान में एक अजब तमाशा हुआ. लंदन के पच्छिमी हिस्से में जिसमें अमीर लोग रहते हैं कुछ बड़े बड़े मकान जिनमें ऐश आराम के सब सामान जमा थे बन कर तय्यार हुए. जिस दिन उनकी तय्यारी ख़तम हुई उसी दिन ग़रीब ख़ानदानों के झुन्ड के झुन्ड उनमें घुस पड़े. पहले से इतना अच्छा इन्तज़ाम कर रक्खा था कि पन्द्रह मिनट के अन्दर एक सौ कुनबे जिनमें एक हज़ार आदमी थे अपना पूरा सामान लेकर उनमें जा बसे. चौकीदारों ने पुलीस को बुलाया. पुलीस पहुँच गई. पर उन लोगों को निकालने की जगह पुलीस ने चाय पानी की लारियां बुला बुलाकर उनकी ख़ातिर की. ऐसी ही वारदातें वहां के और मोहल्लों में भी हो रही हैं और हकूमत और दूसरे लोग इस फ़िक्र और घबराहट में हैं कि इस नए रोग का क्या इलाज किया जाए.

एक तरफ़ तो यह सब बातें यह दिखाती हैं कि योरप की हालत कितनी नाज़ुक और ख़तरनाक हो रही है. वहां के लोग कितने संकट में हैं. दूसरी तरफ़ इंगलिस्तान और रूस जिनके हाथों में योरप की सारी फ़ौजी ताक़त और तिजारत आ गई है अपनी पुरानी राजकाजी चालों और धुनों में डूबे हुए हैं. वह बेबस, लाचार, बरबाद मुल्कों को अपने पंजे में कसने और उनसे बहुत से बहुत फ़ायदा उठाने की कोशिश में लगे हुए हैं. तमाशा यह है कि इन दोनों देशों में मज़दूरों का राज है. फिर भी आपस की खेंचतान, नफ़रत और दुशमनी इनमें इतनी बढ़ रही है कि तीसरी जंग की घटाएं साफ़ उठती नज़र आने लगी हैं.

इंगलिस्तान वहां रूस से कमज़ोर पड़ रहा है. रूस ने सारा बलकान अपने बस में कर लिया है. वहां लगभग सब जगह कम्यूनिस्ट राज क़ायम हो गए हैं. इंगलिस्तान का कहना है कि यह राज डेमोक्रेटिक यानी जनता के राज नहीं हैं बल्कि फ़ौजी ताक़त के बल ज़बरदस्ती उन मुल्कों पर थोप दिए गए हैं. यही शिकायत रूस को स्पेन, इटली, ग्रीस वग़ैरह के बारे में है. वह कहता है कि इंगलिस्तान में मज़दूर हकूमत सिर्फ़ दिखावे के लिए है और इंगलिस्तान की पालिसी दूसरे मुल्कों के लिए वही जारी है जो चर्चिल और उनके साथियों की थी.

इंगलिस्तान पग पग पर अमरीका की मदद ले रहा है और अमरीका इंगलिस्तान की मदद से हर जगह अपने क़दम मज़बूत जमा रहा है. रूस का कहना है कि यह दोनों रूस के ख़िलाफ़ गुटबन्दी कर रहे हैं और इस कोशिश में हैं कि दुनिया के अन्दर कम्यूनिज़्म की .क़ुदरती और बढ़ती हुई बाढ़ को अपनी फ़ौजी ताक़त और अपने रुपए के बल से रोककर कुचल डालें. रूस का कहना है कि इंगलिस्तान की मज़दूर हकूमत स्पेन में फ्रैन्को की फ़ैसिस्ट तानाशाही को, इटली में उस पार्टी को जो वहां फिर से शख्सी राज यानी एक आदमी का राज क़ायम करना चाहती है मदद दे रही है, और ग्रीस में तो इंगलिस्तान ने अपनी तलवार के ज़ोर से वहां की गद्दी से उतरे हुए राजा को फिर से तख्त दिलवा दिया और उसे देश निकाले से वापिस बुलवाने के लिए वहां के बड़े वज़ीर इंगलिस्तान की मदद से इन्तज़ाम कर रहे हैं. रूस की यह सारी शिकायतें ठीक हैं और इंगलिस्तान से इनका कोई तसकीन देने वाला जवाब बन नहीं पड़ रहा है.

इंगलिस्तान अमरीका और रूस की सबसे ज़्यादा राजकाजी टक्करें जर्मनी में हो रही हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर यही हाल रहा तो इनमें जल्दी ही बिना दो टूक हुए नहीं बच सकती. इस वक्त तक यह तीनों जर्मनी के तीन अलग अलग हिस्सों के मालिक बने हुए हैं और एक दूसरे को अपने हिस्से में किसी तरह का कोई दखल नहीं देने देता. पर रूस ने अपने हिस्से के जर्मनों को बड़ी बड़ी सुविधाएं दे देकर उनके दिलों को अपनी तरफ़ कर लिया है. उन बाक़ी हिस्सों के लोग जो अमरीका और इंगलिस्तान के क़ब्जे में हैं यह हालत देख देख कर बेचैन हो रहे हैं और रूस की तरफ़ खिंच रहे हैं. इस खिंचाव को अमली सूरत देने का रूस ने एक और ढंग निकाल लिया है. उसने जर्मनी की सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टियों को मिला दिया और उनके सामने यह शर्त रख दी है कि वह तमाम जर्मनी पर चुनाव के ज़रिये अपना राज क़ायम कर लें तो रूस उसे मान लेगा और कुल जर्मनी की हकूमत उस राज को सौंप देने में पूरी मदद करेगा. इससे एक ज़बरदस्त हलचल जर्मनी में पैदा हो गई है जो एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल रही है.

इस हलचल ने अमरीका और इंगलिस्तान की दिक़्क़तों को और भी बढ़ा दिया है. रूस के इस नक़शे के जवाब में इन्होंने एक अपना नक़शा जर्मनी के सामने रखा है. वह यह है कि जर्मनी के टुकड़े न रखकर इसे इन तीनों के मिले-जुले एक राज के मातहत कर दिया जाए. इसकी माली ज़िन्दगी जो टुकड़े टुकड़े हो रही है फिर से एक कर दी जाए और इस सुधार के लिए उसको जिस जिस मदद की ज़रूरत हो वह दी जाए. रूस कहता है कि यह सब जर्मनी के पुराने पूंजीपतियों को फिर से जिलाने और जर्मनी को फिर से एक ऐसी फ़ौजी ताक़त बनाने की तरकीब है जो अंगरेजों का साथ दे. म्यूनिक का भूत फिर से जगाया जा रहा है और जर्मनी को रूस के ख़िलाफ़ तय्यार कर देने की कोशिशें इन परदों में की जा रही हैं.

एक तरफ़ तो आपस में खेंचातानी और नफरतें इतनी बढ गई हैं और दूसरी तरफ़ शान्ति और समझौतों के नारे उठाए जा रहे हैं और यूनाइटेड नेशन्स की कानफ़रेन्सों के ड्रामे हो रहे हैं. पर यह ड्रामे असलियत को नहीं छिपा पाते. इन कानफ़रेन्सों की बहसें साफ़ दिखा रही हैं कि जो यूनाइटेड नेशन्स का संगठन दुनिया में शान्ति और सुलह का युग लाने के लिए बनाया गया था आज ये तीनों ज़बरदस्त ताक़तें इसे अपनी ज़ोर आजमाई का अखाड़ा बनाए हुए हैं. सबकी कोशिशें यह हैं कि वह इसमें अपने पिट्ठुओं को दाखिल करके अपनी तरफ़ के वोट बढ़ा ले. यूनाइटेड नेशन्स में इस वक्त अमरीका और इंगलैण्ड के पिट्ठुओं की तादाद रूस के पिट्ठुओं से ज़्यादा है. इस वास्ते क़दम क़दम पर रूस को अपनी वीटो की ताक़त लगाकर इनके उन फ़ैसलों को रोकना पड़ता है जो रूस की मरज़ी के ख़िलाफ़ होते हैं. बाज़ मौक़ों पर पिट्ठुओं के ज़्यादा होते हुए भी इंगलैण्ड और अमरीका को भी यही करना पड़ता है. लालच इतनी बढ़ी हुई है और एक दूसरे का डर दिलों में इतना गहरा बैठा हुआ है कि इनसाफ़ और रवादारी की कोई गुंजाइश ही नज़र नहीं आती. और जब इनसाफ़ और समझौते के रास्ते बन्द हो जाते हैं तो सिवाय तलवार, बरबादी और ख़ून-ख़राबे के और कुछ बाक़ी नहीं रहता. इन तीनों ताक़तों की अन्धी ख़ुदग़र्जियाँ इन्हें इसी बरबादी और मौत के रास्ते की तरफ़ ले जा रही हैं.

—सुन्दरलाल

इसलाम के सब से महान शत्रु

नोआखाली से जो समाचार आरहे हैं वे यदि दसवाँ हिस्सा भी सही हैं तो दुनिया के हर मुसलमान की गरदन शर्म से नीचे झुक जायगी। मिस्टर जिन्नाह इस समस्त जघन्य, नारकीय, अमानुषिक और वहशी घटनाओं के लिये नैतिक रूप से ज़िम्मेवार हैं। इस अत्यन्त नाजुक स्थिति में हर भारतवासी को बेहद ज़ब्त और सब्र रखने की ज़रूरत है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हमें इसमें कोई संशय नहीं कि इसलामी इतिहास एक दिन क़ायदे आज़म जिन्नाह को बीसवीं सदी के इसलाम का सबसे महान शत्रु घोषित करेगा।

—विश्वम्भरनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अद्वितीय, अनूठी और क्रान्तिकारी पुस्तक

टोकियो से इम्फाल

पृष्ठ संख्या २२८ : बिलकुल नये चित्र २१ : मूल्य: २।) : डाक से २॥।=),

लेखक—सरदार रामसिंह रावल; सम्पादक दैनिक 'आजाद हिन्द' बैंकाक (थाइलैण्ड)
हिन्दी में—प्रसिद्ध पत्रकार और जब्त 'जय हिन्द' के यशस्वी लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार
भूमिका—अगस्त ४२ की क्रान्ति की लक्ष्मी श्रीमती अरुणा आसफअली

महान क्रान्तिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द की भावना से आयोजित प्रचण्ड क्रान्ति का पूर्ण प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास।

पुस्तक में क्या है ?

* बैंकौक से इम्फाल तक की ३००० मील पैदल यात्रा का रोमांचकारी विवरण।
* श्री रासबिहारी बोस और राजा महेन्द्रप्रताप आदि की प्रवृत्तियों का पूरा परिचय।
* इम्फाल और अराकान के मोर्चों के खूनी जंग का आँखों देखा पूरा हाल।
* बाल सेना और नेताजी के नये व दुर्लभ चित्र और एक नक़शा।

पुस्तक की भाषा और शैली कहानी की तरह रोचक,
उपन्यास की तरह मोहक और नाटक की तरह आकर्षक है।

हिन्दी तो क्या, किसी भी भाषा में ऐसी पूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई।

आज ही अपनी पुस्तक का आर्डर भेजिये।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी क्रान्तिकारी पुस्तक

राजा महेन्द्रप्रताप

पृष्ठ १०० से ऊपर : कई चित्र : मूल्य १।।) डाक से १।।।-)

लेखक—'टोकियो से इम्फाल' पुस्तक के नामी लेखक और बैंकोक के दैनिक 'आज़ाद हिन्द' के सम्पादक सरदार रामसिंह जी रावल और हिन्दी के ख्यातनामा लेखक श्री सत्यदेव जी विद्यालङ्कार।

बत्तीस वर्षों के निर्वासन के बाद स्वदेश लौटने वाले सुप्रसिद्ध और महान क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप की विस्तृत जीवनी सब से पहिले हिन्दी में ही प्रकाशित हो रही है। इसमें आप राजाजी के प्रारम्भिक जीवन के साथ पढ़िये कि कैसे राजाजी बिना पासपोर्ट के स्विटजरलैण्ड होकर जर्मनी गये, कैसर विलियम से मिले, काबुल में आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की, ६००० सैनिकों की फौज ले हिन्दुस्तान पर हमला किया, रूस में ट्राटस्की से मिले, सारे संसार का पांच बार दौरा किया, जापान में आर्य सेना खड़ी की, विश्व-संघ के नाम से संसार का नक़शा तैयार किया।

अपने लिये तुरन्त एक प्रति मंगा लें।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

पुस्तकालय
०४०२०६
विश्व भारती विश्वविद्यालय शान्तिनिकेतन

नया क्रान्तिकारी कहानी संग्रह

आग और आँसू

लेखक : डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी एम० ए०, डी० लिट्० (पैरिस)

डाक्टर रायपुरी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, उत्कृष्ट विचारक और क्रान्तिकारी समाज सुधारक हैं। कहानीकार की हैसियत से उनकी बेहद ख्याति है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों का संग्रह इस समय प्रेस में है।

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नया हिन्द'

हिन्दुस्तानी बोली और हिन्दी उर्दू लिखावट में
हिन्दुस्तान की मिली जुली कल्चर का बेजोड़ मासिक पत्र

सम्पादक मण्डल

पण्डित सुन्दरलाल

डाक्टर ताराचन्द

श्री मञ्ज़र अली सोख़्ता

सय्यद मुज़फ़्फ़र हसन

महात्मा भगवानदीन

पण्डित विश्वम्भरनाथ

सालाना क़ीमत छै रुपया

एक कापी दस आना

आज ही ग्राहक बनें या नमूने की कापी मंगायें

"नया हिन्द" आफ़िस, बाई का बाग़, इलाहाबाद

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

खोजपूर्ण गम्भीर साहित्यिक निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का
प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

मैनेजर विश्वभारती पत्रिका, शान्ति निकेतन (बङ्गाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी मासिक पत्रिका

गान्धी जी कहते हैं—

"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे हैं।"

❀

मौलाना आज़ाद कहते हैं—

"विश्ववाणी जैसे रिसाले (पत्रिका) की देश को ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।"

विश्ववाणी पुस्तक साहित्य

संस्कृति के निर्मल प्रेम का सङ्गम है।
देश का साम्प्रदायिक ज़हर ऐसे साहित्य के प्रचार से ही दूर हो सकता है।

१—हज़रत मुहम्मद और इसलाम : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[हिन्दी और उर्दू संस्करण बिक गये, गुजराती संस्करण प्राप्त, मराठी संस्करण प्रेस में]

२—गीता और क़ुरान : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[दूसरा संस्करण (हिन्दी), उर्दू और गुजराती संस्करण प्रेस में]

08206
20203

३—हज़रत ईसा और ईसाई धर्म : लेखक पण्डित सुन्दरलाल
[थोड़ी प्रतियाँ और बची हैं]

४—महावीर वर्धमान और उनका धर्म : लेखक डा० जगदीशचन्द्र शास्त्री
[जैन धर्म विषयक अत्यन्त सुन्दर पुस्तक अभी छपकर प्रकाशित हुई है]

विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri